मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २००८ प्रथम संस्करण २०,०००

मूल्य ८॥)
(साढ़े आठ रुपया)

पता—गीताप्रेस, ० गीताप्रेस (गोरखपुर

नटवर नागर

वर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥

श्रीकृष्णः शरणं मम

निरखि किन नयना होहु निहाल ।

अति अद्भुत आनँद-अम्बुद-सी सोहत सो सुखमा सुविसाल ॥ १ ॥

नीरद-तनु दामिनि-सी दमकत छिन-छिन छवि-कन झरत रसाल ।

अंग-अंग मनिगन दुति राजत झिलमिलात जनु उडुगन जाल ॥ २ ॥

नाचत मन-मयूर अति उनमद निरखि इन्द्रधनु-सी बनमाल ।

पुनि पुनि अति आनँद उर उमँगत सुनि-सुनि वंसीनाद रसाल ॥ ३ ॥

मुख-मयंक पै मुकुट मनोहर लसत कञ्ज जनु कनक-मराल ।

मधुर-मधुर मुसकान मनोहर मारत मनहुँ मार सर-जाल ॥ ४ ॥

स्याम-सनेह-सुधा नित बरसत परसत कँपत कुटिल कलिकाल ।

सो सुठि सुधा पान करि रुचि सों भजहु निसंक न किमि नँदलाल ॥ ५ ॥
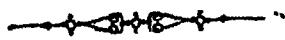
नम्र निवेदन

श्रीमद्भागवत भारतीय वाङ्मयका मुकुटमणि है। वैष्णवोंका तो यह सर्वस्व ही है। भारतवर्षमें जितने भी वैष्णव-सम्प्रदाय प्रचलित हैं, उन सभीमें श्रीमद्भागवतका वेदोंके समान आदर है। कई आचार्योंने तो प्रस्थानत्रयीके अन्तर्गत उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रोंके साथ इसीको तीसरा प्रस्थान माना है। इसे वेद-महोदधिका अमृत कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी—'वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।' बल्कि पद्मपुराणान्तर्गत भागवत-माहात्म्यमें स्वयं सनकादि परमर्षियोंने प्रणव, गायत्री-मन्त्र, वेदत्रयी, श्रीमद्भागवत और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण—इनका तत्त्वतः अभेद बतलाया है। इसे भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् वाङ्मय-स्वरूप माना गया है। साक्षात् भगवान्के कलावतार श्रीवेदव्यासजी-जैसे अद्वितीय महापुरुषको जिसकी रचनासे ही शान्ति मिली, उस श्रीमद्भागवतकी महिमा कहाँतक कही जाय। इसमें प्रेम, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य—सभी कूट-कूटकर भरे हुए हैं। इसका एक-एक श्लोक मन्त्रवत् माना जाता है। इसीसे इसका धर्मप्राण जनतामें इतना आदर है।

गीताप्रेससे प्रथम बार संवत् १९९७ में इस ग्रन्थरत्नका सरल भाषानुवाद-सहित, पाठभेदकी टिप्पणियोंसे युक्त संस्करण दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया था, जिसे भागवत-प्रेमी समाजने बहुत पसंद किया था। अनुवाद हमारे प्रिय बन्धु श्रीमुनिलालजी (वर्तमानमें श्रद्धेय स्वामी सनातनदेवजी) ने किया था। वह संस्करण बहुत शीघ्र ही समाप्त हो गया और उसे दुबारा छापनेकी माँग कई वर्षोंसे की जा रही थी। परंतु इच्छा रहते भी उसे कई कारणोंसे हमलोग दुबारा नहीं छाप सके। इसी बीचमें 'कल्याण'का 'भागवताङ्क' निकला, उसमें अनुवादकी शैली कुछ बदल दी गयी। इस अनुवादमें प्रधान हाथ हमारे ही पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी (वर्तमानमें श्रद्धेय स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज) का था। साथ ही श्रीमुनिलालजी तथा पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्रीका भी सहयोग रहा। अनुवादकी परिवर्तित शैली जनताको अधिक प्रिय लगी। अतएव भागवतका सटीक संस्करण दुबारा छापनेके लिये इसी शैलीके अनुसार उसके संशोधनका कार्य प्रारम्भ किया गया। इसी बीचमें हमारे सौभाग्यवश स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज गोरखपुर पधारे और उन्होंने हमारी प्रार्थनापर इस कार्यको आद्योपान्त करना सहर्ष स्वीकार किया। लगातार कई महीनोंके अथक परिश्रमके बाद भगवान्की कृपासे यह कार्य सम्पन्न हुआ और जिसकी ओर जनताकी आँखें कई वर्षोंसे लगी हुई थीं, वह श्रीमद्भागवतका सटीक संस्करण हमलोग दुबारा छापनेमें समर्थ हुए। इसका सम्पूर्ण श्रेय श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीनन्दनन्दनको ही है। हमलोग भी इस कार्यमें निमित्त बनकर धन्यातिधन्य हो गये। जो लोग संस्कृतसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं, अतएव जिनकी केवल अनुवादमात्रको पढ़नेकी रुचि है, ऐसे लोगोंकी सुविधाके लिये यह केवल भाषानुवाद 'श्रीभागवत-सुधा-सागर' के नामसे अलग छापकर पाठकोंके सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। यह अनुवाद श्रीमद्भागवतके सटीक संस्करणसे ही लिया गया है। उक्त दोनों संन्यासी महात्माओंके अतिरिक्त अनुवादके तैयार अथवा शुद्ध करनेमें तथा प्रूफ आदि देखनेमें जिन-जिन महानुभावोंने हाथ बँटाया है, हम उनका अलग-अलग नामोल्लेख न करके सभीके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करते हैं। वे सभी अपने हैं, इस नाते कृतज्ञताप्रकाश भी केवल शिष्टाचारकी रक्षाके लिये ही है। प्रस्तुत अनुवादमें मूल श्लोकोंके अन्तर्गत प्रत्येक शब्दके भावकी रक्षा करते हुए छोटे-छोटे वाक्योंमें उनकी व्याख्या की गयी है। अतएव इसे अनुवाद न कहकर 'सरल संक्षिप्त व्याख्या' कहना अधिक उपयुक्त होगा। स्थान-स्थानपर, विशेष करके दशम स्कन्धमें कई जगह श्रीभगवान्की मधुर लीलाओंके रसास्वादनके लिये और लीला-रहस्यको समझनेके लिये नयी-नयी टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं, जिससे ग्रन्थकी उपादेयता और सुन्दरता विशेष बढ़ गयी है और साथ ही आकार भी कुछ बढ़ गया है। चित्र भी अधिक दिये गये हैं। ये इस नवीन संस्करणकी कुछ विशेषताएँ हैं। अनुवाद तथा छपाईमें यथासम्भव बहुत अधिक सावधानी रखनेपर भी बुद्धिभ्रम अथवा दृष्टिदोषसे भूलें अवश्य रही होंगी, इसके लिये विज्ञ पाठक हमें क्षमा करेंगे। यदि कोई सज्जन हमारी भूल हमें बतानेकी कृपा करेंगे तो हम उनके विशेष कृतज्ञ होंगे और अगले संस्करणमें उन भूलोंको सुधारनेकी चेष्टा करेंगे।

श्रीहरिः

विषय-सूची

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)

एकादश स्कन्ध

चित्र-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भागवतकी आरती

आरति अतिपावन पुरानकी ।
धर्म-भक्ति-विज्ञान-खानकी ॥

महापुरान भागवत निरमल ।
शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल ।
परमानन्द-सुधा-रसमय कल ।
लीला-रति-रस रसनिधानकी ॥ आ०

कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि ।
जन्म-मृत्युमय भव-भय-हारिनि ।
सेवत सतत सकल सुख-कारिनि ।
सुमहौषधि हरि-चरित-गानकी ॥ आ०

विषय-विलास-विमोह-विनाशिनि ।
विमल विराग विवेक विकाशिनि ।
भगवत्तत्त्व-रहस्य प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञानकी ॥ आ०

परमहंस-मुनि-मन उल्लासिनि ।
रसिक-हृदय रस-रास विलासिनि ।
भुक्ति, मुक्ति, रति, प्रेम सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजानकी ॥ आ०

सप्ताह-पारायणके विश्राम-स्थल

पहला विश्राम—तृतीय स्कन्धके बाईसवें अध्यायतक ।

दूसरा विश्राम—पञ्चम स्कन्धके आठवें अध्यायतक ।

तीसरा विश्राम—सप्तम स्कन्धकी समाप्तितक ।

चौथा विश्राम—दशम स्कन्धके (पूर्वार्ध) तीसरे अध्यायतक ।

पाँचवाँ विश्राम—दशम स्कन्धके (उत्तरार्ध) के चौवनवें अध्यायतक ।

छठा विश्राम—एकादश स्कन्धके तेरहवें अध्यायतक ।

सातवाँ विश्राम—द्वादश स्कन्धकी समाप्तितक ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

पहला अध्याय

देवर्षि नारदकी भक्तिसे भेंट

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको हम नमस्कार करते हैं, जो जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और विनाशके हेतु तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों प्रकारके तापोंका नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था तथा लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, तभी उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके लिये घरसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा ! तुम कहाँ जा रहे हो ?' उस समय वृक्षोंने तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे उत्तर दिया था । ऐसे सर्वभूतहृदय-स्वरूप श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

एक बार भगवत्कथामृतका रसास्वादन करनेमें कुशल मुनिवर शौनकजीने नैमिषारण्य क्षेत्रमें विराजमान महामति सूतजीको नमस्कार करके उनसे पूछा ॥ ३ ॥

शौनकजी बोले—सूतजी ! आपका ज्ञान अज्ञानान्धकारको नष्ट करनेके लिये करोड़ों सूर्योंके समान है । आप हमारे कानोंके लिये रसायन—अमृतस्वरूप सारगर्भित कथा कहिये ॥ ४ ॥ भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे प्राप्त होनेवाले महान् विवेककी वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वैष्णवलोग किस तरह इस माया-मोहसे अपना पीछा छुड़ाते हैं ? ॥ ५ ॥ इस घोर कलिकालमें जीव प्रायः आसुरी स्वभावके हो गये हैं, विविध क्लेशोंसे आक्रान्त इन जीवोंको शुद्ध (दैवीशक्तिसम्पन्न) बनानेका सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है ? ॥ ६ ॥

सूतजी ! आप हमें कोई ऐसा शाश्वत साधन बताइये, जो सबसे अधिक कल्याणकारी तथा पवित्र करनेवालोंसे भी पवित्र हो तथा जो भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा दे ।७। चिन्तामणि केवल लौकिक सुख दे सकती है और कल्पवृक्ष अधिक-से-अधिक स्वर्गीय सम्पत्ति दे सकता है; परन्तु गुरुदेव प्रसन्न होकर भगवान्का योगिदुर्लभ नित्य वैकुण्ठ धाम दे देते हैं ॥ ८ ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी ! तुम्हारे हृदयमें भगवान्का प्रेम है; इसलिये मैं विचारकर तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धान्तोंका निष्कर्ष सुनाता हूँ, जो जन्म-मृत्युके भयका नाश कर देता है ॥ ९ ॥ जो भक्तिके प्रवाहको बढ़ाता है और भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका प्रधान कारण है, मैं तुम्हें वह साधन बतलाता हूँ; उसे सावधान होकर सुनो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजीने कलियुगमें जीवोंके कालरूपी सर्पके मुखका ग्रास होनेके त्रासका आत्यन्तिक नाश करनेके लिये श्रीमद्भागवतशास्त्रका प्रवचन किया है ॥ ११ ॥ मनकी शुद्धिके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है । जब मनुष्यके जन्म-जन्मान्तरका पुण्य उदय होता है, तभी उसे इस भागवतशास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ जब शुकदेवजी राजा परीक्षित्को यह कथा सुनानेके लिये सभामें विराजमान हुए, तब देवतालोग उनके पास अमृतका कलश लेकर आये ॥ १३ ॥ देवता अपना काम बनानेमें बड़े कुशल होते हैं; अतः यहाँ भी सबने शुकदेवमुनिको नमस्कार करके कहा, 'आप यह अमृत लेकर बदलेमें हमें कथामृतका दान दीजिये ॥ १४ ॥ इस प्रकार परस्पर विनिमय (अदलाबदली) हो जानेपर राजा परीक्षित् अमृतका पान करें और हम सब श्रीमद्भागवतरूप अमृतका पान करेंगे' ॥ १५ ॥ इस संसारमें कहाँ काँच और कहाँ महामूल्य मणि तथा कहाँ सुधा और कहाँ कथा ? श्रीशुकदेवजीने (यह

सोचकर) उस समय देवताओंकी हँसी उड़ा दी ॥१६॥ उन्हें भक्तिशून्य (कथाका अनधिकारी) जानकर कथामृतका दान नहीं किया । इस प्रकार यह श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ १७ ॥

पूर्वकालमें श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्‌की मुक्ति देखकर ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था । उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला ॥ १८ ॥ अन्य सभी साधन तौलमें हल्के पड़ गये, अपने महत्त्वके कारण भागवत ही सबसे भारी रहा । यह देखकर सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥१९॥ उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवतशास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया ॥२०॥ सप्ताहविधिसे श्रवण करनेपर यह निश्चय भक्ति प्रदान करता है । पूर्वकालमें इसे दयापरायण सनकादिने देवर्षि नारदको सुनाया था ॥२१॥ यद्यपि देवर्षिने पहले ब्रह्माजीके मुखसे इसे श्रवण कर लिया था, तथापि सप्ताहश्रवणकी विधि तो उन्हें सनकादिने ही बतायी थी ॥ २२ ॥

शौनकजीने पूछा—सांसारिक प्रपञ्चसे मुक्त एवं विचरणशील नारदजीका सनकादिके साथ संयोग कहाँ हुआ और विधि-विधानके श्रवणमें उनकी प्रीति कैसे हुई ? ॥ २३ ॥

सूतजीने कहा—अब मैं तुम्हें वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना अनन्य शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था ॥ २४ ॥ एक दिन विशालापुरीमें वे चारों निर्मल ऋषि सत्सङ्गके लिये आये । वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा ॥ २५ ॥

सनकादिने पूछा—ब्रह्मन् ! आपका मुख उदास क्यों हो रहा है ? आप चिन्तातुर कैसे हैं ? इतनी जल्दी-जल्दी आप कहाँ जा रहे हैं ? और आपका आगमन कहाँसे हो रहा है ? ॥ २६ ॥ इस समय तो आप उस पुरुषके समान व्याकुल जान पड़ते हैं जिसका सारा धन लुट गया हो; आप-जैसे आसक्तिरहित पुरुषोंके लिये यह उचित नहीं है । इसका कारण बताइये ॥ २७ ॥

नारदजीने कहा—मैं सर्वोत्तम लोक समझकर पृथ्वीमें आया था । यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी (नासिक), हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग और सेतुबन्ध आदि कई तीर्थोंमें मैं इधर-उधर विचरता रहा; किंतु मुझे कहीं भी मनको संतोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली । इस समय अधर्मके सहायक कलियुगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रक्खा है ॥ २८—३० ॥ अब यहाँ सत्य, तप, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, दान आदि कुछ भी नहीं है । बेचारे जीव केवल अपना पेट पालनेमें लगे हुए हैं; वे असत्यभाषी, आलसी, मन्दबुद्धि, भाग्यहीन, उपद्रवग्रस्त हो गये हैं । जो साधु-संत कहे जाते हैं, वे पूरे पाखण्डी हो गये हैं; देखनेमें तो वे विरक्त हैं, किंतु स्त्री-धन आदि सभीका परिग्रह करते हैं । घरोंमें स्त्रियोंका राज्य है, साले सलाहकार बने हुए हैं, लोभसे लोग कन्याविक्रय करते हैं और स्त्री-पुरुषोंमें कलह मचा रहता है ॥ ३१—३३ ॥ महात्माओंके आश्रम, तीर्थ और नदियोंपर यवनों (विधर्मियोंका) अधिकार हो गया है; उन दुष्टोंने बहुत-से देवालय भी नष्ट कर दिये हैं ॥ ३४ ॥ इस समय यहाँ न कोई योगी है न सिद्ध है; न ज्ञानी है और न सत्कर्म करनेवाला ही है । सारे साधन इस समय कलिरूप दावानलसे जलकर भस्म हो गये हैं ॥ ३५ ॥ इस कलियुगमें सभी देशवासी बाजारोंमें अन्न बेचने लगे हैं, ब्राह्मणलोग पैसा लेकर वेद पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ वेश्यावृत्तिसे निर्वाह करने लगी हैं ॥ ३६ ॥

इस तरह कलियुगके दोष देखता और पृथ्वीपर विचरता हुआ मैं यमुनाजीके तटपर पहुँचा, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ हो चुकी हैं ॥३७॥ मुनिवरो ! सुनिये, वहाँ मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा । वहाँ एक युवती स्त्री खिन्न मनसे बैठी थी ॥ ३८ ॥ उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें पड़े जोर-जोरसे साँस ले रहे थे । वह तरुणी उनकी सेवा करती हुई कभी उन्हें चेत करानेका प्रयत्न करती और कभी उनके आगे रोने लगती थी ॥ ३९ ॥ वह अपने शरीरके रक्षक परमात्माको दसों दिशाओंमें देख रही थी । उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ उसे पंखा झल रही थीं और बार-बार समझाती जाती थीं ॥ ४० ॥ दूरसे यह सब चरित देखकर मैं कुतूहलवश उसके पास चला गया । मुझे देखकर वह युवती खड़ी हो गयी और बड़ी व्याकुल होकर कहने लगी ॥ ४१ ॥

युवतीने कहा—अजी महात्माजी! क्षणभर ठहर जाइये और मेरी चिन्ताको भी नष्ट कर दीजिये। आपका दर्शन तो संसारके सभी पापोंको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है॥४२॥ आपके वचनोंसे मेरे दुःखकी भी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी। मनुष्यका जब बड़ा भाग्य होता है, तभी आपके दर्शन हुआ करते हैं॥ ४३ ॥

नारदजी कहते हैं—तब मैंने उस स्त्रीसे पूछा—देवि! तुम कौन हो? ये दोनों पुरुष तुम्हारे क्या होते हैं? और तुम्हारे पास ये कमलनयनी देवियाँ कौन हैं? तुम हमें विस्तारसे अपने दुःखका कारण बताओ॥४४॥

युवतीने कहा—मेरा नाम भक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र हैं। समयके फेरसे ही ये ऐसे जर्जर हो गये हैं॥ ४५ ॥ ये देवियाँ गङ्गाजी आदि नदियाँ हैं। ये सब मेरी सेवा करनेके लिये ही आयी हैं। इस प्रकार साक्षात् देवियोंके द्वारा सेवित होनेपर भी मुझे सुख-शान्ति नहीं है॥ ४६ ॥ तपोधन! अब ध्यान देकर मेरा वृत्तान्त सुनिये। मेरी कथा वैसे तो प्रसिद्ध है, फिर भी उसे सुनकर आप मुझे शान्ति प्रदान करें॥ ४७ ॥

मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न हुई, कर्णाटकमें बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्रमें सम्मानित हुई; किंतु गुजरातमें मुझको बुढ़ापेने आ घेरा॥ ४८ ॥ वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अङ्ग-भङ्ग कर दिया। चिरकालतक यह अवस्था रहनेके कारण मैं अपने पुत्रोंके साथ दुर्बल और निस्तेज हो गयी॥ ४९ ॥ अब जबसे मैं वृन्दावन आयी, तबसे पुनः परम सुन्दरी सुरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ॥ ५० ॥ किंतु सामने पड़े हुए ये दोनों मेरे पुत्र थके-माँदे दुखी हो रहे हैं। अब मैं यह स्थान छोड़कर अन्यत्र जाना चाहती हूँ॥ ५१ ॥ ये दोनों बूढ़े हो गये हैं—इसी दुःखसे मैं दुखी हूँ। मैं तरुणी क्यों और ये दोनों मेरे पुत्र बूढ़े क्यों?॥५२॥ हम तीनों साथ-साथ रहनेवाले हैं। फिर यह विपरीतता क्यों? होना तो यह चाहिये कि माता बूढ़ी हो और पुत्र तरुण॥ ५३ ॥ इसीसे मैं आश्चर्यचकित-चित्तसे अपनी इस अवस्थापर शोक करती रहती हूँ। आप परम बुद्धिमान् एवं योगनिधि हैं; इसका क्या कारण हो सकता है, बताइये?॥ ५४ ॥

नारदजीने कहा—साध्वि! मैं अपने हृदयमें ज्ञानदृष्टिसे तुम्हारे सम्पूर्ण दुःखका कारण देखता हूँ, तुम्हें विषाद नहीं करना चाहिये। श्रीहरि तुम्हारा कल्याण करेंगे॥ ५५ ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर नारदजीने एक क्षणमें ही उसका कारण जानकर कहा॥ ५६ ॥

नारदजीने कहा—देवि! सावधान होकर सुनो। यह दारुण कलियुग है। इसीसे इस समय सदाचार, योगमार्ग और तप आदि सभी लुप्त हो गये हैं॥५७॥ लोग शठता और दुष्कर्ममें लगकर अघासुर बन रहे हैं। संसारमें जहाँ देखो, वहीं सत्पुरुष दुःखसे म्लान हैं और दुष्ट सुखी हो रहे हैं। इस समय जिस बुद्धिमान् पुरुषका धैर्य बना रहे, वही बड़ा ज्ञानी या पण्डित है॥ ५८ ॥ पृथ्वी क्रमशः प्रतिवर्ष शेषजीके लिये भाररूप होती जा रही है। अब यह छूने योग्य तो क्या, देखने योग्य भी नहीं रह गयी है और न इसमें कहीं मङ्गल ही दिखायी देता है॥ ५९ ॥ अब किसीको पुत्रोंके साथ तुम्हारा दर्शन भी नहीं होता। विषयानुरागके कारण अंधे बने हुए जीवोंसे उपेक्षित होकर तुम जर्जर हो रही थी॥ ६० ॥ वृन्दावनके संयोगसे तुम फिर नवीन तरुणी हो गयी हो। अतः यह वृन्दावनधाम धन्य है, जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है॥ ६१ ॥ परंतु तुम्हारे इन दोनों पुत्रोंका यहाँ कोई ग्राहक नहीं है, इसलिये इनका बुढ़ापा नहीं छूट रहा है। यहाँ इनको कुछ आत्मसुख (भगवत्स्पर्शजनित आनन्द) की प्राप्ति होनेके कारण ये सोते-से जान पड़ते हैं॥ ६२ ॥

भक्तिने कहा—राजा परीक्षित्‌ने इस पापी कलियुगको क्यों रहने दिया? इसके आते ही सब वस्तुओंका सार न जाने कहाँ चला गया॥ ६३ ॥ करुणामय श्रीहरिसे भी यह अधर्म कैसे देखा जाता है? मुने! मेरा यह संदेह दूर कीजिये, आपके वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है॥ ६४ ॥

नारदजीने कहा—बाले! यदि तुमने पूछा है, तो प्रेमसे सुनो; कल्याणी! मैं तुम्हें सब बताऊँगा और तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा ॥ ६५ ॥ जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोकको छोड़कर अपने परमधामको पधारे, उसी दिनसे यहाँ सम्पूर्ण साधनोंमें बाधा डालनेवाला कलियुग आ गया ॥ ६६ ॥ दिग्विजयके समय राजा परीक्षित्‌की दृष्टि पड़नेपर कलियुग दीनके समान उनकी शरणमें आया। भ्रमरके समान सारग्राही राजाने यह निश्चय किया कि इसका वध मुझे नहीं करना चाहिये ॥६७॥ क्योंकि जो फल तपस्या, योग एवं समाधिसे भी नहीं मिलता, कलियुगमें वही फल श्रीहरिकीर्तनसे ही भली-भाँति मिल जाता है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार सारहीन होने-पर भी उसे इस एक ही दृष्टिसे सारयुक्त देखकर उन्होंने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये ही इसे रहने दिया था ॥ ६९ ॥

इस समय लोगोंके कुकर्ममें प्रवृत्त होनेके कारण सभी वस्तुओंका सार निकल गया है और पृथ्वीके सारे पदार्थ बीजहीन भूसीके समान हो गये हैं ॥ ७० ॥ ब्राह्मण केवल अन्न-धनादिके लोभवश घर-घर एवं जन-जनको भागवतकी कथा सुनाने लगे हैं, इसलिये कथाका सार चला गया ॥ ७१ ॥ तीर्थोंमें नाना प्रकारके अत्यन्त घोर कर्म करनेवाले, नास्तिक और नारकी पुरुष भी रहने लगे हैं; इसलिये तीर्थोंका भी प्रभाव जाता रहा ॥ ७२ ॥ जिनका चित्त निरन्तर काम, क्रोध, महान् लोभ और तृष्णा-से तपता रहता है, वे भी तपस्याका ढोंग करने लगे हैं, इसलिये तपका भी सार निकल गया ॥ ७३ ॥ मनपर काबू न होनेके कारण तथा लोभ, दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेनेके कारण एवं शास्त्रका अभ्यास न करनेसे ध्यानयोगका फल मिट गया ॥ ७४ ॥ पण्डितों-की यह दशा है कि वे अपनी स्त्रियोंके साथ भैंसोंकी तरह रमण करते हैं; उनमें संतान पैदा करनेकी ही कुशलता पायी जाती है, मुक्तिसाधनमें वे सर्वथा अकुशल हैं ॥ ७५ ॥ सम्प्रदायानुसार प्राप्त हुई वैष्णवता भी कहीं देखनेमें नहीं आती। इस प्रकार जगह-जगह सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है ॥ ७६ ॥ यह तो इस युगका स्वभाव ही है, इसमें किसीका दोष नहीं है। इसीसे पुण्डरीकाक्ष भगवान् बहुत समीप रहते हुए भी यह सब सह रहे हैं ॥ ७७ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! इस प्रकार देवर्षि नारदके वचन सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ; फिर उसने जो कुछ कहा, उसे सुनिये ॥ ७८ ॥

भक्तिने कहा—देवर्षे! आप धन्य हैं! मेरा बड़ा सौभाग्य था, जो आपका समागम हुआ। संसारमें साधुओं-का दर्शन ही समस्त सिद्धियोंका परम कारण है ॥७९॥ आपका केवल एक बारका उपदेश धारण करके कयाधू-कुमार प्रह्लादने मायापर विजय प्राप्त कर ली थी। ध्रुवने भी आपकी कृपासे ही ध्रुवपद प्राप्त किया था। आप सर्वमङ्गलमय और साक्षात् श्रीब्रह्माजीके पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ८० ॥

दूसरा अध्याय

भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग

नारदजीने कहा—बाले! तुम व्यर्थ ही अपनेको क्यों खेदमें डाल रही हो? अरे! तुम इतनी चिन्तातुर क्यों हो? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करो, उनकी कृपासे तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा ॥ १ ॥ जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाथ किया था, वे श्रीकृष्ण कहीं चले थोड़े ही गये हैं ॥ २ ॥ फिर तुम तो भक्ति हो और सदा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी हो; तुम्हारे बुलानेपर तो भगवान् नीचोंके घरोंमें भी चले जाते हैं ॥ ३ ॥ सत्य, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किंतु कलियुगमें तो केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति करानेवाली है ॥ ४ ॥ यह सोचकर ही परमानन्दचिन्मूर्ति ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने अपने सत्स्वरूपसे तुम्हें रचा है; तुम साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र-

की प्रिया और परम सुन्दरी हो ॥ ५ ॥ एक बार जब तुमने हाथ जोड़कर पूछा था कि 'मैं क्या करूँ ?' तब भगवान्‌ने तुम्हें यही आज्ञा दी थी कि 'मेरे भक्तोंका पोषण करो ।' ॥ ६ ॥ तुमने भगवान्‌की वह आज्ञा स्वीकार कर ली; इससे तुमपर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और तुम्हारी सेवा करनेके लिये मुक्तिको तुम्हें दासीके रूपमें दे दिया और इन ज्ञान-वैराग्यको पुत्रोंके रूपमें ॥ ७ ॥ तुम अपने साक्षात् स्वरूपसे वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती हो, भूलोकमें तो तुमने उनकी पुष्टिके लिये केवल छायारूप धारण कर रक्खा है ॥ ८ ॥

तब तुम मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यको साथ लिये पृथ्वी-तलपर आयीं और सत्ययुगसे द्वापरपर्यन्त बड़े आनन्दसे रहीं ॥ ९ ॥ कलियुगमें तुम्हारी दासी मुक्ति पाखण्डरूप रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी थी, इसलिये वह तो तुरंत ही तुम्हारी आज्ञासे वैकुण्ठलोकको चली गयी ॥ १० ॥ इस लोकमें भी तुम्हारे स्मरण करनेसे ही वह आती है और फिर चली जाती है; किंतु इन ज्ञान-वैराग्यको तुमने पुत्र मानकर अपने पास ही रख छोड़ा है ॥ ११ ॥ फिर भी कलियुगमें इनकी उपेक्षा होनेके कारण तुम्हारे ये पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं; फिर भी तुम चिन्ता न करो, मैं इनके नवजीवनका उपाय सोचता हूँ ॥ १२ ॥ सुमुखि ! कलिके समान कोई भी युग नहीं है, इस युगमें मैं तुम्हें घर-घरमें प्रत्येक पुरुषके हृदयमें स्थापित कर दूँगा ॥ १३ ॥ देखो, अन्य सब धर्मोंको दबाकर और भक्तिविषयक महोत्सवोंको आगे रखकर यदि मैंने लोकमें तुम्हारा प्रचार न किया तो मैं श्रीहरिका दास नहीं ॥ १४ ॥ इस कलियुगमें जो जीव तुमसे युक्त होंगे, वे पापी होनेपर भी बेखटके भगवान् श्रीकृष्णके अभय धामको प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥ जिनके हृदयमें निरन्तर प्रेमरूपिणी भक्ति निवास करती हैं, वे शुद्धान्तः-करण पुरुष स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखते ॥ १६ ॥ जिनके हृदयमें भक्ति महारानीका निवास है, उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस या दैत्य आदि स्पर्श करनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते ॥ १७ ॥ भगवान् तप, वेदाध्ययन, ज्ञान और कर्म आदि किसी भी साधनसे वशमें नहीं किये जा सकते; वे केवल भक्तिसे ही वशीभूत होते हैं। इसमें श्रीगोपीजन प्रमाण हैं ॥ १८ ॥ मनुष्योंका सहस्रों जन्मके पुण्य-प्रतापसे भक्तिमें अनुराग होता है । कलियुगमें केवल भक्ति, केवल भक्ति ही सार है । भक्तिसे तो साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र सामने उपस्थित हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं, वे तीनों लोकोंमें दुःख-ही-दुःख पाते हैं । पूर्वकालमें भक्तका तिरस्कार करनेवाले दुर्वासा ऋषिको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ॥ २० ॥ बस, बस । व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञानचर्चा आदि बहुत-से साधनोंकी कोई आवश्यकता नहीं है; एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देनेवाली है ॥ २१ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीके निर्णय किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे अङ्ग पुष्ट हो गये, और वे उनसे कहने लगीं ॥ २२ ॥

भक्तिने कहा—नारदजी ! आप धन्य हैं । आपकी मुझमें निश्चल प्रीति है । मैं सदा आपके हृदयमें रहूँगी, कभी आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी ॥ २३ ॥ साधो ! आप बड़े कृपालु हैं । आपने क्षणभरमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया । किंतु अभी मेरे पुत्रोंमें चेतना नहीं आयी है; आप इन्हें शीघ्र ही सचेत कर दीजिये, जगा दीजिये ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तिके ये वचन सुनकर नारदजीको बड़ी करुणा आयी और वे उन्हें हाथसे हिला-डुलाकर जगाने लगे ॥ २५ ॥ फिर उनके कानके पास मुँह लगाकर जोरसे कहा, 'ओ ज्ञान ! जल्दी जग पड़ो; ओ वैराग्य ! जल्दी जग पड़ो ।' ॥ २६ ॥ फिर उन्होंने वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ करके उन्हें जगाया; इससे वे जैसे-तैसे बहुत जोर लगाकर उठे ॥२७॥ किंतु आलस्यके कारण वे दोनों जँभाई लेते रहे, नेत्र उघाड़कर देख भी नहीं सके । उनके बाल बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे, उनके अङ्ग प्रायः सूखे काठके समान निस्तेज और कठोर हो गये थे ॥ २८ ॥ इस प्रकार भूख-प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होनेके कारण उन्हें फिर सोते देख नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लगे, 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? ॥२९॥ इनकी यह नींद और इससे भी बढ़कर इनकी वृद्धावस्था

कैसे दूर हो ?' शौनकजी ! इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे भगवान्‌का स्मरण करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'मुने ! खेद मत करो, तुम्हारा यह उद्योग निःसंदेह सफल होगा ॥ ३१ ॥ देवर्षे ! इसके लिये तुम एक सत्कर्म करो, वह कर्म तुम्हें संतशिरोमणि महानुभाव बतायेंगे ॥ ३२ ॥ उस सत्कर्मका अनुष्ठान करते ही क्षणभरमें इनकी नींद और वृद्धावस्था चली जायँगी तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार होगा' ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी वहाँ सभीको साफ-साफ सुनायी दी। इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगे, 'मुझे तो इसका कुछ आशय समझमें नहीं आया' ॥३४॥

नारदजी बोले—इस आकाशवाणीने भी गुप्तरूपमें ही बात कही है। यह नहीं बताया कि वह कौन-सा साधन किया जाय, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो ॥ ३५ ॥ वे संत न जाने कहाँ मिलेंगे और किस प्रकार उस साधनको बतायेंगे ? अब आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ ३६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! तब ज्ञान-वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारदमुनि वहाँसे चल पड़े और प्रत्येक तीर्थमें जा-जाकर मार्गमें मिलनेवाले मुनीश्वरोंसे वह साधन पूछने लगे ॥ ३७ ॥ उनकी उस बातको सुनते तो सब थे, किंतु उसके विषयमें कोई भी निश्चित उत्तर न देता। किन्हींने उसे असाध्य बताया; कोई बोले—'इसका ठीक-ठीक पता लगना ही कठिन है।' कोई सुनकर चुप रह गये और कोई-कोई तो अपनी अवज्ञा होनेके भयसे बातको टाल-टूलकर खिसक गये ॥ ३८ ॥ त्रिलोकीमें महान् आश्चर्यजनक हाहाकार मच गया। लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे—'भाई ! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ सुनानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगाये जा सके, तब और कोई उपाय नहीं है ॥ ३९-४० ॥ स्वयं योगिराज नारदको भी जिसका ज्ञान नहीं है, उसे दूसरे संसारी लोग कैसे बता सकते हैं ?' ॥ ४१ ॥ इस प्रकार जिन-जिन ऋषियोंसे इसके विषयमें पूछा गया, उन्होंने निर्णय करके यही कहा कि यह बात दुःसाध्य ही है ॥ ४२ ॥

तब नारदजी बहुत चिन्तातुर हुए और बदरीवनमें आये। ज्ञान-वैराग्यको जगानेके लिये वहाँ उन्होंने यह निश्चय किया कि 'मैं तप करूँगा' ॥ ४३ ॥ इसी समय उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये। उन्हें देखकर वे मुनिश्रेष्ठ कहने लगे ॥ ४४ ॥

नारदजीने कहा—महात्माओ ! इस समय बड़े भाग्यसे मेरा आपलोगोंके साथ समागम हुआ है, आप मुझपर कृपा करके शीघ्र ही वह साधन बताइये ॥४५॥ आप सभी लोग बड़े योगी, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं। आप देखनेमें पाँच-पाँच वर्षके बालक-से जान पड़ते हैं, किंतु हैं पूर्वजोंके भी पूर्वज ॥ ४६ ॥ आपलोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं, निरन्तर हरिकीर्तनमें तत्पर रहते हैं, भगवल्लीलामृतका रसास्वादन कर सदा उसीमें उन्मत्त रहते हैं और एकमात्र भगवत्कथा ही आपके जीवनका आधार है ॥४७॥ 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह वाक्य (मन्त्र) सर्वदा आपके मुखमें रहता है; इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्था भी आपको बाधा नहीं पहुँचाती ॥ ४८ ॥ पूर्वकालमें आपके भ्रूभङ्गमात्रसे भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरंत पृथ्वीपर गिर गये थे और फिर आपकी ही कृपासे वे पुनः वैकुण्ठलोक पहुँच गये ॥४९॥ धन्य है, इस समय आपका दर्शन बड़े सौभाग्यसे ही हुआ है। मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं; इसलिये मुझपर आपको अवश्य कृपा करनी चाहिये ॥ ५० ॥ बताइये—आकाशवाणीने जिसके विषयमें कहा है, वह कौन-सा साधन है, और मुझे किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये। आप इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥५१॥ भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख मिल सकता है ? और किस तरह इनकी प्रेमपूर्वक सब वर्णोंमें प्रतिष्ठा की जा सकती है ? ॥ ५२ ॥

सनकादिने कहा—देवर्षे ! आप चिन्ता न करें, मनमें प्रसन्न हों; उनके उद्धारका एक सरल उपाय पहलेसे ही विद्यमान है ॥ ५३ ॥ नारदजी ! आप धन्य हैं। आप विरक्तोंके शिरोमणि हैं। श्रीकृष्णदासोंके शाश्वत पथ-प्रदर्शक एवं भक्तियोगके भास्कर हैं ॥ ५४ ॥ आप भक्तिके लिये जो उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। भगवान्‌के भक्तके लिये तो भक्तिकी सम्यक् स्थापना करना सदा उचित ही

है ॥५५॥ ऋषियोंने संसारमें अनेकों मार्ग प्रकट किये हैं; किंतु वे सभी कष्टसाध्य हैं और परिणाममें प्रायः स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं ॥ ५६ ॥ अभीतक भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष प्रायः भाग्यसे ही मिलता है ॥ ५७ ॥ आपको आकाशवाणीने जिस सत्कर्मका संकेत किया है, उसे हम बतलाते हैं; आप प्रसन्न और समाहितचित्त होकर सुनिये ॥ ५८ ॥

नारदजी! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्याय-रूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मकी ही ओर संकेत करते हैं ॥ ५९ ॥ पण्डितोंने ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म) का सूचक माना है। वह श्रीमद्भागवतका पारायण है, जिसका गान शुकादि महानुभावोंने किया है ॥ ६० ॥ उसके शब्द सुननेसे ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट मिट जायगा और भक्तिको आनन्द मिलेगा ॥ ६१ ॥ सिंहकी गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे कलियुगके सारे दोष नष्ट हो जायँगे ॥ ६२ ॥ तब प्रेमरस प्रवाहित करनेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर प्रत्येक घर और व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी ॥६३॥

नारदजीने कहा—मैंने वेद-वेदान्तकी ध्वनि और गीतापाठ करके उन्हें बहुत जगाया, किंतु फिर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगे ॥ ६४ ॥ ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवत सुनानेसे वे कैसे जगेंगे? क्योंकि उस कथाके प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पदमें भी वेदोंका ही तो सारांश है ॥ ६५ ॥ आपलोग शरणागतवत्सल हैं तथा आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता; इसलिये मेरा यह संदेह दूर कर दीजिये, इस कार्यमें विलम्ब न कीजिये ॥ ६६ ॥

सनकादिने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे बनी है। इसलिये उनसे अलग उनकी फलरूपा होनेके कारण यह बड़ी उत्तम जान पड़ती है ॥६७॥ जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़से लेकर शाखाग्र-पर्यन्त रहता है, किंतु इस स्थितिमें उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; वही जब अलग होकर फलके रूपमें आ जाता है, तब संसारमें सभीको प्रिय लगने लगता है ॥ ६८ ॥ दूधमें घी रहता ही है, किंतु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता; वही जब उससे अलग हो जाता है, तब देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है ॥ ६९ ॥ खाँड ईखके ओर-छोर और बीचमें भी व्याप्त रहती है, तथापि अलग होनेपर उसकी कुछ और ही मिठास होती है। ऐसी ही यह भागवतकी कथा है ॥ ७० ॥ यह भागवतपुराण वेदोंके समान है। श्रीव्यासदेवने इसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके लिये प्रकाशित किया है ॥ ७१ ॥ पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी भी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञानसमुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपने ही उन्हें चार श्लोकोंमें इसका उपदेश किया था। उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी थी ॥ ७२-७३ ॥ फिर इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे प्रश्न कर रहे हैं? आपको उन्हें शोक और दुःखका विनाश करनेवाला श्रीमद्भागवतपुराण ही सुनाना चाहिये ॥ ७४ ॥

नारदजीने कहा—महानुभावो! आपका दर्शन जीवके सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जो संसार-दुःखरूप दावानलसे तपे हुए हैं, उनपर शीघ्र ही शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्र मुखोंसे गाये हुए भगवत्कथामृतका ही पान करते रहते हैं। मैं प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरण लेता हूँ ॥ ७५ ॥ जब अनेकों जन्मोंके संचित पुण्य-पुञ्जका उदय होनेसे मनुष्यको सत्सङ्ग मिलता है, तब वह उसके अज्ञानजनित मोह और मदरूप अन्धकारका नाश करके विवेक उदय होता है ॥७६॥

तीसरा अध्याय

भक्तिके कष्टकी निवृत्ति

नारदजी कहते हैं—अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको स्थापित करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रीशुकदेव-जीके कहे हुए भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा उज्ज्वल ज्ञान-यज्ञ करूँगा ॥ १ ॥ यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये, आप इसके लिये कोई स्थान बता दीजिये। आपलोग वेदके पारगामी हैं, इसलिये मुझे इस शुकशास्त्रकी

महिमा सुनाइये ॥ २ ॥ यह भी बताइये कि श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंमें सुनानी चाहिये और उसके सुननेकी विधि क्या है ॥ ३ ॥

सनकादि बोले—नारदजी ! आप बड़े विनीत और विवेकी हैं। सुनिये, हम आपको ये सब बातें बताते हैं। हरिद्वारके पास आनन्द नामका एक घाट है ॥ ४ ॥ वहाँ अनेकों ऋषि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन करते रहते हैं। भाँति-भाँतिके वृक्ष और लताओंके कारण वह बड़ा सघन है और वहाँ बड़ी कोमल नवीन बालू बिछी हुई है ॥ ५ ॥ वह घाट बड़ा ही सुरम्य और एकान्त प्रदेशमें है, वहाँ हर समय सुनहले कमलोंकी सुगन्ध आया करती है। उसके आसपास रहनेवाले सिंह, हाथी आदि परस्पर-विरोधी जीवोंके चित्तोंमें भी वैरभाव नहीं है ॥ ६ ॥ वहाँ आप बिना किसी विशेष प्रयत्नके ही ज्ञानयज्ञ आरम्भ कर दीजिये। उस स्थानपर कथामें अपूर्व रसका उदय होगा ॥ ७ ॥ भक्ति भी अपनी आँखोंके ही सामने निर्बल और जराजीर्ण अवस्थामें पड़े हुए ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर वहाँ आ जायगी ॥ ८ ॥ क्योंकि जहाँ भी श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहाँ ये भक्ति आदि अपने-आप पहुँच जाते हैं। वहाँ कानोंमें कथाके शब्द पड़नेसे ये तीनों तरुण हो जायँगे ॥ ९ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर नारदजीके साथ सनकादि भी श्रीमद्भागवतकथामृतका पान करनेके लिये वहाँसे तुरंत गङ्गातटपर चले आये ॥ १० ॥ जिस समय वे तटपर पहुँचे, भूलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक—सभी जगह इस कथाका हल्ला हो गया ॥ ११ ॥ जो-जो भगवत्कथाके रसिक विष्णुभक्त थे, वे सभी श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके लिये सबसे आगे दौड़-दौड़कर आने लगे ॥ १२ ॥ भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान-प्रधान मुनिगण अपने-अपने पुत्र, शिष्य और स्त्रियोंसमेत बड़े प्रेमसे वहाँ आये ॥ १३-१४ ॥ इनके सिवा वेद, वेदान्त (उपनिषद्), मन्त्र, तन्त्र, सत्रह पुराण और छहों शास्त्र भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित हुए ॥ १५ ॥

गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, कुरुक्षेत्र आदि समस्त क्षेत्र, सारी दिशाएँ, दण्डक आदि वन, हिमालय आदि पर्वत तथा देव, गन्धर्व और दानव आदि सभी कथा सुनने चले आये। जो लोग अपने गौरवके कारण नहीं आये, महर्षि भृगु उन्हें समझा-बुझाकर ले आये ॥ १६-१७ ॥

तब कथा सुनानेके लिये दीक्षित होकर श्रीकृष्ण-परायण सनकादि नारदजीके दिये हुए श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए। उस समय सभी श्रोताओंने उनकी वन्दना की ॥ १८ ॥ श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग आगे बैठे और उन सबके आगे नारदजी विराजमान हुए ॥ १९ ॥ एक ओर ऋषिगण, एक ओर देवता, एक ओर वेद और उपनिषदादि तथा एक ओर तीर्थ बैठे, और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठीं ॥ २० ॥ उस समय सब ओर जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खोंका शब्द होने लगा और अबीर-गुलाल, खील एवं फूलोंकी खूब वर्षा होने लगी ॥ २१ ॥ कोई-कोई देवश्रेष्ठ तो विमानोंपर चढ़कर, वहाँ बैठे हुए सब लोगोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार पूजा समाप्त होनेपर जब सब लोग एकाग्रचित्त हो गये, तब सनकादि ऋषि महात्मा नारदको श्रीमद्भागवतका माहात्म्य स्पष्ट करके सुनाने लगे ॥ २३ ॥

सनकादिने कहा—अब हम आपको इस भागवत-शास्त्रकी महिमा सुनाते हैं। इसके श्रवणमात्रसे मुक्ति हाथ लग जाती है ॥ २४ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा-सर्वदा सेवन, आस्वादन करना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे श्रीहरि हृदयमें आ विराजते हैं ॥ २५ ॥ इस ग्रन्थमें अठारह हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा श्रीशुकदेव और राजा परीक्षित्‌का संवाद है। आप यह भागवतशास्त्र ध्यान देकर सुनिये ॥ २६ ॥ यह जीव तभीतक अज्ञानवश इस

ंसार-चक्रमें भटकता है, जबतक क्षणभरके लिये भी ानोंमें इस शुकशास्त्रकी कथा नहीं पड़ती ॥ २७ ॥ हुत-से शास्त्र और पुराण सुननेसे क्या लाभ है, इससे ो व्यर्थका भ्रम बढ़ता है। मुक्ति देनेके लिये तो कमात्र भागवतशास्त्र ही गरज रहा है ॥ २८ ॥ जेस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह ीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २९ ॥ हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते ॥ ३० ॥ तपोधनो ! जबतक लोग अच्छी तरह श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप निवास करते हैं ॥ ३१ ॥ फलकी दृष्टिसे इस शुकशास्त्रकथा-की समता गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग—कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

यदि आपको परम गतिकी इच्छा है तो अपने मुख-से ही श्रीमद्भागवतके आधे अथवा चौथाई श्लोकका भी नित्य नियमपूर्वक पाठ कीजिये ॥ ३३ ॥ ॐकार, गायत्री, पुरुषसूक्त, तीनों वेद, श्रीमद्भागवत, 'ॐ नमो भगवते वासु-देवाय'—यह द्वादशाक्षर मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्यभगवान्, प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें बुद्धिमान् लोग वस्तुतः कोई अन्तर नहीं मानते ॥ ३४-३६ ॥ जो पुरुष अहर्निश अर्थसहित श्रीमद्भागवत शास्त्रका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥ ३७ ॥ जो पुरुष नित्यप्रति भागवतका आधा या चौथाई श्लोक भी पढ़ता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है ॥ ३८ ॥ नित्य भागवतका पाठ करना, भगवान्‌का चिन्तन करना, तुलसीको सींचना और गौकी सेवा करना—ये चारों समान हैं ॥ ३९ ॥ जो पुरुष अन्तसमयमें श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् उसे वैकुण्ठधाम देते हैं ॥ ४० ॥ जो पुरुष इसे सोनेके सिंहासनपर रखकर विष्णुभक्तको दान करता है, वह अवश्य ही भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

जिस दुष्टने अपनी सारी आयुमें चित्तको एकाग्र करके श्रीमद्भागवतामृतका थोड़ा-सा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने तो अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधेके समान व्यर्थ ही गँवा दिया; वह तो अपनी माताको प्रसव-पीड़ा पहुँचानेके लिये ही उत्पन्न हुआ ॥ ४२ ॥ जिसने इस शुकशास्त्रके थोड़े-से भी वचन नहीं सुने, वह पापात्मा तो जीता हुआ ही मुर्देके समान है। 'पृथ्वीके भार-स्वरूप उस पशुतुल्य मनुष्यको धिक्कार है'—यों स्वर्गलोकमें देवताओंमें प्रधान इन्द्रादि कहा करते हैं ॥ ४३ ॥

संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथाका मिलना अवश्य ही कठिन है; जब करोड़ों जन्मोंका पुण्य होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है ॥ ४४ ॥ नारदजी ! आप बड़े ही बुद्धिमान् और योगनिधि हैं। आप प्रयत्नपूर्वक कथा-का श्रवण कीजिये। इसे सुननेके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है, इसे तो सर्वदा ही सुनना अच्छा है ॥ ४५ ॥ इसे सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक सर्वदा ही सुनना श्रेष्ठ माना गया है। किंतु कलियुगमें ऐसा होना कठिन है; इसलिये इसकी शुकदेवजीने जो विशेष विधि बतायी है, वह जान लेनी चाहिये ॥ ४६ ॥ कलियुगमें बहुत दिनों-तक चित्तकी वृत्तियोंको वशमें रखना, नियमोंमें बँधे रहना और किसी पुण्यकार्यके लिये दीक्षित रहना कठिन है; इसलिये सप्ताह-श्रवणकी विधि है ॥ ४७ ॥ श्रद्धापूर्वक कभी भी श्रवण करनेसे अथवा माघमासमें श्रवण करनेसे जो फल होता है, वही फल श्रीशुकदेवजीने सप्ताहश्रवणमें निर्धारित किया है ॥ ४८ ॥ मनके असंयम, रोगोंकी बहुलता और आयुकी अल्पताके कारण तथा कलियुगमें अनेकों दोषोंकी सम्भावनासे ही सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है ॥ ४९ ॥ जो फल तप, योग और समाधिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वाङ्गरूपमें सप्ताहश्रवणसे सहजमें ही मिल जाता है ॥ ५० ॥ सप्ताहश्रवण यज्ञसे बढ़कर है, व्रतसे बढ़कर है, तपसे कहीं बढ़कर है, तीर्थसेवनसे तो सदा ही बड़ा है, योगसे बढ़कर है—यहाँतक कि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है, अजी ! इसकी विशेषताका कहाँतक वर्णन करें, यह तो सभीसे बढ़-चढ़कर है ॥ ५१-५२ ॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! यह तो आपने बड़े

आश्चर्यकी बात कही। अवश्य ही यह भागवतपुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण श्रीनारायणका निरूपण करता है; परंतु यह मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानादि सभी साधनोंका तिरस्कार करके इस युगमें उनसे भी कैसे बढ़ गया ? ॥ ५३ ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी ! जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने नित्यधामको जाने लगे, तब उनके मुखारविन्दसे एकादश स्कन्धका ज्ञानोपदेश सुनकर भी उद्धवजीने पूछा ॥ ५४ ॥

उद्धवजी बोले—गोविन्द ! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किंतु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है। उसे सुनकर आप मुझे शान्त कीजिये ॥ ५५ ॥ अब घोर कलिकाल आया ही समझिये, इसलिये संसारमें फिर अनेकों दुष्ट प्रकट हो जायँगे; उनके संसर्गसे जब अनेकों सत्पुरुष भी उग्र प्रकृतिके हो जायँगे, तब उनके भारसे दबकर यह गोरूपिणी पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी ? कमलनयन ! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दूसरा नहीं दिखायी देता ॥५६-५७॥ इसलिये भक्तवत्सल ! आप साधुओंपर कृपा करके यहाँसे मत जाइये। भगवन् ! आपने निराकार और चिन्मात्र होकर भी भक्तोंके लिये ही तो यह सगुण रूप धारण किया है ॥ ५८ ॥ फिर भला, आपका वियोग होनेपर वे भक्तजन पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे ? निर्गुणोपासनामें तो बड़ा कष्ट है। इसलिये कुछ और विचार कीजिये ॥ ५९ ॥

प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके ये वचन सुनकर भगवान् सोचने लगे कि भक्तोंके अवलम्बके लिये मुझे क्या व्यवस्था करनी चाहिये ॥ ६० ॥ शौनकजी ! तब भगवान्ने अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी; वे अन्तर्धान होकर इस भागवतसमुद्रमें प्रवेश कर गये ॥ ६१ ॥ इसलिये यह भगवान्की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है। इसके सेवन, श्रवण, पाठ अथवा दर्शनसे ही मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२ ॥ इसीसे इसका सप्ताहश्रवण सबसे बढ़कर माना गया है और कलियुगमें तो अन्य सब साधनोंको छोड़कर यही प्रधान धर्म बताया गया है ॥ ६३ ॥ कलिकालमें यही ऐसा धर्म है, जो दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंकी सफाई कर देता है तथा काम-क्रोधादि शत्रुओंपर विजय दिलाता है ॥ ६४ ॥ अन्यथा, भगवान्की इस मायासे पीछा छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, मनुष्य तो इसे छोड़ ही कैसे सकते हैं। अतः इससे छूटनेके लिये भी सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है ॥ ६५ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जिस समय सनकादि मुनीश्वर इस प्रकार सप्ताहश्रवणकी महिमाका बखान कर रहे थे, उस सभामें एक बड़ा आश्चर्य हुआ; उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो ॥ ६६ ॥ वहाँ तरुणावस्थाको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ लिये विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार-बार 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई अकस्मात् प्रकट हो गयीं ॥६७॥ सभी सदस्योंने देखा कि परम सुन्दरी भक्तिरानी भागवतके अर्थोंका आभूषण पहने वहाँ पधारीं। मुनियोंकी उस सभामें सभी यह तर्क-वितर्क करने लगे कि ये यहाँ कैसे आयीं, कैसे प्रविष्ट हुईं ॥ ६८ ॥ तब सनकादिने कहा—'ये भक्तिदेवी अभी-अभी कथाके अर्थसे निकली हैं।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने अपने पुत्रोंसमेत अत्यन्त विनम्र होकर सनत्कुमारजीसे कहा ॥ ६९ ॥

भक्ति बोलीं—मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी, आपने कथामृतसे सींचकर मुझे फिर पुष्ट कर दिया। अब आप यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ ? यह सुनकर सनकादिने उससे कहा ॥ ७० ॥ 'तुम भक्तोंको भगवान्का स्वरूप प्रदान करनेवाली, अनन्य प्रेमका सम्पादन करनेवाली और संसार-रोगको निर्मूल करनेवाली हो; अतः तुम धैर्य धारण करके नित्य-निरन्तर विष्णुभक्तोंके हृदयोंमें ही निवास करो ॥ ७१ ॥ ये कलियुगके दोष भले ही सारे संसारपर अपना प्रभाव डालें, किंतु वहाँ तुमपर इनकी दृष्टि भी नहीं पड़ सकेगी।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्ति तुरंत भगवद्भक्तोंके हृदयोंमें जा विराजीं ॥ ७२ ॥

जिनके हृदयमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्ति निवास करती है, वे त्रिलोकीमें अत्यन्त निर्धन होनेपर भी परम धन्य हैं; क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर तो साक्षात् भगवान् भी अपना परमधाम छोड़कर उनके हृदयमें आकर बस जाते हैं ॥ ७३ ॥ भूलोकमें यह भागवत साक्षात् परब्रह्मका विग्रह है, हम इसकी महिमा कहाँतक वर्णन करें। इसका आश्रय लेकर इसे सुनानेसे तो सुनने और सुनानेवाले दोनोंको ही भगवान् श्रीकृष्णकी समता प्राप्त हो जाती है। अतः इसे छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ॥ ७४ ॥

चौथा अध्याय

गोकर्णोपाख्यान प्रारम्भ

सूतजी कहते हैं—मुनिवर! उस समय अपने भक्तोंके चित्तमें अलौकिक भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ देख भक्तवत्सल श्रीभगवान् अपना धाम छोड़कर वहाँ पधारे ॥१॥ उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी, श्रीअङ्ग सजल जलधरके समान श्यामवर्ण था, उसपर मनोहर पीताम्बर सुशोभित था, कटिप्रदेश करधनीकी लड़ियोंसे सुसज्जित था, सिरपर मुकुटकी लटक और कानोंमें कुण्डलोंकी झलक देखते ही बनती थी ॥ २ ॥ वे त्रिभङ्गललित भावसे खड़े हुए चित्तको चुराये लेते थे। वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि दमक रही थी, सारा श्रीअङ्ग हरिचन्दनसे चर्चित था। उस रूपकी शोभा क्या कहें, उसने तो मानो करोड़ों कामदेवोंकी रूपमाधुरी छीन ली थी ॥ ३ ॥ वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरातिमधुर मुरलीधर ऐसी अनुपम छविसे अपने भक्तोंके निर्मल चित्तोंमें आविर्भूत हुए ॥ ४ ॥ भगवान्के नित्यलोकनिवासी लीलापरिकर उद्धवादि वहाँ गुप्तरूपसे उस कथाको सुननेके लिये आये हुए थे ॥५॥ प्रभुके प्रकट होते ही चारों ओर 'जय हो! जय हो!!' की ध्वनि होने लगी। उस समय भक्तिरसका अद्भुत प्रवाह चला, बार-बार अबीर-गुलाल और पुष्पोंकी वर्षा तथा शङ्खध्वनि होने लगी ॥ ६ ॥ उस सभामें जो लोग बैठे थे, उन्हें अपने देह, गेह और आत्माकी भी कोई सुधि न रही। उनकी ऐसी तन्मयता देखकर नारदजी कहने लगे—॥ ७ ॥

मुनीश्वरगण! आज सप्ताहश्रवणकी मैंने यह बड़ी ही अलौकिक महिमा देखी। यहाँ तो जो बड़े मूर्ख, दुष्ट और पशु-पक्षी भी हैं, वे सभी अत्यन्त निष्पाप हो गये हैं ॥ ८ ॥ अतः इसमें संदेह नहीं कि कलिकालमें चित्तकी शुद्धिके लिये इस भागवतकथाके समान मर्त्यलोकमें पापपुञ्जका नाश करनेवाला कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है ॥ ९ ॥ मुनिवर! आपलोग बड़े कृपालु हैं, आपने संसारके कल्याणका विचार करके यह बिल्कुल निराला ही मार्ग निकाला है। आप कृपया यह तो बताइये कि इस कथारूप सप्ताहयज्ञके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं ॥ १० ॥

सनकादिने कहा—जो लोग सदा तरह-तरहके पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं और उल्टे मार्गोंसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलते रहनेवाले, कुटिल और कामपरायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ ११ ॥ जो सत्यसे च्युत, माता-पिताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णाके मारे व्याकुल, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंकी उन्नति देखकर कुढ़नेवाले और दूसरोंको दुःख देनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १२ ॥ जो मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्रीगमन और विश्वासघात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छल-छद्मपरायण, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥१३॥ जो दुष्ट आग्रहपूर्वक सर्वदा मन, वाणी या शरीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरेके धनसे ही पुष्ट होते हैं तथा मलिन मन और दुष्ट हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ १४ ॥

नारदजी! अब हम तुम्हें इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, उसके सुननेसे ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥ पूर्वकालमें तुङ्गभद्रा नदीके तटपर एक अनुपम

नगर बसा हुआ था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मोंका आचरण करते हुए सत्य और सत्कर्मोंमें तत्पर रहते थे ॥ १६ ॥ उस नगरमें समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निपुण एक आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहता था, वह साक्षात् दूसरे सूर्यके समान तेजस्वी था॥१७॥ वह धनी होनेपर भी भिक्षाजीवी था। उसकी प्यारी पत्नी धुन्धुली कुलीन एवं सुन्दरी होनेपर भी सदा अपनी बातपर अड़ जानेवाली थी॥१८॥ उसे लोगोंकी बात करनेमें सुख मिलता था। स्वभाव था क्रूर। प्रायः कुछ-न-कुछ बकवाद करती रहती थी। गृहकार्यमें निपुण थी, कृपण थी और थी झगड़ालू भी ॥ १९ ॥ इस प्रकार ब्राह्मण दम्पति प्रेमसे अपने घरमें रहते और विहार करते थे। उनके पास अर्थ और भोग-विलासकी सामग्री बहुत थी। घर-द्वार भी सुन्दर थे, परंतु उससे उन्हें सुख नहीं था ॥ २० ॥ जब अवस्था बहुत ढल गयी, तब उन्होंने सन्तानके लिये तरह-तरहके पुण्यकर्म आरम्भ किये और वे दीन-दुखियों-को गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादि दान करने लगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार धर्ममार्गमें उन्होंने अपना आधा धन समाप्त कर दिया, तो भी उन्हें पुत्र या पुत्री किसी-का भी मुख देखनेको न मिला। इसलिये अब वह ब्राह्मण बहुत ही चिन्तातुर रहने लगा ॥ २२ ॥

एक दिन वह ब्राह्मणदेवता बहुत दुखी होकर घरसे निकलकर वनको चल दिया। दोपहरके समय उसे प्यास लगी, इसलिये वह एक तालाबपर आया ॥ २३ ॥ सन्तानके अभावके दुःखने उसके शरीरको बहुत सुखा दिया था, इसलिये थक जानेके कारण जल पीकर वह वहीं बैठ गया। दो घड़ी बीतनेपर वहाँ एक संन्यासी महात्मा आये ॥ २४ ॥ जब ब्राह्मणदेवताने देखा कि वे जल पी चुके हैं, तब वह उनके पास गया और चरणोंमें नमस्कार करनेके बाद सामने खड़े होकर लंबी-लंबी साँसें लेने लगा ॥ २५ ॥

संन्यासीने पूछा—कहो, ब्राह्मणदेवता! रोते क्यों हो? ऐसी तुम्हें क्या भारी चिन्ता है? तुम जल्दी ही मुझे अपने दुःखका कारण बताओ ॥ २६ ॥

ब्राह्मणने कहा—महाराज! मैं अपने पूर्वजन्मके पापोंसे संचित दुःखका क्या वर्णन करूँ? अब मेरे पितर मेरे द्वारा दी हुई जलाञ्जलिके जलको अपनी चिन्ता-जनित साँससे कुछ गरम करके पीते हैं ॥ २७ ॥ देवता और ब्राह्मण मेरा दिया हुआ प्रसन्न मनसे स्वीकार नहीं करते। सन्तानके लिये मैं इतना दुखी हो गया हूँ कि मुझे सब सूना-ही-सूना दिखायी देता है। मैं प्राण त्यागनेके लिये यहाँ आया हूँ ॥ २८ ॥ सन्तानहीन जीवनको धिक्कार है, सन्तानहीन गृहको धिक्कार है! सन्तानहीन धनको धिक्कार है और सन्तानहीन कुलको धिक्कार है! ॥ २९ ॥ मैं जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा बाँझ हो जाती है; जो पेड़ लगाता हूँ, उसपर भी फल-फूल नहीं लगते ॥ ३० ॥ मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी सड़ जाता है। जब मैं ऐसा अभागा और पुत्रहीन हूँ, तब फिर इस जीवनको ही रखकर मुझे क्या करना है ॥ ३१ ॥ यों कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल हो उन संन्यासी महात्माके पास फूट-फूटकर रोने लगा। तब उन यतिवरके हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ वे योगनिष्ठ थे; उन्होंने उसके ललाटकी रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ३३ ॥

संन्यासीने कहा—ब्राह्मणदेवता! इस प्रजाप्राप्तिका मोह त्याग दो। कर्मकी गति प्रबल है, विवेकका आश्रय लेकर संसारकी वासना छोड़ दो ॥ ३४ ॥ विप्रवर! सुनो; मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मतक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती ॥ ३५ ॥ पूर्वकालमें राजा सगर एवं अङ्गको सन्तानके कारण दुःख भोगना पड़ा था। ब्राह्मण! अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो। संन्यासमें ही सब प्रकारका सुख है ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणने कहा—महात्माजी! विवेकसे मेरा क्या होगा। मुझे तो बलपूर्वक पुत्र दीजिये; नहीं तो मैं आपके सामने ही शोकमूर्च्छित होकर अपने प्राण त्यागता हूँ ॥ ३७ ॥ जिसमें पुत्र-स्त्री आदिका सुख नहीं है, ऐसा संन्यास तो सर्वथा नीरस ही है। लोक-में सरस तो पुत्र-पौत्रादिसे भरा-पूरा गृहस्थाश्रम ही है ॥ ३८ ॥

ब्राह्मणका ऐसा आग्रह देखकर उन तपोधनने कहा, 'विधाताके लेखको मिटानेका हठ करनेसे राजा चित्रकेतुको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था ॥ ३९ ॥ इसलिये दैव जिसके उद्योगको कुचल देता है, उस पुरुषके समान तुम्हें भी पुत्रसे सुख नहीं मिल सकेगा । तुमने तो बड़ा हठ पकड़ रक्खा है और अर्थीके रूपमें तुम मेरे सामने उपस्थित हो; ऐसी दशामें मैं तुमसे क्या कहूँ ॥४०॥

जब महात्माजीने देखा कि यह किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छोड़ता, तब उन्होंने उसे एक फल देकर कहा —'इसे तुम अपनी पत्नीको खिला देना, इससे उसके एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ तुम्हारी स्त्रीको एक सालतक सत्य, शौच, दया, दान और एक समय एक ही अन्न खानेका नियम रखना चाहिये । यदि वह ऐसा करेगी तो बालक बहुत शुद्ध स्वभाववाला होगा' ॥ ४२ ॥

यों कहकर वे योगिराज चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया । वहाँ आकर उसने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं कहीं चला गया ॥ ४३ ॥ उसकी स्त्री तो कुटिल स्वभावकी थी ही, वह रो-रोकर अपनी एक सखीसे कहने लगी—'सखी ! मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गयी, मैं तो यह फल नहीं खाऊँगी ॥४४॥ फल खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे पेट बढ़ जायगा । फिर कुछ खाया-पीया जायगा नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी; तब बता, घरका धंधा कैसे होगा ? ॥४५॥ और—दैववश—यदि कहीं गाँवमें डाकुओंका आक्रमण हो गया तो गर्भिणी स्त्री कैसे भागेगी । यदि शुकदेवजीकी तरह यह गर्भ भी पेटमें ही रह गया तो इसे बाहर कैसे निकाला जायगा ॥४६॥ और कहीं प्रसवकालके समय वह टेढ़ा हो गया तो फिर प्राणोंसे ही हाथ धोना पड़ेगा । यों भी प्रसवके समय बड़ी भयंकर पीड़ा होती है; मैं सुकुमारी भला, यह सब कैसे सह सकूँगी ? ॥४७॥ मैं जब दुर्बल पड़ जाऊँगी, तब ननदरानी आकर घरका सब माल-मता समेट ले जायँगी । और मुझसे तो सत्य-शौचादि नियमोंका पालन होना भी कठिन ही जान पड़ता है ॥४८॥ जो स्त्री बच्चा जनती है, उसे उस बच्चेके लालन-पालनमें भी बड़ा कष्ट होता है । मेरे विचारसे तो वन्ध्या या विधवा स्त्रियाँ ही सुखी हैं' ॥४९॥

मनमें ऐसे ही तरह-तरहके कुतर्क उठनेसे उसने वह फल नहीं खाया और जब उसके पतिने पूछा—'फल खा लिया ?' तब उसने कह दिया—'हाँ, खा लिया' ॥५०॥ एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसके घर आयी; तब उसने अपनी बहिनको सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा कि 'मेरे मनमें इसकी बड़ी चिन्ता है ॥ ५१ ॥ मैं इस दुःखके कारण दिनोंदिन दुबली हो रही हूँ । बहिन ! मैं क्या करूँ ?' बहिनने कहा, 'मेरे पेटमें बच्चा है, प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुझे दे दूँगी ॥५२॥ तबतक तू गर्भवतीके समान घरमें गुप्तरूपसे सुखसे रह । तू मेरे पतिको कुछ धन दे देगी तो वे तुझे अपना बालक दे देंगे ॥५३॥ (हम ऐसी युक्ति करेंगे) कि जिसमें सब लोग यही कहें कि 'इसका बालक छः महीनेका होकर मर गया' और मैं नित्यप्रति तेरे घर आकर उस बालकका पालन-पोषण करती रहूँगी ॥ ५४ ॥ तू इस समय इसकी जाँच करनेके लिये यह फल गौको खिला दे ।' ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभाववश जो-जो उसकी बहिनने कहा था, वैसे ही सब किया ॥५५॥

इसके पश्चात् समयानुसार जब उस स्त्रीके पुत्र हुआ, तब उसके पिताने चुपचाप लाकर उसे धुन्धुलीको दे दिया ॥५६॥ और उसने आत्मदेवको सूचना दे दी कि मेरे सुखपूर्वक बालक हो गया है । इस प्रकार आत्मदेवके पुत्र हुआ सुनकर सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ ॥५७॥ ब्राह्मणने उसका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया और उसके द्वारपर गाना-बजाना तथा अनेक प्रकारके माङ्गलिक कृत्य होने लगे ॥ ५८ ॥ धुन्धुलीने अपने पतिसे कहा, 'मेरे स्तनोंमें तो दूध ही नहीं है; फिर गौ आदि किसी अन्य जीवके दूधसे मैं इस बालकका किस प्रकार पालन करूँगी ? ॥ ५९ ॥ मेरी बहिनके अभी बालक हुआ था, वह मर गया है; उसे बुलाकर अपने यहाँ रख लें, तो वह आपके इस बच्चेका पालन-पोषण कर लेगी ॥६०॥ तब पुत्रकी रक्षाके लिये आत्मदेवने वैसा ही किया तथा माता धुन्धुलीने उस बालकका नाम धुन्धुकारी रक्खा ॥ ६१ ॥

इसके बाद तीन महीने बीतनेपर उस गौके भी एक मनुष्याकार बच्चा हुआ । वह सर्वाङ्गसुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था ॥ ६२ ॥ उसे देखकर ब्राह्मणदेवताको बड़ा आनन्द हुआ और उसने स्वयं ही उसके सब संस्कार किये । इस समाचारसे और सब

लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बालकको देखनेके लिये आये ॥ ६३ ॥ तथा आपसमें कहने लगे, 'देखो, भाई! अब आत्मदेवका कैसा भाग्य उदय हुआ है! कैसे आश्चर्यकी बात है कि गौके भी ऐसा दिव्यरूप बालक उत्पन्न हुआ है ॥ ६४ ॥ दैवयोगसे इस गुप्त रहस्यका किसीको भी पता न लगा। आत्मदेवने उस बालकके गौके-से कान देखकर उसका नाम 'गोकर्ण' रक्खा ॥ ६५ ॥

कुछ काल बीतनेपर वे दोनों बालक जवान हो गये। उनमें गोकर्ण तो बड़ा पण्डित और ज्ञानी हुआ, किन्तु धुन्धुकारी बड़ा ही दुष्ट निकला ॥ ६६ ॥ स्नान-शौचादि ब्राह्मणोचित आचारोंका उसमें नाम भी न था और न खान-पानका ही कोई परहेज था। क्रोध उसमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह बुरी-बुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था। मुर्देके हाथसे छुआया हुआ अन्न भी खा लेता था ॥ ६७ ॥ दूसरोंकी चोरी करना और सब लोगोंसे द्वेष बढ़ाना उसका स्वभाव बन गया था। छिपे-छिपे वह दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता था। दूसरोंके बालकोंको खेलानेके लिये गोदमें लेता और उन्हें चट कुएँमें डाल देता ॥ ६८ ॥ हिंसाका उसे व्यसन-सा हो गया था। हर समय वह अस्त्र-शस्त्र धारण किये रहता और बेचारे अंधे और दीन-दुखियोंको व्यर्थ तंग करता। चाण्डालोंसे उसका विशेष प्रेम था; बस, हाथमें फंदा लिये कुत्तोंकी टोलीके साथ शिकारकी टोहमें घूमता रहता ॥ ६९ ॥ वेश्याओंके जालमें फँसकर उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। एक दिन माता-पिताको मार-पीटकर घरके सब बर्तन-भाँडे उठा ले गया ॥ ७० ॥

इस प्रकार जब सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी, तब उसका कृपण पिता फूट-फूटकर रोने लगा और बोला—'इससे तो इसकी माँका बाँझ रहना ही अच्छा था; कुपुत्र तो बड़ा ही दुःखदायी होता है ॥ ७१ ॥ अब मैं कहाँ रहूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे इस संकटको कौन काटेगा? हाय! मेरे ऊपर तो बड़ी विपत्ति आ पड़ी है, इस दुःखके कारण अवश्य मुझे एक दिन प्राण छोड़ने पड़ेंगे ॥ ७२ ॥ उसी समय परम ज्ञानी गोकर्णजी वहाँ आये और उन्होंने पिताको वैराग्यका उपदेश करते हुए बहुत समझाया ॥ ७३ ॥ वे बोले, 'पिताजी! यह संसार असार है। यह अत्यन्त दुःखरूप और मोहमें डालनेवाला है। पुत्र किसका? धन किसका? स्नेहवान् पुरुष रात-दिन दीपकके समान जलता रहता है ॥ ७४ ॥ इन्द्रको और चक्रवर्ती राजाको कुछ भी सुख नहीं है; सुख है तो केवल विरक्त, एकान्तजीवी मुनिको ॥ ७५ ॥ 'यह मेरा पुत्र है' इस अज्ञानको छोड़ दीजिये। मोहसे नरककी प्राप्ति होती है। यह शरीर तो नष्ट होगा ही। इसलिये सब कुछ छोड़कर वनमें चले जाइये ॥ ७६ ॥

गोकर्णके वचन सुनकर आत्मदेव वनमें जानेके लिये तैयार हो गया और उनसे कहने लगा, 'बेटा! वनमें रहकर मुझे क्या करना चाहिये, यह मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ७७ ॥ मैं बड़ा मूर्ख हूँ, अबतक कर्मवश स्नेह-पाशमें बँधा हुआ अपङ्गकी भाँति इस घररूप अँधेरे कुएँमें ही पड़ा रहा हूँ। तुम बड़े दयालु हो, इससे मेरा उद्धार करो' ॥ ७८ ॥

गोकर्णने कहा—पिताजी! यह शरीर हड्डी, मांस और रुधिरका पिण्ड है; इसे आप 'मैं' मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादिको 'अपना' कभी न मानें। इस संसारको रात-दिन क्षणभङ्गुर देखें, इसकी किसी भी वस्तुको स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस, एकमात्र वैराग्य-रसके रसिक होकर भगवान्की भक्तिमें लगे रहें ॥ ७९ ॥ भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें। अन्य सब प्रकारके लौकिक धर्मोंसे मुख मोड़ लें। सदा साधुजनोंकी सेवा करें। भोगोंकी लालसाको पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्की कथाओंके रसका ही पान करें ॥ ८० ॥

इस प्रकार पुत्रकी वाणीसे प्रभावित होकर आत्मदेवने घर छोड़ दिया और वनकी यात्रा की। यद्यपि उसकी आयु उस समय साठ वर्षकी हो चुकी थी, फिर भी बुद्धिमें पूरी दृढ़ता थी। वहाँ रात-दिन भगवान्की सेवा-पूजा करनेसे और नियमपूर्वक भागवतके दशमस्कन्धका पाठ करनेसे उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया ॥ ८१ ॥

पाँचवाँ अध्याय

धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उद्धार

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! पिताके वन चले जानेपर एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको बहुत पीटा और कहा—'बता, धन कहाँ रक्खा है ? नहीं तो अभी तेरी लुआठी (जलती लकड़ी) से खबर लूँगा ॥ १ ॥ उसकी इस धमकीसे डरकर और पुत्रके उपद्रवोंसे दुखी होकर वह रात्रिके समय कुएँमें जा गिरी और इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी ॥ २ ॥ योगनिष्ठ गोकर्णजी तीर्थयात्राके लिये निकल गये । उन्हें इन घटनाओंसे कोई सुख या दुःख नहीं होता था; क्योंकि उनका न कोई मित्र था न शत्रु ॥ ३ ॥

धुन्धुकारी पाँच वेश्याओंके साथ घरमें रहने लगा । उनके लिये भोग-सामग्री जुटानेकी चिन्ताने उसकी बुद्धि नष्ट कर दी और वह नाना प्रकारके अत्यन्त क्रूर कर्म करने लगा ॥ ४ ॥ एक दिन उन कुलटाओंने उससे बहुत-से गहने माँगे । वह तो कामसे अंधा हो रहा था, मौतकी उसे कभी याद नहीं आती थी । बस, उन्हें जुटानेके लिये वह घरसे निकल पड़ा ॥ ५ ॥ वह जहाँ-तहाँसे बहुत-सा धन चुराकर घर लौट आया तथा उन्हें कुछ सुन्दर वस्त्र और आभूषण लाकर दिये ॥ ६ ॥ चोरीका बहुत माल देखकर रात्रिके समय स्त्रियोंने विचार किया कि 'यह नित्य ही चोरी करता है, इसलिये इसे किसी दिन अवश्य राजा पकड़ लेगा ॥ ७ ॥ राजा यह सारा धन छीनकर इसे निश्चय ही प्राणदण्ड देगा । जब एक दिन इसे मरना ही है, तब हम ही धनकी रक्षाके लिये गुप्तरूपसे इसको क्यों न मार डालें ॥ ८ ॥ इसे मारकर हम इसका माल-मता लेकर जहाँ-कहीं चली जायँगी ।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने सोये हुए धुन्धुकारीको रस्सियोंसे कस दिया और उसके गलेमें फाँसी लगाकर उसे मारनेका प्रयत्न किया । इससे जब वह जल्दी न मरा, तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई ॥ ९-१० ॥ तब उन्होंने उसके मुखपर बहुत-से दहकते अँगारे डाले; इससे वह अग्निकी लपटोंसे बहुत छटपटाकर मर गया ॥ ११ ॥ उन्होंने उसके शरीरको एक गड्ढेमें डालकर गाड़ दिया । सच है, स्त्रियाँ प्रायः बड़ी दुःसाहसी होती हैं । उनके इस कृत्यका किसीको भी पता न चला ॥ १२ ॥ लोगोंके पूछनेपर कह देती थीं कि 'हमारे प्रियतम पैसेके लोभसे अबकी बार कहीं दूर चले गये हैं, इसी वर्षके अंदर लौट आयेंगे' ॥ १३ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको दुष्टा स्त्रियोंका कभी विश्वास न करना चाहिये । जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे दुखी होना पड़ता है ॥ १४ ॥ इनकी वाणी तो अमृतके समान कामियोंके हृदयमें रसका सञ्चार करती है; किंतु हृदय छूरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है । भला, इन स्त्रियोंका कौन प्यारा है ? ॥ १५ ॥

वे कुलटाएँ धुन्धुकारीकी सारी सम्पत्ति समेटकर वहाँसे चंपत हो गयीं; उनके ऐसे न जाने कितने पति थे । और धुन्धुकारी अपने कुकर्मोंके कारण भयंकर प्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वह बवंडरके रूपमें सर्वदा दसों दिशाओंमें भटकता रहता था तथा शीत-घामसे सन्तप्त और भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण 'हा दैव ! हा दैव !' चिल्लाता रहता था । परन्तु उसे कहीं भी कोई आश्रय न मिला । कुछ काल बीतनेपर गोकर्णने भी लोगोंके मुखसे धुन्धुकारीकी मृत्युका समाचार सुना ॥ १७-१८ ॥ तब उसे अनाथ समझकर उन्होंने उसका गयाजीमें श्राद्ध किया; और भी जहाँ-जहाँ वे जाते थे, उसका श्राद्ध अवश्य करते थे ॥ १९ ॥

इस प्रकार घूमते-घूमते गोकर्णजी अपने नगरमें आये और रात्रिके समय दूसरोंकी दृष्टिसे बचकर सीधे अपने घरके आँगनमें सोनेके लिये पहुँचे ॥ २० ॥ वहाँ अपने भाईको सोया देख आधी रातके समय धुन्धुकारीने अपना बड़ा विकट रूप दिखाया ॥ २१ ॥ वह कभी भेड़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण करता । अन्तमें वह मनुष्यके आकारमें प्रकट हुआ ॥ २२ ॥ ये विपरीत अवस्थाएँ देखकर गोकर्णने निश्चय किया कि यह कोई

दुर्गतिको प्राप्त हुआ जीव है। तब उन्होंने उससे धैर्यपूर्वक पूछा ॥ २३ ॥

गोकर्णने कहा—तू कौन है ? रात्रिके समय ऐसे भयानक रूप क्यों दिखा रहा है ? तेरी यह दशा कैसे हुई ? हमें बता तो सही—तू प्रेत है, पिशाच है अथवा कोई राक्षस है ? ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—गोकर्णके इस प्रकार पूछनेपर वह बार-बार जोर-जोरसे रोने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी, इसलिये उसने केवल संकेतमात्र किया ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अञ्जलिमें जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करके उसपर छिड़का। इससे उसके पापोंका कुछ शमन हुआ और वह इस प्रकार कहने लगा ॥ २६ ॥

प्रेत बोला—'मैं तुम्हारा भाई हूँ। मेरा नाम है धुन्धुकारी। मैंने अपने ही दोषसे अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया ॥ २७ ॥ मेरे कुकर्मोंकी गिनती नहीं की जा सकती। मैं तो महान् अज्ञानमें चक्कर काट रहा था। इसीसे मैंने लोगोंकी बड़ी हिंसा की। अन्तमें कुलटा स्त्रियोंने मुझे तड़पा-तड़पाकर मार डाला ॥ २८ ॥ इसीसे अब प्रेत-योनिमें पड़कर यह दुर्दशा भोग रहा हूँ। अब दैववश कर्मफलका उदय होनेसे मैं केवल वायुभक्षण करके जी रहा हूँ ॥ २९ ॥ भाई! तुम दयाके समुद्र हो; अब किसी प्रकार जल्दी ही मुझे इस योनिसे छुड़ाओ।' गोकर्णने धुन्धुकारीकी सारी बातें सुनीं और तब उससे बोले ॥ ३० ॥

गोकर्णने कहा—भाई! मुझे इस बातका बड़ा आश्चर्य है—मैंने तुम्हारे लिये विधिपूर्वक गयाजीमें पिण्डदान किया, फिर भी तुम प्रेतयोनिसे मुक्त कैसे नहीं हुए ?॥ ३१ ॥ यदि गया-श्राद्धसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई, तब इसका और कोई उपाय ही नहीं है। अच्छा, तुम सब बात खोलकर कहो—मुझे अब क्या करना चाहिये ? ॥ ३२ ॥

प्रेतने कहा—मेरी मुक्ति सैकड़ों गया-श्राद्ध करनेसे भी नहीं हो सकती। अब तो तुम इसका कोई और उपाय सोचो ॥ ३३ ॥

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे—'यदि सैकड़ों गया-श्राद्धोंसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती, तब तो तुम्हारी मुक्ति असम्भव ही है ॥ ३४ ॥ अच्छा, अभी तो तुम निर्भय होकर अपने स्थानपर रहो; मैं विचार करके तुम्हारी मुक्तिके लिये कोई दूसरा उपाय करूँगा' ॥ ३५ ॥

गोकर्णकी आज्ञा पाकर धुन्धुकारी वहाँसे अपने स्थानपर चला आया। इधर गोकर्णने रातभर विचार किया, तब भी उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा ॥ ३६ ॥ प्रातःकाल उनको आया देख लोग प्रेमसे उनसे मिलने आये। तब गोकर्णने रातमें जो कुछ जिस प्रकार हुआ था, वह सब उन्हें सुना दिया ॥ ३७ ॥ उनमें जो लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और वेदज्ञ थे, उन्होंने भी अनेकों शास्त्रोंको उलट-पलटकर देखा; तो भी उसकी मुक्तिका कोई उपाय न मिला ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि इस विषयमें सूर्यनारायण जो आज्ञा करें, वही करना चाहिये। अतः गोकर्णने अपने तपोबलसे सूर्यकी गतिको रोक दिया ॥ ३९ ॥ उन्होंने स्तुति की—'भगवन्! आप सारे संसारके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझे कृपा करके धुन्धुकारीकी मुक्तिका साधन बताइये।' गोकर्णकी यह प्रार्थना सुनकर सूर्यदेवने दूरसे ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है, इसलिये तुम उसका सप्ताह-पारायण करो।' सूर्यका यह धर्ममय वचन वहाँ सभीने सुना ॥ ४०-४१ ॥ तब सबने यही कहा कि 'प्रयत्नपूर्वक यही करो, है भी यह साधन बहुत सरल।' अतः गोकर्णजी भी तदनुसार निश्चय करके कथा सुनानेके लिये तैयार हो गये ॥ ४२ ॥

देश और गाँवोंसे अनेकों लोग कथा सुननेके लिये आये। बहुत-से लँगड़े-लूले, अंधे, बूढ़े और मन्दबुद्धि पुरुष भी अपने पापोंकी निवृत्तिके उद्देश्यसे वहाँ आ पहुँचे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार वहाँ इतनी भीड़ हो गयी कि उसे देखकर देवताओंको भी आश्चर्य होता था। जब गोकर्णजी व्यासगद्दीपर बैठकर कथा कहने लगे, तब वह प्रेत भी वहाँ आ पहुँचा और इधर-उधर बैठनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सीधे

रक्खे हुए सात गाँठके बाँसपर पड़ी ॥ ४४-४५ ॥ उसीके नीचेके छिद्रमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठ गया। वायुरूप होनेके कारण वह बाहर कहीं बैठ नहीं सकता था, इसलिये बाँसमें घुस गया ॥ ४६ ॥

गोकर्णजीने एक वैष्णव ब्राह्मणको मुख्य श्रोता बनाया और प्रथमस्कन्धसे ही स्पष्ट स्वरमें कथा सुनानी आरम्भ कर दी ॥ ४७ ॥ सायङ्कालमें जब कथाको विश्राम दिया गया, तब एक बड़ी विचित्र बात हुई। वहाँ सभासदोंके देखते-देखते उस बाँसकी एक गाँठ तड़-तड़ शब्द करती फट गयी ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार दूसरे दिन सायङ्कालमें दूसरी गाँठ फटी और तीसरे दिन उसी समय तीसरी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सात दिनोंमें सातों गाँठोंको फोड़कर धुन्धुकारी बारहों स्कन्धों-के सुननेसे पवित्र होकर प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया और दिव्यरूप धारण करके सबके सामने प्रकट हुआ। उसका मेघके समान श्याम शरीर पीताम्बर और तुलसीकी मालाओंसे सुशोभित था तथा सिरपर मनोहर मुकुट और कानोंमें कमनीय कुण्डल झिलमिला रहे थे ॥ ५०-५१ ॥ उसने तुरंत अपने भाई गोकर्णको प्रणाम करके कहा—'भाई! तुमने कृपा करके मुझे प्रेतयोनिकी यातनाओंसे मुक्त कर दिया ॥ ५२ ॥ यह प्रेतपीड़ाका नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है। तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताह-पारायण भी धन्य है! ॥ ५३ ॥ जब सप्ताहश्रवणका योग लगता है, तब सब पाप थर्रा उठते हैं कि अब यह भागवतकी कथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार आग गीली-सूखी, छोटी-बड़ी—सब तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताहश्रवण मन, वचन और कर्म-द्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े—सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है ॥ ५५ ॥

विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो लोग इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है ॥ ५६ ॥ भला, मोहपूर्वक लालन-पालन करके यदि इस अनित्य शरीरको हृष्ट-पुष्ट और बलवान् भी बना लिया, तो भी श्रीमद्भागवतकी कथा सुने बिना इससे क्या काम हुआ? ॥ ५७ ॥ अस्थियाँ ही इस शरीरके आधारस्तम्भ हैं, नस-नाडीरूप रस्सियोंसे यह बँधा हुआ है, ऊपरसे इसपर मांस और रक्त थोपकर इसे चर्मसे मँढ़ दिया गया है। इसके प्रत्येक अङ्गमें दुर्गन्ध आती है; क्योंकि है तो यह मल-मूत्रका भाण्ड ही ॥ ५८ ॥ वृद्धावस्था और शोकके कारण यह परिणाममें दुःखमय ही है, रोगोंका तो घर ही ठहरा। यह निरन्तर किसी-न-किसी कामनासे पीड़ित रहता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती। इसे धारण किये रहना भी एक भार ही है; इसके रोम-रोम-में दोष भरे हुए हैं और नष्ट होनेमें इसे एक क्षण भी नहीं लगता ॥ ५९ ॥ अन्तमें यदि इसे गाड़ दिया जाता है तो इसके कीड़े बन जाते हैं; कोई पशु खा जाता है तो यह विष्ठा हो जाता है और अग्निमें जला दिया जाता है तो भस्मकी ढेरी हो जाता है। ये तीन ही इसकी गतियाँ बतायी गयी हैं। ऐसे अस्थिर शरीरसे मनुष्य अविनाशी फल देनेवाला काम क्यों नहीं बना लेता? ॥ ६० ॥ जो अन्न प्रातःकाल पकाया जाता है, वह सायङ्कालतक बिगड़ जाता है; फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी ॥ ६१ ॥

इस लोकमें सप्ताहश्रवण करनेसे भगवान्‌की शीघ्र ही प्राप्ति हो सकती है। अतः सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिके लिये एकमात्र यही साधन है ॥ ६२ ॥ जो लोग भागवतकी कथासे वञ्चित हैं, वे तो जलमें बुद्बुदे और जीवोंमें मच्छरोंके समान केवल मरनेके लिये ही पैदा होते हैं ॥ ६३ ॥ भला, जिसके प्रभावसे जड और सूखे हुए बाँसकी गाँठें फट सकती हैं, उस भागवतकथाका श्रवण करनेसे चित्तकी गाँठोंका खुल जाना कौन बड़ी बात है ॥ ६४ ॥ सप्ताह-श्रवण करनेसे मनुष्यके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, उसके समस्त संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं ॥ ६५ ॥ यह भागवतकथारूप तीर्थ संसारके कीचड़को धोनेमें बड़ा ही पटु है। विद्वानोंका कथन है कि जब यह हृदयमें स्थित हो जाता है, तब मनुष्यकी मुक्ति निश्चित ही समझनी चाहिये ॥ ६६ ॥

जिस समय धुन्धुकारी ये सब बातें कह रहा था,

उसके लिये वैकुण्ठवासी पार्षदोंके सहित एक विमान उतरा; उससे सब ओर मण्डलाकार प्रकाश फैल रहा था ॥ ६७ ॥ सब लोगोंके सामने ही धुन्धुकारी उस विमानपर चढ़ गया। तब उस विमानपर आये हुए पार्षदोंको देखकर उनसे गोकर्णने यह बात कही ॥ ६८ ॥

गोकर्णने पूछा—भगवान्‌के प्रिय पार्षदो ! यहाँ तो हमारे अनेकों शुद्धहृदय श्रोतागण हैं, उन सबके लिये आपलोग एक साथ बहुत-से विमान क्यों नहीं लाये ? हम देखते हैं कि यहाँ सभीने समानरूपसे कथा सुनी है, फिर फलमें इस प्रकारका भेद क्यों हुआ, यह बताइये ॥ ६९-७० ॥

भगवान्‌के सेवकोंने कहा—हे मानद ! इस फल-भेदका कारण इनके श्रवणका भेद ही है। यह ठीक है कि श्रवण तो सबने समानरूपसे ही किया है, किंतु इसके-जैसा मनन नहीं किया। इसीसे एक साथ भजन करनेपर भी उसके फलमें भेद रहा ॥ ७१ ॥ इस प्रेतने सात दिनोंतक निराहार रहकर श्रवण किया था, तथा सुने हुए विषयका स्थिरचित्तसे यह खूब मनन-निदिध्यासन भी करता रहता था ॥ ७२ ॥ जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवणका, संदेहसे मन्त्रका और चित्तके इधर-उधर भटकते रहनेसे जपका भी कोई फल नहीं होता ॥ ७३ ॥ वैष्णवहीन देश, अपात्रको कराया हुआ श्राद्धका भोजन, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान एवं आचारहीन कुल—इन सबका नाश हो जाता है ॥ ७४ ॥ गुरुवचनोंमें विश्वास, दीनताका भाव, मनके दोषोंपर विजय और कथामें चित्तकी एकाग्रता इत्यादि नियमोंका यदि पालन किया जाय तो श्रवणका यथार्थ फल मिलता है। यदि ये श्रोता फिरसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनें तो निश्चय ही सबको वैकुण्ठकी प्राप्ति होगी ॥ ७५-७६ ॥ और गोकर्णजी ! आपको तो भगवान् स्वयं आकर गोलोकधाममें ले जायँगे। यों कहकर वे सब पार्षद हरिकीर्तन करते वैकुण्ठलोकको चले गये ॥ ७७ ॥

श्रावण मासमें गोकर्णजीने फिर उसी प्रकार सप्ताह-क्रमसे कथा कही और उन श्रोताओंने उसे फिर सुना ॥ ७८ ॥ नारदजी ! इस कथाकी समाप्तिपर जो कुछ हुआ, वह सुनिये ॥ ७९ ॥ वहाँ भक्तोंसे भरे हुए विमानोंके साथ भगवान् प्रकट हुए। सब ओरसे खूब जय-जयकार और नमस्कारकी ध्वनियाँ होने लगीं ॥ ८० ॥ भगवान् स्वयं हर्षित होकर अपने पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि करने लगे और उन्होंने गोकर्णको हृदयसे लगाकर अपने ही समान बना लिया ॥ ८१ ॥ उन्होंने क्षणभरमें ही अन्य सब श्रोताओंको भी मेघके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीताम्बर-धारी तथा किरीट और कुण्डलादिसे विभूषित कर दिया ॥ ८२ ॥ उस गाँवमें कुत्ते और चाण्डालपर्यन्त जितने भी जीव थे, वे सभी गोकर्णजीकी कृपासे विमानोंपर चढ़ा लिये गये ॥ ८३ ॥ तथा जहाँ योगिजन जाते हैं, उस भगवद्धाममें वे भेज दिये गये। इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण कथा-श्रवणसे प्रसन्न होकर गोकर्णजीको साथ ले अपने ग्वालबालोंके प्रिय गोलोकधाममें चले गये ॥ ८४ ॥ पूर्वकालमें जैसे अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके साथ साकेतधाम सिधारे थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण उन सबको योगिदुर्लभ गोलोकधामको ले गये ॥ ८५ ॥ जिस लोकमें सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी कभी गति नहीं हो सकती, उसमें वे श्रीमद्भागवत श्रवण करनेसे चले गये ॥ ८६ ॥

नारदजी ! सप्ताहयज्ञके द्वारा कथा श्रवण करनेसे जैसा उज्ज्वल फल संचित होता है, उसके विषयमें हम आपसे क्या कहें ? अजी ! जिन्होंने अपने कर्ण-पुटसे गोकर्णजीकी कथाके एक अक्षरका भी पान किया था, वे फिर माताके गर्भमें नहीं आये ॥ ८७ ॥ जिस गतिको लोग वायु, जल या पत्ते खाकर शरीर सुखाने-से, बहुत कालतक घोर तपस्या करनेसे और योगाभ्याससे भी नहीं पा सकते, उसे वे सप्ताहश्रवणसे सहजमें ही प्राप्त कर लेते हैं ॥ ८८ ॥ इस परम पवित्र इतिहास-का पाठ चित्रकूटपर विराजमान मुनीश्वर शाण्डिल्य भी ब्रह्मानन्दमें मग्न होकर करते रहते हैं ॥ ८९ ॥ यह कथा बड़ी ही पवित्र है। एक बारके श्रवणसे ही समस्त पाप-राशिको भस्म कर देती है। यदि इसका श्राद्धके समय पाठ किया जाय, तो इससे पितृगणको बड़ी तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ९० ॥

छठा अध्याय

सप्ताहयज्ञकी विधि

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! अब हम आपको सप्ताहश्रवणकी विधि बताते हैं। यह विधि प्रायः लोगोंकी सहायता और धनसे साध्य कही गयी है॥ १ ॥ पहले तो यत्नपूर्वक ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त्त पूछना चाहिये तथा विवाहके लिये जितने धनका प्रबन्ध किया जाता है,उतने ही धनकी व्यवस्था इसके लिये करनी चाहिये॥२॥कथा आरम्भ करनेमें भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, आषाढ़ और श्रावण—ये छः महीने श्रोताओंके लिये मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं ॥ ३ ॥ देवर्षे ! इन महीनोंमें भी भद्रा-व्यतीपात आदि कुयोगोंको सर्वथा त्याग देना चाहिये । तथा दूसरे लोग जो उत्साही हों, उन्हें अपना सहायक बना लेना चाहिये ॥ ४ ॥ फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तरोंमें यह संवाद भेजना चाहिये कि यहाँ कथा होगी, सब लोगोंको सपरिवार पधारना चाहिये ॥ ५ ॥ स्त्री और शूद्रादि भगवत्कथा एवं संकीर्तनसे दूर पड़ गये हैं । उनको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ देश-देशमें जो विरक्त वैष्णव और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनके पास निमन्त्रणपत्र अवश्य भेजे । उसे लिखनेकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है ॥ ७ ॥ 'महानुभावो ! यहाँ सात दिनतक सत्पुरुषोंका बड़ा दुर्लभ समागम रहेगा और अपूर्व रसमयी श्रीमद्भागवतकी कथा होगी ॥ ८ ॥ आपलोग भगवद्रसके रसिक हैं, अतः श्रीभागवतामृतका पान करनेके लिये प्रेमपूर्वक शीघ्र ही पधारनेकी कृपा करें ॥ ९ ॥ यदि आपको विशेष अवकाश न हो, तो भी एक दिनके लिये तो अवश्य ही कृपा करनी चाहिये; क्योंकि यहाँका तो एक क्षण भी अत्यन्त दुर्लभ है।' ॥ १० ॥ इस प्रकार विनयपूर्वक उन्हें निमन्त्रित करे और जो लोग आयें, उनके लिये यथोचित निवासस्थानका प्रबन्ध करे ॥ ११ ॥

कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी अच्छा माना गया है। जहाँ लंबा-चौड़ा मैदान हो, वहीं कथास्थल रखना चाहिये ॥ १२ ॥ भूमिका शोधन,मार्जन और लेपन करके रंग-बिरंगी धातुओंसे चौक पूरे । घरकी सारी सामग्री उठाकर एक कोनेमें रख दे ॥ १३ ॥ पाँच दिन पहलेसे ही यत्नपूर्वक बहुत-से बिछानेके वस्त्र एकत्र कर ले तथा केलेके खंभोंसे सुशोभित एक ऊँचा मण्डप तैयार कराये ॥ १४ ॥ उसे सब ओर फल, पुष्प, पत्र और चँदोवेसे अलंकृत करे तथा चारों ओर झंडियाँ लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजा दे ॥ १५ ॥ उस मण्डपमें कुछ ऊँचाईपर सात विशाल लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बैठाये ॥ १६ ॥ आगेकी ओर उनके लिये वहाँ यथोचित आसन तैयार रक्खे । इनके पीछे वक्ताके लिये भी एक दिव्य सिंहासनका प्रबन्ध करे ॥ १७ ॥ यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर रहे, तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठे और यदि वक्ता पूर्वाभिमुख रहे तो श्रोताको उत्तरकी ओर मुख करके बैठना चाहिये ॥ १८ ॥ अथवा वक्ता और श्रोताको पूर्वमुख होकर बैठना चाहिये। देश-काल आदिको जाननेवाले महानुभावोंने श्रोताके लिये ऐसा ही नियम बताया है ॥ १९ ॥ जो वेद-शास्त्रकी स्पष्ट व्याख्या करनेमें समर्थ हो, तरह-तरहके दृष्टान्त दे सकता हो तथा विवेकी और अत्यन्त निःस्पृह हो, ऐसे विरक्त और विष्णुभक्त ब्राह्मणको वक्ता बनाना चाहिये ॥ २० ॥ श्रीमद्भागवतके प्रवचनमें ऐसे लोगोंको नियुक्त नहीं करना चाहिये जो पण्डित होनेपर भी अनेक धर्मोंके चक्करमें पड़े हुए, स्त्री-लम्पट एवं पाखण्डके प्रचारक हों ॥ २१ ॥ वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और स्थापित करना चाहिये । वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो ॥ २२ ॥

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पूर्व व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये । तथा अरुणोदयके समय शौचसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे ॥ २३ ॥ और संध्यादि अपने नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्त करके कथाके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे ॥ २४ ॥ तदनन्तर पितृगणका तर्पण कर पूर्व पापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिको स्थापित करे ॥ २५ ॥ फिर भगवान्

श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचारविधिसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे ॥२६॥ 'करुणानिधान ! मैं संसार-सागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ । कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रक्खा है । आप इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये ॥ २७ ॥ इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि-विधानसे पूजा करे ॥ २८ ॥ फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—॥ २९ ॥ 'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र ही विराजमान हैं । नाथ ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है ॥ ३० ॥ मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साङ्गोपाङ्ग पूरा करें । केशव ! मैं आपका दास हूँ' ॥ ३१ ॥

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे । उसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—॥ ३२ ॥ 'शुकस्वरूप भगवन् ! आप समझानेकी कलामें कुशल और सब शास्त्रोंमें पारंगत हैं; कृपया इस कथाको प्रकाशित करके मेरा अज्ञान दूर करें' ॥ ३३ ॥ फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनोंतक यथाशक्ति उसका पालन करे ॥ ३४ ॥ कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे; वे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्के नामोंका जप करें ॥ ३५ ॥ फिर ब्राह्मण, अन्य विष्णुभक्त एवं कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा पाकर स्वयं भी आसनपर बैठ जाय ॥ ३६ ॥ जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर शुद्धचित्तसे केवल कथामेंही ध्यान रखता है, उसे इसके श्रवणका उत्तम फल मिलता है॥३७॥

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे ॥ ३८ ॥ दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रक्खे । उस समय कथाके प्रसङ्गके अनुसार वैष्णवोंको भगवान्के गुणोंका कीर्तन करना चाहिये—व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये अल्पाहार सुखकारी होता है; इसलिये श्रोता केवल एक ही समय हविष्यान्न भोजन करे ॥ ४० ॥ यदि शक्ति हो तो सातों दिन निराहार रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक श्रवण करे ॥ ४१ ॥ अथवा फलाहार या एक समय भोजन करे । जिससे जैसा नियम सुभीतेसे सध सके, उसीको कथाश्रवणके लिये ग्रहण करे ॥ ४२ ॥ मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, यदि वह कथाश्रवणमें सहायक हो । यदि उपवाससे श्रवणमें बाधा पहुँचती हो तो वह किसी कामका नहीं ॥४३॥

नारदजी ! नियमसे सप्ताह सुननेवाले पुरुषोंके नियम सुनिये । विष्णुभक्तिकी दीक्षासे रहित पुरुष कथाश्रवणका अधिकारी नहीं है ॥ ४४ ॥ जो पुरुष नियमसे कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना और नित्यप्रति कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्न—इनका उसे सर्वदा ही त्याग करना चाहिये ॥ ४६ ॥ काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह और द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने देना चाहिये ॥ ४७ ॥ वह वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक तथा स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दासे भी बचे ॥४८॥ नियमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रजस्वला स्त्री, अन्त्यज, म्लेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात नहीं करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये ॥ ५० ॥ धनहीन, क्षयरोगी, किसी अन्य रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु भी यह कथा श्रवण करे ॥ ५१ ॥ जिस स्त्रीका रजोदर्शन रुक गया हो, जिसके एक ही संतान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसकी सन्तान होकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह यत्नपूर्वक इस कथाको सुने ॥ ५२ ॥ ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें तो इन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति हो सकती है । यह अत्युत्तम दिव्य कथा करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाली है ॥ ५३ ॥

इस प्रकार इस व्रतकी विधियोंका पालन करके फिर उद्यापन करे। जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे जन्माष्टमी-व्रतके समान ही इस कथाव्रतका उद्यापन करें ॥५४॥ किन्तु जो भगवान्‌के अकिञ्चन भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका कोई आग्रह नहीं है। वे श्रवणसे ही पवित्र हैं; क्योंकि वे तो निष्काम भगवद्भक्त हैं ॥५५॥

इस प्रकार जब सप्ताहयज्ञ समाप्त हो जाय, तब श्रोताओंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक पुस्तक और वक्ताकी पूजा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥ फिर वक्ता श्रोताओंको प्रसाद, तुलसी और प्रसादी मालाएँ दे तथा सब लोग मृदङ्ग और झाँझकी मनोहर ध्वनिसे सुन्दर कीर्तन करें ॥ ५७ ॥ जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खध्वनिका घोष कराये तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दे॥ ५८ ॥ श्रोता विरक्त हो तो कर्मकी शान्तिके लिये दूसरे दिन गीतापाठ करे; गृहस्थ हो तो हवन करे ॥ ५९ ॥ उस हवनमें दशमस्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दे ॥ ६० ॥

अथवा एकाग्र चित्तसे गायत्री-मन्त्रद्वारा हवन करे; क्योंकि तत्त्वतः यह महापुराण गायत्रीस्वरूप ही है ॥६१॥ होम करनेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको हवनसामग्री दान करे तथा नाना प्रकारकी त्रुटियोंको दूर करनेके लिये और विधिमें फिर जो न्यूनाधिकता रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनाम-का पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है ॥ ६२-६३ ॥

फिर बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम पदार्थ खिलाये तथा व्रतकी पूर्तिके लिये गौ और सुवर्ण-का दान करे ॥ ६४ ॥ सामर्थ्य हो तो तीन तोले सोनेका एक सिंहासन बनवाये, उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी रखकर उसकी आवाहनादि विविध उपचारोंसे पूजा करे और फिर जितेन्द्रिय आचार्यको—उसका वस्त्र, आभूषण एवं गन्धादिसे पूजनकर—दक्षिणाके सहित समर्पण कर दे॥ ६५-६६॥ यों करनेसे यह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताहपारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मङ्गलमय भागवत-पुराण अभीष्ट फल प्रदान करता है तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिका साधन हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं ॥ ६७-६८ ॥

सनकादि कहते हैं—नारदजी! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताहश्रवणकी विधि हमने पूरी-पूरी सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो ? इस श्रीमद्भागवतसे भोग और मोक्ष दोनों ही हाथ लग जाते हैं ॥ ६९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! यों कहकर महामुनि सनकादिने एक सप्ताहतक विधिपूर्वक इस सर्वपापनाशिनी, परम पवित्र तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली भागवतकथाका प्रवचन किया। सब प्राणियोंने नियमपूर्वक इसे श्रवण किया। इसके पश्चात् उन्होंने विधिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति की ॥७०-७१॥ कथाके अन्तमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको बड़ी पुष्टि मिली और वे तीनों एकदम तरुण होकर सब जीवोंका चित्त अपनी ओर आकर्षित करने लगे ॥ ७२ ॥ अपना मनोरथ पूरा होनेसे नारदजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई, उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे परमानन्दसे पूर्ण हो गये ॥ ७३ ॥ इस प्रकार कथा श्रवणकर भगवान्‌के प्यारे नारदजी हाथ जोड़कर प्रेम-गद्गद वाणीसे सनकादिसे कहने लगे ॥ ७४ ॥

नारदजीने कहा—मैं धन्य हूँ, आपलोगोंने करुणा करके मुझे बड़ा ही अनुगृहीत किया है, आज मुझे सर्व-पापहारी भगवान् श्रीहरिकी ही प्राप्ति हो गयी ॥ ७५ ॥ तपोधनो! मैं श्रीमद्भागवतश्रवणको ही सब धर्मोंसे श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि इसके श्रवणसे वैकुण्ठ (गोलोक)-विहारी श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! वैष्णवश्रेष्ठ नारदजी यों कह ही रहे थे कि वहाँ घूमते-फिरते योगेश्वर शुकदेवजी आ गये ॥ ७७ ॥ कथा समाप्त होते ही व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी वहाँ पधारे। सोलह वर्षकी-सी आयु, आत्मलाभसे पूर्ण, ज्ञानरूपी महासागर

संवर्धन करनेके लिये चन्द्रमाके समान वे प्रेमसे धीरे-धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे ॥ ७८ ॥ परम तेजस्वी शुकदेवजीको देखकर सारे सभासद् झटपट खड़े हो गये और उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठाया । फिर देवर्षि नारदजीने उनका प्रेमपूर्वक पूजन किया। उन्होंने सुखपूर्वक बैठकर कहा—'आपलोग मेरी निर्मल वाणी सुनिये' ॥ ७९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—रसिक एवं भावुक जन ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका परिपक्व फल है । श्रीशुकदेवरूप शुकके मुखका संयोग होनेसे अमृतरससे परिपूर्ण है । यह रस-ही-रस है—इसमें न छिलका है न गुठली । इसी लोकमें सुलभ है । जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक आपलोग बार-बार इसका पान करें ॥ ८० ॥ महामुनि व्यासदेवने श्रीमद्भागवत महापुराणकी रचना की है । इसमें निष्कपट—निष्काम परम धर्मका निरूपण है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जानने योग्य कल्याणकारी वास्तविक वस्तुका वर्णन है, जिससे तीनों तापोंकी शान्ति होती है। इसका आश्रय लेनेपर दूसरे शास्त्र अथवा साधनकी आवश्यकता नहीं रहती। जब कभी पुण्यात्मा पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, तभी ईश्वर अविलम्ब उनके हृदयमें अवरुद्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥ यह भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका धन है । इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥ यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठमें भी नहीं है । इसलिये भाग्यवान् श्रोताओ ! तुम इसका खूब पान करो; इसे कभी मत छोड़ो, मत छोड़ो ॥८३॥

सूतजी कहते हैं—श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि उस सभाके बीचोबीच प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये । तब देवर्षि नारदने भगवान् और उनके भक्तोंकी यथोचित पूजा की ॥ ८४ ॥ भगवान्‌को प्रसन्न देखकर देवर्षिने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर बैठा दिया और सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके सहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी आये ॥ ८५ ॥ कीर्तन आरम्भ हुआ । प्रह्लादजी तो चञ्चलगति (फुर्तीले) होनेके कारण करताल बजाने लगे, उद्धवजीने झाँझें उठा लीं, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर-विज्ञान (गान-विद्या) में कुशल होनेके कारण अर्जुन-राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अङ्गभङ्गी करके भाव बताने लगे ॥ ८६ ॥ इन सबके बीचमें परम तेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे । ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहने लगे—॥ ८७ ॥ 'मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे भक्तिभावने इस समय मुझे अपने वशमें कर लिया है । अतः तुमलोग मुझसे वर माँगो ।' भगवान्‌के ये वचन सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और प्रेमार्द्र चित्तसे भगवान्‌से कहने लगे ॥ ८८ ॥ 'भगवन् ! हमारी यह अभिलाषा है कि भविष्यमें भी जहाँ-कहीं सप्ताह-कथा हो, वहाँ आप इन पार्षदोंके सहित अवश्य पधारें । हमारा यह मनोरथ पूर्ण कर दीजिये ।' भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये ॥ ८९ ॥

इसके पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके पार्षदोंके चरणोंको लक्ष्य करके प्रणाम किया और फिर शुकदेवजी आदि तपस्वियोंको भी नमस्कार किया । कथामृतका पान करनेसे सब लोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ, उनका सारा मोह नष्ट हो गया । फिर वे सब लोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ९० ॥ उस समय शुकदेवजीने भक्तिको उसके पुत्रोंसहित अपने शास्त्रमें स्थापित कर दिया । इसीसे भागवतका सेवन करनेसे श्रीहरि वैष्णवोंके हृदयमें आ विराजते हैं ॥ ९१ ॥ जो लोग दरिद्रताके दुःखज्वरकी ज्वालासे दग्ध हो रहे हैं, जिन्हें माया-पिशाचीने रौंद डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें डूब रहे हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत सिंहनाद कर रहा है ॥ ९२ ॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को, गोकर्णने धुन्धुकारीको और सनकादिने

महासंकीर्तन

[पृष्ठ २२

नारदजीको किस-किस समय यह ग्रन्थ सुनाया था—मेरा यह संशय दूर कीजिये ! ॥ ९३ ॥

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके स्वधामगमनके बाद कलियुगके तीस वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर भाद्रपद मासकी शुक्ला नवमीको शुकदेवजीने कथा आरम्भ की थी ॥ ९४ ॥ राजा परीक्षित्के कथा सुननेके बाद कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर आषाढ़ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णजीने यह कथा सुनायी थी ॥९५॥ इसके पीछे कलियुगके तीस वर्ष और निकल जानेपर कार्तिक शुक्ला नवमीसे सनकादिने कथा आरम्भ की थी ॥९६॥ निष्पाप शौनकजी ! आपने जो कुछ पूछा था, उसका उत्तर मैंने आपको दे दिया । इस कलियुगमें भागवतकी कथा भवरोगकी रामबाण औषध है ॥९७॥

संतजन ! आपलोग आदरपूर्वक इस कथामृतका पान कीजिये । यह श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय, सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, मुक्तिका एकमात्र कारण और भक्तिको बढ़ानेवाला है । लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंका विचार करने और तीर्थोंका सेवन करनेसे क्या होगा ॥९८॥ अपने दूतको हाथमें पाश लिये देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—'देखो, जो भगवान्की कथा-वार्तामें मत्त हो रहे हों, उनसे दूर रहना; मैं औरोंको ही दण्ड देनेकी शक्ति रखता हूँ, वैष्णवोंको नहीं' ॥९९॥ इस असार संसारमें विषयरूप विषकी आसक्तिके कारण व्याकुल बुद्धिवाले पुरुषो ! अपने कल्याणके उद्देश्यसे आधे क्षणके लिये भी इस शुककथारूप अनुपम सुधाका पान करो । प्यारे भाइयो ! निन्दित कथाओंसे युक्त कुपथमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो ? इस कथाके कानमें प्रवेश करते ही मुक्ति हो जाती है, इस बातके साक्षी राजा परीक्षित् हैं ॥१००॥ श्रीशुकदेवजीने प्रेमरसके प्रवाहमें स्थित होकर इस कथाको कहा था । इसका जिसके कण्ठसे सम्बन्ध हो जाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है ॥१०१॥ शौनकजी ! मैंने अनेक शास्त्रोंको देखकर आपको यह परम गोप्य रहस्य अभी-अभी सुनाया है । सब शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका यही निचोड़ है । संसारमें इस शुकशास्त्रसे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है; अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इस द्वादशस्कन्धरूप रसका पान करें ॥१०२॥ जो पुरुष नियमपूर्वक इस कथाका भक्ति-भावसे श्रवण करता है और जो शुद्धान्तःकरण भगवद्भक्तोंके सामने इसे सुनाता है, वे दोनों ही विधिका पूरा-पूरा पालन करनेके कारण इसका यथार्थ फल पाते हैं—उनके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता ॥ १०३ ॥

॥ श्रीमद्भागवतमाहात्म्य समाप्त ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥
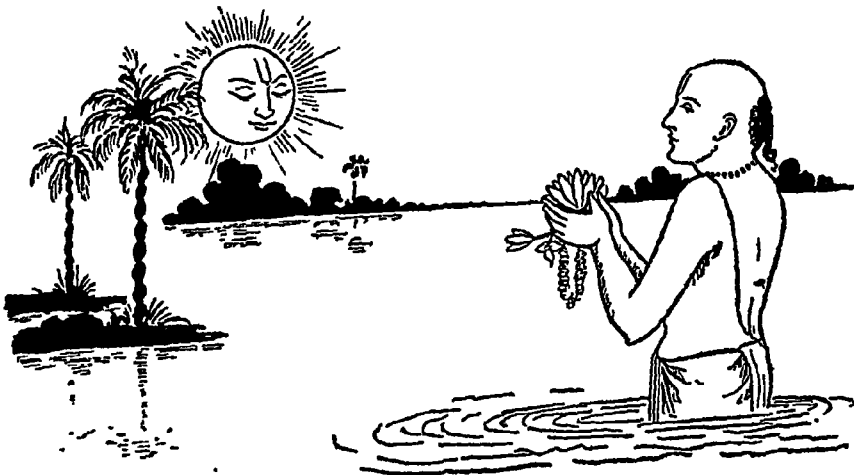
श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

प्रथम स्कन्ध

यो लीलालास्यसंलग्नो गतोऽलोलोऽपि लोलताम् ।
तं लीलावपुषं बालं वन्दे लीलार्थसिद्धये ॥

ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

प्रथम स्कन्ध

पहला अध्याय

श्रीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न

मङ्गलाचरण

जिससे इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत् पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं, चेतन है; परतन्त्र नहीं, स्वयंप्रकाश है; जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें अपने संकल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है; जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं; जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं ॥ १ ॥ महामुनि व्यासदेवके द्वारा निर्मित इस श्रीमद्भागवत महापुराणमें मोक्षपर्यन्त फलकी कामनासे रहित परम धर्मका निरूपण हुआ है। इसमें शुद्धान्तःकरण सत्पुरुषोंके जाननेयोग्य उस वास्तविक वस्तु परमात्माका निरूपण हुआ है, जो तीनों तापोंका जड़से नाश करनेवाली और परम कल्याण देनेवाली है। अब और किसी साधन या शास्त्रसे क्या प्रयोजन। जिस समय भी सुकृती पुरुष इसके श्रवणकी इच्छा करते हैं, ईश्वर उसी समय अविलम्ब उनके हृदयमें आकर बन्दी बन जाता है ॥२॥ रसके मर्मज्ञ भक्तजन! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका हुआ फल है। श्रीशुकदेवरूप तोतेके* मुखका सम्बन्ध हो जानेसे यह परमानन्दमयी सुधासे परिपूर्ण हो गया है। इस फलमें छिलका, गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नहीं है। यह मूर्तिमान् रस है। जबतक शरीरमें चेतना रहे, तबतक इस दिव्य भगवद्-रसका निरन्तर बार-बार पान करते रहो। यह पृथ्वीपर ही सुलभ है ॥ ३ ॥

कथाप्रारम्भ

एक बार भगवान् विष्णु एवं देवताओंके परम पुण्यमय क्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने भगवत्-प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूरे होनेवाले एक महान् यज्ञका अनुष्ठान किया ॥ ४ ॥ एक दिन उन लोगोंने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर सूतजीका पूजन किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर बड़े आदरसे यह प्रश्न किया ॥ ५ ॥

ऋषियोंने कहा—सूतजी! आप निष्पाप हैं। आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उनकी भलीभाँति व्याख्या भी की है ॥ ६ ॥ वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् बादरायणने एवं भगवान्‌के सगुण-निर्गुण रूपको जाननेवाले दूसरे मुनियोंने जो कुछ जाना है—उन्हें जिन विषयोंका ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूपमें जानते हैं। आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है, इसीसे आप उनकी कृपा और अनुग्रहके पात्र हुए हैं। गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त-से-गुप्त बात भी बता दिया करते हैं ॥ ७-८ ॥ आयुष्मन्! आप कृपा करके यह बतलाइये कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनोंके उपदेशोंमें कलियुगी जीवोंके परम कल्याणका सहज साधन आपने क्या निश्चय किया है ॥ ९ ॥ आप संत-समाजके भूषण

* यह प्रसिद्ध है कि तोतेका काटा हुआ फल अधिक मीठा होता है।

हैं। इस कलियुगमें प्राय: लोगोंकी आयु कम हो गयी है। साधन करनेमें लोगोंकी रुचि और प्रवृत्ति भी नहीं है। लोग आलसी हो गये हैं। उनका भाग्य तो मन्द है ही, समझ भी थोड़ी है; इसके साथ ही वे नाना प्रकारकी विघ्न-बाधाओंसे घिरे हुए भी रहते हैं॥१०॥ शास्त्र भी बहुत-से हैं। परन्तु उनमें एक निश्चित साधनका नहीं, अनेक प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। साथ ही वे इतने बड़े हैं कि उनका एक अंश सुनना भी कठिन है। आप परोपकारी हैं। अपनी बुद्धिसे उनका सार निकालकर प्राणियोंके परम कल्याणके लिये हम श्रद्धालुओंको सुनाइये, जिससे हमारे अन्तःकरणकी शुद्धि प्राप्त हो।११।

प्यारे सूतजी! आपका कल्याण हो। आप तो जानते ही हैं कि यदुवंशियोंके रक्षक भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भसे क्या करनेकी इच्छासे अवतीर्ण हुए थे ॥ १२ ॥ हम उसे सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हमारे लिये उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि भगवान्का अवतार जीवोंके परम कल्याण और उनकी भगवत्प्रेममयी समृद्धिके लिये ही होता है ॥ १३ ॥ यह जीव जन्म-मृत्युके घोर चक्रमें पड़ा हुआ है—इस स्थितिमें भी यदि वह कभी भगवान्के मङ्गलमय नामका उच्चारण कर ले तो उसी क्षण उससे मुक्त हो जाय; क्योंकि स्वयं भय भी भगवान्से डरता रहता है ॥१४॥ सूतजी! परम विरक्त और परम शान्त मुनिजन भगवान्के श्रीचरणोंकी शरणमें ही रहते हैं, अतएव उनके स्पर्शमात्रसे संसारके जीव तुरंत पवित्र हो जाते हैं। इधर गङ्गाजीके जलका बहुत दिनोंतक सेवन किया जाय, तब कहीं पवित्रता प्राप्त होती है ॥ १५ ॥ ऐसे पुण्यात्मा भक्त जिनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं, उन भगवान्का कलिमलहारी पवित्र यश भला, आत्मशुद्धिकी इच्छावाला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो श्रवण न करे ॥ १६ ॥ वे लीलासे ही अवतार धारण करते हैं। नारदादि महात्माओंने उनके उदार कर्मोंका गान किया है। हम श्रद्धालुओंके प्रति आप उनका वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

बुद्धिमान् सूतजी! सर्वसमर्थ प्रभु अपनी योगमायासे स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी मङ्गलमयी अवतार-कथाओंका अब वर्णन कीजिये ॥ १८ ॥ पुण्यकीर्ति भगवान्की लीला सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि रसज्ञ श्रोताओंको पद-पदपर भगवान्की लीलाओंमें नये-नये रसका अनुभव होता है ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको छिपाये हुए थे, लोगोंके सामने ऐसी चेष्टा करते थे मानो कोई मनुष्य हों। परन्तु उन्होंने बलरामजीके साथ ऐसी लीलाएँ भी की हैं, ऐसा पराक्रम भी प्रकट किया है, जो मनुष्य नहीं कर सकते ॥ २० ॥ कलियुगको आया जानकर इस वैष्णवक्षेत्रमें हम दीर्घकालीन सत्रका संकल्प करके बैठे हैं। श्रीहरिकी कथा सुननेके लिये हमें अवकाश प्राप्त है ॥ २१ ॥ यह कलियुग अन्तःकरणकी पवित्रता और शक्तिका नाश करनेवाला है। इससे पार पाना कठिन है। जैसे समुद्रसे पार जानेवालोंको कर्णधार मिल जाय, उसी प्रकार इससे पार पानेकी इच्छा रखनेवाले हमलोगोंसे ब्रह्माने आपको मिलाया है ॥ २२ ॥ धर्मरक्षक, ब्राह्मणभक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके अपने धाममें पधार जानेपर धर्मने अब किसकी शरण ली है—यह बताइये ॥ २३ ॥

दूसरा अध्याय

भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य

श्रीव्यासजी कहते हैं—शौनकादि ब्रह्मवादी ऋषियोंके ये प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऋषियोंके इस मङ्गलमय प्रश्नका अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके

पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा !' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २ ॥ यह श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय—रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥३॥ मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌के अवतार नर-नारायण ऋषियोंको, सरस्वती देवीको और श्रीव्यासदेवजीको नमस्कार करके तब संसार और अन्तःकरणके समस्त विकारोंपर विजय प्राप्त करानेवाले इस श्रीमद्भागवत महापुराणका पाठ करना चाहिये ॥ ४ ॥

ऋषियो ! आपने सम्पूर्ण विश्वके कल्याणके लिये यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है; क्योंकि यह प्रश्न श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है और इससे भलीभाँति आत्मशुद्धि हो जाती है ॥ ५ ॥ मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो—भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे; ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है ॥६॥ भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होते ही, अनन्य प्रेमसे उनमें चित्त जोड़ते ही निष्काम ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है ॥ ७ ॥ धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान्‌की लीला-कथाओंके प्रति अनुरागका उदय न हो तो वह निरा श्रम-ही-श्रम है ॥ ८ ॥ धर्मका फल है मोक्ष। उसकी सार्थकता अर्थ-प्राप्तिमें नहीं है। अर्थ केवल धर्मके लिये है। भोगविलास उसका फल नहीं माना गया है ॥ ९ ॥ भोगविलासका फल इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है, उसका प्रयोजन है केवल जीवन-निर्वाह। जीवनका फल भी तत्त्व-जिज्ञासा है। बहुत कर्म करके स्वर्गादि प्राप्त करना उसका फल नहीं है ॥ १० ॥ तत्त्ववेत्तालोग ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्दस्वरूप ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान्‌के नामसे पुकारते हैं ॥ ११ ॥ श्रद्धालु मुनिजन भागवत-श्रवणसे प्राप्त ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तिसे अपने हृदयमें उस परमतत्त्वरूप परमात्माका अनुभव करते हैं ॥ १२ ॥ शौनकादि ऋषियो ! यही कारण है कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार मनुष्य जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें है कि भगवान् प्रसन्न हों ॥ १३ ॥ इसलिये एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान्‌का ही नित्य-निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये ॥ १४ ॥ कर्मोंकी गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान् पुरुष भगवान्‌के चिन्तनकी तलवारसे उस गाँठको काट डालते हैं। तब भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान्‌की लीलाकथामें प्रेम न करे ॥ १५ ॥

शौनकादि ऋषियो ! पवित्र तीर्थोंका सेवन करनेसे महत्सेवा, तदनन्तर श्रवणकी इच्छा, फिर श्रद्धा, तत्पश्चात् भगवत्-कथामें रुचि होती है ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके यशका श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करनेवाले हैं। वे अपनी कथा सुननेवालोंके हृदयमें आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओंको नष्ट कर देते हैं; क्योंकि वे संतोंके नित्यसुहृद् हैं ॥ १७ ॥ जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तोंके सेवनसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति स्थायी प्रेमकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥ तब रजोगुण और तमोगुणके भाव—काम और लोभादि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुणमें स्थित एवं निर्मल हो जाता है ॥ १९ ॥ इस प्रकार भगवान्‌की प्रेममयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवान्‌के तत्त्वका अनुभव अपने-आप हो जाता है ॥ २० ॥ हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्‌का साक्षात्कार होते ही हृदयकी ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है ॥२१॥ इसीसे बुद्धिमान् लोग नित्य-निरन्तर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम-भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसादकी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। इनको स्वीकार करके इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिये एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं। फिर भी मनुष्योंका परम कल्याण तो सत्त्वगुण स्वीकार करनेवाले श्रीहरिसे ही होता है ॥ २३ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार लकड़ीकी अपेक्षा धूआँ श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है अग्नि—क्योंकि वेदोक्त यज्ञ-यागादिके द्वारा अग्नि सद्गति देनेवाला है—वैसे ही तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे भी सत्त्वगुण श्रेष्ठ है; क्योंकि वह भगवान्‌का दर्शन करानेवाला है ॥ २४ ॥ प्राचीन युगमें महात्मालोग अपने कल्याणके लिये विशुद्ध सत्त्वमय भगवान् विष्णुकी ही आराधना किया करते थे। अब भी जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, वे उन्हींके समान कल्याणभाजन होते हैं ॥२५॥ जो लोग इस संसारसागरसे पार जाना चाहते हैं, वे यद्यपि किसीकी निन्दा तो नहीं करते, न किसीमें दोष ही देखते हैं, फिर भी घोररूपवाले—तमोगुणी-रजोगुणी भैरवादि भूतपतियोंकी उपासना न करके विष्णुभगवान् और उनके अंश—कलास्वरूपोंका ही भजन करते हैं ॥ २६ ॥ परन्तु जिनका स्वभाव रजोगुणी अथवा तमोगुणी है, वे धन, ऐश्वर्य और संतानकी कामनासे भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते हैं; क्योंकि इन लोगोंका स्वभाव उन (भूतादि) से मिलता-जुलता होता है ॥२७॥ वेदोंका तात्पर्य श्रीकृष्णमें ही है। यज्ञोंके उद्देश्य श्रीकृष्ण ही हैं। योग श्रीकृष्णके लिये ही किये जाते हैं और समस्त कर्मोंकी परिसमाप्ति भी श्रीकृष्णमें ही है ॥ २८ ॥ ज्ञानसे ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णकी ही प्राप्ति होती है। तपस्या श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये ही की जाती है। श्रीकृष्णके लिये ही धर्मोंका अनुष्ठान होता है और सब गतियाँ श्रीकृष्णमें ही समा जाती हैं ॥ २९ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत हैं, फिर भी अपनी गुणमयी मायासे, जो प्रपञ्चकी दृष्टिसे है और तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं है—उन्होंने ही सर्गके आदिमें इस संसारकी रचना की थी ॥ ३० ॥ ये सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण उसी मायाके विलास हैं; इनके भीतर रहकर भगवान् इनसे युक्त-सरीखे माळूम पड़ते हैं। वास्तवमें तो वे परिपूर्ण विज्ञानानन्दघन हैं ॥ ३१ ॥ अग्नि तो वस्तुतः एक ही है; परन्तु जब वह अनेक प्रकारकी लकड़ियोंमें प्रकट होती है तब अनेक-सी माळूम पड़ती है। वैसे ही सबके आत्मरूप भगवान् तो एक ही हैं परन्तु प्राणियोंकी अनेकतासे अनेक-जैसे जान पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ भगवान् ही भूत—तन्मात्रा, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण आदि गुणोंके विकारभूत भावोंके द्वारा नाना प्रकारकी योनियोंका निर्माण करते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न जीवोंके रूपमें प्रवेश करके उन-उन योनियोंके अनुरूप विषयोंका उपभोग करते-कराते हैं ॥ ३३ ॥ वे ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमें लीलावतार ग्रहण करके सत्त्वगुणके द्वारा जीवोंका पालन-पोषण करते हैं ॥ ३४ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन

श्रीसूतजी कहते हैं—सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने लोकोंके निर्माणकी इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदिसे निष्पन्न पुरुषरूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाएँ थीं ॥ १ ॥ उन्होंने कारण-जलमें शयन करते हुए जब योगनिद्राका विस्तार किया, तब उनके नाभि-सरोवरमेंसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे प्रजापतियोंके अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ भगवान्‌के उस विराट् रूपके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें ही समस्त लोकोंकी कल्पना की गयी है, वह भगवान्‌का विशुद्ध सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप है ॥ ३ ॥ योगीलोग दिव्यदृष्टिसे भगवान्‌के उस रूपका दर्शन करते हैं। भगवान्‌का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखोंके कारण अत्यन्त विलक्षण है; उसमें सहस्रों सिर, हजारों कान,

हजारों आँखें और हजारों नासिकाएँ हैं। हजारों मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणोंसे वह उल्लसित रहता है ॥४॥ भगवान‍्का यही पुरुषरूप, जिसे नारायण कहते हैं, अनेक अवतारोंका अक्षय कोष है—इसीसे सारे अवतार प्रकट होते हैं। इस रूपके छोटे-से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी सृष्टि होती है ॥ ५ ॥

उन्हीं प्रभुने पहले कौमारसर्गमें सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार ब्राह्मणोंके रूपमें अवतार ग्रहण करके अत्यन्त कठिन अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया ॥६॥ दूसरी बार इस संसारके कल्याणके लिये समस्त यज्ञोंके स्वामी उन भगवान‍्ने ही रसातलमें गयी हुई पृथ्वीको निकाल लानेके विचारसे सूकररूप ग्रहण किया ॥ ७ ॥ ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत तन्त्रका (जिसे 'नारद-पाञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है ॥ ८ ॥ धर्मपत्नी मूर्तिके गर्भसे उन्होंने नर-नारायणके रूपमें चौथा अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने ऋषि बनकर मन और इन्द्रियोंका सर्वथा संयम करके बड़ी कठिन तपस्या की ॥ ९ ॥ पाँचवें अवतारमें वे सिद्धोंके स्वामी कपिलके रूपमें प्रकट हुए और तत्त्वोंका निर्णय करनेवाले सांख्य-शास्त्रका, जो समयके फेरसे लुप्त हो गया था, आसुरि नामक ब्राह्मणको उपदेश किया ॥ १० ॥ अनसूयाके वर माँगनेपर छठे अवतारमें वे अत्रिकी संतान—दत्तात्रेय हुए। इस अवतारमें उन्होंने अलर्क एवं प्रह्लाद आदिको ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया ॥ ११ ॥ सातवीं बार रुचि प्रजापतिकी आकूति नामक पत्नीसे यज्ञके रूपमें उन्होंने अवतार ग्रहण किया और अपने पुत्र याम आदि देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा की ॥ १२ ॥ राजा नाभिकी पत्नी मेरुदेवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें भगवान‍्ने आठवाँ अवतार ग्रहण किया। इस रूपमें उन्होंने परमहंसोंका वह मार्ग, जो सभी आश्रमियोंके लिये वन्दनीय है, दिखाया ॥ १३ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे नवीं बार वे राजा पृथुके रूपमें अवतीर्ण हुए। शौनकादि ऋषियो! इस अवतारमें उन्होंने पृथ्वीसे समस्त ओषधियोंका दोहन किया था, इससे यह अवतार सबके लिये बड़ा ही कल्याणकारी हुआ ॥ १४ ॥ चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें जब सारी त्रिलोकी समुद्रमें डूब रही थी, तब उन्होंने मत्स्यके रूपमें दसवाँ अवतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठाकर अगले मन्वन्तरके अधिपति वैवस्वत मनुकी रक्षा की ॥१५॥ जिस समय देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन कर रहे थे, उस समय ग्यारहवाँ अवतार धारण करके कच्छपरूपसे भगवान‍्ने मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया ॥ १६ ॥ बारहवीं बार धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लेकर समुद्रसे प्रकट हुए और तेरहवीं बार मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित करते हुए देवताओंको अमृत पिलाया ॥ १७ ॥ चौदहवें अवतारमें उन्होंने नरसिंहरूप धारण किया और अत्यन्त बलवान् दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी छाती अपने नखोंसे अनायास इस प्रकार फाड़ डाली, जैसे चटाई बनानेवाला सींकको चीर डालता है ॥ १८ ॥ पंद्रहवीं बार वामनका रूप धारण करके भगवान् दैत्यराज बलिके यज्ञमें गये। वे चाहते तो थे त्रिलोकीका राज्य, परन्तु माँगी उन्होंने केवल तीन पग पृथ्वी ॥ १९ ॥ सोलहवें परशुराम अवतारमें जब उन्होंने देखा कि राजालोग ब्राह्मणोंके द्रोही हो गये हैं, तब क्रोधित होकर उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया ॥ २० ॥ इसके बाद सत्रहवें अवतारमें सत्यवतीके गर्भसे पराशरजीके द्वारा वे व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए। उस समय लोगोंकी समझ और धारणाशक्ति कम देखकर आपने वेदरूप वृक्षकी कई शाखाएँ बना दीं ॥ २१ ॥ अठारहवीं बार देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने राजाके रूपमें रामावतार ग्रहण किया और सेतु-बन्धन, रावण-वध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलाएँ कीं ॥ २२ ॥ उन्नीसवें और बीसवें अवतारोंमें उन्होंने यदुवंशमें बलराम और श्रीकृष्णके नामसे प्रकट होकर पृथ्वीका भार उतारा ॥ २३ ॥ उसके बाद कलियुग आ जानेपर मगधदेश (बिहार) में देवताओंके द्वेषी दैत्योंको मोहित करनेके लिये अजनके पुत्ररूपमें आपका बुद्धावतार होगा ॥ २४ ॥ इसके भी बहुत पीछे जब कलियुगका

अन्त समीप होगा और राजालोग प्रायः लुटेरे हो जायँगे, तब जगत्के रक्षक भगवान् विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे* ॥ २५ ॥

शौनकादि ऋषियो ! जैसे अगाध सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान्के ही अंश हैं ॥२७॥ ये सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी)ही हैं। जब लोग दैत्योंके अत्याचारसे व्याकुल हो उठते हैं, तब युग-युगमें अनेक रूप धारण करके भगवान् उनकी रक्षा करते हैं ॥ २८ ॥ भगवान्के दिव्य जन्मोंकी यह कथा अत्यन्त गोपनीय—रहस्यमयी है; जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे नियमपूर्वक सायङ्काल और प्रातःकाल प्रेमसे इसका पाठ करता है, वह सब दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २९ ॥

प्राकृत रूपरहित चिन्मय भगवान्का जो यह स्थूल—जगदाकार रूप है, यह उनकी मायाके महत्तत्त्वादि गुणोंसे भगवान्में ही कल्पित है ॥ ३० ॥ जैसे बादल वायुके आश्रय रहते हैं और धूसरपना धूलमें होता है, परंतु अल्पबुद्धि मनुष्य बादलोंका आकाशमें और धूसरपनेका वायुमें आरोप करते हैं—वैसे ही अविवेकी पुरुष सबके साक्षी आत्मामें स्थूल दृश्यरूप जगत्का आरोप करते हैं ॥ ३१ ॥ इस स्थूल रूपसे परे भगवान्का एक सूक्ष्म अव्यक्त रूप है—जो न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाला है और न देखने, सुननेमें ही आ सकता है; वही सूक्ष्मशरीर है । आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही जीव कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है॥ ३२ ॥ उपर्युक्त सूक्ष्म और स्थूल शरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित हैं । जिस अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाता है, उसी समय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है ॥ ३३ ॥ तत्त्वज्ञानी लोग जानते हैं कि जिस समय यह बुद्धिरूपा परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय जीव परमानन्दमय हो जाता है और अपनी स्वरूप-महिमामें प्रतिष्ठित होता है ॥ ३४ ॥ वास्तवमें जिनके जन्म नहीं हैं और कर्म भी नहीं हैं, उन हृदयेश्वर भगवान्के अप्राकृत जन्म और कर्मोंका तत्त्वज्ञानी लोग इसी प्रकार वर्णन करते हैं; क्योंकि उनके जन्म और कर्म वेदोंके अत्यन्त गोपनीय रहस्य हैं ॥ ३५ ॥

भगवान्की लीला अमोघ है । वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते । प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं । वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते ॥ ३६ ॥ जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके सङ्कल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने सङ्कल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता ॥३७॥ चक्रपाणि भगवान्की शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं—उनकी कोई थाह नहीं पा सकता । वे सारे जगत्के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं । उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपट भावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवा-भावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है ॥ ३८ ॥ शौनकादि ऋषियो ! आपलोग बड़े ही सौभाग्यशाली तथा धन्य

* यहाँ बाईस अवतारोंकी गणना की गयी है, परन्तु भगवान्के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। कुछ विद्वान् चौबीसकी संख्या यों पूर्ण करते हैं—राम-कृष्णके अतिरिक्त बीस अवतार तो उपर्युक्त हैं ही, शेष, चार अवतार श्रीकृष्णके ही अंश हैं। स्वयं श्रीकृष्ण तो पूर्ण परमेश्वर हैं; वे अवतार नहीं, अवतारी हैं। अतः श्रीकृष्णको अवतारोंकी गणनामें नहीं गिनते। उनके चार अंश ये हैं—एक तो केशका अवतार, दूसरा सुतपा तथा पृश्निपर कृपा करनेवाला अवतार, तीसरा संकर्षण-बलराम और चौथा परब्रह्म । इस प्रकार इन चार अवतारोंसे विशिष्ट पाँचवें साक्षात् भगवान् वासुदेव हैं । दूसरे विद्वान् ऐसा मानते हैं कि बाईस अवतार तो उपर्युक्त हैं ही; इनके अतिरिक्त दो और हैं—हंस और हयग्रीव ।

हैं जो इस जीवनमें और विघ्न-बाधाओंसे भरे इस संसारमें समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे वह सर्वात्मक आत्मभाव, वह अनिर्वचनीय अनन्य प्रेम करते हैं, जिससे फिर इस जन्म-मरणरूप संसारके भयंकर चक्रमें नहीं पड़ना होता ॥ ३९ ॥

भगवान् वेदव्यासने यह वेदोंके समान भगवच्चरित्रसे परिपूर्ण भागवत नामका पुराण बनाया है ॥ ४० ॥ उन्होंने इस श्लाघनीय, कल्याणकारी और महान् पुराणको लोगोंके परम कल्याणके लिये अपने आत्मज्ञानि-शिरोमणि पुत्रको ग्रहण कराया ॥ ४१ ॥ इसमें सारे वेद और इतिहासोंका सार-सार संग्रह किया गया है। शुकदेवजीने राजा परीक्षित्को यह सुनाया ॥४२॥ उस समय वे परमर्षियोंसे घिरे हुए आमरण अनशनका व्रत लेकर गङ्गातटपर बैठे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्ण जब धर्म, ज्ञान आदिके साथ अपने परमधामको पधार गये, तब इस कलियुगमें जो लोग अज्ञानरूपी अन्धकारसे अंधे हो रहे हैं, उनके लिये यह पुराणरूपी सूर्य इस समय प्रकट हुआ है। शौनकादि ऋषियो! जब महातेजस्वी श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ इस पुराणकी कथा कह रहे थे, तब मैं भी वहाँ बैठा था। वहीं मैंने उनकी कृपापूर्ण अनुमतिसे इसका अध्ययन किया। मेरा जैसा अध्ययन है और मेरी बुद्धिने जितना जिस प्रकार इसको ग्रहण किया है, उसीके अनुसार इसे मैं आपलोगोंको सुनाऊँगा ॥ ४३—४५ ॥

चौथा अध्याय

महर्षि व्यासका असन्तोष

व्यासजी कहते हैं—उस दीर्घकालीन सत्रमें सम्मिलित हुए मुनियोंमें विद्या-वयोवृद्ध कुलपति ऋग्वेदी शौनकजीने सूतजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर उनकी प्रशंसा की और कहा ॥ १ ॥

शौनकजी बोले—सूतजी! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं तथा बड़े भाग्यशाली हैं। जो कथा भगवान् श्रीशुकदेवजीने कही थी, वही भगवान्की पुण्यमयी कथा कृपा करके आप हमें सुनाइये ॥ २ ॥ वह कथा किस युगमें, किस स्थानपर और किस कारणसे हुई थी? मुनिवर श्रीकृष्णद्वैपायनने किसकी प्रेरणासे इस परमहंसोंकी संहिताका निर्माण किया था? ॥ ३ ॥ उनके पुत्र शुकदेवजी बड़े योगी, समदर्शी, भेद-भाव-रहित, संसार-निद्रासे जगे एवं निरन्तर एकमात्र परमात्मामें ही स्थित रहते हैं। वे छिपे रहनेके कारण मूढ़-से प्रतीत होते हैं ॥४॥ व्यासजी जब संन्यासके लिये वनकी ओर जाते हुए अपने पुत्रका पीछा कर रहे थे, उस समय जलमें स्नान करनेवाली स्त्रियोंने नंगे शुकदेवको देखकर तो वस्त्र धारण नहीं किया, परंतु वस्त्र पहने हुए व्यासजीको देखकर लज्जासे कपड़े पहन लिये थे। इस आश्चर्यको देखकर जब व्यासजीने उन स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'आपकी दृष्टिमें तो अभी स्त्री-पुरुषका भेद बना हुआ है, परंतु आपके पुत्रकी शुद्ध दृष्टिमें यह भेद नहीं है' ॥ ५ ॥ कुरुजाङ्गल देशमें पहुँचकर हस्तिनापुरमें वे पागल, गूँगे तथा जडके समान विचरते होंगे। नगरवासियोंने उन्हें कैसे पहचाना? ॥६॥ पाण्डवनन्दन राजर्षि परीक्षित्का इन मौनी शुकदेवजीके साथ संवाद कैसे हुआ, जिसमें यह भागवतसंहिता कही गयी? ॥७॥ महाभाग श्रीशुकदेवजी तो गृहस्थोंके घरोंको तीर्थस्वरूप बना देनेके लिये उतनी ही देर उनके दरवाजेपर रहते हैं, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है ॥८॥ सूतजी! हमने सुना है कि अभिमन्युनन्दन परीक्षित् भगवान्के बड़े प्रेमी भक्त थे। उनके अत्यन्त आश्चर्यमय जन्म और कर्मोंका भी वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ वे तो पाण्डव-वंशके गौरव बढ़ानेवाले सम्राट् थे। वे भला, किस कारणसे साम्राज्यलक्ष्मीका परित्याग करके गङ्गा-तटपर मृत्युपर्यन्त अनशनका व्रत लेकर बैठे थे? ॥१०॥ शत्रुगण अपने भलेके लिये बहुत-सा धन लाकर उनके चरण रखनेकी चौकीको नमस्कार करते थे। वे एक वीर युवक थे। उन्होंने उस दुस्त्यज लक्ष्मीको, अपने प्राणोंके साथ भला, क्यों त्याग देनेकी इच्छा की ॥११॥

जिन लोगोंका जीवन भगवान्‌के आश्रित है, वे तो संसारके परम कल्याण, अभ्युदय और समृद्धिके लिये ही जीवन धारण करते हैं। उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उनका शरीर तो दूसरोंके हितके लिये था, उन्होंने विरक्त होकर उसका परित्याग क्यों किया ॥१२॥ वेदवाणीको छोड़कर अन्य समस्त शास्त्रोंके आप पारदर्शी विद्वान् हैं। सूतजी! इसलिये इस समय जो कुछ हमने आपसे पूछा है, वह सब कृपा करके हमें कहिये ॥ १३ ॥

सूतजीने कहा—इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा वसु-कन्या सत्यवतीके गर्भसे भगवान्‌के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म हुआ ॥ १४ ॥ एक दिन वे सूर्योदयके समय सरस्वतीके पवित्र जलमें स्नानादि करके एकान्त पवित्र स्थानपर बैठे हुए थे ॥१५॥ महर्षि भूत और भविष्यको जानते थे। उनकी दृष्टि अचूक थी। उन्होंने देखा कि जिसको लोग जान नहीं पाते, ऐसे समयके फेरसे प्रत्येक युगमें धर्मसङ्करता और उसके प्रभावसे भौतिक वस्तुओंकी भी शक्तिका ह्रास होता रहता है। संसारके लोग श्रद्धाहीन और शक्तिरहित हो जाते हैं। उनकी बुद्धि कर्तव्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाती और आयु भी कम हो जाती है। लोगोंकी इस भाग्यहीनताको देखकर उन मुनीश्वरने अपनी दिव्यदृष्टिसे समस्त वर्णों और आश्रमोंका हित कैसे हो, इसपर विचार किया ॥ १६—१८ ॥ उन्होंने सोचा कि वेदोक्त चातुर्होत्र* कर्म लोगोंका हृदय शुद्ध करनेवाला है। इस दृष्टिसे यज्ञोंका विस्तार करनेके लिये उन्होंने एक ही वेदके चार विभाग कर दिये ॥ १९ ॥ व्यासजीके द्वारा ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—इन चार वेदोंका उद्धार (पृथक्करण) हुआ। इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा जाता है ॥२०॥ उनमेंसे ऋग्वेदके पैल, सामगानके विद्वान् जैमिनि एवं यजुर्वेदके एकमात्र स्नातक वैशम्पायन हुए ॥ २१ ॥ अथर्ववेदमें प्रवीण हुए दरुणनन्दन सुमन्तु मुनि। इतिहास और पुराणोंके स्नातक मेरे पिता रोमहर्षण थे ॥ २२ ॥ इन पूर्वोक्त ऋषियोंने अपनी-अपनी शाखाओंको और भी अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार शिष्य, प्रशिष्य और उनके शिष्योंद्वारा वेदोंकी बहुत-सी शाखाएँ बन गयीं ॥ २३ ॥ कम समझवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान् वेदव्यासने इसलिये ऐसा विभाग कर दिया कि जिन लोगोंको स्मरणशक्ति नहीं है या कम है, वे भी वेदोंको धारण कर सकें ॥ २४ ॥

स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति—तीनों ही वेद-श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। इसलिये वे कल्याणकारी शास्त्रोक्त कर्मोंके आचरणमें भूल कर बैठते हैं। अब इसके द्वारा उनका भी कल्याण हो जाय, यह सोचकर महामुनि व्यासजीने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहासकी रचना की ॥२५॥ शौनकादि ऋषियो! यद्यपि व्यासजी इस प्रकार अपनी पूरी शक्तिसे सदा-सर्वदा प्राणियोंके कल्याणमें ही लगे रहे, तथापि उनके हृदयको संतोष नहीं हुआ ॥ २६ ॥ उनका मन कुछ खिन्न-सा हो गया। सरस्वती नदीके पवित्र तटपर एकान्तमें बैठकर धर्मवेत्ता व्यासजी मन-ही-मन विचार करते हुए इस प्रकार कहने लगे—॥ २७ ॥ 'मैंने निष्कपट भावसे ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करते हुए वेद, गुरुजन और अग्नियोंका सम्मान किया है और उनकी आज्ञाका पालन किया है ॥२८॥ महाभारतकी रचनाके बहाने मैंने वेदके अर्थको खोल दिया है—जिससे स्त्री, शूद्र आदि भी अपने-अपने धर्म-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं ॥२९॥ यद्यपि मैं ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं समर्थ हूँ, तथापि मेरा हृदय कुछ अपूर्णकाम-सा जान पड़ता है ॥ ३० ॥ अवश्य ही अबतक मैंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया है। वे ही धर्म परमहंसोंको प्रिय हैं और वे ही भगवान्‌को भी प्रिय हैं (हो-न-हो मेरी अपूर्णताका यही कारण है)' ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यास इस प्रकार अपनेको अपूर्ण-सा मानकर जब खिन्न हो रहे थे, उसी समय पूर्वोक्त आश्रमपर देवर्षि नारदजी आ पहुँचे ॥ ३२ ॥ उन्हें आया देख व्यासजी तुरंत खड़े हो गये। उन्होंने देवताओंके द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदकी विधिपूर्वक पूजा की ॥३३॥

* होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—ये चार होता हैं। इनके द्वारा सम्पादित होनेवाले अग्निष्टोमादि यज्ञको चातुर्होत्र कहते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

भगवान्‌के यश-कीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर सुखपूर्वक बैठे हुए वीणापाणि परम यशस्वी देवर्षि नारदने मुसकराकर अपने पास ही बैठे ब्रह्मर्षि व्यासजीसे कहा ॥१॥

नारदजीने प्रश्न किया—महाभाग व्यासजी! आपके शरीर एवं मन—दोनों ही अपने कर्म एवं चिन्तनसे सन्तुष्ट हैं न? ॥ २ ॥ अवश्य ही आपकी जिज्ञासा तो भलीभाँति पूर्ण हो गयी है; क्योंकि आपने जो यह महाभारतकी रचना की है, वह बड़ी ही अद्भुत है। वह धर्म आदि सभी पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण है ॥ ३ ॥ सनातन ब्रह्मतत्त्वको भी आपने खूब विचारा है और जान भी लिया है। फिर भी प्रभु! आप अकृतार्थ पुरुषके समान अपने विषयमें शोक क्यों कर रहे हैं? ॥ ४ ॥

व्यासजीने कहा—आपने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब ठीक ही है। वैसा होनेपर भी मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं है। पता नहीं, इसका क्या कारण है। आपका ज्ञान अगाध है। आप साक्षात् ब्रह्माजीके मानस-पुत्र हैं। इसलिये मैं आपसे ही इसका कारण पूछता हूँ ॥ ५ ॥ नारदजी! आप समस्त गोपनीय रहस्योंको जानते हैं; क्योंकि आपने उन पुराणपुरुषकी उपासना की है, जो प्रकृति-पुरुष दोनोंके स्वामी हैं और असङ्ग रहते हुए ही अपने सङ्कल्पमात्रसे गुणोंके द्वारा संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं ॥ ६ ॥ आप सूर्यकी भाँति तीनों लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं और योगबल-से प्राणवायुके समान सबके भीतर रहकर अन्तःकरणोंके साक्षी भी हैं। योगानुष्ठान और नियमोंके द्वारा परब्रह्म और शब्दब्रह्म दोनोंकी पूर्ण प्राप्ति कर लेनेपर भी मुझमें जो बड़ी कमी है, उसे आप कृपा करके बतलाइये ॥ ७ ॥

नारदजीने कहा—व्यासजी! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् संतुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है ॥८॥ आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वैसा निरूपण नहीं किया ॥ ९ ॥ जिस वाणीसे—चाहे वह रस-भाव-अलङ्कारादिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र मानी जाती है। मानसरोवरके कमनीय कमलवनमें विहरनेवाले हंसोंकी भाँति ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते ॥ १० ॥ इसके विपरीत, जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परंतु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान्‌के सुयशसूचक नामोंसे युक्त है, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है; क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गान और कीर्तन किया करते हैं ॥ ११ ॥ वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्‌की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो साधन और सिद्धि दोनों ही दशाओंमें सदा ही अमङ्गलरूप है, वह काम्य कर्म, और जो भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा अहैतुक (निष्काम) कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है ॥ १२ ॥ महाभाग व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है। आपकी कीर्ति पवित्र है। आप सत्यपरायण एवं दृढव्रत हैं। इसलिये अब आप सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये समाधि-के द्वारा अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण कीजिये ॥ १३ ॥ जो मनुष्य भगवान्‌की लीलाके अति-रिक्त और कुछ कहनेकी इच्छा करता है, वह उस इच्छा-से ही निर्मित अनेक नाम और रूपोंके चक्करमें पड़ जाता है। उसकी बुद्धि भेदभावसे भर जाती है। जैसे हवाके झकोरोंसे डगमगाती हुई डोंगीको कहीं भी ठहरने-का ठौर नहीं मिलता, वैसे ही उसकी चञ्चल बुद्धि कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती ॥ १४ ॥ संसारी लोग स्वभाव-से ही विषयोंमें फँसे हुए हैं। धर्मके नामपर आपने उन्हें निन्दित (पशुहिंसायुक्त) सकाम कर्म करनेकी भी आज्ञा दे दी है। यह बहुत ही उल्टी बात हुई; क्योंकि मूर्खलोग आपके वचनोंसे पूर्वोक्त निन्दित कर्मको

धर्म मानकर—'यही मुख्य धर्म है' ऐसा निश्चय करके उसका निषेध करनेवाले वचनोंको ठीक नहीं मानते ॥१५॥ भगवान् अनन्त हैं । कोई विचारवान् ज्ञानी पुरुष ही संसारकी ओरसे निवृत्त होकर उनके स्वरूपभूत परमानन्दका अनुभव कर सकता है । अतः जो लोग पारमार्थिक बुद्धिसे रहित हैं और गुणोंके द्वारा नचाये जा रहे हैं, उनके कल्याणके लिये ही आप भगवान्की लीलाओंका सर्वसाधारणके हितकी दृष्टिसे वर्णन कीजिये ॥१६॥ जो मनुष्य अपने धर्मका परित्याग करके भगवान्के चरण-कमलोंका भजन-सेवन करता है—भजन परिपक्व हो जानेपर तो बात ही क्या है—यदि इससे पूर्व ही उसका भजन छूट जाय तो क्या कहीं भी उसका कोई अमङ्गल हो सकता है ? परंतु जो भगवान्का भजन नहीं करते और केवल स्वधर्मका पालन करते हैं, उन्हें कौन-सा लाभ मिलता है ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करे, जो तिनकेसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त समस्त ऊँची-नीची योनियोंमें कर्मोंके फल-स्वरूप आने-जानेपर भी स्वयं प्राप्त नहीं होती। संसारके विषय-सुख तो, जैसे बिना चेष्टाके दुःख मिलते हैं वैसे ही, कर्मके फलरूपमें अचिन्त्यगति समयके फेरसे सबको सर्वत्र स्वभावसे ही मिल जाते हैं ॥ १८ ॥ व्यासजी ! जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दका सेवक है, वह भजन न करनेवाले कर्मी मनुष्योंके समान दैवात् कभी बुरा भाव हो जानेपर भी जन्म-मृत्युमय संसारमें नहीं आता । वह भगवान्के चरणकमलोंके आलिङ्गनका स्मरण करके फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता; उसे रसका चसका जो लग चुका है ॥ १९ ॥ जिनसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं, वे भगवान् ही इस विश्वके रूपमें भी हैं । ऐसा होनेपर भी वे इससे विलक्षण हैं । इस बातको आप स्वयं जानते हैं, तथापि मैंने आपको संकेतमात्र कर दिया है ॥ २० ॥ व्यासजी ! आपकी दृष्टि अमोघ है; आप इस बातको जानिये कि आप पुरुषोत्तम भगवान्के कलावतार हैं । आपने अजन्मा होकर भी जगत्के कल्याणके लिये जन्म ग्रहण किया है । इसलिये आप विशेषरूपसे भगवान्की लीलाओंका कीर्तन कीजिये ॥ २१ ॥ विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्य-कीर्ति श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय ॥ २२ ॥

मुने ! पिछले कल्पमें अपने पूर्वजीवनमें मैं वेदवादी ब्राह्मणोंकी एक दासीका लड़का था । वे योगी वर्षा-ऋतुमें एक स्थानपर चातुर्मास्य कर रहे थे । बचपनमें ही मैं उनकी सेवामें नियुक्त कर दिया गया था ॥ २३ ॥ मैं यद्यपि बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चञ्चलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल-कूदसे दूर रहता था और आज्ञा-नुसार उनकी सेवा करता था । मैं बोलता भी बहुत कम था । मेरे इस शील-स्वभावको देखकर समदर्शी मुनियोंने मुझ सेवकपर अत्यन्त अनुग्रह किया ॥ २४ ॥ उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ जूँठन मैं एक बार खा लिया करता था । इससे मेरे सारे पाप धुल गये । इस प्रकार उनकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन-पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी ॥ २५ ॥ प्यारे व्यासजी ! उस सत्सङ्गमें उन लीलागानपरायण महात्माओंके अनुग्रहसे मैं प्रतिदिन श्रीकृष्णकी मनोहर कथाएँ सुना करता । श्रद्धापूर्वक एक-एक पद श्रवण करते-करते प्रियकीर्ति भगवान्में मेरी रुचि हो गयी ॥२६॥ महामुने ! जब भगवान्में मेरी रुचि हो गयी, तब उन मनोहरकीर्ति प्रभुमें मेरी बुद्धि भी निश्चल हो गयी । उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्-रूप जगत्को अपने परब्रह्मस्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार शरद् और वर्षा—इन दो ऋतुओंमें तीनों समय उन महात्मा मुनियोंने श्रीहरिके निर्मल यशका सङ्कीर्तन किया और मैं प्रेमसे प्रत्येक बात सुनता रहा । अब चित्तके रजोगुण और तमोगुणको नाश करनेवाली भक्तिका मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हो गया ॥ २८ ॥ मैं उनका बड़ा ही अनुरागी था, विनयी था; उन लोगोंकी सेवासे मेरे पाप नष्ट हो चुके थे। मेरे हृदयमें श्रद्धा थी, इन्द्रियोंमें संयम था एवं शरीर, वाणी और मनसे मैं उनका आज्ञाकारी था ॥ २९ ॥ उन दीनवत्सल महात्माओंने जाते समय कृपा करके मुझे उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश किया, जिसका उपदेश स्वयं भगवान्ने अपने श्रीमुखसे किया है ॥ ३० ॥

उस उपदेशसे ही जगत्के निर्माता भगवान् श्रीकृष्णकी मायाके प्रभावको मैं जान सका, जिसके जान लेनेपर उनके परमपदकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३१ ॥

सत्यसंकल्प व्यासजी ! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना ही संसारके तीनों तापोंकी एकमात्र ओषधि है, यह बात मैंने आपको बतला दी ॥ ३२ ॥ प्राणियोंको जिस पदार्थके सेवनसे जो रोग हो जाता है, वही पदार्थ चिकित्साविधिके अनुसार प्रयोग करनेपर क्या उस रोगको दूर नहीं करता ? ॥ ३३ ॥ इसी प्रकार यद्यपि सभी कर्म मनुष्योंको जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाले हैं, तथापि जब वे भगवान्‌को समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उनका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस लोकमें जो शास्त्रविहित कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं, उन्हींसे पराभक्तियुक्त ज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ ३५ ॥ उस भगवदर्थ कर्मके मार्गमें भगवान्‌के आज्ञानुसार आचरण करते हुए लोग बार-बार भगवान् श्रीकृष्णके गुण और नामोंका कीर्तन तथा स्मरण करते हैं ॥ ३६ ॥ 'प्रभो ! आप भगवान् श्रीवासुदेवको नमस्कार है । हम आपका ध्यान करते हैं । प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणको भी नमस्कार है' ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जो पुरुष चतुर्व्यूहरूपी भगवन्मूर्तियोंके नामद्वारा प्राकृत-मूर्तिरहित अप्राकृत मन्त्रमूर्ति भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है ॥ ३८ ॥ ब्रह्मन् ! जब मैंने भगवान्‌की आज्ञाका इस प्रकार पालन किया, तब इस बातको जानकर भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आत्मज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी भावरूपा प्रेमाभक्तिका दान किया ॥ ३९ ॥ व्यासजी ! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये । उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है । जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है, और कोई उपाय नहीं है ॥ ४० ॥

छठा अध्याय

नारदजीके पूर्वचरित्रका शेष भाग

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी ! देवर्षि नारदके जन्म और साधनाकी बात सुनकर सत्यवतीनन्दन भगवान् श्रीव्यासजीने उनसे फिर यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

श्रीव्यासजीने पूछा—नारदजी ! जब आपको ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण चले गये, तब आपने क्या किया ? उस समय तो आपकी अवस्था बहुत छोटी थी ॥ २ ॥ स्वायम्भुव ! आपकी शेष आयु किस प्रकार व्यतीत हुई और मृत्युके समय आपने किस विधिसे अपने शरीरका परित्याग किया ? ॥ ३ ॥ देवर्षे ! काल तो सभी वस्तुओंको नष्ट कर देता है, उसने आपकी इस पूर्वकल्पकी स्मृतिका कैसे नाश नहीं किया ? ॥ ४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—मुझे ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण जब चले गये, तब मैंने इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया—यद्यपि उस समय मेरी अवस्था बहुत छोटी थी ॥ ५ ॥ मैं अपनी माका इकलौता लड़का था । एक तो वह स्त्री थी, दूसरे मूढ़ और तीसरे दासी थी । मुझे भी उसके सिवा और कोई सहारा नहीं था । उसने अपनेको मेरे स्नेहपाशसे जकड़ रक्खा था ॥ ६ ॥ वह मेरे योगक्षेमकी चिन्ता तो बहुत करती थी, परंतु पराधीन होनेके कारण कुछ कर नहीं पाती थी । जैसे कठपुतली नचानेवालेकी इच्छाके अनुसार ही नाचती है, वैसे ही यह सारा संसार ईश्वरके अधीन है ॥ ७ ॥ मैं भी अपनी माके स्नेहबन्धनमें बँधकर उस ब्राह्मण-बस्तीमें ही रहा । मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी; मुझे दिशा, देश और कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं था ॥ ८ ॥ एक दिनकी बात है, मेरी मा गौ दुहनेके लिये रातके समय घरसे बाहर निकली । रास्तेमें उसके पैरसे साँप छू गया, उसने उस बेचारीको डस लिया । उस साँपका क्या दोष, कालकी ऐसी ही प्रेरणा थी ॥ ९ ॥ मैंने समझा, भक्तोंका मङ्गल चाहनेवाले भगवान्‌का यह भी एक अनुग्रह ही है । इसके बाद मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा ॥ १० ॥

उस ओर मार्गमें मुझे अनेकों धन-धान्यसे सम्पन्न देश, नगर, गाँव, अहीरोंकी चलती-फिरती बस्तियाँ, खानें, खेड़े, नदी और पर्वतोंके तटवर्ती पड़ाव, वाटिकाएँ, वन-उपवन और रंग-बिरंगी धातुओंसे युक्त विचित्र पर्वत दिखायी पड़े। कहीं-कहीं जंगली वृक्ष थे, जिनकी बड़ी-बड़ी शाखाएँ हाथियोंने तोड़ डाली थीं। शीतल जलसे भरे हुए जलाशय थे, जिनमें देवताओंके काममें आनेवाले कमल थे; उनपर पक्षी तरह-तरहकी बोली बोल रहे थे और भौंरे मँडरा रहे थे। यह सब देखता हुआ मैं आगे बढ़ा। मैं अकेला ही था। इतना लंबा मार्ग तै करनेपर मैंने एक घोर गहन जंगल देखा। उसमें नरकट, बाँस, सेंठा, कुश, कीचक आदि खड़े थे। उसकी लंबाई-चौड़ाई भी बहुत थी और वह साँप, उल्लू, स्यार आदि भयंकर जीवोंका घर हो रहा था। देखनेमें बड़ा भयावना लगता था ॥ ११–१४ ॥ चलते-चलते मेरा शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो था ही। वहाँ एक नदी मिली। उसके कुण्डमें मैंने स्नान, जलपान और आचमन किया। इससे मेरी थकावट मिट गयी ॥ १५ ॥ उस विजन वनमें एक पीपलके नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया। उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने लगा ॥ १६ ॥ भक्तिभावसे वशीकृत चित्तद्वारा भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करते ही भगवत्-प्राप्तिकी उत्कट लालसासे मेरे नेत्रोंमें आँसू छलछला आये और हृदयमें धीरे-धीरे भगवान् प्रकट हो गये ॥ १७ ॥ व्यासजी! उस समय प्रेमभावके अत्यन्त उद्रेकसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया। उस आनन्दकी बाढ़में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और ध्येय वस्तुका तनिक भी भान न रहा ॥ १८ ॥ भगवान्का वह अनिर्वचनीय रूप समस्त शोकोंका नाश करनेवाला और मनके लिये अत्यन्त लुभावना था। सहसा उसे न देख मैं बहुत ही विकल हो गया और अनमना-सा होकर आसनसे उठ खड़ा हुआ ॥ १९ ॥

मैंने उस स्वरूपका दर्शन फिर करना चाहा, किंतु मनको हृदयमें समाहित करके बार-बार दर्शनकी चेष्टा करनेपर भी मैं उसे नहीं देख सका। मैं अतृप्तके समान आतुर हो उठा ॥ २० ॥ इस प्रकार निर्जन वनमें मुझे प्रयत्न करते देख स्वयं भगवान्ने, जो वाणीके विषय नहीं हैं, बड़ी गम्भीर और मधुर वाणीसे मेरे शोकको शान्त करते हुए-से कहा ॥ २१ ॥ 'खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयी हैं, उन *अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है* ॥२२॥ निष्पाप बालक! तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जाग्रत् करनेके लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूपकी झलक दिखायी है। मुझे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे युक्त साधक धीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है ॥२३॥ अल्पकालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गयी है। अब तुम इस प्राकृत-मलिन शरीरको छोड़कर मेरे पार्षद हो जाओगे ॥२४॥ मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय कभी किसी प्रकार नहीं टूटेगा। समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी' ॥ २५ ॥ आकाशके समान अव्यक्त सर्वशक्तिमान् महान् परमात्मा इतना कहकर चुप हो रहे। उनकी इस कृपाका अनुभव करके मैंने उन श्रेष्ठोंसे भी श्रेष्ठतर भगवान्को सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ २६ ॥ तभीसे मैं लज्जा-संकोच छोड़कर भगवान्के अत्यन्त रहस्यमय और मङ्गलमय मधुर नामों और लीलाओंका कीर्तन और स्मरण करने लगा। स्पृहा और मद-मत्सर मेरे हृदयसे पहले ही निवृत्त हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २७ ॥

व्यासजी! इस प्रकार भगवान्की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया, आसक्ति मिट गयी और मैं श्रीकृष्णपरायण हो गया। कुछ समय बाद, जैसे एकाएक बिजली कौंध जाती है, वैसे ही अपने समयपर मेरी मृत्यु आ गयी ॥ २८ ॥ मुझे शुद्ध भगवत्पार्षद-शरीर प्राप्त होनेका अवसर आनेपर प्रारब्धकर्म समाप्त हो जानेके कारण पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया ॥ २९ ॥ कल्पके अन्तमें जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव (प्रलय-

कालीन समुद्र) के जलमें शयन करते हैं, उस समय उनके हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इस सारी सृष्टिको समेटकर ब्रह्माजी जब प्रवेश करने लगे, तब उनके श्वासके साथ मैं भी उनके हृदयमें प्रवेश कर गया ॥ ३० ॥ एक सहस्र चतुर्युगी बीत जानेपर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया ॥ ३१ ॥ तभीसे मैं भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर बिना रोक-टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका व्रत भगवद्भजन अखण्डरूपसे चलता रहता है ॥ ३२ ॥ भगवान्‌की दी हुई इस स्वरब्रह्मसे* विभूषित वीणापर तान छेड़कर मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ सारे संसारमें विचरता हूँ ॥ ३३ ॥ जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरंत मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं ॥ ३४ ॥ जिन लोगोंका चित्त निरन्तर विषय-भोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन संसार-सागरसे पार जानेका जहाज है, यह मेरा अपना अनुभव है ॥ ३५ ॥ काम और लोभकी चोटसे बार-बार घायल हुआ हृदय श्रीकृष्णसेवासे जैसी प्रत्यक्ष शान्तिका अनुभव करता है, यम-नियम आदि योगमार्गोंसे वैसी शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ३६ ॥ व्यासजी ! आप निष्पाप हैं। आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब अपने जन्म और साधनाका रहस्य तथा आपकी आत्मतुष्टिका उपाय मैंने बतला दिया ॥ ३७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! देवर्षि नारदने व्यासजीसे इस प्रकार कहकर जानेकी अनुमति ली और वीणा बजाते हुए स्वच्छन्द विचरण करनेके लिये वे चल पड़े ॥ ३८ ॥ अहा ! ये देवर्षि नारद धन्य हैं; क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रितापतप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं ॥ ३९ ॥

सातवाँ अध्याय

अश्वत्थामाद्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका मानमर्दन

श्रीशौनकजीने पूछा—सूतजी ! सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् व्यासभगवान्‌ने नारदजीका अभिप्राय सुन लिया। फिर उनके चले जानेपर उन्होंने क्या किया ? ॥ १ ॥

श्रीसूतजीने कहा—ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिम तटपर शम्याप्रास नामका एक आश्रम है। वहाँ ऋषियोंके यज्ञ चलते ही रहते हैं ॥ २ ॥ वहीं व्यासजीका अपना आश्रम है। उसके चारों ओर बेरका सुन्दर वन है। उस आश्रममें बैठकर उन्होंने आचमन किया और स्वयं अपने मनको समाहित किया ॥ ३ ॥ उन्होंने भक्तियोगके द्वारा अपने मनको पूर्णतया एकाग्र और निर्मल करके आदिपुरुष परमात्मा और उनके आश्रयसे रहनेवाली मायाको देखा ॥ ४ ॥ इसी मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है ॥ ५ ॥ इन अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है—केवल भगवान्‌का भक्तियोग। परंतु संसारके लोग इस बातको नहीं जानते। यही समझकर उन्होंने इस परमहंसोंकी संहिता श्रीमद्भागवतकी रचना की ॥ ६ ॥ इसके श्रवणमात्रसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है, जिससे जीवके शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥ उन्होंने इस भागवत-संहिताका निर्माण और पुनरावृत्ति

---

* षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद—ये सातों स्वर ब्रह्मव्यञ्जक होनेके नाते ही ब्रह्मरूप कहे गये हैं।

करके इसे अपने निवृत्तिपरायण पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया ? ॥ ८ ॥

श्रीशौनकजीने पूछा—श्रीशुकदेवजी तो अत्यन्त निवृत्तिपरायण हैं, उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। वे सदा आत्मामें ही रमण करते हैं। फिर उन्होंने किसलिये इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ? ॥ ९ ॥

श्रीसूतजीने कहा—जो लोग ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गयी है और जो सदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे भी भगवान्‌की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं ॥ १० ॥ फिर श्रीशुकदेवजी तो भगवान्‌के भक्तोंके अत्यन्त प्रिय और स्वयं भगवान् वेदव्यासके पुत्र हैं। भगवान्‌के गुणोंने उनके हृदयको अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने उससे विवश होकर ही इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ॥ ११ ॥

शौनकजी ! अब मैं राजर्षि परीक्षित्‌के जन्म, कर्म और मोक्षकी तथा पाण्डवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कहता हूँ; क्योंकि इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों कथाओंका उदय होता है ॥ १२ ॥ जिस समय महाभारत-युद्धमें कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंके बहुत-से वीर वीरगतिको प्राप्त हो चुके थे और भीमसेनकी गदाके प्रहारसे दुर्योधनकी जाँघ टूट चुकी थी, तब अश्वत्थामाने अपने स्वामी दुर्योधनका प्रिय कार्य समझकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंके सिर काटकर उसे भेंट किये, यह घटना दुर्योधनको भी अप्रिय ही लगी; क्योंकि ऐसे नीच कर्मकी सभी निन्दा करते हैं ॥ १३-१४ ॥ उन बालकोंकी माता द्रौपदी अपने पुत्रोंका निधन सुनकर अत्यन्त दुखी हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू छलछला आये—वह रोने लगी। अर्जुनने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—॥ १५ ॥ 'कल्याणी ! मैं तुम्हारे आँसू तब पोंछूँगा, जब उस आततायी* ब्राह्मणाधमका सिर गाण्डीव-धनुषके बाणोंसे काटकर तुम्हें भेंट करूँगा और पुत्रोंकी अन्त्येष्टि क्रियाके बाद तुम उसपर पैर रखकर स्नान करोगी' ॥ १६ ॥ अर्जुनने इन मीठी और विचित्र बातोंसे द्रौपदीको सान्त्वना दी और अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे उन्हें सारथि बनाकर, कवच धारणकर और अपने भयानक गाण्डीव धनुषको लेकर वे रथपर सवार हुए तथा गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे दौड़ पड़े ॥ १७ ॥ बच्चोंकी हत्यासे अश्वत्थामाका भी मन उद्विग्न हो गया था। जब उसने दूरसे ही देखा कि अर्जुन मेरी ओर झपटे हुए आ रहे हैं, तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर जहाँतक भाग सकता था, रुद्रसे भयभीत सूर्यकी† भाँति भागता रहा ॥ १८ ॥ जब उसने देखा कि मेरे रथके घोड़े थक गये हैं और मैं बिल्कुल अकेला हूँ, तब उसने अपनेको बचानेका एकमात्र साधन ब्रह्मास्त्र ही समझा ॥ १९ ॥ यद्यपि उसे ब्रह्मास्त्रको लौटानेकी विधि मालूम न थी, फिर भी प्राणसङ्कट देखकर उसने आचमन किया और ध्यानस्थ होकर ब्रह्मास्त्रका सन्धान किया ॥ २० ॥ उस अस्त्रसे सब दिशाओंमें एक बड़ा प्रचण्ड तेज फैल गया। अर्जुनने देखा कि अब तो मेरे प्राणोंपर ही आ बनी है, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की ॥ २१ ॥

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण ! तुम सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा हो। तुम्हारी शक्ति अनन्त है। तुम्हीं भक्तोंको अभय देनेवाले हो। जो संसारकी धधकती हुई आगमें जल रहे हैं, उन जीवोंको उससे उबारनेवाले एकमात्र तुम्हीं हो ॥ २२ ॥ तुम प्रकृतिसे परे रहनेवाले आदिपुरुष साक्षात् परमेश्वर हो। अपनी चित्-शक्ति (स्वरूप-शक्ति) से बहिरङ्ग एवं त्रिगुणमयी मायाको दूर भगाकर अपने अद्वितीय स्वरूपमें स्थित हो ॥ २३ ॥ वही तुम अपने प्रभावसे माया-मोहित जीवोंके लिये धर्मादि-रूप कल्याणका विधान करते हो ॥ २४ ॥ तुम्हारा यह अवतार पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये और तुम्हारे अनन्य प्रेमी भक्तजनोंके निरन्तर स्मरण-ध्यान करनेके लिये

* आग लगानेवाला, जहर देनेवाला, बुरी नीयतसे हाथमें शस्त्र ग्रहण करनेवाला, धन लूटनेवाला, खेत और स्त्रीको छीननेवाला—ये छः 'आततायी' कहलाते हैं।

† शिवभक्त विद्युन्माली दैत्यको जब सूर्यने हरा दिया, तब सूर्यपर क्रोधित हो भगवान् रुद्र त्रिशूल हाथमें लेकर उनकी ओर दौड़े। उस समय सूर्य भागते-भागते पृथ्वीपर काशीमें आकर गिरे, इसीसे वहाँ उनका 'लोलार्क' नाम पड़ा।

है ॥ २५ ॥ स्वयम्प्रकाशस्वरूप श्रीकृष्ण ! यह भयङ्कर तेज सब ओरसे मेरी ओर आ रहा है। यह क्या है, कहाँसे, क्यों आ रहा है—इसका मुझे बिल्कुल पता नहीं है ! ॥ २६ ॥

भगवान्‌ने कहा—अर्जुन ! यह अश्वत्थामाका चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। यह बात समझ लो कि प्राण-संकट उपस्थित होनेसे उसने इसका प्रयोग तो कर दिया है, परन्तु वह इस अस्त्रको लौटाना नहीं जानता ॥ २७ ॥ किसी भी दूसरे अस्त्रमें इसको दबा देनेकी शक्ति नहीं है। तुम शस्त्रास्त्र-विद्याको भलीभाँति जानते ही हो, ब्रह्मास्त्रके तेजसे ही इस ब्रह्मास्त्रकी प्रचण्ड आगको बुझा दो ॥ २८ ॥

सूतजी कहते हैं—अर्जुन विपक्षी वीरोंको मारनेमें बड़े प्रवीण थे। भगवान्‌की बात सुनकर उन्होंने आचमन किया और भगवान्‌की परिक्रमा करके ब्रह्मास्त्रके निवारणके लिये ब्रह्मास्त्रका ही सन्धान किया ॥ २९ ॥ बाणोंसे वेष्टित उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंके तेज प्रलयकालीन सूर्य एवं अग्निके समान आपसमें टकराकर सारे आकाश और दिशाओंमें फैल गये और बढ़ने लगे ॥३०॥ तीनों लोकोंको जलानेवाली उन दोनों अस्त्रोंकी बढ़ी हुई लपटोंसे प्रजा जलने लगी और उसे देखकर सबने यही समझा कि यह प्रलयकालकी सांवर्तक अग्नि है ॥३१॥ उस आगसे प्रजाका और लोकोंका नाश होते देखकर भगवान्‌की अनुमतिसे अर्जुनने उन दोनोंको ही लौटा लिया ॥ ३२ ॥ अर्जुनकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने झपटकर उस क्रूर अश्वत्थामाको पकड़ लिया और जैसे कोई रस्सीसे पशुको बाँध ले, वैसे ही बाँध लिया ॥ ३३ ॥ अश्वत्थामाको बलपूर्वक बाँधकर अर्जुनने जब शिविरकी ओर ले जाना चाहा, तब उनसे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर कहा—॥ ३४ ॥ 'अर्जुन ! इस ब्राह्मणाधमको छोड़ना ठीक नहीं है, इसको तो मार ही डालो। इसने रातमें सोये हुए निरपराध बालकोंकी हत्या की है ॥ ३५ ॥ धर्मवेत्ता पुरुष असावधान, मतवाले, पागल, सोये हुए, बालक, स्त्री, विवेकज्ञानशून्य, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको कभी नहीं मारते ॥ ३६ ॥ परन्तु जो दुष्ट और क्रूर पुरुष दूसरोंको मारकर अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका तो वध ही उसके लिये कल्याणकारी है; क्योंकि वैसी आदतको लेकर यदि वह जीता है तो और भी पाप करता है और उन पापोंके कारण नरकगामी होता है ॥ ३७ ॥ फिर मेरे सामने ही तुमने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की थी कि 'मानवती ! जिसने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है, उसका सिर मैं उतार लाऊँगा' ॥ ३८ ॥ इस पापी कुलाङ्गार आततायीने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है और अपने स्वामी दुर्योधनको भी दुःख पहुँचाया है। इसलिये अर्जुन ! इसे मार ही डालो ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा की, परन्तु अर्जुनका हृदय महान् था। यद्यपि अश्वत्थामाने उनके पुत्रोंकी हत्या की थी, फिर भी अर्जुनके मनमें गुरुपुत्रको मारनेकी इच्छा नहीं हुई ॥ ४० ॥

इसके बाद अपने मित्र और सारथि श्रीकृष्णके साथ वे अपने युद्ध-शिविरमें पहुँचे। वहाँ अपने मृत पुत्रोंके लिये शोक करती हुई द्रौपदीको उसे सौंप दिया ॥४१॥ द्रौपदीने देखा कि अश्वत्थामा पशुकी तरह बाँधकर लाया गया है। निन्दित कर्म करनेके कारण उसका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है। अपना अनिष्ट करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाको इस प्रकार अपमानित देखकर द्रौपदीका कोमल हृदय कृपासे भर आया और उसने अश्वत्थामाको नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ गुरुपुत्रका इस प्रकार बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदीको सहन नहीं हुआ। उसने कहा—'छोड़ दो इन्हें, छोड़ दो। ये ब्राह्मण हैं, हमलोगोंके अत्यन्त पूजनीय हैं ॥ ४३ ॥ जिनकी कृपासे आपने रहस्यके साथ सारे धनुर्वेद और प्रयोग तथा उपसंहारके साथ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है, वे आपके आचार्य द्रोण ही पुत्रके रूपमें आपके सामने खड़े हैं। उनकी अर्द्धाङ्गिनी कृपी अपने वीर पुत्रकी ममतासे ही अपने पतिका अनुगमन नहीं कर सकीं, वे अभी जीवित हैं ॥ ४४-४५ ॥ महाभाग्यवान् आर्यपुत्र ! आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं। जिस गुरुवंशकी नित्य पूजा और वन्दना करनी चाहिये, उसीको व्यथा पहुँचाना आपके योग्य कार्य नहीं है ॥ ४६ ॥ जैसे अपने बच्चोंके मर जानेसे मैं दुखी होकर रो रही हूँ और मेरी आँखोंसे बार-बार आँसू निकल रहे हैं, वैसे ही इनकी माता

पतिव्रता गौतमी न रोयें ॥ ४७ ॥ जो उच्छृङ्खल राजा अपने कुकृत्योंसे ब्राह्मणकुलको कुपित कर देते हैं, वह कुपित ब्राह्मणकुल उन राजाओंको सपरिवार शोकाग्नि-में डालकर शीघ्र ही भस्म कर देता है' ॥ ४८ ॥

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो ! द्रौपदीकी बात धर्म और न्यायके अनुकूल थी । उसमें कपट नहीं था, करुणा और समता थी । अतएव राजा युधिष्ठिरने रानीके इन हितभरे श्रेष्ठ वचनोंका अभिनन्दन किया ॥ ४९ ॥ साथ ही नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँपर उपस्थित सभी नर-नारियोंने द्रौपदीकी बातका समर्थन किया ॥ ५० ॥ उस समय क्रोधित होकर भीमसेनने कहा,'जिसने सोते हुए बच्चोंको न अपने लिये और न अपने स्वामीके लिये, बल्कि व्यर्थ ही मार डाला, उसका तो वध ही उत्तम है' ॥५१॥ भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदी और भीमसेनकी बात सुनकर और अर्जुनकी ओर देखकर कुछ हँसते हुए-से कहा ॥५२॥

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— पतित ब्राह्मणका भी वध नहीं करना चाहिये और आततायीको मार ही डालना चाहिये'—शास्त्रोंमें मैंने ही ये दोनों बातें कही हैं । इसलिये मेरी दोनों आज्ञाओंका पालन करो ॥ ५३ ॥ तुमने द्रौपदीको सान्त्वना देते समय जो प्रतिज्ञा की थी, उसे भी सत्य करो; साथ ही भीमसेन, द्रौपदी और मुझे जो प्रिय हो, वह भी करो ॥ ५४ ॥

सूतजी कहते हैं—अर्जुन भगवान्के हृदयकी बात तुरंत ताड़ गये और उन्होंने अपनी तलवारसे अश्वत्थामा-के सिरकी मणि उसके बालोंके साथ उतार ली ॥५५॥ बालकोंकी हत्या करनेसे वह श्रीहीन तो पहले ही हो गया था, अब मणि और ब्रह्मतेजसे भी रहित हो गया । इसके बाद उन्होंने रस्सीका बन्धन खोलकर उसे शिविर-से निकाल दिया ॥ ५६ ॥ मूँड़ देना, धन छीन लेना और स्थानसे बाहर निकाल देना—यही ब्राह्मणाधमोंका वध है । उनके लिये इससे भिन्न शारीरिक वधका विधान नहीं है ॥५७॥ पुत्रोंकी मृत्युसे द्रौपदी और पाण्डव सभी शोकातुर हो रहे थे । अब उन्होंने अपने मरे हुए भाई-बन्धुओंकी दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया की ॥ ५८ ॥

आठवाँ अध्याय

गर्भमें परीक्षित्की रक्षा, कुन्तीके द्वारा भगवान्की स्तुति और युधिष्ठिरका शोक

सूतजी कहते हैं—इसके बाद पाण्डव श्रीकृष्णके साथ जलाञ्जलिके इच्छुक मरे हुए स्वजनोंका तर्पण करने-के लिये स्त्रियोंको आगे करके गङ्गातटपर गये ॥ १ ॥ वहाँ उन सबने मृत बन्धुओंको जलदान दिया और उनके गुणों-का स्मरण करके बहुत विलाप किया । तदनन्तर भगवान्के चरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र गङ्गाजलमें पुनः स्नान किया ॥ २ ॥ वहाँ अपने भाइयोंके साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी—सब बैठकर मरे हुए स्वजनोंके लिये शोक करने लगे । भगवान् श्रीकृष्णने धौम्यादि मुनियोंके साथ उनको सान्त्वना दी और समझाया कि संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे किसीको कोई बचा नहीं सकता ॥ ३-४ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको उनका वह राज्य, जो धूर्तोंने छलसे छीन लिया था, वापस दिलाया तथा द्रौपदीके केशोंका स्पर्श करने-से जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओंका वध कराया ॥ ५ ॥ साथ ही युधिष्ठिरके द्वारा उत्तम सामग्रियोंसे तथा पुरोहितोंसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराये । इस प्रकार युधिष्ठिरके पवित्र यशको सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रके यशकी तरह सब ओर फैला दिया ॥६॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने वहाँसे जानेका विचार किया । उन्होंने इसके लिये पाण्डवोंसे विदा ली और व्यास आदि ब्राह्मणोंका सत्कार किया । उन लोगोंने भी भगवान्का बड़ा ही सम्मान किया । तदनन्तर सात्यकि और उद्धवके साथ द्वारका जानेके लिये वे रथपर सवार हुए ।

उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भयसे विह्वल होकर सामनेसे दौड़ी चली आ रही है ॥ ७-८ ॥

उत्तराने कहा—देवाधिदेव ! जगदीश्वर ! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला और कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक दूसरेकी मृत्युके निमित्त बन रहे हैं ॥ ९ ॥ प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् हैं। यह दहकते हुए लोहेका बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। स्वामिन् ! यह मुझे भले ही जला डाले, परन्तु मेरे गर्भको नष्ट न करे—ऐसी कृपा कीजिये ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसकी बात सुनते ही जान गये कि अश्वत्थामाने पाण्डवोंके वंशको निर्बीज करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है ॥ ११ ॥ शौनकजी ! उसी समय पाण्डवोंने भी देखा कि जलते हुए पाँच बाण हमारी ओर आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये ॥ १२ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अपने अनन्य प्रेमियोंपर—शरणागत भक्तोंपर बहुत बड़ी विपत्ति आयी जानकर अपने निज अस्त्र सुदर्शन-चक्रसे उन निज जनोंकी रक्षा की ॥ १३ ॥ योगेश्वर श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान आत्मा हैं। उन्होंने उत्तराके गर्भको पाण्डवोंकी वंश-परम्परा चलानेके लिये अपनी मायाके कवचसे ढक दिया ॥ १४ ॥ शौनकजी ! यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और उसके निवारणका कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने आकर वह शान्त हो गया ॥ १५ ॥ यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि भगवान् तो सर्वाश्चर्यमय हैं, वे ही अपनी निज शक्ति मायासे स्वयं अजन्मा होकर भी इस संसारकी सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण जाने लगे, तब ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे मुक्त अपने पुत्रोंके और द्रौपदीके साथ सती कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की ॥ १७ ॥

कुन्तीने कहा—आप समस्त जीवोंके बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियोंसे देखे नहीं जाते; क्योंकि आप प्रकृतिसे परे आदिपुरुष परमेश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ १८ ॥ इन्द्रियोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसकी तहमें आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही मायाके परदेसे अपनेको ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तमको भला, कैसे जान सकती हूँ ? जैसे मूढ़ लोग दूसरा भेष धारण किये हुए नटको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही आप दीखते हुए भी नहीं दीखते ॥ १९ ॥ आप शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका सृजन करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं ॥ २० ॥ आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द गोपके लाड़ले लाल गोविन्दको हमारा बारंबार प्रणाम है ॥ २१ ॥ जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलोंकी माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरण-कमलोंमें कमलका चिह्न है—श्रीकृष्ण ! ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ २२ ॥ हृषीकेश ! जैसे आपने दुष्ट कंसके द्वारा कैद की हुई और चिरकालसे शोकग्रस्त देवकीकी रक्षा की थी, वैसे ही पुत्रोंके साथ मेरी भी आपने बार-बार विपत्तियोंसे रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीकृष्ण ! कहाँतक गिनाऊँ—विषसे, लाक्षागृहकी भयानक आगसे, हिडिम्ब आदि राक्षसोंकी दृष्टिसे, दुष्टोंकी द्यूत-सभासे, वनवासकी विपत्तियोंसे और अनेक बारके युद्धोंमें अनेक महारथियोंके शस्त्रास्त्रोंसे और अभी-अभी इस अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भी आपने ही हमारी रक्षा की है ॥ २३-२४ ॥ जगद्गुरो ! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता ॥ २५ ॥ ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका

नाम भी नहीं ले सकता; क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिञ्चन हैं ॥ २६ ॥ आप निर्धनोंके परम धन हैं। मायाका प्रपञ्च आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने आपमें ही विहार करनेवाले, परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्षके अधिपति हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥२७॥

मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप परमेश्वर समझती हूँ। संसारके समस्त पदार्थ और प्राणी आपसमें टकराकर विषमताके कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परंतु आप सबमें समानरूपसे विचर रहे हैं ॥ २८ ॥ भगवन्! आप जब मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं, तब आप क्या करना चाहते हैं—यह कोई नहीं जानता। आपका कभी कोई न प्रिय है और न अप्रिय। आपके सम्बन्धमें लोगोंकी बुद्धि ही विषम हुआ करती है ॥ २९ ॥ आप विश्वके आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदिमें आप जन्म लेते हैं और उन योनियोंके अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं। यह आपकी लीला ही तो है ॥ ३० ॥ जब बचपनमें आपने दूधकी मटकी फोड़कर यशोदा मैयाको खिझा दिया था और उन्होंने आपको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी ली थी, तब आपकी आँखोंमें आँसू छलक आये थे, काजल कपोलोंपर बह चला था, नेत्र चञ्चल हो रहे थे और भयकी भावनासे आपने अपने मुखको नीचेकी ओर झुका लिया था! आपकी उस दशाका—लीला-छविका ध्यान करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा!॥ ३१ ॥ आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचलकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदुकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अवतार ग्रहण किया है ॥ ३२ ॥ दूसरे लोग यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृश्निके रूपमें) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिये आप अजन्मा होते हुए भी जगत्के कल्याण और दैत्योंके नाशके लिये उनके पुत्र बने हैं ॥ ३३ ॥ कुछ और लोग यों कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्योंके अत्यन्त भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी तरह डगमगा रही थी—पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्माकी प्रार्थनासे उसका भार उतारनेके लिये ही आप प्रकट हुए ॥ ३४ ॥ कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगोंके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य लीला करनेके विचारसे ही आपने अवतार ग्रहण किया है ॥ ३५ ॥ भक्तजन बार-बार आपके चरित्रका श्रवण, गान, कीर्तन एवं स्मरण करके आनन्दित होते रहते हैं; वे ही अविलम्ब आपके उस चरणकमलका दर्शन कर पाते हैं; जो जन्म-मृत्युके प्रवाहको सदाके लिये रोक देता है ॥ ३६ ॥

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो! क्या अब आप अपने आश्रित और सम्बन्धी हमलोगोंको छोड़कर जाना चाहते हैं? आप जानते हैं कि आपके चरणकमलोंके अतिरिक्त हमें और किसीका सहारा नहीं है। पृथ्वीके राजाओंके तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं ॥ ३७ ॥ जैसे जीवके बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदुवंशियोंके और हमारे पुत्र पाण्डवोंके नाम तथा रूपका अस्तित्व ही क्या रह जाता है ॥ ३८ ॥ गदाधर! आपके विलक्षण चरणचिह्नोंसे चिह्नित यह कुरुजाङ्गल-देशकी भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जानेके बाद न रहेगी ॥ ३९ ॥ आपकी दृष्टिके प्रभावसे ही यह देश पकी हुई फसल तथा लता-वृक्षोंसे समृद्ध हो रहा है। ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी दृष्टिसे ही वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं ॥ ४० ॥ आप विश्वके स्वामी हैं, विश्वके आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवोंमें मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके स्वजनोंके साथ जोड़े हुए इस स्नेहकी दृढ़ फाँसीको काट दीजिये ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्ण! जैसे गङ्गाकी अखण्ड धारा समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण! अर्जुनके प्यारे सखा यदुवंशशिरोमणे! आप पृथ्वी

के भाररूप राजवेषधारी दैत्योंको जलानेके लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओंका दुःख मिटानेके लिये ही है। योगेश्वर! चराचरके गुरु भगवन्! मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ४३ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कुन्तीने बड़े मधुर शब्दोंमें भगवान्‌की अधिकांश लीलाओंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मायासे उसे मोहित करते हुए-से मन्द-मन्द मुसकराने लगे ॥ ४४ ॥ उन्होंने कुन्तीसे कह दिया—'अच्छा ठीक है' और रथके स्थानसे वे हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ कुन्ती और सुभद्रा आदि देवियोंसे विदा लेकर जब वे जाने लगे, तब राजा युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया ॥ ४५ ॥ राजा युधिष्ठिरको अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेका बड़ा शोक हो रहा था। भगवान्‌की लीलाका मर्म जाननेवाले व्यास आदि महर्षियोंने और स्वयं अद्भुत चरित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों इतिहास कहकर उन्हें समझानेकी बहुत चेष्टा की; परंतु उन्हें सान्त्वना न मिली, उनका शोक न मिटा ॥ ४६ ॥ शौनकादि ऋषियो! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अपने स्वजनोंके वधसे बड़ी चिन्ता हुई। वे अविवेकयुक्त चित्तसे स्नेह और मोहके वशमें होकर कहने लगे—भला, मुझ दुरात्माके हृदयमें बद्धमूल हुए इस अज्ञानको तो देखो; मैंने सियार-कुत्तोंके आहार इस अनात्मा शरीरके लिये अनेक अक्षौहिणी* सेनाका नाश कर डाला ॥ ४७-४८ ॥ मैंने बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र, चाचा-ताऊ, भाई-बन्धु और गुरुजनोंसे द्रोह किया है। करोड़ों बरसोंमें भी नरकसे मेरा छुटकारा नहीं हो सकता ॥ ४९ ॥ यद्यपि शास्त्रका वचन है कि राजा यदि प्रजाका पालन करनेके लिये धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारे तो उसे पाप नहीं लगता, फिर भी इससे मुझे संतोष नहीं होता ॥५०॥ स्त्रियोंके पति और भाई-बन्धुओंको मारनेसे उनका मेरे द्वारा यहाँ जो अपराध हुआ है, उसका मैं गृहस्थोचित यज्ञ-यागादिकोंके द्वारा मार्जन करनेमें समर्थ नहीं हूँ ॥ ५१ ॥ जैसे कीचड़से गँदला जल स्वच्छ नहीं किया जा सकता, मदिरासे मदिराकी अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिंसाबहुल यज्ञोंके द्वारा एक भी प्राणीकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता ॥ ५२ ॥

नवाँ अध्याय

युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर प्रजाद्रोहसे भयभीत हो गये। फिर सब धर्मोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने कुरुक्षेत्रकी यात्रा की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे ॥ १ ॥ शौनकादि ऋषियो! उस समय उन सब भाइयोंने स्वर्णजटित रथोंपर, जिनमें अच्छे-अच्छे घोड़े जुते हुए थे, सवार होकर अपने भाई युधिष्ठिरका अनुगमन किया। उनके साथ व्यास, धौम्य आदि ब्राह्मण भी थे ॥२॥ शौनकजी! अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथपर चढ़कर चले। उन सब भाइयोंके साथ महाराज युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा हुई, मानो यक्षोंसे घिरे हुए स्वयं कुबेर ही जा रहे हों ॥ ३ ॥ अपने अनुचरों और भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ जाकर पाण्डवोंने देखा कि भीष्मपितामह स्वर्गसे गिरे हुए देवताके समान पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। उन लोगोंने उन्हें प्रणाम किया ॥ ४ ॥ शौनकजी! उसी समय भरतवंशियोंके गौरवरूप भीष्मपितामहको देखनेके लिये सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि वहाँ आये ॥ ५ ॥ पर्वत, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंके साथ परशुरामजी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा और

* २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० पैदल और ६५६१० घुड़सवार—इतनी सेनाको अक्षौहिणी कहते हैं। (महाभारत)

भी शुकदेव आदि शुद्धहृदय महात्मागण एवं शिष्योंके सहित कश्यप, अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पति आदि मुनिगण भी वहाँ पधारे॥ ६–८ ॥ भीष्मपितामह धर्मको और देश-कालके विभागको—कहाँ किस समय क्या करना चाहिये, इस बातको जानते थे। उन्होंने उन बड़भागी ऋषियोंको सम्मिलित हुआ देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया ॥ ९ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव भी जानते थे। अतः उन्होंने अपनी लीलासे मनुष्यका वेष धारण करके वहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वरके रूपमें हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णकी बाहर तथा भीतर दोनों जगह पूजा की ॥ १० ॥

पाण्डव बड़े विनय और प्रेमके साथ भीष्मपितामहके पास बैठ गये। उन्हें देखकर भीष्मपितामहकी आँखें प्रेमके आँसुओंसे भर गयीं। उन्होंने उनसे कहा—॥ ११ ॥ 'धर्मपुत्रो! हाय! हाय! यह बड़े कष्ट और अन्यायकी बात है कि तुमलोगोंको ब्राह्मण, धर्म और भगवान्‌के आश्रित रहनेपर भी इतने कष्टके साथ जीना पड़ा, जिसके तुम कदापि योग्य नहीं थे ॥ १२ ॥ अतिरथी पाण्डुकी मृत्युके समय तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी थी। उन दिनों तुमलोगोंके लिये कुन्तीरानीको और साथ-साथ तुम्हें भी बार-बार बहुत-से कष्ट झेलने पड़े ॥ १३ ॥ जिस प्रकार बादल वायुके वशमें रहते हैं, वैसे ही लोकपालोंके सहित सारा संसार कालभगवान्‌के अधीन है। मैं समझता हूँ कि तुम लोगोंके जीवनमें ये जो अप्रिय घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सब उन्हींकी लीला हैं ॥ १४ ॥ नहीं तो जहाँ साक्षात् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हों, गदाधारी भीमसेन और धनुर्धारी अर्जुन रक्षाका काम कर रहे हों, गाण्डीव धनुष हो और स्वयं श्रीकृष्ण सुहृद् हों—भला, वहाँ भी विपत्तिकी सम्भावना है? ॥ १५ ॥ ये कालरूप श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं, इस बातको कभी कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसे जाननेकी इच्छा करके मोहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर! संसारकी ये सब घटनाएँ ईश्वरेच्छाके अधीन हैं। उसीका अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो; क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसे पालन करनेमें समर्थ हो ॥ १७ ॥

ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। ये सबके आदि-कारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी मायासे लोगोंको मोहित करते हुए ये यदुवंशियोंमें छिपकर लीला कर रहे हैं ॥ १८ ॥ इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर! उसे भगवान् शङ्कर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं ॥ १९ ॥ जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितू मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथितक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं ॥ २० ॥ इन सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहङ्काररहित और निष्पाप परमात्मामें उन ऊँचे-नीचे कार्योंके कारण कभी किसी प्रकारकी विषमता नहीं होती ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर! इस प्रकार सर्वत्र सम होनेपर भी, देखो तो सही, वे अपने अनन्यप्रेमी भक्तोंपर कितनी कृपा करते हैं! यही कारण है कि ऐसे समयमें, जब कि मैं अपने प्राणोंका त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है ॥ २२ ॥ भगवत्परायण योगी पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना मन लगाकर और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए शरीरका त्याग करते हैं और कामनाओंसे तथा कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ २३ ॥ वे ही देवदेव भगवान् अपने प्रसन्न हास्य और रक्तकमलके समान अरुण नेत्रोंसे उल्लसित मुखवाले चतुर्भुजरूपसे, जिसका और लोगोंको केवल ध्यानमें दर्शन होता है, तबतक यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें, जबतक मैं इस शरीरका त्याग न कर दूँ' ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिरने उनकी यह बात सुनकर शर-शय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे बहुत-से ऋषियोंके सामने ही नाना प्रकारके धर्मोंके सम्बन्धमें अनेकों रहस्य पूछे ॥ २५ ॥ तब तत्त्ववेत्ता भीष्मपितामहने वर्ण और आश्रमके अनुसार पुरुषके स्वाभाविक धर्म और वैराग्य तथा रागके कारण विभिन्नरूपसे बतलाये हुए निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप द्विविध धर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद्धर्म—इन सबका अलग-अलग संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया। शौनकजी! इनके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका तथा इनकी प्राप्तिके साधनोंका अनेकों उपाख्यान और

इतिहास सुनाते हुए विभागशः वर्णन किया ॥ २६—२८॥ भीष्मपितामह इस प्रकार धर्मका प्रवचन कर ही रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं ॥ २९ ॥ उस समय हजारों रथियोंके नेता भीष्मपितामहने वाणीका संयम करके मनको सब ओरसे हटाकर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं ॥ ३० ॥ उनको शस्त्रोंकी चोटसे जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान्‌के दर्शनमात्रसे ही तुरंत दूर हो गयी तथा भगवान्‌की विशुद्ध धारणासे उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्ति-विलासको रोक दिया और बड़े प्रेमसे भगवान्‌की स्तुति की ॥ ३१ ॥

भीष्मजीने कहा—अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंश-शिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही कभी विहार करनेकी—लीला करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि-परम्परा चलती है ॥ ३२ ॥ जिनका शरीर त्रिभुवनसुन्दर एवं श्याम तमालके समान साँवला है, जिसपर सूर्यरश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और कमल-सदृश मुखपर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो ॥ ३३ ॥ मुझे युद्धके समयकी उनकी वह विलक्षण छवि याद आती है। उनके मुखपर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ोंकी टापकी धूलसे मटमैले हो गये थे और पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मैं अपने तीखे बाणोंसे उनकी त्वचाको बींध रहा था। उन सुन्दर कवचमण्डित भगवान् श्रीकृष्णके प्रति मेरा शरीर, अन्तःकरण और आत्मा समर्पित हो जायँ ॥ ३४ ॥ अपने मित्र अर्जुनकी बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव-सेना और कौरव-सेनाके बीचमें अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टिसे ही शत्रुपक्षके सैनिकोंकी आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी परम प्रीति हो ॥ ३५ ॥ अर्जुनने जब दूरसे कौरवोंकी सेनाके मुखिया हमलोगोंको देखा, तब पाप समझकर वह अपने स्वजनोंके वधसे विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीताके रूपमें आत्मविद्याका उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञानका नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति बनी रहे ॥ ३६ ॥ मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोड़ूँगा; उसे सत्य एवं ऊँची करनेके लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी। उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर टूट पड़ता है, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेगसे दौड़े कि उनके कंधेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी ॥ ३७ ॥ मुझ आततायीने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, जिससे सारा शरीर लहूलुहान हो रहा था, अर्जुनके रोकनेपर भी वे बलपूर्वक मुझे मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे। वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण थे, मेरी एकमात्र गति हों—आश्रय हों ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छवि बन गयी थी, तथा महाभारत-युद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो ॥ ३९ ॥ जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, हाव-भावयुक्त चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीलामें उनके अन्तर्धान हो जानेपर प्रेमोन्मादसे मतवाली होकर जिनकी लीलाओंका अनुकरण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा परम प्रेम हो ॥ ४० ॥ जिस समय युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओंसे भरी हुई सभामें सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं सबके दर्शनीय

भगवान् श्रीकृष्णकी मेरी आँखोंके सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे सामने खड़े हैं ॥ ४१ ॥ जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूप-से जान पड़ते हैं; वास्तवमें तो वे एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही । उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्णको मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ ॥ ४२ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार भीष्मपितामहने मन, वाणी और दृष्टिकी वृत्तियोंसे आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें अपने आपको लीन कर दिया । उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शान्त हो गये ॥ ४३ ॥ उन्हें अनन्त ब्रह्ममें लीन जानकर सब लोग वैसे ही चुप हो गये, जैसे दिनके बीत जानेपर पक्षियोंका कलरव शान्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ उस समय देवता और मनुष्य नगारे बजाने लगे । साधुस्वभावके राजा उनकी प्रशंसा करने लगे और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ ४५ ॥ शौनकजी ! युधिष्ठिरने उनके मृत शरीरकी अन्त्येष्टि क्रिया करायी और कुछ समयके लिये वे शोकमग्न हो गये ॥ ४६ ॥ उस समय मुनियोंने बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी उनके रहस्यमय नाम ले-लेकर स्तुति की । इसके पश्चात् अपने हृदयोंको श्रीकृष्णमय बनाकर वे अपने-अपने आश्रमोंको लौट गये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर चले आये और उन्होंने वहाँ अपने चाचा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीको ढाढस बँधाया ॥ ४८ ॥ फिर धृतराष्ट्रकी आज्ञा और भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे समर्थ राजा युधिष्ठिर अपने वंशपरम्परागत साम्राज्यका धर्मपूर्वक शासन करने लगे ॥ ४९ ॥

दसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका द्वारका-गमन

शौनकजीने पूछा—धार्मिकशिरोमणि महाराज युधिष्ठिरने अपनी पैतृक सम्पत्तिको हड़प जानेके इच्छुक आततायियोंका नाश करके अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारसे राज्य-शासन किया और कौन-कौन-से काम किये, क्योंकि भोगोंमें तो उनकी प्रवृत्ति थी ही नहीं ॥ १ ॥

सूतजी कहते हैं—सम्पूर्ण सृष्टिको उज्जीवित करनेवाले भगवान् श्रीहरि परस्परकी कलहाग्निसे दग्ध कुरुवंशको पुनः अंकुरितकर और युधिष्ठिरको उनके राज्यसिंहासनपर बैठाकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ २ ॥ भीष्मपितामह और भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशोंके श्रवणसे उनके अन्तःकरणमें विज्ञानका उदय हुआ और भ्रान्ति मिट गयी । भगवान्के आश्रयमें रहकर वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका इन्द्रके समान शासन करने लगे । भीमसेन आदि उनके भाई पूर्णरूपसे उनकी आज्ञाओंका पालन करते थे ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरके राज्यमें आवश्यकतानुसार यथेष्ट वर्षा होती थी, पृथ्वीमें समस्त अभीष्ट वस्तुएँ पैदा होती थीं, बड़े-बड़े थनोंवाली बहुत-सी गौएँ प्रसन्न रहकर गोशालाओंको दूधसे सींचती रहती थीं ॥ ४ ॥ नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लताएँ और ओषधियाँ प्रत्येक ऋतुमें यथेष्टरूपसे अपनी-अपनी वस्तुएँ राजाको देती थीं ॥ ५ ॥ अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरके राज्यमें किसी प्राणीको कभी भी आधि-व्याधि अथवा दैविक, भौतिक और आत्मिक क्लेश नहीं होते थे ॥ ६ ॥

अपने बन्धुओंका शोक मिटानेके लिये और अपनी बहिन सुभद्राकी प्रसन्नताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कई महीनोंतक हस्तिनापुरमें ही रहे ॥ ७ ॥ फिर जब उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे द्वारका जानेकी अनुमति माँगी, तब राजाने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर स्वीकृति दे दी । भगवान् उनको प्रणाम करके रथपर सवार हुए । कुछ लोगों (समान उम्रवालों) ने उनका आलिङ्गन किया और कुछ (छोटी उम्रवालों) ने प्रणाम ॥ ८ ॥ उस समय सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धौम्य और

सत्यवती आदि सब मूर्च्छित-से हो गये । वे शार्ङ्गपाणि श्रीकृष्णका विरह नहीं सह सके ॥ ९-१० ॥ भगवद्भक्त सत्पुरुषोंके सङ्गसे जिसका दुःसङ्ग छूट गया है, वह विचारशील पुरुष भगवान्‌के मधुर-मनोहर सुयशको एक वार भी सुन लेनेपर फिर उसे छोड़नेकी कल्पना भी नहीं करता । उन्हीं भगवान्‌के दर्शन तथा स्पर्शसे, उनके साथ आलाप करनेसे तथा साथ-ही-साथ सोने, उठने-बैठने और भोजन करनेसे जिनका सम्पूर्ण हृदय उन्हें समर्पित हो चुका था, वे पाण्डव भला, उनका विरह कैसे सह सकते थे ॥ ११-१२ ॥ उनका चित्त द्रवित हो रहा था, वे सब निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌को देखते हुए स्नेह-बन्धनसे बँधकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके घरसे चलते समय उनके बन्धुओंकी स्त्रियोंके नेत्र उत्कण्ठावश उमड़ते हुए आँसुओंसे भर आये; परंतु इस भयसे कि कहीं यात्राके समय अशकुन न हो जाय, उन्होंने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोक लिया ॥ १४ ॥

भगवान्‌के प्रस्थानके समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी, वीणा, ढोल, नरसिंगे, धुन्धुरी, नगारे, घंटे और दुन्दुभियाँ आदि बाजे बजने लगे ॥ १५ ॥ भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे कुरुवंशकी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ गयीं और प्रेम, लज्जा एवं मुसकानसे युक्त चितवनसे भगवान्‌को देखती हुई उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ १६ ॥ उस समय भगवान्‌के प्रिय सखा घुँघराले बालोंवाले अर्जुनने अपने प्रियतम श्रीकृष्णका वह श्वेत छत्र, जिसमें मोतियोंकी झालर लटक रही थी और जिसका डंडा रत्नोंका बना हुआ था, अपने हाथमें ले लिया ॥ १७ ॥ उद्धव और सात्यकि बड़े विचित्र चँवर डुलाने लगे । मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णपर चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी । बड़ी ही मधुर झाँकी थी ॥ १८ ॥ जहाँ-तहाँ ब्राह्मणोंके दिये हुए सत्य आशीर्वाद सुनायी पड़ रहे थे । वे सगुण भगवान्‌के तो अनुरूप ही थे; क्योंकि उनमें सब कुछ है, परंतु निर्गुणके अनुरूप नहीं थे, क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नहीं है ॥ १९ ॥ हस्तिनापुरकी कुलीन रमणियाँ, जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें रम गया था, आपसमें ऐसी बातें कर रही थीं; जो सबके कान और मनको आकृष्ट कर रही थीं ॥ २० ॥

वे आपसमें कह रही थीं—'सखियो ! ये वे ही सनातन परम पुरुष हैं, जो प्रलयके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं । उस समय सृष्टिके मूल ये तीनों गुण भी नहीं रहते । जगदात्मा ईश्वरमें जीव भी लीन हो जाते हैं और महत्तत्त्वादि समस्त शक्तियाँ अपने कारण अव्यक्तमें सो जाती हैं ॥ २१ ॥ उन्होंने ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नाम-रूपके निर्माणकी इच्छा की, तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की ॥ २२ ॥ इस जगत्‌में जिसके स्वरूपका साक्षात्कार जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणोंको वशमें करके भक्तिसे प्रफुल्लित निर्मल हृदयमें किया करते हैं, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं । वास्तवमें इन्हींकी भक्तिसे अन्तःकरणकी पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादिके द्वारा नहीं ॥ २३ ॥ सखी ! वास्तवमें ये वही हैं, जिनकी सुन्दर लीलाओंका गायन वेदोंमें और दूसरे गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यवादी ऋषियोंने किया है—जो एक अद्वितीय ईश्वर हैं और अपनी लीलासे जगत्‌की सृष्टि, पालन तथा संहार करते हैं परंतु उनमें आसक्त नहीं होते ॥ २४ ॥ जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्मसे अपना पेट पालने लगते हैं तब ये ही सत्त्वगुणको स्वीकारकर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते और संसारके कल्याणके लिये युग-युगमें अनेकों अवतार धारण करते हैं ॥ २५ ॥ अहो ! यह यदुवंश परम प्रशंसनीय है; क्योंकि लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है । वह पवित्र मधुवन (व्रजमण्डल) भी अत्यन्त धन्य है, जिसे इन्होंने अपने शैशव एवं किशोरावस्थामें घूम-फिरकर सुशोभित किया है ॥ २६ ॥ बड़े हर्षकी बात है कि द्वारकाने स्वर्गके यशका तिरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशको बढ़ाया है । क्यों न हो, वहाँकी प्रजा अपने स्वामी

भगवान् श्रीकृष्णको, जो बड़े प्रेमसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए उन्हें कृपादृष्टिसे देखते हैं, निरन्तर निहारती रहती है ॥२७॥ सखी ! जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, उन स्त्रियोंने अवश्य ही व्रत, स्नान, हवन आदिके द्वारा इन परमात्माकी आराधना की होगी; क्योंकि वे बार-बार इनकी उस अधर-सुधाका पान करती हैं, जिसके स्मरणमात्रसे ही व्रजबालाएँ आनन्दसे मूर्छित हो जाया करती थीं ॥ २८ ॥ ये स्वयंवरमें शिशुपाल आदि मतवाले राजाओंका मान मर्दन करके जिनको अपने बाहुबलसे हर लाये थे तथा जिनके पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, आम्ब आदि हैं, वे रुक्मिणी आदि आठों पटरानियाँ और भौमासुरको मारकर लायी हुई जो इनकी हजारों अन्य पत्नियाँ हैं, वे वास्तवमें धन्य हैं। क्योंकि इन सभीने स्वतन्त्रता और पवित्रतासे रहित स्त्रीजीवनको पवित्र और उज्ज्वल बना दिया है । इनकी महिमाका वर्णन कोई क्या करे । इनके स्वामी साक्षात् कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो नाना प्रकारकी प्रिय चेष्टाओं तथा पारिजातादि प्रिय वस्तुओंकी भेंटसे इनके हृदयमें प्रेम एवं आनन्दकी अभिवृद्धि करते हुए कभी एक क्षणके लिये भी इन्हें छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाते ॥ २९-३०॥

हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ इस प्रकार बातचीत कर ही रही थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण मन्द मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँसे विदा हो गये ॥ ३१ ॥ अजातशत्रु युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना उनके साथ कर दी; उन्हें स्नेहवश यह शङ्का हो आयी थी कि कहीं रास्तेमें शत्रु इनपर आक्रमण न कर दें ॥ ३२ ॥ सुदृढ प्रेमके कारण कुरुवंशी पाण्डव भगवान्‌के साथ बहुत दूरतक चले गये । वे लोग उस समय भावी विरहसे व्याकुल हो रहे थे । भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें बहुत आग्रह करके विदा किया और सात्यकि, उद्धव आदि प्रेमी मित्रोंके साथ द्वारकाकी यात्रा की ॥ ३३ ॥ शौनकजी ! वे कुरुजाङ्गल, पाञ्चाल, शूरसेन, यमुनाके तटवर्ती प्रदेश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत और मरुधन्व देशको पार करके सौवीर और आभीर देशके पश्चिम आनर्त्त देशमें आये । उस समय अधिक चलनेके कारण भगवान्‌के रथके घोड़े कुछ थक-से गये थे ॥३४–३५॥ मार्गमें स्थान-स्थानपर लोग उपहारादिके द्वारा भगवान्‌का सम्मान करते, सायङ्काल होनेपर वे रथपरसे भूमिपर उतर आते और जलाशयपर जाकर सन्ध्या-वन्दन करते । यह उनकी नित्यचर्या थी ॥३६॥

ग्यारहवाँ अध्याय

द्वारकामें श्रीकृष्णका राजोचित स्वागत

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णने अपने समृद्ध आनर्त्त देशमें पहुँचकर वहाँके लोगोंकी विरह-वेदना बहुत कुछ शान्त करते हुए अपना श्रेष्ठ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया॥ १ ॥ भगवान्‌के होठोंकी लालीसे लाल हुआ वह श्वेत वर्णका शङ्ख बजते समय उनके कर-कमलोंमें ऐसा शोभायमान हुआ, जैसे लाल रंगके कमलोंपर बैठकर कोई राजहंस उच्चस्वरसे मधुर गान कर रहा हो ॥ २ ॥ भगवान्‌के शङ्खकी वह ध्वनि संसारके भयको भयभीत करनेवाली है । उसे सुनकर सारी प्रजा अपने स्वामी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे नगरके बाहर निकल आयी ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं, वे अपने आत्मलाभसे ही सदा-सर्वदा पूर्णकाम हैं । फिर भी जैसे लोग बड़े आदरसे भगवान् सूर्यको भी दीपदान करते हैं, वैसे ही अनेक प्रकारकी भेंटोंसे प्रजाने श्रीकृष्णका स्वागत किया ॥ ४ ॥ सबके मुख-कमल प्रेमसे खिल उठे । वे हर्षगद्गद वाणीसे सबके सुहृद् और संरक्षक भगवान् श्रीकृष्णकी ठीक वैसे ही स्तुति करने लगे, जैसे बालक अपने पितासे अपनी तोतली बोलीमें बातें करते हैं ॥ ५ ॥ 'स्वामिन् ! हम आपके उन चरण-कमलोंको सदा-सर्वदा प्रणाम करते हैं, जिनकी वन्दना ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्रतक करते हैं, जो इस संसारमें परम कल्याण चाहनेवालोंके लिये सर्वोत्तम आश्रय हैं, जिनकी शरण ले लेनेपर परम समर्थ काल भी एक बालतक बाँका नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ विश्वभावन ! आप ही

हमारे माता, सुहृद्, स्वामी और पिता हैं; आप ही हमारे सद्गुरु और परम आराध्यदेव हैं। आपके चरणोंकी सेवासे हम कृतार्थ हो रहे हैं। आप ही हमारा कल्याण करें॥ ७॥ अहा ! हम आपको पाकर सनाथ हो गये। क्योंकि आपके सर्वसौन्दर्यसार अनुपम रूपका हम दर्शन करते रहते हैं। कितना सुन्दर मुख है! प्रेमपूर्ण मुसकानसे स्निग्ध चितवन! यह दर्शन तो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ ८॥ कमलनयन श्रीकृष्ण ! जब आप अपने बन्धु-बान्धवोंसे मिलनेके लिये हस्तिनापुर अथवा मथुरा (व्रजमण्डल) चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि वर्षोंके समान लंबा हो जाता है। आपके बिना हमारी दशा वैसी हो जाती है, जैसी सूर्यके बिना आँखोंकी' ॥ ९॥ भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रजाके मुखसे ऐसे वचन सुनते हुए और अपनी कृपामयी दृष्टिसे उनपर अनुग्रहकी वृष्टि करते हुए द्वारकामें प्रविष्ट हुए॥ १०॥

जैसे नाग अपनी नगरी भोगवती (पातालपुरी) की रक्षा करते हैं, वैसे ही भगवान्‌की वह द्वारकापुरी भी मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णि-वंशी यादवोंसे, जिनके पराक्रमकी तुलना और किसीसे भी नहीं की जा सकती, सुरक्षित थी॥ ११॥ वह पुरी समस्त ऋतुओंके सम्पूर्ण वैभवसे सम्पन्न एवं पवित्र वृक्षों एवं लताओंके कुञ्जोंसे युक्त थी। स्थान-स्थानपर फलोंसे पूर्ण उद्यान, पुष्पवाटिकाएँ एवं क्रीडावन थे। बीच-बीचमें कमलयुक्त सरोवर नगरीकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १२॥ नगरके फाटकों, महलके दरवाजों और सड़कोंपर भगवान्‌के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चारों ओर चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनसे उन स्थानोंपर घामका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था॥ १३॥ उसके राजमार्ग, अन्यान्य सड़कें, बाजार और चौक झाड़-बुहारकर सुगन्धित जलसे सींच दिये गये थे। और भगवान्‌के स्वागतके लिये बरसाये हुए फल-फूल, अक्षत-अङ्कुर चारों ओर बिखरे हुए थे॥ १४॥ घरोंके प्रत्येक द्वारपर दही, अक्षत, फल, ईख, जलसे भरे हुए कलश, उपहारकी वस्तुएँ और धूप-दीप आदि सजा दिये गये थे॥ १५॥

उदारशिरोमणि वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत पराक्रमी बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और जाम्बवतीनन्दन साम्बने जब यह सुना कि हमारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं, तब उनके मनमें इतना आनन्द उमड़ा कि उन लोगोंने अपने सभी आवश्यक कार्य—सोना, बैठना और भोजन आदि छोड़ दिये। प्रेमके आवेगसे उनका हृदय उछलने लगा। वे मङ्गल-शकुनके लिये एक गजराजको आगे करके स्वस्त्ययन-पाठ करते हुए और माङ्गलिक सामग्रियोंसे सुसज्जित ब्राह्मणोंको साथ लेकर चले। शङ्ख और तुरही आदि बाजे बजने लगे और वेदध्वनि होने लगी। वे सब हर्षित होकर रथोंपर सवार हुए और बड़ी आदरबुद्धिसे भगवान्‌की अगवानी करने चले॥ १६—१८॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक सैकड़ों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, जिनके मुख कपोलों-पर चमचमाते हुए कुण्डलोंकी कान्ति पड़नेसे बड़े सुन्दर दीखते थे, पालकियोंपर चढ़कर भगवान्‌की अगवानीके लिये चलीं॥ १९॥ बहुत-से नट, नाचनेवाले, गानेवाले, विरद बखाननेवाले सूत, मागध और बंदीजन भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत चरित्रोंका गायन करते हुए चले॥ २०॥

भगवान् श्रीकृष्णने बन्धु-बान्धवों, नागरिकों और सेवकोंसे उनकी योग्यताके अनुसार अलग-अलग मिलकर सबका सम्मान किया॥ २१॥ किसीको सिर झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अभिवादन किया, किसीको हृदयसे लगाया, किसीसे हाथ मिलाया, किसीकी ओर देखकर मुसकरा भर दिया और किसीको केवल प्रेमभरी दृष्टिसे देख लिया। जिसकी जो इच्छा थी, उसे वही वरदान दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त सबको संतुष्ट करके गुरुजन, सपत्नीक ब्राह्मण और वृद्धोंका तथा दूसरे लोगोंका भी आशीर्वाद ग्रहण करते एवं बंदीजनोंसे विरुदावली सुनते हुए सबके साथ भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया॥ २२-२३॥

शौनकजी ! जिस समय भगवान् राजमार्गसे जा रहे थे, उस समय द्वारकाकी कुल-कामिनियाँ भगवान्‌के दर्शनको ही परमानन्द मानकर अपनी-अपनी अटारियों-पर चढ़ गयीं॥ २४॥ भगवान्‌का वक्षःस्थल मूर्तिमान्

सौन्दर्यलक्ष्मीका निवासस्थान है। उनका मुखारविन्द नेत्रोंके द्वारा पान करनेके लिये सौन्दर्य-सुधासे भरा हुआ पात्र है। उनकी भुजाएँ लोकपालोंको भी शक्ति देनेवाली हैं। उनके चरणकमल भक्त परमहंसोंके आश्रय हैं। उनके अङ्ग-अङ्ग शोभाके धाम हैं। भगवान्‌की इस छविको द्वारकावासी नित्य-निरन्तर निहारते रहते हैं, फिर भी उनकी आँखें एक क्षणके लिये भी तृप्त नहीं होतीं ॥ २५-२६ ॥ द्वारकाके राज-पथपर भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर श्वेत वर्णका छत्र तना हुआ था, श्वेत चँवर डुलाये जा रहे थे, चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, वे पीताम्बर और वनमाला धारण किये हुए थे। इस समय वे ऐसे शोभायमान हुए, मानो श्याम मेघ एक ही साथ सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र-धनुष और बिजलीसे शोभायमान हो ॥ २७ ॥

भगवान् सबसे पहले अपने माता-पिताके महलमें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आनन्दसे देवकी आदि सातों माताओंको चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया और माताओंने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर गोदमें बैठा लिया। स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी, उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो गया और वे आनन्दके आँसुओंसे उनका अभिषेक करने लगीं ॥ २८-२९ ॥ माताओंसे आज्ञा लेकर वे अपने समस्त भोग-सामग्रियों-से सम्पन्न सर्वश्रेष्ठ भवनमें गये। उसमें सोलह हजार पत्नियोंके अलग-अलग महल थे ॥ ३० ॥ अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्णको बहुत दिन बाहर रहनेके बाद घर आया देखकर रानियोंके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें अपने निकट देखकर वे एकाएक ध्यान छोड़कर उठ खड़ी हुईं; उन्होंने केवल आसनको ही नहीं, बल्कि उन नियमोंको* भी त्याग दिया, जिन्हें उन्होंने पतिके प्रवासी होनेपर ग्रहण किया था। उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें लज्जा छा गयी ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के प्रति उनका भाव बड़ा ही गम्भीर था। उन्होंने पहले मन-ही-मन, फिर नेत्रोंके द्वारा और तत्पश्चात् पुत्रोंके बहाने शरीरसे उनका आलिङ्गन किया। शौनकजी! उस समय उनके नेत्रोंमें जो प्रेमके आँसू छलक आये थे, उन्हें सङ्कोचवश उन्होंने बहुत रोका। फिर भी विवशताके कारण वे ढलक ही गये ॥ ३२ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्तमें सर्वदा ही उनके पास रहते थे, तथापि उनके चरण-कमल उन्हें पद-पदपर नये-नये जान पड़ते। भला, स्वभावसे ही चञ्चल लक्ष्मी जिन्हें एक क्षणके लिये भी कभी नहीं छोड़तीं, उनकी संनिधिसे किस स्त्रीको तृप्ति हो सकती है ॥ ३३ ॥

जैसे वायु बाँसोंके संघर्षसे दावानल पैदा करके उन्हें जला देता है, वैसे ही पृथ्वीके भारभूत और शक्तिशाली राजाओंमें परस्पर फूट डालकर बिना शस्त्र ग्रहण किये ही भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कई अक्षौहिणी सेनासहित एक दूसरेसे मरवा डाला और उसके बाद आप भी उपराम हो गये ॥ ३४ ॥ साक्षात् परमेश्वर ही अपनी लीलासे इस मनुष्य-लोकमें अवतीर्ण हुए थे और सहस्रों रमणी-रत्नोंमें रहकर उन्होंने साधारण मनुष्यकी तरह क्रीड़ा की ॥ ३५ ॥ जिनकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके उन्मुक्त भावोंको सूचित करनेवाली थी, जिनकी लजीली चितवनकी चोटसे बेसुध होकर विश्वविजयी कामदेवने भी अपने धनुषका परित्याग कर दिया था—वे कमनीय कामिनियाँ अपने काम-विलासों-से जिन मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं पैदा कर सकीं, उन असङ्ग भगवान् श्रीकृष्णको संसारके लोग अपने ही समान कर्म करते देखकर आसक्त मनुष्य समझते हैं—यह उनकी मूर्खता है ॥ ३६-३७ ॥ यही तो भगवान्‌की भगवत्ता है कि वे प्रकृतिमें स्थित होकर भी उसके गुणोंसे कभी लिप्त नहीं होते, जैसे भगवान्‌की शरणागत बुद्धि अपनेमें रहनेवाले प्राकृत गुणोंसे लिप्त नहीं होती ॥ ३८ ॥ वे मूढ़ स्त्रियाँ भी श्रीकृष्णको अपना

* जिस स्त्रीका पति विदेश गया हो, उसे इन नियमोंका पालन करना चाहिये—

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्। हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥

जिसका पति परदेश गया हो, उस स्त्रीको खेल-कूद, शृङ्गार, सामाजिक उत्सवोंमें भाग लेना, हँसी-मजाक करना और पराये घर जाना—इन पाँच कामोंको त्याग देना चाहिये।

(याज्ञवल्क्यस्मृति)

एकान्तसेवी, स्त्रीपरायण भक्त ही समझ बैठी थीं; क्योंकि वे अपने स्वामीके ऐश्वर्यको नहीं जानती थीं—ठीक वैसे ही जैसे अहंकारकी वृत्तियाँ ईश्वरको अपने धर्मसे युक्त मानती हैं ॥ ३९ ॥

बारहवाँ अध्याय

परीक्षित्‌का जन्म

शौनकजीने कहा—अश्वत्थामाने जो अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्मास्त्र चलाया था, उससे उत्तराका गर्भ नष्ट हो गया था; परंतु भगवान्‌ने उसे पुनः जीवित कर दिया ॥ १ ॥ उस गर्भसे पैदा हुए महाज्ञानी महात्मा परीक्षित्‌के, जिन्हें शुकदेवजीने ज्ञानोपदेश दिया था, जन्म, कर्म, मृत्यु और उसके बाद जो गति उन्हें प्राप्त हुई, वह सब, यदि आप ठीक समझें तो कहें; हमलोग बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं ॥ २-३ ॥

सूतजीने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर अपनी प्रजाको प्रसन्न रखते हुए पिताके समान उसका पालन करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके सेवनसे वे समस्त भोगोंसे निःस्पृह हो गये थे ॥ ४ ॥

शौनकादि ऋषियो ! उनके पास अतुल सम्पत्ति थी, उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे तथा उनके फलस्वरूप श्रेष्ठ लोकोंका अधिकार प्राप्त किया था। उनकी रानियाँ और भाई अनुकूल थे, सारी पृथ्वी उनकी थी, वे जम्बूद्वीपके स्वामी थे और उनकी कीर्ति स्वर्गतक फैली हुई थी ॥ ५ ॥ उनके पास भोगकी ऐसी सामग्री थी, जिसके लिये देवतालोग भी लालायित रहते हैं। परंतु जैसे भूखे मनुष्यको भोजनके अतिरिक्त दूसरे पदार्थ नहीं सुहाते, वैसे ही उन्हें भगवान्‌के सिवा दूसरी कोई वस्तु सुख नहीं देती थी ॥ ६ ॥

शौनकजी ! उत्तराके गर्भमें स्थित वह वीर शिशु परीक्षित् जब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे जलने लगा, तब उसने देखा कि उसकी आँखोंके सामने एक ज्योतिर्मय पुरुष है ॥ ७ ॥ वह देखनेमें तो अँगूठे भरका है, परंतु उसका स्वरूप बहुत ही निर्मल है। अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, बिजलीके समान चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए है, सिरपर सोनेका मुकुट झिलमिला रहा है। उस निर्विकार पुरुषके बड़ी ही सुन्दर लंबी-लंबी चार भुजाएँ हैं। कानोंमें तपाये हुए स्वर्णके सुन्दर कुण्डल हैं, आँखोंमें लालिमा है, हाथमें लूकेके समान जलती हुई गदा लेकर उसे बार-बार घुमाता जा रहा है और स्वयं शिशुके चारों ओर घूम रहा है ॥ ८-९ ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको भगा देते हैं, वैसे ही वह उस गदाके द्वारा ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करता जा रहा था। उस पुरुषको अपने समीप देखकर वह गर्भस्थ शिशु सोचने लगा कि यह कौन है ॥ १० ॥ इस प्रकार उस दस मासके गर्भस्थ शिशुके सामने ही धर्मरक्षक अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करके वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥

तदनन्तर अनुकूल ग्रहोंके उदयसे युक्त समस्त सद्गुणोंको विकसित करनेवाले शुभ समयमें पाण्डुके वंशधर परीक्षित्‌का जन्म हुआ। जन्मके समय ही वह बालक इतना तेजस्वी दीख पड़ता था, मानो स्वयं पाण्डुने ही फिरसे जन्म लिया हो ॥ १२ ॥ पौत्रके जन्मकी बात सुनकर राजा युधिष्ठिर मनमें बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे मङ्गलवाचन और जातकर्म-संस्कार करवाये ॥ १३ ॥ महाराज युधिष्ठिर दानके योग्य समयको जानते थे। उन्होंने प्रजातीर्थ* नामक कालमें अर्थात् नाल काटनेके पहले ही ब्राह्मणोंको सुवर्ण, गौएँ, पृथ्वी, गाँव, उत्तम जातिके हाथी-घोड़े और उत्तम अन्नका

* नालच्छेदनसे पहले सूतक नहीं होता, जैसे कहा है—'यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते ॥' इसी समयको 'प्रजातीर्थ' काल कहते हैं। इस समय जो दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। स्मृति कहती है—'पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्।' अर्थात् 'पुत्रोत्पत्ति और व्यतीपातके समय दिया हुआ दान अक्षय होता है।'

दान दिया ॥ १४ ॥ ब्राह्मणोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनयी युधिष्ठिरसे कहा—'पुरुवंश-शिरोमणे! कालकी दुर्निवार गतिसे यह पवित्र पुरुवंश मिटना ही चाहता था, परंतु तुमलोगोंपर कृपा करनेके लिये भगवान् विष्णुने यह बालक देकर इसकी रक्षा कर दी ॥ १५-१६॥ इसीलिये इसका नाम विष्णुरात होगा। निस्सन्देह यह बालक संसारमें बड़ा यशस्वी, भगवान्‌का परम भक्त और महापुरुष होगा' ॥ १७ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—महात्माओ! यह बालक क्या अपने उज्ज्वल यशसे हमारे वंशके पवित्रकीर्त्ति महात्मा राजर्षियोंका अनुसरण करेगा? ॥ १८ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—धर्मराज! यह मनुपुत्र इक्ष्वाकुके समान अपनी प्रजाका पालन करेगा तथा दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ होगा॥१९॥ यह उशीनर-नरेश शिविके समान दाता और शरणागतवत्सल होगा तथा याज्ञिकोंमें दुष्यन्तके पुत्र भरतके समान अपने वंशका यश फैलायेगा ॥ २० ॥ धनुर्धरोंमें यह सहस्रबाहु अर्जुन और अपने दादा पार्थके समान अग्रगण्य होगा। यह अग्निके समान दुर्धर्ष और समुद्रके समान दुस्तर होगा ॥ २१ ॥ यह सिंहके समान पराक्रमी, हिमाचलकी तरह आश्रय लेनेयोग्य, पृथ्वीके सदृश तितिक्षु और माता-पिताके समान सहनशील होगा ॥ २२ ॥ इसमें पितामह ब्रह्माके समान समता रहेगी, भगवान् शंकरकी तरह यह कृपालु होगा और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेमें यह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समान होगा ॥ २३ ॥ यह समस्त सद्गुणोंकी महिमा धारण करनेमें श्रीकृष्णका अनुयायी होगा, रन्तिदेवके समान उदार होगा और ययातिके समान धार्मिक होगा ॥ २४ ॥ धैर्यमें बलिके समान और भगवान् श्रीकृष्णके प्रति दृढ़ निष्ठामें यह प्रह्लादके समान होगा। यह बहुत-से अश्वमेध-यज्ञोंका करनेवाला और वृद्धोंका सेवक होगा ॥२५॥ इसके पुत्र राजर्षि होंगे। मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको यह दण्ड देगा। यह पृथ्वीमाता और धर्मकी रक्षाके लिये कलियुगका भी दमन करेगा ॥ २६ ॥ ब्राह्मणकुमारके शापसे तक्षकके द्वारा अपनी मृत्यु सुनकर यह सबकी आसक्ति छोड़ देगा और भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेगा ॥ २७ ॥ व्यासनन्दन शुकदेवजीसे यह आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करेगा और अन्तमें गङ्गातटपर अपने शरीरको त्यागकर निश्चय ही अभयपद प्राप्त करेगा ॥ २८ ॥

ज्यौतिषशास्त्रके विशेषज्ञ ब्राह्मण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार बालकके जन्मलग्नका फल बतलाकर और भेंट-पूजा लेकर अपने-अपने घर चले गये ॥ २९ ॥ वही यह बालक संसारमें परीक्षित्‌के नामसे प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि वह समर्थ बालक गर्भमें जिस पुरुषका दर्शन पा चुका था, उसका स्मरण करता हुआ लोगोंमें उसीकी परीक्षा करता रहता था कि देखें इनमेंसे कौन-सा वह है ॥३०॥ जैसे शुक्लपक्षमें दिन-प्रतिदिन चन्द्रमा अपनी कलाओंसे पूर्ण होता हुआ बढ़ता है, वैसे ही वह राजकुमार भी अपने गुरुजनोंके लालन-पालनसे क्रमशः अनुदिन बढ़ता हुआ शीघ्र ही सयाना हो गया ॥ ३१ ॥

इसी समय स्वजनोंके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान्‌की आराधना करनेका विचार किया, परंतु प्रजासे वसूल किये हुए कर और दण्ड (जुर्माने) की रकमके अतिरिक्त और धन न होनेके कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये ॥३२॥ उनका अभिप्राय समझकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे उनके भाई उत्तर दिशामें राजा मरुत्त और ब्राह्मणोंद्वारा छोड़ा हुआ* बहुत-सा धन ले आये ॥ ३३ ॥ उससे यज्ञकी सामग्री एकत्र करके धर्मभीरु महाराज युधिष्ठिरने तीन अश्वमेध-यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा की ॥ ३४ ॥ युधिष्ठिरके निमन्त्रणसे पधारे हुए भगवान् ब्राह्मणोंद्वारा उनका यज्ञ सम्पन्न कराकर अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रसन्नताके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे ॥ ३५ ॥ शौनकजी! इसके बाद भाइयोंसहित राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीसे अनुमति लेकर अर्जुनके साथ यदुवंशियोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ३६ ॥

---

* पूर्वकालमें महाराज मरुत्तने ऐसा यज्ञ किया था, जिसमें सभी पात्र सुवर्णके थे। यज्ञ समाप्त हो जानेपर उन्होंने वे पात्र उत्तर दिशामें फिंकवा दिये थे। उन्होंने ब्राह्मणोंको भी इतना धन दिया कि वे उसे ले जा न सके; वे भी उसे उत्तर दिशामें ही छोड़कर चले आये। परित्यक्त धनपर राजाका अधिकार होता है, इसलिये उस धनको मँगवाकर भगवान्‌ने युधिष्ठिरका यज्ञ कराया।

तेरहवाँ अध्याय

विदुरजीके उपदेशसे धृतराष्ट्र और गान्धारीका वनमें जाना

सूतजी कहते हैं—विदुरजी तीर्थयात्रामें महर्षि मैत्रेयसे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके हस्तिनापुर लौट आये। उन्हें जो कुछ जाननेकी इच्छा थी, वह पूर्ण हो गयी थी॥ १॥ विदुरजीने मैत्रेय ऋषिसे जितने प्रश्न किये थे, उनका उत्तर सुननेके पहले ही श्रीकृष्णमें अनन्य भक्ति हो जानेके कारण वे उत्तर सुननेसे उपराम हो गये॥ २॥ शौनकजी! अपने चाचा विदुरजीको आया देख धर्मराज युधिष्ठिर, उनके चारों भाई, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी तथा पाण्डव-परिवारके अन्य सभी नर-नारी और अपने पुत्रोंसहित दूसरी स्त्रियाँ—सब-के-सब बड़ी प्रसन्नतासे, मानो मृत शरीरमें प्राण आ गया हो—ऐसा अनुभव करते हुए उनकी अगवानीके लिये सामने गये। यथायोग्य आलिङ्गन और प्रणामादिके द्वारा सब उनसे मिले और विरहजनित उत्कण्ठासे कातर होकर सबने प्रेमके आँसू बहाये। युधिष्ठिरने आसनपर बैठाकर उनका यथोचित सत्कार किया॥ ३—६॥ जब वे भोजन एवं विश्राम करके सुखपूर्वक आसनपर बैठे थे तब युधिष्ठिरने विनयसे झुककर सबके सामने ही उनसे कहा॥ ७॥

युधिष्ठिरने कहा—चाचाजी! जैसे पक्षी अपने अंडोंको पंखोंकी छायाके नीचे रखकर उन्हें सेते और बढ़ाते हैं, वैसे ही आपने अत्यन्त वात्सल्यसे अपने कर-कमलोंकी छत्रछायामें हमलोगोंको पाला-पोसा है। बार-बार आपने हमें और हमारी माताको विषदान और लाक्षागृहके दाह आदि विपत्तियोंसे बचाया है। क्या आप कभी हमलोगोंकी भी याद करते रहे हैं?॥ ८॥ आपने पृथ्वीपर विचरण करते समय किस वृत्तिसे जीवन-निर्वाह किया? आपने पृथ्वीतलपर किन-किन तीर्थों और मुख्य क्षेत्रोंका सेवन किया?॥ ९॥ प्रभो! आप-जैसे भगवान्‌के प्यारे भक्त स्वयं ही तीर्थस्वरूप होते हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्‌के द्वारा तीर्थोंको भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं॥ १०॥ चाचाजी! आप तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका भी अवश्य ही गये होंगे। वहाँ हमारे सुहृद् एवं भाई-बन्धु यादवलोग, जिनके एकमात्र आराध्यदेव श्रीकृष्ण हैं, अपनी नगरीमें सुखसे तो हैं न? आपने यदि जाकर देखा नहीं होगा तो सुना तो अवश्य ही होगा॥ ११॥

युधिष्ठिरके इस प्रकार पूछनेपर विदुरजीने तीर्थों और यदुवंशियोंके सम्बन्धमें जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया था, सब क्रमसे बतला दिया, केवल यदुवंशके विनाशकी बात नहीं कही॥ १२॥ करुणहृदय विदुरजी पाण्डवोंको दुखी नहीं देख सकते थे। इसलिये उन्होंने यह अप्रिय एवं असह्य घटना पाण्डवोंको नहीं सुनायी; क्योंकि वह तो स्वयं ही प्रकट होनेवाली थी॥ १३॥

पाण्डव विदुरजीका देवताके समान सेवा-सत्कार करते थे। वे कुछ दिनोंतक अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रकी कल्याण-कामनासे सब लोगोंको प्रसन्न करते हुए सुखपूर्वक हस्तिनापुरमें ही रहे॥ १४॥ विदुरजी तो साक्षात् धर्मराज थे, माण्डव्य ऋषिके शापसे ये सौ वर्षके लिये शूद्र बन गये थे *। इतने दिनोंतक यमराजके पदपर अर्यमा थे और वही पापियोंको उचित दण्ड देते थे॥ १५॥ राज्य प्राप्त हो जानेपर अपने लोकपालों-सरीखे भाइयोंके साथ राजा युधिष्ठिर वंशधर परीक्षित्‌को देखकर अपनी अतुल सम्पत्तिसे आनन्दित रहने लगे॥ १६॥ इस प्रकार पाण्डव गृहस्थके काम-धंधोंमें रम गये और उन्हींके पीछे एक प्रकारसे यह बात भूल गये कि अन-

* एक समय किसी राजाके अनुचरोंने कुछ चोरोंको माण्डव्य ऋषिके आश्रमपर पकड़ा। उन्होंने समझा कि ऋषि भी चोरीमें शामिल होंगे। अतः वे भी पकड़ लिये गये और राजाज्ञासे सबके साथ उनको भी सूलीपर चढ़ा दिया गया। राजाको यह पता लगते ही कि ये महात्मा हैं—ऋषिको सूलीसे उतरवा दिया और हाथ जोड़कर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया। माण्डव्यजीने यमराजके पास जाकर पूछा—'मुझे किस पापके फलस्वरूप यह दण्ड मिला?' यमराजने बताया कि 'आपने लड़कपनमें एक टिड्डीको कुशकी नोकसे छेद दिया था, इसीलिये ऐसा हुआ।' इसपर मुनिने कहा—'मैंने अज्ञानवश ऐसा किया होगा, उस छोटेसे अपराधके लिये तुमने मुझे बड़ा कठोर दण्ड दिया। इसलिये तुम सौ वर्षतक शूद्रयोनिमें रहोगे।' माण्डव्यजीके इस शापसे ही यमराजने विदुरके रूपमें अवतार लिया था।

जानमें ही हमारा जीवन मृत्युकी ओर जा रहा है; अब देखते-देखते उनके सामने वह समय आ पहुँचा जिसे कोई टाल नहीं सकता ॥ १७ ॥

परन्तु विदुरजीने कालकी गति जानकर अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज ! देखिये, अब बड़ा भयंकर समय आ गया है, झटपट यहाँसे निकल चलिये ॥ १८ ॥ हम सब लोगोंके सिरपर वह सर्वसमर्थ काल मँडराने लगा है, जिसके टालनेका कहीं भी कोई उपाय नहीं है ॥ १९ ॥ कालके वशीभूत होकर जीवका अपने प्रियतम प्राणोंसे भी बात-की-बातमें वियोग हो जाता है; फिर धन, जन आदि दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ॥ २० ॥ आपके चाचा, ताऊ, भाई, सगे-सम्बन्धी और पुत्र—सभी मारे गये, आपकी उम्र भी ढल चुकी, शरीर बुढ़ापेका शिकार हो गया, आप पराये घरमें पड़े हुए हैं ॥ २१ ॥ ओह ! इस प्राणीको जीवित रहनेकी कितनी प्रबल इच्छा होती है ! इसीके कारण तो आप भीमका दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्तेका-सा जीवन बिता रहे हैं ॥ २२ ॥ जिनको आपने आगमें जलानेकी चेष्टा की, विष देकर मार डालना चाहा, भरी सभामें जिनकी विवाहिता पत्नीको अपमानित किया, जिनकी भूमि और धन छीन लिये, उन्हींके अन्नसे पले हुए प्राणोंको रखनेमें क्या गौरव है ॥ २३ ॥ आपके अज्ञानकी हद हो गयी कि अब भी आप जीना चाहते हैं ! परन्तु आपके चाहनेसे क्या होगा; पुराने वस्त्रकी तरह बुढ़ापेसे गला हुआ आपका शरीर आपके न चाहनेपर भी क्षीण हुआ जा रहा है ॥ २४ ॥ अब इस शरीरसे आपका कोई स्वार्थ सधनेवाला नहीं है; इसमें फँसिये मत, इसकी ममताका बन्धन काट डालिये । जो संसारके सम्बन्धियोंसे अलग रहकर उनके अनजानमें अपने शरीरका त्याग करता है, वही धीर कहा गया है ॥ २५ ॥ चाहे अपनी समझसे हो या दूसरेके समझानेसे—जो इस संसारको दुःखरूप समझकर इससे विरक्त हो जाता है और अपने अन्तःकरणको वशमें करके हृदयमें भगवान्‌को धारणकर संन्यासके लिये घरसे निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है ॥ २६ ॥ इसके आगे जो समय आनेवाला है, वह प्रायः मनुष्योंके गुणोंको घटानेवाला होगा; इसलिये आप अपने कुटुम्बियोंसे छिपकर उत्तराखण्डमें चले जाइये' ॥ २७ ॥

जब छोटे भाई विदुरने अंधे राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार समझाया, तब उनकी प्रज्ञाके नेत्र खुल गये; वे भाई-बन्धुओंके सुदृढ़ स्नेह-पाशोंको काटकर अपने छोटे भाई विदुरके दिखलाये हुए मार्गसे निकल पड़े ॥ २८ ॥ जब परम पतिव्रता सुबलनन्दिनी गान्धारीने देखा कि मेरे पतिदेव तो उस हिमालयकी यात्रा कर रहे हैं, जो संन्यासियोंको वैसा ही सुख देता है, जैसा वीर पुरुषोंको लड़ाईके मैदानमें अपने शत्रुके द्वारा किये हुए न्यायोचित प्रहारसे होता है, तब वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ीं ॥ २९ ॥

अजातशत्रु युधिष्ठिरने प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको नमस्कार किया और उन्हें तिल, गौ, भूमि और सुवर्णका दान दिया । इसके बाद जब वे गुरुजनोंकी चरणवन्दनाके लिये राजमहलमें गये, तब उन्हें धृतराष्ट्र, विदुर तथा गान्धारीके दर्शन नहीं हुए ॥ ३० ॥ युधिष्ठिरने उद्विग्नचित्त होकर वहीं बैठे हुए सञ्जयसे पूछा—'सञ्जय ! मेरे वे वृद्ध और नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहाँ हैं ? ॥ ३१ ॥ पुत्रशोकसे पीड़ित दुखिया माता गान्धारी और मेरे परम हितैषी चाचा विदुरजी कहाँ चले गये ? ताऊजी अपने पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेसे दुःखी थे । मैं बड़ा मन्दबुद्धि हूँ—कहीं मुझसे किसी अपराधकी आशङ्का करके वे माता गान्धारीसहित गङ्गाजीमें तो नहीं कूद पड़े ॥ ३२ ॥ जब हमारे पिता पाण्डुकी मृत्यु हो गयी थी और हमलोग नन्हे-नन्हे बच्चे थे, तब इन्हीं दोनों चाचाओंने बड़े-बड़े दुःखोंसे हमें बचाया था ! वे हमपर बड़ा ही प्रेम रखते थे । हाय ! वे यहाँसे कहाँ चले गये ?' ॥ ३३ ॥

सूतजी कहते हैं—सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्रको न पाकर कृपा और स्नेहकी विकलतासे अत्यन्त पीड़ित और विरहातुर हो रहे थे । वे युधिष्ठिरको कुछ उत्तर न दे सके ॥ ३४ ॥ फिर धीरे-धीरे बुद्धिके द्वारा उन्होंने

अपने चित्तको स्थिर किया, हाथोंसे आँखोंके आँसू पोंछे और अपने स्वामी धृतराष्ट्रके चरणोंका स्मरण करते हुए युधिष्ठिरसे कहा ॥ ३५ ॥

सञ्जय बोले—कुरुनन्दन! मुझे आपके दोनों चाचा और गान्धारीके सङ्कल्पका कुछ भी पता नहीं है। महाबाहो! मुझे तो उन महात्माओंने ठग लिया ॥ ३६ ॥ सञ्जय इस प्रकार कह ही रहे थे कि तुम्बुरुके साथ देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। महाराज युधिष्ठिरने भाइयोंसहित उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनका सम्मान करते हुए बोले—॥ ३७ ॥

युधिष्ठिरने कहा—'भगवन्! मुझे अपने दोनों चाचाओंका पता नहीं लग रहा है; न जाने वे दोनों और पुत्र-शोकसे व्याकुल तपस्विनी माता गान्धारी यहाँसे कहाँ चले गये ॥ ३८ ॥ भगवन्! अपार समुद्रमें कर्णधारके समान आप ही हमारे पारदर्शक हैं।' तब भगवान्‌के परमभक्त भगवन्मय देवर्षि नारदने कहा—॥ ३९ ॥ 'धर्मराज! तुम किसीके लिये शोक मत करो; क्योंकि यह सारा जगत् ईश्वरके वशमें है। सारे लोक और लोकपाल विवश होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन कर रहे हैं। वही एक प्राणीको दूसरेसे मिलाता है और वही उन्हें अलग करता है ॥ ४० ॥ जैसे बैल बड़ी रस्सीमें बँधे और छोटी रस्सीसे नथे रहकर अपने स्वामीका भार ढोते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी वर्णाश्रमादि अनेक प्रकारके नामोंसे वेदरूप रस्सीमें बँधकर ईश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं ॥ ४१ ॥ जैसे संसारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलौनोंका संयोग और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्‌की इच्छासे ही मनुष्योंका मिलना-बिछुड़ना होता है ॥४२॥ तुम लोगोंको जीवरूपसे नित्य मानो या देहरूपसे अनित्य अथवा जडरूपसे अनित्य और चेतनरूपसे नित्य अथवा शुद्धब्रह्मरूपमें नित्य-अनित्य कुछ भी न मानो—किसी भी अवस्थामें मोहजन्य आसक्तिके अतिरिक्त वे शोक करने योग्य नहीं हैं ॥४३॥ इसलिये धर्मराज! वे दीन-दुखी चाचा-चाची असहाय अवस्थामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस अज्ञानजन्य मनकी विकलताको छोड़ दो ॥ ४४ ॥ यह पाञ्चभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणोंके वशमें है। अजगरके मुँहमें पड़े हुए पुरुषके समान यह पराधीन शरीर दूसरोंकी रक्षा ही क्या कर सकता है ॥ ४५ ॥ हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पैरवाले पशुओंके बिना पैरवाले (तृणादि) और उनमें भी बड़े जीवोंके छोटे जीव आहार हैं। इस प्रकार एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण हो रहा है ॥ ४६ ॥ इन समस्त रूपोंमें जीवोंके बाहर और भीतर वही एक स्वयम्प्रकाश भगवान्, जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा अनेकों प्रकारसे प्रकट हो रहे हैं। तुम केवल उन्हींको देखो ॥ ४७ ॥ महाराज! समस्त प्राणियोंको जीवन-दान देनेवाले वे ही भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये कालरूपसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४८ ॥ अब वे देवताओंका कार्य पूरा कर चुके हैं। थोड़ा-सा काम और शेष है, उसीके लिये वे रुके हुए हैं। जबतक वे प्रभु यहाँ हैं, तबतक तुमलोग भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो ॥ ४९ ॥

धर्मराज! हिमालयके दक्षिण भागमें, जहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गङ्गाजीने अलग-अलग सात धाराओंके रूपमें अपनेको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे 'सप्तस्रोत' कहते हैं, वहीं ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं ॥ ५०-५१ ॥ वहाँ वे त्रिकाल स्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जल पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं ॥ ५२ ॥ आसन जीतकर प्राणोंको वशमें करके उन्होंने अपनी छहों इन्द्रियोंको विषयोंसे लौटा लिया है। भगवान्‌की धारणासे उनके तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके मल नष्ट हो चुके हैं ॥ ५३ ॥ उन्होंने अहङ्कारको बुद्धिके साथ जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ आत्मामें लीन करके उसे भी महाकाशमें घटाकाशके समान सर्वाधिष्ठान ब्रह्ममें एक कर दिया है। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोककर समस्त विषयोंको बाहरसे ही लौटा दिया है और मायाके गुणोंसे होनेवाले परिणामोंको सर्वथा मिटा दिया है। समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय ठूँठकी तरह स्थिर होकर बैठे हुए हैं, अतः

तुम उनके मार्गमें विघ्नरूप मत बनना* ॥ ५४-५५ ॥ धर्मराज ! आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परित्याग कर देंगे और वह जलकर भस्म हो जायगा ॥५६॥ गार्हपत्यादि अग्नियोंके द्वारा पर्णकुटीके साथ अपने पतिके मृतदेहको जलते देखकर बाहर खड़ी हुई साध्वी गान्धारी भी पतिका अनुगमन करती हुई उसी आगमें प्रवेश कर जायँगी ॥५७॥ धर्मराज ! विदुरजी अपने भाईका आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग देखकर दुःखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवनके लिये चले जायँगे ॥५८॥ देवर्षि नारद यों कहकर तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने उनके उपदेशोंको हृदयमें धारण करके शोकको त्याग दिया ॥ ५९ ॥

चौदहवाँ अध्याय

अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शंका करना और अर्जुनका द्वारकासे लौटना

सूतजी कहते हैं—स्वजनोंसे मिलने और पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण अब क्या करना चाहते हैं—यह जाननेके लिये अर्जुन द्वारका गये हुए थे ॥ १ ॥ कई महीने बीत जानेपर भी अर्जुन वहाँसे लौटकर नहीं आये। धर्मराज युधिष्ठिरको बड़े भयङ्कर अपशकुन दीखने लगे ॥ २ ॥ उन्होंने देखा कालकी गति बड़ी विकट हो गयी है। जिस समय जो ऋतु होनी चाहिये, उस समय वह नहीं होती और उनकी क्रियाएँ भी उल्टी ही होती हैं। लोग बड़े क्रोधी, लोभी और असत्यपरायण हो गये हैं। अपने जीवन-निर्वाहके लिये लोग पापपूर्ण व्यापार करने लगे हैं ॥ ३ ॥ सारा व्यवहार कपटसे भरा हुआ होता है, यहाँतक कि मित्रतामें भी छल मिला रहता है; पिता, माता, सगे-सम्बन्धी, भाई और पति-पत्नीमें भी झगड़ा-टंटा रहने लगा है ॥ ४ ॥ कलिकालके आ जानेसे लोगोंका स्वभाव ही लोभ, दम्भ आदि अधर्मसे अभिभूत हो गया है और प्रकृतिमें भी अत्यन्त अरिष्टसूचक अपशकुन होने लगे हैं, यह सब देखकर युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसेनसे कहा ॥ ५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन ! अर्जुनको हमने द्वारका इसलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर, पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण क्या कर रहे हैं—इसका पता लगा आये और सम्बन्धियोंसे मिल भी आये ॥ ६ ॥ तबसे सात महीने बीत गये, किंतु तुम्हारे छोटे भाई अबतक नहीं लौट रहे हैं। मैं ठीक-ठीक यह नहीं समझ पाता हूँ कि उनके न आनेका क्या कारण है ॥ ७ ॥ कहीं देवर्षि नारदके द्वारा बतलाया हुआ वह समय तो नहीं आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने लीला-विग्रहका संवरण करना चाहते हैं ? ॥ ८ ॥ उन्हीं भगवान्‌की कृपासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्री, प्राण, कुल, संतान, शत्रुओंपर विजय और स्वर्गादि लोकोंका अधिकार प्राप्त हुआ है ॥९॥ भीमसेन ! तुम तो मनुष्योंमें व्याघ्रके समान बलवान् हो; देखो तो सही—आकाशमें उल्कापातादि, पृथ्वीमें भूकम्पादि और शरीरोंमें रोगादि कितने भयंकर अपशकुन हो रहे हैं ! इनसे इस बातकी सूचना मिलती है कि शीघ्र ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कोई उत्पात होनेवाला है ॥ १० ॥ प्यारे भीमसेन ! मेरी बायीं जाँघ, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही हैं। हृदय जोरसे धड़क रहा है। अवश्य ही बहुत जल्दी कोई अनिष्ट होनेवाला है ॥ ११ ॥ देखो, यह सियारिन उदय होते हुए सूर्यकी ओर मुँह करके रो रही है। अरे ! उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है ! यह कुत्ता बिल्कुल निर्भय-सा होकर मेरी ओर देखकर चिल्ला रहा है ॥१२॥ भीमसेन ! गौ आदि अच्छे पशु मुझे अपने बायें करके जाते हैं और गधे आदि बुरे पशु मुझे अपने दाहिने कर देते हैं। मेरे घोड़े आदि वाहन मुझे रोते हुए दिखायी देते हैं ॥ १३ ॥ यह मृत्युका दूत पेडुखी, उल्लू और उसका प्रतिपक्षी कौआ रातको अपने कर्ण-कठोर शब्दोंसे मेरे मनको कँपाते हुए विश्वको सूना कर

* देवर्षि नारदजी त्रिकालदर्शी हैं। वे धृतराष्ट्रके भविष्य जीवनको वर्तमानकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हुए उसी रूपमें वर्णन कर रहे हैं। धृतराष्ट्र पिछली रातको ही हस्तिनापुरसे गये हैं, अतः यह वर्णन भविष्यका ही समझना चाहिये।

देना चाहते हैं ॥ १४ ॥ दिशाएँ धुँधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर बार-बार मण्डल बैठते हैं। यह पृथ्वी पहाड़ोंके साथ काँप उठती है, बादल बड़े जोर-जोरसे गरजते हैं और जहाँ-तहाँ बिजली भी गिरती ही रहती है ॥ १५ ॥ शरीरको छेदनेवाली एवं धूलिवर्षासे अंधकार फैलानेवाली आँधी चलने लगी है। बादल बड़ा डरावना दृश्य उपस्थित करके सब ओर खून बरसाते हैं॥१६॥ देखो! सूर्यकी प्रभा मन्द पड़ गयी है। आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं। भूतोंकी घनी भीड़से पृथ्वी और अन्तरिक्षमें आग-सी लगी हुई है॥१७॥ नदी, नद, तालाब और लोगोंके मन क्षुब्ध हो रहे हैं। घीसे आग नहीं जलती। यह भयङ्कर काल न जाने क्या करेगा ॥ १८ ॥ बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं। गोशालामें गौएँ आँसू बहा-बहाकर रो रही हैं। बैल भी उदास हो रहे हैं ॥ १९ ॥ देवताओंकी मूर्तियाँ रो-सी रही हैं, उनमेंसे पसीना चूने लगता है और वे हिलती-डोलती भी हैं। भाई! ये देश, गाँव, शहर, बगीचे, खानें और आश्रम श्रीहीन और आनन्द-रहित हो गये हैं। पता नहीं ये हमारे किस दुःखकी सूचना दे रहे हैं ॥ २० ॥ इन बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर मैं तो ऐसा समझता हूँ कि निश्चय ही यह भाग्यहीना भूमि भगवान्‌के उन चरणकमलोंसे, जिनका सौन्दर्य तथा जिनके ध्वजा, वज्र, अंकुशादि विलक्षण चिह्न और किसीमें भी कहीं भी नहीं हैं, रहित हो गयी है॥२१॥ शौनकजी! राजा युधिष्ठिर इन भयङ्कर उत्पातोंको देखकर मन-ही-मन चिन्तित हो रहे थे कि द्वारकासे लौटकर अर्जुन आये ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरने देखा, अर्जुन इतने आतुर हो रहे हैं जितने पहले कभी नहीं देखे गये थे। मुँह लटका हुआ है, कमल-सरीखे नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं और शरीरमें बिल्कुल कान्ति नहीं है। उनको इस रूपमें अपने चरणोंमें पड़ा देखकर युधिष्ठिर घबरा गये। देवर्षि नारदकी बातें याद करके उन्होंने सुहृदोंके सामने ही अर्जुनसे पूछा ॥ २३-२४ ॥

युधिष्ठिरने कहा—'भाई! द्वारकापुरीमें हमारे स्वजनसम्बन्धी मधु, भोज, दशार्ह, आर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णिवंशी यादव कुशलसे तो हैं?॥ २५॥ हमारे माननीय नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं? अपने छोटे भाईसहित मामा वसुदेवजी तो कुशलपूर्वक हैं?॥ २६॥ उनकी पत्नियाँ हमारी मामी देवकी आदि सातों बहिनें अपने पुत्रों और बहुओंके साथ आनन्दसे तो हैं?॥२७॥ जिनका पुत्र कंस बड़ा ही दुष्ट था, वे राजा उग्रसेन अपने छोटे भाई देवकके साथ जीवित तो हैं न? हृदीक, उनके पुत्र कृतवर्मा, अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजित् आदि यादव वीर सकुशल हैं न? यादवोंके प्रभु बलरामजी तो आनन्दसे हैं? ॥ २८-२९ ॥ वृष्णिवंशके सर्वश्रेष्ठ महारथी प्रद्युम्न सुखसे तो हैं? युद्धमें बड़ी फुर्ती दिखलानेवाले भगवान् अनिरुद्ध आनन्दसे हैं न? ॥ ३० ॥ सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती-नन्दन साम्ब और अपने पुत्रोंके सहित ऋषभ आदि भगवान् श्रीकृष्णके अन्य सब पुत्र भी प्रसन्न हैं न?॥३१। भगवान् श्रीकृष्णके सेवक श्रुतदेव, उद्धव आदि और दूसरे सुनन्द-नन्द आदि प्रधान यदुवंशी, जो भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित हैं, सब-के-सब सकुशल हैं न? हमसे अत्यन्त प्रेम करनेवाले वे लोग कभी हमारा कुशल-मङ्गल भी पूछते हैं? ॥३२-३३॥

भक्तवत्सल ब्राह्मणभक्त भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंके साथ द्वारकाकी सुधर्मा-सभामें सुखपूर्वक विराजते हैं न?॥ ३४ ॥ वे आदिपुरुष बलरामजीके साथ संसारके परम मङ्गल, परम कल्याण और उन्नतिके लिये यदुवंशरूप क्षीरसागरमें विराजमान हैं। उन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकापुरीमें यदुवंशीलोग सारे संसारके द्वारा सम्मानित होकर बड़े आनन्दसे विष्णुभगवान्‌के पार्षदोंके समान विहार कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥ सत्यभामा आदि सोलह हजार रानियाँ प्रधानरूपसे उनके चरणकमलोंकी सेवामें ही रत रहकर उनके द्वारा युद्धमें इन्द्रादि देवताओंको भी हराकर इन्द्राणीके भोगयोग्य तथा उन्हींकी अभीष्ट पारिजातादि वस्तुओंका उपभोग करती हैं ॥ ३७ ॥ यदुवंशी वीर श्रीकृष्णके बाहुदण्डके प्रभावसे सुरक्षित रहकर निर्भय रहते हैं और बलपूर्वक लायी हुई बड़े-बड़े देवताओंके बैठने योग्य सुधर्मासभाको अपने चरणोंसे आक्रान्त करते हैं? ॥ ३८ ॥

भाई अर्जुन! यह भी बताओ कि तुम स्वयं तो कुशलसे

हो न ? मुझे तुम श्रीहीन-से दीख रहे हो; वहाँ बहुत दिनोंतक रहे, कहीं तुम्हारे सम्मानमें तो किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई ? किसीने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया ? ॥ ३९ ॥ कहीं किसीने दुर्भावपूर्ण अमङ्गल शब्द आदिके द्वारा तुम्हारा चित्त तो नहीं दुखाया ? अथवा किसी आशासे तुम्हारे पास आये हुए याचकोंको उनकी माँगी हुई वस्तु अथवा अपनी ओरसे कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके भी तुम नहीं दे सके ? ॥४०॥ तुम सदा शरणागतोंकी रक्षा करते आये हो; कहीं किसी भी ब्राह्मण, बालक, गौ, बूढ़े, रोगी, अबला अथवा अन्य किसी प्राणीका, जो तुम्हारी शरणमें आया हो, तुमने त्याग तो नहीं कर दिया ? ॥४१॥ कहीं तुमने अगम्या स्त्रीसे समागम तो नहीं किया ? अथवा गमन करनेयोग्य स्त्रीके साथ असत्कारपूर्वक समागम तो नहीं किया ? कहीं मार्गमें अपनेसे छोटे अथवा बराबरीवालोंसे हार तो नहीं गये ? ॥ ४२ ॥ अथवा भोजन करानेयोग्य बालक और बूढ़ोंको छोड़कर तुमने अकेले ही तो भोजन नहीं कर लिया ? मेरा विश्वास है कि तुमने ऐसा कोई निन्दित काम तो नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो ॥ ४३ ॥ हो-न-हो अपने परम प्रियतम अभिन्न-हृदय परम सुहृद् भगवान् श्रीकृष्णसे तुम रहित हो गये हो। इसीसे अपनेको शून्य मान रहे हो। इसके सिवा दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता, जिससे तुमको इतनी मानसिक पीड़ा हो ॥ ४४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

कृष्णविरहव्यथित पाण्डवोंका परीक्षित्‌को राज्य देकर स्वर्ग सिधारना

सूतजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा अर्जुन एक तो पहले ही श्रीकृष्णके विरहसे कृश हो रहे थे, उसपर राजा युधिष्ठिरने उनकी विषादग्रस्त मुद्रा देखकर उसके विषयमें कई प्रकारकी आशङ्काएँ करते हुए प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी ॥ १ ॥ शोकसे अर्जुनका मुख और हृदय-कमल सूख गया था, चेहरा फीका पड़ गया था। वे उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके ध्यानमें ऐसे डूब रहे थे कि बड़े भाईके प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर न दे सके ॥२॥ श्रीकृष्णकी आँखोंसे ओझल हो जानेके कारण वे बढ़ी हुई प्रेमजनित उत्कण्ठाके परवश हो रहे थे। रथ हाँकने, टहलने आदिके समय भगवान्‌ने उनके साथ जो मित्रता, अभिन्नहृदयता और प्रेमसे भरे हुए व्यवहार किये थे, उनकी याद-पर-याद आ रही थी; बड़े कष्टसे उन्होंने अपने शोकका वेग रोका, हाथसे नेत्रोंके आँसू पोंछे और फिर रुँधे हुए गलेसे अपने बड़े भाई महाराज युधिष्ठिरसे कहा ॥ ३-४ ॥

अर्जुन बोले—महाराज! मेरे ममेरे भाई अथवा अत्यन्त घनिष्ठ मित्रका रूप धारणकर श्रीकृष्णने मुझे ठग लिया। मेरे जिस प्रबल पराक्रमसे बड़े-बड़े देवता भी आश्चर्यमें डूब जाते थे, उसे श्रीकृष्णने मुझसे छीन लिया ॥ ५ ॥ जैसे यह शरीर प्राणसे रहित होनेपर मृतक कहलाता है, वैसे ही उनके क्षणभरके वियोगसे यह संसार अप्रिय दीखने लगता है ॥ ६ ॥ उनके आश्रयसे द्रौपदी-स्वयंवरमें राजा द्रुपदके घर आये हुए कामोन्मत्त राजाओंका तेज मैंने हरण कर लिया, धनुषपर बाण चढ़ाकर मत्स्यवेध किया और इस प्रकार द्रौपदीको प्राप्त किया था ॥ ७ ॥ उनकी सन्निधिमात्रसे मैंने समस्त देवताओंके साथ इन्द्रको अपने बलसे जीतकर अग्निदेवको उनकी तृप्तिके लिये खाण्डव वनका दान कर दिया और मय दानवकी निर्माण की हुई, अलौकिक कलाकौशलसे युक्त मायामयी सभा प्राप्त की और आपके यज्ञमें सब ओरसे आ-आकर राजाओंने अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं ॥ ८ ॥ दस हजार हाथियोंकी शक्ति और बलसे सम्पन्न आपके इन छोटे भाई भीमसेनने उन्हींकी शक्तिसे राजाओंके सिरपर पैर रखनेवाले अभिमानी जरासन्धका वध किया था; तदनन्तर उन्हीं भगवान्‌ने उन बहुत-से राजाओंको मुक्त किया, जिनको जरासन्धने महाभैरव-यज्ञमें बलि चढ़ानेके लिये बंदी बना रक्खा था। उन सब राजाओंने आपके यज्ञमें अनेकों प्रकारके उपहार दिये थे ॥ ९ ॥ महारानी द्रौपदी राजसूय-

यज्ञके महान् अभिषेकसे पवित्र हुए अपने उन सुन्दर केशोंको, जिन्हें दुष्टोंने भरी सभामें छूनेका साहस किया था, बिखेरकर तथा आँखोंमें आँसू भरकर जब श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने उसके उस घोर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करके उन धूर्तोंकी स्त्रियोंकी ऐसी दशा कर दी कि वे विधवा हो गयीं और उन्हें अपने केश अपने हाथों खोल देने पड़े ॥ १० ॥ वनवासके समय हमारे वैरी दुर्योधनके षड्यन्त्रसे दस हजार शिष्योंको साथ बिठाकर भोजन करनेवाले महर्षि दुर्वासाने हमें दुस्तर संकटमें डाल दिया था। उस समय उन्होंने द्रौपदीके पात्रमें बची हुई शाककी एक पत्तीका ही भोग लगाकर हमारी रक्षा की। उनके ऐसा करते ही नदीमें स्नान करती हुई मुनिमण्डलीको ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनकी तो बात ही क्या, सारी त्रिलोकी ही तृप्त हो गयी है * ॥ ११ ॥ उनके प्रतापसे मैंने युद्धमें पार्वतीसहित भगवान् शङ्करको आश्चर्यमें डाल दिया तथा उन्होंने मुझको अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया; साथ ही दूसरे लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये। और तो क्या, उनकी कृपासे मैं इसी शरीरसे स्वर्गमें गया और देवराज इन्द्रकी सभामें उनके बराबर आधे आसनपर बैठनेका सम्मान मैंने प्राप्त किया ॥ १२ ॥ उनके आग्रहसे जब मैं स्वर्गमें ही कुछ दिनोंतक रह गया, तब इन्द्रके साथ समस्त देवताओंने मेरी इन्हीं गाण्डीव धारण करनेवाली भुजाओंका निवातकवच आदि दैत्योंको मारनेके लिये आश्रय लिया। महाराज! यह सब जिनकी महती कृपाका फल था, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आज ठग लिया! ॥ १३ ॥

महाराज! कौरवोंकी सेना भीष्म-द्रोण आदि अजेय महामत्स्योंसे पूर्ण अपार समुद्रके समान दुस्तर थी, परंतु उनका आश्रय ग्रहण करके अकेले ही रथपर सवार हो मैं उसे पार कर गया। उन्हींकी सहायतासे, आपको याद होगा, मैंने शत्रुओंसे राजा विराटका सारा गोधन तो वापिस ले ही लिया, साथ ही उनके सिरोंपरसे चमकते हुए मणिमय मुकुट तथा अङ्गोंके अलङ्कारतक छीन लिये थे ॥ १४ ॥ भाईजी! कौरवोंकी सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य तथा अन्य बड़े-बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरोंके रथोंसे शोभायमान थी। उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टिसे ही उन महारथी यूथपतियोंकी आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे ॥ १५ ॥ द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, भूरिश्रवा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाह्लीक आदि वीरोंने मुझपर अपने कभी न चूकनेवाले अस्त्र चलाये थे; परंतु जैसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके अस्त्र-शस्त्र भगवद्भक्त प्रह्लादका स्पर्श नहीं करते थे, वैसे ही उनके शस्त्रास्त्र मुझे छूतक नहीं सके। यह श्रीकृष्णके भुजदण्डोंकी छत्रछायामें रहनेका ही प्रभाव था ॥ १६ ॥ श्रेष्ठ पुरुष संसारसे मुक्त होनेके लिये

* एक बार राजा दुर्योधनने महर्षि दुर्वासाकी बड़ी सेवा की। उससे प्रसन्न होकर मुनिने दुर्योधनसे वर माँगनेको कहा। दुर्योधनने यह सोचकर कि ऋषिके शापसे पाण्डवोंको नष्ट करनेका अच्छा अवसर है, मुनिसे कहा—"ब्रह्मन्! हमारे कुलमें युधिष्ठिर प्रधान हैं, आप अपने दस सहस्र शिष्योंसहित उनका आतिथ्य स्वीकार करें। किंतु आप उनके यहाँ उस समय जायँ जब कि द्रौपदी भोजन कर चुकी हो, जिससे उसे भूखका कष्ट न उठाना पड़े।" द्रौपदीके पास सूर्यकी दी हुई एक ऐसी बटलोई थी, जिसमें सिद्ध किया हुआ अन्न द्रौपदीके भोजन कर लेनेसे पूर्व शेष नहीं होता था; किंतु उसके भोजन करनेके बाद वह समाप्त हो जाता था। दुर्वासाजी दुर्योधनके कथनानुसार उसके भोजन कर चुकनेपर मध्याह्नमें अपनी शिष्यमण्डलीसहित पहुँचे और धर्मराजसे बोले—"हम नदीपर स्नान करने जाते हैं, तुम हमारे लिये भोजन तैयार रखना।" इससे द्रौपदीको बड़ी चिन्ता हुई और उसने अति आर्त होकर आर्तबन्धु भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली। भगवान् तुरंत ही अपना विलासभवन छोड़कर द्रौपदीकी झोंपड़ीपर आये और उससे बोले—"कृष्णे! आज बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो।" द्रौपदी भगवान्की इस अनुपम दयासे गद्गद हो गयी और बोली, "प्रभो! मेरा बड़ा भाग्य है, जो आज विश्वम्भरने मुझसे भोजन माँगा; परंतु क्या करूँ? अब तो कुटीमें कुछ भी नहीं है।" भगवान्ने कहा—"अच्छा, वह पात्र तो लाओ; उसमें कुछ होगा ही।" द्रौपदी बटलोई ले आयी; उसमें कहीं शाकका एक कण लगा था। विश्वात्मा हरिने उसीको भोग लगाकर त्रिलोकीको तृप्त कर दिया और भीमसेनसे कहा कि मुनिमण्डलीको भोजनके लिये बुला लाओ। किंतु मुनिगण तो पहले ही तृप्त होकर भाग गये थे। (महाभारत)

जिनके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, अपने-आपतकको दे डालनेवाले उन भगवान्‌को मुझ दुर्बुद्धिने सारथितक बना डाला ! अहा ! जिस समय मेरे घोड़े थक गये थे और मैं रथसे उतरकर पृथ्वीपर खड़ा था, उस समय बड़े-बड़े महारथी शत्रु भी मुझपर प्रहार न कर सके; क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी ॥ १७ ॥ महाराज ! माधवके उन्मुक्त और मधुर मुसकानसे युक्त, विनोदभरे एवं हृदयस्पर्शी वचन, और उनका मुझे 'पार्थ, अर्जुन, सखा, कुरुनन्दन' आदि कहकर पुकारना, मुझे याद आनेपर मेरे हृदयमें उथल-पुथल मचा देते हैं ॥ १८ ॥ सोने, बैठने, टहलने और अपने सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें करने तथा भोजन आदि करनेमें हम प्रायः एक साथ रहा करते थे । किसी-किसी दिन मैं व्यंग्यसे उन्हें कह बैठता, 'मित्र ! तुम तो बड़े सत्यवादी हो !' उस समय भी वे महापुरुष अपनी महानुभावताके कारण, जैसे मित्र अपने मित्रका और पिता अपने पुत्रका अपराध सह लेता है उसी प्रकार, मुझ दुर्बुद्धिके अपराधोंको सह लिया करते थे ॥ १९ ॥ महाराज ! जो मेरे सखा, प्रिय मित्र—नहीं-नहीं मेरे हृदय ही थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान्‌से मैं रहित हो गया हूँ । भगवान्‌की पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ ला रहा था, परंतु मार्गमें दुष्ट गोपोंने मुझे एक अबलाकी भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका ॥२०॥ वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है, वही घोड़े हैं और वही मैं रथी अर्जुन हूँ, जिसके सामने बड़े-बड़े राजालोग सिर झुकाया करते थे । श्रीकृष्णके बिना ये सब एक ही क्षणमें नहींके समान सारशून्य हो गये—ठीक उसी तरह, जैसे भस्ममें डाली हुई आहुति, कपटभरी सेवा और ऊसरमें बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है ॥ २१ ॥

राजन् ! आपने द्वारकावासी अपने जिन सुहृद्-सम्बन्धियोंकी बात पूछी है, वे ब्राह्मणोंके शापवश मोहग्रस्त हो गये और वारुणी मदिराके पानसे मदोन्मत्त होकर अपरिचितोंकी भाँति आपसमें ही एक-दूसरेसे भिड़ गये और घूँसोंसे मार-पीट करके सब-के-सब नष्ट हो गये । उनमेंसे केवल चार-पाँच ही बचे हैं ॥२२-२३॥ वास्तवमें यह सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की ही लीला है कि संसारके प्राणी परस्पर एक-दूसरेका पालन-पोषण भी करते हैं और एक-दूसरेको मार भी डालते हैं ॥२४॥ राजन् ! जिस प्रकार जलचरोंमें बड़े जन्तु छोटोंको, बलवान् दुर्बलोंको एवं बड़े और बलवान् भी परस्पर एक-दूसरेको खा जाते हैं, उसी प्रकार अतिशय बली और बड़े यदुवंशियोंके द्वारा भगवान्‌ने दूसरे राजाओंका संहार कराया । तत्पश्चात् यदुवंशियोंके द्वारा ही एकसे दूसरे यदुवंशीका नाश कराके पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार उतार दिया ॥ २५-२६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मुझे जो शिक्षाएँ दी थीं, वे देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप तथा हृदयके तापको शान्त करनेवाली थीं; स्मरण आते ही वे हमारे चित्तका हरण कर लेती हैं ॥ २७ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रगाढ़ प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन करते-करते अर्जुनकी चित्तवृत्ति अत्यन्त निर्मल और प्रशान्त हो गयी॥२८॥ उनकी प्रेममयी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके अहर्निश चिन्तनसे अत्यन्त बढ़ गयी । भक्तिके वेगने उनके हृदयको मथकर उसमेंसे सारे विकारोंको बाहर निकाल दिया ॥२९॥ उन्हें युद्धके प्रारम्भमें भगवान्‌के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुनः स्मरण हो आया, जिसकी कालके व्यवधान, और कर्मोंके विस्तारके कारण प्रमादवश कुछ दिनोंके लिये विस्मृति हो गयी थी ॥३०॥ ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिसे मायाका आवरण भङ्ग होकर गुणातीत अवस्था प्राप्त हो गयी । द्वैतका संशय निवृत्त हो गया । सूक्ष्मशरीर भङ्ग हुआ । वे शोक एवं जन्म-मृत्युके चक्रसे सर्वथा मुक्त हो गये ॥३१॥

भगवान्‌के स्वधाम-गमन और यदुवंशके संहारका वृत्तान्त सुनकर निश्चलमति युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका निश्चय किया ॥ ३२ ॥ कुन्तीने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशियोंके नाश और भगवान्‌के स्वधाम-गमनकी बात सुनकर अनन्य भक्तिसे अपने हृदयको भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया और सदाके लिये इस जन्म-मृत्युरूप संसारसे अपना मुँह मोड़ लिया ॥ ३३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने लोक-दृष्टिमें जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार उतारा था, उसका वैसे ही परित्याग कर दिया, जैसे कोई काँटेसे काँटा निकालकर फिर दोनोंको फेंक दे । भगवान्‌की

दृष्टिमें दोनों ही समान थे ॥ ३४ ॥ जैसे वे नटके समान मत्स्यादि रूप धारण करते हैं और फिर उनका त्याग कर देते हैं, वैसे ही उन्होंने जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार दूर किया था, उसे त्याग भी दिया ॥ ३५ ॥ जिनकी मधुर लीलाएँ श्रवण करनेयोग्य हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णने जब अपने मनुष्यके-से शरीरसे इस पृथ्वीका परित्याग कर दिया, उसी दिन विचारहीन लोगोंको अधर्ममें फँसानेवाला कलियुग आ धमका ॥३६॥ महाराज युधिष्ठिरसे कलियुगका फैलना छिपा न रहा। उन्होंने देखा—देशमें, नगरमें, घरोंमें और प्राणियोंमें लोभ, असत्य, छल, हिंसा आदि अधर्मोंकी बढ़ती हो गयी है। तब उन्होंने महाप्रस्थानका निश्चय किया ॥ ३७ ॥ उन्होंने अपने विनयी पौत्र परीक्षित्‌को, जो गुणोंमें उन्हींके समान थे, समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीके सम्राट्-पदपर हस्तिनापुरमें अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने मथुरामें शूरसेनाधिपतिके रूपमें अनिरुद्धके पुत्र वज्रका अभिषेक किया। इसके बाद समर्थ युधिष्ठिरने प्राजापत्य यज्ञ करके आहवनीय आदि अग्नियोंको अपनेमें लीन कर दिया अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मसे मुक्त होकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ युधिष्ठिरने अपने सब वस्त्राभूषण आदि वहीं छोड़ दिये एवं ममता और अहंकारसे रहित होकर समस्त बन्धन काट डाले ॥ ४० ॥ उन्होंने दृढ़ भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें, प्राणको अपानमें और अपानको उसकी क्रियाके साथ मृत्युमें तथा मृत्युको पञ्चभूतमय शरीरमें लीन कर लिया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार शरीरको मृत्युरूप अनुभव करके उन्होंने उसे त्रिगुणमें मिला दिया, त्रिगुणको मूल प्रकृतिमें, सर्वकारणरूपा प्रकृतिको आत्मामें और आत्माको अविनाशी ब्रह्ममें विलीन कर दिया। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि यह सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप है ॥ ४२ ॥ इसके पश्चात् उन्होंने शरीरपर चीर-वस्त्र धारण कर लिया, अन्न-जलका त्याग कर दिया, मौन ले लिया और केश खोलकर बिखेर लिये। वे अपने रूपको ऐसा दिखाने लगे जैसे कोई जड, उन्मत्त या पिशाच हो ॥ ४३ ॥ फिर वे बिना किसीकी बाट देखे तथा बहरेकी तरह बिना किसीकी बात सुने, घरसे निकल पड़े। हृदयमें उस परब्रह्मका ध्यान करते हुए, जिसको प्राप्त करके फिर लौटना नहीं होता, उन्होंने उत्तर दिशाकी यात्रा की, जिस ओर पहले बड़े-बड़े महात्मा जा चुके हैं ॥ ४४ ॥

भीमसेन, अर्जुन आदि युधिष्ठिरके छोटे भाइयोंने भी देखा कि अब पृथ्वीमें सभी लोगोंको अधर्मके सहायक कलियुगने प्रभावित कर डाला है; इसलिये वे भी श्रीकृष्ण-चरणोंकी प्राप्तिका दृढ निश्चय करके अपने बड़े भाईके पीछे-पीछे चल पड़े ॥४५॥ उन्होंने जीवनके सभी लाभ भलीभाँति प्राप्त कर लिये थे; इसलिये यह निश्चय करके कि भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमल ही हमारे परम पुरुषार्थ हैं, उन्होंने उन्हें हृदयमें धारण किया ॥ ४६॥ पाण्डवोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके ध्यानसे भक्ति-भाव उमड़ आया, उनकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णके उस सर्वोत्कृष्ट स्वरूपमें अनन्य भावसे स्थिर हो गयी; जिसमें निष्पाप पुरुष ही स्थिर हो पाते हैं। फलत: उन्होंने अपने विशुद्ध अन्त:करणसे स्वयं ही वह गति प्राप्त की, जो विषयासक्त दुष्ट मनुष्योंको कभी प्राप्त नहीं हो सकती ॥४७-४८॥ संयमी एवं श्रीकृष्णके प्रेमावेशमें मुग्ध भगवन्मय विदुरजीने भी अपने शरीरको प्रभास-क्षेत्रमें त्याग दिया। उस समय उन्हें लेनेके लिये आये हुए पितरोंके साथ वे अपने लोक (यमलोक) को चले गये ॥४९॥ द्रौपदीने देखा कि अब पाण्डवलोग निरपेक्ष हो गये हैं; तब वे अनन्य प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णका ही चिन्तन करके उन्हें प्राप्त हो गयीं ॥ ५० ॥

भगवान्‌के प्यारे भक्त पाण्डवोंके महाप्रयाणकी इस परम पवित्र और मङ्गलमयी कथाको जो पुरुष श्रद्धासे सुनता है, वह निश्चय ही भगवान्‌की भक्ति और मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥

सोलहवाँ अध्याय

परीक्षित्‌की दिग्विजय तथा धर्म और पृथ्वीका संवाद

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! पाण्डवोंके महाप्रयाणके पश्चात् भगवान्‌के परम भक्त राजा परीक्षित् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका शासन करने लगे । उनके जन्मके समय ज्योतिषियोंने उनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, वास्तवमें वे सभी महान् गुण उनमें विद्यमान थे ॥ १ ॥ उन्होंने उत्तरकी पुत्री इरावतीसे विवाह किया । उससे उन्होंने जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ तथा कृपाचार्यको आचार्य बनाकर उन्होंने गङ्गाके तटपर तीन अश्वमेध-यज्ञ किये, जिनमें ब्राह्मणोंको पुष्कल दक्षिणा दी गयी । उन यज्ञोंमें देवताओंने प्रत्यक्षरूपमें प्रकट होकर अपना भाग ग्रहण किया था ॥ ३ ॥ एक बार दिग्विजय करते समय उन्होंने देखा कि शूद्रके रूपमें कलियुग राजाका वेष धारण करके एक गाय और बैलके जोड़ेको ठोकरोंसे मार रहा है । तब उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया ॥ ४ ॥

शौनकजीने पूछा—महाभाग्यवान् सूतजी ! दिग्विजयके समय महाराज परीक्षित्‌ने कलियुगको दण्ड देकर ही क्यों छोड़ दिया—मार क्यों नहीं डाला ? क्योंकि राजाका वेष धारण करनेपर भी था तो वह अधम शूद्र ही, जिसने गायको लातसे मारा था ? यदि यह प्रसङ्ग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलासे अथवा उनके चरणकमलोंके मकरन्द-रसका पान करनेवाले रसिक महानुभावोंसे सम्बन्ध रखता हो तो अवश्य कहिये । दूसरी व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ । उनमें तो आयु व्यर्थ नष्ट होती है ॥५-६॥ प्यारे सूतजी ! जो लोग चाहते तो हैं मोक्ष परन्तु अल्पायु होनेके कारण मृत्युसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके कल्याणके लिये भगवान् यमका आवाहन करके उन्हें यहाँ शान्तिकर्ममें नियुक्त कर दिया गया है ॥ ७ ॥ जबतक यमराज यहाँ इस कर्ममें नियुक्त हैं, तबतक किसीकी मृत्यु नहीं होगी । मृत्युसे ग्रस्त मनुष्यलोकके जीव भी भगवान्‌की सुधातुल्य लीला-कथाका पान कर सकें, इसीलिये महर्षियोंने भगवान् यमको यहाँ बुलाया है ॥ ८ ॥ एक तो थोड़ी आयु और दूसरे कम समझ । ऐसी अवस्थामें संसारके मन्दभाग्य विषयी पुरुषोंकी आयु व्यर्थ ही बीती जा रही है—नींदमें रात और व्यर्थके कामोंमें दिन ॥ ९ ॥

सूतजीने कहा—जिस समय राजा परीक्षित् कुरुजाङ्गल देशमें सम्राट्‌के रूपमें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने सुना कि मेरी सेनाद्वारा सुरक्षित साम्राज्यमें कलियुगका प्रवेश हो गया है । इस समाचारसे उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ; परन्तु यह सोचकर कि युद्ध करनेका अवसर हाथ लगा, वे उतने दुखी नहीं हुए । इसके बाद युद्धवीर परीक्षित्‌ने धनुष हाथमें ले लिया ॥ १० ॥ वे श्यामवर्णके घोड़ोंसे जुते हुए, सिंहकी ध्वजावाले, सुसज्जित, रथपर सवार होकर दिग्विजय करनेके लिये नगरसे बाहर निकल पड़े । उस समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना उनके साथ-साथ चल रही थी ॥ ११ ॥ उन्होंने भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष आदि सभी वर्षोंको जीतकर वहाँके राजाओंसे भेंट ली ॥ १२ ॥ उन्हें उन देशोंमें सर्वत्र अपने पूर्वज महात्माओंका सुयश सुननेको मिला । उस यशोगानसे पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा प्रकट होती थी ॥ १३ ॥ इसके साथ ही उन्हें यह भी सुननेको मिलता था कि भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे किस प्रकार उनकी रक्षा की थी, यदुवंशी और पाण्डवोंमें परस्पर कितना प्रेम था तथा पाण्डवोंकी भगवान् श्रीकृष्णमें कितनी भक्ति थी ॥ १४ ॥ जो लोग उन्हें ये चरित्र सुनाते, उनपर महामना राजा परीक्षित् बहुत प्रसन्न होते; उनके नेत्र प्रेमसे खिल उठते । वे बड़ी उदारतासे उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और मणियोंके हार उपहाररूपमें देते ॥ १५ ॥ वे सुनते कि भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमपरवश होकर पाण्डवोंके सारथिका काम किया, उनके सभासद् बने—यहाँतक कि उनके मनके अनुसार काम करके उनकी सेवा भी की । उनके सखा तो थे ही, दूत भी बने । वे रातको शस्त्र ग्रहण करके वीरासनसे बैठ जाते और शिविरका पहरा देते, उनके पीछे-पीछे चलते, स्तुति करते तथा प्रणाम करते; इतना ही

अपने प्रेमी पाण्डवोंके चरणोंमें उन्होंने सारे जगत्‌को झुका दिया। तब परीक्षित्‌की भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें और भी बढ़ जाती ॥ १६ ॥ इस प्रकार वे दिन-दिन पाण्डवोंके आचरणका अनुसरण करते हुए दिग्विजय कर रहे थे। उन्हीं दिनों उनके शिविरसे थोड़ी ही दूरपर एक आश्चर्यजनक घटना घटी। वह मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १७ ॥ धर्म बैलका रूप धारण करके एक पैरसे घूम रहा था। एक स्थानपर उसे गायके रूपमें पृथ्वी मिली। पुत्रकी मृत्युसे दुःखिनी माताके समान उसके नेत्रोंसे आँसुओंके झरने झर रहे थे। उसका शरीर श्रीहीन हो गया था। धर्म पृथ्वीसे पूछने लगा ॥ १८ ॥

धर्मने कहा—कल्याणि! कुशलसे तो हो न? तुम्हारा मुख कुछ-कुछ मलिन हो रहा है। तुम श्रीहीन हो रही हो। मालूम होता है तुम्हारे हृदयमें कुछ-न-कुछ दुःख अवश्य है। क्या तुम्हारा कोई सम्बन्धी दूर देशमें चला गया है, जिसके लिये तुम इतनी चिन्ता कर रही हो? ॥ १९ ॥ कहीं तुम मेरी तो चिन्ता नहीं कर रही हो कि अब इसके तीन पैर टूट गये, एक ही पैर रह गया है? सम्भव है, तुम अपने लिये शोक कर रही हो कि अब शूद्र तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे। तुम्हें इन देवताओंके लिये भी खेद हो सकता है, जिन्हें अब यज्ञोंमें आहुति नहीं दी जाती, अथवा उस प्रजाके लिये भी, जो वर्षा न होनेके कारण अकाल एवं दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है ॥ २० ॥ देवि! क्या तुम राक्षस-सरीखे मनुष्योंके द्वारा सतायी हुई अरक्षित स्त्रियों एवं आर्तबालकोंके लिये शोक कर रही हो? सम्भव है, विद्या अब कुकर्मी ब्राह्मणोंके चंगुलमें पड़ गयी है और ब्राह्मण विप्रद्रोही राजाओंकी सेवा करने लगे हैं, और इसीका तुम्हें दुःख हो ॥ २१ ॥ आजके नाममात्रके राजा तो सोलहो आने कलियुगी हो गये हैं, उन्होंने बड़े-बड़े देशोंको भी उजाड़ डाला है। क्या तुम उन राजाओं या देशोंके लिये शोक कर रही हो? आजकी जनता खान-पान, वस्त्र, स्नान और स्त्री-सहवास आदिमें शास्त्रीय नियमोंका पालन न करके स्वेच्छाचार कर रही है; क्या इसके लिये तुम दुखी हो? ॥ २२ ॥ मा पृथ्वी! अब समझमें आया, हो-न-हो तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णकी याद आ रही होगी; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा भार उतारनेके लिये ही अवतार लिया था और ऐसी लीलाएँ की थीं, जो मोक्षका भी अवलम्बन हैं। अब उनके लीला संवरण कर लेनेपर उनके परित्यागसे तुम दुखी हो रही हो ॥ २३ ॥ देवि! तुम तो धन-रत्नोंकी खान हो। तुम अपने क्लेशका कारण, जिससे तुम इतनी दुर्बल हो गयी हो, मुझे बतलाओ। मालूम होता है, बड़े-बड़े बलवानोंको भी हरा देनेवाले कालने देवताओंके द्वारा वन्दनीय तुम्हारे सौभाग्यको छीन लिया है ॥ २४ ॥

पृथ्वीने कहा—धर्म! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब स्वयं जानते हो। जिन भगवान्‌के सहारे तुम सारे संसारको सुख पहुँचानेवाले अपने चारों चरणोंसे युक्त थे; जिनमें सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, वीरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और निरहङ्कारता—ये उन्तालीस अप्राकृत गुण तथा महत्त्वाकांक्षी पुरुषोंके द्वारा वाञ्छनीय (शरणागतवत्सलता आदि) और भी बहुत-से महान् गुण उनकी सेवा करनेके लिये नित्य-निरन्तर निवास करते हैं, एक क्षणके लिये भी उनसे अलग नहीं होते—उन्हीं समस्त गुणोंके आश्रय, सौन्दर्यधाम भगवान् श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीला संवरण कर ली और यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया। यही देखकर मुझे बड़ा शोक हो रहा है ॥ २५—३० ॥ अपने लिये, देवताओंमें श्रेष्ठ तुम्हारे लिये, देवता, पितर, ऋषि, साधु और समस्त वर्णों तथा आश्रमोंके मनुष्योंके लिये मैं शोकग्रस्त हो रही हूँ ॥ ३१ ॥ जिनका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मा आदि देवता भगवान्‌के शरणागत होकर बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, वही लक्ष्मीजी अपने निवासस्थान कमलवनका परित्याग करके बड़े प्रेमसे जिनके चरणकमलोंकी सुभग छत्रछाया-का सेवन करती हैं, उन्हीं भगवान्‌के कमल, वज्र, अङ्कुश,

ध्वजा आदि चिह्नोंसे युक्त श्रीचरणोंसे विभूषित होनेके कारण मुझे महान् वैभव प्राप्त हुआ था और मेरी तीनों लोकोंसे बढ़कर शोभा हुई थी; परन्तु मेरे सौभाग्यका अब अन्त हो गया ! भगवान्ने मुझ अभागिनीको छोड़ दिया ! मालूम होता है मुझे अपने सौभाग्यपर गर्व हो गया था, इसीलिये उन्होंने मुझे यह दण्ड दिया है ॥ ३२-३३ ॥

तुम अपने तीन चरणोंके कम हो जानेसे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे; अतः अपने पुरुषार्थसे तुम्हें अपने ही अंदर पुनः सब अङ्गोंसे पूर्ण एवं स्वस्थ कर देनेके लिये वे अत्यन्त रमणीय श्यामसुन्दर विग्रहसे यदुवंशमें प्रकट हुए और मेरे बड़े भारी भारको, जो असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणियोंके रूपमें था, नष्ट कर डाला। क्योंकि वे परम स्वतन्त्र थे ॥ ३४ ॥ जिन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवन, मनोहर मुसकान और मीठी-मीठी बातोंसे सत्यभामा आदि मधुमयी मानिनियोंके मानके साथ धीरजको भी छीन लिया था और जिनके चरण-कमलोंके स्पर्शसे मैं निरन्तर आनन्दसे पुलकित रहती थी, उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका विरह भला, कौन सह सकती है ॥ ३५ ॥

धर्म और पृथ्वी इस प्रकार आपसमें बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय राजर्षि परीक्षित् पूर्ववाहिनी सरस्वतीके तटपर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित्द्वारा कलियुगका दमन

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! वहाँ पहुँचकर राजा परीक्षित्ने देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए है और गाय-बैलके एक जोड़ेको इस तरह पीटता जा रहा है, जैसे उनका कोई स्वामी ही न हो ॥ १ ॥ वह कमल-तन्तुके समान श्वेत रंगका बैल एक पैरसे खड़ा काँप रहा था तथा शूद्रकी ताड़नासे पीड़ित और भयभीत होकर मूत्र-त्याग कर रहा था ॥ २ ॥ धर्मोपयोगी दूध, घी आदि हविष्य पदार्थोंको देनेवाली वह गाय भी बार-बार शूद्रके पैरोंकी ठोकरें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी। एक तो वह स्वयं ही दुबली-पतली थी, दूसरे उसका बछड़ा भी उसके पास नहीं था। उसे भूख लगी हुई थी और उसकी आँखोंसे आँसू बहते जा रहे थे ॥ ३ ॥ स्वर्णजटित रथपर चढ़े हुए राजा परीक्षित्ने अपना धनुष चढ़ाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उसको ललकारा ॥ ४ ॥ अरे ! तू कौन है, जो बलवान् होकर भी मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको बलपूर्वक मार रहा है ? तूने नटकी भाँति वेष तो राजाका-सा बना रक्खा है, परंतु कर्मसे तू शूद्र जान पड़ता है ॥ ५ ॥ हमारे दादा अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इस प्रकार निर्जन स्थानमें निरपराधोंपर प्रहार करनेवाला तू अपराधी है, अतः वधके योग्य है ॥ ६ ॥

उन्होंने धर्मसे पूछा—कमल-नालके समान आपका श्वेतवर्ण है। तीन पैर न होनेपर भी आप एक ही पैरसे चलते-फिरते हैं। यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। बतलाइये, आप क्या बैलके रूपमें कोई देवता हैं ? ॥ ७ ॥ अभी यह भूमण्डल कुरुवंशी नरपतियोंके बाहुबलसे सुरक्षित है। इसमें आपके सिवा और किसी भी प्राणीकी आँखोंसे शोकके आँसू बहते मैंने नहीं देखे ॥ ८ ॥ धेनुपुत्र ! अब आप शोक न करें। इस शूद्रसे निर्भय हो जायँ। गोमाता ! मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ। अब आप रोयें नहीं। आपका कल्याण हो ॥ ९ ॥ देवि ! जिस राजाके राज्यमें दुष्टोंके उपद्रवसे सारी प्रजा त्रस्त रहती है, उस मतवाले राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥ राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुखियोंका दुःख दूर करें। यह महादुष्ट और प्राणियोंको पीड़ित करनेवाला है। अतः मैं अभी इसे मार डालूँगा ॥ ११ ॥ सुरभिनन्दन ! आप तो चार पैरवाले जीव हैं। आपके तीन पैर किसने काट डाले ? श्रीकृष्णके

अनुयायी राजाओंके राज्यमें कभी कोई भी आपकी तरह दुखी न हो ॥ १२ ॥ वृषभ ! आपका कल्याण हो । बताइये, आप-जैसे निरपराध साधुओंका अङ्ग-भङ्ग करके किस दुष्टने पाण्डवोंकी कीर्तिमें कलङ्क लगाया है? ॥ १३ ॥ जो किसी निरपराध प्राणीको सताता है, उसे, चाहे वह कहीं भी रहे, मेरा भय अवश्य होगा। दुष्टोंका दमन करनेसे साधुओंका कल्याण ही होता है ॥ १४ ॥ जो उद्दण्ड व्यक्ति निरपराध प्राणियोंको दुःख देता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो, मैं उसकी बाजूबंदसे विभूषित भुजाको काट डालूँगा ॥ १५॥ बिना आपत्तिकालके मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देते हुए अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना राजाओंका परम धर्म है ॥ १६ ॥

धर्मने कहा—राजन्! आप महाराज पाण्डुके वंशज हैं। आपका इस प्रकार दुखियोंको आश्वासन देना आपके योग्य ही है; क्योंकि आपके पूर्वजोंके श्रेष्ठ गुणोंने भगवान् श्रीकृष्णको उनका सारथि और दूत आदि बना दिया था ॥१७॥ नरेन्द्र! शास्त्रोंके विभिन्न वचनोंसे मोहित होनेके कारण हम उस पुरुषको नहीं जानते, जिससे क्लेशोंके कारण उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ जो लोग किसी भी प्रकारके द्वैतको स्वीकार नहीं करते, वे अपने-आपको ही अपने दुःख-का कारण बतलाते हैं। कोई प्रारब्धको कारण बतलाते हैं, तो कोई कर्मको। कुछ लोग स्वभावको, तो कुछ लोग ईश्वरको दुःखका कारण मानते हैं ॥ १९ ॥ किन्हीं-किन्हींका ऐसा भी निश्चय है कि दुःखका कारण न तो तर्कके द्वारा जाना जा सकता है और न वाणीके द्वारा बतलाया जा सकता है। राजर्षे! अब इनमें कौन-सा मत ठीक है, यह आप अपनी बुद्धिसे ही विचार लीजिये ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिश्रेष्ठ शौनकजी! धर्मका यह प्रवचन सुनकर सम्राट् परीक्षित् बहुत प्रसन्न हुए, उनका खेद मिट गया। उन्होंने शान्तचित्त होकर उनसे कहा ॥२१॥

परीक्षित्ने कहा—धर्मका तत्त्व जाननेवाले वृषभ-देव! आप धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अवश्य ही आप वृषभके रूपमें स्वयं धर्म हैं। (आपने अपनेको दुःख देनेवालेका नाम इसलिये नहीं बताया है कि) अधर्म करनेवालेको जो नरकादि प्राप्त होते हैं, वे ही चुगली करनेवालेको भी मिलते हैं ॥ २२ ॥ अथवा यही सिद्धान्त निश्चित है कि प्राणियोंके मन और वाणीसे परमेश्वरकी मायाके स्वरूपका निरूपण नहीं किया जा सकता ॥ २३ ॥ धर्मदेव! सत्ययुगमें आपके चार चरण थे—तप, पवित्रता, दया और सत्य। इस समय अधर्मके अंश गर्व, आसक्ति और मदसे तीन चरण नष्ट हो चुके हैं ॥ २४ ॥ अब आपका चौथा चरण केवल 'सत्य' ही बच रहा है। उसीके बलपर आप जी रहे हैं। असत्यसे पुष्ट हुआ यह अधर्मरूप कलियुग उसे भी ग्रास कर लेना चाहता है ॥ २५ ॥ ये गौ माता साक्षात् पृथ्वी हैं। भगवान्ने इनका भारी बोझ उतार दिया था और ये उनके राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरनेवाले चरण-चिह्नोंसे सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं ॥ २६ ॥ अब ये उनसे बिछुड़ गयी हैं। ये साध्वी अभागिनीके समान नेत्रोंमें जल भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब राजाका स्वाँग बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मुझे भोगेंगे ॥२७॥

महारथी परीक्षित्ने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको सान्त्वना दी। फिर उन्होंने अधर्मके कारणरूप कलियुग-को मारनेके लिये तीक्ष्ण तलवार उठायी ॥ २८ ॥ कलियुग ताड़ गया कि ये तो अब मुझे मार ही डालना चाहते हैं; अतः झटपट उसने अपने राजचिह्न उतार डाले और भयविह्वल होकर उनके चरणोंमें अपना सिर रख दिया ॥ २९ ॥ परीक्षित् बड़े यशस्वी, दीनवत्सल और शरणागतरक्षक थे। उन्होंने जब कलियुगको अपने पैरोंपर पड़े देखा तो कृपा करके उसको मारा नहीं, अपि तु हँसते हुए-से उससे कहा ॥ ३० ॥

परीक्षित् बोले—जब तू हाथ जोड़कर शरण आ गया, तब अर्जुनके यशस्वी वंशमें उत्पन्न हुए किसी भी वीरसे तुझे कोई भय नहीं है। परंतु तू अधर्मका सहायक है, इसलिये तुझे मेरे राज्यमें बिल्कुल नहीं रहना चाहिये ॥३१॥ तेरे राजाओंके शरीरमें रहनेसे ही लोभ, झूठ, चोरी, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ और दूसरे पापोंकी बढ़ती हो रही है ॥ ३२ ॥

अतः अधर्मके साथी ! इस ब्रह्मावर्तमें तू एक क्षणके लिये भी न ठहरना; क्योंकि यह धर्म और सत्यका निवासस्थान है। इस क्षेत्रमें यज्ञविधिके जाननेवाले महात्मा यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान्‌की आराधना करते रहते हैं ॥ ३३ ॥ इस देशमें भगवान् श्रीहरि यज्ञोंके रूपमें निवास करते हैं, यज्ञोंके द्वारा उनकी पूजा होती है और वे यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं। वे सर्वात्मा भगवान् वायुकी भाँति समस्त चराचर जीवोंके भीतर और बाहर एकरस स्थित रहते हुए उनकी कामनाओंको पूर्ण करते रहते हैं ॥ ३४ ॥

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्‌की यह आज्ञा सुनकर कलियुग सिहर उठा। यमराजके समान मारनेके लिये उद्यत, हाथमें तलवार लिये हुए परीक्षित्‌से वह बोला ॥ ३५ ॥

कलिने कहा—सार्वभौम ! आपकी आज्ञासे जहाँ कहीं भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहीं देखता हूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये खड़े हैं ॥ ३६ ॥ धार्मिकशिरोमणे ! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ॥ ३७ ॥

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षित्‌ने उसे चार स्थान दिये—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-सङ्ग और हिंसा। इन स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं ॥ ३८ ॥ उसने और भी स्थान माँगे। तब समर्थ परीक्षित्‌ने उसे रहनेके लिये एक और स्थान—'सुवर्ण' (धन)—दिया। इस प्रकार कलियुगके पाँच स्थान हो गये—झूठ, मद, काम, वैर और रजोगुण ॥ ३९ ॥ परीक्षित्‌के दिये हुए इन्हीं पाँच स्थानोंमें अधर्मका मूल कारण कलि उनकी आज्ञाओंका पालन करता हुआ निवास करने लगा ॥ ४० ॥ इसलिये आत्मकल्याणकामी पुरुषको इन पाँचों स्थानोंका सेवन कभी नहीं करना चाहिये। धार्मिक राजा, प्रजावर्गके लौकिक नेता और धर्मोपदेष्टा गुरुओंको तो बड़ी सावधानीसे इनका त्याग करना चाहिये ॥ ४१ ॥ राजा परीक्षित्‌ने इसके बाद वृषभरूप धर्मके तीनों चरण—तपस्या, शौच और दया जोड़ दिये और आश्वासन देकर पृथ्वीका संवर्धन किया ॥ ४२ ॥ वे ही महाराजा परीक्षित् इस समय अपने राजसिंहासनपर, जिसे उनके पितामह महाराज युधिष्ठिरने वनमें जाते समय उन्हें दिया था, विराजमान हैं ॥ ४३ ॥ वे परम यशस्वी सौभाग्यभाजन चक्रवर्ती सम्राट् राजर्षि परीक्षित् इस समय हस्तिनापुरमें कौरव-कुलकी राज्यलक्ष्मीसे शोभायमान हैं ॥ ४४ ॥ अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित् वास्तवमें ऐसे ही प्रभावशाली हैं, जिनके शासनकालमें आप लोग इस दीर्घकालीन यज्ञके लिये दीक्षित हुए हैं* ॥ ४५ ॥

अठारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित्‌को शृङ्गी ऋषिका शाप

सूतजी कहते हैं—अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे राजा परीक्षित् अपनी माताकी कोखमें अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल जानेपर भी मरे नहीं ॥ १ ॥ जिस समय ब्राह्मणके शापसे उन्हें डसनेके लिये तक्षक आया, उस समय वे प्राणनाशके महान् भयसे भी भयभीत नहीं हुए; क्योंकि उन्होंने अपना चित्त भगवान्

* ४२ से ४५ तकके श्लोकोंमें महाराज परीक्षित्‌का वर्तमानके समान वर्णन किया गया है। 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' (पा० सू० ३।३।१३१) इस पाणिनि-सूत्रके अनुसार वर्तमानके निकटवर्ती भूत और भविष्यके लिये भी वर्तमानका प्रयोग किया जा सकता है। जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने अपनी टीकामें लिखा है कि यद्यपि परीक्षित्‌की मृत्यु हो गयी थी, फिर भी उनकी कीर्ति और प्रभाव वर्तमानके समान ही विद्यमान थे। उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये उनकी दूरी यहाँ मिटा दी गयी है। उन्हें भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त हो गया था, इसलिये भी सूतजीको वे अपने सम्मुख ही दीख रहे हैं। न केवल उन्हींको, बल्कि सबको इस बातकी प्रतीति हो रही है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः' इस श्रुतिके अनुसार जनमेजयके रूपमें भी वही राजसिंहासनपर बैठे हुए हैं। इन सब कारणोंसे वर्तमानके रूपमें उनका वर्णन भी कथाके रसको पुष्ट ही करता है।

श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित कर रक्खा था ॥ २ ॥ उन्होंने सबकी आसक्ति छोड़ दी, गङ्गातटपर जाकर श्रीशुकदेवजीसे उपदेश ग्रहण किया और इस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपको जानकर अपने शरीरको त्याग दिया ॥ ३ ॥ जो लोग भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथा कहते रहते हैं, उस कथामृतका पान करते रहते हैं और इन दोनों ही साधनोंके द्वारा उनके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हैं, उन्हें अन्त-कालमें भी मोह नहीं होता ॥ ४ ॥ जबतक पृथ्वीपर अभिमन्युनन्दन महाराज परीक्षित् सम्राट् रहे, तबतक चारों ओर व्याप्त हो जानेपर भी कलियुगका कुछ भी प्रभाव नहीं था ॥ ५ ॥ वैसे तो जिस दिन जिस क्षण श्रीकृष्णने पृथ्वीका परित्याग किया, उसी समय पृथ्वीमें अधर्मका मूलकारण कलियुग आ गया था ॥ ६ ॥ भ्रमरके समान सारग्राही सम्राट् परीक्षित् कलियुगसे कोई द्वेष नहीं रखते थे; क्योंकि इसमें यह एक बहुत बड़ा गुण है कि पुण्यकर्म तो सङ्कल्पमात्रसे ही फलीभूत हो जाते हैं, परंतु पापकर्मका फल शरीरसे करनेपर ही मिलता है; संकल्पमात्रसे नहीं ॥ ७ ॥ यह भेड़ियेके समान बालकोंके प्रति शूरवीर और धीर-वीर पुरुषोंके लिये बड़ा भीरु है। यह प्रमादी मनुष्यों-को अपने वशमें करनेके लिये ही सदा सावधान रहता है ॥ ८ ॥ शौनकादि ऋषियो ! आपलोगोंको मैंने भगवान्‌की कथासे युक्त राजा परीक्षित्‌का पवित्र चरित्र सुनाया। आपलोगोंने यही पूछा था ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण कीर्तन करनेयोग्य बहुत-सी लीलाएँ करते हैं। इसलिये उनके गुण और लीलाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी कथाएँ हैं, कल्याणकामी पुरुषोंको उन सबका सेवन करना चाहिये ॥ १० ॥

ऋषियोंने कहा—सौम्यस्वभाव सूतजी ! आप युग-युग जीयें; क्योंकि मृत्युके प्रवाहमें पड़े हुए हमलोगोंको आप भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी उज्ज्वल कीर्तिका श्रवण कराते हैं ॥ ११ ॥ यज्ञ करते-करते उसके धूएँसे हमलोगोंका शरीर धूमिल हो गया है। फिर भी इस कर्मका कोई विश्वास नहीं है। इधर आप तो वर्तमानमें ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरण-कमलोंका मादक और मधुर मधु पिलाकर हमें तृप्त कर रहे हैं ॥ १२ ॥ भगवत्प्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सत्सङ्गसे स्वर्ग एवं मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती; फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है ॥ १३ ॥ ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ होगा, जो महा-पुरुषोंके एकमात्र जीवन-सर्वस्व श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंसे तृप्त हो जाय ? समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्‌के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणगणोंका पार तो ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके ॥ १४ ॥ विद्वन् ! आप भगवान्‌को ही अपने जीवनका ध्रुवतारा मानते हैं। इसलिये आप सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌के उदार और विशुद्ध चरित्रोंका हम श्रद्धालु श्रोताओंके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये ॥ १५ ॥ भगवान्‌के परम प्रेमी महाबुद्धि परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीके उपदेश किये हुए जिस ज्ञानसे मोक्षस्वरूप भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त किया, आप कृपा करके उसी ज्ञान और परीक्षित्‌के परम पवित्र उपाख्यानका वर्णन कीजिये; क्योंकि उसमें कोई बात छिपाकर नहीं कही गयी होगी और भगवत्प्रेमकी अद्भुत योगनिष्ठाका निरूपण किया गया होगा। उसमें पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन हुआ होगा। भगवान्‌के प्यारे भक्तोंको वैसा प्रसङ्ग सुननेमें बड़ा रस मिलता है ॥ १६-१७ ॥

सूतजी कहते हैं—अहो ! विलोम* जातिमें उत्पन्न होनेपर भी महात्माओंकी सेवा करनेके कारण आज हमारा जन्म सफल हो गया। क्योंकि महापुरुषोंके साथ बातचीत करनेमात्रसे ही नीच कुलमें उत्पन्न होनेकी मनोव्यथा शीघ्र ही मिट जाती है ॥ १८ ॥ फिर उन लोगोंकी तो बात ही क्या है, जो सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌का नाम लेते हैं ! भगवान्‌की शक्ति अनन्त है, वे स्वयं अनन्त हैं। वास्तवमें उनके गुणोंकी अनन्तताके कारण ही उन्हें अनन्त कहा गया है ॥ १९ ॥ भगवान्‌के गुणोंकी समता भी जब कोई नहीं कर सकता, तब उनसे बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है। उनके

* उच्चवर्णकी माता और निम्न वर्णके पितासे उत्पन्न संतानको 'विलोमज' कहते हैं। सूत जातिकी उत्पत्ति इसी प्रकार ब्राह्मणी माता और क्षत्रिय पिताके द्वारा होनेसे उसे शास्त्रोंमें विलोम जाति माना गया है।

गुणोंकी यह विशेषता समझानेके लिये इतना कह देना ही पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी अपनेको प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको छोड़कर भगवान्‌के न चाहनेपर भी उनके चरणकमलोंकी रजका ही सेवन करती हैं ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने भगवान्‌के चरणोंका प्रक्षालन करनेके लिये जो जल समर्पित किया था, वही उनके चरणनखोंसे निकलकर गङ्गाजीके रूपमें प्रवाहित हुआ। यह जल महादेवजीसहित सारे जगत्‌को पवित्र करता है। ऐसी अवस्थामें त्रिभुवनमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त 'भगवान्' शब्दका दूसरा और क्या अर्थ हो सकता है ॥ २१ ॥ जिनके प्रेमको प्राप्त करके धीर पुरुष बिना किसी हिचकके देह-गेह आदिकी दृढ़ आसक्तिको छोड़ देते हैं और उस अन्तिम परमहंस-आश्रमको स्वीकार करते हैं, जिसमें किसीको कष्ट न पहुँचाना और सब ओरसे उपशान्त हो जाना ही स्वधर्म होता है ॥ २२ ॥ सूर्यके समान प्रकाशमान महात्माओ! आपलोगोंने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह मैं अपनी समझके अनुसार सुनाता हूँ। जैसे पक्षी अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं, वैसे ही विद्वान्‌लोग भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन करते हैं २३

एक दिन राजा परीक्षित् धनुष लेकर वनमें शिकार खेलने गये हुए थे। हरिणोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते वे थक गये और उन्हें बड़े जोरकी भूख और प्यास लगी ॥ २४ ॥ जब कहीं उन्हें कोई जलाशय नहीं मिला, तब वे पासके ही एक ऋषिके आश्रममें घुस गये। उन्होंने देखा कि वहाँ आँखें बंद करके शान्तभावसे एक मुनि आसनपर बैठे हुए हैं ॥ २५ ॥ इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धिके निरुद्ध हो जानेसे वे संसारसे ऊपर उठ गये थे। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे रहित निर्विकार ब्रह्मरूप तुरीय पदमें वे स्थित थे ॥२६॥ उनका शरीर बिखरी हुई जटाओंसे और कृष्ण मृगचर्मसे ढका हुआ था। राजा परीक्षित्‌ने ऐसी ही अवस्थामें उनसे जल माँगा, क्योंकि प्याससे उनका गला सूखा जा रहा था ॥ २७ ॥ जब राजाको वहाँ बैठनेके लिये तिनकेका आसन भी न मिला, किसीने उन्हें भूमिपर भी बैठनेको न कहा—अर्घ्य और आदरभरी मीठी बातें तो कहाँसे मिलतीं—तब अपनेको अपमानित-सा मानकर वे क्रोधके वश हो गये ॥ २८ ॥ शौनकजी! वे भूख-प्याससे छटपटा रहे थे, इसलिये एकाएक उन्हें ब्राह्मणके प्रति ईर्ष्या और क्रोध हो आया। उनके जीवनमें इस प्रकारका यह पहला ही अवसर था ॥२९॥ वहाँसे लौटते समय उन्होंने क्रोधवश धनुषकी नोकसे एक मरा साँप उठाकर ऋषिके गलेमें डाल दिया और अपनी राजधानीमें चले आये ॥ ३० ॥ उनके मनमें यह बात आयी कि इन्होंने जो अपने नेत्र बंद कर रक्खे हैं, सो क्या वास्तवमें इन्होंने अपनी सारी इन्द्रियवृत्तियोंका निरोध कर लिया है अथवा इन राजाओंसे हमारा क्या प्रयोजन है, यों सोचकर इन्होंने झूठ-मूठ समाधिका ढोंग रच रक्खा है ॥ ३१ ॥

उन शमीक मुनिका पुत्र बड़ा तेजस्वी था। वह दूसरे ऋषिकुमारोंके साथ पास ही खेल रहा था। जब उस बालकने सुना कि राजाने मेरे पिताके साथ दुर्व्यवहार किया है, तब वह इस प्रकार कहने लगा—॥ ३२ ॥ 'ये नरपति कहलानेवाले लोग उच्छिष्टभोजी कौओंके समान संड-मुसंड होकर कितना अन्याय करने लगे हैं! ब्राह्मणोंके दास होकर भी ये दरवाजेपर पहरा देनेवाले कुत्तेके समान अपने स्वामीका ही तिरस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है। उन्हें द्वारपर रहकर रक्षा करनी चाहिये, घरमें घुसकर स्वामीके बर्तनोंमें खानेका उसे अधिकार नहीं है ॥३४॥ अतएव उन्मार्गगामियोंके शासक भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इन मर्यादा तोड़नेवालोंको आज मैं दण्ड देता हूँ। मेरा तपोबल देखो' ॥ ३५ ॥ अपने साथी बालकोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल-लाल आँखोंवाले उस ऋषिकुमारने कौशिकी नदीके जलसे आचमन करके अपने वाणीरूपी वज्रका प्रयोग किया ॥ ३६ ॥ 'कुलाङ्गार परीक्षित्‌ने मेरे पिताका अपमान करके मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणासे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डस लेगा' ॥ ३७ ॥

इसके बाद वह बालक अपने आश्रमपर आया और

अपने पिताके गलेमें साँप देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ तथा वह ढाड़ मारकर रोने लगा ॥ ३८ ॥ विप्रवर शौनकजी ! शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना-चिल्लाना सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और देखा कि उनके गलेमें एक मरा साँप पड़ा है ॥ ३९ ॥ उसे फेंककर उन्होंने अपने पुत्रसे पूछा—'बेटा ! तुम क्यों रो रहे हो ? किसने तुम्हारा अपकार किया है ?' उनके इस प्रकार पूछनेपर बालकने सारा हाल कह दिया ॥ ४० ॥ ब्रह्मर्षि शमीकने राजाके शापकी बात सुनकर अपने पुत्रका अभिनन्दन नहीं किया । उनकी दृष्टिमें परीक्षित् शापके योग्य नहीं थे । उन्होंने कहा—'ओह, मूर्ख बालक ! तूने बड़ा पाप किया ! खेद है कि उनकी थोड़ी-सी गलतीके लिये तूने उनको इतना बड़ा दण्ड दिया ॥ ४१ ॥ तेरी बुद्धि अभी कच्ची है । तुझे भगवत्स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये; क्योंकि राजाके दुस्सह तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर ही प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है ॥ ४२ ॥ जिस समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर नहीं दिखायी देंगे, उस समय चोर बढ़ जायँगे और अरक्षित भेड़ोंके समान एक क्षणमें ही लोगोंका नाश हो जायगा ॥ ४३ ॥ राजाके नष्ट हो जानेपर धन आदि चुरानेवाले चोर जो पाप करेंगे; उसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध न होनेपर भी वह हमपर भी लागू होगा । क्योंकि राजाके न रहनेपर लुटेरे बढ़ जाते हैं और वे आपसमें मार-पीट, गाली-गलौज करते हैं, साथ ही पशु, स्त्री और धन-सम्पत्ति भी लूट लेते हैं ॥ ४४ ॥ उस समय मनुष्योंका वर्णाश्रमाचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है, अर्थ-लोभ और काम-वासनाके विवश होकर लोग कुत्तों और बंदरोंके समान वर्णसङ्कर हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ सम्राट् परीक्षित् तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं । उन्होंने बहुत-से अश्वमेध यज्ञ किये हैं और वे भगवान्‌के परम प्यारे भक्त हैं; वे ही राजर्षि भूख-प्याससे व्याकुल होकर हमारे आश्रमपर आये थे, वे शापके योग्य कदापि नहीं हैं ॥ ४६ ॥ इस नासमझ बालकने हमारे निष्पाप सेवक राजाका अपराध किया है, सर्वात्मा भगवान् कृपा करके इसे क्षमा करें ॥ ४७ ॥ भगवान्‌के भक्तोंमें भी बदला लेनेकी शक्ति होती है; परंतु वे दूसरोंके द्वारा किये हुए अपमान, धोखेबाजी, गाली-गलौज, आक्षेप और मार-पीटका कोई बदला नहीं लेते ॥ ४८ ॥ महामुनि शमीकको पुत्रके अपराधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ । राजा परीक्षित्‌ने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया ॥ ४९ ॥ महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जगत्‌में जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्माका स्वरूप तो गुणोंसे सर्वथा परे है ॥ ५० ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

परीक्षित्‌का अनशनव्रत और शुकदेवजीका आगमन

सूतजी कहते हैं—राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षित्‌को अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ । वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे—'मैंने निरपराध एवं अपना तेज छिपाये हुए ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया । यह बड़े खेदकी बात है ॥ १ ॥ अवश्य ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आवेगी । मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ; क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा काम करनेका दुःसाहस नहीं करूँगा ॥ २ ॥ ब्राह्मणोंकी क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-पूरे खजानेको जलाकर खाक कर दे—जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौओंके प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो ॥ ३ ॥ वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें मालूम हुआ—ऋषिकुमारके शापसे तक्षक मुझे डसेगा । उन्हें वह धधकती हुई आगके समान तक्षकका डसना बहुत भला मालूम हुआ । उन्होंने सोचा कि बहुत दिनोंसे

मैं संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया ॥ ४ ॥ वे इस लोक और परलोकके भोगोंको तो पहलेसे ही तुच्छ और त्याज्य समझते थे । अब उनका स्वरूपतः त्याग करके भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशन-व्रत लेकर वे गङ्गातटपर बैठ गये ॥ ५ ॥ गङ्गाजीका जल भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका वह पराग लेकर प्रवाहित होता है, जो श्रीमती तुलसीकी गन्धसे मिश्रित हैं । यही कारण है कि वे लोकपालोंके सहित ऊपर-नीचेके समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं । कौन ऐसा मरणासन्न पुरुष होगा, जो उनका सेवन न करेगा ? ॥ ६ ॥

इस प्रकार गङ्गाजीके तटपर आमरण अनशनका निश्चय करके उन्होंने समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर दिया और वे मुनियोंका व्रत स्वीकार करके अनन्यभावसे श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे ॥ ७ ॥ उस समय त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले बड़े-बड़े महानुभाव ऋषि-मुनि अपने शिष्योंके साथ वहाँ पधारे । संतजन प्रायः तीर्थयात्राके बहाने स्वयं उन तीर्थस्थानोंको ही पवित्र करते हैं ॥ ८ ॥ उस समय वहाँपर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान् व्यास, नारद तथा इनके अतिरिक्त और भी कई श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा अरुणादि राजर्षिवर्योंका शुभागमन हुआ । इस प्रकार विभिन्न गोत्रोंके मुख्य-मुख्य ऋषियोंको एकत्र देखकर राजाने सबका यथायोग्य सत्कार किया और उनके चरणोंपर सिर रखकर वन्दना की ॥ ९–११ ॥ जब सब लोग आरामसे अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये, तब महाराज परीक्षित्ने उन्हें फिरसे प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर शुद्ध हृदयसे अञ्जलि बाँधकर वे जो कुछ करना चाहते थे, उसे सुनाने लगे ॥ १२ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—अहो ! समस्त राजाओंमें हम धन्य हैं । धन्यतम हैं । क्योंकि अपने शील-स्वभावके कारण हम आप महापुरुषोंके कृपापात्र बन गये हैं । राजवंशके लोग प्रायः निन्दित कर्म करनेके कारण ब्राह्मणोंके चरण-धोवनसे दूर पड़ जाते हैं—यह कितने खेदकी बात है ॥ १३ ॥ मैं भी राजा ही हूँ । निरन्तर देह-गेहमें आसक्त रहनेके कारण मैं भी पापरूप ही हो गया हूँ । इसीसे स्वयं भगवान् ही ब्राह्मणके शापके रूपमें मुझपर कृपा करनेके लिये पधारे हैं । यह शाप वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है । क्योंकि इस प्रकारके शापसे संसारासक्त पुरुष भयभीत होकर विरक्त हो जाया करते हैं ॥ १४ ॥ ब्राह्मणो ! अब मैंने अपने चित्तको भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर दिया है । आपलोग और मा गङ्गाजी शरणागत जानकर मुझपर अनुग्रह करें, ब्राह्मणकुमारके शापसे प्रेरित कोई दूसरा कपटसे तक्षकका रूप धरकर मुझे डस ले अथवा स्वयं तक्षक आकर डस ले; इसकी मुझे तनिक भी परवा नहीं है । आपलोग कृपा करके भगवान्की रसमयी लीलाओंका गायन करें ॥ १५ ॥ मैं आप ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रणाम करके पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे कर्मवश चाहे जिस योनिमें जन्म लेना पड़े, भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग हो, उनके चरणाश्रित महात्माओंसे विशेष प्रीति हो और जगत्के समस्त प्राणियोंके प्रति मेरी एक-सी मैत्री रहे । ऐसा आप आशीर्वाद दीजिये ॥ १६ ॥

महाराज परीक्षित् परम धीर थे । वे ऐसा दृढ निश्चय करके गङ्गाजीके दक्षिण तटपर पूर्वाग्र कुशोंके आसनपर उत्तरमुख होकर बैठ गये । राज-काजका भार तो उन्होंने पहले ही अपने पुत्र जनमेजयको सौंप दिया था ॥ १७ ॥ पृथ्वीके एकछत्र सम्राट् परीक्षित् जब इस प्रकार आमरण अनशनका निश्चय करके बैठ गये, तब आकाशमें स्थित देवतालोग बड़े आनन्दसे उनकी प्रशंसा करते हुए वहाँ पृथ्वीपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे तथा उनके नगारे बार-बार बजने लगे ॥ १८ ॥ सभी उपस्थित महर्षियोंने परीक्षित्के निश्चयकी प्रशंसा की और 'साधु-साधु' कहकर उनका अनुमोदन किया । ऋषिलोग तो स्वभावसे ही लोगोंपर अनुग्रहकी वर्षा करते रहते हैं; यही नहीं, उनकी सारी शक्ति लोकपर कृपा

शुकदेव-परीक्षित्

श्रीशुकदेवजीसे परीक्षित्की प्रार्थना

करनेके लिये ही होती है। उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे प्रभावित परीक्षित्के प्रति उनके अनुरूप वचन कहे ॥ १९ ॥ 'राजर्षिशिरोमणे ! भगवान् श्रीकृष्णके सेवक और अनुयायी आप पाण्डुवंशियोंके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपलोगोंने भगवान्की सन्निधि प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे उस राज-सिंहासनका एक क्षणमें ही परित्याग कर दिया, जिसकी सेवा बड़े-बड़े राजा अपने मुकुटोंसे करते थे ॥ २० ॥ हम सब तबतक यहीं रहेंगे, जबतक ये भगवान्के परम भक्त परीक्षित् अपने नश्वर शरीरको छोड़कर माया-दोष एवं शोकसे रहित भगवद्धाममें नहीं चले जाते' ॥ २१ ॥

ऋषियोंके ये वचन बड़े ही मधुर, गम्भीर, सत्य और समतासे युक्त थे। उन्हें सुनकर राजा परीक्षित्ने उन योगयुक्त मुनियोंका अभिनन्दन किया और भगवान्के मनोहर चरित्र सुननेकी इच्छासे ऋषियोंसे प्रार्थना की ॥ २२ ॥ 'महात्माओ ! आप सभी सब ओरसे यहाँ पधारे हैं। आप सत्यलोकमें रहनेवाले मूर्तिमान् वेदोंके समान हैं। आपलोगोंका दूसरोंपर अनुग्रह करनेके अतिरिक्त, जो आपका सहज स्वभाव ही है, इस लोक या परलोकमें और कोई स्वार्थ नहीं है ॥ २३ ॥ विप्रवरो ! आपलोगोंपर पूर्ण विश्वास करके मैं अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें यह पूछने योग्य प्रश्न करता हूँ। आप सभी विद्वान् परस्पर विचार करके बतलाइये कि सबके लिये सब अवस्थाओंमें, और विशेष करके थोड़े ही समयमें मरनेवाले पुरुषोंके लिये अन्तःकरण और शरीरसे करनेयोग्य विशुद्ध कर्म कौन-सा है* ॥ २४ ॥

उसी समय पृथ्वीपर स्वेच्छासे विचरण करते हुए, किसीकी कोई अपेक्षा न रखनेवाले व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ प्रकट हो गये। वे वर्ण अथवा आश्रमके बाह्य चिह्नोंसे रहित एवं आत्मानुभूतिमें सन्तुष्ट थे। बच्चों और स्त्रियोंने उन्हें घेर रक्खा था। उनका वेष अवधूतका था ॥ २५ ॥ सोलह वर्षकी अवस्था थी। चरण, हाथ, जङ्घा, भुजाएँ, कंधे, कपोल और अन्य सब अङ्ग अत्यन्त सुकुमार थे। नेत्र बड़े-बड़े और मनोहर थे। नासिका कुछ ऊँची थी। कान बराबर थे। सुन्दर भौंहें थीं, इनसे मुख बड़ा ही शोभायमान हो रहा था। गला तो मानो सुन्दर शङ्ख ही था ॥ २६ ॥ हँसली ढकी हुई, छाती चौड़ी और उभरी हुई, नाभि भँवरके समान गहरी तथा उदर बड़ा ही सुन्दर, त्रिवलीसे युक्त था। लंबी-लंबी भुजाएँ थीं, मुखपर घुँघराले बाल बिखरे हुए थे। इस दिगम्बर वेषमें वे श्रेष्ठ देवताके समान तेजस्वी जान पड़ते थे ॥ २७ ॥ श्याम रंग था। चित्तको चुरानेवाली भरी जवानी थी। वे शरीरकी छटा और मधुर मुसकानसे स्त्रियोंको सदा ही मनोहर जान पड़ते थे। यद्यपि उन्होंने अपने तेजको छिपा रक्खा था, फिर भी उनके लक्षण जाननेवाले मुनियोंने उन्हें पहचान लिया और वे सब-के-सब अपने-अपने आसन छोड़कर उनके सम्मानके लिये उठ खड़े हुए ॥ २८ ॥

राजा परीक्षित्ने अतिथिरूपसे पधारे हुए श्रीशुकदेवजीको सिर झुकाकर प्रणाम किया और उनकी पूजा की। उनके स्वरूपको न जाननेवाले बच्चे और स्त्रियाँ उनकी यह महिमा देखकर वहाँसे लौट गये; सबके द्वारा सम्मानित होकर श्रीशुकदेवजी श्रेष्ठ आसनपर विराजमान हुए ॥ २९ ॥ ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षियोंके समूहसे आवृत श्रीशुकदेवजी अत्यन्त शोभायमान हुए। वास्तवमें वे महात्माओंके भी आदरणीय थे ॥ ३० ॥ जब प्रखरबुद्धि श्रीशुकदेवजी शान्तभावसे बैठ गये, तब भगवान्के परम भक्त परीक्षित्ने उनके समीप आकर और चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। फिर खड़े होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उसके पश्चात् बड़ी मधुर वाणीसे उनसे यह पूछा ॥ ३१ ॥

परीक्षित्ने कहा—ब्रह्मस्वरूप भगवन् ! आज हम बड़भागी हुए; क्योंकि अपराधी क्षत्रिय होनेपर भी हमें

* इस जगह राजाने ब्राह्मणोंसे दो प्रश्न किये हैं; पहला प्रश्न यह है कि जीवको सदा-सर्वदा क्या करना चाहिये और दूसरा यह कि जो थोड़े ही समयमें मरनेवाले हैं, उनका क्या कर्तव्य है ? ये ही दो प्रश्न उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे भी किये तथा क्रमशः इन्हीं दोनों प्रश्नोंका उत्तर द्वितीय स्कन्धसे लेकर द्वादशपर्यन्त श्रीशुकदेवजीने दिया है।

संत-समागमका अधिकारी समझा गया। आज कृपापूर्वक अतिथिरूपसे पधारकर आपने हमें तीर्थके तुल्य पवित्र बना दिया ॥ ३२ ॥ आप-जैसे महात्माओंके स्मरणमात्र-से ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं; फिर दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन और आसनदानादिका सुअवसर मिलनेपर तो कहना ही क्या है ॥ ३३ ॥ महायोगिन्! जैसे भगवान् विष्णुके सामने दैत्यलोग नहीं ठहरते, वैसे ही आपकी सन्निधिसे बड़े-बड़े पाप भी तुरंत नष्ट हो जाते हैं ॥३४॥ अवश्य ही पाण्डवोंके सुहृद् भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर अत्यन्त प्रसन्न हैं; उन्होंने अपने फुफेरे भाइयों-की प्रसन्नताके लिये उन्हींके कुलमें उत्पन्न हुए मेरे साथ भी अपनेपनका व्यवहार किया है ॥३५॥ भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा न होती तो आप-सरीखे एकान्त वनवासी अव्यक्तगति परम सिद्ध पुरुष स्वयं पधारकर इस मृत्युके समय हम-जैसे प्राकृत मनुष्योंको क्यों दर्शन देते ॥ ३६ ॥ आप योगियोंके परम गुरु हैं, इसलिये मैं आपसे परम-सिद्धिके स्वरूप और साधनके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहा हूँ। जो पुरुष सर्वथा मरणासन्न है, उसको क्या करना चाहिये? ॥ ३७ ॥ भगवन्! साथ ही यह भी बतलाइये कि मनुष्यमात्रको क्या करना चाहिये। वे किसका श्रवण, किसका जप, किसका स्मरण और किसका भजन करें, तथा किसका त्याग करें? ॥३८॥ भगवत्स्वरूप मुनिवर! आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है; क्योंकि जितनी देर एक गाय दुही जाती है, गृहस्थोंके घरपर उतनी देर भी तो आप नहीं ठहरते ॥३९॥

सूतजी कहते हैं—जब राजाने बड़ी ही मधुर वाणीमें इस प्रकार सम्भाषण एवं प्रश्न किये, तब समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी उनका उत्तर देने लगे ॥ ४० ॥

इति प्रथम स्कन्ध समाप्त

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥
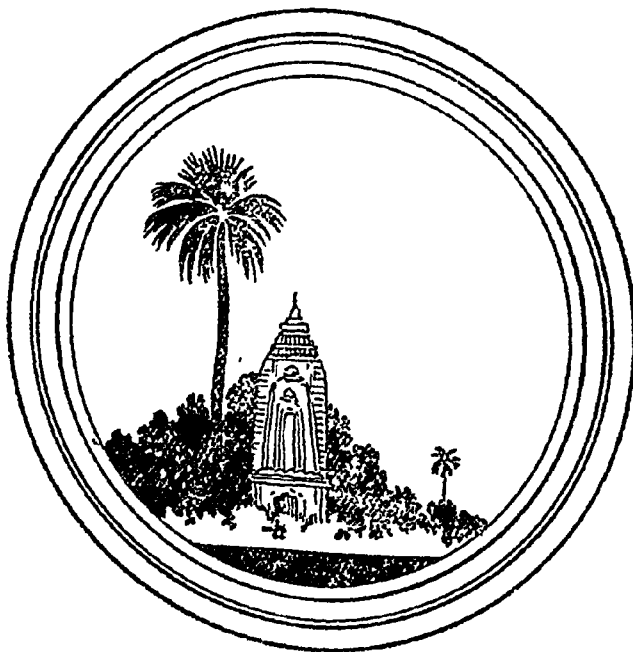
श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

द्वितीय स्कन्ध

यस्य दीप्तिलवेनैव देवता देवतां गताः ।
वन्दे तं देवदेवेशं सर्वदेवमयं हरिम् ॥

ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

द्वितीय स्कन्ध

पहला अध्याय

ध्यान-विधि और भगवान्‌के विराट्‌स्वरूपका वर्णन

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम्हारा लोकहितके लिये किया हुआ यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है। मनुष्योंके लिये जितनी भी बातें सुनने, स्मरण करने या कीर्त्तन करनेकी हैं, उन सबमें यह श्रेष्ठ है। आत्मज्ञानी महापुरुष ऐसे प्रश्नका बड़ा आदर करते हैं॥ १॥ राजेन्द्र! जो गृहस्थ घरके काम-धंधोंमें उलझे हुए हैं, अपने स्वरूपको नहीं जानते, उनके लिये हजारों बातें कहने-सुनने एवं सोचने, करनेकी रहती हैं॥ २॥ उनकी सारी उम्र यों ही बीत जाती है। उनकी रात नींद या स्त्री-प्रसङ्गसे कटती है और दिन धनकी हाय-हाय या कुटुम्बियोंके भरण-पोषणमें समाप्त हो जाता है॥ ३॥ संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं हैं, असत् हैं; परंतु जीव उनके मोहमें ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्युका ग्रास होते देखकर भी चेतता नहीं॥ ४॥ इसलिये परीक्षित्! जो अभय पदको प्राप्त करना चाहता है, उसे तो सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये॥ ५॥ मनुष्यजन्मका यही—इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो—ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके समय भगवान्‌की स्मृति अवश्य बनी रहे॥ ६॥ परीक्षित्! जो निर्गुण स्वरूपमें स्थित हैं एवं विधि-निषेधकी मर्यादाको लाँघ चुके हैं, वे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी प्रायः भगवान्‌के अनन्त कल्याणमय गुणगणोंके वर्णनमें रमे रहते हैं॥ ७॥ द्वापरके अन्तमें इस भगवद्रूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामके महापुराणका अपने पिता श्रीकृष्णद्वैपायनसे मैंने अध्ययन किया था॥ ८॥ राजर्षे! मेरी निर्गुणस्वरूप परमात्मामें पूर्ण निष्ठा है। फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया॥ ९॥ तुम भगवान्‌के परम भक्त हो, इसलिये तुम्हें मैं इसे सुनाऊँगा। जो इसके प्रति श्रद्धा रखते हैं, उनकी शुद्ध चित्तवृत्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमके साथ बहुत शीघ्र लग जाती है॥ १०॥ जो लोग लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी इच्छा रखते हैं, या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और निर्भय मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये तथा योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्‌के नामोंका प्रेमसे सङ्कीर्तन करें॥ ११॥ अपने कल्याण-साधनकी ओरसे असावधान रहनेवाले पुरुषकी वर्षों लम्बी आयु भी अनजानमें ही व्यर्थ बीत जाती है। उससे क्या लाभ! सावधानीसे ज्ञानपूर्वक बितायी हुई घड़ी, दो घड़ी भी श्रेष्ठ है; क्योंकि उसके द्वारा अपने कल्याणकी चेष्टा तो की जा सकती है॥ १२॥ राजर्षि खट्वाङ्ग अपनी आयुकी समाप्तिका समय जानकर दो घड़ीमें ही सब कुछ त्यागकर

भगवान्‌के अभयपदको प्राप्त हो गये ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! अभी तो तुम्हारे जीवनकी अवधि सात दिनकी है। इस बीचमें ही तुम अपने परम कल्याणके लिये जो कुछ करना चाहिये, सब कर लो ॥ १४ ॥

मृत्युका समय आनेपर मनुष्य घबराये नहीं। उसे चाहिये कि वह वैराग्यके शस्त्रसे शरीर और उससे सम्बन्ध रखनेवालोंके प्रति ममताको काट डाले॥ १५ ॥ धैर्यके साथ घरसे निकलकर पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करे और पवित्र तथा एकान्त स्थानमें विधिपूर्वक आसन लगाकर बैठ जाय ॥ १६ ॥ तत्पश्चात् परम पवित्र 'अ उ म्' इन तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवका मन-ही-मन जप करे। प्राणवायुको वशमें करके मनका दमन करे और एक क्षणके लिये भी प्रणवको न भूले ॥ १७ ॥ बुद्धिकी सहायतासे मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटा ले। और कर्मकी वासनाओंसे चञ्चल हुए मनको विचारके द्वारा रोककर भगवान्‌के मङ्गलमय रूपमें लगाये ॥ १८ ॥ स्थिर चित्तसे भगवान्‌के श्रीविग्रहमेंसे किसी एक अङ्गका ध्यान करे। इस प्रकार एक-एक अङ्गका ध्यान करते-करते विषय-वासनासे रहित मनको पूर्णरूपसे भगवान्‌में ऐसा तल्लीन कर दे कि फिर और किसी विषयका चिन्तन ही न हो। वही भगवान् विष्णुका परमपद है, जिसे प्राप्त करके मन भगवत्प्रेमरूप आनन्दसे भर जाता है ॥ १९ ॥ यदि भगवान्‌का ध्यान करते समय मन रजोगुणसे विक्षिप्त या तमोगुणसे मूढ़ हो जाय तो घबराये नहीं। धैर्यके साथ योगधारणाके द्वारा उसे वशमें करना चाहिये; क्योंकि धारणा उक्त दोनों गुणोंके दोषोंको मिटा देती है ॥२०॥ धारणा स्थिर हो जानेपर ध्यानमें जब योगी अपने परम मङ्गलमय आश्रय (भगवान्) को देखता है, तब उसे तुरंत ही भक्तियोगकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २१ ॥

परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मन् ! धारणा किस साधनसे किस वस्तुमें किस प्रकार की जाती है और उसका क्या स्वरूप माना गया है, जो शीघ्र ही मनुष्यके मनका मैल मिटा देती है ? ॥ २२ ॥

शुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके फिर बुद्धिके द्वारा मनको भगवान्‌के स्थूल रूपमें लगाना चाहिये ॥२३॥ यह कार्यरूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा—सब-का-सब जिसमें दीख पड़ता है, वही भगवान्‌का स्थूल-से-स्थूल और विराट् शरीर है ॥२४॥ जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन सात आवरणोंसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड-शरीरमें जो विराट् पुरुष भगवान् हैं, वे ही धारणाके आश्रय हैं, उन्हींकी धारणा की जाती है ॥२५॥ तत्त्वज्ञ पुरुष उनका इस प्रकार वर्णन करते हैं—पाताल विराट् पुरुषके तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल हैं, दोनों गुल्फ—एड़ीके ऊपरकी गाँठें महातल हैं, उनके पैरके पिंडे तलातल हैं ॥२६॥ विश्वमूर्ति भगवान्‌के दोनों घुटने सुतल हैं, जाँघें वितल और अतल हैं, पेड़ू भूतल है, और परीक्षित् ! उनके नाभिरूप सरोवरको ही आकाश कहते हैं ॥ २७ ॥ आदिपुरुष परमात्माकी छातीको स्वर्गलोक, गलेको महर्लोक, मुखको जनलोक और ललाटको तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिरवाले भगवान्‌का मस्तकसमूह ही सत्यलोक है ॥२८॥ इन्द्रादि देवता उनकी भुजाएँ हैं। दिशाएँ कान और शब्द श्रवणेन्द्रिय हैं। दोनों अश्विनीकुमार उनकी नासिकाके छिद्र हैं; गन्ध घ्राणेन्द्रिय है और धधकती हुई आग उनका मुख है ॥२९॥ भगवान् विष्णुके नेत्र अन्तरिक्ष हैं, उनमें देखनेकी शक्ति सूर्य है, दोनों पलकें रात और दिन हैं, उनका भ्रूविलास ब्रह्मलोक है। तालु जल है और जिह्वा रस ॥ ३० ॥ वेदोंको भगवान्‌का ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं और यमको दाढ़ें। सब प्रकारके स्नेह दाँत हैं और उनकी जगन्मोहिनी मायाको ही उनकी मुसकान कहते हैं। यह अनन्त सृष्टि उसी मायाका कटाक्ष-विक्षेप है ॥३१॥ लज्जा ऊपरका होठ और लोभ नीचेका होठ है। धर्म स्तन और अधर्म पीठ है। प्रजापति उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण अण्डकोश हैं, समुद्र कोख है और बड़े-बड़े पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं ॥ ३२ ॥ राजन् ! विश्वमूर्ति विराट् पुरुषकी नाड़ियाँ नदियाँ हैं। वृक्ष रोम हैं। परम प्रबल वायु श्वास है। काल उनकी चाल है और गुणोंका चक्कर चलाते रहना ही उनका कर्म है ॥ ३३ ॥ परीक्षित् !

बादलोंको उनके केश मानते हैं। सन्ध्या उन अनन्त-का वस्त्र है। महात्माओंने अव्यक्त (मूलप्रकृति) को ही उनका हृदय बतलाया है और सब विकारोंका खजाना उनका मन चन्द्रमा कहा गया है ॥ ३४ ॥ महत्तत्त्वको सर्वात्मा भगवान्‌का चित्त कहते हैं और रुद्र उनके अहङ्कार कहे गये हैं। घोड़े, खच्चर, ऊँट और हाथी उनके नख हैं। वनमें रहनेवाले सारे मृग और पशु उनके कटिप्रदेशमें स्थित हैं ॥ ३५ ॥ तरह-तरहके पक्षी उनके अद्भुत रचनाकौशल हैं। स्वायम्भुव मनु उनकी बुद्धि हैं और मनुकी सन्तान मनुष्य उनके निवासस्थान हैं। गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ उनके षड्ज आदि स्वरोंकी स्मृति हैं। दैत्य उनके वीर्य हैं ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य जङ्घाएँ और शूद्र उन विराट् पुरुषके चरण हैं। विविध देवताओंके नामसे जो बड़े-बड़े द्रव्यमय यज्ञ किये जाते हैं, वे उनके कर्म हैं ॥ ३७ ॥ परीक्षित् ! विराट् भगवान्‌के स्थूलशरीरका यही स्वरूप है, सो मैंने तुम्हें सुना दिया। इसीमें मुमुक्षु पुरुष बुद्धिके द्वारा मनको स्थिर करते हैं; क्योंकि इससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है ॥ ३८ ॥ जैसे स्वप्न देखनेवाला स्वप्नावस्थामें अपने-आपको ही विविध पदार्थोंके रूपमें देखता है, वैसे ही सबकी बुद्धि-वृत्तियोंके द्वारा सब कुछ अनुभव करनेवाला सर्वान्तर्यामी परमात्मा भी एक ही है। उन सत्यस्वरूप आनन्दनिधि भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये, अन्य किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये। क्योंकि यह आसक्ति जीवके अधःपतन-का हेतु है ॥ ३९ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म रूपोंकी धारणा तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने इसी धारणाके द्वारा प्रसन्न हुए भगवान्‌से वह सृष्टिविषयक स्मृति प्राप्त की थी, जो पहले प्रलयकालमें विलुप्त हो गयी थी। इससे उनकी दृष्टि अमोघ और बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी। तब उन्होंने इस जगत्‌को वैसे ही रचा जैसा कि यह प्रलयके पहले था ॥ १ ॥

वेदोंकी वर्णन-शैली ही इस प्रकारकी है, कि लोगोंकी बुद्धि स्वर्ग आदि निरर्थक नामोंके फेरमें फँस जाती है, जीव वहाँ सुखकी वासनासे स्वप्न-सा देखता हुआ भटकने लगता है; किन्तु उन मायामय लोकोंमें कहीं भी उसे सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती ॥ २ ॥ इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह विविध नामवाले पदार्थोंसे उतना ही व्यवहार करे, जितना प्रयोजनीय हो। अपनी बुद्धिको उनकी निस्सारताके निश्चयसे परिपूर्ण रक्खे और एक क्षणके लिये भी असावधान न हो। यदि संसारके पदार्थ प्रारब्धवश बिना परिश्रमके यों ही मिल जायँ, तब उनके उपार्जनका परिश्रम व्यर्थ समझकर उनके लिये कोई प्रयत्न न करे ॥ ३ ॥ जब जमीनपर सोनेसे काम चल सकता है, तब पलँगके लिये प्रयत्न करनेसे क्या प्रयोजन। जब भुजाएँ अपनेको भगवान्‌की कृपासे स्वयं ही मिली हुई हैं, तब तकियोंकी क्या आवश्यकता। जब अञ्जलिसे काम चल सकता है, तब बहुत-से बर्तन क्यों बटोरें। वृक्षकी छाल पहनकर या वस्त्रहीन रहकर भी यदि जीवन धारण किया जा सकता है तो वस्त्रोंकी क्या आवश्यकता ॥ ४ ॥ पहननेको क्या रास्तोंमें चिथड़े नहीं हैं? भूख लगनेपर दूसरोंके लिये ही शरीर धारण करनेवाले वृक्ष क्या फल-फूलकी भिक्षा नहीं देते? जल चाहनेवालोंके लिये नदियाँ क्या बिल्कुल सूख गयी हैं? रहनेके लिये क्या पहाड़ोंकी गुफाएँ बंद कर दी गयी हैं? अरे भाई! सब न सही, क्या भगवान् भी अपने शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते? ऐसी स्थितिमें बुद्धिमान् लोग भी धनके नशेमें चूर घमंडी धनियोंकी चापलूसी क्यों करते हैं? ॥ ५ ॥ इस प्रकार विरक्त हो जानेपर अपने हृदयमें नित्य विराजमान, स्वतःसिद्ध, आत्मस्वरूप, परम प्रियतम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् हैं, बड़े प्रेम और आनन्दसे दृढ़ निश्चय करके उन्हींका भजन करे; क्योंकि उनके भजनसे जन्म-मृत्युके चक्करमें डालने-

वाले अज्ञानका नाश हो जाता है ॥ ६ ॥ पशुओंकी बात तो अलग है; परन्तु मनुष्योंमें भला ऐसा कौन है, जो लोगोंको इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरकर अपने कर्मजन्य दुःखोंको भोगते हुए देखकर भी भगवान्‌का मङ्गलमय चिन्तन नहीं करेगा, इन असत् विषय-भोगोंमें ही अपने चित्तको भटकने देगा ? ॥ ७ ॥

कोई-कोई साधक अपने शरीरके भीतर हृदयाकाशमें विराजमान भगवान्‌के प्रादेशमात्र स्वरूपकी धारणा करते हैं। वे ऐसा ध्यान करते हैं कि भगवान्‌की चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं ॥ ८ ॥ उनके मुखपर प्रसन्नता झलक रही है। कमलके समान विशाल और कोमल नेत्र हैं। कदम्बके पुष्पकी केसरके समान पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। भुजाओंमें श्रेष्ठ रत्नोंसे जड़े हुए सोनेके बाजूबंद शोभायमान हैं। सिरपर बड़ा ही सुन्दर मुकुट और कानोंमें कुण्डल हैं, जिनमें जड़े हुए बहुमूल्य रत्न जगमगा रहे हैं ॥ ९ ॥ उनके चरण-कमल योगेश्वरोंके खिले हुए हृदयकमलकी कर्णिकापर विराजित हैं। उनके हृदयपर श्रीवत्सका चिह्न—एक सुनहरी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि लटक रही है। वक्षःस्थल कभी न कुम्हलानेवाली वनमालासे घिरा हुआ है ॥ १० ॥ वे कमरमें करधनी, अँगुलियोंमें बहुमूल्य अँगूठी, चरणोंमें नूपुर और हाथोंमें कंगन आदि आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके बालोंकी लटें बहुत चिकनी, निर्मल, घुँघराली और नीली हैं। उनका मुख-कमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिल रहा है ॥ ११ ॥ लीलापूर्ण उन्मुक्त हास्य और चितवनसे शोभायमान भौंहोंके द्वारा वे भक्तजनोंपर अनन्त अनुग्रहकी वर्षा कर रहे हैं। जबतक मन इस धारणाके द्वारा स्थिर न हो जाय, तबतक बार-बार इन चिन्तनस्वरूप भगवान्‌को देखते रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये ॥ १२ ॥ भगवान्‌के चरण-कमलोंसे लेकर उनके मुसकानयुक्त मुख-कमलपर्यन्त समस्त अङ्गोंकी एक-एक करके बुद्धिके द्वारा धारणा करनी चाहिये। जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होती जायगी, वैसे-वैसे चित्त स्थिर होता जायगा। जब एक अङ्गका ध्यान ठीक-ठीक होने लगे, तब उसे छोड़कर दूसरे अङ्गका ध्यान करना चाहिये ॥ १३ ॥ ये विश्वेश्वर भगवान् दृश्य नहीं, द्रष्टा हैं। सगुण, निर्गुण—सब कुछ इन्हींका स्वरूप है। जबतक इनमें अनन्य प्रेममय भक्तियोग न हो जाय, तबतक साधकको नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके बाद एकाग्रतासे भगवान्‌के उपर्युक्त स्थूल रूपका ही चिन्तन करना चाहिये ॥ १४ ॥

परीक्षित् ! जब योगी पुरुष इस मनुष्य-लोकको छोड़ना चाहे, तब देश और कालमें मनको न लगाये। सुखपूर्वक स्थिर आसनसे बैठकर प्राणोंको जीतकर मनसे इन्द्रियोंका संयम करे ॥ १५ ॥ तदनन्तर अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको नियमित करके मनके साथ बुद्धिको क्षेत्रज्ञमें और क्षेत्रज्ञको अन्तरात्मामें लीन कर दे। फिर अन्तरात्माको परमात्मामें लीन करके धीर पुरुष उस परम शान्तिमय अवस्थामें स्थित हो जाय। फिर उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता ॥ १६ ॥ इस अवस्थामें सत्त्वगुण भी नहीं है, फिर रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या है। अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृतिका भी वहाँ अस्तित्व नहीं है। उस स्थितिमें जब देवताओंके नियामक कालकी भी दाल नहीं गलती, तब देवता और उनके अधीन रहनेवाले प्राणी तो रह ही कैसे सकते हैं ? ॥ १७ ॥ योगी लोग 'यह नहीं, यह नहीं'—इस प्रकार परमात्मासे भिन्न पदार्थोंका त्याग करना चाहते हैं और शरीर तथा उसके सम्बन्धी पदार्थोंमें आत्मबुद्धिका त्याग करके हृदयके द्वारा पद-पदपर भगवान्‌के जिस परम पूज्य स्वरूपका आलिङ्गन करते हुए अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण रहते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है—इस विषयमें समस्त शास्त्रोंकी सम्मति है ॥ १८ ॥

ज्ञानदृष्टिके बलसे जिसके चित्तकी वासना नष्ट हो गयी है, उस ब्रह्मनिष्ठ योगीको इस प्रकार अपने शरीरका त्याग करना चाहिये। पहले एड़ीसे अपनी गुदाको दबाकर स्थिर हो जाय और तब बिना घबड़ाहटके प्राणवायुको षट्चक्रभेदनकी रीतिसे ऊपर ले जाय ॥ १९ ॥ मनस्वी योगीको चाहिये कि नाभिचक्र मणिपूरकमें स्थित वायुको हृदयचक्र अनाहतमें, वहाँसे उदानवायुके द्वारा वक्षःस्थलके ऊपर विशुद्ध चक्रमें, फिर उस वायुको धीरे-धीरे तालुमूलमें (विशुद्ध चक्रके

भगवान् विष्णु [पृष्ठ ८०

अग्रभागमें) चढ़ा दे ॥ २० ॥ तदनन्तर दो आँख, दो कान, दो नासाछिद्र और मुख—इन सातों छिद्रोंको रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको भौंहोंके बीच आज्ञाचक्रमें ले जाय। यदि किसी लोकमें जानेकी इच्छा न हो तो आधी घड़ीतक उस वायुको वहीं रोककर स्थिर लक्ष्यके साथ उसे सहस्रारमें ले जाकर परमात्मामें स्थित हो जाय। इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके शरीर-इन्द्रियादिको छोड़ दे ॥ २१ ॥

परीक्षित्! यदि योगीकी इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँ, आठों सिद्धियाँ प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धोंके साथ विहार करूँ अथवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्डके किसी भी प्रदेशमें विचरण करूँ, तो उसे मन और इन्द्रियोंको साथ ही लेकर शरीरसे निकलना चाहिये ॥ २२ ॥ योगियोंका शरीर वायुकी भाँति सूक्ष्म होता है। उपासना, तपस्या, योग और ज्ञानका सेवन करनेवाले योगियोंको त्रिलोकीके बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छन्दरूपसे विचरण करनेका अधिकार होता है। केवल कर्मोंके द्वारा इस प्रकार बेरोक-टोक विचरना नहीं हो सकता॥२३॥ परीक्षित्! योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णाके द्वारा जब ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान करता है, तब पहले वह आकाशमार्गसे अग्निलोकमें जाता है; वहाँ उसके बचे-खुचे मल भी जल जाते हैं। इसके बाद वह वहाँसे ऊपर भगवान् श्रीहरिके शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्रपर पहुँचता है ॥ २४ ॥ भगवान् विष्णुका यह शिशुमार चक्र विश्वब्रह्माण्डके भ्रमणका केन्द्र है। उसका अतिक्रमण करके अत्यन्त सूक्ष्म एवं निर्मल शरीरसे वह अकेला ही महर्लोकमें जाता है। वह लोक ब्रह्मवेत्ताओंके द्वारा भी वन्दित है और उसमें कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले देवता विहार करते रहते हैं ॥ २५ ॥ फिर जब प्रलय-का समय आता है, तब नीचेके लोकोंको शेषके मुखसे निकली हुई आगके द्वारा भस्म होते देख वह ब्रह्मलोकमें चला जाता है, जिस ब्रह्मलोकमें बड़े-बड़े सिद्धेश्वर विमानोंपर निवास करते हैं। उस ब्रह्मलोककी आयु ब्रह्माकी आयुके समान ही दो परार्द्धकी है ॥ २६ ॥ वहाँ न शोक है न दुःख; न बुढ़ापा है न मृत्यु। फिर वहाँ किसी प्रकारका उद्वेग या भय तो हो ही कैसे सकता है। वहाँ यदि दुःख है तो केवल एक बातका। वह यही कि इस परमपदको न जाननेवाले लोगोंके जन्म-मृत्युमय अत्यन्त घोर सङ्कटोंको देखकर दयावश वहाँके लोगोंके मनमें बड़ी व्यथा होती है ॥ २७ ॥ सत्यलोकमें पहुँचनेके पश्चात् वह योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीरको पृथ्वीसे मिला देता है और फिर उतावली न करते हुए सात आवरणोंका भेदन करता है। पृथ्वीरूपसे जलको और जलरूपसे अग्निमय आवरणों-को प्राप्त होकर वह ज्योतिरूपसे वायुरूप आवरणमें आ जाता है, और वहाँसे समयपर ब्रह्मकी अनन्तताका बोध करानेवाले आकाशरूप आवरणको प्राप्त करता है ॥२८॥ इस प्रकार स्थूल आवरणोंको पार करते समय उसकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म अधिष्ठानमें लीन होती जाती हैं। घ्राणेन्द्रिय गन्धतन्मात्रामें, रसना रसतन्मात्रामें, नेत्र रूपतन्मात्रामें, त्वचा स्पर्शतन्मात्रामें, श्रोत्र शब्दतन्मात्रामें और कर्मेन्द्रिय अपनी-अपनी क्रियाशक्तिमें मिलकर अपने-अपने सूक्ष्मस्वरूपको प्राप्त हो जाती हैं ॥ २९ ॥ इस प्रकार योगी पञ्चभूतोंके स्थूल-सूक्ष्म आवरणोंको पार करके अहङ्कारमें प्रवेश करता है। वहाँ सूक्ष्म भूतोंको तामस अहङ्कारमें, इन्द्रियोंको राजस अहङ्कारमें तथा मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको सात्त्विक अहङ्कारमें लीन कर देता है। इसके बाद अहङ्कारके सहित लय-रूप गतिके द्वारा महत्तत्त्वमें प्रवेश करके अन्तमें समस्त गुणोंके लयस्थान प्रकृतिरूप आवरणमें जा मिलता है ॥ ३० ॥ परीक्षित्! महाप्रलयके समय प्रकृतिरूप आवरणका भी लय हो जानेपर वह योगी स्वयं आनन्दस्वरूप होकर अपने उस निरावरण रूपसे आनन्दस्वरूप शान्त परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जिसे इस भगवन्मयी गतिकी प्राप्ति हो जाती है, उसे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता ॥३१॥ परीक्षित्! तुमने जो पूछा था, उसके उत्तरमें मैंने वेदोक्त द्विविध सनातन मार्ग सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिका तुमसे वर्णन किया। पहले ब्रह्माजीने भगवान् वासुदेवकी आराधना करके उनसे जब प्रश्न किया था, तब उन्होंने उत्तरमें इन्हीं दोनों मार्गोंकी बात ब्रह्माजीसे कही थी ॥ ३२ ॥

संसार-चक्रमें पड़े हुए मनुष्यके लिये, जिस साधनके

द्वारा उसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है ॥ ३३ ॥ भगवान् ब्रह्माने एकाग्र चित्तसे सारे वेदोंका तीन बार अनुशीलन करके अपनी बुद्धिसे यही निश्चय किया कि जिससे सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है ॥ ३४ ॥ समस्त चर-अचर प्राणियोंमें उनके आत्मा रूपसे भगवान् श्रीकृष्ण ही लक्षित होते हैं; क्योंकि ये बुद्धि आदि दृश्य पदार्थ उनका अनुमान करानेवाले लक्षण हैं, वे इन सबके साक्षी एकमात्र द्रष्टा हैं ।३५। परीक्षित् ! इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि सब समय और सभी स्थितियोंमें अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भगवान् श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें ॥ ३६॥ राजन् ! संत पुरुष आत्मस्वरूप भगवान्की कथाका मधुर अमृत बाँटते ही रहते हैं; जो अपने कानके दोनोंमें भर-भरकर उसका पान करते हैं, उनके हृदयसे विषयोंका विषैला प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३७ ॥

तीसरा अध्याय

कामनाओंके अनुसार विभिन्न देवताओंकी उपासना तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! तुमने मुझसे जो पूछा था कि मरते समय बुद्धिमान् मनुष्यको क्या करना चाहिये, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया ॥ १ ॥ जो ब्रह्मतेजका इच्छुक हो, वह बृहस्पतिकी; जिसे इन्द्रियोंकी विशेष शक्तिकी कामना हो, वह इन्द्रकी और जिसे सन्तानकी लालसा हो, वह प्रजापतियोंकी उपासना करे ॥२॥ जिसे लक्ष्मी चाहिये वह मायादेवीकी, जिसे तेज चाहिये वह अग्निकी, जिसे धन चाहिये वह वसुओंकी और जिस प्रभावशाली पुरुषको वीरताकी चाह हो, उसे रुद्रोंकी उपासना करनी चाहिये ॥ ३ ॥ जिसे बहुत अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वह अदितिका; जिसे स्वर्गकी कामना हो, वह अदितिके पुत्र देवताओंका, जिसे राज्यकी अभिलाषा हो वह विश्वेदेवोंका और जो प्रजाको अपने अनुकूल बनानेकी इच्छा रखता हो उसे साध्य देवताओंका आराधन करना चाहिये ॥ ४ ॥आयुकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंका, पुष्टिकी इच्छासे पृथ्वीका और प्रतिष्ठाकी चाह हो तो लोकमाता पृथ्वी और द्यौ (आकाश) का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥ सौन्दर्यकी चाहसे गन्धर्वोंकी, पत्नीकी प्राप्तिके लिये उर्वशी अप्सराकी और सबका स्वामी बननेके लिये ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये ॥६॥ जिसे यशकी इच्छा हो वह यज्ञपुरुषकी, जिसे खजानेकी लालसा हो वह वरुणकी; विद्या प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा हो तो भगवान् शङ्करकी और पति-पत्नीमें परस्पर प्रेम बनाये रखनेके लिये पार्वतीजीकी उपासना करनी चाहिये ॥ ७ ॥ धर्म उपार्जन करनेके लिये विष्णुभगवान्की, वंशपरम्पराकी रक्षाके लिये पितरोंकी, बाधाओंसे बचनेके लिये यक्षोंकी और बलवान् होनेके लिये मरुद्गणोंकी आराधना करनी चाहिये ॥ ८ ॥ राज्यके लिये मन्वन्तरोंके अधिपति देवोंको, अभिचारके लिये निर्ऋतिको, भोगोंके लिये चन्द्रमाको और निष्कामता प्राप्त करनेके लिये परम पुरुष नारायणको भजना चाहिये ॥ ९ ॥ और जो बुद्धिमान् पुरुष है—वह चाहे निष्काम हो, समस्त कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्ष चाहता हो—उसे तो तीव्र भक्तियोगके द्वारा केवल पुरुषोत्तम भगवान्की ही आराधना करनी चाहिये ॥ १० ॥ जितने भी उपासक हैं, उनका सबसे बड़ा हित इसीमें है कि वे भगवान्के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करके भगवान्में अविचल प्रेम प्राप्त कर लें ॥ ११ ॥ ऐसे पुरुषोंके सत्सङ्गमें जो भगवान्की लीला-कथाएँ होती हैं, उनसे उस दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिससे संसार-सागरकी त्रिगुणमयी तरङ्गमालाओंके थपेड़े शान्त हो जाते हैं, हृदय शुद्ध होकर आनन्दका अनुभव होने लगता है, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति नहीं रहती, कैवल्यमोक्षका सर्वसम्मत मार्ग भक्तियोग प्राप्त हो जाता है । भगवान्की ऐसी रसमयी कथाओंका चस्का लग जानेपर भला कौन ऐसा है, जो उनमें प्रेम न करे ॥१२॥

शौनकजीने कहा—सूतजी ! राजा परीक्षित्ने शुकदेवजीकी यह बात सुनकर उनसे और क्या पूछा ? वे तो सर्वज्ञ होनेके साथ-ही-साथ मधुर वर्णन करनेमें भी बड़े निपुण थे ॥ १३ ॥ सूतजी ! आप तो सब

कुछ जानते हैं। हमलोग उनकी वह बातचीत बड़े प्रेमसे सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके अवश्य सुनाइये। क्योंकि संतोंकी सभामें ऐसी ही बातें होती हैं, जिनका पर्यवसान भगवान्की रसमयी लीला-कथामें ही होता है ॥ १४ ॥ पाण्डुनन्दन महारथी राजा परीक्षित् बड़े भगवद्भक्त थे। बाल्यावस्थामें खिलौनोंसे खेलते समय भी वे श्रीकृष्णलीलाका ही रस लेते थे ॥ १५ ॥ भगवन्मय श्रीशुकदेवजी भी जन्मसे ही भगवत्परायण हैं। ऐसे संतोंके सत्सङ्गमें भगवान्के मङ्गलमय गुणोंकी दिव्य चर्चा अवश्य ही हुई होगी ॥ १६ ॥ जिसका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंके गान अथवा श्रवणमें व्यतीत हो रहा है, उसके अतिरिक्त सभी मनुष्योंकी आयु व्यर्थ जा रही है। ये भगवान् सूर्य प्रतिदिन अपने उदय और अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं ॥ १७ ॥ क्या वृक्ष नहीं जीते ? क्या लुहारकी धौंकनी साँस नहीं लेती ? गाँवके अन्य पालतू पशु क्या मनुष्य-पशुकी ही तरह खाते-पीते या मैथुन नहीं करते ॥१८॥ जिसके कानमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथा कभी नहीं पड़ी, वह नर पशु कुत्ते, ग्राम-सूकर, ऊँट और गधेसे भी गया-बीता है ॥ १९ ॥

सूतजी ! जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी कथा कभी नहीं सुनता, उसके कान बिलके समान हैं। जो जीभ भगवान्की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेंढककी जीभके समान टर्र-टर्र करनेवाली है; उसका तो न रहना ही अच्छा है ॥ २० ॥ जो सिर कभी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें झुकता नहीं, वह रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होनेपर भी बोझामात्र ही है। जो हाथ भगवान्की सेवा-पूजा नहीं करते, वे सोनेके कंगनसे भूषित होनेपर भी मुर्देके हाथ हैं ॥ २१ ॥ जो आँखें भगवान्की याद दिलानेवाली मूर्ति, तीर्थ, नदी आदिका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरोंकी पाँखमें बने हुए आँखोंके चिह्नके समान निरर्थक हैं। मनुष्योंके वे पैर चलनेकी शक्ति रखनेपर भी न चलनेवाले पेड़ों-जैसे ही हैं, जो भगवान्की लीला-स्थलियोंकी यात्रा नहीं करते ॥ २२ ॥ जिस मनुष्यने भगवत्प्रेमी संतोंके चरणोंकी धूल कभी सिरपर नहीं चढ़ायी, वह जीता हुआ भी मुर्दा है। जिस मनुष्यने भगवान्के चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्ध लेकर उसकी सराहना नहीं की, वह श्वास लेता हुआ भी श्वासरहित शव है ॥ २३ ॥ सूतजी ! वह हृदय नहीं, लोहा है, जो भगवान्के मंगलमय नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेपर भी पिघलकर उन्हींकी ओर बह नहीं जाता। जिस समय हृदय पिघल जाता है, उस समय नेत्रोंमें आँसू छलकने लगते हैं और शरीरका रोम-रोम खिल उठता है ॥ २४ ॥ प्रिय सूतजी ! आपकी वाणी हमारे हृदयको मधुरतासे भर देती है। इसलिये भगवान्के परम भक्त, आत्मविद्या-विशारद श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्के सुन्दर प्रश्न करनेपर जो कुछ कहा, वह संवाद आप कृपा करके हमलोगोंको सुनाइये ॥ २५ ॥

चौथा अध्याय

राजाका सृष्टिविषयक प्रश्न और शुकदेवजीका कथारम्भ

सूतजी कहते हैं—शुकदेवजीके वचन भगवत्तत्त्वका निश्चय करानेवाले थे। उत्तरानन्दन राजा परीक्षित्ने उन्हें सुनकर अपनी शुद्ध बुद्धि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्यभावसे समर्पित कर दी ॥ १ ॥ शरीर, पत्नी, पुत्र, महल, पशु, धन, भाई-बन्धु और निष्कण्टक राज्यमें नित्यके अभ्यासके कारण उनकी दृढ़ ममता हो गयी थी। एक क्षणमें ही उन्होंने उस ममताका त्याग कर दिया ॥ २ ॥ शौनकादि ऋषियो ! महामनस्वी परीक्षित्ने अपनी मृत्युका निश्चित समय जान लिया था। इसलिये उन्होंने धर्म, अर्थ और कामसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी कर्म थे, उनका संन्यास कर दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णमें सुदृढ़ आत्मभावको प्राप्त होकर बड़ी श्रद्धासे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा सुननेके लिये उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे यही प्रश्न किया, जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥३-४॥

परीक्षित्ने पूछा—भगवत्स्वरूप मुनिवर ! आप परम पवित्र और सर्वज्ञ हैं। आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य एवं उचित है। आप ज्यों-ज्यों भगवान्की

कथा कहते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मेरे अज्ञानका परदा फटता जा रहा है ॥ ५ ॥ मैं आपसे फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् अपनी मायासे इस संसारकी सृष्टि कैसे करते हैं । इस संसारकी रचना तो इतनी रहस्यमयी है कि ब्रह्मादि समर्थ लोकपाल भी इसके समझनेमें भूल कर बैठते हैं ॥ ६ ॥ भगवान् कैसे इस विश्वकी रक्षा और फिर संहार करते हैं ? अनन्तशक्ति परमात्मा किन-किन शक्तियोंका आश्रय लेकर अपने-आपको ही खिलौने बनाकर खेलते हैं ? वे बच्चोंके बनाये हुए घरौंदोंकी तरह ब्रह्माण्डोंको कैसे बनाते हैं और फिर किस प्रकार बात-की-बातमें मिटा देते हैं ? ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीहरिकी लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत—अचिन्त्य हैं । इसमें संदेह नहीं कि बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी उनकी लीलाका रहस्य समझना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है ॥ ८ ॥ भगवान् तो अकेले ही हैं । वे बहुत-से कर्म करनेके लिये पुरुषरूपसे प्रकृतिके विभिन्न गुणोंको एक साथ ही धारण करते हैं अथवा अनेकों अवतार ग्रहण करके उन्हें क्रमशः धारण करते हैं ? ॥ ९ ॥ मुनिवर ! आप वेद और ब्रह्मतत्त्व दोनोंके पूर्ण मर्मज्ञ हैं, इसलिये मेरे इस सन्देहका निवारण कीजिये ॥ १० ॥

सूतजी कहते हैं—जब राजा परीक्षित्‌ने भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेके लिये उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णका बार-बार स्मरण करके अपना प्रवचन प्रारम्भ किया ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—उन पुरुषोत्तम भगवान्‌के चरणकमलोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकारकर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं; जो समस्त चर-अचर प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिके विषय नहीं हैं; जो स्वयं अनन्त हैं तथा जिनकी महिमा भी अनन्त है ॥ १२ ॥ हम पुनः बार-बार उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, जो सत्पुरुषोंका दुःख मिटाकर उन्हें अपने प्रेमका दान करते हैं, दुष्टोंकी सांसारिक बढ़ती रोककर उन्हें मुक्ति देते हैं तथा जो लोग परमहंस आश्रममें स्थित हैं, उन्हें उनकी भी अभीष्ट वस्तुका दान करते हैं । क्योंकि चर-अचर समस्त प्राणी उन्हींकी मूर्ति हैं, इसलिये किसीसे भी उनका पक्षपात नहीं है ॥ १३ ॥ जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करनेवाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते; जिनके समान भी किसीका ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक तो हो ही कैसे सकता है तथा ऐसे ऐश्वर्यसे युक्त होकर जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार करते रहते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है ॥ १५ ॥ विवेकी पुरुष जिनके चरणकमलोंकी शरण लेकर अपने हृदयसे इस लोक और परलोककी आसक्ति निकाल डालते हैं और बिना किसी परिश्रमके ही ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन मङ्गलमय कीर्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णको अनेक बार नमस्कार है ॥ १६ ॥ बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जबतक अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती । जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है ॥ १७ ॥ किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे पापी जिनके शरणागत भक्तोंकी शरण ग्रहण करनेसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है ॥ १८ ॥ वे ही भगवान् ज्ञानियोंके आत्मा हैं, भक्तोंके स्वामी हैं, कर्मकाण्डियोंके लिये वेदमूर्ति हैं, धार्मिकोंके लिये धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियोंके लिये तपःस्वरूप हैं । ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े देवता भी अपने शुद्ध हृदयसे उनके स्वरूपका चिन्तन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रहते हैं । वे मुझपर अपने अनुग्रहकी—प्रसादकी वर्षा करें ॥ १९ ॥ जो समस्त सम्पत्तियों-

की स्वामिनी लक्ष्मीदेवीके पति हैं, समस्त यज्ञोंके भोक्ता एवं फलदाता हैं, प्रजाके रक्षक हैं, सबके अन्तर्यामी और समस्त लोकोंके पालनकर्ता हैं तथा पृथ्वीदेवीके स्वामी हैं, जिन्होंने यदुवंशमें प्रकट होकर अन्धक, वृष्णि एवं यदुवंशके लोगोंकी रक्षा की है, तथा जो उन लोगोंके एकमात्र सहारे रहे हैं—वे भक्तवत्सल, संतजनोंके सर्वस्व श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥ २० ॥ विद्वान् पुरुष जिनके चरणकमलोंके चिन्तनरूप समाधिसे शुद्ध हुई बुद्धिके द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करते हैं तथा उनके दर्शनके अनन्तर अपनी-अपनी मति और रुचिके अनुसार जिनके स्वरूपका वर्णन करते रहते हैं, वे प्रेम और मुक्तिके लुटानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥२१॥ जिन्होंने सृष्टिके समय ब्रह्माके हृदयमें पूर्वकल्पकी स्मृति जागरित करनेके लिये ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीको प्रेरित किया और वे अपने अङ्गोंके सहित वेदके रूपमें उनके मुखसे प्रकट हुईं, वे ज्ञानके मूलकारण भगवान् मुझपर कृपा करें, मेरे हृदयमें प्रकट हों ॥ २२ ॥ भगवान् ही पञ्चमहाभूतोंसे इन शरीरोंका निर्माण करके इनमें जीवरूपसे शयन करते हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण और एक मन—इन सोलह कलाओंसे युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयोंका भोग करते हैं। वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणीको अपने गुणोंसे अलङ्कृत कर दें ॥ २३ ॥ संत पुरुष जिनके मुखकमलसे मकरन्दके समान झरती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते रहते हैं उन वासुदेवावतार सर्वज्ञ भगवान् व्यासके चरणोंमें मेरा बार-बार नमस्कार है ॥ २४ ॥

परीक्षित्! वेदगर्भ स्वयम्भू ब्रह्माने नारदके प्रश्न करनेपर यही बात कही थी, जिसका स्वयं भगवान् नारायणने उन्हें उपदेश किया था (और वही मैं तुमसे कह रहा हूँ) ॥ २५ ॥

पाँचवाँ अध्याय

सृष्टि-वर्णन

नारदजीने पूछा—पिताजी! आप केवल मेरे ही नहीं, सबके पिता, समस्त देवताओंसे श्रेष्ठ एवं सृष्टिकर्ता हैं। आपको मेरा प्रणाम है। आप मुझे वह ज्ञान दीजिये, जिससे आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है ॥ १ ॥ पिताजी! इस संसारका क्या लक्षण है? इसका आधार क्या है? इसका निर्माण किसने किया है? इसका प्रलय किसमें होता है? यह किसके अधीन है? और वास्तवमें यह है क्या वस्तु? आप इसका तत्त्व बतलाइये ॥ २ ॥ आप तो यह सब कुछ जानते हैं; क्योंकि जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होगा, उसके स्वामी आप ही हैं। यह सारा संसार हथेलीपर रक्खे हुए आँवलेके समान आपकी ज्ञानदृष्टिके अन्तर्गत ही है ॥ ३ ॥ पिताजी! आपको यह ज्ञान कहाँसे मिला? आप किसके आधारपर ठहरे हुए हैं? आपका स्वामी कौन है? और आपका स्वरूप क्या है? आप अकेले ही अपनी मायासे पञ्चभूतोंके द्वारा प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं, कितना अद्भुत है! ॥४॥ जैसे मकड़ी अनायास ही अपने मुँहसे जाला निकालकर उसमें खेलने लगती है, वैसे ही आप अपनी शक्तिके आश्रयसे जीवोंको अपनेमें ही उत्पन्न करते हैं और फिर भी आपमें कोई विकार नहीं होता ॥ ५ ॥ जगत्में नाम, रूप और गुणोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसमें मैं ऐसी कोई सत्, असत्, उत्तम, मध्यम या अधम वस्तु नहीं देखता, जो आपके सिवा और किसीसे उत्पन्न हुई हो ॥ ६ ॥ इस प्रकार सबके ईश्वर होकर भी आपने एकाग्र चित्तसे घोर तपस्या की, इस बातसे मुझे मोहके साथ-साथ बहुत बड़ी शङ्का भी हो रही है कि आपसे बड़ा भी कोई है क्या ॥ ७ ॥ पिताजी! आप सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं। जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ, वह सब आप कृपा करके मुझे इस प्रकार समझाइये कि जिससे मैं आपके उपदेशको ठीक-ठीक समझ सकूँ ॥ ८ ॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा नारद! तुमने जीवोंके प्रति करुणाके भावसे भरकर यह बहुत ही सुन्दर प्रश्न किया है; क्योंकि इससे भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेकी प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई है ॥ ९ ॥ तुमने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, तुम्हारा वह कथन भी असत्य नहीं है। क्योंकि जबतक मुझसे परेका तत्त्व—जो स्वयं भगवान् ही हैं—जान नहीं लिया

जाता, तबतक मेरा ऐसा ही प्रभाव प्रतीत होता है ॥ १० ॥ जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे उन्हींके प्रकाशसे प्रकाशित होकर जगत्में प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही मैं भी उन्हीं स्वयंप्रकाश भगवान्के चिन्मय प्रकाशसे प्रकाशित होकर संसारको प्रकाशित कर रहा हूँ ॥ ११ ॥ उन भगवान् वासुदेवकी मैं वन्दना करता हूँ और ध्यान भी, जिनकी दुर्जय मायासे मोहित होकर लोग मुझे जगद्गुरु कहते हैं ॥ १२ ॥ यह माया तो उनकी आँखोंके सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूरसे ही भाग जाती है। परन्तु संसारके अज्ञानी जन उसीसे मोहित होकर 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार बकते रहते हैं ॥ १३ ॥ भगवत्स्वरूप नारद ! द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव—वास्तवमें भगवान्से भिन्न दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है ॥ १४ ॥ वेद नारायणके परायण हैं। देवता भी नारायणके ही अङ्गोंमें कल्पित हुए हैं, समस्त यज्ञ भी नारायणकी प्रसन्नताके लिये ही हैं और उनसे जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, वे भी नारायणमें ही कल्पित हैं ॥ १५ ॥ सब प्रकारके योग भी नारायणकी प्राप्तिके ही हेतु हैं। सारी तपस्याएँ नारायणकी ओर ही ले जानेवाली हैं, ज्ञानके द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनोंका पर्यवसान भगवान् नारायणमें ही है ॥ १६ ॥ वे द्रष्टा होनेपर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होनेपर भी सर्वस्वरूप हैं। उन्होंने ही मुझे बनाया है और उनकी दृष्टिसे ही प्रेरित होकर मैं उनके इच्छानुसार सृष्टि-रचना करता हूँ ॥ १७ ॥ भगवान् मायाके गुणोंसे रहित एवं अनन्त हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण—ये तीन गुण मायाके द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं ॥ १८ ॥ ये ही तीनों गुण द्रव्य, ज्ञान और क्रियाका आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुषको ही मायामें स्थित होनेपर कार्य, कारण और कर्तापनके अभिमानसे बाँध लेते हैं ॥१९॥ नारद ! इन्द्रियातीत भगवान् गुणोंके इन तीन आवरणोंसे अपने स्वरूपको भलीभाँति ढक लेते हैं, इसलिये लोग उनको नहीं जान पाते। सारे संसारके और मेरे भी एकमात्र स्वामी वे ही हैं ॥ २० ॥

मायापति भगवान्ने एकसे बहुत होनेकी इच्छा होनेपर अपनी मायासे अपने स्वरूपमें स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार कर लिया ॥ २१ ॥ भगवान्की शक्तिसे ही कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभावने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्मने महत्तत्त्वको जन्म दिया ॥ २२ ॥ रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धि होनेपर महत्तत्त्वका जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तमःप्रधान विकार हुआ ॥ २३ ॥ वह अहंकार कहलाया और विकारको प्राप्त होकर तीन प्रकारका हो गया। उसके भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस। नारदजी ! वे क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिप्रधान हैं ॥२४॥ जब पञ्चमहाभूतोंके कारणरूप तामस अहंकारमें विकार हुआ, तब उससे आकाशकी उत्पत्ति हुई। आकाशकी तन्मात्रा और गुण शब्द है। इस शब्दके द्वारा ही द्रष्टा और दृश्यका बोध होता है ॥२५॥ जब आकाशमें विकार हुआ, तब उससे वायुकी उत्पत्ति हुई; उसका गुण स्पर्श है। अपने कारणका गुण आ जानेसे यह शब्दवाला भी है। इन्द्रियोंमें स्फूर्ति, शरीरमें जीवनीशक्ति, ओज और बल इसीके रूप हैं ॥ २६ ॥ काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें भी विकार हुआ। उससे तेजकी उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है। साथ ही इसके कारण आकाश और वायुके गुण शब्द एवं स्पर्श भी इसमें हैं ॥ २७ ॥ तेजके विकारसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसका गुण है रस; कारण-तत्त्वोंके गुण शब्द, स्पर्श और रूप भी इसमें हैं ॥ २८ ॥ जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, इसका गुण है गन्ध। कारणके गुण कार्यमें आते हैं—इस न्यायसे शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं ॥ २९ ॥ वैकारिक अहङ्कारसे मनकी और इन्द्रियोंके दस अधिष्ठातृ-देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति ॥ ३० ॥ तैजस अहङ्कारके विकारसे श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं वाक्, हस्त, पाद, गुदा और जननेन्द्रिय—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। साथ ही ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि

और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहङ्कारसे ही उत्पन्न हुए ॥ ३१ ॥

श्रेष्ठ ब्रह्मवित्! जिस समय ये पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर संगठित नहीं थे, तब अपने रहनेके लिये भोगोंके साधनरूप शरीरकी रचना नहीं कर सके ॥ ३२ ॥ जब भगवान्ने इन्हें अपनी शक्तिसे प्रेरित किया, तब ये तत्त्व परस्पर एक दूसरेके साथ मिल गये और उन्होंने आपसमें कार्य-कारणभाव स्वीकार करके व्यष्टि-समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनोंकी रचना की ॥ ३३ ॥ वह ब्रह्माण्डरूप अंडा एक सहस्र वर्षतक निर्जीवरूपसे जलमें पड़ा रहा; फिर काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले भगवान्ने उसे जीवित कर दिया ॥ ३४ ॥ उस अंडेको फोड़कर उसमेंसे वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जङ्घा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्रोंकी संख्यामें हैं ॥ ३५ ॥ विद्वान् पुरुष (उपासनाके लिये) उसीके अङ्गोंमें समस्त लोक और उनमें रहनेवाली वस्तुओंकी कल्पना करते हैं। उसकी कमरसे नीचेके अङ्गोंमें सातों पातालकी और उसके पेड़ूसे ऊपरके अङ्गोंमें सातों स्वर्गकी कल्पना की जाती है ॥ ३६ ॥ ब्राह्मण इस विराट् पुरुषका मुख हैं, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३७ ॥ पैरोंसे लेकर कटिपर्यन्त सातों पाताल तथा भूलोककी कल्पना की गयी है; नाभिमें भुवर्लोककी, हृदयमें स्वर्लोककी और परमात्माके वक्षःस्थलमें महर्लोककी कल्पना की गयी है ॥ ३८ ॥ उसके गलेमें जनलोक, दोनों स्तनोंमें तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्माका नित्य निवासस्थान सत्यलोक है ॥३९॥ उस विराट् पुरुषकी कमरमें अतल, जाँघोंमें वितल, घुटनोंमें पवित्र सुतललोक और जङ्घाओंमें तलातलकी कल्पना की गयी है ॥ ४० ॥ एड़ीके ऊपरकी गाँठोंमें महातल, पंजे और एड़ियोंमें रसातल और तलुओंमें पाताल समझना चाहिये। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोकमय है ॥ ४१ ॥ विराट् भगवान्के अङ्गोंमें इस प्रकार भी लोकोंकी कल्पना की जाती है कि उनके चरणोंमें पृथ्वी है, नाभिमें भुवर्लोक है और सिरमें स्वर्लोक है ॥ ४२ ॥

छठा अध्याय

विराट्स्वरूपकी विभूतियोंका वर्णन

ब्रह्माजी कहते हैं—उन्हीं विराट् पुरुषके मुखसे वाणी और उसके अधिष्ठातृदेवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं। सातों छन्द* उनकी सात धातुओंसे निकले हैं। मनुष्यों, पितरों और देवताओंके भोजन करनेयोग्य अमृतमय अन्न, सब प्रकारके रस, रसनेन्द्रिय और उसके अधिष्ठातृदेवता वरुण विराट् पुरुषकी जिह्वासे उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ उनके नासाछिद्रोंसे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पाँचों प्राण और वायु तथा घ्राणेन्द्रियसे अश्विनीकुमार, समस्त ओषधियाँ एवं साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ उनकी नेत्रेन्द्रिय रूप और तेजकी, तथा नेत्र-गोलक स्वर्ग और सूर्यकी जन्मभूमि हैं। समस्त दिशाएँ और पवित्र करनेवाले तीर्थ कानोंसे तथा आकाश और शब्द श्रोत्रेन्द्रियसे निकले हैं। उनका शरीर संसारकी सभी वस्तुओंके सारभाग तथा सौन्दर्यका खजाना है ॥ ३ ॥ सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचासे निकले हैं; उनके रोम सभी उद्भिज्ज पदार्थोंके जन्मस्थान हैं, अथवा केवल उन्हींके, जिनसे यज्ञ सम्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ उनके केश, दाढ़ी-मूँछ और नखोंसे मेघ, बिजली, शिला एवं लोहा आदि धातुएँ तथा भुजाओंसे प्रायः संसारकी रक्षा करनेवाले लोकपाल प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥ उनका चलना-फिरना भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोकोंका आश्रय है। उनके चरणकमल प्राप्तकी रक्षा करते हैं और भयोंको भगा देते हैं तथा समस्त कामनाओंकी पूर्ति उन्हींसे होती है ॥ ६ ॥ विराट् पुरुषका लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापतिका आधार है, तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्दका उद्गम है ॥ ७ ॥ नारदजी! विराट् पुरुषकी

* गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पङ्क्ति और जगती—ये सात छन्द हैं।

पायु-इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्यागका तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरकका उत्पत्तिस्थान है ॥ ८ ॥ उनकी पीठसे पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियोंसे नद-नदी और हड्डियोंसे पर्वतोंका निर्माण हुआ है ॥९॥ उनके उदरमें मूल प्रकृति, रस नामकी धातु तथा समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्यु समायी हुई है । उनका हृदय ही मनकी जन्मभूमि है ॥ १० ॥ नारद ! हम, तुम, धर्म, सनकादि, शङ्कर, विज्ञान और अन्तःकरण—सब-के-सब उनके चित्तके आश्रित हैं ॥११॥ (कहाँतक गिनायें—) मैं, तुम, तुम्हारे बड़े भाई सनकादि, शङ्कर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस, भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष और भी नाना प्रकारके जीव—जो आकाश, जल या स्थलमें रहते हैं—ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे, बिजली और बादल—ये सब-के-सब विराट् पुरुष ही हैं । यह सम्पूर्ण विश्व—जो कुछ कभी था, है, या होगा—सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुलके*परिमाणमें ही स्थित है ॥ १२—१५ ॥ जैसे सूर्य अपने मण्डलको प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही पुराणपुरुष परमात्मा भी सम्पूर्ण विराट् विग्रहको प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर—सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है॥ १६ ॥ मुनिवर ! जो कुछ मनुष्यकी क्रिया और सङ्कल्पसे बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद (मोक्ष) का स्वामी है । यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण लोक भगवान्‌के एक पादमात्र (अंशमात्र) हैं तथा उनके अंशमात्र लोकोंमें समस्त प्राणी निवास करते हैं । भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके ऊपर महर्लोक है । उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकोंमें क्रमशः अमृत, क्षेम एवं अभयका नित्य निवास है ॥ १८ ॥

जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकोंमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी निवास करते हैं । दीर्घकालीन ब्रह्मचर्यसे रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके भीतर ही निवास करते हैं ॥ १९ ॥ शास्त्रोंमें दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषोंके लिये है और दूसरा उपासनारूप विद्याका मार्ग, जो निष्काम उपासकोंके लिये है । मनुष्य दोनोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर भोग प्राप्त करानेवाले दक्षिण-मार्गसे अथवा मोक्ष प्राप्त करानेवाले उत्तरमार्गसे यात्रा करता है; किंतु पुरुषोत्तम भगवान् दोनोंके आधारभूत हैं ॥ २० ॥ जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग हैं, वैसे ही जिन परमात्मासे इस अण्डकी और पञ्चभूत, एकादश इन्द्रिय एवं गुणमय विराट्की उत्पत्ति हुई है—वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओंके अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं ॥ २१ ॥

जिस समय इस विराट् पुरुषके नाभि-कमलसे मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुषके अङ्गोंके अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञकी सामग्री नहीं मिली ॥ २२ ॥ तब मैंने उनके अङ्गोंमें ही यज्ञके पशु, यूप (स्तम्भ) कुश, यह यज्ञभूमि और यज्ञके योग्य उत्तम कालकी कल्पना की ॥ २३ ॥ ऋषिश्रेष्ठ ! यज्ञके लिये आवश्यक पात्र आदि वस्तुएँ, जौ, चावल आदि ओषधियाँ, घृत आदि स्नेहपदार्थ, छः रस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुः, साम, चातुर्होत्र, यज्ञोंके नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओंके नाम, पद्धतिग्रन्थ, सङ्कल्प, तन्त्र (अनुष्ठानकी रीति), गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित्त और समर्पण—यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही इकट्ठी की ॥ २४—२६ ॥ इस प्रकार विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही सारी सामग्रीका संग्रह करके मैंने उन्हीं सामग्रियोंसे उन यज्ञस्वरूप परमात्माका यज्ञके द्वारा यजन किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर तुम्हारे बड़े भाई इन नौ प्रजापतियोंने अपने चित्तको पूर्ण समाहित करके विराट् एवं अन्तर्यामीरूपसे स्थित उस पुरुषकी आराधना की ॥२८॥

* ब्रह्माण्डके सात आवरणोंका वर्णन करते हुए वेदान्त-प्रक्रियामें ऐसा माना है कि—पृथ्वीसे दसगुना जल है, जलसे दसगुना अग्नि, अग्निसे दसगुना वायु, वायुसे दसगुना आकाश, आकाशसे दसगुना अहङ्कार, अहङ्कारसे दसगुना महत्तत्त्व और महत्तत्त्वसे दसगुनी मूल प्रकृति है । वह प्रकृति भगवान्‌के केवल एक पादमें है । इस प्रकार भगवान्‌की महत्ता प्रकट की गयी है । यह दशाङ्गुलन्याय कहलाता है ।

इसके पश्चात् समय-समयपर मनु, ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और मनुष्योंने यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना की ॥ २९ ॥ नारद ! यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं भगवान् नारायणमें स्थित है, जो स्वयं तो प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, परंतु सृष्टिके प्रारम्भमें मायाके द्वारा बहुत-से गुण ग्रहण कर लेते हैं ॥ ३० ॥ उन्हींकी प्रेरणासे मैं इस संसारकी रचना करता हूँ । उन्हींके अधीन होकर रुद्र इसका संहार करते हैं और वे स्वयं ही विष्णुके रूपसे इसका पालन करते हैं । क्योंकि उन्होंने सत्त्व, रज और तमकी तीन शक्तियाँ स्वीकार कर रक्खी हैं ॥३१॥ बेटा ! जो कुछ तुमने पूछा था, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया; भाव या अभाव, कार्य या कारणके रूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो भगवान्‌से भिन्न हो ॥३२॥

प्यारे नारद ! मैं प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदयसे भगवान्‌के स्मरणमें मग्न रहता हूँ, इसीसे मेरी वाणी कभी असत्य होती नहीं दीखती, मेरा मन कभी असत्य सङ्कल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी मर्यादाका उल्लङ्घन करके कुमार्गमें नहीं जातीं ॥ ३३ ॥ मैं वेदमूर्ति हूँ, मेरा जीवन तपस्यामय है, बड़े-बड़े प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उनका स्वामी हूँ । पहले मैंने बड़ी निष्ठासे योगका सर्वाङ्ग अनुष्ठान किया था, परंतु मैं अपने मूलकारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सका ॥ ३४ ॥ (क्योंकि वे तो एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं ।) मैं तो परम मङ्गलमय एवं शरण आये हुए भक्तोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले परम कल्याणस्वरूप भगवान्‌के चरणोंको ही नमस्कार करता हूँ । उनकी मायाकी शक्ति अपार है; जैसे आकाश अपने अन्तको नहीं जानता, वैसे ही वे भी अपनी महिमाका विस्तार नहीं जानते । ऐसी स्थितिमें दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं ? ॥ ३५ ॥ मैं, मेरे पुत्र तुम लोग और शङ्करजी भी उनके सत्य स्वरूपको नहीं जानते; तब दूसरे देवता तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं । हम सब इस प्रकार मोहित हो रहे हैं कि उनकी मायाके द्वारा रचे हुए जगत्‌को भी ठीक-ठीक नहीं समझ सकते, अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार ही अटकल लगाते हैं ॥ ३६ ॥

हमलोग केवल जिनके अवतारकी लीलाओंका गान ही करते रहते हैं, उनके तत्त्वको नहीं जानते— उन भगवान्‌के श्रीचरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ ॥३७॥ वे अजन्मा एवं पुरुषोत्तम हैं । प्रत्येक कल्पमें वे स्वयं अपने आपमें अपने आपकी ही सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार कर लेते हैं ॥ ३८ ॥ वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप हैं और अन्तरात्माके रूपमें एकरस स्थित हैं । वे तीनों कालमें सत्य एवं परिपूर्ण हैं; न उनका आदि है न अन्त । वे तीनों गुणोंसे रहित, सनातन एवं अद्वितीय हैं ॥ ३९ ॥ नारद ! महात्मालोग जिस समय अपने अन्तःकरण, इन्द्रिय और शरीरको शान्त कर लेते हैं, उस समय उनका साक्षात्कार करते हैं । परंतु जब असत्पुरुषोंके द्वारा कुतर्कोंका जाल बिछाकर उनको ढक दिया जाता है, तब उनके दर्शन नहीं हो पाते ॥ ४० ॥

परमात्माका पहला अवतार विराट् पुरुष है; उसके सिवा काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गम जीव—सब-के-सब उन अनन्त भगवान्‌के ही रूप हैं ॥ ४१ ॥ मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि ये प्रजापति, तुम और तुम्हारे-जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, पक्षियोंके राजा, मनुष्यलोकके राजा, नीचेके लोकोंके राजा; गन्धर्व, विद्याधर और चारणोंके अधिनायक; यक्ष, राक्षस, साँप और नागोंके स्वामी; महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज; और भी प्रेत-पिशाच, भूत-कूष्माण्ड, जलजन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी; एवं संसारमें और भी जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमासे युक्त हैं; अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूतिसे युक्त हैं; एवं जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली, रूपवान् या अरूप हैं—वे सब-के-सब परमतत्त्वमय भगवत्स्वरूप ही हैं ॥ ४२—४४ ॥ नारद ! इनके सिवा परम पुरुष परमात्माके परम पवित्र एवं प्रधान-प्रधान लीलावतार भी शास्त्रोंमें वर्णित हैं । उनका मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ । उनके चरित्र सुननेमें बड़े मधुर एवं श्रवणेन्द्रियके दोषोंको दूर करनेवाले हैं । तुम सावधान होकर उनका रस लो ॥ ४५ ॥

सातवाँ अध्याय

भगवान्‌के लीलावतारोंकी कथा

ब्रह्माजी कहते हैं—अनन्त भगवान्‌ने प्रलयके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये समस्त यज्ञमय वराह-शरीर ग्रहण किया था। आदिदैत्य हिरण्याक्ष जलके अंदर ही लड़नेके लिये उनके सामने आया। जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंके पंख काट डाले थे, वैसे ही वराह भगवान्‌ने अपनी दाढ़ोंसे उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ १ ॥

फिर उन्हीं प्रभुने रुचि नामक प्रजापतिकी पत्नी आकूतिके गर्भसे सुयज्ञके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उस अवतारमें उन्होंने दक्षिणा नामकी पत्नीसे सुयम नामके देवताओंको उत्पन्न किया और तीनों लोकोंके बड़े-बड़े सङ्कट हर लिये। इसीसे स्वायम्भुव मनुने उन्हें 'हरि'के नामसे पुकारा ॥ २ ॥

नारद! कर्दम प्रजापतिके घर देवहूतिके गर्भसे नौ बहिनोंके साथ भगवान्‌ने कपिलके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी माताको उस आत्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे इसी जन्ममें अपने हृदयके सम्पूर्ण मल—तीनों गुणोंकी आसक्तिका सारा कीचड़ धोकर कपिल भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ३ ॥

महर्षि अत्रि भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्त करना चाहते थे। उनपर प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उनसे एक दिन कहा कि 'मैंने अपने आपको तुम्हें दे दिया।' इसीसे अवतार लेनेपर भगवान्‌का नाम 'दत्त' (दत्तात्रेय) पड़ा। उनके चरणकमलोंके परागसे अपने शरीरको पवित्र करके राजा यदु और सहस्रार्जुन आदिने योगकी भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कीं ॥४॥

नारद! सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। मेरे उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर उन्होंने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारके रूपमें अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने प्रलयके कारण पहले कल्पके भूले हुए आत्मज्ञानका ऋषियोंके प्रति यथावत् उपदेश किया, जिससे उन लोगोंने तत्काल परम तत्त्वका अपने हृदयमें साक्षात्कार कर लिया ॥ ५ ॥

धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे वे नर-नारायणके रूपमें प्रकट हुए। उनकी तपस्याका प्रभाव उन्हींके जैसा है। इन्द्रकी भेजी हुई कामकी सेना अप्सराएँ उनके सामने जाते ही अपना स्वभाव खो बैठीं। वे अपने हाव-भावसे उन आत्मस्वरूप भगवान्‌की तपस्यामें विघ्न नहीं डाल सकीं ॥ ६ ॥ नारद! शङ्कर आदि महानुभाव अपनी रोषभरी दृष्टिसे कामदेवको जला देते हैं, परंतु अपने आपको जलानेवाले असह्य क्रोधको वे नहीं जला पाते। वही क्रोध नर-नारायणके निर्मल हृदयमें प्रवेश करनेके पहले ही डरके मारे काँप जाता है। फिर भला, उनके हृदयमें कामका प्रवेश तो हो ही कैसे सकता है ॥ ७ ॥

अपने पिता राजा उत्तानपादके पास बैठे हुए पाँच वर्षके बालक ध्रुवको उनकी सौतेली माता सुरुचिने अपने वचन-बाणोंसे बेध दिया था। इतनी छोटी अवस्था होनेपर भी वे उस ग्लानिसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने ध्रुवको ध्रुवपदका वरदान दिया। आज भी ध्रुवके ऊपर-नीचे प्रदक्षिणा करते हुए दिव्य महर्षिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥ ८ ॥

कुमार्गगामी वेनका ऐश्वर्य और पौरुष ब्राह्मणोंके हुङ्काररूपी वज्रसे जलकर भस्म हो गया। वह नरकमें गिरने लगा। ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान्‌ने उसके शरीर-मन्थनसे पृथुके रूपमें अवतार धारण कर उसे नरकोंसे उबारा और इस प्रकार 'पुत्र'* शब्दको चरितार्थ किया। उसी अवतारमें पृथ्वीको गाय बनाकर उन्होंने उससे जगत्‌के लिये समस्त ओषधियोंका दोहन किया ॥ ९ ॥

राजा नाभिकी पत्नी सुदेवीके गर्भसे भगवान्‌ने ऋषभदेवके रूपमें जन्म लिया। इस अवतारमें समस्त

* 'पुत्र' शब्दका अर्थ ही है 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेवाला।

आसक्तियोंसे रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मनको अत्यन्त शान्त करके एवं अपने स्वरूपमें स्थित होकर समदर्शीके रूपमें उन्होंने जड़ोंकी भाँति योगचर्याका आचरण किया। इस स्थितिको महर्षिलोग परमहंसपद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं॥ १०॥

इसके बाद स्वयं उन्हीं यज्ञपुरुषने मेरे यज्ञमें स्वर्णके समान कान्तिवाले हयग्रीवके रूपमें अवतार ग्रहण किया। भगवान्‌का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय है। उन्हींकी नासिकासे श्वासके रूपमें वेदवाणी प्रकट हुई॥ ११॥

चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें भावी मनु सत्यव्रतने मत्स्यरूपमें भगवान्‌को प्राप्त किया था। उस समय पृथ्वीरूप नौकाके आश्रय होनेके कारण वे ही समस्त जीवोंके आश्रय बने। प्रलयके उस भयंकर जलमें मेरे मुखसे गिरे हुए वेदोंको लेकर वे उसीमें विहार करते रहे॥ १२॥

जब मुख्य-मुख्य देवता और दानव अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरको मथ रहे थे, तब भगवान्‌ने कच्छपके रूपमें अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया। उस समय पर्वतके घूमनेके कारण उसकी रगड़से उनकी पीठकी खुजलाहट थोड़ी मिट गयी, जिससे वे कुछ क्षणोंतक सुखकी नींद सो सके॥ १३॥

देवताओंका महान् भय मिटानेके लिये उन्होंने नृसिंहका रूप धारण किया। फड़कती हुई भौंहों और तीखी दाढ़ोंसे उनका मुख बड़ा भयावना लगता था। हिरण्यकशिपु उन्हें देखते ही हाथमें गदा लेकर उनपर टूट पड़ा। इसपर भगवान् नृसिंहने दूरसे ही उसे पकड़कर अपनी जाँघोंपर डाल लिया और उसके छटपटाते रहनेपर भी अपने नखोंसे उसका पेट फाड़ डाला॥ १४॥

बड़े भारी सरोवरमें महाबली ग्राहने गजेन्द्रका पैर पकड़ लिया। जब बहुत थककर वह घबरा गया, तब उसने अपनी सूँड़में कमल लेकर भगवान्‌को पुकारा—'हे आदिपुरुष! हे समस्त लोकोंके स्वामी! हे श्रवणमात्रसे कल्याण करनेवाले!'॥ १५॥ उसकी पुकार सुनकर अनन्तशक्ति भगवान् चक्रपाणि गरुड़की पीठपर चढ़कर वहाँ आये और अपने चक्रसे उन्होंने ग्राहका मस्तक उखाड़ डाला। इस प्रकार कृपापरवश भगवान्‌ने अपने शरणागत गजेन्द्रकी सूँड़ पकड़कर उस विपत्तिसे उसका उद्धार किया॥ १६॥

भगवान् वामन अदितिके पुत्रोंमें सबसे छोटे थे, परंतु गुणोंकी दृष्टिसे वे सबसे बड़े थे। क्योंकि यज्ञपुरुष भगवान्‌ने इस अवतारमें बलिके संकल्प छोड़ते ही सम्पूर्ण लोकोंको अपने चरणोंसे ही नाप लिया था। वामन बनकर उन्होंने तीन पग पृथ्वीके बहाने बलिसे सारी पृथ्वी ले तो ली, परंतु इससे यह बात सिद्ध कर दी कि सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको याचनाके सिवा और किसी उपायसे समर्थ पुरुष भी अपने स्थानसे नहीं हटा सकते, ऐश्वर्यसे च्युत नहीं कर सकते॥ १७॥ दैत्यराज बलिने अपने सिरपर स्वयं वामनभगवान्‌का चरणामृत धारण किया था। ऐसी स्थितिमें उन्हें जो देवताओंके राजा इन्द्रकी पदवी मिली, इसमें कोई बलिका पुरुषार्थ नहीं था। अपने गुरु शुक्राचार्यके मना करनेपर भी वे अपनी प्रतिज्ञाके विपरीत कुछ भी करनेको तैयार नहीं हुए। और तो क्या, भगवान्‌का तीसरा पग पूरा करनेके लिये उनके चरणोंमें सिर रखकर उन्होंने अपने आपको भी समर्पित कर दिया॥ १८॥

नारद! तुम्हारे अत्यन्त प्रेमभावसे परम प्रसन्न होकर हंसके रूपमें भगवान्‌ने तुम्हें योग, ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले भागवतधर्मका उपदेश किया। वह केवल भगवान्‌के शरणागत भक्तोंको ही सुगमतासे प्राप्त होता है॥ १९॥ वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंमें मनुके रूपमें अवतार लेकर मनुवंशकी रक्षा करते हुए दसों दिशाओंमें अपने सुदर्शनचक्रके समान तेजसे बेरोक-टोक—निष्कण्टक राज्य करते हैं। तीनों लोकोंके ऊपर सत्यलोकतक उनके चरित्रोंकी कमनीय कीर्ति फैल जाती है और उसी रूपमें वे समय-समयपर पृथ्वीके भारभूत दुष्ट राजाओंका दमन भी करते रहते हैं॥ २०॥

स्वनामधन्य भगवान् धन्वन्तरि अपने नामसे ही बड़े-बड़े रोगियोंके रोग तत्काल नष्ट कर देते हैं। उन्होंने अमृत पिलाकर देवताओंको अमर कर दिया और दैत्योंके द्वारा हरण किये हुए उनके यज्ञ-भाग उन्हें फिरसे दिला दिये। उन्होंने ही अवतार लेकर संसारमें आयुर्वेदका प्रवर्तन किया ॥ २१ ॥

जब संसारमें ब्राह्मणद्रोही आर्यमर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाशके लिये ही दैववश बढ़ जाते हैं और पृथ्वीके काँटे बन जाते हैं, तब भगवान् महापराक्रमी परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी तीखी धारवाले फरसेसे इक्कीस बार उनका संहार करते हैं ॥ २२ ॥

मायापति भगवान् हमपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी कलाओं—भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ श्रीरामके रूपसे इक्ष्वाकुके वंशमें अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी पत्नी और भाईके साथ वे वनमें निवास करते हैं। उसी समय उनसे विरोध करके रावण उनके हाथों मरता है ॥ २३ ॥ त्रिपुर विमानको जलानेके लिये उद्यत शङ्करके समान, जिस समय भगवान् राम शत्रुकी नगरी लङ्काको भस्म करनेके लिये समुद्रतटपर पहुँचते हैं, उस समय सीताके वियोगके कारण बढ़ी हुई क्रोधाग्निसे उनकी आँखें इतनी लाल हो जाती हैं कि उनकी दृष्टिसे ही समुद्रके मगरमच्छ, साँप और ग्राह आदि जीव जलने लगते हैं और भयसे थर-थर काँपता हुआ समुद्र झटपट उन्हें मार्ग दे देता है ॥ २४ ॥ जब रावणकी कठोर छातीसे टकराकर इन्द्रके वाहन ऐरावतके दाँत चूर-चूर होकर चारों ओर फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण घमंडसे फूलकर हँसने लगा था। वही रावण जब श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजीको चुराकर ले जाता है और लड़ाईके मैदानमें उनसे लड़नेके लिये गर्वपूर्वक आता है, तब भगवान् श्रीरामके धनुषकी टङ्कारसे ही उसका वह घमंड प्राणोंके साथ तत्क्षण विलीन हो जाता है ॥ २५ ॥

जिस समय झुंड-के-झुंड दैत्य पृथ्वीको रौंद डालेंगे उस समय उसका भार उतारनेके लिये भगवान् अपने सफेद और काले केशसे बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें कलावतार ग्रहण करेंगे।* वे अपनी महिमाको प्रकट करनेवाले इतने अद्भुत चरित्र करेंगे कि संसारके मनुष्य उनकी लीलाओंका रहस्य बिल्कुल नहीं समझ सकेंगे ॥ २६ ॥ बचपनमें ही पूतनाके प्राण हर लेना, तीन महीनेकी अवस्थामें पैर उछालकर बड़ा भारी छकड़ा उलट देना और घुटनोंके बल चलते-चलते आकाशको छूनेवाले यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें जाकर उन्हें उखाड़ डालना—ये सब ऐसे कर्म हैं, जिन्हें भगवान्‌के सिवा और कोई नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ जब कालियनागके विषसे दूषित हुआ यमुना-जल पीकर बछड़े और गोप-बालक मर जायँगे, तब वे अपनी सुधामयी कृपा-दृष्टिकी वर्षासे ही उन्हें जीवित कर देंगे और यमुना-जलको शुद्ध करनेके लिये वे उसमें विहार करेंगे तथा विषकी शक्तिसे जीभ लपलपाते हुए कालियनागको वहाँसे निकाल देंगे ॥ २८ ॥ उसी दिन रातको जब सब लोग वहीं यमुना-तटपर सो जायँगे और दावाग्निसे आस-पासका मूँजका वन चारों ओरसे जलने लगेगा, तब बलरामजीके साथ वे प्राणसङ्कटमें पड़े हुए व्रजवासियोंको उनकी आँखें बंद कराकर उस अग्निसे बचा लेंगे। उनकी यह लीला भी अलौकिक ही होगी। उनकी शक्ति वास्तवमें अचिन्त्य है ॥ २९ ॥ उनकी माता उन्हें बाँधनेके लिये जो-जो रस्सी लायेंगी, वही उनके उदरमें पूरी नहीं पड़ेगी, दो अंगुल छोटी ही रह जायगी। तथा जँभाई लेते समय श्रीकृष्णके मुखमें चौदहों भुवन देखकर पहले तो यशोदा भयभीत हो जायँगी, परन्तु फिर वे सम्हल जायँगी ॥ ३० ॥ वे नन्दबाबाको अजगरके भयसे और वरुणके पाशसे छुड़ायेंगे। मय दानवका पुत्र व्योमासुर जब गोपबालोंको पहाड़की गुफाओंमें बंद कर देगा, तब वे उन्हें भी वहाँसे बचा लायेंगे। गोकुलके लोगोंको, जो दिनभर तो काम-धंधोंमें व्याकुल रहते हैं और रातको अत्यन्त थककर

* केशोंके अवतार कहनेका अभिप्राय यह है कि पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तो भगवान्‌का एक केश ही काफी है। इसके अतिरिक्त श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णके वर्णोंकी सूचना देनेके लिये भी उन्हें क्रमशः सफेद और काले केशोंका अवतार कहा गया है। वस्तुतः श्रीकृष्ण तो पूर्णपुरुष स्वयं भगवान् हैं—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

सो जाते हैं, साधनाहीन होनेपर भी, वे अपने परमधाममें ले जायँगे ॥ ३१ ॥ निष्पाप नारद ! जब श्रीकृष्णकी सलाहसे गोपलोग इन्द्रका यज्ञ बंद कर देंगे, तब इन्द्र व्रजभूमिका नाश करनेके लिये चारों ओरसे मूसलधार वर्षा करने लगेंगे। उससे उनकी तथा उनके पशुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् कृपापरवश हो सात वर्षकी अवस्थामें ही सात दिनों-तक गोवर्द्धन पर्वतको एक ही हाथसे छत्रकपुष्प(कुकुरमुत्ते) की तरह खेल-खेलमें ही धारण किये रहेंगे ॥ ३२ ॥ वृन्दावनमें विहार करते हुए रास करनेकी इच्छासे वे रातके समय, जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनी चारों ओर छिटक रही होगी, अपनी बाँसुरीपर मधुर सङ्गीतकी लंबी तान छेड़ेंगे। उससे प्रेमविवश होकर आयी हुई गोपियोंको जब कुवेरका सेवक शङ्खचूड़ हरण करेगा, तब वे उसका सिर उतार लेंगे ॥ ३३ ॥ और भी बहुत-से प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर, आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, मिथ्यावासुदेव, शाल्व, द्विविद वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित्के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ और रुक्मी आदि तथा काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशोंके राजालोग एवं जो भी योद्धा धनुष धारण करके युद्धके मैदानमें सामने आयेंगे, वे सब बलराम, भीमसेन और अर्जुन आदि नामोंकी आड़में स्वयं भगवान्के द्वारा मारे जाकर उन्हींके धाममें चले जायँगे ॥ ३४-३५ ॥

समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षका विभिन्न शाखाओंके रूपमें विभाजन कर देते हैं ॥ ३६ ॥

देवताओंके शत्रु दैत्यलोग भी वेदमार्गका सहारा लेकर मयदानवके बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरोंमें रहकर लोगोंका सत्यानाश करने लगेंगे, तब भगवान् लोगोंकी बुद्धिमें मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करनेवाला वेष धारण करके बुद्धके रूपमें बहुत-से उपधर्मोंका उपदेश करेंगे ॥ ३७ ॥ कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवान्की कथा होनेमें बाधा पड़ने लगेगी; ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी और शूद्र राजा हो जायँगे, यहाँतक कि कहीं भी 'स्वाहा', 'स्वधा' और 'वषट्कार' की ध्वनि—देवता-पितरोंके यज्ञ-श्राद्धकी बाततक नहीं सुनायी पड़ेगी, तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥

जब संसारकी रचनाका समय होता है, तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूपमें; जब सृष्टिकी रक्षाका समय होता है, तब धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजाओंके रूपमें, तथा जब सृष्टिके प्रलयका समय होता है, तब अधर्म, रुद्र तथा क्रोधवश नामके सर्प एवं दैत्य आदिके रूपमें सर्वशक्तिमान् भगवान्की माया-विभूतियाँ ही प्रकट होती हैं ॥ ३९ ॥ अपनी प्रतिभाके बलसे पृथ्वीके एक-एक धूलि-कणको गिन चुकनेपर भी जगत्में ऐसा कौन पुरुष है, जो भगवान्की शक्तियोंकी गणना कर सके। जब वे त्रिविक्रम-अवतार लेकर त्रिलोकीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके अदम्य वेगसे प्रकृतिरूप अन्तिम आवरणसे लेकर सत्यलोकतक सारा ब्रह्माण्ड काँपने लगा था। तब उन्होंने ही अपनी शक्तिसे उसे स्थिर किया था ॥ ४० ॥ समस्त सृष्टिकी रचना और संहार करनेवाली माया उनकी एक शक्ति है। ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियोंके आश्रय उनके स्वरूपको न मैं जानता हूँ और न वे तुम्हारे बड़े भाई सनकादि ही; फिर दूसरोंका तो कहना ही क्या है। आदिदेव भगवान् शेष सहस्र मुखसे उनके गुणोंका गायन करते आ रहे हैं, परन्तु वे अब भी उसके अन्तकी कल्पना नहीं कर सके ॥ ४१ ॥ जो निष्कपटभावसे अपना सर्वस्व और अपने आपको भी उनके चरणकमलोंमें निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वयं ही अपनी ओरसे दया करते हैं और उनकी दयाके पात्र ही उनकी दुस्तर मायाका स्वरूप जानते हैं और उसके पार जा पाते हैं। वास्तवमें ऐसे पुरुष ही कुत्ते और सियारोंके कलेवा-रूप अपने और पुत्रादिके शरीरमें 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' ऐसा भाव नहीं करते ॥ ४२ ॥ प्यारे नारद ! परम

पुरुषकी उस योगमायाको मैं जानता हूँ तथा तुमलोग, भगवान् शङ्कर, दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनबर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं ॥ ४३ ॥ इनके सिवा इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि तथा मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्त्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तङ्क, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण, एवं विभीषण, हनुमान्, शुकदेव, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि महात्मा भी जानते हैं ॥ ४४-४५ ॥ जिन्हें भगवान्के प्रेमी भक्तोंका-सा स्वभाव बनानेकी शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील और पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहनेवाले भी भगवान्की मायाका रहस्य जान जाते हैं और इस संसार-सागरसे सदाके लिये पार हो जाते हैं; फिर जो लोग वैदिक सदाचारका पालन करते हैं, उनके सम्बन्ध-में तो कहना ही क्या है ॥ ४६ ॥

परमात्माका वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय एवं केवल ज्ञानस्वरूप है। न उसमें मायाका मल है और न तो उसके द्वारा रची हुई विषमताएँ ही। वह सत् और असत् दोनोंसे परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्दकी वहाँतक पहुँच नहीं है। अनेक प्रकार-के साधनोंसे सम्पन्न होनेवाले कर्मोंका फल भी वहाँतक नहीं पहुँच सकता। और तो क्या, स्वयं माया भी उसके सामने नहीं जा पाती, लजाकर भाग खड़ी होती है ॥४७॥ परमपुरुष भगवान्का वही परमपद है। महात्मालोग उसीका शोकरहित अनन्त आनन्दस्वरूप ब्रह्मके रूपमें साक्षात्कार करते हैं। संयमशील पुरुष उसीमें अपने मनको समाहित करके स्थित हो जाते हैं। जैसे इन्द्र स्वयं मेघरूपसे विद्यमान होनेके कारण जलके लिये कुआँ खोदनेकी कुदाल नहीं रखते, वैसे ही वे भेद दूर करने-वाले ज्ञान-साधनोंको भी छोड़ देते हैं ॥ ४८ ॥ समस्त कर्मोंके फल भी भगवान् ही देते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने स्वभावके अनुसार जो शुभकर्म करता है, वह सब उन्हींकी प्रेरणासे होता है। इस शरीरमें रहनेवाले पञ्चभूतोंके अलग-अलग हो जानेपर जब—यह शरीर नष्ट हो जाता है, तब भी इसमें रहनेवाला अजन्मा पुरुष आकाशके समान नष्ट नहीं होता ॥ ४९ ॥

बेटा नारद! सङ्कल्पसे विश्वकी रचना करनेवाले षडैश्वर्यसम्पन्न श्रीहरिका मैंने तुम्हारे सामने संक्षेपसे वर्णन किया। जो कुछ कार्य-कारण अथवा भाव-अभाव है, वह सब भगवान्से भिन्न नहीं है। फिर भी भगवान् तो इससे पृथक् भी हैं ही ॥५०॥ भगवान्ने मुझे जो उपदेश किया था, वह यही 'भागवत' है। इसमें भगवान्की विभूति-योंका संक्षिप्त वर्णन है। तुम इसका विस्तार करो ॥ ५१ ॥ जिस प्रकार सबके आश्रय और सर्वस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें लोगोंकी प्रेममयी भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके इसका वर्णन करो ॥ ५२ ॥ जो पुरुष भगवान्की अचिन्त्य शक्ति मायाका वर्णन या दूसरेके द्वारा किये हुए वर्णनका अनुमोदन करते हैं अथवा श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण करते हैं, उनका चित्त मायासे कभी मोहित नहीं होता ॥ ५३ ॥

आठवाँ अध्याय

राजा परीक्षित्के विविध प्रश्न

राजा परीक्षित्ने कहा—भगवन्! आप वेदवेत्ताओं-में श्रेष्ठ हैं। मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जब ब्रह्माजीने निर्गुण भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेके लिये नारदजीको आदेश दिया, तब उन्होंने किन-किनको किस रूपमें उपदेश किया? एक तो अचिन्त्य शक्तियोंके आश्रय भगवान्-की कथाएँ ही लोगोंका परम मङ्गल करनेवाली हैं, दूसरे देवर्षि नारदका सबको भगवद्दर्शन करानेका स्वभाव है। अवश्य ही आप उनकी बातें मुझे सुनाइये ॥१-२॥ महा-भाग्यवान् शुकदेवजी! आप मुझे ऐसा उपदेश कीजिये कि मैं अपने आसक्तिरहित मनको सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय करके अपना शरीर छोड़ सकूँ ॥ ३ ॥ जो लोग उनकी लीलाओंका श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण कानके छिद्रोंके

द्वारा अपने भक्तोंके भावमय हृदयकमलपर जाकर बैठ जाते हैं और जैसे शरद् ऋतु जलका गँदलापन मिटा देती है, वैसे ही वे भक्तोंके मनोमलका नाश कर देते हैं ॥ ५ ॥ जिसका हृदय शुद्ध हो जाता है, वह श्रीकृष्णके चरणकमलोंको एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ता—जैसे मार्गके समस्त क्लेशोंसे छूटकर घर आया हुआ पथिक अपने घरको नहीं छोड़ता ॥ ६ ॥

भगवन् ! जीवका पञ्चभूतोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है । फिर भी इसका शरीर पञ्चभूतोंसे ही बनता है । तो क्या स्वभावसे ही ऐसा होता है, अथवा किसी कारणवश—आप इस बातका मर्म पूर्णरीतिसे जानते हैं ॥ ७ ॥ (आपने बतलाया कि) भगवान्‌की नाभिसे वह कमल प्रकट हुआ, जिसमें लोकोंकी रचना हुई । यह जीव अपने सीमित अवयवोंसे जैसे परिच्छिन्न है, वैसे ही आपने परमात्माको भी सीमित अवयवोंसे परिच्छिन्न-सा वर्णन किया (यह क्या बात है ?) ॥ ८ ॥ जिनकी कृपासे सर्वभूतमय ब्रह्माजी प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, जिनके नाभिकमलसे पैदा होनेपर भी जिनकी कृपासे ही ये उनके रूपका दर्शन कर सके थे, वे संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके हेतु, सर्वान्तर्यामी और मायाके स्वामी परमपुरुष परमात्मा अपनी मायाका त्याग करके किसमें किस रूपसे शयन करते हैं ? ॥ ९–१० ॥ पहले आपने बतलाया था कि विराट् पुरुषके अङ्गोंसे लोक और लोकपालोंकी रचना हुई और फिर यह भी बतलाया कि लोक और लोकपालोंके रूपमें उसके अङ्गोंकी कल्पना हुई । इन दोनों बातोंका तात्पर्य क्या है ? ॥ ११ ॥

महाकल्प और उनके अन्तर्गत अवान्तर कल्प कितने हैं ? भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालका अनुमान किस प्रकार किया जाता है ? क्या स्थूल देहाभिमानी जीवोंकी आयु भी बँधी हुई है ? ॥ १२ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कालकी सूक्ष्म गति त्रुटि आदि और स्थूलगति वर्ष आदि किस प्रकारसे जानी जाती है ? विविध कर्मोंसे जीवोंकी कितनी और कैसी गतियाँ होती हैं ? ॥ १३ ॥ देव, मनुष्य आदि योनियाँ सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके फलस्वरूप ही प्राप्त होती हैं । उनको चाहनेवाले जीवोंमेंसे कौन-कौन किस-किस योनिको प्राप्त करनेके लिये किस-किस प्रकारसे कौन-कौन कर्म स्वीकार करते हैं ? ॥ १४ ॥ पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप और उनमें रहनेवाले जीवोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ? ॥ १५ ॥ ब्रह्माण्डका परिमाण भीतर और बाहर—दोनों प्रकारसे बतलाइये । साथ ही महापुरुषोंके चरित्र, वर्णाश्रमके भेद और उनके धर्मका निरूपण कीजिये ॥ १६ ॥ युगोंके भेद, उनके परिमाण और उनके अलग-अलग धर्म तथा भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके परम आश्चर्यमय चरित्र, भी बतलाइये ॥ १७ ॥ मनुष्योंके साधारण और विशेष धर्म कौन-कौन-से हैं ? विभिन्न व्यवसायवाले लोगोंके, राजर्षियोंके और विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके धर्मका भी उपदेश कीजिये ॥ १८ ॥ तत्त्वोंकी संख्या कितनी है, उनके स्वरूप और लक्षण क्या हैं ? भगवान्‌की आराधनाकी और अध्यात्मयोगकी विधि क्या है ? ॥ १९ ॥ योगेश्वरोंको क्या-क्या ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, तथा अन्तमें उन्हें कौन-सी गति मिलती है ? योगियोंका लिङ्गशरीर किस प्रकार भङ्ग होता है ? वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप एवं तात्पर्य क्या है ? ॥ २० ॥ समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कैसे होता है ? बावली, कुआँ खुदवाना आदि स्मार्त, यज्ञ-यागादि वैदिक, एवं काम्य कर्मोंकी तथा अर्थ-धर्म-कामके साधनोंकी विधि क्या है ? ॥ २१ ॥ प्रलयके समय जो जीव प्रकृतिमें लीन रहते हैं, उनकी उत्पत्ति कैसे होती है ? पाखण्डकी उत्पत्ति कैसे होती है ? आत्माके बन्ध-मोक्षका स्वरूप क्या है ? और वह अपने स्वरूपमें किस प्रकार स्थित होता है ? ॥ २२ ॥ भगवान् तो परम स्वतन्त्र हैं । वे अपनी मायासे किस प्रकार क्रीड़ा करते हैं और उसे छोड़कर साक्षीके समान उदासीन कैसे हो जाते हैं ? ॥ २३ ॥ भगवन् ! मैं यह सब आपसे पूछ रहा हूँ । मैं आपकी शरणमें हूँ । महामुने ! आप कृपा करके क्रमशः इनका तात्त्विक निरूपण कीजिये ॥ २४ ॥ इस विषयमें आप स्वयम्भू ब्रह्माके समान परम प्रमाण हैं । दूसरे लोग तो अपनी पूर्वपरम्परासे सुनी-सुनायी बातोंका ही अनुष्ठान करते हैं ॥ २५ ॥ ब्रह्मन् ! आप मेरी भूख-प्यासकी चिन्ता न करें । मेरे प्राण कुपित ब्राह्मणके शापके अतिरिक्त और किसी कारणसे निकल नहीं सकते; क्योंकि मैं

आपके मुखारबिन्दसे निकलनेवाली भगवान्‌की अमृतमयी लीला-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ २६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब राजा परीक्षित्‌ने संतोंकी सभामें भगवान्‌की लीला-कथा सुनानेके लिये इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २७ ॥ उन्होंने उन्हें वही वेदतुल्य श्रीमद्भागवत-महापुराण सुनाया, जो ब्राह्मकल्पके आरम्भमें स्वयं भगवान्‌ने ब्रह्माजीको सुनाया था ॥ २८ ॥ पाण्डुवंशशिरोमणि परीक्षित्‌ने उनसे जो-जो प्रश्न किये थे, वे उन सबका उत्तर क्रमशः देने लगे ॥ २९ ॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका भगवद्धामदर्शन और भगवान्‌के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जैसे स्वप्नमें देखे जानेवाले पदार्थोंके साथ उसे देखनेवालेका कोई सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही देहादिसे अतीत अनुभवस्वरूप आत्माका मायाके बिना दृश्य पदार्थोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता ॥ १ ॥ विविध रूपवाली मायाके कारण वह विविध रूपवाला प्रतीत होता है, और जब उसके गुणोंमें रम जाता है तब 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार मानने लगता है ॥ २ ॥ किन्तु जब यह गुणोंको क्षुब्ध करनेवाले काल और मोह उत्पन्न करनेवाली माया—इन दोनोंसे परे अपने अनन्त स्वरूपमें मोहरहित होकर रमण करने लगता है—आत्माराम हो जाता है, तब यह 'मैं, मेरा' का भाव छोड़कर पूर्ण उदासीन—गुणातीत हो जाता है ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीकी निष्कपट तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपने रूपका दर्शन कराया और आत्मतत्त्वके ज्ञानके लिये उन्हें परम सत्य परमार्थ वस्तुका उपदेश किया (वही बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ) ॥ ४ ॥

तीनों लोकोंके परम गुरु आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्मस्थान कमलपर बैठकर सृष्टि करनेकी इच्छासे विचार करने लगे । परन्तु जिस ज्ञानदृष्टिसे सृष्टिका निर्माण हो सकता था और जो सृष्टि व्यापारके लिये वाञ्छनीय है, वह दृष्टि उन्हें प्राप्त नहीं हुई ॥ ५ ॥ एक दिन वे यही चिन्ता कर रहे थे कि प्रलयके समुद्रमें उन्होंने व्यञ्जनोंके सोलहवें एवं इक्कीसवें अक्षर 'त' तथा 'प' को—'तप-तप' ('तप करो') इस प्रकार दो बार सुना । परीक्षित् ! महात्मालोग इस तपको ही त्यागियोंका धन मानते हैं ॥ ६ ॥ यह सुनकर ब्रह्माजीने वक्ताको देखनेकी इच्छासे चारों ओर देखा, परन्तु वहाँ दूसरा कोई दिखायी न पड़ा । वे अपने कमलपर बैठ गये और 'मुझे तप करनेकी प्रत्यक्ष आज्ञा मिली है' ऐसा निश्चय कर और उसीमें अपना हित समझकर उन्होंने अपने मनको तपस्यामें लगा दिया ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी तपस्वियोंमें सबसे बड़े तपस्वी हैं । उनका ज्ञान अमोघ है । उन्होंने उस समय एक सहस्र दिव्य वर्षपर्यन्त एकाग्र चित्तसे अपने प्राण, मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करके ऐसी तपस्या की, जिससे वे समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ हो सके ॥ ८ ॥

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपना वह लोक दिखाया, जो सबसे श्रेष्ठ है और जिससे परे कोई दूसरा लोक नहीं है । उस लोकमें किसी भी प्रकारके क्लेश, मोह और भय नहीं हैं । जिन्हें कभी एक बार भी उसके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे देवता बार-बार उसकी स्तुति करते रहते हैं ॥ ९ ॥ वहाँ रजोगुण, तमोगुण और इनसे मिला हुआ सत्त्वगुण भी नहीं है । वहाँ न कालकी दाल गलती है और न माया ही कदम रख सकती है; फिर मायाके बाल-बच्चे तो जा ही कैसे सकते हैं । वहाँ भगवान्‌के वे पार्षद निवास करते हैं, जिनका पूजन देवता और दैत्य दोनों ही करते हैं ॥ १० ॥ उनका उज्ज्वल आभासे युक्त श्याम शरीर शतदल कमलके समान कोमल नेत्र और पीले रंगके वस्त्रसे शोभायमान है । अङ्ग-अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य बिखरता रहता है । वे कोमलताकी मूर्ति हैं । सभीके चार-चार भुजाएँ हैं । वे स्वयं तो अत्यन्त तेजस्वी हैं ही, मणिजटित सुवर्णके प्रभामय आभूषण

भी धारण किये रहते हैं। उनकी छबि मूँगे, वैदूर्यमणि और कमलके उज्ज्वल तन्तुके समान है। उनके कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और कण्ठमें मालाएँ शोभायमान हैं ॥ ११ ॥ जिस प्रकार आकाश बिजली-सहित बादलोंसे शोभायमान होता है, वैसे ही वह लोक मनोहर कामिनियोंकी कान्तिसे युक्त महात्माओंके दिव्य तेजोमय विमानोंसे स्थान-स्थानपर सुशोभित होता रहता है ॥ १२ ॥ उस वैकुण्ठलोकमें लक्ष्मीजी सुन्दर रूप धारण करके अपनी विविध विभूतियोंके द्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंकी अनेकों प्रकारसे सेवा करती रहती हैं। कभी-कभी जब वे झूलेपर बैठकर अपने प्रियतम भगवान्‌की लीलाओंका गायन करने लगती हैं, तब उनके सौन्दर्य और सुरभिसे उन्मत्त होकर भौंरे स्वयं उन लक्ष्मीजीका गुण-गान करने लगते हैं ॥ १३ ॥

ब्रह्माजीने देखा कि उस दिव्य लोकमें समस्त भक्तोंके रक्षक, लक्ष्मीपति, यज्ञपति एवं विश्वपति भगवान् विराजमान हैं। सुनन्द, नन्द, प्रबल और अर्हण आदि मुख्य-मुख्य पार्षदगण उन प्रभुकी सेवा कर रहे हैं ॥ १४ ॥ उनका मुख-कमल प्रसाद-मधुर मुसकानसे युक्त है। आँखोंमें लाल-लाल डोरियाँ हैं। बड़ी मोहक और मधुर चितवन है। ऐसा जान पड़ता है कि अभी-अभी अपने प्रेमी भक्तको अपना सर्वस्व दे देंगे। सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कंधेपर पीताम्बर जगमगा रहे हैं। वक्षःस्थलपर एक सुनहरी रेखाके रूपमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं और सुन्दर चार भुजाएँ हैं ॥ १५ ॥ वे एक सर्वोत्तम और बहुमूल्य आसनपर विराजमान हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन, दस इन्द्रिय, शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ और पञ्चभूत—ये पचीस शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनके चारों ओर खड़ी हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः नित्यसिद्ध स्वरूपभूत शक्तियोंसे वे सर्वदा युक्त रहते हैं। उनके अतिरिक्त और कहीं भी ये नित्यरूपसे निवास नहीं करतीं। वे सर्वेश्वर प्रभु अपने नित्य आनन्दमय स्वरूपमें ही नित्य-निरन्तर निमग्न रहते हैं ॥ १६ ॥ उनका दर्शन करते ही ब्रह्माजीका हृदय आनन्दके उद्रेकसे लबालब भर गया। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। ब्रह्माजीने भगवान्‌के उन चरणकमलोंमें, जो परमहंसोंके निवृत्ति-मार्गसे प्राप्त हो सकते हैं, सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥ १७ ॥ ब्रह्माजीके प्यारे भगवान् अपने प्रिय ब्रह्माको प्रेम और दर्शनके आनन्दमें निमग्न, शरणागत तथा प्रजा-सृष्टिके लिये आदेश देनेके योग्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्रह्माजीसे हाथ मिलाया तथा मन्द मुसकानसे अलंकृत वाणीमें कहा—॥ १८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी! तुम्हारे हृदयमें तो समस्त वेदोंका ज्ञान विद्यमान है। तुमने सृष्टिरचनाकी इच्छासे चिरकालतक तपस्या करके मुझे भलीभाँति सन्तुष्ट कर दिया है। मनमें कपट रखकर योगसाधन करनेवाले मुझे कभी प्रसन्न नहीं कर सकते ॥ १९ ॥ तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वही वर मुझसे माँग लो। क्योंकि मैं मुँहमाँगी वस्तु देनेमें समर्थ हूँ। ब्रह्माजी! जीवके समस्त कल्याणकारी साधनोंका विश्राम—पर्यवसान मेरे दर्शनमें ही है ॥ २० ॥ तुमने मुझे देखे बिना ही उस सूने जलमें मेरी वाणी सुनकर इतनी घोर तपस्या की है, इसीसे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे लोकका दर्शन हुआ है ॥ २१ ॥ तुम उस समय सृष्टिरचनाका कर्म करनेमें किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। इसीसे मैंने तुम्हें तपस्या करनेकी आज्ञा दी थी। क्योंकि निष्पाप! तपस्या मेरा हृदय है और मैं स्वयं तपस्याका आत्मा हूँ ॥ २२ ॥ मैं तपस्यासे ही इस संसारकी सृष्टि करता हूँ, तपस्यासे ही इसका धारण-पोषण करता हूँ और फिर तपस्यासे ही इसे अपनेमें लीन कर लेता हूँ। तपस्या मेरी एक दुर्लङ्घ्य शक्ति है ॥ २३ ॥

ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! आप समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें साक्षीरूपसे विराजमान रहते हैं। आप अपने अप्रतिहत ज्ञानसे यह जानते ही हैं कि मैं क्या करना चाहता हूँ ॥ २४ ॥ नाथ! आप कृपा करके मुझ याचककी यह माँग पूरी कीजिये कि मैं रूपरहित आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपोंको जान सकूँ ॥ २५ ॥ आप मायाके स्वामी हैं, आपका सङ्कल्प कभी व्यर्थ नहीं होता। जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाला निकालकर उसमें क्रीड़ा

करती है और फिर उसे अपनेमें लीन कर लेती है, वैसे ही आप अपनी मायाका आश्रय लेकर इस विविधशक्तिसम्पन्न जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेके लिये अपने आपको ही अनेक रूपोंमें बना देते हैं और क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार आप कैसे करते हैं—इस मर्मको मैं जान सकूँ, ऐसा ज्ञान आप मुझे दीजिये ॥ २६-२७ ॥ आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सजग रहकर सावधानीसे आपकी आज्ञाका पालन कर सकूँ और सृष्टिकी रचना करते समय भी कर्तापन आदिके अभिमानसे बँध न जाऊँ ॥ २८ ॥ प्रभो! आपने एक मित्रके समान हाथ पकड़कर मुझे अपना मित्र स्वीकार किया है। अतः जब मैं आपकी इस सेवा—सृष्टि-रचनामें लगूँ और सावधानीसे पूर्वसृष्टिके गुण-कर्मानुसार जीवोंका विभाजन करने लगूँ, तब कहीं अपनेको जन्म-कर्मसे स्वतन्त्र मानकर प्रबल अभिमान न कर बैठूँ ॥ २९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अनुभव, प्रेमाभक्ति और साधनोंसे युक्त अत्यन्त गोपनीय अपने स्वरूपका ज्ञान मैं तुम्हें कहता हूँ; तुम उसे ग्रहण करो ॥३०॥ मेरा जितना विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक-ठीक वैसा ही अनुभव करो ॥३१॥ सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था न सूक्ष्म और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं-ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं हूँ और जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ ॥ ३२ ॥ वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, इसे मेरी माया समझना चाहिये ॥ ३३ ॥ जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमें आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी हूँ ॥ ३४ ॥ यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे, और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है—इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है ॥ ३५ ॥ ब्रह्माजी! तुम अविचल समाधिके द्वारा मेरे इस सिद्धान्तमें पूर्ण निष्ठा कर लो। इससे तुम्हें कल्प-कल्पमें विविध प्रकारकी सृष्टिरचना करते रहनेपर भी कभी मोह नहीं होगा ॥ ३६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—लोकपितामह ब्रह्माजीको इस प्रकार उपदेश देकर अजन्मा भगवान्‌ने उनके देखते-ही-देखते अपने उस रूपको छिपा लिया ॥३७॥ जब सर्वभूतस्वरूप ब्रह्माजीने देखा कि भगवान्‌ने अपने इन्द्रियगोचर स्वरूपको हमारे नेत्रोंके सामनेसे हटा लिया है, तब उन्होंने अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और पहले कल्पमें जैसी सृष्टि थी, उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की ॥ ३८ ॥ एक बार धर्मपति, प्रजापति ब्रह्माजीने सारी जनताका कल्याण हो, अपने इस स्वार्थकी पूर्तिके लिये विधिपूर्वक यम-नियमोंको धारण किया ॥ ३९ ॥ उस समय उनके पुत्रोंमें सबसे अधिक प्रिय, परम भक्त देवर्षि नारदजीने मायापति भगवान्‌की मायाका तत्त्व जाननेकी इच्छासे बड़े संयम, विनय और सौम्यतासे अनुगत होकर उनकी सेवा की। और उन्होंने सेवासे ब्रह्माजीको बहुत ही सन्तुष्ट कर लिया ॥ ४०-४१ ॥ परीक्षित्! जब देवर्षि नारदने देखा कि मेरे लोकपितामह पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, तब उन्होंने उनसे यही प्रश्न किया, जो तुम मुझसे कर रहे हो ॥ ४२ ॥ उनके प्रश्नसे ब्रह्माजी और भी प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने यह दस लक्षणवाला भागवतपुराण अपने पुत्र नारदको सुनाया,

जिसका स्वयं भगवान्‌ने उन्हें उपदेश किया था ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! जिस समय मेरे परमतेजस्वी पिता सरस्वती-के तटपर बैठकर परमात्माके ध्यानमें मग्न थे, उस समय देवर्षि नारदजीने वही भागवत उन्हें सुनाया ॥ ४४ ॥ तुमने मुझसे जो यह प्रश्न किया है कि विराट् पुरुषसे इस जगत्‌की उत्पत्ति कैसे हुई, तथा दूसरे भी जो बहुत-से प्रश्न किये हैं, उन सबका उत्तर मैं उसी भागवतपुराणके रूपमें देता हूँ ॥ ४५ ॥

दसवाँ अध्याय

भागवतके दस लक्षण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस भागवत-पुराणमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—इन दस विषयोंका वर्णन है ॥ १ ॥ इनमें जो दसवाँ आश्रय-तत्त्व है, उसीका ठीक-ठीक निश्चय करनेके लिये कहीं श्रुतिसे, कहीं तात्पर्यसे और कहीं दोनोंके अनुकूल अनुभवसे महात्माओंने अन्य नौ विषयोंका बड़ी सुगम रीतिसे वर्णन किया है ॥ २ ॥ ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि पञ्च-भूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहङ्कार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, उसको 'सर्ग' कहते हैं। उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न ब्रह्माजीके द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है, उसका नाम है 'विसर्ग' ॥ ३ ॥ प्रतिपद नाशकी ओर बढ़नेवाली सृष्टि-को एक मर्यादामें स्थिर रखनेसे भगवान् विष्णुकी जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम 'स्थान' है। अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टिमें भक्तोंके ऊपर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है 'पोषण'। मन्वन्तरोंके अधिपति जो भगवद्भक्ति और प्रजापालनरूप शुद्ध धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे 'मन्वन्तर' कहते हैं। जीवोंकी वे वासनाएँ, जो कर्मके द्वारा उन्हें बन्धनमें डाल देती हैं, 'ऊति' नामसे कही जाती हैं ॥ ४ ॥ भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके और उनके प्रेमी भक्तोंकी विविध आख्यानोंसे युक्त गाथाएँ 'ईशकथा' हैं ॥ ५ ॥ जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीवका अपनी उपाधियोंके साथ उनमें लीन हो जाना 'निरोध' है। अज्ञानकल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थित होना ही 'मुक्ति' है ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! इस चराचर जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' है। शास्त्रोंमें उसीको परमात्मा कहा गया है ॥ ७ ॥ जो नेत्र आदि इन्द्रियोंका अभिमानी द्रष्टा जीव है, वही इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवता सूर्य आदिके रूपमें भी है और जो नेत्र-गोलक आदिसे युक्त दृश्य देह है, वही उन दोनोंको अलग-अलग करता है ॥ ८ ॥ इन तीनोंमें यदि एकका भी अभाव हो जाय तो दूसरे दोकी उपलब्धि नहीं हो सकती। अतः जो इन तीनोंको जानता है, वह परमात्मा ही, सबका अधिष्ठान 'आश्रय' तत्त्व है। उसका आश्रय वह स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं ॥ ९ ॥

जब पूर्वोक्त विराट् पुरुष ब्रह्माण्डको फोड़कर निकला, तब वह अपने रहनेका स्थान ढूँढ़ने लगा और स्थानकी इच्छासे उस शुद्ध-सङ्कल्प पुरुषने अत्यन्त पवित्र जलकी सृष्टि की ॥ १० ॥ विराट् पुरुषरूप 'नर' से उत्पन्न होनेके कारण ही जलका नाम 'नार' पड़ा। और उस अपने उत्पन्न किये हुए 'नार'में वह पुरुष एक हजार वर्षोंतक रहा, इसीसे उसका नाम 'नारायण' हुआ ॥ ११ ॥ उन नारायणभगवान्‌की कृपासे ही द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव आदिकी सत्ता है। उनके उपेक्षा कर देनेपर और किसीका अस्तित्व नहीं रहता ॥ १२ ॥ उन अद्वितीय भगवान् नारायणने योगनिद्रासे जगकर अनेक होनेकी इच्छा की। तब अपनी मायासे उन्होंने अखिल ब्रह्माण्डके बीजस्वरूप अपने सुवर्णमय वीर्यको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया—अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत। परीक्षित् ! विराट् पुरुषका एक ही वीर्य तीन भागोंमें कैसे विभक्त हुआ, सो सुनो ॥ १३-१४ ॥

विराट् पुरुषके हिलने-डोलनेपर उनके शरीरमें रहनेवाले आकाशसे इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबलकी उत्पत्ति हुई। उनसे इन सबका राजा प्राण उत्पन्न हुआ॥ १५॥ जैसे सेवक अपने स्वामी राजाके पीछे-पीछे चलते हैं, वैसे ही सबके शरीरोंमें प्राणके प्रबल रहनेपर ही सारी इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं और जब वह सुस्त पड़ जाता है, तब सारी इन्द्रियाँ भी सुस्त हो जाती हैं ॥ १६ ॥ जब प्राण जोरसे आने-जाने लगा, तब विराट् पुरुषको भूख-प्यासका अनुभव हुआ। खाने-पीनेकी इच्छा करते ही सबसे पहले उनके शरीरमें मुख प्रकट हुआ ॥१७॥ मुखसे तालु और तालुसे रसनेन्द्रिय प्रकट हुई। इसके बाद अनेकों प्रकारके रस उत्पन्न हुए, जिन्हें रसना ग्रहण करती है ॥ १८ ॥ जब उनकी इच्छा बोलनेकी हुई, तब वाक्-इन्द्रिय, उसके अधिष्ठातृ-देवता अग्नि और उनका विषय बोलना—ये तीनों प्रकट हुए। इसके बाद बहुत दिनोंतक उस जलमें ही वे रुके रहे॥ १९॥ श्वासके वेगसे नासिका-छिद्र प्रकट हो गये। जब उन्हें सूँघनेकी इच्छा हुई, तब उनकी नाक घ्राणेन्द्रिय आकर बैठ गयी और उसके देवता गन्धको फैलानेवाले वायुदेव प्रकट हुए॥ २०॥ पहले उनके शरीरमें प्रकाश नहीं था; फिर जब उन्हें अपनेको तथा दूसरी वस्तुओंको देखनेकी इच्छा हुई, तब नेत्रोंके छिद्र, उनका अधिष्ठाता सूर्य और नेत्रेन्द्रिय प्रकट हो गये। इन्हींसे रूपका ग्रहण होने लगा॥ २१॥ जब वेद-रूप ऋषि विराट् पुरुषको स्तुतियोंके द्वारा जगाने लगे, तब उन्हें सुननेकी इच्छा हुई। उसी समय कान, उनकी अधिष्ठातृ-देवता दिशाएँ और श्रोत्रेन्द्रिय प्रकट हुई। इसीसे शब्द सुनायी पड़ता है॥ २२॥ जब उन्होंने वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, हल्कापन, भारीपन, उष्णता और शीतलता आदि जाननी चाही तब उनके शरीरमें चर्म प्रकट हुआ। पृथ्वीमेंसे जैसे वृक्ष निकल आते हैं, उसी प्रकार उस चर्ममें रोएँ पैदा हुए और उसके भीतर-बाहर रहनेवाला वायु भी प्रकट हो गया। स्पर्श ग्रहण करनेवाली त्वचा-इन्द्रिय भी साथ-ही-साथ शरीरमें चारों ओर लिपट गयी और उससे उन्हें स्पर्शका अनुभव होने लगा॥ २३॥ जब उन्हें अनेकों प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई, तब उनके हाथ उग आये। उन हाथोंमें ग्रहण करनेकी शक्ति हस्तेन्द्रिय तथा उनके अधिदेवता इन्द्र प्रकट हुए और दोनोंके आश्रयसे होनेवाला ग्रहणरूप कर्म भी प्रकट हो गया॥ २४॥ जब उन्हें अभीष्ट स्थानपर जानेकी इच्छा हुई, तब उनके शरीरमें पैर उग आये। चरणोंके साथ ही चरण-इन्द्रियके अधिष्ठातारूपमें वहाँ स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु स्थित हो गये और उन्हींमें चलनारूप कर्म प्रकट हुआ। मनुष्य इसी चरणेन्द्रियसे चलकर यज्ञ-सामग्री एकत्र करते हैं॥ २५॥ सन्तान, रति और स्वर्ग-भोग-की कामना होनेपर विराट् पुरुषके शरीरमें लिङ्गकी उत्पत्ति हुई। उसमें उपस्थेन्द्रिय और प्रजापति देवता तथा इन दोनोंके आश्रय रहनेवाले कामसुखका आविर्भाव हुआ॥ २६॥ जब उन्हें मलत्यागकी इच्छा हुई, तब गुदाद्वार प्रकट हुआ। तत्पश्चात् उसमें पायु-इन्द्रिय और मित्र-देवता उत्पन्न हुए। इन्हीं दोनोंके द्वारा मल-त्यागकी क्रिया सम्पन्न होती है॥ २७॥ अपानमार्गद्वारा एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेकी इच्छा होनेपर नाभिद्वार प्रकट हुआ। उससे अपान और मृत्यु देवता प्रकट हुए। इन दोनोंके आश्रयसे ही प्राण और अपानका विछोह यानी मृत्यु होती है॥ २८॥ जब विराट् पुरुषको अन्न-जल ग्रहण करनेकी इच्छा हुई, तब कोख, आँतें और नाड़ियाँ उत्पन्न हुईं। साथ ही कुक्षिके देवता समुद्र, नाड़ियोंके देवता नदियाँ एवं तुष्टि और पुष्टि—ये दोनों उनके आश्रित विषय उत्पन्न हुए॥ २९॥ जब उन्होंने अपनी मायापर विचार करना चाहा, तब हृदयकी उत्पत्ति हुई। उससे मनरूप इन्द्रिय और मनसे उसका देवता चन्द्रमा तथा विषय कामना और सङ्कल्प प्रकट हुए॥ ३०॥ विराट् पुरुषके शरीरमें पृथ्वी, जल और तेजसे सात धातुएँ प्रकट हुईं—त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा और अस्थि। इसी प्रकार आकाश, जल और वायुसे प्राणोंकी उत्पत्ति हुई॥ ३१॥ श्रोत्रादि सब इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंको ग्रहण करने-वाली हैं। वे विषय अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं। मन सब विकारोंका उत्पत्तिस्थान है और बुद्धि समस्त पदार्थोंका बोध करानेवाली है॥ ३२॥ मैंने भगवान्‌के

इस स्थूल रूपका वर्णन तुम्हें सुनाया है। यह बाहरकी ओरसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन आठ आवरणोंसे घिरा हुआ है ॥ ३३ ॥ इससे परे भगवान्‌का अत्यन्त सूक्ष्म रूप है। वह अव्यक्त, निर्विशेष, आदि, मध्य और अन्तसे रहित एवं नित्य है। वाणी और मनकी वहाँतक पहुँच नहीं है ॥ ३४ ॥

मैंने तुम्हें भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म—व्यक्त और अव्यक्त जिन दो रूपोंका वर्णन सुनाया है, ये दोनों ही भगवान्‌की मायाके द्वारा रचित हैं। इसलिये विद्वान् पुरुष इन दोनोंको ही स्वीकार नहीं करते ॥ ३५ ॥ वास्तवमें भगवान् निष्क्रिय हैं। अपनी शक्तिसे ही वे सक्रिय बनते हैं। फिर तो वे ब्रह्माका या विराट् रूप धारण करके वाच्य और वाचक—शब्द और उसके अर्थके रूपमें प्रकट होते हैं और अनेकों नाम, रूप तथा क्रियाएँ स्वीकार करते हैं ॥ ३६ ॥ परीक्षित्! प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, यक्ष, किन्नर, अप्सराएँ, नाग, सर्प, किम्पुरुष, उरग, मातृकाएँ, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, सरीसृप इत्यादि जितने भी संसारमें नाम-रूप हैं, सब भगवान्‌के ही हैं ॥ ३७–३९ ॥ संसारमें चर और अचर भेदसे दो प्रकारके तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज भेदसे चार प्रकारके जितने भी जलचर, थलचर तथा आकाशचारी प्राणी हैं, सब-के-सब शुभ-अशुभ और मिश्रित कर्मोंके तदनुरूप फल हैं ॥ ४० ॥ सत्त्वकी प्रधानतासे देवता, रजोगुणकी प्रधानतासे मनुष्य और तमोगुणकी प्रधानतासे नारकीय योनियाँ मिलती हैं। इन गुणोंमें भी जब एक गुण दूसरे दो गुणोंसे अभिभूत हो जाता है, तब प्रत्येक गतिके तीन-तीन भेद और हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ वे भगवान् जगत्‌के धारण-पोषणके लिये धर्ममय विष्णुरूप स्वीकार करके देवता, मनुष्य और पशु, पक्षी आदि रूपोंमें अवतार लेते हैं तथा विश्वका पालन-पोषण करते हैं ॥ ४२ ॥ प्रलयका समय आनेपर वे ही भगवान् अपने बनाये हुए इस विश्वको कालाग्निस्वरूप रुद्रका रूप ग्रहण करके अपनेमें वैसे ही लीन कर लेते हैं, जैसे वायु मेघमालाको ॥ ४३ ॥

परीक्षित्! महात्माओंने अचिन्त्यैश्वर्य भगवान्‌का इसी प्रकार वर्णन किया है। परन्तु तत्त्वज्ञानी पुरुषोंको केवल इस सृष्टि, पालन और प्रलय करनेवाले रूपमें ही उनका दर्शन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे तो इससे परे भी हैं ॥ ४४ ॥ सृष्टिकी रचना आदि कर्मोंका निरूपण करके पूर्ण परमात्मासे कर्म या कर्तापनका सम्बन्ध नहीं जोड़ा गया है। वह तो मायासे आरोपित होनेके कारण कर्तृत्वका निषेध करनेके लिये ही है ॥ ४५ ॥ यह मैंने ब्रह्माजीके महाकल्पका अवान्तर कल्पोंके साथ वर्णन किया है। सब कल्पोंमें सृष्टि-क्रम एक-सा ही है। अन्तर है तो केवल इतना ही कि महाकल्पके प्रारम्भमें प्रकृतिसे क्रमशः महत्तत्त्वादिकी उत्पत्ति होती है और कल्पोंके प्रारम्भमें प्राकृत सृष्टि तो ज्यों-की-त्यों रहती ही है, चराचर प्राणियोंकी वैकृत सृष्टि नवीन रूपसे होती है ॥ ४६ ॥ परीक्षित्! कालका परिमाण, कल्प और उसके अन्तर्गत मन्वन्तरोंका वर्णन आगे चलकर करेंगे। अब तुम पाद्मकल्पका वर्णन सावधान होकर सुनो ॥ ४७ ॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी! आपने हमलोगोंसे कहा था कि भगवान्‌के परम भक्त विदुरजीने अपने अति दुस्त्यज कुटुम्बियोंको भी छोड़कर पृथ्वीके विभिन्न तीर्थोंमें विचरण किया था ॥ ४८ ॥ उस यात्रामें मैत्रेय ऋषिके साथ अध्यात्मके सम्बन्धमें उनकी बातचीत कहाँ हुई तथा मैत्रेयजीने उनके प्रश्न करनेपर किस तत्त्वका उपदेश किया? ॥ ४९ ॥ सूतजी! आपका स्वभाव बड़ा सौम्य है। आप विदुरजीका वह चरित्र हमें सुनाइये। उन्होंने अपने भाई-बन्धुओंको क्यों छोड़ा और फिर उनके पास क्यों लौट आये? ॥ ५० ॥

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो! राजा परीक्षित्‌ने भी यही बात पूछी थी। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीशुकदेवजी महाराजने जो कुछ कहा था, वही मैं आपलोगोंसे कहता हूँ। सावधान होकर सुनिये ॥५१॥

इति द्वितीय स्कन्ध समाप्त

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

तृतीय स्कन्ध

यस्य भासा विभातीदं सर्वं सदसदात्मकम् ।
सर्वाधारं सदानन्दं स्वात्मानं तं हरिं भजे ॥

ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

तृतीय स्कन्ध

पहला अध्याय

उद्धव और विदुरकी भेंट

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जो बात तुमने पूछी है, वही पूर्वकालमें अपने सुख-समृद्धिसे पूर्ण घरको छोड़कर वनमें गये हुए विदुरजीने भगवान् मैत्रेयजीसे पूछी थी ॥ १ ॥ जब सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर गये थे, तब वे दुर्योधनके महलोंको छोड़कर, उसी विदुरजीके घरमें उसे अपना ही समझकर बिना बुलाये चले गये थे ॥ २ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—प्रभो ! यह तो बतलाइये कि भगवान् मैत्रेयके साथ विदुरजीका समागम कहाँ और किस समय हुआ था ? ॥ ३ ॥ पवित्रात्मा विदुरने महात्मा मैत्रेयजीसे कोई साधारण प्रश्न नहीं किया होगा; क्योंकि उसे तो मैत्रेयजी-जैसे साधुशिरोमणिने अभिनन्दनपूर्वक उत्तर देकर महिमान्वित किया था ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—सर्वज्ञ शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌के इस प्रकार पूछनेपर अति प्रसन्न होकर कहा—सुनो ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित् ! यह उन दिनोंकी बात है, जब अन्धे राजा धृतराष्ट्रने अन्यायपूर्वक अपने दुष्ट पुत्रोंका पालन-पोषण करते हुए अपने छोटे भाई पाण्डुके अनाथ बालकोंको लाक्षाभवनमें भेजकर आग लगवा दी ॥ ६ ॥ जब उनकी पुत्रवधू और महाराज युधिष्ठिरकी पटरानी द्रौपदीके केश दुःशासनने भरी सभामें खींचे, उस समय द्रौपदीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली और उस प्रवाहसे उसके वक्षःस्थलपर लगा हुआ केसर भी बह चला; किंतु धृतराष्ट्रने अपने पुत्रको उस कुकर्मसे नहीं रोका ॥ ७ ॥ दुर्योधनने सत्यपरायण और भोले-भाले युधिष्ठिरका राज्य जुएमें अन्यायसे जीत लिया और उन्हें वनमें निकाल दिया । किंतु वनसे लौटनेपर प्रतिज्ञानुसार जब उन्होंने अपना न्यायोचित पैतृक भाग माँगा, तब भी मोहवश उन्होंने उन अजातशत्रु युधिष्ठिरको उनका हिस्सा नहीं दिया ॥ ८ ॥ महाराज युधिष्ठिरके भेजनेपर जब जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंकी सभामें हितभरे सुमधुर वचन कहे, जो भीष्मादि सज्जनोंको अमृत-से लगे, पर कुरुराजने उनके कथनको कुछ भी आदर नहीं दिया । देते कैसे? उनके तो सारे पुण्य नष्ट हो चुके थे ॥ ९ ॥ फिर जब सलाहके लिये विदुरजीको बुलाया गया, तब मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ विदुरजीने राज्यभवनमें जाकर बड़े भाई धृतराष्ट्रके पूछनेपर उन्हें वह सम्मति दी, जिसे नीति-शास्त्रके जाननेवाले पुरुष 'विदुरनीति' कहते हैं ॥ १० ॥

उन्होंने कहा—'महाराज ! आप अजातशत्रु महात्मा युधिष्ठिरको उनका हिस्सा दे दीजिये । वे आपके न सहनेयोग्य अपराधको भी सह रहे हैं । भीमरूप काले नागसे तो आप भी बहुत डरते हैं; देखिये, वह अपने छोटे भाइयोंके सहित बदला लेनेके लिये बड़े क्रोधसे फुफकारें मार रहा है ॥ ११ ॥ आपको पता नहीं, भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंको अपना लिया है । वे यदुवीरोंके आराध्यदेव इस समय अपनी राजधानी द्वारकापुरीमें विराजमान हैं । उन्होंने पृथ्वीके सभी बड़े-बड़े राजाओंको अपने अधीन कर लिया है, तथा ब्राह्मण और देवता भी उन्हींके पक्षमें हैं ॥ १२ ॥ जिसे आप पुत्र मानकर पाल रहे हैं तथा जिसकी हाँ-में-हाँ मिलाते जा रहे हैं, उस

दुर्योधनके रूपमें तो मूर्तिमान् दोष ही आपके घरमें घुसा बैठा है । यह तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष करनेवाला है । इसीके कारण आप भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख होकर श्रीहीन हो रहे हैं । अतएव यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हैं तो इस दुष्टको तुरंत ही त्याग दीजिये' ॥ १३ ॥

विदुरजीका ऐसा सुन्दर स्वभाव था कि साधुजन भी उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते थे । किंतु उनकी यह बात सुनते ही कर्ण, दुःशासन और शकुनिके सहित दुर्योधनके होठ अत्यन्त क्रोधसे फड़कने लगे और उसने उनका तिरस्कार करते हुए कहा—'अरे ! इस कुटिल दासीपुत्रको यहाँ किसने बुलाया है ? यह जिनके टुकड़े खा-खाकर जीता है, उन्हींके प्रतिकूल होकर शत्रुका काम बनाना चाहता है । इसके प्राण तो मत लो, परंतु इसे हमारे नगरसे तुरंत बाहर निकाल दो' ॥१४-१५॥ भाईके सामने ही कानोंमें बाणके समान लगनेवाले इन अत्यन्त कठोर वचनोंसे मर्माहत होकर भी विदुरजीने कुछ बुरा न माना और भगवान्‌की मायाको प्रबल समझकर अपना धनुष राजद्वारपर रख वे हस्तिनापुरसे चल दिये ॥ १६ ॥ कौरवोंको विदुर-जैसे महात्मा बड़े पुण्यसे प्राप्त हुए थे । वे हस्तिनापुरसे चलकर पुण्य करनेकी इच्छासे भूमण्डलमें तीर्थपाद भगवान्‌के क्षेत्रोंमें विचरने लगे, जहाँ श्रीहरि ब्रह्मा, रुद्र, अनन्त आदि अनेकों मूर्तियोंके रूपमें विराजमान हैं ॥ १७ ॥ जहाँ-जहाँ भगवान्‌की प्रतिमाओंसे सुशोभित तीर्थस्थान, नगर, पवित्र वन, पर्वत, निकुञ्ज और निर्मल जलसे भरे हुए नदी-सरोवर आदि थे, उन सभी स्थानोंमें वे अकेले ही विचरते रहे ॥ १८ ॥ वे अवधूत-वेषमें स्वच्छन्दतापूर्वक पृथ्वीपर विचरते थे, जिससे आत्मीय-जन उन्हें पहचान न सकें । वे शरीरको सजाते न थे, पवित्र और साधारण भोजन करते, शुद्धवृत्तिसे जीवन-निर्वाह करते, प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते, जमीनपर सोते और भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले व्रतोंका पालन करते रहते थे ॥१९॥

इस प्रकार भारतवर्षमें ही विचरते-विचरते जबतक वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचे, तबतक भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे महाराज युधिष्ठिर पृथ्वीका एकछत्र अखण्ड राज्य करने लगे थे ॥ २० ॥ वहाँ उन्होंने अपने कौरव-बन्धुओंके विनाशका समाचार सुना, जो आपसकी कलहके कारण परस्पर लड़-भिड़कर उसी प्रकार नष्ट हो गये थे, जैसे अपनी ही रगड़से उत्पन्न हुई आगसे बाँसोंका सारा जंगल जलकर खाक हो जाता है । यह सुनकर वे शोक करते हुए चुपचाप सरस्वतीके तीरपर आये ॥२१॥ वहाँ उन्होंने त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह और श्राद्धदेवके नामोंसे प्रसिद्ध ग्यारह तीर्थोंका सेवन किया ॥ २२ ॥ इनके सिवा पृथ्वीमें ब्राह्मण और देवताओंके स्थापित किये हुए जो भगवान् विष्णुके और भी अनेकों मन्दिर थे, जिनके शिखरोंपर भगवान्‌के प्रधान आयुध चक्रके चिह्न थे और जिनके दर्शनमात्रसे श्रीकृष्णका स्मरण हो आता था, उनका भी सेवन किया ॥ २३ ॥ वहाँसे चलकर वे धन-धान्यपूर्ण सौराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य और कुरुजाङ्गल आदि देशोंमें होते हुए जब कुछ दिनोंमें यमुना-तटपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने परमभागवत उद्धवजीका दर्शन किया ॥ २४ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णके प्रख्यात सेवक और अत्यन्त शान्तस्वभाव थे । उन्होंने बृहस्पतिजीसे नीतिशास्त्रकी शिक्षा पायी थी । विदुरजीने उन्हें देखकर प्रेमसे गाढ़ आलिङ्गन किया और उनसे अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण और उनके आश्रित अपने स्वजनोंका कुशल-समाचार पूछा ॥ २५ ॥

विदुरजी कहने लगे—उद्धवजी ! पुराणपुरुष बलरामजी और श्रीकृष्णने अपने ही नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे इस जगत्‌में अवतार लिया है । वे पृथ्वीका भार उतारकर सबको आनन्द देते हुए अब श्रीवसुदेवजीके घर कुशलसे रह रहे हैं न ? ॥ २६ ॥ प्रियवर ! हम कुरुवंशियोंके परम सुहृद् और पूज्य वसुदेवजी, जो पिताके समान उदारतापूर्वक अपनी कुन्ती आदि बहिनोंको उनके स्वामियोंका सन्तोष कराते हुए उनकी सभी मनचाही वस्तुएँ देते आये हैं, आनन्दपूर्वक हैं न ? ॥ २७ ॥ प्यारे उद्धवजी ! यादवोंके सेनापति वीरवर प्रद्युम्नजी तो प्रसन्न हैं न, जो पूर्वजन्ममें कामदेव थे तथा जिन्हें देवी रुक्मिणीजीने ब्राह्मणोंकी आराधना करके भगवान्‌से प्राप्त किया था ॥ २८ ॥ सात्वत, वृष्णि, भोज और दाशार्हवंशी यादवोंके अधि-

पति महाराज उग्रसेन तो सुखसे हैं न, जिन्होंने राज्य पानेकी आशाका सर्वथा परित्याग कर दिया था किंतु कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने जिन्हें फिरसे राज्यसिंहासन-पर बैठाया ॥ २९ ॥ सौम्य ! अपने पिता श्रीकृष्णके समान समस्त रथियोंमें अग्रगण्य श्रीकृष्णतनय साम्ब सकुशल तो हैं ? ये पहले पार्वतीजीके द्वारा गर्भमें धारण किये हुए स्वामिकार्तिक हैं । अनेकों व्रत करके जाम्बवती-ने इन्हें जन्म दिया था ॥ ३० ॥ जिन्होंने अर्जुनसे रहस्ययुक्त धनुर्विद्याकी शिक्षा पायी है, वे सात्यकि तो कुशलपूर्वक हैं ? वे भगवान् श्रीकृष्णकी सेवासे अनायास ही भगवज्जनोंकी उस महान् स्थितिपर पहुँच गये हैं; जो बड़े-बड़े योगियोंको भी दुर्लभ है ॥ ३१ ॥ भगवान्के शरणागत निर्मल भक्त बुद्धिमान् अक्रूरजी भी प्रसन्न हैं न, जो श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंसे अङ्कित व्रजके मार्गकी रजमें प्रेमसे अधीर होकर लोटने लगे थे ? ॥ ३२ ॥ भोजवंशी देवककी पुत्री देवकीजी अच्छी तरह हैं न, जो देवमाता अदितिके समान ही साक्षात् विष्णुभगवान्की माता हैं ? जैसे वेदत्रयी यज्ञविस्ताररूप अर्थको अपने मन्त्रोंमें धारण किये रहती है, उसी प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको अपने गर्भमें धारण किया था ॥ ३३ ॥ आप भक्तजनों-की कामनाएँ पूर्ण करनेवाले भगवान् अनिरुद्धजी सुख-पूर्वक हैं न, जिन्हें शास्त्र वेदोंके आदिकारण और अन्तः-करणचतुष्टयके चौथे अंश मनके अधिष्ठाता बतलाते हैं* ॥ ३४ ॥ सौम्यस्वभाव उद्धवजी ! अपने हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका अनन्यभावसे अनुसरण करनेवाले जो हृदीक, सत्यभामानन्दन चारुदेष्ण और गद आदि अन्य भगवान्के पुत्र हैं, वे सब भी कुशलपूर्वक हैं न ? ॥ ३५ ॥

महाराज युधिष्ठिर अपनी अर्जुन और श्रीकृष्णरूप दोनों भुजाओंकी सहायतासे धर्ममर्यादाका न्यायपूर्वक पालन करते हैं न ? मय दानवकी बनायी हुई सभामें इनके राज्यवैभव और दबदबेको देखकर दुर्योधनको बड़ा डाह हुआ था ॥ ३६ ॥ अपराधियोंके प्रति अत्यन्त असहिष्णु भीमसेनने सर्पके समान दीर्घकालीन क्रोधको छोड़ दिया है क्या ? जब वे गदायुद्धमें तरह-तरहके पैंतरे बदलते थे, तब उनके पैरोंकी धमकसे धरती डोलने लगती थी ॥ ३७ ॥ जिनके बाणोंके जालसे छिपकर किरात-वेषधारी, अतएव किसीकी पहचानमें न आनेवाले भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये थे, वे रथी और यूथ-पतियोंका सुयश बढ़ानेवाले गाण्डीवधारी अर्जुन तो प्रसन्न हैं न ? अब तो उनके सभी शत्रु शान्त हो चुके होंगे ? ॥ ३८ ॥ पलक जिस प्रकार नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिरादि जिनकी सर्वदा सँभाल रखते हैं और कुंतीने ही जिनका लालन-पालन किया है, वे माद्रीके यमज पुत्र नकुल-सहदेव कुशलसे तो हैं न ? उन्होंने युद्धमें शत्रुसे अपना राज्य उसी प्रकार छीन लिया, जैसे दो गरुड़ इन्द्रके मुखसे अमृत निकाल लायें ॥ ३९ ॥ अहो ! बेचारी कुन्ती तो राजर्षिश्रेष्ठ पाण्डुके वियोगमें मृतप्राय-सी होकर भी इन बालकोंके लिये ही प्राण धारण किये हुए है । रथियोंमें श्रेष्ठ महाराज पाण्डु ऐसे अनुपम वीर थे कि उन्होंने केवल एक धनुष लेकर ही अकेले चारों दिशाओंको जीत लिया था ॥ ४० ॥ सौम्यस्वभाव उद्धवजी ! मुझे तो अधःपतनकी ओर जानेवाले उन धृतराष्ट्रके लिये बार-बार शोक होता है, जिन्होंने पाण्डवोंके रूपमें अपने परलोकवासी भाई पाण्डुसे ही द्रोह किया तथा अपने पुत्रोंकी हाँ-में-हाँ मिलाकर अपने हितचिन्तक मुझको भी नगरसे निकलवा दिया ॥ ४१ ॥ किंतु भाई ! मुझे इसका कुछ भी खेद अथवा आश्चर्य नहीं है । जगद्विधाता भगवान् श्रीकृष्ण ही मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करके लोगों-की मनोवृत्तियोंको भ्रमित कर देते हैं । मैं तो उन्हींकी कृपासे उनकी महिमाको देखता हुआ दूसरोंकी दृष्टिसे दूर रहकर सानन्द विचर रहा हूँ ॥ ४२ ॥ यद्यपि कौरवोंने उनके बहुत-से अपराध किये, फिर भी भगवान्-ने उनकी इसीलिये उपेक्षा कर दी थी कि वे उनके साथ उन दुष्ट राजाओंको भी मारकर अपने शरणागतोंका दुःख दूर करना चाहते थे, जो धन, विद्या और जातिके मद-से अंधे होकर कुमार्गगामी हो रहे थे और बार-बार

* चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मन—ये अन्तःकरणके चार अंश हैं । इनके अधिष्ठाता क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं ।

अपनी सेनाओंसे पृथ्वीको कँपा रहे थे॥ ४३ ॥ उद्धवजी! भगवान् श्रीकृष्ण जन्म और कर्मसे रहित हैं; फिर भी दुष्टोंका नाश करनेके लिये और लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये उनके दिव्य जन्म-कर्म हुआ करते हैं। नहीं तो, भगवान्की तो बात ही क्या—दूसरे जो लोग गुणोंसे पार हो गये हैं, उनमें भी ऐसा कौन है, जो इस कर्माधीन देहके बन्धनमें पड़ना चाहेगा॥ ४४ ॥ अतः मित्र! जिन्होंने अजन्मा होकर भी अपनी शरणमें आये हुए समस्त लोकपाल और आज्ञाकारी भक्तोंका प्रिय करनेके लिये यदुकुलमें जन्म लिया है, उन पवित्रकीर्ति श्रीहरिकी बातें सुनाओ॥ ४५ ॥

दूसरा अध्याय

उद्धवजीद्वारा भगवान्की बाललीलाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब विदुरजीने परम भक्त उद्धवसे इस प्रकार उनके प्रियतम श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें पूछीं, तब उन्हें अपने स्वामीका स्मरण हो आया और वे हृदय भर आनेके कारण कुछ भी उत्तर न दे सके॥ १ ॥ जब ये पाँच वर्षके थे, तब बालकोंकी तरह खेलमें ही श्रीकृष्णकी मूर्त्ति बनाकर उसकी सेवा-पूजामें ऐसे तन्मय हो जाते थे कि कलेवेके लिये माताके बुलानेपर भी उसे छोड़कर नहीं जाना चाहते थे॥ २ ॥ अब तो दीर्घकालसे उन्हींकी सेवामें रहते-रहते ये बूढ़े हो चले थे; अतः विदुरजीके पूछनेसे उन्हें अपने प्यारे प्रभुके चरणकमलोंका स्मरण हो आया—उनका चित्त विरहसे व्याकुल हो गया। फिर वे कैसे उत्तर दे सकते थे॥ ३ ॥ उद्धवजी श्रीकृष्णके चरणारविन्द-मकरन्द-सुधासे सराबोर होकर दो घड़ी तक कुछ भी नहीं बोल सके। तीव्र भक्तियोगसे उसमें डूबकर वे आनन्द-मग्न हो गये॥ ४ ॥ उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया तथा मुँदे हुए नेत्रोंसे प्रेमके आसुओंकी धारा बहने लगी। उद्धवजीको इस प्रकार प्रेम-प्रवाहमें डूबे हुए देखकर विदुरजीने उन्हें कृतकृत्य माना॥ ५ ॥ कुछ समय बाद जब उद्धवजी भगवान्के प्रेमधामसे उतरकर पुनः धीरे-धीरे संसारमें आये, तब अपने नेत्रोंको पोंछकर भगवल्लीलाओंका स्मरण हो आनेसे विस्मित हो विदुरजीसे इस प्रकार कहने लगे॥ ६ ॥

उद्धवजी बोले—विदुरजी! श्रीकृष्णरूप सूर्यके छिप जानेसे हमारे घरोंको कालरूप अजगरने खा डाला है, वे श्रीहीन हो गये हैं; अब मैं उनकी क्या कुशल सुनाऊँ॥ ७ ॥ ओह! यह मनुष्यलोक बड़ा ही अभागा है; इसमें भी यादव तो नितान्त भाग्यहीन हैं, जिन्होंने निरन्तर श्रीकृष्णके साथ रहते हुए भी उन्हें नहीं पहचाना—जिस तरह अमृतमय चन्द्रमाके समुद्रमें रहते समय मछलियाँ उन्हें नहीं पहचान सकी थीं॥ ८ ॥ यादवलोग मनके भावको ताड़नेवाले, बड़े ही समझदार और भगवान्के साथ एक ही स्थानमें रहकर क्रीड़ा करनेवाले थे; तो भी उन सबने समस्त विश्वके आश्रय, सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णको एक श्रेष्ठ यादव ही समझा॥ ९ ॥ किंतु भगवान्की मायासे मोहित इन यादवों और इनसे व्यर्थका वैर ठाननेवाले शिशुपाल आदिके अवहेलना और निन्दासूचक वाक्योंसे भगवत्प्राण महानुभावोंकी बुद्धि भ्रममें नहीं पड़ती थी॥ १० ॥ जिन्होंने कभी तप नहीं किया, उन लोगोंको भी इतने दिनोंतक दर्शन देकर अब उनकी दर्शन-लालसाको तृप्त किये बिना ही वे भगवान् श्रीकृष्ण अपने त्रिभुवनमोहन श्रीविग्रहको छिपाकर अन्तर्धान हो गये हैं और इस प्रकार उन्होंने मानो उनके नेत्रोंको ही छीन लिया है॥ ११ ॥ भगवान्ने अपनी योगमायाका प्रभाव दिखानेके लिये मानवलीलाओंके योग्य जो दिव्य श्रीविग्रह प्रकट किया था, वह इतना सुन्दर था कि उसे देखकर सारा जगत् तो मोहित हो ही जाता था, वे स्वयं भी विस्मित हो जाते थे। सौभाग्य और सुन्दरताकी पराकाष्ठा थी उस रूपमें। उससे आभूषण (अङ्गोंके गहने) भी विभूषित हो जाते थे॥ १२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें जब भगवान्‌के उस नयनाभिराम रूपपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी थी, तब त्रिलोकीने यही माना था कि मानवसृष्टिकी रचनामें विधाताकी जितनी चतुराई है, सब इसी रूपमें पूरी हो गयी है ॥ १३ ॥ उनके प्रेमपूर्ण हास्य-विनोद और लीलामय चितवनसे सम्मानित होनेपर व्रजबालाओंकी आँखें उन्हींकी ओर लग जाती थीं और उनका चित्त भी ऐसा तल्लीन हो जाता था कि वे घरके काम-धंधोंको अधूरा ही छोड़कर जड पुतलियोंकी तरह खड़ी रह जाती थीं ॥ १४ ॥ चराचर जगत् और प्रकृतिके स्वामी भगवान्‌ने जब अपने शान्त रूप महात्माओंको अपने ही घोररूप असुरोंसे सताये जाते देखा, तब वे करुणाभावसे द्रवित हो गये और अजन्मा होनेपर भी अपने अंश बलरामजीके साथ काष्ठमें अग्निके समान प्रकट हुए ॥ १५ ॥ अजन्मा होकर भी वसुदेवजीके यहाँ जन्म लेनेकी लीला करना, सबको अभय देनेवाले होनेपर भी मानो कंसके भयसे व्रजमें जाकर छिप रहना और अनन्तपराक्रमी होनेपर भी कालयवनके सामने मथुरापुरीको छोड़कर भाग जाना—भगवान्‌की ये लीलाएँ याद आ-आकर मुझे बेचैन कर डालती हैं ॥ १६ ॥ उन्होंने जो देवकी-वसुदेवकी चरण-वन्दना करके कहा था—'पिताजी, माताजी ! कंसका बड़ा भय रहनेके कारण मुझसे आपकी कोई सेवा न बन सकी, आप मेरे इस अपराधपर ध्यान न देकर मुझपर प्रसन्न हों।' श्रीकृष्णकी ये बातें जब याद आती हैं, तब आज भी मेरा चित्त अत्यन्त व्यथित हो जाता है ॥ १७ ॥ जिन्होंने कालरूप अपने भ्रुकुटिविलाससे ही पृथ्वीका सारा भार उतार दिया था, उन श्रीकृष्णके पाद-पद्म-परागका सेवन करनेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो उसे भूल सके ॥ १८ ॥ आपलोगोंने राजसूय यज्ञमें प्रत्यक्ष ही देखा था कि श्रीकृष्णसे द्वेष करनेवाले शिशुपालको वह सिद्धि मिल गयी, जिसकी बड़े-बड़े योगी भलीभाँति योग-साधना करके स्पृहा करते रहते हैं। उनका विरह भला, कौन सह सकता है ॥ १९ ॥ शिशुपालके ही समान महाभारत-युद्धमें जिन दूसरे योद्धाओंने अपनी आँखोंसे भगवान् श्रीकृष्णके नयनाभिराम मुख-कमलका मकरन्द पान करते हुए, अर्जुनके बाणोंसे बिंधकर प्राणत्याग किया, वे पवित्र होकर सब-के-सब भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हो गये ॥२०॥ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तीनों लोकोंके अधीश्वर हैं। उनके समान भी कोई नहीं है, उनसे बढ़कर तो कौन होगा। वे अपने स्वतःसिद्ध ऐश्वर्यसे ही सर्वदा पूर्णकाम हैं। इन्द्रादि असंख्य लोकपालगण नाना प्रकारकी भेंटें ला-लाकर अपने-अपने मुकुटोंके अग्रभागसे उनके चरण रखनेकी चौकीको प्रणाम किया करते हैं ॥ २१ ॥ विदुरजी ! वे ही भगवान् श्रीकृष्ण राजसिंहासनपर बैठे हुए उग्रसेनके सामने खड़े होकर निवेदन करते थे, 'देव ! हमारी प्रार्थना सुनिये।' उनके इस सेवा-भावकी याद आते ही हम-जैसे सेवकोंका चित्त अत्यन्त व्यथित हो जाता है ॥ २२ ॥ पापिनी पूतनाने अपने स्तनोंमें हलाहल विष लगाकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी नीयतसे उन्हें दूध पिलाया था; उसको भी भगवान्‌ने वह परम गति दी, जो धायको मिलनी चाहिये। उन भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कौन दयालु है, जिसकी शरण ग्रहण करें ॥२३॥ मैं असुरोंको भी भगवान्‌का भक्त समझता हूँ; क्योंकि वैरभावजनित क्रोधके कारण उनका चित्त सदा श्रीकृष्णमें लगा रहता था और उन्हें रणभूमिमें सुदर्शन-चक्रधारी भगवान्‌को कंधेपर चढ़ाकर झपटते हुए गरुड़जीके दर्शन हुआ करते थे ॥ २४ ॥

ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार उतारकर उसे सुखी करनेके लिये कंसके कारागारमें वसुदेव-देवकीके यहाँ भगवान्‌ने अवतार लिया था ॥ २५ ॥ उस समय कंसके डरसे पिता वसुदेवजीने उन्हें नन्दबाबाके व्रजमें पहुँचा दिया था। वहाँ वे बलरामजीके साथ ग्यारह वर्षतक इस प्रकार छिपकर रहे कि उनका प्रभाव व्रजके बाहर किसीपर प्रकट नहीं हुआ ॥ २६ ॥ यमुनाके उपवनमें, जिसके हरे-भरे वृक्षोंपर कलरव करते हुए पक्षियोंके झुंड-के-झुंड रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णने बछड़ोंको चराते हुए ग्वाल-बालोंकी मण्डलीके साथ विहार किया था ॥ २७ ॥ वे व्रजवासियोंकी दृष्टि आकृष्ट करनेके लिये अनेकों बाल-लीला उन्हें दिखाते थे। कभी रोने-से लगते, कभी हँसते और कभी

सिंह-शावकके समान मुग्ध दृष्टिसे देखते ॥ २८ ॥ फिर कुछ बड़े होनेपर वे सफेद बैल और रंग-बिरंगी शोभाकी मूर्ति गौओंको चराते हुए अपने साथी गोपोंको बाँसुरी बजा-बजाकर रिझाने लगे ॥ २९ ॥ इसी समय जब कंसने उन्हें मारनेके लिये बहुत-से मायावी और मनमाना रूप धारण करनेवाले राक्षस भेजे, तब उनको खेल-ही-खेलमें भगवान्‌ने मार डाला—जैसे बालक खिलौनोंको तोड़-फोड़ डालता है ॥ ३० ॥ कालियनागका दमन करके विष मिला हुआ जल पीनेसे मरे हुए ग्वालबालों और गौओंको जीवितकर उन्हें कालियदहका निर्दोष जल पीनेकी सुविधा कर दी ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने बढ़े हुए धनका सद्व्यय करानेकी इच्छासे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा नन्दबाबासे गोवर्धन-पूजारूप गोयज्ञ करवाया ॥ ३२ ॥ भद्र ! इससे अपना मानभङ्ग होनेके कारण जब इन्द्रने क्रोधित होकर व्रजका विनाश करनेके लिये मूसलधार जल बरसाना आरम्भ किया, तब भगवान्‌ने करुणावश खेल-ही-खेलमें छत्तेके समान गोवर्धन पर्वतको उठा लिया और अत्यन्त घबराये हुए व्रजवासियोंकी तथा उनके पशुओंकी रक्षा की ॥ ३३ ॥ सन्ध्याके समय जब सारे वृन्दावनमें शरद्‌के चन्द्रमाकी चाँदनी छिटक जाती, तब श्रीकृष्ण उसका सम्मान करते हुए मधुर गान करते और गोपियोंके मण्डलकी शोभा बढ़ाते हुए उनके साथ रासविहार करते ॥ ३४ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान्‌के अन्य लीला-चरित्रोंका वर्णन

उद्धवजी कहते हैं—इसके बाद श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी-वसुदेवको सुख पहुँचानेकी इच्छासे बलदेवजीके साथ मथुरा पधारे और उन्होंने शत्रुसमुदायके स्वामी कंसको ऊँचे सिंहासनसे नीचे पटककर तथा उसके प्राण लेकर उसकी लाशको बड़े जोरसे पृथ्वीपर घसीटा ॥ १ ॥ सान्दीपनि मुनिके द्वारा एक बार उच्चारण किये हुए साङ्गोपाङ्ग वेदका अध्ययन करके दक्षिणास्वरूप उनके मरे हुए पुत्रको पञ्चजन नामक राक्षसके पेटसे (यमपुरीसे) लाकर दे दिया ॥ २ ॥ भीष्मकनन्दिनी रुक्मिणीके सौन्दर्यसे अथवा रुक्मीके बुलानेसे जो शिशुपाल और उसके सहायक वहाँ आये हुए थे, उनके सिरपर पैर रखकर गान्धर्व विधिके द्वारा विवाह करनेके लिये अपनी नित्यसंगिनी रुक्मिणीको वे वैसे ही हरण कर लाये, जैसे गरुड़ अमृत-कलशको ले आये थे ॥ ३ ॥ स्वयंवरमें सात बिना नथे हुए बैलोंको नाथकर नाग्नजिती (सत्या) से विवाह किया । इस प्रकार मानभङ्ग हो जानेपर मूर्ख राजाओंने शस्त्र उठाकर राजकुमारीको छीनना चाहा । तब भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं बिना घायल हुए अपने शस्त्रोंसे उन्हें मार डाला ॥ ४ ॥ भगवान् विषयी पुरुषोंकी-सी लीला करते हुए अपनी प्राणप्रिया सत्यभामाको प्रसन्न करनेकी इच्छासे उनके लिये स्वर्गसे कल्पवृक्ष उखाड़ लाये । उस समय इन्द्रने क्रोधसे अंधे होकर अपने सैनिकोंसहित उनपर आक्रमण कर दिया; क्योंकि वह निश्चय ही अपनी स्त्रियोंका क्रीडामृग बना हुआ है ॥ ५ ॥ अपने विशाल डीलडौलसे आकाशको भी ढक देनेवाले अपने पुत्र भौमासुरको भगवान्‌के हाथसे मरा हुआ देखकर पृथ्वीने जब उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने भौमासुरके पुत्र भगदत्तको उसका बचा हुआ राज्य देकर उसके अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ वहाँ भौमासुरद्वारा हरकर लायी हुई बहुत-सी राजकन्याएँ थीं । वे दीनबन्धु श्रीकृष्णचन्द्रको देखते ही खड़ी हो गयीं और सबने महान् हर्ष, लज्जा एवं प्रेमपूर्ण चितवनसे तत्काल ही भगवान्‌को पतिरूपमें वरण कर लिया ॥ ७ ॥

तब भगवान्‌ने अपनी निजशक्ति योगमायासे उन ललनाओंके अनुरूप उतने ही रूप धारणकर उन सबका अलग-अलग महलोंमें एक ही मुहूर्तमें विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ८ ॥ अपनी लीलाका विस्तार करनेके लिये उन्होंने उनमेंसे प्रत्येकके गर्भसे सभी गुणोंमें अपने ही समान दस-दस पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ जब कालयवन, जरासन्ध और शाल्वादिने अपनी सेनाओंसे मथुरा और द्वारकापुरीको घेरा था, तब भगवान्‌ने निजजनोंको अपनी अलौकिक शक्ति देकर उन्हें स्वयं मरवाया था ॥ १० ॥

शम्बर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल तथा दन्तवक्त्र आदि अन्य योद्धाओंमेंसे भी किसीको उन्होंने स्वयं मारा था और किसीको दूसरोंसे मरवाया ॥ ११ ॥ इसके बाद उन्होंने आपके भाई धृतराष्ट्र और पाण्डुके पुत्रोंका पक्ष लेकर आये हुए राजाओंका भी संहार किया, जिनके सेना-सहित कुरुक्षेत्रमें पहुँचनेपर पृथ्वी डगमगाने लगी थी ॥ १२॥ कर्ण, दुःशासन और शकुनिकी खोटी सलाहसे जिसकी आयु और श्री दोनों नष्ट हो चुकी थीं, तथा भीमसेनकी गदासे जिसकी जाँघ टूट चुकी थी, उस दुर्योधनको अपने साथियोंके सहित पृथ्वीपर पड़ा देखकर भी उन्हें प्रसन्नता न हुई ॥ १३ ॥ वे सोचने लगे—यदि द्रोण, भीष्म, अर्जुन और भीमसेनके द्वारा इस अठारह अक्षौहिणी सेनाका विपुल संहार हो भी गया, तो इससे पृथ्वीका कितना भार हल्का हुआ । अभी तो मेरे अंशरूप प्रद्युम्न आदिके बलसे बढ़े हुए यादवोंका दुःसह दल बना ही हुआ है ॥ १४ ॥ जब ये मधु-पानसे मतवाले हो लाल-लाल आँखें करके आपसमें लड़ने लगेंगे, तब उस-से ही इनका नाश होगा । इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है । असलमें मेरे संकल्प करनेपर ये स्वयं ही अन्तर्धान हो जायँगे ॥ १५ ॥

यों सोचकर भगवान्‌ने युधिष्ठिरको अपनी पैतृक राजगद्दी-पर बैठाया और अपने सभी सगे-सम्बन्धियोंको सत्पुरुषोंका मार्ग दिखाकर आनन्दित किया ॥ १६ ॥ उत्तराके उदरमें जो अभिमन्युने पूरुवंशका बीज स्थापित किया था, वह भी अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे नष्ट-सा हो चुका था; किन्तु भगवान्‌ने उसे बचा लिया ॥ १७ ॥ उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे तीन अश्वमेध-यज्ञ करवाये और वे भी श्रीकृष्णके अनुगामी होकर अपने छोटे भाइयोंकी सहायतासे पृथ्वीकी रक्षा करते हुए बड़े आनन्दसे रहने लगे ॥ १८ ॥ विश्वात्मा श्रीभगवान्‌ने भी द्वारकापुरीमें रहकर लोक और वेदकी मर्यादाका पालन करते हुए सब प्रकारके भोग भोगे, किंतु सांख्ययोगकी स्थापना करनेके लिये उनमें कभी आसक्त नहीं हुए ॥ १९ ॥ मधुर मुसकान, स्नेहमयी चितवन, सुधामयी वाणी, निर्मल चरित्र तथा समस्त शोभा और सुन्दरताके निवास अपने श्रीविग्रहसे लोक-परलोक और विशेषतया यादवोंको आनन्दित किया तथा रात्रिमें अपनी प्रियाओंके साथ क्षणिक अनुरागयुक्त होकर समयोचित विहार किया और इस प्रकार उन्हें भी सुख दिया ॥ २०-२१ ॥ इस तरह बहुत वर्षोंतक विहार करते-करते उन्हें गृहस्थ-आश्रम-सम्बन्धी भोग-सामग्रियोंसे वैराग्य हो गया ॥ २२ ॥ ये भोग-सामग्रियाँ ईश्वरके अधीन हैं और जीव भी उन्हींके अधीन है । जब योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको ही उनसे वैराग्य हो गया तब भक्तियोगके द्वारा उनका अनुगमन करने-वाला भक्त तो उनपर विश्वास ही कैसे करेगा ? ॥ २३ ॥

एक बार द्वारकापुरीमें खेलते हुए यदुवंशी और भोजवंशी बालकोंने खेल-खेलमें कुछ मुनीश्वरोंको चिढ़ा दिया । तब यादवकुलका नाश ही भगवान्‌को अभीष्ट है—यह समझकर उन ऋषियोंने बालकोंको शाप दे दिया ॥ २४ ॥ इसके कुछ ही महीने बाद भावीवश वृष्णि, भोज और अन्धकवंशी यादव बड़े हर्षसे रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रको गये ॥ २५ ॥ वहाँ स्नान करके उन्होंने उस तीर्थके जलसे पितर, देवता और ऋषियोंका तर्पण किया तथा ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ गौएँ दीं ॥ २६ ॥ उन्होंने सोना, चाँदी, शय्या, वस्त्र, मृगचर्म, कम्बल, पालकी, रथ, हाथी, कन्याएँ और ऐसी भूमि जिससे जीविका चल सके तथा नाना प्रकारके सरस अन्न भी भगवदर्पण करके ब्राह्मणोंको दिये । इसके पश्चात् गौ और ब्राह्मणोंके लिये ही प्राण धारण करनेवाले उन वीरोंने पृथ्वीपर सिर टेककर उन्हें प्रणाम किया ॥ २७-२८ ॥

चौथा अध्याय

उद्धवजीसे विदा होकर विदुरजीका मैत्रेय ऋषिके पास जाना

उद्धवजीने कहा—फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर यादवोंने भोजन किया और वारुणी मदिरा पी । उससे उनका ज्ञान नष्ट हो गया और वे दुर्वचनोंसे एक दूसरेके हृदयको चोट पहुँचाने लगे ॥ १ ॥ मदिराके नशेसे

उनकी बुद्धि बिगड़ गयी और जैसे आपसकी रगड़से बाँसोंमें आग लग जाती है, उसी प्रकार सूर्यास्त होते-होते उनमें मार-काट होने लगी ॥ २ ॥ भगवान् अपनी मायाकी उस विचित्र गतिको देखकर सरस्वतीके जलसे आचमन करके एक वृक्षके नीचे बैठ गये ॥३॥ इससे पहले ही शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने कुलका संहार करनेकी इच्छा होनेपर मुझसे कह दिया था कि तुम बदरिकाश्रम चले जाओ ॥ ४ ॥ विदुरजी ! इससे यद्यपि मैं उनका आशय समझ गया था, तो भी स्वामीके चरणोंका वियोग न सह सकनेके कारण मैं उनके पीछे-पीछे प्रभासक्षेत्रमें पहुँच गया ॥ ५ ॥ वहाँ मैंने देखा कि जो सबके आश्रय हैं किंतु जिनका कोई और आश्रय नहीं है, वे प्रियतम प्रभु शोभाधाम श्यामसुन्दर सरस्वती-के तटपर अकेले ही बैठे हैं ॥ ६ ॥ दिव्य विशुद्ध-सत्त्वमय अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, शान्तिसे भरी रतनारी आँखें हैं। उनकी चार भुजाएँ और रेशमी पीताम्बर देखकर मैंने उनको दूरसे ही पहचान लिया ॥ ७ ॥ वे एक पीपलके छोटे-से वृक्षका सहारा लिये बायीं जाँघपर दायाँ चरणकमल रक्खे बैठे थे। भोजन-पानका त्याग कर देनेपर भी वे आनन्दसे प्रफुल्लित हो रहे थे ॥ ८ ॥ इसी समय व्यासजीके प्रिय मित्र परम भागवत सिद्ध मैत्रेयजी लोकोंमें स्वच्छन्द विचरते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ ९ ॥ मैत्रेय मुनि भगवान्‌के अनुरागी भक्त हैं। आनन्द और भक्तिभावसे उनकी गर्दन झुक रही थी। उनके सामने ही श्रीहरिने प्रेम एवं मुसकानयुक्त चितवनसे मुझे आनन्दित करते हुए कहा ॥ १० ॥

श्रीभगवान् कहने लगे—मैं तुम्हारी आन्तरिक अभिलाषा जानता हूँ; इसलिये मैं तुम्हें वह साधन देता हूँ, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। उद्धव ! तुम पूर्व-जन्ममें वसु थे। विश्वकी रचना करनेवाले प्रजा-पतियों और वसुओंके यज्ञमें मुझे पानेकी इच्छासे ही तुमने मेरी आराधना की थी ॥ ११ ॥ साधुस्वभाव उद्धव ! संसारमें तुम्हारा यह अन्तिम जन्म है; क्योंकि इसमें तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त कर लिया है। अब मैं मर्त्यलोक-को छोड़कर अपने धाममें जाना चाहता हूँ। इस समय यहाँ एकान्तमें तुमने अपनी अनन्य भक्तिके कारण ही मेरा दर्शन पाया है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है ॥ १२ ॥ पूर्वकालमें पाद्मकल्पके आरम्भमें मैंने अपने नाभि-कमलपर बैठे हुए ब्रह्माको अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले जिस श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश किया था और जिसे विवेकी लोग 'भागवत' कहते हैं, वही मैं तुम्हें देता हूँ ॥ १३ ॥

विदुरजी ! मुझपर तो प्रतिक्षण उन परम पुरुषकी कृपा बरसा करती थी। इस समय उनके इस प्रकार आदरपूर्वक कहनेसे स्नेहवश मुझे रोमाञ्च हो आया, मेरी वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उस समय मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा—॥ १४ ॥ 'स्वामिन् ! आपके चरण-कमलोंकी सेवा करनेवाले पुरुषोंको इस संसारमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—इन चारोंमेंसे कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है; तथापि मुझे उनमेंसे किसीकी इच्छा नहीं है। मैं तो केवल आपके चरणकमलोंकी सेवाके लिये ही लालायित रहता हूँ ॥ १५ ॥ प्रभो ! आप निःस्पृह होकर भी कर्म करते हैं, अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, कालरूप होकर भी शत्रुके डरसे भागते हैं और द्वारकाके किलेमें जाकर छिप रहते हैं तथा स्वात्माराम होकर भी सोलह हजार स्त्रियोंके साथ रमण करते हैं—इन विचित्र चरित्रोंको देखकर विद्वानोंकी बुद्धि भी चक्करमें पड़ जाती है ॥ १६ ॥ देव ! आपका स्वरूपज्ञान सर्वथा अबाध और अखण्ड है। फिर भी आप सलाह लेनेके लिये मुझे बुलाकर जो भोले मनुष्योंकी तरह बड़ी सावधानीसे मेरी सम्मति पूछा करते थे, प्रभो ! आपकी वह लीला मेरे मनको मोहित-सा कर देती है ॥ १७ ॥ स्वामिन् ! अपने स्वरूपका गूढ रहस्य प्रकट करनेवाला जो श्रेष्ठ एवं समग्र ज्ञान आपने ब्रह्माजीको बतलाया था, वह यदि मेरे समझने योग्य हो तो मुझे भी सुनाइये, जिससे मैं भी इस संसार-दुःखको सुगमतासे पार कर जाऊँ ॥ १८ ॥

जब मैंने इस प्रकार अपने हृदयका भाव निवेदित किया, तब परमपुरुष कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे

अपने स्वरूपकी परम स्थितिका उपदेश दिया ॥१९॥ इस प्रकार पूज्यपाद गुरु श्रीकृष्णसे आत्मतत्त्वकी उपलब्धिका साधन सुनकर तथा उन प्रभुके चरणोंकी वन्दना और परिक्रमा करके मैं यहाँ आया हूँ। इस समय उनके विरहसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा है ॥ २० ॥ विदुरजी! पहले तो उनके दर्शन पाकर मुझे आनन्द हुआ था, किन्तु अब तो मेरे हृदयको उनकी विरहव्यथा अत्यन्त पीड़ित कर रही है। अब मैं उनके प्रिय क्षेत्र बदरिकाश्रमको जा रहा हूँ, जहाँ भगवान् श्रीनारायणदेव और नर—ये दोनों ऋषि लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये दीर्घकालीन सौम्य दूसरोंको सुख पहुँचानेवाली एवं कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥ २१-२२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार उद्धवजीके मुखसे अपने प्रिय बन्धुओंके विनाशका असह्य समाचार सुनकर परम ज्ञानी विदुरजीको जो शोक उत्पन्न हुआ, उसे उन्होंने ज्ञानद्वारा शान्त कर दिया ॥ २३ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णके परिकरोंमें प्रधान महाभागवत उद्धवजी बदरिकाश्रमकी ओर जाने लगे, तब कुरुश्रेष्ठ विदुरजीने श्रद्धापूर्वक उनसे पूछा ॥ २४ ॥

विदुरजीने कहा—उद्धवजी! योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूपके गूढ रहस्यको प्रकट करनेवाला जो परमज्ञान आपसे कहा था, वह आप हमें भी सुनाइये; क्योंकि भगवान्‌के सेवक तो अपने सेवकोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही विचरा करते हैं ॥ २५ ॥

उद्धवजीने कहा—उस तत्त्वज्ञानके लिये आपको मुनिवर मैत्रेयजीकी सेवा करनी चाहिये। इस मर्त्यलोकको छोड़ते समय मेरे सामने स्वयं भगवान्‌ने ही आपको उपदेश करनेके लिये उन्हें आज्ञा दी थी ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार विदुरजीके साथ विश्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंकी चर्चा होनेसे उस कथामृतके द्वारा उद्धवजीका वियोगजनित महान् ताप शान्त हो गया। यमुनाजीके तीरपर उनकी वह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। फिर प्रातःकाल होते ही वे वहाँसे चल दिये ॥ २७ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! वृष्णिकुल और भोजवंशके सभी रथी और यूथपतियोंके भी यूथपति नष्ट हो गये थे। यहाँतक कि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिको भी अपना वह रूप छोड़ना पड़ा था। फिर उन सबके मुखिया उद्धवजी ही कैसे बच रहे? ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—जिनकी इच्छा कभी व्यर्थ नहीं होती, उन श्रीहरिने ब्राह्मणोंके शापरूप कालके बहाने अपने कुलका संहार कर अपने श्रीविग्रहको त्यागते समय विचार किया ॥ २९ ॥ 'अब इस लोकसे मेरे चले जानेपर संयमीशिरोमणि उद्धव ही मेरे ज्ञानको ग्रहण करनेके सच्चे अधिकारी हैं ॥ ३० ॥ उद्धव मुझसे अणुमात्र भी कम नहीं हैं, क्योंकि वे आत्मजयी हैं, विषयोंसे कभी विचलित नहीं हुए। अतः लोगोंको मेरे ज्ञानकी शिक्षा देते हुए वे यहीं रहें ॥ ३१ ॥ वेदोंके मूल कारण जगद्गुरु श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उद्धवजी बदरिकाश्रममें जाकर समाधियोगद्वारा श्रीहरिकी आराधना करने लगे ॥३२॥ कुरुश्रेष्ठ परीक्षित्! परमात्मा श्रीकृष्णने लीलासे ही अपना श्रीविग्रह प्रकट किया था, और लीलासे ही उसे अन्तर्धान भी कर दिया। उनका वह अन्तर्धान होना भी धीर पुरुषोंका उत्साह बढ़ानेवाला तथा दूसरे पशुतुल्य अधीर पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुष्कर था। परम भागवत उद्धवजीके मुखसे उनके प्रशंसनीय कर्म और इस प्रकार अन्तर्धान होनेका समाचार पाकर तथा यह जानकर कि भगवान्‌ने परमधाम जाते समय मुझे भी स्मरण किया था, विदुरजी उद्धवजीके चले जानेपर प्रेमसे विह्वल होकर रोने लगे ॥ ३३—३५ ॥ इसके पश्चात् सिद्धशिरोमणि विदुरजी यमुनातटसे चलकर कुछ दिनोंमें गङ्गाजीके किनारे जा पहुँचे, जहाँ श्रीमैत्रेयजी रहते थे ॥ ३६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

विदुरजीका प्रश्न और मैत्रेयजीका सृष्टिक्रमवर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परमज्ञानी मैत्रेय मुनि (हरिद्वारक्षेत्र) में विराजमान थे। भगवद्भक्तिसे शुद्ध हुए हृदयवाले विदुरजी उनके पास जा पहुँचे और उनके साधुस्वभावसे आप्यायित होकर उन्होंने पूछा ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—भगवन्! संसारमें सब लोग सुखके लिये कर्म करते हैं; परन्तु उनसे न तो उन्हें सुख ही मिलता है और न उनका दुःख ही दूर होता है, बल्कि उससे भी उनके दुःखकी वृद्धि ही होती है। अतः इस विषयमें क्या करना उचित है, यह आप मुझे कृपा करके बतलाइये ॥ २ ॥ जो लोग दुर्भाग्यवश भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख, अधर्मपरायण और अत्यन्त दुखी हैं, उनपर कृपा करनेके लिये ही आप-जैसे भाग्यशाली भगवद्भक्त संसारमें विचरा करते हैं ॥ ३ ॥ साधुशिरोमणे! आप मुझे उस शान्तिप्रद साधनका उपदेश दीजिये, जिसके अनुसार आराधना करनेसे भगवान् अपने भक्तोंके भक्तिपूत हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं और अपने स्वरूपका अपरोक्ष अनुभव करानेवाला सनातन ज्ञान प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ त्रिलोकीके नियन्ता और परम स्वतन्त्र श्रीहरि अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ करते हैं, जिस प्रकार अकर्ता होकर भी उन्होंने कल्पके आरम्भमें इस सृष्टिकी रचना की, जिस प्रकार इसे स्थापितकर वे जगत्के जीवोंकी जीविकाका विधान करते हैं, फिर जिस प्रकार इसे अपने हृदयाकाशमें लीनकर वृत्तिशून्य हो योगमायाका आश्रय लेकर शयन करते हैं और जिस प्रकार वे योगेश्वरेश्वर प्रभु एक होनेपर भी इस ब्रह्माण्डमें अन्तर्यामीरूपसे अनुप्रविष्ट होकर अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं—यह सब रहस्य आप हमें समझाइये ॥५-६॥ ब्राह्मण, गौ और देवताओंके कल्याणके लिये जो अनेकों अवतार धारण करके लीलासे ही नाना प्रकारके दिव्य कर्म करते हैं, वे भी हमें सुनाइये। यशस्वियोंके मुकुटमणि श्रीहरिके लीलामृतका पान करते-करते हमारा मन तृप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

हमें यह भी सुनाइये कि उन समस्त लोकपतियोंके स्वामी श्रीहरिने इन लोकों, लोकपालों और लोकालोक-पर्वतसे बाहरके भागोंको, जिनमें ये सब प्रकारके प्राणियोंके अधिकारानुसार भिन्न-भिन्न भेद प्रतीत हो रहे हैं, किन तत्त्वोंसे रचा है ॥ ८ ॥ द्विजवर! उन विश्वकर्ता स्वयम्भू श्रीनारायणने अपनी प्रजाके स्वभाव, कर्म, रूप और नामोंके भेदकी किस प्रकार रचना की है? भगवन्! मैंने श्रीव्यासजीके मुखसे ऊँच-नीच वर्णोंके धर्म तो कई बार सुने हैं। किन्तु अब श्रीकृष्णकथामृतके प्रवाहको छोड़कर अन्य स्वल्पसुखदायक धर्मोंसे मेरा चित्त ऊब गया है ॥ ९-१० ॥ उन तीर्थपाद श्रीहरिके गुणानुवादसे तृप्त हो भी कौन सकता है। उनका तो नारदादि महात्मागण भी आप-जैसे साधुओंके समाजमें कीर्तन करते हैं तथा जब ये मनुष्योंके कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश करते हैं, तब उनकी संसारचक्रमें डालनेवाली घर-गृहस्थीकी आसक्तिको काट डालते हैं ॥ ११ ॥ भगवन्! आपके सखा मुनिवर कृष्णद्वैपायनने भी भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेकी इच्छासे ही महाभारत रचा है। उसमें भी विषयसुखोंका उल्लेख करते हुए मनुष्योंकी बुद्धिको भगवान्की कथाओंकी ओर लगानेका ही प्रयत्न किया गया है ॥ १२ ॥ यह भगवत्कथाकी रुचि श्रद्धालु पुरुषके हृदयमें जब बढ़ने लगती है, तब अन्य विषयोंसे उसे विरक्त कर देती है। वह भगवच्चरणोंके निरन्तर चिन्तनसे आनन्दमग्न हो जाता है और उस पुरुषके सभी दुःखोंका तत्काल अन्त हो जाता है ॥ १३ ॥ मुझे तो उन शोचनीयोंके भी शोचनीय अज्ञानी पुरुषोंके लिये निरन्तर खेद रहता है, जो अपने पिछले पापोंके कारण श्रीहरिकी कथाओंसे विमुख रहते हैं। हाय! कालभगवान् उनके अमूल्य जीवनको काट रहे हैं और वे वाणी, देह और मनसे व्यर्थ वाद-विवाद, व्यर्थ चेष्टा और व्यर्थ चिन्तनमें लगे रहते हैं ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी! आप दीनोंपर कृपा करनेवाले हैं; अतः भौंरा जैसे फूलोंमेंसे रस निकाल लेता है, उसी प्रकार इन लौकिक कथाओंमेंसे इनकी सारभूता परम कल्याणकारी पवित्रकीर्ति श्रीहरिकी कथाएँ छाँटकर हमारे कल्याणके लिये

सुनाइये ॥ १५ ॥ उन सर्वेश्वरने संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेके लिये अपनी मायाशक्तिको स्वीकार कर राम-कृष्णादि अवतारोंके द्वारा जो अनेकों अलौकिक लीलाएँ की हैं, वे सब मुझे सुनाइये ॥१६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब विदुरजीने जीवोंके कल्याणके लिये इस प्रकार प्रश्न किया, तब तो मुनिश्रेष्ठ भगवान् मैत्रेयजीने उनकी बहुत बड़ाई करते हुए यों कहा ॥ १७ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—साधुस्वभाव विदुरजी ! आपने सब जीवोंपर अत्यन्त अनुग्रह करके यह बड़ी अच्छी बात पूछी है। आपका चित्त तो सर्वदा श्रीभगवान्में ही लगा रहता है, तथापि इससे संसारमें भी आपका बहुत सुयश फैलेगा ॥ १८ ॥ आप श्रीव्यासजीके औरस पुत्र हैं; इसलिये आपके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि आप अनन्यभावसे सर्वेश्वर श्रीहरिके ही आश्रित हो गये हैं ॥ १९ ॥ आप प्रजाको दण्ड देनेवाले भगवान् यम ही हैं। माण्डव्य ऋषिका शाप होनेके कारण ही आपने श्रीव्यासजीके वीर्यसे उनके भाई विचित्रवीर्यकी भोगपत्नी दासीके गर्भसे जन्म लिया है ॥ २० ॥ आप सर्वदा ही श्रीभगवान् और उनके भक्तोंको अत्यन्त प्रिय हैं; इसीलिये भगवान् निजधाम पधारते समय मुझे आपको ज्ञानोपदेश करनेकी आज्ञा दे गये हैं ॥ २१ ॥ इसलिये अब मैं जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये योगमायाके द्वारा विस्तारित हुई भगवान्की विभिन्न लीलाओंका क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥ २२ ॥

सृष्टिरचनाके पूर्व समस्त आत्माओंके आत्मा एक पूर्ण परमात्मा ही थे—न द्रष्टा था न दृश्य ! सृष्टिकाल-में अनेक वृत्तियोंके भेदसे जो अनेकता दिखायी पड़ती है, वह भी वही थे; क्योंकि उनकी इच्छा अकेले रहने-की थी ॥ २३ ॥ वे ही द्रष्टा होकर देखने लगे, परन्तु उन्हें दृश्य दिखायी नहीं पड़ा; क्योंकि उस समय वे ही अद्वितीय रूपसे प्रकाशित हो रहे थे। ऐसी अवस्थामें वे अपनेको असत्के समान समझने लगे। वस्तुतः वे असत् नहीं थे, क्योंकि उनकी शक्तियाँ ही सोयी थीं। उनके ज्ञानका लोप नहीं हुआ था ॥२४॥ यह द्रष्टा और दृश्यका अनुसन्धान करनेवाली शक्ति ही—कार्यकारणरूपा माया है। महाभाग विदुरजी ! इस भावाभावरूप अनिर्वचनीय मायाके द्वारा ही भगवान्ने इस विश्वका निर्माण किया है ॥ २५ ॥ कालशक्तिसे जब यह त्रिगुणमयी माया क्षोभको प्राप्त हुई, तब उन इन्द्रियातीत चिन्मय परमात्माने अपने अंश पुरुषरूपसे उसमें चिदाभासरूप बीज स्थापित किया ॥ २६ ॥ तब कालकी प्रेरणासे उस अव्यक्त मायासे महत्तत्त्व प्रकट हुआ। वह मिथ्या अज्ञानका नाशक होनेके कारण विज्ञानस्वरूप और अपनेमें सूक्ष्मरूपसे स्थित प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति करने-वाला था ॥ २७ ॥ फिर चिदाभास, गुण और कालके अधीन उस महत्तत्त्वने भगवान्की दृष्टि पड़नेपर इस विश्वकी रचनाके लिये अपना रूपान्तर किया ॥ २८ ॥ महत्तत्त्वके विकृत होनेपर अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई—जो कार्य (अधिभूत), कारण (अध्यात्म) और कर्त्ता (अधिदैव) रूप होनेके कारण भूत, इन्द्रिय और मन-का कारण है ॥ २९ ॥ वह अहङ्कार वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस भेदसे तीन प्रकारका है; अतः अहंतत्त्वमें विकार होनेपर वैकारिक अहङ्कारसे मन, और जिनसे विषयोंका ज्ञान होता है वे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता हुए ॥ ३० ॥ तैजस अहङ्कारसे ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हुईं तथा तामस अहङ्कारसे सूक्ष्म भूतोंका कारण शब्दतन्मात्र हुआ, और उससे दृष्टान्तरूपसे आत्माका बोध करानेवाला आकाश उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥ भगवान्की दृष्टि जब आकाश-पर पड़ी, तब उससे फिर काल, माया और चिदाभासके योगसे स्पर्शतन्मात्र हुआ और उसके विकृत होनेपर उससे वायुकी उत्पत्ति हुई ॥ ३२ ॥ अत्यन्त बलवान् वायुने आकाशके सहित विकृत होकर रूपतन्मात्रकी रचना की और उससे संसारका प्रकाशक तेज उत्पन्न हुआ ॥ ३३ ॥ फिर परमात्माकी दृष्टि पड़नेपर वायुयुक्त तेजने काल, माया और चिदंशके योगसे विकृत होकर रसतन्मात्रके कार्य जलको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर तेजसे युक्त जलने ब्रह्मका दृष्टिपात होनेपर काल, माया और चिदंशके योगसे गन्धगुणमयी पृथ्वीको उत्पन्न किया ॥ ३५॥ विदुरजी ! इन आकाशादि भूतोंमेंसे जो-जो भूत पीछे-पीछे उत्पन्न हुए हैं, उनमें क्रमशः अपने पूर्व-पूर्व भूतों-

के गुण भी अनुगत समझने चाहिये ॥ ३६ ॥ ये महत्-तत्त्वादिके अभिमानी विकार, विक्षेप और चेतनांशविशिष्ट देवगण श्रीभगवान्‌के ही अंश हैं। किन्तु पृथक्-पृथक् रहनेके कारण जब वे विश्वरचनारूप अपने कार्यमें सफल नहीं हुए, तब हाथ जोड़कर भगवान्‌से कहने लगे ॥ ३७॥

देवताओंने कहा—देव ! हम आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं। ये अपनी शरणमें आये हुए जीवोंका ताप दूर करनेके लिये छत्रके समान हैं तथा इनका आश्रय लेनेसे यतिजन अनन्त संसार-दुःखको सुगमतासे ही दूर फेंक देते हैं ॥ ३८ ॥ जगत्कर्ता जगदीश्वर ! इस संसारमें तापत्रयसे व्याकुल रहनेके कारण जीवोंको जरा भी शान्ति नहीं मिलती। इसलिये भगवन् ! हम आपके चरणोंकी ज्ञानमयी छायाका आश्रय लेते हैं ॥ ३९ ॥ मुनिजन एकान्त स्थानमें रहकर आपके मुख-कमलका आश्रय लेनेवाले वेदमन्त्ररूप पक्षियोंके द्वारा जिनका अनुसन्धान करते रहते हैं तथा जो सम्पूर्ण पाप-नाशिनी नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजीके उद्गमस्थान हैं, आपके उन परम पावन पादपद्मोंका हम आश्रय लेते हैं ॥ ४० ॥ हम आपके चरणकमलोंकी उस चौकीका आश्रय ग्रहण करते हैं, जिसे भक्तजन श्रद्धा और श्रवणकीर्तनादिरूप भक्तिसे परिमार्जित अन्तःकरणमें धारण करके वैराग्यपुष्ट ज्ञानके द्वारा परम धीर हो जाते हैं ॥ ४१ ॥ ईश ! आप संसार-की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये ही अवतार लेते हैं; अतः हम सब आपके उन चरणकमलोंकी शरण लेते हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले भक्तजनोंको अभय कर देते हैं ॥ ४२ ॥ जिन पुरुषोंका देह, गेह तथा उनसे सम्बन्ध रखने-वाले अन्य तुच्छ पदार्थोंमें अहंता, ममताका दृढ़ दुराग्रह है, उनके शरीरमें (आपके अन्तर्यामीरूपसे) रहनेपर भी जो अत्यन्त दूर हैं; उन्हीं आपके चरणारविन्दोंको हम भजते हैं ॥ ४३ ॥ परम यशस्वी परमेश्वर ! इन्द्रियोंके विषयाभिमुख रहनेके कारण जिनका मन सर्वदा बाहर ही भटका करता है, वे पामरलोग आपके विलासपूर्ण पाद-विन्यासकी शोभाके विशेषज्ञ भक्तजनोंका दर्शन नहीं कर पाते; इसीसे वे आपके चरणोंसे दूर रहते हैं ॥ ४४ ॥ देव ! आपके कथामृतका पान करनेसे उमड़ी हुई भक्तिके कारण जिनका अन्तःकरण निर्मल हो गया है, वे लोग—वैराग्य ही जिसका सार है—ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त करके अनायास ही आपके वैकुण्ठधामको चले जाते हैं ॥ ४५ ॥ दूसरे धीर पुरुष चित्तनिरोधरूप समाधिके बलसे आपकी बलवती मायाको जीतकर आपमें ही लीन तो हो जाते हैं, पर उन्हें श्रम बहुत होता है; किन्तु आपकी सेवाके मार्गमें कुछ भी कष्ट नहीं है ॥ ४६ ॥

आदिदेव ! आपने सृष्टि-रचनाकी इच्छासे हमें त्रिगुणमय रचा है। इसलिये विभिन्न स्वभाववाले होनेके कारण हम आपसमें मिल नहीं पाते और इसीसे आपकी क्रीडाके साधनरूप ब्रह्माण्डकी रचना करके उसे आपको समर्पण करनेमें असमर्थ हो रहे हैं ॥ ४७ ॥ अतः जन्मरहित भगवन् ! जिससे हम ब्रह्माण्ड रचकर आपको सब प्रकारके भोग समयपर समर्पण कर सकें और जहाँ स्थित होकर हम भी अपनी योग्यताके अनुसार अन्न ग्रहण कर सकें तथा ये सब जीव भी सब प्रकारकी विघ्नबाधाओंसे दूर रहकर हम और आप दोनोंको भोग समर्पण करते हुए अपना-अपना अन्न भक्षण कर सकें, ऐसा कोई उपाय कीजिये ॥ ४८ ॥ आप निर्विकार पुराणपुरुष ही अन्य कार्यवर्गके सहित हम देवताओंके आदि कारण हैं। देव ! पहले आप अजन्माहीने सत्त्वादि गुण और जन्मादि कर्मोंकी कारणरूपा मायाशक्ति-में चिदाभासरूप वीर्य स्थापित किया था ॥ ४९ ॥ परमात्मदेव ! महत्तत्त्वादिरूप हम देवगण जिस कार्यके लिये उत्पन्न हुए हैं, उसके सम्बन्धमें हम क्या करें ? देव ! हमपर आप ही अनुग्रह करनेवाले हैं। इसलिये ब्रह्माण्डरचनाके लिये आप हमें क्रियाशक्तिके सहित अपनी ज्ञानशक्ति भी प्रदान कीजिये ॥ ५० ॥
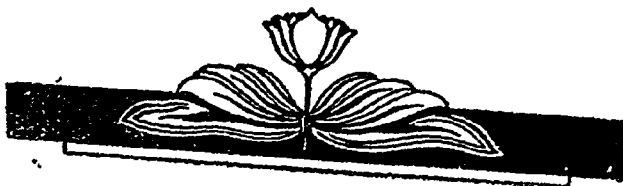
छठा अध्याय

विराट् शरीरकी उत्पत्ति

मैत्रेय ऋषिने कहा—सर्वशक्तिमान् भगवान्‌ने जब देखा कि आपसमें संगठित न होनेके कारण ये मेरी महत्तत्त्व आदि शक्तियाँ विश्व-रचनाके कार्यमें असमर्थ हो रही हैं, तब वे कालशक्तिको स्वीकार करके एक साथ ही महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा और मनसहित ग्यारह इन्द्रियाँ—इन तेईस तत्त्वोंके समुदायमें प्रविष्ट हो गये ॥ १-२ ॥ उनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने जीवोंके सोये हुए अदृष्टको जाग्रत किया और परस्पर विलग हुए उस तत्त्वसमूहको अपनी क्रियाशक्तिके द्वारा आपसमें मिला दिया ॥ ३ ॥ इस प्रकार जब भगवान्‌ने अदृष्टको कार्योन्मुख किया, तब उस तेईस तत्त्वोंके समूहने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने अंशोंद्वारा अधिपुरुष—विराट्‌को उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ अर्थात् जब भगवान्‌ने अंशरूपसे अपने उस शरीरमें प्रवेश किया, तब वह विश्वरचना करनेवाला महत्तत्त्वादिका समुदाय एक दूसरेसे मिलकर परिणामको प्राप्त हुआ। यह तत्त्वोंका परिणाम ही विराट् पुरुष है, जिसमें चराचर जगत् विद्यमान है ॥ ५ ॥ जलके भीतर जो अण्डरूप आश्रयस्थान था, उसमें वह हिरण्यमय विराट् पुरुष सम्पूर्ण जीवोंको साथ लेकर एक हजार दिव्य वर्षोंतक रहा ॥ ६ ॥ वह विश्वरचना करनेवाले तत्त्वोंका गर्भ (कार्य) था तथा ज्ञान, क्रिया और आत्मशक्तिसे सम्पन्न था। इन शक्तियोंसे उसने स्वयं अपने क्रमशः एक (हृदयरूप), दस (प्राणरूप) और तीन (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) विभाग किये ॥ ७ ॥ यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होनेके कारण समस्त जीवोंका आत्मा, जीवरूप होनेके कारण परमात्माका अंश और प्रथम अभिव्यक्त होनेके कारण भगवान्‌का आदि-अवतार है। यह सम्पूर्ण भूतसमुदाय इसीमें प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥ यह अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवरूपसे तीन प्रकारका, प्राणरूपसे दस प्रकारका* और हृदयरूपसे एक प्रकारका है ॥ ९ ॥

फिर विश्वकी रचना करनेवाले महत्तत्त्वादिके अधिपति श्रीभगवान्‌ने उनकी प्रार्थनाको स्मरण कर उनकी वृत्तियोंको जगानेके लिये अपने चेतनरूप तेजसे उस विराट् पुरुषको प्रकाशित किया, उसे जगाया ॥ १० ॥ उसके जाग्रत् होते ही देवताओंके लिये कितने स्थान प्रकट हुए—यह मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ ११ ॥ विराट् पुरुषके पहले मुख प्रकट हुआ; उसमें लोकपाल अग्नि अपने अंश वागिन्द्रियके समेत प्रविष्ट हो गया, जिससे यह जीव बोलता है ॥ १२ ॥ फिर विराट् पुरुषके तालु उत्पन्न हुआ; उसमें लोकपाल वरुण अपने अंश रसनेन्द्रियके सहित स्थित हुआ, जिससे जीव रस ग्रहण करता है ॥ १३ ॥ इसके पश्चात् उस विराट् पुरुषके नथुने प्रकट हुए; उनमें दोनों अश्विनीकुमार अपने अंश घ्राणेन्द्रियके सहित प्रविष्ट हुए, जिससे जीव गन्ध ग्रहण करता है ॥ १४ ॥ इसी प्रकार जब उस विराट्‌देहमें आँखें प्रकट हुईं, तब उनमें अपने अंश नेत्रेन्द्रियके सहित—लोकपति सूर्यने प्रवेश किया, जिस नेत्रेन्द्रियसे पुरुषको विविध रूपोंका ज्ञान होता है ॥ १५ ॥ फिर उस विराट् विग्रहमें त्वचा उत्पन्न हुई; उसमें अपने अंश त्वगिन्द्रियके सहित वायु स्थित हुआ, जिस त्वगिन्द्रियसे जीव स्पर्शका अनुभव करता है ॥ १६ ॥ जब इसके कर्णछिद्र प्रकट हुए, तब उनमें अपने अंश श्रवणेन्द्रियके सहित दिशाओंने प्रवेश किया, जिस श्रवणेन्द्रियसे जीवको शब्दका ज्ञान होता है ॥ १७ ॥ फिर विराट् शरीरमें चर्म उत्पन्न हुआ; उसमें अपने अंश रोमोंके सहित ओषधियाँ स्थित हुईं, जिन रोमोंसे जीव खुजली आदिको अनुभव करता है ॥ १८ ॥ अब उसके लिङ्ग उत्पन्न हुआ। अपने इस आश्रयमें प्रजापतिने अपने अंश वीर्यके सहित प्रवेश किया, जिससे जीव आनन्दका अनुभव करता है ॥ १९ ॥ फिर विराट् पुरुषके गुदा प्रकट हुई; उसमें लोकपाल मित्रने अपने अंश पायु-इन्द्रियके सहित प्रवेश किया, इससे जीव मलत्याग करता है ॥ २० ॥ इसके पश्चात् उसके हाथ प्रकट हुए; उनमें अपनी ग्रहण-त्यागरूपा शक्तिके सहित देवराज इन्द्रने प्रवेश किया, इस शक्तिसे जीव अपनी जीविका प्राप्त करता है ॥ २१ ॥

* दस इन्द्रियोंसहित मन अध्यात्म है, इन्द्रियादिके विषय अधिभूत हैं, इन्द्रियाधिष्ठाता देव अधिदैव हैं तथा प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्राण हैं।

जब इसके चरण उत्पन्न हुए, तब उनमें अपनी शक्ति गतिके सहित लोकेश्वर विष्णुने प्रवेश किया—इस गति-शक्तिद्वारा जीव अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचता है ॥२२॥ फिर इसके बुद्धि उत्पन्न हुई; अपने इस स्थानमें अपने अंश बुद्धिशक्तिके साथ वाक्पति ब्रह्माने प्रवेश किया, इस बुद्धिशक्तिसे जीव ज्ञातव्य विषयोंको जान सकता है ॥ २३ ॥ फिर इसमें हृदय प्रकट हुआ; उसमें अपने अंश मनके सहित चन्द्रमा स्थित हुआ । इस मनःशक्तिके द्वारा जीव सङ्कल्प-विकल्पादिरूप विकारोंको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ तत्पश्चात् विराट् पुरुषमें अहङ्कार उत्पन्न हुआ; इस अपने आश्रयमें क्रियाशक्तिसहित अभिमान (रुद्र) ने प्रवेश किया । इससे जीव अपने कर्तव्यको स्वीकार करता है ॥ २५ ॥ अब इसमें चित्त प्रकट हुआ । उसमें चित्तशक्तिके सहित महत्तत्त्व (ब्रह्मा) स्थित हुआ; इस चित्तशक्तिसे जीव विज्ञान (चेतना) को उपलब्ध करता है ॥ २६ ॥ इस विराट् पुरुषके सिरसे स्वर्गलोक, पैरोंसे पृथ्वी और नाभिसे अन्तरिक्ष (आकाश) उत्पन्न हुआ । इनमें क्रमशः सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके परिणामरूप देवता, मनुष्य और प्रेतादि देखे जाते हैं॥ २७ ॥ इनमें देवतालोग सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण स्वर्गलोकमें, मनुष्य और उनके उपयोगी गौ आदि जीव रजोगुणकी प्रधानताके कारण पृथ्वीमें तथा तमोगुणी स्वभाववाले होनेसे रुद्रके पार्षदगण (भूत, प्रेत आदि) दोनोंके बीचमें स्थित भगवान्के नाभिस्थानीय अन्तरिक्षलोकमें रहते हैं ॥ २८-२९ ॥

विदुरजी ! वेद और ब्राह्मण भगवान्के मुखसे प्रकट हुए । मुखसे प्रकट होनेके कारण ही ब्राह्मण सब वर्णोंमें श्रेष्ठ और सबका गुरु है ॥ ३० ॥ उनकी भुजाओंसे क्षत्रियवृत्ति और उसका अवलम्बन करनेवाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ, जो विराट् भगवान्का अंश होनेके कारण जन्म लेकर सब वर्णोंकी चोर आदिके उपद्रवोंसे रक्षा करता है ॥ ३१ ॥ भगवान्की दोनों जाँघोंसे सब लोगोंका निर्वाह करनेवाली वैश्यवृत्ति उत्पन्न हुई और उन्हींसे वैश्य वर्णका भी प्रादुर्भाव हुआ । यह वर्ण अपनी वृत्तिसे सब जीवोंकी जीविका चलाता है ॥ ३२ ॥ फिर सब धर्मोंकी सिद्धिके लिये भगवान्के चरणोंसे सेवावृत्ति प्रकट हुई और उन्हींसे पहले-पहल उस वृत्तिका अधिकारी शूद्रवर्ण भी प्रकट हुआ, जिसकी वृत्तिसे ही श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं* ॥ ३३ ॥ ये चारों वर्ण अपनी-अपनी वृत्तियोंके सहित जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन अपने गुरु श्रीहरिका अपने-अपने धर्मोंसे चित्तशुद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं ॥ ३४ ॥ विदुरजी ! यह विराट् पुरुष काल, कर्म और स्वभावशक्तिसे युक्त भगवान्की योगमायाके प्रभावको प्रकट करनेवाला है । इसके स्वरूपका पूरा-पूरा वर्णन करनेका कौन साहस कर सकता है ॥ ३५ ॥ तथापि प्यारे विदुरजी ! अन्य व्यावहारिक चर्चाओंसे अपवित्र हुई अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये, जैसी मेरी बुद्धि है और जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना है वैसा, श्रीहरिका सुयश वर्णन करता हूँ ॥ ३६ ॥ महापुरुषोंका मत है कि पुण्यश्लोकशिरोमणि श्रीहरिके गुणोंका गान करना ही मनुष्योंकी वाणीका, तथा विद्वानोंके मुखसे भगवत्कथामृतका पान करना ही उनके कानोंका सबसे बड़ा लाभ है ॥ ३७ ॥ वत्स ! हम ही नहीं, आदिकवि श्रीब्रह्माजीने एक हजार दिव्य वर्षोंतक अपनी योगपरिपक्व बुद्धिसे विचार किया; तो भी क्या वे भगवान्की अमित महिमाका पार पा सके ? ॥३८॥ अतः भगवान्की माया बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहित कर देनेवाली है । उसकी चक्करमें डालनेवाली चाल अनन्त है; अतएव स्वयं भगवान् भी उसकी थाह नहीं लगा सकते, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३९ ॥ जहाँ न पहुँचकर मनके सहित वाणी भी लौट आती है तथा जिनका पार पानेमें अहङ्कारके अभिमानी रुद्र तथा अन्य इन्द्रियाधिष्ठाता देवता भी समर्थ नहीं हैं, उन श्रीभगवान्को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४० ॥

---

* सब धर्मोंकी सिद्धिका मूल सेवा है, सेवा किये बिना कोई भी धर्म सिद्ध नहीं होता । अतः सब धर्मोंकी मूलभूता सेवा ही जिसका धर्म है, वह शूद्र सब वर्णोंमें महान् है । ब्राह्मणका धर्म मोक्षके लिये है, क्षत्रियका धर्म भोगके लिये है, वैश्यका धर्म अर्थके लिये है और शूद्रका धर्म धर्मके लिये है । इस प्रकार प्रथम तीन वर्णोंके धर्म अन्य पुरुषार्थोंके लिये हैं, किन्तु शूद्रका धर्म स्वपुरुषार्थके लिये है; अतः इसकी वृत्तिसे ही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ।

सातवाँ अध्याय

विदुरजीके प्रश्न

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—मैत्रेयजीका यह भाषण सुनकर बुद्धिमान् व्यासनन्दन विदुरजीने उन्हें अपनी वाणीसे प्रसन्न करते हुए कहा ॥ १ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान् तो शुद्ध बोध-स्वरूप, निर्विकार और निर्गुण हैं; उनके साथ लीलासे भी गुण और क्रियाका सम्बन्ध कैसे हो सकता है? ॥२॥ बालकमें तो कामना और दूसरोंके साथ खेलनेकी इच्छा रहती है, इसीसे वह खेलनेके लिये प्रयत्न करता है; किन्तु भगवान् तो स्वतः नित्यतृप्त—पूर्णकाम और सर्वदा असङ्ग हैं, वे क्रीडाके लिये भी क्यों सङ्कल्प करेंगे ॥३॥ भगवान्ने अपनी गुणमयी मायासे जगत्की रचना की है, उसीसे वे इसका पालन करते हैं और फिर उसीसे संहार भी करेंगे ॥४॥ जिनके ज्ञानका देश, काल अथवा अवस्थासे, अपने-आप या किसी दूसरे निमित्तसे भी कभी लोप नहीं होता, उनका मायाके साथ किस प्रकार संयोग हो सकता है ॥ ५ ॥ एकमात्र ये भगवान् ही समस्त क्षेत्रोंमें उनके साक्षीरूपसे स्थित हैं, फिर इन्हें दुर्भाग्य या किसी प्रकारके कर्मजनित क्लेशकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ॥ ६ ॥ भगवन् ! इस अज्ञान-सङ्कटमें पड़कर मेरा मन बड़ा खिन्न हो रहा है, आप मेरे मनके इस महान् मोहको कृपा करके दूर कीजिये ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तत्त्वजिज्ञासु विदुरजीकी यह प्रेरणा प्राप्तकर अहङ्कारहीन श्रीमैत्रेयजीने भगवान्-का स्मरण करते हुए मुसकराते हुए कहा ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—जो आत्मा सबका स्वामी और सर्वथा मुक्तस्वरूप है, वही दीनता और बन्धनको प्राप्त हो—यह बात युक्तिविरुद्ध अवश्य है; किन्तु वस्तुतः यही तो भगवान्की माया है ॥ ९ ॥ जिस प्रकार स्वप्न देखनेवाले पुरुषको अपना सिर कटना आदि व्यापार न होनेपर भी अज्ञानके कारण सत्यवत् भासते हैं, उसी प्रकार इस जीवको बन्धनादि न होते हुए भी अज्ञानवश भास रहे हैं ॥ १० ॥ यदि यह कहा जाय कि फिर ईश्वरमें इनकी प्रतीति क्यों नहीं होती, तो इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार जलमें होनेवाली कम्प आदि क्रिया जलमें दीखनेवाले चन्द्रमाके प्रतिबिम्बमें न होनेपर भी भासती है, आकाशस्थ चन्द्रमामें नहीं, उसी प्रकार देहाभिमानी जीवमें ही देहके मिथ्या धर्मोंकी प्रतीति होती है, परमात्मामें नहीं ॥११॥ निष्कामभावसे धर्मोंका आचरण करनेपर भगवत्कृपासे प्राप्त हुए भक्ति-योगके द्वारा यह प्रतीति धीरे-धीरे निवृत्त हो जाती है ॥१२॥ जिस समय समस्त इन्द्रियाँ विषयोंसे हटकर साक्षी परमात्मा श्रीहरिमें निश्चलभावसे स्थित हो जाती हैं, उस समय गाढ़ निद्रामें सोये हुए मनुष्यके समान जीवके राग-द्वेषादि सारे क्लेश सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ॥१३॥ श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन एवं श्रवण अशेष दुःखराशि-को शान्त कर देता है; फिर यदि हमारे हृदयमें उनके चरणकमलकी रजके सेवनका प्रेम जग पड़े, तब तो कहना ही क्या है? ॥ १४ ॥

विदुरजीने कहा—भगवन् ! आपके युक्तियुक्त वचनोंकी तलवारसे मेरे सन्देह छिन्न-भिन्न हो गये हैं। अब मेरा चित्त भगवान्की स्वतन्त्रता और जीवकी पर-तन्त्रता—दोनों ही विषयोंमें खूब प्रवेश कर रहा है ॥१५॥ विद्वन् ! आपने यह बात बहुत ठीक कही कि जीवको जो क्लेशादिकी प्रतीति हो रही है, उसका आधार केवल भगवान्की माया ही है। वह क्लेश मिथ्या एवं निर्मूल ही है; क्योंकि इस विश्वका मूल कारण ही मायाके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ इस संसारमें दो ही प्रकारके लोग सुखी हैं—या तो जो अत्यन्त मूढ़ (अज्ञानग्रस्त) हैं, या जो बुद्धि आदिसे अतीत श्री-भगवान्को प्राप्त कर चुके हैं। बीचकी श्रेणीके संशयापन्न लोग तो दुःख ही भोगते रहते हैं ॥ १७ ॥ भगवन् ! आपकी कृपासे मुझे यह निश्चय हो गया कि ये अनात्म पदार्थ वस्तुतः हैं नहीं, केवल प्रतीत ही होते हैं। अब मैं आपके चरणोंकी सेवाके प्रभावसे उस प्रतीतिको भी हटा दूँगा ॥ १८ ॥ इन श्रीचरणोंकी सेवासे नित्यसिद्ध भगवान् श्रीमधुसूदनके चरणकमलोंमें उत्कट प्रेम और आनन्दकी वृद्धि होती है, जो आवागमनकी यन्त्रणाका

नाश कर देती है ॥ १९ ॥ महात्मालोग भगवत्प्राप्तिके साक्षात् मार्ग ही होते हैं, उनके यहाँ सर्वदा देवदेव श्रीहरिके गुणोंका गान होता रहता है; अल्पपुण्य पुरुषको उनकी सेवाका अवसर मिलना अत्यन्त कठिन है ॥ २० ॥

भगवन् ! आपने कहा कि सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान्‌ने क्रमशः महदादि तत्त्व और उनके विकारोंको रचकर फिर उनके अंशोंसे विराट्‌को उत्पन्न किया और इसके पश्चात् वे स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गये ॥ २१ ॥ उन विराट्‌के हजारों पैर, जाँघें और बाँहें हैं; उन्हींको वेद आदिपुरुष कहते हैं; उन्हींमें ये सब लोक विस्तृतरूपसे स्थित हैं ॥ २२ ॥ उन्हींमें इन्द्रिय, विषय और इन्द्रियाभिमानी देवताओंके सहित दस प्रकारके प्राणोंका—जो इन्द्रियबल, मनोबल और शारीरिक बलरूपसे तीन प्रकारके हैं—आपने वर्णन किया है और उन्हींसे ब्राह्मणादि वर्ण भी उत्पन्न हुए हैं। अब आप मुझे उनकी ब्रह्मादि विभूतियोंका वर्णन सुनाइये—जिनसे पुत्र, पौत्र, नाती और कुटुम्बियोंके सहित तरह-तरहकी प्रजा उत्पन्न हुई और उससे यह सारा ब्रह्माण्ड भर गया ॥ २३-२४ ॥ वह विराट् ब्रह्मादि प्रजापतियोंका भी प्रभु है। उसने किन-किन प्रजापतियोंको उत्पन्न किया तथा सर्ग, अनुसर्ग और मन्वन्तरोंके अधिपति मनुओंकी भी किस क्रमसे रचना की ? ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी ! उन मनुओंके वंश और वंशधर राजाओंके चरित्रोंका, पृथ्वीके ऊपर और नीचेके लोकों तथा भूर्लोकके विस्तार और स्थितिका भी वर्णन कीजिये। तथा यह भी बताइये कि तिर्यक्, मनुष्य, देवता, सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु) और पक्षी तथा जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन्न हुए ॥ २६-२७ ॥ श्रीहरिने सृष्टि करते समय जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये अपने गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूपसे जो कल्याणकारी लीलाएँ कीं, उनका भी वर्णन कीजिये ॥ २८ ॥ वेष, आचरण और स्वभावके अनुसार वर्णाश्रमका विभाग, ऋषियोंके जन्म-कर्मादि, वेदोंका विभाग, यज्ञोंके विस्तार, योगका मार्ग, ज्ञानमार्ग और उसका साधन सांख्यमार्ग, तथा भगवान्‌के कहे हुए नारदपाञ्चरात्र आदि तन्त्रशास्त्र, विभिन्न पाखण्डमार्गोंके प्रचारसे होनेवाली विषमता, नीचवर्णके पुरुषसे उच्चवर्णकी स्त्रीमें होनेवाली सन्तानोंके प्रकार तथा भिन्न-भिन्न गुण और कर्मोंके कारण जीवकी जैसी और जितनी गतियाँ होती हैं, वे सब हमें सुनाइये ॥ २९—३१ ॥

ब्रह्मन् ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके परस्पर अविरोधी साधनोंका, वाणिज्य, दण्डनीति और शास्त्रश्रवणकी विधियोंका, श्राद्धकी विधिका, पितृगणोंकी सृष्टिका तथा कालचक्रमें ग्रह, नक्षत्र और तारागणकी स्थितिका भी अलग-अलग वर्णन कीजिये ॥ ३२-३३ ॥ दान, तप तथा इष्ट और पूर्त कर्मोंका क्या फल है ? प्रवास और आपत्तिके समय मनुष्यका क्या धर्म होता है ? ॥ ३४ ॥ निष्पाप मैत्रेयजी ! धर्मके मूल कारण श्रीजनार्दन भगवान् किस आचरणसे सन्तुष्ट होते हैं और किनपर अनुग्रह करते हैं, यह वर्णन कीजिये ॥ ३५ ॥ द्विजवर ! दीनवत्सल गुरुजन अपने अनुगत शिष्यों और पुत्रोंको बिना पूछे भी उनके हितकी बात बतला दिया करते हैं ॥ ३६ ॥ भगवन् ! उन महदादि तत्त्वोंका प्रलय कितने प्रकारका है ? तथा जब भगवान् योगनिद्रामें शयन करते हैं, तब उनमेंसे कौन-कौन तत्त्व उनकी सेवा करते हैं और कौन उनमें लीन हो जाते हैं ? ॥ ३७ ॥ जीवका तत्त्व, परमेश्वरका स्वरूप, उपनिषद्-प्रतिपादित ज्ञान तथा गुरु और शिष्यका पारस्परिक प्रयोजन क्या है ? ॥३८॥ पवित्रात्मन् ! विद्वानोंने उस ज्ञानकी प्राप्तिके क्या-क्या उपाय बतलाये हैं ? क्योंकि मनुष्योंको ज्ञान, भक्ति अथवा वैराग्यकी प्राप्ति अपने-आप तो हो नहीं सकती ॥३९॥ ब्रह्मन् ! माया-मोहके कारण मेरी विचार-दृष्टि नष्ट हो गयी है। मैं अज्ञ हूँ, आप मेरे परम सुहृद् हैं; अतः श्रीहरिलीलाका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे मैंने जो प्रश्न किये हैं, उनका उत्तर मुझे दीजिये ॥ ४० ॥ पुण्यमय मैत्रेयजी ! भगवत्तत्त्वके उपदेशद्वारा जीवको जन्म-मृत्युसे छुड़ाकर उसे अभय कर देनेमें जो पुण्य होता है, समस्त वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादिसे होनेवाला पुण्य उस पुण्यके

सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकता ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब कुरुश्रेष्ठ विदुरजीने मुनिवर मैत्रेयजीसे इस प्रकार पुराणविषयक प्रश्न किये, तब भगवच्चर्चाके लिये प्रेरित किये जानेके कारण वे बड़े प्रसन्न हुए और मुसकराकर उनसे कहने लगे ॥ ४२ ॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी उत्पत्ति

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! आप भगवद्भक्तोंमें प्रधान लोकपाल यमराज ही हैं; आपके पूरुवंशमें जन्म लेनेके कारण वह वंश साधुपुरुषोंके लिये भी सेव्य हो गया है। धन्य हैं! आप निरन्तर पद-पदपर श्रीहरिकी कीर्तिमयी मालाको नित्य नूतन बना रहे हैं ॥ १ ॥ अब मैं, क्षुद्र विषय-सुखकी कामनासे महान् दुःखको मोल लेनेवाले पुरुषोंकी दुःखनिवृत्तिके लिये, श्रीमद्भागवतपुराण प्रारम्भ करता हूँ—जिसे स्वयं श्रीसङ्कर्षणभगवान्‌ने सनकादि ऋषियोंको सुनाया था ॥ २ ॥

अखण्ड ज्ञानसम्पन्न आदिदेव भगवान् सङ्कर्षण पाताललोकमें विराजमान थे। सनत्कुमार आदि ऋषियोंने परम पुरुषोत्तम ब्रह्मका तत्त्व जाननेके लिये उनसे प्रश्न किया ॥ ३ ॥ उस समय शेषजी अपने आश्रयस्वरूप उन परमात्माकी मानसिक पूजा कर रहे थे, जिनका वेद वासुदेवके नामसे निरूपण करते हैं। उनके कमलकोश-सरीखे नेत्र बन्द थे। प्रश्न करनेपर सनत्कुमारादि ज्ञानीजनोंके आनन्दके लिये उन्होंने अधखुले नेत्रोंसे देखा ॥ ४ ॥

सनत्कुमार आदि ऋषियोंने मन्दाकिनीके जलसे भीगे अपने जटासमूहसे उनके चरणोंकी चौकीके रूपमें स्थित कमलका स्पर्श किया, जिसकी नागराजकुमारियाँ अभिलषित वरकी प्राप्तिके लिये प्रेमपूर्वक अनेकों उपहार-सामग्रियोंसे पूजा करती हैं ॥ ५ ॥

सनत्कुमारादि उनकी लीलाके मर्मज्ञ हैं। उन्होंने बार-बार प्रेम-गद्गद वाणीसे उनकी लीलाका गान किया। उस समय शेषभगवान्‌के उठे हुए सहस्रों फण किरीटोंकी सहस्र-सहस्र श्रेष्ठ मणियोंकी छिटकती हुई रश्मियोंसे जगमगा रहे थे ॥६॥ भगवान् सङ्कर्षणने निवृत्तिपरायण सनत्कुमारजीको यह भागवत सुनाया था—ऐसा प्रसिद्ध है। सनत्कुमारजीने फिर इसे परम व्रतशील सांख्यायन मुनिको, उनके प्रश्न करनेपर सुनाया ॥ ७ ॥ परमहंसोंमें प्रधान श्रीसांख्यायनजीको जब भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन करनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने इसे अपने अनुगत शिष्य, हमारे गुरु श्रीपराशरजीको और बृहस्पतिजीको सुनाया ॥ ८ ॥ इसके पश्चात् परम दयालु पराशरजीने पुलस्त्य मुनिके कहनेसे वह आदिपुराण मुझसे कहा। वत्स! श्रद्धालु और सदा अनुगत देखकर अब वही पुराण मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ९ ॥

सृष्टिके पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व जलमें डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्रीनारायणदेव शेषशय्यापर पौढ़े हुए थे। वे अपनी ज्ञानशक्तिको अक्षुण्ण रखते हुए ही, योगनिद्राका आश्रय ले, अपने नेत्र मूँदे हुए थे। सृष्टिकर्मसे अवकाश लेकर आत्मानन्दमें मग्न थे। उनमें किसी भी क्रियाका उन्मेष नहीं था ॥१०॥ जिस प्रकार अग्नि अपनी दाहिका आदि शक्तियोंको छिपाये हुए काष्ठमें व्याप्त रहता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्‌ने सम्पूर्ण प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरोंको अपने शरीरमें लीन करके अपने आधारभूत उस जलमें शयन किया, उन्हें सृष्टिकाल आनेपर पुनः जगानेके लिये केवल कालशक्तिको जाग्रत् रक्खा ॥ ११ ॥ इस प्रकार अपनी स्वरूपभूता चिच्छक्तिके साथ एक सहस्र चतुर्युगपर्यन्त जलमें शयन करनेके अनन्तर जब उन्हींके द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्तिने उन्हें जीवोंके कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये प्रेरित किया, तब उन्होंने अपने शरीरमें लीन हुए अनन्त लोक देखे ॥ १२ ॥ जिस समय भगवान्‌की दृष्टि अपनेमें निहित लिङ्गशरीरादि सूक्ष्मतत्त्वपर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुणसे क्षुभित होकर सृष्टिरचनाके निमित्त उनके नाभिदेशसे बाहर निकला ॥ १३ ॥

कर्मशक्तिको जाग्रत् करनेवाले कालके द्वारा विष्णुभगवान्‌की नाभिसे प्रकट हुआ वह सूक्ष्मतत्त्व कमलकोशके रूपमें सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्यके समान अपने तेजसे उस अपार जलराशिको देदीप्यमान कर दिया ॥ १४ ॥ सम्पूर्ण गुणोंको प्रकाशित करनेवाले उस सर्वलोकमय कमलमें वे विष्णुभगवान् ही अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हो गये। तब उसमेंसे बिना पढ़ाये ही स्वयं सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले साक्षात् वेदमूर्ति श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें लोग स्वयम्भू कहते हैं ॥ १५ ॥ उस कमलकी कर्णिका (गद्दी) में बैठे हुए ब्रह्माजीको जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाशमें चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख हो गये ॥ १६ ॥ उस समय प्रलयकालीन पवनके थपेड़ोंसे उछलती हुई जलकी तरङ्गमालाओंके कारण उस जलराशिसे ऊपर उठे हुए कमलपर विराजमान आदिदेव ब्रह्माजीको अपना तथा उस लोकतत्त्वरूप कमलका कुछ भी रहस्य न जान पड़ा ॥ १७ ॥

वे सोचने लगे, 'इस कमलकी कर्णिकापर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? यह कमल भी बिना किसी अन्य आधारके जलमें कहाँसे उत्पन्न हो गया ? इसके नीचे अवश्य कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये, जिसके आधारपर यह स्थित है' ॥ १८ ॥

ऐसा सोचकर वे उस कमलकी नालके सूक्ष्म छिद्रोंमें होकर उस जलमें घुसे। किन्तु उस नालके आधारको खोजते-खोजते नाभिदेशके समीप पहुँच जानेपर भी वे उसे पा न सके ॥ १९ ॥ विदुरजी ! उस अपार अन्धकारमें अपने उत्पत्ति-स्थानको खोजते-खोजते ब्रह्माजीको बहुत काल बीत गया। यह काल ही भगवान्‌का चक्र है, जो प्राणियोंको भयभीत (करता हुआ उनकी आयुको क्षीण) करता रहता है ॥ २० ॥ अन्तमें विफलमनोरथ हो वे वहाँसे लौट आये और पुनः अपने आधारभूत कमलपर बैठकर धीरे-धीरे प्राणवायुको जीतकर चित्तको निःसङ्कल्प किया और समाधिमें स्थित हो गये ॥ २१ ॥ इस प्रकार पुरुषकी पूर्ण आयुके बराबर कालतक (अर्थात् दिव्य सौ वर्षतक) अच्छी तरह योगाभ्यास करनेपर ब्रह्माजीको ज्ञान प्राप्त हुआ; तब उन्होंने अपने उस अधिष्ठानको, जिसे वे पहले खोजनेपर भी नहीं देख पाये थे, अपने ही अन्तःकरणमें प्रकाशित होते देखा ॥ २२ ॥ उन्होंने देखा कि उस प्रलयकालीन जलमें शेषजीके कमलनालसदृश गौर और विशाल विग्रहकी शय्यापर पुरुषोत्तम भगवान् अकेले ही लेटे हुए हैं। शेषजीके दस हजार फण छत्रके समान फैले हुए हैं। उनके मस्तकोंपर किरीट शोभायमान हैं, उनमें जो मणियाँ जड़ी हुई हैं, उनकी कान्तिसे चारों ओरका अन्धकार दूर हो गया है ॥ २३ ॥ वे अपने श्याम शरीरकी आभासे मरकतमणिके पर्वतकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं। उनकी कमरका पीतपट पर्वतके प्रान्त देशमें छाये हुए सायङ्कालके पीले-पीले चमकीले मेघोंकी आभाको मलिन कर रहा है, सिरपर सुशोभित सुवर्णमुकुट सुवर्णमय शिखरोंका मान मर्दन कर रहा है। उनकी वनमाला पर्वतके रत्न, जलप्रपात, ओषधि और पुष्पोंकी शोभाको परास्त कर रही है तथा उनके भुजदण्ड वेणुदण्डका और चरण वृक्षोंका तिरस्कार करते हैं ॥ २४ ॥ उनका वह श्रीविग्रह अपने परिमाणसे लंबाई-चौड़ाईमें त्रिलोकीका संग्रह किये हुए है। वह अपनी शोभासे विचित्र एवं दिव्य वस्त्राभूषणोंकी शोभाको सुशोभित करनेवाला होनेपर भी पीताम्बर आदि अपनी वेष-भूषासे सुसज्जित है ॥ २५ ॥ अपनी-अपनी अभिलाषाकी पूर्तिके लिये भिन्न-भिन्न मार्गोंसे पूजा करनेवाले भक्तजनोंको कृपापूर्वक अपने भक्तवाञ्छाकल्पतरु चरणकमलोंका दर्शन दे रहे हैं, जिनके सुन्दर अंगुलिदल नखचन्द्रकी चन्द्रिकासे अलग-अलग स्पष्ट चमकते रहते हैं ॥ २६ ॥ सुन्दर नासिका, अनुग्रहवर्षी भौंहें, कानोंमें झिलमिलाते हुए कुण्डलोंकी शोभा, बिम्बाफलके समान लाल-लाल अधरोंकी कान्ति एवं लोकार्तिहारी मुसकानसे युक्त मुखारविन्दके द्वारा वे अपने उपासकोंका सम्मान—अभिनन्दन कर रहे हैं ॥ २७ ॥ वत्स ! उनके नितम्बदेशमें कदम्बकुसुमकी केसरके समान पीतवस्त्र और सुवर्णमयी मेखला सुशोभित है तथा वक्षःस्थलमें अमूल्य हार और सुनहरी रेखावाले श्रीवत्सचिह्नकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ २८ ॥ वे अव्यक्तमूल चन्दनवृक्षके समान हैं। महामूल्य केयूर और उत्तम-उत्तम मणियोंसे सुशोभित उनके विशाल

भुजदण्ड ही मानो उसकी सहस्रों शाखाएँ हैं और चन्दनके वृक्षोंमें जैसे बड़े-बड़े साँप लिपटे रहते हैं, उसी प्रकार उनके कंधोंको शेषजीके फणोंने लपेट रक्खा है ॥ २९ ॥ वे नागराज अनन्तके बन्धु श्रीनारायण ऐसे जान पड़ते हैं, मानो कोई जलसे घिरे हुए पर्वतराज ही हों। पर्वतपर जैसे अनेकों जीव रहते हैं, उसी प्रकार वे सम्पूर्ण चराचरके आश्रय हैं; शेषजीके फणोंपर जो सहस्रों मुकुट हैं वे ही मानो उस पर्वतके सुवर्णमण्डित शिखर हैं तथा वक्षःस्थलमें विराजमान कौस्तुभमणि उसके गर्भसे प्रकट हुआ रत्न है ॥ ३० ॥ प्रभुके गलेमें वेदरूप भौंरोंसे गुञ्जायमान अपनी कीर्तिमयी वनमाला विराज रही है; सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि आदि देवताओंकी भी आपतक पहुँच नहीं है तथा त्रिभुवनमें बेरोक-टोक विचरण करनेवाले सुदर्शनचक्रादि आयुध भी प्रभुके आसपास ही घूमते रहते हैं, उनके लिये भी आप अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥ ३१ ॥

तब विश्वरचनाकी इच्छावाले लोकविधाता ब्रह्माजीने भगवान्‌के नाभिसरोवरसे प्रकट हुआ वह कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर—केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, इनके सिवा और कुछ उन्हें दिखायी न दिया ॥ ३२ ॥ रजोगुणसे व्याप्त ब्रह्माजी प्रजाकी रचना करना चाहते थे। जब उन्होंने सृष्टिके कारणरूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, तब लोकरचनाके लिये उत्सुक होनेके कारण वे अचिन्त्यगति श्रीहरिमें चित्त लगाकर उन परमपूजनीय प्रभुकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो! आज बहुत समयके बाद मैं आपको जान सका हूँ। अहो! कैसे दुर्भाग्यकी बात है कि देहधारी जीव आपके स्वरूपको नहीं जान पाते। भगवन्! आपके सिवा और कोई वस्तु नहीं है। जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है, क्योंकि मायाके गुणोंके क्षुभित होनेके कारण केवल आप ही अनेकों रूपोंमें प्रतीत हो रहे हैं ॥१॥ देव! आपकी चित् शक्तिके प्रकाशित रहनेके कारण अज्ञान आपसे सदा ही दूर रहता है। आपका यह रूप, जिसके नाभि-कमलसे मैं प्रकट हुआ हूँ, सैकड़ों अवतारोंका मूल कारण है। इसे आपने सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये ही पहले-पहल प्रकट किया है ॥२॥ परमात्मन्! आपका जो आनन्दमात्र, भेदरहित, अखण्ड तेजोमय स्वरूप है, उसे मैं इससे भिन्न नहीं समझता। इसलिये मैंने विश्वकी रचना करनेवाले होनेपर भी विश्वातीत आपके इस अद्वितीय रूपकी ही शरण ली है। यही सम्पूर्ण भूत और इन्द्रियोंका भी अधिष्ठान है ॥ ३ ॥ हे विश्वकल्याणमय! मैं आपका उपासक हूँ, आपने मेरे हितके लिये ही मुझे ध्यानमें अपना यह रूप दिखलाया है। जो पापात्मा विषयासक्त जीव हैं, वे ही इसका अनादर करते हैं। मैं तो आपको इसी रूपमें बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ मेरे स्वामी! जो लोग वेदरूप वायुसे लायी हुई आपके चरणरूप कमलकोशकी गन्धको अपने कर्णपुटोंसे ग्रहण करते हैं, उन अपने भक्तजनोंके हृदय-कमलसे आप कभी दूर नहीं होते; क्योंकि वे पराभक्तिरूप डोरीसे आपके पादपद्मोंको बाँध लेते हैं ॥ ५ ॥ जबतक पुरुष आपके अभयप्रद चरणारविन्दोंका आश्रय नहीं लेता, तभीतक उसे धन, घर और बन्धुजनोंके कारण प्राप्त होनेवाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं और तभीतक उसे मैं-मेरेपनका दुराग्रह रहता है, जो दुःखका एकमात्र कारण है ॥ ६ ॥ जो लोग सब प्रकारके अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाले आपके श्रवण-कीर्तनादि प्रसङ्गोंसे इन्द्रियोंको हटाकर लेशमात्र विषय-सुखके लिये दीन और मन-ही-मन लालायित होकर निरन्तर दुष्कर्मोंमें लगे रहते हैं, उन बेचारोंकी बुद्धि दैवने हर ली है ॥ ७ ॥ अच्युत! उरुक्रम! इस प्रजाको भूख-प्यास, वात, पित्त, कफ,

सर्दी, गर्मी, हवा और वर्षासे, परस्पर एक-दूसरेसे, तथा कामाग्नि और दुःसह क्रोधसे बार-बार कष्ट उठाते देखकर मेरा मन बड़ा खिन्न होता है ॥ ८ ॥ स्वामिन्! जबतक मनुष्य इन्द्रिय और विषयरूपी मायाके प्रभावसे आपसे अपनेको भिन्न देखता है, तबतक उसके लिये इस संसारचक्रकी निवृत्ति नहीं होती। यद्यपि यह मिथ्या है, तथापि कर्मफल-भोगका क्षेत्र होनेके कारण उसे नाना प्रकारके दुःखोंमें डालता रहता है ॥ ९ ॥

देव! औरोंकी तो बात ही क्या—जो साक्षात् मुनि हैं, वे भी यदि आपके कथाप्रसङ्गसे विमुख रहते हैं तो उन्हें संसारमें फँसना पड़ता है। वे दिनमें अनेक प्रकारके व्यापारोंके कारण विक्षिप्तचित्त रहते हैं, रात्रिमें निद्रामें अचेत पड़े रहते हैं; उस समय भी तरह-तरहके मनोरथोंके कारण क्षण-क्षणमें उनकी नींद टूटती रहती है तथा दैववश उनकी अर्थसिद्धिके सब उद्योग भी विफल होते रहते हैं ॥ १० ॥ नाथ! आपका मार्ग केवल गुण-श्रवणसे ही जाना जाता है। आप निश्चय ही मनुष्योंके भक्तियोगके द्वारा परिशुद्ध हुए हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! आपके भक्तजन जिस-जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही-वही रूप धारण कर लेते हैं ॥ ११ ॥ भगवन्! आप एक हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणोंमें स्थित उनके परम हितकारी अन्तरात्मा हैं। इसलिये यदि देवतालोग भी हृदयमें तरह-तरहकी कामनाएँ रखकर भाँति-भाँतिकी विपुल सामग्रियोंसे आपका पूजन करते हैं, तो उससे आप उतने प्रसन्न नहीं होते जितने सब प्राणियोंपर दया करनेसे होते हैं। किन्तु वह सर्वभूत-दया असत् पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ है ॥ १२ ॥ जो कर्म आपको अर्पण कर दिया जाता है, उसका कभी नाश नहीं होता—वह अक्षय हो जाता है। अतः नाना प्रकारके कर्म—यज्ञ, दान, कठिन तपस्या और व्रतादिके द्वारा आपकी प्रसन्नता प्राप्त करना ही मनुष्य-का सबसे बड़ा कर्मफल है; क्योंकि आपकी प्रसन्नता होनेपर ऐसा कौन फल है जो सुलभ नहीं हो जाता ॥ १३ ॥ आप सर्वदा अपने स्वरूपके प्रकाश-से ही प्राणियोंके भेद-भ्रमरूप अन्धकारका नाश करते रहते हैं तथा ज्ञानके अधिष्ठान साक्षात् परमपुरुष हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। संसार-की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके निमित्तसे जो माया-की लीला होती है, वह आपका ही खेल है; अतः आप परमेश्वरको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ जो लोग प्राणत्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले देवकीनन्दन, जनार्दन, कंसनिकन्दन आदि नामोंका विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे तत्काल छूटकर मायादि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ ॥ १५ ॥ भगवन्! इस विश्ववृक्षके रूपमें आप ही विराजमान हैं। आप ही अपनी मूलप्रकृतिको स्वीकार करके जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये मेरे, अपने और महादेवजीके रूपमें तीन प्रधान शाखाओंमें विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं मनु आदि शाखा-प्रशाखाओंके रूपमें फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥ भगवन्! आपने अपनी आराधनाको ही लोकोंके लिये कल्याणकारी स्वधर्म बताया है, किन्तु वे इस ओरसे उदासीन रहकर सर्वदा विपरीत (निषिद्ध) कर्मोंमें लगे रहते हैं। ऐसी प्रमादकी अवस्थामें पड़े हुए इन जीवोंकी जीवन-आशाको जो सदा सावधान रहकर बड़ी शीघ्रतासे काटता रहता है, वह बलवान् काल भी आपका ही रूप है; मैं उसे नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ यद्यपि मैं सत्यलोकका अधिष्ठाता हूँ, जो दो परार्द्धपर्यन्त रहनेवाला और समस्त लोकोंका वन्दनीय है, तो भी आपके उस कालरूपसे डरता रहता हूँ। उससे बचने और आपको प्राप्त करनेके लिये ही मैंने बहुत समयतक तपस्या की है। आप ही अधियज्ञरूपसे मेरी इस तपस्याके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषयसुखकी इच्छा नहीं है; तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियोंमें अपनी ही इच्छासे शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान्‌को मेरा नमस्कार

है ॥ १९ ॥ प्रभो ! आप अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—पाँचोंमेंसे किसीके भी अधीन नहीं हैं; तथापि इस समय जो सारे संसारको अपने उदर-में लीनकर भयङ्कर तरङ्गमालाओंसे विक्षुब्ध प्रलयकालीन जलमें अनन्तविग्रहकी कोमल शय्यापर शयन कर रहे हैं, वह पूर्वकल्पकी कर्मपरम्परासे श्रमित हुए जीवोंको विश्राम देनेके लिये ही है ॥ २० ॥ आपके नाभि-कमलरूप भवनसे मेरा जन्म हुआ है । यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदरमें समाया हुआ है । आपकी कृपा-से ही मैं त्रिलोकीकी रचनारूप उपकारमें प्रवृत्त हुआ हूँ । इस समय योगनिद्राका अन्त हो जानेके कारण आपके नेत्र-कमल विकसित हो रहे हैं, आपको मेरा नमस्कार है ॥ २१ ॥ आप सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र सुहृद् और आत्मा हैं तथा शरणागतोंपर कृपा करने-वाले हैं । अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्यसे आप विश्वको आनन्दित करते हैं, उसीसे मेरी बुद्धिको भी युक्त करें—जिससे मैं पूर्वकल्पके समान इस समय भी जगत्की रचना कर सकूँ ॥ २२ ॥ आप भक्त-वाञ्छाकल्पतरु हैं । अपनी शक्ति लक्ष्मीजीके सहित अनेकों गुणावतार लेकर आप जो-जो अद्भुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत्की रचना करनेका उद्यम भी उन्हींमेंसे एक है । अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्तको प्रेरित करें—शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सृष्टिरचनाविषयक अभिमानरूप मलसे दूर रह सकूँ ॥ २३ ॥ प्रभो ! इस प्रलयकालीन जलमें शयन करते हुए आप अनन्तशक्ति परमपुरुषके नाभि-कमल-से मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञानशक्ति; अतः इस जगत्के विचित्र रूपका विस्तार करते समय आपकी कृपासे मेरी वेदरूप वाणीका उच्चारण लुप्त न हो ॥ २४ ॥ आप अपार करुणामय पुराणपुरुष हैं । आप परम प्रेममयी मुसकानके सहित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेष-शय्यासे उठकर विश्वके उद्भवके लिये अपनी सुमधुर वाणीसे मेरा विषाद दूर कीजिये ॥ २५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार तप, विद्या और समाधिके द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान श्री-भगवान्‌को देखकर तथा अपने मन और वाणीकी शक्तिके अनुसार उनकी स्तुति कर ब्रह्माजी थके-से होकर मौन हो गये । २६ ॥ श्रीमधुसूदन भगवान्‌ने देखा कि ब्रह्माजी इस प्रलयजलराशिसे बहुत घबराये हुए हैं तथा लोकरचनाके विषयमें कोई निश्चित विचार न होनेके कारण उनका चित्त बहुत खिन्न है । तब उनके अभिप्रायको जानकर वे अपनी गम्भीर वाणीसे उनका खेद शान्त करते हुए कहने लगे ॥ २७-२८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—वेदगर्भ ! तुम विषादके वशी-भूत हो आलस्य न करो, सृष्टिरचनाके उद्यममें तत्पर हो जाओ । तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, उसे तो मैं पहले ही कर चुका हूँ ॥ २९ ॥ तुम एक बार फिर तप करो और भागवत-ज्ञानका अनुष्ठान करो । उनके द्वारा तुम सब लोकोंको स्पष्टतया अपने अन्तः-करणमें देखोगे ॥ ३० ॥ फिर भक्तियुक्त और समा-हितचित्त होकर तुम सम्पूर्ण लोक और अपनेमें मुझको व्याप्त देखोगे तथा मुझमें सम्पूर्ण लोक और अपने आपको देखोगे ॥ ३१ ॥ जिस समय जीव काष्ठमें व्याप्त अग्निके समान समस्त भूतोंमें मुझे ही स्थित देखता है, उसी समय वह अपने अज्ञानरूप मलसे मुक्त हो जाता है ॥ ३२ ॥ जब वह अपनेको भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरणसे रहित तथा स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखता है, तब मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ॥ ३३ ॥ ब्रह्माजी ! नाना प्रकारके कर्मसंस्कारोंके अनुसार अनेक प्रकारकी जीवसृष्टिको रचनेकी इच्छा होनेपर भी तुम्हारा चित्त मोहित नहीं होता, यह मेरी अतिशय कृपाका ही फल है ॥ ३४ ॥ तुम सबसे पहले मन्त्र-द्रष्टा हो । प्रजा उत्पन्न करते समय भी तुम्हारा मन मुझमें ही लगा रहता है, इसीसे पापमय रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता ॥ ३५ ॥ तुम मुझे भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरणसे रहित समझते हो; इससे जान पड़ता है कि यद्यपि देहधारी जीवोंको मेरा ज्ञान होना बहुत कठिन है, तथापि तुमने मुझे जान लिया है ॥ ३६ ॥ 'मेरा आश्रय कोई है या नहीं' इस सन्देहसे तुम कमलनालके द्वारा जलमें उसका मूल खोज रहे थे, सो मैंने तुम्हें अपना यह स्वरूप अन्तः-करणमें ही दिखलाया है ॥ ३७ ॥

प्यारे ब्रह्माजी ! तुमने जो मेरी कथाओंके वैभवसे युक्त मेरी स्तुति की है और तपस्यामें जो तुम्हारी निष्ठा है, वह भी मेरी ही कृपाका फल है ॥ ३८ ॥

लोक-रचनाकी इच्छासे तुमने सगुण प्रतीत होनेपर भी जो निर्गुणरूपसे मेरा वर्णन करते हुए स्तुति की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ; तुम्हारा कल्याण हो ॥३९॥ मैं समस्त कामनाओं और मनोरथोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हूँ। जो पुरुष नित्यप्रति इस स्तोत्रद्वारा स्तुति करके मेरा भजन करेगा, उसपर मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा ॥ ४० ॥ तत्त्ववेत्ताओंका मत है कि पूर्त, तप, यज्ञ, दान, योग और समाधि आदि साधनोंसे प्राप्त होनेवाला जो परम कल्याणमय फल है, वह मेरी प्रसन्नता ही है ॥ ४१ ॥ विधाता ! मैं आत्माओंका भी आत्मा और स्त्री-पुत्रादि प्रियोंका भी प्रिय हूँ। देहादि भी मेरे ही लिये प्रिय हैं। अतः मुझसे ही प्रेम करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी ! त्रिलोकीको तथा जो प्रजा इस समय मुझमें लीन है, उसे तुम पूर्वकल्प-के समान मुझसे उत्पन्न हुए अपने सर्ववेदमय स्वरूपसे स्वयं ही रचो ॥ ४३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रकृति और पुरुषके स्वामी कमलनाभ भगवान् सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको इस प्रकार जगत्‌की अभिव्यक्ति करवाकर अपने उस नारायणरूपसे अदृश्य हो गये ॥ ४४ ॥

दसवाँ अध्याय

दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन

विदुरजीने कहा—मुनिवर ! भगवान् नारायणके अन्तर्धान हो जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्माजी-ने अपने देह और मनसे कितने प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की ? ॥ १ ॥ भगवन् ! इनके सिवा मैंने आपसे और जो-जो बातें पूछी हैं, उन सबका भी क्रमशः वर्णन कीजिये और मेरे सब संशयोंको दूर कीजिये; क्योंकि आप सभी बहुज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! विदुरजीके इस प्रकार पूछनेपर मुनिवर मैत्रेयजी बड़े प्रसन्न हुए और अपने हृदयमें स्थित उन प्रश्नोंका इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ३ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—अजन्मा भगवान् श्रीहरिने जैसा कहा था, ब्रह्माजीने भी उसी प्रकार चित्तको अपने आत्मा श्रीनारायणमें लगाकर सौ दिव्य वर्षोंतक तप किया ॥ ४ ॥ ब्रह्माजीने देखा कि प्रलयकालीन प्रबल वायुके झकोरोंसे, जिससे वे उत्पन्न हुए हैं तथा जिस-पर वे बैठे हुए हैं वह कमल तथा जल काँप रहे हैं ॥ ५ ॥ प्रबल तपस्या एवं हृदयमें स्थित आत्मज्ञान-से उनका विज्ञान-बल बढ़ गया। और उन्होंने जलके साथ वायुको पी लिया ॥ ६ ॥ फिर जिसपर स्वयं बैठे हुए थे, उस आकाशव्यापी कमलको देखकर उन्होंने विचार किया कि 'पूर्वकल्पमें लीन हुए लोकोंको मैं इसीसे रचूँगा' ॥ ७ ॥ तब भगवान्‌के द्वारा सृष्टि-कार्यमें नियुक्त ब्रह्माजीने उस कमलकोशमें प्रवेश किया और उस एकके ही भूः, भुवः, स्वः—ये तीन भाग किये, यद्यपि वह कमल इतना बड़ा था कि उसके चौदह भुवन या इससे भी अधिक लोकोंके रूपमें विभाग किये जा सकते थे ॥ ८ ॥ जीवोंके भोग-स्थानके रूपमें इन्हीं तीन लोकोंका शास्त्रोंमें वर्णन हुआ है; जो निष्काम कर्म करनेवाले हैं, उन्हें महः, तपः, जनः और सत्यलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

विदुरजीने कहा—ब्रह्मन् ! आपने अद्भुतकर्मा विश्व-रूप श्रीहरिकी जिस काल नामक शक्तिकी बात कही थी, प्रभो ! उसका कृपया विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥१०॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विषयोंका रूपान्तर (बदलना) ही कालका आकार है। स्वयं तो वह निर्विशेष, अनादि और अनन्त है। उसीको निमित्त बनाकर भगवान् खेल-खेलमें अपने-आपको ही सृष्टिके रूपमें प्रकट कर देते हैं ॥११॥ पहले यह सारा विश्व भगवान्‌की मायासे लीन होकर ब्रह्मरूपसे स्थित था। उसीको अव्यक्तमूर्ति कालके द्वारा भगवान्‌ने पुनः पृथक्‌रूपसे प्रकट किया है ॥ १२ ॥ यह जगत् जैसा अब है वैसा ही पहले था और भविष्यमें भी वैसा ही रहेगा। इसकी सृष्टि नौ प्रकारकी होती है, तथा प्राकृत-वैकृत

भेदसे एक दसवीं सृष्टि और भी है ॥ १३ ॥ और इसका प्रलय काल, द्रव्य तथा गुणोंके द्वारा तीन प्रकार-से होता है। (अब पहले मैं दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ) पहली सृष्टि महत्तत्त्वकी है। भगवान्‌की प्रेरणासे सत्त्वादि गुणोंमें विषमता होना ही इसका स्वरूप है ॥ १४ ॥ दूसरी सृष्टि अहङ्कारकी है, जिससे पृथ्वी आदि पञ्चभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। तीसरी सृष्टि भूतसर्ग है, जिसमें पञ्चमहाभूतोंको उत्पन्न करनेवाला तन्मात्रवर्ग रहता है ॥ १५ ॥ चौथी सृष्टि इन्द्रियोंकी है, यह ज्ञान और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न होती है। पाँचवीं सृष्टि सात्त्विक अहङ्कारसे उत्पन्न हुए इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओंकी है, मन भी इसी सृष्टिके अन्तर्गत है ॥ १६ ॥ छठी सृष्टि अविद्याकी है। इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह—ये पाँच गाँठें हैं। यह जीवोंकी बुद्धिका आवरण और विक्षेप करनेवाली है। ये छः प्राकृत सृष्टियाँ हैं, अब वैकृत सृष्टियोंका भी विवरण सुनो ॥ १७ ॥

जो भगवान् अपना चिन्तन करनेवालोंके समस्त दुःखोंको हर लेते हैं, यह सारी लीला उन्हीं श्रीहरिकी है। वे ही ब्रह्माके रूपमें रजोगुणको स्वीकार करके जगत्‌की रचना करते हैं। छः प्रकारकी प्राकृत सृष्टियोंके बाद सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि इन छः प्रकारके स्थावर वृक्षोंकी होती है ॥ १८ ॥ वनस्पति[१], ओषधि[२], लता[३], त्वक्सार[४], वीरुध्[५] और द्रुम[६]। इनका संचार नीचे (जड़) से ऊपरकी ओर होता है, इनमें प्रायः ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं रहती, ये भीतर-ही-भीतर केवल स्पर्शका अनुभव करते हैं तथा इनमेंसे प्रत्येकमें कोई विशेष गुण रहता है ॥ १९ ॥ आठवीं सृष्टि तिर्यग्योनियों (पशु-पक्षियों) की है। वह अट्ठाईस प्रकारकी मानी जाती है। इन्हें कालका ज्ञान नहीं होता, तमोगुणकी अधिकताके कारण ये केवल खाना-पीना, मैथुन करना, सोना आदि ही जानते हैं, इन्हें सूँघनेमात्रसे वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है। इनके हृदयमें विचारशक्ति या दूरदर्शिता नहीं होती ॥ २० ॥ साधुश्रेष्ठ ! इन तिर्यकोंमें गौ, बकरा, भैंसा, कृष्ण-मृग, सूअर, नील-गाय, रुरु नामका मृग, भेंड़ और ऊँट—ये द्विशफ (दो खुरोंवाले) पशु कहलाते हैं, ॥ २१ ॥ गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरफ और चमरी—ये एकशफ (एक खुरवाले) हैं। अब पाँच नखवाले पशु-पक्षियोंके नाम सुनो ॥ २२ ॥ कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरगोश, साही, सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि (पशु) हैं।२३। कंक (बगुला), गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू आदि उड़नेवाले जीव पक्षी कहलाते हैं॥ २४ ॥ विदुरजी ! नवीं सृष्टि मनुष्योंकी है। यह एक ही प्रकारकी है। इसके आहारका प्रवाह ऊपर (मुँह) से नीचेकी ओर होता है। मनुष्य रजोगुणप्रधान, कर्मपरायण और दुःखरूप विषयोंमें ही सुख माननेवाले होते हैं॥ २५ ॥ स्थावर, पशु-पक्षी और मनुष्य—ये तीनों प्रकारकी सृष्टियाँ तथा आगे कहा जानेवाला देवसर्ग वैकृत सृष्टि हैं तथा जो महत्तत्त्वादिरूप वैकारिक देवसर्ग है, उसकी गणना पहले प्राकृत सृष्टिमें की जा चुकी है। इनके अतिरिक्त सनत्कुमार आदि ऋषियोंका जो कौमारसर्ग है, वह प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकारका है॥ २६ ॥

देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस, सिद्ध-चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किन्नर-किम्पुरुष-अश्वमुख आदि भेदसे देवसृष्टि आठ प्रकारकी है। विदुरजी ! इस प्रकार जगत्कर्त्ता श्रीब्रह्माजीकी रची हुई यह दस प्रकारकी सृष्टि मैंने तुमसे कही ॥ २७-२८ ॥ अब आगे मैं वंश और मन्वन्तरादिका

१. जो बिना मौर आये ही फलते हैं, जैसे गूलर, वड़, पीपल आदि। २. जो फलोंके पक जानेपर नष्ट हो जाते हैं, जैसे धान, गेहूँ, चना आदि। ३. जो किसीका आश्रय लेकर बढ़ते हैं, जैसे ब्राह्मी, गिलोय आदि। ४. जिनकी छाल बहुत कठोर होती है, जैसे बाँस आदि। ५. जो लता पृथ्वीपर ही फैलती है, किन्तु कठोर होनेसे ऊपरकी ओर नहीं चढ़ती—जैसे खरबूजा, तरबूज आदि। ६. जिनमें पहले फूल आकर फिर उन फूलोंके स्थानमें ही फल लगते हैं, जैसे आम, जामुन आदि।

वर्णन करूँगा। इस प्रकार सृष्टि करनेवाले सत्यसङ्कल्प भगवान् हरि ही ब्रह्माके रूपसे प्रत्येक कल्पके आदिमें रजोगुणसे व्याप्त होकर स्वयं ही जगत्के रूपमें अपनी ही रचना करते हैं ॥ २९ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मन्वन्तरादि कालविभागका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! पृथ्वी आदि कार्यवर्गका जो सूक्ष्मतम अंश है—जिसका और विभाग नहीं हो सकता, तथा जो कार्यरूपको प्राप्त नहीं हुआ है और जिसका अन्य परमाणुओंके साथ संयोग भी नहीं हुआ है; उसे परमाणु कहते हैं। इन अनेक परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे ही मनुष्योंको भ्रमवश उनके समुदायरूप एक अवयवीकी प्रतीति होती है ॥१॥ यह परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है, अपने सामान्य स्वरूपमें स्थित उस पृथ्वी आदि कार्योंकी एकता (समुदाय अथवा समग्ररूप) का नाम परम महान् है। इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्थाभेदकी स्फूर्ति होती है, न नवीन-प्राचीन आदि कालभेदका भान होता है और न घट-पटादि वस्तुभेदकी ही कल्पना होती है ॥ २ ॥ साधुश्रेष्ठ ! इस प्रकार यह वस्तुके सूक्ष्मतम और महत्तम स्वरूपका विचार हुआ। इसीके सादृश्यसे परमाणु आदि अवस्थाओंमें व्याप्त होकर व्यक्त पदार्थोंको भोगनेवाले सृष्टि आदिमें समर्थ, अव्यक्तस्वरूप भगवान् कालकी भी सूक्ष्मता और स्थूलताका अनुमान किया जा सकता है ॥ ३ ॥ जो काल प्रपञ्चकी परमाणु-जैसी सूक्ष्म अवस्थामें व्याप्त रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है, और जो सृष्टिसे लेकर प्रलयपर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओंका भोग करता है, वह परम महान् है ॥ ४ ॥

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है और तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'त्रसरेणु' होता है, जो झरोखेमें-से होकर आयी हुई सूर्यकी किरणोंके प्रकाशमें आकाश-में उड़ता देखा जाता है ॥ ५ ॥ ऐसे तीन त्रसरेणुओं-को पार करनेमें सूर्यको जितना समय लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। इससे सौगुना काल 'वेध' कहलाता है और तीन वेधका एक 'लव' होता है ॥ ६ ॥ तीन लवको एक 'निमेष' और तीन निमेषको एक 'क्षण' कहते हैं। पाँच क्षणकी एक 'काष्ठा' होती है और पंद्रह काष्ठाका एक 'लघु' ॥ ७ ॥ पंद्रह लघुकी एक 'नाडिका' (दण्ड) कही जाती है, दो नाडिकाका एक 'मुहूर्त्त' होता है और दिनके घटने-बढ़नेके अनुसार (दिन एवं रात्रिकी दोनों सन्धियोंके दो मुहूर्त्तोंको छोड़कर) छः या सात नाडिकाका एक 'प्रहर' होता है। यह 'याम' कहलाता है, जो मनुष्यके दिन या रातका चौथा भाग होता है ॥ ८ ॥ छः पल ताँबेका एक ऐसा बरतन बनाया जाय जिसमें एक प्रस्थ जल आ सके और चार माशे सोनेकी चार अंगुल लंबी सलाई बनवाकर उसके द्वारा उस बरतनके पेंदेमें छेद करके उसे जलमें छोड़ दिया जाय। जितने समयमें एक प्रस्थ जल उस बरतनमें भर जाय, वह बरतन जलमें डूब जाय, उतने समयको एक 'नाडिका' कहते हैं ॥ ९ ॥ विदुरजी ! चार-चार पहरके मनुष्यके 'दिन' और 'रात' होते हैं और पंद्रह दिन-रातका एक 'पक्ष' होता है, जो शुक्ल और कृष्ण भेदसे दो प्रकारका माना गया है ॥ १० ॥ इन दोनों पक्षोंको मिलाकर एक 'मास' होता है, जो पितरोंका एक दिन-रात है। दो मासका एक 'ऋतु' और छः मासका एक 'अयन' होता है। अयन 'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण' भेदसे दो प्रकारका है ॥ ११ ॥ ये दोनों अयन मिलकर देवताओंके एक दिन-रात होते हैं तथा मनुष्यलोकमें ये 'वर्ष' या बारह मास कहे जाते हैं। ऐसे सौ वर्षकी मनुष्यकी परम आयु बतायी गयी है ॥ १२ ॥ चन्द्रमा आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र और समस्त तारामण्डलके अधिष्ठाता कालस्वरूप भगवान् सूर्य परमाणुसे लेकर संवत्सरपर्यन्त कालमें द्वादश राशिरूप सम्पूर्ण भुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं ॥ १३ ॥ सूर्य, बृहस्पति,

सवन, चन्द्रमा और नक्षत्रसम्बन्धी महीनोंके भेदसे यह वर्ष ही संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहा जाता है ॥ १४ ॥ विदुरजी ! इन पाँच प्रकारके वर्षोंकी प्रवृत्ति करनेवाले भगवान् सूर्यकी तुम उपहारादि समर्पण करके पूजा करो । ये सूर्यदेव पञ्च-भूतोंमेंसे तेजःस्वरूप हैं और अपनी कालशक्तिसे बीजादि पदार्थोंकी अङ्कुर उत्पन्न करनेकी शक्तिको अनेक प्रकारसे कार्योन्मुख करते हैं । ये पुरुषोंकी मोहनिवृत्तिके लिये उनकी आयुका क्षय करते हुए आकाशमें विचरते रहते हैं तथा ये ही सकाम-पुरुषोंको यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि मङ्गलमय फलोंका विस्तार करते हैं ॥ १५ ॥

विदुरजीने कहा—मुनिवर ! आपने देवता, पितर और मनुष्योंकी परमायुका वर्णन तो किया । अब जो सनकादि ज्ञानी मुनिजन त्रिलोकीसे बाहर कल्पसे भी अधिक कालतक रहनेवाले हैं, उनकी भी आयुका वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ आप भगवान् कालकी गति भलीभाँति जानते हैं; क्योंकि ज्ञानीलोग अपनी योगसिद्ध दिव्य दृष्टिसे सारे संसारको देख लेते हैं ॥ १७ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंके सहित देवताओंके बारह सहस्र वर्षतक रहते हैं, ऐसा बतलाया गया है ॥ १८ ॥ इन सत्यादि चारों युगोंमें क्रमशः चार, तीन, दो और एक सहस्र दिव्य वर्ष होते हैं और प्रत्येकमें जितने सहस्र वर्ष होते हैं उससे दुगुने सौ वर्ष उनकी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंमें होते हैं* ॥ १९ ॥ युगकी आदिमें सन्ध्या होती है और अन्तमें सन्ध्यांश । इनकी वर्ष-गणना सैकड़ोंकी संख्यामें बतलायी गयी है । इनके बीचका जो काल होता है, उसीको कालवेत्ताओंने युग कहा है । प्रत्येक युगमें एक-एक विशेष धर्मका विधान पाया जाता है ॥ २० ॥ सत्ययुगके मनुष्योंमें धर्म अपने चारों चरणोंसे रहता है; फिर अन्य युगोंमें अधर्मकी वृद्धि होनेसे उसका एक-एक चरण क्षीण होता जाता है ॥ २१ ॥ प्यारे विदुरजी ! त्रिलोकीसे बाहर महर्लोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त यहाँकी एक सहस्र चतुर्युगीका एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है, जिसमें जगत्कर्ता ब्रह्माजी शयन करते हैं ॥ २२ ॥ उस रात्रिका अन्त होनेपर इस लोकका कल्प आरम्भ होता है; उसका क्रम जबतक ब्रह्माजीका दिन रहता है, तबतक चलता रहता है । उस एक कल्पमें चौदह मनु हो जाते हैं ॥ २३ ॥ प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक काल (७१ $\frac{6}{14}$ चतुर्युगी) तक अपना अधिकार भोगता है । प्रत्येक मन्वन्तरमें भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजालोग, सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्वादि साथ-साथ ही अपना अधिकार भोगते हैं ॥ २४ ॥ यह ब्रह्माजीकी प्रतिदिनकी सृष्टि है, जिसमें तीनों लोकोंकी रचना होती है । उसमें अपने-अपने कर्मानुसार पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर और देवताओंकी उत्पत्ति होती है ॥ २५ ॥ इन मन्वन्तरोंमें भगवान् सत्त्वगुणका आश्रय ले, अपनी मनु आदि मूर्तियोंके द्वारा पौरुष प्रकट करते हुए इस विश्वका पालन करते हैं ॥ २६ ॥ कालक्रमसे जब ब्रह्माजीका दिन बीत जाता है, तब वे तमोगुणके सम्पर्कको स्वीकार कर अपने सृष्टिरचनारूप पौरुषको स्थगित करके निश्चेष्टभावसे स्थित हो जाते हैं ॥ २७ ॥ उस समय सारा विश्व उन्हींमें लीन हो जाता है । सूर्य और चन्द्रमादिसे रहित वह प्रलयरात्रि आती है, तब वे भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोक उन्हीं ब्रह्माजीके शरीरमें छिप जाते हैं ॥ २८ ॥ उस अवसरपर तीनों लोक शेषजीके मुखसे निकली हुई अग्निरूप भगवान्‌की शक्तिसे जलने लगते हैं । इसलिये उसके तापसे व्याकुल होकर भृगु आदि मुनीश्वरगण महर्लोकसे जनलोकको चले जाते हैं ॥ २९ ॥ इतनेमें ही सातों समुद्र प्रलयकालके प्रचण्ड पवनसे उमड़कर अपनी उछलती हुई उत्ताल तरङ्गोंसे त्रिलोकीको डुबो देते हैं ॥ ३० ॥

---

* अर्थात् सत्ययुगमें ४००० दिव्य वर्ष युगके और ८०० सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके—इस प्रकार ४८०० वर्ष होते हैं । इसी प्रकार त्रेतामें ३६००, द्वापरमें २४०० और कलियुगमें १२०० दिव्यवर्ष होते हैं । मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है, अतः देवताओंका एक वर्ष मनुष्योंके ३६० वर्षके बराबर हुआ । इस प्रकार मानवीय मानसे कलियुगमें ४३२००० वर्ष हुए तथा इससे दुगुने द्वापरमें, तिगुने त्रेतामें और चौगुने सत्ययुगमें होते हैं ।

तब उस जलके भीतर भगवान् शेषशायी योगनिद्रासे नेत्र मूँदकर शयन करते हैं । उस समय जनलोकनिवासी मुनिगण उनकी स्तुति किया करते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार कालकी गतिसे एक-एक सहस्र चतुर्युगके रूपमें प्रतीत होनेवाले दिन-रातके हेर-फेरसे ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी परमायु भी बीती हुई-सी दिखायी देती है ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको परार्ध कहते हैं । अबतक पहला परार्ध तो बीत चुका है, दूसरा चल रहा है ॥ ३३ ॥ पूर्व परार्धके आरम्भमें ब्राह्म नामक महान् कल्प हुआ था । उसीमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई थी । पण्डितजन इन्हें शब्दब्रह्म कहते हैं ॥ ३४ ॥ उसी परार्धके अन्तमें जो कल्प हुआ था, उसे पाद्मकल्प कहते हैं । इसमें भगवान्‌के नाभिसरोवरसे सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ था ॥३५॥ विदुरजी ! इस समय जो कल्प चल रहा है, वह दूसरे परार्धका आरम्भक बतलाया जाता है । यह वाराहकल्प नामसे विख्यात है, इसमें भगवान्‌ने सूकररूप धारण किया था ॥ ३६ ॥ यह दो परार्धका काल अव्यक्त, अनन्त, अनादि, विश्वात्मा श्रीहरिका एक निमेष माना जाता है ॥ ३७ ॥ यह परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त फैला हुआ काल सर्वसमर्थ होनेपर भी सर्वात्मा श्रीहरिपर किसी प्रकारकी प्रभुता नहीं रखता । यह तो देहादिमें अभिमान रखनेवाले जीवोंका ही शासन करनेमें समर्थ है ॥ ३८ ॥

प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र—इन आठ प्रकृतियोंके सहित दस इन्द्रियाँ, मन और पञ्चभूत—इन सोलह विकारोंसे मिलकर बना हुआ यह ब्रह्माण्डकोश भीतरसे पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है तथा इसके बाहर चारों ओर उत्तरोत्तर दस-दस गुने सात आवरण हैं । उन सबके सहित यह जिसमें परमाणुके समान पड़ा हुआ दीखता है और जिसमें ऐसी करोड़ों ब्रह्माण्डराशियाँ हैं, वह इन प्रधानादि समस्त कारणोंका कारण अक्षर ब्रह्म कहलाता है और यही पुराणपुरुष परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्‌का श्रेष्ठ धाम (स्वरूप) है ॥ ३९–४१ ॥

बारहवाँ अध्याय

सृष्टिका विस्तार

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! यहाँतक मैंने आपको भगवान्‌की कालरूप महिमा सुनायी । अब जिस प्रकार ब्रह्माजीने जगत्‌की रचना की, वह सुनिये ॥ १ ॥ सबसे पहले उन्होंने अज्ञानकी पाँच वृत्तियाँ—तम (अविद्या), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), तामिस्र (द्वेष) और अन्धतामिस्र (अभिनिवेश) रचीं ॥ २ ॥ किन्तु इस अत्यन्त पापमयी सृष्टिको देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई । तब उन्होंने अपने मनको भगवान्‌के ध्यानसे पवित्र कर उससे दूसरी सृष्टि रची ॥ ३ ॥ इस बार ब्रह्माजीने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये ॥ ४ ॥ अपने इन पुत्रोंसे ब्रह्माजीने कहा, 'पुत्रो ! तुमलोग सृष्टि उत्पन्न करो ।' किंतु वे जन्मसे ही मोक्षमार्ग (निवृत्तिमार्ग) का अनुसरण करनेवाले और भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर थे, इसलिये उन्होंने ऐसा करना नहीं चाहा ॥ ५ ॥ जब ब्रह्माजीने देखा कि मेरी आज्ञा न मानकर ये मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार कर रहे हैं, तब उन्हें असह्य क्रोध हुआ । उन्होंने उसे रोकनेका प्रयत्न किया ॥ ६ ॥ किन्तु बुद्धिद्वारा उनके बहुत रोकनेपर भी वह क्रोध तत्काल प्रजापतिकी भौंहोंके बीचमेंसे एक नील-लोहित (नीले और लाल रंगके) बालकके रूपमें प्रकट हो गया ॥ ७ ॥ वे देवताओंके पूर्वज भगवान् भव (रुद्र) रो-रोकर कहने लगे—'जगत्पिता ! विधाता ! मेरे नाम और रहनेके स्थान बतलाइये' ॥ ८ ॥

तब कमलयोनि भगवान् ब्रह्माने उस बालककी प्रार्थना पूर्ण करनेके लिये मधुर वाणीमें कहा, 'रोओ मत, मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करता हूँ ॥ ९ ॥ देवश्रेष्ठ ! तुम जन्म लेते ही बालकके समान फूट-फूटकर रोने लगे, इसलिये प्रजा तुम्हें 'रुद्र' नामसे

पुकारेगी ॥ १० ॥ तुम्हारे रहनेके लिये मैंने पहलेसे ही हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तप—ये स्थान रच दिये हैं ॥११॥ तुम्हारे नाम मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत होंगे ॥ १२ ॥ तथा धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा—ये ग्यारह रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी ॥ १३ ॥ तुम उपर्युक्त नाम, स्थान और स्त्रियोंको स्वीकार करो और इनके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करो; क्योंकि तुम प्रजापति हो ॥ १४ ॥

लोकपिता ब्रह्माजीसे ऐसी आज्ञा पाकर भगवान् नीललोहित बल, आकार और स्वभावमें अपने-ही-जैसी प्रजा उत्पन्न करने लगे ॥ १५ ॥ भगवान् रुद्रके द्वारा उत्पन्न हुए उन रुद्रोंको असंख्य यूथ बनाकर सारे संसारको भक्षण करते देख ब्रह्माजीको बड़ी शङ्का हुई ॥ १६ ॥ तब उन्होंने रुद्रसे कहा, 'सुरश्रेष्ठ! तुम्हारी प्रजा तो अपनी भयङ्कर दृष्टिसे मुझे और सारी दिशाओंको भस्म किये डालती है; अतः ऐसी सृष्टि और न रचो ॥ १७ ॥ तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम समस्त प्राणियोंको सुख देनेके लिये तप करो। फिर उस तपके प्रभावसे ही तुम पूर्ववत् इस संसारकी रचना करना ॥ १८ ॥ पुरुष तपके द्वारा ही इन्द्रियातीत, सर्वान्तर्यामी, ज्योतिःस्वरूप श्रीहरिको सुगमतासे प्राप्त कर सकता है' ॥ १९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—जब ब्रह्माजीने ऐसी आज्ञा दी, तब रुद्रने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और फिर उनकी अनुमति लेकर तथा उनकी परिक्रमा करके वे तपस्या करनेके लिये वनको चले गये ॥ २० ॥

इसके पश्चात् जब भगवान्‌की शक्तिसे सम्पन्न ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये सङ्कल्प किया, तब उनके दस पुत्र और उत्पन्न हुए। उनसे लोककी बहुत वृद्धि हुई ।२१। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दसवें नारद थे ॥ २२ ॥ इनमें नारदजी प्रजापति ब्रह्माजीकी गोदसे, दक्ष अँगूठेसे, वसिष्ठ प्राणसे, भृगु त्वचासे, क्रतु हाथसे, पुलह नाभिसे, पुलस्त्यऋषि कानोंसे, अङ्गिरा मुखसे, अत्रि नेत्रोंसे और मरीचि मनसे उत्पन्न हुए ॥ २३-२४ ॥ फिर उनके दायें स्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ, जिसकी पत्नी मूर्तिसे स्वयं नारायण अवतीर्ण हुए तथा उनकी पीठसे अधर्मका जन्म हुआ और उससे संसारको भयभीत करनेवाला मृत्यु उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ इसी प्रकार ब्रह्माजीके हृदयसे काम, भौंहोंसे क्रोध, नीचेके होठसे लोभ, मुखसे वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिङ्गसे समुद्र, गुदासे पापका निवासस्थान (राक्षसोंका अधिपति) निर्ऋति ॥ २६ ॥ छायासे देवहूतिके पति भगवान् कर्दमजी उत्पन्न हुए। इस तरह यह सारा जगत् जगत्कर्ता ब्रह्माजीके शरीर और मनसे उत्पन्न हुआ ।२७।

विदुरजी! भगवान् ब्रह्माकी कन्या सरस्वती बड़ी ही सुकुमारी और मनोहर थी। हमने सुना है—एक बार उसे देखकर ब्रह्माजी काममोहित हो गये थे, यद्यपि वह स्वयं वासनाहीन थी ॥ २८ ॥ उन्हें ऐसा अधर्ममय सङ्कल्प करते देख, उनके पुत्र मरीचि आदि ऋषियोंने उन्हें विश्वासपूर्वक समझाया—॥ २९ ॥ 'पिताजी! आप समर्थ हैं, फिर भी अपने मनमें उत्पन्न हुए कामके वेगको न रोककर पुत्रीगमन-जैसा दुस्तर पाप करनेका सङ्कल्प कर रहे हैं! ऐसा तो आपसे पूर्ववर्ती किसी भी ब्रह्माने नहीं किया और न आगे ही कोई करेगा ॥३०॥ जगद्गुरो! आप-जैसे तेजस्वी पुरुषोंको भी ऐसा काम शोभा नहीं देता; क्योंकि आपलोगोंके आचरणोंका अनुसरण करनेसे ही तो संसारका कल्याण होता है ॥ ३१ ॥ जिन श्रीभगवान्‌ने अपने स्वरूपमें स्थित इस जगत्‌को अपने ही तेजसे प्रकट किया है, उन्हें नमस्कार है। इस समय वे ही धर्मकी रक्षा कर सकते हैं ॥ ३२ ॥ अपने पुत्र मरीचि आदि प्रजापतियोंको अपने सामने इस प्रकार कहते देख प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजी बड़े लज्जित हुए और उन्होंने उस शरीरको उसी समय छोड़ दिया। तब उस घोर शरीरको दिशाओंने ले लिया। वही कुहरा हुआ, जिसे अन्धकार भी कहते हैं ॥ ३३ ॥

एक बार ब्रह्माजी यह सोच रहे थे कि 'मैं पहलेकी तरह सुव्यवस्थित रूपसे सब लोकोंकी रचना किस

प्रकार करूँ ?' इसी समय उनके चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए॥ ३४ ॥ इनके सिवा उपवेद, न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा—इन चार ऋत्विजोंके कर्म, यज्ञोंका विस्तार, धर्मके चार चरण और चारों आश्रम तथा उनकी वृत्तियाँ—ये सब भी ब्रह्माजीके मुखोंसे ही उत्पन्न हुए ॥ ३५ ॥

विदुरजीने पूछा—तपोधन ! विश्वरचयिताओंके स्वामी श्रीब्रह्माजीने जब अपने मुखोंसे इन वेदादिको रचा, तो उन्होंने अपने किस मुखसे कौन वस्तु उत्पन्न की—यह आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ ३६ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! ब्रह्माने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तरके मुखसे क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्ववेदोंको रचा तथा इसी क्रमसे शस्त्र (होताका कर्म), इज्या (अध्वर्युका कर्म), स्तुतिस्तोम (उद्गाताका कर्म) और प्रायश्चित्त (ब्रह्माका कर्म)—इन चारोंकी रचना की ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र), धनुर्वेद (शस्त्रविद्या), गान्धर्ववेद (सङ्गीतशास्त्र) और स्थापत्यवेद (शिल्पविद्या)—इन चार उपवेदोंको भी क्रमशः उन पूर्वादि मुखोंसे ही उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ फिर सर्वदर्शी भगवान् ब्रह्माने अपने चारों मुखोंसे इतिहास-पुराणरूप पाँचवाँ वेद बनाया ॥ ३९ ॥ इसी क्रमसे षोडशी और उक्थ, चयन और अग्निष्टोम, आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वाजपेय और गोसव—ये दो-दो याग भी उनके पूर्वादि मुखोंसे ही उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद और वृत्तियोंके सहित चार आश्रम भी इसी क्रमसे प्रकट हुए ॥ ४१ ॥ सावित्र*, प्राजापत्य[1], ब्राह्म[2] और बृहत्[3]—ये चार वृत्तियाँ ब्रह्मचारीकी हैं तथा वार्ता[4], सञ्चय[5], शालीन[6] और शिलोञ्छ[7]—ये चार वृत्तियाँ गृहस्थकी हैं ॥ ४२ ॥ इसी प्रकार वृत्तिभेदसे वैखानस[8], वालखिल्य[9], औदुम्बर[10] और फेनप[11]—ये चार भेद वानप्रस्थोंके तथा कुटीचक[12], बहूदक[13], हंस[14] और निष्क्रिय (परमहंस[15])—ये चार भेद संन्यासियोंके हैं ॥ ४३ ॥ इसी क्रमसे आन्वीक्षिकी[16], त्रयी[17], वार्ता[18] और दण्डनीति[19]—ये चार विद्याएँ तथा चार व्याहृतियाँ[20] भी ब्रह्माजीके चार मुखोंसे ही उत्पन्न हुईं तथा उनके हृदयाकाशसे ॐकार प्रकट हुआ ॥ ४४ ॥ उनके रोमोंसे उष्णिक्, त्वचासे गायत्री, मांससे त्रिष्टुप्, स्नायुसे अनुष्टुप्, अस्थियोंसे जगती, मज्जासे पङ्क्ति और प्राणोंसे बृहती छन्द उत्पन्न हुआ । ऐसे ही उनका जीव स्पर्शवर्ण (कवर्गादि पञ्चवर्ग) और देह स्वरवर्ण (अकारादि) कहलाया ।४५-४६। उनकी इन्द्रियोंको ऊष्मवर्ण (श ष स ह) और बलको अन्तःस्थ (य र ल व) कहते हैं, तथा उनकी क्रीडासे निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम—ये सात स्वर हुए ॥ ४७ ॥ हे तात ! ब्रह्माजी शब्दब्रह्मस्वरूप हैं । वे वैखरीरूपसे व्यक्त और ओङ्काररूपसे अव्यक्त हैं । तथा उनसे परे जो सर्वत्र परिपूर्ण परब्रह्म है, वही अनेकों प्रकारकी शक्तियोंसे विकसित होकर इन्द्रादि रूपोंमें भास रहा है ॥ ४८ ॥

विदुरजी ! ब्रह्माजीने पहला कामासक्त शरीर—जिससे कुहरा बना था—छोड़नेके बाद दूसरा शरीर

---

* उपनयन संस्कारके पश्चात् गायत्रीका अध्ययन करनेके लिये धारण किया जानेवाला तीन दिनका ब्रह्मचर्यव्रत ।

१. एक वर्षका ब्रह्मचर्यव्रत। २. वेदाध्ययनकी समाप्तितक रहनेवाला ब्रह्मचर्यव्रत। ३. आयुपर्यन्त रहनेवाला ब्रह्मचर्यव्रत। ४. कृषि आदि शास्त्रविहित वृत्तियाँ । ५. यागादि कराना । ६. अयाचित वृत्ति । ७. खेत कट जानेपर पृथ्वीपर पड़े हुए तथा अनाजकी मंडीमें गिरे हुए दानोंको बीनकर निर्वाह करना। ८. बिना जोती-बोयी भूमिसे उत्पन्न हुए पदार्थोंसे निर्वाह करनेवाले । ९. नवीन अन्न मिलनेपर पहला सञ्चय करके रक्खा हुआ अन्न दान कर देनेवाले । १०. प्रातःकाल उठनेपर जिस दिशाकी ओर मुख हो, उसी ओरसे फलादि लाकर निर्वाह करनेवाले । ११. अपने-आप झड़े हुए फलादि खाकर रहनेवाले । १२. कुटी बनाकर एक जगह रहने और आश्रमके धर्मका पूरा पालन करनेवाले । १३. कर्मकी ओर गौणदृष्टि रखकर ज्ञानको ही प्रधान माननेवाले । १४. ज्ञानाभ्यासी १५. ज्ञानी जीवन्मुक्त । १६. मोक्ष प्राप्त करानेवाली आत्मविद्या । १७. स्वर्गादिफल देनेवाली कर्मविद्या । १८. खेती-व्यापारादि-सम्बन्धी विद्या । १९. राजनीति । २०. भूः, भुवः, स्वः—ये तीन और चौथी इन तीनोंको मिलाकर, इस प्रकार चार व्याहृतियाँ आश्वलायनने अपने गृह्यसूत्रोंमें बतलायी हैं—'एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ताः समस्ताः ।' अथवा भूः, भुवः, स्वः और महः—ये चार व्याहृतियाँ, जैसा कि श्रुति कहती है—'भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयस्तासामु ह स्मैतां चतुर्थीमाह । वाचमस्य प्रवेदयते महः' इत्यादि ।

धारण करके विश्वविस्तारका विचार किया; वे देख चुके थे कि मरीचि आदि महान् शक्तिशाली ऋषियोंसे भी सृष्टिका विस्तार अधिक नहीं हुआ, अतः वे मन-ही-मन पुनः चिन्ता करने लगे—'अहो! बड़ा आश्चर्य है, मेरे निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी प्रजाकी वृद्धि नहीं हो रही है। मालूम होता है, इसमें दैव ही कुछ विघ्न डाल रहा है।' जिस समय यथोचित क्रिया करनेवाले श्रीब्रह्माजी इस प्रकार दैवके विषयमें विचार कर रहे थे, उसी समय अकस्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये। 'क' ब्रह्माजीका नाम है, उन्हींसे विभक्त होनेके कारण शरीरको 'काय' कहते हैं। उन दोनों विभागोंसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ ॥ ४९—५२ ॥ उनमें जो पुरुष था, वह सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुई ॥ ५३ ॥ तबसे मिथुनधर्म (स्त्री-पुरुष-सम्भोग) से प्रजाकी वृद्धि होने लगी। महाराज स्वायम्भुव मनुने शतरूपासे पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं ॥ ५४ ॥ साधुशिरोमणि विदुरजी! उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद—दो पुत्र थे तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति—तीन कन्याएँ थीं ॥ ५५ ॥ मनुजीने आकूतिका विवाह रुचि प्रजापतिसे किया, मझली कन्या देवहूति कर्दमजीको दी और प्रसूति दक्ष प्रजापतिको। इन तीनों कन्याओंकी सन्ततिसे सारा संसार भर गया ॥ ५६ ॥

तेरहवाँ अध्याय

वाराह अवतारकी कथा

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! मुनिवर मैत्रेयजीके मुखसे यह परम पुण्यमयी कथा सुनकर श्रीविदुरजीने फिर पूछा; क्योंकि भगवान्‌की लीलाकथामें इनका अत्यन्त अनुराग हो गया था ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—मुने! स्वयम्भू ब्रह्माजीके प्रिय पुत्र महाराज स्वायम्भुव मनुने अपनी प्रिय पत्नी शतरूपाको पाकर फिर क्या किया? ॥२॥ आप साधुशिरोमणि हैं। आप मुझे आदिराज राजर्षि स्वायम्भुव मनुका पवित्र चरित्र सुनाइये। वे श्रीविष्णुभगवान्‌के शरणापन्न थे, इसलिये उनका चरित्र सुननेमें मेरी बहुत श्रद्धा है ॥ ३ ॥ जिनके हृदयमें श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द विराजमान हैं, उन भक्तजनोंके गुणोंको श्रवण करना ही मनुष्योंके बहुत दिनोंतक किये हुए शास्त्राभ्यासके श्रमका मुख्य फल है, ऐसा विद्वानोंका श्रेष्ठ मत है ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! विदुरजी सहस्रशीर्षा भगवान् श्रीहरिके चरणाश्रित भक्त थे। उन्होंने जब विनयपूर्वक भगवान्‌की कथाके लिये प्रेरणा की, तब मुनिवर मैत्रेयका रोम-रोम खिल उठा। उन्होंने कहा ॥५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—जब अपनी भार्या शतरूपाके साथ स्वायम्भुव मनुका जन्म हुआ, तब उन्होंने बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर श्रीब्रह्माजीसे कहा—॥ ६ ॥ 'भगवन्! एकमात्र आप ही समस्त जीवोंके जन्मदाता और जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं। तथापि हम आपकी सन्तान ऐसा कौन-सा कर्म करें, जिससे आपकी सेवा बन सके? ॥ ७ ॥ पूज्यपाद! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप हमसे हो सकने योग्य किसी ऐसे कार्यके लिये हमें आज्ञा दीजिये, जिससे इस लोकमें हमारी सर्वत्र कीर्ति हो और परलोकमें सद्गति प्राप्त हो सके ॥ ८ ॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—तात! पृथ्वीपते! तुम दोनोंका कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ; क्योंकि तुमने निष्कपट भावसे 'मुझे आज्ञा दीजिये' यों कहकर मुझे आत्मसमर्पण किया है ॥ ९ ॥ वीर! पुत्रोंको अपने पिताकी इसी रूपमें पूजा करनी चाहिये। उन्हें उचित है कि दूसरोंके प्रति ईर्ष्याका भाव न रखकर जहाँतक बने, उनकी आज्ञाका आदरपूर्वक सावधानीसे पालन करें ॥ १० ॥ तुम अपनी इस भार्यासे अपने ही समान गुणवती सन्तति उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करो और यज्ञोंद्वारा श्रीहरिकी आराधना करो ॥ ११ ॥ राजन्! प्रजापालनसे मेरी बड़ी सेवा होगी और तुम्हें प्रजाका पालन करते देखकर भगवान् श्रीहरि भी तुमसे प्रसन्न होंगे। जिनपर यज्ञमूर्ति जनार्दन भगवान् प्रसन्न

नहीं होते, उनका सारा श्रम व्यर्थ ही होता है; क्योंकि वे तो एक प्रकारसे अपने आत्माका ही अनादर करते हैं ॥ १२-१३ ॥

मनुजीने कहा—पापका नाश करनेवाले पिताजी ! मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा; किन्तु आप इस जगत्‌में मेरे और मेरी भावी प्रजाके रहनेके लिये स्थान बतलाइये ।१४। देव ! सब जीवोंका निवासस्थान पृथ्वी इस समय प्रलयके जलमें डूबी हुई है। आप इस देवीके उद्धारका प्रयत्न कीजिये ॥ १५ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—पृथ्वीको इस प्रकार अथाह जलमें डूबी देखकर ब्रह्माजी बहुत देरतक मनमें यह सोचते रहे कि "इसे कैसे निकालूँ ॥ १६ ॥ जिस समय मैं लोकरचनामें लगा हुआ था, उस समय पृथ्वी जलमें डूब जानेसे रसातलको चली गयी। हमलोग सृष्टिकार्यमें नियुक्त हैं, अतः इसके लिये हमें क्या करना चाहिये ? अब तो, जिनके सङ्कल्पमात्रसे मेरा जन्म हुआ है, वे सर्वशक्तिमान् श्रीहरि ही मेरा यह काम पूरा करें" ॥ १७ ॥

निष्पाप विदुरजी ! ब्रह्माजी इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उनके नासाछिद्रसे अकस्मात् अँगूठेके बराबर आकारका एक वराह-शिशु निकला ॥ १८ ॥ भारत ! बड़े आश्चर्यकी बात तो यही हुई कि आकाशमें खड़ा हुआ वह वराह-शिशु ब्रह्माजीके देखते-ही-देखते बड़ा होकर क्षणभरमें हाथीके बराबर हो गया ॥ १९ ॥ उस विशाल वराह-मूर्तिको देखकर मरीचि आदि मुनिजन, सनकादि और स्वायम्भुव मनुके सहित श्रीब्रह्माजी तरह-तरहके विचार करने लगे—॥ २० ॥ अहो ! सूकरके रूपमें आज यह कौन दिव्य प्राणी यहाँ प्रकट हुआ है ? कैसा आश्चर्य है ! यह अभी-अभी मेरी नाकसे निकला था ।२१। पहले तो यह अँगूठेके पोरुएके बराबर दिखायी देता था, किन्तु एक क्षणमें ही बड़ी भारी शिलाके समान हो गया। अवश्य ही यज्ञमूर्ति भगवान् हमलोगोंके मनको मोहित कर रहे हैं ॥ २२ ॥ ब्रह्माजी और उनके पुत्र इस प्रकार सोच ही रहे थे कि भगवान् यज्ञपुरुष पर्वताकार होकर गरजने लगे ॥ २३ ॥ सर्वशक्तिमान् श्रीहरिने अपनी गर्जनासे दिशाओंको प्रतिध्वनित करके ब्रह्मा और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको हर्षसे भर दिया ॥२४॥ अपना खेद दूर करनेवाली मायामय वराह भगवान्‌की घुरघुराहटको सुनकर वे जनलोक, तपलोक और सत्यलोकनिवासी मुनिगण तीनों वेदोंके परम पवित्र मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ भगवान्‌के स्वरूपका वेदोंमें विस्तारसे वर्णन किया गया है; अतः उन मुनीश्वरोंने जो स्तुति की, उसे वेदरूप मानकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और एक बार फिर गरजकर देवताओंके हितके लिये गजराजकी-सी लीला करते हुए जलमें घुस गये ॥ २६ ॥ पहले वे सूकररूप भगवान् पूँछ उठाकर बड़े वेगसे आकाशमें उछले और अपनी गर्दनके बालोंको फटकारकर खुरोंके आघातसे बादलोंको छितराने लगे। उनका शरीर बड़ा कठोर था, त्वचापर कड़े-कड़े बाल थे, दाढ़ें सफेद थीं और नेत्रोंसे तेज निकल रहा था, उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥२७॥ भगवान् स्वयं यज्ञपुरुष हैं, तथापि सूकररूप धारण करनेके कारण अपनी नाकसे सूँघ-सूँघकर पृथ्वीका पता लगा रहे थे। उनकी दाढ़ें बड़ी कठोर थीं। इस प्रकार यद्यपि वे बड़े क्रूर जान पड़ते थे, तथापि अपनी स्तुति करनेवाले मरीचि आदि मुनियोंकी ओर बड़ी सौम्य दृष्टिसे निहारते हुए उन्होंने जलमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥ जिस समय उनका वज्रमय पर्वतके समान कठोर कलेवर जलमें गिरा, तब उसके वेगसे मानो समुद्रका पेट फट गया और उसमें बादलोंकी गड़गड़ाहटके समान बड़ा भीषण शब्द हुआ। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो अपनी उत्ताल तरङ्गरूप भुजाओंको उठाकर वह बड़े आर्त्तस्वरसे 'हे यज्ञेश्वर ! मेरी रक्षा करो' इस प्रकार पुकार रहा है ॥ २९ ॥ तब भगवान् यज्ञमूर्ति अपने बाणके समान पैने खुरोंसे जलको चीरते हुए उस अपार जलराशिके उस पार पहुँचे। वहाँ रसातलमें उन्होंने समस्त जीवोंकी आश्रयभूता पृथ्वीको देखा, जिसे कल्पान्तमें शयन करनेको लिये उद्यत श्रीहरिने स्वयं अपने ही उदरमें लीन कर लिया था ॥ ३० ॥

फिर वे जलमें डूबी हुई पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर लेकर रसातलसे ऊपर आये। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। जलसे बाहर आते समय उनके मार्गमें विघ्न डालनेके लिये महापराक्रमी हिरण्याक्षने जलके भीतर ही उनपर गदासे आक्रमण किया। इससे उनका क्रोध चक्रके समान तीक्ष्ण हो गया और उन्होंने

उसे लीलासे ही इस प्रकार मार डाला, जैसे सिंह हाथीको मार डालता है। उस समय उसके रक्तसे थूथनी तथा कनपटी सन जानेके कारण वे ऐसे जान पड़ते थे मानो कोई गजराज लाल मिट्टीके टीलेमें टक्कर मारकर आया हो ॥ ३१-३२ ॥ तात! जैसे गजराज अपने दाँतोंपर कमल-पुष्प धारण कर ले, उसी प्रकार अपने सफेद दाँतोंकी नोकपर पृथ्वीको धारण कर जलसे बाहर निकले हुए, तमालके समान नीलवर्ण वराहभगवान्‌को देखकर ब्रह्मा, मरीचि आदिको निश्चय हो गया कि ये भगवान् ही हैं। तब वे हाथ जोड़कर वेदवाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

ऋषियोंने कहा—भगवान् अजित! आपकी जय हो, जय हो। यज्ञपते! आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रहको फटकार रहे हैं; आपको नमस्कार है। आपके रोम-कूपोंमें सम्पूर्ण यज्ञ लीन हैं। आपने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकररूप धारण किया है; आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ देव! दुराचारियोंको आपके इस शरीरका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि यह यज्ञरूप है। इसकी त्वचामें गायत्री आदि छन्द, रोमावलीमें कुश, नेत्रोंमें घृत तथा चारों चरणोंमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारों ऋत्विजोंके कर्म हैं ॥ ३५ ॥ ईश! आपकी थूथनी (मुखके अग्रभाग) में स्रुक् है, नासिकाछिद्रोंमें स्रुवा है, उदरमें इडा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है, कानोंमें चमस है, मुखमें प्राशित्र (ब्रह्मभागपात्र) है और कण्ठछिद्रमें ग्रह (सोमपात्र) हैं। भगवन्! आपका जो चबाना है, वही अग्निहोत्र है ॥ ३६ ॥ बार-बार अवतार लेना यज्ञस्वरूप आपकी दीक्षणीय इष्टि है, गरदन उपसद (तीन इष्टियाँ) हैं; दोनों दाढ़ें प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) हैं; जिह्वा प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके पूर्व किया जानेवाला महावीर नामक कर्म) है, सिर सभ्य (होमरहित अग्नि) और आवसथ्य (औपासनाग्नि) है तथा प्राण चिति (इष्टकाचयन) हैं ॥ ३७ ॥ देव! आपका वीर्य सोम है; आसन (बैठना) प्रातःसवनादि तीन सवन हैं; सातों धातु अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नामकी सात संस्थाएँ हैं तथा शरीरकी सन्धियाँ (जोड़) सम्पूर्ण सत्र हैं। इस प्रकार आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरहित याग) और क्रतु (सोमसहित याग) रूप हैं। यज्ञानुष्ठानरूप इष्टियाँ आपके अङ्गोंको मिलाये रखनेवाली मांसपेशियाँ हैं ॥ ३८ ॥ समस्त मन्त्र, देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। वैराग्य, भक्ति और मनकी एकाग्रतासे जिस ज्ञानका अनुभव होता है, वह आपका स्वरूप ही है तथा आप ही सबके विद्यागुरु हैं; आपको पुनः-पुनः प्रणाम है ॥ ३९ ॥ पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवन्! आपकी दाढ़ोंकी नोकपर रक्खी हुई यह पर्वतादि-मण्डित पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे वनमेंसे निकलकर बाहर आये हुए किसी गजराजके दाँतोंपर पत्रयुक्त कमलिनी रक्खी हो ॥ ४० ॥ आपके दाँतोंपर रक्खे हुए भूमण्डलके सहित आपका यह वेदमय वराहविग्रह ऐसा सुशोभित हो रहा है जैसे शिखरोंपर छायी हुई मेघमालासे कुलपर्वतकी शोभा होती है ॥ ४१ ॥ नाथ! चराचर जीवोंके सुखपूर्वक रहनेके लिये आप अपनी पत्नी इन जगन्माता पृथ्वीको जलपर स्थापित कीजिये। आप जगत्‌के पिता हैं और अरणिमें अग्निस्थापनके समान आपने इसमें धारणशक्तिरूप अपना तेज स्थापित किया है। हम आपको और इस पृथ्वीमाताको प्रणाम करते हैं ॥ ४२ ॥ प्रभो! रसातलमें डूबी हुई इस पृथ्वीको निकालनेका साहस आपके सिवा और कौन कर सकता था। किन्तु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्योंके आश्रय हैं, आपके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपने ही तो अपनी मायासे इस अत्याश्चर्यमय विश्वकी रचना की है ॥ ४३ ॥ जब आप अपने वेदमय विग्रहको हिलाते हैं, तब हमारे ऊपर आपकी गरदनके बालोंसे झरती हुई शीतल जलकी बूँदें गिरती हैं। ईश! उनसे भीगकर हम जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें रहनेवाले मुनिजन सर्वथा पवित्र हो जाते हैं ॥ ४४ ॥ जो पुरुष आपके कर्मोंका पार पाना चाहता है, अवश्य ही उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है; क्योंकि आपके कर्मोंका कोई पार ही नहीं है। आपकी ही योगमायाके सत्त्वादि गुणोंसे यह सारा जगत् मोहित हो रहा है। भगवन्! आप इसका कल्याण कीजिये ॥ ४५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! उन ब्रह्मवादी मुनियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर सबकी रक्षा करनेवाले वराह भगवान्‌ने अपने खुरोंसे जलको स्तम्भितकर उसपर पृथ्वीको स्थापित कर दिया ॥ ४६ ॥ इस प्रकार रसातलसे लीलापूर्वक लायी हुई पृथ्वीको जलपर रखकर वे विष्वक्सेन प्रजापति भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये ॥ ४७ ॥

विदुरजी ! भगवान्‌के लीलामय चरित्र अत्यन्त कीर्तनीय हैं और उनमें लगी हुई बुद्धि सब प्रकारके पाप-तापोंको दूर कर देती है । जो पुरुष उनकी इस मङ्गलमयी मञ्जुल कथाको भक्तिभावसे सुनता या सुनाता है, उसके प्रति भक्तवत्सल भगवान् अन्तस्तलसे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४८ ॥ भगवान् तो सभी कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, उनके प्रसन्न होनेपर संसारमें क्या दुर्लभ है । किन्तु उन तुच्छ कामनाओंकी आवश्यकता ही क्या है ? जो लोग उनका अनन्यभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे अन्तर्यामी परमात्मा स्वयं अपना परम पद ही दे देते हैं ॥ ४९ ॥ अरे ! संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमनसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी अमृतमयी कथाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा ॥ ५० ॥

चौदहवाँ अध्याय

दितिका गर्भधारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! प्रयोजनवश सूकर बने श्रीहरिकी कथाको मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भी भक्तिव्रतधारी विदुरजीको पूर्ण तृप्ति न हुई; अतः उन्होंने हाथ जोड़कर फिर पूछा ॥ १ ॥

विदुरजीने कहा—मुनिवर ! हमने यह बात आपके मुखसे अभी सुनी है कि आदिदैत्य हिरण्याक्षको भगवान् यज्ञमूर्तिने ही मारा था ॥ २ ॥ ब्रह्मन् ! जिस समय भगवान् लीलासे ही अपनी दाढ़ोंपर रखकर पृथ्वीको जलमेंसे निकाल रहे थे, उस समय उनसे दैत्यराज हिरण्याक्षकी मुठभेड़ किस कारण हुई ? ॥ ३ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा ही सुन्दर है; क्योंकि तुम श्रीहरिकी अवतारकथाके विषयमें ही पूछ रहे हो, जो मनुष्योंके मृत्युपाशका छेदन करनेवाली है ॥ ४ ॥ देखो, उत्तानपादका पुत्र ध्रुव बाल्कपनमें श्रीनारदजीकी सुनायी हुई हरिकथाके प्रभावसे ही मृत्युके सिरपर पैर रखकर भगवान्‌के परमपदपर आरूढ हो गया था ॥ ५ ॥ पूर्वकालमें एक बार इसी वराह भगवान् और हिरण्याक्षके युद्धके विषयमें देवताओंके प्रश्न करनेपर देवदेव श्रीब्रह्माजीने उन्हें यह इतिहास सुनाया था और उसीको परम्परासे मैंने सुना है ॥ ६ ॥ विदुरजी ! एक बार दक्षकी पुत्री दितिने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे कामातुर होकर सायङ्कालके समय ही अपने पति मरीचिनन्दन कश्यपजीसे प्रार्थना की ॥ ७ ॥ उस समय कश्यपजी खीरकी आहुतियोंद्वारा अग्निजिह्व भगवान् यज्ञपतिकी आराधना कर सूर्यास्तका समय जान अग्निशालामें ध्यानस्थ होकर बैठे थे ॥ ८ ॥

दितिने कहा—विद्वन् ! मतवाला हाथी जैसे केलेके वृक्षको मसल डालता है, उसी प्रकार यह प्रसिद्ध धनुर्धर कामदेव मुझ अबलापर जोर जताकर आपके लिये मुझे बेचैन कर रहा है ॥ ९ ॥ अपनी पुत्रवती सौतोंकी सुख-समृद्धिको देखकर मैं ईर्ष्याकी आगसे जली जाती हूँ । अतः आप मुझपर कृपा कीजिये, आपका कल्याण हो ॥ १० ॥ जिनके गर्भसे आप-जैसा पति पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, वे ही स्त्रियाँ अपने पतियोंसे सम्मानिता समझी जाती हैं । उनका सुयश संसारमें सर्वत्र फैल जाता है ॥ ११ ॥ हमारे पिता प्रजापति दक्षका अपनी पुत्रियोंपर बड़ा स्नेह था । एक बार उन्होंने हम सबको अलग-अलग बुलाकर पूछा कि 'तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो ?' ॥ १२ ॥ वे अपनी सन्तानकी सब प्रकारकी चिन्ता रखते थे । अतः हमारा भाव जानकर उन्होंने उनमेंसे हम तेरह पुत्रियोंको, जो आपके गुण-

स्वभावके अनुरूप थीं, आपके साथ ब्याह दिया ॥१३॥ अतः मङ्गलमूर्ते ! कमलनयन ! आप मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये; क्योंकि हे महत्तम ! आप-जैसे महापुरुषोंके पास दीनजनोंका आना निष्फल नहीं होता॥ १४ ॥

विदुरजी ! दिति कामदेवके वेगसे अत्यन्त बेचैन और बेबस हो रही थी। उसने इसी प्रकार बहुत-सी बातें बनाते हुए दीन होकर कश्यपजीसे प्रार्थना की, तब उन्होंने उसे सुमधुर वाणीसे समझाते हुए कहा॥१५॥'भीरु! तुम्हारी इच्छाके अनुसार मैं अभी-अभी तुम्हारा प्रिय अवश्य करूँगा। भला, जिसके द्वारा अर्थ, धर्म और काम—तीनोंकी सिद्धि होती है, अपनी ऐसी पत्नीकी कामना कौन पूर्ण नहीं करेगा ॥ १६ ॥ जिस प्रकार जहाजपर चढ़कर मनुष्य महासागरको पार कर लेता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमी दूसरे आश्रमोंको आश्रय देता हुआ अपने आश्रमद्वारा स्वयं भी दुःखसमुद्रके पार हो जाता हैं ॥ १७ ॥ मानिनि ! स्त्रीको तो त्रिविध पुरुषार्थकी कामनावाले पुरुषका आधा अङ्ग कहा गया है। उसपर अपनी गृहस्थीका भार डालकर पुरुष निश्चिन्त होकर विचरता हैं ॥ १८ ॥ इन्द्रियरूप शत्रु अन्य आश्रमवालोंके लिये अत्यन्त दुर्जय हैं; किन्तु जिस प्रकार किलेका स्वामी सुगमतासे ही लूटनेवाले शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता है, उसी प्रकार हम अपनी विवाहिता पत्नीका आश्रय लेकर इन इन्द्रियरूप शत्रुओंको सहजमें ही जीत लेते हैं ॥ १९ ॥ गृहेश्वरि ! तुम-जैसी भार्याके उपकारोंका बदला तो हम अथवा और कोई भी गुणग्राही पुरुष अपनी सारी उम्रमें अथवा जन्मान्तरमें भी पूर्णरूपसे नहीं चुका सकते॥२०॥ तो भी तुम्हारी इस सन्तान-प्राप्तिकी इच्छाको मैं यथाशक्ति अवश्य पूर्ण करूँगा। परन्तु अभी तुम एक मुहूर्त्त ठहरो, जिससे लोग मेरी निन्दा न करें॥२१॥ यह अत्यन्त घोर समय राक्षसादि घोर जीवोंका है और देखनेमें भी बड़ा भयानक है। इसमें भगवान् भूतनाथके गण भूत-प्रेतादि घूमा करते हैं ॥ २२ ॥ साध्वि ! इस सन्ध्याकालमें भूतभावन भूतपति भगवान् शङ्कर अपने गण भूत-प्रेतादिको साथ लिये बैलपर चढ़कर विचरा करते हैं ॥ २३ ॥ जिनका जटाजूट श्मशान-भूमिसे उठे हुए बवंडरकी धूलिसे धूसरित होकर देदीप्यमान हो रहा है तथा जिनके सुवर्ण-कान्तिमय गौर शरीरमें भस्म लगी हुई है, वे तुम्हारे देवर श्वशुर महादेवजी अपने सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंसे सभीको देखते रहते हैं ॥ २४ ॥ संसारमें उनका कोई अपना या पराया नहीं है। न कोई अधिक आदरणीय और न निन्दनीय ही है। हमलोग तो अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन करके उनकी मायाको ही ग्रहण करना चाहते हैं, जिसे उन्होंने भोगकर लात मार दी है ॥ २५ ॥ विवेकी पुरुष अविद्याके आवरणको हटानेकी इच्छासे उनके निर्मल चरित्रका गान किया करते हैं; उनसे बढ़कर तो क्या, उनके समान भी कोई नहीं है और उनतक केवल सत्पुरुषोंकी ही पहुँच है। यह सब होनेपर भी वे स्वयं पिशाचोंका-सा आचरण करते हैं ॥२६॥ यह नर-शरीर कुत्तोंका भोजन है; जो अविवेकी पुरुष आत्मा मानकर वस्त्र, आभूषण, माला और चन्दनादिसे इसीको सजाते-सँवारते रहते हैं—वे अभागे ही आत्माराम भगवान् शङ्करके आचरणको हँसते हैं ॥ २७ ॥ हमलोग तो क्या, ब्रह्मादि लोकपाल भी उन्हींकी बाँधी हुई धर्म-मर्यादाका पालन करते हैं; वे ही इस विश्वके अधिष्ठान हैं तथा यह माया भी उन्हींकी आज्ञाका अनुसरण करनेवाली है। ऐसे होकर भी वे प्रेतोंका-सा आचरण करते हैं। अहो ! उन जगद्व्यापक प्रभुकी यह अद्भुत लीला कुछ समझमें नहीं आती' ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—पतिके इस प्रकार समझानेपर भी कामातुरा दितिने वेश्याके समान निर्लज्ज होकर ब्रह्मर्षि कश्यपजीका वस्त्र पकड़ लिया ॥ २९ ॥ तब कश्यपजीने उस निन्दित कर्ममें अपनी भार्याका बहुत आग्रह देख दैवको नमस्कार किया और एकान्तमें उसके साथ समागम किया ॥ ३० ॥ फिर जलमें स्नानकर प्राण और वाणीका संयम करके विशुद्ध ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्मका ध्यान करते हुए उसीका जप करने लगे ॥३१॥ विदुरजी ! दितिको भी उस निन्दित कर्मके कारण बड़ी लज्जा आयी और वह ब्रह्मर्षिके पास जा, सिर नीचा करके इस प्रकार कहने लगी ॥ ३२ ॥

दिति बोलीं—ब्रह्मन् ! भगवान् रुद्र भूतोंके स्वामी हैं, मैंने उनका अपराध किया है; किन्तु वे भूतश्रेष्ठ मेरे इस

गर्भको नष्ट न करें ॥ ३३ ॥ मैं भक्तवाञ्छाकल्पतरु, उग्र एवं रुद्ररूप महादेवको नमस्कार करती हूँ। वे सत्पुरुषोंके लिये कल्याणकारी एवं दण्ड देनेके भावसे रहित हैं किन्तु दुष्टोंके लिये क्रोधमूर्ति दण्डपाणि हैं ॥ ३४ ॥ हम स्त्रियोंपर तो व्याध भी दया करते हैं, फिर वे सतीपति तो मेरे बहनोई और परम कृपालु हैं; अतः वे मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! प्रजापति कश्यपने सायङ्कालीन सन्ध्या-वन्दनादि कर्मसे निवृत्त होनेपर देखा कि दिति थर-थर काँपती हुई अपनी सन्तानकी लौकिक और पारलौकिक उन्नतिके लिये प्रार्थना कर रही है। तब उन्होंने उससे कहा ॥ ३६ ॥

कश्यपजीने कहा—तुम्हारा चित्त कामवासनासे मलिन था, वह समय भी ठीक नहीं था और तुमने मेरी बात भी नहीं मानी तथा देवताओंकी भी अवहेलना की ॥ ३७ ॥ अमङ्गलमयी चण्डी ! तुम्हारी कोखसे दो बड़े ही अमङ्गलमय और अधम पुत्र उत्पन्न होंगे। वे बार-बार सम्पूर्ण लोक और लोकपालोंको अपने अत्याचारोंसे रुलायेंगे ॥ ३८ ॥ जब उनके हाथसे बहुत-से निरपराध और दीन प्राणी मारे जाने लगेंगे, स्त्रियोंपर अत्याचार होने लगेंगे और महात्माओंको क्षुब्ध किया जाने लगेगा, उस समय सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाले श्रीजगदीश्वर कुपित होकर अवतार लेंगे और इन्द्र जैसे पर्वतोंका दमन करता है, उसी प्रकार उनका वध करेंगे ॥ ३९-४० ॥

दितिने कहा—प्रभो ! यही मैं भी चाहती हूँ कि यदि मेरे पुत्रोंका वध हो तो वह साक्षात् भगवान् चक्रपाणिके हाथसे ही हो, कुपित ब्राह्मणोंके शापादिसे न हो ॥ ४१ ॥ जो जीव ब्राह्मणोंके शापसे दग्ध अथवा प्राणियोंको भय देनेवाला होता है, वह किसी भी योनिमें जाय—उसपर नारकी जीव भी दया नहीं करते ॥४२॥

कश्यपजीने कहा—देवि ! तुमने अपने कियेपर शोक और पश्चात्ताप प्रकट किया है, तुम्हें शीघ्र ही उचित-अनुचितका विचार भी हो गया तथा भगवान् विष्णु, शिव और मेरे प्रति भी तुम्हारा बहुत आदर जान पड़ता है; इसलिये तुम्हारे एक पुत्रके चार पुत्रोंमेंसे एक ऐसा होगा, जिसका सत्पुरुष भी मान करेंगे और जिसके पवित्र यशको भक्तजन भगवान्‌के गुणोंके साथ गायेंगे ॥४३-४४॥ जिस प्रकार खोटे सोनेको बार-बार तपाकर शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार साधुजन उसके स्वभावका अनुकरण करनेके लिये निर्वैरता आदि उपायोंसे अपने अन्तःकरणको शुद्ध करेंगे ॥४५॥ जिनकी कृपासे उन्हींका स्वरूपभूत यह जगत् आनन्दित होता है, वे स्वयंप्रकाश भगवान् भी उसकी अनन्य भक्तिसे सन्तुष्ट हो जायँगे ॥ ४६ ॥ दिति ! वह बालक बड़ा ही भगवद्भक्त, उदारहृदय, प्रभावशाली और महान् पुरुषोंका भी पूज्य होगा। तथा प्रौढ़ भक्तिभावसे विशुद्ध और भावान्वित हुए अन्तःकरणमें श्रीभगवान्‌को स्थापित करके देहाभिमानको त्याग देगा ॥ ४७ ॥ वह विषयोंमें अनासक्त, शीलवान्, गुणोंका भंडार तथा दूसरोंकी समृद्धिमें सुख और दुःखमें दुःख माननेवाला होगा। उसका कोई शत्रु न होगा, तथा चन्द्रमा जैसे ग्रीष्म ऋतुके तापको हर लेता है, वैसे ही वह संसारके शोकको शान्त करनेवाला होगा ॥ ४८ ॥ जो इस संसारके बाहर-भीतर सब ओर विराजमान हैं, अपने भक्तोंके इच्छानुसार समय-समयपर मङ्गलविग्रह प्रकट करते हैं और लक्ष्मीरूप लावण्यमूर्ति ललनाकी भी शोभा बढ़ानेवाले हैं, तथा जिनका मुखमण्डल झिलमिलाते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित है—उन परम पवित्र कमलनयन श्रीहरिका तुम्हारे पौत्रको प्रत्यक्ष दर्शन होगा ॥ ४९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! दितिने जब सुना कि मेरा पौत्र भगवान्‌का भक्त होगा, तब उसे बड़ा आनन्द हुआ तथा यह जानकर कि मेरे पुत्र साक्षात् श्रीहरिके हाथसे मारे जायँगे, उसे और भी अधिक उत्साह हुआ ॥ ५० ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

जय-विजयको सनकादिका शाप

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! दितिको अपने पुत्रोंसे देवताओंको कष्ट पहुँचनेकी आशङ्का थी, इसलिये उसने दूसरोंके तेजका नाश करनेवाले उस कश्यपजीके तेज (वीर्य) को सौ वर्षोंतक अपने उदरमें ही रक्खा ॥ १ ॥ उस गर्भस्थ तेजसे ही लोकोंमें सूर्यादिका प्रकाश क्षीण होने लगा तथा इन्द्रादि लोकपाल भी तेजोहीन हो गये । तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर कहा कि सब दिशाओंमें अन्धकारके कारण बड़ी अव्यवस्था हो रही है ॥ २ ॥

देवताओंने कहा—भगवन् ! काल आपकी ज्ञान-शक्तिको कुण्ठित नहीं कर सकता, इसलिये आपसे कोई बात छिपी नहीं है । आप इस अन्धकारके विषयमें भी जानते ही होंगे, हम तो इससे बड़े ही भयभीत हो रहे हैं ॥ ३ ॥ देवाधिदेव ! आप जगत्के रचयिता और समस्त लोकपालोंके मुकुटमणि हैं । आप छोटे-बड़े सभी जीवोंका भाव जानते हैं ॥ ४ ॥ देव ! आप विज्ञानबलसम्पन्न हैं; आपने मायासे ही यह चतुर्मुख रूप और रजोगुण स्वीकार किया है; आपकी उत्पत्तिके वास्तविक कारणको कोई नहीं जान सकता । हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५ ॥ आपमें सम्पूर्ण भुवन स्थित हैं, कार्य-कारणरूप सारा प्रपञ्च आपका शरीर है; किन्तु वास्तवमें आप इससे परे हैं । जो समस्त जीवोंके उत्पत्तिस्थान आपका अनन्य भावसे ध्यान करते हैं, उन सिद्ध योगियोंका किसी प्रकार भी ह्रास नहीं हो सकता; क्योंकि वे आपके कृपाकटाक्षसे कृतकृत्य हो जाते हैं तथा प्राण, इन्द्रिय और मनको जीत लेनेके कारण उनका योग भी परिपक्व हो जाता है ॥ ६-७ ॥ रस्सीसे बँधे हुए बैलोंकी भाँति आपकी वेदवाणीसे जकड़ी हुई सारी प्रजा आपकी अधीनतामें नियमपूर्वक कर्मानुष्ठान करके आपको बलि समर्पण करती है । आप सबके नियन्ता मुख्य प्राण हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥८॥ भूमन् ! इस अन्धकारके कारण दिन-रातका विभाग अस्पष्ट हो जानेसे लोकोंके सारे कर्म लुप्त होते जा रहे हैं, जिससे वे दुखी हो रहे हैं; उनका कल्याण कीजिये और हम शरणागतोंकी ओर अपनी अपार दयादृष्टिसे निहारिये ॥ ९ ॥ देव ! आग जिस प्रकार ईंधनमें पड़कर बढ़ती रहती है, उसी प्रकार कश्यपजीके वीर्यसे स्थापित हुआ यह दितिका गर्भ सारी दिशाओंको अन्धकारमय करता हुआ क्रमशः बढ़ रहा है ॥ १० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाबाहो ! देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् ब्रह्माजी हँसे और उन्हें अपनी मधुर वाणीसे आनन्दित करते हुए कहने लगे ॥११॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! तुम्हारे पूर्वज, मेरे मानसपुत्र सनकादि लोकोंकी आसक्ति त्यागकर समस्त लोकोंमें आकाशमार्गसे विचरा करते थे ॥१२॥ एक बार वे भगवान् विष्णुके शुद्ध-सत्त्वमय सब लोकोंके शिरोभागमें स्थित, वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे ॥ १३ ॥ वहाँ सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वह प्राप्त भी उन्हींको होता है, जो अन्य सब प्रकारकी कामनाएँ छोड़कर केवल भगवच्चरण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही अपने धर्मद्वारा उनकी आराधना करते हैं ॥ १४ ॥ वहाँ वेदान्तप्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण हम अपने भक्तोंको सुख देनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारण-कर हर समय विराजमान रहते हैं ॥ १५ ॥ उस लोकमें नैःश्रेयस नामका एक वन है, जो मूर्तिमान् कैवल्य-सा ही जान पड़ता है । वह सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे सुशोभित है, जो स्वयं हर समय छहों ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न रहते हैं ॥१६॥

वहाँ विमानचारी गन्धर्वगण अपनी प्रियाओंके सहित अपने प्रभुकी पवित्र लीलाओंका गान करते रहते हैं, जो लोगोंकी सम्पूर्ण पापराशिको भस्म कर देनेवाली हैं । उस समय सरोवरोंमें खिली हुई मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवी लताकी सुमधुर गन्ध उनके चित्तको अपनी ओर खींचना चाहती है; परन्तु वे उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते वरं उस गन्धको उड़ाकर लानेवाले वायुको ही बुरा-भला कहते हैं ॥ १७ ॥ जिस समय भ्रमरराज ऊँचे स्वरसे गुंजार करते हुए मानो हरिकथाका गान करते हैं, उस समय थोड़ी देरके लिये कबूतर, कोयल, सारस,

चकवे, पपीहे, हंस, तोते, तीतर और मोरोंका कोलाहल बंद हो जाता है—मानो वे भी उस कीर्तनानन्दमें बेसुध हो जाते हैं ॥ १८ ॥ श्रीहरि तुलसीसे अपने श्रीविग्रहको सजाते हैं और तुलसीकी गन्धका ही अधिक आदर करते हैं—यह देखकर वहाँके मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष), उत्पल (रात्रिमें खिलनेवाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नागकेसर, वकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिनमें खिलनेवाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होनेपर भी तुलसीका ही तप अधिक मानते हैं ॥ १९ ॥ वह लोक वैदूर्य, मरकत-मणि (पन्ने) और सुवर्णके विमानोंसे भरा हुआ है। ये सब किसी कर्मफलसे नहीं, बल्कि एकमात्र श्रीहरिके पादपद्मोंकी वन्दना करनेसे ही प्राप्त होते हैं। उन विमानोंपर चढ़े हुए कृष्णप्राण भगवद्भक्तोंके चित्तोंमें बड़े-बड़े नितम्बोंवाली सुमुखी सुन्दरियाँ भी अपनी मन्द मुसकान एवं मनोहर हास-परिहाससे कामविकार नहीं उत्पन्न कर सकतीं ॥ २० ॥

परम सौन्दर्यशालिनी लक्ष्मीजी, जिनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये देवगण भी यत्नशील रहते हैं, श्रीहरिके भवनमें चञ्चलतारूप दोषको त्यागकर रहती हैं। जिस समय अपने चरण-कमलोंके नूपुरोंकी झनकार करती हुई वे अपना लीलाकमल घुमाती हैं, उस समय उस कनकभवन-की स्फटिकमय दीवारोंमें उनका प्रतिविम्ब पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो वे उन्हें बुहार रही हों ॥२१॥ प्यारे देवताओ ! जिस समय दासियोंको साथ लिये वे अपने क्रीडावनमें तुलसीदलद्वारा भगवान्‌का पूजन करती हैं, तब वहाँके निर्मल जलसे भरे हुए सरोवरोंमें, जिनमें मूँगेके घाट बने हुए हैं, अपना सुन्दर अलकावली और उन्नत नासिकासे सुशोभित मुखारविन्द देखकर 'यह भगवान्‌का चुम्बन किया हुआ है' यों जानकर उसे बड़ा सौभाग्यशाली समझती हैं ॥ २२ ॥ जो लोग भगवान्‌की पापापहारिणी लीलाकथाओंको छोड़कर बुद्धिको नष्ट करनेवाली अर्थ-कामसम्बन्धिनी अन्य निन्दित कथाएँ सुनते हैं, वे उस वैकुण्ठलोकमें नहीं जा सकते। हाय ! जब वे अभागे लोग इन सारहीन बातोंको सुनते हैं, तब ये उनके पुण्योंको नष्टकर उन्हें आश्रय-हीन घोर नरकोंमें डाल देती हैं ॥ २३ ॥ अहा ! इस मनुष्ययोनिकी बड़ी महिमा है, हम देवतालोग भी इसकी चाह करते हैं। इसीमें तत्त्वज्ञान और धर्म-की भी प्राप्ति हो सकती है। इसे पाकर भी जो लोग भगवान्‌की आराधना नहीं करते, वे वास्तवमें उनकी सर्वत्र फैली हुई मायासे ही मोहित हैं ॥ २४ ॥ देवाधिदेव श्रीहरिका निरन्तर चिन्तन करते रहनेके कारण जिनसे यमराज दूर रहते हैं, आपसमें प्रभुके सुयशकी चर्चा चलनेपर अनुरागजन्य विह्वलता-वश जिनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगती है तथा शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है और जिनके-से शील-स्वभावकी हमलोग भी इच्छा करते हैं—वे परम-भागवत ही हमारे लोकोंसे ऊपर उस वैकुण्ठधाममें जाते हैं ॥ २५ ॥ जिस समय सनकादि मुनि विश्व-गुरु श्रीहरिके निवासस्थान, सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय और श्रेष्ठ देवताओंके विचित्र विमानोंसे विभूषित उस परम दिव्य और अद्भुत वैकुण्ठधाममें अपने योगबलसे पहुँचे, तब उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २६ ॥

भगवद्दर्शनकी लालसासे अन्य दर्शनीय सामग्रीकी उपेक्षा करते हुए वैकुण्ठधामकी छः ड्योढ़ियाँ पार करके जब वे सातवींपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें हाथमें गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये—जो बाजूबंद, कुण्डल और किरीट आदि अनेकों अमूल्य आभूषणोंसे अलङ्कृत थे ॥ २७ ॥ उनकी चार श्यामल भुजाओंके बीचमें मतवाले मधुकरोंसे गुञ्जायमान वनमाला सुशोभित थी तथा बाँकी भौंहें, फड़कते हुए नासिकारन्ध्र और अरुण नयनोंके कारण उनके चेहरेपर कुछ क्षोभके-से चिह्न दिखायी दे रहे थे ॥ २८ ॥ उनके इस प्रकार देखते रहनेपर भी वे मुनिगण उनसे बिना कुछ पूछताछ किये, जैसे सुवर्ण और वज्रमय किवाड़ोंसे युक्त पहली छः ड्योढ़ी लाँघकर आये थे, उसी प्रकार उनके द्वारमें भी घुस गये। उनकी दृष्टि तो सर्वत्र समान थी और वे निःशङ्क होकर सर्वत्र बिना किसी रोक-टोकके विचरते थे ॥ २९ ॥ वे चारों कुमार पूर्ण तत्त्वज्ञ थे तथा ब्रह्माकी सृष्टिमें आयुमें सबसे बड़े होनेपर भी देखनेमें पाँच वर्षके बालकों-से जान पड़ते थे और दिगम्बर-वृत्तिसे (नंग-धड़ंग) रहते थे। उन्हें इस प्रकार निःसङ्कोचरूपसे भीतर जाते देख उन द्वारपालों-

पार्षदोंसे सेवित श्रीलक्ष्मीजीसहित भगवान् विष्णु

[पृष्ठ १४१

ने भगवान्‌के शील-स्वभावके विपरीत सनकादिके तेजकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें बेंत अड़ाकर रोक दिया, यद्यपि वे ऐसे दुर्व्यवहारके योग्य नहीं थे ॥ ३० ॥ जब उन द्वारपालोंने वैकुण्ठवासी देवताओंके सामने पूजाके सर्वश्रेष्ठ पात्र उन कुमारोंको इस प्रकार रोका, तब अपने प्रियतम प्रभुके दर्शनोंमें विघ्न पड़नेके कारण उनके नेत्र सहसा कुछ-कुछ क्रोधसे लाल हो उठे और वे इस प्रकार कहने लगे ॥ ३१ ॥

मुनियोंने कहा—अरे द्वारपालो ! जो लोग भगवान्‌की महती सेवाके प्रभावसे इस लोकको प्राप्त होकर यहाँ निवास करते हैं, वे तो भगवान्‌के समान ही समदर्शी होते हैं । तुम दोनों भी उन्हींमेंसे हो, किन्तु तुम्हारे स्वभावमें यह विषमता क्यों है ? भगवान् तो परम शान्तस्वभाव हैं, उनका किसीसे विरोध भी नहीं है; फिर यहाँ ऐसा कौन है, जिसपर शङ्का की जा सके ? तुम स्वयं कपटी हो, इसीसे अपने ही समान दूसरोंपर शङ्का करते हो ॥३२॥ भगवान्‌के उदरमें यह सारा ब्रह्माण्ड स्थित है; इसलिये यहाँ रहनेवाले ज्ञानीजन सर्वात्मा श्रीहरिसे अपना कोई भेद नहीं देखते, बल्कि महाकाशमें घटाकाशकी भाँति उनमें अपना अन्तर्भाव देखते हैं । तुम तो देव-रूपधारी हो; फिर भी तुम्हें ऐसा क्या दिखायी देता है, जिससे तुमने भगवान्‌के साथ कुछ भेद-भावके कारण होनेवाले भयकी कल्पना कर ली ॥३३॥ तुम हो तो इन भगवान् वैकुण्ठनाथके पार्षद, किन्तु तुम्हारी बुद्धि बहुत मन्द है । अतएव तुम्हारा कल्याण करनेके लिये हम तुम्हारे अपराधके योग्य दण्डका विचार करते हैं । तुम अपनी भेदबुद्धिके दोषसे इस वैकुण्ठलोकसे निकलकर उन पापमय योनियोंमें जाओ, जहाँ काम, क्रोध, लोभ—प्राणियोंके ये तीन शत्रु निवास करते हैं ॥ ३४ ॥

सनकादिके ये कठोर वचन सुनकर और ब्राह्मणोंके शापको किसी भी प्रकारके शस्त्रसमूहसे निवारण होनेयोग्य न जानकर श्रीहरिके वे दोनों पार्षद अत्यन्त दीनभावसे उनके चरण पकड़कर पृथ्वीपर लोट गये । वे जानते थे कि उनके स्वामी श्रीहरि भी ब्राह्मणोंसे बहुत डरते हैं ॥ ३५ ॥ फिर उन्होंने अत्यन्त आतुर होकर कहा,—'भगवन् ! हम अवश्य अपराधी हैं; अतः आपने हमें जो दण्ड दिया है, वह उचित ही है और वह हमें मिलना ही चाहिये । हमने भगवान्‌का अभिप्राय न समझकर उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है । इससे हमें जो पाप लगा है, वह आपके दिये हुए दण्डसे सर्वथा धुल जायगा । किन्तु हमारी इस दुर्दशाका विचार करके यदि करुणावश आपको थोड़ा-सा भी अनुताप हो, तो ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे उन अधमाधम योनियोंमें जानेपर भी हमें भगवत्स्मृतिको नष्ट करनेवाला मोह न प्राप्त हो ॥ ३६ ॥

इधर जब साधुजनोंके हृदयधन भगवान् कमलनाभको मालूम हुआ कि मेरे द्वारपालोंने साधु सनकादि साधुओंका अनादर किया है, तब वे लक्ष्मीजीके सहित अपने उन्हीं श्रीचरणसे चलकर ही, वहाँ पहुँचे, जिन्हें परमहंस मुनिजन भी ढूँढ़ते रहते हैं—सहजमें पाते नहीं, ॥ ३७ ॥ सनकादिने देखा कि उनकी समाधिके विषय श्रीवैकुण्ठनाथ स्वयं उनके नेत्रगोचर होकर पधारे हैं, उनके साथ-साथ पार्षदगण छत्र-चामरादि लिये चल रहे हैं तथा प्रभुके दोनों ओर राजहंसके पंखोंके समान दो श्वेत चँवर डुलाये जा रहे हैं । उनकी शीतल वायुसे उनके श्वेत छत्रमें लगी हुई मोतियोंकी झालर हिलती हुई ऐसी शोभा दे रही है मानो चन्द्रमाकी किरणोंसे अमृतकी बूँदें झर रही हों ॥ ३८ ॥ प्रभु समस्त सद्गुणोंके आश्रय हैं, उनकी सौम्य मुखमुद्राको देखकर जान पड़ता था मानो वे सभीपर अनवरत कृपासुधाकी वर्षा कर रहे हैं । अपनी स्नेहमयी चितवनसे वे भक्तोंका हृदय स्पर्श कर रहे थे तथा उनके सुविशाल श्याम वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें जो साक्षात् लक्ष्मी विराजमान थीं, उनसे मानो वे समस्त दिव्यलोकोंके चूडामणि वैकुण्ठधामको सुशोभित कर रहे थे ॥ ३९ ॥ उनके पीताम्बरमण्डित विशाल नितम्बोंपर झिलमिलाती हुई करधनी और गलेमें भ्रमरोंसे मुखरित वनमाला विराज रही थी; तथा वे कलाइयोंमें सुन्दर कंगन पहने अपना एक हाथ गरुड़जीके कंधेपर रख दूसरेसे कमलका पुष्प घुमा रहे थे ॥४०॥ उनके अमोल कपोल बिजलीकी प्रभाको भी लजानेवाले मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा बढ़ा रहे थे, उभरी हुई सुघड़ नासिका थी, बड़ा ही सुन्दर मुख था, सिरपर मणिमय मुकुट विराजमान था तथा चारों भुजाओंके बीच महामूल्यवान् मनोहर हारकी

और गलेमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व शोभा थी ॥ ४१ ॥ भगवान्का श्रीविग्रह बड़ा ही सौन्दर्यशाली था। उसे देखकर भक्तोंके मनमें ऐसा वितर्क होता था कि इसके सामने लक्ष्मीजीका सौन्दर्याभिमान भी गलित हो गया है। ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओ! इस प्रकार मेरे, महादेवजीके और तुम्हारे लिये परम सुन्दर विग्रह धारण करनेवाले श्रीहरिको देखकर सनकादि मुनीश्वरोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। उस समय उनकी अद्भुत छविको निहारते-निहारते उनके नेत्र तृप्त नहीं होते थे ॥ ४२ ॥

सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें निमग्न रहा करते थे। किन्तु जिस समय भगवान् कमलनयनके चरणारविन्दमकरन्दसे मिली हुई तुलसीमञ्जरीके गन्धसे सुवासित वायुने नासिकारन्ध्रोंके द्वारा उनके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, उस समय वे अपने शरीरको सँभाल न सके और उस दिव्य गन्धने उनके मनमें भी खलबली पैदा कर दी ॥ ४३ ॥ भगवान्का मुख नील कमलके समान था, अति सुन्दर अधर और कुन्दकलीके समान मनोहर हाससे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उसकी झाँकी करके वे कृतकृत्य हो गये। और फिर पद्मरागके समान लाल-लाल नखोंसे सुशोभित उनके चरणकमल देखकर वे उन्हींका ध्यान करने लगे ॥ ४४ ॥ इसके पश्चात् वे मुनिगण अन्य साधनोंसे सिद्ध न होनेवाली, स्वाभाविक अष्टसिद्धियोंसे सम्पन्न श्रीहरिकी स्तुति करने लगे—जो योगमार्गद्वारा मोक्षपदकी खोज करनेवाले पुरुषोंके लिये उनके ध्यानका विषय, अत्यन्त आदरणीय और नयनानन्दकी वृद्धि करनेवाला पुरुषरूप प्रकट करते हैं ॥ ४५ ॥

सनकादि मुनियोंने कहा—अनन्त! यद्यपि आप अन्तर्यामीरूपसे दुष्टचित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित रहते हैं, तथापि उनकी दृष्टिसे ओझल ही रहते हैं। किन्तु आज हमारे नेत्रोंके सामने तो आप साक्षात् विराजमान हैं। प्रभो! जिस समय आपसे उत्पन्न हुए हमारे पिता ब्रह्माजीने आपका रहस्य वर्णन किया था, उसी समय श्रवणरन्ध्रोंद्वारा हमारी बुद्धिमें तो आप आ विराजे थे; किन्तु प्रत्यक्ष दर्शनका महान् सौभाग्य तो हमें आज ही प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ भगवन्! हम आपको साक्षात् परमात्मतत्त्व ही जानते हैं। इस समय आप अपने विशुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे अपने इन भक्तोंको आनन्दित कर रहे हैं। आपकी इस सगुण-साकार मूर्तिको राग और अहङ्कारसे मुक्त मुनिजन आपकी कृपा-दृष्टिसे प्राप्त हुए सुदृढ भक्तियोगके द्वारा अपने हृदयमें उपलब्ध करते हैं ॥ ४७ ॥ प्रभो! आपका सुयश अत्यन्त कीर्तनीय और सांसारिक दुःखोंकी निवृत्ति करनेवाला है। आपके चरणोंकी शरणमें रहनेवाले जो महाभाग आपकी कथाओंके रसिक हैं, वे आपके आत्यन्तिक प्रसाद मोक्षपदको भी कुछ अधिक नहीं गिनते; फिर जिन्हें आपकी जरा-सी टेढ़ी भौंह ही भयभीत कर देती है, उन इन्द्रपद आदि अन्य भोगोंके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥ ४८ ॥ भगवन्! यदि हमारा चित्त भौंरेकी तरह आपके चरण-कमलोंमें ही रमण करता रहे, हमारी वाणी तुलसीके समान आपके चरण-सम्बन्धसे ही सुशोभित हो और हमारे कान आपकी सुयश-सुधासे परिपूर्ण रहें तो अपने पापोंके कारण भले ही हमारा जन्म नरकादि योनियोंमें हो जाय—इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है ॥ ४९ ॥ विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है; विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ५० ॥

सोलहवाँ अध्याय

जय-विजयका वैकुण्ठसे पतन

श्रीब्रह्माजीने कहा—देवगण! जब योगनिष्ठ सनकादि मुनियोंने इस प्रकार स्तुति की, तब वैकुण्ठनिवास श्रीहरिने उनकी प्रशंसा करते हुए यह कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुनिगण! ये जय-विजय मेरे पार्षद हैं। इन्होंने मेरी कुछ भी परवा न करके आपका बहुत बड़ा अपराध किया है ॥ २ ॥ आपलोग

भी मेरे अनुगत भक्त हैं; अतः इस प्रकार मेरी ही अवज्ञा करनेके कारण आपने इन्हें जो दण्ड दिया है, वह मुझे भी अभिमत है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परम आराध्य हैं; मेरे अनुचरोंके द्वारा आपलोगोंका जो तिरस्कार हुआ है, उसे मैं अपना ही किया हुआ मानता हूँ। इसलिये मैं आपलोगोंसे प्रसन्नताकी भिक्षा माँगता हूँ ॥ ४ ॥ सेवकोंके अपराध करनेपर संसार उनके स्वामीका ही नाम लेता है। वह अपयश उसकी कीर्तिको इस प्रकार दूषित कर देता है, जैसे त्वचाको चर्मरोग ॥ ५ ॥ मेरी निर्मल सुयश-सुधामें गोता लगानेसे चाण्डालपर्यन्त सारा जगत् तुरंत पवित्र हो जाता है, इसीलिये मैं 'विकुण्ठ' कहलाता हूँ। किन्तु यह पवित्र कीर्ति मुझे आपलोगोंसे ही प्राप्त हुई है। इसलिये जो कोई आपके विरुद्ध आचरण करेगा, वह मेरी भुजा ही क्यों न हो—मैं उसे तुरंत काट डालूँगा ॥ ६ ॥ आपलोगोंकी सेवा करनेसे ही मेरी चरण-रजको ऐसी पवित्रता प्राप्त हुई है कि वह सारे पापोंको तत्काल नष्ट कर देती है, और मुझे ऐसा सुन्दर स्वभाव मिला है कि मेरे उदासीन रहनेपर भी लक्ष्मीजी मुझे एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़तीं—यद्यपि इन्हींके लेशमात्र कृपा-कटाक्षके लिये अन्य ब्रह्मादि देवता नाना प्रकारके नियमों एवं व्रतोंका पालन करते हैं ॥ ७ ॥ जो अपने सम्पूर्ण कर्मफल मुझे अर्पणकर सदा सन्तुष्ट रहते हैं, वे निष्काम ब्राह्मण ग्रास-ग्रासपर तृप्त होते हुए घीसे तर तरह-तरहके पकवानोंका जब भोजन करते हैं, तब उनके मुखसे मैं जैसा तृप्त होता हूँ वैसा यज्ञमें अग्निरूप मुखसे यजमानकी दी हुई आहुतियोंको ग्रहण करके नहीं होता ॥ ८ ॥ योगमायाका अखण्ड और असीम ऐश्वर्य मेरे अधीन है तथा मेरी चरणोदकरूपिणी गङ्गाजी चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले भगवान् शङ्करके सहित समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं। ऐसा परम पवित्र एवं परमेश्वर होकर भी मैं जिनकी पवित्र चरण-रजको अपने मुकुटपर धारण करता हूँ, उन ब्राह्मणोंके कर्मको कौन नहीं सहन करेगा ॥ ९ ॥ ब्राह्मण, दूध देनेवाली गौएँ और अनाथ प्राणी—ये मेरे ही शरीर हैं। पापोंके द्वारा विवेकदृष्टि नष्ट हो जानेके कारण जो लोग इन्हें मुझसे भिन्न समझते हैं, उन्हें मेरे द्वारा नियुक्त यमराजके गृध्र-जैसे दूत—जो सर्पके समान क्रोधी हैं—अत्यन्त क्रोधित होकर अपनी चोंचोंसे नोचते हैं ॥ १० ॥ ब्राह्मण तिरस्कारपूर्वक कटुभाषण भी करे, तो भी जो उसमें मेरी भावना करके प्रसन्नचित्तसे तथा अमृतभरी मुसकानसे युक्त मुखकमलसे उसका आदर करते हैं तथा जैसे रूठे हुए पिताको पुत्र और आपलोगोंको मैं मनाता हूँ, उसी प्रकार जो प्रेमपूर्ण वचनोंसे प्रार्थना करते हुए उन्हें शान्त करते हैं, वे मुझे अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ११ ॥ मेरे इन सेवकोंने मेरा अभिप्राय न समझकर ही आपलोगोंका अपमान किया है। इसलिये मेरे अनुरोधसे आप केवल इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासनकाल शीघ्र ही समाप्त हो जाय, ये अपने अपराधके अनुरूप अधम गतिको भोगकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आयें ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओ! सनकादि मुनि क्रोधरूप सर्पसे डसे हुए थे, तो भी उनका चित्त अन्तःकरणको प्रकाशित करनेवाली भगवान्‌की मन्त्रमयी सुमधुर वाणी सुनते-सुनते तृप्त नहीं हुआ ॥ १३ ॥ भगवान्‌की उक्ति बड़ी ही मनोहर और थोड़े अक्षरोंवाली थी; किन्तु वह इतनी अर्थपूर्ण, सारयुक्त, दुर्विज्ञेय और गम्भीर थी कि बहुत ध्यान देकर सुनने और विचार करनेपर भी वे यह न जान सके कि भगवान् क्या करना चाहते हैं ॥ १४ ॥ भगवान्‌की इस अद्भुत उदारताको देखकर वे बहुत आनन्दित हुए और उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो गया। फिर योगमायाके प्रभावसे अपने परम ऐश्वर्यका प्रभाव प्रकट करनेवाले प्रभुसे वे हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १५ ॥

मुनियोंने कहा—स्वप्रकाश भगवन्! आप सर्वेश्वर होकर भी जो यह कह रहे हैं कि 'यह आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया' सो इससे आपका क्या अभिप्राय है—यह हम नहीं जान सके हैं ॥ १६ ॥ प्रभो! आप ब्राह्मणोंके परम हितकारी हैं; इससे लोक-शिक्षाके लिये आप भले ही ऐसा मानें कि ब्राह्मण मेरे आराध्यदेव हैं। वस्तुतः तो ब्राह्मण तथा देवताओंके भी देवता ब्रह्मादिके भी आप ही आत्मा और आराध्यदेव हैं ॥ १७ ॥ सनातनधर्म आपसे ही उत्पन्न हुआ है, आपके अवतारों-द्वारा ही समय-समयपर उसकी रक्षा होती है तथा

निर्विकारस्वरूप आप ही धर्मके परम गुह्य रहस्य हैं—यह शास्त्रोंका मत है ॥ १८ ॥ आपकी कृपासे निवृत्ति-परायण योगीजन सहजमें ही मृत्युरूप संसार-सागरसे पार हो जाते हैं; फिर भला, दूसरा कोई आपपर क्या कृपा कर सकता है ॥ १९ ॥ भगवन् ! दूसरे अर्थार्थी जन जिनकी चरण-रजको सर्वदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे लक्ष्मीजी निरन्तर आपकी सेवामें लगी रहती हैं; सो ऐसा जान पड़ता है कि भाग्यवान् भक्त-जन आपके चरणोंपर जो नूतन तुलसीकी मालाएँ अर्पण करते हैं, उनपर गुंजार करते हुए भौंरोंके समान वे भी आपके पादपद्मोंको ही अपना निवासस्थान बनाना चाहती हैं ॥ २० ॥ किन्तु अपने पवित्र चरित्रोंसे निरन्तर सेवामें तत्पर रहनेवाली उन लक्ष्मीजीका भी आप विशेष आदर नहीं करते, आप तो अपने भक्तोंसे ही विशेष प्रेम रखते हैं। आप स्वयं ही सम्पूर्ण भजनीय गुणोंके आश्रय हैं; क्या जहाँ-तहाँ विचरते हुए ब्राह्मणों-के चरणोंमें लगनेसे पवित्र हुई मार्गकी धूलि और श्री-वत्सका चिह्न आपको पवित्र कर सकते हैं? क्या इनसे आपकी शोभा बढ़ सकती है ? ॥ २१ ॥

भगवन् ! आप साक्षात् धर्मस्वरूप हैं । आप सत्यादि तीनों युगोंमें प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान रहते हैं तथा ब्राह्मण और देवताओंके लिये तप, शौच और दया—अपने इन तीन चरणोंसे इस चराचर जगत्की रक्षा करते हैं । अब आप अपनी शुद्धसत्त्वमयी वरदायिनी मूर्तिसे हमारे धर्मविरोधी रजोगुण-तमोगुणको दूर कर दीजिये ॥ २२ ॥ देव ! यह ब्राह्मणकुल आपके द्वारा अवश्य रक्षणीय है । यदि साक्षात् धर्मरूप होकर भी आप सुमधुर वाणी और पूजनादिके द्वारा इस उत्तम कुलकी रक्षा न करें तो आपका निश्चित किया हुआ कल्याणमार्ग ही नष्ट हो जाय; क्योंकि लोक तो श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणको ही प्रमाणरूपसे ग्रहण करता है ॥ २३ ॥ प्रभो ! आप सत्त्वगुणकी खान हैं और सभी जीवोंका कल्याण करनेके लिये उत्सुक हैं। इसीसे आप अपनी शक्तिरूप राजा आदिके द्वारा धर्मके शत्रुओं-का संहार करते हैं; क्योंकि वेदमार्गका उच्छेद आपको अभीष्ट नहीं है । आप त्रिलोकीनाथ और जगत्प्रतिपालक होकर भी ब्राह्मणोंके प्रति इतने नम्र रहते हैं, इससे आपके तेजकी कोई हानि नहीं होती; यह तो आपकी लीलामात्र है ॥ २४ ॥ सर्वेश्वर ! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें वैसा दण्ड दें, अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपट भावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं । अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमींको उचित दण्ड दें; हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है ॥ २५ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुनिगण ! आपने इन्हें जो शाप दिया है—सच जानिये, वह मेरी ही प्रेरणासे हुआ है । अब ये शीघ्र ही दैत्ययोनिको प्राप्त होंगे और वहाँ क्रोधावेशसे बढ़ी हुई एकाग्रताके कारण सुदृढ़ योगसम्पन्न होकर फिर जल्दी ही मेरे पास लौट आयेंगे ॥ २६ ॥

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर उन मुनीश्वरोंने नयनाभिराम भगवान् विष्णु और उनके स्वयंप्रकाश वैकुण्ठ-धामके दर्शन करके प्रभुकी परिक्रमा की और उन्हें प्रणामकर तथा उनकी आज्ञा पा भगवान्‌के ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए प्रमुदित हो वहाँसे लौट गये ।२७-२८। फिर भगवान्‌ने अपने अनुचरोंसे कहा, 'जाओ, मन-में किसी प्रकारका भय मत करो; तुम्हारा कल्याण होगा । मैं सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी ब्रह्मतेजको मिटाना नहीं चाहता; क्योंकि ऐसा ही मुझे अभिमत भी है ॥ २९ ॥ एक बार जब मैं योगनिद्रामें स्थित हो गया था, तब तुमने द्वारमें प्रवेश करती हुई लक्ष्मीजीको रोका था। उस समय उन्होंने क्रुद्ध होकर पहले ही तुम्हें यह शाप दे दिया था ॥ ३० ॥ अब दैत्ययोनिमें मेरे प्रति क्रोधा-कार वृत्ति रहनेसे तुम्हें जो एकाग्रता होगी, उससे तुम इस विप्र-तिरस्कारजनित पापसे मुक्त हो जाओगे और फिर थोड़े ही समयमें मेरे पास लौट आओगे ॥३१॥ द्वारपालोंको इस प्रकार आज्ञा दे, भगवान्‌ने विमानोंकी श्रेणियोंसे सुसज्जित अपने सर्वाधिक श्रीसम्पन्न धाममें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वे देवश्रेष्ठ जय-विजय तो ब्रह्मशाप-के कारण उस अलङ्घनीय भगवद्धाममें ही श्रीहीन हो गये तथा उनका सारा गर्व गलित हो गया ॥ ३३ ॥ पुत्रो ! फिर जब वे वैकुण्ठलोकसे गिरने लगे, तब वहाँ श्रेष्ठ विमानोंपर बैठे हुए वैकुण्ठवासियोंमें महान् हाहाकार मच गया ॥ ३४ ॥ इस समय दितिके गर्भमें स्थित

जो कश्यपजीका उग्र तेज है, उसमें भगवान्‌के उन पार्षदप्रवरोंने ही प्रवेश किया है ॥ ३५ ॥ उन दोनों असुरोंके तेजसे ही तुम सबका तेज फीका पड़ गया है। इस समय भगवान् ऐसा ही करना चाहते हैं ॥ ३६ ॥ जो आदिपुरुष संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण हैं, जिनकी योगमायाको बड़े-बड़े योगिजन भी बड़ी कठिनतासे पार कर पाते हैं—वे सत्त्वादि तीनों गुणोंके नियन्ता श्रीहरि ही हमारा कल्याण करेंगे। अब इस विषयमें हमारे विशेष विचार करनेसे क्या लाभ हो सकता है ॥ ३७ ॥
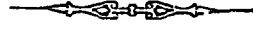
सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका जन्म तथा हिरण्याक्षका दिग्विजय

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! ब्रह्माजीके कहनेसे अन्धकारका कारण जानकर देवताओंकी शङ्का निवृत्त हो गयी और फिर वे सब स्वर्गलोकको लौट आये ॥१॥

इधर दितिको अपने पतिदेवके कथनानुसार पुत्रोंकी ओरसे उपद्रवादिकी आशङ्का बनी रहती थी। इसलिये जब पूरे सौ वर्ष बीत गये, तब उस साध्वीने दो यमज (जुड़वे) पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ उनके जन्म लेते समय स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें अनेकों उत्पात होने लगे—जिनसे लोग अत्यन्त भयभीत हो गये ॥३॥ जहाँ-तहाँ पृथ्वी और पर्वत काँपने लगे, सब दिशाओंमें दाह होने लगा। जगह-जगह उल्कापात होने लगा, बिजलियाँ गिरने लगीं और आकाशमें अनिष्टसूचक धूमकेतु (पुच्छल तारे) दिखायी देने लगे ॥ ४ ॥ बार-बार सायँ-सायँ करती और बड़े-बड़े वृक्षोंको उखाड़ती हुई बड़ी विकट और असह्य वायु चलने लगी। उस समय आँधी उसकी सेना और उड़ती हुई धूल ध्वजाके समान जान पड़ती थी ॥ ५ ॥ बिजली जोर-जोरसे चमककर मानो खिलखिला रही थी। घटाओंने ऐसा सघन रूप धारण किया कि सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंके लुप्त हो जानेसे आकाशमें गहरा अँधेरा छा गया। उस समय कहीं कुछ भी दिखायी न देता था ॥ ६ ॥ समुद्र दुखी मनुष्यकी भाँति कोलाहल करने लगा, उसमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठने लगीं और उसके भीतर रहनेवाले जीवोंमें बड़ी हलचल मच गयी। नदियों तथा अन्य जलाशयोंमें भी बड़ी खलबली मच गयी और उनके कमल सूख गये ॥ ७ ॥ सूर्य और चन्द्रमा बार-बार ग्रसे जाने लगे तथा उनके चारों ओर अमङ्गलसूचक मण्डल बैठने लगे। बिना बादलोंके ही गरजनेका शब्द होने लगा तथा गुफाओंमेंसे रथकी घरघराहटका-सा शब्द निकलने लगा ॥ ८ ॥ गाँवोंमें गीदड़ और उल्लुओंके भयानक शब्दके साथ ही सियारियाँ मुखसे दहकती हुई आग उगलकर बड़ा अमङ्गल शब्द करने लगीं ॥ ९ ॥ जहाँ-तहाँ कुत्ते अपनी गरदन ऊपर उठाकर कभी गाने और कभी रोनेके समान भाँति-भाँतिके शब्द करने लगे ॥ १० ॥ विदुरजी! झुंड-के-झुंड गधे अपने कठोर खुरोंसे पृथ्वी खोदते और रेंकनेका शब्द करते मतवाले होकर इधर-उधर दौड़ने लगे ॥ ११ ॥ पक्षी गधोंके शब्दसे डरकर रोते-चिल्लाते अपने घोंसलोंसे उड़ने लगे। अपनी खिरकोंमें बँधे हुए और वनमें चरते हुए गाय-बैल आदि पशु डरके मारे मल-मूत्र त्यागने लगे ॥ १२ ॥ गौएँ ऐसी डर गयीं कि दुहनेपर उनके थनोंसे खून निकलने लगा, बादल पीबकी वर्षा करने लगे, देवमूर्तियोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे और आँधीके बिना ही वृक्ष उखड़-उखड़कर गिरने लगे ॥ १३ ॥ शनि, राहु आदि क्रूर ग्रह प्रबल होकर चन्द्र, बृहस्पति आदि सौम्य ग्रहों तथा बहुत-से नक्षत्रोंको लाँघकर वक्रगतिसे चलने लगे तथा आपसमें युद्ध करने लगे ॥१४॥ ऐसे ही और भी अनेकों भयङ्कर उत्पात देखकर सनकादिके सिवा और सब जीव भयभीत हो गये तथा उन उत्पातोंका मर्म न जाननेके कारण उन्होंने यही समझा कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है ॥ १५ ॥

वे दोनों आदिदैत्य जन्मके अनन्तर शीघ्र ही अपने फौलादके समान कठोर शरीरोंसे बढ़कर महान् पर्वतोंके सदृश हो गये तथा उनका पूर्व पराक्रम भी प्रकट हो

गया ॥ १६ ॥ वे इतने ऊँचे थे कि उनके सुवर्णमय मुकुटोंका अग्रभाग स्वर्गको स्पर्श करता था और उनके विशाल शरीरोंसे सारी दिशाएँ आच्छादित हो जाती थीं। उनकी भुजाओंमें सोनेके बाजूबंद चमचमा रहे थे। पृथ्वीपर जो वे एक-एक कदम रखते थे, उससे भूकम्प होने लगता था और जब वे खड़े होते थे, तब उनकी जगमगाती हुई चमकीली करधनीसे सुशोभित कमर अपने प्रकाशसे सूर्यको भी मात करती थी ॥ १७ ॥ वे दोनों यमज थे। प्रजापति कश्यपजीने उनका नामकरण किया। उनमेंसे जो उनके वीर्यसे दितिके गर्भमें पहले स्थापित हुआ था, उसका नाम हिरण्यकशिपु रक्खा और जो दितिके उदरसे पहले निकला, वह हिरण्याक्षके नामसे विख्यात हुआ ॥ १८ ॥

हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीके वरसे मृत्युभयसे मुक्त हो जानेके कारण बड़ा उद्धत हो गया था। उसने अपनी भुजाओंके बलसे लोकपालोंके सहित तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया ॥ १९ ॥ वह अपने छोटे भाई हिरण्याक्षको बहुत चाहता था और वह भी सदा अपने बड़े भाईका प्रिय कार्य करता रहता था। एक दिन वह हिरण्याक्ष हाथमें गदा लिये युद्धका अवसर ढूँढ़ता हुआ स्वर्गलोकमें जा पहुँचा ॥ २० ॥ उसका वेग बड़ा असह्य था। उसके पैरोंमें सोनेके नूपुरोंकी झनकार हो रही थी, गलेमें विजयसूचक माला धारण की हुई थी और कंधेपर विशाल गदा रक्खी हुई थी ॥ २१ ॥ उसके मनोबल, शारीरिक बल तथा ब्रह्माजीके वरने उसे मतवाला कर रक्खा था; इसलिये वह सर्वथा निरङ्कुश और निर्भय हो रहा था। उसे देखकर देवतालोग डरके मारे वैसे ही जहाँ-तहाँ छिप गये, जैसे गरुड़के डरसे साँप छिप जाते हैं ॥२२॥ जब दैत्यराज हिरण्याक्षने देखा कि मेरे तेजके सामने बड़े-बड़े गर्वीले इन्द्रादि देवता भी छिप गये हैं, तब उन्हें अपने सामने न देखकर वह बार-बार भयङ्कर गर्जना करने लगा ॥ २३ ॥ फिर वह महाबली दैत्य वहाँसे लौटकर जलक्रीडा करनेके लिये मतवाले हाथीके समान गहरे समुद्रमें घुस गया, जिसमें लहरोंकी बड़ी भयङ्कर गर्जना हो रही थी ॥ २४ ॥ ज्यों ही उसने समुद्रमें पैर रक्खा कि डरके मारे वरुणके सैनिक जलचर जीव हकबका गये और किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न करनेपर भी वे उसकी धाकसे ही घबराकर बहुत दूर भाग गये ॥ २५ ॥ महाबली हिरण्याक्ष अनेक वर्षोंतक समुद्रमें ही घूमता और सामने किसी प्रतिपक्षीको न पाकर बार-बार वायुवेगसे उठी हुई उसकी प्रचण्ड तरङ्गोंपर ही अपनी लोहमयी गदाको आजमाता रहा। इस प्रकार घूमते-घूमते वह वरुणकी राजधानी विभावरीपुरीमें जा पहुँचा ॥ २६ ॥ वहाँ पाताललोकके स्वामी, जलचरोंके अधिपति वरुणजीको देखकर उसने उनकी हँसी उड़ाते हुए नीच मनुष्यकी भाँति प्रणाम किया और कुछ मुसकराते हुए व्यङ्गसे कहा—'महाराज! मुझे युद्धकी भिक्षा दीजिये ॥ २७ ॥ प्रभो! आप तो लोकपालक, राजा और बड़े कीर्तिशाली हैं। जो लोग अपनेको बाँका वीर समझते थे, उनके वीर्यमदको भी आप चूर्ण कर चुके हैं और पहले एक बार आपने संसारके समस्त दैत्य-दानवोंको जीतकर राजसूय-यज्ञ भी किया था' ॥२८॥

उस मदोन्मत्त शत्रुके इस प्रकार बहुत उपहास करनेसे भगवान् वरुणको क्रोध तो बहुत आया, किंतु अपने बुद्धिबलसे वे उसे पी गये और बदलेमें उससे कहने लगे, 'भाई! हमें तो अब युद्धादिका कोई चाव नहीं रह गया है ॥ २९॥ भगवान् पुराणपुरुषके सिवा हमें और कोई ऐसा दीखता भी नहीं, जो तुम-जैसे रणकुशल वीरको युद्धमें सन्तुष्ट कर सके। दैत्यराज! तुम उन्हींके पास जाओ, वे ही तुम्हारी कामना पूरी करेंगे। तुम-जैसे वीर उन्हींका गुणगान किया करते हैं ॥ ३० ॥ वे बड़े वीर हैं। उनके पास पहुँचते ही तुम्हारी सारी शेखी पूरी हो जायगी और तुम कुत्तोंसे घिरकर वीरशय्यापर शयन करोगे। वे तुम-जैसे दुष्टोंको मारने और सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये अनेक प्रकारके रूप धारण किया करते हैं ॥ ३१ ॥

अठारहवाँ अध्याय

हिरण्याक्षके साथ वराहभगवान्‌का युद्ध

श्रीमैत्रेयजीने कहा—तात! वरुणजीकी यह बात सुनकर वह मदोन्मत्त दैत्य बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उनके इस कथनपर कि 'तू उनके हाथसे मारा जायगा' कुछ भी ध्यान नहीं दिया और चट नारदजीसे श्रीहरिका

पता लगाकर रसातलमें पहुँच गया ॥ १ ॥ वहाँ उसने विश्वविजयी वराहभगवान्‌को अपनी दाढ़ोंकी नोकपर पृथ्वीको ऊपरकी ओर ले जाते हुए देखा। वे अपने लाल-लाल चमकीले नेत्रोंसे उसके तेजको हरे लेते थे। उन्हें देखकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, 'अरे! यह जंगली पशु यहाँ जलमें कहाँसे आया' ॥ २ ॥ फिर वराहजीसे कहा, 'अरे नासमझ! इधर आ, इस पृथ्वीको छोड़ दे; इसे विश्वविधाता ब्रह्माजीने हम रसातलवासियोंके हवाले कर दिया है। रे सूकररूपधारी सुराधम! मेरे देखते-देखते तू इसे लेकर कुशलपूर्वक नहीं जा सकता ॥ ३ ॥ तू मायासे लुक-छिपकर ही दैत्योंको जीत लेता और मार डालता है। क्या इसीसे हमारे शत्रुओंने हमारा नाश करानेके लिये तुझे पाला है? मूढ़! तेरा बल तो योगमाया ही है; और कोई पुरुषार्थ तुझमें थोड़े ही है। आज तुझे समाप्तकर मैं अपने बन्धुओंका शोक दूर करूँगा ॥ ४ ॥ जब मेरे हाथसे छूटी हुई गदाके प्रहारसे सिर फट जानेके कारण तू मर जायगा, तब तेरी आराधना करनेवाले जो देवता और ऋषि हैं, वे सब भी जड़ कटे हुए वृक्षोंकी भाँति स्वयं ही नष्ट हो जायँगे' ॥ ५ ॥

हिरण्याक्ष भगवान्‌को दुर्वचन-बाणोंसे छेदे जा रहा था; परन्तु उन्होंने दाँतकी नोकपर स्थित पृथ्वीको भयभीत देखकर वह चोट सह ली तथा जलसे उसी प्रकार बाहर निकल आये, जैसे ग्राहकी चोट खाकर हथिनी-सहित गजराज ॥ ६ ॥ जब उसकी चुनौतीका कोई उत्तर न देकर वे जलसे बाहर आने लगे, तब ग्राह जैसे गजका पीछा करता है, उसी प्रकार पीले केश और तीखी दाढ़ोंवाले उस दैत्यने उनका पीछा किया तथा वज्रके समान कड़ककर वह कहने लगा, 'तुझे भागनेमें लज्जा नहीं आती? सच है, असत् पुरुषोंके लिये कौन-सा काम न करने योग्य है!' ॥ ७ ॥

भगवान्‌ने पृथ्वीको ले जाकर जलके ऊपर व्यवहार-योग्य स्थानमें स्थित कर दिया और उसमें अपनी आधारशक्तिका सञ्चार किया। उस समय हिरण्याक्षके सामने ही ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की और देवताओंने फूल बरसाये ॥ ८ ॥ तब श्रीहरिने बड़ी भारी गदा लिये अपने पीछे आ रहे हिरण्याक्षसे, जो सोनेके आभूषण और अद्भुत कवच धारण किये था तथा अपने कटुवाक्योंसे उन्हें निरन्तर मर्माहत कर रहा था, अत्यन्त क्रोधपूर्वक हँसते हुए कहा ॥ ९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अरे! सचमुच ही हम जंगली जीव हैं, जो तुझ-जैसे ग्राम-सिंहों (कुत्तों) को ढूँढ़ते फिरते हैं। दुष्ट! वीर पुरुष तुझ-जैसे मृत्यु-पाशमें बँधे हुए अभागे जीवोंकी आत्मश्लाघापर ध्यान नहीं देते। १०। हाँ, हम रसातलवासियोंकी धरोहर चुराकर और लज्जा छोड़कर तेरी गदाके भयसे यहाँ भाग आये हैं। हममें ऐसी सामर्थ्य ही कहाँ है कि तेरे-जैसे अद्वितीय वीरके सामने युद्धमें ठहर सकें। फिर भी हम जैसे-तैसे तेरे सामने खड़े हैं; तुझ-जैसे बलवानोंसे वैर बाँधकर हम जा भी कहाँ सकते हैं? ॥ ११ ॥ तू पैदल वीरोंका सरदार है, इसलिये अब निःशङ्क होकर—उधेड़-बुन छोड़कर हमारा अनिष्ट करनेका प्रयत्न कर और हमें मारकर अपने भाई-बन्धुओंके आँसू पोंछ। अब इसमें देर न कर। जो अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह असभ्य है—भले आदमियोंमें बैठनेलायक नहीं है ॥ १२ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! जब भगवान्‌ने रोषसे उस दैत्यका इस प्रकार खूब उपहास और तिरस्कार किया, तब वह पकड़कर खेलाये जाते हुए सर्पके समान क्रोधसे तिलमिला उठा ॥ १३ ॥ वह खीझकर लंबी-लंबी साँसें लेने लगा, उसकी इन्द्रियाँ क्रोधसे क्षुब्ध हो उठीं और उस दुष्ट दैत्यने बड़े वेगसे लपककर भगवान्‌पर गदाका प्रहार किया ॥ १४ ॥ किन्तु भगवान्‌ने अपनी छातीपर चलायी हुई शत्रुकी गदाके प्रहारको कुछ टेढ़े होकर बचा लिया—ठीक वैसे ही, जैसे योगसिद्ध पुरुष मृत्युके आक्रमणसे अपनेको बचा लेता है ॥ १५ ॥ फिर जब वह क्रोधसे होठ चबाता अपनी गदा लेकर बार-बार घुमाने लगा, तब श्रीहरि कुपित होकर बड़े वेगसे उसकी ओर झपटे ॥ १६ ॥ सौम्यस्वभाव विदुरजी! तब प्रभुने शत्रुकी दायीं भौंहपर गदाकी चोट की, किन्तु गदायुद्धमें कुशल हिरण्याक्षने उसे बीचमें ही अपनी

गदापर ले लिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार श्रीहरि और हिरण्याक्ष एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अत्यन्त क्रुद्ध होकर आपसमें अपनी भारी गदाओंसे प्रहार करने लगे ॥ १८ ॥ उस समय उन दोनोंमें ही जीतनेकी होड़ लग गयी, दोनोंके ही अङ्ग गदाओंकी चोटोंसे घायल हो गये थे, अपने अङ्गोंके घावोंसे बहनेवाले रुधिरकी गन्धसे दोनोंका ही क्रोध बढ़ रहा था, और वे दोनों ही तरह-तरहके पैतरे बदल रहे थे। इस प्रकार गौके लिये आपसमें लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान उन दोनोंमें एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ ॥ १९ ॥ विदुरजी ! जब इस प्रकार हिरण्याक्ष और मायासे वराहरूप धारण करनेवाले भगवान् यज्ञमूर्ति पृथ्वीके लिये द्वेष बाँधकर युद्ध करने लगे, तब उसे देखनेके लिये वहाँ ऋषियोंके सहित ब्रह्माजी आये ।२०। वे हजारों ऋषियोंसे घिरे हुए थे। जब उन्होंने देखा कि वह दैत्य बड़ा शूरवीर है, उसमें भयका नाम भी नहीं है, वह मुकाबला करनेमें भी समर्थ है और उसके पराक्रमको चूर्ण करना बड़ा कठिन काम है, तब वे भगवान् आदिसूकररूप नारायणसे इस प्रकार कहने लगे ॥ २१ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देव ! मुझसे वर पाकर यह दुष्ट दैत्य बड़ा प्रबल हो गया है। इस समय यह आपके चरणोंकी शरणमें रहनेवाले देवताओं, ब्राह्मणों, गौओं तथा अन्य निरपराध जीवोंको बहुत ही हानि पहुँचानेवाला, दुःखदायी और भयप्रद हो रहा है। इसकी जोड़का और कोई योद्धा नहीं है, इसलिये यह महाकण्टक अपना मुकाबला करनेवाले वीरकी खोजमें समस्त लोकोंमें घूम रहा है ॥ २२-२३ ॥ यह दुष्ट बड़ा ही मायावी, घमण्डी और निरङ्कुश है। बच्चा जिस प्रकार क्रुद्ध हुए साँपसे खेलता है, वैसे ही आप इससे खिलवाड़ न करें ॥ २४ ॥ देव ! अच्युत ! जबतक यह दारुण दैत्य अपनी बलवृद्धिकी वेलाको पाकर प्रबल हो, उससे पहले-पहले ही आप अपनी योगमायाको स्वीकार करके इस पापीको मार डालिये ॥ २५ ॥ प्रभो ! देखिये, लोकोंका संहार करनेवाली सन्ध्याकी भयङ्कर वेला आना ही चाहती है। सर्वात्मन् ! आप उससे पहले ही इस असुरको मारकर देवताओंको विजय प्रदान कीजिये ॥ २६ ॥ इस समय अभिजित् नामक मङ्गलमय मुहूर्तका भी योग आ गया है। अतः अपने सुहृद् हमलोगोंके कल्याणके लिये शीघ्र ही इस दुर्जय दैत्यसे निपट लीजिये ॥ २७ ॥ प्रभो ! इसकी मृत्यु आपके ही हाथ बदी है। हमलोगोंके बड़े भाग्य हैं कि यह स्वयं ही अपने कालरूप आपके पास आ पहुँचा है। अब आप युद्धमें बलपूर्वक इसे मारकर लोकोंको शान्ति प्रदान कीजिये ॥ २८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

हिरण्याक्षवध

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! ब्रह्माजीके ये कपट-रहित अमृतमय वचन सुनकर भगवान्‌ने उनके भोलेपनपर मुसकराकर अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षके द्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली ॥ १ ॥ फिर उन्होंने झपटकर अपने सामने निर्भय विचरते हुए शत्रुकी ठुड्डीपर गदा मारी। किन्तु हिरण्याक्षकी गदासे टकराकर वह गदा भगवान्‌के हाथसे छूट गयी और चक्कर काटती हुई जमीनपर गिरकर सुशोभित हुई। किंतु यह बड़ी अद्भुत-सी घटना हुई ॥ २-३ ॥ उस समय शत्रुपर वार करनेका अच्छा अवसर पाकर भी हिरण्याक्षने उन्हें निरस्त्र देखकर युद्धधर्मका पालन करते हुए उनपर आक्रमण नहीं किया। उसने भगवान्‌का क्रोध बढ़ानेके लिये ही ऐसा किया था ॥ ४ ॥ गदा गिर जानेपर और लोगोंका हाहाकार बंद हो जानेपर प्रभुने उसकी धर्मबुद्धिकी प्रशंसा की और अपने सुदर्शनचक्रका स्मरण किया ॥५॥

चक्र तुरंत ही उपस्थित होकर भगवान्‌के हाथमें घूमने लगा। किंतु वे अपने प्रमुख पार्षद दैत्याधम हिरण्याक्षके साथ विशेषरूपसे क्रीडा करने लगे। उस समय उनके प्रभावको न जाननेवाले देवताओंके ये विचित्र वचन सुनायी देने लगे—'प्रभो ! आपकी जय

हो; इसे और न खेलाइये, शीघ्र ही मार डालिये ॥ ६ ॥ जब हिरण्याक्षने देखा कि कमल-दल-लोचन श्रीहरि उसके सामने चक्र लिये खड़े हैं, तब उसकी सारी इन्द्रियाँ क्रोधसे तिलमिला उठीं और वह लंबी साँसें लेता हुआ अपने दाँतोंसे होठ चबाने लगा ॥ ७ ॥ उस समय वह तीखी दाढ़ोंवाला दैत्य, अपने नेत्रोंसे इस प्रकार उनकी ओर घूरने लगा। मानो वह भगवान्‌को भस्म कर देगा। उसने उछलकर 'ले, अब तू नहीं बच सकता' इस प्रकार ललकारते हुए श्रीहरिपर गदासे प्रहार किया ॥ ८ ॥ साधुस्वभाव विदुरजी! यज्ञमूर्ति श्रीवराहभगवान्‌ने शत्रुके देखते-देखते लीलासे ही अपने बायें पैरसे उसकी वह वायुके समान वेगवाली गदा पृथ्वीपर गिरा दी और उससे कहा, 'अरे दैत्य! तू मुझे जीतना चाहता है, इसलिये अपना शस्त्र उठा ले और एक बार फिर वार कर।' भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर उसने फिर गदा चलायी और बड़ी भीषण गर्जना करने लगा ॥ ९-१० ॥ गदाको अपनी ओर आते देखकर भगवान्‌ने, जहाँ खड़े थे वहींसे, उसे आते ही अनायास इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे गरुड़ साँपिनको पकड़ ले ॥ ११ ॥

अपने उद्यमको इस प्रकार व्यर्थ हुआ देख उस महादैत्यका घमंड ठंडा पड़ गया और उसका तेज नष्ट हो गया। अबकी बार भगवान्‌के देनेपर उसने उस गदाको लेना न चाहा ॥ १२ ॥ किंतु जिस प्रकार कोई ब्राह्मणके ऊपर निष्फल अभिचार (मारणादि प्रयोग) करे—मूठ आदि चलाये, वैसे ही उसने श्रीयज्ञपुरुषपर प्रहार करनेके लिये एक प्रज्वलित अग्निके समान लपलपाता हुआ त्रिशूल लिया ॥ १३ ॥ महाबली हिरण्याक्षका अत्यन्त वेगसे छोड़ा हुआ वह तेजस्वी त्रिशूल आकाशमें बड़ी तेजीसे चमकने लगा। तब भगवान्‌ने उसे अपनी तीखी धारवाले चक्रसे इस प्रकार काट डाला, जैसे इन्द्रने गरुड़जीके छोड़े हुए तेजस्वी पंखको काट डाला था* ॥ १४ ॥ भगवान्‌के चक्रसे अपने त्रिशूलके बहुत-से टुकड़े हुए देखकर उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने पास आकर उनके विशाल वक्षःस्थलपर, जिसपर श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है, कसकर घूँसा मारा और फिर बड़े जोरसे गरजकर अन्तर्धान हो गया ॥ १५ ॥

विदुरजी! जैसे हाथीपर पुष्पमालाकी चोटका कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार उसके इस प्रकार घूँसा मारनेसे भगवान् आदिवराह तनिक भी टस-से-मस नहीं हुए ॥ १६ ॥ तब वह महामायावी दैत्य मायापति श्रीहरिपर अनेक प्रकारकी मायाओंका प्रयोग करने लगा, जिन्हें देखकर सभी प्रजा बहुत डर गयी और समझने लगी कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है ॥ १७ ॥ बड़ी प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जिसके कारण धूलसे सब ओर अन्धकार छा गया। सब ओरसे पत्थरोंकी वर्षा होने लगी, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो किसी क्षेपणयन्त्र (गुलेल) से फेंके जा रहे हों ॥ १८ ॥ बिजलीकी चमचमाहट और कड़कके साथ बादलोंके घिर आनेसे आकाशमें सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह छिप गये तथा उनसे निरन्तर पीब, केश, रुधिर, विष्ठा, मूत्र और हड्डियोंकी वर्षा होने लगी ॥ १९ ॥ विदुरजी! ऐसे-ऐसे पहाड़ दिखायी देने लगे, जो तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र बरसा रहे थे। हाथमें त्रिशूल लिये बाल खोले नंगी राक्षसियाँ दीखने लगीं ॥ २० ॥ बहुत-से पैदल, घुड़सवार रथी और हाथियोंपर चढ़े हुए सैनिकोंके साथ आततायी यक्ष-राक्षसोंका 'मारो-मारो, काटो-काटो' ऐसा अत्यन्त क्रूर और हिंसामय कोलाहल सुनायी देने लगा ॥ २१ ॥

इस प्रकार प्रकट हुए उस आसुरी माया-जालका नाश करनेके लिये यज्ञमूर्ति भगवान् वराहने अपना प्रिय सुदर्शनचक्र छोड़ा ॥ २२ ॥ उस समय अपने पतिका कथन स्मरण हो आनेसे दितिका हृदय सहसा काँप उठा और उसके स्तनोंसे रक्त बहने लगा ॥ २३ ॥ अपना माया-जाल नष्ट हो जानेपर वह दैत्य फिर भगवान्‌के पास आया। उसने उन्हें क्रोधसे दबाकर चूर-चूर

* एक बार गरुड़जी अपनी माता विनताको सर्पोंकी माता कद्रूके दासीपनेसे मुक्त करनेके लिये देवताओंके पाससे अमृत छीन लाये थे। तब इन्द्रने उनके ऊपर अपना वज्र छोड़ा। इन्द्रका वज्र कभी व्यर्थ नहीं जाता, इसलिये उसका मान रखनेके लिये गरुड़जीने अपना एक पर गिरा दिया। उसे उस वज्रने काट डाला।

करनेकी इच्छासे भुजाओंमें भर लिया, किंतु देखा कि वे तो बाहर ही खड़े हैं ॥ २४ ॥ अब वह भगवान्‌को वज्रके समान कठोर मुक्कोंसे मारने लगा। तब इन्द्रने जैसे वृत्रासुरपर प्रहार किया था, उसी प्रकार भगवान्‌ने उसकी कनपटीपर एक तमाचा मारा ॥ २५ ॥

विश्वविजयी भगवान्‌ने यद्यपि बड़ी उपेक्षासे तमाचा मारा था, तो भी उसकी चोटसे हिरण्याक्षका शरीर घूमने लगा, उसके नेत्र बाहर निकल आये, तथा हाथ-पैर और बाल छिन्न-भिन्न हो गये और वह निष्प्राण होकर आँधीसे उखड़े हुए विशाल वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २६ ॥ हिरण्याक्षका तेज अब भी मलिन नहीं हुआ था। उस कराल दाढ़ोंवाले दैत्यको दाँतोंसे होठ चबाते पृथ्वीपर पड़ा देख वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये हुए ब्रह्मादि देवता उसकी प्रशंसा करने लगे कि 'अहो! ऐसी अलभ्य मृत्यु किसको मिल सकती है ॥ २७ ॥ अपनी मिथ्या उपाधिसे छूटनेके लिये जिनका योगिजन समाधियोगके द्वारा एकान्तमें ध्यान करते हैं, उन्हींके चरण-प्रहारसे उनका मुख देखते-देखते इस दैत्यराजने अपना शरीर त्यागा ॥ २८ ॥ ये हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु भगवान्‌के ही पार्षद हैं। इन्हें शापवश यह अधोगति प्राप्त हुई है। अब कुछ जन्मोंमें ये फिर अपने स्थानपर पहुँच जायँगे' ॥ २९ ॥

देवतालोग कहने लगे—प्रभो! आपको बारंबार नमस्कार है। आप सम्पूर्ण यज्ञोंका विस्तार करनेवाले हैं तथा संसारकी स्थितिके लिये शुद्धसत्त्वमय मङ्गलविग्रह प्रकट करते हैं। बड़े आनन्दकी बात है कि संसारको कष्ट देनेवाला यह दुष्ट दैत्य मारा गया। अब आपके चरणोंकी भक्तिके प्रभावसे हमें भी सुख-शान्ति मिल गयी ॥ ३० ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार महापराक्रमी हिरण्याक्षका वध करके भगवान् आदिवराह अपने अखण्ड आनन्दमय धामको पधार गये। उस समय ब्रह्मादि देवता उनकी स्तुति कर रहे थे ॥ ३१ ॥ भगवान् अवतार लेकर जैसी लीलाएँ करते हैं और जिस प्रकार उन्होंने भीषण संग्राममें खिलौनेकी भाँति महापराक्रमी हिरण्याक्षका वध कर डाला, मित्र विदुरजी! वह सब चरित जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना था, तुम्हें सुना दिया ॥ ३२ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! मैत्रेयजीके मुखसे भगवान्‌की यह कथा सुनकर परम भागवत विदुरजीको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ३३ ॥ जब अन्य पवित्रकीर्ति और परम यशस्वी महापुरुषोंका चरित्र सुननेसे ही बड़ा आनन्द होता है, तब श्रीवत्सधारी भगवान्‌की ललित-ललाम लीलाओंकी तो बात ही क्या है ॥ ३४ ॥ जिस समय ग्राहके पकड़नेपर गजराज प्रभुके चरणोंका ध्यान करने लगे और उनकी हथिनियाँ दुःखसे चिग्घाड़ने लगीं, उस समय जिन्होंने उन्हें तत्काल दुःखसे छुड़ाया और जो सब ओरसे निराश होकर अपनी शरणमें आये हुए सरलहृदय भक्तोंसे सहजमें ही प्रसन्न हो जाते हैं किंतु दुष्ट पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुराराध्य हैं—उनपर जल्दी प्रसन्न नहीं होते, उन प्रभुके उपकारोंको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो उनका सेवन न करेगा? ॥ ३५-३६ ॥ शौनकादि ऋषियो! पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहरूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी इस हिरण्याक्ष-वध नामक परम अद्भुत लीलाको जो पुरुष सुनता, गाता अथवा अनुमोदन करता है, वह ब्रह्महत्या-जैसे घोर पापसे भी सहजमें ही छूट जाता है ॥ ३७ ॥ यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्रद, परम पवित्र, धन और यशकी प्राप्ति करानेवाला, आयुवर्द्धक और कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा युद्धमें प्राण और इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ानेवाला है। जो लोग इसे सुनते हैं, उन्हें अन्तमें श्रीभगवान्‌का आश्रय प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी रची हुई अनेक प्रकारकी सृष्टिका वर्णन

शौनकजी कहते हैं—सूतजी! पृथ्वीरूप आधार पाकर स्वायम्भुव मनुने आगे होनेवाली सन्ततिको उत्पन्न करनेके लिये किन-किन उपायोंका अवलम्बन किया? ॥ १ ॥ विदुरजी बड़े ही भगवद्भक्त और

भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य सुहृद् थे। इसीलिये उन्होंने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको, उनके पुत्र दुर्योधनके सहित, भगवान् श्रीकृष्णका अनादर करनेके कारण अपराधी समझकर त्याग दिया था ॥ २ ॥ वे महर्षि द्वैपायनके पुत्र थे और महिमामें उनसे किसी प्रकार कम नहीं थे, तथा सब प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित और कृष्णभक्तोंके अनुगामी थे ॥ ३ ॥ तीर्थसेवनसे उनका अन्तःकरण और भी शुद्ध हो गया था। उन्होंने कुशावर्तक्षेत्र (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेयजीके पास जाकर और क्या पूछा ? ॥ ४ ॥ सूतजी ! उन दोनोंमें वार्तालाप होनेपर श्रीहरिके चरणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली बड़ी पवित्र कथाएँ हुई होंगी, जो उन्हीं चरणोंसे निकले हुए गङ्गाजलके समान सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली होंगी ॥ ५ ॥ सूतजी ! आपका मङ्गल हो, आप हमें भगवान्की वे पवित्र कथाएँ सुनाइये। प्रभुके उदार चरित्र तो कीर्तन करने योग्य होते हैं। भला, ऐसा कौन रसिक होगा, जो श्रीहरिके लीलामृतका पान करते-करते तृप्त हो जाय ॥ ६ ॥

नैमिषारण्यवासी मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर उग्रश्रवा सूतजीने भगवान्में चित्त लगाकर उनसे कहा 'सुनिये' ॥ ७ ॥

सूतजीने कहा—मुनिगण ! अपनी मायासे वराहरूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी रसातलसे पृथ्वीको निकालने और खेलमें ही तिरस्कारपूर्वक हिरण्याक्षको मार डालनेकी लीला सुनकर विदुरजीको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने मुनिवर मैत्रेयजीसे कहा ॥ ८ ॥

विदुरजीने कहा—ब्रह्मन् ! आप परोक्ष विषयोंको भी जाननेवाले हैं; अतः यह बतलाइये कि प्रजापतियोंके पति श्रीब्रह्माजीने मरीचि आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न करके फिर सृष्टिको बढ़ानेके लिये क्या किया ॥ ९ ॥ मरीचि आदि मुनीश्वरोंने और स्वायम्भुव मनुने भी ब्रह्माजीकी आज्ञासे किस प्रकार प्रजाकी वृद्धि की ? ॥ १० ॥ क्या उन्होंने इस जगत्को पत्नियोंके सहयोगसे उत्पन्न किया या अपने-अपने कार्यमें स्वतन्त्र रहकर, अथवा सबने एक साथ मिलकर इस जगत्की रचना की ? ॥ ११ ॥

मैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! जिसकी गतिको जानना अत्यन्त कठिन है—उस जीवोंके प्रारब्ध, प्रकृतिके नियन्ता पुरुष और काल—इन तीन हेतुओंसे तथा भगवान्की सन्निधिसे त्रिगुणमय प्रकृतिमें क्षोभ होनेपर उससे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ दैवकी प्रेरणासे रजःप्रधान महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), राजस और तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न हुआ। उसने आकाशादि पाँच-पाँच तत्त्वोंके अनेक वर्ग* प्रकट किये ॥ १३ ॥ वे सब अलग-अलग रहकर भूतोंके कार्यरूप ब्रह्माण्डकी रचना नहीं कर सकते थे; इसलिये उन्होंने भगवान्की शक्तिसे परस्पर संगठित होकर एक सुवर्णवर्ण अण्डकी रचना की ॥ १४ ॥ वह अण्ड चेतनाशून्य अवस्थामें एक हजार वर्षोंसे भी अधिक समयतक कारणाब्धिके जलमें पड़ा रहा। फिर उसमें श्रीभगवान्ने प्रवेश किया ॥ १५ ॥ उसमें अधिष्ठित होनेपर उनकी नाभिसे सहस्र सूर्योंके समान अत्यन्त देदीप्यमान एक कमल प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण जीव-समुदायका आश्रय था। उसीसे स्वयं ब्रह्माजीका भी आविर्भाव हुआ ॥ १६ ॥

जब ब्रह्माण्डके गर्भरूप जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणदेवने ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, तब वे पूर्वकल्पोंमें अपने ही द्वारा निश्चित की हुई नाम-रूपमयी व्यवस्थाके अनुसार लोकोंकी रचना करने लगे ॥ १७ ॥ सबसे पहले उन्होंने अपनी छायासे तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह—यों पाँच प्रकारकी अविद्या उत्पन्न की ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीको अपना वह तमोमय शरीर अच्छा नहीं लगा, अतः उन्होंने उसे त्याग दिया। तब, जिससे भूख-प्यासकी उत्पत्ति होती है—ऐसे रात्रिरूप उस शरीरको उसीसे उत्पन्न हुए यक्ष और राक्षसोंने ग्रहण कर लिया ॥ १९ ॥ उस समय भूख-प्याससे अभिभूत होकर वे ब्रह्माजीको खानेको दौड़ पड़े और कहने लगे—'इसे खा जाओ, इसकी रक्षा मत करो' क्योंकि वे भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे थे ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने घबराकर उनसे कहा, अरे यक्ष-राक्षसो ! तुम मेरी सन्तान हो; इसलिये मुझे भक्षण मत करो, मेरी रक्षा करो ।' (उनमेंसे जिन्होंने

* पञ्च तन्मात्र, पञ्च महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और उनके पाँच-पाँच देवता इन्हीं छः वर्गोंका यहाँ संकेत समझना चाहिये ।

कहा 'खा जाओ', वे यक्ष हुए और जिन्होंने कहा 'रक्षा मत करो', वे राक्षस कहलाये) ॥ २१ ॥

फिर ब्रह्माजीने सात्त्विकी प्रभासे देदीप्यमान होकर मुख्य-मुख्य देवताओंकी रचना की। उन्होंने क्रीड़ा करते हुए, ब्रह्माजीके त्यागनेपर, उनका वह दिनरूप प्रकाशमय शरीर ग्रहण कर लिया ॥ २२ ॥ इसके पश्चात् ब्रह्माजीने अपने जघनदेशसे कामासक्त असुरोंको उत्पन्न किया। वे अत्यन्त कामलोलुप होनेके कारण उत्पन्न होते ही मैथुनके लिये ब्रह्माजीकी ओर चले ॥ २३ ॥ यह देखकर पहले तो वे हँसे; किन्तु फिर उन निर्लज्ज असुरोंको अपने पीछे लगा देख भयभीत और क्रोधित होकर बड़े जोरसे भागे ॥ २४ ॥ तब उन्होंने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी भावनाके अनुसार दर्शन देनेवाले, शरणागतवत्सल वरदायक श्रीहरिके पास जाकर कहा—॥ २५ ॥ 'परमात्मन्! मेरी रक्षा कीजिये; मैंने तो आपकी ही आज्ञासे प्रजा उत्पन्न की थी, किंतु यह तो पापमें प्रवृत्त होकर मुझको ही तंग करने चली है ॥ २६ ॥ नाथ! एकमात्र आप ही दुखी जीवोंका दुःख दूर करनेवाले हैं और जो आपकी चरण-शरणमें नहीं आते, उन्हें दुःख देनेवाले भी एकमात्र आप ही हैं ॥ २७ ॥

प्रभु तो प्रत्यक्षवत् सबके हृदयकी जाननेवाले हैं। उन्होंने ब्रह्माजीकी आतुरता देखकर कहा, 'तुम अपने इस कामकलुषित शरीरको त्याग दो।' भगवान्‌के यों कहते ही उन्होंने वह शरीर भी छोड़ दिया ॥ २८ ॥

(ब्रह्माजीका छोड़ा हुआ वह शरीर एक सुन्दरी स्त्री—सन्ध्यादेवी—के रूपमें परिणत हो गया।) उसके चरणकमलोंके पायजेब झङ्कृत हो रहे थे। उसकी आँखें मतवाली हो रही थीं और कमर करधनीकी लड़ोंसे सुशोभित सजीली साड़ीसे ढकी हुई थी ॥ २९ ॥ उसके उभरे हुए स्तन इस प्रकार एक-दूसरेसे सटे हुए थे कि उनके बीचमें कोई अन्तर ही नहीं रह गया था। उसकी नासिका और दन्तावली बड़ी ही सुघड़ थी तथा वह मधुर-मधुर मुसकराती हुई असुरोंकी ओर हाव-भावपूर्ण दृष्टिसे देख रही थी ॥ ३० ॥ वह नीली-नीली अलकावलीसे सुशोभित सुकुमारी मानो लज्जाके मारे अपने अञ्चलमें ही सिमिटी जाती थी। विदुरजी! उस सुन्दरीको देखकर सब-के-सब असुर मोहित हो गये ॥ ३१ ॥ 'अहो! इसका कैसा विचित्र रूप, कैसा अलौकिक धैर्य और कैसी नयी अवस्था है। देखो, हम कामपीड़ितोंके बीचमें यह कैसी बेपरवाह-सी विचर रही है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार उन कुबुद्धि दैत्योंने स्त्रीरूपिणी सन्ध्याके विषयमें तरह-तरहके तर्क-वितर्क करके फिर उसका बहुत आदर करते हुए प्रेमपूर्वक पूछा—॥ ३३ ॥ 'सुन्दरि! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? भामिनि! यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है? तुम अपने अनूप रूपका यह बेमोल सौदा दिखाकर हम अभागोंको क्यों तरसा रही हो ॥ ३४ ॥ अबले! तुम कोई भी क्यों न हो, हमें तुम्हारा दर्शन हुआ—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। तुम अपनी गेंद उछाल-उछालकर तो हम दर्शकोंके मनको मथे डालती हो ॥ ३५ ॥ सुन्दरि! जब तुम उछलती हुई गेंदपर अपनी हथेलीकी थपकी मारती हो, तब तुम्हारा चरण-कमल एक जगह नहीं ठहरता; तुम्हारा कटिप्रदेश स्थूल स्तनोंके भारसे थक-सा जाता है और तुम्हारी निर्मल दृष्टिसे भी थकावट झलकने लगती है। अहो! तुम्हारा केशपाश कैसा सुन्दर है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार स्त्रीरूपसे प्रकट हुई उस सायङ्कालीन सन्ध्याने उन्हें अत्यन्त कामासक्त कर दिया और उन मूढ़ोंने उसे कोई रमणीरत्न समझकर ग्रहण कर लिया ॥ ३७ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने गम्भीर भावसे हँसकर अपनी कान्तिमयी मूर्तिसे, जो अपने सौन्दर्यका मानो आप ही आस्वादन करती थी, गन्धर्व और अप्सराओंको उत्पन्न किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने ज्योत्स्ना (चन्द्रिका)-रूप अपने उस कान्तिमय प्रिय शरीरको त्याग दिया। उसीको विश्वावसु आदि गन्धर्वोंने प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया ॥ ३९ ॥

इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी तन्द्रासे भूत-पिशाच उत्पन्न किये। उन्हें दिगम्बर (वस्त्रहीन) और बाल बिखेरे देख उन्होंने आँखें मूँद लीं ॥ ४० ॥ ब्रह्माजीके त्यागे हुए उस जँभाईरूप शरीरको भूत-पिशाचोंने ग्रहण किया। इसीको निद्रा भी कहते हैं, जिससे जीवोंकी इन्द्रियोंमें शिथिलता आती देखी जाती है। यदि कोई मनुष्य जूठे मुँह सो जाता है तो उसपर

भूत-पिशाचादि आक्रमण करते हैं; उसीको उन्माद कहते हैं ॥ ४१ ॥

फिर भगवान् ब्रह्माने भावना की कि मैं तेजोमय हूँ और अपने अदृश्य रूपसे साध्यगण एवं पितृगणको उत्पन्न किया ॥ ४२ ॥ पितरोंने अपनी उत्पत्तिके स्थान उस अदृश्य शरीरको ग्रहण कर लिया । इसीको लक्ष्यमें रखकर पण्डितजन श्राद्धादिके द्वारा पितर और साध्यगणको क्रमशः कव्य (पिण्ड) और हव्य अर्पण करते हैं ॥ ४३ ॥

अपनी तिरोधानशक्तिसे ब्रह्माजीने सिद्ध और विद्याधरोंकी सृष्टि की और उन्हें अपना वह अन्तर्धाननामक अद्भुत शरीर दिया ॥ ४४ ॥ एक बार ब्रह्माजीने अपना प्रतिबिम्ब देखा । तब अपनेको बहुत सुन्दर मानकर उस प्रतिबिम्बसे किन्नर और किम्पुरुष उत्पन्न किये ॥ ४५ ॥ उन्होंने ब्रह्माजीके त्याग देनेपर उनका वह प्रतिबिम्ब-शरीर ग्रहण किया । इसीलिये ये सब उषःकालमें अपनी पत्नियोंके साथ मिलकर ब्रह्माजीके गुण-कर्मादिका गान किया करते हैं ॥ ४६ ॥

एक बार ब्रह्माजी सृष्टिकी वृद्धि न होनेके कारण बहुत चिन्तित होकर हाथ-पैर आदि अवयवोंको फैलाकर लेट गये और फिर क्रोधवश उस भोगमय शरीरको त्याग दिया ॥ ४७ ॥ उससे जो बाल झड़कर गिरे, वे अहि हुए तथा उसके हाथ-पैर सिकोड़कर चलनेसे क्रूरस्वभाव सर्प और नाग हुए, जिनका शरीर फणरूपसे कंधेके पास बहुत फैला होता है ॥ ४८ ॥

एक बार ब्रह्माजीने अपनेको कृतकृत्य-सा अनुभव किया । उस समय अन्तमें उन्होंने अपने मनसे मनुओंकी सृष्टि की । ये सब प्रजाकी वृद्धि करनेवाले हैं ॥४९॥ मनस्वी ब्रह्माजीने उनके लिये अपना पुरुषाकार शरीर त्याग दिया । मनुओंको देखकर उनसे पहले उत्पन्न हुए देवता-गन्धर्वादि ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे ॥५०॥ वे बोले, 'विश्वकर्ता ब्रह्माजी ! आपकी यह (मनुओंकी) सृष्टि बड़ी ही सुन्दर है । इसमें अग्निहोत्र आदि सभी कर्म प्रतिष्ठित हैं । इसकी सहायतासे हम भी अपना अन्न (हविर्भाग) ग्रहण कर सकेंगे' ॥ ५१ ॥

फिर आदिऋषि ब्रह्माजीने इन्द्रियसंयमपूर्वक तप, विद्या, योग और समाधिसे सम्पन्न हो अपनी प्रिय सन्तान ऋषिगणकी रचना की और उनमेंसे प्रत्येकको अपने समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या और वैराग्यमय शरीरका अंश दिया ॥ ५२-५३ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कर्दमजीकी तपस्या और भगवान्‌का वरदान

विदुरजीने पूछा—भगवन् ! स्वायम्भुव मनुका वंश बड़ा आदरणीय माना गया है । उसमें मैथुनधर्मके द्वारा प्रजाकी वृद्धि हुई थी । अब आप मुझे उसीकी कथा सुनाइये ॥ १ ॥ ब्रह्मन् ! आपने कहा था कि स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादने सातों द्वीप पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया था तथा उनकी पुत्री, जो देवहूति नामसे विख्यात थी, कर्दमप्रजापतिको व्याही गयी थी ॥ २-३ ॥ देवहूति योगके लक्षण यमादिसे सम्पन्न थी, उससे महायोगी कर्दमजीने कितनी सन्तानें उत्पन्न कीं ? वह सब प्रसङ्ग आप मुझे सुनाइये, मुझे उसके सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥ ४ ॥ इसी प्रकार भगवान् रुचि और ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने भी मनुजीकी कन्याओंका पाणिग्रहण करके उनसे किस प्रकार क्या-क्या सन्तान उत्पन्न की, यह सब चरित भी मुझे सुनाइये ॥ ५ ॥

मैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! जब ब्रह्माजीने भगवान् कर्दमको आज्ञा दी कि तुम संतानकी उत्पत्ति करो तो उन्होंने दस हजार वर्षोंतक सरस्वती नदीके तीरपर तपस्या की ॥ ६ ॥ वे एकाग्र चित्तसे प्रेमपूर्वक पूजनोपचारद्वारा शरणागतवरदायक श्रीहरिकी आराधना करने लगे ॥ ७ ॥ तब सत्ययुगके आरम्भमें कमलनयन भगवान् श्रीहरिने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्हें अपने शब्दब्रह्ममय स्वरूपसे मूर्तिमान् होकर दर्शन दिये ॥ ८ ॥

भगवान्‌की वह भव्य मूर्ति सूर्यके समान तेजोमयी थी । वे गलेमें श्वेत कमल और कुमुदके फूलोंकी

माला धारण किये हुए थे, मुखकमल नीली और चिकनी अलकावलीसे सुशोभित था। वे निर्मल वस्त्र धारण किये हुए थे ॥ ९ ॥ सिरपर झिलमिलाता हुआ सुवर्णमय मुकुट, कानोंमें जगमगाते हुए कुण्डल और कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध विराजमान थे। उनके एक हाथमें क्रीडाके लिये श्वेत कमल सुशोभित था। प्रभुकी मधुर मुसकानभरी चितवन चित्तको चुराये लेती थी ॥ १० ॥ उनके चरणकमल गरुड़जीके कंधोंपर विराजमान थे तथा वक्षःस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थीं। प्रभुकी इस आकाश-स्थित मनोहर मूर्तिका दर्शन करके कर्दमजीको बड़ा हर्ष हुआ, मानो उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। उन्होंने सानन्द हृदयसे पृथ्वीपर सिर टेककर भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर प्रेमप्रवण चित्तसे हाथ जोड़कर सुमधुर वाणीमें वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११-१२ ॥

कर्दमजीने कहा—स्तुति करनेयोग्य परमेश्वर! आप सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आधार हैं। योगिजन उत्तरोत्तर शुभ योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें योगस्थ होनेपर आपके दर्शनोंकी इच्छा करते हैं; आज आपका वही दर्शन पाकर हमें नेत्रोंका फल मिल गया ॥ १३ ॥ आपके चरणकमल भवसागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। जिनकी बुद्धि आपकी मायासे मारी गयी है, वे ही उन तुच्छ क्षणिक विषय-सुखोंके लिये, जो नरकमें भी मिल सकते हैं, उन चरणोंका आश्रय लेते हैं; किंतु स्वामिन्! आप तो उन्हें वे विषय-भोग भी दे देते हैं ॥ १४ ॥ प्रभो! आप कल्पवृक्ष हैं। आपके चरण समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। मेरा हृदय काम-कलुषित है। मैं भी अपने अनुरूप स्वभाववाली और गृहस्थधर्मके पालनमें सहायक शीलवती कन्यासे विवाह करनेके लिये आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ ॥ १५ ॥ सर्वेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति हैं। नाना प्रकारकी कामनाओंमें फँसा हुआ यह लोक आपकी वेद-वाणीरूप डोरीमें बँधा है। धर्ममूर्ते! उसीका अनुगमन करता हुआ मैं भी कालरूप आपको आज्ञा-पालनरूप पूजोपहारादि समर्पण करता हूँ ॥ १६ ॥

प्रभो! आपके भक्त विषयासक्त लोगों और उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले मुझ-जैसे कर्मजड पशुओंको कुछ भी न गिनकर आपके चरणोंकी छत्रछायाका ही आश्रय लेते हैं तथा परस्पर आपके गुणगानरूप मादक सुधाका ही पान करके अपने क्षुधा-पिपासादि देहधर्मोंको शान्त करते रहते हैं ॥ १७ ॥ प्रभो! यह कालचक्र बड़ा प्रबल है। साक्षात् ब्रह्म ही इसके घूमनेकी धुरी है, अधिक माससहित तेरह महीने अरे हैं, तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं, छः ऋतुएँ नेमि (हाल) हैं, अनन्त क्षण-पल आदि इसमें पत्राकार धाराएँ हैं तथा तीन चातुर्मास्य इसके आधारभूत नाभि हैं। यह अत्यन्त वेगवान् संवत्सररूप कालचक्र चराचर जगत्की आयुका छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किंतु आपके भक्तोंकी आयुका ह्रास नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ भगवन्! जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही जालेको फैलाती, उसकी रक्षा करती और अन्तमें उसे निगल जाती है—उसी प्रकार आप अकेले ही जगत्की रचना करनेके लिये अपनेसे अभिन्न अपनी योगमायाको स्वीकारकर उससे अभिव्यक्त हुई अपनी सत्त्वादि शक्तियोंद्वारा स्वयं ही इस जगत्की रचना, पालन और संहार करते हैं ॥ १९ ॥ प्रभो! इस समय आपने हमें अपनी तुलसीमालामण्डित, मायासे परिच्छिन्न-सी दिखायी देनेवाली सगुणमूर्तिसे दर्शन दिया है। आप हम भक्तोंको जो शब्दादि विषय-सुख प्रदान करते हैं, वे मायिक होनेके कारण यद्यपि आपको पसंद नहीं हैं, तथापि परिणाममें हमारा शुभ करनेके लिये वे हमें प्राप्त हों— ॥ २० ॥

नाथ! आप स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे संसारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोड़ी-सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त अभिलषित वस्तुओंकी वर्षा करते रहते हैं। आपके चरणकमल वन्दनीय हैं, मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्की भौंहें प्रणय-मुसकानभरी चितवनसे चञ्चल हो रही थीं, वे गरुड़जीके कंधेपर विराजमान थे। जब कर्दमजीने इस प्रकार निष्कपटभावसे उनकी स्तुति की तब वे उनसे अमृतमयी वाणीसे कहने लगे ॥ २२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जिसके लिये तुमने आत्म-संयमादिके द्वारा मेरी आराधना की है, तुम्हारे हृदयके

उस भावको जानकर मैंने पहलेसे ही उसकी व्यवस्था कर दी है ॥ २३ ॥ प्रजापते ! मेरी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती; फिर जिनका चित्त निरन्तर एकान्तरूपसे मुझमें ही लगा रहता है, उन तुम-जैसे महात्माओंके द्वारा की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है ॥ २४ ॥ प्रसिद्ध यशस्वी सम्राट् स्वायम्भुव मनु ब्रह्मावर्तमें रहकर सात समुद्रवाली सारी पृथ्वीका शासन करते हैं ॥ २५ ॥ विप्रवर ! वे परम धर्मज्ञ महाराज महारानी शतरूपाके साथ तुमसे मिलनेके लिये परसों यहाँ आयेंगे ॥ २६ ॥ उनकी एक रूप-यौवन, शील और गुणोंसे सम्पन्न श्यामलोचना कन्या इस समय विवाहके योग्य है । प्रजापते! तुम सर्वथा उसके योग्य हो, इसलिये वे तुम्हींको वह कन्या अर्पण करेंगे ॥ २७ ॥ ब्रह्मन् ! गत अनेकों वर्षोंसे तुम्हारा चित्त जैसी भार्याके लिये समाहित रहा है, अब शीघ्र ही वह राजकन्या तुम्हारी वैसी ही पत्नी होकर यथेष्ट सेवा करेगी ॥ २८ ॥ वह तुम्हारा वीर्य अपने गर्भमें धारणकर उससे नौ कन्याएँ उत्पन्न करेगी और फिर तुम्हारी उन कन्याओंसे लोकरीतिके अनुसार मरीचि आदि ऋषिगण पुत्र उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुम भी मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे शुद्धचित्त हो, फिर अपने सब कर्मोंका फल मुझे अर्पणकर मुझको ही प्राप्त होओगे ॥ ३० ॥ जीवोंपर दया करते हुए तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे और फिर सबको अभयदान दे अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को मुझमें और मुझको अपनेमें स्थित देखोगे ॥ ३१ ॥ महामुने ! मैं भी अपने अंश-कला-रूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भमें अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा ॥ ३२ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! कर्दमऋषिसे इस प्रकार सम्भाषण करके, इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेपर प्रकट होनेवाले श्रीहरि सरस्वती नदीसे घिरे हुए बिन्दुसर-तीर्थसे (जहाँ कर्दमऋषि तप कर रहे थे) अपने लोकको चले गये ॥ ३३ ॥ भगवान्के सिद्ध-मार्ग (वैकुण्ठमार्ग) की सभी सिद्धेश्वर प्रशंसा करते हैं । वे कर्दमजीके देखते-देखते अपने लोकको सिधार गये । उस समय गरुड़जीके पक्षोंसे जो सामकी आधारभूता ऋचाएँ निकल रही थीं, उन्हें वे सुनते जाते थे ॥ ३४ ॥

विदुरजी ! श्रीहरिके चले जानेपर भगवान् कर्दम उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु-सरोवरपर ही ठहरे रहे ॥ ३५ ॥ वीरवर ! इधर मनुजी भी महारानी शतरूपाके साथ सुवर्णजटित रथपर सवार होकर तथा उसपर अपनी कन्याको भी बिठाकर पृथ्वीपर विचरते हुए, जो दिन भगवान्ने बताया था, उसी दिन शान्तिपरायण महर्षि कर्दमके उस आश्रमपर पहुँचे ॥ ३६-३७ ॥ सरस्वतीके जलसे भरा हुआ यह बिन्दुसरोवर वह स्थान है, जहाँ अपने शरणागत भक्त कर्दमके प्रति उत्पन्न हुई अत्यन्त करुणाके वशीभूत हुए भगवान्के नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरी थीं । यह तीर्थ बड़ा पवित्र है, इसका जल कल्याणमय और अमृतके समान मधुर है तथा महर्षिगण सदा इसका सेवन करते हैं ॥ ३८-३९ ॥ उस समय बिन्दु-सरोवर पवित्र वृक्ष-लताओंसे घिरा हुआ था, जिनमें तरह-तरहकी बोली बोलनेवाले पवित्र मृग और पक्षी रहते थे, वह स्थान सभी ऋतुओंके फल और फूलोंसे सम्पन्न था और सुन्दर वनश्रेणी भी उसकी शोभा बढ़ाती थी ॥ ४० ॥ वहाँ झुंड-के-झुंड मतवाले पक्षी चहक रहे थे, मतवाले भौंरे मँडरा रहे थे, उन्मत्त मयूर अपने पिच्छ फैला-फैलाकर नटकी भाँति नृत्य कर रहे थे और मतवाले कोकिल कुहू-कुहू करके मानो एक दूसरेको बुला रहे थे ॥ ४१ ॥ वह आश्रम कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार, कुटज और नये-नये आमके वृक्षोंसे अलंकृत था ॥ ४२ ॥ वहाँ जलकाग, बत्तख आदि जलपर तैरनेवाले पक्षी हंस, कुरर, जलमुर्ग, सारस, चकवा और चकोर मधुर स्वरसे कलरव कर रहे थे ॥ ४३ ॥ हरिन, सूअर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरीमृग आदि पशुओंसे भी वह आश्रम घिरा हुआ था ॥ ४४ ॥

आदिराज महाराज मनुने उस उत्तम तीर्थमें कन्याके सहित पहुँचकर देखा कि मुनिवर कर्दम अग्निहोत्रसे निवृत्त होकर बैठे हुए हैं ॥ ४५ ॥ बहुत दिनोंतक

उग्र तपस्या करनेके कारण वे शरीरसे बड़े तेजस्वी दीख पड़ते थे तथा भगवान्‌के स्नेहपूर्ण चितवनके दर्शन और उनके उच्चारण किये हुए कर्णामृतरूप सुमधुर वचनोंको सुननेसे, इतने दिनोंतक तपस्या करनेपर भी वे विशेष दुर्बल नहीं जान पड़ते थे ॥ ४६ ॥ उनका शरीर लंबा था, नेत्र कमलदलके समान विशाल और मनोहर थे, सिरपर जटाएँ सुशोभित थीं और कमरमें चीर-वस्त्र थे। वे निकटसे देखनेपर बिना सानपर चढ़ी हुई महामूल्य मणिके समान मलिन जान पड़ते थे ॥ ४७ ॥ महाराज स्वायम्भुवमनुको अपनी कुटीमें आकर प्रणाम करते देख उन्होंने उन्हें आशीर्वादसे प्रसन्न किया और यथोचित आतिथ्यकी रीतिसे उनका स्वागत-सत्कार किया ॥ ४८ ॥

जब मनुजी उनकी पूजा ग्रहण कर स्वस्थचित्तसे आसनपर बैठ गये, तब मुनिवर कर्दमने भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर उन्हें मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहा ॥ ४९ ॥ 'देव ! आप भगवान् विष्णुकी पालनशक्तिरूप हैं, इसलिये आपका घूमना-फिरना निःसन्देह सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके संहारके लिये ही होता है ॥ ५० ॥ आप साक्षात् विशुद्ध विष्णुस्वरूप हैं तथा भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म और वरुण आदि रूप धारण करते हैं; आपको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ आप मणियोंसे जड़े हुए जयदायक रथपर सवार हो, अपने प्रचण्ड धनुषकी टङ्कार करते हुए उस रथकी घरघराहटसे ही पापियोंको भयभीत कर देते हैं और अपनी सेनाके चरणोंसे रौंदे हुए भूमण्डलको कँपाते अपनी उस विशाल सेनाको साथ लेकर पृथ्वीपर सूर्यके समान विचरते हैं। यदि आप ऐसा न करें तो चोर-डाकू भगवान्‌की बनायी हुई वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाको तत्काल नष्ट कर दें तथा विषयलोलुप निरङ्कुश मानवोंद्वारा सर्वत्र अधर्म फैल जाय। यदि आप संसारकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक दुराचारियोंके पंजेमें पड़कर नष्ट हो जाय ॥५२-५५॥ तो भी वीरवर ! मैं आपसे पूछता हूँ कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजनसे हुआ है; मेरे लिये जो आज्ञा होगी, उसे मैं निष्कपट भावसे सहर्ष स्वीकार करूँगा ॥ ५६ ॥

बाईसवाँ अध्याय

देवहूतिके साथ कर्दम प्रजापतिका विवाह

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार जब कर्दमजीने मनुजीके सम्पूर्ण गुणों और कर्मोंकी श्रेष्ठताका वर्णन किया, तो उन्होंने उन निवृत्तिपरायण मुनिसे कुछ सकुचाकर कहा ॥ १ ॥

मनुजीने कहा—मुने ! वेदमूर्ति भगवान् ब्रह्माने अपने वेदमय विग्रहकी रक्षाके लिये तप, विद्या और योगसे सम्पन्न तथा विषयोंमें अनासक्त आप ब्राह्मणोंको अपने मुखसे प्रकट किया है और फिर उन सहस्र चरणोंवाले विराट् पुरुषने आप लोगोंकी रक्षाके लिये ही अपनी सहस्रों भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है। इस प्रकार ब्राह्मण उनके हृदय और क्षत्रिय शरीर कहलाते हैं ॥२-३॥ अतः एक ही शरीरसे सम्बद्ध होनेके कारण अपनी-अपनी और एक दूसरेकी रक्षा करनेवाले उन ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी वास्तवमें श्रीहरि ही रक्षा करते हैं, जो समस्त कार्य-कारणरूप होकर भी वास्तवमें निर्विकार हैं ॥४॥ आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे सारे सन्देह दूर हो गये, क्योंकि आपने मेरी प्रशंसाके मिससे स्वयं ही प्रजापालनकी इच्छावाले राजाके धर्मोंका बड़े प्रेमसे निरूपण किया है ॥५॥ आपका दर्शन अजितेन्द्रिय पुरुषोंको बहुत दुर्लभ है; मेरा बड़ा भाग्य है, जो मुझे आपका दर्शन हुआ और मैं आपके चरणोंकी मङ्गलमयी रज अपने सिरपर चढ़ा सका ॥६॥ मेरे भाग्योदयसे ही आपने मुझे राजधर्मोंकी शिक्षा देकर मुझपर महान् अनुग्रह किया है और मैंने भी शुभ प्रारब्धका उदय होनेसे ही आपकी पवित्र वाणी कान खोलकर सुनी है ॥ ७ ॥

मुने ! इस कन्याके स्नेहवश मेरा चित्त बहुत चिन्ताग्रस्त हो रहा है; अतः मुझ दीनकी यह प्रार्थना आप कृपापूर्वक सुनें ॥८॥ यह मेरी कन्या—जो प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहिन है—अवस्था, शील और गुण आदिमें अपने योग्य पतिको पानेकी इच्छा रखती है ॥९॥ जबसे

इसने नारदजीके मुखसे आपके शील, विद्या, रूप, आयु और गुणोंका वर्णन सुना है, तभीसे यह आपको अपना पति बनानेका निश्चय कर चुकी है ॥१०॥ द्विजवर ! मैं बड़ी श्रद्धासे आपको यह कन्या समर्पण करता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये। यह गृहस्थोचित कार्योंके लिये सब प्रकार आपके योग्य है ॥११॥ जो भोग स्वतः प्राप्त हो जाय, उसकी अवहेलना करना विरक्त पुरुषको भी उचित नहीं है; फिर विषयासक्तकी तो बात ही क्या है ॥१२॥ जो पुरुष स्वयं प्राप्त हुए भोगका निरादर कर फिर किसी कृपणके आगे हाथ पसारता है, उसका बहुत फैला हुआ यश भी नष्ट हो जाता है और दूसरोंके तिरस्कारसे मानभङ्ग भी होता है ॥१३॥ विद्वन् ! मैंने सुना है, आप विवाह करनेके लिये उद्यत हैं। आपका ब्रह्मचर्य एक सीमातक है, आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो हैं नहीं। इसलिये अब आप इस कन्याको स्वीकार कीजिये, मैं इसे आपको अर्पण करता हूँ ॥१४॥

श्रीकर्दम मुनिने कहा—ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी कन्याका अभी किसीके साथ वाग्दान नहीं हुआ है, इसलिये हम दोनोंका सर्वश्रेष्ठ ब्राह्म*विधिसे विवाह होना उचित ही होगा ॥१५॥ राजन् ! वेदोक्त विवाह-विधिमें प्रसिद्ध जो 'गृभ्णामि ते' इत्यादि मन्त्रोंमें बताया हुआ काम (संतानोत्पादन-रूप मनोरथ) है, वह आपकी इस कन्याके साथ हमारा सम्बन्ध होनेसे सफल होगा। भला, जो अपनी अङ्ग-कान्तिसे आभूषणादिकी शोभाको भी तिरस्कृत कर रही है, आपकी उस कन्याका कौन आदर न करेगा ? ॥१६॥ एक बार यह अपने महलकी छतपर गेंद खेल रही थी। गेंदके पीछे इधर-उधर दौड़नेके कारण इसके नेत्र चञ्चल हो रहे थे तथा पैरोंके पायजेब मधुर झनकार करते जाते थे। उस समय इसे देखकर विश्वावसु गन्धर्व मोहवश अचेत होकर अपने विमानसे गिर पड़ा था ॥१७॥ वही इस समय यहाँ स्वयं आकर प्रार्थना कर रही है; ऐसी अवस्थामें कौन समझदार पुरुष इसे स्वीकार न करेगा ? यह तो साक्षात् आप महाराज श्रीस्वायम्भुवमनुकी दुलारी कन्या और उत्तानपादकी प्यारी बहिन है तथा यह रमणियोंमें रत्नके समान है। जिन लोगोंने कभी श्रीलक्ष्मीजीके चरणोंकी उपासना नहीं की है, उन्हें तो इसका दर्शन भी नहीं हो सकता ॥१८॥ अतः मैं आपकी इस साध्वी कन्याको अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु एक शर्तके साथ। जबतक इसके संतान न हो जायगी, तबतक मैं गृहस्थधर्मानुसार इसके साथ रहूँगा। उसके बाद भगवान्‌के बताये हुए संन्यासप्रधान हिंसारहित शम-दमादि धर्मोंको ही अधिक महत्त्व दूँगा ॥१९॥ जिनसे इस विचित्र जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, जिनमें यह लीन हो जाता है और जिनके आश्रयसे यह स्थित है—मुझे तो वे प्रजापतियोंके भी पति भगवान् श्रीअनन्त ही सबसे अधिक मान्य हैं ॥२०॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रचण्ड धनुर्धर विदुर ! कर्दमजी केवल इतना ही कह सके, फिर वे हृदयमें भगवान् कमलनाभका ध्यान करते हुए मौन हो गये। उस समय उनके मन्द हास्ययुक्त मुखकमलको देखकर देवहूतिका चित्त लुभा गया ॥२१॥ मनुजीने देखा कि इस सम्बन्धमें महारानी शतरूपा और राजकुमारीकी स्पष्ट अनुमति है, अतः उन्होंने अनेक गुणोंसे सम्पन्न कर्दमजीको उन्हींके समान गुणवती कन्याका प्रसन्नतापूर्वक दान कर दिया ॥२२॥ महारानी शतरूपाने भी बेटी और दामादको बड़े प्रेमपूर्वक बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और गृहस्थोचित पात्रादि दहेजमें दिये ॥२३॥ इस प्रकार सुयोग्य वरको अपनी कन्या देकर महाराज मनु निश्चिन्त हो गये। चलती बार उसका वियोग न सह सकनेके कारण उन्होंने उत्कण्ठावश विह्वलचित्त होकर उसे अपनी छातीसे चिपटा लिया और 'बेटी ! बेटी !' कहकर रोने लगे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी और उनसे उन्होंने देवहूतिके सिरके सारे बाल भिगो दिये ॥२४-२५॥ फिर वे मुनिवर कर्दमसे पूछकर, उनकी आज्ञा ले रानीके सहित रथपर सवार हुए और अपने सेवकोंसहित ऋषिकुलसेवित सरस्वती नदीके दोनों तीरोंपर मुनियोंके

---

* मनुस्मृतिमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख पाया जाता है—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस और (८) पैशाच। इनके लक्षण वहीं तीसरे अध्यायमें देखने चाहिये। इनमें पहला सबसे श्रेष्ठ माना गया है। इसमें पिता योग्य वरको कन्याका दान करता है।

आश्रमोंकी शोभा देखते हुए अपनी राजधानीमें चले आये ॥२६-२७॥

जब ब्रह्मावर्तकी प्रजाको यह समाचार मिला कि उसके स्वामी आ रहे हैं तब वह अत्यन्त आनन्दित होकर स्तुति, गीत एवं बाजे-गाजेके साथ अगवानी करनेके लिये ब्रह्मावर्तकी राजधानीसे बाहर आयी ॥ २८ ॥ सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त बर्हिष्मती नगरी मनुजीकी राजधानी थी, जहाँ पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके पश्चात् शरीर कँपाते समय श्रीवराहभगवान्‌के रोम झड़कर गिरे थे ॥ २९ ॥ वे रोम ही निरन्तर हरे-भरे रहनेवाले कुश और कास हुए, जिनके द्वारा मुनियोंने यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंका तिरस्कार कर भगवान् यज्ञपुरुषकी यज्ञोंद्वारा आराधना की है ॥ ३० ॥ महाराज मनुने भी श्रीवराहभगवान्‌से भूमिरूप निवासस्थान प्राप्त होनेपर इसी स्थानमें कुश और कासकी बर्हि (चटाई) बिछाकर श्रीयज्ञभगवान्‌की पूजा की थी ॥ ३१ ॥

जिस बर्हिष्मती पुरीमें मनुजी निवास करते थे, उसमें पहुँचकर उन्होंने अपने त्रितापनाशक भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ वहाँ अपनी भार्या और सन्ततिके सहित वे धर्म, अर्थ और मोक्षके अनुकूल भोगोंको भोगने लगे। प्रातःकाल होनेपर गन्धर्वगण अपनी स्त्रियोंके सहित उनका गुणगान करते थे; किन्तु मनुजी उसमें आसक्त न होकर प्रेमपूर्ण हृदयसे श्रीहरिकी कथाएँ ही सुना करते थे ॥ ३३ ॥ वे इच्छानुसार भोगोंका निर्माण करनेमें कुशल थे; किन्तु मननशील और भगवत्परायण होनेके कारण भोग उन्हें किंचित् भी विचलित नहीं कर पाते थे ॥ ३४ ॥ भगवान् विष्णुकी कथाओंका श्रवण, ध्यान, रचना और निरूपण करते रहनेके कारण उनके मन्वन्तरको व्यतीत करनेवाले क्षण कभी व्यर्थ नहीं जाते थे ॥ ३५ ॥ इस प्रकार अपनी जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं अथवा तीनों गुणोंको अभिभूत करके उन्होंने भगवान् वासुदेवके कथाप्रसङ्गमें अपने मन्वन्तरकी इकहत्तर चतुर्युग पूरे कर दिये ॥ ३६ ॥ व्यासनन्दन विदुरजी ! जो पुरुष श्रीहरिके आश्रित रहता है, उसे शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार कष्ट पहुँचा सकते हैं ॥ ३७ ॥ मनुजी निरन्तर समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहते थे। मुनियोंके पूछनेपर उन्होंने मनुष्योंके तथा समस्त वर्ण और आश्रमोंके अनेक प्रकारके मङ्गलमय धर्मोंका भी वर्णन किया (जो मनुसंहिताके रूपमें अब भी उपलब्ध है) ॥ ३८ ॥

जगत्‌के सर्वप्रथम सम्राट् महाराज मनु वास्तवमें कीर्तनके योग्य थे। यह मैंने उनके अद्भुत चरित्रका वर्णन किया, अब उनकी कन्या देवहूतिका प्रभाव सुनो ॥ ३९ ॥

तेईसवाँ अध्याय

कर्दम और देवहूतिका विहार

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! माता-पिताके चले जानेपर पतिके अभिप्रायको समझ लेनेमें कुशल साध्वी देवहूति कर्दमजीकी प्रतिदिन प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी, ठीक उसी तरह, जैसे श्रीपार्वतीजी भगवान् शङ्करकी सेवा करती हैं ॥ १ ॥ उसने काम-वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मदका त्यागकर बड़ी सावधानी और लगनके साथ सेवामें तत्पर रहकर विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम और मधुरभाषणादि गुणोंसे अपने परम तेजस्वी पतिदेवको सन्तुष्ट कर लिया ॥२-३॥ देवहूति समझती थी कि मेरे पतिदेव दैवसे भी बढ़कर हैं, इसलिये वह उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखकर उनकी सेवामें लगी रहती थी। इस प्रकार बहुत दिनोंतक अपना अनुवर्तन करनेवाली उस मनुपुत्रीको व्रतादिका पालन करनेसे दुर्बल हुई देख देवर्षिश्रेष्ठ कर्दमको दयावश कुछ खेद हुआ और उन्होंने उससे प्रेमगद्गद वाणीमें कहा ॥ ४-५ ॥

कर्दमजी बोले—मनुनन्दिनि ! तुमने मेरा बड़ा आदर किया है। मैं तुम्हारी उत्तम सेवा और परम

भक्तिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ । सभी देहधारियोंको अपना शरीर बहुत प्रिय एवं आदरकी वस्तु होता है, किन्तु तुमने मेरी सेवाके आगे उसके क्षीण होनेकी भी कोई परवा नहीं की ॥ ६ ॥ अत: अपने धर्मका पालन करते रहनेसे मुझे तप, समाधि, उपासना और योगके द्वारा जो भय और शोकसे रहित भगवत्प्रसाद-स्वरूप विभूतियाँ प्राप्त हुई हैं, उनपर मेरी सेवाके प्रभावसे अब तुम्हारा भी अधिकार हो गया है । मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ, उसके द्वारा तुम उन्हें देखो ॥ ७ ॥ अन्य जितने भी भोग हैं, वे तो भगवान् श्रीहरिके भ्रुकुटि-विलासमात्रसे नष्ट हो जाते हैं; अत: वे इनके आगे कुछ भी नहीं हैं । तुम मेरी सेवासे ही कृतार्थ हो गयी हो; अपने पातिव्रत-धर्मका पालन करनेसे तुम्हें ये दिव्य भोग प्राप्त हो गये हैं, तुम इन्हें भोग सकती हो । हम राजा हैं, हमें सब कुछ सुलभ है, इस प्रकार जो अभिमान आदि विकार हैं, उनके रहते हुए मनुष्योंको इन दिव्य भोगोंकी प्राप्ति होनी कठिन है ॥ ८ ॥

कर्दमजीके इस प्रकार कहनेसे अपने पतिदेवको सम्पूर्ण योगमाया और विद्याओंमें कुशल जानकर उस अबलाकी सारी चिन्ता जाती रही । उसका मुख किंचित् संकोचभरी चितवन और मधुर मुसकानसे खिल उठा और वह विनय एवं प्रेमसे गद्गद वाणीमें इस प्रकार कहने लगी ॥ ९ ॥

देवहूतिने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! स्वामिन् ! मैं यह जानती हूँ कि कभी निष्फल न होनेवाली योगशक्ति और त्रिगुणात्मिका मायापर अधिकार रखनेवाले आपको ये सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं । किन्तु प्रभो ! आपने विवाहके समय जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भाधान होनेतक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ-सुखका उपभोग करूँगा, उसकी अब पूर्ति होनी चाहिये । क्योंकि श्रेष्ठ पतिके द्वारा सन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्रीके लिये महान् लाभ है ॥ १० ॥ हम दोनोंके समागमके लिये शास्त्रके अनुसार जो कर्तव्य हो, उसका आप उपदेश दीजिये और उबटन, गन्ध, भोजन आदि उपयोगी सामग्रियाँ भी जुटा दीजिये जिससे मिलनकी इच्छासे अत्यन्त दीन, दुर्बल हुआ मेरा यह शरीर आपके अङ्ग-संगके योग्य हो जाय; क्योंकि आपकी ही बढ़ायी हुई कामवेदनासे मैं पीडित हो रही हूँ । स्वामिन् ! इस कार्यके लिये एक उपयुक्त भवन तैयार हो जाय, इसका भी विचार कीजिये ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! कर्दम मुनिने अपनी प्रियाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय योगमें स्थित होकर एक विमान रचा, जो इच्छानुसार सर्वत्र जा सकता था ॥ १२ ॥ यह विमान सब प्रकारके इच्छित भोग-सुख प्रदान करनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त, सब सम्पत्तियोंकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे सम्पन्न तथा मणिमय खंभोंसे सुशोभित था ॥ १३ ॥ वह सभी ऋतुओंमें सुखदायक था और उसमें जहाँ-तहाँ सब प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ रक्खी हुई थीं तथा उसे चित्र-विचित्र रेशमी झंडियों और पताकाओंसे खूब सजाया गया था ॥ १४ ॥ जिनपर भ्रमरगण मधुर गुंजार कर रहे थे, ऐसे रंग-बिरंगे पुष्पोंकी मालाओंसे तथा अनेक प्रकारके सूती और रेशमी वस्त्रोंसे वह अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ॥ १५ ॥ एकके ऊपर एक बनाये हुए कमरोंमें अलग-अलग रक्खी हुई शय्या, पलंग, पंखे और आसनोंके कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था ॥ १६ ॥ जहाँ-तहाँ दीवारोंमें की हुई शिल्परचनासे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी । उसमें पन्नेका फर्श था और बैठनेके लिये मूँगेकी वेदियाँ बनायी गयी थीं ॥ १७ ॥ मूँगेकी ही देहलियाँ थीं । उसके द्वारोंमें हीरेके किवाड़ थे तथा इन्द्रनील मणिके शिखरोंपर सोनेके कलश रक्खे हुए थे ॥ १८ ॥ उसकी हीरेकी दीवारोंमें बढ़िया लाल जड़े हुए थे, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो विमानकी आँखें हों, तथा उसे रंग-बिरंगे चँदोवे और बहुमूल्य सुनहरी बंदनवारोंसे सजाया गया था ॥ १९ ॥ उस विमानमें जहाँ-तहाँ कृत्रिम हंस और कबूतर आदि पक्षी बनाये गये थे, जो बिल्कुल सजीव-से मालूम पड़ते थे; उन्हें अपना सजातीय समझकर बहुत-से हंस और कबूतर उनके पास बैठ-बैठकर अपनी बोली बोलते थे ॥ २० ॥ उसमें सुविधानुसार क्रीडास्थली, शयनगृह, बैठक, आँगन और चौक आदि

बनाये गये थे—जिनके कारण वह विमान स्वयं कर्दमजीको भी विस्मित-सा कर रहा था ॥ २१ ॥

ऐसे सुन्दर घरको भी जब देवहूतिने बहुत प्रसन्न चित्तसे नहीं देखा, तो सबके आन्तरिक भावको परख लेनेवाले कर्दमजीने स्वयं ही कहा ॥ २२ ॥ 'भीरु ! तुम इस विन्दुसरोवरमें स्नान करके विमानपर चढ़ जाओ; यह विष्णुभगवान्‌का रचा हुआ तीर्थ मनुष्योंको सभी कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला है' ॥ २३ ॥

कमललोचना देवहूतिने अपने पतिकी बात मानकर सरस्वतीके पवित्र जलसे भरे हुए उस सरोवरमें प्रवेश किया । उस समय वह बड़ी मैली-कुचैली साड़ी पहने हुए थी; उसके सिरके बाल चिपक जानेसे उनमें लटें पड़ गयी थीं, शरीरमें मैल जम गया था तथा स्तन कान्तिहीन हो गये थे ॥ २४-२५ ॥ सरोवरमें गोता लगानेपर उसने उसके भीतर एक महलमें एक हजार कन्याएँ देखीं । वे सभी किशोर अवस्थाकी थीं और उनके शरीरोंसे कमलकी-सी गन्ध आती थी ॥ २६ ॥ देवहूतिको देखते ही वे सब स्त्रियाँ सहसा खड़ी हो गयीं और हाथ जोड़कर कहने लगीं, 'हम आपकी दासियाँ हैं; हमें आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें ?' ॥२७॥

विदुरजी ! तब स्वामिनीको सम्मान देनेवाली उन रमणियोंने बहुमूल्य मसालों तथा गन्ध आदिसे मिश्रित जलके द्वारा मनस्विनी देवहूतिको स्नान कराया तथा उसे दो नवीन और निर्मल वस्त्र पहननेको दिये ॥ २८ ॥ फिर उन्होंने ये बहुत मूल्यके बड़े सुन्दर और कान्तिमान् आभूषण, सर्वगुणसम्पन्न भोजन और पीनेके लिये अमृत-के समान स्वादिष्ट आसव प्रस्तुत किये ॥ २९ ॥ अब देवहूतिने दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखा तो उसे मालूम हुआ कि वह भाँति-भाँतिके सुगन्धित फूलोंके हारोंसे विभूषित है, स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए है, उसका शरीर भी निर्मल और कान्तिमान् हो गया है तथा उन कन्याओंने बड़े आदरपूर्वक उसका माङ्गलिक शृङ्गार किया है ॥ ३० ॥ उसे सिरसे स्नान कराया गया है, स्नानके पश्चात् अङ्ग-अङ्गमें सब प्रकारके आभूषण सजाये गये हैं तथा उसके गलेमें हार-हमेल, हाथोंमें कङ्कण और पैरोंमें छमछमाते हुए सोनेके पायजेब सुशोभित हैं ॥ ३१ ॥ कमरमें पड़ी हुई सोनेकी रत्नजटित करधनीसे, बहुमूल्य मणियोंके हारसे और अङ्ग-अङ्गमें लगे हुए कुङ्कुमादि मङ्गलद्रव्योंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ ३२ ॥ उसका मुख सुन्दर दन्तावली, मनोहर भौंहें, कमलकी कली-से स्पर्धा करनेवाले प्रेमकटाक्षमय सुन्दर नेत्र और नीली अलकावलीसे बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता है ॥ ३३ ॥ विदुरजी ! जब देवहूतिने अपने प्रिय पतिदेवका स्मरण किया, तो अपनेको सहेलियोंके सहित वहीं पाया, जहाँ प्रजापति कर्दमजी विराजमान थे ॥ ३४ ॥ उस समय अपनेको सहस्रों स्त्रियोंके सहित अपने प्राणनाथके सामने देख और इसे उनके योगका प्रभाव समझकर देवहूतिको बड़ा विस्मय हुआ ॥ ३५ ॥

शत्रुविजयी विदुर ! जब कर्दमजीने देखा कि देवहूतिका शरीर स्नान करनेसे अत्यन्त निर्मल हो गया है, और विवाहकालसे पूर्व उसका जैसा रूप था, उसी रूपको पाकर वह अपूर्व शोभासे सम्पन्न हो गयी है । उसका सुन्दर वक्षःस्थल चोलीसे ढका हुआ है, हजारों विद्या-धरियाँ उसकी सेवामें लगी हुई हैं तथा उसके शरीरपर बढ़िया-बढ़िया वस्त्र शोभा पा रहे हैं । तब उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे विमानपर चढ़ाया ॥ ३६-३७ ॥ उस समय अपनी प्रियाके प्रति अनुरक्त होनेपर भी कर्दमजीकी महिमा (मन और इन्द्रियोंपर प्रभुता) कम नहीं हुई । विद्याधरियाँ उनके शरीरकी सेवा कर रही थीं । खिले हुए कुमुदके फूलोंसे शृङ्गार करके अत्यन्त सुन्दर बने हुए वे विमानपर इस प्रकार शोभा पा रहे थे, मानो आकाशमें तारागणसे घिरे हुए चन्द्रदेव विराजमान हों ॥ ३८ ॥ उस विमानपर निवासकर उन्होंने दीर्घ-कालतक कुबेरजीके समान मेरुपर्वतकी घाटियोंमें विहार किया । ये घाटियाँ आठों लोकपालोंकी विहारभूमि हैं; इनमें कामदेवको बढ़ानेवाली शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलकर इनकी कमनीय शोभाका विस्तार करती है तथा

श्रीगङ्गाजीके स्वर्गलोकसे गिरनेकी मङ्गलमय ध्वनि निरन्तर गूँजती रहती है। उस समय भी दिव्य विद्याधरियोंका समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित था और सिद्धगण वन्दना किया करते थे ॥ ३९ ॥

इसी प्रकार प्राणप्रिया देवहूतिके साथ उन्होंने वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र और चैत्ररथ आदि अनेकों देवोद्यानों तथा मानस सरोवरमें अनुरागपूर्वक विहार किया ॥ ४० ॥ उस कान्तिमान् और इच्छानुसार चलनेवाले श्रेष्ठ विमानपर बैठकर वायुके समान सभी लोकोंमें विचरते हुए कर्दमजी विमानविहारी देवताओंसे भी आगे बढ़ गये ॥ ४१ ॥ विदुरजी ! जिन्होंने भगवान्‌के भवभयहारी पवित्र पादपद्मोंका आश्रय लिया है, उन धीर पुरुषोंके लिये कौन-सी वस्तु या शक्ति दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

इस प्रकार महायोगी कर्दमजी यह सारा भूमण्डल, जो द्वीप-वर्ष आदिकी विचित्र रचनाके कारण बड़ा आश्चर्यमय प्रतीत होता है, अपनी प्रियाको दिखाकर अपने आश्रमको लौट आये ॥ ४३ ॥ फिर उन्होंने अपनेको नौ रूपोंमें विभक्त कर रतिसुखके लिये अत्यन्त उत्सुक मनुकुमारी देवहूतिको आनन्दित करते हुए उसके साथ बहुत वर्षोंतक विहार किया, किन्तु उनका इतना लम्बा समय एक मुहूर्तके समान बीत गया ॥ ४४ ॥ उस विमानमें रतिसुखको बढ़ानेवाली बड़ी सुन्दर शय्याका आश्रय ले अपने परम रूपवान् प्रियतमके साथ रहती हुई देवहूतिको इतना काल कुछ भी न जान पड़ा ॥४५॥ इस प्रकार उस कामासक्त दम्पतिको अपने योगबलसे सैकड़ों वर्षोंतक विहार करते हुए भी वह काल बहुत थोड़े समयके समान निकल गया ॥ ४६ ॥ आत्मज्ञानी कर्दमजी सब प्रकारके सङ्कल्पोंको जानते थे; अतः देवहूतिको सन्तानप्राप्तिके लिये उत्सुक देख तथा भगवान्‌के आदेशको स्मरणकर उन्होंने अपने स्वरूपके नौ विभाग किये तथा कन्याओंकी उत्पत्तिके लिये एकाग्रचित्तसे अर्धाङ्गरूपमें अपनी पत्नीकी भावना करते हुए उसके गर्भमें वीर्य स्थापित किया ॥ ४७ ॥ इससे देवहूतिके एक ही साथ नौ कन्याएँ पैदा हुईं। वे सभी सर्वाङ्गसुन्दरी थीं और उनके शरीरसे लाल कमलकी-सी सुगन्ध निकलती थी ॥ ४८ ॥

इसी समय शुद्ध स्वभाववाली सती देवहूतिने देखा कि पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उसके पतिदेव संन्यासाश्रम ग्रहण करके वनको जाना चाहते हैं, तो उसने अपने आँसुओंको रोककर ऊपरसे मुसकराते हुए व्याकुल एवं संतप्त हृदयसे धीरे-धीरे अति मधुर वाणीमें कहा। उस समय वह सिर नीचा किये हुए अपने नखमणिमण्डित चरण-कमलसे पृथ्वीको कुरेद रही थी ॥ ४९-५० ॥

देवहूतिने कहा—भगवन् ! आपने जो कुछ प्रतिज्ञा की थी, वह सब तो पूर्णतः निभा दी; तो भी मैं आपकी शरणागत हूँ, अतः आप मुझे अभयदान और दीजिये ॥ ५१ ॥ ब्रह्मन् ! इन कन्याओंके लिये योग्य वर खोजने पड़ेंगे और आपके वनको चले जानेके बाद मेरे जन्म-मरणरूप शोकको दूर करनेके लिये भी कोई होना चाहिये ॥ ५२ ॥ प्रभो ! अबतक परमात्मासे विमुख रहकर मेरा जो समय इन्द्रियसुख भोगनेमें बीता है, वह तो निरर्थक ही गया ॥ ५३ ॥ आपके परम प्रभावको न जाननेके कारण ही मैंने इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त रहकर आपसे अनुराग किया। तथापि यह भी मेरे संसार-भयको दूर करनेवाला ही होना चाहिये ॥५४॥ अज्ञानवश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो संग संसार-बन्धनका कारण होता है, वही सत्पुरुषोंके साथ किये जानेपर असङ्गता प्रदान करता है ॥५५॥ संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवान्‌की सेवा ही सम्पन्न होती है वह पुरुष जीते ही मुर्देके समान है ॥ ५६ ॥ अवश्य ही मैं भगवान्‌की मायासे बहुत ठगी गयी, जो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिदेवको पाकर भी मैंने संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की ॥ ५७ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीकपिलदेवजीका जन्म

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—उत्तम गुणोंसे सुशोभित मनुकुमारी देवहूतिने जब ऐसी वैराग्ययुक्त बातें कहीं, तब कृपालु कर्दम मुनिको भगवान् विष्णुके कथनका स्मरण हो आया। और उन्होंने उससे कहा ॥ १ ॥

कर्दमजी बोले—दोषरहित राजकुमारी ! तुम अपने विषयमें इस प्रकार खेद न करो; तुम्हारे गर्भमें अविनाशी भगवान् विष्णु शीघ्र ही पधारेंगे ॥ २ ॥ प्रिये ! तुमने अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन किया है, अतः तुम्हारा कल्याण होगा । अब तुम संयम, नियम, तप और दानादि करती हुई श्रद्धापूर्वक भगवान्का भजन करो ॥ ३ ॥ इस प्रकार आराधना करनेपर श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर मेरा यश बढ़ावेंगे और ब्रह्मज्ञानका उपदेश करके तुम्हारे हृदयकी अहङ्कारमयी ग्रन्थिका छेदन करेंगे ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! प्रजापति कर्दमके आदेशमें गौरव-बुद्धि होनेसे देवहूतिने उसपर पूर्ण विश्वास किया और वह निर्विकार, जगद्गुरु भगवान् श्रीपुरुषोत्तमकी आराधना करने लगी ॥ ५ ॥ इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर भगवान् मधुसूदन कर्दमजीके वीर्यका आश्रय ले उसके गर्भसे इस प्रकार प्रकट हुए, जैसे काष्ठमेंसे अग्नि ॥ ६ ॥ उस समय आकाशमें मेघ जल बरसाते हुए गरज-गरजकर बाजे बजाने लगे, गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दित होकर नाचने लगीं ॥ ७ ॥ आकाशसे देवताओंके बरसाये हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी; सब दिशाओंमें आनन्द छा गया, जलाशयोंका जल निर्मल हो गया और सभी जीवोंके मन प्रसन्न हो गये ॥ ८ ॥ इसी समय सरस्वती नदीसे घिरे हुए कर्दमजीके उस आश्रममें मरीचि आदि मुनियोंके सहित श्रीब्रह्माजी आये ॥ ९ ॥ शत्रुदमन विदुरजी ! स्वतःसिद्ध ज्ञानसे सम्पन्न अजन्मा ब्रह्माजीको यह मालूम हो गया था कि साक्षात् परब्रह्म भगवान् विष्णु सांख्यशास्त्रका उपदेश करनेके लिये अपने विशुद्ध सत्त्वमय अंशसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ १० ॥ अतः भगवान् जिस कार्यको करना चाहते थे, उसका उन्होंने विशुद्ध चित्तसे अनुमोदन एवं आदर किया और अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंसे प्रसन्नता प्रकट करते हुए कर्दमजीसे इस प्रकार कहा ॥ ११ ॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—प्रिय कर्दम ! तुम दूसरोंको मान देनेवाले हो । तुमने मेरा सम्मान करते हुए जो मेरी आज्ञाका पालन किया है, इससे तुम्हारे द्वारा निष्कपटभावसे मेरी पूजा सम्पन्न हुई है ॥ १२ ॥ पुत्रोंको अपने पिताकी सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिये कि 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर आदरपूर्वक उनके आदेशको स्वीकार करें ॥ १३ ॥ बेटा ! तुम सभ्य हो, तुम्हारी ये सुन्दरी कन्याएँ अपने वंशोंद्वारा इस सृष्टिको अनेक प्रकारसे बढ़ावेंगी ॥ १४ ॥ अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवरोंको इनके स्वभाव और रुचिके अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पण करो और संसारमें अपना सुयश फैलाओ ॥ १५ ॥ मुने ! मैं जानता हूँ, जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी निधि हैं—उनके अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, वे आदिपुरुष श्रीनारायण ही अपनी योगमायासे कपिलके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ १६ ॥ [फिर देवहूतिसे बोले—] राजकुमारी ! सुनहरे बाल, कमल-जैसे विशाल नेत्र और कमलाङ्कित चरणकमलोंवाले शिशुके रूपमें कैटभासुरको मारनेवाले साक्षात् श्रीहरिने ही, ज्ञान-विज्ञानद्वारा कर्मोंकी वासनाओंका मूलोच्छेदन करनेके लिये, तेरे गर्भमें प्रवेश किया है । ये अविद्याजनित मोहकी ग्रन्थियोंको काटकर पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचरेंगे ॥ १७-१८ ॥ ये सिद्धगणोंके स्वामी और सांख्याचार्योंके भी माननीय होंगे। लोकमें तेरी कीर्तिका विस्तार करेंगे और 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे ॥ १९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उन दोनोंको इस प्रकार आश्वासन देकर नारद और सनकादिको साथ ले, हंसपर चढ़कर ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीके चले जानेपर कर्दमजीने उनके आज्ञानुसार मरीचि आदि प्रजापतियोंके साथ अपनी कन्याओंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया ॥ २१ ॥ उन्होंने अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको और हविर्भू पुलस्त्यको समर्पण की ॥ २२ ॥ पुलहको उनके अनुरूप गति नामकी कन्या दी, क्रतुके साथ परम साध्वी क्रियाका विवाह किया, भृगुजीको ख्याति और वसिष्ठजीको अरुन्धती समर्पण की ।२३। अथर्वा ऋषिको शान्ति नामकी कन्या दी, जिससे यज्ञकर्मका विस्तार किया जाता है । कर्दमजीने उन विवाहित ऋषियोंका उनकी पत्नियोंके सहित खूब सत्कार किया ॥ २४ ॥ विदुरजी ! इस प्रकार विवाह हो जाने-

पर वे सब ऋषि कर्दमजीकी आज्ञा ले अति आनन्दपूर्वक अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २५ ॥

कर्दमजीने देखा कि उनके यहाँ साक्षात् देवाधिदेव श्रीहरिने ही अवतार लिया है, तो वे एकान्तमें उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे ॥२६॥ 'अहो ! अपने पापकर्मोंके कारण इस दुःखमय संसारमें नाना प्रकारसे पीडित होते हुए पुरुषोंपर देवगण तो बहुत काल बीतनेपर प्रसन्न होते हैं ॥ २७ ॥ किन्तु जिनके स्वरूपको योगिजन अनेकों जन्मोंके साधनसे सिद्ध हुई सुदृढ समाधिके द्वारा एकान्तमें देखनेका प्रयत्न करते हैं, अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले वे ही श्रीहरि हम विषयलोलुपोंके द्वारा होनेवाली अपनी अवज्ञाका कुछ भी विचार न कर आज हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं ॥२८-२९॥ आप वास्तवमें अपने भक्तोंका मान बढ़ानेवाले हैं। आपने अपने वचनोंको सत्य करने और सांख्ययोगका उपदेश करनेके लिये ही मेरे यहाँ अवतार लिया है ॥ ३० ॥ भगवन् ! आप प्राकृतरूपसे रहित हैं, आपके जो चतुर्भुज आदि अलौकिक रूप हैं, वे ही आपके योग्य हैं तथा जो मनुष्य-सदृश रूप आपके भक्तोंको प्रिय लगते हैं, वे भी आपको रुचिकर प्रतीत होते हैं ॥३१॥ आपका पाद-पीठ तत्त्वज्ञानकी इच्छासे विद्वानोंद्वारा सर्वदा वन्दनीय है तथा आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य और श्री—इन छहों ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ३२ ॥ भगवन् ! आप परब्रह्म हैं; सारी शक्तियाँ आपके अधीन हैं; प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, काल, त्रिविध अहङ्कार, समस्त लोक एवं लोकपालोंके रूपमें आप ही प्रकट हैं; तथा आप सर्वज्ञ परमात्मा ही इस सारे प्रपञ्चको चेतनशक्तिके द्वारा अपनेमें लीन कर लेते हैं। अतः इन सबसे परे भी आप ही हैं। मैं आप भगवान् कपिलकी शरण लेता हूँ ॥ ३३ ॥ प्रभो ! आपकी कृपासे मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया हूँ और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं। अब मैं संन्यास-मार्गको ग्रहणकर आपका चिन्तन करते हुए शोकरहित होकर विचरूँगा। आप समस्त प्रजाओंके स्वामी हैं, अतएव इसके लिये मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ' ॥ ३४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुने ! वैदिक और लौकिक सभी कर्मोंमें संसारके लिये मेरा कथन ही प्रमाण है। इसलिये मैंने जो तुमसे कहा था कि 'मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा', उसे सत्य करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है ॥३५॥ इस लोकमें मेरा यह जन्म लिङ्गशरीरसे मुक्त होनेकी इच्छावाले मुनियोंके लिये आत्मदर्शनमें उपयोगी प्रकृति आदि तत्त्वोंका विवेचन करनेके लिये ही हुआ है ॥ ३६ ॥ आत्मज्ञानका यह सूक्ष्म मार्ग बहुत समयसे लुप्त हो गया है। इसे फिरसे प्रवर्तित करनेके लिये ही मैंने यह शरीर ग्रहण किया है—ऐसा जानो ॥ ३७ ॥ मुने ! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण करते हुए दुर्जय मृत्युको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो ॥ ३८ ॥ मैं स्वयंप्रकाश और सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणोंमें रहनेवाला परमात्मा ही हूँ। अतः जब तुम विशुद्ध बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मेरा साक्षात्कार कर लोगे, तब सब प्रकारके शोकोंसे छूटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लोगे ॥ ३९ ॥ माता देवहूतिको भी मैं सम्पूर्ण कर्मोंसे छुड़ानेवाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह संसाररूप भयसे पार हो जायगी ॥ ४० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान् कपिलके इस प्रकार कहनेपर प्रजापति कर्दमजी उनकी परिक्रमा कर प्रसन्नतापूर्वक वनको चले गये ॥ ४१ ॥

वहाँ अहिंसामय संन्यास-धर्मका पालन करते हुए वे एकमात्र श्रीभगवान्‌की शरण हो गये तथा अग्नि और आश्रमका त्याग करके निःसङ्गभावसे पृथ्वीपर विचरने लगे ॥४२॥ जो कार्यकारणसे अतीत है, सत्त्वादि गुणोंका प्रकाशक एवं निर्गुण है और अनन्य भक्तिसे ही प्रत्यक्ष होता है, उस परब्रह्ममें उन्होंने अपना मन लगा दिया ॥४३॥ वे अहंकार, ममता और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे छूटकर समदर्शी (भेददृष्टिसे रहित) हो, सबमें अपने आत्माको ही देखने लगे। उनकी बुद्धि अन्तर्मुख एवं शान्त हो गयी। उस समय धीर कर्दमजी शान्त लहरोंवाले समुद्रके समान जान पड़ने लगे ॥ ४४ ॥ परम भक्तिभावके द्वारा सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ श्रीवासुदेवमें चित्त स्थिर

हो जानेसे वे सारे बन्धनोंसे मुक्त हो गये ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण भूतोंमें अपने आत्मा श्रीभगवान्‌को और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मस्वरूप श्रीहरिमें स्थित देखने लगे ॥४६॥ इस प्रकार इच्छा और द्वेषसे रहित, सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्तिसे सम्पन्न होकर श्रीकर्दमजीने भगवान्‌का परमपद प्राप्त कर लिया ॥ ४७ ॥

पचीसवाँ अध्याय

देवहूतिका प्रश्न तथा भगवान् कपिलद्वारा भक्तियोगकी महिमाका वर्णन

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! तत्त्वोंकी संख्या करनेवाले भगवान् कपिल साक्षात् अजन्मा नारायण होकर भी लोगोंको आत्मज्ञानका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ मैंने भगवान्‌के बहुत-से चरित्र सुने हैं, तथापि इन योगिप्रवर पुरुषश्रेष्ठ कपिलजीकी कीर्तिको सुनते-सुनते मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं ॥ २ ॥ सर्वथा स्वतन्त्र श्रीहरि अपनी योगमायाद्वारा भक्तोंकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सभी कीर्तन करने योग्य हैं; अतः आप मुझे वे सभी सुनाइये, मुझे उन्हें सुननेमें बड़ी श्रद्धा है ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—मुने ! आपकी ही भाँति जब विदुरने भी यह आत्मज्ञानविषयक प्रश्न किया, तो श्रीव्यासजीके सखा भगवान् मैत्रेयजी प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! पिताके वनमें चले जानेपर भगवान् कपिलजी माताका प्रिय करनेकी इच्छासे उस बिन्दुसर तीर्थमें रहने लगे ॥ ५ ॥ एक दिन तत्त्वमार्गके पारदर्शी भगवान् कपिल कर्मकलापसे विरत हो आसनपर विराजमान थे । उस समय ब्रह्माजीके वचनोंका स्मरण करके देवहूतिने उनसे कहा ॥ ६ ॥

देवहूति बोली—भूमन् ! प्रभो ! इन दुष्ट इन्द्रियोंकी विषय-लालसासे मैं बहुत ऊब गयी हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहनेसे ही घोर अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई हूँ ॥ ७ ॥ अब आपकी कृपासे मेरी जन्मपरम्परा समाप्त हो चुकी है, इसीसे इस दुस्तर अज्ञानान्धकारसे पार लगानेके लिये सुन्दर नेत्ररूप आप प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥ आप सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् आदिपुरुष हैं तथा अज्ञानान्धकारसे अन्धे पुरुषोंके लिये नेत्रस्वरूप सूर्यकी भाँति उदित हुए हैं ॥ ९ ॥ देव ! इन देह-गेह आदिमें जो मैं-मेरेपनका दुराग्रह होता है, वह भी आपका ही कराया हुआ है; अतः अब आप मेरे इस महामोहको दूर कीजिये ॥ १० ॥ आप अपने भक्तोंके संसाररूप वृक्षके लिये कुठारके समान हैं; मैं प्रकृति और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आप शरणागतवत्सलकी शरणमें आयी हूँ । आप भागवतधर्म जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार माता देवहूतिने अपनी जो अभिलाषा प्रकट की, वह परम पवित्र और लोगोंका मोक्षमार्गमें अनुराग उत्पन्न करनेवाली थी, उसे सुनकर आत्मज्ञ सत्पुरुषोंकी गति श्रीकपिलजी उसकी मन-ही-मन प्रशंसा करने लगे और फिर मृदु मुसकानसे सुशोभित मुखारविन्दसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥

भगवान् कपिलने कहा—माता ! यह मेरा निश्चय है कि अध्यात्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक कल्याणका मुख्य साधन है, जहाँ दुःख और सुखकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है ॥ १३ ॥ साध्वि ! सब अङ्गोंसे सम्पन्न उस योगका मैंने पहले नारदादि ऋषियोंके सामने, उनकी सुननेकी इच्छा होनेपर, वर्णन किया था । वही अब मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १४ ॥

इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है । विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है ॥ १५ ॥ जिस समय यह मन मैं और मेरेपनके कारण होनेवाले काम-लोभ आदि विकारोंसे मुक्त एवं शुद्ध हो जाता है, उस समय वह सुख-दुःखसे छूटकर सम अवस्थामें आ जाता है ॥१६॥ तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त हृदयसे

आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र (अद्वितीय), भेद-रहित, स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और उदासीन (सुख-दुःखशून्य) देखता है तथा प्रकृतिको शक्तिहीन अनुभव करता है ॥ १७-१८ ॥ योगियोंके लिये भगव-त्प्राप्तिके निमित्त सर्वात्मा श्रीहरिके प्रति की हुई भक्ति-के समान और कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है ॥ १९ ॥ विवेकीजन सङ्ग या आसक्तिको ही आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं; किन्तु वही सङ्ग या आसक्ति जब संतों—महापुरुषोंके प्रति हो जाती है, तो मोक्षका खुला द्वार बन जाती है ॥ २० ॥

जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितू, किसीके प्रति भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरलस्वभाव और सत्पुरुषोंका सम्मान करनेवाले होते हैं, जो मुझमें अनन्यभावसे सुदृढ प्रेम करते हैं, मेरे लिये सम्पूर्ण कर्म तथा अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी त्याग देते हैं, और मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण, कीर्तन करते हैं तथा मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं—उन भक्तोंको संसारके तरह-तरहके ताप कोई कष्ट नहीं पहुँचाते हैं ॥२१–२३॥ साध्वि ! ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं, तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि वे आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हर लेनेवाले हैं ॥ २४ ॥ सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं । उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकास होगा ॥ २५ ॥ फिर मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानेपर मनुष्य सावधानता-पूर्वक योगके भक्तिप्रधान सरल उपायोंसे समाहित होकर मनोनिग्रहके लिये यत्न करेगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयोंका त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की हुई सुदृढ भक्तिसे मनुष्य मुझ अपने अन्तरात्माको इस देहमें ही प्राप्त कर लेता है ॥ २७ ॥

देवहूतिने कहा—भगवन् ! आपकी समुचित भक्ति-का स्वरूप क्या है ? और मेरी-जैसी अबलाओंके लिये कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजमें ही आपके निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ ? ॥ २८ ॥ निर्वाणस्वरूप प्रभो ! जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो लक्ष्य-को बेधनेवाले बाणके समान भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला है, वह आपका कहा हुआ योग कैसा है और उसके कितने अङ्ग हैं ? ॥ २९ ॥ हरे ! यह सब आप मुझे इस प्रकार समझाइये जिससे कि आपकी कृपासे मैं मन्दमति स्त्रीजाति भी इस दुर्बोध विषयको सुगमतासे समझ सकूँ ॥ ३० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जिसके शरीरसे उन्होंने स्वयं जन्म लिया था, उस अपनी माताका ऐसा अभिप्राय जानकर कपिलजीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और उन्होंने प्रकृति आदि तत्त्वोंका निरूपण करनेवाले शास्त्रका, जिसे सांख्य कहते हैं, उपदेश किया। साथ ही भक्ति-विस्तार एवं योगका भी वर्णन किया ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—माता ! जिसका चित्त एकमात्र भगवान्‌में ही लग गया है, ऐसे मनुष्यकी वेद-विहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करानेवाली (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय–दोनों प्रकारकी) इन्द्रियोंकी जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवान्‌की अहैतुकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी बढ़कर है; क्योंकि जठरानल जिस प्रकार खाये हुए अन्नको पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्मसंस्कारों-के भंडाररूप लिङ्गशरीरको तत्काल भस्म कर देती है ॥ ३२-३३ ॥ मेरी चरणसेवामें प्रीति रखनेवाले और मेरी ही प्रसन्नताके लिये समस्त कार्य करनेवाले कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक दूसरेसे मिलकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमोंकी चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकीभाव (सायुज्यमोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते ॥ ३४ ॥ मा ! वे साधुजन अरुण नयन एवं मनोहर मुखारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्य रूपोंकी झाँकी करते हैं, और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण भी करते हैं, जिसके लिये बड़े-बड़े तपस्वी भी लालायित रहते हैं ॥ ३५ ॥ दर्शनीय

अङ्ग-प्रत्यङ्ग, उदार हास-विलास, मनोहर चितवन और सुमधुर वाणीसे युक्त मेरे उन रूपोंकी माधुरीमें उनका मन और इन्द्रियाँ फँस जाती हैं। ऐसी मेरी भक्ति न चाहनेपर भी उन्हें परमपदकी प्राप्ति करा देती है ॥ ३६ ॥ अविद्याकी निवृत्ति हो जानेपर यद्यपि वे मुझ मायापतिके सत्यादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति, भक्तिकी प्रवृत्तिके पश्चात् स्वयं प्राप्त होनेवाली अष्ट-सिद्धि अथवा वैकुण्ठलोकके भगवदीय ऐश्वर्यकी भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनेपर उन्हें ये सब विभूतियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं ॥ ३७ ॥ जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरु, सुहृद् और इष्टदेव हूँ—वे मेरे ही आश्रयमें रहनेवाले भक्तजन शान्तिमय वैकुण्ठधाममें पहुँचकर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगोंसे रहित नहीं होते और न उन्हें मेरा कालचक्र ही ग्रस सकता है ॥ ३८ ॥

माताजी ! जो लोग इहलोक, परलोक और इन दोनों लोकोंमें साथ जानेवाले वासनामय लिङ्गदेहको तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले जो धन, पशु एवं गृह आदि पदार्थ हैं, उन सबको और अन्यान्य संग्रहोंको भी छोड़कर अनन्य भक्तिसे सब प्रकार मेरा ही भजन करते हैं—उन्हें मैं मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ ॥ ३९-४० ॥ मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका आत्मा हूँ; मेरे सिवा और किसीका आश्रय लेनेसे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता ॥ ४१ ॥ मेरे भयसे यह वायु चलती है, मेरे भयसे सूर्य तपता है, मेरे भयसे इन्द्र वर्षा करता और अग्नि जलाती है तथा मेरे ही भयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है ॥ ४२ ॥ योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं ॥ ४३ ॥ संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय ॥ ४४ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीभगवान्ने कहा—माताजी ! अब मैं तुम्हें प्रकृति आदि सब तत्त्वोंके अलग-अलग लक्षण बतलाता हूँ; इन्हें जानकर मनुष्य प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ आत्मदर्शनरूप ज्ञान ही पुरुषके मोक्षका कारण है और वही उसकी अहङ्काररूप हृदयग्रन्थिका छेदन करनेवाला है, ऐसा पण्डितजन कहते हैं। उस ज्ञानका मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥ यह सारा जगत् जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है। वह अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, अन्तःकरणमें स्फुरित होनेवाला और स्वयंप्रकाश है ॥ ३ ॥ उस सर्वव्यापक पुरुषने अपने पास लीला-विलासपूर्वक आयी हुई अव्यक्त और त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको स्वेच्छासे स्वीकार कर लिया ॥ ४ ॥ लीलापरायण प्रकृति अपने सत्त्वादि गुणोंद्वारा उन्हींके अनुरूप प्रजाकी सृष्टि करने लगी; यह देख पुरुष ज्ञानको आच्छादित करनेवाली उसकी आवरणशक्तिसे मोहित हो गया, अपने स्वरूपको भूल गया ॥ ५ ॥ इस प्रकार अपनेसे भिन्न प्रकृतिको ही अपना स्वरूप समझ लेनेसे पुरुष प्रकृति-के गुणोंद्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें अपनेको ही कर्ता मानने लगता है ॥ ६ ॥ इस कर्तृत्वाभिमानसे ही अकर्ता, स्वाधीन, साक्षी और आनन्दस्वरूप पुरुषको जन्म-मृत्युरूप बन्धन एवं परतन्त्रताकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ कार्यरूप शरीर, कारणरूप इन्द्रिय तथा कर्तारूप इन्द्रियाधिष्ठातृ देव-ताओंमें पुरुष जो अपनेपनका आरोप कर लेता है, उसमें पण्डितजन प्रकृतिको ही कारण मानते हैं तथा वास्तवमें प्रकृतिसे परे होकर भी जो प्रकृतिस्थ हो रहा है, उस पुरुषको सुख-दुःखोंके भोगनेमें कारण मानते हैं ॥ ८ ॥

देवहूतिने कहा—पुरुषोत्तम ! इस विश्वके स्थूल-सूक्ष्म कार्य जिनके स्वरूप हैं तथा जो इसके कारण हैं,

उन प्रकृति और पुरुषका लक्षण भी आप मुझसे कहिये ॥ ९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य-कारणरूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मोंका आश्रय है, उस प्रधान नामक तत्त्वको ही प्रकृति कहते हैं ॥ १० ॥ पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रिय—इन चौबीस तत्त्वोंके समूहको विद्वान् लोग प्रकृतिका कार्य मानते हैं ॥ ११ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत हैं; गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच तन्मात्र माने गये हैं ॥ १२ ॥ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु—ये दस इन्द्रियाँ हैं ॥ १३ ॥ मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—इन चारके रूपमें एक ही अन्तःकरण अपनी सङ्कल्प, निश्चय, चिन्ता और अभिमानरूपा चार प्रकारकी वृत्तियोंसे लक्षित होता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने सगुण ब्रह्मके सन्निवेशस्थान इन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या बतलायी है। इनके सिवा जो काल है, वह पचीसवाँ तत्त्व है ॥ १५ ॥ कुछ लोग कालको पुरुषसे भिन्न तत्त्व न मानकर पुरुषका प्रभाव अर्थात् ईश्वरकी संहारकारिणी शक्ति बताते हैं। जिससे मायाके कार्यरूप देहादिमें आत्मत्वका अभिमान करके अहङ्कारसे मोहित और अपनेको कर्ता माननेवाले जीवको निरन्तर भय लगा रहता है ॥ १६ ॥ मनुपुत्रि! जिनकी प्रेरणासे गुणोंकी साम्यावस्थारूप निर्विशेष प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है, वास्तवमें वे पुरुषरूप भगवान् ही 'काल' कहे जाते हैं ॥ १७ ॥ इस प्रकार जो अपनी मायाके द्वारा सब प्राणियोंके भीतर जीवरूपसे और बाहर कालरूपसे व्याप्त हैं, वे भगवान् ही पचीसवें तत्त्व हैं ॥ १८ ॥

जब परमपुरुष परमात्माने जीवोंके अदृष्टवश क्षोभको प्राप्त हुई सम्पूर्ण जीवोंकी उत्पत्तिस्थानरूपा अपनी मायामें चिच्छक्तिरूप वीर्य स्थापित किया, तो उससे तेजोमय महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ लय-विक्षेपादिसे रहित तथा जगत्‌के अङ्कुररूप इस महत्तत्त्वने अपनेमें स्थित विश्वको प्रकट करनेके लिये अपने स्वरूपको आच्छादित करनेवाले प्रलयकालीन अन्धकारको अपने ही तेजसे पी लिया ॥ २० ॥

जो सत्त्वगुणमय, स्वच्छ, शान्त और भगवान्‌की उपलब्धिका स्थानरूप चित्त है, वही महत्तत्त्व है और उसीको 'वासुदेव' कहते हैं* ॥ २१ ॥ जिस प्रकार पृथ्वी आदि अन्य पदार्थोंके संसर्गसे पूर्व जल अपनी स्वाभाविक (फेन-तरङ्गादिरहित) अवस्थामें अत्यन्त स्वच्छ, विकारशून्य एवं शान्त होता है, उसी प्रकार अपनी स्वाभाविकी अवस्थाकी दृष्टिसे स्वच्छत्व, अविकारित्व और शान्तत्व ही वृत्तियोंसहित चित्तका लक्षण कहा गया है ॥ २२ ॥ तदनन्तर भगवान्‌की वीर्यरूप चित्‌शक्तिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वके विकृत होनेपर उससे क्रियाशक्तिप्रधान अहङ्कार उत्पन्न हुआ। वह वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। उसीसे क्रमशः मन, इन्द्रियों और पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ २३-२४ ॥ इस भूत, इन्द्रिय और मनरूप अहङ्कारको ही पण्डितजन साक्षात् 'सङ्कर्षण' नामक सहस्र सिरवाले अनन्तदेव कहते हैं ॥ २५ ॥ इस अहङ्कारका देवतारूपसे कर्तृत्व, इन्द्रियरूपसे करणत्व और पञ्चभूतरूपसे कार्यत्व लक्षण है तथा सत्त्वादि गुणोंके सम्बन्धसे शान्तत्व, घोरत्व और मूढत्व भी इसीके लक्षण हैं ॥ २६ ॥ उपर्युक्त तीन प्रकारके अहङ्कारमेंसे वैकारिक अहङ्कारके विकृत होनेपर उससे मन हुआ, जिसके सङ्कल्प-विकल्पोंसे कामनाओंकी उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥ यह मनस्तत्त्व ही इन्द्रियोंके अधिष्ठाता 'अनिरुद्ध' के नामसे प्रसिद्ध है। योगिजन शरत्कालीन नीलकमलके समान श्याम वर्णवाले इन अनिरुद्धजीकी शनैः-शनैः मनको वशीभूत करके आराधना करते हैं ॥ २८ ॥ साध्वि! फिर

* जिसे अध्यात्ममें चित्त कहते हैं, उसीको अधिभूतमें महत्तत्त्व कहा जाता है। चित्तमें अधिष्ठाता 'क्षेत्रज्ञ' और उपास्यदेव 'वासुदेव' है। इसी प्रकार अहङ्कारमें अधिष्ठाता 'रुद्र' और उपास्यदेव 'सङ्कर्षण' है, बुद्धिमें अधिष्ठाता 'ब्रह्मा' और उपास्यदेव 'प्रद्युम्न' है तथा मनमें अधिष्ठाता 'चन्द्रमा' और उपास्यदेव 'अनिरुद्ध' है।

तैजस अहङ्कारमें विकार होनेपर उससे बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ । वस्तुका स्फुरणरूप विज्ञान और इन्द्रियोंके व्यापारमें सहायक होना—पदार्थोंका विशेष ज्ञान कराना—ये बुद्धिके कार्य हैं ॥ २९ ॥ वृत्तियोंके भेदसे संशय, विपर्यय (विपरीत ज्ञान), निश्चय, स्मृति और निद्रा भी बुद्धिके ही लक्षण हैं । यह बुद्धितत्त्व ही 'प्रद्युम्न' है ॥ ३० ॥ इन्द्रियाँ भी तैजस अहङ्कारका ही कार्य हैं । कर्म और ज्ञानके विभागसे उनके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दो भेद हैं । इनमें कर्म प्राणकी शक्ति है और ज्ञान बुद्धिकी ॥ ३१ ॥

भगवान्‌की चेतनशक्तिकी प्रेरणासे तामस अहङ्कारके विकृत होनेपर उससे शब्दतन्मात्रका प्रादुर्भाव हुआ । शब्दतन्मात्रसे आकाश तथा शब्दका ज्ञान करानेवाली श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ अर्थका प्रकाशक होना, ओटमें खड़े हुए वक्ताका भी ज्ञान करा देना और आकाशका सूक्ष्म रूप होना—विद्वानोंके मतमें यही शब्दके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ भूतोंको अवकाश देना, सबके बाहर-भीतर वर्तमान रहना तथा प्राण, इन्द्रिय और मनका आश्रय होना—ये आकाशके वृत्ति (कार्य) रूप लक्षण हैं ॥ ३४ ॥

फिर शब्दतन्मात्रके कार्य आकाशमें कालगतिसे विकार होनेपर स्पर्शतन्मात्र हुआ और उससे वायु तथा स्पर्शका ग्रहण करानेवाली त्वगिन्द्रिय (त्वचा) उत्पन्न हुई ॥ ३५ ॥ कोमलता, कठोरता, शीतलता और उष्णता तथा वायुका सूक्ष्म रूप होना—ये स्पर्शके लक्षण हैं ॥ ३६ ॥ वृक्षकी शाखा आदिको हिलाना, तृणादिको इकट्ठा कर देना, सर्वत्र पहुँचना, गन्धादियुक्त द्रव्यको घ्राणादि इन्द्रियोंके पास तथा शब्दको श्रोत्रेन्द्रियके समीप ले जाना तथा समस्त इन्द्रियोंको कार्यशक्ति देना—ये वायुकी वृत्तियोंके लक्षण हैं ॥ ३७ ॥

तदनन्तर दैवकी प्रेरणासे स्पर्शतन्मात्रविशिष्ट वायुके विकृत होनेपर उससे रूपतन्मात्र हुआ तथा उससे तेज और रूपको उपलब्ध करानेवाली नेत्रेन्द्रियका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ३८ ॥ साध्वि ! वस्तुके आकारका बोध कराना, गौण होना—द्रव्यके अङ्गरूपसे प्रतीत होना, द्रव्यका जैसा आकार-प्रकार और परिमाण आदि हो, उसी रूपमें उपलक्षित होना तथा तेजका स्वरूपभूत होना—ये सब रूपतन्मात्रकी वृत्तियाँ हैं ॥ ३९ ॥ चमकना, पकाना, शीतको दूर करना, सुखाना, भूख-प्यास पैदा करना और उनकी निवृत्तिके लिये भोजन एवं जलपान कराना—ये तेजकी वृत्तियाँ हैं ॥ ४० ॥

फिर दैवकी प्रेरणासे रूपतन्मात्रमय तेजके विकृत होनेपर उससे रसतन्मात्र हुआ और उससे जल तथा रसको ग्रहण करानेवाली रसनेन्द्रिय (जिह्वा) उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥ रस अपने शुद्ध स्वरूपमें एक ही है; किन्तु अन्य भौतिक पदार्थोंके संयोगसे वह कसैला, मीठा, तीखा, कड़वा, खट्टा और नमकीन आदि कई प्रकारका हो जाता है ॥ ४२ ॥ गीला करना, मिट्टी आदिको पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थोंको मृदु कर देना, तापकी निवृत्ति करना और कूपादिमेंसे निकाल लिये जानेपर भी वहाँ बार-बार पुनः प्रकट हो जाना—ये जलकी वृत्तियाँ हैं ॥ ४३ ॥

इसके पश्चात् दैवप्रेरित रसस्वरूप जलके विकृत होनेपर उससे गन्धतन्मात्र हुआ और उससे पृथ्वी तथा गन्धको ग्रहण करानेवाली घ्राणेन्द्रिय प्रकट हुई ॥ ४४ ॥ गन्ध एक ही है; तथापि परस्पर मिले हुए द्रव्यभागोंकी न्यूनाधिकतासे वह मिश्रितगन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, मृदु, तीव्र और अम्ल (खट्टा) आदि अनेक प्रकारका हो जाता है ॥ ४५ ॥ प्रतिमादिरूपसे ब्रह्मकी साकार-भावनाका आश्रय होना, जल आदि कारण-तत्त्वोंसे भिन्न किसी दूसरे आश्रयकी अपेक्षा किये बिना ही स्थित रहना, जल आदि अन्य पदार्थोंको धारण करना, आकाशादिका अवच्छेदक होना (घटाकाश, मठाकाश आदि भेदोंको सिद्ध करना) तथा परिणामविशेषसे सम्पूर्ण प्राणियोंके [स्त्रीत्व, पुरुषत्व आदि] गुणोंको प्रकट करना—ये पृथ्वीके कार्यरूप लक्षण हैं ॥ ४६ ॥

आकाशका विशेष गुण शब्द जिसका विषय है, वह श्रोत्रेन्द्रिय है; वायुका विशेष गुण स्पर्श जिसका विषय है, वह त्वगिन्द्रिय है; ॥ ४७ ॥ तेजका विशेष गुण रूप जिसका विषय है, वह नेत्रेन्द्रिय है; जलका विशेष गुण रस जिसका विषय है, वह रसनेन्द्रिय है और पृथ्वीका विशेष गुण गन्ध जिसका विषय है, उसे

घ्राणेन्द्रिय कहते हैं ॥ ४८ ॥ वायु आदि कार्य-तत्त्वोंमें आकाशादि कारण-तत्त्वोंके रहनेसे उनके गुण भी अनुगत देखे जाते हैं; इसलिये समस्त महाभूतोंके गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध केवल पृथ्वीमें ही पाये जाते हैं ॥ ४९ ॥ जब महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चभूत—ये सात तत्त्व परस्पर मिल न सके—पृथक्-पृथक् ही रह गये, तब जगत्के आदिकारण श्रीनारायणने काल, अदृष्ट और सत्त्वादि गुणोंके सहित उनमें प्रवेश किया ॥५०॥

फिर परमात्माके प्रवेशसे क्षुब्ध और आपसमें मिले हुए उन तत्त्वोंसे एक जड अण्ड उत्पन्न हुआ । उस अण्डसे इस विराट् पुरुषकी अभिव्यक्ति हुई ॥ ५१ ॥ इस अण्डका नाम विशेष है, इसीके अन्तर्गत श्रीहरिके स्वरूपभूत चौदहों भुवनोंका विस्तार है । यह चारों ओरसे क्रमशः एक-दूसरेसे दसगुने जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार और महत्तत्त्व—इन छः आवरणोंसे घिरा हुआ है । इन सबके बाहर सातवाँ आवरण प्रकृतिका है ॥ ५२ ॥ कारणमय जलमें स्थित उस तेजोमय अण्डसे उठकर उस विराट् पुरुषने पुनः उसमें प्रवेश किया और फिर उसमें कई प्रकारके छिद्र किये ॥ ५३ ॥ सबसे पहले उसमें मुख प्रकट हुआ, उससे वाक्-इन्द्रिय और उसके अनन्तर वाक्का अधिष्ठाता अग्नि उत्पन्न हुआ । फिर नाकके छिद्र (नथुने) प्रकट हुए, उनसे प्राणसहित घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई ॥ ५४ ॥ घ्राणके बाद उसका अधिष्ठाता वायु उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् नेत्रगोलक प्रकट हुए, उनसे चक्षु-इन्द्रिय प्रकट हुई और उसके अनन्तर उसका अधिष्ठाता सूर्य उत्पन्न हुआ । फिर कानोंके छिद्र प्रकट हुए, उनसे उनकी इन्द्रिय श्रोत्र और उसके अभिमानी दिग्देवता प्रकट हुए ॥ ५५ ॥ इसके बाद उस विराट् पुरुषके त्वचा उत्पन्न हुई । उससे रोम, मूँछ-दाढ़ी तथा सिरके बाल प्रकट हुए । और उनके बाद त्वचाकी अभिमानी ओषधियाँ (अन्न आदि) उत्पन्न हुईं । इसके पश्चात् लिङ्ग प्रकट हुआ ॥ ५६ ॥ उससे वीर्य और वीर्यके बाद लिङ्गका अभिमानी आपोदेव (जल) उत्पन्न हुआ । फिर गुदा प्रकट हुई, उससे अपानवायु और अपानके बाद उसका अभिमानी लोकोंको भयभीत करनेवाला मृत्युदेवता उत्पन्न हुआ ॥ ५७ ॥ तदनन्तर हाथ प्रकट हुए, उनसे बल और बलके बाद हस्तेन्द्रियका अभिमानी इन्द्र उत्पन्न हुआ । फिर चरण प्रकट हुए, उनसे गति (गमनकी क्रिया) और फिर पादेन्द्रियका अभिमानी विष्णुदेवता उत्पन्न हुआ ॥ ५८ ॥ इसी प्रकार जब विराट् पुरुषके नाड़ियाँ प्रकट हुईं, तो उनसे रुधिर उत्पन्न हुआ और उससे नदियाँ हुईं । फिर उसके उदर (पेट) प्रकट हुआ ॥ ५९ ॥ उससे क्षुधा-पिपासाकी अभिव्यक्ति हुई और फिर उदरका अभिमानी समुद्रदेवता उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् उसके हृदय प्रकट हुआ, हृदयसे मनका प्राकट्य हुआ ॥ ६० ॥ मनके बाद उसका अभिमानी देवता चन्द्रमा हुआ । फिर हृदयसे ही बुद्धि और उसके बाद उसका अभिमानी ब्रह्मा हुआ । तत्पश्चात् अहङ्कार और उसके अनन्तर उसका अभिमानी रुद्रदेवता उत्पन्न हुआ । इसके बाद चित्त और उसका अभिमानी क्षेत्रज्ञ प्रकट हुआ ॥ ६१ ॥

जब ये क्षेत्रज्ञके अतिरिक्त सारे देवता उत्पन्न होकर भी विराट् पुरुषको उठानेमें असमर्थ रहे, तो उसे उठानेके लिये क्रमशः फिर अपने-अपने उत्पत्तिस्थानोंमें प्रविष्ट होने लगे ॥ ६२ ॥ अग्निने वाणीके साथ मुखमें प्रवेश किया, परन्तु इससे विराट् पुरुष न उठा । वायुने घ्राणेन्द्रियके सहित नासाछिद्रोंमें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६३ ॥ सूर्यने चक्षुके सहित नेत्रोंमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा । दिशाओंने श्रवणेन्द्रियके सहित कानोंमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६४ ॥ ओषधियोंने रोमोंके सहित त्वचामें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा । जलने वीर्यके साथ लिङ्गमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६५ ॥ मृत्युने अपानके साथ गुदामें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा । इन्द्रने बलके साथ हाथोंमें प्रवेश किया, परन्तु इससे भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६६ ॥ विष्णुने गतिके सहित चरणोंमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा । नदियोंने रुधिरके सहित नाड़ियोंमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६७ ॥ समुद्रने क्षुधा-पिपासाके सहित उदरमें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा ।

चन्द्रमाने मनके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६८ ॥ ब्रह्माने बुद्धिके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा। रुद्रने अहङ्कारके सहित उसी हृदयमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा ॥ ६९ ॥ किन्तु जब चित्तके अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञने चित्तके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तो विराट् पुरुष उसी समय जलसे उठकर खड़ा हो गया ॥ ७० ॥ जिस प्रकार लोकमें प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि चित्तके अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञकी सहायताके बिना सोये हुए प्राणीको अपने बलसे नहीं उठा सकते, उसी प्रकार विराट् पुरुषको भी वे क्षेत्रज्ञ परमात्माके बिना नहीं उठा सके ॥ ७१ ॥ अतः भक्ति, वैराग्य और चित्तकी एकाग्रतासे प्रकट हुए ज्ञानके द्वारा उस अन्तरात्मस्वरूप क्षेत्रज्ञको इस शरीरमें स्थित जानकर उसका चिन्तन करना चाहिये ॥ ७२ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रकृति-पुरुषके विवेकसे मोक्ष-प्राप्तिका वर्णन

श्रीभगवान् कहते हैं—माताजी! जिस तरह जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यके साथ जलके शीतलता, चञ्चलता आदि गुणोंका सम्बन्ध नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिके कार्य शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा वास्तवमें उसके सुख-दुःखादि धर्मोंसे लिप्त नहीं होता; क्योंकि वह स्वभावसे निर्विकार, अकर्ता और निर्गुण है ॥ १ ॥ किन्तु जब वही प्राकृत गुणोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तब अहङ्कारसे मोहित होकर 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा मानने लगता है ॥ २ ॥ उस अभिमानके कारण वह देहके संसर्गसे किये हुए पुण्य-पापरूप कर्मोंके दोषसे अपनी स्वाधीनता और शान्ति खो बैठता है तथा उत्तम, मध्यम और नीच योनियोंमें उत्पन्न होकर संसारचक्रमें घूमता रहता है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार स्वप्नमें भय-शोकादिका कोई कारण न होनेपर भी स्वप्नके पदार्थोंमें आस्था हो जानेके कारण दुःख उठाना पड़ता है, उसी प्रकार भय-शोक, अहं-मम एवं जन्म-मरणादिरूप संसारकी कोई सत्ता न होनेपर भी अविद्यावश विषयोंका चिन्तन करते रहनेसे जीवका संसार-चक्र कभी निवृत्त नहीं होता ॥ ४ ॥ इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यको उचित है कि असन्मार्ग (विषय-चिन्तन) में फँसे हुए चित्तको तीव्र भक्तियोग और वैराग्यके द्वारा धीरे-धीरे अपने वशमें लावे ॥ ५ ॥

यमादि योगसाधनोंके द्वारा श्रद्धापूर्वक अभ्यास—चित्तको बारंबार एकाग्र करते हुए मुझमें सच्चा भाव रखने, मेरी कथा श्रवण करने, समस्त प्राणियोंमें समभाव रखने, किसीसे वैर न करने, आसक्तिके त्याग, ब्रह्मचर्य, मौन-व्रत और बलिष्ठ (अर्थात् भगवान्‌को समर्पित किये हुए) स्वधर्मसे जिसे ऐसी स्थिति प्राप्त हो गयी है कि—प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है, परिमित भोजन करता है, सदा एकान्तमें रहता है, शान्तस्वभाव है, सबका मित्र है, दयालु और धैर्यवान् है, प्रकृति और पुरुषके वास्तविक स्वरूपके अनुभवसे प्राप्त हुए तत्त्वज्ञानके कारण स्त्री-पुत्रादि सम्बन्धियोंके सहित इस देहमें मैं-मेरेपनका मिथ्या अभिनिवेश नहीं करता, बुद्धिकी जाग्रदादि अवस्थाओंसे भी अलग हो गया है तथा परमात्माके सिवा और कोई वस्तु नहीं देखता—वह आत्मदर्शी मुनि नेत्रोंसे सूर्यको देखनेकी भाँति अपने शुद्ध अन्तःकरणद्वारा परमात्माका साक्षात्कार कर उस अद्वितीय ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाता है, जो देहादि सम्पूर्ण उपाधियोंसे पृथक्, अहङ्कारादि मिथ्या वस्तुओंमें सत्यरूपसे भासनेवाला, जगत्कारणभूता प्रकृतिका अधिष्ठान, महदादि कार्यवर्गका प्रकाशक और कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण पदार्थोंमें व्याप्त है ॥ ६—११ ॥

जिस प्रकार जलमें पड़ा हुआ सूर्यका प्रतिबिम्ब दीवालपर पड़े हुए अपने आभासके सम्बन्धसे देखा जाता है और जलमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बसे आकाशस्थित सूर्यका ज्ञान होता है, उसी प्रकार वैकारिक आदि भेदसे तीन प्रकारका अहङ्कार देह, इन्द्रिय और मनमें स्थित अपने प्रतिबिम्बोंसे लक्षित होता है और फिर सत्

परमात्माके प्रतिबिम्बयुक्त उस अहङ्कारके द्वारा सत्य-ज्ञानस्वरूप परमात्माका दर्शन होता है—जो सुषुप्तिके समय निद्रासे शब्दादि भूतसूक्ष्म, इन्द्रिय और मन-बुद्धि आदिके अव्याकृतमें लीन हो जानेपर स्वयं जागता रहता है और सर्वथा अहङ्कारशून्य है ॥ १२–१४ ॥ (जाग्रत् अवस्थामें यह आत्मा भूतसूक्ष्मादि दृश्यवर्गके द्रष्टारूपमें स्पष्टतया अनुभवमें आता है; किन्तु) सुषुप्ति-के समय अपने उपाधिभूत अहङ्कारका नाश होनेसे वह भ्रमवश अपनेको ही नष्ट हुआ मान लेता है और जिस प्रकार धनका नाश हो जानेपर मनुष्य अपनेको भी नष्ट हुआ मानकर अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार वह भी अत्यन्त विवश होकर नष्टवत् हो जाता है ॥ १५ ॥ माताजी ! इन सब बातोंका मनन करके विवेकी पुरुष अपने आत्माका अनुभव कर लेता है, जो अहङ्कारके सहित सम्पूर्ण तत्त्वोंका अधिष्ठान और प्रकाशक है ॥ १६ ॥

देवहूतिने पूछा—प्रभो ! पुरुष और प्रकृति दोनों ही नित्य और एक-दूसरेके आश्रयसे रहनेवाले हैं, इसलिये प्रकृति तो पुरुषको कभी छोड़ ही नहीं सकती ॥१७॥ ब्रह्मन् ! जिस प्रकार गन्ध और पृथ्वी तथा रस और जलकी पृथक्-पृथक् स्थिति नहीं हो सकती, उसी प्रकार पुरुष और प्रकृति भी एक-दूसरेको छोड़कर नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ अतः जिनके आश्रयसे अकर्त्ता पुरुषको यह कर्मबन्धन प्राप्त हुआ है, उन प्रकृतिके गुणोंके रहते हुए उसे कैवल्यपद कैसे प्राप्त होगा ? ॥ १९ ॥ यदि तत्त्वोंका विचार करनेसे कभी यह संसारबन्धनका तीव्र भय निवृत्त हो भी जाय, तो भी उसके निमित्तभूत प्राकृत गुणोंका अभाव न होनेसे वह भय फिर उपस्थित हो सकता है ॥ २० ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—माताजी ! जिस प्रकार अग्निका उत्पत्तिस्थान अरणि अपनेसे ही उत्पन्न अग्निसे जलकर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार निष्कामभावसे किये हुए स्वधर्मपालनद्वारा अन्तःकरण शुद्ध होनेसे बहुत समय-तक भगवत्कथा-श्रवणद्वारा पुष्ट हुई मेरी तीव्र भक्तिसे, तत्त्वसाक्षात्कार करानेवाले ज्ञानसे, प्रबल वैराग्यसे, व्रत-नियमादिके सहित किये हुए ध्यानाभ्याससे और चित्तकी प्रगाढ़ एकाग्रतासे पुरुषकी प्रकृति (अविद्या) दिन-रात क्षीण होती हुई धीरे-धीरे लीन हो जाती है ॥२१–२३॥ फिर नित्यप्रति दोष दीखनेसे भोगकर त्यागी हुई वह प्रकृति अपने स्वरूपमें स्थित और स्वतन्त्र (बन्धनमुक्त) हुए उस पुरुषका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती ॥२४॥ जैसे सोये हुए पुरुषको स्वप्नमें कितने ही अनर्थोंका अनुभव करना पड़ता है, किन्तु जग पड़नेपर उसे उन स्वप्नके अनुभवोंसे किसी प्रकारका मोह नहीं होता ॥२५॥ उसी प्रकार जिसे तत्त्वज्ञान हो गया है और जो निरन्तर मुझमें ही मन लगाये रहता है, उस आत्माराम मुनिका प्रकृति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती ॥ २६ ॥ जब मनुष्य अनेकों जन्मोंमें बहुत समयतक इस प्रकार आत्मचिन्तनमें ही निमग्न रहता है, तब उसे ब्रह्मलोक-पर्यन्त सभी प्रकारके भोगोंसे वैराग्य हो जाता है ॥२७॥ मेरा वह धैर्यवान् भक्त मेरी ही महती कृपासे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके आत्मानुभवके द्वारा सारे संशयोंसे मुक्त हो जाता है और फिर लिङ्गदेहका नाश होनेपर एकमात्र मेरे ही आश्रित अपने स्वरूपभूत कैवल्य-संज्ञक मङ्गलमय पदको सहजमें ही प्राप्त कर लेता है, जहाँ पहुँचनेपर योगी फिर लौटकर नहीं आता ॥२८-२९॥ माताजी ! यदि योगीका चित्त योगसाधनसे बढ़ी हुई मायामयी अणिमादि सिद्धियोंमें, जिनकी प्राप्तिका योगके सिवा दूसरा कोई साधन नहीं है, नहीं फँसता, तो उसे मेरा वह अविनाशी परमपद प्राप्त होता है—जहाँ मृत्युकी कुछ भी दाल नहीं गलती ॥ ३० ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अष्टाङ्गयोगकी विधि

कपिलभगवान् कहते हैं—माताजी ! अब मैं तुम्हें सबीज (ध्येयस्वरूपके आलम्बनसे युक्त) योगका लक्षण बताता हूँ, जिसके द्वारा चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न होकर परमात्माके मार्गमें प्रवृत्त हो जाता है ॥ १ ॥ यथाशक्ति शास्त्रविहित स्वधर्मका पालन करना तथा शास्त्रविरुद्ध आचरणका परित्याग करना, प्रारब्धके अनुसार जो कुछ

मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहना; आत्मज्ञानियोंके चरणोंकी पूजा करना, ॥२॥ विषयवासनाओंको बढ़ानेवाले कर्मोंसे दूर रहना, संसारबन्धनसे छुड़ानेवाले धर्मोंमें प्रेम करना, पवित्र और परिमित भोजन करना, निरन्तर एकान्त और निर्भय स्थानमें रहना, ॥ ३ ॥ मन, वाणी और शरीरसे किसी जीवको न सताना, सत्य बोलना, चोरी न करना, आवश्यकतासे अधिक वस्तुओंका संग्रह न करना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, तपस्या करना (धर्मपालनके लिये कष्ट सहना), बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, शास्त्रोंका अध्ययन करना, भगवान्‌की पूजा करना, ॥४॥ वाणीका संयम करना, उत्तम आसनोंका अभ्यास करके स्थिरतापूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतना, इन्द्रियोंको मनके द्वारा विषयोंसे हटाकर अपने हृदयमें ले जाना ॥ ५ ॥ मूलाधार आदि किसी एक केन्द्रमें मनके सहित प्राणोंको स्थिर करना, निरन्तर भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन और चित्तको समाहित करना, ॥ ६ ॥ इनसे तथा व्रत-दानादि दूसरे साधनोंसे भी सावधानीके साथ प्राणोंको जीतकर बुद्धिके द्वारा अपने कुमार्गगामी दुष्ट चित्तको धीरे-धीरे एकाग्र करे, परमात्माके ध्यानमें लगावे ॥ ७ ॥

पहले आसनको जीते, फिर प्राणायामके अभ्यासके लिये पवित्र देशमें कुश-मृगचर्मादिसे युक्त आसन बिछावे। उसपर शरीरको सीधा और स्थिर रखते हुए सुखपूर्वक बैठकर अभ्यास करे ॥ ८ ॥ आरम्भमें पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमसे अथवा इसके विपरीत रेचक, कुम्भक और पूरक करके प्राणके मार्गका शोधन करे—जिससे चित्त स्थिर और निश्चल हो जाय ॥ ९ ॥

जिस प्रकार वायु और अग्निसे तपाया हुआ सोना अपने मलको त्याग देता है, उसी प्रकार जो योगी प्राणवायुको जीत लेता है, उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है ॥१०॥ अतः योगीको उचित है कि प्राणायामसे वात-पित्तादिजनित दोषोंको, धारणासे पापोंको, प्रत्याहारसे विषयोंके सम्बन्धको और ध्यानसे भगवद्विमुख करनेवाले राग-द्वेषादि दुर्गुणोंको दूर करे ॥ ११ ॥ जब योगका अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल और एकाग्र हो जाय, तब नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमाकर इस प्रकार भगवान्‌की मूर्तिका ध्यान करे ॥ १२ ॥

भगवान्‌का मुखकमल आनन्दसे प्रफुल्ल है, नेत्र कमलकोशके समान रतनारे हैं, शरीर नीलकमलदलके समान श्याम है; हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हैं ॥ १३ ॥ कमलकी केसरके समान पीला रेशमी वस्त्र लहरा रहा है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न है और गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है ॥ १४ ॥ वनमाला चरणोंतक लटकी हुई है, जिसके चारों ओर भौंरे सुगन्धसे मतवाले होकर मधुर गुंजार कर रहे हैं; अङ्ग-प्रत्यङ्गमें महामूल्य हार, कङ्कण, किरीट, भुजबन्ध और नूपुर आदि आभूषण विराजमान हैं ॥१५॥ कमरमें करधनीकी लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही हैं; भक्तोंके हृदयकमल ही उनके आसन हैं, उनका दर्शनीय श्यामसुन्दर स्वरूप अत्यन्त शान्त एवं मन और नयनोंको आनन्दित करनेवाला है ॥ १६ ॥ उनकी अति सुन्दर किशोर अवस्था है, वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आतुर हो रहे हैं। बड़ी मनोहर झाँकी है। भगवान् सदा सम्पूर्ण लोकोंसे वन्दित हैं ॥१७॥ उनका पवित्र यश परम कीर्तनीय है और वे राजा बलि आदि परम यशस्वियोंके भी यशको बढ़ानेवाले हैं। इस प्रकार श्रीनारायणदेवका सम्पूर्ण अङ्गोंके सहित तबतक ध्यान करे, जबतक चित्त वहाँसे हटे नहीं ॥१८॥ भगवान्‌की लीलाएँ बड़ी दर्शनीय हैं; अतः अपनी रुचिके अनुसार खड़े हुए, चलते हुए, बैठे हुए, पौढ़े हुए अथवा अन्तर्यामीरूपमें स्थित हुए उनके स्वरूपका विशुद्ध भावयुक्त चित्तसे चिन्तन करे ॥१९॥ इस प्रकार योगी जब यह अच्छी तरह देख ले कि भगवद्विग्रहमें चित्तकी स्थिति हो गयी, तब वह उनके समस्त अङ्गोंमें लगे हुए चित्तको विशेष रूपसे एक-एक अङ्गमें लगावे ॥ २० ॥

भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करना चाहिये। वे वज्र, अङ्कुश, ध्वजा और कमलके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त हैं तथा अपने उभरे हुए लाल-लाल शोभामय नखचन्द्रमण्डलकी चन्द्रिकासे ध्यान करनेवालोंके हृदयके अज्ञानरूप घोर अन्धकारको दूर कर देते हैं ॥२१॥ इन्हींकी धोवनसे नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी प्रकट हुई थीं, जिनके पवित्र जलको मस्तकपर धारण करनेके कारण स्वयं मङ्गलरूप श्रीमहादेवजी और भी अधिक मङ्गलमय हो गये। ये

अपना ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वतोंपर छोड़े हुए इन्द्रके वज्रके समान हैं। भगवान्‌के इन चरणकमलोंका चिरकालतक चिन्तन करे ॥ २२ ॥

भवभयहारी अजन्मा श्रीहरिकी दोनों पिंडलियों एवं घुटनोंका ध्यान करे, जिनको विश्वविधाता ब्रह्माजीकी माता सुरवन्दिता कमललोचना लक्ष्मीजी अपनी जाँघोंपर रखकर अपने कान्तिमान् करकिसलयोंकी कान्तिसे लाड़ लड़ाती रहती हैं ॥ २३ ॥ भगवान्‌की जाँघोंका ध्यान करे, जो अलसीके फूलके समान नीलवर्ण और बलकी निधि हैं तथा गरुड़जीकी पीठपर शोभायमान हैं। भगवान्‌के नितम्बबिम्बका ध्यान करे, जो एड़ीतक लटके हुए पीताम्बरसे ढका हुआ है और उस पीताम्बर-के ऊपर पहनी हुई सुवर्णमयी करधनीकी लड़ियोंको आलिङ्गन कर रहा है ॥ २४ ॥

सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयस्थान भगवान्‌के उदरदेशमें स्थित नाभिसरोवरका ध्यान करे; इसीमेंसे ब्रह्माजीका आधारभूत सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ है। फिर प्रभुके श्रेष्ठ मरकतमणिसदृश दोनों स्तनोंका चिन्तन करे, जो वक्षःस्थलपर पड़े हुए शुभ्र हारोंकी किरणोंसे गौरवर्ण जान पड़ते हैं ॥ २५ ॥ इसके पश्चात् पुरुषोत्तम भगवान्‌के वक्षःस्थलका ध्यान करे, जो महालक्ष्मी-का निवासस्थान और लोगोंके मन एवं नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है। फिर सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय भगवान्‌के गलेका चिन्तन करे, जो मानो कौस्तुभमणिको भी सुशोभित करनेके लिये ही उसे धारण करता है ॥२६॥

समस्त लोकपालोंकी आश्रयभूता भगवान्‌की चारों भुजाओंका ध्यान करे, जिनमें धारण किये हुए कङ्कणादि आभूषण समुद्रमन्थनके समय मन्दराचलकी रगड़से और भी उजले हो गये हैं। इसी प्रकार जिसके तेजको सहन नहीं किया जा सकता, उस सहस्र धारोंवाले सुदर्शनचक्रका तथा उनके कर-कमलमें राजहंसके समान विराजमान शङ्खका चिन्तन करे ॥ २७ ॥ फिर विपक्षी वीरोंके रुधिरसे सनी हुई प्रभुकी प्यारी कौमोदकी गदाका, भौंरोंके शब्दसे गुञ्जायमान वनमालाका और उनके कण्ठमें सुशोभित सम्पूर्ण जीवोंके निर्मलतत्त्वरूप कौस्तुभमणिका ध्यान करे* ॥ २८ ॥

भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही यहाँ साकाररूप धारण करनेवाले श्रीहरिके मुखकमलका ध्यान करे, जो सुघड़ नासिकासे सुशोभित है और झिलमिलाते हुए मकराकृत कुण्डलोंके हिलनेसे अतिशय प्रकाशमान स्वच्छ कपोलों-के कारण बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है ॥ २९ ॥ काली-काली घुँघराली अलकावलीसे मण्डित भगवान्‌का मुखमण्डल अपनी छबिके द्वारा भ्रमरोंसे सेवित कमलकोशका भी तिरस्कार कर रहा है और उसके कमलसदृश विशाल एवं चञ्चल नेत्र उस कमल-कोशपर उछलते हुए मछलियोंके जोड़ेकी शोभाको मात कर रहे हैं। उन्नत भ्रूलताओंसे सुशोभित भगवान्‌के ऐसे मनोहर मुखारविन्दकी मनमें धारणा करके आलस्य-रहित हो उसीका ध्यान करे ॥ ३० ॥

हृदयगुहामें चिरकालतक भक्तिभावसे भगवान्‌के नेत्रोंकी चितवनका ध्यान करना चाहिये—जो कृपासे और प्रेमभरी मुसकानसे क्षण-क्षण अधिकाधिक बढ़ती रहती है, विपुल प्रसादकी वर्षा करती रहती है और भक्तजनोंके अत्यन्त घोर तीनों तापोंको शान्त करनेके लिये ही प्रकट हुई है ॥ ३१ ॥ श्रीहरिका हास्य प्रणतजनोंके तीव्र-से-तीव्र शोकके अश्रुसागरको सुखा देता है और अत्यन्त उदार है। मुनियोंके हितके लिये कामदेवको मोहित करनेके लिये ही अपनी मायासे श्रीहरिने अपने भ्रूमण्डलको बनाया है—उनका ध्यान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ अत्यन्त प्रेमार्द्रभावसे अपने हृदयमें विराजमान श्रीहरिके खिलखिलाकर हँसनेका ध्यान करे, जो वस्तुतः ध्यानके ही योग्य है तथा जिसमें ऊपर और नीचेके दोनों होठोंकी अत्यधिक अरुण कान्तिके कारण उनके कुन्दकलीके समान शुभ्र छोटे-छोटे दाँतोंपर लालिमा-सी प्रतीत होने लगी है। इस प्रकार ध्यानमें तन्मय होकर उनके सिवा किसी अन्य पदार्थको देखनेकी इच्छा न करे ॥ ३३ ॥

---

* 'आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम्। बिभर्ति कौस्तुभमणिं स्वरूपं भगवान् हरिः ॥'

अर्थात् इस जगत्‌की निर्लेप, निर्गुण, निर्मल तथा स्वरूपभूत आत्माको कौस्तुभमणिके रूपमें भगवान् धारण करते हैं।

इस प्रकारके ध्यानके अभ्याससे साधकका श्रीहरिमें प्रेम हो जाता है, उसका हृदय भक्तिसे द्रवित हो जाता है, शरीरमें आनन्दातिरेकके कारण रोमाञ्च होने लगता है, उत्कण्ठाजनित प्रेमाश्रुओंकी धारामें वह बारंबार अपने शरीरको नहलाता है और फिर मछली पकड़नेके काँटेके समान श्रीहरिको अपनी ओर आकर्षित करनेके साधनरूप अपने चित्तको भी धीरे-धीरे ध्येय वस्तुसे हटा लेता है ॥ ३४ ॥ जैसे तेल आदिके चुक जानेपर दीपशिखा अपने कारणरूप तेजस्-तत्त्वमें लीन हो जाती है, वैसे ही आश्रय, विषय और रागसे रहित होकर मन शान्त—ब्रह्माकार हो जाता है। इस अवस्थाके प्राप्त होनेपर जीव गुणप्रवाहरूप देहादि उपाधिके निवृत्त हो जानेके कारण ध्याता, ध्येय आदि विभागसे रहित एक अखण्ड परमात्माको ही सर्वत्र अनुगत देखता है ॥ ३५ ॥ योगाभ्याससे प्राप्त हुई चित्तकी इस अविद्यारहित लयरूप निवृत्तिसे अपनी सुख-दुःखरहित ब्रह्मरूप महिमामें स्थित होकर परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेनेपर वह योगी जिस सुख-दुःखके भोक्तृत्वको पहले अज्ञानवश अपने स्वरूपमें देखता था, उसे अब अविद्याकृत अहङ्कारमें ही देखता है ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार मदिराके मदसे मतवाले पुरुषको अपनी कमरपर लपेटे हुए वस्त्रके रहने या गिरनेकी कुछ भी सुधि नहीं रहती, उसी प्रकार चरमावस्थाको प्राप्त हुए सिद्ध पुरुषको भी अपनी देहके बैठने-उठने अथवा दैववश कहीं जाने या लौट आनेके विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं रहता; क्योंकि वह अपने परमानन्दमय स्वरूपमें स्थित है ॥ ३७ ॥ उसका शरीर तो पूर्वजन्मके संस्कारोंके अधीन है; अतः जबतक उसका आरम्भक प्रारब्ध शेष है तबतक वह इन्द्रियोंके सहित जीवित रहता है; किन्तु जिसे समाधिपर्यन्त योगकी स्थिति प्राप्त हो गयी है और जिसने परमात्मतत्त्वको भी भलीभाँति जान लिया है, वह सिद्धपुरुष पुत्र-कलत्रादिके सहित इस शरीरको स्वप्नमें प्रतीत होनेवाले शरीरोंके समान फिर स्वीकार नहीं करता—फिर उसमें अहंता-ममता नहीं करता ॥ ३८ ॥

जिस प्रकार अत्यन्त स्नेहके कारण पुत्र और धनादिमें भी साधारण जीवोंकी आत्मबुद्धि रहती है, किन्तु थोड़ा-सा विचार करनेसे ही वे उनसे स्पष्टतया अलग दिखायी देते हैं, उसी प्रकार जिन्हें यह अपना आत्मा मान बैठा है, उन देहादिसे भी उनका साक्षी पुरुष पृथक् ही है ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार जलती हुई लकड़ीसे, चिनगारीसे, स्वयं अग्निसे ही प्रकट हुए धुएँसे तथा अग्निरूप मानी जानेवाली उस जलती हुई लकड़ीसे भी अग्नि वास्तवमें पृथक् ही है—उसी प्रकार भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणसे उनका साक्षी आत्मा अलग है, तथा जीव कहलानेवाले उस आत्मासे भी ब्रह्म भिन्न है और प्रकृतिसे उसके सञ्चालक पुरुषोत्तम भिन्न हैं ॥ ४०-४१ ॥ जिस प्रकार देहदृष्टिसे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—चारों प्रकारके प्राणी पञ्चभूतमात्र हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण जीवोंको अनन्यभावसे अनुगत देखे ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार एक ही अग्नि अपने पृथक्-पृथक् आश्रयोंमें उनकी विभिन्नताके कारण भिन्न-भिन्न आकारका दिखायी देता है, उसी प्रकार देव-मनुष्यादि शरीरोंमें रहनेवाला एक ही आत्मा अपने आश्रयोंके गुण-भेदके कारण भिन्न-भिन्न प्रकारका भासता है ॥ ४३ ॥ अतः भगवान्‌का भक्त जीवके स्वरूपको छिपा देनेवाली कार्यकारणरूपसे परिणामको प्राप्त हुई भगवान्‌की इस अचिन्त्य शक्तिमयी मायाको भगवान्‌की कृपासे ही जीतकर अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मरूपमें स्थित होता है ॥ ४४ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

भक्तिका मर्म और कालकी महिमा

देवहूतिने पूछा—प्रभो ! प्रकृति, पुरुष और महत्-तत्त्वादिका जैसा लक्षण सांख्यशास्त्रमें कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप अलग-अलग जाना जाता है और भक्तियोगको ही जिसका प्रयोजन कहा गया है, वह आपने मुझे बताया। अब कृपा करके भक्तियोगका मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १-२ ॥ इसके सिवा जीवोंकी जन्म-मरणरूपा अनेक प्रकारकी गतियोंका भी वर्णन कीजिये; जिनके सुननेसे जीवको

सब प्रकारकी वस्तुओंसे वैराग्य होता है ॥ ३ ॥ जिसके भयसे लोग शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और जो ब्रह्मादिका भी शासन करनेवाला है, उस सर्वसमर्थ कालका स्वरूप भी आप मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ ज्ञान-दृष्टिके लुप्त हो जानेके कारण देहादि मिथ्या वस्तुओंमें जिन्हें आत्माभिमान हो गया है तथा बुद्धिके कर्मासक्त रहनेके कारण अत्यन्त श्रमित होकर जो चिरकालसे अपार अन्धकारमय संसारमें सोये पड़े हैं, उन्हें जगानेके लिये आप योगप्रकाशक सूर्य ही प्रकट हुए हैं ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! माताके ये मनोहर वचन सुनकर महामुनि कपिलजीने उनकी प्रशंसा की और जीवोंके प्रति दयासे द्रवीभूत हो बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे इस प्रकार बोले ॥ ६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—माताजी ! साधकोंके भावके अनुसार भक्तियोगका अनेक प्रकारसे प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव और गुणोंके भेदसे मनुष्योंके भावमें भी विभिन्नता आ जाती है ॥ ७ ॥ जो भेददर्शी क्रोधी पुरुप हृदयमें हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्यका भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है ॥ ८ ॥ जो पुरुप विपय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे प्रतिमादिमें मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह राजस भक्त है ॥ ९ ॥ जो व्यक्ति पापोंका क्षय करनेके लिये, परमात्माको अर्पण करनेके लिये और पूजन करना कर्त्तव्य है—इस बुद्धिसे मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है ॥ १० ॥ जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्डरूपसे समुद्रकी ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपसे मुझ सर्वान्तर्यामीके प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुपोत्तममें निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण भक्तियोगका लक्षण कहा गया है ॥ ११-१२ ॥ ऐसे निष्काम भक्त, दिये जानेपर भी, मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य[1], सार्ष्टि[2], सामीप्य[3], सारूप्य[4] और सायुज्य[5] मोक्षतक नहीं लेते— ॥ १३ ॥ भगवत्-सेवाके लिये मुक्तिका तिरस्कार करनेवाला यह भक्तियोग ही परम पुरुपार्थ अथवा साध्य कहा गया है । इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणोंको लाँघकर मेरे भावको—मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥

निष्कामभावसे श्रद्धापूर्वक अपने नित्य-नैमित्तिक कर्त्तव्योंका पालन कर, नित्यप्रति हिंसारहित उत्तम क्रियायोगका अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमाका दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, प्राणियोंमें मेरी भावना करने, धैर्य और वैराग्यके अवलम्बन, महापुरुषोंका मान, दीनोंपर दया और समान स्थितिवालोंके प्रति मित्रताका व्यवहार करने, यम-नियमोंका पालन, अध्यात्मशास्त्रोंका श्रवण और मेरे नामोंका उच्च स्वरसे कीर्त्तन करनेसे तथा मनकी सरलता, सत्पुरुषोंके सङ्ग और अहङ्कारके त्यागसे मेरे धर्मोंका (भागवतधर्मोंका) अनुष्ठान करनेवाले भक्त पुरुषका चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे अनायास ही मुझमें लग जाता है ॥ १५–१९ ॥

जिस प्रकार वायुके द्वारा उड़कर जानेवाला गन्ध अपने आश्रय पुष्पसे घ्राणेन्द्रियतक पहुँच जाता है, उसी प्रकार भक्तियोगमें तत्पर और राग-द्वेपादि विकारोंसे शून्य चित्त परमात्माको प्राप्त कर लेता है ॥ २० ॥ मैं आत्मारूपसे सदा सभी जीवोंमें स्थित हूँ; इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वाँगमात्र है ॥ २१ ॥ मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतोंमें स्थित हूँ; ऐसी दशामें जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमाके पूजनमें ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्ममें ही हवन करता है ॥ २२ ॥ जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवोंके साथ वैर बाँधता है और इस प्रकार उनके शरीरोंमें विद्यमान मुझ आत्मासे ही द्वेष करता है, उसके मनको कभी शान्ति नहीं मिल सकती ॥ २३ ॥ माताजी ! जो दूसरे जीवोंका अपमान करता है, वह बहुत-सी घटिया-बढ़िया सामग्रियोंसे अनेक प्रकारके विधि-विधानके साथ मेरी मूर्त्तिका पूजन भी करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता ॥ २४ ॥ मनुष्य अपने धर्मका अनुष्ठान करता हुआ तबतक मुझ ईश्वरकी प्रतिमा आदिमें पूजा करता रहे, जबतक उसे अपने हृदयमें एवं सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित परमात्माका अनुभव न हो जाय ॥ २५ ॥ जो व्यक्ति आत्मा और परमात्माके

---

१. भगवान्‌के नित्यधाममें निवास, २. भगवान्‌के समान ऐश्वर्यभोग, ३. भगवान्‌की नित्य समीपता, ४. भगवान्‌का-सा रूप और ५. भगवान्‌के विग्रहमें समा जाना, उनसे एक हो जाना या ब्रह्मस्वरूप प्राप्त कर लेना ।

बीचमें थोड़ा-सा भी अन्तर करता है, उस भेददर्शी-को मैं मृत्युरूपसे महान् भय उपस्थित करता हूँ ॥ २६ ॥ अतः सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर घर बनाकर उन प्राणियोंके ही रूपमें स्थित मुझ परमात्माका यथायोग्य दान, मान, मित्रताके व्यवहार तथा समदृष्टिके द्वारा पूजन करना चाहिये ॥ २७ ॥

माताजी ! पाषाणादि अचेतनोंकी अपेक्षा वृक्षादि जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे श्वास लेनेवाले प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी मनवाले प्राणी उत्तम और उनसे इन्द्रियकी वृत्तियोंसे युक्त प्राणी श्रेष्ठ हैं। सेन्द्रिय प्राणियोंमें भी केवल स्पर्शका अनुभव करनेवालोंकी अपेक्षा रसका ग्रहण कर सकनेवाले मत्स्यादि उत्कृष्ट हैं, तथा रसवेत्ताओंकी अपेक्षा गन्धका अनुभव करनेवाले (भ्रमरादि) और गन्धका ग्रहण करनेवालोंसे भी शब्दका ग्रहण करनेवाले (सर्पादि) श्रेष्ठ हैं ॥ २८-२९ ॥ उनसे भी रूपका अनुभव करनेवाले (काकादि) उत्तम हैं और उनकी अपेक्षा जिनके ऊपर-नीचे दोनों ओर दाँत होते हैं, वे जीव श्रेष्ठ हैं । उनमें भी बिना पैरवालोंसे बहुत-से चरणों-वाले श्रेष्ठ हैं तथा बहुत चरणोंवालोंसे चार चरणवाले और चार चरणवालोंसे भी दो चरणवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ मनुष्योंमें भी चार वर्ण श्रेष्ठ हैं; उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें वेदको जाननेवाले उत्तम हैं और वेदज्ञोंमें भी वेदका तात्पर्य जाननेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३१ ॥ तात्पर्य जाननेवालोंसे संशय निवारण करनेवाले, उनसे भी अपने वर्णाश्रमोचित धर्मका पालन करनेवाले तथा उनसे भी आसक्तिका त्याग और अपने धर्मका निष्कामभावसे आचरण करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥ उनकी अपेक्षा भी जो लोग अपने सम्पूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीरको भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं । इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म समर्पण करनेवाले अकर्त्ता और समदर्शी पुरुषसे बढ़कर मुझे कोई अन्य प्राणी नहीं दीखता ॥ ३३ ॥ अतः यह मानकर कि जीवरूप अपने अंशसे साक्षात् भगवान् ही सबमें अनुगत हैं, इन समस्त प्राणियोंको बड़े आदरके साथ मनसे प्रणाम करे ॥ ३४ ॥

माताजी ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिये भक्तियोग और अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया । इनमेंसे एकका भी साधन करनेसे जीव परमपुरुष भगवान्को प्राप्त कर सकता है ॥ ३५ ॥ भगवान् परमात्मा परब्रह्मका अद्भुत प्रभाव-सम्पन्न तथा जागतिक पदार्थोंके नानाविध वैचित्र्यका हेतुभूत स्वरूपविशेष ही 'काल' नामसे विख्यात है। प्रकृति और पुरुष इसीके रूप हैं तथा इनसे यह पृथक् भी है । नाना प्रकारके कर्मोंका मूल अदृष्ट भी यही है तथा इसीसे महत्तत्त्वादिके अभिमानी भेददर्शी प्राणियों-को सदा भय लगा रहता है ॥ ३६-३७ ॥ जो सबका आश्रय होनेके कारण समस्त प्राणियोंमें अनुप्रविष्ट होकर भूतोंद्वारा ही उनका संहार करता है, वह जगत्का शासन करनेवाले ब्रह्मादिका भी प्रभु भगवान् काल ही यज्ञोंका फल देनेवाला विष्णु है ॥ ३८ ॥ इसका न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु, और न तो कोई सगा-सम्बन्धी ही है । यह सर्वदा सजग रहता है और अपने स्वरूपभूत श्रीभगवान्को भूलकर भोगरूप प्रमादमें पड़े हुए प्राणियोंपर आक्रमण करके उनका संहार करता है ॥ ३९ ॥ इसीके भयसे वायु चलता है, इसीके भयसे सूर्य तपता है, इसीके भयसे इन्द्र वर्षा करते हैं और इसीके भयसे तारे चमकते हैं ॥ ४० ॥ इसीसे भयभीत होकर ओषधियोंके सहित लताएँ और सारी वनस्पतियाँ समय-समयपर फल-फूल धारण करती हैं ॥ ४१ ॥ इसीके डरसे नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता। इसीके भयसे अग्नि प्रज्वलित होती है और पर्वतोंके सहित पृथ्वी जलमें नहीं डूबती ॥ ४२ ॥ इसीके शासनसे यह आकाश जीवित प्राणियोंको श्वास-प्रश्वासके लिये अवकाश देता है और महत्तत्त्व अहंकाररूप शरीरका सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डके रूपमें विस्तार करता है ॥ ४३ ॥ इस कालके ही भयसे सत्त्वादि गुणोंके नियामक विष्णु आदि देवगण, जिनके अधीन यह सारा चराचर जगत् है, अपने जगत्-रचना आदि कार्योंमें युगक्रमसे तत्पर रहते हैं ॥ ४४ ॥ यह अविनाशी काल स्वयं अनादि किन्तु दूसरोंका आदिकर्ता (उत्पादक) है तथा स्वयं अनन्त होकर भी दूसरोंका अन्त करने-वाला है । यह पितासे पुत्रकी उत्पत्ति कराता हुआ सारे जगत्की रचना करता है, और अपनी संहारशक्ति मृत्युके द्वारा यमराजको भी मरवाकर इसका अन्त कर देता है ॥ ४५ ॥

तीसवाँ अध्याय

देह-गेहमें आसक्त पुरुषोंकी अधोगतिका वर्णन

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माताजी ! जिस प्रकार वायुके द्वारा उड़ाया जानेवाला मेघसमूह उसके बलको नहीं जानता, उसी प्रकार यह जीव भी बलवान् काल-की प्रेरणासे भिन्न-भिन्न अवस्थाओं तथा योनियोंमें भ्रमण करता रहता है, किन्तु उसके प्रबल पराक्रमको नहीं जानता ॥ १ ॥ जीव सुखकी अभिलाषासे जिस-जिस वस्तुको बड़े कष्टसे प्राप्त करता है, उसी-उसीको भग-वान् काल विनष्ट कर देता है—जिसके लिये उसे बड़ा शोक होता है ॥ २ ॥ इसका कारण यही है कि यह मन्दमति जीव अपने इस नाशवान् शरीर तथा उसके सम्बन्धियोंके घर, खेत और धन आदिको मोहवश नित्य मान लेता है ॥ ३ ॥ इस संसारमें यह जीव जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसी-उसीमें आनन्द मानने लगता है और उससे विरक्त नहीं होता ॥ ४ ॥ यह भगवान्‌की मायासे ऐसा मोहित हो रहा है कि कर्मवश नारकी योनियोंमें जन्म लेनेपर भी वहाँके विष्ठा आदि भोगोंमें ही सुख माननेके कारण उसे भी छोड़ना नहीं चाहता ॥ ५ ॥ यह मूर्ख अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, धन और बन्धु-बान्धवोंमें अत्यन्त आसक्त होकर उनके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनोरथ करता हुआ अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता है ॥ ६ ॥ इनके पालन-पोषणकी चिन्तासे इसके सम्पूर्ण अङ्ग जलते रहते हैं; तथापि दुर्वासनाओंसे दूषित हृदय होनेके कारण यह मूढ़ निरन्तर इन्हींके लिये तरह-तरहके पाप करता रहता है ॥ ७ ॥ कुलटा स्त्रियोंके द्वारा एकान्तमें सम्भोगादिके समय प्रदर्शित किये हुए कपटपूर्ण प्रेममें तथा बालकों-की मीठी-मीठी बातोंमें मन और इन्द्रियोंके फँस जानेसे गृहस्थ पुरुष घरके दुःख-प्रधान कपटपूर्ण कर्मोंमें लिप्त हो जाता है । उस समय बहुत सावधानी करनेपर यदि उसे किसी दुःखका प्रतिकार करनेमें सफलता मिल जाती है, तो उसे ही वह सुख-सा मान लेता है ॥ ८-९ ॥ जहाँ-तहाँसे भयङ्कर हिंसावृत्तिके द्वारा धन सञ्चयकर यह ऐसे लोगोंका पोषण करता है, जिनके पोषणसे नरकमें जाता है । स्वयं तो उनके खाने-पीनेसे बचे हुए अन्नको ही खाकर रहता है ॥ १० ॥ बार-बार प्रयत्न करनेपर भी जब इसकी कोई जीविका नहीं चलती, तो यह लोभवश अधीर हो जानेसे दूसरेके धनकी इच्छा करने लगता है ॥ ११ ॥ जब मन्द-भाग्यके कारण इसका कोई प्रयत्न नहीं चलता और यह मन्दबुद्धि धनहीन होकर कुटुम्बके भरण-पोषणमें असमर्थ हो जाता है, तब अत्यन्त दीन और चिन्तातुर होकर लंबी-लंबी साँसें छोड़ने लगता है ॥ १२ ॥

इसे अपने पालन-पोषणमें असमर्थ देखकर वे स्त्री-पुत्रादि इसका पहलेके समान आदर नहीं करते, जैसे कृपण किसान बूढ़े बैलकी उपेक्षा कर देते हैं ॥ १३ ॥ फिर भी इसे वैराग्य नहीं होता । जिन्हें उसने स्वयं पाला था, वे ही अब उसका पालन करते हैं, वृद्धा-वस्थाके कारण इसका रूप बिगड़ जाता है, शरीर रोगी हो जाता है, अग्नि मन्द पड़ जाती है, भोजन और पुरुषार्थ दोनों ही कम हो जाते हैं । वह मरणोन्मुख होकर घरमें पड़ा रहता है और कुत्तेकी भाँति स्त्री-पुत्रादिके अपमानपूर्वक दिये हुए टुकड़े खाकर जीवन-निर्वाह करता है ॥ १४-१५ ॥ मृत्युका समय निकट आनेपर वायुके उत्क्रमणसे इसकी पुतलियाँ चढ़ जाती हैं, श्वास-प्रश्वासकी नलिकाएँ कफसे रुक जाती हैं, खाँसने और साँस लेनेमें भी इसे बड़ा कष्ट होता है तथा कफ बढ़ जानेके कारण कण्ठमें घुरघुराहट होने लगती है ॥ १६ ॥ यह अपने शोकातुर बन्धु-बान्धवों-से घिरा हुआ पड़ा रहता है और मृत्युपाशके वशीभूत हो जानेसे उनके बुलानेपर भी नहीं बोल सकता ॥ १७ ॥

इस प्रकार जो मूढ़ पुरुष इन्द्रियोंको न जीतकर निरन्तर कुटुम्ब-पोषणमें ही लगा रहता है, वह रोते हुए स्वजनोंके बीच अत्यन्त वेदनासे अचेत होकर मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ इस अवसरपर उसे लेनेके लिये अति भयङ्कर और रोषयुक्त नेत्रोंवाले जो दो यमदूत आते हैं, उन्हें देखकर वह भयके कारण मल-मूत्र कर देता है ॥ १९ ॥ वे यमदूत उसे यातना-

देहमें डाल देते हैं और फिर जिस प्रकार सिपाही किसी अपराधीको ले जाते हैं, उसी प्रकार उसके गलेमें रस्सी बाँधकर बलात्कारसे यमलोककी लंबी यात्रामें उसे ले जाते हैं ॥ २० ॥ उनकी घुड़कियोंसे उसका हृदय फटने और शरीर काँपने लगता है, मार्गमें उसे कुत्ते नोचते हैं। उस समय अपने पापोंकी याद करके वह व्याकुल हो उठता है ॥ २१ ॥ भूख-प्यास उसे बेचैन कर देती है तथा घाम, दावानल और लूओंसे वह तप जाता है। ऐसी अवस्थामें जल और विश्राम-स्थानसे रहित उस तप्तवालुकामय मार्गमें जब उसे एक पग आगे बढ़नेकी भी शक्ति नहीं रहती, यमदूत उसकी पीठपर कोड़े बरसाते हैं, तब बड़े कष्टसे उसे चलना ही पड़ता है ॥ २२ ॥ वह जहाँ-तहाँ थककर गिर जाता है, मूर्छा आ जाती है, चेतना आनेपर फिर उठता है। इस प्रकार अति दु:खमय अँधेरे मार्गसे अत्यन्त क्रूर यमदूत उसे यमपुरीको ले जाते हैं ॥ २३ ॥ यमलोकका मार्ग निन्यानवे हजार योजन है। इतने लंबे मार्गको दो-ही-तीन मुहूर्तमें तै करके वह नरकमें तरह-तरहकी यातनाएँ भोगता है ॥ २४ ॥ वहाँ उसके शरीरको धधकती लकड़ियों आदिके बीचमें डालकर जलाया जाता है, कहीं स्वयं और दूसरोंके द्वारा काट-काटकर उसे अपना ही मांस खिलाया जाता है ॥ २५ ॥ यमपुरीके कुत्तों अथवा गिद्धोंद्वारा जीते-जी उसकी आँतें खींची जाती हैं। साँप, बिच्छू और डाँस आदि डसनेवाले तथा डंक मारनेवाले जीवोंसे शरीरको पीड़ा पहुँचायी जाती है ॥ २६ ॥ शरीरके काटकर टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। उसे हाथियोंसे चिरवाया जाता है, पर्वतशिखरोंसे गिराया जाता है अथवा जल या गढ़ेमें डालकर बन्द कर दिया जाता है ॥ २७ ॥ ये सब यातनाएँ तथा इसी प्रकार तामिस्र, अन्धतामिस्र एवं रौरव आदि नरकोंकी और भी अनेकों यन्त्रणाएँ, स्त्री हो या पुरुष, उस जीवको पारस्परिक संसर्गसे होनेवाले पापके कारण भोगनी ही पड़ती हैं ॥ २८ ॥ माताजी! कुछ लोगोंका कहना है कि स्वर्ग और नरक तो इसी लोकमें हैं, क्योंकि जो नारकी यातनाएँ हैं, वे यहाँ भी देखी जाती हैं ॥२९॥

इस प्रकार अनेक कष्ट भोगकर अपने कुटुम्बका ही पालन करनेवाला अथवा केवल अपना ही पेट भरनेवाला पुरुष उन कुटुम्ब और शरीर—दोनोंको यहीं छोड़कर मरनेके बाद अपने किये हुए पापोंका ऐसा फल भोगता है ॥ ३० ॥ अपने इस शरीरको यहीं छोड़कर प्राणियोंसे द्रोह करके एकत्रित किये हुए पापरूप पाथेयको साथ लेकर वह अकेला ही नरकमें जाता है ॥ ३१ ॥ मनुष्य अपने कुटुम्बका पेट पालनेमें जो अन्याय करता है, उसका दैवविहित कुफल वह नरकमें जाकर भोगता है। उस समय वह ऐसा व्याकुल होता है, मानो उसका सर्वस्व लुट गया हो ॥ ३२ ॥ जो पुरुष निरी पापकी कमाईसे ही अपने परिवारका पालन करनेमें व्यस्त रहता है, वह अन्धतामिस्र नरकमें जाता है—जो नरकोंमें चरम सीमाका कष्टप्रद स्थान है ॥ ३३ ॥ मनुष्य-जन्म मिलनेके पूर्व जितनी भी यातनाएँ हैं तथा शूकर-कूकरादि योनियोंके जितने कष्ट हैं, उन सबको क्रमसे भोगकर शुद्ध हो जानेपर वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है ॥ ३४ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

मनुष्ययोनिको प्राप्त हुए जीवकी गतिका वर्णन

श्रीभगवान् कहते हैं—माताजी! जब जीवको मनुष्यशरीरमें जन्म लेना होता है, तो वह भगवान्की प्रेरणासे अपने पूर्वकर्मानुसार देहप्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्यकणके द्वारा स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है ॥ १ ॥ वहाँ वह एक रात्रिमें स्त्रीके रजमें मिलकर एकरूप कलल बन जाता है, पाँच रात्रिमें बुद्बुदरूप हो जाता है, दस दिनमें बेरके समान कुछ कठिन हो जाता है और उसके बाद मांसपेशी अथवा अण्डज प्राणियोंमें अण्डेके रूपमें परिणत हो जाता है ॥ २ ॥ एक महीनेमें उसके सिर निकल आता है, दो मासमें हाथ-पाँव

आदि अङ्गोंका विभाग हो जाता है और तीन मासमें नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री-पुरुषके चिह्न तथा अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३ ॥ चार मासमें उसमें मांसादि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं, पाँचवें महीनेमें भूख-प्यास लगने लगती है और छठे मासमें झिल्लीसे लिपटकर वह दाहिनी कोखमें घूमने लगता है ॥ ४ ॥ उस समय माताके खाये हुए अन्न-जल आदिसे उसकी सब धातुएँ पुष्ट होने लगती हैं और वह कृमि आदि जन्तुओंके उत्पत्तिस्थान उस जघन्य मल-मूत्रके गढ़ेमें पड़ा रहता है ॥ ५ ॥ वह सुकुमार तो होता ही है; इसलिये जब वहाँके भूखे कीड़े उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग नोचते हैं, तब अत्यन्त क्लेशके कारण वह क्षण-क्षणमें अचेत हो जाता है ॥ ६ ॥ माताके खाये हुए कड़वे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे और खट्टे आदि उग्र पदार्थोंका स्पर्श होनेसे उसके सारे शरीरमें पीड़ा होने लगती है ॥ ७ ॥ वह जीव माताके गर्भाशयमें झिल्लीसे लिपटा और आँतोंसे घिरा रहता है। उसका सिर पेटकी ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं ॥ ८ ॥

वह पिंजड़ेमें बंद पक्षीके समान पराधीन एवं अङ्गोंको हिलाने-डुलानेमें भी असमर्थ रहता है। इसी समय अदृष्टकी प्रेरणासे उसे स्मरणशक्ति प्राप्त होती है। तब अपने सैकड़ों जन्मोंके कर्म याद आ जाते हैं और वह बेचैन हो जाता है तथा उसका दम घुटने लगता है। ऐसी अवस्थामें उसे क्या शान्ति मिल सकती है ? ॥ ९ ॥ सातवाँ महीना आरम्भ होनेपर उसमें ज्ञानशक्तिका भी उन्मेष हो जाता है; परन्तु प्रसूतिवायुसे चलायमान रहनेके कारण वह उसी उदरमें उत्पन्न हुए विष्ठाके कीड़ोंके समान एक स्थानपर नहीं रह सकता ॥ १० ॥ तब सप्तधातुमय स्थूलशरीरसे बँधा हुआ वह देहात्मदर्शी जीव अत्यन्त भयभीत होकर दीन वाणीसे कृपा-याचना करता हुआ, हाथ जोड़कर उस प्रभुकी स्तुति करता है, जिसने उसे माताके गर्भमें डाला है ॥ ११ ॥

जीव कहता है—मैं बड़ा अधम हूँ; भगवान्‌ने मुझे जो इस प्रकारकी गति दिखायी है, वह मेरे योग्य ही है। वे अपनी शरणमें आये हुए इस नश्वर जगत्‌की रक्षाके लिये ही अनेक प्रकारके रूप धारण करते हैं; अतः मैं भी भूतलपर विचरण करनेवाले उन्हींके निर्भय चरणारविन्दोंकी शरण लेता हूँ ॥ १२ ॥ जो इस माताके उदरमें देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूपा माया-का आश्रय कर पुण्य-पापरूप कर्मोंसे आच्छादित रहने-के कारण बद्ध-से जान पड़ते हैं, अपने सन्तप्त हृदयमें स्फुरित होनेवाले उन विशुद्ध (उपाधिरहित), अविकारी और अखण्ड बोधस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १३ ॥ मैं वस्तुतः शरीरादिसे रहित (असङ्ग) होनेपर भी देखनेमें पाञ्चभौतिक शरीरसे सम्बद्ध हूँ और इसीलिये इन्द्रिय, गुण, शब्दादि विषय और चिदाभास (अहङ्कार) रूप जान पड़ता हूँ। अतः इस शरीरादि-के आवरणसे जिनकी महिमा कुण्ठित नहीं हुई है, उन प्रकृति और पुरुषके नियन्ता सर्वज्ञ (विद्याशक्तिसम्पन्न) परमपुरुषकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १४ ॥ उन्हींकी मायासे अपने स्वरूपकी स्मृति नष्ट हो जानेके कारण यह जीव अनेक प्रकारके सत्त्वादि गुण और कर्मके बन्धनसे युक्त इस संसारमार्गमें तरह-तरहके कष्ट झेलता हुआ भटकता रहता है; अतः उन परमपुरुष परमात्माकी कृपाके बिना और किस युक्तिसे इसे अपने स्वरूपका ज्ञान हो सकता है ॥ १५ ॥ मुझे जो यह त्रैकालिक ज्ञान हुआ है, यह भी उनके सिवा और किसने दिया है; क्योंकि स्थावर-जंगम समस्त प्राणियोंमें एकमात्र वे ही तो अन्तर्यामीरूप अंशसे विद्यमान हैं। अतः जीवरूप कर्मजनित पदवीका अनुवर्तन करनेवाले हम अपने त्रिविध तापोंकी शान्तिके लिये उन्हींका भजन करते हैं ॥ १६ ॥

भगवन्! यह देहधारी जीव दूसरी (माताके) देहके उदरके भीतर मल, मूत्र और रुधिरके कुएँमें गिरा हुआ है, उसकी जठराग्निसे इसका शरीर अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है। उससे निकलनेकी इच्छा करता हुआ यह अपने महीने गिन रहा है। भगवन्! अब इस दीनको यहाँसे कब निकाला जायगा ? ॥ १७ ॥ स्वामिन्! आप बड़े दयालु हैं, आप-जैसे उदार प्रभुने ही इस दस मासके जीवको ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान दिया है। दीनबन्धो! इस अपने किये हुए उपकारसे ही आप प्रसन्न हों;

क्योंकि आपको हाथ जोड़नेके सिवा आपके उस उपकार-का बदला तो कोई दे भी क्या सकता है ॥ १८ ॥

प्रभो ! संसारके ये पशु-पक्षी आदि अन्य जीव तो अपनी मूढ़ बुद्धिके अनुसार अपने शरीरमें होनेवाले सुख-दुःखादिका ही अनुभव करते हैं; किन्तु मैं तो आपकी कृपासे शम-दमादि साधनसम्पन्न शरीरसे युक्त हुआ हूँ, अतः आपकी दी हुई विवेकवती बुद्धिसे आप पुराणपुरुषको अपने शरीरके बाहर और भीतर अहङ्कारके आश्रयभूत आत्माकी भाँति प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ ॥ १९ ॥ भगवन् ! इस अत्यन्त दुःखसे भरे हुए गर्भाशयमें यद्यपि मैं बड़े कष्टसे रह रहा हूँ, तो भी इससे बाहर निकलकर संसारमय अन्धकूपमें गिरनेकी मुझे बिल्कुल इच्छा नहीं है; क्योंकि उसमें जानेवाले जीवको आपकी माया घेर लेती है, जिसके कारण उसकी शरीर-में अहंबुद्धि हो जाती है और उसके परिणाममें उसे फिर इस संसारचक्रमें ही पड़ना होता है ॥ २० ॥ अतः मैं व्याकुलताको छोड़कर हृदयमें श्रीविष्णुभगवान्‌के चरणोंको स्थापितकर अपनी बुद्धिकी सहायतासे ही अपनेको बहुत शीघ्र इस संसाररूप समुद्रके पार लगा दूँगा, जिससे मुझे अनेक प्रकारके दोषोंसे युक्त यह संसार-दुःख फिर न प्राप्त हो ॥ २१ ॥

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माता ! वह दस महीने-का जीव गर्भमें ही जब इस प्रकार विवेकसम्पन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करता है, तब उस अधोमुख बालकको प्रसवकालकी वायु तत्काल बाहर आनेके लिये ढकेलती है ॥ २२ ॥ उसके सहसा ठेलनेपर वह बालक अत्यन्त व्याकुल हो नीचे सिर करके बड़े कष्टसे बाहर निकलता है । उस समय उसके श्वासकी गति रुक जाती है और पूर्वस्मृति नष्ट हो जाती है ॥ २३ ॥ पृथ्वीपर माताके रुधिर और मूत्रमें पड़ा हुआ वह बालक विष्ठाके कीड़ेके समान छटपटाता है । उसका गर्भवासका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह विपरीत गति (देहाभिमान-रूप अज्ञान-दशा) को प्राप्त होकर बार-बार जोर-जोरसे रोता है ॥ २४ ॥

फिर जो लोग उसका अभिप्राय नहीं समझ सकते, उनके द्वारा उसका पालन-पोषण होता है । ऐसी अवस्था-में उसे जो प्रतिकूलता प्राप्त होती है, उसका निषेध करनेकी शक्ति भी उसमें नहीं होती ॥ २५ ॥ जब उस जीवको शिशु-अवस्थामें मैली-कुचैली खाटपर सुला दिया जाता है, जिसमें खटमल आदि स्वेदज जीव चिपटे रहते हैं, तब उसमें शरीरको खुजलाने, उठाने अथवा करवट बदलनेकी भी सामर्थ्य न होनेके कारण वह बड़ा कष्ट पाता है ॥ २६ ॥ उसकी त्वचा बड़ी कोमल होती है; उसे डाँस, मच्छर और खटमल आदि उसी प्रकार काटते रहते हैं, जैसे बड़े कीड़ेको छोटे कीड़े । इस समय उसका गर्भावस्थाका सारा ज्ञान जाता रहता है, सिवा रोनेके वह कुछ नहीं कर सकता ॥ २७ ॥

इसी प्रकार बाल्य (कौमार) और पौगण्ड अवस्था-ओंके दुःख भोगकर वह बालक युवावस्थामें पहुँचता है । इस समय उसे यदि कोई इच्छित भोग नहीं प्राप्त होता, तो अज्ञानवश उसका क्रोध उद्दीप्त हो उठता है और वह शोकाकुल हो जाता है ॥ २८ ॥ देहके साथ-ही-साथ अभिमान और क्रोध बढ़ जानेके कारण वह कामपरवश जीव अपना ही नाश करनेके लिये दूसरे कामी पुरुषोंके साथ वैर ठानता है ॥ २९ ॥ खोटी बुद्धिवाला वह अज्ञानी जीव पञ्चभूतोंसे रचे हुए इस देहमें मिथ्याभिनिवेशके कारण निरन्तर मैं-मेरेपनका अभिमान करने लगता है ॥ ३० ॥ जो शरीर इसे वृद्धावस्था आदि अनेक प्रकारके कष्ट ही देता है तथा अविद्या और कर्मके सूत्रसे बँधा रहनेके कारण सदा इसके पीछे लगा रहता है, उसीके लिये यह तरह-तरहके कर्म करता रहता है—जिनमें बँध जानेके कारण इसे बार-बार संसार-चक्रमें पड़ना होता है ॥ ३१ ॥ सन्मार्ग-में चलते हुए यदि इसका किन्हीं जिह्वा और उपस्थेन्द्रिय-के भोगोंमें लगे हुए विषयी पुरुषोंसे समागम हो जाता है और यह उनमें आस्था करके उन्हींका अनुगमन करने लगता है, तो पहलेके समान ही फिर नारकी योनियोंमें पड़ता है ॥ ३२ ॥ जिनके सङ्गसे इसके सत्य, शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, वाणीका संयम, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियों-का संयम तथा ऐश्वर्य आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते

हैं। उन अत्यन्त शोचनीय, स्त्रियोंके क्रीडामृग (खिलौने), अशान्त, मूढ़ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥ क्योंकि इस जीवको किसी औरका सङ्ग करनेसे ऐसा मोह और बन्धन नहीं होता, जैसा स्त्री और स्त्रियोंके सङ्गियोंका सङ्ग करनेसे होता है ॥ ३५ ॥ एक बार अपनी पुत्री सरस्वतीको देखकर ब्रह्माजी भी उसके रूप-लावण्यसे मोहित हो गये थे और उसके मृगीरूप होकर भागनेपर उसके पीछे निर्लज्जतापूर्वक मृगरूप होकर दौड़ने लगे थे ॥३६॥ उन्हीं ब्रह्माजीने मरीचि आदि प्रजापतियोंकी तथा मरीचि आदिने कश्यपादिकी और कश्यपादिने देव-मनुष्यादि प्राणियोंकी सृष्टि की। अतः इनमें एक ऋषिप्रवर नारायणको छोड़कर ऐसा कौन पुरुष हो सकता है, जिसकी बुद्धि स्त्रीरूपिणी मायासे मोहित न हो ॥ ३७ ॥ अहो! मेरी इस स्त्रीरूपिणी मायाका बल तो देखो, जो अपने भ्रुकुटि-विलासमात्रसे बड़े-बड़े दिग्विजयी वीरोंको पैरोंसे कुचल देती है ॥ ३८ ॥

जो पुरुष योगके परम पदपर आरूढ़ होना चाहता हो अथवा जिसे मेरी सेवाके प्रभावसे आत्मा-अनात्माका विवेक हो गया हो, वह स्त्रियोंका सङ्ग कभी न करे; क्योंकि उन्हें ऐसे पुरुषके लिये नरकका खुला द्वार बताया गया है ॥३९॥ भगवान्‌की रची हुई यह जो स्त्रीरूपिणी माया धीरे-धीरे सेवा आदिके मिससे पास आती है, इसे तिनकोंसे ढके हुए कुएँके समान अपनी मृत्यु ही समझे ॥ ४० ॥

स्त्रीमें आसक्त रहनेके कारण तथा अन्त समयमें स्त्रीका ही ध्यान रहनेसे जीवको स्त्रीयोनि प्राप्त होती है। इस प्रकार स्त्रीयोनिको प्राप्त हुआ जीव पुरुषरूपमें प्रतीत होनेवाली मेरी मायाको ही धन, पुत्र और गृह आदि देनेवाला अपना पति मानता रहता है; सो जिस प्रकार व्याधेका गान कानोंको प्रिय लगनेपर भी बेचारे भोले-भाले पशु-पक्षियोंको फँसाकर उनके नाशका ही कारण होता है—उसी प्रकार उन पुत्र, पति और गृह आदिको विधाताकी निश्चित की हुई अपनी मृत्यु ही जाने ॥ ४१-४२ ॥ देवि! जीवके उपाधिभूत लिङ्गदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारब्धकर्मोंको भोगता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये दूसरे कर्म करता रहता है ॥ ४३ ॥ जीवका उपाधिरूप लिङ्गशरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है तथा भूत, इन्द्रिय और मनका कार्यरूप स्थूलशरीर इसका भोगाधिष्ठान है। इन दोनोंका परस्पर संगठित होकर कार्य न करना ही प्राणीकी 'मृत्यु' है और दोनोंका साथ-साथ प्रकट होना 'जन्म' कहलाता है ॥ ४४ ॥ पदार्थोंकी उपलब्धिके स्थानरूप इस स्थूलशरीरमें जब उनको ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती; यह उसका मरण है; और यह स्थूलशरीर ही मैं हूँ—इस अभिमानके साथ उसे देखना उसका जन्म है ॥ ४५ ॥ नेत्रोंमें जब किसी दोषके कारण रूपादिको देखनेकी योग्यता नहीं रहती, तभी उनमें रहनेवाली चक्षु-इन्द्रिय भी रूप देखनेमें असमर्थ हो जाती है। और जब नेत्र और उनमें रहनेवाली इन्द्रिय दोनों ही रूप देखनेमें असमर्थ हो जाते हैं, तभी इन दोनोंके साक्षी जीवमें भी वह योग्यता नहीं रहती ॥ ४६ ॥ अतः मुमुक्षु पुरुषको मरणादिसे भय, दीनता अथवा मोह नहीं होना चाहिये। उसे जीवके स्वरूपको जानकर धैर्यपूर्वक निःसङ्गभावसे विचरना चाहिये तथा इस मायामय संसारमें योग-वैराग्ययुक्त सम्यक्-ज्ञानमयी बुद्धिसे शरीरको निक्षेप (धरोहर) की भाँति रखकर उसके प्रति अनासक्त रहते हुए विचरण करना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

धूममार्ग और अर्चिरादि मार्गसे जानेवालोंकी गतिका और भक्तियोगकी उत्कृष्टताका वर्णन

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माताजी! जो पुरुष घरमें रहकर सकामभावसे गृहस्थके धर्मोंका पालन करता है और उनके फलस्वरूप अर्थ एवं कामका उपभोग करके फिर उन्हींका अनुष्ठान करता रहता है, वह

तरह-तरहकी कामनाओंसे मोहित रहनेके कारण भगवद्धर्मोंसे विमुख हो जाता है और यज्ञोंद्वारा श्रद्धापूर्वक देवता तथा पितरोंकी ही आराधना करता रहता है ॥ १-२ ॥ उसकी बुद्धि उसी प्रकारकी श्रद्धासे युक्त रहती है, देवता और पितर ही उसके उपास्य रहते हैं; अतः वह चन्द्रलोकमें जाकर उनके साथ सोमपान करता है और फिर पुण्य क्षीण होनेपर इसी लोकमें लौट आता है ॥ ३ ॥ जिस समय प्रलयकालमें शेषशायी भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं, उस समय सकाम गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होनेवाले ये सब लोक भी लीन हो जाते हैं ॥ ४ ॥

जो विवेकी पुरुष अपने धर्मोंका अर्थ और भोग-विलासके लिये उपयोग नहीं करते, बल्कि भगवान्की प्रसन्नताके लिये ही उनका पालन करते हैं—वे अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निवृत्तिधर्मपरायण, ममतारहित और अहङ्कारशून्य पुरुष स्वधर्मपालनरूप सत्त्वगुणके द्वारा सर्वथा शुद्धचित्त हो जाते हैं ॥ ५-६ ॥ वे अन्तमें सूर्यमार्ग (अर्चिमार्ग या देवयान) के द्वारा सर्वव्यापी पूर्णपुरुष श्रीहरिको ही प्राप्त होते हैं—जो कार्य-कारणरूप जगत्के नियन्ता, संसारके उपादान-कारण और उसकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले हैं ॥ ७ ॥ जो लोग परमात्मदृष्टिसे हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे दो परार्द्धमें होनेवाले ब्रह्माजीके प्रलयपर्यन्त उनके सत्यलोकमें ही रहते हैं ॥ ८ ॥ जिस समय देवतादिसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी अपने द्विपरार्द्धकालके अधिकारको भोगकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय, उनके विषय (शब्दादि) और अहङ्कारादिके सहित सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेकी इच्छासे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके साथ एकरूप होकर निर्विशेष परमात्मामें लीन हो जाते हैं, उस समय प्राण और मनको जीते हुए वे विरक्त योगिगण भी देह त्यागकर उन भगवान् ब्रह्माजीमें ही प्रवेश करते हैं और फिर उन्हींके साथ परमानन्दस्वरूप पुराणपुरुष परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इससे पहले वे भगवान्में लीन नहीं हुए, क्योंकि अबतक उनमें अहङ्कार शेष था ॥ ९-१० ॥ इसलिये माताजी ! अब तुम भी अत्यन्त भक्तिभावसे उन श्रीहरिकी ही चरण-शरणमें जाओ; समस्त प्राणियोंका हृदय-कमल ही उनका मन्दिर है और तुमने भी मुझसे उनका प्रभाव सुन ही लिया है ॥ ११ ॥ वेदगर्भ ब्रह्माजी भी—जो समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके आदिकारण हैं—मरीचि आदि ऋषियों, योगेश्वरों, सनकादिकों तथा योगप्रवर्तक सिद्धोंके सहित निष्काम कर्मके द्वारा आदिपुरुष पुरुष-श्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको प्राप्त होकर भी, भेददृष्टि और कर्तृत्वाभिमानके कारण भगवदिच्छासे, जब सर्गकाल उपस्थित होता है तब, कालरूप ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर फिर पूर्ववत् प्रकट हो जाते हैं ॥ १२—१४ ॥ इसी प्रकार पूर्वोक्त ऋषिगण भी अपने-अपने कर्मानुसार ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यको भोगकर भगवदिच्छासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर पुनः इस लोकमें आ जाते हैं ॥ १५ ॥

जिनका चित्त इस लोकमें आसक्त है और जो कर्मोंमें श्रद्धा रखते हैं, वे वेदमें कहे हुए काम्य और नित्य कर्मोंका साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करनेमें ही लगे रहते हैं ॥ १६ ॥ उनकी बुद्धि रजोगुणकी अधिकताके कारण कुण्ठित रहती है, हृदयमें कामनाओंका जाल फैला रहता है और इन्द्रियाँ उनके वशमें नहीं होतीं; बस, अपने घरोंमें ही आसक्त होकर वे नित्यप्रति पितरोंकी पूजामें लगे रहते हैं ॥ १७ ॥ ये लोग अर्थ, धर्म और कामके ही परायण होते हैं; इसलिये जिनके महान् पराक्रम अत्यन्त कीर्तनीय हैं, उन भवभयहारी श्रीमधुसूदन भगवान्की कथा-वार्ताओंसे तो ये विमुख ही रहते हैं ॥ १८ ॥ हाय ! विष्ठा-भोजी कूकर-सूकर आदि जीवोंके विष्ठा चाहनेके समान जो मनुष्य भगवत्कथामृतको छोड़कर निन्दित विषय-वार्ताओंको सुनते हैं—वे तो अवश्य ही विधाताके मारे हुए हैं, उनका बड़ा ही मन्द भाग्य है ॥ १९ ॥ गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टितक सब संस्कारोंको विधिपूर्वक करनेवाले ये सकाम कर्मी सूर्यसे दक्षिण ओरके पितृयान या धूममार्गसे पितृीश्वर अर्यमाके लोकमें जाते हैं और फिर अपनी ही सन्ततिके वंशमें उत्पन्न होते हैं ॥ २० ॥ माताजी ! पितृलोकके भोग भोग लेनेपर जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब देवतालोग उन्हें वहाँके ऐश्वर्यसे च्युत कर देते हैं और फिर उन्हें विवश होकर तुरंत ही इस लोकमें गिरना पड़ता है ॥ २१ ॥ इसलिये माताजी ! जिनके

चरण-कमल सदा भजनेयोग्य हैं, उन भगवान्‌का तुम उन्हींके गुणोंका आश्रय लेनेवाली भक्तिके द्वारा सब प्रकारसे (मन, वाणी और शरीरसे) भजन करो ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवके प्रति किया हुआ भक्तियोग तुरंत ही संसारसे वैराग्य और ब्रह्मसाक्षात्काररूप ज्ञानकी प्राप्ति करा देता है ॥ २३ ॥ वस्तुतः सभी विषय भगवद्रूप होनेके कारण समान हैं। अतः जब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके द्वारा भी भगवद्भक्तका चित्त उनमें प्रिय-अप्रियरूप विषमताका अनुभव नहीं करता—सर्वत्र भगवान्‌का ही दर्शन करता है—उसी समय वह सङ्ग-रहित, सबमें समानरूपसे स्थित, त्याग और ग्रहण करने-योग्य, दोष और गुणोंसे रहित, अपनी महिमामें आरूढ़ अपने आत्माका ब्रह्मरूपसे साक्षात्कार करता है ॥ २४-२५ ॥ वही ज्ञानस्वरूप है, वही परब्रह्म है, वही परमात्मा है, वही ईश्वर है, वही पुरुष है; वही एक भगवान् स्वयं जीव, शरीर, विषय, इन्द्रियों आदि अनेक रूपोंमें प्रतीत होता है ॥ २६ ॥ सम्पूर्ण संसारमें आसक्तिका अभाव हो जाना—बस, यही योगियोंके सब प्रकारके योग-साधनका एकमात्र अभीष्ट फल है ॥ २७ ॥ ब्रह्म एक है, ज्ञानस्वरूप और निर्गुण है, तो भी वह बाह्य वृत्तियों-वाली इन्द्रियोंके द्वारा भ्रान्तिवश शब्दादि धर्मोंवाले विभिन्न पदार्थोंके रूपमें भास रहा है ॥ २८ ॥ जिस प्रकार एक ही परब्रह्म महत्तत्त्व, वैकारिक, राजस और तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार, पञ्चमहाभूत एवं ग्यारह इन्द्रियरूप बन गया, और फिर वही स्वयंप्रकाश इनके संयोगसे जीव कहलाया, उसी प्रकार उस जीवका शरीर-रूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्मसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है ॥ २९ ॥ किन्तु इसे ब्रह्मरूप वही देख सकता है, जो श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य तथा निरन्तरके योगाभ्यासके द्वारा एकाग्रचित्त और असङ्ग-बुद्धि हो गया है ॥ ३० ॥

पूजनीय माताजी! मैंने तुम्हें यह ब्रह्मसाक्षात्कारका साधनरूप ज्ञान सुनाया, इसके द्वारा प्रकृति और पुरुषके यथार्थ स्वरूपका बोध हो जाता है ॥ ३१ ॥ देवि! निर्गुणब्रह्म-विषयक ज्ञानयोग और मेरे प्रति किया हुआ भक्तियोग—इन दोनोंका फल एक ही है। उसे ही भगवान् कहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार रूप, रस एवं गन्ध आदि अनेक गुणोंका आश्रयभूत एक ही पदार्थ भिन्न-भिन्न इन्द्रियोंद्वारा विभिन्नरूपसे अनुभूत होता है, वैसे ही शास्त्रके विभिन्न मार्गोंद्वारा एक ही भगवान्‌की अनेक प्रकारसे अनुभूति होती है ॥ ३३ ॥ नाना प्रकार-के कर्मकलाप, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, वेदविचार (मीमांसा), मन और इन्द्रियोंके संयम, कर्मोंके त्याग, विविध अङ्गोंवाले योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप सकाम और निष्काम दोनों प्रकारके धर्म, आत्म-तत्त्वके ज्ञान और दृढ़ वैराग्य—इन सभी साधनोंसे सगुण-निर्गुणरूप स्वयंप्रकाश भगवान्‌को ही प्राप्त किया जाता है ॥ ३४—३६ ॥

माताजी! सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण-भेदसे चार प्रकारके भक्तियोगका और जो प्राणियोंके जन्मादि विकारोंका हेतु है तथा जिसकी गति जानी नहीं जाती, उस कालका स्वरूप मैं तुमसे कह ही चुका हूँ ॥ ३७ ॥ देवि! अविद्याजनित कर्मके कारण जीव-की अनेकों गतियाँ होती हैं; उनमें जानेपर वह अपने स्वरूपको नहीं पहचान सकता ॥ ३८ ॥ मैंने तुम्हें जो ज्ञानोपदेश दिया है—उसे दुष्ट, दुर्विनीत, घमंडी, दुराचारी और धर्मध्वजी (दम्भी) पुरुषोंको नहीं सुनाना चाहिये ॥३९॥ जो विषयलोलुप हो, गृहासक्त हो, मेरा भक्त न हो अथवा मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवाला हो, उसे भी इसका उपदेश कभी न करे ॥ ४० ॥ जो अत्यन्त श्रद्धालु, भक्त, विनयी, दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि न रखने-वाला, सब प्राणियोंसे मित्रता रखनेवाला, गुरुसेवामें तत्पर, बाह्य विषयोंमें अनासक्त, शान्तचित्त, मत्सरशून्य और पवित्रचित्त हो तथा मुझे परम प्रियतम माननेवाला हो, उसे इसका अवश्य उपदेश करे ॥ ४१-४२ ॥ मा! जो पुरुष मुझमें चित्त लगाकर इसका श्रद्धापूर्वक एक बार भी श्रवण या कथन करेगा, वह मेरे परमपदको प्राप्त होगा ॥ ४३ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

देवहूतिको तत्त्वज्ञान एवं मोक्षपदकी प्राप्ति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! श्रीकपिल भगवान्‌के ये वचन सुनकर कर्दमजीकी प्रिय पत्नी माता देवहूतिके मोहका पर्दा फट गया और वे तत्त्वप्रतिपादक सांख्यशास्त्रके ज्ञानकी आधारभूमि भगवान् श्रीकपिलजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं ॥ १ ॥

देवहूतिजीने कहा—कपिलजी! ब्रह्माजी आपके ही नाभिकमलसे प्रकट हुए थे। उन्होंने प्रलयकालीन जलमें शयन करनेवाले आपके पञ्चभूत, इन्द्रिय, शब्दादि विषय और मनोमय विग्रहका, जो सत्त्वादि गुणोंके प्रवाहसे युक्त, सत्स्वरूप और कार्य एवं कारण दोनोंका बीज है, ध्यान ही किया था ॥ २ ॥ आप निष्क्रिय, सत्यसङ्कल्प, सम्पूर्ण जीवोंके प्रभु तथा सहस्रों अचिन्त्य शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। अपनी शक्तिको गुणप्रवाहरूपसे ब्रह्मादि अनन्त मूर्तियोंमें विभक्त करके उनके द्वारा आप स्वयं ही विश्वकी रचना आदि करते हैं ॥ ३ ॥ नाथ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिनके उदरमें प्रलयकाल आनेपर यह सारा प्रपञ्च लीन हो जाता है और जो कल्पान्तमें मायामय बालकका रूप धारण कर अपने चरणका अँगूठा चूसते हुए अकेले ही वटवृक्षके पत्तेपर शयन करते हैं, उन्हीं आपको मैंने गर्भमें धारण किया ॥ ४ ॥ विभो! आप पापियोंका दमन और अपने आज्ञाकारी भक्तोंका अभ्युदय एवं कल्याण करनेके लिये स्वेच्छासे देह धारण किया करते हैं। अतः जिस प्रकार आपके वराह आदि अवतार हुए हैं, उसी प्रकार यह कपिलावतार भी मुमुक्षुओंको ज्ञानमार्ग दिखानेके लिये हुआ है ॥ ५ ॥ भगवन्! आपके नामोंका श्रवण या कीर्तन करनेसे तथा भूले-भटके कभी-कभी आपका वन्दन या स्मरण करनेसे ही कुत्तेका मांस खानेवाला चाण्डाल भी सोमयाजी ब्राह्मणके समान पूजनीय हो जाता है; फिर आपका दर्शन करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या है ॥ ६ ॥ अहो! वह चाण्डाल भी इसीसे सर्वश्रेष्ठ है कि उसकी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम विराजमान है। जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया ॥ ७ ॥ कपिलदेवजी! आप साक्षात् परब्रह्म हैं, आप ही परम पुरुष हैं, वृत्तियोंके प्रवाहको अन्तर्मुख करके अन्तःकरणमें आपका ही चिन्तन किया जाता है। आप अपने तेजसे मायाके कार्य गुण-प्रवाहको शान्त कर देते हैं तथा आपके ही उदरमें सम्पूर्ण वेदतत्त्व निहित है। ऐसे साक्षात् विष्णुस्वरूप आपको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—माताके इस प्रकार स्तुति करनेपर मातृवत्सल परमपुरुष भगवान् कपिलदेवजीने उनसे गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ९ ॥

श्रीकपिलदेवजीने कहा—माताजी! मैंने तुम्हें जो यह सुगम मार्ग बताया है, इसका अवलम्बन करनेसे तुम शीघ्र ही परमपद प्राप्त कर लोगी ॥ १० ॥ तुम मेरे इस मतमें विश्वास करो, ब्रह्मवादी लोगोंने इसका सेवन किया है; इसके द्वारा तुम मेरे जन्म-मरणरहित स्वरूपको प्राप्त कर लोगी। जो लोग मेरे इस मतको नहीं जानते, वे जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़ते हैं ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार अपने श्रेष्ठ आत्मज्ञानका उपदेशकर श्रीकपिलदेवजी अपनी ब्रह्मवादिनी जननीकी अनुमति लेकर वहाँसे चले गये ॥ १२ ॥ तब देवहूतिजी भी सरस्वतीके मुकुटसदृश अपने आश्रममें अपने पुत्रके उपदेश किये हुए योगसाधनके द्वारा योगाभ्यास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयीं ॥ १३ ॥ त्रिकाल स्नान करनेसे उनकी घुँघराली अलकें भूरी-भूरी जटाओंमें परिणत हो गयीं तथा चीर-वस्त्रोंसे ढका हुआ शरीर उग्र तपस्याके कारण दुर्बल हो गया ॥ १४ ॥ उन्होंने प्रजापति कर्दमके तप और योगबलसे प्राप्त अनुपम गार्हस्थ्यसुखको, जिसके लिये देवता भी तरसते थे, त्याग दिया ॥ १५ ॥ जिसमें दुग्धफेनके समान स्वच्छ और सुकोमल शय्यासे युक्त

हाथी-दाँतके पलंग, सुवर्णके पात्र, सोनेके सिंहासन और उनपर कोमल-कोमल गद्दे बिछे हुए थे तथा जिसकी स्वच्छ स्फटिकमणि और महामरकतमणिकी भीतोंमें रत्नोंकी बनी हुई रमणी-मूर्तियोंके सहित मणिमय दीपक जगमगा रहे थे, जो फूलोंसे लदे हुए अनेकों दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित था, जिसमें अनेक प्रकारके पक्षियोंका कलरव और मतवाले भौंरोंका गुंजार होता रहता था, जहाँकी कमलगन्धसे सुवासित बावलियोंमें कर्दमजीके साथ उनका लाड़-प्यार पाकर क्रीडाके लिये प्रवेश करनेपर उसका (देवहूतिका) गन्धर्वगण गुणगान किया करते थे और जिसे पानेके लिये इन्द्राणियाँ भी लालायित रहती थीं—उस गृहोद्यानकी भी ममता उन्होंने त्याग दी। किन्तु पुत्रवियोगसे व्याकुल होनेके कारण अवश्य उनका मुख कुछ उदास हो गया।१६—२०।

पतिके वनगमनके अनन्तर पुत्रका भी वियोग हो जानेसे वे आत्मज्ञानसम्पन्न होकर भी ऐसी व्याकुल हो गयीं, जैसे बछड़ेके बिछुड़ जानेसे उसे प्यार करनेवाली गौ ॥ २१ ॥ वत्स विदुर ! अपने पुत्र कपिलदेवरूप भगवान् हरिका ही चिन्तन करते-करते वे कुछ ही दिनोंमें ऐसे ऐश्वर्यसम्पन्न घरसे भी उपरत हो गयीं ॥ २२ ॥ फिर वे, कपिलदेवजीने भगवान्‌के जिस ध्यान करनेयोग्य प्रसन्नवदनारविन्दयुक्त स्वरूपका वर्णन किया था, उसके एक-एक अवयवका तथा उस समग्र रूपका भी चिन्तन करती हुई ध्यानमें तत्पर हो गयीं ॥ २३ ॥ भगवद्भक्तिके प्रवाह, प्रबल वैराग्य और यथोचित कर्मानुष्ठानसे उत्पन्न हुए ब्रह्मसाक्षात्कार करानेवाले ज्ञानद्वारा चित्त शुद्ध हो जानेपर वे उस सर्वव्यापक आत्माके ध्यानमें मग्न हो गयीं, जो अपने स्वरूपके प्रकाशसे मायाजनित आवरणको दूर कर देता है ॥ २४-२५ ॥ इस प्रकार जीवके अधिष्ठानभूत परब्रह्म श्रीभगवान्‌में ही बुद्धिकी स्थिति हो जानेसे उनका जीवभाव निवृत्त हो गया और वे समस्त क्लेशोंसे मुक्त होकर परमानन्दमें निमग्न हो गयीं ॥ २६ ॥ अब निरन्तर समाधिस्थ रहनेके कारण उनकी विषयोंके सत्यत्वकी भ्रान्ति मिट गयी और उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि न रही—जैसे जागे हुए पुरुषको अपने स्वप्नमें देखे हुए शरीरकी नहीं रहती॥२७॥ उनके शरीरका पोषण भी दूसरोंके द्वारा ही होता था। किन्तु किसी प्रकारका मानसिक क्लेश न होनेके कारण वह दुर्बल नहीं हुआ। उसका तेज और भी निखर गया और वह मैलके कारण धूमयुक्त अग्निके समान सुशोभित होने लगा। उनके बाल बिथुर गये थे और वस्त्र भी गिर गया था; तथापि निरन्तर श्रीभगवान्‌में ही चित्त लगा रहनेके कारण उन्हें अपने तपोयोगमय शरीरकी कुछ भी सुधि नहीं थी, केवल प्रारब्ध ही उसकी रक्षा करता था ॥ २८-२९ ॥

विदुरजी ! इस प्रकार देवहूतिजीने कपिलदेवजीके बताये हुए मार्गद्वारा थोड़े ही समयमें नित्यमुक्त परमात्मस्वरूप श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लिया ॥ ३० ॥ वीरवर ! जिस स्थानपर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह परम पवित्र क्षेत्र त्रिलोकीमें 'सिद्धपद' नामसे विख्यात हुआ ॥३१॥ साधुस्वभाव विदुरजी ! योगसाधनके द्वारा उनके शरीरके सारे दैहिक मल दूर हो गये थे। वह एक नदीके रूपमें परिणत हो गया, जो सिद्धगणसे सेवित और सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली है ॥ ३२ ॥

महायोगी भगवान् कपिलजी भी माताकी आज्ञा ले पिताके आश्रमसे ईशानकोणकी ओर चले गये ॥ ३३ ॥ वहाँ स्वयं समुद्रने उनका पूजन करके उन्हें स्थान दिया। वे तीनों लोकोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये योगमार्गका अवलम्बन कर समाधिमें स्थित हो गये हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि और अप्सरागण उनकी स्तुति करते हैं तथा सांख्याचार्यगण भी उनका सब प्रकार स्तवन करते रहते हैं ॥ ३४-३५ ॥

निष्पाप विदुरजी ! तुम्हारे पूछनेसे मैंने तुम्हें यह भगवान् कपिल और देवहूतिका परम पवित्र संवाद सुनाया ॥३६॥ यह कपिलदेवजीका मत अध्यात्मयोगका गूढ़ रहस्य है। जो पुरुष इसका श्रवण या वर्णन करता है, वह भगवान् गरुड़ध्वजकी भक्तिसे युक्त होकर शीघ्र ही श्रीहरिके चरणारविन्दोंको प्राप्त करता है ॥ ३७ ॥

तीसरा स्कन्ध समाप्त

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

चतुर्थ स्कन्ध

अध्रुवाय कृतो यत्नो ध्रुवाय परिकल्पितः ।
ध्रुवस्य यत्प्रसादेन वासुदेवं नतोऽस्मि तम् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

चतुर्थ स्कन्ध

पहला अध्याय

स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! स्वायम्भुव मनुके महारानी शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद—इन दो पुत्रोंके सिवा तीन कन्याएँ भी हुई थीं; वे आकूति, देवहूति और प्रसूति नामसे विख्यात थीं ॥ १ ॥ आकूतिका, यद्यपि उसके भाई थे तो भी, महारानी शतरूपाकी अनुमतिसे उन्होंने रुचि प्रजापतिके साथ 'पुत्रिकाधर्म'के* अनुसार विवाह किया ॥ २ ॥

प्रजापति रुचि भगवान्‌के अनन्य चिन्तनके कारण ब्रह्मतेजसे सम्पन्न थे। उन्होंने आकूतिके गर्भसे एक पुरुष और स्त्रीका जोड़ा उत्पन्न किया ॥ ३ ॥ उनमें जो पुरुष था, वह साक्षात् यज्ञस्वरूपधारी भगवान् विष्णु थे; और जो स्त्री थी, वह भगवान्‌से कभी अलग न रहनेवाली लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा 'दक्षिणा' थी ॥ ४ ॥ मनुजी अपनी पुत्री आकूतिके उस परमतेजस्वी पुत्रको बड़ी प्रसन्नतासे अपने घर ले आये और दक्षिणाको रुचि प्रजापतिने अपने पास रक्खा ॥ ५ ॥ जब दक्षिणा विवाहके योग्य हुई तो उसने यज्ञ भगवान्‌को ही पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की, तब भगवान् यज्ञपुरुषने उससे विवाह किया। इससे दक्षिणाको बड़ा सन्तोष हुआ। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उससे बारह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ६ ॥ उनके नाम हैं—तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह, सुदेव और रोचन ॥ ७ ॥ ये ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें 'तुषित' नामके देवता हुए। उस मन्वन्तरमें मरीचि आदि सप्तर्षि थे, भगवान् यज्ञ ही देवताओंके अधीश्वर इन्द्र थे और महान् प्रभावशाली प्रियव्रत एवं उत्तानपाद मनुपुत्र थे। वह मन्वन्तर उन्हीं दोनोंके बेटों, पोतों और दौहित्रोंके वंशसे छा गया ॥ ८-९ ॥

प्यारे विदुरजी! मनुजीने अपनी दूसरी कन्या देवहूति कर्दमजीको ब्याही थी। उसके सम्बन्धकी प्रायः सभी बातें तुम मुझसे सुन चुके हो ॥ १० ॥ भगवान् मनुने अपनी तीसरी कन्या प्रसूतिका विवाह ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिसे किया था; उसकी विशाल वंशपरम्परा तो सारी त्रिलोकीमें फैली हुई है ॥ ११ ॥

मैं कर्दमजीकी नौ कन्याओंका, जो नौ ब्रह्मर्षियोंसे ब्याही गयी थीं, पहले ही वर्णन कर चुका हूँ। अब उनकी वंशपरम्पराका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ १२ ॥ मरीचि ऋषिकी पत्नी कर्दमजीकी बेटी कलासे कश्यप और पूर्णिमा नामक दो पुत्र हुए, जिनके वंशसे यह सारा जगत् भरा हुआ है ॥ १३ ॥ शत्रुतापन विदुरजी! पूर्णिमाके विरज और विश्वग नामके दो पुत्र तथा देवकुल्या नामकी एक कन्या हुई। यही दूसरे जन्ममें श्रीहरिके चरणोंके धोवनसे देवनदी गङ्गाके रूपमें प्रकट हुई ॥ १४ ॥ अत्रिकी पत्नी अनसूयासे दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमा नामके तीन परम यशस्वी पुत्र हुए। ये क्रमशः भगवान् विष्णु, शङ्कर और ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न हुए थे ॥ १५ ॥

विदुरजीने पूछा—गुरुजी! कृपया यह बतलाइये

---

* 'पुत्रिकाधर्म' के अनुसार किये जानेवाले विवाहमें यह शर्त होती है कि कन्याके जो पहला पुत्र होगा, उसे कन्याके पिता ले लेंगे।

कि जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त करनेवाले इन सर्वश्रेष्ठ देवोंने अत्रिमुनिके यहाँ क्या करनेकी इच्छासे अवतार लिया था ? ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—जब ब्रह्माजीने ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महर्षि अत्रिको सृष्टि रचनेके लिये आज्ञा दी, तब वे अपनी सहधर्मिणीके सहित तप करनेके लिये ऋक्षनामक कुलपर्वतपर गये ॥ १७ ॥ वहाँ पलाश और अशोकके वृक्षोंका एक विशाल वन था। उसके सभी वृक्ष फूलोंके गुच्छोंसे लदे थे तथा उसमें सब ओर निर्विन्ध्या नदीके जलकी कलकल ध्वनि गूँजती रहती थी॥१८॥ उस वनमें वे मुनिश्रेष्ठ प्राणायामके द्वारा चित्तको वशमें करके सौ वर्षतक केवल वायु पीकर सरदी-गरमी आदि द्वन्द्वोंकी कुछ भी परवा न कर एक ही पैरसे खड़े रहे ॥ १९ ॥ उस समय वे मन-ही-मन यही प्रार्थना करते थे कि 'जो कोई सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर हैं, मैं उनकी शरणमें हूँ; वे मुझे अपने ही समान सन्तान प्रदान करें' ॥ २० ॥

तब यह देखकर कि प्राणायामरूपी ईंधनसे प्रज्वलित हुआ अत्रिमुनिका तेज उनके मस्तकसे निकलकर तीनों लोकोंको तपा रहा है—ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—तीनों जगत्पति उनके आश्रमपर आये। उस समय अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और नाग—उनका सुयश गा रहे थे ॥ २१-२२ ॥ उन तीनोंका एक ही साथ प्रादुर्भाव होनेसे अत्रिमुनिका अन्तःकरण प्रकाशित हो उठा। उन्होंने एक पैरसे खड़े-खड़े ही उन देवदेवोंको देखा और फिर पृथ्वीपर दण्डके समान लोटकर प्रणाम करनेके अनन्तर अर्घ्य-पुष्पादि पूजनकी सामग्री हाथमें ले उनकी पूजा की। वे तीनों अपने-अपने वाहन—हंस, गरुड़ और बैलपर चढ़े हुए तथा अपने कमण्डलु, चक्र, त्रिशूलादि चिह्नोंसे सुशोभित थे॥२३-२४॥ उनकी आँखोंसे कृपाकी वर्षा हो रही थी। उनके मुखपर मन्द हास्यकी रेखा थी—जिससे उनकी प्रसन्नता झलक रही थी। उनके तेजसे चौंधियाकर मुनिवरने अपनी आँखें मूँद लीं ॥ २५ ॥ वे चित्तको उन्हींकी ओर लगाकर हाथ जोड़ अतिमधुर और सुन्दर भावपूर्ण वचनोंमें लोकमें सबसे बड़े उन तीनों देवोंकी स्तुति करने लगे ॥ २६ ॥

अत्रिमुनिने कहा—भगवन्! प्रत्येक कल्पके आरम्भमें जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये जो मायाके सत्त्वादि तीनों गुणोंका विभाग करके भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं—वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आप ही हैं; मैं आपको प्रणाम करता हूँ। कहिये—मैंने जिनको बुलाया था, आपमेंसे वे कौन महानुभाव हैं ? ॥ २७ ॥ क्योंकि मैंने तो सन्तानप्राप्तिकी इच्छासे विविध पूजोपचारोंके द्वारा केवल एक ही भगवान्‌का चिन्तन किया था। फिर आप तीनोंने यहाँ पधारनेकी कृपा कैसे की ? आपलोगोंतक तो देहधारियोंके मनकी भी गति नहीं है, इसलिये मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आपलोग कृपा करके मुझे इसका रहस्य बतलाइये॥२८॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—समर्थ विदुरजी! अत्रिमुनिके वचन सुनकर वे तीनों देव हँसे और उनसे सुमधुर वाणीमें कहने लगे ॥ २९ ॥

देवताओंने कहा—ब्रह्मन्! तुम सत्यसङ्कल्प हो। अतः तुमने जैसा सङ्कल्प किया था, वही होना चाहिये। उससे विपरीत कैसे हो सकता था ? तुम जिस 'जगदीश्वर' का ध्यान करते थे, वह हम तीनों ही हैं ॥ ३० ॥ प्रिय महर्षे! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे यहाँ हमारे ही अंशस्वरूप तीन जगद्विख्यात पुत्र उत्पन्न होंगे और तुम्हारे सुन्दर यशका विस्तार करेंगे ॥ ३१ ॥

उन्हें इस प्रकार अभीष्ट वर देकर तथा पति-पत्नी दोनोंसे भलीभाँति पूजित होकर उनके देखते-ही-देखते वे तीनों सुरेश्वर अपने-अपने लोकोंको चले गये ॥ ३२ ॥ ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे योगवेत्ता दत्तात्रेयजी और महादेवजीके अंशसे दुर्वासा ऋषि अत्रिके पुत्ररूपमें प्रकट हुए। अब अङ्गिरा ऋषिकी सन्तानोंका वर्णन सुनो ॥ ३३ ॥

अङ्गिराकी पत्नी श्रद्धाने सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति—इन चार कन्याओंको जन्म दिया ॥ ३४ ॥ इनके सिवा उनके साक्षात् भगवान् उतथ्यजी और ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पतिजी—ये दो पुत्र भी हुए, जो स्वारोचिष मन्वन्तरमें विख्यात हुए ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यजीके उनकी पत्नी हविर्भूसे महर्षि अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवा—ये दो पुत्र हुए। इनमें अगस्त्यजी दूसरे जन्ममें जठराग्नि

हुए ॥ ३६ ॥ विश्रवा मुनिके इडविडाके गर्भसे यक्षराज कुबेरका जन्म हुआ और उनकी दूसरी पत्नी केशिनीसे रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण उत्पन्न हुए ॥ ३७ ॥

महामते ! महर्षि पुलहकी स्त्री परम साध्वी गतिसे कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार क्रतुकी पत्नी क्रियाने ब्रह्मतेज-से देदीप्यमान बालखिल्यादि साठ हजार ऋषियोंको जन्म दिया ॥ ३९ ॥ शत्रुतापन विदुरजी ! वसिष्ठजीकी पत्नी ऊर्जा (अरुन्धती) से चित्रकेतु आदि सात विशुद्धचित्त ब्रह्मर्षियोंका जन्म हुआ ॥ ४० ॥ उनके नाम चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान और द्युमान् थे । इनके सिवा उनकी दूसरी पत्नीसे शक्ति आदि और भी कई पुत्र हुए ॥ ४१ ॥ अथर्वा मुनिकी पत्नी चित्तिने दध्यङ् (दधीचि) नामक एक तपोनिष्ठ पुत्र प्राप्त किया, जिसका दूसरा नाम अश्वशिरा भी था । अब भृगुके वंशका वर्णन सुनो ॥ ४२ ॥

महाभाग भृगुजीने अपनी भार्या ख्यातिसे धाता और विधाता नामक पुत्र तथा श्री नामकी एक भगवत्परायणा कन्या उत्पन्न की ॥ ४३ ॥ मेरुऋषिने अपनी आयति और नियति नामकी कन्याएँ क्रमशः धाता और विधाता-को ब्याहीं; उनसे उनके मृकण्ड और प्राण नामक पुत्र हुए ॥ ४४ ॥ उनमेंसे मृकण्डके मार्कण्डेय और प्राणके मुनिवर वेदशिराका जन्म हुआ । भृगुजीके एक कवि-नामक पुत्र भी थे । उनके भगवान् उशना (शुक्रा-चार्य) हुए ॥ ४५ ॥ विदुरजी ! इन सब मुनीश्वरोंने भी सन्तान उत्पन्न करके सृष्टिका विस्तार किया । इस प्रकार मैंने तुम्हें यह कर्दमजीके दौहित्रोंकी सन्तानका वर्णन सुनाया । जो पुरुष इसे श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसके पापोंको यह तत्काल नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने मनुनन्दिनी प्रसूतिसे विवाह किया । उससे उन्होंने सुन्दर नेत्रोंवाली सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥४७॥ भगवान् दक्षने उनमेंसे तेरह धर्मको, एक अग्निको, एक समस्त पितृगणको और एक संसारका संहार करनेवाले तथा जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले भगवान् शङ्करको दी ॥ ४८ ॥ श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति—ये धर्मकी पत्नियाँ हैं ॥४९॥ इनमेंसे श्रद्धाने शुभ, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय, शान्तिने सुख, तुष्टिने मोद और पुष्टिने अहङ्कारको जन्म दिया ॥ ५० ॥ क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प, बुद्धि-ने अर्थ, मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम और ह्री (लज्जा) ने प्रश्रय (विनय) नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ समस्त गुणोंकी खान मूर्तिदेवीने नर-नारायण ऋषियोंको जन्म दिया ॥ ५२ ॥ इनका जन्म होनेपर इस सम्पूर्ण विश्वने आनन्दित होकर प्रसन्नता प्रकट की । उस समय लोगोंके मन, दिशाएँ, वायु, नदी और पर्वत—सभीमें प्रसन्नता छा गयी ॥ ५३ ॥ आकाशमें माङ्गलिक बाजे बजने लगे, देवतालोग फूलोंकी वर्षा करने लगे, मुनि प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे, गन्धर्व और किन्नर गाने लगे ॥ ५४ ॥ अप्सराएँ नाचने लगीं । इस प्रकार उस समय बड़ा ही आनन्द-मङ्गल हुआ तथा ब्रह्मादि समस्त देवता स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५५ ॥

देवताओंने कहा—जिस प्रकार आकाशमें तरह-तरहके रूपोंकी कल्पना कर ली जाती है—उसी प्रकार जिन्होंने अपनी मायाके द्वारा अपने ही स्वरूपके अंदर इस संसारकी रचना की है और अपने उस स्वरूपको प्रकाशित करनेके लिये इस समय इस ऋषि-विग्रहके साथ धर्मके घरमें अपने आपको प्रकट किया है, उन परम पुरुषको हमारा नमस्कार है ॥ ५६ ॥ जिनके तत्त्वका शास्त्रके आधारपर हमलोग केवल अनुमान ही करते हैं, प्रत्यक्ष नहीं कर पाते—उन्हीं भगवान्‌ने देवताओंको संसारकी मर्यादामें किसी प्रकारकी गड़बड़ी न हो, इसीलिये सत्त्वगुणसे उत्पन्न किया है । अब वे अपने करुणामय नेत्रोंसे—जो समस्त शोभा और सौन्दर्य-के निवासस्थान निर्मल दिव्य कमलको भी नीचा दिखाने-वाले हैं—हमारी ओर निहारें ॥ ५७ ॥

प्यारे विदुरजी ! प्रभुका साक्षात् दर्शन पाकर देवताओंने उनकी इस प्रकार स्तुति और पूजा की । तदनन्तर भगवान् नर-नारायण दोनों गन्धमादन पर्वतपर चले गये ॥ ५८ ॥ भगवान् श्रीहरिके अंशभूत वे नर-नारायण ही इस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण और उन्हींके सरीखे श्यामवर्ण,

कुरुकुलतिलक अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥५९॥

अग्निदेवकी पत्नी स्वाहाने अग्निके ही अभिमानी पावक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों ही हवन किये हुए पदार्थोंका भक्षण करनेवाले हैं ॥ ६० ॥ इन्हीं तीनोंसे पैंतालीस प्रकारके अग्नि और उत्पन्न हुए। ये ही अपने तीन पिता और एक पितामहको साथ लेकर उनचास अग्नि कहलाये ॥६१॥ वेदज्ञ ब्राह्मण वैदिक यज्ञकर्ममें जिन उनचास अग्नियोंके नामोंसे आग्नेयी इष्टियाँ करते हैं, वे ये ही हैं ॥६२॥

अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप और आज्यप—ये पितर हैं; इनमें साग्निक भी हैं और निरग्निक भी। इन सब पितरोंकी पत्नी दक्षकुमारी स्वधा हैं ॥ ६३ ॥ इन पितरोंसे स्वधाके धारिणी और वयुना नामकी दो कन्याएँ हुईं। वे दोनों ही ज्ञान-विज्ञानमें पारङ्गत और ब्रह्मज्ञान-का उपदेश करनेवाली हुईं ॥ ६४ ॥ महादेवजीकी पत्नी सती थीं, वे सब प्रकारसे अपने पतिदेवकी सेवामें संलग्न रहनेवाली थीं। किन्तु उनके अपने गुण और शीलके अनुरूप कोई पुत्र नहीं हुआ ॥ ६५ ॥ क्योंकि सतीके पिता दक्षने, बिना ही किसी अपराधके भगवान् शिवजीके प्रतिकूल आचरण किया था, इसलिये सतीने युवावस्थामें ही क्रोधवश योगके द्वारा स्वयं ही अपने शरीरका त्याग कर दिया था ॥ ६६ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान् शिव और दक्ष प्रजापतिका मनोमालिन्य

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! प्रजापति दक्ष तो अपनी लड़कियोंसे बहुत ही स्नेह रखते थे, फिर उन्होंने अपनी कन्या सतीका अनादर करके शीलवानोंमें सबसे श्रेष्ठ श्रीमहादेवजीसे द्वेष क्यों किया? ॥ १ ॥ महादेवजी भी चराचरके गुरु, वैररहित, शान्तमूर्ति, आत्माराम और जगत्‌के परम आराध्य देव हैं। उनसे भला, कोई क्यों वैर करेगा? ॥ २ ॥

भगवन्! उन ससुर और दामादमें इतना विद्वेष कैसे हो गया, जिसके कारण सतीने अपने दुस्त्यज प्राणोंतककी बलि दे दी? यह आप मुझसे कहिये ॥३॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! पहले एक बार प्रजापतियोंके यज्ञमें सब बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि अपने-अपने अनुयायियोंके सहित एकत्र हुए थे ॥ ४ ॥ उसी समय प्रजापति दक्षने भी उस सभामें प्रवेश किया। वे अपने तेजसे सूर्यके समान प्रकाशमान थे और उस विशाल सभाभवनका अन्धकार दूर किये देते थे। उन्हें आया देख ब्रह्माजी और महादेवजीके अतिरिक्त अग्निपर्यन्त सभी सभासद् उनके तेजसे प्रभावित होकर अपने-अपने आसनोंसे उठकर खड़े हो गये ॥ ५-६ ॥ इस प्रकार समस्त सभासदोंसे भलीभाँति सम्मान प्राप्त करके तेजस्वी दक्ष जगत्पिता ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे अपने आसनपर बैठ गये ॥ ७ ॥

परन्तु महादेवजीको पहलेसे ही बैठा देख तथा उनसे अभ्युत्थानादिके रूपमें कुछ भी आदर न पाकर दक्ष उनका यह व्यवहार सहन न कर सके। उन्होंने उनकी ओर टेढ़ी नजरसे इस प्रकार देखा मानो उन्हें वे क्रोधाग्निसे जला डालेंगे। फिर कहने लगे—॥ ८ ॥ 'देवता और अग्नियोंके सहित समस्त ब्रह्मर्षिगण मेरी बात सुनें। मैं नासमझी या द्वेषवश नहीं कहता, बल्कि शिष्टाचारकी बात कहता हूँ ॥ ९ ॥ यह निर्लज्ज महादेव समस्त लोकपालोंकी पवित्र कीर्तिको धूलमें मिला रहा है। देखिये, इस घमण्डीने सत्पुरुषोंके आचरणको लाञ्छित एवं मटियामेट कर दिया है ॥१०॥ बंदरके-से नेत्रवाले इसने सत्पुरुषोंके समान मेरी सावित्री-सरीखी मृगनयनी पवित्र कन्याका अग्नि और ब्राह्मणोंके सामने पाणिग्रहण किया था, इसलिये यह एक प्रकार मेरे पुत्रके समान हो गया है। उचित तो यह था कि यह उठकर मेरा स्वागत करता, मुझे प्रणाम करता; परन्तु इसने वाणीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया। ११-१२। हाय! जिस प्रकार शूद्रको कोई वेद पढ़ा दे, उसी प्रकार मैंने इच्छा न होते हुए भी भावी-

वश इसको अपनी सुकुमारी कन्या दे दी। इसने सत्कर्मका लोप कर दिया, यह सदा अपवित्र रहता है, बड़ा घमण्डी है और धर्मकी मर्यादाको तोड़ रहा है॥ १३ ॥ यह प्रेतोंके निवासस्थान भयङ्कर श्मशानोंमें भूत-प्रेतोंको साथ लिये घूमता रहता है। पूरे पागलकी तरह सिरके बाल बिखेरे नंग-धड़ंग भटकता है,कभी हँसता है,कभी रोता है॥१४॥ यह सारे शरीरपर चिताकी अपवित्र भस्म लपेटे रहता है, गलेमें भूतोंके पहननेयोग्य नर-मुण्डोंकी माला और सारे शरीरमें हड्डियोंके गहने पहने रहता है। यह बस, नामभरका ही शिव है, वास्तवमें है पूरा अशिव—अमङ्गलरूप। जैसे यह स्वयं मतवाला है, वैसे ही इसे मतवाले ही प्यारे लगते हैं। भूत-प्रेत प्रमथ आदि निरे तमोगुणी स्वभाववाले जीवोंका यह नेता है॥ १५ ॥ अरे! मैंने केवल ब्रह्माजीके बहकावेमें आकर ऐसे भूतोंके सरदार, आचारहीन और दुष्ट स्वभाववालेको अपनी भोली-भाली बेटी ब्याह दी'॥१६॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! दक्षने इस प्रकार महादेवजीको बहुत कुछ बुरा-भला कहा; तथापि उन्होंने इसका कोई प्रतिकार नहीं किया, वे पूर्ववत् निश्चलभावसे बैठे रहे। इससे दक्षके क्रोधका पारा और भी ऊँचा चढ़ गया और वे जल हाथमें लेकर उन्हें शाप देनेको तैयार हो गये॥ १७ ॥ दक्षने कहा, 'यह महादेव देवताओंमें बड़ा ही अधम है। अबसे इसे इन्द्र-उपेन्द्र आदि देवताओंके साथ यज्ञका भाग न मिले'॥ १८ ॥ उपस्थित मुख्य-मुख्य सभासदोंने उन्हें बहुत मना किया, परन्तु उन्होंने किसीकी न सुनी; महादेवजीको शाप दे ही दिया। फिर वे अत्यन्त क्रोधित हो उस सभासे निकलकर अपने घर चले गये॥ १९ ॥

जब श्रीशङ्करजीके अनुयायियोंमें अग्रगण्य नन्दीश्वरको मालूम हुआ कि दक्षने शाप दिया है, तो वे क्रोधसे तमतमा उठे और उन्होंने दक्ष तथा उन ब्राह्मणोंको, जिन्होंने दक्षके दुर्वचनोंका अनुमोदन किया था, बड़ा भयङ्कर शाप दिया॥२०॥ वे बोले—"जो इस मरण-धर्मा शरीरमें ही अभिमान करके किसीसे भी द्रोह न करनेवाले भगवान् शङ्करसे द्वेष करता है, वह भेद-बुद्धिवाला मूर्ख दक्ष तत्त्वज्ञानसे विमुख ही रहे॥ २१ ॥ यह 'चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालेको अक्षय पुण्य प्राप्त होता है' आदि अर्थवादरूप वेदवाक्योंसे मोहित एवं विवेकभ्रष्ट होकर विषयसुखकी इच्छासे कपटधर्ममय गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डमें ही लगा रहता है। इसकी बुद्धि देहादिमें आत्मभावका चिन्तन करनेवाली है; उसके द्वारा इसने आत्मस्वरूपको भुला दिया है; यह साक्षात् पशुके ही समान है, अतः अत्यन्त स्त्री-लम्पट हो और शीघ्र ही इसका मुँह बकरेका हो जाय॥ २२-२३ ॥ यह मूर्ख कर्ममयी अविद्याको ही विद्या समझता है; इसलिये यह और जो लोग भगवान् शङ्करका अपमान करनेवाले इस दुष्टके पीछे-पीछे चलनेवाले हैं, वे सभी जन्म-मरणरूप संसारचक्रमें पड़े रहें॥ २४ ॥ वेदवाणीरूप लता फलश्रुतिरूप पुष्पोंसे सुशोभित है, उसके कर्मफलरूप मनोमोहक गन्धसे इनके चित्त क्षुब्ध हो रहे हैं। इससे ये शङ्करद्रोही कर्मोंके जालमें ही फँसे रहें॥ २५ ॥ ये ब्राह्मणलोग भक्ष्याभक्ष्यके विचारको छोड़कर केवल पेट पालनेके लिये ही विद्या, तप और व्रतादिका आश्रय लें तथा धन, शरीर और इन्द्रियोंके सुखको ही सुख मानकर—उन्हींके गुलाम बनकर दुनियामें भीख माँगते भटका करें"॥२६॥

नन्दीश्वरके मुखसे इस प्रकार ब्राह्मणकुलके लिये शाप सुनकर उसके बदलेमें भृगुजीने यह दुस्तर शापरूप ब्रह्मदण्ड दिया॥ २७ ॥ 'जो लोग शिवभक्त हैं तथा जो उन भक्तोंके अनुयायी हैं, वे सत्-शास्त्रोंके विरुद्ध आचरण करनेवाले और पाखण्डी हों॥ २८ ॥ जो लोग शौचाचारविहीन, मन्दबुद्धि तथा जटा, राख और हड्डियोंको धारण करनेवाले हैं—वे ही शैव-सम्प्रदायमें दीक्षित हों, जिसमें सुरा और आसव ही देवताओंके समान आदरणीय हैं॥ २९ ॥ अरे! तुमलोग जो धर्ममर्यादाके संस्थापक एवं वर्णाश्रमियोंके रक्षक वेद और ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हो, इससे मालूम होता है तुमने पाखण्डका आश्रय ले रक्खा है॥ ३० ॥ यह वेदमार्ग ही लोगोंके लिये कल्याणकारी और सनातन मार्ग है। पूर्वपुरुष इसीपर चलते आये हैं और इसके मूल साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् हैं॥ ३१ ॥ तुमलोग सत्पुरुषोंके परम पवित्र और सनातन मार्गस्वरूप वेदकी

निन्दा करते हो—इसलिये उस पाखण्डमार्गमें जाओ, जिसमें भूतोंके सरदार तुम्हारे इष्टदेव निवास करते हैं' ॥ ३२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! भृगुऋषिके इस प्रकार शाप देनेपर भगवान् शङ्कर कुछ खिन्न-से हो वहाँसे अपने अनुयायियोंसहित चल दिये ॥ ३३ ॥ वहाँ प्रजापतिलोग जो यज्ञ कर रहे थे, उसमें पुरुषोत्तम श्रीहरि ही उपास्यदेव थे । और वह यज्ञ एक हजार वर्षमें समाप्त होनेवाला था । उसे समाप्त कर उन प्रजापतियोंने श्रीगङ्गा-यमुनाके सङ्गममें यज्ञान्त स्नान किया और फिर प्रसन्नमनसे वे अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३४-३५ ॥
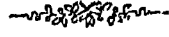
तीसरा अध्याय

सतीका पिताके यहाँ यज्ञोत्सवमें जानेके लिये आग्रह करना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार उन ससुर और दामादको आपसमें वैर-विरोध रखते हुए बहुत अधिक समय निकल गया ॥ १ ॥ इसी समय ब्रह्माजीने दक्षको समस्त प्रजापतियोंका अधिपति बना दिया । इससे उसका गर्व और भी बढ़ गया ॥२॥ उसने भगवान् शङ्कर आदि ब्रह्मनिष्ठोंको यज्ञभाग न देकर उनका तिरस्कार करते हुए पहले तो वाजपेय-यज्ञ किया और फिर बृहस्पतिसव नामका महायज्ञ आरम्भ किया ॥ ३ ॥ उस यज्ञोत्सवमें सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता आदि अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ पधारे, उन सबने मिलकर वहाँ माङ्गलिक कार्य सम्पन्न किये और दक्षके द्वारा उन सबका स्वागत-सत्कार किया गया ॥ ४ ॥

उस समय आकाशमार्गसे जाते हुए देवता आपसमें उस यज्ञकी चर्चा करते जाते थे । उनके मुखसे दक्षकुमारी सतीने अपने पिताके घर होनेवाले यज्ञकी बात सुन ली ॥ ५ ॥ उन्होंने देखा कि हमारे निवास-स्थान कैलासके पाससे होकर सब ओरसे चञ्चल नेत्रोंवाली गन्धर्व और यक्षोंकी स्त्रियाँ चमकीले कुण्डल और हार पहने खूब सज-धजकर अपने-अपने पतियोंके साथ विमानोंपर बैठी उस यज्ञोत्सवमें जा रही हैं । इससे उन्हें भी बड़ी उत्सुकता हुई और उन्होंने अपने पति भगवान् भूतनाथसे कहा ॥ ६-७ ॥

सतीने कहा—वामदेव ! सुना है, इस समय आपके ससुर दक्षप्रजापतिके यहाँ बड़ा भारी यज्ञोत्सव हो रहा है । देखिये, ये सब देवता वहीं जा रहे हैं; यदि आपकी इच्छा हो तो हम भी चलें ॥ ८ ॥ इस समय अपने आत्मीयोंसे मिलनेके लिये मेरी बहिनें भी अपने-अपने पतियोंके सहित वहाँ अवश्य आयेंगी । मैं भी चाहती हूँ कि आपके साथ वहाँ जाकर माता-पिताके दिये हुए गहने, कपड़े आदि उपहार स्वीकार करूँ ॥ ९ ॥ वहाँ अपने पतियोंसे सम्मानित बहिनों, मौसियों और स्नेहार्द्रहृदया जननीको देखनेके लिये मेरा मन बहुत दिनोंसे उत्सुक है । कल्याणमय ! इसके सिवा वहाँ महर्षियोंका रचा हुआ श्रेष्ठ यज्ञ भी देखनेको मिलेगा ॥ १० ॥ अजन्मा प्रभो ! आप जगत्‌की उत्पत्तिके हेतु हैं । आपकी मायासे रचा हुआ यह परम आश्चर्यमय त्रिगुणात्मक जगत् आपहीमें भास रहा है । किन्तु मैं तो स्त्रीस्वभाव होनेके कारण आपके तत्त्वसे अनभिज्ञ और बहुत दीन हूँ । इसलिये इस समय अपनी जन्मभूमि देखनेको बहुत उत्सुक हो रही हूँ ॥ ११ ॥ जन्मरहित नीलकण्ठ ! देखिये—इनमें कितनी ही स्त्रियाँ तो ऐसी हैं, जिनका दक्षसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है । फिर भी वे अपने-अपने पतियोंके सहित खूब सज-धजकर झुंड-की-झुंड वहाँ जा रही हैं । वहाँ जानेवाली इन देवाङ्गनाओंके राजहंसके समान श्वेत विमानोंसे आकाशमण्डल कैसा सुशोभित हो रहा है ॥ १२ ॥ सुरश्रेष्ठ ! ऐसी अवस्थामें अपने पिताके यहाँ उत्सवका समाचार पाकर उसकी बेटीका शरीर उसमें सम्मिलित होनेके लिये क्यों न छटपटायेगा । पति, गुरु और माता-पिता आदि सुहृदोंके यहाँ तो बिना बुलाये भी जा सकते हैं ॥ १३ ॥ अतः देव ! आप मुझपर प्रसन्न हों;

आपको मेरी यह इच्छा अवश्य पूर्ण करनी चाहिये; आप बड़े करुणामय हैं, तभी तो परम ज्ञानी होकर भी आपने मुझे अपने आधे अङ्गमें स्थान दिया है। अब मेरी इस याचनापर ध्यान देकर मुझे अनुगृहीत कीजिये ॥ १४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रिया सतीजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर अपने आत्मीयोंका प्रिय करनेवाले भगवान् शङ्करको दक्षप्रजापतिके उन मर्मभेदी दुर्वचनरूप बाणोंका स्मरण हो आया, जो उन्होंने समस्त प्रजापतियोंके सामने कहे थे; तब वे हँसकर बोले ॥१५॥

भगवान् शङ्करने कहा—सुन्दरि ! तुमने जो कहा कि अपने बन्धुजनके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, सो तो ठीक ही है; किन्तु ऐसा तभी करना चाहिये, जब उनकी दृष्टि अतिशय प्रबल देहाभिमानसे उत्पन्न हुए मद और क्रोधके कारण द्वेष-दोषसे युक्त न हो गयी हो ॥ १६ ॥ विद्या, तप, धन, सुदृढ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल—ये छः सत्पुरुषोंके तो गुण हैं, परन्तु नीच पुरुषोंमें ये ही अवगुण हो जाते हैं; क्योंकि इनसे उनका अभिमान बढ़ जाता है और दृष्टि दोषयुक्त हो जाती है एवं विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसी कारण वे महापुरुषोंका प्रभाव नहीं देख पाते ॥ १७ ॥ इसीसे जो अपने यहाँ आये हुए पुरुषोंको कुटिल बुद्धिसे भौं चढ़ाकर रोषभरी दृष्टिसे देखते हैं, उन अव्यवस्थितचित्त लोगोंके यहाँ 'ये हमारे बान्धव हैं' ऐसा समझकर कभी नहीं जाना चाहिये ॥ १८ ॥ देवि ! शत्रुओंके बाणोंसे बिंध जानेपर भी ऐसी व्यथा नहीं होती, जैसी अपने कुटिलबुद्धि स्वजनोंके कुटिल वचनोंसे होती है। क्योंकि बाणोंसे शरीर छिन्न-भिन्न हो जानेपर तो जैसे-तैसे निद्रा आ जाती है, किन्तु कुवाक्योंसे मर्मस्थान बिद्ध हो जानेपर तो मनुष्य हृदयकी पीड़ासे दिन-रात बेचैन रहता है ॥ १९ ॥

सुन्दरि ! अवश्य ही मैं यह जानता हूँ कि तुम परमोन्नतिको प्राप्त हुए दक्षप्रजापतिको अपनी कन्याओंमें सबसे अधिक प्रिय हो। तथापि मेरी आश्रिता होनेके कारण तुम्हें अपने पितासे मान नहीं मिलेगा; क्योंकि वे मुझसे बहुत जलते हैं ॥ २० ॥ जीवकी चित्तवृत्तिके साक्षी अहङ्कारशून्य महापुरुषोंकी समृद्धिको देखकर जिसके हृदयमें सन्ताप और इन्द्रियोंमें व्यथा होती है, वह पुरुष उनके पदको तो सुगमतासे प्राप्त कर नहीं सकता; बस, दैत्यगण जैसे श्रीहरिसे द्वेष मानते हैं, वैसे ही उनसे कुढ़ता रहता है ॥ २१ ॥

सुमध्यमे ! तुम कह सकती हो कि आपने प्रजापतियोंकी सभामें उनका आदर क्यों नहीं किया। सो ये सम्मुख जाना, नम्रता दिखाना, प्रणाम करना आदि क्रियाएँ जो लोकव्यवहारमें परस्पर की जाती हैं, तत्त्वज्ञानियोंके द्वारा बहुत अच्छे ढंगसे की जाती हैं। वे अन्तर्यामीरूपसे सबके अन्तःकरणोंमें स्थित परमपुरुष वासुदेवको ही प्रणामादि करते हैं; देहाभिमानी पुरुषको नहीं करते ॥ २२ ॥ विशुद्ध अन्तःकरणका नाम ही 'वसुदेव' है, क्योंकि उसीमें भगवान् वासुदेवका अपरोक्ष अनुभव होता है। उस शुद्ध चित्तमें स्थित इन्द्रियातीत भगवान् वासुदेवको ही मैं नमस्कार किया करता हूँ ॥२३॥ इसीलिये प्रिये ! जिसने प्रजापतियोंके यज्ञमें, मेरेद्वारा कोई अपराध न होनेपर भी, मेरा कटुवाक्योंसे तिरस्कार किया था, वह दक्ष यद्यपि तुम्हारे शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता है, तो भी मेरा शत्रु होनेके कारण तुम्हें उसे अथवा उसके अनुयायियोंको देखनेका विचार भी नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी, तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा; क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिका अपने आत्मीयजनोंके द्वारा अपमान होता है, तब वह तत्काल उनकी मृत्युका कारण हो जाता है ॥ २५ ॥

चौथा अध्याय

सतीका अग्निप्रवेश

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इतना कहकर भगवान् शङ्कर मौन हो गये। उन्होंने देखा कि दक्षके यहाँ जाने देने अथवा जानेसे रोकने—दोनों ही अवस्थाओंमें सतीके प्राणत्यागकी सम्भावना है। इधर,

सतीजी भी कभी बन्धुजनोंको देखने जानेकी इच्छासे बाहर आतीं और कभी 'भगवान् शङ्कर रुष्ट न हो जायँ' इस शङ्कासे फिर लौट जातीं। इस प्रकार कोई एक बात निश्चित न कर सकनेके कारण वे दुविधामें पड़ गयीं—चञ्चल हो गयीं ॥ १ ॥ बन्धुजनोंसे मिलनेकी इच्छामें बाधा पड़नेसे वे बड़ी अनमनी हो गयीं। स्वजनोंके स्नेहवश उनका हृदय भर आया और वे आँखोंमें आँसू भरकर अत्यन्त व्याकुल हो रोने लगीं। उनका शरीर थरथर काँपने लगा और वे अप्रतिम पुरुष भगवान् शङ्करकी ओर इस प्रकार रोषपूर्ण दृष्टिसे देखने लगीं मानो उन्हें भस्म कर देंगी ॥ २ ॥ शोक और क्रोधने उनके चित्तको बिल्कुल बेचैन कर दिया तथा स्त्रीस्वभावके कारण उनकी बुद्धि मूढ़ हो गयी। जिन्होंने प्रीतिवश उन्हें अपना आधा अङ्गतक दे दिया था, उन सत्पुरुषोंके प्रिय भगवान् शङ्करको भी छोड़कर वे लंबी-लंबी साँस लेती हुई अपने माता-पिताके घर चल दीं; ॥ ३ ॥ सतीको बड़ी फुर्तीसे अकेली जाते देख श्रीमहादेवजीके मणिमान् एवं मद आदि हजारों सेवक भगवान्के वाहन वृषभराजको आगे कर, तथा और भी अनेकों पार्षद और यक्षोंको साथ ले बड़ी तेजीसे निर्भयतापूर्वक उनके पीछे हो लिये ॥ ४ ॥ उन्होंने सतीको बैलपर सवार करा दिया तथा मैनापक्षी, गेंद, दर्पण और कमल आदि खेलकी सामग्री, श्वेत छत्र, चँवर और माला आदि राजचिह्न तथा दुन्दुभि, शङ्ख और बाँसुरी आदि गाने-बजानेके सामानोंसे सुसज्जित हो वे उनके साथ चल दिये ॥ ५ ॥

तदनन्तर सती अपने समस्त सेवकोंके साथ दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। वहाँ वेदध्वनि करते हुए ब्राह्मणोंमें परस्पर होड़ लग रही थी कि सबसे ऊँचे स्वरमें कौन बोले; सब ओर ब्रह्मर्षि और देवता विराजमान थे तथा जहाँ-तहाँ मिट्टी, काठ, लोहे, सोने, डाभ और चर्मके पात्र रक्खे हुए थे ॥६॥ वहाँ पहुँचनेपर पिताके द्वारा सतीकी अवहेलना हुई, यह देख यज्ञकर्ता दक्षके भयसे सतीकी माता और बहनोंके सिवा किसी भी मनुष्यने उनका कुछ भी आदर-सत्कार नहीं किया। अवश्य ही उनकी माता और बहिनें बहुत प्रसन्न हुईं और प्रेमसे गद्गद होकर उन्होंने सतीजीको आदरपूर्वक गले लगाया ॥७॥ किन्तु सतीजीने पितासे अपमानित होनेके कारण, बहिनोंके कुशल-प्रश्नसहित प्रेमपूर्ण वार्तालाप तथा माता और मौसियोंके सम्मानपूर्वक दिये हुए उपहार और सुन्दर आसनादिको स्वीकार नहीं किया ॥ ८ ॥

सर्वलोकेश्वरी देवी सतीका यज्ञमण्डलमें तो अनादर हुआ ही था। उन्होंने यह भी देखा कि उस यज्ञमें भगवान् शङ्करके लिये कोई भाग नहीं दिया गया है और पिता दक्ष उनका बड़ा अपमान कर रहा है। इससे उन्हें बहुत क्रोध हुआ; ऐसा जान पड़ता था मानो वे अपने रोषसे सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर देंगी ॥ ९ ॥ दक्षको कर्ममार्गके अभ्याससे बहुत घमंड हो गया था। उसे शिवजीसे द्वेष करते देख जब सतीके साथ आये हुए भूत उसे मारनेको तैयार हुए, तो देवी सतीने उन्हें अपने तेजसे रोक दिया और सब लोगोंको सुनाकर पिताकी निन्दा करते हुए क्रोधसे लड़खड़ाती हुई वाणीमें कहा ॥ १० ॥

देवी सतीने कहा—पिताजी! भगवान् शङ्करसे बड़ा तो संसारमें कोई भी नहीं है। वे तो सभी देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं। उनका न कोई प्रिय है, न अप्रिय, अतएव उनका किसी भी प्राणीसे वैर नहीं है। वे तो सबके कारण एवं सर्वरूप हैं; आपके सिवा और ऐसा कौन है जो उनसे विरोध करेगा? ॥ ११ ॥ द्विजवर! आप-जैसे लोग दूसरोंके गुणोंमें भी दोष ही देखते हैं, किन्तु कोई साधुपुरुष ऐसा नहीं करते। जो लोग—दोष देखनेकी बात तो अलग रही—दूसरोंके थोड़े-से गुणको भी बड़े रूपमें देखना चाहते हैं, वे सबसे श्रेष्ठ हैं। खेद है कि आपने ऐसे महापुरुषोंपर भी दोषारोपण ही किया ॥१२॥ जो दुष्ट मनुष्य इस शवरूप जड शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे यदि ईर्ष्यावश सर्वदा ही महापुरुषोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि महापुरुष तो उनकी इस चेष्टापर कोई ध्यान नहीं देते, परन्तु उनके चरणोंकी धूलि उनके इस अपराधको न सहकर उनका तेज नष्ट कर देती है। अतः महापुरुषोंकी निन्दा-जैसा जघन्य कार्य उन दुष्ट पुरुषोंको ही शोभा देता है ॥१३॥ जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम प्रसङ्गवश एक बार भी मुखसे

निकल जानेपर मनुष्यके समस्त पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जिनकी आज्ञाका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, अहो ! उन्हीं पवित्रकीर्ति मङ्गलमय भगवान् शङ्करसे आप द्वेष करते हैं ! अवश्य ही आप अमङ्गलरूप हैं ॥१४॥ अरे ! महापुरुषोंके मन-मधुकर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरणकमलोंका निरन्तर सेवन किया करते हैं और जिनके चरणारविन्द सकाम पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी देते हैं, उन विश्वबन्धु भगवान् शिवसे आप वैर करते हैं ? ॥ १५ ॥

वे केवल नाममात्रके शिव हैं, उनका वेष अशिवरूप—अमङ्गलरूप है; इस बातको आपके सिवा दूसरे कोई देवता संभवतः नहीं जानते; क्योंकि जो भगवान् शिव श्मशानभूमिस्थ नरमुण्डोंकी माला, चिताकी भस्म और हड्डियाँ पहने, जटा बिखेरे, भूत-पिशाचोंके साथ श्मशानमें निवास करते हैं, उन्हींके चरणोंपरसे गिरे हुए निर्माल्यको ब्रह्मा आदि देवता अपने सिरपर धारण करते हैं ॥ १६ ॥ यदि निरङ्कुश लोग धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेवाले अपने पूजनीय स्वामीकी निन्दा करें तो अपनेमें उसे दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर कान बंद करके वहाँसे चला जाय, और यदि शक्ति हो तो बलपूर्वक पकड़कर उस बकवाद करनेवाली अमङ्गलरूप दुष्ट जिह्वाको काट डाले । इस पापको रोकनेके लिये स्वयं अपने प्राण तक दे दे, यही धर्म है ॥ १७ ॥ आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं, इसलिये आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं रख सकती; यदि भूलसे कोई निन्दित वस्तु खा ली जाय, तो उसे वमन करके निकाल देनेसे ही मनुष्यकी शुद्धि बतायी जाती है ॥ १८ ॥ जो महामुनि निरन्तर अपने स्वरूपमें ही रमण करते हैं, उनकी बुद्धि सर्वथा वेदके विधि-निषेधमय वाक्योंका अनुसरण नहीं करती । जिस प्रकार देवता और मनुष्योंकी गतिमें भेद रहता है, उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानीकी स्थिति भी एक-सी नहीं होती । इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अपने ही धर्ममार्गमें स्थित रहते हुए भी दूसरोंके मार्गकी निन्दा न करे ॥ १९ ॥ प्रवृत्ति (यज्ञ-यागादि) और निवृत्ति (शमदमादि)-रूप दोनों ही प्रकारके कर्म ठीक हैं । वेदमें उनके अलग-अलग रागी और विरागी दो प्रकारके अधिकारी बताये गये हैं । परस्परविरोधी होनेके कारण उक्त दोनों प्रकारके कर्मोंका एक साथ एक ही पुरुषके द्वारा आचरण नहीं किया जा सकता । भगवान् शङ्कर तो परब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हें इन दोनोंमेंसे किसी भी प्रकारका कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २० ॥

पिताजी ! हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है, आत्मज्ञानी महापुरुष ही उसका सेवन कर सकते हैं । आपके पास वह ऐश्वर्य नहीं है और यज्ञशालाओंमें यज्ञान्नसे तृप्त होकर प्राणपोषण करनेवाले कर्मठलोग उसकी प्रशंसा भी नहीं करते ॥ २१ ॥ आप भगवान् शङ्करका अपराध करनेवाले हैं । अतः आपके शरीरसे उत्पन्न इस निन्दनीय देहको रखकर मुझे क्या करना है । आप-जैसे दुर्जनसे सम्बन्ध होनेके कारण मुझे लज्जा आती है । जो महापुरुषोंका अपराध करता है, उससे होनेवाले जन्मको भी धिक्कार है ॥ २२ ॥ जिस समय भगवान् शिव आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे हँसीमें 'दाक्षायणी' (दक्षकुमारी) के नामसे पुकारेंगे, उस समय हँसीको भूलकर मुझे बड़ी ही लज्जा और खेद होगा । इसलिये उसके पहले ही मैं आपके अङ्गसे उत्पन्न इस शवतुल्य शरीरको त्याग दूँगी ॥२३॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कामादि शत्रुओंको जीतनेवाले विदुरजी ! उस यज्ञमण्डपमें दक्षसे इस प्रकार कह देवी सती मौन होकर उत्तर दिशामें भूमिपर बैठ गयीं । उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ़ लिया तथा आँखें मूँदकर शरीर छोड़नेके लिये वे योगमार्गमें स्थित हो गयीं ॥ २४ ॥ उन्होंने आसनको स्थिरकर प्राणायामद्वारा प्राण और अपानको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थित किया; फिर उदानवायुको नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर धीरे-धीरे बुद्धिके साथ हृदयमें स्थापित किया । इसके पश्चात् अनिन्दिता सती उस हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयीं ॥ २५ ॥ इस प्रकार, जिस शरीरको महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शङ्करने कई बार बड़े आदरसे अपनी गोदमें बैठाया था, दक्षपर कुपित होकर उसे त्यागनेकी इच्छासे महामनस्विनी

सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें वायु और अग्निकी धारणा की ॥ २६ ॥ अपने पति जगद्गुरु भगवान् शङ्करके चरण-कमल-मकरन्दका चिन्तन करते-करते सतीने और सब ध्यान भुला दिये; उन्हें उन चरणोंके अतिरिक्त कुछ भी दिखायी न दिया । इससे उनका देह सर्वथा निर्दोष, अर्थात् मैं दक्षकन्या हूँ—ऐसे अभिमानसे भी मुक्त होकर तुरंत ही योगाग्निसे जल उठा ॥ २७ ॥

उस समय वहाँ आये हुए देवता आदिने जब सतीका देहत्यागरूप यह महान् आश्चर्यमय चरित्र देखा, तब वे सभी हाहाकार करने लगे और वह भयङ्कर कोलाहल आकाशमें एवं पृथ्वीतलपर सभी जगह फैल गया । सब ओर यही सुनायी देता था—'हाय ! दक्षके दुर्व्यवहारसे कुपित होकर देवाधिदेव महादेवकी प्रिया सतीने प्राण त्याग दिये ! ॥ २८ ॥ देखो, सारे चराचर जीव इस दक्षप्रजापतिकी ही सन्तान हैं; फिर भी इसने कैसी भारी दुष्टता की है ! इसकी पुत्री शुद्धहृदया सती सदा ही मान पानेके योग्य थी, किन्तु इसने उसका ऐसा निरादर किया कि उसने प्राण त्याग दिये ॥ २९ ॥ वास्तवमें यह बड़ा ही असहिष्णु और ब्राह्मणद्रोही है । अब इसकी संसारमें बड़ी अपकीर्ति होगी । जब इसकी पुत्री सती इसीके अपराधसे प्राणत्याग करनेको तैयार हुई, तब भी इस शङ्करद्रोहीने उसे रोकातक नहीं !' ॥ ३० ॥

जिस समय सब लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिवजीके पार्षद सतीका यह अद्भुत प्राणत्याग देख, अस्त्र-शस्त्र लेकर दक्षको मारनेके लिये उठ खड़े हुए ॥ ३१ ॥ उनके आक्रमणका वेग देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विघ्न डालनेवालोंका नाश करनेके लिये 'अपहतं रक्षः...' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करते हुए दक्षिणाग्निमें आहुति दी ॥ ३२ ॥ अध्वर्यु भृगुने ज्यों ही आहुति छोड़ी कि यज्ञकुण्डसे 'ऋभु' नामके हजारों तेजस्वी देवता प्रकट हो गये । इन्होंने अपनी तपस्याके प्रभावसे चन्द्रलोक प्राप्त किया था ॥ ३३ ॥ उन ब्रह्मतेजसम्पन्न देवताओंने जलती हुई लकड़ियोंसे आक्रमण किया, तो समस्त गुह्यक और प्रमथगण इधर-उधर भाग गये ॥ ३४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

वीरभद्रकृत दक्षयज्ञविध्वंस और दक्षवध

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महादेवजीने जब देवर्षि नारदके मुखसे सुना कि अपने पिता दक्षसे अपमानित होनेके कारण देवी सतीने प्राण त्याग दिये हैं और उसकी यज्ञवेदीसे प्रकट हुए ऋभुओंने उनके पार्षदोंकी सेनाको मारकर भगा दिया है, तब उन्हें बड़ा ही क्रोध हुआ ॥ १ ॥ उन्होंने उग्र रूप धारण कर क्रोधके मारे होठ चबाते हुए अपनी एक जटा उखाड़ ली—जो बिजली और आगकी लपटके समान दीप्त हो रही थी—और सहसा खड़े होकर बड़े गम्भीर अट्टहासके साथ उसे पृथ्वीपर पटक दिया ॥ २ ॥ उससे तुरंत ही एक बड़ा भारी लंबा-चौड़ा पुरुष उत्पन्न हुआ । उसका शरीर इतना विशाल था कि वह स्वर्गको स्पर्श कर रहा था । उसके हजार भुजाएँ थीं । मेघके समान श्यामवर्ण था, सूर्यके समान जलते हुए तीन नेत्र थे, विकराल दाढ़ें थीं और अग्निकी ज्वालाओंके समान लाल-लाल जटाएँ थीं । उसके गलेमें नरमुण्डोंकी माला थी और हाथोंमें तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र थे ॥ ३ ॥ जब उसने हाथ जोड़कर पूछा, 'भगवन् ! मैं क्या करूँ ?' तो भगवान् भूतनाथने कहा—'वीर रुद्र ! तू मेरा अंश है, इसलिये मेरे पार्षदोंका अधिनायक बनकर तू तुरंत ही जा और दक्ष तथा उसके यज्ञको नष्ट कर दे' ॥ ४ ॥

प्यारे विदुरजी ! जब देवाधिदेव भगवान् शङ्करने क्रोधमें भरकर ऐसी आज्ञा दी, तब वीरभद्र उनकी परिक्रमा करके चलनेको तैयार हो गये । उस समय उन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि मेरे वेगका सामना करनेवाला संसारमें कोई नहीं है और मैं बड़े-से-बड़े वीरका भी वेग सहन कर सकता हूँ ॥ ५ ॥ वे भयङ्कर सिंहनाद करते हुए एक अति कराल त्रिशूल हाथमें लेकर दक्षके यज्ञमण्डपकी ओर दौड़े । उनका त्रिशूल संसारसंहारक मृत्युका भी संहार करनेमें समर्थ था । भगवान् रुद्रके और भी

बहुत-से सेवक गर्जना करते हुए उनके पीछे हो लिये। उस समय वीरभद्रके पैरोंके नूपुरादि आभूषण झनन-झनन बजते जाते थे ॥ ६ ॥

इधर यज्ञशालामें बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्य तथा अन्य ब्राह्मण और ब्राह्मणियोंने जब उत्तर दिशाकी ओर धूल उड़ती देखी, तब वे सोचने लगे—'अरे यह अँधेरा-सा कैसे होता आ रहा है ? यह धूल कहाँसे छा गयी ? ॥ ७ ॥ इस समय न तो आँधी ही चल रही है और न कहीं लुटेरे ही सुने जाते हैं; क्योंकि अपराधियों-को कठोर दण्ड देनेवाला राजा प्राचीनबर्हि अभी जीवित है । अभी गौओंके आनेका समय भी नहीं हुआ है । फिर यह धूल कहाँसे आयी ? क्या इसी समय संसारका प्रलय तो नहीं होनेवाला है ?' ॥ ८ ॥ तब दक्षपत्नी प्रसूति एवं अन्य स्त्रियोंने व्याकुल होकर कहा—प्रजापति दक्षने अपनी सारी कन्याओंके सामने बेचारी निरपराधा सतीका तिरस्कार किया था; मालूम होता है यह उसी पापका फल है ॥ ९ ॥ (अथवा हो न हो यह संहारमूर्ति भगवान् रुद्रके अनादरका ही परिणाम है ।) प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जिस समय वे अपने जटाजूटको बिखेरकर तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित अपनी भुजाओंको ध्वजाओंके समान फैलाकर ताण्डव नृत्य करते हैं, उस समय उनके त्रिशूलके फलोंसे दिग्गज बिंध जाते हैं तथा उनके मेघगर्जनके समान भयङ्कर अट्टहाससे दिशाएँ विदीर्ण हो जाती हैं ॥ १० ॥ उस समय उनका तेज असह्य होता है, वे अपनी भौंहें टेढ़ी करनेके कारण बड़े दुर्द्धर्ष जान पड़ते हैं और उनकी विकराल दाढ़ोंसे तारागण अस्त-व्यस्त हो जाते हैं । उन क्रोधमें भरे हुए भगवान् शङ्करको बार-बार कुपित करनेवाला पुरुष साक्षात् विधाता ही क्यों न हो—क्या कभी उसका कल्याण हो सकता है ? ॥ ११ ॥

जो लोग महात्मा दक्षके यज्ञमें बैठे थे, वे भयके कारण एक-दूसरेकी ओर कातर दृष्टिसे निहारते हुए ऐसी ही तरह-तरहकी बातें कर रहे थे कि इतनेमें ही आकाश और पृथ्वीमें सब ओर सहस्रों भयङ्कर उत्पात होने लगे ॥ १२ ॥ विदुरजी ! इसी समय दौड़कर आये हुए रुद्रसेवकोंने उस महान् यज्ञमण्डपको सब ओरसे घेर लिया । वे सब तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे । उनमें कोई बौने, कोई भूरे रंगके, कोई पीले और कोई मगरके समान पेट और मुखवाले थे ॥ १३ ॥ उनमेंसे किन्हींने प्राग्वंश (यज्ञशालाके पूर्व और पश्चिम-के खंभोंके बीचमें आड़े रक्खे हुए डंडे) को तोड़ डाला, किन्हींने यज्ञशालाके पश्चिमकी ओर स्थित पत्नी-शालाको नष्ट कर दिया, किन्हींने यज्ञशालाके सामनेका सभामण्डप और मण्डपके आगे उत्तरकी ओर स्थित आग्नीध्रशालाको तोड़ दिया, किन्हींने यजमानगृह और पाकशालाको तहस-नहस कर डाला ॥ १४ ॥ किन्हींने यज्ञके पात्र फोड़ दिये, किन्हींने अग्नियोंको बुझा दिया, किन्हींने यज्ञकुण्डोंमें पेशाब कर दिया और किन्हींने वेदीकी सीमाके सूत्रोंको तोड़ डाला ॥ १५ ॥ कोई-कोई मुनियोंको तंग करने लगे, कोई स्त्रियोंको डराने-धमकाने लगे और किन्हींने अपने पास होकर भागते हुए देवताओंको पकड़ लिया ॥ १६ ॥ मणिमान्ने भृगु ऋषिको बाँध लिया, वीरभद्रने प्रजापति दक्षको कैद कर लिया तथा चण्डीशने पूषाको और नन्दीश्वरने भग देवताको पकड़ लिया ॥ १७ ॥

भगवान् शङ्करके पार्षदोंकी यह भयङ्कर लीला देख-कर तथा उनके कंकड़-पत्थरोंकी मारसे बहुत तंग आकर वहाँ जितने ऋत्विज, सदस्य और देवतालोग थे, सब-के-सब जहाँ-तहाँ भाग गये ॥ १८ ॥ भृगुजी हाथमें स्रुवा लिये हवन कर रहे थे । वीरभद्रने इनकी दाढ़ी-मूँछ नोच लीं; क्योंकि इन्होंने प्रजापतियोंकी सभामें मूँछें ऐंठते हुए महादेवजीका उपहास किया था ॥ १९ ॥ उन्होंने क्रोधमें भरकर भगदेवताको पृथ्वीपर पटक दिया और उनकी आँखें निकाल लीं; क्योंकि जब दक्ष देव-सभामें श्रीमहादेवजीको बुरा-भला कहते हुए शाप दे रहे थे, उस समय इन्होंने दक्षको सैन देकर उकसाया था ॥ २० ॥ इसके पश्चात् जैसे अनिरुद्धके विवाहके समय बलरामजीने कलिङ्गराजके दाँत उखाड़े थे, उसी प्रकार उन्होंने पूषाके दाँत तोड़ दिये; क्योंकि जब दक्षने महादेवजीको गालियाँ दी थीं, उस समय ये दाँत दिखाकर हँसे थे ॥ २१ ॥ फिर वे दक्षकी छातीपर बैठकर एक तेज तलवारसे उसका सिर काटने लगे,

परन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उस समय उसे धड़से अलग न कर सके ॥२२॥ जब किसी भी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे दक्षकी त्वचा नहीं कटी, तब वीरभद्रको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बहुत देरतक विचार करते रहे ॥२३॥ तब उन्होंने यज्ञमण्डपमें यज्ञपशुओंको जिस प्रकार मारा जाता था, उसे देखकर उसी प्रकार दक्षरूप उस यजमान पशुका सिर धड़से अलग कर दिया ॥२४॥ यह देखकर भूत, प्रेत और पिशाचादि तो उनके इस कर्मकी प्रशंसा करते हुए 'वाह-वाह' करने लगे और दक्षके दलवालोंमें हाहाकार मच गया ॥ २५ ॥ वीरभद्रने अत्यन्त कुपित होकर दक्षके सिरको यज्ञकी दक्षिणाग्निमें डाल दिया और उस यज्ञशालामें आग लगाकर यज्ञको विध्वंस करके वे कैलासपर्वतको लौट गये ॥ २६ ॥

छठा अध्याय

ब्रह्मादि देवताओंका कैलास जाकर श्रीमहादेवजीको मनाना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार जब रुद्रके सेवकोंने समस्त देवताओंको हरा दिया और उनके सम्पूर्ण अङ्ग-प्रत्यङ्ग भूत-प्रेतोंके त्रिशूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, परिघ और मुद्गर आदि आयुधोंसे छिन्न-भिन्न हो गये तब वे ऋत्विज और सदस्योंके सहित बहुत ही डरकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १-२ ॥ भगवान् ब्रह्माजी और सर्वान्तर्यामी श्रीनारायण पहलेसे ही इस भावी उत्पातको जानते थे, इसीसे वे दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥ अब देवताओंके मुखसे वहाँकी सारी बात सुनकर उन्होंने कहा, 'देवताओ ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई दोष भी बन जाय, तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंका भला नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ फिर तुमलोगोंने तो यज्ञमें भगवान् शङ्करका प्राप्य भाग न देकर उनका बड़ा भारी अपराध किया है। परन्तु शङ्करजी बहुत शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं, इसलिये तुमलोग शुद्ध हृदयसे उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो—उनसे क्षमा माँगो ॥ ५ ॥ दक्षके दुर्वचनरूपी बाणोंसे उनका हृदय तो पहलेसे ही बिंध रहा था, उसपर उनकी प्रिया सतीजीका वियोग हो गया । इसलिये यदि तुमलोग चाहते हो कि वह यज्ञ फिरसे आरम्भ होकर पूर्ण हो, तो पहले जल्दी जाकर उनसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगो । नहीं तो, उनके कुपित होनेपर लोकपालोंके सहित इन समस्त लोकोंका भी बचना असम्भव है ॥ ६ ॥ भगवान् रुद्र परम स्वतन्त्र हैं, उनके तत्त्व और शक्ति-सामर्थ्यको न तो कोई ऋषि-मुनि, देवता और यज्ञस्वरूप देवराज इन्द्र ही जानते हैं और न स्वयं मैं ही जानता हूँ; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । ऐसी अवस्थामें उन्हें शान्त करनेका उपाय कौन कर सकता है' ॥ ७ ॥

देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी उनको, प्रजापतियोंको और पितरोंको साथ ले अपने लोकसे पर्वतश्रेष्ठ कैलासको गये, जो भगवान् शङ्करका प्रिय धाम है ॥ ८ ॥ उस कैलासपर ओषधि, तप, मन्त्र तथा योग आदि उपायोंसे सिद्धिको प्राप्त हुए और जन्मसे ही सिद्ध देवता नित्य निवास करते हैं; किन्नर, गन्धर्व और अप्सरादि सदा वहाँ बने रहते हैं ॥ ९ ॥ उसके मणिमय शिखर हैं, जो नाना प्रकारकी धातुओंसे रंग-बिरंगे प्रतीत होते हैं । उसपर अनेक प्रकारके वृक्ष, लता और गुल्मादि छाये हुए हैं, जिनमें झुंड-के-झुंड जंगली पशु विचरते रहते हैं ॥ १० ॥ वहाँ निर्मल जलके अनेकों झरने बहते हैं और बहुत-सी गहरी कन्दरा और ऊँचे शिखरोंके कारण वह पर्वत अपने प्रियतमोंके साथ विहार करती हुई सिद्धपत्नियोंका क्रीडा-स्थल बना हुआ है ॥११॥ वह सब ओर मोरोंके शोर, मदान्ध भ्रमरोंके गुंजार, कोयलोंकी कुहू-कुहू ध्वनि तथा अन्यान्य पक्षियोंके कलरवसे गूँज रहा है ॥ १२ ॥ उसके कल्पवृक्ष अपनी ऊँची-ऊँची डालियोंको हिला-हिलाकर मानो पक्षियोंको बुलाते रहते हैं । तथा हाथियोंके चलने-फिरनेके कारण वह कैलास स्वयं चलता हुआ-सा और

झरनोंकी कलकल-ध्वनिसे बातचीत करता हुआ-सा जान पड़ता है ॥ १३ ॥

मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन और अर्जुनके वृक्षोंसे वह पर्वत बड़ा ही सुहावना जान पड़ता है ॥ १४ ॥ आम, कदम्ब, नीप, नाग, पुन्नाग, चम्पा, गुलाब, अशोक, मौलसिरी, कुन्द, कुरबक, सुनहरे शतपत्र कमल, इलायची और मालतीकी मनोहर लताएँ तथा कुब्जक, मोगरा और माधवीकी बेलें भी उसकी शोभा बढ़ाती हैं ॥१५-१६॥ कटहल, गूलर, पीपल, पाकर, बड़, गूगल, भोजवृक्ष, ओषधि जातिके पेड़ (केले आदि, जो फल आनेके बाद काट दिये जाते हैं), सुपारी, राजपूग, जामुन, खजूर, आमड़ा, आम, पियाल, महुआ और लिसौड़ा आदि विभिन्न प्रकारके वृक्षों तथा पोले और ठोस बाँसके झुरमुटोंसे वह पर्वत बड़ा ही मनोहर मालूम होता है ॥ १७-१८ ॥ उसके सरोवरोंमें कुमुद, उत्पल, कल्हार और शतपत्र आदि अनेक जातिके कमल खिले रहते हैं । उनकी शोभासे मुग्ध होकर कलरव करते हुए झुंड-के-झुंड पक्षियोंसे वह बड़ा ही भला लगता है ॥१९॥ वहाँ जहाँ-तहाँ हरिन, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, कर्णान्त्र, एकपद, अश्वमुख, भेड़िये और कस्तूरी-मृग घूमते रहते हैं तथा वहाँके सरोवरोंके तट केलोंकी पङ्क्तियोंसे घिरे होनेके कारण बड़ी शोभा पाते हैं । उसके चारों ओर नन्दा नामकी नदी बहती है, जिसका पवित्र जल देवी सतीके स्नान करनेसे और भी पवित्र एवं सुगन्धित हो गया है । भगवान् भूतनाथके निवास-स्थान उस कैलासपर्वतकी ऐसी रमणीयता देखकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २०-२२ ॥

वहाँ उन्होंने अलका नामकी एक सुरम्य पुरी और सौगन्धिक वन देखा, जिसमें सर्वत्र सुगन्ध फैलानेवाले सौगन्धिक नामके कमल खिले हुए थे ॥ २३ ॥ उस नगरके बाहरकी ओर नन्दा और अलकनन्दा नामकी दो नदियाँ हैं; वे तीर्थपाद श्रीहरिकी चरण-रजके संयोगसे अत्यन्त पवित्र हो गयी हैं ॥ २४ ॥ विदुरजी ! उन नदियोंमें रतिविलाससे थकी हुई देवाङ्गनाएँ अपने-अपने निवासस्थानसे आकर जलक्रीडा करती हैं और उनमें प्रवेशकर अपने प्रियतमोंपर जल उलीचती हैं ॥ २५ ॥ स्नानके समय उनका तुरंतका लगाया हुआ कुचकुङ्कुम धुल जानेसे जल पीला हो जाता है । उस कुङ्कुममिश्रित जलको हाथी प्यास न होनेपर भी गन्धके लोभसे स्वयं पीते और अपनी हथिनियोंको पिलाते हैं ॥ २६ ॥

अलकापुरीपर चाँदी, सोने और बहुमूल्य मणियोंके सैकड़ों विमान छाये हुए थे, जिनमें अनेकों यक्षपत्नियाँ निवास करती थीं । इनके कारण वह विशाल नगरी बिजली और बादलोंसे छाये हुए आकाशके समान जान पड़ती थी ॥ २७ ॥ यक्षराज कुबेरकी राजधानी उस अलकापुरीको पीछे छोड़कर देवगण सौगन्धिक वनमें आये । वह वन रंग-बिरंगे फल, फूल और पत्तोंवाले अनेकों कल्पवृक्षोंसे सुशोभित था ॥ २८ ॥ उसमें कोकिल आदि पक्षियोंका कलरव और भौंरोंका गुंजार हो रहा था तथा राजहंसोंके परमप्रिय कमलकुसुमोंसे सुशोभित अनेकों सरोवर थे ॥ २९ ॥ वह वन जंगली हाथियोंके शरीरकी रगड़ लगनेसे घिसे हुए हरिचन्दन वृक्षोंका स्पर्श करके चलनेवाली सुगन्धित वायुके द्वारा यक्षपत्नियोंके मनको विशेषरूपसे मथे डालता था ॥३०॥ बावलियोंकी सीढ़ियाँ वैदूर्यमणिकी बनी हुई थीं । उनमें बहुत-से कमल खिले रहते थे । वहाँ अनेकों किम्पुरुष जी बहलानेके लिये आये हुए थे । इस प्रकार उस वनकी शोभा निहारते जब देवगण कुछ आगे बढ़े, तब उन्हें पास ही एक वटवृक्ष दिखलायी दिया ॥ ३१ ॥

वह वृक्ष सौ योजन ऊँचा था तथा उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजनतक फैली हुई थीं । उसके चारों ओर सर्वदा अविचल छाया बनी रहती थी, इसलिये घामका कष्ट कभी नहीं होता था; तथा उसमें कोई घोंसला भी न था ॥ ३२ ॥ उस महायोगमय और मुमुक्षुओंके आश्रयभूत वृक्षके नीचे देवताओंने भगवान् शङ्करको विराजमान देखा । वे साक्षात् क्रोधहीन कालके समान जान पड़ते थे ॥ ३३ ॥ भगवान् भूतनाथका श्रीअङ्ग बड़ा ही शान्त था । सनन्दनादि शान्त सिद्धगण और सखा—यक्ष-राक्षसोंके स्वामी कुबेर उनकी सेवा कर रहे थे ॥ ३४ ॥ जगत्पति महादेवजी सारे संसारके सुहृद् हैं, स्नेहवश सबका कल्याण

करनेवाले हैं; वे लोकहितके लिये ही उपासना, चित्तकी एकाग्रता और समाधि आदि साधनोंका आचरण करते रहते हैं ॥ ३५ ॥ सन्ध्याकालीन मेघकी-सी कान्तिवाले शरीरपर वे तपस्वियोंके अभीष्ट चिह्न—भस्म, दण्ड, जटा और मृगचर्म एवं मस्तकपर चन्द्रकला धारण किये हुए थे ॥ ३६ ॥ वे एक कुशासनपर बैठे थे और अनेकों साधु श्रोताओंके बीचमें श्रीनारदजीके पूछनेसे सनातन ब्रह्मका उपदेश कर रहे थे ॥ ३७ ॥ उनका बायाँ चरण दायीं जाँघपर रक्खा था। वे बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रक्खे, कलाईमें रुद्राक्षकी माला डाले तर्कमुद्रासे* विराजमान थे ॥ ३८ ॥ वे योगपट्ट (काठकी बनी हुई टेकनी) का सहारा लिये एकाग्र चित्तसे ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहे थे। लोकपालोंके सहित समस्त मुनियोंने मननशीलोंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् शङ्करको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ यद्यपि समस्त देवता और दैत्योंके अधिपति भी श्रीमहादेवजीके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, तथापि वे श्रीब्रह्माजीको अपने स्थानपर आया देख तुरंत खड़े हो गये और जैसे वामनावतारमें परमपूज्य विष्णुभगवान् कश्यपजीकी वन्दना करते हैं, उसी प्रकार सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४० ॥ इसी प्रकार शङ्करजीके चारों ओर जो महर्षियोंसहित अन्यान्य सिद्धगण बैठे थे, उन्होंने भी ब्रह्माजीको प्रणाम किया। सबके नमस्कार कर चुकनेपर ब्रह्माजीने चन्द्रमौलि भगवान्से, जो अबतक प्रणामकी मुद्रामें ही खड़े थे, हँसते हुए कहा ॥ ४१ ॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—देव! मैं जानता हूँ, आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं; क्योंकि विश्वकी योनि शक्ति (प्रकृति) और उसके बीज शिव (पुरुष)-से परे जो एकरस परब्रह्म है, वह आप ही हैं ॥ ४२ ॥ भगवन्! आप मकड़ीके समान ही अपने स्वरूपभूत शिव-शक्तिके रूपमें क्रीडा करते हुए लीलासे ही संसारकी रचना, पालन और संहार करते रहते हैं ॥ ४३ ॥ आपने ही धर्म और अर्थकी प्राप्ति करानेवाले वेदकी रक्षाके लिये दक्षको निमित्त बनाकर यज्ञको प्रकट किया है। आपकी ही बाँधी हुई ये वर्णाश्रमकी मर्यादाएँ हैं, जिनका नियमनिष्ठ ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं ॥ ४४ ॥ मङ्गलमय महेश्वर! आप शुभ कर्म करनेवालोंको स्वर्गलोक अथवा मोक्षपद प्रदान करते हैं तथा पापकर्म करनेवालोंको घोर नरकोंमें डालते हैं। फिर भी किसी-किसी व्यक्तिके लिये इन कर्मोंका फल उल्टा कैसे हो जाता है? ॥ ४५ ॥

जो महानुभाव आपके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर देते हैं, जो समस्त प्राणियोंमें आपकी ही झाँकी करते हैं और समस्त जीवोंको अभेददृष्टिसे आत्मामें ही देखते हैं, वे पशुओंके समान प्रायः क्रोधके अधीन नहीं होते ॥ ४६ ॥ जो लोग भेदबुद्धि होनेके कारण कर्मोंमें ही आसक्त हैं, जिनकी नीयत अच्छी नहीं है, दूसरोंकी उन्नति देखकर जिनका चित्त रात-दिन कुढ़ा करता है और जो मर्मभेदी अज्ञानी अपने दुर्वचनोंसे दूसरोंका चित्त दुखाया करते हैं, आप-जैसे महापुरुषोंके लिये उन्हें भी मारना उचित नहीं है; क्योंकि वे बेचारे तो विधाताके ही मारे हुए हैं ॥ ४७ ॥ देवदेव! भगवान् कमलनाभकी प्रबल मायासे मोहित हो जानेके कारण यदि किसी पुरुषकी कभी किसी स्थानमें भेदबुद्धि होती है, तो भी साधु पुरुष अपने परदुःखकातर स्वभावके कारण उसपर कृपा ही करते हैं; दैववश जो कुछ हो जाता है, वे उसे रोकनेका प्रयत्न नहीं करते ॥ ४८ ॥

प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, परम पुरुष भगवान्की दुस्तर मायाने आपकी बुद्धिका स्पर्श भी नहीं किया है। अतः जिनका चित्त उसके वशीभूत होकर कर्ममार्गमें आसक्त हो रहा है, उनके द्वारा अपराध बन जाय, तो भी उनपर आपको कृपा ही करनी चाहिये ॥ ४९ ॥ भगवन्! आप सबके मूल हैं। आप ही सम्पूर्ण यज्ञोंको पूर्ण करनेवाले हैं। यज्ञभाग पानेका भी आपको पूरा अधिकार है। फिर भी इस दक्षयज्ञके बुद्धिहीन याजकोंने आपको यज्ञभाग नहीं दिया। इसीसे यह आपके द्वारा विध्वस्त हुआ। अब आप इस अपूर्ण यज्ञका पुनरुद्धार करनेकी कृपा करें ॥ ५० ॥ प्रभो! ऐसा कीजिये, जिससे यजमान दक्ष फिर जी उठे, भगदेवताको नेत्र मिल जायँ, भृगुजीके दाढ़ी-मूँछ आ जायँ और पूषाके पहलेके ही समान

* तर्जनीको अँगूठेसे जोड़कर अन्य अँगुलियोंको आपसमें मिलाकर फैला देनेसे जो बन्ध सिद्ध होता है, उसे 'तर्कमुद्रा' कहते हैं। इसका नाम ज्ञानमुद्रा भी है।

दाँत निकल आयें ॥ ५१ ॥ रुद्रदेव ! अस्त्र-शस्त्र और पत्थरोंकी बौछारसे जिन देवता और ऋत्विजोंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग घायल हो गये हैं, आपकी कृपासे वे फिर ठीक हो जायँ ॥ ५२ ॥ यज्ञ सम्पूर्ण होनेपर जो कुछ शेष रहे, वह सब आपका भाग होगा। यज्ञविध्वंसक ! आज यह यज्ञ आपके ही भागसे पूर्ण हो ॥ ५३ ॥

सातवाँ अध्याय

दक्षयज्ञकी पूर्ति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाबाहो विदुरजी ! ब्रह्माजी-के इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शङ्करने प्रसन्नता-पूर्वक हँसते हुए कहा—सुनिये ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—'प्रजापते ! भगवान्‌की माया-से मोहित हुए दक्ष-जैसे नासमझोंके अपराधकी न तो मैं चर्चा करता हूँ और न याद ही। मैंने तो केवल सावधान करनेके लिये ही उन्हें थोड़ा-सा दण्ड दे दिया ॥ २ ॥ दक्षप्रजापतिका सिर जल गया है, इसलिये उनके बकरे-का सिर लगा दिया जाय; भगदेव मित्रदेवताके नेत्रोंसे अपना यज्ञभाग देखें ॥ ३ ॥ पूषा पिसा हुआ अन्न खानेवाले हैं, वे उसे यजमानके दाँतोंसे भक्षण करें तथा अन्य सब देवताओंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी स्वस्थ हो जायँ; क्योंकि उन्होंने यज्ञसे बचे हुए पदार्थोंको मेरा भाग निश्चित किया है ॥ ४ ॥ अध्वर्यु आदि याज्ञिकोंमेंसे जिनकी भुजाएँ टूट गयी हैं, वे अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे और जिनके हाथ नष्ट हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे काम करें तथा भृगुजीके बकरेकी-सी दाढ़ी-मूँछ हो जाय' ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—वत्स विदुर ! तब भगवान् शङ्करके वचन सुनकर सब लोग प्रसन्न चित्तसे 'धन्य ! धन्य !' कहने लगे ॥ ६ ॥ फिर सभी देवता और ऋषियोंने महादेवजीसे दक्षकी यज्ञशालामें पधारनेकी प्रार्थना की और तब वे उन्हें तथा ब्रह्माजीको साथ लेकर वहाँ गये ॥ ७ ॥ वहाँ जैसा-जैसा भगवान् शङ्करने कहा था, उसी प्रकार सब कार्य करके उन्होंने दक्षकी धड़से यज्ञपशुका सिर जोड़ दिया ॥ ८ ॥ सिर जुड़ जानेपर रुद्रदेवकी दृष्टि पड़ते ही दक्ष तत्काल सोकर जागनेके समान जी उठे और अपने सामने भगवान् शिवको देखा ॥ ९ ॥ दक्षका शङ्करद्रोहकी कालिमासे कलुषित हृदय उनका दर्शन करनेसे शरत्कालीन सरोवर-के समान स्वच्छ हो गया ॥ १० ॥ उन्होंने महादेवजीकी स्तुति करनी चाही, किन्तु अपनी मरी हुई बेटी सतीका स्मरण हो आनेसे स्नेह और उत्कण्ठाके कारण उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उनके मुखसे शब्द न निकल सका ॥ ११ ॥ प्रेमसे विह्वल, परम-बुद्धिमान् प्रजापतिने जैसे-तैसे अपने हृदयके आवेगको रोककर विशुद्धभावसे भगवान् शिवकी स्तुति करनी आरम्भ की ॥ १२ ॥

दक्षने कहा—भगवन् ! मैंने आपका अपराध किया था, किन्तु आपने उसके बदलेमें मुझे दण्डके द्वारा शिक्षा देकर बड़ा ही अनुग्रह किया है। अहो ! आप और श्रीहरि तो आचारहीन, नाममात्रके ब्राह्मणोंकी भी उपेक्षा नहीं करते—फिर हम-जैसे यज्ञ-यागादि करने-वालोंको क्यों भूलेंगे ॥ १३ ॥ विभो ! आपने ब्रह्मा होकर सबसे पहले आत्मतत्त्वकी रक्षाके लिये अपने मुखसे विद्या, तप और व्रतादिके धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था। जैसे चरवाहा लाठी लेकर गौओंकी रक्षा करता है, उसी प्रकार आप उन ब्राह्मणोंकी सब विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं ॥ १४ ॥ मैं आपके तत्त्वको नहीं जानता था, इसीसे मैंने भरी सभामें आपको अपने वाग्बाणोंसे बेधा था। किन्तु आपने मेरे उस अपराधका कोई विचार नहीं किया। मैं तो आप-जैसे पूज्यतम महानुभावोंका अपराध करनेके कारण नरकादि नीच लोकोंमें गिरनेवाला था, परन्तु आपने अपनी करुणाभरी दृष्टिसे मुझे उबार लिया। अब भी आपको प्रसन्न करने-योग्य मुझमें कोई गुण नहीं है; बस, आप अपने ही उदारतापूर्ण बर्तावसे मुझपर प्रसन्न हों ॥ १५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—आशुतोष शङ्करसे इस प्रकार अपना अपराध क्षमा कराकर दक्षने ब्रह्माजीके कहनेपर उपाध्याय, ऋत्विज आदिकी सहायतासे यज्ञ-

कार्य आरम्भ किया ॥ १६ ॥ तब ब्राह्मणोंने यज्ञ सम्पन्न करनेके उद्देश्यसे रुद्रगण-सम्बन्धी भूत-पिशाचोंके संसर्ग-जनित दोषकी शान्तिके लिये तीन पात्रोंमें विष्णुभगवान्‌के लिये तैयार किये हुए पुरोडाश नामक चरुका हवन किया ॥ १७ ॥ विदुरजी ! उस हविको हाथमें लेकर खड़े हुए अध्वर्युके साथ यजमान दक्षने ज्यों ही विशुद्ध चित्तसे श्रीहरिका ध्यान किया, त्यों ही सहसा भगवान् वहाँ प्रकट हो गये ॥ १८ ॥ 'बृहत्' एवं 'रथन्तर' नामक साम-स्तोत्र जिनके पंख हैं, उन गरुड़जीके द्वारा समीप लाये हुए भगवान्‌ने दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई अपनी अङ्गकान्तिसे सब देवताओंका तेज हर लिया—उनके सामने सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी ॥ १९ ॥ उनका श्याम वर्ण था, कमरमें सुवर्णकी करधनी तथा पीताम्बर सुशोभित थे। सिरपर सूर्यके समान देदीप्यमान मुकुट था, मुखकमल भौंरोंके समान नीली अलकावली और कान्तिमय कुण्डलोंसे शोभायमान था, उनके सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित आठ भुजाएँ थीं, जो भक्तोंकी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहती हैं। आठों भुजाओंमें वे शङ्ख, पद्म, चक्र, बाण, धनुष, गदा, खड्ग और ढाल लिये हुए थे तथा इन सब आयुधोंके कारण वे फूले हुए कनेरके वृक्षके समान जान पड़ते थे ॥ २० ॥ प्रभुके हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न था और सुन्दर वनमाला सुशोभित थी। वे अपने उदार हास और लीलामय कटाक्षसे सारे संसारको आनन्दमग्न कर रहे थे। पार्षदगण दोनों ओर राजहंसके समान सफेद पंखे और चँवर डुला रहे थे। भगवान्‌के मस्तकपर चन्द्रमाके समान शुभ्र छत्र शोभा दे रहा था ॥ २१ ॥

भगवान् पधारे हैं—यह देखकर इन्द्र, ब्रह्मा और महादेवजी आदि देवेश्वरोंसहित समस्त देवता, गन्धर्व और ऋषि आदिने सहसा खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥ *उनके तेजसे सबकी कान्ति* फीकी पड़ गयी, जिह्वा लड़खड़ाने लगी, वे सब-के-सब सकपका गये और मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर भगवान्‌के सामने खड़े हो गये ॥२३॥ यद्यपि भगवान्‌की महिमा-तक ब्रह्मा आदिकी मति भी नहीं पहुँच पाती, तो भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये दिव्यरूपमें प्रकट हुए श्रीहरि-की वे अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥ सबसे पहले प्रजापति दक्ष एक उत्तम पात्रमें पूजाकी सामग्री ले नन्द-सुनन्दादि पार्षदोंसे घिरे हुए, प्रजापतियोंके परम गुरु भगवान् यज्ञेश्वरके पास गये और अति आनन्दित हो विनीतभावसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते प्रभुके शरणापन्न हुए ॥ २५ ॥

दक्षने कहा—भगवन् ! अपने स्वरूपमें आप बुद्धि-की जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंसे रहित, शुद्ध, चिन्मय, भेदरहित, *अतएव निर्भय हैं। आप मायाका तिरस्कार* करके स्वतन्त्ररूपसे विराजमान हैं; तथापि जब मायासे ही जीवभावको स्वीकारकर उसी मायामें स्थित हो जाते हैं, तब अज्ञानी-से दीखने लगते हैं ॥ २६ ॥

ऋत्विजोंने कहा—उपाधिरहित प्रभो ! भगवान् रुद्रके प्रधान अनुचर नन्दीश्वरके शापके कारण हमारी बुद्धि केवल कर्मकाण्डमें ही फँसी हुई है, अतएव हम आपके तत्त्वको नहीं जानते। जिसके लिये 'इस कर्मका यही देवता है' ऐसी व्यवस्था की गयी है—उस धर्मप्रवृत्तिके प्रयोजक, वेदत्रयीसे प्रतिपादित यज्ञको ही हम आपका स्वरूप समझते हैं ॥ २७ ॥

सदस्योंने कहा—जीवोंको आश्रय देनेवाले प्रभो ! जो अनेक प्रकारके क्लेशोंके कारण अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें कालरूप भयङ्कर सर्प ताकमें बैठा हुआ है, द्वन्द्वरूप अनेकों गढ़े हैं, दुर्जनरूप जंगली जीवोंका भय है तथा शोकरूप दावानल धधक रहा है—ऐसे, विश्राम-स्थलसे रहित संसारमार्गमें जो अज्ञानी जीव कामनाओंसे पीड़ित होकर विषयरूप मृगतृष्णाजलके लिये ही देह-गेहका भारी बोझा सिरपर लिये जा रहे हैं, वे भला आपके चरणकमलोंकी शरणमें कब आने लगे ॥२८॥

रुद्रने कहा—वरदायक प्रभो ! आपके उत्तम चरण इस संसारमें सकाम पुरुषोंको सम्पूर्ण पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले हैं; और जिन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं है, वे निष्काम मुनिजन भी उनका आदरपूर्वक पूजन करते हैं। उनमें चित्त लगा रहनेके कारण यदि अज्ञानी लोग मुझे आचारभ्रष्ट कहते हैं, तो कहें; आपके परम अनुग्रहसे मैं उनके कहने-सुननेका कोई विचार नहीं करता ॥ २९ ॥

भृगुजीने कहा—आपकी गहन मायासे आत्मज्ञान लुप्त हो जानेके कारण जो अज्ञान-निद्रामें सोये हुए हैं, वे ब्रह्मादि देहधारी आत्मज्ञानमें उपयोगी आपके तत्त्वको अभीतक नहीं जान सके। ऐसे होनेपर भी आप अपने शरणागत भक्तोंके तो आत्मा और सुहृद् हैं; अतः आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ ३०॥

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो! पृथक्-पृथक् पदार्थोंको जाननेवाली इन्द्रियोंके द्वारा पुरुष जो कुछ देखता है, वह आपका स्वरूप नहीं है; क्योंकि आप ज्ञान, शब्दादि विषय और श्रोत्रादि इन्द्रियोंके अधिष्ठान हैं—ये सब आपमें अध्यस्त हैं। अतएव आप इस मायामय प्रपञ्चसे सर्वथा अलग हैं॥ ३१॥

इन्द्रने कहा—अच्युत! आपका यह जगत्को प्रकाशित करनेवाला रूप देवद्रोहियोंका संहार करनेवाली आठ भुजाओंसे सुशोभित है, जिनमें आप सदा ही नाना प्रकारके आयुध धारण किये रहते हैं। यह रूप हमारे मन और नेत्रोंको परम आनन्द देनेवाला है॥३२॥

याज्ञिकोंकी पत्नियोंने कहा—भगवन्! ब्रह्माजीने आपके पूजनके लिये ही इस यज्ञकी रचना की थी; परन्तु दक्षपर कुपित होनेके कारण इसे भगवान् पशुपतिने अब नष्ट कर दिया है। यज्ञमूर्ते! श्मशानभूमिके समान उत्सवहीन हुए हमारे उस यज्ञको आप नील कमलकी-सी कान्तिवाले अपने नेत्रोंसे निहारकर पवित्र कीजिये॥ ३३॥

ऋषियोंने कहा—भगवन्! आपकी लीला बड़ी ही अनोखी है; क्योंकि आप कर्म करते हुए भी उनसे निर्लेप रहते हैं। दूसरे लोग वैभवकी भूखसे जिन लक्ष्मीजीकी उपासना करते हैं, वे स्वयं आपकी सेवामें लगी रहती हैं; तो भी आप उनका मान नहीं करते, उनसे निःस्पृह रहते हैं॥ ३४॥

सिद्धोंने कहा—प्रभो! यह हमारा मनरूप हाथी नाना प्रकारके क्लेशरूप दावानलसे दग्ध एवं अत्यन्त तृषित होकर आपकी कथारूप विशुद्ध अमृतमयी सरितामें घुसकर गोता लगाये बैठा है। वहाँ ब्रह्मानन्दमें लीन-सा हो जानेके कारण उसे न तो संसाररूप दावानलका ही स्मरण है और न वह उस नदीसे बाहर ही निकलता है॥ ३५॥

यजमानपत्नीने कहा—सर्वसमर्थ परमेश्वर! आपका स्वागत है। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये। लक्ष्मीपते! अपनी प्रिया लक्ष्मीजीके सहित आप हमारी रक्षा कीजिये। यज्ञेश्वर! जिस प्रकार सिरके बिना मनुष्यका धड़ अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार अन्य अङ्गोंसे पूर्ण होनेपर भी आपके बिना यज्ञकी शोभा नहीं होती॥ ३६॥

लोकपालोंने कहा—अनन्त परमात्मन्! आप समस्त अन्तःकरणोंके साक्षी हैं, यह सारा जगत् आपकेही द्वारा देखा जाता है। तो क्या मायिक पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली हमारी इन नेत्र आदि इन्द्रियोंसे कभी आप प्रत्यक्ष हो सके हैं? वस्तुतः आप हैं तो पञ्चभूतोंसे पृथक्; फिर भी पाञ्चभौतिक शरीरोंके साथ जो आपका सम्बन्ध प्रतीत होता है, यह आपकी माया ही है॥ ३७॥

योगेश्वरोंने कहा—प्रभो! जो पुरुष सम्पूर्ण विश्वके आत्मा आपमें और अपनेमें कोई भेद नहीं देखता, उससे अधिक प्यारा आपको कोई नहीं है। तथापि भक्तवत्सल! जो लोग आपमें स्वामिभाव रखकर अनन्य भक्तिसे आपकी सेवा करते हैं, उनपर भी आप कृपा कीजिये॥ ३८॥ जीवोंके अदृष्टवश जिसके सत्त्वादि गुणोंमें बड़ी विभिन्नता आ जाती है, उस अपनी मायाके द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये ब्रह्मादि विभिन्न रूप धारण करके आप भेदबुद्धि पैदा कर देते हैं; किन्तु अपनी स्वरूपस्थितिसे आप उस भेदज्ञान और उसके कारण सत्त्वादि गुणोंसे सर्वथा दूर हैं। ऐसे आपको हमारा नमस्कार है॥ ३९॥

ब्रह्मस्वरूप वेदने कहा—आप ही धर्मादिकी उत्पत्तिके लिये शुद्ध सत्त्वको स्वीकार करते हैं, साथ ही आप निर्गुण भी हैं। अतएव आपका तत्त्व न तो मैं जानता हूँ और न ब्रह्मादि कोई और ही जानते हैं; आपको नमस्कार है॥ ४०॥

अग्निदेवने कहा—भगवन्! आपके ही तेजसे

प्रज्वलित होकर मैं श्रेष्ठ यज्ञोंमें देवताओंके पास घृतमिश्रित हवि पहुँचाता हूँ। आप साक्षात् यज्ञपुरुष एवं यज्ञकी रक्षा करनेवाले हैं। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और पशु-सोम—ये पाँच प्रकारके यज्ञ आपके ही स्वरूप हैं तथा 'आश्रावय', 'अस्तु श्रौपट्', 'यजे', 'ये यजामहे' और 'वपट्'—इन पाँच प्रकारके यजुर्मन्त्रोंसे आपका ही पूजन होता है। मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥४१॥

देवताओंने कहा—देव ! आप आदिपुरुष हैं। पूर्वकल्पका अन्त होनेपर अपने कार्यरूप इस प्रपञ्चको उदरमें लीनकर आपने ही प्रलयकालीन जलके भीतर शेषनागकी उत्तम शय्यापर शयन किया था। आपके आध्यात्मिक स्वरूपका जनलोकादिवासी सिद्धगण भी अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं। अहो! वही आप आज हमारे नेत्रोंके विषय होकर अपने भक्तोंकी रक्षा कर रहे हैं ॥ ४२ ॥

गन्धर्वोंने कहा—देव ! मरीचि आदि ऋषि और ये ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्रादि देवतागण आपके अंशके भी अंश हैं। महत्तम ! यह सम्पूर्ण विश्व आपके खेलकी सामग्री है। नाथ ! ऐसे आपको हम सर्वदा प्रणाम करते हैं ॥ ४३ ॥

विद्याधरोंने कहा—प्रभो ! परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके साधनरूप इस मानवदेहको पाकर भी जीव आपकी मायासे मोहित होकर इसमें मैं-मेरेपनका अभिमान कर लेता है। फिर वह दुर्बुद्धि अपने आत्मीयोंसे तिरस्कृत होनेपर भी असत् विषयोंकी ही लालसा करता रहता है। किन्तु ऐसी अवस्थामें भी जो आपके कथामृतका सेवन करता है, वह इस अन्तःकरणके मोहको सर्वथा त्याग देता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—भगवन् ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही हवि हैं, आप ही अग्नि हैं, स्वयं आप ही मन्त्र हैं; आप ही समिधा, कुशा और यज्ञपात्र हैं तथा आप ही सदस्य, ऋत्विज, यजमान एवं उसकी धर्मपत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस, घृत और पशु हैं ॥ ४५ ॥ वेदमूर्ते ! यज्ञ और उसका सङ्कल्प दोनों आप ही हैं। पूर्वकालमें आप ही अति विशाल वराहरूप धारणकर रसातलमें डूबी हुई पृथ्वीको लीलासे ही अपनी दाढ़ोंपर उठाकर इस प्रकार निकाल लाये थे, जैसे कोई गजराज कमलिनीको उठा लाये। उस समय आप धीरे-धीरे गरज रहे थे और योगिगण आपका यह अलौकिक पुरुषार्थ देखकर आपकी स्तुति करते जाते थे ॥ ४६ ॥ यज्ञेश्वर ! जब लोग आपके नामका कीर्तन करते हैं, तब यज्ञके सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं। हमारा यह यज्ञरूप सत्कर्म नष्ट हो गया था, अतः हम आपके दर्शनोंकी इच्छा कर रहे थे। अब आप हमपर प्रसन्न होइये। आपको नमस्कार है ॥ ४७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भैया विदुर ! जब इस प्रकार सब लोग यज्ञरक्षक भगवान् हृषीकेशकी स्तुति करने लगे, तब परम चतुर दक्षने रुद्रपार्षद वीरभद्रके ध्वंस किये हुए यज्ञको फिर आरम्भ कर दिया ॥४८॥ सर्वान्तर्यामी श्रीहरि यों तो सभीके भागोंके भोक्ता हैं; तथापि त्रिकपाल-पुरोडाशरूप अपने भागसे और भी प्रसन्न होकर उन्होंने दक्षको सम्बोधन करके कहा ॥ ४९ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जगत्का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और महादेव हूँ; मैं सबका आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ तथा स्वयम्प्रकाश और उपाधिशून्य हूँ ॥५०॥ विप्रवर ! अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्की रचना, पालन और संहार करता रहता हूँ और मैंने ही उन कर्मोंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर—ये नाम धारण किये हैं ॥ ५१ ॥ ऐसा जो भेदरहित विशुद्ध परब्रह्मस्वरूप मैं हूँ, उसीमें अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूपसे देखता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ आदि अङ्गोंमें 'ये मुझसे भिन्न हैं' ऐसी बुद्धि कभी नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भक्त प्राणिमात्रको मुझसे भिन्न नहीं देखता ॥ ५३ ॥ ब्रह्मन् ! हम—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं; अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है ॥ ५४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्के इस प्रकार आज्ञा देनेपर प्रजापतियोंके नायक दक्षने उनका त्रिकपाल-यज्ञके द्वारा पूजन करके फिर अङ्गभूत और प्रधान

दोनों प्रकारके यज्ञोंसे अन्य सब देवताओंका अर्चन किया ॥ ५५ ॥ फिर एकाग्रचित्त हो भगवान् शङ्करका यज्ञशेषरूप उनके भागसे यजन किया तथा समाप्तिमें किये जानेवाले उदवसान नामक कर्मसे अन्य सोमपायी एवं दूसरे देवताओंका यजन कर यज्ञका उपसंहार किया और अन्तमें ऋत्विजोंके सहित अवभृथ-स्नान किया ॥५६॥ फिर जिन्हें अपने पुरुषार्थसे ही सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त थीं, उन दक्षप्रजापतिको 'तुम्हारी सदा धर्ममें बुद्धि रहे' ऐसा आशीर्वाद देकर सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५७ ॥

विदुरजी ! सुना है कि दक्षसुता सतीजीने इस प्रकार अपना पूर्वशरीर त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे जन्म लिया था ॥ ५८ ॥ जिस प्रकार प्रलयकालमें लीन हुई शक्ति सृष्टिके आरम्भमें फिर ईश्वरका ही आश्रय लेती है, उसी प्रकार अनन्यपरायणा श्रीअम्बिकाजीने उस जन्ममें भी अपने एकमात्र आश्रय और प्रियतम भगवान् शङ्करको ही वरण किया ॥५९॥ विदुरजी ! दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले भगवान् शिवका यह चरित्र मैंने बृहस्पतिजीके शिष्य परम भागवत उद्धवजीके मुखसे सुना था ॥ ६० ॥ कुरुनन्दन ! श्रीमहादेवजीका यह पावन चरित्र यश और आयुको बढ़ानेवाला तथा पापपुञ्जको नष्ट करनेवाला है । जो पुरुष भक्तिभावसे इसका नित्यप्रति श्रवण और कीर्तन करता है, वह अपनी पापराशिका नाश कर देता है ॥ ६१ ॥

आठवाँ अध्याय

ध्रुवका वन-गमन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—शत्रुसूदन विदुरजी ! सनकादि, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति—ब्रह्माजीके इन नैष्ठिक ब्रह्मचारी पुत्रोंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश नहीं किया (अतः उनके कोई सन्तान नहीं हुई) । अधर्म भी ब्रह्माजीका ही पुत्र था, उसकी पत्नीका नाम था मृषा । उसके दम्भ नामक पुत्र और माया नामकी कन्या हुई । उन दोनोंको निर्ऋति ले गया, क्योंकि उसके कोई सन्तान न थी ॥ १-२ ॥ दम्भ और मायासे लोभ और निकृति (शठता) का जन्म हुआ, उनसे क्रोध और हिंसा तथा उनसे कलि (कलह) और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) उत्पन्न हुए ॥ ३ ॥ साधुशिरोमणे ! फिर दुरुक्तिसे कलिने भय और मृत्युको उत्पन्न किया तथा उन दोनोंके संयोगसे यातना और निरय (नरक) का जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥ ४ ॥ निष्पाप विदुरजी ! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तुम्हें प्रलयका कारणरूप यह अधर्मका वंश सुनाया । यह अधर्मका त्याग कराकर पुण्य-सम्पादनमें हेतु बनता है; अतएव इसका वर्णन तीन बार सुनकर मनुष्य अपने मनकी मलिनता दूर कर देता है ॥ ५ ॥ कुरुनन्दन ! अब मैं श्रीहरिके अंश (ब्रह्माजी) के अंशसे उत्पन्न हुए पवित्रकीर्ति महाराज स्वायम्भुव मनुके पुत्रोंके वंशका वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥

महारानी शतरूपा और उनके पति स्वायम्भुव मनुसे प्रियव्रत और उत्तानपाद—ये दो पुत्र हुए । भगवान् वासुदेवकी कलासे उत्पन्न होनेके कारण ये दोनों संसारकी रक्षामें तत्पर रहते थे ॥ ७ ॥ उत्तानपादके सुनीति और सुरुचि नामकी दो पत्नियाँ थीं । उनमें सुरुचि राजाको अधिक प्रिय थी; सुनीति, जिसका पुत्र ध्रुव था, उन्हें वैसी प्रिय नहीं थी ॥ ८ ॥

एक दिन राजा उत्तानपाद सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें बिठाकर प्यार कर रहे थे । उसी समय ध्रुवने भी गोदमें बैठना चाहा, परन्तु राजाने उसका स्वागत नहीं किया ॥ ९ ॥ उस समय घमण्डसे भरी हुई सुरुचिने अपनी सौतके पुत्र ध्रुवको महाराजकी गोदमें आनेका यत्न करते देख उनके सामने ही उससे डाहभरे शब्दोंमें कहा ॥ १० ॥ बच्चे ! तू राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी नहीं है । तू भी राजाका ही बेटा है, इससे क्या हुआ; तुझको मैंने तो अपनी कोखमें नहीं धारण किया ॥ ११ ॥ तू अभी नादान है, तुझे पता नहीं है कि तूने किसी दूसरी स्त्रीके गर्भसे जन्म लिया है; तभी तो ऐसे दुर्लभ विषयकी इच्छा कर रहा है ॥ १२ ॥

यदि तुझे राजसिंहासनकी इच्छा है तो तपस्या करके परम पुरुष श्रीनारायणकी आराधना कर और उनकी कृपासे मेरे गर्भमें आकर जन्म ले' ॥ १३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं- विदुरजी ! जिस प्रकार डंडेकी चोट खाकर साँप फुँफकार मारने लगता है, उसी प्रकार अपनी सौतेली माँके कठोर वचनोंसे घायल होकर ध्रुव क्रोधके मारे लंबी-लंबी साँस लेने लगा। उसके पिता चुपचाप यह सब देखते रहे, मुँहसे एक शब्द भी नहीं बोले। तब पिताको छोड़कर ध्रुव रोता हुआ अपनी माताके पास आया ॥ १४ ॥ उसके दोनों होठ फड़क रहे थे और वह सिसक-सिसककर रो रहा था। सुनीतिने बेटेको गोदमें उठा लिया और जब महलके दूसरे लोगोंसे अपनी सौत सुरुचिकी कही हुई बातें सुनीं, तब उसे भी बड़ा दुःख हुआ ॥ १५ ॥ उसका धीरज टूट गया। वह दावानलसे जली हुई बेलके समान शोकसे सन्तप्त होकर मुरझा गयी तथा विलाप करने लगी। सौतकी बातें याद आनेसे उसके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये ॥ १६ ॥ उस बेचारीको अपने दुःखपारावारका कहीं अन्त ही नहीं दिखायी देता था। उसने गहरी साँस लेकर ध्रुवसे कहा, 'बेटा ! तू दूसरोंके लिये किसी प्रकारके अमङ्गल-की कामना मत कर। जो मनुष्य दूसरोंको दुःख देता है, उसे स्वयं ही उसका फल भोगना पड़ता है ॥१७॥ सुरुचिने जो कुछ कहा है, ठीक ही है; क्योंकि महा-राजको मुझे 'पत्नी' तो क्या, 'दासी' स्वीकार करनेमें भी लज्जा आती है। तूने मुझ मन्दभागिनीके गर्भसे ही जन्म लिया है, और मेरे ही दूधसे तू पला है ॥१८॥ बेटा ! सुरुचिने तेरी सौतेली माँ होनेपर भी बात बिल्कुल ठीक कही है; अतः यदि राजकुमार उत्तमके समान राजसिंहासनपर बैठना चाहता है तो द्वेषभाव छोड़कर उसीका पालन कर। बस, श्रीअधोक्षज भगवान्के चरणकमलोंकी आराधनामें लग जा ॥ १९ ॥ संसारका पालन करनेके लिये सत्त्वगुणको अङ्गीकार करनेवाले उन श्रीहरिके चरणोंकी आराधना करनेसे ही तेरे परदादा श्रीब्रह्माजीको वह सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ है, जो मन और प्राणोंको जीतनेवाले मुनियोंके द्वारा भी वन्दनीय है ॥ २० ॥ इसी प्रकार तेरे दादा स्वायम्भुव मनुने भी बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा अनन्य भावसे उन्हीं भगवान्की आराधना की थी; तभी उन्हें दूसरोंके लिये अति दुर्लभ लौकिक, अलौकिक तथा मोक्षसुखकी प्राप्ति हुई ॥ २१ ॥ 'बेटा ! तू भी उन भक्तवत्सल श्रीभगवान्का ही आश्रय ले। जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुलोग निरन्तर उन्हींके चरणकमलोंके मार्गकी खोज किया करते हैं। तू स्वधर्मपालनसे पवित्र हुए अपने चित्तमें श्रीपुरुषोत्तम भगवान्को बैठा ले तथा अन्य सबका चिन्तन छोड़कर केवल उन्हींका भजन कर ॥ २२ ॥ बेटा ! उन कमल-दल-लोचन श्रीहरिको छोड़कर मुझे तो तेरे दुःखको दूर करनेवाला और कोई दिखायी नहीं देता। देख, जिन्हें प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा आदि अन्य सब देवता ढूँढ़ते रहते हैं, वे श्रीलक्ष्मीजी भी दीपककी भाँति हाथमें कमल लिये निरन्तर उन्हीं श्रीहरिकी खोज किया करती हैं' ॥ २३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—माता सुनीतिने जो वचन कहे, वे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिका मार्ग दिखानेवाले थे। अतः उन्हें सुनकर ध्रुवने बुद्धिद्वारा अपने चित्तका समाधान किया। इसके बाद वे पिताके नगरसे निकल पड़े ॥ २४ ॥ यह सब समाचार सुनकर और ध्रुव क्या करना चाहता है, इस बातको जानकर नारदजी वहाँ आये। उन्होंने ध्रुवके मस्तकपर अपना पापनाशक कर-कमल फेरते हुए मन-ही-मन विस्मित होकर कहा ॥ २५ ॥ 'अहो ! क्षत्रियोंका कैसा अद्भुत तेज है, वे थोड़ा-सा भी मान-भङ्ग नहीं सह सकते। देखो, अभी तो यह नन्हा-सा बच्चा है; तो भी इसके हृदयमें सौतेली माताके कटु वचन घर कर गये हैं ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् नारदजीने ध्रुवसे कहा—बेटा ! अभी तो तू बच्चा है, खेल-कूदमें ही मस्त रहता है; हम नहीं समझते कि इस उम्रमें किसी बातसे तेरा सम्मान या अपमान हो सकता है ॥ २७ ॥ यदि तुझे मानापमान-का विचार ही हो, तो बेटा ! असलमें मनुष्यके असन्तोषका कारण मोहके सिवा और कुछ नहीं है। संसारमें मनुष्य अपने कर्मानुसार ही मान-अपमान या

सुख-दुःख आदिको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ तात ! भगवान्‌की गति बड़ी विचित्र है ! इसलिये उसपर विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि दैववश उसे जैसी भी परिस्थितिका सामना करना पड़े, उसीमें सन्तुष्ट रहे ॥ २९ ॥ अब, माताके उपदेशसे तू योग-साधन-द्वारा जिन भगवान्‌की कृपा प्राप्त करने चला है—मेरे विचारसे साधारण पुरुषोंके लिये उन्हें प्रसन्न करना बहुत ही कठिन है ॥ ३० ॥ योगीलोग अनेकों जन्मों-तक अनासक्त रहकर समाधियोगके द्वारा बड़ी-बड़ी कठोर साधनाएँ करते रहते हैं, परन्तु भगवान्‌के मार्गका पता नहीं पाते ॥ ३१ ॥ इसलिये तू यह व्यर्थका हठ छोड़ दे और घर लौट जा; बड़ा होनेपर जब परमार्थ-साधनका समय आवे, तब उसके लिये प्रयत्न कर लेना ॥३२॥ विधाताके विधानके अनुसार सुख-दुःख जो कुछ भी प्राप्त हो, उसीमें चित्तको सन्तुष्ट रखना चाहिये । यों करनेवाला पुरुष मोहमय संसारसे पार हो जाता है ॥ ३३ ॥ मनुष्यको चाहिये कि अपनेसे अधिक गुणवान्‌को देखकर प्रसन्न हो; जो कम गुण-वाला हो, उसपर दया करे और जो अपने समान गुणवाला हो, उससे मित्रताका भाव रक्खे । यों करनेसे उसे दुःख कभी नहीं दबा सकते ॥ ३४ ॥

ध्रुवने कहा—भगवन् ! सुख-दुःखसे जिनका चित्त चञ्चल हो जाता है, उन लोगोंके लिये आपने कृपा करके शान्तिका यह बहुत अच्छा उपाय बतलाया । परन्तु मुझ-जैसे अज्ञानियोंकी दृष्टि यहाँतक नहीं पहुँच पाती ॥ ३५ ॥ इसके सिवा, मुझे घोर क्षत्रियस्वभाव प्राप्त हुआ है, अतएव मुझमें विनयका प्रायः अभाव है; सुरुचिने अपने कटुवचनरूपी बाणोंसे मेरे हृदयको विदीर्ण कर डाला है; इसलिये उसमें आपका यह उप-देश नहीं ठहर पाता ॥ ३६ ॥ ब्रह्मन् ! मैं उस पदपर अधिकार करना चाहता हूँ, जो त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ है तथा जिसपर मेरे बाप-दादे और दूसरे कोई भी आरूढ़ नहीं हो सके हैं । आप मुझे उसीकी प्राप्तिका कोई अच्छा-सा मार्ग बतलाइये ॥ ३७ ॥ आप भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हैं और संसारके कल्याणके लिये ही वीणा बजाते सूर्यकी भाँति त्रिलोकीमें विचरा करते हैं ॥ ३८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—ध्रुवकी बात सुनकर भगवान् नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और उसपर कृपा करके इस प्रकार सदुपदेश देने लगे ॥ ३९ ॥

श्रीनारदजीने कहा—बेटा ! तेरी माता सुनीतिने तुझे जो कुछ बताया है, वही तेरे लिये परम कल्याणका मार्ग है । भगवान् वासुदेव ही वह उपाय हैं, इसलिये तू चित्त लगाकर उन्हींका भजन कर ॥ ४० ॥ जिस पुरुषको अपने लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थकी अभिलाषा हो, उसके लिये उनकी प्राप्तिका उपाय एकमात्र श्रीहरिके चरणोंका सेवन ही है ॥४१॥ बेटा ! तेरा कल्याण होगा, अब तू श्रीयमुनाजीके तट-वर्ती परम पवित्र मधुवनको जा । वहाँ श्रीहरिका नित्य निवास है ॥ ४२ ॥ वहाँ श्रीकालिन्दीके निर्मल जलमें तीनों समय स्नान करके नित्यकर्मसे निवृत्त हो यथा-विधि आसन बिछाकर स्थिरभावसे बैठना ॥ ४३ ॥ फिर रेचक, पूरक और कुम्भक—तीन प्रकारके प्राणा-यामसे धीरे-धीरे प्राण, मन और इन्द्रियके दोषोंको दूरकर धैर्ययुक्त मनसे परमगुरु श्रीभगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करना ॥ ४४ ॥

भगवान्‌के नेत्र और मुख निरन्तर प्रसन्न रहते हैं; उन्हें देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि वे प्रसन्नता-पूर्वक भक्तको वर देनेके लिये उद्यत हैं । उनकी नासिका, भौंहें और कपोल बड़े ही सुहावने हैं; वे सभी देवताओं-में परम सुन्दर हैं ॥ ४५ ॥ उनकी तरुण अवस्था है; सभी अङ्ग बड़े सुडौल हैं; लाल-लाल होठ और रतनारे नेत्र हैं । वे प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाले, अपार सुखदायक, शरणागतवत्सल और दयाके समुद्र हैं ॥ ४६ ॥ उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न है; उनका शरीर सजल जलधरके समान श्यामवर्ण है; वे परम पुरुष श्यामसुन्दर गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं और उनकी चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म सुशोभित हैं ॥ ४७ ॥ उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग किरीट, कुण्डल, केयूर और कङ्कणादि आभूषणोंसे विभूषित हैं; गला कौस्तुभमणिकी भी शोभा बढ़ा रहा है तथा शरीरमें रेशमी पीताम्बर है ॥ ४८ ॥ उनके कटिप्रदेशमें काञ्चनकी करधनी और चरणोंमें सुवर्णमय

नूपुर (पैंजनी) सुशोभित हैं। भगवान्‌का स्वरूप बड़ा ही दर्शनीय, शान्त तथा मन और नयनोंको आनन्दित करनेवाला है ॥ ४९ ॥ जो लोग प्रभुका मानस-पूजन करते हैं, उनके अन्तःकरणमें वे हृदयकमलकी कर्णिकापर अपने नख-मणिमण्डित मनोहर पादारविन्दोंको स्थापित करके विराजते हैं॥ ५० ॥ इस प्रकार धारणा करते-करते जब चित्त स्थिर और एकाग्र हो जाय, तब उन वरदायक प्रभुका मन-ही-मन इस प्रकार ध्यान करे कि वे मेरी ओर अनुरागभरी दृष्टिसे निहारते हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं॥ ५१ ॥ भगवान्‌की मङ्गलमयी मूर्तिका इस प्रकार निरन्तर ध्यान करनेसे मन शीघ्र ही परमानन्दमें डूबकर तल्लीन हो जाता है और फिर वहाँ-से लौटता नहीं ॥ ५२ ॥

राजकुमार! इस ध्यानके साथ जिस परम गुह्य मन्त्रका जप करना चाहिये, वह भी बतलाता हूँ—सुन। इसका सात रात जप करनेसे मनुष्य आकाशमें विचरनेवाले सिद्धोंका दर्शन कर सकता है ॥ ५३ ॥ वह मन्त्र है—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'। किस देश और किस कालमें कौन वस्तु उपयोगी है—इसका विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको इस मन्त्रके द्वारा तरह-तरहकी सामग्रियोंसे भगवान्‌की द्रव्यमयी पूजा करनी चाहिये ॥ ५४ ॥ प्रभुका पूजन विशुद्ध जल, पुष्पमाला, जंगली मूल और फलादि, पूजामें विहित दूर्वादि अङ्कुर, वनमें ही प्राप्त होनेवाले वल्कल वस्त्र और उनकी प्रेयसी तुलसीसे करना चाहिये ॥ ५५ ॥ यदि शिला आदिकी मूर्ति मिल सके तो उसमें, नहीं तो पृथ्वी या जल आदि-में ही भगवान्‌की पूजा करे। सर्वदा संयतचित्त, मनन-शील, शान्त और मौन रहे तथा जंगली फल-मूलादिका परिमित आहार करे ॥ ५६ ॥ इसके सिवा पुण्यकीर्ति श्रीहरि अपनी अनिर्वचनीया मायाके द्वारा अपनी ही इच्छासे अवतार लेकर जो-जो मनोहर चरित्र करनेवाले हैं, उनका मन-ही-मन चिन्तन करता रहे ॥ ५७ ॥ प्रभुकी पूजाके लिये जिन-जिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति श्रीहरिको द्वादशाक्षर मन्त्र-के द्वारा ही अर्पण करे ॥ ५८ ॥

इस प्रकार जब हृदयस्थित हरिका मन, वाणी और शरीरसे भक्तिपूर्वक पूजन किया जाता है, तब वे निश्छलभावसे भलीभाँति भजन करनेवाले अपने भक्तोंके भावको बढ़ा देते हैं और उन्हें उनकी इच्छाके अनुसार धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षरूप कल्याण प्रदान करते हैं ॥ ५९-६० ॥ यदि उपासकको इन्द्रियसम्बन्धी भोगोंसे वैराग्य हो गया हो, तो वह मोक्षप्राप्तिके लिये अत्यन्त भक्तिपूर्वक अविच्छिन्नभावसे भगवान्‌का भजन करे ॥ ६१ ॥

श्रीनारदजीसे इस प्रकार उपदेश पाकर राजकुमार ध्रुवने परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने भगवान्‌के चरणचिह्नोंसे अङ्कित परम पवित्र मधुवनकी यात्रा की ॥ ६२ ॥ ध्रुवके तपोवनकी ओर चले जानेपर नारदजी महाराज उत्तानपादके महलमें पहुँचे। राजाने उनकी यथायोग्य उपचारोंसे पूजा की; तब उन्होंने आरामसे आसनपर बैठकर राजासे पूछा ॥ ६३ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुम्हारा मुख सूखा हुआ है, तुम बड़ी देरसे किस सोच-विचारमें पड़े हो? तुम्हारे धर्म, अर्थ और काममेंसे किसीमें कोई कमी तो नहीं आ गयी? ॥ ६४ ॥

राजाने कहा—ब्रह्मन्! मैं बड़ा ही स्त्रैण और निर्दय हूँ। हाय, मैंने अपने पाँच वर्षके नन्हे-से बच्चेको उसकी माताके साथ घरसे निकाल दिया। मुनिवर! वह बड़ा ही बुद्धिमान् था ॥ ६५ ॥ उसका कमल-सा मुख भूखसे कुम्हला गया होगा, वह थककर कहीं रास्तेमें पड़ गया होगा। ब्रह्मन्! उस असहाय बच्चेको वनमें कहीं भेड़िये न खा जायँ ॥ ६६ ॥ अहो! मैं कैसा स्त्रीका गुलाम हूँ! मेरी कुटिलता तो देखिये—वह बालक प्रेमवश मेरी गोदमें चढ़ना चाहता था, किन्तु मुझ दुष्टने उसका तनिक भी आदर नहीं किया ॥ ६७ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! तुम अपने बालककी चिन्ता मत करो। उसके रक्षक भगवान् हैं। तुम्हें उसके प्रभावका पता नहीं है, उसका यश सारे जगत्‌में फैल रहा है ॥ ६८ ॥ वह बालक बड़ा समर्थ है। जिस कामको बड़े-बड़े लोकपाल भी नहीं कर सके, उसे पूरा करके वह शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आयेगा।

ध्रुवपर अनुग्रह

[पृष्ठ २११

उसके कारण तुम्हारा यश भी बहुत बढ़ेगा ॥ ६९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—देवर्षि नारदजीकी बात सुनकर महाराज उत्तानपाद राजपाटकी ओरसे उदासीन होकर निरन्तर पुत्रकी ही चिन्तामें रहने लगे ॥ ७० ॥ इधर ध्रुवजीने मधुवनमें पहुँचकर यमुनाजीमें स्नान किया और उस रात पवित्रतापूर्वक उपवास करके श्रीनारदजीके उपदेशानुसार एकाग्रचित्तसे परमपुरुष श्रीनारायणकी उपासना आरम्भ कर दी ॥ ७१ ॥ उन्होंने तीन-तीन रात्रिके अन्तरसे शरीरनिर्वाहके लिये केवल कैथ और बेरके फल खाकर श्रीहरिकी उपासना करते हुए एक मास व्यतीत किया ॥ ७२ ॥ दूसरे महीनेमें उन्होंने छः-छः दिनके पीछे सूखे घास और पत्ते खाकर भगवान्‌का भजन किया ॥ ७३ ॥ तीसरा महीना नौ-नौ दिनपर केवल जल पीकर समाधियोगके द्वारा श्रीहरिकी आराधना करते हुए विताया ॥ ७४ ॥ चौथे महीनेमें उन्होंने श्वासको जीतकर बारह-बारह दिनके बाद केवल वायु पीकर ध्यानयोगद्वारा भगवान्‌की आराधना की ॥ ७५ ॥ पाँचवाँ मास लगनेपर राजकुमार ध्रुव श्वासको जीतकर परब्रह्मका चिन्तन करते हुए एक पैरसे खंभेके समान निश्चल भावसे खड़े हो गये ॥ ७६ ॥ उस समय उन्होंने शब्दादि विषय और इन्द्रियोंके नियामक अपने मनको सब ओरसे खींच लिया तथा हृदयस्थित हरिके स्वरूपका चिन्तन करते हुए चित्तको किसी दूसरी ओर न जाने दिया ॥७७॥ जिस समय उन्होंने महदादि सम्पूर्ण तत्त्वोंके आधार तथा प्रकृति और पुरुषके भी अधीश्वर परब्रह्मकी धारणा की, उस समय (उनके तेजको न सह सकनेके कारण) तीनों लोक काँप उठे ॥ ७८ ॥ जब राजकुमार ध्रुव एक पैरसे खड़े हुए, तब उनके अँगूठेसे दबकर आधी पृथ्वी इस प्रकार झुक गयी, जैसे किसी गजराजके चढ़ जानेपर नाव पद-पदपर दायीं-बायीं ओर डगमगाने लगती है ॥ ७९ ॥ ध्रुवजी अपने इन्द्रियद्वार तथा प्राणोंको रोककर अनन्यबुद्धिसे विश्वात्मा श्रीहरिका ध्यान करने लगे। इस प्रकार उनकी समष्टि प्राणसे अभिन्नता हो जानेके कारण सभी जीवोंका श्वास-प्रश्वास रुक गया। इससे समस्त लोक और लोकपालोंको बड़ी पीड़ा हुई और वे सब घबराकर श्रीहरिकी शरणमें गये ॥ ८० ॥

देवताओंने कहा—भगवन्! समस्त स्थावर-जङ्गम जीवोंके शरीरोंका प्राण एक साथ ही रुक गया है—ऐसा तो हमने पहले कभी अनुभव नहीं किया। आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हैं, अपनी शरणमें आये हुए हमलोगोंको इस दुःखसे छुड़ाइये ॥ ८१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवताओ! तुम डरो मत। उत्तानपादके पुत्र ध्रुवने अपने चित्तको मुझ विश्वात्मामें लीन कर दिया है, इस समय मेरे साथ उसकी अभेद-धारणा सिद्ध हो गयी है, इसीसे उसके प्राणनिरोधसे तुम 'सबका प्राण भी रुक गया है। अब तुम अपने-अपने लोकोंको जाओ, मैं उस बालकको इस दुष्कर तपसे निवृत्त कर दूँगा ॥ ८२ ॥

नवाँ अध्याय

ध्रुवका वर पाकर घर लौटना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! भगवान्‌के इस प्रकार आश्वासन देनेसे देवताओंका भय जाता रहा और वे उन्हें प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये। तदनन्तर विराट्स्वरूप भगवान् गरुड़पर चढ़कर अपने भक्तको देखनेके लिये मधुवनमें आये ॥ १ ॥ उस समय ध्रुवजी तीव्र योगाभ्याससे एकाग्र हुई बुद्धिके द्वारा भगवान्‌की बिजलीके समान देदीप्यमान जिस मूर्तिका अपने हृदयकमलमें ध्यान कर रहे थे, वह सहसा विलीन हो गयी। इससे घबराकर उन्होंने ज्यों ही नेत्र खोले कि भगवान्‌के उसी रूपको बाहर अपने सामने खड़ा देखा ॥ २ ॥ प्रभुका दर्शन पाकर बालक ध्रुवको बड़ा कुतूहल हुआ, वे प्रेममें अधीर हो गये। उन्होंने पृथ्वीपर दण्डके समान लोटकर उन्हें प्रणाम किया। फिर वे इस प्रकार प्रेमभरी दृष्टिसे उनकी

ओर देखने लगे मानो नेत्रोंसे उन्हें पी जायँगे, मुखसे चूम लेंगे और भुजाओंमें कस लेंगे ॥ ३ ॥ वे हाथ जोड़े प्रभुके सामने खड़े थे और उनकी स्तुति करना चाहते थे, परन्तु किस प्रकार करें—यह नहीं जानते थे। सर्वान्तर्यामी हरि उनके मनकी बात जान गये; उन्होंने कृपापूर्वक अपने वेदमय शङ्खको उनके गालसे छुआ दिया ॥ ४ ॥ ध्रुवजी भविष्यमें अविचल पद प्राप्त करनेवाले थे। इस समय शङ्खका स्पर्श होते ही उन्हें वेदमयी दिव्यवाणी प्राप्त हो गयी और जीव तथा ब्रह्मके स्वरूपका भी निश्चय हो गया। वे अत्यन्त भक्तिभावसे धैर्यपूर्वक विश्वविख्यात कीर्तिमान् श्रीहरिकी स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥

ध्रुवजीने कहा—प्रभो! आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं; आप ही मेरे अन्तःकरणमें प्रवेशकर अपने तेजसे मेरी इस सोयी हुई वाणीको सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणोंको भी चेतनता देते हैं। मैं आप अन्तर्यामी भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ भगवन्! आप एक ही हैं, परन्तु अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्तिसे इस महदादि सम्पूर्ण प्रपञ्चको रचकर अन्तर्यामीरूपसे उसमें प्रवेश कर जाते हैं और फिर इसके इन्द्रियादि असत् गुणोंमें उनके अधिष्ठातृ देवताओंके रूपमें स्थित होकर अनेकरूप भासते हैं—ठीक वैसे ही जैसे तरह-तरहकी लकड़ियोंमें प्रकट हुई आग अपनी उपाधियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें भासती है ॥ ७ ॥ नाथ! सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीने भी आपकी शरण लेकर आपके दिये हुए ज्ञानके प्रभावसे ही इस जगत्‌को सोकर उठे हुए पुरुषके समान देखा था। दीनबन्धो! उन्हीं आपके चरणतलका मुक्त पुरुष भी आश्रय लेते हैं, कोई भी कृतज्ञ पुरुष उन्हें कैसे भूल सकता है? ॥ ८ ॥ प्रभो! इन शवतुल्य शरीरोंके द्वारा भोगा जानेवाला, इन्द्रिय और विषयोंके संसर्गसे उत्पन्न सुख तो मनुष्योंको नरकमें भी मिल सकता है। जो लोग इस विषयसुखके लिये लालायित रहते हैं और जो जन्म-मरणके बन्धनसे छुड़ा देनेवाले कल्पतरुस्वरूप आपकी उपासना भगवत्-प्राप्तिके सिवा किसी अन्य उद्देश्यसे करते हैं, उनकी बुद्धि अवश्य ही आपकी मायाके द्वारा ठगी गयी है ॥ ९ ॥ नाथ! आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेसे और आपके भक्तोंके पवित्र चरित्र सुननेसे प्राणियोंको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानन्दस्वरूप ब्रह्ममें भी नहीं मिल सकता। फिर जिन्हें कालकी तलवार काटे डालती है, उन स्वर्गीय विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है ॥ १० ॥

अनन्त परमात्मन्! मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय महात्मा भक्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण भयङ्कर संसारसागरके उस पार पहुँच जाऊँगा ॥ ११ ॥ कमलनाभ प्रभो! जिनका चित्त आपके चरणकमलकी सुगन्धमें लुभाया हुआ है, उन महानुभावोंका जो लोग सङ्ग करते हैं—वे अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर और इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और स्त्री आदिकी सुधि भी नहीं करते ॥ १२ ॥ अजन्मा परमेश्वर! मैं तो पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु), देवता, दैत्य और मनुष्य आदिसे परिपूर्ण तथा महदादि अनेकों कारणोंसे सम्पादित आपके इस सदसदात्मक स्थूल विश्वरूपको ही जानता हूँ; इससे परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसमें वाणीकी गति नहीं है, उसका मुझे पता नहीं है ॥ १३ ॥

भगवन्! कल्पका अन्त होनेपर योगनिद्रामें स्थित जो परमपुरुष इस सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें लीन करके शेषजीके साथ उन्हींकी गोदमें शयन करते हैं तथा जिनके नाभि-समुद्रसे प्रकट हुए सर्वलोकमय सुवर्णवर्ण कमलसे परम तेजोमय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वे भगवान् आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥

प्रभो! आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टिसे बुद्धिकी सभी अवस्थाओंके साक्षी हैं तथा नित्यमुक्त, शुद्धसत्त्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्यसम्पन्न एवं तीनों गुणोंके अधीश्वर हैं। आप जीवसे सर्वथा भिन्न हैं तथा संसारकी स्थितिके लिये यज्ञाधिष्ठाता विष्णुरूपसे विराजमान हैं ॥ १५ ॥ आपसे ही विद्या-अविद्या

आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेकों शक्तियाँ धारावाहिक रूपसे निरन्तर प्रकट होती रहती हैं। आप जगत्‌के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपकी शरण हूँ ॥ १६ ॥ भगवन्! आप परमानन्दमूर्ति हैं—जो लोग ऐसा समझकर निष्कामभावसे आपका निरन्तर भजन करते हैं, उनके लिये राज्यादि भोगोंकी अपेक्षा आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति ही भजनका सच्चा फल है। स्वामिन्! यद्यपि बात ऐसी ही है, तो भी गौ जैसे अपने तुरंतके जन्मे हुए बछड़ेको दूध पिलाती और व्याघ्रादिसे बचाती रहती है, उसी प्रकार आप भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये निरन्तर विकल रहनेके कारण हम-जैसे सकाम जीवोंकी भी कामना पूर्ण करके उनकी संसार-भयसे रक्षा करते रहते हैं ॥ १७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! जब शुभ सङ्कल्प-वाले मतिमान् ध्रुवजीने इस प्रकार स्तुति की तब भक्तवत्सल भगवान् उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ॥ १८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले राजकुमार! मैं तेरे हृदयका सङ्कल्प जानता हूँ। यद्यपि उस पदका प्राप्त होना बहुत कठिन है, तो भी मैं तुझे वह देता हूँ। तेरा कल्याण हो ॥ १९ ॥

भद्र! जिस तेजोमय अविनाशी लोकको आजतक किसीने प्राप्त नहीं किया, जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र और तारागणरूप ज्योतिश्चक्र उसी प्रकार चक्कर काटता रहता है जिस प्रकार मेढ़ीके* चारों ओर दँवरीके बैल घूमते रहते हैं। अवान्तर कल्पपर्यन्त रहनेवाले अन्य लोकोंका नाश हो जानेपर भी जो स्थिर रहता है तथा तारागणके सहित धर्म, अग्नि, कश्यप और शुक्र आदि नक्षत्र एवं सप्तर्षिगण जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, वह ध्रुवलोक मैं तुझे देता हूँ ॥ २०-२१ ॥ यहाँ भी जब तेरे पिता तुझे राजसिंहासन देकर वनको चले जायँगे; तब तू छत्तीस हजार वर्षतक धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करेगा। तेरी इन्द्रियोंकी शक्ति ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी ॥ २२ ॥ आगे चलकर किसी समय तेरा भाई उत्तम शिकार खेलता हुआ मारा जायगा, तब उसकी माता सुरुचि पुत्र-प्रेममें पागल होकर उसे वनमें खोजती हुई दावानलमें प्रवेश कर जायगी ॥ २३ ॥ यज्ञ मेरी प्रिय मूर्ति है, तू अनेकों बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करेगा तथा यहाँ उत्तम-उत्तम भोग भोगकर अन्तमें मेरा ही स्मरण करेगा ॥ २४ ॥ इससे तू अन्तमें सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय और सप्तर्षियोंसे भी ऊपर मेरे निज धामको जायगा, जहाँ पहुँच जानेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना होता है ॥ २५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—बालक ध्रुवसे इस प्रकार पूजित हो और उसे अपना पद प्रदानकर भगवान् श्रीगरुडध्वज उसके देखते-देखते अपने लोकको चले गये ॥ २६ ॥ प्रभुकी चरणसेवासे सङ्कल्पित वस्तु प्राप्त हो जानेके कारण यद्यपि ध्रुवजीका सङ्कल्प तो निवृत्त हो गया, किन्तु उनका चित्त विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। फिर वे अपने नगरको लौट गये ॥ २७ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! मायापति श्रीहरिका परमपद तो अत्यन्त दुर्लभ है और मिलता भी उनके चरणकमलोंकी उपासनासे ही है। ध्रुवजी भी सारासारका पूर्ण विवेक रखते थे; फिर एक ही जन्ममें उस परम-पदको पा लेनेपर भी उन्होंने अपनेको अकृतार्थ क्यों समझा? ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—ध्रुवजीका हृदय अपनी सौतेली माताके वाग्बाणोंसे बिंध गया था तथा वर माँगनेके समय भी उन्हें उनका स्मरण बना हुआ था; इसीसे उन्होंने मुक्तिदाता श्रीहरिसे मुक्ति नहीं माँगी। अब जब भगवद्दर्शनसे वह मनोमालिन्य दूर हो गया तो उन्हें अपनी इस भूलके लिये पश्चात्ताप हुआ ॥ २९ ॥

ध्रुवजी मन-ही-मन कहने लगे—अहो! सनकादि ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) सिद्ध भी जिन्हें समाधि-द्वारा अनेकों जन्मोंमें प्राप्त कर पाते हैं, उन भगवच्चरणोंकी छायाको मैंने छः महीनेमें ही पा लिया, किन्तु चित्तमें दूसरी वासना रहनेके कारण मैं फिर उनसे दूर

* कटी हुई फसल धान-गेहूँ आदिको कुचलनेके लिये घुमाये जानेवाले बैल जिस खंभेमें बँधे रहते हैं, उसका नाम मेढ़ी है।

हो गया ॥ ३० ॥ अहो ! मुझ मन्दभाग्यकी मूर्खता तो देखो, मैंने संसारपाशको काटनेवाले प्रभुके पादपद्मोंमें पहुँचकर भी उनसे नाशवान् वस्तुकी ही याचना की ! ॥ ३१ ॥ देवताओंको स्वर्गभोगके पश्चात् फिर नीचे गिरना होता है, इसलिये वे मेरी भगवत्प्राप्तिरूप उच्च स्थितिको सहन नहीं कर सके; अतः उन्होंने ही मेरी बुद्धिको नष्ट कर दिया। तभी तो मुझ दुष्टने नारदजीकी यथार्थ बात भी स्वीकार नहीं की ॥ ३२ ॥ यद्यपि संसारमें आत्माके सिवा दूसरा कोई भी नहीं है; तथापि सोया हुआ मनुष्य जैसे स्वप्नमें अपने ही कल्पना किये हुए व्याघ्रादिसे डरता है, उसी प्रकार मैंने भी भगवान्की मायासे मोहित होकर भाईको ही शत्रु मान लिया और व्यर्थ ही द्वेषरूप हार्दिक रोगसे जलने लगा ॥ ३३ ॥ जिन्हें प्रसन्न करना अत्यन्त कठिन है; उन्हीं विश्वात्मा श्रीहरिको तपस्याद्वारा प्रसन्न करके मैंने जो कुछ माँगा है, वह सब व्यर्थ है; ठीक उसी तरह, जैसे गतायु पुरुषके लिये चिकित्सा व्यर्थ होती है । ओह ! मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ, संसार-बन्धनका नाश करनेवाले प्रभुसे मैंने संसार ही माँगा ॥ ३४ ॥ मैं बड़ा ही पुण्यहीन हूँ ! जिस प्रकार कोई कँगला किसी चक्रवर्ती सम्राट्को प्रसन्न करके उससे तुषसहित चावलोंकी कनी माँगे, उसी प्रकार मैंने भी आत्मानन्द प्रदान करनेवाले श्रीहरिसे मूर्खतावश व्यर्थका अभिमान बढ़ानेवाले उच्चपदादि ही माँगे हैं ॥ ३५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—तात ! तुम्हारी तरह जो लोग श्रीमुकुन्दपादारविन्द-मकरन्दके ही मधुकर हैं—जो निरन्तर प्रभुकी चरण-रजका ही सेवन करते हैं और जिनका मन अपने-आप आयी हुई सभी परिस्थितियोंमें सन्तुष्ट रहता है, वे भगवान्से उनकी सेवाके सिवा अपने लिये और कोई भी पदार्थ नहीं माँगते ॥ ३६ ॥

इधर जब राजा उत्तानपादने सुना कि उनका पुत्र ध्रुव घर लौट रहा है, तो उन्हें इस बातपर वैसे ही विश्वास नहीं हुआ जैसे कोई किसीके यमलोकसे लौटनेकी बातपर विश्वास न करे । उन्होंने यह सोचा कि 'मुझ अभागेका ऐसा भाग्य कहाँ' ॥ ३७ ॥ परन्तु फिर उन्हें देवर्षि नारदकी बात याद आ गयी । इससे उनका इस बातमें विश्वास हुआ और वे आनन्दके वेगसे अधीर हो उठे । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह समाचार लानेवालेको एक बहुमूल्य हार दिया ॥ ३८ ॥ राजा उत्तानपादने पुत्रका मुख देखनेके लिये उत्सुक होकर बहुत-से ब्राह्मण, कुलके बड़े-बूढ़े, मन्त्री और बन्धुजनोंको साथ लिया तथा एक बढ़िया घोड़ोंवाले सुवर्णजटित रथपर सवार होकर वे झटपट नगरके बाहर आये । उनके आगे-आगे वेदध्वनि होती जाती थी तथा शङ्ख, दुन्दुभि एवं वंशी आदि अनेकों माङ्गलिक बाजे बजते जाते थे ॥ ३९-४० ॥ उनकी दोनों रानियाँ सुनीति और सुरुचि भी सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो राजकुमार उत्तमके साथ पालकियोंपर चढ़कर चल रही थीं ॥ ४१ ॥ ध्रुवजी उपवनके पास आ पहुँचे, उन्हें देखते ही महाराज उत्तानपाद तुरंत रथसे उतर पड़े । पुत्रको देखनेके लिये वे बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित हो रहे थे । उन्होंने झटपट आगे बढ़कर प्रेमातुर हो, लंबी-लंबी साँसें लेते हुए, ध्रुवको भुजाओंमें भर लिया । अब ये पहलेके ध्रुव नहीं थे, प्रभुके परमपुनीत पादपद्मोंका स्पर्श होनेसे इनके समस्त पाप-बन्धन कट गये थे ॥ ४२-४३ ॥ राजा उत्तानपादकी एक बहुत बड़ी कामना पूर्ण हो गयी । उन्होंने बार-बार पुत्रका सिर सूँघा और आनन्द तथा प्रेमके कारण निकलनेवाले ठंडे-ठंडे * आँसुओंसे उन्हें नहला दिया ॥ ४४ ॥

तदनन्तर सज्जनोंमें अग्रगण्य ध्रुवजीने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद पाकर, कुशल-प्रश्नादिसे सम्मानित हो दोनों माताओंको प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ छोटी माता सुरुचिने अपने चरणोंपर झुके हुए बालक ध्रुवको उठाकर हृदयसे लगा लिया और अश्रुगद्गद वाणीसे 'चिरञ्जीवी रहो' ऐसा आशीर्वाद दिया ॥ ४६ ॥ जिस प्रकार जल स्वयं ही नीचेकी ओर बहने लगता है—उसी प्रकार मैत्री आदि गुणोंके कारण जिसपर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, उसके आगे सभी जीव झुक जाते हैं ॥ ४७ ॥ इधर उत्तम और ध्रुव दोनों ही प्रेमसे विह्वल होकर मिले । एक दूसरेके अङ्गोंका स्पर्श पाकर उन दोनोंके ही शरीरमें रोमाञ्च

* आनन्द या प्रेमके कारण जो आँसू आते हैं वे ठंडे हुआ करते हैं और शोकके आँसू गरम होते हैं ।

हो आया तथा नेत्रोंसे बार-बार आँसुओंकी धारा बहने लगी ॥४८॥ ध्रुवकी माता सुनीति अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको गले लगाकर सारा सन्ताप भूल गयी। उसके सुकुमार अङ्गोंके स्पर्शसे उसे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ वीरवर विदुरजी! वीरमाता सुनीतिके स्तन उसके नेत्रोंसे झरते हुए मङ्गलमय आनन्दाश्रुओंसे भीग गये और उनसे बार-बार दूध बहने लगा ॥५०॥ उस समय पुरवासीलोग उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे, 'महारानीजी! आपका लाल बहुत दिनोंसे खोया हुआ था; सौभाग्यवश अब वह लौट आया, यह हम सबका दुःख दूर करनेवाला है। बहुत दिनोंतक भूमण्डलकी रक्षा करेगा ॥ ५१ ॥ आपने अवश्य ही शरणागतभय-भञ्जन श्रीहरिकी उपासना की है। उनका निरन्तर ध्यान करनेवाले धीर पुरुष परम दुर्जय मृत्युको भी जीत लेते हैं' ॥ ५२ ॥

विदुरजी! इस प्रकार जब सभी लोग ध्रुवके प्रति अपना लाड़-प्यार प्रकट कर रहे थे, उसी समय उन्हें भाई उत्तमके सहित हथिनीपर चढ़ाकर महाराज उत्तानपादने बड़े हर्षके साथ राजधानीमें प्रवेश किया। उस समय सभी लोग उनके भाग्यकी बड़ाई कर रहे थे ॥ ५३ ॥ नगरमें जहाँ-तहाँ मगरके आकारके सुन्दर दरवाजे बनाये गये थे तथा फल-फूलोंके गुच्छोंके सहित केलेके खंभे और सुपारीके पौधे सजाये गये थे ॥५४॥ द्वार-द्वारपर दीपकके सहित जलके कलश रक्खे हुए थे—जो आमके पत्तों, वस्त्रों, पुष्पमालाओं तथा मोतीकी लड़ियोंसे सुसज्जित थे ॥ ५५ ॥ जिन अनेकों परकोटों, फाटकों और महलोंसे नगरी सुशोभित थी, उन सबको सुवर्ण-की सामग्रियोंसे सजाया गया था तथा उनके कँगूरे विमानोंके शिखरोंके समान चमक रहे थे ॥ ५६ ॥ नगरके चौक, गलियों, अटारियों और सड़कोंको झाड़-बुहारकर उनपर चन्दनका छिड़काव किया गया था, और जहाँ-तहाँ खील, चावल, पुष्प, फल, जौ एवं अन्य माङ्गलिक उपहार-सामग्रियाँ सजी रक्खी थीं ॥ ५७ ॥ ध्रुवजी राजमार्गसे जा रहे थे। उस समय जहाँ-तहाँ नगरकी शीलवती सुन्दरियाँ उन्हें देखनेको एकत्र हो रही थीं। उन्होंने वात्सल्यभावसे अनेकों शुभाशीर्वाद देते हुए उनपर सफेद सरसों, अक्षत, दही, जल, दुर्वा, पुष्प और फलोंकी वर्षा की। इस प्रकार उनके मनोहर गीत सुनते हुए ध्रुवजीने अपने पिताके महलमें प्रवेश किया ॥ ५८-५९ ॥

वह श्रेष्ठ भवन महामूल्य मणियोंकी लड़ियोंसे सुसज्जित था। उसमें अपने पिताजीके लाड़-प्यारका सुख भोगते हुए वे उसी प्रकार आनन्दपूर्वक रहने लगे, जैसे स्वर्गमें देवतालोग रहते हैं ॥ ६० ॥ वहाँ दूधके फेनके समान सफेद और कोमल शय्याएँ, हाथी-दाँतके पलंग, सुनहरी कामदार परदे, बहुमूल्य आसन और बहुत-सा सोनेका सामान था ॥ ६१ ॥ उसकी स्फटिक और महामरकतमणि (पन्ने) की दीवारोंमें रत्नोंकी बनी हुई स्त्रीमूर्तियोंपर रक्खे हुए मणिमय दीपक जगमगा रहे थे ॥ ६२ ॥ उस महलके चारों ओर अनेक जातिके दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित उद्यान थे, जिनमें नर और मादा पक्षियोंका कलरव तथा मतवाले भौंरोंका गुंजार होता रहता था ॥ ६३ ॥ उन बगीचों-में वैदूर्यमणि (पुखराज) की सीढ़ियोंसे सुशोभित बावलियाँ थीं—जिनमें लाल, नीले और सफेद रंगके कमल खिले रहते थे तथा हंस, कारण्डव, चकवा एवं सारस आदि पक्षी क्रीड़ा करते रहते थे ॥ ६४ ॥

राजर्षि उत्तानपादने अपने पुत्रके अति अद्भुत प्रभावकी बात देवर्षि नारदसे पहले ही सुन रक्खी थी; अब उसे प्रत्यक्ष वैसा ही देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ६५ ॥ फिर यह देखकर कि अब ध्रुव तरुण अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं, अमात्यवर्ग उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं तथा प्रजाका भी उनपर अनुराग है, उन्होंने उन्हें निखिल भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया ॥ ६६ ॥ और आप वृद्धावस्था आयी जान-कर आत्मस्वरूपका चिन्तन करते हुए संसारसे विरक्त होकर वनको चल दिये ॥ ६७ ॥

दसवाँ अध्याय

उत्तमका मारा जाना, ध्रुवका यक्षोंके साथ युद्ध

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! ध्रुवने प्रजापति शिशुमारकी पुत्री भ्रमिके साथ विवाह किया, उससे उनके कल्प और वत्सर नामके दो पुत्र हुए ॥ १ ॥ महाबली ध्रुवकी दूसरी स्त्री वायुपुत्री इला थी। उससे उनके उत्कल नामके एक पुत्र और एक कन्यारत्नका जन्म हुआ ॥ २ ॥ उत्तमका अभी विवाह नहीं हुआ था कि एक दिन शिकार खेलते समय उसे हिमालय पर्वतपर एक बलवान् यक्षने मार डाला। उसके साथ उसकी माता भी परलोक सिधार गयी ॥ ३ ॥

ध्रुवने जब भाईके मारे जानेका समाचार सुना तो वे क्रोध, शोक और उद्वेगसे भरकर एक विजयप्रद रथपर सवार हो यक्षोंके देशमें जा पहुँचे ॥४॥ उन्होंने उत्तर दिशामें जाकर हिमालयकी घाटीमें यक्षोंसे भरी हुई अलकापुरी देखी, उसमें अनेकों भूत-प्रेत-पिशाचादि रुद्रानुचर रहते थे ॥ ५ ॥ विदुरजी! वहाँ पहुँचकर महाबाहु ध्रुवने अपना शङ्ख बजाया तथा सम्पूर्ण आकाश और दिशाओंको गुँजा दिया। उस शङ्खध्वनि-से यक्षपत्नियाँ बहुत ही डर गयीं, उनकी आँखें भयसे कातर हो उठीं ॥ ६ ॥

वीरवर विदुरजी! महाबलवान् यक्षवीरोंको वह शङ्खनाद सहन न हुआ। इसलिये वे तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरसे बाहर निकल आये और ध्रुवपर टूट पड़े ॥ ७ ॥ महारथी ध्रुव प्रचण्ड धनुर्धर थे। उन्होंने एक ही साथ उनमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाण मारे ॥ ८ ॥ उन सभीने जब अपने-अपने मस्तकोंमें तीन-तीन बाण लगे देखे, तब उन्हें यह विश्वास हो गया कि हमारी हार अवश्य होगी। वे ध्रुवजीके इस अद्भुत पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे ॥ ९ ॥ फिर जैसे सर्प किसीके पैरोंका आघात नहीं सहते, उसी प्रकार ध्रुवके इस पराक्रमको न सहकर उन्होंने भी उनके बाणोंके जवाबमें एक ही साथ उनसे दूने—छः-छः बाण छोड़े ॥ १० ॥ यक्षोंकी संख्या तेरह अयुत (१३००००) थी। उन्होंने ध्रुवजीका बदला लेनेके लिये अत्यन्त कुपित होकर रथ और सारथीके सहित उनपर परिघ, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसा, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी तथा चित्र-विचित्र पंखदार बाणोंकी वर्षा की ॥ ११-१२ ॥ इस भीषण शस्त्रवर्षासे ध्रुवजी बिल्कुल ढक गये। तब लोगोंको उनका दीखना वैसे ही बंद हो गया, जैसे भारी वर्षासे पर्वतका ॥ १३ ॥ उस समय जो सिद्धगण आकाशमें स्थित होकर यह दृश्य देख रहे थे, वे सब हाय-हाय करके कहने लगे—'आज यक्षसेनारूप समुद्रमें डूबकर यह मानव-सूर्य अस्त हो गया' ॥ १४ ॥ यक्षलोग अपनी विजयकी घोषणा करते हुए युद्धक्षेत्रमें सिंहकी तरह गरजने लगे। इसी बीचमें ध्रुवजीका रथ एकाएक वैसे ही प्रकट हो गया, जैसे कुहरेमेंसे सूर्यभगवान् निकल आते हैं ॥१५॥

ध्रुवजीने अपने दिव्य धनुषकी टङ्कार करके शत्रुओंके दिल दहला दिये और फिर प्रचण्ड बाणोंकी वर्षा करके उनके अस्त्र-शस्त्रोंको इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है ॥ १६ ॥ उनके धनुषसे छूटे हुए तीखे तीर यक्ष-राक्षसोंके कवचोंको भेदकर इस प्रकार उनके शरीरोंमें घुस गये, जैसे इन्द्रके छोड़े हुए वज्र पर्वतोंमें प्रवेश कर गये थे ॥ १७ ॥ विदुरजी! महाराज ध्रुवके बाणोंसे कटे हुए यक्षोंके सुन्दर कुण्डलमण्डित मस्तकोंसे, सुनहरी तालवृक्षके समान जाँघोंसे, वलयविभूषित बाहुओंसे, हार, भुजबन्ध, मुकुट और बहुमूल्य पगड़ियोंसे पटी हुई वह वीरोंके मनको लुभानेवाली समरभूमि बड़ी शोभा पा रही थी ॥ १८-१९ ॥

जो यक्ष किसी प्रकार जीवित बचे, वे क्षत्रियप्रवर ध्रुवजीके बाणोंसे प्रायः अंग-अंग छिन्न-भिन्न हो जानेके कारण युद्धक्रीडामें सिंहसे परास्त हुए गजराजके समान मैदान छोड़कर भाग गये ॥ २० ॥ नरश्रेष्ठ ध्रुवजीने देखा कि उस विस्तृत रणभूमिमें अब एक भी शत्रु अस्त्र-शस्त्र लिये उनके सामने नहीं है, तो उनकी इच्छा अलका-पुरी देखनेकी हुई; किन्तु वे पुरीके भीतर नहीं गये 'ये मायावी क्या करना चाहते हैं इस बातका मनुष्यको पता

नहीं लग सकता' सारथिसे इस प्रकार कहकर वे उस विचित्र रथमें बैठे रहे तथा शत्रुके नवीन आक्रमणकी आशङ्कासे सावधान हो गये। इतनेमें ही उन्हें समुद्रकी गर्जनाके समान आँधीका भीषण शब्द सुनायी दिया तथा दिशाओंमें उठती हुई धूल भी दिखायी दी॥ २१-२२॥

एक क्षणमें ही सारा आकाश मेघमालासे घिर गया। सब ओर भयङ्कर गड़गड़ाहटके साथ बिजली चमकने लगी ॥ २३ ॥ निष्पाप विदुरजी! उन बादलोंसे खून, कफ, पीब, विष्ठा, मूत्र एवं चर्बीकी वर्षा होने लगी और ध्रुवजीके आगे आकाशसे बहुत-से धड़ गिरने लगे॥ २४ ॥ फिर आकाशमें एक पर्वत दिखायी दिया और सभी दिशाओं- में पत्थरोंकी वर्षाके साथ गदा, परिघ, तलवार और मूसल गिरने लगे ॥ २५ ॥ उन्होंने देखा कि बहुत-से सर्प वज्रकी तरह फुफकार मारते रोषपूर्ण नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ उगलते आ रहे हैं; झुंड-के-झुंड मतवाले हाथी, सिंह और बाघ भी दौड़े चले आ रहे हैं॥ २६ ॥ प्रलयकालके समान भयङ्कर समुद्र अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे पृथ्वीको सब ओरसे डुबाता हुआ बड़ी भीषण गर्जनाके साथ उनकी ओर बढ़ रहा है ॥ २७॥ क्रूरस्वभाव असुरोंने अपनी आसुरी मायासे ऐसे ही बहुत-से कौतुक दिखलाये, जिनसे कायरोंके मन काँप सकते थे ॥ २८ ॥ ध्रुवजीपर असुरोंने अपनी दुस्तर माया फैलायी है, यह सुनकर वहाँ कुछ मुनियोंने आकर उनके लिये मङ्गल- कामना की ॥ २९ ॥

मुनियोंने कहा--उत्तानपादनन्दन ध्रुव! शरणागत- भयभञ्जन शार्ङ्गपाणि भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओंका संहार करें। भगवान्‌का तो नाम ही ऐसा है, जिसके सुनने और कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युके मुखसे अनायास ही बच जाता है ॥ ३० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुका ध्रुवजीको युद्ध बंद करनेके लिये समझाना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं--विदुरजी! ऋषियोंका ऐसा कथन सुनकर महाराज ध्रुवने आचमन कर श्रीनारायणके बनाये हुए नारायणास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाया ॥ १ ॥ उस बाणके चढ़ाते ही यक्षोंद्वारा रची हुई नाना प्रकारकी माया उसी क्षण नष्ट हो गयी, जिस प्रकार ज्ञानका उदय होनेपर अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥ ऋषिवर नारायणके द्वारा आविष्कृत उस अस्त्रको धनुषपर चढ़ाते ही उससे राजहंसके-से पक्ष और सोनेके फलवाले बड़े तीखे बाण निकले और जिस प्रकार मयूर केकारव करते वनमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार भयानक साँय-साँय शब्द करते हुए वे शत्रुकी सेनामें घुस गये ॥ ३ ॥ उन तीखी धारवाले बाणोंने शत्रुओंको बेचैन कर दिया। तब उस रणाङ्गणमें अनेकों यक्षोंने अत्यन्त कुपित होकर अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाले और जिस प्रकार गरुड़के छेड़ने- से बड़े-बड़े सर्प फन उठाकर उनकी ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार वे इधर-उधरसे ध्रुवजीपर टूट पड़े ॥ ४ ॥ उन्हें सामने आते देख ध्रुवजीने अपने बाणोंद्वारा उनकी भुजाएँ, जाँघें, कंधे और उदर आदि अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको छिन्न-भिन्न कर उन्हें उस सर्वश्रेष्ठ लोक (सत्यलोक)- में भेज दिया, जिसमें ऊर्ध्वरेता मुनिगण सूर्य- मण्डलका भेदन करके जाते हैं ॥ ५ ॥ अब उनके पितामह स्वायम्भुव मनुने देखा कि विचित्र रथपर चढ़े हुए ध्रुव अनेकों निरपराध यक्षोंको मार रहे हैं, तो उन्हें उनपर बहुत दया आयी। वे बहुत-से ऋषियोंको साथ लेकर वहाँ आये और अपने पौत्र ध्रुवको समझाने लगे ॥ ६ ॥

मनुजीने कहा--बेटा! बस, बस! अधिक क्रोध करना ठीक नहीं। यह पापी नरकका द्वार है। इसीके वशीभूत होकर तुमने इन निरपराध यक्षोंका वध किया है॥ ७ ॥ तात! तुम जो निर्दोष यक्षोंके संहारपर उतर रहे हो, यह हमारे कुलके योग्य कर्म नहीं है; साधु पुरुष इसकी बड़ी निन्दा करते हैं ॥ ८ ॥ बेटा! तुम्हारा अपने भाईपर बड़ा अनुराग था, यह तो ठीक है; परन्तु देखो, उसके वधसे सन्तप्त होकर तुमने एक यक्षके अपराध करनेपर प्रसङ्गवश कितनोंकी हत्या कर डाली ॥ ९ ॥ इस जड शरीरको ही

आत्मा मानकर इसके लिये पशुओंकी भाँति प्राणियोंकी हिंसा करना यह भगवत्सेवी साधुजनोंका मार्ग नहीं है।१०। प्रभुकी आराधना करना बड़ा कठिन है, परन्तु तुमने तो लड़कपनमें ही सम्पूर्ण भूतोंके आश्रयस्थान श्रीहरिकी सर्वभूतात्मभावसे आराधना करके उनका परमपद प्राप्त कर लिया है ॥ ११ ॥ तुम्हें तो प्रभु भी अपना प्रिय भक्त समझते हैं तथा भक्तजन भी तुम्हारा आदर करते हैं। तुम साधुजनोंके पथप्रदर्शक हो; फिर भी तुमने ऐसा निन्दनीय कर्म कैसे किया ? ॥ १२ ॥ सर्वात्मा श्रीहरि तो अपनेसे बड़े पुरुषोंके प्रति सहनशीलता, छोटोंके प्रति दया, बराबरवालोंके साथ मित्रता और समस्त जीवोंके साथ समताका बर्ताव करनेसे ही प्रसन्न होते हैं ॥ १३ ॥ और प्रभुके प्रसन्न हो जानेपर पुरुष प्राकृत गुण एवं उनके कार्यरूप लिङ्गशरीरसे छूटकर परमानन्दस्वरूप ब्रह्मपद प्राप्त कर लेता है ॥ १४ ॥

बेटा ध्रुव ! देहादिके रूपमें परिणत हुए पञ्चभूतोंसे ही स्त्री-पुरुषका आविर्भाव होता है और फिर उनके पारस्परिक समागमसे दूसरे स्त्री-पुरुष उत्पन्न होते हैं ॥१५॥ ध्रुव ! इस प्रकार भगवान्‌की मायासे सत्त्वादि गुणोंमें न्यूनाधिकभाव होनेसे ही जैसे भूतोंद्वारा शरीरोंकी रचना होती है, वैसे ही उनकी स्थिति और प्रलय भी होते हैं ॥१६॥ पुरुषश्रेष्ठ ! निर्गुण परमात्मा तो इनमें केवल निमित्त-मात्र है; उसके आश्रयसे यह कार्य-कारणात्मक जगत् उसी प्रकार भ्रमता रहता है, जैसे चुम्बकके आश्रयसे लोहा ॥ १७ ॥ काल-शक्तिके द्वारा क्रमशः सत्त्वादि गुणोंमें क्षोभ होनेसे लीलामय भगवान्‌की शक्ति भी सृष्टि आदिके रूपमें विभक्त हो जाती है; अतः भगवान् अकर्ता होकर भी जगत्‌की रचना करते हैं और संहार करनेवाले न होकर भी इसका संहार करते हैं। सचमुच उन अनन्त प्रभुकी लीला सर्वथा अचिन्त-नीय है ॥ १८ ॥ ध्रुव ! वे कालस्वरूप अव्यय परमात्मा ही स्वयं अन्तरहित होकर भी जगत्‌का अन्त करनेवाले हैं तथा अनादि होकर भी सबके आदिकर्ता हैं। वे ही एक जीवसे दूसरे जीवको उत्पन्न कर संसारकी सृष्टि करते हैं तथा मृत्युके द्वारा मारनेवालेको भी मरवाकर उसका संहार करते हैं ॥ १९ ॥ वे कालभगवान् सम्पूर्ण सृष्टिमें समानरूपसे अनुप्रविष्ट हैं। उनका न तो कोई मित्रपक्ष है और न शत्रुपक्ष। जैसे वायुके चलनेपर धूल उसके साथ-साथ उड़ती है, उसी प्रकार समस्त जीव अपने-अपने कर्मोंके अधीन होकर कालकी गतिका अनुसरण करते हैं—अपने-अपने कर्मानुसार सुख-दुःखादि फल भोगते हैं ॥ २० ॥ सर्वसमर्थ श्रीहरि कर्मबन्धनमें बँधे हुए जीवकी आयुकी वृद्धि और क्षयका विधान करते हैं, परन्तु वे स्वयं इन दोनोंसे रहित और अपने स्वरूपमें स्थित हैं ॥ २१ ॥ राजन् ! इन परमात्माको ही मीमांसकलोग कर्म, चार्वाक स्वभाव, वैशेषिकमतावलम्बी काल, ज्योतिषी दैव और कामशास्त्री काम कहते हैं ॥ २२ ॥ वे किसी भी इन्द्रिय या प्रमाणके विषय नहीं हैं। महदादि अनेक शक्तियाँ भी उन्हींसे प्रकट हुई हैं। वे क्या करना चाहते हैं, इस बातको भी संसारमें कोई नहीं जानता; फिर अपने मूल कारण उन प्रभुको तो जान ही कौन सकता है ॥ २३ ॥

बेटा ! ये कुबेरके अनुचर तुम्हारे भाईको मारनेवाले नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यके जन्म-मरणका वास्तविक कारण तो ईश्वर है ॥ २४ ॥ एकमात्र वही संसारको रचता, पालता और नष्ट करता है; किन्तु अहङ्कारशून्य होनेके कारण इसके गुण और कर्मोंसे वह सदा निर्लेप रहता है ॥ २५ ॥ वे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरात्मा, नियन्ता और रक्षा करनेवाले प्रभु ही अपनी मायाशक्तिसे युक्त होकर समस्त जीवोंका सृजन, पालन और संहार करते हैं ॥ २६ ॥ जिस प्रकार नाकमें नकेल पड़े हुए बैल अपने मालिकका बोझा ढोते रहते हैं, उसी प्रकार जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्मादि भी नामरूप डोरीसे बँधे हुए उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं। वे अभक्तोंके लिये मृत्युरूप और भक्तोंके लिये अमृतरूप हैं तथा संसारके एकमात्र आश्रय हैं। तात ! तुम सब प्रकार उन्हीं परमात्माकी शरण लो ॥ २७ ॥ तुम पाँच वर्षकी ही अवस्थामें अपनी सौतेली माताके वाग्बाणोंसे मर्माहत होकर माकी गोद छोड़कर वनको चले गये थे। वहाँ तपस्याद्वारा जिन हृषीकेश भगवान्‌की आराधना करके तुमने त्रिलोकीसे ऊपर ध्रुवपद प्राप्त किया है और जो तुम्हारे वैरभावहीन सरल हृदयमें वात्सल्यवश विशेषरूपसे विराजमान हुए थे, उन निर्गुण अद्वितीय अविनाशी और

नित्यमुक्त परमात्माको अध्यात्मदृष्टिसे अपने अन्त:करणमें ढूँढ़ो। उनमें यह भेदभावमय प्रपञ्च न होनेपर भी प्रतीत हो रहा है ॥ २८-२९ ॥ ऐसा करनेसे सर्वशक्तिसम्पन्न परमानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी भगवान् अनन्तमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति होगी और उसके प्रभावसे तुम मैं-मेरेपनके रूपमें दृढ़ हुई अविद्याकी गाँठको काट डालोगे ॥ ३० ॥

राजन्! जिस प्रकार ओषधिसे रोग शान्त किया जाता है—उसी प्रकार मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है, उसपर विचार करके अपने क्रोधको शान्त करो। क्रोध कल्याणमार्गका बड़ा ही विरोधी है। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें ॥ ३१ ॥ क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषसे सभी लोगोंको बड़ा भय होता है; इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसा चाहता है कि मुझसे किसी भी प्राणीको भय न हो और मुझे भी किसीसे भय न हो, उसे क्रोधके वशमें कभी न होना चाहिये ॥ ३२ ॥ तुमने जो यह समझकर कि ये मेरे भाईके मारनेवाले हैं, इतने यक्षोंका संहार किया है, इससे तुम्हारे द्वारा भगवान् शङ्करके सखा कुबेरजीका बड़ा अपराध हुआ है ॥ ३३ ॥ इसलिये बेटा! जबतक कि महापुरुषोंका तेज हमारे कुलको आक्रान्त नहीं कर लेता, इसके पहले ही विनम्र भाषण और विनयके द्वारा शीघ्र उन्हें प्रसन्न कर लो ॥ ३४ ॥

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने अपने पौत्र ध्रुवको शिक्षा दी। तब ध्रुवजीने उन्हें प्रणाम किया। इसके पश्चात् वे महर्षियोंके सहित अपने लोकको चले गये ॥ ३५ ॥

बारहवाँ अध्याय

ध्रुवजीको कुबेरका वरदान और विष्णुलोककी प्राप्ति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! ध्रुवका क्रोध शान्त हो गया है और वे यक्षोंके वधसे निवृत्त हो गये हैं, यह जानकर भगवान् कुबेर वहाँ आये। उस समय यक्ष, चारण और किन्नरलोग उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही ध्रुवजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब कुबेरने कहा ॥ १ ॥

श्रीकुबेरजी बोले—शुद्धहृदय क्षत्रियकुमार! तुमने अपने दादाके उपदेशसे ऐसा दुस्त्यज वैर त्याग दिया; इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ २ ॥ वास्तवमें न तुमने यक्षोंको मारा है और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको। समस्त जीवोंकी उत्पत्ति और विनाशका कारण तो एकमात्र काल ही है ॥ ३ ॥ यह मैं-तू आदि मिथ्या-बुद्धि तो जीवको अज्ञानवश स्वप्नके समान शरीरादिको ही आत्मा माननेसे उत्पन्न होती है। इसीसे मनुष्यको बन्धन एवं दु:खादि विपरीत अवस्थाओंकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ ध्रुव! अब तुम जाओ, भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें। तुम संसारपाशसे मुक्त होनेके लिये सब जीवोंमें समदृष्टि रखकर सर्वभूतात्मा भगवान् श्रीहरिका भजन करो। वे संसारपाशका छेदन करनेवाले हैं तथा संसारकी उत्पत्ति आदिके लिये अपनी त्रिगुणात्मिका मायाशक्तिसे युक्त होकर भी वास्तवमें उससे रहित हैं। उनके चरणकमल ही सबके लिये भजन करनेयोग्य हैं ॥ ५-६ ॥ प्रियवर! हमने सुना है, तुम सर्वदा भगवान् कमलनाभके चरणकमलोंके समीप रहनेवाले हो; इसलिये तुम अवश्य ही वर पानेयोग्य हो। ध्रुव! तुम्हें जिस वरकी इच्छा हो, मुझसे नि:सङ्कोच एवं नि:शङ्क होकर माँग लो ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! यक्षराज कुबेरने जब इस प्रकार वर माँगनेके लिये आग्रह किया, तब महाभागवत महामति ध्रुवजीने उनसे यही माँगा कि मुझे श्रीहरिकी अखण्ड स्मृति बनी रहे, जिससे मनुष्य सहज ही दुस्तर संसारसागरको पार कर जाता है ॥ ८ ॥ इडविडाके पुत्र कुबेरजीने बड़े प्रसन्न मनसे उन्हें भगवत्स्मृति प्रदान की। फिर उनके देखते-ही-देखते वे अन्तर्धान हो गये। इसके पश्चात् ध्रुवजी भी अपनी राजधानीको लौट आये ॥ ९ ॥ वहाँ रहते हुए उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना की; भगवान् ही द्रव्य, क्रिया और देवता-सम्बन्धी समस्त कर्म और उसके फल हैं तथा वे ही कर्मफलके दाता भी हैं ॥ १० ॥ सर्वोपाधिशून्य सर्वात्मा श्रीअच्युतमें प्रबल वेगयुक्त भक्तिभाव रखते हुए

ध्रुवजी अपनेमें और समस्त प्राणियोंमें सर्वव्यापक श्रीहरिको ही विराजमान देखने लगे ॥ ११ ॥ ध्रुवजी बड़े ही शीलसम्पन्न, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल और धर्ममर्यादाके रक्षक थे; उनकी प्रजा उन्हें साक्षात् पिताके समान मानती थी ॥ १२ ॥ इस प्रकार तरह-तरहके ऐश्वर्यभोगसे पुण्यका और भोगोंके त्यागपूर्वक यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठानसे पापका क्षय करते हुए उन्होंने छत्तीस हजार वर्षतक पृथ्वीका शासन किया ॥ १३ ॥ जितेन्द्रिय महात्मा ध्रुवने इसी तरह अर्थ, धर्म और कामके सम्पादनमें बहुत-से वर्ष बिताकर अपने पुत्र उत्कलको राजसिंहासन सौंप दिया ॥ १४ ॥ इस सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्चको अविद्यारचित स्वप्न और गन्धर्व-नगरके समान मायासे अपनेमें ही कल्पित मानकर और यह समझकर कि शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, भरा-पूरा खजाना, जनाने महल, सुरम्य विहारभूमि और समुद्रपर्यन्त भूमण्डलका राज्य—ये सभी कालके गालमें पड़े हुए हैं, वे बदरिकाश्रमको चले गये ॥ १५-१६ ॥

वहाँ उन्होंने पवित्र जलमें स्नानकर इन्द्रियोंको विशुद्ध (शान्त) किया । फिर स्थिर आसनसे बैठकर प्राणायामद्वारा वायुको वशमें किया । तदनन्तर मनके द्वारा इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर मनको भगवान्‌के स्थूल विराट्स्वरूपमें स्थिर कर दिया । उसी विराट्-रूपका चिन्तन करते-करते वे अन्तमें ध्याता और ध्येयके भेदसे शून्य निर्विकल्प समाधिमें लीन हो गये और उस अवस्थामें विराट्रूपका भी परित्याग कर दिया ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके प्रति निरन्तर भक्तिभावका प्रवाह चलते रहनेसे उनके नेत्रोंमें बार-बार आनन्दाश्रुओंकी बाढ़-सी आ जाती थी । इससे उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और शरीरमें रोमाञ्च हो आया । फिर देहाभिमान गलित हो जानेसे उन्हें 'मैं ध्रुव हूँ' इसकी स्मृति भी न रही ॥ १८ ॥

इसी समय ध्रुवजीने आकाशसे एक बड़ा ही सुन्दर विमान उतरते देखा । वह अपने प्रकाशसे दसों दिशाओंको आलोकित कर रहा था; मानो पूर्णिमाका चन्द्र ही उदय हुआ हो ॥ १९ ॥ उसमें दो श्रेष्ठ पार्षद गदाओंका सहारा लिये खड़े थे । उनके चार भुजाएँ थीं, सुन्दर श्याम शरीर था, किशोर अवस्था थी और अरुण कमलके समान नेत्र थे । वे सुन्दर वस्त्र, किरीट, हार, भुजबन्ध और अति मनोहर कुण्डल धारण किये हुए थे ॥ २० ॥ उन्हें पुण्यश्लोक श्रीहरिके सेवक जान ध्रुवजी हड़बड़ाहटमें पूजा आदिका क्रम भूलकर सहसा खड़े हो गये और ये भगवान्‌के पार्षदोंमें प्रधान हैं—ऐसा समझकर उन्होंने श्रीमधुसूदनके नामोंका कीर्तन करते हुए उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ २१ ॥ ध्रुवजीका मन भगवान्‌के चरणकमलोंमें तल्लीन हो गया और वे हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे सिर नीचा किये खड़े रह गये । तब श्रीहरिके प्रिय पार्षद सुनन्द और नन्दने उनके पास जाकर मुसकराते हुए कहा ॥ २२ ॥

सुनन्द और नन्द कहने लगे—राजन् ! आपका कल्याण हो, आप सावधान होकर हमारी बात सुनिये । आपने पाँच वर्षकी अवस्थामें ही तपस्या करके सर्वेश्वर भगवान्‌को प्रसन्न कर लिया था ॥ २३ ॥ हम उन्हीं निखिलजगन्नियन्ता शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सेवक हैं और आपको भगवान्‌के धाममें ले जानेके लिये यहाँ आये हैं ॥ २४ ॥ आपने अपनी भक्तिके प्रभावसे विष्णुलोकका अधिकार प्राप्त किया है, जो औरोंके लिये बड़ा दुर्लभ है । परमज्ञानी सप्तर्षि भी वहाँतक नहीं पहुँच सके, वे नीचेसे केवल उसे देखते रहते हैं । सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र एवं तारागण भी उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं । चलिये, आप उसी विष्णुधाममें निवास कीजिये ॥ २५ ॥ प्रियवर ! आजतक आपके पूर्वज तथा और कोई भी उस पदपर कभी नहीं पहुँच सके । भगवान् विष्णुका वह परमधाम सारे संसारका वन्दनीय है, आप वहाँ चलकर विराजमान हों ॥ २६ ॥ आयुष्मन् ! यह श्रेष्ठ विमान पुण्यश्लोकशिखामणि श्रीहरिने आपके लिये ही भेजा है, आप इसपर चढ़ने योग्य हैं ॥ २७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्‌के प्रमुख पार्षदोंके ये अमृतमय वचन सुनकर परम भागवत ध्रुवजीने स्नान किया, फिर सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो माङ्गलिक अलङ्कारादि धारण किये । बदरिकाश्रममें

रहनेवाले मुनियोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया ॥ २८ ॥ इसके बाद उस श्रेष्ठ विमानकी पूजा और प्रदक्षिणा की और पार्षदोंको प्रणाम कर सुवर्णके समान कान्तिमान् दिव्य रूप धारण करके उसपर चढ़नेको तैयार हुए ॥ २९ ॥ इतनेमें ही ध्रुवजीने देखा कि काल मूर्तिमान् होकर उनके सामने खड़ा है । तब वे मृत्युके सिरपर पैर रखकर उस अद्भुत विमानपर चढ़ गये ॥ ३० ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभि, मृदङ्ग और ढोल आदि बाजे बजने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे और फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥

विमानपर बैठकर ध्रुवजी ज्यों-ही भगवान्‌के धामको जानेके लिये तैयार हुए, त्यों-ही उन्हें अपनी माता सुनीतिका स्मरण हो आया । वे सोचने लगे, 'क्या मैं बेचारी माताको छोड़कर अकेला ही दुर्लभ वैकुण्ठधामको जाऊँगा ?' ॥ ३२ ॥ नन्द और सुनन्दने ध्रुवके हृदयकी बात जानकर उन्हें दिखलाया कि देवी सुनीति आगे-आगे दूसरे विमानपर जा रही हैं ॥ ३३ ॥ उन्होंने क्रमशः सूर्य आदि सभी ग्रह देखे । मार्गमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर बैठे हुए देवता उनकी प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करते जाते थे ॥ ३४ ॥ उस दिव्य विमानपर बैठकर ध्रुवजी त्रिलोकीको पारकर सप्तर्षिमण्डलसे भी ऊपर भगवान् विष्णुके नित्यधाममें पहुँचे । इस प्रकार उन्होंने अविचल गति प्राप्त की ॥ ३५ ॥ यह दिव्य धाम अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं । इसमें जीवोंपर निर्दयता करनेवाले पुरुष नहीं जा सकते । यहाँ तो उन्हींकी पहुँच होती है, जो दिन-रात प्राणियोंके कल्याणके लिये शुभ कर्म ही करते रहते हैं ॥ ३६ ॥ जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध और सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा भगवद्भक्तोंको ही अपना एकमात्र सच्चा सुहृद् मानते हैं—ऐसे लोग सुगमतासे ही इस भगवद्धामको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३७ ॥

इस प्रकार उत्तानपादके पुत्र भगवत्परायण श्रीध्रुवजी तीनों लोकोंके ऊपर उसकी निर्मल चूडामणिके समान विराजमान हुए ॥ ३८ ॥ कुरुनन्दन ! जिस प्रकार दायँ चलानेके समय खंभेके चारों ओर बैल घूमते हैं, उसी प्रकार यह गम्भीर वेगवाला ज्योतिश्चक्र उस अविनाशी लोकके आश्रय ही निरन्तर घूमता रहता है ॥ ३९ ॥ उसकी महिमा देखकर देवर्षि नारदने प्रचेताओंकी यज्ञशालामें वीणा बजाकर ये तीन श्लोक गाये थे ॥ ४० ॥

नारदजीने कहा था—इसमें सन्देह नहीं, पतिपरायणा सुनीतिके पुत्र ध्रुवने तपस्याद्वारा अद्भुत शक्ति संचित करके जो गति पायी है, उसे भागवतधर्मोंकी आलोचना करके वेदवादी मुनिगण भी नहीं पा सकते; फिर राजाओंकी तो बात ही क्या है ॥ ४१ ॥ अहो ! वे पाँच वर्षकी अवस्थामें ही सौतेली माताके वाग्बाणोंसे मर्माहत होकर दुखी हृदयसे वनमें चले गये और मेरे उपदेशके अनुसार आचरण करके ही उन अजेय प्रभुको जीत लिया, जो केवल अपने भक्तोंके गुणोंसे ही वशमें होते हैं ॥ ४२ ॥ ध्रुवजीने तो पाँच-छः वर्षकी अवस्थामें कुछ दिनोंकी तपस्यासे ही भगवान्‌को प्रसन्न करके उनका परमपद प्राप्त कर लिया; किन्तु उनके अधिकृत किये हुए इस पदको भूमण्डलमें कोई दूसरा क्षत्रिय क्या वर्षोंतक तपस्या करके भी पा सकता है ? ॥ ४३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! तुमने मुझसे उदारकीर्ति ध्रुवजीके चरित्रके विषयमें पूछा था, सो मैंने तुम्हें वह पूरा-का-पूरा सुना दिया । साधुजन इस चरित्रकी बड़ी प्रशंसा करते हैं ॥ ४४ ॥ यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त मङ्गलमय है । इससे स्वर्ग और अविनाशी पद भी प्राप्त हो सकता है । यह देवत्वकी प्राप्ति करानेवाला, बड़ा ही प्रशंसनीय और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है ॥ ४५ ॥ भगवद्भक्त ध्रुवके इस पवित्र चरित्रको जो श्रद्धापूर्वक बार-बार सुनते हैं, उन्हें भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है, जिससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ इसे श्रवण करनेवालेको शीलादि गुणोंकी प्राप्ति होती है; जो महत्त्व चाहते हैं, उन्हें महत्त्वकी प्राप्ति करानेवाला स्थान मिलता है, जो तेज चाहते हैं, उन्हें तेज प्राप्त होता है और मनस्वियोंका मान बढ़ता है ॥ ४७ ॥ पवित्रकीर्ति ध्रुवजीके इस महान् चरित्रका प्रातः और सायङ्काल ब्राह्मणादि द्विजातियोंके समाजमें एकाग्र चित्तसे कीर्तन करना चाहिये ॥ ४८ ॥ भगवान्‌के परम पवित्र चरणोंकी शरणमें रहनेवाला जो पुरुष इसे निष्कामभावसे पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, श्रवण

नक्षत्र, तिथिक्षय, व्यतीपात, संक्रान्ति अथवा रविवारके दिन श्रद्धालु पुरुषोंको सुनाता है, वह स्वयं अपने आत्मामें ही सन्तुष्ट रहने लगता है और सिद्ध हो जाता है ॥ ४९-५० ॥ यह साक्षात् भगवद्विषयक अमृतमय ज्ञान है; जो लोग भगवन्मार्गके मर्मसे अनभिज्ञ हैं—उन्हें जो कोई इसे प्रदान करता है, उस दीनवत्सल कृपालु पुरुषपर देवता अनुग्रह करते हैं ॥ ५१ ॥ ध्रुवजीके कर्म सर्वत्र प्रसिद्ध और परम पवित्र हैं, वे अपनी बाल्यावस्थामें ही माताके घर और खिलौनोंका मोह छोड़कर श्रीविष्णुभगवान्‌की शरणमें चले गये थे। कुरुनन्दन ! उनका यह पवित्र चरित्र मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ५२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ध्रुववंशका वर्णन, राजा अङ्गका चरित्र

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी ! श्रीमैत्रेय मुनिके मुखसे ध्रुवजीके विष्णुपदपर आरूढ होनेका वृत्तान्त सुनकर विदुरजीके हृदयमें भगवान् विष्णुकी भक्तिका उद्रेक हो आया और उन्होंने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना आरम्भ किया ॥ १ ॥

विदुरजीने पूछा—भगवत्परायण मुने ! ये प्रचेता कौन थे ? किसके पुत्र थे ? किसके वंशमें प्रसिद्ध थे और इन्होंने कहाँ यज्ञ किया था? ॥ २ ॥ भगवान्‌के दर्शनसे कृतार्थ नारदजी परम भागवत हैं—ऐसा मैं मानता हूँ। उन्होंने पाञ्चरात्रका निर्माण करके श्रीहरिकी पूजापद्धतिरूप क्रियायोगका उपदेश किया है ॥ ३ ॥ जिस समय प्रचेतागण स्वधर्मका आचरण करते हुए भगवान् यज्ञेश्वरकी आराधना कर रहे थे, उसी समय भक्तप्रवर नारदजीने ध्रुवका गुणगान किया था ॥ ४ ॥ ब्रह्मन् ! उस स्थानपर उन्होंने भगवान्‌की जिन-जिन लीला-कथाओंका वर्णन किया था, वे सब पूर्णरूपसे मुझे सुनाइये; मुझे उनके सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥५॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! महाराज ध्रुवके वन चले जानेपर उनके पुत्र उत्कलने अपने पिताके सार्वभौम वैभव और राज्यसिंहासनको अस्वीकार कर दिया ॥ ६ ॥ वह जन्मसे ही शान्तचित्त, आसक्तिशून्य और समदर्शी था तथा सम्पूर्ण लोकोंको अपनी आत्मामें और अपनी आत्माको सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित देखता था ॥७॥ उसके अन्तःकरणका वासनारूप मल अखण्ड योगाग्निसे भस्म हो गया था। इसलिये वह अपनी आत्माको विशुद्ध बोधरसके साथ अभिन्न, आनन्दमय और सर्वत्र व्याप्त देखता था। सब प्रकारके भेदसे रहित प्रशान्त ब्रह्मको ही वह अपना स्वरूप समझता था तथा अपनी आत्मासे भिन्न कुछ भी नहीं देखता था ॥ ८-९ ॥ वह अज्ञानियोंको रास्ते आदि साधारण स्थानोंमें बिना लपटकी आगके समान, मूर्ख, अंधा, बहिरा, पागल अथवा गूँगा-सा प्रतीत होता था—वास्तवमें ऐसा था नहीं ॥१०॥ इसलिये कुलके बड़े-बूढ़े तथा मन्त्रियोंने उसे मूर्ख और पागल समझकर उसके छोटे भाई भ्रमिपुत्र वत्सरको राजा बनाया ॥ ११ ॥

वत्सरकी प्रेयसी भार्या स्वर्वीथिके गर्भसे पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय नामके छः पुत्र हुए ॥ १२ ॥ पुष्पार्णके प्रभा और दोषा नामकी दो स्त्रियाँ थीं; उनमेंसे प्रभाके प्रातः, मध्यन्दिन और सायं—ये तीन पुत्र हुए ॥१३॥ दोषाके प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट—ये तीन पुत्र हुए। व्युष्टने अपनी भार्या पुष्करिणी-से सर्वतेजा नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥१४॥ उसकी पत्नी आकूतिसे चक्षुः नामक पुत्र हुआ। चाक्षुष मन्वन्तरमें वही मनु हुआ। चक्षु मनुकी स्त्री नड्वलासे पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिबि और उल्मुक—ये बारह सत्त्वगुणी बालक उत्पन्न हुए ॥ १५-१६ ॥ इनमें उल्मुकने अपनी पत्नी पुष्करिणीसे अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और गय—ये छः उत्तम पुत्र उत्पन्न किये ॥ १७ ॥ अङ्गकी पत्नी सुनीथाने क्रूरकर्मा वेनको जन्म दिया, जिसकी दुष्टतासे उद्विग्न होकर राजर्षि अङ्ग नगर छोड़कर चले गये थे ॥१८॥ प्यारे विदुरजी ! मुनियोंके वाक्य वज्रके

समान अमोघ होते हैं; उन्होंने कुपित होकर वेनको शाप दिया और जब वह मर गया, तब कोई राजा न रहनेके कारण लोकमें लुटेरोंके द्वारा प्रजाको बहुत कष्ट होने लगा। यह देखकर उन्होंने वेनकी दाहिनी भुजाका मन्थन किया, जिससे भगवान् विष्णुके अंशावतार आदिसम्राट् महाराज पृथु प्रकट हुए ॥ १९-२० ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! महाराज अङ्ग तो बड़े शीलसम्पन्न, साधुस्वभाव, ब्राह्मण-भक्त और महात्मा थे। उनके वेन-जैसा दुष्ट पुत्र कैसे हुआ, जिसके कारण दुखी होकर उन्हें नगर छोड़ना पड़ा ॥ २१ ॥ राजदण्डधारी वेनका भी ऐसा क्या अपराध था, जो धर्मज्ञ मुनीश्वरोंने उसके प्रति शापरूप ब्रह्मदण्डका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ प्रजाका कर्तव्य है कि वह प्रजापालक राजासे कोई पाप बन जाय तो भी उसका तिरस्कार न करे; क्योंकि वह अपने प्रभावसे आठ लोकपालोंके तेजको धारण करता है ॥ २३ ॥ ब्रह्मन्! आप भूत-भविष्यकी बातें जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये आप मुझे सुनीथाके पुत्र वेनकी सब करतूतें सुनाइये। मैं आपका श्रद्धालु भक्त हूँ ॥ २४ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! एक बार राजर्षि अङ्गने अश्वमेध-महायज्ञका अनुष्ठान किया। उसमें वेदवादी ब्राह्मणोंके आवाहन करनेपर भी देवतालोग अपना भाग लेने नहीं आये ॥ २५ ॥ तब ऋत्विजोंने विस्मित होकर यजमान अङ्गसे कहा—'राजन्! हम आहुतियोंके रूपमें आपका जो घृत आदि पदार्थ हवन कर रहे हैं, उसे देवतालोग स्वीकार नहीं करते ॥ २६ ॥ हम जानते हैं आपकी होम-सामग्री दूषित नहीं है; आपने उसे बड़ी श्रद्धासे जुटाया है तथा वेदमन्त्र भी किसी प्रकार बलहीन नहीं हैं; क्योंकि उनका प्रयोग करनेवाले ऋत्विजगण याजकोचित सभी नियमोंका पूर्णतया पालन करते हैं ॥ २७ ॥ हमें ऐसी कोई बात नहीं दीखती कि इस यज्ञमें देवताओंका किञ्चित् भी तिरस्कार हुआ है—फिर भी कर्माध्यक्ष देवतालोग क्यों अपना भाग नहीं ले रहे हैं?' ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—ऋत्विजोंकी बात सुनकर यजमान अङ्ग बहुत उदास हुए। तब उन्होंने याजकोंकी अनुमतिसे मौन तोड़कर सदस्योंसे पूछा ॥ २९ ॥ 'सदस्यो! देवतालोग आवाहन करनेपर भी यज्ञमें नहीं आ रहे हैं और न सोमपात्र ही ग्रहण करते हैं; आप बतलाइये मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ है?' ॥ ३० ॥

सदस्योंने कहा—राजन्! इस जन्ममें तो आपसे तनिक भी अपराध नहीं हुआ; हाँ, पूर्वजन्मका एक अपराध अवश्य है, जिसके कारण आप ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी पुत्रहीन हैं ॥ ३१ ॥ आपका कल्याण हो! इसलिये पहले आप सुपुत्र प्राप्त करनेका कोई उपाय कीजिये। यदि आप पुत्रकी कामनासे यज्ञ करेंगे, तो भगवान् यज्ञेश्वर आपको अवश्य पुत्र प्रदान करेंगे ॥ ३२ ॥ जब सन्तानके लिये साक्षात् यज्ञपुरुष श्रीहरिका आवाहन किया जायगा, तब देवतालोग स्वयं ही अपना-अपना यज्ञ-भाग ग्रहण करेंगे ॥ ३३ ॥ भक्त जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, श्रीहरि उसे वही-वही पदार्थ देते हैं। उनकी जिस प्रकार आराधना की जाती है, उसी प्रकार उपासकको फल भी मिलता है ॥ ३४ ॥

इस प्रकार राजा अङ्गको पुत्रप्राप्ति करानेका निश्चय कर ऋत्विजोंने पशुमें यज्ञरूपसे रहनेवाले श्रीविष्णुभगवान्‌के पूजनके लिये पुरोडाश नामक चरु समर्पण किया ॥ ३५ ॥ अग्निमें आहुति डालते ही अग्निकुण्डसे सोनेके हार और शुभ्र वस्त्रोंसे विभूषित एक पुरुष प्रकट हुए; वे एक स्वर्णपात्रमें सिद्ध खीर लिये हुए थे ॥ ३६ ॥ उदारबुद्धि राजा अङ्गने याजकोंकी अनुमतिसे अपनी अञ्जलिमें वह खीर ले ली और उसे स्वयं सूँघकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नीको दे दिया ॥ ३७ ॥ पुत्रहीना रानीने वह पुत्रप्रदायिनी खीर खाकर अपने पतिके सहवाससे गर्भ धारण किया। उससे यथासमय उसके एक पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ वह बालक बाल्यावस्थासे ही अधर्मके वंशमें उत्पन्न हुए अपने नाना मृत्युका अनुगामी था (सुनीथा मृत्युकी ही पुत्री थी); इसलिये वह भी अधार्मिक ही हुआ ॥ ३९ ॥

वह दुष्ट बालक धनुष-बाण चढ़ाकर वनमें जाता और व्याधेके समान बेचारे भोले-भाले हरिणोंकी

हत्या करता। उसे देखते ही पुरवासीलोग 'वेन आया! वेन आया!' कहकर पुकार उठते ॥ ४० ॥ वह ऐसा क्रूर और निर्दयी था कि मैदानमें खेलते हुए अपनी बराबरीके बालकोंको पशुओंकी भाँति बलात्कारसे मार डालता ॥ ४१ ॥ वेनकी ऐसी दुष्ट प्रकृति देखकर महाराज अङ्गने उसे तरह-तरहसे सुधारनेकी चेष्टा की; परन्तु वे उसे सुमार्गपर लानेमें समर्थ न हुए। इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ ॥ ४२ ॥ (वे मन-ही-मन कहने लगे—) 'जिन गृहस्थोंके पुत्र नहीं हैं, उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्ममें श्रीहरिकी आराधना की होगी; इसीसे उन्हें कुपूतकी करतूतोंसे होनेवाले असह्य क्लेश नहीं सहने पड़ते ॥ ४३ ॥ जिसकी करनीसे माता-पिताका सारा सुयश मिट्टीमें मिल जाय, उन्हें अधर्मका भागी होना पड़े, सबसे विरोध हो जाय, कभी न छूटनेवाली चिन्ता मोल लेनी पड़े और घर भी दुःखदायी हो जाय—ऐसी नाममात्रकी सन्तानके लिये कौन समझदार पुरुष ललचावेगा? वह तो आत्माके लिये एक प्रकारका मोहमय बन्धन ही है ॥ ४४-४५ ॥ मैं तो सपूतकी अपेक्षा कुपूतको ही अच्छा समझता हूँ; क्योंकि सपूतको छोड़नेमें बड़ा क्लेश होता है। कुपूत घरको नरक बना देता है, इसलिये उससे सहज ही छुटकारा हो जाता है।' ॥ ४६ ॥

इस प्रकार सोचते-सोचते महाराज अङ्गको रातमें नींद नहीं आयी। उनका चित्त गृहस्थीसे विरक्त हो गया। वे आधी रातके समय बिछौनेसे उठे। इस समय वेनकी माता नींदमें बेसुध पड़ी थी। राजाने सबका मोह छोड़ दिया और उसी समय किसीको भी मालूम न हो, इस प्रकार चुपचाप उस महान् ऐश्वर्यसे भरे राजमहलसे निकलकर वनको चल दिये ॥ ४७ ॥ महाराज विरक्त होकर घरसे निकल गये हैं, यह जानकर सभी प्रजाजन, पुरोहित, मन्त्री और सुहृद्गण आदि अत्यन्त शोकाकुल होकर पृथ्वीपर उनकी खोज करने लगे। ठीक वैसे ही जैसे योगका यथार्थ रहस्य न जाननेवाले पुरुष अपने हृदयमें छिपे हुए भगवान्‌को बाहर खोजते हैं ॥ ४८ ॥ जब उन्हें अपने स्वामीका कहीं पता न लगा, तब वे निराश होकर नगरमें लौट आये और वहाँ जो मुनिजन एकत्रित हुए थे, उन्हें यथावत् प्रणाम करके उन्होंने आँखोंमें आँसू भरकर महाराजके न मिलनेका वृत्तान्त सुनाया ॥ ४९ ॥

चौदहवाँ अध्याय

राजा वेनकी कथा

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—वीरवर विदुरजी! सभी लोकोंकी कुशल चाहनेवाले भृगु आदि मुनियोंने देखा कि अङ्गके चले जानेसे अब पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं रह गया है, सब लोग पशुओंके समान उच्छृङ्खल होते जा रहे हैं ॥ १ ॥ तब उन्होंने माता सुनीथाकी सम्मतिसे, मन्त्रियोंके सहमत न होनेपर भी वेनको भूमण्डलके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया ॥ २ ॥ वेन बड़ा कठोर शासक था। जब चोर-डाकुओंने सुना कि वही राजसिंहासनपर बैठा है, तब सर्पसे डरे हुए चूहोंके समान वे सब तुरंत ही जहाँ-तहाँ छिप गये ॥ ३ ॥ राज्यासन पानेपर वेन आठों लोकपालोंकी ऐश्वर्यकलाके कारण उन्मत्त हो गया और अभिमानवश अपनेको ही सबसे बड़ा मानकर महापुरुषोंका अपमान करने लगा ॥ ४ ॥ वह ऐश्वर्यमदसे अंधा हो रथपर चढ़कर निरङ्कुश गजराजके समान पृथ्वी और आकाशको कँपाता हुआ सर्वत्र विचरने लगा ॥ ५ ॥ 'कोई भी द्विजातिवर्णका पुरुष कभी किसी प्रकारका यज्ञ, दान और हवन न करे' अपने राज्यमें यह ढिंढोरा पिटवा कर उसने सारे धर्म-कर्म बंद करवा दिये ॥ ६ ॥

दुष्ट वेनका ऐसा अत्याचार देख सारे ऋषि-मुनि एकत्र हुए और संसारपर सङ्कट आया समझकर करुणावश आपसमें कहने लगे ॥ ७ ॥ 'अहो! जैसे दोनों ओर जलती हुई लकड़ीके बीचमें रहनेवाले चींटी आदि जीव महान् सङ्कटमें पड़ जाते हैं, वैसे ही इस समय

सारी प्रजा एक ओर राजाके और दूसरी ओर चोर-डाकुओंके अत्याचारसे महान् सङ्कटमें पड़ रही है ॥ ८ ॥ हमने अराजकताके भयसे ही अयोग्य होनेपर भी वेनको राजा बनाया था; किन्तु अब उससे भी प्रजाको भय हो गया। ऐसी अवस्थामें प्रजाको किस प्रकार सुख-शान्ति मिल सकती है ? ॥ ९ ॥ सुनीथाकी कोखसे उत्पन्न हुआ यह वेन स्वभावसे ही दुष्ट है। परन्तु साँपको दूध पिलानेके समान इसको पालना पालनेवालोंके लिये अनर्थका कारण हो गया ॥ १० ॥ हमने इसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त किया था, यह आज उसीको नष्ट करनेपर तुला हुआ है। इतना सब होनेपर भी हमें इसे समझाना अवश्य चाहिये; ऐसा करनेसे इसके किये हुए पाप हमें स्पर्श नहीं करेंगे ॥ ११ ॥ हमने जान-बूझकर दुराचारी वेनको राजा बनाया था। किन्तु यदि समझानेपर भी यह हमारी बात नहीं मानेगा, तो लोकके धिक्कारसे दग्ध हुए इस दुष्टको हम अपने तेजसे भस्म कर देंगे।' ऐसा विचार करके मुनिलोग वेनके पास गये और अपने क्रोधको छिपाकर उसे प्रिय वचनोंसे समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ १२-१३ ॥

मुनियोंने कहा—राजन्! हम आपसे जो बात कहते हैं, उसपर ध्यान दीजिये। इससे आपकी आयु, श्री, बल और कीर्तिकी वृद्धि होगी ॥ १४ ॥ तात! यदि मनुष्य मन, वाणी, शरीर और बुद्धिसे धर्मका आचरण करे, तो उसे स्वर्गादि शोकरहित लोकोंकी प्राप्ति होती है। यदि उसका निष्कामभाव हो, तब तो वही धर्म उसे अनन्त मोक्षपदपर पहुँचा देता है ॥ १५ ॥ इसलिये वीरवर! प्रजाका कल्याणरूप वह धर्म आपके कारण नष्ट नहीं होना चाहिये। धर्मके नष्ट होनेसे राजा भी ऐश्वर्यसे च्युत हो जाता है ॥ १६ ॥ जो राजा दुष्ट मन्त्री और चोर आदिसे अपनी प्रजाकी रक्षा करते हुए न्यायानुकूल कर लेता है, वह इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह सुख पाता है ॥ १७ ॥ जिसके राज्य अथवा नगरमें वर्णाश्रम-धर्मोंका पालन करनेवाले पुरुष स्वधर्मपालनके द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं, महाभाग! अपनी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे भगवान् प्रसन्न रहते हैं; क्योंकि वे ही सारे विश्वकी आत्मा तथा सम्पूर्ण भूतोंके रक्षक हैं ॥ १८-१९ ॥ भगवान् ब्रह्मादि जगदीश्वरोंके भी ईश्वर हैं, उनके प्रसन्न होनेपर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। तभी तो इन्द्रादि लोकपालोंके सहित समस्त लोक उन्हें बड़े आदरसे पूजोपहार समर्पण करते हैं ॥ २० ॥ राजन्! भगवान् श्रीहरि समस्त लोक, लोकपाल और यज्ञोंके नियन्ता हैं; वे वेदत्रयीरूप, द्रव्यरूप और तपःस्वरूप हैं। इसलिये आपके जो देशवासी आपकी उन्नतिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंसे भगवान्‌का यजन करते हैं, आपको उनके अनुकूल ही रहना चाहिये ॥ २१ ॥ जब आपके राज्यमें ब्राह्मणलोग यज्ञोंका अनुष्ठान करेंगे, तब उनकी पूजासे प्रसन्न होकर भगवान्‌के अंशस्वरूप देवता आपको मनचाहा फल देंगे। अतः वीरवर! आपको यज्ञादि धर्मानुष्ठान बंद करके देवताओंका तिरस्कार नहीं करना चाहिये ॥ २२ ॥

वेनने कहा—तुमलोग बड़े मूर्ख हो! खेद है, तुमने अधर्ममें ही धर्मबुद्धि कर रक्खी है। तभी तो तुम जीविका देनेवाले मुझ साक्षात् पतिको छोड़कर किसी दूसरे जारपतिकी उपासना करते हो ॥ २३ ॥ जो लोग मूर्खतावश राजारूप परमेश्वरका अनादर करते हैं, उन्हें न तो इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही ॥ २४ ॥ अरे! जिसमें तुमलोगोंकी इतनी भक्ति है, वह यज्ञपुरुष है कौन ? यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने विवाहित पतिसे प्रेम न करके किसी परपुरुषमें आसक्त हो जायँ ॥ २५ ॥ विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि और वरुण तथा इनके अतिरिक्त जो दूसरे वर और शाप देनेमें समर्थ देवता हैं, वे सब-के-सब राजाके शरीरमें रहते हैं; इसलिये राजा सर्वदेवमय है और देवता उसके अंशमात्र हैं ॥ २६-२७ ॥ इसलिये ब्राह्मणो! तुम मत्सरता छोड़कर अपने सभी कर्मोंद्वारा एक मेरा ही पूजन करो और मुझीको बलि समर्पण करो। भला, मेरे सिवा और कौन अग्रपूजाका अधिकारी हो सकता है ? ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार विपरीत बुद्धि

होनेके कारण वह अत्यन्त पापी और कुमार्गगामी हो गया था । उसका पुण्य क्षीण हो चुका था, इसलिये मुनियोंके बहुत विनयपूर्वक प्रार्थना करनेपर भी उसने उनकी बातपर ध्यान न दिया ॥ २९ ॥ विदुरजी ! अपनेको बड़ा बुद्धिमान् समझनेवाले वेनने जब उन मुनियोंका इस प्रकार अपमान किया, तब अपनी कल्याणकारिणी माँगको व्यर्थ हुई देख वे उसपर अत्यन्त कुपित हो गये ॥ ३० ॥ 'मार डालो ! इस स्वभावसे ही दुष्ट पापीको मार डालो ! यह यदि जीता रह गया तो कुछ ही दिनोंमें संसारको अवश्य भस्म कर डालेगा ॥ ३१ ॥ यह दुराचारी किसी प्रकार राज-सिंहासनके योग्य नहीं है, क्योंकि यह निर्लज्ज साक्षात् यज्ञपति श्रीविष्णुभगवान्की निन्दा करता है ॥ ३२ ॥ अहो ! जिनकी कृपासे इसे ऐसा ऐश्वर्य मिला, उन श्रीहरिकी निन्दा अभागे वेनको छोड़कर और कौन कर सकता है ?' ॥ ३३ ॥

इस प्रकार अपने छिपे हुए क्रोधको प्रकट कर उन्होंने उसे मारनेका निश्चय कर लिया । वह तो भगवान्की निन्दा करनेके कारण पहले ही मर चुका था, इसलिये केवल हुङ्कारोंसे ही उन्होंने उसका काम तमाम कर दिया ॥ ३४ ॥ जब मुनिगण अपने-अपने आश्रमोंको चले गये, तब इधर वेनकी शोकाकुला माता सुनीथा मन्त्रादिके बलसे तथा अन्य युक्तियोंसे अपने पुत्रके शवकी रक्षा करने लगी ॥ ३५ ॥

एक दिन वे मुनिगण सरस्वतीके पवित्र जलमें स्नान कर अग्निहोत्रसे निवृत्त हो नदीके तीरपर बैठे हुए हरिचर्चा कर रहे थे ॥ ३६ ॥ उन दिनों लोकोंमें आतङ्क फैलानेवाले बहुत-से उपद्रव होते देखकर वे आपसमें कहने लगे, 'आजकल पृथ्वीका कोई रक्षक नहीं है; इसलिये चोर-डाकुओंके कारण उसका कुछ अमङ्गल तो नहीं होनेवाला है ?' ॥ ३७ ॥ ऋषिलोग ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने सब दिशाओंमें धावा करनेवाले चोरों और डाकुओंके कारण उठी हुई बड़ी भारी धूल देखी ॥ ३८ ॥ देखते ही वे समझ गये कि राजा वेनके मर जानेके कारण देशमें अराजकता फैल गयी है, राज्य शक्तिहीन हो गया है और चोर-डाकू बढ़ गये हैं; यह सारा उपद्रव लोगों-का धन लूटनेवाले तथा एक दूसरेके खूनके प्यासे लुटेरोंका ही है । अपने तेजसे अथवा तपोबलसे लोगोंको ऐसी कुप्रवृत्तिसे रोकनेमें समर्थ होनेपर भी ऐसा करनेमें हिंसादि दोष देखकर उन्होंने इसका कोई निवारण नहीं किया ॥ ३९-४० ॥ फिर सोचा कि 'ब्राह्मण यदि समदर्शी और शान्तस्वभाव भी हो तो भी दीनोंकी उपेक्षा करनेसे उसका तप उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे फूटे हुए घड़ेमेंसे जल बह जाता है ॥ ४१ ॥ फिर राजर्षि अङ्गका वंश भी नष्ट नहीं होना चाहिये, क्योंकि इसमें अनेकों अमोघ-शक्ति और भगवत्परायण राजा हो चुके हैं' ॥ ४२ ॥ ऐसा निश्चय कर उन्होंने मृत राजाकी जाँघको बड़े जोरसे मथा तो उसमेंसे एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ ४३ ॥ वह कौएके समान काला था; उसके सभी अङ्ग और खासकर भुजाएँ बहुत छोटी थीं, जबड़े बहुत बड़े, टाँगें छोटी, नाक चपटी, नेत्र लाल और केश ताँबेके-से रंगके थे ॥४४॥ उसने बड़ी दीनता और नम्रभावसे पूछा कि 'मैं क्या करूँ ?' तो ऋषियोंने कहा—'निषीद (बैठ जा) ।' इसीसे वह 'निषाद' कहलाया ॥ ४५ ॥ उसने जन्म लेते ही राजा वेनके भयङ्कर पापोंको अपने ऊपर ले लिया, इसीलिये उसके वंशधर नैषाद भी हिंसा, लूट-पाट आदि पापकर्मोंमें रत रहते हैं; अतः वे गाँव और नगरमें न टिककर वन और पर्वतोंमें ही निवास करते हैं ॥ ४६ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

महाराज पृथुका आविर्भाव और राज्याभिषेक

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इसके बाद ने पुत्रहीन राजा वेनकी भुजाओंका मन्थन किया, तब उनसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी ऋषि उस जोड़ेको उत्पन्न हुआ देख और

उसे भगवान‍्का अंश जान बहुत प्रसन्न हुए और बोले ॥ २ ॥

ऋषियोंने कहा—यह पुरुष भगवान् विष्णुकी विश्वपालिनी कलासे प्रकट हुआ है और यह स्त्री उन परम पुरुषकी अनपायिनी (कभी अलग न होनेवाली) शक्ति लक्ष्मीजीका अवतार है ॥ ३ ॥ यह पुरुष अपने सुयशका प्रथन—विस्तार करनेके कारण परम यशस्वी 'पृथु' नामक सम्राट् होगा। राजाओंमें यही सबसे पहला होगा ॥ ४ ॥ यह सुन्दर दाँतोंवाली एवं गुण और आभूषणोंको भी विभूषित करनेवाली सुन्दरी इन पृथुको ही अपना पति बनायेगी। इसका नाम अर्चि होगा ॥ ५ ॥ पृथुके रूपमें साक्षात् श्रीहरिके अंशने ही संसारकी रक्षाके लिये अवतार लिया है और अर्चिके रूपमें, निरन्तर भगवान‍्की सेवामें रहनेवाली उनकी नित्य सहचरी श्रीलक्ष्मीजी ही प्रकट हुई हैं ॥ ६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! उस समय ब्राह्मण लोग पृथुकी स्तुति करने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्वोंने गुणगान किया, सिद्धोंने पुष्पोंकी वर्षा की, अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ७ ॥ आकाशमें शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे। समस्त देवता, ऋषि और पितर अपने-अपने लोकोंसे वहाँ आये ॥ ८ ॥ जगद्गुरु ब्रह्माजी देवता और देवेश्वरोंके साथ पधारे। उन्होंने वेनकुमार पृथुके दाहिने हाथमें भगवान् विष्णुकी हस्तरेखाएँ और चरणोंमें कमलका चिह्न देखकर उन्हें श्रीहरिका ही अंश समझा; क्योंकि जिसके हाथमें दूसरी रेखाओंसे बिना कटा हुआ चक्रका चिह्न होता है, वह भगवान‍्का ही अंश होता है ॥ ९-१० ॥

वेदवादी ब्राह्मणोंने महाराज पृथुके अभिषेकका आयोजन किया। सब लोग उसकी सामग्री जुटानेमें लग गये ॥ ११ ॥ उस समय नदी, समुद्र, पर्वत, सर्प, गौ, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्य सब प्राणियोंने भी उन्हें तरह-तरहके उपहार भेंट किये ॥ १२ ॥ सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे अलङ्कृत महाराज पृथुका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। उस समय अनेकों अलङ्कारोंसे सजी हुई महारानी अर्चिके साथ वे दूसरे अग्निदेवके सदृश जान पड़ते थे ॥ १३ ॥

वीर विदुरजी ! उन्हें कुबेरने बड़ा ही सुन्दर सोनेका सिंहासन दिया तथा वरुणने चन्द्रमाके समान श्वेत और प्रकाशमय छत्र दिया, जिससे निरन्तर जलकी फुहियाँ झरती रहती थीं ॥ १४ ॥ वायुने दो चँवर, धर्मने कीर्तिमयी माला, इन्द्रने मनोहर मुकुट, यमने दमन करनेवाला दण्ड, ब्रह्माने वेदमय कवच, सरस्वतीने सुन्दर हार, विष्णुभगवान‍्ने सुदर्शनचक्र, विष्णुप्रिया लक्ष्मीजीने अविचल सम्पत्ति, रुद्रने दस चन्द्राकार चिह्नोंसे युक्त कोषवाली तलवार, अम्बिकाजीने सौ चन्द्राकार चिह्नोंवाली ढाल, चन्द्रमाने अमृतमय अश्व, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने सुन्दर रथ, अग्निने बकरे और गौके सींगोंका बना हुआ सुदृढ़ धनुष, सूर्यने तेजोमय बाण, पृथ्वीने चरणस्पर्शमात्रसे अभीष्ट स्थानपर पहुँचा देनेवाली योगमयी पादुकाएँ, आकाशके अभिमानी द्यौदेवताने नित्य नूतन पुष्पोंकी माला, आकाशविहारी सिद्ध-गन्धर्वादिने नाचने-गाने, बजाने और अन्तर्धान हो जानेकी शक्तियाँ, ऋषियोंने अमोघ आशीर्वाद, समुद्रने अपनेसे उत्पन्न हुआ शङ्ख, तथा सातों समुद्र, पर्वत और नदियोंने उनके रथके लिये बेरोक-टोक मार्ग उपहारमें दिये। इसके पश्चात् सूत, मागध और वन्दीजन उनकी स्तुति करनेके लिये उपस्थित हुए ॥ १५-२० ॥ तब उन स्तुति करनेवालोंका अभिप्राय समझकर वेनपुत्र परमप्रतापी महाराज पृथुने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा ॥ २१ ॥

पृथुने कहा—सौम्य सूत, मागध और वन्दीजन ! अभी तो लोकमें मेरा कोई भी गुण प्रकट नहीं हुआ। फिर तुम किन गुणोंको लेकर मेरी स्तुति करोगे ? मेरे विषयमें तुम्हारी वाणी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये। इसलिये मुझसे भिन्न किसी औरकी स्तुति करो ॥ २२ ॥ मृदुभाषियो ! कालान्तरमें जब मेरे अप्रकट गुण प्रकट हो जायँ, तब भरपेट अपनी मधुर वाणीसे मेरी स्तुति कर लेना। देखो, शिष्ट पुरुष पवित्रकीर्ति श्रीहरिके गुणानुवादके रहते हुए तुच्छ मनुष्योंकी स्तुति नहीं किया करते ॥ २३ ॥ महान् गुणोंको धारण करनेमें समर्थ होनेपर भी ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है, जो उनके न रहनेपर भी केवल सम्भावनामात्रसे स्तुति करनेवालोंद्वारा अपनी स्तुति करायेगा ? यदि यह विद्याभ्यास

करता तो इसमें अमुक-अमुक गुण हो जाते—इस प्रकारकी स्तुतिसे तो मनुष्यकी वञ्चना की जाती है। वह मन्दमति यह नहीं समझता कि इस प्रकार तो लोग उसका उपहास ही कर रहे हैं॥ २४॥ जिस प्रकार लज्जाशील उदार पुरुष अपने किसी निन्दित पराक्रमकी चर्चा होनी बुरी समझते हैं, उसी प्रकार लोकविख्यात समर्थ पुरुष अपनी स्तुतिको भी निन्दित मानते हैं॥ २५॥ सूतगण! अभी हम अपने श्रेष्ठ कर्मोंके द्वारा लोकमें अप्रसिद्ध ही हैं; हमने अबतक कोई भी ऐसा काम नहीं किया है, जिसकी प्रशंसा की जा सके। तब तुमलोगोंसे बच्चोंके समान अपनी कीर्तिका किस प्रकार गान करावें?॥ २६॥

सोलहवाँ अध्याय

वन्दीजनद्वारा महाराज पृथुकी स्तुति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाराज पृथुने जब इस प्रकार कहा, तब उनके वचनामृतका आस्वादन करके सूत आदि गायकलोग बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे मुनियोंकी प्रेरणासे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ १॥ 'आप साक्षात् देवप्रवर श्रीनारायण ही हैं, जो अपनी मायासे अवतीर्ण हुए हैं; हम आपकी महिमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। आपने जन्म तो राजा वेनके मृतक शरीरसे लिया है, किन्तु आपके पौरुषोंका वर्णन करनेमें साक्षात् ब्रह्मादिकी बुद्धि भी चकरा जाती है॥ २॥ तथापि आपके कथामृतके आस्वादनमें आदर-बुद्धि रखकर मुनियोंके उपदेशके अनुसार उन्हींकी प्रेरणासे हम आपके परम प्रशंसनीय कर्मोंका कुछ विस्तार करना चाहते हैं, आप साक्षात् श्रीहरिके कलावतार हैं और आपकी कीर्ति बड़ी उदार है॥ ३॥

'ये धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज पृथु लोकको धर्ममें प्रवृत्त करके धर्ममर्यादाकी रक्षा करेंगे तथा उसके विरोधियोंको दण्ड देंगे॥ ४॥ ये अकेले ही समय-समयपर प्रजाके पालन, पोषण और अनुरञ्जन आदि कार्यके अनुसार अपने शरीरमें भिन्न-भिन्न लोकपालोंकी मूर्तिको धारण करेंगे, तथा यज्ञ आदिके प्रचारद्वारा स्वर्गलोक और वृष्टिकी व्यवस्थाद्वारा भूलोक—दोनोंका ही हित साधन करेंगे॥ ५॥ ये सूर्यके समान अलौकिक महिमान्वित प्रतापवान् और समदर्शी होंगे। जिस प्रकार सूर्यदेवता आठ महीने तपते रहकर जल खींचते हैं और वर्षा ऋतुमें उसे उँडेल देते हैं, उसी प्रकार ये कर आदिके द्वारा कभी धन-सञ्चय करेंगे और कभी उसका प्रजाके हितके लिये व्यय कर डालेंगे॥ ६॥ ये बड़े दयालु होंगे। यदि कभी कोई दीन पुरुष इनके मस्तकपर पैर भी रख देगा, तो भी ये पृथ्वीके समान उसके इस अनुचित व्यवहारको सदा सहन करेंगे॥ ७॥ कभी वर्षा न होगी और प्रजाके प्राण सङ्कटमें पड़ जायँगे, तो ये राजवेषधारी श्रीहरि इन्द्रकी भाँति जल बरसाकर अनायास ही उसकी रक्षा कर लेंगे॥ ८॥ ये अपने अमृतमय मुखचन्द्रकी मनोहर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे सम्पूर्ण लोकोंको आनन्दमग्न कर देंगे॥ ९॥ इनकी गतिको कोई समझ न सकेगा, इनके कार्य भी गुप्त होंगे तथा उन्हें सम्पन्न करनेका ढंग भी बहुत गम्भीर होगा। इनका धन सदा सुरक्षित रहेगा। ये अनन्त माहात्म्य और गुणोंके एकमात्र आश्रय होंगे। इस प्रकार मनस्वी पृथु साक्षात् वरुणके ही समान होंगे॥ १०॥

'महाराज पृथु वेनरूप अरणिके मन्थनसे प्रकट हुए अग्निके समान हैं। शत्रुओंके लिये ये अत्यन्त दुर्धर्ष और दुःसह होंगे। ये उनके समीप रहनेपर भी, सेनादिसे सुरक्षित रहनेके कारण, बहुत दूर रहनेवाले-से होंगे। शत्रु कभी इन्हें हरा न सकेंगे॥ ११॥ जिस प्रकार प्राणियोंके भीतर रहनेवाला प्राणरूप सूत्रात्मा शरीरके भीतर-बाहरके समस्त व्यापारोंको देखते रहनेपर भी उदासीन रहता है, उसी प्रकार ये गुप्तचरोंके द्वारा प्राणियोंके गुप्त और प्रकट सभी प्रकारके व्यापार देखते हुए भी अपनी निन्दा और स्तुति आदिके प्रति उदासीनवत् रहेंगे॥ १२॥ ये धर्ममार्गमें स्थित रहकर

अपने शत्रुके पुत्रको भी, दण्डनीय न होनेपर, कोई दण्ड न देंगे और दण्डनीय होनेपर तो अपने पुत्रको भी दण्ड देंगे ॥ १३ ॥ भगवान् सूर्य मानसोत्तर पर्वत-तक जितने प्रदेशको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करते हैं, उस सम्पूर्ण क्षेत्रमें इनका निष्कण्टक राज्य रहेगा ॥ १४ ॥ ये अपने कार्योंसे सब लोकोंको सुख पहुँचा-वेंगे—उनका रञ्जन करेंगे; इससे उन मनोरञ्जनात्मक व्यापारोंके कारण प्रजा इन्हें 'राजा' कहेगी ॥ १५ ॥ ये बड़े दृढसङ्कल्प, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणभक्त, वृद्धोंकी सेवा करनेवाले, शरणागतवत्सल, सब प्राणियोंको मान देनेवाले और दीनोंपर दया करनेवाले होंगे ॥ १६ ॥ ये परस्त्रीमें माताके समान भक्ति रक्खेंगे, पत्नीको अपने आधे अङ्गके समान मानेंगे, प्रजापर पिताके समान प्रेम रक्खेंगे और ब्रह्मवादियोंके सेवक होंगे ॥ १७ ॥ दूसरे प्राणी इन्हें उतना ही चाहेंगे जितना अपने शरीरको। ये सुहृदोंके आनन्दको बढ़ायेंगे। ये सर्वदा वैराग्यवान् पुरुषोंसे विशेष प्रेम करेंगे और दुष्टोंको दण्डपाणि यमराजके समान सदा दण्ड देनेके लिये उद्यत रहेंगे ॥१८॥

'तीनों गुणोंके अधिष्ठाता और निर्विकार साक्षात् श्रीनारायणने ही इनके रूपमें अपने अंशसे अवतार लिया है, जिनमें पण्डितलोग अविद्यावश प्रतीत होनेवाले इस नानात्वको मिथ्या ही समझते हैं ॥१९॥ ये अद्वितीय वीर और एकच्छत्र सम्राट् होकर अकेले ही उदयाचलपर्यन्त समस्त भूमण्डलकी रक्षा करेंगे तथा अपने जयशील रथपर चढ़कर धनुष हाथमें लिये सूर्यके समान सर्वत्र प्रदक्षिणा करेंगे ॥ २० ॥ उस समय जहाँ-तहाँ सभी लोकपाल और पृथ्वीपाल इन्हें भेंटें समर्पण करेंगे, उनकी स्त्रियाँ इनका गुणगान करेंगी और इन आदिराजको साक्षात् श्रीहरि ही समझेंगी ॥ २१ ॥ ये प्रजापालक राजाधिराज होकर प्रजाके जीवननिर्वाहके लिये गोरूप-धारिणी पृथ्वीका दोहन करेंगे और इन्द्रके समान अपने धनुषके कोनोंसे बात-की-बातमें पर्वतोंको तोड़-फोड़कर पृथ्वीको समतल कर देंगे ॥ २२ ॥ रणभूमिमें कोई भी इनका वेग नहीं सह सकेगा। जिस समय ये जंगलमें पूँछ उठाकर विचरते हुए सिंहके समान अपने 'आजगव' धनुषका टंकार करते हुए भूमण्डलमें विचरेंगे, उस समय सभी दुष्टजन इधर-उधर छिप जायँगे ॥२३॥ ये सरस्वतीके उद्गमस्थानपर सौ अश्वमेध-यज्ञ करेंगे। तब अन्तिम यज्ञानुष्ठानके समय इन्द्र इनके घोड़ेको हरकर ले जायँगे ॥ २४ ॥ अपने महलके बगीचेमें इनकी एक बार भगवान् सनत्कुमारसे भेंट होगी। अकेले उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करके ये उस निर्मल ज्ञानको प्राप्त करेंगे, जिससे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ २५ ॥ इस प्रकार जब इनके पराक्रम जनताके सामने आ जायँगे, तब ये परमपराक्रमी महाराज जहाँ-तहाँ अपने चरित्रकी ही चर्चा सुनेंगे ॥ २६ ॥ इनकी आज्ञाका विरोध कोई भी न कर सकेगा तथा ये सारी दिशाओंको जीतकर और अपने तेजसे प्रजाके क्लेशरूप काँटेको निकालकर सम्पूर्ण भूमण्डलके शासक होंगे। उस समय देवता और असुर भी इनके विपुल प्रभावका वर्णन करेंगे' ॥ २७ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज पृथुका पृथ्वीपर कुपित होना और पृथ्वीके द्वारा उनकी स्तुति करना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार जब वन्दीजनने महाराज पृथुके गुण और कर्मोंका बखान करके उनकी प्रशंसा की, तब उन्होंने भी उनकी बड़ाई करके तथा उन्हें मनचाही वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया ॥१॥ उन्होंने ब्राह्मणादि चारों वर्णों, सेवकों, मन्त्रियों, पुरोहितों, पुरवासियों, देशवासियों, भिन्न-भिन्न व्यवसायियों तथा अन्यान्य आज्ञानुवर्तियोंका भी सत्कार किया ॥ २ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! पृथ्वी तो अनेक रूप धारण कर सकती है, उसने गौका रूप ही क्यों धारण किया? और जब महाराज पृथुने उसे दुहा, तब बछड़ा कौन बना? और दुहनेका पात्र क्या हुआ? ॥ ३ ॥ पृथ्वीदेवी तो पहले स्वभावसे ही ऊँची-नीची थी। उसे उन्होंने समतल किस प्रकार किया और इन्द्र उनके यज्ञ-सम्बन्धी घोड़ेको क्यों हर ले गये? ॥४॥ ब्रह्मज्ञानियोंमें

श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमारजीसे ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करके वे राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुए? ॥५॥ पृथुरूपसे सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने ही अवतार ग्रहण किया था; अतः पुण्य-कीर्ति श्रीहरिके उस पृथु-अवतारसे सम्बन्ध रखनेवाले जो और भी पवित्र चरित्र हों, वे सभी आप मुझसे कहिये। मैं आपका और श्रीकृष्णचन्द्रका बड़ा अनुरक्त भक्त हूँ ॥६-७॥

श्रीसूतजी कहते हैं—जब विदुरजीने भगवान् वासुदेवकी कथा कहनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा की, तब श्रीमैत्रेयजी प्रसन्नचित्तसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! ब्राह्मणोंने महाराज पृथुका राज्याभिषेक करके उन्हें प्रजाका रक्षक उद्घोषित किया। इन दिनों पृथ्वी अन्नहीन हो गयी थी, इसलिये भूखके कारण प्रजाजनोंके शरीर सूखकर काँटे हो गये थे। उन्होंने अपने स्वामी पृथुके पास आकर कहा ॥९॥ 'राजन्! जिस प्रकार कोटरमें सुलगती हुई आगसे पेड़ जल जाता है, उसी प्रकार हम पेटकी भीषण ज्वालासे जले जा रहे हैं। आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हैं और हमारे अन्नदाता प्रभु बनाये गये हैं; इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं ॥ १० ॥ आप समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले हैं, आप ही हमारी जीविका-के भी स्वामी हैं। अतः राजराजेश्वर! आप हम क्षुधा-पीड़ितोंको शीघ्र ही अन्न देनेका प्रबन्ध कीजिये; ऐसा न हो कि अन्न मिलनेसे पहले ही हमारा अन्त हो जाय' ॥ ११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कुरुवर! प्रजाका करुण-क्रन्दन सुनकर महाराज पृथु बहुत देरतक विचार करते रहे। अन्तमें उन्हें अन्नाभावका कारण मालूम हो गया ॥ १२ ॥ 'पृथ्वीने स्वयं ही अन्न एवं औषधादिको अपने भीतर छिपा लिया है' अपनी बुद्धिसे इस बातका निश्चय करके उन्होंने अपना धनुष उठाया और त्रिपुरविनाशक भगवान् शङ्करके समान अत्यन्त क्रोधित होकर पृथ्वीको लक्ष्य बनाकर बाण चढ़ाया ॥ १३ ॥ उन्हें शस्त्र उठाये देख पृथ्वी काँप उठी और जिस प्रकार व्याधके पीछा करनेपर हरिणी भागती है, उसी प्रकार वह डरकर गौका रूप धारण करके भागने लगी ॥१४॥

यह देखकर महाराज पृथुकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे जहाँ-जहाँ पृथ्वी गयी, वहाँ-वहाँ धनुषपर बाण चढ़ाये उसके पीछे लगे रहे ॥ १५ ॥ दिशा, विदिशा, स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जहाँ-जहाँ भी वह दौड़कर जाती, वहीं उसे महाराज पृथु हथियार उठाये अपने पीछे दिखायी देते ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मनुष्यको मृत्युसे कोई नहीं बचा सकता, उसी प्रकार उसे त्रिलोकीमें वेनपुत्र पृथुसे बचानेवाला कोई भी न मिला। तब वह अत्यन्त भयभीत होकर दुःखित चित्तसे पीछेकी ओर लौटी ॥ १७ ॥ और महाभाग पृथुजीसे कहने लगी—'धर्मके तत्त्वको जाननेवाले शरणागतवत्सल राजन्! आप तो सभी प्राणियोंकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं, आप मेरी भी रक्षा कीजिये ॥ १८ ॥ मैं अत्यन्त दीन और निरपराध हूँ, आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं? इसके सिवा आप तो धर्मज्ञ माने जाते हैं; फिर मुझ स्त्रीका वध आप कैसे कर सकेंगे? ॥ १९ ॥ स्त्रियाँ कोई अपराध करें, तो साधारण जीव भी उनपर हाथ नहीं उठाते; फिर आप-जैसे करुणामय और दीनवत्सल तो ऐसा कर ही कैसे सकते हैं? ॥ २० ॥ मैं तो एक सुदृढ नौकाके समान हूँ, सारा जगत् मेरे ही आधार-पर स्थित है। मुझे तोड़कर आप अपनेको और अपनी प्रजाको जलके ऊपर कैसे रक्खेंगे?' ॥ २१ ॥

महाराज पृथुने कहा—पृथ्वी! तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाली है। तू यज्ञमें देवतारूपसे भाग तो लेती है, किन्तु उसके बदलेमें हमें अन्न नहीं देती; इसलिये आज मैं तुझे मार डालूँगा ॥२२॥ तू जो प्रतिदिन हरी-हरी घास खा जाती है और अपने थनका दूध नहीं देती—ऐसी दुष्टता करनेपर तुझे दण्ड देना अनुचित नहीं कहा जा सकता ॥ २३ ॥ तू नासमझ है, तूने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके उत्पन्न किये हुए अन्नादिके बीजोंको अपनेमें लीन कर लिया है और अब मेरी भी परवा न करके उन्हें अपने गर्भसे निकालती नहीं ॥ २४ ॥ अब मैं अपने बाणोंसे तुझे छिन्न-भिन्न कर तेरे मेदेसे इन क्षुधातुर और दीन प्रजाजनोंका करुण-क्रन्दन शान्त करूँगा ॥ २५ ॥ जो दुष्ट अपना ही पोषण करनेवाला तथा अन्य प्राणियोंके प्रति निर्दय हो—वह पुरुष,

स्त्री अथवा नपुंसक कोई भी हो—उसका मारना राजाओंके लिये न मारनेके ही समान है ॥ २६ ॥ तू बड़ी गर्वीली और मदोन्मत्ता है; इस समय मायासे ही यह गौका रूप बनाये हुए है। मैं बाणोंसे तेरे टुकड़े-टुकड़े करके अपने योगबलसे प्रजाको धारण करूँगा।२७।

इस समय महाराज पृथु कालकी भाँति क्रोधमयी मूर्ति धारण किये हुए थे। उनके ये शब्द सुनकर धरती काँपने लगी और उसने अत्यन्त विनीतभावसे हाथ जोड़कर कहा ॥ २८ ॥

पृथ्वीने कहा—आप साक्षात् परमपुरुष हैं तथा अपनी मायासे अनेक प्रकारके शरीर धारणकर गुणमय जान पड़ते हैं; वास्तवमें आत्मानुभवके द्वारा आप अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवसम्बन्धी अभिमान और उससे उत्पन्न हुए राग-द्वेषादिसे सर्वथा रहित हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ २९ ॥ आप सम्पूर्ण जगत्के विधाता हैं; आपने ही यह त्रिगुणात्मक सृष्टि रची है और मुझे समस्त जीवोंका आश्रय बनाया है। आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं। प्रभो! जब आप ही अस्त्र-शस्त्र लेकर मुझे मारनेको तैयार हो गये, तब मैं और किसकी शरणमें जाऊँ? ॥ ३० ॥ कल्पके आरम्भमें आपने अपने आश्रित रहनेवाली अनिर्वचनीया मायासे ही इस चराचर जगत्की रचना की थी और उस मायाके ही द्वारा आप इसका पालन करनेके लिये तैयार हुए हैं। आप धर्मपरायण हैं; फिर भी मुझ गोरूपधारिणीको किस प्रकार मारना चाहते हैं? ॥ ३१ ॥ आप एक होकर भी मायावश अनेक रूप जान पड़ते हैं तथा आपने स्वयं ब्रह्माको रचकर उनसे विश्वकी रचना करायी है। आप साक्षात् सर्वेश्वर हैं, आपकी लीलाओंको अजितेन्द्रिय लोग कैसे जान सकते हैं? उनकी बुद्धि तो आपकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त हो रही है ॥ ३२ ॥ आप ही पञ्चभूत, इन्द्रिय, उनके अधिष्ठातृ देवता, बुद्धि और अहङ्काररूप अपनी शक्तियोंके द्वारा क्रमशः जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये समय-समयपर आपकी शक्तियोंका आविर्भाव-तिरोभाव हुआ करता है। आप साक्षात् परमपुरुष और जगद्विधाता हैं, आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३३ ॥ अजन्मा प्रभो! आप ही अपने रचे हुए भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप जगत्की स्थितिके लिये आदिवराहरूप होकर मुझे रसातलसे जलके बाहर लाये थे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार एक बार तो मेरा उद्धार करके आपने 'धराधर' नाम पाया था; आज वही आप वीरमूर्तिसे जलके ऊपर नौकाके समान स्थित मेरे ही आश्रय रहनेवाली प्रजाकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे पैने-पैने बाण चढ़ाकर दूध न देनेके अपराधमें मुझे मारना चाहते हैं ॥ ३५ ॥ इस त्रिगुणात्मक सृष्टिकी रचना करनेवाली आपकी मायासे मेरे-जैसे साधारण जीवोंके चित्त मोहग्रस्त हो रहे हैं। मुझ-जैसे लोग तो आपके भक्तोंकी लीलाओंका भी आशय नहीं समझ सकते, फिर आपकी किसी क्रियाका उद्देश्य न समझें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। अतः जो इन्द्रियसंयमादिके द्वारा वीरोचित यज्ञका विस्तार करते हैं, ऐसे आपके भक्तोंको भी नमस्कार है ॥ ३६ ॥

अठारहवाँ अध्याय

पृथ्वी-दोहन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस समय महाराज पृथुके होठ क्रोधसे काँप रहे थे। उनकी इस प्रकार स्तुति कर पृथ्वीने अपने हृदयको विचारपूर्वक समाहित किया और डरते-डरते उनसे कहा ॥ १ ॥ 'प्रभो! आप अपना क्रोध शान्त कीजिये और मैं जो प्रार्थना करती हूँ, उसे ध्यान देकर सुनिये। बुद्धिमान् पुरुष भ्रमरके समान सभी जगहसे सार ग्रहण कर लेते हैं ॥ २ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने इस लोक और परलोकमें मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये कृषि, अग्निहोत्र आदि बहुत-से उपाय निकाले और काममें लिये हैं ॥ ३ ॥ उन प्राचीन ऋषियोंके बताये हुए उपायोंका इस समय भी जो पुरुष श्रद्धापूर्वक भलीभाँति आचरण करता है, वह सुगमतासे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥ परन्तु जो तर्कशील पुरुष उनका

अनादर करके अपने मनः-कल्पित उपायोंका आश्रय लेता है, उसके सभी उपाय और प्रयत्न बार-बार निष्फल होते रहते हैं ॥ ५ ॥ राजन् ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने जिन धान्य आदिको उत्पन्न किया था, मैंने देखा कि यम-नियमादि व्रतोंका पालन न करनेवाले दुराचारी-लोग ही उन्हें खाये जा रहे हैं ॥ ६ ॥ लोकरक्षक ! आप राजालोगोंने मेरा पालन और आदर करना छोड़ दिया; इसलिये सब लोग चोरोंके समान हो गये हैं। इसीसे यज्ञके लिये ओषधियोंको मैंने अपनेमें छिपा लिया ।७। अब अधिक समय हो जानेसे अवश्य ही वे धान्य मेरे उदरमें जीर्ण हो गये हैं; आप उन्हें पूर्वाचार्योंके बतलाये हुए उपायसे निकाल लीजिये ॥८॥ लोकपालक वीर ! यदि आपको समस्त प्राणियोंके अभीष्ट एवं बलकी वृद्धि करनेवाले अन्नकी आवश्यकता है तो आप मेरे योग्य बछड़ा, दोहनपात्र और दुहनेवालेकी व्यवस्था कीजिये; मैं उस बछड़ेके स्नेहसे पिन्हाकर दूधके रूपमें आपको सभी अभीष्ट वस्तुएँ दे दूँगी ॥९-१०॥ राजन् ! एक बात और है; आपको मुझे समतल करना होगा, जिससे कि वर्षाऋतु बीत जानेपर भी मेरे ऊपर इन्द्रका बरसाया हुआ जल सर्वत्र बना रहे—मेरे भीतरकी आर्द्रता सूखने न पावे। यह आपके लिये बहुत मङ्गलकारक होगा' ॥ ११ ॥

पृथ्वीके कहे हुए ये प्रिय और हितकारी वचन स्वीकार कर, महाराज पृथुने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बना अपने हाथमें ही समस्त धान्योंको दुह लिया ॥१२॥ पृथुके समान अन्य विज्ञजन भी सब जगहसे सार ग्रहण कर लेते हैं, अतः उन्होंने भी पृथुजीके द्वारा वशमें की हुई वसुन्धरासे अपनी-अपनी अभीष्ट वस्तुएँ दुह लीं ॥ १३ ॥ ऋषियोंने बृहस्पतिजीको बछड़ा बनाकर इन्द्रिय (वाणी, मन और श्रोत्र) रूप पात्रमें पृथ्वीदेवी-से वेदरूप पवित्र दूध दुहा ॥ १४ ॥ देवताओंने इन्द्रको बछड़ेके रूपमें कल्पना कर सुवर्णमय पात्रमें अमृत, वीर्य (मनोबल), ओज (इन्द्रियबल) और शारीरिक बलरूप दूध दुहा ॥ १५ ॥ दैत्य और दानवोंने असुर-श्रेष्ठ प्रह्लादजीको वत्स बनाकर लोहेके पात्रमें मदिरा और आसव (ताड़ी आदि) रूप दूध दुहा ॥ १६ ॥ गन्धर्व और अप्सराओंने विश्वावसुको बछड़ा बनाकर कमलरूप पात्रमें संगीतमाधुर्य और सौन्दर्यरूप दूध दुहा ॥ १७ ॥ श्राद्धके अधिष्ठाता महाभाग पितृगणने अर्यमा नामके पित्रीश्वरको वत्स बनाया तथा मिट्टीके कच्चे पात्रमें श्रद्धापूर्वक कव्य (पितरोंको अर्पित किया जानेवाला अन्न) रूप दूध दुहा ॥ १८ ॥ फिर कपिलदेवजीको बछड़ा बनाकर आकाशरूप पात्रमें सिद्धोंने अणिमादि अष्टसिद्धि तथा विद्याधरोंने आकाश-गमन आदि विद्याओंको दुहा ॥ १९ ॥ किम्पुरुषादि अन्य मायावियोंने मयदानवको बछड़ा बनाया तथा अन्तर्धान होना, विचित्र रूप धारण कर लेना आदि सङ्कल्पमयी मायाओंको दुग्धरूपसे दुहा ॥ २० ॥

इसी प्रकार यक्ष-राक्षस तथा भूत-पिशाचादि मांसा-हारियोंने भूतनाथ रुद्रको बछड़ा बनाकर कपालरूप पात्रमें रुधिरासवरूप दूध दुहा ॥ २१ ॥ बिना फन-वाले साँप, फनवाले साँप, नाग और बिच्छू आदि विषैले जन्तुओंने तक्षकको बछड़ा बनाकर मुखरूप पात्रमें विषरूप दूध दुहा ॥ २२ ॥ पशुओंने भगवान् रुद्रके वाहन बैलको वत्स बनाकर वनरूप पात्रमें तृण-रूप दूध दुहा। बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले मांसभक्षी जीवोंने सिंहरूप बछड़ेके द्वारा अपने शरीररूप पात्रमें कच्चा मांसरूप दूध दुहा, तथा गरुड़जीको वत्स बनाकर पक्षियोंने कीट-पतङ्गादि चर और फलादि अचर पदार्थों-को दुग्धरूपसे दुहा ॥ २३-२४ ॥ वृक्षोंने वटको वत्स बनाकर अनेक प्रकारका रसरूप दूध दुहा और पर्वतों-ने हिमालयरूप बछड़ेके द्वारा अपने शिखररूप पात्रोंमें अनेक प्रकारकी धातुओंको दुहा ॥ २५ ॥ पृथ्वी तो सभी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है और इस समय वह पृथुजीके अधीन थी। अतः उससे सभीने अपनी-अपनी जातिके मुखियाको बछड़ा बनाकर अलग-अलग पात्रोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके पदार्थोंको दूधके रूपमें दुह लिया ॥ २६ ॥

कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! इस प्रकार पृथु आदि सभी अन्न-भोजियोंने भिन्न-भिन्न दोहन-पात्र और वत्सोंके द्वारा अपने-अपने विभिन्न अन्नरूप दूध पृथ्वीसे दुहे ॥ २७ ॥ इससे महाराज पृथु ऐसे प्रसन्न हुए कि सर्वकामदुहा

पृथ्वीके प्रति उनका पुत्रीके समान स्नेह हो गया और उसे उन्होंने अपनी कन्याके रूपमें स्वीकार कर लिया ॥ २८ ॥ फिर राजाधिराज पृथुने अपने धनुष-की नोकसे पर्वतोंको फोड़कर इस सारे भूमण्डलको प्राय: समतल कर दिया ॥ २९ ॥ वे पिताके समान अपनी प्रजाके पालन-पोषणकी व्यवस्थामें लगे हुए थे। उन्होंने इस समतल भूमिमें प्रजावर्गके लिये जहाँ-तहाँ यथायोग्य निवासस्थानोंका विभाग किया ॥ ३० ॥ अनेकों गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, अहीरोंकी बस्ती, पशुओंके रहनेके स्थान, छावनियाँ, खानें, किसानोंके गाँव और पहाड़ोंकी तलहटीके गाँव बसाये ॥ ३१ ॥ महाराज पृथुसे पहले इस पृथ्वीतलपर पुर-ग्रामादिका विभाग नहीं था; सब लोग अपने-अपने सुभीतेके अनुसार बेखटके जहाँ-तहाँ बस जाते थे ॥ ३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

महाराज पृथुके सौ अश्वमेध यज्ञ

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! महाराज मनुके ब्रह्मावर्त क्षेत्रमें, जहाँ सरस्वती नदी पूर्वमुखी होकर बहती है, राजा पृथुने सौ अश्वमेध-यज्ञोंकी दीक्षा ली ॥ १ ॥ यह देखकर भगवान् इन्द्रको विचार हुआ कि इस प्रकार तो पृथुके कर्म मेरे कर्मोंकी अपेक्षा भी बढ़ जायँगे। इसलिये वे उनके यज्ञमहोत्सवको सहन न कर सके ॥ २ ॥ महाराज पृथुके यज्ञमें सबके अन्तरात्मा सर्वलोकपूज्य जगदीश्वर भगवान् हरिने यज्ञेश्वररूपसे साक्षात् दर्शन दिया था ॥ ३ ॥ उनके साथ ब्रह्मा, रुद्र तथा अपने-अपने अनुचरोंके सहित लोकपालगण भी पधारे थे। उस समय गन्धर्व, मुनि और अप्सराएँ प्रभुकी कीर्ति गा रहे थे ॥ ४ ॥ सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्ष, सुनन्द-नन्दादि भगवान्‌के प्रमुख पार्षद और जो सर्वदा भगवान्‌की सेवाके लिये उत्सुक रहते हैं—वे कपिल, नारद, दत्तात्रेय एवं सनकादि योगेश्वर भी उनके साथ आये थे ॥ ५-६ ॥ भारत! उस यज्ञमें यज्ञसामग्रियोंको देनेवाली भूमिने कामधेनुरूप होकर यजमानकी सारी कामनाओंको पूर्ण किया था ॥ ७ ॥ नदियाँ दाख और ईख आदि सब प्रकारके रसोंको बहा लाती थीं तथा जिनसे मधु चूता रहता था—ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष दूध, दही, अन्न और घृत आदि तरह-तरहकी सामग्रियाँ समर्पण करते थे ॥ ८ ॥ समुद्र बहुत-सी रत्नराशियाँ, पर्वत भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य—चार प्रकारके अन्न तथा लोक-पालोंके सहित सम्पूर्ण लोक तरह-तरहके उपहार उन्हें समर्पण करते थे ॥ ९ ॥

महाराज पृथु तो एकमात्र श्रीहरिको ही अपना प्रभु मानते थे। उनकी कृपासे उस यज्ञानुष्ठानमें उनका बड़ा उत्कर्ष हुआ। किन्तु यह बात देवराज इन्द्रको सहन न हुई और उन्होंने उसमें विघ्न डालनेकी भी चेष्टा की ॥ १० ॥ जिस समय महाराज पृथु अन्तिम यज्ञद्वारा भगवान् यज्ञपतिकी आराधना कर रहे थे, इन्द्रने ईर्ष्यावश गुप्तरूपसे उनके यज्ञका घोड़ा हर लिया ॥ ११ ॥ इन्द्रने अपनी रक्षाके लिये कवचरूपसे पाखण्डवेष धारण कर लिया था, जो अधर्ममें धर्मका भ्रम उत्पन्न करने-वाला है—जिसका आश्रय लेकर पापी पुरुष भी धर्मात्मा-सा जान पड़ता है ॥ १२ ॥ इस वेषमें वे घोड़ेको लिये बड़ी शीघ्रतासे आकाशमार्गसे जा रहे थे कि उनपर भगवान् अत्रिकी दृष्टि पड़ गयी। उनके कहनेसे महाराज पृथुका महारथी पुत्र इन्द्रको मारनेके लिये उनके पीछे दौड़ा और बड़े क्रोधसे बोला, 'अरे खड़ा रह! खड़ा रह' ॥ १३ ॥ इन्द्र सिरपर जटाजूट और शरीर-में भस्म धारण किये हुए थे। उनका ऐसा वेष देखकर पृथुकुमारने उन्हें मूर्तिमान् धर्म समझा, इसलिये उनपर बाण नहीं छोड़ा ॥ १४ ॥ जब वह इन्द्रपर वार किये बिना ही लौट आया, तब महर्षि अत्रिने पुन: उसे इन्द्रको मारनेके लिये आज्ञा दी—'वत्स! इस देवताधम इन्द्रने तुम्हारे यज्ञमें विघ्न डाला है, तुम इसे मार डालो' ॥ १५ ॥

अत्रि मुनिके इस प्रकार उत्साहित करनेपर पृथुकुमार क्रोधमें भर गया। इन्द्र बड़ी तेजीसे आकाशमें जा रहे थे। उनके पीछे वह इस प्रकार दौड़ा, जैसे रावणके पीछे

जटायु ॥ १६ ॥ स्वर्गपति इन्द्र उसे पीछे आते देख, उस वेष और घोड़ेको छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गये और वह वीर अपना यज्ञपशु लेकर पिताकी यज्ञशालामें लौट आया ॥ १७ ॥ शक्तिशाली विदुरजी ! उसके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर महर्षियोंने उसका नाम विजिताश्व रक्खा ॥ १८ ॥

यज्ञपशुको चषाल और यूपमें* बाँध दिया गया था । शक्तिशाली इन्द्रने घोर अन्धकार फैला दिया और उसीमें छिपकर वे फिर उस घोड़ेको उसकी सोनेकी जंजीरसमेत ले गये ॥ १९ ॥ अत्रि मुनिने फिर उन्हें आकाशमें तेजीसे जाते दिखा दिया, किन्तु उनके पास कपाल और खट्वाङ्ग देखकर पृथुपुत्रने उनके मार्गमें कोई बाधा न डाली ॥ २० ॥ तब अत्रिने राजकुमारको फिर उकसाया और उसने गुस्सेमें भरकर इन्द्रको लक्ष्य बनाकर अपना बाण चढ़ाया । यह देखते ही देवराज उस वेष और घोड़ेको छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २१ ॥ वीर विजिताश्व अपना घोड़ा लेकर पिताकी यज्ञशालामें लौट आया । तबसे इन्द्रके उस निन्दित वेषको मन्दबुद्धि पुरुषोंने ग्रहण कर लिया ॥ २२ ॥ इन्द्रने अश्वहरणकी इच्छासे जो-जो रूप धारण किये थे, वे पापके खण्ड होनेके कारण पाखण्ड कहलाये । यहाँ 'खण्ड' शब्द चिह्नका वाचक है ॥ २३ ॥ इस प्रकार पृथुके यज्ञका विध्वंस करनेके लिये यज्ञपशुको चुराते समय इन्द्रने जिन्हें कई बार ग्रहण करके त्यागा था, उन 'नग्न' 'रक्ताम्बर' तथा कापालिक आदि पाखण्डपूर्ण आचारोंमें मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः मोहित हो जाती है; क्योंकि ये नास्तिकमत देखनेमें सुन्दर हैं और बड़ी-बड़ी युक्तियोंसे अपने पक्षका समर्थन करते हैं । वास्तवमें ये उपधर्म मात्र हैं । लोग भ्रमवश धर्म मानकर इनमें आसक्त हो जाते हैं ॥ २४-२५ ॥

इन्द्रकी इस कुचालका पता लगनेपर परम पराक्रमी महाराज पृथुको बड़ा क्रोध हुआ । उन्होंने अपना धनुष उठाकर उसपर बाण चढ़ाया ॥ २६ ॥ उस समय क्रोधावेशके कारण उनकी ओर देखा नहीं जाता था । जब ऋत्विजोंने देखा कि असह्य पराक्रमी महाराज पृथु इन्द्रका वध करनेको तैयार हैं, तब उन्हें रोकते हुए कहा, 'राजन् ! आप तो बड़े बुद्धिमान् हैं, यज्ञदीक्षा ले लेनेपर शास्त्रविहित यज्ञपशुको छोड़कर और किसीका वध करना उचित नहीं है ॥ २७ ॥ इस यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवाला आपका शत्रु इन्द्र तो आपके सुयशसे ही ईर्ष्यावश निस्तेज हो रहा है । हम अमोघ आवाहन-मन्त्रोंद्वारा उसे यहीं बुला लेते हैं और बलात्कारसे अग्निमें हवन किये देते हैं' ॥ २८ ॥

विदुरजी ! यजमानसे इस प्रकार सलाह करके उसके याजकोंने क्रोधपूर्वक इन्द्रका आवाहन किया । वे स्रुवाद्वारा आहुति डालना ही चाहते थे कि ब्रह्माजीने वहाँ आकर उन्हें रोक दिया ॥ २९ ॥ वे बोले, 'याजको ! तुम्हें इन्द्रका वध नहीं करना चाहिये, यह यज्ञसंज्ञक इन्द्र तो भगवान्‌की ही मूर्ति है । तुम यज्ञद्वारा जिन देवताओंकी आराधना कर रहे हो, वे इन्द्रके ही तो अङ्ग हैं और उसे तुम यज्ञद्वारा मारना चाहते हो ॥ ३० ॥ पृथुके इस यज्ञानुष्ठानमें विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने जो पाखण्ड फैलाया है, वह धर्मका उच्छेद करनेवाला है । इस बातपर तुम ध्यान दो, अब उससे अधिक विरोध मत करो; नहीं तो वह और भी पाखण्ड-मार्गोंका प्रचार करेगा ॥ ३१ ॥ अच्छा, परमयशस्वी महाराज पृथुके निन्यानवे ही यज्ञ रहने दो ।' फिर राजर्षि पृथुसे कहा, 'राजन् ! आप तो मोक्षधर्मके जाननेवाले हैं; अतः अब आपको इन यज्ञानुष्ठानोंकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३२ ॥ आपका मङ्गल हो । आप और इन्द्र—दोनों ही पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीहरिके शरीर हैं; इसलिये अपने ही स्वरूपभूत इन्द्रके प्रति आपको क्रोध नहीं करना चाहिये ॥ ३३ ॥ आपका यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त नहीं हुआ—इसके लिये आप चिन्ता न करें । हमारी बात आप आदरपूर्वक स्वीकार कीजिये । देखिये, जो मनुष्य विधाताके बिगाड़े हुए कामको बनानेका विचार करता है, उसका मन अत्यन्त क्रोधमें भरकर भयङ्कर मोहमें फँस जाता है ॥ ३४ ॥ बस, इस यज्ञको बंद कीजिये । इसीके कारण इन्द्रके चलाये हुए पाखण्डोंसे धर्मका नाश हो रहा है; क्योंकि देवताओंमें बड़ा दुराग्रह होता है ॥ ३५ ॥ जरा देखिये

* यज्ञमण्डपमें यज्ञपशुको बाँधनेके लिये जो खंभा होता है, उसे 'यूप' कहते हैं और यूपके आगे रक्खे हुए वलयाकार काष्ठको 'चषाल' कहते हैं ।

तो, जो इन्द्र घोड़ेको चुराकर आपके यज्ञमें विघ्न डाल रहा था, उसीके रचे हुए इन मनोहर पाखण्डोंकी ओर सारी जनता खिंचती चली जा रही है ॥ ३६ ॥ आप साक्षात् विष्णुके अंश हैं। वेनके दुराचारसे धर्म लुप्त हो रहा था, उस समयोचित धर्मकी रक्षाके लिये ही आपने उसके शरीरसे अवतार लिया है ॥ ३७ ॥ अतः प्रजापालक पृथुजी! अपने इस अवतारका उद्देश्य विचारकर आप भृगु आदि विश्वरचयिता मुनीश्वरोंका सङ्कल्प पूर्ण कीजिये। यह प्रचण्ड पाखण्ड-पथरूप इन्द्रकी माया अधर्मकी जननी है। आप इसे नष्ट कर डालिये' ॥ ३८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजी-के इस प्रकार समझानेपर प्रबल पराक्रमी महाराज पृथुने यज्ञका आग्रह छोड़ दिया और इन्द्रके साथ प्रीतिपूर्वक सन्धि भी कर ली ॥ ३९ ॥ इसके पश्चात् जब वे यज्ञान्त स्नान करके निवृत्त हुए, तब उनके यज्ञोंसे तृप्त हुए देवताओंने उन्हें अभीष्ट वर दिये ॥ ४० ॥ आदिराज पृथुने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दक्षिणाएँ दीं तथा ब्राह्मणोंने उनके सत्कारसे सन्तुष्ट होकर उन्हें अमोघ आशीर्वाद दिये ॥ ४१ ॥ वे कहने लगे, 'महाबाहो! आपके बुलानेसे जो पितर, देवता, ऋषि और मनुष्यादि आये थे, उन सभीका आपने दान-मानसे खूब सत्कार किया' ॥ ४२ ॥

बीसवाँ अध्याय

महाराज पृथुकी यज्ञशालामें श्रीविष्णुभगवान्‌का प्रादुर्भाव

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! महाराज पृथुके निन्यानवे यज्ञोंसे यज्ञभोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुको भी बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने इन्द्रके सहित वहाँ उपस्थित होकर उनसे कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजन्! (इन्द्रने) तुम्हारे सौ अश्वमेध पूरे करनेके सङ्कल्पमें विघ्न डाला है। अब ये तुमसे क्षमा चाहते हैं, तुम इन्हें क्षमा कर दो ॥ २ ॥ नरदेव! जो श्रेष्ठ मानव साधु और सद्बुद्धिसम्पन्न होते हैं, वे दूसरे जीवोंसे द्रोह नहीं करते; क्योंकि यह शरीर ही आत्मा नहीं है ॥ ३ ॥ यदि तुम-जैसे लोग भी मेरी मायासे मोहित हो जायँ, तो समझना चाहिये कि बहुत दिनोंतक की हुई ज्ञानीजनोंकी सेवासे केवल श्रम ही हाथ लगा ॥ ४ ॥ ज्ञानवान् पुरुष इस शरीरको अविद्या, वासना और कर्मोंका ही पुतला समझकर इसमें आसक्त नहीं होता ॥ ५ ॥ इस प्रकार जो इस शरीरमें ही आसक्त नहीं है, वह विवेकी पुरुष इससे उत्पन्न हुए घर, पुत्र और धन आदिमें भी किस प्रकार ममता रख सकता है ॥ ६ ॥

यह आत्मा एक, शुद्ध, स्वयंप्रकाश, निर्गुण, गुणोंका आश्रयस्थान, सर्वव्यापक, आवरणशून्य, सबका साक्षी एवं अन्य आत्मासे रहित है; अतएव शरीरसे भिन्न है ॥ ७ ॥ जो पुरुष इस देहस्थित आत्माको इस प्रकार शरीरसे भिन्न जानता है, वह प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हुए भी उसके गुणोंसे लिप्त नहीं होता; क्योंकि उसकी स्थिति मुझ परमात्मामें रहती है ॥ ८ ॥ राजन्! जो पुरुष किसी प्रकारकी कामना न रखकर अपने वर्णाश्रमके धर्मोंद्वारा नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका चित्त धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है ॥ ९ ॥ चित्त शुद्ध होनेपर उसका विषयोंसे सम्बन्ध नहीं रहता तथा उसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। फिर तो वह मेरी समतारूप स्थितिको प्राप्त हो जाता है। यही परम शान्ति, ब्रह्म अथवा कैवल्य है ॥ १० ॥ जो पुरुष यह जानता है कि शरीर, ज्ञान, क्रिया और मनका साक्षी होनेपर भी कूटस्थ आत्मा उनसे निर्लिप्त ही रहता है, वह कल्याणमय मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

राजन्! गुणप्रवाहरूप आवागमन तो भूत, इन्द्रिय, इन्द्रियाभिमानी देवता और चिदाभास—इन सबकी समष्टिरूप परिच्छिन्न लिङ्गशरीरका ही हुआ करता है; इसका सर्वसाक्षी आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझमें दृढ़ अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुष सम्पत्ति और विपत्ति प्राप्त होनेपर कभी हर्ष-शोकादि विकारोंके वशीभूत नहीं होते ॥ १२ ॥ इसलिये वीरवर! तुम उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषोंमें समानभाव रखकर

सुख-दुःखको भी एक-सा समझो तथा मन और इन्द्रियों-को जीतकर मेरे ही द्वारा जुटाये हुए मन्त्री आदि समस्त राजकीय पुरुषोंकी सहायतासे सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करो ॥ १३ ॥ राजाका कल्याण प्रजापालनमें ही है। इससे उसे परलोकमें प्रजाके पुण्यका छठा भाग मिलता है। इसके विपरीत जो राजा प्रजाकी रक्षा तो नहीं करता; किन्तु उससे कर वसूल करता जाता है, उसका सारा पुण्य तो प्रजा छीन लेती है और बदलेमें उसे प्रजाके पापका भागी होना पड़ता है ॥ १४ ॥ ऐसा विचारकर यदि तुम श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी सम्मति और पूर्व-परम्परासे प्राप्त हुए धर्मको ही मुख्यतः अपनालो और कहीं भी आसक्त न होकर इस पृथ्वीका न्यायपूर्वक पालन करते रहो तो सब लोग तुमसे प्रेम करेंगे और कुछ ही दिनोंमें तुम्हें घर बैठे ही सनकादि सिद्धोंके दर्शन होंगे ॥ १५ ॥ राजन्! तुम्हारे गुणोंने और स्वभावने मुझको वशमें कर लिया है। अतः तुम्हें जो इच्छा हो, मुझसे वर माँग लो। उन क्षमा आदि गुणोंसे रहित यज्ञ, तप अथवा योगके द्वारा मुझको पाना सरल नहीं है; मैं तो उन्हींके हृदयमें रहता हूँ जिनके चित्तमें समता रहती है ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! सर्वलोकगुरु श्रीहरिके इस प्रकार कहनेपर जगद्विजयी महाराज पृथुने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की ॥ १७ ॥ देवराज इन्द्र अपने कर्मसे लज्जित होकर उनके चरणोंपर गिरना ही चाहते थे कि राजाने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और मनोमालिन्य निकाल दिया ॥ १८ ॥ फिर महाराज पृथुने विश्वात्मा भक्तवत्सल भगवान्का पूजन किया और क्षण-क्षणमें उमड़ते हुए भक्तिभावमें निमग्न होकर प्रभुके चरणकमल पकड़ लिये ॥ १९ ॥ श्रीहरि वहाँसे जाना चाहते थे; किन्तु पृथुके प्रति जो उनका वात्सल्यभाव था, उसने उन्हें रोक लिया। वे अपने कमलदलके समान नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह गये, वहाँसे जा न सके ॥२०॥ आदिराज महाराज पृथु भी नेत्रोंमें जल भर आनेके कारण न तो भगवान्-का दर्शन ही कर सके और न तो कण्ठ गद्गद हो जानेसे कुछ बोल ही सके। उन्हें हृदयसे आलिङ्गन कर पकड़े रहे और हाथ जोड़े ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये ॥ २१ ॥ प्रभु अपने चरणकमलोंसे पृथ्वीको स्पर्श किये खड़े थे; उनका कराग्रभाग गरुडजीके ऊँचे कंधेपर रक्खा हुआ था। महाराज पृथु नेत्रोंके आँसू पोंछकर अतृप्त दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ २२ ॥

महाराज पृथु बोले—मोक्षपति प्रभो! आप वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको भी वर देनेमें समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष आपसे देहाभिमानियोंके भोगने योग्य विषयोंको कैसे माँग सकता है? वे तो नारकी जीवोंको भी मिलते ही हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयों-को आपसे नहीं माँगता ॥ २३ ॥ मुझे तो उस मोक्ष-पदकी भी इच्छा नहीं है जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकला हुआ आपके चरणकमलोंका मकरन्द नहीं है—जहाँ आपकी कीर्ति-कथा सुननेका सुख नहीं मिलता। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीलागुणोंको सुनता ही रहूँ ॥ २४ ॥ पुण्यकीर्ति प्रभो! आपके चरणकमल-मकरन्दरूपी अमृत-कणों-को लेकर महापुरुषोंके मुखसे जो वायु निकलती है, उसीमें इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्वको भूले हुए हम कुयोगियोंको पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है। अतएव हमें दूसरे वरोंकी कोई आवश्यकता नहीं है ॥ २५ ॥ उत्तम कीर्तिवाले प्रभो! सत्सङ्गमें आपके मङ्गलमय सुयशको दैववश एक बार भी सुन लेनेपर कोई पशु-बुद्धि पुरुष भले ही तृप्त हो जाय; गुणग्राही उसे कैसे छोड़ सकता है? सब प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये स्वयं लक्ष्मीजी भी आपके सुयशको सुनना चाहती हैं ॥ २६ ॥ अब लक्ष्मीजीके समान मैं भी अत्यन्त उत्सुकतासे आप सर्वगुणधाम पुरुषोत्तमकी सेवा ही करना चाहता हूँ। किन्तु ऐसा न हो कि एक ही पतिकी सेवा प्राप्त करनेकी होड़ होनेके कारण आपके चरणोंमें ही मनको एकाग्र करनेवाले हम दोनोंमें कलह छिड़ जाय ॥ २७ ॥ जगदीश्वर! जगज्जननी लक्ष्मीजीके हृदयमें मेरे प्रति विरोधभाव होनेकी संभावना तो है ही; क्योंकि जिस आपके सेवाकार्यमें उनका अनुराग है,

उसीके लिये मैं भी ललायित हूँ। किन्तु आप दीनोंपर दया करते हैं, उनके तुच्छ कर्मोंको भी बहुत करके मानते हैं। इसलिये मुझे आशा है कि हमारे झगड़ेमें भी आप मेरा ही पक्ष लेंगे। आप तो अपने स्वरूपमें ही रमण करते हैं; आपको भला, लक्ष्मीजीसे भी क्या लेना है ॥ २८ ॥ इसीसे निष्काम महात्मा ज्ञान हो जानेके बाद भी आपका भजन करते हैं। आपमें मायाके कार्य अहङ्कारादिका सर्वथा अभाव है। भगवन्! मुझे तो, आपके चरणकमलोंका निरन्तर चिन्तन करनेके सिवा सत्पुरुषोंका कोई और प्रयोजन ही नहीं जान पड़ता ॥२९॥ मैं भी बिना किसी इच्छाके आपका भजन करता हूँ, आपने जो मुझसे कहा कि 'वर माँग' सो आपकी इस वाणीको तो मैं संसारको मोहमें डालनेवाली ही मानता हूँ। यही क्या, आपकी वेदरूपा वाणीने भी तो जगत्को बाँध रक्खा है। यदि उस वेदवाणीरूप रस्सीसे लोग बँधे न होते, तो वे मोहवश सकाम कर्म क्यों करते? ॥३०॥ प्रभो! आपकी मायासे ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप आपसे विमुख होकर अज्ञानवश अन्य स्त्री-पुत्रादिकी इच्छा करता है। फिर भी जिस प्रकार पिता पुत्रकी प्रार्थनाकी अपेक्षा न रखकर अपने-आप ही पुत्रका कल्याण करता है, उसी प्रकार आप भी हमारी इच्छाकी अपेक्षा न करके हमारे हितके लिये स्वयं ही प्रयत्न करें ॥ ३१ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—आदिराज पृथुके इस प्रकार स्तुति करनेपर सर्वसाक्षी श्रीहरिने उनसे कहा, 'राजन्! तुम्हारी मुझमें भक्ति हो। बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा चित्त इस प्रकार मुझमें लगा हुआ है। ऐसा होनेपर तो पुरुष सहजमें ही मेरी उस मायाको पार कर लेता है, जिसको छोड़ना या जिसके बन्धनसे छूटना अत्यन्त कठिन है। अब तुम सावधानीसे मेरी आज्ञाका पालन करते रहो। प्रजापालक नरेश! जो पुरुष मेरी आज्ञाका पालन करता है, उसका सर्वत्र मङ्गल होता है' ॥ ३२-३३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार भगवान्ने राजर्षि पृथुके सारगर्भित वचनोंका आदर किया। फिर पृथुने उनकी पूजा की और प्रभु उनपर सब प्रकार कृपा कर वहाँसे चलनेको तैयार हुए ॥३४॥ महाराज पृथुने वहाँ जो देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य और पक्षी आदि अनेक प्रकारके प्राणी एवं भगवान्के पार्षद आये थे, उन सभीका भगवद्बुद्धिसे भक्तिपूर्वक वाणी और धनके द्वारा हाथ जोड़कर पूजन किया। इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३५-३६ ॥ भगवान् अच्युत भी राजा पृथु एवं उनके पुरोहितोंका चित्त चुराते हुए अपने धामको सिधारे ॥३७॥ तदनन्तर अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हुए अव्यक्तस्वरूप देवाधिदेव भगवान्को नमस्कार करके राजा पृथु भी अपनी राजधानीमें चले आये ॥ ३८ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

महाराज पृथुका अपनी प्रजाको उपदेश

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! उस समय महाराज पृथुका नगर सर्वत्र मोतियोंकी लड़ियों, फूलोंकी मालाओं, रंग-बिरंगे वस्त्रों, सोनेके दरवाजों और अत्यन्त सुगन्धित धूपोंसे सुशोभित था ॥ १ ॥ उसकी गलियाँ, चौक और सड़कें चन्दन और अरगजेके जलसे सींच दी गयी थीं तथा उसे पुष्प, अक्षत, फल, यवाङ्कुर, खील और दीपक आदि माङ्गलिक द्रव्योंसे सजाया गया था ॥२॥ वह ठौर-ठौरपर रक्खे हुए फल-फूलके गुच्छोंसे युक्त केलेके खंभों और सुपारीके पौधोंसे बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था तथा सब ओर आम आदि वृक्षोंके नवीन पत्तोंकी वंदनवारोंसे विभूषित था ॥ ३ ॥ जब महाराजने नगरमें प्रवेश किया, तब दीपक, उपहार और अनेक प्रकारकी माङ्गलिक सामग्री लिये हुए प्रजाजनोंने तथा मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित सुन्दरी कन्याओंने उनकी अगवानी की ॥ ४ ॥ शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे, ऋत्विजगण वेदध्वनि

करने लगे, वन्दीजनोंने स्तुतिगान आरम्भ कर दिया। यह सब देख और सुनकर भी उन्हें किसी प्रकारका अहङ्कार नहीं हुआ। इस प्रकार वीरवर पृथुने राजमहल-में प्रवेश किया ॥ ५ ॥ मार्गमें जहाँ-तहाँ पुरवासी और देशवासियोंने उनका अभिनन्दन किया। परम यशस्वी महाराजने भी उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अभीष्ट वर देकर सन्तुष्ट किया ॥ ६ ॥ महाराज पृथु महापुरुष और सभीके पूजनीय थे। उन्होंने इसी प्रकारके अनेकों उदार कर्म करते हुए पृथ्वीका शासन किया और अन्तमें अपने विपुल यशका विस्तार कर भगवान्‌का परमपद प्राप्त किया ॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर शौनकजी! इस प्रकार भगवान् मैत्रेयके मुखसे आदिराज पृथुका अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न और गुणवानोंद्वारा प्रशंसित विस्तृत सुयश सुनकर परमभागवत विदुरजीने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा ॥ ८ ॥

विदुरजी बोले—ब्रह्मन्! ब्राह्मणोंने पृथुका अभिषेक किया। समस्त देवताओंने उन्हें उपहार दिये। उन्होंने अपनी भुजाओंमें वैष्णव तेजको धारण किया और उससे पृथ्वीका दोहन किया ॥ ९ ॥ उनके उस पराक्रम-के उच्छिष्टरूप विषयभोगोंसे ही आज भी सम्पूर्ण राजा तथा लोकपालोंके सहित समस्त लोक इच्छानुसार जीवन-निर्वाह करते हैं। भला, ऐसा कौन समझदार होगा जो उनकी पवित्र कीर्ति सुनना न चाहेगा। अतः अभी आप मुझे उनके कुछ और भी पवित्र चरित्र सुनाइये ॥ १० ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—साधुश्रेष्ठ विदुरजी! महाराज पृथु गङ्गा और यमुनाके मध्यवर्ती देशमें निवास कर अपने पुण्यकर्मोंके क्षयकी इच्छासे प्रारब्धवश प्राप्त हुए भोगोंको ही भोगते थे ॥ ११ ॥ ब्राह्मणवंश और भगवान्‌के सम्बन्धी विष्णुभक्तोंको छोड़कर उनका सातों द्वीपोंके सभी पुरुषोंपर अखण्ड एवं अबाध शासन था ॥ १२ ॥ एक बार उन्होंने एक महासत्रकी दीक्षा ली; उस समय वहाँ देवताओं, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंका बहुत बड़ा समाज एकत्र हुआ ॥ १३ ॥ उस समाजमें महाराज पृथुने उन पूजनीय अतिथियोंका यथायोग्य सत्कार किया और फिर उस सभामें, नक्षत्रमण्डलमें चन्द्रमाके समान खड़े हो गये ॥ १४ ॥ उनका शरीर ऊँचा, भुजाएँ भरी और विशाल, रंग गोरा, नेत्र कमलके समान सुन्दर और अरुणवर्ण, नासिका सुघड़, मुख मनोहर, स्वरूप सौम्य, कंधे ऊँचे और मुसकानसे युक्त दन्तपंक्ति सुन्दर थी ॥ १५ ॥ उनकी छाती चौड़ी, कमरका पिछला भाग स्थूल और उदर पीपलके पत्तेके समान सुडौल तथा बल पड़े हुए होनेसे और भी सुन्दर जान पड़ता था। नाभि भँवरके समान गम्भीर थी, शरीर तेजस्वी था, जङ्घाएँ सुवर्णके समान देदीप्यमान थीं तथा पैरोंके पंजे उभरे हुए थे ॥ १६ ॥ उनके बाल बारीक, घुँघराले, काले और चिकने थे; गरदन शङ्खके समान उतार-चढ़ाव-वाली तथा रेखाओंसे युक्त थी और वे उत्तम बहुमूल्य धोती पहने और वैसी ही चादर ओढ़े थे ॥ १७ ॥ दीक्षाके नियमानुसार उन्होंने समस्त आभूषण उतार दिये थे; इसीसे उनके शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा अपने स्वाभाविक रूपमें स्पष्ट झलक रही थी। वे शरीर-पर कृष्णमृगका चर्म और हाथोंमें कुश धारण किये हुए थे। इससे उनके शरीरकी कान्ति और भी बढ़ गयी थी। वे अपने सारे नित्यकृत्य यथाविधि सम्पन्न कर चुके थे ॥ १८ ॥ राजा पृथुने मानो सारी सभाको हर्षसे सराबोर करते हुए अपने शीतल एवं स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे चारों ओर देखा और फिर अपना भाषण प्रारम्भ किया ॥ १९ ॥ उनका भाषण अत्यन्त सुन्दर, विचित्र पदोंसे युक्त, स्पष्ट, मधुर, गम्भीर एवं निश्शंक था। मानो उस समय वे सबका उपकार करनेके लिये अपने अनुभवका ही अनुवाद कर रहे हों ॥ २० ॥

राजा पृथुने कहा—सज्जनो! आपका कल्याण हो। आप महानुभाव, जो यहाँ पधारे हैं, मेरी प्रार्थना सुनें—जिज्ञासु पुरुषोंको चाहिये कि संत-समाजमें अपने निश्चयका निवेदन करें ॥ २१ ॥ इस लोकमें मुझे प्रजाजनोंका शासन, उनकी रक्षा, उनकी आजीविकाका प्रबन्ध तथा उन्हें अलग-अलग अपनी मर्यादामें रखनेके लिये राजा बनाया गया है ॥ २२ ॥ अतः इनका यथावत् पालन करनेसे मुझे उन्हीं मनोरथ पूर्ण करनेवाले लोकोंकी प्राप्ति होनी चाहिये, जो वेदवादी मुनियोंके मतानुसार सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी श्रीहरिके प्रसन्न होनेपर

मिलते हैं ॥ २३ ॥ जो राजा प्रजाको धर्ममार्गकी शिक्षा न देकर केवल उससे कर वसूल करनेमें लगा रहता है, वह केवल प्रजाके पापका ही भागी होता है और अपने ऐश्वर्यसे हाथ धो बैठता है ॥ २४ ॥ अतः प्रिय प्रजाजन ! अपने इस राजाका परलोकमें हित करनेके लिये आपलोग परस्पर दोषदृष्टि छोड़कर हृदयसे भगवान्‌को याद रखते हुए अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते रहिये; क्योंकि आपका स्वार्थ भी इसीमें है और इस प्रकार मुझपर भी आपका बड़ा अनुग्रह होगा ॥ २५ ॥ विशुद्धचित्त देवता, पितर और महर्षिगण ! आप भी मेरी इस प्रार्थनाका अनुमोदन कीजिये; क्योंकि कोई भी कर्म हो, मरनेके अनन्तर उसके कर्ता, उपदेष्टा और समर्थकको उसका समान फल मिलता है ॥ २६ ॥ माननीय सज्जनो ! किन्हीं श्रेष्ठ महानुभावोंके मतमें तो कर्मोंका फल देनेवाले भगवान् यज्ञपति ही हैं; क्योंकि इहलोक और परलोक दोनों ही जगह कोई-कोई शरीर बड़े तेजोमय देखे जाते हैं ॥ २७ ॥ मनु, उत्तानपाद, महीपति ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत, हमारे दादा अङ्ग तथा ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, बलि और इसी कोटिके अन्यान्य महानुभावोंके मतमें तो धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चतुर्वर्ग तथा स्वर्ग और अपवर्गके स्वाधीन नियामक, कर्मफलदातारूपसे भगवान् गदाधरकी आवश्यकता है ही। इस विषयमें तो केवल मृत्युके दौहित्र वेन आदि कुछ शोचनीय और धर्मविमूढ लोगोंका ही मतभेद है। अतः उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं हो सकता ॥ २८-३० ॥

जिनके चरणकमलोंकी सेवाके लिये निरन्तर बढ़नेवाली अभिलाषा उन्हींके चरणनखसे निकली हुई गङ्गाजीके समान, संसारतापसे संतप्त जीवोंके समस्त जन्मोंके सञ्चित मनोमलको तत्काल नष्ट कर देती है, जिनके चरणतलका आश्रय लेनेवाला पुरुष सब प्रकारके मानसिक दोषोंको धो डालता तथा वैराग्य और तत्त्वसाक्षात्काररूप बल पाकर फिर इस दुःखमय संसारचक्रमें नहीं पड़ता और जिनके चरणकमल सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं—उन प्रभुको आपलोग अपनी-अपनी आजीविकाके उपयोगी वर्णाश्रमोचित अध्यापनादि कर्मों तथा ध्यान-स्तुति-पूजादि मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक क्रियाओंके द्वारा भजें। हृदयमें किसी प्रकारका कपट न रक्खें तथा यह निश्चय रक्खें कि हमें अपने-अपने अधिकारानुसार इसका फल अवश्य प्राप्त होगा ॥ ३१-३३ ॥

भगवान् स्वरूपतः विशुद्ध विज्ञानघन और समस्त विशेषणोंसे रहित हैं; किन्तु इस कर्ममार्गमें जौ-चावल आदि विविध द्रव्य, शुक्लादि गुण, अवघात (कूटना) आदि क्रिया एवं मन्त्रोंके द्वारा और अर्थ, आशय (संकल्प), लिङ्ग (पदार्थ-शक्ति) तथा ज्योतिष्टोम आदि नामोंसे सम्पन्न होनेवाले, अनेक विशेषणयुक्त यज्ञके रूपमें प्रकाशित होते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार एक ही अग्नि भिन्न-भिन्न काष्ठोंमें उन्हींके आकारादिके अनुरूप भासती है, उसी प्रकार वे सर्वव्यापक प्रभु परमानन्दस्वरूप होते हुए भी प्रकृति, काल, वासना और अदृष्टसे उत्पन्न हुए शरीरमें विषयाकार बनी हुई बुद्धिमें स्थित होकर उन यज्ञ-यागादि क्रियाओंके फलरूपसे अनेक प्रकारके जान पड़ते हैं ॥ ३५ ॥ अहो ! इस पृथ्वीतलपर मेरे जो प्रजाजन यज्ञभोक्ताओंके अधीश्वर सर्वगुरु श्रीहरिका एकनिष्ठभावसे अपने-अपने धर्मोंके द्वारा निरन्तर पूजन करते हैं, वे मुझपर बड़ी कृपा करते हैं ॥ ३६ ॥ सहनशीलता, तपस्या और ज्ञान—इन विशिष्ट विभूतियोंके कारण वैष्णव और ब्राह्मणोंके वंश स्वभावतः ही उज्ज्वल होते हैं। उनपर राजकुलका तेज धन, ऐश्वर्य आदि समृद्धियोंके कारण अपना प्रभाव न डाले ॥ ३७ ॥ ब्रह्मादि समस्त महापुरुषोंमें अग्रगण्य, ब्राह्मणभक्त, पुराणपुरुष श्रीहरिने भी निरन्तर इन्हींके चरणोंकी वन्दना करके अविचल लक्ष्मी और संसारको पवित्र करनेवाली कीर्ति प्राप्त की है ॥ ३८ ॥ आपलोग भगवान्‌के लोकसंग्रहरूप धर्मका पालन करनेवाले हैं तथा सर्वान्तर्यामी स्वयंप्रकाश ब्राह्मणप्रिय श्रीहरि विप्रवंशकी सेवा करनेसे ही परम सन्तुष्ट होते हैं, अतः आप सभीको सब प्रकारसे विनयपूर्वक ब्राह्मणकुलकी सेवा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ इनकी नित्य सेवा करनेसे शीघ्र ही चित्त शुद्ध हो जानेके कारण मनुष्य स्वयं ही (ज्ञान और अभ्यास आदिके बिना ही) परम शान्तिरूप मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अतः लोकमें इन ब्राह्मणोंसे बढ़कर दूसरा कौन है जो हविष्यभोजी देवताओंका मुख हो सके ? ॥ ४० ॥ उपनिषदोंके ज्ञानपरक वचन एकमात्र जिनमें ही गतार्थ होते हैं, वे भगवान् अनन्त

इन्द्रादि यज्ञीय देवताओंके नामसे तत्त्वज्ञानियोंद्वारा ब्राह्मणोंके मुखमें श्रद्धापूर्वक हवन किये हुए पदार्थको जैसे चावसे ग्रहण करते हैं, वैसे चेतनाशून्य अग्निमें होमे हुए द्रव्यको नहीं ग्रहण करते ॥ ४१ ॥ सभ्यगण! जिस प्रकार स्वच्छ दर्पणमें प्रतिबिम्बका भान होता है—उसी प्रकार जिससे इस सम्पूर्ण प्रपञ्चका ठीक-ठीक ज्ञान होता है, उस नित्य, शुद्ध और सनातन ब्रह्म (वेद)को जो परमार्थ-तत्त्वकी उपलब्धिके लिये श्रद्धा, तप, मंगलमय आचरण, स्वाध्यायविरोधी वार्तालापके त्याग तथा संयम और समाधिके अभ्यासद्वारा धारण करते हैं, उन ब्राह्मणोंके चरणकमलोंकी धूलिको मैं आयुपर्यन्त अपने मुकुटपर धारण करूँ; क्योंकि उसे सर्वदा सिरपर चढ़ाते रहनेसे मनुष्यके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण गुण उसकी सेवा करने लगते हैं ॥ ४२-४३ ॥ उस गुणवान्, शीलसम्पन्न, कृतज्ञ और गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले पुरुषके पास सारी सम्पदाएँ अपने-आप आ जाती हैं। अत: मेरी तो यही अभिलाषा है कि ब्राह्मण-कुल, गोवंश और भक्तोंके सहित श्रीभगवान् मुझपर सदा प्रसन्न रहें ॥ ४४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाराज पृथुका यह भाषण सुनकर देवता, पितर और ब्राह्मण आदि सभी साधुजन बड़े प्रसन्न हुए और 'साधु! साधु!' यों कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ उन्होंने कहा, 'पुत्रके द्वारा पिता पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेता है' यह श्रुति यथार्थ है; पापी वेन ब्राह्मणोंके शापसे मारा गया था; फिर भी इनके पुण्यबलसे उसका नरकसे निस्तार हो गया ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार हिरण्यकशिपु भी भगवान्‌की निन्दा करनेके कारण नरकोंमें गिरनेवाला ही था कि अपने पुत्र प्रह्लादके प्रभावसे उन्हें पार कर गया ॥ ४७ ॥ वीरवर पृथुजी! आप तो पृथ्वीके पिता ही हैं और सब लोकोंके एकमात्र स्वामी श्रीहरिमें भी आपकी ऐसी अविचल भक्ति है; इसलिये आप अनन्त वर्षोंतक जीवित रहें ॥ ४८ ॥ आपका सुयश बड़ा पवित्र है; आप उदारकीर्ति ब्रह्मण्यदेव श्रीहरिकी कथाओंका प्रचार करते हैं। हमारा बड़ा सौभाग्य है; आज आपको अपने स्वामीके रूपमें पाकर हम अपनेको भगवान्‌के ही राज्यमें समझते हैं ॥ ४९ ॥ स्वामिन्! अपने आश्रितोंको इस प्रकारका श्रेष्ठ उपदेश देना आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि अपनी प्रजाके ऊपर प्रेम रखना तो करुणामय महापुरुषोंका स्वभाव ही होता है ॥ ५० ॥ हमलोग प्रारब्धवश विवेकहीन होकर संसारारण्यमें भटक रहे थे; सो प्रभो! आज आपने हमें इस अज्ञानान्धकारके पार पहुँचा दिया ॥ ५१ ॥ आप शुद्ध सत्त्वमय परमपुरुष हैं, जो ब्राह्मणजातिमें प्रविष्ट होकर क्षत्रियोंकी और क्षत्रियजातिमें प्रविष्ट होकर ब्राह्मणोंकी तथा दोनों जातियोंमें प्रतिष्ठित होकर सारे जगत्‌की रक्षा करते हैं। हमारा आपको नमस्कार है ॥ ५२ ॥

बाईसवाँ अध्याय

महाराज पृथुको सनकादिका उपदेश

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—जिस समय प्रजाजन परमपराक्रमी पृथ्वीपाल पृथुकी इस प्रकार प्रार्थना कर रहे थे, उसी समय वहाँ सूर्यके समान तेजस्वी चार मुनीश्वर आये ॥ १ ॥ राजा और उनके अनुचरोंने देखा तथा पहचान लिया कि वे सिद्धेश्वर अपनी दिव्य कान्तिसे सम्पूर्ण लोकोंको पापनिर्मुक्त करते हुए आकाशसे उतरकर आ रहे हैं ॥ २ ॥ राजाके प्राण सनकादिकोंका दर्शन करते ही, जैसे विषयी जीव विषयोंकी ओर दौड़ता है, उनकी ओर चल पड़े—मानो उन्हें रोकनेके लिये ही वे अपने सदस्यों और अनुयायियोंके साथ एकाएक उठकर खड़े हो गये ॥ ३ ॥ जब वे मुनिगण अर्घ्य स्वीकारकर आसनपर विराज गये, तब शिष्टाग्रणी पृथुने उनके गौरवसे प्रभावित हो विनयवश गरदन झुकाये हुए उनकी विधिवत् पूजा की ॥ ४ ॥ फिर उनके चरणोदकको अपने सिरके बालोंपर छिड़का। इस प्रकार शिष्टजनोचित आचारका आदर तथा पालन

करके उन्होंने यही दिखाया कि सभी सत्पुरुषोंको ऐसा व्यवहार करना चाहिये ॥ ५ ॥ सनकादि मुनीश्वर भगवान् शङ्करके भी अग्रज हैं। सोनेके सिंहासनपर वे ऐसे सुशोभित हुए, जैसे अपने-अपने स्थानोंपर अग्नि देवता। महाराज पृथुने बड़ी श्रद्धा और संयमके साथ प्रेमपूर्वक उनसे कहा ॥ ६ ॥

पृथुजीने कहा—मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं; मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है जिससे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ जिसपर ब्राह्मण अथवा अनुचरोंके सहित श्रीशङ्कर या विष्णुभगवान् प्रसन्न हों, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है ॥८॥ इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते; इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारीलोग आपको देख नहीं पाते ॥ ९ ॥ जिनके घरोंमें आप-जैसे पूज्य पुरुष उनके जल, तृण, पृथ्वी, गृहस्वामी अथवा सेवकादि किसी अन्य पदार्थको स्वीकार कर लेते हैं, वे गृहस्थ धनहीन होनेपर भी धन्य हैं ॥ १० ॥ जिन घरोंमें कभी भगवद्भक्तोंके परमपवित्र चरणोदकके छींटे नहीं पड़े, वे सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियोंसे भरे होनेपर भी ऐसे वृक्षोंके समान हैं कि जिनपर साँप रहते हैं ॥ ११ ॥ मुनीश्वरो! आपका स्वागत है। आपलोग तो बाल्यावस्थासे ही मुमुक्षुओंके मार्गका अनुसरण करते हुए एकाग्र चित्तसे ब्रह्मचर्यादि महान् व्रतोंका बड़ी श्रद्धापूर्वक आचरण कर रहे हैं ॥ १२ ॥ स्वामियो! हमलोग अपने कर्मोंके वशीभूत होकर विपत्तियोंके क्षेत्ररूप इस संसारमें पड़े हुए केवल इन्द्रियसम्बन्धी भोगोंको ही परम पुरुषार्थ मान रहे हैं; सो क्या हमारे निस्तारका भी कोई उपाय है? ॥ १३ ॥ आपलोगोंसे कुशल-प्रश्न करना उचित नहीं है, क्योंकि आप निरन्तर आत्मामें ही रमण करते हैं। आपमें यह कुशल है और यह अकुशल है—इस प्रकारकी वृत्तियाँ कभी होतीं ही नहीं ॥ १४ ॥ आप संसारानलसे सन्तप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं; इसलिये आपमें विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है? ॥ १५ ॥ यह निश्चय है कि जो आत्मवान् (धीर) पुरुषोंमें 'आत्मा' रूपसे प्रकाशित होते हैं और उपासकोंके हृदयमें अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले हैं, वे अजन्मा भगवान् नारायण ही अपने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आप-जैसे सिद्ध पुरुषोंके रूपमें इस पृथ्वीपर विचरा करते हैं ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—राजा पृथुके ये युक्तियुक्त, गम्भीर, परिमित और मधुर वचन सुनकर श्रीसनत्कुमारजी बड़े प्रसन्न हुए और कुछ मुसकराते हुए कहने लगे ॥ १७ ॥

श्रीसनत्कुमारजीने कहा—महाराज! आपने सब कुछ जानते हुए भी समस्त प्राणियोंके कल्याणकी दृष्टिसे बड़ी अच्छी बात पूछी है। सच है, साधुपुरुषोंकी बुद्धि ऐसी ही हुआ करती है ॥ १८ ॥ सत्पुरुषोंका समागम श्रोता और वक्ता दोनोंको ही अभिमत होता है, क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर सभीका कल्याण करते हैं ॥ १९ ॥ राजन्! श्रीमधुसूदन भगवान्‌के चरणकमलोंके गुणानुवादमें अवश्य ही आपकी अविचल प्रीति है। हर किसीको इसका प्राप्त होना बहुत कठिन है और प्राप्त हो जानेपर यह हृदयके भीतर रहनेवाले उस वासनारूप मलको सर्वथा नष्ट कर देती है, जो और किसी उपायसे जल्दी नहीं छूटता ॥ २० ॥ शास्त्र जीवोंके कल्याणके लिये भलीभाँति विचार करनेवाले हैं; उनमें आत्मासे भिन्न देहादिके प्रति वैराग्य तथा अपने आत्मस्वरूप निर्गुण ब्रह्ममें सुदृढ़ अनुराग होना—यही कल्याणका साधन निश्चित किया गया है ॥ २१ ॥ शास्त्रोंका यह भी कहना है कि गुरु और शास्त्रके वचनोंमें विश्वास रखनेसे, भागवतधर्मोंका आचरण करनेसे, तत्त्वजिज्ञासासे, ज्ञानयोगकी निष्ठासे, योगेश्वर श्रीहरिकी उपासनासे, नित्यप्रति पुण्यकीर्ति श्रीभगवान्‌की पावन कथाओंको सुननेसे, जो लोग धन और इन्द्रियोंके भोगोंमें ही रत हैं उनकी गोष्ठीमें प्रेम न रखनेसे, उन्हें प्रिय लगनेवाले पदार्थोंका आसक्तिपूर्वक संग्रह न करनेसे, भगवद्गुणामृतका पान करनेके सिवा अन्य समय आत्मामें ही सन्तुष्ट रहते हुए एकान्त-

सेवनमें प्रेम रखनेसे, किसी भी जीवको कष्ट न देनेसे, निवृत्तिनिष्ठासे, आत्महितका अनुसन्धान करते रहनेसे, श्रीहरिके पवित्र चरित्ररूप श्रेष्ठ अमृतका आस्वादन करनेसे, निष्कामभावसे यम-नियमोंका पालन करनेसे, कभी किसीकी निन्दा न करनेसे, योगक्षेमके लिये प्रयत्न न करनेसे, शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करनेसे, भक्तजनोंके कानोंको सुख देनेवाले श्रीहरिके गुणोंका बार-बार वर्णन करनेसे और बढ़ते हुए भक्तिभावसे मनुष्यका कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण जड प्रपञ्चसे वैराग्य हो जाता है और आत्मस्वरूप निर्गुण परब्रह्ममें अनायास ही उसकी प्रीति हो जाती है ॥ २२—२५ ॥ परब्रह्ममें सुदृढ़ प्रीति हो जानेपर पुरुष सद्गुरुकी शरण लेता है; फिर ज्ञान और वैराग्यके प्रबल वेगके कारण वासनाशून्य हुए अपने अविद्यादि पाँच प्रकारके क्लेशोंसे युक्त अहङ्कारात्मक अपने लिङ्गशरीरको वह उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे अग्नि लकड़ीसे प्रकट होकर फिर उसीको जला डालती है ॥ २६ ॥ इस प्रकार लिङ्गदेहका नाश हो जानेपर वह उसके कर्तृत्वादि सभी गुणोंसे मुक्त हो जाता है। फिर तो जैसे स्वप्नावस्थामें तरह-तरहके पदार्थ देखनेपर भी उससे जग पड़नेपर उनमेंसे कोई चीज दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार वह पुरुष शरीरके बाहर दिखायी देनेवाले घट-पटादि और भीतर अनुभव होनेवाले सुख-दुःखादिको भी नहीं देखता। इस स्थितिके प्राप्त होनेसे पहले ये पदार्थ ही जीवात्मा और परमात्माके बीचमें रहकर उनका भेद कर रहे थे ॥ २७ ॥

जबतक अन्तःकरणरूप उपाधि रहती है, तभीतक पुरुषको जीवात्मा, इन्द्रियोंके विषय और इन दोनोंका सम्बन्ध करानेवाले अहङ्कारका अनुभव होता है; इसके बाद नहीं ॥ २८ ॥ बाह्य जगत्में भी देखा जाता है कि जल, दर्पण आदि निमित्तोंके रहनेपर ही अपने बिम्ब और प्रतिबिम्बका भेद दिखायी देता है, अन्य समय नहीं ॥ २९ ॥ जो लोग विषयचिन्तनमें लगे रहते हैं, उनकी इन्द्रियाँ विषयोंमें फँस जाती हैं तथा मनको भी उन्हींकी ओर खींच ले जाती हैं। फिर तो जैसे जलाशयके तीरपर उगे हुए कुशादि अपनी जड़ोंसे उसका जल खींचते रहते हैं, उसी प्रकार वह इन्द्रियासक्त मन बुद्धिकी विचारशक्तिको क्रमशः हर लेता है ॥ ३० ॥ विचारशक्तिके नष्ट हो जानेपर पूर्वापरकी स्मृति जाती रहती है और स्मृतिका नाश हो जानेपर ज्ञान नहीं रहता। इस ज्ञानके नाशको ही पण्डितजन 'अपने-आप अपना नाश करना' कहते हैं ॥ ३१ ॥ जिसके उद्देश्यसे अन्य सब पदार्थोंमें प्रियताका बोध होता है—उस आत्माका अपनेद्वारा ही नाश होनेसे जो स्वार्थहानि होती है, उससे बढ़कर लोकमें जीवकी और कोई हानि नहीं है ॥ ३२ ॥

धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है ॥३३॥ इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बड़ी बाधक है ॥३४॥ इन चार पुरुषार्थोंमें भी सबसे श्रेष्ठ मोक्ष ही माना जाता है; क्योंकि अन्य तीन पुरुषार्थोंमें सर्वदा कालका भय लगा रहता है ॥ ३५ ॥ प्रकृतिमें गुणक्षोभ होनेके बाद जितने भी उत्तम और अधम भाव—पदार्थ प्रकट हुए हैं, उनमें कुशलसे रह सके ऐसा कोई भी नहीं है। कालभगवान् उन सभीके कुशलोंको कुचलते रहते हैं ॥ ३६ ॥

अतः राजन्! जो श्रीभगवान् देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहङ्कारसे आवृत सभी स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके हृदयोंमें जीवके नियामक अन्तर्यामी आत्मारूपसे सर्वत्र साक्षात् प्रकाशित हो रहे हैं—उन्हें तुम 'वह मैं ही हूँ' ऐसा जानो ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार मालाका ज्ञान हो जानेपर उसमें सर्पबुद्धि नहीं रहती, उसी प्रकार विवेक होनेपर जिसका कहीं पता नहीं लगता, ऐसा यह मायामय प्रपञ्च जिसमें कार्य-कारणरूपसे प्रतीत हो रहा है और जो स्वयं कर्ममल-कलुषित प्रकृतिसे परे है, उस नित्यमुक्त, निर्मल और ज्ञानस्वरूप परमात्माको मैं प्राप्त हो रहा हूँ ॥३८॥ संत-महात्मा जिनके चरणकमलोंके अङ्गुलिदलकी छिटकती हुई छटाका स्मरण करके अहङ्कार-

रूप हृदयग्रन्थिको, जो कर्मोंसे गठित है, इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर डालते हैं कि समस्त इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके अपने अन्तःकरणको निर्विषय करनेवाले संन्यासी भी वैसा नहीं कर पाते । तुम उन सर्वाश्रय भगवान् वासुदेवका भजन करो ॥ ३९ ॥ जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे भरे हुए इस संसारसागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है । अतः तुम तो भगवान्के आराधनीय चरणकमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्रको पार कर लो ॥ ४० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! ब्रह्माजीके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमारजीसे इस प्रकार आत्मतत्त्वका उपदेश पाकर महाराज पृथुने उनकी बहुत प्रशंसा करते हुए कहा ॥ ४१ ॥

राजा पृथुने कहा—भगवन् ! दीनदयालु श्रीहरिने मुझपर पहले कृपा की थी, उसीको पूर्ण करनेके लिये आपलोग पधारे हैं ॥ ४२ ॥ आपलोग बड़े ही दयालु हैं । जिस कार्यके लिये आपलोग पधारे थे, उसे आपलोगोंने अच्छी तरह सम्पन्न कर दिया । अब, इसके बदलेमें मैं आपलोगोंको क्या दूँ ? मेरे पास तो शरीर और इसके साथ जो कुछ है, वह सब महापुरुषोंका ही प्रसाद है ॥ ४३ ॥ ब्रह्मन् ! प्राण, स्त्री, पुत्र सब प्रकारकी सामग्रियोंसे भरा हुआ भवन, राज्य, सेना, पृथ्वी और कोश—यह सब कुछ आपहीलोगोंका है, अतः आपके ही श्रीचरणोंमें अर्पित है ॥४४॥ वास्तवमें तो सेनापतित्व, राज्य, दण्डविधान और सम्पूर्ण लोकोंके शासनका अधिकार वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणको ही है ॥ ४५ ॥ ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है और अपनी ही वस्तु दान देता है । दूसरे—क्षत्रिय आदि तो उसीकी कृपासे अन्न खानेको पाते हैं ॥ ४६ ॥ आपलोग वेदके पारगामी हैं, आपने अध्यात्मतत्त्वका विचार करके हमें निश्चितरूपसे समझा दिया है कि भगवान्के प्रति इस प्रकारकी अभेद-भक्ति ही उनकी उपलब्धिका प्रधान साधन है । आपलोग परम कृपालु हैं, अतः अपने इस दीनोद्धाररूप कर्मसे ही सर्वदा सन्तुष्ट रहें । आपके इस उपकारका बदला कोई क्या दे सकता है ? उसके लिये प्रयत्न करना भी अपनी हँसी कराना ही है ॥ ४७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! फिर आदिराज पृथुने आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादिकी पूजा की और वे उनके शीलकी प्रशंसा करते हुए सब लोगोंके सामने ही आकाशमार्गसे चले गये ॥४८॥ महात्माओंमें अग्रगण्य महाराज पृथु उनसे आत्मोपदेश पाकर चित्तकी एकाग्रतासे आत्मामें ही स्थित रहनेके कारण अपनेको कृतकृत्य-सा अनुभव करने लगे ॥ ४९ ॥ वे ब्रह्मार्पण-बुद्धिसे समय, स्थान, शक्ति, न्याय और धनके अनुसार सभी कर्म करते थे ॥ ५० ॥ इस प्रकार एकाग्र चित्तसे समस्त कर्मोंका फल परमात्माको अर्पण करके आत्माको कर्मोंका साक्षी एवं प्रकृतिसे अतीत देखनेके कारण वे सर्वथा निर्लिप्त रहे ॥५१॥ जिस प्रकार सूर्यदेव सर्वत्र प्रकाश करनेपर भी वस्तुओंके गुणदोषसे निर्लेप रहते हैं, उसी प्रकार सार्वभौम साम्राज्य-लक्ष्मीसे सम्पन्न और गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी अहङ्कारशून्य होनेके कारण वे इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त नहीं हुए ॥ ५२ ॥

इस प्रकार आत्मनिष्ठामें स्थित होकर सभी कर्तव्य-कर्मोंका यथोचित रीतिसे अनुष्ठान करते हुए उन्होंने अपनी भार्या अर्चिके गर्भसे अपने अनुरूप पाँच पुत्र उत्पन्न किये ॥५३॥ उनके नाम विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक थे । महाराज पृथु भगवान्के अंश थे । वे समय-समयपर, जब-जब आवश्यक होता था, जगत्के प्राणियोंकी रक्षाके लिये अकेले ही समस्त लोकपालोंके गुण धारण कर लिया करते थे । अपने उदार मन, प्रिय और हितकर वचन, मनोहर मूर्ति और सौम्य गुणोंके द्वारा प्रजाका रञ्जन करते रहनेसे दूसरे चन्द्रमाके समान उनका 'राजा' यह नाम सार्थक हुआ । सूर्य जिस प्रकार गरमीमें पृथ्वीका जल खींचकर वर्षाकालमें उसे पुनः पृथ्वीपर बरसा देता है तथा अपनी किरणोंसे सबको ताप पहुँचाता है, उसी प्रकार वे कररूपसे प्रजाका धन लेकर उसे दुष्कालादिके समय मुक्तहस्तसे प्रजाके हितमें लगा देते थे तथा सबपर अपना प्रभाव जमाये रखते थे ॥ ५४—५६ ॥ वे तेजमें अग्निके समान दुर्धर्ष, इन्द्रके समान अजेय, पृथ्वीके

समान क्षमाशील और स्वर्गके समान मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले थे ॥५७॥ समय-समयपर प्रजा-जनोंको तृप्त करनेके लिये वे मेघके समान उनके अभीष्ट अर्थोंको खुले हाथसे लुटाते रहते थे। वे समुद्रके समान गम्भीर और पर्वतराज सुमेरुके समान धैर्यवान् भी थे ॥५८॥

महाराज पृथु दुष्टोंके दमन करनेमें यमराजके समान, आश्चर्यपूर्ण वस्तुओंके संग्रहमें हिमालयके समान, कोशकी समृद्धिमें कुबेरके समान और धनको छिपानेमें वरुणके समान थे ॥ ५९ ॥ शारीरिक बल, इन्द्रियोंकी पटुता तथा पराक्रममें सर्वत्र गतिशील वायुके समान और तेजकी असह्यतामें भगवान् शङ्करके समान थे ॥६०॥ सौन्दर्यमें कामदेवके समान, उत्साहमें सिंहके समान, वात्सल्यमें मनुके समान और मनुष्योंके आधिपत्यमें सर्व-समर्थ ब्रह्माजीके समान थे ॥६१॥ ब्रह्मविचारमें बृहस्पति, इन्द्रियजयमें साक्षात् श्रीहरि तथा गौ, ब्राह्मण, गुरुजन एवं भगवद्भक्तोंकी भक्ति, लज्जा, विनय, शील एवं परोपकार आदि गुणोंमें अपने ही समान (अनुपम) थे ॥६२॥ लोग त्रिलोकीमें सर्वत्र उच्च स्वरसे उनकी कीर्तिका गान करते थे, इससे वे स्त्रियोंतकके कानोंमें वैसे ही प्रवेश पाये हुए थे जैसे सत्पुरुषोंके हृदयमें श्रीराम ॥६३॥

तेईसवाँ अध्याय

राजा पृथुकी तपस्या और परलोकगमन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार महामनस्वी प्रजापति पृथुने स्वयमेव अन्नादि तथा पुर-ग्रामादि सर्गकी व्यवस्था करके स्थावर-जङ्गम सभीकी आजीविकाका सुभीता कर दिया तथा साधुजनोचित धर्मोंका भी खूब पालन किया। 'मेरी अवस्था कुछ ढल गयी है और जिसके लिये मैंने इस लोकमें जन्म लिया था, उस प्रजारक्षणरूप ईश्वराज्ञाका पालन भी हो चुका है; अतः अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ—मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये' यह सोचकर उन्होंने अपने विरहमें रोती हुई अपनी पुत्रीरूपा पृथ्वीका भार पुत्रोंको सौंप दिया और सारी प्रजाको बिलखती छोड़कर वे अपनी पत्नीसहित अकेले ही तपोवनको चल दिये ॥१–३॥ वहाँ भी वे वानप्रस्थ आश्रमके नियमानुसार उसी प्रकार कठोर तपस्यामें लग गये, जैसे पहले गृहस्थाश्रममें अखण्ड व्रतपूर्वक पृथ्वीको विजय करनेमें लगे थे ॥ ४ ॥ कुछ दिन तो उन्होंने कन्द-मूल-फल खाकर बिताये, कुछ काल सूखे पत्ते खाकर रहे, फिर कुछ पखवाड़ोंतक जलपर ही रहे और इसके बाद केवल वायुसे ही निर्वाह करने लगे ॥ ५ ॥ वीरवर पृथु मुनिवृत्तिसे रहते थे। गर्मियोंमें उन्होंने पञ्चाग्नियोंका सेवन किया, वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें रहकर अपने शरीरपर जलकी धाराएँ सहीं और जाड़ेमें गलेतक जलमें खड़े रहे। वे प्रतिदिन मिट्टीकी वेदीपर ही शयन करते थे ॥६॥ उन्होंने शीतोष्णादि सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहा तथा वाणी और मनका संयम करके ब्रह्मचर्य-का पालन करते हुए प्राणोंको अपने अधीन किया। इस प्रकार श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिये उन्होंने उत्तम तप किया ॥ ७ ॥ इस क्रमसे उनकी तपस्या बहुत पुष्ट हो गयी और उसके प्रभावसे कर्ममल नष्ट हो जानेके कारण उनका चित्त सर्वथा शुद्ध हो गया। प्राणायामोंके द्वारा मन और इन्द्रियोंके निरुद्ध हो जानेसे उनका वासनाजनित बन्धन भी कट गया ॥ ८ ॥ तब, भगवान् सनत्कुमारने उन्हें जिस परमोत्कृष्ट अध्यात्मयोगकी शिक्षा दी थी, उसीके अनुसार राजा पृथु पुरुषोत्तम श्रीहरिकी आराधना करने लगे ॥ ९ ॥ इस तरह भगवत्परायण होकर श्रद्धापूर्वक सदाचारका पालन करते हुए निरन्तर साधन करनेसे परब्रह्म परमात्मामें उनकी अनन्य भक्ति हो गयी ॥ १० ॥

इस प्रकार भगवदुपासनासे अन्तःकरण शुद्ध—सात्त्विक हो जानेपर निरन्तर भगवच्चिन्तनके प्रभावसे प्राप्त हुई इस अनन्य भक्तिसे उन्हें वैराग्यसहित ज्ञानकी प्राप्ति हुई और फिर उस तीव्र ज्ञानके द्वारा उन्होंने जीवके उपाधि-भूत अहङ्कारको नष्ट कर दिया, जो सब प्रकारके संशय-विपर्ययका आश्रय है ॥ ११ ॥ इसके पश्चात् देहात्मबुद्धि-की निवृत्ति और परमात्मस्वरूप श्रीकृष्णकी अनुभूति

होनेपर अन्य सब प्रकारकी सिद्धि आदिसे भी उदासीन हो जानेके कारण उन्होंने उस तत्त्वज्ञानके लिये भी प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिसकी सहायतासे पहले अपने जीवकोशका नाश किया था; क्योंकि जबतक साधकको योगमार्गके द्वारा श्रीकृष्णकथामृतमें अनुराग नहीं होता, तबतक केवल योगसाधनासे उसका मोहजनित प्रमाद दूर नहीं होता—भ्रम नहीं मिटता ॥ १२ ॥ फिर जब अन्तकाल उपस्थित हुआ तो वीरवर पृथुने अपने चित्तको दृढ़तापूर्वक परमात्मामें स्थिर कर ब्रह्मभावमें स्थित हो अपना शरीर त्याग दिया ॥ १३॥ उन्होंने एड़ीसे गुदाके द्वारको रोककर प्राणवायुको धीरे-धीरे मूलाधारसे ऊपरकी ओर उठाते हुए उसे क्रमशः नाभि, हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तकमें स्थित किया ॥ १४ ॥ फिर उसे और ऊपरकी ओर ले जाते हुए क्रमशः ब्रह्मरन्ध्रमें स्थिर किया। अब उन्हें किसी प्रकारके सांसारिक भोगोंकी लालसा नहीं रही। फिर यथास्थान विभाग करके प्राणवायुको समष्टि वायुमें, पार्थिव शरीरको पृथ्वीमें और शरीरके तेज-को समष्टि तेजमें लीन कर दिया ॥ १५ ॥ हृदयाकाशादि देहावच्छिन्न आकाशको महाकाशमें और शरीरगत रुधिरादि जलीय अंशको समष्टि जलमें लीन किया। इसी प्रकार फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें लीन किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर मनको [सविकल्प ज्ञानमें जिनके अधीन वह रहता है, उन] इन्द्रियोंमें, इन्द्रियोंको उनके कारणरूप तन्मात्राओंमें और सूक्ष्मभूतों (तन्मात्राओं) के कारण अहङ्कारके द्वारा आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओंको उसी अहङ्कारमें लीन कर, अहङ्कारको महत्तत्त्वमें लीन किया ॥ १७ ॥ फिर सम्पूर्ण गुणोंकी अभिव्यक्ति करनेवाले उस महत्तत्त्व-को मायोपाधिक जीवमें स्थित किया। तदनन्तर उस मायारूप जीवकी उपाधिको भी उन्होंने ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होकर त्याग दिया ॥ १८ ॥

महाराज पृथुकी पत्नी महारानी अर्चि भी उनके साथ वनको गयी थीं। वे बड़ी सुकुमारी थीं, पैरोंसे भूमिका स्पर्श करनेके योग्य भी नहीं थीं ॥ १९ ॥ फिर भी उन्होंने अपने स्वामीके व्रत और नियमादिका पालन करते हुए उनकी खूब सेवा की और मुनिवृत्तिके अनुसार कन्द-मूल आदिसे निर्वाह किया। इससे यद्यपि वे बहुत दुर्बल हो गयी थीं, तो भी प्रियतमके करस्पर्शसे सम्मानित होकर उसीमें आनन्द माननेके कारण उन्हें किसी प्रकार कष्ट नहीं होता था ॥ २० ॥ अब पृथ्वीके स्वामी और अपने प्रियतम महाराज पृथुकी देहको जीवनके चेतना आदि सभी धर्मोंसे रहित देख उस सतीने कुछ देर विलाप किया। फिर पर्वतके ऊपर चिता बनाकर उसे उस चितापर रख दिया ॥ २१ ॥ इसके बाद उस समयके सारे कृत्य कर नदीके जलमें स्नान किया। अपने परम पराक्रमी पतिको जलाञ्जलि दे आकाशस्थित देवताओंकी वन्दना की तथा तीन बार चिताकी परिक्रमा कर पतिदेवके चरणोंका ध्यान करती हुई अग्निमें प्रवेश कर गयी ॥ २२ ॥ परमसाध्वी अर्चिको इस प्रकार अपने पति वीरवर पृथुका अनुगमन करते देख सहस्रों वरदायिनी देवियोंने अपने-अपने पतियोंके साथ उनकी स्तुति की ॥ २३ ॥ वहाँ देवताओंके बाजे बजने लगे। उस समय उस मन्दरा-चलके शिखरपर वे देवाङ्गनाएँ पुष्पोंकी वर्षा करती हुई आपसमें इस प्रकार कहने लगीं ॥ २४ ॥

देवियोंने कहा—अहो! यह स्त्री धन्य है! इसने अपने पति राजराजेश्वर पृथुकी मन-वाणी-शरीरसे ठीक उसी प्रकार सेवा की है, जैसे श्रीलक्ष्मीजी यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुकी करती हैं ॥ २५ ॥ अवश्य ही अपने अचिन्त्य कर्मके प्रभावसे यह सती हमें भी लाँघकर अपने पतिके साथ उच्चतर लोकोंको जा रही है ॥ २६ ॥ इस लोकमें कुछ ही दिनोंका जीवन होनेपर भी जो लोग भगवान्‌के परमपदकी प्राप्ति करानेवाला आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिये संसारमें कौन पदार्थ दुर्लभ है ॥ २७ ॥ अतः जो पुरुष बड़ी कठिनतासे भूलोकमें मोक्षका साधनस्वरूप मनुष्य-शरीर पाकर भी विषयोंमें आसक्त रहता है, वह निश्चय ही आत्मघाती है; हाय! हाय! वह ठगा गया! ॥ २८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! जिस समय देवाङ्गनाएँ इस प्रकार स्तुति कर रही थीं, भगवान्‌के जिस परमधामको आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवत्प्राण महाराज पृथु

गये, महारानी अर्चि भी उसी पतिलोकको गयीं ॥ २९ ॥ परमभागवत पृथुजी ऐसे ही प्रभावशाली थे । उनके चरित बड़े उदार हैं, मैंने तुम्हारे सामने उनका वर्णन किया ॥ ३० ॥ जो पुरुप इस परम पवित्र चरित्रको श्रद्धापूर्वक (निष्काम-भावसे) एकाग्रचित्तसे पढ़ता, सुनता अथवा सुनाता है—वह भी महाराज पृथुके पद—भगवान्‌के परमधामको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ इसका सकामभावसे पाठ करनेसे ब्राह्मण ब्रह्मतेज प्राप्त करता है, क्षत्रिय पृथ्वीपति हो जाता है, वैश्य व्यापारियोंमें प्रधान हो जाता है और शूद्रमें साधुता आ जाती है ॥ ३२ ॥ स्त्री हो अथवा पुरुप—जो कोई इसे आदरपूर्वक तीन बार सुनता है, वह सन्तानहीन हो तो पुत्रवान्, धनहीन हो तो महाधनी, कीर्तिहीन हो तो यशस्वी और मूर्ख हो तो पण्डित हो जाता है । यह चरित मनुष्यमात्रका कल्याण करनेवाला और अमङ्गलको दूर करनेवाला है ॥ ३३-३४ ॥ यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला और कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाला है । यह धर्मादि चतुर्वर्गकी प्राप्तिमें भी बड़ा सहायक है; इसलिये जो लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भलीभाँति सिद्ध करना चाहते हों, उन्हें इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ जो राजा विजयके लिये प्रस्थान करते समय इसे सुनकर जाता है, उसके आगे आ-आकर राजा-लोग उसी प्रकार भेंटें रखते हैं जैसे पृथुके सामने रखते थे ॥ ३६ ॥ मनुष्यको चाहिये कि अन्य सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर भगवान्‌में विशुद्ध निष्काम भक्ति-भाव रखते हुए महाराज पृथुके इस निर्मल चरितको सुने, सुनावे और पढ़े ॥ ३७ ॥ विदुरजी ! मैंने भगवान्‌के माहात्म्यको प्रकट करनेवाला यह पवित्र चरित्र तुम्हें सुना दिया । इसमें प्रेम करनेवाला पुरुप महाराज पृथुकी-सी गति पाता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुप इस पृथु-चरितका प्रतिदिन आदरपूर्वक निष्कामभावसे श्रवण और कीर्तन करता है उसका, जिनके चरण संसारसागरको पार करनेके लिये नौकाके समान हैं उन, श्रीहरिमें सुदृढ अनुराग हो जाता है ॥ ३९ ॥

चौवीसवाँ अध्याय

पृथुकी वंशपरम्परा और प्रचेताओंको भगवान् रुद्रका उपदेश ।

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! महाराज पृथुके बाद उनके पुत्र परम यशस्वी विजिताश्व राजा हुए । उनका अपने छोटे भाइयोंपर बड़ा स्नेह था, इसलिये उन्होंने चारोंको एक-एक दिशाका अधिकार सौंप दिया ॥ १ ॥ राजा विजिताश्वने हर्यक्षको पूर्व, धूम्रकेशको दक्षिण, वृकको पश्चिम और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया ॥ २ ॥ उन्होंने इन्द्रसे अन्तर्धान होनेकी शक्ति प्राप्त की थी, इसलिये उन्हें 'अन्तर्धान' भी कहते थे । उनकी पत्नीका नाम शिखण्डिनी था । उससे उनके तीन सुपुत्र हुए ॥ ३ ॥ उनके नाम पावक, पवमान और शुचि थे । पूर्वकालमें वसिष्ठजीका शाप होनेसे उपर्युक्त नामके अग्नियोंने ही उनके रूपमें जन्म लिया था । आगे चलकर योगमार्गसे ये फिर अग्निरूप हो गये ॥ ४ ॥

अन्तर्धानके नभस्वती नामकी पत्नीसे एक और पुत्ररत्न हविर्धान प्राप्त हुआ । महाराज अन्तर्धान बड़े उदार पुरुप थे । जिस समय इन्द्र उनके पिताके अश्वमेध-यज्ञका घोड़ा हरकर ले गये थे, उन्होंने पता लग जानेपर भी उनका वध नहीं किया था ॥ ५ ॥ राजा अन्तर्धानने कर लेना, दण्ड देना, जुरमाना वसूल करना आदि कर्तव्योंको बहुत कठोर एवं दूसरोंके लिये कष्टदायक समझकर एक दीर्घकालीन यज्ञमें दीक्षित होनेके बहाने अपना राज-काज छोड़ दिया ॥ ६ ॥ यज्ञकार्यमें लगे रहनेपर भी उन आत्मज्ञानी राजाने भक्तभयभञ्जन पूर्णतम परमात्माकी आराधना करके सुदृढ़ समाधिके द्वारा भगवान्‌के दिव्य लोकको प्राप्त किया ॥ ७ ॥

विदुरजी ! हविर्धानकी पत्नी हविर्धानीने बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नामके छः पुत्र पैदा किये ॥ ८ ॥ कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! इनमें हविर्धानके पुत्र महाभाग बर्हिषद् यज्ञादि कर्मकाण्ड और योगाभ्यासमें कुशल थे । उन्होंने प्रजापतिका पद प्राप्त किया ॥ ९ ॥ उन्होंने एक स्थानके बाद दूसरे स्थानमें लगातार इतने यज्ञ किये कि यह सारी भूमि पूर्वकी ओर अग्रभाग करके

फैलाये हुए कुशोंसे पट गयी थी। (इसीसे आगे चलकर वे 'प्राचीनबर्हि' नामसे विख्यात हुए)॥ १० ॥

राजा प्राचीनबर्हिने ब्रह्माजीके कहनेसे समुद्रकी कन्या शतद्रुतिसे विवाह किया था। सर्वाङ्गसुन्दरी किशोरी शतद्रुति सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सजधजकर विवाह-मण्डपमें जब भाँवर देनेके लिये घूमने लगी, तब स्वयं अग्निदेव भी मोहित होकर उसे वैसे ही चाहने लगे जैसे शुकीको चाहा था॥ ११ ॥ नवविवाहिता शतद्रुतिने अपने नूपुरोंकी झनकारसे ही दिशाविदिशाओंके देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नाग—सभीको वशमें कर लिया था॥ १२ ॥ शतद्रुतिके गर्भसे प्राचीनबर्हिके प्रचेता नामके दस पुत्र हुए। वे सब बड़े ही धर्मज्ञ तथा एक-से नाम और आचरणवाले थे॥ १३॥ जब पिताने उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेका आदेश दिया, तब उन सबने तपस्या करनेके लिये समुद्रमें प्रवेश किया। वहाँ दस हजार वर्षतक तपस्या करते हुए उन्होंने तपका फल देनेवाले श्रीहरिकी आराधना की ॥ १४ ॥ घरसे तपस्या करनेके लिये जाते समय मार्गमें श्रीमहादेवजीने उन्हें दर्शन देकर कृपापूर्वक जिस तत्त्वका उपदेश दिया था, उसीका वे एकाग्रतापूर्वक ध्यान, जप और पूजन करते रहे ॥ १५॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! मार्गमें प्रचेताओंका श्रीमहादेवजीके साथ किस प्रकार समागम हुआ और उनपर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उन्हें क्या उपदेश किया, वह सारयुक्त बात आप कृपा करके मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ ब्रह्मर्षे! शिवजीके साथ समागम होना तो देहधारियोंके लिये बहुत कठिन है। औरोंकी तो बात ही क्या है—मुनिजन भी सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर उन्हें पानेके लिये उनका निरन्तर ध्यान ही किया करते हैं, किन्तु सहजमें पाते नहीं॥ १७ ॥ यद्यपि भगवान् शङ्कर आत्माराम हैं, उन्हें अपने लिये न कुछ करना है, न पाना, तो भी इस लोकसृष्टिकी रक्षाके लिये वे अपनी घोररूपा शक्ति (शिवा) के साथ सर्वत्र विचरते रहते हैं ॥ १८ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! साधुस्वभाव प्रचेतागण पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर तपस्यामें चित्त लगा पश्चिमकी ओर चल दिये।१९। चलते-चलते उन्होंने समुद्रके समान विशाल एक सरोवर देखा। वह महापुरुषोंके चित्तके समान बड़ा ही स्वच्छ था तथा उसमें रहनेवाले मत्स्यादि जलजीव भी प्रसन्न जान पड़ते थे ॥ २० ॥ उसमें नीलकमल, लाल कमल, रातमें, दिनमें और सायङ्कालमें खिलनेवाले कमल तथा इन्दीवर आदि अन्य कई प्रकारके कमल सुशोभित थे। उसके तटोंपर हंस, सारस, चकवा और कारण्डव आदि जलपक्षी चहक रहे थे ॥ २१ ॥ उसके चारों ओर तरह-तरहके वृक्ष और लताएँ थीं, उनपर मतवाले भौंरे गूँज रहे थे। उनकी मधुर ध्वनिसे हर्षित होकर मानो उन्हें रोमाञ्च हो रहा था। कमलकोशके परागपुञ्ज वायुके झकोरोंसे चारों ओर उड़ रहे थे मानो वहाँ कोई उत्सव हो रहा है ॥ २२ ॥ वहाँ मृदङ्ग, पणव आदि बाजोंके साथ अनेकों दिव्य राग-रागिनियोंके क्रमसे गायनकी मधुर ध्वनि सुनकर उन राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ २३ ॥ इतनेमें ही उन्होंने देखा कि देवाधिदेव भगवान् शङ्कर अपने अनुचरोंके सहित उस सरोवरसे बाहर आ रहे हैं। उनका शरीर तपी हुई सुवर्णराशिके समान कान्तिमान् है, कण्ठ नीलवर्ण है तथा तीन विशाल नेत्र हैं। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत हैं। अनेकों गन्धर्व उनका सुयश गा रहे हैं। उनका सहसा दर्शन पाकर प्रचेताओंको बड़ा कुतूहल हुआ और उन्होंने शङ्करजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ २४-२५ ॥ तब शरणागतभयहारी धर्मवत्सल भगवान् शङ्करने अपने दर्शनसे प्रसन्न हुए उन धर्मज्ञ और शीलसम्पन्न राजकुमारोंसे प्रसन्न होकर कहा ॥२६॥

श्रीमहादेवजी बोले—तुमलोग राजा प्राचीनबर्हिके पुत्र हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ करना चाहते हो, वह भी मुझे मालूम है। इस समय तुमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही मैंने तुम्हें इस प्रकार दर्शन दिया है ॥ २७ ॥ जो व्यक्ति अव्यक्त प्रकृति तथा जीवसंज्ञक पुरुष—इन दोनोंके नियामक भगवान् वासुदेवकी साक्षात् शरण लेता है, वह मुझे परम प्रिय है ॥ २८ ॥ अपने वर्णाश्रमधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाला पुरुष सौ जन्मके बाद ब्रह्माके पदको प्राप्त होता है। और इससे भी अधिक पुण्य होनेपर वह मुझे प्राप्त होता

है। परन्तु जो भगवान्‌का अनन्य भक्त है, वह तो मृत्युके बाद ही सीधे भगवान् विष्णुके उस सर्व-प्रपञ्चातीत परमपदको प्राप्त हो जाता है, जिसे रुद्ररूप-में स्थित मैं तथा अन्य आधिकारिक देवता अपने-अपने अधिकारकी समाप्तिके बाद प्राप्त करेंगे ॥ २९ ॥ तुम-लोग भगवद्भक्त होनेके नाते मुझे भगवान्‌के समान ही प्यारे हो। इसी प्रकार भगवान्‌के भक्तोंको भी मुझसे बढ़कर और कोई कभी प्रिय नहीं होता ॥ ३० ॥ अब मैं तुम्हें एक बड़ा ही पवित्र, मङ्गलमय और कल्याणकारी स्तोत्र सुनाता हूँ। इसका तुमलोग शुद्ध-भावसे जप करना ॥ ३१ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—तब नारायणपरायण करुणार्द्रहृदय भगवान् शिवने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उन राजपुत्रोंको यह स्तोत्र सुनाया ॥ ३२ ॥

भगवान् रुद्र स्तुति करने लगे—भगवन्! आपका उत्कर्ष उच्चकोटिके आत्मज्ञानियोंके कल्याणके लिये—निजानन्द लाभके लिये है, उससे मेरा भी कल्याण हो। आप सर्वदा अपने निरतिशय परमानन्दस्वरूपमें ही स्थित रहते हैं, ऐसे सर्वात्मक आत्मस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ३३ ॥ आप पद्मनाभ (समस्त लोकोंके आदिकारण) हैं; भूतसूक्ष्म (तन्मात्र) और इन्द्रियों-के नियन्ता, शान्त, एकरस और स्वयंप्रकाश वासुदेव (चित्तके अधिष्ठाता) भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥ आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त), अनन्त और मुखाग्निके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले अहङ्कारके अधिष्ठाता सङ्कर्षण तथा जगत्‌के प्रकृष्ट ज्ञानके उद्गमस्थान बुद्धिके अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥ आप ही इन्द्रियोंके स्वामी मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्ध हैं; आपको बार-बार नमस्कार है। आप अपने तेजसे जगत्‌को व्याप्त करनेवाले सूर्यदेव हैं, पूर्ण होनेके कारण आपमें वृद्धि और क्षय नहीं होता; आपको नमस्कार है ॥३६॥ आप स्वर्ग और मोक्षके द्वार तथा निरन्तर पवित्र हृदयमें रहनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप ही सुवर्णरूप वीर्यसे युक्त और चातुर्होत्र कर्मके साधन तथा विस्तार करनेवाले अग्निदेव हैं; आपको नमस्कार है ॥३७॥ आप पितर और देवताओंके पोषक सोम हैं तथा तीनों वेदोंके अधिष्ठाता हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं, आप ही समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाले सर्वरस (जल) रूप हैं; आपको नमस्कार है ॥३८॥ आप समस्त प्राणियोंके देह, पृथ्वी और विराट्स्वरूप हैं तथा त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक शक्तिस्वरूप वायु (प्राण) हैं; आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥ आप ही अपने गुण शब्दके द्वारा—समस्त पदार्थोंका ज्ञान करानेवाले तथा बाहर-भीतरका भेद करनेवाले आकाश हैं तथा आप ही महान् पुण्योंसे प्राप्त होनेवाले परम तेजोमय स्वर्ग-वैकुण्ठादि लोक हैं; आपको पुनः-पुनः नमस्कार है ॥ ४० ॥ आप पितृलोककी प्राप्ति करानेवाले प्रवृत्ति-कर्मरूप और देवलोककी प्राप्तिके साधन निवृत्तिकर्मरूप हैं तथा आप ही अधर्मके फलरूप दुःखदायक मृत्यु हैं; आपको नमस्कार है ॥ ४१ ॥ नाथ ! आप ही पुराणपुरुष तथा सांख्य और योगके अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं; आप सब प्रकारकी कामनाओंकी पूर्तिके कारण, साक्षात् मन्त्रमूर्ति और महान् धर्मस्वरूप हैं; आपकी ज्ञानशक्ति किसी भी प्रकार कुण्ठित होनेवाली नहीं है; आपको नमस्कार है, नमस्कार है ॥ ४२ ॥ आप ही कर्ता, करण और कर्म—तीनों शक्तियोंके एकमात्र आश्रय हैं; आप ही अहङ्कारके अधिष्ठाता रुद्र हैं; आप ही ज्ञान और क्रियास्वरूप हैं तथा आपसे ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—चार प्रकारकी वाणीकी अभिव्यक्ति होती है; आपको नमस्कार है ॥ ४३ ॥

प्रभो ! हमें आपके दर्शनोंकी अभिलाषा है; अतः आपके भक्तजन जिसका पूजन करते हैं और जो आपके निजजनोंको अत्यन्त प्रिय है, अपने उस अनूप रूपकी आप हमें झाँकी कराइये। आपका वह रूप अपने गुणोंसे समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला है ॥ ४४ ॥ वह वर्षाकालीन मेघके समान स्निग्ध श्याम और सम्पूर्ण सौन्दर्योंका सार-सर्वस्व है। सुन्दर चार विशाल भुजाएँ, महामनोहर मुखारविन्द, कमलदलके समान नेत्र, सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका, मनमोहिनी दन्तपंक्ति,

अमोल-कपोलयुक्त मनोहर मुखमण्डल और शोभाशाली समान कर्णयुगल हैं ॥ ४५-४६ ॥ प्रीतिपूर्ण उन्मुक्त हास्य, तिरछी चितवन, काली-काली घुँघराली अलकें, कमलकुसुमकी केसरके समान फहराता हुआ पीताम्बर, झिलमिलाते हुए कुण्डल, चमचमाते हुए मुकुट, कङ्कण, हार, नूपुर और मेखला आदि विचित्र आभूषण तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणिके कारण उसकी अपूर्व शोभा है ॥ ४७-४८ ॥ उसके सिंहके समान स्थूल कंधे हैं—जिनपर हार, केयूर एवं कुण्डलादिकी कान्ति झिलमिलाती रहती है—तथा कौस्तुभमणिकी कान्तिसे सुशोभित मनोहर ग्रीवा है। उसका श्यामल वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्नके रूपमें लक्ष्मीजीका नित्य निवास होनेके कारण कसौटीकी शोभाको भी मात करता है ॥ ४९॥ उसका त्रिवलीसे सुशोभित, पीपलके पत्तेके समान सुडौल उदर श्वासके आने-जानेसे हिलता हुआ बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। उसमें जो भँवरके समान चक्करदार नाभि है, वह इतनी गहरी है कि उससे उत्पन्न हुआ यह विश्व मानो फिर उसीमें लीन होना चाहता है ॥ ५० ॥ श्यामवर्ण कटिभागमें पीताम्बर और सुवर्णकी मेखला शोभायमान है। समान और सुन्दर चरण, पिंडली, जाँघ और घुटनोंके कारण आपका दिव्य विग्रह बड़ा ही सुघड़ जान पड़ता है ॥ ५१ ॥ आपके चरणकमलोंकी शोभा शरद् ऋतुके कमल-दलकी कान्तिका भी तिरस्कार करती है। उनके नखोंसे जो प्रकाश निकलता है, वह जीवोंके हृदयान्धकारको तत्काल नष्ट कर देता है। हमें आप कृपा करके भक्तोंके भयहारी एवं आश्रयस्वरूप उसी रूपका दर्शन कराइये। जगद्गुरो! हम अज्ञानावृत प्राणियोंको अपनी प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले आप ही हमारे गुरु हैं ॥५२॥

प्रभो! चित्तशुद्धिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको आपके इस रूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये; इसकी भक्ति ही स्वधर्मका पालन करनेवाले पुरुषको अभय करनेवाली है ॥ ५३ ॥ स्वर्गका शासन करनेवाला इन्द्र भी आपको ही पाना चाहता है तथा विशुद्ध आत्मज्ञानियोंकी गति भी आप ही हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं; केवल भक्तिमान् पुरुष ही आपको पा सकते हैं ॥ ५४ ॥ सत्पुरुषोंके लिये भी दुर्लभ अनन्य भक्तिसे भगवान्‌को प्रसन्न करके, जिनकी प्रसन्नता किसी अन्य साधनासे दुःसाध्य है, ऐसा कौन होगा जो उनके चरणतलके अतिरिक्त और कुछ चाहेगा ॥ ५५ ॥ जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रमसे फड़कती हुए भौंहके इशारेसे सारे संसारका संहार कर डालता है, वह भी आपके चरणोंकी शरणमें गये हुए प्राणीपर अपना अधिकार नहीं मानता ॥ ५६ ॥ ऐसे भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका यदि आधे क्षणके लिये भी समागम हो जाय तो उसके सामने मैं स्वर्ग और मोक्षको कुछ नहीं समझता; फिर मर्त्यलोकके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है ॥ ५७ ॥ प्रभो! आपके चरण सम्पूर्ण पापराशिको हर लेनेवाले हैं। हम तो केवल यही चाहते हैं कि जिन लोगोंने आपकी कीर्ति और तीर्थ (गङ्गाजी) में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकारके पापोंको धो डाला है तथा जो जीवोंके प्रति दया, राग-द्वेषरहित चित्त तथा सरलता आदि गुणोंसे युक्त हैं, उन आपके भक्तजनोंका सङ्ग हमें सदा प्राप्त होता रहे। यही हमपर आपकी बड़ी कृपा होगी ॥ ५८ ॥ जिस साधकका चित्त भक्तियोगसे अनुगृहीत एवं विशुद्ध होकर न तो बाह्य विषयोंमें भटकता है और न अज्ञानगुहारूप प्रकृतिमें ही लीन होता है, वह अनायास ही आपके स्वरूपका दर्शन पा जाता है ॥ ५९ ॥ जिसमें यह सारा जगत् दिखायी देता है और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत्‌में भास रहा है, वह आकाशके समान विस्तृत और परम प्रकाशमय ब्रह्मतत्त्व आप ही हैं ॥ ६० ॥

भगवन्! आपकी माया अनेक प्रकारके रूप धारण करती है। इसीके द्वारा आप इस प्रकार जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं जैसे यह कोई सद्वस्तु हो। किन्तु इससे आपमें किसी प्रकारका विकार नहीं आता। मायाके कारण दूसरे लोगोंमें ही भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, आप परमात्मापर वह अपना प्रभाव डालनेमें असमर्थ होती है। आपको तो हम परम स्वतन्त्र ही समझते हैं ॥ ६१ ॥ आपका स्वरूप पञ्चभूत,

इन्द्रिय और अन्तःकरणके प्रेरकरूपसे उपलक्षित होता है। जो कर्मयोगी पुरुष सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहके कर्मोंद्वारा आपके इस सगुण साकार स्वरूपका श्रद्धापूर्वक भलीभाँति पूजन करते हैं, वे ही वेद और शास्त्रोंके सच्चे मर्मज्ञ हैं ॥ ६२ ॥ प्रभो! आप ही अद्वितीय आदिपुरुष हैं। सृष्टिके पूर्व आपकी मायाशक्ति सोयी रहती है। फिर उसीके द्वारा सत्त्व, रज और तमरूप गुणोंका भेद होता है और इसके बाद उन्हीं गुणोंसे महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंसे युक्त इस जगत्की उत्पत्ति होती है ॥ ६३ ॥ फिर आप अपनी ही मायाशक्तिसे रचे हुए इन जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्जभेदसे चार प्रकारके शरीरोंमें अंशरूपसे प्रवेश कर जाते हैं और जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अपने ही उत्पन्न किये हुए मधुका आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार वह आपका अंश उन शरीरोंमें रहकर इन्द्रियोंके द्वारा इन तुच्छ विषयोंको भोगता है। आपके उस अंशको ही पुरुष या जीव कहते हैं ॥ ६४ ॥

प्रभो! आपका तत्त्वज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं अनुमानसे होता है। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर कालस्वरूप आप ही अपने प्रचण्ड एवं असह्य वेगसे पृथ्वी आदि भूतोंको अन्य भूतोंसे विचलित कराकर समस्त लोकोंका संहार कर देते हैं—जैसे वायु अपने असहनीय एवं प्रचण्ड झोंकोंसे मेघोंके द्वारा ही मेघोंको तितर-बितर करके नष्ट कर डालती है ॥ ६५ ॥ भगवन्! यह मोहग्रस्त जीव प्रमादवश हर समय इसी चिन्तामें रहता है कि 'अमुक कार्य करना है'। इसका लोभ बढ़ गया है और इसे विषयोंकी ही लालसा बनी रहती है। किन्तु आप सदा ही सजग रहते हैं; भूखसे जीभ लपलपाता हुआ सर्प जैसे चूहेको चट कर जाता है, उसी प्रकार आप अपने कालस्वरूपसे उसे सहसा लील जाते हैं ॥ ६६ ॥ आपकी अवहेलना करनेके कारण अपनी आयुको व्यर्थ माननेवाला ऐसा कौन विद्वान् होगा, जो आपके चरणकमलोंको बिसारेगा? इनकी पूजा तो कालकी आशङ्कासे ही हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंने भी बिना कोई विचार किये केवल श्रद्धासे ही की थी ॥ ६७ ॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार सारा जगत् रुद्ररूप कालके भयसे व्याकुल है। अतः परमात्मन्! इस तत्त्वको जाननेवाले हमलोगोंके तो इस समय आप ही सर्वथा भयशून्य आश्रय हैं ॥ ६८ ॥

राजकुमारो! तुमलोग विशुद्ध भावसे स्वधर्मका आचरण करते हुए भगवान्में चित्त लगाकर मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जप करते रहो; भगवान् तुम्हारा मङ्गल करेंगे ॥ ६९ ॥ तुमलोग अपने अन्तःकरणमें स्थित उन सर्वभूतान्तर्यामी परमात्मा श्रीहरिका ही बार-बार स्तवन और चिन्तन करते हुए पूजन करो ॥ ७० ॥ मैंने तुम्हें यह योगादेश नामका स्तोत्र सुनाया है। तुमलोग इसे मनसे धारणकर मुनिव्रतका आचरण करते हुए इसका एकाग्रतासे आदरपूर्वक अभ्यास करो ॥ ७१ ॥ यह स्तोत्र पूर्वकालमें जगद्विस्तारके इच्छुक प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाले हम भृगु आदि अपने पुत्रोंको सुनाया था ॥ ७२ ॥ जब हम प्रजापतियोंको प्रजाका विस्तार करनेकी आज्ञा हुई, तब इसीके द्वारा हमने अपना अज्ञान निवृत्त करके अनेक प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की थी ॥ ७३ ॥ अब भी जो भगवत्परायण पुरुष इसका एकाग्र चित्तसे नित्य-प्रति जप करेगा, उसका शीघ्र ही कल्याण हो जायगा ॥ ७४ ॥ इस लोकमें सब प्रकारके कल्याणसाधनोंमें मोक्षदायक ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है। ज्ञान-नौकापर चढ़ा हुआ पुरुष अनायास ही इस दुस्तर संसारसागरको पार कर लेता है ॥ ७५ ॥ यद्यपि भगवान्की आराधना बहुत कठिन है—किन्तु मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जो श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, वह सुगमतासे ही उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेगा ॥ ७६ ॥ भगवान् ही सम्पूर्ण कल्याणसाधनोंके एकमात्र प्यारे—प्राप्तव्य हैं। अतः मेरे गाये हुए इस स्तोत्रके गानसे उन्हें प्रसन्न करके वह उनसे जो कुछ चाहेगा, तत्काल प्राप्त कर लेगा ॥ ७७ ॥ जो पुरुष उषःकालमें उठकर इसे श्रद्धापूर्वक हाथ

जोड़कर सुनता या सुनाता है, वह सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७८ ॥ राजकुमारो ! मैंने तुम्हें जो यह परमपुरुष परमात्माका स्तोत्र सुनाया है, इसे एकाग्रचित्तसे जपते हुए तुम महान् तपस्या करो । तपस्या पूर्ण होनेपर इसीसे तुम्हें अभीष्ट फल प्राप्त हो जायगा ॥ ७९ ॥

पचीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यानका प्रारम्भ

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं— विदुरजी ! इस प्रकार भगवान् शङ्करने प्रचेताओंको उपदेश दिया । फिर प्रचेताओंने शङ्करजीकी बड़े भक्तिभावसे पूजा की । इसके पश्चात् वे उन राजकुमारोंके सामने ही अन्तर्धान हो गये ॥ १ ॥ सब-के-सब प्रचेता जलमें खड़े रहकर भगवान् रुद्रके बताये स्तोत्रका जप करते हुए दस हजार वर्षतक तपस्या करते रहे ॥ २ ॥ इन दिनों राजा प्राचीनबर्हिका चित्त कर्मकाण्डमें बहुत रम गया था । उन्हें अध्यात्मविद्या-विशारद परम कृपालु नारदजीने उपदेश दिया ॥ ३ ॥ उन्होंने कहा कि 'राजन् ! इन कर्मोंके द्वारा तुम अपना कौन-सा कल्याण करना चाहते हो ? दुःखके आत्यन्तिक नाश और परमानन्दकी प्राप्तिका नाम कल्याण है; वह तो कर्मोंसे नहीं मिलता' ॥ ४ ॥

राजाने कहा—महाभाग नारदजी ! मेरी बुद्धि कर्ममें फँसी हुई है, इसलिये मुझे परम कल्याणका कोई पता नहीं है । आप मुझे विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दीजिये, जिससे मैं इस कर्मबन्धनसे छूट जाऊँ ॥ ५ ॥ जो पुरुष कपटधर्ममय गृहस्थाश्रममें ही रहता हुआ पुत्र, स्त्री और धनको ही परम पुरुषार्थ मानता है, वह अज्ञानवश संसारारण्यमें ही भटकता रहनेके कारण उस परम कल्याणको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

श्रीनारदजीने कहा—देखो, देखो, राजन् ! तुमने यज्ञमें निर्दयतापूर्वक जिन हजारों पशुओंकी बलि दी है—उन्हें आकाशमें देखो ॥ ७ ॥ ये सब तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुई पीड़ाओंको याद करते हुए बदला लेनेके लिये तुम्हारी बाट देख रहे हैं । जब तुम मरकर परलोकमें जाओगे, तब ये अत्यन्त क्रोधमें भरकर तुम्हें अपने लोहेके-से सींगोंसे छेदेंगे ॥ ८ ॥ अच्छा, इस विषयमें मैं तुम्हें एक प्राचीन उपाख्यान सुनाता हूँ । वह राजा पुरञ्जनका चरित्र है, उसे तुम मुझसे सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥

राजन् ! पूर्वकालमें पुरञ्जन नामका एक बड़ा यशस्वी राजा था । उसका अविज्ञात नामक एक मित्र था । कोई भी उसकी चेष्टाओंको समझ नहीं सकता था ॥ १० ॥ राजा पुरञ्जन अपने रहनेयोग्य स्थानकी खोजमें सारी पृथ्वीमें घूमा; फिर भी जब उसे कोई अनुरूप स्थान न मिला, तब वह कुछ उदास-सा हो गया ॥ ११ ॥ उसे तरह-तरहके भोगोंकी लालसा थी; उन्हें भोगनेके लिये उसने संसारमें जितने नगर देखे, उनमेंसे कोई भी उसे ठीक न जँचा ॥ १२ ॥

एक दिन उसने हिमालयके दक्षिण तटवर्ती शिखरोंपर कर्मभूमि भारतखण्डमें एक नौ द्वारोंका नगर देखा । वह सब प्रकारके सुलक्षणोंसे सम्पन्न था ॥ १३ ॥ सब ओरसे परकोटों, बगीचों, अटारियों, खाइयों, झरोखों और राजद्वारोंसे सुशोभित था और सोने, चाँदी तथा लोहेके शिखरोंवाले विशाल भवनोंसे खचाखच भरा था ॥ १४ ॥ उसके महलोंकी फर्शें नीलम, स्फटिक, वैदूर्य, मोती, पन्ने और लालोंकी बनी हुई थीं । अपनी कान्तिके कारण वह नागोंकी राजधानी भोगवतीपुरीके समान जान पड़ता था ॥ १५ ॥ उसमें जहाँ-तहाँ अनेकों सभा-भवन, चौराहे, सड़कें, क्रीडाभवन, बाजार, विश्राम-स्थान, ध्वजा-पताकाएँ और मूँगेके चबूतरे सुशोभित थे ॥ १६ ॥

उस नगरके बाहर दिव्य वृक्ष और लताओंसे पूर्ण एक सुन्दर बाग था; उसके बीचमें एक सरोवर सुशोभित था । उसके आस-पास अनेकों पक्षी भाँति-भाँतिकी बोली बोल रहे थे तथा भौंरे गुंजार कर रहे थे ॥ १७ ॥ सरोवरके तटपर जो वृक्ष थे, उनकी डालियाँ और पत्ते शीतल झरनोंके जलकणोंसे मिली हुई वासन्ती वायुके

झकोरोंसे हिल रहे थे और इस प्रकार वे तटवर्ती भूमिकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ १८ ॥ वहाँके वन्य पशु भी मुनि-जनोचित अहिंसादि व्रतोंका पालन करनेवाले थे, इसलिये उनसे किसीको कोई कष्ट नहीं पहुँचता था। वहाँ बार-बार जो कोकिलकी कुहू-ध्वनि होती थी, उससे मार्गमें चलनेवाले बटोहियोंको ऐसा भ्रम होता था मानो वह बगीचा विश्राम करनेके लिये उन्हें बुला रहा है ॥ १९ ॥

राजा पुरञ्जनने उस अद्भुत वनमें घूमते-घूमते एक सुन्दरीको आते देखा, जो अकस्मात् उधर चली आयी थी। उसके साथ दस सेवक थे, जिनमेंसे प्रत्येक सौ-सौ नायिकाओंका पति था॥ २० ॥ एक पाँच फनवाला साँप उसका द्वारपाल था, वही उसकी सब ओरसे रक्षा करता था। वह सुन्दरी भोली-भाली किशोरी थी और विवाहके लिये श्रेष्ठ पुरुषकी खोजमें थी॥ २१ ॥ उसकी नासिका, दन्तपङ्क्ति, कपोल और मुख बहुत सुन्दर थे। उसके समान कानोंमें कुण्डल झिलमिला रहे थे॥ २२ ॥ उसका रंग साँवला था। कटिप्रदेश सुन्दर था। वह पीले रंगकी साड़ी और सोनेकी करधनी पहने हुए थी तथा चलते समय चरणोंसे नूपुरोंकी झनकार करती जाती थी। अधिक क्या वह साक्षात् कोई देवी-सी जान पड़ती थी॥ २३ ॥ वह गज-गामिनी बाला किशोरावस्थाकी सूचना देनेवाले अपने गोल-गोल समान और परस्पर सटे हुए स्तनोंको लज्जावश बार-बार अञ्चलसे ढकती जाती थी ॥ २४ ॥

उसकी प्रेमसे मटकती भौंह और प्रेमपूर्ण तिरछी चितवनके बाणसे घायल होकर वीर पुरञ्जनने लज्जायुक्त मुसकानसे और भी सुन्दर लगनेवाली उस देवीसे मधुर वाणीमें कहा ॥ २५ ॥ 'कमलदललोचने ! मुझे बताओ तुम कौन हो, किसकी कन्या हो ? साध्वी ! इस समय आ कहाँसे रही हो, भीरु ! इस पुरीके समीप तुम क्या करना चाहती हो ? ॥२६॥ सुभ्रु ! तुम्हारे साथ इस ग्यारहवें महान् शूरवीरसे सञ्चालित ये दस सेवक कौन हैं और ये सहेलियाँ तथा तुम्हारे आगे-आगे चलनेवाला यह सर्प कौन है ?॥ २७ ॥ सुन्दरि ! तुम साक्षात् लज्जादेवी हो अथवा उमा, रमा और ब्रह्माणीमेंसे कोई हो ? यहाँ वनमें मुनियोंकी तरह एकान्तवास करके क्या अपने पतिदेवको खोज रही हो ? तुम्हारे प्राणनाथ तो 'तुम उनके चरणों-की कामना करती हो, इतनेसे ही पूर्णकाम हो जायँगे। अच्छा, यदि तुम साक्षात् कमलादेवी हो, तो तुम्हारे हाथका क्रीडाकमल कहाँ गिर गया ॥ २८ ॥ सुभगे ! तुम इनमेंसे तो कोई हो नहीं; क्योंकि तुम्हारे चरण पृथ्वीका स्पर्श कर रहे हैं। अच्छा, यदि तुम कोई मानवी ही हो, तो लक्ष्मीजी जिस प्रकार भगवान् विष्णुके साथ वैकुण्ठकी शोभा बढ़ाती हैं, उसी प्रकार तुम मेरे साथ इस श्रेष्ठ पुरीको अलङ्कृत करो। देखो, मैं बड़ा ही वीर और पराक्रमी हूँ ॥ २९ ॥ परन्तु आज तुम्हारे कटाक्षोंने मेरे मनको बेकाबू कर दिया है। तुम्हारी लजीली और रति-भावसे भरी मुसकानके साथ भौंहोंके संकेत पाकर यह शक्तिशाली कामदेव मुझे पीड़ित कर रहा है। इसलिये सुन्दरि ! अब तुम्हें मुझपर कृपा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ शुचिस्मिते ! सुन्दर भौंहें और सुघड़ नेत्रोंसे सुशोभित तुम्हारा मुखारविन्द इन लंबी-लंबी काली अलकावलियोंसे घिरा हुआ है; तुम्हारे मुखसे निकले हुए वाक्य बड़े ही मीठे और मन हरनेवाले हैं, परन्तु वह मुख तो लाजके मारे मेरी ओर होता ही नहीं। जरा ऊँचा करके अपने उस सुन्दर मुखड़ेका मुझे दर्शन तो कराओ' ॥ ३१ ॥

श्रीनारदजीने कहा—वीरवर ! जब राजा पुरञ्जनने अधीर-से होकर इस प्रकार याचना की, तब उस बालाने भी हँसते हुए उसका अनुमोदन किया। वह भी राजाको देखकर मोहित हो चुकी थी ॥ ३२ ॥ वह कहने लगी, 'नरश्रेष्ठ ! हमें अपने उत्पन्न करनेवालेका ठीक-ठीक पता नहीं है और न हम अपने या किसी दूसरेके नाम या गोत्रको ही जानती हैं ॥ ३३ ॥ वीरवर ! आज हम सब इस पुरीमें हैं—इसके सिवा मैं और कुछ नहीं जानती; मुझे इसका भी पता नहीं है कि हमारे रहनेके लिये यह पुरी किसने बनायी है ॥ ३४ ॥ प्रियवर ! ये पुरुष मेरे सखा और स्त्रियाँ मेरी सहेलियाँ हैं तथा जिस समय मैं सो जाती हूँ, यह सर्प जागता हुआ इस पुरीकी रक्षा करता रहता है ॥ ३५ ॥ शत्रुदमन ! आप यहाँ पधारे, यह मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। आपका मङ्गल हो। आपको विषय-भोगोंकी इच्छा है, उसकी पूर्तिके लिये मैं अपने साथियोंसहित सभी प्रकारके भोग प्रस्तुत करती रहूँगी ॥ ३६ ॥ प्रभो ! इस नौ द्वारोंवाली पुरीमें मेरे

प्रस्तुत किये हुए इच्छित भोगोंको भोगते हुए आप सैकड़ों वर्षोंतक निवास कीजिये ॥ ३७ ॥ भला, आपको छोड़कर मैं और किसके साथ रमण करूँगी ? दूसरे लोग तो न रति-सुखको जानते हैं, न विहित भोगोंको ही भोगते हैं, न परलोकका ही विचार करते हैं और न कल क्या होगा—इसका ही ध्यान रखते हैं, अतएव पशुतुल्य हैं ॥ ३८ ॥ अहो ! इस लोकमें गृहस्थाश्रममें ही धर्म, अर्थ, काम, सन्तान-सुख, मोक्ष, सुयश और स्वर्गादि दिव्य लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है। संसारत्यागी यतिजन तो इन सबकी कल्पना भी नहीं कर सकते ॥ ३९ ॥ महापुरुषोंका कथन है कि इस लोकमें पितर, देव, ऋषि, मनुष्य तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके और अपने भी कल्याणका आश्रय एकमात्र गृहस्थाश्रम ही है ॥ ४० ॥ वीरशिरोमणे ! लोकमें मेरी-जैसी कौन स्त्री होगी, जो स्वयं प्राप्त हुए आप-जैसे सुप्रसिद्ध, उदारचित्त और सुन्दर पतिको वरण न करेगी ॥ ४१ ॥ महाबाहो ! इस पृथ्वीपर आपकी साँप-जैसी गोलाकार सुकोमल भुजाओंमें स्थान पानेके लिये किस कामिनीका चित्त न ललचावेगा ? आप तो अपनी मधुर मुसकानमयी करुणापूर्ण दृष्टिसे हम-जैसी अनाथाओंके मानसिक सन्तापको शान्त करनेके लिये ही पृथ्वीमें विचर रहे हैं' ॥ ४२ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उन स्त्री-पुरुषोंने इस प्रकार एक दूसरेकी बातका समर्थन कर फिर सौ वर्षोंतक उस पुरीमें रहकर आनन्द भोगा ॥ ४३ ॥ गायक लोग सुमधुर स्वरमें जहाँ-तहाँ राजा पुरञ्जनकी कीर्ति गाया करते थे। जब ग्रीष्मऋतु आती, तब वह अनेकों स्त्रियोंके साथ सरोवरमें घुसकर जलक्रीड़ा करता ॥ ४४ ॥ उस नगरमें जो नौ द्वार थे, उनमेंसे सात नगरीके ऊपर और दो नीचे थे। उस नगरका जो कोई राजा होता, उसके पृथक्-पृथक् देशोंमें जानेके लिये ये द्वार बनाये गये थे ॥ ४५ ॥ राजन् ! इनमेंसे पाँच पूर्व, एक दक्षिण, एक उत्तर और दो पश्चिमकी ओर थे। उनके नामोंका वर्णन करता हूँ ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी नामके दो द्वार एक ही जगह बनाये गये थे। उनमें होकर राजा पुरञ्जन अपने मित्र द्युमान्के साथ विभ्राजित नामक देशको जाया करता था ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार उस ओर नलिनी और नालिनी नामके दो द्वार और भी एक ही जगह बनाये गये थे। उनसे होकर वह अवधूतके साथ सौरभ नामक देशको जाता था ॥ ४८ ॥ पूर्वदिशाकी ओर मुख्या नामका जो पाँचवाँ द्वार था, उसमें होकर वह रसज्ञ और विपणके साथ क्रमशः बहूदन और आपण नामके देशोंको जाता था ॥ ४९ ॥ पुरीके दक्षिणकी ओर जो पितृहू नामका द्वार था, उसमें होकर राजा पुरञ्जन श्रुतधरके साथ दक्षिणपाञ्चाल देशको जाता था ॥ ५० ॥ उत्तरकी ओर जो देवहू नामका द्वार था, उससे श्रुतधरके ही साथ वह उत्तरपाञ्चाल देशको जाता था ॥ ५१ ॥ पश्चिम दिशामें आसुरी नामका दरवाजा था, उसमें होकर वह दुर्मदके साथ ग्रामक देशको जाता था ॥ ५२ ॥ तथा निर्ऋति नामका जो दूसरा पश्चिम द्वार था, उससे लुब्धकके साथ वह वैशस नामके देशको जाता था ॥ ५३ ॥ इस नगरके निवासियोंमें निर्वाक् और पेशस्कृत्—ये दो नागरिक अंधे थे। राजा पुरञ्जन आँखवाले नागरिकोंका अधिपति होनेपर भी इन्हींकी सहायतासे जहाँ-तहाँ जाता और सब प्रकारके कार्य करता था ॥ ५४ ॥

जब कभी अपने प्रधान सेवक विषूचीनके साथ अन्तःपुरमें जाता, तब उसे स्त्री और पुत्रोंके कारण होनेवाले मोह, प्रसन्नता एवं हर्ष आदि विकारोंका अनुभव होता ॥ ५५ ॥ उसका चित्त तरह-तरहके कर्मोंमें फँसा हुआ था और काम-परवश होनेके कारण वह मूढ़ रमणीके द्वारा ठगा गया था। उसकी रानी जो-जो काम करती थी, वही वह भी करने लगता था ॥ ५६ ॥ वह जब मद्यपान करती, तब वह भी मदिरा पीता और मदसे उन्मत्त हो जाता था; जब वह भोजन करती, तब आप भी भोजन करने लगता और जब कुछ चबाती, तब आप भी वही वस्तु चबाने लगता था ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार कभी उसके गानेपर गाने लगता, रोनेपर रोने लगता, हँसनेपर हँसने लगता और बोलनेपर बोलने लगता ॥ ५८ ॥ वह दौड़ती तो आप भी दौड़ने लगता, खड़ी होती तो आप भी खड़ा हो जाता, सोती तो आप भी उसीके साथ सो जाता और बैठती तो आप भी बैठ जाता ॥ ५९ ॥ कभी वह सुनने लगती तो आप भी सुनने लगता, देखती तो

देखने लगता, सूँघती तो सूँघने लगता और किसी चीजको छूती तो आप भी छूने लगता ॥ ६० ॥ कभी उसकी प्रिया शोकाकुल होती तो आप भी अत्यन्त दीनके समान व्याकुल हो जाता; जब वह प्रसन्न होती, आप भी प्रसन्न हो जाता और उसके आनन्दित होनेपर आप भी आनन्दित हो जाता ॥ ६१ ॥ (इस प्रकार) राजा पुरञ्जन अपनी सुन्दरी रानीके द्वारा ठगा गया। सारा प्रकृतिवर्ग—परिकर ही उसको धोखा देने लगा। वह मूर्ख विवश होकर इच्छा न होनेपर भी खेलके लिये घरपर पाले हुए बंदरके समान अनुकरण करता रहता ॥ ६२ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

राजा पुरञ्जनका शिकार खेलने वनमें जाना और रानीका कुपित होना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन राजा पुरञ्जन अपना विशाल धनुष, सोनेका कवच और अक्षय तरकस धारणकर अपने ग्यारहवें सेनापतिके साथ पाँच घोड़ोंके शीघ्रगामी रथमें बैठकर पञ्चप्रस्थ नामके वनमें गया। उस रथमें दो ईषादण्ड (बंब), दो पहिये, एक धुरी, तीन ध्वजदण्ड, पाँच डोरियाँ, एक लगाम, एक सारथि, एक बैठनेका स्थान, दो जुए, पाँच आयुध और सात आवरण थे। वह पाँच प्रकारकी चालोंसे चलता था तथा उसका साज-बाज सब सुनहरा था ॥ १-३ ॥ यद्यपि राजाके लिये अपनी प्रियाको क्षणभर भी छोड़ना कठिन था, किन्तु उस दिन उसे शिकारका ऐसा शौक लगा कि उसकी भी परवा न कर वह बड़े गर्वसे धनुष-बाण चढ़ाकर आखेट करने लगा ॥ ४ ॥ इस समय आसुरीवृत्ति बढ़ जानेसे उसका चित्त बड़ा कठोर और दयाशून्य हो गया था, इससे उसने अपने तीखे बाणोंसे बहुत-से निर्दोष जंगली जानवरोंका वध कर डाला ॥ ५ ॥ जिसकी मांसमें अत्यन्त आसक्ति हो, वह राजा केवल शास्त्रप्रदर्शित कर्मोंके लिये वनमें जाकर आवश्यकतानुसार अनिषिद्ध पशुओंका वध करे; व्यर्थ पशुहिंसा न करे। शास्त्र इस प्रकार उच्छृङ्खल प्रवृत्तिको नियन्त्रित करता है ॥ ६ ॥ राजन्! जो विद्वान् इस प्रकार शास्त्रनियत कर्मोंका आचरण करता है, वह उस कर्मानुष्ठानसे प्राप्त हुए ज्ञानके कारणभूत कर्मोंसे लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥ नहीं तो, मनमाना कर्म करनेसे मनुष्य अभिमानके वशीभूत होकर कर्मोंमें बँध जाता है तथा गुण-प्रवाहरूप संसारचक्रमें पड़कर विवेकबुद्धिके नष्ट हो जानेसे अधम योनियोंमें जन्म लेता है ॥ ८ ॥

पुरञ्जनके तरह-तरहके पंखोंवाले बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर अनेकों जीव बड़े कष्टके साथ प्राण त्यागने लगे। उसका वह निर्दयतापूर्ण जीव-संहार देखकर सभी दयालु पुरुष बहुत दुखी हुए। वे इसे सह नहीं सके ॥ ९ ॥ इस प्रकार वहाँ खरगोश, सूअर, भैंसे, नीलगाय, कृष्णमृग, साही तथा और भी बहुत-से मेध्य पशुओंका वध करते-करते राजा पुरञ्जन बहुत थक गया ॥ १० ॥ तब वह भूख-प्याससे अत्यन्त शिथिल हो वनसे लौटकर राजमहलमें आया। वहाँ उसने यथायोग्य रीतिसे स्नान और भोजनसे निवृत्त हो, कुछ विश्राम करके थकान दूर की ॥ ११ ॥ फिर गन्ध, चन्दन और माला आदिसे सुसज्जित हो सब अङ्गोंमें सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने। तब उसे अपनी प्रियाकी याद आयी ॥ १२ ॥ वह भोजनादिसे तृप्त, हृदयमें आनन्दित, मदसे उन्मत्त और कामसे व्यथित होकर अपनी सुन्दरी भार्याको ढूँढ़ने लगा; किन्तु उसे वह कहीं भी दिखायी न दी ॥ १३ ॥

प्राचीनबर्हि! तब उसने चित्तमें कुछ उदास होकर अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे पूछा, 'सुन्दरियो! अपनी स्वामिनीके सहित तुम सब पहलेकी ही तरह कुशलसे हो न? ॥ १४ ॥ क्या कारण है आज इस घरकी सम्पत्ति पहले-जैसी सुहावनी नहीं जान पड़ती? घरमें माता अथवा पतिपरायणा भार्या न हो, तो वह घर बिना पहियेके रथके समान हो जाता है; फिर उसमें कौन बुद्धिमान् दीन पुरुषोंके समान रहना पसंद करेगा ॥ १५ ॥ अतः बताओ, वह सुन्दरी कहाँ है, जो दुःख-समुद्रमें डूबनेपर मेरी विवेक-बुद्धिको पद-पद-

पर जाग्रत करके मुझे उस सङ्कटसे उबार लेती है ?" ॥ १६ ॥

स्त्रियोंने कहा—नरनाथ ! मालूम नहीं आज आपकी प्रियाने क्या ठानी है ! शत्रुदमन ! देखिये, वे बिना बिछौनेके पृथ्वीपर ही पड़ी हुई हैं ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उस स्त्रीके सङ्गसे राजा पुरञ्जनका विवेक नष्ट हो चुका था; इसलिये अपनी रानीको पृथ्वीपर अस्त-व्यस्त अवस्थामें पड़ी देखकर वह अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥ १८ ॥ उसने दुःखित हृदयसे उसे मधुर वचनोंद्वारा बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसे अपनी प्रेयसीके अंदर अपने प्रति प्रणय-कोपका कोई चिह्न नहीं दिखायी दिया ॥ १९ ॥ वह मनानेमें भी बहुत कुशल था, इसलिये अब पुरञ्जनने उसे धीरे-धीरे मनाना आरम्भ किया । उसने पहले उसके चरण छूए और फिर गोदमें बिठाकर बड़े प्यारसे कहने लगा ॥ २० ॥

पुरञ्जन बोला—सुन्दरि ! वे सेवक तो निश्चय ही बड़े अभागे हैं, जिनके अपराध करनेपर स्वामी उन्हें अपना समझकर शिक्षाके लिये उचित दण्ड नहीं देते ॥ २१ ॥ सेवकको दिया हुआ स्वामीका दण्ड तो उसपर बड़ा अनुग्रह ही होता है । जो मूर्ख हैं, उन्हींको क्रोधके कारण अपने हितकारी स्वामीके किये हुए उस उपकारका पता नहीं चलता ॥ २२ ॥ सुन्दर दन्तावली और मनोहर भौंहोंसे शोभा पानेवाली मनस्विनि ! अब यह क्रोध दूर करो और एक बार मुझे अपना समझकर प्रणय-भार तथा लज्जासे झुका हुआ एवं मधुर मुसकानमयी चितवनसे सुशोभित अपना मनोहर मुखड़ा दिखाओ । अहो ! भ्रमरपंक्तिके समान नीली अलकावली, उन्नत नासिका और सुमधुर वाणीके कारण तुम्हारा वह मुखारविन्द कैसा मनोमोहक जान पड़ता है ॥ २३ ॥ वीरपत्नि ! यदि किसी दूसरेने तुम्हारा कोई अपराध किया हो तो उसे बताओ; यदि वह अपराधी ब्राह्मणकुलका नहीं है, तो मैं उसे अभी दण्ड देता हूँ । मुझे तो भगवान्‌के भक्तोंको छोड़कर त्रिलोकीमें अथवा उससे बाहर ऐसा कोई नहीं दिखायी देता जो तुम्हारा अपराध करके निर्भय और आनन्दपूर्वक रह सके ॥ २४ ॥ प्रिये ! मैंने आजतक तुम्हारा मुख कभी तिलकहीन, उदास, मुरझाया हुआ, क्रोधके कारण डरावना, कान्तिहीन और स्नेहशून्य नहीं देखा; और न कभी तुम्हारे सुन्दर स्तनोंको ही शोकाश्रुओंसे भीगा तथा बिम्बाफलसदृश अधरोंको स्निग्ध केसरकी लालीसे रहित देखा है ॥ २५ ॥ मैं व्यसनवश तुमसे बिना पूछे शिकार खेलने चला गया, इसलिये अवश्य अपराधी हूँ । फिर भी अपना समझकर तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ; कामदेवके विषम बाणोंसे अधीर होकर जो सर्वदा अपने अधीन रहता है, उस अपने प्रिय पतिको उचित कार्यके लिये भला कौन कामिनी स्वीकार नहीं करती ॥ २६ ॥
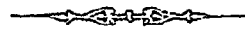
सत्ताईसवाँ अध्याय

पुरञ्जनपुरीपर चण्डवेगकी चढ़ाई तथा कालकन्याका चरित्र

श्रीनारदजी कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार वह सुन्दरी अनेकों नखरोंसे पुरञ्जनको पूरी तरह अपने वशमें कर उसे आनन्दित करती हुई विहार करने लगी ॥ १ ॥ उसने अच्छी तरह स्नान कर अनेक प्रकारके माङ्गलिक शृङ्गार किये तथा भोजनादिसे तृप्त होकर वह राजाके पास आयी । राजाने उस मनोहर मुखवाली राजमहिषीका सादर अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ पुरञ्जनीने राजाका आलिङ्गन किया और राजाने उसे गले लगाया । फिर एकान्तमें मनके अनुकूल रहस्यकी बातें करते हुए वह ऐसा मोहित हो गया कि उस कामिनीमें ही चित्त लगा रहनेके कारण उसे दिन-रातके भेदसे निरन्तर बीतते हुए कालकी दुस्तर गतिका भी कुछ पता न चला ॥ ३ ॥ मदसे छका हुआ मनस्वी पुरञ्जन अपनी प्रियाकी भुजापर सिर रक्खे महामूल्य शय्यापर पड़ा रहता । उसे तो वह रमणी ही जीवनका परम फल जान पड़ती थी । अज्ञानसे आवृत हो जानेके

कारण उसे आत्मा अथवा परमात्माका कोई ज्ञान न रहा ॥ ४ ॥

राजन्! इस प्रकार कामातुर चित्तसे उसके साथ विहार करते-करते राजा पुरञ्जनकी जवानी आधे क्षणके समान बीत गयी ॥ ५ ॥ प्रजापते! उस पुरञ्जनीसे राजा पुरञ्जनके ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ दस कन्याएँ हुईं, जो सभी माता-पिताका सुयश बढ़ानेवाली और सुशीलता-उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न थीं। ये पौरञ्जनी नामसे विख्यात हुईं। इतनेमें ही उस सम्राट्की लंबी आयुका आधा भाग निकल गया ॥ ६-७ ॥ फिर पाञ्चालराज पुरञ्जनने पितृवंशकी वृद्धि करनेवाले पुत्रोंका वधुओंके साथ और कन्याओंका उनके योग्य वरोंके साथ विवाह कर दिया ॥ ८ ॥ पुत्रोंमेंसे प्रत्येकके सौ-सौ पुत्र हुए। उनसे वृद्धिको प्राप्त होकर पुरञ्जनका वंश सारे पाञ्चाल देशमें फैल गया ॥ ९ ॥ इन पुत्र, पौत्र, गृह, कोश, सेवक और मन्त्री आदिमें दृढ ममता हो जानेसे वह इन विषयोंमें ही बँध गया ॥ १० ॥ फिर तुम्हारी तरह उसने भी अनेक प्रकारके भोगोंकी कामनासे यज्ञकी दीक्षा ले तरह-तरहके पशुहिंसामय घोर यज्ञोंसे देवता, पितर और भूतपतियोंकी आराधना की ॥ ११ ॥ इस प्रकार वह जीवनभर आत्माका कल्याण करनेवाले कर्मोंकी ओरसे असावधान और कुटुम्बपालनमें व्यस्त रहा। अन्तमें वृद्धावस्थाका वह समय आ पहुँचा, जो स्त्रीलंपट पुरुषोंको बड़ा अप्रिय होता है ॥ १२ ॥

राजन्! चण्डवेग नामका एक गन्धर्वराज है। उसके अधीन तीन सौ साठ महाबलवान् गन्धर्व रहते हैं ॥ १३ ॥ इनके साथ मिथुनभावसे स्थित कृष्ण और शुक्ल वर्णकी उतनी ही गन्धर्वियाँ भी हैं। ये बारी-बारीसे चक्कर लगाकर भोग-विलासकी सामग्रियोंसे भरी-पूरी नगरीको लूटती रहती हैं ॥ १४ ॥ गन्धर्वराज चण्डवेगके उन अनुचरोंने जब राजा पुरञ्जनका नगर लूटना आरम्भ किया, तब उन्हें पाँच फनके सर्प प्रजागरने रोका ॥ १५ ॥ यह पुरञ्जनपुरीकी चौकसी करनेवाला महाबलवान् सर्प सौ वर्षतक अकेला ही उन सात सौ बीस गन्धर्व-गन्धर्वियोंसे युद्ध करता रहा ॥ १६ ॥ बहुत-से वीरोंके साथ अकेले ही युद्ध करनेके कारण अपने एकमात्र सम्बन्धी प्रजागरको बलहीन हुआ देख राजा पुरञ्जनको अपने राष्ट्र और नगरमें रहनेवाले अन्य बान्धवोंके सहित बड़ी चिन्ता हुई ॥ १७ ॥ वह इतने दिनोंतक पाञ्चाल देशके उस नगरमें अपने दूतोंद्वारा लाये हुए करको लेकर विषयभोगोंमें मस्त रहता था। स्त्रीके वशीभूत रहनेके कारण इस अवश्यम्भावी भयका उसे पता ही न चला ॥ १८ ॥

बर्हिष्मन्! इन्हीं दिनों कालकी एक कन्या वरकी खोजमें त्रिलोकीमें भटकती रही, फिर भी उसे किसीने स्वीकार न किया ॥ १९ ॥ वह कालकन्या (जरा) बड़ी भाग्यहीना थी, इसलिये लोग उसे 'दुर्भगा' कहते थे। एक बार राजर्षि पूरुने पिताको अपना यौवन देनेके लिये अपनी ही इच्छासे उसे वर लिया था, इससे प्रसन्न होकर उसने उन्हें राज्यप्राप्तिका वर दिया था ॥ २० ॥ एक दिन मैं ब्रह्मलोकसे पृथ्वीपर आया, तो वह घूमती-घूमती मुझे भी मिल गयी। तब मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी कामातुरा होनेके कारण उसने वरना चाहा ॥ २१ ॥ मैंने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इसपर उसने अत्यन्त कुपित होकर मुझे यह दुःसह शाप दिया कि 'तुमने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, अतः तुम एक स्थानपर अधिक देर न ठहर सकोगे' ॥ २२ ॥

तब मेरी ओरसे निराश होकर उस कन्याने मेरी सम्मतिसे यवनराज भयके पास जाकर उसका पतिरूपसे वरण किया ॥ २३ ॥ और कहा, 'वीरवर! आप यवनोंमें श्रेष्ठ हैं, मैं आपसे प्रेम करती हूँ और पति बनाना चाहती हूँ। आपके प्रति किया हुआ जीवोंका सङ्कल्प कभी विफल नहीं होता ॥ २४ ॥ जो मनुष्य लोक अथवा शास्त्रकी दृष्टिसे देनेयोग्य वस्तुका दान नहीं करता और जो शास्त्रदृष्टिसे अधिकारी होकर भी ऐसा दान नहीं लेता, वे दोनों ही दुराग्रही और मूढ हैं, अतएव शोचनीय हैं ॥ २५ ॥ भद्र! इस समय मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुई हूँ, आप मुझे स्वीकार करके अनुगृहीत कीजिये। पुरुषका सबसे बड़ा धर्म दीनोंपर दया करना ही है' ॥ २६ ॥

कालकन्याकी बात सुनकर यवनराजने विधाताका

एक गुप्त कार्य करानेकी इच्छासे मुसकराते हुए उससे कहा ॥ २७ ॥ 'मैंने योगदृष्टिसे देखकर तेरे लिये एक पति निश्चय किया है। तू सबका अनिष्ट करनेवाली है, इसलिये किसीको भी अच्छी नहीं लगती और इसीसे लोग तुझे स्वीकार नहीं करते। अतः इस कर्मजनित लोकको तू अलक्षित होकर बलात्कारसे भोग। तू मेरी सेना लेकर जा; इसकी सहायतासे तू सारी प्रजाका नाश करनेमें समर्थ होगी, कोई भी तेरा सामना न कर सकेगा ॥ २८-२९ ॥ यह प्रज्वार नामका मेरा भाई है और तू मेरी बहिन बन जा। तुम दोनोंके साथ मैं अव्यक्त गतिसे भयङ्कर सेना लेकर सारे लोकोंमें विचरूँगा' ॥ ३० ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

पुरञ्जनको स्त्रीयोनिकी प्राप्ति और अविज्ञातके उपदेशसे उसका मुक्त होना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! फिर भय नामक यवनराजके आज्ञाकारी सैनिक प्रज्वार और कालकन्याके साथ इस पृथ्वीतलपर सर्वत्र विचरने लगे ॥ १ ॥ एक बार उन्होंने बड़े वेगसे बूढ़े साँपसे सुरक्षित और संसारकी सब प्रकारकी सुख-सामग्रीसे सम्पन्न पुरञ्जन-पुरीको घेर लिया ॥ २ ॥ तब, जिसके चंगुलमें फँसकर पुरुष शीघ्र ही निःसार हो जाता है, वह कालकन्या बलात्कारसे उस पुरीकी प्रजाको भोगने लगी ॥ ३ ॥ उस समय वे यवन भी कालकन्याके द्वारा भोगी जाती हुई उस पुरीमें चारों ओरसे भिन्न-भिन्न द्वारोंसे घुसकर उसका विध्वंस करने लगे ॥ ४ ॥ पुरीके इस प्रकार पीड़ित किये जानेपर उसके स्वामित्वका अभिमान रखनेवाले तथा ममताग्रस्त, बहुकुटुम्बी राजा पुरञ्जनको भी नाना प्रकारके क्लेश सताने लगे ॥ ५ ॥

कालकन्याके आलिङ्गन करनेसे उसकी सारी श्री नष्ट हो गयी तथा अत्यन्त विषयासक्त होनेके कारण वह बहुत दीन हो गया, उसकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी। गन्धर्व और यवनोंने बलात्कारसे उसका सारा ऐश्वर्य लूट लिया ॥ ६ ॥ उसने देखा कि सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया है; पुत्र, पौत्र, भृत्य और अमात्यवर्ग प्रतिकूल होकर अनादर करने लगे हैं; स्त्री स्नेहशून्य हो गयी है, मेरी देहको कालकन्याने वशमें कर रक्खा है और पाञ्चालदेश शत्रुओंके हाथमें पड़कर भ्रष्ट हो गया है। यह सब देखकर राजा पुरञ्जन अपार चिन्तामें डूब गया और उसे उस विपत्तिसे छुटकारा पानेका कोई उपाय न दिखायी दिया ॥ ७-८ ॥ कालकन्याने जिन्हें निःसार कर दिया था, उन्हीं भोगोंकी लालसासे वह दीन था। अपनी पारलौकिकी गति और बन्धुजनोंके स्नेहसे वञ्चित रहकर उसका चित्त केवल स्त्री और पुत्रके लालन-पालनमें ही लगा हुआ था ॥ ९ ॥ ऐसी अवस्थामें उनसे बिछुड़नेकी इच्छा न होनेपर भी उसे उस पुरीको छोड़नेके लिये बाध्य होना पड़ा; क्योंकि उसे गन्धर्व और यवनोंने घेर रक्खा था तथा कालकन्याने कुचल दिया था ॥ १० ॥ इतनेमें ही यवनराज भयके बड़े भाई प्रज्वारने अपने भाईका प्रिय करनेके लिये उस सारी पुरीमें आग लगा दी ॥ ११ ॥

जब वह नगरी जलने लगी, तब पुरवासी, सेवकवृन्द, सन्तानवर्ग और कुटुम्बकी स्वामिनीके सहित कुटुम्ब-वत्सल पुरञ्जनको बड़ा दुःख हुआ ॥ १२ ॥ नगरको कालकन्याके हाथमें पड़ा देख उसकी रक्षा करनेवाले सर्पको भी बड़ी पीड़ा हुई, क्योंकि उसके निवासस्थानपर भी यवनोंने अधिकार कर लिया था और प्रज्वार उसपर भी आक्रमण कर रहा था ॥ १३ ॥ जब उस नगरकी रक्षा करनेमें वह सर्वथा असमर्थ हो गया, तब जिस प्रकार जलते हुए वृक्षके कोटरमें रहनेवाला सर्प उससे निकल जाना चाहता है, उसी प्रकार उसने भी महान् कष्टसे काँपते हुए वहाँसे भागनेकी इच्छा की ॥ १४ ॥ उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढीले पड़ गये थे तथा गन्धर्वोंने उसकी सारी शक्ति नष्ट कर दी थी; अतः जब यवन शत्रुओंने उसे जाते देखकर रोक दिया, तब वह दुखी होकर रोने लगा ॥ १५ ॥

गृहासक्त पुरञ्जन देह-गेहादिमें मैं-मेरेपनका भाव रखनेसे अत्यन्त बुद्धिहीन हो गया था। स्त्रीके प्रेमपाशमें

फँसकर वह बहुत दीन हो गया था । अब जब इनसे बिछुड़नेका समय उपस्थित हुआ, तब वह अपने पुत्री, पुत्र, पौत्र, पुत्रवधू, दामाद, नौकर और घर, खजाना तथा अन्यान्य जिन पदार्थोंमें उसकी ममताभर शेष थी (उनका भोग तो कभीका छूट गया था), उन सबके लिये इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥ १६-१७ ॥ 'हाय ! मेरी भार्या तो बहुत घर-गृहस्थीवाली है; जब मैं परलोकको चला जाऊँगा, तब यह असहाय होकर किस प्रकार अपना निर्वाह करेगी ? इसे इन बाल-बच्चोंकी चिन्ता ही खा जायगी ॥ १८ ॥ यह मेरे भोजन किये बिना भोजन नहीं करती थी और स्नान किये बिना स्नान नहीं करती थी, सदा मेरी ही सेवामें तत्पर रहती थी । मैं कभी रूठ जाता था तो यह बड़ी भयभीत हो जाती थी और झिड़कने लगता तो डरके मारे चुप रह जाती थी ॥ १९ ॥ मुझसे कोई भूल हो जाती तो यह मुझे सचेत कर देती थी । मुझमें इसका इतना अधिक स्नेह है कि यदि मैं कभी परदेश चला जाता था तो यह विरहव्यथासे सूखकर काँटा हो जाती थी । यों तो यह वीरमाता है, तो भी मेरे पीछे क्या यह गृहस्थाश्रमका व्यवहार चला सकेगी ? ॥ २० ॥ मेरे चले जानेपर एकमात्र मेरे ही सहारे रहनेवाले ये पुत्र और पुत्री भी कैसे जीवन धारण करेंगे ? ये तो बीच समुद्रमें नाव टूट जानेसे व्याकुल हुए यात्रियोंके समान बिलबिलाने लगेंगे' ॥ २१ ॥

यद्यपि ज्ञानदृष्टिसे उसे शोक करना उचित न था, फिर भी अज्ञानवश राजा पुरञ्जन इस प्रकार दीनबुद्धिसे अपने स्त्री-पुत्रादिके लिये शोकाकुल हो रहा था । इसी समय उसे पकड़नेके लिये वहाँ भयनामक यवनराज आ धमका ॥ २२ ॥ जब यवनलोग उसे पशुके समान बाँधकर अपने स्थानको ले चले, तब उसके अनुचरगण अत्यन्त आतुर और शोकाकुल होकर उसके साथ हो लिये ॥ २३ ॥ यवनोंद्वारा रोका हुआ सर्प भी उस पुरीको छोड़कर इन सबके साथ ही चल दिया । उसके जाते ही सारा नगर छिन्न-भिन्न होकर अपने कारणमें लीन हो गया ॥ २४ ॥ इस प्रकार महाबली यवनराजके बलपूर्वक खींचनेपर भी राजा पुरञ्जनने अज्ञानवश अपने हितैषी एवं पुराने मित्र अविज्ञातका स्मरण नहीं किया ॥ २५ ॥

उस निर्दय राजाने जिन यज्ञपशुओंकी बलि दी थी, वे उसकी दी हुई पीड़ाको याद करके उसे क्रोधपूर्वक कुठारोंसे काटने लगे ॥ २६ ॥ वह वर्षोंतक विवेकहीन अवस्थामें अपार अन्धकारमें पड़ा निरन्तर कष्ट भोगता रहा । स्त्रीकी आसक्तिसे उसकी यह दुर्गति हुई थी ॥ २७ ॥ अन्त समयमें भी पुरञ्जनको उसीका चिन्तन बना हुआ था । इसलिये दूसरे जन्ममें वह नृपश्रेष्ठ विदर्भराजके यहाँ सुन्दरी कन्या होकर उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ जब यह विदर्भनन्दिनी विवाहयोग्य हुई, तब विदर्भराजने घोषित कर दिया कि इसे सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी वीर ही व्याह सकेगा । तब शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले पाण्ड्यनरेश महाराज मलयध्वजने समरभूमिमें समस्त राजाओंको जीतकर उसके साथ विवाह किया ॥ २९ ॥ उससे महाराज मलयध्वजने एक श्यामलोचना कन्या और उससे छोटे सात पुत्र उत्पन्न किये, जो आगे चलकर द्रविडदेशके सात राजा हुए ॥ ३० ॥ राजन् ! फिर उनमेंसे प्रत्येक पुत्रके बहुत-बहुत पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके वंशधर इस पृथ्वीको मन्वन्तरके अन्ततक तथा उसके बाद भी भोगेंगे ॥ ३१ ॥ राजा मलयध्वजकी पहली पुत्री बड़ी व्रतशीला थी । उसके साथ अगस्त्य ऋषिका विवाह हुआ । उससे उनके दृढच्युत नामका पुत्र हुआ और दृढच्युतके इध्मवाह हुआ ॥ ३२ ॥

अन्तमें राजर्षि मलयध्वज पृथ्वीको पुत्रोंमें बाँटकर भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेकी इच्छासे मलयपर्वतपर चले गये ॥ ३३ ॥ उस समय—चन्द्रिका जिस प्रकार चन्द्रदेवका अनुसरण करती है—उसी प्रकार मत्तलोचना वैदर्भीने अपने घर, पुत्र और समस्त भोगोंको तिलाञ्जलि दे पाण्ड्यनरेशका अनुगमन किया ॥ ३४ ॥ वहाँ चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी और वटोदका नामकी तीन नदियाँ थीं । उनके पवित्र जलमें स्नान करके वे प्रतिदिन अपने शरीर और अन्तःकरणको निर्मल करते थे ॥ ३५ ॥ वहाँ रहकर उन्होंने कन्द, बीज,

मूल, फल, पुष्प, पत्ते, तृण और जलसे ही निर्वाह करते हुए बड़ा कठोर तप किया। इससे धीरे-धीरे उनका शरीर बहुत सूख गया ॥ ३६ ॥ महाराज मलयध्वजने सर्वत्र समदृष्टि रखकर शीत-उष्ण, वर्षा-वायु, भूख-प्यास, प्रिय-अप्रिय और सुख-दुःखादि सभी द्वन्द्वोंको जीत लिया ॥ ३७ ॥ तप और उपासनासे वासनाओंको निर्मूल कर तथा यम-नियमादिके द्वारा इन्द्रिय, प्राण और मनको वशमें करके वे आत्मामें ब्रह्मभावना करने लगे ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सौ दिव्य वर्षोंतक स्थाणुके समान निश्चलभावसे एक ही स्थानपर बैठे रहे। भगवान् वासुदेवमें सुदृढ प्रेम हो जानेके कारण इतने समयतक उन्हें शरीरादिका भी भान न हुआ ॥ ३९ ॥ राजन्! गुरुस्वरूप साक्षात् श्रीहरिके उपदेश किये हुए तथा अपने अन्तःकरणमें सब ओर स्फुरित होनेवाले विशुद्ध विज्ञानदीपकसे उन्होंने देखा कि अन्तःकरणकी वृत्तिका प्रकाशक आत्मा स्वप्नावस्था-की भाँति देहादि समस्त उपाधियोंमें व्याप्त तथा उनसे पृथक् भी है। ऐसा अनुभव करके वे सब ओरसे उदासीन हो गये ॥ ४०-४१ ॥ फिर अपनी आत्माको परब्रह्ममें और परब्रह्मको आत्मामें अभिन्नरूपसे देखा और अन्तमें इस अभेद चिन्तनको भी त्याग कर सर्वथा शान्त हो गये ॥ ४२ ॥

राजन्! इस समय पतिपरायणा वैदर्भी सब प्रकारके भोगोंको त्याग कर अपने परमधर्मज्ञ पति मलयध्वजकी सेवा बड़े प्रेमसे करती थी ॥ ४३ ॥ वह चीर-वस्त्र धारण किये रहती, व्रत-उपवासादिके कारण उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था और सिरके बाल आपसमें उलझ जानेके कारण उनमें लटें पड़ गयी थीं। उस समय अपने पतिदेवके पास वह अङ्गारभावको प्राप्त धूमरहित अग्निके समीप अग्निकी शान्त शिखाके समान सुशोभित हो रही थी ॥ ४४ ॥ उसके पति परलोकवासी हो चुके थे, परन्तु पूर्ववत् स्थिर आसनसे विराजमान थे। इस रहस्यको न जाननेके कारण वह उनके पास जाकर उनकी पूर्ववत् सेवा करने लगी ॥ ४५ ॥ चरणसेवा करते समय जब उसे अपने पतिके चरणोंमें गरमी बिल्कुल नहीं मालूम हुई, तब तो वह झुंडसे बिछुड़ी हुई मृगीके समान चित्तमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी ॥ ४६ ॥ उस बीहड़ वनमें अपनेको अकेली और दीन अवस्थामें देखकर वह बड़ी शोकाकुल हुई और आँसुओंकी धारासे स्तनोंको भिगोती हुई बड़े जोर-जोरसे रोने लगी ॥ ४७ ॥ वह बोली, 'राजर्षे! उठिये, उठिये; समुद्रसे घिरी हुई यह वसुन्धरा लुटेरों और अधार्मिक राजाओंसे भयभीत हो रही है, आप इसकी रक्षा कीजिये' ॥ ४८ ॥ पतिके साथ वनमें गयी हुई वह अबला इस प्रकार विलाप करती पतिके चरणोंमें गिर गयी और रो-रोकर आँसू बहाने लगी ॥ ४९ ॥ लकड़ियोंकी चिता बनाकर उसने उसपर पतिका शव रक्खा और अग्नि लगाकर विलाप करते-करते स्वयं सती होनेका निश्चय किया ॥ ५० ॥ राजन्! इसी समय उसका कोई पुराना मित्र एक आत्मज्ञानी ब्राह्मण वहाँ आया। उसने उस रोती हुई अबलाको मधुर वाणीसे समझाते हुए कहा ॥ ५१ ॥

ब्राह्मणने कहा—तू कौन है? किसकी पुत्री है? और जिसके लिये तू शोक कर रही है, वह यह सोया हुआ पुरुष कौन है? क्या तू मुझे नहीं जानती? मैं वही तेरा मित्र हूँ, जिसके साथ तू पहले विचरा करती थी ॥ ५२ ॥ सखे! क्या तुम्हें अपनी याद आती है, किसी समय मैं तुम्हारा अविज्ञात नामका सखा था? तुम पृथ्वीके भोग भोगनेके लिये निवासस्थानकी खोजमें मुझे छोड़कर चले गये थे ॥ ५३ ॥ आर्य! पहले मैं और तुम एक दूसरेके मित्र एवं मानसनिवासी हंस थे। हम दोनों सहस्रों वर्षोंतक बिना किसी निवास-स्थानके ही रहे थे ॥ ५४ ॥ किन्तु मित्र! तुम विषयभोगोंकी इच्छासे मुझे छोड़कर यहाँ पृथ्वीपर चले आये! यहाँ घूमते-घूमते तुमने एक स्त्रीका रचा हुआ स्थान देखा ॥ ५५ ॥ उसमें पाँच बगीचे, नौ दरवाजे, एक द्वारपाल, तीन परकोटे, छः वैश्यकुल और पाँच बाजार थे। वह पाँच उपादान-कारणोंसे बना हुआ था और उसकी स्वामिनी एक स्त्री थी ॥ ५६ [illegible] ! इन्द्रियोंके पाँच [illegible]

ज्ञानेन्द्रियाँ—छः वैश्यकुल थे, क्रियाशक्तिरूप कर्मेन्द्रियाँ ही बाजार थीं, पाँच भूत ही उसके कभी क्षीण न होनेवाले उपादान-कारण थे और बुद्धिशक्ति ही उसकी स्वामिनी थी। यह ऐसा नगर था, जिसमें प्रवेश करनेपर पुरुष ज्ञानशून्य हो जाता है—अपने स्वरूपको भूल जाता है ॥ ५७-५८ ॥ भाई! उस नगरमें उसकी स्वामिनीके फंदेमें पड़कर उसके साथ विहार करते-करते तुम भी अपने स्वरूपको भूल गये और उसीके सङ्गसे तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है ॥ ५९ ॥

देखो, तुम न तो विदर्भराजकी पुत्री ही हो और न यह वीर मलयध्वज तुम्हारा पति ही। जिसने तुम्हें नौ द्वारोंके नगरमें बंद किया था, उस पुरञ्जनीके पति भी तुम नहीं हो ॥ ६० ॥ तुम पहले जन्ममें अपनेको पुरुष समझते थे और अब सती स्त्री मानते हो—यह सब मेरी ही फैलायी हुई माया है। वास्तवमें तुम न पुरुष हो न स्त्री। हम दोनों तो हंस हैं; हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, उसका अनुभव करो ॥ ६१ ॥ मित्र! जो मैं (ईश्वर) हूँ, वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो, मैं भी वही हूँ जो तुम हो। ज्ञानी पुरुष हम दोनोंमें कभी थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं देखते ॥ ६२ ॥ जैसे एक पुरुष अपने शरीरकी परछाईंको शीशेमें और किसी व्यक्तिके नेत्रमें भिन्न-भिन्न रूपसे देखता है वैसे ही—एक ही आत्मा विद्या और अविद्याकी उपाधिके भेदसे अपनेको ईश्वर और जीवके रूपमें दो प्रकारसे देख रहा है ॥ ६३ ॥

इस प्रकार जब हंस (ईश्वर) ने उसे सावधान किया, तब वह मानसरोवरका हंस (जीव) अपने स्वरूपमें स्थित हो गया और उसे अपने मित्रके बिछोहसे भूला हुआ आत्मज्ञान फिर प्राप्त हो गया ॥ ६४ ॥ प्राचीनबर्हि! मैंने तुम्हें परोक्षरूपसे यह आत्मज्ञानका दिग्दर्शन कराया है; क्योंकि जगत्कर्ता जगदीश्वरको परोक्ष वर्णन ही अधिक प्रिय है ॥ ६५ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यानका तात्पर्य

राजा प्राचीनबर्हिने कहा—भगवन्! मेरी समझमें आपके वचनोंका अभिप्राय पूरा-पूरा नहीं आ रहा है। विवेकी पुरुष ही इनका तात्पर्य समझ सकते हैं, हम कर्ममोहित जीव नहीं ॥ १ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन्! पुरञ्जन (नगरका निर्माता) जीव है—जो अपने लिये एक, दो, तीन, चार अथवा बहुत पैरोंवाला या बिना पैरोंका शरीररूप पुर तैयार कर लेता है ॥ २ ॥ उस जीवका सखा जो अविज्ञात नामसे कहा गया है, वह ईश्वर है; क्योंकि किसी भी प्रकारके नाम, गुण अथवा कर्मोंसे जीवोंको उसका पता नहीं चलता ॥ ३ ॥ जीवने जब सुख-दुःखरूप सभी प्राकृत विषयोंको भोगनेकी इच्छा की तब उसने दूसरे शरीरोंकी अपेक्षा नौ द्वार, दो हाथ और दो पैरोंवाला मानव-देह ही पसंद किया ॥ ४ ॥ बुद्धि अथवा अविद्याको ही तुम पुरञ्जनी नामकी स्त्री जानो; इसीके कारण देह और इन्द्रिय आदिमें मैं-मेरेपनका भाव उत्पन्न होता है और पुरुष इसीका आश्रय लेकर शरीरमें इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको भोगता है ॥ ५ ॥ दस इन्द्रियाँ ही उसके मित्र हैं, जिनसे कि सब प्रकारके ज्ञान और कर्म होते हैं। इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ ही उसकी सखियाँ और प्राण-अपान-व्यान-उदान-समानरूप पाँच वृत्तियोंवाला प्राणवायु ही नगरकी रक्षा करनेवाला पाँच फनका सर्प है ॥ ६ ॥ दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंके नायक मनको ही ग्यारहवाँ महाबली योद्धा जानना चाहिये। शब्दादि पाँच विषय ही पाञ्चालदेश हैं, जिसके बीचमें वह नौ द्वारोंवाला नगर बसा हुआ है ॥ ७ ॥

उस नगरमें जो एक-एक स्थानपर दो-दो द्वार बताये गये थे—वे दो नेत्रगोलक, दो नासाछिद्र और दो कर्णछिद्र हैं। इनके साथ मुख, लिङ्ग और गुदा—ये तीन और मिलाकर कुल नौ द्वार हैं; इन्हींमें होकर वह जीव इन्द्रियोंके साथ बाह्य विषयोंमें जाता है ॥ ८ ॥

इसमें दो नेत्रगोलक, दो नासाछिद्र और एक मुख—ये पाँच पूर्वके द्वार हैं; दाहिने कानको दक्षिणका और बायें कानको उत्तरका द्वार समझना चाहिये ॥ ९ ॥ गुदा और लिङ्ग—ये नीचेके दो छिद्र पश्चिमके द्वार हैं। खद्योता और आविर्मुखी नामके जो दो द्वार एक स्थानपर बतलाये थे, वे नेत्रगोलक हैं तथा रूप विभ्राजित नामका देश है, जिसका इन द्वारोंसे जीव चक्षु-इन्द्रियकी सहायतासे अनुभव करता है। (चक्षु-इन्द्रियोंको ही पहले द्युमान् नामका सखा कहा गया है) ॥ १० ॥ दोनों नासाछिद्र ही नलिनी और नालिनी नामके द्वार हैं और नासिकाका विषय गन्ध ही सौरभ देश है तथा घ्राणेन्द्रिय अवधूत नामका मित्र है। मुख मुख्य नामका द्वार है। उसमें रहनेवाला वागिन्द्रिय विपण है और रसनेन्द्रिय रसविद् (रसज्ञ) नामका मित्र है ॥ ११ ॥ वाणीका व्यापार आपण है और तरह-तरहका अन्न बहूदन है तथा दाहिना कान पितृहू और बायाँ कान देवहू कहा गया है ॥ १२ ॥ कर्मकाण्डरूप प्रवृत्तिमार्गका शास्त्र और उपासनाकाण्डरूप निवृत्तिमार्गका शास्त्र ही क्रमशः दक्षिण और उत्तर पाञ्चालदेश हैं। इन्हें श्रवणेन्द्रियरूप श्रुतधरकी सहायतासे सुनकर जीव क्रमशः पितृयान और देवयान मार्गोंमें जाता है ॥ १३ ॥ लिङ्ग ही आसुरी नामका पश्चिमी द्वार है, स्त्रीप्रसङ्ग ग्रामक नामका देश है और लिङ्गमें रहनेवाला उपस्थेन्द्रिय दुर्मद नामका मित्र है। गुदा निर्ऋति नामका पश्चिमी द्वार है ॥ १४ ॥ नरक वैशस नामका देश है और गुदामें स्थित पायु-इन्द्रिय लुब्धक नामका मित्र है। इनके सिवा दो पुरुष अंधे बताये गये थे, उनका रहस्य भी सुनो। वे हाथ और पाँव हैं; इन्हींकी सहायतासे जीव क्रमशः सब काम करता और जहाँ-तहाँ जाता है ॥ १५ ॥ हृदय अन्तःपुर है, उसमें रहनेवाला मन ही विषूचि (विषूचीन) नामका प्रधान सेवक है। जीव उस मनके सत्त्वादि गुणोंके कारण ही प्रसन्नता, हर्षरूप विकार अथवा मोहको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ बुद्धि (राजमहिषी पुरञ्जनी) जिस-जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें विकारको प्राप्त होती है और जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियादिको विकृत करती है, उसके गुणोंसे लिप्त होकर आत्मा (जीव) भी उसी-उसी रूपमें उसकी वृत्तियोंका अनुकरण करनेको बाध्य होता है—यद्यपि वस्तुतः वह उनका निर्विकार साक्षीमात्र ही है ॥ १७ ॥

शरीर ही रथ है। उसमें ज्ञानेन्द्रियरूप पाँच घोड़े जुते हुए हैं। देखनेमें संवत्सररूप कालके समान ही उसका अप्रतिहत वेग है, वास्तवमें वह गतिहीन है। पुण्य और पाप—ये दो प्रकारके कर्म ही उसके पहिये हैं, तीन गुण ध्वजा हैं, पाँच प्राण डोरियाँ हैं ॥ १८ ॥ मन बागडोर है, बुद्धि सारथि है, हृदय बैठनेका स्थान है, सुख-दुःखादि द्वन्द्व जुए हैं, इन्द्रियोंके पाँच विषय उसमें रक्खे हुए आयुध हैं और त्वचा आदि सात धातुएँ उसके आवरण हैं ॥ १९ ॥ पाँच कर्मेन्द्रियाँ उसकी पाँच प्रकारकी गति हैं। इस रथपर चढ़कर रथीरूप यह जीव मृगतृष्णाके समान मिथ्या विषयोंकी ओर दौड़ता है। ग्यारह इन्द्रियाँ उसकी सेना हैं तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा उन-उन इन्द्रियोंके विषयोंको अन्यायपूर्वक ग्रहण करना ही उसका शिकार खेलना है ॥ २० ॥

जिसके द्वारा कालका ज्ञान होता है, वह संवत्सर ही चण्डवेग नामक गन्धर्वराज है। उसके अधीन जो तीन सौ साठ गन्धर्व बताये गये थे, वे दिन हैं और तीन सौ साठ गन्धर्वियाँ रात्रि हैं। ये बारी-बारीसे चक्कर लगाते हुए मनुष्यकी आयुको हरते रहते हैं ॥ २१ ॥ वृद्धावस्था ही साक्षात् कालकन्या है, उसे कोई भी पुरुष पसंद नहीं करता। तब मृत्युरूप यवनराजने लोकका संहार करनेके लिये उसे बहिन मानकर स्वीकार कर लिया ॥ २२ ॥ आधि (मानसिक क्लेश) और व्याधि (रोगादि शारीरिक कष्ट) ही उस यवनराजके पैदल चलनेवाले सैनिक हैं तथा प्राणियोंको पीड़ा पहुँचाकर शीघ्र ही मृत्युके मुखमें ले जानेवाला शीत और उष्ण दो प्रकारका ज्वर ही प्रज्वार नामका उसका भाई है ॥ २३ ॥

इस प्रकार यह देहाभिमानी जीव अज्ञानसे आच्छादित होकर अनेक प्रकारके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक कष्ट भोगता हुआ सौ वर्षतक मनुष्य-शरीरमें पड़ा रहता है ॥ २४ ॥ वस्तुतः तो वह निर्गुण है; किन्तु

प्राण, इन्द्रिय और मनके धर्मोंको अपनेमें आरोपित कर मैं-मेरेपनके अभिमानसे बँधकर क्षुद्र विषयोंका चिन्तन करता हुआ तरह-तरहके कर्म करता रहता है ॥ २५ ॥ यह यद्यपि स्वयंप्रकाश है, तथापि जबतक सबके परमगुरु आत्मस्वरूप श्रीभगवान्‌के स्वरूपको नहीं जानता, तबतक प्रकृतिके गुणोंमें ही बँधा रहता है ॥ २६ ॥ उन गुणोंका अभिमानी होनेसे वह विवश होकर सात्त्विक, राजस और तामस कर्म करता है तथा उन कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म लेता है ॥ २७ ॥ वह कभी तो सात्त्विक कर्मोंके द्वारा प्रकाशबहुल स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है, कभी राजसी कर्मोंके द्वारा दुःखमय रजोगुणी लोकोंमें जाता है—जहाँ उसे तरह-तरहके कर्मोंका क्लेश उठाना पड़ता है—और कभी तमोगुणी कर्मोंके द्वारा शोकबहुल तमोमयी योनियोंमें जन्म लेता है ॥ २८ ॥ इस प्रकार अपने कर्म और गुणोंके अनुसार देवयोनि, मनुष्ययोनि अथवा पशु-पक्षीयोनिमें जन्म लेकर वह अज्ञानान्ध जीव कभी पुरुष, कभी स्त्री और कभी नपुंसक होता है ॥ २९ ॥ जिस प्रकार बेचारा भूखसे व्याकुल कुत्ता दर-दर भटकता हुआ अपने प्रारब्धानुसार कहीं डंडा खाता है और कहीं भात खाता है, उसी प्रकार यह जीव चित्तमें नाना प्रकारकी वासनाओंको लेकर ऊँचे-नीचे मार्गसे ऊपर, नीचे अथवा मध्यके लोकोंमें भटकता हुआ अपने कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता रहता है ॥ ३०-३१ ॥

आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंमेंसे किसी भी एकसे जीवका सर्वथा छुटकारा नहीं हो सकता। यदि कभी वैसा जान पड़ता है तो वह केवल तात्कालिक निवृत्ति ही है ॥ ३२ ॥ वह ऐसी ही है जैसे कोई सिरपर भारी बोझा ढोकर ले जानेवाला पुरुष उसे कंधेपर रख ले। इसी तरह सभी प्रतिक्रिया (दुःख-निवृत्ति) जाननी चाहिये—यदि किसी उपायसे मनुष्य एक प्रकारके दुःखसे छुट्टी पाता है, तो दूसरा दुःख आकर उसके सिरपर सवार हो जाता है ॥ ३३ ॥ शुद्धहृदय नरेन्द्र! जिस प्रकार स्वप्नमें होनेवाला स्वप्नान्तर उस स्वप्नसे सर्वथा छूटनेका उपाय नहीं है, उसी प्रकार कर्मफल-भोगसे सर्वथा छूटनेका उपाय केवल कर्म नहीं हो सकता; क्योंकि कर्म और कर्मफल-भोग दोनों ही अविद्यायुक्त होते हैं ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें अपने मनोमय लिङ्गशरीरसे विचरनेवाले प्राणीको स्वप्नके पदार्थ न होनेपर भी भासते हैं, उसी प्रकार ये दृश्यपदार्थ वस्तुतः न होनेपर भी, जबतक अज्ञान-निद्रा नहीं टूटती, बने ही रहते हैं और जीवको जन्म-मरण-रूप संसारसे मुक्ति नहीं मिलती। (अतः इनकी आत्यन्तिक निवृत्तिका उपाय एकमात्र आत्मज्ञान ही है) ॥ ३५ ॥

राजन्! जिस अविद्याके कारण परमार्थस्वरूप आत्माको यह जन्म-मरणरूप अनर्थपरम्परा प्राप्त हुई है, उसकी निवृत्ति गुरुस्वरूप श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति होनेपर हो सकती है ॥ ३६ ॥ भगवान् वासुदेवमें एकाग्रता-पूर्वक सम्यक् प्रकारसे किया हुआ भक्तिभाव ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव कर देता है ॥ ३७ ॥ राजर्षे! यह भक्तिभाव भगवान्‌की कथाओंके आश्रित रहता है। इसलिये जो श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, उसे बहुत शीघ्र इसकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३८ ॥ राजन्! जहाँ भगवद्‌गुणोंको कहने और सुननेमें तत्पर विशुद्धचित्त भक्तजन रहते हैं, उस साधु-समाजमें सब ओर महापुरुषोंके मुखसे निकले हुए श्रीमधुसूदनभगवान्‌के चरित्ररूप शुद्ध अमृतकी अनेकों नदियाँ बहती रहती हैं। जो लोग अतृप्तचित्तसे श्रवणमें तत्पर अपने कर्णकुहरोंद्वारा उस अमृतका छककर पान करते हैं, उन्हें भूख-प्यास, भय, शोक और मोह आदि कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकते ॥ ३९-४० ॥ हाय! स्वभावतः प्राप्त होनेवाले इन क्षुधा-पिपासादि विघ्नोंसे सदा घिरा हुआ जीव-समुदाय श्रीहरिके कथामृत-सिन्धुसे प्रेम नहीं करता ॥ ४१ ॥ साक्षात् प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजी, भगवान् शङ्कर, स्वायम्भुव मनु, दक्षादि प्रजापतिगण, सनकादि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं—ये जितने ब्रह्मवादी मुनिगण हैं, समस्त वाङ्मयके अधिपति होनेपर भी तप, उपासना और समाधिके द्वारा ढूँढ़-ढूँढ़कर हार गये, फिर भी उस सर्वसाक्षी परमेश्वरको आजतक न देख सके ॥ ४२—४४ ॥ वेद भी अत्यन्त विस्तृत हैं, उसका पार पाना हँसी-खेल नहीं है।

अनेकों महानुभाव उसकी आलोचना करके मन्त्रोंमें बताये हुए वज्रहस्तत्वादि गुणोंसे युक्त इन्द्रादि देवताओंके रूपमें, भिन्न-भिन्न कर्मोंके द्वारा, यद्यपि उस परमात्माका ही यजन करते हैं तथापि उसके स्वरूपको वे भी नहीं जानते ॥ ४५ ॥ हृदयमें बार-बार चिन्तन किये जानेपर भगवान् जिस समय जिस जीवपर कृपा करते हैं, उसी समय वह लौकिक व्यवहार एवं वैदिक कर्म-मार्गकी बद्धमूल आस्थासे छुट्टी पा जाता है॥४६॥

बर्हिष्मन् ! तुम इन कर्मोंमें परमार्थबुद्धि मत करो। ये सुननेमें ही प्रिय जान पड़ते हैं, परमार्थका तो स्पर्श भी नहीं करते। ये जो परमार्थवत् दीख पड़ते हैं, इसमें केवल अज्ञान ही कारण है ॥ ४७ ॥ जो मलिनमति कर्मवादी लोग वेदको कर्मपरक बताते हैं, वे वास्तवमें उसका मर्म नहीं जानते। इसका कारण यही है कि वे अपने स्वरूपभूत लोक (आत्मतत्त्व) को नहीं जानते, जहाँ साक्षात् श्रीजनार्दन भगवान् विराजमान हैं॥ ४८ ॥ पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशाओंसे सम्पूर्ण भूमण्डलको आच्छादित करके अनेकों पशुओंका वध करनेसे तुम बड़े कर्माभिमानी और उद्धत हो गये हो; किन्तु वास्तवमें तुम्हें कर्म या उपासना—किसीके भी रहस्यका पता नहीं है। वास्तवमें कर्म तो वही है, जिससे श्रीहरिको प्रसन्न किया जा सके और विद्या भी वही है, जिससे भगवान्‌में चित्त लगे ॥ ४९ ॥ श्रीहरि सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा, नियामक और स्वतन्त्र कारण हैं; अतः उनके चरणतल ही मनुष्योंके एकमात्र आश्रय हैं और उन्हींसे संसारमें सबका कल्याण हो सकता है ॥ ५० ॥ 'जिससे किसीको अणुमात्र भी भय नहीं होता, वही उसका प्रियतम आत्मा है' ऐसा जो पुरुष जानता है, वही ज्ञानी है और जो ज्ञानी है, वही गुरु एवं साक्षात् श्रीहरि है ॥ ५१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—पुरुषश्रेष्ठ ! यहाँतक जो कुछ कहा गया है, उससे तुम्हारे प्रश्नका उत्तर हो गया। अब मैं एक भलीभाँति निश्चित किया हुआ गुप्त साधन बताता हूँ, ध्यान देकर सुनो ॥ ५२ ॥ 'पुष्पवाटिकामें अपनी हरिनीके साथ विहार करता हुआ एक हरिन मस्त घूम रहा है, वह दूब आदि छोटे-छोटे अङ्कुरोंको चर रहा है। उसके कान भौंरोंके मधुर गुंजारमें लग रहे हैं। उसके सामने ही दूसरे जीवोंको मारकर अपना पेट पालनेवाले भेड़िये ताक लगाये खड़े हैं और पीछेसे शिकारी व्याधने बींधनेके लिये उसपर बाण छोड़ दिया है। परन्तु हरिन इतना बेसुध है कि उसे इसका कुछ भी पता नहीं है।' एक बार इस हरिनकी दशापर विचार करो ॥ ५३ ॥

राजन् ! इस रूपकका आशय सुनो। यह मृतप्राय हरिन तुम्हीं हो, तुम अपनी दशापर विचार करो। पुष्पोंकी तरह ये स्त्रियाँ केवल देखनेमें सुन्दर हैं, इन स्त्रियोंके रहनेका घर ही पुष्पवाटिका है। इसमें रहकर तुम पुष्पोंके मधु और गन्धके समान क्षुद्र सकाम कर्मोंके फलरूप, जीभ और जननेन्द्रियको प्रिय लगनेवाले भोजन तथा स्त्रीसङ्ग आदि तुच्छ भोगोंको ढूँढ़ रहे हो। स्त्रियोंसे घिरे रहते हो और अपने मनको तुमने उन्हींमें फँसा रक्खा है। स्त्री-पुत्रोंका मधुर भाषण ही भौंरोंका मधुर गुंजार है, तुम्हारे कान उसीमें अत्यन्त आसक्त हो रहे हैं। सामने ही भेड़ियोंके झुंडके समान कालके अंश दिन और रात तुम्हारी आयुको हर रहे हैं, परन्तु तुम उनकी कुछ भी परवा न कर गृहस्थीके सुखोंमें मस्त हो रहे हो। तुम्हारे पीछे गुप-चुप लगा हुआ शिकारी काल अपने छिपे हुए बाणसे तुम्हारे हृदयको दूरसे ही बींध डालना चाहता है ॥ ५४ ॥ इस प्रकार अपनेको मृगकी-सी स्थितिमें देखकर तुम अपने चित्तको हृदयके भीतर निरुद्ध करो और नदीकी भाँति प्रवाहित होनेवाली श्रवणेन्द्रियकी बाह्य वृत्तिको चित्तमें स्थापित करो (अन्तर्मुखी करो)। जहाँ कामी पुरुषोंकी चर्चा होती रहती है, उस गृहस्थाश्रमको छोड़कर परमहंसोंके आश्रय श्रीहरिको प्रसन्न करो और क्रमशः सभी विषयोंसे विरत हो जाओ ॥ ५५ ॥

राजा प्राचीनबर्हिने कहा—भगवन् ! आपने कृपा करके मुझे जो उपदेश दिया, उसे मैंने सुना और उसपर विशेषरूपसे विचार भी किया। मुझे कर्मका उपदेश देनेवाले इन आचार्योंको निश्चय ही इसका ज्ञान नहीं है; यदि ये इस विषयको जानते तो मुझे इसका उपदेश क्यों न करते ॥ ५६ ॥ विप्रवर ! मेरे उपाध्यायोंने आत्मतत्त्वके विषयमें मेरे हृदयमें जो महान् संशय खड़ा कर

दिया था, उसे आपने पूरी तरहसे काट दिया । इस विषयमें इन्द्रियोंकी गति न होनेके कारण मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंको भी मोह हो जाता है ॥ ५७ ॥ वेदवादियोंका कथन जगह-जगह सुना जाता है कि 'पुरुष इस लोकमें जिसके द्वारा कर्म करता है, उस स्थूलशरीरको यहीं छोड़कर परलोकमें कर्मोंसे ही बने हुए दूसरी देहसे उनका फल भोगता है। किन्तु यह बात कैसे हो सकती है ?' (क्योंकि उन कर्मोंका कर्ता स्थूल शरीर तो यहीं नष्ट हो जाता है।) इसके सिवा जो-जो कर्म यहाँ किये जाते हैं, वे तो दूसरे ही क्षणमें अदृश्य हो जाते हैं; वे परलोकमें फल देनेके लिये किस प्रकार पुनः प्रकट हो सकते हैं ? ॥ ५८-५९ ॥

श्रीनारदजीने कहा—राजन् ! (स्थूल शरीर तो लिङ्गशरीरके अधीन है, अतः कर्मोंका उत्तरदायित्व उसीपर है) जिस मनःप्रधान लिङ्गशरीरकी सहायतासे मनुष्य कर्म करता है, वह तो मरनेके बाद भी उसके साथ रहता ही है; अतः वह परलोकमें अपरोक्षरूपसे स्वयं उसीके द्वारा उनका फल भोगता है ॥ ६० ॥ स्वप्नावस्थामें मनुष्य इस जीवित शरीरका अभिमान तो छोड़ देता है, किन्तु इसीके समान अथवा इससे भिन्न प्रकारके पशु-पक्षी आदि शरीरसे वह मनमें संस्काररूपसे स्थित कर्मोंका फल भोगता रहता है ॥ ६१ ॥ इस मनके द्वारा जीव जिन स्त्री-पुत्रादिको 'ये मेरे हैं' और देहादिको 'यह मैं हूँ' ऐसा कहकर मानता है, उनके किये हुए पाप-पुण्यादिरूप कर्मोंको भी यह अपने ऊपर ले लेता है और उनके कारण इसे व्यर्थ ही फिर जन्म लेना पड़ता है ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनोंकी चेष्टाओंसे उनके प्रेरक चित्तका अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार चित्तकी भिन्न-भिन्न प्रकारकी वृत्तियोंसे पूर्वजन्मके कर्मोंका भी अनुमान होता है (अतः कर्म अदृष्टरूपसे फल देनेके लिये कालान्तरमें मौजूद रहते हैं) ॥ ६३ ॥ कभी-कभी देखा जाता है कि जिस वस्तुका इस शरीरसे कभी अनुभव नहीं किया—जिसे न कभी देखा, न सुना ही—उसका स्वप्नमें, वह जैसी होती है, वैसा ही अनुभव हो जाता है ॥ ६४ ॥ राजन् ! तुम निश्चय मानो कि लिङ्गदेहके अभिमानी जीवको उसका अनुभव पूर्वजन्ममें हो चुका है; क्योंकि जो वस्तु पहले अनुभव की हुई नहीं होती, उसकी मनमें वासना भी नहीं हो सकती ॥ ६५ ॥

राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो । मन ही मनुष्यके पूर्व रूपोंको तथा भावी शरीरादिको भी बता देता है; और जिनका भावी जन्म होनेवाला नहीं होता, उन तत्त्ववेत्ताओंकी विदेहमुक्तिका पता भी उनके मनसे ही लग जाता है ॥ ६६ ॥ कभी-कभी स्वप्नमें देश, काल अथवा क्रियासम्बन्धी ऐसी बातें भी देखी जाती हैं, जो पहले कभी देखी या सुनी नहीं गयीं (जैसे पर्वतकी चोटीपर समुद्र, दिनमें तारे अथवा अपना सिर कटा दिखायी देना, इत्यादि) । इनके दीखनेमें निद्रादोषको ही कारण मानना चाहिये ॥ ६७ ॥ मनके सामने इन्द्रियोंसे अनुभव होने योग्य पदार्थ ही भोगरूपमें बार-बार आते हैं और भोग समाप्त होनेपर चले जाते हैं; ऐसा कोई पदार्थ नहीं आता, जिसका इन्द्रियोंसे अनुभव ही न हो सके । इसका कारण यही है कि सब जीव मनसहित हैं ॥ ६८ ॥ साधारणतया तो सब पदार्थोंका क्रमशः ही भान होता है; किन्तु यदि किसी समय भगवच्चिन्तनमें लगा हुआ मन विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो जाय, तो उसमें भगवान्‌का संसर्ग होनेसे एक साथ समस्त विश्वका भी भान हो सकता है—जैसे राहु दृष्टिका विषय न होनेपर भी प्रकाशात्मक चन्द्रमाके संसर्गसे दीखने लगता है ॥ ६९ ॥ राजन् ! जबतक गुणोंका परिणाम एवं बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शब्दादि विषयोंका सङ्घात यह अनादि लिङ्गदेह बना हुआ है, तबतक जीवके अंदर स्थूलदेहके प्रति 'मैं-मेरा' इस भावका अभाव नहीं हो सकता ॥ ७० ॥ सुषुप्ति, मूर्च्छा, अत्यन्त दुःख तथा मृत्यु और तीव्र ज्वरादिके समय भी इन्द्रियोंकी व्याकुलताके कारण 'मैं' और 'मेरेपन' की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती, किन्तु उस समय भी उनका अभिमान तो बना ही रहता है ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार अमावास्याकी रात्रिमें चन्द्रमा रहते हुए भी दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार युवावस्थामें स्पष्ट प्रतीत होनेवाला यह एकादश इन्द्रियविशिष्ट लिङ्गशरीर गर्भावस्था और बाल्यकालमें रहते हुए भी इन्द्रियोंका पूर्ण विकास न होनेके कारण प्रतीत नहीं होता ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार स्वप्नमें किसी वस्तुका अस्तित्व न होनेपर भी जागे

बिना स्वप्नजनित अनर्थकी निवृत्ति नहीं होती—उसी प्रकार सांसारिक वस्तुएँ यद्यपि असत् हैं, तो भी अविद्यावश जीव उनका चिन्तन करता रहता है; इसलिये उसका जन्म-मरणरूप संसारसे छुटकारा नहीं हो पाता ॥ ७३ ॥

इस प्रकार पञ्चतन्मात्राओंसे बना हुआ तथा सोलह तत्त्वोंके रूपमें विकसित यह त्रिगुणमय सङ्घात ही लिङ्गशरीर है। यही चेतनाशक्तिसे युक्त होकर जीव कहा जाता है ॥ ७४ ॥ इसीके द्वारा पुरुष भिन्न-भिन्न देहोंको ग्रहण करता और त्यागता है तथा इसीसे उसे हर्ष, शोक, भय, दुःख और सुख आदिका अनुभव होता है ॥ ७५ ॥ जिस प्रकार जोंक, जबतक दूसरे तृणको नहीं पकड़ लेती, तबतक पहलेको नहीं छोड़ती—उसी प्रकार जीव मरणकाल उपस्थित होनेपर भी जबतक देहारम्भक कर्मोंकी समाप्ति होनेपर दूसरा शरीर प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक पहले शरीरके अभिमानको नहीं छोड़ता। राजन्! यह मनःप्रधान लिङ्गशरीर ही जीवके जन्मादिका कारण है ॥७६-७७॥ जीव जब इन्द्रियजनित भोगोंका चिन्तन करते हुए बारबार उन्हींके लिये कर्म करता है, तब उन कर्मोंके होते रहनेसे अविद्यावश वह देहादिके कर्मोंमें बँध जाता है ॥ ७८ ॥ अतएव उस कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेके लिये सम्पूर्ण विश्वको भगवद्रूप देखते हुए सब प्रकार श्रीहरिका ही भजन करो। उन्हींसे इस विश्वकी उत्पत्ति और स्थिति होती है तथा उन्हींमें लय होता है ॥ ७९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! भक्तश्रेष्ठ श्रीनारदजीने राजा प्राचीनबर्हिको जीव और ईश्वरके स्वरूपका दिग्दर्शन कराया। फिर वे उनसे विदा लेकर सिद्धलोकको चले गये ॥ ८० ॥ तब राजर्षि प्राचीनबर्हि भी प्रजापालनका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर तपस्या करनेके लिये कपिलाश्रमको चले गये ॥ ८१ ॥ वहाँ उन वीरवरने समस्त विषयोंकी आसक्ति छोड़ एकाग्र मनसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए सारूप्यपद प्राप्त किया ॥ ८२ ॥

निष्पाप विदुरजी! देवर्षि नारदके परोक्षरूपसे कहे हुए इस आत्मज्ञानको जो पुरुष सुनेगा या सुनायेगा, वह शीघ्र ही लिङ्गदेहके बन्धनसे छूट जायगा ॥ ८३ ॥ देवर्षि नारदके मुखसे निकला हुआ यह आत्मज्ञान भगवान् मुकुन्दके यशसे सम्बद्ध होनेके कारण त्रिलोकीको पवित्र करनेवाला, अन्तःकरणका शोधक तथा परमात्मपदको प्रकाशित करनेवाला है। जो पुरुष इसकी कथा सुनेगा, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा और फिर उसे इस संसार-चक्रमें नहीं भटकना पड़ेगा ॥ ८४ ॥ विदुरजी! गृहस्थाश्रमी पुरञ्जनके रूपकसे परोक्षरूपमें कहा हुआ यह अद्भुत आत्मज्ञान मैंने गुरुजीकी कृपासे प्राप्त किया था। इसका तात्पर्य समझ लेनेसे बुद्धियुक्त जीवका देहाभिमान निवृत्त हो जाता है तथा उसका 'परलोकमें जीव किस प्रकार कर्मोंका फल भोगता है' यह संशय भी मिट जाता है ॥ ८५ ॥

तीसवाँ अध्याय

प्रचेताओंको श्रीविष्णु भगवान्का वरदान

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! आपने राजा प्राचीनबर्हिके जिन पुत्रोंका वर्णन किया था, उन्होंने रुद्रगीतके द्वारा श्रीहरिकी स्तुति करके क्या सिद्धि प्राप्त की? ॥ १ ॥ बार्हस्पत्य! मोक्षाधिपति श्रीनारायणके अत्यन्त प्रिय भगवान् शङ्करका अकस्मात् सान्निध्य प्राप्त करके प्रचेताओंने मुक्ति तो प्राप्त की ही होगी; इससे पहले इस लोकमें अथवा परलोकमें भी उन्होंने क्या पाया—यह बतलानेकी कृपा करें ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! पिताके आज्ञाकारी प्रचेताओंने समुद्रके अंदर खड़े रहकर रुद्रगीतके जपरूपी यज्ञ और तपस्याके द्वारा समस्त शरीरोंके उत्पादक भगवान् श्रीहरिको प्रसन्न कर लिया ॥ ३ ॥ तपस्या करते-करते दस हजार वर्ष बीत जानेपर पुराणपुरुष श्रीनारायण अपनी मनोहर कान्तिद्वारा उनके तपस्याजनित क्लेशको शान्त करते हुए सौम्य विग्रहसे उनके सामने प्रकट हुए ॥ ४ ॥ गरुड़जीके कंधेपर बैठे हुए

श्रीभगवान् ऐसे जान पड़ते थे, मानो सुमेरुके शिखरपर कोई श्याम घटा छायी हो। उनके श्रीअङ्गमें मनोहर पीताम्बर और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। अपनी दिव्य प्रभासे वे सब दिशाओंका अन्धकार दूर कर रहे थे॥ ५ ॥ चमकीले सुवर्णमय आभूषणोंसे युक्त उनके कमनीय कपोल और मनोहर मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उनके मस्तकपर झिलमिलाता हुआ मुकुट शोभायमान था। प्रभुकी आठ भुजाओंमें आठ आयुध थे; देवता, मुनि और पार्षदगण सेवामें उपस्थित थे तथा गरुडजी किन्नरोंकी भाँति साममय पंखोंकी ध्वनिसे कीर्तिगान कर रहे थे॥ ६ ॥ उनकी आठ लंबी-लंबी स्थूल भुजाओंके बीचमें लक्ष्मीजीसे स्पर्धा करनेवाली वनमाला विराजमान थी। आदिपुरुष श्रीनारायणने इस प्रकार पधारकर अपने शरणागत प्रचेताओंकी ओर दयादृष्टिसे निहारते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजपुत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम सबमें परस्पर बड़ा प्रेम है और स्नेहवश तुम एक ही धर्मका पालन कर रहे हो। तुम्हारे इस आदर्श सौहार्दसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। मुझसे वर माँगो॥ ८ ॥ जो पुरुष सायङ्कालके समय प्रतिदिन तुम्हारा स्मरण करेगा, उसका अपने भाइयोंमें अपने ही समान प्रेम होगा तथा समस्त जीवोंके प्रति मित्रताका भाव हो जायगा॥ ९ ॥ जो लोग सायङ्काल और प्रातःकाल एकाग्र चित्तसे रुद्रगीतद्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उनको मैं अभीष्ट वर और शुद्ध बुद्धि प्रदान करूँगा॥ १० ॥ तुमलोगोंने बड़ी प्रसन्नतासे अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की है, इससे तुम्हारी कमनीय कीर्ति समस्त लोकोंमें फैल जायगी॥ ११ ॥ तुम्हारे एक बड़ा ही विख्यात पुत्र होगा। वह गुणोंमें किसी भी प्रकार ब्रह्माजीसे कम नहीं होगा तथा अपनी सन्तानसे तीनों लोकोंको पूर्ण कर देगा॥ १२ ॥

राजकुमारो! कण्डु ऋषिके तपोनाशके लिये इन्द्रकी भेजी हुई प्रम्लोचा अप्सरासे एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई थी। उसे छोड़कर वह स्वर्गलोकको चली गयी। तब वृक्षोंने उस कन्याको लेकर पाला-पोसा॥ १३॥ जब वह भूखसे व्याकुल होकर रोने लगी तब ओषधियोंके राजा चन्द्रमाने दयावश उसके मुँहमें अपनी अमृतवर्षिणी तर्जनी अँगुली दे दी॥ १४ ॥ तुम्हारे पिता आजकल मेरी सेवा (भक्ति) में लगे हुए हैं; उन्होंने तुम्हें सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है। अतः तुम शीघ्र ही उस देवोपम सुन्दरी कन्यासे विवाह कर लो॥ १५ ॥ तुम सब एक ही धर्ममें तत्पर हो और तुम्हारा स्वभाव भी एक-सा ही है; इसलिये तुम्हारे ही समान धर्म और स्वभाववाली वह सुन्दरी कन्या तुम सभीकी पत्नी होगी तथा तुम सभीमें उसका समान अनुराग होगा॥ १६ ॥ तुमलोग मेरी कृपासे दस लाख दिव्य वर्षोंतक पूर्ण बलवान् रहकर अनेकों प्रकारके पार्थिव और दिव्य भोग भोगोगे॥ १७ ॥ अन्तमें मेरी अविचल भक्तिसे हृदयका समस्त वासनारूप मल दग्ध हो जानेपर तुम इस लोक तथा परलोकके नरकतुल्य भोगोंसे उपरत होकर मेरे परमधामको जाओगे॥ १८॥ जिन लोगोंके कर्म भगवदर्पणबुद्धिसे होते हैं और जिनका सारा समय मेरी कथावार्ताओंमें ही बीतता है, वे गृहस्थाश्रममें रहें तो भी घर उनके बन्धनका कारण नहीं होते॥ १९ ॥ वे नित्यप्रति मेरी लीलाएँ सुनते रहते हैं, इसलिये ब्रह्मवादी वक्ताओंके द्वारा मैं ज्ञानस्वरूप परब्रह्म उनके हृदयमें नित्य नया-नया-सा भासता रहता हूँ और मुझे प्राप्त कर लेनेपर जीवोंको न मोह हो सकता है, न शोक और न हर्ष ही॥ २० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्के दर्शनोंसे प्रचेताओंका रजोगुण-तमोगुण मल नष्ट हो चुका था। जब उनसे सकल पुरुषार्थोंके आश्रय और सबके परम सुहृद् श्रीहरिने इस प्रकार कहा, तब वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे कहने लगे॥ २१ ॥

प्रचेताओंने कहा—प्रभो! आप भक्तोंके क्लेश दूर करनेवाले हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं। वेद आपके उदार गुण और नामोंका निरूपण करते हैं। आपका वेग मन और वाणीके वेगसे भी बढ़कर है तथा आपका स्वरूप सभी इन्द्रियोंकी गतिसे परे है। हम आपको बारबार नमस्कार करते हैं॥ २२ ॥ आप अपने स्वरूपमें स्थित रहनेके कारण नित्य शुद्ध और शान्त हैं, मन-

रूप निमित्तके कारण हमें आपमें यह मिथ्या द्वैत भास रहा है। वास्तवमें जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये आप मायाके गुणोंको स्वीकार करके ही ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूप धारण करते हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २३ ॥ आप विशुद्ध सत्त्वस्वरूप हैं, आपका ज्ञान संसारबन्धनको दूर कर देता है। आप ही समस्त भागवतोंके प्रभु वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, आपको नमस्कार है ॥ २४ ॥ आपकी ही नाभिसे ब्रह्माण्डरूप कमल प्रकट हुआ था, आपके कण्ठमें कमलकुसुमोंकी माला सुशोभित है तथा आपके चरण कमलके समान कोमल हैं; कमलनयन! आपको नमस्कार है ॥ २५ ॥ आप कमलकुसुमकी केसरके समान स्वच्छ पीताम्बर धारण किये हुए हैं, समस्त भूतोंके आश्रयस्थान हैं तथा सबके साक्षी हैं; हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥

भगवन्! आपका यह स्वरूप सम्पूर्ण क्लेशोंकी निवृत्ति करनेवाला है, हम अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेषादि क्लेशोंसे पीड़ितोंके सामने आपने इसे प्रकट किया है। इससे बढ़कर हमपर और क्या कृपा होगी ॥२७॥ अमङ्गलहारी प्रभो! दीनोंपर दया करनेवाले समर्थ पुरुषोंको इतनी ही कृपा करनी चाहिये कि समय-समयपर उन दीनजनोंको 'ये हमारे हैं' इस प्रकार स्मरण कर लिया करें ॥ २८ ॥ इसीसे उनके आश्रितोंका चित्त शान्त हो जाता है। आप तो क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणियोंके भी अन्तःकरणोंमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान रहते हैं। फिर आपके उपासक हमलोग जो-जो कामनाएँ करते हैं, हमारी उन कामनाओंको आप क्यों न जान लेंगे ॥ २९ ॥ जगदीश्वर! आप मोक्षका मार्ग दिखानेवाले और स्वयं पुरुषार्थस्वरूप हैं। आप हमपर प्रसन्न हैं, इससे बढ़कर हमें और क्या चाहिये। बस, हमारा अभीष्ट वर तो आपकी प्रसन्नता ही है ॥ ३० ॥ तथापि, नाथ! हम एक वर आपसे अवश्य माँगते हैं। प्रभो! आप प्रकृति आदिसे परे हैं और आपकी विभूतियोंका भी कोई अन्त नहीं है; इसलिये आप 'अनन्त' कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ यदि भ्रमरको अनायास ही कल्पवृक्ष मिल जाय, तो क्या वह किसी दूसरे वृक्षका सेवन करेगा? तब आपकी चरणशरणमें आकर अब हम क्या-क्या माँगें ॥ ३२ ॥ हम आपसे केवल यही माँगते हैं कि जबतक आपकी मायासे मोहित होकर हम अपने कर्मानुसार संसारमें भ्रमते रहें, तबतक जन्म-जन्ममें हमें आपके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता रहे ॥३३॥ हम तो भगवद्भक्तोंके क्षणभरके सङ्गके सामने स्वर्ग और मोक्षको भी कुछ नहीं समझते; फिर मानवी भोगोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३४ ॥ भगवद्भक्तोंके समाजमें सदा-सर्वदा भगवान्‌की मधुर-मधुर कथाएँ होती रहती हैं, जिनके श्रवणमात्रसे भोगतृष्णा शान्त हो जाती है। वहाँ प्राणियोंमें किसी प्रकारका वैर-विरोध या उद्वेग नहीं रहता, ॥ ३५ ॥ अच्छे-अच्छे कथा-प्रसङ्गोंद्वारा निष्कामभावसे संन्यासियोंके एकमात्र आश्रय साक्षात् श्रीनारायणदेवका बार-बार गुणगान होता रहता है ॥ ३६ ॥ आपके वे भक्तजन तीर्थोंको पवित्र करनेके उद्देश्यसे पृथ्वीपर पैदल ही विचरते रहते हैं। भला उनका समागम संसारसे भयभीत हुए पुरुषोंको कैसे रुचिकर न होगा ॥ ३७ ॥

भगवन्! आपके प्रिय सखा भगवान् शङ्करके क्षणभरके समागमसे ही आज हमें आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ है। आप जन्म-मरणरूप दुःसाध्य रोगके श्रेष्ठतम वैद्य हैं, अतः अब हमने आपका ही आश्रय लिया है ॥ ३८ ॥ प्रभो! हमने समाहित चित्तसे जो कुछ अध्ययन किया है, निरन्तर सेवा-शुश्रूषा करके गुरु, ब्राह्मण और वृद्धजनोंको प्रसन्न किया है तथा दोषबुद्धि त्यागकर श्रेष्ठ पुरुष, सुहृद्‌गण, बन्धुवर्ग एवं समस्त प्राणियोंकी वन्दना की है और अन्नादिको त्यागकर दीर्घकालतक जलमें खड़े रहकर तपस्या की है, वह सब आप सर्वव्यापक पुरुषोत्तमके सन्तोषका कारण हो—यही वर हम माँगते हैं ॥ ३९-४० ॥ स्वामिन्! आपकी महिमाका पार न पाकर भी स्वायम्भुव मनु, स्वयं ब्रह्माजी, भगवान् शङ्कर तथा तप और ज्ञानसे शुद्धचित्त हुए अन्य पुरुष निरन्तर आपकी स्तुति करते रहते हैं। अतः हम भी अपनी बुद्धिके अनुसार आपका यशोगान करते हैं ॥ ४१ ॥ आप सर्वत्र समान,

शुद्धस्वरूप और परमपुरुष हैं। आप सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेवको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! प्रचेताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर शरणागतवत्सल श्रीभगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'तथास्तु'। अप्रतिहतप्रभाव श्रीहरिकी मधुर मूर्तिके दर्शनोंसे अभी प्रचेताओंके नेत्र तृप्त नहीं हुए थे, इसलिये वे उन्हें जाने देना नहीं चाहते थे; तथापि वे अपने परमधामको चले गये ॥ ४३ ॥ इसके पश्चात् प्रचेताओंने समुद्रके जलसे बाहर निकलकर देखा कि सारी पृथ्वीको ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंने ढक दिया है, जो मानो स्वर्गका मार्ग रोकनेके लिये ही इतने बढ़ गये थे। यह देखकर वे वृक्षोंपर बड़े कुपित हुए ॥ ४४ ॥ तब उन्होंने पृथ्वीको वृक्ष, लता आदिसे रहित कर देनेके लिये अपने मुखसे प्रचण्ड वायु और अग्निको छोड़ा, जैसे कालाग्निरुद्र प्रलयकालमें छोड़ते हैं ॥ ४५ ॥ जब ब्रह्माजीने देखा कि वे सारे वृक्षोंको भस्म कर रहे हैं, तब वे वहाँ आये और प्राचीनबर्हिके पुत्रोंको उन्होंने युक्तिपूर्वक समझाकर शान्त किया ॥ ४६ ॥ फिर जो कुछ वृक्ष वहाँ बचे थे, उन्होंने डरकर ब्रह्माजीके कहनेसे वह कन्या लाकर प्रचेताओंको दी ॥ ४७ ॥ प्रचेताओंने भी ब्रह्माजीके आदेशसे उस मारिषा नामकी कन्यासे विवाह कर लिया। इसीके गर्भसे ब्रह्माजीके पुत्र दक्षने, श्रीमहादेवजीकी अवज्ञाके कारण अपना पूर्वशरीर त्याग कर, जन्म लिया ॥ ४८ ॥ इन्हीं दक्षने चाक्षुष मन्वन्तर आनेपर, जब कालक्रमसे पूर्वसर्ग नष्ट हो गया, भगवान्की प्रेरणासे इच्छानुसार नवीन प्रजा उत्पन्न की ॥ ४९ ॥ इन्होंने जन्म लेते ही अपनी कान्तिसे समस्त तेजस्वियोंका तेज छीन लिया। ये कर्म करनेमें बड़े दक्ष (कुशल) थे, इसीसे इनका नाम 'दक्ष' हुआ ॥ ५० ॥ इन्हें ब्रह्माजीने प्रजापतियोंके नायकके पदपर अभिषिक्त कर सृष्टिकी रक्षाके लिये नियुक्त किया और इन्होंने मरीचि आदि दूसरे प्रजापतियोंको अपने-अपने कार्यमें नियुक्त किया ॥ ५१ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

प्रचेताओंको श्रीनारदजीका उपदेश और उनका परमपद-लाभ

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! दस लाख वर्ष बीत जानेपर जब प्रचेताओंको विवेक हुआ, तब उन्हें भगवान्के वाक्योंकी याद आयी और वे अपनी भार्या मारिषाको पुत्रके पास छोड़कर तुरंत घरसे निकल पड़े ॥ १ ॥ वे पश्चिम दिशामें समुद्रके तटपर—जहाँ जाजलि मुनिने सिद्धि प्राप्त की थी—जा पहुँचे और जिससे 'समस्त भूतोंमें एक ही आत्मतत्त्व विराजमान है' ऐसा ज्ञान होता है, उस आत्मविचाररूप ब्रह्मसत्रका सङ्कल्प करके बैठ गये ॥ २ ॥ उन्होंने प्राण, मन, वाणी और दृष्टिको वशमें किया तथा शरीरको निश्चेष्ट स्थिर और सीधा रखते हुए आसनको जीतकर चित्तको विशुद्ध परब्रह्ममें लीन कर दिया। ऐसी स्थितिमें उन्हें देवता और असुर दोनोंके ही वन्दनीय श्रीनारदजीने देखा ॥ ३ ॥ नारदजीको आया देख प्रचेतागण खड़े हो गये और प्रणाम करके आदर-सत्कारपूर्वक देश-कालानुसार उनकी विधिवत् पूजा की। जब नारदजी सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे कहने लगे ॥ ४ ॥

प्रचेताओंने कहा—देवर्षे ! आपका स्वागत है, आज बड़े भाग्यसे हमें आपका दर्शन हुआ। ब्रह्मन् ! सूर्यके समान आपका घूमना-फिरना भी ज्ञानालोकसे समस्त जीवोंको अभय-दान देनेके लिये ही होता है ॥ ५ ॥ प्रभो ! भगवान् शङ्कर और श्रीविष्णुभगवान्ने हमें जो उपदेश दिया था, उसे गृहस्थीमें आसक्त रहनेके कारण हमलोग प्रायः भूल गये हैं ॥ ६ ॥ अतः आप हमारे हृदयोंमें उस परमार्थतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले अध्यात्मज्ञानको फिर प्रकाशित कर दीजिये, जिससे हम सुगमतासे ही इस दुस्तर संसार-सागरसे पार हो जायँ ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवन्मय श्रीनारदजीका चित्त सर्वदा भगवान् श्रीकृष्णमें ही लगा रहता है। वे

प्रचेताओंके इस प्रकार पूछनेपर उनसे कहने लगे ॥८॥

श्रीनारदजीने कहा—राजाओ ! इस लोकमें मनुष्यका वही जन्म, वही कर्म, वही आयु, वही मन और वही वाणी सफल है, जिसके द्वारा सर्वात्मा सर्वेश्वर श्रीहरिका सेवन किया जाता है ॥ ९ ॥ जिनके द्वारा अपने स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाले श्रीहरिको प्राप्त न किया जाय, उन माता-पिताकी पवित्रतासे, यज्ञोपवीत-संस्कारसे एवं यज्ञदीक्षासे प्राप्त होनेवाले उन तीन प्रकारके श्रेष्ठ जन्मोंसे, वेदोक्त कर्मोंसे, देवताओंके समान दीर्घ आयुसे, शास्त्रज्ञानसे, तपसे, वाणीकी चतुराईसे, अनेक प्रकारकी बातें याद रखनेकी शक्तिसे, तीव्र बुद्धिसे, बलसे, इन्द्रियोंकी पटुतासे, योगसे, सांख्य (आत्मानात्मविवेक) से, संन्यास और वेदाध्ययनसे तथा व्रत-वैराग्यादि अन्य कल्याण-साधनोंसे भी पुरुषका क्या लाभ है? ॥ १०-१२ ॥ वास्तवमें समस्त कल्याणोंकी अवधि आत्मा ही है और आत्मज्ञान प्रदान करनेवाले श्रीहरि ही सम्पूर्ण प्राणियोंकी प्रिय आत्मा हैं ॥ १३ ॥ जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसके तना, शाखा, उपशाखा आदि सभीका पोषण हो जाता है और जैसे भोजनद्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान्‌की पूजा ही सबकी पूजा है ॥ १४ ॥ जिस प्रकार वर्षाकालमें जल सूर्यके तापसे उत्पन्न होता है और ग्रीष्म-ऋतुमें उसीकी किरणोंमें पुनः प्रवेश कर जाता है तथा जैसे समस्त चराचर भूत पृथ्वीसे उत्पन्न होते हैं और फिर उसीमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार चेतनाचेतनात्मक यह समस्त प्रपञ्च श्रीहरिसे ही उत्पन्न होता है और उन्हींमें लीन हो जाता है ॥ १५ ॥ वस्तुतः यह विश्वात्मा श्रीभगवान्‌का वह शास्त्रप्रसिद्ध सर्वोपाधिरहित स्वरूप ही है। जैसे सूर्यकी प्रभा उससे भिन्न नहीं होती, उसी प्रकार कभी-कभी गन्धर्व-नगरके समान स्फुरित होनेवाला यह जगत् भगवान्‌से भिन्न नहीं है; तथा जैसे जाग्रत्-अवस्थामें इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं किन्तु सुषुप्तिमें उनकी शक्तियाँ लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार यह जगत् सर्गकालमें भगवान्‌से प्रकट हो जाता है और कल्पान्त होनेपर उन्हींमें लीन हो जाता है। स्वरूपतः तो भगवान्‌में द्रव्य, क्रिया और ज्ञानरूपी त्रिविध अहङ्कारके कार्योंकी तथा उनके निमित्तसे होनेवाले भेदभ्रमकी सत्ता है ही नहीं ॥ १६ ॥ नृपतिगण ! जैसे बादल, अन्धकार और प्रकाश—ये क्रमशः आकाशसे प्रकट होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं; किन्तु आकाश इनसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार ये सत्त्व, रज और तमोमयी शक्तियाँ कभी परब्रह्मसे उत्पन्न होती हैं और कभी उसीमें लीन हो जाती हैं। इसी प्रकार इनका प्रवाह चलता रहता है; किन्तु इससे आकाशके समान असङ्ग परमात्मामें कोई विकार नहीं होता ॥१७॥ अतः तुम ब्रह्मादि समस्त लोकपालोंके भी अधीश्वर श्रीहरिको अपनेसे अभिन्न मानते हुए भजो; क्योंकि वे ही समस्त देहधारियोंके एकमात्र आत्मा हैं। वे ही जगत्‌के निमित्तकारण काल, उपादानकारण प्रधान और नियन्ता पुरुषोत्तम हैं तथा अपनी कालशक्तिसे वे ही इस गुणोंके प्रवाहरूप प्रपञ्चका संहार कर देते हैं ॥ १८ ॥

वे भक्तवत्सल भगवान् समस्त जीवोंपर दया करनेसे, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहनेसे तथा समस्त इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करके शान्त करनेसे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥ १९ ॥ पुत्रैषणा आदि सब प्रकारकी वासनाओंके निकल जानेसे जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, उन संतोंके हृदयमें उनके निरन्तर बढ़ते हुए चिन्तनसे खिंचकर अविनाशी श्रीहरि आ जाते हैं और अपनी भक्ताधीनताको चरितार्थ करते हुए हृदयाकाशकी भाँति वहाँसे हटते नहीं ॥ २० ॥ भगवान् तो अपनेको (भगवान्‌को) ही सर्वस्व माननेवाले निर्धन पुरुषोंपर ही प्रेम करते हैं; क्योंकि वे परम रसज्ञ हैं—उन अकिञ्चनोंकी अनन्याश्रया अहैतुकी भक्तिमें कितना माधुर्य होता है, इसे प्रभु अच्छी तरह जानते हैं। जो लोग अपने शास्त्रज्ञान, धन, कुल और कर्मोंके मदसे उन्मत्त होकर, ऐसे निष्किञ्चन साधुजनोंका तिरस्कार करते हैं, उन दुर्बुद्धियोंकी पूजा तो प्रभु स्वीकार ही नहीं करते ॥ २१ ॥ भगवान् स्वरूपानन्दसे ही परिपूर्ण हैं, उन्हें निरन्तर अपनी सेवामें रहनेवाली लक्ष्मीजी तथा उनकी इच्छा करनेवाले नरपति और देवताओंकी भी कोई परवा नहीं है। इतनेपर भी वे अपने

भक्तोंके तो अधीन ही रहते हैं । अहो ! ऐसे करुणा-सागर श्रीहरिको कोई भी कृतज्ञ पुरुष थोड़ी देरके लिये भी कैसे छोड़ सकता है ? ॥ २२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! भगवान् नारदने प्रचेताओंको इस उपदेशके साथ-साथ और भी बहुत-सी भगवत्सम्बन्धी बातें सुनायीं । इसके पश्चात् वे ब्रह्मलोकको चले गये ॥ २३ ॥ प्रचेतागण भी उनके मुखसे सम्पूर्ण जगत्के पापरूपी मलको दूर करनेवाले भगवच्चरित्र सुनकर भगवान्के चरणकमलोंका ही चिन्तन करने लगे और अन्तमें भगवद्धामको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ इस प्रकार आपने जो मुझसे श्रीनारदजी और प्रचेताओंके भगवत्कथासम्बन्धी संवादके विषयमें पूछा था, वह मैंने आपको सुना दिया ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! यहाँतक स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपादके वंशका वर्णन हुआ, अब प्रियव्रतके वंशका विवरण भी सुनो ॥ २६ ॥ राजा प्रियव्रतने श्रीनारदजीसे आत्मज्ञानका उपदेश पाकर भी राज्यभोग किया था तथा अन्तमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने पुत्रोंमें बाँटकर वे भगवान्के परमधामको प्राप्त हुए थे ॥ २७ ॥

राजन् ! इधर श्रीमैत्रेयजीके मुखसे यह भगवद्गुणानुवादयुक्त पवित्र कथा सुनकर विदुरजी प्रेममग्न हो गये, भक्तिभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्रोंसे पवित्र आँसुओंकी धारा बहने लगी तथा उन्होंने हृदयमें भगवच्चरणोंका स्मरण करते हुए अपना मस्तक मुनिवर मैत्रेयजीके चरणोंपर रख दिया ॥ २८ ॥

विदुरजी कहने लगे—महायोगिन् ! आप बड़े ही करुणामय हैं । आज आपने मुझे अज्ञानान्धकारके उस पार पहुँचा दिया है, जहाँ अकिञ्चनोंके सर्वस्व श्रीहरि विराजते हैं ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—मैत्रेयजीको उपर्युक्त कृतज्ञतासूचक वचन कहकर तथा प्रणाम कर विदुरजीने उनसे आज्ञा ली और फिर शान्तचित्त होकर अपने बन्धुजनोंसे मिलनेके लिये वे हस्तिनापुर चले गये ॥ ३० ॥ राजन् ! जो पुरुष भगवान्के शरणागत परमभागवत राजाओंका यह पवित्र चरित्र सुनेगा, उसे दीर्घ आयु, धन, सुयश, क्षेम, सद्गति और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी ॥ ३१ ॥

चतुर्थ स्कन्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

पञ्चम स्कन्ध

यत्रामी लोकविस्तारास्तारा इव विहायसि।
भासन्ते तमहं वन्दे बालगोपालमालयम्॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

पञ्चम स्कन्ध

पहला अध्याय

प्रियव्रत-चरित्र

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—मुने ! महाराज प्रियव्रत तो बड़े भगवद्भक्त और आत्माराम थे । उनकी गृहस्थाश्रममें कैसे रुचि हुई, जिसमें फँसनेके कारण मनुष्यको अपने स्वरूपकी विस्मृति होती है और वह कर्मबन्धनमें बँध जाता है ? ॥ १ ॥ विप्रवर ! निश्चय ही ऐसे निःसङ्ग महापुरुषोंका इस प्रकार गृहस्थाश्रममें अभिनिवेश होना उचित नहीं है ॥ २ ॥ इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि जिनका चित्त पुण्यकीर्ति श्रीहरिके चरणोंकी शीतल छायाका आश्रय लेकर शान्त हो गया है, उन महापुरुषोंकी कुटुम्बादिमें कभी आसक्ति नहीं हो सकती ॥ ३ ॥ ब्रह्मन् ! मुझे इस बातका बड़ा सन्देह है कि महाराज प्रियव्रतने स्त्री, घर और पुत्रादिमें आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर ली और क्योंकर उनकी भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति हुई ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् ! तुम्हारा कथन बहुत ठीक है । जिनका चित्त पवित्रकीर्ति श्रीहरिके परम मधुर चरणकमल-मकरन्दके रसमें सराबोर हो गया है, वे किसी विघ्न-बाधाके कारण रुकावट आ जानेपर भी भगवद्भक्त परमहंसोंके प्रिय श्रीवासुदेवभगवान्‌के कथाश्रवणरूपी परम कल्याणमय मार्गको प्रायः छोड़ते नहीं ॥ ५ ॥ राजन् ! राजकुमार प्रियव्रत बड़े भगवद्भक्त थे, श्रीनारदजीके चरणोंकी सेवा करनेसे उन्हें सहजमें ही परमार्थतत्त्वका बोध हो गया था । वे ब्रह्मसत्रकी दीक्षा—निरन्तर ब्रह्माभ्यासमें जीवन बितानेका नियम लेनेवाले ही थे कि उसी समय उनके पिता स्वायम्भुव मनुने उन्हें पृथ्वीपालनके लिये शास्त्रमें बताये हुए सभी श्रेष्ठ गुणोंसे पूर्णतया सम्पन्न देख राज्यशासनके लिये आज्ञा दी । किन्तु प्रियव्रत अखण्ड समाधियोगके द्वारा अपनी सारी इन्द्रियों और क्रियाओंको भगवान् वासुदेवके चरणोंमें ही समर्पण कर चुके थे । अतः पिताकी आज्ञा किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेयोग्य न होनेपर भी, यह सोचकर कि राज्याधिकार पाकर मेरा आत्मस्वरूप स्त्री-पुत्रादि असत् प्रपञ्चसे आच्छादित हो जायगा—राज्य और कुटुम्बकी चिन्तामें फँसकर मैं परमार्थतत्त्वको प्रायः भूल जाऊँगा, उन्होंने उसे स्वीकार न किया ॥ ६ ॥

आदिदेव स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजीको निरन्तर इस गुणमय प्रपञ्चकी वृद्धिका ही विचार रहता है । वे सारे संसारके जीवोंका अभिप्राय जानते रहते हैं । जब उन्होंने प्रियव्रतकी ऐसी प्रवृत्ति देखी, तब वे मूर्तिमान् चारों वेद और मरीचि आदि पार्षदोंको साथ लिये अपने लोकसे उतरे ॥ ७ ॥ आकाशमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर चढ़े हुए इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवताओंने उनका पूजन किया तथा मार्गमें टोलियाँ बाँधकर आये हुए सिद्ध, गन्धर्व, साध्य, चारण और मुनिजनने स्तवन किया । इस प्रकार जगह-जगह आदर-सम्मान पाते वे साक्षात् नक्षत्रनाथ चन्द्रमाके समान गन्धमादनकी घाटीको प्रकाशित करते हुए प्रियव्रतके पास पहुँचे ॥ ८ ॥ प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश देनेके लिये वहाँ नारदजी भी आये हुए थे । ब्रह्माजीके वहाँ पहुँचनेपर उनके वाहन हंसको देखकर देवर्षि नारद जान गये कि हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजी पधारे हैं; अतः वे स्वायम्भुव मनु और प्रियव्रतके सहित

तुरंत खड़े हो गये और सबने उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ९ ॥ परीक्षित् ! नारदजीने उनकी अनेक प्रकारसे पूजा की और सुमधुर वचनोंमें उनके गुण और अवतारकी उत्कृष्टताका वर्णन किया । तब आदिपुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रियव्रतकी ओर मन्द मुसकान-युक्त दयादृष्टिसे देखते हुए इस प्रकार कहा ॥ १० ॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—बेटा ! मैं तुमसे सत्य सिद्धान्त-की बात कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो । तुम्हें अप्रमेय श्रीहरिके प्रति किसी प्रकारकी दोषदृष्टि नहीं रखनी चाहिये । तुम्हीं क्या—हम, महादेवजी, तुम्हारे पिता स्वायम्भुव मनु और तुम्हारे गुरु ये महर्षि नारद भी विवश होकर उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं ॥ ११ ॥ उनके विधानको कोई भी देहधारी न तो तप, विद्या, योगबल या बुद्धिबलसे, न अर्थ या धर्मकी शक्तिसे और न स्वयं या किसी दूसरेकी सहायतासे ही टाल सकता है ॥ १२ ॥ प्रियवर ! उसी अव्यक्त ईश्वरके दिये हुए शरीरको सब जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और सुख-दुःखका भोग करने तथा कर्म करनेके लिये सदा धारण करते हैं ॥ १३ ॥ वत्स ! जिस प्रकार रस्सीसे नथा हुआ पशु मनुष्योंका बोझ ढोता है, उसी प्रकार परमात्माकी वेदवाणीरूप बड़ी रस्सीमें सत्त्वादि गुण, सात्त्विक आदि कर्म और उनके ब्राह्मणादि वाक्योंकी मजबूत डोरीसे जकड़े हुए हम सब लोग उन्हींके इच्छा-नुसार कर्ममें लगे रहते हैं और उसके द्वारा उनकी पूजा करते रहते हैं ॥ १४ ॥ हमारे गुण और कर्मोंके अनुसार प्रभुने हमें जिस योनिमें डाल दिया है उसीको स्वीकार करके, वे जैसी व्यवस्था करते हैं उसीके अनुसार हम सुख या दुःख भोगते रहते हैं । हमें उनकी इच्छाका उसी प्रकार अनुसरण करना पड़ता है, जैसे किसी अंधेको आँखवाले पुरुषका ॥ १५ ॥

मुक्त पुरुष भी प्रारब्धका भोग करता हुआ भगवान्‌की इच्छाके अनुसार अपने शरीरको धारण करता ही है; ठीक वैसे ही जैसे मनुष्यकी निद्रा टूट जानेपर भी स्वप्नमें अनुभव किये हुए पदार्थोंका स्मरण होता है । इस अवस्थामें भी उसको अभिमान नहीं होता और विषय-वासनाके जिन संस्कारोंके कारण दूसरा जन्म होता है, उन्हें वह स्वीकार नहीं करता ॥ १६ ॥ जो पुरुष इन्द्रियोंके वशीभूत है, वह वन-वनमें विचरण करता रहे तो भी उसे जन्म-मरणका भय बना ही रहता है; क्योंकि बिना जीते हुए मन और इन्द्रियरूपी उसके छः शत्रु कभी उसका पीछा नहीं छोड़ते । जो बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियोंको जीतकर अपनी आत्मामें ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम भी क्या बिगाड़ सकता है ? ॥ १७ ॥ जिसे इन छः शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा हो, वह पहले घरमें रहकर ही उनका अत्यन्त निरोध करते हुए उन्हें वशमें करनेका प्रयत्न करे । किलेमें सुरक्षित रहकर लड़नेवाला राजा अपने प्रबल शत्रुओंको भी जीत लेता है । फिर जब इन शत्रुओंका बल अत्यन्त क्षीण हो जाय, तब विद्वान् पुरुष इच्छानुसार विचर सकता है ॥ १८ ॥ तुम यद्यपि श्रीकमलनाभ भगवान्‌के चरणकमलकी कली-रूप किलेके आश्रित रहकर इन छहों शत्रुओंको जीत चुके हो, तो भी पहले उन पुराणपुरुषके दिये हुए भोगोंको भोगो; इसके बाद निःसङ्ग होकर अपने आत्म-स्वरूपमें स्थित हो जाना ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब त्रिलोकीके गुरु श्रीब्रह्माजीने इस प्रकार कहा, तो परमभागवत प्रियव्रतने छोटे होनेके कारण नम्रतासे सिर झुका लिया और 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर बड़े आदरपूर्वक उनका आदेश शिरोधार्य किया ॥ २० ॥ तब स्वायम्भुव मनुने प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्माजीकी विधिवत् पूजा की । इसके पश्चात् वे मन और वाणीके अविषय, अपने आश्रय तथा सर्वव्यवहारातीत परब्रह्मका चिन्तन करते हुए अपने लोकको चले गये । इस समय प्रियव्रत और नारदजी सरल भावसे उनकी ओर देख रहे थे ॥ २१ ॥

मनुजीने इस प्रकार ब्रह्माजीकी कृपासे अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेपर देवर्षि नारदकी आज्ञासे प्रियव्रतको सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षाका भार सौंप दिया और स्वयं विषयरूपी विषैले जलसे भरे हुए गृहस्थाश्रमरूपी दुस्तर जलाशयकी भोगेच्छासे निवृत्त हो गये ॥ २२ ॥ अब पृथ्वीपति महाराज प्रियव्रत भगवान्‌की इच्छासे राज्यशासनके कार्यमें नियुक्त हुए । जो सम्पूर्ण जगत्‌को बन्धनसे छुड़ानेमें अत्यन्त समर्थ हैं, उन आदिपुरुष श्रीभगवान्‌के चरणयुगलका

निरन्तर ध्यान करते रहनेसे यद्यपि उनके रागादि सभी मल नष्ट हो चुके थे और उनका हृदय भी अत्यन्त शुद्ध था, तथापि बड़ोंका मान रखनेके लिये वे पृथ्वीका शासन करने लगे ॥२३॥ तदनन्तर उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे विवाह किया। उससे उनके दस पुत्र हुए। वे सब उन्हींके समान शीलवान्, गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान् और पराक्रमी थे। उनसे छोटी ऊर्जस्वती नामकी एक कन्या भी हुई ॥ २४ ॥ पुत्रोंके नाम आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि थे। ये सब नाम अग्निके भी हैं ॥२५॥ इनमें कवि, महावीर और सवन—ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए। इन्होंने बाल्यावस्थासे आत्मविद्याका अभ्यास करते हुए अन्तमें संन्यास-आश्रम ही स्वीकार किया ॥ २६ ॥ इन निवृत्ति-परायण महर्षियोंने संन्यासाश्रममें ही रहते हुए समस्त जीवोंके अधिष्ठान और भवबन्धनसे डरे हुए लोगोंको आश्रय देनेवाले भगवान् वासुदेवके परम सुन्दर चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन किया। उससे प्राप्त हुए अखण्ड एवं श्रेष्ठ भक्तियोगसे उनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया और उसमें श्रीभगवान्का आविर्भाव हुआ। तब देहादि उपाधिकी निवृत्ति हो जानेसे उनकी आत्माकी सम्पूर्ण जीवोंके आत्मभूत प्रत्यगात्मामें एकीभावसे स्थिति हो गयी ॥ २७ ॥ महाराज प्रियव्रतकी दूसरी भार्यासे उत्तम, तामस और रैवत—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने नामवाले मन्वन्तरोंके अधिपति हुए ॥ २८ ॥

इस प्रकार कवि आदि तीन पुत्रोंके निवृत्तिपरायण हो जानेपर राजा प्रियव्रतने ग्यारह अर्बुद वर्षोंतक पृथ्वीका शासन किया। जिस समय वे अपनी अखण्ड पुरुषार्थमयी और वीर्यशालिनी भुजाओंसे धनुषकी डोरी खींचकर टङ्कार करते थे, उस समय डरके मारे सभी धर्मद्रोही न जाने कहाँ छिप जाते थे। प्राणप्रिया बर्हिष्मतीके दिन-दिन बढ़नेवाले आमोद-प्रमोद और अभ्युत्थानादि क्रीड़ाओंके कारण तथा उसके स्त्रीजनोचित हाव-भाव, लज्जासे सङ्कुचित मन्द-हास्ययुक्त चितवन और मनको भानेवाले विनोद आदिसे महामना प्रियव्रत विवेकहीन व्यक्तिकी भाँति आत्मविस्मृत-से होकर सब भोगोंको भोगने लगे। किन्तु वास्तवमें वे उनमें आसक्त नहीं थे ॥ २९ ॥

एक बार इन्होंने जब यह देखा कि भगवान् सूर्य सुमेरुकी परिक्रमा करते हुए लोकालोकपर्यन्त पृथ्वीके जितने भागको आलोकित करते हैं, उसमेंसे आधा ही प्रकाशमें रहता है और आधेमें अन्धकार छाया रहता है, तो उन्होंने इसे पसंद नहीं किया। तब उन्होंने यह संकल्प लेकर कि 'मैं रातको भी दिन बना दूँगा;' सूर्यके समान ही वेगवान् एक ज्योतिर्मय रथपर चढ़कर द्वितीय सूर्यकी ही भाँति उनके पीछे-पीछे पृथ्वीकी सात परिक्रमाएँ कर डालीं। भगवान्की उपासनासे इनका अलौकिक प्रभाव बहुत बढ़ गया था ॥३०॥ उस समय इनके रथके पहियोंसे जो लीकें बनीं, वे ही सात समुद्र हुए; उनसे पृथ्वीमें सात द्वीप हो गये ॥ ३१ ॥ उनके नाम क्रमशः जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप हैं। इनमेंसे पहले-पहलेकी अपेक्षा आगे-आगेके द्वीपका परिमाण दूना है और ये समुद्रके बाहरी भागमें पृथ्वीके चारों ओर फैले हुए हैं ॥ ३२ ॥ सात समुद्र क्रमशः खारे जल, ईखके रस, मदिरा, घी, दूध, मट्ठे और मीठे जलसे भरे हुए हैं। ये सातों द्वीपोंकी खाइयोंके समान हैं और परिमाणमें अपने भीतरवाले द्वीपके बराबर हैं। इनमेंसे एक-एक क्रमशः अलग-अलग सातों द्वीपोंको बाहरसे घेर कर स्थित है।* बर्हिष्मतीपति महाराज प्रियव्रतने अपने अनुगत पुत्र आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्रमेंसे क्रमशः एक-एकको उक्त जम्बू आदि द्वीपोंमेंसे एक-एकका राजा बनाया ॥ ३३ ॥ उन्होंने अपनी कन्या ऊर्जस्वतीका विवाह शुक्राचार्यजी-

* इनका क्रम इस प्रकार समझना चाहिये—पहले जम्बूद्वीप है, उसके चारों ओर क्षार समुद्र है। वह प्लक्षद्वीपसे घिरा हुआ है, उसके चारों ओर ईखके रसका समुद्र है। उसे शाल्मलिद्वीप घेरे हुए है, उसके चारों ओर मदिराका समुद्र है। फिर कुशद्वीप है, वह घीके समुद्रसे घिरा हुआ है। उसके बाहर क्रौञ्चद्वीप है, उसके चारों ओर दूधका समुद्र है। फिर शाकद्वीप है, उसे मट्ठेका समुद्र घेरे हुए है। उसके चारों ओर पुष्करद्वीप है, वह मीठे जलके समुद्रसे घिरा हुआ है।

से किया; उसीसे शुक्रकन्या देवयानीका जन्म हुआ।३४। राजन्! जिन्होंने भगवच्चरणारविन्दोंकी रजके प्रभावसे शरीरके भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—इन छः गुणोंको अथवा मनके सहित छः इन्द्रियोंको जीत लिया है, उन भगवद्भक्तोंका ऐसा पुरुषार्थ होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि वर्णबहिष्कृत चाण्डाल आदि नीच योनिका पुरुष भी भगवान्‌के नामका केवल एक बार उच्चारण करनेसे तत्काल संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

इस प्रकार अतुलनीय बल-पराक्रमसे युक्त महाराज प्रियव्रत एक बार, अपनेको देवर्षि नारदके चरणोंकी शरणमें जाकर भी पुनः दैववश प्राप्त हुए प्रपञ्चमें फँस जानेसे अशान्त-सा देख, मन-ही-मन विरक्त होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ३६ ॥ 'ओह! बड़ा बुरा हुआ! मेरी विषयलोलुप इन्द्रियोंने मुझे इस अविद्याजनित विषम विषयरूप अन्धकूपमें गिरा दिया। बस, बस! बहुत हो लिया। हाय! मैं तो स्त्रीका क्रीडामृग ही बन गया! उसने मुझे बंदरकी भाँति नचाया! मुझे धिक्कार है! धिक्कार है!' इस प्रकार उन्होंने अपनेको बहुत कुछ बुरा-भला कहा ॥ ३७ ॥ परमाराध्य श्रीहरिकी कृपासे उनकी विवेकवृत्ति जाग्रत् हो गयी। उन्होंने यह सारी पृथ्वी यथायोग्य अपने अनुगत पुत्रोंको बाँट दी और जिसके साथ उन्होंने तरह-तरहके भोग भोगे थे, उस अपनी राजरानीको साम्राज्यलक्ष्मीके सहित मृतदेहके समान छोड़ दिया तथा हृदयमें वैराग्य धारणकर भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन करते हुए उसके प्रभावसे श्रीनारदजी-के बतलाये हुए मार्गका पुनः अनुसरण करने लगे ॥३८॥

महाराज प्रियव्रतके विषयमें निम्नलिखित लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

'राजा प्रियव्रतने जो कर्म किये, उन्हें सर्वशक्तिमान् ईश्वरके सिवा और कौन कर सकता है? उन्होंने रात्रिके अन्धकारको मिटानेका प्रयत्न करते हुए अपने रथके पहियोंसे बनी हुई लीकोंसे ही सात समुद्र बना दिये ॥३९॥ प्राणियोंके सुभीतेके लिये (जिससे उनमें परस्पर झगड़ा न हो) द्वीपोंके द्वारा पृथ्वीके विभाग किये और प्रत्येक द्वीपमें अलग-अलग नदी, पर्वत और वन आदिसे उसकी सीमा निश्चित कर दी ॥ ४० ॥ वे भगवद्भक्त नारदादिके प्रेमी भक्त थे। उन्होंने पाताल-लोकके, देवलोकके, मर्त्यलोकके तथा कर्म और योगकी शक्तिसे प्राप्त हुए ऐश्वर्यको भी नरकतुल्य समझा था ।४१।

दूसरा अध्याय

आग्नीध्र-चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—पिता प्रियव्रतके इस प्रकार तपस्यामें संलग्न हो जानेपर राजा आग्नीध्र उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हुए जम्बूद्वीपकी प्रजाका धर्मानुसार पुत्रवत् पालन करने लगे ॥ १ ॥ एक बार वे पितृलोककी कामनासे सत्पुत्रप्राप्तिके लिये पूजाकी सब सामग्री जुटाकर सुर-सुन्दरियोंके क्रीडास्थल मन्दराचल-की एक घाटीमें गये और तपस्यामें तत्पर होकर एकाग्र-चित्तसे प्रजापतियोंके पति श्रीब्रह्माजीकी आराधना करने लगे ॥२॥ आदिदेव भगवान् ब्रह्माजीने उनकी अभिलाषा जान ली। अतः अपनी सभाकी गायिका पूर्वचित्ति नामकी अप्सराको उनके पास भेज दिया ॥ ३ ॥ आग्नीध्रजीके आश्रमके पास एक अति रमणीय उपवन था। वह अप्सरा उसीमें विचरने लगी। उस उपवनमें तरह-तरहके सघन तरुवरोंकी शाखाओंपर स्वर्णलताएँ फैली हुई थीं। उनपर बैठे हुए मयूरादि कई प्रकारके स्थलचारी पक्षियोंके जोड़े सुमधुर बोली बोल रहे थे। उनकी षड्जादि स्वरयुक्त ध्वनि सुनकर सचेत हुए जलकुक्कुट, कारण्डव एवं कलहंस आदि जलपक्षी भाँति-भाँतिसे कूजने लगते थे। इससे वहाँके कमलवनसे सुशोभित निर्मल सरोवर गूँजने लगते थे ॥ ४ ॥

पूर्वचित्तिकी विलासपूर्ण सुललित गतिविधि और पाद-विन्यासकी शैलीसे पद-पदपर उसके चरणनूपुरोंकी झनकार हो उठती थी। उसकी मनोहर ध्वनि सुनकर राजकुमार आग्नीध्रने समाधियोगद्वारा मूँदे हुए अपने कमल-कलीके समान सुन्दर नेत्रोंको कुछ-कुछ खोलकर देखा तो पास ही

हें वह अप्सरा दिखायी दी। वह भ्रमरीके समान क-एक फूलके पास जाकर उसे सूँघती थी तथा देवता र मनुष्योंके मन और नयनोंको आह्लादित करनेवाली पनी विलासपूर्ण गति, क्रीडा-चापल्य, लज्जा एवं विनय-क चितवन, सुमधुर वाणी तथा मनोहर अङ्गावयवोंसे रुषोंके हृदयमें कामदेवके प्रवेशके लिये द्वार-सा बना ती थी। जब वह हँस-हँसकर बोलने लगती, तब ऐसा तीत होता मानो उसके मुखसे अमृतमय मादक मधु र रहा है। उसके निःश्वासके गन्धसे मदान्ध होकर रे उसके मुख-कमलको घेर लेते, तब वह उनसे बचने-े लिये जल्दी-जल्दी पैर उठाकर चलती तो उसके कुच-लश, वेणी और करधनी हिलनेसे बड़े ही सुहावने लगते। ह सब देखनेसे भगवान् कामदेवको आग्नीध्रके हृदयमें वेश करनेका अवसर मिल गया और वे उनके अधीन ोकर उसे प्रसन्न करनेके लिये पागलकी भाँति इस कार कहने लगे—॥ ५-६ ॥

'मुनिवर्य! तुम कौन हो, इस पर्वतपर तुम क्या करना ाहते हो? तुम परमपुरुष श्रीनारायणकी कोई माया तो हीं हो? [भौंहोंकी ओर संकेत करके—] सखे! तुमने े बिना डोरीके दो धनुष क्यों धारण कर रक्खे हैं? या इनसे तुम्हारा कोई अपना प्रयोजन है, अथवा इस ंसारारण्यमें मुझ-जैसे मतवाले मृगोंका शिकार करना चाहते हो! ॥ ७ ॥ [कटाक्षोंको लक्ष्य करके—] तुम्हारे ये दो बाण तो बड़े सुन्दर और पैने हैं। अहो! इनके कमलदलके पंख हैं, देखनेमें बड़े शान्त हैं और हैं भी ंखहीन*। यहाँ वनमें विचरते हुए तुम इन्हें किसपर छोड़ना चाहते हो? यहाँ तुम्हारा कोई सामना करनेवाला नहीं दिखायी देता। तुम्हारा यह पराक्रम हम-जैसे जडबुद्धियोंके लिये कल्याणकारी हो ॥ ८ ॥ [भौंरोंकी ओर देखकर—] भगवन्! तुम्हारे चारों ओर जो ये शिष्यगण अध्ययन कर रहे हैं, वे तो निरन्तर रहस्ययुक्त सामगान करते हुए मानो भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं और ऋषिगण जैसे वेदकी शाखाओंका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार ये सब तुम्हारी चोटीसे झड़े हुए पुष्पोंका सेवन कर रहे हैं ॥ ९ ॥ [नूपुरोंके शब्दकी ओर संकेत करके—] ब्रह्मन्! तुम्हारे चरणरूप पिंजड़ोंमें जो तीतर बंद हैं, उनका शब्द तो सुनायी देता है; परन्तु रूप देखनेमें नहीं आता। [करधनीसहित पीली साड़ीमें अङ्गकी कान्तिकी उत्प्रेक्षा कर—] तुम्हारे नितम्बोंपर यह कदम्ब कुसुमोंकी-सी आभा कहाँसे आ गयी? इनके ऊपर तो अंगारोंका मण्डल-सा भी दिखायी देता है। किन्तु तुम्हारा वल्कल-वस्त्र कहाँ है? ॥ १० ॥ [कुङ्कुममण्डित कुचोंकी ओर लक्ष्य करके—] द्विजवर! तुम्हारे इन दोनों सुन्दर सींगोंमें क्या भरा हुआ है? अवश्य ही इनमें बड़े अमूल्य रत्न भरे हैं, इसीसे तो तुम्हारा मध्यभाग इतना कृश होनेपर भी तुम इनका बोझा ढो रहे हो। यहाँ जाकर तो मेरी दृष्टि भी मानो अटक गयी है। और सुभग! इन सींगोंपर तुमने यह लाल-लाल लेप-सा क्या लगा रक्खा है? इसकी गन्धसे तो मेरा सारा आश्रम महँक उठा है ॥ ११ ॥ मित्रवर! मुझे तो तुम अपना देश दिखा दो, जहाँके निवासी अपने वक्षःस्थलपर ऐसे अद्भुत अवयव धारण करते हैं, जिन्होंने हमारे-जैसे प्राणियोंके चित्तोंको क्षुब्ध कर दिया है तथा मुखमें विचित्र हाव-भाव, सरस भाषण और अधरामृत-जैसी अनूठी वस्तुएँ रखते हैं ॥ १२ ॥

'प्रियवर! तुम्हारा भोजन क्या है, जिसके खानेसे तुम्हारे मुखसे हवन-सामग्रीकी-सी सुगन्ध फैल रही है? मालूम होता है, तुम कोई विष्णुभगवान्‌की कला ही हो; इसीलिये तुम्हारे कानोंमें कभी पलक न मारनेवाले मकरके आकारके दो कुण्डल हैं। तुम्हारा मुख एक सुन्दर सरोवर-के समान है। उसमें तुम्हारे चञ्चल नेत्र भयसे काँपती हुई दो मछलियोंके समान, दन्तपंक्ति हंसोंके समान और घुँघराली अलकावली भौंरोंके समान शोभायमान है ॥ १३ ॥ तुम जब अपने करकमलोंसे थपकी मारकर इस गेंदको उछालते हो, तब यह दिशा-विदिशाओंमें जाती हुई मेरे नेत्रोंको तो चञ्चल कर ही देती है, साथ-साथ मेरे मनमें भी खलबली पैदा कर देती है। तुम्हारा बाँका जटाजूट खुल गया है, तुम इसे सँभालते नहीं? अरे, यह धूर्त वायु कैसा दुष्ट है जो बार-बार तुम्हारे नीवी-वस्त्रको उड़ा देता है ॥ १४ ॥ तपोधन! तपस्वियोंके तपको भ्रष्ट करनेवाला यह अनूप रूप तुमने किस तपके प्रभावसे पाया है? मित्र! आओ, कुछ दिन मेरे साथ रहकर तपस्या करो। अथवा, कहीं विश्वविस्तारकी इच्छासे ब्रह्माजीने ही तो मुझपर कृपा नहीं की है ॥ १५ ॥ सचमुच, तुम

* बाणका पिछला हिस्सा।

ब्रह्माजीकी ही प्यारी देन हो; अब, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तुममें तो मेरे मन और नयन ऐसे उलझ गये हैं कि अन्यत्र जाना ही नहीं चाहते। सुन्दर सींगोंवाली! तुम्हारा जहाँ मन हो, मुझे भी वहीं ले चलो; मैं तो तुम्हारा अनुचर हूँ और तुम्हारी ये मङ्गलमयी सखियाँ भी हमारे ही साथ रहें' ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! आग्नीध्र देवताओं-के समान बुद्धिमान् और स्त्रियोंको प्रसन्न करनेमें बड़े कुशल थे। उन्होंने इसी प्रकारकी रतिचातुर्यमयी मीठी-मीठी बातोंसे उस अप्सराको प्रसन्न कर लिया ॥ १७ ॥ वीर-समाजमें अग्रगण्य आग्नीध्रकी बुद्धि, शील, रूप, अवस्था, लक्ष्मी और उदारतासे आकर्षित होकर वह उन जम्बूद्वीपाधिपतिके साथ कई हजार वर्षोंतक पृथ्वी और स्वर्गके भोग भोगती रही ॥ १८ ॥ तदनन्तर नृपवर आग्नीध्रने उसके गर्भसे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्र उत्पन्न किये ॥ १९ ॥

इस प्रकार नौ वर्षमें प्रतिवर्ष एकके क्रमसे नौ पुत्र उत्पन्न कर पूर्वचित्ति उन्हें राजभवनमें ही छोड़कर फिर ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हो गयी ॥ २० ॥ ये आग्नीध्र-के पुत्र माताके अनुग्रहसे स्वभावसे ही सुडौल और सबल शरीरवाले थे। आग्नीध्रने जम्बूद्वीपके विभाग करके उन्हीं-के समान नामवाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक-एक पुत्रको सौंप दिया। तब वे सब अपने-अपने वर्षका राज्य भोगने लगे ॥ २१ ॥ महाराज आग्नीध्र दिन-दिन भोगोंको भोगते रहनेपर भी उनसे अतृप्त ही रहे। वे उस अप्सराको ही परम पुरुषार्थ समझते थे। इसलिये उन्होंने वैदिक कर्मोंके द्वारा उसी लोकको प्राप्त किया, जहाँ पितृगण अपने सुकृतोंके अनुसार तरह-तरहके भोगोंमें मस्त रहते हैं ॥२२॥ पिताके परलोक सिधारने-पर नाभि आदि नौ भाइयोंने मेरुकी मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नामकी नौ कन्याओंसे विवाह किया ॥ २३ ॥

तीसरा अध्याय

राजा नाभिका चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! आग्नीध्रके पुत्र नाभिके कोई सन्तान न थी, इसलिये उन्होंने अपनी भार्या मेरुदेवीके सहित पुत्रकी कामनासे एकाग्रतापूर्वक भगवान् यज्ञपुरुषका यजन किया ॥ १ ॥ यद्यपि सुन्दर अङ्गोंवाले श्रीभगवान् द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विज, दक्षिणा और विधि—इन यज्ञके साधनोंसे सहजमें नहीं मिलते, तथापि वे भक्तोंपर तो कृपा करते ही हैं। इस-लिये जब महाराज नाभिने श्रद्धापूर्वक विशुद्धभावसे उनकी आराधना की, तब उनका चित्त अपने भक्तका अभीष्ट कार्य करनेके लिये उत्सुक हो गया। यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है, तथापि उन्होंने प्रवर्ग्यकर्मका अनुष्ठान होते समय उसे मन और नयनोंको आनन्द देनेवाले अवयवोंसे युक्त अति सुन्दर हृदयाकर्षक मूर्तिमें प्रकट किया ॥ २ ॥ उनके श्रीअङ्गमें रेशमी पीताम्बर था, वक्षः-स्थलपर सुमनोहर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित था; भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा गलेमें वनमाला और कौस्तुभ-मणिकी शोभा थी। सम्पूर्ण शरीर अङ्ग-प्रत्यङ्गकी कान्तिको बढ़ानेवाले किरणजालमण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, करधनी, हार, बाजूबंद और नूपुर आदि आभूषणोंसे विभूषित था। ऐसे परम तेजस्वी चतुर्भुजमूर्ति पुरुषविशेषको प्रकट हुआ देख ऋत्विज, सदस्य और यजमान आदि सभी लोग ऐसे आह्लादित हुए, जैसे निर्धन पुरुष अपार धनराशि पाकर फूला नहीं समाता। फिर सभीने सिर झुकाकर अत्यन्त आदरपूर्वक प्रभुकी अर्घ्यद्वारा पूजा की और ऋत्विजोंने उनकी स्तुति की ॥ ३ ॥

ऋत्विजोंने कहा—पूज्यतम! हम आपके अनुगत भक्त हैं, आप हमारे पुनः-पुनः पूजनीय हैं। किन्तु हम आपकी पूजा करना क्या जानें? हम तो बार-बार आप-को नमस्कार करते हैं—इतना ही हमें महापुरुषोंने सिखाया है। आप प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं।

फिर प्राकृत गुणोंके कार्यभूत इस प्रपञ्चमें बुद्धि फँस जानेसे आपके गुण-गानमें सर्वथा असमर्थ ऐसा कौन पुरुष है जो प्राकृत नाम, रूप एवं आकृतिके द्वारा आपके स्वरूपका निरूपण कर सके ? आप साक्षात् परमेश्वर हैं ॥ ४ ॥ आपके परम मङ्गलमय गुण सम्पूर्ण जनताके दुःखोंका दमन करनेवाले हैं। यदि कोई उन्हें वर्णन करनेका साहस भी करेगा, तो केवल उनके एक देशका ही वर्णन कर सकेगा ॥ ५ ॥ किन्तु प्रभो ! यदि आपके भक्त प्रेम-गद्गद वाणीसे स्तुति करते हुए सामान्य जल, विशुद्ध पल्लव, तुलसी और दूबके अङ्कुर आदि सामग्रीसे ही आपकी पूजा करते हैं, तो भी आप सब प्रकार सन्तुष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

हमें तो अनुरागके सिवा इस द्रव्य-कालादि अनेकों अङ्गोंवाले यज्ञसे भी आपका कोई प्रयोजन नहीं दिखलायी देता; ॥ ७ ॥ क्योंकि आपसे स्वतः ही क्षण-क्षणमें जो सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका फलस्वरूप परमानन्द स्वभावतः ही निरन्तर प्रादुर्भूत होता रहता है, आप साक्षात् उसके स्वरूप ही हैं। इस प्रकार यद्यपि आपको इन यज्ञादिसे कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि अनेक प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि चाहनेवाले हमलोगोंके लिये तो मनोरथसिद्धिका पर्याप्त साधन यही होना चाहिये ॥ ८ ॥ आप ब्रह्मादि परम पुरुषोंकी अपेक्षा भी परम श्रेष्ठ हैं। हम तो यह भी नहीं जानते कि हमारा परम कल्याण किसमें है, और न हमसे आपकी यथोचित पूजा ही बनी है; तथापि जिस प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष बिना बुलाये भी केवल करुणावश अज्ञानी पुरुषोंके पास चले जाते हैं, उसी प्रकार आप भी हमें मोक्षसंज्ञक अपना परमपद और हमारी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करनेके लिये अन्य साधारण यज्ञदर्शकोंके समान यहाँ प्रकट हुए हैं ॥ ९ ॥ पूज्यतम ! हमें सबसे बड़ा वर तो आपने यही दे दिया कि ब्रह्मादि समस्त वरदायकोंमें श्रेष्ठ होकर भी आप राजर्षि नाभिकी इस यज्ञशालामें साक्षात् हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हो गये ! अब हम और वर क्या माँगें ? ॥ १० ॥

प्रभो ! आपके गुणगणोंका गान परम मङ्गलमय है। जिन्होंने वैराग्यसे प्रज्वलित हुई ज्ञानाग्निके द्वारा अपने अन्तःकरणके राग-द्वेषादि सम्पूर्ण मलोंको जला डाला है, अतएव जिनका स्वभाव आपके ही समान शान्त है, वे आत्माराम मुनिगण भी निरन्तर आपके गुणोंका गान ही किया करते हैं ॥ ११ ॥ अतः हम आपसे यही वर माँगते हैं कि गिरने, ठोकर खाने, छींकने अथवा जँभाई लेने और सङ्कटादिके समय एवं ज्वर और मरणादिकी अवस्थाओंमें आपका स्मरण न हो सकनेपर भी किसी प्रकार आपके सकलकलिमलविनाशक 'भक्तवत्सल', 'दीनबन्धु' आदि गुणद्योतक नामोंका हम उच्चारण कर सकें ॥ १२ ॥

इसके सिवा, कहनेयोग्य न होनेपर भी एक प्रार्थना और है। आप साक्षात् परमेश्वर हैं; स्वर्ग-अपवर्ग आदि ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे आप न दे सकें। तथापि जैसे कोई कंगाल किसी धन लुटानेवाले परम उदार पुरुषके पास पहुँचकर भी उससे भूसा ही माँगे, उसी प्रकार हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तानको ही परम पुरुषार्थ मानकर आपके ही समान पुत्र पानेके लिये आपकी आराधना कर रहे हैं ॥ १३ ॥ यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपकी मायाका पार कोई नहीं पा सकता और न वह किसीके वशमें ही आ सकती है। जिन लोगोंने महापुरुषोंके चरणोंका आश्रय नहीं लिया, उनमें ऐसा कौन है जो उसके वशमें नहीं होता, उसकी बुद्धिपर उसका परदा नहीं पड़ जाता और विषयरूप विषका वेग उसके स्वभावको दूषित नहीं कर देता ? ॥ १४ ॥ देवदेव ! आप भक्तोंके बड़े-बड़े काम कर देते हैं। हम मन्दमतियोंने कामनावश इस तुच्छ कार्यके लिये आपका आवाहन किया, यह आपका अनादर ही है। किन्तु आप समदर्शी हैं, अतः हम अज्ञानियोंकी इस धृष्टताको आप क्षमा करें ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! वर्षाधिपति नाभिके पूज्य ऋत्विजोंने प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके जब पूर्वोक्त स्तोत्रसे स्तुति की, तब देवश्रेष्ठ श्रीहरिने करुणावश इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ऋषियो ! बड़े असमंजसकी बात है। आप सब सत्यवादी महात्मा हैं, आपने मुझसे यह बड़ा दुर्लभ वर माँगा है कि राजर्षि नाभिके मेरे समान पुत्र हो। मुनियो ! मेरे समान तो मैं ही

हूँ, क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। तो भी ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या नहीं होना चाहिये, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है ॥ १७ ॥ इसलिये मैं स्वयं ही अपनी अंशकलासे आग्नीध्रनन्दन नाभिके यहाँ अवतार लूँगा, क्योंकि अपने समान मुझे कोई और दिखायी नहीं देता ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महारानी मेरुदेवीके सुनते हुए उसके पतिसे इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥ १९ ॥ विष्णुदत्त परीक्षित्! उस यज्ञमें महर्षियोंद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर श्रीभगवान् महाराज नाभिका प्रिय करनेके लिये उनके रनिवासमें महारानी मेरुदेवीके गर्भसे दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियोंका धर्म प्रकट करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय विग्रहसे प्रकट हुए ॥ २० ॥

चौथा अध्याय

ऋषभदेवजीका राज्यशासन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! नाभिनन्दनके अंग जन्मसे ही भगवान् विष्णुके वज्र-अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त थे; समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियोंके कारण उनका प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता जाता था। यह देखकर मन्त्री आदि प्रकृतिवर्ग, प्रजा, ब्राह्मण और देवताओंकी यह उत्कट अभिलाषा होने लगी कि ये ही पृथ्वीका शासन करें ॥ १ ॥ उनके सुन्दर और सुडौल शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंके कारण महाराज नाभिने उनका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रक्खा ॥ २ ॥

एक बार भगवान् इन्द्रने ईर्ष्यावश उनके राज्यमें वर्षा नहीं की। तब योगेश्वर भगवान् ऋषभने इन्द्रकी मूर्खतापर हँसते हुए अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने वर्ष अजनाभखण्डमें खूब जल बरसाया ॥ ३ ॥ महाराज नाभि अपनी इच्छाके अनुसार श्रेष्ठ पुत्र पाकर अत्यन्त आनन्दमग्न हो गये और अपनी ही इच्छासे मनुष्यशरीर धारण करनेवाले पुराणपुरुष श्रीहरिका सप्रेम लालन करते हुए, उन्हींके लीलाविलाससे मुग्ध होकर 'वत्स! तात!' ऐसा गद्गदवाणीसे कहते हुए बड़ा सुख मानने लगे ॥ ४ ॥

जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिमण्डल, नागरिक और राष्ट्रकी जनता ऋषभदेवसे बहुत प्रेम करती है, तो उन्होंने उन्हें धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये राज्याभिषिक्त करके ब्राह्मणोंकी देख-रेखमें छोड़ दिया। आप अपनी पत्नी मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ अहिंसावृत्तिसे, जिससे किसीको उद्वेग न हो ऐसी कौशलपूर्ण, तपस्या और समाधियोगके द्वारा भगवान् वासुदेवके नर-नारायणरूपकी आराधना करते हुए समय आनेपर उन्हींके स्वरूपमें लीन हो गये ॥ ५ ॥

पाण्डुनन्दन! राजा नाभिके विषयमें यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

राजर्षि नाभिके उदार कर्मोंका आचरण दूसरा कौन पुरुष कर सकता है—जिनके शुद्ध कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर साक्षात् श्रीहरि उनके पुत्र हो गये थे ॥ ६ ॥ महाराज नाभिके समान ब्राह्मणभक्त भी कौन हो सकता है—जिनकी दक्षिणादिसे सन्तुष्ट हुए ब्राह्मणोंने अपने मन्त्रबलसे उन्हें यज्ञशालामें साक्षात् श्रीविष्णुभगवान्के दर्शन करा दिये ॥ ७ ॥

भगवान् ऋषभदेवने अपने देश अजनाभखण्डको कर्मभूमि मानकर लोकसंग्रहके लिये कुछ काल गुरुकुलमें वास किया। गुरुदेवको यथोचित दक्षिणा देकर गृहस्थमें प्रवेश करनेके लिये उनकी आज्ञा ली। फिर लोगोंको गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनेके लिये देवराज इन्द्रकी दी हुई उनकी कन्या जयन्तीसे विवाह किया तथा श्रौत-स्मार्त्त दोनों प्रकारके शास्त्रोपदिष्ट कर्मोंका आचरण करते हुए उसके गर्भसे अपने ही समान गुणवाले सौ पुत्र उत्पन्न किये ॥ ८ ॥ उनमें महायोगी भरतजी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्हींके नामसे लोग इस अजनाभखण्डको 'भारतवर्ष' कहने लगे ॥ ९ ॥ उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय,

केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट—ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाइयोंसे बड़े एवं श्रेष्ठ थे ॥१०॥ उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—ये नौ राजकुमार भागवतधर्मका प्रचार करनेवाले बड़े भगवद्भक्त थे । भगवान्‌की महिमासे महिमान्वित और परम शान्तिसे पूर्ण इनका पवित्र चरित हम नारद-वसुदेवसंवादके प्रसङ्गसे आगे (एकादश स्कन्धमें) कहेंगे॥११-१२॥ इनसे छोटे जयन्तीके इक्यासी पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले, अति विनीत, महान् वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करनेवाले थे । वे पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गये थे ॥ १३ ॥

भगवान् ऋषभदेव, यद्यपि परम स्वतन्त्र होनेके कारण स्वयं सर्वदा ही सब प्रकारकी अनर्थपरम्परासे रहित, केवल आनन्दानुभवस्वरूप और साक्षात् ईश्वर ही थे, तो भी अज्ञानियोंके समान कर्म करते हुए उन्होंने कालके अनुसार प्राप्त धर्मका आचरण करके उसका तत्त्व न जाननेवाले लोगोंको उसकी शिक्षा दी । साथ ही सम, शान्त, सुहृद् और कारुणिक रहकर धर्म, अर्थ, यश, सन्तान, भोग-सुख और मोक्षका संग्रह करते हुए गृहस्थाश्रममें लोगोंको नियमित किया ॥ १४ ॥ महापुरुष जैसा-जैसा आचरण करते हैं, दूसरे लोग उसीका अनुकरण करने लगते हैं ॥ १५ ॥ यद्यपि वे सभी धर्मोंके साररूप वेदके गूढ रहस्यको जानते थे, तो भी ब्राह्मणोंकी बतलायी हुई विधिसे साम-दानादि नीतिके अनुसार ही जनताका पालन करते थे ॥ १६ ॥ उन्होंने शास्त्र और ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा और ऋत्विज आदिसे सुसम्पन्न सभी प्रकारके सौ-सौ यज्ञ किये ॥१७॥ भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था । यही नहीं, आकाशकुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था ॥ १८ ॥ एक बार भगवान् ऋषभदेव घूमते-घूमते ब्रह्मावर्तदेशमें पहुँचे । वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी सभामें उन्होंने प्रजाके सामने ही अपने समाहितचित्त तथा विनय और प्रेमके भारसे सुसंयत पुत्रोंको शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार कहा ॥ १९ ॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभजीका अपने पुत्रोंको उपदेश देना और स्वयं अवधूतवृत्ति ग्रहण करना

श्रीऋषभदेवजीने कहा—पुत्रो ! इस मर्त्यलोकमें यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषयभोग प्राप्त करनेके लिये ही नहीं है । ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं । इस शरीरसे दिव्य तप ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो; क्योंकि इसीसे अनन्त ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ शास्त्रोंने महापुरुषोंकी सेवाको मुक्तिका और स्त्रीसंगी कामियोंके सङ्गको नरकका द्वार बताया है । महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परमशान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचार-सम्पन्न हों ॥ २ ॥ अथवा मुझ परमात्माके प्रेमका ही जो एकमात्र पुरुषार्थ मानते हों, केवल विषयोंकी ही चर्चा करनेवाले लोगोंमें तथा स्त्री, पुत्र और धन आदि सामग्रियोंसे सम्पन्न घरोंमें जिनकी अरुचि हो और जो लौकिक कार्योंमें केवल शरीरनिर्वाहके लिये ही प्रवृत्त होते हों ॥ ३ ॥ मनुष्य अवश्य प्रमादवश कुकर्म करने लगता है, उसकी वह प्रवृत्ति इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये ही होती है । मैं इसे अच्छा नहीं समझता, क्योंकि इसीके कारण आत्माको यह असत् और दुःखदायक शरीर प्राप्त होता है ॥४॥ जबतक जीवको आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा नहीं होती, तभीतक अज्ञानवश देहादिके द्वारा उसका स्वरूप छिपा रहता है । जबतक यह लौकिक-वैदिक कर्मोंमें फँसा रहता है, तबतक मनमें कर्मकी वासनाएँ भी बनी ही रहती हैं और इन्हींसे देह-बन्धनकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥ इस प्रकार अविद्याके द्वारा आत्मस्वरूपके ढक जानेसे कर्मवासनाओंके

वशीभूत हुआ चित्त मनुष्यको फिर कर्मोंमें ही प्रवृत्त करता है। अतः जबतक उसको मुझ वासुदेवमें प्रीति नहीं होती, तबतक वह देहबन्धनसे छूट नहीं सकता ॥ ६ ॥ स्वार्थमें पागल जीव जबतक विवेकदृष्टिका आश्रय लेकर इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको मिथ्या नहीं देखता, तबतक आत्मस्वरूपकी स्मृति खो बैठनेके कारण वह अज्ञानवश विषयप्रधान गृह आदिमें आसक्त रहता है और तरह-तरहके क्लेश उठाता रहता है ॥ ७ ॥

स्त्री और पुरुष—इन दोनोंका जो परस्पर दाम्पत्य-भाव है, इसीको पण्डितजन उनके हृदयकी दूसरी स्थूल एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि कहते हैं। देहाभिमानरूपी एक-एक सूक्ष्म ग्रन्थि तो उनमें अलग-अलग पहलेसे ही है। इसीके कारण जीवको देहेन्द्रियादिके अतिरिक्त घर, खेत, पुत्र, स्वजन और धन आदिमें भी 'मैं' और 'मेरे' पनका मोह हो जाता है ॥ ८ ॥ जिस समय कर्मवासनाओंके कारण पड़ी हुई इसकी यह दृढ हृदय-ग्रन्थि ढीली हो जाती है, उसी समय यह दाम्पत्यभावसे निवृत्त हो जाता है और संसारके हेतुभूत अहङ्कारको त्यागकर सब प्रकार-के बन्धनोंसे मुक्त हो परमपद प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ पुत्रो ! संसारसागरसे पार होनेमें कुशल तथा धैर्य, उद्यम एवं सत्त्वगुणविशिष्ट पुरुषको चाहिये कि सबके आत्मा और गुरुस्वरूप मुझ भगवान्में भक्तिभाव रखनेसे, मेरे परायण रहनेसे, तृष्णाके त्यागसे, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके सहनेसे 'जीवको सभी योनियोंमें दुःख ही उठाना पड़ता है' इस विचारसे, तत्त्वजिज्ञासासे, तपसे, सकाम कर्मके त्यागसे, मेरे ही लिये कर्म करनेसे, मेरी कथाओं-का नित्यप्रति श्रवण करनेसे, मेरे भक्तोंके सङ्ग और मेरे गुणोंके कीर्तनसे, वैरत्यागसे, समतासे, शान्तिसे और शरीर तथा घर आदिमें मैं-मेरेपनके भावको त्यागनेकी इच्छासे, अध्यात्मशास्त्रके अनुशीलनसे, एकान्त सेवनसे, प्राण, इन्द्रिय और मनके संयमसे, शास्त्र और सत्पुरुषोंके वचनमें यथार्थ बुद्धि रखनेसे, पूर्ण ब्रह्मचर्यसे, कर्तव्यकर्मोंमें निरन्तर सावधान रहनेसे, वाणीके संयमसे, सर्वत्र मेरी ही सत्ता देखनेसे, अनुभवज्ञानसहित तत्त्वविचारसे और योगसाधनसे अहङ्काररूप अपने लिङ्गशरीरको लीन कर दे ॥ १०—१३ ॥ मनुष्यको चाहिये कि वह सावधान रहकर अविद्यासे प्राप्त इस हृदयग्रन्थिरूप बन्धनको शास्त्रोक्त-रीतिसे इन साधनोंके द्वारा भलीभाँति काट डाले; क्योंकि यही कर्मसंस्कारोंके रहनेका स्थान है। तदनन्तर साधन-का भी परित्याग कर दे ॥ १४ ॥

जिसको मेरे लोककी इच्छा हो अथवा जो मेरे अनु-ग्रहकी प्राप्तिको ही परम पुरुषार्थ मानता हो—वह राजा हो तो अपनी अबोध प्रजाको, गुरु अपने शिष्योंको और पिता अपने पुत्रोंको ऐसी ही शिक्षा दे। अज्ञानके कारण यदि वे उस शिक्षाके अनुसार न चलकर कर्मको ही परम पुरुषार्थ मानते रहें, तो भी उनपर क्रोध न करके उन्हें समझा-बुझाकर कर्ममें प्रवृत्त न होने दे। उन्हें विषया-सक्तियुक्त काम्यकर्मोंमें लगाना तो ऐसा ही है, जैसे किसी अंधे मनुष्यको जान-बूझकर गढ़ेमें ढकेल देना। इससे भला, किस पुरुषार्थकी सिद्धि हो सकती है ॥ १५ ॥ अपना सच्चा कल्याण किस बातमें है, इसको लोग नहीं जानते; इसीसे वे तरह-तरहकी भोग-कामनाओंमें फँसकर तुच्छ क्षणिक सुखके लिये आपसमें वैर ठान लेते हैं और निरन्तर विषयभोगोंके लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं। वे मूर्ख इस बातपर कुछ भी विचार नहीं करते कि इस वैर-विरोधके कारण नरक आदि अनन्त घोर दुःखोंकी प्राप्ति होगी ॥ १६ ॥ गढ़ेमें गिरनेके लिये उल्टे रास्तेसे जाते हुए मनुष्यको जैसे आँखवाला पुरुष उधर नहीं जाने देता, वैसे ही अज्ञानी मनुष्यको अविद्यामें फँसकर दुःखोंकी ओर जाते देखकर कौन ऐसा दयालु और ज्ञानी पुरुष होगा, जो जान-बूझकर भी उसे उसी राहपर जाने दे, या जानेके लिये प्रेरणा करे ॥ १७ ॥ जो अपने प्रिय सम्बन्धीको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर मृत्युकी फाँसीसे नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है ॥ १८ ॥

मेरे इस अवतार-शरीरका रहस्य साधारण जनोंके लिये बुद्धिगम्य नहीं है। शुद्ध सत्त्व ही मेरा हृदय है और उसीमें धर्मकी स्थिति है, मैंने अधर्मको अपनेसे बहुत दूर पीछेकी ओर ढकेल दिया है, इसीसे सत्पुरुष मुझे 'ऋषभ' कहते हैं ॥ १९ ॥ तुम सब मेरे उस शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये मत्सर छोड़कर अपने बड़े भाई भरतकी सेवा करो। उसकी सेवा करना मेरी ही सेवा करना है और यही तुम्हारा प्रजापालन

भी है ॥ २० ॥ अन्य सब भूतोंकी अपेक्षा वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, उनसे चलनेवाले जीव श्रेष्ठ हैं और उनमें भी कीटादिकी अपेक्षा ज्ञानयुक्त पशु आदि श्रेष्ठ हैं। पशुओंसे मनुष्य, मनुष्योंसे प्रमथगण, प्रमथोंसे गन्धर्व, गन्धर्वोंसे सिद्ध और सिद्धोंसे देवताओंके अनुयायी किन्नरादि श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ उनसे असुर, असुरोंसे देवता और देवताओंसे भी इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन्द्रसे भी ब्रह्माजीके पुत्र दक्षादि प्रजापति श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माजीके पुत्रोंमें रुद्र सबसे श्रेष्ठ हैं। वे ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये ब्रह्माजी उनसे श्रेष्ठ हैं। वे भी मुझसे उत्पन्न हैं और मेरी उपासना करते हैं, इसलिये मैं उनसे भी श्रेष्ठ हूँ। परन्तु ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ ॥ २२ ॥

[सभामें उपस्थित ब्राह्मणोंको लक्ष्य करके] विप्रगण ! दूसरे किसी भी प्राणीको मैं ब्राह्मणोंके समान भी नहीं समझता, फिर उनसे अधिक तो मान ही कैसे सकता हूँ। लोग श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंके मुखमें जो अन्नादि आहुति डालते हैं, उसे मैं जैसी प्रसन्नतासे ग्रहण करता हूँ वैसे अग्निहोत्रमें होम की हुई सामग्रीको स्वीकार नहीं करता ॥ २३ ॥ जिन्होंने इस लोकमें अध्ययनादिके द्वारा मेरी वेदरूपा अति सुन्दर और पुरातन मूर्तिको धारण कर रक्खा है तथा जो परम पवित्र सत्त्वगुण, शम, दम, सत्य, दया, तप, तितिक्षा और ज्ञानादि आठ गुणोंसे सम्पन्न हैं—उन ब्राह्मणोंसे बढ़कर और कौन हो सकता है ॥ २४ ॥ मैं ब्रह्मादिसे भी श्रेष्ठ और अनन्त हूँ तथा स्वर्ग-मोक्ष आदि देनेकी भी सामर्थ्य रखता हूँ; किन्तु मेरे अकिञ्चन भक्त ऐसे निःस्पृह होते हैं कि वे मुझसे भी कभी कुछ नहीं चाहते; फिर राज्यादि अन्य वस्तुओंकी तो वे इच्छा ही कैसे कर सकते हैं ? ॥ २५ ॥

पुत्रो ! तुम सम्पूर्ण चराचर भूतोंको मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धिसे पद-पदपर उनकी सेवा करो, यही मेरी सच्ची पूजा है ॥ २६ ॥ मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियोंकी चेष्टाओंका साक्षात् फल मेरा इस प्रकारका पूजन ही है। इसके बिना मनुष्य अपनेको महामोहमय कालपाशसे छुड़ा नहीं सकता ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! ऋषभदेवजीके पुत्र यद्यपि स्वयं ही सब प्रकार सुशिक्षित थे, तो भी लोगोंको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे महाप्रभावशाली परम सुहृद् भगवान् ऋषभने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया। ऋषभदेवजीके सौ पुत्रोंमें भरत सबसे बड़े थे। वे भगवान्के परम भक्त और भगवद्भक्तोंके परायण थे। ऋषभदेवजीने पृथ्वीका पालन करनेके लिये उन्हें राजगद्दीपर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निवृत्तिपरायण महामुनियोंके भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसोचित धर्मोंकी शिक्षा देनेके लिये बिल्कुल विरक्त हो गये। केवल शरीरमात्रका परिग्रह रक्खा और सब कुछ घरपर रहते ही छोड़ दिया। अब वे वस्त्रोंका भी त्याग करके सर्वथा दिगम्बर हो गये। उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्तका-सा वेष था। इस स्थितिमें वे आहवनीय (अग्निहोत्रकी) अग्नियोंको अपनेमें ही लीन करके संन्यासी हो गये और ब्रह्मावर्त देशसे बाहर निकल गये ॥ २८ ॥ वे सर्वथा मौन हो गये थे, कोई बात करना चाहता तो बोलते नहीं थे। जड, अंधे, बहरे, गूँगे, पिशाच और पागलोंकी-सी चेष्टा करते हुए वे अवधूत बने जहाँ-तहाँ विचरने लगे ॥ २९ ॥ कभी नगरों और गाँवोंमें चले जाते तो कभी खानों, किसानोंकी बस्तियों, बगीचों, पहाड़ी गाँवों, सेनाकी छावनियों, गोशालाओं, अहीरोंकी बस्तियों और यात्रियोंके टिकनेके स्थानोंमें रहते। कभी पहाड़ों, जंगलों और आश्रम आदिमें विचरते। वे किसी भी रास्तेसे निकलते तो जिस प्रकार वनमें विचरनेवाले हाथीको मक्खियाँ सताती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुष्टलोग उनके पीछे हो जाते और उन्हें तंग करते। कोई धमकी देते, कोई मारते, कोई पेशाब कर देते, कोई थूक देते, कोई ढेला मारते, कोई विष्ठा और धूल फेंकते, कोई अधोवायु छोड़ते और कोई खोटी-खरी सुनाकर उनका तिरस्कार करते। किन्तु वे इन सब बातोंपर जरा भी ध्यान नहीं देते। इसका कारण यह था कि भ्रमसे सत्य कहे जानेवाले इस मिथ्या शरीरमें उनकी अहंता-ममता तनिक भी नहीं थी। वे कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चके साक्षी होकर अपने परमात्मस्वरूपमें ही स्थित थे, इसलिये अखण्ड चित्तवृत्तिसे अकेले ही पृथ्वीपर विचरते रहते थे ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके हाथ, पैर, छाती, लंबी-लंबी बाँहें, कंधे, गले और मुख आदि अङ्गोंकी बनावट बड़ी ही

सुकुमार थी; उनका स्वभावसे ही सुन्दर मुख स्वाभाविक मधुर मुसकानसे और भी मनोहर जान पड़ता था; नेत्र नवीन कमलदलके समान बड़े ही सुहावने, विशाल एवं कुछ लाली लिये हुए थे; उनकी पुतलियाँ शीतल एवं संतापहारिणी थीं। उन नेत्रोंके कारण वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। कपोल, कान और नासिका छोटे-बड़े न होकर समान एवं सुन्दर थे, तथा उनके अस्फुट हास्ययुक्त मनोहर मुखारविन्दकी शोभाको देखकर पुरनारियोंके चित्तमें कामदेवका सञ्चार हो जाता था; तथापि उनके मुखके आगे जो भूरे रंगकी लंबी-लंबी घुँघराली लटें लटकी रहती थीं, उनके महान् भार और अवधूतोंके समान धूलिधूसरित देहके कारण वे ग्रहग्रस्त मनुष्यके समान जान पड़ते थे ॥ ३१ ॥

जब भगवान् ऋषभदेवने देखा कि यह जनता योग-साधनमें विघ्नरूप है और इससे बचनेका उपाय बीभत्सवृत्तिसे रहना ही है, तब उन्होंने अजगरवृत्ति धारण कर ली। वे लेटे-ही-लेटे खाने-पीने, चबाने और मल-मूत्र त्याग करने लगे। वे अपने त्यागे हुए मलमें लोट-लोटकर शरीरको उससे सान लेते ॥३२॥ (किन्तु) उनके मलमें दुर्गन्ध नहीं थी, बड़ी सुगन्ध थी। और वायु उस सुगन्धको लेकर उनके चारों ओर दस योजनतक सारे देशको सुगन्धित कर देती थी ॥३३॥ इसी प्रकार गौ, मृग और काकादिकी वृत्तियोंको स्वीकार कर वे उन्हींके समान कभी चलते हुए, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे हुए और कभी लेटे-लेटे ही खाने-पीने और मल-मूत्रका त्याग करने लगते थे॥३४॥ परीक्षित्! परमहंसोंको त्यागके आदर्शकी शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार मोक्षपति भगवान् ऋषभदेवने कई तरहकी योगचर्याओंका आचरण किया। वे निरन्तर सर्वश्रेष्ठ महान् आनन्दका अनुभव करते रहते थे। उनकी दृष्टिमें निरुपाधिकरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा अपने आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवसे किसी प्रकारका भेद नहीं था। इसलिये उनके सभी पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके थे। उनके पास आकाशगमन, मनोजवित्व (मनकी गतिके समान ही शरीरका भी इच्छा करते ही सर्वत्र पहुँच जाना), अन्तर्धान, परकायप्रवेश (दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना), दूरकी बातें सुन लेना और दूरके दृश्य देख लेना आदि सब प्रकारकी सिद्धियाँ अपने-आप ही सेवा करनेको आयीं; परन्तु उन्होंने उनका मनसे आदर या ग्रहण नहीं किया ॥ ३५ ॥

छठाँ अध्याय

ऋषभदेवजीका देहत्याग

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! योगरूप वायुसे प्रज्वलित हुई ज्ञानाग्निसे जिनके रागादि कर्मबीज दग्ध हो गये हैं—उन आत्माराम मुनियोंको दैववश यदि स्वयं ही अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँ, तो वे उनके राग-द्वेषादि क्लेशोंका कारण तो किसी प्रकार हो नहीं सकतीं। फिर भगवान् ऋषभने उन्हें स्वीकार क्यों नहीं किया? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है; किन्तु संसारमें जैसे चालाक व्याध अपने पकड़े हुए मृगका विश्वास नहीं करते, उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग इस चञ्चल चित्तका भरोसा नहीं करते ॥ २ ॥ ऐसा ही कहा भी है—'इस चञ्चल चित्तसे कभी मैत्री नहीं करनी चाहिये। इसमें विश्वास करनेसे ही मोहिनीरूपमें फँसकर महादेवजीका चिरकालका सञ्चित तप क्षीण हो गया था ॥३॥ जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषोंको अवकाश देकर उनके द्वारा अपनेमें विश्वास रखनेवाले पतिका वध करा देती है—उसी प्रकार जो योगी मनपर विश्वास करते हैं, उनका मन काम और उसके साथी क्रोधादि शत्रुओंको आक्रमण करनेका अवसर देकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देता है ॥ ४ ॥ काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और भय आदि शत्रुओंका तथा कर्म-बन्धनका मूल तो यह मन ही है; इसपर कोई भी बुद्धिमान् कैसे विश्वास कर सकता है?' ॥ ५ ॥

इसीसे भगवान् ऋषभदेव यद्यपि इन्द्रादि सभी

लोकपालोंके भी भूषणस्वरूप थे, तो भी वे जड पुरुषोंकी भाँति अवधूतोंके-से विविध वेष, भाषा और आचरणसे अपने ईश्वरीय प्रभावको छिपाये रहते थे। अन्तमें उन्होंने योगियोंको देहत्यागकी विधि सिखानेके लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे अपने अन्तः-करणमें अभेदरूपसे स्थित परमात्माको अभिन्नरूपसे देखते हुए वासनाओंकी अनुवृत्तिसे छूटकर लिङ्गदेहके अभिमानसे भी मुक्त होकर उपराम हो गये ॥ ६ ॥ इस प्रकार लिङ्गदेहके अभिमानसे मुक्त भगवान् ऋषभदेवजीका शरीर योगमायाकी वासनासे केवल अभिमानाभासके आश्रय ही इस पृथ्वीतलपर विचरता रहा। वह दैववश कोङ्क, वेङ्क और दक्षिण आदि कुटक कर्णाटकके देशोंमें गया और मुँहमें पत्थरका टुकड़ा डाले तथा बाल बिखेरे उन्मत्तके समान दिगम्बररूपसे कुटकाचलके वनमें घूमने लगा ॥ ७ ॥ इसी समय झंझावात झकझोरे हुए बाँसोंके घर्षणसे प्रबल दावाग्नि धधक उठी और उसने सारे वनको अपनी लाल-लाल लपटोंमें लेकर ऋषभदेवजीके सहित भस्म कर दिया ॥८॥

राजन्! जिस समय कलियुगमें अधर्मकी वृद्धि होगी, उस समय कोङ्क, वेङ्क और कुटक देशका मन्दमति राजा अर्हत् वहाँके लोगोंसे ऋषभदेवजीके आश्रमातीत आचरणका वृत्तान्त सुनकर तथा स्वयं उसे ग्रहणकर लोगोंके पूर्वसञ्चित पापफलरूप होनहारके वशीभूत हो भयरहित स्वधर्म-पथका परित्याग करके अपनी बुद्धिसे अनुचित और पाखण्डपूर्ण कुमार्गका प्रचार करेगा ॥९॥ उससे कलियुगमें देवमायासे मोहित अनेकों अधम मनुष्य अपने शास्त्रविहित शौच और आचारको छोड़ बैठेंगे। अधर्मबहुल कलियुगके प्रभावसे बुद्धिहीन हो जानेके कारण वे स्नान न करना, आचमन न करना, अशुद्ध रहना, केश लुंचवाना आदि ईश्वरका तिरस्कार करनेवाले पाखण्डधर्मोंको मनमाने ढंगसे स्वीकार करेंगे और प्रायः वेद, ब्राह्मण एवं भगवान् यज्ञपुरुषकी निन्दा करने लगेंगे ॥१०॥ वे अपनी इस नवीन अवैदिक स्वेच्छाकृत प्रवृत्तिमें अन्धपरम्परासे विश्वास करके मतवाले रहनेके कारण स्वयं ही घोर नरकमें गिरेंगे ॥ ११ ॥

भगवान्‌का यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था ॥ १२ ॥ इसके गुणोंका वर्णन करते हुए लोग इन वाक्योंको कहा करते हैं—'अहो! सात समुद्रोंवाली पृथ्वीके समस्त द्वीप और वर्षोंमें यह भारतवर्ष बड़ी ही पुण्यभूमि है, क्योंकि यहाँके लोग श्रीहरिके मङ्गलमय अवतार-चरित्रोंका गान करते हैं ॥ १३ ॥ अहो! महाराज प्रियव्रतका वंश बड़ा ही उज्ज्वल एवं सुयशपूर्ण है, जिसमें पुराणपुरुष श्रीआदिनारायणने ऋषभावतार लेकर मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले पारमहंस्य धर्मका आचरण किया ॥१४॥ अहो! इन जन्मरहित भगवान् ऋषभदेव-के मार्गपर कोई दूसरा योगी मनसे भी कैसे चल सकता है। क्योंकि योगीलोग जिन योगसिद्धियोंके लिये लालायित होकर निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, उन्हें इन्होंने अपने-आप प्राप्त होनेपर भी असत् समझकर त्याग दिया था ॥ १५ ॥

राजन्! इस प्रकार सम्पूर्ण वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण और गौओंके परमगुरु भगवान् ऋषभदेवका यह विशुद्ध चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया। यह मनुष्योंके समस्त पापोंको हरनेवाला है। जो मनुष्य इस परम मङ्गलमय पवित्र चरित्रको एकाग्रचित्तसे श्रद्धापूर्वक निरन्तर सुनते या सुनाते हैं, उन दोनोंकी ही भगवान् वासुदेवमें अनन्य भक्ति हो जाती है ॥ १६ ॥ तरह-तरहके पापोंसे पूर्ण सांसारिक तापोंसे अत्यन्त तपे हुए अपने अन्तःकरणको पण्डितजन इस भक्ति-सरितामें ही नित्य-निरन्तर नहलाते रहते हैं। इससे उन्हें जो परम शान्ति मिलती है, वह इतनी आनन्दमयी होती है कि फिर वे लोग उसके सामने, अपने-ही-आप प्राप्त हुए मोक्षरूप परम पुरुषार्थ-का भी आदर नहीं करते। भगवान्‌के निजजन हो जानेसे ही उनके समस्त पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥१७॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवलोगोंके और यदुवंशियोंके रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद् और कुलपति थे; यहाँतक कि वे कभी-कभी आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे। इसी प्रकार भगवान् दूसरे भक्तोंके भी अनेकों कार्य कर सकते हैं और उन्हें मुक्ति भी दे देते हैं, परन्तु मुक्तिसे भी बढ़कर जो भक्तियोग है, उसे सहजमें नहीं देते ॥ १८ ॥

निरन्तर विषय-भोगोंकी अभिलाषा करनेके कारण अपने वास्तविक श्रेयसे चिरकालतक बेसुध हुए लोगोंको जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोकका उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होनेवाले आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे सब प्रकारकी तृष्णाओंसे मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेवको नमस्कार है ॥ १९ ॥

सातवाँ अध्याय

भरत-चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! महाराज भरत बड़े ही भगवद्भक्त थे। *भगवान् ऋषभदेवने* अपने संकल्पमात्रसे उन्हें पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त कर दिया। उन्होंने उनकी आज्ञामें स्थित रहकर विश्वरूपकी कन्या पञ्चजनीसे विवाह किया ॥ १ ॥ जिस प्रकार तामस अहङ्कारसे शब्दादि पाँच भूततन्मात्र उत्पन्न होते हैं—उसी प्रकार पञ्चजनीके गर्भसे उनके सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु नामक पाँच पुत्र हुए—जो सर्वथा उन्हींके समान थे। इस वर्षको, जिसका नाम पहले अजनाभवर्ष था, राजा भरतके समयसे ही 'भारतवर्ष' कहते हैं ॥ २-३ ॥

महाराज भरत बहुज्ञ थे। वे अपने-अपने कर्मोंमें लगी हुई प्रजाका अपने बाप-दादोंके समान स्वधर्ममें स्थित रहते हुए अत्यन्त वात्सल्यभावसे पालन करने लगे ॥ ४ ॥ उन्होंने होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चार ऋत्विजोंद्वारा कराये जानेवाले प्रकृति और विकृति* दोनों प्रकारके अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम आदि छोटे-बड़े क्रतुओं (यज्ञों) से यथासमय श्रद्धापूर्वक यज्ञ और क्रतुरूप श्रीभगवान्का यजन किया ॥ ५ ॥ इस प्रकार अङ्ग और क्रियाओंके सहित भिन्न-भिन्न यज्ञोंके अनुष्ठानके समय जब अध्वर्युगण आहुति देनेके लिये हवि हाथमें लेते, तो यजमान भरत उस यज्ञकर्मसे होनेवाले पुण्यरूप फलको यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवके अर्पण कर देते थे। वस्तुतः वे परब्रह्म ही इन्द्रादि समस्त देवताओंके प्रकाशक, मन्त्रोंके वास्तविक प्रतिपाद्य तथा उन देवताओंके भी नियामक होनेसे मुख्य कर्ता एवं प्रधान देव हैं। इस प्रकार अपनी भगवदर्पणबुद्धिरूप कुशलतासे हृदयके राग-द्वेषादि मलोंका मार्जन करते हुए वे सूर्यादि सभी यज्ञभोक्ता देवताओंका भगवान्के नेत्रादि अवयवोंके रूपमें चिन्तन करते थे ॥ ६ ॥ इस तरह कर्मकी शुद्धिसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। तब उन्हें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान, हृदयाकाशमें ही अभिव्यक्त होनेवाले, ब्रह्मस्वरूप एवं महापुरुषोंके लक्षणोंसे उपलक्षित भगवान् वासुदेवमें—जो श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, चक्र, शङ्ख और गदा आदिसे सुशोभित तथा नारदादि निजजनोंके हृदयोंमें चित्रके समान निश्चलभावसे स्थित रहते हैं—दिन-दिन वेगपूर्वक बढ़नेवाली उत्कृष्ट भक्ति प्राप्त हुई ॥ ७ ॥

इस प्रकार एक करोड़ वर्ष निकल जानेपर उन्होंने राज्यभोगका प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंशपरम्परागत सम्पत्तिको यथायोग्य पुत्रोंमें बाँट दिया। फिर अपने सर्वसम्पत्तिसम्पन्न राजमहलसे निकलकर वे पुलहाश्रम (हरिहरक्षेत्र) में चले आये ॥ ८ ॥ इस पुलहाश्रममें रहनेवाले भक्तोंपर भगवान्का बड़ा ही वात्सल्य है। वे आज भी उनसे उनके इष्टरूपमें मिलते रहते हैं ॥ ९ ॥ वहाँ चक्रनदी (गण्डकी) नामकी प्रसिद्ध सरिता चक्राकार शालग्राम-शिलाओंसे, जिनके ऊपर-नीचे दोनों ओर नाभिके समान चिह्न होते हैं, सब ओरसे ऋषियोंके आश्रमोंको पवित्र करती रहती है ॥ १० ॥

उस पुलहाश्रमके उपवनमें एकान्त स्थानमें अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकारके पत्र, पुष्प, तुलसीदल, जल और कन्द-मूल-फलादि उपहारोंसे भगवान्की

* प्रकृति और विकृति-भेदसे अग्निहोत्रादि क्रतु दो प्रकारके होते हैं। सम्पूर्ण अङ्गोंसे युक्त क्रतुओंको 'प्रकृति' कहते हैं और जिनमें सब अङ्ग पूर्ण नहीं होते, किसी-न-किसी अङ्गकी कमी रहती है, उन्हें 'विकृति' कहते हैं।

आराधना करने लगे। इससे उनका अन्तःकरण समस्त विषयाभिलाषाओंसे निवृत्त होकर शान्त हो गया और उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ इस प्रकार जब वे नियमपूर्वक भगवान्‌की परिचर्या करने लगे, तब उससे प्रेमका वेग बढ़ता गया—जिससे उनका हृदय द्रवीभूत होकर शान्त हो गया, आनन्दके प्रबल वेगसे शरीरमें रोमाञ्च होने लगा तथा उत्कण्ठाके कारण नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये, जिससे उनकी दृष्टि रुक गयी। अन्तमें जब अपने प्रियतमके अरुण चरणारविन्दोंके ध्यानसे भक्तियोगका आविर्भाव हुआ, तब परमानन्दसे सराबोर हृदयरूप गम्भीर सरोवरमें बुद्धिके डूब जानेसे उन्हें उस नियमपूर्वक की जानेवाली भगवत्पूजाका भी स्मरण न रहा ॥ १२ ॥ इस प्रकार वे भगवत्सेवाके नियममें ही तत्पर रहते थे, शरीरपर कृष्णमृगचर्म धारण करते थे तथा त्रिकालस्नानके कारण भीगते रहनेसे उनके केश भूरी-भूरी घुँघराली लटोंमें परिणत हो गये थे, जिनसे वे बड़े ही सुहावने लगते थे। वे उदित हुए सूर्यमण्डलमें सूर्यसम्बन्धिनी ऋचाओंद्वारा ज्योतिर्मय परमपुरुष भगवान् नारायणकी आराधना करते और इस प्रकार कहते ॥ १३ ॥ 'भगवान् सूर्यका कर्मफलदायक तेज प्रकृतिसे परे है। उसीने सङ्कल्पद्वारा इस जगत्‌की उत्पत्ति की है। फिर वही अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित्शक्तिद्वारा विषयलोलुप जीवोंकी रक्षा करता है। हम उसी बुद्धिप्रवर्तक तेजकी शरण लेते हैं' ॥ १४ ॥

आठवाँ अध्याय

भरतजीका मृगके मोहमें फँसकर मृग-योनिमें जन्म लेना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—एक बार भरतजी गण्डकीमें स्नान कर नित्य-नैमित्तिक तथा शौचादि अन्य आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो प्रणवका जप करते हुए तीन मुहूर्त्ततक नदीकी धाराके पास बैठे रहे ॥ १ ॥ राजन्! इसी समय एक हरिनी प्याससे व्याकुल हो जल पीनेके लिये अकेली ही उस नदीके तीरपर आयी ॥ २ ॥ अभी वह जल पी ही रही थी कि पास ही गरजते हुए सिंहकी लोकभयङ्कर दहाड़ सुनायी पड़ी ॥ ३ ॥ हरिनजाति तो स्वभावसे ही डरपोक होती है। वह पहले ही चौकन्नी होकर इधर-उधर देखती जाती थी। अब ज्यों ही उसके कानमें वह भीषण शब्द पड़ा कि सिंहके डरके मारे उसका कलेजा धड़कने लगा और नेत्र कातर हो गये। प्यास अभी बुझी न थी, किन्तु अब तो प्राणोंपर आ बनी थी। इसलिये उसने भयवश एकाएकी नदी पार करनेके लिये छलाँग मारी ॥ ४ ॥

उसके पेटमें गर्भ था, अतः उछलते समय अत्यन्त भयके कारण उसका गर्भ अपने स्थानसे हटकर योनिद्वारसे निकलकर नदीके प्रवाहमें गिर गया ॥ ५ ॥ वह कृष्णमृगपत्नी अकस्मात् गर्भके गिर जाने, लंबी छलाँग मारने तथा सिंहसे डरी होनेके कारण बहुत पीड़ित हो गयी थी। अब अपने झुंडसे भी उसका बिछोह हो गया, इसलिये वह किसी गुफामें जा पड़ी और वहीं मर गयी ॥ ६ ॥

राजर्षि भरतने देखा कि बेचारा हरिनीका बच्चा अपने बन्धुओंसे बिछुड़कर नदीके प्रवाहमें बह रहा है। इससे उन्हें उसपर बड़ी दया आयी और वे आत्मीयके समान उस मातृहीन बच्चेको अपने आश्रमपर ले आये ॥ ७ ॥ उस मृगछौनेके प्रति भरतजीकी ममता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। वे नित्य उसके खाने-पीनेका प्रबन्ध करने, व्याघ्रादिसे बचाने, लाड़ लड़ाने और पुचकारने आदिकी चिन्तामें ही डूबे रहने लगे। कुछ ही दिनोंमें उनके यम, नियम और भगवत्पूजा आदि आवश्यक कृत्य एक-एक करके छूटने लगे और अन्तमें सभी छूट गये ॥ ८ ॥ उन्हें ऐसा विचार रहने लगा—'अहो! कैसे खेदकी बात है! इस बेचारे दीन मृगछौनेको कालचक्रके वेगने अपने झुंड, सुहृद् और बन्धुओंसे दूर करके मेरी शरणमें पहुँचा दिया है। यह मुझे ही अपना माता-पिता, भाई-बन्धु और यूथके साथी-सङ्गी समझता है। इसे मेरे सिवा और किसीका पता नहीं है और मुझमें इसका विश्वास भी बहुत है। मैं

भी शरणागतकी उपेक्षा करनेमें जो दोष हैं, उन्हें जानता हूँ। इसलिये मुझे अब अपने इस आश्रितका सब प्रकारकी दोषबुद्धि छोड़कर अच्छी तरह पालन-पोषण और प्यार-दुलार करना चाहिये ॥ ९ ॥ निश्चय ही शान्त-स्वभाव और दीनोंकी रक्षा करनेवाले परोपकारी सज्जन ऐसे शरणागतकी रक्षाके लिये अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थकी भी परवा नहीं करते' ॥ १० ॥

इस प्रकार उस हरिनके बच्चेमें आसक्ति बढ़ जानेसे बैठते, सोते, टहलते, ठहरते और भोजन करते समय भी उनका चित्त उसके स्नेहपाशमें बँधा रहता था ॥ ११ ॥ जब उन्हें कुश, पुष्प, समिधा, पत्र और फल-मूलादि लाने होते तो भेड़ियों और कुत्तोंके भयसे उसे वे साथ लेकर ही वनमें जाते ॥ १२ ॥ मार्गमें जहाँ-तहाँ कोमल घास आदिको देखकर मुग्धभावसे वह हरिणशावक अटक जाता तो वे अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदयसे दयावश उसे अपने कंधेपर चढ़ा लेते। इसी प्रकार कभी गोदमें लेकर और कभी छातीसे लगाकर उसका दुलार करनेमें भी उन्हें बड़ा सुख मिलता ॥ १३ ॥ नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको करते समय भी राजराजेश्वर भरत बीच-बीचमें उठ-उठकर उस मृगबालकको देखते और जब उसपर उनकी दृष्टि पड़ती, तभी उनके चित्तको शान्ति मिलती। उस समय उसके लिये मङ्गलकामना करते हुए वे कहने लगते—'बेटा! तेरा सर्वत्र कल्याण हो' ॥ १४ ॥

कभी यदि वह दिखायी न देता तो जिसका धन लुट गया हो, उस दीन मनुष्यके समान उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो जाता और फिर वे उस हरिनीके बच्चेके विरहसे व्याकुल एवं सन्तप्त हो करुणावश अत्यन्त उत्कण्ठित एवं मोहाविष्ट हो जाते तथा शोकमग्न होकर इस प्रकार कहने लगते ॥ १५ ॥ 'अहो! क्या कहा जाय? क्या वह मातृहीन दीन मृगशावक दुष्ट बहेलियेकी-सी बुद्धिवाले मुझ पुण्यहीन अनार्यका विश्वास करके और मुझे अपना मानकर मेरे किये हुए अपराधोंको सत्पुरुषोंके समान भूलकर फिर लौट आयेगा? ॥ १६ ॥ क्या मैं उसे फिर इस आश्रमके उपवनमें भगवान्‌की कृपासे सुरक्षित रहकर निर्विघ्न हरी-हरी दूब चरते देखूँगा? ॥ १७ ॥ ऐसा न हो कि कोई भेड़िया, कुत्ता, गोल बाँधकर विचरनेवाले सूकरादि अथवा अकेले घूमनेवाले व्याघ्रादि ही उसे खा जायँ ॥ १८ ॥ अरे! सम्पूर्ण जगत्‌की कुशलके लिये प्रकट होनेवाले वेदत्रयीरूप भगवान् सूर्य अस्त होना चाहते हैं; किन्तु अभीतक वह मृगीकी धरोहर लौटकर नहीं आयी! ॥ १९ ॥ क्या वह हरिणराजकुमार मुझ पुण्यहीनके पास आकर अपनी भाँति-भाँतिकी मृगशावकोचित मनोहर एवं दर्शनीय क्रीडाओंसे अपने स्वजनोंका शोक दूर करते हुए मुझे आनन्दित करेगा? ॥ २० ॥ अहो! जब कभी मैं प्रणयकोपसे खेलमें झूठ-मूठ समाधिके बहाने आँख मूँदकर बैठ जाता, तब वह चकित चित्तसे मेरे पास आकर अपने जलबिन्दुके समान कोमल और नन्हे-नन्हे सींगोंकी नोकसे किस प्रकार मेरे अङ्गोंको खुजलाने लगता था ॥ २१ ॥ मैं कभी कुशोंपर हवन-सामग्री रख देता और वह उन्हें दाँतसे खींचकर अपवित्र कर देता तो मेरे डाँटने-डपटनेपर वह अत्यन्त भयभीत होकर उसी समय सारी उछल-कूद छोड़ देता और ऋषिकुमारके समान अपनी समस्त इन्द्रियोंको रोककर चुपचाप बैठ जाता था' ॥ २२ ॥

[फिर पृथ्वीपर उस मृगशावकके खुरके चिह्न देखकर कहने लगते—] 'अहो! इस तपस्विनी धरतीने ऐसा कौन-सा तप किया है जो उस अतिविनीत कृष्णसारकिशोरके छोटे-छोटे सुन्दर, सुखकारी और सुकोमल खुरोंवाले चरणोंके चिह्नोंसे मुझे, जो मैं अपना मृगधन लुट जानेसे अत्यन्त व्याकुल और दीन हो रहा हूँ, उस द्रव्यकी प्राप्तिका मार्ग दिखा रही है और स्वयं अपने शरीरको भी सर्वत्र उन पदचिह्नोंसे विभूषित कर स्वर्ग और अपवर्गके इच्छुक द्विजोंके लिये यज्ञस्थल* बना रही है ॥ २३ ॥ (चन्द्रमामें मृगका-सा श्याम चिह्न देख उसे अपना ही मृग मानकर कहने लगते—) 'अहो! जिसकी माता सिंहके भयसे मर गयी थी, आज वही मृगशिशु अपने आश्रमसे बिछुड़ गया है। अतः उसे अनाथ देखकर क्या ये दीनवत्सल भगवान् नक्षत्रनाथ दयावश उसकी रक्षा कर रहे हैं? ॥ २४ ॥ [फिर

* शास्त्रोंमें उल्लेख आता है कि जिस भूमिमें कृष्णमृग विचरते हैं, वह अत्यन्त पवित्र और यज्ञानुष्ठानके योग्य होती है।

उसकी शीतल किरणोंसे आह्लादित होकर कहने लगते—] 'अथवा अपने पुत्रोंके वियोगरूप दावानलकी विषम ज्वालासे हृदयकमल दग्ध हो जानेके कारण मैंने एक मृगबालकका सहारा लिया था। अब उसके चले जानेसे फिर मेरा हृदय जलने लगा है; इसलिये ये अपनी शीतल, शान्त, स्नेहपूर्ण और वदनसलिलरूपा अमृतमयी किरणोंसे मुझे शान्त कर रहे हैं'॥ २५॥

राजन्! इस प्रकार जिनका पूरा होना सर्वथा असम्भव था, उन विविध मनोरथोंसे भरतका चित्त व्याकुल रहने लगा। अपने मृगशावकके रूपमें प्रतीत होनेवाले प्रारब्धकर्मके कारण तपस्वी भरतजी भगवदाराधनरूप कर्म एवं योगानुष्ठानसे च्युत हो गये। नहीं तो, जिन्होंने मोक्षमार्गमें साक्षात् विघ्नरूप समझकर अपने ही हृदयसे उत्पन्न दुस्त्यज पुत्रादिको भी त्याग दिया था, उन्हींकी अन्यजातीय हरिणशिशुमें ऐसी आसक्ति कैसे हो सकती थी। इस प्रकार राजर्षि भरत विघ्नोंके वशीभूत होकर योगसाधनसे भ्रष्ट हो गये और उस मृगछौनेके पालन-पोषण और लाड़-प्यारमें ही लगे रहकर आत्मस्वरूपको भूल गये। इसी समय जिसका टलना अत्यन्त कठिन है, वह प्रबल वेगशाली कराल काल, चूहेके बिलमें जैसे सर्प घुस आये, उसी प्रकार उनके सिरपर चढ़ आया॥ २६॥ उस समय भी वह हरिणशावक उनके पास बैठा पुत्रके समान शोकातुर हो रहा था। वे उसे इस स्थितिमें देख रहे थे और उनका चित्त उसीमें लग रहा था। इस प्रकारकी आसक्तिमें ही मृगके साथ उनका शरीर भी छूट गया। तदनन्तर उन्हें अन्तकालकी भावनाके अनुसार अन्य साधारण पुरुषोंके समान मृगशरीर ही मिला। किन्तु उनकी साधना पूरी थी, इससे उनकी पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट नहीं हुई॥ २७॥ उस योनिमें भी पूर्वजन्मकी भगवदाराधनाके प्रभावसे अपने मृगरूप होनेका कारण जानकर वे अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे,॥ २८॥ 'अहो! बड़े खेदकी बात है, मैं संयमशील महानुभावोंके मार्गसे पतित हो गया! मैंने तो धैर्यपूर्वक सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर एकान्त और पवित्र वनका आश्रय लिया था। वहाँ रहकर जिस चित्तको मैंने सर्वभूतात्मा श्रीवासुदेवमें, निरन्तर उन्हींके गुणोंका श्रवण, मनन और सङ्कीर्तन करके तथा प्रत्येक पलको उन्हींकी आराधना और स्मरणादिसे सफल करके, स्थिरभावसे पूर्णतया लगा दिया था, मुझ अज्ञानीका वही मन अकस्मात् एक नन्हे-से हरिण-शिशुके पीछे अपने लक्ष्यसे च्युत हो गया!'॥ २९॥

इस प्रकार मृग बने हुए राजर्षि भरतके हृदयमें जो वैराग्य-भावना जाग्रत् हुई, उसे छिपाये रखकर उन्होंने अपनी माता मृगीको त्याग दिया और अपनी जन्मभूमि कालञ्जर पर्वतसे वे फिर शान्तस्वभाव मुनियोंके प्रिय उसी शालग्रामतीर्थमें, जो भगवान्‌का क्षेत्र है, पुलस्त्य और पुलह ऋषिके आश्रमपर चले आये॥ ३०॥ वहाँ रहकर भी वे कालकी ही प्रतीक्षा करने लगे। आसक्तिसे उन्हें बड़ा भय लगने लगा था। बस, अकेले रहकर वे सूखे पत्ते, घास और झाड़ियोंद्वारा निर्वाह करते मृगयोनिकी प्राप्ति करानेवाले प्रारब्धके क्षयकी बाट देखते रहे। अन्तमें उन्होंने अपने शरीरका आधा भाग गंडकीके जलमें डुबाये रखकर उस मृगशरीरको छोड़ दिया॥ ३१॥

नवाँ अध्याय

भरतजीका ब्राह्मणकुलमें जन्म

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! आङ्गिरस गोत्रमें शम, दम, तप, स्वाध्याय, वेदाध्ययन, त्याग (अतिथि आदिको अन्न देना), सन्तोष, तितिक्षा, विनय, विद्या (कर्मविद्या), अनसूया (दूसरोंके गुणोंमें दोष न ढूँढ़ना), आत्मज्ञान (आत्माके कर्तृत्व और भोक्तृत्वका ज्ञान) एवं आनन्द (धर्मपालनजनित सुख) सभी गुणोंसे सम्पन्न एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे। उनके बड़ी स्त्रीसे उन्हींके समान विद्या, शील, आचार, रूप और उदारता

आदि गुणोंवाले नौ पुत्र हुए तथा छोटी पत्नीसे एक ही साथ एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ ॥१॥ इन दोनोंमें जो पुरुष था वह परम भागवत राजर्षिशिरोमणि भरत ही थे। वे मृगशरीरका परित्याग करके अन्तिम जन्ममें ब्राह्मण हुए थे—ऐसा महापुरुषोंका कथन है ॥२॥ इस जन्ममें भी भगवान्‌की कृपासे अपनी पूर्व-जन्मपरम्परा-का स्मरण रहनेके कारण, वे इस आशङ्कासे कि कहीं फिर कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय, अपने स्वजनोंके सङ्गसे भी बहुत डरते थे। हर समय—जिनका श्रवण, स्मरण और गुणकीर्तन सब प्रकारके कर्मबन्धनको काट देता है, श्रीभगवान्‌के उन युगल चरणकमलोंको ही हृदयमें धारण किये रहते तथा दूसरोंकी दृष्टिमें अपनेको पागल, मूर्ख, अंधे और बहरेके समान दिखाते ॥ ३ ॥

पिताका तो उनमें भी वैसा ही स्नेह था। इसलिये ब्राह्मणदेवताने अपने पागल पुत्रके भी शास्त्रानुसार समावर्तनपर्यन्त विवाहसे पूर्वके सभी संस्कार करनेके विचारसे उनका उपनयनसंस्कार किया। यद्यपि वे चाहते नहीं थे तो भी 'पिताका कर्तव्य है कि पुत्रको शिक्षा दे' इस शास्त्रविधिके अनुसार उन्होंने इन्हें शौच-आचमन आदि आवश्यक कर्मोंकी शिक्षा दी ॥ ४ ॥ किन्तु भरतजी तो पिताके सामने ही उनके उपदेशके विरुद्ध आचरण करने लगते थे। पिता चाहते थे कि वर्षाकालमें इसे वेदाध्ययन आरम्भ करा दूँ। किन्तु वसन्त और ग्रीष्मऋतुके चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़—चार महीनोंतक पढ़ाते रहनेपर भी वे इन्हें व्याहृति, और शिरोमन्त्र प्रणवके सहित त्रिपदा गायत्री भी अच्छी तरह याद न करा सके ॥ ५ ॥

ऐसा होनेपर भी अपने इस पुत्रमें उनका आत्माके समान अनुराग था। इसलिये उसकी प्रवृत्ति न होनेपर भी वे 'पुत्रको अच्छी तरह शिक्षा देनी चाहिये' इस अनुचित आग्रहसे उसे शौच, वेदाध्ययन, व्रत, नियम तथा गुरु और अग्निकी सेवा आदि ब्रह्मचर्याश्रमके आवश्यक नियमोंकी शिक्षा देते ही रहे। किन्तु अभी पुत्रको सुशिक्षित देखनेका उनका मनोरथ पूरा न हो पाया था और स्वयं भी भगवद्भजनरूप अपने मुख्य कर्तव्यसे असावधान रहकर केवल घरके धंधोंमें ही व्यस्त थे कि सदा सजग रहनेवाले कालभगवान्‌ने आक्रमण करके उनका अन्त कर दिया ॥ ६ ॥ तब उनकी छोटी भार्या अपने गर्भसे उत्पन्न हुए दोनों बालक अपनी सौतको सौंपकर स्वयं सती होकर पतिलोकको चली गयी ॥७॥

भरतजीके भाई कर्मकाण्डको सबसे श्रेष्ठ समझते थे। वे ब्रह्मज्ञानरूप पराविद्यासे सर्वथा अनभिज्ञ थे। इसलिये उन्हें भरतजीका प्रभाव भी ज्ञात नहीं था, वे उन्हें निरा मूर्ख समझते थे। अतः पिताके परलोक सिधारनेपर उन्होंने उन्हें पढ़ाने-लिखानेका आग्रह छोड़ दिया ॥ ८ ॥ भरतजीको मानापमानका कोई विचार न था। जब साधारण नर-पशु उन्हें पागल, मूर्ख अथवा बहरा कहकर पुकारते तब वे भी उसीके अनुरूप भाषण करने लगते। कोई भी उनसे कुछ भी काम कराना चाहते, तो वे उनकी इच्छाके अनुसार कर देते। बेगारके रूपमें, मजदूरीके रूपमें, माँगनेपर अथवा बिना माँगे जो भी थोड़ा-बहुत अच्छा या बुरा अन्न उन्हें मिल जाता, उसीको जीभका जरा भी स्वाद न देखते हुए खा लेते। अन्य किसी कारणसे उत्पन्न न होनेवाला स्वतःसिद्ध केवल ज्ञानानन्दस्वरूप आत्म-ज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया था; इसलिये शीतोष्ण, मानापमान आदि द्वन्द्वोंसे होनेवाले सुख-दुःखादिमें उन्हें देहाभिमानकी स्फूर्ति नहीं होती थी ॥ ९ ॥ वे सर्दी, गरमी, वर्षा और आँधीके समय साँड़के समान नंगे पड़े रहते थे। उनके सभी अङ्ग हृष्ट-पुष्ट एवं गठे हुए थे। वे पृथ्वीपर ही पड़े रहते थे, कभी तेल-उबटन आदि नहीं लगाते थे और न कभी स्नान ही करते थे, इससे उनके शरीरपर मैल जम गयी थी। उनका ब्रह्मतेज धूलिसे ढके हुए मूल्यवान् मणिके समान छिप गया था। वे अपनी कमरमें एक मैला-कुचैला कपड़ा लपेटे रहते थे। उनका यज्ञोपवीत भी बहुत ही मैला हो गया था। इसलिये अज्ञानी जनता 'यह कोई द्विज है', 'कोई अधम ब्राह्मण है' ऐसा कहकर उनका तिरस्कार कर दिया करती थी, किन्तु वे इसका कोई विचार न करके स्वच्छन्द विचरते थे ॥ १० ॥ दूसरों-की मजदूरी करके पेट पालते देख जब उन्हें उनके भाइयोंने खेतकी क्यारियाँ ठीक करनेमें लगा दिया तब वे उस कार्यको भी करने लगे। परन्तु उन्हें इस बातका कुछ भी ध्यान न था कि उन क्यारियोंकी भूमि

भद्रकालीके द्वारा जडभरतकी रक्षा
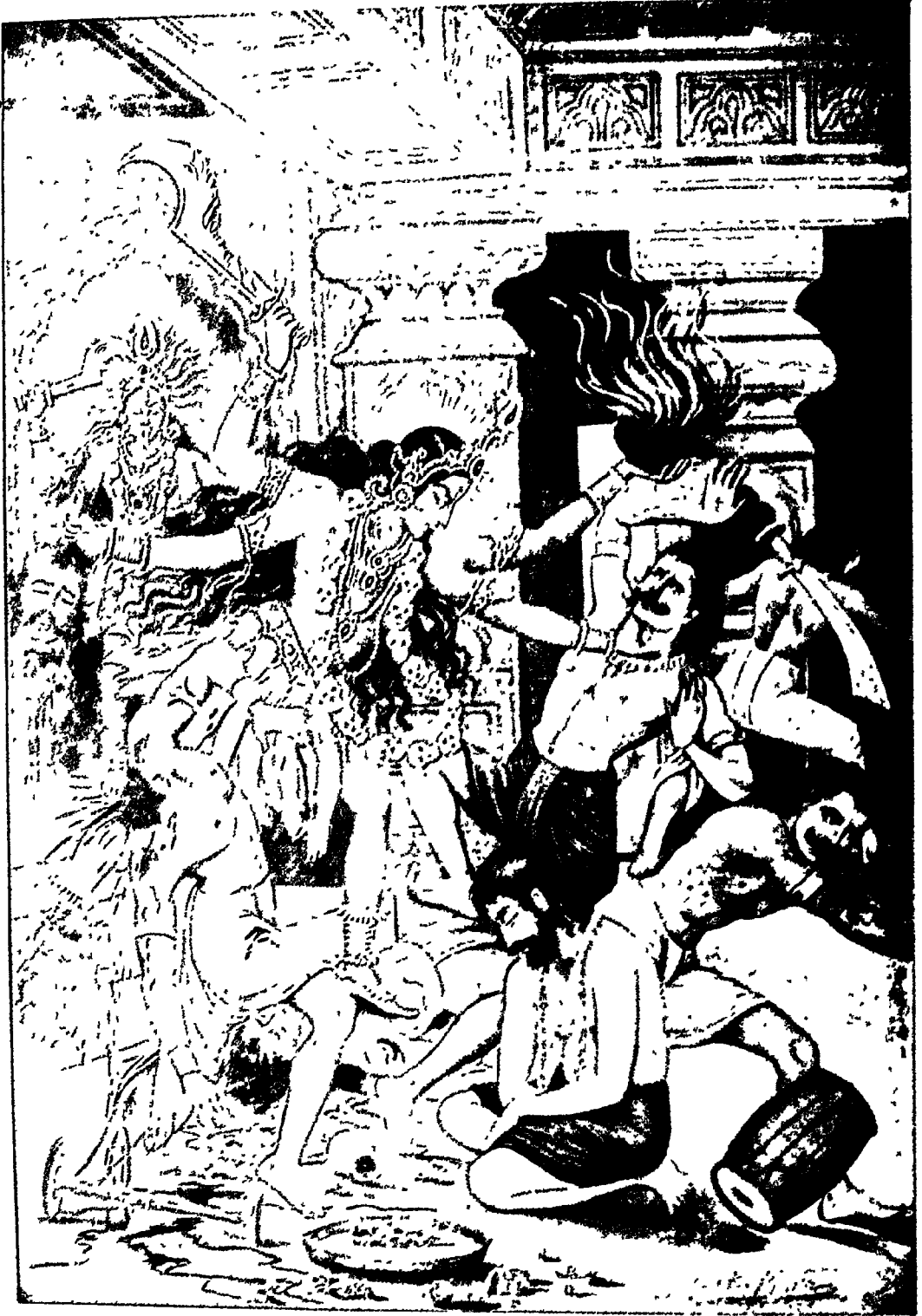
भद्रकालीने उन सारे पापियोंके सिर उड़ा दिये । [पृष्ठ २९१

समतल है या ऊँची-नीची, अथवा वह छोटी है या बड़ी । उनके भाई उन्हें चावलकी कनी; खली, भूसी, घुने हुए उड़द अथवा बरतनोंमें लगी हुई जले अन्नकी खुरचन—जो कुछ भी दे देते, उसीको वे अमृतके समान खा लेते थे ॥ ११ ॥

किसी समय डाकुओंके सरदारने, जिसके सामन्त शूद्र जातिके थे, पुत्रकी कामनासे भद्रकालीको मनुष्यकी बलि देनेका संकल्प किया ॥ १२ ॥ उसने जो पुरुष-पशु बलि देनेके लिये पकड़ मँगाया था, वह दैववश उसके फंदेसे निकलकर भाग गया । उसे ढूँढ़नेके लिये उसके सेवक चारों ओर दौड़े; किन्तु अँधेरी रातमें आधी रातके समय कहीं उसका पता न लगा । इसी समय दैवयोगसे अकस्मात् उनकी दृष्टि इन आङ्गिरसगोत्रीय ब्राह्मणकुमारपर पड़ी, जो वीरासनसे बैठे हुए मृग-वराहादि जीवोंसे खेतोंकी रखवाली कर रहे थे ॥ १३ ॥ उन्होंने देखा कि यह पशु तो बड़े अच्छे लक्षणोंवाला है, इससे हमारे स्वामीका कार्य अवश्य सिद्ध हो जायगा । यह सोचकर उनका मुख आनन्दसे खिल उठा और वे उन्हें रस्सियोंसे बाँधकर चण्डिकाके मन्दिरमें ले आये ॥ १४ ॥

तदनन्तर उन चोरोंने अपनी पद्धतिके अनुसार विधिपूर्वक उनका अभिषेक एवं स्नान कराकर कोरे वस्त्र पहनाये तथा नाना प्रकारके आभूषण, चन्दन, माला और तिलक आदिसे विभूषित कर अच्छी तरह भोजन कराया । फिर धूप, दीप, माला, खील, पत्ते, अङ्कुर और फल आदि उपहार-सामग्रीके सहित बलिदानकी विधिसे गान, स्तुति और मृदङ्ग एवं ढोल आदिका महान् शब्द करते उस पुरुष-पशुको भद्रकाली-के सामने नीचा सिर कराके बैठा दिया ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् दस्युराजके पुरोहित बने हुए लुटेरेने उस नर-पशुके रुधिरसे देवीको तृप्त करनेके लिये देवीमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग उठाया ॥ १६ ॥

चोर स्वभावसे तो रजोगुणी-तमोगुणी थे ही, धन-के मदसे उनका चित्त और भी उन्मत्त हो गया था । हिंसामें भी उनकी स्वाभाविक रुचि थी । इस समय तो वे भगवान्‌के अंशस्वरूप ब्राह्मणकुलका तिरस्कार करके स्वच्छन्दतासे कुमार्गकी ओर बढ़ रहे थे । आपत्ति-कालमें भी जिस हिंसाका अनुमोदन किया गया है, उसमें भी ब्राह्मण-वधका सर्वथा निषेध है, तो भी वे साक्षात् ब्रह्मभावको प्राप्त हुए वैरहीन तथा समस्त प्राणियोंके सुहृद् एक ब्रह्मर्षिकुमारकी बलि देना चाहते थे । यह भयङ्कर कुकर्म देखकर देवी भद्रकालीके शरीरमें अति दुःसह ब्रह्मतेजसे दाह होने लगा और वे एकाएक मूर्तिको फोड़कर प्रकट हो गयीं ॥ १७ ॥ अत्यन्त असहनशीलता और क्रोधके कारण उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं तथा कराल दाढ़ों और चढ़ी हुई लाल आँखोंके कारण उनका चेहरा बड़ा भयानक जान पड़ता था । उनके उस विकराल वेषको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे इस संसारका संहार कर डालेंगी । उन्होंने क्रोधसे तड़ककर बड़ा भीषण अट्टहास किया और उछलकर उस अभिमन्त्रित खड्गसे ही उन सारे पापियोंके सिर उड़ा दिये और अपने गणोंके सहित उनके गलेसे बहता हुआ गरम-गरम रुधिररूप आसव पीकर अति उन्मत्त हो ऊँचे स्वरसे गाती और नाचती हुई उन सिरोंकी ही गेंद बनाकर खेलने लगीं ॥ १८ ॥ सच है, महापुरुषोंके प्रति किया हुआ अत्याचाररूप अपराध इसी प्रकार ज्यों-का-त्यों अपने ही ऊपर पड़ता है ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! जिनकी देहाभिमानरूप सुदृढ़ हृदयग्रन्थि छूट गयी है, जो समस्त प्राणियोंके सुहृद् एवं आत्मा तथा वैरहीन हैं, साक्षात् भगवान् ही भद्रकाली आदि भिन्न-भिन्न रूप धारण करके अपने कभी न चूकनेवाले कालचक्ररूप श्रेष्ठ शस्त्रसे जिनकी रक्षा करते हैं और जिन्होंने भगवान्‌के निर्भय चरण-कमलोंका आश्रय ले रक्खा है—उन भगवद्भक्त परमहंसोंके लिये अपना सिर कटनेका अवसर आनेपर भी किसी प्रकार व्याकुल न होना—यह कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २० ॥

दसवाँ अध्याय

जडभरत और राजा रहूगणकी भेंट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! एक बार सिन्धु-सौवीर देशका स्वामी राजा रहूगण पालकीपर चढ़कर जा रहा था। जब वह इक्षुमती नदीके किनारे पहुँचा तब उसकी पालकी उठानेवाले कहारोंके जमादारको एक कहारकी आवश्यकता पड़ी। कहारकी खोज करते समय दैववश उसे ये ब्राह्मणदेवता मिल गये। इन्हें देखकर उसने सोचा, 'यह मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, जवान और गठीले अङ्गोंवाला है। इसलिये यह तो बैल या गधेके समान अच्छी तरह बोझा ढो सकता है।' यह सोचकर उसने बेगारमें पकड़े हुए अन्य कहारोंके साथ इन्हें भी बलात्कारसे पकड़कर पालकीमें जोड़ दिया। महात्मा भरतजी यद्यपि किसी प्रकार इस कार्यके योग्य नहीं थे, तो भी वे बिना कुछ बोले चुपचाप पालकीको उठा ले चले ॥ १ ॥

वे द्विजवर, कोई जीव पैरोंतले दब न जाय—इस डरसे आगेकी एक बाण पृथ्वी देखकर चलते थे। इसलिये दूसरे कहारोंके साथ उनकी चालका मेल नहीं खाता था; अतः जब पालकी टेढ़ी-सीधी होने लगी, तब यह देखकर राजा रहूगणने पालकी उठानेवालोंसे कहा—'अरे कहारो ! अच्छी तरह चलो, पालकीको इस प्रकार ऊँची-नीची करके क्यों चलते हो ?' ॥२॥

तब अपने स्वामीका यह आक्षेपयुक्त वचन सुनकर कहारोंको डर लगा कि कहीं राजा उन्हें दण्ड न दें। इसलिये उन्होंने राजासे इस प्रकार निवेदन किया ॥ ३ ॥ 'महाराज ! यह हमारा प्रमाद नहीं है, हम आपकी नियम-मर्यादाके अनुसार ठीक-ठीक ही पालकी ले चल रहे हैं। यह एक नया कहार अभी-अभी पालकीमें लगाया गया है, तो भी यह जल्दी-जल्दी नहीं चलता। हमलोग इसके साथ पालकी नहीं ले जा सकते' ॥ ४ ॥

कहारोंके ये दीन वचन सुनकर राजा रहूगणने सोचा, 'संसर्गसे उत्पन्न होनेवाला दोष एक व्यक्तिमें होनेपर भी उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी पुरुषोंमें आ सकता है। इसलिये यदि इसका प्रतिकार न किया गया तो धीरे-[धी]रे ये सभी कहार अपनी चाल बिगाड़ लेंगे।' ऐसा [सो]चकर राजा रहूगणको कुछ क्रोध हो आया। यद्यपि उसने महापुरुषोंका सेवन किया था, तथापि क्षत्रियस्वभाव-वश बलात्कारसे उसकी बुद्धि रजोगुणसे व्याप्त हो गयी और वह उन द्विजश्रेष्ठसे, जिनका ब्रह्मतेज भस्मसे ढके हुए अग्निके समान प्रकट नहीं था, इस प्रकार व्यङ्गसे भरे वचन कहने लगा— ॥ ५ ॥ 'अरे भैया ! बड़े दुःखकी बात है, अवश्य ही तुम बहुत थक गये हो। ज्ञात होता है, तुम्हारे इन साथियोंने तुम्हें तनिक भी सहारा नहीं लगाया। इतनी दूरसे तुम अकेले ही बड़ी देरसे पालकी ढोते चले आ रहे हो। तुम्हारा शरीर भी तो विशेष मोटा-ताजा और हट्टा-कट्टा नहीं है, और मित्र ! बुढ़ापेने अलग तुम्हें दबा रक्खा है।' इस प्रकार बहुत ताना मारनेपर भी वे पहलेकी ही भाँति चुपचाप पालकी उठाये चलते रहे ! उन्होंने इसका कुछ भी बुरा न माना; क्योंकि उनकी दृष्टिमें तो पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणका सङ्घात यह अपना अन्तिम शरीर अविद्याका ही कार्य था। वह विविध अङ्गोंसे युक्त दिखायी देनेपर भी वस्तुतः था ही नहीं, इसलिये उसमें उनका मैं-मेरे-पनका मिथ्या अध्यास सर्वथा निवृत्त हो गया था और वे ब्रह्मरूप हो गये थे ॥ ६ ॥

(किन्तु) पालकी अब भी सीधी चालसे नहीं चल रही है—यह देखकर राजा रहूगण क्रोधसे आग-बबूला हो गया और कहने लगा, 'अरे ! यह क्या ? क्या तू जीता ही मर गया है ? तू मेरा निरादर करके (मेरी) आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है ! मालूम होता है, तू सर्वथा प्रमादी है। अरे ! जैसे दण्डपाणि यमराज जन-समुदायको उसके अपराधोंके लिये दण्ड देते हैं, उसी प्रकार मैं भी अभी तेरा इलाज किये देता हूँ। तब तेरे होश ठिकाने आ जायँगे' ॥ ७ ॥

रहूगणको राजा होनेका अभिमान था, इसलिये वह इसी प्रकार बहुत-सी अनाप-शनाप बातें बोल गया। वह अपनेको बड़ा पण्डित समझता था, अतः रज-तमयुक्त अभिमानके वशीभूत होकर उसने भगवान्‌के अनन्य प्रीतिपात्र भक्तवर भरतजीका तिरस्कार कर डाला। योगेश्वरोंकी विचित्र कहनी-करनीका तो उसे कुछ पता ही न था। उसकी ऐसी कच्ची बुद्धि देखकर वे सम्पूर्ण

प्राणियोंके सुहृद् एवं आत्मा, ब्रह्मभूत ब्राह्मणदेवता मुसकराये और बिना किसी प्रकारका अभिमान किये इस प्रकार कहने लगे ॥ ८ ॥

जडभरतने कहा—राजन् ! तुमने जो कुछ कहा वह यथार्थ है । उसमें कोई उलाहना नहीं है । यदि भार नामकी कोई वस्तु है तो ढोनेवालेके लिये है, यदि कोई मार्ग है तो वह चलनेवालेके लिये है । मोटापन भी उसीका है, यह सब शरीरके लिये कहा जाता है, आत्माके लिये नहीं । ज्ञानीजन ऐसी बात नहीं करते ॥ ९ ॥ स्थूलता, कृशता, आधि, व्याधि, भूख, प्यास, भय, कलह, इच्छा, बुढ़ापा, निद्रा, प्रेम, क्रोध, अभिमान और शोक—ये सब धर्म देहाभिमानको लेकर उत्पन्न होनेवाले जीवमें रहते हैं; मुझमें इनका लेश भी नहीं है ॥ १० ॥ राजन् ! तुमने जो जीने-मरनेकी बात कही—सो जितने भी विकारी पदार्थ हैं, उन सभीमें नियमितरूपसे ये दोनों बातें देखी जाती हैं; क्योंकि वे सभी आदि-अन्तवाले हैं । यशस्वी नरेश ! जहाँ स्वामी-सेवकभाव स्थिर हो, वहीं आज्ञापालनादिका नियम भी लागू हो सकता है ॥११॥ 'तुम राजा हो और मैं प्रजा हूँ' इस प्रकारकी भेदबुद्धिके लिये मुझे व्यवहारके सिवा और कहीं तनिक भी अवकाश नहीं दिखायी देता । परमार्थदृष्टिसे देखा जाय तो किसे स्वामी कहें और किसे सेवक ? फिर भी राजन् ! तुम्हें यदि स्वामित्वका अभिमान है तो कहो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ॥ १२ ॥ वीरवर ! मैं मत्त, उन्मत्त और जडके समान अपनी ही स्थितिमें रहता हूँ । मेरा इलाज करके तुम्हें क्या हाथ लगेगा ? यदि मैं वास्तवमें जड और प्रमादी ही हूँ, तो भी मुझे शिक्षा देना पिसे हुएको पीसनेके समान व्यर्थ ही होगा ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मुनिवर जडभरत यथार्थ तत्त्वका उपदेश करते हुए इतना उत्तर देकर मौन हो गये । उनका देहात्मबुद्धिका हेतुभूत अज्ञान निवृत्त हो चुका था, इसलिये वे परम शान्त हो गये थे । अतः इतना कहकर भोगद्वारा प्रारब्धक्षय करनेके लिये वे फिर पहलेके ही समान उस पालकीको कन्धेपर लेकर चलने लगे ॥ १४ ॥ सिन्धु-सौवीरनरेश रहूगण भी अपनी उत्तम श्रद्धाके कारण तत्त्वजिज्ञासाका पूरा अधिकारी था । जब उसने उन द्विजश्रेष्ठके अनेकों योग-ग्रन्थोंसे समर्थित और हृदयकी ग्रन्थिका छेदन करनेवाले ये वाक्य सुने, तब वह तत्काल पालकीसे उतर पड़ा । उसका राजमद सर्वथा दूर हो गया और वह उनके चरणोंमें सिर रखकर अपना अपराध क्षमा कराते हुए इस प्रकार कहने लगा ॥ १५ ॥ 'देव ! आपने द्विजोंका चिह्न यज्ञोपवीत धारण कर रक्खा है, बतलाइये इस प्रकार प्रच्छन्नभावसे विचरनेवाले आप कौन हैं ? क्या आप दत्तात्रेय आदि अवधूतोंमेंसे कोई हैं ? आप किसके पुत्र हैं, आपका कहाँ जन्म हुआ है और यहाँ कैसे आपका पदार्पण हुआ है ? यदि आप हमारा कल्याण करने पधारे हैं, तो क्या आप साक्षात् सत्त्वमूर्ति भगवान् कपिलजी ही तो नहीं हैं ? ॥ १६ ॥ मुझे इन्द्रके वज्रका कोई डर नहीं है, न मैं महादेवजीके त्रिशूलसे डरता हूँ और न यमराजके दण्डसे । मुझे अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु और कुबेरके अस्त्र-शस्त्रोंका भी कोई भय नहीं है; परन्तु मैं ब्राह्मणकुलके अपमानसे बहुत ही डरता हूँ ॥ १७ ॥ अतः कृपया बतलाइये, इस प्रकार अपने विज्ञान और शक्तिको छिपाकर मूर्खोंकी भाँति विचरनेवाले आप कौन हैं ? विषयोंसे तो आप सर्वथा अनासक्त जान पड़ते हैं । मुझे आपकी कोई थाह नहीं मिल रही है । साधो ! आपके योगयुक्त वाक्योंकी बुद्धिद्वारा आलोचना करनेपर भी मेरा सन्देह दूर नहीं होता ॥ १८ ॥ मैं आत्मज्ञानी मुनियोंके परम गुरु और साक्षात् श्रीहरिकी ज्ञानशक्तिके अवतार योगेश्वर भगवान् कपिलसे यह पूछनेके लिये जा रहा था कि इस लोकमें एकमात्र शरण लेने योग्य कौन है ॥ १९ ॥ क्या आप वे कपिलमुनि ही हैं, जो लोकोंकी दशा देखनेके लिये इस प्रकार अपना रूप छिपाकर विचर रहे हैं ? भला, घरमें आसक्त रहनेवाला विवेकहीन पुरुष योगेश्वरोंकी गति कैसे जान सकता है ?' ॥ २० ॥

'मैंने युद्धादि कर्मोंमें अपनेको श्रम होते देखा है, इसलिये मेरा अनुमान है कि बोझा ढोने और मार्गमें चलनेसे आपको भी अवश्य ही होता होगा । मुझे तो व्यवहार-मार्ग भी सत्य ही जान पड़ता है; क्योंकि मिथ्या घड़ेसे जल लाना आदि कार्य नहीं होता ॥ २१ ॥ (देहादिके धर्मोंका आत्मापर कोई प्रभाव ही नहीं होता, ऐसी बात भी नहीं है) चूल्हेपर रक्खी हुई बटलोई

जब अग्निसे तपने लगती है, तब उसका जल भी खौलने लगता है और फिर उस जलसे चावलका भीतरी भाग भी पक जाता है। इसी प्रकार अपनी उपाधिके धर्मोंका अनुवर्तन करनेके कारण देह, इन्द्रिय, प्राण और मनकी सन्निधिसे आत्माको भी उनके धर्म श्रमादिका अनुभव होता ही है ॥ २२ ॥ आपने जो दण्डादिकी व्यर्थता बतायी, सो राजा तो प्रजाका शासन और पालन करनेके लिये नियुक्त किया हुआ उसका दास ही है। उसका उन्मत्तादिको दण्ड देना पिसे हुएको पीसनेके समान व्यर्थ नहीं हो सकता; क्योंकि अपने धर्मका आचरण करना भगवान्‌की सेवा ही है, उसे करनेवाला व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण पापराशिको नष्ट कर देता है॥ २३ ॥

'दीनबन्धो ! राजत्वके अभिमानसे उन्मत्त होकर मैंने आप-जैसे परम साधुकी अवज्ञा की है। अब आप ऐसी कृपादृष्टि कीजिये, जिससे इस साधु-अवज्ञारूप अपराधसे मैं मुक्त हो जाऊँ॥ २४ ॥ आप देहाभिमान-शून्य और विश्वबन्धु श्रीहरिके अनन्य भक्त हैं; इसलिये सबमें समान दृष्टि होनेसे इस मानापमानके कारण आपमें कोई विकार नहीं हो सकता तथापि एक महापुरुषका अपमान करनेके कारण मेरे-जैसा पुरुष, साक्षात् त्रिशूलपाणि महादेवजीके समान प्रभावशाली होनेपर भी, अपने अपराधसे अवश्य थोड़े ही कालमें नष्ट हो जायगा' ॥ २५ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

राजा रहूगणको भरतजीका उपदेश

जडभरतने कहा—राजन् ! तुम अज्ञानी होनेपर भी पण्डितोंके समान ऊपर-ऊपरकी तर्क-वितर्कयुक्त बात कह रहे हो। इसलिये श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें तुम्हारी गणना नहीं हो सकती। तत्त्वज्ञानी पुरुष इस अविचार-सिद्ध स्वामी-सेवक आदि व्यवहारको तत्त्वविचारके समय सत्यरूपसे स्वीकार नहीं करते ॥१॥ लौकिक व्यवहारके समान ही वैदिक व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि वेदवाक्य भी अधिकतर गृहस्थजनोचित यज्ञविधिके विस्तारमें ही व्यस्त हैं, राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित विशुद्ध तत्त्वज्ञानकी पूरी-पूरी अभिव्यक्ति प्राय: उनमें भी नहीं हुई है ॥ २ ॥ जिसे गृहस्थोचित यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला स्वर्गादि सुख स्वप्नके समान हेय नहीं जान पड़ता, उसे तत्त्वज्ञान करानेमें साक्षात् उपनिषद्-वाक्य भी समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ जबतक मनुष्यका मन सत्त्व, रज अथवा तमोगुणके वशीभूत रहता है, तबतक वह बिना किसी अङ्कुशके उसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंसे शुभाशुभ कर्म कराता रहता है ॥४॥ यह मन वासनामय, विषयासक्त, गुणोंसे प्रेरित, विकारी और भूत एवं इन्द्रियरूप सोलह कलाओंमें मुख्य है। यही भिन्न-भिन्न नामोंसे देवता और मनुष्यादिरूप धारण करके शरीररूप उपाधियोंके भेदसे जीवकी उत्तमता और अधमताका कारण होता है ॥ ५ ॥ यह मायामय मन संसारचक्रमें छलनेवाला है, यही अपनी देहके अभिमानी जीवसे मिलकर उसे कालक्रमसे प्राप्त हुए सुख-दु:ख और इनसे व्यतिरिक्त मोहरूप अवश्यम्भावी फलोंकी अभिव्यक्ति करता है ॥६॥ जबतक यह मन रहता है, तभीतक जाग्रत् और स्वप्नावस्थाका व्यवहार प्रकाशित होकर जीवका दृश्य बनता है। इसलिये पण्डितजन मनको ही त्रिगुणमय अधम संसारका और गुणातीत परमोत्कृष्ट मोक्षपदका कारण बताते हैं ॥७॥ विषयासक्त मन जीवको संसार-सङ्कटमें डाल देता है, विषयहीन होनेपर वही उसे शान्तिमय मोक्षपद प्राप्त करा देता है। जिस प्रकार घीसे भीगी हुई बत्तीको खानेवाले दीपकसे तो धूएँवाली शिखा निकलती रहती है और जब घी समाप्त हो जाता है तब वह अपने कारण अग्नितत्त्वमें लीन हो जाता है—उसी प्रकार विषय और कर्मोंमें आसक्त हुआ मन तरह-तरहकी वृत्तियोंका आश्रय लिये रहता है और इनसे मुक्त होनेपर वह अपने तत्त्वमें लीन हो जाता है ॥ ८ ॥

वीरवर ! पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक अहङ्कार—ये ग्यारह मनकी वृत्तियाँ हैं तथा पाँच प्रकारके कर्म, पाँच तन्मात्र और एक शरीर—ये ग्यारह

उनके आधारभूत विषय कहे जाते हैं ॥ ९ ॥ गन्ध, रूप, स्पर्श, रस और शब्द—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं; मलत्याग, सम्भोग, गमन, भाषण और लेना-देना आदि व्यापार—ये पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं तथा शरीरको 'यह मेरा है' इस प्रकार स्वीकार करना अहङ्कारका विषय है। कुछ लोग अहङ्कारको मनकी बारहवीं वृत्ति और उसके आश्रय शरीरको बारहवाँ विषय मानते हैं ॥ १० ॥ ये मनकी ग्यारह वृत्तियाँ द्रव्य (विषय), स्वभाव, आशय (संस्कार), कर्म और कालके द्वारा सैकड़ों, हजारों और करोड़ों भेदोंमें परिणत हो जाती हैं। किन्तु इनकी सत्ता क्षेत्रज्ञ आत्माकी सत्तासे ही है, स्वतः या परस्पर मिलकर नहीं है ॥ ११ ॥ ऐसा होनेपर भी मनसे क्षेत्रज्ञका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो जीवकी ही मायानिर्मित उपाधि है। यह प्रायः संसारबन्धनमें डालनेवाले अविशुद्ध कर्मोंमें ही प्रवृत्त रहता है। इसकी उपर्युक्त वृत्तियाँ प्रवाहरूपसे नित्य ही रहती हैं; जाग्रत् और स्वप्नके समय वे प्रकट हो जाती हैं और सुषुप्तिमें छिप जाती हैं। इन दोनों ही अवस्थाओंमें क्षेत्रज्ञ, जो विशुद्ध चिन्मात्र है, मनकी इन वृत्तियोंको साक्षीरूपसे देखता रहता है ॥ १२ ॥

यह क्षेत्रज्ञ परमात्मा सर्वव्यापक, जगत्‌का आदि-कारण, परिपूर्ण, अपरोक्ष, स्वयंप्रकाश, अजन्मा, ब्रह्मादिका भी नियन्ता और अपने अधीन रहनेवाली मायाके द्वारा सबके अन्तःकरणोंमें रहकर जीवोंको प्रेरित करनेवाला समस्त भूतोंका आश्रयरूप भगवान् वासुदेव है ॥ १३ ॥ जिस प्रकार वायु सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गम प्राणियोंमें प्राणरूपसे प्रविष्ट होकर उन्हें प्रेरित करती है, उसी प्रकार वह परमेश्वर भगवान् वासुदेव सर्वसाक्षी आत्मस्वरूपसे इस सम्पूर्ण प्रपञ्चमें ओतप्रोत है ॥ १४ ॥ राजन् ! जबतक मनुष्य ज्ञानोदयके द्वारा इस मायाका तिरस्कार कर, सबकी आसक्ति छोड़कर तथा काम-क्रोधादि छः शत्रुओंको जीतकर आत्मतत्त्वको नहीं जान लेता और जबतक वह आत्माके उपाधिरूप मनको संसार-दुःखका क्षेत्र नहीं समझता, तबतक वह इस लोकमें यों ही भटकता रहता है; क्योंकि यह चित्त उसके शोक, मोह, रोग, राग, लोभ और वैर आदिके संस्कार तथा ममताकी वृद्धि करता रहता है ॥ १५-१६ ॥ यह मन ही तुम्हारा बड़ा बलवान् शत्रु है। तुम्हारे उपेक्षा करनेसे इसकी शक्ति और भी बढ़ गयी है। यह यद्यपि स्वयं तो सर्वथा मिथ्या है, तथापि इसने तुम्हारे आत्मस्वरूपको आच्छादित कर रक्खा है। इसलिये तुम सावधान होकर श्रीगुरु और हरिके चरणोंकी उपासनाके अस्त्रसे इसे मार डालो ॥ १७ ॥

बारहवाँ अध्याय

रहूगणका प्रश्न और भरतजीका समाधान

राजा रहूगणने कहा—भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपने जगत्‌का उद्धार करनेके लिये ही यह देह धारण की है। योगेश्वर ! अपने परमानन्दमय स्वरूपका अनुभव करके आप इस स्थूलशरीरसे उदासीन हो गये हैं तथा एक जड ब्राह्मणके वेषसे अपने नित्यज्ञानमय स्वरूपको जनसाधारणकी दृष्टिसे ओझल किये हुए हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ ब्रह्मन् ! जिस प्रकार ज्वरसे पीड़ित रोगीके लिये मीठी ओषधि और धूपसे तपे हुए पुरुषके लिये शीतल जल अमृततुल्य होता है, उसी प्रकार मेरे लिये, जिसकी विवेकबुद्धिको देहाभिमानरूप विषैले सर्पने डस लिया है, आपके वचन अमृतमय ओषधिके समान हैं ॥ २ ॥ देव ! मैं आपसे अपने संशयोंकी निवृत्ति तो पीछे कराऊँगा। पहले तो इस समय आपने जो अध्यात्मयोगमय उपदेश दिया है, उसीको सरल करके समझाइये, उसे समझनेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है ॥ ३ ॥ योगेश्वर ! आपने जो यह कहा कि भार उठानेकी क्रिया तथा उससे जो श्रमरूप फल होता है, वे दोनों ही प्रत्यक्ष होनेपर भी केवल व्यवहारमूलक ही हैं, वास्तवमें सत्य नहीं हैं—वे तत्त्वविचारके सामने कुछ भी नहीं ठहरते—सो इस विषयमें मेरा मन चक्कर खा रहा है, आपके इस कथन-

का मर्म मेरी समझमें नहीं आ रहा है ॥ ४ ॥

जडभरतने कहा—पृथ्वीपते ! यह देह पृथ्वीका विकार है, पाषाणादिसे इसका क्या भेद है ? जब यह किसी कारणसे पृथ्वीपर चलने लगता है, तब इसके भारवाही आदि नाम पड़ जाते हैं। इसके दो चरण हैं; उनके ऊपर क्रमशः टखने, पिंडली, घुटने, जाँघ, कमर, वक्षःस्थल, गर्दन और कंधे आदि अङ्ग हैं ॥५॥ कंधोंके ऊपर लकड़ीकी पालकी रक्खी हुई है; उसमें भी सौवीरराज नामका एक पार्थिव विकार ही है, जिसमें आत्मबुद्धिरूप अभिमान करनेसे तुम 'मैं सिन्धु देशका राजा हूँ' इस प्रबल मदसे अंधे हो रहे हो ॥ ६ ॥ किन्तु इसीसे तुम्हारी कोई श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती, वास्तवमें तो तुम बड़े क्रूर और धृष्ट ही हो। तुमने इन बेचारे दीन-दुखिया कहारोंको बेगारमें पकड़कर पालकीमें जोत रक्खा है और फिर महापुरुषोंकी सभामें बढ़-बढ़कर बातें बनाते हो कि मैं लोकोंकी रक्षा करनेवाला हूँ। यह तुम्हें शोभा नहीं देता ॥ ७ ॥ हम देखते हैं कि सम्पूर्ण चराचर भूत सर्वदा पृथ्वीसे ही उत्पन्न होते हैं और पृथ्वीमें ही लीन होते हैं; अतः उनके क्रियाभेदके कारण जो अलग-अलग नाम पड़ गये हैं—बताओ तो, उनके सिवा व्यवहारका और क्या मूल है ? ॥ ८ ॥

इस प्रकार 'पृथ्वी' शब्दका व्यवहार भी मिथ्या ही है, वास्तविक नहीं है; क्योंकि यह अपने उपादानकारण सूक्ष्म परमाणुओंमें लीन हो जाती है। और जिनके मिलनेसे पृथ्वीरूप कार्यकी सिद्धि होती है, वे परमाणु अविद्यावश मनसे ही कल्पना किये हुए हैं। वास्तवमें उनकी भी सत्ता नहीं है ॥९॥ इसी प्रकार और भी जो कुछ पतला-मोटा, छोटा-बड़ा, कार्य-कारण तथा चेतन और अचेतन आदि गुणोंसे युक्त द्वैत-प्रपञ्च है—उसे भी द्रव्य, स्वभाव, आशय, काल और कर्म आदि नामोंवाली भगवान्‌की मायाका ही कार्य समझो ॥१०॥ विशुद्ध परमार्थरूप, अद्वितीय तथा भीतर-बाहरके भेदसे रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है। वह सर्वान्तर्वर्ती और सर्वथा निर्विकार है। उसीका नाम 'भगवान्' है और उसीको पण्डितजन 'वासुदेव' कहते हैं ॥ ११ ॥ रहूगण ! महापुरुषोंके चरणोंकी धूलिसे अपनेको नहलाये बिना केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिके दान, अतिथिसेवा, दीनसेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे यह परमात्म-ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ इसका कारण यह है कि महापुरुषोंके समाजमें सदा पवित्रकीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती रहती है, जिससे विषयवार्ता तो पास ही नहीं फटकने पाती। और जब भगवत्कथाका नित्यप्रति सेवन किया जाता है, तब वह मोक्षाकाङ्क्षी पुरुषकी शुद्ध बुद्धिको भगवान् वासुदेवमें लगा देती है ॥ १३ ॥

पूर्वजन्ममें मैं भरत नामका राजा था। ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्‌की आराधनामें ही लगा रहता था; तो भी एक मृगमें आसक्ति हो जानेसे मुझे परमार्थसे भ्रष्ट होकर अगले जन्ममें मृग बनना पड़ा ॥१४॥ किन्तु भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनाके प्रभावसे उस मृगयोनिमें भी मेरी पूर्वजन्मकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसीसे अब मैं जनसंसर्गसे डरकर सर्वदा असङ्गभावसे गुप्तरूपसे ही विचरता रहता हूँ ॥ १५ ॥ सारांश यह है कि विरक्त महापुरुषोंके सत्सङ्गसे प्राप्त ज्ञानरूप खड्गके द्वारा मनुष्यको इस लोकमें ही अपने मोहबन्धनको काट डालना चाहिये। फिर श्रीहरिकी लीलाओंके कथन और श्रवणसे भगवत्स्मृति बनी रहनेके कारण वह सुगमतासे ही संसारमार्गको पार करके भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है ॥ १६ ॥

तेरहवाँ अध्याय

भवाटवीका वर्णन और रहूगणका संशयनाश

जडभरतने कहा—राजन् ! यह जीवसमूह सुखरूप धनमें आसक्त देश-देशान्तरमें घूम-फिरकर व्यापार करनेवाले व्यापारियोंके दलके समान है। इसे मायाने दुस्तर प्रवृत्तिमार्गमें लगा दिया है; इसलिये इसकी दृष्टि

सात्त्विक, राजस, तामस भेदसे नाना प्रकारके कर्मोंपर हो जाती है। उन कर्मोंमें भटकता-भटकता यह संसार-रूप जंगलमें पहुँच जाता है। वहाँ इसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती ॥ १ ॥ महाराज! उस जंगलमें छः डाकू हैं। इस वणिक्-समाजका नायक बड़ा दुष्ट है। उसके नेतृत्वमें जब यह वहाँ पहुँचता है, तब ये लुटेरे बलात्कारसे इसका सब माल-मत्ता लूट लेते हैं। तथा भेड़िये जिस प्रकार भेड़ोंके झुंडमें घुसकर उन्हें खींच ले जाते हैं, उसी प्रकार इसके साथ रहनेवाले गीदड़ ही इसे असावधान देखकर इसके धनको इधर-उधर खींचने लगते हैं ॥ २ ॥ वह जंगल बहुत-सी लता, घास और झाड़-झंखाड़के कारण बहुत दुर्गम हो रहा है। उसमें तीव्र डाँस और मच्छर इसे चैन नहीं लेने देते। वहाँ इसे कभी तो गन्धर्वनगर दीखने लगता है और कभी-कभी चमचमाता हुआ अति चञ्चल अगिया-बेताल आँखोंके सामने आ जाता है ॥ ३ ॥ यह वणिक्-समुदाय इस वनमें निवासस्थान, जल और धनादिमें आसक्त होकर इधर-उधर भटकता रहता है। कभी बवंडरसे उठी हुई धूलके द्वारा जब सारी दिशाएँ धूमाच्छादित-सी हो जाती हैं और इसकी आँखोंमें भी धूल भर जाती है, तो इसे दिशाओंका ज्ञान भी नहीं रहता ॥ ४ ॥ कभी इसे दिखायी न देनेवाले झींगुरोंका कर्णकटु शब्द सुनायी देता है, कभी उल्लुओंकी बोलीसे इसका चित्त व्यथित हो जाता है। कभी इसे भूख सताने लगती है तो यह निन्दनीय वृक्षोंका ही सहारा टटोलने लगता है और कभी प्यासले व्याकुल होकर मृगतृष्णाकी ओर दौड़ लगाता है ॥ ५ ॥ कभी जलहीन नदियोंकी ओर जाता है, कभी अन्न न मिलनेपर आपसमें एक-दूसरेसे भोजनप्राप्तिकी इच्छा करता है, कभी दावानलमें घुसकर अग्निसे झुलस जाता है और कभी यक्षलोग इसके प्राण खींचने लगते हैं तो यह खिन्न होने लगता है ॥ ६ ॥ कभी अपनेसे अधिक बलवान् लोग इसका धन छीन लेते हैं, तो यह दुखी होकर शोक और मोहसे अचेत हो जाता है और कभी गन्धर्वनगरमें पहुँचकर घड़ीभरके लिये सब दुःख भूलकर खुशी मनाने लगता है ॥ ७ ॥ कभी पर्वतोंपर चढ़ना चाहता है तो काँटे और कंकड़ोंद्वारा पैर चलनी हो जानेसे उदास हो जाता है। कुटुम्ब बहुत बढ़ जाता है और उदरपूर्तिका साधन नहीं होता तो भूखकी ज्वालासे सन्तप्त होकर अपने ही बन्धु-बान्धवोंपर खीझने लगता है ॥ ८ ॥ कभी अजगर सर्पका ग्रास बनकर वनमें फेंके हुए मुर्देके समान पड़ा रहता है। उस समय इसे कोई सुध-बुध नहीं रहती। कभी दूसरे विषैले जन्तु इसे काटने लगते हैं तो उनके विषके प्रभावसे अंधा होकर किसी अँधेरे कुएँमें गिर पड़ता है और घोर दुःखमय अन्धकारमें बेहोश पड़ा रहता है ॥ ९ ॥ कभी मधु खोजने लगता है तो मक्खियाँ इसके नाकमें दम कर देती हैं और इसका सारा अभिमान नष्ट हो जाता है। यदि किसी प्रकार अनेकों कठिनाइयोंका सामना करके वह मिल भी गया तो बलात्कारसे दूसरे लोग उसे छीन लेते हैं ॥ १० ॥ कभी शीत, घाम, आँधी और वर्षासे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है। कभी आपसमें थोड़ा-बहुत व्यापार करता है, तो धनके लोभसे दूसरोंको धोखा देकर उनसे वैर ठान लेता है ॥ ११ ॥ कभी-कभी उस संसारवनमें इसका धन नष्ट हो जाता है तो इसके पास शय्या, आसन, रहनेके लिये स्थान और सैर-सपाटेके लिये सवारी आदि भी नहीं रहते। तब दूसरोंसे याचना करता है; माँगनेपर भी दूसरेसे जब उसे अभिलषित वस्तु नहीं मिलती, तब परायी वस्तुओंपर अनुचित दृष्टि रखनेके कारण इसे बड़ा तिरस्कार सहना पड़ता है ॥ १२ ॥

इस प्रकार व्यावहारिक सम्बन्धके कारण एक-दूसरेसे द्वेषभाव बढ़ जानेपर भी वह वणिक्समूह आपसमें विवाहादि सम्बन्ध स्थापित करता है और फिर इस मार्गमें तरह-तरहके कष्ट और धनक्षय आदि सङ्कटोंको भोगते-भोगते मृतकवत् हो जाता है ॥ १३ ॥ साथियोंमेंसे जो-जो मरते जाते हैं, उन्हें जहाँ-का-तहाँ छोड़कर नवीन उत्पन्न हुओंको साथ लिये वह बनिजारोंका समूह बराबर आगे ही बढ़ता रहता है। वीरवर! उनमेंसे कोई भी प्राणी न तो आजतक वापस लौटा है और न किसीने इस सङ्कटपूर्ण मार्गको पार करके परमानन्दमय योगकी ही शरण ली है ॥ १४ ॥ जिन्होंने बड़े-बड़े दिक्पालोंको जीत लिया है, वे धीर-वीर पुरुष

भी पृथ्वीमें 'यह मेरी है' ऐसा अभिमान करके आपसमें वैर ठानकर संग्रामभूमिमें जूझ जाते हैं। तो भी उन्हें भगवान् विष्णुका वह अविनाशी पद नहीं मिलता, जो वैरहीन परमहंसोंको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

इस भवाटवीमें भटकनेवाला यह बनिजारोंका दल कभी किसी लताकी डालियोंका आश्रय लेता है और उसपर रहनेवाले मधुरभाषी पक्षियोंके मोहमें फँस जाता है। कभी सिंहोंके समूहसे भय मानकर बगुला, कंक और गिद्धोंसे प्रीति करता है ॥१६॥ जब उनसे धोखा उठाता है, तब हंसोंकी पंक्तिमें प्रवेश करना चाहता है; किन्तु उसे उनका आचार नहीं सुहाता, इसलिये वानरोंमें मिलकर उनके जातिस्वभावके अनुसार दाम्पत्य-सुखमें रत रहकर विषयभोगोंसे इन्द्रियोंको तृप्त करता रहता है और एक दूसरेका मुख देखते-देखते अपनी आयुकी अवधिको भूल जाता है ॥ १७ ॥ वहाँ वृक्षोंमें क्रीड़ा करता हुआ पुत्र और स्त्रीके स्नेहपाशमें बँध जाता है। इसमें मैथुनकी वासना इतनी बढ़ जाती है कि तरह-तरहके दुर्व्यवहारोंसे दीन होनेपर भी यह विवश होकर अपने बन्धनको तोड़नेका साहस नहीं कर सकता। कभी असावधानीसे पर्वतकी गुफामें गिरने लगता है तो उसमें रहनेवाले हाथीसे डरकर किसी लताके सहारे लटका रहता है ॥१८॥ शत्रुदमन! यदि किसी प्रकार इसे उस आपत्तिसे छुटकारा मिल जाता है, तो यह फिर अपने गोलमें मिल जाता है। जो मनुष्य मायाकी प्रेरणासे एक बार इस मार्गमें पहुँच जाता है, उसे भटकते-भटकते अन्ततक अपने परम पुरुषार्थका पता नहीं लगता ॥ १९ ॥ रहूगण! तुम भी इसी मार्गमें भटक रहे हो, इसलिये अब प्रजाको दण्ड देनेका कार्य छोड़कर समस्त प्राणियोंके सुहृद् हो जाओ और विषयोंमें अनासक्त होकर भगवत्-सेवासे तीक्ष्ण किया हुआ ज्ञानरूप खड्ग लेकर इस मार्गको पार कर लो ॥ २० ॥

राजा रहूगणने कहा—अहो! समस्त योनियोंमें यह मनुष्य-जन्म ही श्रेष्ठ है। अन्यान्य लोकोंमें प्राप्त होनेवाले देवादि उत्कृष्ट जन्मोंसे भी क्या लाभ है, जहाँ भगवान् हृषीकेशके पवित्र यशसे शुद्ध अन्तःकरणवाले आप-जैसे महात्माओंका अधिकाधिक समागम नहीं मिलता ॥ २१ ॥ आपके चरणकमलोंकी रजका सेवन करनेसे जिनके सारे पाप-ताप नष्ट हो गये हैं, उन महानुभावोंको भगवान्‌की विशुद्ध भक्ति प्राप्त होना कोई विचित्र बात नहीं है। मेरा तो आपके दो घड़ीके सत्सङ्गसे ही सारा कुतर्कमूलक अज्ञान नष्ट हो गया ॥२२॥ ब्रह्मज्ञानियोंमें जो वयोवृद्ध हों, उन्हें नमस्कार है; जो शिशु हों, उन्हें नमस्कार है; जो युवा हों, उन्हें नमस्कार है और जो क्रीडारत बालक हों, उन्हें भी नमस्कार है। जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण अवधूतवेषसे पृथ्वीपर विचरते हैं, उनसे हम-जैसे ऐश्वर्योन्मत्त राजाओंका कल्याण हो ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—उत्तरानन्दन! इस प्रकार उन परम प्रभावशाली ब्रह्मर्षिपुत्रने अपना अपमान करनेवाले सिन्धुनरेश रहूगणको भी अत्यन्त करुणावश आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। तब राजा रहूगणने दीनभावसे उनके चरणोंकी वन्दना की। फिर वे परिपूर्ण समुद्रके समान शान्तचित्त और उपरतेन्द्रिय होकर पृथ्वीपर विचरने लगे ॥ २४ ॥ उनके सत्सङ्गसे परमात्मतत्त्वका ज्ञान पाकर सौवीरपति रहूगणने भी अन्तःकरणमें अविद्यावश आरोपित देहात्मबुद्धिको त्याग दिया। राजन्! जो लोग भगवदाश्रित अनन्य भक्तोंकी शरण ले लेते हैं, उनका ऐसा ही प्रभाव होता है—उनके पास अविद्या ठहर नहीं सकती ॥ २५ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—महाभागवत मुनिश्रेष्ठ! आप परम विद्वान् हैं। आपने रूपकादिके द्वारा अप्रत्यक्ष-रूपसे जीवोंके जिस संसाररूप मार्गका वर्णन किया है, उस विषयकी कल्पना विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिने की है; वह अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंकी समझमें सुगमतासे नहीं आ सकता। अतः मेरी प्रार्थना है कि इस दुर्बोध विषयको रूपकका स्पष्टीकरण करनेवाले शब्दोंसे खोल-कर समझाइये ॥ २६ ॥

चौदहवाँ अध्याय

भवाटवीका स्पष्टीकरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! देहाभिमानी जीवोंके द्वारा सत्त्वादि गुणोंके भेदसे शुभ, अशुभ और मिश्र—तीन प्रकारके कर्म होते रहते हैं। उन कर्मोंके द्वारा ही निर्मित नाना प्रकारके शरीरोंके साथ होनेवाला जो संयोग-वियोगादिरूप अनादि संसार जीवको प्राप्त होता है, उसके अनुभवके छः द्वार हैं—मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। उनसे विवश होकर यह जीवसमूह मार्ग भूलकर भयङ्कर वनमें भटकते हुए धनके लोभी वनिजारोंके समान परमसमर्थ भगवान् विष्णुके आश्रित रहनेवाली मायाकी प्रेरणासे बीहड़ वनके समान दुर्गम मार्गमें पड़कर संसार-वनमें जा पहुँचता है। यह वन श्मशानके समान अत्यन्त अशुभ है। इसमें भटकते हुए उसे अपने शरीरसे किये हुए कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। यहाँ अनेकों विघ्नोंके कारण उसे अपने व्यापारमें सफलता भी नहीं मिलती; तो भी यह उसके श्रमको शान्त करनेवाले श्रीहरि एवं गुरुदेवके चरणारविन्द-मकरन्द-मधुके रसिक भक्त-भ्रमरोंके मार्गका अनुसरण नहीं करता। इस संसार-वनमें मनसहित छः इन्द्रियाँ ही अपने कर्मोंकी दृष्टिसे डाकुओंके समान हैं ॥ १ ॥ पुरुष बहुत-सा कष्ट उठाकर जो धन कमाता है, उसका उपयोग धर्ममें होना चाहिये; वही धर्म यदि साक्षात् भगवान् परमपुरुषकी आराधनाके रूपमें होता है, तो उसे परलोकमें निःश्रेयसका हेतु बतलाया गया है। किन्तु जिस मनुष्यका बुद्धिरूप सारथि विवेकहीन होता है और मन वशमें नहीं होता, उसके उस धर्मोपयोगी धनको ये मनसहित छः इन्द्रियाँ देखना, स्पर्श करना, सुनना, स्वाद लेना, सूँघना, सङ्कल्प-विकल्प करना और निश्चय करना—इन वृत्तियोंके द्वारा गृहस्थोचित विषयभोगोंमें फँसाकर उसी प्रकार लूट लेती हैं, जिस प्रकार बेईमान मुखियाका अनुगमन करनेवाले एवं असावधान वनिजारोंके दलका धन चोर-डाकू लूट ले जाते हैं ॥ २ ॥ ये ही नहीं, उस संसार-वनमें रहनेवाले उसके कुटुम्बी भी—जो नामसे तो स्त्री-पुत्रादि कहे जाते हैं, किन्तु कम जिनके साक्षात् भेड़ियों और गीदड़ोंके समान होते हैं—उस अर्थलोलुप कुटुम्बीके धनको उसकी इच्छा न रहनेपर भी उसके देखते-देखते इस प्रकार छीन ले जाते हैं, जैसे भेड़िये गड़रियोंसे सुरक्षित भेड़ोंको उठा ले जाते हैं ॥ ३ ॥ जिस प्रकार यदि किसी खेतके बीजोंको अग्निद्वारा जला न दिया गया हो, तो प्रतिवर्ष जोतनेपर भी खेतीका समय आनेपर वह फिर झाड़-झंखाड़, लता और तृण आदिसे गहन हो जाता है—उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रम भी कर्म-भूमि है, इसमें भी कर्मोंका सर्वथा उच्छेद कभी नहीं होता, क्योंकि यह घर कामनाओंकी पिटारी है ॥ ४ ॥

उस गृहस्थाश्रममें आसक्त हुए व्यक्तिके धनरूप बाहरी प्राणोंको डाँस और मच्छरोंके समान नीच पुरुषोंसे तथा टिड्डी, पक्षी, चोर और चूहे आदिसे क्षति पहुँचती रहती है। कभी इस मार्गमें भटकते-भटकते वह अविद्या, कामना और कर्मोंसे कलुषित हुए अपने चित्तसे दृष्टिदोष-के कारण इस मर्त्यलोकको, जो गन्धर्वनगरके समान असत् है, सत्य समझने लगता है ॥ ५ ॥ फिर खान-पान और स्त्री-प्रसङ्गादि व्यसनोंमें फँसकर मृगतृष्णाके समान मिथ्या विषयोंकी ओर दौड़ने लगता है ॥ ६ ॥ कभी बुद्धिके रजोगुणसे प्रभावित होनेपर सारे अनर्थोंकी जड़ अग्निके मलरूप सोनेको ही सुखका साधन समझकर उसे पानेके लिये लालायित हो इस प्रकार दौड़-धूप करने लगता है, जैसे वनमें जाड़ेसे ठिठुरता हुआ पुरुष अग्निके लिये व्याकुल होकर उल्मुक पिशाचकी (अगिया-बेतालकी) ओर उसे आग समझकर दौड़े ॥ ७ ॥ कभी इस शरीरको जीवित रखनेवाले घर, अन्न-जल और धन आदिमें अभिनिवेश करके इस संसारारण्यमें इधर-उधर दौड़-धूप करता रहता है ॥ ८ ॥ कभी बवंडरके समान आँखोंमें धूल झोंक देनेवाली स्त्री गोदमें बैठा लेती है, तो तत्काल रागान्ध-सा होकर सत्पुरुषोंकी मर्यादाका भी विचार नहीं करता। उस समय नेत्रोंमें रजोगुणकी धूल भर जानेसे बुद्धि ऐसी मलिन हो जाती है कि

अपने कर्मोंके साक्षी दिशाओंके देवताओंको भी भुला देता है ॥ ९ ॥ कभी अपने-आप ही एकाध बार विषयोंका मिथ्यात्व जान लेनेपर भी अनादिकालसे देहमें आत्मबुद्धि रहनेसे विवेक-बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण उन मरुमरीचिकातुल्य विषयोंकी ओर ही फिर दौड़ने लगता है ॥ १० ॥ कभी प्रत्यक्ष शब्द करनेवाले उल्लू-के समान शत्रुओंकी और परोक्षरूपसे बोलनेवाले झींगुरोंके समान राजाकी अति कठोर एवं दिलको दहला देनेवाली डरावनी डाँट-डपटसे इसके कान और मनको बड़ी व्यथा होती है ॥ ११ ॥

पूर्वपुण्य क्षीण हो जानेपर यह जीवित ही मुर्देके समान हो जाता है; और जो कारस्कर एवं काकतुण्ड आदि जहरीले फलोंवाले पापवृक्षों, इसी प्रकारकी दूषित लताओं और विषैले कुओंके समान हैं तथा जिनका धन इस लोक और परलोक दोनोंके ही काममें नहीं आता और जो जीते हुए भी मुर्देके समान हैं—उन कृपण पुरुषोंका आश्रय लेता है ॥ १२ ॥ कभी असत् पुरुषोंके सङ्गसे बुद्धि बिगड़ जानेके कारण सूखी नदीमें गिरकर दुखी होनेके समान इस लोक और परलोकमें दुःख देनेवाले पाखण्डमें फँस जाता है ॥ १३ ॥ जब दूसरोंको सतानेसे उसे अन्न भी नहीं मिलता, तब वह अपने सगे पिता-पुत्रोंको अथवा पिता या पुत्र आदिका एक तिनका भी जिनके पास देखता है, उनको फाड़ खानेके लिये तैयार हो जाता है ॥ १४ ॥ कभी दावानलके समान प्रिय विषयोंसे शून्य एवं परिणाममें दुःखमय घरमें पहुँचता है, तो वहाँ इष्टजनोंके वियोगादिसे उसके शोक-की आग भड़क उठती है; उससे सन्तप्त होकर वह बहुत ही खिन्न होने लगता है ॥ १५ ॥ कभी कालके समान भयङ्कर राजकुलरूप राक्षस इसके परम प्रिय धन-रूप प्राणोंको हर लेता है, तो यह मरे हुएके समान निर्जीव हो जाता है ॥ १६ ॥ कभी मनोरथके पदार्थोंके समान अत्यन्त असत् पिता-पितामह आदि सम्बन्धोंको सत्य समझकर उनके सहवाससे स्वप्नके समान क्षणिक सुखका अनुभव करता है ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रमके लिये जिस कर्मविधिका महान् विस्तार किया गया है, उसका अनुष्ठान किसी पर्वतकी कड़ी चढ़ाईके समान ही है। लोगोंको उस ओर प्रवृत्त देखकर उनकी देखादेखी जब यह भी उसे पूरा करनेका प्रयत्न करता है, तब तरह-तरहकी कठिनाइयोंसे क्लेशित होकर काँटे और कंकड़ों-से भरी भूमिमें पहुँचे हुए व्यक्तिके समान दुखी हो जाता है ॥ १८ ॥ कभी पेटकी असह्य ज्वालासे अधीर होकर अपने कुटुम्बपर ही बिगड़ने लगता है ॥ १९ ॥ फिर जब निद्रारूप अजगरके चंगुलमें फँस जाता है, तब अज्ञानरूप घोर अन्धकारमें डूबकर सूने वनमें फेंके हुए मुर्देके समान सोया पड़ा रहता है। उस समय इसे किसी बातकी सुधि नहीं रहती ॥ २० ॥

कभी दुर्जनरूप काटनेवाले जीव इतना काटते—तिरस्कार करते हैं कि इसके गर्वरूप दाँत, जिनसे यह दूसरोंको काटता था, टूट जाते हैं। तब इसे अशान्तिके कारण नींद भी नहीं आती तथा मर्मवेदनाके कारण क्षण-क्षणमें विवेक-शक्ति क्षीण होते रहनेसे अन्तमें अंधेकी भाँति यह नरकरूप अँधेरे कुएँमें जा गिरता है ॥ २१ ॥ कभी विषयसुखरूप मधुकणोंको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब यह लुक-छिपकर परस्त्री या परधनको उड़ाना चाहता है, तब उनके स्वामी या राजाके हाथसे मारा जाकर ऐसे नरकमें जा गिरता है जिसका ओर-छोर नहीं है ॥ २२ ॥ इसीसे ऐसा कहते हैं कि प्रवृत्तिमार्गमें रहकर किये हुए लौकिक और वैदिक दोनों ही प्रकारके कर्म जीवको संसारकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं ॥ २३ ॥ यदि किसी प्रकार राजा आदिके बन्धनसे छूट भी गया, तो अन्यायसे अपहरण किये हुए उन स्त्री और धनको देवदत्त नामका कोई दूसरा व्यक्ति छीन लेता है और उससे विष्णुमित्र नामका कोई तीसरा व्यक्ति झटक लेता है। इस प्रकार वे भोग एक पुरुषसे दूसरे पुरुषके पास जाते रहते हैं, एक स्थानपर नहीं ठहरते ॥ २४ ॥ कभी-कभी शीत और वायु आदि अनेकों आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखकी स्थितियोंके निवारण करनेमें समर्थ न होनेसे यह अपार चिन्ताओंके कारण उदास हो जाता है ॥ २५ ॥ कभी परस्पर लेन-देनका व्यवहार करते समय किसी दूसरेका थोड़ा-सा—दमड़ीभर अथवा इससे भी कम धन चुरा लेता है तो इस बेईमानीके कारण उससे वैर ठन जाता है ॥ २६ ॥

राजन्! इस मार्गमें पूर्वोक्त विघ्नोंके अतिरिक्त सुख-

दु:ख, राग-द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा-पिपासा, आधि-व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि और भी अनेकों विघ्न हैं ॥ २७ ॥ (इस विघ्नबहुल मार्गमें इस प्रकार भटकता हुआ यह जीव) किसी समय देवमायारूपिणी स्त्रीके बाहुपाशमें पड़कर विवेकहीन हो जाता है। तब उसीके लिये विहारभवन आदि बनवानेकी चिन्तामें ग्रस्त रहता है तथा उसीके आश्रित रहनेवाले पुत्र, पुत्री और अन्यान्य स्त्रियोंके मीठे-मीठे बोल, चितवन और चेष्टाओंमें आसक्त होकर, उन्हींमें चित्त फँस जानेसे वह इन्द्रियोंका दास अपार अन्धकारमय नरकोंमें गिरता है ॥ २८ ॥

कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णुका आयुध है। वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त क्षण-घटी आदि अवयवोंसे युक्त है। वह निरन्तर सावधान रहकर घूमता रहता है, जल्दी-जल्दी बदलनेवाली बाल्य,यौवन आदि अवस्थाएँ ही उसका वेग हैं। उसके द्वारा वह ब्रह्मासे लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र तृणपर्यन्त सभी भूतोंका निरन्तर संहार करता रहता है। कोई भी उसकी गतिमें बाधा नहीं डाल सकता। उससे भय मानकर भी जिनका यह कालचक्र निज आयुध है, उन साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना छोड़कर यह मन्दमति मनुष्य पाखण्डियोंके चक्करमें पड़कर उनके कंक, गिद्ध, बगुला और बटेरके समान आर्यशास्त्र-बहिष्कृत देवताओंका आश्रय लेता है—जिनका केवल वेदबाह्य अप्रामाणिक आगमोंने ही उल्लेख किया है॥ २९ ॥ ये पाखण्डी तो स्वयं ही धोखेमें हैं; जब यह भी उनकी ठगाईमें आकर दुखी होता है, तब ब्राह्मणोंकी शरण लेता है। किन्तु उपनयन-संस्कारके अनन्तर श्रौत-स्मार्तकर्मोंसे भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करना आदि जो उनका शास्त्रोक्त आचार है, वह इसे अच्छा नहीं लगता; इसलिये वेदोक्त आचारके अनुकूल अपनेमें शुद्धि न होनेके कारण यह कर्मशून्य शूद्रकुलमें प्रवेश करता है, जिसका स्वभाव वानरोंके समान केवल कुटुम्बपोषण और स्त्रीसेवन करना ही है॥३०॥ वहाँ बिना रोक-टोक स्वच्छन्द विहार करनेसे इसकी बुद्धि अत्यन्त दीन हो जाती है और एक दूसरेका मुख देखना आदि विषय-भोगोंमें फँसकर इसे अपने मृत्युकालका भी स्मरण नहीं होता ॥ ३१ ॥ वृक्षोंके समान जिनका लौकिक सुख ही फल है—उन घरोंमें ही सुख मानकर वानरोंकी भाँति स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त होकर यह अपना सारा समय मैथुनादि विषय-भोगोंमें ही बिता देता है ॥ ३२ ॥

इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें पड़कर सुख-दु:ख भोगता हुआ यह जीव रोगरूपी गिरि-गुहामें फँसकर उसमें रहनेवाले मृत्युरूप हाथीसे डरता रहता है॥३३॥ कभी-कभी शीत, वायु आदि अनेक प्रकारके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दु:खोंकी निवृत्ति करनेमें जब असफल हो जाता है, तब उस समय अपार विषयोंकी चिन्तासे यह खिन्न हो उठता है ॥ ३४ ॥ कभी आपसमें क्रय-विक्रय आदि व्यापार करनेपर बहुत कंजूसी करनेसे इसे थोड़ा-सा धन हाथ लग जाता है ॥ ३५ ॥ कभी धन नष्ट हो जानेसे जब इसके पास सोने, बैठने और खाने आदिकी भी कोई सामग्री नहीं रहती, तब अपने अभीष्ट भोग न मिलनेसे यह उन्हें चोरी आदि बुरे उपायोंसे पानेका निश्चय करता है। इससे इसे जहाँ-तहाँ दूसरोंके हाथसे बहुत अपमानित होना पड़ता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार धनकी आसक्तिसे परस्पर वैरभाव बढ़ जानेपर भी यह अपनी पूर्ववासनाओंसे विवश होकर आपसमें विवाहादि सम्बन्ध करता और छोड़ता रहता है ॥ ३७ ॥ इस संसारमार्गमें चलनेवाला यह जीव अनेक प्रकारके क्लेश और विघ्न-बाधाओंसे बाधित होनेपर भी मार्गमें जिसपर जहाँ आपत्ति आती है अथवा जो कोई मर जाता है; उसे जहाँ-का-तहाँ छोड़ देता है; तथा नये जन्मे हुओंको साथ लगाता है, कभी किसीके लिये शोक करता है, किसीका दु:ख देखकर मूर्च्छित हो जाता है, किसीके वियोग होनेकी आशङ्कासे भयभीत हो उठता है, किसीसे झगड़ने लगता है, कोई आपत्ति आती है तो रोने-चिल्लाने लगता है, कहीं कोई मनके अनुकूल बात हो गयी तो प्रसन्नताके मारे फूला नहीं समाता, कभी गाने लगता है और कभी उन्हींके लिये बँधनेमें भी नहीं हिचकता। साधुजन इसके पास कभी नहीं आते, यह साधुसङ्गसे सदा वञ्चित रहता है। इस प्रकार यह निरन्तर आगे ही बढ़ रहा है। जहाँसे इसकी यात्रा आरम्भ हुई है और जिसे इस मार्गकी अन्तिम अवधि कहते हैं, उस परमात्माके पास यह अभीतक नहीं लौटा है ॥ ३८ ॥ परमात्मातक तो योगशास्त्रकी भी गति नहीं है; जिन्होंने सब प्रकारके दण्ड (शासन) का त्याग कर दिया है, वे निवृत्ति-परायण संयतात्मा मुनिजन ही उसे प्राप्त कर पाते

हैं ॥ ३९ ॥ जो दिग्गजोंको जीतनेवाले और बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले राजर्षि हैं उनकी भी वहाँ-तक गति नहीं है। वे सङ्ग्रामभूमिमें शत्रुओंका सामना करके केवल प्राणपरित्याग ही करते हैं तथा जिसमें 'यह मेरी है' ऐसा अभिमान करके वैर ठाना था—उस पृथ्वीमें ही अपना शरीर छोड़कर स्वयं परलोकको चले जाते हैं। इस संसारसे वे भी पार नहीं होते ॥ ४० ॥ अपने पुण्यकर्मरूप लताका आश्रय लेकर यदि किसी प्रकार यह जीव इन आपत्तियोंसे अथवा नरकसे छुटकारा पा भी जाता है, तो फिर इसी प्रकार संसारमार्गमें भटकता हुआ इस जनसमुदायमें मिल जाता है। यही दशा स्वर्गादि ऊर्ध्वलोकोंमें जानेवालोंकी भी है ॥४१॥

राजन्! राजर्षि भरतके विषयमें पण्डितजन ऐसा कहते हैं—'जैसे गरुडजीकी होड़ कोई मक्खी नहीं कर सकती, उसी प्रकार राजर्षि महात्मा भरतके मार्गका कोई अन्य राजा मनसे भी अनुसरण नहीं कर सकता ॥ ४२ ॥ उन्होंने पुण्यकीर्ति श्रीहरिमें अनुरक्त होकर अति मनोरम स्त्री, पुत्र, मित्र और राज्यादिको युवावस्थामें ही विष्ठाके समान त्याग दिया था; दूसरोंके लिये तो इन्हें त्यागना बहुत ही कठिन है ॥ ४३ ॥ उन्होंने अति दुस्त्यज पृथ्वी, पुत्र, स्वजन, सम्पत्ति और स्त्रीकी तथा जिसके लिये बड़े-बड़े देवता भी लालायित रहते हैं किन्तु जो स्वयं उनकी दयादृष्टिके लिये उनपर दृष्टिपात करती रहती थी—उस लक्ष्मीकी भी, लेशमात्र इच्छा नहीं की। यह सब उनके लिये उचित ही था; क्योंकि जिन महानुभावोंका चित्त भगवान् मधुसूदनकी सेवामें अनुरक्त हो गया है, उनकी दृष्टिमें मोक्षपद भी अत्यन्त तुच्छ है ॥ ४४ ॥ उन्होंने मृगशरीर छोड़नेकी इच्छा होनेपर उच्चस्वरसे कहा था कि धर्मकी रक्षा करनेवाले, धर्मानुष्ठानमें निपुण, योगगम्य, सांख्यके प्रतिपाद्य, प्रकृतिके अधीश्वर, यज्ञमूर्ति सर्वान्तर्यामी श्रीहरिको नमस्कार है।' ॥४५॥

राजन्! राजर्षि भरतके पवित्र गुण और कर्मोंकी भक्तजन भी प्रशंसा करते हैं। उनका यह चरित्र बड़ा कल्याणकारी, आयु और धनकी वृद्धि करनेवाला, लोकमें सुयश बढ़ानेवाला और अन्तमें स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। जो पुरुष इसे सुनता या सुनाता है और इसका अभिनन्दन करता है, उसकी सारी कामनाएँ स्वयं ही पूर्ण हो जाती हैं; दूसरोंसे उसे कुछ भी नहीं माँगना पड़ता ॥ ४६ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

भरतके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! भरतजीका पुत्र सुमति था, यह पहले कहा जा चुका है। उसने ऋषभ-देवजीके मार्गका अनुसरण किया। इसीलिये कलियुगमें बहुत-से पाखण्डी अनार्य पुरुष अपनी दुष्ट बुद्धिसे वेदविरुद्ध कल्पना करके उसे देवता मानेंगे ॥ १ ॥ उसकी पत्नी वृद्धसेनासे देवताजित् नामक पुत्र हुआ ॥२॥ देवताजित्के असुरीके गर्भसे देवद्युम्न, देवद्युम्नके धेनुमतीसे परमेष्ठी और उसके सुवर्चलाके गर्भसे प्रतीह नामका पुत्र हुआ ॥ ३ ॥ इसने अन्य पुरुषोंको आत्मविद्याका उपदेश कर स्वयं शुद्धचित्त होकर परमपुरुष श्रीनारायणका साक्षात् अनुभव किया था ॥ ४ ॥ प्रतीहकी भार्या सुवर्चलाके गर्भसे प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता नामके तीन पुत्र हुए। ये यज्ञादि कर्मोंमें बहुत निपुण थे। इनमें प्रतिहर्ताकी भार्या स्तुति थी। उसके गर्भसे अज और भूमा नामके दो पुत्र हुए ॥५॥ भूमाके ऋषिकुल्यासे उद्गीथ, उसके देवकुल्यासे प्रस्ताव और प्रस्तावके नियुत्साके गर्भसे विभु नामका पुत्र हुआ। विभुके रतिके उदरसे पृथुषेण, पृथुषेणके आकूतिसे नक्त और नक्तके द्रुतिके गर्भसे उदारकीर्ति राजर्षिप्रवर गयका जन्म हुआ। ये जगत्की रक्षाके लिये सत्त्वगुणको स्वीकार करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुके अंश माने जाते थे। संयमादि अनेकों गुणोंके कारण इनकी महापुरुषोंमें गणना की जाती है ॥ ६ ॥ महाराज गयने प्रजाका पालन, पोषण, रञ्जन, लाड़-चाव और शासनादि करके

तथा तरह-तरहके यज्ञोंका अनुष्ठान करके निष्कामभावसे केवल भगवत्प्रीतिके लिये अपने धर्मोंका आचरण किया। इससे उनके सभी कर्म सर्वश्रेष्ठ परमपुरुष परमात्मा श्रीहरिके अर्पित होकर परमार्थरूप बन गये थे। इससे तथा ब्रह्मवेत्ता महापुरुषोंके चरणोंकी सेवासे उन्हें भक्ति-योगकी प्राप्ति हुई। तब निरन्तर भगवच्चिन्तन करके उन्होंने अपना चित्त शुद्ध किया और देहादि अनात्म-वस्तुओंसे अहंभाव हटाकर वे अपने आत्माको ब्रह्मरूप अनुभव करने लगे। यह सब होनेपर भी वे निरभिमान होकर पृथ्वीका पालन करते रहे ॥ ७ ॥

परीक्षित्! प्राचीन इतिहासको जाननेवाले महात्माओं-ने राजर्षि गयके विषयमें यह गाथा कही है ॥ ८ ॥ 'अहो! अपने कर्मोंसे महाराज गयकी बराबरी और कौन राजा कर सकता है? वे साक्षात् भगवान्‌की कला ही थे। उन्हें छोड़कर और कौन इस प्रकार यज्ञोंका विधिवत् अनुष्ठान करनेवाला, मनस्वी, बहुज्ञ, धर्मकी रक्षा करनेवाला, लक्ष्मीका प्रियपात्र, साधुसमाज-का शिरोमणि और सत्पुरुषोंका सच्चा सेवक हो सकता है? ॥ ९ ॥ सत्यसङ्कल्पवाली परम साध्वी श्रद्धा, मैत्री और दया आदि दक्षकन्याओंने गङ्गा आदि नदियोंके सहित बड़ी प्रसन्नतासे उनका अभिषेक किया था तथा उनकी इच्छा न होनेपर भी वसुन्धराने, गौ जिस प्रकार बछड़के स्नेहसे पिन्हाकर दूध देती है, उसी प्रकार उनके गुणोंपर रीझकर प्रजाको धन-रत्नादि सभी अभीष्ट पदार्थ दिये थे ॥ १० ॥ उन्हें कोई कामना न थी, तब भी वेदोक्त कर्मोंने उनको सब प्रकारके भोग दिये, राजाओंने युद्धस्थलमें उनके बाणोंसे सत्कृत होकर नाना प्रकारकी भेंटें दीं तथा ब्राह्मणोंने दक्षिणादि धर्मसे सन्तुष्ट होकर उन्हें परलोकमें मिलनेवाले अपने धर्मफलका छठा अंश दिया ॥ ११ ॥ उनके यज्ञमें बहुत अधिक सोमपान करनेसे इन्द्र उन्मत्त हो गये थे, तथा उनके अत्यन्त श्रद्धा तथा विशुद्ध और निश्चल भक्तिभावसे समर्पित किये हुए यज्ञफलको भगवान् यज्ञपुरुषने साक्षात् प्रकट होकर ग्रहण किया था ॥ १२ ॥ जिनके तृप्त होनेसे ब्रह्माजीसे लेकर देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष एवं तृणपर्यन्त सभी जीव तत्काल तृप्त हो जाते हैं—वे विश्वात्मा श्रीहरि नित्यतृप्त होकर भी राजर्षि गयके यज्ञमें तृप्त हो गये थे। इसलिये उनकी बराबरी कोई दूसरा व्यक्ति कैसे कर सकता है? ॥ १३ ॥

महाराज गयके गयन्तीके गर्भसे चित्ररथ, सुगति और अवरोध नामक तीन पुत्र हुए। उनमें चित्ररथकी पत्नी ऊर्णासे सम्राट्‌का जन्म हुआ ॥ १४ ॥ सम्राट्‌के उत्कलासे मरीचि और मरीचिके बिन्दुमतीसे बिन्दुमान् नामक पुत्र हुआ। उसके सरघासे मधु, मधुके सुमनासे वीरव्रत और वीरव्रतके भोजासे मन्थु और प्रमन्थु नामके दो पुत्र हुए। उनमेंसे मन्थुके सत्याके गर्भसे भौवन, भौवनके दूषणाके उदरसे त्वष्टा, त्वष्टाके विरोचनासे विरज और विरजके विषूची नामकी भार्यासे शतजित् आदि सौ पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ ॥ १५ ॥ विरजके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—'जिस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओंकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार इस प्रियव्रत-वंशको इसमें सबसे पीछे उत्पन्न हुए राजा विरजने अपने सुयशसे विभूषित किया था' ॥ १६ ॥

सोलहवाँ अध्याय

भुवनकोशका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने कहा—मुनिवर! जहाँतक सूर्यका प्रकाश है और जहाँतक तारागणके सहित चन्द्रदेव दीख पड़ते हैं, वहाँतक आपने भूमण्डलका विस्तार बतलाया है ॥ १ ॥ उसमें भी आपने बतलाया कि महाराज प्रियव्रतके रथके पहियोंकी सात लीकोंसे सात समुद्र बन गये थे, जिनके कारण इस भूमण्डलमें सात द्वीपोंका विभाग हुआ। अतः भगवन्! अब मैं इन सबका परिमाण और लक्षणोंके सहित पूरा विवरण जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥ क्योंकि जो मन भगवान्‌के इस गुणमय स्थूल विग्रहमें लग सकता है, उसीका उनके वासुदेवसंज्ञक स्वयंप्रकाश निर्गुण ब्रह्मरूप सूक्ष्मतम स्वरूपमें भी लगना सम्भव है। अतः गुरुवर! इस विषय-

का विशदरूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—महाराज! भगवान्‌की मायाके गुणोंका इतना विस्तार है कि यदि कोई पुरुष देवताओंके समान आयु पा ले, तो भी मन या वाणीसे इसका अन्त नहीं पा सकता। इसलिये हम नाम, रूप, परिमाण और लक्षणोंके द्वारा मुख्य-मुख्य बातोंको लेकर ही इस भूमण्डलकी विशेषताओंका वर्णन करेंगे ॥ ४ ॥ यह जम्बूद्वीप—जिसमें हम रहते हैं—भूमण्डलरूप कमलके कोशस्थानीय जो सात द्वीप हैं, उनमें सबसे भीतरका कोश है। इसका विस्तार एक लाख योजन है और यह कमलपत्रके समान गोलाकार है ॥ ५ ॥ इसमें नौ-नौ हजार योजन विस्तारवाले नौ वर्ष हैं, जो इनकी सीमाओंका विभाग करनेवाले आठ पर्वतोंसे बँटे हुए हैं ॥ ६ ॥ इनके बीचों-बीच इलावृत नामका दसवाँ वर्ष है, जिसके मध्यमें कुलपर्वतोंका राजा मेरुपर्वत है। वह मानो भूमण्डलरूप कमलकी कर्णिका ही है। वह ऊपरसे नीचेतक सारा-का-सारा सुवर्णमय है और एक लाख योजन ऊँचा है। उसका विस्तार शिखरपर बत्तीस हजार और तलैटीमें सोलह हजार योजन है तथा सोलह हजार योजन ही वह भूमिके भीतर घुसा हुआ है। अर्थात् भूमिके बाहर उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है ॥ ७ ॥ इलावृतवर्षके उत्तरमें क्रमशः नील, श्वेत और शृङ्गवान् नामके तीन पर्वत हैं—जो रम्यक, हिरण्मय और कुरु नामके वर्षोंकी सीमा बाँधते हैं। वे पूर्वसे पश्चिमतक खारे पानीके समुद्रतक फैले हुए हैं। उनमेंसे प्रत्येककी चौड़ाई दो हजार योजन है तथा लम्बाईमें पहलेकी अपेक्षा पिछला क्रमशः दशमांशसे कुछ अधिक कम है, चौड़ाई और ऊँचाई तो सभीकी समान है ॥ ८ ॥

इसी प्रकार इलावृतके दक्षिणकी ओर एकके बाद एक निषध, हेमकूट और हिमालय नामके तीन पर्वत हैं। नीलादि पर्वतोंके समान ये भी पूर्व-पश्चिमकी ओर फैले हुए हैं और दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। इनसे क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्षकी सीमाओंका विभाग होता है ॥ ९ ॥ इलावृतके पूर्व और पश्चिमकी ओर—उत्तरमें नील पर्वत और दक्षिणमें निषध पर्वततक फैले हुए गन्धमादन और माल्यवान् नामके दो पर्वत हैं। इनकी चौड़ाई दो-दो हजार योजन है और ये भद्राश्व एवं केतुमाल नामक दो वर्षोंकी सीमा निश्चित करते हैं ॥ १० ॥ इनके सिवा मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चार दस-दस हजार योजन ऊँचे और उतने ही चौड़े पर्वत मेरु पर्वतकी आधारभूता थूनियोंके समान बने हुए हैं ॥ ११ ॥ इन चारोंके ऊपर इनकी ध्वजाओंके समान क्रमशः आम, जामुन, कदम्ब और बड़के चार पेड़ हैं। इनमेंसे प्रत्येक ग्यारह सौ योजन ऊँचा है और इतना ही इनकी शाखाओंका विस्तार है। इनकी मोटाई सौ-सौ योजन है ॥ १२ ॥ भरतश्रेष्ठ! इन पर्वतोंपर चार सरोवर भी हैं—जो क्रमशः दूध, मधु, ईखके रस और मीठे जलसे भरे हुए हैं। इनका सेवन करनेवाले यक्ष-किन्नरादि उपदेवोंको स्वभावसे ही योगसिद्धियाँ प्राप्त हैं ॥ १३ ॥ इनपर क्रमशः नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नामके चार दिव्य उपवन भी हैं ॥ १४ ॥ इनमें प्रधान-प्रधान देवगण अनेकों सुरसुन्दरियोंके नायक बनकर साथ-साथ विहार करते हैं। उस समय गन्धर्वादि उपदेवगण इनकी महिमाका बखान किया करते हैं ॥ १५ ॥

मन्दराचलकी गोदमें जो ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवताओंका आम्रवृक्ष है, उससे गिरिशिखरके समान बड़े-बड़े और अमृतके समान स्वादिष्ट फल गिरते हैं ॥ १६ ॥ वे जब फटते हैं, तब उनसे बड़ा सुगन्धित और मीठा लाल-लाल रस बहने लगता है। वही अरुणोदा नामकी नदीमें परिणत हो जाता है। यह नदी मन्दराचलके शिखरसे गिरकर अपने जलसे इलावृतवर्षके पूर्वी भागको सींचती है ॥ १७ ॥ श्रीपार्वतीजीकी अनुचरी यक्षपत्नियाँ इस जलका सेवन करती हैं। इससे उनके अङ्गोंसे ऐसी सुगन्ध निकलती है कि उन्हें स्पर्श करके बहनेवाली वायु उनके चारों ओर दस-दस योजनतक सारे देशको सुगन्धसे भर देती है ॥ १८ ॥ इसी प्रकार जामुनके वृक्षसे हाथीके समान बड़े-बड़े प्रायः बिना गुठलीके फल गिरते हैं। बहुत ऊँचेसे गिरनेके कारण वे फट जाते हैं। उनके रससे जम्बू नामकी

[न]दी प्रकट होती है, जो मेरुमन्दर पर्वतके दस हजार [य]ोजन ऊँचे शिखरसे गिरकर इलावृतके दक्षिणी भू-भाग-को सींचती है ॥ १९ ॥ उस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी उस रससे भीगकर जब वायु और सूर्यके संयोगसे सूख जाती है, तब वही देवलोकको विभूषित करनेवाला जाम्बूनद नामका सोना बन जाती है ॥ २० ॥ [इ]से देवता और गन्धर्वादि अपनी तरुणी स्त्रियोंके सहित [म]ुकुट, कङ्कण और करधनी आदि आभूषणोंके रूपमें [ध]ारण करते हैं ॥ २१ ॥

सुपार्श्व पर्वतपर जो विशाल कदम्बवृक्ष है, उसके [प]ाँच कोटरोंसे मधुकी पाँच धाराएँ निकलती हैं; उनकी [म]ोटाई पाँच पुरसे जितनी है। ये सुपार्श्वके शिखरसे [ग]िरकर इलावृतवर्षके पश्चिमी भागको अपनी सुगन्धसे [स]ुवासित करती हैं ॥ २२ ॥ जो लोग इनका मधुपान [क]रते हैं, उनके मुखसे निकली हुई वायु अपने चारों [ओ]र सौ-सौ योजनतक इसकी महक फैला देती है ॥२३॥

इसी प्रकार कुमुद पर्वतपर जो शतवल्श नामका [व]टवृक्ष है, उसकी जटाओंसे नीचेकी ओर बहनेवाले अनेक [न]द निकलते हैं, वे सब इच्छानुसार भोग देनेवाले हैं। [उ]नसे दूध, दही, मधु, घृत, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, [आ]सन और आभूषण आदि सभी पदार्थ मिल सकते [ह]ैं। ये सब कुमुदके शिखरसे गिरकर इलावृतके उत्तरी [भ]ागको सींचते हैं ॥ २४ ॥ इनके दिये हुए पदार्थोंका [उ]पभोग करनेसे वहाँकी प्रजाकी त्वचामें झुर्रियाँ पड़ जाना, बाल पक जाना, थकान होना, शरीरमें पसीना आना तथा दुर्गन्ध निकलना, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, सर्दी-गरमीकी पीड़ा, शरीरका कान्तिहीन हो जाना तथा अङ्गों-का टूटना आदि कष्ट कभी नहीं सताते और उन्हें जीवनपर्यन्त पूरा-पूरा सुख प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

राजन्! कमलकी कर्णिकाके चारों ओर जैसे केसर होता है—उसी प्रकार मेरुके मूलदेशमें उसके चारों ओर कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालंजर और नारद आदि बीस पर्वत और हैं ॥ २६ ॥ इनके सिवा मेरुके पूर्वकी ओर जठर और देवकूट नामके दो पर्वत हैं, जो अठारह-अठारह हजार योजन लंबे तथा दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं। इसी प्रकार पश्चिमकी ओर पवन और पारियात्र, दक्षिणकी ओर कैलास और करवीर तथा उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और मकर नामके पर्वत हैं। इन आठ पहाड़ोंसे चारों ओर घिरा हुआ सुवर्णगिरि मेरु अग्निके समान जगमगाता रहता है ॥ २७ ॥ कहते हैं, मेरुके शिखरपर बीचोंबीच भगवान् ब्रह्माजीकी सुवर्णमयी पुरी है—जो आकारमें समचौरस तथा करोड़ योजन विस्तारवाली है ॥ २८ ॥ उसके नीचे पूर्वादि आठ दिशा और उपदिशाओंमें उनके अधिपति इन्द्रादि आठ लोकपालोंकी आठ पुरियाँ हैं। वे अपने-अपने स्वामीके अनुरूप उन्हीं-उन्हीं दिशाओंमें हैं तथा परिमाणमें ब्रह्माजीकी पुरीसे चौथाई हैं ॥ २९ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

गङ्गाजीका विवरण और भगवान् शङ्करकृत संकर्षणदेवकी स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब राजा बलि-की यज्ञशालामें साक्षात् यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णुने त्रिलोकी-को नापनेके लिये अपना पैर फैलाया, तब उनके बायें पैरके अँगूठेके नखसे ब्रह्माण्डकटाहका ऊपरका भाग फट गया। उस छिद्रमें होकर जो ब्रह्माण्डसे बाहरके जलकी धारा आयी, वह उस चरणकमलको धोनेसे उसमें लगी हुई केसरके मिलनेसे लाल हो गयी। उस निर्मल धाराका स्पर्श होते ही संसारके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वह सर्वथा निर्मल ही रहती है। पहले किसी और नामसे न पुकारकर उसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे। वह धारा हजारों युग बीतनेपर स्वर्गके शिरोभागमें स्थित ध्रुवलोकमें उतरी, जिसे 'विष्णुपद' भी कहते हैं ॥ १ ॥ वीरव्रत परीक्षित्! उस ध्रुवलोकमें उत्तान-पादके पुत्र परम भागवत ध्रुवजी रहते हैं। वे नित्यप्रति बढ़ते हुए भक्ति-भावसे 'यह हमारे कुलदेवताका चरणो-दक है' ऐसा मानकर आज भी उस जलको बड़े आदरसे सिरपर चढ़ाते हैं। उस समय प्रेमावेशके कारण उनका हृदय अत्यन्त गद्गद हो जाता है, उत्कण्ठावश बरबस

मुँदे हुए दोनों नयन-कमलोंसे निर्मल आँसुओंकी धारा बहने लगती है और शरीरमें रोमाञ्च हो आता है ॥ २ ॥

इसके पश्चात् आत्मनिष्ठ सप्तर्षिगण उनका प्रभाव जाननेके कारण 'यही तपस्याकी आत्यन्तिक सिद्धि है' ऐसा मानकर उसे आज भी इस प्रकार आदरपूर्वक अपने जटाजूटपर वैसे ही धारण करते हैं, जैसे मुमुक्षु-जन प्राप्त हुई मुक्तिको। यों ये बड़े ही निष्काम हैं; सर्वात्मा भगवान् वासुदेवकी निश्चल भक्तिको ही अपना परम धन मानकर इन्होंने अन्य सभी कामनाओंको त्याग दिया है, यहाँतक कि आत्मज्ञानको भी ये उसके सामने कोई चीज नहीं समझते ॥ ३ ॥ वहाँसे गङ्गाजी करोड़ों विमानोंसे घिरे हुए आकाशमें होकर उतरती हैं और चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती मेरुके शिखरपर ब्रह्मपुरी-में गिरती हैं ॥ ४ ॥

वहाँ ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार धाराओंमें विभक्त हो जाती हैं तथा अलग-अलग चारों दिशाओंमें बहती हुई अन्तमें नद-नदियोंके अधीश्वर समुद्रमें गिर जाती हैं ॥ ५ ॥ इनमें सीता ब्रह्मपुरीसे गिरकर केसराचलोंके सर्वोच्च शिखरोंमें होकर नीचेकी ओर बहती गन्धमादनके शिखरों-पर गिरती है और भद्राश्ववर्षको प्लावित कर पूर्वकी ओर खारे समुद्रमें मिल जाती है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार चक्षु माल्यवान्‌के शिखरपर पहुँचकर वहाँसे बेरोक-टोक केतु-मालवर्षमें बहती पश्चिमकी ओर क्षारसमुद्रमें जा मिलती है॥७॥ भद्रा मेरुपर्वतके शिखरसे उत्तरकी ओर गिरती है तथा एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती अन्तमें शृङ्गवान्‌के शिखरसे गिरकर उत्तरकुरु देशमें होकर उत्तरकी ओर बहती हुई समुद्रमें मिल जाती है ॥ ८ ॥ अलकनन्दा ब्रह्मपुरीसे दक्षिणकी ओर गिरकर अनेकों गिरि-शिखरोंको लाँघती हेमकूट पर्वतपर पहुँचती है, वहाँसे अत्यन्त तीव्र वेगसे हिमालयके शिखरोंको चीरती हुई भारतवर्षमें आती है और फिर दक्षिणकी ओर समुद्रमें जा मिलती है। इसमें स्नान करनेके लिये आनेवाले पुरुषोंको पद-पदपर अश्व-मेध और राजसूय आदि यज्ञोंका फल भी दुर्लभ नहीं है ॥ ९ ॥ प्रत्येक वर्षमें मेरु आदि पर्वतोंसे निकली हुई और भी सैकड़ों नद-नदियाँ हैं ॥ १० ॥

इन सब वर्षोंमें भारतवर्ष ही कर्मभूमि है। शेष आठ वर्ष तो स्वर्गवासी पुरुषोंके स्वर्गभोगसे बचे हुए पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं। इसलिये इन्हें भूलोकके स्वर्ग भी कहते हैं ॥ ११ ॥ वहाँके देवतुल्य मनुष्योंकी मानवी गणनाके अनुसार दस हजार वर्षकी आयु होती है। उनमें दस हजार हाथियोंका बल होता है तथा उनके वज्रसदृश सुदृढ शरीरमें जो शक्ति, यौवन और उल्लास होते हैं—उनके कारण वे बहुत समयतक मैथुन आदि विषय भोगते रहते हैं। अन्तमें जब भोग समाप्त होनेपर उनकी आयुका केवल एक वर्ष रह जाता है, तब उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं। इस प्रकार वहाँ सर्वदा त्रेतायुगके समान समय बना रहता है ॥ १२ ॥ वहाँ ऐसे आश्रम, भवन और वर्ष, पर्वतोंकी वाटियाँ हैं जिनके सुन्दर वन-उपवन सभी ऋतुओंके फूलोंके गुच्छे, फल और नूतन पल्लवोंकी शोभाके भारसे झुकी हुई डालियों और लताओंवाले वृक्षोंसे सुशोभित हैं; वहाँ निर्मल जलसे भरे हुए ऐसे जलाशय भी हैं, जिनमें तरह-तरहके नूतन कमल खिले रहते हैं और उन कमलोंकी सुगन्धसे प्रमुदित होकर राजहंस, जलमुर्ग, कारण्डव, सारस और चकवा आदि पक्षी तरह-तरहकी बोली बोलते तथा विभिन्न जातिके मतवाले भौंरे मधुर-मधुर गुंजार करते रहते हैं। इन आश्रमों, भवनों, वाटियों तथा जलाशयोंमें वहाँके देवेश्वरगण परम सुन्दरी देवाङ्गनाओंके साथ उनके कामो-न्मादसूचक हास-विलास और लीला-कटाक्षोंसे मन और नेत्रोंके आकृष्ट हो जानेके कारण जलक्रीड़ादि नाना प्रकारके खेल करते हुए स्वच्छन्द विहार करते हैं तथा उनके प्रधान-प्रधान अनुचरगण अनेक प्रकारकी सामग्रियों-से उनका आदर-सत्कार करते रहते हैं ॥ १३ ॥

इन नवों वर्षोंमें परमपुरुष भगवान् नारायण वहाँके पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये इस समय भी अपनी विभिन्न मूर्तियोंसे विराजमान रहते हैं ॥ १४ ॥ इलावृत-वर्षमें एकमात्र भगवान् शङ्कर ही पुरुष हैं। श्रीपार्वतीजी-के शापको जाननेवाला कोई दूसरा पुरुष वहाँ प्रवेश नहीं करता; क्योंकि वहाँ जो जाता है, वही स्त्री-रूप हो जाता है। इस प्रसङ्गका हम आगे (नवम

प्रसङ्गमें) वर्णन करेंगे ॥ १५ ॥ वहाँ पार्वती एवं उनकी अरबों-खरबों दासियोंसे सेवित भगवान् शङ्कर परम पुरुष परमात्माकी वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षणसंज्ञक चतुर्व्यूह मूर्तियोंमेंसे अपनी कारणरूपा संकर्षण नामकी तमःप्रधान* चौथी मूर्तिका ध्यानस्थित मनोमय विग्रहके रूपमें चिन्तन करते हैं और इस मन्त्रका† उच्चारण करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥

भगवान् शङ्कर कहते हैं—'ॐ जिनसे सभी गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, उन अनन्त और अव्यक्तमूर्ति ओङ्कार-स्वरूप परमपुरुष श्रीभगवान्‌को नमस्कार है ।' 'भजनीय प्रभो ! आपके चरणकमल भक्तोंको आश्रय देनेवाले हैं तथा आप स्वयं सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके परम आश्रय हैं । भक्तोंके सामने आप अपना भूतभावन स्वरूप पूर्णतया प्रकट कर देते हैं तथा उन्हें संसारबन्धनसे भी मुक्त कर देते हैं, किन्तु अभक्तोंको उस बन्धनमें डालते रहते हैं । आप ही सर्वेश्वर हैं, मैं आपका भजन करता हूँ । १७-१८ । प्रभो ! हमलोग क्रोधके आवेगको नहीं जीत सके हैं तथा हमारी दृष्टि तत्काल पापसे लिप्त हो जाती है । परन्तु आप तो संसारका नियमन करनेके लिये निरन्तर साक्षीरूपसे उसके सारे व्यापारोंको देखते रहते हैं । तथापि हमारी तरह आपकी दृष्टिपर उन मायिक विषयों तथा चित्तकी वृत्तियोंका नाममात्रको भी प्रभाव नहीं पड़ता । ऐसी स्थितिमें अपने मनको वशमें करनेकी इच्छावाला कौन पुरुष आपका आदर न करेगा ? ॥ १९ ॥ आप जिन पुरुषोंको मधु-आसवादि पानके कारण अरुणनयन और मतवाले जान पड़ते हैं, वे मायाके वशीभूत होकर ही ऐसा मिथ्या दर्शन करते हैं तथा आपके चरणस्पर्शसे ही चित्त चञ्चल हो जानेके कारण नागपत्नियाँ लज्जावश आपकी पूजा करनेमें असमर्थ हो जाती हैं ॥ २० ॥ वेदमन्त्र आपको जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं; परन्तु आप स्वयं इन तीनों विकारोंसे रहित हैं; इसलिये आपको 'अनन्त' कहते हैं । आपके सहस्र मस्तकोंपर यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान रक्खा हुआ है, आपको तो यह भी नहीं मालूम होता कि वह कहाँ स्थित है ॥ २१ ॥ जिनसे उत्पन्न हुआ मैं अहङ्काररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय और भूतोंकी रचना करता हूँ—वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत्तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं ॥ २२ ॥ महात्मन् ! महत्तत्त्व, अहङ्कार-इन्द्रियाभिमानी देवता, इन्द्रियाँ और पञ्चभूत आदि हम सभी डोरीमें बँधे हुए पक्षीके समान आपकी क्रियाशक्तिके वशीभूत रहकर आपकी ही कृपासे इस जगत्‌की रचना करते हैं ॥ २३ ॥ सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई तथा कर्म-बन्धनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान भी लेता है, किन्तु उससे मुक्त होनेका उपाय उसे सुगमतासे नहीं मालूम होता । इस जगत्‌की उत्पत्ति और प्रलय भी आपके ही रूप हैं । ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ' ॥ २४ ॥

अठारहवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न वर्षोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! भद्राश्ववर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा और उनके मुख्य-मुख्य सेवक भगवान् वासुदेवकी हयग्रीवसंज्ञक धर्ममयी प्रिय मूर्तिको अत्यन्त समाधिनिष्ठाके द्वारा हृदयमें स्थापित कर इस मन्त्र‡का जप करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

भद्रश्रवा और उनके सेवक कहते हैं—'चित्तको विशुद्ध करनेवाले ओङ्कारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है' ॥ २ ॥ 'अहो ! भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र है, जिसके कारण यह जीव सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको देखकर भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका

---

* भगवान्‌का विग्रह शुद्ध चिन्मय ही है; परन्तु संहार आदि तामसी कार्योंका हेतु होनेसे इसे तामसी मूर्ति कहते हैं ।

† ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ।

‡ ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ।

सेवन करनेके लिये पापमय विचारोंकी उधेड़-बुनमें लगा हुआ अपने ही हाथों अपने पुत्र और पितादिकी लाशको जलाकर भी स्वयं जीते रहनेकी इच्छा करता है ॥ ३ ॥ विद्वान् लोग जगत्को नश्वर बताते हैं और सूक्ष्मदर्शी आत्मज्ञानी ऐसा ही देखते भी हैं; तो भी जन्मरहित प्रभो! आपकी मायासे लोग मोहित हो जाते हैं। आप अनादि हैं तथा आपके कृत्य बड़े विस्मयजनक हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥ परमात्मन्! आप अकर्ता और मायाके आवरणसे रहित हैं तो भी जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये आपके ही कर्म माने गये हैं। सो ठीक ही है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि सर्वात्मरूपसे आप ही सम्पूर्ण कार्योंके कारण हैं और अपने शुद्धस्वरूपमें इस कार्य-कारणभावसे सर्वथा अतीत हैं ॥ ५ ॥ आपका विग्रह मनुष्य और घोड़ेका संयुक्त रूप है। प्रलयकालमें जब तमःप्रधान दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे, तब ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर आपने उन्हें रसातलसे लाकर दिया। ऐसे अमोघ लीला करनेवाले सत्यसङ्कल्प आपको मैं नमस्कार करता हूँ' ॥ ६ ॥

हरिवर्षखण्डमें भगवान् नृसिंहरूपसे रहते हैं। उन्होंने यह रूप जिस कारणसे धारण किया था, उसका आगे (सप्तम स्कन्धमें) वर्णन किया जायगा। भगवान्के उस प्रिय रूपकी महाभागवत प्रह्लादजी उस वर्षके अन्य पुरुषोंके सहित निष्काम एवं अनन्य भक्तिभावसे उपासना करते हैं। ये प्रह्लादजी महापुरुषोचित गुणोंसे सम्पन्न हैं तथा इन्होंने अपने शील और आचरणसे दैत्य और दानवोंके कुलको पवित्र कर दिया है। वे इस मन्त्र* तथा स्तोत्रका जप-पाठ करते हैं ॥ ७ ॥ —'ओङ्कारस्वरूप भगवान् श्रीनृसिंहदेवको नमस्कार है। आप अग्नि आदि तेजोंके भी तेज हैं, आपको नमस्कार है। हे वज्रनख! हे वज्रदंष्ट्र! आप हमारे समीप प्रकट होइये, प्रकट होइये; हमारी कर्म-वासनाओंको जला डालिये, जला डालिये। हमारे अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। ॐ स्वाहा। हमारे अन्तःकरणमें अभयदान देते हुए प्रकाशित होइये। ॐ क्ष्रौम्' ॥ ८ ॥ 'नाथ! विश्वका कल्याण हो, दुष्टोंकी बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियोंमें परस्पर सद्भावना हो, सभी एक दूसरेका हित-चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें प्रवेश करे ॥ ९ ॥ प्रभो! घर, स्त्री, पुत्र, धन और भाई-बन्धुओंमें हमारी आसक्ति न हो; यदि हो तो केवल भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें ही। जो संयमी पुरुष केवल शरीरनिर्वाहके योग्य अन्नादिसे सन्तुष्ट रहता है, उसे जितना शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है वैसी इन्द्रियलोलुप पुरुषको नहीं होती ॥ १० ॥ उन भगवद्भक्तोंके सङ्गसे भगवान्के तीर्थतुल्य पवित्र चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति एवं प्रभावके सूचक होते हैं। उनका बार-बार सेवन करनेवालोंके कानोंके रास्तेसे भगवान् हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं और उनके सभी प्रकारके दैहिक और मानसिक मलोंको नष्ट कर देते हैं। फिर भला, उन भगवद्भक्तोंका सङ्ग कौन न करना चाहेगा? ॥ ११ ॥ जिस पुरुषकी भगवान्में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त देवता धर्म-ज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणोंके सहित सदा निवास करते हैं। किन्तु जो भगवान्का भक्त नहीं है, उसमें महापुरुषोंके वे गुण आ ही कहाँसे सकते हैं? वह तो तरह-तरहके सङ्कल्प करके निरन्तर तुच्छ बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है ॥ १२ ॥ जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय—उनके जीवनका आधार होता है, उसी प्रकार साक्षात् श्रीहरि ही समस्त देहधारियोंके प्रियतम आत्मा हैं। उन्हें त्यागकर यदि कोई महत्त्वाभिमानी पुरुष घरमें आसक्त रहता है तो उस दशामें स्त्री-पुरुषोंका बड़प्पन केवल आयुको लेकर ही माना जाता है; गुणकी दृष्टिसे नहीं ॥ १३ ॥ अतः असुरगण! तुम तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता और मानसिक सन्तापके मूल तथा जन्म-मरणरूप संसारचक्रका वहन करनेवाले गृह आदिको त्यागकर भगवान् नृसिंहके निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लो' ॥ १४ ॥

* ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौम्।

केतुमालवर्षमें लक्ष्मीजीका तथा संवत्सर नामक प्रजापतिके पुत्र और पुत्रियोंका प्रिय करनेके लिये भगवान् कामदेवरूपसे निवास करते हैं। उन रात्रिकी अभिमानी देवतारूप कन्याओं और दिवसाभिमानी देवतारूप पुत्रोंकी संख्या मनुष्यकी सौ वर्षकी आयुके दिन और रातके बराबर अर्थात् छत्तीस-छत्तीस हजार वर्ष है, और वे ही उस वर्षके अधिपति हैं। वे कन्याएँ परमपुरुष श्रीनारायणके श्रेष्ठ अस्त्र सुदर्शनचक्रके तेजसे डर जाती हैं; इसलिये प्रत्येक वर्षके अन्तमें उनके गर्भ नष्ट होकर गिर जाते हैं ॥१५॥ भगवान् अपने सुललित गति-विलाससे सुशोभित मधुर-मधुर मन्द-मुसकानसे मनोहर लीलापूर्ण चारु चितवनसे कुछ उझके हुए सुन्दर भ्रूमण्डलकी छबीली छटाके द्वारा वदनारविन्दका राशि-राशि सौन्दर्य उँडेलकर सौन्दर्यदेवी लक्ष्मीको अत्यन्त आनन्दित करते और स्वयं भी आनन्दित होते रहते हैं ॥१६॥ श्रीलक्ष्मीजी परम समाधियोगके द्वारा भगवान्‌के उस मायामय स्वरूपकी रात्रिके समय प्रजापति संवत्सरकी कन्याओंसहित और दिनमें उनके पतियोंके सहित आराधना और इस मन्त्र*का जप करती हुई भगवान्‌की स्तुति करती हैं ॥ १७ ॥ 'जो इन्द्रियोंके नियन्ता और सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओंके आकर हैं, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और सङ्कल्प-अध्यवसाय आदि चित्तके धर्मों तथा उनके विषयोंके अधीश्वर हैं, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषय—इन सोलह कलाओंसे युक्त हैं, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त होते हैं तथा अन्नमय, अमृतमय और सर्वमय हैं—उन मानसिक, ऐन्द्रियक एवं शारीरिक बलस्वरूप परम सुन्दर भगवान् कामदेवको 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजमन्त्रोंके सहित सब ओरसे नमस्कार है' ॥ १८ ॥

'भगवन्! आप इन्द्रियोंके अधीश्वर हैं। स्त्रियाँ तरह-तरहके कठोर व्रतोंसे आपकी ही आराधना करके अन्य लौकिक पतियोंकी इच्छा किया करती हैं। किन्तु वे उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षा नहीं कर सकते; क्योंकि वे स्वयं ही परतन्त्र हैं ॥ १९ ॥ सच्चा पति (रक्षा करनेवाला या ईश्वर) वही है, जो स्वयं सर्वथा निर्भय हो और दूसरे भयभीत लोगोंकी सब प्रकारसे रक्षा कर सके। ऐसे पति एकमात्र आप ही हैं; यदि एकसे अधिक ईश्वर माने जायँ, तो उन्हें एक-दूसरेसे भय होनेकी सम्भावना है। अतएव आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और किसी लाभको नहीं मानते ॥ २० ॥ भगवन्! जो स्त्री आपके चरणकमलोंका पूजन ही चाहती है, और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती—उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; किन्तु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और जब भोग समाप्त होनेपर वह नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे सन्तप्त होना पड़ता है ॥ २१ ॥ अजित! मुझे पानेके लिये इन्द्रिय-सुखके अभिलाषी ब्रह्मा और रुद्र आदि समस्त सुरासुरगण घोर तपस्या करते रहते हैं; किन्तु आपके चरणकमलोंका आश्रय लेनेवाले भक्तके सिवा मुझे कोई पा नहीं सकता; क्योंकि मेरा मन तो आपमें ही लगा रहता है ॥ २२ ॥ अच्युत! आप अपने जिस वन्दनीय करकमलको भक्तोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे सिरपर भी रखिये। वरेण्य! आप मुझे केवल श्रीलाञ्छनरूपसे अपने वक्षःस्थलमें ही धारण करते हैं; सो आप सर्वसमर्थ हैं, आप अपनी मायासे जो लीलाएँ करते हैं, उनका रहस्य कौन जान सकता है?' ॥ २३ ॥

रम्यकवर्षमें भगवान्‌ने वहाँके अधिपति मनुको पूर्वकालमें अपना परम प्रिय मत्स्यरूप दिखाया था। मनुजी इस समय भी भगवान्‌के उसी रूपकी बड़े भक्तिभावसे उपासना करते हैं और इस मन्त्र†का जप करते हुए स्तुति करते हैं—'सत्त्वप्रधान मुख्य प्राण सूत्रात्मा तथा मनोबल, इन्द्रियबल और शरीरबल ओङ्कारपदके अर्थ सर्वश्रेष्ठ भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है' ॥ २४-२५ ॥

---

* ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।

† ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति।

'प्रभो ! नट जिस प्रकार कठपुतलियोंको नचाता है, उसी प्रकार आप ब्राह्मणादि नामोंकी डोरीसे सम्पूर्ण विश्वको अपने अधीन करके नचा रहे हैं । अतः आप ही सबके प्रेरक हैं । आपको ब्रह्मादि लोकपालगण भी नहीं देख सकते; तथापि आप समस्त प्राणियोंके भीतर प्राणरूपसे और बाहर वायुरूपसे निरन्तर सञ्चार करते रहते हैं। वेद ही आपका महान् शब्द है ॥ २६ ॥ एक बार इन्द्रादि इन्द्रियाभिमानी देवताओंको प्राणस्वरूप आपसे डाह हुआ। तब आपके अलग हो जानेपर वे अलग-अलग अथवा आपसमें मिलकर भी मनुष्य-पशु, स्थावर-जङ्गम आदि जितने शरीर दिखायी देते हैं—उनमेंसे किसीकी बहुत यत्न करनेपर भी रक्षा नहीं कर सके ॥ २७ ॥ अजन्मा प्रभो! आपने मेरे सहित समस्त औषध और लताओं-की आश्रयरूपा इस पृथ्वीको लेकर बड़ी-बड़ी उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्रमें बड़े उत्साहसे विहार किया था। आप संसारके समस्त प्राणसमुदायके नियन्ता हैं; मेरा आपको नमस्कार है' ॥ २८ ॥

हिरण्मयवर्षमें भगवान् कच्छपरूप धारण करके रहते हैं। वहाँके निवासियोंके सहित पितृराज अर्यमा भगवान्की उस प्रियतम मूर्तिकी उपासना करते हैं और इस मन्त्र* को निरन्तर जपते हुए स्तुति करते हैं ॥ २९ ॥—'जो सम्पूर्ण सत्त्वगुणसे युक्त हैं, जलमें विचरते रहनेके कारण जिनके स्थानका कोई निश्चय नहीं है तथा जो कालकी मर्यादाके बाहर हैं, उन ओङ्कारस्वरूप सर्वव्यापक सर्वाधार भगवान् कच्छपको बार-बार नमस्कार है' ॥ ३० ॥

'भगवन् ! अनेक रूपोंमें प्रतीत होनेवाला यह दृश्य-प्रपञ्च यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है, इसलिये इसकी वस्तुतः कोई संख्या नहीं है; तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका ही रूप है । ऐसे अनिर्वचनीयरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३१ ॥ एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जङ्गम, स्थावर, देवता, ऋषि, पितृगण, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और तारा आदि विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३२ ॥ आप असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंसे युक्त हैं; कपिलादि विद्वानोंने जो आपमें चौबीस तत्त्वोंकी संख्या निश्चित की है—वह जिस तत्त्व-दृष्टिका उदय होनेपर निवृत्त हो जाती है, वह भी वस्तुतः आपका ही स्वरूप है। ऐसे सांख्यसिद्धान्तस्वरूप आप-को मेरा नमस्कार है' ॥ ३३ ॥

उत्तर कुरुवर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण करके विराजमान हैं । वहाँके निवासियोंके सहित साक्षात् पृथ्वीदेवी उनकी अविचल भक्तिभावसे उपासना करती और इस परमोत्कृष्ट मन्त्र† का जप करती हुई स्तुति करती हैं ॥ ३४ ॥—जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं—उन ओङ्कारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराहको बार-बार नमस्कार है' ॥ ३५ ॥

'ऋत्विजगण जिस प्रकार अरणिरूप काष्ठखण्डोंमें छिपी हुई अग्निको मन्थनद्वारा प्रकट करते हैं, उसी प्रकार कर्मासक्ति एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे परमप्रवीण पण्डितजन अपने विवेकयुक्त मनरूप मन्थनकाष्ठसे शरीर एवं इन्द्रियादिको बिलो डालते हैं । इस प्रकार मन्थन करनेपर अपने स्वरूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ विचार तथा यम-नियमादि योगाङ्गोंके साधन-से जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है—वे महापुरुष द्रव्य (विषय), क्रिया (इन्द्रियोंके व्यापार), हेतु (इन्द्रिया-धिष्ठाता देवता), अयन (शरीर), ईश, काल और कर्ता (अहङ्कार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक आकृ-तियोंसे रहित आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार लोहा जड होनेपर भी चुम्बककी सन्निधि-मात्रसे चलने-फिरने लगता है, उसी प्रकार जिन सर्व-साक्षीकी इच्छामात्रसे—जो अपने लिये नहीं, बल्कि समस्त

* ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ।

† ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ।

प्राणियोंके लिये होती है—प्रकृति अपने गुणोंके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करती रहती है; ऐसे सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥ आप जगत्‌के कारणभूत आदिसूकर हैं। जिस प्रकार एक हाथी दूसरे हाथीको पछाड़ देता है, उसी प्रकार गजराजके समान क्रीडा करते हुए आप युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्ष दैत्यको दलित करके मुझे अपनी दाढ़ोंकी नोकपर रखकर रसातलसे प्रलय-पयोधिके बाहर निकले थे। मैं आप सर्वशक्तिमान् प्रभुको बार-बार नमस्कार करती हूँ' ॥ ३९ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

किम्पुरुष और भारतवर्षका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई, आदिपुरुष, सीताहृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणोंकी सन्निधिके रसिक परम भागवत श्रीहनुमान्‌जी अन्य किन्नरोंके सहित अविचल भक्तिभावसे उनकी उपासना करते हैं ॥ १ ॥ वहाँ अन्य गन्धर्वोंके सहित आर्ष्टिषेण उनके स्वामी भगवान् रामकी परम कल्याणमयी गुणगाथा गाते रहते हैं। श्रीहनुमान्‌जी उसे सुनते हैं और स्वयं भी इस मन्त्र*का जप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं ॥२॥—'हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है' ॥ ३ ॥

'भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित और अहङ्कारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ ४ ॥ प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था ॥ ५ ॥ आप धीर पुरुषोंके आत्मा† और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं‡ ॥ ६ ॥ आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे

---

* ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।

† यहाँ शङ्का होती है कि भगवान् तो सभीके आत्मा हैं, फिर यहाँ उन्हें आत्मवान् (धीर) पुरुषोंके ही आत्मा क्यों बताया गया? इसका कारण यही है कि सबके आत्मा होते हुए भी उन्हें केवल आत्मज्ञानी पुरुष ही अपने आत्मारूपसे अनुभव करते हैं—अन्य पुरुष नहीं। श्रुतिमें जहाँ कहीं आत्मसाक्षात्कारकी बात आयी है, वहीं आत्मवेत्ताके लिये 'धीर' शब्दका प्रयोग किया है। जैसे 'कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत' इति 'नः शुश्रुम धीराणाम्' इत्यादि। इसीलिये यहाँ भी भगवान्‌को आत्मवान् या धीर पुरुषका आत्मा बताया है।

‡ एक बार भगवान् श्रीराम एकान्तमें एक देवदूतसे बात कर रहे थे। उस समय लक्ष्मणजी पहरेपर थे और भगवान्‌की आज्ञा थी कि यदि इस समय कोई भीतर आवेगा तो वह मेरे हाथसे मारा जायगा। इतनेमें ही दुर्वासा मुनि चले आये और उन्होंने लक्ष्मणजीको अपने आनेकी सूचना देनेके लिये भीतर जानेको विवश किया। इससे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् बड़े असमञ्जसमें पड़ गये। तब वसिष्ठजीने कहा कि लक्ष्मणजीके प्राण न लेकर उन्हें त्याग देना चाहिये, क्योंकि अपने प्रियजनका त्याग मृत्युदण्डके समान ही है। इसीसे भगवान्‌ने उन्हें त्याग दिया।

रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है ॥ ७ ॥ देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे' ॥ ८ ॥

भारतवर्षमें भी भगवान् दयावश नर-नारायणरूप धारण करके संयमशील पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये अव्यक्तरूपसे कल्पके अन्ततक तप करते रहते हैं। उनकी यह तपस्या ऐसी है कि जिससे धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शान्ति और उपरतिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होकर अन्तमें आत्मस्वरूपकी उपलब्धि हो सकती है ॥ ९ ॥ वहाँ भगवान् नारदजी स्वयं श्रीभगवान्‌के ही कहे हुए सांख्य और योगशास्त्रके सहित भगवन्महिमाको प्रकट करनेवाले पाञ्चरात्रदर्शनका सावर्णि मुनिको उपदेश करनेके लिये भारतवर्षकी वर्णाश्रमधर्मावलम्बिनी प्रजाके सहित अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान् श्रीनर-नारायणकी उपासना करते और इस मन्त्र*का जप तथा स्तोत्रको गाकर उनकी स्तुति करते हैं ॥१०॥—'ओङ्कारस्वरूप, अहङ्कारसे रहित, निर्धनोंके धन, शान्तस्वभाव ऋषिप्रवर भगवान् नर-नारायणको नमस्कार है। वे परमहंसोंके परम गुरु और आत्मारामोंके अधीश्वर हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है' ॥११॥ यह गाते हैं—'जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें उनके कर्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, शरीरमें रहते हुए भी उसके धर्म भूख-प्यास आदिके वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती—उन असङ्ग एवं विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नर-नारायणको नमस्कार है ॥ १२ ॥ योगेश्वर ! हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजीने योगसाधनकी सबसे बड़ी कुशलता यही बतलायी है कि मनुष्य अन्तकालमें देहाभिमानको छोड़कर भक्तिपूर्वक आपके प्राकृत गुणरहित स्वरूपमें अपना मन लगावे ॥ १३ ॥ लौकिक और पारलौकिक भोगोंके लालची मूढ़ पुरुष जैसे पुत्र, स्त्री और धनकी चिन्ता करके मौतसे डरते हैं—उसी प्रकार यदि विद्वान्‌को भी इस निन्दनीय शरीरके छूटनेका भय ही बना रहा, तो उसका ज्ञानप्राप्तिके लिये किया हुआ सारा प्रयत्न केवल श्रम ही है ॥ १४ ॥ अतः अधोक्षज ! आप हमें अपना स्वाभाविक प्रेमरूप भक्तियोग प्रदान कीजिये, जिससे कि प्रभो ! इस निन्दनीय शरीरमें आपकी मायाके कारण बद्धमूल हुई दुर्भेद्य अहंता-ममताको हम तुरंत काट डालें' ॥ १५ ॥

राजन् ! इस भारतवर्षमें भी बहुत-से पर्वत और नदियाँ हैं—जैसे मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि आदि। इसी प्रकार और भी सैकड़ों-हजारों पर्वत हैं। उनके तटप्रान्तोंसे निकलनेवाले नद और नदियाँ भी अगणित हैं ॥ १६ ॥ ये नदियाँ अपने नामोंसे ही जीवको पवित्र कर देती हैं और भारतीय प्रजा इन्हींके जलमें स्नानादि करती है ॥ १७ ॥ उनमेंसे मुख्य-मुख्य नदियाँ ये हैं—चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध और शोण नामके नद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा ॥ १८ ॥ इस वर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुषोंको ही अपने किये हुए सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके अनुसार क्रमशः नाना प्रकारकी दिव्य, मानुष और

* ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ।

नारकी योनियाँ प्राप्त होती हैं; क्योंकि कर्मानुसार सब जीवोंको सभी योनियाँ प्राप्त हो सकती हैं। इसी वर्षमें अपने-अपने वर्णके लिये नियत किये हुए धर्मोंका विधिवत् अनुष्ठान करनेसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है ॥ १९ ॥ परीक्षित्! सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, रागादि दोषोंसे रहित, अनिर्वचनीय, निराधार परमात्मा भगवान् वासुदेवमें अनन्य एवं अहैतुक भक्तिभाव ही यह मोक्षपद है। यह भक्तिभाव तभी प्राप्त होता है, जब अनेक प्रकारकी गतियोंको प्रकट करनेवाली अविद्यारूप हृदयकी ग्रन्थि कट जानेपर भगवान्के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग मिलता है ॥ २० ॥

देवता भी भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी इस प्रकार महिमा गाते हैं—'अहा! जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्की सेवाके योग्य मनुष्य-जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्यके लिये तो निरन्तर हम भी तरसते रहते हैं ॥ २१ ॥ हमें बड़े कठोर यज्ञ, तप, व्रत और दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्गका अधिकार प्राप्त हुआ है—इससे क्या लाभ है? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अधिकताके कारण स्मृतिशक्ति छिन जाती है, अतः कभी श्रीनारायणके चरणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं ॥ २२ ॥ यह स्वर्ग तो क्या—जहाँके निवासियोंकी एक-एक कल्पकी आयु होती है किन्तु जहाँसे फिर संसारचक्रमें लौटना पड़ता है, उन ब्रह्मलोकादिकी अपेक्षा भी भारतभूमिमें थोड़ी आयुवाले होकर जन्म लेना अच्छा है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्यशरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म श्रीभगवान्को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर सकता है ॥ २३ ॥

'जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ उसके उद्गमस्थान भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य-गीतादिके साथ बड़े समारोहसे भगवान् यज्ञपुरुषकी पूजा-अर्चा नहीं की जाती—वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ जिन जीवोंने इस भारतवर्षमें ज्ञान (विवेकबुद्धि), तदनुकूल कर्म तथा उस कर्मके उपयोगी द्रव्यादि सामग्रीसे सम्पन्न मनुष्य-जन्म पाया है, वे यदि आवागमनके चक्रसे निकलनेका प्रयत्न नहीं करते, तो व्याधकी फाँसीसे छूटकर भी फलादिके लोभसे उसी वृक्षपर विहार करनेवाले वनवासी पक्षियोंके समान फिर बन्धनमें पड़ जाते हैं ॥ २५ ॥

'अहो! इन भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है! जब ये यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्यादिके योगसे श्रद्धापूर्वक उन्हें हवि प्रदान करते हैं, तब इस प्रकार इन्द्रादि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले स्वयं पूर्णकाम श्रीहरि ही प्रसन्न होकर उस हविको ग्रहण करते हैं ॥ २६ ॥ यह ठीक है कि भगवान् सकाम पुरुषोंके माँगनेपर उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं, किन्तु यह भगवान्का वास्तविक दान नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको पा लेनेपर भी मनुष्यके मनमें पुनः कामनाएँ होती ही रहती हैं। इसके विपरीत जो उनका निष्कामभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते हैं—जो अन्य समस्त इच्छाओंको समाप्त कर देनेवाले हैं ॥ २७ ॥ अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन और शुभ कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य बचा हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्की स्मृतिसे युक्त मनुष्य-जन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण करते हैं' ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! राजा सगरके पुत्रोंने अपने यज्ञके घोड़ेको ढूँढ़ते हुए इस पृथ्वीको चारों ओरसे खोदा था। उससे जम्बूद्वीपके अन्तर्गत ही आठ उपद्वीप और बन गये, ऐसा कुछ लोगोंका कथन है ॥ २९ ॥ वे स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लंका हैं ॥ ३० ॥ भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना था, ठीक वैसा ही तुम्हें यह जम्बूद्वीपके वर्षोंका विभाग सुना दिया ॥ ३१ ॥

बीसवाँ अध्याय

अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोकपर्वतका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! अब परिमाण, लक्षण और स्थितिके अनुसार प्लक्षादि अन्य द्वीपोंके वर्षविभागका वर्णन किया जाता है ॥ १ ॥ जिस प्रकार मेरु पर्वत जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले खारे जलके समुद्रसे परिवेष्टित है। फिर खाई जिस प्रकार बाहरके उपवनसे घिरी रहती है, उसी प्रकार क्षारसमुद्र भी अपनेसे दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसे घिरा हुआ है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका पेड़ है, उतने ही विस्तारवाला यहाँ सुवर्णमय प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है। उसीके कारण इसका नाम प्लक्षद्वीप हुआ है। यहाँ सात जिह्वाओंवाले अग्निदेव विराजते हैं। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज इध्मजिह्व थे। उन्होंने इसको सात वर्षोंमें विभक्त किया और उन्हें उन वर्षोंके समान ही नामवाले अपने पुत्रोंको सौंप दिया तथा स्वयं अध्यात्मयोगका आश्रय लेकर उपरत हो गये ॥ २ ॥ इन वर्षोंके नाम शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय हैं। इनमें भी सात पर्वत और सात नदियाँ ही प्रसिद्ध हैं ॥३॥ वहाँ मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—ये सात मर्यादापर्वत हैं तथा अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—ये सात महानदियाँ हैं। वहाँ हंस, पतङ्ग, ऊर्ध्वायन और सत्याङ्ग नामके चार वर्ण हैं। उक्त नदियोंके जलमें स्नान करनेसे इनके रजोगुण-तमोगुण क्षीण होते रहते हैं। इनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है। इनके शरीरोंमें देवताओंकी भाँति थकावट, पसीना आदि नहीं होता और सन्तानोत्पत्ति भी उन्हींके समान होती है। ये त्रयीविद्याके द्वारा तीनों वेदोंमें वर्णन किये हुए स्वर्गके द्वारभूत आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ वे कहते हैं कि 'जो सत्य (अनुष्ठानयोग्य धर्म) और ऋत (प्रतीत होनेवाले धर्म), वेद और शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं—उन पुराणपुरुष विष्णुस्वरूप भगवान् सूर्यकी हम शरणमें जाते हैं' ॥ ५ ॥ प्लक्ष आदि पाँच द्वीपोंमें सभी मनुष्योंको जन्मसे ही आयु, इन्द्रिय, मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिक बल, बुद्धि और पराक्रम समानरूपसे सिद्ध रहते हैं ॥ ६ ॥

प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तारवाले इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। उसके आगे उससे दुगुने परिमाणवाला शाल्मलीद्वीप है, जो उतने ही विस्तारवाले मदिराके सागरसे घिरा है ॥ ७ ॥ प्लक्षद्वीपके पाकरके पेड़के बराबर उसमें शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है। कहते हैं, यही वृक्ष अपने वेदमय पंखोंसे भगवान्की स्तुति करनेवाले पक्षिराज भगवान् गरुडका निवासस्थान है तथा यही इस द्वीपके नामकरणका भी हेतु है ॥८॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज यज्ञबाहु थे। उन्होंने इसके सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ह, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात नामसे सात विभाग किये और इन्हें इन्हीं नामवाले अपने पुत्रोंको सौंप दिया ॥ ९ ॥ इनमें भी सात वर्षपर्वत और सात ही नदियाँ प्रसिद्ध हैं। पर्वतोंके नाम स्वरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति हैं तथा नदियाँ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका हैं ॥ १० ॥ इन वर्षोंमें रहनेवाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर नामके चार वर्ण वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रमाकी वेदमन्त्रोंसे उपासना करते हैं ॥ ११ ॥ (और कहते हैं—) 'जो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षमें अपनी किरणोंसे विभाग करके देवता, पितर और सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्न देते हैं, वे चन्द्रदेव हमारे राजा (रञ्जन करनेवाले) हों' ॥ १२ ॥

इसी प्रकार मदिराके समुद्रसे आगे उससे दूने परिमाणवाला कुशद्वीप है। पूर्वोक्त द्वीपोंके समान यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें भगवान्का रचा हुआ एक कुशोंका झाड़ है, उसीसे इस द्वीपका नाम निश्चित हुआ है।

वह दूसरे अग्निदेवके समान अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता रहता है ॥ १३ ॥ राजन् ! इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज हिरण्यरेता थे। उन्होंने इसके सात विभाग करके उनमेंसे एक-एक अपने सात पुत्र वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेवको दे दिया और स्वयं तप करने चले गये ॥ १४ ॥ उनकी सीमाओंको निश्चय करनेवाले सात पर्वत हैं और सात ही नदियाँ हैं। पर्वतोंके नाम चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण हैं। नदियोंके नाम हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रवृन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला ॥ १५ ॥ इनके जलमें स्नान करके कुशद्वीपवासी कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक वर्णके पुरुष अग्निस्वरूप भगवान् हरिका यज्ञादि कर्म-कौशलके द्वारा पूजन करते है ॥१६॥ (तथा इस प्रकार स्तुति करते हैं—) 'अग्ने! आप परब्रह्मको साक्षात् हवि पहुँचानेवाले हैं; अतः भगवान्‌के अङ्गभूत देवताओंके यजनद्वारा आप उन परमपुरुषका ही यजन करें' ॥ १७ ॥

राजन् ! फिर घृतसमुद्रसे आगे उससे द्विगुण परिमाणवाला क्रौञ्चद्वीप है। जिस प्रकार कुशद्वीप घृतसमुद्रसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार यह अपने ही समान विस्तारवाले दूधके समुद्रसे घिरा हुआ है। यहाँ क्रौञ्च नामका एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसीके कारण इसका नाम क्रौञ्चद्वीप हुआ है ॥ १८ ॥ पूर्वकालमें श्रीस्वामिकार्तिकेयजीके शस्त्रप्रहारसे इसका कटिप्रदेश और लता-निकुञ्जादि क्षत-विक्षत हो गये थे, किन्तु क्षीरसमुद्रसे सींचा जाकर और वरुणदेवसे सुरक्षित होकर यह फिर निर्भय हो गया ॥ १९ ॥ इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज घृतपृष्ठ थे। वे बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने इसको सात वर्षोंमें विभक्त कर उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने सात उत्तराधिकारी पुत्रोंको नियुक्त किया और स्वयं सम्पूर्ण जीवोंके अन्तरात्मा, परम मङ्गलमय कीर्तिशाली भगवान् श्रीहरिके पावन पादारविन्दोंकी शरण ली ॥ २० ॥ महाराज घृतपृष्ठके आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति—ये सात पुत्र थे। उनके वर्षोंमें भी सात वर्षपर्वत और सात ही नदियाँ कही जाती हैं। पर्वतोंके नाम शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र हैं तथा नदियों-के नाम हैं—अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला ॥ २१ ॥ इनके पवित्र और निर्मल जलका सेवन करनेवाले वहाँके पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामक चार वर्णवाले निवासी जलसे भरी हुई अञ्जलिके द्वारा आपोदेवता (जलके देवता) की उपासना करते हैं ॥ २२ ॥ (और कहते हैं—) 'हे जलके देवता ! तुम्हें परमात्मासे सामर्थ्य प्राप्त है। तुम भूः, भुवः और स्वः—तीनों लोकोंको पवित्र करते हो; क्योंकि स्वरूपसे ही पापोंका नाश करनेवाले हो। हम अपने शरीरसे तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुम हमारे अङ्गोंको पवित्र करो' ॥ २३ ॥

इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप है, जो अपने ही समान परिमाणवाले मट्ठेके समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें शाक नामका एक बहुत बड़ा वृक्ष है, वही इस क्षेत्रके नामका कारण है। उसकी अत्यन्त मनोहर सुगन्धसे सारा द्वीप महकता रहता है ॥२४॥ मेधातिथि नामक उसके अधिपति भी राजा प्रियव्रतके ही पुत्र थे। उन्होंने भी अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त किया और उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने पुत्र पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधारको अधिपतिरूपसे नियुक्त कर स्वयं भगवान् अनन्तमें दत्तचित्त हो तपोवनको चले गये ॥ २५ ॥ इन वर्षोंमें भी सात मर्यादापर्वत और सात नदियाँ ही हैं। पर्वतोंके नाम ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस हैं तथा नदियाँ अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति हैं ॥ २६ ॥ उस वर्षके ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायामद्वारा अपने रजोगुण-तमोगुणको क्षीण कर महान् समाधिके द्वारा वायुरूप श्रीहरिकी आराधना करते हैं ॥ २७ ॥ (और

इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं —) 'जो प्राणादि वृत्तिरूप अपनी ध्वजाओंके सहित प्राणियोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं तथा सम्पूर्ण दृश्य जगत् जिनके अधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी वायु भगवान् हमारी रक्षा करें' ॥ २८ ॥

इसी तरह मट्ठेके समुद्रसे आगे उसके चारों ओर उससे दुगुने विस्तारवाला पुष्करद्वीप है। वह चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। वहाँ अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान लाखों स्वर्णमय पंखड़ियोंवाला एक बहुत बड़ा पुष्कर (कमल) है, जो ब्रह्माजीका आसन माना जाता है ॥ २९ ॥ उस द्वीपके बीचोंबीच उसके पूर्वीय और पश्चिमीय विभागोंकी मर्यादा निश्चित करनेवाला मानसोत्तर नामका एक ही पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊँचा और उतना ही लंबा है। इसके ऊपर चारों दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंकी चार पुरियाँ हैं। इसपर मेरुपर्वतके चारों ओर घूमनेवाले सूर्यके रथका संवत्सररूप पहिया देवताओंके दिन और रात अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायनके क्रमसे सर्वदा घूमा करता है ॥ ३० ॥ उस द्वीपका अधिपति प्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र भी अपने पुत्र रमणक और धातकिको दोनों वर्षोंका अधिपति बनाकर स्वयं अपने बड़े भाइयोंके समान भगवत्सेवामें ही तत्पर रहने लगा था ॥ ३१ ॥ वहाँके निवासी ब्रह्मरूप भगवान् हरिकी ब्रह्मसालोक्यादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंसे आराधना करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—॥ ३२ ॥ 'जो साक्षात् कर्मफलरूप हैं और एक परमेश्वरमें ही जिनकी पूर्ण स्थिति है तथा जिनकी सब लोग पूजा करते हैं, ब्रह्मज्ञानके साधनरूप उन अद्वितीय और शान्तस्वरूप ब्रह्ममूर्ति भगवान्को मेरा नमस्कार है' ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! इसके आगे लोकालोक नामका पर्वत है। यह पृथ्वीके सब ओर सूर्य आदिके द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशोंके बीचमें उनका विभाग करनेके लिये स्थित है ॥ ३४ ॥ मेरुसे लेकर मानसोत्तर पर्वततक जितना अन्तर है, उतनी ही भूमि शुद्धोदक समुद्रके उस ओर है। उसके आगे सुवर्णमयी भूमि है, जो दर्पणके समान स्वच्छ है। इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं मिलती, इसलिये वहाँ देवताओंके अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं रहता ॥ ३५ ॥ लोकालोकपर्वत सूर्य आदिसे प्रकाशित और अप्रकाशित भूभागोंके बीचमें है, इससे इसका यह नाम पड़ा है ॥ ३६ ॥ इसे परमात्माने त्रिलोकीके बाहर उसके चारों ओर सीमाके रूपमें स्थापित किया है। यह इतना ऊँचा और लंबा है कि इसके एक ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाली सूर्यसे लेकर ध्रुवपर्यन्त समस्त ज्योतिर्मण्डलकी किरणें दूसरी ओर नहीं जा सकतीं ॥ ३७ ॥

विद्वानोंने प्रमाण, लक्षण और स्थितिके अनुसार सम्पूर्ण लोकोंका इतना ही विस्तार बतलाया है। यह समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है। इसका चौथाई भाग (अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन विस्तारवाला) यह लोकालोकपर्वत है ॥ ३८ ॥ इसके ऊपर चारों दिशाओंमें समस्त संसारके गुरु स्वयम्भू श्रीब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित नामके चार गजराज नियुक्त किये हैं ॥ ३९ ॥ इन दिग्गजोंकी और अपने अंशस्वरूप इन्द्रादि लोकपालोंकी विविध शक्तियोंकी वृद्धि तथा समस्त लोकोंके कल्याणके लिये परम ऐश्वर्यके अधिपति सर्वान्तर्यामी परम पुरुष श्रीहरि अपने विष्वक्सेन आदि पार्षदोंके सहित इस पर्वतपर सब ओर विराजते हैं। वे अपने विशुद्ध सत्त्व (श्रीविग्रह) को जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि आठ महासिद्धियोंसे सम्पन्न है, धारण किये हुए हैं। उनके करकमलोंमें शङ्ख-चक्रादि आयुध सुशोभित हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार अपनी योगमायासे रचे हुए विविध लोकोंकी व्यवस्थाको सुरक्षित रखनेके लिये वे इसी लीलामय रूपसे कल्पके अन्ततक वहाँ सब ओर रहते हैं ॥ ४१ ॥ लोकालोकके अन्तर्वर्ती भूभागका जितना विस्तार है, उसीसे उसके दूसरी ओरके अलोक प्रदेशके परिमाणकी भी व्याख्या

समझ लेनी चाहिये। उसके आगे तो केवल योगेश्वरोंकी ही ठीक-ठीक गति हो सकती है ॥ ४२ ॥

राजन्! स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें जो ब्रह्माण्डका केन्द्र है, वहीं सूर्यकी स्थिति है। सूर्य और ब्रह्माण्डगोलकके बीचमें सब ओरसे पचीस करोड़ योजनका अन्तर है ॥ ४३ ॥ सूर्य इस मृत अर्थात् मरे हुए (अचेतन) अण्डमें वैराजरूपसे विराजते हैं, इसीसे इनका नाम 'मार्त्तण्ड' हुआ है। ये हिरण्मय (ज्योतिर्मय) ब्रह्माण्डसे प्रकट हुए हैं, इसलिये इन्हें 'हिरण्यगर्भ' भी कहते हैं ॥ ४४ ॥ सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक (अन्तरिक्षलोक), भूर्लोक, स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाग होता है ॥ ४५ ॥ सूर्य ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप और लता-वृक्षादि समस्त जीवसमूहोंके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं ॥ ४६ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

सूर्यके रथ और उसकी गतिका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! परिमाण और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इतना ही विस्तार है, सो हमने तुम्हें बता दिया ॥ १ ॥ इसीके अनुसार विद्वान्लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना-मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूलोकके परिमाणसे ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके बीचमें अन्तरिक्षलोक है। यह इन दोनोंका सन्धिस्थान है ॥ २ ॥ इसके मध्यभागमें स्थित ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् नामवाली क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे चलते हुए समयानुसार मकरादि राशियोंमें ऊँचे-नीचे और समान स्थानोंमें जाकर दिन-रातको बड़ा, छोटा या समान करते हैं ॥ ३ ॥ जब सूर्यभगवान् मेष या तुलाराशिपर आते हैं, तब दिन-रात समान हो जाते हैं; जब वृषादि पाँच राशियोंमें चलते हैं, तब प्रतिमास रात्रियोंमें एक-एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाबसे दिन बढ़ते जाते हैं ॥ ४ ॥ जब वृश्चिकादि पाँच राशियोंमें चलते हैं, तब दिन और रात्रियोंमें इसके विपरीत परिवर्तन होता है ॥ ५ ॥ इस प्रकार दक्षिणायन आरम्भ होनेतक दिन बढ़ते रहते हैं और उत्तरायण लगनेतक रात्रियाँ ॥ ६ ॥

इस प्रकार पण्डितजन मानसोत्तर पर्वतपर सूर्यकी परिक्रमाका मार्ग नौ करोड़, इक्यावन लाख योजन बताते हैं। उस पर्वतपर मेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानी, दक्षिणमें यमराजकी संयमनी, पश्चिममें वरुणकी निम्लोचनी और उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरी नामकी पुरियाँ हैं। इन पुरियोंमें मेरुके चारों ओर समय-समयपर सूर्योदय, मध्याह्न, सायङ्काल और अर्धरात्रि होते रहते हैं; इन्हींके कारण सम्पूर्ण जीवोंकी प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है ॥ ७ ॥ राजन्! जो लोग सुमेरुपर रहते हैं उन्हें तो सूर्यदेव सदा मध्याह्नकालीन रहकर ही तपाते रहते हैं। वे अपनी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायीं ओर रखकर चलते हैं, तो भी सारे ज्योतिर्मण्डलको घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवह वायुद्वारा घुमा दिये जानेसे वे उसे दायीं ओर रखकर चलते जान पड़ते हैं ॥ ८ ॥ जिस पुरीमें सूर्यभगवान्का उदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त होते मालूम होंगे और जहाँ वे लोगोंको पसीने-पसीने करके तपा रहे होंगे, उसके ठीक सामनेकी ओर आधी रात होनेके कारण वे उन्हें निद्रावश किये होंगे। जिन लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख रहे होंगे, वे ही जब सूर्य सौम्यदिशामें पहुँच जायँ, तब उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे ॥ ९ ॥

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तब पंद्रह घड़ीमें वे सवा दो करोड़ और

साढ़े बारह लाख योजनसे कुछ—पचीस हजार योजन—अधिक चलते हैं ॥ १० ॥ फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी पुरियोंको पार करके पुनः इन्द्रकी पुरीमें पहुँचते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमें अन्य नक्षत्रोंके साथ-साथ उदित और अस्त होते रहते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्त्तमें चौंतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे चलता हुआ इन चारों पुरियोंमें घूमता रहता है ॥ १२ ॥

इसका संवत्सर नामका एक चक्र (पहिया) बतलाया जाता है । उसमें मासरूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियाँ (हाल) हैं, तीन चौमासेरूप तीन नाभि (आँवन) हैं । इस रथकी धुरीका एक सिरा मेरुपर्वतकी चोटीपर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर । इसमें लगा हुआ यह पहिया कोल्हूके पहियेके समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है ॥ १३ ॥ इस धुरीमें—जिसका मूल भाग जुड़ा हुआ है, ऐसी एक धुरी और है । वह लंबाईमें इससे चौथाई है । उसका ऊपरी भाग तैलयन्त्रके धुरेके समान ध्रुवलोकसे लगा हुआ है ॥ १४ ॥

इस रथमें बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौड़ा है । इसका जूआ भी छत्तीस लाख योजन ही लंबा है । उसमें अरुण नामके सारथिने गायत्री आदि छन्दोंके-से नामवाले सात घोड़े जोत रक्खे हैं, वे ही इस रथपर बैठे हुए भगवान् सूर्यको ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्यदेवके आगे उन्हींकी ओर मुँह करके बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं ॥ १६ ॥ भगवान् सूर्यके आगे अँगूठेके पोरुएके बराबर आकारवाले बालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्वस्तिवाचनके लिये नियुक्त हैं । वे उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥ १७ ॥ इनके अतिरिक्त ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता भी—जो कुल मिलाकर चौदह हैं, किन्तु जोड़ेसे रहनेके कारण सात गण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नामोंवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोंसे प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करनेवाले आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी दो-दो मिलकर उपासना करते हैं ॥ १८ ॥ इस प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डलके नौ करोड़, इक्यावन लाख योजन लंबे घेरेमेंसे प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी दूरी पार कर लेते हैं ॥ १९ ॥

बाईसवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गतिका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! आपने जो कहा कि यद्यपि भगवान् सूर्य राशियोंकी ओर जाते समय मेरु और ध्रुवको दायीं ओर रखकर चलते मालूम होते हैं, किन्तु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं होती—इस विषयको हम किस प्रकार समझें ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् ! जैसे कुम्हारके घूमते हुए चाकपर बैठकर उसके साथ घूमती हुई चींटी आदिकी अपनी गति उससे भिन्न ही है क्योंकि वह भिन्न-भिन्न समयमें उस चक्रके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरुको दायें रखकर घूमनेवाले सूर्य आदि ग्रहोंकी गति वास्तवमें उससे भिन्न ही है; क्योंकि वे कालभेदसे भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देख पड़ते हैं ॥ २ ॥ वेद और विद्वान् लोग भी जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण और कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह कालको बारह मासोंमें विभक्त कर वसन्तादि छः ऋतुओंमें उनके यथायोग्य गुणोंका विधान करते हैं ॥ ३ ॥ इस लोकमें वर्णाश्रमधर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मोंसे इन्द्रादि देवताओंके रूपमें और योगके साधनोंसे अन्तर्यामीरूपमें उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना

करके सुगमतासे ही परम पद प्राप्त कर सकते हैं ॥४॥ भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके आत्मा हैं । वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह मासोंको भोगते हैं, जो संवत्सरके अवयव हैं और मेष आदि राशियों-के नामसे प्रसिद्ध हैं । इनमेंसे प्रत्येक मास चन्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण दो पक्षका, पितृमानसे एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका बताया जाता है । जितने कालमें सूर्यदेव इस संवत्सरका छठा भाग भोगते हैं, उसका वह अवयव 'ऋतु' कहा जाता है ॥ ५ ॥ आकाशमें भगवान् सूर्यका जितना मार्ग है, उसका आधा वे जितने समयमें पार कर लेते हैं, उसे एक 'अयन' कहते हैं ॥ ६ ॥ तथा जितने समय-में वे अपनी मन्द, तीव्र और समान गतिसे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके सहित पूरे आकाशका चक्कर लगा जाते हैं, उसे अवान्तर भेदसे संवत्सर, परिवत्सर, इडा-वत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं ॥ ७ ॥

इसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है । उसकी चाल बहुत तेज है, इस-लिये वह सब नक्षत्रोंसे आगे रहता है । यह सूर्यके एक वर्षके मार्गको एक मासमें, एक मासके मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके मार्गको एक ही दिनमें तै कर लेता है ॥ ८ ॥ यह कृष्णपक्षमें क्षीण होती हुई कलाओंसे पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई कलाओंसे देवताओंके दिन-रातका विभाग करता है तथा तीस-तीस मुहूर्तोंमें एक-एक नक्षत्रको पार करता है । अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण यही समस्त जीवोंका प्राण और जीवन है ॥ ९ ॥ ये जो सोलह कलाओंसे युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप भगवान् चन्द्रमा हैं—ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करते हैं; इसलिये इन्हें 'सर्वमय' कहते हैं ॥ १० ॥

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभिजित्के सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं । भगवान्ने इन्हें कालचक्र-में नियुक्त कर रक्खा है, अतः ये मेरुको दायीं ओर रखकर घूमते रहते हैं ॥ ११ ॥ इनसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखायी देता है । यह सूर्यकी शीघ्र, मन्द और समान गतियोंके अनुसार उन्हींके समान कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलता है । यह वर्षा करनेवाला ग्रह है, इसलिये लोकोंको प्रायः सर्वदा ही अनुकूल रहता है । इसकी गतिसे ऐसा अनुमान होता है कि यह वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देता है ॥ १२ ॥

शुक्रकी गतिके साथ-साथ बुधकी भी व्याख्या हो गयी—शुक्रके अनुसार ही बुधकी गति भी समझ लेनी चाहिये । यह चन्द्रमाका पुत्र शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर है । यह प्रायः मङ्गलकारी ही है; किन्तु जब सूर्यकी गतिका उल्लङ्घन करके चलता है, तब बहुत अधिक आँधी, बादल और सूखेके भयकी सूचना देता है ॥ १३ ॥ इससे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल है । वह, यदि वक्रगतिसे न चले तो, एक-एक राशि-को तीन-तीन पक्षमें भोगता हुआ बारहों राशियोंको पार करता है । यह अशुभ ग्रह है और प्रायः अमङ्गलका सूचक है ॥ १४ ॥ इसके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर भगवान् बृहस्पतिजी हैं । ये यदि वक्रगतिसे न चलें, तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं । ये प्रायः ब्राह्मणकुलके लिये अनु-कूल रहते हैं ॥ १५ ॥

बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर दिखायी देते हैं । ये तीस-तीस महीनेतक एक-एक राशिमें रहते हैं । अतः इन्हें सब राशियोंको पार करनेमें तीस वर्ष लग जाते हैं । ये प्रायः सभीके लिये अशान्ति-कारक हैं ॥ १६ ॥ इनके ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यपादि सप्तर्षि दिखायी देते हैं । ये सब लोकोंकी मङ्गल-कामना करते हुए भगवान् विष्णुके परम पद ध्रुवलोककी प्रदक्षिणा किया करते हैं ॥ १७ ॥

तेईसवाँ अध्याय

शिशुमारचक्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! सप्तर्षियोंसे तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान् विष्णुका परम पद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र परम भगवद्भक्त ध्रुवजी विराजमान हैं। अग्नि, इन्द्र, प्रजापति कश्यप और धर्म—ये सब एक साथ अत्यन्त आदरपूर्वक इनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। अब भी कल्पपर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हींके आधार स्थित हैं। इनका इस लोकका प्रभाव हम पहले (चौथे स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं ॥ १ ॥ सदा जागते रहनेवाले अव्यक्तगति भगवान् कालके द्वारा जो ग्रह-नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर घुमाये जाते हैं, भगवान्‌ने ध्रुवलोकको ही उन सबके आधारस्तम्भरूपसे नियुक्त किया है। अतः यह एक ही स्थानमें रहकर सदा प्रकाशित होता है ॥ २ ॥

जिस प्रकार दाँय चलानेके समय अनाजको खूँदनेवाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रस्सीमें बँधकर क्रमशः निकट, दूर और मध्यमें रहकर खंभेके चारों ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सारे नक्षत्र और ग्रहगण बाहर-भीतरके क्रमसे इस कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवलोकका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके अन्ततक घूमते रहते हैं। जिस प्रकार मेघ और बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुषके संयोगवश अपने-अपने कर्मोंके अनुसार चक्कर काटते रहते हैं, पृथ्वीपर नहीं गिरते ॥ ३ ॥

कोई-कोई पुरुष भगवान्‌की योगमायाके आधारपर स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमार (सूँस) के रूपमें वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥ यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसकी पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित है। पूँछके मध्यभागमें प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता हैं। इसके कटिप्रदेशमें सप्तर्षि हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओरको सिकुड़कर कुण्डली मारे हुए है। ऐसी स्थितिमें अभिजित्‌से लेकर पुनर्वसु-पर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने भागमें हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराषाढ़ापर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र हैं, वे बायें भागमें हैं। लोकमें भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तब उसके दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है; उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामें भी समानता है। इसकी पीठमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमें आकाश-गङ्गा है ॥ ५ ॥ राजन् ! इसके दाहिने और बायें कटितटोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं तथा दाहिने और बायें नथुनोंमें क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढ़ा हैं। इसी प्रकार दाहिने और बायें नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढ़ा एवं दाहिने और बायें कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायनके आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और विपरीत क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं ॥ ६ ॥ इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोडीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोंमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, ककुद्‌में बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं ॥ ७ ॥

राजन् ! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायङ्कालके समय पवित्र और मौन होकर दर्शन करते हुए चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—'सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्र-

स्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका हम नमस्कारपूर्वक ध्यान करते हैं' ॥ ८ ॥ ग्रह, नक्षत्र और ताराओंके रूपमें भगवान्‌का आधिदैविकरूप प्रकाशित हो रहा है; वह तीनों समय उपर्युक्त मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषोंके पाप नष्ट कर देता है। जो पुरुष प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों काल उनके इ… आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और वन्द… करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत न… हो जाते हैं ॥ ९ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

राहु आदिकी स्थिति अतलादि नीचेके लोकोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुछ लोगोंका कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान घूमता है। इसने भगवान्‌की कृपासे ही देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है, स्वयं यह सिंहिका-पुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे ॥ १ ॥ सूर्यका जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है और राहुका तेरह हजार योजन। अमृतपानके समय राहु देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आकर बैठ गया था, उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इसका भेद खोल दिया था; उस वैरको याद करके यह अमावास्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है ॥ २ ॥ यह देखकर भगवान्‌ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने प्रिय आयुध सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया है। वह निरन्तर घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह्य तेजसे उद्विग्न और चकितचित्त होकर मुहूर्तमात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही लोग 'ग्रहण' कहते हैं ॥ ३ ॥

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं ॥ ४ ॥ उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, अन्तरिक्ष लोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है ॥ ५ ॥ उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँतक हंस, गिद्ध, बाज और गरुड आदि प्रधान प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहींतक इसकी सीमा है ॥ ६ ॥ पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो हो ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूगर्भस्थित बिल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई-चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन ही है ॥ ७ ॥ ये भूमिके बिल भी एक प्रकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक विषयभोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तान-सुख और धन-सम्पत्ति है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडास्थलोंमें दैत्य, दानव और नाग तरह-तरहकी मायामयी क्रीडाएँ करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्यधर्मका पालन करनेवाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगोंमें बाधा डालनेकी इन्द्रादिमें भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ८ ॥ महाराज! इन बिलोंमें मायावी मयदानवकी बनायी हुई अनेकों पुरियाँ शोभासे जगमगा रही हैं, जो अनेक जातिकी सुन्दर-सुन्दर श्रेष्ठ मणियोंसे रचे हुए चित्र-विचित्र भवन, परकोटे, नगरद्वार, सभाभवन, मन्दिर, बड़े-बड़े आँगन और गृहोंसे सुशोभित हैं; तथा जिनकी कृत्रिम भूमियों (फर्शों) पर नाग और असुरोंके जोड़े एवं कबूतर, तोता और मैना आदि पक्षी किलोल करते रहते हैं, ऐसे पाताताधिपतियोंके भव्य भवन उन पुरियोंकी शोभा बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥ वहाँके बगीचे भी अपनी शोभासे देवलोकके उद्यानोंकी

शोभाको मात करते हैं। उनमें अनेकों वृक्ष हैं, जिनकी सुन्दर डालियाँ फल-फूलोंके गुच्छों और कोमल कोंपलोंके भारसे झुकी रहती हैं तथा जिन्हें तरह-तरहकी लताओंने अपने अङ्गपाशसे बाँध रक्खा है। वहाँ जो निर्मल जलसे भरे हुए अनेकों जलाशय हैं, उनमें विविध विहंगोंके जोड़े विलास करते रहते हैं। इन वृक्षों और जलाशयोंकी सुषमासे वे उद्यान बड़ी शोभा पा रहे हैं। उन जलाशयोंमें रहनेवाली मछलियाँ जब खिलवाड़ करती हुई उछलती हैं, तब उनका जल हिल उठता है। साथ ही जलके ऊपर उगे हुए कमल, कुमुद, कुवलय, कह्लार, नीलकमल, लालकमल और शतपत्र कमल आदिके समुदाय भी हिलने लगते हैं। इन कमलोंके वनोंमें रहनेवाले पक्षी अविराम क्रीडा-कौतुक करते हुए भाँति-भाँतिकी बड़ी मीठी बोली बोलते रहते हैं, जिसे सुनकर मन और इन्द्रियोंको बड़ा ही आह्लाद होता है। उस समय समस्त इन्द्रियोंमें उत्सव-सा छा जाता है ॥ १० ॥ वहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं जाता, इसलिये दिन-रात आदि कालविभागका भी कोई खटका नहीं देखा जाता ॥ ११ ॥ वहाँके सम्पूर्ण अन्धकारको बड़े-बड़े नागोंके मस्तकोंकी मणियाँ ही दूर करती हैं ॥ १२ ॥ इन लोकोंके निवासी जिन ओषधि, रस, रसायन, अन्न, पान और स्नानादिका सेवन करते हैं, वे सभी पदार्थ दिव्य होते हैं; इन दिव्य वस्तुओंके सेवनसे उन्हें मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते। तथा झुर्रियाँ पड़ जाना, बाल पक जाना, बुढ़ापा आ जाना, देहका कान्तिहीन हो जाना, शरीरमेंसे दुर्गन्ध आना, पसीना चूना, थकावट अथवा शिथिलता आना तथा आयुके साथ शरीरकी अवस्थाओंका बदलना—ये कोई विकार नहीं होते। वे सदा सुन्दर, स्वस्थ, जवान और शक्तिसम्पन्न रहते हैं ॥ १३ ॥ उन पुण्य-पुरुषोंकी भगवान्के तेजरूप सुदर्शन चक्रके सिवा और किसी साधनसे मृत्यु नहीं हो सकती ॥ १४ ॥ सुदर्शन चक्रके तो आते ही भयके कारण असुररमणियोंका गर्भस्राव और गर्भपात* हो जाता है ॥ १५ ॥

अतल लोकमें मयदानवका पुत्र असुर बल रहता है। उसने छियानवे प्रकारकी माया रची है। उनमेंसे कोई-कोई आज भी मायावी पुरुषोंमें पायी जाती हैं। उसने एक बार जँभाई ली थी, उस समय उसके मुखसे स्वैरिणी (केवल अपने वर्णके पुरुषोंसे रमण करनेवाली), कामिनी (अन्य वर्णोंके पुरुषोंसे भी समागम करनेवाली) और पुंश्चली (अत्यन्त चञ्चल स्वभाववाली)—तीन प्रकारकी स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। ये उस लोकमें रहनेवाले पुरुषोंको हाटक नामका रस पिलाकर सम्भोग करनेमें समर्थ बना लेती हैं। और फिर उनके साथ अपनी हाव-भावमयी चितवन, प्रेममयी मुसकान, प्रेमालाप और आलिङ्गनादिके द्वारा यथेष्ट रमण करती हैं। उस हाटक-रसको पीकर मनुष्य मदान्ध-सा हो जाता है और अपनेको दस हजार हाथियोंके समान बलवान् समझकर 'मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ' इस प्रकार बढ़-बढ़कर बातें करने लगता है ॥ १६ ॥

उसके नीचे वितल लोकमें भगवान् हाटकेश्वर नामक महादेवजी अपने पार्षद भूतगणोंके सहित रहते हैं। वे प्रजापतिकी सृष्टिकी वृद्धिके लिये भवानीके साथ विहार करते रहते हैं। उन दोनोंके तेजसे वहाँ हाटकी नामकी एक श्रेष्ठ नदी निकली है। उसके जलको वायुसे प्रज्वलित अग्नि बड़े उत्साहसे पीता है। वह जो हाटक नामका सोना थूकता है, उससे बने हुए आभूषणोंको दैत्यराजोंके अन्तःपुरोंमें स्त्री-पुरुष सभी धारण करते हैं ॥ १७ ॥

वितलके नीचे सुतल लोक है। उसमें महायशस्वी पवित्रकीर्ति विरोचनपुत्र बलि रहते हैं। भगवान्ने इन्द्रका प्रिय करनेके लिये अदितिके गर्भसे वटु-वामन-रूपमें अवतीर्ण होकर उनसे तीनों लोक छीन लिये थे। फिर भगवान्की कृपासे ही उनका इस लोकमें प्रवेश हुआ। यहाँ उन्हें जैसी उत्कृष्ट सम्पत्ति मिली हुई है, वैसी इन्द्रादिके पास भी नहीं है। अतः वे उन्हीं पूज्यतम प्रभुकी अपने धर्माचरणद्वारा आराधना करते हुए

* 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः' अर्थात् चौथे मासतक जो गर्भ गिरता है, उसे 'गर्भस्राव' कहते हैं तथा पाँचवें और छठे मासमें गिरनेसे वह 'गर्भपात' कहलाता है।

यहाँ आज भी निर्भयतापूर्वक रहते हैं ॥ १८ ॥ राजन्! सम्पूर्ण जीवोंके नियन्ता एवं आत्मस्वरूप परमात्मा भगवान् वासुदेव-जैसे पूज्यतम, पवित्रतम पात्रके आनेपर उन्हें परम श्रद्धा और आदरके साथ स्थिर चित्तसे दिये हुए भूमिदानका यही कोई मुख्य फल नहीं है कि बलिको सुतल लोकका ऐश्वर्य प्राप्त हो गया। यह ऐश्वर्य तो अनित्य है। किन्तु वह भूमिदान तो साक्षात् मोक्षका ही द्वार है ॥ १९ ॥ भगवान्‌का तो छींकने, गिरने और फिसलनेके समय विवश होकर एक बार नाम लेनेसे भी मनुष्य सहसा कर्म-बन्धनको काट देता है, जब कि मुमुक्षुलोग इस कर्मबन्धनको योगसाधन आदि अन्य अनेकों उपायोंका आश्रय लेनेपर बड़े कष्टसे कहीं काट पाते हैं ॥ २० ॥ अतएव अपने संयमी भक्त और ज्ञानियोंको स्वस्वरूप प्रदान करनेवाले और समस्त प्राणियोंके आत्मा श्रीभगवान्‌को आत्मभावसे किये हुए भूमिदानका यह फल नहीं हो सकता ॥ २१ ॥ भगवान्‌ने यदि बलिको उसके सर्वस्वदानके बदले अपनी विस्मृति करानेवाला यह मायामय भोग और ऐश्वर्य ही दिया तो उन्होंने उसपर यह कोई अनुग्रह नहीं किया ॥ २२ ॥ जिस समय कोई और उपाय न देखकर भगवान्‌ने याचनाके छलसे उसका त्रिलोकीका राज्य छीन लिया और उसके पास केवल उसका शरीरमात्र ही शेष रहने दिया, तब वरुणके पाशोंमें बाँधकर पर्वतकी गुफामें डाल दिये जानेपर उसने कहा था ॥ २३ ॥ 'खेद है, यह ऐश्वर्यशाली इन्द्र विद्वान् होकर भी अपना सच्चा स्वार्थ सिद्ध करनेमें कुशल नहीं है। इसने सम्मति लेनेके लिये अनन्यभावसे बृहस्पतिजीको अपना मन्त्री बनाया; फिर भी उनकी अवहेलना करके इसने श्रीविष्णुभगवान्‌से उनका दास्य न माँगकर उनके द्वारा मुझसे अपने लिये ये भोग ही माँगे। ये तीन लोक तो केवल एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं, जो अनन्त कालका एक अवयवमात्र है। भगवान्‌के कैङ्कर्यके आगे भला, इन तुच्छ भोगोंका क्या मूल्य है ॥ २४ ॥ हमारे पितामह प्रह्लादजीने—भगवान्‌के हाथों अपने पिता हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर—प्रभुकी सेवाका ही वर माँगा था। भगवान् देना भी चाहते थे, तो भी उनसे दूर करनेवाला समझकर उन्होंने अपने पिताका निष्कण्टक राज्य लेना स्वीकार नहीं किया ॥ २५ ॥ वे बड़े महानुभाव थे। मुझपर तो न भगवान्‌की कृपा ही है और न मेरी वासनाएँ ही शान्त हुई हैं; फिर मेरे-जैसा कौन पुरुष उनके पास पहुँचनेका साहस कर सकता है?' ॥ २६ ॥ राजन्! इस बलिका चरित हम आगे (अष्टम स्कन्धमें) विस्तारसे कहेंगे। अपने भक्तोंके प्रति भगवान्‌का हृदय दयासे भरा रहता है। इसीसे अखिल जगत्‌के परम पूजनीय गुरु भगवान् नारायण हाथमें गदा लिये सुतल लोकमें राजा बलिके द्वारपर सदा उपस्थित रहते हैं। एक बार जब दिग्विजय करता हुआ घमंडी रावण वहाँ पहुँचा, तब उसे भगवान्‌ने अपने पैरके अँगूठेकी ठोकरसे ही लाखों योजन दूर फेंक दिया था ॥ २७ ॥

सुतललोकसे नीचे तलातल है। वहाँ त्रिपुराधिपति दानवराज मय रहता है। पहले तीनों लोकोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये भगवान् शङ्करने उसके तीनों पुर भस्म कर दिये थे। फिर उन्हींकी कृपासे उसे यह स्थान मिला। वह मायावियोंका परम गुरु है और महादेवजीके द्वारा सुरक्षित है, इसलिये उसे सुदर्शन चक्रसे भी कोई भय नहीं है। वहाँके निवासी उसका बहुत आदर करते हैं ॥ २८ ॥

उसके नीचे महातलमें कद्रूसे उत्पन्न हुए अनेक सिरोंवाले सर्पोंका क्रोधवश नामका एक समुदाय रहता है। उनमें कुहक, तक्षक, कालिय और सुषेण आदि प्रधान हैं। उनके बड़े-बड़े फन हैं। वे सदा भगवान्‌के वाहन पक्षिराज गरुडजीसे डरते रहते हैं; तो भी कभी-कभी अपने स्त्री, पुत्र, मित्र और कुटुम्बके सङ्गसे प्रमत्त होकर विहार करने लगते हैं ॥ २९ ॥

उसके नीचे रसातलमें पणि नामके दैत्य और दानव रहते हैं। ये निवातकवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी भी कहलाते हैं। इनका देवताओंसे विरोध है। ये जन्मसे ही बड़े बलवान् और महान् साहसी होते हैं। किन्तु जिनका प्रभाव सम्पूर्ण लोकोंमें फैला हुआ है, उन श्रीहरिके तेजसे बलाभिमान चूर्ण हो जानेके कारण ये सर्पोंके समान छुक-छिपकर रहते हैं तथा इन्द्रकी दूती

सरमाके कहे हुए मन्त्रवर्णरूप* वाक्यके कारण सर्वदा इन्द्रसे डरते रहते हैं ॥ ३० ॥

रसातलके नीचे पाताल है। वहाँ शङ्ख, कुलिक, महाशङ्ख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शङ्खचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त आदि बड़े क्रोधी और बड़े-बड़े फनोंवाले नाग रहते हैं। इनमें वासुकि प्रधान है। उनमेंसे किसीके पाँच, किसीके सात, किसीके दस, किसीके सौ और किसीके हजार सिर हैं। उनके फनोंकी दमकती हुई मणियाँ अपने प्रकाशसे पाताललोक-का सारा अन्धकार नष्ट कर देती हैं ॥ ३१ ॥

पचीसवाँ अध्याय

श्रीसङ्कर्षणदेवका विवरण और स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! पाताललोकके नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर अनन्त नामसे विख्यात भगवान्‌की तामसी नित्य कला है। यह अहङ्काररूपा होनेसे द्रष्टा और दृश्यको खींचकर एक कर देती है, इसलिये पाञ्चरात्र आगमके अनुयायी भक्तजन इसे 'सङ्कर्षण' कहते हैं ॥ १ ॥ इन भगवान् अनन्तके एक हजार मस्तक हैं। उनमेंसे एकपर रक्खा हुआ यह सारा भूमण्डल सरसोंके दानेके समान दिखायी देता है ॥२॥ प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जब इन्हें इस विश्वका उपसंहार करनेकी इच्छा होती है, तब इनकी क्रोधवश घूमती हुई मनोहर भ्रुकुटियोंके मध्यभागसे सङ्कर्षण नामक रुद्र प्रकट होते हैं। उनकी व्यूहसंख्या ग्यारह है। वे सभी तीन नेत्रोंवाले होते हैं और हाथमें तीन नोकोंवाले शूल लिये रहते हैं ॥ ३ ॥ भगवान् सङ्कर्षणके चरण-कमलोंके गोल-गोल स्वच्छ और अरुणवर्ण नख मणियोंकी पङ्क्तिके समान देदीप्यमान हैं। जब अन्य प्रधान-प्रधान भक्तोंके सहित अनेकों नागराज अनन्य भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम करते हैं, तब उन्हें उन नखमणियोंमें अपने कुण्डलकान्तिमण्डित कमनीय कपोलोंवाले मनोहर मुखार-विन्दोंकी मनमोहिनी झाँकी होती है और उनका मन आनन्दसे भर जाता है ॥ ४ ॥ अनेकों नागराजोंकी कन्याएँ विविध कामनाओंसे उनके अङ्गमण्डलपर चाँदीके खम्भोंके समान सुशोभित उनकी वलयविलसित लंबी-लंबी श्वेतवर्ण सुन्दर भुजाओंपर अरगजा, चन्दन और कुङ्कुमपङ्कका लेप करती हैं। उस समय अङ्गस्पर्शसे मथित हुए उनके हृदयमें कामका सञ्चार हो जाता है। तब वे उनके मदविह्वल सकरुण अरुण नयनकमलोंसे सुशोभित तथा प्रेममदसे मुदित मुखारविन्दकी ओर मधुर मनोहर मुसकानके साथ सलज्ज भावसे निहारने लगती हैं ॥ ५ ॥ वे अनन्त गुणोंके सागर आदिदेव भगवान् अनन्त अपने अमर्ष (असहनशीलता) और रोषके वेगको रोके हुए वहाँ समस्त लोकोंके कल्याणके लिये विराजमान हैं ॥ ६ ॥

देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनिगण भगवान् अनन्तका ध्यान किया करते हैं। उनके नेत्र निरन्तर प्रेममदसे मुदित, चञ्चल और विह्वल रहते हैं। वे सुललित वचनामृतसे अपने पार्षद और देवयूथपों-को सन्तुष्ट करते रहते हैं। उनके अङ्गपर नीलाम्बर और कानोंमें केवल एक कुण्डल जगमगाता रहता है तथा उनका सुभग और सुन्दर हाथ हलकी मूठपर रक्खा रहता है। वे उदारलीलामय भगवान् सङ्कर्षण गलेमें वैजयन्ती माला धारण किये रहते हैं, जो साक्षात् इन्द्रके हाथी ऐरावतके गलेमें पड़ी हुई सुवर्णकी शृङ्खलाके समान जान पड़ती है। जिसकी कान्ति कभी फीकी नहीं पड़ती, ऐसी नवीन तुलसीकी गन्ध और मधुर मकरन्दसे उन्मत्त हुए भौंरे निरन्तर मधुर गुंजार करके उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं ॥ ७ ॥

* एक कथा आती है कि जब पणि नामक दैत्योंने पृथ्वीको रसातलमें छिपा लिया, तब इन्द्रने उसे ढूँढ़नेके लिये सरमा नामकी एक दूतीको भेजा था। सरमासे दैत्योंने सन्धि करनी चाही, परन्तु सरमाने सन्धि न करके इन्द्रकी स्तुति करते हुए कहा था—'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्' (हे पणिगण! तुम इन्द्रके हाथसे मरकर पृथ्वीपर सो जाओ।) इसी वाक्यके कारण उन्हें सदा इन्द्रका डर लगा रहता है।

परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् अनन्त माहात्म्यश्रवण और ध्यान करनेसे मुमुक्षुओंके हृदयमें आविर्भूत होकर उनकी अनादिकालीन कर्मवासनाओंसे ग्रथित सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक अविद्यामयी हृदयग्रन्थिको तत्काल काट डालते हैं। उनके गुणोंका एक बार ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् नारदने तुम्बुरु गन्धर्वके साथ ब्रह्माजीकी सभामें इस प्रकार गान किया था—॥ ८ ॥

जिनकी दृष्टि पड़नेसे ही जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि प्राकृत गुण अपने-अपने कार्यमें समर्थ होते हैं, जिनका स्वरूप ध्रुव (अनन्त) और अकृत (अनादि) है तथा जो अकेले होते हुए ही इस नानात्मक प्रपञ्चको अपनेमें धारण किये हुए हैं—उन भगवान् सङ्कर्षणके तत्त्वको कोई कैसे जान सकता है ॥ ९ ॥ जिनमें यह कार्य-कारणरूप सारा प्रपञ्च भास रहा है तथा अपने निजजनोंका चित्त आकर्षित करनेके लिये की हुई जिनकी वीरतापूर्ण लीलाको परम पराक्रमी सिंहने आदर्श मानकर अपनाया है, उन उदारवीर्य सङ्कर्षण भगवान्‌ने हमपर बड़ी कृपा करके यह विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप धारण किया है ॥१०॥ जिनके सुने-सुनाये नामका कोई पीड़ित अथवा पतित पुरुष अकस्मात् अथवा हँसीमें भी उच्चारण कर लेता है तो वह पुरुष दूसरे मनुष्योंके भी सारे पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है—ऐसे शेषभगवान्‌को छोड़कर मुमुक्षु पुरुष और किसका आश्रय ले सकता है ? ॥ ११ ॥ यह पर्वत, नदी और समुद्रादिसे पूर्ण सम्पूर्ण भूमण्डल उन सहस्रशीर्षा भगवान्‌के एक मस्तकपर एक रज:कणके समान रक्खा हुआ है। वे अनन्त हैं, इसलिये उनके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। किसीके हजार जीभें हों, तो भी उन सर्वव्यापक भगवान्‌के पराक्रमोंकी गणना करनेका साहस वह कैसे कर सकता है ? ॥१२॥ वास्तवमें उनके वीर्य, अतिशय गुण और प्रभाव असीम हैं। ऐसे प्रभावशाली भगवान् अनन्त रसातलके मूलमें अपनी ही महिमामें स्थित स्वतन्त्र हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये लीलासे ही पृथ्वीको धारण किये हुए हैं॥१३॥

राजन्! भोगोंकी कामनावाले पुरुषोंकी अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली भगवान्‌की रची हुई ये ही गतियाँ हैं। इन्हें जिस प्रकार मैंने गुरुमुखसे सुना था, उसी प्रकार तुम्हें सुना दिया ॥ १४ ॥ मनुष्यको प्रवृत्तिरूप धर्मके परिणाममें प्राप्त होनेवाली जो परस्पर विलक्षण ऊँची-नीची गतियाँ हैं, वे इतनी ही हैं; इन्हें तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सुना दिया। अब बताओ, और क्या सुनाऊँ ? ॥ १५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नरकोंकी विभिन्न गतियोंका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—महर्षे! लोगोंको जो ये ऊँची-नीची गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नता क्यों है ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! कर्म करनेवाले पुरुष सात्त्विक, राजस और तामस—तीन प्रकारके होते हैं तथा उनकी श्रद्धाओंमें भी भेद रहता है। इस प्रकार स्वभाव और श्रद्धाके भेदसे उनके कर्मोंकी गतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं और न्यूनाधिकरूपमें ये सभी गतियाँ सभी कर्ताओंको प्राप्त होती हैं ॥ २ ॥ इसी प्रकार निषिद्ध कर्मरूप पाप करनेवालोंको भी, उनकी श्रद्धाकी असमानताके कारण, समान फल नहीं मिलता। अत: अनादि अविद्याके वशीभूत होकर कामनापूर्वक किये हुए उन निषिद्ध कर्मोंके परिणाममें जो हजारों तरहकी नारकी गतियाँ होती हैं, उनका विस्तारसे वर्णन करेंगे ॥ ३ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आप जिनका वर्णन करना चाहते हैं, वे नरक इसी पृथ्वीके कोई देशविशेष हैं अथवा त्रिलोकीसे बाहर या इसीके भीतर किसी जगह हैं ? ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! वे त्रिलोकीके भीतर ही हैं तथा दक्षिणकी ओर पृथ्वीसे नीचे जलके ऊपर स्थित हैं। इसी दिशामें अग्निष्वात्त आदि पितृगण रहते

हैं, वे अत्यन्त एकाग्रतापूर्वक अपने वंशधरोंके लिये मङ्गलकामना किया करते हैं ॥ ५ ॥ उस नरकलोकमें सूर्यके पुत्र पितृराज भगवान् यम अपने सेवकोंके सहित रहते हैं तथा भगवान्की आज्ञाका उल्लङ्घन न करते हुए, अपने दूतोंद्वारा वहाँ लाये हुए मृत प्राणियोंको उनके दुष्कर्मोंके अनुसार पापका फल दण्ड देते हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! कोई-कोई लोग नरकोंकी संख्या इक्कीस बताते हैं । अब हम नाम, रूप और लक्षणोंके अनुसार उनका क्रमशः वर्णन करते हैं । उनके नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान । इनके सिवा क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख—ये सात और मिलाकर कुल अट्ठाईस नरक तरह-तरहकी यातनाओंको भोगनेके स्थान हैं ॥७॥

जो पुरुष दूसरोंके धन, सन्तान अथवा स्त्रियोंका हरण करता है, उसे अत्यन्त भयानक यमदूत कालपाशमें बाँधकर बलात्कारसे तामिस्र नरकमें गिरा देते हैं । उस अन्धकारमय नरकमें उसे अन्न-जल न देना, डंडे लगाना और भय दिखलाना आदि अनेक प्रकारके उपायोंसे पीड़ित किया जाता है । इससे अत्यन्त दुखी होकर वह एकाएक मूर्च्छित हो जाता है ॥ ८ ॥ इसी प्रकार जो पुरुष किसी दूसरेको धोखा देकर उसकी स्त्री आदिको भोगता है, वह अन्धतामिस्र नरकमें पड़ता है । वहाँकी यातनाओंमें पड़कर वह, जड़से कटे हुए वृक्षके समान, वेदनाके मारे सारी सुध-बुध खो बैठता है और उसे कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। इसीसे इस नरकको अन्धतामिस्र कहते हैं ॥ ९ ॥

जो पुरुष इस लोकमें 'यह शरीर ही मैं हूँ और ये स्त्री-धनादि मेरे हैं' ऐसी बुद्धिसे दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करके निरन्तर अपने कुटुम्बके ही पालन-पोषणमें लगा रहता है, वह अपना शरीर छोड़नेपर अपने पापके कारण स्वयं ही रौरव नरकमें गिरता है ॥ १० ॥ इस लोकमें उसने जिन जीवोंको जिस प्रकार कष्ट पहुँचाया होता है, परलोकमें यमयातनाका समय आनेपर वे जीव 'रुरु' होकर उसे उसी प्रकार कष्ट पहुँचाते हैं । इसीलिये इस नरकका नाम 'रौरव' है । 'रुरु' सर्पसे भी अधिक क्रूर स्वभाववाले एक जीवका नाम है ॥ ११ ॥ ऐसा ही महारौरव नरक है । इसमें वह व्यक्ति जाता है, जो और किसीकी परवा न कर केवल अपने ही शरीरका पालन-पोषण करता है । वहाँ कच्चा मांस खानेवाले रुरु इसे मांसके लोभसे काटते हैं ॥ १२ ॥

जो क्रूर मनुष्य इस लोकमें अपना पेट पालनेके लिये जीवित पशु या पक्षियोंको राँधता है, उस हृदयहीन, राक्षसोंसे भी गये-बीते पुरुषको यमदूत कुम्भीपाक नरकमें ले जाकर खौलते हुए तेलमें राँधते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य इस लोकमें माता-पिता, ब्राह्मण और वेदसे विरोध करता है, उसे यमदूत कालसूत्र नरकमें ले जाते हैं । इसका घेरा दस हजार योजन है । इसकी भूमि ताँबेकी है । इसमें जो तपा हुआ मैदान है, वह ऊपरसे सूर्य और नीचेसे अग्निके दाहसे जलता रहता है । वहाँ पहुँचाया हुआ पापी जीव भूख-प्याससे व्याकुल हो जाता है और उसका शरीर बाहर-भीतरसे जलने लगता है । उसकी बेचैनी यहाँतक बढ़ती है कि वह कभी बैठता है, कभी लेटता है, कभी छटपटाने लगता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है । इस प्रकार उस नर-पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षतक उसकी यह दुर्गति होती रहती है ॥ १४ ॥

जो पुरुष किसी प्रकारकी आपत्ति न आनेपर भी अपने वैदिक मार्गको छोड़कर अन्य पाखण्डपूर्ण धर्मोंका आश्रय लेता है, उसे यमदूत असिपत्रवन नरकमें ले जाकर कोड़ोंसे पीटते हैं । जब मारसे बचनेके लिये वह इधर-उधर दौड़ने लगता है, तब उसके सारे अङ्ग तालवनके तलवारके समान पैने पत्तोंसे, जिनमें दोनों ओर धारें होती हैं, टूक-टूक होने लगते हैं । तब वह अत्यन्त वेदनासे 'हाय, मैं मरा!' इस प्रकार चिल्लाता हुआ पद-पदपर मूर्च्छित होकर गिरने लगता है । अपने धर्म-

को छोड़कर पाखण्डमार्गमें चलनेसे उसे इस प्रकार अपने कुकर्मका फल भोगना पड़ता है ॥ १५ ॥

इस लोकमें जो पुरुष राजा या राजकर्मचारी होकर किसी निरपराध मनुष्यको दण्ड देता है अथवा ब्राह्मणको शरीरदण्ड देता है,-वह महापापी मरकर सूकरमुख नरकमें गिरता है। वहाँ जब महाबली यमदूत उसके अङ्गोंको कुचलते हैं, तब वह कोल्हूमें पेरे जाते हुए गन्नोंके समान पीड़ित होकर, जिस प्रकार इस लोकमें उसके द्वारा सताये हुए निरपराध प्राणी रोते-चिल्लाते थे, उसी प्रकार कभी आर्त्त स्वरसे चिल्लाता और कभी मूर्च्छित हो जाता है ॥ १६ ॥

जो पुरुष इस लोकमें खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह उनसे द्रोह करनेके कारण अन्धकूप नरकमें गिरता है। क्योंकि स्वयं भगवान्‌ने ही रक्तपानादि उनकी वृत्ति बना दी है और उन्हें उसके कारण दूसरोंको कष्ट पहुँचनेका ज्ञान भी नहीं है; किन्तु मनुष्यकी वृत्ति भगवान्‌ने विधि-निषेधपूर्वक बनायी है और उसे दूसरोंके कष्टका ज्ञान भी है। वहाँ वे पशु, मृग, पक्षी, साँप आदि रेंगनेवाले जन्तु, मच्छर, जूँ, खटमल और मक्खी आदि जीव—जिनसे उसने द्रोह किया था—उसे सब ओरसे काटते हैं। इससे उसकी निद्रा और शान्ति भङ्ग हो जाती है और स्थान न मिलनेपर भी वह बेचैनीके कारण उस घोर अन्धकारमें इस प्रकार भटकता रहता है जैसे रोगग्रस्त शरीरमें जीव छटपटाया करता है ॥ १७ ॥

जो मनुष्य इस लोकमें बिना पञ्चमहायज्ञ किये तथा जो कुछ मिले, उसे बिना किसी दूसरेको दिये स्वयं ही खा लेता है, उसे कौएके समान कहा गया है। वह परलोकमें कृमिभोजन नामक निकृष्ट नरकमें गिरता है। वहाँ एक लाख योजन लंबा-चौड़ा एक कीड़ोंका कुण्ड है। उसीमें उसे भी कीड़ा बनकर रहना पड़ता है और जबतक अपने पापोंका प्रायश्चित्त न करनेवाले उस पापीके—बिना दिये और बिना हवन किये खानेके—दोषका अच्छी तरह शोधन नहीं हो जाता, तबतक वह उसीमें पड़ा-पड़ा कष्ट भोगता रहता है। वहाँ कीड़े उसे नोचते हैं और वह कीड़ोंको खाता है ॥ १८ ॥

राजन्! इस लोकमें जो व्यक्ति चोरी या बरजोरीसे ब्राह्मणके अथवा आपत्तिका समय न होनेपर भी किसी दूसरे पुरुषके सुवर्ण और रत्नादिका हरण करता है, उसे मरनेपर यमदूत सन्दंश नामक नरकमें ले जाकर तपाये हुए लोहेके गोलोंसे दागते हैं और सँड़सीसे उसकी खाल नोचते हैं ॥ १९ ॥ इस लोकमें यदि कोई पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुषसे व्यभिचार करती है, तो यमदूत उसे तप्तसूर्मि नामक नरकमें ले जाकर कोड़ोंसे पीटते हैं तथा पुरुषको तपाये हुए लोहेकी स्त्री-मूर्तिसे और स्त्रीको तपायी हुई पुरुष-प्रतिमासे आलिङ्गन कराते हैं ॥ २० ॥ जो पुरुष इस लोकमें पशु आदि सभीके साथ व्यभिचार करता है, उसे मृत्युके बाद यमदूत वज्रकण्टकशाल्मली नरकमें गिराते हैं और वज्रके समान कठोर काँटोंवाले सेमरके वृक्षपर चढ़ाकर फिर नीचेकी ओर खींचते हैं ॥ २१ ॥

जो राजा या राजपुरुष इस लोकमें श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर भी धर्मकी मर्यादाका उच्छेद करते हैं, वे उस मर्यादातिक्रमणके कारण मरनेपर वैतरणी नदीमें पटके जाते हैं। यह नदी नरकोंकी खाईके समान है; उसमें मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मांस और मज्जा आदि गंदी चीजें भरी हुई हैं। वहाँ गिरनेपर उन्हें इधर-उधरसे जलके जीव नोचते हैं। किन्तु इससे उनका शरीर नहीं छूटता, पापके कारण प्राण उसे वहन किये रहते हैं और वे उस दुर्गतिको अपनी करनीका फल समझकर मन-ही-मन सन्तप्त होते रहते हैं ॥ २२ ॥ जो लोग शौच और आचारके नियमोंका परित्याग कर तथा लज्जाको तिलाञ्जलि देकर इस लोकमें शूद्राओंके साथ सम्बन्ध गाँठकर पशुओंके समान आचरण करते हैं, वे भी मरनेके बाद पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ और मलसे भरे हुए पूयोद नामक समुद्रमें गिरकर उन अत्यन्त घृणित वस्तुओंको ही खाते हैं ॥ २३ ॥ इस लोकमें जो ब्राह्मणादि उच्च वर्णके लोग कुत्ते या गधे पालते और शिकार आदिमें लगे रहते हैं तथा शास्त्रके विपरीत पशुओंका वध करते हैं, मरनेके पश्चात् वे प्राणरोध नरकमें डाले जाते हैं और वहाँ यमदूत उन्हें लक्ष्य बनाकर बाणोंसे बींधते हैं ॥ २४ ॥

जो पाखण्डीलोग पाखण्डपूर्ण यज्ञोंमें पशुओंका वध करते हैं, उन्हें परलोकमें वैशस (विशसन) नरकमें डालकर वहाँके अधिकारी बहुत पीड़ा देकर काटते हैं ॥ २५ ॥ जो द्विज कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्याको वीर्यपान कराता है, उस पापीको मरनेके बाद यमदूत वीर्यकी नदी (लालभक्ष नामक नरक) में डालकर वीर्य पिलाते हैं ॥ २६ ॥ जो कोई चोर अथवा राजा या राजपुरुष इस लोकमें किसीके घरमें आग लगा देते हैं, किसीको विष दे देते हैं अथवा गाँवों या व्यापारियोंकी टोलियोंको लूट लेते हैं, उन्हें मरनेके पश्चात् सारमेयादन नामक नरकमें वज्रकी-सी दाढ़ोंवाले सात सौ बीस यमदूत कुत्ते बनकर बड़े वेगसे काटने लगते हैं ॥ २७ ॥ इस लोकमें जो पुरुष किसीकी गवाही देनेमें, व्यापारमें अथवा दानके समय किसी भी तरह झूठ बोलता है, वह मरनेपर आधार-शून्य अवीचिमान् नरकमें पड़ता है । वहाँ उसे सौ योजन ऊँचे पहाड़के शिखरसे नीचेको सिर करके गिराया जाता है । उस नरककी पत्थरकी भूमि जलके समान जान पड़ती है । इसीलिये इसका नाम अवीचिमान् है । वहाँ गिराये जानेसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जानेपर भी प्राण नहीं निकलते, इसलिये इसे बार-बार ऊपर ले जाकर पटका जाता है ॥ २८ ॥

जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा व्रतमें स्थित और कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमपान* करता है, उन्हें यमदूत अयःपान नामके नरकमें ले जाते हैं और उनकी छातीपर पैर रखकर उनके मुँहमें आगसे गलाया हुआ लोहा डालते हैं ॥ २९ ॥ जो पुरुष इस लोकमें निम्न श्रेणीका होकर भी अपनेको बड़ा माननेके कारण जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण या आश्रम-में अपनेसे बड़ोंका विशेष सत्कार नहीं करता, वह जीता हुआ भी मरेके ही समान है । उसे मरनेपर क्षार-कर्दम नामके नरकमें नीचेको सिर करके गिराया जाता है और वहाँ उसे अनन्त पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं ॥ ३० ॥

जो पुरुष इस लोकमें नरमेधादिके द्वारा भैरव, यक्ष, राक्षस आदिका यजन करते हैं और जो स्त्रियाँ पशुओंके समान पुरुषोंको खा जाती हैं, उन्हें वे पशुओंकी तरह मारे हुए पुरुष यमलोकमें राक्षस होकर तरह-तरहकी यातनाएँ देते हैं और रक्षोगणभोजन नामक नरकमें कसाइयोंके समान कुल्हाड़ीसे काट-काटकर उसका लोहू पीते हैं । तथा जिस प्रकार वे मांसभोजी पुरुष इस लोकमें उनका मांस भक्षण करके आनन्दित होते थे, उसी प्रकार वे भी उनका रक्तपान करते और आनन्दित होकर नाचते-गाते हैं ॥ ३१ ॥ इस लोकमें जो लोग वन या गाँवके निरपराध जीवोंको—जो सभी अपने प्राणोंको रखना चाहते हैं—तरह-तरहके उपायोंसे फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और फिर उन्हें काँटेसे बेधकर या रस्सीसे बाँधकर खिलवाड़ करते हुए तरह-तरहकी पीड़ाएँ देते हैं, उन्हें भी मरनेके पश्चात् यमयातनाओंके समय शूलप्रोत नामक नरकमें शूलोंसे बेधा जाता है । उस समय जब उन्हें भूख-प्यास सताती है और कङ्क, बटेर आदि तीखी चोंचोंवाले नरकके भयानक पक्षी नोचने लगते हैं, तब अपने किये हुए सारे पाप याद आ जाते हैं ॥ ३२ ॥

राजन् ! इस लोकमें जो सर्पोंके समान उग्रस्वभाव पुरुष दूसरे जीवोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरनेपर दन्दशूक नामके नरकमें गिरते हैं । वहाँ पाँच-पाँच, सात-सात मुँहवाले सर्प उनके समीप आकर उन्हें चूहोंकी तरह निगल जाते हैं ॥ ३३ ॥ जो व्यक्ति यहाँ दूसरे प्राणियोंको अँधेरी खत्तियों, कोठों या गुफाओंमें डाल देते हैं, उन्हें परलोकमें यमदूत वैसे ही स्थानोंमें डालकर विषैली आगके धूएँमें घोंटते हैं । इसीलिये इस नरकको अवटनिरोधन कहते हैं ॥ ३४ ॥ जो गृहस्थ अपने घर आये अतिथि-अभ्यागतोंकी ओर बार-बार क्रोधमें भरकर ऐसी कुटिल दृष्टिसे देखता है मानो उन्हें भस्म कर देगा, वह जब नरकमें जाता है, तब उस पापदृष्टिके नेत्रोंको गिद्ध, कङ्क, काक और बटेर आदि वज्रकी-सी कठोर चोंचोंवाले पक्षी बलात्कारसे निकाल लेते हैं । इस नरकको पर्यावर्तन कहते हैं ॥ ३५ ॥

इस लोकमें जो व्यक्ति अपनेको बड़ा धनवान् समझकर अभिमानवश सबको टेढ़ी नजरसे देखता है और समीपर सन्देह रखता है, धनके व्यय और नाशकी चिन्ता-

* क्षत्रियों एवं वैश्योंके लिये शास्त्रमें सोमपानका निषेध है।

से जिसके हृदय और मुँह सूखे रहते हैं, अतः तनिक भी चैन न मानकर जो यक्षके समान धनकी रक्षामें ही लगा रहता है तथा पैसा पैदा करने, बढ़ाने और बचानेमें जो तरह-तरहके पाप करता रहता है, वह नराधम मरनेपर सूचीमुख नरकमें गिरता है। वहाँ उस अर्थपिशाच पापात्माके सारे अङ्गोंको यमराजके दूत दर्जियोंके समान सूई-धागेसे सीते हैं ॥ ३६ ॥

राजन्! यमलोकमें इसी प्रकारके सैकड़ों-हजारों नरक हैं। उनमें जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है और जिनके विषयमें कुछ नहीं कहा गया, उन सभीमें सब अधर्मपरायण जीव अपने कर्मोंके अनुसार बारी-बारीसे जाते हैं। इसी प्रकार धर्मात्मा पुरुष स्वर्गादिमें जाते हैं। इस प्रकार नरक और स्वर्गके भोगसे जब इनके अधिकांश पाप और पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तब बाकी बचे हुए पुण्यपापरूप कर्मोंको लेकर ये फिर इसी लोकमें जन्म लेनेके लिये लौट आते हैं ॥ ३७ ॥

इन धर्म और अधर्म दोनोंसे विलक्षण जो निवृत्तिमार्ग है, उसका तो पहले (द्वितीय स्कन्धमें) ही वर्णन हो चुका है। पुराणोंमें जिसका चौदह भुवनके रूपमें वर्णन किया गया है, वह ब्रह्माण्डकोश इतना ही है। यह साक्षात् परम पुरुष श्रीनारायणका अपनी मायाके गुणोंसे युक्त अत्यन्त स्थूल स्वरूप है। इसका वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया। परमात्मा भगवान्‌का उपनिषदोंमें वर्णित निर्गुण स्वरूप यद्यपि मन-बुद्धिकी पहुँचके बाहर है तो भी जो पुरुष इस स्थूल रूपका वर्णन आदरपूर्वक पढ़ता, सुनता या सुनाता है, उसकी बुद्धि श्रद्धा और भक्तिके कारण शुद्ध हो जाती है और वह उस सूक्ष्म रूपका भी अनुभव कर सकता है ॥ ३८ ॥

यतिको चाहिये कि भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारके रूपोंका श्रवण करके पहले स्थूल रूपमें चित्तको स्थिर करे, फिर धीरे-धीरे वहाँसे हटाकर उसे सूक्ष्ममें लगा दे ॥ ३९ ॥ परीक्षित्! मैंने तुमसे पृथ्वी, उसके अन्तर्गत द्वीप, वर्ष, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिर्गण और लोकोंकी स्थितिका वर्णन किया। यही भगवान्‌का अति अद्भुत स्थूल रूप है, जो समस्त जीवसमुदायका आश्रय है ॥ ४० ॥

पञ्चम स्कन्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्
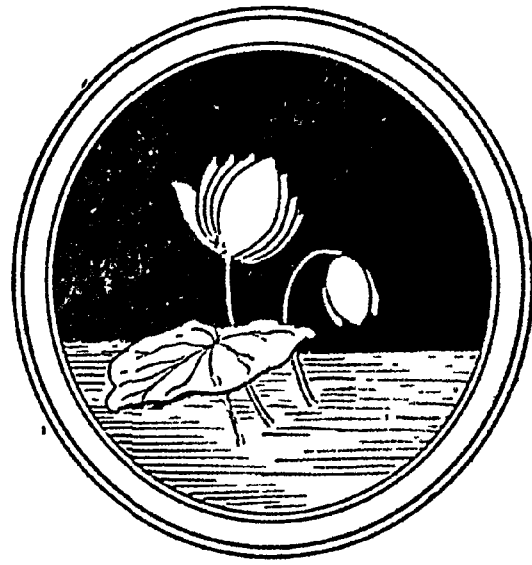
श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

षष्ठ स्कन्ध

वन्दे गोविन्ददेवस्य नाम नारायणं सदा।
अबुद्धयापि यदुच्चार्य मुक्तः पापोऽप्यजामिलः॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

षष्ठ स्कन्ध

पहला अध्याय

अजामिलोपाख्यानका प्रारम्भ

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्‌ ! आप पहले (द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्गका वर्णन कर चुके हैं तथा यह बतला चुके हैं कि उसके द्वारा अर्चिरादि मार्गसे जीव क्रमशः ब्रह्मलोकमें पहुँचता है और फिर ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥ मुनिवर ! इसके सिवा आपने उस प्रवृत्तिमार्गका भी (तृतीय स्कन्धमें) भलीभाँति वर्णन किया है, जिससे त्रिगुणमय स्वर्ग आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है और प्रकृतिका सम्बन्ध न छूटनेके कारण जीवोंको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें आना पड़ता है ॥ २ ॥ आपने यह भी बतलाया कि अधर्म करनेसे अनेक नरकोंकी प्राप्ति होती है और (पाँचवें स्कन्धमें) उनका विस्तारसे वर्णन भी किया। (चौथे स्कन्धमें) आपने उस प्रथम मन्वन्तरका वर्णन किया, जिसके अधिपति स्वायम्भुव मनु थे ॥ ३ ॥ साथ ही (चौथे और पाँचवें स्कन्धोंमें) प्रियव्रत और उत्तानपादके वंशों तथा चरित्रोंका एवं द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, उद्यान और विभिन्न द्वीपोंके वृक्षोंका भी निरूपण किया ॥४॥ भूमण्डलकी स्थिति, उसके द्वीप-वर्षादि विभाग, उनके लक्षण तथा परिमाण, नक्षत्रोंकी स्थिति, अतल-वितल आदि भू-विवर (सात पाताल) और भगवान्‌ने इन सबकी जिस प्रकार सृष्टि की—उसका वर्णन भी सुनाया ॥ ५ ॥ महाभाग ! अब मैं वह उपाय जानना चाहता हूँ, जिसके अनुष्ठानसे मनुष्योंको अनेकानेक भयङ्कर यातनाओंसे पूर्ण नरकोंमें न जाना पड़े। आप कृपा करके उसका उपदेश कीजिये ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे पाप करता है। यदि वह उन पापोंका इसी जन्ममें प्रायश्चित्त न कर ले, तो मरनेके बाद उसे अवश्य ही उन भयङ्कर यातनापूर्ण नरकोंमें जाना पड़ता है, जिनका वर्णन मैंने तुम्हें (पाँचवें स्कन्धके अन्तमें) सुनाया है ॥ ७ ॥ इसलिये बड़ी सावधानी और सजगताके साथ रोग एवं मृत्युके पहले ही शीघ्र-से-शीघ्र पापोंकी गुरुता और लघुतापर विचार करके उनका प्रायश्चित्त कर डालना चाहिये, जैसे मर्मज्ञ चिकित्सक रोगोंका कारण और उनकी गुरुता-लघुता जानकर झटपट उनकी चिकित्सा कर डालता है ॥८॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्‌ ! मनुष्य राजदण्ड, समाजदण्ड आदि लौकिक और शास्त्रोक्त नरकगमन आदि पारलौकिक कष्टोंसे, यह जानकर भी कि पाप उसका शत्रु है, पापवासनाओंसे विवश होकर बार-बार वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उसके पापोंका प्रायश्चित्त कैसे सम्भव है ? ॥ ९ ॥ मनुष्य कभी तो प्रायश्चित्त आदिके द्वारा पापोंसे छुटकारा पा लेता है, कभी फिर उन्हें ही करने लगता है। ऐसी स्थितिमें मैं समझता हूँ कि जैसे स्नान करनेके बाद धूल डाल लेनेके कारण हाथीका स्नान व्यर्थ हो जाता है, वैसे ही मनुष्यका प्रायश्चित्त करना भी व्यर्थ ही है ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—वस्तुतः कर्मके द्वारा ही कर्मका निर्बीज नाश नहीं होता; क्योंकि कर्मका अधिकारी अज्ञानी है। अज्ञान रहते पापवासनाएँ सर्वथा नहीं मिट सकतीं। इसलिये सच्चा प्रायश्चित्त

तो तत्त्वज्ञान ही है ॥ ११ ॥ जो पुरुष केवल सुपथ्यका ही सेवन करता है, उसे रोग अपने वशमें नहीं कर सकते। वैसे ही परीक्षित्! जो पुरुष नियमोंका पालन करता है, वह धीरे-धीरे पाप-वासनाओंसे मुक्त हो कल्याणप्रद तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ होता है ॥ १२ ॥ जैसे बाँसोंके झुरमुटमें लगी आग बाँसोंको जला डालती है—वैसे ही धर्मज्ञ और श्रद्धावान् धीर पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियदमन, मनकी स्थिरता, दान, सत्य, बाहर-भीतरकी पवित्रता तथा यम एवं नियम—इन नौ साधनोंसे मन, वाणी और शरीरद्वारा किये गये बड़े-से-बड़े पापोंको भी नष्ट कर देते हैं ॥ १३-१४ ॥ भगवान्‌की शरणमें रहनेवाले भक्त-जन, जो विरले ही होते हैं, केवल भक्तिके द्वारा अपने सारे पापोंको उसी प्रकार भस्म कर देते हैं, जैसे सूर्य कुहरेको ॥ १५ ॥ परीक्षित्! पापी पुरुषकी जैसी शुद्धि भगवान्‌को आत्मसमर्पण करनेसे और उनके भक्तोंका सेवन करनेसे होती है, वैसी तपस्या आदिके द्वारा नहीं होती ॥ १६ ॥ जगत्‌में यह भक्तिका पंथ ही सर्वश्रेष्ठ, भयरहित और कल्याणस्वरूप है; क्योंकि इस मार्गपर भगवत्परायण, सुशील साधुजन चलते हैं ॥ १७ ॥ परीक्षित्! जैसे शराबसे भरे घड़ेको नदियाँ पवित्र नहीं कर सकतीं, वैसे ही बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बार-बार किये जानेपर भी भगवद्विमुख मनुष्यको पवित्र करनेमें असमर्थ हैं ॥ १८ ॥ जिन्होंने अपने भगवद्गुणानुरागी मन-मधुकरको भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्द-मकरन्दका एक बार पान करा दिया, उन्होंने सारे प्रायश्चित्त कर लिये। वे स्वप्नमें भी यमराज और उनके पाशधारी दूतोंको नहीं देखते। फिर नरककी तो बात ही क्या है ॥ १९ ॥

परीक्षित्! इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। उसमें भगवान् विष्णु और यमराजके दूतोंका संवाद है। तुम मुझसे उसे सुनो ॥ २० ॥ कान्यकुब्ज नगर (कन्नौज) में एक दासीपति ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था अजामिल। दासीके संसर्गसे दूषित होनेके कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था ॥ २१ ॥ वह पतित कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जूएके छलसे हरा देता, किसीका धन धोखा-धड़ीसे ले लेता तो किसीका चुरा लेता। इस प्रकार अत्यन्त निन्दनीय वृत्तिका आश्रय लेकर वह अपने कुटुम्बका पेट भरता था और दूसरे प्राणियोंको बहुत ही सताता था ॥ २२ ॥ परीक्षित्! इसी प्रकार वह वहाँ रहकर दासीके बच्चोंका लालन-पालन करता रहा। इस प्रकार उसकी आयुका बहुत बड़ा भाग—अठासी वर्ष—बीत गया ॥ २३ ॥ बूढ़े अजामिलके दस पुत्र थे। उनमें सबसे छोटेका नाम था 'नारायण'। मा-बाप उससे बहुत प्यार करते थे ॥ २४ ॥ वृद्ध अजामिलने अत्यन्त मोहके कारण अपना सम्पूर्ण हृदय अपने बच्चे नारायणको सौंप दिया था। वह अपने बच्चेकी तोतली बोली सुन-सुनकर तथा बालसुलभ खेल देख-देखकर फूला नहीं समाता था ॥ २५ ॥ अजामिल बालकके स्नेह-बन्धनमें बँध गया था। जब वह खाता तब उसे भी खिलाता, जब पानी पीता तो उसे भी पिलाता। इस प्रकार वह अतिशय मूढ़ हो गया था, उसे इस बातका पता ही न चला कि मृत्यु मेरे सिरपर आ पहुँची है ॥ २६ ॥

वह मूर्ख इसी प्रकार अपना जीवन बिता रहा था कि मृत्युका समय आ पहुँचा। अब वह अपने पुत्र बालक नारायणके सम्बन्धमें ही सोचने-विचारने लगा ॥ २७ ॥ इतनेमें ही अजामिलने देखा कि उसे ले जानेके लिये अत्यन्त भयावने तीन यमदूत आये हैं। उनके हाथोंमें फाँसी है, मुँह टेढ़े-टेढ़े हैं और शरीरके रोएँ खड़े हुए हैं ॥ २८ ॥ उस समय बालक नारायण वहाँसे कुछ दूरीपर खेल रहा था। यमदूतोंको देखकर अजामिल अत्यन्त व्याकुल हो गया और उसने बहुत ऊँचे स्वरसे पुकारा—'नारायण!' ॥ २९ ॥ भगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी भगवान् नारायणका नाम ले रहा है, उनके नामका कीर्तन कर रहा है; अतः वे बड़े वेगसे झटपट वहाँ आ पहुँचे ॥ ३० ॥ उस समय यमराजके दूत दासीपति अजामिलके शरीरमेंसे उसके सूक्ष्मशरीरको खींच रहे थे। विष्णुदूतोंने उन्हें बलपूर्वक रोक दिया ॥ ३१ ॥ उनके रोकनेपर यमराजके दूतोंने उनसे कहा—'अरे, धर्मराजकी आज्ञाका निषेध करनेवाले तुमलोग हो कौन? ॥ ३२ ॥ तुम किसके दूत हो, कहाँसे आये हो और इसे ले जानेसे हमें क्यों रोक रहे हो? क्या तुमलोग

यमदूत अजामिलके सूक्ष्म शरीरको खींच रहे थे, विष्णुदूतोंने उन्हें बलपूर्वक रोक दिया । [पृष्ठ ३३४

कोई देवता, उपदेवता अथवा सिद्धश्रेष्ठ हो ? ॥ ३३ ॥ हम देखते हैं कि तुम सब लोगोंके नेत्र कमलदलके समान कोमलतासे भरे हैं, तुम पीले-पीले रेशमी वस्त्र पहने हो, तुम्हारे सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और गलोंमें कमलके हार लहरा रहे हैं ॥ ३४ ॥ सबकी नयी अवस्था है, सुन्दर-सुन्दर चार-चार भुजाएँ हैं, सभीके करकमलोंमें धनुष, तरकस, तलवार, गदा, शङ्ख, चक्र, कमल आदि सुशोभित हैं ॥ ३५ ॥ तुमलोगोंकी अङ्गकान्तिसे दिशाओंका अन्धकार और प्राकृत प्रकाश भी दूर हो रहा है। हम धर्मराजके सेवक हैं। हमें तुमलोग क्यों रोक रहे हो ?' ॥३६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित् ! जब यमदूतोंने इस प्रकार कहा, तब भगवान् नारायणके आज्ञाकारी पार्षदोंने हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनके प्रति यों कहा ॥ ३७ ॥

भगवान्के पार्षदोंने कहा-यमदूतो ! यदि तुमलोग सचमुच धर्मराजके आज्ञाकारी हो तो हमें धर्मका लक्षण और धर्मका तत्त्व सुनाओ ॥ ३८ ॥ दण्ड किस प्रकार दिया जाता है ? दण्डका पात्र कौन है ? मनुष्योंमें सभी पापाचारी दण्डनीय हैं अथवा उनमेंसे कुछ ही ? ॥ ३९ ॥

यमदूतोंने कहा-वेदोंने जिन कर्मोंका विधान किया है, वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान्के स्वरूप हैं। वे उनके स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास एवं स्वयंप्रकाश ज्ञान हैं—ऐसा हमने सुना है ॥ ४० ॥ जगत्के रजोमय, सत्त्वमय और तमोमय—सभी पदार्थ, सभी प्राणी अपने परम आश्रय भगवान्में ही स्थित रहते हैं। वेद ही उनके गुण, नाम, कर्म और रूप आदिके अनुसार उनका यथोचित विभाजन करते हैं ॥ ४१ ॥ जीव शरीर अथवा मनोवृत्तियोंसे जितने कर्म करता है, उसके साक्षी रहते हैं—सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म ॥ ४२ ॥ इनके द्वारा अधर्मका पता चल जाता है और तब दण्डके पात्रका निर्णय होता है। पाप कर्म करनेवाले सभी मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार दण्डनीय होते हैं ॥ ४३ ॥ निष्पाप पुरुषो ! जो प्राणी कर्म करते हैं, उनका गुणोंसे सम्बन्ध रहता ही है। इसीलिये सभीसे कुछ पाप और कुछ पुण्य होते ही हैं। और देहवान् होकर कोई भी पुरुष कर्म किये बिना रह ही नहीं सकता ॥ ४४ ॥ इस लोकमें जो मनुष्य जिस प्रकारका और जितना अधर्म या धर्म करता है, वह परलोकमें उसका उतना और वैसा ही फल भोगता है ॥ ४५ ॥ देवशिरोमणियो ! सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके भेदके कारण इस लोकमें भी तीन प्रकारके प्राणी दीख पड़ते हैं—पुण्यात्मा, पापात्मा और पुण्य-पाप दोनोंसे युक्त, अथवा सुखी, दुखी और सुख-दुःख दोनोंसे युक्त; वैसे ही परलोकमें भी उनकी त्रिविधताका अनुमान किया जाता है ॥ ४६ ॥ वर्तमान समय ही भूत और भविष्यका अनुमान करा देता है। वैसे ही वर्तमान जन्मके पाप-पुण्य भी भूत और भविष्य जन्मोंके पाप-पुण्यका अनुमान करा देते हैं ॥ ४७ ॥ हमारे स्वामी अजन्मा भगवान् सर्वज्ञ यमराज सबके अन्तःकरणोंमें ही विराजमान हैं। इसलिये वे अपने मनसे ही सबके पूर्वरूपोंको देख लेते हैं। वे साथ ही उनके भावी स्वरूपका भी विचार कर लेते हैं ॥ ४८ ॥ जैसे सोया हुआ अज्ञानी पुरुष स्वप्नके समय प्रतीत हो रहे कल्पित शरीरको ही अपना वास्तविक शरीर समझता है, सोये हुए अथवा जागनेवाले शरीरको भूल जाता है, वैसे ही जीव भी अपने पूर्वजन्मोंकी याद भूल जाता है और वर्तमान शरीरके सिवा पहले और पिछले शरीरोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता ॥ ४९ ॥ सिद्धपुरुषो ! जीव इस शरीरमें पाँच कर्मेन्द्रियोंसे लेना-देना, चलना-फिरना आदि काम करता है, पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे रूप, रस आदि पाँच विषयोंका अनुभव करता है और सोलहवें मनके साथ सत्रहवाँ वह स्वयं मिलकर अकेले ही मन, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय—इन तीनोंके विषयोंको भोगता है ॥ ५० ॥ जीवका यह सोलह कला और सत्त्वादि तीन गुणोंवाला लिङ्गशरीर अनादि है। यही जीवको बार-बार हर्ष, शोक, भय और पीड़ा देनेवाले जन्म-मृत्युके चक्करमें डालता है ॥ ५१ ॥ जो जीव

अज्ञानवश काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसे इच्छा न रहते हुए भी विभिन्न वासनाओंके अनुसार अनेकों कर्म करने पड़ते हैं। वैसी स्थितिमें वह रेशमके कीड़ेके समान अपनेको कर्मके जालमें जकड़ लेता है और इस प्रकार अपने हाथों मोहका शिकार बन जाता है ॥ ५२ ॥ कोई शरीरधारी जीव बिना कर्म किये कभी एक क्षण भी नहीं रह सकता। प्रत्येक प्राणीके स्वाभाविक गुण बलपूर्वक विवश करके उससे कर्म कराते हैं ॥ ५३ ॥ जीव अपने पूर्वजन्मोंके पाप-पुण्यमय संस्कारोंके अनुसार स्थूल और सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है। उसकी स्वाभाविक एवं प्रबल वासनाएँ कभी उसे माताके-जैसा (स्त्रीरूप) बना देती हैं, तो कभी पिताके-जैसा (पुरुषरूप) ॥ ५४ ॥ प्रकृतिका संसर्ग होनेसे ही पुरुष अपनेको अपने वास्तविक स्वरूपके विपरीत लिङ्गशरीर मान बैठा है। यह विपर्यय भगवान्‌के भजनसे शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥ ५५ ॥

देवताओ ! आप जानते ही हैं कि यह अजामिल बड़ा शास्त्रज्ञ था। शील, सदाचार और सद्गुणोंका तो यह खजाना ही था। ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र भी था ॥ ५६ ॥ इसने गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की थी। अहङ्कार तो इसमें था ही नहीं। यह समस्त प्राणियोंका हित चाहता, उपकार करता, आवश्यकताके अनुसार ही बोलता और किसीके गुणोंमें दोष नहीं ढूँढ़ता था ॥ ५७ ॥ एक दिन यह ब्राह्मण अपने पिताके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल, समिधा तथा कुश लेकर घरके लिये लौटा ॥ ५८ ॥ लौटते समय इसने देखा कि एक भ्रष्ट शूद्र, जो बहुत कामी और निर्लज्ज है, शराब पीकर किसी वेश्याके साथ विहार कर रहा है। वेश्या भी शराब पीकर मतवाली हो रही है। नशेके कारण उसकी आँखें नाच रही हैं, वह अर्द्धनग्न अवस्थामें हो रही है। वह शूद्र उस वेश्याके साथ कभी गाता, कभी हँसता और कभी तरह-तरहकी चेष्टाएँ करके उसे प्रसन्न करता है ॥ ५९-६० ॥ निष्पाप पुरुषो ! शूद्रकी भुजाओंमें अङ्गरागादि कामोद्दीपक वस्तुएँ लगी हुई थीं और वह उनसे उस कुलटाका आलिङ्गन कर रहा था। अजामिल उन्हें इस अवस्थामें देखकर सहसा मोहित और कामके वश हो गया ॥ ६१ ॥ यद्यपि अजामिलने अपने धैर्य और ज्ञानके अनुसार अपने काम-वेगसे विचलित मनको रोकनेकी बहुत-बहुत चेष्टाएँ कीं, परन्तु पूरी शक्ति लगा देनेपर भी वह अपने मनको रोकनेमें असमर्थ रहा ॥ ६२ ॥ उस वेश्याको निमित्त बनाकर काम-पिशाचने अजामिलके मनको ग्रस लिया। इसकी सदाचार और शास्त्रसम्बन्धी चेतना नष्ट हो गयी। अब यह मन-ही-मन उसी वेश्याका चिन्तन करने लगा और अपने धर्मसे विमुख हो गया ॥ ६३ ॥ अजामिल सुन्दर-सुन्दर वस्त्र-आभूषण आदि वस्तुएँ, जिनसे वह प्रसन्न होती, ले आता। यहाँतक कि इसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति देकर भी उसी कुलटाको रिझाया। यह ब्राह्मण उसी प्रकारकी चेष्टा करता, जिससे वह वेश्या प्रसन्न हो ॥ ६४ ॥ उस स्वच्छन्दचारिणी कुलटाकी तिरछी चितवनने इसके मनको ऐसा लुभा लिया कि इसने अपनी कुलीन नवयुवती और विवाहिता पत्नीतकका परित्याग कर दिया ! इसके पापकी भी भला, कोई सीमा है ॥ ६५ ॥ यह कुबुद्धि न्यायसे, अन्यायसे जैसे भी जहाँ कहीं भी धन मिलता, वहींसे उठा लाता। उस वेश्याके बड़े कुटुम्बका पालन करनेमें ही यह व्यस्त रहता ॥ ६६ ॥ इस पापीने शास्त्राज्ञाका उल्लङ्घन करके स्वच्छन्द आचरण किया है। यह सत्पुरुषोंके द्वारा निन्दित है। इसने बहुत दिनोंतक वेश्याके मल-समान अपवित्र अन्नसे अपना जीवन व्यतीत किया है, इसका सारा जीवन ही पापमय है ॥ ६७ ॥ इसने अबतक अपने पापोंका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया है। इसलिये अब हम इस पापीको दण्डपाणि भगवान् यमराजके पास ले जायँगे। वहाँ यह अपने पापोंका दण्ड भोगकर शुद्ध हो जायगा ॥ ६८ ॥

दूसरा अध्याय

विष्णुदूतोंद्वारा भागवतधर्म-निरूपण और अजामिलका परमधामगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के नीति-निपुण एवं धर्मका मर्म जाननेवाले पार्षदोंने यमदूतोंका यह अभिभाषण सुनकर उनसे इस प्रकार कहा ॥ १ ॥

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—यमदूतो! यह बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है कि धर्मज्ञोंकी सभामें अधर्म प्रवेश कर रहा है। क्योंकि वहाँ निरपराध और अदण्डनीय व्यक्तियोंको व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है ॥ २ ॥ जो प्रजाके रक्षक हैं, शासक हैं, समदर्शी और परोपकारी हैं—यदि वे ही प्रजाके प्रति विषमता-का व्यवहार करने लगें तो फिर प्रजा किसकी शरण लेगी? ॥ ३ ॥ सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग भी वैसा ही करते हैं। वे अपने आचरणके द्वारा जिस कर्मको धर्मानुकूल प्रमाणित कर देते हैं, लोग उसीका अनुकरण करने लगते हैं ॥ ४ ॥ साधारण लोग पशुओंके समान धर्म और अधर्मका स्वरूप न जानकर किसी सत्पुरुषपर विश्वास कर लेते हैं, उसकी गोदमें सिर रखकर निर्भय और निश्चिन्त सो जाते हैं ॥ ५ ॥ वही दयालु सत्पुरुष, जो प्राणियोंका अत्यन्त विश्वासपात्र है और जिसे मित्रभावसे अपना हितैषी समझकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है, उन अज्ञानी जीवोंके साथ कैसे विश्वासघात कर सकता है? ॥ ६ ॥

यमदूतो! इसने कोटि-कोटि जन्मोंकी पाप-राशिका पूरा-पूरा प्रायश्चित्त कर लिया है। क्योंकि इसने विवश होकर ही सही, भगवान्‌के परम कल्याणमय (मोक्षप्रद) नामका उच्चारण तो किया है ॥ ७ ॥ जिस समय इसने 'नारायण' इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय केवल उतनेसे ही इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया ॥ ८ ॥ चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी, ऐसे लोगोंका संसर्गी; स्त्री, राजा, पिता और गायको मारने-वाला, चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो, सभीके लिये यही—इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि भग-वान्‌के नामोंका उच्चारण * किया जाय; क्योंकि भगवन्नामों-के उच्चारणसे मनुष्यकी बुद्धि भगवान्‌के गुण, लीला और स्वरूपमें रम जाती है और स्वयं भगवान्‌की उसके प्रति आत्मीयबुद्धि हो जाती है ॥ ९-१० ॥ बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषियोंने पापोंके बहुत-से प्रायश्चित्त—कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं; परन्तु उन प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी जड़से शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान्‌के नामोंका, उनसे गुम्फित पदोंका † उच्चारण करनेसे होती है। क्योंकि वे नाम पवित्रकीर्ति भगवान्‌के गुणोंका ज्ञान करानेवाले हैं ॥ ११ ॥ यदि प्रायश्चित्त करनेके बाद भी मन फिरसे कुमार्गमें—पापकी ओर दौड़े, तो वह चरम सीमाका—पूरा-पूरा प्रायश्चित्त नहीं है। इसलिये जो लोग ऐसा प्रायश्चित्त करना चाहें कि जिससे पापकर्मों और वासना-ओंकी जड़ ही उखड़ जाय, उन्हें भगवान्‌के गुणोंका

---

* इस प्रसङ्गमें 'नाम-व्याहरण' का अर्थ नामोच्चारणमात्र ही है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्। ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ॥

'मेरे दूर होनेके कारण द्रौपदीने जोर-जोरसे 'गोविन्द, गोविन्द' इस प्रकार करुण क्रन्दन करके मुझे पुकारा। वह ऋण मेरे ऊपर बढ़ गया है और मेरे हृदयसे उसका भार क्षणभरके लिये भी नहीं हटता।

† 'नामपदैः' कहनेका यह अभिप्राय है कि भगवान्‌का केवल नाम 'राम-राम' 'कृष्ण-कृष्ण' 'हरि-हरि' 'नारायण-नारायण' अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये—पापोंकी निवृत्तिके लिये पर्याप्त है। 'नमः नमामि' इत्यादि क्रिया जोड़नेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। नामके साथ बहुवचनका प्रयोग—भगवान्‌के नाम बहुत-से हैं, किसीका भी सङ्कीर्तन कर ले, इस अभिप्रायसे है। एक व्यक्ति सब नामोंका उच्चारण करे, इस अभिप्रायसे नहीं। क्योंकि भगवान्‌के नाम अनन्त हैं; सब नामोंका उच्चारण सम्भव ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि भगवान्‌के एक नामका उच्चारण करनेमात्रसे सब पापोंकी निवृत्ति हो जाती है। पूर्ण विश्वास न होने तथा नामोच्चारणके पश्चात् भी पाप करनेके कारण ही उसका अनुभव नहीं होता।

ही गान करना चाहिये। क्योंकि उससे चित्त सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ १२ ॥

इसलिये यमदूतो! तुमलोग अजामिलको मत ले जाओ। इसने सारे पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि इसने मरते समय * भगवान्‌के नामका उच्चारण किया है ॥१३॥

बड़े-बड़े महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि सङ्केतमें (किसी दूसरे अभिप्रायसे), परिहासमें, तान अलापनेमें अथवा किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि कोई भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय और साँपके डँसते, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे 'हरि-हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता ॥ १५ ॥ महर्षियोंने जान-बूझकर बड़े पापोंके लिये बड़े और छोटे पापोंके लिये छोटे प्रायश्चित्त बतलाये हैं ॥ १६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि उन तपस्या, दान, जप आदि प्रायश्चित्तोंके द्वारा वे पाप नष्ट हो जाते हैं। परन्तु उन पापोंसे मलिन हुआ उसका हृदय शुद्ध नहीं होता। भगवान्‌के चरणोंकी सेवासे वह भी शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥ यमदूतो! जैसे जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं ॥ १८ ॥ जैसे कोई परम शक्तिशाली अमृतको उसका गुण न जानकर अनजानमें पी ले तो भी वह अवश्य ही पीनेवालेको अमर बना देता है, वैसे ही अनजानमें उच्चारण करनेपर भी भगवान्‌का नाम † अपना फल देकर ही रहता है (वस्तुशक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती) ॥ १९ ॥

* पापकी निवृत्तिके लिये भगवन्नामका एक अंश ही पर्याप्त है, जैसे 'राम'का 'रा'। इसने तो सम्पूर्ण नामका उच्चारण कर लिया। मरते समयका अर्थ ठीक मरनेका क्षण ही नहीं है, क्योंकि मरनेके क्षण जैसे कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि करनेके लिये विधि नहीं हो सकती, वैसे नामोच्चारणकी भी नहीं है। इसलिये 'म्रियमाण' शब्दका यह अभिप्राय है कि अब आगे इससे कोई पाप होनेकी सम्भावना नहीं है।

† वस्तुकी स्वाभाविक शक्ति इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि यह मुझपर श्रद्धा रखता है कि नहीं, जैसे अग्नि या अमृत।

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः। अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥

'दुष्टचित्त मनुष्यके द्वारा स्मरण किये जानेपर भी भगवान् श्रीहरि पापोंको हर लेते हैं। अनजानमें या अनिच्छासे स्पर्श करनेपर भी अग्नि जलाती ही है।'

भगवान्‌के नामका उच्चारण केवल पापको ही निवृत्त करता है, इसका और कोई फल नहीं है, यह धारणा भ्रमपूर्ण है; क्योंकि शास्त्रमें कहा है—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्। बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥

'जिसने 'हरि'—ये दो अक्षर एक बार भी उच्चारण कर लिये, उसने मोक्ष प्राप्त करनेके लिये परिकर बाँध लिया, फेंट कस ली।' इस वचनसे यह सिद्ध होता है कि भगवन्नाम मोक्षका भी साधन है। मोक्षके साथ-ही-साथ यह धर्म, अर्थ और कामका भी साधन है; क्योंकि ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें त्रिवर्ग-सिद्धिका भी नाम ही कारण बताया गया है—

न गङ्गा न गया सेतुर्न काशी न च पुष्करम्। जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः। अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नरमेधैः सदक्षिणैः। यजितं तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥
प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम्। दुःखक्लेशपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥

'जिसकी जिह्वाके नोकपर 'हरि' ये दो अक्षर बसते हैं, उसे गङ्गा, गया, सेतुबन्ध, काशी और पुष्करकी कोई आवश्यकता नहीं, अर्थात् उनकी यात्रा, स्नान आदिका फल भगवन्नामसे ही मिल जाता है। जिसने 'हरि' इन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भगवान्के पार्षदोंने भागवतधर्मका पूरा-पूरा निर्णय सुना दिया और अजामिलको यमदूतोंके पाशसे छुड़ाकर मृत्युके मुखसे बचा लिया ॥ २० ॥ प्रिय परीक्षित् ! पार्षदोंकी यह बात सुनकर यमदूत यमराजके पास गये और उन्हें यह सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों सुना दिया ॥ २१ ॥

दो अक्षरोंका उच्चारण कर लिया, उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेदका अध्ययन कर लिया। जिसने 'हरि' ये दो अक्षर उच्चारण किये, उसने दक्षिणाके सहित अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा यजन कर लिया। 'हरि' ये दो अक्षर मृत्युके पश्चात् परलोकके मार्गमें प्रयाण करनेवाले प्राणोंके लिये पाथेय (मार्गके लिये भोजनकी सामग्री) हैं, संसाररूप रोगके लिये सिद्ध औषध हैं और जीवनके दुःख और क्लेशोंके लिये परित्राण हैं।'

इन वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि भगवन्नाम अर्थ, धर्म, काम—इन तीन वर्गोंका भी साधक है। यह बात 'हरि' 'नारायण' आदि कुछ विशेष नामोंके सम्बन्धमें ही नहीं है, प्रत्युत सभी नामोंके सम्बन्धमें है; क्योंकि स्थान-स्थानपर यह बात सामान्यरूपसे कही गयी है कि अनन्तके नाम, विष्णुके नाम, हरिके नाम इत्यादि। भगवान्के सभी नामोंमें एक ही शक्ति है।

नाम-सङ्कीर्तन आदिमें वर्ण-आश्रमका भी नियम नहीं है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम्। सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम्॥

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज आदि जहाँ-तहाँ विष्णु भगवान्के नामका अनुकीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापोंसे मुक्त होकर सनातन परमात्माको प्राप्त होते हैं।'

नाम-सङ्कीर्तनमें देश-काल आदिके नियम भी नहीं हैं—

यथा—

न देशकालनियमः शौचाशौचविनिर्णयः। परं संकीर्तनादेव राम रामेति मुच्यते॥
× × × ×
न देशनियमो राजन्न कालनियमस्तथा। विद्यते नात्र संदेहो विष्णोर्नामानुकीर्तने॥
कालोऽस्ति यज्ञे दाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे। विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते॥
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्वापि पिबन्भुञ्जञ्जपंस्तथा। कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात्॥
× × × ×
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

'देश-कालका नियम नहीं है, शौच-अशौच आदिका निर्णय करनेकी भी आवश्यकता नहीं है। केवल 'राम-राम' यह संकीर्तन करनेमात्रसे जीव मुक्त हो जाता है। × × × भगवान्के नामका संकीर्तन करनेमें न देशका नियम है और न तो कालका। इसमें कोई सन्देह नहीं। राजन्! यज्ञ, दान, तीर्थस्नान अथवा विधिपूर्वक जपके लिये शुद्ध कालकी अपेक्षा है, परन्तु भगवन्नामके इस संकीर्तनमें काल-शुद्धिकी कोई आवश्यकता नहीं है। चलते-फिरते, खड़े रहते—सोते, खाते-पीते और जप करते हुए भी 'कृष्ण, कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करके मनुष्य पापके केंचुलसे छूट जाता है। × × × अपवित्र हो या पवित्र—सभी अवस्थाओंमें (चाहे किसी भी अवस्थामें) जो कमलनयन भगवान्का स्मरण करता है, वह बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है।'

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। भस्मीभवन्ति सद्यस्तु महापातककोटयः॥
सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च। तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च॥
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्। कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

'जिसकी जिह्वापर 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण' यह मङ्गलमय नाम नृत्य करता रहता है, उसकी कोटि-कोटि महापातक-राशि तत्काल भस्म हो जाती है। सारे यज्ञ, लाखों व्रत, सर्वतीर्थ-स्नान, तप, अनेकों उपवास, हजारों वेद-पाठ, पृथ्वीकी सैकड़ों प्रदक्षिणा कृष्णनाम-जपके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकतीं।'

अजामिल यमदूतोंके फंदेसे छूटकर निर्भय और स्वस्थ हो गया । उसने भगवान्‌के पार्षदोंके दर्शनजनित आनन्दमें मग्न होकर उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२२॥ निष्पाप परीक्षित् ! भगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि अजामिल कुछ कहना चाहता है, तब वे सहसा उसके सामने ही वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २३ ॥ इस अवसरपर अजामिलने भगवान्‌के पार्षदोंसे विशुद्ध भागवतधर्म और यमदूतोंके मुखसे वेदोक्त सगुण (प्रवृत्तिविषयक) धर्मका श्रवण किया था ॥ २४ ॥ सर्वपापापहारी भगवान्‌की महिमा सुननेसे अजामिलके हृदयमें शीघ्र ही भक्तिका उदय हो गया । अब उसे अपने पापोंको याद करके बड़ा पश्चात्ताप होने लगा ॥ २५ ॥ (अजामिल मन-ही-

---

भगवन्नामके कीर्तनमें ही यह फल हो, सो बात नहीं । उनके श्रवण और स्मरणमें भी वही फल है। द्वादश स्कन्धके अन्तमें कहेंगे 'जिनके नामका स्मरण और उच्चारण अमङ्गलघ्न है ।' शिवगीता और पद्मपुराणमें कहा है—

आश्चर्ये वा भये शोके क्षते वा मम नाम यः । व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम् ॥

प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम स्मरतां नृणाम् । सद्यो नश्यति पापौघो नमस्तस्मै चिदात्मने ॥

'भगवान् कहते हैं कि आश्चर्य, भय, शोक, क्षत (चोट लगने) आदिके अवसरपर जो मेरा नाम बोल उठता है, या किसी व्याजसे स्मरण करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है । मृत्यु या जीवन—चाहे जब कभी भगवान्‌का नाम स्मरण करनेवाले मनुष्योंकी पाप-राशि तत्काल नष्ट हो जाती है । उन चिदात्मा प्रभुको नमस्कार है ।'

'इतिहासोत्तम'में कहा गया है—

श्रुत्वा नामानि तत्रस्थास्तेनोक्तानि हरेर्द्विज । नारका नरकान्मुक्ताः सद्य एव महामुने ॥

'महामुनि ब्राह्मणदेव ! भक्तराजके मुखसे नरकमें रहनेवाले प्राणियोंने श्रीहरिके नामका श्रवण किया और वे तत्काल नरकसे मुक्त हो गये ।'

यज्ञ-यागादिरूप धर्म अपने अनुष्ठानके लिये जिस पवित्र देश, काल, पात्र, शक्ति, सामग्री, श्रद्धा, मन्त्र, दक्षिणा आदिकी अपेक्षा रखता है, इस कलियुगमें उसका सम्पन्न होना अत्यन्त कठिन है । भगवन्नाम-सङ्कीर्तनके द्वारा उसका फल अनायास ही प्राप्त किया जा सकता है । भगवान् शङ्कर पार्वतीके प्रति कहते हैं—

ईशोऽहं सर्वजगतां नाम्नां विष्णोर्हि जापकः । सत्यं सत्यं वदाम्येव हरेर्नान्या गतिर्नृणाम् ॥

'सम्पूर्ण जगत्‌का स्वामी होनेपर भी मैं विष्णुभगवान्‌के नामका ही जप करता हूँ । मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ, भगवान्‌को छोड़कर जीवोंके लिये अब कर्मकाण्ड आदि कोई भी गति नहीं है ।' श्रीमद्भागवतमें ही यह बात आगे आनेवाली है कि सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञसे और द्वापरमें अर्चा-पूजासे जो फल मिलता है, कलियुगमें वह केवल भगवन्नामसे मिलता है । और भी है कि कलियुग दोषोंका निधि है, परन्तु इसमें एक महान् गुण यह है कि श्रीकृष्ण-संकीर्तनमात्रसे ही जीव बन्धनमुक्त होकर परमात्माको प्राप्त कर लेता है ।

इस प्रकार एक बारके नामोच्चारणकी भी अनन्त महिमा शास्त्रोंमें कही गयी है । यहाँ मूल प्रसङ्गमें ही—'एकदापि' कहा गया है; 'सकृदुच्चारितं' का उल्लेख किया जा चुका है । बार-बार जो नामोच्चारणका विधान है, वह आगे और पाप न उत्पन्न हो जायँ, इसके लिये है । ऐसे भी वचन मिलते हैं कि भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे भूत, वर्तमान और भविष्यके सारे ही पाप भस्म हो जाते हैं, यथा—

वर्तमानं च यत् पापं यद् भूतं यद् भविष्यति । तत्सर्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानलकीर्तनम् ॥

फिर भी भगवत्प्रेमी जीवको पापोंके नाशपर अधिक दृष्टि नहीं रखनी चाहिये; उसे तो भक्ति-भावकी दृढ़ताके लिये, भगवान्‌के चरणोंमें अधिकाधिक प्रेम बढ़ता जाय, इस दृष्टिसे अहर्निश नित्य-निरन्तर भगवान्‌के मधुर-मधुर नाम जपते जाना चाहिये । जितनी अधिक निष्कामता होगी, उतनी-ही-उतनी नामकी पूर्णता प्रकट होती जायगी, अनुभवमें आती जायगी ।

अनेक तार्किकोंके मनमें यह कल्पना उठती है कि नामकी महिमा वास्तविक नहीं है, अर्थवादमात्र है । उनके मनमें यह धारणा तो हो जाती है कि शराबकी एक बूँद भी पतित बनानेके लिये पर्याप्त है, परंतु यह विश्वास नहीं होता कि भगवान्‌का एक नाम भी परम कल्याणकारी है । शास्त्रोंमें भगवन्नाम-महिमाको अर्थवाद समझना पाप बताया है ।

मन सोचने लगा—) 'अरे, मैं कैसा इन्द्रियोंका दास हूँ ! मैंने एक दासीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करके अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया। यह बड़े दुःखकी बात है ॥ २६॥ धिक्कार है ! मुझे बार-बार धिक्कार है ! मैं संतोंके द्वारा निन्दित हूँ, पापात्मा हूँ ! मैंने अपने कुलमें कलङ्कका टीका लगा दिया ! हाय-हाय, मैंने अपनी सती एवं अबोध पत्नीका परित्याग कर दिया और शराब पीनेवाली कुलटाका संसर्ग किया ॥ २७ ॥ मैं कितना नीच हूँ ! मेरे मा-बाप बूढ़े और तपस्वी थे। वे सर्वथा असहाय थे, उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाला और कोई नहीं था। मैंने उनका भी परित्याग कर दिया। ओह! मैं कितना कृतघ्न हूँ॥ २८॥ मैं अब अवश्य ही अत्यन्त भयावने नरकमें गिरूँगा, जिसमें गिरकर धर्मघाती पापात्मा कामी पुरुष अनेकों प्रकारकी यमयातना भोगते हैं ॥ २९ ॥

'मैंने अभी जो अद्भुत दृश्य देखा, क्या यह स्वप्न है ? अथवा जाग्रत् अवस्थाका ही प्रत्यक्ष अनुभव है ? अभी-अभी जो हाथोंमें फंदा लेकर मुझे खींच रहे थे, वे कहाँ चले गये ? ॥ ३० ॥ अभी-अभी वे मुझे अपने फंदोंमें फँसाकर पृथ्वीके नीचे ले जा रहे थे, परन्तु चार अत्यन्त सुन्दर सिद्धोंने आकर मुझे छुड़ा लिया ! वे अब कहाँ चले गये॥ ३१ ॥ यद्यपि मैं इस जन्मका महापापी हूँ, फिर भी मैंने पूर्वजन्मोंमें अवश्य ही शुभकर्म किये होंगे; तभी तो मुझे इन श्रेष्ठ देवताओंके दर्शन हुए। उनकी स्मृतिसे मेरा हृदय अब भी आनन्दसे भर रहा है ॥ ३२ ॥ मैं कुलटागामी और अत्यन्त अपवित्र हूँ। यदि पूर्वजन्ममें मैंने पुण्य न किये होते, तो मरनेके समय मेरी जीभ भगवान्के मनोमोहक नामका उच्चारण कैसे कर पाती ? ॥ ३३ ॥ कहाँ तो मैं महाकपटी, पापी, निर्लज्ज और ब्रह्मतेजको नष्ट करनेवाला तथा कहाँ भगवान्का वह परम मङ्गलमय 'नारायण' नाम ! (सचमुच मैं तो कृतार्थ हो गया) ॥ ३४ ॥ अब मैं अपने मन, इन्द्रिय और प्राणोंको वशमें करके ऐसा प्रयत्न करूँगा कि फिर अपनेको घोर अन्धकारमय नरकमें न डालूँ॥ ३५॥ अज्ञानवश मैंने अपनेको शरीर समझकर उसके लिये बड़ी-बड़ी कामनाएँ कीं और उनकी पूर्तिके लिये अनेकों कर्म किये। उन्हींका फल है यह बन्धन ! अब मैं इसे काटकर समस्त प्राणियोंका हित करूँगा, वासनाओंको शान्त कर दूँगा, सबसे मित्रताका व्यवहार करूँगा, दुखियोंपर दया करूँगा और पूरे संयमके साथ रहूँगा ॥ ३६ ॥ भगवान्की मायाने स्त्रीका रूप धारण करके मुझ अधमको फाँस लिया और क्रीडामृगकी भाँति मुझे बहुत नाच नचाया। अब मैं अपने-आपको उस मायासे मुक्त करूँगा ॥ ३७॥ मैंने सत्य वस्तु परमात्माको पहचान लिया है; अतः अब मैं शरीर आदिमें 'मैं' तथा 'मेरे' का भाव छोड़कर भगवन्नामके कीर्तन आदिसे अपने मनको शुद्ध करूँगा और उसे भगवान्में लगाऊँगा' ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उन भगवान्के पार्षद महात्माओंका केवल थोड़ी ही देरके लिये सत्सङ्ग हुआ था। इतनेसे ही अजामिलके चित्तमें संसारके प्रति तीव्र वैराग्य हो गया। वे सबके सम्बन्ध और मोहको छोड़कर हरद्वार चले गये॥ ३९॥ उस देवस्थानमें जाकर वे भगवान्के मन्दिरमें आसनसे बैठ गये और उन्होंने योगमार्गका आश्रय लेकर अपनी सारी इन्द्रियोंको विषयोंसे

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः। तैरर्जितानि पुण्यानि तद्वदेव भवन्ति हि ॥

× × × × ×

मन्नामकीर्तनफलं विविधं निशम्य न श्रद्दधाति मनुते यदुतार्थवादम्।
यो मानुषस्तमिह दुःखचये क्षिपामि संसारघोरविविधार्तिनिपीडिताङ्गम् ॥

× × × × ×

अर्थवादं हरेर्नाम्नि संभावयति यो नरः। स पापिष्ठो मनुष्याणां नरके पतति स्फुटम् ॥

'जो नराधम पुराणोंमें अर्थवादकी कल्पना करते हैं, उनके द्वारा उपार्जित पुण्य वैसे ही हो जाते हैं।'

× × × × ×

'जो मनुष्य मेरे नाम-कीर्तनके विविध फल सुनकर उसपर श्रद्धा नहीं करता और उसे अर्थवाद मानता है, उसको संसारके विविध घोर तापोंसे पीड़ित होना पड़ता है और उसे मैं अनेक दुःखोंमें डाल देता हूँ।' × × × × 'जो मनुष्य भगवान्के नाममें अर्थवादकी सम्भावना करता है, वह मनुष्योंमें अत्यन्त पापी है और उसे नरकमें गिरना पड़ता है।'

हटाकर मनमें लीन कर लिया और मनको बुद्धिमें मिला दिया ॥ ४० ॥ इसके बाद आत्मचिन्तनके द्वारा उन्होंने बुद्धिको विषयोंसे पृथक् कर लिया तथा भगवान्‌के धाम अनुभवस्वरूप परब्रह्ममें जोड़ दिया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार जब अजामिलकी बुद्धि त्रिगुणमयी प्रकृतिसे ऊपर उठकर भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित हो गयी, तब उन्होंने देखा कि उनके सामने वे ही चारों पार्षद, जिन्हें उन्होंने पहले देखा था, खड़े हैं। अजामिलने सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥ ४२ ॥ उनका दर्शन पानेके बाद उन्होंने उस तीर्थस्थानमें गङ्गाके तटपर अपना शरीर त्याग दिया और तत्काल भगवान्‌के पार्षदोंका स्वरूप प्राप्त कर लिया ॥ ४३ ॥ अजामिल भगवान्‌के पार्षदोंके साथ स्वर्णमय विमानपर आरूढ होकर आकाशमार्गसे भगवान् लक्ष्मीपतिके निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये ॥ ४४ ॥

परीक्षित् ! अजामिलने दासीका सहवास करके सारा धर्म-कर्म चौपट कर दिया था। वे अपने निन्दित कर्मके कारण पतित हो गये थे। नियमोंसे च्युत हो जानेके कारण उन्हें नरकमें गिराया जा रहा था। परन्तु भगवान्‌के एक नामका उच्चारण करनेमात्रसे वे उससे तत्काल मुक्त हो गये ॥ ४५ ॥ जो लोग इस संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये अपने चरणोंके स्पर्शसे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले भगवान्‌के नामसे बढ़कर और कोई साधन नहीं है; क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर कर्मके पचड़ोंमें नहीं पड़ता। भगवन्नामके अतिरिक्त और किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा पापोंका पूरा-पूरा नाश भी नहीं होता ॥ ४६ ॥

परीक्षित् ! यह इतिहास अत्यन्त गोपनीय और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। जो पुरुष श्रद्धा और भक्तिके साथ इसका श्रवण-कीर्तन करता है, वह नरकमें कभी नहीं जाता। यमराजके दूत तो आँख उठाकर उसकी ओर देखतक नहीं सकते। उस पुरुषका जीवन चाहे पापमय ही क्यों न रहा हो, वैकुण्ठलोकमें उसकी पूजा होती है ॥ ४७-४८ ॥ परीक्षित् ! देखो—अजामिल-जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवान्‌के नामका उच्चारण किया ! उसे भी वैकुण्ठकी प्राप्ति हो गयी ! फिर जो लोग श्रद्धाके साथ भगवन्नामका उच्चारण करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है ॥ ४९ ॥

तीसरा अध्याय

यम और यमदूतोंका संवाद

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! देवाधिदेव धर्मराजके वशमें सारे जीव हैं और भगवान्‌के पार्षदोंने उन्हींकी आज्ञा भङ्ग कर दी तथा उनके दूतोंको अपमानित कर दिया। जब उनके दूतोंने यमपुरीमें जाकर उनसे अजामिलका वृत्तान्त कह सुनाया, तब सब कुछ सुनकर उन्होंने अपने दूतोंसे क्या कहा ? ॥ १ ॥ ऋषिवर ! मैंने पहले यह बात कभी नहीं सुनी कि किसीने किसी भी कारणसे धर्मराजके शासनका उल्लङ्घन किया हो। भगवन् ! इस विषयमें लोग बहुत सन्देह करेंगे और उसका निवारण आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं कर सकता, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब भगवान्‌के पार्षदोंने यमदूतोंका प्रयत्न विफल कर दिया, तब उन लोगोंने संयमनीपुरीके स्वामी एवं अपने शासक यमराजके पास जाकर निवेदन किया ॥ ३ ॥

यमदूतोंने कहा—प्रभो ! संसारके जीव तीन प्रकारके कर्म करते हैं—पाप, पुण्य अथवा दोनोंसे मिश्रित। इन जीवोंको उन कर्मोंका फल देनेवाले शासक संसारमें कितने हैं ? ॥ ४ ॥ यदि संसारमें दण्ड देनेवाले बहुत-से शासक हों, तो किसे सुख मिले और किसे दुःख—इसकी व्यवस्था एक-सी न हो सकेगी ॥ ५ ॥ संसारमें कर्म करनेवालोंके अनेक होनेके कारण यदि उनके शासक भी अनेक हों, तो उन शासकोंका शासकपना नाममात्रका ही होगा, जैसे एक

सम्राट्के अधीन बहुत-से नाममात्रके सामन्त होते हैं॥६॥ इसलिये हम तो ऐसा समझते हैं कि अकेले आप ही समस्त प्राणियों और उनके स्वामियोंके भी अधीश्वर हैं। आप ही मनुष्योंके पाप और पुण्यके निर्णायक, दण्डदाता और शासक हैं॥७॥ प्रभो! अबतक संसारमें कहीं भी आपके द्वारा नियत किये हुए दण्डकी अवहेलना नहीं हुई थी; किन्तु इस समय चार अद्भुत सिद्धोंने आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया है॥८॥ प्रभो! आपकी आज्ञासे हमलोग एक पापीको यातनागृहकी ओर ले जा रहे थे, परन्तु उन्होंने बलपूर्वक आपके फंदे काटकर उसे छुड़ा दिया॥९॥ हम आपसे उनका रहस्य जानना चाहते हैं। यदि आप हमें सुननेका अधिकारी समझें तो कहें। प्रभो! बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई कि इधर तो अजामिलके मुँहसे 'नारायण!' यह शब्द निकला और उधर वे 'डरो मत, डरो मत!' कहते हुए झटपट वहाँ आ पहुँचे॥१०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब दूतोंने इस प्रकार प्रश्न किया, तब देवशिरोमणि प्रजाके शासक भगवान् यमराजने प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए उनसे कहा॥११॥

यमराजने कहा—दूतो! मेरे अतिरिक्त एक और ही चराचर जगत्के स्वामी हैं। उन्हींमें यह सम्पूर्ण जगत् सूतमें वस्त्रके समान ओतप्रोत है। उन्हींके अंश ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हैं। उन्हींने इस सारे जगत्को नथे हुए बैलके समान अपने अधीन कर रक्खा है॥१२॥ मेरे प्यारे दूतो! जैसे किसान अपने बैलोंको पहले छोटी-छोटी रस्सियोंमें बाँधकर फिर उन रस्सियोंको एक बड़ी आड़ी रस्सीमें बाँध देते हैं, वैसे ही जगदीश्वर भगवान्ने भी ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि आश्रम-रूप छोटी-छोटी नामकी रस्सियोंमें बाँधकर फिर सब नामोंको वेदवाणीरूप बड़ी रस्सीमें बाँध रक्खा है। इस प्रकार सारे जीव नाम एवं कर्मरूप बन्धनमें बँधे हुए भयभीत होकर उन्हें ही अपना सर्वस्व भेंट कर रहे हैं॥१३॥ दूतो! मैं, इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शङ्कर, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहों आदित्य, विश्वेदेवता, आठों वसु, साध्य, उनचास मरुत्, सिद्ध, ग्यारहों रुद्र, रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित भृगु आदि प्रजापति और बड़े-बड़े देवता—सब-के-सब सत्त्व-प्रधान होनेपर भी उनकी मायाके अधीन हैं तथा भगवान् कब क्या किस रूपमें करना चाहते हैं—इस बातको नहीं जानते। तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है।१४-१५। दूतो! जिस प्रकार घट, पट आदि रूपवान् पदार्थ अपने प्रकाशक नेत्रको नहीं देख सकते—वैसे ही अन्तःकरणमें अपने साक्षीरूपसे स्थित परमात्माको कोई भी प्राणी इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय या वाणी आदि किसी भी साधनके द्वारा नहीं जान सकता॥१६॥ वे प्रभु सबके स्वामी और स्वयं परम स्वतन्त्र हैं। उन्हीं मायापति पुरुषोत्तमके दूत उन्हींके समान परम मनोहर रूप, गुण और स्वभावसे सम्पन्न होकर इस लोकमें प्रायः विचरण किया करते हैं॥१७॥ विष्णुभगवान्के सुरपूजित एवं परम अलौकिक पार्षदोंका दर्शन बड़ा दुर्लभ है। वे भगवान्के भक्तजनोंको उनके शत्रुओंसे, मुझसे और अग्नि आदि सब विपत्तियोंसे सर्वदा सुरक्षित रखते हैं॥१८॥

स्वयं भगवान्ने ही धर्मकी मर्यादाका निर्माण किया है। उसे न तो ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्धगण ही। ऐसी स्थितिमें मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुर आदि तो जान ही कैसे सकते हैं॥१९॥ भगवान्के द्वारा निर्मित भागवतधर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। दूतो! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं—ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शङ्कर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्मपितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)॥२०-२१॥ इस जगत्में जीवोंके लिये बस, यही सबसे बड़ा कर्तव्य—परम धर्म—है कि वे नाम-कीर्तन आदि उपायोंसे भगवान्के चरणोंमें भक्तिभाव प्राप्त कर लें॥२२॥ प्रिय दूतो! भगवान्के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, अजामिल-जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करनेमात्रसे मृत्युपाशसे छुटकारा

पा गया ॥ २३ ॥ भगवान्‌के गुण, लीला और नामोंका भलीभाँति कीर्तन मनुष्योंके पापोंका सर्वथा विनाश कर दे, यह कोई उसका बहुत बड़ा फल नहीं है, क्योंकि अत्यन्त पापी अजामिलने मरनेके समय चञ्चल चित्तसे अपने पुत्रका नाम 'नारायण' उच्चारण किया। इस नामाभासमात्रसे ही उसके सारे पाप तो क्षीण हो ही गये, मुक्तिकी प्राप्ति भी हो गयी ॥२४॥ बड़े-बड़े विद्वानोंकी बुद्धि कभी भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाती है। वे कर्मोंके मीठे-मीठे फलोंका वर्णन करनेवाली अर्थवाद-रूपिणी वेदवाणीमें ही मोहित हो जाते हैं और यज्ञ-यागादि बड़े-बड़े कर्मोंमें ही संलग्न रहते हैं तथा इस सुगमातिसुगम भगवन्नामकी महिमाको नहीं जानते। यह कितने खेदकी बात है ॥ २५ ॥

प्रिय दूतो ! बुद्धिमान् पुरुष ऐसा विचार कर भगवान् अनन्तमें ही सम्पूर्ण अन्तःकरणसे अपना भक्तिभाव स्थापित करते हैं। वे मेरे दण्डके पात्र नहीं हैं। पहली बात तो यह है कि वे पाप करते ही नहीं, परन्तु यदि कदाचित् संयोगवश कोई पाप बन भी जाय, तो उसे भगवान्‌का गुणगान तत्काल नष्ट कर देता है ॥२६॥ जो समदर्शी साधु भगवान्‌को ही अपना साध्य और साधन दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गान करते रहते हैं। मेरे दूतो ! भगवान्‌की गदा उनकी सदा रक्षा करती रहती है। उनके पास तुमलोग कभी भूलकर भी मत फटकना। उन्हें दण्ड देनेकी सामर्थ्य न हममें है और न साक्षात् कालमें ही ॥२७॥ बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके लोभसे सम्पूर्ण जगत् और शरीर आदिसे भी अपनी अहंता-ममता हटाकर, अकिञ्चन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पादारविन्दका मकरन्द-रस पान करते रहते हैं। जो दुष्ट उस दिव्य रससे विमुख हैं और नरकके दरवाजे घर-गृहस्थीकी तृष्णाका बोझा बाँधकर उसे ढो रहे हैं, उन्हींको मेरे पास बार-बार लाया करो ॥ २८ ॥ जिनकी जीभ भगवान्‌के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता, उन भगवत्सेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो ॥ २९ ॥ आज मेरे दूतोंने भगवान्‌के पार्षदोंका अपराध करके स्वयं भगवान्‌का ही तिरस्कार किया है। यह मेरा ही अपराध है। पुराणपुरुष भगवान् नारायण हमलोगोंका यह अपराध क्षमा करें। हम अज्ञानी होनेपर भी हैं उनके निजजन, और उनकी आज्ञा पानेके लिये अञ्जलि बाँधकर सदा उत्सुक रहते हैं। अतः परम महिमान्वित भगवान्‌के लिये यही योग्य है कि वे क्षमा कर दें। मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रभुको नमस्कार करता हूँ ॥ ३० ॥

[श्रीशुकदेवजी कहते हैं—] परीक्षित् ! इसलिये तुम ऐसा समझ लो कि बड़े-से-बड़े पापोंका सर्वोत्तम, अन्तिम और पाप-वासनाओंको भी निर्मूल कर डालने-वाला प्रायश्चित्त यही है कि केवल भगवान्‌के गुणों, लीलाओं और नामोंका कीर्तन किया जाय। इसीसे संसारका कल्याण हो सकता है ॥ ३१ ॥ जो लोग बार-बार भगवान्‌के उदार और कृपापूर्ण चरित्रोंका श्रवण-कीर्तन करते हैं, उनके हृदयमें प्रेममयी भक्तिका उदय हो जाता है। उस भक्तिसे जैसी आत्मशुद्धि होती है, वैसी कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंसे नहीं होती ॥ ३२ ॥ जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्द-मकरन्द-रसका लोभी भ्रमर है, वह स्वभावसे ही मायाके आपात-रम्य, दुःखद और पहलेसे ही छोड़े हुए विषयोंमें फिर नहीं रमता। किन्तु जो लोग उस दिव्य रससे विमुख हैं, कामनाओंने जिनकी विवेकबुद्धिपर पानी फेर दिया है, वे अपने पापोंका मार्जन करनेके लिये पुनः प्रायश्चित्त-रूप कर्म ही करते हैं। इससे होता यह है कि उनके कर्मोंकी वासना मिटती नहीं और वे फिर वैसे ही दोष कर बैठते हैं ॥ ३३ ॥

परीक्षित् ! जब यमदूतोंने अपने स्वामी धर्मराजके मुखसे इस प्रकार भगवान्‌की महिमा सुनी और उसका स्मरण किया, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। तभीसे वे धर्मराजकी बातपर विश्वास करके अपने नाशकी आशङ्कासे भगवान्‌के आश्रित भक्तोंके पास नहीं जाते। और तो क्या, वे उनकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी डरते हैं ॥ ३४ ॥ प्रिय परीक्षित् ! यह इतिहास परम गोपनीय—अत्यन्त रहस्यमय है। मलयपर्वतपर विराज-मान भगवान् अगस्त्यजीने श्रीहरिकी पूजा करते समय मुझे यह सुनाया था ॥ ३५ ॥

चौथा अध्याय

दक्षके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का प्रादुर्भाव

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने संक्षेपसे (तीसरे स्कन्धमें) इस बातका वर्णन किया कि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें देवता, असुर, मनुष्य, सर्प और पशु-पक्षी आदिकी सृष्टि कैसे हुई ॥ १ ॥ अब मैं उसीका विस्तार जानना चाहता हूँ। प्रकृति आदि कारणोंके भी परम कारण भगवान् अपनी जिस शक्तिसे जिस प्रकार उसके बादकी सृष्टि करते हैं, उसे जाननेकी भी मेरी इच्छा है ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! परम योगी व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने राजर्षि परीक्षित्‌का यह सुन्दर प्रश्न सुनकर उनका अभिनन्दन किया और इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजा प्राचीनबर्हिके दस लड़के—जिनका नाम प्रचेता था—जब समुद्रसे बाहर निकले, तब उन्होंने देखा कि हमारे पिताके निवृत्ति-परायण हो जानेसे सारी पृथ्वी पेड़ोंसे घिर गयी है ॥४॥ उन्हें वृक्षोंपर बड़ा क्रोध आया। उनके तपोबलने तो मानो क्रोधकी आगमें आहुति ही डाल दी। बस, उन्होंने वृक्षोंको जला डालनेके लिये अपने मुखसे वायु और अग्निकी सृष्टि की ॥५॥ परीक्षित्! जब प्रचेताओं-की छोड़ी हुई अग्नि और वायु उन वृक्षोंको जलाने लगीं, तब वृक्षोंके राजाधिराज चन्द्रमाने उनका क्रोध शान्त करते हुए इस प्रकार कहा ॥ ६ ॥ 'महाभाग्यवान् प्रचेताओ! ये वृक्ष बड़े दीन हैं। आपलोग इनसे द्रोह मत कीजिये; क्योंकि आप तो प्रजाकी अभिवृद्धि करना चाहते हैं और सभी जानते हैं कि आप प्रजापति हैं ॥ ७ ॥ महात्मा प्रचेताओ! प्रजा-पतियोंके अधिपति अविनाशी भगवान् श्रीहरिने सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंको प्रजाके हितार्थ उनके खान-पानके लिये बनाया है ॥ ८ ॥ संसारमें पाँखोंसे उड़नेवाले चर प्राणियोंके भोजन फल-पुष्पादि अचर पदार्थ हैं। पैरसे चलनेवालोंके घास-तृणादि बिना पैर-वाले पदार्थ भोजन हैं; हाथवालोंके वृक्ष-लता आदि बिना हाथवाले, और दो पैरवाले मनुष्यादिके लिये धान, गेहूँ आदि अन्न भोजन हैं। चार पैरवाले बैल, ऊँट आदि खेती प्रभृतिके द्वारा अन्नकी उत्पत्तिमें सहायक हैं ॥९॥ निष्पाप प्रचेताओ! आपके पिता और देवाधिदेव भगवान्‌ने आपलोगोंको यह आदेश दिया है कि प्रजा-की सृष्टि करो। ऐसी स्थितिमें आप वृक्षोंको जला डालें, यह कैसे उचित हो सकता है ॥ १० ॥ आप-लोग अपना क्रोध शान्त करें और अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदिके द्वारा सेवित सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करें ॥ ११ ॥ जैसे मा-बाप बालकोंकी, पलकें नेत्रोंकी, पति पत्नीकी, गृहस्थ भिक्षुकोंकी और ज्ञानी अज्ञानियोंकी रक्षा करते हैं और उनका हित चाहते हैं—वैसे ही प्रजाकी रक्षा और हितका उत्तरदायी राजा होता है ॥ १२ ॥ प्रचेताओ! समस्त प्राणियोंके हृदयमें सर्वशक्तिमान् भगवान् आत्माके रूपमें विराजमान हैं। इसलिये आपलोग सभीको भगवान्‌का निवासस्थान समझें। यदि आप ऐसा करेंगे तो भगवान्‌को प्रसन्न कर लेंगे ॥ १३ ॥ जो पुरुष हृदयके उबलते हुए भयङ्कर क्रोधको आत्मविचारके द्वारा शरीरमें ही शान्त कर लेता है, बाहर नहीं निकलने देता, वह कालक्रमसे तीनों गुणोंपर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ १४ ॥ प्रचेताओ! इन दीन-हीन वृक्षोंको और न जलाइये; जो कुछ बच रहे हैं, उनकी रक्षा कीजिये। इससे आपका भी कल्याण होगा। इस श्रेष्ठ कन्याका पालन इन वृक्षोंने ही किया है, इसे आपलोग पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये' ॥ १५ ॥

परीक्षित्! वनस्पतियोंके राजा चन्द्रमाने प्रचेताओं-को इस प्रकार समझा-बुझाकर उन्हें प्रम्लोचा अप्सरा-की सुन्दरी कन्या दे दी और वे वहाँसे चले गये। प्रचेताओंने धर्मानुसार उसका पाणिग्रहण किया ॥१६॥ उन्हीं प्रचेताओंके द्वारा उस कन्याके गर्भसे प्राचेतस दक्षकी उत्पत्ति हुई। फिर दक्षकी प्रजा-सृष्टिसे तीनों लोक भर गये ॥ १७ ॥ इनका अपनी पुत्रियोंपर बड़ा प्रेम था। इन्होंने जिस प्रकार अपने सङ्कल्प और वीर्यसे विविध प्राणियोंकी सृष्टि की, वह मैं सुनाता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ १८ ॥

परीक्षित्! पहले प्रजापति दक्षने जल, थल और आकाशमें रहनेवाले देवता, असुर एवं मनुष्य आदि प्रजाकी सृष्टि अपने सङ्कल्पसे ही की ॥ १९ ॥ जब

उन्होंने देखा कि वह सृष्टि बढ़ नहीं रही है, तब उन्होंने विन्ध्याचलके निकटवर्ती पर्वतोंपर जाकर बड़ी घोर तपस्या की ॥ २० ॥ वहाँ एक अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है, उसका नाम है—अघमर्षण । वह सारे पापोंको धो बहाता है । प्रजापति दक्ष उस तीर्थमें त्रिकाल स्नान करते और तपस्याके द्वारा भगवान्‌की आराधना करते ॥ २१ ॥ प्रजापति दक्षने इन्द्रियातीत भगवान्‌की 'हंसगुह्य' नामक स्तोत्रसे स्तुति की थी । उसीसे भगवान् उनपर प्रसन्न हुए थे । मैं तुम्हें वह स्तुति सुनाता हूँ ॥ २२ ॥

दक्ष प्रजापतिने इस प्रकार स्तुति की—भगवन् ! आपकी अनुभूति, आपकी चित्-शक्ति अमोघ है । आप जीव और प्रकृतिसे परे, उनके नियन्ता और उन्हें सत्ता-स्फूर्ति देनेवाले हैं । जिन जीवोंने त्रिगुणमयी सृष्टिको ही वास्तविक सत्य समझ रक्खा है, वे आपके स्वरूपका साक्षात्कार नहीं कर सके हैं; क्योंकि आपतक किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है—आपकी कोई अवधि, कोई सीमा नहीं है । आप स्वयंप्रकाश और परात्पर हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥ यों तो जीव और ईश्वर एक-दूसरेके सखा हैं तथा इसी शरीरमें इकट्ठे ही निवास करते हैं; परन्तु जीव सर्वशक्तिमान् आपके सख्यभावको नहीं जानता—ठीक वैसे ही, जैसे रूप, रस, गन्ध आदि विषय अपने प्रकाशित करनेवाली नेत्र, घ्राण आदि इन्द्रियवृत्तियोंको नहीं जानते । क्योंकि आप जीव और जगत्‌के द्रष्टा हैं, दृश्य नहीं । महेश्वर ! मैं आपके श्रीचरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥ देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरणकी वृत्तियाँ, पञ्चमहाभूत और उनकी तन्मात्राएँ—ये सब जड होनेके कारण अपनेको और अपनेसे अतिरिक्तको भी नहीं जानते । परन्तु जीव इन सबको और इनके कारण सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंको भी जानता है । परन्तु वह भी दृश्य अथवा ज्ञेयरूपसे आपको नहीं जान सकता । क्योंकि आप ही सबके ज्ञाता और अनन्त हैं । इसलिये प्रभो ! मैं तो केवल आपकी स्तुति करता हूँ ॥ २५ ॥ जब समाधिकालमें प्रमाण, विकल्प और विपर्ययरूप विविध ज्ञान और स्मरण-शक्तिका लोप हो जानेसे इस नाम-रूपात्मक जगत्‌का निरूपण करनेवाला मन उपरत हो जाता है, उस समय बिना मनके भी केवल सच्चिदानन्दमयी अपनी स्वरूपस्थितिके द्वारा आप प्रकाशित होते रहते हैं । प्रभो ! आप शुद्ध हैं और शुद्ध हृदय-मन्दिर ही आपका निवासस्थान है । आपको मेरा नमस्कार है ॥ २६ ॥ जैसे याज्ञिक लोग काष्ठमें छिपे हुए अग्निको 'सामिधेनी' नामके पंद्रह मन्त्रोंके द्वारा प्रकट करते हैं, वैसे ही ज्ञानी पुरुष अपनी सत्ताईस शक्तियोंके भीतर गूढभावसे छिपे हुए आपको अपनी शुद्ध बुद्धिके द्वारा हृदयमें ही ढूँढ निकालते हैं ॥ २७ ॥ जगत्‌में जितनी भिन्नताएँ देख पड़ती हैं, वे सब मायाकी ही हैं । मायाका निषेध कर देनेपर केवल परम सुखके साक्षात्कारस्वरूप आप ही अवशेष रहते हैं । परन्तु जब विचार करने लगते हैं, तब आपके स्वरूपमें मायाकी उपलब्धि—निर्वचन नहीं हो सकता । अर्थात् माया भी आप ही हैं । अतः सारे नाम और सारे रूप आपके ही हैं । प्रभो ! आप मुझपर प्रसन्न होइये । मुझे आत्मप्रसादसे पूर्ण कर दीजिये ॥ २८ ॥ प्रभो ! जो कुछ वाणीसे कहा जाता है अथवा जो कुछ मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाता है, वह आपका स्वरूप नहीं है; क्योंकि वह तो गुणरूप है और आप गुणोंकी उत्पत्ति और प्रलयके अधिष्ठान हैं । आपमें केवल उनकी प्रतीतिमात्र है ॥ २९ ॥ भगवन् ! आपमें ही यह सारा जगत् स्थित है; आपसे ही निकला है और आपने—और किसीके सहारे नहीं—अपने-आपसे ही इसका निर्माण किया है । यह आपका ही है और आपके लिये ही है । इसके रूपमें बननेवाले भी आप हैं और बनानेवाले भी आप ही हैं । बनने-बनानेकी विधि भी आप ही हैं । आप ही सबसे काम लेनेवाले भी हैं । जब कार्य और कारणका भेद नहीं था, तब भी आप स्वयंसिद्ध स्वरूपसे स्थित थे । इसीसे आप सबके कारण भी हैं । सच्ची बात तो यह है कि आप जीव-जगत्‌के भेद और स्वगतभेदसे सर्वथा रहित एक, अद्वितीय हैं । आप स्वयं ब्रह्म हैं । आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३० ॥ प्रभो ! आपकी ही शक्तियाँ वादी-प्रतिवादियोंके विवाद और संवाद (ऐकमत्य) का विषय होती हैं और उन्हें

बार-बार मोहमें डाल दिया करती हैं। आप अनन्त अप्राकृत कल्याण-गुणगणोंसे युक्त एवं स्वयं अनन्त हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३१ ॥ भगवन्! उपासकलोग कहते हैं कि हमारे प्रभु हस्त-पादादिसे युक्त साकार-विग्रह हैं और सांख्यवादी कहते हैं कि भगवान् हस्त-पादादि विग्रहसे रहित—निराकार हैं। यद्यपि इस प्रकार वे एक ही वस्तुके दो परस्परविरोधी धर्मोंका वर्णन करते हैं, परन्तु फिर भी उसमें विरोध नहीं है। क्योंकि दोनों एक ही परम वस्तुमें स्थित हैं। बिना आधारके हाथ-पैर आदिका होना सम्भव नहीं और निषेधकी भी कोई-न-कोई अवधि होनी ही चाहिये। आप वही आधार और निषेधकी अवधि हैं। इसलिये आप साकार, निराकार दोनोंसे ही अविरुद्ध सम परब्रह्म हैं ॥ ३२ ॥ प्रभो! आप अनन्त हैं। आपका न तो कोई प्राकृत नाम है और न कोई प्राकृत रूप; फिर भी जो आपके चरणकमलोंका भजन करते हैं, उनपर अनुग्रह करनेके लिये आप अनेक रूपोंमें प्रकट होकर अनेकों लीलाएँ करते हैं तथा उन-उन रूपों एवं लीलाओं-के अनुसार अनेकों नाम धारण कर लेते हैं। परमात्मन्! आप मुझपर कृपा-प्रसाद कीजिये ॥ ३३ ॥ लोगोंकी उपासनाएँ प्रायः साधारण कोटिकी होती हैं। अतः आप सबके हृदयमें रहकर उनकी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओंके रूपमें प्रतीत होते रहते हैं—ठीक वैसे ही जैसे हवा गन्धका आश्रय लेकर सुगन्धित प्रतीत होती है परन्तु वास्तवमें सुगन्धित नहीं होती। ऐसे सबकी भावनाओंका अनुसरण करनेवाले प्रभु मेरी अभिलाषा पूर्ण करें ॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विन्ध्याचलके अघमर्षण तीर्थमें जब प्रजापति दक्षने इस प्रकार स्तुति की, तब भक्तवत्सल भगवान् उनके सामने प्रकट हुए ॥ ३५ ॥ उस समय भगवान् गरुड़के कंधोंपर चरण रक्खे हुए थे। विशाल एवं हृष्ट-पुष्ट आठ भुजाएँ थीं; उनमें चक्र, शङ्ख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और गदा धारण किये हुए थे ॥ ३६ ॥ वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा था। मुखमण्डल प्रफुल्लित था। नेत्रोंसे प्रसादकी वर्षा हो रही थी। घुटनोंतक वनमाला लटक रही थी। वक्षःस्थलपर सुनहरी रेखा—श्रीवत्सचिह्न और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी ॥ ३७ ॥ बहुमूल्य किरीट, कंगन, मकराकृति कुण्डल, करधनी, अँगूठी, कड़े, नूपुर और बाजूबंद अपने-अपने स्थानपर सुशोभित थे ॥ ३८ ॥ त्रिभुवनपति भगवान्ने त्रैलोक्यविमोहन रूप धारण कर रक्खा था। नारद, नन्द, सुनन्द आदि पार्षद उनके चारों ओर खड़े थे। इन्द्र आदि देवेश्वरगण स्तुति कर रहे थे तथा सिद्ध, गन्धर्व और चारण भगवान्के गुणोंका गान कर रहे थे। यह अत्यन्त आश्चर्यमय और अलौकिक रूप देखकर दक्षप्रजापति कुछ सहम गये ॥ ३९-४० ॥ प्रजापति दक्षने आनन्दसे भरकर भगवान्के चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जैसे झरनोंके जलसे नदियाँ भर जाती हैं, वैसे ही परमानन्दके उद्रेकसे उनकी एक-एक इन्द्रिय भर गयी और आनन्दपरवश हो जानेके कारण वे कुछ भी बोल न सके ॥ ४१ ॥ परीक्षित्! प्रजापति दक्ष अत्यन्त नम्रतासे झुककर भगवान्के सामने खड़े हो गये। भगवान् सबके हृदयकी बात जानते ही हैं, उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी भक्ति और प्रजावृद्धिकी कामना देखकर उनसे यों कहा ॥ ४२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—परम भाग्यवान् दक्ष! अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी, क्योंकि मुझपर श्रद्धा करनेसे तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति परम प्रेमभावका उदय हो गया है ॥ ४३ ॥ प्रजापते! तुमने इस विश्वकी वृद्धिके लिये तपस्या की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। क्योंकि यह मेरी ही इच्छा है कि जगत्के समस्त प्राणी अभिवृद्ध और समृद्ध हों ॥ ४४ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर, तुम्हारे-जैसे प्रजापति, स्वायम्भुव आदि मनु तथा इन्द्रादि देवेश्वर—ये सब मेरी विभूतियाँ हैं और सभी प्राणियोंकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं ॥ ४५ ॥ ब्रह्मन्! तपस्या मेरा हृदय है, विद्या शरीर है, कर्म आकृति है, यज्ञ अङ्ग हैं, धर्म मन है और देवता प्राण हैं ॥ ४६ ॥ जब यह सृष्टि नहीं थी, तब केवल मैं ही था और वह भी निष्क्रियरूपमें। बाहर-भीतर कहीं भी और कुछ न था। न तो कोई द्रष्टा था और न दृश्य। मैं केवल ज्ञानस्वरूप और अव्यक्त था। ऐसा समझ लो, मानो सब ओर

सुषुप्ति-ही-सुषुप्ति छा रही हो ॥ ४७ ॥ प्रिय दक्ष ! मैं अनन्त गुणोंका आधार एवं स्वयं अनन्त हूँ। जब गुणमयी मायाके क्षोभसे यह ब्रह्माण्ड-शरीर प्रकट हुआ, तब इसमें अयोनिज आदिपुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ४८ ॥ जब मैंने उनमें शक्ति और चेतनाका सञ्चार किया, तब देवशिरोमणि ब्रह्मा सृष्टि करनेके लिये उद्यत हुए। परन्तु उन्होंने अपनेको सृष्टिकार्यमें असमर्थ-सा पाया ॥ ४९ ॥ उस समय मैंने उन्हें आज्ञा दी कि तप करो। तब उन्होंने घोर तपस्या की और उस तपस्याके प्रभावसे पहले-पहल तुम नौ प्रजापतियोंकी सृष्टि की ॥ ५० ॥

प्रिय दक्ष ! देखो, यह पञ्चजन प्रजापतिकी कन्या असिक्नी है। इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण करो ॥ ५१ ॥ अब तुम गृहस्थोचित स्त्रीसहवासरूप धर्मको स्वीकार करो। यह असिक्नी भी उसी धर्मको स्वीकार करेगी। तब तुम इसके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न कर सकोगे ॥ ५२ ॥ प्रजापते ! अबतक तो मानसी सृष्टि होती थी, परन्तु अब तुम्हारे बाद सारी प्रजा मेरी मायासे स्त्री-पुरुषके संयोगसे ही उत्पन्न होगी तथा मेरी सेवामें तत्पर रहेगी ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—विश्वके जीवनदाता भगवान् श्रीहरि यह कहकर दक्षके सामने ही इस प्रकार अन्तर्धान हो गये, जैसे स्वप्नमें देखी हुई वस्तु स्वप्न टूटते ही लुप्त हो जाती है ॥ ५४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीनारदजीके उपदेशसे दक्षपुत्रोंकी विरक्ति तथा नारदजीको दक्षका शाप

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌के शक्तिसञ्चारसे दक्ष प्रजापति परम समर्थ हो गये थे। उन्होंने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे हर्यश्व नामके दस हजार पुत्र उत्पन्न किये ॥ १ ॥ राजन् ! दक्षके ये सभी पुत्र एक आचरण और एक स्वभावके थे। जब उनके पिता दक्षने उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब वे तपस्या करनेके विचारसे पश्चिम दिशाकी ओर गये ॥ २ ॥ पश्चिम दिशामें सिन्धुनदी और समुद्रके सङ्गमपर नारायण-सर नामका एक महान् तीर्थ है। बड़े-बड़े मुनि और सिद्ध पुरुष वहाँ निवास करते हैं ॥ ३ ॥ नारायण-सरमें स्नान करते ही हर्यश्वोंके अन्तःकरण शुद्ध हो गये, उनकी बुद्धि भागवतधर्ममें लग गयी। फिर भी अपने पिता दक्षकी आज्ञासे बँधे होनेके कारण वे उग्र तपस्या ही करते रहे। जब देवर्षि नारदने देखा कि भागवतधर्ममें रुचि होनेपर भी ये प्रजावृद्धिके लिये ही तत्पर हैं, तब उन्होंने उनके पास आकर कहा—'अरे हर्यश्वो ! तुम प्रजापति हो तो क्या हुआ। वास्तवमें तो तुमलोग मूर्ख ही हो। बतलाओ तो, जब तुमलोगोंने पृथ्वीका अन्त ही नहीं देखा तब सृष्टि कैसे करोगे ? बड़े खेदकी बात है ! ॥ ४—६ ॥ देखो—एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है। एक ऐसा बिल है, जिससे बाहर निकलनेका रास्ता ही नहीं है। एक ऐसी स्त्री है, जो बहुरूपिणी है। एक ऐसा पुरुष है, जो व्यभिचारिणीका पति है। एक ऐसी नदी है, जो आगे-पीछे दोनों ओर बहती है। एक ऐसा विचित्र घर है, जो पचीस पदार्थोंसे बना है। एक ऐसा हंस है, जिसकी कहानी बड़ी विचित्र है। एक ऐसा चक्र है, जो छुरे एवं वज्रसे बना हुआ है और अपने-आप घूमता रहता है। मूर्ख हर्यश्वो ! जबतक तुमलोग अपने सर्वज्ञ पिताके उचित आदेशको समझ नहीं लोगे और इन उपर्युक्त वस्तुओंको देख नहीं लोगे, तबतक उनके आज्ञानुसार सृष्टि कैसे कर सकोगे ?' ॥ ७—९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! हर्यश्व जन्मसे ही बड़े बुद्धिमान् थे। वे देवर्षि नारदकी यह पहेली, ये गूढ़ वचन सुनकर अपनी बुद्धिसे स्वयं ही विचार करने लगे—॥ १० ॥ '(देवर्षि नारदका कहना तो सच है) यह लिङ्गशरीर ही, जिसे साधारणतः जीव कहते हैं, पृथ्वी है और यही आत्माका अनादि बन्धन है। इसका अन्त (विनाश) देखे बिना मोक्षके अनुपयोगी कर्मोंमें लगे रहनेसे क्या लाभ है ? ॥ ११ ॥ सचमुच ईश्वर एक ही है। वह जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं और उनके

अभिमानियोंसे भिन्न, उनका साक्षी तुरीय है। वह सबका आश्रय है परन्तु उसका आश्रय कोई नहीं है। वही भगवान् हैं। उस प्रकृति आदिसे अतीत, नित्यमुक्त परमात्माको देखे बिना भगवान्के प्रति असमर्पित कर्मोंसे जीवको क्या लाभ है?॥१२॥ जैसे मनुष्य बिलरूप पातालमें प्रवेश करके वहाँसे नहीं लौट पाता—वैसे ही जीव जिसको प्राप्त होकर फिर संसारमें नहीं लौटता, जो स्वयं अन्तर्ज्योतिःस्वरूप है, उस परमात्माको जाने बिना विनाशवान् स्वर्ग आदि फल देनेवाले कर्मोंको करनेसे क्या लाभ है? ॥ १३ ॥ यह अपनी बुद्धि ही बहुरूपिणी और सत्त्व, रज आदि गुणोंको धारण करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है। इस जीवनमें इसका अन्त जाने बिना—विवेक प्राप्त किये बिना अशान्तिको अधिकाधिक बढ़ानेवाले कर्म करनेका प्रयोजन ही क्या है?॥१४॥यह बुद्धि ही कुलटा स्त्रीके समान है। इसके सङ्गसे जीवरूप पुरुषका ऐश्वर्य—इसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी है। इसीके पीछे-पीछे वह कुलटा स्त्रीके पतिकी भाँति न जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा है। इसकी विभिन्न गतियों, चालोंको जाने बिना ही विवेकरहित कर्मोंसे क्या सिद्धि मिलेगी? ॥ १५ ॥ माया ही दोनों ओर बहनेवाली नदी है। यह सृष्टि भी करती है और प्रलय भी। जो लोग इससे निकलनेके लिये तपस्या, विद्या आदि तटका सहारा लेने लगते हैं, उन्हें रोकनेके लिये क्रोध, अहंकार आदिके रूपमें वह और भी वेगसे बहने लगती है। जो पुरुष उसके वेगसे विवश एवं अनभिज्ञ है, वह मायिक कर्मोंसे क्या लाभ उठावेगा?॥ १६ ॥ ये पचीस तत्त्व ही एक अद्भुत घर हैं। पुरुष उनका आश्चर्यमय आश्रय है। वही समस्त कार्य-कारणात्मक जगत्का अधिष्ठाता है। यह बात न जानकर सच्चा स्वातन्त्र्य प्राप्त किये बिना झूठी स्वतन्त्रतासे किये जानेवाले कर्म व्यर्थ ही हैं ॥ १७ ॥ भगवान्का स्वरूप बतलानेवाला शास्त्र हंसके समान नीर-क्षीर-विवेकी है। वह बन्ध-मोक्ष, चेतन और जडको अलग-अलग करके दिखा देता है। ऐसे अध्यात्मशास्त्ररूप हंसका आश्रय छोड़कर, उसे जाने बिना बहिर्मुख बनानेवाले कर्मोंसे लाभ ही क्या है? ॥ १८ ॥ यह काल ही एक चक्र है। यह निरन्तर घूमता रहता है। इसकी धार छुरे और वज्रके समान तीखी है और यह सारे जगत्को अपनी ओर खींच रहा है। इसको रोकनेवाला कोई नहीं' यह परम स्वतन्त्र है। यह बात न जानकर कर्मोंके फलको नित्य समझकर जो लोग सकामभावसे उनका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उन अनित्य कर्मोंसे क्या लाभ होगा?॥ १९॥ शास्त्र ही पिता है; क्योंकि दूसरा जन्म शास्त्रके द्वारा ही होता है और उसका आदेश कर्मोंमें लगना नहीं, उनसे निवृत्त होना है। इसे जो नहीं जानता, वह गुणमय शब्द आदि विषयोंपर विश्वास कर लेता है। अब वह कर्मोंसे निवृत्त होनेकी आज्ञाका पालन भला, कैसे कर सकता है?' ॥ २० ॥ परीक्षित्! हर्यश्वोंने एक मतसे यही निश्चय किया और नारदजीकी परिक्रमा करके वे उस मोक्षपथके पथिक बन गये, जिसपर चलकर फिर लौटना नहीं पड़ता ॥ २१ ॥ इसके बाद देवर्षि नारद स्वरब्रह्ममें—संगीतलहरीमें अभिव्यक्त हुए, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें अपने चित्तको अखण्डरूपसे स्थिर करके लोक-लोकान्तरोंमें विचरने लगे ॥ २२ ॥

परीक्षित्! जब दक्षप्रजापतिको मालूम हुआ कि मेरे शीलवान् पुत्र नारदके उपदेशसे कर्तव्यच्युत हो गये हैं, तब वे शोकसे व्याकुल हो गये। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। सचमुच अच्छी सन्तानका होना भी शोकका ही कारण है ॥ २३ ॥ ब्रह्माजीने दक्षप्रजापतिको बड़ी सान्त्वना दी। तब उन्होंने पञ्चजन-नन्दिनी असिक्नीके गर्भसे एक हजार पुत्र और उत्पन्न किये। उनका नाम था शबलाश्व ॥ २४ ॥ वे भी अपने पिता दक्षप्रजापतिकी आज्ञा पाकर प्रजासृष्टिके उद्देश्यसे तप करनेके लिये उसी नारायणसरोवरपर गये, जहाँ जाकर उनके बड़े भाइयोंने सिद्धि प्राप्त की थी ॥ २५ ॥ शबलाश्वोंने वहाँ जाकर उस सरोवरमें स्नान किया। स्नानमात्रसे ही उनके अन्तःकरणके सारे मल धुल गये। अब वे परब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते हुए महान् तपस्यामें लग गये॥ २६ ॥ कुछ महीनोंतक केवल जल और कुछ महीनोंतक केवल हवा पीकर ही उन्होंने 'हम नमस्कारपूर्वक ओङ्कारस्वरूप भगवान् नारायणका ध्यान करते हैं, जो विशुद्ध चित्तमें निवास करते हैं, सबके अन्तर्यामी हैं तथा सर्वव्यापक एवं परमहंसस्वरूप हैं।'—इस मन्त्र* का अभ्यास करते हुए मन्त्राधिपति भगवान्की आराधना की ॥ २७-२८ ॥

* ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने । विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार दक्षके पुत्र शबलाश्व प्रजासृष्टिके लिये तपस्यामें संलग्न थे । उनके पास भी देवर्षि नारद आये और उन्होंने पहलेके समान ही कूट वचन कहे॥२९॥ उन्होंने कहा—'दक्षप्रजापतिके पुत्रो ! मैं तुमलोगोंको जो उपदेश देता हूँ, उसे सुनो । तुमलोग तो अपने भाइयोंसे बड़ा प्रेम करते हो । इसलिये उनके मार्गका अनुसन्धान करो ॥ ३० ॥ जो धर्मज्ञ भाई अपने बड़े भाइयोंके श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करता है, वही सच्चा भाई है । वह पुण्यवान् पुरुष परलोकमें मरुद्गणोंके साथ आनन्द भोगता है ॥ ३१ ॥ परीक्षित् ! शबलाश्वोंको इस प्रकार उपदेश देकर देवर्षि नारद वहाँसे चले गये और उन लोगोंने भी अपने भाइयोंके मार्गका ही अनुगमन किया; क्योंकि नारदजीका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता ॥ ३२ ॥ वे उस पथके पथिक बने, जो अन्तर्मुखी वृत्तिसे प्राप्त होनेयोग्य, अत्यन्त सुन्दर और भगवत्प्राप्तिके अनुकूल है । वे बीती हुई रात्रियोंके समान न तो उस मार्गसे अबतक लौटे हैं और न आगे लौटेंगे ही ॥ ३३ ॥

दक्षप्रजापतिने देखा कि आजकल बहुत-से अशकुन हो रहे हैं । उनके चित्तमें पुत्रोंके अनिष्टकी आशङ्का हो आयी । इतनेमें ही उन्हें माल्रम हुआ कि पहलेकी भाँति अबकी बार भी नारदजीने मेरे पुत्रोंको चौपट कर दिया ॥ ३४ ॥ उन्हें अपने पुत्रोंकी कर्तव्यच्युतिसे बड़ा शोक हुआ और वे नारदजीपर बड़े क्रोधित हुए । उनके मिलनेपर क्रोधके मारे दक्षप्रजापतिके होठ फड़कने लगे और वे आवेशमें भरकर नारदजीसे बोले ॥ ३५ ॥

दक्षप्रजापतिने कहा—ओ दुष्ट ! तुमने झूठमूठ साधुओंका बाना पहन रक्खा है ! हमारे भोलेभाले बालकोंको भिक्षुकोंका मार्ग दिखाकर तुमने हमारा बड़ा अपकार किया है ।३६। अभी उन्होंने ब्रह्मचर्यसे ऋषि-ऋण, यज्ञसे देव-ऋण और पुत्रोत्पत्तिसे पितृ-ऋण नहीं उतारा था । उन्हें अभी कर्मफलकी नश्वरताके सम्बन्धमें भी कुछ विचार नहीं था । परन्तु पापात्मन् ! तुमने उनके दोनों लोकोंका सुख चौपट कर दिया ॥३७॥ सचमुच तुम्हारे हृदयमें दयाका नाम भी नहीं है । तुम इस प्रकार बच्चोंकी बुद्धि बिगाड़ते फिरते हो । तुमने भगवान्के पार्षदोंमें रहकर उनकी कीर्तिमें कलङ्क ही लगाया । सचमुच तुम बड़े निर्लज्ज हो ॥ ३८ ॥ मैं जानता हूँ कि भगवान्के पार्षद सदा-सर्वदा दुखी प्राणियोंपर दया करनेके लिये व्यग्र रहते हैं । परन्तु तुम प्रेमभावका विनाश करनेवाले हो । तुम उन लोगोंसे भी वैर करते हो, जो किसीसे वैर नहीं करते ॥ ३९ ॥ यदि तुम ऐसा समझते हो कि वैराग्यसे ही स्नेहपाश—विषयासक्तिका बन्धन कट सकता है, तो तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है; क्योंकि तुम्हारे-जैसे झूठमूठ वैराग्यका स्वाँग भरनेवालोंसे किसीको वैराग्य नहीं हो सकता ॥ ४० ॥ नारद ! मनुष्य विषयोंका अनुभव किये बिना उनकी कटुता नहीं जान सकता । इसलिये उनकी दुःखरूपताका अनुभव होनेपर स्वयं जैसा वैराग्य होता है, वैसा दूसरोंके बहकानेसे नहीं होता ॥४१॥ हमलोग सद्गृहस्थ हैं, अपनी धर्ममर्यादाका पालन करते हैं । एक बार पहले भी तुमने हमारा असह्य अपकार किया था । तब हमने उसे सह लिया ॥ ४२ ॥ तुम तो हमारी वंशपरम्पराका उच्छेद करनेपर ही उतारू हो रहे हो । तुमने फिर हमारे साथ वही दुष्टताका व्यवहार किया । इसलिये मूढ़ ! जाओ, लोक-लोकान्तरोंमें भटकते रहो । कहीं भी तुम्हारे लिये ठहरनेको ठौर नहीं होगी ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! संतशिरोमणि देवर्षि नारदने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया । संसारमें बस, साधुता इसीका नाम है कि बदला लेनेकी शक्ति रहनेपर भी दूसरेका किया हुआ अपकार सह लिया जाय ॥ ४४ ॥

छठाँ अध्याय

दक्षप्रजापतिकी साठ कन्याओंके वंशका विवरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! तदनन्तर ब्रह्माजीके बहुत अनुनय-विनय करनेपर दक्षप्रजापतिने अपनी पत्नी असिक्नीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे सभी अपने पिता दक्षसे बहुत प्रेम करती थीं ॥ १ ॥ दक्षप्रजापतिने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो भूतको, दो अङ्गिराको, दो कृशाश्वको और शेष चार तार्क्ष्यनामधारी कश्यपको ही व्याह दीं ॥ २ ॥ परीक्षित् ! तुम इन दक्षकन्याओं और इनकी सन्तानोंके नाम मुझसे सुनो। इन्हींकी वंशपरम्परा तीनों लोकोंमें फैली हुई है ॥ ३ ॥

धर्मकी दस पत्नियाँ थीं—भानु, लम्बा, ककुभ्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और सङ्कल्पा। इनके पुत्रोंके नाम सुनो ॥ ४ ॥ राजन् ! भानुका पुत्र देवऋषभ और उसका इन्द्रसेन था। लम्बाका पुत्र हुआ विद्योत और उसके मेघगण ॥ ५ ॥ ककुभ्का पुत्र हुआ सङ्कट, उसका कीकट और कीकटके पुत्र हुए पृथ्वीके सम्पूर्ण दुर्गों (किलों) के अभिमानी देवता। जामिके पुत्रका नाम था स्वर्ग और उसका पुत्र हुआ नन्दी ॥ ६ ॥ विश्वाके विश्वेदेव हुए। उनके कोई सन्तान न हुई। साध्यासे साध्यगण हुए और उनका पुत्र हुआ अर्थसिद्धि ॥ ७ ॥ मरुत्वतीके दो पुत्र हुए—मरुत्वान् और जयन्त। जयन्त भगवान् वासुदेवके अंश हैं, जिन्हें लोग उपेन्द्र भी कहते हैं ॥ ८ ॥ मुहूर्तासे मुहूर्तके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। ये अपने-अपने मुहूर्तमें जीवोंको उनके कर्मानुसार फल देते हैं ॥ ९ ॥ सङ्कल्पाका पुत्र हुआ सङ्कल्प और उसका काम। वसुके पुत्र आठों वसु हुए। उनके नाम मुझसे सुनो ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। द्रोणकी पत्नीका नाम है अभिमति। उससे हर्ष, शोक, भय आदिके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ प्राणकी पत्नी ऊर्जस्वतीके गर्भसे सह, आयु और पुरोजव नामके तीन पुत्र हुए। ध्रुवकी पत्नी धरणीने अनेक नगरोंके अभिमानी देवता उत्पन्न किये ॥ १२ ॥ अर्ककी पत्नी वासनाके गर्भसे तर्ष (तृष्णा) आदि पुत्र हुए। अग्नि नामक वसुकी पत्नी धाराके गर्भसे द्रविणक आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥ कृत्तिकापुत्र स्कन्द भी अग्निसे ही उत्पन्न हुए। उनसे विशाख आदिका जन्म हुआ। दोषकी पत्नी शर्वरीके गर्भसे शिशुमारका जन्म हुआ। वह भगवान्का कलावतार है ॥ १४ ॥ वसुकी पत्नी आङ्गिरसीसे शिल्पकलाके अधिपति विश्वकर्माजी हुए। विश्वकर्माके उनकी भार्या कृतीके गर्भसे चाक्षुष मनु हुए और उनके पुत्र विश्वेदेव एवं साध्यगण हुए ॥ १५ ॥ विभावसुकी पत्नी उषासे तीन पुत्र हुए—व्युष्ट, रोचिष् और आतप। उनमेंसे आतपके पञ्चयाम (दिवस) नामक पुत्र हुआ, उसीके कारण सब जीव अपने-अपने कार्योंमें लगे रहते हैं ॥ १६ ॥

भूतकी पत्नी दक्षनन्दिनी सरूपाने कोटि-कोटि रुद्रगण उत्पन्न किये। इनमें रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान्—ये ग्यारह मुख्य हैं। भूतकी दूसरी पत्नी भूतासे भयङ्कर भूत और विनायकादिका जन्म हुआ। ये सब ग्यारहवें प्रधान रुद्र महान्के पार्षद हुए ॥ १७-१८ ॥ अङ्गिरा प्रजापतिकी प्रथम पत्नी स्वधाने पितृगणको उत्पन्न किया और दूसरी पत्नी सतीने अथर्वाङ्गिरस नामक वेदको ही पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया ॥ १९ ॥ कृशाश्वकी पत्नी अर्चिसे धूम्रकेशका जन्म हुआ और धिषणासे चार पुत्र हुए—वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु ॥ २० ॥ तार्क्ष्यनामधारी कश्यपकी चार स्त्रियाँ थीं—विनता, कद्रू, पतङ्गी और यामिनी। पतङ्गीसे पक्षियोंका और यामिनीसे शलभों (पतिंगों) का जन्म हुआ ॥ २१ ॥ विनताके पुत्र गरुड हुए, ये ही भगवान् विष्णुके वाहन हैं। विनताके ही दूसरे पुत्र अरुण हैं, जो भगवान् सूर्यके सारथि हैं। कद्रूसे अनेकों नाग उत्पन्न हुए ॥ २२ ॥

परीक्षित् ! कृत्तिका आदि सत्ताईस नक्षत्राभिमानिनी देवियाँ चन्द्रमाकी पत्नियाँ हैं। रोहिणीसे विशेष प्रेम करनेके कारण चन्द्रमाको दक्षने शाप दे दिया, जिससे

उन्हें क्षयरोग हो गया था। उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई ॥२३॥ उन्होंने दक्षको फिरसे प्रसन्न करके कृष्ण-पक्षकी क्षीण कलाओंके शुक्लपक्षमें पूर्ण होनेका वर तो प्राप्त कर लिया, (परन्तु नक्षत्राभिमानिनी देवियोंसे उन्हें कोई सन्तान न हुई) अब तुम कश्यपपत्नियोंके मङ्गलमय नाम सुनो। वे लोकमाताएँ हैं। उन्हींसे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। उनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि। इनमें तिमिके पुत्र हैं—जलचर जन्तु और सरमाके बाघ आदि हिंसक जीव ॥ २४–२६ ॥ सुरभिके पुत्र हैं—भैंस, गाय तथा दूसरे दो खुरवाले पशु। ताम्राकी सन्तान हैं—बाज, गीध आदि शिकारी पक्षी। मुनिसे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं ॥ २७ ॥ क्रोधवशाके पुत्र हुए—साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तु। इलासे वृक्ष, लता आदि पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ और सुरसासे यातुधान (राक्षस) ॥ २८ ॥ अरिष्टासे गन्धर्व और काष्ठासे घोड़े आदि एक खुरवाले पशु उत्पन्न हुए। दनुके इकसठ पुत्र हुए। उनमें प्रधान-प्रधानके नाम सुनो ॥२९॥ द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय ॥ ३०-३१ ॥ स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभासे नमुचिने और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठासे महाबली नहुषनन्दन ययातिने विवाह किया ॥ ३२ ॥ दनुके पुत्र वैश्वानरकी चार सुन्दर कन्याएँ थीं। इनके नाम थे—उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका ।३३। इनमेंसे उपदानवीके साथ हिरण्याक्षका और हयशिराके साथ क्रतुका विवाह हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे प्रजापति भगवान् कश्यपने ही वैश्वानरकी शेष दो पुत्रियों—पुलोमा और कालकाके साथ विवाह किया। उनसे पौलोम और कालकेय नामके साठ हजार रणवीर दानव हुए। इन्हींका दूसरा नाम निवातकवच था। ये यज्ञकर्ममें विघ्न डालते थे, इसलिये परीक्षित् ! तुम्हारे दादा अर्जुनने अकेले ही उन्हें इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये मार डाला। यह उन दिनोंकी बात है, जब अर्जुन स्वर्गमें गये हुए थे ॥ ३४–३६ ॥ विप्रचित्तिकी पत्नी सिंहिकाके गर्भसे एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़ा था राहु, जिसकी गणना ग्रहोंमें हो गयी। शेष सौ पुत्रोंका नाम केतु था ॥ ३७ ॥

परीक्षित् ! अब क्रमशः अदितिकी वंशपरम्परा सुनो। इस वंशमें सर्वव्यापक देवाधिदेव नारायणने अपने अंशसे वामनरूपमें अवतार लिया था ॥३८॥ अदितिके पुत्र थे—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम (वामन)। यही बारह आदित्य कहलाये ॥ ३९ ॥ विवस्वान्की पत्नी महाभाग्यवती संज्ञाके गर्भसे श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु एवं यम-यमीका जोड़ा पैदा हुआ। संज्ञाने ही घोड़ीका रूप धारण करके भगवान् सूर्यके द्वारा भूलोकमें दोनों अश्विनीकुमारोंको जन्म दिया ॥४०॥ विवस्वान्की दूसरी पत्नी थी छाया। उसके शनैश्चर और सावर्णि मनु नामके दो पुत्र तथा तपती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। तपतीने संवरणको पतिरूपमें वरण किया ॥ ४१ ॥ अर्यमाकी पत्नी मातृका थी। उसके गर्भसे चर्षणी नामक पुत्र हुए। वे कर्तव्य-अकर्तव्यके ज्ञानसे युक्त थे। इसलिये ब्रह्माजीने उन्हींके आधारपर मनुष्यजातिकी (ब्राह्मणादि वर्णोंकी) कल्पना की ॥४२॥ पूषाके कोई सन्तान न हुई। प्राचीन कालमें जब शिवजी दक्षपर क्रोधित हुए थे, तब पूषा दाँत दिखाकर हँसने लगे थे; इसलिये वीरभद्रने इनके दाँत तोड़ दिये थे। तबसे पूषा पिसा हुआ अन्न ही खाते हैं ॥ ४३ ॥ दैत्योंकी छोटी बहिन कुमारी रचना त्वष्टाकी पत्नी थी। रचनाके गर्भसे दो पुत्र हुए—संनिवेश और पराक्रमी विश्वरूप ॥ ४४ ॥ इस प्रकार विश्वरूप यद्यपि शत्रुओंके भानजे थे—फिर भी जब देवगुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रसे अपमानित होकर देवताओंका परित्याग कर दिया, तब देवताओंने विश्वरूपको ही अपना पुरोहित बनाया था ॥ ४५ ॥

सातवाँ अध्याय

बृहस्पतिजीके द्वारा देवताओंका त्याग और विश्वरूपका देवगुरुके रूपमें वरण

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! देवाचार्य बृहस्पतिजीने अपने प्रिय शिष्य देवताओंको किस कारण त्याग दिया था ? देवताओंने अपने गुरुदेवका ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया था, आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन् ! इन्द्रको त्रिलोकीका ऐश्वर्य पाकर घमंड हो गया था । इस घमंडके कारण वे धर्ममर्यादाका, सदाचारका उल्लङ्घन करने लगे थे । एक दिनकी बात है, वे भरी सभामें अपनी पत्नी शचीके साथ ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए थे, उनचास मरुद्गण, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, आदित्य, ऋभुगण, विश्वेदेवा, साध्यगण और दोनों अश्विनीकुमार उनकी सेवामें उपस्थित थे । सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी मुनिगण, विद्याधर, अप्सराएँ, किन्नर, पक्षी और नाग उनकी सेवा और स्तुति कर रहे थे । सब ओर ललित स्वरसे देवराज इन्द्रकी कीर्तिका गान हो रहा था । ऊपरकी ओर चन्द्रमण्डलके समान सुन्दर श्वेत छत्र शोभायमान था । चँवर, पंखे आदि महाराजोचित सामग्रियाँ यथास्थान सुसज्जित थीं । इस दिव्य समाजमें देवराज बड़े ही सुशोभित हो रहे थे ॥ २—६ ॥ इसी समय देवराज इन्द्र और समस्त देवताओंके परम आचार्य बृहस्पतिजी वहाँ आये । उन्हें सुर-असुर सभी नमस्कार करते हैं । इन्द्रने देख लिया कि वे सभामें आये हैं; परन्तु वे न तो खड़े हुए और न आसन आदि देकर गुरुका सत्कार ही किया । यहाँतक कि वे अपने आसनसे हिले-डुलेतक नहीं ॥ ७-८ ॥ त्रिकालदर्शी समर्थ बृहस्पतिजीने देखा कि यह ऐश्वर्यमदका दोष है ! बस, वे झटपट वहाँसे निकलकर चुपचाप अपने घर चले आये ॥ ९ ॥

परीक्षित् ! उसी समय देवराज इन्द्रको चेत हुआ । वे समझ गये कि मैंने अपने गुरुदेवकी अवहेलना की है । वे भरी सभामें स्वयं ही अपनी निन्दा करने लगे ॥ १० ॥ 'हाय-हाय ! बड़े खेदकी बात है कि भरी सभामें मूर्खतावश मैंने ऐश्वर्यके नशेमें चूर होकर अपने गुरुदेवका तिरस्कार कर दिया । सचमुच मेरा यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय है ॥ ११ ॥ भला, कौन विवेकी पुरुष इस स्वर्गकी राजलक्ष्मीको पानेकी इच्छा करेगा ? देखो तो सही, आज इसीने मुझ देवराजको भी असुरोंके-से रजोगुणी भावसे भर दिया ॥ १२ ॥ जो लोग यह कहते हैं कि सार्वभौम राजसिंहासनपर बैठा हुआ सम्राट् किसीके आनेपर राजसिंहासनसे न उठे, वे धर्मका वास्तविक स्वरूप नहीं जानते ॥ १३ ॥ ऐसा उपदेश करनेवाले कुमार्गकी ओर ले जानेवाले हैं । वे स्वयं घोर नरकमें गिरते हैं । उनकी बातपर जो लोग विश्वास करते हैं, वे पत्थरकी नावकी तरह डूब जाते हैं ॥ १४ ॥ मेरे गुरुदेव बृहस्पतिजी ज्ञानके अथाह समुद्र हैं । मैंने बड़ी शठता की । अब मैं उनके चरणोंमें अपना माथा टेककर उन्हें मनाऊँगा' ॥ १५ ॥

परीक्षित् ! देवराज इन्द्र इस प्रकार सोच ही रहे थे कि भगवान् बृहस्पतिजी अपने घरसे निकलकर योगबलसे अन्तर्धान हो गये ॥ १६ ॥ देवराज इन्द्रने अपने गुरुदेवको बहुत ढूँढ़ा-ढुँढ़वाया परन्तु उनका कहीं पता न चला । तब वे गुरुके बिना अपनेको सुरक्षित न समझकर देवताओंके साथ अपनी बुद्धिके अनुसार स्वर्गकी रक्षाका उपाय सोचने लगे, परन्तु वे कुछ भी सोच न सके । उनका चित्त अशान्त ही बना रहा ॥ १७ ॥ परीक्षित् ! दैत्योंको भी देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्रकी अनबनका पता लग गया । तब उन मदोन्मत्त और आततायी असुरोंने अपने गुरु शुक्राचार्यके आदेशानुसार देवताओंपर विजय पानेके लिये धावा बोल दिया ॥ १८ ॥ उन्होंने देवताओंपर इतने तीखे-तीखे बाणोंकी वर्षा की कि उनके मस्तक, जंघा, बाहु आदि अंग कट-कटकर गिरने लगे । तब इन्द्रके साथ सभी देवता सिर झुकाकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये ॥ १९ ॥ स्वयम्भू एवं समर्थ ब्रह्माजीने देखा कि देवताओंकी तो सचमुच बड़ी दुर्दशा हो रही है । अतः उनका हृदय अत्यन्त करुणासे भर गया । वे देवताओंको धीरज बँधाते हुए कहने लगे ॥ २० ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ ! यह बड़े खेदकी बात है । सचमुच तुमलोगोंने बहुत बुरा काम किया । हरे, हरे ! तुमलोगोंने ऐश्वर्यके मदसे अंधे होकर ब्रह्मज्ञानी, वेदज्ञ एवं संयमी ब्राह्मणका सत्कार नहीं किया ॥ २१ ॥ देवताओ ! तुम्हारी उसी अनीतिका यह फल है कि आज समृद्धिशाली होनेपर भी तुम्हें अपने निर्बल शत्रुओंके सामने नीचा देखना पड़ा ॥ २२ ॥ देवराज ! देखो, तुम्हारे शत्रु भी पहले अपने गुरुदेव शुक्राचार्यका तिरस्कार करनेके कारण अत्यन्त निर्बल हो गये थे, परन्तु अब भक्तिभावसे उनकी आराधना करके वे फिर धन-जनसे सम्पन्न हो गये हैं। देवताओ ! मुझे तो ऐसा मालूम पड़ रहा है कि शुक्राचार्यको अपना आराध्यदेव माननेवाले ये दैत्यलोग कुछ दिनोंमें मेरा ब्रह्मलोक भी छीन लेंगे ॥ २३ ॥ भृगुवंशियोंने इन्हें अर्थशास्त्रकी पूरी-पूरी शिक्षा दे रक्खी है । ये जो कुछ करना चाहते हैं, उसका भेद तुमलोगोंको नहीं मिल पाता । उनकी सलाह बहुत गुप्त होती है । ऐसी स्थितिमें वे स्वर्गको तो समझते ही क्या हैं. वे चाहे जिस लोकको जीत सकते हैं । सच है, जो श्रेष्ठ मनुष्य ब्राह्मण, गोविन्द और गौओंको अपना सर्वस्व मानते हैं और जिनपर उनकी कृपा रहती है, उनका कभी अमङ्गल नहीं होता ॥ २४ ॥ इसलिये अब तुमलोग शीघ्र ही त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके पास जाओ और उन्हींकी सेवा करो । वे सच्चे ब्राह्मण, तपस्वी और संयमी हैं । यदि तुमलोग उनके असुरोंके प्रति प्रेमको क्षमा कर सकोगे और उनका सम्मान करोगे, तो वे तुम्हारा काम बना देंगे ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब ब्रह्माजी-ने देवताओंसे इस प्रकार कहा, तब उनकी चिन्ता दूर हो गयी । वे त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप ऋषिके पास गये और उन्हें हृदयसे लगाकर यों कहने लगे ॥ २६ ॥

देवताओंने कहा—बेटा विश्वरूप ! तुम्हारा कल्याण हो । हम तुम्हारे आश्रमपर अतिथिके रूपमें आये हैं । हम एक प्रकारसे तुम्हारे पितर हैं । इसलिये तुम हम लोगोंकी समयोचित अभिलाषा पूर्ण करो ॥ २७ ॥ जिन्हें सन्तान हो गयी हो, उन सत्पुत्रोंका भी सबसे बड़ा धर्म यही है कि वे अपने पिता तथा अन्य गुरु-जनोंकी सेवा करें । फिर जो ब्रह्मचारी हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है ॥ २८ ॥ वत्स ! आचार्य वेदकी, पिता ब्रह्माजीकी, भाई इन्द्रकी और माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति होती है ॥ २९ ॥ (इसी प्रकार) बहिन दयाकी, अतिथि धर्मकी, अभ्यागत अग्निकी और जगत्‌के सभी प्राणी अपने आत्माकी ही मूर्ति—आत्मस्वरूप होते हैं ॥ ३० ॥ पुत्र ! हम तुम्हारे पितर हैं । इस समय शत्रुओंने हमें जीत लिया है । हम बड़े दुखी हो रहे हैं । तुम अपने तपोबलसे हमारा यह दुःख, दारिद्र्य, पराजय टाल दो । पुत्र ! तुम्हें हमलोगों-की आज्ञाका पालन करना चाहिये ॥ ३१ ॥ तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो, अतः जन्मसे ही हमारे गुरु हो । हम तुम्हें आचार्यके रूपमें वरण करके तुम्हारी शक्ति-से अनायास ही शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेंगे ॥३२॥ पुत्र ! आवश्यकता पड़नेपर अपनेसे छोटोंका पैर छूना भी निन्दनीय नहीं है । वेदज्ञानको छोड़कर केवल अवस्था बड़प्पनका कारण भी नहीं है ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब देवताओं-ने इस प्रकार विश्वरूपसे पुरोहिती करनेकी प्रार्थना की, तब परम तपस्वी विश्वरूपने प्रसन्न होकर उनसे अत्यन्त प्रिय और मधुर शब्दोंमें कहा ॥ ३४ ॥

विश्वरूपने कहा—पुरोहितीका काम ब्रह्मतेजको क्षीण करनेवाला है । इसलिये धर्मशील महात्माओंने उसकी निन्दा की है । किन्तु आप मेरे स्वामी हैं और लोकेश्वर होकर भी मुझसे उसके लिये प्रार्थना कर रहे हैं । ऐसी स्थितिमें मेरे-जैसा व्यक्ति भला, आपलोगोंको कोरा जवाब कैसे दे सकता है ? मैं तो आपलोगोंका सेवक हूँ । आपकी आज्ञाओंका पालन करना ही मेरा स्वार्थ है ॥ ३५ ॥ देवगण ! हम अकिञ्चन हैं । खेती कट जानेपर अथवा अनाजकी हाट उठ जानेपर उसमेंसे गिरे हुए कुछ दाने चुन लाते हैं और उसीसे अपने देवकार्य तथा पितृकार्य सम्पन्न कर लेते हैं। लोकपालो ! इस प्रकार जब मेरी जीविका चल ही रही है, तब मैं पुरोहितीकी निन्दनीय वृत्ति क्यों करूँ ? उससे तो केवल वे ही लोग प्रसन्न होते हैं, जिनकी बुद्धि बिगड़ गयी है ॥ ३६ ॥ जो काम आपलोग मुझसे कराना

चाहते हैं, वह निन्दनीय है—फिर भी मैं आपके कामसे मुँह नहीं मोड़ सकता; क्योंकि आपलोगोंकी माँग ही कितनी है । इसलिये आपलोगोंका मनोरथ मैं तन-मन-धनसे पूरा करूँगा ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! विश्वरूप बड़े तपस्वी थे । देवताओंसे ऐसी प्रतिज्ञा करके उनके वरण करनेपर वे बड़ी लगनके साथ उनकी पुरोहिती करने लगे ॥ ३८ ॥ यद्यपि शुक्राचार्यने अपने नीतिबलसे असुरोंकी सम्पत्ति सुरक्षित कर दी थी, फिर भी समर्थ विश्वरूपने वैष्णवी विद्याके प्रभावसे उनसे वह सम्पत्ति छीनकर देवराज इन्द्रको दिला दी ॥ ३९ ॥ राजन् ! जिस विद्यासे सुरक्षित होकर इन्द्रने असुरोंकी सेनापर विजय प्राप्त की थी, उसका उदारबुद्धि विश्वरूपने ही उन्हें उपदेश किया था ॥ ४० ॥

आठवाँ अध्याय

नारायणकवचका उपदेश

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! देवराज इन्द्रने जिससे सुरक्षित होकर शत्रुओंकी चतुरङ्गिणी सेनाको खेल-खेलमें—अनायास ही जीतकर त्रिलोकीकी राजलक्ष्मीका उपभोग किया, आप उस नारायणकवचको मुझे सुनाइये और यह भी बतलाइये कि उन्होंने उससे सुरक्षित होकर रणभूमिमें किस प्रकार आक्रमणकारी शत्रुओंपर विजय प्राप्त की ॥ १-२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब देवताओंने विश्वरूपको पुरोहित बना लिया, तब देवराज इन्द्रके प्रश्न करनेपर विश्वरूपने उन्हें नारायणकवचका उपदेश किया । तुम एकाग्रचित्तसे उसका श्रवण करो ॥ ३ ॥

विश्वरूपने कहा—देवराज इन्द्र ! भयका अवसर उपस्थित होनेपर नारायणकवच धारण करके अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये । उसकी विधि यह है कि पहले हाथ-पैर धोकर आचमन करे, फिर हाथमें कुशकी पवित्री धारण करके उत्तर मुँह बैठ जाय । इसके बाद कवचधारणपर्यन्त और कुछ न बोलनेका निश्चय करके पवित्रतासे 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इन मन्त्रोंके द्वारा हृदयादि-अङ्गन्यास तथा अङ्गुष्ठादि-करन्यास करे । पहले 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रके ॐ आदि आठ अक्षरोंका क्रमशः पैरों, घुटनों, जाँघों, पेट, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और सिरमें न्यास करे । अथवा पूर्वोक्त मन्त्रके मकारसे लेकर ॐकारपर्यन्त आठ अक्षरोंका सिरसे आरम्भ करके उन्हीं आठ अङ्गोंमें विपरीत क्रमसे न्यास करे ॥ ४–६ ॥ तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रके ॐ आदि बारह अक्षरोंका दायीं तर्जनीसे बायीं तर्जनीतक दोनों हाथकी आठ अँगुलियों और दोनों अँगूठोंकी दो-दो गाँठोंमें न्यास करे ॥ ७ ॥ फिर 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्रके पहले अक्षर 'ॐ' का हृदयमें, 'वि' का ब्रह्मरन्ध्रमें, 'ष्' का भौंहोंके बीचमें, 'ण' का चोटीमें, 'वे' का दोनों नेत्रोंमें और 'न' का शरीरकी सब गाँठोंमें न्यास करे । तदनन्तर 'ॐ मः अस्त्राय फट्' कहकर दिग्बन्ध करे । इस प्रकार न्यास करनेसे इस विधिको जाननेवाला पुरुष मन्त्रस्वरूप हो जाता है ॥८–१०॥ इसके बाद समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यसे परिपूर्ण इष्टदेव भगवान्का ध्यान करे और अपनेको भी तद्रूप ही चिन्तन करे । तत्पश्चात् विद्या, तेज और तपःस्वरूप इस कवचका पाठ करे—॥ ११ ॥

'भगवान् श्रीहरि गरुड़जीकी पीठपर अपने चरण-कमल रक्खे हुए हैं । अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं । आठ हाथोंमें शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फंदा) धारण किये हुए हैं । वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ मत्स्यमूर्ति भगवान् जलके भीतर जलजन्तुओंसे और वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें । मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान्

खप्पर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें ॥ १३ ॥ जिनके घोर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज उठी थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर गये थे, वे दैत्य-यूथपतियोंके शत्रु भगवान् नृसिंह किले, जंगल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गमें, परशुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भरतके बड़े भाई भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥ भगवान् नारायण मारण-मोहन आदि भयङ्कर अभिचारों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विघ्नोंसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीव-भगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधोंसे* और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥ भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दुःख आदि भयदायक द्वन्द्वोंसे, यज्ञ-भगवान् लोकापवादसे, बलरामजी मनुष्यकृत कष्टोंसे और श्रीशेषजी क्रोधवश नामक सर्पोंके गणसे मेरी रक्षा करें ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे तथा बुद्धदेव पाखण्डियोंसे और प्रमादसे मेरी रक्षा करें। धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥ प्रातःकाल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन चढ़ आनेपर भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर, दोपहरके पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण शक्ति लेकर और दोपहरको भगवान् विष्णु चक्रराज सुदर्शन लेकर मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ तीसरे पहरमें भगवान् मधुसूदन अपना प्रचण्ड धनुष लेकर मेरी रक्षा करें। सायङ्कालमें ब्रह्मा आदि त्रिमूर्तिधारी माधव, सूर्यास्तके बाद हृषीकेश, अर्धरात्रिके पूर्व तथा अर्धरात्रिके समय अकेले भगवान् पद्मनाभ मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ रात्रिके पिछले प्रहरमें श्रीवत्सलाञ्छन श्रीहरि, उषाकालमें खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयसे पूर्व श्रीदामोदर और सम्पूर्ण सन्ध्याओंमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥

'सुदर्शन ! आपका आकार चक्र (रथके पहिये) की तरह है। आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान

* बत्तीस प्रकारके सेवापराध माने गये हैं—१-सवारीपर चढ़कर अथवा पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जाना। २-रथयात्रा, जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना। ३-श्रीमूर्तिके दर्शन करके प्रणाम न करना। ४-अशुचि-अवस्थामें दर्शन करना। ५-एक हाथसे प्रणाम करना। ६-परिक्रमा करते समय भगवान्‌के सामने आकर कुछ न रुककर फिर परिक्रमा करना अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना। ७-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने पैर पसारकर बैठना। ८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दोनों घुटनोंको ऊँचा करके उनको हाथोंसे लपेटकर बैठ जाना। ९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने सोना। १०-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने भोजन करना। ११-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने झूठ बोलना। १२-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने जोरसे बोलना। १३-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने आपसमें बातचीत करना। १४-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने चिल्लाना। १५-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कलह करना। १६-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको पीड़ा देना। १७-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीपर अनुग्रह करना। १८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको निष्ठुर वचन बोलना। १९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कम्बलसे सारा शरीर ढक लेना। २०-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी निन्दा करना। २१-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी स्तुति करना। २२-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अश्लील शब्द बोलना। २३-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अधोवायुका त्याग करना। २४-शक्ति रहते हुए भी गौण अर्थात् सामान्य उपचारोंसे भगवान्‌की सेवा-पूजा करना। २५-श्रीभगवान्‌को निवेदित किये बिना किसी भी वस्तुका खाना-पीना। २६-जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे सबसे पहले श्रीभगवान्‌को न चढ़ाना। २७-किसी शाक या फलादिके अगले भागको तोड़कर भगवान्‌के व्यञ्जनादिके लिये देना। २८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना। २९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना। ३०-गुरुदेवकी अभ्यर्थना, कुशल-प्रश्न और उनका स्तवन न करना। ३१-अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना और ३२-किसी भी देवताकी निन्दा करना।

अत्यन्त तीव्र है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं । जैसे आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रु-सेनाको शीघ्र-से-शीघ्र जला दीजिये, जला दीजिये ॥ २३ ॥ कौमोदकी गदा ! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है । आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और प्रेतादि ग्रहोंको अभी कुचल डालिये, कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये ॥ २४ ॥ शङ्खश्रेष्ठ ! आप भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेसे भयङ्कर शब्द करके मेरे शत्रुओंका दिल दहला दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयावने प्राणियोंको यहाँसे झटपट भगा दीजिये ॥ २५ ॥ भगवान्‌की प्यारी तलवार ! आपकी धार बहुत तीक्ष्ण है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये । भगवान्‌की प्यारी ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं । आप पापदृष्टि पापात्मा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ॥ २६ ॥

'सूर्य आदि ग्रह, धूमकेतु (पुच्छल तारे) आदि केतु, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु, दाढ़ोंवाले हिंसक पशु, भूत-प्रेत आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें जो-जो भय हों और जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों—वे सभी भगवान्‌के नाम, रूप तथा आयुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ ॥ २७-२८ ॥ बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रोंसे जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड और विष्वक्सेनजी अपने नामोच्चारणके प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचायें ॥ २९ ॥ श्रीहरिके नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचायें ॥ ३० ॥

'जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं—इस सत्यके प्रभावसे हमारे सारे उपद्रव नष्ट हो जायँ ॥ ३१ ॥ जो लोग ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्‌का स्वरूप समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है; फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं । यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें ॥ ३२-३३ ॥ जो अपने भयङ्कर अट्टहाससे सब लोगोंके भयको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं, वे भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशामें, नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें' ॥ ३४ ॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच सुना दिया । इस कवचसे तुम अपनेको सुरक्षित कर लो । बस, फिर तुम अनायास ही सब दैत्य-यूथपतियोंको जीत लोगे ॥ ३५ ॥ इस नारायणकवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने नेत्रोंसे देख लेता अथवा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ जो इस वैष्णवी विद्याको धारण कर लेता है, उसे राजा, डाकू, प्रेत-पिशाचादि और बाघ आदि हिंसक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं होता ॥ ३७ ॥ देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक कौशिकगोत्री ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके योगधारणासे अपना शरीर मरुभूमिमें त्याग दिया ॥ ३८ ॥ जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसके ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर निकले ॥ ३९ ॥ वहाँ आते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़े । इस घटनासे उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । जब उन्हें वालखिल्य मुनियोंने बतलाया कि यह नारायणकवच धारण करनेका प्रभाव है, तब उन्होंने उस ब्राह्मणदेवताको हड्डियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाहित कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने लोकको गये ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको समयपर सुनता है और जो आदरपूर्वक इसे धारण करता है, उसके सामने सभी प्राणी आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥ परीक्षित् ! शतक्रतु इन्द्रने आचार्य विश्वरूपजीसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४२ ॥

नवाँ अध्याय

विश्वरूपका वध, वृत्रासुरद्वारा देवताओंकी हार और भगवान्‌की प्रेरणासे देवताओंका दधीचि ऋषिके पास जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! हमने सुना है कि विश्वरूपके तीन सिर थे। वे एक मुँहसे सोमरस तथा दूसरेसे सुरा पीते थे और तीसरेसे अन्न खाते थे ॥ १ ॥ उनके पिता त्वष्टा आदि बारह आदित्य देवता थे, इसलिये वे यज्ञके समय प्रत्यक्षरूपमें ऊँचे स्वरसे बोलकर बड़े विनयके साथ देवताओंको आहुति देते थे ॥ २ ॥ साथ ही वे छिप-छिपकर असुरोंको भी आहुति दिया करते थे। उनकी माता असुर-कुलकी थीं, इसीलिये वे मातृस्नेहके वशीभूत होकर यज्ञ करते समय उस प्रकार असुरोंको भाग पहुँचाया करते थे ॥ ३ ॥ देवराज इन्द्रने देखा कि इस प्रकार वे देवताओंका अपराध और धर्मकी ओटमें कपट कर रहे हैं। इससे इन्द्र डर गये और क्रोधमें भरकर उन्होंने बड़ी फुर्तीसे उनके तीनों सिर काट लिये ॥ ४ ॥ विश्वरूपका सोमरस पीनेवाला सिर पपीहा, सुरापान करनेवाला गौरैया और अन्न खानेवाला तीतर हो गया ॥ ५ ॥ इन्द्र चाहते तो विश्वरूपके वधसे लगी हुई हत्याको दूर कर सकते थे; परन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित न समझा, वरं हाथ जोड़कर उसे स्वीकार कर लिया तथा एक वर्षतक उससे छूटनेका कोई उपाय नहीं किया। तदनन्तर सब लोगोंके सामने अपनी शुद्धि प्रकट करनेके लिये उन्होंने अपनी ब्रह्महत्याको चार हिस्सोंमें बाँटकर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियोंको दे दिया ॥ ६ ॥ परीक्षित्! पृथ्वीने बदलेमें यह वरदान लेकर कि जहाँ कहीं गड्ढा होगा, वह समयपर अपने-आप भर जायगा, इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चतुर्थांश स्वीकार कर लिया। वही ब्रह्महत्या पृथ्वीमें कहीं-कहीं ऊसरके रूपमें दिखायी पड़ती है ॥ ७ ॥ दूसरा चतुर्थांश वृक्षोंने लिया। उन्हें यह वर मिला कि उनका कोई हिस्सा कट जानेपर फिर जम जायगा। उनमें अब भी गोंदके रूपमें ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है ॥ ८ ॥ स्त्रियोंने यह वर पाकर कि वे सर्वदा पुरुषका सहवास कर सकें, ब्रह्महत्याका तीसरा चतुर्थांश स्वीकार किया। उनकी ब्रह्महत्या प्रत्येक महीनेमें रजके रूपसे दिखायी पड़ती है ॥ ९ ॥ जलने यह वर पाकर कि खर्च करते रहनेपर भी निर्झर आदिके रूपमें तुम्हारी बढ़ती ही होती रहेगी, ब्रह्महत्याका चौथा चतुर्थांश स्वीकार किया। फेन, बुद्बुद आदिके रूपमें वही ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है। अतएव मनुष्य उसे हटाकर जल ग्रहण किया करते हैं ॥ १० ॥

विश्वरूपकी मृत्युके बाद उनके पिता त्वष्टा 'हे इन्द्रशत्रो! तुम्हारी अभिवृद्धि हो और शीघ्र-से-शीघ्र तुम अपने शत्रुको मार डालो'—इस मन्त्रसे इन्द्रका शत्रु उत्पन्न करनेके लिये हवन करने लगे ॥ ११ ॥ यज्ञ समाप्त होनेपर अन्वाहार्य-पचन नामक अग्नि (दक्षिणाग्नि) से एक बड़ा भयावना दैत्य प्रकट हुआ। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो लोकोंका नाश करनेके लिये प्रलयकालीन विकराल काल ही प्रकट हुआ हो ॥ १२ ॥ परीक्षित्! वह प्रतिदिन अपने शरीरके सब ओर बाणके बराबर बढ़ जाया करता था। वह जले हुए पहाड़के समान काला और बड़े डीलडौलका था। उसके शरीरमेंसे सन्ध्याकालीन बादलोंके समान दीप्ति निकलती रहती थी ॥ १३ ॥ उसके सिरके बाल और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल रंगके तथा नेत्र दोपहरके सूर्यके समान प्रचण्ड थे ॥ १४ ॥ चमकते हुए तीन नोकोंवाले त्रिशूलको लेकर जब वह नाचने, चिल्लाने और कूदने लगता था, उस समय पृथ्वी काँप उठती थी और ऐसा जान पड़ता था कि उस त्रिशूलपर उसने अन्तरिक्षको उठा रक्खा है ॥ १५ ॥ वह बार-बार जँभाई लेता था। इससे जब उसका कन्दराके समान गम्भीर मुँह खुल जाता, तब जान पड़ता कि वह सारे आकाशको पी जायगा, जीभसे सारे नक्षत्रोंको चाट जायगा और अपनी विशाल एवं विकराल दाढ़ोंवाले मुँहसे तीनों लोकोंको निगल जायगा। उसके भयावने रूपको देखकर सब लोग डर गये और इधर-उधर भागने लगे ॥ १६-१७ ॥

परीक्षित्! त्वष्टाके तमोगुणी पुत्रने सारे लोकोंको घेर लिया था। इसीसे उस पापी और अत्यन्त क्रूर पुरुषका नाम वृत्रासुर पड़ा ॥ १८ ॥ बड़े-बड़े देवता

अपने-अपने अनुयायियोंके सहित एक साथ ही उसपर टूट पड़े तथा अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। परन्तु वृत्रासुर उनके सारे अस्त्र-शस्त्रोंको निगल गया ॥ १९ ॥ अब तो देवताओंके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनका प्रभाव जाता रहा। वे सब-के-सब दीन-हीन और उदास हो गये तथा एकाग्र चित्तसे अपने हृदयमें विराजमान आदिपुरुष श्रीनारायणकी शरणमें गये ॥ २० ॥

देवताओंने भगवान्‌से प्रार्थना की—वायु, आकाश, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत, इनसे बने हुए तीनों लोक, उनके अधिपति ब्रह्मादि तथा हम सब देवता जिस कालसे डरकर उसे पूजा-सामग्रीकी भेंट दिया करते हैं, वही काल भगवान्‌से भयभीत रहता है। इसलिये अब भगवान् ही हमारे रक्षक हैं ॥ २१ ॥ प्रभो! आपके लिये कोई नयी बात न होनेके कारण कुछ भी देखकर आप विस्मित नहीं होते। आप अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही सर्वथा पूर्णकाम, सम एवं शान्त हैं। जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरण लेता है, वह मूर्ख है। वह मानो कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्र पार करना चाहता है ॥ २२ ॥ वैवस्वत मनु पिछले कल्पके अन्तमें जिनके विशाल सींगमें पृथ्वीरूप नौकाको बाँधकर अनायास ही प्रलयकालीन सङ्कटसे बच गये, वे ही मत्स्यभगवान् हम शरणागतोंको वृत्रासुरके द्वारा उपस्थित किये हुए दुस्तर भयसे अवश्य बचायेंगे।२३। प्राचीन कालमें प्रचण्ड पवनके थपेड़ोंसे उठी हुई उत्ताल तरङ्गोंकी गर्जनाके कारण ब्रह्माजी भगवान्‌के नाभिकमलसे अत्यन्त भयानक प्रलयकालीन जलमें गिर पड़े थे। यद्यपि वे असहाय थे, तथापि जिनकी कृपासे वे उस विपत्तिसे बच सके, वे ही भगवान् हमें इस सङ्कटसे पार करें ॥ २४ ॥ उन्हीं प्रभुने अद्वितीय होनेपर भी अपनी मायासे हमारी रचना की और उन्हींके अनुग्रहसे हमलोग सृष्टिकार्यका सञ्चालन करते हैं। यद्यपि वे हमारे सामने ही सब प्रकारकी चेष्टाएँ कर-करा रहे हैं, तथापि 'हम स्वतन्त्र ईश्वर हैं'—अपने इस अभिमानके कारण हमलोग उनके स्वरूपको देख नहीं पाते ॥ २५ ॥ वे प्रभु जब देखते हैं कि देवता अपने शत्रुओंसे बहुत पीड़ित हो रहे हैं, तब वे वास्तवमें निर्विकार रहनेपर भी अपनी मायाका आश्रय लेकर देवता, ऋषि, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंमें अवतार लेते हैं तथा युग-युगमें हमें अपना समझकर हमारी रक्षा करते हैं ॥ २६ ॥ वे ही सबके आत्मा और परमाराध्य देव हैं। वे ही प्रकृति और पुरुषरूपसे विश्वके कारण हैं। वे विश्वसे पृथक् भी हैं और विश्वरूप भी हैं। हम सब उन्हीं शरणागत-वत्सल भगवान् श्रीहरिकी शरण ग्रहण करते हैं। उदार-शिरोमणि प्रभु अवश्य ही अपने निजजन हम देवताओंका कल्याण करेंगे ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महाराज! जब देवताओं-ने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब स्वयं शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् उनके सामने पश्चिमकी ओर (अन्तर्देशमें) प्रकट हुए ॥ २८ ॥ भगवान्‌के नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे। उनके साथ सोलह पार्षद उनकी सेवामें लगे हुए थे। वे देखनेमें सब प्रकारसे भगवान्‌के समान ही थे। केवल उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न और गलेमें कौस्तुभमणि नहीं थी ॥ २९ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌का दर्शन पाकर सभी देवता आनन्दसे विह्वल हो गये। उन लोगोंने धरतीपर लोटकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और फिर धीरे-धीरे उठकर वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

देवताओंने कहा—भगवन्! यज्ञमें स्वर्गादि देनेकी शक्ति तथा उनके फलकी सीमा निश्चित करनेवाले काल भी आप ही हैं। यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंको आप चक्रसे छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। इसलिये आपके नामोंकी कोई सीमा नहीं है। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥ विधातः! सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके अनुसार जो उत्तम, मध्यम और निकृष्ट गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनके नियामक आप ही हैं। आपके परमपदका वास्तविक स्वरूप इस कार्यरूप जगत्‌का कोई आधुनिक प्राणी नहीं जान सकता ॥३२॥

भगवन्! नारायण! वासुदेव! आप आदि पुरुष (जगत्‌के परम कारण) और महापुरुष (पुरुषोत्तम) हैं। आपकी महिमा असीम है। आप परम मङ्गलमय, परम कल्याण-स्वरूप और परम दयालु हैं। आप ही सारे जगत्‌के आधार एवं अद्वितीय हैं, केवल आप ही सारे जगत्‌के

स्वामी हैं। आप सर्वेश्वर हैं तथा सौन्दर्य और मृदुलताकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीके परम पति हैं। प्रभो! परमहंस परिव्राजक विरक्त महात्मा जब आत्मसंयमरूप परम समाधिसे भलीभाँति आपका चिन्तन करते हैं, तब उनके शुद्ध हृदयमें परमहंसोंके धर्म वास्तविक भगवद्भजनका उदय होता है। इससे उनके हृदयके अज्ञानरूप किवाड़ खुल जाते हैं और उनके आत्मलोकमें आप आत्मानन्दके रूपमें बिना किसी आवरणके प्रकट हो जाते हैं और वे आपका अनुभव करके निहाल हो जाते हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥ भगवन्! आपकी लीलाका रहस्य जानना बड़ा ही कठिन है। क्योंकि आप बिना किसी आश्रय और प्राकृत शरीरके, हमलोगोंके सहयोगकी अपेक्षा न करके, निर्गुण और निर्विकार होनेपर भी स्वयं ही इस सगुण जगत्की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ॥ ३४ ॥ भगवन्! हमलोग यह बात भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाते कि सृष्टिकर्ममें आप देवदत्त आदि किसी व्यक्तिके समान गुणोंके कार्यरूप इस जगत्में जीवरूपसे प्रकट हो जाते हैं और कर्मोंके अधीन होकर अपने किये अच्छे-बुरे कर्मोंका फल भोगते हैं, अथवा आप आत्माराम, शान्तस्वभाव एवं सबसे उदासीन—साक्षीमात्र रहते हैं तथा सबको समान देखते हैं ॥ ३५ ॥ हम तो यह समझते हैं कि यदि आपमें ये दोनों बातें रहें तो भी कोई विरोध नहीं है। क्योंकि आप स्वयं भगवान् हैं। आपके गुण अगणित हैं, महिमा अगाध है और आप सर्वशक्तिमान् हैं। आधुनिक लोग अनेकों प्रकारके विकल्प, वितर्क, विचार, झूठे प्रमाण और कुतर्कपूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन करके अपने हृदयको दूषित कर लेते हैं और यही कारण है कि वे दुराग्रही हो जाते हैं। आपमें उनके वाद-विवादके लिये अवसर ही नहीं है। आपका वास्तविक स्वरूप समस्त मायामय पदार्थोंसे परे, केवल है। जब आप उसीमें अपनी मायाको छिपा लेते हैं, तब ऐसी कौन-सी बात है जो आपमें नहीं हो सकती? इसलिये आप साधारण पुरुषोंके समान कर्ता-भोक्ता भी हो सकते हैं और महापुरुषोंके समान उदासीन भी। इसका कारण यह है कि न तो आपमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व है और न तो उदासीनता ही। आप तो दोनोंसे विलक्षण, अनिर्वचनीय हैं ॥ ३६ ॥ जैसे एक ही रस्सीका टुकड़ा भ्रान्त पुरुषोंको सर्प, माला, धारा आदिके रूपमें प्रतीत होता है, किन्तु जानकारको रस्सीके रूपमें,—वैसे ही आप भी भ्रान्तबुद्धिवालोंको कर्ता, भोक्ता आदि अनेक रूपोंमें दीखते हैं और ज्ञानीको शुद्ध सच्चिदानन्दके रूपमें। आप सभीकी बुद्धिका अनुसरण करते हैं ॥ ३७ ॥ विचारपूर्वक देखनेसे माळूम होता है कि आप ही समस्त वस्तुओंमें वस्तुत्वके रूपसे विराजमान हैं, सबके स्वामी हैं और सम्पूर्ण जगत्के कारण ब्रह्मा, प्रकृति आदिके भी कारण हैं। आप सबके अन्तर्यामी अन्तरात्मा हैं; इसलिये जगत्में जितने भी गुण-दोष प्रतीत हो रहे हैं, उन सबकी प्रतीतियाँ अपने अधिष्ठानस्वरूप आपका ही सङ्केत करती हैं और श्रुतियोंने समस्त पदार्थोंका निषेध करके अन्तमें निषेधकी अवधिके रूपमें केवल आपको ही शेष रक्खा है ॥ ३८ ॥ मधुसूदन! आपकी अमृतमयी महिमा रसका अनन्त समुद्र है। उसके नन्हे-से सीकरका भी, अधिक नहीं—एक बार भी स्वाद चख लेनेसे हृदयमें नित्य-निरन्तर परमानन्दकी धारा बहने लगती है। उसके कारण अबतक जगत्में विषय-भोगोंके जितने भी लेशमात्र, प्रतीतिमात्र सुखका अनुभव हुआ है या परलोक आदिके विषयमें सुना गया है, वह सब-का-सब जिन्होंने भुला दिया है, समस्त प्राणियोंके परम प्रियतम, हितैषी, सुहृद् और सर्वात्मा आप ऐश्वर्य-निधि परमेश्वरमें जो अपने मनको नित्य-निरन्तर लगाये रखते और आपके चिन्तनका ही सुख लूटते रहते हैं, वे आपके अनन्यप्रेमी परम भक्त पुरुष ही अपने स्वार्थ और परमार्थमें निपुण हैं। मधुसूदन! आपके वे प्यारे और सुहृद् भक्तजन भला, आपके चरणकमलोंका सेवन कैसे त्याग सकते हैं, जिससे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे सदाके लिये छुटकारा मिल जाता है ॥ ३९ ॥ प्रभो! आप त्रिलोकीके आत्मा और आश्रय हैं। आपने अपने तीन पगोंसे सारे जगत्को नाप लिया था और आप ही तीनों लोकोंके सञ्चालक हैं। आपकी महिमा त्रिलोकीका मन हरण करनेवाली है। इसमें सन्देह नहीं कि दैत्य, दानव आदि असुर भी आपकी ही विभूतियाँ हैं। तथापि यह उनकी उन्नतिका समय नहीं है—यह सोचकर आप अपनी योगमायासे देवता,

मनुष्य, पशु, नृसिंह आदि मिश्रित और मत्स्य आदि जलचरोंके रूपमें अवतार ग्रहण करते और उनके अपराधके अनुसार उन्हें दण्ड देते हैं। दण्डधारी प्रभो! यदि जँचे तो आप उन्हीं असुरोंके समान इस वृत्रासुरका भी नाश कर डालिये ॥ ४० ॥ भगवन्! आप हमारे पिता, पितामह—सब कुछ हैं। हम आपके निजजन हैं और निरन्तर आपके सामने सिर झुकाये रहते हैं। आपके चरण-कमलोंका ध्यान करते-करते हमारा हृदय उन्हींके प्रेमबन्धनसे बँध गया है। आपने हमारे सामने अपना दिव्यगुणोंसे युक्त साकार विग्रह प्रकट करके हमें अपनाया है। इसलिये प्रभो! हम आपसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप अपनी दयाभरी, विशद, सुन्दर और शीतल मुसकानयुक्त चितवनसे तथा अपने मुखारविन्दसे टपकते हुए मनोहर वाणीरूप सुमधुर सुधाबिन्दुसे हमारे हृदयका ताप शान्त कीजिये, हमारे अन्तरकी जलन बुझाइये ॥ ४१ ॥ प्रभो! जिस प्रकार अग्निकी ही अंशभूत चिनगारियाँ आदि अग्निको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं, वैसे ही हम भी आपको अपना कोई भी स्वार्थ-परमार्थ निवेदन करनेमें असमर्थ हैं। आपसे भला, कहना ही क्या है! क्योंकि आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली दिव्य मायाके साथ विनोद करते रहते हैं तथा समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म और अन्तर्यामीके रूपसे विराजमान रहते हैं। केवल इतना ही नहीं, उनके बाहर भी प्रकृतिके रूपसे आप ही विराजमान हैं। जगत्में जितने भी देश, काल, शरीर और अवस्था आदि हैं, उनके उपादान और प्रकाशकके रूपमें आप ही उनका अनुभव करते रहते हैं। आप सभी वृत्तियोंके साक्षी हैं। आप आकाशके समान सर्वगत हैं, निर्लिप्त हैं। आप स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं ॥ ४२ ॥ अतएव हम अपना अभिप्राय आपसे निवेदन करें—इसकी अपेक्षा न रखकर जिस अभिलाषासे हमलोग यहाँ आये हैं, उसे पूर्ण कीजिये। आप अचिन्त्य ऐश्वर्य-सम्पन्न और जगत्के परमगुरु हैं। हम आपके चरण-कमलोंकी छत्रछायामें आये हैं, जो विविध पापोंके फलस्वरूप जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकनेकी थकावटको मिटानेवाली है ॥ ४३ ॥ सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण! वृत्रासुरने हमारे प्रभाव और अस्त्र-शस्त्रोंको तो निगल ही लिया है। अब वह तीनों लोकोंको भी ग्रस रहा है। आप उसे मार डालिये ॥ ४४ ॥ प्रभो! आप शुद्धस्वरूप, हृदयस्थित शुद्ध ज्योतिर्मय आकाश, सबके साक्षी, अनादि, अनन्त और उज्ज्वल कीर्तिसम्पन्न हैं। संत-लोग आपका ही संग्रह करते हैं। संसारके पथिक जब घूमते-घूमते आपकी शरणमें आ पहुँचते हैं, तब अन्तमें आप उन्हें परमानन्दस्वरूप अभीष्ट फल देते हैं और इस प्रकार उनके जन्म-जन्मान्तरके कष्टको हर लेते हैं। प्रभो! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवताओंने बड़े आदरके साथ इस प्रकार भगवान्‌का स्तवन किया, तब वे अपनी स्तुति सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा उनसे कहने लगे ॥ ४६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—श्रेष्ठ देवताओ! तुमलोगोंने स्तुतियुक्त ज्ञानसे मेरी उपासना की है, इससे मैं तुम-लोगोंपर प्रसन्न हूँ। इस स्तुतिके द्वारा जीवोंको अपने वास्तविक स्वरूपकी स्मृति और मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ४७ ॥ देवशिरोमणियो! मेरे प्रसन्न हो जानेपर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। तथापि मेरे अनन्यप्रेमी तत्त्ववेत्ता भक्त मुझसे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते ॥ ४८ ॥ जो पुरुष जगत्के विषयोंको सत्य समझता है, वह नासमझ अपने वास्तविक कल्याणको नहीं जानता। यही कारण है कि वह विषय चाहता है; परन्तु यदि कोई जानकार उसे उसकी इच्छित वस्तु दे देता है, तो वह भी वैसा ही नासमझ है ॥ ४९ ॥ जो पुरुष मुक्तिका स्वरूप जानता है, वह अज्ञानीको भी कर्मोंमें फँसनेका उपदेश नहीं देता—जैसे रोगीके चाहते रहनेपर भी सद्वैद्य उसे कुपथ्य नहीं देता ॥ ५० ॥ देवराज इन्द्र! तुमलोगोंका कल्याण हो। अब देर मत करो। ऋषिशिरोमणि दधीचिके पास जाओ और उनसे उनका शरीर—जो उपासना, व्रत तथा तपस्याके कारण अत्यन्त दृढ़ हो गया है—माँग

लो ॥ ५१ ॥ दधीचि ऋषिको शुद्ध ब्रह्मका ज्ञान है। अश्विनीकुमारोंको घोड़ेके सिरसे उपदेश करनेके कारण उनका एक नाम 'अश्वशिर' * भी है। उनकी उपदेश की हुई आत्मविद्याके प्रभावसे ही दोनों अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हो गये ॥ ५२ ॥ अथर्ववेदी दधीचि ऋषिने ही पहले-पहल मेरे स्वरूपभूत अभेद्य नारायणकवचका त्वष्टाको उपदेश किया था। त्वष्टाने वही विश्वरूपको दिया और विश्वरूपसे तुम्हें मिला ॥ ५३ ॥ दधीचि ऋषि धर्मके परम मर्मज्ञ हैं। वे तुमलोगोंको, अश्विनीकुमारके माँगनेपर, अपने शरीरके अङ्ग अवश्य दे देंगे। इसके बाद विश्वकर्माके द्वारा उन अङ्गोंसे एक श्रेष्ठ आयुध तैयार करा लेना। देवराज! मेरी शक्तिसे युक्त होकर तुम उसी शस्त्रके द्वारा वृत्रासुरका सिर काट लोगे ॥ ५४ ॥ देवताओ! वृत्रासुरके मर जानेपर तुम लोगोंको फिरसे तेज, अस्त्र-शस्त्र और सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जायँगी। तुम्हारा कल्याण अवश्यम्भावी है; क्योंकि मेरे शरणागतोंको कोई सता नहीं सकता ॥ ५५ ॥

दसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे वज्र-निर्माण और वृत्रासुरकी सेनापर आक्रमण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विश्वके जीवनदाता श्रीहरि इन्द्रको इस प्रकार आदेश देकर देवताओंके सामने वहीं-के-वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ १ ॥ अब देवताओंने उदारशिरोमणि अथर्ववेदी दधीचि ऋषिके पास जाकर भगवान्‌के आज्ञानुसार याचना की। देवताओंकी याचना सुनकर दधीचि ऋषिको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने हँसकर देवताओंसे कहा—॥ २ ॥ 'देवताओ! आपलोगोंको सम्भवतः यह बात नहीं मालूम है कि मरते समय प्राणियोंको बड़ा कष्ट होता है। उन्हें जबतक चेत रहता है, बड़ी असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है और अन्तमें वे मूर्छित हो जाते हैं ॥ ३ ॥ जो जीव जगत्‌में जीवित रहना चाहते हैं, उनके लिये शरीर बहुत ही अनमोल, प्रियतम एवं अभीष्ट वस्तु है। ऐसी स्थितिमें स्वयं विष्णुभगवान् भी यदि जीवसे उसका शरीर माँगें तो कौन उसे देनेका साहस करेगा ॥ ४ ॥

देवताओंने कहा—ब्रह्मन्! आप-जैसे उदार और प्राणियोंपर दया करनेवाले महापुरुष, जिनके कर्मोंकी बड़े-बड़े यशस्वी महानुभाव भी प्रशंसा करते हैं, प्राणियोंकी भलाईके लिये कौन-सी वस्तु निछावर नहीं कर सकते ॥ ५ ॥ भगवन्! इसमें सन्देह नहीं कि माँगनेवाले लोग स्वार्थी होते हैं। उनमें देनेवालोंकी कठिनाईका विचार करनेकी बुद्धि नहीं होती। यदि उनमें इतनी समझ होती तो वे माँगते ही क्यों। इसी प्रकार दाता भी माँगनेवालेकी विपत्ति नहीं जानता। अन्यथा उसके मुँहसे कदापि नाहीं न निकलती। (इसलिये आप हमारी विपत्ति समझकर हमारी याचना पूर्ण कीजिये।) ॥ ६ ॥

दधीचि ऋषिने कहा—देवताओ! मैंने आपलोगोंके मुँहसे धर्मकी बात सुननेके लिये ही आपकी माँगके प्रति उपेक्षा दिखलायी थी। यह लीजिये, मैं अपने प्यारे शरीरको आपलोगोंके लिये अभी छोड़े देता हूँ।

---

* यह कथा इस प्रकार है—दधीचि ऋषिको प्रवर्ग्य (यज्ञकर्मविशेष) और ब्रह्मविद्याका उत्तम ज्ञान है—यह जानकर एक बार उनके पास अश्विनीकुमार आये और उनसे ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की। दधीचि मुनिने कहा—'इस समय मैं एक कार्यमें लगा हुआ हूँ, इसलिये फिर किसी समय आना।' इसपर अश्विनीकुमार चले गये। उनके जाते ही इन्द्रने आकर कहा—'मुने! अश्विनीकुमार वैद्य हैं, उन्हें तुम ब्रह्मविद्याका उपदेश मत करना। यदि तुम मेरी बात न मानकर उन्हें उपदेश करोगे तो मैं तुम्हारा सिर काट डालूँगा।' जब ऐसा कहकर इन्द्र चले गये, तब अश्विनीकुमारोंने आकर फिर वही प्रार्थना की। मुनिने इन्द्रका सब वृत्तान्त सुनाया। इसपर अश्विनीकुमारोंने कहा—'हम पहले ही आपका यह सिर काटकर घोड़ेका सिर जोड़ देंगे। उससे आप हमें उपदेश करें और जब इन्द्र आपका घोड़ेका सिर काट देंगे, तब हम फिर असली सिर जोड़ देंगे।' मुनिने मिथ्या-भाषणके भयसे उनका कथन स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अश्वमुखसे उपदेश की जानेके कारण ब्रह्मविद्याका नाम 'अश्वशिरा' पड़ा।

क्योंकि एक दिन यह स्वयं ही मुझे छोड़नेवाला है ॥ ७ ॥ देवशिरोमणियो ! जो मनुष्य इस विनाशी शरीरसे दुखी प्राणियोंपर दया करके मुख्यतः धर्म और गौणतः यशका सम्पादन नहीं करता, वह जड पेड़-पौधोंसे भी गया-बीता है ॥ ८ ॥ बड़े-बड़े महात्माओंने इस अविनाशी धर्मकी उपासना की है । उसका स्वरूप बस, इतना ही है कि मनुष्य किसी भी प्राणीके दुःखमें दुःखका अनुभव करे और सुखमें सुखका ॥९॥ जगत्के धन, जन और शरीर आदि पदार्थ क्षणभङ्गुर हैं । ये अपने किसी काम नहीं आते, अन्तमें दूसरोंके ही काम आयेंगे । ओह ! यह कैसी कृपणता है, कितने दुःखकी बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरोंका उपकार नहीं कर लेता ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अथर्ववेदी महर्षि दधीचिने ऐसा निश्चय करके अपनेको परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्में लीन करके अपना स्थूल शरीर त्याग दिया ॥ ११ ॥ उनके इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि संयत थे, दृष्टि तत्त्वमयी थी, उनके सारे बन्धन कट चुके थे । अतः जब वे भगवान्से अत्यन्त युक्त होकर स्थित हो गये, तब उन्हें इस बातका पता ही न चला कि मेरा शरीर छूट गया ॥ १२ ॥

भगवान्की शक्ति पाकर इन्द्रका बल-पौरुष उन्नतिकी सीमापर पहुँच गया । अब विश्वकर्माजीने दधीचि ऋषि-की हड्डियोंसे वज्र बनाकर उन्हें दिया और वे उसे हाथ-में लेकर ऐरावत हाथीपर सवार हुए । उनके साथ-साथ सभी देवतालोग तैयार हो गये । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि देवराज इन्द्रकी स्तुति करने लगे । अब उन्होंने त्रिलोकी-को हर्षित करते हुए वृत्रासुरका वध करनेके लिये उसपर पूरी शक्ति लगाकर धावा बोल दिया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् रुद्र क्रोधित होकर स्वयं कालपर ही आक्रमण कर रहे हों । परीक्षित् ! वृत्रासुर भी दैत्य-सेनापति-योंकी बहुत बड़ी सेनाके साथ मोर्चेपर डटा हुआ था ॥१३—१५॥ जो वैवस्वत मन्वन्तर इस समय चल रहा है, इसकी पहली चतुर्युगीका त्रेतायुग अभी आरम्भ ही हुआ था। उसी समय नर्मदातटपर देवताओंका दैत्योंके साथ यह भयङ्कर संग्राम हुआ ॥ १६ ॥ उस समय देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर रुद्र, वसु, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण, अग्नि, मरुद्गण, ऋभुगण, साध्यगण और विश्वेदेव आदिके साथ अपनी कान्तिसे शोभायमान हो रहे थे । वृत्रासुर आदि दैत्य उनको अपने सामने आया देख और भी चिढ़ गये ॥ १७-१८ ॥ तब नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभ, अम्बर, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल, सुमाली, माली आदि हजारों दैत्य-दानव एवं यक्ष-राक्षस स्वर्णके साज-सामानसे सुसज्जित होकर देव-राज इन्द्रकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोकने लगे । परीक्षित् ! उस समय देवताओंकी सेना स्वयं मृत्युके लिये भी अजेय थी ॥१९—२१॥ वे घमंडी असुर सिंहनाद करते हुए बड़ी सावधानीसे देवसेनापर प्रहार करने लगे । उन लोगोंने गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, शूल, फरसे, तलवार, शतघ्नी (तोप), भुशुण्डि आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछारसे देवताओंको सब ओरसे ढक दिया ॥२२-२३॥एक-पर-एक इतने बाण चारों ओरसे आ रहे थे कि उनसे ढक जानेके कारण देवता दिखलायी भी नहीं पड़ते थे—जैसे बादलोंसे ढक जानेपर आकाशके तारे नहीं दिखायी देते ॥ २४ ॥ परीक्षित् ! वह शस्त्रों और अस्त्रोंकी वर्षा देवसैनिकोंको छूतक न सकी । उन्होंने अपने हस्त-लाघवसे आकाशमें ही उनके हजार-हजार टुकड़े कर दिये ॥ २५ ॥ जब असुरोंके अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये, तब वे देवताओंकी सेनापर पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और पत्थर बरसाने लगे । परन्तु देवताओंने उन्हें पहलेकी ही भाँति काट गिराया ॥ २६ ॥

परीक्षित् ! जब वृत्रासुरके अनुयायी असुरोंने देखा कि उनके असंख्य अस्त्र-शस्त्र भी देव-सेनाका कुछ न बिगाड़ सके—यहाँतक कि वृक्षों, चट्टानों और पहाड़ोंके बड़े-बड़े शिखरोंसे भी उनके शरीरपर खरोंचतक नहीं आयी, सब-के-सब सकुशल हैं—तब तो वे बहुत डर गये ! दैत्यलोग देवताओंको पराजित करनेके लिये जो-जो प्रयत्न करते, वे सब-के-सब निष्फल हो जाते—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित भक्तोंपर क्षुद्र मनुष्योंके कठोर और अमङ्गलमय दुर्वचनोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ २७-२८ ॥ भगवद्विमुख असुर अपना

प्रयत्न व्यर्थ देखकर उत्साहरहित हो गये। उनका वीरता-का घमंड जाता रहा। अब वे अपने सरदार वृत्रासुरको युद्धभूमिमें ही छोड़कर भाग खड़े हुए; क्योंकि देवताओंने उनका सारा बल-पौरुष छीन लिया था ॥ २९ ॥ जब धीर-वीर वृत्रासुरने देखा कि मेरे अनुयायी असुर भाग रहे हैं और अत्यन्त भयभीत होकर मेरी सेना भी तहस-नहस और तितर-बितर हो रही है, तब वह हँसकर कहने लगा ॥ ३० ॥ वीरशिरोमणि वृत्रासुरने समया-नुसार वीरोचित वाणीसे विप्रचित्ति, नमुचि, पुलोमा, मय, अनर्वा, शम्बर आदि दैत्योंको सम्बोधित करके कहा—असुरो! भागो मत, मेरी एक बात सुन लो ॥ ३१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि जो पैदा हुआ है, उसे एक-न-एक दिन अवश्य मरना पड़ेगा। इस जगत्में विधाताने मृत्यु-से बचनेका कोई उपाय नहीं बताया है। ऐसी स्थितिमें यदि मृत्युके द्वारा स्वर्गादि लोक और सुयश भी मिल रहा हो तो ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो उस उत्तम मृत्युको न अपनायेगा ॥ ३२ ॥ संसारमें दो प्रकारकी मृत्यु परम दुर्लभ और श्रेष्ठ मानी गयी है—एक तो योगी पुरुषका अपने प्राणोंको वशमें करके ब्रह्मचिन्तनके द्वारा शरीरका परित्याग और दूसरा युद्धभूमिमें सेनाके आगे रहकर बिना पीठ दिखाये जूझ मरना (तुमलोग भला, ऐसा शुभ अवसर क्यों खो रहे हो) ॥ ३३ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

वृत्रासुरकी वीरवाणी और भगवत्प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! असुरसेना भय-भीत होकर भाग रही थी। उसके सैनिक इतने अचेत हो रहे थे कि उन्होंने अपने स्वामीके धर्मानुकूल वचनोंपर भी ध्यान न दिया ॥ १ ॥ वृत्रासुरने देखा कि समयकी अनुकूलताके कारण देवतालोग असुरोंकी सेनाको खदेड़ रहे हैं और वह इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो रही है, मानो बिना नायककी हो ॥ २ ॥ राजन्! यह देखकर वृत्रासुर असहिष्णुता और क्रोधके मारे तिलमिला उठा। उसने बल-पूर्वक देवसेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और उन्हें डाँटकर ललकारते हुए कहा ॥ ३ ॥ 'क्षुद्र देवताओ! रणभूमिमें पीठ दिखानेवाले कायर असुरोंपर पीछेसे प्रहार करनेमें क्या लाभ है। ये लोग तो अपने मा-बापके मल-मूत्र हैं। परन्तु अपनेको शूरवीर माननेवाले तुम्हारे-जैसे पुरुषोंके लिये भी तो डरपोकोंको मारना कोई प्रशंसा-की बात नहीं है और न इससे तुम्हें स्वर्ग ही मिल सकता है ॥ ४ ॥ यदि तुम्हारे मनमें युद्ध करनेकी शक्ति और उत्साह है तथा अब जीवित रहकर विषय-सुख भोगनेकी लालसा नहीं है, तो क्षणभर मेरे सामने डट जाओ और युद्धका मजा चख लो ॥ ५ ॥

परीक्षित्! वृत्रासुर बड़ा बली था। वह अपने डील-डौलसे ही शत्रु देवताओंको भयभीत करने लगा। उसने क्रोधमें भरकर इतने जोरसे सिंहनाद किया कि बहुत-से लोग तो उसे सुनकर ही अचेत हो गये ॥ ६ ॥ वृत्रासुरकी भयानक गर्जनासे सब-के-सब देवता मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो उनपर बिजली गिर गयी हो ॥ ७ ॥ अब जैसे मदोन्मत्त गजराज नरकटका वन रौंद डालता है, वैसे ही रणबाँकुरा वृत्रासुर हाथमें त्रिशूल लेकर भयसे नेत्र बंद किये पड़ी हुई देवसेनाको पैरोंसे कुचलने लगा। उसके वेगसे धरती डगमगाने लगी ॥ ८ ॥ वज्रपाणि देवराज इन्द्र उसकी यह करतूत सह न सके। जब वह उनकी ओर झपटा, तब उन्होंने और भी चिढ़कर अपने शत्रुपर एक बहुत बड़ी गदा चलायी। अभी वह असह्य गदा वृत्रासुरके पास पहुँची भी न थी कि उसने खेल-ही-खेलमें बायें हाथसे उसे पकड़ लिया ॥ ९ ॥ राजन्! परम पराक्रमी वृत्रासुरने क्रोधसे आग-बबूला होकर उसी गदासे इन्द्रके वाहन ऐरावतके सिरपर बड़े जोरसे गरजते हुए प्रहार किया। उसके इस कार्यकी सभी लोग बड़ी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ वृत्रासुरकी गदाके आघातसे ऐरावत हाथी वज्राहत पर्वतके समान तिलमिला उठा। सिर फट जानेसे वह अत्यन्त व्याकुल हो गया और खून उगलता हुआ इन्द्रको लिये हुए ही अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया ॥ ११ ॥

देवराज इन्द्र अपने वाहन ऐरावतके मूर्छित हो जानेसे स्वयं भी विषादग्रस्त हो गये। यह देखकर युद्धधर्मके मर्मज्ञ वृत्रासुरने उनके ऊपर फिरसे गदा नहीं चलायी। तबतक इन्द्रने अपने अमृतस्रावी हाथके स्पर्शसे घायल ऐरावतकी व्यथा मिटा दी और वे फिर रणभूमिमें आ डटे ॥ १२ ॥ परीक्षित्! जब वृत्रासुरने देखा कि मेरे भाई विश्वरूपका वध करनेवाला शत्रु इन्द्र युद्धके लिये हाथमें वज्र लेकर फिर सामने आ गया है, तब उसे उनके उस क्रूर पापकर्मका स्मरण हो आया और वह शोक और मोहसे युक्त हो हँसता हुआ उनसे कहने लगा॥ १३ ॥

वृत्रासुर बोला—आज मेरे लिये बड़े सौभाग्यका दिन है कि तुम्हारे-जैसा शत्रु—जिसने विश्वरूपके रूपमें ब्राह्मण, अपने गुरु एवं मेरे भाईकी हत्या की है—मेरे सामने खड़ा है। अरे दुष्ट! अब शीघ्र-से-शीघ्र मैं तेरे पत्थरके समान कठोर हृदयको अपने शूलसे विदीर्ण करके भाईसे उऋण होऊँगा। अहा! यह मेरे लिये कैसे आनन्दकी बात होगी ॥ १४ ॥ इन्द्र! तूने मेरे आत्मवेत्ता और निष्पाप बड़े भाईके, जो ब्राह्मण होनेके साथ ही यज्ञमें दीक्षित और तुम्हारा गुरु था, विश्वास दिलाकर तलवारसे तीनों सिर उतार लिये—ठीक वैसे ही जैसे स्वर्गकामी निर्दय मनुष्य यज्ञमें पशुका सिर काट डालता है ॥ १५ ॥ दया, लज्जा, लक्ष्मी और कीर्ति तुझे छोड़ चुकी हैं। तूने ऐसे-ऐसे नीच कर्म किये हैं, जिनकी निन्दा मनुष्योंकी तो बात ही क्या—राक्षसतक करते हैं। आज मेरे त्रिशूलसे तेरा शरीर टूक-टूक हो जायगा। बड़े कष्टसे तेरी मृत्यु होगी। तेरे-जैसे पापीको आग भी नहीं जलायेगी, तुझे तो गीध नोंच-नोंचकर खायेंगे ॥ १६ ॥ ये अज्ञानी देवता तेरे-जैसे नीच और क्रूरके अनुयायी बनकर मुझपर शस्त्रोंसे प्रहार कर रहे हैं। मैं अपने तीखे त्रिशूलसे उनकी गरदन काट डालूँगा और उनके द्वारा गणोंके सहित भैरवादि भूतनाथोंको बलि चढ़ाऊँगा ॥ १७ ॥ वीर इन्द्र! यह भी सम्भव है कि तू मेरी सेनाको छिन्न-भिन्न करके अपने वज्रसे मेरा सिर काट ले। तब तो मैं अपने शरीरकी बलि पशु-पक्षियोंको समर्पित करके, कर्मबन्धनसे मुक्त हो महापुरुषोंकी चरण-रजका आश्रय ग्रहण करूँगा—जिस लोकमें महापुरुष जाते हैं, वहाँ पहुँच जाऊँगा ॥ १८ ॥ देवराज! मैं तेरे सामने खड़ा हूँ, तेरा शत्रु हूँ; अब तू मुझपर अपना अमोघ वज्र क्यों नहीं छोड़ता? तू यह सन्देह न कर कि जैसे तेरी गदा निष्फल हो गयी, कृपण पुरुषसे की हुई याचनाके समान यह वज्र भी वैसे ही निष्फल हो जायगा ॥ १९ ॥ इन्द्र! तेरा यह वज्र श्रीहरिके तेज और दधीचि ऋषिकी तपस्यासे शक्तिमान् हो रहा है। विष्णुभगवान्‌ने मुझे मारनेके लिये तुझे आज्ञा भी दी है। इसलिये अब तू उसी वज्रसे मुझे मार डाल। क्योंकि जिस पक्षमें भगवान् श्रीहरि हैं, उधर ही विजय, लक्ष्मी और सारे गुण निवास करते हैं ॥ २० ॥ देवराज! भगवान् सङ्कर्षणके आज्ञानुसार मैं अपने मनको उनके चरणकमलोंमें लीन कर दूँगा। तेरे वज्रका वेग मुझे नहीं, मेरे विषयभोगरूप फंदेको काट डालेगा और मैं शरीर त्यागकर मुनिजनोचित गति प्राप्त करूँगा ॥ २१ ॥ जो पुरुष भगवान्‌से अनन्य प्रेम करते हैं—उनके निजजन हैं—उन्हें वे स्वर्ग, पृथ्वी अथवा रसातलकी सम्पत्तियाँ नहीं देते। क्योंकि उनसे परमानन्दकी उपलब्धि तो होती ही नहीं; उलटे द्वेष, उद्वेग, अभिमान, मानसिक पीड़ा, कलह, दुःख और परिश्रम ही हाथ लगते हैं ॥ २२ ॥ इन्द्र! हमारे स्वामी अपने भक्तके अर्थ, धर्म एवं कामसम्बन्धी प्रयासको व्यर्थ कर दिया करते हैं और सच पूछो तो इसीसे भगवान्‌की कृपाका अनुमान होता है। क्योंकि उनका ऐसा कृपा-प्रसाद अकिञ्चन भक्तोंके लिये ही अनुभवगम्य है, दूसरोंके लिये तो अत्यन्त दुर्लभ ही है॥ २३ ॥

(भगवान्‌को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए वृत्रासुरने प्रार्थना की—) 'प्रभो! आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि अनन्यभावसे आपके चरणकमलोंके आश्रित सेवकोंकी सेवा करनेका अवसर मुझे अगले जन्ममें भी प्राप्त हो। प्राणवल्लभ! मेरा मन आपके मङ्गलमय गुणोंका स्मरण करता रहे, मेरी वाणी उन्हींका गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही संलग्न रहे ॥ २४ ॥ सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका एकछत्र राज्य, योगकी सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं चाहता ॥ २५ ॥ जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे

बछड़े अपनी माका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है—वैसे ही कमलनयन ! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है ॥ २६ ॥ प्रभो ! मैं मुक्ति नहीं चाहता । मेरे कर्मोंके फलस्वरूप मुझे बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकना पड़े, इसकी परवा नहीं । परन्तु मैं जहाँ-जहाँ जाऊँ, जिस-जिस योनिमें जन्मूँ, वहाँ-वहाँ भगवान्‌के प्यारे भक्तजनोंसे मेरी प्रेम-मैत्री बनी रहे । स्वामिन् ! मैं केवल यही चाहता हूँ कि जो लोग आपकी मायासे देह-गेह और स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्त हो रहे हैं, उनके साथ मेरा कभी किसी प्रकारका भी सम्बन्ध न हो' ॥ २७ ॥

बारहवाँ अध्याय

वृत्रासुरका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! वृत्रासुर रणभूमिमें अपना शरीर छोड़ना चाहता था, क्योंकि उसके विचारसे इन्द्रपर विजय प्राप्त करके स्वर्ग पानेकी अपेक्षा मरकर भगवान्‌को प्राप्त करना श्रेष्ठ था । इसलिये जैसे प्रलयकालीन जलमें कैटभासुर भगवान् विष्णुपर चोट करनेके लिये दौड़ा था, वैसे ही वह भी त्रिशूल उठाकर इन्द्रपर टूट पड़ा ॥ १ ॥ वीर वृत्रासुरने प्रलयकालीन अग्निकी लपटोंके समान तीखी नोकोंवाले त्रिशूलको घुमाकर बड़े वेगसे इन्द्रपर चलाया और अत्यन्त क्रोधसे सिंहनाद करके बोला—'पापी इन्द्र ! अब तू बच नहीं सकता' ॥ २ ॥ इन्द्रने यह देखकर कि वह भयङ्कर त्रिशूल ग्रह और उल्काके समान चक्कर काटता हुआ आकाशमें आ रहा है, किसी प्रकारकी अधीरता नहीं प्रकट की और उस त्रिशूलके साथ ही वासुकि नागके समान वृत्रासुरकी विशाल भुजा अपने सौ गाँठोंवाले वज्रसे काट डाली ॥ ३ ॥ एक बाँह कट जानेपर वृत्रासुरको बहुत क्रोध हुआ । उसने वज्रधारी इन्द्रके पास जाकर उनकी ठोडीमें और गजराज ऐरावतपर परिघसे ऐसा प्रहार किया कि उनके हाथसे वह वज्र गिर पड़ा ॥ ४ ॥

वृत्रासुरके इस अत्यन्त अलौकिक कार्यको देखकर देवता, असुर, चारण, सिद्धगण आदि सभी प्रशंसा करने लगे । परन्तु इन्द्रका सङ्कट देखकर वे ही लोग बार-बार 'हाय-हाय !' कहकर चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! वह वज्र इन्द्रके हाथसे छूटकर वृत्रासुरके पास ही जा पड़ा था । इसलिये लज्जित होकर इन्द्रने उसे फिर नहीं उठाया । तब वृत्रासुरने कहा—'इन्द्र ! तुम वज्र उठाकर अपने शत्रुको मार डालो । यह विषाद करनेका समय नहीं है ॥ ६ ॥ (देखो—) सर्वज्ञ, सनातन, आदि-पुरुष भगवान् ही जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेमें समर्थ हैं । उनके अतिरिक्त देहाभिमानी और युद्धके लिये उत्सुक आततायियोंको सर्वदा जय ही नहीं मिलती । वे कभी जीतते हैं तो कभी हारते हैं ॥ ७ ॥ ये सब लोक और लोकपाल जालमें फँसे हुए पक्षियोंकी भाँति जिसकी अधीनतामें विवश होकर चेष्टा करते हैं, वह काल ही सबकी जय-पराजयका कारण है ॥ ८ ॥ वही काल मनुष्यके मनोबल, इन्द्रियबल, शरीरबल, प्राण, जीवन और मृत्युके रूपमें स्थित है । मनुष्य उसे न जानकर जड शरीरको ही जय-पराजय आदिका कारण समझता है ॥ ९ ॥ इन्द्र ! जैसे काठकी पुतली और यन्त्रका हरिण नचानेवालेके हाथमें होते हैं, वैसे ही तुम समस्त प्राणियोंको भगवान्‌के अधीन समझो ॥ १० ॥ भगवान्‌के कृपा-प्रसादके बिना पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ और अन्तःकरणचतुष्टय—ये कोई भी इस विश्वकी उत्पत्ति आदि करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ११ ॥ जिसे इस बातका पता नहीं है कि भगवान् ही सबका नियन्त्रण करते हैं, वही इस परतन्त्र जीवको स्वतन्त्र कर्ता-भोक्ता मान बैठता है । वस्तुतः स्वयं भगवान् ही प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंकी रचना और उन्हींके द्वारा उनका संहार करते हैं ॥ १२ ॥ जिस प्रकार इच्छा न होनेपर भी समय विपरीत होनेसे मनुष्यको मृत्यु और अपयश आदि प्राप्त होते हैं—वैसे ही समयकी अनुकूलता होनेपर इच्छा न होनेपर भी उसे

आयु, लक्ष्मी, यश और ऐश्वर्य आदि भोग भी मिल जाते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये यश-अपयश, जय-पराजय, सुख-दुःख, जीवन-मरण—इनमेंसे किसी एककी इच्छा-अनिच्छा न रखकर सभी परिस्थितियोंमें समभावसे रहना चाहिये—हर्ष-शोकके वशीभूत नहीं होना चाहिये ॥ १४ ॥ सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं; अतः जो पुरुष आत्माको उनका साक्षीमात्र जानता है, वह उनके गुण-दोषसे लिप्त नहीं होता ॥ १५ ॥ देवराज इन्द्र ! मुझे भी तो देखो; तुमने मेरा हाथ और शस्त्र काटकर एक प्रकारसे मुझे परास्त कर दिया है, फिर भी मैं तुम्हारे प्राण लेनेके लिये यथाशक्ति प्रयत्न कर ही रहा हूँ ॥ १६ ॥ यह युद्ध क्या है, एक जूएका खेल । इसमें प्राणकी बाजी लगती है, बाणोंके पासे डाले जाते हैं और वाहन ही चौसर हैं । इसमें पहलेसे यह बात नहीं मालूम होती कि कौन जीतेगा और कौन हारेगा ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वृत्रासुरके ये सत्य एवं निष्कपट वचन सुनकर इन्द्रने उनका आदर किया और अपना वज्र उठा लिया । इसके बाद बिना किसी प्रकारका आश्चर्य किये मुसकराते हुए वे कहने लगे—॥ १८ ॥

देवराज इन्द्रने कहा—अहो दानवराज ! सचमुच तुम सिद्ध पुरुष हो । तभी तो तुम्हारा धैर्य, निश्चय और भगवद्भाव इतना विलक्षण है । तुमने समस्त प्राणियोंके सुहृद् आत्मस्वरूप जगदीश्वरकी अनन्य भावसे भक्ति की है ॥ १९ ॥ अवश्य ही तुम लोगोंको मोहित करनेवाली भगवान्‌की मायाको पार कर गये हो । तभी तो तुम असुरोचित भाव छोड़कर महापुरुष हो गये हो ॥२०॥ अवश्य ही यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि तुम रजोगुणी प्रकृतिके हो, तो भी विशुद्ध सत्त्वस्वरूप भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी बुद्धि दृढतासे लगी हुई है ॥२१॥ जो परम कल्याणके स्वामी भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें प्रेममय भक्तिभाव रखता है, उसे जगत्‌के भोगोंकी क्या आवश्यकता है । जो अमृतके समुद्रमें विहार कर रहा है, उसे क्षुद्र गड्ढोंके जलसे प्रयोजन ही क्या हो सकता है ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार योधाओंमें श्रेष्ठ महापराक्रमी देवराज इन्द्र और वृत्रासुर धर्मका तत्त्व जाननेकी अभिलाषासे एक दूसरेके साथ बातचीत करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे ॥ २३ ॥ राजन् ! अब शत्रुसूदन वृत्रासुरने बायें हाथसे फौलादका बना हुआ एक बहुत भयावना परिघ उठाकर आकाशमें घुमाया और उससे इन्द्रपर प्रहार किया ॥२४॥ किन्तु देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वह परिघ तथा हाथीकी सूँडके समान लंबी भुजा अपने सौ गाँठोंवाले वज्रसे एक साथ ही काट गिरायी ॥ २५ ॥ जड़से दोनों भुजाओंके कट जानेपर वृत्रासुरके बायें और दायें दोनों कंधोंसे खूनकी धारा बहने लगी । उस समय वह ऐसा जान पड़ा, मानो इन्द्रके वज्रकी चोटसे पंख कट जानेपर कोई पर्वत ही आकाशसे गिरा हो ॥ २६ ॥ अब पैरोंसे चलने-फिरनेवाले पर्वतराजके समान अत्यन्त दीर्घकाय वृत्रासुरने अपनी ठोड़ीको धरतीसे और ऊपरके होठको स्वर्गसे लगाया तथा आकाशके समान गहरे मुँह, साँपके समान भयावनी जीभ एवं मृत्युके समान कराल दाढ़ोंसे मानो त्रिलोकीको निगलता, अपने पैरोंकी चोटसे पृथ्वीको रौंदता और प्रबल वेगसे पर्वतोंको उलटता-पलटता वह इन्द्रके पास आया और उन्हें उनके वाहन ऐरावत हाथीके सहित इस प्रकार लील गया, जैसे कोई परम पराक्रमी और अत्यन्त बलवान् अजगर हाथीको निगल जाय । प्रजापतियों और महर्षियोंके साथ देवताओंने जब देखा कि वृत्रासुर इन्द्रको निगल गया, तब तो वे अत्यन्त दुखी हो गये तथा 'हाय-हाय ! बड़ा अनर्थ हो गया ।' यों कहकर विलाप करने लगे ॥ २७-३० ॥ बल दैत्यका संहार करनेवाले देवराज इन्द्रने महापुरुष-विद्या (नारायणकवच) से अपनेको सुरक्षित कर रक्खा था और उनके पास योगमायाका बल था ही । इसलिये वृत्रासुरके निगल लेनेपर—उसके पेटमें पहुँचकर भी वे मरे नहीं ॥ ३१ ॥ उन्होंने अपने वज्रसे उसकी कोख फाड़ डाली और उसके पेटसे निकलकर बड़े वेगसे उसका पर्वत-शिखरके समान ऊँचा सिर काट डाला ।३२। सूर्यादि ग्रहोंकी उत्तरायण-दक्षिणायनरूप गतिमें जितना समय लगता है, उतने दिनोंमें अर्थात् एक वर्षमें वृत्र-वधका योग उपस्थित होनेपर घूमते हुए उस तीव्र वेगशाली वज्रने उसकी गरदनको सब ओरसे काटकर भूमिपर

गिरा दिया ॥ ३३ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं । महर्षियोंके साथ गन्धर्व, सिद्ध आदि वृत्रघाती इन्द्रका पराक्रम सूचित करनेवाले मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करके बड़े आनन्दके साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३४ ॥ शत्रुदमन परीक्षित् ! उस समय वृत्रासुरके शरीरसे उसकी आत्मज्योति बाहर निकली और इन्द्र आदि सब लोगोंके देखते-देखते सर्वलोकातीत भगवान्‌के स्वरूपमें लीन हो गयी ॥ ३५ ॥

तेरहवाँ अध्याय

इन्द्रपर ब्रह्महत्याका आक्रमण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महादानी परीक्षित् ! वृत्रासुरकी मृत्युसे इन्द्रके अतिरिक्त तीनों लोक और लोकपाल तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये । उनका भय, उनकी चिन्ता जाती रही ॥ १ ॥ युद्ध समाप्त होनेपर देवता, ऋषि, पितर, भूत, दैत्य और देवताओंके अनुचर गन्धर्व आदि इन्द्रसे बिना पूछे ही अपने-अपने लोकको लौट गये । इसके पश्चात् ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि भी चले गये ॥ २ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! मैं देवराज इन्द्रकी अप्रसन्नताका कारण सुनना चाहता हूँ । जब वृत्रासुरके वधसे सभी देवता सुखी हुए, तब इन्द्रको दुःख होनेका क्या कारण था ? ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब वृत्रासुरके पराक्रमसे सभी देवता और ऋषि-महर्षि अत्यन्त भयभीत हो गये, तब उन लोगोंने उसके वधके लिये इन्द्रसे प्रार्थना की; परन्तु वे ब्रह्महत्याके भयसे उसे मारना नहीं चाहते थे ॥ ४ ॥

देवराज इन्द्रने उन लोगोंसे कहा—देवताओ और ऋषियो ! मुझे विश्वरूपके वधसे जो ब्रह्महत्या लगी थी, उसे तो स्त्री, पृथ्वी, जल और वृक्षोंने कृपा करके बाँट लिया । अब यदि मैं वृत्रका वध करूँ तो उसकी हत्यासे मेरा छुटकारा कैसे होगा ? ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवराज इन्द्रकी बात सुनकर ऋषियोंने उनसे कहा—'देवराज ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम तनिक भी भय मत करो । क्योंकि हम अश्वमेध यज्ञ कराकर तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त कर देंगे ॥ ६ ॥ अश्वमेध यज्ञके द्वारा सबके अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमात्मा नारायणदेवकी आराधना करके तुम सम्पूर्ण जगत्‌का वध करनेके पापसे भी मुक्त हो सकोगे; फिर वृत्रासुरके वधकी तो बात ही क्या है ॥ ७ ॥ देवराज ! भगवान्‌के नाम-कीर्तनमात्रसे ही ब्राह्मण, पिता, गौ, माता, आचार्य आदिकी हत्या करनेवाले महापापी, कुत्तेका मांस खानेवाले चाण्डाल और कसाई भी शुद्ध हो जाते हैं ॥ ८ ॥ हमलोग 'अश्वमेध' नामक महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे । उसके द्वारा श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की आराधना करके तुम ब्रह्मापर्यन्त समस्त चराचर जगत्‌की हत्याके भी पापसे लिप्त नहीं होगे । फिर इस दुष्टको दण्ड देनेके पापसे छूटनेकी तो बात ही क्या है ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार ब्राह्मणोंसे प्रेरणा प्राप्त करके देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था । अब उसके मारे जानेपर ब्रह्महत्या इन्द्रके पास आयी ॥ १० ॥ उसके कारण इन्द्रको बड़ा क्लेश, बड़ी जलन सहनी पड़ी । उन्हें एक क्षणके लिये भी चैन नहीं पड़ता था । सच है, जब किसी सङ्कोची सज्जनपर कलङ्क लग जाता है, तब उसके धैर्य आदि गुण भी उसे सुखी नहीं कर पाते ॥ ११ ॥ देवराज इन्द्रने देखा कि ब्रह्महत्या साक्षात् चाण्डालीके समान उनके पीछे-पीछे दौड़ी आ रही है । बुढ़ापेके कारण उसके सारे अङ्ग काँप रहे हैं और क्षयरोग उसे सता रहा है । उसके सारे वस्त्र खूनसे लथपथ हो रहे हैं ॥ १२ ॥ वह अपने सफेद-सफेद बालोंको बिखेरे 'ठहर जा ! ठहर जा !!' इस प्रकार चिल्लाती आ रही है । उसके श्वासके साथ मछलीकी-सी दुर्गन्ध आ रही है, जिसके कारण मार्ग भी दूषित होता जा रहा है ॥ १३ ॥ राजन् ! देवराज इन्द्र उसके भयसे दिशाओं और आकाशमें भागते फिरे । अन्तमें कहीं भी शरण न मिलनेके कारण उन्होंने पूर्व और उत्तरके कोनेमें स्थित मानसरोवरमें शीघ्रतासे प्रवेश किया ॥ १४

देवराज इन्द्र मानसरोवरके कमलनालके तन्तुओंमें एक हजार वर्षोंतक छिपकर निवास करते रहे और सोचते रहे कि ब्रह्महत्यासे मेरा छुटकारा कैसे होगा। इतने दिनोंतक उन्हें भोजनके लिये किसी प्रकारकी सामग्री न मिल सकी। क्योंकि वे अग्निदेवताके मुखसे भोजन करते हैं और अग्निदेवता जलके भीतर कमल-तन्तुओंमें जा नहीं सकते थे ॥ १५ ॥ जबतक देवराज इन्द्र कमलतन्तुओंमें रहे, तबतक अपनी विद्या, तपस्या और योगबलके प्रभावसे राजा नहुष स्वर्गका शासन करते रहे। परन्तु जब उन्होंने सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे अंधे होकर इन्द्रपत्नी शचीके साथ अनाचार करना चाहा, तब शचीने उनसे ऋषियोंका अपराध करवाकर उन्हें शाप दिला दिया—जिससे वे साँप हो गये ॥ १६ ॥ तदनन्तर जब सत्यके परम पोषक भगवान्‌का ध्यान करनेसे इन्द्रके पाप नष्टप्राय हो गये, तब ब्राह्मणोंके बुलवानेपर वे पुनः स्वर्गलोकमें गये। कमलवनविहारिणी विष्णुपत्नी लक्ष्मीजी इन्द्रकी रक्षा कर रही थीं और पूर्वोत्तर दिशाके अधिपति रुद्रने पापको पहले ही निस्तेज कर दिया था, जिससे वह इन्द्रपर आक्रमण नहीं कर सका ॥ १७ ॥

परीक्षित्! इन्द्रके स्वर्गमें आ जानेपर ब्रह्मर्षियोंने वहाँ आकर भगवान्‌की आराधनाके लिये इन्द्रको अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा दी, उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया ॥ १८ ॥ जब वेदवादी ऋषियोंने उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया तथा देवराज इन्द्रने उस यज्ञके द्वारा सर्वदेवस्वरूप पुरुषोत्तम भगवान्‌की आराधना की, तब भगवान्‌की आराधनाके प्रभावसे वृत्रासुरके वधकी वह बहुत बड़ी पापराशि इस प्रकार भस्म हो गयी, जैसे सूर्योदयसे कुहरेका नाश हो जाता है ॥ १९-२० ॥ जब मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उनसे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया, तब उसके द्वारा सनातन पुरुष यज्ञपति भगवान्‌की आराधना करके इन्द्र सब पापोंसे छूट गये और पूर्ववत् फिर पूजनीय हो गये ॥ २१ ॥

परीक्षित्! इस श्रेष्ठ आख्यानमें इन्द्रकी विजय, उनकी पापोंसे मुक्ति और भगवान्‌के प्यारे भक्त वृत्रासुरका वर्णन हुआ है। इसमें तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले भगवान्‌के अनुग्रह आदि गुणोंका सङ्कीर्तन है। यह सारे पापोंको धो बहाता है और भक्तिको बढ़ाता है ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे इस इन्द्रसम्बन्धी आख्यानको सदा-सर्वदा पढ़ें और सुनें। विशेषतः पर्वोंके अवसरपर तो अवश्य ही इसका सेवन करें। यह धन और यशको बढ़ाता है, सारे पापोंसे छुड़ाता है, शत्रुपर विजय प्राप्त कराता है तथा आयु और मङ्गलकी अभिवृद्धि करता है ॥ २३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

वृत्रासुरका पूर्वचरित्र

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्! वृत्रासुरका स्वभाव तो बड़ा रजोगुणी-तमोगुणी था। वह देवताओंको कष्ट पहुँचाकर पाप भी करता ही था। ऐसी स्थितिमें भगवान् नारायणके चरणोंमें उसकी सुदृढ भक्ति कैसे हुई? ॥ १ ॥ हम देखते हैं कि प्रायः शुद्ध सत्त्वमय देवता और पवित्रहृदय ऋषि भी भगवान्‌की परम प्रेम-मयी अनन्य भक्तिसे वञ्चित ही रह जाते हैं। सचमुच भगवान्‌की भक्ति बड़ी दुर्लभ है ॥ २ ॥ भगवन्! इस जगत्‌के प्राणी पृथ्वीके धूलिकणोंके समान ही असंख्य हैं। उनमेंसे कुछ मनुष्य आदि श्रेष्ठ जीव ही अपने कल्याणकी चेष्टा करते हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्मन्! उनमें भी संसारसे मुक्ति चाहनेवाले तो बिरले ही होते हैं और मोक्ष चाहनेवाले हजारोंमें मुक्ति या सिद्धि लाभ तो कोई-सा ही कर पाता है ॥ ४ ॥ महामुने! करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी वैसे शान्तचित्त महापुरुषका मिलना तो बहुत ही कठिन है, जो एकमात्र भगवान्‌के ही परायण हो ॥ ५ ॥ ऐसी अवस्थामें वह वृत्रासुर, जो सब लोगोंको सताता था और बड़ा पापी था, उस भयङ्कर युद्धके अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णमें अपनी वृत्तियोंको इस प्रकार दृढतासे लगा सका—इसका क्या कारण है? ॥ ६ ॥ प्रभो! इस विषयमें हमें बहुत अधिक सन्देह है और सुननेका बड़ा कौतूहल भी है। अहो, वृत्रासुरका बल-पौरुष कितना महान् था कि उसने

रणभूमिमें देवराज इन्द्रको भी सन्तुष्ट कर दिया ! ॥७॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! भगवान् शुकदेवजीने परम श्रद्धालु राजर्षि परीक्षित्का यह श्रेष्ठ प्रश्न सुनकर उनका अभिनन्दन करते हुए यह बात कही ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! तुम सावधान होकर यह इतिहास सुनो । मैंने इसे अपने पिता व्यासजी, देवर्षि नारद और महर्षि देवलके मुँहसे भी विधिपूर्वक सुना है ॥ ९ ॥ प्राचीन कालकी बात है, शूरसेन देशमें चक्रवर्ती सम्राट् महाराज चित्रकेतु राज्य करते थे । उनके राज्यमें पृथ्वी स्वयं ही प्रजाकी इच्छाके अनुसार अन्न-रस दे दिया करती थी ॥ १० ॥ उनके एक करोड़ रानियाँ थीं और ये स्वयं सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ भी थे । परन्तु उन्हें उनमेंसे किसीके भी गर्भसे कोई सन्तान न हुई ॥ ११ ॥ यों महाराज चित्रकेतुको किसी बातकी कमी न थी । सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, कुलीनता, विद्या, ऐश्वर्य और सम्पत्ति आदि सभी गुणोंसे वे सम्पन्न थे । फिर भी उनकी पत्नियाँ बाँझ थीं, इसलिये उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी ॥ १२ ॥ वे सारी पृथ्वीके एकछत्र सम्राट् थे, बहुत-सी सुन्दरी रानियाँ थीं तथा सारी पृथ्वी उनके वशमें थी । सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ उनकी सेवामें उपस्थित थीं, परन्तु वे सब वस्तुएँ उन्हें सुखी न कर सकीं ॥ १३ ॥ एक दिन शाप और वरदान देनेमें समर्थ अङ्गिरा ऋषि स्वच्छन्दरूपसे विभिन्न लोकोंमें विचरते राजा चित्रकेतुके महलमें पहुँच गये ॥ १४ ॥ राजाने प्रत्युत्थान और अर्घ्य आदिसे उनकी विधिपूर्वक पूजा की । आतिथ्य-सत्कार हो जानेके बाद जब अङ्गिरा ऋषि सुखपूर्वक आसनपर विराज गये, तब राजा चित्रकेतु भी शान्तभावसे उनके पास ही बैठ गये ॥ १५ ॥ महाराज ! महर्षि अङ्गिराने देखा कि यह राजा बहुत विनयी है और मेरे पास पृथ्वीपर बैठकर मेरी भक्ति कर रहा है । तब उन्होंने चित्रकेतुको सम्बोधित करके उसे आदर देते हुए यह बात कही ॥ १६ ॥

अङ्गिरा ऋषिने कहा—राजन् ! तुम अपनी प्रकृतियों—गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और मित्रके साथ सकुशल तो हो न ? जैसे जीव महत्तत्त्वादि सात आवरणोंसे घिरा रहता है, वैसे ही राजा भी इन सात प्रकृतियोंसे घिरा रहता है । उनके कुशलसे ही राजाकी कुशल है ॥ १७ ॥ नरेन्द्र ! जिस प्रकार राजा अपनी उपर्युक्त प्रकृतियोंके अनुकूल रहनेपर ही राज्यसुख भोग सकता है, वैसे ही प्रकृतियाँ भी अपनी रक्षाका भार राजापर छोड़कर सुख और समृद्धि लाभ कर सकती हैं ॥ १८ ॥ राजन् ! तुम्हारी रानियाँ, प्रजा, मन्त्री (सलाहकार), सेवक, व्यापारी, अमात्य (दीवान), नागरिक, देशवासी, मण्डलेश्वर राजा और पुत्र तुम्हारे वशमें तो हैं न ? ॥ १९ ॥ सच्ची बात तो यह है कि जिसका मन अपने वशमें है, उसके ये सभी वशमें होते हैं । इतना ही नहीं, सभी लोक और लोकपाल भी बड़ी सावधानीसे उसे भेंट देकर उसकी प्रसन्नता चाहते हैं ॥ २० ॥ परन्तु मैं देख रहा हूँ कि तुम स्वयं सन्तुष्ट नहीं हो । तुम्हारी कोई कामना अपूर्ण है । तुम्हारे मुँहपर किसी आन्तरिक चिन्ताके चिह्न झलक रहे हैं । तुम्हारे इस असन्तोषका कारण कोई और है या स्वयं तुम्हीं हो ? ॥ २१ ॥

परीक्षित् ! महर्षि अङ्गिरा यह जानते थे कि राजाके मनमें किस बातकी चिन्ता है । फिर भी उन्होंने उनसे चिन्ताके सम्बन्धमें अनेकों प्रश्न पूछे । चित्रकेतुको सन्तानकी कामना थी । अतः महर्षिके पूछनेपर उन्होंने विनयसे झुककर निवेदन किया ॥ २२ ॥

सम्राट् चित्रकेतुने कहा—भगवन् ! जिन योगियोंके तपस्या, ज्ञान, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा सारे पाप नष्ट हो चुके हैं—उनके लिये प्राणियोंके बाहर या भीतरकी ऐसी कौन-सी बात है, जिसे वे न जानते हों ॥ २३ ॥ ऐसा होनेपर भी जब आप सब कुछ जान-बूझकर मुझसे मेरे मनकी चिन्ता पूछ रहे हैं, तब मैं आपकी आज्ञा और प्रेरणासे अपनी चिन्ता आपके चरणोंमें निवेदन करता हूँ ॥ २४ ॥ मुझे पृथ्वीका साम्राज्य, ऐश्वर्य और सम्पत्तियाँ, जिनके लिये लोकपाल भी लालायित रहते हैं, प्राप्त हैं । परन्तु सन्तान न होनेके कारण मुझे इन सुखभोगोंसे उसी प्रकार तनिक भी शान्ति नहीं मिल रही है, जैसे भूखे-प्यासे प्राणीको अन्न-जलके सिवा दूसरे भोगोंसे ॥ २५ ॥ महाभाग्य-

वान् महर्षे ! मैं तो दुखी हूँ ही, पिण्डदान न मिलनेकी आशङ्कासे मेरे पितर भी दुखी हो रहे हैं। अब आप हमें सन्तान-दान करके परलोकमें प्राप्त होनेवाले घोर नरकसे उबारिये और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि मैं लोक-परलोकके सब दुःखोंसे छुटकारा पा लूँ ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब राजा चित्रकेतुने इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वसमर्थ एवं परम कृपालु ब्रह्मपुत्र भगवान् अङ्गिराने त्वष्टा देवताके योग्य चरु निर्माण करके उससे उनका यजन किया ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! राजा चित्रकेतुकी रानियोंमें सबसे बड़ी और सद्गुणवती महारानी कृतद्युति थीं। महर्षि अङ्गिराने उन्हींको यज्ञका अवशेष प्रसाद दिया ॥ २८ ॥ और राजा चित्रकेतुसे कहा—'राजन् ! तुम्हारी पत्नीके गर्भसे एक पुत्र होगा, जो तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही देगा।' यों कहकर अङ्गिरा ऋषि चले गये ॥ २९ ॥ उस यज्ञावशेष प्रसादके खानेसे ही महारानी कृतद्युतिने महाराज चित्रकेतुके द्वारा गर्भ धारण किया, जैसे कृत्तिकाने अपने गर्भमें अग्निकुमारको धारण किया था ॥ ३० ॥ राजन् ! शूरसेन देशके राजा चित्रकेतुके तेजसे कृतद्युतिका गर्भ शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिनोंदिन क्रमशः बढ़ने लगा ॥३१॥

तदनन्तर समय आनेपर महारानी कृतद्युतिके गर्भसे एक सुन्दर पुत्रका जन्म हुआ। उसके जन्मका समाचार पाकर शूरसेन देशकी प्रजा बहुत ही आनन्दित हुई ॥ ३२ ॥ सम्राट् चित्रकेतुके आनन्दका तो कहना ही क्या था। वे स्नान करके पवित्र हुए। फिर उन्होंने वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर और आशीर्वाद लेकर पुत्रका जातकर्म-संस्कार करवाया ॥३३॥ उन्होंने उन ब्राह्मणोंको सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, गाँव, घोड़े, हाथी और छः अर्बुद गौएँ दान कीं ॥ ३४ ॥ उदारशिरोमणि राजा चित्रकेतुने पुत्रके धन, यश और आयुकी वृद्धिके लिये दूसरे लोगोंको भी मुँहमाँगी वस्तुएँ दीं—ठीक उसी प्रकार जैसे मेघ सभी जीवोंका मनोरथ पूर्ण करता है ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! जैसे यदि किसी कंगालको बड़ी कठिनाईसे कुछ धन मिल जाता है तो उसमें उसकी आसक्ति हो जाती है, वैसे ही बहुत कठिनाईसे प्राप्त हुए उस पुत्रमें राजर्षि चित्रकेतुका स्नेहबन्धन दिनोंदिन दृढ होने लगा ॥ ३६ ॥ माता कृतद्युतिको भी अपने पुत्रपर मोहके कारण बहुत ही स्नेह था। परन्तु उनकी सौत रानियोंके मनमें पुत्रकी कामनासे और भी जलन होने लगी ॥ ३७ ॥ प्रतिदिन बालकका लाड़-प्यार करते रहनेके कारण सम्राट् चित्रकेतुका जितना प्रेम बच्चेकी मा कृतद्युतिमें था, उतना दूसरी रानियोंमें न रहा ॥ ३८ ॥ इस प्रकार एक तो वे रानियाँ सन्तान न होनेके कारण ही दुखी थीं, दूसरे राजा चित्रकेतुने उनकी उपेक्षा कर दी। अतः वे डाहसे अपनेको धिक्कारने और मन-ही-मन जलने लगीं ॥ ३९ ॥ वे आपसमें कहने लगीं—'अरी बहिनो ! पुत्रहीन स्त्री बहुत ही अभागिनी होती है। पुत्रवाली सौतें तो दासीके समान उसका तिरस्कार करती हैं। और तो और, स्वयं पतिदेव ही उसे पत्नी करके नहीं मानते। सचमुच पुत्रहीन स्त्री धिक्कारके योग्य है ॥ ४० ॥ भला, दासियोंको क्या दुःख है ? वे तो अपने स्वामीकी सेवा करके निरन्तर सम्मान पाती रहती हैं। परन्तु हम अभागिनी तो इस समय उनसे भी गयी-बीती हो रही हैं और दासियोंकी दासीके समान बार-बार तिरस्कार पा रही हैं ॥ ४१ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार वे रानियाँ अपनी सौतकी गोद भरी देखकर जलती रहती थीं और राजा भी उनकी ओरसे उदासीन हो गये थे। फलतः उनके मनमें कृतद्युतिके प्रति बहुत अधिक द्वेष हो गया ॥ ४२ ॥ द्वेषके कारण रानियोंकी बुद्धि मारी गयी। उनके चित्तमें क्रूरता छा गयी। उन्हें अपने पति चित्रकेतुका पुत्र-स्नेह सहन न हुआ। इसलिये उन्होंने चिढ़कर नन्हे-से राजकुमारको विष दे दिया ॥ ४३ ॥ महारानी कृतद्युतिको सौतोंकी इस घोर पापमयी करतूतका कुछ भी पता न था। उन्होंने दूरसे देखकर समझ लिया कि बच्चा सो रहा है। इसलिये वे महलमें इधर-उधर डोलती रहीं ॥ ४४ ॥ बुद्धिमती रानीने यह देखकर कि बच्चा बहुत देरसे सो रहा है, धायसे कहा—'कल्याणी ! मेरे लालको ले आ' ॥ ४५ ॥ धायने सोते हुए बालकके पास जाकर देखा कि उसके नेत्रोंकी पुतलियाँ उलट

गयी हैं। प्राण, इन्द्रिय और जीवात्माने भी उसके शरीरसे विदा ले ली है। यह देखते ही 'हाय रे! मैं मारी गयी!' इस प्रकार कहकर वह धरतीपर गिर पड़ी ॥ ४६ ॥

धाय अपने दोनों हाथोंसे छाती पीट-पीटकर बड़े आर्तस्वरमें जोर-जोरसे रोने लगी। उसका रोना सुनकर महारानी कृतद्युति जल्दी-जल्दी अपने पुत्रके शयनगृहमें पहुँचीं और उन्होंने देखा कि मेरा छोटा-सा बच्चा अकस्मात् मर गया है! ॥ ४७ ॥ तब वे अत्यन्त शोकके कारण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उनके सिरके बाल बिखर गये और शरीरपरके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर महारानीका रुदन सुनकर रनिवासके सभी स्त्री-पुरुष वहाँ दौड़ आये और सहानुभूतिवश अत्यन्त दुखी होकर रोने लगे। वे हत्यारी रानियाँ भी वहाँ आकर झूठमूठ रोनेका ढोंग करने लगीं ॥ ४९ ॥ जब राजा चित्रकेतुको पता लगा कि मेरे पुत्रकी अकारण ही मृत्यु हो गयी है, तब अत्यन्त स्नेहके कारण शोकके आवेगसे उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। वे धीरे-धीरे अपने मन्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ मार्गमें गिरते-पड़ते मृत बालकके पास पहुँचे और मूर्छित होकर उसके पैरोंके पास गिर पड़े। उनके केश और वस्त्र इधर-उधर बिखर गये। वे लंबी-लंबी साँस लेने लगे। आँसुओंकी अधिकता-से उनका गला रुँध गया और वे कुछ भी बोल न सके ॥ ५०-५१ ॥ पतिप्राणा रानी कृतद्युति अपने पति चित्रकेतु-को अत्यन्त शोकाकुल और इकलौते नन्हे-से बच्चेको मरा हुआ देख भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगीं। उनका यह दुःख देखकर मन्त्री आदि सभी उपस्थित मनुष्य शोकग्रस्त हो गये ॥ ५२ ॥ महारानीके नेत्रोंसे इतने आँसू बह रहे थे कि वे उनकी आँखोंका अंजन लेकर केसर और चन्दनसे चर्चित वक्षःस्थलको भिगोने लगे। उनके बाल बिखर रहे थे तथा उनमें गुँथे हुए फूल गिर रहे थे। इस प्रकार वे पुत्रके लिये कुररी पक्षीके समान उच्चस्वरमें विविध प्रकारसे विलाप कर रही थीं ॥ ५३ ॥

वे कहने लगीं—'अरे विधाता! सचमुच तू बड़ा मूर्ख है, जो अपनी सृष्टिके प्रतिकूल चेष्टा करता है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि बूढ़े-बूढ़े तो जीते रहें और बालक मर जायँ। यदि वास्तवमें तेरे स्वभावमें ऐसी ही विपरीतता है, तब तो तू जीवोंका अमर शत्रु है ॥ ५४ ॥ यदि संसारमें प्राणियोंके जीवन-मरणका कोई क्रम न रहे, तो वे अपने प्रारब्धके अनुसार जनमते-मरते रहेंगे। फिर तेरी आवश्यकता ही क्या है। तूने सम्बन्धियोंमें स्नेह-बन्धन तो इसीलिये डाल रक्खा है न कि वे तेरी सृष्टिको बढ़ायें? परन्तु तू इस प्रकार बच्चोंको मारकर अपने किये-करायेपर अपने हाथों पानी फेर रहा है' ॥ ५५ ॥ फिर वे अपने मृत पुत्रकी ओर देखकर कहने लगीं—'बेटा! मैं तुम्हारे बिना अनाथ और दीन हो रही हूँ। मुझे छोड़कर इस प्रकार चले जाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तनिक आँख खोलकर देखो तो सही, तुम्हारे पिताजी तुम्हारे वियोगमें कितने शोक-सन्तप्त हो रहे हैं। बेटा! जिस घोर नरकको निःसन्तान पुरुष बड़ी कठिनाईसे पार कर पाते हैं, उसे हम तुम्हारे सहारे अनायास ही पार कर लेंगे। अरे बेटा! तुम इस यम-राजके साथ दूर मत जाओ। यह तो बड़ा ही निर्दयी है ॥ ५६ ॥ मेरे प्यारे लल्ला! ओ राजकुमार! उठो, बेटा! देखो, तुम्हारे साथी बालक तुम्हें खेलनेके लिये बुला रहे हैं। तुम्हें सोते-सोते बहुत देर हो गयी, अब भूख लगी होगी। उठो, कुछ खा लो। और कुछ नहीं तो मेरा दूध ही पी लो और अपने स्वजन-सम्बन्धी हमलोगोंका शोक दूर करो ॥ ५७ ॥ प्यारे लाल! आज मैं तुम्हारे मुखारविन्दपर वह भोली-भाली मुसकराहट और आनन्दभरी चितवन नहीं देख रही हूँ। मैं बड़ी अभागिनी हूँ। हाय-हाय! अब भी मुझे तुम्हारी सुमधुर तोतली बोली नहीं सुनायी दे रही है। क्या सचमुच निठुर यमराज तुम्हें उस परलोकमें ले गया, जहाँसे फिर कोई लौटकर नहीं आता?' ॥ ५८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब सम्राट् चित्र-केतुने देखा कि मेरी रानी अपने मृत पुत्रके लिये इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विलाप कर रही है, तब वे शोकसे अत्यन्त सन्तप्त हो फूट-फूटकर रोने लगे ॥ ५९ ॥ राजा-रानीके इस प्रकार विलाप करनेपर उनके अनुगामी स्त्री-पुरुष भी दुःखित होकर रोने लगे। इस प्रकार सारा नगर ही शोकसे अचेत-सा हो गया ॥ ६० ॥ राजन्! महर्षि

अङ्गिरा और देवर्षि नारदने देखा कि राजा चित्रकेतु पुत्रशोकके कारण चेतनाहीन हो रहे हैं, यहाँतक कि उन्हें समझानेवाला भी कोई नहीं है। तब वे दोनों वहाँ आये ॥ ६१ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतुको अङ्गिरा और नारदजीका उपदेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा चित्रकेतु शोकग्रस्त होकर मुर्देके समान अपने मृत पुत्रके पास ही पड़े हुए थे। अब महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारद उन्हें सुन्दर-सुन्दर उक्तियोंसे समझाने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने कहा—राजेन्द्र! जिसके लिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्मोंमें तुम्हारा कौन था? उसके तुम कौन थे? और अगले जन्मोंमें भी उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा? ॥ २ ॥ जैसे जलके वेगसे बालूके कण एक दूसरेसे जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं, वैसे ही समयके प्रवाहमें प्राणियोंका भी मिलन और बिछोह होता रहता है ॥ ३ ॥ राजन्! जैसे कुछ बीजोंसे दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही भगवान्‌की मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥ राजन्! हम, तुम और हमलोगोंके साथ इस जगत्‌में जितने भी चराचर प्राणी वर्तमान हैं—वे सब अपने जन्मके पहले नहीं थे और मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है ॥ ५ ॥ भगवान् ही समस्त प्राणियोंके अधिपति हैं। उनमें जन्म-मृत्यु आदि विकार बिल्कुल नहीं हैं। उन्हें न किसीकी इच्छा है और न अपेक्षा। वे अपने-आप परतन्त्र प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं और उनके द्वारा अन्य प्राणियोंकी रचना, पालन तथा संहार करते हैं—ठीक वैसे ही जैसे बच्चे घर-घरौंदे, खेल-खिलौने बना-बनाकर बिगाड़ते रहते हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित्! जैसे एक बीजसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही पिताकी देहद्वारा माताकी देहसे पुत्रकी देह उत्पन्न होती है। पिता-माता और पुत्र जीवके रूपमें देही हैं और बाह्य दृष्टिसे केवल शरीर। उनमें देही जीव घट आदि कार्योंमें पृथ्वीके समान नित्य है ॥ ७ ॥ राजन्! जैसे एक ही मृत्तिकारूप वस्तुमें घटत्व आदि जाति और घट आदि व्यक्तियोंका विभाग केवल कल्पनामात्र है, उसी प्रकार यह देही और देहका विभाग भी अनादि एवं अविद्या-कल्पित है * ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारदने इस प्रकार राजा चित्रकेतुको समझाया-बुझाया, तब उन्होंने कुछ धीरज धारण करके शोकसे मुरझाये हुए मुखको हाथसे पोंछा और उनसे कहा—॥ ९ ॥

राजा चित्रकेतु बोले—आप दोनों परम ज्ञानवान् और महान्‌से भी महान् जान पड़ते हैं तथा अपनेको अवधूतवेषमें छिपाकर यहाँ आये हैं। कृपा करके बतलाइये, आपलोग हैं कौन? ॥ १० ॥ मैं जानता हूँ कि बहुत-से भगवान्‌के प्यारे ब्रह्मवेत्ता मेरे-जैसे विषयासक्त प्राणियोंको उपदेश करनेके लिये उन्मत्तका-सा वेष बनाकर पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण करते हैं ॥ ११ ॥ सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अङ्गिरा, देवल, असित, अपान्तरतम, व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान् परशुराम, कपिलदेव, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिरा, बोध्यमुनि, पञ्चशिरा, हिरण्यनाभ, कौसल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज—ये सब तथा दूसरे सिद्धेश्वर ऋषि-मुनि ज्ञानदान करनेके लिये पृथ्वीपर विचरते रहते हैं ॥ १२—१५ ॥ स्वामियो! मैं विषयभोगोंमें फँसा हुआ, मूढबुद्धि ग्राम्य पशु हूँ और अज्ञानके घोर

* अनित्य होनेके कारण शरीर असत्य हैं और शरीर असत्य होनेके कारण उनके भिन्न-भिन्न अभिमानी भी असत्य ही हैं। त्रिकालाबाधित सत्य तो एकमात्र परमात्मा ही है। अतः शोक करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

अन्धकारमें डूब रहा हूँ । आपलोग मुझे ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाशके केन्द्रमें लाइये ॥ १६ ॥

महर्षि अङ्गिराने कहा—राजन् ! जिस समय तुम पुत्रके लिये बहुत लालायित थे, तब मैंने ही तुम्हें पुत्र दिया था । मैं अङ्गिरा हूँ । ये जो तुम्हारे सामने खड़े हैं, स्वयं ब्रह्माजीके पुत्र सर्वसमर्थ देवर्षि नारद हैं ॥१७॥ जब हमलोगोंने देखा कि तुम पुत्रशोकके कारण बहुत ही घने अज्ञानान्धकारमें डूब रहे हो, तब सोचा कि तुम भगवान्के भक्त हो, शोक करनेयोग्य नहीं हो । अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही हम दोनों यहाँ आये हैं । राजन् ! सच्ची बात तो यह है कि जो भगवान् और ब्राह्मणोंका भक्त है, उसे किसी अवस्थामें शोक नहीं करना चाहिये ॥ १८-१९ ॥ जिस समय पहले-पहल मैं तुम्हारे घर आया था, उसी समय मैं तुम्हें परम ज्ञानका उपदेश देता; परन्तु मैंने देखा कि अभी तो तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी उत्कट लालसा है, इसलिये उस समय तुम्हें ज्ञान न देकर मैंने पुत्र ही दिया॥२०॥ अब तुम स्वयं अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानोंको कितना दुःख होता है। यही बात स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ, शब्द-रूप-रस आदि विषय, राज्यवैभव, पृथ्वी, राज्य, सेना, खजाना, सेवक, अमात्य, सगे-सम्बन्धी, इष्ट-मित्र सबके लिये है; क्योंकि ये सब-के-सब अनित्य हैं ॥२१-२२॥ शूरसेन! अतएव ये सभी शोक, मोह, भय और दुःखके कारण हैं, मनके खेल-खिलौने हैं, सर्वथा कल्पित और मिथ्या हैं; क्योंकि ये न होनेपर भी दिखायी पड़ रहे हैं । यही कारण है कि ये एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण लुप्त हो जाते हैं । ये गन्धर्वनगर, स्वप्न, जादू और मनोरथकी वस्तुओंके समान सर्वथा असत्य हैं । जो लोग कर्म-वासनाओंसे प्रेरित होकर विषयोंका चिन्तन करते रहते हैं, उन्हींका मन अनेक प्रकारके कर्मोंकी सृष्टि करता है ॥२३-२४॥ जीवात्माकी यह देह—जो पञ्चभूत, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंका संघात है—जीवको विविध प्रकारके क्लेश और सन्ताप देनेवाली कही जाती है ॥२५॥ इसलिये तुम अपने मनको विषयोंमें भटकनेसे रोककर शान्त करो, स्वस्थ करो और फिर उस मनके द्वारा अपने वास्तविक स्वरूपका विचार करो । तथा इस द्वैत-भ्रममें नित्यत्वकी बुद्धि छोड़कर परम शान्तिस्वरूप परमात्मामें स्थित हो जाओ ॥ २६ ॥

देवर्षि नारदने कहा—राजन् ! तुम एकाग्रचित्तसे मुझसे यह मन्त्रोपनिषद् ग्रहण करो । इसे धारण करनेसे सात रातमें ही तुम्हें भगवान् सङ्कर्षणका दर्शन होगा ।२७। नरेन्द्र ! प्राचीन कालमें भगवान् शङ्कर आदिने श्रीसङ्कर्षणदेवके ही चरणकमलोंका आश्रय लिया था । इससे उन्होंने द्वैतभ्रमका परित्याग कर दिया और उनकी उस महिमाको प्राप्त हुए, जिससे बढ़कर तो कोई है ही नहीं, समान भी नहीं है । तुम भी बहुत शीघ्र ही भगवान्के उसी परमपदको प्राप्त कर लोगे ॥ २८ ॥

सोलहवाँ अध्याय

चित्रकेतुका वैराग्य तथा सङ्कर्षणदेवके दर्शन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! तदनन्तर देवर्षि नारदने मृत राजकुमारके जीवात्माको शोकाकुल स्वजनोंके सामने प्रत्यक्ष बुलाकर कहा ॥ १ ॥

देवर्षि नारदने कहा—जीवात्मन् ! तुम्हारा कल्याण हो । देखो, तुम्हारे माता-पिता, सुहृद्-सम्बन्धी तुम्हारे वियोगसे अत्यन्त शोकाकुल हो रहे हैं ॥ २ ॥ इसलिये तुम अपने शरीरमें आ जाओ और शेष आयु अपने सगे-[illegible]ोंके साथ ही रहकर व्यतीत करो । अपने पिताके दिये हुए भोगोंको भोगो और राजसिंहासनपर बैठो ॥ ३ ॥

जीवात्माने कहा—देवर्षिजी ! मैं अपने कर्मोंके अनुसार देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियोंमें न जाने कितने जन्मोंसे भटक रहा हूँ । उनमेंसे ये लोग किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए ? ॥ ४ ॥ विभिन्न जन्मोंमें सभी एक-दूसरेके भाई-बन्धु, नाती-गोती, शत्रु-मित्र, मध्यस्थ, उदासीन और द्वेषी होते रहते हैं ॥५॥

जैसे सुवर्ण आदि क्रय-विक्रयकी वस्तुएँ एक व्यापारीसे दूसरेके पास जाती-आती रहती हैं, वैसे ही जीव भी भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है ॥ ६ ॥ इस प्रकार विचार करनेसे पता लगता है कि मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक दिन ठहरनेवाले सुवर्ण आदि पदार्थोंका सम्बन्ध भी मनुष्योंके साथ स्थायी नहीं, क्षणिक ही होता है; और जबतक जिसका जिस वस्तुसे सम्बन्ध रहता है, तभीतक उसकी उस वस्तुसे ममता भी रहती है ॥ ७ ॥ जीव नित्य और अहङ्काररहित है। वह गर्भमें आकर जबतक जिस शरीरमें रहता है, तभीतक उस शरीरको अपना समझता है ॥ ८ ॥ यह जीव नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म (जन्मादिरहित), सबका आश्रय और स्वयंप्रकाश है। इसमें स्वरूपतः जन्म-मृत्यु आदि कुछ भी नहीं हैं। फिर भी यह ईश्वररूप होनेके कारण अपनी मायाके गुणोंसे ही अपने-आपको विश्वके रूपमें प्रकट कर देता है ॥ ९ ॥ इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न अप्रिय, न अपना और न पराया। क्योंकि गुण-दोष (हित-अहित) करनेवाले मित्र-शत्रु आदिकी भिन्न-भिन्न बुद्धि-वृत्तियोंका यह अकेला ही साक्षी है; वास्तवमें यह अद्वितीय है ॥ १० ॥ यह आत्मा कार्य-कारणका साक्षी और स्वतन्त्र है। इसलिये यह शरीर आदिके गुण-दोष अथवा कर्मफलको ग्रहण नहीं करता, सदा उदासीनभावसे स्थित रहता है ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—वह जीवात्मा इस प्रकार कहकर चला गया। उसके सगे-सम्बन्धी उसकी बात सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए। उनका स्नेह-बन्धन कट गया और उसके मरनेका शोक भी जाता रहा ॥ १२ ॥ इसके बाद जातिवालोंने बालककी मृत देहको ले जाकर तत्कालोचित संस्कार और और्ध्वदैहिक क्रियाएँ पूर्ण कीं और उस दुस्त्यज स्नेहको छोड़ दिया, जिसके कारण शोक, मोह, भय और दुःखकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! जिन रानियोंने बच्चेको विष दिया था, वे बालहत्याके कारण श्रीहीन हो गयी थीं और लज्जाके मारे आँखतक नहीं उठा सकती थीं। उन्होंने अङ्गिरा ऋषिके उपदेशको याद करके (मात्सर्यहीन हो) यमुनाजीके तटपर ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बालहत्याका प्रायश्चित्त किया ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार अङ्गिरा और नारदजीके उपदेशसे विवेकबुद्धि जाग्रत् हो जानेके कारण राजा चित्रकेतु घर-गृहस्थीके अँधेरे कुएँसे उसी प्रकार बाहर निकल पड़े, जैसे कोई हाथी तालाबके कीचड़से निकल आये ॥ १५ ॥ उन्होंने यमुनाजीमें विधिपूर्वक स्नान करके तर्पण आदि धार्मिक क्रियाएँ कीं। तदनन्तर संयतेन्द्रिय और मौन होकर उन्होंने देवर्षि नारद और महर्षि अङ्गिराके चरणोंकी वन्दना की ॥ १६ ॥ भगवान् नारदने देखा कि चित्रकेतु जितेन्द्रिय, भगवद्भक्त और शरणागत हैं। अतः उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें इस विद्याका उपदेश किया ॥ १७ ॥

(देवर्षि नारदने यों उपदेश किया—) 'ॐकारस्वरूप भगवन् ! आप वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणके रूपमें क्रमशः चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं। मैं आपके इस चतुर्व्यूहरूपका बार-बार नमस्कारपूर्वक ध्यान करता हूँ ॥ १८ ॥ आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं। आपकी मूर्ति परमानन्दमयी है। आप अपने स्वरूपभूत आनन्दमें ही मग्न और परम शान्त हैं। द्वैतदृष्टि आपको छूतक नहीं सकती। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥ अपने स्वरूपभूत आनन्दकी अनुभूतिसे ही आपने मायाजनित राग-द्वेष आदि दोषोंका तिरस्कार कर रक्खा है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सबकी समस्त इन्द्रियोंके प्रेरक, परम महान् और विराट्स्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ मनसहित वाणी आपतक न पहुँचकर बीचसे ही लौट आती है। उसके उपरत हो जानेपर जो अद्वितीय, नाम-रूपरहित, चेतनमात्र और कार्य-कारणसे परेकी वस्तु रह जाती है—वह हमारी रक्षा करे ॥ २१ ॥ यह कार्य-कारणरूप जगत् जिनसे उत्पन्न होता है, जिनमें स्थित है और जिनमें लीन होता है तथा जो मिट्टीकी वस्तुओंमें व्याप्त मृत्तिकाके समान सबमें ओतप्रोत हैं—उन परब्रह्मस्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥ यद्यपि आप आकाशके समान बाहर-भीतर एकरस व्याप्त हैं, तथापि आपको मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी ज्ञानशक्तिसे नहीं जान सकतीं और प्राण तथा कर्मेन्द्रियाँ अपनी क्रियारूप शक्तिसे स्पर्श भी नहीं कर सकतीं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्थाओंमें आपके चैतन्यांशसे युक्त होकर ही अपना-अपना काम करते हैं तथा सुषुप्ति और मूर्च्छाकी अवस्थाओंमें आपके चैतन्यांशसे युक्त न होनेके कारण अपना-अपना काम करनेमें असमर्थ हो जाते हैं—ठीक वैसे ही जैसे लोहा अग्निसे तप्त होनेपर जला सकता है, अन्यथा नहीं। जिसे 'द्रष्टा' कहते हैं, वह भी आपका ही एक नाम है; जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें आप उसे स्वीकार कर लेते हैं। वास्तवमें आपसे पृथक् उनका कोई अस्तित्व नहीं है॥२४॥ ॐकारस्वरूप महाप्रभावशाली महाविभूतिपति भगवान् महापुरुषको नमस्कार है। श्रेष्ठ भक्तोंका समुदाय अपने करकमलोंकी कलियोंसे आपके युगल चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न रहता है। प्रभो! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ'॥ २५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवर्षि नारद अपने शरणागत भक्त चित्रकेतुको इस विद्याका उपदेश करके महर्षि अङ्गिराके साथ ब्रह्मलोकको चले गये।२६। राजा चित्रकेतुने देवर्षि नारदके द्वारा उपदिष्ट विद्याका उनके आज्ञानुसार सात दिनतक केवल जल पीकर बड़ी एकाग्रताके साथ अनुष्ठान किया॥ २७॥ तदनन्तर उस विद्याके अनुष्ठानसे सात रातके पश्चात् राजा चित्रकेतुको विद्याधरोंका अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हुआ॥ २८॥ इसके बाद कुछ ही दिनोंमें इस विद्याके प्रभावसे उनका मन और भी शुद्ध हो गया। अब वे देवाधिदेव भगवान् शेषजीके चरणोंके समीप पहुँच गये॥ २९॥ उन्होंने देखा कि भगवान् शेषजी सिद्धेश्वरोंके मण्डलमें विराजमान हैं। उनका शरीर कमलनालके समान गौरवर्ण है। उसपर नीले रंगका वस्त्र फहरा रहा है। सिरपर किरीट, बाँहोंमें बाजूबंद, कमरमें करधनी और कलाईमें कंगन आदि आभूषण चमक रहे हैं। नेत्र रतनारे हैं और मुखपर प्रसन्नता छा रही है॥ ३०॥ भगवान् शेषका दर्शन करते ही राजर्षि चित्रकेतुके सारे पाप नष्ट हो गये। उनका अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल हो गया। हृदयमें भक्तिभावकी बाढ़ आ गयी। नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। शरीरका एक-एक रोम खिल उठा। उन्होंने ऐसी ही स्थितिमें आदिपुरुष भगवान् शेषको नमस्कार किया॥ ३१॥ उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू टप-टप गिरते जा रहे थे। इससे भगवान् शेषके चरण रखनेकी चौकी भीग गयी। प्रेमोद्रेकके कारण उनके मुँहसे एक अक्षर भी न निकल सका। वे बहुत देरतक शेषभगवान्‌की कुछ भी स्तुति न कर सके॥ ३२॥ थोड़ी देर बाद उन्हें बोलनेकी कुछ-कुछ शक्ति प्राप्त हुई। उन्होंने विवेकबुद्धिसे मनको समाहित किया और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोका। फिर उन जगद्गुरुकी, जिनके स्वरूपका पाञ्चरात्र आदि भक्तिशास्त्रोंमें वर्णन किया गया है, इस प्रकार स्तुति की॥ ३३॥

चित्रकेतुने कहा—अजित! जितेन्द्रिय एवं समदर्शी साधुओंने आपको जीत लिया है। आपने भी अपने सौन्दर्य, माधुर्य, कारुण्य आदि गुणोंसे उनको अपने वशमें कर लिया है। अहो, आप धन्य हैं! क्योंकि जो निष्कामभावसे आपका भजन करते हैं, उन्हें आप करुणापरवश होकर अपने-आपको भी दे डालते हैं॥ ३४॥ भगवन्! जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आपके लीला-विलास हैं। विश्वनिर्माता ब्रह्मा आदि आपके अंशके भी अंश हैं। फिर भी वे पृथक्-पृथक् अपनेको जगत्कर्त्ता मानकर झूठमूठ एक-दूसरेसे स्पर्धा करते हैं॥ ३५॥ नन्हे-से-नन्हे परमाणुसे लेकर बड़े-से-बड़े महत्तत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण वस्तुओंके आदि, अन्त और मध्यमें आप ही विराजमान हैं तथा स्वयं आप आदि, अन्त और मध्यसे रहित हैं। क्योंकि किसी भी पदार्थके आदि और अन्तमें जो वस्तु रहती है, वही मध्यमें भी रहती है॥ ३६॥ यह ब्रह्माण्डकोष, जो पृथ्वी आदि एक-से-एक दसगुने सात आवरणोंसे घिरा हुआ है, अपने ही समान दूसरे करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सहित आपमें एक परमाणुके समान घूमता रहता है और फिर भी उसे आपकी सीमाका पता नहीं है। इसलिये आप अनन्त हैं॥ ३७॥ जो नरपशु केवल विषयभोग ही चाहते हैं, वे आपका भजन न करके आपके विभूतिस्वरूप इन्द्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं। प्रभो! जैसे राजकुलका नाश

होनेके पश्चात् उसके अनुयायियोंकी जीविका भी जाती रहती है, वैसे ही क्षुद्र उपास्यदेवोंका ह्रास होनेपर उनके दिये हुए भोग भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ परमात्मन् ! आप ज्ञानस्वरूप और निर्गुण हैं । इसलिये आपके प्रति की हुई सकाम भावना भी अन्यान्य कर्मों-के समान जन्म-मृत्युरूप फल देनेवाली नहीं होती, जैसे भुने हुए बीजोंसे अङ्कुर नहीं उगते । क्योंकि जीवको जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं, वे सत्त्वादि *गुणोंसे ही होते हैं, निर्गुणसे नहीं* ॥ ३९ ॥ हे अजित ! जिस समय आपने विशुद्ध भागवतधर्मका उपदेश किया था, उसी समय आपने सबको जीत लिया । क्योंकि अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह न रखनेवाले, किसी भी वस्तुमें अहंता-ममता न करनेवाले आत्माराम सनकादि परमर्षि भी परम साम्य और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये उसी भागवतधर्मका आश्रय लेते हैं ॥ ४० ॥ वह भागवतधर्म इतना शुद्ध है कि उसमें सकाम धर्मोंके समान मनुष्योंकी यह विषमबुद्धि नहीं होती कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह तू है और यह तेरा है ।' इसके विपरीत जिस धर्मके मूलमें ही विषमता-का बीज बो दिया जाता है, वह तो अशुद्ध, नाश-वान् और अधर्मबहुल होता है ॥ ४१ ॥ सकाम धर्म अपना और दूसरेका भी अहित करनेवाला है । उससे अपना या पराया—किसीका कोई भी प्रयोजन और हित सिद्ध नहीं होता । प्रत्युत सकाम धर्मसे जब अनुष्ठान करनेवालेका चित्त दुखता है, तब आप रुष्ट होते हैं और जब दूसरेका चित्त दुखता है, तब वह धर्म नहीं रहता—अधर्म हो जाता है ॥ ४२ ॥ भगवन् ! आपने जिस दृष्टिसे भागवतधर्मका निरूपण किया है, वह कभी परमार्थसे विचलित नहीं होती । इसलिये जो संत पुरुष चर-अचर समस्त प्राणियोंमें समदृष्टि रखते हैं, वे ही उसका सेवन करते हैं ॥४३॥ भगवन् ! आपके दर्शनमात्रसे ही मनुष्योंके सारे पाप क्षीण हो जाते हैं, यह कोई असम्भव बात नहीं है; क्योंकि आपका नाम एक बार सुननेसे ही नीच चाण्डाल भी संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ भगवन् ! इस समय आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे अन्तः-करणका सारा मल धुल गया है, सो ठीक ही है । क्योंकि आपके अनन्यप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है ॥ ४५ ॥ हे अनन्त ! आप सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं । अतएव संसारमें प्राणी जो कुछ करते हैं, वह सब आप जानते ही रहते हैं । इसलिये जैसे जुगनू सूर्यको प्रकाशित नहीं कर सकता, वैसे ही परमगुरु आपसे मैं क्या निवेदन करूँ ॥ ४६ ॥ भगवन् ! आपकी ही अध्यक्षता-में सारे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं । कुयोगीजन भेददृष्टिके कारण आपका वास्तविक स्वरूप नहीं जान पाते । आपका स्वरूप वास्तवमें अत्यन्त शुद्ध है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ आपकी चेष्टासे शक्ति प्राप्त करके ही ब्रह्मा आदि लोकपालगण चेष्टा करनेमें समर्थ होते हैं । आपकी दृष्टिसे जीवित होकर ही ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं । यह भूमण्डल आपके सिरपर सरसोंके दानेके समान जान पड़ता है । मैं आप सहस्रशीर्षा भगवान्को बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब विद्या-धरोंके अधिपति चित्रकेतुने अनन्तभगवान्की इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर उनसे कहा ॥ ४९ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—चित्रकेतो ! देवर्षि नारद और महर्षि अङ्गिराने तुम्हें मेरे सम्बन्धमें जिस विद्याका उपदेश दिया है, उससे और मेरे दर्शनसे तुम भली-भाँति सिद्ध हो चुके हो ॥ ५० ॥ मैं ही समस्त प्राणियोंके रूपमें हूँ, मैं ही उनका आत्मा हूँ और मैं ही पालनकर्ता भी हूँ । शब्दब्रह्म (वेद) और परब्रह्म दोनों ही मेरे सनातन रूप हैं ॥ ५१ ॥ आत्मा कार्य-कारणात्मक जगत्में व्याप्त है और कार्य-कारणात्मक जगत् आत्मामें स्थित है तथा इन दोनोंमें मैं अधिष्ठान-रूपसे व्याप्त हूँ और मुझमें ये दोनों कल्पित हैं ॥ ५२ ॥ जैसे स्वप्नमें सोया हुआ पुरुष स्वप्नान्तर होनेपर सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें ही देखता है और स्वप्नान्तर टूट जानेपर स्वप्नमें ही जागता है तथा अपनेको संसारके

एक कोनेमें स्थित देखता है, परन्तु वास्तवमें वह भी स्वप्न ही है, वैसे ही जीवकी जाग्रत् आदि अवस्थाएँ परमेश्वरकी ही माया हैं—यों जानकर सबके साक्षी मायातीत परमात्माका ही स्मरण करना चाहिये ॥५३-५४॥ सोया हुआ पुरुष जिसकी सहायतासे अपनी निद्रा और उसके अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ; उसे तुम अपनी आत्मा समझो ॥ ५५ ॥ पुरुष निद्रा और जागृति—इन दोनों अवस्थाओंका अनुभव करनेवाला है। वह उन अवस्थाओंमें अनुगत होनेपर भी वास्तवमें उनसे पृथक् है। वह सब अवस्थाओंमें रहनेवाला अखण्ड एकरस ज्ञान ही ब्रह्म है, वही परब्रह्म है ॥५६॥ जब जीव मेरे स्वरूपको भूल जाता है, तब वह अपनेको अलग मान बैठता है; इसीसे उसे संसारके चक्करमें पड़ना पड़ता है और जन्म-पर-जन्म तथा मृत्यु-पर-मृत्यु प्राप्त होती है ॥ ५७ ॥ यह मनुष्ययोनि ज्ञान और विज्ञान-का मूल स्रोत है। जो इसे पाकर भी अपने आत्म-स्वरूप परमात्माको नहीं जान लेता, उसे कहीं किसी भी योनिमें शान्ति नहीं मिल सकती ॥ ५८ ॥ राजन्! सांसारिक सुखके लिये जो चेष्टाएँ की जाती हैं, उनमें श्रम है, क्लेश है; और जिस परम सुखके उद्देश्यसे वे की जाती हैं, उसके ठीक विपरीत परम दुःख देती हैं; किन्तु कर्मोंसे निवृत्त हो जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं है—यह सोचकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि किसी प्रकारके कर्म अथवा उनके फलोंका सङ्कल्प न करे ॥ ५९ ॥ जगत्के सभी स्त्री-पुरुष इसलिये कर्म करते हैं कि उन्हें सुख मिले और उनका दुःखोंसे पिण्ड छूटे; परन्तु उन कर्मोंसे न तो उनका दुःख दूर होता है और न उन्हें सुखकी ही प्राप्ति होती है ॥ ६० ॥ जो मनुष्य अपनेको बहुत बड़ा बुद्धिमान् मानकर कर्म-के पचड़ोंमें पड़े हुए हैं, उनको विपरीत फल मिलता है—यह बात समझ लेनी चाहिये; साथ ही यह भी जान लेना चाहिये कि आत्माका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं तथा इनके अभिमानियोंसे विलक्षण है ॥ ६१ ॥ यह जान-कर इस लोकमें देखे और परलोकके सुने हुए विषय-भोगोंसे विवेकबुद्धिके द्वारा अपना पिण्ड छुड़ा ले और ज्ञान तथा विज्ञानमें ही सन्तुष्ट रहकर मेरा भक्त हो जाय ॥ ६२ ॥ जो लोग योगमार्गका तत्त्व समझनेमें निपुण हैं, उनको भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ और परमार्थ केवल इतना ही है कि वह ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर ले ॥ ६३ ॥ राजन्! यदि तुम मेरे इस उपदेशको सावधान होकर श्रद्धाभावसे धारण करोगे तो ज्ञान एवं विज्ञानसे सम्पन्न होकर शीघ्र ही सिद्ध हो जाओगे ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि चित्रकेतुको इस प्रकार समझा-बुझाकर उनके सामने ही वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ ६५ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतुको पार्वतीजीका शाप

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विद्याधर चित्र-केतु, जिस दिशामें भगवान् सङ्कर्षण अन्तर्धान हुए थे, उसे नमस्कार करके आकाशमार्गसे स्वच्छन्द विचरने लगे ॥ १ ॥ महायोगी चित्रकेतु करोड़ों वर्षोंतक सब प्रकारके सङ्कल्पोंको पूर्ण करनेवाली सुमेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार करते रहे। उनके शरीरका बल और इन्द्रियोंकी शक्ति अक्षुण्ण रही। बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण उनकी स्तुति करते रहते। उनकी प्रेरणासे विद्या-धरोंकी स्त्रियाँ उनके पास सर्वशक्तिमान् भगवान्के गुण और लीलाओंका गान करती रहतीं ॥ २-३ ॥ एक दिन चित्रकेतु भगवान्के दिये हुए तेजोमय विमानपर सवार होकर कहीं जा रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा कि भगवान् शङ्कर बड़े-बड़े मुनियोंकी सभामें सिद्ध-चारणोंके बीच बैठे हुए हैं और साथ ही भगवती पार्वतीको अपनी गोदमें बैठाकर एक हाथसे उन्हें आलिङ्गन किये हुए हैं। यह देखकर चित्रकेतु विमानपर चढ़े हुए ही उनके पास

चले गये और भगवती पार्वतीको सुना-सुनाकर जोरसे हँसने और कहने लगे ॥ ४-५ ॥

चित्रकेतुने कहा—अहो ! ये सारे जगत‍्के धर्मशिक्षक और गुरुदेव हैं। ये समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं। इनकी यह दशा है कि भरी सभामें अपनी पत्नीको शरीरसे चिपकाकर बैठे हुए हैं ॥ ६ ॥ जटाधारी, बहुत बड़े तपस्वी एवं ब्रह्मवादियोंके सभापति होकर भी साधारण पुरुषके समान निर्लज्जतासे गोदमें स्त्री लेकर बैठे हैं ॥ ७ ॥ प्रायः साधारण पुरुष भी एकान्तमें ही स्त्रियोंके साथ उठते-बैठते हैं, परन्तु ये इतने बड़े व्रतधारी होकर भी उसे भरी सभामें लिये बैठे हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् शङ्करकी बुद्धि अगाध है। चित्रकेतुका यह कटाक्ष सुनकर वे हँसने लगे, कुछ भी बोले नहीं। उस सभामें बैठे हुए उनके अनुयायी सदस्य भी चुप रहे। चित्रकेतुको भगवान् शङ्करका प्रभाव नहीं मालूम था। इसीसे वे उनके लिये बहुत कुछ बुरा-भला बक रहे थे। उन्हें इस बातका घमंड हो गया था कि 'मैं जितेन्द्रिय हूँ।' पार्वतीजीने उनकी यह धृष्टता देखकर क्रोधसे कहा—॥ ९-१० ॥

पार्वतीजी बोलीं—अहो ! हम-जैसे दुष्ट और निर्लज्जोंका दण्डके बलपर शासन एवं तिरस्कार करनेवाला प्रभु इस संसारमें यही है क्या ? ॥ ११ ॥ जान पड़ता है कि ब्रह्माजी, भृगु, नारद आदि उनके पुत्र, सनकादि परमर्षि, कपिलदेव और मनु आदि बड़े-बड़े महापुरुष धर्मका रहस्य नहीं जानते। तभी तो वे धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले भगवान् शिवको इस कामसे नहीं रोकते ॥ १२ ॥ ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, उन्हीं मङ्गलोंको मङ्गल बनानेवाले साक्षात् जगद्गुरु भगवान‍्का और उनके अनुयायी महात्माओंका इस अधम क्षत्रियने तिरस्कार किया है और शासन करनेकी चेष्टा की है। इसलिये यह ढीठ सर्वथा दण्डका पात्र है ॥ १३ ॥ इसे अपने बड़प्पनका घमंड है। यह मूर्ख भगवान् श्रीहरिके उन चरणकमलोंमें रहनेयोग्य नहीं है, जिनकी उपासना बड़े-बड़े सत्पुरुष किया करते हैं ॥ १४ ॥ [चित्रकेतुको सम्बोधनकर] अतः दुर्मते ! तुम पापमय असुरयोनिमें जाओ। ऐसा होनेसे बेटा ! तुम फिर कभी किसी महापुरुषका अपराध नहीं कर सकोगे ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब पार्वतीजीने इस प्रकार चित्रकेतुको शाप दिया, तब वे विमानसे उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ १६ ॥

चित्रकेतुने कहा—माता पार्वतीजी ! मैं बड़ी प्रसन्नतासे अपने दोनों हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार करता हूँ। क्योंकि देवतालोग मनुष्योंके लिये जो कुछ कह देते हैं, वह उनके प्रारब्धानुसार मिलनेवाले फलकी पूर्वसूचनामात्र होती है ॥ १७ ॥ देवि ! यह जीव अज्ञानसे मोहित हो रहा है और इसी कारण इस संसार-चक्रमें भटकता रहता है तथा सदा-सर्वदा सर्वत्र सुख और दुःख भोगता रहता है ॥ १८ ॥ माताजी ! सुख और दुःखको देनेवाला न तो अपना आत्मा है और न कोई दूसरा। जो अज्ञानी हैं, वे ही अपनेको अथवा दूसरेको सुख-दुःखका कर्ता माना करते हैं ॥ १९ ॥ यह जगत् सत्त्व, रज आदि गुणोंका स्वाभाविक प्रवाह है। इसमें क्या शाप, क्या अनुग्रह, क्या स्वर्ग, क्या नरक और क्या सुख, क्या दुःख ॥ २० ॥ एकमात्र परिपूर्णतम भगवान् ही बिना किसीकी सहायताके अपनी आत्मस्वरूपिणी मायाके द्वारा समस्त प्राणियोंकी तथा उनके बन्धन, मोक्ष और सुख-दुःखकी रचना करते हैं ॥ २१ ॥ माताजी ! भगवान् श्रीहरि सबमें सम और माया आदि मलसे रहित हैं। उनका कोई प्रिय-अप्रिय, जाति-बन्धु, अपना-पराया नहीं है। जब उनका सुखमें राग ही नहीं है, तब उनमें रागजन्य क्रोध तो हो ही कैसे सकता है ॥ २२ ॥ तथापि उनकी मायाशक्तिके कार्य पाप और पुण्य ही प्राणियोंके सुख-दुःख, हित-अहित, बन्ध-मोक्ष, मृत्यु-जन्म और आवागमनके कारण बनते हैं ॥ २३ ॥ पतिप्राणा देवि ! मैं शापसे मुक्त होनेके लिये आपको प्रसन्न नहीं कर रहा हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि आपको मेरी जो बात अनुचित प्रतीत हुई हो, उसके लिये क्षमा करें ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! विद्याधर चित्रकेतु भगवान् शङ्कर और पार्वतीजीको इस प्रकार प्रसन्न

करके उनके सामने ही विमानपर सवार होकर वहाँसे चले गये। इससे उन लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २५ ॥ तब भगवान् शङ्करने देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदोंके सामने ही भगवती पार्वतीसे यह बात कही ॥ २६ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—सुन्दरि ! दिव्यलीलाविहारी भगवान्के निःस्पृह और उदारहृदय दासानुदासोंकी महिमा तुमने अपनी आँखों देख ली ॥ २७ ॥ जो लोग भगवान्के शरणागत होते हैं, वे किसीसे भी नहीं डरते। क्योंकि उन्हें स्वर्ग, मोक्ष और नरकोंमें भी एक ही वस्तुके—केवल भगवान्के ही समान भावसे दर्शन होते हैं ॥ २८ ॥ जीवोंको भगवान्की लीलासे ही देहका संयोग होनेके कारण सुख-दुःख, जन्म-मरण और शाप-अनुग्रह आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ जैसे स्वप्नमें भेद-भ्रमसे सुख-दुःख आदिकी प्रतीति होती है और जाग्रत्-अवस्थामें भ्रमवश मालामें ही सर्पबुद्धि हो जाती है—वैसे ही मनुष्य अज्ञानवश आत्मामें देवता, मनुष्य आदिका भेद तथा गुण-दोष आदिकी कल्पना कर लेता है ॥ ३० ॥ जिनके पास ज्ञान और वैराग्यका बल है और जो भगवान् वासुदेवके चरणोंमें भक्तिभाव रखते हैं, उनके लिये इस जगत्में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसे वे हेय या उपादेय समझकर राग-द्वेष करें ॥ ३१ ॥ मैं, ब्रह्माजी, सनकादि, नारद, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु आदि मुनि और बड़े-बड़े देवता—कोई भी भगवान्की लीलाका रहस्य नहीं जान पाते। ऐसी अवस्थामें जो उनके नन्हे-से-नन्हे अंश हैं और अपनेको उनसे अलग ईश्वर मान बैठे हैं, वे उनके स्वरूपको जान ही कैसे सकते हैं ? ॥ ३२ ॥ भगवान्को न कोई प्रिय है और न अप्रिय। उनका न कोई अपना है और न पराया। वे सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, इसलिये सभी प्राणियोंके प्रियतम हैं ॥ ३३ ॥ प्रिये ! यह परम भाग्यवान् चित्रकेतु उन्हींका प्रिय अनुचर, शान्त एवं समदर्शी है और मैं भी भगवान् श्रीहरिका ही प्रिय हूँ ॥ ३४ ॥ इसलिये तुम्हें भगवान्के प्यारे भक्त, शान्त, समदर्शी, महात्मा पुरुषोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका आश्चर्य नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् शङ्करका यह भाषण सुनकर भगवती पार्वतीकी चित्तवृत्ति शान्त हो गयी और उनका विस्मय जाता रहा ॥ ३६ ॥ भगवान्के परमप्रेमी भक्त चित्रकेतु भी भगवती पार्वतीको बदलेमें शाप दे सकते थे, परन्तु उन्होंने उन्हें शाप न देकर उनका शाप सिर चढ़ा लिया ! यही साधु पुरुषका लक्षण है ॥ ३७ ॥ यही विद्याधर चित्रकेतु दानवयोनिका आश्रय लेकर त्वष्टाके दक्षिणाग्निसे पैदा हुए। वहाँ इनका नाम वृत्रासुर हुआ और वहाँ भी ये भगवत्स्वरूपके ज्ञान एवं भक्तिसे परिपूर्ण ही रहे ॥ ३८ ॥ तुमने मुझसे पूछा था कि वृत्रासुरका दैत्ययोनिमें जन्म क्यों हुआ और उसे भगवान्की ऐसी भक्ति कैसे प्राप्त हुई। उसका पूरा-पूरा विवरण मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ३९ ॥ महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र इतिहास केवल उनका ही नहीं, समस्त विष्णुभक्तोंका माहात्म्य है; इसे जो सुनता है, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर मौन रहकर श्रद्धाके साथ भगवान्का स्मरण करते हुए इस इतिहासका पाठ करता है, उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥

अठारहवाँ अध्याय

अदिति और दितिकी सन्तानोंकी तथा मरुद्गणकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! सविताकी पत्नी पृश्निके गर्भसे आठ सन्तानें हुईं—सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य और पञ्चमहायज्ञ ॥ १ ॥ भगकी पत्नी सिद्धिने महिमा, विभु और प्रभु—ये तीन पुत्र और आशिष् नामकी एक कन्या उत्पन्न की। यह कन्या बड़ी सुन्दरी और सदाचारिणी थी ॥ २ ॥ धाताकी चार पत्नियाँ थीं—कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति। उनसे क्रमशः सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमास—ये चार पुत्र हुए ॥ ३ ॥ धाताके छोटे भाईका नाम था—विधाता,

उनकी पत्नी क्रिया थी। उससे पुरीष्य नामके पाँच अग्नियोंकी उत्पत्ति हुई। वरुणजीकी पत्नीका नाम चर्षणी था। उससे भृगुजीने पुनः जन्म ग्रहण किया। इसके पहले वे ब्रह्माजीके पुत्र थे ॥ ४ ॥ महायोगी वाल्मीकिजी भी वरुणके पुत्र थे। वल्मीकसे पैदा होनेके कारण ही उनका नाम वाल्मीकि पड़ गया था। उर्वशीको देखकर मित्र और वरुण दोनोंका वीर्य स्खलित हो गया था। उसे उन लोगोंने घड़ेमें रख दिया। उसीसे मुनिवर अगस्त्य और वसिष्ठजीका जन्म हुआ। मित्रकी पत्नी थी रेवती। उसके तीन पुत्र हुए—उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल ॥ ५-६ ॥ प्रिय परीक्षित्! देवराज इन्द्रकी पत्नी थीं पुलोमनन्दिनी शची। उनसे, हमने सुना है, उन्होंने तीन पुत्र उत्पन्न किये—जयन्त, ऋषभ और मीढ्वान् ॥ ७ ॥ स्वयं भगवान् विष्णु ही (बलिपर अनुग्रह करने और इन्द्रका राज्य लौटानेके लिये) मायासे वामन (उपेन्द्र)के रूपमें अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने तीन पग पृथ्वी माँगकर तीनों लोक नाप लिये थे। उनकी पत्नीका नाम था कीर्ति। उससे बृहच्छ्लोक नामका पुत्र हुआ। उसके सौभग आदि कई सन्तानें हुईं ॥ ८ ॥ कश्यपनन्दन भगवान् वामनने माता अदितिके गर्भसे क्यों जन्म लिया और इस अवतारमें उन्होंने कौन-से गुण, लीलाएँ और पराक्रम प्रकट किये—इसका वर्णन मैं आगे (आठवें स्कन्धमें) करूँगा ॥ ९ ॥

प्रिय परीक्षित्! अब मैं कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दितिसे उत्पन्न होनेवाली उस सन्तान-परम्पराका वर्णन सुनाता हूँ, जिसमें भगवान्‌के प्यारे भक्त श्रीप्रह्लादजी और बलिका जन्म हुआ ॥ १० ॥ दितिके दैत्य और दानवोंके वन्दनीय दो ही पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। इनकी संक्षिप्त कथा मैं तुम्हें (तीसरे स्कन्धमें) सुना चुका हूँ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुकी पत्नी दानवी कयाधु थी। उसके पिता जम्भने उसका विवाह हिरण्यकशिपुसे कर दिया था। कयाधुके चार पुत्र हुए—संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद। इनकी सिंहिका नामकी एक बहिन भी थी। उसका विवाह विप्रचित्ति नामक दानवसे हुआ। उससे राहु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥ १२-१३ ॥ यह वही राहु है, जिसका सिर अमृतपानके समय मोहिनीरूपधारी भगवान्‌ने चक्रसे काट लिया था। संह्लादकी पत्नी थी कृति। उससे पञ्चजन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ ह्लादकी पत्नी थी धमनि। उसके दो पुत्र हुए—वातापि और इल्वल। इस इल्वलने ही महर्षि अगस्त्यके आतिथ्यके समय वातापिको पकाकर उन्हें खिला दिया था ॥ १५ ॥ अनुह्लादकी पत्नी सूर्म्या थी, उसके दो पुत्र हुए—बाष्कल और महिषासुर। प्रह्लादका पुत्र था विरोचन। उसकी पत्नी देवीके गर्भसे दैत्यराज बलिका जन्म हुआ ॥ १६ ॥ बलिकी पत्नीका नाम अशना था। उससे बाण आदि सौ पुत्र हुए। दैत्यराज बलिकी महिमा गान करनेयोग्य है। उसे मैं आगे (आठवें स्कन्धमें) सुनाऊँगा ॥ १७ ॥ बलिका पुत्र बाणासुर भगवान् शंकरकी आराधना करके उनके गणोंका मुखिया बन गया। आज भी भगवान् शंकर उसके नगरकी रक्षा करनेके लिये उसके पास ही रहते हैं ॥ १८ ॥ दितिके हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके अतिरिक्त उनचास पुत्र और थे। उन्हें मरुद्गण कहते हैं। वे सब निःसन्तान रहे। देवराज इन्द्रने उन्हें अपने ही समान देवता बना लिया ॥ १९ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! मरुद्गणने ऐसा कौन-सा सत्कर्म किया था, जिसके कारण वे अपने जन्मजात असुरोचित भावको छोड़ सके और देवराज इन्द्रके द्वारा देवता बना लिये गये ॥ २० ॥ ब्रह्मन्! मेरे साथ यहाँकी सभी ऋषिमण्डली यह बात जाननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रही है। अतः आप कृपा करके विस्तारसे वह रहस्य बतलाइये ॥ २१ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! राजा परीक्षित्‌का प्रश्न थोड़े शब्दोंमें बड़ा सारगर्भित था। उन्होंने बड़े आदरसे पूछा भी था। इसलिये सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने बड़े ही प्रसन्न चित्तसे उनका अभिनन्दन करके यों कहा ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित्! भगवान् विष्णुने इन्द्रका पक्ष लेकर दितिके दोनों पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षको मार डाला। अतः दिति शोककी आगसे उद्दीप्त क्रोधसे जलकर इस प्रकार सोचने

लगी॥ २३ ॥ 'सचमुच इन्द्र बड़ा विषयी, क्रूर और निर्दयी है। राम! राम! उसने अपने भाइयोंको ही मरवा डाला। वह दिन कब होगा, जब मैं भी उस पापीको मरवाकर आरामसे सोऊँगी ॥ २४ ॥ लोग राजाओंके, देवताओंके शरीरको 'प्रभु' कहकर पुकारते हैं; परन्तु एक दिन वह कीड़ा, विष्ठा या राखका ढेर हो जाता है। इसके लिये जो दूसरे प्राणियोंको सताता है, उसे अपने सच्चे स्वार्थ या परमार्थका पता नहीं है। क्योंकि इससे तो नरकमें जाना पड़ेगा ॥ २५ ॥ मैं समझती हूँ इन्द्र अपने शरीरको नित्य मानकर मतवाला हो रहा है। उसे अपने विनाशका पता ही नहीं है। अब मैं वह उपाय करूँगी, जिससे मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो इन्द्रका घमंड चूर-चूर कर दे' ॥ २६ ॥ दिति अपने मनमें ऐसा विचार करके सेवा-शुश्रूषा, विनय-प्रेम और जितेन्द्रियता आदिके द्वारा निरन्तर अपने पतिदेव कश्यपजीको प्रसन्न रखने लगी ॥ २७ ॥ वह अपने पतिदेवके हृदयका एक-एक भाव जानती रहती थी और परम प्रेमभाव, मनोहर एवं मधुर भाषण तथा मुसकानभरी तिरछी चितवनसे उनका मन अपनी ओर आकर्षित करती रहती थी ॥ २८ ॥ कश्यपजी महाराज बड़े विद्वान् और विचारवान् होनेपर भी चतुर दितिकी सेवासे मोहित हो गये और उन्होंने विवश होकर यह स्वीकार कर लिया कि 'मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।' स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ २९ ॥ सृष्टिके प्रभातमें ब्रह्माजीने देखा कि सभी जीव असङ्ग हो रहे हैं। तब उन्होंने अपने आधे शरीरसे स्त्रियोंकी रचना की। और स्त्रियोंने पुरुषोंकी मति अपनी ओर आकर्षित कर ली ॥ ३० ॥ हाँ, तो, भैया! मैं कह रहा था कि दितिने भगवान् कश्यपकी बड़ी सेवा की। इससे वे उसपर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने दितिका अभिनन्दन करते हुए उससे मुसकराकर कहा ॥ ३१ ॥

कश्यपजीने कहा—अनिन्द्यसुन्दरी प्रिये! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो। पतिके प्रसन्न हो जानेपर पत्नीके लिये लोक या परलोकमें कौन-सी अभीष्ट वस्तु दुर्लभ है ॥ ३२ ॥ शास्त्रोंमें यह बात स्पष्ट कही गयी है कि पति ही स्त्रियोंका परमाराध्य इष्टदेव है। प्रिये! लक्ष्मीपति भगवान् वासुदेव ही समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं ॥ ३३ ॥ विभिन्न देवताओंके रूपमें नाम और रूपके भेदसे उन्हींकी कल्पना हुई है। सभी पुरुष—चाहे किसी भी देवताकी उपासना करें—उन्हींकी उपासना करते हैं। ठीक वैसे ही स्त्रियोंके लिये भगवान्ने पतिका रूप धारण किया है। वे उनकी उसी रूपमें पूजा करती हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये प्रिये! अपना कल्याण चाहनेवाली पतिव्रता स्त्रियाँ अनन्य प्रेमभावसे अपने पतिदेवकी ही पूजा करती हैं; क्योंकि पतिदेव ही उनके परम प्रियतम आत्मा और ईश्वर हैं ॥ ३५ ॥ कल्याणी! तुमने बड़े प्रेमभावसे, भक्तिसे मेरी वैसी ही पूजा की है। अब मैं तुम्हारी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। असतियोंके जीवनमें ऐसा होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ३६ ॥

दितिने कहा—ब्रह्मन्! इन्द्रने विष्णुके हाथों मेरे दो पुत्र मरवाकर मुझे निपूती बना दिया है। इसलिये यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना चाहते हैं तो कृपा करके एक ऐसा अमर पुत्र दीजिये, जो इन्द्रको मार डाले ॥ ३७ ॥

परीक्षित्! दितिकी बात सुनकर कश्यपजी खिन्न होकर पछताने लगे। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हाय! हाय! आज मेरे जीवनमें बहुत बड़े अधर्मका अवसर आ पहुँचा ॥ ३८ ॥ देखो तो सही, अब मैं इन्द्रियोंके विषयोंमें सुख मानने लगा हूँ। स्त्रीरूपिणी मायाने मेरे चित्तको अपने वशमें कर लिया है। हाय! हाय! आज मैं कितनी दीन-हीन अवस्थामें हूँ। अवश्य ही अब मुझे नरकमें गिरना पड़ेगा ॥ ३९ ॥ इस स्त्रीका कोई दोष नहीं है; क्योंकि इसने अपने जन्मजात स्वभावका ही अनुसरण किया है। दोष मेरा है—जो मैं अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें न रख सका, अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थको न समझ सका। मुझ मूढको बार-बार धिक्कार है ॥ ४० ॥

सच है, स्त्रियोंके चरित्रको कौन जानता है। इनका मुँह तो ऐसा होता है जैसे शरदृतुका खिला हुआ कमल। बातें सुननेमें ऐसी मीठी होती हैं मानो अमृत घोल रक्खा हो। परन्तु हृदय! वह तो इतना तीखा होता है मानो छूरेकी पैनी धार हो ॥ ४१ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियाँ अपनी लालसाओंकी कठपुतली होती हैं। सच पूछो तो वे किसीसे प्यार नहीं करतीं। स्वार्थवश वे अपने पति, पुत्र और भाईतकको मार डालती हैं या मरवा डालती हैं ॥ ४२ ॥ अब तो मैं कह चुका हूँ कि जो तुम माँगोगी, दूँगा। मेरी बात झूठी नहीं होनी चाहिये। परन्तु इन्द्र भी वध करने योग्य नहीं है। अच्छा, अब इस विषयमें मैं यह युक्ति करता हूँ ॥ ४३ ॥ प्रिय परीक्षित्! सर्वसमर्थ कश्यपजीने इस प्रकार मन-ही-मन अपनी भर्त्सना करके दोनों बात बनानेका उपाय सोचा और फिर तनिक रुष्ट होकर दितिसे कहा ॥ ४४ ॥

कश्यपजी बोले—कल्याणी! यदि तुम मेरे बतलाये हुए व्रतका एक वर्षतक विधिपूर्वक पालन करोगी तो तुम्हें इन्द्रको मारनेवाला पुत्र प्राप्त होगा। परन्तु यदि किसी प्रकार नियमोंमें त्रुटि हो गयी तो वह देवताओंका मित्र बन जायगा ॥ ४५ ॥

दितिने कहा—ब्रह्मन्! मैं उस व्रतका पालन करूँगी। आप बतलाइये कि मुझे क्या-क्या करना चाहिये, कौन-कौन-से काम छोड़ देने चाहिये और कौन-से काम ऐसे हैं, जिनसे व्रत भङ्ग नहीं होता ॥ ४६ ॥

कश्यपजीने उत्तर दिया—प्रिये! इस व्रतमें किसी भी प्राणीको मन, वाणी या क्रियाके द्वारा सतायें नहीं, किसी-को शाप या गाली न दे, झूठ न बोले, शरीरके नख और रोएँ न काटे और किसी भी अशुभ वस्तुका स्पर्श न करे ॥ ४७ ॥ जलमें घुसकर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनोंसे बातचीत न करे, बिना धुला वस्त्र न पहने और किसीकी पहनी हुई माला न पहने ॥ ४८ ॥ जूठा न खाय, भद्रकालीका प्रसाद या मांसयुक्त अन्नका भोजन न करे। शूद्रका लाया हुआ और रजस्वलाका देखा हुआ अन्न भी न खाय और अञ्जलिसे जलपान न करे ॥ ४९ ॥ जूठे मुँह, बिना आचमन किये, सन्ध्याके समय, बाल खोले हुए, बिना शृङ्गारके, वाणीका संयम किये बिना और बिना चद्दर ओढ़े घरसे बाहर न निकले ॥ ५० ॥ बिना पैर धोये, अपवित्र अवस्थामें, गीले पाँवोंसे, उत्तर या पश्चिम सिर करके, दूसरेके साथ, नग्नावस्थामें तथा सुबह-शाम सोना नहीं चाहिये ॥ ५१ ॥ इस प्रकार इन निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके सर्वदा पवित्र रहे, धुला वस्त्र धारण करे और सभी सौभाग्यके चिह्नोंसे सुसज्जित रहे। प्रातःकाल कलेवा करनेके पहले ही गाय, ब्राह्मण, लक्ष्मीजी और भगवान् नारायणकी पूजा करे ॥ ५२ ॥ इसके बाद पुष्पमाला, चन्दनादि सुगन्ध-द्रव्य, नैवेद्य और आभूषणादिसे सुहागिनी स्त्रियोंकी पूजा करे तथा पतिकी पूजा करके उसकी सेवामें संलग्न रहे और यह भावना करती रहे कि पतिका तेज मेरी कोख-में स्थित है ॥ ५३ ॥ प्रिये! इस व्रतका नाम 'पुंसवन' है। यदि एक वर्षतक तुम इसे बिना किसी त्रुटिके पालन कर सकोगी तो तुम्हारी कोखसे इन्द्रघाती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ५४ ॥

परीक्षित्! दिति बड़ी मनस्विनी और दृढ निश्चय-वाली थी। उसने 'बहुत ठीक' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। अब दिति अपनी कोखमें भगवान् कश्यपका वीर्य और जीवनमें उनका बतलाया हुआ व्रत धारण करके अनायास ही नियमोंका पालन करने लगी ॥ ५५ ॥ प्रिय परीक्षित्! देवराज इन्द्र अपनी मौसी दितिका अभिप्राय जान बड़ी बुद्धिमानीसे अपना वेष बदलकर दितिके आश्रमपर आये और उसकी सेवा करने लगे ॥ ५६ ॥ वे दितिके लिये प्रतिदिन समय-समयपर वनसे फूल-फल, कन्द-मूल, समिधा, कुश, पत्ते, दूब, मिट्टी और जल लाकर उसकी सेवामें समर्पित करते ॥ ५७ ॥ राजन्! जिस प्रकार बहेलिया हरिन-को मारनेके लिये हरिनकी-सी सूरत बनाकर उसके पास जाता है, वैसे ही देवराज इन्द्र भी कपट-वेष धारण करके व्रतपरायणा दितिके व्रत-पालनकी त्रुटि पकड़नेके लिये उसकी सेवा करने लगे ॥ ५८ ॥ सर्वदा पैनी दृष्टि रखनेपर भी उन्हें उसके व्रतमें किसी प्रकारकी त्रुटि न मिली और वे पूर्ववत् उसकी सेवा-टहलमें लगे रहे। अब तो इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—

मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो ?॥ ५९ ॥

दिति व्रतके नियमोंका पालन करते-करते बहुत दुर्बल हो गयी थी । विधाताने भी उसे मोहमें डाल दिया । इसलिये एक दिन सन्ध्याके समय जूठे मुँह, बिना आचमन किये और बिना पैर धोये ही वह सो गयी ॥ ६० ॥ योगेश्वर इन्द्रने देखा कि यह अच्छा अवसर हाथ लगा । वे योगबलसे झटपट सोयी हुई दितिके गर्भमें प्रवेश कर गये ॥ ६१ ॥ उन्होंने वहाँ जाकर सोनेके समान चमकते हुए गर्भके वज्रके द्वारा सात टुकड़े कर दिये । जब वह गर्भ रोने लगा, तब उन्होंने 'मत रो, मत रो' यह कहकर सातों टुकड़ोंमेंसे एक-एकके और भी सात-सात टुकड़े कर दिये ॥ ६२ ॥ राजन् ! जब इन्द्र उनके टुकड़े-टुकड़े करने लगे, तब उन सबोंने हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा—'देवराज ! तुम हमें क्यों मार रहे हो ? हम तो तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं' ॥ ६३ ॥ तब इन्द्रने अपने भावी अनन्यप्रेमी पार्षद मरुद्गणसे कहा—'अच्छी बात है, तुमलोग मेरे भाई हो । अब मत डरो !' ॥ ६४ ॥ परीक्षित् ! जैसे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ, वैसे ही भगवान् श्रीहरिकी कृपासे दितिका वह गर्भ वज्रके द्वारा टुकड़े-टुकड़े होनेपर भी मरा नहीं ।६५। इसमें तनिक भी आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि जो मनुष्य एक बार भी आदिपुरुष भगवान् नारायणकी आराधना कर लेता है, वह उनकी समानता प्राप्त कर लेता है; फिर दितिने तो कुछ ही दिन कम एक वर्षतक भगवान्‌की आराधना की थी ॥ ६६ ॥ अब वे उनचास मरुद्गण इन्द्रके साथ मिलकर पचास हो गये । इन्द्रने भी सौतेली माताके पुत्रोंके साथ शत्रुभाव न रखकर उन्हें सोमपायी देवता बना लिया ॥ ६७ ॥ जब दितिकी आँख खुली, तब उसने देखा कि उसके अग्निके समान तेजस्वी उनचास बालक इन्द्रके साथ हैं । इससे सुन्दर स्वभाववाली दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ६८ ॥ उसने इन्द्रको सम्बोधन करके कहा—'बेटा ! मैं इस इच्छासे इस अत्यन्त कठिन व्रतका पालन कर रही थी कि तुम अदितिके पुत्रोंको भयभीत करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो ॥६९॥ 'मैंने केवल एक ही पुत्रके लिये सङ्कल्प किया था । फिर ये उनचास पुत्र कैसे हो गये ? बेटा इन्द्र ! यदि तुम्हें इसका रहस्य मालूम हो, तो सच-सच मुझे बतला दो । झूठ न बोलना' ॥ ७० ॥

इन्द्रने कहा—माता ! मुझे इस बातका पता चल गया था कि तुम किस उद्देश्यसे व्रत कर रही हो । इसीलिये अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके उद्देश्यसे मैं स्वर्ग छोड़कर तुम्हारे पास आया । मेरे मनमें तनिक भी धर्म-भावना नहीं थी । इसीसे तुम्हारे व्रतमें त्रुटि होते ही मैंने उस गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ॥ ७१ ॥ पहले मैंने उसके सात टुकड़े किये थे । तब वे सातों टुकड़े सात बालक बन गये । इसके बाद मैंने फिर एक-एकके सात-सात टुकड़े कर दिये । तब भी वे न मरे, बल्कि उनचास हो गये ॥ ७२ ॥ यह परम आश्चर्यमयी घटना देखकर मैंने ऐसा निश्चय किया कि परमपुरुष भगवान्‌की उपासनाकी यह कोई स्वाभाविक सिद्धि है ॥ ७३ ॥ जो लोग निष्काम भावसे भगवान्‌की आराधना करते हैं और दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या, मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते, वे ही अपने स्वार्थ और परमार्थमें निपुण हैं ॥ ७४ ॥ भगवान् जगदीश्वर सबके आराध्यदेव और अपने आत्मा ही हैं । वे प्रसन्न होकर अपने-आपतकका दान कर देते हैं । भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो उनकी आराधना करके विषयभोगोंका वरदान माँगे । माताजी ! ये विषयभोग तो नरकमें भी मिल सकते हैं ॥ ७५ ॥ मेरी स्नेहमयी जननी ! तुम सब प्रकार मेरी पूज्या हो । मैंने मूर्खतावश बड़ी दुष्टताका काम किया है । तुम मेरे अपराधको क्षमा कर दो । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा गर्भ खण्ड-खण्ड हो जानेसे एक प्रकार मर जानेपर भी फिरसे जीवित हो गया ॥ ७६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! दिति देवराज इन्द्रके शुद्धभावसे सन्तुष्ट हो गयी । उससे आज्ञा लेकर देवराज इन्द्रने मरुद्गणोंके साथ उसे नमस्कार किया और स्वर्गमें चले गये ॥ ७७ ॥ राजन् ! यह मरुद्गणका जन्म बड़ा ही मङ्गलमय है । इसके विषयमें तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर समग्ररूपसे मैंने तुम्हें दे दिया । अब तुम और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ७८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

पुंसवन-व्रतकी विधि

राजा परीक्षितने पूछा—भगवन्! आपने अभी-अभी पुंसवन-व्रतका वर्णन किया है और कहा है कि उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। सो अब मैं उसकी विधि जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! यह पुंसवन-व्रत समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। स्त्रीको चाहिये कि वह अपने पतिदेवकी आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदासे इसका आरम्भ करे ॥२॥ पहले मरुद्गण-के जन्मकी कथा सुनकर ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले। फिर प्रतिदिन सवेरे दाँतुन आदिसे दाँत साफ करके स्नान करे, दो श्वेत वस्त्र धारण करे और आभूषण भी पहन ले। प्रातःकाल कुछ भी खानेसे पहले ही भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी पूजा करे ॥३॥ (इस प्रकार प्रार्थना करे—) 'प्रभो! आप पूर्णकाम हैं। अतएव आपको किसीसे भी कुछ लेना-देना नहीं है। आप समस्त विभूतियोंके स्वामी और सकलसिद्धिस्वरूप हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥ ४ ॥ मेरे आराध्यदेव! आप कृपा, विभूति, तेज, महिमा और वीर्य आदि समस्त गुणोंसे नित्ययुक्त हैं। इन्हीं भगों—ऐश्वर्योंसे नित्ययुक्त रहनेके कारण आपको भगवान् कहते हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं ॥५॥ माता लक्ष्मीजी! आप भगवान्की अर्द्धाङ्गिनी और महामायास्वरूपिणी हैं। भगवान्के सारे गुण आपमें निवास करते हैं। महाभाग्यवती जगन्माता! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार स्तुति करके एकाग्र चित्तसे 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महा-विभूतिभिर्बलिमुपहराणि।' 'ओङ्कारस्वरूप, महानुभाव, समस्त महाविभूतियोंके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तमको और उनकी महाविभूतियोंको मैं नमस्कार करती हूँ और उन्हें पूजोपहारकी सामग्री समर्पण करती हूँ'—इस मन्त्रके द्वारा प्रतिदिन स्थिर चित्तसे विष्णुभगवान्का आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि निवेदन करके पूजन करे ॥७॥ जो नैवेद्य बच रहे, उससे 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा।' 'महान् ऐश्वर्योंके अधिपति भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार है। मैं उन्हींके लिये इस हविष्यका हवन कर रही हूँ।'—यह मन्त्र बोलकर अग्निमें बारह आहुतियाँ दे ॥ ८ ॥

परीक्षित्! जो सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको प्राप्त करना चाहता हो, उसे चाहिये कि प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। क्योंकि वे ही दोनों समस्त अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले एवं श्रेष्ठ वरदानी हैं ॥ ९ ॥ इसके बाद भक्तिभावसे भरकर बड़ी नम्रतासे भगवान्को साष्टाङ्ग दण्डवत् करे। दस बार पूर्वोक्त मन्त्रका जप करे और फिर इस स्तोत्रका पाठ करे—॥ १० ॥

'हे लक्ष्मी-नारायण! आप दोनों सर्वव्यापक और सम्पूर्ण चराचर जगत्के अन्तिम कारण हैं—आपका और कोई कारण नहीं है। भगवन्! माता लक्ष्मीजी आपकी मायाशक्ति हैं। ये ही स्वयं अव्यक्त प्रकृति भी हैं। इनका पार पाना अत्यन्त कठिन है ॥११॥ प्रभो! आप ही इन महामायाके अधीश्वर हैं और आप ही स्वयं परमपुरुष हैं। आप समस्त यज्ञ हैं और ये हैं यज्ञ-क्रिया। आप फलके भोक्ता हैं और ये हैं उसको उत्पन्न करने-वाली क्रिया ॥ १२ ॥ माता लक्ष्मीजी तीनों गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं और आप उन्हें व्यक्त करनेवाले और उनके भोक्ता हैं। आप समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं और लक्ष्मीजी शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण हैं। माता लक्ष्मीजी नाम एवं रूप हैं और आप नाम-रूप दोनोंके प्रकाशक तथा आधार हैं ॥ १३ ॥ प्रभो! आपकी कीर्ति पवित्र है। आप दोनों ही त्रिलोकीके वरदानी परमेश्वर हैं। अतः मेरी बड़ी-बड़ी आशा-अभिलाषाएँ आपकी कृपासे पूर्ण हों' ॥ १४ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार परम वरदानी भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी स्तुति करके वहाँसे नैवेद्य हटा दे और

आचमन कराके पूजा करे ॥ १५ ॥ तदनन्तर भक्तिभावभरित हृदयसे भगवान्‌की स्तुति करे और यज्ञावशेषको सूँघकर फिर भगवान्‌की पूजा करे ॥ १६॥ भगवान्‌की पूजाके बाद अपने पतिको साक्षात् भगवान् समझकर परम प्रेमसे उनकी प्रिय वस्तुएँ सेवामें उपस्थित करे । पतिका भी यह कर्तव्य है कि वह आन्तरिक प्रेमसे अपनी पत्नीके प्रिय पदार्थ ला-लाकर उसे दे और उसके छोटे-बड़े सब प्रकारके काम करता रहे ॥ १७ ॥ परीक्षित् ! पति-पत्नीमेंसे एक भी कोई काम करता है, तो उसका फल दोनोंको होता है । इसलिये यदि पत्नी (रजोधर्म आदिके समय) यह व्रत करनेके अयोग्य हो जाय तो बड़ी एकाग्रता और सावधानीसे पतिको ही इसका अनुष्ठान करना चाहिये ॥१८॥ यह भगवान् विष्णुका व्रत है । इसका नियम लेकर बीचमें कभी नहीं छोड़ना चाहिये । जो भी यह नियम ग्रहण करे, वह प्रतिदिन माला, चन्दन, नैवेद्य और आभूषण आदिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मण और सुहागिनी स्त्रियोंका पूजन करे तथा भगवान् विष्णुकी भी पूजा करे ॥ १९ ॥ इसके बाद भगवान्‌को उनके धाममें पधरा दे, विसर्जन कर दे । तदनन्तर आत्मशुद्धि और समस्त अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिये पहलेसे ही उन्हें निवेदित किया हुआ प्रसाद ग्रहण करे ॥ २० ॥ साध्वी स्त्री इस विधिसे बारह महीनोंतक—पूरे सालभर इस व्रतका आचरण करके मार्गशीर्षकी अमावस्याको उद्यापनसम्बन्धी उपवास और पूजन आदि करे ॥ २१ ॥ उस दिन प्रातःकाल ही स्नान करके पूर्ववत् विष्णुभगवान्‌का पूजन करे और उसका पति पाकयज्ञकी विधिसे घृतमिश्रित खीरकी अग्निमें बारह आहुति दे ॥२२॥ इसके बाद जब ब्राह्मण प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दें, तो बड़े आदरसे सिर झुकाकर उन्हें स्वीकार करे । भक्तिभावसे माथा टेककर उनके चरणोंमें प्रणाम करे और उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे ॥२३॥ पहले आचार्यको भोजन कराये, फिर मौन होकर भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भोजन करे । इसके बाद हवनसे बची हुई घृतमिश्रित खीर अपनी पत्नीको दे । वह प्रसाद स्त्रीको सत्पुत्र और सौभाग्य दान करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! भगवान्‌के इस पुंसवन-व्रतका जो मनुष्य विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है, उसे यहीं उसकी मनचाही वस्तु मिल जाती है । स्त्री इस व्रतका पालन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, यश और गृह प्राप्त करती है तथा उसका पति चिरायु हो जाता है ॥ २५ ॥ इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाली कन्या समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त पति प्राप्त करती है और विधवा इस व्रतसे निष्पाप होकर वैकुण्ठमें जाती है । जिसके बच्चे मर जाते हों, वह स्त्री इसके प्रभावसे चिरायु पुत्र प्राप्त करती है । धनवती किन्तु अभागिनी स्त्रीको सौभाग्य प्राप्त होता है और कुरूपाको श्रेष्ठ रूप मिल जाता है । रोगी इस व्रतके प्रभावसे रोगमुक्त होकर बलिष्ठ शरीर और श्रेष्ठ इन्द्रियशक्ति प्राप्त कर लेता है । जो मनुष्य माङ्गलिक श्राद्धकर्मोंमें इसका पाठ करता है, उसके पितर और देवता अनन्त तृप्ति लाभ करते हैं ॥ २६-२७ ॥ वे सन्तुष्ट होकर हवनके समाप्त होनेपर व्रतीकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर देते हैं । ये सब तो सन्तुष्ट होते ही हैं, समस्त यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता भगवान् लक्ष्मीनारायण भी सन्तुष्ट हो जाते हैं और व्रतीकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं । परीक्षित् ! मैंने तुम्हें मरुद्गणकी आदरणीय और पुण्यप्रद जन्म-कथा सुनायी और साथ ही दितिके श्रेष्ठ पुंसवन-व्रतका वर्णन भी सुना दिया ॥ २८ ॥

इति षष्ठ स्कन्ध समाप्त ।

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

सप्तम स्कन्ध

नरसिंहवपुर्भीमं स्तम्भसम्भवमद्भुतम् ।
भक्तत्राणाय बिभ्राणं वासुदेवमुपास्महे ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

सप्तम स्कन्ध

पहला अध्याय

नारद-युधिष्ठिर-संवाद और जय-विजयकी कथा

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् तो स्वभावसे ही भेदभावसे रहित हैं—सम हैं, समस्त प्राणियोंके प्रिय और सुहृद् हैं; फिर उन्होंने, जैसे कोई साधारण मनुष्य भेदभावसे अपने मित्रका पक्ष ले और शत्रुओंका अनिष्ट करे, उसी प्रकार इन्द्रके लिये दैत्योंका वध क्यों किया ॥ १ ॥ वे स्वयं परिपूर्ण कल्याणस्वरूप हैं, इसीलिये उन्हें देवताओंसे कुछ लेना-देना नहीं है। तथा निर्गुण होनेके कारण दैत्योंसे कुछ वैर-विरोध और उद्वेग भी नहीं है ॥ २ ॥ भगवत्प्रेमके सौभाग्यसे सम्पन्न महात्मन्! हमारे चित्तमें भगवान्‌के समत्व आदि गुणोंके सम्बन्धमें बड़ा भारी सन्देह हो रहा है। आप कृपा करके उसे मिटाइये ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—महाराज! भगवान्‌के अद्भुत चरित्रके सम्बन्धमें तुमने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया। क्योंकि ऐसे प्रसङ्ग प्रह्लाद आदि भक्तोंकी महिमासे परिपूर्ण होते हैं, जिसके श्रवणसे भगवान्‌की भक्ति बढ़ती है ॥ ४ ॥ इस परम पुण्यमय प्रसङ्गको नारदादि महात्मागण बड़े प्रेमसे गाते रहते हैं। अब मैं अपने पिता श्रीकृष्ण-द्वैपायन मुनिको नमस्कार करके भगवान्‌की लीला-कथाका वर्णन करता हूँ ॥ ५ ॥ वास्तवमें भगवान् निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त और प्रकृतिसे परे हैं। ऐसा होनेपर भी अपनी मायाके गुणोंको स्वीकार करके वे बाध्य-बाधकभावको अर्थात् मरने और मारनेवाले दोनोंके परस्परविरोधी रूपोंको ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥ सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृतिके गुण हैं, परमात्मा-के नहीं। परीक्षित्! इन तीनों गुणोंकी भी एक साथ ही घटती-बढ़ती नहीं होती ॥ ७ ॥ भगवान् समय-समयके अनुसार गुणोंको स्वीकार करते हैं। सत्त्वगुण-की वृद्धिके समय देवता और ऋषियोंका, रजोगुण-की वृद्धिके समय दैत्योंका और तमोगुणकी वृद्धिके समय वे यक्ष एवं राक्षसोंको अपनाते और उनका अभ्युदय करते हैं ॥ ८ ॥ जैसे व्यापक अग्नि काष्ठ आदि भिन्न-भिन्न आश्रयोंमें रहनेपर भी उनसे अलग नहीं जान पड़ती, परन्तु मन्थन करनेपर वह प्रकट हो जाती है—वैसे ही परमात्मा सभी शरीरोंमें रहते हैं, अलग नहीं जान पड़ते। परन्तु विचारशील पुरुष हृदयमन्थन करके—उनके अतिरिक्त सभी वस्तुओंका बाध करके अन्ततः अपने हृदयमें ही अन्तर्यामीरूपसे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९ ॥ जब परमेश्वर अपने लिये शरीरोंका निर्माण करना चाहते हैं, तब अपनी मायासे रजोगुणकी अलग सृष्टि करते हैं। जब वे विचित्र योनियोंमें रमण करना चाहते हैं, तब सत्त्वगुणकी सृष्टि करते हैं और जब वे शयन करना चाहते हैं, तब तमोगुणको बढ़ा देते हैं ॥ १० ॥ परीक्षित्! भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं। वे ही जगत्‌की उत्पत्तिके निमित्त-भूत प्रकृति और पुरुषके सहकारी एवं आश्रय कालकी सृष्टि करते हैं। इसलिये वे कालके अधीन नहीं, काल ही उनके अधीन है। राजन्! ये कालस्वरूप ईश्वर जब सत्त्वगुणकी वृद्धि करते हैं, तब सत्त्वमय देवताओंका बल बढ़ाते हैं और तभी वे परमयशस्वी देवप्रिय परमात्मा देवविरोधी रजोगुणी एवं तमोगुणी दैत्योंका संहार करते हैं। वस्तुतः वे सम ही हैं ॥ ११ ॥

राजन्! इसी विषयमें देवर्षि नारदने बड़े प्रेमसे एक

इतिहास कहा था। यह उस समयकी बात है, जब राजसूय यज्ञमें तुम्हारे दादा युधिष्ठिरने उनसे इस सम्बन्धमें एक प्रश्न किया था ॥ १२ ॥ उस महान् राजसूय यज्ञमें राजा युधिष्ठिरने अपनी आँखोंके सामने बड़ी आश्चर्यजनक घटना देखी कि चेदिराज शिशुपाल सबके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्णमें समा गया ॥ १३ ॥ वहीं देवर्षि नारद भी बैठे हुए थे। इस घटनासे आश्चर्यचकित होकर राजा युधिष्ठिरने बड़े-बड़े मुनियोंसे भरी हुई सभामें, उस यज्ञमण्डपमें ही देवर्षि नारदसे यह प्रश्न किया ॥ १४ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—अहो! यह तो बड़ी विचित्र बात है। परम तत्त्व भगवान् श्रीकृष्णमें समा जाना तो बड़े-बड़े अनन्य भक्तोंके लिये भी दुर्लभ है; फिर भगवान्‌से द्वेष करनेवाले शिशुपालको यह गति कैसे मिली?॥ १५ ॥ नारदजी! इसका रहस्य हम सभी जानना चाहते हैं। पूर्वकालमें भगवान्‌की निन्दा करनेके कारण ऋषियोंने राजा वेनको नरकमें डाल दिया था ॥ १६ ॥ यह दमघोषका लड़का पापात्मा शिशुपाल और दुर्बुद्धि दन्तवक्त्र—दोनों ही जबसे तुतलाकर बोलने लगे थे, तबसे अबतक भगवान्‌से द्वेष ही करते रहे हैं ॥ १७ ॥ अविनाशी परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णको ये पानी पी-पीकर गाली देते रहे हैं। परन्तु इसके फलस्वरूप न तो इनकी जीभमें कोढ़ ही हुआ और न इन्हें घोर अन्धकारमय नरककी ही प्राप्ति हुई ॥ १८ ॥ प्रत्युत जिन भगवान्‌की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, उन्हींमें ये दोनों सबके देखते-देखते अनायास ही लीन हो गये—इसका क्या कारण है? ॥ १९ ॥ हवाके झोंकेसे लड़खड़ाती हुई दीपककी लौके समान मेरी बुद्धि इस विषयमें बहुत आगा-पीछा कर रही है। आप सर्वज्ञ हैं, अतः इस अद्भुत घटनाका रहस्य समझाइये ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सर्वसमर्थ देवर्षि नारद राजाके ये प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने युधिष्ठिरको सम्बोधित करके भरी सभामें सबके सुनते हुए यह कथा कही ॥ २१ ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर! निन्दा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार इस शरीरके ही तो होते हैं। और इस शरीरकी कल्पना प्रकृति और पुरुषका ठीक-ठीक विवेक न होनेके कारण ही हुई है ॥ २२ ॥ जब इस शरीरको ही अपना आत्मा मान लिया जाता है, तब 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' ऐसा भाव बन जाता है। यही सारे भेदभावका मूल है। इसीके कारण ताड़ना और दुर्वचनोंसे पीड़ा होती है ॥ २३ ॥ जिस शरीरमें अभिमान हो जाता है कि 'यह मैं हूँ', उस शरीरके वधसे प्राणियोंको अपना वध जान पड़ता है। किन्तु भगवान्‌में तो जीवोंके समान ऐसा अभिमान है नहीं; क्योंकि वे सर्वात्मा हैं, अद्वितीय हैं। वे जो दूसरोंको दण्ड देते हैं—वह भी उनके कल्याणके लिये ही, क्रोधवश अथवा द्वेषवश नहीं। तब भगवान्‌के सम्बन्धमें हिंसाकी कल्पना तो की ही कैसे जा सकती है। ॥ २४ ॥ इसलिये चाहे सुदृढ़ वैरभावसे या वैरहीन भक्तिभावसे, भयसे, स्नेहसे अथवा कामनासे—कैसे भी हो, भगवान्‌में अपना मन पूर्णरूपसे लगा देना चाहिये। भगवान्‌की दृष्टिसे इन भावोंमें कोई भेद नहीं है ॥ २५ ॥ युधिष्ठिर! मेरा तो ऐसा दृढ़ निश्चय है कि मनुष्य वैरभावसे भगवान्‌में जितना तन्मय हो जाता है, उतना भक्तियोगसे नहीं होता ॥ २६ ॥ भृङ्गी कीड़ेको लाकर भीतपर अपने छिद्रमें बंद कर देता है और वह भय तथा उद्वेगसे भृङ्गीका चिन्तन करते-करते उसकेजैसा ही हो जाता है ॥ २७ ॥ यही बात भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भी है। लीलाके द्वारा मनुष्य मालूम पड़ते हुए ये सर्वशक्तिमान् भगवान् ही तो हैं। इनसे वैर करनेवाले भी इनका चिन्तन करते-करते पापरहित होकर इन्हींको प्राप्त हो गये ॥ २८ ॥ एक नहीं, अनेकों मनुष्य कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसे अपने मनको भगवान्‌में लगाकर एवं अपने सारे पाप धोकर उसी प्रकार भगवान्‌को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्तिसे ॥ २९ ॥ महाराज! गोपियोंने भगवान्‌से मिलनके तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपाल-दन्तवक्त्र आदि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने परिवारके सम्बन्धसे, तुमलोगोंने स्नेहसे और हमलोगोंने भक्तिसे अपने मनको भगवान्‌में लगाया है ॥ ३० ॥ भक्तोंके अतिरिक्त जो पाँच प्रकारके भगवान्‌का चिन्तन करनेवाले हैं, उनमेंसे राजा वेनकी तो किसीमें भी गणना नहीं होती (क्योंकि उसने किसी भी प्रकारसे भगवान्‌में मन नहीं लगाया था)। सारांश यह कि चाहे जैसे हो, अपना मन भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय कर देना चाहिये ॥ ३१ ॥

महाराज ! फिर तुम्हारे मौसेरे भाई शिशुपाल और दन्तवक्त्र दोनों ही विष्णुभगवान्‌के मुख्य पार्षद थे। ब्राह्मणोंके शापसे इन दोनोंको अपने पदसे च्युत होना पड़ा था ॥ ३२ ॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी ! भगवान्‌के पार्षदोंको भी प्रभावित करनेवाला वह शाप किसने दिया था तथा वह कैसा था ? भगवान्‌के अनन्य प्रेमी फिर जन्म-मृत्युमय संसारमें आयें, यह बात तो कुछ अविश्वसनीय-सी माळूम पड़ती है ॥ ३३ ॥ वैकुण्ठके रहनेवाले लोग प्राकृत शरीर, इन्द्रिय और प्राणोंसे रहित होते हैं। उनका प्राकृत शरीरसे सम्बन्ध किस प्रकार हुआ, यह बात आप अवश्य सुनाइये ॥ ३४ ॥

नारदजीने कहा—एक दिन ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादि ऋषि तीनों लोकोंमें स्वच्छन्द विचरण करते हुए वैकुण्ठमें जा पहुँचे ॥ ३५ ॥ यों तो वे सबसे प्राचीन हैं, परन्तु जान पड़ते हैं ऐसे मानो पाँच-छः वरसके बच्चे हों। वस्त्र भी नहीं पहनते। उन्हें साधारण बालक समझकर द्वारपालोंने उनको भीतर जानेसे रोक दिया ॥ ३६ ॥ इसपर वे क्रोधित-से हो गये और उन्होंने द्वारपालोंको यह शाप दिया कि 'मूर्खो ! भगवान् विष्णुके चरण तो रजोगुण और तमोगुणसे रहित हैं। तुम दोनों इनके समीप निवास करनेयोग्य नहीं हो। इसलिये शीघ्र ही तुम यहाँसे पापमयी असुरयोनिमें जाओ' ॥ ३७ ॥ उनके इस प्रकार शाप देते ही जब वे वैकुण्ठसे नीचे गिरने लगे, तब उन कृपालु महात्माओंने कहा—'अच्छा, तीन जन्मोंमें इस शापको भोगकर तुमलोग फिर इसी वैकुण्ठमें आ जाना' ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर ! वे ही दोनों दितिके पुत्र हुए। उनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु था और उससे छोटेका हिरण्याक्ष। दैत्य और दानवोंके समाजमें यही दोनों सर्वश्रेष्ठ थे ॥ ३९ ॥ विष्णुभगवान्‌ने नृसिंहका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुको और पृथ्वीका उद्धार करनेके समय वराहावतार ग्रहण करके हिरण्याक्षको मारा ॥ ४० ॥ हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको भगवत्प्रेमी होनेके कारण मार डालना चाहा और इसके लिये उन्हें बहुत-सी यातनाएँ दीं ॥ ४१ ॥ परन्तु प्रह्लाद सर्वात्मा भगवान्‌के परम प्रिय हो चुके थे, समदर्शी हो चुके थे। उनके हृदयमें अटल शान्ति थी। भगवान्‌के प्रभावसे वे सुरक्षित थे। इसलिये तरह-तरहसे चेष्टा करनेपर भी हिरण्यकशिपु उनको मार डालनेमें समर्थ न हुआ ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर ! वे ही दोनों विश्रवा मुनिके द्वारा केशिनी (कैकसी) के गर्भसे राक्षसोंके रूपमें पैदा हुए। उनका नाम था रावण और कुम्भकर्ण। उनके उत्पातोंसे सब लोकोंमें आग-सी लग गयी थी ॥ ४३ ॥ उस समय भी भगवान्‌ने उन्हें शापसे छुड़ानेके लिये रामरूपसे उनका वध किया। युधिष्ठिर ! मार्कण्डेय मुनिके मुखसे तुम भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनोगे ॥ ४४ ॥ वे ही दोनों जय-विजय इस जन्ममें तुम्हारी मौसीके लड़के शिशुपाल और दन्तवक्त्रके रूपमें क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णके चक्रका स्पर्श प्राप्त हो जानेसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये और वे सनकादिके शापसे मुक्त हो गये ॥ ४५ ॥ वैरभावके कारण निरन्तर ही वे भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन किया करते थे। उसी तीव्र तन्मयताके फलस्वरूप वे भगवान्‌को प्राप्त हो गये और पुनः उनके पार्षद होकर उन्हींके समीप चले गये ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिरजीने पूछा - भगवन् ! हिरण्यकशिपुने अपने स्नेहभाजन पुत्र प्रह्लादसे इतना द्वेष क्यों किया ? फिर प्रह्लाद तो महात्मा थे। साथ ही यह भी बतलाइये कि किस साधनसे प्रह्लाद भगवन्मय हो गये ॥ ४७ ॥

दूसरा अध्याय

हिरण्याक्षका वध होनेपर हिरण्यकशिपुका अपनी माता और कुटुम्बियोंको समझाना

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! जब भगवान्‌ने वराहावतार धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला, तब भाईके इस प्रकार मारे जानेपर हिरण्यकशिपु रोषसे जल-भुन गया और शोकसे सन्तप्त हो उठा ॥ १ ॥ वह क्रोधसे काँपता हुआ अपने दाँतोंसे बार-बार होठ चबाने लगा । क्रोधसे दहकती हुई आँखोंकी आगके धूएँसे धूमिल हुए आकाशकी ओर देखता हुआ वह कहने लगा ॥ २ ॥ उस समय विकराल दाढ़ों, आग उगलनेवाली उग्र दृष्टि और चढ़ी हुई भौंहोंके कारण उसका मुँह देखा न जाता था । भरी सभामें त्रिशूल उठाकर उसने द्विमूर्धा, त्र्यक्ष, शम्बर, शतबाहु, हयग्रीव, नमुचि, पाक, इल्वल, विप्रचित्ति, पुलोमा और शकुन आदिको सम्बोधन करके कहा—'दैत्यो और दानवो ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो और उसके बाद जैसे मैं कहता हूँ, वैसे करो ॥ ३—५ ॥ तुम्हें यह ज्ञात है कि मेरे क्षुद्र शत्रुओंने मेरे परम प्यारे और हितैषी भाईको विष्णुसे मरवा डाला है । यद्यपि वह देवता और दैत्य दोनोंके प्रति समान है, तथापि दौड़-धूप और अनुनय-विनय करके देवताओंने उसे अपने पक्षमें कर लिया है ॥ ६ ॥ यह विष्णु पहले तो बड़ा शुद्ध और निष्पक्ष था । परन्तु अब मायासे वराह आदि रूप धारण करने लगा है और अपने स्वभावसे च्युत हो गया है । बच्चेकी तरह जो उसकी सेवा करे, उसीकी ओर हो जाता है । उसका चित्त स्थिर नहीं है ॥ ७ ॥ अब मैं अपने इस शूलसे उसका गला काट डालूँगा और उसके खूनकी धारासे अपने रुधिर-प्रेमी भाईका तर्पण करूँगा । तब कहीं मेरे हृदयकी पीड़ा शान्त होगी ॥ ८ ॥ उस मायावी शत्रुके नष्ट होनेपर, पेड़की जड़ कट जानेपर डालियोंकी तरह सब देवता अपने-आप सूख जायँगे । क्योंकि उनका जीवन तो विष्णु ही है ॥ ९ ॥ इसलिये तुमलोग इसी समय पृथ्वीपर जाओ । आजकल वहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी बहुत बढ़ती हो गयी है । वहाँ जो लोग तपस्या, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत और दानादि शुभ कर्म कर रहे हों, उन सबको मार डालो ॥ १० ॥ विष्णुकी जड़ है द्विजातियोंका धर्म-कर्म; क्योंकि यज्ञ और धर्म ही उसके स्वरूप हैं । देवता, ऋषि, पितर, समस्त प्राणी और धर्मका वही परम आश्रय है ॥ ११ ॥ जहाँ-जहाँ ब्राह्मण, गाय, वेद, वर्णाश्रम और धर्म-कर्म हों, उन-उन देशोंमें तुमलोग जाओ, उन्हें जला दो, उजाड़ डालो' ॥ १२ ॥

दैत्य तो स्वभावसे ही लोगोंको सताकर सुखी होते हैं । दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी आज्ञा उन्होंने बड़े आदरसे सिर झुकाकर स्वीकार की और उसीके अनुसार जनताका नाश करने लगे ॥ १३ ॥ उन्होंने नगर, गाँव, गौओंके रहनेके स्थान, बगीचे, खेत, टहलनेके स्थान, ऋषियोंके आश्रम, रत्न आदिकी खानें, किसानोंकी बस्तियाँ, तराईके गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और व्यापारके केन्द्र बड़े-बड़े नगर जला डाले ॥ १४ ॥ कुछ दैत्योंने खोदनेके शस्त्रोंसे बड़े-बड़े पुल, परकोटे और नगरके फाटकोंको तोड़-फोड़ डाला तथा दूसरोंने कुल्हाड़ियोंसे फले-फूले, हरे-भरे पेड़ काट डाले । कुछ दैत्योंने जलती हुई लकड़ियोंसे लोगोंके घर जला दिये ॥ १५ ॥ इस प्रकार दैत्योंने निरीह प्रजाका बड़ा उत्पीड़न किया । उस समय देवतालोग स्वर्ग छोड़कर छिपे रूपसे पृथ्वीमें विचरण करते थे ॥ १६ ॥

युधिष्ठिर ! भाईकी मृत्युसे हिरण्यकशिपुको बड़ा दुःख हुआ था । जब उसने उसकी अन्त्येष्टि क्रियासे छुट्टी पा ली, तब शकुनि, शम्बर, धृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच—अपने इन भतीजोंको सान्त्वना दी ॥ १७-१८ ॥ उनकी माता रुषाभानुको और अपनी माता दितिको देश-कालके अनुसार मधुर वाणीसे समझाते हुए कहा ॥ १९ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—मेरी प्यारी मा, बहू और पुत्रो ! तुम्हें वीर हिरण्याक्षके लिये किसी प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये । वीर पुरुष तो ऐसा चाहते ही हैं कि

लड़ाईके मैदानमें अपने शत्रुके सामने उसके दाँत खट्टे करके प्राण त्याग करें; वीरोंके लिये ऐसी ही मृत्यु श्लाघनीय होती है ॥ २० ॥ देवि ! जैसे प्याऊपर बहुत-से लोग इकट्ठे हो जाते हैं, परन्तु उनका मिलना-जुलना थोड़ी देरके लिये ही होता है—वैसे ही अपने कर्मोंके फेरसे दैववश जीव भी मिलते और बिछुड़ते हैं ॥ २१ ॥ वास्तवमें आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देह-इन्द्रिय आदिसे पृथक् है। वह अपनी अविद्यासे ही देह आदिकी सृष्टि करके भोगोंके साधन सूक्ष्मशरीरको स्वीकार करता है ॥ २२ ॥ जैसे हिलते हुए पानीके साथ उसमें प्रतिबिम्बित होनेवाले वृक्ष भी हिलते-से जान पड़ते हैं और घुमायी जाती हुई आँखके साथ सारी पृथ्वी ही घूमती-सी दिखायी देती है, कल्याणी ! वैसे ही विषयोंके कारण मन भटकने लगता है और वास्तवमें निर्विकार होनेपर भी उसीके समान आत्मा भी भटकता हुआ-सा जान पड़ता है। उसका स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वह सम्बन्धी-सा जान पड़ता है ॥ २३-२४ ॥ सब प्रकारसे शरीररहित आत्माको शरीर समझ लेना—यही तो अज्ञान है। इसीसे प्रिय अथवा अप्रिय वस्तुओंका मिलना और बिछुड़ना होता है। इसीसे कर्मोंके साथ सम्बन्ध हो जानेके कारण संसारमें भटकना पड़ता है ॥ २५ ॥ जन्म, मृत्यु, अनेकों प्रकारके शोक, अविवेक, चिन्ता और विवेककी विस्मृति—सबका कारण यह अज्ञान ही है ॥ २६ ॥ इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। वह इतिहास मरे हुए मनुष्यके सम्बन्धियोंके साथ यमराजकी बातचीत है। तुमलोग ध्यानसे उसे सुनो ॥ २७ ॥

उशीनर देशमें एक बड़ा यशस्वी राजा था। उसका नाम था सुयज्ञ। लड़ाईमें शत्रुओंने उसे मार डाला। उस समय उसके भाई-बन्धु उसे घेरकर बैठ गये ॥२८॥ उसका जड़ाऊ कवच छिन्न-भिन्न हो गया था। गहने और मालाएँ तहस-नहस हो गयी थीं। बाणोंकी मारसे कलेजा फट गया था। शरीर खूनसे लथपथ था। बाल बिखर गये थे। आँखें धँस गयी थीं। क्रोधके मारे दाँतोंसे उसके होठ दबे हुए थे। कमलके समान मुख धूलसे ढक गया था, युद्धमें उसके शस्त्र और बाँहें कट गयी थीं ॥ २९-३० ॥

रानियोंको दैववश अपने पतिदेव उशीनर-नरेशकी यह दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। वे 'हा नाथ! हम अभागिनें तो बेमौत मारी गयीं।' यों कहकर बार-बार जोरसे छाती पीटती हुई अपने स्वामीके चरणोंके पास गिर पड़ीं ॥ ३१ ॥ वे जोर-जोरसे इतना रोने लगीं कि उनके कुच-कुङ्कुमसे मिलकर बहते हुए लाल-लाल आँसुओंने प्रियतमके पादपद्म पखार दिये। उनके केश और गहने इधर-उधर बिखर गये। वे करुण क्रन्दनके साथ विलाप कर रही थीं, जिसे सुनकर मनुष्योंके हृदयमें शोकका संचार हो जाता था ॥३२॥ 'हाय! विधाता बड़ा क्रूर है। स्वामिन्! उसीने आज आपको हमारी आँखोंसे ओझल कर दिया। पहले तो आप समस्त देशवासियोंके जीवनदाता थे। आज उसीने आपको ऐसा बना दिया कि आप हमारा शोक बढ़ा रहे हैं ॥ ३३ ॥ पतिदेव! आप हमसे बड़ा प्रेम करते थे, हमारी थोड़ी-सी सेवाको भी बड़ी करके मानते थे। हाय! अब आपके बिना हम कैसे रह सकेंगी। हम आपके चरणोंकी चेरी हैं। वीरवर! आप जहाँ जा रहे हैं, वहीं चलनेकी हमें भी आज्ञा दीजिये' ॥ ३४ ॥ वे अपने पतिकी लाश पकड़कर इसी प्रकार विलाप करती रहीं। उस मुर्देको वहाँसे दाहके लिये ले जाने देनेकी उनकी इच्छा नहीं होती थी। इतनेमें ही सूर्यास्त हो गया ॥ ३५ ॥ उस समय उशीनरराजाके सम्बन्धियोंने जो विलाप किया था, उसे सुनकर वहाँ स्वयं यमराज बालकके वेषमें आये और उन्होंने उन लोगोंसे कहा—॥ ३६ ॥

यमराज बोले—बड़े आश्चर्यकी बात है! ये लोग तो मुझसे सयाने हैं। बराबर लोगोंका मरना-जीना देखते हैं, फिर भी इतने मूढ़ हो रहे हैं! अरे! यह मनुष्य जहाँसे आया था, वहीं चला गया। इन लोगोंको भी एक-न-एक दिन वहीं जाना है। फिर झूठमूठ ये लोग इतना शोक क्यों करते हैं? ॥ ३७ ॥

हम तो तुमसे लाखगुने अच्छे हैं, परम धन्य हैं; क्योंकि हमारे मा-बापने हमें छोड़ दिया है। हमारे शरीरमें पर्याप्त बल भी नहीं है, फिर भी हमें कोई चिन्ता नहीं है। भेड़िये आदि हिंसक जन्तु हमारा बाल भी बाँका नहीं कर पाते। जिसने गर्भमें रक्षा की थी, वही इस जीवनमें भी हमारी रक्षा करता रहता है ॥ ३८॥ देवियो! जो अविनाशी ईश्वर अपनी मौजसे इस जगत्को बनाता है, रखता है और बिगाड़ देता है—उस प्रभुका यह एक खिलौनामात्र है। वह इस चराचर जगत्को दण्ड या पुरस्कार देनेमें समर्थ है ॥ ३९ ॥ भाग्य अनुकूल हो तो रास्तेमें गिरी हुई वस्तु भी ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती है। परन्तु भाग्यके प्रतिकूल होनेपर घरके भीतर तिजोरीमें रक्खी हुई वस्तु भी खो जाती है। जीव बिना किसी सहारेके दैवकी दयादृष्टिसे जंगलमें भी बहुत दिनोंतक जीवित रहता है, परन्तु दैवके विपरीत होनेपर घरमें सुरक्षित रहनेपर भी मर जाता है ॥ ४० ॥

रानियो! सभी प्राणियोंकी मृत्यु अपने पूर्वजन्मोंकी कर्मवासनाके अनुसार समयपर होती है और उसीके अनुसार उनका जन्म भी होता है। परन्तु आत्मा शरीरसे अत्यन्त भिन्न है, इसलिये वह उसमें रहनेपर भी उसके जन्म-मृत्यु आदि धर्मोंसे अछूता ही रहता है ॥ ४१ ॥ जैसे मनुष्य अपने मकानको अपनेसे अलग और मिट्टीका समझता है, वैसे ही यह शरीर भी अलग और मिट्टीका है। मोहवश वह इसे अपना समझ बैठता है। जैसे बुलबुले आदि पानीके विकार, घड़े आदि मिट्टीके विकार और गहने आदि स्वर्णके विकार समयपर बनते हैं, रूपान्तरित होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही इन्हीं तीनोंके विकारसे बना हुआ यह शरीर भी समयपर बन-बिगड़ जाता है ॥ ४२ ॥ जैसे काठमें रहनेवाली व्यापक अग्नि स्पष्ट ही उससे अलग है, जैसे देहमें रहनेपर भी वायुका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे आकाश सब जगह एक-सा रहनेपर भी किसीके दोष-गुणसे लिप्त नहीं होता—वैसे ही समस्त देहेन्द्रियोंमें रहनेवाला और उनका आश्रय आत्मा भी उनसे अलग और निर्लिप्त है ॥ ४३ ॥

मूर्खो! जिसके लिये तुम सब शोक कर रहे हो, वह सुयज्ञ नामका शरीर तो तुम्हारे सामने पड़ा है। तुमलोग इसीको देखते थे। इसमें जो सुननेवाला और बोलनेवाला था, वह तो कभी किसीको नहीं दिखायी पड़ता था। फिर आज भी नहीं दिखायी दे रहा है, तो शोक क्यों? ॥ ४४ ॥ (तुम्हारी यह मान्यता कि 'प्राण ही बोलने या सुननेवाला था, सो निकल गया' मूर्खतापूर्ण है; क्योंकि सुषुप्तिके समय प्राण तो रहता है, पर न वह बोलता है न सुनता है।) शरीरमें सब इन्द्रियोंकी चेष्टाका हेतुभूत जो महाप्राण है, वह प्रधान होनेपर भी बोलने या सुननेवाला नहीं है; क्योंकि वह जड है। देह और इन्द्रियोंके द्वारा सब पदार्थोंका द्रष्टा जो आत्मा है, वह शरीर और प्राण दोनोंसे पृथक् है ॥ ४५ ॥ यद्यपि वह परिच्छिन्न नहीं है, व्यापक है—फिर भी पञ्चभूत, इन्द्रिय और मनसे युक्त नीचे-ऊँचे (देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) शरीरोंको ग्रहण करता और अपने विवेकबलसे मुक्त भी हो जाता है। वास्तवमें वह इन सबसे अलग है ॥ ४६ ॥ जबतक वह पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और मन—इन सत्रह तत्त्वोंसे बने हुए लिङ्गशरीरसे युक्त रहता है, तभीतक कर्मोंसे बँधा रहता है। और इस बन्धनके कारण ही मायासे होनेवाले मोह और क्लेश बराबर उसके पीछे पड़े रहते हैं ॥ ४७ ॥ प्रकृतिके गुणों और उनसे बनी हुई वस्तुओंको सत्य समझना अथवा कहना झूठमूठका दुराग्रह है। मनोरथके समयकी कल्पित और स्वप्नके समयकी दीख पड़नेवाली वस्तुओंके समान इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ ग्रहण किया जाता है, सब मिथ्या है ॥ ४८ ॥ इसलिये शरीर और आत्माका तत्त्व जाननेवाले पुरुष न तो अनित्य शरीरके लिये शोक करते हैं और न नित्य आत्माके लिये ही। परन्तु ज्ञानकी दृढता न होनेके कारण जो लोग शोक करते रहते हैं, उनका स्वभाव बदलना बहुत कठिन है ॥ ४९ ॥

किसी जंगलमें एक बहेलिया रहता था। वह बहेलिया क्या था, विधाताने मानो उसे पक्षियोंके कालरूपमें ही रच रक्खा था। जहाँ-कहीं भी वह जाल फैला देता और ललचाकर चिड़ियोंको फँसा लेता ॥ ५० ॥

एक दिन उसने कुलिङ्ग पक्षीके एक जोड़ेको चारा चुगते देखा। उनमेंसे उस बहेलियेने मादा पक्षीको तो शीघ्र ही फँसा लिया ॥ ५१ ॥ कालवश वह जालके फंदोंमें फँस गयी। नर पक्षीको अपनी मादाकी विपत्ति देखकर बड़ा दुःख हुआ। वह बेचारा उसे छुड़ा तो सकता न था, स्नेहसे उस बेचारीके लिये विलाप करने लगा ॥ ५२ ॥ उसने कहा—'यों तो विधाता सब कुछ कर सकता है। परन्तु है वह बड़ा निर्दयी। यह मेरी सहचरी एक तो स्त्री है, दूसरे मुझ अभागेके लिये शोक करती हुई बड़ी दीनतासे छटपटा रही है। इसे लेकर वह करेगा क्या ॥ ५३ ॥ उसकी मौज हो तो मुझे ले जाय। इसके बिना मैं अपना यह अधूरा विधुर जीवन, जो दीनता और दुःखसे भरा हुआ है, लेकर क्या करूँगा ॥ ५४ ॥ अभी मेरे अभागे बच्चोंके पर भी नहीं जमे हैं। स्त्रीके मर जानेपर उन मातृहीन बच्चोंको मैं कैसे पालूँगा? ओह! घोंसलेमें वे अपनी माकी बाट देख रहे होंगे' ॥ ५५ ॥ इस तरह वह पक्षी बहुत-सा विलाप करने लगा। अपनी सहचरीके वियोगसे वह आतुर हो रहा था। आँसुओंके मारे उसका गला रुँध गया था। तबतक कालकी प्रेरणासे पास ही छिपे हुए उसी बहेलियेने ऐसा बाण मारा कि वह भी वहींपर लोट गया ॥ ५६ ॥ मूर्ख रानियो! तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है। तुम्हें अपनी मृत्यु तो दीखती नहीं और इसके लिये रो-पीट रही हो! यदि तुमलोग सौ बरसतक इसी तरह शोकवश छाती पीटती रहो, तो भी अब तुम इसे नहीं पा सकोगी ॥ ५७ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—उस छोटे-से बालककी ऐसी ज्ञानपूर्ण बातें सुनकर सब-के-सब दंग रह गये। उशीनर-नरेशके भाई-बन्धु और स्त्रियोंने यह बात समझ ली कि समस्त संसार और इसके सुख-दुःख अनित्य एवं मिथ्या हैं ॥ ५८ ॥ यमराज यह उपाख्यान सुनाकर वहीं अन्तर्धान हो गये। भाई-बन्धुओंने भी सुयज्ञकी अन्त्येष्टि-क्रिया की ॥ ५९ ॥ इसलिये तुमलोग भी अपने लिये या किसी दूसरेके लिये शोक मत करो। इस संसारमें कौन आत्मा है और कौन अपनेसे भिन्न? क्या अपना है और क्या पराया? प्राणियोंको अज्ञानके कारण ही यह अपने-परायेका दुराग्रह हो रहा है, इस भेद-बुद्धिका और कोई कारण नहीं है ॥ ६० ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर! अपनी पुत्रवधूके साथ दितिने हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उसी क्षण पुत्रशोकका त्याग कर दिया और अपना चित्त परमतत्त्वस्वरूप परमात्मामें लगा दिया ॥ ६१ ॥

तीसरा अध्याय

हिरण्यकशिपुकी तपस्या और वरप्राप्ति

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर! अब हिरण्यकशिपुने यह विचार किया कि 'मैं अजेय, अजर, अमर और संसारका एकछत्र सम्राट् बन जाऊँ, जिससे कोई मेरे सामने खड़ातक न हो सके ॥ १ ॥ इसके लिये वह मन्दराचलकी एक घाटीमें जाकर अत्यन्त दारुण तपस्या करने लगा। वहाँ हाथ ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखता हुआ वह पैरके अँगूठेके बल पृथ्वीपर खड़ा हो गया ॥ २ ॥ उसकी जटाएँ ऐसी चमक रही थीं, जैसे प्रलयकालके सूर्यकी किरणें। जब वह इस प्रकार तपस्यामें संलग्न हो गया, तब देवतालोग अपने-अपने स्थानों और पदोंपर पुनः प्रतिष्ठित हो गये ॥ ३ ॥ बहुत दिनोंतक तपस्या करनेके बाद उसकी तपस्याकी आग धूएँके साथ सिरसे निकलने लगी। वह चारों ओर फैल गयी और ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलके लोकोंको जलाने लगी ॥ ४ ॥ उसकी लपटसे नदी और समुद्र खौलने लगे। द्वीप और पर्वतोंके सहित पृथ्वी डगमगाने लगी। ग्रह और तारे टूट-टूटकर गिरने लगे तथा दसों दिशाओंमें मानो आग लग गयी ॥ ५ ॥

हिरण्यकशिपुकी उस तपोमयी आगकी लपटोंसे स्वर्गके देवता भी जलने लगे। वे घबराकर स्वर्गसे ब्रह्मलोकमें गये और ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे—"हे

देवताओंके भी आराध्यदेव जगत्पति ब्रह्माजी! हमलोग हिरण्यकशिपुके तपकी ज्वालासे जल रहे हैं। अब हम स्वर्गमें नहीं रह सकते। हे अनन्त! हे सर्वाध्यक्ष! यदि आप उचित समझें तो अपनी सेवा करनेवाली जनताका नाश होनेके पहले ही यह ज्वाला शान्त कर दीजिये॥ ६-७॥ भगवन्! आप सब कुछ जानते ही हैं, फिर भी हम अपनी ओरसे आपसे यह निवेदन कर देते हैं कि वह किस अभिप्रायसे यह घोर तपस्या कर रहा है! सुनिये, उसका विचार है कि 'जैसे ब्रह्माजी अपनी तपस्या और योगके प्रभावसे इस चराचर जगत्की सृष्टि करके सब लोकोंसे ऊपर सत्यलोकमें विराजते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी उग्र तपस्या और योगके प्रभावसे वही पद और स्थान प्राप्त कर लूँगा। क्योंकि समय असीम है और आत्मा नित्य है। एक जन्ममें नहीं, अनेक जन्ममें; एक युगमें न सही, अनेक युगोंमें॥८—१०॥ अपनी तपस्याकी शक्तिसे मैं पाप-पुण्यादिके नियमोंको पलटकर इस संसारमें ऐसा उलट-फेर कर दूँगा, जैसा पहले कभी नहीं था। वैष्णवादि पदोंमें तो रक्खा ही क्या है। क्योंकि कल्पके अन्तमें उन्हें भी कालके गालमें चले जाना पड़ता है'*॥११॥ हमने सुना है कि ऐसा हठ करके ही वह घोर तपस्यामें जुटा हुआ है। आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं। अब आप जो उचित समझें, वही करें॥ १२॥ ब्रह्माजी! आपका यह सर्वश्रेष्ठ परमेष्ठि-पद ब्राह्मण एवं गौओंकी वृद्धि, कल्याण, विभूति, कुशल और विजयके लिये है। (यदि यह हिरण्यकशिपुके हाथमें चला गया, तो सज्जनोंपर सङ्कटोंका पहाड़ टूट पड़ेगा)"॥ १३॥

युधिष्ठिर! जब देवताओंने भगवान् ब्रह्माजीसे इस प्रकार निवेदन किया, तब वे भृगु और दक्ष आदि प्रजापतियोंके साथ हिरण्यकशिपुके आश्रमपर गये।१४। वहाँ जानेपर पहले तो वे उसे देख ही न सके; क्योंकि दीमककी मिट्टी, घास और बाँसोंसे उसका शरीर ढक गया था। चींटियाँ उसकी मेदा, त्वचा, मांस और खून चाट गयी थीं॥ १५॥ बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान वह अपनी तपस्याके तेजसे लोकोंको तपा रहा था। उसको देखकर ब्रह्माजी भी विस्मित हो गये। उन्होंने हँसते हुए कहा॥ १६॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा हिरण्यकशिपु! उठो, उठो। तुम्हारा कल्याण हो। कश्यपनन्दन! अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, बेखटके माँग लो॥ १७॥ मैंने तुम्हारे हृदयका अद्भुत बल देखा। अरे, डाँसोंने तुम्हारी देह खा डाली है। फिर भी तुम्हारे प्राण हड्डियों-के सहारे टिके हुए हैं॥ १८॥ ऐसी कठिन तपस्या न तो पहले किसी ऋषिने की थी और न आगे ही कोई करेगा। भला, ऐसा कौन है जो देवताओंके सौ वर्ष-तक बिना पानीके जीता रहे॥ १९॥ बेटा हिरण्यकशिपु! तुम्हारा यह काम बड़े-बड़े धीर पुरुष भी कठिनतासे कर सकते हैं। तुमने इस तपोनिष्ठासे मुझे अपने वशमें कर लिया है॥ २०॥ दैत्यशिरोमणे! इसीसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें जो कुछ माँगो, दिये देता हूँ। तुम हो मरनेवाले और मैं हूँ अमर! अतः तुम्हें मेरा यह दर्शन निष्फल नहीं हो सकता॥ २१॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इतना कहकर ब्रह्माजीने उसके चींटियोंसे खाये हुए शरीरपर अपने कमण्डलुका दिव्य एवं अमोघ प्रभावशाली जल छिड़क दिया॥ २२॥ जैसे लकड़ीके ढेरमेंसे आग जल उठे, वैसे ही वह जल छिड़कते ही बाँस और दीमकोंकी मिट्टीके बीचसे उठ खड़ा हुआ। उस समय उसका शरीर सब अवयवोंसे पूर्ण एवं बलवान् हो गया था, इन्द्रियोंमें शक्ति आ गयी थी और मन सचेत हो गया था। सारे अङ्ग वज्रके समान कठोर एवं तपाये हुए सोनेकी तरह चमकीले हो गये थे। वह नवयुवक होकर उठ खड़ा हुआ॥ २३॥ उसने देखा कि आकाशमें हंसपर चढ़े हुए ब्रह्माजी खड़े हैं। उन्हें देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। अपना सिर पृथ्वीपर रखकर उसने उनको नमस्कार किया॥ २४॥ फिर अञ्जलि बाँधकर नम्रभावसे खड़ा हुआ और बड़े प्रेमसे

* यद्यपि वैष्णवपद (वैकुण्ठादि नित्यधाम) अविनाशी हैं, परन्तु हिरण्यकशिपु अपनी आसुरी बुद्धिके कारण उनको कल्पके अन्तमें नष्ट होनेवाला ही मानता था। तामसी बुद्धिमें सब बातें विपरीत ही दीखा करती हैं।

अपने निर्निमेष नयनोंसे उन्हें देखता हुआ गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगा। उस समय उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ रहे थे और सारा शरीर पुलकित हो रहा था ॥ २५ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—कल्पके अन्तमें यह सारी सृष्टि कालके द्वारा प्रेरित तमोगुणसे, घने अन्धकारसे ढक गयी थी। उस समय स्वयंप्रकाशस्वरूप आपने अपने तेजसे पुनः इसे प्रकट किया ॥ २६ ॥ आप ही अपने त्रिगुणमय रूपसे इसकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं। आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके आश्रय हैं। आप ही सबसे परे और महान् हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ आप ही जगत्के मूल कारण हैं। ज्ञान और विज्ञान आपकी मूर्ति हैं। प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि विकारोंके द्वारा आपने अपनेको प्रकट किया है ॥ २८ ॥ आप मुख्यप्राण सूत्रात्माके रूपसे चराचर जगत्को अपने नियन्त्रणमें रखते हैं। आप ही प्रजाके रक्षक भी हैं। भगवन्! चित्त, चेतना, मन और इन्द्रियोंके स्वामी आप ही हैं। पञ्चभूत, शब्दादि विषय और उनके संस्कारोंके रचयिता भी महत्तत्त्वके रूपमें आप ही हैं ॥ २९ ॥ जो वेद होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता—इन ऋत्विजोंसे होनेवाले यज्ञका प्रतिपादन करते हैं, वे आपके ही शरीर हैं। उन्हींके द्वारा अग्निष्टोम आदि सात यज्ञोंका आप विस्तार करते हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हैं। क्योंकि आप अनादि, अनन्त, अपार, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं ॥ ३० ॥ आप ही काल हैं। आप प्रतिक्षण सावधान रहकर अपने क्षण, लव आदि विभागोंके द्वारा लोगोंकी आयु क्षीण करते रहते हैं। फिर भी आप निर्विकार हैं। क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अजन्मा, महान् और सम्पूर्ण जीवोंके जीवनदाता अन्तरात्मा हैं ॥ ३१ ॥ प्रभो! कार्य, कारण, चल और अचल ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो आपसे भिन्न हो। समस्त विद्या और कलाएँ आपके शरीर हैं। आप त्रिगुणमयी मायासे अतीत स्वयं ब्रह्म हैं। यह स्वर्णमय ब्रह्माण्ड आपके गर्भमें स्थित है। आप इसे अपनेमेंसे ही प्रकट करते हैं ॥ ३२ ॥ प्रभो! यह व्यक्त ब्रह्माण्ड आपका स्थूलशरीर है। इससे आप इन्द्रिय, प्राण और मनके विषयोंका उपभोग करते हैं। किन्तु उस समय भी आप अपने परम ऐश्वर्यमय स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। वस्तुतः आप पुराणपुरुष, स्थूल-सूक्ष्मसे परे ब्रह्मस्वरूप ही हैं ॥ ३३ ॥ आप अपने अनन्त और अव्यक्त स्वरूपसे सारे जगत्में व्याप्त हैं। चेतन और अचेतन दोनों ही आपकी शक्तियाँ हैं। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥

प्रभो! आप समस्त वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं। यदि आप मुझे अभीष्ट वर देना चाहते हैं, तो ऐसा कर दीजिये कि आपके बनाये हुए किसी भी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य अथवा नागादि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर-बाहर, दिनमें, रात्रिमें, आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे, अस्त्र-शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें—कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियोंका एकछत्र सम्राट् होऊँ ॥ ३५—३७ ॥ इन्द्रादि समस्त लोकपालोंमें जैसी आपकी महिमा है, वैसी ही मेरी भी हो। तपस्वियों और योगियोंको जो अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी दीजिये ॥ ३८ ॥

चौथा अध्याय

हिरण्यकशिपुके अत्याचार और प्रह्लादके गुणोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जब हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे इस प्रकारके अत्यन्त दुर्लभ वर माँगे, तब उन्होंने उसकी तपस्यासे प्रसन्न होनेके कारण उसे वे वर दे दिये ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम जो वर मुझसे माँग रहे हो, वे जीवोंके लिये बहुत ही दुर्लभ हैं; परन्तु दुर्लभ होनेपर भी मैं तुम्हें वे सब वर दिये देता हूँ ॥ २ ॥

[नारदजी कहते हैं—] ब्रह्माजीके वरदान कभी

झूठे नहीं होते । वे समर्थ एवं भगवद्रूप ही हैं । वरदान मिल जानेके बाद हिरण्यकशिपुने उनकी पूजा की । तत्पश्चात् प्रजापतियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे अपने लोकको चले गये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीसे वर प्राप्त करनेपर हिरण्यकशिपुका शरीर सुवर्णके समान कान्तिमान् एवं हृष्टपुष्ट हो गया । वह अपने भाईकी मृत्युका स्मरण करके भगवान्से द्वेष करने लगा ॥ ४ ॥ उस महादैत्यने समस्त दिशाओं, तीनों लोकों तथा देवता, असुर, नरपति, गन्धर्व, गरुड़, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितरोंके अधिपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचराज, प्रेत, भूतपति एवं समस्त प्राणियोंके राजाओंको जीतकर अपने वशमें कर लिया । यहाँतक कि उस विश्व-विजयी दैत्यने लोकपालोंकी शक्ति और स्थान भी छीन लिये ॥ ५—७ ॥ अब वह नन्दनवन आदि दिव्य उद्यानोंके सौन्दर्यसे युक्त स्वर्गमें ही रहने लगा था । स्वयं विश्वकर्माका बनाया हुआ इन्द्रका भवन ही उसका निवासस्थान था । उस भवनमें तीनों लोकोंका सौन्दर्य मूर्तिमान् होकर निवास करता था । वह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न था ॥ ८ ॥ उस महलमें मूँगेकी सीढ़ियाँ, पन्नेकी गचें, स्फटिकमणिकी दीवारें, वैदूर्यमणिके खंभे और माणिककी कुर्सियाँ थीं । रंग-बिरंगे चँदोवे तथा दूधके फेनके समान शय्याएँ, जिनपर मोतियोंकी झालरें लगी हुई थीं, शोभायमान हो रही थीं ॥ ९—१० ॥ सर्वाङ्ग-सुन्दरी अप्सराएँ अपने नूपुरोंसे रुन-झुन ध्वनि करती हुई रत्नमय भूमिपर इधर-उधर टहला करती थीं और कहीं-कहीं उसमें अपना सुन्दर मुख देखने लगती थीं ॥ ११ ॥ उस महेन्द्रके महलमें महाबली और महामनस्वी हिरण्यकशिपु सब लोकोंको जीतकर, सबका एकछत्र सम्राट् बनकर बड़ी स्वतन्त्रतासे विहार करने लगा । उसका शासन इतना कठोर था कि उससे भयभीत होकर देव-दानव उसके चरणोंकी वन्दना करते रहते थे ॥ १२ ॥ युधिष्ठिर ! वह उत्कट गन्धवाली मदिरा पीकर मतवाला रहा करता था । उसकी आँखें लाल-लाल और चढ़ी हुई रहतीं । उस समय तपस्या, योग, शारीरिक और मानसिक बलका वह भंडार था । ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके सिवा और सभी देवता अपने हाथोंमें भेंट ले-लेकर उसकी सेवामें लगे रहते ॥ १३ ॥ जब वह अपने पुरुषार्थसे इन्द्रासनपर बैठ गया, तब युधिष्ठिर ! विश्वावसु, तुम्बुरु तथा हम सभी लोग उसके सामने गान करते थे । तथा गन्धर्व, सिद्ध, ऋषिगण, विद्याधर और अप्सराएँ बार-बार उसकी स्तुति करती थीं ॥ १४ ॥

युधिष्ठिर ! वह इतना तेजस्वी था कि वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले पुरुष जो बड़ी-बड़ी दक्षिणा-वाले यज्ञ करते, उनके यज्ञोंकी आहुति वह स्वयं छीन लेता ॥ १५ ॥ पृथ्वीके सातों द्वीपोंमें उसका अखण्ड राज्य था । सभी जगह बिना ही जोते-बोये धरतीसे अन्न पैदा होता था । वह जो कुछ चाहता, अन्तरिक्षसे उसे मिल जाता । तथा आकाश उसे भाँति-भाँतिकी आश्चर्यजनक वस्तुएँ दिखा-दिखाकर उसका मनोरंजन करता था ॥ १६ ॥ इसी प्रकार खारे पानी, सुरा, घृत, इक्षुरस, दधि, दुग्ध और मीठे पानीके समुद्र भी अपनी पत्नी नदियोंके साथ तरङ्गोंके द्वारा उसके पास रत्नराशि पहुँचाया करते ॥ १७ ॥ पर्वत अपनी घाटियोंके रूपमें उसके लिये खेलनेका स्थान जुटाते और वृक्ष सब ऋतुओंमें फलते-फलते । वह अकेला ही सब लोकपालोंके विभिन्न गुणोंको धारण करता ॥ १८ ॥ इस प्रकार दिग्विजयी और एकछत्र सम्राट् होकर वह अपनेको प्रिय लगनेवाले विषयोंका स्वच्छन्द उपभोग करने लगा । परन्तु इतने विषयोंसे भी उसकी तृप्ति न हो सकी । क्योंकि अन्ततः वह इन्द्रियोंका दास ही तो था ॥ १९ ॥

युधिष्ठिर ! इस रूपमें भी वह भगवान्का वही पार्षद है, जिसे सनकादिकोंने शाप दिया था । वह ऐश्वर्यके मदसे मतवाला हो रहा था तथा घमंडमें चूर होकर शास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहा था । देखते-ही-देखते उसके जीवनका बहुत-सा समय बीत गया ॥ २० ॥ उसके कठोर शासनसे सब लोक और लोकपाल घबरा गये । जब उन्हें और कहीं किसीका आश्रय न मिला, तब उन्होंने भगवान्की शरण ली ॥ २१ ॥ (उन्होंने मन-ही-मन कहा—)

'जहाँ सर्वात्मा जगदीश्वर श्रीहरि निवास करते हैं और जिसे प्राप्त करके शान्त एवं निर्मल संन्यासी महात्मा फिर लौटते नहीं, भगवान्‌के उस परम धामको हम नमस्कार करते हैं' ॥ २२ ॥ इस भावसे अपनी इन्द्रियोंका संयम और मनको समाहित करके उन लोगोंने खाना-पीना और सोना छोड़ दिया तथा निर्मल हृदयसे भगवान्‌की आराधना की ॥ २३ ॥ एक दिन उन्हें मेघके समान गम्भीर आकाशवाणी सुनायी पड़ी। उसकी ध्वनिसे दिशाएँ गूँज उठीं। साधुओंको अभय देनेवाली वह वाणी यों थी—॥ २४ ॥ 'श्रेष्ठ देवताओ! डरो मत। तुम सब लोगोंका कल्याण हो। मेरे दर्शनसे प्राणियोंको परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २५ ॥ इस नीच दैत्यकी दुष्टताका मुझे पहलेसे ही पता है। मैं इसको मिटा दूँगा। अभी कुछ दिनोंतक समयकी प्रतीक्षा करो ॥ २६ ॥ कोई भी प्राणी जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे द्वेष करने लगता है, तब शीघ्र ही उसका विनाश हो जाता है ॥ २७ ॥ जब यह अपने वैरहीन, शान्त और महात्मा पुत्र प्रह्लादसे द्रोह करेगा—उसका अनिष्ट करना चाहेगा, तब वरके कारण शक्तिसम्पन्न होनेपर भी इसे मैं अवश्य मार डालूँगा' ॥ २८ ॥

नारदजी कहते हैं—सबके हृदयमें ज्ञानका सञ्चार करनेवाले भगवान्‌ने जब देवताओंको यह आदेश दिया, तब वे उन्हें प्रणाम करके लौट आये। उनका सारा उद्वेग मिट गया और उन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि हिरण्यकशिपु मर गया ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके बड़े ही विलक्षण चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद यों तो सबसे छोटे थे, परन्तु गुणोंमें सबसे बड़े थे। वे बड़े संतसेवी थे ॥३०॥ ब्राह्मणभक्त, सौम्यस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय थे तथा समस्त प्राणियोंके साथ अपने ही समान समताका बर्ताव करते और सबके एकमात्र प्रिय और सच्चे हितैषी थे ॥ ३१ ॥ बड़े लोगोंके चरणोंमें सेवककी तरह झुककर रहते थे। गरीबोंपर पिताके समान स्नेह रखते थे। बराबरीवालोंसे भाईके समान प्रेम करते और गुरुजनोंमें भगवद्भाव रखते थे। विद्या, धन, सौन्दर्य और कुलीनतासे सम्पन्न होनेपर भी घमंड और हेकड़ी उन्हें छूतक नहीं गयी थी ॥ ३२ ॥ बड़े-बड़े दुःखोंमें भी वे तनिक भी घबराते न थे। लोक-परलोकके विषयोंको उन्होंने देखा-सुना तो बहुत था, परन्तु वे उन्हें निःसार और असत्य समझते थे। इसलिये उनके मनमें किसी भी वस्तुकी लालसा न थी। इन्द्रिय, प्राण, शरीर और मन उनके वशमें थे। उनके चित्तमें कभी किसी प्रकारकी कामना नहीं उठती थी। जन्मसे असुर होनेपर भी उनमें आसुरी सम्पत्तिका लेश भी नहीं था ॥ ३३ ॥ जैसे भगवान्‌के गुण अनन्त हैं, वैसे ही प्रह्लादके श्रेष्ठ गुणोंकी भी कोई सीमा नहीं है। महात्मालोग सदासे उनका वर्णन करते और उन्हें अपनाते आये हैं। तथापि वे आज भी ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं ॥ ३४ ॥ युधिष्ठिर! यों तो देवता उनके शत्रु हैं; परन्तु फिर भी भक्तोंका चरित्र सुननेके लिये जब उन लोगोंकी सभा होती है, तब वे दूसरे भक्तोंको प्रह्लादके समान कहकर उनका सम्मान करते हैं। फिर आप-जैसे अजातशत्रु भगवद्भक्त उनका आदर करेंगे, इसमें तो सन्देह ही क्या है ॥ ३५ ॥ उनकी महिमाका वर्णन करनेके लिये अगणित गुणोंके कहने-सुननेकी आवश्यकता नहीं। केवल एक ही गुण—भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्वाभाविक, जन्मजात प्रेम उनकी महिमाको प्रकट करनेके लिये पर्याप्त है ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिर! प्रह्लाद बचपनमें ही खेल-कूद छोड़कर भगवान्‌के ध्यानमें जडवत् तन्मय हो जाया करते। भगवान् श्रीकृष्णके अनुग्रहरूप ग्रहने उनके हृदयको इस प्रकार खींच लिया था कि उन्हें जगत्‌की कुछ सुध-बुध ही न रहती ॥ ३७ ॥ उन्हें ऐसा जान पड़ता कि भगवान् मुझे अपनी गोदमें लेकर आलिङ्गन कर रहे हैं। इसलिये उन्हें सोते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते और बातचीत करते समय भी इन बातोंका ध्यान बिल्कुल न रहता ॥ ३८ ॥ कभी-कभी भगवान् मुझे छोड़कर चले गये, इस भावनामें उनका हृदय इतना डूब जाता कि वे जोर-जोरसे रोने लगते। कभी मन-ही-मन उन्हें अपने सामने पाकर आनन्दोद्रेकसे

ठठाकर हँसने लगते। कभी उनके ध्यानके मधुर आनन्दका अनुभव करके जोरसे गाने लगते ॥ ३९ ॥ वे कभी उत्सुक हो बेसुरा चिल्ला पड़ते। कभी-कभी लोकलज्जाका त्याग करके प्रेममें छककर नाचने भी लगते थे। कभी-कभी उनकी लीलाके चिन्तनमें इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपनी याद ही न रहती, उन्हींका अनुकरण करने लगते ॥ ४० ॥ कभी भीतर-ही-भीतर भगवान्‌का कोमल संस्पर्श अनुभव करके आनन्दमें मग्न हो जाते और चुपचाप शान्त होकर बैठ रहते। उस समय उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता। अधखुले नेत्र अविचल प्रेम और आनन्दके आँसुओंसे भरे रहते ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी यह भक्ति अकिञ्चन भगवत्प्रेमी महात्माओंके सङ्गसे ही प्राप्त होती है। इसके द्वारा वे स्वयं तो परमानन्दमें मग्न रहते ही थे; जिन बेचारोंका मन कुसङ्गके कारण अत्यन्त दीन-हीन हो रहा था, उन्हें भी बार-बार शान्ति प्रदान करते थे ॥ ४२ ॥ युधिष्ठिर! प्रह्लाद भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त, परम भाग्यवान् और ऊँची कोटिके महात्मा थे। हिरण्यकशिपु ऐसे साधु पुत्रको भी अपराधी बतलाकर उनका अनिष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ४३ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी! आपका व्रत अखण्ड है। अब हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि हिरण्यकशिपुने पिता होकर भी ऐसे शुद्धहृदय महात्मा पुत्रसे द्रोह क्यों किया ॥ ४४ ॥ पिता तो स्वभावसे ही अपने पुत्रोंसे प्रेम करते हैं। यदि पुत्र कोई उलटा काम करता है, तो वे उसे शिक्षा देनेके लिये ही डाँटते हैं, शत्रुकी तरह वैर-विरोध तो नहीं करते ॥ ४५ ॥ फिर प्रह्लादजी-जैसे अनुकूल, शुद्ध-हृदय एवं गुरुजनोंमें भगवद्भाव करनेवाले पुत्रोंसे भला, कोई द्वेष कर ही कैसे सकता है। नारदजी! आप सब कुछ जानते हैं। हमें यह जानकर बड़ा कौतूहल हो रहा है कि पिताने द्वेषके कारण पुत्रको मार डालना चाहा। आप कृपा करके मेरा यह कुतूहल शान्त कीजिये ॥ ४६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुके द्वारा प्रह्लादजीके वधका प्रयत्न

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! दैत्योंने भगवान् श्रीशुक्राचार्यजीको अपना पुरोहित बनाया था। उनके दो पुत्र थे—शण्ड और अमर्क। वे दोनों राजमहलके पास ही रहकर हिरण्यकशिपुके द्वारा भेजे हुए नीति-निपुण बालक प्रह्लादको और दूसरे पढ़ानेयोग्य दैत्य-बालकोंको राजनीति, अर्थनीति आदि पढ़ाया करते थे ॥ १-२ ॥ प्रह्लाद गुरुजीका पढ़ाया हुआ पाठ सुन लेते थे और उसे ज्यों-का-त्यों उन्हें सुना भी दिया करते थे। किन्तु वे उसे मनसे अच्छा नहीं समझते थे। क्योंकि उस पाठका मूल आधार था अपने और परायेका ...आग्रह ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर! एक दिन हिरण्यकशिपुने ...ने पुत्र प्रह्लादको बड़े प्रेमसे गोदमें लेकर पूछा— ...! बताओ तो सही, तुम्हें कौन-सी बात अच्छी है?' ॥ ४ ॥

प्रह्लादने कहा—पिताजी! संसारके प्राणी 'मैं' और 'मेरे' के झूठे आग्रहमें पड़कर सदा ही अत्यन्त उद्विग्न रहते हैं। ऐसे प्राणियोंके लिये मैं यही ठीक समझता हूँ कि वे अपने अधःपतनके मूल कारण, घाससे ढके हुए अँधेरे कूएँके समान इस घरको छोड़कर वनमें चले जायँ और भगवान् श्रीहरिकी शरण ग्रहण करें ॥ ५ ॥

नारदजी कहते हैं—प्रह्लादजीके मुँहसे शत्रुपक्षकी प्रशंसासे भरी बात सुनकर हिरण्यकशिपु ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा—'दूसरोंके बहकानेसे बच्चोंकी बुद्धि यों ही बिगड़ जाया करती है ॥ ६ ॥ जान पड़ता है गुरुजीके घरपर विष्णुके पक्षपाती कुछ ब्राह्मण वेष बदलकर रहते हैं। बालककी भलीभाँति देख-रेख की जाय, जिससे अब इसकी बुद्धि बहकने न पाये ॥ ७ ॥

जब दैत्योंने प्रह्लादको गुरुजीके घर पहुँचा

दिया, तब पुरोहितोंने उनको बहुत पुचकारकर और फुसलाकर बड़ी मधुर वाणीसे पूछा ॥ ८ ॥ बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो । ठीक-ठीक बतलाना । देखो, झूठ न बोलना । यह तुम्हारी बुद्धि उलटी कैसे हो गयी ? और किसी बालककी बुद्धि तो ऐसी नहीं हुई ॥ ९ ॥ कुलनन्दन प्रह्लाद ! बताओ तो, बेटा ! हम तुम्हारे गुरुजन यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि स्वयं ऐसी हो गयी या किसीने सचमुच तुमको बहका दिया है ? ॥ १० ॥

प्रह्लादजीने कहा—जिन मनुष्योंकी बुद्धि मोहसे ग्रस्त हो रही है, उन्हींको भगवान्‌की मायासे यह झूठा दुराग्रह होता देखा गया है कि यह 'अपना' है और यह 'पराया' । उन मायापति भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥ वे भगवान् ही जब कृपा करते हैं, तब मनुष्योंकी पाशविक बुद्धि नष्ट होती है । इस पशु-बुद्धिके कारण ही तो 'यह मैं हूँ और यह मुझसे भिन्न है' इस प्रकारका झूठा भेदभाव पैदा होता है ॥ १२ ॥ वही परमात्मा यह आत्मा है । अज्ञानीलोग अपने और परायेका भेद करके उसीका वर्णन किया करते हैं । उनका न जानना भी ठीक ही है; क्योंकि उसके तत्त्वको जानना बहुत कठिन है और ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े वेदज्ञ भी उसके विषयमें मोहित हो जाते हैं । वही परमात्मा आपलोगोंके शब्दोंमें मेरी बुद्धि 'बिगाड़' रहा है ॥ १३ ॥ गुरुजी ! जैसे चुम्बकके पास लोहा स्वयं खिंच आता है, वैसे ही चक्रपाणि भगवान्‌की स्वच्छन्द इच्छाशक्तिसे मेरा चित्त भी संसारसे अलग होकर उनकी ओर बरबस खिंच जाता है ॥ १४ ॥

नारदजी कहते हैं—परम ज्ञानी प्रह्लाद अपने गुरुजी-से इतना कहकर चुप हो गये । पुरोहित बेचारे राजाके सेवक एवं पराधीन थे । वे डर गये । उन्होंने क्रोधसे प्रह्लादको झिड़क दिया और कहा—॥ १५ ॥ 'अरे, कोई मेरा बेंत तो लाओ । यह हमारी कीर्तिमें कलङ्क लगा रहा है । इस दुर्बुद्धि कुलाङ्गारको ठीक करनेके लिये चौथा उपाय दण्ड ही उपयुक्त होगा ॥ १६ ॥ दैत्य-वंशके चन्दनवनमें यह काँटेदार बबूल कहाँसे पैदा हुआ ? जो विष्णु इस वनकी जड़ काटनेमें कुल्हाड़ेका काम करते हैं, यह नादान बालक उन्हींकी बेंट बन रहा है, सहायक हो रहा है ॥ १७ ॥ इस प्रकार गुरुजीने तरह-तरहसे डाँट-डपटकर प्रह्लादको धमकाया और अर्थ, धर्म एवं कामसम्बन्धी शिक्षा दी ॥ १८ ॥ कुछ समय-के बाद जब गुरुजीने देखा कि प्रह्लादने साम, दान, भेद और दण्डके सम्बन्धकी सारी बातें जान ली हैं, तब वे उन्हें उनकी माके पास ले गये । माताने बड़े लाड़-प्यारसे उन्हें नहला-धुलाकर अच्छी तरह गहने-कपड़ोंसे सजा दिया । इसके बाद वे उन्हें हिरण्यकशिपुके पास ले गये ॥ १९ ॥ प्रह्लाद अपने पिताके चरणोंमें लोट गये । हिरण्यकशिपुने उन्हें आशीर्वाद दिया और दोनों हाथोंसे उठाकर बहुत देरतक गलेसे लगाये रक्खा । उस समय दैत्यराजका हृदय आनन्दसे भर रहा था ॥ २० ॥ युधिष्ठिर ! हिरण्यकशिपुने प्रसन्नमुख प्रह्लादको अपनी गोदमें बैठाकर उनका सिर सूँघा । उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू गिर-गिरकर प्रह्लादके शरीरको भिगोने लगे । उसने अपने पुत्रसे पूछा ॥ २१ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—चिरञ्जीव बेटा प्रह्लाद ! इतने दिनोंमें तुमने गुरुजीसे जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमेंसे कोई अच्छी-सी बात हमें सुनाओ ॥ २२ ॥

प्रह्लादजीने कहा—पिताजी ! विष्णुभगवान्‌की भक्ति-के नौ भेद हैं—भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन । यदि भगवान्‌के प्रति समर्पण-के भावसे यह नौ प्रकारकी भक्ति की जाय, तो मैं उसीको उत्तम अध्ययन समझता हूँ ॥ २३-२४ ॥ प्रह्लादकी यह बात सुनते ही क्रोधके मारे हिरण्यकशिपु-के ओठ फड़कने लगे । उसने गुरुपुत्रसे कहा—॥ २५ ॥ रे नीच ब्राह्मण ! यह तेरी कैसी करतूत है; दुर्बुद्धि ! तूने मेरी कुछ भी परवा न करके इस बच्चेको कैसी निस्सार शिक्षा दे दी ? अवश्य ही तू हमारे शत्रुओंका आश्रित है ॥ २६ ॥ संसारमें ऐसे दुष्टोंकी कमी नहीं है, जो मित्रका बाना धारणकर छिपे-छिपे शत्रुका काम करते हैं । परन्तु उनकी कलई ठीक वैसे ही खुल जाती है, जैसे

छिपकर पाप करनेवालोंका पाप समयपर रोगके रूपमें प्रकट होकर उनकी पोल खोल देता है ॥ २७ ॥

गुरुपुत्रने कहा—इन्द्रशत्रो! आपका पुत्र जो कुछ कह रहा है, वह मेरे या और किसीके बहकानेसे नहीं कह रहा है। राजन्! यह तो इसकी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि है। आप क्रोध शान्त कीजिये। व्यर्थमें हमें दोष न लगाइये।२८।

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जब गुरुजीने ऐसा उत्तर दिया, तब हिरण्यकशिपुने फिर प्रह्लादसे पूछा—'क्यों रे! यदि तुझे ऐसी अहित करनेवाली खोटी बुद्धि गुरुमुखसे नहीं मिली तो बता, कहाँसे प्राप्त हुई?'॥ २९॥

प्रह्लादजीने कहा—पिताजी! संसारके लोग तो पिसे हुएको पीस रहे हैं, चबाये हुएको चबा रहे हैं। उनकी इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण वे भोगे हुए विषयोंको ही फिर-फिर भोगनेके लिये संसाररूप घोर नरककी ओर जा रहे हैं। ऐसे गृहासक्त पुरुषोंकी बुद्धि अपने-आप, किसीके सिखानेसे अथवा अपने ही-जैसे लोगोंके सङ्गसे भगवान् श्रीकृष्णमें नहीं लगती ॥ ३० ॥ जो इन्द्रियोंसे दीखनेवाले बाह्य विषयोंको परम इष्ट समझकर मूर्खतावश अन्धोंके पीछे अन्धोंकी तरह गड्ढेमें गिरनेके लिये चले जा रहे हैं और वेदवाणीरूप रस्सीके—काम्यकर्मोंके दीर्घ बन्धनमें बँधे हुए हैं, उनको यह बात मालूम नहीं कि हमारे स्वार्थ और परमार्थ भगवान् विष्णु ही हैं—उन्हींकी प्राप्तिसे हमें सब पुरुषार्थोंकी प्राप्ति हो सकती है ॥३१॥ जिनकी बुद्धि भगवान्‌के चरणकमलोंका स्पर्श कर लेती है, उनके जन्म-मृत्युरूप अनर्थका सर्वथा नाश हो जाता है। परन्तु जो लोग अकिञ्चन भगवत्प्रेमी महात्माओंके चरणोंकी धूलमें स्नान नहीं कर लेते, उनकी बुद्धि काम्यकर्मोंका पूरा सेवन करनेपर भी भगवच्चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ३२ ॥

प्रह्लादजी इतना कहकर चुप हो गये। हिरण्यकशिपुने क्रोधके मारे अन्धा होकर उन्हें अपनी गोदसे उठाकर भूमिपर पटक दिया ॥ ३३ ॥ प्रह्लादकी बातको वह सह न सका। रोषके मारे उसके नेत्र लाल हो गये। वह कहने लगा—दैत्यो! इसे यहाँसे बाहर ले जाओ और तुरंत मार डालो। यह मार ही डालने योग्य है ॥ ३४ ॥ देखो तो सही—जिसने इसके चाचाको मार डाला, अपने सुहृद्-स्वजनोंको छोड़कर यह नीच दासके समान उसी विष्णुके चरणोंकी पूजा करता है! हो-न-हो, इसके रूपमें मेरे भाईको मारनेवाला विष्णु ही आ गया है ॥ ३५ ॥ अब यह विश्वासके योग्य नहीं है। पाँच बरसकी अवस्थामें ही जिसने अपने माता-पिताके दुस्त्यज वात्सल्यस्नेहको भुला दिया—वह कृतघ्न भला, विष्णुका ही क्या हित करेगा ॥ ३६ ॥ कोई दूसरा भी यदि औषधके समान भलाई करे तो वह एक प्रकारसे पुत्र ही है। पर यदि अपना पुत्र भी अहित करने लगे तो रोगके समान वह शत्रु है। अपने शरीरके ही किसी अङ्गसे सारे शरीरकी हानि होती हो तो उसको काट डालना चाहिये। क्योंकि उसे काट देनेसे शेष शरीर सुखसे जी सकता है ॥ ३७ ॥ यह स्वजनका बाना पहनकर मेरा कोई शत्रु ही आया है। जैसे योगीकी भोगलोलुप इन्द्रियाँ उसका अनिष्ट करती हैं, वैसे ही यह मेरा अहित करनेवाला है। इसलिये खाने, सोने, बैठने आदिके समय किसी भी उपायसे इसे मार डालो' ॥ ३८ ॥

जब हिरण्यकशिपुने दैत्योंको इस प्रकार आज्ञा दी, तब तीखी दाढ़, विकराल वदन, लाल-लाल दाढ़ी-मूँछ एवं केशोंवाले दैत्य हाथोंमें त्रिशूल ले-लेकर 'मारो, काटो'—इस प्रकार बड़े जोरसे चिल्लाने लगे। प्रह्लाद चुपचाप बैठे हुए थे और दैत्य उनके सभी मर्मस्थानोंमें शूलसे घाव कर रहे थे ॥ ३९-४० ॥ उस समय प्रह्लादजीका चित्त उन परमात्मामें लगा हुआ था, जो मन-वाणीके अगोचर, सर्वात्मा, समस्त शक्तियोंके आधार एवं परब्रह्म हैं। इसलिये उनके सारे प्रहार ठीक वैसे ही निष्फल हो गये, जैसे भाग्यहीनोंके बड़े-बड़े उद्योग-धंधे व्यर्थ होते हैं ॥ ४१ ॥ युधिष्ठिर! जब शूलोंकी मारसे प्रह्लादके शरीरपर कोई असर नहीं हुआ, तब हिरण्यकशिपुको बड़ी शङ्का हुई। अब वह प्रह्लादको मार डालनेके लिये बड़े हठसे भाँति-भाँतिके उपाय करने लगा ॥ ४२ ॥ उसने उन्हें बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर साँपोंसे डँसवाया, पुरोहितोंसे

कृत्या राक्षसी उत्पन्न करायी, पहाड़की चोटीसे नीचे डलवा दिया, शम्बरासुरसे अनेकों प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियोंमें बंद करा दिया, विष पिलाया और खाना बंद कर दिया ॥ ४३ ॥ बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्रमें बारी-बारीसे डलवाया, आँधीमें छोड़ दिया तथा पर्वतोंके नीचे दबवा दिया; परन्तु इनमेंसे किसी भी उपायसे वह अपने पुत्र निष्पाप प्रह्लादका बाल भी बाँका न कर सका। अपनी विवशता देखकर हिरण्यकशिपुको बड़ी चिन्ता हुई। उसे प्रह्लादको मारनेके लिये और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा ॥ ४४ ॥ वह सोचने लगा—'इसे मैंने बहुत कुछ बुरा-भला कहा, मार डालनेके बहुत-से उपाय किये। परन्तु यह मेरे द्रोह और दुर्व्यवहारोंसे बिना किसीकी सहायताके अपने प्रभावसे ही बचता गया ॥ ४५ ॥ यह बालक होनेपर भी समझदार है और मेरे पास ही निःशङ्क भावसे रहता है। हो-न-हो इसमें कुछ सामर्थ्य अवश्य है। जैसे शुनःशेप * अपने पिताकी करतूतोंसे उसका विरोधी हो गया था, वैसे ही यह भी मेरे किये अपकारोंको न भूलेगा ॥ ४६ ॥ न तो यह किसीसे डरता है और न इसकी मृत्यु ही होती है। इसकी शक्तिकी थाह नहीं है। अवश्य ही इसके विरोधसे मेरी मृत्यु होगी। सम्भव है, न भी हो' ॥ ४७ ॥

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते उसका चेहरा कुछ उतर गया। शुक्राचार्यके पुत्र शण्ड और अमर्कने जब देखा कि हिरण्यकशिपु तो मुँह लटकाकर बैठा हुआ है, तब उन्होंने एकान्तमें जाकर उससे यह बात कही—॥ ४८ ॥ 'स्वामी! आपने अकेले ही तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली। आपके भौंहें टेढ़ी करनेपर ही सारे लोकपाल काँप उठते हैं। हमारे देखनेमें तो आपके लिये चिन्ताकी कोई बात नहीं है। भला, बच्चोंके खिलवाड़में भी भलाई-बुराई सोचनेकी कोई बात है ॥ ४९ ॥ जबतक हमारे पिता शुक्राचार्यजी नहीं आ जाते, तबतक यह डरकर कहीं भाग न जाय। इसलिये इसे वरुणके पाशोंसे बाँध रखिये। प्रायः ऐसा होता है कि अवस्थाकी वृद्धिके साथ-साथ और गुरुजनोंकी सेवासे बुद्धि सुधर जाया करती है' ॥ ५० ॥

हिरण्यकशिपुने 'अच्छा, ठीक है' कहकर गुरु-पुत्रोंकी सलाह मान ली और कहा कि 'इसे उन धर्मोंका उपदेश करना चाहिये, जिनका पालन गृहस्थ नरपति किया करते हैं' ॥ ५१ ॥ युधिष्ठिर! इसके बाद पुरोहित उन्हें लेकर पाठशालामें गये और क्रमशः धर्म, अर्थ और काम—इन तीन पुरुषार्थोंकी शिक्षा देने लगे। प्रह्लाद वहाँ अत्यन्त नम्र सेवककी भाँति रहते थे ॥ ५२ ॥ परन्तु गुरुओंकी वह शिक्षा प्रह्लादको अच्छी न लगी। क्योंकि गुरुजी उन्हें केवल अर्थ, धर्म और कामकी ही शिक्षा देते थे। यह शिक्षा केवल उन लोगोंके लिये है, जो राग-द्वेष आदि द्वन्द्व और विषय-भोगोंमें रस ले रहे हों ॥ ५३ ॥ एक दिन गुरुजी गृहस्थीके कामसे कहीं बाहर चले गये थे। छुट्टी मिल जानेके कारण समवयस्क बालकोंने प्रह्लादजीको खेलनेके लिये पुकारा ॥ ५४ ॥ प्रह्लादजी परम ज्ञानी थे, उनका प्रेम देखकर उन्होंने उन बालकोंको ही बड़ी मधुर वाणीसे पुकारकर अपने पास बुला लिया। उनसे उनके जन्म-मरणकी गति भी छिपी नहीं थी। उनपर कृपा करके हँसते हुए-से उन्हें उपदेश करने लगे ॥ ५५ ॥ युधिष्ठिर! वे सब अभी बालक ही थे, इसलिये राग-द्वेषपरायण विषय-भोगी पुरुषोंके उपदेशोंसे और चेष्टाओंसे उनकी बुद्धि अभी दूषित नहीं हुई थी। इसीसे, और प्रह्लादजीके प्रति आदर-बुद्धि होनेसे उन सबने अपनी खेल-कूदकी सामग्रियोंको छोड़ दिया तथा प्रह्लादजीके पास जाकर उनके चारों ओर बैठ गये और उनके उपदेशमें मन

* शुनःशेप अजीगर्तका मँझला पुत्र था। उसे पिताने वरुणके यज्ञमें बलि देनेके लिये हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वके हाथ बेच दिया था। तब उसके मामा विश्वामित्रजीने उसकी रक्षा की और वह अपने पिताके विरुद्ध होकर उनके विपक्षी विश्वामित्रजीके ही गोत्रमें हो गया। यह कथा आगे 'नवम स्कन्ध' के सातवें अध्यायमें आयेगी।

लगाकर बड़े प्रेमसे एकटक उनकी ओर देखने लगे। भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त प्रह्लादका हृदय उनके प्रति करुणा और मैत्रीके भावसे भर गया तथा वे उनसे कहने लगे ॥ ५६-५७ ॥

छठा अध्याय

प्रह्लादजीका असुर-बालकोंको उपदेश

प्रह्लादजीने कहा—मित्रो! इस संसारमें मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। इसके द्वारा अविनाशी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पता नहीं कब इसका अन्त हो जाय; इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको बुढ़ापे या जवानीके भरोसे न रहकर बचपनमें ही भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाले साधनोंका अनुष्ठान कर लेना चाहिये ॥ १ ॥ इस मनुष्य-जन्ममें श्रीभगवान्‌के चरणोंकी शरण लेना ही जीवनकी एकमात्र सफलता है। क्योंकि भगवान् समस्त प्राणियोंके स्वामी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हैं ॥ २ ॥ भाइयो! इन्द्रियोंसे जो सुख भोगा जाता है, वह तो—जीव चाहे जिस योनिमें रहे—प्रारब्धके अनुसार सर्वत्र वैसे ही मिलता रहता है, जैसे बिना किसी प्रकारका प्रयत्न किये, निवारण करनेपर भी दुःख मिलता है ॥ ३ ॥ इसलिये सांसारिक सुखके उद्देश्यसे प्रयत्न करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि स्वयं मिलनेवाली वस्तुके लिये परिश्रम करना आयु और शक्तिको व्यर्थ गँवाना है। जो इनमें उलझ जाते हैं, उन्हें भगवान्‌के परम कल्याण-स्वरूप चरणकमलोंकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥ हमारे सिरपर अनेकों प्रकारके भय सवार रहते हैं। इसलिये यह शरीर—जो भगवत्प्राप्तिके लिये पर्याप्त है—जबतक रोग-शोकादिग्रस्त होकर मृत्युके मुखमें नहीं चला जाता, तभीतक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये ॥ ५ ॥ मनुष्यकी पूरी आयु सौ वर्षकी है। जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं कर लिया है, उनकी आयुका आधा हिस्सा तो यों ही बीत जाता है। क्योंकि वे रातमें घोर तमोगुण—अज्ञानसे ग्रस्त होकर सोते रहते हैं ॥ ६ ॥ बचपनमें उन्हें अपने हित-अहितका ज्ञान नहीं रहता, कुछ बड़े होनेपर कुमार अवस्थामें वे खेल-कूदमें लग जाते हैं। इस प्रकार बीस वर्षका तो पता ही नहीं चलता। जब बुढ़ापा शरीरको ग्रस लेता है, तब अन्तके बीस वर्षोंमें कुछ करने-धरनेकी शक्ति ही नहीं रह जाती ॥ ७ ॥ रह गयी बीचकी कुछ थोड़ी-सी आयु। उसमें कभी न पूरी होनेवाली बड़ी-बड़ी कामनाएँ हैं, बलात् पकड़ रखनेवाला मोह है और घर-द्वारकी वह आसक्ति है, जिससे जीव इतना उलझ जाता है कि उसे कुछ कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान ही नहीं रहता। इस प्रकार बची-खुची आयु भी हाथसे निकल जाती है ॥ ८ ॥

दैत्यबालको! जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, ऐसा कौन-सा पुरुष होगा, जो घर-गृहस्थीमें आसक्त और माया-ममताकी मजबूत फाँसीमें फँसे हुए अपने-आपको उससे छुड़ानेका साहस कर सके ॥ ९ ॥ जिसे चोर, सेवक एवं व्यापारी अपने अत्यन्त प्यारे प्राणोंकी भी बाजी लगाकर संग्रह करते हैं और इसलिये उन्हें जो प्राणोंसे भी अधिक वाञ्छनीय है—उस धनकी तृष्णाको भला, कौन त्याग सकता है ॥ १० ॥ जो अपनी प्रियतमा पत्नीके एकान्त सहवास, उसकी प्रेमभरी बातों और मीठी-मीठी सलाहपर अपनेको निछावर कर चुका है, भाई-बन्धु और मित्रोंके स्नेह-पाशमें बँध चुका है और नन्हे-नन्हे शिशुओंकी तोतली बोलीपर लुभा चुका है—भला, वह उन्हें कैसे छोड़ सकता है ॥ ११ ॥ जो अपनी ससुराल गयी हुई प्रिय पुत्रियों, पुत्रों, भाई-बहिनों और दीन अवस्थाको प्राप्त पिता-माता, बहुत-सी सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य सामग्रियोंसे सजे हुए घरों, कुलपरम्परागत जीविकाके साधनों तथा पशुओं और सेवकोंके निरन्तर स्मरणमें रम गया है, वह भला उन्हें कैसे छोड़ सकता है ॥ १२ ॥ जो जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके सुखोंको ही सर्वस्व मान बैठा है, जिसकी भोगवासनाएँ कभी तृप्त नहीं होतीं, जो लोभवश कर्म-पर-कर्म करता हुआ रेशमके कीड़ेकी तरह अपनेको और भी कड़े बन्धनमें

जकड़ता जा रहा है और जिसके मोहकी कोई सीमा नहीं है—वह उनसे किस प्रकार विरक्त हो सकता है और कैसे उनका त्याग कर सकता है ॥ १३ ॥ यह मेरा कुटुम्ब है, इस भावसे उसमें वह इतना रम जाता है कि उसीके पालन-पोषणके लिये अपनी अमूल्य आयुको गँवा देता है और उसे यह भी नहीं जान पड़ता कि मेरे जीवनका वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो रहा है। भला, इस प्रमादकी भी कोई सीमा है। यदि इन कामोंमें कुछ सुख मिले तो भी एक बात है; परन्तु यहाँ तो जहाँ-जहाँ वह जाता है, वहीं-वहीं दैहिक, दैविक और भौतिक ताप उसके हृदयको जलाते ही रहते हैं। फिर भी वैराग्यका उदय नहीं होता। कितनी विडम्बना है! कुटुम्बकी ममताके फेरमें पड़कर वह इतना असावधान हो जाता है, उसका मन धनके चिन्तनमें सदा इतना लवलीन रहता है कि वह दूसरेका धन चुरानेके लौकिक-पारलौकिक दोषोंको जानता हुआ भी कामनाओंको वशमें न कर सकनेके कारण इन्द्रियोंके भोगकी लालसासे चोरी कर ही बैठता है ॥ १४-१५ ॥ भाइयो! जो इस प्रकार अपने कुटुम्बियोंके पेट पालनेमें ही लगा रहता है—कभी भगवद्भजन नहीं करता—वह विद्वान् हो, तो भी उसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अपने-परायेका भेद-भाव रहनेके कारण उसे भी अज्ञानियोंके समान ही तमःप्रधान गति प्राप्त होती है ॥ १६ ॥ जो कामिनियोंके मनोरञ्जनका सामान—उनका क्रीडामृग बन रहा है और जिसने अपने पैरोंमें सन्तानकी बेड़ी जकड़ ली है, वह बेचारा गरीब—चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो—किसी भी प्रकारसे अपना उद्धार नहीं कर सकता॥ १७ ॥ इसलिये, भाइयो! तुमलोग विषयासक्त दैत्योंका सङ्ग दूरसे ही छोड़ दो और आदिदेव भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण करो। क्योंकि जिन्होंने संसारकी आसक्ति छोड़ दी है, उन महात्माओंके वे ही परम प्रियतम और परम गति हैं ॥ १८ ॥

मित्रो! भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्योंकि वे समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ताके रूपमें स्वयंसिद्ध वस्तु हैं ॥ १९ ॥ ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक छोटे-बड़े समस्त प्राणियोंमें, पञ्चभूतोंसे बनी हुई वस्तुओंमें, पञ्चभूतोंमें, सूक्ष्म तन्मात्राओंमें, महत्तत्त्वमें, तीनों गुणोंमें और गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृतिमें एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्योंकी खान हैं ॥ २०-२१ ॥ वे ही अन्तर्यामी द्रष्टाके रूपमें हैं और वे ही दृश्य जगत्‌के रूपमें भी हैं। सर्वथा अनिर्वचनीय तथा विकल्परहित होनेपर भी द्रष्टा और दृश्य, व्याप्य और व्यापकके रूपमें उनका निर्वचन किया जाता है। वस्तुतः उनमें एक भी विकल्प नहीं है ॥२२॥ वे केवल अनुभवस्वरूप, आनन्दस्वरूप एकमात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी सृष्टि करनेवाली मायाके द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है। इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं ॥ २३ ॥ इसलिये तुमलोग अपने दैत्यपनेका, आसुरी सम्पत्तिका त्याग करके समस्त प्राणियोंपर दया करो। प्रेमसे उनकी भलाई करो। इसीसे भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २४ ॥ आदिनारायण अनन्त भगवान्‌के प्रसन्न हो जानेपर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल जाती? लोक और परलोकके लिये जिन धर्म, अर्थ आदिकी आवश्यकता बतलायी जाती है—वे तो गुणोंके परिणामसे बिना प्रयासके स्वयं ही मिलनेवाले हैं। जब हम श्रीभगवान्‌के चरणामृतका सेवन करने और उनके नाम-गुणोंका कीर्तन करनेमें लगे हैं, तब हमें मोक्षकी भी क्या आवश्यकता है ॥ २५ ॥ यों शास्त्रोंमें धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंका भी वर्णन है। आत्मविद्या, कर्मकाण्ड, न्याय (तर्कशास्त्र), दण्डनीति और जीविकाके विविध साधन—ये सभी वेदोंके प्रतिपाद्य विषय हैं; परन्तु यदि ये अपने परम हितैषी, परम पुरुष भगवान् श्रीहरिको आत्मसमर्पण करनेमें सहायक हैं, तभी मैं इन्हें सत्य (सार्थक) मानता हूँ। अन्यथा ये सब-के-सब निरर्थक हैं ॥ २६ ॥ यह निर्मल ज्ञान जो मैंने तुमलोगोंको बतलाया है, बड़ा ही दुर्लभ है। इसे पहले नर-नारायणने नारदजीको उपदेश किया था। और यह ज्ञान उन सब लोगोंको प्राप्त हो सकता है, जिन्होंने भगवान्‌के अनन्यप्रेमी एवं अकिञ्चन भक्तोंके चरणकमलोंकी धूलिसे अपने शरीरको नहला लिया है ॥ २७ ॥

यह विज्ञानसहित ज्ञान विशुद्ध भागवतधर्म है। इसे मैंने भगवान्‌का दर्शन करानेवाले देवर्षि नारदजीके मुँहसे ही पहले-पहल सुना था ॥ २८ ॥

प्रह्लादजीके सहपाठियोंने पूछा—प्रह्लादजी ! इन दोनों गुरुपुत्रोंको छोड़कर और किसी गुरुको तो न तुम जानते हो और न हम। ये ही हम सब बालकोंके शासक हैं ॥ २९ ॥ तुम एक तो अभी छोटी अवस्थाके हो और दूसरे, जन्मसे ही महलमें अपनी माके पास रहे हो। तुम्हारा महात्मा नारदजीसे मिलना कुछ असङ्गत-सा जान पड़ता है। प्रियवर ! यदि इस विषयमें विश्वास दिलानेवाली कोई बात हो तो तुम उसे कहकर हमारी शङ्का मिटा दो ॥ ३० ॥

सातवाँ अध्याय

प्रह्लादजीद्वारा माताके गर्भमें प्राप्त हुए नारदजीके उपदेशका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! जब दैत्यबालकोंने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त प्रह्लादजीको मेरी बातका स्मरण हो आया। कुछ मुसकराते हुए उन्होंने उनसे कहा ॥ १ ॥

प्रह्लादजीने कहा—जब हमारे पिताजी तपस्या करनेके लिये मन्दराचलपर चले गये, तब इन्द्रादि देवताओंने दानवोंसे युद्ध करनेका बहुत बड़ा उद्योग किया ॥२॥ वे इस प्रकार कहने लगे कि जैसे चींटियाँ साँपको चाट जाती हैं, वैसे ही लोगोंको सतानेवाले पापी हिरण्यकशिपुको उसका पाप ही खा गया ॥ ३ ॥ जब दैत्यसेनापतियोंको देवताओंकी भारी तैयारीका पता चला, तब उनका साहस जाता रहा। वे उनका सामना नहीं कर सके। मार खाकर स्त्री, पुत्र, मित्र, गुरुजन, महल, पशु और साज-सामानकी कुछ भी चिन्ता न करके वे अपने प्राण बचानेके लिये बड़ी जल्दीमें सब-के-सब इधर-उधर भाग गये ॥४-५॥ अपनी जीत चाहनेवाले देवताओंने राजमहलमें लूटखसोट मचा दी। यहाँतक कि इन्द्रने राजरानी मेरी माता कयाधूको भी बन्दी बना लिया ॥६॥ मेरी मा भयसे घबराकर कुररी पक्षीकी भाँति रो रही थी और इन्द्र उसे बलात् लिये जा रहे थे। दैववश देवर्षि नारद उधर आ निकले और उन्होंने मार्गमें मेरी माको देख लिया ॥ ७ ॥ उन्होंने कहा—'देवराज ! यह निरपराध है। इसे ले जाना उचित नहीं। महाभाग ! इस सती-साध्वी परनारीका तिरस्कार मत करो। इसे छोड़ दो, तुरंत छोड़ दो !' ॥८॥

इन्द्रने कहा—इसके पेटमें देवद्रोही हिरण्यकशिपुका अत्यन्त प्रभावशाली वीर्य है। प्रसवपर्यन्त यह मेरे पास रहे, बालक हो जानेपर उसे मारकर मैं इसे छोड़ दूँगा ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—'इसके गर्भमें भगवान्‌का साक्षात् परम प्रेमी भक्त और सेवक, अत्यन्त बली और निष्पाप महात्मा है। तुममें उसको मारनेकी शक्ति नहीं है' ॥१०॥ देवर्षि नारदकी यह बात सुनकर उसका सम्मान करते हुए इन्द्रने मेरी माताको छोड़ दिया। और फिर इसके गर्भमें भगवद्भक्त है, इस भावसे उन्होंने मेरी माताकी प्रदक्षिणा की तथा अपने लोकमें चले गये ॥ ११ ॥

इसके बाद देवर्षि नारदजी मेरी माताको अपने आश्रमपर लिवा गये और उसे समझा-बुझाकर कहा कि—'बेटी ! जबतक तुम्हारा पति तपस्या करके लौटे, तबतक तुम यहीं रहो' ॥१२॥ 'जो आज्ञा' कहकर वह निर्भयतासे देवर्षि नारदके आश्रमपर ही रहने लगी और तबतक रही, जबतक मेरे पिता घोर तपस्यासे लौटकर नहीं आये ॥ १३ ॥ मेरी गर्भवती माता मुझ गर्भस्थ शिशुकी मङ्गलकामनासे और इच्छित समयपर (अर्थात् मेरे पिताके लौटनेके बाद) सन्तान उत्पन्न करनेकी कामनासे बड़े प्रेम तथा भक्तिके साथ नारदजीकी सेवा-शुश्रूषा करती रही ॥ १४ ॥

देवर्षि नारदजी बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने मेरी माँको भागवतधर्मका रहस्य और विशुद्ध ज्ञान दोनोंका उपदेश किया। उपदेश

करते समय उनकी दृष्टि मुझपर भी थी ॥ १५ ॥ बहुत समय बीत जानेके कारण और स्त्री होनेके कारण भी मेरी माताको तो अब उस ज्ञानकी स्मृति नहीं रही, परन्तु देवर्षिकी विशेष कृपा होनेके कारण मुझे उसकी विस्मृति नहीं हुई ॥ १६ ॥ यदि तुमलोग मेरी इस बातपर श्रद्धा करो तो तुम्हें भी वह ज्ञान हो सकता है। क्योंकि श्रद्धासे स्त्री और बालकोंकी बुद्धि भी मेरे ही समान शुद्ध हो सकती है ॥ १७ ॥ जैसे ईश्वरमूर्ति कालकी प्रेरणासे वृक्षोंके फल लगते, ठहरते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं—वैसे ही जन्म, अस्तित्वकी अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश—ये छः भाव-विकार शरीरमें ही देखे जाते हैं, आत्मासे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ १८ ॥ आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयंप्रकाश, सबका कारण, व्यापक, असङ्ग तथा आवरणरहित है ॥ १९ ॥ ये बारह आत्माके उत्कृष्ट लक्षण हैं। इनके द्वारा आत्मतत्त्वको जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि शरीर आदिमें अज्ञानके कारण जो 'मैं' और 'मेरे' का झूठा भाव हो रहा है, उसे छोड़ दे ॥ २० ॥ जिस प्रकार सुवर्णकी खानोंमें पत्थरमें मिले हुए सुवर्णको उसके निकालनेकी विधि जाननेवाला स्वर्णकार उन विधियोंसे उसे प्राप्त कर लेता है, वैसे ही अध्यात्मतत्त्वको जाननेवाला पुरुष आत्मप्राप्तिके उपायोंद्वारा अपने शरीररूप क्षेत्रमें ही ब्रह्मपदका साक्षात्कार कर लेता है ॥ २१ ॥

आचार्योंने मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्राएँ—इन आठ तत्त्वोंको प्रकृति बतलाया है। उनके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम तथा उनके विकार हैं सोलह—दस इन्द्रियाँ, एक मन और पञ्च महाभूत। इन सबमें एक पुरुषतत्त्व अनुगत है ॥ २२ ॥ इन सबका समुदाय ही देह है। यह दो प्रकारका है—स्थावर और जङ्गम। इसीमें अन्तःकरण, इन्द्रिय आदि अनात्मवस्तुओंका 'यह आत्मा नहीं है'—इस प्रकार बाध करते हुए आत्माको ढूँढ़ना चाहिये ॥ २३ ॥ आत्मा सबमें अनुगत है, परन्तु है वह सबसे पृथक्। इस प्रकार शुद्ध बुद्धिसे धीरे-धीरे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और उसके प्रलयपर विचार करना चाहिये। उतावली नहीं करनी चाहिये ॥ २४ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियोंका जिसके द्वारा अनुभव होता है—वही सबसे अतीत, सबका साक्षी परमात्मा है ॥ २५ ॥ जैसे गन्धसे उसके आश्रय वायुका ज्ञान होता है, वैसे ही बुद्धिकी इन कर्मजन्य एवं बदलनेवाली तीनों अवस्थाओंके द्वारा इनमें साक्षीरूपसे अनुगत आत्माको जाने ॥ २६ ॥ गुणों और कर्मोंके कारण होनेवाला जन्म-मृत्युका यह चक्र आत्माको शरीर और प्रकृतिसे पृथक् न करनेके कारण ही है। *यह अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है। फिर भी* स्वप्नके समान जीवको इसकी प्रतीति हो रही है ॥ २७ ॥

इसलिये तुमलोगोंको सबसे पहले इन गुणोंके अनुसार होनेवाले कर्मोंका बीज ही नष्ट कर देना चाहिये। इससे बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह निवृत्त हो जाता है। इसीको दूसरे शब्दोंमें योग या परमात्मासे मिलन कहते हैं ॥ २८ ॥ यों तो इन त्रिगुणात्मक कर्मोंकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिये अथवा बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह बंद कर देनेके लिये सहस्रों साधन हैं; परन्तु जिस उपायसे और जैसे सर्वशक्तिमान् भगवान्में स्वाभाविक निष्काम प्रेम हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। यह बात स्वयं भगवान्ने कही है ॥ २९ ॥ गुरुकी प्रेमपूर्वक सेवा, अपनेको जो कुछ मिले वह सब प्रेमसे भगवान्को समर्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महात्माओंका सत्सङ्ग, भगवान्की आराधना, उनकी कथा-वार्तामें श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओंका कीर्तन, उनके चरणकमलोंका ध्यान और उनके मन्दिर-मूर्ति आदिका दर्शन-पूजन आदि साधनोंसे भगवान्में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है ॥ ३०-३१ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें विराजमान हैं—ऐसी भावनासे यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करे और हृदयसे उनका सम्मान करे ॥ ३२ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भगवान्की साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उस भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३३ ॥

जब भगवान्के लीलाशरीरोंसे किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको श्रवण करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम-रोम खिल

उठता है, आँसुओंके मारे कण्ठ गद्गद हो जाता है और वह सङ्कोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है; जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है, कभी करुण-क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावसे लोगोंकी वन्दना करने लगता है; जब वह भगवान्‌में ही तन्मय हो जाता है, बार-बार लंबी साँस खींचता है और सङ्कोच छोड़कर 'हरे ! जगत्पते !! नारायण !!!' कह-कर पुकारने लगता है—तब भक्तियोगके महान् प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मृत्युके बीजोंका खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लेता है ॥ ३४—३६ ॥ इस अशुभ संसारके दल-दलमें फँसकर अशुभमय हो जानेवाले जीवके लिये भगवान्‌की वह प्राप्ति संसारके चक्करको मिटा देनेवाली है। इसी वस्तुको कोई विद्वान् ब्रह्म और कोई निर्वाण-सुखके रूपमें पहचानते हैं। इसलिये मित्रो ! तुम-लोग अपने-अपने हृदयमें हृदयेश्वर भगवान्‌का भजन करो ॥ ३७ ॥ असुरकुमारो ! अपने हृदयमें ही आकाश-के समान नित्य विराजमान भगवान्‌का भजन करनेमें कौन-सा विशेष परिश्रम है। वे समानरूपसे समस्त प्राणियोंके अत्यन्त प्रेमी मित्र हैं; और तो क्या, अपने आत्मा ही हैं। उनको छोड़कर भोगसामग्री इकट्ठी करने-के लिये भटकना—राम ! राम ! कितनी मूर्खता है ॥ ३८ ॥ अरे भाई ! धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भाँति-भाँतिकी विभू-तियाँ—और तो क्या, संसारका समस्त धन तथा भोग-सामग्रियाँ इस क्षणभङ्गुर मनुष्यको क्या सुख दे सकती हैं। वे स्वयं ही क्षणभङ्गुर हैं ॥ ३९ ॥ जैसे इस लोककी सम्पत्ति प्रत्यक्ष ही नाशवान् है, वैसे ही यज्ञोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि लोक भी नाशवान् और आपेक्षिक—एक दूसरेसे छोटे-बड़े, नीचे-ऊँचे हैं। इसलिये वे भी निर्दोष नहीं हैं। निर्दोष हैं केवल परमात्मा। न किसीने उनमें दोष देखा है और न सुना है। अतः परमात्माकी प्राप्तिके लिये अनन्य भक्तिसे उन्हीं परमेश्वरका भजन न चाहिये ॥ ४० ॥

इसके सिवा अपनेको बड़ा विद्वान् माननेवाला पुरुष इस लोकमें जिस उद्देश्यसे बार-बार बहुत-से कर्म करता है, उस उद्देश्यकी प्राप्ति तो दूर रही—उलटा उसे उसके विपरीत ही फल मिलता है और निस्सन्देह मिलता है ॥ ४१ ॥ कर्ममें प्रवृत्त होनेके दो ही उद्देश्य होते हैं—सुख पाना और दुःखसे छूटना। परन्तु जो पहले कामना न होनेके कारण सुखमें निमग्न रहता था, उसे ही अब कामनाके कारण यहाँ सदा-सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है ॥ ४२ ॥ मनुष्य इस लोकमें सकाम कर्मोंके द्वारा जिस शरीरके लिये भोग प्राप्त करना चाहता है, वह शरीर ही पराया—स्यार-कुत्तोंका भोजन और नाशवान् है। कभी वह मिल जाता है तो कभी बिछुड़ जाता है ॥ ४३ ॥ जब शरीरकी ही यह दशा है—तब इससे अलग रहनेवाले पुत्र, स्त्री, महल, धन, सम्पत्ति, राज्य, खजाने, हाथी-घोड़े, मन्त्री, नौकर-चाकर, गुरु-जन और दूसरे अपने कहलानेवालोंकी तो बात ही क्या है ॥ ४४ ॥ ये तुच्छ विषय शरीरके साथ ही नष्ट हो जाते हैं। ये जान तो पड़ते हैं पुरुषार्थके समान, परन्तु हैं वास्तवमें अनर्थरूप ही। आत्मा स्वयं ही अनन्त आनन्दका महान् समुद्र है। उसके लिये इन वस्तुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ४५ ॥ भाइयो ! तनिक विचार तो करो—जो जीव गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त सभी अवस्थाओंमें अपने कर्मोंके अधीन होकर क्लेश-ही-क्लेश भोगता है, उसका इस संसारमें स्वार्थ ही क्या है ॥ ४६ ॥ यह जीव सूक्ष्मशरीरको ही अपना आत्मा मानकर उसके द्वारा अनेकों प्रकारके कर्म करता है और कर्मोंके कारण ही फिर शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार कर्मसे शरीर और शरीरसे कर्मकी परम्परा चल पड़ती है। और ऐसा होता है अविवेकके कारण ॥ ४७ ॥ इसलिये निष्काम भावसे निष्क्रिय आत्मस्वरूप भगवान् श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अर्थ, धर्म और काम—सब उन्हींके आश्रित हैं, बिना उनकी इच्छाके नहीं मिल सकते ॥ ४८ ॥ भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंके ईश्वर, आत्मा और परम प्रियतम हैं। वे अपने ही बनाये हुए पञ्चभूत और सूक्ष्मभूत आदिके द्वारा निर्मित शरीरोंमें जीवके नामसे कहे जाते हैं ॥ ४९ ॥ देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा

गन्धर्व—कोई भी क्यों न हो—जो भगवान्के चरण-कमलोंका सेवन करता है, वह हमारे ही समान कल्याणका भाजन होता है ॥ ५० ॥

दैत्यबालको! भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविध ज्ञानोंसे सम्पन्न होना तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच और बड़े-बड़े व्रतोंका अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान् केवल निष्काम प्रेम-भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं। और सब तो विडम्बनामात्र हैं ॥ ५१-५२ ॥ इसलिये दानव-बन्धुओ! समस्त प्राणियोंको अपने समान ही समझकर सर्वत्र विराजमान, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान्की भक्ति करो ॥ ५३ ॥ भगवान्की भक्तिके प्रभावसे दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र, गोपालक अहीर, पक्षी, मृग और बहुत-से पापी जीव भी भगवद्भावको प्राप्त हो गये हैं ॥ ५४ ॥ इस संसारमें या मनुष्य-शरीरमें जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् एकमात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्ति प्राप्त करे। उस भक्तिका स्वरूप है सर्वदा, सर्वत्र सब वस्तुओंमें भगवान्का दर्शन ॥ ५५ ॥
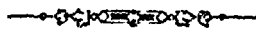
आठवाँ अध्याय

नृसिंहभगवान्का प्रादुर्भाव, हिरण्यकशिपुका वध एवं ब्रह्मादि देवताओंका भगवान्की स्तुति

नारदजी कहते हैं—प्रह्लादजीका प्रवचन सुनकर दैत्यबालकोंने उसी समयसे, निर्दोष होनेके कारण, उनकी बात पकड़ ली। गुरुजीकी दूषित शिक्षाकी ओर उन्होंने ध्यान ही न दिया ॥ १ ॥ जब गुरुजीने देखा कि उन सभी विद्यार्थियोंकी बुद्धि एकमात्र भगवान्में स्थिर हो रही है, तब वे बहुत घबराये और तुरंत हिरण्यकशिपुके पास जाकर निवेदन किया ॥ २ ॥ अपने पुत्र प्रह्लादकी इस असह्य और अप्रिय अनीतिको सुनकर क्रोधके मारे उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि प्रह्लादको अब अपने ही हाथसे मार डालना चाहिये ॥ ३ ॥

मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले प्रह्लादजी बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर चुपचाप हिरण्यकशिपुके सामने खड़े थे और तिरस्कारके सर्वथा अयोग्य थे। परन्तु हिरण्यकशिपु स्वभावसे ही क्रूर था। वह पैरकी चोट खाये हुए साँपकी तरह फुफकारने लगा। उसने उनकी ओर पापभरी टेढ़ी नजरसे देखा और कठोर वाणीसे डाँटते हुए कहा ॥ ४-५ ॥ 'मूर्ख! तू बड़ा उद्दण्ड हो गया है। स्वयं तो नीच है ही, अब हमारे कुलके और बालकोंको भी फोड़ना चाहता है! तूने बड़ी ढिठाईसे मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है। आज ही तुझे यमराजके घर भेजकर इसका फल चखाता हूँ ॥ ६ ॥ मैं तनिक-सा क्रोध करता हूँ, तो तीनों लोक और उनके लोकपाल काँप उठते हैं। फिर मूर्ख! तूने किसके बल-बूतेपर निडरकी तरह मेरी आज्ञाके विरुद्ध काम किया है?' ॥ ७ ॥

प्रह्लादजीने कहा—दैत्यराज! ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक सब छोटे-बड़े, चर-अचर जीवोंको भगवान्ने ही अपने वशमें कर रक्खा है। न केवल मेरे और आपके, बल्कि संसारके समस्त बलवानोंके बल भी केवल वही हैं ॥ ८ ॥ वे ही महापराक्रमी सर्वशक्तिमान् प्रभु काल हैं तथा समस्त प्राणियोंके इन्द्रियबल, मनोबल, देहबल, धैर्य एवं इन्द्रिय भी वही हैं। वही परमेश्वर अपनी शक्तियोंके द्वारा इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं। वे ही तीनों गुणोंके स्वामी हैं ॥ ९ ॥ आप अपना यह आसुर भाव छोड़ दीजिये। अपने मनको सबके प्रति समान बनाइये। इस संसारमें अपने वशमें न रहनेवाले कुमार्गगामी मनके अतिरिक्त और कोई शत्रु नहीं है। मनमें सबके प्रति समताका भाव लाना ही भगवान्की सबसे बड़ी पूजा है ॥ १० ॥ जो लोग अपना सर्वस्व लूटनेवाले इन छः इन्द्रियरूपी डाकुओं-

पर तो पहले विजय नहीं प्राप्त करते और ऐसा मानने लगते हैं कि हमने दसों दिशाएँ जीत लीं, वे मूर्ख हैं। हाँ, जिस ज्ञानी एवं जितेन्द्रिय महात्माने समस्त प्राणियोंके प्रति समताका भाव प्राप्त कर लिया, उसके अज्ञानसे पैदा होनेवाले काम-क्रोधादि शत्रु भी मर-मिट जाते हैं; फिर बाहरके शत्रु तो रहें ही कैसे ॥ ११ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—रे मन्दबुद्धि !. तेरे बहकनेकी भी अब हद हो गयी। यह बात स्पष्ट है कि अब तू मरना चाहता है। क्योंकि जो मरना चाहते हैं, वे ही ऐसी बेसिर-पैरकी बातें बका करते हैं ॥ १२ ॥ अभागे! तूने मेरे सिवा जो और किसीको जगत्का स्वामी बतलाया है, सो देखूँ तो तेरा वह जगदीश्वर कहाँ है। अच्छा, क्या कहा वह सर्वत्र है? तो इस खंभेमें क्यों नहीं दीखता? ॥१३॥ अच्छा, तुझे इस खंभेमें भी दिखायी देता है! अरे, तू क्यों इतनी डींग हाँक रहा है? मैं अभी-अभी तेरा सिर धड़से अलग किये देता हूँ। देखता हूँ तेरा वह सर्वस्व हरि, जिसपर तुझे इतना भरोसा है, तेरी कैसे रक्षा करता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार वह अत्यन्त बलवान् महादैत्य भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लादको बार-बार झिड़कियाँ देता और सताता रहा। जब क्रोधके मारे वह अपनेको रोक न सका, तब हाथमें खड्ग लेकर सिंहासनसे कूद पड़ा और बड़े जोरसे उस खंभेको एक घूँसा मारा ॥ १५ ॥ उसी समय उस खंभेमें एक बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ। ऐसा जान पड़ा मानो यह ब्रह्माण्ड ही फट गया हो। वह ध्वनि जब लोकपालोंके लोकमें पहुँची, तब उसे सुनकर ब्रह्मादिको ऐसा जान पड़ा मानो उनके लोकोंका प्रलय हो रहा हो ॥ १६ ॥ हिरण्यकशिपु प्रह्लादको मार डालनेके लिये बड़े जोरसे झपटा था; परन्तु दैत्यसेनापतियोंको भी भयसे कँपा देनेवाले उस अद्भुत और अपूर्व घोर शब्दको सुनकर वह घबराया हुआ-सा देखने लगा कि यह शब्द करनेवाला कौन है। परन्तु उसे सभाके भीतर कुछ भी दिखायी न पड़ा ॥ १७ ॥

इसी समय अपने सेवक प्रह्लाद और ब्रह्माकी वाणी सत्य करने और समस्त पदार्थोंमें अपनी व्यापकता दिखानेके लिये सभाके भीतर उसी खंभेमें बड़ा ही विचित्र रूप धारण करके भगवान् प्रकट हुए। वह रूप न तो पूरा-पूरा सिंहका ही था और न मनुष्यका ही ॥ १८ ॥ जिस समय हिरण्यकशिपु शब्द करनेवालेकी इधर-उधर खोज कर रहा था, उसी समय खंभेके भीतरसे निकलते हुए उस अद्भुत प्राणीको उसने देखा। वह सोचने लगा—अहो, यह न तो मनुष्य है और न पशु; फिर यह नृसिंहके रूपमें कौन-सा अलौकिक जीव है! ॥ १९ ॥ जिस समय हिरण्यकशिपु इस उधेड़-बुनमें लगा हुआ था, उसी समय उसके बिल्कुल सामने ही नृसिंहभगवान् खड़े हो गये। उनका वह रूप अत्यधिक भयावना था। तपाये हुए सोनेके समान पीली-पीली भयानक आँखें थीं। जँभाई लेनेसे गरदनके बाल इधर-उधर लहरा रहे थे ॥ २० ॥ दाढ़ें बड़ी विकराल थीं। तलवारकी तरह लपलपाती हुई, छूरेकी धारके समान तीखी जीभ थी। टेढ़ी भौंहोंसे उनका मुख और भी दारुण हो रहा था। कान निश्चल एवं ऊपरकी ओर उठे हुए थे। फूली हुई नासिका और खुला हुआ मुँह पहाड़की गुफाके समान अद्भुत जान पड़ता था। फटे हुए जबड़ोंसे उसकी भयङ्करता बहुत बढ़ गयी थी ॥ २१ ॥ विशाल शरीर स्वर्गका स्पर्श कर रहा था। गरदन कुछ नाटी और मोटी थी। छाती चौड़ी और कमर बहुत पतली थी। चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद रोएँ सारे शरीरपर चमक रहे थे, चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली हुई थीं, जिनके बड़े-बड़े नख आयुधका काम देते थे ॥ २२ ॥ उनके पास फटकनेतकका साहस किसीको न होता था। चक्र आदि अपने निज आयुध तथा वज्र आदि अन्य श्रेष्ठ शस्त्रोंके द्वारा उन्होंने सारे दैत्य-दानवोंको भगा दिया। हिरण्यकशिपु सोचने लगा—हो-न-हो महामायावी विष्णुने ही मुझे मार डालनेके लिये यह ढंग रचा है; परन्तु इसकी इन चालोंसे हो ही क्या सकता है ॥ २३ ॥

इस प्रकार कहता और सिंहनाद करता हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु हाथमें गदा लेकर नृसिंह-भगवान्‌पर टूट पड़ा। परन्तु जैसे पतिंगा आगमें गिरकर अदृश्य हो जाता है, वैसे ही वह दैत्य भगवान्-

भगवान् नृसिंहजी

हिरण्यकशिपु हाथमें गदा लेकर भगवान्की ओर लपका।

[पृष्ठ ४१०

के तेजके भीतर जाकर लापता हो गया ॥ २४ ॥ समस्त शक्ति और तेजके आश्रय भगवान्‌के सम्बन्धमें ऐसी घटना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। क्योंकि सृष्टि-के प्रारम्भमें उन्होंने अपने तेजसे प्रलयके निमित्तभूत तमोगुणरूपी घोर अन्धकारको भी पी लिया था। तदनन्तर वह दैत्य बड़े क्रोधसे लपका और अपनी गदाको बड़े जोरसे घुमाकर उसने नृसिंहभगवान्‌पर प्रहार किया ॥ २५ ॥ प्रहार करते समय ही—जैसे गरुड़ साँपको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान्‌ने गदासहित उस दैत्यको पकड़ लिया। वे जब उसके साथ खिलवाड़ करने लगे, तब वह दैत्य उनके हाथसे वैसे ही निकल गया, जैसे क्रीडा करते हुए गरुड़के चंगुलसे साँप छूट जाय ॥ २६ ॥ युधिष्ठिर! उस समय सब-के-सब लोकपाल बादलोंमें छिपकर इस युद्धको देख रहे थे। उनका स्वर्ग तो हिरण्यकशिपुने पहले ही छीन लिया था। जब उन्होंने देखा कि वह भगवान्‌के हाथसे छूट गया, तब वे और भी डर गये। हिरण्यकशिपुने भी यही समझा कि नृसिंहने मेरे बल-वीर्यसे डरकर ही मुझे अपने हाथसे छोड़ दिया है। इस विचारसे उसकी थकान जाती रही और वह युद्धके लिये ढाल-तलवार लेकर फिर उनकी ओर दौड़ पड़ा ॥ २७ ॥ उस समय वह बाजकी तरह बड़े वेगसे ऊपर-नीचे उछल-कूदकर इस प्रकार ढाल-तलवारके पैंतरे बदलने लगा कि जिससे उसपर आक्रमण करनेका अवसर ही न मिले। तब भगवान्‌ने बड़े ऊँचे स्वरसे प्रचण्ड और भयङ्कर अट्टहास किया, जिससे हिरण्यकशिपुकी आँखें बंद हो गयीं। फिर बड़े वेगसे झपटकर भगवान्‌ने उसे वैसे ही पकड़ लिया, जैसे साँप चूहेको पकड़ लेता है। जिस हिरण्यकशिपुके चमड़ेपर वज्रकी चोटसे भी खरोंच नहीं आयी थी, वही अब उनके पंजेसे निकलनेके लिये जोरसे छटपटा रहा था। भगवान्‌ने सभाके दरवाजेपर ले जाकर उसे अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और खेल-खेलमें अपने नखोंसे उसे उसी प्रकार फाड़ डाला, जैसे गरुड़ महाविषधर साँपको चीर डालते हैं ॥ २८-२९ ॥ उस समय उनकी क्रोधसे भरी विकराल आँखोंकी ओर देखा नहीं जाता था। वे अपनी लपलपाती हुई जीभसे फैले हुए मुँहके दोनों कोने चाट रहे थे। खूनके छींटोंसे उनका मुँह और गरदनके बाल लाल हो रहे थे। हाथीको मारकर गलेमें आँतोंकी माला पहने हुए मृगराजके समान उनकी शोभा हो रही थी ॥ ३० ॥ उन्होंने अपने तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुका कलेजा फाड़कर उसे जमीनपर पटक दिया। उस समय हजारों दैत्य-दानव हाथोंमें शस्त्र लेकर भगवान्‌पर प्रहार करनेके लिये आये। पर भगवान्‌ने अपनी भुजारूपी सेनासे, लातोंसे और नख-रूपी शस्त्रोंसे चारों ओर खदेड़-खदेड़कर उन्हें मार डाला ॥ ३१ ॥

युधिष्ठिर! उस समय भगवान् नृसिंहके गरदनके बालोंकी फटकारसे बादल तितर-बितर होने लगे। उनके नेत्रोंकी ज्वालासे सूर्य आदि ग्रहोंका तेज फीका पड़ गया। उनके श्वासके धक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो गये। उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज चिग्घाड़ने लगे ॥ ३२ ॥ उनके गरदनके बालोंसे टकराकर देवताओं-के विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगा गया। उनके पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, वेगसे पर्वत उड़ने लगे और उनके तेजकी चकाचौंधसे आकाश तथा दिशाओंका दीखना बंद हो गया ॥ ३३ ॥ इस समय नृसिंहभगवान्‌का सामना करनेवाला कोई दिखायी न पड़ता था। फिर भी उनका क्रोध अभी बढ़ता ही जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे सिंहासन-पर जाकर विराज गये। उस समय उनके अत्यन्त तेजपूर्ण और क्रोधभरे भयङ्कर चेहरेको देखकर किसीका भी साहस न हुआ कि उनके पास जाकर उनकी सेवा करे ॥ ३४ ॥

युधिष्ठिर! जब स्वर्गकी देवियोंको यह शुभ समाचार मिला कि तीनों लोकोंके सिरकी पीडाका मूर्तिमान् स्वरूप हिरण्यकशिपु युद्धमें भगवान्‌के हाथों मार डाला गया, तब आनन्दके उल्लाससे उनके चेहरे खिल उठे। वे बार-बार भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ३५ ॥ आकाशमें विमानोंसे आये हुए भगवान्‌के दर्शनार्थी देवताओंकी भीड़ लग गयी। देवताओंके ढोल और नगारे बजने लगे। गन्धर्वराज गाने लगे, अप्सराएँ नाचने

लगीं ॥ ३६ ॥ तात ! इसी समय ब्रह्मा, इन्द्र, शङ्कर आदि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर और सुनन्द-कुमुद आदि भगवान्‌के सभी पार्षद उनके पास आये। उन लोगोंने सिरपर अञ्जलि बाँधकर सिंहासनपर विराजमान अत्यन्त तेजस्वी नृसिंहभगवान्‌की थोड़ी दूरसे अलग-अलग स्तुति की ॥ ३७—३९ ॥

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो ! आप अनन्त हैं। आपकी शक्तिका कोई पार नहीं पा सकता। आपका पराक्रम विचित्र और कर्म पवित्र हैं। यद्यपि गुणोंके द्वारा आप लीलासे ही सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति, पालन और प्रलय यथोचित ढंगसे करते हैं—फिर भी आप उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, स्वयं निर्विकार रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४० ॥

श्रीरुद्रने कहा—आपके क्रोध करनेका समय तो कल्पके अन्तमें होता है। यदि इस तुच्छ दैत्यको मारनेके लिये ही आपने क्रोध किया है तो वह भी मारा जा चुका। उसका पुत्र आपकी शरणमें आया है। भक्त-वत्सल प्रभो ! आप अपने इस भक्तकी रक्षा कीजिये ॥ ४१ ॥

इन्द्रने कहा—पुरुषोत्तम ! आपने हमारी रक्षा की है। आपने हमारे जो यज्ञभाग लौटाये हैं, वे वास्तवमें आप (अन्तर्यामी) के ही हैं। दैत्योंके आतङ्कसे सङ्कुचित हमारे हृदयकमलको आपने प्रफुल्लित कर दिया। वह भी आपका ही निवासस्थान है। यह जो स्वर्गादि-का राज्य हमलोगोंको पुनः प्राप्त हुआ है, यह सब कालका ग्रास है। जो आपके सेवक हैं, उनके लिये यह है ही क्या। स्वामिन् ! जिन्हें आपकी सेवाकी चाह है, वे मुक्तिका भी आदर नहीं करते। फिर अन्य भोगोंकी तो उन्हें आवश्यकता ही क्या है ॥ ४२ ॥

ऋषियोंने कहा—पुरुषोत्तम ! आपने तपस्याके द्वारा ही अपनेमें लीन हुए जगत्‌की फिरसे रचना की थी और कृपा करके उसी आत्मतेजःस्वरूप श्रेष्ठ तपस्याका उपदेश आपने हमारे लिये भी किया था। इस दैत्यने उसी तपस्याका उच्छेद कर दिया था। शरणागतवत्सल ! उस तपस्याकी रक्षाके लिये अवतार ग्रहण करके आपने हमारे लिये फिरसे उसी उपदेशका अनुमोदन किया है ॥ ४३ ॥

पितरोंने कहा—प्रभो ! हमारे पुत्र हमारे लिये पिण्डदान करते थे, यह उन्हें बलात् छीनकर खा जाया करता था। जब वे पवित्र तीर्थमें या संक्रान्ति आदिके अवसरपर नैमित्तिक तर्पण करते या तिलाञ्जलि देते, तब उसे भी यह पी जाता। आज आपने अपने नखोंसे उसका पेट फाड़कर वह सब-का-सब लौटाकर मानो हमें दे दिया। आप समस्त धर्मोंके एकमात्र रक्षक हैं। नृसिंहदेव ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥

सिद्धोंने कहा—नृसिंहदेव ! इस दुष्टने अपने योग और तपस्याके बलसे हमारी योगसिद्ध गति छीन ली थी। अपने नखोंसे आपने उस घमंडीको फाड़ डाला है। हम आपके चरणोंमें विनीत भावसे नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

विद्याधरोंने कहा—यह मूर्ख हिरण्यकशिपु अपने बल और वीरताके घमंडमें चूर था। यहाँतक कि हम-लोगोंने विविध धारणाओंसे जो विद्या प्राप्त की थी, उसे इसने व्यर्थ कर दिया था। आपने युद्धमें यज्ञपशुकी तरह इसको नष्ट कर दिया। अपनी लीलासे नृसिंह बने हुए आपको हम नित्य-निरन्तर प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥

नागोंने कहा—इस पापीने हमारी मणियों और हमारी श्रेष्ठ और सुन्दर स्त्रियोंको भी छीन लिया था। आज उसकी छाती फाड़कर आपने हमारी पत्नियोंको बड़ा आनन्द दिया है। प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥

मनुओंने कहा—देवाधिदेव ! हम आपके आज्ञा-कारी मनु हैं। इस दैत्यने हमलोगोंकी धर्ममर्यादा भंग कर दी थी। आपने उस दुष्टको मारकर बड़ा उपकार किया है। प्रभो ! हम आपके सेवक हैं। आज्ञा कीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ ४८ ॥

प्रजापतियोंने कहा—परमेश्वर ! आपने हमें प्रजा-पति बनाया था। परन्तु इसके रोक देनेसे हम प्रजाकी सृष्टि नहीं कर पाते थे। आपने इसकी छाती फाड़ डाली और यह जमीनपर सर्वदाके लिये सो गया। सत्त्वमय

ूर्ति धारण करनेवाले प्रभो ! आपका यह अवतार संसारके कल्याणके लिये है ॥ ४९ ॥

गन्धर्वोंने कहा—प्रभो ! हम आपके नाचनेवाले, अभिनय करनेवाले और संगीत सुनानेवाले सेवक हैं। इस दैत्यने अपने बल, वीर्य और पराक्रमसे हमें अपना गुलाम बना रक्खा था। उसे आपने इस दशाको पहुँचा दिया। सच है, कुमार्गसे चलनेवालेका भी क्या कभी कल्याण हो सकता है ? ॥ ५० ॥

चारणोंने कहा—प्रभो ! आपने सज्जनोंके हृदयको पीड़ा पहुँचानेवाले इस दुष्टको समाप्त कर दिया। इसलिये हम आपके उन चरणकमलोंकी शरणमें हैं, जिनके प्राप्त होने ही जन्म-मृत्युरूप संसारचक्रसे छुटकारा मिल जाता है ॥ ५१ ॥

यक्षोंने कहा—भगवन् ! अपने श्रेष्ठ कर्मोंके कारण हमलोग आपके सेवकोंमें प्रधान गिने जाते थे। परन्तु हिरण्यकशिपुने हमें अपनी पालकी ढोनेवाला कहार बना दिया। प्रकृतिके नियामक परमात्मा ! इसके कारण होनेवाले अपने निजजनोंके कष्ट जानकर ही आपने इसे मार डाला है ॥ ५२ ॥

किम्पुरुषोंने कहा—हमलोग अत्यन्त तुच्छ किम्पुरुष हैं और आप सर्वशक्तिमान् महापुरुष हैं। जब सत्पुरुषोंने इसका तिरस्कार किया—इसे धिक्कारा, तभी आज आपने इस कुपुरुष—असुराधमको नष्ट कर दिया ॥५३॥

वैतालिकोंने कहा—भगवन् ! बड़ी-बड़ी सभाओं और ज्ञानयज्ञोंमें आपके निर्मल यशका गान करके हम बड़ी प्रतिष्ठा-पूजा प्राप्त करते थे। इस दुष्टने हमारी वह आजीविका ही नष्ट कर दी थी। बड़े सौभाग्यकी बात है कि महारोगके समान इस दुष्टको आपने जड़-मूलसे उखाड़ दिया ॥ ५४ ॥

किन्नरोंने कहा—हम किन्नरगण आपके सेवक हैं। यह दैत्य हमसे बेगारमें ही काम लेता था। भगवन् ! आपने कृपा करके आज इस पापीको नष्ट कर दिया। प्रभो ! आप इसी प्रकार हमारा अभ्युदय करते रहें ॥ ५५ ॥

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—शरणागतवत्सल ! सम्पूर्ण लोकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला आपका यह अलौकिक नृसिंहरूप हमने आज ही देखा है। भगवन्! यह दैत्य आपका वही आज्ञाकारी सेवक था, जिसे सनकादिने शाप दे दिया था। हम समझते हैं, आपने कृपा करके इसके उद्धारके लिये ही इसका वध किया है ॥ ५६ ॥

नवाँ अध्याय

प्रह्लादजीके द्वारा नृसिंह भगवान्‌की स्तुति

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार ब्रह्मा, शंकर आदि सभी देवगण नृसिंहभगवान्‌के क्रोधावेशको शान्त न कर सके और न उनके पास जा सके। किसीको उसका ओर-छोर नहीं दीखता था ॥ १ ॥ देवताओंने उन्हें शान्त करनेके लिये स्वयं लक्ष्मीजीको भेजा। उन्होंने जाकर जब नृसिंहभगवान्‌का वह महान् अद्भुत रूप देखा, तब भयवश वे भी उनके पासतक न जा सकीं। उन्होंने ऐसा अनूठा रूप न कभी देखा और न सुना ही था ॥ २ ॥ तब ब्रह्माजीने अपने पास ही खड़े प्रह्लादको यह कहकर भेजा कि 'बेटा ! तुम्हारे पितापर ही तो भगवान् कुपित हुए थे। अब तुम्हीं उनके पास जाकर उन्हें शान्त करो ॥ ३ ॥ भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लाद 'जो आज्ञा' कहकर और धीरेसे भगवान्‌के पास जाकर हाथ जोड़ पृथ्वीपर साष्टाङ्ग लोट गये ॥ ४ ॥ नृसिंहभगवान्‌ने देखा कि नन्हा-सा बालक मेरे चरणोंके पास पड़ा हुआ है। उनका हृदय दयासे भर गया। उन्होंने प्रह्लादको उठाकर उनके सिरपर अपना वह कर-कमल रख दिया, जो कालसर्पसे भयभीत पुरुषोंको अभयदान करनेवाला है ॥ ५ ॥ भगवान्‌के करकमलोंका स्पर्श होते ही उनके बचे-खुचे अशुभ संस्कार भी झड़ गये। तत्काल उन्हें परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार हो गया। उन्होंने बड़े प्रेम और आनन्दमें मग्न होकर भगवान्‌के चरणकमलोंको

अपने हृदयमें धारण किया । उस समय उनका सारा शरीर पुलकित हो गया, हृदयमें प्रेमकी धारा प्रवाहित होने लगी और नेत्रोंसे आनन्दाश्रु झरने लगे ॥ ६ ॥ प्रह्लादजी भावपूर्ण हृदय और निर्निमेष नयनोंसे भगवान्‌को देख रहे थे । भावसमाधिसे स्वयं एकाग्र हुए मनके द्वारा उन्होंने भगवान्‌के गुणोंका चिन्तन करते हुए प्रेमगद्गद वाणीसे स्तुति की ॥ ७ ॥

प्रह्लादजीने कहा—ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि-मुनि और सिद्ध पुरुषोंकी बुद्धि निरन्तर सत्त्वगुणमें ही स्थित रहती है । फिर भी वे अपनी धारा-प्रवाह स्तुति और अपने विविध गुणोंसे आपको अबतक भी सन्तुष्ट नहीं कर सके । फिर मैं तो घोर असुर जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ । क्या आप मुझसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ? ॥ ८ ॥ मैं समझता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग—ये सभी गुण परमपुरुष भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं । परन्तु भक्तिसे तो भगवान् गजेन्द्रपर भी सन्तुष्ट हो गये थे ॥ ९ ॥ मेरी समझसे इन बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरण-कमलोंसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर रक्खे हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलतकको पवित्र कर देता है और बड़प्पनका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता ॥ १० ॥ सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही परिपूर्ण हैं । उन्हें अपने लिये क्षुद्र पुरुषोंसे पूजा ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है । वे करुणावश ही भोले भक्तोंके हितके लिये उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं । जैसे अपने मुखका सौन्दर्य दर्पणमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही भक्त भगवान्‌के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ इसलिये सर्वथा अयोग्य और अनधिकारी होनेपर भी मैं बिना किसी शङ्काके अपनी बुद्धिके अनुसार सब प्रकारसे भगवान्‌की महिमाका वर्णन कर रहा हूँ । इस महिमाके गानका ही ऐसा प्रभाव है कि अविद्यावश संसार-चक्रमें पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है ॥ १२ ॥

भगवन् ! आप सत्त्वगुणके आश्रय हैं । ये ब्रह्मा आदि सभी देवता आपके आज्ञाकारी भक्त हैं । ये हम दैत्योंकी तरह आपसे द्वेष नहीं करते । प्रभो ! आप बड़े-बड़े सुन्दर-सुन्दर अवतार ग्रहण करके इस जगत्‌के कल्याण एवं अभ्युदयके लिये तथा उसे आत्मानन्दकी प्राप्ति करानेके लिये अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करते हैं ॥ १३ ॥ जिस असुरको मारनेके लिये आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका । अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिये । जैसे बिच्छू और साँपकी मृत्युसे सज्जन भी सुखी ही होते हैं, वैसे ही इस दैत्यके संहारसे सभी लोगोंको बड़ा सुख मिला है । अब सब आपके शान्त स्वरूपके दर्शनकी बाट जोह रहे हैं । नृसिंहदेव ! भयसे मुक्त होनेके लिये भक्तजन आपके इस रूपका स्मरण करेंगे ॥ १४ ॥ परमात्मन् ! आपका मुख बड़ा भयावना है । आपकी जीभ लपलपा रही है । आँखें सूर्यके समान हैं । भौंहें चढ़ी हुई हैं । बड़ी पैनी दाढ़ें हैं । आँतोंकी माला, खूनसे लथपथ गरदनके बाल, बर्छेकी तरह सीधे खड़े कान और दिग्गजोंको भी भयभीत कर देनेवाला सिंहनाद एवं शत्रुओंको फाड़ डालनेवाले आपके इन नखोंको देखकर मैं तनिक भी भयभीत नहीं हुआ हूँ ॥ १५ ॥ दीनबन्धो ! मैं भयभीत हूँ तो केवल इस असह्य और उग्र संसार-चक्रमें पिसनेसे । मैं अपने कर्मपाशोंसे बँधकर इन भयङ्कर जन्तुओंके बीचमें डाल दिया गया हूँ । मेरे स्वामी ! आप प्रसन्न होकर मुझे कब अपने उन चरणकमलोंमें बुलायेंगे, जो समस्त जीवोंकी एकमात्र शरण और मोक्षस्वरूप हैं ? ॥ १६ ॥ अनन्त ! मैं जिन-जिन योनियोंमें गया, उन सभी योनियोंमें प्रियके वियोग और अप्रियके संयोगसे होनेवाले शोककी आगमें झुलसता रहा । उन दुःखोंको मिटानेकी जो दवा है, वह भी दुःखरूप ही है । मैं न जाने कबसे अपनेसे अतिरिक्त वस्तुओंको आत्मा समझकर इधर-उधर भटक रहा हूँ । अब आप ऐसा साधन बतलाइये जिससे कि

आपकी सेवा—भक्ति प्राप्त कर सकूँ ॥१७॥ प्रभो ! आप हमारे प्रिय हैं। अहैतुक हितैषी सुहृद् हैं। आप ही वास्तवमें सबके परमाराध्य हैं। मैं ब्रह्माजीके द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाओंका गान करता हुआ बड़ी सुगमतासे रागादि प्राकृत गुणोंसे मुक्त होकर इस संसारकी कठिनाइयोंको पार कर जाऊँगा। क्योंकि आपके चरणयुगलोंमें रहनेवाले भक्त परमहंस महात्माओंका सङ्ग तो मुझे मिलता ही रहेगा ॥ १८ ॥ भगवान् नृसिंह! इस लोकमें दुखी जीवोंका दुःख मिटानेके लिये जो उपाय माना जाता है, वह आपके उपेक्षा करनेपर एक क्षणके लिये ही होता है। यहाँतक कि मा-बाप बालककी रक्षा नहीं कर सकते, ओषधि रोग नहीं मिटा सकती और समुद्रमें डूबते हुएको नौका नहीं बचा सकती ॥ १९ ॥ सत्त्वादि गुणोंके कारण भिन्न-भिन्न स्वभावके जितने भी ब्रह्मादि श्रेष्ठ और कालादि कनिष्ठ कर्ता हैं, उनको प्रेरित करनेवाले आप ही हैं। वे आपकी प्रेरणासे जिस आधारमें स्थित होकर जिस निमित्तसे जिन मिट्टी आदि उपकरणोंसे जिस समय जिन साधनोंके द्वारा जिस अदृष्ट आदिकी सहायतासे जिस प्रयोजनके उद्देश्यसे जिस विधिसे जो कुछ उत्पन्न करते हैं या रूपान्तरित करते हैं, वे सब और वह सब आपका ही स्वरूप है ॥ २० ॥

पुरुषकी अनुमतिसे कालके द्वारा गुणोंमें क्षोभ होनेपर माया मनःप्रधान लिङ्गशरीरका निर्माण करती है। यह लिङ्गशरीर बलवान्, कर्ममय एवं अनेक नाम-रूपोंमें आसक्त—छन्दोमय है। यही अविद्याके द्वारा कल्पित मन, दस इन्द्रिय और पाँच तन्मात्रा—इन सोलह विकाररूप अरोंसे युक्त संसार-चक्र है। जन्मरहित प्रभो ! आपसे भिन्न रहकर ऐसा कौन पुरुष है, जो इस मनरूप संसार-चक्रको पार कर जाय ? ॥ २१ ॥ सर्वशक्तिमान् प्रभो ! माया इस सोलह अरोंवाले संसार-चक्रमें डालकर ईखके समान मुझे पेर रही है। आप अपनी चैतन्यशक्तिसे बुद्धिके समस्त गुणोंको सर्वदा पराजित रखते हैं और कालरूपसे सम्पूर्ण साध्य और साधनोंको अपने अधीन रखते हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे इससे बचाकर अपनी सन्निधिमें खींच लीजिये ॥ २२ ॥ भगवन् ! जिनके लिये संसारीलोग बड़े लालायित रहते हैं, स्वर्गमें मिलनेवाली समस्त लोकपालोंकी वह आयु, लक्ष्मी और ऐश्वर्य मैंने खूब देख लिये। जिस समय मेरे पिता तनिक क्रोध करके हँसते थे और उससे उनकी भौंहें थोड़ी टेढ़ी हो जाती थीं, तब उन स्वर्गकी सम्पत्तियोंके लिये कहीं ठिकाना नहीं रह जाता था, वे लुटती फिरती थीं। किन्तु आपने मेरे उन पिताको भी मार डाला ॥ २३ ॥ इसलिये मैं ब्रह्मलोकतककी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और वे इन्द्रियभोग, जिन्हें संसारके प्राणी चाहा करते हैं, नहीं चाहता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यन्त शक्तिशाली कालका रूप धारण करके आपने उन्हें ग्रस रक्खा है। इसलिये मुझे आप अपने दासोंकी सन्निधिमें ले चलिये ॥ २४ ॥ विषयभोगकी बातें सुननेमें ही अच्छी लगती हैं, वास्तवमें वे मृगतृष्णाके जलके समान नितान्त असत्य हैं और यह शरीर भी, जिससे वे भोग भोगे जाते हैं, अगणित रोगोंका उद्गम-स्थान है। कहाँ वे मिथ्या विषयभोग और कहाँ यह रोग-युक्त शरीर ! इन दोनोंकी क्षणभङ्गुरता और असारता जानकर भी मनुष्य इनसे विरक्त नहीं होता। वह कठिनाईसे प्राप्त होनेवाले भोगके नन्हे-नन्हे मधुबिन्दुओं-से अपनी कामनाकी आग बुझानेकी चेष्टा करता है !॥ २५ ॥ प्रभो! कहाँ तो इस तमोगुणी असुरवंशमें रजोगुणसे उत्पन्न हुआ मैं, और कहाँ आपकी अनन्त कृपा ! धन्य है ! आपने अपना परम प्रसादस्वरूप और सकलसन्तापहारी वह करकमल मेरे सिरपर रक्खा है, जिसे आपने ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मीजीके सिरपर भी कभी नहीं रक्खा ॥ २६ ॥ दूसरे संसारी जीवोंके समान आपमें छोटे-बड़ेका भेदभाव नहीं है; क्योंकि आप सबके आत्मा और अकारण प्रेमी हैं। फिर भी कल्प-वृक्षके समान आपका कृपा-प्रसाद भी सेवन-भजनसे ही प्राप्त होता है। सेवाके अनुसार ही जीवों-पर आपकी कृपाका उदय होता है, उसमें जातिगत उच्चता या नीचता कारण नहीं हैं ॥ २७ ॥ भगवन् ! यह संसार एक ऐसा अँधेरा कुआँ है, जिसमें कालरूप सर्प डँसनेके लिये सदा तैयार रहता है। विषय-भोगों-की इच्छावाले पुरुष उसीमें गिरे हुए हैं। मैं भी सङ्ग-वश उसके पीछे उसीमें गिरने जा रहा था। परन्तु भगवन्!

देवर्षि नारदने मुझे अपनाकर बचा लिया। तब भला, मैं आपके भक्तजनोंकी सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ।२८। अनन्त! जिस समय मेरे पिताने अन्याय करनेके लिये कमर कसकर हाथमें खड्ग ले लिया और वह कहने लगा कि 'यदि मेरे सिवा कोई और ईश्वर है तो तुझे बचा ले, मैं तेरा सिर काटता हूँ,' उस समय आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की और मेरे पिताका वध किया। मैं तो समझता हूँ कि आपने अपने प्रेमी भक्त सनकादि ऋषियोंका वचन सत्य करनेके लिये ही वैसा किया था॥ २९॥

भगवन्! यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं। क्योंकि इसके आदिमें आप ही कारणरूपसे थे, अन्तमें आप ही अवधिके रूपमें रहेंगे और बीचमें इसकी प्रतीतिके रूपमें भी केवल आप ही हैं। आप अपनी मायासे गुणोंके परिणामस्वरूप इस जगत्की सृष्टि करके इसमें पहलेसे विद्यमान रहनेपर भी प्रवेशकी लीला करते हैं और उन गुणोंसे युक्त होकर अनेक मालूम पड़ रहे हैं॥ ३०॥ भगवन्! यह जो कुछ कार्य-कारणके रूपमें प्रतीत हो रहा है, वह सब आप ही हैं और इससे भिन्न भी आप ही हैं। अपने-परायेका भेद-भाव तो अर्थहीन शब्दोंकी माया है; क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति, लय और प्रकाश होता है, वह उसका स्वरूप ही होता है—जैसे बीज और वृक्ष कारण और कार्यकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न हैं, तो भी गन्ध-तन्मात्रकी दृष्टिसे दोनों एक ही हैं॥ ३१॥

भगवन्! आप इस सम्पूर्ण विश्वको स्वयं ही अपनेमें समेटकर आत्मसुखका अनुभव करते हुए निष्क्रिय होकर प्रलयकालीन जलमें शयन करते हैं। उस समय अपने स्वयंसिद्ध योगके द्वारा बाह्य दृष्टिको बंद कर आप अपने स्वरूपके प्रकाशमें निद्राको विलीन कर लेते हैं और तुरीय ब्रह्मपदमें स्थित रहते हैं। उस समय आप न तो तमोगुणसे ही युक्त होते और न तो विषयोंको ही स्वीकार करते हैं॥ ३२॥ आप अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके गुणोंको प्रेरित करते हैं, इसलिये यह ब्रह्माण्ड आपका ही शरीर है। पहले यह आपमें ही लीन था। जब प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करनेवाले आपने योगनिद्राकी समाधि त्याग दी, तब वटके बीजसे विशाल वृक्षके समान आपकी नाभिसे ब्रह्माण्ड-कमल उत्पन्न हुआ॥ ३३॥ उसपर सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी प्रकट हुए। जब उन्हें कमलके सिवा और कुछ भी दिखायी न पड़ा, तब अपनेमें बीजरूपसे व्याप्त आपको वे न जान सके और आपको अपनेसे बाहर समझकर जलके भीतर घुसकर सौ वर्षतक ढूँढ़ते रहे। परन्तु वहाँ उन्हें कुछ नहीं मिला। यह ठीक ही है, क्योंकि अङ्कुर उग आनेपर उसमें व्याप्त बीजको कोई बाहर अलग कैसे देख सकता है॥ ३४॥ ब्रह्माको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हारकर कमलपर बैठ गये। बहुत समय बीतनेपर तीव्र तपस्या करनेसे जब उनका हृदय शुद्ध हो गया, तब उन्हें भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण-रूप अपने शरीरमें ही ओतप्रोतरूपसे स्थित आपके सूक्ष्मरूपका साक्षात्कार हुआ—ठीक वैसे ही जैसे पृथ्वीमें व्याप्त उसकी अति सूक्ष्म तन्मात्रा गन्धका होता है॥ ३५॥

विराट् पुरुष सहस्रों मुख, चरण, सिर, हाथ, जङ्घा, नासिका, मुख, कान, नेत्र, आभूषण और आयुधोंसे सम्पन्न था। चौदहों लोक उसके विभिन्न अङ्गोंके रूपमें शोभायमान थे। वह भगवान्की एक लीलामयी मूर्ति थी। उसे देखकर ब्रह्माजीको बड़ा आनन्द हुआ॥३६॥ रजोगुण और तमोगुणरूप मधु और कैटभ नामके दो बड़े बलवान् दैत्य थे। जब वे वेदोंको चुराकर ले गये, तब आपने हयग्रीव-अवतार ग्रहण किया और उन दोनोंको मारकर सत्त्वगुणरूप श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं। वह सत्त्वगुण ही आपका अत्यन्त प्रिय शरीर है—महात्मालोग इस प्रकार वर्णन करते हैं॥३७॥ पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वके द्रोहियोंका संहार करते हैं। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें उसके धर्मोंकी रक्षा करते हैं। कलियुगमें आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं, इसीलिये आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है॥ ३८॥

वैकुण्ठनाथ! मेरे मनकी बड़ी दुर्दशा है। वह पाप-वासनाओंसे तो कलुषित है ही, स्वयं भी अत्यन्त दुष्ट है। वह प्रायः ही कामनाओंके कारण आतुर रहता है और हर्ष-शोक, भय एवं लोक-परलोक, धन, पत्नी, पुत्र आदिकी चिन्ताओंसे व्याकुल रहता है। इसे

आपकी लीला-कथाओंमें तो रस ही नहीं मिलता। इसके मारे मैं दीन हो रहा हूँ। ऐसे मनसे मैं आपके स्वरूपका चिन्तन कैसे करूँ ? ॥ ३९ ॥ अच्युत! यह कभी न अघानेवाली जीभ मुझे स्वादिष्ट रसोंकी ओर खींचती रहती है। जननेन्द्रिय सुन्दरी स्त्रीकी ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्शकी ओर, पेट भोजनकी ओर, कान मधुर सङ्गीतकी ओर, नासिका भीनी-भीनी सुगन्धकी ओर और ये चपल नेत्र सौन्दर्यकी ओर मुझे खींचते रहते हैं। इनके सिवा कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयोंकी ओर ले जानेको जोर लगाती ही रहती हैं। मेरी तो वह दशा हो रही है, जैसे किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियाँ उसे अपने-अपने शयनगृहमें ले जानेके लिये चारों ओरसे घसीट रही हों ॥ ४० ॥ इस प्रकार यह जीव अपने कर्मोंके बन्धनमें पड़कर इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरा हुआ है। जन्मसे मृत्यु, मृत्युसे जन्म और दोनोंके द्वारा कर्मभोग करते-करते यह भयभीत हो गया है। यह अपना है, यह पराया है—इस प्रकारके भेद-भावसे युक्त होकर किसीसे मित्रता करता है तो किसीसे शत्रुता। आप इस मूढ़ जीव-जातिकी यह दुर्दशा देखकर करुणासे द्रवित हो जाइये। इस भव-नदीसे सर्वदा पार रहनेवाले भगवन्! इन प्राणियोंको भी अब पार लगा दीजिये ॥ ४१ ॥ जगद्गुरो! आप इस सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा पालन करनेवाले हैं। ऐसी अवस्थामें इन जीवोंको इस भव-नदीके पार उतार देनेमें आपको क्या प्रयास है ? दीनजनोंके परमहितैषी प्रभो! भूले-भटके मूढ़ ही महान् पुरुषोंके विशेष अनुग्रहपात्र होते हैं। हमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हम आपके प्रियजनोंकी सेवामें लगे रहते हैं, इसलिये पार जानेकी हमें कभी चिन्ता ही नहीं होती ॥ ४२ ॥ परमात्मन्! इस भव-वैतरणीसे पार उतरना दूसरे लोगोंके लिये अवश्य ही कठिन है, परन्तु मुझे तो इससे तनिक भी भय नहीं है। क्योंकि मेरा चित्त इस वैतरणीमें नहीं, आपकी उन लीलाओंके गानमें मग्न रहता है, जो स्वर्गीय अमृतको भी तिरस्कृत करनेवाली—परमामृतस्वरूप हैं। मैं उन मूढ़ प्राणियोंके लिये शोक कर रहा हूँ, जो आपके गुणगानसे विमुख रहकर इन्द्रियोंके विषयोंका मायामय झूठा सुख प्राप्त करनेके लिये अपने सिरपर सारे संसारका भार ढोते रहते हैं ॥ ४३ ॥ मेरे स्वामी! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तो प्रायः अपनी मुक्तिके लिये निर्जन वनमें जाकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं। वे दूसरोंकी भलाईके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है। मैं इन भूले हुए असहाय गरीबोंको छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता। और इन भटकते हुए प्राणियोंके लिये आपके सिवा और कोई सहारा भी नहीं दिखायी पड़ता ॥ ४४ ॥

घरमें फँसे हुए लोगोंको जो मैथुन आदिका सुख मिलता है, वह अत्यन्त तुच्छ एवं दुःखरूप ही है—जैसे कोई दोनों हाथोंसे खुजला रहा हो तो उस खुजलीमें पहले उसे कुछ थोड़ा-सा सुख मालूम पड़ता है, परन्तु पीछेसे दुःख-ही-दुःख होता है। किंतु ये भूले हुए अज्ञानी मनुष्य बहुत दुःख भोगनेपर भी इन विषयोंसे अघाते नहीं। इसके विपरीत धीर पुरुष जैसे खुजलाहटको सह लेते हैं, वैसे ही कामादि वेगोंको भी सह लेते हैं। सहनेसे ही उनका नाश होता है ॥ ४५ ॥ पुरुषोत्तम! मोक्षके दस साधन प्रसिद्ध हैं—मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्मपालन, युक्तियोंसे शास्त्रोंकी व्याख्या, एकान्तसेवन, जप और समाधि। परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उनके लिये ये सब जीविकाके साधन—व्यापारमात्र रह जाते हैं। और दम्भियोंके लिये तो जबतक उनकी पोल खुलती नहीं, तभीतक ये जीवननिर्वाहके साधन रहते हैं और भंडाफोड़ हो जानेपर वह भी नहीं ॥ ४६ ॥ वेदोंने बीज और अङ्कुरके समान आपके दो रूप बताये हैं—कार्य और कारण। वास्तवमें आप प्राकृत रूपसे रहित हैं। परन्तु इन कार्य और कारणरूपोंको छोड़कर आपके ज्ञानका कोई और साधन भी नहीं है। काष्ठमन्थनके द्वारा जिस प्रकार अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन भक्तियोगकी साधनासे आपको कार्य और कारण दोनोंमें ही ढूँढ़ निकालते हैं। क्योंकि वास्तवमें ये दोनों आपसे पृथक् नहीं हैं, आपके स्वरूप ही हैं ॥ ४७ ॥ अनन्त प्रभो! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पञ्च तन्मात्राएँ, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त, अहङ्कार, सम्पूर्ण जगत् एवं

सगुण और निर्गुण—सब कुछ केवल आप ही हैं। और तो क्या, मन और वाणीके द्वारा जो कुछ निरूपण किया गया है, वह सब आपसे पृथक् नहीं है ॥ ४८ ॥ समग्र कीर्तिके आश्रय भगवन्! ये सत्त्वादि गुण और इन गुणोंके परिणाम महत्तत्त्वादि, देवता, मनुष्य एवं मन आदि कोई भी आपका स्वरूप जाननेमें समर्थ नहीं है; क्योंकि ये सब आदि-अन्तवाले हैं और आप अनादि एवं अनन्त हैं। ऐसा विचार करके ज्ञानीजन शब्दोंकी मायासे उपरत हो जाते हैं ॥ ४९ ॥ परम पूज्य! आपकी सेवाके छः अङ्ग हैं—नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मोंका समर्पण, सेवा-पूजा, चरणकमलोंका चिन्तन और लीला-कथाका श्रवण। इस षडङ्ग-सेवाके बिना आपके चरण-कमलोंकी भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? और भक्तिके बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी? प्रभो! आप तो अपने परम प्रिय भक्तजनोंके, परमहंसोंके ही सर्वस्व हैं ॥५०॥

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार भक्त प्रह्लादने बड़े प्रेमसे प्रकृति और प्राकृत गुणोंसे रहित भगवान्‌के स्वरूपभूत गुणोंका वर्णन किया। इसके बाद वे भगवान्‌के चरणोंमें सिर झुकाकर चुप हो गये। नृसिंह-भगवान्‌का क्रोध शान्त हो गया और वे बड़े प्रेम तथा प्रसन्नतासे बोले ॥ ५१ ॥

श्रीनृसिंहभगवान्‌ने कहा—परम कल्याणस्वरूप प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। दैत्यश्रेष्ठ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं जीवोंकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला हूँ ॥ ५२ ॥ आयुष्मन्! जो मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, उसे मेरा दर्शन मिलना बहुत ही कठिन है। परन्तु जब मेरे दर्शन हो जाते हैं, तब फिर प्राणीके हृदयमें किसी प्रकारकी जलन नहीं रह जाती ॥ ५३ ॥ मैं समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हूँ। इसलिये सभी कल्याणकामी परम भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियोंसे मुझे प्रसन्न करनेका ही यत्न करते हैं ॥ ५४ ॥

असुरकुलभूषण प्रह्लादजी भगवान्‌के अनन्य प्रेमी थे। इसलिये बड़े-बड़े लोगोंको प्रलोभनमें डालनेवाले वरोंके द्वारा प्रलोभित किये जानेपर भी उन्होंने उनकी इच्छा नहीं की ॥ ५५ ॥

दसवाँ अध्याय

प्रह्लादजीके राज्याभिषेक और त्रिपुरदहनकी कथा

नारदजी कहते हैं—प्रह्लादजीने बालक होनेपर भी यही समझा कि वरदान माँगना प्रेम-भक्तिका विघ्न है। इसलिये कुछ मुसकराते हुए वे भगवान्‌से बोले ॥ १ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो! मैं जन्मसे ही विषय-भोगोंमें आसक्त हूँ, अब मुझे इन वरोंके द्वारा आप लुभाइये नहीं। मैं उन भोगोंके सङ्गसे डरकर, उनके द्वारा होनेवाली तीव्र वेदनाका अनुभव कर उनसे छूटने-की अभिलाषासे ही आपकी शरणमें आया हूँ ॥ २ ॥ भगवन्! मुझमें भक्तके लक्षण हैं या नहीं—यह जाननेके लिये आपने अपने भक्तको वरदान माँगनेकी ओर प्रेरित किया है। ये विषय-भोग हृदयकी गाँठको और भी मजबूत करनेवाले तथा बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले हैं ॥ ३ ॥ जगद्गुरो! परीक्षाके सिवा ऐसा कहनेका और कोई कारण नहीं दीखता; क्योंकि आप परम दयालु हैं। (अपने भक्तको भोगोंमें फँसानेवाला वर कैसे दे सकते हैं?) आपसे जो सेवक अपनी कामनाएँ पूर्ण करना चाहता है, वह सेवक नहीं; वह तो लेन-देन करनेवाला निरा बनिया है ॥४॥ जो स्वामीसे अपनी कामनाओंकी पूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं; और जो सेवकसे सेवा करानेके लिये, उसका स्वामी बननेके लिये उसकी कामनाएँ पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं ॥ ५ ॥ मैं आपका निष्काम सेवक हूँ और आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। जैसे राजा और उसके सेवकोंका प्रयोजनवश स्वामी-सेवकका सम्बन्ध रहता है, वैसा तो मेरा और आपका सम्बन्ध है

नहीं ॥ ६ ॥ मेरे वरदानिशिरोमणि स्वामी ! यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना ही चाहते हैं तो यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज अङ्कुरित ही न हो ॥ ७ ॥ हृदयमें किसी भी कामनाके उदय होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति और सत्य—ये सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥ कमलनयन ! जिस समय मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥ भगवन् ! आपको नमस्कार है । आप सबके हृदयमें विराजमान, उदारशिरोमणि स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं । अद्‌भुत नृसिंहरूपधारी श्रीहरिके चरणोंमें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ १० ॥

श्रीनृसिंहभगवान्‌ने कहा—प्रह्लाद ! तुम्हारे-जैसे मेरे एकान्तप्रेमी इस लोक अथवा परलोककी किसी भी वस्तुके लिये कभी कोई कामना नहीं करते । फिर भी अधिक नहीं, केवल एक मन्वन्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये तुम इस लोकमें दैत्याधिपतियोंके समस्त भोग स्वीकार कर लो ॥ ११ ॥ समस्त प्राणियोंके हृदयमें यज्ञोंके भोक्ता ईश्वरके रूपमें मैं ही विराजमान हूँ । तुम अपने हृदयमें मुझे देखते रहना और मेरी लीला-कथाएँ, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हैं, सुनते रहना । समस्त कर्मोंके द्वारा मेरी ही आराधना करना और इस प्रकार अपने प्रारब्ध-कर्मका क्षय कर देना ॥ १२ ॥ भोगके द्वारा पुण्यकर्मोंके फल और निष्काम पुण्यकर्मोंके द्वारा पापका नाश करते हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे । देवलोकमें भी लोग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गान करेंगे ॥ १३ ॥ तुम्हारे द्वारा की हुई मेरी इस स्तुतिका जो मनुष्य कीर्तन करेगा और साथ ही मेरा और तुम्हारा स्मरण भी करेगा, वह समयपर कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ १४ ॥

प्रह्लादजीने कहा—महेश्वर ! आप वर देनेवालोंके स्वामी हैं । आपसे मैं एक वर और माँगता हूँ । मेरे पिताने आपके ईश्वरीय तेजको और सर्वशक्तिमान् चराचरगुरु स्वयं आपको न जानकर आपकी बड़ी निन्दा की है । 'इस विष्णुने मेरे भाईको मार डाला है' ऐसी मिथ्यादृष्टि रखनेके कारण पिताजी क्रोधके वेगको सहन करनेमें असमर्थ हो गये थे । इसीसे उन्होंने आपका भक्त होनेके कारण मुझसे भी द्रोह किया ॥ १५-१६ ॥ दीनबन्धो ! यद्यपि आपकी दृष्टि पड़ते ही वे पवित्र हो चुके, फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उस जल्दी नाश न होनेवाले दुस्तर दोषसे मेरे पिता शुद्ध हो जायँ ॥ १७ ॥

श्रीनृसिंहभगवान्‌ने कहा—निष्पाप प्रह्लाद ! तुम्हारे पिता स्वयं पवित्र होकर तर गये, इसकी तो बात ही क्या है, यदि उनकी इक्कीस पीढ़ियोंके पितर होते तो उन सबके साथ भी वे तर जाते । क्योंकि तुम्हारे-जैसा कुलको पवित्र करनेवाला पुत्र उनको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥ मेरे शान्त, समदर्शी और सुखसे सदाचार पालन करनेवाले प्रेमी भक्तजन जहाँ-जहाँ निवास करते हैं, वे स्थान चाहे कीकट ही क्यों न हों, पवित्र हो जाते हैं ॥ १९ ॥ दैत्यराज ! मेरे भक्तिभावसे जिनकी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, वे सर्वत्र आत्मभाव हो जानेके कारण छोटे-बड़े किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारसे कष्ट नहीं पहुँचाते ॥ २० ॥ संसारमें जो लोग तुम्हारे अनुयायी होंगे, वे भी मेरे भक्त हो जायँगे । बेटा ! तुम मेरे सभी भक्तोंके आदर्श हो ॥ २१ ॥ यद्यपि मेरे अङ्गोंका स्पर्श होनेसे तुम्हारे पिता पूर्णरूपसे पवित्र हो गये हैं, तथापि तुम उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया करो । तुम्हारे-जैसी सन्तानके कारण उन्हें उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी ॥ २२ ॥ वत्स ! तुम अपने पिताके पदपर स्थित हो जाओ और वेदवादी मुनियोंकी आज्ञाके अनुसार मुझमें अपना मन लगाकर और मेरी शरणमें रहकर मेरी सेवाके लिये ही अपने सारे कार्य करो ॥ २३ ॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रह्लादजीने अपने पिताकी अन्त्येष्टि-क्रिया की, इसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उनका राज्याभिषेक किया ॥ २४ ॥ इसी समय देवता, ऋषि आदिके साथ ब्रह्माजीने नृसिंहभगवान्‌को प्रसन्नवदन देखकर पवित्र वचनोंके द्वारा उनकी स्तुति की और उनसे यह बात कही ॥ २५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवताओंके आराध्यदेव ! आप सर्वान्तर्यामी, जीवोंके जीवनदाता और मेरे भी पिता हैं ।

यह पापी दैत्य लोगोंको बहुत ही सता रहा था। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने इसे मार डाला ॥ २६ ॥ मैंने इसे वर दे दिया था कि मेरी सृष्टिका कोई भी प्राणी तुम्हारा वध न कर सकेगा। इससे यह मतवाला हो गया था। तपस्या, योग और बलके कारण उच्छृङ्खल होकर इसने वेदविधियोंका उच्छेद कर दिया था ॥ २७ ॥ यह भी बड़े सौभाग्यकी बात है कि इसके पुत्र परमभागवत शुद्धहृदय नन्हे-से शिशु प्रह्लादको आपने मृत्युके मुखसे छुड़ा दिया; तथा यह भी बड़े आनन्द और मङ्गलकी बात है कि वह अब आपकी शरणमें है ॥ २८ ॥ भगवन्! आपके इस नृसिंहरूपका ध्यान जो कोई एकाग्र मनसे करेगा, उसे यह सब प्रकारके भयोंसे बचा लेगा। यहाँतक कि मारनेकी इच्छासे आयी हुई मृत्यु भी उसका कुछ न बिगाड़ सकेगी ॥ २९ ॥

श्रीनृसिंहभगवान् बोले—ब्रह्माजी! आप दैत्योंको ऐसा वर न दिया करें। जो स्वभावसे ही क्रूर हैं, उनको दिया हुआ वर तो वैसा ही है जैसा साँपोंको दूध पिलाना ॥ ३० ॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नृसिंहभगवान् इतना कहकर और ब्रह्माजीके द्वारा की हुई पूजाको स्वीकार करके वहीं अन्तर्धान—समस्त प्राणियोंके लिये अदृश्य हो गये ॥ ३१ ॥ इसके बाद प्रह्लादजीने भगवत्स्वरूप ब्रह्मा-शङ्करकी तथा प्रजापति और देवताओंकी पूजा करके उन्हें माथा टेककर प्रणाम किया ॥ ३२ ॥ तब शुक्राचार्य आदि मुनियोंके साथ ब्रह्माजीने प्रह्लादजीको समस्त दानव और दैत्योंका अधिपति बना दिया ॥३३॥ फिर ब्रह्मादि देवताओंने प्रह्लादका अभिनन्दन किया और उन्हें शुभाशीर्वाद दिये। प्रह्लादजीने भी यथायोग्य सबका सत्कार किया और वे लोग अपने-अपने लोकोंको चले गये ॥ ३४ ॥

युधिष्ठिर! इस प्रकार भगवान्‌के वे दोनों पार्षद जय और विजय दितिके पुत्र दैत्य हो गये थे। वे भगवान्‌से वैरभाव रखते थे। उनके हृदयमें रहनेवाले भगवान्‌ने उनका उद्धार करनेके लिये उन्हें मार डाला ॥ ३५ ॥ ऋषियोंके शापके कारण उनकी मुक्ति नहीं हुई, वे फिरसे कुम्भकर्ण और रावणके रूपमें राक्षस हुए। उस समय भगवान् श्रीरामके पराक्रमसे उनका अन्त हुआ ॥ ३६ ॥ युद्धमें भगवान् रामके बाणोंसे उनका कलेजा फट गया। वहीं पड़े-पड़े पूर्वजन्मकी भाँति भगवान्‌का स्मरण करते-करते उन्होंने अपने शरीर छोड़े ॥ ३७ ॥ वे ही अब इस युगमें शिशुपाल और दन्तवक्त्रके रूपमें पैदा हुए थे। भगवान्‌के प्रति वैरभाव होनेके कारण तुम्हारे सामने ही वे उनमें समा गये ॥ ३८ ॥ युधिष्ठिर! श्रीकृष्णसे शत्रुता रखनेवाले सभी राजा अन्तसमयमें श्रीकृष्णके स्मरणसे तद्रूप होकर अपने पूर्वकृत पापोंसे सदाके लिये मुक्त हो गये। जैसे भृंगीके द्वारा पकड़ा हुआ कीड़ा भयसे ही उसका स्वरूप प्राप्त कर लेता है ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार भगवान्‌के प्यारे भक्त अपनी भेदभावरहित अनन्य भक्तिके द्वारा भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही शिशुपाल आदि नरपति भी भगवान्‌के वैरभावजनित अनन्य चिन्तनसे भगवान्‌के सारूप्यको प्राप्त हो गये ॥४०॥

युधिष्ठिर! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान्‌से द्वेष करनेवाले शिशुपाल आदिको उनके सारूप्यकी प्राप्ति कैसे हुई। उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया ॥ ४१ ॥ ब्रह्मण्यदेव परमात्मा श्रीकृष्णका यह परम पवित्र अवतार-चरित्र है। इसमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु इन दोनों दैत्योंके वधका वर्णन है ॥ ४२ ॥ इस प्रसङ्गमें भगवान्‌के परम भक्त प्रह्लादका चरित्र, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य; एवं संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके स्वामी श्रीहरिके यथार्थ स्वरूप तथा उनके दिव्य गुण एवं लीलाओंका वर्णन है। इस आख्यानमें देवता और दैत्योंके पदोंमें कालक्रमसे जो महान् परिवर्तन होता है, उसका भी निरूपण किया गया है ॥ ४३-४४ ॥ जिसके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति होती है, उस भागवतधर्मका भी वर्णन है। अध्यात्मके सम्बन्धमें भी सभी जानने योग्य बातें इसमें हैं ॥ ४५ ॥ भगवान्‌के पराक्रमसे पूर्ण इस पवित्र आख्यानको जो कोई पुरुष श्रद्धासे कीर्तन करता और सुनता है, वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥४६॥ जो मनुष्य परम पुरुष परमात्माकी यह श्रीनृसिंह-लीला,

सेनापतियोंसहित हिरण्यकशिपुका वध और संतशिरोमणि प्रह्लादजीका पावन प्रभाव एकाग्र मनसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान्‌के अभयपद वैकुण्ठको प्राप्त होता है ॥ ४७ ॥

युधिष्ठिर ! इस मनुष्यलोकमें तुमलोगोंके भाग्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, क्योंकि तुम्हारे घरमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मनुष्यका रूप धारण करके गुप्तरूपसे निवास करते हैं। इसीसे सारे संसारको पवित्र कर देनेवाले ऋषि-मुनि बार-बार उनका दर्शन करनेके लिये चारों ओरसे तुम्हारे पास आया करते हैं ॥ ४८ ॥ बड़े-बड़े महापुरुष निरन्तर जिनको ढूँढ़ते रहते हैं, जो मायाके लेशसे रहित परम शान्त परमानन्दानुभवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं—वे ही तुम्हारे प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई, पूज्य, आज्ञाकारी, गुरु और स्वयं आत्मा श्रीकृष्ण हैं ॥ ४९ ॥ शङ्कर, ब्रह्मा आदि भी अपनी सारी बुद्धि लगाकर 'वे यह हैं'—इस रूपमें उनका वर्णन नहीं कर सके। फिर हम तो कर ही कैसे सकते हैं। हम तो मौन, भक्ति और संयमके द्वारा ही उनकी पूजा करते हैं। कृपया हमारी यह पूजा स्वीकार करके भक्तवत्सल भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ५० ॥ युधिष्ठिर ! यही एकमात्र आराध्यदेव हैं। प्राचीन कालमें बहुत बड़े मायावी मयासुरने जब रुद्रदेवकी कमनीय कीर्तिमें कलङ्क लगाना चाहा था, तब इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने फिरसे उनके यशकी रक्षा और विस्तार किया था ॥ ५१ ॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी ! मय दानव किस कार्यमें जगदीश्वर रुद्रदेवका यश नष्ट करना चाहता था ? और भगवान् श्रीकृष्णने किस प्रकार उनके यशकी रक्षा की ? आप कृपा करके बतलाइये ॥ ५२ ॥

नारदजीने कहा—एक बार इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णसे शक्ति प्राप्त करके देवताओंने युद्धमें असुरोंको जीत लिया था। उस समय सब-के-सब असुर मायावियोंके परमगुरु मय दानवकी शरणमें गये ॥ ५३ ॥ शक्तिशाली मयासुरने सोने, चाँदी और लोहेके तीन विमान बना दिये। वे विमान क्या थे, तीन पुर ही थे। वे इतने विलक्षण थे कि उनका आना-जाना जान नहीं पड़ता था। उनमें अपरिमित सामग्रियाँ भरी हुई थीं ॥ ५४ ॥ युधिष्ठिर ! दैत्यसेनापतियोंके मनमें तीनों लोक और लोकपतियोंके प्रति वैरभाव तो था ही, अब उसकी याद करके उन तीनों विमानोंके द्वारा वे उनमें छिपे रहकर सबका नाश करने लगे ॥ ५५ ॥ तब लोकपालोंके साथ सारी प्रजा भगवान् शङ्करकी शरणमें गयी और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! त्रिपुरमें रहनेवाले असुर हमारा नाश कर रहे हैं। हम आपके हैं; अतः देवाधिदेव ! आप हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ५६ ॥

उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने कृपापूर्ण शब्दोंमें कहा—'डरो मत !' फिर उन्होंने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर तीनों पुरोंपर छोड़ दिया ॥ ५७ ॥ उनके उस बाणसे सूर्यमण्डलसे निकलनेवाली किरणोंके समान अन्य बहुत-से बाण निकले। उनमेंसे मानो आगकी लपटें निकल रही थीं। उनके कारण उन पुरोंका दीखना बंद हो गया ॥ ५८ ॥ उनके स्पर्शसे सभी विमानवासी निष्प्राण होकर गिर पड़े। महामायावी मय बहुत-से उपाय जानता था, वह उन दैत्योंको उठा लाया और अपने बनाये हुए अमृतके कुएँमें डाल दिया ॥ ५९ ॥ उस सिद्ध अमृत-रसका स्पर्श होते ही असुरोंका शरीर अत्यन्त तेजस्वी और वज्रके समान सुदृढ हो गया। वे बादलोंको विदीर्ण करनेवाली बिजलीकी आगकी तरह उठ खड़े हुए ॥ ६० ॥

इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि महादेवजी तो अपना सङ्कल्प पूरा न होनेके कारण उदास हो गये हैं, तब उन असुरोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये इन्होंने एक युक्ति की ॥ ६१ ॥ यही भगवान् विष्णु उस समय गौ बन गये और ब्रह्माजी बछड़ा बने। दोनों ही मध्याह्नके समय उन तीनों पुरोंमें गये और उस सिद्धरसके कुएँका सारा अमृत पी गये ॥ ६२ ॥ यद्यपि उसके रक्षक दैत्य इन दोनोंको देख रहे थे, फिर भी भगवान्‌की मायासे वे इतने मोहित हो गये कि इन्हें रोक न सके। जब उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ मयासुरको यह बात मालूम हुई, तब भगवान्‌की इस लीलाका स्मरण करके उसे कोई शोक न हुआ। शोक करनेवाले अमृत-

रक्षकोंसे उसने कहा—'भाई ! देवता, असुर, मनुष्य अथवा और कोई भी प्राणी अपने, पराये अथवा दोनोंके लिये जो प्रारब्धका विधान है, उसे मिटा नहीं सकता। जो होना था, हो गया। शोक करके क्या करना है ?' इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अपनी शक्तियोंके द्वारा भगवान् शङ्करके युद्धकी सामग्री तैयार की ॥६३—६५॥ उन्होंने धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथि, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े, तपस्यासे धनुष, विद्यासे कवच, क्रियासे बाण और अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे अन्यान्य वस्तुओंका निर्माण किया ॥ ६६ ॥ इन सामग्रियोंसे सज-धजकर भगवान् शङ्कर रथपर सवार हुए एवं धनुष-बाण धारण किया। भगवान् शङ्करने अभिजित् मुहूर्त्तमें धनुषपर बाण चढ़ाया और उन तीनों दुर्भेद्य विमानोंको भस्म कर दिया। युधिष्ठिर ! उसी समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सैकड़ों विमानोंकी भीड़ लग गयी ॥ ६७-६८ ॥ देवता, ऋषि, पितर और सिद्धेश्वर आनन्दसे जय-जय-कार करते हुए पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। अप्सराएँ नाचने और गाने लगीं ॥ ६९ ॥ युधिष्ठिर ! इस प्रकार उन तीनों पुरोंको जलाकर भगवान् शङ्करने 'पुरारि'की पदवी प्राप्त की और ब्रह्मादिकोंकी स्तुति सुनते हुए अपने धामको चले गये ॥ ७० ॥ आत्मस्वरूप जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अपनी मायासे जो मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करते हैं, ऋषिलोग उन्हीं अनेकों लोकपावन लीलाओंका गान किया करते हैं। बताओ, अब मैं तुम्हें और क्या सुनाऊँ ? ॥ ७१ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मानवधर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्मका निरूपण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवन्मय प्रह्लादजीके साधुसमाजमें सम्मानित पवित्र चरित्र सुनकर संतशिरोमणि युधिष्ठिरको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने नारदजीसे और भी पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिरजीने कहा—भगवन् ! अब मैं वर्ण और आश्रमोंके सदाचारके साथ मनुष्योंके सनातनधर्मका श्रवण करना चाहता हूँ, क्योंकि धर्मसे ही मनुष्यको ज्ञान, भगवत्प्रेम और साक्षात् परम पुरुष भगवान्‌की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥ आप स्वयं प्रजापति ब्रह्माजीके पुत्र हैं और नारदजी ! आपकी तपस्या, योग एवं समाधिके कारण वे अपने दूसरे पुत्रोंकी अपेक्षा आपका अधिक सम्मान भी करते हैं ॥ ३ ॥ आपके समान नारायण-परायण, दयालु, सदाचारी और शान्त ब्राह्मण धर्मके गुप्त-से-गुप्त रहस्यको जैसा यथार्थरूपसे जानते हैं, दूसरे लोग वैसा नहीं जानते ॥ ४ ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! अजन्मा भगवान् ही समस्त धर्मोंके मूल कारण हैं। वही प्रभु चराचर जगत्के कल्याणके लिये धर्म और दक्षपुत्री मूर्तिके द्वारा अपने अंशसे अवतीर्ण होकर बदरिकाश्रममें तपस्या कर रहे हैं। उन नारायणभगवान्‌को नमस्कार करके उन्हींके मुखसे सुने हुए सनातनधर्मका मैं वर्णन करता हूँ ।५-६। युधिष्ठिर ! सर्ववेदस्वरूप भगवान् श्रीहरि, उनका तत्त्व जाननेवाले महर्षियोंकी स्मृतियाँ और जिससे आत्मग्लानि न होकर आत्मप्रसादकी उपलब्धि हो, वह कर्म-धर्मके मूल हैं ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर ! धर्मके ये तीस लक्षण शास्त्रोंमें कहे गये हैं—सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, मनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओंकी सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक भोगोंकी चेष्टासे निवृत्ति, मनुष्यके अभिमानपूर्ण प्रयत्नोंका फल उलटा ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियोंको अन्न आदिका यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्योंमें अपने आत्मा तथा इष्टदेवका भाव, संतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके नाम-गुण-लीला आदिका श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार; उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म-समर्पण। यह तीस प्रकारका आचरण सभी मनुष्योंका परम धर्म है। इसके पालनसे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ८—१२ ॥

धर्मराज ! जिनके वंशमें अखण्डरूपसे संस्कार होते

आये हैं और जिन्हें ब्रह्माजीने संस्कारके योग्य स्वीकार किया है, उन्हें द्विज कहते हैं। जन्म और कर्मसे शुद्ध द्विजोंके लिये यज्ञ, अध्ययन, दान और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंके विशेष कर्मोंका विधान है ॥ १३ ॥ अध्ययन, अध्यापन, दान लेना, दान देना और यज्ञ करना, यज्ञ कराना—ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं। क्षत्रियको दान नहीं लेना चाहिये। प्रजाकी रक्षा करनेवाले क्षत्रियका जीवन-निर्वाह ब्राह्मणके सिवा और सबसे यथायोग्य कर तथा दण्ड (जुर्माना) आदिके द्वारा होता है ॥ १४ ॥ वैश्यको सर्वदा ब्राह्मणवंशका अनुयायी रहकर गोरक्षा, कृषि एवं व्यापारके द्वारा अपनी जीविका चलानी चाहिये। शूद्रका धर्म है द्विजातियोंकी सेवा। उसकी जीविकाका निर्वाह उसका स्वामी करता है ॥ १५ ॥ ब्राह्मणके जीवन-निर्वाहके साधन चार प्रकारके हैं—वार्ता[1], शालीन[2], यायावर[3] और शिलोञ्छन[4]। इनमेंसे पीछे-पीछेकी वृत्तियाँ अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं ॥ १६ ॥ निम्नवर्णका पुरुष बिना आपत्तिकालके उत्तम वर्णकी वृत्तियोंका अवलम्बन न करे। क्षत्रिय दान लेना छोड़कर ब्राह्मणकी शेष पाँचों वृत्तियोंका अवलम्बन ले सकता है। आपत्तिकालमें सभी सब वृत्तियोंको स्वीकार कर सकते हैं ॥ १७ ॥ ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत और सत्यानृत—इनमेंसे किसी भी वृत्तिका आश्रय ले, परन्तु श्वानवृत्तिका अवलम्बन कभी न करे ॥ १८ ॥ बाजारमें पड़े हुए अन्न (उञ्छ) तथा खेतोंमें पड़े हुए अन्न (शिल) को बीनकर 'शिलोञ्छ' वृत्तिसे जीविका-निर्वाह करना 'ऋत' है। बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसी अयाचित (शालीन) वृत्तिके द्वारा जीवन-निर्वाह करना 'अमृत' है। नित्य माँगकर लाना अर्थात् 'यायावर' वृत्तिके द्वारा जीवन-यापन करना 'मृत' है। कृषि आदिके द्वारा 'वार्ता' वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करना 'प्रमृत' है ॥ १९ ॥ वाणिज्य 'सत्यानृत' है और निम्नवर्णकी सेवा करना श्वानवृत्ति है। ब्राह्मण और क्षत्रियको इस अन्तिम निन्दित वृत्तिका कभी आश्रय नहीं लेना चाहिये। क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय और क्षत्रिय (राजा) सर्वदेवमय है ॥ २० ॥

शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत्परायणता और सत्य—ये ब्राह्मणके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ युद्धमें उत्साह, वीरता, धीरता, तेजस्विता, त्याग, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति, अनुग्रह और प्रजाकी रक्षा करना—ये क्षत्रियके लक्षण हैं ॥ २२ ॥ देवता, गुरु और भगवान्‌के प्रति भक्ति, अर्थ, धर्म और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंकी रक्षा करना; आस्तिकता, उद्योगशीलता और व्यावहारिक निपुणता—ये वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ उच्च वर्णोंके सामने विनम्र रहना, पवित्रता, स्वामीकी निष्कपट सेवा, वैदिक मन्त्रोंसे रहित यज्ञ, चोरी न करना, सत्य तथा गौ-ब्राह्मणोंकी रक्षा करना—ये शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

पतिकी सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पतिके सम्बन्धियोंको प्रसन्न रखना और सर्वदा पतिके नियमोंकी रक्षा करना—ये पतिको ही ईश्वर माननेवाली पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म हैं ॥ २५ ॥ साध्वी स्त्रीको चाहिये कि झाड़ने-बुहारने, लीपने तथा चौक पूरने आदिसे घरको और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे अपने शरीरको अलङ्कृत रक्खे। सामग्रियोंको साफ-सुथरी रक्खे ॥ २६ ॥ अपने पतिदेवकी छोटी-बड़ी इच्छाओंको समयके अनुसार पूर्ण करे। विनय, इन्द्रिय-संयम, सत्य एवं प्रिय वचनोंसे प्रेमपूर्वक पतिदेवकी सेवा करे ॥ २७ ॥ जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे; किसी भी वस्तुके लिये ललचावे नहीं। सभी कार्योंमें चतुर एवं धर्मज्ञ हो। सत्य और प्रिय बोले। अपने कर्तव्यमें सावधान रहे। पवित्रता और प्रेमसे परिपूर्ण रहकर, यदि पति पतित न हो तो, उसका सहवास करे ॥ २८ ॥ जो लक्ष्मीजीके समान पतिपरायणा होकर अपने पतिकी उसे साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप समझकर सेवा करती है, उसके पतिदेव वैकुण्ठलोकमें भगवत्सारूप्यको प्राप्त होते हैं और वह लक्ष्मीजीके समान उनके साथ आनन्दित होती है ॥ २९ ॥

युधिष्ठिर ! जो चोरी तथा अन्यान्य पाप-कर्म

---

१. यज्ञाध्ययनादि कराकर धन लेना। २. बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसीमें निर्वाह करना। ३. नित्यप्रति धान्यादि माँग लाना। ४. किसानके खेत काटकर अन्न घरको ले जानेपर पृथ्वीपर जो कण पड़े रह जाते हैं, उन्हें 'शिल' तथा बाजारमें पड़े हुए अन्नके दानोंको 'उञ्छ' कहते हैं। उन शिल और उञ्छोंको बीनकर अपना निर्वाह करना 'शिलोञ्छन' वृत्ति है।

नहीं करते—उन अन्त्यज तथा चाण्डाल आदि अन्तेवसायी वर्णसङ्कर जातियोंकी वृत्तियाँ वे ही हैं, जो कुल-परम्परासे उनके यहाँ चली आयी हैं ॥ ३० ॥ वेददर्शी ऋषि-मुनियोंने युग-युगमें प्रायः मनुष्योंके स्वभावके अनुसार धर्मकी व्यवस्था की है। वही धर्म उनके लिये इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है ॥ ३१ ॥ जो स्वाभाविक वृत्तिका आश्रय लेकर अपने स्वधर्मका पालन करता है, वह धीरे-धीरे उन स्वाभाविक कर्मोंसे भी ऊपर उठ जाता है और गुणातीत हो जाता है ॥ ३२ ॥ महाराज ! जिस प्रकार बार-बार बोनेसे खेत स्वयं ही शक्तिहीन हो जाता है और उसमें अङ्कुर उगना बंद हो जाता है, यहाँतक कि उसमें बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है—उसी प्रकार यह चित्त, जो वासनाओंका खजाना है, विषयोंका अत्यन्त सेवन करनेसे स्वयं ही ऊब जाता है। परन्तु स्वल्प भोगोंसे ऐसा नहीं होता। जैसे एक-एक बूँद घी डालनेसे आग नहीं बुझती, परन्तु एक ही साथ अधिक घी पड़ जाय तो वह बुझ जाती है ॥ ३३-३४ ॥ जिस पुरुषके वर्णको बतलानेवाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णवालेमें भी मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये ॥ ३५ ॥

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ-आश्रमोंके नियम

नारदजी कहते हैं—धर्मराज ! गुरुकुलमें निवास करनेवाला ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर दासके समान अपनेको छोटा माने, गुरुदेवके चरणोंमें सुदृढ अनुराग रक्खे और उनके हितके कार्य करता रहे ॥ १ ॥ सायङ्काल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य और श्रेष्ठ देवताओंकी उपासना करे और मौन होकर एकाग्रतासे गायत्रीका जप करता हुआ दोनों समयकी सन्ध्या करे ॥ २ ॥ गुरुजी जब बुलावें तभी पूर्णतया अनुशासनमें रहकर उनसे वेदोंका स्वाध्याय करे। पाठके प्रारम्भ और अन्तमें उनके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम करे ॥ ३ ॥ शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत तथा हाथमें कुश धारण करे ॥ ४ ॥ सायङ्काल और प्रातःकाल भिक्षा माँगकर लावे और उसे गुरुजीको समर्पित कर दे। वे आज्ञा दें, तब भोजन करे और यदि कभी आज्ञा न दें तो उपवास कर ले ॥ ५ ॥ अपने शीलकी रक्षा करे। थोड़ा खाय। अपने कामोंको निपुणताके साथ करे। श्रद्धा रक्खे और इन्द्रियोंको अपने वशमें रक्खे। स्त्री और स्त्रियोंके वशमें रहनेवालोंके साथ जितनी आवश्यकता हो, उतना ही व्यवहार करे ॥ ६ ॥ जो गृहस्थ नहीं है और ब्रह्मचर्यका व्रत लिये हुए है, उसे स्त्रियोंकी चर्चासे ही अलग रहना चाहिये। इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् हैं। ये प्रयत्नपूर्वक साधन करनेवालोंके मनको भी क्षुब्ध करके खींच लेती हैं ॥ ७ ॥ युवक ब्रह्मचारी युवती गुरुपत्नियोंसे बाल सुलझवाना, शरीर मलवाना, स्नान करवाना, उबटन लगवाना इत्यादि कार्य न करावे ॥ ८ ॥ स्त्रियाँ आगके समान हैं और पुरुष घीके घड़ेके समान। एकान्तमें तो अपनी कन्याके साथ भी न रहना चाहिये। जब वह एकान्तमें न हो, तब भी आवश्यकताके अनुसार ही उसके पास रहना चाहिये ॥ ९ ॥ जबतक यह जीव आत्मसाक्षात्कारके द्वारा इन देह और इन्द्रियोंको प्रतीतिमात्र निश्चय करके स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तबतक 'मैं पुरुष हूँ और यह स्त्री है'—यह द्वैत नहीं मिटता। और तबतक यह भी निश्चित है कि ऐसे पुरुष यदि स्त्रीके संसर्गमें रहेंगे, तो उनकी उनमें भोग्य-बुद्धि हो ही जायगी ॥ १० ॥

ये सब शील-रक्षादि गुण गृहस्थके लिये और संन्यासीके लिये भी विहित हैं। गृहस्थके लिये गुरुकुलमें रहकर गुरुकी सेवा-शुश्रूषा वैकल्पिक है, क्योंकि ऋतुगमनके कारण उसे वहाँसे अलग भी होना पड़ता है ॥ ११ ॥ जो ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करें, उन्हें चाहिये कि वे सुरमा या तेल न लगावें। उबटन न मलें। स्त्रियोंके चित्र न बनावें। मांस और मद्यसे कोई सम्बन्ध न रक्खें। फूलोंके हार, इत्र-फुलेल, चन्दन और आभूषणोंका त्याग कर दें ॥ १२ ॥ इस प्रकार गुरुकुलमें निवास करके

द्विजातिको अपनी शक्ति और आवश्यकताके अनुसार वेद, उनके अङ्ग—शिक्षा, कल्प आदि और उपनिषदों-का अध्ययन तथा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥ १३ ॥ फिर यदि सामर्थ्य हो तो गुरुको मुँहमाँगी दक्षिणा देनी चाहिये। इसके बाद उनकी आज्ञासे गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यास-आश्रममें प्रवेश करे या आजीवन ब्रह्म-चर्यका पालन करते हुए उसी आश्रममें रहे ॥ १४ ॥ यद्यपि भगवान् स्वरूपतः सर्वत्र एकरस स्थित हैं, अतएव उनका कहीं प्रवेश करना या निकलना नहीं हो सकता —फिर भी अग्नि, गुरु, आत्मा और समस्त प्राणियोंमें अपने आश्रित जीवोंके साथ वे विशेषरूपसे विराजमान हैं। इसलिये उनपर सदा दृष्टि जमी रहनी चाहिये॥ १५॥ इस प्रकार आचरण करनेवाला ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यासी अथवा गृहस्थ विज्ञानसम्पन्न होकर परब्रह्म-तत्त्वका अनुभव प्राप्त कर लेता है ॥ १६ ॥

अब मैं ऋषियोंके मतानुसार वानप्रस्थ-आश्रमके नियम बतलाता हूँ। इनका आचरण करनेसे वानप्रस्थ-आश्रमीको अनायास ही ऋषियोंके लोक महर्लोककी प्राप्ति हो जाती है ॥ १७ ॥ वानप्रस्थ-आश्रमीको जोती हुई भूमिमें उत्पन्न होनेवाले चावल, गेहूँ आदि अन्न नहीं खाने चाहिये। बिना जोते पैदा हुआ अन्न भी यदि असमयमें पका हो, तो उसे भी न खाना चाहिये। आगसे पकाया हुआ या कच्चा अन्न भी न खाय। केवल सूर्यके तापसे पके हुए कन्द, मूल, फल आदिका ही सेवन करे ॥१८॥ जंगलोंमें अपने-आप पैदा हुए धान्यों-से नित्यनैमित्तिक चरु और पुरोडाशका हवन करे। जब नये-नये अन्न, फल, फूल आदि मिलने लगें, तब पहले-के इकट्ठे किये हुए अन्नका परित्याग कर दे ॥ १९ ॥ अग्निहोत्रके अग्निकी रक्षाके लिये ही घर, पर्णकुटी अथवा पहाड़की गुफाका आश्रय ले। स्वयं शीत, वायु, अग्नि, वर्षा और घामका सहन करे ॥ २० ॥ सिरपर जटा धारण करे और केश, रोम, नख एवं दाढ़ी-मूँछ न कटवावे तथा मैलको भी शरीरसे अलग न करे। कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल-वस्त्र और अग्निहोत्रकी सामग्रियों-को अपने पास रक्खे ॥ २१ ॥ विचारवान् पुरुषको चाहिये कि बारह, आठ, चार, दो या एक वर्षतक वानप्रस्थ-आश्रमके नियमोंका पालन करे। ध्यान रहे कि कहीं अधिक तपस्याका क्लेश सहन करनेसे बुद्धि बिगड़ न जाय ॥ २२ ॥

वानप्रस्थी पुरुष जब रोग अथवा बुढ़ापेके कारण अपने कर्म पूरे न कर सके और वेदान्त-विचार करनेकी भी सामर्थ्य न रहे, तब उसे अनशन आदि व्रत करने चाहिये ॥२३॥ अनशनके पूर्व ही वह अपने आहवनीय आदि अग्नियोंको अपनी आत्मामें लीन कर ले। 'मैंपन' और 'मेरेपन'का त्याग करके शरीरको उसके कारणभूत तत्त्वोंमें यथायोग्य भलीभाँति लीन करे ॥२४॥ जितेन्द्रिय पुरुष अपने शरीरके छिद्राकाशोंको आकाशमें, प्राणोंको वायुमें, गरमीको अग्निमें, रक्त, कफ, पीब आदि जलीय तत्त्वोंको जलमें और हड्डी आदि ठोस वस्तुओंको पृथ्वीमें लीन करे ॥ २५ ॥ इसी प्रकार वाणी और उसके कर्म भाषणको उसके अधिष्ठातृ देवता अग्निमें, हाथ और उसके द्वारा होनेवाले कला-कौशलको इन्द्रमें, चरण और उसकी गतिको कालस्वरूप विष्णुमें, रति और उपस्थको प्रजापतिमें एवं पायु और मलोत्सर्गको उनके आश्रयके अनुसार मृत्युमें लीन कर दे। श्रोत्र और उसके द्वारा सुने जानेवाले शब्दको दिशाओंमें, स्पर्श और त्वचाको वायुमें, नेत्रसहित रूपको ज्योतिमें, मधुर आदि रसके सहित* रसनेन्द्रियको जलमें और युधिष्ठिर! घ्राणेन्द्रिय एवं उसके द्वारा सूँघे जानेवाले गन्धको पृथ्वीमें लीन कर दे॥ २६—२८॥ मनोरथोंके साथ मनको चन्द्रमामें, समझमें आनेवाले पदार्थोंके सहित बुद्धिको ब्रह्मामें तथा अहंता और ममतारूप क्रिया करनेवाले अहङ्कारको उसके

* यहाँ मूलमें 'प्रचेतसा' पद है, जिसका अर्थ 'वरुणके सहित' होता है। वरुण रसनेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं। श्रीधर-स्वामीने भी इसी मतको स्वीकार किया है। परन्तु इस प्रसङ्गमें सर्वत्र इन्द्रिय और उसके विषयका अधिष्ठातृदेवमें लय करना बताया गया है, फिर रसनेन्द्रियके लिये ही नया क्रम युक्तियुक्त नहीं जँचता। इसलिये यहाँ श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीके मतानुसार 'प्रचेतसा' पदका ('प्रकृष्टं चेतो यत्र स प्रचेतो मधुरादिरसस्तेन'—जिसकी ओर चित्त अधिक आकृष्ट हो, वह मधुरादि रस 'प्रचेतस्' है, उसके सहित) इस विग्रहके अनुसार प्रस्तुत अर्थ किया गया है और यही युक्तियुक्त मालूम होता है।

कर्मोंके साथ रुद्रमें लीन कर दे। इसी प्रकार चेतना-सहित चित्तको क्षेत्रज्ञ (जीव) में और गुणोंके कारण विकारी-से प्रतीत होनेवाले जीवको परब्रह्ममें लीन कर दे ॥ २९ ॥ साथ ही पृथ्वीका जलमें, जलका अग्निमें, अग्निका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका अहङ्कारमें, अहङ्कारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका अव्यक्तमें और अव्यक्त-का अविनाशी परमात्मामें लय कर दे ॥ ३० ॥ इस प्रकार अविनाशी परमात्माके रूपमें अवशिष्ट जो चिद्वस्तु है, वह आत्मा है, वह मैं हूँ—यह जानकर अद्वितीय भावमें स्थित हो जाय। जैसे अपने आश्रय काष्ठादिके भस्म हो जानेपर अग्नि शान्त होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, वैसे ही वह भी उपरत हो जाय ॥ ३१ ॥
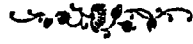
तेरहवाँ अध्याय

यतिधर्मका निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद

नारदजी कहते हैं—धर्मराज ! यदि वानप्रस्थीमें ब्रह्मविचारका सामर्थ्य हो, तो शरीरके अतिरिक्त और सब कुछ छोड़कर वह संन्यास ले ले; तथा किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान और समयकी अपेक्षा न रखकर एक गाँवमें एक ही रात ठहरनेका नियम लेकर पृथ्वीपर विचरण करे ॥ १ ॥ यदि वह वस्त्र पहने तो केवल कौपीन, जिससे उसके गुप्त अङ्ग ढक जायँ। और जबतक कोई आपत्ति न आवे, तबतक दण्ड तथा अपने आश्रमके चिह्नोंके सिवा अपनी त्यागी हुई किसी भी वस्तुको ग्रहण न करे ॥ २ ॥ संन्यासीको चाहिये कि वह समस्त प्राणियोंका हितैषी हो, शान्त रहे, भगवत्परायण रहे और किसीका आश्रय न लेकर अपने-आपमें ही रमे एवं अकेला ही विचरे ॥३॥ इस सम्पूर्ण विश्वको कार्य और कारणसे अतीत परमात्मामें अध्यस्त जाने और कार्य-कारणस्वरूप इस जगत्‌में ब्रह्मस्वरूप अपने आत्माको परिपूर्ण देखे ॥४॥ आत्मदर्शी संन्यासी सुषुप्ति और जागरणकी सन्धिमें अपने स्वरूपका अनुभव करे और बन्धन तथा मोक्ष दोनों ही केवल माया हैं, वस्तुतः कुछ नहीं—ऐसा समझे ॥ ५ ॥ न तो शरीरकी अवश्य होनेवाली मृत्युका अभिनन्दन करे और न अनिश्चित जीवनका। केवल समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशके कारण कालकी प्रतीक्षा करता रहे ॥ ६ ॥ असत्य—अनात्मवस्तुका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंसे प्रीति न करे। अपने जीवन-निर्वाहके लिये कोई जीविका न करे, केवल वाद-विवादके लिये कोई तर्क न करे और संसारमें किसीका पक्ष न ले ॥७॥ शिष्य-मण्डली न जुटावे, बहुत-से ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, व्याख्यान न दे और बड़े-बड़े कामोंका आरम्भ न करे ॥ ८ ॥ शान्त, समदर्शी एवं महात्मा संन्यासीके लिये किसी आश्रमका बन्धन धर्मका कारण नहीं है। वह अपने आश्रमके चिह्नोंको धारण करे, चाहे छोड़ दे ॥ ९ ॥ उसके पास कोई आश्रमका चिह्न न हो, परन्तु वह आत्मानुसन्धानमें मग्न हो। हो तो अत्यन्त विचारशील, परन्तु जान पड़े पागल और बालककी तरह। वह अत्यन्त प्रतिभाशील होनेपर भी साधारण मनुष्योंकी दृष्टिसे ऐसा जान पड़े मानो कोई गूँगा है ॥ १० ॥

युधिष्ठिर ! इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं। वह है दत्तात्रेय मुनि और भक्तराज प्रह्लादका संवाद ॥११॥ एक बार भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लादजी कुछ मन्त्रियोंके साथ लोगोंके हृदयकी बात जाननेकी इच्छासे लोकोंमें विचरण कर रहे थे। उन्होंने देखा कि सह्य पर्वतकी तलहटीमें कावेरी नदीके तटपर पृथ्वीपर ही एक मुनि पड़े हुए हैं। उनके शरीर-की निर्मल ज्योति अङ्गोंके धूलि-धूसरित होनेके कारण ढकी हुई थी ॥ १२-१३ ॥ उनके कर्म, आकार, वाणी और वर्ण-आश्रम आदिके चिह्नोंसे लोग यह नहीं समझ सकते थे कि वे कोई सिद्ध पुरुष हैं या नहीं ॥ १४ ॥ भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त प्रह्लादजीने अपने सिरसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके जाननेकी इच्छासे यह प्रश्न किया ॥१५॥ 'भगवन् ! आपका शरीर उद्योगी और भोगी पुरुषोंके

समान हृष्ट-पुष्ट है। संसारका यह नियम है कि उद्योग करनेवालोंको धन मिलता है, धनवालोंको ही भोग प्राप्त होता है और भोगियोंका ही शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। और कोई दूसरा कारण तो हो नहीं सकता ॥ १६ ॥ भगवन्! आप कोई उद्योग तो करते नहीं, यों ही पड़े रहते हैं। इसलिये आपके पास धन है नहीं। फिर आपको भोग कहाँसे प्राप्त होंगे? ब्राह्मणदेवता! बिना भोगके ही आपका यह शरीर इतना हृष्ट-पुष्ट कैसे है? यदि हमारे सुननेयोग्य हो, तो अवश्य बतलाइये ॥ १७ ॥ आप विद्वान्, समर्थ और चतुर हैं। आपकी बातें बड़ी अद्भुत और प्रिय होती हैं। ऐसी अवस्थामें आप सारे संसारको कर्म करते हुए देखकर भी समभावसे पड़े हुए हैं, इसका क्या कारण है?" ॥ १८ ॥

नारदजी कहते हैं—धर्मराज! जब प्रह्लादजीने महामुनि दत्तात्रेयजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब वे उनकी अमृतमयी वाणीके वशीभूत हो मुसकराते हुए बोले ॥ १९ ॥

दत्तात्रेयजीने कहा—दैत्यराज! सभी श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारा सम्मान करते हैं। मनुष्योंको कर्मोंकी प्रवृत्ति और उनकी निवृत्तिका क्या फल मिलता है, यह बात तुम अपनी ज्ञानदृष्टिसे जानते ही हो ॥ २० ॥ तुम्हारी अनन्य भक्तिके कारण देवाधिदेव भगवान् नारायण सदा तुम्हारे हृदयमें विराजमान रहते हैं और जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही वे तुम्हारे अज्ञानको नष्ट करते रहते हैं ॥ २१ ॥ तो भी प्रह्लाद! मैंने जैसा कुछ जाना है, उसके अनुसार मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ। क्योंकि आत्मशुद्धिके अभिलाषियोंको तुम्हारा सम्मान अवश्य करना चाहिये ॥ २२ ॥

प्रह्लादजी! तृष्णा एक ऐसी वस्तु है, जो इच्छानुसार भोगोंके प्राप्त होनेपर भी पूरी नहीं होती। उसीके कारण जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकना पड़ता है। तृष्णाने मुझसे न जाने कितने कर्म करवाये और उनके कारण न जाने कितनी योनियोंमें मुझे डाला ॥ २३ ॥ कर्मोंके कारण अनेकों योनियोंमें भटकते-भटकते दैववश मुझे यह मनुष्ययोनि मिली है, जो स्वर्ग, मोक्ष, तिर्यग्योनि तथा इस मानवदेहकी भी प्राप्तिका द्वार है—इसमें पुण्य करें तो स्वर्ग, पाप करें तो पशु-पक्षी आदिकी योनि, निवृत्त हो जायँ तो मोक्ष और दोनों प्रकारके कर्म किये जायँ तो फिर मनुष्य-योनिकी ही प्राप्ति हो सकती है ॥ २४ ॥ परन्तु मैं देखता हूँ कि संसारके स्त्री-पुरुष कर्म तो करते हैं सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिये, परन्तु उसका फल उलटा ही होता है—वे और भी दुःखमें पड़ जाते हैं। इसीलिये मैं कर्मोंसे उपरत हो गया हूँ ॥ २५ ॥

सुख ही आत्माका स्वरूप है। समस्त चेष्टाओंकी निवृत्ति ही उसका शरीर—उसके प्रकाशित होनेका स्थान है। इसलिये समस्त भोगोंको मनोराज्य मात्र समझकर मैं अपने प्रारब्धको भोगता हुआ पड़ा रहता हूँ ॥ २६ ॥ मनुष्य अपने सच्चे स्वार्थ अर्थात् वास्तविक सुखको, जो अपना स्वरूप ही है, भूलकर इस मिथ्या द्वैतको सत्य मानता हुआ अत्यन्त भयङ्कर और विचित्र जन्मों और मृत्युओंमें भटकता रहता है ॥ २७ ॥ जैसे अज्ञानी मनुष्य जलमें उत्पन्न तिनके और सेवारसे ढके हुए जलको जल न समझकर जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ता है, वैसे ही अपनी आत्मासे भिन्न वस्तुमें सुख समझनेवाला पुरुष आत्माको छोड़कर विषयोंकी ओर दौड़ता है ॥ २८ ॥ प्रह्लादजी! शरीर आदि तो प्रारब्धके अधीन हैं। उनके द्वारा जो अपने लिये सुख पाना और दुःख मिटाना चाहता है, वह कभी अपने कार्यमें सफल नहीं हो सकता। उसके बार-बार किये हुए सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ॥ २९ ॥ मनुष्य सर्वदा शारीरिक, मानसिक आदि दुःखोंसे आक्रान्त ही रहता है। मरणशील तो है ही, यदि उसने बड़े श्रम और कष्टसे कुछ धन और भोग प्राप्त कर ही लिया तो क्या लाभ है? ॥ ३० ॥ लोभी और इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले धनियोंका दुःख तो मैं देखता ही रहता हूँ। भयके मारे उन्हें नींद नहीं आती। सबपर उनका सन्देह बना रहता है ॥ ३१ ॥ जो जीवन और धनके लोभी हैं—वे राजा, चोर, शत्रु, स्वजन, पशु-पक्षी, याचक और कालसे, यहाँतक कि 'कहीं मैं भूल न कर बैठूँ, अधिक न खर्च कर दूँ'—इस आशङ्कासे अपने-आप-

से भी सदा डरते रहते हैं ॥ ३२ ॥ इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जिसके कारण शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, कायरता और श्रम आदिका शिकार होना पड़ता है—उस धन और जीवनकी स्पृहाका त्याग कर दे ॥ ३३ ॥

इस लोकमें मेरे सबसे बड़े गुरु हैं—अजगर और मधुमक्खी । उनकी शिक्षासे हमें वैराग्य और सन्तोषकी प्राप्ति हुई है ॥ ३४ ॥ मधुमक्खी जैसे मधु इकट्ठा करती है, वैसे ही लोग बड़े कष्टसे धन-सञ्चय करते हैं; परन्तु दूसरा ही कोई उस धन-राशिके स्वामीको मारकर उसे छीन लेता है । इससे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि विषय-भोगोंसे विरक्त ही रहना चाहिये ॥ ३५ ॥ मैं अजगरके समान निश्चेष्ट पड़ा रहता हूँ और दैववश जो कुछ मिल जाता है, उसीमें सन्तुष्ट रहता हूँ । और यदि कुछ नहीं मिलता, तो बहुत दिनोंतक धैर्य धारण कर यों ही पड़ा रहता हूँ ॥ ३६ ॥ कभी थोड़ा अन्न खा लेता हूँ तो कभी बहुत; कभी स्वादिष्ट तो कभी नीरस—बेस्वाद; और कभी अनेकों गुणोंसे युक्त, तो कभी सर्वथा गुणहीन ॥ ३७ ॥ कभी बड़ी श्रद्धासे प्राप्त हुआ अन्न खाता हूँ तो कभी अपमानके साथ । और किसी-किसी समय अपने-आप ही मिल जानेपर कभी दिनमें, कभी रातमें और कभी एक बार भोजन करके भी दुबारा कर लेता हूँ ॥ ३८ ॥ मैं अपने प्रारब्धके भोगमें ही सन्तुष्ट रहता हूँ । इसलिये मुझे रेशमी या सूती, मृगचर्म या चीर, वल्कल या और कुछ—जैसा भी वस्त्र मिल जाता है, वैसा ही पहन लेता हूँ ॥ ३९ ॥ कभी मैं पृथ्वी, घास, पत्ते, पत्थर या राखके ढेरपर ही पड़ रहता हूँ, तो कभी दूसरोंकी इच्छासे महलोंमें पलंगों और गद्दोंपर सो लेता हूँ ॥ ४० ॥ दैत्यराज ! कभी नहा-धोकर, शरीरमें चन्दन लगाकर सुन्दर वस्त्र, फूलोंके हार और गहने पहन रथ, हाथी और घोड़ेपर चढ़कर चलता हूँ, तो कभी पिशाचके समान बिल्कुल नंग-धड़ंग विचरता हूँ ॥ ४१ ॥ मनुष्योंके स्वभाव भिन्न-भिन्न होते ही हैं । अतः न तो मैं किसीकी निन्दा करता हूँ और न स्तुति ही । मैं केवल इनका परम कल्याण और परमात्मासे एकता चाहता हूँ ॥ ४२ ॥

सत्यका अनुसन्धान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि जो नाना प्रकारके पदार्थ और उनके भेद-विभेद मालूम पड़ रहे हैं, उनको चित्तवृत्तिमें हवन कर दे । चित्तवृत्तिको इन पदार्थोंके सम्बन्धमें विविध भ्रम उत्पन्न करनेवाले मनमें, मनको सात्त्विक अहङ्कारमें और सात्त्विक अहङ्कारको महत्तत्त्वके द्वारा मायामें हवन कर दे । इस प्रकार ये सब भेद-विभेद और उनका कारण माया ही है, ऐसा निश्चय करके फिर उस मायाको आत्मानुभूतिमें स्वाहा कर दे । इस प्रकार आत्मसाक्षात्कारके द्वारा आत्मस्वरूपमें स्थित होकर निष्क्रिय एवं उपरत हो जाय ॥ ४३-४४ ॥ प्रह्लादजी ! मेरी यह आत्मकथा अत्यन्त गुप्त एवं लोक और शास्त्रसे परेकी वस्तु है । तुम भगवान्‌के अत्यन्त प्रेमी हो, इसलिये मैंने तुम्हारे प्रति इसका वर्णन किया है ॥४५॥

नारदजी कहते हैं—महाराज ! प्रह्लादजीने दत्तात्रेय मुनिसे परमहंसोंके इस धर्मका श्रवण करके उनकी पूजा की और फिर उनसे विदा लेकर बड़ी प्रसन्नतासे अपनी राजधानीके लिये प्रस्थान किया ॥ ४६ ॥

चौदहवाँ अध्याय

गृहस्थसम्बन्धी सदाचार

राजा युधिष्ठिरने पूछा—देवर्षि नारदजी ! मेरे-जैसा गृहासक्त गृहस्थ बिना विशेष परिश्रमके इस पदको किस साधनसे प्राप्त कर सकता है, आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहे और गृहस्थ-धर्मके अनुसार सब काम करे, परन्तु उन्हें भगवान्‌के प्रति समर्पित कर दे और बड़े-बड़े संत-महात्माओंकी सेवा भी करे ॥ २ ॥ अवकाशके अनुसार विरक्त पुरुषोंमें निवास करे और बार-बार श्रद्धापूर्वक भगवान्‌के अवतारोंकी लीला-सुधाका पान

करता रहे ॥ ३ ॥ जैसे स्वप्न टूट जानेपर मनुष्य स्वप्न-के सम्बन्धियोंसे आसक्त नहीं रहता—वैसे ही ज्यों-ज्यों सत्सङ्गके द्वारा बुद्धि शुद्ध हो, त्यों-ही-त्यों शरीर, स्त्री, पुत्र, धन आदिकी आसक्ति स्वयं छोड़ता चले। क्योंकि एक-न-एक दिन ये छूटनेवाले ही हैं ॥ ४ ॥ बुद्धिमान् पुरुषको आवश्यकताके अनुसार ही घर और शरीरकी सेवा करनी चाहिये, अधिक नहीं। भीतरसे विरक्त रहे और बाहरसे रागीके समान लोगोंमें साधारण मनुष्यों-जैसा ही व्यवहार कर ले ॥ ५ ॥ माता-पिता, भाई-बन्धु, पुत्र-मित्र, जातिवाले और दूसरे जो कुछ कहें अथवा जो कुछ चाहें, भीतरसे ममता न रखकर उनका अनुमोदन कर दे ॥ ६ ॥

बुद्धिमान् पुरुष वर्षा आदिके द्वारा होनेवाले अन्नादि, पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले सुवर्ण आदि, अकस्मात् प्राप्त होनेवाले द्रव्य आदि तथा और सब प्रकारके धन भगवान्के ही दिये हुए हैं—ऐसा समझकर प्रारब्धके अनुसार उनका उपभोग करता हुआ सञ्चय न करे, उन्हें पूर्वोक्त साधुसेवा आदि कर्मोंमें लगा दे ॥ ७ ॥ मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धन-पर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये ॥ ८ ॥ हरिन, ऊँट, गधा, बंदर, चूहा, सरीसृप (रेंगकर चलनेवाले प्राणी), पक्षी और मक्खी आदिको अपने पुत्रके समान ही समझे। उनमें और पुत्रोंमें अन्तर ही कितना है ॥ ९ ॥ गृहस्थ मनुष्यको भी धर्म, अर्थ और कामके लिये बहुत कष्ट नहीं उठाना चाहिये; बल्कि देश, काल और प्रारब्ध-के अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना चाहिये ॥ १० ॥ अपनी समस्त भोग-सामग्रियोंको कुत्ते, पतित और चाण्डालपर्यन्त सब प्राणियोंको यथायोग्य बाँटकर ही अपने काममें लाना चाहिये। और तो क्या, अपनी स्त्रीको भी—जिसे मनुष्य समझता है कि यह मेरी है—अतिथि आदिकी निर्दोष सेवामें नियुक्त रक्खे ॥ ११ ॥ लोग स्त्रीके लिये अपने प्राणतक दे डालते हैं। यहाँतक कि अपने मा-बाप और गुरुको भी मार डालते हैं। उस स्त्रीपरसे जिसने अपनी ममता हटा ली, उसने स्वयं नित्यविजयी भगवान्पर भी विजय प्राप्त कर ली ॥ १२ ॥ यह शरीर अन्तमें कीड़े, विष्ठा या राखकी ढेरी होकर रहेगा। कहाँ तो यह तुच्छ शरीर और इसके लिये जिसमें आसक्ति होती है वह स्त्री, और कहाँ अपनी महिमासे आकाशको भी ढक रखनेवाला अनन्त आत्मा ! ॥ १३ ॥

गृहस्थको चाहिये कि प्रारब्धसे प्राप्त और पञ्च-यज्ञ आदिसे बचे हुए अन्नसे ही अपना जीवन-निर्वाह करे। जो बुद्धिमान् पुरुष इसके सिवा और किसी वस्तुमें स्वत्व नहीं रखते, उन्हें संतोंका पद प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ अपनी वर्णाश्रमविहित वृत्तिके द्वारा प्राप्त सामग्रियोंसे प्रतिदिन देवता, ऋषि, मनुष्य, भूत और पितृगणका तथा अपने आत्माका पूजन करना चाहिये। यह एक ही परमेश्वरकी भिन्न-भिन्न रूपोंमें आराधना है ॥ १५ ॥ यदि अपनेको अधिकार आदि यज्ञके लिये आवश्यक सब वस्तुएँ प्राप्त हों तो बड़े-बड़े यज्ञ या अग्निहोत्र आदिके द्वारा भगवान्की आराधना करनी चाहिये ॥ १६ ॥ युधिष्ठिर ! वैसे तो समस्त यज्ञोंके भोक्ता भगवान् ही हैं; परन्तु ब्राह्मणके मुखमें अर्पित किये हुए हविष्यान्नसे उनकी जैसी तृप्ति होती है, वैसी अग्निके मुखमें हवन करनेसे नहीं ॥ १७ ॥ इसलिये ब्राह्मण, देवता, मनुष्य आदि सभी प्राणियोंमें यथायोग्य, उनके उपयुक्त सामग्रियोंके द्वारा सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भगवान्की पूजा करनी चाहिये। इनमें प्रधानता ब्राह्मणोंकी ही है ॥ १८ ॥

धनी द्विजको अपने धनके अनुसार आश्विन मासके कृष्णपक्षमें अपने माता-पिता तथा उनके बन्धुओं (पितामह, मातामह आदि) का भी महालय श्राद्ध करना चाहिये ॥ १९ ॥ इसके सिवा अयन (कर्क एवं मकरकी संक्रान्ति), विषुव (तुला और मेषकी संक्रान्ति), व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके समय, द्वादशीके दिन, श्रवण, धनिष्ठा और अनुराधा नक्षत्रों-में, वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया), कार्तिक-शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी), अगहन, पौष, माघ और फाल्गुन—इन चार महीनोंकी कृष्णाष्टमी, माघ-शुक्ला सप्तमी, माघकी मघा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा और प्रत्येक महीनेकी वह पूर्णिमा, जो अपने मास-नक्षत्र,

चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा आदिसे युक्त हो— चाहे चन्द्रमा पूर्ण हों या अपूर्ण; द्वादशी तिथिका अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदाके साथ योग, एकादशी तिथिका तीनों उत्तरा नक्षत्रोंसे योग अथवा जन्म-नक्षत्र या श्रवण नक्षत्रसे योग—ये सारे समय पितृगणोंका श्राद्ध करने योग्य एवं श्रेष्ठ हैं। ये योग केवल श्राद्धके लिये ही नहीं, सभी पुण्यकर्मोंके लिये उपयोगी हैं। ये कल्याणकी साधनाके उपयुक्त और शुभकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं। इन अवसरोंपर अपनी पूरी शक्ति लगाकर शुभ कर्म करने चाहिये। इसीमें जीवनकी सफलता है ॥ २०–२४ ॥ इन शुभ संयोगोंमें जो स्नान, जप, होम, व्रत तथा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा की जाती है अथवा जो कुछ देवता, पितर, मनुष्य एवं प्राणियोंको समर्पित किया जाता है, उसका फल अक्षय होता है ॥२५॥ युधिष्ठिर! इसी प्रकार स्त्रीके पुंसवन आदि, सन्तानके जातकर्मादि तथा अपने यज्ञ-दीक्षा आदि संस्कारोंके समय, शव-दाहके दिन या वार्षिक श्राद्धके उपलक्ष्यमें अथवा अन्य माङ्गलिक कर्मोंमें दान आदि शुभ कर्म करने चाहिये ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर! अब मैं उन स्थानोंका वर्णन करता हूँ, जो धर्म आदि श्रेयकी प्राप्ति करानेवाले हैं। सबसे पवित्र देश वह है, जिसमें सत्पात्र मिलते हों ॥ २७ ॥ जिनमें यह सारा चर और अचर जगत् स्थित है, उन भगवान्की प्रतिमा जिस देशमें हो, जहाँ तप, विद्या एवं दया आदि गुणोंसे युक्त ब्राह्मणोंके परिवार निवास करते हों तथा जहाँ-जहाँ भगवान्की पूजा होती हो और पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियाँ हों, वे सभी स्थान परम कल्याणकारी हैं ॥ २८-२९ ॥ पुष्कर आदि सरोवर, सिद्ध पुरुषोंके द्वारा सेवित क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम (शालग्राम क्षेत्र), नैमिषारण्य, फाल्गुनक्षेत्र, सेतुबन्ध, प्रभास, द्वारका, काशी, मथुरा, पम्पासर, बिन्दुसरोवर, बदरिकाश्रम, अलकनन्दा, भगवान् सीतारामजीके आश्रम—अयोध्या-चित्रकूटादि, महेन्द्र और मलय आदि समस्त कुलपर्वत और जहाँ-जहाँ भगवान्के अर्चावतार हैं—वे सब-के-सब देश अत्यन्त पवित्र हैं। कल्याणकामी पुरुषको बार-बार इन देशोंका सेवन करना चाहिये। इन स्थानोंपर जो पुण्यकर्म किये जाते हैं, मनुष्योंको उनका हजारगुना फल मिलता है ॥३०–३३॥

युधिष्ठिर! पात्र-निर्णयके प्रसङ्गमें पात्रके गुणोंको जाननेवाले विवेकी पुरुषोंने एकमात्र भगवान्को ही सत्पात्र बतलाया है। यह चराचर जगत् उन्हींका स्वरूप है ॥ ३४ ॥ अभी तुम्हारे इसी यज्ञकी बात है; देवता, ऋषि, सिद्ध और सनकादिकोंके रहनेपर भी अग्रपूजाके लिये भगवान् श्रीकृष्णको ही पात्र समझा गया ॥ ३५ ॥ असंख्य जीवोंसे भरपूर इस ब्रह्माण्डरूप महावृक्षके एकमात्र मूल भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। इसलिये उनकी पूजासे समस्त जीवोंकी आत्मा तृप्त हो जाती है ॥ ३६ ॥ उन्होंने मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि और देवता आदिके शरीररूप पुरोंकी रचना की है तथा वे ही इन पुरोंमें जीवरूपसे शयन भी करते हैं। इसीसे उनका एक नाम 'पुरुष' भी है ॥ ३७ ॥ युधिष्ठिर! एकरस रहते हुए भी भगवान् इन मनुष्यादि शरीरोंमें उनकी विभिन्नताके कारण न्यूनाधिकरूपसे प्रकाशमान हैं। इसलिये पशु-पक्षी आदि शरीरोंकी अपेक्षा मनुष्य ही श्रेष्ठ पात्र हैं और मनुष्योंमें भी, जिसमें भगवान्का अंश—तप-योगादि जितना ही अधिक पाया जाता है, वह उतना ही श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥

युधिष्ठिर! त्रेता आदि युगोंमें जब विद्वानोंने देखा कि मनुष्य परस्पर एक दूसरेका अपमान आदि करते हैं, तब उन लोगोंने उपासनाकी सिद्धिके लिये भगवान्की प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की ॥ ३९ ॥ तभीसे कितने ही लोग बड़ी श्रद्धा और सामग्रीसे प्रतिमामें ही भगवान्की पूजा करते हैं। परन्तु जो मनुष्यसे द्वेष करते हैं, उन्हें प्रतिमाकी उपासना करनेपर भी सिद्धि नहीं मिल सकती ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर! मनुष्योंमें भी ब्राह्मण विशेष सुपात्र माना गया है। क्योंकि वह अपनी तपस्या, विद्या और सन्तोष आदि गुणोंसे भगवान्के वेदरूप शरीरको धारण करता है ॥ ४१ ॥ महाराज! हमारी और तुम्हारी तो बात ही क्या—ये जो सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इनके भी इष्टदेव ब्राह्मण ही हैं। क्योंकि उनके चरणोंकी धूलसे तीनों लोक पवित्र होते रहते हैं ॥४२॥

पंद्रहवाँ अध्याय

गृहस्थोंके लिये मोक्षधर्मका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! कुछ ब्राह्मणोंकी निष्ठा कर्ममें, कुछकी तपस्यामें, कुछकी वेदोंके स्वाध्याय और प्रवचनमें, कुछकी आत्मज्ञानके सम्पादनमें तथा कुछकी योगमें होती है ॥ १ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि श्राद्ध अथवा देवपूजाके अवसरपर अपने कर्मका अक्षय फल प्राप्त करनेके लिये ज्ञाननिष्ठ पुरुषको ही हव्य-कव्यका दान करे। यदि वह न मिले तो योगी, प्रवचनकार आदिको यथायोग्य और यथाक्रम देना चाहिये ॥ २ ॥ देवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन अथवा दोनोंमें एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अत्यन्त धनी होनेपर भी श्राद्धकर्ममें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि सगे-सम्बन्धी आदि स्वजनोंको देनेसे और विस्तार करनेसे देश-कालोचित श्रद्धा, पदार्थ, पात्र और पूजन आदि ठीक-ठीक नहीं हो पाते ॥ ४ ॥ देश और कालके प्राप्त होनेपर ऋषि-मुनियोंके भोजन करनेयोग्य शुद्ध हविष्यान्न भगवान्‌को भोग लगाकर श्रद्धासे विधिपूर्वक योग्य पात्रको देना चाहिये। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और अक्षय होता है ॥ ५ ॥ देवता, ऋषि, पितर, अन्य प्राणी, स्वजन और अपने-आपको भी अन्नका विभाजन करनेके समय परमात्मस्वरूप ही देखे ॥ ६ ॥

धर्मका मर्म जाननेवाला पुरुष श्राद्धमें मांसका अर्पण न करे और न स्वयं ही उसे खाय; क्योंकि पितरोंको ऋषि-मुनियोंके योग्य हविष्यान्नसे जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी पशु-हिंसासे नहीं होती ॥ ७ ॥ जो लोग सद्धर्मपालनकी अभिलाषा रखते हैं, उनके लिये इससे बढ़कर और कोई धर्म नहीं है कि किसी भी प्राणीको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकारका कष्ट न दिया जाय ॥ ८ ॥ इसीसे कोई-कोई यज्ञ-तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी ज्ञानके द्वारा प्रज्वलित आत्मसंयमरूप अग्निमें इन कर्ममय यज्ञोंका हवन कर देते हैं और बाह्य कर्म-कलापोंसे उपरत हो जाते हैं ॥ ९ ॥ जब कोई इन द्रव्यमय यज्ञोंसे यजन करना चाहता है, तब सभी प्राणी डर जाते हैं; वे सोचने लगते हैं कि यह अपने प्राणोंका पोषण करनेवाला निर्दयी मूर्ख मुझे अवश्य मार डालेगा ॥ १० ॥ इसलिये धर्मज्ञ मनुष्यको यही उचित है कि प्रतिदिन प्रारब्धके द्वारा प्राप्त मुनिजनोचित हविष्यान्नसे ही अपने नित्य और नैमित्तिक कर्म करे तथा उसीसे सर्वदा सन्तुष्ट रहे ॥ ११ ॥

अधर्मकी पाँच शाखाएँ हैं—विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल। धर्मज्ञ पुरुष अधर्मके समान ही इनका भी त्याग कर दे ॥ १२ ॥ जिस कार्यको धर्म-बुद्धिसे करनेपर भी अपने धर्ममें बाधा पड़े, वह 'विधर्म' है। किसी अन्यके द्वारा अन्य पुरुषके लिये उपदेश किया हुआ धर्म 'परधर्म' है। पाखण्ड या दम्भका नाम 'उपधर्म' अथवा 'उपमा' है। शास्त्रके वचनोंका दूसरे प्रकारका अर्थ कर देना 'छल' है ॥ १३ ॥ मनुष्य अपने आश्रमके विपरीत स्वेच्छासे जिसे धर्म मान लेता है, वह 'आभास' है। अपने-अपने स्वभावके अनुकूल जो वर्णाश्रमोचित धर्म हैं, वे भला किसे शान्ति नहीं देते ॥ १४ ॥

धर्मात्मा पुरुष निर्धन होनेपर भी धर्मके लिये अथवा शरीर-निर्वाहके लिये धन प्राप्त करनेकी चेष्टा न करे। क्योंकि जैसे बिना किसी प्रकारकी चेष्टा किये अजगरकी जीविका चलती ही है, वैसे ही निवृत्तिपरायण पुरुषकी निवृत्ति ही उसकी जीविकाका निर्वाह कर देती है ।१५। जो सुख अपनी आत्मामें रमण करनेवाले निष्क्रिय सन्तोषी पुरुषको मिलता है, वह उस मनुष्यको भला कैसे मिल सकता है, जो कामना और लोभसे धनके लिये हाय-हाय करता हुआ इधर-उधर दौड़ता फिरता है ॥ १६ ॥ जैसे पैरोंमें जूता पहनकर चलनेवालेको कंकड़ और काँटोंसे कोई डर नहीं होता—वैसे ही जिसके मनमें सन्तोष है, उसके लिये सर्वदा और सब कहीं सुख-ही-सुख है, दुःख है ही नहीं ॥ १७ ॥ युधिष्ठिर ! न जाने क्यों मनुष्य केवल जलमात्रसे ही सन्तुष्ट रहकर अपने जीवनका निर्वाह नहीं कर लेता।

अपितु रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियके फेरमें पड़कर यह बेचारा घरकी चौकसी करनेवाले कुत्तेके समान हो जाता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण सन्तोषी नहीं है, इन्द्रियोंकी लोलुपताके कारण उसके तेज, विद्या, तपस्या और यश क्षीण हो जाते हैं और वह विवेक भी खो बैठता है ॥ १९ ॥ भूख और प्यास मिट जानेपर खाने-पीनेकी कामनाका अन्त हो जाता है । क्रोध भी अपना काम पूरा करके शान्त हो जाता है । परन्तु यदि मनुष्य पृथ्वीकी समस्त दिशाओंको जीत ले और भोग ले, तब भी लोभका अन्त नहीं होता ॥ २० ॥ अनेक विषयोंके ज्ञाता, शङ्काओंका समाधान करके चित्तमें शास्त्रोक्त अर्थको बैठा देनेवाले और विद्वत्सभाओंके सभापति बड़े-बड़े विद्वान् भी असन्तोषके कारण गिर जाते हैं ॥ २१ ॥

धर्मराज ! सङ्कल्पोंके परित्यागसे कामको, कामनाओंके त्यागसे क्रोधको, संसारी लोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वके विचारसे भयको जीत लेना चाहिये ॥ २२ ॥ अध्यात्मविद्यासे शोक और मोहपर, संतोंकी उपासनासे दम्भपर, मौनके द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर-प्राण आदिको निश्चेष्ट करके हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिये ॥ २३ ॥ आधिभौतिक दुःखको दयाके द्वारा, आधिदैविक वेदनाको समाधिके द्वारा और आध्यात्मिक दुःखको योगबलसे एवं निद्राको सात्त्विक भोजन, स्थान, सङ्ग आदिके सेवनसे जीत लेना चाहिये ॥२४॥ सत्त्वगुणके द्वारा रजोगुण एवं तमोगुणपर और उपरतिके द्वारा सत्त्वगुणपर विजय प्राप्त करनी चाहिये । श्रीगुरुदेवकी भक्तिके द्वारा साधक इन सभी दोषोंपर सुगमतासे विजय प्राप्त कर सकता है ।२५। हृदयमें ज्ञानका दीपक जलानेवाले गुरुदेव साक्षात् भगवान् ही हैं । जो दुर्बुद्धि पुरुष उन्हें मनुष्य समझता है, उसका समस्त शास्त्र-श्रवण हाथीके स्नानके समान व्यर्थ है ॥ २६ ॥ बड़े-बड़े योगेश्वर जिनके चरणकमलोंका अनुसन्धान करते रहते हैं, प्रकृति और पुरुषके अधीश्वर वे स्वयं भगवान् ही गुरुदेवके रूपमें प्रकट हैं । इन्हें लोग भ्रमसे मनुष्य मानते हैं ॥ २७ ॥

शास्त्रोंमें जितने भी नियमसम्बन्धी आदेश हैं, उनका एकमात्र तात्पर्य यही है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली जाय अथवा पाँचों इन्द्रिय और मन—ये छः वशमें हो जायँ । ऐसा होनेपर भी यदि उन नियमोंके द्वारा भगवान्‌के ध्यान-चिन्तन आदिकी प्राप्ति नहीं होती, तो उन्हें केवल श्रम-ही-श्रम समझना चाहिये ॥ २८ ॥ जैसे खेती, व्यापार आदि और उनके फल भी योग-साधनाके फल भगवत्प्राप्ति या मुक्तिको नहीं दे सकते—वैसे ही दुष्ट पुरुषके श्रौत-स्मार्त कर्म भी कल्याणकारी नहीं होते, प्रत्युत उल्टा फल देते हैं ॥ २९ ॥

जो पुरुष अपने मनपर विजय प्राप्त करनेके लिये उद्यत हो, वह आसक्ति और परिग्रहका त्याग करके संन्यास ग्रहण करे । एकान्तमें अकेला ही रहे और भिक्षा-वृत्तिसे शरीर-निर्वाहमात्रके लिये स्वल्प और परिमित भोजन करे ॥ ३० ॥ युधिष्ठिर ! पवित्र और समान भूमिपर अपना आसन बिछाये और सीधे स्थिर-भावसे समान और सुखकर आसनसे उसपर बैठकर ॐकारका जप करे ॥ ३१ ॥ जबतक मन सङ्कल्प-विकल्पोंको छोड़ न दे, तबतक नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर पूरक, कुम्भक और रेचकद्वारा प्राण तथा अपानकी गतिको रोके ॥ ३२ ॥ कामकी चोटसे घायल चित्त इधर-उधर चक्कर काटता हुआ जहाँ-जहाँ जाय, विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह वहाँ-वहाँसे उसे लौटा लाये और धीरे-धीरे हृदयमें रोके ॥ ३३ ॥ जब साधक निरन्तर इस प्रकारका अभ्यास करता है, तब ईंधनके बिना जैसे अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही थोड़े समयमें उसका चित्त शान्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जब काम-वासनाएँ चोट करना बंद कर देती हैं और समस्त वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त हो जाती हैं, तब चित्त ब्रह्मानन्दके संस्पर्शमें मग्न हो जाता है और फिर उसका कभी उत्थान नहीं होता ॥ ३५ ॥

जो संन्यासी पहले तो धर्म, अर्थ और कामके मूल कारण गृहस्थाश्रमका परित्याग कर देता है और फिर उन्हींका सेवन करने लगता है, वह निर्लज्ज अपने उगले हुएको खानेवाला कुत्ता ही है ॥ ३६ ॥ जिन्होंने अपने शरीरको अनात्मा, मृत्युग्रस्त और विष्ठा, कृमि

एवं राख समझ लिया था—वे ही मूढ़ फिर उसे आत्मा मानकर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं ॥ ३७ ॥ कर्म-त्यागी गृहस्थ, व्रतत्यागी ब्रह्मचारी, गाँवमें रहनेवाला तपस्वी (वानप्रस्थ) और इन्द्रियलोलुप संन्यासी—ये चारों आश्रमके कलङ्क हैं और व्यर्थ ही आश्रमोंका ढोंग करते हैं। भगवान्‌की मायासे विमोहित उन मूढ़ोंपर तरस खाकर उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिये ।३८-३९। आत्मज्ञानके द्वारा जिसकी सारी वासनाएँ निर्मूल हो गयी हैं और जिसने अपने आत्माको परब्रह्मस्वरूप जान लिया है, वह किस विषयकी इच्छा और किस भोक्ता-की तृप्तिके लिये इन्द्रियलोलुप होकर अपने शरीरका पोषण करेगा ? ॥ ४० ॥

उपनिषदोंमें कहा गया है कि शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियोंका स्वामी मन लगाम है, शब्दादि विषय मार्ग हैं, बुद्धि सारथि है, चित्त ही भगवान्‌के द्वारा निर्मित बाँधनेकी विशाल रस्सी है, दस प्राण धुरी हैं, धर्म और अधर्म पहिये हैं और इनका अभिमानी जीव रथी कहा गया है। ॐकार ही उस रथीका धनुष है, शुद्ध जीवात्मा बाण और परमात्मा लक्ष्य है। (इस ॐकार-के द्वारा अन्तरात्माको परमात्मामें लीन कर देना चाहिये) ॥ ४१-४२ ॥ राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, दूसरेके गुणोंमें दोष निकालना, छल, हिंसा, दूसरेकी उन्नति देखकर जलना, तृष्णा, प्रमाद, भूख और नींद—ये सब, और ऐसे ही जीवोंके और भी बहुत-से शत्रु हैं। उनमें रजोगुण और तमोगुणप्रधान वृत्तियाँ अधिक हैं, कहीं-कहीं कोई-कोई सत्त्वगुणप्रधान ही होती हैं ॥ ४३-४४ ॥ यह मनुष्य-शरीररूप रथ जबतक अपने वशमें है और इसके इन्द्रिय-मन आदि सारे साधन अच्छी दशामें विद्यमान हैं, तभीतक श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी सेवा-पूजासे शान धरायी हुई ज्ञानकी तीखी तलवार लेकर भगवान्‌के आश्रयसे इन शत्रुओंका नाश करके अपने स्वाराज्य-सिंहासनपर विराजमान हो जाय और फिर अत्यन्त शान्तभावसे इस शरीरका भी परित्याग कर दे ॥ ४५ ॥ नहीं तो, तनिक भी प्रमाद हो जानेपर ये इन्द्रियरूप दुष्ट घोड़े और उनसे मित्रता रखनेवाला बुद्धिरूप सारथि रथके स्वामी जीवको उल्टे रास्ते ले जाकर विषयरूपी लुटेरोंके हाथोंमें डाल देंगे। वे डाकू सारथि और घोड़ोंके सहित इस जीवको मृत्युसे अत्यन्त भयावने घोर अन्धकारमय संसारके कुएँमें गिरा देंगे।४६।

वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं—एक तो वे जो वृत्तियोंको उनके विषयोंकी ओर ले जाते हैं—प्रवृत्ति-परक, और दूसरे वे जो वृत्तियोंको उनके विषयोंकी ओरसे लौटाकर शान्त एवं आत्मसाक्षात्कारके योग्य बना देते हैं—निवृत्तिपरक। प्रवृत्तिपरक कर्ममार्गसे बार-बार जन्म-मृत्युकी प्राप्ति होती है और निवृत्तिपरक भक्तिमार्ग या ज्ञानमार्गके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ श्येनयागादि हिंसामय कर्म, अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग, वैश्वदेव, बलिहरण आदि द्रव्यमय कर्म 'इष्ट' कहलाते हैं और देवालय, बगीचा, कूआँ आदि बनवाना तथा प्याऊ आदि लगाना 'पूर्त कर्म' हैं। ये सभी प्रवृत्तिपरक कर्म हैं और सकामभावसे युक्त होनेपर अशान्तिके ही कारण बनते हैं ॥ ४८-४९ ॥ प्रवृत्तिपरायण पुरुष मरनेपर चरु-पुरोडाशादि यज्ञसम्बन्धी द्रव्योंके सूक्ष्मभागसे बना हुआ शरीर धारणकर धूमाभिमानी देवताओंके पास जाता है। फिर क्रमशः रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन-के अभिमानी देवताओंके पास जाकर चन्द्रलोकमें पहुँचता है। वहाँसे भोग समाप्त होनेपर अमावस्याके चन्द्रमाके समान क्षीण होकर वृष्टिद्वारा क्रमशः ओषधि, लता, अन्न और वीर्यके रूपमें परिणत होकर पितृयान-मार्गसे पुनः संसारमें ही जन्म लेता है ॥ ५०-५१ ॥ युधिष्ठिर ! गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सम्पूर्ण संस्कार जिनके होते हैं, उनको 'द्विज' कहते हैं। (उनमेंसे कुछ तो पूर्वोक्त प्रवृत्तिमार्गका अनुष्ठान करते हैं और कुछ आगे कहे जानेवाले निवृत्तिमार्गका।) निवृत्तिपरायण पुरुष इष्ट, पूर्त आदि कर्मोंसे होनेवाले समस्त यज्ञोंको विषयोंका ज्ञान करानेवाले इन्द्रियोंमें हवन कर देता है ॥ ५२ ॥ इन्द्रियोंको दर्शनादि-सङ्कल्परूप मनमें, वैकारिक मनको परा वाणीमें और परा वाणीको वर्णसमुदायमें, वर्णसमुदायको 'अ उ म्' इन तीन स्वरों-के रूपमें रहनेवाले ॐकारमें, ॐकारको बिन्दुमें,

ब्रिन्दुको नादमें, नादको सूत्रात्मारूप प्राणमें तथा प्राणको ब्रह्ममें लीन कर देता है ॥ ५३ ॥ वह निवृत्तिनिष्ठ ज्ञानी क्रमशः अग्नि, सूर्य, दिन, सायङ्काल, शुक्लपक्ष, पूर्णमासी और उत्तरायणके अभिमानी देवताओंके पास जाकर ब्रह्मलोकमें पहुँचता है और वहाँके भोग समाप्त होनेपर वह स्थूलोपाधिक 'विश्व' अपनी स्थूल उपाधिको सूक्ष्ममें लीन करके सूक्ष्मोपाधिक 'तैजस' हो जाता है। फिर सूक्ष्म उपाधिको कारणमें लय करके कारणोपाधिक 'प्राज्ञ' रूपसे स्थित होता है; फिर सबके साक्षीरूपसे सर्वत्र अनुगत होनेके कारण साक्षीके ही स्वरूपमें कारणोपाधिका लय करके 'तुरीय' रूपसे स्थित होता है । इस प्रकार दृश्योंका लय हो जानेपर वह शुद्ध आत्मा रह जाता है। यही मोक्षपद है ॥ ५४ ॥ इसे 'देवयान' मार्ग कहते हैं। इस मार्गसे जानेवाला आत्मोपासक संसारकी ओरसे निवृत्त होकर क्रमशः एकसे दूसरे देवताके पास होता हुआ ब्रह्मलोकमें जाकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। वह प्रवृत्तिमार्गीके समान फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता ॥ ५५ ॥

ये पितृयान और देवयान दोनों ही वेदोक्त मार्ग हैं। जो शास्त्रीय दृष्टिसे इन्हें तत्त्वतः जान लेता है, वह शरीरमें स्थित रहता हुआ भी मोहित नहीं होता।५६। पैदा होनेवाले शरीरोंके पहले भी कारणरूपसे और उनका अन्त हो जानेपर भी उनकी अवधिरूपसे जो स्वयं विद्यमान रहता है, जो भोग्यरूपसे बाहर और भोक्तारूपसे भीतर है तथा ऊँच और नीच, जानना और जाननेका विषय, वाणी और वाणीका विषय, अन्धकार और प्रकाश आदि वस्तुओंके रूपमें जो कुछ भी उपलब्ध होता है; वह सब स्वयं यह तत्त्ववेत्ता ही है। इसीसे मोह उसका स्पर्श नहीं कर सकता ॥५७॥ दर्पण आदिमें दीख पड़नेवाला प्रतिबिम्ब विचार और युक्तिसे बाधित है, उसका उनमें अस्तित्व है नहीं; फिर भी वस्तुके रूपमें तो वह दीखता ही है। वैसे ही इन्द्रियोंके द्वारा दीखनेवाला वस्तुओंका भेद-भाव भी विचार, युक्ति और आत्मानुभवसे असम्भव होनेके कारण वस्तुतः न होनेपर भी सत्य-सा प्रतीत होता है ॥ ५८ ॥ पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंसे इस शरीरका निर्माण नहीं हुआ है। वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो न तो वह उन पञ्चभूतोंका सङ्घात है और न विकार या परिणाम ही। क्योंकि यह अपने अवयवोंसे न तो पृथक् है और न उनमें अनुगत ही है, अतएव मिथ्या है ॥ ५९ ॥ इसी प्रकार शरीरके कारणरूप पञ्चभूत भी अवयवी होनेके कारण अपने अवयवों—सूक्ष्मभूतोंसे भिन्न नहीं हैं, अवयवरूप ही हैं। जब बहुत खोज-बीन करनेपर भी अवयवोंके अतिरिक्त अवयवीका अस्तित्व नहीं मिलता—वह असत् ही सिद्ध होता है, तब अपने-आप ही यह सिद्ध हो जाता है कि ये अवयव भी असत्य ही हैं ॥ ६० ॥ जबतक अज्ञानके कारण एक ही परमतत्त्वमें अनेक वस्तुओंके भेद मालूम पड़ते रहते हैं, तबतक यह भ्रम भी रह सकता है कि जो वस्तुएँ पहले थीं, वे अब भी हैं। और स्वप्नमें भी जिस प्रकार जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंके अलग-अलग अनुभव होते ही हैं तथा उनमें भी विधि-निषेधके शास्त्र रहते हैं—वैसे ही जबतक इन भिन्नताओंके अस्तित्वका मोह बना हुआ है, तबतक यहाँ भी विधि-निषेधके शास्त्र हैं ही ।६१।

जो विचारशील पुरुष स्वानुभूतिसे आत्माके त्रिविध अद्वैतका साक्षात्कार करते हैं—वे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यके भेदरूप स्वप्नको मिटा देते हैं। ये अद्वैत तीन प्रकारके हैं—भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत ॥ ६२ ॥ जैसे वस्त्र सूतरूप ही होता है, वैसे ही कार्य भी कारणमात्र ही है। क्योंकि भेद तो वास्तवमें है नहीं। इस प्रकार सबकी एकताका विचार 'भावाद्वैत' है ॥ ६३ ॥ युधिष्ठिर ! मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले सब कर्म स्वयं परब्रह्म परमात्मामें ही हो रहे हैं, उसीमें अध्यस्त हैं—इस भावसे समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना 'क्रियाद्वैत' है ॥ ६४ ॥ स्त्री-पुत्रादि सगे-सम्बन्धी एवं संसारके अन्य समस्त प्राणियोंके तथा अपने स्वार्थ और भोग एक ही हैं, उनमें अपने और परायेका भेद नहीं है—इस प्रकारका विचार 'द्रव्याद्वैत' है ॥ ६५ ॥

युधिष्ठिर ! जिस पुरुषके लिये जिस द्रव्यको जिस समय जिस उपायसे जिससे ग्रहण करना शास्त्राज्ञाके

विरुद्ध न हो, उसे उसीसे अपने सब कार्य सम्पन्न करने चाहिये; आपत्तिकालको छोड़कर इससे अन्यथा नहीं करना चाहिये ॥ ६६ ॥ महाराज ! भगवद्भक्त मनुष्य वेदमें कहे हुए इन कर्मोंके तथा अन्यान्य स्वकर्मोंके अनुष्ठानसे घरमें रहते हुए भी श्रीकृष्णकी गतिको प्राप्त करता है ॥ ६७ ॥ युधिष्ठिर ! जैसे तुम अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा और सहायतासे बड़ी-बड़ी कठिन विपत्तियोंसे पार हो गये हो और उन्हींके चरणकमलोंकी सेवासे समस्त भूमण्डलको जीतकर तुमने बड़े-बड़े राजसूय आदि यज्ञ किये हैं ॥ ६८ ॥

पूर्वजन्ममें इसके पहलेके महाकल्पमें मैं एक गन्धर्व था। मेरा नाम था उपबर्हण और गन्धर्वोंमें मेरा बड़ा सम्मान था ॥ ६९ ॥ मेरी सुन्दरता, सुकुमारता और मधुरता अपूर्व थी। मेरे शरीरमेंसे सुगन्धि निकला करती और देखनेमें मैं बहुत अच्छा लगता। स्त्रियाँ मुझसे बहुत प्रेम करतीं और मैं सदा प्रमादमें ही रहता। मैं अत्यन्त विलासी था ॥ ७० ॥ एक बार देवताओंके यहाँ ज्ञानसत्र हुआ। उसमें बड़े-बड़े प्रजापति आये थे। भगवान्‌की लीलाका गान करनेके लिये उन लोगोंने गन्धर्व और अप्सराओंको बुलाया ॥ ७१ ॥ मैं जानता था कि वह संतोंका समाज है और वहाँ भगवान्‌की लीलाका ही गान होता है। फिर भी मैं स्त्रियोंके साथ लौकिक गीतोंका गान करता हुआ उन्मत्तकी तरह वहाँ जा पहुँचा। देवताओंने देखा कि यह तो हमलोगोंका अनादर कर रहा है। उन्होंने अपनी शक्तिसे मुझे शाप दे दिया कि 'तुमने हमलोगोंकी अवहेलना की है, इसलिये तुम्हारी सारी सौन्दर्य-सम्पत्ति नष्ट हो जाय और तुम शीघ्र ही शूद्र हो जाओ' ॥ ७२ ॥ उनके शापसे मैं दासीका पुत्र हुआ। किन्तु उस शूद्र जीवनमें किये हुए महात्माओंके सत्सङ्ग और सेवा-शुश्रूषाके प्रभावसे मैं दूसरे जन्ममें ब्रह्माजीका पुत्र हुआ ॥ ७३ ॥ संतोंकी अवहेलना और सेवाका यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। संत-सेवासे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। मैंने तुम्हें गृहस्थोंका पापनाशक धर्म बतला दिया। इस धर्मके आचरणसे गृहस्थ भी अनायास ही संन्यासियोंको मिलनेवाला परमपद प्राप्त कर लेता है ॥ ७४ ॥

युधिष्ठिर ! इस मनुष्यलोकमें तुमलोगोंके भाग्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं; क्योंकि तुम्हारे घरमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मनुष्यका रूप धारण करके गुप्तरूपसे निवास करते हैं। इसीसे सारे संसारको पवित्र कर देनेवाले ऋषि-मुनि बार-बार उनका दर्शन करनेके लिये चारों ओरसे तुम्हारे पास आया करते हैं ॥ ७५ ॥ बड़े-बड़े महापुरुष निरन्तर जिनको ढूँढ़ते रहते हैं, जो मायाके लेशसे रहित परम शान्त परमानन्दानुभव-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं—वे ही तुम्हारे प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई, पूज्य, आज्ञाकारी, गुरु और स्वयं आत्मा श्रीकृष्ण हैं ॥ ७६ ॥ शङ्कर, ब्रह्मा आदि भी अपनी सारी बुद्धि लगाकर 'वे यह हैं'—इस रूपमें उनका वर्णन नहीं कर सके। फिर हम तो कर ही कैसे सकते हैं। हम मौन, भक्ति और संयमके द्वारा ही उनकी पूजा करते हैं। कृपया हमारी यह पूजा स्वीकार करके भक्तवत्सल भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ७७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! देवर्षि नारदका यह प्रवचन सुनकर राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने प्रेम-विह्वल होकर देवर्षि नारद और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ७८ ॥ देवर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिरसे विदा लेकर और उनके द्वारा सत्कार पाकर चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, यह सुनकर युधिष्ठिरके आश्चर्यकी सीमा न रही ॥ ७९ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दक्ष-पुत्रियोंके वंशोंका अलग-अलग वर्णन सुनाया। उन्हींके वंशमें देवता, असुर, मनुष्य आदि और सम्पूर्ण चराचरकी सृष्टि हुई है ॥ ८० ॥

इति सप्तम स्कन्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

अष्टम स्कन्ध

ईश्वरोऽप्यभवद्भिक्षुर्वामनोऽपि त्रिभिः क्रमैः ।
त्रींल्लोकान् क्रान्तवान् यो वै स कृष्णः कुरुतात्कृपाम् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

अष्टम स्कन्ध

पहला अध्याय

मन्वन्तरोंका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—गुरुदेव! स्वायम्भुव मनुका वंश-विस्तार मैंने सुन लिया। इसी वंशमें उनकी कन्याओंके द्वारा मरीचि आदि प्रजापतियोंने अपनी वंश-परम्परा चलायी थी। अब आप हमसे दूसरे मनुओंका वर्णन कीजिये॥ १॥ ब्रह्मन्! ज्ञानी महात्मा जिस-जिस मन्वन्तरमें महामहिम भगवान्‌के जिन-जिन अवतारों और लीलाओंका वर्णन करते हैं, उन्हें आप अवश्य सुनाइये। हम बड़ी श्रद्धासे उनका श्रवण करना चाहते हैं॥ २॥ भगवन्! विश्वभावन भगवान् बीते हुए मन्वन्तरोंमें जो-जो लीलाएँ कर चुके हैं, वर्तमान मन्वन्तरमें जो कर रहे हैं और आगामी मन्वन्तरोंमें जो कुछ करेंगे, वह सब हमें सुनाइये॥ ३॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—इस कल्पमें स्वायम्भुव आदि छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। उनमेंसे पहले मन्वन्तरका मैंने वर्णन कर दिया, उसीमें देवता आदिकी उत्पत्ति हुई थी॥ ४॥ स्वायम्भुव मनुकी पुत्री आकूतिसे यज्ञ-पुरुषके रूपमें धर्मका उपदेश करनेके लिये तथा देवहूतिसे कपिलके रूपमें ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भगवान्‌ने उनके पुत्ररूपसे अवतार ग्रहण किया था॥ ५॥ परीक्षित्! भगवान् कपिलका वर्णन मैं पहले ही (तीसरे स्कन्धमें) कर चुका हूँ। अब भगवान् यज्ञपुरुषने आकूतिके गर्भसे अवतार लेकर जो कुछ किया, उसका वर्णन करता हूँ॥ ६॥

परीक्षित्! भगवान् स्वायम्भुव मनुने समस्त कामना-ओं और भोगोंसे विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया। वे अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये॥ ७॥ परीक्षित्! उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहकर सौ वर्षतक घोर तपस्या की। तपस्या करते समय वे प्रतिदिन इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करते थे॥ ८॥

मनुजी कहा करते थे—जिनकी चेतनाके स्पर्श-मात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है, किन्तु यह विश्व जिन्हें चेतनाका दान नहीं कर सकता; जो इसके सो जानेपर प्रलयमें भी जागते रहते हैं, जिनको यह नहीं जान सकता, परन्तु जो इसे जानते हैं—वही परमात्मा हैं॥ ९॥ यह सम्पूर्ण विश्व और इस विश्वमें रहने-वाले समस्त चर-अचर प्राणी—सब उन परमात्मासे ही ओतप्रोत हैं। इसलिये संसारके किसी भी पदार्थमें मोह न करके उसका त्याग करते हुए ही जीवन-निर्वाह-मात्रके लिये उपभोग करना चाहिये। तृष्णाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। भला, ये संसारकी सम्पत्तियाँ किसकी हैं?॥ १०॥ भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं। परन्तु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले उन्हीं स्वयंप्रकाश असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो॥ ११॥ जिनका न आदि है न अन्त, फिर मध्य तो होगा ही कहाँसे? जिनका न कोई अपना है और न पराया, और न बाहर है न भीतर, वे विश्वके आदि, अन्त, मध्य, अपने-पराये, बाहर और भीतर—सब कुछ हैं। उन्हींकी सत्तासे

विश्वकी सत्ता हैं। वही अनन्त वास्तविक सत्य परब्रह्म हैं ॥ १२ ॥ वही परमात्मा विश्वरूप हैं। उनके अनन्त नाम हैं। वे सर्वशक्तिमान् सत्य, स्वयंप्रकाश, अजन्मा और पुराणपुरुष हैं। वे अपनी मायाशक्तिके द्वारा ही विश्वसृष्टिके जन्म आदिको स्वीकार कर लेते हैं और अपनी विद्याशक्तिके द्वारा उसका त्याग करके निष्क्रिय, सत्स्वरूपमात्र रहते हैं ॥ १३ ॥ इसीसे ऋषि-मुनि नैष्कर्म्यस्थिति अर्थात् ब्रह्मसे एकत्व प्राप्त करनेके लिये पहले कर्मयोगका अनुष्ठान करते हैं। प्रायः कर्म करनेवाला पुरुष ही अन्तमें निष्क्रिय होकर कर्मोंसे छुट्टी पा लेता है ॥ १४ ॥ यों तो सर्वशक्तिमान् भगवान् भी कर्म करते हैं, परन्तु वे आत्मलाभसे पूर्णकाम होनेके कारण उन कर्मोंमें आसक्त नहीं होते। अतः उन्हींका अनुसरण करके अनासक्त रहकर कर्म करनेवाले भी कर्मबन्धनसे मुक्त ही रहते हैं ॥ १५ ॥ भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये उनमें अहङ्कारका लेश भी नहीं है। वे सर्वतः परिपूर्ण हैं, इसलिये उन्हें किसी वस्तुकी कामना नहीं है। वे बिना किसीकी प्रेरणाके स्वच्छन्दरूपसे ही कर्म करते हैं। वे अपनी ही बनायी हुई मर्यादामें स्थित रहकर अपने कर्मोंके द्वारा मनुष्योंको शिक्षा देते हैं। वे ही समस्त धर्मोंके प्रवर्तक और उनके जीवनदाता हैं। मैं उन्हीं प्रभुकी शरणमें हूँ ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार स्वायम्भुव मनु एकाग्रचित्तसे इस मन्त्रमय उपनिषत्स्वरूप श्रुतिका पाठ कर रहे थे। उन्हें नींदमें अचेत होकर बड़बड़ाते जान भूखे असुर और राक्षस खा डालनेके लिये उनपर टूट पड़े ॥ १७ ॥ यह देखकर अन्तर्यामी भगवान् यज्ञपुरुष अपने पुत्र याम नामक देवताओंके साथ वहाँ आये। उन्होंने उन खा डालनेके निश्चयसे आये हुए असुरोंका संहार कर डाला और फिर वे इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्गका शासन करने लगे। ॥ १८ ॥

परीक्षित् ! दूसरे मनु हुए स्वारोचिष। वे अग्निके पुत्र थे। उनके पुत्रोंके नाम थे—द्युमान्, सुषेण और रोचिष्मान् आदि ॥ १९ ॥ उस मन्वन्तरमें इन्द्रका नाम था रोचन, प्रधान देवगण थे तुषित आदि। ऊर्जस्तम्भ आदि वेदवादीगण सप्तर्षि थे ॥ २० ॥ उस मन्वन्तरमें वेदशिरा नामके ऋषिकी पत्नी तुषिता थीं। उनके गर्भसे भगवान्ने अवतार ग्रहण किया और विभु नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २१ ॥ वे आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। उन्हींके आचरणसे शिक्षा ग्रहण करके अठासी हजार व्रतनिष्ठ ऋषियोंने भी ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया ॥२२॥

तीसरे मनु थे उत्तम। वे प्रियव्रतके पुत्र थे। उनके पुत्रोंके नाम थे—पवन, सृञ्जय, यज्ञहोत्र आदि ॥२३॥ उस मन्वन्तरमें वसिष्ठजीके प्रमद आदि सात पुत्र सप्तर्षि थे। सत्य, वेदश्रुत और भद्र नामक देवताओंके प्रधान गण थे। और इन्द्रका नाम था सत्यजित् ॥२४॥ उस समय धर्मकी पत्नी सूनृताके गर्भसे पुरुषोत्तमभगवान्ने सत्यसेनके नामसे अवतार ग्रहण किया था। उनके साथ सत्यव्रत नामके देवगण भी थे ॥ २५ ॥ उस समयके इन्द्र सत्यजित्के सखा बनकर भगवान्ने असत्यपरायण, दुःशील और दुष्ट यक्षों, राक्षसों एवं जीवद्रोही भूतगणोंका संहार किया ॥ २६ ॥

चौथे मनुका नाम था तामस। वे तीसरे मनु उत्तमके सगे भाई थे। उनके पृथु, ख्याति, नर, केतु इत्यादि दस पुत्र थे ॥ २७ ॥ सत्यक, हरि और वीर नामक देवताओंके प्रधान गण थे। इन्द्रका नाम था त्रिशिख। उस मन्वन्तरमें ज्योतिर्धाम आदि सप्तर्षि थे ॥ २८ ॥ परीक्षित् ! उस तामस नामके मन्वन्तरमें विधृतिके पुत्र वैधृति नामके और भी देवता हुए। उन्होंने समयके फेरसे नष्टप्राय वेदोंको अपनी शक्तिसे बचाया था, इसीलिये ये 'वैधृति' कहलाये ॥ २९ ॥ इस मन्वन्तरमें हरिमेधा ऋषिकी पत्नी हरिणीके गर्भसे हरिके रूपमें भगवान्ने अवतार ग्रहण किया। इसी अवतारमें उन्होंने ग्राहसे गजेन्द्रकी रक्षा की थी ॥ ३० ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—मुनिवर ! हम आपसे यह सुनना चाहते हैं कि भगवान्ने गजेन्द्रको ग्राहके फंदेसे कैसे छुड़ाया था ॥ ३१ ॥ सब कथाओंमें वही कथा परम पुण्यमय, प्रशंसनीय, मङ्गलकारी और शुभ है, जिसमें महात्माओंके द्वारा गान किये हुए भगवान् श्रीहरिके पवित्र यशका वर्णन रहता है ॥ ३२ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! राजा परीक्षित् आमरण अनशन करके कथा सुननेके लिये ही बैठे हुए थे। उन्होंने जब श्रीशुकदेवजी महाराजको इस प्रकार कथा कहनेके लिये प्रेरित किया, तब वे बड़े आनन्दित हुए और प्रेमसे परीक्षित्‌का अभिनन्दन करके मुनियोंकी भरी सभामें कहने लगे ॥ ३२ ॥

दूसरा अध्याय

ग्राहके द्वारा गजेन्द्रका पकड़ा जाना

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! क्षीरसागरमें त्रिकूट नामका एक प्रसिद्ध सुन्दर एवं श्रेष्ठ पर्वत था । वह दस हजार योजन ऊँचा था ॥ १ ॥ उसकी लंबाई-चौड़ाई भी चारों ओर इतनी ही थी। उसके चाँदी, लोहे और सोनेके तीन शिखरोंकी छटासे समुद्र, दिशाएँ और आकाश जगमगाते रहते थे ॥ २ ॥ और भी उसके कितने ही शिखर ऐसे थे, जो रत्नों और धातुओंकी रंग-बिरंगी छटा दिखाते हुए सब दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनमें विविध जातिके वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ थीं। झरनोंकी झर-झरसे वह गुंजायमान होता रहता था ॥ ३ ॥ सब ओरसे समुद्रकी लहरें आ-आकर उस पर्वतके निचले भागसे टकरातीं, उस समय ऐसा जान पड़ता मानो वे पर्वतराजके पाँव पखार रही हों। उस पर्वतके हरे पन्नेके पत्थरोंसे वहाँकी भूमि ऐसी साँवली हो गयी थी, जैसे उसपर हरी-भरी दूब लग रही हो ॥ ४ ॥ उसकी कन्दराओंमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, किन्नर और अप्सराएँ आदि विहार करनेके लिये प्रायः बने ही रहते थे ॥ ५ ॥ जब उनके संगीतकी ध्वनि चट्टानोंसे टकराकर गुफाओंमें प्रतिध्वनित होने लगती थी, तब बड़े-बड़े गर्वीले सिंह उसे दूसरे सिंहकी ध्वनि समझकर सह न पाते और अपनी गर्जनासे उसे दबा देनेके लिये और जोरसे गरजने लगते थे ॥ ६ ॥

उस पर्वतकी तलहटी तरह-तरहके जंगली जानवरोंके झुंडोंसे सुशोभित रहती थी। अनेकों प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए देवताओंके उद्यानमें सुन्दर-सुन्दर पक्षी मधुर कण्ठसे चहकते रहते थे ॥ ७ ॥ उसपर बहुत-सी नदियाँ और सरोवर भी थे। उनका जल बड़ा निर्मल था। उनके पुलिनपर मणियोंकी बालू चमकती रहती थी। उनमें देवाङ्गनाएँ स्नान करती थीं, जिससे उनका जल अत्यन्त सुगन्धित हो जाता था। उसकी सुरभि लेकर भीनी-भीनी वायु चलती रहती थी ॥ ८ ॥

पर्वतराज त्रिकूटकी तराईमें भगवत्प्रेमी महात्मा भगवान् वरुणका एक उद्यान था। उसका नाम था ऋतुमान्। उसमें देवाङ्गनाएँ क्रीडा करती रहती थीं ॥ ९ ॥ उसमें सब ओर ऐसे दिव्य वृक्ष शोभायमान थे, जो फलों और फूलोंसे सर्वदा लदे ही रहते थे। उस उद्यानमें मन्दार, पारिजात, गुलाब, अशोक, चम्पा, तरह-तरहके आम, पयाल, कटहल, आमड़ा, सुपारी, नारियल, खजूर, बिजौरा, महुआ, साखू, ताड़, तमाल, असन, अर्जुन, रीठा, गूलर, पाकर, बरगद, पलास, चन्दन, नीम, कचनार, साल, देवदारु, दाख, ईख, केला, जामुन, बेर, रुद्राक्ष, हर्रे, आँवला, बेल, कैथ, नीबू और भिलावे आदिके वृक्ष लहराते रहते थे। उस उद्यानमें एक बड़ा भारी सरोवर था। उसमें सुनहले कमल खिल रहे थे ॥ १०—१४ ॥ और भी विविध जातिके कुमुद, उत्पल, कह्लार, शतदल आदि कमलोंकी अनूठी छटा छिटक रही थी। मतवाले भौंरे गूँज रहे थे। मनोहर पक्षी कलरव कर रहे थे। हंस, कारण्डव, चक्रवाक और सारस दल-के-दल भरे हुए थे। पनडुब्बी, बतख और पपीहे कूज रहे थे। मछली और कछुओंके चलनेसे कमलके फूल हिल जाते थे, जिससे उनका पराग झड़कर जलको सुन्दर और सुगन्धित बना देता था। कदम्ब, बेंत, नरकुल, कदम्बलता, बेन आदि वृक्षोंसे वह घिरा था ॥ १५—१७ ॥ कुन्द, कुरबक (कटसरैया), अशोक, सिरस, वनमल्लिका, लिसौड़ा, हरसिंगार, सोनजूही, नाग, पुन्नाग, जाती, मल्लिका, शतपत्र, माधवी और मोगरा आदि सुन्दर-सुन्दर पुष्पवृक्ष एवं तटके दूसरे वृक्षोंसे भी—जो

प्रत्येक ऋतुमें हरे-भरे रहते थे—वह सरोवर शोभायमान रहता था ॥ १८-१९ ॥

उस पर्वतके घोर जंगलमें बहुत-सी हथिनियोंके साथ एक गजेन्द्र निवास करता था। वह बड़े-बड़े शक्तिशाली हाथियोंका सरदार था। एक दिन वह उसी पर्वतपर अपनी हथिनियोंके साथ काँटेवाले कीचक, बाँस, बेंत, बड़ी-बड़ी झाड़ियों और पेड़ोंको रौंदता हुआ घूम रहा था ॥ २० ॥ उसकी गन्धमात्रसे सिंह, हाथी, बाघ, गैंड़े आदि हिंस्र जन्तु, नाग तथा काले-गोरे शरभ और चमरी गाय आदि डरकर भाग जाया करते थे ॥ २१ ॥ और उसकी कृपासे भेड़िये, सूअर, भैंसे, रीछ, शल्य, लंगूर तथा कुत्ते, बंदर, हरिन और खरगोश आदि क्षुद्र जीव सब कहीं निर्भय विचरते रहते थे ॥ २२ ॥ उसके पीछे-पीछे हाथियोंके छोटे-छोटे बच्चे दौड़ रहे थे। बड़े-बड़े हाथी और हथिनियाँ भी उसे घेरे हुए चल रही थीं। उसकी धमकसे पहाड़ एकबारगी काँप उठता था। उसके गण्डस्थलसे टपकते हुए मदका पान करनेके लिये साथ-साथ भौंरे उड़ते जा रहे थे। मदके कारण उसके नेत्र विह्वल हो रहे थे। बड़े जोरकी धूप थी, इसलिये वह व्याकुल हो गया और उसे तथा उसके साथियोंको प्यास भी सताने लगी। उस समय दूरसे ही कमलके परागसे सुवासित वायुकी गन्ध सूँघकर वह उसी सरोवरकी ओर चल पड़ा, जिसकी शीतलता और सुगन्ध लेकर वायु आ रही थी। थोड़ी ही देरमें वेगसे चलकर वह सरोवरके तटपर जा पहुँचा ॥ २३-२४ ॥ उस सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल एवं अमृतके समान मधुर था। सुनहले और अरुण कमलोंकी केसरसे वह महक रहा था। गजेन्द्रने पहले तो उसमें घुसकर अपनी सूँड़से उठा-उठा जी भरकर जल पिया, फिर उस जलमें स्नान करके अपनी थकान मिटायी ॥ २५ ॥ गजेन्द्र गृहस्थ पुरुषोंकी भाँति मोहग्रस्त होकर अपनी सूँड़से जलकी फुहारें छोड़-छोड़कर साथकी हथिनियों और बच्चोंको नहलाने लगा तथा उनके मुँहमें सूँड़ डाल-कर जल पिलाने लगा। भगवान्‌की मायासे मोहित हुआ गजेन्द्र उन्मत्त हो रहा था। उस बेचारेको इस बातका पता ही न था कि मेरे सिरपर बहुत बड़ी विपत्ति मँड़रा रही है ॥ २६ ॥

परीक्षित्! गजेन्द्र जिस समय इतना उन्मत्त हो रहा था, उसी समय प्रारब्धकी प्रेरणासे एक बलवान् ग्राहने क्रोधमें भरकर उसका पैर पकड़ लिया। इस प्रकार अकस्मात् विपत्तिमें पड़कर उस बलवान् गजेन्द्रने अपनी शक्तिके अनुसार अपनेको छुड़ानेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु छुड़ा न सका ॥ २७ ॥ दूसरे हाथी, हथिनियों और उनके बच्चोंने देखा कि उनके स्वामीको बलवान् ग्राह बड़े वेगसे खींच रहा है और वे बहुत घबरा रहे हैं। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बड़ी विकलतासे चिग्घाड़ने लगे। बहुतोंने उसे सहायता पहुँचाकर जलसे बाहर निकाल लेना चाहा, परन्तु इसमें भी वे असमर्थ ही रहे ॥ २८ ॥ गजेन्द्र और ग्राह अपनी-अपनी पूरी शक्ति लगाकर भिड़े हुए थे। कभी गजेन्द्र ग्राहको बाहर खींच लाता, तो कभी ग्राह गजेन्द्रको भीतर खींच ले जाता। परीक्षित्! इस प्रकार उनको लड़ते-लड़ते एक हजार वर्ष बीत गये और दोनों ही जीते रहे। यह घटना देखकर देवता भी आश्चर्यचकित हो गये ॥ २९ ॥

अन्तमें बहुत दिनोंतक बार-बार जलमें खींचे जाने-से गजेन्द्रका शरीर शिथिल पड़ गया। न तो उसके शरीरमें बल रह गया और न मनमें उत्साह। शक्ति भी क्षीण हो गयी। इधर ग्राह तो जलचर ही ठहरा। इसलिये उसकी शक्ति क्षीण होनेके स्थानपर बढ़ गयी, वह बड़े उत्साहसे और भी बल लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा ॥ ३० ॥ इस प्रकार देहाभिमानी गजेन्द्र अकस्मात् प्राणसङ्कटमें पड़ गया और अपनेको छुड़ानेमें सर्वथा असमर्थ हो गया। बहुत देरतक उसने अपने छुटकारेके उपायपर विचार किया, अन्तमें वह इस निश्चय-पर पहुँचा ॥ ३१ ॥ 'यह ग्राह विधाताकी फाँसी ही है। इसमें फँसकर मैं आतुर हो रहा हूँ। जब मुझे मेरे बराबरके हाथी भी इस विपत्तिसे न उबार सके, तब ये बेचारी हथिनियाँ तो छुड़ा ही कैसे सकती हैं? इसलिये अब मैं सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र आश्रय भगवान्‌की ही शरण लेता हूँ ॥ ३२ ॥ काल बड़ा बली है। यह साँप-के समान बड़े प्रचण्ड वेगसे सबको निगल जानेके लिये

दौड़ता ही रहता है । इससे अत्यन्त भयभीत होकर जो कोई भगवान्‌की शरणमें चला जाता है, उसे वे प्रभु अवश्य-अवश्य बचा लेते हैं । उनके भयसे भीत होकर मृत्यु भी अपना काम ठीक-ठीक पूरा करता है । वही प्रभु सबके आश्रय हैं । मैं उन्हींकी शरण ग्रहण करता हूँ' ॥ ३३ ॥

तीसरा अध्याय

गजेन्द्रके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और उसका संकटसे मुक्त होना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके गजेन्द्रने अपने मनको हृदयमें एकाग्र किया और फिर पूर्वजन्ममें सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके जप-द्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगा ॥ १ ॥

गजेन्द्रने कहा—जो जगत्‌के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुषके रूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतनताका विस्तार होता है—उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेमसे उनका ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥ यह संसार उन्हींमें स्थित है, उन्हींकी सत्तासे प्रतीत हो रहा है, वे ही इसमें व्याप्त हो रहे हैं और स्वयं वे ही इसके रूपमें प्रकट हो रहे हैं । यह सब होनेपर भी वे इस संसार और इसके कारण—प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं । उन स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध सत्तात्मक भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥ यह विश्व-प्रपञ्च उन्हींकी मायासे उनमें अध्यस्त है । यह कभी प्रतीत होता है, तो कभी नहीं । परन्तु उनकी दृष्टि ज्यों-की-त्यों—एक-सी रहती है । वे इसके साक्षी हैं और उन दोनोंको ही देखते रहते हैं । वे सबके मूल हैं और अपने मूल भी वही हैं । कोई दूसरा उनका कारण नहीं है । वे ही समस्त कार्य और कारणोंसे अतीत प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥ प्रलयके समय लोक, लोक-पाल और इन सबके कारण सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं । उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है । परन्तु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं । वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥ उनकी लीलाओंका रहस्य जानना बहुत ही कठिन है । वे नटकी भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं । उनके वास्तविक स्वरूपको न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो वहाँतक जा सके और उसका वर्णन कर सके ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ जिनके परम मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन करनेके लिये महात्मागण संसारकी समस्त आसक्तियों-का परित्याग कर देते हैं और वनमें जाकर अखण्डभावसे ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रतोंका पालन करते हैं तथा अपने आत्माको सबके हृदयमें विराजमान देखकर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं—वे ही मुनियोंके सर्वस्व भगवान् मेरे सहायक हैं; वे ही मेरी गति हैं ।७। न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप; फिर उनके सम्बन्धमें गुण और दोषकी तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है ? फिर भी विश्वकी सृष्टि और संहार करनेके लिये समय-समयपर वे उन्हें अपनी मायासे स्वीकार करते हैं ॥ ८ ॥ उन्हीं अनन्त शक्तिमान् सर्वैश्वर्यमय परब्रह्म परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ । वे अरूप होनेपर भी बहुरूप हैं । उनके कर्म अत्यन्त आश्चर्यमय हैं । मैं उनके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥ स्वयंप्रकाश, सबके साक्षी परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ । जो मन, वाणी और चित्तसे अत्यन्त दूर हैं—उन परमात्मा-को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

विवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा अपना अन्तःकरण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं तथा जो स्वयं तो नित्यमुक्त, परमानन्द एवं ज्ञान-स्वरूप हैं ही, दूसरोंको कैवल्य-मुक्ति देनेकी सामर्थ्य भी केवल उन्हींमें है—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥ जो सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणों-का धर्म स्वीकार करके क्रमशः शान्त, घोर और मूढ़ अवस्था भी धारण करते हैं, उन भेदरहित समभावसे स्थित एवं ज्ञानघन प्रभुको मैं बार-बार नमस्कार करता

हूँ ॥ १२ ॥ आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रोंके एकमात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप स्वयं ही अपने कारण हैं । पुरुष और मूल प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं । आपको मेरे बार-बार नमस्कार ॥ १३ ॥ आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयोंके द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियोंके आधार हैं । अहङ्कार आदि छायारूप असत् वस्तुओंके द्वारा आपका ही अस्तित्व प्रकट होता है । समस्त वस्तुओंकी सत्ताके रूपमें भी केवल आप ही भास रहे हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥ आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है । तथा कारण होनेपर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिये आप अनोखे कारण हैं । आपको मेरा बार-बार नमस्कार । जैसे समस्त नदी-झरने आदिका परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रोंके परम तात्पर्य हैं । आप मोक्षस्वरूप हैं और समस्त संत आपकी ही शरण ग्रहण करते हैं; अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥ जैसे यज्ञके काष्ठ अरणिमें अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञानको गुणोंकी मायासे ढक रक्खा है । गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनके द्वारा विविध प्रकारकी सृष्टि-रचनाका आप सङ्कल्प करते हैं । जो लोग कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा आत्मतत्त्वकी भावना करके वेद-शास्त्रोंसे ऊपर उठ जाते हैं, उनके आत्माके रूपमें आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

जैसे कोई दयालु पुरुष फंदेमें पड़े हुए पशुका बन्धन काट दे, वैसे ही आप मेरे-जैसे शरणागतोंकी फाँसी काट देते हैं । आप नित्यमुक्त हैं, परम करुणामय हैं और भक्तोंका कल्याण करनेमें आप कभी आलस्य नहीं करते । आपके चरणोंमें मेरा नमस्कार है । समस्त प्राणियोंके हृदयमें अपने अंशके द्वारा अन्तरात्माके रूपमें आप उपलब्ध होते रहते हैं । आप सर्वैश्वर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ जो लोग शरीर, पुत्र, गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं—उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है । क्योंकि आप स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हैं । जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं । उन सर्वैश्वर्यपूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कामनासे मनुष्य उन्हींका भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं । इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकारका सुख देते हैं और अपने ही-जैसा अविनाशी पार्षद-शरीर भी देते हैं । वे ही परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें ॥१९॥ जिनके अनन्य प्रेमी भक्तजन उन्हींकी शरणमें रहते हुए उनसे किसी भी वस्तुकी—यहाँतक कि मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मङ्गलमयी लीलाओंका गान करते हुए आनन्दके समुद्रमें निमग्न रहते हैं ॥ २० ॥ जो अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यन्त सूक्ष्म हैं; जो अत्यन्त निकट रहनेपर भी बहुत दूर जान पड़ते हैं; जो आध्यात्मिक योग अर्थात् ज्ञानयोग या भक्तियोगके द्वारा प्राप्त होते हैं—उन्हीं आदिपुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण परब्रह्म परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ २१ ॥

जिनकी अत्यन्त छोटी कलासे अनेकों नाम-रूपके भेद-भावसे युक्त ब्रह्मा आदि देवता, वेद और चराचर लोकोंकी सृष्टि हुई है, जैसे धधकती हुई आगसे लपटें और प्रकाशमान सूर्यसे उनकी किरणें बार-बार निकलती और लीन होती रहती हैं, वैसे ही जिन स्वयंप्रकाश परमात्मासे बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर—जो गुणोंके प्रवाहरूप हैं—बार-बार प्रकट होते तथा लीन हो जाते हैं, वे भगवान् न देवता हैं और न असुर । वे मनुष्य और पशु-पक्षी भी नहीं हैं । न वे स्त्री हैं, न पुरुष और न नपुंसक । वे कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं हैं । न वे गुण हैं और न कर्म, न कार्य हैं और न तो कारण ही । सबका निषेध हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं । वे ही परमात्मा मेरे उद्धारके लिये प्रकट हों ॥ २२—२४ ॥ मैं जीना नहीं चाहता । यह हाथीकी योनि बाहर और भीतर—सब ओरसे अज्ञानरूप आवरणके द्वारा ढकी हुई है, इसको

रखकर करना ही क्या है ? मैं तो आत्मप्रकाशको ढकनेवाले उस अज्ञानरूप आवरणसे छूटना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने-आप नहीं छूट सकता, जो केवल भगवत्कृपा अथवा तत्त्वज्ञानके द्वारा ही नष्ट होता है ॥२५॥ इसलिये मैं उन परब्रह्म परमात्माकी शरणमें हूँ, जो विश्वरहित होनेपर भी विश्वके रचयिता और विश्वस्वरूप हैं—साथ ही जो विश्वकी अन्तरात्माके रूपमें विश्वरूप सामग्रीसे क्रीडा भी करते रहते हैं, उन अजन्मा परमपद-स्वरूप ब्रह्मको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ योगीलोग योगके द्वारा कर्म, कर्म-वासना और कर्म-फलको भस्म करके अपने योगशुद्ध हृदयमें जिन योगेश्वर भगवान्‌का साक्षात्कार करते हैं—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥ प्रभो ! आपकी तीन शक्तियों—सत्त्व, रज और तमके रागादि वेग असह्य हैं। समस्त इन्द्रियों और मनके विषयोंके रूपमें भी आप ही प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, वे तो आपकी प्राप्तिका मार्ग भी नहीं पा सकते। आपकी शक्ति अनन्त है। आप शरणागतवत्सल हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥ आपकी माया अहंबुद्धिसे आत्माका स्वरूप ढक गया है, इसीसे यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुर्यनिधि भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गजेन्द्रने बिना किसी भेदभावके निर्विशेषरूपसे भगवान्‌की स्तुति की थी, इसलिये भिन्न-भिन्न नाम और रूपको अपना स्वरूप माननेवाले ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा करनेके लिये नहीं आये। उस समय सर्वात्मा होनेके कारण सर्वदेवस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये ॥३०॥ विश्वके एकमात्र आधार भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। अतः उसकी स्तुति सुनकर वेदमय गरुड़पर सवार हो चक्रधारी भगवान् बड़ी शीघ्रतासे वहाँके लिये चल पड़े, जहाँ गजेन्द्र अत्यन्त सङ्कटमें पड़ा हुआ था। उनके साथ स्तुति करते हुए देवता भी आये ॥ ३१ ॥ सरोवरके भीतर बलवान् ग्राहने गजेन्द्रको पकड़ रक्खा था और वह अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। जब उसने देखा कि आकाशमें गरुड़पर सवार होकर हाथमें चक्र लिये भगवान् श्रीहरि आ रहे हैं, तब अपनी सूँड़में कमलका एक सुन्दर पुष्प लेकर उसने ऊपरको उठाया और बड़े कष्टसे बोला—'नारायण ! जगद्गुरो ! भगवन् ! आपको नमस्कार है' ॥ ३२ ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुड़को छोड़कर कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी बड़ी शीघ्रतासे सरोवरसे बाहर निकाल लाये। फिर सब देवताओंके सामने ही भगवान् श्रीहरिने चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्रको छुड़ा लिया ॥३३॥

चौथा अध्याय

गज और ग्राहका पूर्वचरित्र तथा उनका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उस समय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता, ऋषि और गन्धर्व श्रीहरि भगवान्‌के इस कर्मकी प्रशंसा करने लगे तथा उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १ ॥ स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व नाचने-गाने लगे, ऋषि, चारण और सिद्धगण भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ इधर वह ग्राह तुरंत ही परम आश्चर्यमय दिव्य शरीरसे सम्पन्न हो गया। यह ग्राह इसके पहले 'हूहू' नामका एक श्रेष्ठ गन्धर्व था। देवलके शापसे उसे यह गति प्राप्त हुई थी। अब भगवान्‌की कृपासे वह मुक्त हो गया ॥ ३ ॥ उसने सर्वेश्वर भगवान्‌के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया, इसके बाद वह भगवान्‌के सुयशका गान करने लगा। वास्तवमें अविनाशी भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ कीर्तिसे सम्पन्न हैं। उन्हींके गुण और मनोहर लीलाएँ गान करने योग्य हैं ॥४॥ भगवान्‌के कृपापूर्ण स्पर्शसे उसके सारे पाप-ताप नष्ट

हो गये । उसने भगवान्‌की परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सबके देखते-देखते अपने लोककी यात्रा की ॥ ५ ॥

गजेन्द्र भी भगवान्‌का स्पर्श प्राप्त होते ही अज्ञानके बन्धनसे मुक्त हो गया । उसे भगवान्‌का ही रूप प्राप्त हो गया । वह पीताम्बरधारी एवं चतुर्भुज बन गया ॥ ६ ॥ गजेन्द्र पूर्वजन्ममें द्रविड देशका पाण्ड्यवंशी राजा था । उसका नाम था इन्द्रद्युम्न । वह भगवान्‌का एक श्रेष्ठ उपासक एवं अत्यन्त यशस्वी था ॥ ७ ॥ एक बार राजा इन्द्रद्युम्न राजपाट छोड़कर मलयपर्वतपर रहने लगे थे । उन्होंने जटाएँ बढ़ा लीं, तपस्वीका वेष धारण कर लिया । एक दिन स्नानके बाद पूजाके समय मनको एकाग्र करके एवं मौनव्रती होकर वे सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की आराधना कर रहे थे ॥ ८ ॥ उसी समय दैवयोगसे परमयशस्वी अगस्त्य मुनि अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने देखा कि यह प्रजापालन और गृहस्थोचित अतिथिसेवा आदि धर्मका परित्याग करके तपस्वियोंकी तरह एकान्तमें चुपचाप बैठकर उपासना कर रहा है, इसलिये वे राजा इन्द्रद्युम्नपर क्रुद्ध हो गये ॥ ९ ॥ उन्होंने राजाको यह शाप दिया—'इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है । ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है, इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो' ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शाप एवं वरदान देनेमें समर्थ अगस्त्य ऋषि इस प्रकार शाप देकर अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँसे चले गये । राजर्षि इन्द्रद्युम्नने यह समझकर सन्तोष किया कि यह मेरा प्रारब्ध ही था ॥ ११ ॥ इसके बाद आत्माकी विस्मृति करा देनेवाली हाथीकी योनि उन्हें प्राप्त हुई । परन्तु भगवान्‌की आराधनाका ऐसा प्रभाव है कि हाथी होनेपर भी उन्हें भगवान्‌की स्मृति हो ही गयी ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार गजेन्द्रका उद्धार करके उसे अपना पार्षद बना लिया । गन्धर्व, सिद्ध, देवता उनकी इस लीलाका गान करने लगे और वे पार्षदरूप गजेन्द्रको साथ ले गरुड़पर सवार होकर अपने अलौकिक धामको चले गये ॥ १३ ॥ कुरुवंश-शिरोमणि परीक्षित् ! मैंने भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा तथा गजेन्द्रके उद्धारकी कथा तुम्हें सुना दी । यह प्रसङ्ग सुननेवालोंके कलिमल और दुःस्वप्नको मिटानेवाला एवं यश, उन्नति और स्वर्ग देनेवाला है ॥ १४ ॥ इसीसे कल्याणकामी द्विजगण दुःस्वप्न आदिकी शान्तिके लिये प्रातःकाल जगते ही पवित्र होकर इसका पाठ करते हैं ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! गजेन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वव्यापक एवं सर्वभूतस्वरूप श्रीहरि भगवान्‌ने सब लोगोंके सामने ही उसे यह बात कही थी ॥ १६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—जो लोग रातके पिछले पहरमें उठकर इन्द्रियनिग्रहपूर्वक एकाग्र चित्तसे मेरा, तेरा तथा इस सरोवर, पर्वत एवं कन्दरा, वन, बेंत, कीचक और बाँसके झुरमुट, यहाँके दिव्य वृक्ष तथा पर्वतशिखर, मेरे, ब्रह्माजी और शिवजीके निवासस्थान, मेरे प्यारे धाम क्षीरसागर, प्रकाशमय श्वेतद्वीप, श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, वनमाला, मेरी कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, पक्षिराज गरुड, मेरे सूक्ष्म कलास्वरूप शेषजी, मेरे आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मीदेवी, ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, शङ्करजी तथा भक्तराज प्रह्लाद, मत्स्य, कच्छप, वराह आदि अवतारोंमें किये हुए मेरे अनन्त पुण्यमय चरित्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ॐकार, सत्य, मूलप्रकृति, गौ, ब्राह्मण, अविनाशी सनातनधर्म, सोम, कश्यप और धर्मकी पत्नी दक्षकन्याएँ, गङ्गा, सरस्वती, अलकनन्दा, यमुना, ऐरावत हाथी, भक्तशिरोमणि ध्रुव, सात ब्रह्मर्षि और पवित्रकीर्ति (नल, युधिष्ठिर, जनक आदि) महापुरुषोंका स्मरण करते हैं—वे समस्त पापोंसे छूट जाते हैं; क्योंकि ये सब-के-सब मेरे ही रूप हैं ॥ १७—२४ ॥ प्यारे गजेन्द्र ! जो लोग ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर तुम्हारी की हुई स्तुतिसे मेरा स्तवन करेंगे, मृत्युके समय उन्हें मैं निर्मल बुद्धिका दान करूँगा ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने ऐसा कहकर देवताओंको आनन्दित करते हुए अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया और गरुडपर सवार हो गये ॥ २६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और ब्रह्माकृत भगवान्‌की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌की यह गजेन्द्रमोक्षकी पवित्र लीला समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। इसे मैंने तुम्हें सुना दिया। अब रैवत मन्वन्तरकी कथा सुनो ॥ १ ॥ पाँचवें मनुका नाम था रैवत। वे चौथे मनु तामसके सगे भाई थे। उनके अर्जुन, बलि, विन्ध्य आदि कई पुत्र थे ॥ २ ॥ उस मन्वन्तरमें इन्द्रका नाम था विभु; और भूतरय आदि देवताओंके प्रधान गण थे। परीक्षित् ! उस समय हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि थे ॥ ३ ॥ उनमें शुभ्र ऋषिकी पत्नीका नाम था विकुण्ठा। उन्हींके गर्भसे वैकुण्ठ नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ अपने अंशसे स्वयं भगवान्‌ने वैकुण्ठ नामक अवतार धारण किया ॥ ४ ॥ उन्हींने लक्ष्मीदेवीकी प्रार्थनासे उनको प्रसन्न करनेके लिये वैकुण्ठ-धामकी रचना की थी। वह लोक समस्त लोकोंमें श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ उन वैकुण्ठनाथके कल्याणमय गुण और प्रभावका वर्णन मैं संक्षेपसे (तीसरे स्कन्धमें) कर चुका हूँ। भगवान् विष्णुके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो वह करे, जिसने पृथ्वीके परमाणुओंकी गिनती कर ली हो ॥ ६ ॥

छठे मनु चक्षुके पुत्र चाक्षुष थे। उनके पूरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि कई पुत्र थे ॥ ७ ॥ इन्द्रका नाम था मन्त्रद्रुम और प्रधान देवगण थे आप्य आदि। उस मन्वन्तरमें हविष्यमान् और वीरक आदि सप्तर्षि थे ॥ ८ ॥ जगत्पति भगवान्‌ने उस समय भी वैराजकी पत्नी सम्भूतिके गर्भसे अजित नामका अंशावतार ग्रहण किया था ॥ ९ ॥ उन्होंने ही समुद्र-मन्थन करके देवताओंको अमृत पिलाया था, तथा वे ही कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलकी मथानीके आधार बने थे ॥ १० ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! भगवान्‌ने क्षीर-सागरका मन्थन कैसे किया ? उन्होंने कच्छपरूप धारण करके किस कारण और किस उद्देश्यसे मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया ? ॥ ११ ॥ देवताओंको उस समय अमृत कैसे मिला ? और भी कौन-कौन-सी वस्तुएँ समुद्रसे निकलीं ? भगवान्‌की यह लीला बड़ी ही अद्भुत है, आप कृपा करके अवश्य सुनाइये ॥ १२ ॥ आप भक्तवत्सल भगवान्‌की महिमाका ज्यों-ज्यों वर्णन करते हैं, त्यों-ही-त्यों मेरा हृदय उसको और भी सुनने-के लिये उत्सुक होता जा रहा है। अघानेका तो नाम ही नहीं लेता। क्यों न हो, बहुत दिनोंसे यह संसारकी ज्वालाओंसे जलता जो रहा है ! ॥ १३ ॥

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो ! भगवान् श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌के इस प्रश्नका अभिनन्दन करते हुए भगवान्‌की समुद्र-मन्थन-लीलाका वर्णन आरम्भ किया ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जिस समयकी यह बात है, उस समय असुरोंने अपने तीखे शस्त्रोंसे देवताओंको पराजित कर दिया था। उस युद्धमें बहुतों-के तो प्राणोंपर ही बन आयी, वे रणभूमिमें गिरकर फिर उठ न सके ॥ १५ ॥ दुर्वासाके शापसे* तीनों लोक और स्वयं इन्द्र भी श्रीहीन हो गये थे। यहाँतक, कि यज्ञयागादि धर्म-कर्मोंका भी लोप हो गया था ॥ १६ ॥ यह सब दुर्दशा देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवताओंने आपसमें बहुत कुछ सोचा-विचारा; परन्तु अपने विचारों-से वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके ॥ १७ ॥ तब वे सब-के-सब सुमेरुके शिखरपर स्थित ब्रह्माजीकी सभा-में गये और वहाँ उन लोगोंने बड़ी नम्रतासे ब्रह्माजीकी सेवामें अपनी परिस्थितिका विस्तृत विवरण उपस्थित किया ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने स्वयं देखा कि इन्द्र, वायु

* यह प्रसङ्ग विष्णुपुराणमें इस प्रकार आया है। एक बार श्रीदुर्वासाजी वैकुण्ठलोकसे आ रहे थे। मार्गमें ऐरावतपर चढ़े देवराज इन्द्र मिले। उन्हें त्रिलोकाधिपति जानकर दुर्वासाजीने भगवान्‌के प्रसादकी माला दी; किन्तु इन्द्रने ऐश्वर्यके मदसे उसका कुछ भी आदर न कर उसे ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने उसे सूँड़में लेकर पैरोंसे कुचल डाला। इससे दुर्वासाजीने क्रोधित होकर शाप दिया कि तू तीनों लोकोंसहित शीघ्र ही श्रीहीन हो जायगा।

आदि देवता श्रीहीन एवं शक्तिहीन हो गये हैं। लोगोंकी परिस्थिति बड़ी विकट, सङ्कटग्रस्त हो गयी है और असुर इसके विपरीत फल-फूल रहे हैं ॥ १९ ॥ समर्थ ब्रह्माजीने अपना मन एकाग्र करके परम पुरुष भगवान्‌का स्मरण किया; फिर थोड़ी देर रुककर प्रफुल्लित मुखसे देवताओंको सम्बोधित करते हुए कहा ॥ २० ॥ 'देवताओ! मैं, शङ्करजी, तुमलोग तथा असुर, दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष और स्वेदज आदि समस्त प्राणी जिनके विराट् रूपके एक अत्यन्त स्वल्पातिस्वल्प अंशसे रचे गये हैं—हमलोग उन अविनाशी प्रभुकी ही शरण ग्रहण करें ॥ २१ ॥ यद्यपि उनकी दृष्टिमें न कोई वधका पात्र है और न रक्षाका, उनके लिये न तो कोई उपेक्षणीय है न कोई आदरका पात्र ही—फिर भी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये समय-समयपर वे रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणको स्वीकार किया करते हैं ॥ २२ ॥ उन्होंने इस समय प्राणियोंके कल्याणके लिये सत्त्वगुणको स्वीकार कर रक्खा है। इसलिये यह जगत्‌की स्थिति और रक्षाका अवसर है। अत: हम सब उन्हीं जगद्गुरु परमात्माकी शरण ग्रहण करते हैं। वे देवताओंके प्रिय हैं और देवता उनके प्रिय। इसलिये हम निजजनोंका वे अवश्य ही कल्याण करेंगे' ॥ २३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवताओंसे यह कहकर ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर भगवान् अजितके निजधाम वैकुण्ठमें गये। वह धाम तमोमयी प्रकृतिसे परे है ॥ २४ ॥ इन लोगोंने भगवान्‌के स्वरूप और धामके सम्बन्धमें पहलेसे ही बहुत कुछ सुन रक्खा था, परन्तु वहाँ जानेपर उन लोगोंको कुछ दिखायी न पड़ा। इसलिये ब्रह्माजी एकाग्र मनसे वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! आप निर्विकार, सत्य, अनन्त, आदिपुरुष, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान, अखण्ड एवं अतर्क्य हैं। मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ आप पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं। वाणी आपका निरूपण नहीं कर सकती। आप समस्त देवताओंके आराधनीय और स्वयंप्रकाश हैं। हम सब आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ आप प्राण, मन, बुद्धि और अहङ्कारके ज्ञाता हैं। इन्द्रियाँ और उनके विषय दोनों ही आपके द्वारा प्रकाशित होते हैं। अज्ञान आपका स्पर्श नहीं कर सकता। प्रकृतिके विकार मरने-जीनेवाले शरीरसे भी आप रहित हैं। जीवके दोनों पक्ष अविद्या और विद्या आपमें बिल्कुल ही नहीं हैं। आप अविनाशी और सुखस्वरूप हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें तो आप प्रकटरूपसे ही विराजमान रहते हैं। हम सब आपकी शरण ग्रहण करते हैं ॥ २७ ॥ यह शरीर जीवका एक मनोमय चक्र (रथका पहिया) है। दस इन्द्रिय और पाँच प्राण—ये पंद्रह इसके अरे हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण इसकी नाभि हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये आठ इसमें नेमि (पहियेका घेरा) हैं। स्वयं माया इसका सञ्चालन करती है और यह बिजलीसे भी अधिक शीघ्रगामी है। इस चक्रके धुरे हैं स्वयं परमात्मा। वे ही एकमात्र सत्य हैं। हम उनकी शरणमें हैं ॥ २८ ॥ जो एकमात्र ज्ञानस्वरूप, प्रकृतिसे परे एवं अदृश्य हैं; जो समस्त वस्तुओंके मूलमें स्थित अव्यक्त हैं और देश, काल अथवा वस्तुसे जिनका पार नहीं पाया जा सकता—वही प्रभु इस जीवके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान रहते हैं। विचारशील मनुष्य भक्तियोगके द्वारा उन्हींकी आराधना करते हैं ॥ २९ ॥ जिस मायासे मोहित होकर जीव अपने वास्तविक लक्ष्य अथवा स्वरूपको भूल गया है, वह उन्हींकी है और कोई भी उसका पार नहीं पा सकता। परन्तु सर्वशक्तिमान् प्रभु अपनी उस माया तथा उसके गुणोंको अपने वशमें करके समस्त प्राणियोंके हृदयमें समभावसे विचरण करते रहते हैं। जीव अपने पुरुषार्थसे नहीं, उनकी कृपासे ही उन्हें प्राप्त कर सकता है। हम उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं ॥ ३० ॥ यों तो हम देवता एवं ऋषिगण भी उनके परम प्रिय सत्त्वमय शरीरसे ही उत्पन्न हुए हैं, फिर भी उनके बाहर-भीतर एकरस प्रकट वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। तब रजोगुण एवं तमोगुणप्रधान असुर आदि तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं? उन्हीं प्रभुके चरणोंमें हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१ ॥

उन्हींकी बनायी हुई यह पृथ्वी उनका चरण है।

इसी पृथ्वीपर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी रहते हैं। वे परम स्वतन्त्र, परम ऐश्वर्यशाली पुरुषोत्तम परब्रह्म हमपर प्रसन्न हों ॥ ३२ ॥ यह परम शक्तिशाली जल उन्हींका वीर्य है। इसीसे तीनों लोक और समस्त लोकोंके लोकपाल उत्पन्न होते, बढ़ते और जीवित रहते हैं। वे परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म हमपर प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ श्रुतियाँ कहती हैं कि चन्द्रमा उस प्रभुका मन है। यह चन्द्रमा समस्त देवताओंका अन्न, बल एवं आयु है। वही वृक्षोंका सम्राट् एवं प्रजाकी वृद्धि करनेवाला है। ऐसे मनको स्वीकार करनेवाले परम ऐश्वर्यशाली प्रभु हमपर प्रसन्न हों ॥ ३४ ॥ अग्नि प्रभुका मुख है। इसकी उत्पत्ति ही इसलिये हुई है कि वेदके यज्ञयागादि कर्मकाण्ड पूर्णरूपसे सम्पन्न हो सकें। यह अग्नि ही शरीरके भीतर जठराग्निरूपसे और समुद्रके भीतर बड़वानलके रूपसे रहकर उनमें रहनेवाले अन्न, जल आदि धातुओंका पाचन करता रहता है; और समस्त द्रव्योंकी उत्पत्ति भी उसीसे हुई है। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३५ ॥ जिनके द्वारा जीव देवयानमार्गसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, जो वेदोंकी साक्षात् मूर्ति और भगवान्के ध्यान करनेयोग्य धाम हैं, जो पुण्यलोकस्वरूप होनेके कारण मुक्तिके द्वार एवं अमृतमय हैं और कालरूप होनेके कारण मृत्यु भी हैं—ऐसे सूर्य जिनके नेत्र हैं, वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३६ ॥ प्रभुके प्राणसे ही चराचरका प्राण तथा उन्हें मानसिक, शारीरिक और इन्द्रिय-सम्बन्धी बल देनेवाला वायु प्रकट हुआ है। वह चक्रवर्ती सम्राट् है, तो इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवता हम सब उसके अनुचर। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ जिनके कानोंसे दिशाएँ, हृदयसे इन्द्रियगोलक और नाभिसे वह आकाश उत्पन्न हुआ है, जो पाँचों प्राण (प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान), दसों इन्द्रिय, मन, पाँचों असु (नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय) एवं शरीरका आश्रय है—वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥ जिनके बलसे इन्द्र, प्रसन्नतासे समस्त देवगण, क्रोधसे शङ्कर, बुद्धिसे ब्रह्मा, इन्द्रियोंसे वेद और ऋषि तथा लिङ्गसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं—वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ३९ ॥ जिनके वक्षःस्थलसे लक्ष्मी, छायासे पितृगण, स्तनसे धर्म, पीठसे अधर्म, सिरसे आकाश और विहारसे अप्सराएँ प्रकट हुई हैं, वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ जिनके मुखसे ब्राह्मण और अत्यन्त रहस्यमय वेद, भुजाओंसे क्षत्रिय और बल, जङ्घाओंसे वैश्य और उनकी वृत्ति—व्यापारकुशलता तथा चरणोंसे वेदबाह्य शूद्र और उनकी सेवा आदि वृत्ति प्रकट हुई है—वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४१ ॥ जिनके अधरसे लोभ और ओष्ठसे प्रीति, नासिकासे कान्ति, स्पर्शसे पशुओंका प्रिय काम, भौंहोंसे यम और नेत्रके रोमोंसे कालकी उत्पत्ति हुई है—वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४२ ॥ पञ्चभूत, काल, कर्म, सत्त्वादि गुण और जो कुछ विवेकी पुरुषोंके द्वारा बाधित किये जानेयोग्य निर्वचनीय या अनिर्वचनीय विशेष पदार्थ हैं, वे सब-के-सब भगवान्की योगमायासे ही बने हैं—ऐसा शास्त्र कहते हैं। वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हमपर प्रसन्न हों ॥ ४३ ॥ जो मायानिर्मित गुणोंमें दर्शनादि वृत्तियोंके द्वारा आसक्त नहीं होते, जो वायुके समान सदा-सर्वदा असङ्ग रहते हैं, जिनमें समस्त शक्तियाँ शान्त हो गयी हैं—उन अपने आत्मानन्दके लाभसे परिपूर्ण आत्मस्वरूप भगवान्को हमारे नमस्कार हैं ॥ ४४ ॥

प्रभो! हम आपके शरणागत हैं और चाहते हैं कि मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त आपका मुखकमल अपने इन्हीं नेत्रोंसे देखें। आप कृपा करके हमें उसका दर्शन कराइये ॥ ४५ ॥ प्रभो! आप समय-समयपर स्वयं ही अपनी इच्छासे अनेकों रूप धारण करते हैं और जो काम हमारे लिये अत्यन्त कठिन होता है, उसे आप सहजमें ही कर देते हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं, आपके लिये इसमें कौन-सी कठिनाई है ॥ ४६ ॥ विषयोंके लोभमें पड़कर जो देहाभिमानी दुःख भोग रहे हैं, उन्हें कर्म करनेमें परिश्रम और क्लेश तो बहुत अधिक होता है परन्तु फल बहुत कम निकलता है। अधिकांशमें तो उनके विफलता ही हाथ लगती है। परन्तु जो कर्म

आपको समर्पित किये जाते हैं, उनके करनेके समय ही परम सुख मिलता है। वे स्वयं फलरूप ही हैं ॥४७॥ भगवान्‌को समर्पित किया हुआ छोटे-से-छोटा कर्माभास भी कभी विफल नहीं होता। क्योंकि भगवान् जीवके परम हितैषी, परम प्रियतम और आत्मा ही हैं ॥४८॥ जैसे वृक्षकी जड़को पानीसे सींचना उसकी बड़ी-बड़ी शाखाओं और छोटी-छोटी डालियोंको भी सींचना है, वैसे ही सर्वात्मा भगवान्‌की आराधना सम्पूर्ण प्राणियोंकी और अपनी भी आराधना है ॥ ४९ ॥ जो तीनों काल और उससे परे भी एकरस स्थित हैं, जिनकी लीलाओंका रहस्य तर्क-वितर्कके परे है, जो स्वयं गुणोंसे परे रहकर भी सब गुणोंके स्वामी हैं तथा इस समय सत्त्वगुणमें स्थित हैं—ऐसे आपको हम बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥

छठा अध्याय

देवताओं और दैत्योंका मिलकर समुद्रमन्थनके लिये उद्योग करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवताओंने सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे उनके बीचमें ही प्रकट हो गये। उनके शरीरकी प्रभा ऐसी थी, मानो हजारों सूर्य एक साथ ही उग गये हों ॥ १ ॥ भगवान्‌की उस प्रभासे सभी देवताओंकी आँखें चौंधिया गयीं। वे भगवान्‌को तो क्या—आकाश, दिशाएँ, पृथ्वी और अपने शरीरको भी न देख सके ॥ २ ॥ केवल भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजीने उस छविका दर्शन किया। बड़ी ही सुन्दर झाँकी थी। मरकतमणि (पन्ने) के समान स्वच्छ श्यामल शरीर, कमलके भीतरी भागके समान सुकुमार नेत्रोंमें लाल-लाल डोरियाँ और चमकते हुए सुनहले रंगका रेशमी पीताम्बर! सर्वाङ्गसुन्दर शरीरके रोम-रोमसे प्रसन्नता फूटी पड़ती थी। धनुपके समान टेढ़ी भौंहें और बड़ा ही सुन्दर मुख। सिरपर महामणिमय किरीट और भुजाओंमें बाजूबंद। कानोंके झलकते हुए कुण्डलोंकी चमक पड़नेसे कपोल और भी सुन्दर हो उठते थे, जिससे मुखकमल खिल उठता था। कमरमें करधनीकी लड़ियाँ, हाथोंमें कंगन, गलेमें हार और चरणोंमें नूपुर शोभायमान थे। वक्षःस्थलपर लक्ष्मी और गलेमें कौस्तुभमणि तथा वनमाला सुशोभित थीं ॥ ३—६ ॥ भगवान्‌के निज अस्त्र सुदर्शन चक्र आदि मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा कर रहे थे। सभी देवताओंने पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर सारे देवताओंको साथ ले शङ्करजी तथा ब्रह्माजी परम पुरुष भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

ब्रह्माजीने कहा—जो जन्म, स्थिति और प्रलयसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, जो प्राकृत गुणोंसे रहित एवं मोक्षस्वरूप परमानन्दके महान् समुद्र हैं, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं और जिनका स्वरूप अनन्त है—उन परम ऐश्वर्यशाली प्रभुको हमलोग बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥ पुरुषोत्तम! अपना कल्याण चाहनेवाले साधक वेदोक्त एवं पाञ्चरात्रोक्त विधिसे आपके इसी स्वरूपकी उपासना करते हैं। मुझे भी रचनेवाले प्रभो! आपके इस विश्वमय स्वरूपमें मुझे समस्त देवगणोंके सहित तीनों लोक दिखायी दे रहे हैं ॥ ९ ॥ आपमें ही पहले यह जगत् लीन था, मध्यमें भी यह आपमें ही स्थित है और अन्तमें भी यह पुनः आपमें ही लीन हो जायगा। आप स्वयं कार्य-कारणसे परे परम स्वतन्त्र हैं। आप ही इस जगत्‌के आदि, अन्त और मध्य हैं—वैसे ही जैसे घड़ेका आदि, मध्य और अन्त मिट्टी है ॥ १० ॥ आप अपने ही आश्रय रहनेवाली अपनी मायासे इस संसारकी रचना करते हैं और इसमें फिरसे प्रवेश करके अन्तर्यामीके रूपमें विराजमान होते हैं। इसीलिये विवेकी और शास्त्रज्ञ पुरुष बड़ी सावधानीसे अपने मनको एकाग्र करके इन गुणोंकी, विषयोंकी भीड़में भी आपके निर्गुण स्वरूपका ही साक्षात्कार करते हैं ॥ ११ ॥ जैसे मनुष्य युक्तिके द्वारा लकड़ीसे आग, गौसे अमृतके समान दूध, पृथ्वीसे अन्न तथा जल और व्यापारसे अपनी आजीविका प्राप्त कर लेते हैं—वैसे ही विवेकी पुरुष भी अपनी शुद्ध बुद्धिसे भक्तियोग, ज्ञानयोग आदिके द्वारा आपको

इन विषयोंमें ही प्राप्त कर लेते हैं और अपनी अनुभूतिके अनुसार आपका वर्णन भी करते हैं ॥ १२ ॥ कमलनाभ ! जिस प्रकार दावाग्निसे झुलसता हुआ हाथी गङ्गाजलमें डुबकी लगाकर सुख और शान्तिका अनुभव करने लगता है, वैसे ही आपके आविर्भावसे हमलोग परम सुखी और शान्त हो गये हैं । स्वामी ! हमलोग बहुत दिनोंसे आपके दर्शनोंके लिये अत्यन्त लालायित हो रहे थे ॥ १३ ॥ आप ही हमारे बाहर और भीतरके आत्मा हैं । हम सब लोकपाल जिस उद्देश्यसे आपके चरणोंकी शरणमें आये हैं, उसे आप कृपा करके पूर्ण कीजिये । आप सबके साक्षी हैं, अतः इस विषयमें हमलोग आपसे और क्या निवेदन करें ॥ १४ ॥ प्रभो ! मैं, शङ्करजी, अन्य देवता, ऋषि और दक्ष आदि प्रजापति—सब-के-सब अग्निसे अलग हुई चिनगारीकी तरह आपके ही अंश हैं और अपनेको आपसे अलग मानते हैं । ऐसी स्थितिमें प्रभो ! हमलोग समझ ही क्या सकते हैं । ब्राह्मण और देवताओंके कल्याणके लिये जो कुछ करना आवश्यक हो, उसका आदेश आप ही दीजिये और आप वैसा स्वयं कर भी लीजिये ॥ १५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—ब्रह्मा आदि देवताओंने इस प्रकार स्तुति करके अपनी सारी इन्द्रियाँ रोक लीं और सब बड़ी सावधानीके साथ हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उनकी स्तुति सुनकर और उसी प्रकार उनके हृदयकी बात जानकर भगवान् मेघके समान गम्भीर वाणीसे बोले ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! समस्त देवताओंके तथा जगत्के एकमात्र स्वामी भगवान् अकेले ही उनका सब कार्य करनेमें समर्थ थे, फिर भी समुद्र-मन्थन आदि लीलाओंके द्वारा विहार करनेकी इच्छासे वे देवताओंको सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगे ॥ १७ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—ब्रह्मा, शङ्कर और देवताओ ! तुमलोग सावधान होकर मेरी सलाह सुनो । तुम्हारे कल्याणका यही उपाय है ॥ १८ ॥ इस समय असुरोंपर कालकी कृपा है । इसलिये जबतक तुम्हारे अभ्युदय और उन्नतिका समय नहीं आता, तबतक तुम दैत्य और दानवोंके पास जाकर उनसे सन्धि कर लो ॥ १९ ॥ देवताओ ! कोई बड़ा कार्य करना हो तो शत्रुओंसे भी मेल-मिलाप कर लेना चाहिये । यह बात अवश्य है कि काम बन जानेपर उनके साथ साँप और चूहेवाला बर्ताव कर सकते हैं* ॥ २० ॥ तुमलोग बिना विलम्बके अमृत निकालनेका प्रयत्न करो । उसे पी लेनेपर मरनेवाला प्राणी भी अमर हो जाता है ॥ २१ ॥ पहले क्षीरसागरमें सब प्रकारके घास, तिनके, लताएँ और ओषधियाँ डाल दो । फिर तुमलोग मन्दराचलकी मथानी और वासुकि नागकी नेती बनाकर मेरी सहायतासे समुद्रका मन्थन करो । अब आलस्य और प्रमादका समय नहीं है । देवताओ ! विश्वास रक्खो—दैत्योंको तो मिलेगा केवल श्रम और क्लेश, परन्तु फल मिलेगा तुम्हीं लोगोंको ॥ २२-२३ ॥ देवताओ ! असुरलोग तुमसे जो-जो चाहें, सब स्वीकार कर लो । शान्तिसे सब काम बन जाते हैं, क्रोध करनेसे कुछ नहीं होता ॥ २४ ॥ पहले समुद्रसे कालकूट विष निकलेगा, उससे डरना नहीं । और किसी भी वस्तुके लिये कभी भी लोभ न करना । पहले तो किसी वस्तुकी कामना ही नहीं करनी चाहिये, परन्तु यदि कामना हो और वह पूरी न हो, तो क्रोध तो करना ही नहीं चाहिये ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! देवताओंको यह आदेश देकर पुरुषोत्तम भगवान् उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये । वे सर्वशक्तिमान् एवं परम स्वतन्त्र जो ठहरे । उनकी लीलाका रहस्य कौन समझे ॥२६॥ उनके चले जानेपर ब्रह्मा और शङ्करने फिरसे भगवान्को नमस्कार किया और वे अपने-अपने लोकोंको चले गये, तदनन्तर इन्द्रादि देवता राजा बलिके पास गये ॥२७॥ देवताओंको बिना अस्त्र-शस्त्रके सामने आते देख दैत्य-सेनापतियोंके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ । उन्होंने देवताओंको पकड़ लेना चाहा । परन्तु दैत्यराज बलि सन्धि

* किसी मदारीकी पिटारीमें साँप तो पहलेसे था ही, संयोगवश उसमें एक चूहा भी जा घुसा । चूहेके भयभीत होनेपर साँपने उसे प्रेमसे समझाया कि तुम पिटारीमें छेद कर दो, फिर हम दोनों भाग निकलेंगे । पहले तो साँपकी इस बातपर चूहेको विश्वास न हुआ, परन्तु पीछे उसने पिटारीमें छेद कर दिया । इस प्रकार काम बन जानेपर साँप चूहेको निगल गया और पिटारीसे निकल भागा ।

और विरोधके अवसरको जाननेवाले एवं पवित्र कीर्तिसे सम्पन्न थे। उन्होंने दैत्योंको वैसा करनेसे रोक दिया ॥ २८ ॥ इसके बाद देवतालोग बलिके पास पहुँचे। बलिने तीनों लोकोंको जीत लिया था। वे समस्त सम्पत्तियोंसे सेवित एवं असुर-सेनापतियोंसे सुरक्षित होकर अपने राजसिंहासनपर बैठे हुए थे ॥ २९ ॥ बुद्धिमान् इन्द्रने बड़ी मधुर वाणीसे समझाते हुए राजा बलिसे वे सब बातें कहीं, जिनकी शिक्षा स्वयं भगवान्‌ने उन्हें दी थी ॥ ३० ॥ वह बात दैत्यराज बलिको जँच गयी। वहाँ बैठे हुए दूसरे सेनापति शम्बर, अरिष्टनेमि और त्रिपुरनिवासी असुरोंको भी यह बात बहुत अच्छी लगी ॥ ३१ ॥ तब देवता और असुरोंने आपसमें सन्धि-समझौता करके मित्रता कर ली और परीक्षित्! वे सब मिलकर अमृतमन्थनके लिये पूर्ण उद्योग करने लगे ॥ ३२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपनी शक्तिसे मन्दराचलको उखाड़ लिया और ललकारते तथा गरजते हुए उसे समुद्रतटकी ओर ले चले। उनकी भुजाएँ परिघके समान थीं, शरीरमें शक्ति थी और अपने-अपने बलका घमंड तो था ही ॥ ३३ ॥ परन्तु एक तो वह मन्दरपर्वत ही बहुत भारी था और दूसरे उसे ले जाना भी बहुत दूर था। इससे इन्द्र, बलि आदि सब-के-सब हार गये। जब वे किसी प्रकार भी मन्दराचलको आगे न ले जा सके, तब विवश होकर उन्होंने उसे रास्तेमें ही पटक दिया ॥ ३४ ॥ वह सोनेका पर्वत मन्दराचल बड़ा भारी था। गिरते समय उसने बहुत-से देवता और दानवोंको चकनाचूर कर डाला ॥ ३५ ॥

उन देवता और असुरोंके हाथ, कमर और कंधे टूट ही गये थे, मन भी टूट गया। उनका उत्साह भंग हुआ देख गरुडपर चढ़े हुए भगवान् सहसा वहीं प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ उन्होंने देखा कि देवता और असुर पर्वतके गिरनेसे पिस गये हैं। अतः उन्होंने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देवताओंको इस प्रकार जीवित कर दिया, मानो उनके शरीरमें बिल्कुल चोट ही न लगी हो ॥ ३७ ॥ इसके बाद उन्होंने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे उस पर्वतको उठाकर गरुडपर रख लिया और स्वयं भी सवार हो गये। फिर देवता और असुरोंके साथ उन्होंने समुद्रतटकी यात्रा की ॥ ३८ ॥ पक्षिराज गरुडने समुद्रके तटपर पर्वतको उतार दिया। फिर भगवान्‌के विदा करनेपर गरुडजी वहाँसे चले गये ॥ ३९ ॥

सातवाँ अध्याय

समुद्रमन्थनका आरम्भ और भगवान् शङ्करका विषपान

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवता और असुरोंने नागराज वासुकिको यह वचन देकर कि समुद्र-मन्थनसे प्राप्त होनेवाले अमृतमें तुम्हारा भी हिस्सा रहेगा, उन्हें भी सम्मिलित कर लिया। इसके बाद उन लोगोंने वासुकि नागको नेतीके समान मन्दराचलमें लपेटकर भलीभाँति उद्यत हो बड़े उत्साह और आनन्दसे अमृत-के लिये समुद्रमन्थन प्रारम्भ किया। उस समय पहले-पहल अजित भगवान् वासुकिके मुखकी ओर लग गये, इसलिये देवता भी उधर ही आ जुटे ॥ १-२ ॥ परन्तु भगवान्‌की यह चेष्टा दैत्यसेनापतियोंको पसंद न आयी। उन्होंने कहा कि 'पूँछ तो साँपका अशुभ अङ्ग है, हम उसे नहीं पकड़ेंगे ॥ ३ ॥ हमने वेद-शास्त्रोंका विधि-पूर्वक अध्ययन किया है, ऊँचे वंशमें हमारा जन्म हुआ है और वीरताके बड़े-बड़े काम हमने किये हैं। हम देवताओंसे किस बातमें कम हैं ?' यह कहकर वे लोग चुपचाप एक ओर खड़े हो गये। उनकी यह मनोवृत्ति देखकर भगवान्‌ने मुसकराकर वासुकिका मुँह छोड़ दिया और देवताओंके साथ उन्होंने पूँछ पकड़ ली ॥ ४ ॥ इस प्रकार अपना-अपना स्थान निश्चित करके देवता और असुर अमृतप्राप्तिके लिये पूरी तैयारीसे समुद्रमन्थन करने लगे ॥ ५ ॥

परीक्षित्! जब समुद्रमन्थन होने लगा, तब बड़े-बड़े बलवान् देवता और असुरोंके पकड़े रहनेपर भी अपने भारकी अधिकता और नीचे कोई आधार न होनेके कारण मन्दराचल समुद्रमें डूबने लगा ॥ ६ ॥ इस प्रकार अत्यन्त बलवान् दैवके द्वारा अपना सब क्रिया-

कराया मिट्टीमें मिलते देख उनका मन टूट गया। सबके मुँहपर उदासी छा गयी ॥ ७ ॥ उस समय भगवान्ने देखा कि यह तो विघ्नराजकी करतूत है। इसलिये उन्होंने उसके निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश करके मन्दराचलको ऊपर उठा दिया। भगवान्की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसङ्कल्प हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात थी ॥ ८ ॥ देवता और असुरोंने देखा कि मन्दराचल तो ऊपर उठ आया है, तब वे फिरसे समुद्र-मन्थनके लिये उठ खड़े हुए। उस समय भगवान्ने जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजन फैली हुई अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण कर रक्खा था ॥९॥ परीक्षित् ! जब बड़े-बड़े देवता और असुरोंने अपने बाहुबलसे मन्दराचलको प्रेरित किया, तब वह भगवान्की पीठपर घूमने लगा। अनन्त शक्तिशाली आदिकच्छप भगवान्को उस पर्वतका चक्कर लगाना ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो ॥ १० ॥ साथ ही समुद्र-मन्थन सम्पन्न करनेके लिये भगवान्ने असुरोंमें उनकी शक्ति और बलको बढ़ाते हुए असुररूपसे प्रवेश किया। वैसे ही उन्होंने देवताओंको उत्साहित करते हुए उनमें देवरूपसे प्रवेश किया और वासुकिनागमें निद्राके रूपसे ॥ ११ ॥ इधर पर्वतके ऊपर दूसरे पर्वतके समान बनकर सहस्रबाहु भगवान् अपने हाथोंसे उसे दबाकर स्थित हो गये। उस समय आकाशमें ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि उनकी स्तुति और उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवान्ने पर्वतके ऊपर उसको दबा रखनेवालेके रूपमें, नीचे उसके आधार कच्छपके रूपमें, देवता और असुरोंके शरीरमें उनकी शक्तिके रूपमें, पर्वतमें दृढ़ताके रूपमें और नेती बने हुए वासुकिनागमें निद्राके रूपमें—जिससे उसे कष्ट न हो—प्रवेश करके सब ओरसे सबको शक्तिसम्पन्न कर दिया। अब वे अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर मन्दराचलके द्वारा बड़े वेगसे समुद्रमन्थन करने लगे। उस समय समुद्र और उसमें रहनेवाले मगर, मछली आदि जीव क्षुब्ध हो गये ॥ १३ ॥ नागराज वासुकिके हजारों कठोर नेत्र, मुख और श्वासोंसे विषकी आग निकलने लगी। उनके धूएँसे पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुर निस्तेज हो गये। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो दावानलसे झुलसे हुए साखूके पेड़ खड़े हों ॥ १४ ॥ देवता भी उससे न बच सके। वासुकिके श्वासकी लपटोंसे उनका भी तेज फीका पड़ गया। वस्त्र, माला, कवच एवं मुख धूमिल हो गये। उनकी यह दशा देखकर भगवान्की प्रेरणासे बादल देवताओंके ऊपर वर्षा करने लगे एवं वायु समुद्रकी तरङ्गोंका स्पर्श करके शीतलता और सुगन्धिका सञ्चार करने लगी ॥१५॥

इस प्रकार देवता और असुरोंके समुद्र-मन्थन करनेपर भी जब अमृत न निकला, तब स्वयं अजित भगवान् समुद्र-मन्थन करने लगे ॥ १६ ॥ मेघके समान साँवले शरीरपर सुनहला पीताम्बर, कानोंमें बिजलीके समान चमकते हुए कुण्डल, सिरपर लहराते हुए घुँघराले बाल, नेत्रोंमें लाल-लाल रेखाएँ और गलेमें वनमाला सुशोभित हो रही थी। सम्पूर्ण जगत्को अभयदान करनेवाले अपने विश्वविजयी भुजदण्डोंसे वासुकिनागको पकड़कर तथा कूर्मरूपसे पर्वतको धारणकर जब भगवान् मन्दराचलकी मथानीसे समुद्रमन्थन करने लगे, उस समय वे दूसरे पर्वतराजके समान बड़े ही सुन्दर लग रहे थे॥१७॥ जब अजित भगवान्ने इस प्रकार समुद्र-मन्थन किया, तब समुद्रमें बड़ी खलबली मच गयी। मछली, मगर, साँप और कछुए भयभीत होकर ऊपर आ गये और इधर-उधर भागने लगे। तिमि-तिमिङ्गिल आदि मच्छ, समुद्री हाथी और ग्राह व्याकुल हो गये। उसी समय पहले-पहल हालाहल नामका अत्यन्त उग्र विष निकला ॥ १८ ॥ वह अत्यन्त उग्र विष दिशा-विदिशाओंमें, ऊपर-नीचे सर्वत्र उड़ने और फैलने लगा। इस असह्य विषसे बचनेका कोई उपाय भी तो न था। भयभीत होकर सम्पूर्ण प्रजा और प्रजापति किसीके द्वारा त्राण न मिलनेपर भगवान् सदाशिवकी शरणमें गये ॥ १९ ॥ भगवान् शङ्कर सतीजीके साथ कैलास पर्वतपर विराजमान थे। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनकी सेवा कर रहे थे। वे वहाँ तीनों लोकोंके अभ्युदय और मोक्षके लिये तपस्या कर रहे थे। प्रजापतियोंने उनका दर्शन करके उनकी स्तुति करते हुए उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥

प्रजापतियोंने भगवान् शङ्करकी स्तुति की— देवताओंके आराध्यदेव महादेव ! आप समस्त प्राणियोंके

आत्मा और उनके जीवनदाता हैं। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। त्रिलोकीको भस्म करनेवाले इस उग्र विषसे आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥ सारे जगत्-को बाँधने और मुक्त करनेमें एकमात्र आप ही समर्थ हैं। इसलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं। क्योंकि आप शरणागतकी पीडा नष्ट करनेवाले एवं जगद्गुरु हैं ॥ २२ ॥ प्रभो! अपनी गुणमयी शक्तिसे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेके लिये आप अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नाम धारण कर लेते हैं ॥२३॥ आप स्वयंप्रकाश हैं। इसका कारण यह है कि आप परम रहस्यमय ब्रह्मतत्त्व हैं। जितने भी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सत् अथवा असत् चराचर प्राणी हैं—उनको जीवन-दान देनेवाले आप ही हैं। आपके अतिरिक्त सृष्टि भी और कुछ नहीं है। क्योंकि आप आत्मा हैं। अनेक शक्तियोंके द्वारा आप ही जगत्रूपमें भी प्रतीन हो रहे हैं। क्योंकि आप ईश्वर हैं, सर्वसमर्थ हैं ॥ २४ ॥ समस्त वेद आपसे ही प्रकट हुए हैं। इसलिये आप समस्त ज्ञानोंके मूलस्रोत स्वतःसिद्ध ज्ञान हैं। आप ही जगत्के आदिकारण महत्तत्त्व और त्रिविध अहङ्कार हैं। एवं आप ही प्राण, इन्द्रिय, पञ्च महाभूत तथा शब्दादि विषयोंके भिन्न-भिन्न स्वभाव और उनके मूल कारण हैं। आप स्वयं ही प्राणियोंकी वृद्धि और ह्रास करनेवाले काल हैं, उनका कल्याण करनेवाले यज्ञ हैं एवं सत्य और मधुर वाणी हैं। धर्म भी आपका ही स्वरूप है। आप ही 'अ, उ, म्' इन तीन अक्षरोंसे युक्त प्रणव हैं अथवा त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं—ऐसा वेदवादी महात्मा कहते हैं ॥ २५ ॥ सर्वदेवस्वरूप अग्नि आपका मुख है। तीनों लोकोंके अभ्युदय करनेवाले शङ्कर! यह पृथ्वी आपका चरणकमल है। आप अखिल देवस्वरूप हैं। यह काल आप-की गति है, दिशाएँ कान हैं और वरुण रसनेन्द्रिय है ॥२६॥ आकाश नाभि है, वायु श्वास है, सूर्य नेत्र हैं और जल वीर्य है। आपका अहङ्कार नीचे-ऊँचे सभी जीवोंका आश्रय है। चन्द्रमा मन है और प्रभो! स्वर्ग आपका सिर है ॥ २७ ॥ वेदस्वरूप भगवन्! समुद्र आपकी कोख हैं। पर्वत हड्डियाँ हैं। सब प्रकारकी ओषधियाँ और घास आपके रोम हैं। गायत्री आदि छन्द आपकी सातों धातुएँ हैं और सभी प्रकारके धर्म आपके हृदय हैं ॥ २८ ॥ स्वामिन्! सद्योजातादि पाँच उपनिषद् ही आपके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान नामक पाँच मुख हैं। उन्हींके पदच्छेदसे अड़तीस कलात्मक मन्त्र निकले हैं। आप जब समस्त प्रपञ्चसे उपरत होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं, तब उसी स्थितिका नाम होता है 'शिव'। वास्तवमें वही स्वयंप्रकाश परमार्थतत्त्व है ॥ २९ ॥ अधर्मकी दम्भ-लोभ आदि तरङ्गोंमें आपकी छाया है। जिनसे विविध प्रकारकी सृष्टि होती है, वे सत्त्व, रज और तम—आपके तीन नेत्र हैं। प्रभो! गायत्री आदि छन्दरूप सनातन वेद ही आपका विचार है। क्योंकि आप ही सांख्य आदि समस्त शास्त्रोंके रूपमें स्थित हैं और उनके कर्ता भी हैं ॥ ३० ॥ भगवन्! आपका परम ज्योतिर्मय स्वरूप स्वयं ब्रह्म है। उसमें न तो रजोगुण, तमोगुण एवं सत्त्वगुण हैं और न किसी प्रकारका भेदभाव ही। आपके उस स्वरूपको सारे लोकपाल—यहाँतक कि ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इन्द्र भी नहीं जान सकते ॥ ३१ ॥ आपने कामदेव, दक्षके यज्ञ, त्रिपुरासुर और कालकूट विष (जिसको आप अभी-अभी अवश्य पी जायँगे) और अनेक जीवद्रोही असुरोंको नष्ट कर दिया है। परन्तु यह कहनेसे आपकी कोई स्तुति नहीं होती। क्योंकि प्रलयके समय आपका बनाया हुआ यह विश्व आपके ही नेत्रसे निकली हुई आगकी चिनगारी एवं लपटसे जलकर भस्म हो जाता है और आप इस प्रकार ध्यानमग्न रहते हैं कि आपको इसका पता ही नहीं चलता ॥ ३२ ॥ जीवन्मुक्त आत्माराम पुरुष अपने हृदयमें आपके युगल चरणोंका ध्यान करते रहते हैं तथा आप स्वयं भी निरन्तर ज्ञान और तपस्यामें ही लीन रहते हैं। फिर भी सतीके साथ रहते देखकर जो आपको आसक्त एवं श्मशानवासी होनेके कारण उग्र अथवा निष्ठुर बतलाते हैं—वे मूर्ख आपकी लीलाओंका रहस्य भला क्या जानें! उनका वैसा कहना निर्लज्जतासे भरा है ॥ ३३ ॥ इस कार्य और कारणरूप जगत्से परे माया है और मायासे भी अत्यन्त परे आप हैं। इसलिये प्रभो! आपके अनन्त स्वरूपका साक्षात् ज्ञान प्राप्त करनेमें सहसा ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं होते,

फिर स्तुति तो कर ही कैसे सकते हैं। ऐसी अवस्थामें उनके पुत्रोंके पुत्र हमलोग कह ही क्या सकते हैं। फिर भी अपनी शक्तिके अनुसार हमने आपका कुछ गुणगान किया है ॥ ३४ ॥ हमलोग तो केवल आपके इसी लीलाविहारी रूपको देख रहे हैं। आपके परम स्वरूपको हम नहीं जानते। महेश्वर! यद्यपि आपकी लीलाएँ अव्यक्त हैं, फिर भी संसारका कल्याण करनेके लिये आप व्यक्तरूपसे भी रहते हैं॥ ३५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रजाका यह सङ्कट देखकर समस्त प्राणियोंके अकारण बन्धु देवाधिदेव भगवान् शङ्करके हृदयमें कृपावश बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने अपनी प्रिया सतीसे यह बात कही ॥३६॥

शिवजीने कहा—देवि! यह बड़े खेदकी बात है। देखो तो सही, समुद्र-मन्थनसे निकले हुए कालकूट विषके कारण प्रजापर कितना बड़ा दुःख आ पड़ा है।३७। ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करना चाहते हैं। इस समय मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ। जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे दीन-दुखियोंकी रक्षा करें।३८। सज्जन पुरुष अपने क्षणभङ्गुर प्राणोंकी बलि देकर भी दूसरे प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करते हैं। कल्याणि! अपने ही मोहकी मायामें फँसकर संसारके प्राणी मोहित हो रहे हैं और एक दूसरेसे वैरकी गाँठ बाँधे बैठे हैं।३९। उनके ऊपर जो कृपा करता है, उसपर सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और जब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, तब चराचर जगत्के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ। इसलिये अभी-अभी मैं इस विषको भक्षण करता हूँ, जिससे मेरी प्रजाका कल्याण हो ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—विश्वके जीवनदाता भगवान् शङ्कर इस प्रकार सती देवीसे प्रस्ताव करके उस विषको खानेके लिये तैयार हो गये। देवी तो उनका प्रभाव जानती ही थीं, उन्होंने हृदयसे इस बातका अनुमोदन किया ॥ ४१ ॥ भगवान् शङ्कर बड़े कृपालु हैं। उन्हींकी शक्तिसे समस्त प्राणी जीवित रहते हैं। उन्होंने उस तीक्ष्ण हालाहल विषको अपनी हथेलीपर उठाया और भक्षण कर गये ॥ ४२ ॥ वह विष जलका पाप—मल था! उसने शङ्करजीपर भी अपना प्रभाव प्रकट कर दिया, उससे उनका कण्ठ नीला पड़ गया, परन्तु वह तो प्रजाका कल्याण करनेवाले भगवान् शङ्करके लिये भूषणरूप हो गया ॥ ४३ ॥ परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजाका दुःख टालनेके लिये स्वयं दुःख झेला ही करते हैं। परन्तु यह दुःख नहीं है, यह तो सबके हृदयमें विराजमान भगवान्की परम आराधना है ॥ ४४ ॥

देवाधिदेव भगवान् शङ्कर सबकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं। उनका यह कल्याणकारी अद्भुत कर्म सुनकर सम्पूर्ण प्रजा, दक्षकन्या सती, ब्रह्माजी और स्वयं विष्णुभगवान् भी उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ४५ ॥ जिस समय भगवान् शङ्कर विषपान कर रहे थे, उस समय उनके हाथसे थोड़ा-सा विष टपक पड़ा था। उसे बिच्छू, साँप तथा अन्य विषैले जीवोंने एवं विषैली ओषधियोंने ग्रहण कर लिया ॥ ४६ ॥

आठवाँ अध्याय

समुद्रसे अमृतका प्रकट होना और भगवान्का मोहिनी अवतार ग्रहण करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार जब भगवान् शङ्करने विष पी लिया, तब देवता और असुरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फिर नये उत्साहसे समुद्र मथने लगे। तब समुद्रसे कामधेनु प्रकट हुई ॥ १ ॥ वह अग्निहोत्रकी सामग्री उत्पन्न करनेवाली थी। इसलिये ब्रह्मलोकतक पहुँचानेवाले यज्ञके लिये उपयोगी पवित्र घी, दूध आदि प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे ग्रहण किया।२। उसके बाद उच्चैःश्रवा नामका घोड़ा निकला। वह चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णका था। बलिने उसे लेनेकी इच्छा प्रकट की। इन्द्रने उसे नहीं चाहा; क्योंकि भगवान्ने उन्हें पहलेसे ही सिखा रक्खा था ॥ ३ ॥ तदनन्तर ऐरावत नामका श्रेष्ठ हाथी निकला। उसके बड़े-बड़े चार दाँत थे, जो उज्ज्वलवर्ण कैलासकी शोभाको भी मात करते थे ॥४॥ तत्पश्चात् कौस्तुभ नामक पद्मराग-

मणि समुद्रसे निकली। उस मणिको अपने हृदयपर धारण करनेके लिये अजित भगवान्‌ने लेना चाहा ॥५॥ परीक्षित् ! इसके बाद स्वर्गलोककी शोभा बढ़ानेवाला कल्पवृक्ष निकला । वह याचकोंकी इच्छाएँ उनकी इच्छित वस्तु देकर वैसे ही पूर्ण करता रहता है, जैसे पृथ्वीपर तुम सबकी इच्छाएँ पूर्ण करते हो ॥ ६ ॥ तत्पश्चात् अप्सराएँ प्रकट हुईं । वे सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित एवं गलेमें स्वर्ण-हार पहने हुए थीं । वे अपनी मनोहर चाल और विलासभरी चितवनसे देवताओंको सुख पहुँचानेवाली हुईं ॥ ७ ॥ इसके बाद शोभाकी मूर्ति स्वयं भगवती लक्ष्मीदेवी प्रकट हुईं । वे भगवान्‌की नित्यशक्ति हैं । उनकी बिजलीके समान चमकीली छटासे दिशाएँ जगमगा उठीं ॥ ८ ॥ उनके सौन्दर्य, औदार्य, यौवन, रूप-रंग और महिमासे सबका चित्त खिंच गया । देवता, असुर, मनुष्य—सभीने चाहा कि ये हमें मिल जायँ ॥ ९ ॥ स्वयं इन्द्र अपने हाथों उनके बैठनेके लिये बड़ा विचित्र आसन ले आये । श्रेष्ठ नदियोंने मूर्तिमान् होकर उनके अभिषेकके लिये सोनेके घड़ोंमें भर-भरकर पवित्र जल ला दिया ॥ १० ॥ पृथ्वीने अभिषेकके योग्य सब ओषधियाँ दीं । गौओंने पञ्चगव्य और वसन्त ऋतुने चैत्र-वैशाखमें होनेवाले सब फूल-फल उपस्थित कर दिये ॥ ११ ॥ इन सामग्रियोंसे ऋषियोंने विधिपूर्वक उनका अभिषेक सम्पन्न किया । गन्धर्वोंने मङ्गलमय संगीतकी तान छेड़ दी । नर्तकियाँ नाच-नाचकर गाने लगीं ॥ १२ ॥ बादल सदेह होकर मृदङ्ग, डमरू, ढोल, नगारे, नरसिंगे, शङ्ख, वेणु और वीणा बड़े जोरसे बजाने लगे ॥ १३ ॥ तब भगवती लक्ष्मीदेवी हाथमें कमल लेकर सिंहासनपर विराजमान हो गयीं । दिग्गजोंने जलसे भरे कलशोंसे उनको स्नान कराया । उस समय ब्राह्मणगण वेदमन्त्रोंका पाठ कर रहे थे ॥ १४ ॥ समुद्रने पीले रेशमी वस्त्र उनको पहननेके लिये दिये । वरुणने ऐसी वैजयन्ती माला समर्पित की, जिसकी मधुमय सुगन्धसे भौंरे मतवाले हो रहे थे ।१५। प्रजापति विश्वकर्माने भाँति-भाँतिके गहने, सरस्वतीने मोतियोंका हार, ब्रह्माजीने कमल और नागोंने दो कुण्डल समर्पित किये ॥ १६ ॥

इसके बाद लक्ष्मीजी ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययन-पाठ कर चुकनेपर अपने हाथोंमें कमलकी माला लेकर उसे सर्वगुणसम्पन्न पुरुषके गलेमें डालने चलीं । मालाके आस-पास उसकी सुगन्धसे मतवाले हुए भौंरे गुंजार कर रहे थे । उस समय लक्ष्मीजीके मुखकी शोभा अवर्णनीय हो रही थी । सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल लटक रहे थे । लक्ष्मीजी कुछ लज्जाके साथ मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं ॥ १७ ॥ उनकी कमर बहुत पतली थी । दोनों स्तन बिल्कुल सटे हुए और सुन्दर थे । उनपर चन्दन और केसरका लेप किया हुआ था । जब वे इधर-उधर चलती थीं, तब उनके पायजेबसे बड़ी मधुर झनकार निकलती थी । ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई सोनेकी लता इधर-उधर घूम-फिर रही है ॥१८॥ वे चाहती थीं कि मुझे कोई निर्दोष और समस्त उत्तम गुणोंसे नित्ययुक्त अविनाशी पुरुष मिले तो मैं उसे अपना आश्रय बनाऊँ, वरण करूँ । परन्तु गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, चारण, देवता आदिमें कोई भी वैसा पुरुष उन्हें न मिला ॥ १९ ॥ (वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि) कोई तपस्वी तो हैं, परन्तु उन्होंने क्रोधपर विजय नहीं प्राप्त की है । किन्हींमें ज्ञान तो है परन्तु वे पूरे अनासक्त नहीं हैं। कोई-कोई हैं तो बड़े महत्त्वशाली, परन्तु वे कामको नहीं जीत सके हैं । किन्हींमें ऐश्वर्य भी बहुत है; परन्तु वह ऐश्वर्य ही किस कामका, जब उन्हें दूसरोंका आश्रय लेना पड़ता है ॥ २० ॥ किन्हींमें धर्माचरण तो है; परन्तु प्राणियोंके प्रति वे प्रेमका पूरा बर्ताव नहीं करते । त्याग तो है, परन्तु केवल त्याग ही तो मुक्तिका कारण नहीं है। किन्हीं-किन्हींमें वीरता तो अवश्य है, परन्तु वे भी कालके पंजेसे बाहर नहीं हैं । अवश्य ही कुछ महात्माओंमें विषयासक्ति नहीं है, परन्तु वे तो निरन्तर अद्वैत-समाधिमें ही तल्लीन रहते हैं ॥ २१ ॥ किसी-किसी ऋषिने आयु तो बहुत लंबी प्राप्त कर ली है, परन्तु उनका शील-मङ्गल भी मेरे योग्य नहीं है । किन्हींमें शील-मङ्गल भी है; परन्तु उनकी आयुका कुछ ठिकाना नहीं । अवश्य ही किन्हींमें दोनों ही बातें हैं, परन्तु वे अमङ्गल-वेषमें रहते हैं । रहे एक भगवान् विष्णु । उनमें सभी मङ्गलमय गुण नित्य निवास करते हैं, परन्तु वे मुझे चाहते ही नहीं ॥ २२ ॥

इस प्रकार सोच-विचारकर अन्तमें श्रीलक्ष्मीजीने अपने चिर अभीष्ट भगवान्‌को ही वरके रूपमें चुना; क्योंकि उनमें समस्त सद्गुण नित्य निवास करते हैं। प्राकृत गुण उनका स्पर्श नहीं कर सकते और अणिमा आदि समस्त गुण उनको चाहा करते हैं; परन्तु वे किसीकी भी अपेक्षा नहीं रखते। वास्तवमें लक्ष्मीजीके एकमात्र आश्रय भगवान् ही हैं। इसीसे उन्होंने उन्हींको वरण किया ॥ २३ ॥ लक्ष्मीजीने भगवान्‌के गलेमें वह नवीन कमलोंकी सुन्दर माला पहना दी, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड मतवाले मधुकर गुंजार कर रहे थे। इसके बाद लज्जापूर्ण मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे अपने निवासस्थान उनके वक्षः-स्थलको देखती हुई वे उनके पास ही खड़ी हो गयीं ॥२४॥ जगत्पिता भगवान्‌ने जगज्जननी, समस्त सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृ-देवता श्रीलक्ष्मीजीको अपने वक्षःस्थलपर ही सर्वदा निवास करनेका स्थान दिया। लक्ष्मीजीने वहाँ विराजमान होकर अपनी करुणाभरी चितवनसे तीनों लोक, लोकपति और अपनी प्यारी प्रजाकी अभिवृद्धि की ॥ २५ ॥ उस समय शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। गन्धर्व अप्सराओंके साथ नाचने-गाने लगे। इससे बड़ा भारी शब्द होने लगा ॥ २६ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, अङ्गिरा आदि सब प्रजापति पुष्पवर्षा करते हुए भगवान्‌के गुण, स्वरूप और लीला आदिके यथार्थ वर्णन करनेवाले मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥ देवता, प्रजापति और प्रजा—सभी लक्ष्मीजीकी कृपा-दृष्टिसे शील आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न होकर बहुत सुखी हो गये ॥ २८ ॥ परीक्षित्! इधर जब लक्ष्मीजीने दैत्य और दानवोंकी उपेक्षा कर दी, तब वे लोग निर्बल, उद्योगरहित, निर्लज्ज और लोभी हो गये ॥ २९ ॥

इसके बाद समुद्रमन्थन करनेपर कमलनयनी कन्याके रूपमें वारुणी देवी प्रकट हुई। भगवान्‌की अनुमतिसे दैत्योंने उसे ले लिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर महाराज! देवता और असुरोंने अमृतकी इच्छासे जब और भी समुद्रमन्थन किया, तब उसमेंसे एक अत्यन्त अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ ॥ ३१ ॥ उसकी भुजाएँ लंबी एवं मोटी थीं। उसका गला शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाला था और आँखोंमें लालिमा थी। शरीरका रंग बड़ा सुन्दर साँवला-साँवला था। गलेमें माला, अङ्ग-अङ्ग सब प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित, शरीरपर पीताम्बर, कानोंमें चमकीले मणियोंके कुण्डल, चौड़ी छाती, तरुण अवस्था, सिंहके समान पराक्रम, अनुपम सौन्दर्य, चिकने और घुँघराले बाल लहराते हुए! उस पुरुषकी छबि बड़ी अनोखी थी ॥ ३२-३३ ॥ उसके हाथोंमें कंगन और अमृतसे भरा हुआ कलश था। वह साक्षात् विष्णुभगवान्‌के अंशांश अवतार थे ॥ ३४ ॥ वे ही आयुर्वेदके प्रवर्तक और यज्ञभोक्ता धन्वन्तरिके नामसे सुप्रसिद्ध हुए। जब दैत्योंकी दृष्टि उनपर तथा उनके हाथमें अमृतसे भरे हुए कलशपर पड़ी, तब उन्होंने शीघ्रतासे बलात् उस अमृतके कलशको छीन लिया। वे तो पहलेसे ही इस ताकमें थे कि किसी तरह समुद्रमन्थनसे निकली हुई सभी वस्तुएँ हमें मिल जायँ! जब असुर उस अमृतसे भरे कलशको छीन ले गये, तब देवताओंका मन विषादसे भर गया। अब वे भगवान्‌की शरणमें आये। उनकी दीन दशा देखकर भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने कहा—'देवताओ! तुमलोग खेद मत करो। मैं अपनी मायासे उनमें आपसकी फूट डालकर अभी तुम्हारा काम बना देता हूँ' ॥ ३५—३७ ॥

परीक्षित्! अमृतलोलुप दैत्योंमें उसके लिये आपस-में झगड़ा खड़ा हो गया। सभी कहने लगे 'पहले मैं पीऊँगा, पहले मैं; तुम नहीं, तुम नहीं' ॥ ३८ ॥ उनमें जो दुर्बल थे, वे उन बलवान् दैत्योंका विरोध करने लगे जिन्होंने कलश छीनकर अपने हाथमें कर लिया था। वे ईर्ष्यावश धर्मकी दुहाई देकर उनको रोकने और बार-बार कहने लगे कि 'भाई! देवताओंने भी हमारे बराबर ही परिश्रम किया है, उनको भी यज्ञभागके समान इसका भाग मिलना ही चाहिये। यही सनातनधर्म है' ॥ ३९-४० ॥ इस प्रकार इधर दैत्योंमें 'तू-तू, मैं-मैं' हो रही थी और उधर सभी उपाय जाननेवालोंके स्वामी चतुरशिरोमणि भगवान्‌ने अत्यन्त अद्भुत और अवर्णनीय स्त्रीका रूप धारण किया ॥ ४१ ॥ शरीरका रंग नील कमलके समान श्याम एवं देखने ही योग्य था। अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े ही आकर्षक थे। दोनों कान बराबर और कर्णफूलसे सुशोभित थे। सुन्दर कपोल, ऊँची नासिका और रम-णीय मुख ॥ ४२ ॥ नयी जवानीके कारण स्तन उभरे

हुए थे और उन्हींके भारसे कमर पतली हो गयी थी। मुखसे निकलती हुई सुगन्धके प्रेमसे गुनगुनाते हुए भौंरे उसपर टूटे पड़ते थे, जिससे नेत्रोंमें कुछ घबराहटका भाव आ जाता था ॥ ४३ ॥ अपने लंबे केशपाशोंमें उन्होंने खिले हुए बेलेके पुष्पोंकी माला गूँथ रक्खी थी। सुन्दर गलेमें कण्ठके आभूषण और सुन्दर भुजाओंमें बाजूबंद सुशोभित थे ॥ ४४ ॥ इनके चरणोंके नूपुर मधुर ध्वनिसे रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे और स्वच्छ साड़ीसे ढके नितम्बद्वीपपर शोभायमान करधनी अपनी अनूठी छटा छिटका रही थी ॥ ४५ ॥ अपनी सलज्ज मुसकान, नाचती हुई तिरछी भौंहें और विलासभरी चितवनसे मोहिनीरूपधारी भगवान् दैत्यसेनापतियोंके चित्तमें बार-बार कामोद्दीपन करने लगे ॥ ४६ ॥

नवाँ अध्याय

मोहिनीरूपसे भगवान्‌के द्वारा अमृत बाँटा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! असुर आपसके सद्भाव और प्रेमको छोड़कर एक-दूसरेकी निन्दा कर रहे थे और डाकूकी तरह एक दूसरेके हाथसे अमृतका कलश छीन रहे थे। इसी बीचमें उन्होंने देखा कि एक बड़ी सुन्दरी स्त्री उनकी ओर चली आ रही है ॥ १ ॥ वे सोचने लगे—'कैसा अनुपम सौन्दर्य है। शरीरमेंसे कितनी अद्भुत छटा छिटक रही है ! तनिक इसकी नयी उम्र तो देखो !' बस, अब वे आपसकी लाग-डाँट भूलकर उसके पास दौड़ गये। उन लोगोंने काममोहित होकर उससे पूछा—॥ २ ॥ 'कमलनयनी ! तुम कौन हो ? कहाँसे आ रही हो ? क्या करना चाहती हो ? सुन्दरी ! तुम किसकी कन्या हो ? तुम्हें देखकर हमारे मनमें खलबली मच गयी है ॥ ३ ॥ हम समझते हैं कि अबतक देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और लोकपालोंने भी तुम्हें स्पर्शतक न किया होगा। फिर मनुष्य तो तुम्हें कैसे छू पाते ? ॥ ४ ॥ सुन्दरी ! अवश्य ही विधाताने दया करके शरीरधारियोंकी सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं मनको तृप्त करनेके लिये तुम्हें यहाँ भेजा है ॥ ५ ॥ मानिनी ! वैसे हमलोग एक ही जातिके हैं। फिर भी हम सब एक ही वस्तु चाह रहे हैं, इसलिये हममें डाह और वैरकी गाँठ पड़ गयी है। सुन्दरी ! तुम हमारा झगड़ा मिटा दो ॥ ६ ॥ हम सभी कश्यपजीके पुत्र होनेके नाते सगे भाई हैं। हमलोगोंने अमृतके लिये बड़ा पुरुषार्थ किया है। तुम न्यायके अनुसार निष्पक्षभावसे इसे बाँट दो, जिससे फिर हमलोगोंमें किसी प्रकारका झगड़ा न हो' ॥ ७ ॥ असुरोंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब लीलासे स्त्री-वेष धारण करनेवाले भगवान्‌ने तनिक हँसकर और तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते हुए कहा ॥ ८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—आपलोग महर्षि कश्यपके पुत्र हैं और मैं हूँ कुलटा। आपलोग मुझपर न्यायका भार क्यों डाल रहे हैं ? विवेकी पुरुष स्वेच्छाचारिणी स्त्रियोंका कभी विश्वास नहीं करते ॥ ९ ॥ दैत्यो ! कुत्ते और व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी मित्रता स्थायी नहीं होती। वे दोनों ही सदा नये-नये शिकार ढूँढ़ा करते हैं ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मोहिनीकी परिहासभरी वाणीसे दैत्योंके मनमें और भी विश्वास हो गया। उन लोगोंने रहस्यपूर्ण भावसे हँसकर अमृतका कलश मोहिनीके हाथमें दे दिया ॥ ११ ॥ भगवान्‌ने अमृतका कलश अपने हाथमें लेकर तनिक मुसकराते हुए मीठी वाणीसे कहा—'मैं उचित या अनुचित जो कुछ भी करूँ, वह सब यदि तुमलोगोंको स्वीकार हो तो मैं यह अमृत बाँट सकती हूँ' ॥ १२ ॥ बड़े-बड़े दैत्योंने मोहिनीकी यह मीठी बात सुनकर उसकी बारीकी नहीं समझी, इसलिये सबने एक स्वरसे कह दिया 'स्वीकार है।' इसका कारण यह था कि उन्हें मोहिनी-के वास्तविक स्वरूपका पता नहीं था ॥ १३ ॥

इसके बाद एक दिनका उपवास करके सबने स्नान किया। हविष्यसे अग्निमें हवन किया। गौ, ब्राह्मण और समस्त प्राणियोंको घास-चारा, अन्न-धनादिका यथा-योग्य दान दिया तथा ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन कराया ॥ १४ ॥ अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सबने नये-नये वस्त्र धारण

किये और इसके बाद सुन्दर-सुन्दर आभूषण धारण करके सब-के-सब उन कुशासनोंपर बैठ गये, जिनका अगला हिस्सा पूर्वकी ओर था ॥ १५ ॥ जब देवता और दैत्य दोनों ही धूपसे सुगन्धित, मालाओं और दीपकोंसे सजे-सजाये भव्य भवनमें पूर्वकी ओर मुँह करके बैठ गये, तब हाथमें अमृतका कलश लेकर मोहिनी सभामण्डपमें आयी । वह एक बड़ी सुन्दर साड़ी पहने हुए थी । नितम्बोंके भारके कारण वह धीरे-धीरे चल रही थी । आँखें मदसे विह्वल हो रही थीं । कलशके समान स्तन और गजशावककी सूँडके समान जङ्घाएँ थीं । उसके स्वर्णनूपुर अपनी झनकारसे सभाभवनको मुखरित कर रहे थे ॥ १६-१७ ॥ सुन्दर कानोंमें सोनेके कुण्डल थे और उसकी नासिका, कपोल तथा मुख बड़े ही सुन्दर थे । स्वयं परदेवता भगवान् मोहिनीके रूपमें ऐसे जान पड़ते थे मानो लक्ष्मीजीकी कोई श्रेष्ठ सखी वहाँ आ गयी हो । मोहिनीने अपनी मुसकानभरी चितवनसे देवता और दैत्योंकी ओर देखा, तो वे सब-के-सब मोहित हो गये । उस समय उनके स्तनोंपरसे अञ्चल कुछ खिसक गया था ॥ १८ ॥ भगवान्‌ने मोहिनीरूपमें यह विचार किया कि असुर तो जन्मसे ही क्रूर स्वभाववाले हैं । इनको अमृत पिलाना सर्पोंको दूध पिलानेके समान बड़ा अन्याय होगा । इसलिये उन्होंने असुरोंको अमृतमें भाग नहीं दिया ॥ १९ ॥ भगवान्‌ने देवता और असुरोंकी अलग-अलग पंक्तियाँ बना दीं और फिर दोनोंको कतार बाँधकर अपने-अपने दलमें बैठा दिया ॥ २० ॥ इसके बाद अमृतका कलश हाथमें लेकर भगवान् दैत्योंके पास चले गये । उन्हें हाव-भाव और कटाक्षसे मोहित करके दूर बैठे हुए देवताओंके पास आ गये तथा उन्हें वह अमृत पिलाने लगे, जिसे पी लेनेपर बुढ़ापे और मृत्युका नाश हो जाता है ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! असुर अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन कर रहे थे । उनका स्नेह भी हो गया था और वे स्त्रीसे झगड़नेमें अपनी निन्दा भी समझते थे । इसलिये वे चुपचाप बैठे रहे ॥ २२ ॥ मोहिनीमें उनका अत्यन्त प्रेम हो गया था । वे डर रहे थे कि उससे हमारा प्रेम-सम्बन्ध टूट न जाय । मोहिनीने भी पहले उन लोगोंका बड़ा सम्मान किया था, इससे वे और भी बँध गये थे । यही कारण है कि उन्होंने मोहिनीको कोई अप्रिय बात नहीं कही ॥ २३ ॥

जिस समय भगवान् देवताओंको अमृत पिला रहे थे, उसी समय राहु दैत्य देवताओंका वेष बनाकर उनके बीचमें आ बैठा और देवताओंके साथ उसने भी अमृत पी लिया । परन्तु तत्क्षण चन्द्रमा और सूर्यने उसकी पोल खोल दी ॥ २४ ॥ अमृत पिलाते-पिलाते ही भगवान्‌ने अपने तीखी धारवाले चक्रसे उसका सिर काट डाला । अमृतका संसर्ग न होनेसे उसका धड़ नीचे गिर गया ॥ २५ ॥ परन्तु सिर अमर हो गया और ब्रह्माजीने उसे 'ग्रह' बना दिया । वही राहु पर्वके दिन (पूर्णिमा और अमावस्याको) वैर-भावसे बदला लेनेके लिये चन्द्रमा तथा सूर्यपर आक्रमण किया करता है ॥ २६ ॥ जब देवताओंने अमृत पी लिया, तब समस्त लोकोंको जीवनदान करनेवाले भगवान्‌ने बड़े-बड़े दैत्योंके सामने ही मोहिनीरूप त्याग कर अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! देखो—देवता और दैत्य दोनोंने एक ही समय एक स्थानपर एक प्रयोजन तथा एक वस्तुके लिये एक विचारसे एक ही कर्म किया था, परन्तु फलमें बड़ा भेद हो गया । उनमेंसे देवताओंने बड़ी सुगमतासे अपने परिश्रमका फल—अमृत प्राप्त कर लिया, क्योंकि उन्होंने भगवान्‌के चरणकमलोंकी रजका आश्रय लिया था । परन्तु उससे विमुख होनेके कारण परिश्रम करनेपर भी असुरगण अमृतसे वञ्चित ही रहे ॥ २८ ॥ मनुष्य अपने प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी आदिसे शरीर एवं पुत्र आदिके लिये जो कुछ करता है—वह व्यर्थ ही होता है; क्योंकि उसके मूलमें भेदबुद्धि बनी रहती है । परन्तु उन्हीं प्राण आदि वस्तुओंके द्वारा भगवान्‌के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब भेदभावसे रहित होनेके कारण अपने शरीर, पुत्र और समस्त संसारके लिये सफल हो जाता है । जैसे वृक्षकी जड़में पानी देनेसे उसका तना, टहनियाँ और पत्ते—सब-के-सब सिंच जाते हैं, वैसे ही भगवान्‌के लिये कर्म करनेसे वे सबके लिये हो जाते हैं ॥ २९ ॥

दसवाँ अध्याय

देवासुर-संग्राम

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यद्यपि दानव और दैत्योंने बड़ी सावधानीसे समुद्रमन्थनकी चेष्टा की थी, फिर भी भगवान्‌से विमुख होनेके कारण उन्हें अमृतकी प्राप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥ राजन्! भगवान्‌ने समुद्रको मथकर अमृत निकाला और अपने निजजन देवताओंको पिला दिया। फिर सबके देखते-देखते वे गरुडपर सवार हुए और वहाँसे चले गये ॥ २ ॥ जब दैत्योंने देखा कि हमारे शत्रुओंको तो बड़ी सफलता मिली, तब वे उनकी बढ़ती सह न सके। उन्होंने तुरंत अपने हथियार उठाये और देवताओंपर धावा बोल दिया ॥ ३ ॥ इधर देवताओंने एक तो अमृत पीकर विशेष शक्ति प्राप्त कर ली थी और दूसरे उन्हें भगवान्‌के चरणकमलोंका आश्रय था ही। बस, वे भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो दैत्योंसे भिड़ गये ॥ ४ ॥ परीक्षित्! क्षीरसागरके तटपर बड़ा ही रोमाञ्चकारी और अत्यन्त भयङ्कर संग्राम हुआ। देवता और दैत्योंकी वह घमासान लड़ाई ही 'देवासुर-संग्राम' के नामसे कही जाती है ॥ ५ ॥ दोनों ही एक-दूसरेके प्रबल शत्रु हो रहे थे, दोनों ही क्रोधसे भरे हुए थे। एक-दूसरेको आमने-सामने पाकर तलवार, बाण और अन्य अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रोंसे परस्पर चोट पहुँचाने लगे ॥ ६ ॥ उस समय लड़ाईमें शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग, नगारे और डमरू बड़े जोरसे बजने लगे; हाथियोंकी चिग्घाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी घरघराहट और पैदल सेनाकी चिल्लाहटसे बड़ा कोलाहल मच गया ॥ ७ ॥ रणभूमिमें रथियोंके साथ रथी, पैदलके साथ पैदल, घुड़सवारोंके साथ घुड़सवार एवं हाथीवालोंके साथ हाथीवाले भिड़ गये ॥ ८ ॥ उनमेंसे कोई-कोई वीर ऊँटोंपर, हाथियोंपर और गधोंपर चढ़कर लड़ रहे थे तो कोई-कोई गौरमृग, भालू, बाघ और सिंहोंपर ॥ ९ ॥ कोई-कोई सैनिक गिद्ध, कङ्क, बगुले, बाज और भास पक्षियोंपर चढ़े हुए थे तो बहुत-से तिमिङ्गिल मच्छ, शरभ, भैंसे, गैंड़े, बैल, नीलगाय और जंगली साँड़ोंपर सवार थे ॥ १० ॥ किसी-किसीने सियारिन, चूहे, गिरगिट और खरहोंपर ही सवारी कर ली थी तो बहुत-से मनुष्य, बकरे, कृष्णसार मृग, हंस और सूअरोंपर चढ़े थे ॥ ११ ॥ इस प्रकार जल, स्थल एवं आकाशमें रहनेवाले तथा देखनेमें भयङ्कर शरीरवाले बहुत-से प्राणियोंपर चढ़कर कई दैत्य दोनों सेनाओंमें आगे-आगे घुस गये ॥ १२ ॥

परीक्षित्! उस समय रंग-बिरंगी पताकाओं, स्फटिक मणिके समान श्वेत निर्मल छत्रों, रत्नोंसे जड़े हुए दण्डवाले बहुमूल्य पंखों, मोरपंखों, चँवरों और वायुसे उड़ते हुए दुपट्टों, पगड़ी, कलँगी, कवच, आभूषण तथा सूर्यकी किरणोंसे अत्यन्त दमकते हुए उज्ज्वल शस्त्रों एवं वीरोंकी पंक्तियोंके कारण देवता और असुरोंकी सेनाएँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं, मानो जल-जन्तुओंसे भरे हुए दो महासागर लहरा रहे हों ॥ १३—१५ ॥ परीक्षित्! रणभूमिमें दैत्योंके सेनापति विरोचनपुत्र बलि मय दानवके बनाये हुए वैहायस नामक विमानपर सवार हुए। वह विमान चलानेवालेकी जहाँ इच्छा होती थी, वहीं चला जाता था ॥ १६ ॥ युद्धकी समस्त सामग्रियाँ उसमें सुसज्जित थीं। परीक्षित्! वह इतना आश्चर्यमय था कि कभी दिखलायी पड़ता तो कभी अदृश्य हो जाता। वह इस समय कहाँ है—जब इस बातका अनुमान भी नहीं किया जा सकता था, तब बतलाया तो कैसे जा सकता था ॥ १७ ॥ उसी श्रेष्ठ विमानपर राजा बलि सवार थे। सभी बड़े-बड़े सेनापति उनको चारों ओरसे घेरे हुए थे। उनपर श्रेष्ठ चमर डुलाये जा रहे थे और छत्र तना हुआ था। उस समय बलि ऐसे जान पड़ते थे, जैसे उदयाचलपर चन्द्रमा ॥ १८ ॥ उनके चारों ओर अपने-अपने विमानोंपर सेनाकी छोटी-छोटी टुकड़ियोंके स्वामी नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्राक्ष, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुराधिपति मय, पौलोम, कालेय और निवातकवच आदि स्थित थे ॥ १९—२२ ॥ ये सब-के-सब समुद्रमन्थनमें सम्मिलित

थे। परन्तु इन्हें अमृतका भाग नहीं मिला, केवल क्लेश ही हाथ लगा था। इन सब असुरोंने एक नहीं, अनेक वार युद्धमें देवताओंको पराजित किया था ॥ २३ ॥ इसलिये वे बड़े उत्साहसे सिंहनाद करते हुए अपने घोर स्वरवाले शङ्ख बजाने लगे। इन्द्रने देखा कि हमारे शत्रुओंका मन बढ़ रहा है, ये मदोन्मत्त हो रहे हैं; तब उन्हें बड़ा क्रोध आया ॥ २४ ॥ वे अपने वाहन ऐरावत नामक दिग्गजपर सवार हुए। उसके कपोलोंसे मद बह रहा था। इसलिये इन्द्रकी ऐसी शोभा हुई, मानो भगवान् सूर्य उदयाचलपर आरूढ हों और उससे अनेकों झरने बह रहे हों ॥ २५ ॥ इन्द्रके चारों ओर अपने-अपने वाहन, ध्वजा और आयुधोंसे युक्त देवगण एवं अपने-अपने गणोंके साथ वायु, अग्नि, वरुण आदि लोकपाल हो लिये ॥ २६ ॥

दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गयीं। दो-दोकी जोड़ियाँ बनाकर वे लोग लड़ने लगे। कोई आगे बढ़ रहा था, तो कोई नाम ले-लेकर ललकार रहा था। कोई-कोई मर्मभेदी वचनोंके द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वीको धिक्कार रहा था ॥ २७ ॥ बलि इन्द्रसे, स्वामिकार्तिक तारकासुरसे, वरुण हेतिसे और मित्र प्रहेतिसे भिड़ गये॥ २८ ॥ यमराज कालनाभसे, विश्वकर्मा मयसे, शम्बरासुर त्वष्टासे तथा सविता विरोचनसे लड़ने लगे ॥२९॥ नमुचि अपराजितसे, अश्विनीकुमार वृषपर्वासे तथा सूर्यदेव बलिके बाण आदि सौ पुत्रोंसे युद्ध करने लगे॥३०॥ राहुके साथ चन्द्रमा और पुलोमाके साथ वायुका युद्ध हुआ। भद्रकाली देवी निशुम्भ और शुम्भपर झपट पड़ीं ॥ ३१ ॥ परीक्षित्! जम्भासुरसे महादेवजीकी, महिषासुरसे अग्निदेवकी और वातापि तथा इल्वलसे ब्रह्माके पुत्र मरीचि आदिकी ठन गयी ॥ ३२ ॥ दुर्मर्षकी कामदेवसे, उत्कलकी मातृगणोंसे, शुक्राचार्यकी बृहस्पतिसे और नरकासुरकी शनैश्चरसे लड़ाई होने लगी ॥३३॥ निवातकवचोंके साथ मरुद्गण, कालेयोंके साथ वसुगण, पौलोमोंके साथ विश्वेदेवगण तथा क्रोधवशोंके साथ रुद्रगणका संग्राम होने लगा ॥ ३४ ॥

इस प्रकार असुर और देवता रणभूमिमें द्वन्द्व युद्ध और सामूहिक आक्रमणद्वारा एक-दूसरेसे भिड़कर परस्पर विजयकी इच्छासे उत्साहपूर्वक तीखे बाण, तलवार और भालोंसे प्रहार करने लगे। वे तरह-तरहसे युद्ध कर रहे थे ॥ ३५ ॥ भुशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, फरसा, तलवार, भाले, मुद्गर, परिघ और भिन्दिपालसे एक दूसरेका सिर काटने लगे ॥ ३६ ॥ उस समय अपने सवारोंके साथ हाथी, घोड़े, रथ आदि अनेकों प्रकारके वाहन और पैदल सेना छिन्न-भिन्न होने लगी। किसीकी भुजा, किसीकी जङ्घा, किसीकी गरदन और किसीके पैर कट गये तो किसी-किसीकी ध्वजा, धनुष, कवच और आभूषण ही टुकड़े-टुकड़े हो गये ॥ ३७ ॥ उनके चरणोंकी धमक और रथके पहियोंकी रगड़से पृथ्वी खुद गयी। उस समय रणभूमिसे ऐसी प्रचण्ड धूल उठी कि उसने दिशा, आकाश और सूर्यको भी ढक दिया। परन्तु थोड़ी ही देरमें खूनकी धारासे भूमि आप्लावित हो गयी और कहीं धूलका नाम भी न रहा ॥ ३८ ॥ तदनन्तर लड़ाईका मैदान कटे हुए सिरोंसे भर गया। किसीके मुकुट और कुण्डल गिर गये थे, तो किसीकी आँखोंसे क्रोधकी मुद्रा प्रकट हो रही थी। किसी-किसीने अपने दाँतोंसे होंठ दबा रक्खा था। बहुतोंकी आभूषणों और शस्त्रोंसे सुसज्जित लंबी-लंबी भुजाएँ कटकर गिरी हुई थीं और बहुतोंकी मोटी-मोटी जाँघें कटी हुई पड़ी थीं। इस प्रकार वह रणभूमि बड़ी भीषण दीख रही थी ॥ ३९ ॥ तब वहाँ बहुत-से धड़ अपने कटकर गिरे हुए सिरोंके नेत्रोंसे देखकर हाथोंमें हथियार उठा वीरोंकी ओर दौड़ने और उछलने लगे ॥ ४० ॥

राजा बलिने दस बाण इन्द्रपर, तीन उनके वाहन ऐरावतपर, चार ऐरावतके चार चरण-रक्षकोंपर और एक मुख्य महावतपर—इस प्रकार कुल अठारह बाण छोड़े॥ ४१ ॥ इन्द्रने देखा कि बलिके बाण तो हमें घायल करना ही चाहते हैं। तब उन्होंने बड़ी फुर्तीसे उतने ही तीखे भल्ल नामक बाणोंसे उनको वहाँतक पहुँचनेके पहले ही हँसते-हँसते काट डाला ॥ ४२ ॥ इन्द्रकी यह प्रशंसनीय फुर्ती देखकर राजा बलि और भी चिढ़ गये। उन्होंने एक बहुत बड़ी शक्ति, जो बड़े भारी लूकेके समान जल रही थी, उठायी। किन्तु अभी वह उनके हाथमें ही थी—छूटने नहीं पायी थी कि इन्द्रने

उसे भी काट डाला ॥ ४३ ॥ इसके बाद बलिने एकके पीछे एक क्रमशः शूल, प्रास, तोमर और शक्ति उठायी। परन्तु वे जो-जो शस्त्र हाथमें उठाते, इन्द्र उन्हें टुकड़े-टुकड़े कर डालते। इस हस्तलाघवसे इन्द्रका ऐश्वर्य और भी चमक उठा ॥ ४४ ॥

परीक्षित्! अब इन्द्रकी फुर्तीसे घबराकर पहले तो बलि अन्तर्धान हो गये, फिर उन्होंने आसुरी मायाकी सृष्टि की। तुरंत ही देवताओंकी सेनाके ऊपर एक पर्वत प्रकट हुआ ॥ ४५ ॥ उस पर्वतसे दावाग्निसे जलते हुए वृक्ष और टाँकी-जैसी तीखी धारवाले शिखरोंके साथ नुकीली शिलाएँ गिरने लगीं। इससे देवताओंकी सेना चकनाचूर होने लगी ॥ ४६ ॥ तत्पश्चात् बड़े-बड़े साँप, दन्दशूक, बिच्छू और अन्य विषैले जीव उछल-उछलकर काटने और डंक मारने लगे। सिंह, बाघ और सूअर देव-सेनाके बड़े-बड़े हाथियोंको फाड़ने लगे ॥ ४७ ॥ परीक्षित्! हाथोंमें शूल लिये 'मारो-काटो' इस प्रकार चिल्लाती हुई सैकड़ों नंग-धड़ंग राक्षसियाँ और राक्षस भी वहाँ प्रकट हो गये ॥ ४८ ॥ कुछ ही क्षण बाद आकाशमें बादलोंकी घनघोर घटाएँ मँडराने लगीं, उनके आपसमें टकरानेसे बड़ी गहरी और कठोर गर्जना होने लगी, बिजलियाँ चमकने लगीं और आँधीके झकझोरनेसे बादल अंगारोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४९ ॥ दैत्यराज बलिने प्रलयकी अग्निके समान बड़ी भयानक आगकी सृष्टि की। वह बात-की-बातमें वायुकी सहायतासे देव-सेनाको जलाने लगी ॥ ५० ॥ थोड़ी ही देरमें ऐसा जान पड़ा कि प्रबल आँधीके थपेड़ोंसे समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरें और भयानक भँवर उठ रहे हैं और वह अपनी मर्यादा छोड़कर चारों ओरसे देव-सेनाको घेरता हुआ उमड़ा आ रहा है ॥ ५१ ॥ इस प्रकार जब उन भयानक असुरोंने बहुत बड़ी मायाकी सृष्टि की और स्वयं अपनी मायाके प्रभावसे छिप रहे—न दीखनेके कारण उनपर प्रहार भी नहीं किया जा सकता था, तब देवताओंके सैनिक बहुत दुखी हो गये ॥ ५२ ॥ परीक्षित्! इन्द्र आदि देवताओंने उनकी मायाका प्रतीकार करनेके लिये बहुत कुछ सोचा-विचारा, परन्तु उन्हें कुछ न सूझा। तब उन्होंने विश्वके जीवनदाता भगवान्‌का ध्यान किया और ध्यान करते ही वे वहीं प्रकट हो गये ॥ ५३ ॥ बड़ी ही सुन्दर झाँकी थी। गरुडके कंधेपर उनके चरणकमल विराजमान थे। नवीन कमलके समान बड़े ही कोमल नेत्र थे। पीताम्बर धारण किये हुए थे। आठ भुजाओंमें आठ आयुध, गलेमें कौस्तुभ मणि, मस्तकपर अमूल्य मुकुट एवं कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे। देवताओंने अपने नेत्रोंसे भगवान्‌की इस छबिका दर्शन किया ॥ ५४ ॥ परम पुरुष परमात्माके प्रकट होते ही उनके प्रभावसे असुरोंकी वह कपटभरी माया विलीन हो गयी—ठीक वैसे ही, जैसे जग जानेपर स्वप्नकी वस्तुओंका पता नहीं चलता। ठीक ही है, भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंसे मुक्त कर देती है ॥ ५५ ॥ इसके बाद कालनेमि दैत्यने देखा कि लड़ाईके मैदानमें गरुडवाहन भगवान् आ गये हैं, तब उसने अपने सिंहपर बैठे-ही-बैठे बड़े वेगसे उनके ऊपर एक त्रिशूल चलाया। वह गरुडके सिरपर लगनेवाला ही था कि खेल-खेलमें भगवान्‌ने उसे पकड़ लिया और उसी त्रिशूलसे उसके चलानेवाले कालनेमि दैत्य तथा उसके वाहनको मार डाला ॥ ५६ ॥ माली और सुमाली—दो दैत्य बड़े बलवान् थे, भगवान्‌ने युद्धमें अपने चक्रसे उनके सिर भी काट डाले और वे निर्जीव होकर गिर पड़े। तदनन्तर माल्यवान्‌ने अपनी प्रचण्ड गदासे गरुडपर बड़े वेगके साथ प्रहार किया। परन्तु गर्जना करते हुए माल्यवान्‌के प्रहार करते-न-करते ही भगवान्‌ने चक्रसे उसके सिरको भी धड़से अलग कर दिया ॥ ५७ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

देवासुर-संग्रामकी समाप्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! परम पुरुष भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे देवताओंकी घबराहट जाती रही, उनमें नवीन उत्साहका सञ्चार हो गया। पहले इन्द्र, वायु आदि देवगण रणभूमिमें जिन-जिन दैत्योंसे आहत हुए थे, उन्हींके ऊपर अब वे पूरी शक्तिसे प्रहार करने लगे ॥ १ ॥ परम ऐश्वर्यशाली इन्द्रने बलिसे लड़ते-

लड़ते जब उनपर क्रोध करके वज्र उठाया, तब सारी प्रजामें हाहाकार मच गया ॥ २ ॥ बलि अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर बड़े उत्साहसे युद्धभूमिमें बड़ी निर्भयतासे डटकर विचर रहे थे । उनको अपने सामने ही देखकर हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रने उनका तिरस्कार करके कहा ॥ ३ ॥ 'मूर्ख ! जैसे नट बच्चोंकी आँखें बाँधकर अपने जादूसे उनका धन ऐंठ लेता है, वैसे ही तू मायाकी चालोंसे हमपर विजय प्राप्त करना चाहता है । तुझे पता नहीं कि हमलोग मायाके स्वामी हैं, वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती ॥ ४ ॥ जो मूर्ख मायाके द्वारा स्वर्गपर अधिकार करना चाहते हैं और उसको लाँघकर ऊपरके लोकोंमें भी धाक जमाना चाहते हैं—उन लुटेरे मूर्खोंको मैं उनके पहले स्थानसे भी नीचे पटक देता हूँ ॥ ५ ॥ नासमझ ! तूने मायाकी बड़ी-बड़ी चालें चली हैं । देख, आज मैं अपने सौ धारवाले वज्रसे तेरा सिर धड़से अलग किये देता हूँ । तू अपने भाई-बन्धुओंके साथ जो कुछ कर सकता हो, करके देख ले' ॥ ६ ॥

बलिने कहा—इन्द्र ! जो लोग कालशक्तिकी प्रेरणासे अपने कर्मके अनुसार युद्ध करते हैं—उन्हें जीत या हार, यश या अपयश अथवा मृत्यु मिलती ही है ॥ ७ ॥ इसीसे ज्ञानीजन इस जगत्‌को कालके अधीन समझकर न तो विजय होनेपर हर्षसे फूल उठते हैं और न तो अपकीर्ति, हार अथवा मृत्युसे शोकके ही वशीभूत होते हैं । तुमलोग इस तत्त्वसे अनभिज्ञ हो ॥ ८ ॥ तुम लोग अपनेको जय-पराजय आदिका कारण—कर्ता मानते हो, इसलिये महात्माओंकी दृष्टिसे तुम शोचनीय हो । हम तुम्हारे मर्मस्पर्शी वचनको स्वीकार ही नहीं करते, फिर हमें दुःख क्यों होने लगा ? ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—वीर बलिने इन्द्रको इस प्रकार फटकारा । बलिकी फटकारसे इन्द्र कुछ झेंप गये । तबतक वीरोंका मान मर्दन करनेवाले बलिने अपने धनुषको कानतक खींच-खींचकर बहुत-से बाण मारे ॥ १० ॥ सत्यवादी देवशत्रु बलिने इस प्रकार इन्द्रका अत्यन्त तिरस्कार किया । अब तो इन्द्र अङ्कुशसे मारे हुए हाथीकी तरह और भी चिढ़ गये । बलिका आक्षेप वे सहन न कर सके ॥ ११ ॥ शत्रुघाती इन्द्रने बलिपर अपने अमोघ वज्रका प्रहार किया । उसकी चोटसे बलि पंख कटे हुए पर्वतके समान अपने विमानके साथ पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ बलिका एक बड़ा हितैषी और घनिष्ठ मित्र जम्भासुर था । अपने मित्रके गिर जानेपर भी उनको मारनेका बदला लेनेके लिये वह इन्द्रके सामने आ खड़ा हुआ ॥ १३ ॥ सिंहपर चढ़कर वह इन्द्रके पास पहुँच गया और बड़े वेगसे अपनी गदा उठाकर उनके जत्रुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया । साथ ही उस महाबलीने ऐरावतपर भी एक गदा जमायी ॥ १४ ॥ गदाकी चोटसे ऐरावतको बड़ी पीड़ा हुई, उसने व्याकुलतासे घुटने टेक दिये और फिर मूर्छित हो गया ! ॥ १५ ॥ उसी समय इन्द्रका सारथि मातलि हजार घोड़ोंसे जुता हुआ रथ ले आया और शक्तिशाली इन्द्र ऐरावतको छोड़कर तुरंत रथपर सवार हो गये ॥ १६ ॥ दानवश्रेष्ठ जम्भने रणभूमिमें मातलिके इस कामकी बड़ी प्रशंसा की और मुसकराकर चमकता हुआ त्रिशूल उसके ऊपर चलाया ॥ १७ ॥ मातलिने धैर्यके साथ इस असह्य पीडाको सह लिया । तब इन्द्रने क्रोधित होकर अपने वज्रसे जम्भका सिर काट डाला ॥ १८ ॥

देवर्षि नारदसे जम्भासुरकी मृत्युका समाचार जानकर उसके भाई-बन्धु नमुचि, बल और पाक झटपट रणभूमिमें आ पहुँचे ॥ १९ ॥ अपनी कठोर और मर्मस्पर्शी वाणीसे उन्होंने इन्द्रको बहुत कुछ बुरा-भला कहा और जैसे बादल पहाड़पर मूसलधार पानी बरसाते हैं, वैसे ही उनके ऊपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ २० ॥ बलने बड़े हस्तलाघवसे एक साथ ही एक हजार बाण चलाकर इन्द्रके एक हजार घोड़ोंको घायल कर दिया ॥ २१ ॥ पाकने सौ बाणोंसे मातलिको और सौ बाणोंसे रथके एक-एक अङ्गको छेद डाला । युद्धभूमिमें यह बड़ी अद्भुत घटना हुई कि एक ही बार इतने बाण उसने चढ़ाये और चलाये ॥ २२ ॥ नमुचिने बड़े-बड़े पंद्रह बाणोंसे, जिनमें सोनेके पंख लगे हुए थे, इन्द्रको मारा और युद्धभूमिमें वह जलसे भरे बादलके समान गरजने लगा ॥ २३ ॥ जैसे वर्षाकालके बादल सूर्यको ढक लेते हैं, वैसे ही असुरोंने बाणोंकी वर्षासे इन्द्र और उनके रथ तथा सारथिको भी चारों ओरसे ढक

दिया ॥ २४ ॥ इन्द्रको न देखकर देवता और उनके अनुचर अत्यन्त विह्वल होकर रोने-चिल्लाने लगे । एक तो शत्रुओंने उन्हें हरा दिया था और दूसरे अब उनका कोई सेनापति भी न रह गया था । उस समय देवताओंकी ठीक वैसी ही अवस्था हो रही थी, जैसे बीच समुद्रमें नाव टूट जानेपर व्यापारियोंकी होती है ॥ २५ ॥ परन्तु थोड़ी ही देरमें शत्रुओंके बनाये हुए बाणोंके पिंजड़ेसे घोड़े, रथ, ध्वजा और सारथिके साथ इन्द्र निकल आये । जैसे प्रातःकाल सूर्य अपनी किरणोंसे दिशा, आकाश और पृथ्वीको चमका देते हैं, वैसे ही इन्द्रके तेजसे सब-के-सब जगमगा उठे ॥ २६ ॥ वज्रधारी इन्द्रने देखा कि शत्रुओंने रणभूमिमें हमारी सेनाको रौंद डाला है, तब उन्होंने बड़े क्रोधसे शत्रुको मार डालनेके लिये वज्रसे आक्रमण किया ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! उस आठ धारवाले पैने वज्रसे उन दैत्योंके भाई-बन्धुओंको भी भयभीत करते हुए उन्होंने बल और पाकके सिर काट लिये ॥ २८ ॥

परीक्षित् ! अपने भाइयोंको मरा हुआ देख नमुचिको बड़ा शोक हुआ । वह क्रोधके कारण आपेसे बाहर होकर इन्द्रको मार डालनेके लिये जी-जानसे प्रयास करने लगा ॥ २९ ॥ 'इन्द्र ! अब तुम बच नहीं सकते'—इस प्रकार ललकारते हुए एक त्रिशूल उठाकर वह इन्द्रपर टूट पड़ा । वह त्रिशूल फौलादका बना हुआ था, सोनेके आभूषणोंसे विभूषित था और उसमें घण्टे लगे हुए थे । नमुचिने क्रोधके मारे सिंहके समान गरजकर इन्द्रपर वह त्रिशूल चला दिया ॥ ३० ॥ परीक्षित् ! इन्द्रने देखा कि त्रिशूल बड़े वेगसे मेरी ओर आ रहा है । उन्होंने अपने बाणोंसे आकाशमें ही उसके हजारों टुकड़े कर दिये और इसके बाद देवराज इन्द्रने बड़े क्रोधसे उसका सिर काट लेनेके लिये उसकी गर्दनपर वज्र मारा ॥ ३१ ॥ यद्यपि इन्द्रने बड़े वेगसे वह वज्र चलाया था, परन्तु उस यशस्वी वज्रसे उसके चमड़ेपर खरोंचतक नहीं आयी । यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना हुई कि जिस वज्रने महाबली वृत्रासुरका शरीर टुकड़े-टुकड़े कर डाला था, नमुचिके गलेकी त्वचाने उसका तिरस्कार कर दिया ॥ ३२ ॥ जब वज्र नमुचिका कुछ न बिगाड़ सका, तब इन्द्र उससे डर गये । वे सोचने लगे कि 'दैवयोगसे संसारभरको संशयमें डालनेवाली यह कैसी घटना हो गयी ! ॥ ३३ ॥ पहले युगमें जब ये पर्वत पाँखोंसे उड़ते थे और घूमते-फिरते भारके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ते थे, तब प्रजाका विनाश होते देखकर इसी वज्रसे मैंने उन पहाड़ोंकी पाँखें काट डाली थीं ॥ ३४ ॥ त्वष्टाकी तपस्याका सार ही वृत्रासुरके रूपमें प्रकट हुआ था ! उसे भी मैंने इसी वज्रके द्वारा काट डाला था । और भी अनेकों दैत्य, जो बहुत बलवान् थे और किसी अस्त्र-शस्त्रसे जिनके चमड़ेको भी चोट नहीं पहुँचायी जा सकी थी, इसी वज्रसे मैंने मृत्युके घाट उतार दिये थे ॥ ३५ ॥ वही मेरा वज्र मेरे प्रहार करनेपर भी इस तुच्छ असुरको न मार सका, अतः अब मैं इसे अङ्गीकार नहीं कर सकता । यह ब्रह्मतेजसे बना है तो क्या हुआ, अब तो निकम्मा हो चुका है' ॥ ३६ ॥ इस प्रकार इन्द्र विषाद करने लगे । उसी समय यह आकाशवाणी हुई—"यह दानव न तो सूखी वस्तुसे मर सकता है न गीलीसे ॥ ३७ ॥ इसे मैं वर दे चुका हूँ कि 'सूखी या गीली वस्तुसे तुम्हारी मृत्यु न होगी ।' इसलिये इन्द्र ! इस शत्रुको मारनेके लिये अब तुम कोई दूसरा उपाय सोचो !" ॥ ३८ ॥ उस आकाशवाणीको सुनकर देवराज इन्द्र बड़ी एकाग्रतासे विचार करने लगे । सोचते-सोचते उन्हें सूझ गया कि समुद्रका फेन तो सूखा भी है, गीला भी; ॥ ३९ ॥ इसलिये न उसे सूखा कह सकते हैं, न गीला । अतः इन्द्रने उस न सूखे और न गीले समुद्र-फेनसे नमुचिका सिर काट डाला । उस समय बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भगवान् इन्द्रपर पुष्पोंकी वर्षा और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ गन्धर्वशिरोमणि विश्वावसु तथा परावसु गान करने लगे, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और नर्तकियाँ आनन्दसे नाचने लगीं ॥ ४१ ॥ इसी प्रकार वायु, अग्नि, वरुण आदि दूसरे देवताओंने भी अपने शस्त्र-अस्त्रोंसे विपक्षियोंको वैसे ही मार गिराया जैसे सिंह हरिनोंको मार डालते हैं ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! इधर ब्रह्माजीने देखा कि दानवोंका तो सर्वथा नाश हुआ जा रहा है । तब उन्होंने देवर्षि नारदको देवताओंके पास भेजा और नारदजीने वहाँ जाकर देवताओंको लड़नेसे रोक दिया ॥ ४३ ॥

नारदजीने कहा—देवताओ ! भगवान्‌की भुजाओंकी

छत्रछायामें रहकर आपलोगोंने अमृत प्राप्त कर लिया है और लक्ष्मीजीने भी अपनी कृपा-कोरसे आपकी अभिवृद्धि की है, इसलिये आपलोग अब लड़ाई बंद कर दें ॥४४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवताओंने देवर्षि नारदकी बात मानकर अपने क्रोधके वेगको शान्त कर लिया और फिर वे सब-के-सब अपने लोक स्वर्गको चले गये। उस समय देवताओंके अनुचर उनके यशका गान कर रहे थे ॥ ४५ ॥ युद्धमें बचे हुए दैत्योंने देवर्षि नारदकी सम्मतिसे वज्रकी चोटसे मरे हुए बलिको लेकर अस्ताचलकी यात्रा की ॥ ४६ ॥ वहाँ शुक्राचार्यने अपनी सञ्जीवनी विद्यासे उन असुरोंको जीवित कर दिया, जिनके गरदन आदि अङ्ग कटे नहीं थे, बच रहे थे ॥ ४७ ॥ शुक्राचार्यके स्पर्श करते ही बलिकी इन्द्रियोंमें चेतना और मनमें स्मरणशक्ति आ गयी। बलि यह बात समझते थे कि संसारमें जीवन-मृत्यु, जय-पराजय आदि उलट-फेर होते ही रहते हैं। इसलिये पराजित होनेपर भी उन्हें किसी प्रकारका खेद नहीं हुआ ॥ ४८ ॥

बारहवाँ अध्याय

मोहिनीरूपको देखकर महादेवजीका मोहित होना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् शङ्करने यह सुना कि श्रीहरिने स्त्रीका रूप धारण करके असुरोंको मोहित कर लिया और देवताओंको अमृत पिला दिया, तब वे सती देवीके साथ बैलपर सवार हो समस्त भूतगणोंको लेकर वहाँ गये, जहाँ भगवान् मधुसूदन निवास करते हैं ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीहरिने बड़े प्रेमसे गौरी-शङ्कर भगवान्‌का स्वागत-सत्कार किया। वे भी सुखसे बैठकर भगवान्‌का सम्मान करके मुसकराते हुए बोले ॥ ३ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—समस्त देवोंके आराध्यदेव! आप विश्वव्यापी, जगदीश्वर एवं जगत्स्वरूप हैं। समस्त चराचर पदार्थोंके मूल कारण, ईश्वर और आत्मा भी आप ही हैं ॥ ४ ॥ इस जगत्‌के आदि, अन्त और मध्य आपसे ही होते हैं; परन्तु आप आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। आपके अविनाशी स्वरूपमें द्रष्टा, दृश्य, भोक्ता और भोग्यका भेदभाव नहीं है। वास्तवमें आप सत्य, चिन्मात्र ब्रह्म ही हैं ॥ ५ ॥ कल्याणकामी महात्मालोग इस लोक और परलोक दोनोंकी आसक्ति एवं समस्त कामनाओंका परित्याग करके आपके चरणकमलोंकी ही आराधना करते हैं ॥ ६ ॥ आप अमृतस्वरूप, समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित, शोकको छायासे भी दूर, स्वयं परिपूर्ण ब्रह्म हैं। आप केवल आनन्दस्वरूप हैं। आप निर्विकार हैं। आपसे भिन्न कुछ नहीं है, परन्तु आप सबसे भिन्न हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके परम कारण हैं। आप समस्त जीवोंके शुभाशुभ कर्मका फल देनेवाले स्वामी हैं। परन्तु यह बात भी जीवोंकी अपेक्षासे ही कही जाती है; वास्तवमें आप सबकी अपेक्षासे रहित, अनपेक्ष हैं ॥ ७ ॥ स्वामिन्! कार्य और कारण, द्वैत और अद्वैत—जो कुछ है, वह सब एकमात्र आप ही हैं; ठीक वैसे ही जैसे आभूषणोंके रूपमें स्थित सुवर्ण और मूल सुवर्णमें कोई अन्तर नहीं है—दोनों एक ही वस्तु हैं। लोगोंने आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण आपमें नाना प्रकारके भेदभाव और विकल्पोंकी कल्पना कर रक्खी है। यही कारण है कि आपमें किसी प्रकारकी उपाधि न होनेपर भी गुणोंको लेकर भेदकी प्रतीति होती है ॥ ८ ॥ प्रभो! कोई-कोई आपको ब्रह्म समझते हैं, तो दूसरे आपको धर्म कहकर वर्णन करते हैं। इसी प्रकार कोई आपको प्रकृति और पुरुषसे परे परमेश्वर मानते हैं तो कोई विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—इन नौ शक्तियोंसे युक्त परम पुरुष तथा दूसरे क्लेश-कर्म आदिके बन्धनसे रहित, पूर्वजोंके भी पूर्वज, अविनाशी पुरुषविशेषके रूपमें मानते हैं ॥९॥ प्रभो! मैं, ब्रह्मा और मरीचि आदि ऋषि—जो सत्त्वगुणकी सृष्टिके अन्तर्गत हैं—जब आपकी बनायी हुई सृष्टिका भी रहस्य नहीं जान पाते, तब आपको तो जान ही कैसे सकते हैं। फिर जिनका चित्त मायाने

अपने वशमें कर रक्खा है और जो सर्वदा रजोगुणी और तमोगुणी कर्मोंमें लगे रहते हैं, वे असुर और मनुष्य आदि तो भला जानेंगे ही क्या ॥ १० ॥ प्रभो ! आप सर्वात्मक एवं ज्ञानस्वरूप हैं । इसीलिये वायुके समान आकाशमें अदृश्य रहकर भी आप सम्पूर्ण चराचर जगत्में सदा-सर्वदा विद्यमान रहते हैं तथा इसकी चेष्टा, स्थिति, जन्म, नाश, प्राणियोंके कर्म एवं संसारके बन्धन, मोक्ष—सभीको जानते हैं ॥ ११ ॥ प्रभो ! आप जब गुणोंको स्वीकार करके लीला करनेके लिये बहुत-से अवतार ग्रहण करते हैं, तब मैं उनका दर्शन करता ही हूँ । अब मैं आपके उस अवतारका भी दर्शन करना चाहता हूँ, जो आपने स्त्रीरूपमें ग्रहण किया था ॥१२॥ जिससे दैत्योंको मोहित करके आपने देवताओंको अमृत पिलाया, स्वामिन् ! उसीको देखनेके लिये हम सब आये हैं। हमारे मनमें उसके दर्शनका बड़ा कौतूहल है ॥१३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् शङ्करने विष्णुभगवान्से यह प्रार्थना की, तब वे गम्भीर भावसे हँसकर शङ्करजीसे बोले ॥ १४ ॥

श्रीविष्णुभगवान्ने कहा—शङ्करजी ! उस समय अमृतका कलश दैत्योंके हाथमें चला गया था । अतः देवताओंका काम बनानेके लिये और दैत्योंका मन एक नये कौतूहलकी ओर खींच लेनेके लिये ही मैंने वह स्त्री-रूप धारण किया था ॥ १५ ॥ देवशिरोमणे ! आप उसे देखना चाहते हैं, इसलिये मैं आपको वह रूप दिखलाऊँगा । परन्तु वह रूप तो कामी पुरुषोंका ही आदरणीय है, क्योंकि वह कामभावको उत्तेजित करनेवाला है ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस तरह कहते-कहते विष्णुभगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और भगवान् शङ्कर सती देवीके साथ चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए वहीं बैठे रहे ॥ १७ ॥ इतनेमें ही उन्होंने देखा कि सामने एक बड़ा सुन्दर उपवन है । उसमें भाँति-भाँतिके वृक्ष लग रहे हैं, जो रंग-बिरंगे फूल और लाल-लाल कोंपलोंसे भरे-पूरे हैं । उन्होंने यह भी देखा कि उस उपवनमें एक सुन्दरी स्त्री गेंद उछाल-उछालकर खेल रही है । वह बड़ी ही सुन्दर साड़ी पहने हुए है और उसकी कमरमें करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं ॥१८॥ गेंदको उछालने और लपककर पकड़नेसे उसके स्तन और उनपर पड़े हुए हार हिल रहे हैं । ऐसा जान पड़ता था, मानो इनके भारसे उसकी पतली कमर पग-पगपर टूटते-टूटते बच जाती है । वह अपने लाल-लाल पल्लवोंके समान सुकुमार चरणोंसे बड़ी कलाके साथ ठुमुक-ठुमुक चल रही थी ॥ १९ ॥ उछलता हुआ गेंद जब इधर-उधर छलक जाता था, तब वह लपककर उसे रोक लेती थी । इससे उसकी बड़ी-बड़ी चञ्चल आँखें कुछ उद्विग्न-सी हो रही थीं । उसके कपोलोंपर कानोंके कुण्डलोंकी आभा जगमगा रही थी और घुँघराली काली-काली अलकें उनपर लटक आती थीं, जिससे मुख और भी उल्लसित हो उठता था॥ २० ॥ जब कभी साड़ी सरक जाती और केशोंकी वेणी खुलने लगती, तब अपने अत्यन्त सुकुमार बायें हाथसे वह उन्हें सम्हाल-सँवार लिया करती । उस समय भी वह दाहिने हाथसे गेंद उछाल-उछालकर सारे जगत्को अपनी मायासे मोहित कर रही थी ॥ २१ ॥ गेंदसे खेलते-खेलते उसने तनिक सलज्ज भावसे मुसकराकर तिरछी नजरसे शङ्करजीकी ओर देखा । बस, उनका मन हाथसे निकल गया । वे मोहिनीको निहारने और उसकी चितवनके रसमें डूबकर इतने विह्वल हो गये कि उन्हें अपने-आपकी भी सुधि न रही । फिर पास बैठी हुई सती और गणोंकी तो याद ही कैसे रहती ॥ २२ ॥ एक बार मोहिनीके हाथसे उछलकर गेंद थोड़ी दूर चला गया । वह भी उसीके पीछे दौड़ी । उसी समय शङ्करजीके देखते-देखते वायुने उसकी झीनी-सी साड़ी करधनीके साथ ही उड़ा ली ॥२३॥ मोहिनीका एक-एक अङ्ग बड़ा ही रुचिर और मनोरम था । जहाँ आँखें लग जातीं, लगी ही रहतीं । यही नहीं, मन भी वहीं रमण करने लगता । उसको इस दशामें देखकर भगवान् शङ्कर उसकी ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गये । उन्हें मोहिनी भी अपने प्रति आसक्त जान पड़ती थी ॥ २४ ॥ उसने शङ्करजीका विवेक छीन लिया । वे उसके हाव-भावोंसे कामातुर हो गये और भवानीके सामने ही लज्जा छोड़कर उसकी ओर चल पड़े ॥ २५ ॥

मोहिनी वस्त्रहीन तो पहले ही हो चुकी थी, शङ्करजी-को अपनी ओर आते देख बहुत लज्जित हो गयी। वह एक वृक्षसे दूसरे वृक्षकी आड़में जाकर छिप जाती और हँसने लगती। परन्तु कहीं ठहरती न थी॥ २६॥ भगवान् शङ्करकी इन्द्रियाँ अपने वशमें नहीं रहीं, वे कामवश हो गये थे; अतः हथिनीके पीछे हाथीकी तरह उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे॥ २७॥ उन्होंने अत्यन्त वेगसे उसका पीछा करके पीछेसे उसका जूड़ा पकड़ लिया और उसकी इच्छा न होनेपर भी उसे दोनों भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया॥ २८॥ जैसे हाथी हथिनीका आलिङ्गन करता है, वैसे ही भगवान् शङ्करने उसका आलिङ्गन किया। वह इधर-उधर खिसककर छुड़ानेकी चेष्टा करने लगी, इसी छीना-झपटीमें उसके सिरके बाल बिखर गये॥ २९॥ वास्तवमें वह सुन्दरी भगवान्‌की रची हुई माया ही थी; इससे उसने किसी प्रकार शङ्करजीके भुजपाशसे अपनेको छुड़ा लिया और बड़े वेगसे भागी॥ ३०॥ भगवान् शङ्कर भी उन मोहिनीवेषधारी अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उनके शत्रु कामदेवने इस समय उनपर विजय प्राप्त कर ली है॥ ३१॥ कामुक हथिनीके पीछे दौड़नेवाले मदोन्मत्त हाथीके समान वे मोहिनीके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। यद्यपि भगवान् शङ्करका वीर्य अमोघ है, फिर भी मोहिनीकी मायासे वह स्खलित हो गया॥ ३२॥ भगवान् शङ्करका वीर्य पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सोने-चाँदीकी खानें बन गयीं॥ ३३॥ परीक्षित्! नदी, सरोवर, पर्वत, वन और उपवनमें एवं जहाँ-जहाँ ऋषि-मुनि निवास करते थे, वहाँ-वहाँ मोहिनीके पीछे-पीछे भगवान् शङ्कर गये थे॥ ३४॥ परीक्षित्! वीर्यपात हो जानेके बाद उन्हें अपनी स्मृति हुई। उन्होंने देखा कि अरे, भगवान्‌की मायाने तो मुझे खूब छकाया! वे तुरंत उस दुःखद प्रसङ्गसे अलग हो गये॥ ३५॥ इसके बाद आत्मस्वरूप सर्वात्मा भगवान्‌की यह महिमा जानकर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वे जानते थे कि भला, भगवान्‌की शक्तियोंका पार कौन पा सकता है॥ ३६॥ भगवान्‌ने देखा कि भगवान् शङ्करको इससे विषाद या लज्जा नहीं हुई है, तब वे पुरुष-शरीर धारण करके फिर प्रकट हो गये और बड़ी प्रसन्नतासे उनसे कहने लगे॥ ३७॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवशिरोमणे! मेरी स्त्रीरूपिणी मायासे विमोहित होकर भी आप स्वयं ही अपनी निष्ठामें स्थित हो गये। यह बड़े ही आनन्दकी बात है॥३८॥ मेरी माया अपार है। वह ऐसे-ऐसे हाव-भाव रचती है कि अजितेन्द्रिय पुरुष तो किसी प्रकार उससे छुटकारा पा ही नहीं सकते। भला, आपके अतिरिक्त ऐसा कौन पुरुष है, जो एक बार मेरी मायाके फंदेमें फँसकर फिर स्वयं ही उससे निकल सके॥ ३९॥ यद्यपि मेरी यह गुणमयी माया बड़ों-बड़ोंको मोहित कर देती है, फिर भी अब यह आपको कभी मोहित नहीं करेगी। क्योंकि सृष्टि आदिके लिये समयपर उसे क्षोभित करने-वाला काल मैं ही हूँ, इसलिये मेरी इच्छाके विपरीत वह रजोगुण आदिकी सृष्टि नहीं कर सकती॥ ४०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् विष्णुने भगवान् शङ्करका सत्कार किया। तब उनसे विदा लेकर एवं परिक्रमा करके वे अपने गणोंके साथ कैलासको चले गये॥ ४१॥ भरतवंशशिरोमणे! भगवान् शङ्करने बड़े-बड़े ऋषियोंकी सभामें अपनी अर्द्धाङ्गिनी सती देवीसे अपने विष्णुरूपकी अंशभूता मायामयी मोहिनीका इस प्रकार बड़े प्रेमसे वर्णन किया॥ ४२॥ 'देवि! तुमने परम पुरुष परमेश्वर भगवान् विष्णुकी माया देखी? देखो, यों तो मैं समस्त कला-कौशल, विद्या आदिका स्वामी और स्वतन्त्र हूँ, फिर भी उस मायासे विवश होकर मोहित हो जाता हूँ। फिर दूसरे जीव तो परतन्त्र हैं ही; अतः वे मोहित हो जायँ—इसमें कहना ही क्या है॥ ४३॥ जब मैं एक हजार वर्षकी समाधिसे उठा था, तब तुमने मेरे पास आकर पूछा था कि तुम किसकी उपासना करते हो। वे यही साक्षात् सनातन पुरुष हैं। न तो काल ही इन्हें अपनी सीमामें बाँध सकता है और न वेद ही इनका वर्णन कर सकता है। इनका वास्तविक स्वरूप अनन्त और अनिर्वचनीय है'॥ ४४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! मैंने

विष्णुभगवान्की यह ऐश्वर्यपूर्ण लीला तुमको सुनायी, जिसमें समुद्र-मन्थनके समय अपनी पीठपर मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान्का वर्णन है ॥ ४५ ॥ जो पुरुष बार-बार इसका कीर्तन और श्रवण करता है, उसका उद्योग कभी और कहीं निष्फल नहीं होता। क्योंकि पवित्रकीर्ति भगवान्के गुण और लीलाओंका गान संसारके समस्त क्लेश और परिश्रमको मिटा देनेवाला है ॥ ४६ ॥ दुष्ट पुरुषोंको भगवान्के चरणकमलोंकी प्राप्ति कभी हो नहीं सकती। वे तो भक्तिभावसे युक्त पुरुषको ही प्राप्त होते हैं। इसीसे उन्होंने स्त्रीका माया-मय रूप धारण करके दैत्योंको मोहित किया और अपने चरणकमलोंके शरणागत देवताओंको समुद्र-मन्थनसे निकले हुए अमृतका पान कराया। केवल उन्हींकी बात नहीं—चाहे जो भी उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करे, वे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। मैं उन प्रभु-के चरणकमलोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥

तेरहवाँ अध्याय

आगामी सात मन्वन्तरोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विवस्वान्के पुत्र यशस्वी श्राद्धदेव ही सातवें (वैवस्वत) मनु हैं। यह वर्तमान मन्वन्तर ही उनका कार्यकाल है। उनकी सन्तानका वर्णन मैं करता हूँ ॥ १ ॥ वैवस्वत मनुके दस पुत्र हैं—इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करूष, पृषध्र और वसुमान् ॥ २-३ ॥ परीक्षित्! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभु—ये देवताओंके प्रधान गण हैं और पुरन्दर उनका इन्द्र है ॥ ४ ॥ कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सप्तर्षि हैं ॥ ५ ॥ इस मन्वन्तरमें भी कश्यपकी पत्नी अदितिके गर्भसे आदित्योंके छोटे भाई वामनके रूप-में भगवान् विष्णुने अवतार ग्रहण किया था ॥ ६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तुम्हें सात मन्वन्तरोंका वर्णन सुनाया; अब भगवान्की शक्तिसे युक्त अगले (आनेवाले) सात मन्वन्तरोंका वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥

परीक्षित्! यह तो मैं तुम्हें पहले (छठे स्कन्धमें) बता चुका हूँ कि विवस्वान् (भगवान् सूर्य) की दो पत्नियाँ थीं—संज्ञा और छाया। ये दोनों ही विश्वकर्माकी पुत्री थीं ॥ ८ ॥ कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उनकी एक तीसरी पत्नी बडवा भी थी। (मेरे विचारसे तो संज्ञाका ही नाम बडवा हो गया था।) उन सूर्यपत्नियोंमें संज्ञासे तीन सन्तानें हुईं—यम, यमी और श्राद्धदेव। छायाके भी तीन सन्तानें हुईं—सावर्णि, शनैश्चर और तपती नामकी कन्या, जो संवरणकी पत्नी हुई। जब संज्ञाने बडवाका रूप धारण कर लिया, तब उससे दोनों अश्विनीकुमार हुए ॥ ९-१० ॥ आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि मनु होंगे। उनके पुत्र होंगे निर्मोक, विरजस्क आदि ॥ ११ ॥ परीक्षित्! उस समय सुतपा, विरज और अमृतप्रभ नामक देवगण होंगे। इन देवताओंके इन्द्र होंगे विरो-चनके पुत्र बलि ॥ १२ ॥ विष्णुभगवान्ने वामन अवतार ग्रहण करके इन्हींसे तीन पग पृथ्वी माँगी थी; परन्तु इन्होंने उनको सारी त्रिलोकी दे दी। राजा बलिको एक बार तो भगवान्ने बाँध दिया था, परन्तु फिर प्रसन्न होकर उन्होंने इनको स्वर्गसे भी श्रेष्ठ सुतल लोकका राज्य दे दिया। वे इस समय वहीं इन्द्रके समान विराज-मान हैं। आगे चलकर ये ही इन्द्र होंगे और समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण इन्द्रपदका भी परित्याग करके परम सिद्धि प्राप्त करेंगे ॥ १३-१४ ॥ गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यश्रृङ्ग और हमारे पिता भगवान् व्यास—ये आठवें मन्वन्तरमें सप्तर्षि होंगे। इस समय ये लोग योगबलसे अपने-अपने आश्रम-मण्डल-में स्थित हैं ॥ १५-१६ ॥ देवगुह्यकी पत्नी सरस्वतीके गर्भसे सार्वभौम नामक भगवान्का अवतार होगा। ये ही प्रभु पुरन्दर इन्द्रसे स्वर्गका राज्य छीनकर राजा बलिको दे देंगे ॥ १७ ॥

परीक्षित् ! वरुणके पुत्र दक्षसावर्णि नवें मनु होंगे। भूतकेतु, दीप्तकेतु आदि उनके पुत्र होंगे ॥ १८ ॥ पार, मरीचिगर्भ आदि देवताओंके गण होंगे और अद्-भुत नामके इन्द्र होंगे। उस मन्वन्तरमें द्युतिमान् आदि सप्तर्षि होंगे ॥ १९ ॥ आयुष्मान्की पत्नी अम्बुधाराके गर्भसे ऋषभके रूपमें भगवान्का कलावतार होगा। अद्भुत नामक इन्द्र उन्हींकी दी हुई त्रिलोकीका उपभोग करेंगे ॥ २० ॥

दसवें मनु होंगे उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि। उनमें समस्त सद्गुण निवास करेंगे। भूरिषेण आदि उनके पुत्र होंगे और हविष्मान्, सुकृति, सत्य, जय, मूर्ति आदि सप्तर्षि। सुवासन, विरुद्ध आदि देवताओंके गण होंगे और इन्द्र होंगे शम्भु ॥ २१-२२ ॥ विश्वसृज्की पत्नी विषूचिके गर्भसे भगवान् विष्वक्सेनके रूपमें अंशावतार ग्रहण करके शम्भु नामक इन्द्रसे मित्रता करेंगे ॥ २३ ॥

ग्यारहवें मनु होंगे अत्यन्त संयमी धर्मसावर्णि। उनके सत्य, धर्म आदि दस पुत्र होंगे ॥२४॥ विहङ्गम, कामगम, निर्वाणरुचि आदि देवताओंके गण होंगे। अरुणादि सप्तर्षि होंगे और वैधृत नामके इन्द्र होंगे ॥२५॥ आर्यककी पत्नी वैधृताके गर्भसे धर्मसेतुके रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और उसी रूपमें वे त्रिलोकीकी रक्षा करेंगे ॥ २६ ॥

परीक्षित् ! बारहवें मनु होंगे रुद्रसावर्णि। उनके देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि पुत्र होंगे ॥२७॥ उस मन्वन्तरमें ऋतधामा नामक इन्द्र होंगे और हरित आदि देवगण। तपोमूर्ति, तपस्वी आग्नीध्रक आदि सप्तर्षि होंगे ॥२८॥ सत्यसहाकी पत्नी सूनृताके गर्भसे स्वधामा-के रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और उसी रूपमें भगवान् उस मन्वन्तरका पालन करेंगे ॥ २९ ॥

तेरहवें मनु होंगे परम जितेन्द्रिय देवसावर्णि। चित्रसेन, विचित्र आदि उनके पुत्र होंगे ॥ ३० ॥ सुकर्म और सुत्राम आदि देवगण होंगे तथा इन्द्रका नाम होगा दिवस्पति। उस समय निर्मोक और तत्त्वदर्श आदि सप्तर्षि होंगे ॥ ३१ ॥ देवहोत्रकी पत्नी बृहतीके गर्भसे योगेश्वरके रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और उसी रूपमें भगवान् दिवस्पतिको इन्द्रपद देंगे ॥ ३२ ॥

महाराज ! चौदहवें मनु होंगे इन्द्रसावर्णि। उरु, गम्भीरबुद्धि आदि उनके पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥ उस समय पवित्र, चाक्षुष आदि देवगण होंगे और इन्द्रका नाम होगा शुचि। अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध और मागध आदि सप्तर्षि होंगे ॥३४॥ उस समय सत्रायणकी पत्नी विताना-के गर्भसे बृहद्भानुके रूपमें भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे तथा कर्मकाण्डका विस्तार करेंगे ॥ ३५ ॥

परीक्षित् ! ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों ही कालमें चलते रहते हैं। इन्हींके द्वारा एक सहस्र चतुर्युगीवाले कल्पके समयकी गणना की जाती है ॥ ३६ ॥

चौदहवाँ अध्याय

मनु आदिके पृथक्-पृथक् कर्मोंका निरूपण

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! आपके द्वारा वर्णित ये मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि आदि अपने-अपने मन्वन्तरमें किसके द्वारा नियुक्त होकर कौन-कौन-सा काम किस प्रकार करते हैं—यह आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि और देवता—सबको नियुक्त करनेवाले स्वयं भगवान् ही हैं ॥ २ ॥ राजन् ! भगवान्के जिन यज्ञ-पुरुष आदि अवतार-शरीरोंका वर्णन मैंने किया है, उन्हीं-की प्रेरणासे मनु आदि विश्व-व्यवस्थाका सञ्चालन करते हैं ॥ ३ ॥ चतुर्युगीके अन्तमें समयके उलट-फेरसे जब श्रुतियाँ नष्टप्राय हो जाती हैं, तब सप्तर्षिगण अपनी तपस्यासे पुनः उनका साक्षात्कार करते हैं। उन श्रुतियोंसे ही सनातनधर्मकी रक्षा होती है ॥ ४ ॥

राजन्! भगवान्‌की प्रेरणासे अपने-अपने मन्वन्तरमें बड़ी सावधानीसे सब-के-सब मनु पृथ्वीपर चारों चरणसे परिपूर्ण धर्मका अनुष्ठान करवाते हैं ॥ ५ ॥ मनुपुत्र मन्वन्तरभर काल और देश दोनोंका विभाग करके प्रजापालन तथा धर्म-पालनका कार्य करते हैं। पञ्चमहायज्ञ आदि कर्मोंमें जिन ऋषि, पितर, भूत और मनुष्य आदिका सम्बन्ध है—उनके साथ देवता उस मन्वन्तरमें यज्ञका भाग स्वीकार करते हैं ॥६॥ इन्द्र भगवान्‌की दी हुई त्रिलोकीकी अतुल सम्पत्तिका उपभोग और प्रजाका पालन करते हैं। संसारमें यथेष्ट वर्षा करनेका अधिकार भी उन्हींको है ॥ ७ ॥ भगवान् युग-युगमें सनक आदि सिद्धोंका रूप धारण करके ज्ञानका, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंका रूप धारण करके कर्मका और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरोंके रूपमें योगका उपदेश करते हैं ॥ ८ ॥ वे मरीचि आदि प्रजापतियोंके रूपमें सृष्टिका विस्तार करते हैं, सम्राट्‌के रूपमें लुटेरोंका वध करते हैं और शीत, उष्ण आदि विभिन्न गुणोंको धारण करके कालरूपसे सबको संहारकी ओर ले जाते रहते हैं ॥ ९ ॥ नाम और रूपकी मायासे प्राणियोंकी बुद्धि विमूढ हो रही है। इसलिये वे अनेक प्रकारके दर्शनशास्त्रोंके द्वारा महिमा तो भगवान्‌की ही गाते हैं, परन्तु उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान पाते ॥ १० ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मैंने तुम्हें महाकल्प और अवान्तर कल्पका परिमाण सुना दिया। पुराणतत्त्वके विद्वानोंने प्रत्येक अवान्तर कल्पमें चौदह मन्वन्तर बतलाये हैं ॥ ११ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

राजा बलिकी स्वर्गपर विजय

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! श्रीहरि स्वयं ही सबके स्वामी हैं। फिर उन्होंने दीन-हीनकी भाँति राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी क्यों माँगी? तथा जो कुछ वे चाहते थे, वह मिल जानेपर भी उन्होंने बलिको बाँधा क्यों? ॥ १ ॥ मेरे हृदयमें इस बातका बड़ा कौतूहल है कि स्वयं परिपूर्ण यज्ञेश्वर भगवान्‌के द्वारा याचना और निरपराधका बन्धन—ये दोनों ही कैसे सम्भव हुए? हमलोग यह जानना चाहते हैं ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! जब इन्द्रने बलिको पराजित करके उनकी सम्पत्ति छीन ली और उनके प्राण भी ले लिये, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यने उन्हें अपनी सञ्जीवनी विद्यासे जीवित कर दिया। इसपर शुक्राचार्यजीके शिष्य महात्मा बलिने अपना सर्वस्व उनके चरणोंपर चढ़ा दिया और वे तन-मनसे गुरुजीके साथ ही समस्त भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी सेवा करने लगे ॥ ३ ॥ इससे प्रभावशाली भृगुवंशी ब्राह्मण उनपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वर्गपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छावाले बलिका महाभिषेककी विधिसे अभिषेक करके उनसे विश्वजित् नामका यज्ञ कराया ॥ ४ ॥ यज्ञकी विधिसे हविष्योंके द्वारा जब अग्निदेवताकी पूजा की गयी, तब यज्ञकुण्डमेंसे सोनेकी चद्दरसे मढ़ा हुआ एक बड़ा सुन्दर रथ निकला। फिर इन्द्रके घोड़ों-जैसे हरे रंगके घोड़े और सिंहके चिह्नसे युक्त रथपर लगानेकी ध्वजा निकली ॥ ५ ॥ साथ ही सोनेके पत्रसे मढ़ा हुआ दिव्य धनुष, कभी खाली न होनेवाले दो अक्षय तरकस और दिव्य कवच भी प्रकट हुए। दादा प्रह्लादजीने उन्हें एक ऐसी माला दी, जिसके फूल कभी कुम्हलाते न थे। तथा शुक्राचार्यने एक शङ्ख दिया ॥ ६ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंकी कृपासे युद्धकी सामग्री प्राप्त करके उनके द्वारा स्वस्तिवाचन हो जानेपर राजा बलिने उन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया। इसके बाद उन्होंने प्रह्लादजीसे सम्भाषण करके उनके चरणोंमें नमस्कार किया ॥ ७ ॥ फिर वे भृगुवंशी ब्राह्मणोंके दिये हुए दिव्य रथपर सवार हुए। जब महारथी राजा बलिने कवच धारण कर धनुष, तलवार, तरकस आदि शस्त्र ग्रहण कर लिये और दादाकी दी हुई सुन्दर माला

धारण कर ली, तब उनकी बड़ी शोभा हुई ॥ ८ ॥ उनकी भुजाओंमें सोनेके बाजूबंद और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। उनके कारण रथपर बैठे हुए वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो अग्निकुण्डमें अग्नि प्रज्वलित हो रही हो ॥ ९ ॥ उनके साथ उन्हींके समान ऐश्वर्य, बल और विभूतिवाले दैत्यसेनापति अपनी-अपनी सेना लेकर हो लिये। ऐसा जान पड़ता था मानो वे आकाशको पी जायँगे और अपने क्रोधभरे प्रज्वलित नेत्रोंसे समस्त दिशाओंको, क्षितिजको भस्म कर डालेंगे ॥ १० ॥ राजा बलिने इस बहुत बड़ी आसुरी सेनाको लेकर उसका युद्धके ढंगसे सञ्चालन किया तथा आकाश और अन्तरिक्षको कँपाते हुए सकल ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण इन्द्रपुरी अमरावतीपर चढ़ाई की ॥ ११ ॥

देवताओंकी राजधानी अमरावतीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर नन्दन वन आदि उद्यान और उपवन हैं। उन उद्यानों और उपवनोंमें पक्षियोंके जोड़े चहकते रहते हैं। मधुलोभी भौंरे मतवाले होकर गुनगुनाते रहते हैं ॥ १२ ॥ लाल-लाल नये-नये पत्तों, फलों और पुष्पोंसे कल्पवृक्षोंकी शाखाएँ लदी रहती हैं। वहाँके सरोवरोंमें हंस, सारस, चकवे और बतखोंकी भीड़ लगी रहती है। उन्हींमें देवताओंके द्वारा सम्मानित देवाङ्गनाएँ जलक्रीडा करती रहती हैं ॥ १३ ॥ ज्योतिर्मय आकाशगङ्गाने खाईकी भाँति अमरावतीको चारों ओरसे घेर रक्खा है। उसके चारों ओर बहुत ऊँचा सोनेका परकोटा बना हुआ है, जिसमें स्थान-स्थानपर बड़ी-बड़ी अटारियाँ बनी हुई हैं ॥ १४ ॥ सोनेके किवाड़ द्वार-द्वारपर लगे हुए हैं और स्फटिकमणिके गोपुर (नगरके बाहरी फाटक) हैं। उसमें अलग-अलग बड़े-बड़े राजमार्ग हैं। स्वयं विश्वकर्माने ही उस पुरीका निर्माण किया है ॥ १५ ॥ सभाके स्थान, खेलके चबूतरे और रथ चलनेके बड़े-बड़े मार्गोंसे वह शोभायमान है। दस करोड़ विमान उसमें सर्वदा विद्यमान रहते हैं और मणियोंके बड़े-बड़े चौराहे एवं हीरे और मूँगेकी वेदियाँ बनी हुई हैं ॥ १६ ॥ वहाँकी स्त्रियाँ सर्वदा सोलह वर्षकी-सी रहती हैं, उनका यौवन और सौन्दर्य स्थिर रहता है। वे निर्मल वस्त्र पहनकर अपने रूपकी छटासे इस प्रकार देदीप्यमान होती हैं, जैसे अपनी ज्वालाओंसे अग्नि ॥ १७ ॥ देवाङ्गनाओंके जूड़ेसे गिरे हुए नवीन सौगन्धिक पुष्पोंकी सुगन्ध लेकर वहाँके मार्गोंमें मन्द-मन्द हवा चलती रहती है ॥ १८ ॥ सुनहली खिड़कियोंमेंसे अगरकी सुगन्धसे युक्त सफेद धूआँ निकल-निकलकर वहाँके मार्गोंको ढक दिया करता है। उसी मार्गसे देवाङ्गनाएँ जाती-आती हैं ॥ १९ ॥ स्थान-स्थानपर मोतियोंकी झालरोंसे सजाये हुए चँदोवे तने रहते हैं। सोनेकी मणिमय पताकाएँ फहराती रहती हैं। छज्जोंपर अनेकों झंडियाँ लहराती रहती हैं। मोर, कबूतर और भौंरे कलगान करते रहते हैं। देवाङ्गनाओंके मधुर संगीतसे वहाँ सदा ही मङ्गल छाया रहता है ॥ २० ॥ मृदङ्ग, शङ्ख, नगारे, ढोल, वीणा, वंशी, मँजीरे और ऋष्टियाँ बजती रहती हैं। गन्धर्व बाजोंके साथ गाया करते हैं और अप्सराएँ नाचा करती हैं। इनसे अमरावती इतनी मनोहर जान पड़ती है मानो उसने अपनी छटासे छटाकी अधिष्ठात्री देवीको भी जीत लिया है ॥ २१ ॥ उस पुरीमें अधर्मी, दुष्ट, जीवद्रोही, ठग, मानी, कामी और लोभी नहीं जा सकते। जो इन दोषोंसे रहित हैं, वे ही वहाँ जाते हैं ॥ २२ ॥ असुरोंकी सेनाके स्वामी राजा बलिने अपनी बहुत बड़ी सेनासे बाहरकी ओर सब ओरसे अमरावतीको घेर लिया और इन्द्रपत्नियोंके हृदयमें भयका सञ्चार करते हुए उन्होंने शुक्राचार्यजीके दिये हुए महान् शङ्खको बजाया। उस शङ्खकी ध्वनि सर्वत्र फैल गयी ॥ २३ ॥

इन्द्रने देखा कि बलिने युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की है। अतः सब देवताओंके साथ वे अपने गुरु बृहस्पतिजीके पास गये और उनसे बोले—॥ २४ ॥ 'भगवन्! मेरे पुराने शत्रु बलिने इस बार युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हमलोग उनका सामना नहीं कर सकेंगे। पता नहीं, किस शक्तिसे इनकी इतनी बढ़ती हो गयी है ॥ २५ ॥ मैं देखता हूँ कि इस समय बलिको कोई भी किसी प्रकारसे रोक नहीं सकता। वे प्रलयकी आगके समान बढ़ गये हैं और जान पड़ता है मुखसे

इस विश्वको पी जायँगे, जीभसे दसों दिशाओंको चाट जायँगे और नेत्रोंकी ज्वालासे दिशाओंको भस्म कर देंगे ॥ २६ ॥ आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि मेरे शत्रुकी इतनी बढ़तीका, जिसे किसी प्रकार भी दबाया नहीं जा सकता, क्या कारण है ? इसके शरीर, मन और इन्द्रियोंमें इतना बल और इतना तेज कहाँसे आ गया है कि इसने इतनी बड़ी तैयारी करके चढ़ाई की है ?' ॥ २७ ॥

देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—'इन्द्र ! मैं तुम्हारे शत्रु बलिकी उन्नतिका कारण जानता हूँ । ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंने अपने शिष्य बलिको महान् तेज देकर शक्तियोंका खजाना बना दिया है ॥ २८ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को छोड़कर तुम या तुम्हारे-जैसा और कोई भी बलिके सामने उसी प्रकार नहीं ठहर सकता, जैसे कालके सामने प्राणी ॥ २९ ॥ इसलिये तुमलोग स्वर्गको छोड़कर कहीं छिप जाओ और उस समयकी प्रतीक्षा करो, जब तुम्हारे शत्रुका भाग्यचक्र पलटे ॥३०॥ इस समय ब्राह्मणोंके तेज़से बलिकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है । उसकी शक्ति बहुत बढ़ गयी है । जब यह उन्हीं ब्राह्मणोंका तिरस्कार करेगा, तब अपने परिवार-परिकरके साथ नष्ट हो जायगा' ॥ ३१ ॥ बृहस्पतिजी देवताओंके समस्त स्वार्थ और परमार्थके ज्ञाता थे । उन्होंने जब इस प्रकार देवताओंको सलाह दी, तब वे स्वेच्छानुसार रूप धारण करके स्वर्ग छोड़कर चले गये ॥ ३२ ॥ देवताओंके छिप जानेपर विरोचन-नन्दन बलिने अमरावतीपुरीपर अपना अधिकार कर लिया और फिर तीनों लोकोंको जीत लिया ॥ ३३ ॥ जब बलि विश्वविजयी हो गये, तब शिष्यप्रेमी भृगुवंशियोंने अपने अनुगत शिष्यसे सौ अश्वमेध यज्ञ करवाये ॥३४॥ उन यज्ञोंके प्रभावसे बलिकी कीर्ति-कौमुदी तीनों लोकोंसे बाहर भी दसों दिशाओंमें फैल गयी और वे नक्षत्रोंके राजा चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ ३५ ॥ ब्राह्मण-देवताओंकी कृपासे प्राप्त समृद्ध राज्यलक्ष्मीका वे बड़ी उदारतासे उपभोग करने लगे और अपनेको कृतकृत्य-सा मानने लगे ॥ ३६ ॥

सोलहवाँ अध्याय

कश्यपजीके द्वारा अदितिको पयोव्रतका उपदेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब देवता इस प्रकार भागकर छिप गये और दैत्योंने स्वर्गपर अधिकार कर लिया, तब देवमाता अदितिको बड़ा दुःख हुआ । वे अनाथ-सी हो गयीं ॥ १ ॥ एक बार बहुत दिनोंके बाद जब परमप्रभावशाली कश्यप मुनिकी समाधि टूटी, तब वे अदितिके आश्रमपर आये । उन्होंने देखा कि न तो वहाँ सुख-शान्ति है और न किसी प्रकारका उत्साह या सजावट ही ॥ २ ॥ परीक्षित् ! जब वे वहाँ जाकर आसनपर बैठ गये और अदितिने विधिपूर्वक उनका सत्कार कर लिया, तब वे अपनी पत्नी अदितिसे—जिसके चेहरेपर बड़ी उदासी छायी हुई थी—बोले ॥ ३ ॥ 'कल्याणी ! इस समय संसारमें ब्राह्मणोंपर कोई विपत्ति तो नहीं आयी है ? धर्मका पालन तो ठीक-ठीक होता है ? कालके कराल गालमें पड़े हुए लोगोंका कुछ अमङ्गल तो नहीं हो रहा है ? ॥ ४ ॥ प्रिये ! गृहस्थाश्रम तो, जो लोग योग नहीं कर सकते, उन्हें भी योगका फल देनेवाला है । इस गृहस्थाश्रममें रहकर धर्म, अर्थ और कामके सेवनमें किसी प्रकारका विघ्न तो नहीं हो रहा है ? ॥५॥ यह भी सम्भव है कि तुम कुटुम्बके भरण-पोषणमें व्यग्र रही हो, अतिथि आये हों और तुमसे बिना सम्मान पाये ही लौट गये हों; तुम खड़ी होकर उनका सत्कार करनेमें भी असमर्थ रही हो । इसीसे तो तुम उदास नहीं हो रही हो ? ॥ ६ ॥ जिन घरोंमें आये हुए अतिथिका जलसे भी सत्कार नहीं किया जाता और वे ऐसे ही लौट जाते हैं, वे घर अवश्य ही गीदड़ोंके घरके समान हैं ॥७॥ प्रिये ! सम्भव है, मेरे बाहर चले जानेपर कभी तुम्हारा चित्त उद्विग्न रहा हो और समयपर तुमने हविष्यसे अग्नियोंमें हवन न किया हो ॥ ८ ॥ सर्वदेवमय भगवान्‌के मुख हैं—ब्राह्मण और अग्नि । गृहस्थ पुरुष यदि इन दोनोंकी पूजा

करता है तो उसे उन लोकोंकी प्राप्ति होती है, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ प्रिये ! तुम तो सर्वदा प्रसन्न रहती हो; परन्तु तुम्हारे बहुत-से लक्षणोंसे मैं देख रहा हूँ कि इस समय तुम्हारा चित्त अस्वस्थ है । तुम्हारे सब लड़के तो कुशल-मङ्गलसे हैं न ?' ॥ १० ॥

अदितिने कहा—भगवन् ! ब्राह्मण, गौ, धर्म और आपकी यह दासी—सब सकुशल हैं । मेरे स्वामी ! यह गृहस्थ-आश्रम ही अर्थ, धर्म और कामकी साधनामें परम सहायक है ॥ ११ ॥ प्रभो ! आपके निरन्तर स्मरण और कल्याण-कामनासे अग्नि, अतिथि, सेवक, भिक्षुक और दूसरे याचकोंका भी मैंने तिरस्कार नहीं किया है ॥ १२ ॥ भगवन् ! जब आप-जैसे प्रजापति मुझे इस प्रकार धर्म-पालनका उपदेश करते हैं, तब भला मेरे मनकी ऐसी कौन-सी कामना है जो पूरी न हो जाय ? ॥ १३ ॥ आर्यपुत्र ! समस्त प्रजा—वह चाहे सत्त्वगुणी, रजोगुणी या तमोगुणी हो—आपकी ही सन्तान है । कुछ आपके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुए हैं और कुछ शरीरसे । भगवन् ! इसमें सन्देह नहीं कि आप सब सन्तानोंके प्रति—चाहे असुर हों या देवता—एक-सा भाव रखते हैं, सम हैं । तथापि स्वयं परमेश्वर भी अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण किया करते हैं ॥१४॥ मेरे स्वामी ! मैं आपकी दासी हूँ । आप मेरी भलाईके सम्बन्धमें विचार कीजिये । मर्यादापालक प्रभो ! शत्रुओंने हमारी सम्पत्ति और रहनेका स्थानतक छीन लिया है । आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥ बलवान् दैत्योंने मेरे ऐश्वर्य, धन, यश और पद छीन लिये हैं तथा हमें घरसे बाहर निकाल दिया है । इस प्रकार मैं दुःखके समुद्रमें डूब रही हूँ ॥ १६ ॥ आपसे बढ़कर हमारी भलाई करनेवाला और कोई नहीं है । इसलिये मेरे हितैषी स्वामी ! आप सोच-विचारकर अपने सङ्कल्पसे ही मेरे कल्याणका कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे कि मेरे पुत्रोंको वे वस्तुएँ फिरसे प्राप्त हो जायँ ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार अदितिने जब कश्यपजीसे प्रार्थना की, तब वे कुछ विस्मित-से होकर बोले—'बड़े आश्चर्यकी बात है । भगवान्की माया भी कैसी प्रबल है ! यह सारा जगत् स्नेहकी रज्जुसे बँधा हुआ है ॥ १८ ॥ कहाँ यह पञ्चभूतोंसे बना हुआ अनात्मा शरीर और कहाँ प्रकृतिसे परे आत्मा ? न किसीका कोई पति है, न पुत्र है और न तो सम्बन्धी ही है । मोह ही मनुष्यको नचा रहा है ॥१९॥ प्रिये ! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें विराजमान, अपने भक्तोंके दुःख मिटानेवाले जगद्गुरु भगवान् वासुदेवकी आराधना करो ॥ २० ॥ वे बड़े दीनदयालु हैं । अवश्य ही श्रीहरि तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण करेंगे । मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि भगवान्की भक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती । इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है ॥२१॥

अदितिने पूछा—भगवन् ! मैं जगदीश्वर भगवान्की आराधना किस प्रकार करूँ, जिससे वे सत्यसङ्कल्प प्रभु मेरा मनोरथ पूर्ण करें ॥ २२ ॥ पतिदेव ! मैं अपने पुत्रोंके साथ बहुत ही दुःख भोग रही हूँ । जिससे वे शीघ्र ही मुझपर प्रसन्न हो जायँ, उनकी आराधनाकी वही विधि मुझे बतलाइये ॥ २३ ॥

कश्यपजीने कहा—देवि ! जब मुझे सन्तानकी कामना हुई थी, तब मैंने भगवान् ब्रह्माजीसे यही बात पूछी थी । उन्होंने मुझे भगवान्को प्रसन्न करनेवाले जिस व्रतका उपदेश किया था, वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २४ ॥ फाल्गुनके शुक्लपक्षमें बारह दिनतक केवल दूध पीकर रहे और परम भक्तिसे भगवान् कमलनयनकी पूजा करे ॥ २५ ॥ अमावस्याके दिन यदि मिल सके तो सूअरकी खोदी हुई मिट्टीसे अपना शरीर मलकर नदीमें स्नान करे । उस समय यह मन्त्र* पढ़ना चाहिये ॥ २६ ॥ हे देवि ! प्राणियोंको स्थान देनेकी इच्छासे वराहभगवान्ने रसातलसे तुम्हारा उद्धार किया था । तुम्हें मेरा नमस्कार है । तुम मेरे पापोंको नष्ट कर दो ॥२७॥ इसके बाद अपने नित्य और नैमित्तिक नियमोंको

* त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता । उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥

पूरा करके एकाग्रचित्तसे मूर्ति, वेदी, सूर्य, जल, अग्नि और गुरुदेवके रूपमें भगवान्‌की पूजा करे ॥२८॥ (और इस प्रकार स्तुति करे—)'प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् हैं। अन्तर्यामी और आराधनीय हैं। समस्त प्राणी आपमें और आप समस्त प्राणियोंमें निवास करते हैं। इसीसे आपको 'वासुदेव' कहते हैं। आप समस्त चराचर जगत् और उसके कारणके भी साक्षी हैं। भगवन्! मेरा आपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ आप अव्यक्त और सूक्ष्म हैं। प्रकृति और पुरुषके रूपमें भी आप ही स्थित हैं। आप चौबीस गुणोंके जाननेवाले और गुणोंकी संख्या करनेवाले सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक हैं। आपको मेरा नमस्कार है ॥ ३० ॥ आप वह यज्ञ हैं, जिसके प्रायणीय और उदयनीय—ये दो कर्म सिर हैं। प्रातः, मध्याह्न और तृतीय—ये तीन सवन ही तीन पाद हैं। चारों वेद चार सींग हैं। गायत्री आदि सात छन्द ही सात हाथ हैं। यह धर्ममय वृषभरूप यज्ञ वेदोंके द्वारा प्रतिपादित है और इसकी आत्मा हैं स्वयं आप ! आपको मेरे नमस्कार हैं ॥ ३१ ॥ आप ही लोककल्याणकारी शिव और आप ही प्रलयकारी रुद्र हैं। समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले भी आप ही हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार है। आप समस्त विद्याओंके अधिपति एवं भूतोंके स्वामी हैं। आपको मेरा नमस्कार! ॥३२॥ आप ही सबके प्राण और आप ही इस जगत्‌के स्वरूप भी हैं। आप योगके कारण तो हैं ही स्वयं योग और उससे मिलनेवाला ऐश्वर्य भी आप ही हैं। हे हिरण्यगर्भ ! आपके लिये मेरे नमस्कार ॥३३॥ आप ही आदिदेव हैं। सबके साक्षी हैं। आप ही नर-नारायण ऋषिके रूपमें प्रकट स्वयं भगवान् हैं। आपको मेरे नमस्कार ॥ ३४ ॥ आपका शरीर मरकतमणिके समान साँवला है। समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्यकी देवी लक्ष्मी आपकी सेविका हैं। पीताम्बरधारी केशव ! आपको मेरे बार-बार नमस्कार ॥ ३५ ॥ आप सब प्रकारके वर देनेवाले हैं। वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। तथा जीवोंके एकमात्र वरणीय हैं। यही कारण है कि धीर विवेकी पुरुष अपने कल्याणके लिये आपके चरणोंकी रजकी उपासना करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनके चरणकमलोंकी सुगन्ध प्राप्त करनेकी लालसासे समस्त देवता और स्वयं लक्ष्मीजी भी सेवामें लगी रहती हैं, वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३७ ॥ प्रिये ! भगवान् हृषीकेशका आवाहन पहले ही कर ले। फिर इन मन्त्रोंके द्वारा पाद्य, आचमन आदिके साथ श्रद्धापूर्वक मन लगाकर पूजा करे ॥३८॥ गन्ध, माला आदिसे पूजा करके भगवान्‌को दूधसे स्नान करावे। उसके बाद वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध, धूप आदिके द्वारा द्वादशाक्षर मन्त्रसे भगवान्‌की पूजा करे ॥ ३९ ॥ यदि सामर्थ्य हो तो दूधमें पकाये हुए तथा घी और गुड़ मिले हुए शालिके चावलका नैवेद्य लगावे और उसीका द्वादशाक्षर मन्त्रसे हवन करे ॥ ४० ॥ उस नैवेद्यको भगवान्‌के भक्तोंमें बाँट दे या स्वयं पा ले। आचमन और पूजाके बाद ताम्बूल निवेदन करे ॥ ४१ ॥ एक सौ आठ बार द्वादशाक्षरमन्त्रका जप करे और स्तुतियोंके द्वारा भगवान्‌का स्तवन करे। प्रदक्षिणा करके बड़े प्रेम और आनन्दसे भूमिपर लोटकर दण्डवत्-प्रणाम करे ॥ ४२ ॥ निर्माल्यको सिरसे लगाकर देवताका विसर्जन करे। कम-से-कम दो ब्राह्मणोंको यथोचित रीतिसे खीरका भोजन करावे ॥ ४३ ॥ दक्षिणा आदिसे उनका सत्कार करे। इसके बाद उनसे आज्ञा लेकर अपने इष्ट-मित्रोंके साथ बचे हुए अन्नको स्वयं ग्रहण करे। उस दिन ब्रह्मचर्यसे रहे और दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्नान आदि करके पवित्रतापूर्वक पूर्वोक्त विधिसे एकाग्र होकर भगवान्‌की पूजा करे। इस प्रकार जबतक व्रत समाप्त न हो, तबतक दूधसे स्नान कराकर प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करे ॥४४-४५॥ भगवान्‌की पूजामें आदर-बुद्धि रखते हुए केवल पयोव्रती रहकर यह व्रत करना चाहिये। पूर्ववत् प्रतिदिन हवन और ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार पयोव्रती रहकर बारह दिनतक प्रतिदिन भगवान्‌की आराधना, होम और पूजा करे तथा ब्राह्मण-भोजन कराता रहे ॥ ४७ ॥

फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीपर्यन्त ब्रह्मचर्यसे रहे, पृथ्वीपर शयन करे और तीनों समय स्नान करे ॥४८॥ झूठ न बोले। पापियोंसे बात न करे।

पापकी बात न करे। छोटे-बड़े सब प्रकारके भोगोंका त्याग कर दे। किसी भी प्राणीको किसी प्रकारसे कष्ट न पहुँचावे। भगवान्‌की आराधनामें लगा ही रहे ॥४९॥ त्रयोदशीके दिन विधि जाननेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे भगवान् विष्णुको पञ्चामृतस्नान करावे ॥ ५० ॥ उस दिन धनका सङ्कोच छोड़कर भगवान्‌की बहुत बड़ी पूजा करनी चाहिये। और दूधमें चरु (खीर) पकाकर विष्णुभगवान्‌को अर्पित करना चाहिये ॥ ५१ ॥ अत्यन्त एकाग्र चित्तसे उसी पकाये हुए चरुके द्वारा भगवान्‌का यजन करना चाहिये और उनको प्रसन्न करनेवाला गुण-युक्त तथा स्वादिष्ट नैवेद्य अर्पण करना चाहिये ॥५२॥ इसके बाद ज्ञानसम्पन्न आचार्य और ऋत्विजोंको वस्त्र, आभूषण और गौ आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। प्रिये ! इसे भी भगवान्‌की ही आराधना समझो ॥ ५३ ॥ प्रिये ! आचार्य और ऋत्विजोंको शुद्ध, सात्त्विक और गुणयुक्त भोजन कराना ही चाहिये; दूसरे ब्राह्मण और आये हुए अतिथियोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराना चाहिये ॥ ५४ ॥ गुरु और ऋत्विजोंको यथा-योग्य दक्षिणा देनी चाहिये। जो चाण्डाल आदि अपने-आप वहाँ आ गये हों, उन सभीको तथा दीन, अंधे और असमर्थ पुरुषोंको भी अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। जब सब लोग खा चुकें, तब उन सबके सत्कारको भगवान्‌की प्रसन्नताका साधन समझते हुए अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भोजन करे ॥५५-५६॥ प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीतक प्रतिदिन नाच-गान, बाजे-गाजे, स्तुति, स्वस्तिवाचन और भगवत्कथाओंसे भगवान्‌की पूजा करे-करावे ॥ ५७ ॥

प्रिये ! यह भगवान्‌की श्रेष्ठ आराधना है। इसका नाम है 'पयोव्रत'। ब्रह्माजीने मुझे जैसा बताया था, वैसा ही मैंने तुम्हें बता दिया ॥ ५८ ॥ देवि ! तुम भाग्यवान् हो। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्ध भाव एवं श्रद्धापूर्ण चित्तसे इस व्रतका भलीभाँति अनुष्ठान करो और इसके द्वारा अविनाशी भगवान्‌की आराधना करो ॥ ५९ ॥ कल्याणी ! यह व्रत भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेवाला है, इसलिये इसका नाम है 'सर्वयज्ञ' और 'सर्वव्रत'। यह समस्त तपस्याओंका सार और मुख्य दान है ॥ ६० ॥ जिनसे भगवान् प्रसन्न हों—वे ही सच्चे नियम हैं, वे ही उत्तम यम हैं, वे ही वास्तवमें तपस्या, दान, व्रत और यज्ञ हैं ॥ ६१ ॥ इसलिये देवि ! संयम और श्रद्धासे तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो। भगवान् शीघ्र ही तुमपर प्रसन्न होंगे और तुम्हारी अभि-लाषा पूर्ण करेंगे ॥ ६२ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान्‌का प्रकट होकर अदितिको वर देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपने पतिदेव महर्षि कश्यपजीका उपदेश प्राप्त करके अदितिने बड़ी सावधानीसे बारह दिनतक इस व्रतका अनुष्ठान किया ॥ १ ॥ बुद्धिको सारथि बनाकर मनकी लगामसे उसने इन्द्रियरूप दुष्ट घोड़ोंको अपने वशमें कर लिया और एकनिष्ठ बुद्धिसे वह पुरुषोत्तम भगवान्‌का चिन्तन करती रही ॥ २ ॥ उसने एकाग्र बुद्धिसे अपने मनको सर्वात्मा भगवान् वासुदेवमें पूर्णरूपसे लगाकर पयोव्रतका अनुष्ठान किया ॥ ३ ॥ तब पुरुषोत्तम भगवान् उसके सामने प्रकट हुए। परीक्षित् ! वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, चार भुजाएँ थीं और शङ्ख, चक्र, गदा लिये हुए थे ॥ ४ ॥ अपने नेत्रोंके सामने भगवान्‌को सहसा प्रकट हुए देख अदिति सादर उठ खड़ी हुई और फिर प्रेमसे विह्वल होकर उसने पृथ्वीपर लोटकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ५ ॥ फिर उठकर, हाथ जोड़, भगवान्‌की स्तुति करनेकी चेष्टा की; परन्तु नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये, उससे बोला न गया। सारा शरीर पुलकित हो रहा था, दर्शनके आनन्दोल्लाससे उसके अङ्गोंमें कम्प होने लगा था, वह चुपचाप खड़ी रही ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! देवी अदिति अपने प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे लक्ष्मीपति, विश्वपति, यज्ञेश्वर भगवान्‌को इस प्रकार देख रही थी मानो वह उन्हें पी जायगी। फिर बड़े प्रेमसे,

गद्गद वाणीसे, धीरे-धीरे उसने भगवान्‌की स्तुति की ॥ ७ ॥

अदितिने कहा—आप यज्ञके स्वामी हैं और स्वयं यज्ञ भी आप ही हैं। अच्युत ! आपके चरणकमलोंका आश्रय लेकर लोग भवसागरसे तर जाते हैं। आपके यश-कीर्तनका श्रवण भी संसारसे तारनेवाला है। आपके नामोंके श्रवणमात्रसे ही कल्याण हो जाता है। आदि-पुरुष ! जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी सारी विपत्तियोंका आप नाश कर देते हैं। भगवन् ! आप दीनोंके स्वामी हैं। आप हमारा कल्याण कीजिये ॥८॥ आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। और विश्वरूप भी आप ही हैं। अनन्त होनेपर भी स्वच्छन्दतासे आप अनेक शक्ति और गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं। आप सदा अपने स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। नित्य-निरन्तर बढ़ते हुए पूर्ण बोधके द्वारा आप हृदयके अन्धकारको नष्ट करते रहते हैं। भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ९ ॥ प्रभो ! अनन्त ! जब आप प्रसन्न हो जाते हैं, तब मनुष्योंको ब्रह्माजीकी दीर्घ आयु, उनके ही समान दिव्य शरीर, प्रत्येक अभीष्ट वस्तु, अतुलित धन, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, योगकी समस्त सिद्धियाँ, अर्थ-धर्म कामरूप त्रिवर्ग और केवल ज्ञानतक प्राप्त हो जाता है। फिर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना आदि जो छोटी-छोटी कामनाएँ हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब अदितिने इस प्रकार कमलनयन भगवान्‌की स्तुति की, तब समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहकर उनकी गति-विधि जाननेवाले भगवान्‌ने यह बात कही ॥ ११ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवताओंकी जननी अदिति ! तुम्हारी चिरकालीन अभिलाषाको मैं जानता हूँ। शत्रुओं-ने तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति छीन ली है, उन्हें उनके लोक (स्वर्ग) से खदेड़ दिया है ॥ १२ ॥ तुम चाहती हो कि युद्धमें तुम्हारे पुत्र उन मतवाले और बली असुरोंको जीतकर विजयलक्ष्मी प्राप्त करें, तब तुम उनके साथ भगवान्‌की उपासना करो ॥ १३ ॥ तुम्हारी इच्छा यह भी है कि तुम्हारे इन्द्रादि पुत्र जब शत्रुओंको मार डालें, तब तुम उनकी रोती हुई दुखी स्त्रियोंको अपनी आँखों देख सको ॥ १४ ॥ अदिति ! तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र धन और शक्तिसे समृद्ध हो जायँ, उनकी कीर्ति और ऐश्वर्य उन्हें फिरसे प्राप्त हो जायँ तथा वे स्वर्गपर अधिकार जमाकर पूर्ववत् विहार करें ॥१५॥ परन्तु देवि ! वे असुर सेनापति इस समय जीते नहीं जा सकते, ऐसा मेरा निश्चय है। क्योंकि ईश्वर और ब्राह्मण इस समय उनके अनुकूल हैं। इस समय उनके साथ यदि लड़ाई छेड़ी जायगी, तो उससे सुख मिलनेकी आशा नहीं है ॥ १६ ॥ फिर भी देवि ! तुम्हारे इस व्रतके अनुष्ठानसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिये मुझे इस सम्बन्धमें कोई-न-कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा। क्यों-कि मेरी आराधना व्यर्थ तो होनी नहीं चाहिये। उससे श्रद्धाके अनुसार फल अवश्य मिलता है ॥ १७ ॥ तुमने अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये ही विधिपूर्वक पयोव्रतसे मेरी पूजा एवं स्तुति की है। अतः मैं अंशरूपसे कश्यपके वीर्यमें प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी सन्तानकी रक्षा करूँगा ॥ १८ ॥ कल्याणी ! तुम अपने पति कश्यपमें मुझे इसी रूपमें स्थित देखो और उन निष्पाप प्रजापतिकी सेवा करो ॥ १९ ॥ देवि ! देखो किसीके पूछनेपर भी यह बात दूसरेको मत बतलाना। देवताओंका रहस्य जितना गुप्त रहता है, उतना ही सफल होता है ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इतना कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये। उस समय अदिति यह जानकर कि स्वयं भगवान् मेरे गर्भसे जन्म लेंगे, अपनी कृतकृत्यता-का अनुभव करने लगी। भला, यह कितनी दुर्लभ बात है ! वह बड़े प्रेमसे अपने पतिदेव कश्यपकी सेवा करने लगी। कश्यपजी सत्यदर्शी थे, उनके नेत्रोंसे कोई बात छिपी नहीं रहती थी। अपने समाधि-योगसे उन्होंने जान लिया कि भगवान्‌का अंश मेरे अंदर प्रविष्ट हो गया है। जैसे वायु काठमें अग्निका आधान करती है, वैसे ही कश्यपजीने समाहित चित्तसे अपनी तपस्याके द्वारा चिर-सञ्चित वीर्यका अदितिमें आधान किया ।२१-२३। जब ब्रह्माजीको यह बात मालूम हुई कि अदितिके गर्भमें

तो स्वयं अविनाशी भगवान् आये हैं, तब वे भगवान्के रहस्यमय नामोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २४ ॥

ब्रह्माजीने कहा—समग्र कीर्तिके आश्रय भगवन्! आपकी जय हो। अनन्त शक्तियोंके अधिष्ठान! आपके चरणोंमें नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेव! त्रिगुणोंके नियामक! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार प्रणाम हैं ॥ २५ ॥ पृश्निके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेवाले! वेदोंके समस्त ज्ञानको अपने अंदर रखनेवाले प्रभो! वास्तवमें आप ही सबके विधाता हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। ये तीनों लोक आपकी नाभिमें स्थित हैं। तीनों लोकोंसे परे वैकुण्ठमें आप निवास करते हैं। जीवोंके अन्तःकरणमें आप सर्वदा विराजमान रहते हैं। ऐसे सर्वव्यापक विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो! आप ही संसारके आदि, अन्त और इसलिये मध्य भी हैं। यही कारण है कि वेद अनन्तशक्ति पुरुषके रूपमें आपका वर्णन करते हैं। जैसे गहरा स्रोत अपने भीतर पड़े हुए तिनकेको बहा ले जाता है, वैसे ही आप कालरूपसे संसारका धाराप्रवाह सञ्चालन करते रहते हैं ॥ २७ ॥ आप चराचर प्रजा और प्रजापतियोंको भी उत्पन्न करनेवाले मूल कारण हैं। देवाधिदेव! जैसे जलमें डूबते हुएके लिये नौका ही सहारा है, वैसे ही स्वर्गसे भगाये हुए देवताओंके लिये एकमात्र आप ही आश्रय हैं ॥ २८ ॥

अठारहवाँ अध्याय

वामन भगवान्का प्रकट होकर राजा बलिकी यज्ञशालामें पधारना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार जब ब्रह्माजीने भगवान्की शक्ति और लीलाकी स्तुति की, तब जन्म-मृत्युरहित भगवान् अदितिके सामने प्रकट हुए। भगवान्के चार भुजाएँ थीं; उनमें वे शङ्ख, गदा, कमल और चक्र धारण किये हुए थे। कमलके समान कोमल और बड़े-बड़े नेत्र थे। पीताम्बर शोभायमान हो रहा था ॥ १ ॥ विशुद्ध श्यामवर्णका शरीर था। मकराकृति कुण्डलोंकी कान्तिसे मुख-कमलकी शोभा और भी उल्लसित हो रही थी। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, हाथोंमें कंगन और भुजाओंमें बाजूबंद, सिरपर किरीट, कमरमें करधनीकी लड़ियाँ और चरणोंमें सुन्दर नूपुर जगमगा रहे थे ॥ २ ॥ भगवान् गलेमें अपनी स्वरूपभूत वनमाला धारण किये हुए थे, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। उनके कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। भगवान्की अङ्गकान्तिसे प्रजापति कश्यपजीके घरका अन्धकार नष्ट हो गया ॥ ३ ॥ उस समय दिशाएँ निर्मल हो गयीं। नदी और सरोवरोंका जल स्वच्छ हो गया। प्रजाके हृदयमें आनन्दकी बाढ़ आ गयी। सब ऋतुएँ एक साथ अपना-अपना गुण प्रकट करने लगीं। स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत—इन सबके हृदयमें हर्षका सञ्चार हो गया ॥ ४ ॥

परीक्षित्! जिस समय भगवान्ने जन्म ग्रहण किया, उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्रपर थे। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी श्रवणनक्षत्रवाली द्वादशी थी। अभिजित् मुहूर्तमें भगवान्का जन्म हुआ था। सभी नक्षत्र और तारे भगवान्के जन्मको मङ्गलमय सूचित कर रहे थे ॥ ५ ॥ परीक्षित्! जिस तिथिमें भगवान्का जन्म हुआ था, उसे 'विजया द्वादशी' कहते हैं। जन्मके समय सूर्य आकाशके मध्यभागमें स्थित थे ॥ ६ ॥ भगवान्के अवतारके समय शङ्ख, ढोल, मृदङ्ग, डफ और नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। इन तरह-तरहके बाजों और तुरहियोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी ॥ ७ ॥ अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं। श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे। मुनि, देवता, मनु, पितर और अग्नि स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ सिद्ध, विद्याधर, किम्पुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, पक्षी, मुख्य-मुख्य नागगण और देवताओंके अनुचर नाचने-गाने तथा भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे तथा उन लोगोंने अदितिके आश्रमको पुष्पोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ ९-१० ॥

जब अदितिने अपने गर्भसे प्रकट हुए परम पुरुष परमात्माको देखा, तो वह अत्यन्त आश्चर्यचकित और परमानन्दित हो गयी। प्रजापति कश्यपजी भी भगवान्को अपनी योगमायासे शरीर धारण किये हुए देख

विस्मित हो गये और कहने लगे 'जय हो! जय हो'।११। परीक्षित्! भगवान् स्वयं अव्यक्त एवं चित्स्वरूप हैं। उन्होंने जो परम कान्तिमय आभूषण एवं आयुधोंसे युक्त वह शरीर ग्रहण किया था, उसी शरीरसे, कश्यप और अदितिके देखते-देखते वामन ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लिया—ठीक वैसे ही, जैसे नट अपना वेष बदल ले। क्यों न हो, भगवान्‌की लीला तो अद्भुत है ही! ॥ १२ ॥

भगवान्‌को वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखकर महर्षियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उन लोगोंने कश्यप प्रजापतिको आगे करके उनके जातकर्म आदि संस्कार करवाये।१३। जब उनका उपनयन-संस्कार होने लगा, तब गायत्रीके अधिष्ठातृ-देवता स्वयं सविताने उन्हें गायत्रीका उपदेश किया। देवगुरु बृहस्पतिजीने यज्ञोपवीत और कश्यपने मेखला दी ॥ १४ ॥ पृथ्वीने कृष्णमृगका चर्म, वनके स्वामी चन्द्रमाने दण्ड, माता अदितिने कौपीन और कटिवस्त्र एवं आकाशके अभिमानी देवताने वामन-वेषधारी भगवान्‌को छत्र दिया ॥ १५ ॥ परीक्षित्! अविनाशी प्रभुको ब्रह्माजीने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने कुश और सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला समर्पित की ॥ १६ ॥ इस रीतिसे जब वामनभगवान्‌का उपनयन-संस्कार हुआ, तब यक्षराज कुबेरने उनको भिक्षाका पात्र और सतीशिरोमणि जगज्जननी स्वयं भगवती उमाने भिक्षा दी ॥ १७ ॥ इस प्रकार जब सब लोगोंने वटुवेष-धारी भगवान्‌का सम्मान किया, तब वे ब्रह्मर्षियोंसे भरी हुई सभामें अपने ब्रह्मतेजके कारण अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ १८ ॥ इसके बाद भगवान्‌ने स्थापित और प्रज्वलित अग्निका कुशोंसे परिसमूहन और परिस्तरण करके पूजा की और समिधाओंसे हवन किया ॥ १९ ॥

परीक्षित्! उसी समय भगवान्‌ने सुना कि सब प्रकारकी सामग्रियोंसे सम्पन्न यशस्वी बलि भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बहुत-से अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, तब उन्होंने वहाँके लिये यात्रा की। भगवान् समस्त शक्तियोंसे युक्त हैं। उनके चलनेके समय उनके भारसे पृथ्वी पग-पगपर झुकने लगी ॥ २० ॥ नर्मदा नदीके उत्तर तटपर 'भृगुकच्छ' नामका एक बड़ा सुन्दर स्थान है। वहीं बलिके भृगुवंशी ऋत्विज श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करा रहे थे। उन लोगोंने दूरसे ही वामनभगवान्‌को देखा, तो उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो साक्षात् सूर्यदेवका उदय हो रहा हो ॥ २१ ॥ परीक्षित्! वामनभगवान्‌के तेजसे ऋत्विज, यजमान और सदस्य—सब-के-सब निस्तेज हो गये। वे लोग सोचने लगे कि कहीं यज्ञ देखनेके लिये सूर्य, अग्नि अथवा सनत्कुमार तो नहीं आ रहे हैं ॥ २२ ॥ भृगुके पुत्र शुक्राचार्य आदि अपने शिष्योंके साथ इसी प्रकार अनेकों कल्पनाएँ कर रहे थे। उसी समय हाथमें छत्र, दण्ड और जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए वामनभगवान्‌ने अश्वमेध यज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ वे कमरमें मूँजकी मेखला और गलेमें यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। बगलमें मृगचर्म था और सिरपर जटा थी। इस प्रकार बौने ब्राह्मणके वेषमें अपनी मायासे ब्रह्मचारी बने हुए भगवान्‌ने जब उनके यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, तब भृगुवंशी ब्राह्मण उन्हें देखकर अपने शिष्योंके साथ उनके तेजसे प्रभावित एवं निष्प्रभ हो गये। वे सब-के-सब अग्नियोंके साथ उठ खड़े हुए और उन्होंने वामनभगवान्‌का स्वागत-सत्कार किया ॥२४-२५॥ भगवान्‌के लघुरूपके अनुरूप सारे अङ्ग छोटे-छोटे बड़े ही मनोरम एवं दर्शनीय थे। उन्हें देखकर बलिको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने वामनभगवान्‌को एक उत्तम आसन दिया ॥ २६ ॥ फिर स्वागत-वाणीसे उनका अभिनन्दन करके पाँव पखारे और सङ्गरहित महापुरुषोंको भी अत्यन्त मनोहर लगनेवाले वामनभगवान्‌की पूजा की ॥ २७ ॥ भगवान्‌के चरणकमलोंका धोवन परम मङ्गलमय है। उससे जीवोंके सारे पाप-ताप धुल जाते हैं। स्वयं देवाधिदेव चन्द्रमौलि भगवान् शङ्करने अत्यन्त भक्तिभावसे उसे अपने सिरपर धारण किया था। आज वही चरणामृत धर्मके मर्मज्ञ राजा बलिको प्राप्त हुआ। उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे अपने मस्तकपर रक्खा ॥२८॥

बलिने कहा—ब्राह्मणकुमार! आप भले पधारे। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आर्य! ऐसा जान पड़ता है कि बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी तपस्या ही स्वयं मूर्तिमान् होकर मेरे सामने आयी है ॥२९॥ आज आप मेरे घर पधारे, इससे मेरे

भगवान् वामन

[पृष्ठ ४७८

पितर तृप्त हो गये। आज मेरा वंश पवित्र हो गया। आज मेरा यह यज्ञ सफल हो गया ॥ ३० ॥ ब्राह्मणकुमार! आपके पाँव पखारनेसे मेरे सारे पाप धुल गये और विधिपूर्वक यज्ञ करनेसे, अग्निमें आहुति डालनेसे जो फल मिलता, वह अनायास ही मिल गया। आपके इन नन्हे-नन्हे चरणों और इनके धोवनसे पृथ्वी पवित्र हो गयी॥३१॥ ब्राह्मणकुमार! ऐसा जान पड़ता है कि आप कुछ चाहते हैं। परम पूज्य ब्रह्मचारीजी! आप जो चाहते हों—गाय, सोना, सामग्रियोंसे सुसज्जित घर, पवित्र अन्न, पीनेकी वस्तु, विवाहके लिये ब्राह्मणकी कन्या, सम्पत्तियोंसे भरे हुए गाँव, घोड़े, हाथी, रथ—वह सब आप मुझसे माँग लीजिये। अवश्य ही वह सब मुझसे माँग लीजिये ॥ ३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवान् वामनका बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगना, बलिका वचन देना और शुक्राचार्यजीका उन्हें रोकना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजा बलिके ये वचन धर्मभावसे भरे और बड़े मधुर थे। उन्हें सुनकर भगवान् वामनने बड़ी प्रसन्नतासे उनका अभिनन्दन किया और कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजन्! आपने जो कुछ कहा, वह आपकी कुलपरम्पराके अनुरूप, धर्मभावसे परिपूर्ण, यशको बढ़ानेवाला और अत्यन्त मधुर है। क्यों न हो, परलोकहितकारी धर्मके सम्बन्धमें आप भृगुपुत्र शुक्राचार्यको परम प्रमाण जो मानते हैं। साथ ही अपने कुलवृद्ध पितामह परम शान्त प्रह्लादजीकी आज्ञा भी तो आप वैसे ही मानते हैं ॥ २ ॥ आपकी वंशपरम्परामें कोई धैर्यहीन अथवा कृपण पुरुष कभी हुआ ही नहीं। ऐसा भी कोई नहीं हुआ, जिसने ब्राह्मणको कभी दान न दिया हो अथवा जो एक बार किसीको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके बादमें मुकर गया हो ॥ ३ ॥ दानके अवसरपर याचकोंकी याचना सुनकर और युद्धके अवसरपर शत्रुके ललकारनेपर उनकी ओरसे मुँह मोड़ लेनेवाला कायर आपके वंशमें कोई भी नहीं हुआ। क्यों न हो, आपकी कुलपरम्परामें प्रह्लाद अपने निर्मल यशसे वैसे ही शोभायमान होते हैं, जैसे आकाशमें चन्द्रमा ॥ ४ ॥ आपके कुलमें ही हिरण्याक्ष-जैसे वीरका जन्म हुआ था। वह वीर जब हाथमें गदा लेकर अकेला ही दिग्विजयके लिये निकला, तब सारी पृथ्वीमें घूमनेपर भी उसे अपनी जोड़का कोई वीर न मिला ॥ ५ ॥ जब विष्णुभगवान् जलमेंसे पृथ्वीका उद्धार कर रहे थे, तब वह उनके सामने आया और बड़ी कठिनाईसे उन्होंने उसपर विजय प्राप्त की। परन्तु उसके बहुत बाद भी उन्हें बार-बार हिरण्याक्षकी शक्ति और बलका स्मरण हो आया करता था और उसे जीत लेनेपर भी वे अपनेको विजयी नहीं समझते थे ॥ ६ ॥ जब हिरण्याक्षके भाई हिरण्यकशिपुको उसके वधका वृत्तान्त मालूम हुआ, तब वह अपने भाईका वध करनेवालेको मार डालनेके लिये क्रोध करके भगवान्के निवासस्थान वैकुण्ठधाममें पहुँचा ॥ ७ ॥ विष्णुभगवान् माया रचनेवालोंमें सबसे बड़े हैं और समयको खूब पहचानते हैं। जब उन्होंने देखा कि हिरण्यकशिपु तो हाथमें शूल लेकर कालकी भाँति मेरे ही ऊपर धावा कर रहा है, तब उन्होंने विचार किया ॥ ८ ॥ 'जैसे संसारके प्राणियोंके पीछे मृत्यु लगी रहती है—वैसे ही मैं जहाँ-जहाँ जाऊँगा, वहीं-वहीं यह मेरा पीछा करेगा। इसलिये मैं इसके हृदयमें प्रवेश कर जाऊँ, जिससे यह मुझे देख न सके; क्योंकि यह तो बहिर्मुख है, बाहरकी वस्तुएँ ही देखता है॥९॥ असुरशिरोमणे! जिस समय हिरण्यकशिपु उनपर झपट रहा था, उसी समय ऐसा निश्चय करके डरसे काँपते हुए विष्णुभगवान्ने अपने शरीरको सूक्ष्म बना लिया और उसके प्राणोंके द्वारा नासिकामेंसे होकर हृदयमें जा बैठे ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपुने उनके लोकको भलीभाँति छान डाला, परन्तु उनका कहीं पता न चला। इसपर क्रोधित होकर वह सिंहनाद करने लगा। उस वीरने पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा, आकाश, पाताल और

समुद्र—सब कहीं विष्णुभगवान्‌को ढूँढा, परन्तु वे कहीं भी उसे दिखायी न दिये ॥ ११ ॥ उनको कहीं न देखकर वह कहने लगा—'मैंने सारा जगत् छान डाला, परन्तु वह मिला नहीं। अवश्य ही वह भ्रातृघाती उस लोकमें चला गया, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता ॥ १२ ॥ बस, अब उससे वैरभाव रखनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वैर तो देहके साथ ही समाप्त हो जाता है। क्रोधका कारण अज्ञान है और अहङ्कार-से उसकी वृद्धि होती है ॥ १३ ॥ राजन्! आपके पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन बड़े ही ब्राह्मणभक्त थे। यहाँतक कि उनके शत्रु देवताओंने ब्राह्मणोंका वेष बना-कर उनसे उनकी आयुका दान माँगा और उन्होंने ब्राह्मणोंके छलको जानते हुए भी अपनी आयु दे डाली ॥ १४ ॥ आप भी उसी धर्मका आचरण करते हैं, जिसका शुक्राचार्य आदि गृहस्थ ब्राह्मण, आपके पूर्वज प्रह्लाद और दूसरे यशस्वी वीरोंने पालन किया है ॥ १५ ॥ दैत्येन्द्र! आप मुँहमाँगी वस्तु देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। इसीसे मैं आपसे थोड़ी-सी पृथ्वी—केवल अपने पैरोंसे तीन डग माँगता हूँ ॥ १६ ॥ माना कि आप सारे जगत्‌के स्वामी और बड़े उदार हैं, फिर भी मैं आपसे इससे अधिक नहीं चाहता। विद्वान् पुरुषको केवल अपनी आवश्यकताके अनुसार ही दान स्वीकार करना चाहिये। इससे वह प्रतिग्रहजन्य पापसे बच जाता है ॥ १७ ॥

राजा बलिने कहा—ब्राह्मणकुमार! तुम्हारी बातें तो वृद्धों-जैसी हैं, परन्तु तुम्हारी बुद्धि अभी बच्चोंकी-सी ही है। अभी तुम हो भी तो बालक ही न, इसीसे अपना हानि-लाभ नहीं समझ रहे हो ॥ १८ ॥ मैं तीनों लोकोंका एकमात्र अधिपति हूँ और द्वीप-का-द्वीप दे सकता हूँ। जो मुझे अपनी वाणीसे प्रसन्न कर ले और मुझसे केवल तीन डग भूमि माँगे—वह भी क्या बुद्धिमान् कहा जा सकता है? ॥ १९ ॥ ब्रह्मचारीजी! जो एक बार कुछ माँगनेके लिये मेरे पास आ गया, उसे फिर कभी किसीसे कुछ माँगनेकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये। अतः अपनी जीविका चलानेके लिये तुम्हें जितनी भूमिकी आवश्यकता हो, उतनी मुझसे माँग लो ॥ २० ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजन्! संसारके सब-के-सब प्यारे विषय एक मनुष्यकी कामनाओंको भी पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, यदि वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखने-वाला—सन्तोषी न हो ॥ २१ ॥ जो तीन पग भूमिसे सन्तोष नहीं कर लेता, उसे नौ वर्षोंसे युक्त एक द्वीप भी दे दिया जाय तो भी वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। क्योंकि उसके मनमें सातों द्वीप पानेकी इच्छा बनी ही रहेगी ॥ २२ ॥ मैंने सुना है कि पृथु, गय आदि नरेश सातों द्वीपोंके अधिपति थे; परन्तु उतने धन और भोगोंकी सामग्रियोंके मिलनेपर भी वे तृष्णाका पार न पा सके ॥ २३ ॥ जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय, उसीसे सन्तुष्ट हो रहनेवाला पुरुष अपना जीवन सुखसे व्यतीत करता है। परन्तु अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला तीनों लोकोंका राज्य पानेपर भी दुखी ही रहता है। क्योंकि उसके हृदयमें असन्तोषकी आग धधकती रहती है ॥ २४ ॥ धन और भोगोंसे सन्तोष न होना ही जीव-के जन्म-मृत्युके चक्करमें गिरनेका कारण है। तथा जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तोष कर लेना मुक्तिका कारण है ॥ २५ ॥ जो ब्राह्मण स्वयंप्राप्त वस्तुसे ही सन्तुष्ट हो रहता है, उसके तेजकी वृद्धि होती है। उसके असन्तोषी हो जानेपर उसका तेज वैसे ही शान्त हो जाता है जैसे जलसे अग्नि ॥ २६ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आप मुँह-माँगी वस्तु देनेवालोंमें शिरोमणि हैं। इसलिये मैं आपसे केवल तीन पग भूमि ही माँगता हूँ। इतनेसे ही मेरा काम बन जायगा। धन उतना ही संग्रह करना चाहिये, जितनेकी आवश्यकता हो ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर राजा बलि हँस पड़े। उन्होंने कहा—'अच्छी बात है; जितनी तुम्हारी इच्छा हो, उतनी ही ले लो।' यों कहकर वामनभगवान्‌को तीन पग पृथ्वीका सङ्कल्प करनेके लिये उन्होंने जलपात्र उठाया ॥ २८ ॥ शुक्राचार्यजी सब कुछ जानते थे। उनसे भगवान्‌की यह लीला भी छिपी नहीं थी। उन्होंने राजा बलिको पृथ्वी देनेके लिये तैयार देखकर उनसे कहा ॥ २९ ॥

शुक्राचार्यजीने कहा—विरोचनकुमार! ये स्वयं अविनाशी भगवान् विष्णु हैं। देवताओंका काम बनानेके

लिये कश्यपकी पत्नी अदितिके गर्भसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३० ॥ तुमने यह अनर्थ न जानकर कि ये मेरा सब कुछ छीन लेंगे, इन्हें दान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। यह तो दैत्योंपर बहुत बड़ा अन्याय होने जा रहा है। इसे मैं ठीक नहीं समझता ॥ ३१ ॥ स्वयं भगवान् ही अपनी योगमायासे यह ब्रह्मचारी बनकर बैठे हुए हैं। ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और विश्वविख्यात कीर्ति—सब कुछ तुमसे छीनकर इन्द्रको दे देंगे ॥ ३२ ॥ ये विश्वरूप हैं। तीन पगमें तो ये सारे लोकोंको नाप लेंगे। मूर्ख ! जब तुम अपना सर्वस्व ही विष्णुको दे डालोगे, तो तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा ॥ ३३ ॥ ये विश्वव्यापक भगवान् एक पगमें पृथ्वी और दूसरे पगमें स्वर्गको नाप लेंगे। इनके विशाल शरीरसे आकाश भर जायगा। तब इनका तीसरा पग कहाँ जायगा ? ॥ ३४ ॥ तुम उसे पूरा न कर सकोगे। ऐसी दशामें मैं समझता हूँ कि प्रतिज्ञा करके पूरा न कर पानेके कारण तुम्हें नरकमें ही जाना पड़ेगा। क्योंकि तुम अपनी की हुई प्रतिज्ञा-को पूर्ण करनेमें सर्वथा असमर्थ होओगे ॥ ३५ ॥ विद्वान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते, जिसके बाद जीवन-निर्वाहके लिये कुछ बचे ही नहीं। जिसका जीवन-निर्वाह ठीक-ठीक चलता है—वही संसारमें दान, यज्ञ, तप और परोपकारके कर्म कर सकता है ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य अपने धनको पाँच भागोंमें बाँट देता है—कुछ धर्मके लिये, कुछ यशके लिये, कुछ धनकी अभिवृद्धिके लिये, कुछ भोगोंके लिये और कुछ अपने स्वजनोंके लिये—वही इस लोक और परलोक दोनोंमें ही सुख पाता है ॥ ३७ ॥ असुरशिरोमणे ! यदि तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा टूट जानेकी चिन्ता हो, तो मैं इस विषयमें तुम्हें कुछ ऋग्वेदकी श्रुतियोंका आशय सुनाता हूँ, तुम सुनो। श्रुति कहती है—'किसीको कुछ देनेकी बात स्वीकार कर लेना सत्य है और नकार जाना अर्थात् अस्वीकार कर देना असत्य है ॥ ३८ ॥ यह शरीर एक वृक्ष है और सत्य इसका फल-फूल है। परन्तु यदि वृक्ष ही न रहे तो फल-फूल कैसे रह सकते हैं ? क्योंकि नकार जाना, अपनी वस्तु दूसरेको न देना, दूसरे शब्दोंमें अपना संग्रह बचाये रखना—यही शरीररूप वृक्षका मूल है ॥ ३९ ॥ जैसे जड़ न रहनेपर वृक्ष सूखकर थोड़े ही दिनोंमें गिर जाता है, उसी प्रकार यदि धन देनेसे अस्वीकार न किया जाय तो यह जीवन सूख जाता है—इसमें सन्देह नहीं ॥ ४० ॥ 'हाँ मैं दूँगा'—यह वाक्य ही धनको दूर हटा देता है। इसलिये इसका उच्चारण ही अपूर्ण अर्थात् धनसे खाली कर देनेवाला है। यही कारण है कि जो पुरुष 'हाँ मैं दूँगा'—ऐसा कहता है, वह धन-से खाली हो जाता है। जो याचकको सब कुछ देना स्वीकार कर लेता है, वह अपने लिये भोगकी कोई सामग्री नहीं रख सकता ॥ ४१ ॥ इसके विपरीत 'मैं नहीं दूँगा'—यह जो अस्वीकारात्मक असत्य है, वह अपने धनको सुरक्षित रखने तथा पूर्ण करनेवाला है। परन्तु ऐसा सब समय नहीं करना चाहिये। जो सबसे, सभी वस्तुओंके लिये नाहीं करता रहता है, उसकी अपकीर्ति हो जाती है। वह तो जीवित रहनेपर भी मृतकके समान ही है ॥ ४२ ॥ स्त्रियोंको प्रसन्न करने-के लिये, हास-परिहासमें, विवाहमें, कन्या आदिकी प्रशंसा करते समय, अपनी जीविकाकी रक्षाके लिये, प्राणसङ्कट उपस्थित होनेपर, गौ और ब्राह्मणके हितके लिये तथा किसीको मृत्युसे बचानेके लिये असत्य-भाषण भी उतना निन्दनीय नहीं है ॥ ४३ ॥

बीसवाँ अध्याय

भगवान् वामनजीका विराट् रूप होकर दो ही पगसे पृथ्वी और स्वर्गको नाप लेना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! जब कुलगुरु शुक्राचार्यने इस प्रकार कहा, तब आदर्श गृहस्थ राजा बलिने एक क्षण चुप रहकर बड़ी विनय और सावधानी-से शुक्राचार्यजीके प्रति यों कहा ॥ १ ॥

राजा बलिने कहा—भगवन् ! आपका कहना सत्य है। गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंके लिये वही धर्म है

जिससे अर्थ, काम, यश और आजीविकामें कभी किसी प्रकार बाधा न पड़े ॥ २ ॥ परन्तु गुरुदेव ! मैं प्रह्लाद-जीका पौत्र हूँ और एक बार देनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अतः अब मैं धनके लोभसे ठगकी भाँति इस ब्राह्मणसे कैसे कहूँ कि 'मैं तुम्हें नहीं दूँगा' ॥ ३ ॥ इस पृथ्वीने कहा है कि 'असत्यसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है। मैं सब कुछ सहनेमें समर्थ हूँ, परन्तु झूठे मनुष्यका भार मुझसे नहीं सहा जाता' ॥ ४ ॥ मैं नरकसे, दरिद्रतासे, दुःखके समुद्रसे, अपने राज्यके नाश-से और मृत्युसे भी उतना नहीं डरता, जितना ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा करके उसे धोखा देनेसे डरता हूँ ॥ ५ ॥ इस संसारमें मर जानेके बाद धन आदि जो-जो वस्तुएँ साथ छोड़ देती हैं, यदि उनके द्वारा दान आदिसे ब्राह्मणोंको भी सन्तुष्ट न किया जा सका, तो उनके त्यागका लाभ ही क्या रहा ? ॥ ६ ॥ दधीचि, शिबि आदि महापुरुषोंने अपने परम प्रिय दुस्त्यज प्राणोंका दान करके भी प्राणियोंकी भलाई की है। फिर पृथ्वी आदि वस्तुओंको देनेमें सोच-विचार करनेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ७ ॥ ब्रह्मन् ! पहले युगमें बड़े-बड़े दैत्यराजोंने इस पृथ्वीका उपभोग किया है। पृथ्वी-में उनका सामना करनेवाला कोई नहीं था। उनके लोक और परलोकको तो काल खा गया, परन्तु उनका यश अभी पृथ्वीपर ज्यों-का-त्यों बना हुआ है ॥ ८ ॥ गुरुदेव ! ऐसे लोग संसारमें बहुत हैं, जो युद्धमें पीठ न दिखाकर अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा देते हैं; परन्तु ऐसे लोग बहुत दुर्लभ हैं, जो सत्पात्रके प्राप्त होनेपर श्रद्धाके साथ धनका दान करें ॥ ९ ॥ गुरुदेव ! यदि उदार और करुणाशील पुरुष अपात्र याचककी कामना पूर्ण करके दुर्गति भोगता है, तो वह दुर्गति भी उसके लिये शोभाकी बात होती है। फिर आप-जैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंको दान करनेसे दुःख प्राप्त हो, तो उसके लिये क्या कहना है। इसलिये मैं इस ब्रह्मचारीकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करूँगा ॥ १० ॥ महर्षे ! वेदविधिके जाननेवाले आपलोग बड़े आदरसे यज्ञ-यागादिके द्वारा जिनकी आराधना करते हैं—वे वरदानी विष्णु ही इस रूपमें हों अथवा कोई दूसरा हो, मैं इनकी इच्छा-के अनुसार इन्हें पृथ्वीका दान करूँगा ॥ ११ ॥ यदि मेरे अपराध न करनेपर भी ये अधर्मसे मुझे बाँध लेंगे, तब भी मैं इनका अनिष्ट नहीं चाहूँगा। क्योंकि मेरे शत्रु होनेपर भी इन्होंने भयभीत होकर ब्राह्मणका शरीर धारण किया है ॥ १२ ॥ यदि ये पवित्रकीर्ति भगवान् विष्णु ही हैं तो अपना यश नहीं खोना चाहेंगे (अपनी माँगी हुई वस्तु लेकर ही रहेंगे)' मुझे युद्धमें मारकर भी पृथ्वी छीन सकते हैं। और यदि कदाचित् ये कोई दूसरे ही हैं, तो मेरे बाणोंकी चोटसे सदाके लिये रणभूमिमें सो जायँगे ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब शुक्राचार्यजीने देखा कि मेरा यह शिष्य गुरुके प्रति अश्रद्धालु है तथा मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है, तब दैवकी प्रेरणासे उन्होंने राजा बलिको शाप दे दिया—यद्यपि वे सत्य-प्रतिज्ञ और उदार होनेके कारण शापके पात्र नहीं थे ॥ १४ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा—'मूर्ख ! तू है तो अज्ञानी, परन्तु अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मानता है। तू मेरी उपेक्षा करके गर्व कर रहा है। तूने मेरी आज्ञा-का उल्लङ्घन किया है। इसलिये शीघ्र ही तू अपनी लक्ष्मी खो बैठेगा' ॥ १५ ॥ राजा बलि बड़े महात्मा थे। अपने गुरुदेवके शाप देनेपर भी वे सत्यसे नहीं डिगे। उन्होंने वामनभगवान्‌की विधिपूर्वक पूजा की और हाथमें जल लेकर तीन पग भूमिका सङ्कल्प कर दिया ॥ १६ ॥ उसी समय राजा बलिकी पत्नी विन्ध्यावली, जो मोतियोंके गहनोंसे सुसज्जित थी, वहाँ आयी। उसने अपने हाथों वामनभगवान्‌के चरण पखारनेके लिये जलसे भरा सोनेका कलश लाकर दिया ॥ १७ ॥ बलिने स्वयं बड़े आनन्दसे उनके सुन्दर-सुन्दर युगल चरणोंको धोया और उनके चरणोंका वह विश्वपावन जल अपने सिरपर चढ़ाया ॥ १८ ॥ उस समय आकाशमें स्थित देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण—सभी लोग राजा बलिके इस अलौकिक कार्य तथा सरलताकी प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्दसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १९ ॥ एक साथ ही हजारों दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं। गन्धर्व, किम्पुरुष और किन्नर गान करने लगे—'अहो धन्य है ! इन उदारशिरोमणि बलिने ऐसा काम कर दिखाया, जो

दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। देखो तो सही, इन्होंने जान-बूझकर अपने शत्रुको तीनों लोकोंका दान कर दिया !' ॥ २० ॥

इसी समय एक बड़ी अद्भुत घटना घट गयी। अनन्त भगवान्‌का वह त्रिगुणात्मक वामनरूप बढ़ने लगा। वह यहाँतक बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि—सब-के-सब उसीमें समा गये ॥ २१ ॥ ऋत्विज, आचार्य और सदस्योंके साथ बलिने समस्त ऐश्वर्योंके एकमात्र स्वामी भगवान्‌के उस त्रिगुणात्मक शरीरमें पञ्चभूत, इन्द्रिय, उनके विषय, अन्तःकरण और जीवोंके साथ यह सम्पूर्ण त्रिगुणमय जगत् देखा ॥ २२ ॥ राजा बलिने विश्वरूप भगवान्‌के चरणतलमें रसातल, चरणोंमें पृथ्वी, पिंडलियोंमें पर्वत, घुटनोंमें पक्षी और जाँघोंमें मरुद्गणको देखा ॥ २३ ॥ इसी प्रकार भगवान्‌के वस्त्रोंमें सन्ध्या, गुह्यस्थानोंमें प्रजापतिगण, जघनस्थलमें अपने सहित समस्त असुरगण, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और वक्षःस्थलमें नक्षत्रसमूह देखे ॥ २४ ॥ उन लोगोंको भगवान्‌के हृदयमें धर्म, स्तनोंमें ऋत (मधुर) और सत्य वचन, मनमें चन्द्रमा, वक्षःस्थलपर हाथोंमें कमल लिये लक्ष्मीजी, कण्ठमें सामवेद और सम्पूर्ण शब्दसमूह उन्हें दीखे ॥ २५ ॥ बाहुओंमें इन्द्रादि समस्त देवगण, कानोंमें दिशाएँ, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघमाला, नासिकामें वायु, नेत्रोंमें सूर्य और मुखमें अग्नि दिखायी पड़े ॥२६॥ वाणीमें वेद, रसनामें वरुण, भौंहोंमें विधि और निषेध, पलकोंमें दिन और रात। विश्वरूपके ललाटमें क्रोध और नीचेके ओठमें लोभके दर्शन हुए ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! उनके स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, पद-विन्यासमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसीमें माया और शरीरके रोमोंमें सब प्रकारकी ओषधियाँ थीं ॥ २८ ॥ उनकी नाड़ियोंमें नदियाँ, नखोंमें शिलाएँ और बुद्धिमें ब्रह्मा, देवता एवं ऋषिगण दीख पड़े। इस प्रकार वीरवर बलिने भगवान्‌की इन्द्रियों और शरीरमें सभी चराचर प्राणियोंका दर्शन किया ॥ २९ ॥

परीक्षित् ! सर्वात्मा भगवान्‌में यह सम्पूर्ण जगत् देखकर सब-के-सब दैत्य अत्यन्त भयभीत हो गये। इसी समय भगवान्‌के पास असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र, गरजते हुए मेघके समान भयङ्कर टङ्कार करनेवाला शार्ङ्गधनुष, बादलकी तरह गम्भीर शब्द करनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख, विष्णुभगवान्‌की अत्यन्त वेगवती कौमोदकी गदा, सौ चन्द्राकार चिह्नोंवाली ढाल और विद्याधर नामकी तलवार, अक्षय बाणोंसे भरे दो तरकस तथा लोकपालोंके सहित भगवान्‌के सुनन्द आदि पार्षदगण सेवा करनेके लिये उपस्थित हो गये। उस समय भगवान्‌की बड़ी शोभा हुई। मस्तकपर मुकुट, बाहुओंमें बाजूबंद, कानोंमें मकराकृति कुण्डल, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न, गलेमें कौस्तुभमणि, कमरमें मेखला और कंधेपर पीताम्बर शोभायमान हो रहा था ॥ ३०—३२ ॥ वे पाँच प्रकारके पुष्पोंकी बनी वनमाला धारण किये हुए थे, जिसपर मधुलोभी भौंरे गुंजार कर रहे थे। उन्होंने अपने एक पगसे बलिकी सारी पृथ्वी नाप ली, शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाएँ घेर लीं; दूसरे पगसे उन्होंने स्वर्गको भी नाप लिया। तीसरा पैर रखनेके लिये बलिकी तनिक-सी भी कोई वस्तु न बची। भगवान्‌का वह दूसरा पग ही ऊपरकी ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक और तपलोकसे भी ऊपर सत्यलोकमें पहुँच गया ॥३३-३४॥

इक्कीसवाँ अध्याय

बलिका बाँधा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌का चरणकमल सत्यलोकमें पहुँच गया। उसके नखचन्द्र-की छटासे सत्यलोककी आभा फीकी पड़ गयी। स्वयं ब्रह्मा भी उसके प्रकाशमें डूब-से गये। उन्होंने मरीचि आदि ऋषियों, सनन्दन आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारियों एवं बड़े-बड़े योगियोंके साथ भगवान्‌के चरणकमलकी अगवानी की ॥ १ ॥ वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, वेदाङ्ग और पुराण-संहिताएँ—जो ब्रह्मलोकमें मूर्तिमान्

होकर निवास करते हैं—तथा जिन लोगोंने योगरूप वायुसे ज्ञानाग्निको प्रज्वलित करके कर्ममलको भस्म कर डाला है, वे महात्मा, सबने भगवान्के चरणकी वन्दना की। इसी चरणकमलके स्मरणकी महिमासे ये सब कर्मके द्वारा प्राप्त न होनेयोग्य ब्रह्माजीके धाममें पहुँचे हैं ॥२॥ भगवान् ब्रह्माकी कीर्ति बड़ी पवित्र है। वे विष्णुभगवान्के नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं। अगवानी करनेके बाद उन्होंने स्वयं विश्वरूप भगवान्के ऊपर उठे हुए चरणका अर्घ्यपाद्यसे पूजन किया, प्रक्षालन किया। पूजा करके बड़े प्रेम और भक्तिसे उन्होंने भगवान्की स्तुति की ॥३॥ परीक्षित्! ब्रह्माके कमण्डलुका वही जल विश्वरूप भगवान्के पाँव पखारनेसे पवित्र होनेके कारण उन गङ्गाजीके रूपमें परिणत हो गया, जो आकाश-मार्गसे पृथ्वीपर गिरकर तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। ये गङ्गाजी क्या हैं, भगवान्की मूर्तिमान् उज्ज्वल कीर्ति।४। जब भगवान्ने अपने स्वरूपको कुछ छोटा कर लिया, अपनी विभूतियोंको कुछ समेट लिया, तब ब्रह्मा आदि लोकपालोंने अपने अनुचरोंके साथ बड़े आदरभावसे अपने स्वामी भगवान्को अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं ॥ ५ ॥ उन लोगोंने जल, उपहार, माला, दिव्य गन्धोंसे भरे अङ्गराग, सुगन्धित धूप, दीप, खील, अक्षत, फल, अङ्कुर, भगवान्की महिमा और प्रभावसे युक्त स्तोत्र, जयघोष, नृत्य, बाजे-गाजे, गान एवं शङ्ख और दुन्दुभिके शब्दोंसे भगवान्की आराधना की ॥ ६-७ ॥ उस समय ऋक्षराज जाम्बवान् मनके समान वेगसे दौड़कर सब दिशाओंमें भेरी बजा-बजाकर भगवान्की मङ्गलमय विजय-की घोषणा कर आये ॥ ८ ॥

दैत्योंने देखा कि वामनजीने तीन पग पृथ्वी माँगनेके बहाने सारी पृथ्वी ही छीन ली! तब वे सोचने लगे कि हमारे स्वामी बलि इस समय यज्ञमें दीक्षित हैं, वे तो कुछ कहेंगे नहीं। इसलिये बहुत चिढ़कर वे आपसमें कहने लगे ॥ ९ ॥ 'अरे, यह ब्राह्मण नहीं है। यह सबसे बड़ा मायावी विष्णु है। ब्राह्मणके रूपमें छिपकर यह देवताओंका काम बनाना चाहता है ॥ १० ॥ जब हमारे स्वामी यज्ञमें दीक्षित होकर किसीको किसी प्रकार-का दण्ड देनेसे उपरत हो गये हैं, तब इस शत्रुने ब्रह्मचारीका वेष बनाकर पहले तो याचना की और पीछे हमारा सर्वस्व हरण कर लिया ॥ ११ ॥ यों तो हमारे स्वामी सदा ही सत्यनिष्ठ हैं, परन्तु यज्ञमें दीक्षित होनेपर वे इस बातका विशेष ध्यान रखते हैं। वे ब्राह्मणोंके बड़े भक्त हैं तथा उनके हृदयमें दया भी बहुत है। इसलिये वे कभी झूठ नहीं बोल सकते ॥ १२ ॥ ऐसी अवस्थामें हमलोगोंका यही धर्म है कि इस शत्रुको मार डालें। इससे हमारे स्वामी बलिकी सेवा भी होती है।' यों सोचकर राजा बलिके अनुचर असुरोंने अपने-अपने हथियार उठा लिये ॥ १३ ॥ परीक्षित्! राजा बलिकी इच्छा न होनेपर भी वे सब बड़े क्रोधसे शूल, पट्टिश आदि ले-लेकर वामनभगवान्को मारनेके लिये टूट पड़े ॥ १४ ॥ परीक्षित्! जब विष्णुभगवान्के पार्षदोंने देखा कि दैत्योंके सेनापति आक्रमण करनेके लिये दौड़े आ रहे हैं, तब उन्होंने हँसकर अपने-अपने शस्त्र उठा लिये और उन्हें रोक दिया ॥ १५ ॥ नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त और सात्वत—ये सभी भगवान्के पार्षद दस-दस हजार हाथियोंका बल रखते हैं। वे असुरोंकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १६-१७॥ जब राजा बलिने देखा कि भगवान्के पार्षद मेरे सैनिकों-को मार रहे हैं और वे भी क्रोधमें भरकर उनसे लड़नेके लिये तैयार हो रहे हैं, तो उन्होंने शुक्राचार्यके शापका स्मरण करके उन्हें युद्ध करनेसे रोक दिया ॥ १८ ॥ उन्होंने विप्रचित्ति, राहु, नेमि आदि दैत्योंको सम्बोधित करके कहा—'भाइयो! मेरी बात सुनो। लड़ो मत, वापस लौट आओ। यह समय हमारे कार्यके अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ दैत्यो! जो काल समस्त प्राणियोंको सुख और दुःख देनेकी सामर्थ्य रखता है—उसे यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपने प्रयत्नोंसे दबा दूँ, तो यह उसकी शक्तिसे बाहर है ॥ २० ॥ जो पहले हमारी उन्नति और देवताओंकी अवनतिके कारण हुए थे, वही कालभगवान् अब उनकी उन्नति और हमारी अवनतिके कारण हो रहे हैं ॥ २१ ॥ बल, मन्त्री, बुद्धि, दुर्ग, मन्त्र, ओषधि और सामादि उपाय—इनमेंसे किसी भी साधनके द्वारा अथवा सबके द्वारा मनुष्य कालपर विजय

नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २२ ॥ जब दैव तुमलोगोंके अनुकूल था, तब तुमलोगोंने भगवान्‌के इन पार्षदोंको कई बार जीत लिया था। पर देखो, आज वे ही युद्धमें हमपर विजय प्राप्त करके सिंहनाद कर रहे हैं ॥ २३ ॥ यदि दैव हमारे अनुकूल हो जायगा, तो हम भी इन्हें जीत लेंगे। इसलिये उस समयकी प्रतीक्षा करो, जो हमारी कार्यसिद्धिके लिये अनुकूल हो' ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने स्वामी बलिकी बात सुनकर भगवान्‌के पार्षदोंसे हारे हुए दानव और दैत्यसेनापति रसातलमें चले गये ॥ २५ ॥ उनके जानेके बाद भगवान्‌के हृदयकी बात जानकर पक्षिराज गरुडने वरुणके पाशोंसे बलिको बाँध दिया। उस दिन उनके अश्वमेध यज्ञमें सोमपान होनेवाला था ॥ २६ ॥ जब सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने बलिको इस प्रकार बँधवा दिया, तब पृथ्वी, आकाश और समस्त दिशाओंमें लोग 'हाय-हाय!' करने लगे ॥२७॥ यद्यपि बलि वरुणके पाशोंसे बँधे हुए थे, उनकी सम्पत्ति भी उनके हाथोंसे निकल गयी थी—फिर भी उनकी बुद्धि निश्चयात्मक थी और सब लोग उनके उदार यशका गान कर रहे थे। परीक्षित्! उस समय भगवान्‌ने बलिसे कहा ॥ २८ ॥ असुर! तुमने मुझे पृथ्वीके तीन पग दिये थे; दो पगमें तो मैंने सारी त्रिलोकी नाप ली, अब तीसरा पग पूरा करो ॥ २९ ॥ जहाँतक सूर्यकी गरमी पहुँचती है, जहाँतक नक्षत्रों और चन्द्रमाकी किरणें पहुँचती हैं और जहाँतक बादल जाकर बरसते हैं—वहाँतककी सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें थी ॥ ३० ॥ तुम्हारे देखते-ही-देखते मैंने अपने एक पैरसे भूर्लोक, शरीरसे आकाश और दिशाएँ एवं दूसरे पैरसे स्वर्लोक नाप लिया है। इस प्रकार तुम्हारा सब कुछ मेरा हो चुका है ॥ ३१ ॥ फिर भी तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरा न कर सकनेके कारण अब तुम्हें नरकमें रहना पड़ेगा। तुम्हारे गुरुकी तो इस विषयमें सम्मति है ही; अब जाओ, तुम नरकमें प्रवेश करो ॥ ३२ ॥ जो याचकको देनेकी प्रतिज्ञा करके मुकर जाता है और इस प्रकार उसे धोखा देता है, उसके सारे मनोरथ व्यर्थ होते हैं। स्वर्गकी बात तो दूर रही, उसे नरकमें गिरना पड़ता है ॥ ३३ ॥ तुम्हें इस बातका बड़ा घमंड था कि मैं बड़ा धनी हूँ। तुमने मुझसे 'दूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा करके फिर धोखा दे दिया। अब तुम कुछ वर्षोंतक इस झूठका फल नरक भोगो' ॥ ३४ ॥

बाईसवाँ अध्याय

बलिके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का उसपर प्रसन्न होना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार भगवान्‌ने असुरराज बलिका बड़ा तिरस्कार किया और उन्हें धैर्यसे विचलित करना चाहा। परन्तु वे तनिक भी विचलित न हुए, बड़े धैर्यसे बोले ॥ १ ॥

दैत्यराज बलिने कहा—देवताओंके आराध्यदेव! आपकी कीर्ति बड़ी पवित्र है। क्या आप मेरी बातको असत्य समझते हैं? ऐसा नहीं है। मैं उसे सत्य कर दिखाता हूँ। आप धोखेमें नहीं पड़ेंगे। आप कृपा करके अपना तीसरा पग मेरे सिरपर रख दीजिये ॥ २ ॥ मुझे नरकमें जानेका अथवा राज्यसे च्युत होनेका भय नहीं है। मैं पाशमें बँधने अथवा अपार दुःखमें पड़नेसे भी नहीं डरता। मेरे पास फूटी कौड़ी भी न रहे अथवा आप मुझे घोर दण्ड दें—यह भी मेरे भयका कारण नहीं है। मैं डरता हूँ तो केवल अपनी अपकीर्तिसे! ॥ ३ ॥ अपने पूजनीय गुरुजनोंके द्वारा दिया हुआ दण्ड तो जीवमात्रके लिये अत्यन्त वाञ्छनीय है। क्योंकि वैसा दण्ड माता, पिता, भाई और सुहृद् भी मोहवश नहीं दे पाते ॥ ४ ॥ आप छिपे रूपसे अवश्य ही हम असुरोंको श्रेष्ठ शिक्षा दिया करते हैं, अतः आप हमारे परम गुरु हैं। जब हमलोग धन, कुलीनता, बल आदिके मदसे अंधे हो जाते हैं, तब आप उन वस्तुओंको हमसे छीनकर हमें नेत्रदान करते हैं ॥ ५ ॥ आपसे हमलोगोंका

जो उपकार होता है, उसे मैं क्या बताऊँ ? अनन्य भावसे योग करनेवाले योगीगण जो सिद्धि प्राप्त करते हैं, वही सिद्धि बहुत-से असुरोंको आपके साथ दृढ वैरभाव करनेसे ही प्राप्त हो गयी है ॥ ६ ॥ जिनकी ऐसी महिमा, ऐसी अनन्त लीलाएँ हैं, वही आप मुझे दण्ड दे रहे हैं और वरुणपाशसे बाँध रहे हैं । इसकी न तो मुझे कोई लज्जा है और न किसी प्रकारकी व्यथा ही ॥ ७ ॥ प्रभो ! मेरे पितामह प्रह्लादजीकी कीर्ति सारे जगत्‌में प्रसिद्ध है। वे आपके भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। उनके पिता हिरण्यकशिपुने आपसे वैर-विरोध रखनेके कारण उन्हें अनेकों प्रकारके दुःख दिये। परन्तु वे आपके ही परायण रहे, उन्होंने अपना जीवन आपपर ही निछावर कर दिया ॥ ८ ॥ उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि शरीरको लेकर क्या करना है, जब यह एक-न-एक दिन साथ छोड़ ही देता है। जो धन-सम्पत्ति लेनेके लिये स्वजन बने हुए हैं, उन डाकुओंसे अपना स्वार्थ ही क्या है ? पत्नीसे भी क्या लाभ है, जब वह जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाली ही है । जब मर ही जाना है, तब घरसे मोह करनेमें भी क्या स्वार्थ है ? इन सब वस्तुओंमें उलझ जाना तो केवल अपनी आयु खो देना है ॥ ९ ॥ ऐसा निश्चय करके मेरे पितामह प्रह्लादजीने, यह जानते हुए भी कि आप लौकिक दृष्टिसे उनके भाई-बन्धुओंका नाश करनेवाले शत्रु हैं, आपके ही भयरहित एवं अविनाशी चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की थी । क्यों न हो—वे संसारसे परम विरक्त, अगाध बोधसम्पन्न, उदारहृदय एवं संतशिरोमणि जो हैं ॥ १० ॥ आप उस दृष्टिसे मेरे भी शत्रु हैं, फिर भी विधाताने मुझे बलात् ऐश्वर्य-लक्ष्मीसे अलग करके आपके पास पहुँचा दिया है। अच्छा ही हुआ; क्योंकि ऐश्वर्य-लक्ष्मीके कारण जीवकी बुद्धि जड हो जाती है और वह यह नहीं समझ पाता कि 'मेरा यह जीवन मृत्युके पंजेमें पड़ा हुआ और अनित्य है' ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! राजा बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि उदय होते हुए चन्द्रमाके समान भगवान्‌के प्रेम-पात्र प्रह्लादजी वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥ राजा बलिने देखा कि मेरे पितामह बड़े श्रीसम्पन्न हैं। कमलके समान कोमल नेत्र हैं, लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, सुन्दर ऊँचे और श्यामल शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए हैं ॥ १३ ॥ बलि इस समय वरुणपाशमें बँधे हुए थे । इसलिये प्रह्लादजीके आनेपर जैसे पहले वे उनकी पूजा किया करते थे, उस प्रकार न कर सके । उनके नेत्र आँसुओंसे चञ्चल हो उठे, लज्जाके मारे मुँह नीचा हो गया । उन्होंने केवल सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥ १४ ॥ प्रह्लादजीने देखा कि भक्तवत्सल भगवान् वहीं विराजमान हैं और सुनन्द, नन्द आदि पार्षद उनकी सेवा कर रहे हैं । प्रेमके उद्रेकसे प्रह्लादजीका शरीर पुलकित हो गया, उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये । वे आनन्दपूर्ण हृदयसे सिर झुकाये अपने स्वामीके पास गये और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ १५ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो ! आपने ही बलिको यह ऐश्वर्यपूर्ण इन्द्रपद दिया था, अब आज आपने ही उसे छीन लिया । आपका देना जैसा सुन्दर है, वैसा ही सुन्दर लेना भी ! मैं समझता हूँ कि आपने इसपर बड़ी भारी कृपा की है, जो आत्माको मोहित करनेवाली राज्यलक्ष्मीसे इसे अलग कर दिया ॥ १६ ॥ प्रभो ! लक्ष्मीके मदसे तो विद्वान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं । उसके रहते भला, अपने वास्तविक स्वरूपको ठीक-ठीक कौन जान सकता है ? अतः उस लक्ष्मीको छीनकर महान् उपकार करनेवाले, समस्त जगत्‌के महान् ईश्वर, सबके हृदयमें विराजमान और सबके परम साक्षी श्रीनारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! प्रह्लादजी अञ्जलि बाँधकर खड़े थे । उनके सामने ही भगवान् ब्रह्माजीने वामनभगवान्‌से कुछ कहना चाहा ॥ १८ ॥ परन्तु इतनेमें ही राजा बलिकी परम साध्वी पत्नी विन्ध्यावली-ने अपने पतिको बँधा देखकर भयभीत हो भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़, मुँह नीचा कर वह भगवान्‌से बोली ॥ १९ ॥

विन्ध्यावलीने कहा—प्रभो ! आपने अपनी क्रीडाके लिये ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की रचना की है । जो लोग कुबुद्धि हैं, वे ही अपनेको इसका स्वामी मानते हैं । जब आप ही इसके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं, तब आपकी मायासे मोहित होकर अपनेको झूठमूठ कर्ता

माननेवाले निर्लज्ज आपको समर्पण क्या करेंगे ? ॥ २० ॥

ब्रह्माजीने कहा—समस्त प्राणियोंके जीवनदाता, उनके स्वामी और जगत्स्वरूप देवाधिदेव प्रभो ! अब आप इसे छोड़ दीजिये । आपने इसका सर्वस्व ले लिया है, अत: अब यह दण्डका पात्र नहीं है ॥ २१ ॥ इसने अपनी सारी भूमि और पुण्यकर्मोंसे उपार्जित स्वर्ग आदि लोक, अपना सर्वस्व तथा आत्मातक आपको समर्पित कर दिया है । एवं ऐसा करते समय इसकी बुद्धि स्थिर रही है, यह धैर्यसे च्युत नहीं हुआ है ॥ २२ ॥ प्रभो ! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणता छोड़कर आपके चरणोंमें जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है । फिर बलिने तो बड़ी प्रसन्नतासे धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है । तब यह दु:खका भागी कैसे हो सकता है ? ॥ २३ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी ! मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन छीन लिया करता हूँ । क्योंकि जब मनुष्य धनके मदसे मतवाला हो जाता है, तब मेरा और लोगोंका तिरस्कार करने लगता है ॥ २४ ॥ यह जीव अपने कर्मोंके कारण विवश होकर अनेक योनियोंमें भटकता रहता है, जब कभी मेरी बड़ी कृपासे मनुष्यका शरीर प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिके कारण घमंड न हो जाय तो समझना चाहिये कि मेरी बड़ी ही कृपा है ॥ २६ ॥ कुलीनता आदि बहुत-से ऐसे कारण हैं, जो अभिमान और जडता आदि उत्पन्न करके मनुष्यको कल्याणके समस्त साधनोंसे वञ्चित कर देते हैं; परन्तु जो मेरे शरणागत होते हैं, वे इनसे मोहित नहीं होते ॥ २७ ॥ यह बलि दानव और दैत्य दोनों ही वंशोंमें अग्रगण्य और उनकी कीर्ति बढ़ानेवाला है । इसने उस मायापर विजय प्राप्त कर ली है, जिसे जीतना अत्यन्त कठिन है । तुम देख ही रहे हो, इतना दु:ख भोगनेपर भी यह मोहित नहीं हुआ ॥ २८ ॥ इसका धन छीन लिया, राजपदसे अलग कर दिया, तरह-तरहके आक्षेप किये, शत्रुओंने बाँध लिया, भाई-बन्धु छोड़कर चले गये, इतनी यातनाएँ भोगनी पड़ीं—यहाँतक कि गुरुदेवने भी इसको डाँटा-फटकारा और शापतक दे दिया । परन्तु इस दृढव्रतीने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी । मैंने इससे छलभरी बातें कीं, मनमें छल रखकर धर्मका उपदेश किया; परन्तु इस सत्यवादीने अपना धर्म न छोड़ा ॥ २९-३० ॥ अत: मैंने इसे वह स्थान दिया है, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है । सावर्णि मन्वन्तरमें यह मेरा परम भक्त इन्द्र होगा ॥ ३१ ॥ तबतक यह विश्वकर्माके बनाये हुए सुतल लोकमें रहे । वहाँ रहनेवाले लोग मेरी कृपा-दृष्टिका अनुभव करते हैं । इसलिये उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक रोग, थकावट, तन्द्रा, बाहरी या भीतरी शत्रुओंसे पराजय और किसी प्रकारके विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ता ॥ ३२ ॥ [बलिको सम्बोधित कर] महाराज इन्द्रसेन ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतल लोकमें जाओ, जिसे स्वर्गके देवता भी चाहते रहते हैं ॥ ३३ ॥ बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकेंगे, दूसरोंकी तो बात ही क्या है ! जो दैत्य तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगे, मेरा चक्र उनके टुकड़े-टुकड़े कर देगा ॥ ३४ ॥ मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोगसामग्रीकी भी सब प्रकारके विघ्नोंसे रक्षा करूँगा । वीर बलि ! तुम मुझे वहाँ सदा-सर्वदा अपने पास ही देखोगे ॥ ३५ ॥ दानव और दैत्योंके संसर्गसे तुम्हारा जो कुछ आसुरभाव होगा, वह मेरे प्रभावसे तुरंत दब जायगा और नष्ट हो जायगा ॥ ३६ ॥

तेईसवाँ अध्याय

बलिका बन्धनसे छूटकर सुतल लोकको जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब सनातनपुरुष भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तो साधुओंके आदरणीय महानुभाव दैत्यराजके नेत्रोंमें आँसू छलक आये । प्रेमके उद्रेकसे उनका गला भर आया । वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे भगवान्‌से कहने लगे ॥ १ ॥

बलिने कहा—प्रभो ! मैंने तो आपको पूरा प्रणाम

भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेमात्रकी चेष्टाभर की। उसीसे मुझे वह फल मिला, जो आपके चरणोंके शरणागत भक्तोंको प्राप्त होता है । बड़े-बड़े लोकपाल और देवताओंपर आपने जो कृपा कभी नहीं की, वह मुझ-जैसे नीच असुरको सहज ही प्राप्त हो गयी ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! यों कहते ही बलि वरुणके पाशोंसे मुक्त हो गये। तब उन्होंने भगवान्, ब्रह्माजी और शङ्करजीको प्रणाम किया और इसके बाद बड़ी प्रसन्नतासे असुरोंके साथ सुतल लोककी यात्रा की ॥ ३ ॥ इस प्रकार भगवान्‌ने बलिसे स्वर्गका राज्य लेकर इन्द्रको दे दिया, अदितिकी कामना पूर्ण की और स्वयं उपेन्द्र बनकर वे सारे जगत्‌का शासन करने लगे ॥ ४ ॥ जब प्रह्लादने देखा कि मेरे वंशधर पौत्र राजा बलि बन्धनसे छूट गये और उन्हें भगवान्‌का कृपा-प्रसाद प्राप्त हो गया, तो वे भक्ति-भावसे भर गये । उस समय उन्होंने भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की ॥ ५ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो ! यह कृपाप्रसाद तो कभी ब्रह्माजी, लक्ष्मीजी और शङ्करजीको भी नहीं प्राप्त हुआ, तब दूसरोंकी बात ही क्या है । अहो ! विश्ववन्द्य ब्रह्मा आदि भी जिनके चरणोंकी वन्दना करते रहते हैं, वही आप हम असुरोंके दुर्गपाल—किलेदार हो गये ॥ ६ ॥ शरणागतवत्सल प्रभो ! ब्रह्मा आदि लोकपाल आपके चरणकमलोंका मकरन्द-रस सेवन करनेके कारण सृष्टि-रचनाकी शक्ति आदि अनेक विभूतियाँ प्राप्त करते हैं । हमलोग तो जन्मसे ही खल और कुमार्गगामी हैं, हमपर आपकी ऐसी अनुग्रहपूर्ण दृष्टि कैसे हो गयी, जो आप हमारे द्वारपाल ही बन गये ॥ ७ ॥ आपने अपनी योगमायासे खेल-ही-खेलमें त्रिभुवनकी रचना कर दी । आप सर्वज्ञ, सर्वात्मा और समदर्शी हैं । फिर भी आपकी लीलाएँ बड़ी विलक्षण जान पड़ती हैं । आपका स्वभाव कल्पवृक्षके समान है । क्योंकि आप अपने भक्तोंसे अत्यन्त प्रेम करते हैं । इसीसे कभी-कभी उपासकोंके प्रति पक्ष-पात और विमुखोंके प्रति निर्दयता भी आपमें देखी जाती है ॥ ८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—बेटा प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम भी सुतल लोकमें जाओ । वहाँ अपने पौत्र बलिके साथ आनन्दपूर्वक रहो और जाति-बन्धुओं-को सुखी करो ॥ ९ ॥ वहाँ तुम मुझे नित्य ही गदा हाथमें लिये खड़ा देखोगे । मेरे दर्शनके परमानन्दमें मग्न रहनेके कारण तुम्हारे सारे कर्मबन्धन नष्ट हो जायँगे ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! समस्त दैत्य-सेनाके स्वामी विशुद्धबुद्धि प्रह्लादजीने 'जो आज्ञा' कहकर, हाथ जोड़, भगवान्‌का आदेश मस्तकपर चढ़ाया। फिर उन्होंने बलिके साथ आदिपुरुष भगवान्‌की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और उनसे अनुमति लेकर सुतल लोककी यात्रा की ॥ ११-१२ ॥ परीक्षित् ! उस समय भगवान् श्रीहरिने ब्रह्मवादी ऋत्विजोंकी सभामें अपने पास ही बैठे हुए शुक्राचार्यजीसे कहा ॥ १३ ॥ 'ब्रह्मन् ! आपका शिष्य यज्ञ कर रहा था । उसमें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण कर दीजिये । क्योंकि कर्म करनेमें जो कुछ भूल-चूक हो जाती है, वह ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टिसे सुधर जाती है' ॥ १४ ॥

शुक्राचार्यजीने कहा—भगवन् ! जिसने अपना समस्त कर्म समर्पित करके सब प्रकारसे यज्ञेश्वर यज्ञपुरुष आपकी पूजा की है—उसके कर्ममें कोई त्रुटि, कोई विषमता कैसे रह सकती है ? ॥ १५ ॥ क्योंकि मन्त्रोंकी, अनुष्ठान-पद्धतिकी, देश, काल, पात्र और वस्तुकी सारी भूलें आपके नामसंकीर्तनमात्रसे सुधर जाती हैं; आपका नाम सारी त्रुटियोंको पूर्ण कर देता है ॥ १६ ॥ तथापि अनन्त ! जब आप स्वयं कह रहे हैं, तब मैं आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करूँगा । मनुष्यके लिये सबसे बड़ा कल्याणका साधन यही है कि वह आपकी आज्ञा-का पालन करे ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् शुक्राचार्यने भगवान् श्रीहरिकी यह आज्ञा स्वीकार करके दूसरे ब्रह्मर्षियोंके साथ, बलिके यज्ञमें जो कमी रह गयी थी, उसे पूर्ण किया ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार वामन-भगवान्‌ने बलिसे पृथ्वीकी भिक्षा माँगकर अपने बड़े भाई इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया, जिसे उनके शत्रुओंने छीन लिया था ॥ १९ ॥ इसके बाद प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजीने देवर्षि, पितर, मनु, दक्ष, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार और शङ्करजीके साथ कश्यप एवं अदितिकी प्रसन्नताके लिये तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अभ्युदयके लिये समस्त लोक और लोकपालोंके स्वामीके पदपर वामन-भगवान्‌का अभिषेक कर दिया ॥ २०-२१ ॥

परीक्षित् ! वेद, समस्त देवता, धर्म, यश, लक्ष्मी, मङ्गल, व्रत, स्वर्ग और अपवर्ग—सबके रक्षकके रूपमें सबके परम कल्याणके लिये सर्वशक्तिमान् वामनभगवान्‌को उन्होंने उपेन्द्रका पद दिया । उस समय सभी प्राणियोंको अत्यन्त आनन्द हुआ ॥२२-२३॥ इसके बाद ब्रह्माजी-की अनुमतिसे लोकपालोंके साथ देवराज इन्द्रने वामन-भगवान्‌को सबसे आगे विमानपर बैठाया और अपने साथ स्वर्ग लिवा ले गये ॥ २४ ॥ इन्द्रको एक तो त्रिभुवनका राज्य मिल गया और दूसरे, वामनभगवान्‌के करकमलोंकी छत्रछाया ! सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यलक्ष्मी उनकी सेवा करने लगी और वे निर्भय होकर आनन्दोत्सव मनाने लगे ॥ २५ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर, सनत्कुमार, भृगु आदि मुनि, पितर, सारे भूत, सिद्ध और विमानारोही देवगण भगवान्‌के इस परम अद्भुत एवं अत्यन्त महान् कर्मका गान करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये और सबने अदितिकी भी बड़ी प्रशंसा की ॥ २६-२७ ॥

परीक्षित् ! तुम्हें मैंने भगवान्‌की यह सब लीला सुनायी । इससे सुननेवालोंके सारे पाप छूट जाते हैं ॥ २८ ॥ भगवान्‌की लीलाएँ अनन्त हैं, उनकी महिमा अपार है । जो मनुष्य उसका पार पाना चाहता है, वह मानो पृथ्वीके परमाणुओंको गिन डालना चाहता है । भगवान्‌के सम्बन्धमें मन्त्रद्रष्टा महर्षि वसिष्ठने वेदोंमें कहा है कि 'ऐसा पुरुष न कभी हुआ, न है और न होगा जो भगवान्‌की महिमाका पार पा सके' ॥ २९ ॥ देवताओंके आराध्यदेव अद्भुतलीलाधारी वामनभगवान्‌के अवतार-चरित्रका जो श्रवण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ देवयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्य-यज्ञ किसी भी कर्मका अनुष्ठान करते समय जहाँ-जहाँ भगवान्‌की इस लीलाका कीर्तन होता है, वह कर्म सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है । यह बड़े-बड़े महात्माओंका अनुभव है ॥ ३१ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान्‌के मत्स्यावतारकी कथा

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान्‌के कर्म बड़े अद्भुत हैं । उन्होंने एक बार अपनी योगमायासे मत्स्यावतार धारण करके बड़ी सुन्दर लीला की थी, मैं उनके उसी आदि-अवतारकी कथा सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ भगवन् ! मत्स्ययोनि एक तो यों ही लोकनिन्दित है, दूसरे तमो-गुणी और असह्य परतन्त्रतासे युक्त भी है । सर्वशक्ति-मान् होनेपर भी भगवान्‌ने कर्मबन्धनमें बँधे हुए जीवकी तरह यह मत्स्यका रूप क्यों धारण किया ? ॥ २ ॥ भगवन् ! महात्माओंके कीर्तनीय भगवान्‌का चरित्र समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाला है । आप कृपा करके उनकी वह सब लीला हमारे सामने पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब राजा परीक्षित्‌ने भगवान् श्रीशुकदेवजीसे यह प्रश्न किया, तब उन्होंने विष्णुभगवान्‌का वह चरित्र, जो उन्होंने मत्स्या-वतार धारण करके किया था, वर्णन किया ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! यों तो भगवान् सबके एकमात्र प्रभु हैं; फिर भी वे गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये शरीर धारण किया करते हैं ॥ ५ ॥ वे सर्वशक्तिमान् प्रभु वायुकी तरह नीचे-ऊँचे, छोटे-बड़े सभी प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूप-से लीला करते रहते हैं । परन्तु उन-उन प्राणियोंके बुद्धिगत गुणोंसे वे छोटे-बड़े या ऊँचे-नीचे नहीं हो जाते । क्योंकि वे वास्तवमें समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित—निर्गुण हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! पिछले कल्पके अन्तमें ब्रह्माजीके सो जानेके कारण ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था । उस समय भूर्लोक आदि सारे लोक समुद्रमें डूब गये थे ॥ ७ ॥ प्रलय काल आ जानेके कारण ब्रह्माजीको नींद आ रही थी, वे सोना चाहते थे । उसी समय वेद उनके मुखसे निकल पड़े और उनके पास ही रहनेवाले हयग्रीव नामक बली दैत्यने उन्हें योगबलसे चुरा लिया ॥ ८ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिने दानवराज हयग्रीवकी यह चेष्टा जान ली । इसलिये उन्होंने मत्स्या-वतार ग्रहण किया ॥ ९ ॥

परीक्षित् ! उस समय सत्यव्रत नामके एक बड़े उदार एवं भगवत्परायण राजर्षि केवल जल पीकर तपस्या कर रहे थे ॥ १० ॥ वही सत्यव्रत वर्तमान महाकल्पमें विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र श्राद्धदेवके नामसे विख्यात हुए और उन्हें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु बना दिया ।११। एक दिन वे राजर्षि कृतमाला नदीमें जलसे तर्पण कर रहे थे । उसी समय उनकी अञ्जलिके जलमें एक छोटी-सी मछली आ गयी ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! द्रविड देशके राजा सत्यव्रतने अपनी अञ्जलिमें आयी हुई मछलीको जलके साथ ही फिरसे नदीमें डाल दिया ॥ १३ ॥ उस मछलीने बड़ी करुणाके साथ परम दयालु राजा सत्यव्रतसे कहा—'राजन् ! आप बड़े दीनदयालु हैं । आप जानते ही हैं कि जलमें रहनेवाले जन्तु अपनी जातिवालोंको भी खा डालते हैं । मैं उनके भयसे अत्यन्त व्याकुल हो रही हूँ । आप मुझे फिर इसी नदीके जलमें क्यों छोड़ रहे हैं ? ॥ १४ ॥ राजा सत्यव्रतको इस बातका पता नहीं था कि स्वयं भगवान् मुझपर प्रसन्न होकर कृपा करनेके लिये मछलीके रूपमें पधारे हैं । इसलिये उन्होंने उस मछलीकी रक्षाका मन-ही-मन सङ्कल्प किया ॥ १५ ॥ राजा सत्यव्रतने उस मछलीकी अत्यन्त दीनतासे भरी बात सुनकर बड़ी दयासे उसे अपने पात्रके जलमें रख लिया और अपने आश्रमपर ले आये ॥ १६ ॥ आश्रमपर लानेके बाद एक रातमें ही वह मछली उस कमण्डलुमें इतनी बढ़ गयी कि उसमें उसके लिये स्थान ही न रहा । उस समय मछलीने राजासे कहा ॥ १७ ॥ 'अब तो इस कमण्डलुमें मैं कष्टपूर्वक भी नहीं रह सकती; अतः मेरे लिये कोई बड़ा-सा स्थान नियत कर दें, जहाँ मैं सुखपूर्वक रह सकूँ ॥ १८ ॥ राजा सत्यव्रतने मछलीको कमण्डलुसे निकालकर एक बहुत बड़े पानीके मटकेमें रख दिया । परन्तु वहाँ डालनेपर वह मछली दो ही घड़ीमें तीन हाथ बढ़ गयी ॥ १९ ॥ फिर उसने राजा सत्यव्रतसे कहा—'राजन् ! अब यह मटका भी मेरे लिये पर्याप्त नहीं है । इसमें मैं सुखपूर्वक नहीं रह सकती । मैं तुम्हारी शरणमें हूँ, इसलिये मेरे रहने-योग्य कोई बड़ा-सा स्थान मुझे दो ॥ २० ॥ परीक्षित् ! सत्यव्रतने वहाँ-से उस मछलीको उठाकर एक सरोवरमें डाल दिया । परन्तु वह थोड़ी ही देरमें इतनी बढ़ गयी कि उसने एक महामत्स्यका आकार धारण कर उस सरोवरके जल-को घेर लिया ॥ २१ ॥ और कहा—'राजन् ! मैं जलचर प्राणी हूँ । इस सरोवरका जल भी मेरे सुख-पूर्वक रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है । इसलिये आप मेरी रक्षा कीजिये और मुझे किसी अगाध सरोवरमें रख दीजिये ॥ २२ ॥ मत्स्यभगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर वे एक-एक करके उन्हें कई अटूट जलवाले सरोवरोंमें ले गये; परन्तु जितना बड़ा सरोवर होता, उतने ही बड़े वे बन जाते । अन्तमें उन्होंने उन लीलामत्स्यको समुद्रमें छोड़ दिया ॥ २३ ॥ समुद्रमें डालते समय मत्स्यभगवान्‌ने सत्यव्रतसे कहा—'वीर ! समुद्रमें बड़े-बड़े बली मगर आदि रहते हैं, वे मुझे खा जायँगे इसलिये आप मुझे समुद्रके जलमें मत छोड़िये' ॥ २४ ॥

मत्स्यभगवान्‌की यह मधुर वाणी सुनकर राजा सत्य-व्रत मोहमुग्ध हो गये । उन्होंने कहा—'मत्स्यका रूप धारण करके मुझे मोहित करनेवाले आप कौन हैं ?॥२५॥ आपने एक ही दिनमें चार सौ कोसके विस्तारका सरोवर घेर लिया । आजतक ऐसी शक्ति रखनेवाला जलचर जीव तो न मैंने कभी देखा था और न सुना ही था ॥ २६ ॥ अवश्य ही आप साक्षात् सर्वशक्ति-मान् सर्वान्तर्यामी अविनाशी श्रीहरि हैं । जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है ॥ २७ ॥ पुरुषोत्तम ! आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्वामी हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ । प्रभो ! हम शरणागत भक्तोंके लिये आप ही आत्मा और आश्रय हैं ॥ २८ ॥ यद्यपि आपके सभी लीलावतार प्राणियोंके अभ्युदयके लिये ही होते हैं, तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने यह रूप किस उद्देश्यसे ग्रहण किया है ॥ २९ ॥ कमलनयन प्रभो ! जैसे देहादि अनात्मपदार्थोंमें अपनेपनका अभिमान करनेवाले संसारी पुरुषोंका आश्रय व्यर्थ होता है, उस प्रकार आपके चरणोंकी शरण तो व्यर्थ हो नहीं सकती; क्योंकि आप सबके अहैतुक प्रेमी, परम प्रियतम और आत्मा हैं । आपने इस समय जो रूप धारण करके हमें दर्शन दिया है, यह बड़ा ही अद्भुत है ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् अपने

अनन्य प्रेमी भक्तोंपर अत्यन्त प्रेम करते हैं। जब जगत्पति मत्स्यभगवान्‌ने अपने प्यारे भक्त राजर्षि सत्यव्रतकी यह प्रार्थना सुनी तो उनका प्रिय और हित करनेके लिये, साथ ही कल्पान्तके प्रलयकालीन समुद्रमें विहार करनेके लिये उनसे कहा ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—सत्यव्रत ! आजसे सातवें दिन भूर्लोक आदि तीनों लोक प्रलयके समुद्रमें डूब जायँगे ॥ ३२ ॥ उस समय जब तीनों लोक प्रलयकालकी जलराशिमें डूबने लगेंगे, तब मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पास एक बहुत बड़ी नौका आयेगी ॥ ३३ ॥ उस समय तुम समस्त प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उस नौकापर चढ़ जाना और समस्त धान्य तथा छोटे-बड़े अन्य प्रकारके बीजोंको साथ रख लेना ॥ ३४ ॥ उस समय सब ओर एकमात्र महासागर लहराता होगा। प्रकाश नहीं होगा। केवल ऋषियोंकी दिव्य ज्योतिके सहारे ही बिना किसी प्रकारकी विकलताके तुम उस बड़ी नावपर चढ़कर चारों ओर विचरण करना ॥ ३५ ॥ जब प्रचण्ड आँधी चलनेके कारण नाव डगमगाने लगेगी, तब मैं इसी रूपमें वहाँ आ जाऊँगा और तुम लोग वासुकि नागके द्वारा उस नावको मेरे सींगमें बाँध देना ॥ ३६ ॥ सत्यव्रत ! इसके बाद जबतक ब्रह्माजीकी रात रहेगी, तबतक मैं ऋषियोंके साथ तुम्हें उस नावमें बैठाकर उसे खींचता हुआ समुद्रमें विचरण करूँगा ॥ ३७ ॥ उस समय जब तुम प्रश्न करोगे, तब मैं तुम्हें उपदेश दूँगा। मेरे अनुग्रहसे मेरी वास्तविक महिमा, जिसका नाम 'परब्रह्म' है, तुम्हारे हृदयमें प्रकट हो जायगी और तुम उसे ठीक-ठीक जान लोगे ॥ ३८ ॥ भगवान् राजा सत्यव्रतको यह आदेश देकर अन्तर्धान हो गये। अतः अब राजा सत्यव्रत उसी समयकी प्रतीक्षा करने लगे, जिसके लिये भगवान्‌ने आज्ञा दी थी ॥ ३९ ॥ कुशोंका अग्रभाग पूर्वकी ओर करके राजर्षि सत्यव्रत उनपर पूर्वोत्तर मुखसे बैठ गये और मत्स्यरूप भगवान्‌के चरणोंका चिन्तन करने लगे ॥ ४० ॥ इतनेमें ही भगवान्‌का बताया हुआ वह समय आ पहुँचा। राजाने देखा कि समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर बढ़ रहा है। प्रलयकालके भयङ्कर मेघ वर्षा करने लगे। देखते-ही-देखते सारी पृथ्वी डूबने लगी ॥ ४१ ॥ तब राजाने भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण किया और देखा कि नाव भी आ गयी है। तब वे धान्य तथा अन्य बीजोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उसपर सवार हो गये ॥४२॥ सप्तर्षियोंने बड़े प्रेमसे राजा सत्यव्रतसे कहा—'राजन् ! तुम भगवान्‌का ध्यान करो। वे ही हमें इस सङ्कटसे बचायेंगे और हमारा कल्याण करेंगे' ॥ ४३ ॥ उनकी आज्ञासे राजाने भगवान्‌का ध्यान किया। उसी समय उस महान् समुद्रमें मत्स्यके रूपमें भगवान् प्रकट हुए। मत्स्यभगवान्‌का शरीर सोनेके समान देदीप्यमान था और शरीरका विस्तार था चार लाख कोस। उनके शरीरमें एक बड़ा भारी सींग भी था ॥ ४४ ॥ भगवान्‌ने पहले जैसी आज्ञा दी थी, उसके अनुसार वह नौका वासुकि नागके द्वारा भगवान्‌के सींगमें बाँध दी गयी और राजा सत्यव्रतने प्रसन्न होकर भगवान्‌की स्तुति की ॥ ४५ ॥

राजा सत्यव्रतने कहा—प्रभो ! संसारके जीवोंका आत्मज्ञान अनादि अविद्यासे ढक गया है। इसी कारण वे संसारके अनेकानेक क्लेशोंके भारसे पीड़ित हो रहे हैं। जब अनायास ही आपके अनुग्रहसे वे आपकी शरणमें पहुँच जाते हैं, तब आपको प्राप्त कर लेते हैं। इसलिये हमें बन्धनसे छुड़ाकर वास्तविक मुक्ति देनेवाले परम गुरु आप ही हैं ॥ ४६ ॥ यह जीव अज्ञानी है, अपने ही कर्मोंसे बँधा हुआ है। वह सुखकी इच्छासे दुःखप्रद कर्मोंका अनुष्ठान करता है। जिनकी सेवासे उसका यह अज्ञान नष्ट हो जाता है, वे ही मेरे परम गुरु आप मेरे हृदयकी गाँठ काट दें ॥ ४७ ॥ जैसे अग्निमें तपानेसे सोने-चाँदीके मल दूर हो जाते हैं और उनका सच्चा स्वरूप निखर आता है, वैसे ही आपकी सेवासे जीव अपने अन्तःकरणका अज्ञानरूप मल त्याग देता है और अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थित हो जाता है। आप सर्वशक्तिमान् अविनाशी प्रभु ही हमारे गुरुजनोंके भी परम गुरु हैं। अतः आप ही हमारे भी गुरु बनें ॥४८॥ जितने भी देवता, गुरु और संसारके दूसरे जीव हैं—वे सब यदि स्वतन्त्ररूपसे एक साथ मिलकर भी कृपा करें, तो आपकी कृपाके दस हजारवें अंशके अंशकी भी बराबरी नहीं कर सकते। प्रभो ! आप ही सर्वशक्तिमान् हैं। मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ४९ ॥ जैसे

कोई अंधा अंधेको ही अपना पथप्रदर्शक बना ले, वैसे ही अज्ञानी जीव अज्ञानीको ही अपना गुरु बनाते हैं। आप सूर्यके समान स्वयंप्रकाश और समस्त इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। हम आत्मतत्त्वके जिज्ञासु आपको ही गुरुके रूपमें वरण करते हैं॥ ५०॥ अज्ञानी मनुष्य अज्ञानियोंको जिस ज्ञानका उपदेश करता है, वह तो अज्ञान ही है। उसके द्वारा संसाररूप घोर अन्धकारकी अधिकाधिक प्राप्ति होती है। परन्तु आप तो उस अविनाशी और अमोघ ज्ञानका उपदेश करते हैं, जिससे मनुष्य अनायास ही अपने वास्तविक स्वरूपको प्राप्त कर लेता है॥५१॥ आप सारे लोकके सुहृद्, प्रियतम, ईश्वर और आत्मा हैं। गुरु, उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान और अभीष्टकी सिद्धि भी आपका ही स्वरूप है। फिर भी कामनाओंके बन्धनमें जकड़े जाकर लोग अंधे हो रहे हैं। उन्हें इस बातका पता ही नहीं है कि आप उनके हृदयमें ही विराजमान हैं॥ ५२॥ आप देवताओंके भी आराध्यदेव, परम पूजनीय परमेश्वर हैं। मैं आपसे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आया हूँ। भगवन्! आप परमार्थको प्रकाशित करनेवाली अपनी वाणीके द्वारा मेरे हृदयकी ग्रन्थि काट डालिये और अपने स्वरूपको प्रकाशित कीजिये॥ ५३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब राजा सत्यव्रतने इस प्रकार प्रार्थना की, तब मत्स्यरूपधारी पुरुषोत्तम भगवान्ने प्रलयके समुद्रमें विहार करते हुए उन्हें आत्मतत्त्वका उपदेश किया॥ ५४॥ भगवान्ने राजर्षि सत्यव्रतको अपने स्वरूपके सम्पूर्ण रहस्यका वर्णन करते हुए ज्ञान, भक्ति और कर्मयोगसे परिपूर्ण दिव्य पुराणका उपदेश किया, जिसको 'मत्स्यपुराण' कहते हैं॥ ५५॥ सत्यव्रतने ऋषियोंके साथ नावमें बैठे हुए ही सन्देहरहित होकर भगवान्के द्वारा उपदिष्ट सनातन ब्रह्मस्वरूप आत्मतत्त्वका श्रवण किया॥ ५६॥ इसके बाद जब पिछले प्रलयका अन्त हो गया और ब्रह्माजीकी नींद टूटी, तब भगवान्ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये॥ ५७॥ भगवान्की कृपासे राजा सत्यव्रत ज्ञान और विज्ञानसे संयुक्त होकर इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए॥ ५८॥ अपनी योगमायासे मत्स्यरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु और राजर्षि सत्यव्रतका यह संवाद एवं श्रेष्ठ आख्यान सुनकर मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥५९॥ जो मनुष्य भगवान्के इस अवतारका प्रतिदिन कीर्तन करता है, उसके सारे सङ्कल्प सिद्ध हो जाते हैं और उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है॥ ६०॥ प्रलयकालीन समुद्रमें जब ब्रह्माजी सो गये थे, उनकी सृष्टि-शक्ति लुप्त हो चुकी थी, उस समय उनके मुखसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमें ले गया था। भगवान्ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं सत्यव्रत तथा सप्तर्षियोंको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किया। उन समस्त जगत्के परम कारण लीला-मत्स्य भगवान्को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६१॥

इति अष्टम स्कन्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

नवम स्कन्ध

लोकशोकापहाराय रावणं लोकरावणम् ।
रामो भूत्वावधीद्यस्तं गोविन्दं विन्दतां मनः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

नवम स्कन्ध

पहला अध्याय

वैवस्वत मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नकी कथा

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने सब मन्वन्तरों और उनमें अनन्त शक्तिशाली भगवान्‌के द्वारा किये हुए ऐश्वर्यपूर्ण चरित्रोंका वर्णन किया, और मैंने उनका श्रवण भी किया ॥ १ ॥ आपने कहा कि पिछले कल्पके अन्तमें द्रविड़ देशके स्वामी राजर्षि सत्यव्रतने भगवान्‌की सेवासे ज्ञान प्राप्त किया और वही इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए। आपने उनके इक्ष्वाकु आदि नरपति पुत्रोंका भी वर्णन किया ॥ २-३ ॥ ब्रह्मन्! अब आप कृपा करके उनके वंश और वंशमें होनेवालोंका अलग-अलग चरित्र वर्णन कीजिये। महाभाग! हमारे हृदयमें सर्वदा ही कथा सुननेकी उत्सुकता बनी रहती है ॥४॥ वैवस्वत मनुके वंशमें जो हो चुके हों, इस समय विद्यमान हों और आगे होनेवाले हों—उन सब पवित्रकीर्ति पुरुषोंके पराक्रमका वर्णन कीजिये ॥ ५ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! ब्रह्मवादी ऋषियोंकी सभामें राजा परीक्षित्‌ने जब यह प्रश्न किया, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् श्रीशुकदेवजीने कहा ॥६॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम मनुवंशका वर्णन संक्षेपसे सुनो। विस्तारसे तो सैकड़ों वर्षोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ७ ॥ जो परम पुरुष परमात्मा छोटे-बड़े सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, प्रलयके समय केवल वही थे; यह विश्व तथा और कुछ भी नहीं था ॥ ८ ॥ महाराज! उनकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमलकोष प्रकट हुआ। उसीमें चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ ॥ ९ ॥ ब्रह्माजीके मनसे मरीचि और मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। उनकी धर्मपत्नी दक्षनन्दिनी अदितिसे विवस्वान् (सूर्य) का जन्म हुआ ॥ १० ॥ विवस्वान्‌की संज्ञा नामक पत्नीसे श्राद्धदेव मनुका जन्म हुआ। परीक्षित्! परम मनस्वी राजा श्राद्धदेवने अपनी पत्नी श्रद्धाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम थे—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ॥ ११-१२ ॥

वैवस्वत मनु पहले सन्तानहीन थे। उस समय सर्वसमर्थ भगवान् वसिष्ठने उन्हें सन्तान-प्राप्ति करानेके लिये मित्रावरुणका यज्ञ कराया था ॥ १३ ॥ यज्ञके आरम्भमें केवल दूध पीकर रहनेवाली वैवस्वत मनुकी धर्मपत्नी श्रद्धाने अपने होताके पास जाकर प्रणामपूर्वक याचना की कि मुझे कन्या ही प्राप्त हो ॥ १४ ॥ तब अध्वर्युकी प्रेरणासे होता बने हुए ब्राह्मणने श्रद्धाके कथनका स्मरण करके एकाग्र चित्तसे वषट्कारका उच्चारण करते हुए यज्ञकुण्डमें आहुति दी ॥ १५ ॥ जब होताने इस प्रकार विपरीत कर्म किया, तब यज्ञके फलस्वरूप पुत्रके स्थानपर इला नामकी कन्या हुई। उसे देखकर श्राद्धदेव मनुका मन कुछ विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने गुरु वसिष्ठजीसे कहा ॥ १६ ॥ 'भगवन्! आपलोग तो ब्रह्मवादी हैं, आपका कर्म इस प्रकार विपरीत फल देनेवाला कैसे हो गया? अरे, यह तो बड़े दुःखकी बात है। वैदिक कर्मका ऐसा विपरीत फल तो कभी नहीं होना चाहिये ॥ १७ ॥ आप लोगोंका मन्त्रज्ञान तो पूर्ण है ही; इसके अतिरिक्त आपलोग जितेन्द्रिय भी हैं, तथा तपस्याके कारण निष्पाप हो चुके हैं। देवताओंमें

असत्यकी प्राप्तिके समान आपके सङ्कल्पका यह उलटा फल कैसे हुआ ?' ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! हमारे वृद्ध प्रपितामह भगवान् वसिष्ठने उनकी यह बात सुनकर जान लिया कि होताने विपरीत सङ्कल्प किया है। इसलिये उन्होंने वैवस्वत मनुसे कहा—॥ १९ ॥ 'राजन् ! तुम्हारे होताके विपरीत सङ्कल्पसे ही हमारा सङ्कल्प ठीक-ठीक पूरा नहीं हुआ। फिर भी अपने तपके प्रभावसे मैं तुम्हें श्रेष्ठ पुत्र दूँगा ॥ २० ॥ परीक्षित्! परम यशस्वी भगवान् वसिष्ठने ऐसा निश्चय करके उस इला नामकी कन्याको ही पुरुष बना देनेके लिये पुरुषोत्तम भगवान् नारायणकी स्तुति की ॥ २१ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिने सन्तुष्ट होकर उन्हें मुँहमाँगा वर दिया, जिसके प्रभावसे वह कन्या ही सुद्युम्न नामक श्रेष्ठ पुत्र बन गयी ॥२२॥

महाराज ! एक बार राजा सुद्युम्न शिकार खेलनेके लिये सिन्धुदेशके घोड़ेपर सवार होकर कुछ मन्त्रियोंके साथ वनमें गये ॥ २३ ॥ वीर सुद्युम्न कवच पहनकर और हाथमें सुन्दर धनुष एवं अत्यन्त अद्भुत बाण लेकर हरिनोंका पीछा करते हुए उत्तर दिशामें बहुत आगे बढ़ गये ॥ २४ ॥ अन्तमें सुद्युम्न मेरुपर्वतकी तलहटीके एक वनमें चले गये। उस वनमें भगवान् शङ्कर पार्वतीके साथ विहार करते रहते हैं ॥ २५ ॥ उसमें प्रवेश करते ही वीरवर सुद्युम्नने देखा कि मैं स्त्री हो गया हूँ और घोड़ा घोड़ी हो गया है ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! साथ ही उनके सब अनुचरोंने भी अपनेको स्त्रीरूपमें देखा। वे सब एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, उनका चित्त बहुत उदास हो गया ॥ २७ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! उस भूखण्डमें ऐसा विचित्र गुण कैसे आ गया ? किसने उसे ऐसा बना दिया था ? आप कृपा कर हमारे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये; क्योंकि हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! एक दिन भगवान् शङ्करका दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े व्रतधारी ऋषि अपने तेजसे दिशाओंका अन्धकार मिटाते हुए उस वनमें गये ॥ २९ ॥ उस समय अम्बिका देवी वस्त्रहीन थीं। ऋषियोंको सहसा आया देख वे अत्यन्त लज्जित हो गयीं। झटपट उन्होंने भगवान् शङ्करकी गोदसे उठकर वस्त्र धारण कर लिया ॥ ३० ॥ ऋषियोंने भी देखा कि भगवान् गौरी-शङ्कर इस समय विहार कर रहे हैं, इसलिये वहाँसे लौटकर वे भगवान् नर-नारायणके आश्रमपर चले गये ॥ ३१ ॥ उसी समय भगवान् शङ्करने अपनी प्रिया भगवती अम्बिकाको प्रसन्न करनेके लिये कहा कि 'मेरे सिवा जो भी पुरुष इस स्थानमें प्रवेश करेगा, वही स्त्री हो जायगा' ॥ ३२ ॥ परीक्षित् ! तभीसे पुरुष उस स्थानमें प्रवेश नहीं करते। अब सुद्युम्न स्त्री हो गये थे। इसलिये वे अपने स्त्री बने हुए अनुचरोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें विचरने लगे ॥ ३३ ॥ उसी समय शक्तिशाली बुधने देखा कि मेरे आश्रमके पास ही बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरी हुई एक सुन्दरी स्त्री विचर रही है। उन्होंने इच्छा की कि यह मुझे प्राप्त हो जाय ॥३४॥ उस सुन्दरी स्त्रीने भी चन्द्रकुमार बुधको पति बनाना चाहा। इसपर बुधने उसके गर्भसे पुरूरवा नामका पुत्र उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मनुपुत्र राजा सुद्युम्न स्त्री हो गये। ऐसा सुनते हैं कि उन्होंने उस अवस्थामें अपने कुलपुरोहित वसिष्ठजीका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ सुद्युम्नकी यह दशा देखकर वसिष्ठजीके हृदयमें कृपावश अत्यन्त पीड़ा हुई। उन्होंने सुद्युम्नको पुनः पुरुष बना देनेके लिये भगवान् शङ्करकी आराधना की ॥ ३७ ॥ भगवान् शङ्कर वसिष्ठजीपर प्रसन्न हुए। परीक्षित् ! उन्होंने उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये अपनी वाणीको सत्य रखते हुए ही यह बात कही ॥ ३८ ॥ 'वसिष्ठ ! तुम्हारा यह यजमान एक महीनेतक पुरुष रहेगा और एक महीनेतक स्त्री। इस व्यवस्थासे सुद्युम्न इच्छानुसार पृथ्वीका पालन करे ॥ ३९ ॥ इस प्रकार वसिष्ठजीके अनुग्रहसे व्यवस्थापूर्वक अभीष्ट पुरुषत्व लाभ करके सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करने लगे। परन्तु प्रजा उनका अभिनन्दन नहीं करती थी ॥ ४० ॥ उनके तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विमल। परीक्षित् ! वे सब दक्षिणापथके राजा हुए ॥ ४१ ॥ बहुत दिनोंके बाद वृद्धावस्था आनेपर प्रतिष्ठान नगरीके अधिपति सुद्युम्नने अपने पुत्र पुरूरवाको राज्य दे दिया और स्वयं तपस्या करनेके लिये वनकी यात्रा की ॥ ४२ ॥

दूसरा अध्याय

पृषध्र आदि मनुके पाँच पुत्रोंका वंश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार जब सुद्युम्न तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये, तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामनासे यमुनाके तटपर सौ वर्षतक तपस्या की ॥ १ ॥ इसके बाद उन्होंने सन्तानके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिकी आराधना की और अपने ही समान दस पुत्र प्राप्त किये, जिनमें सबसे बड़े इक्ष्वाकु थे ॥ २ ॥ उन मनुपुत्रोंमेंसे एकका नाम था पृषध्र । गुरु वसिष्ठजीने उसे गायोंकी रक्षामें नियुक्त कर रक्खा था, अत: वह रात्रिके समय बड़ी सावधानीसे वीरासनसे बैठा रहता और गायोंकी रक्षा करता ॥ ३ ॥ एक दिन रातमें वर्षा हो रही थी । उस समय गायोंके झुंडमें एक बाघ घुस आया । उससे डरकर सोयी हुई गौएँ उठ खड़ी हुईं । वे गोशालामें ही इधर-उधर भागने लगीं ॥ ४ ॥ बलवान् बाघने एक गायको पकड़ लिया । वह अत्यन्त भयभीत होकर चिल्लाने लगी । उसका वह क्रन्दन सुनकर पृषध्र गायके पास दौड़ आया ॥ ५ ॥ एक तो रातका समय और दूसरे घनघोर घटाओंसे आच्छादित होनेके कारण तारे भी नहीं दीखते थे । उसने हाथमें तलवार उठाकर अनजानमें ही बड़े वेगसे गायका सिर काट दिया । वह समझ रहा था कि यही बाघ है ॥ ६ ॥ तलवारकी नोकसे बाघका भी कान कट गया, वह अत्यन्त भयभीत होकर रास्तेमें खून गिराता हुआ वहाँसे निकल भागा ॥ ७ ॥ शत्रुदमन पृषध्रने यह समझा कि बाघ मर गया । परन्तु रात बीतनेपर उसने देखा कि मैंने तो गायको ही मार डाला है, इससे उसे बड़ा दु:ख हुआ ॥ ८ ॥ यद्यपि पृषध्रने जान-बूझकर अपराध नहीं किया था, फिर भी कुलपुरोहित वसिष्ठजीने उसे शाप दिया कि 'तुम इस कर्मसे क्षत्रिय नहीं रहोगे; जाओ, शूद्र हो जाओ' ॥ ९ ॥ पृषध्रने अपने गुरुदेवका यह शाप अञ्जलि बाँधकर स्वीकार किया और इसके बाद सदाके लिये मुनियोंको प्रिय लगनेवाले नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रतको धारण किया ॥ १० ॥ वह समस्त प्राणियोंका अहैतुक हितैषी एवं सबके प्रति समान भावसे युक्त होकर भक्तिके द्वारा परम विशुद्ध सर्वात्मा भगवान् वासुदेवका अनन्य प्रेमी हो गया ॥ ११ ॥ उसकी सारी आसक्तियाँ मिट गयीं । वृत्तियाँ शान्त हो गयीं । इन्द्रियाँ वशमें हो गयीं । वह कभी किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह नहीं रखता था । जो कुछ दैववश प्राप्त हो जाता, उसीसे अपना जीवन-निर्वाह कर लेता ॥१२॥ वह आत्मज्ञानसे सन्तुष्ट एवं अपने चित्तको परमात्मामें स्थित करके प्राय: समाधिस्थ रहता । कभी-कभी जड, अंधे और बहरेके समान पृथ्वीपर विचरण करता ॥१३॥ इस प्रकारका जीवन व्यतीत करता हुआ वह एक दिन वनमें गया । वहाँ उसने देखा कि दावानल धधक रहा है । मननशील पृषध्र अपनी इन्द्रियोंको उसी अग्निमें भस्म करके परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गया ॥ १४ ॥

मनुका सबसे छोटा पुत्र था कवि । विषयोंसे वह अत्यन्त नि:स्पृह था । वह राज्य छोड़कर अपने बन्धुओंके साथ वनमें चला गया और अपने हृदयमें स्वयंप्रकाश परमात्माको विराजमान कर किशोर अवस्थामें ही परम पदको प्राप्त हो गया ॥ १५ ॥

मनुपुत्र करूषसे कारूष नामक क्षत्रिय उत्पन्न हुए । वे बड़े ही ब्राह्मणभक्त, धर्मप्रेमी एवं उत्तरापथके रक्षक थे ॥ १६ ॥ धृष्टके धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुए । अन्तमें वे इस शरीरसे ही ब्राह्मण बन गये । नृगका पुत्र हुआ सुमति, उसका पुत्र भूतज्योति और भूतज्योतिका पुत्र वसु था ॥ १७ ॥ वसुका पुत्र प्रतीक और प्रतीकका पुत्र ओघवान् । ओघवान्के पुत्रका नाम भी ओघवान् ही था । उनके एक ओघवती नामकी कन्या भी थी, जिसका विवाह सुदर्शनसे हुआ ॥ १८ ॥ मनुपुत्र नरिष्यन्तसे चित्रसेन, उससे ऋक्ष, ऋक्षसे मीढ्वान्, मीढ्वान्से कूर्च और उससे इन्द्रसेनकी उत्पत्ति हुई ॥ १९ ॥ इन्द्रसेनसे वीतिहोत्र, उससे सत्यश्रवा, सत्यश्रवासे उरुश्रवा और उससे देवदत्तकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ देवदत्तके अग्निवेश्य नामक पुत्र हुए, जो स्वयं अग्निदेव ही थे । आगे चलकर वे ही कानीन एवं महर्षि जातूकर्ण्यके नामसे विख्यात हुए ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! ब्राह्मणोंका 'आग्निवेश्यायन' गोत्र उन्हींसे चला

है। इस प्रकार नरिष्यन्तके वंशका मैंने वर्णन किया, अब दिष्टका वंश सुनो ॥ २२ ॥

दिष्टके पुत्रका नाम था नाभाग। यह उस नाभाग-से अलग है, जिसका मैं आगे वर्णन करूँगा। वह अपने कर्मके कारण वैश्य हो गया। उसका पुत्र हुआ भलन्दन और उसका वत्सप्रीति ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिका प्रांशु और प्रांशुका पुत्र हुआ प्रमति। प्रमतिके खनित्र, खनित्रके चाक्षुष और उनके विविंशति हुए ॥ २४ ॥ विविंशतिके पुत्र रम्भ और रम्भके पुत्र खनिनेत्र—दोनों ही परम धार्मिक हुए। उनके पुत्र करन्धम और करन्धमके अवीक्षित्। महाराज परीक्षित्! अवीक्षित्के पुत्र मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुए। उनसे अङ्गिराके पुत्र महायोगी संवर्त्त ऋषिने यज्ञ कराया था ॥ २५-२६ ॥ मरुत्तका यज्ञ जैसा हुआ, वैसा और किसीका नहीं हुआ। उस यज्ञके समस्त छोटे-बड़े पात्र अत्यन्त सुन्दर एवं सोनेके बने हुए थे ॥ २७ ॥ उस यज्ञमें इन्द्र सोमपान करके मतवाले हो गये थे और दक्षिणाओंसे ब्राह्मण तृप्त हो गये थे। उसमें परसनेवाले थे मरुद्गण और विश्वेदेव सभासद् थे ॥ २८ ॥

मरुत्तके पुत्रका नाम था दम। दमसे राज्यवर्धन, उससे सुधृति और सुधृतिसे नर नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई ॥२९॥ नरसे केवल, केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्से वेगवान्, वेगवान्-से बन्धु और बन्धुसे राजा तृणबिन्दुका जन्म हुआ ॥३०॥ तृणबिन्दु आदर्श गुणोंके भण्डार थे। अप्सराओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषा देवीने उनको वरण किया, जिससे उनके कई पुत्र और इडविडा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३१ ॥ मुनिवर विश्रवाने अपने योगेश्वर पिता पुलस्त्यजीसे उत्तम विद्या प्राप्त करके इडविडाके गर्भसे लोकपाल कुबेरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ महाराज तृणबिन्दुके अपनी धर्मपत्नीसे तीन पुत्र हुए—विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु। उनमेंसे राजा विशाल वंशधर हुए और उन्होंने वैशाली नामकी नगरी बसायी ॥ ३३ ॥ विशालसे हेमचन्द्र, हेमचन्द्रसे धूम्राक्ष, धूम्राक्षसे संयम और संयमसे दो पुत्र हुए—कृशाश्व और देवज ॥ ३४ ॥ कृशाश्वके पुत्रका नाम था सोमदत्त। उसने अश्वमेध यज्ञोंके द्वारा यज्ञपति भगवान्की आराधना की और योगेश्वर संतोंका आश्रय लेकर उत्तम गति प्राप्त की ॥ ३५ ॥ सोमदत्त-का पुत्र हुआ सुमति और सुमतिसे जनमेजय। ये सब तृणबिन्दुकी कीर्तिको बढ़ानेवाले विशालवंशी राजा हुए ॥ ३६ ॥

तीसरा अध्याय

महर्षि च्यवन और सुकन्याका चरित्र, राजा शर्यातिका वंश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मनुपुत्र राजा शर्याति वेदोंका निष्ठावान् विद्वान् था। उसने अङ्गिरा-गोत्रके ऋषियोंके यज्ञमें दूसरे दिनका कर्म बतलाया था ॥ १ ॥ उसकी एक कमललोचना कन्या थी। उसका नाम था सुकन्या। एक दिन राजा शर्याति अपनी कन्याके साथ वनमें घूमते-घूमते च्यवन ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे ॥ २ ॥ सुकन्या अपनी सखियोंके साथ वनमें घूम-घूमकर वृक्षोंका सौन्दर्य देख रही थी। उसने एक स्थानपर देखा कि बाँबी (दीमकोंकी एकत्रित की हुई मिट्टी) के छेदमेंसे जुगनूकी तरह दो ज्योतियाँ दीख रही हैं ॥ ३ ॥ दैवकी कुछ ऐसी ही प्रेरणा थी, सुकन्याने बालसुलभ चपलतासे एक काँटेके द्वारा उन ज्योतियोंको बेध दिया। इससे उनमेंसे बहुत-सा खून बह चला ॥४॥ उसी समय राजा शर्यातिके सैनिकोंका मल-मूत्र रुक गया। राजर्षि शर्यातिको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने अपने सैनिकोंसे कहा ॥ ५ ॥ 'अरे, तुमलोगोंने कहीं महर्षि च्यवनजीके प्रति कोई अनुचित व्यवहार तो नहीं कर दिया? मुझे तो यह स्पष्ट जान पड़ता है कि हमलोगोंमेंसे किसी-न-किसीने उनके आश्रममें कोई अनर्थ किया है ॥ ६ ॥ तब सुकन्याने अपने पितासे डरते-डरते कहा कि 'पिताजी! मैंने कुछ अपराध अवश्य किया है। मैंने अनजानमें दो ज्योतियोंको काँटेसे छेद दिया है ॥७॥ अपनी कन्याकी यह बात सुनकर शर्याति घबरा गये। उन्होंने धीरे-धीरे स्तुति करके बाँबीमें

छिपे हुए च्यवन मुनिको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर च्यवन मुनिका अभिप्राय जानकर उन्होंने अपनी कन्या उन्हें समर्पित कर दी । और इस सङ्कटसे छूटकर बड़ी सावधानीसे उनकी अनुमति लेकर वे अपनी राजधानीमें चले आये ॥ ९ ॥

इधर सुकन्या परम क्रोधी च्यवन मुनिको अपने पतिके रूपमें प्राप्त करके बड़ी सावधानीसे उनकी सेवा करती हुई उन्हें प्रसन्न करने लगी । वह उनकी मनोवृत्तिको जानकर उसके अनुसार ही बर्ताव करती थी ॥ १० ॥ कुछ समय बीत जानेपर उनके आश्रमपर दोनों अश्विनीकुमार आये । च्यवन मुनिने उनका यथोचित सत्कार किया और कहा कि—'आप दोनों समर्थ हैं, इसलिये मुझे युवा अवस्था प्रदान कीजिये । मेरा रूप एवं अवस्था ऐसी कर दीजिये, जिसे युवती स्त्रियाँ चाहती हैं। मैं जानता हूँ कि आपलोग सोमपानके अधिकारी नहीं हैं, फिर भी मैं आपको यज्ञमें सोमरसका भाग दूँगा॥११-१२॥ वैद्यशिरोमणि अश्विनीकुमारोंने महर्षि च्यवनका अभिनन्दन करके कहा, 'ठीक है ।' और इसके बाद उनसे कहा कि 'यह सिद्धोंके द्वारा बनाया हुआ कुण्ड है, आप इसमें स्नान कीजिये' ॥ १३ ॥ च्यवन मुनिके शरीरको बुढ़ापेने घेर रक्खा था । सब ओर नसें दीख रही थीं, झुर्रियाँ पड़ जाने एवं बाल पक जानेके कारण वे देखनेमें बहुत भद्दे लगते थे । अश्विनीकुमारोंने उन्हें अपने साथ लेकर कुण्डमें प्रवेश किया ॥ १४ ॥ उसी समय कुण्डसे तीन पुरुष बाहर निकले । वे तीनों ही कमलोंकी माला, कुण्डल और सुन्दर वस्त्र पहने एक-से मालूम होते थे । वे बड़े ही सुन्दर एवं स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाले थे ॥ १५ ॥ परम साध्वी सुन्दरी सुकन्याने जब देखा कि ये तीनों ही एक आकृतिके तथा सूर्यके समान तेजस्वी हैं, तब अपने पतिको न पहचानकर उसने अश्विनीकुमारोंकी शरण ली ॥ १६ ॥ उसके पातिव्रत्यसे अश्विनीकुमार बहुत सन्तुष्ट हुए । उन्होंने उसके पतिको बतला दिया और फिर च्यवन मुनिसे आज्ञा लेकर विमानके द्वारा वे स्वर्गको चले गये ॥ १७ ॥

कुछ समयके बाद यज्ञ करनेकी इच्छासे राजा शर्याति च्यवन मुनिके आश्रमपर आये । वहाँ उन्होंने देखा कि उनकी कन्या सुकन्याके पास एक सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष बैठा हुआ है ॥ १८ ॥ सुकन्याने उनके चरणोंकी वन्दना की । शर्यातिने उसे आशीर्वाद नहीं दिया और कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले ॥ १९ ॥ 'दुष्टे ! यह तूने क्या किया ? क्या तूने सबके वन्दनीय च्यवन मुनिको धोखा दे दिया ? अवश्य ही तूने उनको बूढ़ा और अपने कामका न समझकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुषकी सेवा कर रही है ॥ २० ॥ तेरा जन्म तो बड़े ऊँचे कुलमें हुआ था । यह उलटी बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हुई ? तेरा यह व्यवहार तो कुलमें कलङ्क लगानेवाला है । अरे राम-राम ! तू निर्लज्ज होकर जार पुरुषकी सेवा कर रही है और इस प्रकार अपने पिता और पति दोनोंके वंशको घोर नरकमें ले जा रही है' ॥ २१ ॥ राजा शर्यातिके इस प्रकार कहनेपर पवित्र मुसकानवाली सुकन्याने मुसकराकर कहा—'पिताजी ! ये आपके जामाता स्वयं भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं' ॥ २२ ॥ इसके बाद उसने अपने पितासे महर्षि च्यवनके यौवन और सौन्दर्यकी प्राप्तिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया । वह सब सुनकर राजा शर्याति अत्यन्त विस्मित हुए । उन्होंने बड़े प्रेमसे अपनी पुत्रीको गलेसे लगा लिया ॥ २३ ॥

महर्षि च्यवनने वीर शर्यातिसे सोमयज्ञका अनुष्ठान करवाया और सोमपानके अधिकारी न होनेपर भी अपने प्रभावसे अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया ॥ २४ ॥ इन्द्र बहुत जल्दी क्रोध कर बैठते हैं । इसलिये उनसे यह सहा न गया । उन्होंने चिढ़कर शर्यातिको मारनेके लिये वज्र उठाया । महर्षि च्यवनने वज्रके साथ उनके हाथको वहीं स्तम्भित कर दिया ॥ २५ ॥ तब सब देवताओंने अश्विनीकुमारोंको सोमका भाग देना स्वीकार कर लिया । उन लोगोंने वैद्य होनेके कारण पहले अश्विनीकुमारोंका सोमपानसे बहिष्कार कर रक्खा था ॥ २६ ॥

परीक्षित् ! शर्यातिके तीन पुत्र थे—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण । आनर्तसे रेवत हुए ॥ २७ ॥ महाराज ! रेवतने समुद्रके भीतर कुशस्थली नामकी एक नगरी बसायी थी । उसीमें रहकर वे आनर्त आदि देशों-

का राज्य करते थे ॥ २८ ॥ उनके सौ श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े थे ककुद्मी। ककुद्मी अपनी कन्या रेवतीको लेकर उसके लिये वर पूछनेके उद्देश्यसे ब्रह्माजीके पास गये। उस समय ब्रह्मलोकका रास्ता ऐसे लोगोंके लिये बेरोक-टोक था। ब्रह्मलोकमें गाने-बजानेकी धूम मची हुई थी। बातचीतके लिये अवसर न मिलनेके कारण वे कुछ क्षण वहीं ठहर गये ॥ २९-३० ॥ उत्सवके अन्तमें ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने अपना अभिप्राय निवेदन किया। उनकी बात सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने हँसकर उनसे कहा ॥३१॥ 'महाराज! तुमने अपने मनमें जिन लोगोंके विषयमें सोच रक्खा था, वे सब तो कालके गालमें चले गये। अब उनके पुत्र, पौत्र अथवा नातियोंकी तो बात ही क्या है, गोत्रोंके नाम भी नहीं सुनायी पड़ते ॥ ३२ ॥ इस बीचमें सत्ताईस चतुर्युगीका समय बीत चुका है। इसलिये तुम जाओ। इस समय भगवान् नारायणके अंशावतार महाबली बलदेवजी पृथ्वीपर विद्यमान हैं ॥ ३३ ॥ राजन्! उन्हीं नररत्नको यह कन्यारत्न तुम समर्पित कर दो। जिनके नाम, लीला आदिका श्रवण-कीर्तन बड़ा ही पवित्र है—वे ही प्राणियोंके जीवनसर्वस्व भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतीर्ण हुए हैं।' राजा ककुद्मीने ब्रह्माजीका यह आदेश प्राप्त करके उनके चरणोंकी वन्दना की और अपने नगरमें चले आये। उनके वंशजोंने यक्षोंके भयसे वह नगरी छोड़ दी थी और जहाँ-तहाँ यों ही निवास कर रहे थे ॥ ३४-३५ ॥ राजा ककुद्मीने अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी पुत्री परम बलशाली बलरामजीको सौंप दी और स्वयं तपस्या करनेके लिये भगवान् नर-नारायणके आश्रम बदरीवनकी ओर चल दिये ॥ ३६ ॥

चौथा अध्याय

नाभाग और अम्बरीषकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मनुपुत्र नभगका पुत्र था नाभाग। जब वह दीर्घकालतक ब्रह्मचर्यका पालन करके लौटा, तब बड़े भाइयोंने अपनेसे छोटे किन्तु विद्वान् भाईको हिस्सेमें केवल पिताको ही दिया (सम्पत्ति तो उन्होंने पहले ही आपसमें बाँट ली थी) ॥ १ ॥ उसने अपने भाइयोंसे पूछा—'भाइयो! आपलोगोंने मुझे हिस्सेमें क्या दिया है?' तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'हम तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको ही तुम्हें देते हैं।' उसने अपने पितासे जाकर कहा—'पिताजी! मेरे बड़े भाइयोंने हिस्सेमें मेरे लिये आपको ही दिया है।' पिताने कहा—'बेटा! तुम उनकी बात न मानो ॥ २ ॥ देखो, ये बड़े बुद्धिमान् आङ्गिरस-गोत्रके ब्राह्मण इस समय एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। परन्तु मेरे विद्वान् पुत्र! वे प्रत्येक छठे दिन अपने कर्ममें भूल कर बैठते हैं ॥ ३ ॥ तुम उन महात्माओंके पास जाकर उन्हें वैश्वदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दो; जब वे स्वर्ग जाने लगेंगे, तब यज्ञसे बचा हुआ अपना सारा धन तुम्हें दे देंगे। इसलिये अब तुम उन्हींके पास चले जाओ।' उसने अपने पिताके आज्ञानुसार वैसा ही किया। उन आङ्गिरसगोत्री ब्राह्मणोंने भी यज्ञका बचा हुआ धन उसे दे दिया और वे स्वर्गमें चले गये ॥४-५॥

जब नाभाग उस धनको लेने लगा, तब उत्तर दिशासे एक काले रंगका पुरुष आया। उसने कहा—'इस यज्ञभूमिमें जो कुछ बचा हुआ है, वह सब धन मेरा है ॥ ६ ॥

नाभागने कहा—'ऋषियोंने यह धन मुझे दिया है, इसलिये मेरा है।' इसपर उस पुरुषने कहा—'हमारे विवादके विषयमें तुम्हारे पितासे ही प्रश्न किया जाय।' तब नाभागने जाकर पितासे पूछा ॥ ७ ॥ पिताने कहा—'एक बार दक्षप्रजापतिके यज्ञमें ऋषिलोग यह निश्चय कर चुके हैं कि यज्ञभूमिमें जो कुछ बच रहता है, वह सब रुद्रदेवका हिस्सा है। इसलिये वह धन तो महादेवजीको ही मिलना चाहिये' ॥ ८ ॥ नाभागने जाकर उन काले रंगके पुरुष रुद्रभगवान्‌को प्रणाम किया और कहा कि 'प्रभो! यज्ञभूमिकी सभी वस्तुएँ आपकी हैं, मेरे पिताने ऐसा ही कहा है। भगवन्! मुझसे अपराध

हुआ, मैं सिर झुकाकर आपसे क्षमा माँगता हूँ' ॥ ९ ॥ तब भगवान् रुद्रने कहा—'तुम्हारे पिताने धर्मके अनुकूल निर्णय दिया है और तुमने भी मुझसे सत्य ही कहा है। तुम वेदोंका अर्थ तो पहलेसे ही जानते हो। अब मैं तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान देता हूँ ॥ १० ॥ यहाँ यज्ञमें बचा हुआ मेरा जो अंश है, यह धन भी मैं तुम्हें ही दे रहा हूँ; तुम इसे स्वीकार करो।' इतना कहकर सत्यप्रेमी भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये ॥११॥ जो मनुष्य प्रातः और सायंकाल एकाग्रचित्तसे इस आख्यानका स्मरण करता है, वह प्रतिभाशाली एवं वेदज्ञ तो होता ही है, साथ ही अपने स्वरूपको भी जान लेता है ॥ १२ ॥ नाभागके पुत्र हुए अम्बरीष। वे भगवान्के बड़े प्रेमी एवं उदार धर्मात्मा थे। जो ब्रह्मशाप कभी कहीं रोका नहीं जा सका, वह भी अम्बरीषका स्पर्श न कर सका ॥ १३ ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! मैं परमज्ञानी राजर्षि अम्बरीषका चरित्र सुनना चाहता हूँ। ब्राह्मणने क्रोधित होकर उन्हें ऐसा दण्ड दिया, जो किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता; परन्तु वह भी उनका कुछ न बिगाड़ सका ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! अम्बरीष बड़े भाग्यवान् थे। पृथ्वीके सातों द्वीप, अचल सम्पत्ति और अतुलनीय ऐश्वर्य उनको प्राप्त था। यद्यपि ये सब साधारण मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ हैं, फिर भी वे इन्हें स्वप्नतुल्य समझते थे। क्योंकि वे जानते थे कि जिस धन-वैभवके लोभमें पड़कर मनुष्य घोर नरकमें जाता है, वह केवल चार दिनकी चाँदनी है। उसका दीपक तो बुझा-बुझाया है॥ १५-१६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णमें और उनके प्रेमी साधुओंमें उनका परम प्रेम था। उस प्रेमके प्राप्त हो जानेपर तो यह सारा विश्व और इसकी समस्त सम्पत्तियाँ मिट्टीके ढेलेके समान जान पड़ती हैं ॥१७॥ उन्होंने अपने मनको श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्द-युगलमें, वाणीको भगवद्गुणानुवर्णनमें, हाथोंको श्रीहरि-मन्दिरके मार्जन-सेचनमें और अपने कानोंको भगवान् अच्युतकी मङ्गलमयी कथाके श्रवणमें लगा रक्खा था ॥१८॥ उन्होंने अपने नेत्र मुकुन्दमूर्ति एवं मन्दिरोंके दर्शनोंमें, अङ्ग-सङ्ग भगवद्भक्तोंके शरीर-स्पर्शमें, नासिका उनके चरणकमलोंपर चढ़ी श्रीमती तुलसीके दिव्य गन्धमें और रसना (जिह्वा) को भगवान्के प्रति अर्पित नैवेद्य-प्रसादमें संलग्न कर दिया था ॥ १९ ॥ अम्बरीषके पैर भगवान्के क्षेत्र आदिकी पैदल यात्रा करनेमें ही लगे रहते और वे सिरसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी वन्दना किया करते। राजा अम्बरीषने माला, चन्दन आदि भोग-सामग्रीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर दिया था। भोगनेकी इच्छासे नहीं, बल्कि इसलिये कि इससे वह भगवत्प्रेम प्राप्त हो, जो पवित्रकीर्ति भगवान्के निज-जनोंमें ही निवास करता है ॥ २० ॥ इस प्रकार उन्होंने अपने सारे कर्म यज्ञपुरुष, इन्द्रियातीत भगवान्के प्रति उन्हें सर्वात्मा एवं सर्वस्वरूप समझकर समर्पित कर दिये थे। और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार वे इस पृथ्वीका शासन करते थे ॥ २१ ॥ उन्होंने 'धन्व' नामके निर्जल देशमें सरस्वती नदीके प्रवाहके सामने वसिष्ठ, असित, गौतम आदि भिन्न-भिन्न आचार्यों-द्वारा महान् ऐश्वर्यके कारण सर्वाङ्गपरिपूर्ण तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेकों अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधना की थी ॥ २२ ॥ उनके यज्ञोंमें देवताओंके साथ जब सदस्य और ऋत्विज बैठ जाते थे, तब उनकी पलकें नहीं पड़ती थीं और वे अपने सुन्दर वस्त्र और वैसे ही रूपके कारण देवताओंके समान दिखायी पड़ते थे ॥ २३ ॥ उनकी प्रजा महात्माओंके द्वारा गाये हुए भगवान्के उत्तम चरित्रोंका किसी समय बड़े प्रेमसे श्रवण करती और किसी समय उनका गान करती। इस प्रकार उनके राज्यके मनुष्य देवताओंके अत्यन्त प्यारे स्वर्गकी भी इच्छा नहीं करते ॥ २४ ॥ वे अपने हृदयमें अनन्त प्रेमका दान करनेवाले श्रीहरिका नित्य-निरन्तर दर्शन करते रहते थे। इसलिये उन लोगोंको वह भोग-सामग्री भी हर्षित नहीं कर पाती थी, जो बड़े-बड़े सिद्धोंको भी दुर्लभ है। वे वस्तुएँ उनके आत्मानन्दके सामने अत्यन्त तुच्छ और तिरस्कृत थीं ॥ २५ ॥ राजा अम्बरीष इस प्रकार तपस्यासे युक्त भक्तियोग और प्रजापालनरूप स्वधर्मके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करने लगे और धीरे-धीरे उन्होंने सब प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग कर दिया ॥ २६ ॥ घर, स्त्री,

पुत्र, भाई-बन्धु, बड़े-बड़े हाथी, रथ, घोड़े एवं पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना, अक्षय रत्न, आभूषण और आयुध आदि समस्त वस्तुओं तथा कभी समाप्त न होनेवाले कोशोंके सम्बन्धमें उनका ऐसा दृढ़ निश्चय था कि वे सब-के-सब असत्य हैं ॥ २७ ॥ उनकी अनन्य प्रेममयी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उनकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया था, जो विरोधियोंको भयभीत करनेवाला एवं भगवद्भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है ॥ २८ ॥

राजा अम्बरीषकी पत्नी भी उन्हींके समान धर्मशील, संसारसे विरक्त एवं भक्तिपरायण थीं। एक बार उन्होंने अपनी पत्नीके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिये एक वर्षतक द्वादशीप्रधान एकादशी-व्रत करनेका नियम ग्रहण किया ॥ २९ ॥ व्रतकी समाप्ति होनेपर कार्तिक महीनेमें उन्होंने तीन रातका उपवास किया और एक दिन यमुनाजीमें स्नान करके मधुवनमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ ३० ॥ उन्होंने महाभिषेककी विधिसे सब प्रकारकी सामग्री और सम्पत्तिद्वारा भगवान्‌का अभिषेक किया और हृदयसे तन्मय होकर वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला एवं अर्घ्य आदिके द्वारा उनकी पूजा की। यद्यपि महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंको इस पूजाकी कोई आवश्यकता नहीं थी, स्वयं ही उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं—वे सिद्ध थे—तथापि राजा अम्बरीषने भक्तिभावसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् पहले ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट और अत्यन्त गुणकारी भोजन कराकर उन लोगोंके घर साठ करोड़ गौएँ सुसज्जित करके भेज दीं। उन गौओंके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए थे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिये गये थे। वे गौएँ बड़ी सुशील, छोटी अवस्थाकी, देखनेमें सुन्दर, बछड़ेवाली और खूब दूध देनेवाली थीं। उनके साथ दुहनेकी उपयुक्त सामग्री भी उन्होंने भेजवा दी थी ॥ ३१—३४ ॥ जब ब्राह्मणोंको सब कुछ मिल चुका, तब राजाने उन लोगोंसे आज्ञा लेकर व्रतका पारण करनेकी तैयारी की। उसी समय शाप और वरदान देनेमें समर्थ स्वयं दुर्वासाजी भी उनके यहाँ अतिथिके रूपमें पधारे ॥ ३५ ॥

अम्बरीष उन्हें देखते ही उठकर खड़े हो गये, आसन देकर बैठाया और विविध सामग्रियोंसे अतिथिके रूपमें आये हुए दुर्वासाजीकी पूजा की। उनके चरणोंमें प्रणाम करके अम्बरीषने भोजनके लिये प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ दुर्वासाजीने अम्बरीषकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इसके बाद आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिये वे नदीतटपर चले गये। वे ब्रह्मका ध्यान करते हुए यमुनाके पवित्र जलमें स्नान करने लगे ॥ ३७ ॥ इधर द्वादशी केवल घड़ीभर शेष रह गयी थी। धर्मज्ञ अम्बरीषने धर्म-सङ्कटमें पड़कर ब्राह्मणोंके साथ परामर्श किया ॥ ३८ ॥ उन्होंने कहा—'ब्राह्मणदेवताओ! ब्राह्मणको बिना भोजन कराये स्वयं खा लेना और द्वादशी रहते पारण न करना—दोनों ही दोष हैं। इसलिये इस समय जैसा करनेसे मेरी भलाई हो और मुझे पाप न लगे, ऐसा काम करना चाहिये ॥ ३९ ॥ तब ब्राह्मणोंके साथ विचार करके उन्होंने कहा—'ब्राह्मणो! श्रुतियोंमें ऐसा कहा गया है कि जल पी लेना भोजन करना भी है, नहीं भी करना है। इसलिये इस समय केवल जलसे पारण किये लेता हूँ ॥ ४० ॥ ऐसा निश्चय करके मन-ही-मन भगवान्‌का चिन्तन करते हुए राजर्षि अम्बरीषने जल पी लिया और परीक्षित्! वे केवल दुर्वासाजीके आनेकी बाट देखने लगे ॥ ४१ ॥ दुर्वासाजी आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होकर यमुनातटसे लौट आये। जब राजाने आगे बढ़कर उनका अभिनन्दन किया, तब उन्होंने अनुमानसे ही समझ लिया कि राजाने पारण कर लिया है ॥ ४२ ॥ उस समय दुर्वासाजी बहुत भूखे थे। इसलिये यह जानकर कि राजाने पारण कर लिया है, वे क्रोधसे थर-थर काँपने लगे। भौंहोंके चढ़ जानेसे उनका मुँह विकट हो गया। उन्होंने हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीषसे डाँटकर कहा ॥ ४३ ॥ 'अहो! देखो तो सही, यह कितना क्रूर है! यह धनके मदमें मतवाला हो रहा है। भगवान्‌की भक्ति तो इसे छूतक नहीं गयी और यह अपनेको बड़ा समर्थ मानता है। आज इसने धर्मका उल्लङ्घन करके बड़ा अन्याय किया है ॥ ४४ ॥ देखो, मैं इसका अतिथि होकर आया हूँ। इसने अतिथिसत्कार करनेके लिये मुझे निमन्त्रण भी दिया है, किन्तु फिर भी मुझे खिलाये बिना ही खा

लिया है। अच्छा देख, तुझे अभी इसका फल चखाता हूँ' ॥ ४५ ॥ यों कहते-कहते वे क्रोधसे जल उठे। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और उससे अम्बरीष-को मार डालनेके लिये एक कृत्या उत्पन्न की। वह प्रलयकालकी आगके समान दहक रही थी ॥ ४६ ॥ वह आगके समान जलती हुई, हाथमें तलवार लेकर राजा अम्बरीषपर टूट पड़ी। उस समय उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँप रही थी। परन्तु राजा अम्बरीष देख-कर उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे एक पग भी नहीं हटे, ज्यों-के-त्यों खड़े रहे ॥ ४७ ॥ परमपुरुष परमात्माने अपने सेवककी रक्षाके लिये पहलेसे ही सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर रक्खा था। जैसे आग क्रोधसे गुर्राते हुए साँपको भस्म कर देती है, वैसे ही चक्रने दुर्वासाजीकी कृत्याको जलाकर राखका ढेर कर दिया ॥ ४८ ॥ जब दुर्वासाजीने देखा कि मेरी बनायी हुई कृत्या तो जल रही है और चक्र मेरी ओर आ रहा है, तब वे भयभीत हो अपने प्राण बचानेके लिये जी छोड़कर एकाएक भाग निकले ॥ ४९ ॥ जैसे ऊँची-ऊँची लपटोंवाला दावानल साँपके पीछे दौड़ता है, वैसे ही भगवान्‌का चक्र उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। जब दुर्वासाजीने देखा कि चक्र तो मेरे पीछे लग गया है, तब सुमेरु पर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेके लिये वे उसी ओर दौड़ पड़े ॥ ५० ॥ दुर्वासाजी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल-वितल आदि नीचेके लोक, समुद्र, लोकपाल और उनके द्वारा सुरक्षित लोक एवं स्वर्गतकमें गये; परन्तु जहाँ-जहाँ वे गये, वहीं-वहीं उन्होंने असह्य तेजवाले सुदर्शन चक्रको अपने पीछे लगा देखा ॥ ५१ ॥ जब उन्हें कहीं भी कोई रक्षक न मिला, तब तो वे और भी डर गये। अपने लिये त्राण ढूँढ़ते हुए वे देवशिरोमणि ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'ब्रह्माजी! आप स्वयम्भू हैं। भगवान्‌के इस तेजोमय चक्रसे मेरी रक्षा कीजिये' ॥ ५२ ॥

ब्रह्माजीने कहा—'जब मेरी दो परार्धकी आयु समाप्त होगी और कालस्वरूप भगवान् अपनी यह सृष्टि-लीला समेटने लगेंगे, और इस जगत्‌को जलाना चाहेंगे उस समय उनके भ्रूभङ्गमात्रसे यह सारा संसार और मेरा यह लोक भी लीन हो जायगा ॥ ५३ ॥ मैं, शङ्करजी, दक्ष-भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसारका हित करते हैं, (उनके भक्तके द्रोहीको बचानेमें हम समर्थ नहीं हैं)' ॥ ५४ ॥ जब ब्रह्माजीने इस प्रकार दुर्वासाको निराश कर दिया, तब भगवान्‌के चक्रसे सन्तप्त होकर वे कैलासवासी भगवान् शङ्करकी शरणमें गये ॥ ५५ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—'दुर्वासाजी! जिन अनन्त परमेश्वरमें ब्रह्मा-जैसे जीव और उनके उपाधिभूत कोश, इस ब्रह्माण्डके समान ही अनेकों ब्रह्माण्ड समयपर पैदा होते हैं और समय आनेपर फिर उनका पता भी नहीं चलता, जिनमें हमारे-जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं—उन प्रभुके सम्बन्धमें हम कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥ ५६ ॥ मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरि तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर—ये हम सभी भगवान्‌की मायाको नहीं जान सकते। क्योंकि हम उसी मायाके घेरेमें हैं ॥ ५७-५८ ॥ यह चक्र उन विश्वेश्वरका शस्त्र है। यह हम लोगोंके लिये असह्य है। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। वे भगवान् ही तुम्हारा मङ्गल करेंगे' ॥ ५९ ॥ वहाँसे भी निराश होकर दुर्वासा भगवान्‌के परमधाम वैकुण्ठमें गये। लक्ष्मीपति भगवान् लक्ष्मीके साथ वहीं निवास करते हैं ॥ ६० ॥ दुर्वासाजी भगवान्‌के चक्रकी आगसे जल रहे थे। वे काँपते हुए भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने कहा—'हे अच्युत! हे अनन्त! आप संतोंके एकमात्र वाञ्छनीय हैं। प्रभो! विश्वके जीवनदाता! मैं अपराधी हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६१ ॥ आपका परम प्रभाव न जाननेके कारण ही मैंने आपके प्यारे भक्तका अपराध किया है। प्रभो! आप मुझे उससे बचाइये। आपके तो नामका ही उच्चारण करनेसे नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है' ॥ ६२ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तों-के अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें

कर रक्खा है । भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे ॥ ६३ ॥ ब्रह्मन् ! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ । इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाशरहित लक्ष्मीको ॥ ६४ ॥ जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक— सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका सङ्कल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ ? ॥६५॥ जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं ॥ ६६ ॥ मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं । मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य-सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते; फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही क्या है ॥ ६७ ॥ दुर्वासाजी ! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ । वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता ॥ ६८ ॥ दुर्वासाजी ! सुनिये, मैं आपको एक उपाय बताता हूँ । जिसका अनिष्ट करनेसे आपको इस विपत्तिमें पड़ना पड़ा है, आप उसीके पास जाइये । निरपराध साधुओंके अनिष्टकी चेष्टासे अनिष्ट करनेवाले-का ही अमङ्गल होता है ॥ ६९ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणोंके लिये तपस्या और विद्या परम कल्याणके साधन हैं । परन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड और अन्यायी हो जाय, तो वे ही दोनों उलटा फल देने लगते हैं ॥ ७० ॥ दुर्वासाजी ! आपका कल्याण हो । आप नाभागनन्दन परम भाग्यशाली राजा अम्बरीषके पास जाइये और उनसे क्षमा माँगिये । तब आपको शान्ति मिलेगी ॥ ७१ ॥

पाँचवाँ अध्याय

दुर्वासाजीकी दुःखनिवृत्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब सुदर्शन चक्रकी ज्वालासे जलते हुए दुर्वासा लौटकर राजा अम्बरीषके पास आये और उन्होंने अत्यन्त दुखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये ॥ १ ॥ दुर्वासाजीकी यह चेष्टा देखकर और उनके चरण पकड़नेसे लज्जित होकर राजा अम्बरीष भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे । उस समय उनका हृदय दयावश अत्यन्त पीडित हो रहा था ॥ २ ॥

अम्बरीषने कहा—प्रभो सुदर्शन ! आप अग्निस्वरूप हैं । आप ही परम समर्थ सूर्य हैं । समस्त नक्षत्रमण्डल-के अधिपति चन्द्रमा भी आपके स्वरूप हैं । जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पञ्चतन्मात्रा और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रूपमें भी आप ही हैं ॥ ३ ॥ भगवान्‌के प्यारे, हजार दाँतवाले चक्रदेव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले एवं पृथ्वीके रक्षक ! आप इन ब्राह्मणकी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥ आप ही धर्म हैं, मधुर एवं सत्य वाणी हैं; आप ही समस्त यज्ञोंके अधिपति और स्वयं यज्ञ भी हैं । आप समस्त लोकोंके रक्षक एवं सर्वलोकस्वरूप भी हैं । आप परमपुरुष परमात्माके श्रेष्ठ तेज हैं ॥ ५ ॥ सुनाभ ! आप समस्त धर्मोंकी मर्यादाके रक्षक हैं । अधर्मका आचरण करनेवाले असुरोंको भस्म करनेके लिये आप साक्षात् अग्नि हैं । आप ही तीनों लोकोंके रक्षक एवं विशुद्ध तेजोमय हैं । आपकी गति मनके वेगके समान है और आपके कर्म अद्भुत हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ वेदवाणीके अधीश्वर ! आपके धर्ममय तेजसे अन्धकारका नाश होता है और सूर्य आदि महापुरुषोंके प्रकाशकी रक्षा होती है । आपकी महिमाका पार पाना अत्यन्त कठिन है । ऊँचे-नीचे और छोटे-बड़ेके भेद-भावसे युक्त यह समस्त कार्यकारणात्मक संसार आपका ही स्वरूप है ॥ ७ ॥ सुदर्शन चक्र ! आपपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता । जिस समय निरंजन भगवान् आपको चलाते हैं और आप दैत्य एवं दानवोंकी सेनामें प्रवेश करते हैं, उस समय युद्धभूमिमें उनकी भुजा,

उदर, जंघा, चरण और गरदन आदि निरन्तर काटते हुए आप अत्यन्त शोभायमान होते हैं ॥ ८ ॥ विश्वके रक्षक ! आप रणभूमिमें सबका प्रहार सह लेते हैं, आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । गदाधारी भगवान्‌ने दुष्टोंके नाशके लिये ही आपको नियुक्त किया है । आप कृपा करके हमारे कुलके भाग्योदयके लिये दुर्वासाजीका कल्याण कीजिये । हमारे ऊपर यह आपका महान् अनुग्रह होगा ॥ ९ ॥ यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्मका पालन किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों, तो दुर्वासाजीकी जलन मिट जाय ॥ १० ॥ भगवान् समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं । यदि मैंने समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें उन्हें देखा हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो दुर्वासाजीके हृदयकी सारी जलन मिट जाय ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब राजा अम्बरीषने दुर्वासाजीको सब ओरसे जलानेवाले भगवान्‌के सुदर्शन चक्रकी इस प्रकार स्तुति की, तब उनकी प्रार्थनासे चक्र शान्त हो गया ॥ १२ ॥ जब दुर्वासा चक्रकी आगसे मुक्त हो गये और उनका चित्त स्वस्थ हो गया, तब वे राजा अम्बरीषको अनेकानेक उत्तम आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १३ ॥

दुर्वासाजीने कहा—धन्य है ! आज मैंने भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका महत्त्व देखा । राजन् ! मैंने आपका अपराध किया, फिर भी आप मेरे लिये मङ्गलकामना ही कर रहे हैं ॥ १४ ॥ जिन्होंने भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको दृढ़ प्रेमभावसे पकड़ लिया है—उन साधुपुरुषोंके लिये कौन-सा कार्य कठिन है ? जिनका हृदय उदार है, वे महात्मा भला, किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते ? ॥ १५ ॥ जिनके मङ्गलमय नामोंके श्रवणमात्रसे जीव निर्मल हो जाता है—उन्हीं तीर्थपाद भगवान्‌के चरणकमलोंके जो दास हैं, उनके लिये कौन-सा कर्तव्य शेष रह जाता है ? ॥ १६ ॥ महाराज अम्बरीष ! आपका हृदय करुणाभावसे परिपूर्ण है । आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया । अहो, आपने मेरे अपराधको भुलाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की है ! ॥ १७ ॥

परीक्षित् ! जबसे दुर्वासाजी भागे थे, तबसे अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था । वे उनके लौटनेकी बाट देख रहे थे । अब उन्होंने दुर्वासाजीके चरण पकड़ लिये और उन्हें प्रसन्न करके विधिपूर्वक भोजन कराया ॥ १८ ॥ राजा अम्बरीष बड़े आदरसे अतिथिके योग्य सब प्रकारकी भोजन-सामग्री ले आये । दुर्वासाजी भोजन करके तृप्त हो गये । अब उन्होंने आदरसे कहा—'राजन् ! अब आप भी भोजन कीजिये ॥ १९ ॥ अम्बरीष ! आप भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त हैं । आपके दर्शन, स्पर्श, बातचीत और मनको भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करनेवाले आतिथ्यसे मैं अत्यन्त प्रसन्न और अनुगृहीत हुआ हूँ ॥ २० ॥ स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ बार-बार आपके इस उज्ज्वल चरित्रका गान करेंगी । यह पृथ्वी भी आपकी परम पुण्यमयी कीर्तिका संकीर्तन करती रहेगी' ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—दुर्वासाजीने बहुत ही सन्तुष्ट होकर राजा अम्बरीषके गुणोंकी प्रशंसा की और उसके बाद उनसे अनुमति लेकर आकाशमार्गसे उस ब्रह्मलोककी यात्रा की, जो केवल निष्काम कर्मसे ही प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! जब सुदर्शन चक्रसे भयभीत होकर दुर्वासाजी भगे थे, तबसे लेकर उनके लौटनेतक एक वर्षका समय बीत गया । इतने दिनोंतक राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी आकाङ्क्षासे केवल जल पीकर ही रहे ॥ २३ ॥ जब दुर्वासाजी चले गये, तब उनके भोजनसे बचे हुए अत्यन्त पवित्र अन्नका उन्होंने भोजन किया । अपने कारण दुर्वासाजीका दुःखमें पड़ना और फिर अपनी ही प्रार्थनासे उनका छूटना—इन दोनों बातोंको उन्होंने अपनेद्वारा होनेपर भी भगवान्‌की ही महिमा समझा ॥ २४ ॥ राजा अम्बरीषमें ऐसे-ऐसे अनेकों गुण थे । अपने समस्त कर्मोंके द्वारा वे परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्‌में भक्तिभावकी अभिवृद्धि करते रहते थे । उस भक्तिके प्रभावसे उन्होंने ब्रह्मलोकतकके समस्त भोगोंको नरकके समान समझा ॥ २५ ॥ तदनन्तर राजा अम्बरीषने अपने ही समान भक्त पुत्रोंपर राज्यका भार छोड़ दिया और स्वयं वे वनमें चले गये । वहाँ वे बड़ी धीरताके साथ आत्मस्वरूप भगवान्‌में अपना मन लगाकर

गुणोंके प्रवाहरूप संसारसे मुक्त हो गये ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! महाराज अम्बरीषका यह परम पवित्र आख्यान है। जो इसका सङ्कीर्तन और स्मरण करता है, वह भगवान्‌का भक्त हो जाता है ॥ २७ ॥

छठा अध्याय

इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषिकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अम्बरीषके तीन पुत्र थे—विरूप, केतुमान् और शम्भु। विरूपसे पृषदश्व और उसका पुत्र रथीतर हुआ ॥ १ ॥ रथीतर सन्तानहीन था। वंश परम्पराकी रक्षाके लिये उसने अङ्गिरा ऋषिसे प्रार्थना की, उन्होंने उसकी पत्नीसे ब्रह्मतेज-से सम्पन्न कई पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ यद्यपि ये सब रथीतरकी भार्यासे उत्पन्न हुए थे, इसलिये इनका गोत्र वही होना चाहिये था जो रथीतरका था, फिर भी वे आङ्गिरस ही कहलाये। ये ही रथीतर वंशियोंके प्रवर (कुलमें सर्वश्रेष्ठ पुरुष) कहलाये। क्योंकि ये क्षत्रोपेत ब्राह्मण थे—क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों गोत्रोंसे इनका सम्बन्ध था ॥ ३ ॥

परीक्षित् ! एक बार मनुजीके छींकनेपर उनकी नासिकासे इक्ष्वाकु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़े तीन थे—विकुक्षि, निमि और दण्डक ॥ ४ ॥ परीक्षित् ! उनसे छोटे पचीस पुत्र आर्यावर्तके पूर्वभागके और पचीस पश्चिमभागके तथा उपर्युक्त तीन मध्यभागके अधिपति हुए। शेष सैंतालीस दक्षिण आदि अन्य प्रान्तोंके अधिपति हुए ॥ ५ ॥ एक बार राजा इक्ष्वाकुने अष्टका-श्राद्धके समय अपने बड़े पुत्रको आज्ञा दी—'विकुक्षे ! शीघ्र ही जाकर श्राद्धके योग्य पवित्र पशुओंका मांस लाओ' ॥ ६ ॥ वीर विकुक्षिने 'बहुत अच्छा' कहकर वनकी यात्रा की। वहाँ उसने श्राद्धके योग्य बहुत-से पशुओंका शिकार किया। वह थक तो गया ही था, भूख भी लग आयी थी इसलिये यह बात भूल गया कि श्राद्धके लिये मारे हुए पशुको स्वयं न खाना चाहिये। उसने एक खरगोश खा लिया ॥ ७ ॥ विकुक्षिने बचा हुआ मांस लाकर अपने पिताको दिया। इक्ष्वाकुने अब अपने गुरुसे उसे प्रोक्षण करनेके लिये कहा, तब गुरुजी-ने बताया कि यह मांस तो दूषित एवं श्राद्धके अयोग्य है ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! गुरुजीके कहनेपर राजा इक्ष्वाकु-को अपने पुत्रकी करतूतका पता चल गया। उन्होंने शास्त्रीय विधिका उल्लङ्घन करनेवाले पुत्रको क्रोधवश अपने देशसे निकाल दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर राजा इक्ष्वाकुने अपने गुरुदेव वसिष्ठसे ज्ञानविषयक चर्चा की। फिर योगके द्वारा शरीरका परित्याग करके उन्होंने परम पद प्राप्त किया ॥ १० ॥ पिताका देहान्त हो जानेपर विकुक्षि अपनी राजधानीमें लौट आया और इस पृथ्वीका शासन करने लगा। उसने बड़े-बड़े यज्ञोंसे भगवान्‌की आराधना की, और संसारमें शशादके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ११ ॥ विकुक्षिके पुत्रका नाम था पुरञ्जय। उसीको कोई 'इन्द्रवाह' और कोई 'ककुत्स्थ' कहते हैं। जिन कर्मोंके कारण उसके ये नाम पड़े थे, उन्हें सुनो ॥ १२ ॥

सत्ययुगके अन्तमें देवताओंका दानवोंके साथ घोर संग्राम हुआ था। उसमें सब-के-सब देवता दैत्योंसे हार गये। तब उन्होंने वीर पुरञ्जयको सहायताके लिये अपना मित्र बनाया ॥ १३ ॥ पुरञ्जयने कहा कि 'यदि देवराज इन्द्र मेरे वाहन बनें, तो मैं युद्ध कर सकता हूँ।' पहले तो इन्द्रने अस्वीकार कर दिया, परन्तु देवताओंके आराध्यदेव सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान्‌की बात मानकर पीछे वे एक बड़े भारी बैल बन गये ॥ १४ ॥ सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णुने अपनी शक्तिसे पुरञ्जयको भर दिया। उन्होंने कवच पहनकर दिव्य धनुष और तीखे बाण ग्रहण किये। इसके बाद बैलपर चढ़कर वे उसके ककुद (डील) के पास बैठ गये। जब इस प्रकार वे युद्धके लिये तत्पर हुए, तब देवता उनकी स्तुति करने लगे। देवताओंको साथ लेकर उन्होंने पश्चिमकी ओरसे दैत्योंका नगर घेर लिया ॥ १५-१६ ॥ वीर पुरञ्जयका दैत्योंके साथ अत्यन्त रोमाञ्चकारी घोर संग्राम हुआ। युद्धमें

जो-जो दैत्य उनके सामने आये, पुरञ्जयने बाणोंके द्वारा उन्हें यमराजके हवाले कर दिया ॥ १७ ॥ उनके बाणों-की वर्षा क्या थी, प्रलयकालकी धधकती हुई आग थी। जो भी उसके सामने आता, छिन्न-भिन्न हो जाता। दैत्योंका साहस जाता रहा। वे रणभूमि छोड़कर अपने-अपने घरोंमें घुस गये ॥ १८ ॥ पुरञ्जयने उनका नगर, धन और ऐश्वर्य—सब कुछ जीतकर इन्द्रको दे दिया। इसीसे उन राजर्षिको पुर जीतनेके कारण 'पुरञ्जय', इन्द्रको वाहन बनानेके कारण 'इन्द्रवाह' और बैलके ककुद्पर बैठनेके कारण 'ककुत्स्थ' कहा जाता है॥ १९ ॥

पुरञ्जयका पुत्र था अनेना। उसका पुत्र पृथु हुआ। पृथुके विश्वरन्धि, उसके चन्द्र और चन्द्रके युवनाश्व।२०। युवनाश्वके पुत्र हुए शाबस्त, जिन्होंने शाबस्तीपुरी बसायी। शाबस्तके बृहदश्व और उसके कुवलयाश्व हुए ॥ २१ ॥ ये बड़े बली थे। इन्होंने उतङ्क ऋषिको प्रसन्न करनेके लिये अपने इक्कीस हजार पुत्रोंको साथ लेकर धुन्धु नामक दैत्यका वध किया ॥ २२ ॥ इसीसे उनका नाम हुआ 'धुन्धुमार'। धुन्धु दैत्यके मुखकी आगसे उनके सब पुत्र जल गये। केवल तीन ही बच रहे थे।२३। परीक्षित्! बचे हुए पुत्रोंके नाम थे—दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व। दृढाश्वसे हर्यश्व और उससे निकुम्भका जन्म हुआ ॥ २४ ॥ निकुम्भके बर्हणाश्व, उसके कृशाश्व, कृशाश्वके सेनजित् और सेनजित्के युवनाश्व नामक पुत्र हुआ। युवनाश्व सन्तानहीन था, इसलिये वह बहुत दुखी होकर अपनी सौ स्त्रियोंके साथ वनमें चला गया। वहाँ ऋषियोंने बड़ी कृपा करके युवनाश्वसे पुत्र-प्राप्तिके लिये बड़ी एकाग्रताके साथ इन्द्रदेवताका यज्ञ कराया ॥ २५-२६ ॥ एक दिन राजा युवनाश्वको रात्रि-के समय बड़ी प्यास लगी। वह यज्ञशालामें गया, किन्तु वहाँ देखा कि ऋषिलोग तो सो रहे हैं। तब जल मिलनेका और कोई उपाय न देख उसने वह मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल ही पी लिया ॥ २७ ॥ परीक्षित्! जब प्रातःकाल ऋषिलोग सोकर उठे और उन्होंने देखा कि कलशमें तो जल ही नहीं है, तब उन लोगोंने पूछा कि 'यह किसका काम है? पुत्र उत्पन्न करनेवाला जल किसने पी लिया?' ॥ २८ ॥ अन्तमें जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान्की प्रेरणासे राजा युवनाश्वने ही उस जलको पी लिया है, तो उन लोगोंने भगवान्के चरणोंमें नमस्कार किया और कहा—'धन्य है! भगवान्का बल ही वास्तवमें बल है' ॥ २९ ॥ इसके बाद प्रसवका समय आनेपर युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर उसके एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥ उसे रोते देख ऋषियोंने कहा—'यह बालक दूधके लिये बहुत रो रहा है; अतः किसका दूध पियेगा?' तब इन्द्रने कहा, 'मेरा पियेगा (मां धाता)' 'बेटा! तू रो मत।' यह कहकर इन्द्रने अपनी तर्जनी अँगुली उसके मुँहमें डाल दी ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण और देवताओंके प्रसाद-से उस बालकके पिता युवनाश्वकी भी मृत्यु नहीं हुई। वह वहीं तपस्या करके मुक्त हो गया ॥ ३२ ॥ परीक्षित्! इन्द्रने उस बालकका नाम रक्खा त्रसद्दस्यु, क्योंकि रावण आदि दस्यु (लुटेरे) उससे उद्विग्न एवं भयभीत रहते थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वके पुत्र मान्धाता (त्रसद्दस्यु) चक्रवर्ती राजा हुए। भगवान्के तेजसे तेजस्वी होकर उन्होंने अकेले ही सातों द्वीपवाली पृथ्वीका शासन किया ॥ ३४ ॥ वे यद्यपि आत्मज्ञानी थे, उन्हें कर्म-काण्डकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी—फिर भी उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे उन यज्ञस्वरूप प्रभुकी आराधना की जो स्वयंप्रकाश, सर्वदेवस्वरूप, सर्वात्मा एवं इन्द्रियातीत हैं ॥ ३५ ॥ भगवान्के अतिरिक्त और है ही क्या? यज्ञकी सामग्री, मन्त्र, विधि-विधान, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज, धर्म, देश और काल—यह सब-का-सब भगवान्का ही स्वरूप तो है ॥ ३६ ॥ परीक्षित्! जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वे अस्त होते हैं, वह सारा-का-सारा भूभाग युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके ही अधिकारमें था ॥ ३७ ॥

राजा मान्धाताकी पत्नी शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती थी। उसके गर्भसे उनके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, अम्बरीष (ये दूसरे अम्बरीष हैं) और योगी मुचुकुन्द। इनकी पचास बहनें थीं। उन पचासोंने अकेले सौभरि ऋषिको पतिके रूपमें वरण किया ॥ ३८ ॥ परम तपस्वी सौभरिजी एक बार यमुनाजलमें डुबकी लगाकर तपस्या कर रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक मत्स्य-

राज अपनी पत्नियोंके साथ बहुत सुखी हो रहा है ।३९। उसके इस सुखको देखकर ब्राह्मण सौभरिके मनमें भी विवाह करनेकी इच्छा जग उठी और उन्होंने राजा मान्धाताके पास आकर उनकी पचास कन्याओंमेंसे एक कन्या माँगी । राजाने कहा—'ब्रह्मन् ! कन्या स्वयंवरमें आपको चुन लें, तो आप उसे ले लीजिये' ॥ ४० ॥ सौभरि ऋषि राजा मान्धाताका अभिप्राय समझ गये । उन्होंने सोचा कि 'राजाने इसलिये मुझे ऐसा सूखा जवाब दिया है कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, बाल पक गये हैं और सिर काँपने लगा है ! अब कोई स्त्री मुझसे प्रेम नहीं कर सकती ॥ ४१ ॥ अच्छी बात है ! मैं अपनेको ऐसा सुन्दर बनाऊँगा कि राजकन्याएँ तो क्या, देवाङ्गनाएँ भी मेरे लिये लालायित हो जायँगी ।' ऐसा सोचकर समर्थ सौभरिजीने वैसा ही किया ॥ ४२ ॥

फिर क्या था, अन्तःपुरके रक्षकने सौभरि मुनिको कन्याओंके सजे-सजाये महलमें पहुँचा दिया । फिर तो उन पचासों राजकन्याओंने एक सौभरिको ही अपना पति चुन लिया ॥ ४३ ॥ उन कन्याओंका मन सौभरिजीमें इस प्रकार आसक्त हो गया कि वे उनके लिये आपसके प्रेमभावको तिलाञ्जलि देकर परस्पर कलह करने लगीं और एक-दूसरीसे कहने लगीं कि 'ये तुम्हारे योग्य नहीं, मेरे योग्य हैं' ॥ ४४ ॥ ऋग्वेदी सौभरिने उन सभीका पाणिग्रहण कर लिया । वे अपनी अपार तपस्याके प्रभावसे बहुमूल्य सामग्रियोंसे सुसज्जित, अनेकों उपवनों और निर्मल जलसे परिपूर्ण सरोवरोंसे युक्त एवं सौगन्धिक पुष्पोंके बगीचोंसे घिरे महलोंमें बहुमूल्य शय्या, आसन, वस्त्र, आभूषण, स्नान, अनुलेपन, सुस्वादु भोजन और पुष्पमालाओंके द्वारा अपनी पत्नियोंके साथ विहार करने लगे । सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये स्त्री-पुरुष सर्वदा उनकी सेवामें लगे रहते । कहीं पक्षी चहकते रहते, तो कहीं भौंरे गुंजार करते रहते । और कहीं-कहीं वन्दीजन उनकी विरदावलीका बखान करते रहते ॥ ४५-४६ ॥ सप्तद्वीपवती पृथ्वीके स्वामी मान्धाता सौभरिजीकी इस गृहस्थीका सुख देखकर आश्चर्यचकित हो गये । उनका यह गर्व कि, मैं सार्वभौम सम्पत्तिका स्वामी हूँ, जाता रहा ॥ ४७ ॥ इस प्रकार सौभरिजी गृहस्थीके सुखमें रम गये और अपनी नीरोग इन्द्रियोंसे अनेकों विषयोंका सेवन करते रहे । फिर भी जैसे घीकी बूँदोंसे आग तृप्त नहीं होती, वैसे ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ ॥ ४८ ॥

ऋग्वेदाचार्य सौभरिजी एक दिन स्वस्थ चित्तसे बैठे हुए थे । उस समय उन्होंने देखा कि मत्स्यराजके क्षणभरके सङ्गसे मैं किस प्रकार अपनी तपस्या तथा अपना आपातक खो बैठा ॥ ४९ ॥ वे सोचने लगे—'अरे, मैं तो बड़ा तपस्वी था । मैंने भलीभाँति अपने व्रतोंका अनुष्ठान भी किया था । मेरा यह अधःपतन तो देखो ! मैंने दीर्घकालसे अपने ब्रह्मतेजको अक्षुण्ण रक्खा था, परन्तु जलके भीतर विहार करती हुई एक मछलीके संसर्गसे मेरा वह ब्रह्मतेज नष्ट हो गया ॥ ५० ॥ अतः जिसे मोक्षकी इच्छा है, उस पुरुषको चाहिये कि वह भोगी प्राणियोंका सङ्ग सर्वथा छोड़ दे और एक क्षणके लिये भी अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख न होने दे । अकेला ही रहे और एकान्तमें अपने चित्तको सर्वशक्तिमान् भगवान्‌में ही लगा दे । यदि सङ्ग करनेकी आवश्यकता ही हो, तो भगवान्‌के अनन्यप्रेमी निष्ठावान् महात्माओंका ही सङ्ग करे ॥ ५१ ॥ मैं पहले एकान्तमें अकेला ही तपस्यामें संलग्न था । फिर जलमें मछलीका सङ्ग होनेसे विवाह करके पचास हो गया और फिर सन्तानोंके रूपमें पाँच हजार । विषयोंमें सत्यबुद्धि होनेसे मायाके गुणोंने मेरी बुद्धि हर ली । अब तो लोक और परलोकके सम्बन्धमें मेरा मन इतनी लालसाओंसे भर गया है कि मैं किसी तरह उनका पार ही नहीं पाता ॥ ५२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे कुछ दिनोंतक तो घरमें ही रहे । फिर विरक्त होकर उन्होंने संन्यास ले लिया और वे वनमें चले गये । अपने पतिको ही सर्वस्व माननेवाली उनकी पत्नियोंने भी उनके साथ ही वनकी यात्रा की ॥ ५३ ॥ वहाँ जाकर परम संयमी सौभरिजीने बड़ी घोर तपस्या की, शरीरको सुखा दिया तथा आहवनीय आदि अग्नियोंके साथ ही अपने-आपको परमात्मामें लीन कर दिया ॥ ५४ ॥ परीक्षित् ! उनकी पत्नियोंने जब अपने पति सौभरि मुनिकी आध्यात्मिक गति देखी, तब जैसे ज्वालाएँ शान्त अग्निमें लीन हो जाती हैं—वैसे ही वे उनके प्रभावसे सती होकर उन्हींमें लीन हो गयीं, उन्हींकी गतिको प्राप्त हुईं ।५५।

सातवाँ अध्याय

राजा त्रिशङ्कु और हरिश्चन्द्रकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मैं वर्णन कर चुका हूँ कि मान्धाताके पुत्रोंमें सबसे श्रेष्ठ अम्बरीष थे। उनके दादा युवनाश्वने उन्हें पुत्र रूपमें स्वीकार कर लिया। उनका पुत्र हुआ यौवनाश्व और यौवनाश्वका हारीत। मान्धाताके वंशमें ये तीन अवान्तर गोत्रोंके प्रवर्तक हुए ॥ १ ॥ नागोंने अपनी बहिन नर्मदाका विवाह पुरुकुत्ससे कर दिया था। नागराज वासुकि-की आज्ञासे नर्मदा अपने पतिको रसातलमें ले गयी ॥ २ ॥ वहाँ भगवान्‌की शक्तिसे सम्पन्न होकर पुरुकुत्सने वध करनेयोग्य गन्धर्वोंको मार डाला। इसपर नागराजने प्रसन्न होकर पुरुकुत्सको वर दिया कि जो इस प्रसङ्गका स्मरण करेगा, वह सर्पोंसे निर्भय हो जायगा ॥ ३ ॥ राजा पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु था। उसके पुत्र हुए अनरण्य। अनरण्यके हर्यश्व, उसके अरुण और अरुणके त्रिबन्धन हुए ॥ ४ ॥ त्रिबन्धनके पुत्र सत्यव्रत हुए। यही सत्यव्रत त्रिशङ्कुके नामसे विख्यात हुए। यद्यपि त्रिशङ्कु अपने पिता और गुरुके शापसे चाण्डाल हो गये थे, परन्तु विश्वामित्रजीके प्रभाव-से वे सशरीर स्वर्गमें चले गये। देवताओंने उन्हें वहाँसे ढकेल दिया और वे नीचेको सिर किये हुए गिर पड़े परन्तु विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे उन्हें आकाशमें ही स्थिर कर दिया। वे अब भी आकाशमें लटके हुए दीखते हैं ॥ ५-६ ॥

त्रिशङ्कुके पुत्र थे हरिश्चन्द्र। उनके लिये विश्वामित्र और वसिष्ठ एक दूसरेको शाप देकर पक्षी हो गये और बहुत वर्षोंतक लड़ते रहे ॥ ७ ॥ हरिश्चन्द्रके कोई सन्तान न थी। इससे वे बहुत उदास रहा करते थे। नारदके उपदेशसे वे वरुणदेवताकी शरणमें गये और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! मुझे पुत्र प्राप्त हो ॥८॥ महाराज ! यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो मैं उसीसे आपका यजन करूँगा।' वरुणने कहा—'ठीक है।' तब वरुणकी कृपासे हरिश्चन्द्रके रोहित नामका पुत्र हुआ ।९। पुत्र होते ही वरुणने आकर कहा—'हरिश्चन्द्र ! तुम्हें पुत्र प्राप्त हो गया। अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब आपका यह यज्ञपशु (रोहित) दस दिनसे अधिकका हो जायगा, तब यज्ञके योग्य होगा ॥ १० ॥ दस दिन बीतनेपर वरुणने आकर फिर कहा—'अब मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब आपके यज्ञपशुके मुँहमें दाँत निकल आयँगे, तब वह यज्ञके योग्य होगा ॥ ११ ॥ दाँत उग आनेपर वरुणने कहा—'अब इसके दाँत निकल आये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब इसके दूधके दाँत गिर जायँगे, तब यह यज्ञके योग्य होगा ॥ १२ ॥ दूधके दाँत गिर जानेपर वरुणने कहा—'अब इस यज्ञपशुके दाँत गिर गये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब इसके दुबारा दाँत आ जायँगे, तब यह पशु यज्ञके योग्य हो जायगा ॥ १३ ॥ दाँतोंके फिर उग आनेपर वरुणने कहा—'अब मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा 'वरुणजी महाराज ! क्षत्रिय पशु तब यज्ञके योग्य होता है, जब वह कवच धारण करने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्रके प्रेमसे हीला-हवाला करके समय टालते रहे। इसका कारण यह था कि पुत्र-स्नेहकी फाँसीने उनके हृदयको जकड़ लिया था। वे जो-जो समय बताते, वरुणदेवता उसीकी बाट देखते ॥ १५ ॥ जब रोहितको इस बातका पता चला कि पिताजी तो मेरा बलिदान करना चाहते हैं, तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये हाथमें धनुष लेकर वनमें चला गया ॥ १६ ॥ कुछ दिनके बाद उसे मालूम हुआ कि वरुणदेवताने रुष्ट होकर मेरे पिताजीपर आक्रमण किया है—जिसके कारण वे महोदर रोगसे पीड़ित हो रहे हैं, तब रोहित अपने नगरकी ओर चल पड़ा। परन्तु इन्द्रने आकर उसे रोक दिया ॥ १७ ॥ उन्होंने कहा—'बेटा रोहित ! यज्ञपशु बनकर मरनेकी अपेक्षा तो पवित्र तीर्थ और क्षेत्रोंका सेवन करते हुए पृथ्वीमें विचरना ही अच्छा है।' इन्द्रकी बात मानकर वह एक वर्षतक और वनमें ही रहा ॥ १८ ॥ इसी प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ष भी रोहितने अपने पिताके पास जानेका विचार किया; परन्तु बूढ़े

ब्राह्मणका वेष धारण कर हर बार इन्द्र आते और उसे रोक देते ॥ १९ ॥ इस प्रकार छः वर्षतक रोहित वनमें ही रहा। सातवें वर्ष जब वह अपने नगरको लौटने लगा, तब उसने अजीगर्तसे उनके मझले पुत्र शुनः-शेपको मोल ले लिया और उसे यज्ञपशु बनानेके लिये अपने पिताको सौंपकर उनके चरणोंमें नमस्कार किया। तब परम यशस्वी एवं श्रेष्ठ चरित्रवाले राजा हरिश्चन्द्रने महोदर रोगसे छूटकर पुरुषमेध यज्ञद्वारा वरुण आदि देवताओंका यजन किया। उस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता हुए। परम संयमी जमदग्निने अध्वर्युका काम किया। वसिष्ठजी ब्रह्मा बने और अयास्य मुनि सामगान करनेवाले उद्गाता बने। उस समय इन्द्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको एक सोनेका रथ दिया था ॥ २०—२३ ॥

परीक्षित्! आगे चलकर मैं शुनःशेपका माहात्म्य वर्णन करूँगा। हरिश्चन्द्रको अपनी पत्नीके साथ सत्यमें दृढ़तापूर्वक स्थित देखकर विश्वामित्रजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें उस ज्ञानका उपदेश किया, जिसका कभी नाश नहीं होता। उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्रने अपने मनको पृथ्वीमें, पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें स्थिर करके, आकाशको अहङ्कारमें लीन कर दिया। फिर अहङ्कारको महत्तत्त्वमें लीन करके उसमें ज्ञान-कलाका ध्यान किया और उससे अज्ञानको भस्म कर दिया ॥ २४—२६ ॥ इसके बाद निर्वाण-सुखकी अनुभूतिसे उस ज्ञान-कलाका भी परित्याग कर दिया और समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर वे अपने उस स्वरूपमें स्थित हो गये, जो न तो किसी प्रकार बतलाया जा सकता है और न उसके सम्बन्धमें किसी प्रकारका अनुमान ही किया जा सकता है ॥ २७ ॥

आठवाँ अध्याय

सगर-चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रोहितका पुत्र था हरित। हरितसे चम्प हुआ। उसीनें चम्पापुरी बसायी थी। चम्पसे सुदेव और उसका पुत्र विजय हुआ ॥ १ ॥ विजयका भरुक, भरुकका वृक और वृकका पुत्र हुआ बाहुक। शत्रुओंने बाहुकसे राज्य छीन लिया, तब वह अपनी पत्नीके साथ वनमें चला गया ॥ २ ॥ वनमें जानेपर बुढ़ापेके कारण जब बाहुककी मृत्यु हो गयी, तब उसकी पत्नी भी उसके साथ सती होनेको उद्यत हुई। परन्तु महर्षि और्वको यह मालूम था कि इसे गर्भ है। इसलिये उन्होंने उसे सती होनेसे रोक दिया ॥ ३ ॥ जब उसकी सौतोंको यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने उसे भोजनके साथ गर (विष) दे दिया। परन्तु गर्भपर उस विषका कोई प्रभाव नहीं पड़ा; बल्कि उस विषको लिये हुए ही एक बालकका जन्म हुआ, जो गरके साथ पैदा होनेके कारण 'सगर' कहलाया। सगर बड़े यशस्वी राजा हुए ॥ ४ ॥

सगर चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्हींके पुत्रोंने पृथ्वी खोदकर समुद्र बना दिया था। सगरने अपने गुरुदेव और्वकी आज्ञा मानकर तालजङ्घ, यवन, शक, हैहय और बर्बर जातिके लोगोंका वध नहीं किया, बल्कि उन्हें विरूप बना दिया। उनमेंसे कुछके सिर मुड़वा दिये, कुछके मूँछ-दाढ़ी रखवा दी, कुछको खुले बालोंवाला बना दिया तो कुछको आधा मुँड़वा दिया ॥ ५-६ ॥ कुछ लोगोंको सगरने केवल वस्त्र ओढ़नेकी ही आज्ञा दी, पहननेकी नहीं। और कुछको केवल लँगोटी पहननेको ही कहा, ओढ़नेको नहीं। इसके बाद राजा सगरने और्व ऋषिके उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञके द्वारा सम्पूर्ण वेद एवं देवतामय, आत्मस्वरूप, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की आराधना की। उसके यज्ञमें जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे इन्द्रने चुरा लिया ॥ ७-८ ॥ उस समय महारानी सुमतिके गर्भसे उत्पन्न सगरके पुत्रोंने अपने पिताके आज्ञानुसार घोड़ेके लिये सारी पृथ्वी छान डाली। जब उन्हें कहीं घोड़ा न मिला, तब उन्होंने बड़े घमंडसे सब ओरसे पृथ्वीको खोद डाला ॥ ९ ॥ खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तरके कोनेपर कपिल मुनिके पास अपना घोड़ा

दिखायी दिया। घोड़ेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रक्खी हैं! यह पापी है। इसको मार डालो, मार डालो!' उसी समय कपिल मुनिने अपनी पलकें खोलीं ॥ १०-११ ॥ इन्द्रने राजकुमारोंकी बुद्धि हर ली थी, इसीसे उन्होंने कपिलमुनि-जैसे महापुरुषका तिरस्कार किया। इस तिरस्कारके फलस्वरूप उनके शरीरमें ही आग जल उठी, जिससे क्षणभरमें ही वे सब-के-सब जलकर खाक हो गये ॥ १२ ॥ परीक्षित्! सगरके लड़के कपिलमुनिके क्रोधसे जल गये, ऐसा कहना उचित नहीं है। वे तो शुद्ध सत्त्वगुणके परम आश्रय हैं। उनका शरीर तो जगत्को पवित्र करता रहता है। उनमें भला, क्रोधरूप तमोगुणकी सम्भावना कैसे की जा सकती है। भला, कहीं पृथ्वीकी धूलका भी आकाशसे सम्बन्ध होता है?॥ १३॥ यह संसार-सागर एक मृत्युमय पथ है। इसके पार जाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु कपिलमुनिने इस जगत्में सांख्यशास्त्रकी एक ऐसी दृढ़ नाव बना दी है, जिससे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला कोई भी व्यक्ति उस समुद्रके पार जा सकता है। वे केवल परम ज्ञानी ही नहीं, स्वयं परमात्मा हैं। उनमें भला, यह शत्रु है और यह मित्र—इस प्रकारकी भेद-बुद्धि कैसे हो सकती है? ॥ १४ ॥

सगरकी दूसरी पत्नीका नाम था केशिनी। उसके गर्भसे उन्हें असमञ्जस नामका पुत्र हुआ था। असमञ्जसके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वह अपने दादा सगरकी आज्ञाओंके पालन तथा उन्हींकी सेवामें लगा रहता॥१५॥ असमञ्जस पहले जन्ममें योगी थे। सङ्गके कारण वे योगसे विचलित हो गये थे, परन्तु अब भी उन्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना हुआ था। इसलिये वे ऐसे काम किया करते थे, जिनसे भाई-बन्धु उन्हें प्रिय न समझें। वे कभी-कभी तो अत्यन्त निन्दित कर्म कर बैठते और अपनेको पागल-सा दिखलाते—यहाँतक कि खेलते हुए बच्चोंको सरयूमें डाल देते। इस प्रकार उन्होंने लोगोंको उद्विग्न कर दिया था ॥ १६-१७ ॥ अन्तमें उनकी ऐसी करतूत देखकर पिताने पुत्र-स्नेहको तिलाञ्जलि दे दी और उन्हें त्याग दिया। तदनन्तर असमञ्जसने अपने योगबलसे उन सब बालकोंको जीवित कर दिया और अपने पिताको दिखाकर वे वनमें चले गये ॥ १८ ॥ अयोध्याके नागरिकोंने जब देखा कि हमारे बालक तो फिर लौट आये, तब उन्हें असीम आश्चर्य हुआ और राजा सगरको भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ ॥ १९ ॥ इसके बाद राजा सगरकी आज्ञासे अंशुमान् घोड़ेको ढूँढ़नेके लिये निकले। उन्होंने अपने चाचाओंके द्वारा खोदे हुए समुद्रके किनारे-किनारे चलकर उनके शरीरके भस्मके पास ही घोड़ेको देखा ॥ २० ॥ वहीं भगवान्‌के अवतार कपिल मुनि बैठे हुए थे। उनको देखकर उदारहृदय अंशुमान्‌ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एकाग्र मनसे उनकी स्तुति की ॥ २१ ॥

अंशुमान्‌ने कहा—भगवन्! आप अजन्मा ब्रह्माजीसे भी परे हैं। इसीलिये वे आपको प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। देखनेकी बात तो अलग रही—वे समाधि करते-करते एवं युक्ति लड़ाते-लड़ाते हार गये, किन्तु आजतक आपको समझ भी नहीं पाये। हमलोग तो उनके मन, शरीर और बुद्धिसे होनेवाली सृष्टिके द्वारा बने हुए अज्ञानी जीव हैं। तब भला, हम आपको कैसे समझ सकते हैं ॥ २२ ॥ संसारके शरीरधारी सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुणप्रधान हैं। वे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंमें केवल गुणमय पदार्थों, विषयोंको और सुषुप्ति-अवस्थामें केवल अज्ञान-ही-अज्ञान देखते हैं। इसका कारण यह है कि वे आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं। वे बहिर्मुख होनेके कारण बाहरकी वस्तुओंको तो देखते हैं, पर अपने ही हृदयमें स्थित आपको नहीं देख पाते ॥ २३ ॥ आप एकरस, ज्ञानघन हैं। सनन्दन आदि मुनि, जो आत्मस्वरूपके अनुभवसे मायाके गुणोंके द्वारा होनेवाले भेदभावको और उसके कारण अज्ञानको नष्ट कर चुके हैं, आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। मायाके गुणोंमें ही भूला हुआ मैं मूढ़ किस प्रकार आपका चिन्तन करूँ? ॥ २४ ॥ माया, उसके गुण और गुणोंके कारण होनेवाले कर्म एवं कर्मोंके संस्कारसे

बना हुआ लिङ्गशरीर आपमें है ही नहीं। न तो आपका नाम है और न तो रूप। आपमें न कार्य है और न तो कारण। आप सनातन आत्मा हैं। ज्ञानका उपदेश करनेके लिये ही आपने यह शरीर धारण कर रक्खा है। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२५॥ प्रभो! यह संसार आपकी मायाकी करामात है। इसको सत्य समझकर काम, लोभ, ईर्ष्या और मोहसे लोगोंका चित्त शरीर तथा घर आदिमें भटकने लगता है। लोग इसीके चक्करमें फँस जाते हैं॥ २६॥ समस्त प्राणियोंके आत्मा प्रभो! आज आपके दर्शनसे मेरे मोहकी वह दृढ़ फाँसी कट गयी जो कामना, कर्म और इन्द्रियोंको जीवन-दान देती है॥ २७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अंशुमान्‌ने भगवान् कपिलमुनिके प्रभावका इस प्रकार गान किया, तब उन्होंने मन-ही-मन अंशुमान्‌पर बड़ा अनुग्रह किया और कहा—॥ २८॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—'बेटा! यह घोड़ा तुम्हारे पितामहका यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओंका उद्धार केवल गङ्गाजलसे होगा, और कोई उपाय नहीं है'॥ २९॥ अंशुमान्‌ने बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रसन्न करके उनकी परिक्रमा की और वे घोड़ेको ले आये। सगरने उस यज्ञपशुके द्वारा यज्ञकी शेष क्रिया समाप्त की॥ ३०॥ तब राजा सगरने अंशुमान्‌को राज्यका भार सौंप दिया और वे स्वयं विषयोंसे निःस्पृह एवं बन्धनमुक्त हो गये। उन्होंने महर्षि और्वके बतलाये हुए मार्गसे परमपदकी प्राप्ति की॥ ३१॥

नवाँ अध्याय

भगीरथ-चरित्र और गङ्गावतरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अंशुमान्‌ने गङ्गाजीको लानेकी कामनासे बहुत वर्षोंतक घोर तपस्या की। परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली, समय आनेपर उनकी मृत्यु हो गयी॥ १॥ अंशुमान्‌के पुत्र दिलीपने भी वैसी ही तपस्या की। परन्तु वे भी असफल ही रहे, समयपर उनकी भी मृत्यु हो गयी। दिलीपके पुत्र थे भगीरथ। उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की ॥२॥ उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती गङ्गाने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये आयी हूँ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथने बड़ी नम्रतासे अपना अभिप्राय प्रकट किया कि 'आप मर्त्यलोकमें चलिये'॥ ३॥

[**गङ्गाजीने कहा**—] 'जिस समय मैं स्वर्गसे पृथ्वीतलपर गिरूँ, उस समय मेरे वेगको कोई धारण करनेवाला होना चाहिये। भगीरथ! ऐसा न होनेपर मैं पृथ्वीको फोड़कर रसातलमें चली जाऊँगी॥ ४॥ इसके अतिरिक्त इस कारणसे भी मैं पृथ्वीपर नहीं जाऊँगी कि लोग मुझमें अपने पाप धोयेंगे। फिर मैं उस पापको कहाँ धोऊँगी। भगीरथ! इस विषयमें तुम स्वयं विचार कर लो'॥ ५॥

भगीरथने कहा—'माता! जिन्होंने लोक-परलोक, धन-सम्पत्ति और स्त्री-पुत्रकी कामनाका संन्यास कर दिया है, जो संसारसे उपरत होकर अपने-आपमें शान्त हैं, जो ब्रह्मनिष्ठ और लोकोंको पवित्र करनेवाले परोपकारी सज्जन हैं—वे अपने अङ्गस्पर्शसे तुम्हारे पापोंको नष्ट कर देंगे। क्योंकि उनके हृदयमें अघरूप अघासुरको मारनेवाले भगवान् सर्वदा निवास करते हैं॥ ६॥ समस्त प्राणियोंके आत्मा रुद्रदेव तुम्हारा वेग धारण कर लेंगे। क्योंकि जैसे साड़ी सूतोंमें ओतप्रोत है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्रमें ही ओतप्रोत है'॥ ७॥ परीक्षित्! गङ्गाजीसे इस प्रकार कहकर राजा भगीरथने तपस्याके द्वारा भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया। थोड़े ही दिनोंमें महादेवजी उनपर प्रसन्न हो गये॥ ८॥ भगवान् शङ्कर तो सम्पूर्ण विश्वके हितैषी हैं, राजाकी बात उन्होंने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार कर ली। फिर शिवजीने सावधान होकर गङ्गाजीको अपने सिरपर धारण किया। क्यों न हो, भगवान्‌के चरणोंका

गङ्गावतरण

शिवजीने सावधान होकर गङ्गाजीको अपने सिरपर धारण किया। [पृष्ठ ५१२

सम्पर्क होनेके कारण गङ्गाजीका जल परम पवित्र जो है ॥९॥ इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवनपावनी गङ्गाजीको वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरोंके शरीर राखके ढेर बने पड़े थे ॥१०॥ वे वायुके समान वेगसे चलनेवाले रथपर सवार होकर आगे-आगे चल रहे थे और उनके पीछे-पीछे मार्गमें पड़नेवाले देशोंको पवित्र करती हुई गङ्गाजी दौड़ रही थीं। इस प्रकार गङ्गासागर-सङ्गमपर पहुँचकर उन्होंने सगरके जले हुए पुत्रोंको अपने जलमें डुबा दिया ॥ ११ ॥ यद्यपि सगरके पुत्र ब्राह्मणके तिरस्कारके कारण भस्म हो गये थे, इसलिये उनके उद्धारका कोई उपाय न था—फिर भी केवल शरीरकी राखके साथ गङ्गाजलका स्पर्श हो जानेसे ही वे स्वर्गमें चले गये ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! जब गङ्गाजलसे शरीरकी राखका स्पर्श हो जानेसे सगरके पुत्रोंको स्वर्गकी प्राप्ति हो गयी, तब जो लोग श्रद्धाके साथ नियम लेकर श्रीगङ्गाजीका सेवन करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ १३ ॥ मैंने गङ्गाजीकी महिमाके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि गङ्गाजी भगवान्‌के उन चरणकमलोंसे निकली हैं, जिनका श्रद्धाके साथ चिन्तन करके बड़े-बड़े मुनि निर्मल हो जाते हैं और तीनों गुणोंके कठिन बन्धनको काटकर तुरंत भगवत्स्वरूप बन जाते हैं। फिर गङ्गाजी संसारका बन्धन काट दें, इसमें कौन बड़ी बात है ॥ १४-१५ ॥

भगीरथका पुत्र था श्रुत, श्रुतका नाभ। यह नाभ पूर्वोक्त नाभसे भिन्न है। नाभका पुत्र था सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपका अयुतायु। अयुतायुके पुत्रका नाम था ऋतुपर्ण। वह नलका मित्र था। उसने नलको पासा फेंकनेकी विद्याका रहस्य बतलाया था और बदलेमें उससे अश्वविद्या सीखी थी। ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ ॥ १६-१७ ॥ परीक्षित् ! सर्वकामके पुत्रका नाम था सुदास। सुदासके पुत्रका नाम था सौदास और सौदासकी पत्नीका नाम था मदयन्ती। सौदासको ही कोई-कोई मित्रसह कहते हैं और कहीं-कहीं उसे कल्मापपाद भी कहा गया है। वह वसिष्ठके शापसे राक्षस हो गया था और फिर अपने कर्मोंके कारण सन्तानहीन हुआ ॥ १८ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! हम यह जानना चाहते हैं कि महात्मा सौदासको गुरु वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया। यदि कोई गोपनीय बात न हो तो कृपया बतलाइये ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! एक बार राजा सौदास शिकार खेलने गये हुए थे। वहाँ उन्होंने किसी राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड़ दिया। उसने राजाके इस कामको अन्याय समझा और उनसे भाईकी मृत्युका बदला लेनेके लिये वह रसोइयेका रूप धारण करके उनके घर गया। जब एक दिन भोजन करनेके लिये गुरु वसिष्ठजी राजाके यहाँ आये, तब उसने मनुष्यका मांस राँधकर उन्हें परस दिया ॥ २०-२१ ॥ जब सर्वसमर्थ वसिष्ठजीने देखा कि परोसी जानेवाली वस्तु तो नितान्त अभक्ष्य है, तब उन्होंने क्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि 'जा, इस कामसे तू राक्षस हो जायगा' ॥ २२ ॥ जब उन्हें यह बात माल्म हुई कि यह काम तो राक्षसका है—राजाका नहीं, तब उन्होंने उस शापको केवल बारह वर्षके लिये कर दिया। उस समय राजा सौदास भी अपनी अञ्जलिमें जल लेकर गुरु वसिष्ठको शाप देनेके लिये उद्यत हुए ॥ २३ ॥ परन्तु उनकी पत्नी मदयन्तीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। इसपर सौदासने विचार किया कि 'दिशाएँ, आकाश और पृथ्वी—सब-के-सब तो जीवमय ही हैं। तब यह तीक्ष्ण जल कहाँ छोड़ूँ ?' अन्तमें उन्होंने उस जलको अपने पैरोंपर डाल लिया। [इसीसे उनका नाम 'मित्रसह' हुआ] ॥ २४ ॥ उस जलसे उनके पैर काले पड़ गये थे, इसलिये उनका नाम 'कल्माषपाद' भी हुआ। अब वे राक्षस हो चुके थे। एक दिन राक्षस बने हुए राजा कल्माषपादने एक वनवासी ब्राह्मण-दम्पतिको सहवासके समय देख लिया ॥ २५ ॥ कल्माषपादको भूख तो लगी ही थी, उसने ब्राह्मणको पकड़ लिया। ब्राह्मण-पत्नीकी कामना अभी पूर्ण नहीं हुई थी। उसने कहा—'राजन् ! आप राक्षस नहीं हैं। आप महारानी मदयन्तीके पति और इक्ष्वाकुवंशके वीर महारथी हैं। आपको ऐसा अधर्म नहीं करना चाहिये। मुझे सन्तानकी कामना

है और इस ब्राह्मणकी भी कामनाएँ अभी पूर्ण नहीं हुई हैं। इसलिये आप मुझे मेरा यह ब्राह्मण पति दे दीजिये ॥२६-२७॥ राजन्! यह मनुष्यशरीर जीवको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला है। इसलिये वीर! इस शरीरको नष्ट कर देना सभी पुरुषार्थोंकी हत्या कही जाती है ॥ २८ ॥ फिर यह ब्राह्मण तो विद्वान् है। तपस्या, शील और बड़े-बड़े गुणोंसे सम्पन्न है। यह उन पुरुषोत्तम परब्रह्मकी समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें आराधना करना चाहता है, जो समस्त पदार्थोंमें विद्यमान रहते हुए भी उनके पृथक्-पृथक् गुणोंसे छिपे हुए हैं ॥ २९ ॥ राजन्! आप शक्तिशाली हैं। आप धर्मका मर्म भलीभाँति जानते हैं। जैसे पिताके हाथों पुत्रकी मृत्यु उचित नहीं, वैसे ही आप-जैसे श्रेष्ठ राजर्षिके हाथों मेरे श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि पतिका वध किसी प्रकार उचित नहीं है ॥ ३० ॥ आपका साधु-समाजमें बड़ा सम्मान है। भला आप मेरे परोपकारी, निरपराध, श्रोत्रिय एवं ब्रह्मवादी पतिका वध कैसे ठीक समझ रहे हैं? ये तो गौके समान निरीह हैं ॥ ३१ ॥ फिर भी यदि आप इन्हें खा ही डालना चाहते हैं, तो पहले मुझे खा डालिये। क्योंकि अपने पतिके बिना मैं मुर्देके समान हो जाऊँगी और एक क्षण भी जीवित न रह सकूँगी' ।३२। ब्राह्मणपत्नी बड़ी ही करुणापूर्ण वाणीमें इस प्रकार कहकर अनाथकी भाँति रोने लगी। परन्तु सौदासने शापसे मोहित होनेके कारण उसकी प्रार्थनापर कुछ भी ध्यान न दिया और वह उस ब्राह्मणको वैसे ही खा गया, जैसे बाघ किसी पशुको खा जाय ॥ ३३ ॥ जब ब्राह्मणीने देखा कि राक्षसने मेरे गर्भाधानके लिये उद्यत पतिको खा लिया, तब उसे बड़ा शोक हुआ। सती ब्राह्मणीने क्रोध करके राजाको शाप दे दिया ॥ ३४ ॥ 'रे पापी! मैं अभी कामसे पीड़ित हो रही थी। ऐसी अवस्थामें तूने मेरे पतिको खा डाला है। इसलिये मूर्ख! जब तू स्त्रीसे सहवास करना चाहेगा, तभी तेरी मृत्यु हो जायगी, यह बात मैं तुझे सुझाये देती हूँ' ॥ ३५ ॥ इस प्रकार मित्रसहको शाप देकर ब्राह्मणी अपने पतिकी अस्थियोंको धधकती हुई चितामें डालकर स्वयं भी सती हो गयी और उसने वही गति प्राप्त की, जो उसके पतिदेवको मिली थी। क्यों न हो, वह अपने पतिको छोड़कर और किसी लोकमें जाना भी तो नहीं चाहती थी ॥ ३६ ॥

बारह वर्ष बीतनेपर राजा सौदास शापसे मुक्त हो गये। जब वे सहवासके लिये अपनी पत्नीके पास गये, तब उसने इन्हें रोक दिया। क्योंकि उसे उस ब्राह्मणीके शापका पता था ॥ ३७ ॥ इसके बाद उन्होंने स्त्री-सुखका बिल्कुल परित्याग ही कर दिया। इस प्रकार अपने कर्मके फलस्वरूप वे सन्तानहीन हो गये। तब वसिष्ठजीने उनके कहनेसे मदयन्तीको गर्भाधान कराया ॥ ३८ ॥ मदयन्ती सात वर्षतक गर्भ धारण किये रही, परन्तु बच्चा पैदा नहीं हुआ। तब वसिष्ठजीने पत्थरसे उसके पेटपर आघात किया। इससे जो बालक हुआ, वह अश्म (पत्थर) की चोटसे पैदा होनेके कारण 'अश्मक' कहलाया ।३९। अश्मकसे मूलकका जन्म हुआ। जब परशुरामजी पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर रहे थे, तब स्त्रियोंने उसे छिपाकर रख लिया था। इसीसे उसका एक नाम 'नारीकवच' भी हुआ। उसे मूलक इसलिये कहते हैं कि वह पृथ्वीके क्षत्रियहीन हो जानेपर उस वंशका मूल (प्रवर्तक) बना ॥ ४० ॥ मूलकके पुत्र हुए दशरथ, दशरथके ऐडविड और ऐडविडके राजा विश्वसह। विश्वसहके पुत्र ही चक्रवर्ती सम्राट् खट्वाङ्ग हुए ॥ ४१ ॥ युद्धमें उन्हें कोई जीत नहीं सकता था। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे दैत्योंका वध किया था। जब उन्हें देवताओंसे यह मालूम हुआ कि अब मेरी आयु केवल दो ही घड़ी बाकी है, तब वे अपनी राजधानीमें लौट आये और अपने मनको उन्होंने भगवान्‌में लगा दिया ॥ ४२ ॥ वे मन-ही-मन सोचने लगे कि 'मेरे कुलके इष्ट देवता हैं ब्राह्मण! उनसे बढ़कर मेरा प्रेम अपने प्राणोंपर भी नहीं है। पत्नी, पुत्र, लक्ष्मी, राज्य और पृथ्वी भी मुझे उतने प्यारे नहीं लगते ॥ ४३ ॥ मेरा मन बचपनमें भी कभी अधर्मकी ओर नहीं गया। मैंने पवित्रकीर्ति भगवान्‌के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु कहीं नहीं देखी ॥४४॥ तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंने मुझे मुँहमाँगा वर देनेको कहा। परन्तु मैंने उन भोगोंकी लालसा बिल्कुल नहीं की। क्योंकि समस्त प्राणियोंके जीवनदाता श्रीहरिकी भावनामें ही मैं मग्न हो रहा था ॥ ४५ ॥ जिन

देवताओंकी इन्द्रियाँ और मन विषयोंमें भटक रहे हैं, वे सत्त्वगुणप्रधान होनेपर भी अपने हृदयमें विराजमान, सदा-सर्वदा प्रियतमके रूपमें रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप भगवान्‌को नहीं जानते। फिर भला जो रजोगुणी और तमोगुणी हैं, वे तो जान ही कैसे सकते हैं ॥४६॥ इसलिये अब इन विषयोंमें मैं नहीं रमता। ये तो मायाके खेल हैं। आकाशमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले गन्धर्वनगरोंसे बढ़कर इनकी सत्ता नहीं है। ये तो अज्ञानवश ही चित्तपर चढ़ गये थे। संसारके सच्चे रचयिता भगवान्‌की भावनामें लीन होकर मैं विषयोंको छोड़ रहा हूँ और केवल उन्हींकी शरण ले रहा हूँ ॥ ४७ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌ने राजा खट्वाङ्गकी बुद्धिको पहलेसे ही अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था। इसीसे वे अन्तसमयमें ऐसा निश्चय कर सके। अब उन्होंने शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमें जो अज्ञानमूलक आत्मभाव था, उसका परित्याग कर दिया और अपने वास्तविक आत्मस्वरूपमें स्थित हो गये ॥ ४८ ॥ वह स्वरूप साक्षात् परब्रह्म है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, शून्यके समान ही है। परन्तु वह शून्य नहीं, परम सत्य है। भक्तजन उसी वस्तुको 'भगवान् वासुदेव' इस नामसे वर्णन करते हैं ॥ ४९ ॥

दसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! खट्वाङ्गके पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहुके परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघुके अज और अजके पुत्र महाराज दशरथ हुए ॥ १ ॥ देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ॥ २ ॥ परीक्षित्! सीतापति भगवान् श्रीरामका चरित्र तो तत्त्वदर्शी ऋषियोंने बहुत कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार उसे सुना भी है ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनूमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाको नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लङ्कामें जाकर दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसल-नरेश हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रके यज्ञमें लक्ष्मणके सामने ही मारीच आदि राक्षसोंको मार डाला। वे सब बड़े-बड़े राक्षसोंकी गिनतीमें थे ॥ ५ ॥ परीक्षित्! जनकपुरमें सीताजीका स्वयंवर हो रहा था। संसारके चुने हुए वीरोंकी सभामें भगवान् शङ्करका वह भयङ्कर धनुष रक्खा हुआ था। वह इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाईसे उसे स्वयंवरसभामें ला सके थे। भगवान् श्रीरामने उस धनुषको बात-की-बातमें उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचोबीचसे उसके दो टुकड़े कर दिये—ठीक वैसे ही, जैसे हाथीका बच्चा खेलते-खेलते ईख तोड़ डाले ॥ ६ ॥ भगवान्‌ने जिन्हें अपने वक्षःस्थलपर स्थान देकर सम्मानित किया है, वे श्रीलक्ष्मीजी ही सीताके नामसे जनकपुरमें अवतीर्ण हुई थीं। वे गुण, शील, अवस्था, शरीरकी गठन और सौन्दर्यमें सर्वथा भगवान् श्रीरामके अनुरूप थीं। भगवान्‌ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया। अयोध्याको लौटते समय मार्गमें उन परशुरामजीसे भेंट हुई, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको राजवंशके बीजसे भी रहित कर दिया था। भगवान्‌ने उनके बढ़े हुए गर्वको नष्ट कर दिया ॥ ७ ॥ इसके बाद पिताके वचनको सत्य करनेके लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथने अपनी पत्नीके अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्यके बन्धनमें बँध

गये थे। इसलिये भगवान्‌ने अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणोंके समान प्यारे राज्य, लक्ष्मी, प्रेमी, हितैषी मित्र और महलोंको छोड़कर अपनी पत्नीके साथ वनकी यात्रा की; क्योंकि उन्हें किसीके प्रति कोई आसक्ति न थी ॥ ८ ॥ वनमें पहुँचकर भगवान्‌ने राक्षसराज रावणकी बहिन शूर्पणखाको विरूप कर दिया। क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत ही कलुषित, कामवासनाके कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान-प्रधान भाइयोंको—जो संख्यामें चौदह हजार थे—हाथमें महान् धनुष लेकर भगवान् श्रीरामने नष्ट कर डाला; और अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंसे परिपूर्ण वनमें वे इधर-उधर विचरते हुए निवास करते रहे ॥ ९ ॥ परीक्षित्! जब रावणने सीताजीके रूप, गुण, सौन्दर्य आदिकी बात सुनी तो उसका हृदय कामवासनासे आतुर हो गया। उसने अद्भुत हरिनके वेषमें मारीचको उनकी पर्णकुटीके पास भेजा। वह धीरे-धीरे भगवान्‌को वहाँसे दूर ले गया। अन्तमें भगवान्‌ने अपने बाणसे उसे बात-की-बातमें वैसे ही मार डाला, जैसे दक्षप्रजापतिको वीरभद्रने मारा था ॥ १० ॥ जब भगवान् श्रीराम जंगलमें दूर निकल गये, तब (लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें) नीच राक्षस रावणने भेड़ियेके समान विदेहनन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजीको हर लिया। तदनन्तर वे अपनी प्राणप्रिया सीताजीसे बिछुड़कर अपने भाई लक्ष्मणके साथ वन-वनमें दीनकी भाँति घूमने लगे। और इस प्रकार उन्होंने यह शिक्षा दी कि 'जो स्त्रियोंमें आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है' ॥ ११ ॥ इसके बाद भगवान्‌ने उस जटायुका दाह-संस्कार किया, जिसके सारे कर्मबन्धन भगवत्सेवारूप कर्मसे पहले ही भस्म हो चुके थे। फिर भगवान्‌ने कबन्धका संहार किया और इसके अनन्तर सुग्रीव आदि वानरोंसे मित्रता करके बालिका वध किया, तदनन्तर वानरोंके द्वारा अपनी प्राणप्रियाका पता लगवाया। ब्रह्मा और शङ्कर जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, वे भगवान् श्रीराम मनुष्यकी-सी लीला करते हुए बंदरोंकी सेनाके साथ समुद्रतटपर पहुँचे ॥ १२ ॥ (वहाँ उपवास और प्रार्थनासे जब समुद्रपर कोई प्रभाव न पड़ा,—तब) भगवान्‌ने क्रोधकी लीला करते हुए अपनी उग्र एवं टेढ़ी नजर समुद्रपर डाली। उसी समय समुद्रके बड़े-बड़े मगर और मच्छ खलबला उठे। डर जानेके कारण समुद्रकी सारी गर्जना शान्त हो गयी। तब समुद्र शरीरधारी बनकर और अपने सिरपर बहुत-सी भेंटें लेकर भगवान्‌के चरणकमलोंकी शरणमें आया और इस प्रकार कहने लगा ॥ १३ ॥ 'अनन्त! हम मूर्ख हैं; इसलिये आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। जानें भी कैसे? आप समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी, आदिकारण एवं जगत्‌के समस्त परिवर्तनोंमें एकरस रहनेवाले हैं। आप समस्त गुणोंके स्वामी हैं। इसलिये जब आप सत्त्वगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब देवताओंकी, रजोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब प्रजापतियोंकी और तमोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब आपके क्रोधसे रुद्रगणकी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥ वीरशिरोमणे! आप अपनी इच्छाके अनुसार मुझे पार कर जाइये और त्रिलोकीको रुलानेवाले विश्रवाके कुपूत रावणको मारकर अपनी पत्नीको फिरसे प्राप्त कीजिये। परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है। आप यहाँ मुझपर एक पुल बाँध दीजिये। इससे आपके यशका विस्तार होगा और आगे चलकर जब बड़े-बड़े नरपति दिग्विजय करते हुए यहाँ आयेंगे, तब वे आपके यशका गान करेंगे' ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीरामजीने अनेकानेक पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रपर पुल बाँधा। जब बड़े-बड़े बंदर अपने हाथोंसे पर्वत उठा-उठाकर लाते थे, तब उनके वृक्ष और बड़ी-बड़ी चट्टानें थर-थर काँपने लगती थीं। इसके बाद विभीषणकी सलाहसे भगवान्‌ने सुग्रीव, नील, हनूमान् आदि प्रमुख वीरों और वानरीसेनाके साथ लङ्कामें प्रवेश किया। वह तो श्रीहनूमान्‌जीके द्वारा पहले ही जलायी जा चुकी थी ॥ १६ ॥ उस समय वानरराजकी सेनाने लङ्काके सैर करने और खेलनेके स्थान, अन्नके गोदाम, खजाने, दरवाजे, फाटक, सभाभवन, छज्जे और पक्षियोंके रहनेके स्थानतकको घेर लिया। उन्होंने वहाँकी वेदी, ध्वजाएँ, सोनेके कलश और चौराहे तोड़-फोड़ डाले। उस समय लङ्का ऐसी माल्हम पड़ रही थी, जैसे झुंड-के-झुंड हाथियोंने किसी नदीको मथ डाला

हो ॥ १७ ॥ यह देखकर राक्षसराज रावणने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन आदि अपने सब अनुचरों, पुत्र मेघनाद और अन्तमें भाई कुम्भकर्णको भी युद्ध करनेके लिये भेजा ॥ १८ ॥ राक्षसोंकी वह विशाल सेना तलवार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण, भाले, खड्ग आदि शस्त्र-अस्त्रोंसे सुरक्षित और अत्यन्त दुर्गम थी। भगवान् श्रीरामने सुग्रीव, लक्ष्मण, हनूमान्, गन्धमादन, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पनस आदि वीरोंको अपने साथ लेकर राक्षसोंकी सेनाका सामना किया ॥ १९ ॥ रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके अङ्गद आदि सब सेनापति राक्षसोंकी चतुरङ्गिणी सेना—हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदलोंके साथ द्वन्द्वयुद्धकी रीतिसे भिड़ गये और राक्षसोंको वृक्ष, पर्वतशिखर, गदा और बाणोंसे मारने लगे। उनका मारा जाना तो स्वाभाविक ही था। क्योंकि वे उसी रावणके अनुचर थे, जिसका मङ्गल श्रीसीताजीको स्पर्श करनेके कारण पहले ही नष्ट हो चुका था ॥ २० ॥

जब राक्षसराज रावणने देखा कि मेरी सेनाका तो नाश हुआ जा रहा है, तब वह क्रोधमें भरकर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीरामके सामने आया। उस समय इन्द्रका सारथि मातलि बड़ा ही तेजस्वी दिव्य रथ लेकर आया और उसपर भगवान् श्रीरामजी विराजमान हुए। रावण अपने तीखे बाणोंसे उनपर प्रहार करने लगा ॥ २१ ॥ भगवान् श्रीरामजीने रावणसे कहा—'नीच राक्षस ! तुम कुत्तेकी तरह हमारी अनुपस्थितिमें हमारी प्राणप्रिया पत्नीको हर लाये ! तुमने दुष्टताकी हद कर दी ! तुम्हारे-जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय और कौन होगा। जैसे कालको कोई टाल नहीं सकता—कर्तापनके अभिमानीको वह फल दिये बिना रह नहीं सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हें तुम्हारी करनीका फल चखाता हूँ' ॥२२॥ इस प्रकार रावणको फटकारते हुए भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण उसपर छोड़ा। उस बाणने वज्रके समान उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया। वह अपने दसों मुखोंसे खून उगलता हुआ विमानसे गिर पड़ा—ठीक वैसे ही, जैसे पुण्यात्मालोग भोग समाप्त होनेपर स्वर्गसे गिर पड़ते हैं। उस समय उसके पुरजन-परिजन 'हाय-हाय' करके चिल्लाने लगे ॥ २३ ॥

तदनन्तर हजारों राक्षसियाँ मन्दोदरीके साथ रोती हुई लङ्कासे निकल पड़ीं और रणभूमिमें आयीं ॥ २४ ॥ उन्होंने देखा कि उनके स्वजन-सम्बन्धी लक्ष्मणजीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पड़े हुए हैं। वे अपने हाथों अपनी छाती पीट-पीटकर और अपने सगे-सम्बन्धियोंको हृदयसे लगा-लगाकर ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं ॥२५॥ हाय हाय ! स्वामी ! आज हम सब बेमौत मारी गयीं। एक दिन वह था, जब आपके भयसे समस्त लोकोंमें त्राहि-त्राहि मच जाती थी। आज वह दिन आ पहुँचा कि आपके न रहनेसे हमारे शत्रु लङ्काकी दुर्दशा कर रहे हैं और यह प्रश्न उठ रहा है कि अब लङ्का किसके अधीन रहेगी ॥ २६ ॥ आप सब प्रकारसे सम्पन्न थे, किसी भी बातकी कमी न थी। परन्तु आप कामके वश हो गये और यह नहीं सोचा कि सीताजी कितनी तेजस्विनी हैं और उनका कितना प्रभाव है। आपकी यही भूल आपकी इस दुर्दशाका कारण बन गयी ॥२७॥ कभी आपके कामोंसे हम सब और समस्त राक्षसवंश आनन्दित होता था और आज हम सब तथा यह सारी लङ्का नगरी विधवा हो गयी। आपका वह शरीर, जिसके लिये आपने सब कुछ कर डाला, आज गीधोंका आहार बन रहा है और अपने आत्माको आपने नरकका अधिकारी बना डाला। यह सब आपकी ही नासमझी और कामुकताका फल है ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कोसलाधीश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने अपने स्वजन-सम्बन्धियोंका पितृयज्ञकी विधिसे शास्त्रके अनुसार अन्त्येष्टिकर्म किया ॥ २९ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीरामने अशोकवाटिकाके आश्रममें अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई श्रीसीताजीको देखा। वे उन्हींके विरहकी व्याधिसे पीड़ित एवं अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं ॥३०॥ अपनी प्राणप्रिया अर्धाङ्गिनी श्रीसीताजीको अत्यन्त दीन अवस्थामें देखकर श्रीरामका हृदय प्रेम और कृपासे भर आया। इधर भगवान्का दर्शन पाकर सीताजीका हृदय प्रेम और आनन्दसे परिपूर्ण हो गया, उनका मुखकमल खिल उठा ॥ ३१ ॥ भगवान्ने विभीषणको राक्षसोंका स्वामित्व, लङ्कापुरीका राज्य और एक कल्पकी आयु

दी और इसके बाद पहले सीताजीको विमानपर बैठाकर अपने दोनों भाई लक्ष्मण तथा सुग्रीव एवं सेवक हनूमान्‌जीके साथ स्वयं भी विमानपर सवार हुए। इस प्रकार चौदह वर्षका व्रत पूरा हो जानेपर उन्होंने अपने नगरकी यात्रा की। उस समय मार्गमें ब्रह्मा आदि लोकपालगण उनपर बड़े प्रेमसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ ३२-३३ ॥

इधर तो ब्रह्मा आदि बड़े आनन्दसे भगवान्‌की लीलाओंका गान कर रहे थे और उधर जब भगवान्‌को यह मालूम हुआ कि भरतजी केवल गोमूत्रमें पकाया हुआ जौका दलिया खाते हैं, वल्कल पहनते हैं और पृथ्वीपर डाभ बिछाकर सोते हैं एवं उन्होंने जटाएँ बढ़ा रक्खी हैं, तब वे बहुत दुखी हुए। उनकी दशाका स्मरण कर परम करुणाशील भगवान्‌का हृदय भर आया। जब भरतको मालूम हुआ कि मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीरामजी आ रहे हैं तब वे पुरवासी, मन्त्री और पुरोहितोंको साथ लेकर एवं भगवान्‌की पादुकाएँ सिरपर रखकर उनकी अगवानीके लिये चले। जब भरतजी अपने रहनेके स्थान नन्दिग्रामसे चले, तब लोग उनके साथ-साथ मङ्गलगान करते, बाजे बजाते चलने लगे। वेदवादी ब्राह्मण बार-बार वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और उसकी ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी। सुनहरी कामदार पताकाएँ फहराने लगीं। सोनेसे मढ़े हुए तथा रंग-बिरंगी ध्वजाओंसे सजे हुए रथ, सुनहले साजसे सजाये हुए सुन्दर घोड़े तथा सोनेके कवच पहने हुए सैनिक उनके साथ-साथ चलने लगे। सेठ-साहूकार, श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, पैदल चलनेवाले सेवक और महाराजाओंके योग्य छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ उनके साथ चल रही थीं। भगवान्‌को देखते ही प्रेमके उद्रेकसे भरतजीका हृदय गद्गद हो गया, नेत्रोंमें आँसू छलक आये, वे भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़े ॥ ३४—३९ ॥ उन्होंने प्रभुके सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहती जा रही थी। भगवान्‌ने अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर बहुत देरतक भरतजीको हृदयसे लगाये रक्खा। भगवान्‌के नेत्रजलसे भरतजीका स्नान हो गया ॥ ४० ॥ इसके बाद सीताजी और लक्ष्मणजीके साथ भगवान् श्रीरामजीने ब्राह्मण और पूजनीय गुरुजनोंको नमस्कार किया। तथा सारी प्रजाने बड़े प्रेमसे सिर झुकाकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ उस समय उत्तरकोसल देशकी रहनेवाली समस्त प्रजा अपने स्वामी भगवान्‌को बहुत दिनोंके बाद आये देख अपने दुपट्टे हिला-हिलाकर पुष्पोंकी वर्षा करती हुई आनन्दसे नाचने लगी ॥४२॥ भरतजीने भगवान्‌की पादुकाएँ लीं, विभीषणने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीवने पंखा और श्रीहनूमान्‌जीने श्वेत छत्र ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकस, सीताजीने तीर्थोंके जलसे भरा कमण्डलु, अङ्गदने सोनेका खड्ग और जाम्बवान्‌ने ढाल ले ली ॥ ४४ ॥ इन लोगोंके साथ भगवान् पुष्पक विमानपर विराजमान हो गये, चारों तरफ यथास्थान स्त्रियाँ बैठ गयीं, वन्दीजन स्तुति करने लगे। उस समय पुष्पक विमानपर भगवान् श्रीरामकी ऐसी शोभा हुई, मानो ग्रहोंके साथ चन्द्रमा उदय हो रहे हों ॥ ४५ ॥

इस प्रकार भगवान्‌ने भाइयोंका अभिनन्दन स्वीकार करके उनके साथ अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। उस समय वह पुरी आनन्दोत्सवसे परिपूर्ण हो रही थी। राजमहलमें प्रवेश करके उन्होंने अपनी माता कौसल्या, अन्य माताओं, गुरुजनों, बराबरके मित्रों और छोटोंका यथायोग्य सम्मान किया तथा उनके द्वारा किया हुआ सम्मान स्वीकार किया। श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीने भी भगवान्‌के साथ-साथ सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार किया ॥ ४६-४७ ॥ उस समय जैसे मृतकशरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो जाय, वैसे ही माताएँ अपने पुत्रोंके आगमनसे हर्षित हो उठीं। उन्होंने उनको अपनी गोदमें बैठा लिया और अपने आँसुओंसे उनका अभिषेक किया। उस समय उनका सारा शोक मिट गया ॥ ४८ ॥ इसके बाद वसिष्ठजीने दूसरे गुरुजनोंके साथ विधिपूर्वक भगवान्‌की जटा उतरवायी और बृहस्पतिने जैसे इन्द्रका अभिषेक किया था, वैसे ही चारों समुद्रोंके जल आदिसे उनका अभिषेक किया ॥ ४९ ॥ इस प्रकार सिरसे स्नान करके भगवान् श्रीरामने सुन्दर वस्त्र, पुष्पमालाएँ और अलङ्कार धारण किये। सभी भाइयों और श्रीजानकीजीने भी सुन्दर-

सुन्दर वस्त्र और अलङ्कार धारण किये। उनके साथ भगवान् श्रीरामजी अत्यन्त शोभायमान हुए ॥ ५० ॥ भरतजीने उनके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न किया और उनके आग्रह करनेपर भगवान् श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार किया। इसके बाद वे अपने-अपने धर्ममें तत्पर तथा वर्णाश्रमके आचारको निभानेवाली प्रजाका पिताके समान पालन करने लगे। उनकी प्रजा भी उन्हें अपना पिता ही मानती थी ॥ ५१ ॥ परीक्षित्! जब समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले परम धर्मज्ञ भगवान् श्रीराम राजा हुए, तब था तो त्रेतायुग, परन्तु माल्म होता था मानो सत्ययुग ही है ॥ ५२ ॥ परीक्षित्! उस समय वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप और समुद्र—सब-के-सब प्रजाके लिये कामधेनुके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले बन रहे थे ॥ ५३ ॥ इन्द्रियातीत भगवान् श्रीरामके राज्य करते समय किसीको मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय और थकावट नाममात्रके लिये भी नहीं थे। यहाँतक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी ॥ ५४ ॥ भगवान् श्रीरामने एकपत्नीका व्रत धारण कर रक्खा था, उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियोंके-से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्मकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं उस धर्मका आचरण करते थे ॥५५॥ सतीशिरोमणि सीताजी अपने पतिके हृदयका भाव जानती रहतीं। वे प्रेमसे, सेवासे, शीलसे, अत्यन्त विनयसे तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणोंसे अपने पति भगवान् श्रीरामजीका चित्त चुराती रहती थीं ॥ ५६ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीरामकी शेष लीलाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीरामने गुरु वसिष्ठजीको अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियोंसे युक्त यज्ञोंके द्वारा अपने-आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयंप्रकाश आत्माका यजन किया ॥१॥ उन्होंने होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण, अध्वर्युको पश्चिम और उद्गाताको उत्तर दिशा दे दी ॥ २ ॥ उनके बीचमें जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्यको दे दी। उनका यह निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डलका एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है ॥ ३ ॥ इस प्रकार सारे भूमण्डलका दान करके उन्होंने अपने शरीरके वस्त्र और अलङ्कार ही अपने पास रक्खे। इसी प्रकार महारानी सीताजीके पास भी केवल माङ्गलिक वस्त्र और आभूषण ही बच रहे ॥ ४ ॥ जब आचार्य आदि ब्राह्मणोंने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणोंको ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदयमें ब्राह्मणोंके प्रति अनन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान्को लौटा दी और कहा ॥ ५ ॥ 'प्रभो! आप सब लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदयके भीतर रहकर अपनी ज्योतिसे अज्ञानान्धकारका नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें भला, आपने हमें क्या नहीं दे रक्खा है ॥ ६ ॥ आपका ज्ञान अनन्त है। पवित्र कीर्तिवाले पुरुषोंमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। उन महात्माओंको, जो किसीको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं पहुँचाते, आपने अपने चरणकमल दे रक्खे हैं। ऐसा होनेपर भी आप ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव मानते हैं। भगवन्! आपके इस रामरूपको हम नमस्कार करते हैं' ॥ ७ ॥

परीक्षित्! एक बार अपनी प्रजाकी स्थिति जाननेके लिये भगवान् श्रीरामजी रातके समय छिपकर बिना किसीको बतलाये घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसीकी यह बात सुनी। वह अपनी पत्नीसे कह रहा था ॥ ८ ॥ 'अरी! तू दुष्ट और कुलटा है। तू पराये घरमें रह आयी है। स्त्री-लोभी राम भले ही सीताको रख लें, परन्तु मैं तुझे फिर नहीं रख सकता' ॥ ९ ॥ सचमुच सब लोगोंको प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है। क्योंकि मूर्खोंकी तो कमी नहीं है। जब भगवान् श्रीरामने बहुतोंके मुँहसे ऐसी बात सुनी, तो वे लोकापवादसे कुछ भयभीत-से हो गये। उन्होंने श्रीसीताजीका परित्याग कर

दिया और वे वाल्मीकि मुनिके आश्रममें रहने लगीं ॥ १० ॥ सीताजी उस समय गर्भवती थीं । समय आनेपर उन्होंने एक साथ ही दो पुत्र उत्पन्न किये । उनके नाम हुए—कुश और लव । वाल्मीकि मुनिने उनके जातकर्मादि संस्कार किये ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके दो पुत्र हुए—अङ्गद और चित्रकेतु । परीक्षित् ! इसी प्रकार भरतजीके भी दो ही पुत्र थे—तक्ष और पुष्कल ॥ १२ ॥ तथा शत्रुघ्नके भी दो पुत्र हुए—सुबाहु और श्रुतसेन । भरतजीने दिग्विजयमें करोड़ों गन्धर्वोंका संहार किया ॥ १३ ॥ उन्होंने उनका सब धन लाकर अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामकी सेवामें निवेदन किया । शत्रुघ्नजीने मधुवनमें मधुके पुत्र लवण नामक राक्षसको मारकर वहाँ मथुरा नामकी पुरी बसायी ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीरामके द्वारा निर्वासित सीताजीने अपने पुत्रोंको वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंप दिया और भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई वे पृथ्वीदेवीके लोकमें चली गयीं ॥ १५ ॥ यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीरामने अपने शोकावेशको बुद्धिके द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होनेपर भी वे उसे रोक न सके । क्योंकि उन्हें जानकीजीके पवित्र गुण बार-बार स्मरण हो आया करते थे ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! यह स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध सब कहीं इसी प्रकार दुःखका कारण है । यह बात बड़े-बड़े समर्थ लोगोंके विषयमें भी ऐसी ही है, फिर गृहासक्त विषयी पुरुषके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ १७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अखण्डरूपसे अग्निहोत्र किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंके हृदयमें अपने उन चरणकमलोंको स्थापित करके, जो दण्डकवनके काँटोंसे बिंध गये थे, अपने स्वयंप्रकाश परम ज्योतिर्मय धाममें चले गये ॥ १९ ॥

परीक्षित् ! भगवान्‌के समान प्रतापशाली और कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है । उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे ही यह लीला-विग्रह धारण किया था । ऐसी स्थितिमें रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके लिये यह कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे राक्षसोंको मार डाला या समुद्रपर पुल बाँध दिया । भला, उन्हें शत्रुओंको मारनेके लिये बंदरोंकी सहायताकी भी आवश्यकता थी क्या ? यह सब उनकी लीला ही है ॥ २० ॥

भगवान् श्रीरामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है । वह इतना फैल गया है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलता-से चमक उठता है । आज भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उसका गान करते रहते हैं । स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं । मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २१ ॥ जिन्होंने भगवान् श्रीरामका दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया—वे सब-के-सब तथा कोसलदेशके निवासी भी उसी लोक-में गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योगसाधनाके द्वारा जाते हैं ॥ २२ ॥ जो पुरुष अपने कानोंसे भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनता है—उसे सरलता, कोमलता आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है । परीक्षित् ! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २३ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान् श्रीराम स्वयं अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारका व्यवहार करते थे ? तथा भरत आदि भाई, प्रजाजन और अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके प्रति कैसा बर्ताव करते थे ? ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—त्रिभुवनपति महाराज श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार करनेके बाद अपने भाइयों-को दिग्विजयकी आज्ञा दी और स्वयं अपने निजजनोंको दर्शन देते हुए अपने अनुचरोंके साथ वे पुरीकी देखरेख करने लगे ॥ २५ ॥ उस समय अयोध्यापुरीके मार्ग सुगन्धित जल और हाथियोंके मदकणोंसे सिंचे रहते । ऐसा जान पड़ता, मानो यह नगरी अपने स्वामी भगवान् श्रीरामको देखकर अत्यन्त मतवाली हो रही है ॥ २६ ॥ उसके महल, फाटक, सभाभवन, विहार और देवालय आदिमें सुवर्णके कलश रक्खे हुए थे और स्थान-स्थानपर पताकाएँ फहरा रही थीं ॥ २७ ॥ वह डंठलसमेत सुपारी, केलेके खंभे और सुन्दर वस्त्रोंके पट्टोंसे सजायी हुई थी । दर्पण, वस्त्र और पुष्पमालाओंसे तथा माङ्गलिक चित्र-कारियों और बंदनवारोंसे सारी नगरी जगमगा रही थी ॥ २८ ॥ नगरवासी अपने हाथोंमें तरह-तरहकी भेंटें लेकर भगवान्‌के पास आते और उनसे प्रार्थना करते कि 'देव ! पहले

आपने ही वराहरूपसे पृथ्वीका उद्धार किया था, अब आप ही इसका पालन कीजिये ॥ २९ ॥ परीक्षित् ! उस समय जब प्रजाको मालूम होता कि बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीरामजी इधर पधारे हैं, तब सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शनकी लालसासे घर-द्वार छोड़कर दौड़ पड़ते। वे ऊँची-ऊँची अटारियोंपर चढ़ जाते और अतृप्त नेत्रोंसे कमलनयन भगवान्को देखते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा करते ॥ ३० ॥

इस प्रकार प्रजाका निरीक्षण करके भगवान् फिर अपने महलोंमें आ जाते। उनके वे महल पूर्ववर्ती राजाओंके द्वारा सेवित थे। उनमें इतने बड़े-बड़े सब प्रकारके खजाने थे, जो कभी समाप्त नहीं होते थे। वे बड़ी-बड़ी बहुमूल्य बहुत-सी सामग्रियोंसे सुसज्जित थे ॥ ३१ ॥ महलोंके द्वार तथा देहलियाँ मूँगेकी बनी हुई थीं। उनमें जो खंभे थे, वे वैदूर्यमणिके थे। मरकतमणिके बड़े सुन्दर-सुन्दर फर्श थे, तथा स्फटिकमणिकी दीवारें चमकती रहती थीं ॥ ३२ ॥ रंग-बिरंगी मालाओं, पताकाओं, मणियोंकी चमक, शुद्ध चेतनके समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग-सामग्री, सुगन्धित धूप-दीप तथा फूलोंके गहनोंसे वे महल खूब सजाये हुए थे। आभूषणोंको भी भूषित करनेवाले देवताओंके समान स्त्री-पुरुष उसकी सेवामें लगे रहते थे ॥ ३३-३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीरामजी आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषोंके शिरोमणि थे। उसी महलमें वे अपनी प्राणप्रिया प्रेममयी पत्नी श्रीसीताजीके साथ विहार करते थे ॥ ३५ ॥ सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान् श्रीराम बहुत वर्षोंतक धर्मकी मर्यादाका पालन करते हुए समयानुसार भोगोंका उपभोग करते रहे ॥ ३६ ॥

बारहवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुवंशके शेष राजाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कुशका पुत्र हुआ अतिथि, उसका निषध, निषधका नभ, नभका पुण्डरीक और पुण्डरीकका क्षेमधन्वा ॥ १ ॥ क्षेमधन्वाका देवानीक, देवानीकका अनीह, अनीहका पारियात्र, पारियात्रका बलस्थल और बलस्थलका पुत्र हुआ वज्रनाभ। यह सूर्यका अंश था ॥ २ ॥ वज्रनाभसे खगण, खगणसे विधृति और विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई। वह जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था ॥ ३ ॥ कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्य ऋषिने उसकी शिष्यता स्वीकार करके उससे अध्यात्मयोगकी शिक्षा ग्रहण की थी। वह योग हृदयकी गाँठ काट देनेवाला तथा परम सिद्धि देनेवाला है ॥ ४ ॥ हिरण्यनाभका पुष्य, पुष्यका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अग्निवर्णका शीघ्र और शीघ्रका पुत्र हुआ मरु ॥ ५ ॥ मरुने योगसाधनासे सिद्धि प्राप्त कर ली और वह इस समय भी कलाप नामक ग्राममें रहता है। कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर वह उसे फिरसे चलायेगा ॥ ६ ॥ मरुसे प्रसुश्रुत, उससे सन्धि और सन्धिसे अमर्षणका जन्म हुआ। अमर्षणका महस्वान् और महस्वान्का विश्वसाह्व ॥ ७ ॥ विश्वसाह्वका प्रसेनजित्, प्रसेनजित्का तक्षक और तक्षकका पुत्र बृहद्बल हुआ। परीक्षित् ! इसी बृहद्बलको तुम्हारे पिता अभिमन्युने युद्धमें मार डाला था ॥ ८ ॥

परीक्षित् ! इक्ष्वाकुवंशके इतने नरपति हो चुके हैं। अब आनेवालोंके विषयमें सुनो। बृहद्बलका पुत्र होगा बृहद्रण ॥ ९ ॥ बृहद्रणका उरुक्रिय, उसका वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका भानु और भानुका पुत्र होगा सेनापति दिवाक ॥ १० ॥ दिवाकका वीर सहदेव, सहदेवका बृहदश्व, बृहदश्वका भानुमान्, भानुमान्का प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्वका पुत्र होगा सुप्रतीक ॥ ११ ॥ सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका पुष्कर, पुष्करका अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षका सुतपा और उसका पुत्र होगा अमित्रजित् ॥ १२ ॥ अमित्रजित्से बृहद्राज, बृहद्राजसे बर्हि, बर्हिसे कृतञ्जय, कृतञ्जयसे रणञ्जय और उससे सञ्जय होगा ॥ १३ ॥ सञ्जयका शाक्य, उसका शुद्धोद और शुद्धोदका लाङ्गल, लाङ्गलका

प्रसेनजित् और प्रसेनजित्का पुत्र क्षुद्रक होगा ॥ १४ ॥ क्षुद्रकसे रणक, रणकसे सुरथ और सुरथसे इस वंशके अन्तिम राजा सुमित्रका जन्म होगा । ये सब बृहद्बलके वंशधर होंगे ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुका यह वंश सुमित्रतक ही रहेगा । क्योंकि सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश समाप्त हो जायगा ॥ १६ ॥

तेरहवाँ अध्याय

राजा निमिके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इक्ष्वाकुके पुत्र थे निमि । उन्होंने यज्ञ आरम्भ करके महर्षि वसिष्ठको ऋत्विजके रूपमें वरण किया । वसिष्ठजीने कहा कि 'राजन् ! इन्द्र अपने यज्ञके लिये मुझे पहले ही वरण कर चुके हैं ॥ १ ॥ उनका यज्ञ पूरा करके मैं तुम्हारे पास आऊँगा । तबतक तुम मेरी प्रतीक्षा करना ।' यह बात सुनकर राजा निमि चुप हो रहे और वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये ॥ २ ॥ विचारवान् निमिने यह सोचकर कि जीवन तो क्षणभङ्गुर है, विलम्ब करना उचित न समझा और यज्ञ प्रारम्भ कर दिया । जबतक गुरु वसिष्ठजी न लौटें, तबतकके लिये उन्होंने दूसरे ऋत्विजोंको वरण कर लिया ॥ ३ ॥ गुरु वसिष्ठजी जब इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न करके लौटे, तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य निमिने तो उनकी बात न मानकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है । उस समय उन्होंने शाप दिया कि 'निमिको अपनी विचारशीलता और पाण्डित्यका बड़ा घमंड है, इसलिये इसका शरीरपात हो जाय' ॥ ४ ॥ निमिकी दृष्टिमें गुरु वसिष्ठका यह शाप धर्मके अनुकूल नहीं, प्रतिकूल था । इसलिये उन्होंने भी शाप दिया कि 'आपने लोभवश अपने धर्मका आदर नहीं किया, इसलिये आपका शरीर भी गिर जाय' ॥ ५ ॥ यह कहकर आत्मविद्यामें निपुण निमिने अपने शरीरका त्याग कर दिया। परीक्षित् ! इधर हमारे वृद्ध प्रपितामह वसिष्ठजीने भी अपना शरीर त्याग कर मित्रावरुणके द्वारा उर्वशीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥ ६ ॥ राजा निमिके यज्ञमें आये हुए श्रेष्ठ मुनियोंने राजाके शरीरको सुगन्धित वस्तुओंमें रख दिया। जब सत्रयागकी समाप्ति हुई और देवतालोग आये, तब उन लोगोंने उनसे प्रार्थना की ॥ ७ ॥ 'महानुभावो ! आपलोग समर्थ हैं । यदि आप प्रसन्न हैं तो राजा निमिका यह शरीर पुनः जीवित हो उठे । देवताओंने कहा—'ऐसा ही हो ।' उस समय निमिने कहा—'मुझे देहका बन्धन नहीं चाहिये ॥ ८ ॥ विचारशील मुनिजन अपनी बुद्धिको पूर्णरूपसे श्रीभगवान्में ही लगा देते हैं और उन्हींके चरणकमलोंका भजन करते हैं । एक-न-एक दिन यह शरीर अवश्य ही छूटेगा—इस भयसे भीत होनेके कारण वे इस शरीरका कभी संयोग ही नहीं चाहते; वे तो मुक्त ही होना चाहते हैं ॥ ९ ॥ अतः मैं अब दुःख, शोक और भयके मूल कारण इस शरीरको धारण करना नहीं चाहता । जैसे जलमें मछली-के लिये सर्वत्र ही मृत्युके अवसर हैं, वैसे ही इस शरीरके लिये भी सब कहीं मृत्यु-ही-मृत्यु है' ॥ १० ॥

देवताओंने कहा—'मुनियो ! राजा निमि बिना शरीरके ही प्राणियोंके नेत्रोंमें अपनी इच्छाके अनुसार निवास करें । वे वहाँ रहकर सूक्ष्मशरीरसे भगवान्का चिन्तन करते रहें । पलक उठने और गिरनेसे उनके अस्तित्वका पता चलता रहेगा ॥ ११ ॥ इसके बाद महर्षियोंने यह सोचकर कि राजाके न रहनेपर लोगोंमें अराजकता फैल जायगी, निमिके शरीरका मन्थन किया । उस मन्थनसे एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ १२ ॥ जन्म लेनेके कारण उसका नाम हुआ जनक । विदेहसे उत्पन्न होनेके कारण 'वैदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसी बालकका नाम 'मिथिल' हुआ । उसीने मिथिलापुरी बसायी ॥ १३ ॥

परीक्षित् ! जनकका उदावसु, उसका नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनका सुकेतु, उसका देवरात, देवरातका बृहद्रथ, बृहद्रथका महावीर्य, महावीर्यका सुधृति, सुधृतिका धृष्टकेतु, धृष्टकेतुका हर्यश्व और उसका मरु नामक पुत्र हुआ ॥ १४-१५ ॥ मरुसे प्रतीपक, प्रतीपकसे कृतिरथ,

कृतिरथसे देवमीढ, देवमीढसे विश्रुत और विश्रुतसे महाधृतिका जन्म हुआ ॥ १६ ॥ महाधृतिका कृतिरात, कृतिरातका महारोमा, महारोमाका स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमाका पुत्र हुआ ह्रस्वरोमा ॥ १७ ॥ इसी ह्रस्वरोमाके पुत्र महाराज सीरध्वज थे । वे जब यज्ञके लिये धरती जोत रहे थे, तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग (फाल) से सीताजीकी उत्पत्ति हुई । इसीसे उनका नाम 'सीरध्वज' पड़ा ॥ १८ ॥ सीरध्वजके कुशध्वज, कुशध्वजके धर्मध्वज और धर्मध्वजके दो पुत्र हुए—कृतध्वज और मितध्वज ॥ १९ ॥ कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए । केशिध्वज आत्मविद्यामें बड़ा प्रवीण था ॥ २० ॥ खाण्डिक्य था कर्मकाण्डका मर्मज्ञ । वह केशिध्वजसे भयभीत होकर भाग गया । केशिध्वजका पुत्र भानुमान् और भानुमान्का शतद्युम्न था ॥ २१ ॥ शतद्युम्नसे शुचि, शुचिसे सनद्वाज, सनद्वाजसे ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतुसे अज, अजसे पुरुजित, पुरुजित्से अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिसे श्रुतायु, श्रुतायुसे सुपार्श्वक, सुपार्श्वकसे चित्ररथ और चित्ररथसे मिथिलपति क्षेमधिका जन्म हुआ ॥ २२-२३ ॥ क्षेमधिसे समरथ, समरथसे सत्यरथ, सत्यरथसे उपगुरु और उपगुरुसे उपगुप्त नामक पुत्र हुआ । यह अग्निका अंश था ॥ २४ ॥ उपगुप्तका वस्वनन्त, वस्वनन्तका युयुध, युयुधका सुभाषण, सुभाषणका श्रुत, श्रुतका जय, जयका विजय और विजयका ऋत नामक पुत्र हुआ ॥ २५ ॥ ऋतका शुनक, शुनकका बीतहव्य, वीतहव्यका धृति, धृतिका बहुलाश्व, बहुलाश्वका कृति और कृतिका पुत्र हुआ महावशी ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! ये मिथिलके वंशमें उत्पन्न सभी नरपति 'मैथिल' कहलाते हैं । ये सब-के-सब आत्मज्ञानसे सम्पन्न एवं गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त थे । क्यों न हो, याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगेश्वरोंकी इनपर महान् कृपा जो थी ॥ २७ ॥

चौदहवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब मैं तुम्हें चन्द्रमाके पावन वंशका वर्णन सुनाता हूँ । इस वंशमें पुरूरवा आदि बड़े-बड़े पवित्रकीर्ति राजाओंका कीर्तन किया जाता है ॥ १ ॥ सहस्रों सिरवाले विराट् पुरुष नारायणके नाभि-सरोवरके कमलसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई । ब्रह्माजीके पुत्र हुए अत्रि । वे अपने गुणोंके कारण ब्रह्माजीके समान ही थे ॥ २ ॥ उन्हीं अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय चन्द्रमाका जन्म हुआ । ब्रह्माजीने चन्द्रमाको ब्राह्मण, ओषधि और नक्षत्रोंका अधिपति बना दिया ॥ ३ ॥ उन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया । इससे उनका घमंड बढ़ गया और उन्होंने बलपूर्वक बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लिया ॥ ४ ॥ देवगुरु बृहस्पतिने अपनी पत्नीको लौटा देनेके लिये उनसे बार-बार याचना की, परन्तु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नीको नहीं लौटाया । ऐसी परिस्थितिमें उसके लिये देवता और दानवोंमें घोर संग्राम छिड़ गया ॥ ५ ॥ शुक्राचार्यजीने बृहस्पतिजीके द्वेषसे असुरोंके साथ चन्द्रमाका पक्ष ले लिया और महादेवजीने स्नेहवश समस्त भूतगणोंके साथ अपने विद्यागुरु अङ्गिराजीके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया ॥ ६ ॥ देवराज इन्द्रने भी समस्त देवताओंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीका ही पक्ष लिया । इस प्रकार ताराके निमित्तसे देवता और असुरोंका संहार करनेवाला घोर संग्राम हुआ ॥ ७ ॥

तदनन्तर अङ्गिरा ऋषिने ब्रह्माजीके पास जाकर यह युद्ध बंद करानेकी प्रार्थना की । इसपर ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बहुत डाँटा-फटकारा और ताराको उसके पति बृहस्पतिजीके हवाले कर दिया । जब बृहस्पतिजीको यह मालूम हुआ कि तारा तो गर्भवती है, तब उन्होंने कहा—॥ ८ ॥ 'दुष्टे ! मेरे क्षेत्रमें यह तो किसी दूसरेका गर्भ है । इसे तू अभी त्याग दे, तुरंत त्याग दे । डर मत, मैं तुझे जलाऊँगा नहीं । क्योंकि एक तो तू स्त्री है और दूसरे मुझे भी सन्तानकी कामना है । देवी होनेके कारण तू निर्दोष भी है ही' ॥ ९ ॥ अपने पतिकी बात सुनकर

तारा अत्यन्त लज्जित हुई। उसने सोनेके समान चमकता हुआ एक बालक अपने गर्भसे अलग कर दिया। उस बालकको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो गये और चाहने लगे कि यह हमें मिल जाय ॥ १० ॥ अब वे एक दूसरेसे इस प्रकार जोर-जोरसे झगड़ा करने लगे कि 'यह तुम्हारा नहीं, मेरा है।' ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा कि 'यह किसका लड़का है।' परन्तु ताराने लज्जावश कोई उत्तर न दिया ॥ ११ ॥ बालकने अपनी माताकी झूठी लज्जासे क्रोधित होकर कहा—'दुष्टे! तू बतलाती क्यों नहीं? तू अपना कुकर्म मुझे शीघ्र-से-शीघ्र बतला दे' ॥ १२ ॥ उसी समय ब्रह्माजीने ताराको एकान्तमें बुलाकर बहुत कुछ समझा-बुझाकर पूछा। तब ताराने धीरेसे कहा कि 'चन्द्रमाका।' इसलिये चन्द्रमाने उस बालकको ले लिया ॥ १३ ॥ परीक्षित्! ब्रह्माजीने उस बालकका नाम रक्खा 'बुध', क्योंकि उसकी बुद्धि बड़ी गम्भीर थी। ऐसा पुत्र प्राप्त करके चन्द्रमाको बहुत आनन्द हुआ ॥ १४ ॥

परीक्षित्! बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। एक दिन इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदजी पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील-स्वभाव, धन-सम्पत्ति और पराक्रमका गान कर रहे थे। उन्हें सुनकर उर्वशीके हृदयमें काम-भावका उदय हो आया और उससे पीडित होकर वह देवाङ्गना पुरूरवाके पास चली आयी ॥ १५-१६ ॥ यद्यपि उर्वशीको मित्रावरुणके शापसे ही मृत्युलोकमें आना पड़ा था, फिर भी पुरुषशिरोमणि पुरूरवा मूर्तिमान् कामदेवके समान सुन्दर हैं—यह सुनकर सुर-सुन्दरी उर्वशीने धैर्य धारण किया और वह उनके पास चली आयी ॥ १७ ॥ देवाङ्गना उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने बड़ी मीठी वाणीसे कहा— ॥ १८ ॥

राजा पुरूरवाने कहा—सुन्दरी! तुम्हारा स्वागत है। बैठो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? तुम मेरे साथ विहार करो और हम दोनोंका यह विहार अनन्त काल-तक चलता रहे ॥ १९ ॥

उर्वशीने कहा—'राजन्! आप सौन्दर्यके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। भला, ऐसी कौन कामिनी है जिसकी दृष्टि और मन आपमें आसक्त न हो जाय? क्योंकि आपके समीप आकर मेरा मन रमणकी इच्छासे अपना धैर्य खो बैठा है ॥ २० ॥ राजन्! जो पुरुष रूप-गुण आदिके कारण प्रशंसनीय होता है, वही स्त्रियोंको अभीष्ट होता है। अतः मैं आपके साथ अवश्य विहार करूँगी। परन्तु मेरे प्रेमी महाराज! मेरी एक शर्त है। मैं आपको धरोहरके रूपमें भेड़के दो बच्चे सौंपती हूँ। आप इनकी रक्षा करना ॥ २१ ॥ वीरशिरोमणे! मैं केवल घी खाऊँगी और मैथुनके अतिरिक्त और किसी भी समय आपको वस्त्रहीन न देख सकूँगी।' परम मनस्वी पुरूरवाने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उसकी शर्त स्वीकार कर ली ॥ २२ ॥ और फिर उर्वशीसे कहा—'तुम्हारा यह सौन्दर्य अद्भुत है। तुम्हारा भाव अलौकिक है। यह तो सारी मनुष्यसृष्टिको मोहित करनेवाला है। और देवि! कृपा करके तुम स्वयं यहाँ आयी हो। फिर कौन ऐसा मनुष्य है, जो तुम्हारा सेवन न करेगा?' ॥ २३ ॥

परीक्षित्! तब उर्वशी कामशास्त्रोक्त पद्धतिसे पुरुष-श्रेष्ठ पुरूरवाके साथ विहार करने लगी। वे भी देवताओं-की विहारस्थली चैत्ररथ, नन्दनवन आदि उपवनोंमें उसके साथ स्वच्छन्द विहार करने लगे ॥ २४ ॥ देवी उर्वशीके शरीरसे कमलकेसरकी-सी सुगन्ध निकला करती थी। उसके साथ राजा पुरूरवाने बहुत वर्षोंतक आनन्द-विहार किया। वे उसके मुखकी सुरभिसे अपनी सुध-बुध खो बैठते थे ॥ २५ ॥ इधर जब इन्द्रने उर्वशीको नहीं देखा, तब उन्होंने गन्धर्वोंको उसे लानेके लिये भेजा और कहा—'उर्वशीके बिना मुझे यह स्वर्ग फीका जान पड़ता है' ॥ २६ ॥ वे गन्धर्व आधी रातके समय घोर अन्धकारमें वहाँ गये और उर्वशीके दोनों भेड़ोंको, जिन्हें उसने राजाके पास धरोहर रक्खा था, चुराकर चलते बने ॥ २७ ॥ उर्वशीने जब गन्धर्वोंके द्वारा ले जाये जाते हुए अपने पुत्रके समान प्यारे भेड़ोंकी 'बें-बें' सुनी, तब वह कह उठी कि 'अरे, इस कायरको अपना स्वामी बनाकर मैं तो मारी गयी। यह नपुंसक अपनेको बड़ा वीर मानता है। यह मेरे भेड़ोंको भी न बचा सका ॥ २८ ॥ इसीपर विश्वास करनेके कारण लुटेरे मेरे बच्चोंको लूटकर लिये जा रहे हैं। मैं तो मर गयी।

देखो तो सही, यह दिनमें तो मर्द बनता है और रातमें स्त्रियोंकी तरह डरकर सोया रहता है' ॥२९॥ परीक्षित् ! जैसे कोई हाथीको अंकुशसे वेध डाले, वैसे ही उर्वशीने अपने वचन-बाणोंसे राजाको बींध दिया । राजा पुरूरवाको बड़ा क्रोध आया और हाथमें तलवार लेकर वस्त्रहीन अवस्थामें ही वे उस ओर दौड़ पड़े ॥ ३० ॥ गन्धर्वोंने उनके झपटते ही भेड़ोंको तो वहीं छोड़ दिया और स्वयं बिजलीकी तरह चमकने लगे । जब राजा पुरूरवा भेड़ोंको लेकर लौटे, तब उर्वशीने उस प्रकाशमें उन्हें वस्त्रहीन अवस्थामें देख लिया । (बस, वह उसी समय उन्हें छोड़कर चली गयी) ॥ ३१ ॥

परीक्षित् ! राजा पुरूरवाने जब अपने शयनागारमें अपनी प्रियतमा उर्वशीको नहीं देखा, तो वे अनमने हो गये । उनका चित्त उर्वशीमें ही बसा हुआ था । वे उसके लिये शोकसे विह्वल हो गये और उन्मत्तकी भाँति पृथ्वीमें इधर-उधर भटकने लगे ॥ ३२ ॥ एक दिन कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर उन्होंने उर्वशी और उसकी पाँच प्रसन्नमुखी सखियोंको देखा और बड़ी मीठी वाणीसे कहा—॥ ३३ ॥ 'प्रिये ! तनिक ठहर जाओ । एक बार मेरी बात मान लो । निष्ठुरे ! अब आज तो मुझे सुखी किये बिना मत जाओ । क्षणभर ठहरो; आओ हम दोनों कुछ बातें तो कर लें ॥ ३४ ॥ देवि ! अब इस शरीरपर तुम्हारा कृपा-प्रसाद नहीं रहा, इसीसे तुमने इसे दूर फेंक दिया है । अतः मेरा यह सुन्दर शरीर अभी ढेर हुआ जाता है और तुम्हारे देखते-देखते इसे भेड़िये और गीध खा जायँगे' ॥ ३५ ॥

उर्वशीने कहा—राजन् ! तुम पुरुष हो । इस प्रकार मत मरो । देखो, सचमुच ये भेड़िये तुम्हें खा न जायँ ! स्त्रियोंकी किसीके साथ मित्रता नहीं हुआ करती । स्त्रियोंका हृदय और भेड़ियोंका हृदय बिल्कुल एक-जैसा होता है ॥ ३६ ॥ स्त्रियाँ निर्दय होती हैं । क्रूरता तो उनमें स्वाभाविक ही रहती है । तनिक-सी बातमें चिढ़ जाती हैं और अपने सुखके लिये बड़े-बड़े साहसके काम कर बैठती हैं, थोड़े-से स्वार्थके लिये विश्वास दिलाकर अपने पति और भाईतकको मार डालती हैं ॥ ३७ ॥ इनके हृदयमें सौहार्द तो है ही नहीं । भोले-भाले लोगोंको झूठ-मूठका विश्वास दिलाकर फाँस लेती हैं और नये-नये पुरुषकी चाटसे कुलटा और स्वच्छन्दचारिणी बन जाती हैं ॥३८॥ तो फिर तुम धीरज धरो । तुम राजराजेश्वर हो । घबराओ मत । प्रति एक वर्षके बाद एक रात तुम मेरे साथ रहोगे । तब तुम्हारे और भी सन्तानें होंगी ॥ ३९ ॥

राजा पुरूरवाने देखा कि उर्वशी गर्भवती है, इसलिये वे अपनी राजधानीमें लौट आये । एक वर्षके बाद फिर वहाँ गये । तबतक उर्वशी एक वीर पुत्रकी माता हो चुकी थी ॥ ४० ॥ उर्वशीके मिलनेसे पुरूरवाको बड़ा सुख मिला और वे एक रात उसीके साथ रहे । प्रातः-काल जब वे विदा होने लगे, तब विरहके दुःखसे वे अत्यन्त दीन हो गये । उर्वशीने उनसे कहा—॥ ४१ ॥ 'तुम इन गन्धर्वोंकी स्तुति करो, ये चाहें तो तुम्हें मुझे दे सकते हैं ।' तब राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी स्तुति की । परीक्षित् ! राजा पुरूरवाकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गन्धर्वोंने उन्हें एक अग्निस्थाली (अग्निस्थापन करनेका पात्र) दी । राजाने समझा यही उर्वशी है, इसलिये उसको हृदयसे लगाकर वे एक वनसे दूसरे वनमें घूमते रहे ॥ ४२ ॥ जब उन्हें होश हुआ, तब वे स्थालीको वनमें छोड़कर अपने महलमें लौट आये एवं रातके समय उर्वशीका ध्यान करते रहे । इस प्रकार जब त्रेतायुगका प्रारम्भ हुआ, तब उनके हृदयमें तीनों वेद प्रकट हुए ॥ ४३ ॥ फिर वे उस स्थानपर गये, जहाँ उन्होंने वह अग्निस्थाली छोड़ी थी । अब उस स्थानपर शमीवृक्षके गर्भमें एक पीपलका वृक्ष उग आया था, उसे देखकर उन्होंने उससे दो अरणियाँ (मन्थनकाष्ठ) बनायीं । फिर उन्होंने उर्वशीलोककी कामनासे नीचेकी अरणिको उर्वशी, ऊपरकी अरणिको पुरूरवा और बीचके काष्ठको पुत्ररूपसे चिन्तन करते हुए अग्नि प्रज्वलित करनेवाले मन्त्रोंसे मन्थन किया ॥ ४४-४५ ॥ उनके मन्थनसे 'जातवेदा' नामका अग्नि प्रकट हुआ । राजा पुरूरवाने अग्निदेवताको त्रयीविद्याके द्वारा आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—इन तीन भागोंमें विभक्त करके पुत्ररूपसे स्वीकार कर लिया ॥४६॥ फिर उर्वशीलोककी इच्छासे

पुरूरवाने उन तीनों अग्नियोंद्वारा सर्वदेवस्वरूप इन्द्रियातीत यज्ञपति भगवान् श्रीहरिका यजन किया ॥ ४७ ॥

परीक्षित् ! त्रेताके पूर्व सत्ययुगमें एकमात्र प्रणव (ॐकार) ही वेद था । सारे वेद-शास्त्र उसीके अन्तर्भूत थे । देवता थे एकमात्र नारायण; और कोई न था । अग्नि भी तीन नहीं, केवल एक था और वर्ण भी केवल एक 'हंस' ही था ॥४८॥ परीक्षित् ! त्रेताके प्रारम्भमें पुरूरवासे ही वेदत्रयी और अग्नित्रयीका आविर्भाव हुआ । राजा पुरूरवाने अग्निको सन्तानरूपसे स्वीकार करके गन्धर्वलोककी प्राप्ति की ॥ ४९ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

ऋचीक, जमदग्नि और परशुरामजीका चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके छः पुत्र हुए—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ॥ १ ॥ श्रुतायुका पुत्र था वसुमान्, सत्यायुका श्रुतञ्जय, रयका एक और जयका अमित ॥२॥ विजयका भीम, भीमका काञ्चन, काञ्चनका होत्र और होत्रका पुत्र था जह्नु । ये जह्नु वही थे, जो गङ्गाजीको अपनी अञ्जलिमें लेकर पी गये थे । जह्नुका पुत्र था पूरु, पूरुका बलाक और बलाकका अजक ॥ ३ ॥ अजकका कुश था । कुशके चार पुत्र थे—कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ । इनमेंसे कुशाम्बुके पुत्र गाधि हुए ॥ ४ ॥

परीक्षित् ! गाधिकी कन्याका नाम था सत्यवती । ऋचीक ऋषिने गाधिसे उनकी कन्या माँगी । गाधिने यह समझकर कि ये कन्याके योग्य वर नहीं हैं, ऋचीकसे कहा—॥ ५ ॥ 'मुनिवर ! हमलोग कुशिक-वंशके हैं । हमारी कन्या मिलनी कठिन है । इसलिये आप एक हजार ऐसे घोड़े लाकर मुझे शुल्करूपमें दीजिये, जिनका सारा शरीर तो श्वेत हो, परन्तु एक-एक कान श्याम वर्णका हो ॥ ६ ॥ जब गाधिने यह बात कही, तब ऋचीक मुनि उनका आशय समझ गये और वरुणके पास जाकर वैसे ही घोड़े ले आये तथा उन्हें देकर सुन्दरी सत्यवतीसे विवाह कर लिया ॥ ७ ॥ एक बार महर्षि ऋचीकसे उनकी पत्नी और सास दोनोंने ही पुत्रप्राप्तिके लिये प्रार्थना की । महर्षि ऋचीकने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंके लिये अलग-अलग मन्त्रोंसे चरु पकाया और स्नान करनेके लिये चले गये ॥ ८ ॥ सत्यवतीकी माने यह समझकर कि ऋषिने अपनी पत्नीके लिये श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे वह चरु माँग लिया । इसपर सत्यवतीने अपना चरु तो माको दे दिया और माका चरु वह स्वयं खा गयी ॥ ९ ॥ जब ऋचीक मुनिको इस बातका पता चला, तब उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवतीसे कहा कि 'तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला । अब तुम्हारा पुत्र तो लोगोंको दण्ड देनेवाला घोर प्रकृतिका होगा और तुम्हारा भाई होगा एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता ॥१०॥ सत्यवतीने ऋचीक मुनिको प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'स्वामी ! ऐसा नहीं होना चाहिये ।' तब उन्होंने कहा—'अच्छी बात है । पुत्रके बदले तुम्हारा पौत्र वैसा (घोर प्रकृतिका) होगा ।' समयपर सत्यवतीके गर्भसे जमदग्निका जन्म हुआ ॥ ११ ॥ सत्यवती समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली परम पुण्यमयी 'कौशिकी' नदी बन गयी । रेणु ऋषिकी कन्या थी रेणुका । जमदग्निने उसका पाणिग्रहण किया ॥ १२ ॥ रेणुकाके गर्भसे जमदग्नि ऋषिके वसुमान् आदि कई पुत्र हुए । उनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे । उनका यश सारे संसारमें प्रसिद्ध है ॥ १३ ॥ कहते हैं कि हैहयवंशका अन्त करनेके लिये स्वयं भगवान्ने ही परशुरामके रूपमें अंशावतार ग्रहण किया था । उन्होंने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर दिया ॥ १४ ॥ यद्यपि क्षत्रियोंने उनका थोड़ा-सा ही अपराध किया था—फिर भी वे लोग बड़े दुष्ट, ब्राह्मणोंके अभक्त, रजोगुणी और विशेष करके तमोगुणी हो रहे थे । यही कारण था कि वे पृथ्वीके भार हो गये थे और इसीके फलस्वरूप भगवान् परशुरामने उनका नाश करके पृथ्वीका भार उतार दिया ॥१५॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! अवश्य ही उस

समयके क्षत्रिय विषयलोलुप हो गये थे; परन्तु उन्होंने परशुरामजीका ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया, जिसके कारण उन्होंने बार-बार क्षत्रियोंके वंशका संहार किया ? ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित् ! उन दिनों हैहयवंशका अधिपति था अर्जुन । वह एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था । उसने अनेकों प्रकारकी सेवा-शुश्रूषा करके भगवान् नारायणके अंशावतार दत्तात्रेयजीको प्रसन्न कर लिया और उनसे एक हजार भुजाएँ तथा कोई भी शत्रु युद्धमें पराजित न कर सके—यह वरदान प्राप्त कर लिया । साथ ही इन्द्रियोंका अबाध बल, अतुल सम्पत्ति, तेजस्विता, वीरता, कीर्ति और शारीरिक बल भी उसने उनकी कृपासे प्राप्त कर लिये थे ॥ १७-१८ ॥ वह योगेश्वर हो गया था । उसमें ऐसा ऐश्वर्य था कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल रूप धारण कर लेता । सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त थीं । वह संसारमें वायुकी तरह सब जगह बेरोक-टोक विचरा करता ॥ १९ ॥ एक बार गलेमें वैजयन्ती माला पहने सहस्रबाहु अर्जुन बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें जल-विहार कर रहा था । उस समय मदोन्मत्त सहस्रबाहुने अपनी बाँहोंसे नदीका प्रवाह रोक दिया ॥ २० ॥ दशमुख रावणका शिविर भी वहीं कहीं पासमें ही था । नदीकी धारा उल्टी बहने लगी, जिससे उसका शिविर डूबने लगा । रावण अपनेको बहुत बड़ा वीर तो मानता ही था, इसलिये सहस्रार्जुनका यह पराक्रम उससे सहन नहीं हुआ ॥ २१ ॥ जब रावण सहस्रबाहु अर्जुनके पास जाकर बुरा-भला कहने लगा, तब उसने स्त्रियोंके सामने ही खेल-खेलमें रावणको पकड़ लिया और अपनी राजधानी माहिष्मतीमें ले जाकर बंदरके समान कैद कर लिया । पीछे पुलस्त्यजीके कहनेसे सहस्रबाहुने रावणको छोड़ दिया ॥ २२ ॥

एक दिन सहस्रबाहु अर्जुन शिकार खेलनेके लिये बड़े घोर जंगलमें निकल गया था । दैववश वह जमदग्नि मुनिके आश्रमपर जा पहुँचा ॥ २३ ॥ परम तपस्वी जमदग्नि मुनिके आश्रममें कामधेनु रहती थी । उसके प्रतापसे उन्होंने सेना, मन्त्री और वाहनोंके साथ हैहयाधिपतिका खूब स्वागत-सत्कार किया ॥ २४ ॥ वीर हैहयाधिपतिने देखा कि जमदग्नि मुनिका ऐश्वर्य तो मुझसे भी बढ़ा-चढ़ा है । इसलिये उसने उनके स्वागत-सत्कारको कुछ भी आदर न देकर कामधेनुको ही ले लेना चाहा ॥ २५ ॥ उसने अभिमानवश जमदग्नि मुनिसे माँगा भी नहीं, अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि कामधेनुको छीन ले चलो । उसकी आज्ञासे उसके सेवक बछड़ेके साथ 'बाँ-बाँ' डकराती हुई कामधेनुको बलपूर्वक माहिष्मतीपुरी ले गये ॥ २६ ॥ जब वे सब चले गये, तब परशुरामजी आश्रमपर आये और उसकी दुष्टताका वृत्तान्त सुनकर चोट खाये हुए साँपकी तरह क्रोधसे तिलमिला उठे ॥ २७ ॥ वे अपना भयङ्कर फरसा, तरकस, ढाल एवं धनुष लेकर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े—जैसे कोई किसीसे न दबनेवाला सिंह हाथीपर टूट पड़े ॥ २८ ॥

सहस्रबाहु अर्जुन अभी अपने नगरमें प्रवेश कर ही रहा था कि उसने देखा परशुरामजी महाराज बड़े वेगसे उसीकी ओर झपटे आ रहे हैं । उनकी बड़ी विलक्षण झाँकी थी । वे हाथमें धनुष-बाण और फरसा लिये हुए थे, शरीरपर काला मृगचर्म धारण किये हुए थे और उनकी जटाएँ सूर्यकी किरणोंके समान चमक रही थीं ॥ २९ ॥ उन्हें देखते ही उसने गदा, खड्ग, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि आयुधोंसे सुसज्जित एवं हाथी, घोड़े, रथ तथा पदातियोंसे युक्त अत्यन्त भयङ्कर सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी । भगवान् परशुरामने बात-की-बातमें अकेले ही उस सारी सेनाको नष्ट कर दिया ॥ ३० ॥ भगवान् परशुरामजीकी गति मन और वायुके समान थी । बस, वे शत्रुकी सेना काटते ही जा रहे थे । जहाँ-जहाँ वे अपने फरसेका प्रहार करते, वहाँ-वहाँ सारथि और वाहनोंके साथ बड़े-बड़े वीरोंकी बाँहें, जाँघें और कंधे कट-कटकर पृथ्वीपर गिरते जाते थे ॥ ३१ ॥ हैहयाधिपति अर्जुनने देखा कि मेरी सेनाके सैनिक, उनके धनुष, ध्वजाएँ और ढाल भगवान् परशुरामके फरसे और बाणोंसे कट-कटकर खूनसे लथपथ रणभूमिमें गिर गये हैं, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह स्वयं भिड़नेके लिये आ धमका ॥ ३२ ॥

उसने एक साथ ही अपनी हजार भुजाओंसे पाँच सौ धनुषोंपर बाण चढ़ाये और परशुरामजीपर छोड़े। परन्तु परशुरामजी तो समस्त शस्त्रधारियोंके शिरोमणि ठहरे। उन्होंने अपने एक धनुषपर छोड़े हुए बाणोंसे ही एक साथ सबको काट डाला ॥ ३३ ॥ अब हैहयाधिपति अपने हाथोंसे पहाड़ और पेड़ उखाड़कर बड़े वेगसे युद्धभूमिमें परशुरामजीकी ओर झपटा। परन्तु परशुरामजी-ने अपनी तीखी धारवाले फरसेसे बड़ी फुर्तीके साथ उसकी साँपोंके समान भुजाओंको काट डाला ॥ ३४ ॥ जब उसकी बाँहें कट गयीं, तब उन्होंने पहाड़की चोटीकी तरह उसका ऊँचा सिर धड़से अलग कर दिया। पिताके मर जानेपर उसके दस हजार लड़के डरकर भग गये ॥ ३५ ॥

परीक्षित्! विपक्षी वीरोंके नाशक परशुरामजीने बछड़ेके साथ कामधेनु लौटा ली। वह बहुत ही दुखी हो रही थी। उन्होंने उसे अपने आश्रमपर लाकर पिताजीको सौंप दिया ॥ ३६ ॥ और माहिष्मतीमें सहस्रबाहुने तथा उन्होंने जो कुछ किया था, सब अपने पिताजी तथा भाइयोंको कह सुनाया। सब कुछ सुनकर जमदग्नि मुनिने कहा—॥ ३७ ॥ 'हाय, हाय, परशुराम! तुमने बड़ा पाप किया। राम, राम! तुम बड़े वीर हो; परन्तु सर्वदेवमय नरदेवका तुमने व्यर्थ ही वध किया ॥ ३८ ॥ बेटा! हमलोग ब्राह्मण हैं। क्षमाके प्रभावसे ही हम संसारमें पूजनीय हुए हैं। और तो क्या, सबके दादा ब्रह्माजी भी क्षमाके बलसे ही ब्रह्मपद-को प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणोंकी शोभा क्षमाके द्वारा ही सूर्यकी प्रभाके समान चमक उठती है। सर्व-शक्तिमान् भगवान् श्रीहरि भी क्षमावानोंपर ही शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥ ४० ॥ बेटा! सार्वभौम राजाका वध ब्राह्मणकी हत्यासे भी बढ़कर है। जाओ, भगवान्‌का स्मरण करते हुए तीर्थोंका सेवन करके अपने पापोंको धो डालो' ॥ ४१ ॥

सोलहवाँ अध्याय

परशुरामजीके द्वारा क्षत्रियसंहार और विश्वामित्रजीके वंशकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने पिताकी यह शिक्षा भगवान् परशुरामने 'जो आज्ञा' कहकर स्वीकार की। इसके बाद वे एक वर्षतक तीर्थयात्रा करके अपने आश्रमपर लौट आये ॥ १ ॥ एक दिनकी बात है, परशुरामजीकी माता रेणुका गङ्गातटपर गयी हुई थीं। वहाँ उन्होंने देखा कि गन्धर्वराज चित्ररथ कमलों-की माला पहने अप्सराओंके साथ विहार कर रहा है ॥ २ ॥ वे जल लानेके लिये नदीतटपर गयी थीं, परन्तु वहाँ जलक्रीडा करते हुए गन्धर्वको देखने लगीं और पतिदेवके हवनका समय हो गया है—इस बातको भूल गयीं। उनका मन कुछ-कुछ चित्ररथकी ओर खिंच भी गया था ॥ ३ ॥ हवनका समय बीत गया, यह जानकर वे महर्षि जमदग्निके शापसे भयभीत हो गयीं और तुरंत वहाँसे आश्रमपर चली आयीं। वहाँ जलका कलश महर्षिके सामने रखकर हाथ जोड़ खड़ी हो गयीं ॥ ४ ॥ जमदग्नि मुनिने अपनी पत्नीका मानसिक व्यभिचार जान लिया और क्रोध करके कहा—'मेरे पुत्रो! इस पापिनीको मार डालो।' परन्तु उनके किसी भी पुत्रने उनकी वह आज्ञा स्वीकार नहीं की ॥ ५ ॥ इसके बाद पिताकी आज्ञासे परशुरामजीने माताके साथ सब भाइयोंको भी मार डाला। इसका कारण था। वे अपने पिताजीके योग और तपस्याका प्रभाव भलीभाँति जानते थे ॥ ६ ॥ परशुरामजीके इस कामसे सत्यवती-नन्दन महर्षि जमदग्नि बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—'बेटा! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो।' परशुरामजीने कहा—'पिताजी! मेरी माता और सब भाई जीवित हो जायँ तथा उन्हें इस बातकी याद न रहे कि मैंने उन्हें मारा था' ॥ ७ ॥ परशुरामजीके इस प्रकार कहते ही जैसे कोई सोकर उठे, सब-के-सब अनायास ही सकुशल उठ बैठे। परशुरामजीने अपने पिताजीका तपोबल जानकर ही तो अपने सुहृदोंका वध किया था ॥ ८ ॥

परीक्षित् ! सहस्रबाहु अर्जुनके जो लड़के परशुरामजीसे हारकर भाग गये थे, उन्हें अपने पिताके वधकी याद निरन्तर बनी रहती थी। कहीं एक क्षणके लिये भी उन्हें चैन नहीं मिलता था॥ ९॥ एक दिनकी बात है, परशुरामजी अपने भाइयोंके साथ आश्रमसे बाहर वनकी ओर गये हुए थे। यह अवसर पाकर वैर साधनेके लिये सहस्रबाहुके लड़के वहाँ आ पहुँचे॥ १०॥ उस समय महर्षि जमदग्नि अग्निशालामें बैठे हुए थे और अपनी समस्त वृत्तियोंसे पवित्रकीर्ति भगवान्‌के ही चिन्तनमें मग्न हो रहे थे। उन्हें बाहरकी कोई सुध न थी। उसी समय उन पापियोंने जमदग्नि ऋषिको मार डाला। उन्होंने पहलेसे ही ऐसा पापपूर्ण निश्चय कर रक्खा था॥ ११॥ परशुरामकी माता रेणुका बड़ी दीनतासे उनसे प्रार्थना कर रही थीं, परन्तु उन सबोंने उनकी एक न सुनी। वे बलपूर्वक महर्षि जमदग्निका सिर काटकर ले गये। परीक्षित् ! वास्तवमें वे नीच क्षत्रिय अत्यन्त क्रूर थे॥ १२॥ सती रेणुका दुःख और शोकसे आतुर हो गयीं। वे अपने हाथों अपनी छाती और सिर पीट-पीटकर जोर-जोरसे रोने लगीं—'परशुराम ! बेटा परशुराम ! शीघ्र आओ'॥१३॥ परशुरामजीने बहुत दूरसे माताका 'हा राम !' यह करुण-क्रन्दन सुन लिया। वे बड़ी शीघ्रतासे आश्रमपर आये और वहाँ आकर देखा कि पिताजी मार डाले गये हैं॥ १४॥ परीक्षित् ! उस समय परशुरामजीको बड़ा दुःख हुआ। साथ ही क्रोध, असहिष्णुता, मानसिक पीडा और शोकके वेगसे वे अत्यन्त मोहित हो गये। 'हाय, पिताजी ! आप तो बड़े महात्मा थे। पिताजी ! आप तो धर्मके सच्चे पुजारी थे। आप हमलोगोंको छोड़कर स्वर्ग चले गये'॥ १५॥ इस प्रकार विलापकर उन्होंने पिताका शरीर तो भाइयोंको सौंप दिया और स्वयं हाथमें फरसा उठाकर क्षत्रियोंका संहार कर डालनेका निश्चय किया॥ १६॥

परीक्षित् ! परशुरामजीने माहिष्मती नगरीमें जाकर सहस्रबाहु अर्जुनके पुत्रोंके सिरोंसे नगरके बीचों-बीच एक बड़ा भारी पर्वत खड़ा कर दिया। उस नगरकी शोभा तो उन ब्रह्मघाती नीच क्षत्रियोंके कारण ही नष्ट हो चुकी थी॥ १७॥ उनके रक्तसे एक बड़ी भयङ्कर नदी बह निकली, जिसे देखकर ब्राह्मणद्रोहियोंका हृदय भयसे काँप उठता था। भगवान्‌ने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गये हैं। इसलिये राजन् ! उन्होंने अपने पिताके वधको निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया और कुरुक्षेत्रके समन्तपञ्चकमें ऐसे-ऐसे पाँच तालाब बना दिये, जो रक्तके जलसे भरे हुए थे॥ १८-१९॥ परशुरामजीने अपने पिताजीका सिर लाकर उनके धड़से जोड़ दिया और यज्ञोंद्वारा सर्वदेवमय आत्मस्वरूप भगवान्‌का यजन किया॥२०॥ यज्ञोंमें उन्होंने पूर्व दिशा होताको, दक्षिण दिशा ब्रह्माको, पश्चिम दिशा अध्वर्युको और उत्तर दिशा सामगान करनेवाले उद्गाताको दे दी॥ २१॥ इसी प्रकार अग्निकोण आदि विदिशाएँ ऋत्विजोंको दीं, कश्यपजीको मध्यभूमि दी, उपद्रष्टाको आर्यावर्त दिया तथा दूसरे सदस्योंको अन्यान्य दिशाएँ प्रदान कर दीं॥ २२॥ इसके बाद यज्ञान्त-स्नान करके वे समस्त पापोंसे मुक्त हो गये और ब्रह्मनदी सरस्वतीके तटपर मेघरहित सूर्यके समान शोभायमान हुए॥ २३॥ महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप सङ्कल्पमय शरीरकी प्राप्ति हो गयी। परशुरामजीसे सम्मानित होकर वे सप्तर्षियोंके मण्डलमें सातवें ऋषि हो गये॥ २४॥ परीक्षित् ! कमललोचन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुराम आगामी मन्वन्तरमें सप्तर्षियोंके मण्डलमें रहकर वेदोंका विस्तार करेंगे॥ २५॥ वे आज भी किसीको किसी प्रकारका दण्ड न देते हुए शान्त चित्तसे महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध, गन्धर्व और चारण उनके चरित्रका मधुर स्वरसे गान करते रहते हैं॥ २६॥ सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार भृगुवंशियोंमें अवतार ग्रहण करके पृथ्वीके भारभूत राजाओंका बहुत बार वध किया॥ २७॥

महाराज गाधिके पुत्र हुए प्रज्वलित अग्निके समान परम तेजस्वी विश्वामित्रजी। इन्होंने अपने तपोबलसे क्षत्रियत्वका त्याग करके ब्रह्मतेज प्राप्त कर लिया॥२८॥ परीक्षित् ! विश्वामित्रजीके सौ पुत्र थे। उनमें बिचले पुत्रका नाम था मधुच्छन्दा। इसलिये सभी पुत्र 'मधुच्छन्दा' के ही नामसे विख्यात हुए॥ २९॥

विश्वामित्रजीने भृगुवंशी अजीगर्तके पुत्र अपने भानजे शुनःशेपको, जिसका एक नाम देवरात भी था, पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया और अपने पुत्रोंसे कहा कि 'तुमलोग इसे अपना बड़ा भाई मानो ॥ ३० ॥ यह वही प्रसिद्ध भृगुवंशी शुनःशेप था, जो हरिश्चन्द्रके यज्ञमें यज्ञपशुके रूपमें मोल लेकर लाया गया था। विश्वामित्रजीने प्रजापति वरुण आदि देवताओंकी स्तुति करके उसे पाशबन्धनसे छुड़ा लिया था। देवताओंके यज्ञमें यही शुनःशेप देवताओंद्वारा विश्वामित्रजीको दिया गया था; अतः 'देवैः रातः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार गाधिवंशमें यह तपस्वी देवरातके नामसे विख्यात हुआ ॥३१-३२॥ विश्वामित्रजीके पुत्रोंमें जो बड़े थे, उन्हें शुनःशेपको बड़ा भाई माननेकी बात अच्छी न लगी। इसपर विश्वामित्रजीने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया कि 'दुष्टो! तुम सब म्लेच्छ हो जाओ' ॥ ३३ ॥ इस प्रकार जब उनचास भाई म्लेच्छ हो गये, तब विश्वामित्रजीके विचले पुत्र मधुच्छन्दाने अपनेसे छोटे पचासों भाइयोंके साथ कहा—'पिताजी! आप हमलोगोंको जो आज्ञा करते हैं, हम उसका पालन करनेके लिये तैयार हैं ॥ ३४ ॥ यह कहकर मधुच्छन्दाने मन्त्रद्रष्टा शुनःशेपको बड़ा भाई स्वीकार कर लिया और कहा कि 'हम सब तुम्हारे अनुयायी—छोटे भाई हैं।' तब विश्वामित्रजीने अपने इन आज्ञाकारी पुत्रोंसे कहा—'तुमलोगोंने मेरी बात मानकर मेरे सम्मानकी रक्षा की है, इसलिये तुमलोगों-जैसे सुपुत्र प्राप्त करके मैं धन्य हुआ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें भी सुपुत्र प्राप्त होंगे ॥ ३५ ॥ मेरे प्यारे पुत्रो! यह देवरात शुनःशेप भी तुम्हारे ही गोत्रका है। तुमलोग इसकी आज्ञामें रहना।' परीक्षित्! विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय और क्रतुमान् आदि और भी पुत्र थे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार विश्वामित्रजीकी सन्तानोंसे कौशिकगोत्रमें कई भेद हो गये और देवरातको बड़ा भाई माननेके कारण उसका प्रवर ही दूसरा हो गया ॥ ३७ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

क्षत्रवृद्ध, रजि आदि राजाओंके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजेन्द्र पुरूरवाका एक पुत्र था आयु। उसके पाँच लड़के हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, शक्तिशाली रम्भ और अनेना। अब क्षत्रवृद्धका वंश सुनो। क्षत्रवृद्धके पुत्र थे सुहोत्र। सुहोत्रके तीन पुत्र हुए—काश्य, कुश और गृत्समद। गृत्समदका पुत्र हुआ शुनक। इसी शुनकके पुत्र ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ मुनिवर शौनकजी हुए ॥१—३॥ काश्यका पुत्र काशि, काशिका राष्ट्र, राष्ट्रका दीर्घतमा और दीर्घतमाके धन्वन्तरि। यही आयुर्वेदके प्रवर्तक हैं ॥४॥ ये यज्ञभागके भोक्ता और भगवान् वासुदेवके अंश हैं। इनके स्मरणमात्रसे ही सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं। धन्वन्तरिका पुत्र हुआ केतुमान्, और केतुमान्‌का भीमरथ ॥ ५ ॥ भीमरथका दिवोदास और दिवोदासका द्युमान्—जिसका एक नाम प्रतर्दन भी है। यही द्युमान् शत्रुजित्, वत्स, ऋतध्वज और कुवलयाश्वके नामसे भी प्रसिद्ध है। द्युमान्‌के ही पुत्र अलर्क आदि हुए ॥ ६ ॥ परीक्षित्! अलर्कके सिवा और किसी राजाने छासठ हजार (६६०००) वर्षतक युवा रहकर पृथ्वीका राज्य नहीं भोगा ॥ ७ ॥ अलर्कका पुत्र हुआ सन्तति, सन्ततिका सुनीथ, सुनीथका सुकेतन, सुकेतनका धर्मकेतु और धर्मकेतुका सत्यकेतु ॥ ८ ॥ सत्यकेतुसे धृष्टकेतु, धृष्टकेतुसे राजा सुकुमार, सुकुमारसे वीतिहोत्र, वीतिहोत्रसे भर्ग और भर्गसे राजा भार्गभूमिका जन्म हुआ ॥ ९ ॥

ये सब-के-सब क्षत्रवृद्धके वंशमें काशिसे उत्पन्न नरपति हुए। रम्भके पुत्रका नाम था रभस, उससे गम्भीर और गम्भीरसे अक्रियका जन्म हुआ ॥ १० ॥ अक्रियकी पत्नीसे ब्राह्मणवंश चला। अब अनेनाका वंश सुनो। अनेनाका पुत्र था शुद्ध, शुद्धका शुचि, शुचिका त्रिककुद् और त्रिककुद्‌का धर्मसारथि ॥ ११ ॥ धर्मसारथिके पुत्र थे शान्तरय। शान्तरय आत्मज्ञानी होनेके कारण कृतकृत्य थे, उन्हें सन्तानकी आवश्यकता न थी। परीक्षित्! आयुके पुत्र रजिके अत्यन्त तेजस्वी पाँच सौ पुत्र थे ॥ १२ ॥ देवताओंकी प्रार्थनासे रजिने दैत्योंका वध करके इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया। परन्तु

वे अपने प्रह्लाद आदि शत्रुओंसे भयभीत रहते थे, इसलिये उन्होंने वह स्वर्ग फिर रजिको लौटा दिया और उनके चरण पकड़कर उन्हींको अपनी रक्षाका भार भी सौंप दिया। जब रजिकी मृत्यु हो गयी, तब इन्द्रके माँगनेपर भी रजिके पुत्रोंने स्वर्ग नहीं लौटाया। वे स्वयं ही यज्ञोंका भाग भी ग्रहण करने लगे। तब गुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रकी प्रार्थनासे अभिचार-विधिसे हवन किया। इससे वे धर्मके मार्गसे भ्रष्ट हो गये। तब इन्द्रने अनायास ही उन सब रजिके पुत्रोंको मार डाला। उनमेंसे कोई भी न बचा। क्षत्रवृद्धके पौत्र कुशसे प्रति, प्रतिसे सञ्जय और सञ्जयसे जयका जन्म हुआ। १३—१६। जयसे कृत, कृतसे राजा हर्यवन, हर्यवनसे सहदेव, सहदेवसे हीन और हीनसे जयसेन नामक पुत्र हुआ॥ १७॥ जयसेनका सङ्कृति, सङ्कृतिका पुत्र हुआ महारथी वीरशिरोमणि जय। क्षत्रवृद्धकी वंश-परम्परामें इतने ही नरपति हुए। अब नहुषवंशका वर्णन सुनो॥ १८॥

अठारहवाँ अध्याय

ययाति-चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे शरीरधारियोंके छः इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे ही नहुषके छः पुत्र थे। उनके नाम थे—यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति॥ १॥ नहुष अपने बड़े पुत्र यतिको राज्य देना चाहते थे। परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि वह राज्य पानेका परिणाम जानता था। राज्य एक ऐसी वस्तु है कि जो उसके दाव-पेंच और प्रबन्ध आदिमें भीतर प्रवेश कर जाता है, वह अपने आत्मस्वरूपको नहीं समझ सकता॥ २॥ जब इन्द्रपत्नी शचीसे सहवास करनेकी चेष्टा करनेके कारण नहुषको ब्राह्मणोंने इन्द्रपदसे गिरा दिया और अजगर बना दिया, तब राजाके पदपर ययाति बैठे॥ ३॥ ययातिने अपने चार छोटे भाइयोंको चार दिशाओंमें नियुक्त कर दिया और स्वयं शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाको पत्नीके रूपमें स्वीकार करके पृथ्वीकी रक्षा करने लगा॥ ४॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् शुक्राचार्यजी तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय। फिर ब्राह्मण-कन्या और क्षत्रिय-वरका प्रतिलोम (उलटा) विवाह कैसे हुआ?॥ ५॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! दानवराज वृषपर्वाकी एक बड़ी मानिनी कन्या थी। उसका नाम था शर्मिष्ठा। वह एक दिन अपनी गुरुपुत्री देवयानी और हजारों सखियोंके साथ अपनी राजधानीके श्रेष्ठ उद्यानमें टहल रही थी। उस उद्यानमें सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे लदे हुए अनेकों वृक्ष थे। उसमें एक बड़ा ही सुन्दर सरोवर था। सरोवरमें कमल खिले हुए थे और उनपर बड़े ही मधुर स्वरसे भौंरे गुंजार कर रहे थे। उसकी ध्वनिसे सरोवरका तट गूँज रहा था॥ ६-७॥ जलाशयके पास पहुँचनेपर उन सुन्दरी कन्याओंने अपने-अपने वस्त्र तो घाटपर रख दिये और उस तालाबमें प्रवेश करके वे एक-दूसरेपर जल उलीच-उलीचकर क्रीडा करने लगीं। ८। उसी समय उधरसे पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़े हुए भगवान् शङ्कर आ निकले। उनको देखकर सब-की-सब कन्याएँ सकुचा गयीं और उन्होंने झटपट सरोवरसे निकलकर अपने-अपने वस्त्र पहन लिये॥ ९॥ शीघ्रताके कारण शर्मिष्ठाने अनजानमें देवयानीके वस्त्रको अपना समझकर पहन लिया। इसपर देवयानी क्रोधके मारे आग-बबूला हो गयी। उसने कहा—॥ १०॥ 'अरे, देखो तो सही, इस दासीने कितना अनुचित काम कर डाला! राम-राम, जैसे कुतिया यज्ञका हविष्य उठा ले जाय, वैसे ही इसने मेरे वस्त्र पहन लिये हैं॥ ११॥ जिन ब्राह्मणोंने अपने तपोबलसे इस संसारकी सृष्टि की है, जो परम पुरुष परमात्माके मुखरूप हैं, जो अपने हृदयमें निरन्तर ज्योतिर्मय परमात्माको धारण किये रहते हैं और जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके लिये वैदिक मार्गका निर्देश किया है, बड़े-बड़े लोकपाल तथा

देवराज इन्द्र-ब्रह्मा आदि भी जिनके चरणोंकी वन्दना और सेवा करते हैं,—और तो क्या, लक्ष्मीजीके एक-मात्र आश्रय परम पावन विश्वात्मा भगवान् भी जिनकी वन्दना और स्तुति करते हैं—उन्हीं ब्राह्मणोंमें हम सबसे श्रेष्ठ भृगुवंशी हैं। और इसका पिता प्रथम तो असुर है, फिर हमारा शिष्य है। इसपर भी इस दुष्टाने जैसे शूद्र वेद पढ़ ले, उसी तरह हमारे कपड़ोंको पहन लिया है' ॥ १२—१४ ॥ जब देवयानी इस प्रकार गाली देने लगी, तब शर्मिष्ठा क्रोधसे तिलमिला उठी। वह चोट खायी हुई नागिनके समान लंबी साँस लेने लगी। उसने अपने दाँतोंसे होठ दबाकर कहा—॥ १५ ॥ 'भिखारिन ! तू इतना बहक रही है। तुझे कुछ अपनी बातका भी पता है? जैसे कौए और कुत्ते हमारे दरवाजे-पर रोटीके टुकड़ोंके लिये प्रतीक्षा करते हैं, वैसे ही क्या तुम भी हमारे घरोंकी ओर नहीं ताकती रहतीं' ।१६। शर्मिष्ठाने इस प्रकार बड़ी कड़ी-कड़ी बात कहकर गुरु-पुत्री देवयानीका तिरस्कार किया और क्रोधवश उसके वस्त्र छीनकर उसे कूएँमें ढकेल दिया ॥ १७ ॥

शर्मिष्ठाके चले जानेके बाद संयोगवश शिकार खेलते हुए राजा ययाति उधर आ निकले। उन्हें जलकी आवश्यकता थी, इसलिये कूएँमें पड़ी हुई देवयानीको उन्होंने देख लिया ॥ १८ ॥ उस समय वह वस्त्रहीन थी। इसलिये उन्होंने अपना दुपट्टा उसे दे दिया और दया करके अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल लिया ॥ १९ ॥ देवयानीने प्रेमभरी वाणी-से वीर ययातिसे कहा—'वीरशिरोमणे राजन् ! आज आपने मेरा हाथ पकड़ा है। अब जब आपने मेरा हाथ पकड़ लिया, तब कोई दूसरा इसे न पकड़े। वीरश्रेष्ठ ! कूएँमें गिर जानेपर मुझे जो आपका अचानक दर्शन हुआ है, यह भगवान्‌का ही किया हुआ सम्बन्ध समझना चाहिये। इसमें हमलोगोंकी या और किसी मनुष्य-की कोई चेष्टा नहीं है ॥ २०-२१ ॥ वीरश्रेष्ठ ! पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दे दिया था, इसपर उसने भी मुझे शाप दे दिया। इसी कारण ब्राह्मण मेरा पाणिग्रहण नहीं कर सकता'* ॥ २२ ॥ ययातिको शास्त्रप्रतिकूल होनेके कारण यह सम्बन्ध अभीष्ट तो न था; परन्तु उन्होंने देखा कि प्रारब्धने स्वयं ही मुझे यह उपहार दिया है, और मेरा मन भी इसकी ओर खिंच रहा है। इसलिये ययातिने उसकी बात मान ली ।२३।

वीर राजा ययाति जब चले गये, तब देवयानी रोती-पीटती अपने पिता शुक्राचार्यके पास पहुँची और शर्मिष्ठाने जो कुछ किया था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥ २४ ॥ शर्मिष्ठाके व्यवहारसे भगवान् शुक्रा-चार्यजीका भी मन उचट गया। वे पुरोहिताईकी निन्दा करने लगे। उन्होंने सोचा कि इसकी अपेक्षा तो खेत या बाजारमेंसे कबूतरकी तरह कुछ बीनकर खा लेना अच्छा है। अतः अपनी कन्या देवयानीको साथ लेकर वे नगरसे निकल पड़े ॥ २५ ॥ जब वृषपर्वाको यह मालूम हुआ, तो उनके मनमें यह शङ्का हुई कि गुरुजी कहीं शत्रुओंकी जीत न करा दें, अथवा मुझे शाप न दे दें। अतएव वे उनको प्रसन्न करनेके लिये पीछे-पीछे गये और रास्तेमें उनके चरणोंपर सिरके बल गिर गये ॥ २६ ॥ भगवान् शुक्राचार्यजीका क्रोध तो आधे ही क्षणका था। उन्होंने वृषपर्वासे कहा—'राजन् ! मैं अपनी पुत्री देवयानीको नहीं छोड़ सकता। इसलिये इसकी जो इच्छा हो, तुम पूरी कर दो। फिर मुझे लौट चलनेमें कोई आपत्ति न होगी ॥ २७ ॥ जब वृषपर्वाने 'ठीक है' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली, तब देवयानीने अपने मनकी बात कही। उसने कहा—'पिताजी मुझे जिस किसीको दे दें और मैं जहाँ कहीं जाऊँ, शर्मिष्ठा अपनी सहेलियोंके साथ मेरी सेवाके लिये वहीं चले' ॥ २८ ॥

शर्मिष्ठाने अपने परिवारवालोंका सङ्कट और उनके कार्यका गौरव देखकर देवयानीकी बात स्वीकार कर ली।

* बृहस्पतिजीका पुत्र कच शुक्राचार्यजीसे मृतसञ्जीवनी विद्या पढ़ता था। अध्ययन समाप्त करके जब वह अपने घर जाने लगा तो देवयानीने उसे वरण करना चाहा। परन्तु गुरुपुत्री होनेके कारण कचने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इसपर देवयानीने उसे शाप दे दिया कि 'तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या निष्फल हो जाय।' कचने भी उसे शाप दिया कि 'कोई भी ब्राह्मण तुम्हें पत्नीरूपमें स्वीकार न करेगा।'

वह अपनी एक हजार सहेलियोंके साथ दासीके समान उसकी सेवा करने लगी ॥ २९ ॥ शुक्राचार्यजीने देवयानीका विवाह राजा ययातिके साथ कर दिया और शर्मिष्ठाको दासीके रूपमें देकर उनसे कह दिया—'राजन् ! इसको अपनी सेजपर कभी न आने देना ।३०। परीक्षित् ! कुछ ही दिनों बाद देवयानी पुत्रवती हो गयी । उसको पुत्रवती देखकर एक दिन शर्मिष्ठाने भी अपने ऋतुकालमें देवयानीके पति ययातिसे एकान्तमें सहवासकी याचना की ॥ ३१ ॥ शर्मिष्ठाकी पुत्रके लिये प्रार्थना धर्मसंगत है—यह देखकर धर्मज्ञ राजा ययातिने शुक्राचार्यकी बात याद रहनेपर भी यही निश्चय किया कि समयपर प्रारब्धके अनुसार जो होना होगा, हो जायगा ॥ ३२ ॥ देवयानीके दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु । तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु ॥ ३३ ॥ जब मानिनी देवयानीको यह मालूम हुआ कि शर्मिष्ठाको भी मेरे पतिके द्वारा ही गर्भ रहा था, तब वह क्रोधसे बेसुध होकर अपने पिताके घर चली गयी ॥ ३४ ॥ कामी ययातिने मीठी-मीठी बातें, अनुनय-विनय और चरण दबाने आदिके द्वारा देवयानीको मनानेकी चेष्टा की, उसके पीछे-पीछे वहाँतक गये भी; परन्तु मना न सके ।३५। शुक्राचार्यजीने भी क्रोधमें भरकर ययातिसे कहा—'तू अत्यन्त स्त्रीलम्पट, मन्दबुद्धि और झूठा है । जा, तेरे शरीरमें वह बुढ़ापा आ जाय, जो मनुष्योंको कुरूप कर देता है' ॥ ३६ ॥

ययातिने कहा—'ब्रह्मन् ! आपकी पुत्रीके साथ विषय-भोग करते-करते अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है । इस शापसे तो आपकी पुत्रीका भी अनिष्ट ही है ।'

इसपर शुक्राचार्यजीने कहा—'अच्छा जाओ; जो प्रसन्नतासे तुम्हें अपनी जवानी दे दे, उससे अपना बुढ़ापा बदल लो' ॥ ३७ ॥ शुक्राचार्यजीने जब ऐसी व्यवस्था दे दी, तब अपनी राजधानीमें आकर ययातिने अपने बड़े पुत्र यदुसे कहा—'बेटा ! तुम अपनी जवानी मुझे दे दो और अपने नानाका दिया हुआ यह बुढ़ापा तुम स्वीकार कर लो । क्योंकि मेरे प्यारे पुत्र ! मैं अभी विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ । इसलिये तुम्हारी आयु लेकर मैं कुछ वर्षोंतक और आनन्द भोगूँगा' ॥३८-३९॥

यदुने कहा—'पिताजी ! बिना समयके ही प्राप्त हुआ आपका बुढ़ापा लेकर तो मैं जीना भी नहीं चाहता । क्योंकि कोई भी मनुष्य जबतक विषय-सुखका अनुभव नहीं कर लेता, तबतक उसे उससे वैराग्य नहीं होता' ॥ ४० ॥ परीक्षित् ! इसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुने भी पिताकी आज्ञा अस्वीकार कर दी । सच पूछो तो उन पुत्रोंको धर्मका तत्त्व मालूम नहीं था । वे इस अनित्य शरीरको ही नित्य माने बैठे थे ॥ ४१ ॥ अब ययातिने अवस्थामें सबसे छोटे किन्तु गुणोंमें बड़े अपने पुत्र पूरुको बुलाकर पूछा और कहा—'बेटा ! अपने बड़े भाइयोंके समान तुम्हें तो मेरी बात नहीं टालनी चाहिये' ॥ ४२ ॥

पूरुने कहा—'पिताजी ! पिताकी कृपासे मनुष्यको परम पदकी प्राप्ति हो सकती है । वास्तवमें पुत्रका शरीर पिताका ही दिया हुआ है । ऐसी अवस्थामें ऐसा कौन है, जो इस संसारमें पिताके उपकारोंका बदला चुका सके ? ॥ ४३ ॥ उत्तम पुत्र तो वह है, जो पिताके मनकी बात बिना कहे ही कर दे । कहनेपर श्रद्धाके साथ आज्ञापालन करनेवाले पुत्रको मध्यम कहते हैं । जो आज्ञा प्राप्त होनेपर भी अश्रद्धासे उसका पालन करे, वह अधम पुत्र है । और जो किसी प्रकार भी पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसको तो पुत्र कहना ही भूल है । वह तो पिताका मल-मूत्र ही है ॥ ४४ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार कहकर पूरुने बड़े आनन्दसे अपने पिताका बुढ़ापा स्वीकार कर लिया । राजा ययाति भी उसकी जवानी लेकर पूर्ववत् विषयोंका सेवन करने लगे ॥ ४५ ॥ वे सातों द्वीपोंके एकछत्र सम्राट् थे । पिताके समान भलीभाँति प्रजाका पालन करते थे । उनकी इन्द्रियोंमें पूरी शक्ति थी और वे यथावसर यथाप्राप्त विषयोंका यथेच्छ उपभोग करते थे ॥ ४६ ॥ देवयानी उनकी प्रियतमा पत्नी थी । वह अपने प्रियतम ययातिको अपने मन, वाणी, शरीर और वस्तुओंके द्वारा दिन-दिन और भी प्रसन्न करने लगी । और एकान्तमें सुख देने लगी ॥ ४७ ॥ राजा ययातिने समस्त वेदोंके प्रतिपाद्य सर्वदेवस्वरूप यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरिका बहुत-

से बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे यजन किया ॥ ४८ ॥ जैसे आकाशमें दल-के-दल बादल दीखते हैं और कभी नहीं भी दीखते, वैसे ही परमात्माके स्वरूपमें यह जगत् स्वप्न, माया और मनोराज्यके समान कल्पित है। यह कभी अनेक नाम और रूपोंके रूपमें प्रतीत होता है, और कभी नहीं भी ॥ ४९ ॥ वे परमात्मा सबके हृदय-में विराजमान हैं। उनका स्वरूप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है। उन्हीं सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी भगवान् श्रीनारायणको अपने हृदयमें स्थापित करके राजा ययातिने निष्काम भावसे उनका यजन किया ॥ ५० ॥ इस प्रकार एक हजार वर्षतक उन्होंने अपनी उच्छृङ्खल इन्द्रियोंके साथ मनको जोड़कर उसके प्रिय विषयोंको भोगा। परन्तु इतनेपर भी चक्रवर्ती सम्राट् ययातिकी भोगोंसे तृप्ति न हो सकी ॥ ५१ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

ययातिका गृहत्याग

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा ययाति इस प्रकार स्त्रीके वशमें होकर विषयोंका उपभोग करते रहे। एक दिन जब अपने अधःपतनपर दृष्टि गयी तब उन्हें बड़ा वैराग्य हुआ और उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी देवयानीसे इस गाथाका गान किया ॥ १ ॥ 'भृगु-नन्दिनी! तुम यह गाथा सुनो। पृथ्वीमें मेरे ही समान विषयीका यह सत्य इतिहास है। ऐसे ही ग्रामवासी विषयी पुरुषोंके सम्बन्धमें वनवासी जितेन्द्रिय पुरुष दुःखके साथ विचार किया करते हैं कि इनका कल्याण कैसे होगा? ॥ २ ॥ एक था बकरा। वह वनमें अकेला ही अपनेको प्रिय लगनेवाली वस्तुएँ ढूँढ़ता हुआ घूम रहा था। उसने देखा कि अपने कर्मवश एक बकरी कूएँमें गिर पड़ी है ॥ ३ ॥ वह बकरा बड़ा कामी था। वह सोचने लगा कि इस बकरीको किस प्रकार कूएँसे निकाला जाय। उसने अपने सींगसे कूएँके पासकी धरती खोद डाली और रास्ता तैयार कर लिया ॥ ४ ॥ जब वह सुन्दरी बकरी कूएँसे निकली, तो उसने उस बकरेसे ही प्रेम करना चाहा। वह दाढ़ी-मूँछमण्डित बकरा हृष्ट-पुष्ट, जवान, बकरियोंको सुख देनेवाला, विहारकुशल और बहुत प्यारा था। जब दूसरी बकरियों-ने देखा कि कूएँमें गिरी हुई बकरीने उसे अपना प्रेमपात्र चुन लिया है, तब उन्होंने भी उसीको अपना पति बना लिया। वे तो पहलेसे ही पतिकी तलाशमें थीं। उस बकरेके सिरपर कामरूप पिशाच सवार था। वह अकेला ही बहुत-सी बकरियोंके साथ विहार करने लगा और अपनी सब सुध-बुध खो बैठा ॥ ५-६ ॥ जब उसकी कूएँमेंसे निकाली हुई प्रियतमा बकरीने देखा कि मेरा पति तो अपनी दूसरी प्रियतमा बकरीसे विहार कर रहा है, तो उसे बकरेकी यह करतूत सहन न हुई ॥ ७ ॥ उसने देखा कि यह तो बड़ा कामी है, इसके प्रेमका कोई भरोसा नहीं है और यह मित्रके रूपमें शत्रुका काम कर रहा है। अतः वह बकरी उस इन्द्रियलोलुप बकरे-को छोड़कर बड़े दुःखसे अपने पालनेवालेके पास चली गयी ॥ ८ ॥ वह दीन कामी बकरा उसे मनानेके लिये 'में-में' करता हुआ उसके पीछे-पीछे चला। परन्तु उसे मार्गमें मना न सका ॥ ९ ॥ उस बकरीका स्वामी एक ब्राह्मण था। उसने क्रोधमें आकर बकरेके लटकते हुए अण्डकोषको काट दिया। परन्तु फिर उस बकरीका ही भला करनेके लिये फिरसे उसे जोड़ भी दिया। उसे इस प्रकारके बहुत-से उपाय मालूम थे ॥ १० ॥ प्रिये! इस प्रकार अण्डकोष जुड़ जानेपर वह बकरा फिर कूएँ-से निकली हुई बकरीके साथ बहुत दिनोंतक विषय-भोग करता रहा, परन्तु आजतक उसे सन्तोष न हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दरी! मेरी भी यही दशा है। तुम्हारे प्रेमपाशमें बँधकर मैं भी अत्यन्त दीन हो गया। तुम्हारी मायासे मोहित होकर मैं अपने-आपको भी भूल गया हूँ ॥ १२ ॥

'प्रिये! पृथ्वीमें जितने भी धान्य (चावल, जौ आदि), सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं—वे सब-के-सब मिलकर भी उस पुरुषके मनको सन्तुष्ट नहीं कर सकते, जो कामनाओं-के प्रहारसे जर्जर हो रहा है ॥ १३ ॥ विषयोंके भोगने-

से भोगवासना कभी शान्त नहीं हो सकती। बल्कि जैसे घीकी आहुति डालनेपर आग और भड़क उठती है, वैसे ही भोगवासनाएँ भी भोगोंसे प्रबल हो जाती हैं।१४। जब मनुष्य किसी भी प्राणी और किसी भी वस्तुके साथ राग-द्वेषका भाव नहीं रखता, तब वह समदर्शी हो जाता है तथा उसके लिये सभी दिशाएँ सुखमयी बन जाती हैं ॥ १५ ॥ विषयोंकी तृष्णा ही दुःखोंका उद्गमस्थान है। मन्दबुद्धि लोग बड़ी कठिनाईसे उसका त्याग कर सकते हैं! शरीर बूढ़ा हो जाता है, पर तृष्णा नित्य नवीन ही होती जाती है। अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उसे शीघ्र-से-शीघ्र इस तृष्णा (भोग-वासना) का त्याग कर देना चाहिये ॥ १६ ॥ और तो क्या— अपनी मा, बहिन और कन्याके साथ भी अकेले एक आसन-पर सटकर नहीं बैठना चाहिये। इन्द्रियाँ इतनी बलवान् हैं कि वे बड़े-बड़े विद्वानोंको भी विचलित कर देती हैं ॥ १७ ॥ विषयोंका बार-बार सेवन करते-करते मेरे एक हजार वर्ष पूरे हो गये, फिर भी क्षण-प्रति-क्षण उन भोगोंकी लालसा बढ़ती ही जा रही है ॥ १८ ॥ इसलिये मैं अब भोगोंकी वासना-तृष्णाका परित्याग करके अपना अन्तःकरण परमात्माके प्रति समर्पित कर दूँगा और शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदिके भावोंसे ऊपर उठकर अहङ्कारसे मुक्त हो हरिनोंके साथ वनमें विचरूँगा।१९। लोक-परलोक दोनोंके ही भोग असत् हैं, ऐसा समझकर न तो उनका चिन्तन करना चाहिये और न भोग ही। समझना चाहिये कि उनके चिन्तनसे ही जन्म-मृत्युरूप संसारकी प्राप्ति होती है और उनके भोगसे तो आत्म-नाश ही हो जाता है। वास्तवमें इनके रहस्यको जान-कर इनसे अलग रहनेवाला ही आत्मज्ञानी है' ॥ २० ॥

परीक्षित्! ययातिने अपनी पत्नीसे इस प्रकार कह-कर पूरुकी जवानी उसे लौटा दी और उससे अपना बुढ़ापा ले लिया। यह इसलिये कि अब उनके चित्तमें विषयोंकी वासना नहीं रह गयी थी ॥ २१ ॥ इसके बाद उन्होंने दक्षिण-पूर्व दिशामें द्रुह्यु, दक्षिणमें यदु, पश्चिममें तुर्वसु और उत्तरमें अनुको राज्य दे दिया ॥२२॥ सारे भूमण्डलकी समस्त सम्पत्तियोंके योग्यतम पात्र पूरुको अपने राज्यपर अभिषिक्त करके तथा बड़े भाइयोंको उसके अधीन बनाकर वे वनमें चले गये ॥ २३ ॥ यद्यपि राजा ययातिने बहुत वर्षोंतक इन्द्रियोंसे विषयोंका सुख भोगा था—परन्तु जैसे पाँख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला छोड़ देता है, वैसे ही उन्होंने एक क्षणमें ही सब कुछ छोड़ दिया ॥ २४ ॥ वनमें जाकर राजा ययातिने समस्त आसक्तियोंसे छुट्टी पा ली। आत्म-साक्षात्कारके द्वारा उनका त्रिगुणमय लिङ्गशरीर नष्ट हो गया। उन्होंने माया-मलसे रहित परब्रह्म परमात्मा वासुदेवमें मिलकर वह भागवती गति प्राप्त की, जो बड़े-बड़े भगवान्‌के प्रेमी संतोंको प्राप्त होती है ॥ २५ ॥

जब देवयानीने वह गाथा सुनी, तो उसने समझा कि ये मुझे निवृत्तिमार्गके लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। क्योंकि स्त्री-पुरुषमें परस्पर प्रेमके कारण विरह होनेपर विकलता होती है, यह सोचकर ही इन्होंने यह बात हँसी-हँसीमें कही है ॥ २६ ॥ स्वजन-सम्बन्धियोंका— जो ईश्वरके अधीन हैं—एक स्थानपर इकट्ठा हो जाना वैसा ही है, जैसा प्याऊपर पथिकोंका। यह सब भगवान्‌की मायाका खेल और स्वप्नके सरीखा ही है। ऐसा समझकर देवयानीने सब पदार्थोंकी आसक्ति त्याग दी और अपने मनको भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय करके बन्धनके हेतु लिङ्गशरीरका परित्याग कर दिया—वह भगवान्‌को प्राप्त हो गयी ॥ २७-२८ ॥ उसने भगवान्‌-को नमस्कार करके कहा—'समस्त जगत्‌के रचयिता, सर्वान्तर्यामी, सबके आश्रयस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वासुदेवको नमस्कार है। जो परम शान्त और अनन्त तत्त्व है, उसे मैं नमस्कार करती हूँ ॥ २९ ॥

बीसवाँ अध्याय

पूरुके वंश, राजा दुष्यन्त और भरतके चरित्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मैं राजा पूरुके वंशका वर्णन करूँगा। इसी वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है। इसी वंशके वंशधर बहुत-से राजर्षि और ब्रह्मर्षि भी हुए हैं ॥ १ ॥ पूरुका पुत्र हुआ जनमेजय।

जनमेजयका प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान्का प्रवीर, प्रवीरका नमस्यु और नमस्युका पुत्र हुआ चारुपद ॥ २ ॥ चारुपदसे सुद्यु, सुद्युसे बहुगव, बहुगवसे संयाति, संयातिसे अहंयाति और अहंयातिसे रौद्राश्व हुआ ॥ ३ ॥ परीक्षित् ! जैसे विश्वात्मा प्रधान प्राणसे दस इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे ही घृताची अप्सराके गर्भसे रौद्राश्वके दस पुत्र हुए—ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटा वनेयु ॥ ४-५ ॥ परीक्षित् ! उनमेंसे ऋतेयुका पुत्र रन्तिभार हुआ और रन्तिभारके तीन पुत्र हुए—सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ। अप्रतिरथके पुत्रका नाम था कण्व ॥ ६ ॥ कण्वका पुत्र मेधातिथि हुआ। इसी मेधातिथिसे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मण उत्पन्न हुए। सुमतिका पुत्र रैभ्य हुआ, इसी रैभ्यका पुत्र दुष्यन्त था ॥ ७ ॥

एक बार दुष्यन्त वनमें अपने कुछ सैनिकोंके साथ शिकार खेलनेके लिये गये हुए थे। उधर ही वे कण्व मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे। उस आश्रमपर देवमायाके समान मनोहर एक स्त्री बैठी हुई थी। उसकी लक्ष्मीके समान अङ्गकान्तिसे वह आश्रम जगमगा रहा था। उस सुन्दरीको देखते ही दुष्यन्त मोहित हो गये और उससे बातचीत करने लगे ॥ ८-९ ॥ उसको देखनेसे उनको बड़ा आनन्द मिला। उनके मनमें काम-वासना जाग्रत् हो गयी। थकावट दूर करनेके बाद उन्होंने बड़ी मधुर वाणीसे मुसकराते हुए उससे पूछा—॥ १० ॥ 'कमलदलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली देवि ! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो ? मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित करनेवाली सुन्दरी ! तुम इस निर्जन वनमें रहकर क्या करना चाहती हो ? ॥ ११ ॥ सुन्दरी ! मैं स्पष्ट समझ रहा हूँ कि तुम किसी क्षत्रियकी कन्या हो। क्योंकि पूरुवंशियोंका चित्त कभी अधर्मकी ओर नहीं झुकता' ॥ १२ ॥

शकुन्तलाने कहा—'आपका कहना सत्य है। मैं विश्वामित्रजीकी पुत्री हूँ। मेनका अप्सराने मुझे वनमें छोड़ दिया था। इस बालकके साक्षी हैं मेरा पालन-पोषण करनेवाले महर्षि कण्व। वीरशिरोमणे ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ १३ ॥ कमलनयन ! आप यहाँ बैठिये और हम जो कुछ आपका स्वागत-सत्कार करें, उसे स्वीकार कीजिये। आश्रममें कुछ नीवार (तिन्नीका भात) है। आपकी इच्छा हो तो भोजन कीजिये और जँचे तो यहीं ठहरिये' ॥ १४ ॥

दुष्यन्तने कहा—'सुन्दरी ! तुम कुशिकवंशमें उत्पन्न हुई हो, इसलिये इस प्रकारका आतिथ्य-सत्कार तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि राजकन्याएँ स्वयं ही अपने योग्य पतिको वरण कर लिया करती हैं' ॥ १५ ॥ शकुन्तलाकी स्वीकृति मिल जानेपर देश, काल और शास्त्रकी आज्ञाको जाननेवाले राजा दुष्यन्तने गान्धर्व-विधिसे धर्मानुसार उसके साथ विवाह कर लिया ॥ १६ ॥ राजर्षि दुष्यन्तका वीर्य अमोघ था। रात्रिमें वहाँ रहकर दुष्यन्तने शकुन्तलाका सहवास किया और दूसरे दिन सबेरे वे अपनी राजधानीमें चले गये। समय आनेपर शकुन्तलाको एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १७ ॥ महर्षि कण्वने वनमें ही राजकुमारके जातकर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये। वह बालक बचपनमें ही इतना बलवान् था कि बड़े-बड़े सिंहोंको बलपूर्वक बाँध लेता और उनसे खेला करता ॥ १८ ॥

वह बालक भगवान्का अंशांशावतार था। उसका बल-विक्रम अपरिमित था। उसे अपने साथ लेकर रमणीरत्न शकुन्तला अपने पतिके पास गयी ॥ १९ ॥ जब राजा दुष्यन्तने अपनी निर्दोष पत्नी और पुत्रको स्वीकार नहीं किया, तब जिसका वक्ता नहीं दीख रहा था और जिसे सब लोगोंने सुना, ऐसी आकाशवाणी हुई ॥ २० ॥ 'पुत्र उत्पन्न करनेमें माता तो केवल धौंकनीके समान है। वास्तवमें पुत्र पिताका ही है। क्योंकि पिता ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है। इसलिये दुष्यन्त ! तुम शकुन्तलाका तिरस्कार न करो, अपने पुत्रका भरण-पोषण करो ॥ २१ ॥ राजन् ! वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र अपने पिताको नरकसे उबार लेता है। शकुन्तलाका कहना बिल्कुल ठीक है। इस गर्भको धारण करानेवाले तुम्हीं हो' ॥ २२ ॥

परीक्षित् ! पिता दुष्यन्तकी मृत्यु हो जानेके बाद वह परम यशस्वी बालक चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसका जन्म भगवान्के अंशसे हुआ था। आज भी पृथ्वीपर

उसकी महिमाका गान किया जाता है ॥ २३ ॥ उसके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न था और पैरोंमें कमलकोषका। महाभिषेककी विधिसे राजाधिराजके पदपर उसका अभिषेक हुआ। भरत बड़ा शक्तिशाली राजा था ॥ २४ ॥ भरतने ममताके पुत्र दीर्घतमा मुनिको पुरोहित बनाकर गङ्गातटपर गङ्गासागरसे लेकर गङ्गोत्रीपर्यन्त पचपन पवित्र अश्वमेध यज्ञ किये। और इसी प्रकार यमुनातटपर भी प्रयागसे लेकर यमुनोत्रीतक उन्होंने अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किये। इन सभी यज्ञोंमें उन्होंने अपार धनराशिका दान किया था। दुष्यन्तकुमार भरतका यज्ञीय अग्नि-स्थापन बड़े ही उत्तम गुणवाले स्थानमें किया गया था। उस स्थानमें भरतने इतनी गौएँ दान दी थीं कि एक हजार ब्राह्मणोंमें प्रत्येक ब्राह्मणको एक-एक बद्व (१३०८४) गौएँ मिली थीं ॥ २५-२६ ॥ इस प्रकार राजा भरतने उन यज्ञोंमें एक सौ तैंतीस (५५+७८) घोड़े बाँधकर (१३३ यज्ञ करके) समस्त नरपतियोंको असीम आश्चर्यमें डाल दिया। इन यज्ञोंके द्वारा इस लोकमें तो राजा भरतको परम यश मिला ही, अन्तमें उन्होंने मायापर भी विजय प्राप्त की और देवताओंके परमगुरु भगवान् श्रीहरिको प्राप्त कर लिया ॥ २७ ॥ यज्ञमें एक कर्म होता है 'मष्णार'। उसमें भरतने सुवर्णसे विभूषित, श्वेत दाँतोंवाले तथा काले रंगके चौदह लाख हाथी दान किये ॥ २८ ॥ भरतने जो महान् कर्म किया, वह न तो पहले कोई राजा कर सका था और न तो आगे ही कोई कर सकेगा। क्या कभी कोई हाथसे स्वर्गको छू सकता है ? ॥ २९ ॥ भरतने दिग्विजयके समय किरात, हूण, यवन, अन्ध्र, कङ्क, खश, शक और म्लेच्छ आदि समस्त ब्राह्मणद्रोही राजाओंको मार डाला ॥ ३० ॥ पहले युगमें बलवान् असुरोंने देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी और वे रसातलमें रहने लगे थे। उस समय वे बहुत-सी देवाङ्गनाओंको रसातलमें ले गये थे। राजा भरतने फिरसे उन्हें छुड़ा दिया ॥ ३१ ॥ उनके राज्य-में पृथ्वी और आकाश प्रजाकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण कर देते थे। भरतने सत्ताईस हजार वर्षतक समस्त दिशाओंका एकछत्र शासन किया ॥ ३२ ॥ अन्तमें सार्वभौम सम्राट् भरतने यही निश्चय किया कि लोक-पालोंको भी चकित कर देनेवाला ऐश्वर्य, सार्वभौम सम्पत्ति, अखण्ड शासन और यह जीवन भी मिथ्या ही है। यह निश्चय करके वे संसारसे उदासीन हो गये ॥ ३३ ॥

परीक्षित् ! विदर्भराजकी तीन कन्याएँ सम्राट् भरतकी पत्नियाँ थीं। वे उनका बड़ा आदर भी करते थे। परन्तु जब भरतने उनसे कह दिया कि तुम्हारे पुत्र मेरे अनुरूप नहीं हैं, तब वे डर गयीं कि कहीं सम्राट् हमें त्याग न दें। इसलिये उन्होंने अपने बच्चोंको मार डाला ॥ ३४ ॥ इस प्रकार सम्राट् भरतका वंश वितथ अर्थात् विच्छिन्न होने लगा। तब उन्होंने सन्तानके लिये 'मरुत्स्तोम' नामका यज्ञ किया। इससे मरुद्गणोंने प्रसन्न होकर भरतको भरद्वाज नामका पुत्र दिया ॥ ३५ ॥ भरद्वाजकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग यह है कि एक बार बृहस्पतिजीने अपने भाई उतथ्यकी गर्भवती पत्नीसे मैथुन करना चाहा। उस समय गर्भमें जो बालक (दीर्घतमा) था, उसने मना किया। किन्तु बृहस्पति-जीने उसकी बातपर ध्यान न दिया और उसे 'तू अंधा हो जा' यह शाप देकर बलपूर्वक गर्भाधान कर दिया ॥ ३६ ॥ उतथ्यकी पत्नी ममता इस बातसे डर गयी कि कहीं मेरे पति मेरा त्याग न कर दें। इसलिये उसने बृहस्पतिजीके द्वारा होनेवाले लड़केको त्याग देना चाहा। उस समय देवताओंने गर्भस्थ शिशुके नामका निर्वचन करते हुए यह कहा ॥ ३७ ॥ 'बृहस्पति-जी कहते हैं कि अरी मूढे ! यह मेरा औरस और मेरे भाईका क्षेत्रज—इस प्रकार दोनोंका पुत्र (द्वाज) है; इसलिये तू डर मत, इसका भरण-पोषण कर (भर)।' इसपर ममताने कहा—'बृहस्पते ! यह मेरे पतिका नहीं, हम दोनोंका ही पुत्र है; इसलिये तुम्हीं इसका भरण-पोषण करो।' इस प्रकार आपसमें विवाद करते हुए माता-पिता दोनों ही इसको छोड़कर चले गये। इसलिये इस लड़केका नाम 'भरद्वाज' हुआ ॥ ३८ ॥ देवताओंके द्वारा नामका ऐसा निर्वचन होनेपर भी ममताने यही समझा कि मेरा यह पुत्र वितथ अर्थात् अन्यायसे पैदा हुआ है। अतः उसने उस बच्चेको छोड़ दिया। अब मरुद्गणोंने उसका पालन किया और जब राजा भरतका वंश नष्ट होने लगा, तब उसे लाकर उनको दे दिया। यही वितथ (भरद्वाज) भरतका दत्तक पुत्र हुआ ॥ ३९ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भरतवंशका वर्णन, राजा रन्तिदेवकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वितथ अथवा भरद्वाजका पुत्र था मन्यु । मन्युके पाँच पुत्र हुए—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग । नरका पुत्र था संकृति ॥ १ ॥ संकृतिके दो पुत्र हुए—गुरु और रन्तिदेव । परीक्षित् ! रन्तिदेवका निर्मल यश इस लोक और परलोकमें सब जगह गाया जाता है ॥ २ ॥ रन्तिदेव आकाशके समान बिना उद्योगके ही दैववश प्राप्त वस्तुका उपभोग करते और दिनोंदिन उनकी पूँजी घटती जाती । जो कुछ मिल जाता उसे भी दे डालते और स्वयं भूखे रहते । वे संग्रह-परिग्रह, ममतासे रहित तथा बड़े धैर्यशाली थे और अपने कुटुम्बके साथ दुःख भोग रहे थे ॥ ३ ॥ एक बार तो लगातार अड़तालीस दिन ऐसे बीत गये कि उन्हें पानीतक पीनेको न मिला । उनचासवें दिन प्रातःकाल ही उन्हें कुछ घी, खीर, हलवा और जल मिला ॥ ४ ॥ उनका परिवार बड़े सङ्कटमें था । भूख और प्यासके मारे वे लोग काँप रहे थे । परन्तु ज्यों ही उन लोगोंने भोजन करना चाहा, त्यों ही एक ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आ गया ॥ ५ ॥ रन्तिदेव सबमें श्रीभगवान्‌के ही दर्शन करते थे । अतएव उन्होंने बड़ी श्रद्धासे आदरपूर्वक उसी अन्नमेंसे ब्राह्मणको भोजन कराया । ब्राह्मणदेवता भोजन करके चले गये ॥ ६ ॥

परीक्षित् ! अब बचे हुए अन्नको रन्तिदेवने आपसमें बाँट लिया और भोजन करना चाहा । उसी समय एक दूसरा शूद्र-अतिथि आ गया । रन्तिदेवने भगवान्‌का स्मरण करते हुए उस बचे हुए अन्नमेंसे भी कुछ भाग शूद्रके रूपमें आये अतिथिको खिला दिया ॥ ७ ॥ जब शूद्र खा-पीकर चला गया, तब कुत्तोंको लिये हुए एक और अतिथि आया । उसने कहा—'राजन् ! मैं और मेरे ये कुत्ते बहुत भूखे हैं । हमें कुछ खानेको दीजिये' ॥ ८ ॥ रन्तिदेवने अत्यन्त आदरभावसे, जो कुछ बच रहा था, सब-का-सब उसे दे दिया और भगवन्मय होकर उन्होंने कुत्ते और कुत्तोंके स्वामीके रूपमें आये हुए भगवान्‌को नमस्कार किया ॥ ९ ॥ अब केवल जल ही बच रहा था और वह भी केवल एक मनुष्यके पीनेभरका था । वे उसे आपसमें बाँटकर पीना ही चाहते थे कि एक चाण्डाल और आ पहुँचा । उसने कहा—'मैं अत्यन्त नीच हूँ । मुझे जल पिला दीजिये' ॥ १० ॥ चाण्डालकी वह करुणापूर्ण वाणी जिसके उच्चारणमें भी वह अत्यन्त कष्ट पा रहा था, सुनकर रन्तिदेव दयासे अत्यन्त सन्तप्त हो उठे और ये अमृतमय वचन कहने लगे ॥ ११ ॥ 'मैं भगवान्‌से आठों सिद्धियोंसे युक्त परम गति नहीं चाहता । और तो क्या, मैं मोक्षकी भी कामना नहीं करता । मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे और किसी भी प्राणीको दुःख न हो ॥ १२ ॥ यह दीन प्राणी जल पी करके जीना चाहता था । जल दे देनेसे इसके जीवनकी रक्षा हो गयी । अब मेरी भूख-प्यासकी पीड़ा, शरीरकी शिथिलता, दीनता, ग्लानि, शोक, विषाद और मोह—ये सब-के-सब जाते रहे । मैं सुखी हो गया' ॥ १३ ॥ इस प्रकार कहकर रन्तिदेवने वह बचा हुआ जल भी उस चाण्डालको दे दिया । यद्यपि जलके बिना वे स्वयं मर रहे थे, फिर भी स्वभावसे ही उनका हृदय इतना करुणापूर्ण था कि वे अपनेको रोक न सके । उनके धैर्यकी भी कोई सीमा है ? ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! ये अतिथि वास्तवमें भगवान्‌की रची हुई मायाके ही विभिन्न रूप थे । परीक्षा पूरी हो जानेपर अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले त्रिभुवनस्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों उनके सामने प्रकट हो गये ॥ १५ ॥ रन्तिदेवने उनके चरणोंमें नमस्कार किया । उन्हें कुछ लेना तो था नहीं । भगवान्‌की कृपासे वे आसक्ति और स्पृहासे भी रहित हो गये तथा परम प्रेममय भक्तिभावसे अपने मनको भगवान् वासुदेवमें तन्मय कर दिया । कुछ भी माँगा नहीं ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! उन्हें भगवान्‌के सिवा और किसी भी वस्तुकी इच्छा तो थी नहीं, उन्होंने अपने मनको पूर्णरूपसे भगवान्‌में लगा दिया ।

इसलिये त्रिगुणमयी माया जागनेपर स्वप्न-दृश्यके समान नष्ट हो गयी ॥ १७ ॥ रन्तिदेवके अनुयायी भी उनके सङ्गके प्रभावसे योगी हो गये । और सब भगवान्‌के ही आश्रित परम भक्त बन गये ॥ १८ ॥

मन्युपुत्र गर्गसे शिनि और शिनिसे गार्ग्यका जन्म हुआ । यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, फिर भी उससे ब्राह्मणवंश चला । महावीर्यका पुत्र था दुरितक्षय । दुरितक्षयके तीन पुत्र हुए—त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि । ये तीनों ब्राह्मण हो गये । बृहत्क्षत्रका पुत्र हुआ हस्ती, उसीने हस्तिनापुर बसाया था ॥१९-२०॥ हस्तीके तीन पुत्र थे—अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ । अजमीढके पुत्रोंमें प्रियमेध आदि ब्राह्मण हुए ॥ २१ ॥ इन्हीं अजमीढके एक पुत्रका नाम था बृहदिषु । बृहदिषुका पुत्र हुआ बृहद्धनु, बृहद्धनुका बृहत्काय और बृहत्कायका जयद्रथ हुआ ॥ २२ ॥ जयद्रथका पुत्र हुआ विशद और विशदका सेनजित् । सेनजित्‌के चार पुत्र हुए—रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स ॥ २३ ॥ रुचिराश्वका पुत्र पार था और पारका पृथुसेन । पारके दूसरे पुत्रका नाम नीप था । उसके सौ पुत्र थे ॥ २४ ॥ इसी नीपने (छाया)*शुककी कन्या कृत्वीसे विवाह किया था । उससे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । ब्रह्मदत्त बड़ा योगी था । उसने अपनी पत्नी सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ इसी विष्वक्सेनने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्रकी रचना की । विष्वक्सेनका पुत्र था उदक्स्वन और उदक्स्वनका भल्लाद । ये सब बृहदिषुके वंशज हुए ॥२६॥

द्विमीढका पुत्र था यवीनर, यवीनरका कृतिमान्, कृतिमान्‌का सत्यधृति, सत्यधृतिका दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ ॥ २७ ॥ सुपार्श्वसे सुमति, सुमतिसे सन्नतिमान् और सन्नतिमान्‌से कृतिका जन्म हुआ । उसने हिरण्यनाभसे योगविद्या प्राप्त की थी और 'प्राच्यसाम' नामक ऋचाओंकी छः संहिताएँ कही थीं । कृतिका पुत्र नीप था, नीपका उग्रायुध, उग्रायुधका क्षेम्य, क्षेम्यका सुवीर, और सुवीरका पुत्र था रिपुञ्जय ॥२८-२९॥ रिपुञ्जयका पुत्र था बहुरथ । द्विमीढके भाई पुरुमीढको कोई सन्तान न हुई । अजमीढकी दूसरी पत्नीका नाम था नलिनी । उसके गर्भसे नीलका जन्म हुआ । नीलका शान्ति, शान्तिका सुशान्ति, सुशान्तिका पुरुज, पुरुजका अर्क और अर्कका पुत्र हुआ भर्म्याश्व । भर्म्याश्वके पाँच पुत्र थे—मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और सञ्जय । भर्म्याश्वने कहा—'ये मेरे पुत्र पाँच देशोंका शासन करनेमें समर्थ (पञ्च अलम्) हैं ।' इसलिये ये 'पञ्चाल' नामसे प्रसिद्ध हुए । इनमें मुद्गलसे 'मौद्गल्य' नामक ब्राह्मण-गोत्रकी प्रवृत्ति हुई ॥ ३०-३३ ॥

भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे यमज (जुड़वाँ) सन्तान हुई । उनमें पुत्रका नाम था दिवोदास और कन्याका अहल्या । अहल्याका विवाह महर्षि गौतमसे हुआ । गौतमके पुत्र हुए शतानन्द ॥ ३४ ॥ शतानन्दका पुत्र सत्यधृति था, वह धनुर्विद्यामें अत्यन्त निपुण था । सत्यधृतिके पुत्रका नाम था शरद्वान् । एक दिन उर्वशीको देखनेसे शरद्वान्‌का वीर्य मूँजके झाड़पर गिर पड़ा, उससे एक शुभ लक्षणवाले पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ । महाराज शन्तनुकी उसपर दृष्टि पड़ गयी, क्योंकि वे उधर शिकार खेलनेके लिये गये हुए थे । उन्होंने दयावश दोनोंको उठा लिया । उनमें जो पुत्र था, उसका नाम कृपाचार्य हुआ और जो कन्या थी, उसका नाम हुआ कृपी । यही कृपी द्रोणाचार्यकी पत्नी हुई ॥ ३५-३६ ॥

बाईसवाँ अध्याय

पाञ्चाल, कौरव और मगधदेशीय राजाओंके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! दिवोदासका पुत्र था मित्रेयु । मित्रेयुके चार पुत्र हुए—च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक । सोमकके सौ पुत्र थे, उनमें सबसे बड़ा जन्तु और सबसे छोटा पृषत था । पृषतके पुत्र

* शुकदेवजी असंग थे पर वे वन जाते समय एक छाया शुक रचकर छोड़ गये थे । उस छाया शुकने ही गृहस्थोचित व्यवहार किये थे ।

द्रुपद थे, द्रुपदके द्रौपदी नामकी पुत्री और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए ॥ १-२ ॥ धृष्टद्युम्नका पुत्र था धृष्टकेतु। भर्म्याश्वके वंशमें उत्पन्न हुए ये नरपति 'पाञ्चाल' कहलाये। अजमीढका दूसरा पुत्र था ऋक्ष। उनके पुत्र हुए संवरण ॥ ३ ॥ संवरणका विवाह सूर्यकी कन्या तपतीसे हुआ। उन्हींके गर्भसे कुरुक्षेत्रके स्वामी कुरुका जन्म हुआ। कुरुके चार पुत्र हुए—परीक्षित्, सुधन्वा, जह्नु और निषधाश्व ॥ ४ ॥ सुधन्वासे सुहोत्र, सुहोत्रसे च्यवन, च्यवनसे कृती, कृतीसे उपरिचरवसु और उपरिचरवसुसे बृहद्रथ आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ उनमें बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप आदि चेदिदेशके राजा हुए। बृहद्रथका पुत्र था कुशाग्र, कुशाग्रका ऋषभ, ऋषभका सत्यहित, सत्यहितका पुष्पवान् और पुष्पवान्के जह्नु नामक पुत्र हुआ। बृहद्रथकी दूसरी पत्नीके गर्भसे एक शरीरके दो टुकड़े उत्पन्न हुए ॥ ६-७ ॥ उन्हें माताने बाहर फेंकवा दिया। तब 'जरा' नामकी राक्षसीने 'जियो, जियो' इस प्रकार कहकर खेल-खेलमें उन दोनों टुकड़ोंको जोड़ दिया। उसी जोड़े हुए बालकका नाम हुआ जरासन्ध ॥ ८ ॥ जरासन्धका सहदेव, सहदेवका सोमापि और सोमापिका पुत्र हुआ श्रुतश्रवा। कुरुके ज्येष्ठ पुत्र परीक्षित्के कोई सन्तान न हुई। जह्नुका पुत्र था सुरथ ॥ ९ ॥ सुरथका विदूरथ, विदूरथका सार्वभौम, सार्वभौमका जयसेन, जयसेनका राधिक और राधिकका पुत्र हुआ अयुत ॥ १० ॥ अयुतका क्रोधन, क्रोधनका देवातिथि, देवातिथिका ऋष्य, ऋष्यका दिलीप और दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ ॥ ११ ॥ प्रतीपके तीन पुत्र थे—देवापि, शन्तनु और बाह्लीक। देवापि अपना पैतृक राज्य छोड़कर वनमें चला गया ॥ १२ ॥ इसलिये उसके छोटे भाई शन्तनु राजा हुए। पूर्वजन्ममें शन्तनुका नाम महाभिष था। इस जन्ममें भी वे अपने हाथोंसे जिसे छू देते थे, वह बूढ़ेसे जवान हो जाता था ॥ १३ ॥ उसे परम शान्ति मिल जाती थी। इसी करामातके कारण उनका नाम 'शन्तनु' हुआ। एक बार शन्तनुके राज्यमें बारह वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। इसपर ब्राह्मणोंने शन्तनुसे कहा कि 'तुमने अपने बड़े भाई देवापिसे पहले ही विवाह, अग्निहोत्र और राजपदको स्वीकार कर लिया; अतः तुम परिवेत्ता* हो; इसीसे तुम्हारे राज्यमें वर्षा नहीं होती। अब यदि तुम अपने नगर और राष्ट्रकी उन्नति चाहते हो, तो शीघ्र-से-शीघ्र अपने बड़े भाईको राज्य लौटा दो' ॥ १४-१५ ॥ जब ब्राह्मणोंने शन्तनुसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने वनमें जाकर अपने बड़े भाई देवापिसे राज्य स्वीकार करनेका अनुरोध किया। परन्तु शन्तनुके मन्त्री अश्मरातने पहलेसे ही उनके पास कुछ ऐसे ब्राह्मण भेज दिये थे, जो वेदको दूषित करनेवाले वचनोंसे देवापिको वेदमार्गसे विचलित कर चुके थे। इसका फल यह हुआ कि देवापि वेदोंके अनुसार गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेकी जगह उनकी निन्दा करने लगे। इसलिये वे राज्यके अधिकारसे वञ्चित हो गये और तब शन्तनुके राज्यमें वर्षा हुई। देवापि इस समय भी योगसाधना कर रहे हैं और योगियोंके प्रसिद्ध निवासस्थान कलापग्राममें रहते हैं ॥ १६-१७ ॥ जब कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश हो जायगा, तब सत्ययुगके प्रारम्भमें वे फिर उसकी स्थापना करेंगे। शन्तनुके छोटे भाई बाह्लीकका पुत्र हुआ सोमदत्त। सोमदत्तके तीन पुत्र हुए—भूरि, भूरिश्रवा और शल। शन्तनुके द्वारा गङ्गाजीके गर्भसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्मका जन्म हुआ। वे समस्त धर्मज्ञोंके सिरमौर, भगवान्के परम प्रेमी भक्त और परम ज्ञानी थे ॥ १८-१९ ॥ वे संसारके समस्त वीरोंके अग्रगण्य नेता थे। औरोंकी तो बात ही क्या, उन्होंने अपने गुरु भगवान् परशुरामको भी युद्धमें सन्तुष्ट कर दिया था। शन्तनुके द्वारा दाशराजकी कन्या†के गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नामक गन्धर्वने मार डाला। इसी दाशराजकी कन्या सत्यवतीसे पराशरजीके द्वारा मेरे पिता, भगवान्के कलावतार स्वयं भगवान् *श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अवतीर्ण* हुए थे। उन्होंने वेदोंकी रक्षा की। परीक्षित्! मैंने उन्हींसे इस श्रीमद्भागवतपुराणका अध्ययन किया था। यह पुराण परम

* दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः॥

अर्थात् जो पुरुष अपने बड़े भाईके रहते हुए उससे पहले ही विवाह और अग्निहोत्रका संयोग करता है उसे परिवेत्ता जानना चाहिये, और उसका बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहलाता है।

† यह कन्या वास्तवमें उपरिचरवसुके वीर्यसे मछलीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी, किन्तु दाशों (केवटों) के द्वारा पालित होनेसे वह केवटोंकी कन्या कहलायी।

गोपनीय—अत्यन्त रहस्यमय है। इसीसे मेरे पिता भगवान् व्यासजीने अपने पैल आदि शिष्योंको इसका अध्ययन नहीं कराया, मुझे ही इसके योग्य अधिकारी समझा! एक तो मैं उनका पुत्र था और दूसरे शान्ति आदि गुण भी मुझमें विशेषरूपसे थे। शन्तनुके दूसरे पुत्र विचित्रवीर्यने काशिराजकी कन्या अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। उन दोनोंको भीष्मजी स्वयंवरसे बलपूर्वक ले आये थे। विचित्रवीर्य अपनी दोनों पत्नियोंमें इतना आसक्त हो गया कि उसे राजयक्ष्मा रोग हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी॥ २०—२४॥ माता सत्यवतीके कहनेसे भगवान् व्यासजीने अपने सन्तानहीन भाईकी स्त्रियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी दासीसे तीसरे पुत्र विदुरजी हुए॥ २५॥

परीक्षित्! धृतराष्ट्रकी पत्नी थी गान्धारी। उसके गर्भसे सौ पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़ा था दुर्योधन। कन्याका नाम था दुःशला॥ २६॥ पाण्डुकी पत्नी थी कुन्ती। शापवश पाण्डु स्त्री-सहवास नहीं कर सकते थे। इसलिये उनकी पत्नी कुन्तीके गर्भसे धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों-के-तीनों महारथी थे॥२७॥

पाण्डुकी दूसरी पत्नीका नाम था माद्री। दोनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा उसके गर्भसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ। परीक्षित्! इन पाँच पाण्डवोंके द्वारा द्रौपदीके गर्भसे तुम्हारे पाँच चाचा उत्पन्न हुए॥२८॥ इनमेंसे युधिष्ठिरके पुत्रका नाम था प्रतिविन्ध्य, भीमसेनका पुत्र था श्रुतसेन, अर्जुनका श्रुतकीर्ति, नकुलका शतानीक और सहदेवका श्रुतकर्मा। इनके सिवा युधिष्ठिरके पौरवी नामकी पत्नीसे देवक और भीमसेनके हिडिम्बासे घटोत्कच और कालीसे सर्वगत नामके पुत्र हुए। सहदेवके पर्वतकुमारी विजयासे सुहोत्र और नकुलके करेणुमतीसे नरमित्र हुआ। अर्जुनद्वारा नागकन्या उलूपीके गर्भसे इरावान् और मणिपूर नरेशकी कन्यासे बभ्रुवाहनका जन्म हुआ। बभ्रुवाहन अपने नानाका ही पुत्र माना गया। क्योंकि पहलेसे ही यह बात तै हो चुकी थी॥२९—३२॥ अर्जुनकी सुभद्रा नामकी पत्नीसे तुम्हारे पिता अभिमन्युका जन्म हुआ। वीर अभिमन्युने सभी अतिरथियोंको जीत लिया था। अभिमन्युके द्वारा उत्तराके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ॥ ३३॥ परीक्षित्! उस समय कुरुवंशका नाश हो चुका था। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे तुम भी जल ही चुके थे, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रभावसे तुम्हें उस मृत्युसे जीता-जागता बचा लिया॥ ३४॥

परीक्षित्! तुम्हारे पुत्र तो सामने ही बैठे हुए हैं—इनके नाम हैं—जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन। ये सब-के-सब बड़े पराक्रमी हैं॥ ३५॥ जब तक्षकके काटनेसे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी, तब इस बातको जानकर जनमेजय बहुत क्रोधित होगा और यह सर्प-यज्ञकी आगमें सर्पोंका हवन करेगा॥ ३६॥ यह कावषेय तुरको पुरोहित बनाकर अश्वमेध यज्ञ करेगा और सब ओरसे सारी पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना करेगा॥ ३७॥ जनमेजयका पुत्र होगा शतानीक। वह याज्ञवल्क्य ऋषिसे तीनों वेद और कर्मकाण्डकी तथा कृपाचार्यसे अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्त करेगा एवं शौनकजीसे आत्मज्ञानका सम्पादन करके परमात्माको प्राप्त होगा॥३८॥ शतानीकका सहस्रानीक, सहस्रानीकका अश्वमेधज, अश्वमेधजका असीमकृष्ण और असीमकृष्णका पुत्र होगा नेमिचक्र॥ ३९॥ जब हस्तिनापुर गङ्गाजीमें बह जायगा, तब वह कौशाम्बीपुरीमें सुखपूर्वक निवास करेगा। नेमिचक्रका पुत्र होगा चित्ररथ, चित्ररथका कविरथ, कविरथका वृष्टिमान्, वृष्टिमान्‌का राजा सुषेण, सुषेणका सुनीथ, सुनीथका नृचक्षु, नृचक्षुका सुखीनल, सुखीनलका परिप्लव, परिप्लवका सुनय, सुनयका मेधावी, मेधावीका नृपञ्जय, नृपञ्जयका दूर्व और दूर्वका पुत्र तिमि होगा॥ ४०—४२॥ तिमिसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे सुदास, सुदाससे शतानीक, शतानीकसे दुर्दमन, दुर्दमनसे वहीनर, वहीनरसे दण्डपाणि, दण्डपाणिसे निमि और निमिसे राजा क्षेमकका जन्म होगा। इस प्रकार मैंने तुम्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंके उत्पत्तिस्थान सोमवंशका वर्णन सुनाया। बड़े-बड़े देवता और ऋषि इस वंशका सत्कार करते हैं॥ ४३-४४॥ यह वंश कलियुगमें राजा क्षेमकके साथ ही समाप्त हो जायगा। अब मैं भविष्यमें होनेवाले मगध देशके राजाओंका वर्णन सुनाता हूँ॥ ४५॥

जरासन्धके पुत्र सहदेवसे मार्जारि, मार्जारिसे

श्रुतश्रवासे अयुतायु और अयुतायुसे निरमित्र नामक पुत्र होगा ॥ ४६ ॥ निरमित्रके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके बृहत्सेन, बृहत्सेनके कर्मजित्, कर्मजित्के सृतञ्जय, सृतञ्जयके विप्र और विप्रके पुत्रका नाम होगा शुचि ॥ ४७ ॥ शुचिसे क्षेम, क्षेमसे सुव्रत, सुव्रतसे धर्मसूत्र, धर्मसूत्रसे शम, शमसे द्युमत्सेन, द्युमत्सेनसे सुमति और सुमतिसे सुबलका जन्म होगा ॥४८॥ सुबलका सुनीथ, सुनीथका सत्यजित्, सत्यजित्का विश्वजित् और विश्वजित्का पुत्र रिपुञ्जय होगा। ये सब बृहद्रथवंशके राजा होंगे। इनका शासनकाल एक हजार वर्षके भीतर ही होगा ॥ ४९ ॥

तेईसवाँ अध्याय

अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदुके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ययातिनन्दन अनुके तीन पुत्र हुए—सभानर, चक्षु और परोक्ष। सभानरका कालनर, कालनरका सृञ्जय, सृञ्जयका जनमेजय, जनमेजयका महाशील, महाशीलका पुत्र हुआ महामना। महामनाके दो पुत्र हुए—उशीनर एवं तितिक्षु ॥ १-२ ॥ उशीनरके चार पुत्र थे—शिबि, वन, शमी और दक्ष। शिबिके चार पुत्र हुए—वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय। उशीनरके भाई तितिक्षुके रुशद्रथ, रुशद्रथके हेम, हेमके सुतपा और सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ ॥ ३-४ ॥ राजा बलिकी पत्नीके गर्भसे दीर्घतमा मुनिने छः पुत्र उत्पन्न किये—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध्र ॥५॥ इन लोगोंने अपने-अपने नामसे पूर्व दिशामें छः देश बसाये। अङ्गका पुत्र हुआ खनपान, खनपानका दिविरथ, दिविरथका धर्मरथ और धर्मरथका चित्ररथ। यह चित्ररथ ही रोमपादके नामसे प्रसिद्ध था। इसके मित्र थे अयोध्याधिपति महाराज दशरथ। रोमपादको कोई सन्तान न थी। इसलिये दशरथने उन्हें अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी। शान्ताका विवाह ऋष्यशृङ्ग मुनिसे हुआ। ऋष्यशृङ्ग विभाण्डक ऋषिके द्वारा हरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। एक बार राजा रोमपादके राज्यमें बहुत दिनोंतक वर्षा नहीं हुई। तब गणिकाएँ अपने नृत्य, संगीत, वाद्य, हाव-भाव, आलिङ्गन और विविध उपहारोंसे मोहित करके ऋष्यशृङ्गको वहाँ ले आयीं। उनके आते ही वर्षा हो गयी। उन्होंने ही इन्द्र देवताका यज्ञ कराया, तब सन्तानहीन राजा रोमपादको भी पुत्र हुआ और पुत्रहीन दशरथने भी उन्हींके प्रयत्नसे चार पुत्र प्राप्त किये। रोमपादका पुत्र हुआ चतुरङ्ग और चतुरङ्गका पृथुलाक्ष ॥ ६—१० ॥ पृथुलाक्षके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु—तीन पुत्र हुए। बृहद्रथका पुत्र हुआ बृहन्मना और बृहन्मनाका जयद्रथ ॥ ११ ॥ जयद्रथकी पत्नीका नाम था सम्भूति। उसके गर्भसे विजयका जन्म हुआ। विजयका धृति, धृतिका धृतव्रत, धृतव्रतका सत्कर्मा और सत्कर्माका पुत्र था अधिरथ ॥ १२ ॥ अधिरथको कोई सन्तान न थी। किसी दिन वह गङ्गातटपर क्रीडा कर रहा था कि देखा एक पिटारीमें नन्हा-सा शिशु बहा चला जा रहा है। वह बालक कर्ण था, जिसे कुन्तीने कन्यावस्थामें उत्पन्न होनेके कारण उस प्रकार बहा दिया था। अधिरथने उसीको अपना पुत्र बना लिया ॥ १३ ॥ परीक्षित्! राजा कर्णके पुत्रका नाम था वृषसेन। ययातिके पुत्र द्रुह्युसे बभ्रुका जन्म हुआ। बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका धृत, धृतका दुर्मना और दुर्मनाका पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेताके सौ पुत्र हुए, ये उत्तर दिशामें म्लेच्छोंके राजा हुए। *ययातिके पुत्र तुर्वसुका वह्नि, वह्निका भर्ग, भर्गका* भानुमान्, भानुमान्का त्रिभानु, त्रिभानुका उदारबुद्धि करन्धम और करन्धमका पुत्र हुआ मरुत। मरुत सन्तानहीन था। इसलिये उसने पूरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाकर रक्खा था ॥ १४—१७ ॥ परन्तु दुष्यन्त राज्यकी कामनासे अपने ही वंशमें लौट गये। परीक्षित्! अब मैं राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ ॥ १८ ॥

परीक्षित्! महाराज यदुका वंश परम पवित्र और मनुष्योंके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है। जो मनुष्य इसका श्रवण करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ १९ ॥ इस वंशमें स्वयं भगवान् परब्रह्म

श्रीकृष्णने मनुष्यके-से रूपमें अवतार लिया था। यदुके चार पुत्र थे—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्रजित्से शतजित्का जन्म हुआ। शतजित्के तीन पुत्र थे—महाहय, वेणुहय और हैहय ॥ २०-२१ ॥ हैहयका धर्म, धर्मका नेत्र, नेत्रका कुन्ति, कुन्तिका सोहंजि, सोहंजिका महिष्मान् और महिष्मान्का पुत्र भद्रसेन हुआ ॥ २२ ॥ भद्रसेनके दो पुत्र थे—दुर्मद और धनक। धनकके चार पुत्र हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा ॥ २३ ॥ कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन था। वह सातों द्वीपका एकछत्र सम्राट् था। उसने भगवान्के अंशावतार श्रीदत्तात्रेयजीसे योगविद्या और अणिमा-लघिमा आदि बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं ॥ २४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि संसारका कोई भी सम्राट् यज्ञ, दान, तपस्या, योग, शास्त्रज्ञान, पराक्रम और विजय आदि गुणोंमें कार्तवीर्य अर्जुनकी बराबरी नहीं कर सकेगा ॥ २५ ॥ सहस्रबाहु अर्जुन पचासी हजार वर्षतक छहों इन्द्रियोंसे अक्षय विषयोंका भोग करता रहा। इस बीचमें न तो उसके शरीरका बल ही क्षीण हुआ और न तो कभी उसने यही स्मरण किया कि मेरे धनका नाश हो जायगा। उसके धनके नाशकी तो बात ही क्या है, उसका ऐसा प्रभाव था कि उसके स्मरणसे दूसरोंका खोया हुआ धन भी मिल जाता था ॥ २६ ॥ उसके हजारों पुत्रोंमेंसे केवल पाँच ही जीवित रहे। शेष सब परशुरामजीकी क्रोधाग्निमें भस्म हो गये। बचे हुए पुत्रोंके नाम थे—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित ॥ २७ ॥

जयध्वजके पुत्रका नाम था तालजङ्घ। तालजङ्घके सौ पुत्र हुए। वे 'तालजङ्घ' नामक क्षत्रिय कहलाये। महर्षि और्वकी शक्तिसे राजा सगरने उनका संहार कर डाला ॥ २८ ॥ उन सौ पुत्रोंमें सबसे बड़ा था वीतिहोत्र। वीतिहोत्रका पुत्र मधु हुआ। मधुके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा था वृष्णि ॥ २९ ॥ परीक्षित्! इन्हीं मधु, वृष्णि और यदुके कारण यह वंश माधव, वार्ष्णेय और यादवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यदुनन्दन क्रोष्टुके पुत्रका नाम था वृजिनवान् ॥ ३० ॥ वृजिनवान्का पुत्र श्वाहि, श्वाहिका रुशेकु, रुशेकुका चित्ररथ और चित्ररथके पुत्रका नाम था शशबिन्दु। वह परम योगी, महान् भोगैश्वर्यसम्पन्न और अत्यन्त पराक्रमी था ॥ ३१ ॥ वह चौदह रत्नों*का स्वामी, चक्रवर्ती और युद्धमें अजेय था। परम यशस्वी शशबिन्दुके दस हजार पत्नियाँ थीं। उनमेंसे एक-एकके लाख-लाख सन्तान हुई थीं। इस प्रकार उसके सौ करोड़—एक अरब सन्तान उत्पन्न हुईं। उनमें पृथुश्रवा आदि छः पुत्र प्रधान थे। पृथुश्रवाके पुत्रका नाम था धर्म। धर्मका पुत्र उशना हुआ। उसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उशनाका पुत्र हुआ रुचक। रुचकके पाँच पुत्र हुए, उनके नाम सुनो ॥ ३२—३४ ॥ पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ। ज्यामघकी पत्नीका नाम था शैब्या। ज्यामघके बहुत दिनोंतक कोई सन्तान न हुई। परन्तु उसने अपनी पत्नीके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। एक बार वह अपने शत्रुके घरसे भोज्या नामकी कन्या हर लाया। जब शैब्याने पतिके रथपर उस कन्याको देखा, तब वह चिढ़कर अपने पतिसे बोली—'कपटी! मेरे बैठनेकी जगहपर आज किसे बैठाकर लिये आ रहे हो?', ज्यामघने कहा—'यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है।' शैब्याने मुसकराकर अपने पतिसे कहा ॥ ३५—३७ ॥ 'मैं तो जन्मसे ही बाँझ हूँ और मेरी कोई सौत भी नहीं है! फिर यह मेरी पुत्रवधू कैसे हो सकती है?' ज्यामघने कहा—'रानी! तुमको जो पुत्र होगा, उसकी यह पत्नी बनेगी' ॥ ३८ ॥ राजा ज्यामघके इस वचनका विश्वेदेव और पितरोंने अनुमोदन किया। फिर क्या था, समयपर शैब्याको गर्भ रहा और उसने बड़ा ही सुन्दर बालक उत्पन्न किया। उसका नाम हुआ विदर्भ। उसीने शैब्याकी साध्वी पुत्रवधू भोज्यासे विवाह किया ॥ ३९ ॥

* चौदह रत्न ये हैं—हाथी, घोड़ा, रथ, स्त्री, बाण, खजाना, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, पाश, मणि, छत्र और विमान।

चौबीसवाँ अध्याय

विदर्भके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! राजा विदर्भकी भोज्या नामक पत्नीसे तीन पुत्र हुए—कुश, क्रथ और रोमपाद । रोमपाद विदर्भवंशमें बहुत ही श्रेष्ठ पुरुष हुए ॥ १ ॥ रोमपादका पुत्र बभ्रु, बभ्रुका कृति, कृतिका उशिक और उशिकका चेदि । राजन् ! इस चेदिके वंशमें ही दमघोष एवं शिशुपाल आदि हुए ॥ २ ॥ क्रथका पुत्र हुआ कुन्ति, कुन्तिका धृष्टि, धृष्टिका निर्वृति, निर्वृतिका दशार्ह और दशार्हका व्योम ॥ ३ ॥ व्योमका जीमूत, जीमूतका विकृति, विकृतिका भीमरथ, भीमरथका नवरथ और नवरथका दशरथ हुआ ॥ ४ ॥ दशरथसे शकुनि, शकुनिसे करम्भि, करम्भिसे देवरात, देवरातसे देवक्षत्र, देवक्षत्रसे मधु, मधुसे कुरुवश और कुरुवशसे अनु हुए ॥ ५ ॥ अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे आयु और आयुसे सात्वतका जन्म हुआ । परीक्षित् ! सात्वतके सात पुत्र हुए—भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज । भजमानकी दो पत्नियाँ थीं । एकसे तीन पुत्र हुए—निम्लोचि, किङ्किण और धृष्टि । दूसरी पत्नीसे भी तीन पुत्र हुए—शताजित्, सहस्राजित् और अयुताजित् ॥ ६-८ ॥ देवावृधके पुत्रका नाम था बभ्रु । देवावृध और बभ्रुके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है—'हमने दूरसे जैसा सुन रक्खा था, अब वैसा ही निकटसे देखते भी हैं ॥ ९ ॥ बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध देवताओंके समान है । इसका कारण यह है कि बभ्रु और देवावृधसे उपदेश लेकर चौदह हजार पैंसठ मनुष्य परम पदको प्राप्त कर चुके हैं ।' सात्वतके पुत्रोंमें महाभोज भी बड़ा धर्मात्मा था । उसीके वंशमें भोजवंशी यादव हुए ॥ १०-११ ॥

परीक्षित् ! वृष्णिके दो पुत्र हुए—सुमित्र और युधाजित् । युधाजित्के शिनि और अनमित्र—ये दो पुत्र थे । अनमित्रसे निम्नका जन्म हुआ ॥ १२ ॥ सत्राजित् और प्रसेन नामसे प्रसिद्ध यदुवंशी निम्नके ही पुत्र थे । अनमित्रका एक और पुत्र था, जिसका नाम था शिनि । शिनिसे ही सत्यकका जन्म हुआ ॥ १३ ॥ इसी सत्यकके पुत्र युयुधान थे, जो सात्यकिके नामसे प्रसिद्ध हुए । सात्यकिका जय, जयका कुणि और कुणिका पुत्र युगन्धर हुआ । अनमित्रके तीसरे पुत्रका नाम वृष्णि था । वृष्णिके दो पुत्र हुए—श्वफल्क और चित्ररथ । श्वफल्ककी पत्नीका नाम था गान्दिनी । उनमें सबसे श्रेष्ठ अक्रूरके अतिरिक्त बारह पुत्र उत्पन्न हुए—आसङ्ग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद्, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन और प्रतिबाहु । इनके एक बहिन भी थी, जिसका नाम था सुचीरा । अक्रूरके दो पुत्र थे—देववान् और उपदेव । श्वफल्कके भाई चित्ररथके पृथु, विदूरथ आदि बहुत-से पुत्र हुए—जो वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं । १४-१८ । सात्वतके पुत्र अन्धकके चार पुत्र हुए—कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हि । उनमें कुकुरका पुत्र वह्नि, वह्निका विलोमा, विलोमाका कपोतरोमा और कपोतरोमाका अनु हुआ । तुम्बुरु गन्धर्वके साथ अनुकी बड़ी मित्रता थी । अनुका पुत्र अन्धक, अन्धकका दुन्दुभि, दुन्दुभिका अरिद्योत, अरिद्योतका पुनर्वसु और पुनर्वसुके आहुक नामका एक पुत्र तथा आहुकी नामकी एक कन्या हुई । आहुकके दो पुत्र हुए—देवक और उग्रसेन । देवकके चार पुत्र हुए । १९-२१ । देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्धन । इनकी सात बहिनें भी थीं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी । वसुदेवजीने इन सबके साथ विवाह किया था ॥ २२-२३ ॥ उग्रसेनके नौ लड़के थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान् ॥ २४ ॥ उग्रसेनके पाँच कन्याएँ भी थीं—कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू और राष्ट्रपालिका । इनका विवाह देवभाग आदि वसुदेवजीके छोटे भाइयोंसे हुआ था ॥ २५ ॥

चित्ररथके पुत्र विदूरथसे शूर, शूरसे भजमान, भजमानसे शिनि, शिनिसे स्वयम्भोज और स्वयम्भोजसे हृदीक हुए । २६ । हृदीकसे तीन पुत्र हुए—देवबाहु, शतधन्वा और कृतवर्मा । देवमीढके पुत्र शूरकी पत्नीका नाम था मारिषा

॥ २७ ॥ उन्होंने उसके गर्भसे दस निष्पाप पुत्र उत्पन्न किये—वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक । ये सब-के-सब बड़े पुण्यात्मा थे । वसुदेवजीके जन्मके समय देवताओंके नगारे और नौबत स्वयं ही बजने लगे थे । अतः वे 'आनकदुन्दुभि' भी कहलाये । वे ही भगवान् श्रीकृष्णके पिता हुए । वसुदेव आदिकी पाँच बहनें भी थीं—पृथा (कुन्ती), श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी । वसुदेवके पिता शूरसेनके एक मित्र थे—कुन्तिभोज । कुन्तिभोजके कोई सन्तान न थी । इसलिये शूरसेनने उन्हें पृथा नामकी अपनी सबसे बड़ी कन्या गोद दे दी ॥२८—३१॥ पृथाने दुर्वासा ऋषिको प्रसन्न करके उनसे देवताओंको बुलानेकी विद्या सीख ली । एक दिन उस विद्याके प्रभावकी परीक्षा लेनेके लिये पृथाने परम पवित्र भगवान् सूर्यका आवाहन किया ॥ ३२ ॥ उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे । उन्हें देखकर कुन्तीका हृदय विस्मयसे भर गया । उसने कहा—'भगवन् ! मुझे क्षमा कीजिये । मैंने तो परीक्षा करनेके लिये ही इस विद्याका प्रयोग किया था । अब आप पधार सकते हैं ॥ ३३ ॥ सूर्यदेवने कहा—'देवि ! मेरा दर्शन निष्फल नहीं हो सकता । इसलिये हे सुन्दरी ! अब मैं तुमसे एक पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ । हाँ, अवश्य ही तुम्हारी योनि दूषित न हो, इसका उपाय मैं कर दूँगा' ॥ ३४ ॥ यह कहकर भगवान् सूर्यने गर्भ स्थापित कर दिया और इसके बाद वे स्वर्ग चले गये । उसी समय उससे एक बड़ा सुन्दर एवं तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ । वह देखनेमें दूसरे सूर्यके समान जान पड़ता था ॥ ३५ ॥ पृथा लोकनिन्दासे डर गयी । इसलिये उसने बड़े दुःखसे उस बालकको नदीके जलमें छोड़ दिया । परीक्षित् ! उसी पृथाका विवाह तुम्हारे परदादा पाण्डुसे हुआ था, जो वास्तवमें बड़े सच्चे वीर थे ॥ ३६ ॥

परीक्षित् ! पृथाकी छोटी बहिन श्रुतदेवाका विवाह करूष देशके अधिपति वृद्धशर्मासे हुआ था । उसके गर्भसे दन्तवक्त्रका जन्म हुआ । यह वही दन्तवक्त्र है, जो पूर्वजन्ममें सनकादि ऋषियोंके शापसे हिरण्याक्ष हुआ था ॥ ३७ ॥ केकय देशके राजा धृष्टकेतुने श्रुतकीर्तिसे विवाह किया था । उससे सन्तर्दन आदि पाँच कैकय राजकुमार हुए ॥ ३८ ॥ राजाधिदेवीका विवाह जयसेनसे हुआ था । उसके दो पुत्र हुए—विन्द और अनुविन्द । वे दोनों ही अवन्तीके राजा हुए । चेदिराज दमघोषने श्रुतश्रवाका पाणिग्रहण किया ॥ ३९ ॥ उसका पुत्र था शिशुपाल, जिसका वर्णन मैं पहले (सप्तम स्कन्धमें) कर चुका हूँ । वसुदेवजीके भाइयोंमेंसे देवभागकी पत्नी कंसाके गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्रकेतु और बृहद्बल ॥ ४० ॥ देवश्रवाकी पत्नी कंसवतीसे सुवीर और इषुमान् नामके दो पुत्र हुए । आनककी पत्नी कङ्काके गर्भसे भी दो पुत्र हुए—शत्रुजित् और पुरुजित् ॥ ४१ ॥ सृञ्जयने अपनी पत्नी राष्ट्रपालिकाके गर्भसे वृष और दुर्मर्षण आदि कई पुत्र उत्पन्न किये । इसी प्रकार श्यामकने शूरभूमि (शूरभू) नामकी पत्नीसे हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।४२। मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे वत्सकके भी वृक आदि कई पुत्र हुए । वृकने दुर्वाक्षीके गर्भसे तक्ष, पुष्कर और शाल आदि कई पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४३ ॥ शमीककी पत्नी सुदामिनीने भी सुमित्र और अर्जुनपाल आदि कई बालक उत्पन्न किये । कङ्ककी पत्नी कर्णिकाके गर्भसे दो पुत्र हुए—ऋतुधाम और जय ॥ ४४ ॥

आनकदुन्दुभि वसुदेवजीकी पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि बहुत-सी पत्नियाँ थीं॥४५॥ रोहिणीके गर्भसे वसुदेवजीके बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृत आदि पुत्र हुए थे ॥ ४६ ॥ पौरवीके गर्भसे उनके बारह पुत्र हुए—भूत, सुभद्र, भद्रबाह, दुर्मद और भद्र आदि ॥ ४७ ॥ नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर आदि मदिराके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । कौसल्याने एक ही वंश-उजागर पुत्र उत्पन्न किया था । उसका नाम था केशी ॥ ४८ ॥ उसने रोचनासे हस्त और हेमाङ्गद आदि तथा इलासे उरुवल्क आदि प्रधान यदुवंशी पुत्रोंको जन्म दिया ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! वसुदेवजीके धृतदेवाके गर्भसे विपृष्ठ नामका एक ही पुत्र हुआ और शान्तिदेवासे श्रम और प्रतिश्रुत आदि कई पुत्र हुए ॥ ५० ॥ उपदेवाके पुत्र

कल्पवर्ष आदि दस राजा हुए और श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र हुए ॥ ५१ ॥ देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र हुए तथा जैसे स्वयं धर्मने आठ वसुओं-को उत्पन्न किया था, वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवाके गर्भसे पुरुविश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न किये। परम उदार वसुदेवजीने देवकीके गर्भसे भी आठ पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें सातके नाम हैं—कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र और शेषावतार श्रीबलरामजी !।५२—५४॥ उन दोनोंके आठवें पुत्र स्वयं श्रीभगवान् ही थे। परीक्षित् ! तुम्हारी परम सौभाग्यवती दादी सुभद्रा भी देवकीजीकी ही कन्या थीं ॥ ५५ ॥

जब-जब संसारमें धर्मका ह्रास और पापकी वृद्धि होती है, तब-तब सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं॥५६॥ परीक्षित् ! भगवान् सबके द्रष्टा और वास्तवमें असङ्ग आत्मा ही हैं। इसलिये उनकी आत्मस्वरूपिणी योगमायाके अतिरिक्त उनके जन्म अथवा कर्मका और कोई भी कारण नहीं है ॥ ५७ ॥ उनकी मायाका विलास ही जीवके जन्म, जीवन और मृत्युका कारण है। और उनका अनुग्रह ही मायाको अलग करके आत्म-स्वरूपको प्राप्त करानेवाला है ॥ ५८ ॥ जब असुरोंने राजाओंका वेष धारण कर लिया और कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके वे सारी पृथ्वीको रौंदने लगे, तब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् मधुसूदन बलराम-जीके साथ अवतीर्ण हुए। उन्होंने ऐसी-ऐसी लीलाएँ कीं, जिनके सम्बन्धमें बड़े-बड़े देवता मनसे अनुमान भी नहीं कर सकते—शरीरसे करनेकी बात तो अलग रही ॥ ५९-६० ॥ पृथ्वीका भार तो उतरा ही, साथ ही कलियुगमें पैदा होनेवाले भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान्ने ऐसे परम पवित्र यशका विस्तार किया, जिसका गान और श्रवण करनेसे ही उनके दुःख, शोक और अज्ञान सब-के-सब नष्ट हो जायँगे ॥ ६१ ॥ उनका यश क्या है, लोगोंको पवित्र करनेवाला श्रेष्ठ तीर्थ है। संतोंके कानोंके लिये तो वह साक्षात् अमृत ही है। एक बार भी यदि कानकी अञ्जलियोंसे उसका आचमन कर लिया जाता है, तो कर्मकी वासनाएँ निर्मूल हो जाती हैं ॥ ६२ ॥ परीक्षित् ! भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशी वीर निरन्तर भगवान्की लीलाओंकी आदर-पूर्वक सराहना करते रहते थे ॥६३॥ उनका श्यामल शरीर सर्वाङ्गसुन्दर था। उन्होंने उस मनोरम विग्रहसे तथा अपनी प्रेमभरी मुसकान, मधुर चितवन, प्रसादपूर्ण वचन और पराक्रमपूर्ण लीलाके द्वारा सारे मनुष्यलोक-को आनन्दमें सराबोर कर दिया था ॥ ६४ ॥ भगवान्के मुखकमलकी शोभा तो निराली ही थी। मकराकृति कुण्डलोंसे उनके कान बड़े कमनीय मालूम पड़ते थे। उनकी आभासे कपोलोंका सौन्दर्य और भी खिल उठता था। जब वे विलासके साथ हँस देते, तो उनके मुखपर निरन्तर रहनेवाले आनन्दमें मानो बाढ़-सी आ जाती। सभी नर-नारी अपने नेत्रोंके प्यालोंसे उनके मुखकी माधुरीका निरन्तर पान करते रहते, परन्तु तृप्त नहीं होते। वे उसका रस ले-लेकर आनन्दित तो होते ही, परन्तु पलकें गिरनेसे उनके गिरानेवाले निमिपर खीझते भी ॥ ६५ ॥ लीलापुरुषोत्तम भगवान् अवतीर्ण हुए मथुरामें वसुदेवजीके घर, परन्तु वहाँ रहे नहीं; वहाँसे गोकुलमें नन्दबाबाके घर चले गये। वहाँ अपना प्रयोजन—जो ग्वाल, गोपी और गौओंको सुखी करना था—पूरा करके मथुरा लौट आये। व्रजमें, मथुरामें तथा द्वारकामें रहकर अनेकों शत्रुओंका संहार किया। बहुत-सी स्त्रियोंसे विवाह करके हजारों पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही लोगोंमें अपने स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाली अपनी वाणीस्वरूप श्रुतियोंकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये अनेक यज्ञोंके द्वारा स्वयं अपना ही यजन किया ॥ ६६ ॥ कौरव और पाण्डवोंके बीच उत्पन्न हुए आपसके कलहसे उन्होंने पृथ्वीका बहुत-सा भार हल्का कर दिया तथा युद्धमें अपनी दृष्टिसे ही राजाओं-की बहुत-सी अक्षौहिणियोंको ध्वंस करके संसारमें अर्जुनकी जीतका डंका पिटवा दिया। फिर उद्धवको आत्मतत्त्वका उपदेश किया और इसके बाद वे अपने परम धामको सिधार गये ॥ ६७ ॥

इति नवम स्कन्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

देवक्या पालितो गर्भे लालितोऽङ्के यशोदया ।
यशोदयायुतो बालो गोपालो रमतां हृदि ॥

श्रीश्यामाश्यामकी झाँकी

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

पहला अध्याय

भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! आपने चन्द्रवंश और सूर्यवंशके विस्तार तथा दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्भुत चरित्र वर्णन किया । भगवान्‌के परम प्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे ही धर्मप्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया । अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये ।। १-२ ।। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं । उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हमलोगोंको श्रवण कराइये ।। ३ ।। जिनकी तृष्णाकी प्यास सर्वदाके लिये बुझ चुकी है, वे जीवन्मुक्त महापुरुष जिसका पूर्ण प्रेमसे अतृप्त रहकर गान किया करते हैं, मुमुक्षुजनोंके लिये जो भवरोगका रामबाण औषध है तथा विषयी लोगोंके लिये भी उनके कान और मनको परम आह्लाद देनेवाला है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे सुन्दर, सुखद, रसीले, गुणानुवादसे पशुघाती अथवा आत्मघाती मनुष्यके अतिरिक्त और ऐसा कौन है जो विमुख हो जाय, उससे प्रीति न करे ? ।। ४ ।। (श्रीकृष्ण तो मेरे कुलदेव ही हैं ।) जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था और देवताओंको भी जीत लेनेवाले भीष्मपितामह आदि अतिरथियोंसे मेरे दादा पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिये अपार समुद्रके समान थी—जिसमें भीष्म आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति भय उत्पन्न कर रहे थे । परन्तु मेरे स्वनाम-धन्य पितामह भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको अनायास ही पार कर गये—ठीक वैसे ही जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बछड़ेके खुरका गड्ढा पार कर जाय ।। ५ ।। महाराज ! मेरा यह शरीर—जो आपके सामने है तथा जो कौरव और पाण्डव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था । उस समय मेरी माता जब भगवान्‌की शरणमें गयी, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की ।६। (केवल मेरी ही बात नहीं,) वे समस्त शरीरधारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्युका *। मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक लीला है । आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण लीलाओंका वर्णन कीजिये ।। ७ ।।

* समस्त देहधारियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित भगवान् उनके जीवनके कारण हैं तथा बाहर कालरूपसे स्थित हुए वे ही उनका नाश करते हैं । अतः जो आत्मज्ञानीजन अन्तर्दृष्टिद्वारा उन अन्तर्यामीकी उपासना करते हैं, वे मोक्षरूप अमरपद पाते हैं और जो विषयपरायण अज्ञानी पुरुष बाह्यदृष्टिसे विषयचिन्तनमें ही लगे रहते हैं, वे जन्म-मरणरूप मृत्युके भागी होते हैं ।

भगवन्! आपने अभी बतलाया था कि बलरामजी रोहिणीके पुत्र थे। इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी आपने उनकी गणना की। दूसरा शरीर धारण किये बिना दो माताओंका पुत्र होना कैसे सम्भव है? ॥ ८ ॥ असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने वात्सल्य-स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़कर व्रजमें क्यों चले गये? यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल प्रभुने नन्द आदि गोप-बन्धुओंके साथ कहाँ-कहाँ निवास किया? ॥ ९ ॥ ब्रह्मा और शङ्करका भी शासन करनेवाले प्रभुने व्रजमें तथा मधुपुरीमें रहकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं? और महाराज! उन्होंने अपनी माँके भाई मामा कंसको अपने हाथों क्यों मार डाला? वह मामा होनेके कारण उनके द्वारा मारे जाने योग्य तो नहीं था ॥ १० ॥ मनुष्याकार सच्चिदानन्दमय विग्रह प्रकट करके द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके साथ उन्होंने कितने वर्षोंतक निवास किया? और उन सर्वशक्तिमान् प्रभुकी पत्नियाँ कितनी थीं? ॥ ११ ॥ मुने! मैंने श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ पूछी हैं और जो नहीं पूछी हैं, वे सब आप मुझे विस्तारसे सुनाइये; क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं और मैं बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें सुनना चाहता हूँ ॥ १२ ॥ भगवन्! अन्नकी तो बात ही क्या, मैंने जलका भी परित्याग कर दिया है। फिर भी वह असह्य भूख-प्यास (जिसके कारण मैंने मुनिके गलेमें मृत सर्प डालनेका अन्याय किया था) मुझे तनिक भी नहीं सता रही है; क्योंकि मैं आपके मुखकमलसे झरती हुई भगवान्‌की सुधामयी लीला-कथाका पान कर रहा हूँ ॥ १३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! भगवान्‌के प्रेमियोंमें अग्रगण्य एवं सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने परीक्षित्‌का ऐसा समीचीन प्रश्न सुनकर (जो संतोंकी सभामें भगवान्‌की लीलाके वर्णनका हेतु हुआ करता है) उनका अभिनन्दन किया और भगवान् श्रीकृष्णकी उन लीलाओंका वर्णन प्रारम्भ किया, जो समस्त कलिमलोंको सदाके लिये धो डालती हैं ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्‌के लीला-रसके रसिक राजर्षे! तुमने जो कुछ निश्चय किया है, वह बहुत ही सुन्दर और आदरणीय है; क्योंकि सबके हृदयाराध्य श्रीकृष्णकी लीला-कथा श्रवण करनेमें तुम्हें सहज एवं सुदृढ प्रीति प्राप्त हो गयी है ॥ १५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥

परीक्षित्! उस समय लाखों दैत्योंके दलने घमंडी राजाओंका रूप धारण कर अपने भारी भारसे पृथ्वीको आक्रान्त कर रक्खा था। उससे त्राण पानेके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ॥ १७ ॥ पृथ्वीने उस समय गौका रूप धारण कर रक्खा था। उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे। उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था। वह बड़े करुण स्वरसे रँभा रही थी। ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हें अपनी पूरी कष्ट-कहानी सुनायी ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने बड़ी सहानुभूतिके साथ उसकी दुःख-गाथा सुनी। उसके बाद वे भगवान् शङ्कर, स्वर्गके अन्यान्य प्रमुख देवता तथा गौके रूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये ॥ १९ ॥ भगवान् देवताओंके भी आराध्यदेव हैं। वे अपने भक्तोंकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करते और उनके समस्त क्लेशोंको नष्ट कर देते हैं। वे ही जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने 'पुरुषसूक्त' के द्वारा उन्हीं परम पुरुष सर्वान्तर्यामी प्रभुकी स्तुति की। स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये ॥ २० ॥ उन्होंने समाधि-अवस्थामें आकाशवाणी सुनी। इसके बाद जगत्‌के निर्माणकर्ता ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवताओ! मैंने भगवान्‌की वाणी सुनी है। तुमलोग भी उसे मेरे द्वारा अभी सुन लो और फिर वैसा ही करो। उसके पालनमें विलम्ब नहीं होना चाहिये ॥ २१ ॥ भगवान्‌को पृथ्वीके कष्टका पहलेसे ही पता है। वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। अतः अपनी कालशक्तिके द्वारा पृथ्वीका भार हरण करते हुए वे जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी अपने-अपने अंशोंके साथ यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें

सहयोग दो ॥ २२ ॥ वसुदेवजीके घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होंगे। उनकी और उनकी प्रियतमा (श्रीराधा)की सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ जन्म ग्रहण करें।२३। स्वयंप्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्की कला होनेके कारण अनन्त हैं (अनन्तका अंश भी अनन्त ही होता है) और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्के प्रिय कार्य करनेके लिये उनसे पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे ॥ २४ ॥ भगवान्की वह ऐश्वर्य-शालिनी योगमाया भी, जिसने सारे जगत्को मोहित कर रक्खा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अंशरूपसे अवतार ग्रहण करेगी' ॥ २५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंको इस प्रकार आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-बुझाकर ढाढ़स बँधाया। इसके बाद वे अपने परम धामको चले गये ॥ २६ ॥ प्राचीन कालमें यदुवंशी राजा थे शूरसेन। वे मथुरापुरीमें रहकर माथुरमण्डल और शूरसेनमण्डलका राज्यशासन करते थे ॥ २७ ॥ उसी समयसे मथुरा ही समस्त यदुवंशी नरपतियों-की राजधानी हो गयी थी। भगवान् श्रीहरि सर्वदा वहाँ विराजमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक बार मथुरामें शूरके पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जानेके लिये रथपर सवार हुए ॥२९॥ उग्रसेनका लड़का था कंस। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये उसके रथके घोड़ोंकी रास पकड़ ली। वह स्वयं ही रथ हाँकने लगा, यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सोनेके बने हुए रथ चल रहे थे ॥ ३० ॥ देवकीके पिता थे देवक। अपनी पुत्रीपर उनका बड़ा प्रेम था। कन्याको विदा करते समय उन्होंने उसे सोनेके हारोंसे अलङ्कृत चार सौ हाथी, पंद्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ तथा सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दहेजमें दीं ॥ ३१-३२ ॥ विदाईके समय वर-वधूके मङ्गलके लिये एक ही साथ शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ३३ ॥ मार्गमें जिस समय घोड़ोंकी रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणीने उसे सम्बोधन करके कहा—'अरे मूर्ख ! जिसको तू रथमें बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी' ॥३४॥ कंस बड़ा पापी था। उसकी दुष्टताकी सीमा नहीं थी। वह भोजवंशका कलङ्क ही था। आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहिनकी चोटी पकड़कर उसे मारनेके लिये तैयार हो गया ॥ ३५ ॥ वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था। उसका यह काम देखकर महात्मा वसुदेवजी उसको शान्त करते हुए बोले—॥ ३६ ॥

वसुदेवजीने कहा—राजकुमार ! आप भोजवंशके होनहार वंशधर तथा अपने कुलकी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरे आपकी बहिन और तीसरे यह विवाहका शुभ अवसर ! ऐसी स्थितिमें आप इसे कैसे मार सकते हैं? ॥ ३७ ॥ वीरवर ! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज हो या सौ वर्षके बाद—जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही ॥ ३८ ॥ जब शरीरका अन्त हो जाता है, तब जीव अपने कर्मके अनुसार दूसरे शरीरको ग्रहण करके अपने पहले शरीरको छोड़ देता है। उसे विवश होकर ऐसा करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर जमाकर ही दूसरा पैर उठाता है और जैसे जोंक किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ती है—वैसे जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है ॥ ४० ॥ जैसे कोई पुरुष जाग्रत्-अवस्थामें राजाके ऐश्वर्यको देखकर और इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और उसका चिन्तन करते-करते उन्हीं बातोंमें घुल-मिलकर एक हो जाता है तथा स्वप्नमें अपनेको राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता है, साथ ही अपने दरिद्रा-वस्थाके शरीरको भूल जाता है। कभी-कभी तो जाग्रत् अवस्थामें ही मन-ही-मन उन बातोंका चिन्तन करते-करते तन्मय हो जाता है और उसे स्थूल शरीरकी सुधि नहीं रहती। वैसे ही जीव कर्मकृत कामना और कामनाकृत कर्मके वश होकर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है और अपने पहले शरीरको भूल जाता है ॥ ४१ ॥ जीवका

मन अनेक विकारोंका पुञ्ज है। देहान्तके समय वह अनेक जन्मोंके सञ्चित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य-चन्द्रमा आदि चमकीली वस्तुएँ जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तेल आदि तरल पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं और हवाके झोंकेसे उनके जल आदिके हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं—वैसे ही जीव अपने स्वरूपके अज्ञानद्वारा रचे हुए शरीरोंमें राग करके उन्हें अपना आप मान बैठता है और मोहवश उनके आने-जानेको अपना आना-जाना मानने लगता है ॥ ४३ ॥ इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये; क्योंकि जीव कर्मके अधीन हो गया है और जो किसीसे भी द्रोह करेगा, उसको इस जीवनमें शत्रुसे और जीवनके बाद परलोकसे भयभीत होना ही पड़ेगा ॥ ४४ ॥ कंस ! यह आपकी छोटी बहिन अभी बच्ची और बहुत दीन है। यह तो आपकी कन्याके समान है। इसपर, अभी-अभी इसका विवाह हुआ है, विवाहके मङ्गलचिह्न भी इसके शरीरपरसे नहीं उतारे हैं। ऐसी दशामें आप-जैसे दीनवत्सल पुरुषको इस बेचारीका वध करना उचित नहीं है ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार वसुदेवजीने प्रशंसा आदि सामनीति और भय आदि भेद-नीतिसे कंसको बहुत समझाया। परन्तु वह क्रूर तो राक्षसोंका अनुयायी हो रहा था; इसलिये उसने अपने घोर सङ्कल्पको नहीं छोड़ा ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने कंसका विकट हठ देखकर यह विचार किया कि किसी प्रकार यह समय तो टाल ही देना चाहिये। तब वे इस निश्चयपर पहुँचे ॥ ४७ ॥ 'बुद्धिमान् पुरुषको, जहाँतक उसकी बुद्धि और बल साथ दें, मृत्युको टालनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करनेपर भी वह न टल सके, तो फिर प्रयत्न करनेवालेका कोई दोष नहीं रहता ॥ ४८ ॥ इसलिये इस मृत्युरूप कंसको अपने पुत्र दे देनेकी प्रतिज्ञा करके मैं इस दीन देवकीको बचा लूँ। यदि मेरे लड़के होंगे और तबतक यह कंस स्वयं नहीं मर जायगा, तब क्या होगा ? ॥ ४९ ॥ सम्भव है, उलटा ही हो। मेरा लड़का ही इसे मार डाले ! क्योंकि विधाताके विधानका पार पाना बहुत कठिन है। मृत्यु सामने आकर भी टल जाती है और टली हुई भी लौट आती है ॥ ५० ॥ जिस समय वनमें आग लगती है, उस समय कौन-सी लकड़ी जले और कौन-सी न जले, दूरकी जल जाय और पासकी बच रहे—इन सब बातोंमें अदृष्टके सिवा और कोई कारण नहीं होता। वैसे ही किस प्राणीका कौन-सा शरीर बना रहेगा और किस हेतुसे कौन-सा शरीर नष्ट हो जायगा—इस बातका पता लगा लेना बहुत ही कठिन है' ॥ ५१ ॥ अपनी बुद्धिके अनुसार ऐसा निश्चय करके वसुदेवजीने बहुत सम्मानके साथ पापी कंसकी बड़ी प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ परीक्षित् ! कंस बड़ा क्रूर और निर्लज्ज था; अतः ऐसा करते समय वसुदेवजीके मनमें बड़ी पीड़ा भी हो रही थी। फिर भी उन्होंने ऊपरसे अपने मुख-कमलको प्रफुल्लित करके हँसते हुए कहा—॥ ५३ ॥

वसुदेवजीने कहा—सौम्य ! आपको देवकीसे तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणीने कहा है। भय है पुत्रोंसे, सो इसके पुत्र मैं आपको लाकर सौंप दूँगा ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंस जानता था कि वसुदेवजीके वचन झूठे नहीं होते और इन्होंने जो कुछ कहा है, वह युक्तिसंगत भी है। इसलिये उसने अपनी बहिन देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया। इससे वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करके अपने घर चले आये ॥ ५५ ॥ देवकी बड़ी सती-साध्वी थी। सारे देवता उसके शरीरमें निवास करते थे। समय आनेपर देवकीके गर्भसे प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ पहले पुत्रका नाम था कीर्तिमान्। वसुदेवजीने उसे लाकर कंसको दे दिया। ऐसा करते समय उन्हें कष्ट तो अवश्य हुआ, परन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बातका था कि कहीं मेरे वचन झूठे न हो जायँ ॥ ५७ ॥ परीक्षित् ! सत्यसन्ध पुरुष बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सह लेते हैं, ज्ञानियों-

को किसी बातकी अपेक्षा नहीं होती, नीच पुरुष बुरे-से-बुरा काम भी कर सकते हैं और जो जितेन्द्रिय हैं—जिन्होंने भगवान्‌को हृदयमें धारण कर रक्खा है, वे सब कुछ त्याग सकते हैं ॥ ५८ ॥ जब कंसने देखा कि वसुदेवजीका अपने पुत्रके जीवन और मृत्युमें समान भाव है एवं वे सत्यमें पूर्ण निष्ठावान् भी हैं, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे हँसकर बोला ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी ! आप इस नन्हे-से सुकुमार बालकको ले जाइये। इससे मुझे कोई भय नहीं है। क्योंकि आकाशवाणीने तो ऐसा कहा था कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा मेरी मृत्यु होगी ॥ ६० ॥ वसुदेवजीने कहा—'ठीक है' और उस बालकको लेकर वे लौट आये। परन्तु उन्हें मालूम था कि कंस बड़ा दुष्ट है और उसका मन उसके हाथमें नहीं है। वह किसी क्षण बदल सकता है। इसलिये उन्होंने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया ॥ ६१ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् नारद कंसके पास आये और उससे बोले कि 'कंस ! व्रजमें रहनेवाले नन्द आदि गोप, उनकी स्त्रियाँ, वसुदेव आदि वृष्णिवंशी यादव, देवकी आदि यदुवंशकी स्त्रियाँ और नन्द, वसुदेव दोनोंके सजातीय बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धी—सब-के-सब देवता हैं; जो इस समय तुम्हारी सेवा कर रहे हैं, वे भी देवता ही हैं।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'दैत्योंके कारण पृथ्वीका भार बढ़ गया है, इसलिये देवताओंकी ओरसे अब उनके वधकी तैयारी की जा रही है' ॥ ६२—६४ ॥ जब देवर्षि नारद इतना कहकर चले गये, तब कंसको यह निश्चय हो गया कि यदुवंशी देवता हैं और देवकीके गर्भसे विष्णुभगवान् ही मुझे मारनेके लिये पैदा होनेवाले हैं। इसलिये उसने देवकी और वसुदेवको हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर कैदमें डाल दिया और उन दोनोंसे जो-जो पुत्र होते गये, उन्हें वह मारता गया। उसे हर बार यह शंका बनी रहती कि कहीं विष्णु ही उस बालकके रूपमें न आ गया हो ॥ ६५—६६ ॥ परीक्षित् ! पृथ्वीमें यह बात प्रायः देखी जाती है कि अपने प्राणोंका ही पोषण करनेवाले लोभी राजा अपने स्वार्थके लिये माता-पिता, भाई-बन्धु और अपने अत्यन्त हितैषी इष्ट-मित्रोंकी भी हत्या कर डालते हैं ॥ ६७ ॥ कंस जानता था कि मैं पहले कालनेमि असुर था और विष्णुने मुझे मार डाला था। इससे उसने यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया ॥ ६८ ॥ कंस बड़ा बलवान् था। उसने यदु, भोज और अन्धक-वंशके अधिनायक अपने पिता उग्रसेनको कैद कर लिया और शूरसेन-देशका राज्य वह स्वयं करने लगा ॥ ६९ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंस एक तो स्वयं बड़ा बली था और दूसरे, मगधनरेश जरासन्धकी उसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी। तीसरे, उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक। तथा बाणासुर और भौमासुर आदि बहुत-से दैत्य राजा उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियोंको नष्ट करने लगा ॥ १-२ ॥ वे लोग भयभीत होकर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कोसल आदि देशोंमें जा बसे ॥ ३ ॥ कुछ लोग ऊपर-ऊपरसे उसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवामें लगे रहे। जब कंसने एक-एक करके देवकीके छः बालक मार डाले, तब देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्‌के अंशस्वरूप श्रीशेषजी*—जिन्हें अनन्त भी कहते हैं—पधारे। आनन्दस्वरूप शेषजीके गर्भमें आनेके कारण देवकीको स्वाभाविक ही हर्ष हुआ। परन्तु कंस शायद इसे भी मार डाले, इस भयसे उनका शोक भी बढ़ गया ॥ ४-५ ॥

* शेष भगवान्‌ने विचार किया कि 'रामावतारमें मैं छोटा भाई बना, इसीसे मुझे बड़े भाईकी आज्ञा माननी पड़ी और वन जानेसे मैं उन्हें रोक नहीं सका। श्रीकृष्णावतारमें मैं बड़ा भाई बनकर भगवान्‌की अच्छी सेवा कर सकूँगा।' इसलिये वे श्रीकृष्णसे पहले ही गर्भमें आ गये।

विश्वात्मा भगवान्‌ने देखा कि मुझे ही अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कंसके द्वारा बहुत ही सताये जा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया—॥ ६ ॥ 'देवि! कल्याणी! तुम व्रजमें जाओ। वह प्रदेश ग्वालों और गौओंसे सुशोभित है। वहाँ नन्दबाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नियाँ कंससे डरकर गुप्त स्थानोंमें रह रही हैं॥ ७ ॥ इस समय मेरा वह अंश जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भरूपसे स्थित है। उसे वहाँसे निकालकर तुम रोहिणीके पेटमें रख दो॥ ८ ॥ कल्याणी! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना॥ ९ ॥ तुम लोगोंको मुँहमाँगे वरदान देनेमें समर्थ होओगी। मनुष्य तुम्हें अपनी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली जानकर धूप-दीप, नैवेद्य एवं अन्य प्रकारकी सामग्रियोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे॥ १० ॥ पृथ्वीमें लोग तुम्हारे लिये बहुत-से स्थान बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि बहुत-से नामोंसे पुकारेंगे॥ ११-१२ ॥ देवकीके गर्भमेंसे खींचे जानेके कारण शेषजीको लोग संसारमें 'संकर्षण' कहेंगे, लोकरञ्जन करनेके कारण 'राम' कहेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण 'बलभद्र' भी कहेंगे'॥ १३ ॥

जब भगवान्‌ने इस प्रकार आदेश दिया, तब योगमायाने 'जो आज्ञा'—ऐसा कहकर उनकी बात शिरोधार्य की और उनकी परिक्रमा करके वे पृथ्वीलोकमें चली आयीं तथा भगवान्‌ने जैसा कहा था, वैसे ही किया॥ १४ ॥ जब योगमायाने देवकीका गर्भ ले जाकर रोहिणीके उदरमें रख दिया, तब पुरवासी बड़े दुःखके साथ आपसमें कहने लगे—'हाय! बेचारी देवकीका यह गर्भ तो नष्ट ही हो गया'॥ १५ ॥

भगवान् भक्तोंको अभय करनेवाले हैं। वे सर्वत्र सब रूपमें हैं, उन्हें कहीं आना-जाना नहीं है। इसलिये वे वसुदेवजीके मनमें अपनी समस्त कलाओंके साथ प्रकट हो गये॥ १६ ॥ उसमें विद्यमान रहनेपर भी अपनेको अव्यक्तसे व्यक्त कर दिया। भगवान्‌की ज्योतिको धारण करनेके कारण वसुदेवजी सूर्यके समान तेजस्वी हो गये, उन्हें देखकर लोगोंकी आँखें चौंधिया जातीं। कोई भी अपने बल, वाणी या प्रभावसे उन्हें दबा नहीं सकता था॥ १७ ॥ भगवान्‌के उस ज्योतिर्मय अंशको, जो जगत्‌का परम मङ्गल करनेवाला है, वसुदेवजीके द्वारा आधान किये जानेपर देवी देवकीने ग्रहण किया। जैसे पूर्वदिशा चन्द्रदेवको धारण करती है, वैसे ही शुद्ध सत्त्वसे सम्पन्न देवी देवकीने विशुद्ध मनसे सर्वात्मा एवं आत्मस्वरूप भगवान्‌को धारण किया॥ १८ ॥ भगवान् सारे जगत्‌के निवासस्थान हैं। देवकी उनका भी निवासस्थान बन गयी। परन्तु घड़े आदिके भीतर बंद किये हुए दीपकका और अपनी विद्या दूसरेको न देनेवाले ज्ञानखलकी श्रेष्ठ विद्याका प्रकाश जैसे चारों ओर नहीं फैलता, वैसे ही कंसके कारागारमें बंद देवकीकी भी उतनी शोभा नहीं हुई॥ १९ ॥ देवकीके गर्भमें भगवान् विराजमान हो गये थे। उसके मुखपर पवित्र मुसकान थी और उसके शरीरकी कान्तिसे बंदीगृह जगमगाने लगा था। जब कंसने उसे देखा, तब वह मन-ही-मन कहने लगा—'अबकी बार मेरे प्राणोंके ग्राहक विष्णुने इसके गर्भमें अवश्य ही प्रवेश किया है; क्योंकि इसके पहले देवकी कभी ऐसी न थी॥ २० ॥ अब इस विषयमें शीघ्र-से-शीघ्र मुझे क्या करना चाहिये? देवकीको मारना तो ठीक न होगा; क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थवश अपने पराक्रमको कलङ्कित नहीं करते। एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहिन और तीसरे गर्भवती है। इसको मारनेसे तो तत्काल ही मेरी कीर्ति, लक्ष्मी और आयु नष्ट हो जायगी॥ २१ ॥ वह मनुष्य तो जीवित रहनेपर भी मरा हुआ ही है, जो अत्यन्त क्रूरताका व्यवहार करता है। उसकी मृत्युके बाद लोग उसे गाली देते हैं। इतना ही नहीं, वह देहाभिमानियोंके योग्य घोर नरकमें भी अवश्य-अवश्य जाता है॥ २२ ॥ यद्यपि कंस देवकीको मार सकता था, किन्तु स्वयं ही वह इस

अत्यन्त क्रूरताके विचारसे निवृत्त हो गया* । अब भगवान्‌के प्रति दृढ़ वैरका भाव मनमें गाँठकर उनके जन्मकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ २३ ॥ वह उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते और चलते-फिरते – सर्वदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता । जहाँ उसकी आँख पड़ती, जहाँ कुछ खड़का होता, वहीं उसे श्रीकृष्ण दीख जाते । इस प्रकार उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्णमय दीखने लगा ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी कंसके कैदखानेमें आये । उनके साथ अपने अनुचरोंके सहित समस्त देवता और नारदादि ऋषि भी थे । वे लोग सुमधुर वचनोंसे सबकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥ 'प्रभो ! आप सत्यसङ्कल्प हैं । सत्य ही आपकी प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है । सृष्टिके पूर्व, प्रलयके पश्चात् और संसारकी स्थितिके समय—इन असत्य अवस्थाओंमें भी आप सत्य हैं । पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच दृश्यमान सत्योंके आप ही कारण हैं । और उनमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान भी हैं । आप इस दृश्यमान जगत्‌के परमार्थस्वरूप हैं । आप ही मधुर वाणी और समदर्शनके प्रवर्तक हैं । भगवन् ! आप तो बस, सत्यस्वरूप ही हैं । हम सब आपकी शरणमें आये हैं ॥ २६ ॥ यह संसार क्या है, एक सनातन वृक्ष । इस वृक्षका आश्रय है—एक प्रकृति । इसके दो फल हैं—सुख और दुःख; तीन जड़ें हैं—सत्त्व, रज और तम; चार रस हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इसके जाननेके पाँच प्रकार हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका । इसके छः स्वभाव हैं—पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना । इस वृक्षकी छाल हैं सात धातुएँ—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र । आठ शाखाएँ हैं—पाँच महाभूत, मन, बुद्धि और अहङ्कार । इसमें मुख आदि नवों द्वार खोड़र हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—ये दस प्राण ही इसके दस पत्ते हैं । इस संसाररूप वृक्षपर दो पक्षी हैं—जीव और ईश्वर ॥ २७ ॥ इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं । आपमें ही इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है । जिनका चित्त आपकी मायासे आवृत हो रहा है, इस सत्यको समझनेकी शक्ति खो बैठा है—वे ही उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको अनेक देखते हैं । तत्त्वज्ञानी पुरुष तो सबके रूपमें केवल आपका ही दर्शन करते हैं ॥ २८ ॥ आप ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं । चराचर जगत्‌के कल्याणके लिये ही अनेकों रूप धारण करते हैं । आपके वे रूप विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय होते हैं और संत पुरुषोंको बहुत सुख देते हैं । साथ ही दुष्टोंको उनकी दुष्टताका दण्ड भी देते हैं । उनके लिये अमङ्गलमय भी होते हैं ॥ २९ ॥ कमलके समान कोमल अनुग्रहभरे नेत्रोंवाले प्रभो ! कुछ बिरले लोग ही आपके समस्त पदार्थों और प्राणियोंके आश्रयस्वरूप रूपमें पूर्ण एकाग्रतासे अपना चित्त लगा पाते हैं और आपके चरणकमलरूपी जहाजका आश्रय लेकर इस संसारसागरको बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान अनायास ही पार कर जाते हैं । क्यों न हो, अबतकके संतोंने इसी जहाजसे संसारसागरको पार जो किया है ॥ ३० ॥ परम प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आपके भक्तजन सारे जगत्‌के निष्कपट प्रेमी, सच्चे हितैषी होते हैं । वे स्वयं तो इस भयङ्कर और कष्टसे पार करनेयोग्य संसारसागरको पार कर ही जाते हैं, किन्तु औरोंके कल्याणके लिये भी वे यहाँ आपके चरणकमलोंकी नौका स्थापित कर जाते हैं । वास्तवमें सत्पुरुषोंपर आपकी महान् कृपा है । उनके लिये आप अनुग्रहस्वरूप ही हैं ॥ ३१ ॥ कमलनयन ! जो लोग आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे अपनेको झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं । वास्तवमें तो वे बद्ध ही हैं । वे यदि बड़ी तपस्या और

* जो कंस विवाहके मङ्गलचिह्नोंको धारण की हुई देवकीका गला काटनेके उद्योगसे न हिचका, वही आज इतना सद्विचारवान् हो गया, इसका क्या कारण है ? अवश्य ही आज वह जिस देवकीको देख रहा है, उसके अन्तरङ्गमें—गर्भमें श्रीभगवान् हैं । जिसके भीतर भगवान् हैं, उसके दर्शनसे सद्बुद्धिका उदय होना कोई आश्चर्य नहीं है ।

साधनाका कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पदपर भी पहुँच जायँ, तो भी वहाँसे नीचे गिर जाते हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु भगवन्! जो आपके अपने निज जन हैं, जिन्होंने आपके चरणोंमें अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रक्खी है, वे कभी उन ज्ञानाभिमानियोंकी भाँति अपने साधन-मार्गसे गिरते नहीं। प्रभो! वे बड़े-बड़े विघ्न डालनेवालोंकी सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं, कोई भी विघ्न उनके मार्गमें रुकावट नहीं डाल सकते; क्योंकि उनके रक्षक आप जो हैं ॥ ३३ ॥ आप संसारकी स्थितिके लिये समस्त देहधारियोंको परम कल्याण प्रदान करनेवाला विशुद्ध सत्त्वमय, सच्चिदानन्दमय परम दिव्य मङ्गल-विग्रह प्रकट करते हैं। उस रूपके प्रकट होनेसे ही आपके भक्त वेद, कर्मकाण्ड, अष्टाङ्गयोग, तपस्या और समाधिके द्वारा आपकी आराधना करते हैं। बिना किसी आश्रयके वे किसकी आराधना करेंगे?॥ ३४ ॥ प्रभो! आप सबके विधाता हैं। यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय निज स्वरूप न हो, तो अज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले भेदभावको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसीको न हो। जगत्‌में दीखनेवाले तीनों गुण आपके हैं और आपके द्वारा ही प्रकाशित होते हैं, यह सत्य है। परन्तु इन गुणोंकी प्रकाशक वृत्तियोंसे आपके स्वरूपका केवल अनुमान ही होता है, वास्तविक स्वरूपका साक्षात्कार नहीं होता। (आपके स्वरूपका साक्षात्कार तो आपके इस विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूपकी सेवा करनेपर आपकी कृपासे ही होता है) ॥ ३५ ॥ भगवन्! मन और वेद-वाणीके द्वारा केवल आपके स्वरूपका अनुमानमात्र होता है। क्योंकि आप उनके द्वारा दृश्य नहीं; उनके साक्षी हैं। इसलिये आपके गुण, जन्म और कर्म आदिके द्वारा आपके नाम और रूपका निरूपण नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रभो! आपके भक्तजन उपासना आदि क्रियायोगोंके द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं ॥ ३६ ॥ जो पुरुष आपके मङ्गलमय नामों और रूपोंका श्रवण, कीर्तन, स्मरण और ध्यान करता है और आपके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगाये रहता है—उसे फिर जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें नहीं आना पड़ता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्ण दुःखोंके हरनेवाले भगवन्! आप सर्वेश्वर हैं। यह पृथ्वी तो आपका चरणकमल ही है। आपके अवतारसे इसका भार दूर हो गया। धन्य है! प्रभो! हमारे लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि हमलोग आपके सुन्दर-सुन्दर चिह्नोंसे युक्त चरणकमलोंके द्वारा विभूषित पृथ्वीको देखेंगे और स्वर्गलोकको भी आपकी कृपासे कृतार्थ देखेंगे ॥ ३८ ॥ प्रभो! आप अजन्मा हैं। यदि आपके जन्मके कारणके सम्बन्धमें हम कोई तर्कना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है। ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो द्वैतके लेशसे रहित सर्वाधिष्ठानस्वरूप हैं और इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं ॥ ३९ ॥ प्रभो! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है—वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये। यदुनन्दन! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं' ॥ ४० ॥ [देवकीजीको सम्बोधित करके] 'माताजी! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ पधारे हैं। अब आप कंससे तनिक भी मत डरिये। अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है। आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा' ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ब्रह्मादि देवताओंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की। उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये ॥ ४२ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब समस्त शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया। रोहिणी नक्षत्र था। आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त—सौम्य हो रहे थे* ॥१॥ दिशाएँ स्वच्छ—प्रसन्न थीं। निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गल-

---

* जैसे अन्तःकरण शुद्ध होनेपर उसमें भगवान्‌का आविर्भाव होता है, श्रीकृष्णावतारके अवसरपर भी ठीक उसी प्रकारका समष्टिकी शुद्धिका वर्णन किया गया है। इसमें काल, दिशा, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन और आत्मा—इन नौ द्रव्योंका अलग-अलग नामोल्लेख करके साधकके लिये एक अत्यन्त उपयोगी साधन-पद्धतिकी ओर संकेत किया गया है।

काल—

भगवान् कालसे परे हैं। शास्त्रों और सत्पुरुषोंके द्वारा ऐसा निरूपण सुनकर काल मानो क्रुद्ध हो गया था और रुद्ररूप धारण करके सबको निगल रहा था। आज जब उसे मालूम हुआ कि स्वयं परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण मेरे अंदर अवतीर्ण हो रहे हैं, तब वह आनन्दसे भर गया और समस्त सद्गुणोंको धारणकर तथा सुहावना बनकर प्रकट हो गया।

दिशा—

१. प्राचीन शास्त्रोंमें दिशाओंको देवी माना गया है। उनके एक-एक स्वामी भी होते हैं—जैसे प्राचीके इन्द्र, प्रतीचीके वरुण आदि। कंसके राज्य-कालमें ये देवता पराधीन—कैदी हो गये थे। अब भगवान् श्रीकृष्णके अवतारसे देवताओंकी गणनाके अनुसार ग्यारह-बारह दिनोंमें ही उन्हें छुटकारा मिल जायगा, इसलिये अपने पतियोंके सङ्गम-सौभाग्यका अनुसंधान करके देवियाँ प्रसन्न हो गयीं। जो देव एवं दिशाके परिच्छेदसे रहित हैं, वे ही प्रभु भारत देशके व्रज-प्रदेशमें आ रहे हैं, यह अपूर्व आनन्दोत्सव भी दिशाओंकी प्रसन्नताका हेतु है।

२. संस्कृत साहित्यमें दिशाओंका एक नाम 'आशा' भी है। दिशाओंकी प्रसन्नताका एक अर्थ यह भी है कि अब सत्पुरुषोंकी आशा-अभिलाषा पूर्ण होगी।

३. विराट् पुरुषके अवयव संस्थानका वर्णन करते समय दिशाओंको उनका कान बताया गया है। श्रीकृष्णके अवतारके अवसरपर दिशाएँ मानो यह सोचकर प्रसन्न हो गयीं कि प्रभु असुर-असाधुओंके उपद्रवसे दुखी प्राणियोंकी प्रार्थना सुननेके लिये सतत सावधान हैं।

पृथ्वी—

१. पुराणोंमें भगवान्‌की दो पत्नियोंका उल्लेख मिलता है—एक श्रीदेवी और दूसरी भूदेवी। ये दोनों चल-सम्पत्ति और अचल-सम्पत्तिकी स्वामिनी हैं। इनके पति हैं—भगवान्, जीव नहीं। जिस समय श्रीदेवीके निवासस्थान वैकुण्ठसे उतरकर भगवान् भूदेवीके निवासस्थान पृथ्वीपर आने लगे, तब जैसे परदेशसे पतिके आगमनका समाचार सुनकर पत्नी सज-धजकर अगवानी करनेके लिये निकलती है, वैसे पृथ्वीका मङ्गलमयी होना, मङ्गलचिह्नोंको धारण करना स्वाभाविक ही है।

२. भगवान्‌के श्रीचरण मेरे वक्षःस्थलपर पड़ेंगे, अपने सौभाग्यका ऐसा अनुसन्धान करके पृथ्वी आनन्दित हो गयी।

३. वामन ब्रह्मचारी थे। परशुरामजीने ब्राह्मणोंको दान दे दिया। श्रीरामचन्द्रने मेरी पुत्री जानकीसे विवाह कर लिया। इसलिये उन अवतारोंमें मैं भगवान्‌से जो सुख नहीं प्राप्त कर सकी, वही श्रीकृष्णसे प्राप्त करूँगी। यह सोचकर पृथ्वी मङ्गलमयी हो गयी।

४. अपने पुत्र मङ्गलको गोदमें लेकर पतिदेवका स्वागत करने चली।

जल (नदियाँ)—

१. नदियोंने विचार किया कि रामावतारमें सेतु-बन्धके बहाने हमारे पिता पर्वतोंको हमारी ससुराल समुद्रमें पहुँचाकर इन्होंने हमें मायकेका सुख दिया था। अब इनके शुभागमनके अवसरपर हमें भी प्रसन्न होकर इनका स्वागत करना चाहिये।

मय हो रही थीं ॥ २ ॥ नदियोंका जल निर्मल हो गया था । रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे । वनमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयी थीं । कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे ॥ ३ ॥ उस समय परम पवित्र और शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान करती हुई बह रही थी । ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ जो कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, वे इस समय अपने-आप जल उठीं ॥ ४ ॥

संत पुरुष पहलेसे ही चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न

२. नदियाँ सब गङ्गाजीसे कहती थीं—'तुमने हमारे पिता पर्वत देखे हैं, अपने पिता भगवान् विष्णुके दर्शन कराओ ।' गङ्गाजीने सुनी-अनसुनी कर दी । अब वे इसलिये प्रसन्न हो गयीं कि हम स्वयं देख लेंगी ।

३. यद्यपि भगवान् समुद्रमें नित्य निवास करते हैं, फिर भी ससुराल होनेके कारण वे उन्हें वहाँ देख नहीं पातीं । अब उन्हें पूर्णरूपसे देख सकेंगी, इसलिये वे निर्मल हो गयीं ।

४. निर्मल हृदयको भगवान् मिलते हैं, इसलिये वे निर्मल हो गयीं ।

५. नदियोंको जो सौभाग्य किसी भी अवतारमें नहीं मिला । वह कृष्णावतारमें मिला । श्रीकृष्णकी चतुर्थ पटरानी हैं—श्रीकालिन्दीजी । अवतार लेते ही यमुनाजीके तटपर जाना, ग्वालबाल एवं गोपियोंके साथ जल-क्रीडा करना, उन्हें अपनी पटरानी बनाना—इन सब बातोंको सोचकर नदियाँ आनन्दसे भर गयीं ।

ह्रद—

कालिय-दमन करके कालिय-दहका शोधन, ग्वालबालों और अक्रूरको ब्रह्मह्रदमें ही अपने स्वरूपके दर्शन आदि स्व-सम्बन्धी लीलाओंका अनुसन्धान करके ह्रदोंने कमलके बहाने अपने प्रफुल्लित हृदयको ही श्रीकृष्णके प्रति अर्पित कर दिया । उन्होंने कहा कि 'प्रभो ! भले ही हमें लोग जड समझा करें, आप हमें कभी स्वीकार करेंगे; इस भावी सौभाग्यके अनुसन्धानसे हम सहृदय हो रहे हैं ।'

अग्नि—

१. इस अवतारमें श्रीकृष्णने व्योमासुर, तृणावर्त, कालियके दमनसे आकाश, वायु और जलकी शुद्धि की है । मृद्-भक्षणसे पृथ्वीकी और अग्निपानसे अग्निकी । भगवान् श्रीकृष्णने दो बार अग्निको अपने मुँहमें धारण किया । इस भावी सुखका अनुसन्धान करके ही अग्निदेव शान्त होकर प्रज्वलित होने लगे ।

२. देवताओंके लिये यज्ञ-भाग आदि बन्द हो जानेके कारण अग्निदेव भी भूखे ही थे । अब श्रीकृष्णावतारसे अपने भोजन मिलनेकी आशासे अग्निदेव प्रसन्न होकर प्रज्वलित हो उठे ।

वायु—

१. उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके जन्मके अवसरपर वायुने सुख लुटाना प्रारम्भ किया; क्योंकि समान शीलसे ही मैत्री होती है । जैसे स्वामीके सामने सेवक, प्रजा अपने गुण प्रकट करके उसे प्रसन्न करती है, वैसे ही वायु भगवान्के सामने अपने गुण प्रकट करने लगे ।

२. आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्दपर जब श्रमजनित स्वेदबिन्दु आ जायँगे, तब मैं ही शीतल-मन्द-सुगन्ध गतिसे उसे सुखाऊँगा—यह सोचकर पहलेसे ही वायु सेवाका अभ्यास करने लगा ।

३. यदि मनुष्यको प्रभु-चरणारविन्दके दर्शनकी लालसा हो तो उसे विश्वकी सेवा ही करनी चाहिये, मानो यह उपदेश करता हुआ वायु सबकी सेवा करने लगा ।

४. रामावतारमें मेरे पुत्र हनुमान्ने भगवान्की सेवा की, इससे मैं कृतार्थ ही हूँ; परन्तु इस अवतारमें मुझे स्वयं ही सेवा कर लेनी चाहिये । इस विचारसे वायु लोगोंको सुख पहुँचाने लगा ।

५. सम्पूर्ण विश्वके प्राण वायुने सम्पूर्ण विश्वकी ओरसे भगवान्के स्वागत-समारोहमें प्रतिनिधित्व किया ।

आकाश—

१. आकाशकी एकता, आधारता, विशालता और समताकी उपमा तो सदासे ही भगवान्के साथ दी जाती रही, परन्तु अब उसकी झूठी नीलिमा भी भगवान्के अङ्गसे उपमा देनेसे चरितार्थ हो जायगी, इसलिये आकाशने मानो आनन्दोत्सव मनानेके लिये नीले चँदोवेमें हीरोंके समान तारोंकी झालरें लटका ली हैं ।

होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया। जिस समय भगवान्‌के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं ॥ ५ ॥ किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरमें गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान्‌के मङ्गलमय गुणोंकी स्तुति करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ नाचने लगीं ॥ ६ ॥ बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्दसे भरकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे*। जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे† ॥ ७ ॥ जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनके अवतारका समय था

२. स्वामीके शुभागमनके अवसरपर जैसे सेवक स्वच्छ वेष-भूषा धारण करते हैं और शान्त हो जाते हैं, इसी प्रकार आकाशके सब नक्षत्र, ग्रह, तारे शान्त एवं निर्मल हो गये। वक्रता, अतिचार और युद्ध छोड़कर श्रीकृष्णका स्वागत करने लगे।

नक्षत्र—

मैं देवकीके गर्भसे जन्म ले रहा हूँ तो रोहिणीके संतोषके लिये कम-से-कम रोहिणी नक्षत्रमें जन्म तो लेना ही चाहिये। अथवा चन्द्रवंशमें जन्म ले रहा हूँ, तो चन्द्रमाकी सबसे प्यारी पत्नी रोहिणीमें ही जन्म लेना उचित है। यह सोचकर भगवान्‌ने रोहिणी नक्षत्रमें जन्म लिया।

मन—

१. योगी मनका निरोध करते हैं, मुमुक्षु निर्विषय करते हैं और जिज्ञासु बाध करते हैं। तत्त्वज्ञोंने तो मनका सत्यानाश ही कर दिया। भगवान्‌के अवतारका समय जानकर उसने सोचा कि अब तो मैं अपनी पत्नी—इन्द्रियाँ और विषय—बाल-बच्चे सबके साथ ही भगवान्‌के साथ खेलूँगा। निरोध और बाधसे पिण्ड छूटा। इसीसे मन प्रसन्न हो गया।

२. निर्मलको ही भगवान् मिलते हैं, इसलिये मन निर्मल हो गया।

३. वैसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धका परित्याग कर देनेपर भगवान् मिलते हैं। अब तो स्वयं भगवान् ही वह सब बनकर आ रहे हैं। लौकिक आनन्द भी प्रभुमें मिलेगा। यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया।

४. वसुदेवके मनमें निवास करके ये ही भगवान् प्रकट हो रहे हैं। वह हमारी ही जातिका है, यह सोचकर मन प्रसन्न हो गया।

५. सुमन (देवता और शुद्ध मन) को सुख देनेके लिये ही भगवान्‌का अवतार हो रहा है। यह जानकर सुमन प्रसन्न हो गये।

६. संतोंमें, स्वर्गमें और उपवनमें सुमन (शुद्ध मन, देवता और पुष्प) आनन्दित हो गये। क्यों न हो, माधव (विष्णु और वसन्त) का आगमन जो हो रहा है।

भाद्रमास—

भद्र अर्थात् कल्याणका देनेवाला है। कृष्णपक्ष स्वयं कृष्णसे सम्बद्ध है। अष्टमी तिथि पक्षके बीचोबीच सन्धि-स्थलपर पड़ती है। रात्रि योगीजनोंको प्रिय है। निशीथ यतियोंका सन्ध्याकाल और रात्रिके दो भागोंकी सन्धि है। उस समय श्रीकृष्णके आविर्भावका अर्थ है—अज्ञानके घोर अन्धकारमें दिव्य प्रकाश। निशानाथ चन्द्रके वंशमें जन्म लेना है, तो निशाके मध्यभागमें अवतीर्ण होना उचित भी है। अष्टमीके चन्द्रोदयका समय भी वही है। यदि वसुदेवजी मेरा जातकर्म नहीं कर सकते तो हमारे वंशके आदिपुरुष चन्द्रमा समुद्रस्नान करके अपने कर-किरणोंसे अमृतका वितरण करें।

* ऋषि, मुनि और देवता जब अपने सुमनकी वर्षा करनेके लिये मथुराकी ओर दौड़े, तब उनका आनन्द भी पीछे छूट गया और उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। उन्होंने अपने निरोध और बाधसम्बन्धी सारे विचार त्यागकर मनको श्रीकृष्णकी ओर जानेके लिये मुक्त कर दिया, उनपर न्यौछावर कर दिया।

† १. मेघ समुद्रके पास जाकर मन्द-मन्द गर्जना करते हुए कहते—जलनिधे! यह तुम्हारे उपदेश (पास आने) का फल है कि हमारे पास जल-ही-जल हो गया। अब ऐसा कुछ उपदेश करो कि जैसे तुम्हारे भीतर भगवान् रहते हैं, वैसे हमारे भीतर भी रहें।

२. बादल समुद्रके पास जाते और कहते कि समुद्र! तुम्हारे हृदयमें भगवान् रहते हैं, हमें भी उनका दर्शन—प्यार प्राप्त करवा दो। समुद्र उन्हें थोड़ा-सा जल देकर कह देता—अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे ढकेल देता—जाओ

निशीथ। चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था। उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ॥ ८॥

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीर-पर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणि-के किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है ॥ ९-१० ॥ जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी आँखें खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया ॥ ११ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृहको जगमग कर रहे थे। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परम पुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्‌का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे—॥१२॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृति-से अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी हैं ॥ १३ ॥ आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्‌की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं; परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेसे ही विद्यमान रहते हैं ॥ १५-१६ ॥ ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे? (इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं) ॥ १७ ॥ जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वह अज्ञानी है। क्योंकि विचार करनेपर ये देह-गेह आदि पदार्थ वाग्विलास-के सिवा और कुछ नहीं सिद्ध होते। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? ॥ १८ ॥ प्रभो! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं। फिर भी इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असंगत नहीं है। क्योंकि तीनों

अभी विश्वकी सेवा करके अन्तःकरण शुद्ध करो, तब भगवान्‌के दर्शन होंगे। स्वयं भगवान् मेघश्याम बनकर समुद्रसे बाहर ब्रजमें आ रहे हैं। हम धूपमें उनपर छाया करेंगे, अपनी फुहियाँ बरसाकर जीवन न्यौछावर करेंगे और उनकी बाँसुरीके स्वरपर ताल देंगे। अपने इस सौभाग्यका अनुसन्धान करके बादल समुद्रके पास पहुँचे और मन्द-मन्द गर्जना करने लगे। मन्द-मन्द इसलिये कि यह ध्वनि प्यारे श्रीकृष्णके कानोंतक न पहुँच जाय।

अद्भुत बालक

[पृष्ठ ५६०
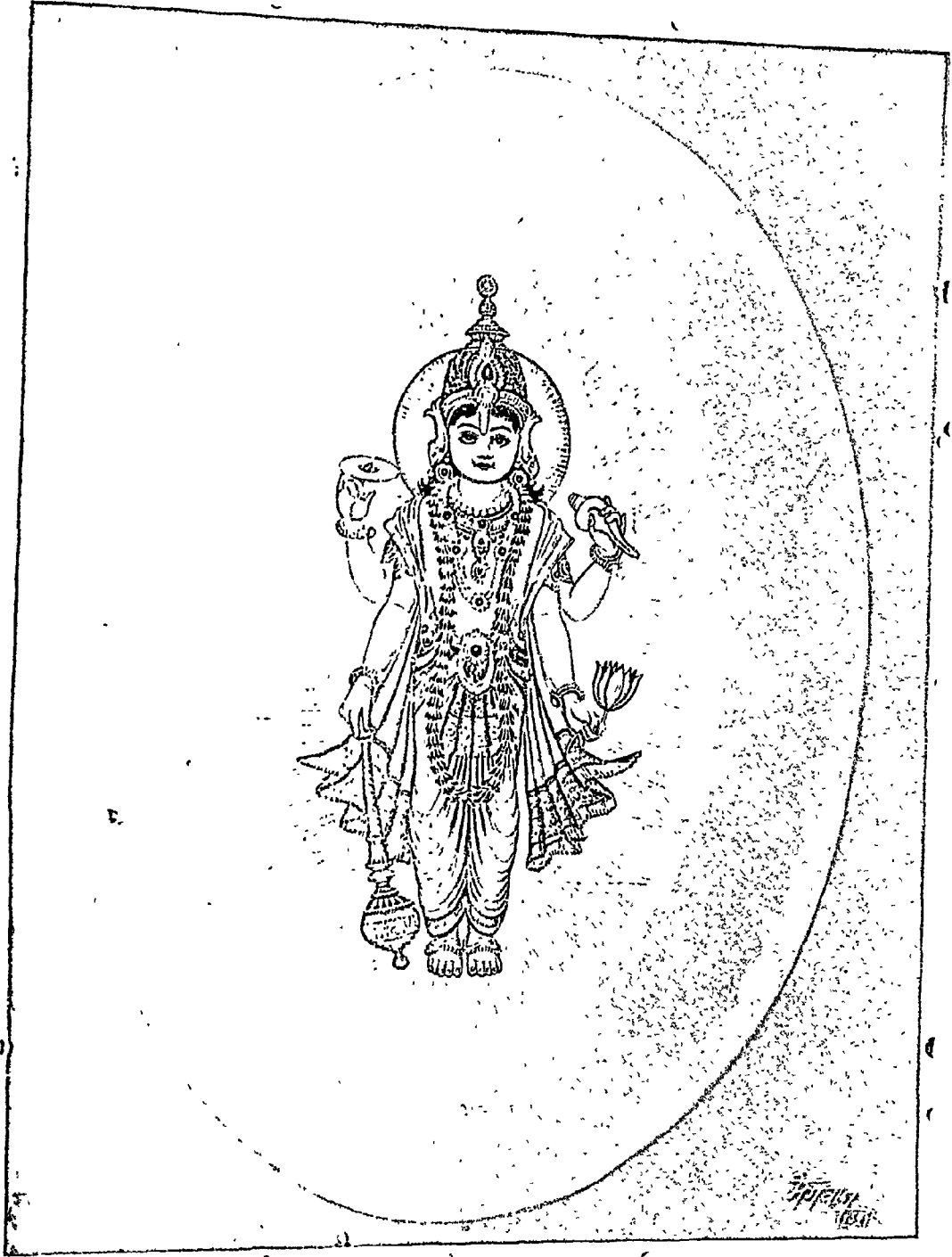
गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपमें ही आरोप किया जाता है ॥ १९ ॥ आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं ॥ २० ॥ प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं । इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है । आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रक्खा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रक्खी हैं । आप उन सबका संहार करेंगे ॥ २१ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! यह कंस बड़ा दुष्ट है । इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयों-को मार डाला । अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्‌के सभी लक्षण मौजूद हैं । पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं ॥ २३ ॥

माता देवकीने कहा—प्रभो ! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन हैं, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं ॥ २४ ॥ जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो परार्ध समाप्त हो जाते हैं, कालशक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, पञ्च महाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृति-में लीन हो जाता है—उस समय एकमात्र आप ही शेष रह जाते हैं । इसीसे आपका एक नाम 'शेष' भी है ॥ २५ ॥ प्रकृतिके एकमात्र सहायक प्रभो ! निमेषसे लेकर वर्ष-पर्यन्त अनेक विभागोंमें विभक्त जो काल है, जिसकी चेष्टासे यह सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट हो रहा है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीलामात्र है । आप सर्वशक्तिमान् और परम कल्याणके आश्रय हैं । मैं आपकी शरण लेती हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो ! यह जीव मृत्युग्रस्त हो रहा है । यह मृत्युरूप कराल व्यालसे भयभीत होकर सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें भटकता रहा है; परन्तु इसे कभी कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका, जहाँ यह निर्भय होकर रहे । आज बड़े भाग्यसे इसे आपके चरणारविन्दोंकी शरण मिल गयी । अतः अब यह स्वस्थ होकर सुखकी नींद सो रहा है । औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग गयी है ॥ २७ ॥ प्रभो ! आप हैं भक्तभयहारी । और हमलोग इस दुष्ट कंससे बहुत ही भयभीत हैं । अतः आप हमारी रक्षा कीजिये । आपका यह चतुर्भुज दिव्य-रूप ध्यानकी वस्तु है । इसे केवल मांस-मज्जामय शरीर-पर ही दृष्टि रखनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंके सामने प्रकट मत कीजिये ॥ २८ ॥ मधुसूदन ! इस पापी कंसको यह बात मालूम न हो कि आपका जन्म मेरे गर्भसे हुआ है । मेरा धैर्य टूट रहा है । आपके लिये मैं कंससे बहुत डर रही हूँ ॥ २९ ॥ विश्वात्मन् ! आपका यह रूप अलौकिक है । आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमें वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको । वही परम पुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या है ? ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था, उस समय तुम्हारा नाम था पृश्नि और ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे । तुम दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे ॥ ३२ ॥ जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुमलोगोंने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की ॥ ३३ ॥ तुम दोनोंने वर्षा, वायु, घाम, शीत, उष्ण आदि कालके विभिन्न गुणोंका सहन किया और प्राणा-यामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले ॥ ३४ ॥ तुम दोनों कभी सूखे पत्ते खा लेते और कभी हवा पीकर ही

रह जाते। तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था। इस प्रकार तुमलोगोंने मुझसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरी आराधना की ॥ ३५ ॥ मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओंके बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३६ ॥ पुण्यमयी देवि ! उस समय मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हुआ। क्योंकि तुम दोनोंने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे अपने हृदयमें नित्य-निरन्तर मेरी भावना की थी। उस समय तुम दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये वर देनेवालोंका राजा मैं इसी रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ। जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो,' तब तुम दोनोंने मेरे-जैसा पुत्र माँगा ॥ ३७-३८ ॥ उस समयतक विषय-भोगोंसे तुम लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। तुम्हारे कोई सन्तान भी न थी। इसलिये मेरी मायासे मोहित होकर तुम दोनोंने मुझसे मोक्ष नहीं माँगा ॥ ३९ ॥ तुम्हें मेरे-जैसा पुत्र होनेका वर प्राप्त हो गया और मैं वहाँसे चला गया। अब सफलमनोरथ होकर तुमलोग विषयोंका भोग करने लगे ॥ ४० ॥ मैंने देखा कि संसारमें शील-स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे-जैसा दूसरा कोई नहीं है; इसलिये मैं ही तुम दोनोंका पुत्र हुआ और उस समय मैं 'पृश्निगर्भ'के नामसे विख्यात हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम था 'उपेन्द्र'। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे ॥ ४२ ॥ सती देवकी ! तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ*। मेरी वाणी सर्वदा सत्य होती है ॥ ४३ ॥ मैंने तुम्हें अपना यह रूप इसलिये दिखला दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारोंका स्मरण हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो केवल मनुष्य-शरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती ॥ ४४ ॥ तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और चिन्तनके द्वारा तुम्हें मेरे परम पदकी प्राप्ति होगी ॥ ४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् इतना कहकर चुप हो गये। अब उन्होंने अपनी योगमायासे पिता-माताके देखते-देखते तुरंत एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिया ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजीने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलने-की इच्छा की। उसी समय नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे उस योगमायाका जन्म हुआ, जो भगवान्‌की शक्ति होनेके कारण उनके समान ही जन्म-रहित है ॥ ४७ ॥ उसी योगमायाने द्वारपाल और पुरवासियोंकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियोंकी चेतना हर ली, वे सब-के-सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृहके सभी दरवाजे बंद थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहेकी जंजीरें और ताले जड़े हुए थे। उनके बाहर जाना बड़ा ही कठिन था; परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको गोदमें लेकर ज्यों ही उनके निकट पहुँचे, त्यों ही वे सब दरवाजे आप-से-आप खुल गये†। ठीक वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है। उस समय बादल धीरे-धीरे गरजकर जलकी फुहारें छोड़ रहे थे। इसलिये शेषजी अपने फनोंसे जलको रोकते हुए भगवान्‌के पीछे-पीछे चलने लगे‡ ॥ ४८-४९ ॥ उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी, इससे यमुनाजी

* भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मैंने इनको वर तो यह दे दिया कि मेरे सदृश पुत्र होगा, परन्तु इसको मैं पूरा नहीं कर सकता। क्योंकि वैसा कोई है ही नहीं। किसीको कोई वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा करके पूरी न कर सके तो उसके समान तिगुनी वस्तु देनी चाहिये। मेरे सदृश पदार्थके समान मैं हूँ। अतएव मैं अपनेको तीन बार इनका पुत्र बनाऊँगा।

† जिनके नाम-श्रवणमात्रसे असंख्य जन्मार्जित प्रारब्ध-बन्धन ध्वस्त हो जाते हैं, वे ही प्रभु जिसकी गोदमें आ गये, उसकी हथकड़ी-बेड़ी खुल जाय, इसमें क्या आश्चर्य है ?

‡ बलरामजीने विचार किया कि मैं बड़ा भाई बना तो क्या, सेवा ही मेरा मुख्य धर्म है। इसलिये वे अपने शेष रूपसे श्रीकृष्णके छत्र बनकर जलका निवारण करते हुए चले। उन्होंने सोचा कि यदि मेरे रहते मेरे स्वामीको वर्षासे कष्ट पहुँचा तो मुझे धिक्कार है। इसलिये उन्होंने अपना सिर आगे कर दिया। अथवा उन्होंने यह सोचा कि ये विष्णुपद (आकाश) वासी मेघ परोपकारके लिये अधःपतित होना स्वीकार कर लेते हैं, इसलिये बलिके समान सिरसे वन्दनीय हैं।

बहुत बढ़ गयी थीं* । उनका प्रवाह गहरा और तेज हो गया था । तरल तरङ्गोंके कारण जलपर फेन-ही-फेन हो रहा था । सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे । जैसे सीतापति भगवान् श्रीरामजीको समुद्रने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजीने भगवान्‌को मार्ग दे दिया† ॥५०॥ वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर देखा कि सब-के-सब गोप नींदसे अचेत पड़े हुए हैं । उन्होंने अपने पुत्रको यशोदाजीकी शय्यापर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बंदीगृहमें लौट आये ॥ ५१ ॥ जेलमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने पैरोंमें बेड़ियाँ डाल लीं तथा पहलेकी तरह वे बंदीगृहमें बंद हो गये ॥ ५२ ॥ उधर नन्दपत्नी यशोदाजीको इतना तो मालूम हुआ कि कोई सन्तान हुई है, परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र है या पुत्री । क्योंकि एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था और दूसरे योगमायाने उन्हें अचेत कर दिया था‡ ॥ ५३ ॥

चौथा अध्याय

कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब वसुदेवजी लौट आये, तब नगरके बाहरी और भीतरी सब दरवाजे अपने-आप ही पहलेकी तरह बंद हो गये । इसके बाद नवजात शिशुके रोनेकी ध्वनि सुनकर द्वारपालोंकी नींद

* १. श्रीकृष्ण शिशुको अपनी ओर आते देखकर यमुनाजीने विचार किया—अहा ! जिनके चरणोंकी धूलि सत्पुरुषोंके मानस-ध्यानका विषय है, वे ही आज मेरे तटपर आ रहे हैं । वे आनन्द और प्रेमसे भर गयीं, आँखोंसे इतने आँसू निकले कि बाढ़ आ गयी ।

२. मुझे यमराजकी बहिन समझकर श्रीकृष्ण अपनी आँख न फेर लें, इसलिये वे अपने विशाल जीवनका प्रदर्शन करने लगीं ।

३. ये गोपालनके लिये गोकुलमें जा रहे हैं, ये सहस्र-सहस्र लहरियाँ गौएँ ही तो हैं । ये उन्हींके समान इनका भी पालन करें ।

४. एक कालियनाग तो मुझमें पहलेसे ही हैं, यह दूसरे शेषनाग आ रहे हैं । अब मेरी क्या गति होगी—यह सोचकर यमुनाजी अपने थपेड़ोंसे उनका निवारण करनेके लिये बढ़ गयीं ।

† १. एकाएक यमुनाजीके मनमें विचार आया कि मेरे अगाध जलको देखकर कहीं श्रीकृष्ण यह न सोच लें कि मैं इसमें खेलूँगा कैसे, इसलिये वे तुरंत कहीं कण्ठभर, कहीं नाभिभर और कहीं घुटनोंतक जलवाली हो गयीं ।

२. जैसे दुखी मनुष्य दयालु पुरुषके सामने अपना मन खोलकर रख देता है, वैसे ही कालियनागसे त्रस्त अपने हृदयका दुःख निवेदन कर देनेके लिये यमुनाजीने भी अपना दिल खोलकर श्रीकृष्णके सामने रख दिया ।

३. मेरी नीरसता देखकर श्रीकृष्ण कहीं जलक्रीडा करना और पटरानी बनाना अस्वीकार न कर दें, इसलिये वे उच्छृङ्खलता छोड़कर बड़ी विनयसे अपने हृदयकी सङ्कोचपूर्ण रसरीति प्रकट करने लगीं ।

४. जब इन्होंने सूर्यवंशमें रामावतार ग्रहण किया, तब मार्ग न देनेपर चन्द्रमाके पिता समुद्रको बाँध दिया था । अब ये चन्द्रवंशमें प्रकट हुए हैं और मैं सूर्यकी पुत्री हूँ । यदि मैं इन्हें मार्ग न दूँगी तो ये मुझे भी बाँध देंगे । इस डरसे मानो यमुनाजी दो भागोंमें बँट गयीं ।

५. सत्पुरुष कहते हैं कि हृदयमें भगवान्‌के आ जानेपर अलौकिक सुख होता है । मानो उसीका उपभोग करनेके लिये यमुनाजीने भगवान्‌को अपने भीतर ले लिया ।

६. मेरा नाम कृष्णा, मेरा जल कृष्ण, मेरे बाहर श्रीकृष्ण हैं । फिर मेरे हृदयमें ही उनकी स्फूर्ति क्यों न हो ?—ऐसा सोचकर मार्ग देनेके बहाने यमुनाजीने श्रीकृष्णको अपने हृदयमें ले लिया ।

‡ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रसङ्गमें यह प्रकट किया कि जो मुझे प्रेमपूर्वक अपने हृदयमें धारण करता है, उसके बन्धन खुल जाते हैं, जेलसे छुटकारा मिल जाता है, बड़े-बड़े फाटक टूट जाते हैं, पहरेदारोंका पता नहीं चलता, भव-नदीका जल सूख जाता है, गोकुल (इन्द्रिय-समुदाय) की वृत्तियाँ लुप्त हो जाती हैं और माया हाथमें आ जाती है ।

टूटी ॥ १ ॥ वे तुरंत भोजराज कंसके पास गये और देवकीको सन्तान होनेकी बात कही। कंस तो बड़ी आकुलता और घबराहटके साथ इसी बातकी प्रतीक्षा कर रहा था ॥ २ ॥ द्वारपालोंकी बात सुनते ही वह झटपट पलँगसे उठ खड़ा हुआ और बड़ी शीघ्रतासे सूतिकागृहकी ओर झपटा। इस बार तो मेरे कालका ही जन्म हुआ है, यह सोचकर वह विह्वल हो रहा था और यही कारण है कि उसे इस बातका भी ध्यान न रहा कि उसके बाल बिखरे हुए हैं। रास्तेमें कई जगह वह लड़खड़ाकर गिरते-गिरते बचा ॥ ३ ॥ बंदीगृहमें पहुँचनेपर सती देवकीने बड़े दुःख और करुणाके साथ अपने भाई कंससे कहा—'मेरे हितैषी भाई! यह कन्या तो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है। स्त्रीजातिकी है; तुम्हें स्त्रीकी हत्या कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ ४ ॥ भैया! तुमने दैववश मेरे बहुत-से अग्निके समान तेजस्वी बालक मार डाले। अब केवल यही एक कन्या बची है, इसे तो मुझे दे दो ॥ ५ ॥ अवश्य ही मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। मेरे बहुत-से बच्चे मर गये हैं, इसलिये मैं अत्यन्त दीन हूँ। मेरे प्यारे और समर्थ भाई! तुम मुझ मन्दभागिनीको यह अन्तिम सन्तान अवश्य दे दो' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कन्याको अपनी गोदमें छिपाकर देवकीजीने अत्यन्त दीनताके साथ रोते-रोते याचना की। परन्तु कंस बड़ा दुष्ट था। उसने देवकीजीको झिड़ककर उनके हाथसे वह कन्या छीन ली ॥ ७ ॥ अपनी उस नन्हीं-सी नवजात भानजीके पैर पकड़कर कंसने उसे बड़े जोरसे एक चट्टानपर दे मारा। स्वार्थने उसके हृदयसे सौहार्दको समूल उखाड़ फेंका था ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीकृष्णकी वह छोटी बहिन साधारण कन्या तो थी नहीं, देवी थी; उसके हाथसे छूटकर तुरंत आकाशमें चली गयी और अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आयुध लिये हुए दीख पड़ी ॥ ९ ॥ वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और मणिमय आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके हाथोंमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र और गदा—ये आठ आयुध थे ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री समर्पित करके उसकी स्तुति कर रहे थे। उस समय देवीने कंससे यह कहा—॥ ११ ॥ 'रे मूर्ख! मुझे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तुझे मारनेके लिये किसी स्थानपर पैदा हो चुका है! अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर' ॥ १२ ॥ कंससे इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं और पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुईं ॥ १३ ॥

देवीकी यह बात सुनकर कंसको असीम आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और बड़ी नम्रतासे उनसे कहा—॥ १४ ॥ 'मेरी प्यारी बहिन और बहनोईजी! हाय-हाय, मैं बड़ा पापी हूँ। राक्षस जैसे अपने ही बच्चोंको मार डालता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे बहुत-से लड़के मार डाले। इस बातका मुझे बड़ा खेद है* ॥ १५ ॥ मैं इतना दुष्ट हूँ कि करुणाका तो मुझमें लेश भी नहीं है। मैंने अपने भाई-बन्धु और हितैषियोंतकका त्याग कर दिया। पता नहीं, अब मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा। वास्तवमें तो मैं ब्रह्मघातीके समान जीवित होनेपर भी मुर्दा ही हूँ ॥ १६ ॥ केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, विधाता भी झूठ बोलते हैं। उसीपर विश्वास करके मैंने अपनी बहिनके बच्चे मार डाले! ओह! मैं कितना पापी हूँ ॥ १७ ॥ तुम दोनों महात्मा हो। अपने पुत्रोंके लिये शोक मत करो। उन्हें तो अपने कर्मका ही फल मिला है। सभी प्राणी प्रारब्धके अधीन हैं। इसीसे वे सदा-सर्वदा एक साथ नहीं रह सकते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीके बने हुए पदार्थ बनते और बिगड़ते रहते हैं, परन्तु मिट्टीमें कोई अदल-बदल नहीं होती—वैसे ही शरीरका तो बनना-बिगड़ना होता ही रहता है; परन्तु

* जिनके गर्भमें भगवान्‌ने निवास किया, जिन्हें भगवान्‌के दर्शन हुए, उन देवकी-वसुदेवके दर्शनका ही यह फल है कि कंसके हृदयमें विनय, विचार, उदारता आदि सद्गुणोंका उदय हो गया। परन्तु जबतक वह उनके सामने रहा तभीतक ये सद्गुण रहे। दुष्ट मन्त्रियोंके बीचमें जाते ही वह फिर ज्यों-का-त्यों हो गया।

योगमाया

वह अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आयुध लिये दीख पड़ीं। [पृष्ठ ५६४

आत्मापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ॥ १९ ॥ जो लोग इस तत्त्वको नहीं जानते, वे इस अनात्मा शरीरको ही आत्मा मान बैठते हैं। यही उलटी बुद्धि अथवा अज्ञान है। इसीके कारण जन्म और मृत्यु होते हैं। और जबतक यह अज्ञान नहीं मिटता, तबतक सुख-दुःखरूप संसारसे छुटकारा नहीं मिलता ॥ २० ॥ मेरी प्यारी बहिन! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मार डाला है, फिर भी तुम उनके लिये शोक न करो। क्योंकि सभी प्राणियोंको विवश होकर अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है ॥ २१ ॥ अपने स्वरूपको न जाननेके कारण जीव जबतक यह मानता रहता है कि 'मैं मारनेवाला हूँ या मारा जाता हूँ', तबतक शरीरके जन्म और मृत्युका अभिमान करनेवाला वह अज्ञानी बाध्य और बाधक-भावको प्राप्त होता है। अर्थात् वह दूसरोंको दुःख देता है और स्वयं दुःख भोगता है ॥ २२ ॥ मेरी यह दुष्टता तुम दोनों क्षमा करो; क्योंकि तुम बड़े ही साधुस्वभाव और दीनोंके रक्षक हो।' ऐसा कहकर कंसने अपनी बहिन देवकी और वसुदेवजीके चरण पकड़ लिये। उसकी आँखोंसे आँसू बह-बहकर मुँहतक आ रहे थे ॥ २३ ॥ इसके बाद उसने योगमायाके वचनोंपर विश्वास करके देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और वह तरह-तरहसे उनके प्रति अपना प्रेम प्रकट करने लगा ॥२४॥ जब देवकीजीने देखा कि भाई कंसको पश्चात्ताप हो रहा है, तब उन्होंने उसे क्षमा कर दिया। वे उसके पहले अपराधोंको भूल गयीं और वसुदेवजीने हँसकर कंससे कहा—॥ २५ ॥ 'मनस्वी कंस! आप जो कहते हैं, वह ठीक वैसा ही है। जीव अज्ञानके कारण ही शरीर आदि-को 'मैं' मान बैठते हैं। इसीसे अपने-परायेका भेद हो जाता है ॥ २६ ॥ और यह भेददृष्टि हो जानेपर तो वे शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह और मदसे अन्धे हो जाते हैं। फिर तो उन्हें इस बातका पता ही नहीं रहता कि सबके प्रेरक भगवान् ही एक भावसे दूसरे भावका, एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका नाश करा रहे हैं' ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब वसुदेव और देवकीने इस प्रकार प्रसन्न होकर निष्कपटभावसे कंसके साथ बातचीत की, तब उनसे अनुमति लेकर वह अपने महलमें चला गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि बीत जानेपर कंसने अपने मन्त्रियोंको बुलाया और योगमायाने जो कुछ कहा था, वह सब उन्हें कह सुनाया ॥२९॥ कंसके मन्त्री पूर्णतया नीतिनिपुण नहीं थे। दैत्य होनेके कारण स्वभावसे ही वे देवताओंके प्रति शत्रुताका भाव रखते थे। अपने स्वामी कंसकी बात सुनकर वे देवताओं-पर और भी चिढ़ गये और कंससे कहने लगे—॥३०॥ 'भोजराज! यदि ऐसी बात है तो हम आज ही बड़े-बड़े नगरोंमें, छोटे-छोटे गाँवोंमें, अहीरोंकी बस्तियोंमें और दूसरे स्थानोंमें जितने बच्चे हुए हैं, वे चाहे दस दिनसे अधिकके हों या कमके, सबको आज ही मार डालेंगे ॥३१॥ समरभीरु देवगण युद्धोद्योग करके ही क्या करेंगे? वे तो आपके धनुषकी टङ्कार सुनकर ही सदा-सर्वदा घबराये रहते हैं ॥ ३२ ॥ जिस समय युद्धभूमिमें आप चोट पर-चोट करने लगते हैं, बाण-वर्षासे घायल होकर अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये समराङ्गण छोड़कर देवतालोग पलायन-परायण होकर इधर-उधर भाग जाते हैं ॥३३॥ कुछ देवता तो अपने अस्त्र-शस्त्र जमीनपर डाल देते हैं और हाथ जोड़कर आपके सामने अपनी दीनता प्रकट करने लगते हैं। कोई-कोई अपनी चोटीके बाल तथा कच्छ खोलकर आपकी शरणमें आकर कहते हैं कि—'हम भयभीत हैं, हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ३४ ॥ आप उन शत्रुओंको नहीं मारते जो शस्त्र-अस्त्र भूल गये हों, जिनका रथ टूट गया हो, जो डर गये हों, जो लोग युद्ध छोड़कर अन्यमनस्क हो गये हों, जिनका धनुष टूट गया हो या जिन्होंने युद्धसे अपना मुँह मोड़ लिया हो—उन्हें भी आप नहीं मारते ॥ ३५ ॥ देवता तो बस वहीं वीर बनते हैं, जहाँ कोई लड़ाई-झगड़ा न हो। रणभूमिके बाहर वे बड़ी-बड़ी डींग हाँकते हैं। उनसे तथा एकान्तवासी विष्णु, वनवासी शङ्कर, अल्पवीर्य इन्द्र और तपस्वी ब्रह्मासे भी हमें क्या भय हो सकता है ॥ ३६ ॥ फिर भी देवताओंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये—ऐसी हमारी राय है। क्योंकि हैं तो वे शत्रु ही। इसलिये उनकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिये आप हम-जैसे विश्वासपात्र सेवकोंको नियुक्त कर दीजिये ॥३७॥ जब मनुष्यके शरीरमें रोग हो जाता है और उसकी चिकित्सा नहीं की जाती—उपेक्षा कर दी जाती है,

तब रोग अपनी जड़ जमा लेता है और फिर वह असाध्य हो जाता है। अथवा जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा कर देनेपर उनका दमन असम्भव हो जाता है, वैसे ही यदि पहले शत्रुकी उपेक्षा कर दी जाय और वह अपना पाँव जमा ले, तो फिर उसको हराना कठिन हो जाता है ॥३८॥ देवताओंकी जड़ है विष्णु और वह वहाँ रहता है, जहाँ सनातनधर्म है। सनातनधर्मकी जड़ हैं—वेद, गौ, ब्राह्मण, तपस्या और वे यज्ञ, जिनमें दक्षिणा दी जाती है ॥ ३९ ॥ इसलिये भोजराज ! हमलोग वेदवादी ब्राह्मण, तपस्वी, याज्ञिक और यज्ञके लिये घी आदि हविष्य पदार्थ देनेवाली गायोंका पूर्णरूपसे नाश कर डालेंगे ॥ ४० ॥ ब्राह्मण, गौ, वेद, तपस्या, सत्य, इन्द्रियदमन, मनोनिग्रह, श्रद्धा, दया, तितिक्षा और यज्ञ विष्णुके शरीर हैं ॥ ४१ ॥ वह विष्णु ही सारे देवताओं-का स्वामी तथा असुरोंका प्रधान द्वेषी है। परन्तु वह किसी गुफामें छिपा रहता है। महादेव, ब्रह्मा और सारे देवताओंकी जड़ वही है। उसको मार डालनेका उपाय यह है कि ऋषियोंको मार डाला जाय' ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक तो कंस-की बुद्धि स्वयं ही बिगड़ी हुई थी; फिर उसे मन्त्री ऐसे मिले थे, जो उससे भी बढ़कर दुष्ट थे। इस प्रकार उनसे सलाह करके कालके फंदेमें फँसे हुए असुर कंसने यही ठीक समझा कि ब्राह्मणोंको ही मार डाला जाय ॥४३॥ उसने हिंसाप्रेमी राक्षसोंको संतपुरुषोंकी हिंसा करनेका आदेश दे दिया। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। जब वे इधर-उधर चले गये, तब कंसने अपने महलमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ उन असुरोंकी प्रकृति थी रजोगुणी। तमोगुणके कारण उनका चित्त उचित और अनुचितके विवेकसे रहित हो गया था। उनके सिरपर मौत नाच रही थी। यही कारण है कि उन्होंने संतोंसे द्वेष किया ॥ ४५ ॥ परीक्षित् ! जो लोग महान् संत पुरुषोंका अनादर करते हैं, उनका वह कुकर्म उनकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक-परलोक, विषय-भोग और सब-के-सब कल्याणके साधनोंको नष्ट कर देता है ॥ ४६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

गोकुलमें भगवान्‌का जन्ममहोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्रका जन्म होनेपर तो उनका हृदय विलक्षण आनन्दसे भर गया। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। फिर वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर स्वस्तिवाचन और अपने पुत्रका जातकर्म-संस्कार करवाया। साथ ही देवता और पितरोंकी विधिपूर्वक पूजा भी करवायी ॥ १-२ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित दो लाख गौएँ दान कीं। रत्नों और सुनहले वस्त्रोंसे ढके हुए तिलके सात पहाड़ दान किये ॥ ३ ॥ (संस्कारोंसे ही गर्भशुद्धि होती है—यह प्रदर्शित करनेके लिये अनेक दृष्टान्तोंका उल्लेख करते हैं—) समयसे (नूतन जल, अशुद्ध भूमि आदि), स्नानसे (शरीर आदि), प्रक्षालनसे (वस्त्रादि), संस्कारोंसे (गर्भादि), तपस्यासे (इन्द्रियादि), यज्ञसे (ब्राह्मणादि), दानसे (धन-धान्यादि) और सन्तोषसे (मन आदि) द्रव्य शुद्ध होते हैं। परन्तु आत्माकी शुद्धि तो आत्मज्ञानसे ही होती है ॥ ४ ॥ उस समय ब्राह्मण, सूत[1], मागध[2] और वंदीजन[3] मङ्गलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे। गायक गाने लगे। भेरी और दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं ॥ ५ ॥ व्रजमण्डलके सभी घरोंके द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़-बुहार दिये गये; उनमें सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया; उन्हें चित्र-विचित्र ध्वजा-पताका, पुष्पोंकी मालाओं, रंग-बिरंगे वस्त्र और पल्लवोंकी बन्दनवारोंसे सजाया गया ॥ ६ ॥ गाय, बैल और बछड़ोंके अङ्गोंमें हल्दी-तेलका लेप कर दिया गया और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, फूलोंके हार, तरह-तरहके सुन्दर वस्त्र और सोनेकी जंजीरोंसे सजा दिया गया ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने, अँगरखे और पगड़ियोंसे सुसज्जित होकर और अपने हाथोंमें भेंटकी बहुत-सी सामग्रियाँ ले-लेकर नन्दबाबाके घर आये ॥ ८ ॥

यशोदाजीके पुत्र हुआ है, यह सुनकर गोपियोंको

१. पौराणिक। २. वंशका वर्णन करनेवाले। ३. समयानुसार उक्तियोंसे स्तुति करनेवाले भाट। जैसा कि कहा है—
'सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ॥'

भी बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, आभूषण और अञ्जन आदिसे अपना शृङ्गार किया ॥९॥ गोपियोंके मुखकमल बड़े ही सुन्दर जान पड़ते थे। उनपर लगी हुई कुंकुम ऐसी लगती मानो कमलकी केशर हो। उनके नितम्ब बड़े-बड़े थे। वे भेंटकी सामग्री ले-लेकर जल्दी-जल्दी यशोदाजीके पास चलीं। उस समय उनके पयोधर हिल रहे थे ॥ १० ॥ गोपियोंके कानोंमें चमकती हुई मणियोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे। गलेमें सोनेके हार (हैकल या हुमेल) जगमगा रहे थे। वे बड़े सुन्दर-सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए थीं। मार्गमें उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल बरसते जा रहे थे। हाथोंमें जड़ाऊ कंगन अलग ही चमक रहे थे। उनके कानोंके कुण्डल, पयोधर और हार हिलते जाते थे। इस प्रकार नन्दबाबाके घर जाते समय उनकी शोभा बड़ी अनूठी जान पड़ती थी ॥ ११ ॥ नन्दबाबाके घर जाकर वे नवजात शिशुको आशीर्वाद देतीं 'यह चिरजीवी हो, भगवन्! इसकी रक्षा करो।' और लोगोंपर हल्दी-तेलसे मिला हुआ पानी छिड़क देतीं तथा ऊँचे स्वरसे मङ्गल-गान करती थीं ॥ १२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य—सभी अनन्त हैं। वे जब नन्दबाबाके व्रजमें प्रकट हुए, उस समय उनके जन्मका महान् उत्सव मनाया गया। उसमें बड़े-बड़े विचित्र और मङ्गलमय बाजे बजाये जाने लगे ॥ १३ ॥ आनन्दसे मतवाले होकर गोपगण एक दूसरेपर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे। एक-दूसरेके मुँहसे मक्खन मलने लगे और मक्खन फेंक-फेंककर आनन्दोत्सव मनाने लगे ॥ १४ ॥ नन्दबाबा स्वभावसे ही परम उदार और मनस्वी थे। उन्होंने गोपोंको बहुत-से वस्त्र, आभूषण और गौएँ दीं। सूत-मागध-वंदीजनों, नृत्य, वाद्य आदि विद्याओंसे अपना जीवन-निर्वाह करनेवालों तथा दूसरे गुणीजनोंको भी नन्दबाबाने प्रसन्नतापूर्वक उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया। यह सब करनेमें उनका उद्देश्य यही था कि इन कर्मोंसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों और मेरे इस नवजात शिशुका मङ्गल हो ॥ १५-१६ ॥ नन्दबाबाके अभिनन्दन करनेपर परम सौभाग्यवती रोहिणीजी दिव्य वस्त्र, माला और गलेके भाँति-भाँतिके गहनोंसे सुसज्जित होकर गृहस्वामिनीकी भाँति आने-जानेवाली स्त्रियोंका सत्कार करती हुई विचर रही थीं ॥ १७ ॥ परीक्षित्! उसी दिनसे नन्दबाबाके व्रजमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णके निवास तथा अपने स्वाभाविक गुणोंके कारण वह लक्ष्मी-जीका क्रीडास्थल बन गया ॥ १८ ॥

परीक्षित्! कुछ दिनोंके बाद नन्दबाबाने गोकुलकी रक्षाका भार तो दूसरे गोपोंको सौंप दिया और वे स्वयं कंसका वार्षिक कर चुकानेके लिये मथुरा चले गये ॥ १९ ॥ जब वसुदेवजीको यह मालूम हुआ कि हमारे भाई नन्दजी मथुरामें आये हैं और राजा कंसको उसका कर भी दे चुके हैं, तब वे जहाँ नन्दबाबा ठहरे हुए थे, वहाँ गये ॥ २० ॥ वसुदेवजीको देखते ही नन्दजी सहसा उठकर खड़े हो गये मानो मृतक शरीरमें प्राण आ गया हो। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने प्रियतम वसुदेवजीको दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया। नन्दबाबा उस समय प्रेमसे विह्वल हो रहे थे ॥ २१ ॥ परीक्षित्! नन्दबाबाने वसुदेवजीका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। वे आदरपूर्वक आरामसे बैठ गये। उस समय उनका चित्त अपने पुत्रोंमें लग रहा था। वे नन्दबाबासे कुशल-मङ्गल पूछकर कहने लगे ॥ २२ ॥

[वसुदेवजीने कहा—] 'भाई! तुम्हारी अवस्था ढल चली थी और अबतक तुम्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी। यहाँतक कि अब तुम्हें सन्तानकी कोई आशा भी न थी। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हें सन्तान प्राप्त हो गयी ॥ २३ ॥ यह भी बड़े आनन्दका विषय है कि आज हमलोगोंका मिलना हो गया। अपने प्रेमियोंका मिलना भी बड़ा दुर्लभ है। इस संसारका चक्र ही ऐसा है। इसे तो एक प्रकारका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये ॥ २४ ॥ जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए बेड़े और तिनके सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही सगे-सम्बन्धी और प्रेमियोंका भी एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं है—यद्यपि वह सबको प्रिय लगता है। क्योंकि सबके प्रारब्धकर्म अलग-अलग होते हैं ॥ २५ ॥ आजकल तुम जिस महावनमें अपने

भाई-बन्धु और स्वजनोंके साथ रहते हो, उसमें जल, घास और लता-पत्रादि तो भरे-पूरे हैं न? वह वन पशुओंके लिये अनुकूल और सब प्रकारके रोगोंसे तो बचा है?॥ २६॥ भाई! मेरा लड़का अपनी मा (रोहिणी) के साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है। उसका लालन-पालन तुम और यशोदा करते हो, इसलिये वह तो तुम्हींको अपने पिता-माता मानता होगा। वह अच्छी तरह है न?॥ २७ ॥ मनुष्यके लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं, जिनसे उसके स्वजनोंको सुख मिले। जिनसे केवल अपनेको ही सुख मिलता है; किन्तु अपने स्वजनोंको दुःख मिलता है, वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं हैं' ॥ २८ ॥

नन्दबाबाने कहा—भाई वसुदेव! कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र मार डाले। अन्तमें एक सबसे छोटी कन्या बच रही थी, वह भी स्वर्ग सिधार गयी ॥ २९ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि प्राणियोंका सुख-दुःख भाग्यपर ही अवलम्बित है। भाग्य ही प्राणी-का एकमात्र आश्रय है। जो जान लेता है कि जीवनके सुख-दुःखका कारण भाग्य ही है, वह उनके प्राप्त होनेपर मोहित नहीं होता ॥ ३० ॥

वसुदेवजीने कहा—भाई! तुमने राजा कंसको उसका सालाना कर चुका दिया। हम दोनों मिल भी चुके। अब तुम्हें यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये; क्योंकि आजकल गोकुलमें बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब वसुदेव-जीने इस प्रकार कहा, तब नन्द आदि गोपोंने उनसे अनुमति ले, बैलोंसे जुते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलकी यात्रा की ॥ ३२ ॥

छठा अध्याय

पूतना-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! नन्दबाबा जब मथुरासे चले, तब रास्तेमें विचार करने लगे कि वसुदेवजीका कथन झूठा नहीं हो सकता। इससे उनके मनमें उत्पात होनेकी आशङ्का हो गयी। तब उन्होंने मन-ही-मन 'भगवान् ही शरण हैं, वे ही रक्षा करेंगे' ऐसा निश्चय किया ॥ १ ॥ पूतना नामकी एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी। उसका एक ही काम था—बच्चोंको मारना। कंसकी आज्ञासे वह नगर, ग्राम और अहीरोंकी बस्तियोंमें बच्चोंको मारनेके लिये घूमा करती थी ॥ २ ॥ जहाँके लोग अपने प्रतिदिनके कामोंमें राक्षसोंके भयको दूर भगानेवाले भक्तवत्सल भगवान्के नाम, गुण और लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण नहीं करते—वहीं ऐसी राक्षसियोंका बल चलता है ॥ ३ ॥ वह पूतना आकाशमार्गसे चल सकती थी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप भी बना लेती थी। एक दिन नन्दबाबाके गोकुलके पास आकर उसने मायासे अपनेको एक सुन्दरी युवती बना लिया और गोकुलके भीतर घुस गयी ॥ ४ ॥ उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था। उसकी चोटियोंमें बेलेके फूल गुँथे हुए थे। सुन्दर वस्त्र पहने हुए थी। जब उसके कर्णफूल हिलते थे, तब उनकी चमकसे मुखकी ओर लटकी हुई अलकें और भी शोभायमान हो जाती थीं। उसके नितम्ब और कुच-कलश ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी ॥ ५ ॥ वह अपनी मधुर मुसकान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे व्रजवासियोंका चित्त चुरा रही थी। उस रूपवती रमणीको हाथमें कमल लेकर आते देख गोपियाँ ऐसी उत्प्रेक्षा करने लगीं, मानो स्वयं लक्ष्मीजी अपने पतिका दर्शन करनेके लिये आ रही हैं ॥ ६ ॥

पूतना बालकोंके लिये ग्रहके समान थी। वह इधर-उधर बालकोंको ढूँढ़ती हुई अनायास ही नन्दबाबाके घरमें घुस गयी। वहाँ उसने देखा कि बालक श्रीकृष्ण शय्यापर सोये हुए हैं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंके काल हैं। परन्तु जैसे आग राखकी ढेरीमें अपने-को छिपाये हुए हो, वैसे ही उस समय उन्होंने अपने प्रचण्ड तेजको छिपा रक्खा था ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण चर-अचर सभी प्राणियोंके आत्मा हैं। इसलिये उन्होंने

उसी क्षण जान लिया कि यह बच्चोंको मार डालनेवाला पूतना-ग्रह है और अपने नेत्र बंद कर लिये।* जैसे कोई पुरुष भ्रमवश सोये हुए साँपको रस्सी समझकर उठा ले, वैसे ही अपने कालरूप भगवान् श्रीकृष्णको पूतनाने अपनी गोदमें उठा लिया ॥ ८ ॥ मखमली म्यानके भीतर छिपी हुई तीखी धारवाली तलवारके समान पूतनाका हृदय तो बड़ा कुटिल था; किन्तु ऊपरसे वह बहुत मधुर और सुन्दर व्यवहार कर रही थी। देखनेमें वह एक भद्र महिलाके समान जान पड़ती थी। इसलिये रोहिणी और यशोदाजीने उसे घरके भीतर आयी

---

* पूतनाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने नेत्र बंद कर लिये, इसपर भक्त कवियों और टीकाकारोंने अनेकों प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ की हैं, जिनमें कुछ ये हैं—

१. श्रीमद्वल्लभाचार्यने सुबोधिनीमें कहा है—अविद्या ही पूतना है। भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि मेरी दृष्टिके सामने अविद्या टिक नहीं सकती, फिर लीला कैसे होगी, इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

२. यह पूतना बाल-घातिनी है 'पूतानपि नयति'। यह पवित्र बालकोंको भी ले जाती है। ऐसा जघन्य कृत्य करनेवालीका मुँह नहीं देखना चाहिये, इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

३. इस जन्ममें तो इसने कुछ साधन किया नहीं है। संभव है मुझसे मिलनेके लिये पूर्वजन्ममें कुछ किया हो। मानो पूतनाके पूर्व-पूर्व जन्मोंके साधन देखनेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद कर लिये।

४. भगवान्ने अपने मनमें विचार किया कि मैंने पापिनीका दूध कभी नहीं पिया है। अब जैसे लोग आँख बंद करके चिरायतेका काढ़ा पी जाते हैं, वैसे ही इसका दूध भी पी जाऊँ। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

५. भगवान्के उदरमें निवास करनेवाले असंख्य कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव यह जानकर घबरा गये कि श्यामसुन्दर पूतनाके स्तनमें लगा हलाहल विष पीने जा रहे हैं। अतः उन्हें समझानेके लिये ही श्रीकृष्णने नेत्र बंद किये।

६. श्रीकृष्णशिशुने विचार किया कि मैं गोकुलमें यह सोचकर आया था कि माखन-मिश्री खाऊँगा। सो छठीके दिन ही विष पीनेका अवसर आ गया। इसलिये आँख बंद करके मानो शङ्करजीका ध्यान किया कि आप आकर अपना अभ्यस्त विष-पान कीजिये, मैं दूध पीऊँगा।

७. श्रीकृष्णके नेत्रोंने विचार किया कि परम स्वतन्त्र ईश्वर इस दुष्टाको अच्छी-बुरी चाहे जो गति दे दें, परन्तु हम दोनों इसे चन्द्रमार्ग अथवा सूर्यमार्ग दोनोंमेंसे एक भी नहीं देंगे। इसलिये उन्होंने अपने द्वार बंद कर लिये।

८. नेत्रोंने सोचा पूतनाके नेत्र हैं तो हमारी जातिके; परन्तु ये इस क्रूर राक्षसीकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इसलिये अपने होनेपर भी ये दर्शनके योग्य नहीं हैं। इसलिये उन्होंने अपनेको पलकोंसे ढक लिया।

९. श्रीकृष्णके नेत्रोंमें स्थित धर्मात्मा निमिने उस दुष्टाको देखना उचित न समझकर नेत्र बंद कर लिये।

१०. श्रीकृष्णके नेत्र राज-हंस हैं। उन्हें बकी पूतनाके दर्शन करनेकी कोई उत्कण्ठा नहीं थी। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

११. श्रीकृष्णने विचार किया कि बाहरसे तो इसने माताका-सा रूप धारण कर रक्खा है, परन्तु हृदयमें अत्यन्त क्रूरता भरे हुए है। ऐसी स्त्रीका मुँह न देखना ही उचित है। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१२. उन्होंने सोचा कि मुझे निडर देखकर कहीं यह ऐसा न समझ जाय कि इसके ऊपर मेरा प्रभाव नहीं चला और फिर कहीं लौट न जाय। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१३. बाल-लीलाके प्रारम्भमें पहले-पहल स्त्रीसे ही मुठभेड़ हो गयी, इस विचारसे विरक्तिपूर्वक नेत्र बंद कर लिये।

१४. श्रीकृष्णके मनमें यह बात आयी कि करुणा-दृष्टिसे देखूँगा तो इसे मारूँगा कैसे, और उग्र दृष्टिसे देखूँगा तो यह अभी भस्म हो जायगी। लीलाकी सिद्धिके लिये नेत्र बंद कर लेना ही उत्तम है। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१५. यह धात्रीका वेष धारण करके आयी है, मारना उचित नहीं है। परन्तु यह और ग्वालबालोंको मारेगी। इसलिये इसका यह वेष देखे बिना ही मार डालना चाहिये। इसलिये नेत्र बंद कर लिये।

१६. बड़े-से-बड़ा अनिष्ट योगसे निवृत्त हो जाता है। उन्होंने नेत्र बंद करके मानो योगदृष्टि सम्पादित की।

१७. पूतना यह निश्चय करके आयी थी कि मैं व्रजके सारे शिशुओंको मार डालूँगी, परन्तु भक्तरक्षापरायण भगवान्की कृपासे व्रजका एक भी शिशु उसे दिखायी नहीं दिया और बालकोंको खोजती हुई वह लीलाशक्तिकी

देखकर भी उसकी सौन्दर्यप्रभासे हतप्रतिभ-सी होकर कोई रोक-टोक नहीं की, चुपचाप खड़ी-खड़ी देखती रहीं ॥ ९ ॥ इधर भयानक राक्षसी पूतनाने बालक श्रीकृष्णको अपनी गोदमें लेकर उनके मुँहमें अपना स्तन दे दिया, जिसमें बड़ा भयङ्कर और किसी प्रकार भी पच न सकनेवाला विष लगा हुआ था। भगवान्ने क्रोध-को अपना साथी बनाया और दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसका दूध पीने लगे (वे उसका दूध पीने लगे और उनका साथी क्रोध प्राण पीने लगा !)* ॥ १० ॥ अब तो पूतनाके प्राणोंके आश्रयभूत सभी मर्मस्थान फटने लगे। वह पुकारने लगी—'अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर!' वह बार-बार अपने हाथ और पैर पटक-पटककर रोने लगी। उसके नेत्र उलट गये। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया ॥ ११ ॥ उसकी चिल्लाहटका वेग बड़ा भयङ्कर था। उसके प्रभावसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी और ग्रहोंके साथ अन्तरिक्ष डगमगा उठा। सातों पाताल और दिशाएँ गूँज उठीं। बहुत-से लोग वज्रपातकी आशङ्कासे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १२ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार निशाचरी पूतनाके स्तनोंमें इतनी पीड़ा हुई कि वह अपनेको छिपा न सकी, राक्षसीरूपमें प्रकट हो गयी। उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुँह फट गया, बाल बिखर गये और हाथ-पाँव फैल गये। जैसे इन्द्रके वज्रसे घायल होकर वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसे ही वह बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी ॥ १३ ॥

राजेन्द्र! पूतनाके शरीरने गिरते-गिरते भी छः कोसके भीतरके वृक्षोंको कुचल डाला। यह बड़ी ही अद्भुत घटना हुई ॥ १४ ॥ पूतनाका शरीर बड़ा भयानक था, उसका मुँह हलके समान तीखी और भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त था। उसके नथुने पहाड़की गुफाके समान गहरे थे और स्तन पहाड़से गिरी हुई चट्टानोंकी तरह बड़े-बड़े थे। लाल-लाल बाल चारों ओर बिखरे हुए थे ॥ १५ ॥ आँखें अंधे कूएँके समान गहरी; नितम्ब नदीके करारकी तरह भयङ्कर; भुजाएँ, जाँघें और पैर नदीके पुलके समान तथा पेट सूखे हुए सरोवरकी भाँति जान पड़ता था ॥ १६ ॥ पूतनाके उस शरीरको देखकर सब-के-सब ग्वाल और

प्रेरणासे सीधी नन्दालयमें आ पहुँची, तब भगवान्ने सोचा कि मेरे भक्तका बुरा करनेकी बात तो दूर रही, जो मेरे भक्तका बुरा सोचता है, उस दुष्टका मैं मुँह नहीं देखता; व्रज-बालक सभी श्रीकृष्णके सखा हैं, परम भक्त हैं, पूतना उनको मारनेका सङ्कल्प करके आयी है, इसलिये उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

१८. पूतना अपनी भीषण आकृतिको छिपाकर राक्षसी मायासे दिव्य रमणी रूप बनाकर आयी है। भगवान्की दृष्टि पड़नेपर माया रहेगी नहीं और इसका असली भयानक रूप प्रकट हो जायगा। उसे सामने देखकर यशोदा मैया डर जायँ और पुत्रकी अनिष्टाशङ्कासे कहीं उनके हठात् प्राण निकल जायँ, इस आशङ्कासे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

१९. पूतना हिंसापूर्ण हृदयसे आयी है, परन्तु भगवान् उसकी हिंसाके लिये उपयुक्त दण्ड न देकर उसका प्राण-वधमात्र करके परम कल्याण करना चाहते हैं। भगवान् समस्त सद्गुणोंके भण्डार हैं। उनमें धृष्टता आदि दोषोंका लेश भी नहीं है, इसीलिये पूतनाके कल्याणार्थ भी उसका प्राण-वध करनेमें उन्हें लज्जा आती है। इस लज्जासे ही उन्होंने नेत्र बंद कर लिये हैं।

२०. भगवान् जगत्पिता हैं—असुर-राक्षसादि भी उनकी सन्तान ही हैं। पर वे सर्वथा उच्छृङ्खल और उद्दण्ड हो गये हैं, इसलिये उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। स्नेहमय माता-पिता जब अपने उच्छृङ्खल पुत्रको दण्ड देते हैं, तब उसके मनमें दुःख होता है। परन्तु वे उसे भय दिखलानेके लिये उसे बाहर प्रकट नहीं करते। इसी प्रकार भगवान् भी जब असुरोंको मारते हैं, तब पिताके नाते उनको भी दुःख होता है; पर दूसरे असुरोंको भय दिखलानेके लिये वे उसे प्रकट नहीं करते। भगवान् अब पूतनाको मारनेवाले हैं, परन्तु उसकी मृत्युकालीन पीडाको अपनी आँखों देखना नहीं चाहते, इसीसे उन्होंने नेत्र बंद कर लिये।

२१. छोटे बालकोंका स्वभाव है कि वे अपनी माके सामने खूब खेलते हैं, पर किसी अपरिचितको देखकर डर जाते हैं और नेत्र मूँद लेते हैं। अपरिचित पूतनाको देखकर इसीलिये बाललीला-विहारी भगवान्ने नेत्र बंद कर लिये। यह उनकी बाललीलाका माधुर्य है।

* भगवान् रोषके साथ पूतनाके प्राणोंके सहित स्तन-पान करने लगे, इसका यह अर्थ प्रतीत होता है कि रोष (रोषाधिष्ठातृ देवता रुद्र) ने प्राणोंका पान किया और श्रीकृष्णने स्तनका।

गोपी डर गये। उसकी भयङ्कर चिल्लाहट सुनकर उनके हृदय, कान और सिर तो पहले ही फट-से रहे थे ॥१७॥ जब गोपियोंने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उसकी छातीपर निर्भय होकर खेल रहे हैं, * तब वे बड़ी घबराहट और उतावलीके साथ झटपट वहाँ पहुँच गयीं तथा श्रीकृष्णको उठा लिया ॥ १८ ॥ इसके बाद यशोदा और रोहिणी-के साथ गोपियोंने गायकी पूँछ घुमाने आदि उपायोंसे बालक श्रीकृष्णके अङ्गोंकी सब प्रकारसे रक्षा की ॥ १९ ॥ उन्होंने पहले बालक श्रीकृष्णको गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अङ्गोंमें गो-रज लगायी और फिर बारहों अङ्गोंमें गोबर लगाकर भगवान्‌के केशव आदि नामोंसे रक्षा की ॥ २० ॥ इसके बाद गोपियोंने आचमन करके 'अज' आदि ग्यारह बीज-मन्त्रोंसे अपने शरीरोंमें अलग-अलग अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर बालकके अङ्गों-में बीजन्यास किया ॥ २१ ॥

वे कहने लगीं—'अजन्मा भगवान् तेरे पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञपुरुष जाँघोंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थल-की, सूर्य कण्ठकी, विष्णु बाँहोंकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर सिरकी रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधर भगवान् रक्षाके लिये तेरे आगे रहें, गदाधारी श्रीहरि पीछे, क्रमशः धनुष और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदन और अजन दोनों बगलमें, शङ्खधारी उरुगाय चारों कोनोंमें, उपेन्द्र ऊपर, हल-धर पृथ्वीपर और भगवान् परमपुरुष तेरे सब ओर रक्षाके लिये रहें ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् इन्द्रियोंकी और नारायण प्राणोंकी रक्षा करें। श्वेतद्वीपके अधिपति चित्त-की और योगेश्वर मनकी रक्षा करें ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी और परमात्मा भगवान् तेरे अहङ्कारकी रक्षा करें। खेलते समय गोविन्द रक्षा करें, सोते समय माधव रक्षा करें ॥ २५ ॥ चलते समय भगवान् वैकुण्ठ और बैठते समय भगवान् श्रीपति तेरी रक्षा करें। भोजनके समय समस्त ग्रहोंको भयभीत करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् तेरी रक्षा करें ॥ २६ ॥ डाकिनी, राक्षसी और कूष्माण्डा आदि बालग्रह; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि; शरीर, प्राण तथा इन्द्रियोंका नाश करनेवाले उन्माद (पागलपन) एवं अपस्मार (मृगी) आदि रोग; स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात, वृद्धग्रह और बालग्रह आदि—ये सभी अनिष्ट भगवान् विष्णुका नामोच्चारण करनेसे भयभीत होकर नष्ट हो जायँ†' ॥२७—२९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियोंने प्रेमपाशमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षा की। माता यशोदाने अपने पुत्रको स्तन पिलाया और फिर पालनेपर सुला दिया ॥ ३० ॥ इसी समय नन्दबाबा और उनके साथी गोप मथुरासे गोकुलमें पहुँचे। जब उन्होंने पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तब वे आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३१ ॥ वे कहने लगे—'यह तो बड़े आश्चर्य-की बात है, अवश्य ही वसुदेवके रूपमें किसी ऋषिने जन्म ग्रहण किया है। अथवा सम्भव है वसुदेवजी पूर्व-जन्ममें कोई योगेश्वर रहे हों; क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा ही उत्पात यहाँ देखनेमें आ रहा है ॥ ३२ ॥ तबतक व्रजवासियोंने कुल्हाड़ीसे पूतनाके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर डाला और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियों-पर रखकर जला दिया ॥ ३३ ॥ जब उसका शरीर

---

* पूतनाके वक्षःस्थलपर क्रीडा करते हुए मानो मन-ही-मन कह रहे थे—

स्तनन्धयस्य स्तन एव जीविका दत्तस्त्वया स स्वयमानने मम ।
मया च पीतो म्रियते यदि त्वया किं वा ममागः स्वयमेव कथ्यताम् ॥

'मैं दुधमुँहा शिशु हूँ, स्तनपान ही मेरी जीविका है। तुमने स्वयं अपना स्तन मेरे मुँहमें दे दिया और मैंने पिया। इससे यदि तुम मर जाती हो तो स्वयं तुम्हीं बताओ इसमें मेरा क्या अपराध है।'

राजा बलिकी कन्या थी रत्नमाला। यज्ञशालामें वामन भगवान्‌को देखकर उसके हृदयमें पुत्रस्नेहका भाव उदय हो आया। वह मन-ही-मन अभिलाषा करने लगी कि यदि मुझे ऐसा बालक हो और मैं उसे स्तन पिलाऊँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वामन भगवान्‌ने अपने भक्त बलिकी पुत्रीके इस मनोरथका मन-ही-मन अनुमोदन किया। वही द्वापरमें पूतना हुई और श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसकी लालसा पूर्ण हुई।

† इस प्रसङ्गको पढ़कर भावुक भक्त भगवान्‌से कहता है—'भगवन् ! जान पड़ता है, आपकी अपेक्षा भी आपके नाम-में शक्ति अधिक है; क्योंकि आप त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं और नाम आपकी रक्षा कर रहा है।'

जलने लगा, तब उसमेंसे ऐसा धूआँ निकला, जिसमेंसे अगरकी-सी सुगन्ध आ रही थी। क्यों न हो, भगवान्ने जो उसका दूध पी लिया था—जिससे उसके सारे पाप तत्काल ही नष्ट हो गये थे ॥ ३४ ॥ पूतना एक राक्षसी थी। लोगोंके बच्चोंको मार डालना और उनका खून पी जाना—यही उसका काम था। भगवान्को भी उसने मार डालनेकी इच्छासे ही स्तन पिलाया था। फिर भी उसे वह परम गति मिली, जो सत्पुरुषोंको मिलती है॥३५॥ ऐसी स्थितिमें जो परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको श्रद्धा और भक्तिसे माताके समान अनुरागपूर्वक अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु और उनको प्रिय लगनेवाली वस्तु समर्पित करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ३६ ॥ भगवान्के चरणकमल सबके वन्दनीय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा भी वन्दित हैं। वे भक्तोंके हृदयकी पूँजी हैं। उन्हीं चरणोंसे भगवान्ने पूतनाका शरीर दबाकर उसका स्तन-पान किया था ॥ ३७ ॥ माना कि वह राक्षसी थी, परन्तु उसे उत्तम-से-उत्तम गति—जो माताको मिलनी चाहिये—प्राप्त हुई। फिर जिनके स्तनका दूध भगवान्ने बड़े प्रेमसे पिया, उन गौओं और माताओंकी* तो बात ही क्या है ॥ ३८ ॥ परीक्षित्! देवकीनन्दन भगवान् कैवल्य आदि सब प्रकारकी मुक्ति और सब कुछ देनेवाले हैं। उन्होंने व्रजकी गोपियों और गौओंका वह दूध, जो भगवान्के प्रति पुत्र-भाव होनेसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण स्वयं ही झरता रहता था, भरपेट पान किया ॥ ३९ ॥ राजन्! वे गौएँ और गोपियाँ, जो नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णको अपने पुत्रके ही रूपमें देखती थीं, फिर जन्म-मृत्यु-रूप संसारके चक्रमें कभी नहीं पड़ सकतीं; क्योंकि यह संसार तो अज्ञानके कारण ही है ॥ ४० ॥

नन्दबाबाके साथ आनेवाले व्रजवासियोंकी नाकमें जब चिताके धूएँकी सुगन्ध पहुँची, तब 'यह क्या है? कहाँसे ऐसी सुगन्ध आ रही है?' इस प्रकार कहते हुए वे व्रजमें पहुँचे ॥ ४१ ॥ वहाँ गोपोंने उन्हें पूतनाके आनेसे लेकर मरनेतकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे लोग पूतनाकी मृत्यु और श्रीकृष्णके कुशलपूर्वक बच जानेकी बात सुनकर बड़े ही आश्चर्यचकित हुए ॥ ४२ ॥ परीक्षित्! उदारशिरोमणि नन्दबाबाने मृत्युके मुखसे बचे हुए अपने लालाको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका सिर सूँघकर मन-ही-मन बहुत आनन्दित हुए॥४३॥ यह 'पूतना-मोक्ष' भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाल-लीला है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

सातवाँ अध्याय

शकट-भञ्जन और तृणावर्त-उद्धार

राजा परीक्षित्ने पूछा—प्रभो! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अनेकों अवतार धारण करके बहुत-सी सुन्दर एवं सुननेमें मधुर लीलाएँ करते हैं। वे सभी मेरे हृदयको बहुत प्रिय लगती हैं ॥ १ ॥ उनके श्रवणमात्रसे भगवत्-सम्बन्धी कथासे अरुचि और विविध विषयोंकी तृष्णा भाग जाती है। मनुष्यका अन्तःकरण शीघ्र-से-शीघ्र शुद्ध हो जाता है। भगवान्के चरणोंमें भक्ति और उनके भक्तजनोंसे प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। यदि आप मुझे उनके श्रवणका अधिकारी समझते हों, तो भगवान्की उन्हीं मनोहर लीलाओंका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्य-लोकमें प्रकट होकर मनुष्य-जातिके स्वभावका अनुसरण करते हुए जो बाललीलाएँ की हैं अवश्य ही वे अत्यन्त अद्भुत हैं, इसलिये आप अब उनकी दूसरी बाल-लीलाओंका भी वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥

* जब ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़ोंको हर ले गये, तब भगवान् स्वयं ही बछड़े और ग्वालबाल बन गये। उस समय अपने विभिन्न रूपोंमें उन्होंने अपने साथी अनेकों गोप और वत्सोंकी माताओंका स्तनपान किया। इसीलिये यहाँ बहुवचनका प्रयोग किया गया है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! एक बार * भगवान् श्रीकृष्णके करवट बदलनेका अभिषेक-उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्मनक्षत्र भी था। घरमें बहुत-सी स्त्रियोंकी भीड़ लगी हुई थी। गाना-बजाना हो रहा था। उन्हीं स्त्रियोंके बीचमें खड़ी हुई सती साध्वी यशोदाजीने अपने पुत्रका अभिषेक किया। उस समय ब्राह्मणलोग मन्त्र पढ़कर आशीर्वाद दे रहे थे ॥ ४ ॥ नन्दरानी यशोदाजीने ब्राह्मणोंका खूब पूजन-सम्मान किया। उन्हें अन्न, वस्त्र, माला, गाय आदि मुँहमाँगी वस्तुएँ दीं। जब यशोदाने उन ब्राह्मणों-द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर स्वयं बालकके नहलाने आदिका कार्य सम्पन्न कर लिया, तब यह देखकर कि मेरे लल्लाके नेत्रोंमें नींद आ रही है, अपने पुत्रको धीरेसे शय्यापर सुला दिया ॥ ५ ॥ थोड़ी देरमें श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं, तो वे स्तन-पानके लिये रोने लगे। उस समय मनस्विनी यशोदाजी उत्सवमें आये हुए व्रजवासियोंके स्वागत-सत्कारमें बहुत ही तन्मय हो रही थीं। इसलिये उन्हें श्रीकृष्णका रोना सुनायी नहीं पड़ा। तब श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उछालने लगे ॥ ६ ॥ शिशु श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सोये हुए थे। उनके पाँव अभी लाल-लाल कोंपलोंके समान बड़े ही कोमल और नन्हे-नन्हे थे। परन्तु वह नन्हा-सा पाँव लगते ही विशाल छकड़ा उलट गया†। उस छकड़ेपर दूध-दही आदि अनेक रसोंसे भरी हुई मटकियाँ और दूसरे बर्तन रक्खे हुए थे। वे सब-के-सब फूट-फाट गये और छकड़ेके पहिये तथा धुरे अस्त-व्यस्त हो गये, उसका जूआ फट गया ॥ ७ ॥ करवट बदलनेके उत्सवमें जितनी भी स्त्रियाँ आयी हुई थीं, वे सब, और यशोदा, रोहिणी, नन्दबाबा और गोपगण इस विचित्र घटनाको देखकर व्याकुल हो गये। वे आपसमें कहने लगे—'अरे, यह क्या हो गया? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया?' ॥ ८ ॥ वे इसका कोई कारण निश्चित न कर सके। वहाँ खेलते हुए बालकोंने गोपों और गोपियोंसे कहा कि 'इस कृष्णने ही तो रोते-रोते अपने पाँवकी ठोकरसे इसे उलट दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं' ॥ ९ ॥ परन्तु गोपोंने उसे 'बालकोंकी बात' मानकर उसपर विश्वास नहीं किया। ठीक ही है, वे गोप उस बालकके अनन्त बलको नहीं जानते थे ॥ १० ॥

यशोदाजीने समझा यह किसी ग्रह आदिका उत्पात है। उन्होंने अपने रोते हुए लाड़ले लालको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शान्तिपाठ कराया और फिर वे उसे स्तन पिलाने लगीं ॥ ११ ॥ बलवान् गोपोंने छकड़ेको फिर सीधा कर दिया। उसपर पहलेकी तरह सारी सामग्री रख दी गयी। ब्राह्मणोंने हवन किया और दही, अक्षत, कुश तथा जलके द्वारा भगवान् और उस छकड़ेकी पूजा की ॥ १२ ॥ जो किसीके गुणोंमें दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या और हिंसा नहीं करते तथा अभिमानसे रहित

---

* यहाँ कदाचित् (एक बार) से तात्पर्य है तीसरे महीनेके जन्मनक्षत्रयुक्त कालसे। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकीका ऐसा वर्णन मिलता है—

स्निग्धाः पश्यति सेष्मयीति भुजयोर्युग्मं मुहुश्चालयन्नत्यल्पं मधुरं च कूजति परिष्वङ्गाय चाकाङ्क्षति ।
लाभालाभवशादमुष्य लसति क्रन्दत्यपि क्वाप्यसौ पीतस्तन्यतया स्वपित्यपि पुनर्जाग्रन्मुदं यच्छति ॥

'स्नेहसे तर गोपियोंको आँख उठाकर देखते हैं और मुसकराते हैं। दोनों भुजाएँ बार-बार हिलाते हैं। बड़े मधुर स्वरसे थोड़ा-थोड़ा कूजते हैं। गोदमें आनेके लिये ललकते हैं। किसी वस्तुको पाकर उससे खेलने लग जाते हैं और न मिलनेसे क्रन्दन करते हैं। कभी-कभी दूध पीकर सो जाते हैं और फिर जागकर आनन्दित करते हैं।'

† हिरण्याक्षका पुत्र था उत्कच। वह बहुत बलवान् एवं मोटा-तगड़ा था। एक बार यात्रा करते समय उसने लोमश ऋषिके आश्रमके वृक्षोंको कुचल डाला। लोमश ऋषिने क्रोध करके शाप दे दिया—'अरे दुष्ट! जा, तू देहरहित हो जा।' उसी समय साँपके केंचुलके समान उसका शरीर गिरने लगा। वह धड़ामसे लोमश ऋषिके चरणोंपर गिर पड़ा और प्रार्थना की—'कृपासिन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। मुझे आपके प्रभावका ज्ञान नहीं था। मेरा शरीर लौटा दीजिये।' लोमशजी प्रसन्न हो गये। महात्माओंका शाप भी वर हो जाता है। उन्होंने कहा—'वैवस्वत मन्वन्तरमें श्रीकृष्णके चरण-स्पर्शसे तेरी मुक्ति हो जायगी।' वही असुर छकड़ेमें आकर बैठ गया था और भगवान् श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे मुक्त हो गया।

हैं—उन सत्यशील ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता ॥ १३ ॥ यह सोचकर नन्दबाबाने बालकको गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणोंसे साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत एवं पवित्र ओषधियोंसे युक्त जलसे अभिषेक कराया ॥ १४ ॥ उन्होंने बड़ी एकाग्रतासे स्वस्त्ययनपाठ और हवन कराकर ब्राह्मणोंको अति उत्तम अन्नका भोजन कराया ॥ १५ ॥ इसके बाद नन्दबाबाने अपने पुत्रकी उन्नति और अभिवृद्धिकी कामनासे ब्राह्मणोंको सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ दीं। वे गौएँ वस्त्र, पुष्पमाला और सोनेके हारोंसे सजी हुई थीं। ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥ यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और सदाचारी ब्राह्मण होते हैं, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता ॥ १७ ॥

एक दिनकी बात है, सती यशोदाजी अपने प्यारे लल्लाको गोदमें लेकर दुलार रही थीं। सहसा श्रीकृष्ण चट्टानके समान भारी बन गये। वे उनका भार न सह सकीं ॥ १८ ॥ उन्होंने भारसे पीड़ित होकर श्रीकृष्णको पृथ्वीपर बैठा दिया। इस नयी घटनासे वे अत्यन्त चकित हो रही थीं। इसके बाद उन्होंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण किया और घरके काममें लग गयीं ॥ १९ ॥

तृणावर्त नामका एक दैत्य था। वह कंसका निजी सेवक था। कंसकी प्रेरणासे ही बवंडरके रूपमें वह गोकुलमें आया और बैठे हुए बालक श्रीकृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया ॥ २० ॥ उसने ब्रजरजसे सारे गोकुलको ढक दिया और लोगोंकी देखनेकी शक्ति हर ली। उसके अत्यन्त भयङ्कर शब्दसे दसों दिशाएँ काँप उठीं ॥ २१ ॥ सारा ब्रज दो घड़ीतक रज और तमसे ढका रहा। यशोदाजीने अपने पुत्रको जहाँ बैठा दिया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे ॥ २२ ॥ उस समय तृणावर्तने बवंडररूपसे इतनी बालू उड़ा रक्खी थी कि सभी लोग अत्यन्त उद्विग्न और बेसुध हो गये थे। उन्हें अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा था ॥ २३ ॥ उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें अपने पुत्रका पता न पाकर यशोदाको बड़ा शोक हुआ। वे अपने पुत्रकी याद करके बहुत ही दीन हो गयीं और बछड़ेके मर जानेपर गायकी जो दशा हो जाती है, वही दशा उनकी हो गयी। वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ बवंडरके शान्त होनेपर जब धूलकी वर्षाका वेग कम हो गया, तब यशोदाजीके रोनेका शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ दौड़ आयीं। नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको न देखकर उनके हृदयमें भी बड़ा संताप हुआ, आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ २५ ॥

इधर तृणावर्त बवंडररूपसे जब भगवान् श्रीकृष्णको आकाशमें उठा ले गया, तब उनके भारी बोझको न सम्हाल सकनेके कारण उसका वेग शान्त हो गया। वह अधिक चल न सका ॥ २६ ॥ तृणावर्त अपनेसे भी भारी होनेके कारण श्रीकृष्णको नीलगिरिकी चट्टान समझने लगा। उन्होंने उसका गला ऐसा पकड़ा कि वह उस अद्भुत शिशुको अपनेसे अलग नहीं कर सका ॥ २७ ॥ भगवान्ने इतने जोरसे उसका गला पकड़ रक्खा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। बोलती बंद हो गयी। प्राण-पखेरू उड़ गये और बालक श्रीकृष्णके साथ वह व्रजमें गिर पड़ा* ॥ २८ ॥ वहाँ जो स्त्रियाँ इकट्ठी होकर रो रही थीं, उन्होंने देखा कि वह विकराल दैत्य आकाशसे एक चट्टानपर गिर पड़ा और उसका एक-एक अङ्ग चकनाचूर हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शङ्करके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उसके वक्षःस्थलपर लटक रहे थे। यह देखकर गोपियाँ विस्मित

* पाण्डुदेशमें सहस्राक्ष नामके एक राजा थे। वे नर्मदा-तटपर अपनी रानियोंके साथ विहार कर रहे थे। उधरसे दुर्वासा ऋषि निकले, परन्तु उन्होंने प्रणाम नहीं किया। ऋषिने शाप दिया—'तू राक्षस हो जा।' जब वह उनके चरणोंपर गिरकर गिड़गिड़ाया, तब दुर्वासाजीने कह दिया—'भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहका स्पर्श होते ही तू मुक्त हो जायगा।' वही राजा तृणावर्त होकर आया था और श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्त करके मुक्त हो गया।

हो गयीं। उन्होंने झटपट वहाँ जाकर श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और लाकर उन्हें माताको दे दिया। बालक मृत्युके मुखसे सकुशल लौट आया। यद्यपि उसे राक्षस आकाशमें उठा ले गया था, फिर भी वह बच गया। इस प्रकार बालक श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपियों तथा नन्द आदि गोपोंको अत्यन्त आनन्द हुआ॥३०॥ वे कहने लगे—'अहो! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। देखो तो सही, यह कितनी अद्भुत घटना घट गयी! यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, परन्तु फिर जीता-जागता आ गया और उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये! सच है, साधुपुरुष अपनी समतासे ही सम्पूर्ण भयोंसे बच जाता है॥३१॥ हमने ऐसा कौन-सा तप, भगवान्‌की पूजा, प्याऊ-पौसला, कूआँ-बावली, बाग-बगीचे आदि पूर्त, यज्ञ, दान अथवा जीवोंकी भलाई की थी, जिसके फलसे हमारा यह बालक मरकर भी अपने स्वजनोंको सुखी करनेके लिये फिर लौट आया? अवश्य ही यह बड़े सौभाग्यकी बात है'॥३२॥ जब नन्दबाबाने देखा कि महावनमें बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब आश्चर्यचकित होकर उन्होंने वसुदेवजीकी बातका बार-बार समर्थन किया॥३३॥

एक दिनकी बात है, यशोदाजी अपने प्यारे शिशुको अपनी गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्तन-पान करा रही थीं। वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्तनोंसे अपने-आप ही दूध झरता जा रहा था॥३४॥ जब वे प्रायः दूध पी चुके और माता यशोदा उनके रुचिर मुसकानसे युक्त मुखको चूम रही थीं उसी समय श्रीकृष्णको जँभाई आ गयी और माताने उनके मुखमें यह देखा *॥३५॥ उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं॥३६॥ परीक्षित्! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार सहसा सारा जगत् देखकर मृगशावकनयनी यशोदाजीका शरीर काँप उठा। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बंद कर लीं †। वे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं॥३७॥

आठवाँ अध्याय

नामकरण-संस्कार और बाललीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे श्रीगर्गाचार्यजी। वे बड़े तपस्वी थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये॥१॥ उन्हें देखकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद 'ये स्वयं भगवान् ही हैं'—इस भावसे उनकी पूजा की॥२॥ जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-सत्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'भगवन्! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ?॥३॥ आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे

---

* स्नेहमयी जननी और स्नेहके सदा भूखे भगवान्! उन्हें दूध पीनेसे तृप्ति ही नहीं होती थी। माके मनमें शङ्का हुई—कहीं अधिक पीनेसे अपच न हो जाय। प्रेम सर्वदा अनिष्टकी आशङ्का उत्पन्न करता है। श्रीकृष्णने अपने मुखमें विश्वरूप दिखाकर कहा—'अरी मैया! तेरा दूध मैं अकेले ही नहीं पीता हूँ। मेरे मुखमें बैठकर सम्पूर्ण विश्व ही इसका पान कर रहा है। तू घबरावे मत'—

स्तन्यं कियत् पिबसि भूर्यलमर्भकेति वर्तिष्यमाणवचनां जननीं विभाव्य।
विश्वं विभागि पयसोऽस्य न केवलोऽहमस्माददर्शि हरिणा किमु विश्वमास्ये॥

† वात्सल्यमयी यशोदा माता अपने लालाके मुखमें विश्व देखकर डर गयीं, परन्तु वात्सल्य-प्रेमरस-भावित हृदय होनेसे उन्हें विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने विचार किया कि यह विश्वका बखेड़ा लालाके मुँहमें कहाँसे आया? हो-न-हो यह मेरी इन निगोड़ी आँखोंकी ही गड़बड़ी है। मानो इसीसे उन्होंने अपने नेत्र बंद कर लिये।

गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है। हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है ॥ ४ ॥ प्रभो! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्यौतिप-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष जान ली जाती है। आपने उसी ज्यौतिप-शास्त्रकी रचना की है ॥ ५ ॥ आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिये; क्योंकि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है' ॥ ६ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी! मैं सब जगह यदुवंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है ॥ ७ ॥ कंसकी बुद्धि बुरी है, वह पाप ही सोचा करती है। वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है। जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला ओर कहीं पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म नहीं होना चाहिये। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको वसुदेवजीका लड़का समझकर मार डाले, तो हमसे बड़ा अन्याय हो जायगा ॥ ८-९ ॥

नन्दबाबाने कहा—आचार्यजी! आप चुपचाप इस एकान्त गोशालामें केवल स्वस्तिवाचन करके इस बालकका द्विजातिसमुचित नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये। औरोंकी कौन कहे, मेरे सगे-सम्बन्धी भी इस बातको न जानने पावें ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—गर्गाचार्यजी तो संस्कार करना चाहते ही थे। जब नन्दबाबाने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने एकान्तमें छिपकर गुप्तरूपसे दोनों बालकोंका नामकरण-संस्कार कर दिया ॥ ११ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—'यह रोहिणीका पुत्र है। इसलिये इसका नाम होगा रौहिणेय। यह अपने सगे-सम्बन्धी और मित्रोंको अपने गुणोंसे अत्यन्त आनन्दित करेगा। इसलिये इसका दूसरा नाम होगा 'राम'। इसके बलकी कोई सीमा नहीं है, अतः इसका एक नाम 'बल' भी है। यह यादवोंमें और तुमलोगोंमें कोई भेदभाव नहीं रक्खेगा और लोगोंमें फूट पड़नेपर मेल करावेगा, इसलिये इसका एक नाम 'सङ्कर्षण' भी है ॥ १२ ॥ और यह जो साँवला-साँवला है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमें इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है। इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा ॥ १३ ॥ नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी वसुदेवजीके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग इसे 'श्रीमान् वासुदेव' भी कहते हैं ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रके और भी बहुत-से नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं। इसके जितने गुण हैं और जितने कर्म, उन सबके अनुसार अलग-अलग नाम पड़ जाते हैं। मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते ॥ १५ ॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा। समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा। इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी-बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे ॥ १६ ॥ व्रजराज! पहले युगकी बात है। एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था। डाकुओंने चारों ओर लूट-खसोट मचा रक्खी थी। तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की ॥ १७ ॥ जो मनुष्य तुम्हारे इस साँवले-सलोने शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्‌के करकमलोंकी छत्रछायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतर या बाहर किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते ॥ १८ ॥ नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणमें, सम्पत्ति और सौन्दर्यमें, कीर्ति और प्रभावमें तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान् नारायणके समान है। तुम बड़ी सावधानी और तत्परतासे इसकी रक्षा करो' ॥ १९ ॥ इस प्रकार नन्दबाबाको भलीभाँति समझाकर, आदेश देकर गर्गाचार्यजी अपने

आश्रमको लौट गये। उनकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऐसा समझा कि मेरी सब आशा-लालसाएँ पूरी हो गयीं, मैं अब कृतकृत्य हूँ ॥ २० ॥

परीक्षित्! कुछ ही दिनोंमें राम और श्याम घुटनों और हाथोंके बल बकैयाँ चल-चलकर गोकुलमें खेलने लगे ॥ २१ ॥ दोनों भाई अपने नन्हे-नन्हे पाँवोंको गोकुलकी कीचड़में घसीटते हुए चलते। उस समय उनके पाँव और कमरके घुँघरू रुनझुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा भला मालूम पड़ता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी-कभी वे रास्ते चलते किसी अज्ञात व्यक्तिके पीछे हो लेते। फिर जब देखते कि यह तो कोई दूसरा है, तब झक-से रह जाते और डरकर अपनी माताओं—रोहिणीजी और यशोदाजीके पास लौट आते ॥ २२ ॥ माताएँ यह सब देख-देखकर स्नेहसे भर जातीं। उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती थी। जब उनके दोनों नन्हे-नन्हे-से शिशु अपने शरीरमें कीचड़का अङ्गराग लगाकर लौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी। माताएँ उन्हें आते ही दोनों हाथोंसे गोदमें लेकर हृदयसे लगा लेतीं और स्तन-पान कराने लगतीं। जब वे दूध पीने लगते और बीच-बीचमें मुसकरा-मुसकराकर अपनी माताओंकी ओर देखने लगते, तब वे उनकी मन्द-मन्द मुसकान, छोटी-छोटी दँतुलियाँ और भोला-भाला मुँह देखकर आनन्दके समुद्रमें डूबने-उतराने लगतीं ॥ २३ ॥ जब राम और श्याम दोनों कुछ और बड़े हुए, तब व्रजमें घरके बाहर ऐसी-ऐसी बाललीलाएँ करने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही रह जातीं। जब वे किसी बैठे हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोरसे पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ अपने घरका काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोटपोट होकर परम आनन्दमें मग्न हो जातीं ॥ २४ ॥ कन्हैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चञ्चल और बड़े खिलाड़ी थे। वे कहीं हरिन, गाय आदि सींगवाले पशुओंके पास दौड़ जाते, तो कहीं धधकती हुई आगसे खेलनेके लिये कूद पड़ते। कभी दाँतसे काटनेवाले कुत्तोंके पास पहुँच जाते, तो कभी आँख बचाकर तल-वार उठा लेते। कभी कूएँ या गड्ढेके पास जलमें गिरते-गिरते बचते, कभी मोर आदि पक्षियोंके निकट चले जाते और कभी काँटोंकी ओर बढ़ जाते थे। माताएँ उन्हें बहुत बरजतीं, परन्तु उनकी एक न चलती। ऐसी स्थितिमें वे घरका काम-धंधा भी नहीं सम्हाल पातीं। उनका चित्त बच्चोंको भयकी वस्तुओंसे बचानेकी चिन्तासे अत्यन्त चञ्चल रहता था ॥ २५ ॥

राजर्षे! कुछ ही दिनोंमें यशोदा और रोहिणीके लाड़ले लाल घुटनोंका सहारा लिये बिना अनायास ही खड़े होकर गोकुलमें चलने-फिरने लगे* ॥ २६ ॥

---

* जब श्यामसुन्दर घुटनोंका सहारा लिये बिना चलने लगे, तब वे अपने घरमें अनेकों प्रकारकी कौतुकमयी लीला करने लगे—

शून्ये चोरयतः स्वयं निजगृहे हैयङ्गवीनं मणिस्तम्भे स्वप्रतिबिम्बमीक्षितवतस्तेनैव सार्द्धं भिया।
भ्रातर्मा वद मातरं मम समो भागस्तवापीहितो भुङ्क्ष्वेत्यालपतो हरेः कलवचो मात्रा रहः श्रूयते ॥

एक दिन साँवरे-सलोने व्रजराजकुमार श्रीकन्हैयालालजी अपने सूने घरमें स्वयं ही माखन चुरा रहे थे। उनकी दृष्टि मणिके खम्भेमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बपर पड़ी। अब तो वे डर गये। अपने प्रतिबिम्बसे बोले—'अरे भैया! मेरी मैयासे कहियो मत। तेरा भाग भी मेरे बराबर ही मुझे स्वीकार है; ले, खा। खा ले, भैया!' यशोदा माता अपने लालाकी तोतली बोली सुन रही थीं।

उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, वे घरमें भीतर घुस आयीं। माताको देखते ही श्रीकृष्णने अपने प्रतिबिम्बको दिखाकर बात बदल दी—

मातः क एष नवनीतमिदं त्वदीयं लोभेन चोरयितुमद्य गृहं प्रविष्टः।
मद्वारणं न मनुते मयि रोषभाजि रोषं तनोति न हि मे नवनीतलोभः ॥

'मैया! मैया!! यह कौन है? लोभवश तुम्हारा माखन चुरानेके लिये आज घरमें घुस आया है। मैं मना

आयीं और यशोदा माताको सुना-सुनाकर कन्हैयाके करतूत कहने लगीं ॥ २८ ॥ 'अरी यशोदा ! यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है । गाय दुहनेका समय न होनेपर भी यह बछड़ोंको खोल देता है और हम डाँटती हैं, तो ठठा-ठठाकर हँसने लगता है । यह चोरीके बड़े-बड़े उपाय करके हमारे मीठे-मीठे दही-दूध चुरा-चुराकर खा जाता है । केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही-दूध वानरोंको बाँट देता है और जब वे भी पेट भर जानेपर नहीं खा पाते, तब यह हमारे माटोंको ही फोड़ डालता है । यदि घरमें कोई वस्तु इसे नहीं मिलती तो यह घर और घरवालोंपर बहुत खीझता है और हमारे बच्चोंको रुलाकर भाग जाता है ॥ २९ ॥ जब हम दही-दूधको छींकोंपर रख देती हैं और इसके छोटे-छोटे हाथ वहाँतक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े-बड़े उपाय रचता है । कहीं दो-चार पीढ़ोंको एकके ऊपर एक रख देता है । कहीं ऊखलपर चढ़ जाता है तो कहीं ऊखलपर पीढ़ा रख देता है, (कभी-कभी तो अपने किसी साथीके कंधेपर ही चढ़ जाता है ।) जब इतनेपर भी काम नहीं चलता, तब यह नीचेसे ही उन बर्तनोंमें छेद कर देता है । इसे इस बातकी पक्की पहचान रहती है कि किस छींकेपर किस बर्तनमें क्या रक्खा है । और ऐसे ढंगसे छेद करना जानता है कि किसीको पतातक न चले । जब हम अपनी वस्तुओंको बहुत अँधेरेमें छिपा देती हैं, तब नन्दरानी ! तुमने जो इसे बहुत-से मणिमय आभूषण पहना रक्खे हैं, उनके प्रकाशसे अपने-आप ही सब कुछ देख लेता है । इसके शरीरमें भी ऐसी ज्योति है कि जिससे इसे सब कुछ दीख जाता है । यह इतना चालाक है कि कब कौन कहाँ रहता है, इसका पता रखता है और जब हम सब घरके काम-धंधोंमें उलझी रहती हैं, तब यह अपना काम बना लेता है ॥ ३० ॥ ऐसा करके भी ढिठाईकी बातें करता है—उलटे हमें ही चोर बनाता और अपने घरका मालिक बन जाता

देने योग्य नहीं है । देखो, इसमें वह काला-काला विष लगा हुआ है । इससे बढ़िया होनेपर भी इसे कोई नहीं खाता है ।' श्रीकृष्णने कहा—'मैया ! मैया ! इसमें विष कैसे लग गया ।' बात बदल गयी । मैयाने गोदमें लेकर मधुर-मधुर स्वरसे कथा सुनाना प्रारम्भ किया । मा-बेटेमें प्रश्नोत्तर होने लगे ।

यशोदा—'लाला ! एक क्षीर-सागर है ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! वह कैसा है ।'

यशोदा—'बेटा ! यह जो तुम दूध देख रहे हो, इसीका एक समुद्र है ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! कितनी गायोंने दूध दिया होगा जब समुद्र बना होगा ।'

यशोदा—'कन्हैया ! वह गायका दूध नहीं है ।'

श्रीकृष्ण—'अरी मैया ! तू मुझे बहला रही है, भला बिना गायके दूध कैसे ?'

यशोदा—'वत्स ! जिसने गायोंमें दूध बनाया है, वह गायके बिना भी दूध बना सकता है ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! वह कौन है ?'

यशोदा—'वह भगवान् हैं; परन्तु अग (उनके पास कोई जा नहीं सकता । अथवा 'ग' कार रहित) हैं ।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा ठीक है, आगे कहो ।'

यशोदा—'एक बार देवता और दैत्योंमें लड़ाई हुई । असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्ने क्षीरसागरको मथा । मंदराचलकी रई बनी । वासुकि नागकी रस्सी । एक ओर देवता लगे, दूसरी ओर दानव ।'

श्रीकृष्ण—'जैसे गोपियाँ दही मथती हैं, क्यों मैया ?'

यशोदा—'हाँ बेटा ! उसीसे कालकूट नामका विष पैदा हुआ ।'

श्रीकृष्ण—'मैया ! विष तो साँपोंमें होता है, दूधमें कैसे निकला ?'

यशोदा—'बेटा ! जब शङ्कर भगवान्ने वही विष पी लिया, तब उसकी जो फुइयाँ धरतीपर गिर पड़ीं, उन्हें पीकर साँप विषधर हो गये । सो बेटा ! भगवान्‌की ही ऐसी कोई लीला है, जिससे दूधमेंसे विष निकला ।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा मैया ! यह तो ठीक है ।'

यशोदा—'बेटा ! (चन्द्रमाकी ओर दिखाकर) यह मक्खन भी उसीसे निकला है । इसलिये थोड़ा-सा विष इसमें भी लग गया । देखो, देखो, इसीको लोग कलङ्क कहते हैं । सो मेरे प्राण ! तुम घरका ही मक्खन खाओ ।'

ये व्रजवासियोंके कन्हैया स्वयं भगवान् हैं, परम सुन्दर और परम मधुर ! अब वे और बलराम अपनी ही उम्रके ग्वालबालोंको अपने साथ लेकर खेलनेके लिये व्रजमें निकल पड़ते और व्रजकी भाग्यवती गोपियोंको निहाल करते हुए तरह-तरहके खेल खेलते ॥ २७ ॥ उनके बचपनकी चञ्चलताएँ बड़ी ही अनोखी होती थीं । गोपियोंको तो वे बड़ी ही सुन्दर और मधुर लगतीं । एक दिन सब-की-सब इकट्ठी होकर नन्दबाबाके घर

करता हूँ तो मानता नहीं है और मैं क्रोध करता हूँ तो यह भी क्रोध करता है । मैया ! तुम कुछ और मत सोचना । मेरे मनमें माखनका तनिक भी लोभ नहीं है ।'

अपने दुध-मुँहे शिशुकी प्रतिभा देखकर मैया वात्सल्य-स्नेहके आनन्दमें मग्न हो गयीं ।

× × × × × ×

एक दिन श्यामसुन्दर माताके बाहर जानेपर घरमें ही माखन-चोरी कर रहे थे । इतनेमें ही दैववश यशोदाजी लौट आयीं और अपने लाड़ले लालको न देखकर पुकारने लगीं—

कृष्ण ! क्वासि करोषि किं पितरिति श्रुत्वैव मातुर्वचः साशङ्कं नवनीतचौर्यविरतो विश्रभ्य तामब्रवीत् ।
मातः कङ्कणपद्मरागमहसा पाणिर्ममातप्यते तेनायं नवनीतभाण्डविवरे विन्यस्य निर्वापितः ॥

'कन्हैया ! कन्हैया ! अरे ओ मेरे बाप ! कहाँ है, क्या कर रहा है ?'—माताकी यह बात सुनते ही माखनचोर श्रीकृष्ण डर गये और माखन-चोरीसे अलग हो गये । फिर थोड़ी देर चुप रहकर यशोदाजीसे बोले—'मैया, री मैया ! यह जो तुमने मेरे कङ्कणमें पद्मराग जड़ा दिया है, इसकी लपटसे मेरा हाथ जल रहा था । इसीसे मैंने इसे माखनके मटकेमें डालकर बुझाया था ।'

माता यह मधुर-मधुर कन्हैयाकी तोतली बोली सुनकर मुग्ध हो गयीं और 'आओ बेटा !' ऐसा कहकर लालाको गोदमें उठा लिया और प्यारसे चूमने लगीं ।

× × × × × ×

क्षुण्णाभ्यां करकुड्मलेन विगलद्बाष्पाम्बुदृग्भ्यां रुदन् हुं हुं हूमिति रुद्धकण्ठकुहरादस्पष्टवाग्विभ्रमः ।
मात्रासौ नवनीतचौर्यकुतुके प्राग्भर्त्सितः स्वाञ्चलेनामृज्यास्य मुखं तवैतदखिलं वत्सेति कण्ठे कृतः ॥

एक दिन माताने माखनचोरी करनेपर श्यामसुन्दरको धमकाया, डाँटा-फटकारा । बस, दोनों नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी । कर-कमलसे आँखें मलने लगे । ऊँ-ऊँ-ऊँ करके रोने लगे । गला रूँध गया । मुँहसे बोला नहीं जाता था । बस, माता यशोदाका धैर्य टूट गया । अपने आँचलसे अपने लाला कन्हैयाका मुँह पोंछा और बड़े प्यारसे गले लगाकर बोलीं—'लाला ! यह सब तुम्हारा ही है, यह चोरी नहीं है ।'

एक दिनकी बात है—पूर्णचन्द्रकी चाँदनीसे मणिमय आँगन धुल गया था । यशोदा मैयाके साथ गोपियोंकी गोष्ठी जुड़ रही थी । वहीं खेलते-खेलते कृष्णचन्द्रकी दृष्टि चन्द्रमापर पड़ी । उन्होंने पीछेसे आकर यशोदा मैयाका घूँघट उतार लिया । और अपने कोमल करोंसे उनकी चोटी खोलकर खींचने लगे और बार-बार पीठ थपथपाने लगे । 'मैं लूँगा, मैं लूँगा'—तोतली बोलीसे इतना ही कहते । जब मैयाकी समझमें बात नहीं आयी, तब उसने स्नेहार्द्र दृष्टिसे पास बैठी ग्वालिनोंकी ओर देखा । अब वे विनयसे, प्यारसे फुसलाकर श्रीकृष्णको अपने पास ले आयीं और बोलीं—'लालन ! तुम क्या चाहते हो, दूध !' श्रीकृष्ण—'ना' । 'क्या बढ़िया दही ?' 'ना' । 'क्या खुरचन ?' 'ना' । 'मलाई ?' 'ना' । 'ताजा माखन ?' 'ना' । ग्वालिनोंने कहा—'बेटा ! रूठो मत, रोओ मत । जो माँगोगे सो देंगी ।' श्रीकृष्णने धीरेसे कहा—'घरकी वस्तु नहीं चाहिये' और अँगुली उठाकर चन्द्रमाकी ओर संकेत कर दिया । गोपियाँ बोलीं—'ओ मेरे बाप ! यह कोई माखनका लौंदा थोड़े ही है ? हाय ! हाय ! हम यह कैसे देंगी ? यह तो प्यारा-प्यारा हंस आकाशके सरोवरमें तैर रहा है ।' श्रीकृष्णने कहा—'मैं भी तो खेलनेके लिये इस हंसको ही माँग रहा हूँ, शीघ्रता करो । पार जानेके पूर्व ही मुझे ला दो ।'

अब और भी मचल गये । धरतीपर पाँव पीट-पीटकर और हाथोंसे गला पकड़-पकड़कर 'दो-दो' कहने लगे और पहलेसे भी अधिक रोने लगे । दूसरी गोपियोंने कहा—'बेटा ! राम-राम । इन्होंने तुमको बहला दिया है । यह राजहंस नहीं है, यह तो आकाशमें ही रहनेवाला चन्द्रमा है ।' श्रीकृष्ण हठ कर बैठे—'मुझे तो यही दो; मेरे मनमें इसके साथ खेलनेकी बड़ी लालसा है । अभी दो, अभी दो ।' जब बहुत रोने लगे, तब यशोदा माताने गोदमें उठा लिया और प्यार करके बोलीं—'मेरे प्राण ! न यह राजहंस है और न तो चन्द्रमा । है यह माखन ही, परन्तु तुमको

है। इतना ही नहीं, यह हमारे लिपे-पुते स्वच्छ घरोंमें मूत्र आदि भी कर देता है। तनिक देखो तो इसकी ओर, वहाँ तो चोरीके अनेकों उपाय करके काम बनाता है और यहाँ मालूम हो रहा है मानो पत्थरकी मूर्ति खड़ी हो! वाह रे भोले-भाले साधु!' इस प्रकार गोपियाँ कहती जातीं और श्रीकृष्णके भीत-चकित नेत्रोंसे युक्त मुखकमलको देखती जातीं। उनकी यह दशा देखकर नन्दरानी यशोदाजी उनके मनका भाव ताड़ लेतीं और उनके हृदयमें स्नेह और आनन्दकी बाढ़ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं कि अपने लाड़ले कन्हैयाको इस बातका उलाहना भी न दे पातीं, डाँटनेकी बाततक नहीं सोच पातीं * ॥ ३१ ॥

कथा सुनते-सुनते श्यामसुन्दरकी आँखोंमें नींद आ गयी और मैयाने उन्हें पलङ्गपर सुला दिया।

* भगवान्‌की लीलापर विचार करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान्‌का लीलाधाम, भगवान्‌के लीलापात्र, भगवान्‌का लीलाशरीर और उनकी लीला प्राकृत नहीं होती। भगवान्‌में देह-देहीका भेद नहीं है। महाभारतमें आया है—

न भूतसंघसंस्थानो देवस्य परमात्मनः। यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः॥
स सर्वस्माद् बहिष्कार्यः श्रौतस्मार्तविधानतः। मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलः स्नानमाचरेत्॥

'परमात्माका शरीर भूतसमुदायसे बना हुआ नहीं होता। जो मनुष्य श्रीकृष्ण परमात्माके शरीरको भौतिक जानता-मानता है, उसका समस्त श्रौत-स्मार्त कर्मोंसे बहिष्कार कर देना चाहिये अर्थात् उसका किसी भी शास्त्रीय कर्ममें अधिकार नहीं है। यहाँतक कि उसका मुँह देखनेपर भी सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये।'

श्रीमद्भागवतमें ही ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि॥

'आपने मुझपर कृपा करनेके लिये ही यह स्वेच्छामय सच्चिदानन्दस्वरूप प्रकट किया है, यह पाञ्चभौतिक कदापि नहीं है।'

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्‌का सभी कुछ अप्राकृत होता है। इसी प्रकार यह माखनचोरीकी लीला भी अप्राकृत—दिव्य ही है।

यदि भगवान्‌के नित्य परम धाममें अभिन्नरूपसे नित्य निवास करनेवाली नित्यसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे न देखकर केवल साधनसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी उनकी तपस्या इतनी कठोर थी, उनकी लालसा इतनी अनन्य थी, उनका प्रेम इतना व्यापक था और उनकी लगन इतनी सच्ची थी कि भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रेमरसमय भगवान् उनके इच्छानुसार उन्हें सुख पहुँचानेके लिये माखनचोरीकी लीला करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण करें, चीरहरण करके उनका रहा-सहा व्यवधानका परदा उठा दें और रासलीला करके उनको दिव्य सुख पहुँचायें तो कोई बड़ी बात नहीं है।

भगवान्‌की नित्यसिद्धा चिदानन्दमयी गोपियोंके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी गोपियाँ और थीं, जो अपनी महान् साधनाके फलस्वरूप भगवान्‌की मुक्तजन-वाञ्छित सेवा करनेके लिये गोपियोंके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। उनमेंसे कुछ पूर्वजन्मकी देवकन्याएँ थीं, कुछ श्रुतियाँ थीं, कुछ तपस्वी ऋषि थे और कुछ अन्य भक्तजन। इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें मिलती हैं। श्रुतिरूपा गोपियाँ, जो 'नेति-नेति'के द्वारा निरन्तर परमात्माका वर्णन करते रहनेपर भी उन्हें साक्षात्‌रूपसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, गोपियोंके साथ भगवान्‌के दिव्य रसमय विहारकी बात जानकर गोपियोंकी उपासना करती हैं और अन्तमें स्वयं गोपीरूपमें परिणत होकर भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् अपने प्रियतमरूपसे प्राप्त करती हैं। इनमें मुख्य श्रुतियोंके नाम हैं—उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलकण्ठिका और विपञ्ची आदि।

भगवान्‌के श्रीरामावतारमें उन्हें देखकर मुग्ध होनेवाले—अपने-आपको उनके स्वरूप-सौन्दर्यपर न्यौछावर कर देनेवाले सिद्ध ऋषिगण, जिनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें गोपी होकर प्राप्त करनेका वर दिया था, व्रजमें गोपीरूपसे अवतीर्ण हुए थे। इसके अतिरिक्त मिथिलाकी गोपी, कोसलकी गोपी, अयोध्याकी गोपी—पुलिन्दगोपी, रमावैकुण्ठ श्वेतद्वीप आदिकी गोपियाँ और जालन्धरी गोपी आदि गोपियोंके अनेकों यूथ थे, जिनको बड़ी तपस्या करके भगवान्‌से वरदान पाकर गोपीरूपमें अवतीर्ण होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पद्मपुराणके पातालखण्डमें बहुत-से ऐसे ऋषियोंका वर्णन है, जिन्होंने बड़ी कठिन तपस्या आदि करके अनेकों कल्पोंके बाद गोपीस्वरूपको प्राप्त किया था। उनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—

१. एक उग्रतपा नामके ऋषि थे। वे अग्निहोत्री और बड़े दृढ़व्रती थे। उनकी तपस्या अद्भुत थी। उन्होंने पञ्चदशाक्षरमन्त्रका जाप और रासोन्मत्त नवकिशोर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ध्यान किया था। सौ कल्पोंके बाद वे सुनन्दनामक गोपकी कन्या 'सुनन्दा' हुए।

२. एक सत्यतपा नामके मुनि थे। वे सूखे पत्तोंपर रहकर दशाक्षरमन्त्रका जाप और श्रीराधाजीके दोनों हाथ पकड़कर नाचते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करते थे। दस कल्पके बाद वे सुभद्रनामक गोपकी कन्या 'सुभद्रा' हुए।

३. हरिधामा नामके एक ऋषि थे। वे निराहार रहकर 'क्लीं' कामबीजसे युक्त विंशाक्षरी मन्त्रका जाप करते थे और माधवीमण्डपमें कोमल-कोमल पत्तोंकी शय्यापर लेटे हुए युगल-सरकारका ध्यान करते थे। तीन कल्पके पश्चात् वे सारङ्ग-नामक गोपके घर 'रङ्गवेणी' नामसे अवतीर्ण हुए।

४. जाबालि नामके एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे, उन्होंने एक बार विशाल वनमें विचरते-विचरते एक जगह बहुत बड़ी बावली देखी। उस बावलीके पश्चिम तटपर बड़के नीचे एक तेजस्विनी युवती स्त्री कठोर तपस्या कर रही थी। वह बड़ी सुन्दर थी। चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंके समान उसकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। उसका बायाँ हाथ अपनी कमरपर था और दाहिने हाथसे वह ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए थी। जाबालिके बड़ी नम्रताके साथ पूछनेपर उस तापसीने बतलाया—

ब्रह्मविद्याहमतुला योगीन्द्रैर्या च मृग्यते। साहं हरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः ॥
ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं तेनानन्देन तृप्तधीः। चराम्यस्मिन् वने घोरे ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम् ॥
तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं विना ॥

'मैं वह ब्रह्मविद्या हूँ, जिसे बड़े-बड़े योगी सदा ढूँढ़ा करते हैं। मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये इस घोर वनमें उन पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई दीर्घकालसे तपस्या कर रही हूँ। मैं ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हूँ और मेरी बुद्धि भी उसी आनन्दसे परितृप्त है। परन्तु श्रीकृष्णका प्रेम मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मैं अपनेको शून्य देखती हूँ।' ब्रह्मज्ञानी जाबालिने उसके चरणोंपर गिरकर दीक्षा ली और फिर व्रजवीथियोंमें विहरनेवाले भगवान्‌का ध्यान करते हुए वे एक पैरसे खड़े होकर बड़ी कठोर तपस्या करते रहे। नौ कल्पोंके बाद प्रचण्डनामक गोपके घर वे 'चित्रगन्धा'के रूपमें प्रकट हुए।

५. कुशध्वजनामक ब्रह्मर्षिके पुत्र शुचिश्रवा और सुवर्ण देवतत्त्वज्ञ थे। उन्होंने शीर्षासन करके 'ह्रीं' हंस-मन्त्रका जाप करते हुए और सुन्दर कन्दर्प-तुल्य गोकुलवासी दस वर्षकी उम्रके भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए घोर तपस्या की। कल्पके बाद वे व्रजमें सुधीरनामक गोपके घर उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार और भी बहुत-सी गोपियोंके पूर्वजन्मकी कथाएँ प्राप्त होती हैं, विस्तारभयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। भगवान्‌के लिये इतनी तपस्या करके इतनी लगनके साथ कल्पोंतक साधना

करके जिन त्यागी भगवत्प्रेमियोंने गोपियोंका तन-मन प्राप्त किया था, उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, उन्हें आनन्द-दान देनेके लिये यदि भगवान् उनकी मनचाही लीला करते हैं तो इसमें आश्चर्य और अनाचारकी कौन-सी बात है ? रासलीलाके प्रसङ्गमें स्वयं भगवान्‌ने श्रीगोपियोंसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥
(१० । ३२ । २२)

'गोपियो ! तुमने लोक और परलोकके सारे बन्धनोंको काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया है; यदि मैं तुममेंसे प्रत्येकके लिये अलग-अलग अनन्त कालतक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता । मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा । तुम मुझे अपने साधुस्वभावसे ऋणरहित मानकर और भी ऋणी बना दो । यही उत्तम है ।' सर्वलोकमहेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिन महाभागा गोपियोंके ऋणी रहना चाहते हैं, उनकी इच्छा, इच्छा होनेसे पूर्व ही भगवान् पूर्ण कर दें—यह तो स्वाभाविक ही है ।

भला विचारिये तो सही श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णरसभावितमति गोपियोंके मनकी क्या स्थिति थी । गोपियोंका तन, मन, धन—सभी कुछ प्राणप्रियतम श्रीकृष्णका था । वे संसारमें जीती थीं श्रीकृष्णके लिये, घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये और घरके सारे काम करती थीं श्रीकृष्णके लिये । उनकी निर्मल और योगीन्द्रदुर्लभ पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ था ही नहीं । श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही, श्रीकृष्णकी निज सामग्रीसे ही श्रीकृष्णको पूजकर—श्रीकृष्णको सुखी देखकर वे सुखी होती थीं । प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोनेतक वे जो कुछ भी करती थीं, सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही करती थीं । यहाँतक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती थी । स्वप्न और सुषुप्ति दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर और शान्त लीला देखतीं और अनुभव करती थीं । रातको दही जमाते समय श्यामसुन्दरकी माधुरी छविका ध्यान करती हुई प्रेममयी प्रत्येक गोपी यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही सुन्दर जमे, श्रीकृष्णके लिये उसे बिलोकर मैं बढ़िया-सा और बहुत-सा माखन निकालूँ और उसे उतने ही ऊँचे छीकेपर रक्खूँ, जितनेपर श्रीकृष्णके हाथ आसानीसे पहुँच सकें । फिर मेरे प्राणधन श्रीकृष्ण अपने सखाओंको साथ लेकर हँसते और क्रीड़ा करते हुए घरमें पदार्पण करें, माखन लूटें और अपने सखाओं और बंदरोंको लुटायें, आनन्दमें मत्त होकर मेरे आँगनमें नाचें और मैं किसी कोनेमें छिपकर इस लीलाको अपनी आँखोंसे देखकर जीवनको सफल करूँ और फिर अचानक ही पकड़कर हृदयसे लगा लूँ । सूरदासजीने गाया है—

मैया री, मोहि माखन भावै । जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि आवै ॥
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात । मन-मन कहति कबहुँ अपनैं घर, देखौं माखन खात ॥
बैठैं जाइ मथनियाँकैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी । सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि-मन की जानी ॥

एक दिन श्यामसुन्दर कह रहे थे, 'मैया ! मुझे माखन भाता है; तू मेवा-पकवानके लिये कहती है, परन्तु मुझे तो वे रुचते ही नहीं ।' वहीं पीछे एक गोपी खड़ी श्यामसुन्दरकी बात सुन रही थी । उसने मन-ही-मन कामना की—'मैं कब इन्हें अपने घर माखन खाते देखूँगी; ये मथानीके पास जाकर बैठेंगे, तब मैं छिप रहूँगी ?' प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, गोपीके मनकी जान गये और उसके घर पहुँचे तथा उसके घरका माखन खाकर उसे सुख दिया—'गये स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर ।'

उसे इतना आनन्द हुआ कि वह फूली न समायी । सूरदासजी गाते हैं—

फूली फिरति ग्वालि मनमें री । पूछति सखी परस्पर बातैं पायो पर्यौ कछू कहुँ तैं री ?

पुलकित रोम रोम, गदगद मुख बानी कहत न आवै। ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हम कौं क्यौं न सुनावै॥
तन न्यारा, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप। सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं, देख्यौ रूप अनूप॥

वह खुशीसे छककर फूली-फूली फिरने लगी। आनन्द उसके हृदयमें समा नहीं रहा था। सहेलियोंने पूछा—'अरी, तुझे कहीं कुछ पड़ा धन मिल गया क्या?' वह तो यह सुनकर और भी प्रेमविह्वल हो गयी। उसका रोम-रोम खिल उठा, वह गद्गद हो गयी, मुँहसे बोली नहीं निकली। सखियोंने कहा—'सखि! ऐसी क्या बात है, हमें सुनाती क्यों नहीं? हमारे तो शरीर ही दो हैं, हमारा जी तो एक ही है—हम-तुम दोनों एक ही रूप हैं। भला, हमसे छिपानेकी कौन-सी बात है?' तब उसके मुँहसे इतना ही निकला—'मैंने आज अनूप रूप देखा है।' बस, फिर वाणी रुक गयी और प्रेमके आँसू बहने लगे! सभी गोपियोंकी यही दशा थी।

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात। दधि माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल सखा सँग खात॥
ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारैं आवैं। माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहिं छुपावैं॥
मनहीं मन अभिलाष करति सब हृदय धरति यह ध्यान। सूरदास प्रभु कौं घर मैं लै, दैहौं माखन खान॥

चली ब्रज घर-घरनि यह बात। नंद-सुत, सँग सखा लीन्हें, चोरि माखन खात॥
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ। कोउ कहति मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ॥
कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कौं, देखौं अपने धाम। हेरि माखन देउँ आछौ, खाइ जितनौ स्याम॥
कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवार। कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवार॥
सूर प्रभु के मिलन कारन, करति बिबिध बिचार। जोरि कर बिधिकौं मनावति पुरुष नंदकुमार॥

ऐसी गोपियाँ जाग-जागकर प्रातःकाल होनेकी बाट देखतीं। उनका मन श्रीकृष्णमें लगा रहता। प्रातःकाल जल्दी-जल्दी दही मथकर, माखन निकालकर छींकेपर रखतीं; कहीं प्राणधन आकर लौट न जायँ, इसलिये सब काम छोड़कर वे सबसे पहले यही काम करतीं और श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें व्याकुल होती हुई मन-ही-मन सोचतीं—'हा! आज प्राणप्रियतम क्यों नहीं आये? इतनी देर क्यों हो गयी? क्या आज इस दासीका घर पवित्र न करेंगे? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए इस तुच्छ माखनका भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुख न देंगे? कहीं यशोदा मैयाने तो उन्हें नहीं रोक लिया? उनके घर तो नौ लाख गौएँ हैं। माखनकी क्या कमी है! मेरे घर तो वे कृपा करके ही आते हैं!' इन्हीं विचारोंमें आँसू बहाती हुई गोपी क्षण-क्षणमें दौड़कर दरवाजेपर जाती, लाज छोड़कर रास्तेकी ओर देखती, सखियोंसे पूछती। एक-एक निमेष उसके लिये युगके समान हो जाता! ऐसी भाग्यवती गोपियोंकी मनःकामना भगवान् उनके घर पधारकर पूर्ण करते।

सूरदासजीने गाया है—

प्रथम करी हरि माखन-चोरी। ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी॥
मनमें यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर-घर सब जाउँ। गोकुल जनम लियौ सुख-कारन, सबकैं माखन खाउँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग। सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग॥

अपने निजजन ब्रजवासियोंको सुखी करनेके लिये ही तो भगवान् गोकुलमें पधारे थे। माखन तो नन्दबाबाके घरपर कम न था, लाख-लाख गौएँ थीं। वे चाहे जितना खाते-लुटाते। परन्तु वे तो केवल नन्दबाबाके ही नहीं; सभी ब्रजवासियोंके अपने थे, सभीको सुख देना चाहते थे। गोपियोंकी लालसा पूरी करनेके लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा-चुराकर माखन खाते। यह वास्तवमें चोरी नहीं, यह तो गोपियोंकी पूजा-पद्धतिका भगवान्के द्वारा स्वीकार था। भक्तवत्सल भगवान् भक्तकी पूजा स्वीकार कैसे न करें?

भगवान्की इस दिव्यलीला—माखनचोरीका रहस्य न जाननेके कारण ही कुछ लोग इसे आदर्शके विपरीत बतलाते हैं। उन्हें पहले समझना चाहिये चोरी क्या वस्तु है, वह किसकी होती है और कौन करता है। चोरी उसे कहते हैं जब किसी दूसरेकी कोई चीज, उसकी इच्छाके बिना, उसके अनजानमें और आगे भी

एक दिन बलराम आदि ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। उन लोगोंने मा यशोदाके पास आकर कहा—'मा! कन्हैयाने मिट्टी खायी है' * ॥ ३२ ॥ हितैषिणी यशोदाने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया †। उस समय श्रीकृष्णकी आँखें डरके मारे नाच रही थीं ‡। यशोदा मैयाने डाँटकर कहा—॥ ३३ ॥ 'क्यों रे नटखट!

वह जान न पाये—ऐसी इच्छा रखकर ले ली जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके घरसे माखन लेते थे उनकी इच्छासे, गोपियोंके अनजानमें नहीं—उनकी जानमें, उनके देखते-देखते और आगे जनानेकी कोई बात ही नहीं—उनके सामने ही दौड़ते हुए निकल जाते थे। दूसरी बात महत्त्वकी यह है कि संसारमें या संसारके बाहर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो श्रीभगवान्की नहीं है और वे उसकी चोरी करते हैं। गोपियोंका तो सर्वस्व श्रीभगवान्का था ही, सारा जगत् ही उनका है। वे भला, किसकी चोरी कर सकते हैं? हाँ, चोर तो वास्तवमें वे लोग हैं, जो भगवान्की वस्तुको अपनी मानकर ममता-आसक्तिमें फँसे रहते हैं और दण्डके पात्र बनते हैं। उपर्युक्त सभी दृष्टियोंसे यही सिद्ध होता है कि माखनचोरी चोरी न थी, भगवान्की दिव्य लीला थी। असलमें गोपियोंने प्रेमकी अधिकतासे ही भगवान्का प्रेमका नाम 'चोर' रख दिया था, क्योंकि वे उनके चित्तचोर तो थे ही।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यद्यपि उन्हें श्रीमद्भागवतमें वर्णित भगवान्की लीलापर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है, परन्तु उनकी दृष्टिसे भी इस प्रसङ्गमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्ण उस समय लगभग दो-तीन वर्षके बच्चे थे और गोपियाँ अत्यधिक स्नेहके कारण उनके ऐसे-ऐसे मधुर खेल देखना चाहती थीं। आशा है, इससे शंका करनेवालोंको कुछ सन्तोष होगा। —हनुमानप्रसाद पोद्दार

* मृद्-भक्षणके हेतु—

१. भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि मुझमें शुद्ध सत्त्वगुण ही रहता है और आगे बहुत-से रजोगुणी कर्म करने हैं। उसके लिये थोड़ा-सा 'रज' संग्रह कर लें।

२. संस्कृत-साहित्यमें पृथ्वीका एक नाम 'क्षमा' भी है। श्रीकृष्णने देखा कि ग्वालबाल खुलकर मेरे साथ खेलते हैं; कभी-कभी अपमान भी कर बैठते हैं। उनके साथ क्षमांश धारण करके ही क्रीडा करनी चाहिये, जिससे कोई विघ्न न पड़े।

३. संस्कृत-भाषामें पृथ्वीको 'रसा' भी कहते हैं। श्रीकृष्णने सोचा सब रस तो ले ही चुका हूँ, अब रसा-रसका आस्वादन करूँ।

४. इस अवतारमें पृथ्वीका हित करना है। इसलिये उसका कुछ अंश अपने मुख्य (मुखमें स्थित) द्विजों (दाँतों) को पहले दान कर देना चाहिये।

५. ब्राह्मण शुद्ध सात्त्विक कर्ममें लग रहे हैं, अब उन्हें असुरोंका संहार करनेके लिये कुछ राजस कर्म भी करने चाहिये। यही सूचित करनेके लिये मानो उन्होंने अपने मुखमें स्थित द्विजोंको (दाँतोंको) रजसे युक्त किया।

६. पहले विष भक्षण किया था, मिट्टी खाकर उसकी दवा की।

७. पहले गोपियोंका मक्खन खाया था, उलाहना देनेपर मिट्टी खा ली, जिससे मुँह साफ हो जाय।

८. भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें रहनेवाले कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके जीव ब्रज-रज—गोपियोंके चरणोंकी रज—प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो रहे थे। उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये भगवान्ने मिट्टी खायी।

९. भगवान् स्वयं ही अपने भक्तोंकी चरण-रज मुखके द्वारा अपने हृदयमें धारण करते हैं।

१०. छोटे बालक स्वभावसे ही मिट्टी खा लिया करते हैं।

† यशोदाजी जानती थीं कि इस हाथने मिट्टी खानेमें सहायता की है। चोरका सहायक भी चोर ही है। इसलिये उन्होंने हाथ ही पकड़ा।

‡ भगवान्के नेत्रमें सूर्य और चन्द्रमाका निवास है। वे कर्मके साक्षी हैं। उन्होंने सोचा कि पता नहीं श्रीकृष्ण मिट्टी खाना स्वीकार करेंगे कि मुकर जायँगे। अब हमारा कर्तव्य क्या है। इसी भावको सूचित करते हुए दोनों नेत्र चकराने लगे।

तू बहुत ढीठ हो गया है । तूने अकेलेमें छिपकर मिट्टी क्यों खायी ? देख तो तेरे दलके तेरे सखा क्या कह रहे हैं ! तेरे बड़े भैया बलदाऊ भी तो उन्हींकी ओरसे गवाही दे रहे हैं' ॥ ३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मा ! मैंने मिट्टी नहीं खायी । ये सब झूठ बक रहे हैं । यदि तुम इन्हींकी बात सच मानती हो तो मेरा मुँह तुम्हारे सामने ही है, तुम अपनी आँखोंसे देख लो ॥ ३५ ॥ यशोदाजीने कहा—'अच्छी बात । यदि ऐसा है, तो मुँह खोल !' माताके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुँह खोल दिया *। परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अनन्त है । वे केवल लीलाके लिये ही मनुष्यके बालक बने हुए हैं ॥ ३६ ॥ यशोदाजीने देखा कि उनके मुँहमें चर-अचर सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है । आकाश (वह शून्य जिसमें किसीकी गति नहीं), दिशाएँ, पहाड़, द्वीप और समुद्रोंके सहित सारी पृथ्वी, बहनेवाली वायु, वैद्युत, अग्नि, चन्द्रमा और तारोंके साथ सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डल, जल, तेज, पवन, वियत् (प्राणियोंके चलने-फिरनेका आकाश), वैकारिक अहङ्कारके कार्य देवता, मन-इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्राएँ और तीनों गुण श्रीकृष्णके मुखमें दीख पड़े ॥ ३७-३८ ॥ परीक्षित् ! जीव, काल, स्वभाव, कर्म, उनकी वासना और शरीर आदिके द्वारा विभिन्न रूपोंमें दीखनेवाला यह सारा विचित्र संसार, सम्पूर्ण व्रज और अपने-आपको भी यशोदाजीने श्रीकृष्णके नन्हे-से खुले हुए मुखमें देखा । वे बड़ी शङ्कामें पड़ गयीं ॥ ३९ ॥ वे सोचने लगीं कि 'यह कोई स्वप्न है या भगवान्‌की माया ? कहीं मेरी बुद्धिमें ही तो कोई भ्रम नहीं हो गया है ? सम्भव है, मेरे इस बालकमें ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो' ॥ ४० ॥ 'जो चित्त, मन, कर्म और वाणीके द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमतासे अनुमानके विषय नहीं होते, यह सारा विश्व जिनके आश्रित है, जो इसके प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे ही इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है—उन प्रभुको मैं प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ यह मैं हूँ और ये मेरे पति तथा यह मेरा लड़का है, साथ ही मैं व्रजराजकी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी धर्मपत्नी हूँ; ये गोपियाँ, गोप और गोधन मेरे अधीन हैं—जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए है, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं—मैं उन्हींकी शरणमें हूँ' ॥ ४२ ॥ जब इस प्रकार यशोदा माता श्रीकृष्णका तत्त्व समझ गयीं, तब सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक प्रभुने अपनी पुत्रस्नेहमयी वैष्णवी योगमायाका उनके हृदयमें संचार कर दिया ॥ ४३ ॥ यशोदाजीको तुरंत वह घटना भूल गयी । उन्होंने अपने दुलारे लालको गोदमें उठा लिया । जैसे पहले उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ता रहता था, वैसे ही फिर उमड़ने लगा ॥ ४४ ॥ सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्तजन जिनके माहात्म्यका गीत गाते-गाते अघाते नहीं—उन्हीं भगवान्‌को यशोदाजी अपना पुत्र मानती थीं ! ॥ ४५ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! नन्दबाबाने ऐसा कौन-सा बहुत बड़ा मङ्गलमय साधन किया था ? और परमभाग्यवती यशोदाजीने भी ऐसी कौन-सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे उनका स्तन-पान किया ॥ ४६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी वे बाल-लीलाएँ, जो वे अपने ऐश्वर्य और महत्ता आदिको छिपाकर ग्वालबालोंमें करते हैं, इतनी पवित्र हैं कि उनका श्रवण-कीर्तन करनेवाले लोगोंके भी सारे पाप-ताप शान्त हो जाते हैं । त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुष आज भी उनका गान करते रहते हैं । वे ही लीलाएँ उनके जन्मदाता माता-पिता देवकी-वसुदेवजीको तो देखनेतकको न मिलीं और नन्द-यशोदा उनका अपार सुख लूट रहे हैं । इसका क्या कारण है ? ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! नन्दबाबा पूर्व-जन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे । उनका नाम था द्रोण और उनकी पत्नीका नाम था धरा । उन्होंने ब्रह्माजीके आदेशों-का पालन करनेकी इच्छासे उनसे कहा— ॥ ४८ ॥

---

* १. मा ! मिट्टी खानेके सम्बन्धमें ये मुझ अकेलेका ही नाम ले रहे हैं । मैंने खायी, तो सबने खायी, देख लो मेरे मुखमें सम्पूर्ण विश्व !

२. श्रीकृष्णने विचार किया कि उस दिन मेरे मुखमें विश्व देखकर माताने अपने नेत्र बंद कर लिये थे । आज भी जब मैं अपना मुँह खोलूँगा, तब यह अपने नेत्र बंद कर लेगी । इस विचारसे मुख खोल दिया ।

'भगवन् ! जब हम पृथ्वीपर जन्म लें, तब जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी अनन्य प्रेममयी भक्ति हो— जिस भक्तिके द्वारा संसारमें लोग अनायास ही दुर्गतियोंको पार कर जाते हैं' ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजीने कहा—'ऐसा ही होगा।' वे ही परमयशस्वी भगवन्मय द्रोण व्रजमें पैदा हुए और उनका नाम हुआ नन्द। और वे ही धरा इस जन्ममें यशोदाके नामसे उनकी पत्नी हुई ॥ ५० ॥ परीक्षित् ! अब इस जन्ममें जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले भगवान् उनके पुत्र हुए और समस्त गोप-गोपियोंकी अपेक्षा इन पति-पत्नी नन्द और यशोदाजीका उनके प्रति अत्यन्त प्रेम हुआ ॥ ५१ ॥ ब्रह्माजीकी बात सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ व्रजमें रहकर समस्त व्रजवासियोंको अपनी बाल-लीलासे आनन्दित करने लगे ॥ ५२ ॥

नवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका ऊखलसे बँधा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक समयकी बात है, नन्दरानी यशोदाजीने घरकी दासियोंको तो दूसरे कामोंमें लगा दिया और स्वयं (अपने लालाको मक्खन खिलानेके लिये) दही मथने लगीं * ॥ १ ॥ मैंने तुमसे अबतक भगवान्‌की जिन-जिन बाल-लीलाओंका वर्णन किया है, दधिमन्थनके समय वे उन सबका स्मरण करतीं और गाती भी जाती थीं † ॥ २ ॥ वे अपने स्थूल कटिभागमें सूतसे बाँधकर रेशमी लहँगा पहने हुए थीं। उनके स्तनोंमेंसे पुत्र-स्नेहकी अधिकतासे दूध चूता जा रहा था और वे काँप भी रहे थे। नेती खींचते रहनेसे बाँहें कुछ थक गयी थीं। हाथोंके कंगन और कानोंके कर्णफूल हिल रहे थे। मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। चोटीमें गुँथे हुए मालतीके सुन्दर पुष्प गिरते जा रहे थे। सुन्दर भौंहोंवाली यशोदा इस प्रकार दही मथ रही थीं ‡ ॥ ३ ॥

उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण स्तन पीनेके लिये दही

---

* इस प्रसङ्गमें 'एक समय'का तात्पर्य है कार्तिक मास। पुराणोंमें इसे 'दामोदरमास' कहते हैं। इन्द्र-यागके अवसरपर दासियोंका दूसरे कामोंमें लग जाना स्वाभाविक है। 'नियुक्तासु'—इस पदसे ध्वनित होता है कि यशोदा माताने जान-बूझकर दासियोंको दूसरे काममें लगा दिया। 'यशोदा'—नाम उल्लेख करनेका अभिप्राय यह है कि अपने विशुद्ध वात्सल्यप्रेमके व्यवहारसे षडैश्वर्यशाली भगवान्‌को भी प्रेमाधीनता, भक्तवश्यताके कारण अपने भक्तोंके हाथों बँध जानेका 'यश' यही देती हैं। गोपराज नन्दके वात्सल्य-प्रेमके आकर्षणसे सच्चिदानन्द-परमानन्दस्वरूप श्रीभगवान् नन्दनन्दनरूपसे जगत्‌में अवतीर्ण होकर जगत्‌के लोगोंको आनन्द प्रदान करते हैं। जगत्‌को इस अप्राकृत परमानन्दका रसास्वादन करानेमें नन्दबाबा ही कारण हैं। उन नन्दकी गृहिणी होनेसे इन्हें 'नन्दगेहिनी' कहा गया है। साथ ही 'नन्द-गेहिनी' और 'स्वयं'— ये दो पद इस बातके सूचक हैं कि दधि-मन्थनकर्म उनके योग्य नहीं है। फिर भी पुत्र-स्नेहकी अधिकतासे यह सोचकर कि मेरे लालाको मेरे हाथका माखन ही भाता है, वे स्वयं ही दधि मथ रही हैं।

† इस श्लोकमें भक्तके स्वरूपका निरूपण है। शरीरसे दधि-मन्थनरूप सेवाकर्म हो रहा है, हृदयमें स्मरणकी धारा सतत प्रवाहित हो रही है, वाणीमें बाल-चरित्रका संगीत। भक्तके तन, मन, वचन—सब अपने प्यारेकी सेवामें संलग्न हैं। स्नेह अमूर्त पदार्थ है; वह सेवाके रूपमें ही व्यक्त होता है। स्नेहके ही विलासविशेष हैं—नृत्य और संगीत। यशोदा मैयाके जीवनमें इस समय राग और भोग दोनों ही प्रकट हैं।

‡ कमरमें रेशमी लहँगा डोरीसे कसकर बँधा हुआ है अर्थात् जीवनमें आलस्य, प्रमाद, असावधानी नहीं है। सेवा-कर्ममें पूरी तत्परता है। रेशमी लहँगा इसीलिये पहने हैं कि किसी प्रकारकी अपवित्रता रह गयी तो मेरे कन्हैयाको कुछ हो जायगा।

माताके हृदयका रस-स्नेह—दूध स्तनके मुँह आ लगा है, चुचुआ रहा है, बाहर झाँक रहा है। श्यामसुन्दर आवें, उनकी दृष्टि पहले मुझपर पड़े और वे पहले माखन न खाकर मुझे ही पीवें—यही उसकी लालसा है।

स्तनके काँपनेका अर्थ यह है कि उसे डर भी है कि कहीं मुझे नहीं पिया तो !

मथती हुई अपनी माताके पास आये। उन्होंने अपनी माताके हृदयमें प्रेम और आनन्दको और भी बढ़ाते हुए दहीकी मथानी पकड़ ली तथा उन्हें मथनेसे रोक दिया* ॥४॥ श्रीकृष्ण माता यशोदाकी गोदमें चढ़ गये। वात्सल्य-स्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध तो स्वयं झर ही रहा था। वे उन्हें पिलाने लगीं और मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त उनका मुख देखने लगीं। इतनेमें ही दूसरी ओर अँगीठीपर रक्खे हुए दूधमें उफान आया। उसे देखकर यशोदाजी उन्हें अतृप्त ही छोड़कर जल्दीसे दूध उतारनेके लिये चली गयीं † ॥ ५ ॥ इससे श्रीकृष्णको कुछ क्रोध आ गया। उनके लाल-लाल होठ फड़कने लगे। उन्हें दाँतोंसे दबाकर श्रीकृष्णने पास ही पड़े हुए लोढ़ेसे दहीका मटका फोड़-फाड़ डाला, बनावटी आँसू आँखोंमें भर लिये और दूसरे घरमें जाकर अकेलेमें बासी माखन खाने लगे‡ ॥ ६ ॥

कङ्कण और कुण्डल नाच-नाचकर मैयाको बधाई दे रहे हैं। यशोदा मैयाके हाथोंके कङ्कण इसलिये झंकार ध्वनि कर रहे हैं कि वे आज उन हाथोंमें रहकर धन्य हो रहे हैं कि जो हाथ भगवान्‌की सेवामें लगे हैं। और कुण्डल यशोदा मैयाके मुखसे लीला-गान सुनकर परमानन्दसे हिलते हुए कानोंकी सफलताकी सूचना दे रहे हैं। हाथ वही धन्य हैं, जो भगवान्‌की सेवा करें और कान वे धन्य हैं, जिनमें भगवान्‌के लीला-गुण-गानकी सुधाधारा प्रवेश करती रहे। मुँहपर स्वेद और मालतीके पुष्पोंके नीचे गिरनेका ध्यान माताको नहीं है। वह शृंगार और शरीर भूल चुकी हैं। अथवा मालतीके पुष्प स्वयं ही चोटियोंसे छूटकर चरणोंमें गिर रहे हैं कि ऐसी वात्सल्यमयी माके चरणोंमें ही रहना सौभाग्य है, हम सिरपर रहनेके अधिकारी नहीं।

* हृदयमें लीलाकी सुखस्मृति, हाथोंसे दधिमन्थन और मुखसे लीलागान—इस प्रकार मन, तन, वचन तीनोंका श्रीकृष्णके साथ एकतान संयोग होते ही श्रीकृष्ण जगकर 'मा-मा' पुकारने लगे। अबतक भगवान् श्रीकृष्ण सोये हुए-से थे। माकी स्नेह-साधनाने उन्हें जगा दिया। वे निर्गुणसे सगुण हुए, अचलसे चल हुए, निष्कामसे सकाम हुए; स्नेहके भूखे-प्यासे माके पास आये। क्या ही सुन्दर नाम है—'स्तन्यकाम'! मन्थन करते समय आये, बैठी-ठालीके पास नहीं।

सर्वत्र भगवान् साधनकी प्रेरणा देते हैं, अपनी ओर आकृष्ट करते हैं; परन्तु मथानी पकड़कर मैयाको रोक लिया। 'मा! अब तेरी साधना पूर्ण हो गयी। पिष्ट-पेषण करनेसे क्या लाभ? अब मैं तेरी साधनाका इससे अधिक भार नहीं सह सकता।' मा प्रेमसे दब गयी—निहाल हो गयी—मेरा लाला मुझे इतना चाहता है।

† मैया मना करती रही—'नेक-सा माखन तो निकाल लेने दे।' 'ऊँ-ऊँ-ऊँ, मैं तो दूध पीऊँगा'—दोनों हाथोंसे मैयाकी कमर पकड़कर एक पाँव घुटनेपर रक्खा और गोदमें चढ़ गये। स्तनका दूध बरस पड़ा। मैया दूध पिलाने लगी, लाला मुसकराने लगे, आँखें मुसकानपर जम गयीं। 'ईक्षती' पदका यह अभिप्राय है कि जब लाला मुँह उठाकर देखेगा और मेरी आँखें उसपर लगी मिलेंगी, तब उसे बड़ा सुख होगा।

सामने पद्मगन्धा गायका दूध गरम हो रहा था। उसने सोचा—'स्नेहमयी मा यशोदाका दूध कभी कम न होगा, श्यामसुन्दरकी प्यास कभी बुझेगी नहीं! उनमें परस्पर होड़ लगी है। मैं बेचारा युग-युगका, जन्म-जन्मका श्यामसुन्दरके होठोंका स्पर्श करनेके लिये व्याकुल तप-तपकर मर रहा हूँ। अब इस जीवनसे क्या लाभ जो श्रीकृष्णके काम न आवे। इससे अच्छा है उनकी आँखोंके सामने आगमें कूद पड़ना।' माके नेत्र पहुँच गये। दयार्द्र माको श्रीकृष्णका भी ध्यान न रहा; उन्हें एक ओर डालकर दौड़ पड़ी। भक्त भगवान्‌को एक ओर रखकर भी दुखियोंकी रक्षा करते हैं। भगवान् अतृप्त ही रह गये। क्या भक्तोंके हृदय-रससे, स्नेहसे उन्हें कभी तृप्ति हो सकती है? उसी दिनसे उनका एक नाम हुआ—'अतृप्त'।

‡ श्रीकृष्णके होंट फड़के। क्रोध होंटोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ हो गया। लाल-लाल होठ श्वेत-श्वेत दूधकी दँतुलियोंसे दबा दिये गये, मानो सत्त्वगुण रजोगुणपर शासन कर रहा हो, ब्राह्मण क्षत्रियको शिक्षा दे रहा हो। वह क्रोध उतरा दधिमन्थनके मटकेपर। उसमें एक असुर आ बैठा था। दम्भने कहा—काम, क्रोध और अतृप्तिके बाद मेरी बारी है। वह आँसू बनकर आँखोंमें छलक आया। श्रीकृष्ण अपने भक्तजनोंके प्रति अपनी ममताकी धारा उड़ेलनेके लिये क्या-क्या भाव नहीं अपनाते? ये काम, क्रोध, लोभ और दम्भ भी आज ब्रह्म-संस्पर्श प्राप्त करके धन्य हो गये! श्रीकृष्ण घरमें घुसकर बासी माखन गटकने लगे मानो माको दिखा रहे हों कि मैं कितना भूखा हूँ।

प्रेमी भक्तोंके 'पुरुषार्थ' भगवान् नहीं हैं, भगवान्‌की सेवा है। ये भगवान्‌की सेवाके लिये भगवान्‌का भी त्याग

यशोदाजी औंटे हुए दूधको उतारकर* फिर मथनेके घरमें चली आयीं। वहाँ देखती हैं तो दहीका मटका (कमोरा) टुकड़े-टुकड़े हो गया है। वे समझ गयीं कि यह सब मेरे लालाकी ही करतूत है। साथ ही उन्हें वहाँ न देखकर यशोदा माता हँसने लगीं ॥ ७ ॥ इधर-उधर ढूँढ़नेपर पता चला कि श्रीकृष्ण एक उलटे हुए ऊखलपर खड़े हैं और छींकेपरका माखन ले-लेकर बंदरोंको खूब लुटा रहे हैं। उन्हें यह भी डर है कि कहीं मेरी चोरी खुल न जाय, इसलिये चौकन्ने होकर चारों ओर ताकते जाते हैं। यह देखकर यशोदारानी पीछेसे धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचीं † ॥ ८ ॥ जब श्रीकृष्णने देखा कि मेरी मा हाथमें छड़ी लिये मेरी ही ओर आ रही है, तब झटसे ओखलीपरसे कूद पड़े और डरे हुएकी भाँति भागे। परीक्षित्! बड़े-बड़े योगी तपस्याके द्वारा अपने मनको अत्यन्त सूक्ष्म और शुद्ध बनाकर भी जिनमें प्रवेश नहीं करा पाते, पानेकी बात तो दूर रही, उन्हीं भगवान्‌के पीछे-पीछे उन्हें पकड़नेके लिये यशोदाजी दौड़ीं ‡ ॥ ९ ॥ जब इस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्णके पीछे दौड़ने लगीं, तब कुछ ही देरमें बड़े-बड़े एवं हिलते हुए नितम्बोंके कारण उनकी चाल धीमी पड़ गयी। वेगसे दौड़नेके कारण चोटीकी गाँठ ढीली पड़ गयी। वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़तीं, पीछे-पीछे चोटीमें गुँथे हुए फूल गिरते जाते। इस प्रकार सुन्दरी यशोदा ज्यों-त्यों करके उन्हें पकड़ सकीं§ ॥ १० ॥ श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर वे उन्हें डराने-धमकाने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकी बड़ी विलक्षण हो रही थी। अपराध तो किया ही था, इसलिये रुलाई रोकनेपर भी न रुकती थी। हाथोंसे आँखें मल रहे थे, इसलिये मुँह-पर काजलकी स्याही फैल गयी थी। पिटनेके भयसे आँखें ऊपरकी ओर उठ गयी थीं, उनसे व्याकुलता सूचित होती थी × ॥ ११ ॥ जब यशोदाजीने देखा कि लल्ला बहुत डर गया है, तब उनके हृदयमें वात्सल्य-

कर सकते हैं। मैयाके अपने हाथों दुहा हुआ यह पद्मगन्धा गायोंका दूध श्रीकृष्णके लिये ही गरम हो रहा था। थोड़ी देरके बाद ही उनको पिलाना था। दूध उफन जायगा तो मेरे लाला भूखे रहेंगे—रोयेंगे, इसीलिये माताने उन्हें नीचे उतारकर दूधको सँभाला।

* यशोदा माता दूधके पास पहुँचीं। प्रेमका अद्भुत दृश्य! पुत्रको गोदसे उतारकर उसके पेयके प्रति इतनी प्रीति क्यों? अपनी छातीका दूध तो अपना है, वह कहीं जाता नहीं है। परन्तु यह सहस्रों छटी हुई गायोंके दूधसे पालित पद्मगन्धा गायका दूध फिर कहाँ मिलेगा? वृन्दावनका दूध-अप्राकृत, चिन्मय, प्रेमजगत्‌का दूध—माको आते देखकर शर्मसे दब गया। 'अहो! आगमें कूदनेका सङ्कल्प करके मैंने माके स्नेहानन्दमें कितना बड़ा विघ्न डाला? और मा अपना आनन्द छोड़कर मेरी रक्षाके लिये दौड़ी आ रही है। मुझे धिक्कार है!' दूधका उफनना बंद हो गया और वह तत्काल अपने स्थानपर बैठ गया।

† 'मा! तुम अपनी गोदमें नहीं बैठाओगी तो मैं किसी खलकी गोदमें जा बैठूँगा'—यही सोचकर मानो श्रीकृष्ण उलटे ऊखलके ऊपर जा बैठे। उदार पुरुष भले ही खलोंकी संगतिमें जा बैठें, परन्तु उसका शील-स्वभाव बदलता नहीं है। ऊखलपर बैठकर भी वे बन्दरोंको माखन बाँटने लगे। सम्भव है रामावतारके प्रति जो कृतज्ञताका भाव उदय हुआ था, उसके कारण अथवा अभी-अभी क्रोध आ गया था, उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये!

श्रीकृष्णके नेत्र हैं 'चौर्यविशङ्कित' ध्यान करने योग्य। वैसे तो उनके ललित, कलित, छलित, बलित, चकित आदि अनेकों प्रकारके ध्येय नेत्र हैं, परन्तु ये प्रेमी जनोंके हृदयमें गहरी चोट करते हैं।

‡ भीत होकर भागते हुए भगवान् हैं। अपूर्व झाँकी है! ऐश्वर्यको तो मानो मैयाके वात्सल्य प्रेमपर न्यौछावर करके व्रजके बाहर ही फेंक दिया है! कोई असुर अस्त्र-शस्त्र लेकर आता तो सुदर्शन चक्रका स्मरण करते। मैयाकी छड़ीका निवारण करनेके लिये कोई भी अस्त्र-शस्त्र नहीं! भगवान्‌की यह भयभीत मूर्ति कितनी मधुर है! धन्य है इस भयको।

§ माता यशोदाके शरीर और शृंगार दोनों ही विरोधी हो गये—तुम प्यारे कन्हैयाको क्यों खदेड़ रही हो। परन्तु मैयाने पकड़कर ही छोड़ा।

× विश्वके इतिहासमें, भगवान्‌के सम्पूर्ण जीवनमें पहली बार स्वयं विश्वेश्वर भगवान् माके सामने अपराधी बनकर खड़े हुए हैं। मानो 'अपराधी भी मैं ही हूँ—इस सत्यका प्रत्यक्ष करा दिया। बायें हाथसे दोनों आँखें रगड़-रगड़कर

मैयासे डरे हुए भगवान्

[पृष्ठ ५८८

स्नेह उमड़ आया। उन्होंने छड़ी फेंक दी। इसके बाद सोचा कि इसको एक बार रस्सीसे बाँध देना चाहिये (नहीं तो यह कहीं भाग जायगा)। परीक्षित! सच पूछो तो यशोदा मैयाको अपने बालकके ऐश्वर्यका पता न था * ॥१२॥ जिसमें न बाहर है न भीतर, न आदि है और न अन्त; जो जगत्के पहले भी थे, बादमें भी रहेंगे; इस जगत्के भीतर तो हैं ही, बाहरी रूपोंमें भी हैं; और तो क्या, जगत्के रूपमें भी स्वयं वही हैं; † यही नहीं, जो समस्त इन्द्रियोंसे परे और अव्यक्त हैं—उन्हीं भगवान्को मनुष्यका-सा रूप धारण करनेके कारण पुत्र समझकर यशोदारानी रस्सीसे ऊखलमें ठीक वैसे ही बाँध देती हैं, जैसे कोई साधारण-सा बालक‡ हो ॥ १३-१४ ॥ जब माता यशोदा अपने ऊधमी और नटखट लड़केको रस्सीसे बाँधने लगीं, तब वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी! तब

मानो उनसे कहलाना चाहते हों कि ये किसी कर्मके कर्ता नहीं हैं। ऊपर इसलिये देख रहे हैं कि जब माता ही पीटनेके लिये तैयार है, तब मेरी सहायता और कौन कर सकता है? नेत्र भयसे विह्वल हो रहे हैं, ये भले ही कह दें कि मैंने नहीं किया, हम कैसे कहें। फिर तो लीला ही बंद हो जायगी।

माने डाँटा—अरे, अशान्तप्रकृते! वानरबन्धो! मन्थनीस्फोटक! अब तुझे मक्खन कहाँसे मिलेगा? आज मैं तुझे ऐसा बाँधूँगी, ऐसा बाँधूँगी कि न तो तू ग्वालबालोंके साथ खेल ही सकेगा और न माखन-चोरी आदि ऊधम ही मचा सकेगा।

* 'अरी मैया! मोहि मत मार।' माताने कहा—'यदि तुझे पिटनेका इतना डर था तो मटका क्यों फोड़ा?' श्रीकृष्ण—'अरी मैया! मैं अब ऐसा कभी नहीं करूँगा। तू अपने हाथसे छड़ी डाल दे।'

श्रीकृष्णका भोलापन देखकर मैयाका हृदय भर आया, वात्सल्य-स्नेहके समुद्रमें ज्वार आ गया। वे सोचने लगीं—लाला अत्यन्त डर गया है। कहीं छोड़नेपर यह भागकर वनमें चला गया तो कहाँ-कहाँ भटकता फिरेगा, भूखा-प्यासा रहेगा। इसलिये थोड़ी देरतक बाँधकर रख दूँ। दूध-माखन तैयार होनेपर मना लूँगी। यही सोच-विचारकर माताने बाँधनेका निश्चय किया। बाँधनेमें वात्सल्य ही हेतु था।

भगवान्के ऐश्वर्यका अज्ञान दो प्रकारका होता है, एक तो साधारण प्राकृत जीवोंको और दूसरा भगवान्के नित्य-सिद्ध प्रेमी परिकरको। यशोदा मैया आदि भगवान्की स्वरूपभूता चिन्मयी लीलाके अप्राकृत नित्य-सिद्ध परिकर हैं। भगवान्के प्रति वात्सल्यभाव, शिशु-प्रेमकी गाढ़ताके कारण ही उनका ऐश्वर्य-ज्ञान अभिभूत हो जाता है; अन्यथा उनमें अज्ञानकी संभावना ही नहीं है। इनकी स्थिति तुरीयावस्था अथवा समाधिका भी अतिक्रमण करके सहज प्रेममें रहती है। वहाँ प्राकृत अज्ञान, मोह, रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या, प्राकृत सत्त्वकी भी गति नहीं है। इसलिये इनका अज्ञान भी भगवान्की लीलाकी सिद्धिके लिये उनकी लीलाशक्तिका ही एक चमत्कारविशेष है।

तभीतक हृदयमें जड़ता रहती है, जबतक चेतनका स्फुरण नहीं होता। श्रीकृष्णके हाथमें आ जानेपर यशोदा माताने बाँसकी छड़ी फेंक दी—यह सर्वथा स्वाभाविक है।

मेरी तृप्तिका प्रयत्न छोड़कर छोटी-मोटी वस्तुपर दृष्टि डालना केवल अर्थ-हानिका ही हेतु नहीं है, मुझे भी आँखोंसे ओझल कर देता है। परन्तु सब कुछ छोड़कर मेरे पीछे दौड़ना मेरी प्राप्तिका हेतु है। क्या मैयाके चरितसे इस बातकी शिक्षा नहीं मिलती?

मुझे योगियोंकी भी बुद्धि नहीं पकड़ सकती, परन्तु जो सब ओरसे मुँह मोड़कर मेरी ओर दौड़ता है, मैं उसकी मुट्ठीमें आ जाता हूँ। यही सोचकर भगवान् यशोदाके हाथों पकड़े गये।

† इस श्लोकमें श्रीकृष्णकी ब्रह्मरूपता बतायी गयी है। उपनिषदोंमें जैसे ब्रह्मका वर्णन है—'अपूर्वम् अनपरम् अनन्तरम् अबाह्यम्' इत्यादि। वही बात यहाँ श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है। वह सर्वाधिष्ठान, सर्वसाक्षी, सर्वातीत, सर्वान्तर्यामी, सर्वोपादान एवं सर्वरूप ब्रह्म ही यशोदा माताके प्रेमके वश बँधने जा रहा है। बन्धनरूप होनेके कारण उसमें किसी प्रकारकी असङ्गति या अनौचित्य भी नहीं है।

‡ यह फिर कभी ऊखलपर जाकर न बैठे इसके लिये ऊखलसे बाँधना ही उचित है; क्योंकि खलका अधिक सङ्ग होनेपर उसमे मनमें उद्वेग हो जाता है।

यह ऊखल भी चोर ही है, क्योंकि इसने कन्हैयाके चोरी करनेमें सहायता की है। दोनोंको बन्धनयोग्य देखकर ही यशोदा माताने दोनोंको बाँधनेका उद्योग किया।

उन्होंने दूसरी रस्सी लाकर उसमें जोड़ी* ॥ १५ ॥ जब वह भी छोटी हो गयी, तब उसके साथ और जोड़ी†। इस प्रकार वे ज्यों-ज्यों रस्सी लातीं और जोड़ती गयीं, त्यों-त्यों जुड़नेपर भी वे सब दो-दो अंगुल छोटी पड़ती गयीं ‡॥ १६ ॥ यशोदा-रानीने घरकी सारी रस्सियाँ जोड़ डालीं, फिर भी वे भगवान् श्रीकृष्णको न बाँध सकीं। उनकी असफलतापर देखनेवाली गोपियाँ मुसकराने लगीं और वे स्वयं भी मुसकराती हुई आश्चर्यचकित हो गयीं § ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी माका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया है, चोटीमें गुँथी हुई मालाएँ गिर गयी हैं और वे बहुत थक भी गयी हैं; तब कृपा करके वे

* यशोदा माता ज्यों-ज्यों अपने स्नेह, ममता आदि गुणों (सद्गुणों या रस्सियों) से श्रीकृष्णका पेट भरने लगीं, त्यों-त्यों अपनी नित्यमुक्तता, स्वतन्त्रता आदि सद्गुणोंसे भगवान् अपने स्वरूपको प्रकट करने लगे।

† १. संस्कृत-साहित्यमें 'गुण' शब्दके अनेक अर्थ हैं—सद्गुण, सत्त्व आदि गुण और रस्सी। सत्त्व, रज आदि गुण भी अखिल ब्रह्माण्डनायक त्रिलोकीनाथ भगवान्का स्पर्श नहीं कर सकते। फिर यह छोटा-सा गुण (दो बित्तेकी रस्सी) उन्हें कैसे बाँध सकता है। यही कारण है कि यशोदा माताकी रस्सी पूरी नहीं पड़ती थी।

२. संसारके विषय इन्द्रियोंको ही बाँधनेमें समर्थ हैं—'विषिण्वन्ति इति विषयाः'। ये हृदयमें स्थित अन्तर्यामी और साक्षीको नहीं बाँध सकते। तब गो-बन्धक (इन्द्रियों या गायोंको बाँधनेवाली) रस्सी गो-पति (इन्द्रियों या गायोंके स्वामी) को कैसे बाँध सकती है ?

३. वेदान्तके सिद्धान्तानुसार अध्यस्तमें ही बन्धन होता है, अधिष्ठानमें नहीं। भगवान् श्रीकृष्णका उदर अनन्त-कोटि ब्रह्माण्डोंका अधिष्ठान है। उसमें भला बन्धन कैसे हो सकता है ?

४. भगवान् जिसको अपनी कृपाप्रसादपूर्ण दृष्टिसे देख लेते हैं, वही सर्वदाके लिये बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यशोदा माता अपने हाथमें जो रस्सी उठातीं, उसीपर श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ जाती। वह स्वयं मुक्त हो जाती, फिर उसमें गाँठ कैसे लगती ?

५. कोई साधक यदि अपने गुणोंके द्वारा भगवान्को रिझाना चाहे तो नहीं रिझा सकता। मानो यही सूचित करनेके लिये कोई भी गुण (रस्सी) भगवान्के उदरको पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

‡ रस्सी दो अंगुल ही कम क्यों हुई ? इसपर कहते हैं—

१. भगवान्ने सोचा कि जब मैं शुद्धहृदय भक्तजनोंको दर्शन देता हूँ, तब मेरे साथ एकमात्र सत्त्वगुणसे ही सम्बन्धकी स्फूर्ति होती है, रज और तमसे नहीं। इसलिये उन्होंने रस्सीको दो अंगुल कम करके अपना भाव प्रकट किया।

२. उन्होंने विचार किया कि जहाँ नाम और रूप होते हैं, वहीं बन्धन भी होता है। मुझ परमात्मामें बन्धनकी कल्पना कैसे ? जब कि ये दोनों ही नहीं। दो अंगुलकी कमीका यही रहस्य है।

३. दो वृक्षोंका उद्धार करना है। यही क्रिया सूचित करनेके लिये रस्सी दो अंगुल कम पड़ गयी।

४. भगवत्कृपासे द्वैतानुरागी भी मुक्त हो जाता है और अपङ्ग भी प्रेमसे बँध जाता है। यही दोनों भाव सूचित करनेके लिये रस्सी दो अंगुल कम हो गयी।

५. यशोदा माताने छोटी-बड़ी अनेकों रस्सियाँ अलग-अलग और एक साथ भी भगवान्की कमरमें लगायीं, परन्तु वे पूरी न पड़ीं, क्योंकि भगवान्में छोटे-बड़ेका कोई भेद नहीं है। रस्सियोंने कहा—भगवान्के समान अनन्तता, अनादिता और विभुता हमलोगोंमें नहीं है। इसलिये इनको बाँधनेकी बात बंद करो। अथवा जैसे नदियाँ समुद्रमें समा जाती हैं वैसे ही सारे गुण (सारी रस्सियाँ) अनन्तगुण भगवान्में लीन हो गये, अपना नाम-रूप खो बैठे। ये ही दो भाव सूचित करनेके लिये रस्सियोंमें दो अंगुलकी न्यूनता हुई।

§ वे मन-ही-मन सोचतीं—इसकी कमर मुट्ठीभरकी है, फिर भी सैकड़ों हाथ लंबी रस्सीसे यह नहीं बँधता है। कमर तिलमात्र भी मोटी नहीं होती, रस्सी एक अंगुल भी छोटी नहीं होती, फिर भी वह बँधता नहीं। कैसा आश्चर्य है। हर बार दो अंगुलकी ही कमी होती है, न तीनकी, न चारकी, न एककी। यह कैसा अलौकिक चमत्कार है।

स्वयं ही अपनी माके बन्धनमें बँध गये* ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं। ब्रह्मा, इन्द्र आदिके साथ यह सम्पूर्ण जगत् उनके वशमें है। फिर भी इस प्रकार बँधकर उन्होंने संसारको यह बात दिखला दी कि मैं अपने प्रेमी भक्तोंके वशमें हूँ† ॥ १९ ॥ ग्वालिनी यशोदाने मुक्तिदाता मुकुन्दसे जो कुछ अनिर्वचनीय कृपाप्रसाद प्राप्त किया वह प्रसाद ब्रह्मा पुत्र होनेपर भी, शङ्कर आत्मा होनेपर भी और वक्षःस्थलपर विराजमान लक्ष्मी अर्धाङ्गिनी होनेपर भी न पा सके, न पा सके‡ ॥ २० ॥ यह

*१. भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि जब माके हृदयसे द्वैत-भावना दूर नहीं हो रही है, तब मैं व्यर्थ अपनी असङ्गता क्यों प्रकट करूँ। जो मुझे बद्ध समझता है उसके लिये बद्ध होना ही उचित है। इसलिये वे बँध गये।

२. मैं अपने भक्तके छोटे-से गुणको भी पूर्ण कर देता हूँ—यह सोचकर भगवान्ने यशोदा माताके गुण (रस्सी) को अपने बाँधने योग्य बना लिया।

३. यद्यपि मुझमें अनन्त, अचिन्त्य कल्याण-गुण निवास करते हैं, तथापि तबतक वे अधूरे ही रहते हैं, जबतक मेरे भक्त अपने गुणोंकी मुहर उनपर नहीं लगा देते। यही सोचकर यशोदा मैयाके गुणों (वात्सल्य, स्नेह आदि और रज्जु) से अपनेको पूर्णोदर—दामोदर—बना लिया।

४. भगवान् श्रीकृष्ण इतने कोमलहृदय हैं कि अपने भक्तके प्रेमको पुष्ट करनेवाला परिश्रम भी सहन नहीं करते हैं। वे अपने भक्तको परिश्रमसे मुक्त करनेके लिये स्वयं ही बन्धन स्वीकार कर लेते हैं।

५. भगवान्ने अपने मध्यभागमें बन्धन स्वीकार करके यह सूचित किया कि मुझमें तत्त्वदृष्टिसे बन्धन है ही नहीं; क्योंकि जो वस्तु आगे-पीछे, ऊपर-नीचे नहीं होती, केवल बीचमें भासती है, वह झूठी होती है। इसी प्रकार यह बन्धन भी झूठा है।

६. भगवान् किसीकी शक्ति, साधन या सामग्रीसे नहीं बँधते। यशोदाजीके हाथों श्यामसुन्दरको न बँधते देखकर पास-पड़ोसकी ग्वालिनें इकट्ठी हो गयीं और कहने लगीं—यशोदाजी ! लालाकी कमर तो मुट्ठीभरकी ही है और छोटी-सी किङ्किणी इसमें रुन-झुन कर रही है। अब यह इतनी रस्सियोंसे नहीं बँधता तो जान पड़ता है कि विधाताने इसके ललाटमें बन्धन लिखा ही नहीं है। इसलिये अब तुम यह उद्योग छोड़ दो।

यशोदा मैयाने कहा—चाहे सन्ध्या हो जाय और गाँवभरकी रस्सी क्यों न इकट्ठी करनी पड़े, पर मैं तो इसे बाँधकर ही छोड़ूँगी। यशोदाजीका यह हठ देखकर भगवान्ने अपना हठ छोड़ दिया; क्योंकि जहाँ भगवान् और भक्तके हठमें विरोध होता है, वहाँ भक्तका ही हठ पूरा होता है। भगवान् बँधते हैं तब, जब भक्तकी थकान देखकर कृपापरवश हो जाते हैं। भक्तके श्रम और भगवान्की कृपाकी कमी ही दो अंगुलकी कमी है। अथवा जब भक्त अहंकार करता है कि मैं भगवान्को बाँध लूँगा, तब वह उनसे एक अंगुल दूर पड़ जाता है और भक्तकी नकल करनेवाले भगवान् भी एक अंगुल दूर हो जाते हैं। जब यशोदा माता थक गयीं, उनका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया, तब भगवान्की सर्व-शक्तिचक्रवर्तिनी परम भास्वती भगवती कृपा-शक्तिने भगवान्के हृदयको माखनके समान द्रवित कर दिया और स्वयं प्रकट होकर उसने भगवान्की सत्य-संकल्पितता और विभुताको अन्तर्हित कर दिया। इसीसे भगवान् बँध गये।

† यद्यपि भगवान् स्वयं परमेश्वर हैं, तथापि प्रेम-परवश होकर बँध जाना परम चमत्कारकारी होनेके कारण भगवान्का भूषण ही है, दूषण नहीं।

आत्माराम होनेपर भी भूख लगना, पूर्णकाम होनेपर भी अतृप्त रहना, शुद्ध सत्त्वस्वरूप होनेपर भी क्रोध करना, स्वाराज्य-लक्ष्मीसे युक्त होनेपर भी चोरी करना, महाकाल यम आदिको भय देनेवाले होनेपर भी डरना और भागना, मनसे भी तीव्र गतिवाले होनेपर भी माताके हाथों पकड़ा जाना, आनन्दमय होनेपर भी दुखी होना, रोना, सर्वव्यापक होनेपर भी बँध जाना—यह सब भगवान्की स्वाभाविक भक्तवश्यता है। जो लोग भगवान्को नहीं जानते हैं, उनके लिये तो इसका कुछ उपयोग नहीं है, परन्तु जो श्रीकृष्णको भगवान्के रूपमें पहचानते हैं, उनके लिये यह अत्यन्त चमत्कारकी वस्तु है और यह देखकर—जानकर उनका हृदय द्रवित हो जाता है, भक्तिप्रेमसे सराबोर हो जाता है। अहो ! विश्वेश्वर प्रभु अपने भक्तके हाथों ऊखलमें बँधे हुए हैं !

‡ इस श्लोकमें तीनों नकारोंका अन्वय 'लेभिरे' क्रियाके साथ करना चाहिये। न पा सके, न पा सके, न पा सके।

गोपिकानन्दन भगवान् अनन्यप्रेमी भक्तोंके लिये जितने सुलभ हैं, उतने देहाभिमानी कर्मकाण्डी एवं तपस्वियोंको तथा अपने स्वरूपभूत ज्ञानियोंके लिये भी नहीं हैं* ॥ २१ ॥

इसके बाद नन्दरानी यशोदाजी तो घरके काम-धंधोंमें उलझ गयीं और ऊखलमें बँधे हुए भगवान् श्यामसुन्दरने उन दोनों अर्जुन-वृक्षोंको मुक्ति देनेकी सोची, जो पहले यक्षराज कुबेरके पुत्र थे† ॥ २२ ॥ इनके नाम थे नलकूबर और मणिग्रीव। इनके पास धन, सौन्दर्य और ऐश्वर्यकी पूर्णता थी। इनका घमंड देखकर ही देवर्षि नारदजीने इन्हें शाप दे दिया था और ये वृक्ष हो गये थे‡ ॥ २३ ॥

दसवाँ अध्याय

यमलार्जुनका उद्धार

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आप कृपया यह बतलाइये कि नलकूबर और मणिग्रीवको शाप क्यों मिला। उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिसके कारण परम शान्त देवर्षि नारदजीको भी क्रोध आ गया? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! नलकूबर और मणिग्रीव—ये दोनों एक तो धनाध्यक्ष कुबेरके लाड़ले लड़के थे और दूसरे इनकी गिनती हो गयी रुद्रभगवान्‌के अनुचरोंमें। इससे उनका घमंड बढ़ गया। एक दिन वे दोनों मन्दाकिनीके तटपर कैलासके रमणीय उपवनमें वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो गये थे। नशेके कारण उनकी आँखें घूम रही थीं। बहुत-सी स्त्रियाँ उनके साथ गा-बजा रही थीं और वे पुष्पोंसे लदे हुए वनमें उनके साथ विहार कर रहे थे ॥ २-३ ॥ उस समय गङ्गाजीमें पाँत-के-पाँत कमल खिले हुए थे। वे स्त्रियोंके साथ जलके भीतर घुस गये और जैसे हाथियोंका जोड़ा हथिनियोंके साथ जलक्रीडा कर रहा हो, वैसे ही वे उन युवतियोंके साथ तरह-तरहकी क्रीडा करने लगे ॥ ४ ॥ परीक्षित्! संयोगवश उधरसे परम समर्थ देवर्षि नारदजी आ निकले। उन्होंने उन यक्ष-युवकोंको देखा और समझ लिया कि ये इस समय मतवाले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ देवर्षि नारदको देखकर वस्त्रहीन अप्सराएँ लजा गयीं। शापके डरसे उन्होंने तो अपने-अपने कपड़े झटपट पहन लिये, परन्तु इन यक्षोंने कपड़े नहीं पहने ॥ ६ ॥ जब देवर्षि नारदजीने देखा कि ये देवताओंके पुत्र होकर श्रीमदसे अंधे और मदिरापान करके उन्मत्त हो रहे हैं, तब उन्होंने उनपर अनुग्रह करनेके लिये शाप देते हुए यह कहा—§ ॥ ७ ॥

---

* ज्ञानी पुरुष भी भक्ति करें तो उन्हें इन सगुण भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है, परन्तु बड़ी कठिनाईसे। ऊखल-बँधे भगवान् सगुण हैं। वे निर्गुण प्रेमीको कैसे मिलेंगे?

† स्वयं बँधकर भी बन्धनमें पड़े हुए यक्षोंकी मुक्तिकी चिन्ता करना, सत्पुरुषके सर्वथा योग्य है।

जब यशोदा माताकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर दूसरेपर पड़ती है, तब वे भी किसी दूसरेको देखने लगते हैं और ऐसा ऊधम मचाते हैं कि सबकी दृष्टि उनकी ओर खिंच आये। देखिये, पूतना, शकटासुर, तृणावर्त आदिका प्रसङ्ग।

‡ ये अपने भक्त कुबेरके पुत्र हैं, इसलिये इनका अर्जुन नाम है। ये देवर्षि नारदके द्वारा दृष्टिपूत किये जा चुके हैं, इसलिये भगवान्‌ने उनकी ओर देखा।

जिसे पहले भक्तकी प्राप्ति हो जाती है, उसपर कृपा करनेके लिये स्वयं बँधकर भी भगवान् जाते हैं।

§ देवर्षि नारदके शाप देनेमें दो हेतु थे—एक तो अनुग्रह—उनके मदका नाश करना और दूसरा अर्थ—श्रीकृष्ण-प्राप्ति।

ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिकालदर्शी देवर्षि नारदने अपनी ज्ञानदृष्टिसे यह जान लिया कि इनपर भगवान्‌का अनुग्रह होनेवाला है। इसीसे उन्हें भगवान्‌का भावी कृपापात्र समझकर ही उनके साथ छेड़-छाड़ की।

नारदजीने कहा—जो लोग अपने प्रिय विषयोंका सेवन करते हैं, उनकी बुद्धिको सबसे बढ़कर नष्ट करनेवाला है श्रीमद—धन-सम्पत्तिका नशा। हिंसा आदि रजोगुणी कर्म और कुलीनता आदिका अभिमान भी उससे बढ़कर वैसा बुद्धि-भ्रंशक नहीं है; क्योंकि श्रीमदके साथ-साथ तो स्त्री, जूआ और मदिरा भी रहती है॥ ८॥ ऐश्वर्यमद और श्रीमदसे अंधे होकर अपनी इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले क्रूर पुरुष अपने नाशवान् शरीरको तो अजर-अमर मान बैठते हैं और अपने ही-जैसे शरीरवाले पशुओंकी हत्या करते हैं॥ ९॥ जिस शरीरको 'भूदेव' 'नरदेव' 'देव' आदि नामोंसे पुकारते हैं—उसकी अन्तमें क्या गति होगी? उसमें कीड़े पड़ जायँगे, पक्षी खाकर उसे विष्ठा बना देंगे या वह जलकर राखका ढेर बन जायगा। उसी शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह करनेमें मनुष्य अपना कौन-सा स्वार्थ समझता है? ऐसा करनेसे तो उसे नरककी ही प्राप्ति होगी॥ १०॥ बतलाओ तो सही, यह शरीर किसकी सम्पत्ति है? अन्न देकर पालनेवालेकी है या गर्भाधान करानेवाले पिताकी? यह शरीर उसे नौ महीने पेटमें रखनेवाली माताका है अथवा माताको भी पैदा करनेवाले नानाका? जो बलवान् पुरुष बलपूर्वक इससे काम करा लेता है, उसका है अथवा दाम देकर खरीद लेनेवालेका? चिताकी जिस धधकती आगमें यह जल जायगा, उसका है अथवा जो कुत्ते-स्यार इसको चीथ-चीथकर खा जानेकी आशा लगाये बैठे हैं, उनका?॥ ११॥ यह शरीर एक साधारण-सी वस्तु है। प्रकृतिसे पैदा होता है और उसीमें समा जाता है। ऐसी स्थितिमें मूर्ख पशुओंके सिवा और ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो इसको अपना आत्मा मानकर दूसरोंको कष्ट पहुँचायेगा, उनके प्राण लेगा॥ १२॥ जो दुष्ट श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं, उनकी आँखोंमें ज्योति डालनेके लिये दरिद्रता ही सबसे बड़ा अंजन है; क्योंकि दरिद्र यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे ही-जैसे हैं॥ १३॥ जिसके शरीरमें एक बार काँटा गड़ जाता है, वह नहीं चाहता कि किसी भी प्राणीको काँटा गड़नेकी पीड़ा सहनी पड़े; क्योंकि उस पीड़ा और उसके द्वारा होनेवाले विकारोंसे वह समझता है कि दूसरेको भी वैसी ही पीड़ा होती है। परन्तु जिसे कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसकी पीड़ाका अनुमान नहीं कर सकता॥ १४॥ दरिद्रमें घमंड और हेकड़ी नहीं होती; वह सब तरहके मदोंसे बचा रहता है। बल्कि दैववश उसे जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह उसके लिये एक बहुत बड़ी तपस्या भी है॥ १५॥ जिसे प्रतिदिन भोजनके लिये अन्न जुटाना पड़ता है, भूखसे जिसका शरीर दुबला-पतला हो गया है, उस दरिद्रकी इन्द्रियाँ भी अधिक विषय नहीं भोगना चाहतीं, सूख जाती हैं और फिर वह अपने भोगोंके लिये दूसरे प्राणियोंको सताता नहीं—उनकी हिंसा नहीं करता॥ १६॥ यद्यपि साधु पुरुष समदर्शी होते हैं, फिर भी उनका समागम दरिद्रके लिये ही सुलभ है; क्योंकि उसके भोग तो पहलेसे ही छूटे हुए हैं। अब संतोंके सङ्गसे उसकी लालसा-तृष्णा भी मिट जाती है और शीघ्र ही उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है*॥ १७॥ जिन महात्माओंके चित्तमें सबके लिये समता है, जो केवल भगवान्‌के चरणारविन्दोंका मकरन्द-रस पीनेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं, उन्हें दुर्गुणोंके खजाने अथवा दुराचारियोंकी जीविका चलानेवाले और धनके मदसे मतवाले दुष्टोंकी क्या आवश्यकता है? वे तो उनकी उपेक्षाके ही पात्र हैं†॥ १८॥ ये दोनों यक्ष वारुणी मदिराका पान करके मतवाले और श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं। अपनी इन्द्रियोंके अधीन रहनेवाले इन स्त्री-लम्पट यक्षोंका अज्ञान-जनित मद मैं चूर-चूर कर दूँगा॥ १९॥ देखो तो सही, कितना अनर्थ है कि ये लोकपाल कुबेरके पुत्र होनेपर भी मदोन्मत्त होकर अचेत हो रहे हैं और इनको

---

* धनी पुरुषमें तीन दोष होते हैं—धन, धनका अभिमान और धनकी तृष्णा। दरिद्र पुरुषमें पहले दो नहीं होते, केवल तीसरा ही दोष रहता है। इसलिये सत्पुरुषोंके सङ्गसे धनकी तृष्णा मिट जानेपर धनियोंकी अपेक्षा उसका शीघ्र कल्याण हो जाता है।

† धन स्वयं एक दोष है। सातवें स्कन्धमें कहा है कि जितनेसे पेट भर जाय, उससे अधिकको अपना माननेवाला चोर है और दण्डका पात्र है—'स स्तेनो दण्डमर्हति।' भगवान् भी कहते हैं—जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसका धन छीन लेता हूँ। इसीसे सत्पुरुष प्रायः धनियोंकी उपेक्षा करते हैं।

इस बातका भी पता नहीं है कि हम बिल्कुल नंग-धड़ंग हैं ॥ २० ॥ इसलिये ये दोनों अब वृक्षयोनिमें जानेके योग्य हैं। ऐसा होनेसे इन्हें फिर इस प्रकारका अभिमान न होगा। वृक्षयोनिमें जानेपर भी मेरी कृपासे इन्हें भगवान्‌की स्मृति बनी रहेगी और मेरे अनुग्रहसे देवताओंके सौ वर्ष बीतनेपर इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका सान्निध्य प्राप्त होगा; और फिर भगवान्‌के चरणोंमें परम प्रेम प्राप्त करके ये अपने लोकमें चले आयेंगे ॥ २१-२२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवर्षि नारद इस प्रकार कहकर भगवान् नर-नारायणके आश्रमपर चले गये *। नलकूबर और मणिग्रीव—ये दोनों एक ही साथ अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नामसे प्रसिद्ध हुए ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीकी बात सत्य करनेके लिये धीरे-धीरे ऊखल घसीटते हुए उस ओर प्रस्थान किया, जिधर यमलार्जुन वृक्ष थे ॥ २४ ॥ भगवान्‌ने सोचा कि 'देवर्षि नारद मेरे अत्यन्त प्यारे हैं और ये दोनों भी मेरे भक्त कुबेरके लड़के हैं। इसलिये महात्मा नारदने जो कुछ कहा है, उसे मैं ठीक उसी रूपमें पूरा करूँगा' † ॥ २५ ॥ यह विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमें घुस गये ‡। वे तो दूसरी ओर निकल गये, परन्तु ऊखल टेढ़ा होकर अटक गया ॥ २६ ॥ दामोदर भगवान् श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी कसी हुई थी। उन्होंने अपने पीछे लुढ़कते हुए ऊखलको ज्यों ही तनिक जोरसे खींचा, त्यों ही पेड़ोंकी सारी जड़ें उखड़ गयीं §। समस्त बल-विक्रमके केन्द्र भगवान्‌का तनिक-सा जोर लगते ही पेड़ोंके तने, शाखाएँ, छोटी-छोटी डालियाँ और एक-एक पत्ते काँप उठे और वे दोनों बड़े जोरसे तड़तड़ाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥ उन दोनों वृक्षोंमेंसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष निकले। उनके चमचमाते हुए सौन्दर्यसे दिशाएँ दमक उठीं। उन्होंने सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे— ॥ २८ ॥

उन्होंने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप! सबको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले परम योगेश्वर श्रीकृष्ण! आप प्रकृतिसे अतीत स्वयं पुरुषोत्तम हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण यह बात जानते हैं कि यह व्यक्त और अव्यक्त सम्पूर्ण जगत् आपका ही रूप है ॥ २९ ॥ आप ही समस्त प्राणियोंके शरीर, प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियोंके स्वामी हैं। तथा आप ही सर्वशक्तिमान् काल, सर्वव्यापक एवं अविनाशी ईश्वर हैं ॥ ३० ॥ आप ही महत्तत्त्व और वह प्रकृति हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणरूपा है। आप ही समस्त स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके कर्म, भाव, धर्म और सत्ताको जाननेवाले सबके साक्षी परमात्मा हैं ॥ ३१ ॥ वृत्तियोंसे ग्रहण किये जानेवाले प्रकृतिके गुणों और विकारोंके द्वारा आप पकड़में नहीं आ सकते। स्थूल और सूक्ष्म शरीरके आवरणसे ढका हुआ ऐसा कौन-सा पुरुष है, जो आपको जान सके? क्योंकि आप तो उन शरीरोंके पहले भी एकरस विद्यमान थे ॥ ३२ ॥ समस्त प्रपञ्चके विधाता भगवान् वासुदेवको हम नमस्कार करते हैं। प्रभो! आपके द्वारा प्रकाशित होनेवाले गुणोंसे ही आपने अपनी महिमा छिपा रक्खी है। परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ३३ ॥

---

* १. शाप-वरदानसे तपस्या क्षीण होती है। नलकूबर-मणिग्रीवको शाप देनेके पश्चात् नर-नारायण-आश्रमकी यात्रा करनेका यह अभिप्राय है कि फिरसे तपःसञ्चय कर लिया जाय।

२. मैंने यक्षोंपर जो अनुग्रह किया है, वह बिना तपस्याके पूर्ण नहीं हो सकता है, इसलिये।

३. अपने आराध्यदेव एवं गुरुदेव नारायणके सम्मुख अपना कृत्य निवेदन करनेके लिये।

† भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कृपादृष्टिसे उन्हें मुक्त कर सकते थे। परन्तु वृक्षोंके पास जानेका कारण यह है कि देवर्षि नारदने कहा था कि तुम्हें वासुदेवका सान्निध्य प्राप्त होगा।

‡ वृक्षोंके बीचमें जानेका आशय यह है कि भगवान् जिसके अन्तर्देशमें प्रवेश करते हैं, उसके जीवनमें क्लेशका लेश भी नहीं रहता। भीतर प्रवेश किये बिना दोनोंका एक साथ उद्धार भी कैसे होता।

§ जो भगवान्‌के गुण (भक्त-वात्सल्य आदि सद्‌गुण या रस्सी) से बँधा हुआ है, वह तिर्यक् गति (पशु-पक्षी या टेढ़ी चालवाला) ही क्यों न हो—दूसरोंका उद्धार कर सकता है।

अपने अनुयायीके द्वारा किया हुआ काम जितना यशस्कर होता है, उतना अपने हाथसे नहीं। मानो यही सोचकर अपने पीछे-पीछे चलनेवाले ऊखलके द्वारा उनका उद्धार करवाया।

आप प्राकृत शरीरसे रहित हैं। फिर भी जब आप ऐसे पराक्रम प्रकट करते हैं, जो साधारण शरीरधारियोंके लिये शक्य नहीं हैं और जिनसे बढ़कर तो क्या जिनके समान भी कोई नहीं कर सकता, तब उनके द्वारा उन शरीरोंमें आपके अवतारोंका पता चल जाता है ॥ ३४ ॥ प्रभो ! आप वही समस्त लोकोंके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये इस समय अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे अवतीर्ण हुए हैं। आप समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ ३५ ॥ परम कल्याण (साध्य) स्वरूप ! आपको नमस्कार है। परम मङ्गल (साधन) स्वरूप ! आपको नमस्कार है। परम शान्त, सबके हृदयमें विहार करनेवाले यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णको नमस्कार है ॥ ३६ ॥ अनन्त ! हम आपके दासानुदास हैं। आप यह स्वीकार कीजिये। देवर्षि भगवान् नारदके परम अनुग्रहसे ही हम अपराधियोंको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ प्रभो ! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणोंका वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथामें लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और मन आपके चरण-कमलोंकी स्मृतिमें रम जायँ। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवास-स्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। संत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखें उनके दर्शन करती रहें ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सौन्दर्य-माधुर्यनिधि गोकुलेश्वर श्रीकृष्णने नलकूबर और मणिग्रीवके इस प्रकार स्तुति करनेपर रस्सीसे ऊखलमें बँधे-बँधे ही हँसते हुए* उनसे कहा—॥ ३९ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—तुमलोग श्रीमदसे अंधे हो रहे थे। मैं पहलेसे ही यह बात जानता था कि परम कारुणिक देवर्षि नारदने शाप देकर तुम्हारा ऐश्वर्य नष्ट कर दिया तथा इस प्रकार तुम्हारे ऊपर कृपा की ॥ ४० ॥ जिनकी बुद्धि समदर्शिनी है और हृदय पूर्णरूपसे मेरे प्रति समर्पित है, उन साधु पुरुषोंके दर्शनसे बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होनेपर मनुष्यके नेत्रोंके सामने अन्धकारका होना ॥ ४१ ॥ इसलिये नलकूबर और मणिग्रीव ! तुमलोग मेरे परायण होकर अपने-अपने घर जाओ। तुमलोगोंको संसारचक्रसे छुड़ानेवाले अनन्य भक्तिभावकी, जो तुम्हें अभीष्ट है, प्राप्ति हो गयी है ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनोंने उनकी परिक्रमा की और बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद ऊखलमें बँधे हुए सर्वेश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके उन लोगोंने उत्तर दिशाकी यात्रा की † ॥ ४३ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गोकुलसे वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और बकासुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वृक्षोंके गिरनेसे जो भयङ्कर शब्द हुआ था, उसे नन्दबाबा आदि गोपोंने भी सुना। उनके मनमें यह शङ्का हुई कि कहीं बिजली तो नहीं गिरी ! सब-के-सब भयभीत होकर वृक्षोंके पास आ गये ॥ १ ॥ वहाँ पहुँचनेपर उन लोगोंने देखा कि दोनों अर्जुनके वृक्ष गिरे हुए हैं। यद्यपि वृक्ष गिरनेका कारण स्पष्ट था—वहीं उनके सामने ही रस्सीमें बँधा हुआ बालक ऊखल खींच रहा था, परन्तु वे समझ न

---

* सर्वदा मैं मुक्त रहता हूँ और बद्ध जीव मेरी स्तुति करते हैं। आज मैं बद्ध हूँ और मुक्त जीव मेरी स्तुति कर रहे हैं। यह विपरीत दशा देखकर भगवान्‌को हँसी आ गयी।

† यक्षोंने विचार किया कि जबतक यह स-गुण (रस्सी) में बँधे हुए हैं, तभीतक हमें इनके दर्शन हो रहे हैं। निर्गुणको तो मनसे सोचा भी नहीं जा सकता। इसीसे भगवान्‌के बँधे रहते ही वे चले गये।

स्वस्त्यस्तु उलूखल सर्वदा श्रीकृष्णगुणशाली एव भूयाः।

'ऊखल ! तुम्हारा कल्याण हो, तुम सदा श्रीकृष्णके गुणोंसे बँधे ही रहो।'—ऐसा ऊखलको आशीर्वाद देकर यक्ष वहाँसे चले गये।

सके। 'यह किसका काम है, ऐसी आश्चर्यजनक दुर्घटना कैसे घट गयी?'—यह सोचकर वे कातर हो गये, उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी ॥ २-३ ॥ वहाँ कुछ बालक खेल रहे थे। उन्होंने कहा—'अरे, इसी कन्हैयाका तो काम है। यह दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे होकर निकल रहा था। ऊखल तिरछा हो जानेपर दूसरी ओरसे इसने उसे खींचा और वृक्ष गिर पड़े। हमने तो इनमेंसे निकलते हुए दो पुरुष भी देखे हैं' ॥ ४ ॥ परन्तु गोपोंने बालकोंकी बात नहीं मानी। वे कहने लगे—'एक नन्हा-सा बच्चा इतने बड़े वृक्षोंको उखाड़ डाले, यह कभी सम्भव नहीं है।' किसी-किसीके चित्तमें श्रीकृष्णकी पहलेकी लीलाओंका स्मरण करके सन्देह भी हो आया ॥५॥ नन्दबाबाने देखा, उनका प्राणोंसे प्यारा बच्चा रस्सीसे बँधा हुआ ऊखल घसीटता जा रहा है। वे हँसने लगे और जल्दीसे जाकर उन्होंने रस्सीकी गाँठ खोल दी* ॥६॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् कभी-कभी गोपियोंके फुसलानेसे साधारण बालकोंके समान नाचने लगते। कभी भोले-भाले अनजान बालककी तरह गाने लगते। वे उनके हाथकी कठपुतली—उनके सर्वथा अधीन हो गये थे ॥७॥ कभी उनकी आज्ञासे पीढ़ा ले आते, तो कभी दुसेरी आदि तौलनेके बटखरे उठा लाते। कभी खड़ाऊँ ले आते, तो कभी अपने प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये पहलवानोंकी भाँति ताल ठोंकने लगते ॥ ८ ॥ इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् अपनी बाल-लीलाओंसे व्रजवासियोंको आनन्दित करते और संसारमें जो लोग उनके रहस्यको जाननेवाले हैं, उनको यह दिखलाते कि मैं अपने सेवकोंके वशमें हूँ ॥ ९ ॥

एक दिन कोई फल बेचनेवाली आकर पुकार उठी—'फल, लो फल!' यह सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओंके फल देनेवाले भगवान् अच्युत फल खरीदनेके लिये अपनी छोटी-सी अँजुलीमें अनाज लेकर दौड़ पड़े ॥ १० ॥ उनकी अँजुलीमेंसे अनाज तो रास्तेमें ही बिखर गया, पर फल बेचनेवालीने उनके दोनों हाथ फलसे भर दिये। इधर भगवान्‌ने भी उसकी फल रखनेवाली टोकरी रत्नोंसे भर दी ॥ ११ ॥

तदनन्तर एक दिन यमलार्जुन वृक्षको तोड़नेवाले श्रीकृष्ण और बलराम बालकोंके साथ खेलते-खेलते यमुना-तटपर चले गये और खेलमें ही रम गये, तब रोहिणीदेवीने उन्हें पुकारा 'ओ कृष्ण! ओ बलराम! जल्दी आओ' ॥१२॥ परन्तु रोहिणीके पुकारनेपर भी वे आये नहीं; क्योंकि उनका मन खेलमें लग गया था। जब बुलानेपर भी वे दोनों बालक नहीं आये, तब रोहिणीजीने वात्सल्यस्नेहमयी यशोदाजीको भेजा ॥ १३ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम ग्वालबालोंके साथ बहुत देरसे खेल रहे थे, यशोदाजीने जाकर उन्हें पुकारा। उस समय पुत्रके प्रति वात्सल्यस्नेहके कारण उनके स्तनोंमेंसे दूध चुचुआ रहा था ॥१४॥ वे जोर-जोरसे पुकारने लगीं—'मेरे प्यारे कन्हैया! ओ कृष्ण! कमलनयन! श्यामसुन्दर! बेटा! आओ, अपनी माका दूध पी लो। खेलते-खेलते थक गये हो। बेटा! अब बस करो। देखो तो सही, तुम भूखसे दुबले हो रहे हो ॥ १५ ॥ मेरे प्यारे बेटा राम! तुम तो समूचे कुलको आनन्द देनेवाले हो। अपने छोटे भाईको लेकर जल्दीसे आ जाओ तो! देखो, भाई! आज तुमने बहुत सवेरे कलेऊ किया था। अब तो तुम्हें कुछ खाना चाहिये ॥१६॥ बेटा बलराम! व्रजराज भोजन करनेके लिये बैठ गये हैं; परन्तु अभीतक तुम्हारी बाट देख रहे हैं। आओ, अब हमें आनन्दित करो। बालको! अब तुमलोग भी अपने-अपने घर जाओ ॥ १७ ॥ बेटा! देखो तो सही, तुम्हारा एक-एक अङ्ग धूलसे लथपथ हो रहा है। आओ, जल्दीसे स्नान कर लो। आज तुम्हारा जन्म-नक्षत्र है। पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो ॥१८॥ देखो—देखो! तुम्हारे साथियोंको उनकी माताओंने नहला-धुलाकर, मींज-पोंछकर कैसे सुन्दर-सुन्दर गहने पहना दिये हैं। अब तुम भी नहा-धोकर, खा-पीकर, पहन-

* नन्दबाबा इसलिये हँसे कि कन्हैया कहीं यह सोचकर डर न जाय कि जब माने बाँध दिया, तब पिता कहीं आकर पीटने न लगें।

माताने बाँधा और पिताने छोड़ा। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलासे यह बात सिद्ध हुई कि उनके स्वरूपमें बन्धन और मुक्तिकी कल्पना करनेवाले दूसरे ही हैं। वे स्वयं न बद्ध हैं, न मुक्त हैं।

ओढ़कर तब खेलना' ॥ १९ ॥ परीक्षित्! माता यशोदाका सम्पूर्ण मन-प्राण प्रेम-बन्धनसे बँधा हुआ था। वे चराचर जगत्के शिरोमणि भगवान्को अपना पुत्र समझतीं और इस प्रकार कहकर एक हाथसे बलराम तथा दूसरे हाथसे श्रीकृष्णको पकड़कर अपने घर ले आयीं। इसके बाद उन्होंने पुत्रके मङ्गलके लिये जो कुछ करना था, वह बड़े प्रेमसे किया ॥ २० ॥

जब नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने देखा कि महावनमें तो बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, तब वे लोग इकट्ठे होकर 'अब व्रजवासियोंको क्या करना चाहिये'—इस विषयपर विचार करने लगे ॥ २१ ॥ उनमेंसे एक गोपका नाम था उपनन्द। वे अवस्थामें तो बड़े थे ही, ज्ञानमें भी बड़े थे। उन्हें इस बातका पता था कि किस समय किस स्थानपर किस वस्तुसे कैसा व्यवहार करना चाहिये। साथ ही वे यह भी चाहते थे कि राम और श्याम सुखी रहें, उनपर कोई विपत्ति न आवे। उन्होंने कहा—॥२२॥ 'भाइयो! अब यहाँ ऐसे बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, जो बच्चोंके लिये तो बहुत ही अनिष्टकारी हैं। इसलिये यदि हमलोग गोकुल और गोकुलवासियोंका भला चाहते हैं, तो हमें यहाँसे अपना डेरा-डंडा उठाकर कूच कर देना चाहिये ॥ २३ ॥ देखो, यह सामने बैठा हुआ नन्दरायका लाड़ला सबसे पहले तो बच्चोंके लिये कालस्वरूपिणी हत्यारी पूतनाके चंगुलसे किसी प्रकार छूटा। इसके बाद भगवान्की दूसरी कृपा यह हुई कि इसके ऊपर उतना बड़ा छकड़ा गिरते-गिरते बचा ॥ २४ ॥ बवंडररूपधारी दैत्यने तो इसे आकाशमें ले जाकर बड़ी भारी विपत्ति (मृत्युके मुख) में ही डाल दिया था, परन्तु वहाँसे जब वह चट्टानपर गिरा, तब भी हमारे कुलके देवेश्वरोंने ही इस बालककी रक्षा की ॥ २५ ॥ यमलार्जुन वृक्षोंके गिरनेके समय उनके बीचमें आकर भी यह या और कोई बालक न मरा। इससे भी यही समझना चाहिये कि भगवान्ने हमारी रक्षा की ॥ २६ ॥ इसलिये जबतक कोई बहुत बड़ा अनिष्टकारी अरिष्ट हमें और हमारे व्रजको नष्ट न कर दे, तबतक ही हमलोग अपने बच्चोंको लेकर अनुचरोंके साथ यहाँसे अन्यत्र चले चलें ॥ २७ ॥ 'वृन्दावन' नामका एक वन है। उसमें छोटे-छोटे और भी बहुत-से नये-नये हरे-भरे वन हैं। वहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी-भरी लता-वनस्पतियाँ हैं। हमारे पशुओंके लिये तो वह बहुत ही हितकारी है। गोप, गोपी और गायोंके लिये वह केवल सुविधाका ही नहीं, सेवन करनेयोग्य स्थान है ॥ २८ ॥ सो यदि तुम सब लोगोंको यह बात जँचती हो तो आज ही हमलोग वहाँके लिये कूच कर दें। देर न करें, गाड़ी-छकड़े जोतें और पहले गायोंको, जो हमारी एकमात्र सम्पत्ति हैं, वहाँ भेज दें' ॥ २९ ॥

उपनन्दकी बात सुनकर सभी गोपोंने एक स्वरसे कहा—'बहुत ठीक, बहुत ठीक।' इस विषयमें किसीका भी मतभेद न था। सब लोगोंने अपनी झुंड-की-झुंड गायें इकट्ठी कीं और छकड़ोंपर घरकी सब सामग्री लादकर वृन्दावनकी यात्रा की ॥ ३० ॥ परीक्षित्! ग्वालोंने बूढ़ों, बच्चों, स्त्रियों और सब सामग्रियोंको छकड़ोंपर चढ़ा दिया और स्वयं उनके पीछे-पीछे धनुष-बाण लेकर बड़ी सावधानीसे चलने लगे ॥ ३१ ॥ उन्होंने गौ और बछड़ोंको तो सबसे आगे कर लिया और उनके पीछे-पीछे सींग और तुरही जोर-जोरसे बजाते हुए चले। उनके साथ-ही-साथ पुरोहितलोग भी चल रहे थे ॥ ३२ ॥ गोपियाँ अपने-अपने वक्षःस्थलपर नयी केसर लगाकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गलेमें सोनेके हार धारण किये हुए रथोंपर सवार थीं और बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके गीत गाती जाती थीं ॥ ३३ ॥ यशोदारानी और रोहिणीजी भी वैसे ही सज-धजकर अपने-अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण तथा बलरामके साथ एक छकड़ेपर शोभायमान हो रही थीं। वे अपने दोनों बालकोंकी तोतली बोली सुन-सुनकर भी अघाती न थीं, और-और सुनना चाहती थीं ॥ ३४ ॥ वृन्दावन बड़ा ही सुन्दर वन है। चाहे कोई भी ऋतु हो, वहाँ सुख-ही-सुख है। उसमें प्रवेश करके ग्वालोंने अपने छकड़ोंको अर्द्धचन्द्राकार मण्डल बाँधकर खड़ा कर दिया और अपने गोधनके रहने योग्य स्थान बना लिया ॥ ३५ ॥ परीक्षित्! वृन्दावनका हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके सुन्दर-सुन्दर पुलिनोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके हृदयमें उत्तम प्रीतिका उदय हुआ ॥ ३६ ॥

राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और

अत्यन्त मधुर बालोचित लीलाओंसे गोकुलकी ही तरह वृन्दावनमें भी व्रजवासियोंको आनन्द देते रहे। थोड़े ही दिनोंमें समय आनेपर वे बछड़े चराने लगे ॥ ३७ ॥ दूसरे ग्वालबालोंके साथ खेलनेके लिये बहुत-सी सामग्री लेकर वे घरसे निकल पड़ते और गोष्ठ (गायोंके रहनेके स्थान) के पास ही अपने बछड़ोंको चराते ॥ ३८ ॥ श्याम और राम कहीं बाँसुरी बजा रहे हैं, तो कहीं गुलेल या ढेलवाँससे ढेले या गोलियाँ फेंक रहे हैं। किसी समय अपने पैरोंके घुँघरूपर तान छेड़ रहे हैं, तो कहीं बनावटी गाय और बैल बनकर खेल रहे हैं ॥ ३९ ॥ एक ओर देखिये तो साँड़ बन-बनकर हँकड़ते हुए आपसमें लड़ रहे हैं तो दूसरी ओर मोर, कोयल, बंदर आदि पशु-पक्षियोंकी बोलियाँ निकाल रहे हैं। परीक्षित्! इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् साधारण बालकोंके समान खेलते रहते ॥ ४० ॥

एक दिनकी बात है, श्याम और बलराम अपने प्रेमी सखा ग्वालबालोंके साथ यमुनातटपर बछड़े चरा रहे थे। उसी समय उन्हें मारनेकी नीयतसे एक दैत्य आया ॥ ४१ ॥ भगवान्ने देखा कि वह बनावटी बछड़ेका रूप धारणकर बछड़ोंके झुंडमें मिल गया है। वे आँखोंके इशारेसे बलरामजीको दिखाते हुए धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गये। उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो वे दैत्यको तो पहचानते नहीं और उस हट्टे-कट्टे सुन्दर बछड़ेपर मुग्ध हो गये हैं ॥ ४२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने पूँछके साथ उसके दोनों पिछले पैर पकड़कर आकाशमें घुमाया और मर जानेपर कैथके वृक्षपर पटक दिया। उसका लंबा-तगड़ा दैत्यशरीर बहुत-से कैथके वृक्षोंको गिराकर स्वयं भी गिर पड़ा ॥ ४३ ॥ यह देखकर ग्वालबालोंके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे 'वाह-वाह' करके प्यारे कन्हैयाकी प्रशंसा करने लगे। देवता भी बड़े आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥

परीक्षित्! जो सारे लोकोंके एकमात्र रक्षक हैं, वे ही श्याम और बलराम अब वत्सपाल (बछड़ोंके चरवाहे) बने हुए हैं। वे तड़के ही उठकर कलेवेकी सामग्री ले लेते और बछड़ोंको चराते हुए एक वनसे दूसरे वनमें घूमा करते ॥ ४५ ॥ एक दिनकी बात है, सब ग्वालबाल अपने झुंड-के-झुंड बछड़ोंको पानी पिलानेके लिये जलाशयके तटपर ले गये। उन्होंने पहले बछड़ोंको जल पिलाया और फिर स्वयं भी पिया ॥ ४६ ॥ ग्वालबालोंने देखा कि वहाँ एक बहुत बड़ा जीव बैठा हुआ है। वह ऐसा मालूम पड़ता था, मानो इन्द्रके वज्रसे कटकर कोई पहाड़का टुकड़ा गिरा हुआ है ॥ ४७ ॥ ग्वालबाल उसे देखकर डर गये। वह 'बक' नामका एक बड़ा भारी असुर था, जो बगुलेका रूप धरके वहाँ आया था। उसकी चोंच बड़ी तीखी थी और वह स्वयं बड़ा बलवान् था। उसने झपटकर श्रीकृष्णको निगल लिया ॥ ४८ ॥ जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि वह बड़ा भारी बगुला श्रीकृष्णको निगल गया, तब उनकी वही गति हुई जो प्राण निकल जानेपर इन्द्रियोंकी होती है। वे अचेत हो गये ॥ ४९ ॥ परीक्षित्! श्रीकृष्ण लोकपितामह ब्रह्माके भी पिता हैं। वे लीलासे ही गोपाल-बालक बने हुए हैं। जब वे बगुलेके तालुके नीचे पहुँचे, तब वे आगके समान उसका तालु जलाने लगे। अतः उस दैत्यने श्रीकृष्णके शरीरपर बिना किसी प्रकारका घाव किये ही झटपट उन्हें उगल दिया और फिर बड़े क्रोधसे अपनी कठोर चोंचसे उनपर चोट करनेके लिये टूट पड़ा ॥ ५० ॥ कंसका सखा बकासुर अभी भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णपर झपट ही रहा था कि उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़ लिये और ग्वालबालोंके देखते-देखते खेल-ही-खेलमें उसे वैसे ही चीर डाला, जैसे कोई वीरण (गाँड़र, जिसकी जड़का खस होता है) को चीर डाले। इससे देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ ॥ ५१ ॥ सभी देवता भगवान् श्रीकृष्णपर नन्दनवनके बेला, चमेली आदिके फूल बरसाने लगे तथा नगारे, शङ्ख आदि बजाकर एवं स्तोत्रोंके द्वारा उनको प्रसन्न करने लगे। यह सब देखकर सब-के-सब ग्वालबाल आश्चर्यचकित हो गये ॥ ५२ ॥ जब बलराम आदि बालकोंने देखा कि श्रीकृष्ण बगुलेके मुँहसे निकलकर हमारे पास आ गये हैं, तब उन्हें ऐसा आनन्द हुआ मानो प्राणोंके सञ्चारसे इन्द्रियाँ सचेत और आनन्दित हो गयी हों। सबने भगवान्को अलग-अलग गले लगाया। इसके बाद अपने-अपने बछड़े

हाँककर सब व्रजमें आये और वहाँ उन्होंने घरके लोगोंसे सारी घटना कह सुनायी ॥ ५३ ॥

परीक्षित् ! बकासुरके वधकी घटना सुनकर सब-के-सब गोपी-गोप आश्चर्यचकित हो गये । उन्हें ऐसा जान पड़ा, जैसे कन्हैया साक्षात् मृत्युके मुखसे ही लौटे हों । वे बड़ी उत्सुकता, प्रेम और आदरसे श्रीकृष्णको निहारने लगे । उनके नेत्रोंकी प्यास बढ़ती ही जाती थी, किसी प्रकार उन्हें तृप्ति न होती थी ॥५४॥ वे आपसमें कहने लगे—'हाय ! हाय !! यह कितने आश्चर्यकी बात है । इस बालकको कई बार मृत्युके मुँहमें जाना पड़ा । परन्तु जिन्होंने इसका अनिष्ट करना चाहा, उन्हींका अनिष्ट हुआ । क्योंकि उन्होंने पहलेसे दूसरोंका अनिष्ट किया था ॥ ५५ ॥ यह सब होनेपर भी वे भयङ्कर असुर इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाते । आते हैं इसे मार डालनेकी नीयतसे, किन्तु आगपर गिरकर पतिंगोंकी तरह उलटे स्वयं स्वाहा हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ सच है, ब्रह्मवेत्ता महात्माओंके वचन कभी झूठे नहीं होते । देखो न, महात्मा गर्गाचार्यने जितनी बातें कही थीं, सब-की-सब सोलहों आने ठीक उतर रही हैं' ॥ ५७ ॥ नन्दबाबा आदि गोपगण इसी प्रकार बड़े आनन्दसे अपने श्याम और रामकी बातें किया करते । वे उनमें इतने तन्मय रहते कि उन्हें संसारके दुःख-सङ्कटोंका कुछ पता ही न चलता ॥५८॥ इसी प्रकार श्याम और बलराम ग्वालबालोंके साथ कभी आँखमिचौनी खेलते, तो कभी पुल बाँधते । कभी बंदरोंकी भाँति उछलते-कूदते, तो कभी और कोई विचित्र खेल करते । इस प्रकारके बालोचित खेलोंसे उन दोनोंने व्रजमें अपनी बाल्यावस्था व्यतीत की ॥ ५९ ॥

बारहवाँ अध्याय

अघासुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिन नन्दनन्दन श्यामसुन्दर वनमें ही कलेवा करनेके विचारसे बड़े तड़के उठ गये और सींगकी मधुर मनोहर ध्वनिसे अपने साथी ग्वालबालोंको मनकी बात जनाते हुए उन्हें जगाया और बछड़ोंको आगे करके वे व्रजमण्डलसे निकल पड़े ॥ १ ॥ श्रीकृष्णके साथ ही उनके प्रेमी सहस्रों ग्वालबाल सुन्दर छींके, बेत, सींग और बाँसुरी लेकर तथा अपने सहस्रों बछड़ोंको आगे करके बड़ी प्रसन्नतासे अपने-अपने घरोंसे चल पड़े ॥ २ ॥ उन्होंने श्रीकृष्णके अगणित बछड़ोंमें अपने-अपने बछड़े मिला दिये और स्थान-स्थानपर बालोचित खेल खेलते हुए विचरने लगे ॥ ३ ॥ यद्यपि सब-के-सब ग्वालबाल काँच, घुँघची, मणि और सुवर्णके गहने पहने हुए थे, फिर भी उन्होंने वृन्दावनके लाल-पीले-हरे फलोंसे, नयी-नयी कोंपलोंसे, गुच्छोंसे, रंग-बिरंगे फूलों और मोरपंखोंसे तथा गेरू आदि रंगीन धातुओंसे अपनेको सजा लिया ॥ ४ ॥ कोई किसीका छींका चुरा लेता, तो कोई किसीकी बेत या बाँसुरी । जब उन वस्तुओंके स्वामी-को पता चलता, तब उन्हें लेनेवाला किसी दूसरेके पास दूर फेंक देता, दूसरा तीसरेके और तीसरा और भी दूर चौथेके पास । फिर वे हँसते हुए उन्हें लौटा देते ॥ ५॥ यदि श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण वनकी शोभा देखनेके लिये कुछ आगे बढ़ जाते, तो 'पहले मैं छुऊँगा, पहले मैं छुऊँगा'—इस प्रकार आपसमें होड़ लगाकर सब-के-सब उनकी ओर दौड़ पड़ते और उन्हें छू-छूकर आनन्दमग्न हो जाते ॥ ६ ॥ कोई बाँसुरी बजा रहा है, तो कोई सींग ही फूँक रहा है । कोई-कोई भौंरोंके साथ गुनगुना रहे हैं, तो बहुत-से कोयलोंके स्वरमें स्वर मिलाकर 'कुहू-कुहू' कर रहे हैं ॥ ७ ॥ एक ओर कुछ ग्वालबाल आकाशमें उड़ते हुए पक्षियोंकी छायाके साथ दौड़ लगा रहे हैं, तो दूसरी ओर कुछ हंसोंकी चालकी नकल करते हुए उनके साथ सुन्दर गतिसे चल रहे हैं । कोई बगुलेके पास उसीके समान आँखें मूँदकर बैठ रहे हैं, तो कोई मोरोंको नाचते देख उन्हींकी तरह नाच रहे हैं ॥ ८ ॥ कोई-कोई बंदरोंकी पूँछ पकड़कर खींच रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ इस पेड़से उस पेड़पर चढ़ रहे हैं । कोई-

कोई उनके साथ मुँह बना रहे हैं, तो दूसरे उनके साथ एक डालसे दूसरी डालपर छलाँग मार रहे हैं ॥ ९ ॥ बहुत-से ग्वालबाल तो नदीके कछारमें छपका खेल रहे हैं और उसमें फुदकते हुए मेंढकोंके साथ स्वयं भी फुदक रहे हैं। कोई पानीमें अपनी परछाईं देखकर उसकी हँसी कर रहे हैं, तो दूसरे अपने शब्दकी प्रतिध्वनिको ही बुरा-भला कह रहे हैं ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ज्ञानी संतोंके लिये स्वयं ब्रह्मानन्दके मूर्तिमान् अनुभव हैं। दास्यभावसे युक्त भक्तोंके लिये वे उनके आराध्यदेव, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं। और माया-मोहित विषयान्धोंके लिये वे केवल एक मनुष्य-बालक हैं। उन्हीं भगवान्‌के साथ वे महान् पुण्यात्मा ग्वालबाल तरह-तरहके खेल खेल रहे हैं ॥११॥ बहुत जन्मोंतक श्रम और कष्ट उठाकर जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और अन्तःकरणको वशमें कर लिया है, उन योगियोंके लिये भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी रज अप्राप्य है। वही भगवान् स्वयं जिन व्रजवासी ग्वालबालोंकी आँखोंके सामने रहकर सदा खेल खेलते हैं, उनके सौभाग्यकी महिमा इससे अधिक क्या कही जाय ॥१२॥

परीक्षित्! इसी समय अघासुर नामका महान् दैत्य आ धमका। उससे श्रीकृष्ण और ग्वालबालोंकी सुखमयी क्रीडा देखी न गयी। उसके हृदयमें जलन होने लगी। वह इतना भयङ्कर था कि अमृतपान करके अमर हुए देवता भी उससे अपने जीवनकी रक्षा करनेके लिये चिन्तित रहा करते थे और इस बातकी बाट देखते रहते थे कि किसी प्रकारसे इसकी मृत्युका अवसर आ जाय ॥ १३ ॥ अघासुर पूतना और बकासुरका छोटा भाई तथा कंसका भेजा हुआ था। वह श्रीकृष्ण, श्रीदामा आदि ग्वालबालोंको देखकर मन-ही-मन सोचने लगा कि 'यही मेरे सगे भाई और बहिनको मारनेवाला है। इसलिये आज मैं इन ग्वालबालोंके साथ इसे मार डालूँगा ॥१४॥ जब ये सब मरकर मेरे उन दोनों भाई-बहिनोंके मृत-तर्पणकी तिलाञ्जलि बन जायँगे, तब व्रजवासी अपने-आप मरे-जैसे हो जायँगे। सन्तान ही प्राणियोंके प्राण हैं। जब प्राण ही न रहेंगे, तब शरीर कैसे रहेगा? इसकी मृत्युसे व्रजवासी अपने-आप मर जायँगे' ॥ १५॥ ऐसा निश्चय करके वह दुष्ट दैत्य अजगरका रूप धारण कर मार्गमें लेट गया। उसका वह अजगर-शरीर एक योजन लंबे बड़े पर्वतके समान विशाल एवं मोटा था। वह बहुत ही अद्भुत था। उसकी नीयत सब बालकोंको निगल जानेकी थी, इसलिये उसने गुफाके समान अपना बहुत बड़ा मुँह फाड़ रक्खा था ॥ १६ ॥ उसका नीचेका होठ पृथ्वीसे और ऊपरका होठ बादलोंसे लग रहा था। उसके जबड़े कन्दराओंके समान थे और दाढ़ें पर्वतके शिखर-सी जान पड़ती थीं। मुँहके भीतर घोर अन्धकार था। जीभ एक चौड़ी लाल सड़क-सी दीखती थी। साँस आँधीके समान थी और आँखें दावानलके समान दहक रही थीं ॥ १७ ॥

अघासुरका ऐसा रूप देखकर बालकोंने समझा कि यह भी वृन्दावनकी कोई शोभा है। वे कौतुकवश खेल-ही-खेलमें उत्प्रेक्षा करने लगे कि यह मानो अजगरका खुला हुआ मुँह है ॥ १८ ॥ कोई कहता—'मित्रो! भला, बतलाओ तो, यह जो हमारे सामने कोई जीव-सा बैठा है, यह हमें निगलनेके लिये खुले हुए किसी अजगरके मुँह-जैसा नहीं है?' ॥१९॥ दूसरेने कहा—'सचमुच सूर्यकी किरणें पड़नेसे ये जो बादल लाल-लाल हो गये हैं, वे ऐसे मालूम होते हैं मानो ठीक-ठीक इसका ऊपरी होठ ही हो। और उन्हीं बादलोंकी परछाईंसे यह जो नीचेकी भूमि कुछ लाल-लाल दीख रही है, वही इसका नीचेका होठ जान पड़ता है' ॥ २० ॥ तीसरे ग्वालबालने कहा—'हाँ, सच तो है। देखो तो सही, क्या ये दायीं और बायीं ओरकी गिरि-कन्दराएँ अजगरके जबड़ोंकी होड़ नहीं करतीं? और ये ऊँची-ऊँची शिखर-पंक्तियाँ तो साफ-साफ इसकी दाढ़ें मालूम पड़ती हैं' ॥ २१ ॥ चौथेने कहा—'अरे भाई! यह लंबी-चौड़ी सड़क तो ठीक अजगरकी जीभ-सरीखी मालूम पड़ती है और इन गिरि-शृङ्गोंके बीचका अन्धकार तो उसके मुँहके भीतरी भागको भी मात करता है' ॥ २२ ॥ किसी दूसरे ग्वालबालने कहा—'देखो, देखो! ऐसा जान पड़ता है कि कहीं इधर जंगलमें आग लगी है। इसीसे यह गरम और तीखी हवा आ रही है। परन्तु अजगरकी साँसके साथ इसका क्या ही मेल बैठ गया है। और उसी आगसे जले हुए प्राणियोंकी दुर्गन्ध ऐसी जान पड़ती है, मानो अजगरके

पेटमें मरे हुए जीवोंके मांसकी ही दुर्गन्ध हो' ॥ २३ ॥ तब उन्हींमेंसे एकने कहा—'यदि हमलोग इसके मुँहमें घुस जायँ, तो क्या यह हमें निगल जायगा? अजी! यह क्या निगलेगा। कहीं ऐसा करनेकी ढिठाई की तो एक क्षणमें यह भी बकासुरके समान नष्ट हो जायगा। हमारा यह कन्हैया इसको छोड़ेगा थोड़े ही!' इस प्रकार कहते हुए वे ग्वालबाल बकासुरको मारनेवाले श्रीकृष्णका सुन्दर मुख देखते और ताली पीट-पीटकर हँसते हुए अघासुरके मुँहमें घुस गये ॥ २४ ॥ उन अनजान बच्चोंकी आपसमें की हुई भ्रमपूर्ण बातें सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि 'अरे, इन्हें तो सच्चा सर्प भी झूठा प्रतीत होता है!' परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण जान गये कि यह राक्षस है। भला, उनसे क्या छिपा रहता? वे तो समस्त प्राणियोंके हृदयमें ही निवास करते हैं। अब उन्होंने यह निश्चय किया कि अपने सखा ग्वाल-बालोंको उसके मुँहमें जानेसे बचा लें ॥ २५ ॥ भगवान् इस प्रकार सोच ही रहे थे कि सब-के-सब ग्वालबाल बछड़ोंके साथ उस असुरके पेटमें चले गये। परन्तु अघासुरने अभी उन्हें निगला नहीं। इसका कारण यह था कि अघासुर अपने भाई बकासुर और बहिन पूतनाके वधकी याद करके इस बातकी बाट देख रहा था कि उनको मारनेवाले श्रीकृष्ण मुँहमें आ जायँ, तब सबको एक साथ ही निगल जाऊँ ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबको अभय देनेवाले हैं। जब उन्होंने देखा कि ये बेचारे ग्वालबाल—जिनका एकमात्र रक्षक मैं ही हूँ—मेरे हाथसे निकल गये और जैसे कोई तिनका उड़कर आगमें गिर पड़े, वैसे ही अपने-आप मृत्युरूप अघासुरकी जठराग्निके ग्रास बन गये, तब दैवकी इस विचित्र लीलापर भगवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ और उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया ॥ २७ ॥ वे सोचने लगे कि 'अब मुझे क्या करना चाहिये? ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और इन संत-स्वभाव भोले-भाले बालकोंकी हत्या भी न हो? ये दोनों काम कैसे हो सकते हैं?' परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण भूत, भविष्य, वर्तमान—सबको प्रत्यक्ष देखते रहते हैं। उनके लिये यह उपाय जानना कोई कठिन न था। वे अपना कर्तव्य निश्चय करके स्वयं उसके मुँहमें घुस गये ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंमें छिपे हुए देवता भयवश 'हाय-हाय' पुकार उठे और अघासुरके हितैषी कंस आदि राक्षस हर्ष प्रकट करने लगे ॥ २९ ॥

अघासुर बछड़ों और ग्वालबालोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णको अपनी डाढ़ोंसे चबाकर चूर-चूर कर डालना चाहता था। परन्तु उसी समय अविनाशी श्रीकृष्णने देवताओंकी 'हाय-हाय' सुनकर उसके गलेमें अपने शरीरको बड़ी फुर्तीसे बढ़ा लिया ॥ ३० ॥ इसके बाद भगवान्‌ने अपने शरीरको इतना बड़ा कर लिया कि उसका गला ही रुँध गया। आँखें उलट गयीं। वह व्याकुल होकर बहुत ही छटपटाने लगा। साँस रुककर सारे शरीरमें भर गयी और अन्तमें उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गये ॥ ३१ ॥ उसी मार्गसे प्राणोंके साथ उसकी सारी इन्द्रियाँ भी शरीरसे बाहर हो गयीं। उसी समय भगवान् मुकुन्दने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मरे हुए बछड़ों और ग्वालबालोंको जिला दिया और उन सबको साथ लेकर वे अघासुरके मुँहसे बाहर निकल आये ॥ ३२ ॥ उस अजगरके स्थूल शरीरसे एक अत्यन्त अद्भुत और महान् ज्योति निकली। उस समय उस ज्योतिके प्रकाशसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं। वह थोड़ी देरतक तो आकाशमें स्थित होकर भगवान्‌के निकलनेकी प्रतीक्षा करती रही। जब वे बाहर निकल आये, तब वह सब देवताओंके देखते-देखते उन्हींमें समा गयी ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंने फूल बरसाकर, अप्सराओंने नाचकर, गन्धर्वोंने गाकर, विद्याधरोंने बाजे बजाकर, ब्राह्मणोंने स्तुति-पाठकर और पार्षदोंने जय-जयकारके नारे लगाकर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन किया। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने अघासुरको मारकर उन सबका बहुत बड़ा काम किया था ॥ ३४ ॥ उन अद्भुत स्तुतियों, सुन्दर बाजों, मङ्गलमय गीतों, जय-जयकार और आनन्दोत्सवोंकी मङ्गलध्वनि ब्रह्मलोकके पास पहुँच गयी। जब ब्रह्माजीने वह ध्वनि सुनी, तब वे बहुत ही शीघ्र अपने वाहनपर चढ़कर वहाँ आये और भगवान् श्रीकृष्णकी यह महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो गये ॥ ३५ ॥ परीक्षित्! जब वृन्दावनमें अजगरका वह चाम सूख गया, तब वह व्रजवासियोंके लिये बहुत दिनोंतक खेलनेकी

एक अद्भुत गुफा-सी बना रहा ॥ ३६ ॥ यह जो भगवान्ने अपने ग्वालबालोंको मृत्युके मुखसे बचाया था और अघासुरको मोक्ष-दान किया था, वह लीला भगवान्ने अपनी कुमार अवस्थामें अर्थात् पाँचवें वर्षमें ही की थी। ग्वालबालोंने उसे उसी समय देखा भी था, परन्तु पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्षमें अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर व्रजमें उसका वर्णन किया ॥ ३७ ॥ अघासुर मूर्तिमान् अघ-(पाप) ही था। भगवान्के स्पर्शमात्रसे उसके सारे पाप धुल गये और उसे उस सारूप्य-मुक्तिकी प्राप्ति हुई, जो पापियोंको कभी मिल नहीं सकती। परन्तु यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि मनुष्य-बालककी-सी लीला रचनेवाले ये वे ही परमपुरुष परमात्मा हैं, जो व्यक्त-अव्यक्त और कार्य-कारणरूप समस्त जगत्के एकमात्र विधाता हैं ॥ ३८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके किसी एक अङ्गकी भावनिर्मित प्रतिमा यदि ध्यानके द्वारा एक बार भी हृदयमें बैठा ली जाय, तो वह सालोक्य, सामीप्य आदि गतिका दान करती है, जो भगवान्के बड़े-बड़े भक्तोंको मिलती है। भगवान् आत्मानन्दके नित्य साक्षात्कारस्वरूप हैं। माया उनके पासतक नहीं फटक पाती। वे ही स्वयं अघासुरके शरीरमें प्रवेश कर गये। क्या अब भी उसकी सद्गतिके विषयमें कोई सन्देह है ? ॥ ३९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने ही राजा परीक्षित्को जीवन-दान दिया था। उन्होंने जब अपने रक्षक एवं जीवनसर्वस्वका यह विचित्र चरित्र सुना, तब उन्होंने फिर श्रीशुकदेवजी महाराजसे उन्हींकी पवित्र लीलाके सम्बन्धमें प्रश्न किया। इसका कारण यह था कि भगवान्की अमृतमयी लीलाने परीक्षित्के चित्तको अपने वशमें कर रक्खा था ॥ ४० ॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! आपने कहा था कि ग्वालबालोंने भगवान्की की हुई पाँचवें वर्षकी लीला व्रजमें छठे वर्षमें जाकर कही। अब इस विषयमें आप कृपा करके यह बतलाइये कि एक समयकी लीला दूसरे समयमें वर्तमानकालीन कैसे हो सकती है ? ॥ ४१ ॥ महायोगी गुरुदेव ! मुझे इस आश्चर्यपूर्ण रहस्यको जाननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है। आप कृपा करके बतलाइये। अवश्य ही इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विचित्र घटनाओंको घटित करनेवाली मायाका कुछ-न-कुछ काम होगा। क्योंकि और किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सकता ॥ ४२ ॥ गुरुदेव ! यद्यपि क्षत्रियोचित धर्म ब्राह्मण-सेवासे विमुख होनेके कारण मैं अपराधी नाममात्रका क्षत्रिय हूँ, तथापि हमारा अहोभाग्य है कि हम आपके मुखारविन्दसे निरन्तर झरते हुए परम पवित्र मधुमय श्रीकृष्णलीलामृतका बार-बार पान कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान्के परम प्रेमी भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकजी ! जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब श्रीशुकदेवजीको भगवान्की वह लीला स्मरण हो आयी। और उनकी समस्त इन्द्रियाँ तथा अन्तः-करण विवश होकर भगवान्की नित्यलीलामें खिंच गये। कुछ समयके बाद धीरे-धीरे श्रम और कष्टसे उन्हें बाह्यज्ञान हुआ। तब वे परीक्षित्से भगवान्की लीलाका वर्णन करने लगे ॥ ४४ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! तुम बड़े भाग्यवान् हो। भगवान्के प्रेमी भक्तोंमें तुम्हारा स्थान श्रेष्ठ है। तभी तो तुमने इतना सुन्दर प्रश्न किया है। यों तो तुम्हें बार-बार भगवान्की लीला-कथाएँ सुननेको मिलती हैं, फिर भी तुम उनके सम्बन्धमें प्रश्न करके उन्हें और भी सरस—और भी नूतन बना देते हो ॥ १ ॥ रसिक संतोंकी वाणी, कान और हृदय भगवान्की लीलाके गान, श्रवण और चिन्तनके लिये ही होते हैं—उनका यह स्वभाव ही होता है कि वे क्षण-प्रतिक्षण भगवान्की लीलाओंको अपूर्व रसमयी और नित्य-नूतन अनुभव करते रहें—ठीक वैसे ही, जैसे लम्पट पुरुषोंको स्त्रियोंकी चर्चामें नया-नया रस जान

पड़ता है ॥ २ ॥ परीक्षित् ! तुम एकाग्र चित्तसे श्रवण करो । यद्यपि भगवान्‌की यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है, फिर भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ । क्योंकि दयालु आचार्य-गण अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त रहस्य भी बतला दिया करते हैं ॥ ३ ॥ यह तो मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंको मृत्यु-रूप अघासुरके मुँहसे बचा लिया । इसके बाद वे उन्हें यमुनाके पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—॥४॥ 'मेरे प्यारे मित्रो ! यमुनाजीका यह पुलिन अत्यन्त रमणीय है । देखो तो सही, यहाँकी बालू कितनी कोमल और स्वच्छ है ! हमलोगोंके लिये खेलनेकी तो यहाँ सभी सामग्री विद्यमान है । देखो, एक ओर रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं और उनकी सुगन्धसे खिंचकर भौंरे गुंजार कर रहे हैं; तो दूसरी ओर सुन्दर-सुन्दर पक्षी बड़ा ही मधुर कलरव कर रहे हैं, जिसकी प्रतिध्वनिसे सुशोभित वृक्ष इस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ ५ ॥ अब हमलोगोंको यहाँ भोजन कर लेना चाहिये । क्योंकि दिन बहुत चढ़ आया है और हमलोग भूखसे पीड़ित हो रहे हैं । बछड़े पानी पीकर समीप ही धीरे-धीरे हरी-हरी घास चरते रहें' ॥ ६ ॥

ग्वालबालोंने एक स्वरसे कहा—'ठीक है, ठीक है !' उन्होंने बछड़ोंको पानी पिलाकर हरी-हरी घासमें छोड़ दिया और अपने-अपने छींके खोल-खोलकर भगवान्‌के साथ बड़े आनन्दसे भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ सबके बीचमें भगवान् श्रीकृष्ण बैठ गये । उनके चारों ओर ग्वालबालोंने बहुत-सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बना लीं और एक-से-एक सटकर बैठ गये । सबके मुँह श्रीकृष्णकी ओर थे और सबकी आँखें आनन्दसे खिल रही थीं । वन-भोजनके समय श्रीकृष्णके साथ बैठे हुए ग्वालबाल ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो कमलकी कर्णिकाके चारों ओर उसकी छोटी-बड़ी पँखुड़ियाँ सुशोभित हो रही हों ॥ ८ ॥ कोई पुष्प तो कोई पत्ते और कोई-कोई पल्लव, अंकुर, फल, छींके, छाल एवं पत्थरोंके पात्र बनाकर भोजन करने लगे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और ग्वालबाल सभी परस्पर अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न रुचिका प्रदर्शन करते । कोई किसीको हँसा देता, तो कोई स्वयं ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता । इस प्रकार वे सब भोजन करने लगे ॥ १० ॥ (उस समय श्रीकृष्णकी छटा सबसे निराली थी ।) उन्होंने मुरलीको तो कमरकी फेंटमें आगेकी ओर खोंस लिया था। सींग और बेत बगलमें दबा लिये थे । बायें हाथमें बड़ा ही मधुर घृतमिश्रित दही-भातका ग्रास था और अँगुलियोंमें अदरक, नीबू आदिके अचार-मुरब्बे दबा रक्खे थे । ग्वालबाल उनको चारों ओरसे घेरकर बैठे हुए थे और वे स्वयं सबके बीचमें बैठकर अपनी विनोदभरी बातोंसे अपने साथी ग्वालबालोंको हँसाते जा रहे थे । जो समस्त यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता हैं, वे ही भगवान् ग्वाल-बालोंके साथ बैठकर इस प्रकार बाल-लीला करते हुए भोजन कर रहे थे और स्वर्गके देवता आश्चर्यचकित होकर यह अद्भुत लीला देख रहे थे ॥ ११ ॥

भरतवंशशिरोमणे ! इस प्रकार भोजन करते-करते ग्वालबाल भगवान्‌की इस रसमयी लीलामें तन्मय हो गये । उसी समय उनके बछड़े हरी-हरी घासके लालचसे घोर जंगलमें बड़ी दूर निकल गये ॥ १२ ॥ जब ग्वालबालों-का ध्यान उस ओर गया, तब तो वे भयभीत हो गये । उस समय अपने भक्तोंके भयको भगा देनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मेरे प्यारे मित्रो ! तुमलोग भोजन करना बंद मत करो । मैं अभी बछड़ोंको लिये आता हूँ' ॥ १३ ॥ ग्वालबालोंसे इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण हाथमें दही-भातका कौर लिये ही पहाड़ों, गुफाओं, कुञ्जों एवं अन्यान्य भयङ्कर स्थानोंमें अपने तथा साथियोंके बछड़ोंको ढूँढ़ने चल दिये ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! ब्रह्माजी पहलेसे ही आकाशमें उपस्थित थे । प्रभुके प्रभावसे अघासुरका मोक्ष देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने सोचा कि लीलासे मनुष्य-बालक बने हुए भगवान् श्रीकृष्णकी कोई और मनोहर महिमामयी लीला देखनी चाहिये । ऐसा सोचकर उन्होंने पहले तो बछड़ोंको, और भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर ग्वालबालोंको भी, अन्यत्र ले जाकर रख दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये । अन्ततः वे जड कमलकी ही तो सन्तान हैं ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण बछड़े न मिलनेपर यमुनाजीके पुलिनपर लौट आये, परन्तु यहाँ क्या देखते हैं कि

ग्वालबाल भी नहीं हैं। तब उन्होंने वनमें घूम-घूमकर चारों ओर उन्हें ढूँढ़ा ॥ १६ ॥ परन्तु जब ग्वालबाल और बछड़े उन्हें कहीं न मिले, तब वे तुरंत जान गये कि यह सब ब्रह्माकी करतूत है। वे तो सारे विश्वके एकमात्र ज्ञाता हैं ॥ १७ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णने बछड़ों और ग्वालबालोंकी माताओंको तथा ब्रह्माजीको भी आनन्दित करनेके लिये अपने-आपको ही बछड़ों और ग्वालबालों—दोनोंके रूपमें बना लिया*। क्योंकि वे ही तो सम्पूर्ण विश्वके कर्ता सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं ॥ १८ ॥ परीक्षित्! वे बालक और बछड़े संख्यामें जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे, उनके हाथ-पैर जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ, सींग, बाँसुरी, पत्ते और छींके थे, जैसे और जितने वस्त्राभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते-पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपोंमें सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है'—यह वेदवाणी मानो मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी ॥ १९ ॥ सर्वात्मा भगवान् स्वयं ही बछड़े बन गये और स्वयं ही ग्वालबाल। अपने आत्मस्वरूप बछड़ोंको अपने आत्मस्वरूप ग्वालबालोंके द्वारा घेरकर अपने ही साथ अनेकों प्रकारके खेल खेलते हुए उन्होंने व्रजमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ परीक्षित्! जिस ग्वालबालके जो बछड़े थे, उन्हें उसी ग्वालबालके रूपसे अलग-अलग ले जाकर उसकी बाखलमें घुसा दिया और विभिन्न बालकोंके रूपमें उनके भिन्न-भिन्न घरोंमें चले गये ॥ २१ ॥

ग्वालबालोंकी माताएँ बाँसुरीकी तान सुनते ही जल्दी-से दौड़ आयीं। ग्वालबाल बने हुए परब्रह्म श्रीकृष्णको अपने बच्चे समझकर हाथोंसे उठाकर उन्होंने जोरसे हृदयसे लगा लिया। वे अपने स्तनोंसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण सुधासे भी मधुर और आसवसे भी मादक चुचुवाता हुआ दूध उन्हें पिलाने लगीं ॥ २२ ॥ परीक्षित्! इसी प्रकार प्रतिदिन सन्ध्यासमय भगवान् श्रीकृष्ण उन ग्वालबालोंके रूपमें वनसे लौट आते और अपनी बालसुलभ लीलाओंसे माताओंको आनन्दित करते। वे माताएँ उन्हें उबटन लगातीं, नहलातीं चन्दनका लेप करतीं और अच्छे-अच्छे वस्त्रों तथा गहनोंसे सजातीं। दोनों भौंहोंके बीचमें डीठसे बचानेके लिये काजलका डिठौना लगा देतीं तथा भोजन करातीं और तरह-तरहसे बड़े लाड़-प्यारसे उनका लालन-पालन करतीं ॥ २३ ॥ ग्वालिनोंके समान गौएँ भी जब जंगलोंमेंसे चरकर जल्दी-जल्दी लौटतीं और उनकी हुंकार सुनकर उनके प्यारे बछड़े दौड़कर उनके पास आ जाते, तब वे बार-बार उन्हें अपनी जीभसे चाटतीं और अपना दूध पिलातीं। उस समय स्नेहकी अधिकताके कारण उनके थनोंसे स्वयं ही दूधकी धारा बहने लगती ॥ २४ ॥ इन गायों और ग्वालिनोंका मातृभाव पहले-जैसा ही ऐश्वर्यज्ञानरहित और विशुद्ध था। हाँ, अपने असली पुत्रोंकी अपेक्षा इस समय उनका स्नेह अवश्य अधिक था। इसी प्रकार भगवान् भी उनके पहले पुत्रोंके समान ही पुत्रभाव दिखला रहे थे, परन्तु भगवान्में उन बालकों-के-जैसा मोहका भाव नहीं था कि मैं इनका पुत्र हूँ ॥ २५ ॥ अपने-अपने बालकोंके प्रति व्रजवासियोंकी स्नेह-लता दिन-प्रतिदिन एक वर्षतक धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। यहाँतक कि पहले श्रीकृष्णमें उनका जैसा असीम और अपूर्व प्रेम था, वैसा ही अपने इन बालकोंके प्रति भी हो गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार सर्वात्मा श्रीकृष्ण बछड़े और ग्वालबालोंके बहाने गोपाल बनकर अपने बालकरूपसे वत्सरूपका पालन करते हुए एक वर्षतक वन और गोष्ठमें क्रीडा करते रहे ॥ २७ ॥

जब एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच-छः रातें शेष थीं, तब एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ बछड़ोंको चराते हुए वनमें गये ॥ २८ ॥ उस समय गौएँ गोवर्धनकी चोटीपर घास चर रही थीं। वहाँसे उन्होंने व्रजके पास ही घास चरते हुए बहुत दूर अपने बछड़ोंको देखा ॥ २९ ॥ बछड़ोंको देखते ही गौओंका वात्सल्य-स्नेह उमड़ आया। वे अपने-

* भगवान् सर्वसमर्थ हैं। वे ब्रह्माजीके चुराये हुए ग्वालबाल और बछड़ोंको ला सकते थे। किन्तु इससे ब्रह्माजीका मोह दूर न होता और वे भगवान्‌की उस दिव्य मायाका ऐश्वर्य न देख सकते, जिसने उनके विश्वकर्ता होनेके अभिमानको नष्ट किया। इसीलिये भगवान् उन्हीं ग्वालबाल और बछड़ोंको न लाकर स्वयं ही वैसे ही एवं उतने ही ग्वालबाल और बछड़े बन गये।

आपकी सुध-बुध खो बैठीं और ग्वालोंके रोकनेकी कुछ भी परवा न कर जिस मार्गसे वे न जा सकते थे, उस मार्गसे हुंकार करती हुई बड़े वेगसे दौड़ पड़ीं। उस समय उनके थनोंसे दूध बहता जाता था और उनकी गरदनें सिकुड़कर डीलसे मिल गयी थीं। वे पूँछ तथा सिर उठाकर इतने वेगसे दौड़ रही थीं कि मालूम होता था मानो उनके दो ही पैर हैं ॥ ३० ॥ जिन गौओंके और भी बछड़े हो चुके थे, वे भी गोवर्धनके नीचे अपने पहले बछड़ोंके पास दौड़ आयीं और उन्हें स्नेहवश अपने-आप बहता हुआ दूध पिलाने लगीं। उस समय वे अपने बच्चोंका एक-एक अङ्ग ऐसे चावसे चाट रही थीं, मानो उन्हें अपने पेटमें रख लेंगी ॥ ३१ ॥ गोपोंने उन्हें रोकनेका बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ रहा। उन्हें अपनी विफलतापर कुछ लज्जा और गायोंपर बड़ा क्रोध आया। जब वे बहुत कष्ट उठाकर उस कठिन मार्गसे उस स्थानपर पहुँचे, तब उन्होंने बछड़ोंके साथ अपने बालकोंको भी देखा ॥ ३२ ॥ अपने बच्चोंको देखते ही उनका हृदय प्रेम-रससे सराबोर हो गया। बालकोंके प्रति अनुरागकी बाढ़ आ गयी, उनका क्रोध न जाने कहाँ हवा हो गया। उन्होंने अपने-अपने बालकोंको गोदमें उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर अत्यन्त आनन्दित हुए॥३३॥ बूढ़े गोपोंको अपने बालकोंके आलिङ्गनसे परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे निहाल हो गये। फिर बड़े कष्टसे उन्हें छोड़कर धीरे-धीरे वहाँसे गये। जानेके बाद भी बालकोंके और उनके आलिङ्गनके स्मरणसे उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहते रहे ॥ ३४ ॥

बलरामजीने देखा कि व्रजवासी गोप, गौएँ और ग्वालिनोंकी उन सन्तानोंपर भी, जिन्होंने अपनी माका दूध पीना छोड़ दिया है, क्षण-प्रतिक्षण प्रेम-सम्पत्ति और उसके अनुरूप उत्कण्ठा बढ़ती ही जा रही है। तब वे विचारमें पड़ गये, क्योंकि उन्हें इसका कारण मालूम न था ॥ ३५ ॥ 'यह कैसी विचित्र बात है! सर्वात्मा श्रीकृष्णमें व्रजवासियोंका और मेरा जैसा अपूर्व स्नेह है, वैसा ही इन बालकों और बछड़ोंपर भी बढ़ता जा रहा है ॥ ३६ ॥ यह कौन-सी माया है? कहाँसे आयी है? यह किसी देवताकी है, मनुष्यकी है अथवा असुरोंकी? परन्तु क्या ऐसा भी सम्भव है? नहीं-नहीं, यह तो मेरे प्रभुकी ही माया है। और किसीकी मायामें ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो मुझे भी मोहित कर ले' ॥ ३७ ॥ बलरामजीने ऐसा विचार करके ज्ञानदृष्टिसे देखा, तो उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि इन सब बछड़ों और ग्वालबालोंके रूपमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं ॥३८॥ तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्! ये ग्वालबाल और बछड़े न देवता हैं और न तो कोई ऋषि ही। इन भिन्न-भिन्न रूपोंका आश्रय लेनेपर भी आप अकेले ही इन रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं। कृपया स्पष्ट करके थोड़ेमें ही यह बतला दीजिये कि आप इस प्रकार बछड़े, बालक, सींग, रस्सी आदिके रूपमें अलग-अलग क्यों प्रकाशित हो रहे हैं?' तब भगवान्ने ब्रह्माकी सारी करतूत सुनायी और बलरामजीने सब बातें जान लीं ॥ ३९ ॥

परीक्षित्! तबतक ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे व्रजमें लौट आये। उनके कालमानसे अबतक केवल एक त्रुटि (जितनी देरमें तीखी सूईसे कमलकी पँखुड़ी छिदे) समय व्यतीत हुआ था। उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबाल और बछड़ोंके साथ एक सालसे पहलेकी भाँति ही क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४० ॥ वे सोचने लगे—'गोकुलमें जितने भी ग्वालबाल और बछड़े थे, वे तो मेरी मायामयी शय्यापर सो रहे हैं—उनको तो मैंने अपनी मायासे अचेत कर दिया था; वे तबसे अबतक सचेत नहीं हुए ॥ ४१ ॥ तब मेरी मायासे मोहित ग्वालबाल और बछड़ोंके अतिरिक्त ये उतने ही दूसरे बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये, जो एक सालसे भगवान्के साथ खेल रहे हैं? ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजीने दोनों स्थानोंपर दोनोंको देखा और बहुत देरतक ध्यान करके अपनी ज्ञानदृष्टिसे उनका रहस्य खोलना चाहा; परन्तु इन दोनोंमें कौन-से पहलेके ग्वालबाल हैं और कौन-से पीछे बना लिये गये हैं, इनमेंसे कौन सच्चे हैं और कौन बनावटी—यह बात वे किसी प्रकार न समझ सके॥४३॥ भगवान् श्रीकृष्णकी मायामें तो सभी मुग्ध हो रहे हैं, परन्तु कोई भी माया-मोह भगवान्का स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्माजी उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायासे

मोहित करने चले थे। किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होनेपर भी अपनी ही मायासे अपने-आप मोहित हो गये ॥ ४४ ॥ जिस प्रकार रातके घोर अन्धकारमें कुहरेके अन्धकारका और दिनके प्रकाशमें जुगनूके प्रकाशका पता नहीं चलता, वैसे ही जब क्षुद्र पुरुष महापुरुषोंपर अपनी मायाका प्रयोग करते हैं, तब वह उनका तो कुछ बिगाड़ नहीं सकती, अपना ही प्रभाव खो बैठती है ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते उसी क्षण सभी ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़ने लगे। सब-के-सब सजल जलधरके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे युक्त—चतुर्भुज। सबके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कण्ठोंमें मनोहर हार तथा वनमालाएँ शोभायमान हो रही थीं ॥ ४६-४७ ॥ उनके वक्षःस्थलपर सुवर्णकी सुनहली रेखा—श्रीवत्स, बाहुओंमें बाजूबंद, कलाइयोंमें शङ्खाकार रत्नोंसे जड़े कंगन, चरणोंमें नूपुर और कड़े, कमरमें करधनी तथा अँगुलियोंमें अँगूठियाँ जगमगा रही थीं ॥ ४८ ॥ वे नखसे शिखतक समस्त अङ्गोंमें कोमल और नूतन तुलसीकी मालाएँ, जो उन्हें बड़े भाग्यशाली भक्तोंने पहनायी थीं, धारण किये हुए थे ॥ ४९ ॥ उनकी मुसकान चाँदनीके समान उज्ज्वल थी और रतनारे नेत्रोंकी कटाक्षपूर्ण चितवन बड़ी ही मधुर थी। ऐसा जान पड़ता था मानो वे इन दोनोंके द्वारा सत्त्वगुण और रजोगुणको स्वीकार करके भक्तजनोंके हृदयमें शुद्ध लालसाएँ जगाकर उनको पूर्ण कर रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उन्हींके-जैसे दूसरे ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी चराचर जीव मूर्तिमान् होकर नाचते-गाते अनेक प्रकारकी पूजासामग्रीसे अलग-अलग भगवान्‌के उन सब रूपोंकी उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ उन्हें अलग-अलग अणिमा-महिमा आदि सिद्धियाँ, माया-विद्या आदि विभूतियाँ और महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व चारों ओरसे घेरे हुए हैं ॥ ५२ ॥ प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल, उसके परिणामका कारण स्वभाव, वासनाओंको जगानेवाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म, विषय और फल—सभी मूर्तिमान् होकर भगवान्‌के प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे हैं। भगवान्‌की सत्ता और महत्ताके सामने उन सभीकी सत्ता और महत्ता अपना अस्तित्व खो बैठी थी ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजीने यह भी देखा कि वे सभी भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके द्वारा सीमित नहीं हैं, त्रिकालाबाधित सत्य हैं। वे सब-के-सब स्वयंप्रकाश और केवल अनन्त आनन्दस्वरूप हैं। उनमें जडता अथवा चेतनताका भेदभाव नहीं है। वे सब-के-सब एकरस हैं। यहाँतक कि उपनिषद्दर्शी तत्त्वज्ञानियोंकी दृष्टि भी उनकी अनन्त महिमाका स्पर्श नहीं कर सकती ॥ ५४ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ ही देखा कि वे सब-के-सब उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके ही स्वरूप हैं, जिनके प्रकाशसे यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है ॥ ५५ ॥

यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी तो चकित रह गये। उनकी ग्यारहों इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) क्षुब्ध एवं स्तब्ध रह गयीं। वे भगवान्‌के तेजसे निस्तेज होकर मौन हो गये। उस समय वे ऐसे स्तब्ध होकर खड़े रह गये, मानो व्रजके अधिष्ठातृ-देवताके पास एक पुतली खड़ी हो ॥ ५६ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌का स्वरूप तर्कसे परे है। उसकी महिमा असाधारण है। वह स्वयंप्रकाश, आनन्दस्वरूप और मायासे अतीत है। वेदान्त भी साक्षात्‌रूपसे उसका वर्णन करनेमें असमर्थ है, इसलिये उससे भिन्नका निषेध करके आनन्दस्वरूप ब्रह्मका किसी प्रकार कुछ सङ्केत करता है। यद्यपि ब्रह्माजी समस्त विद्याओंके अधिपति हैं, तथापि भगवान्‌के दिव्यस्वरूपको वे तनिक भी न समझ सके कि यह क्या है। यहाँतक कि वे भगवान्‌के उन महिमामय रूपोंको देखनेमें भी असमर्थ हो गये। उनकी आँखें मुँद गयीं। भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माके इस मोह और असमर्थताको जानकर बिना किसी प्रयासके तुरंत अपनी मायाका परदा हटा दिया ॥ ५७ ॥ इससे ब्रह्माजीको बाह्यज्ञान हुआ। वे मानो मरकर फिर जी उठे। सचेत होकर उन्होंने ज्यों-त्यों करके बड़े कष्टसे अपने नेत्र खोले। तब कहीं उन्हें अपना शरीर और यह जगत् दिखायी पड़ा ॥ ५८ ॥ फिर ब्रह्माजी जब चारों ओर देखने लगे, तब पहले दिशाएँ और उसके बाद तुरंत ही उनके सामने वृन्दावन

ब्रह्माजीकी भगवान्से दीनतापूर्ण क्षमा-प्रार्थना [पृष्ठ ६०७

दिखायी पड़ा। वृन्दावन सबके लिये एक-सा प्यारा है। जिधर देखिये, उधर ही जीवोंको जीवन देनेवाले फल और फूलोंसे लदे हुए, हरे-हरे पत्तोंसे लहलहाते हुए वृक्षोंकी पाँतें शोभा पा रही हैं ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण वृन्दावन धाममें क्रोध, तृष्णा आदि दोष प्रवेश नहीं कर सकते और वहाँ स्वभावसे ही परस्पर दुस्त्यज वैर रखनेवाले मनुष्य और पशु-पक्षी भी प्रेमी मित्रोंके समान हिल-मिलकर एक साथ रहते हैं ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने वृन्दावनका दर्शन करनेके बाद देखा कि अद्वितीय परब्रह्म गोपवंशके बालकका-सा नाट्य कर रहा है। एक होनेपर भी उसके सखा हैं, अनन्त होनेपर भी वह इधर-उधर घूम रहा है और उसका ज्ञान अगाध होनेपर भी वह अपने ग्वालबाल और बछड़ोंको ढूँढ़ रहा है। ब्रह्माजीने देखा कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण पहले अपने हाथमें दही-भातका कौर लिये उन्हें ढूँढ़ रहे थे, वैसे ही अब भी अकेले ही उनकी खोजमें लगे हैं ॥ ६१ ॥ भगवान्‌को देखते ही ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपरसे कूद पड़े और सोनेके समान चमकते हुए अपने शरीरसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। उन्होंने अपने चारों मुकुटोंके अग्रभागसे भगवान्‌के चरण-कमलोंका स्पर्श करके नमस्कार किया और आनन्दके आँसुओंकी धारासे उन्हें नहला दिया ॥ ६२ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णकी पहले देखी हुई महिमाका बार-बार स्मरण करते, उनके चरणोंपर गिरते और उठ-उठकर फिर-फिर गिर पड़ते। इसी प्रकार बहुत देरतक वे भगवान्‌के चरणोंमें ही पड़े रहे ॥ ६३ ॥ फिर धीरे-धीरे उठे और अपने नेत्रोंके आँसू पोंछे। प्रेम और मुक्तिके एकमात्र उद्गम भगवान्‌को देखकर उनका सिर झुक गया। वे काँपने लगे। अञ्जलि बाँधकर बड़ी नम्रता और एकाग्रताके साथ गद्गद वाणीसे वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीब्रह्माजीने स्तुति की—प्रभो! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल है, इसपर स्थिर बिजलीके समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर शोभा पाता है, आपके गलेमें घुँघचीकी माला, कानोंमें मकराकृति कुण्डल तथा सिरपर मोरपंखोंका मुकुट है, इन सबकी कान्तिसे आपके मुखपर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षःस्थलपर लटकती हुई वनमाला और नन्ही-सी हथेलीपर दही-भातका कौर। बगलमें बेंत और सींग तथा कमरकी फेंटमें आपकी पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पा रही है। आपके कमल-से सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल-बालकका सुमधुर वेष। (मैं और कुछ नहीं जानता; बस, मैं तो इन्हीं चरणोंपर निछावर हूँ) ॥ १ ॥ स्वयं-प्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपा-प्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतोंकी रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। फिर आत्मानन्दानुभवस्वरूप साक्षात् आपकी ही महिमाको तो कोई एकाग्रमनसे भी कैसे जान सकता है ॥ २ ॥ प्रभो! जो लोग ज्ञानके लिये प्रयत्न न करके अपने स्थानमें ही स्थित रहकर केवल सत्सङ्ग करते हैं और आपके प्रेमी संत पुरुषोंके द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाका, जो उन लोगोंके पास रहनेसे अपने-आप सुननेको मिलती है, शरीर, वाणी और मनसे विनयावनत होकर सेवन करते हैं—यहाँतक कि उसे ही अपना जीवन बना लेते हैं, उसके बिना जी ही नहीं सकते—प्रभो! यद्यपि आपपर त्रिलोकीमें कोई कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता, फिर भी वे आपपर विजय प्राप्त कर लेते हैं, आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं ॥ ३ ॥ भगवन्! आपकी भक्ति

सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत—उद्गम है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस, क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है, और कुछ नहीं—जैसे थोथी भूसी कूटनेवालेको केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं ॥ ४ ॥

हे अच्युत! हे अनन्त! इस लोकमें पहले भी बहुत-से योगी हो गये हैं। जब उन्हें योगादिके द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणोंमें समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मोंसे तथा आपकी लीला-कथासे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्तिसे ही आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी सुगमतासे आपके परमपदकी प्राप्ति कर ली ॥ ५ ॥ हे अनन्त! आपके सगुण-निर्गुण दोनों स्वरूपोंका ज्ञान कठिन होनेपर भी निर्गुण स्वरूपकी महिमा इन्द्रियोंका प्रत्याहार करके शुद्धान्तःकरणसे जानी जा सकती है। (जाननेकी प्रक्रिया यह है कि) विशेष आकारके परित्यागपूर्वक आत्माकार अन्तःकरणका साक्षात्कार किया जाय। यह आत्माकारता घट-पटादि रूपके समान ज्ञेय नहीं है, प्रत्युत आवरणका भङ्गमात्र है। यह साक्षात्कार 'यह ब्रह्म है' 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' इस प्रकार नहीं किन्तु स्वयंप्रकाश रूपसे ही होता है ॥ ६ ॥ परन्तु भगवन्! जिन समर्थ पुरुषोंने अनेक जन्मोंतक परिश्रम करके पृथ्वीका एक-एक परमाणु, आकाशके हिमकण (ओसकी बूँदें) तथा उसमें चमकनेवाले नक्षत्र एवं तारोंतकको गिन डाला है—उनमें भी भला, ऐसा कौन हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूपके अनन्त गुणोंको गिन सके? प्रभो! आप केवल संसारके कल्याणके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं। सो भगवन्! आपकी महिमाका ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है ॥ ७ ॥ इसलिये जो पुरुष क्षण-क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे आपकी कृपाका ही भलीभाँति अनुभव करता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है, एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित करता रहता है—इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परम पदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र! ॥ ८ ॥

प्रभो! मेरी कुटिलता तो देखिये। आप अनन्त आदि-पुरुष परमात्मा हैं और मेरे-जैसे बड़े-बड़े मायावी भी आपकी मायाके चक्रमें हैं। फिर भी मैंने आपपर अपनी माया फैलाकर अपना ऐश्वर्य देखना चाहा! प्रभो! मैं आपके सामने हूँ ही क्या। क्या आगके सामने चिनगारीकी भी कुछ गिनती है? ॥ ९ ॥ भगवन्! मैं रजोगुणसे उत्पन्न हुआ हूँ। आपके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक नहीं जानता। इसीसे अपनेको आपसे अलग संसारका स्वामी माने बैठा था। मैं अजन्मा जगत्कर्ता हूँ—इस मायाकृत मोहके घने अन्धकारसे मैं अंधा हो रहा था। इसलिये आप यह समझकर कि 'यह मेरे ही अधीन है—मेरा भृत्य है, इसपर कृपा करनी चाहिये,' मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ १० ॥ मेरे स्वामी! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूप आवरणोंसे घिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है। और आपके एक-एक रोमके छिद्रमें ऐसे-ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उड़ते-पड़ते रहते हैं, जैसे झरोखेकी जालीमेंसे आनेवाली सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। कहाँ अपने परिमाणसे साढ़े तीन हाथके शरीरवाला अत्यन्त क्षुद्र मैं, और कहाँ आपकी अनन्त महिमा ॥ ११ ॥ वृत्तियोंकी पकड़में न आनेवाले परमात्मन्! जब बच्चा माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश अपने हाथ-पैर पीटता है; परन्तु क्या माता उसे अपराध समझती है या उसके लिये वह कोई अपराध होता है? 'है' और 'नहीं है'—इन शब्दोंसे कही जानेवाली कोई भी वस्तु ऐसी है क्या, जो आपकी कोखके भीतर न हो? ॥ १२ ॥

श्रुतियाँ कहती हैं कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जलमें लीन थे, उस समय उस जलमें स्थित श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ। उनका यह कहना किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकता। तब आप ही बतलाइये, प्रभो! क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ? ॥ १३ ॥ प्रभो! आप समस्त जीवोंके आत्मा हैं। इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—

आश्रय) हैं। आप समस्त जगत्के और जीवोंके अधीश्वर हैं, इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—प्रवर्तक) हैं। आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं, इसलिये भी नारायण (नार—जीव और अयन—जाननेवाला) हैं। नरसे उत्पन्न होनेवाले जलमें निवास करनेके कारण जिन्हें नारायग (नार—जल और अयन—निवासस्थान) कहा जाता है, वे भी आपके एक अंश ही हैं। वह अंशरूपसे दीखना भी सत्य नहीं है, आपकी माया ही है ॥ १४ ॥ भगवन्! यदि आपका वह विराट् स्वरूप सचमुच उस समय जलमें ही था तो मैंने उसी समय उसे क्यों नहीं देखा, जब कि मैं कमलनालके मार्गसे उसे सौ वर्षतक जलमें ढूँढ़ता रहा? फिर मैंने जब तपस्या की, तब उसी समय मेरे हृदयमें उसका दर्शन कैसे हो गया? और फिर कुछ ही क्षणोंमें वह पुनः क्यों नहीं दीखा, अन्तर्धान क्यों हो गया? ॥ १५ ॥ मायाका नाश करनेवाले प्रभो! दूरकी बात कौन करे—अभी इसी अवतारमें आपने इस बाहर दीखनेवाले जगत्को अपने पेटमें ही दिखला दिया, जिसे देखकर माता यशोदा चकित हो गयी थीं। इससे यही तो सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण विश्व केवल आपकी माया-ही-माया है ॥ १६ ॥ जब आपके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जैसा बाहर दीखता है वैसा ही आपके उदरमें भी दीखा, तब क्या यह सब आपकी मायाके बिना ही आपमें प्रतीत हुआ? अवश्य ही आपकी लीला है ॥ १७ ॥ उस दिनकी बात जाने दीजिये, आजकी ही लीजिये। क्या आज आपने मेरे सामने अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायाका खेल नहीं दिखलाया है? पहले आप अकेले थे। फिर सम्पूर्ण ग्वालबाल, बछड़े और छड़ी-छींके भी आप ही हो गये। उसके बाद मैंने देखा कि आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरेसहित सब-के-सब तत्त्व उनकी सेवा कर रहे हैं। आपने अलग-अलग उतने ही ब्रह्माण्डोंका रूप भी धारण कर लिया था, परन्तु अब आप केवल अपरिमित अद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही शेष रह गये हैं॥ १८॥

जो लोग अज्ञानवश आपके स्वरूपको नहीं जानते, उन्हींको आप प्रकृतिमें स्थित जीवके रूपसे प्रतीत होते हैं और उनपर अपनी मायाका परदा डालकर सृष्टिके समय मेरे (ब्रह्मा) रूपसे, पालनके समय अपने (विष्णु) रूपसे और संहारके समय रुद्रके रूपमें प्रतीत होते हैं॥ १९॥ प्रभो! आप सारे जगत्के स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होनेपर भी आप देवता, ऋषि, मनुष्य, पशु-पक्षी और जलचर आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं—इसलिये कि इन रूपोंके द्वारा दुष्ट पुरुषोंका घमंड तोड़ दें और सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करें ॥ २० ॥ भगवन्! आप अनन्त परमात्मा और योगेश्वर हैं। जिस समय आप अपनी योगमायाका विस्तार करके लीला करने लगते हैं, उस समय त्रिलोकीमें ऐसा कौन है, जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ, किसलिये, कब और कितनी होती है ॥ २१ ॥ इसलिये यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नके समान असत्य, अज्ञानरूप और दुःख-पर-दुःख देनेवाला है। आप परमानन्द, परम ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त हैं। यह मायासे उत्पन्न एवं विलीन होनेपर भी आपमें आपकी सत्तासे सत्यके समान प्रतीत होता है ॥ २२ ॥ प्रभो! आप ही एकमात्र सत्य हैं। क्योंकि आप सबके आत्मा जो हैं। आप पुराणपुरुष होनेके कारण समस्त जन्मादि विकारोंसे रहित हैं। आप स्वयंप्रकाश हैं; इसलिये देश, काल और वस्तु—जो परप्रकाश हैं—किसी प्रकार आपको सीमित नहीं कर सकते। आप उनके भी आदि प्रकाशक हैं। आप अविनाशी होनेके कारण नित्य हैं। आपका आनन्द अखण्डित है। आपमें न तो किसी प्रकारका मल है और न अभाव। आप पूर्ण, एक हैं। समस्त उपाधियोंसे मुक्त होनेके कारण आप अमृतस्वरूप हैं ॥ २३ ॥ आपका यह ऐसा स्वरूप समस्त जीवोंका ही अपना स्वरूप है। जो गुरुरूप सूर्यसे तत्त्वज्ञानरूप दिव्य दृष्टि प्राप्त करके उससे आपको अपने स्वरूपके रूपमें साक्षात्कार कर लेते हैं, वे इस झूठे संसार-सागरको मानो पार कर जाते हैं। (संसार-सागरके झूठा होनेके कारण इससे पार जाना भी अविचार-दशाकी दृष्टिसे ही है) ॥ २४ ॥ जो पुरुष परमात्माको आत्माके रूपमें नहीं जानते, उन्हें उस अज्ञानके कारण ही इस नामरूपात्मक निखिल प्रपञ्चकी उत्पत्तिका भ्रम हो जाता है। किन्तु ज्ञान होते ही इसका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। जैसे रस्सीमें भ्रमके कारण ही साँपकी प्रतीति होती है और भ्रमके निवृत्त होते ही उसकी निवृत्ति हो

जाती है ॥ २५ ॥ संसार-सम्बन्धी बन्धन और उससे मोक्ष—ये दोनों ही नाम अज्ञानसे कल्पित हैं । वास्तवमें ये अज्ञानके ही दो नाम हैं । ये सत्य और ज्ञानस्वरूप परमात्मासे भिन्न अस्तित्व नहीं रखते । जैसे सूर्यमें दिन और रातका भेद नहीं है, वैसे ही विचार करनेपर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्मतत्त्वमें न बन्धन है और न तो मोक्ष ॥ २६ ॥ भगवन् ! कितने आश्चर्यकी बात है कि आप हैं अपने आत्मा, पर लोग आपको पराया मानते हैं। और शरीर आदि हैं पराये, किन्तु उनको आत्मा मान बैठते हैं । और इसके बाद आपको कहीं अलग ढूँढ़ने लगते हैं । भला, अज्ञानी जीवोंका यह कितना बड़ा अज्ञान है ॥ २७ ॥ हे अनन्त ! आप तो सबके अन्तःकरणमें ही विराजमान हैं । इसलिये संतलोग आपके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा है, उसका परित्याग करते हुए अपने भीतर ही आपको ढूँढ़ते हैं । क्योंकि यद्यपि रस्सीमें साँप नहीं है, फिर भी उस प्रतीयमान साँपको मिथ्या निश्चय किये बिना भला, कोई सत्पुरुष सच्ची रस्सीको कैसे जान सकता है ? ॥ २८ ॥

अपने भक्तजनोंके हृदयमें स्वयं स्फुरित होनेवाले भगवन् ! आपके ज्ञानका स्वरूप और महिमा ऐसी ही है, उससे अज्ञानकल्पित जगत्का नाश हो जाता है । फिर भी जो पुरुष आपके युगल चरणकमलोंका तनिक-सा भी कृपा-प्रसाद प्राप्त कर लेता है, उससे अनुगृहीत हो जाता है—वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमाका तत्त्व जान सकता है । दूसरा कोई भी ज्ञान-वैराग्यादि साधनरूप अपने प्रयत्नसे बहुत कालतक कितना भी अनुसन्धान करता रहे, वह आपकी महिमाका यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता ॥ २९ ॥ इसलिये भगवन् ! मुझे इस जन्ममें, दूसरे जन्ममें अथवा किसी पशु-पक्षी आदिके जन्ममें भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमेंसे कोई एक दास हो जाऊँ और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ ॥ ३० ॥ मेरे स्वामी ! जगत्के बड़े-बड़े यज्ञ सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर अबतक आपको पूर्णतः तृप्त न कर सके । परन्तु आपने व्रजकी गायों और ग्वालिनोंके बछड़े एवं बालक बनकर उनके स्तनोंका अमृत-सा दूध बड़े उमंगसे पिया है । वास्तवमें उन्हींका जीवन सफल है, वे ही अत्यन्त धन्य हैं ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं । वास्तवमें उनका अहोभाग्य है । क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं ॥ ३२ ॥ हे अच्युत ! इन व्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमा तो अलग रही—मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताके रूपमें रहनेवाले महादेव आदि हमलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं । क्योंकि इन व्रजवासियोंकी मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंको प्याले बनाकर हम आपके चरणकमलोंका अमृतसे भी मीठा, मदिरासे भी मादक मधुर मकरन्द-रस पान करते रहते हैं । जब उसका एक-एक इन्द्रियसे पान करके हम धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियोंसे उसका सेवन करनेवाले व्रजवासियोंकी तो बात ही क्या है ॥ ३३ ॥ प्रभो ! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी ! क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी । प्रभो ! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है । आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है । और आपके चरणोंकी धूलिको तो श्रुतियाँ भी अनादि कालसे अबतक ढूँढ़ ही रही हैं ॥ ३४ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! इन व्रजवासियोंको इनकी सेवाके बदलेमें आप क्या फल देंगे ? सम्पूर्ण फलोंके फलस्वरूप ! आपसे बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है । आप उन्हें अपना स्वरूप भी देकर उऋण नहीं हो सकते । क्योंकि आपके स्वरूपको तो उस पूतनाने भी अपने सम्बन्धियों—अघासुर, बकासुर आदिके साथ प्राप्त कर लिया, जिसका केवल वेष ही साध्वी स्त्रीका था, पर जो हृदयसे महान् क्रूर थी । फिर, जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण और मन—सब कुछ आपके ही चरणोंमें समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके ही लिये है, उन व्रजवासियोंको भी वही फल देकर आप कैसे उऋण हो सकते हैं ॥३५॥ सच्चिदानन्दस्वरूप श्यामसुन्दर ! तभीतक राग-द्वेष आदि

दोष चोरोंके समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं, तभीतक घर और उसके सम्बन्धी कैदकी तरह सम्बन्धके बन्धनोंमें बाँध रखते हैं और तभीतक मोह पैरकी बेड़ियोंकी तरह जकड़े रखता है—जबतक जीव आपका नहीं हो जाता ॥ ३६ ॥ प्रभो ! आप विश्वके बखेड़ेसे सर्वथा रहित हैं, फिर भी अपने शरणागत भक्तजनोंको अनन्त आनन्द वितरण करनेके लिये पृथ्वीमें अवतार लेकर विश्वके समान ही लीलाविलासका विस्तार करते हैं ॥ ३७ ॥ मेरे स्वामी ! बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं—जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते रहें; मेरे मन, वाणी और शरीर तो आपकी महिमा जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं ॥ ३८ ॥ सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सबके साक्षी हैं । इसलिये आप सब कुछ जानते हैं । आप समस्त जगत्के स्वामी हैं । यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपमें ही स्थित है । आपसे मैं और क्या कहूँ ? अब आप मुझे स्वीकार कीजिये । मुझे अपने लोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३९ ॥ सबके मन-प्राणको अपनी रूप-माधुरीसे आकर्षित करनेवाले श्यामसुन्दर ! आप यदुवंशरूपी कमलको विकसित करनेवाले सूर्य हैं । प्रभो ! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्रकी अभिवृद्धि करनेवाले चन्द्रमा भी आप ही हैं । आप पाखण्डियोंके धर्मरूप रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट करनेके लिये सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके ही समान हैं । पृथ्वीपर रहनेवाले राक्षसोंके नष्ट करनेवाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओंके भी परम पूजनीय हैं । भगवन् ! मैं अपने जीवनभर, महाकल्पपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! संसारके रचयिता ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की । इसके बाद उन्होंने तीन बार परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने गन्तव्य स्थान सत्यलोकमें चले गये ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजीने बछड़ों और ग्वालबालोंको पहले ही यथास्थान पहुँचा दिया था । भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको विदा कर दिया और बछड़ोंको लेकर यमुनाजीके पुलिनपर आये, जहाँ वे अपने सखा ग्वालबालोंको पहले छोड़ गये थे ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! अपने जीवनसर्वस्व—प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके वियोगमें यद्यपि एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन ग्वालबालोंको वह समय आधे क्षणके समान जान पड़ा । क्यों न हो, वे भगवान्की विश्वविमोहिनी योगमायासे मोहित जो हो गये थे ॥ ४३ ॥ जगत्के सभी जीव उसी मायासे मोहित होकर शास्त्र और आचार्योंके बार-बार समझानेपर भी अपने आत्माको निरन्तर भूले हुए हैं । वास्तवमें उस मायाकी ऐसी ही शक्ति है । भला, उससे मोहित होकर जीव यहाँ क्या-क्या नहीं भूल जाते हैं ? ॥ ४४ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णको देखते ही ग्वालबालोंने बड़ी उतावलीसे कहा—'भाई ! तुम भले आये । स्वागत है, स्वागत ! अभी तो हमने तुम्हारे बिना एक कौर भी नहीं खाया है । आओ, इधर आओ; आनन्दसे भोजन करो' ॥ ४५ ॥ तब हँसते हुए भगवान्ने ग्वालबालोंके साथ भोजन किया और उन्हें अघासुरके शरीरका ढाँचा दिखाते हुए वनसे व्रजमें लौट आये ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णके सिरपर मोरपंखका मनोहर मुकुट और घुँघराले बालोंमें सुन्दर-सुन्दर महँ-महँ महँकते हुए पुष्प गुँथ रहे थे । नयी-नयी रंगीन धातुओंसे श्याम शरीरपर चित्रकारी की हुई थी । वे चलते समय रास्तेमें उच्च स्वरसे कभी बाँसुरी, कभी पत्ते और कभी सींग बजाकर वाद्योत्सवमें मग्न हो रहे हैं । पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान करते जा रहे हैं । कभी वे नाम ले-लेकर अपने बछड़ोंको पुकारते, तो कभी उनके साथ लाड़ लड़ाने लगते । मार्गके दोनों ओर गोपियाँ खड़ी हैं; जब वे कभी तिरछे नेत्रोंसे उनकी नजरमें नजर मिला देते हैं, तब गोपियाँ आनन्द-मुग्ध हो जाती हैं । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने गोष्ठमें प्रवेश किया ॥ ४७ ॥ परीक्षित् ! उसी दिन बालकोंने व्रजमें जाकर कहा कि 'आज यशोदा मैयाके लाड़ले नन्दनन्दनने वनमें एक बड़ा भारी अजगर मार डाला है और उससे हमलोगोंकी रक्षा की है' ॥ ४८ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—ब्रह्मन् ! व्रजवासियोंके लिये श्रीकृष्ण अपने पुत्र नहीं थे, दूसरेके पुत्र थे । फिर उनका श्रीकृष्णके प्रति इतना प्रेम कैसे हुआ ? ऐसा प्रेम तो उनका अपने बालकोंपर भी पहले कभी नहीं

हुआ था ! आप कृपा करके बतलाइये, इसका क्या कारण है ? ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! संसारके सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं । पुत्रसे, धनसे या और किसीसे जो प्रेम होता है—वह तो इसलिये कि वे वस्तुएँ अपने आत्माको प्रिय लगती हैं ॥५०॥ राजेन्द्र ! यही कारण है कि सभी प्राणियोंका अपने आत्माके प्रति जैसा प्रेम होता है, वैसा अपने कहलानेवाले पुत्र, धन और गृह आदिमें नहीं होता ॥५१॥ नृपश्रेष्ठ ! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं, वे भी अपने शरीरसे जितना प्रेम करते हैं, उतना प्रेम शरीरके सम्बन्धी पुत्र-मित्र आदिसे नहीं करते ॥ ५२ ॥ जब विचारके द्वारा यह मालूम हो जाता है कि 'यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह शरीर मेरा है' तब इस शरीरसे भी आत्माके समान प्रेम नहीं रहता । यही कारण है कि इस देहके जीर्ण-शीर्ण हो जानेपर भी जीनेकी आशा प्रबल रूपसे बनी रहती है ॥ ५३ ॥ इससे यह बात सिद्ध होती है कि सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं और उसीके लिये इस सारे चराचर जगत्से भी प्रेम करते हैं ॥ ५४ ॥ इन श्रीकृष्णको ही तुम सब आत्माओंका आत्मा समझो । संसारके कल्याणके लिये ही योगमायाका आश्रय लेकर वे यहाँ देहधारीके समान जान पड़ते हैं ॥५५॥ जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानते हैं, उनके लिये तो इस जगत्में जो कुछ भी चराचर पदार्थ हैं, अथवा इससे परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि जो भगवत्स्वरूप हैं, सभी श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं । श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं ॥५६॥ सभी वस्तुओंका अन्तिम रूप अपने कारणमें स्थित होता है । उस कारणके भी परम कारण हैं भगवान् श्रीकृष्ण । तब भला बताओ, किस वस्तुको श्रीकृष्णसे भिन्न बतलायें ॥५७॥ जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुन्द मुरारीके पदपल्लवकी नौकाका आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषोंका सर्वस्व है, उनके लिये यह भव-सागर बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान है । उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है और उनके लिये विपत्तियोंका निवासस्थान—यह संसार नहीं रहता ॥५८॥

परीक्षित् ! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान्‌के पाँचवें वर्षकी लीला ग्वालबालोंने छठे वर्षमें कैसे कही, उसका सारा रहस्य मैंने तुम्हें बतला दिया ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी ग्वालबालोंके साथ वनक्रीड़ा, अघासुरको मारना, हरी-हरी घाससे युक्त भूमिपर बैठकर भोजन करना, अप्राकृतरूपधारी बछड़ों और ग्वालबालोंका प्रकट होना और ब्रह्माजीके द्वारा की हुई इस महान् स्तुतिको जो मनुष्य सुनता और कहता है—उस-उसको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ६० ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामने कुमार-अवस्थाके अनुरूप आँखमिचौनी, सेतुबन्धन, बंदरोंकी भाँति उछलना-कूदना आदि अनेकों लीलाएँ करके अपनी कुमार-अवस्था व्रजमें ही त्याग दी ॥ ६१ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालोंको कालियनागके विषसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब बलराम और श्रीकृष्णने पौगण्ड-अवस्थामें अर्थात् छठे वर्षमें प्रवेश किया । अब उन्हें गौएँ चरानेकी स्वीकृति मिल गयी । वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनमें जाते और अपने चरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पावन करते ॥ १ ॥ यह वन गौओंके लिये हरी-हरी घाससे युक्त एवं रंग-बिरंगे पुष्पोंकी खान हो रहा था । आगे-आगे गौएँ, उनके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए श्यामसुन्दर, तदनन्तर बलराम और फिर श्रीकृष्णके यशका गान करते हुए ग्वालबाल—इस प्रकार विहार करनेके लिये उन्होंने उस वनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ उस वनमें कहीं तो भौंरे बड़ी मधुर गुंजार कर रहे थे, कहीं झुंड-के-झुंड हरिन चौकड़ी भर रहे थे और कहीं सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहक रहे थे । बड़े ही सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे, जिनका जल महात्माओंके हृदयके समान स्वच्छ और निर्मल था । उनमें खिले हुए कमलोंके सौरभसे सुवासित होकर शीतल-

कन्हैया गाय चरावन जात ।

[पृष्ठ ६१२

मन्द-सुगन्ध वायु उस वनकी सेवा कर रही थी। इतना मनोहर था वह वन कि उसे देखकर भगवान्‌ने मन-ही-मन उसमें विहार करनेका संकल्प किया ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तम भगवान्‌ने देखा कि बड़े-बड़े वृक्ष फल और फूलोंके भारसे झुककर अपनी डालियों और नूतन कोंपलोंकी लालिमासे उनके चरणोंका स्पर्श कर रहे हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे कुछ मुसकराते हुए-से अपने बड़े भाई बलराम-जीसे कहा ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवशिरोमणे ! यों तो बड़े-बड़े देवता आपके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं; परन्तु देखिये तो, ये वृक्ष भी अपनी डालियोंसे सुन्दर पुष्प और फलोंकी सामग्री लेकर आपके चरणकमलोंमें झुक रहे हैं, नमस्कार कर रहे हैं। क्यों न हो, इन्होंने इसी सौभाग्यके लिये तथा अपना दर्शन एवं श्रवण करने-वालोंके अज्ञानका नाश करनेके लिये ही तो वृन्दावन-धाममें वृक्ष-योनि ग्रहण की है। इनका जीवन धन्य है ॥ ५ ॥ आदिपुरुष ! यद्यपि आप इस वृन्दावनमें अपने ऐश्वर्यरूपको छिपाकर बालकोंकी-सी लीला कर रहे हैं, फिर भी आपके श्रेष्ठ भक्त मुनिगण अपने इष्ट-देवको पहचानकर यहाँ भी प्रायः भौंरोंके रूपमें आपके भुवन-पावन यशका निरन्तर गान करते हुए आपके भजनमें लगे रहते हैं। वे एक क्षणके लिये भी आपको नहीं छोड़ना चाहते ॥ ६ ॥ भाईजी ! वास्तवमें आप ही स्तुति करने योग्य हैं। देखिये, आपको अपने घर आया देख ये मोर आपके दर्शनोंसे आनन्दित होकर नाच रहे हैं। हरिनियाँ मृगनयनी गोपियोंके समान अपनी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे आपके प्रति प्रेम प्रकट कर रही हैं, आपको प्रसन्न कर रही हैं। ये कोयलें अपनी मधुर कुहू-कुहू ध्वनिसे आपका कितना सुन्दर स्वागत कर रही हैं ! ये वनवासी होनेपर भी धन्य हैं। क्योंकि सत्पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे घर आये अतिथिको अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु भेंट कर देते हैं॥७॥ आज यहाँकी भूमि अपनी हरी-हरी घासके साथ आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो रही है। यहाँके वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ आपकी अँगुलियोंका स्पर्श पाकर अपना अहोभाग्य मान रही हैं। आपकी दयाभरी चितवनसे नदी, पर्वत, पशु, पक्षी—सब कृतार्थ हो रहे हैं और व्रजकी गोपियाँ आपके वक्षःस्थलका स्पर्श प्राप्त करके, जिसके लिये स्वयं लक्ष्मी भी लालायित रहती हैं, धन्य-धन्य हो रही हैं ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार परम सुन्दर वृन्दावनको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए। वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गोवर्धनकी तराईमें, यमुनातटपर गौओंको चराते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करने लगे ॥ ९ ॥ एक ओर ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंकी मधुर तान छेड़े रहते हैं, तो दूसरी ओर बलरामजीके साथ वनमाला पहने हुए श्रीकृष्ण मतवाले भौंरोंकी सुरीली गुनगुनाहटमें अपना स्वर मिलाकर मधुर संगीत अलापने लगते हैं ॥ १० ॥ कभी-कभी श्रीकृष्ण कूजते हुए राजहंसोंके साथ स्वयं भी कूजने लगते हैं और कभी नाचते हुए मोरोंके साथ स्वयं भी ठुमुक-ठुमुक नाचने लगते हैं और ऐसा नाचते हैं कि मयूरको उपहासास्पद बना देते हैं ॥ ११ ॥ कभी मेघके समान गम्भीर वाणीसे दूर गये हुए पशुओंको उनका नाम ले-लेकर बड़े प्रेमसे पुकारते हैं। उनके कण्ठकी मधुर ध्वनि सुनकर गायों और ग्वालबालोंका चित्त भी अपने वशमें नहीं रहता ॥ १२ ॥ कभी चकोर, क्रौंच (कराँकुल), चकवा, भरदूल और मोर आदि पक्षियोंकी-सी बोली बोलते तो कभी बाघ, सिंह आदिकी गर्जनासे डरे हुए जीवोंके समान स्वयं भी भयभीतकी-सी लीला करते ॥ १३ ॥ जब बलरामजी खेलते-खेलते थककर किसी ग्वालबालकी गोदके तकियेपर सिर रखकर लेट जाते, तब श्रीकृष्ण उनके पैर दबाने लगते, पंखा झलने लगते और इस प्रकार अपने बड़े भाईकी थकावट दूर करते ॥ १४ ॥ जब ग्वाल-बाल नाचने-गाने लगते अथवा ताल ठोंक-ठोंककर एक दूसरेसे कुश्ती लड़ने लगते, तब श्याम और राम दोनों भाई हाथमें हाथ डालकर खड़े हो जाते और हँस-हँसकर 'वाह-वाह' करते ॥ १५ ॥ कभी-कभी स्वयं श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंके साथ कुश्ती लड़ते-लड़ते थक जाते तथा किसी सुन्दर वृक्षके नीचे कोमल पल्लवोंकी सेजपर किसी ग्वालबालकी गोदमें सिर रखकर लेट जाते ॥ १६ ॥ परीक्षित ! उस समय कोई-कोई पुण्यके मूर्तिमान् स्वरूप ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णके चरण दबाने लगते और दूसरे निष्पाप बालक उन्हें बड़े-बड़े पत्तों या अँगोछियोंसे

पंखा झलने लगते ॥ १७ ॥ किसी-किसीके हृदयमें प्रेमकी धारा उमड़ आती तो वह धीरे-धीरे उदारशिरोमणि परममनस्वी श्रीकृष्णकी लीलाओंके अनुरूप उनके मनको प्रिय लगनेवाले मनोहर गीत गाने लगता ॥ १८ ॥ भगवान्‌ने इस प्रकार अपनी योगमायासे अपने ऐश्वर्यमय स्वरूपको छिपा रक्खा था। वे ऐसी लीलाएँ करते, जो ठीक-ठीक गोपबालकोंकी-सी ही मालूम पड़तीं। स्वयं भगवती लक्ष्मी जिनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न रहती हैं, वे ही भगवान् इन ग्रामीण बालकोंके साथ बड़े प्रेमसे ग्रामीण खेल खेला करते थे। परीक्षित्! ऐसा होनेपर भी कभी-कभी उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाएँ भी प्रकट हो जाया करतीं ॥ १९ ॥

बलरामजी और श्रीकृष्णके सखाओंमें एक प्रधान गोप-बालक थे श्रीदामा। एक दिन उन्होंने तथा सुबल और स्तोककृष्ण (छोटे कृष्ण) आदि ग्वालबालोंने श्याम और रामसे बड़े प्रेमके साथ कहा—॥२०॥ 'हमलोगोंको सर्वदा सुख पहुँचानेवाले बलरामजी! आपके बाहु-बलकी तो कोई थाह ही नहीं है। हमारे मनमोहन श्रीकृष्ण! दुष्टोंको नष्ट कर डालना तो तुम्हारा स्वभाव ही है। यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बड़ा भारी वन है। बस, उसमें पाँत-के-पाँत ताड़के वृक्ष भरे पड़े हैं॥२१॥ वहाँ बहुत-से ताड़के फल पक-पककर गिरते रहते हैं और बहुत-से पहलेके गिरे हुए भी हैं। परन्तु वहाँ धेनुक नामका एक दुष्ट दैत्य रहता है। उसने उन फलोंपर रोक लगा रक्खी है ॥२२॥ बलराम-जी और भैया श्रीकृष्ण! वह दैत्य गधेके रूपमें रहता है। वह स्वयं तो बड़ा बलवान् है ही, उसके साथ और भी बहुत-से उसीके समान बलवान् दैत्य उसी रूपमें रहते हैं ॥ २३ ॥ मेरे शत्रुघाती भैया! उस दैत्यने अबतक न जाने कितने मनुष्य खा डाले हैं। यही कारण है कि उसके डरके मारे मनुष्य उसका सेवन नहीं करते और पशु-पक्षी भी उस जंगलमें नहीं जाते ॥ २४ ॥ उसके फल हैं तो बड़े सुगन्धित, परन्तु हमने कभी नहीं खाये। देखो न, चारों ओर उन्हींकी मन्द-मन्द सुगन्ध फैल रही है। तनिक-सा ध्यान देनेसे उसका रस मिलने लगता है ॥ २५ ॥ श्रीकृष्ण! उनकी सुगन्धसे हमारा मन मोहित हो गया है और उन्हें पानेके लिये मचल रहा है। तुम हमें वे फल अवश्य खिलाओ। दाऊ दादा! हमें उन फलोंकी बड़ी उत्कट अभिलाषा है। आपको रुचे तो वहाँ अवश्य चलिये ॥ २६ ॥

अपने सखा ग्वालबालोंकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों हँसे और फिर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनके साथ तालवनके लिये चल पड़े ॥२७॥ उस वनमें पहुँचकर बलरामजीने अपनी बाँहोंसे उन ताड़के पेड़ोंको पकड़ लिया और मतवाले हाथीके बच्चेके समान उन्हें बड़े जोरसे हिलाकर बहुत-से फल नीचे गिरा दिये ॥२८॥ जब गधेके रूपमें रहनेवाले दैत्यने फलोंके गिरनेका शब्द सुना, तब वह पर्वतोंके साथ सारी पृथ्वी-को कँपाता हुआ उनकी ओर दौड़ा ॥ २९ ॥ वह बड़ा बलवान् था। उसने बड़े वेगसे बलरामजीके सामने आकर अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें दुलत्ती मारी और इसके बाद वह दुष्ट बड़े जोरसे रेंकता हुआ वहाँसे हट गया ॥ ३० ॥ राजन्! वह गधा क्रोधमें भरकर फिर रेंकता हुआ दूसरी बार बलरामजीके पास पहुँचा और उनकी ओर पीठ करके फिर बड़े क्रोधसे अपने पिछले पैरोंकी दुलत्ती चलायी ॥ ३१ ॥ बलरामजीने अपने एक ही हाथसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाकर एक ताड़के पेड़पर दे मारा। घुमाते समय ही उस गधेके प्राणपखेरू उड़ गये थे ॥ ३२ ॥ उसके गिरनेकी चोटसे वह महान् ताड़का वृक्ष—जिसका ऊपरी भाग बहुत विशाल था—स्वयं तो तड़तड़ाकर गिर ही पड़ा, सटे हुए दूसरे वृक्षको भी उसने तोड़ डाला। उसने तीसरेको, तीसरेने चौथेको—इस प्रकार एक-दूसरेको गिराते हुए बहुत-से तालवृक्ष गिर पड़े ॥३३॥ बलरामजीके लिये तो यह एक खेल था। परन्तु उनके द्वारा फेंके हुए गधेके शरीरसे चोट खा-खाकर वहाँ सब-के-सब ताड़ हिल गये। ऐसा जान पड़ा, मानो सबको झंझावातने झकझोर दिया हो ॥ ३४ ॥ भगवान् बलराम स्वयं जगदीश्वर हैं। उनमें यह सारा संसार ठीक वैसे ही ओतप्रोत है, जैसे सूतोंमें वस्त्र। तब भला, उनके लिये यह कौन आश्चर्यकी बात है ॥ ३५ ॥ उस समय धेनुकासुरके भाई-बन्धु अपने भाईके मारे जानेसे क्रोधके मारे आगबबूला हो गये। सब-के-सब गधे बलरामजी और श्रीकृष्णपर बड़े वेगसे टूट पड़े ॥ ३६ ॥ राजन्!

उनमेंसे जो-जो पास आया, उसी-उसीको बलरामजी और श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पिछले पैर पकड़कर तालवृक्षों-पर दे मारा ॥३७॥ उस समय वह भूमि ताड़के फलोंसे पट गयी और टूटे हुए वृक्ष तथा दैत्योंके प्राणहीन शरीरोंसे भर गयी। जैसे बादलोंसे आकाश ढक गया हो, उस भूमिकी वैसी ही शोभा होने लगी ॥ ३८ ॥ बलरामजी और श्रीकृष्णकी यह मङ्गलमयी लीला देखकर देवतागण उनपर फूल बरसाने लगे और बाजे बजा-बजाकर स्तुति करने लगे ॥३९॥ जिस दिन धेनुकासुर मरा, उसी दिनसे लोग निडर होकर उस वनके तालफल खाने लगे तथा पशु भी स्वच्छन्दताके साथ घास चरने लगे ॥ ४० ॥

इसके बाद कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामजीके साथ व्रजमें आये। उस समय उनके साथी ग्वालबाल उनके पीछे-पीछे चलते हुए उनकी स्तुति करते जाते थे। क्यों न हो; भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण-कीर्तन ही सबसे बढ़कर पवित्र जो है ॥४१॥ उस समय श्रीकृष्णकी घुँघराली अलकोंपर गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर धूलि पड़ी हुई थी, सिरपर मोरपंखका मुकुट था और बालोंमें सुन्दर-सुन्दर जंगली पुष्प गुँथे हुए थे। उनके नेत्रोंमें मधुर चितवन और मुखपर मनोहर मुसकान थी। वे मधुर-मधुर मुरली बजा रहे थे और साथी ग्वालबाल उनकी ललित कीर्तिका गान कर रहे थे। वंशीकी ध्वनि सुनकर बहुत-सी गोपियाँ एक साथ ही व्रजसे बाहर निकल आयीं। उनकी आँखें न जाने कबसे श्रीकृष्णके दर्शनके लिये तरस रही थीं ॥ ४२ ॥ गोपियोंने अपने नेत्ररूप भ्रमरोंसे भगवान्‌के मुखारविन्दका मकरन्द-रस पान करके दिनभरके विरहकी जलन शान्त की। और भगवान्‌ने भी उनकी लाजभरी हँसी तथा विनयसे युक्त प्रेमभरी तिरछी चितवनका सत्कार स्वीकार करके व्रजमें प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ उधर यशोदामैया और रोहिणी-जीका हृदय वात्सल्यस्नेहसे उमड़ रहा था। उन्होंने श्याम और रामके घर पहुँचते ही उनकी इच्छाके अनुसार तथा समयके अनुरूप पहलेसे ही सोच-सँजोकर रक्खी हुई वस्तुएँ उन्हें खिलायीं-पिलायीं और पहनायीं ॥ ४४ ॥ माताओंने तेल-उबटन आदि लगाकर स्नान कराया। इससे उनकी दिनभर घूमने-फिरनेकी मार्गकी थकान दूर हो गयी। फिर उन्होंने सुन्दर वस्त्र पहनाकर दिव्य पुष्पोंकी माला पहनायी तथा चन्दन लगाया ॥ ४५ ॥ तत्पश्चात् दोनों भाइयोंने माताओंका परोसा हुआ स्वादिष्ट अन्न भोजन किया। इसके बाद बड़े लाड़-प्यारसे दुलार-दुलारकर यशोदा और रोहिणीने उन्हें सुन्दर शय्यापर सुलाया। श्याम और राम बड़े आरामसे सो गये ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार वृन्दावनमें अनेकों लीलाएँ करते। एक दिन अपने सखा ग्वालबालोंके साथ वे यमुनातटपर गये। राजन्! उस दिन बलरामजी उनके साथ नहीं थे ॥ ४७ ॥ उस समय जेठ-आषाढ़के घामसे गौएँ और ग्वालबाल अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। प्याससे उनका कण्ठ सूख रहा था। इसलिये उन्होंने यमुनाजीका विषैला जल पी लिया ॥ ४८ ॥ परीक्षित्! होनहारके वश उन्हें इस बातका ध्यान ही नहीं रहा था। उस विषैले जलके पीते ही सब गौएँ और ग्वाल-बाल प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥ उन्हें ऐसी अवस्थामें देखकर योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अमृत बरसानेवाली दृष्टिसे उन्हें जीवित कर दिया। उनके स्वामी और सर्वस्व तो एकमात्र श्रीकृष्ण ही थे ॥ ५० ॥ परीक्षित्! चेतना आनेपर वे सब यमुनाजीके तटपर उठ खड़े हुए और आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरेकी ओर देखने लगे ॥ ५१ ॥ राजन्! अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि हमलोग विषैला जल पी लेनेके कारण मर चुके थे, परन्तु हमारे श्रीकृष्णने अपनी अनुग्रहभरी दृष्टिसे देखकर हमें फिरसे जिला दिया है ॥ ५२ ॥

सोलहवाँ अध्याय

कालियपर कृपा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण-ने देखा कि महाविषधर कालिय नागने यमुनाजीका जल विषैला कर दिया है। तब यमुनाजीको शुद्ध करनेके विचारसे उन्होंने वहाँसे उस सर्पको निकाल दिया ॥१॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाजीके अगाध जलमें किस प्रकार उस सर्पका दमन किया? फिर कालिय नाग तो जलचर जीव नहीं था, ऐसी दशामें वह अनेक युगोंतक जलमें क्यों और कैसे रहा? सो बतलाइये ॥२॥ ब्रह्मस्वरूप महात्मन्! भगवान् अनन्त हैं। वे अपनी लीला प्रकट करके स्वच्छन्द विहार करते हैं। गोपालरूपसे उन्होंने जो उदार लीला की है, वह तो अमृतस्वरूप है। भला, उसके सेवनसे कौन तृप्त हो सकता है? ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! यमुनाजीमें कालिय नागका एक कुण्ड था। उसका जल विषकी गर्मीसे खौलता रहता था। यहाँतक कि उसके ऊपर उड़नेवाले पक्षी भी झुलसकर उसमें गिर जाया करते थे॥४॥ उसके विषैले जलकी उत्ताल तरङ्गोंका स्पर्श करके तथा उसकी छोटी-छोटी बूँदें लेकर जब वायु बाहर आती और तटके घास-पात, वृक्ष, पशु-पक्षी आदिका स्पर्श करती, तब वे उसी समय मर जाते थे ॥ ५ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌का अवतार तो दुष्टोंका दमन करनेके लिये होता ही है। जब उन्होंने देखा कि उस साँपके विषका वेग बड़ा प्रचण्ड (भयंकर) है और वह भयानक विष ही उसका महान् बल है तथा उसके कारण मेरे विहारका स्थान यमुनाजी भी दूषित हो गयी हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कमरका फेंटा कसकर एक बहुत ऊँचे कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये और वहाँसे ताल ठोंककर उस विषैले जलमें कूद पड़े ॥ ६ ॥ यमुनाजीका जल साँपके विषके कारण पहलेसे ही खौल रहा था। उसकी तरङ्गें लाल-पीली और अत्यन्त भयङ्कर उठ रही थीं। पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके कूद पड़नेसे उसका जल और भी उछलने लगा। उस समय तो कालियदहका जल इधर-उधर उछलकर चार सौ हाथतक फैल गया। अचिन्त्य अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णके लिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ७ ॥ प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण कालियदहमें कूदकर अतुल बलशाली मतवाले गजराजके समान जल उछालने लगे। इस प्रकार जल-क्रीड़ा करनेपर उनकी भुजाओंकी टक्करसे जलमें बड़े जोरका शब्द होने लगा। आँखसे ही सुननेवाले कालिय नागने वह आवाज सुनी और देखा कि कोई मेरे निवास-स्थानका तिरस्कार कर रहा है। उसे यह सहन न हुआ। वह चिढ़कर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आ गया ॥ ८ ॥ उसने देखा कि सामने एक साँवला-सलोना बालक है। वर्षाकालीन मेघके समान अत्यन्त सुकुमार शरीर है, उसमें लगकर आँखें हटनेका नाम ही नहीं लेतीं। उसके वक्षःस्थलपर एक सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और वह पीले रंगका वस्त्र धारण किये हुए है। बड़े मधुर एवं मनोहर मुखपर मन्द-मन्द मुसकान अत्यन्त शोभायमान हो रही है। चरण इतने सुकुमार और सुन्दर हैं, मानो कमलकी गद्दी हो। इतना आकर्षक रूप होनेपर भी जब कालिय नागने देखा कि बालक तनिक भी न डरकर इस विषैले जलमें मौजसे खेल रहा है, तब उसका क्रोध और भी बढ़ गया। उसने श्रीकृष्णको मर्मस्थानोंमें डँसकर अपने शरीरके बन्धनसे उन्हें जकड़ लिया ॥९॥ भगवान् श्रीकृष्ण नागपाशमें बँधकर निश्चेष्ट हो गये। यह देखकर उनके प्यारे सखा ग्वालबाल बहुत ही पीड़ित हुए और उसी समय दुःख, पश्चात्ताप और भयसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। क्योंकि उन्होंने अपने शरीर, सुहृद्, धन-सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, भोग और कामनाएँ—सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णको ही समर्पित कर रक्खा था ॥ १० ॥ गाय, बैल, बछिया और बछड़े बड़े दुःखसे डकराने लगे। श्रीकृष्णकी ओर ही उनकी टकटकी बँध रही थी। वे डरकर इस प्रकार खड़े हो गये, मानो रो रहे हों। उस समय उनका शरीर हिलता-डोलतातक न था ॥ ११ ॥

इधर व्रजमें पृथ्वी, आकाश और शरीरोंमें बड़े भयङ्कर-भयङ्कर तीनों प्रकारके उत्पात उठ खड़े हुए, जो इस बातकी सूचना दे रहे थे कि बहुत ही शीघ्र कोई अशुभ घटना घटनेवाली है ॥ १२ ॥ नन्दबाबा आदि गोपोंने पहले तो उन अशकुनोंको देखा और पीछेसे यह जाना कि आज श्रीकृष्ण बिना बलरामके ही गाय चराने चले गये। वे भयसे व्याकुल हो गये ॥ १३ ॥ वे भगवान्‌का प्रभाव नहीं जानते थे। इसीलिये उन अशकुनोंको देखकर उनके मनमें यह बात आयी कि आज तो श्रीकृष्णकी मृत्यु ही हो गयी होगी। वे उसी क्षण दुःख, शोक और भयसे आतुर हो गये। क्यों न हों, श्रीकृष्ण ही उनके प्राण, मन और सर्वस्व जो थे ॥ १४ ॥ प्रिय परीक्षित्! व्रजके बालक, वृद्ध और स्त्रियोंका स्वभाव गायों-जैसा

ही वात्सल्यपूर्ण था। वे मनमें ऐसी बात आते ही अत्यन्त दीन हो गये और अपने प्यारे कन्हैयाको देखनेकी उत्कट लालसासे घरद्वार छोड़कर निकल पड़े ॥ १५ ॥ बलराम-जी स्वयं भगवान्‌के स्वरूप और सर्वशक्तिमान् हैं। उन्होंने जब व्रजवासियोंको इतना कातर और इतना आतुर देखा, तब उन्हें हँसी आ गयी। परन्तु वे कुछ बोले नहीं, चुप ही रहे। क्योंकि वे अपने छोटे भाई श्रीकृष्णका प्रभाव भलीभाँति जानते थे ॥ १६ ॥ व्रज-वासी अपने प्यारे श्रीकृष्णको ढूँढ़ने लगे। कोई अधिक कठिनाई न हुई; क्योंकि मार्गमें उन्हें भगवान्‌के चरणचिह्न मिलते जाते थे। जौ, कमल, अङ्कुश आदिसे युक्त होनेके कारण उन्हें पहचान होती जाती थी। इस प्रकार वे यमुना-तटकी ओर जाने लगे ॥ १७ ॥

परीक्षित्! मार्गमें गौओं और दूसरोंके चरणचिह्नोंके बीच-बीचमें भगवान्‌के चरणचिह्न भी दीख जाते थे। उनमें कमल, जौ, अङ्कुश, वज्र और ध्वजाके चिह्न बहुत ही स्पष्ट थे। उन्हें देखते हुए वे बहुत शीघ्रतासे चले ॥ १८ ॥ उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालियदहमें कालिय नागके शरीरसे बँधे हुए श्रीकृष्ण चेष्टाहीन हो रहे हैं। कुण्डके किनारेपर ग्वालबाल अचेत हुए पड़े हैं और गौएँ, बैल, बछड़े आदि बड़े आर्तस्वरसे डकरा रहे हैं। यह सब देखकर वे सब गोप अत्यन्त व्याकुल और अन्तमें मूर्छित हो गये ॥ १९ ॥ गोपियोंका मन अनन्त गुणगणनिलय भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमके रंगमें रँगा हुआ था। वे तो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के सौहार्द, उनकी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन तथा मीठी वाणीका ही स्मरण करती रहती थीं। जब उन्होंने देखा कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दरको काले साँपने जकड़ रक्खा है, तब तो उनके हृदयमें बड़ा ही दुःख और बड़ी ही जलन हुई। अपने प्राणवल्लभ जीवनसर्वस्वके बिना उन्हें तीनों लोक सूने दीखने लगे ॥ २० ॥ माता यशोदा तो अपने लाड़ले लालके पीछे कालियदहमें कूदने ही जा रही थीं; परन्तु गोपियोंने उन्हें पकड़ लिया। उनके हृदयमें भी वैसी ही पीड़ा थी। उनकी आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी लगी हुई थी। सबकी आँखें श्रीकृष्णके मुखकमलपर लगी थीं। जिनके शरीरमें चेतना थी, वे व्रजमोहन श्रीकृष्णकी पूतना-वध आदिकी प्यारी-प्यारी ऐश्वर्यकी लीलाएँ कह-कहकर यशोदाजीको धीरज बँधाने लगीं। किन्तु अधिकांश तो मुर्देकी तरह पड़ ही गयी थीं ॥ २१ ॥ परीक्षित्! नन्दबाबा आदिके जीवन-प्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। वे श्रीकृष्णके लिये कालियदहमें घुसने लगे। यह देखकर श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेवाले भगवान् बलराम-जीने किन्हींको समझा-बुझाकर, किन्हींको बलपूर्वक और किन्हींको उनके हृदयोंमें प्रेरणा करके रोक दिया ॥ २२ ॥

परीक्षित्! यह साँपके शरीरसे बँध जाना तो श्रीकृष्णकी मनुष्यों-जैसी एक लीला थी। जब उन्होंने देखा कि व्रजके सभी लोग स्त्री और बच्चोंके साथ मेरे लिये इस प्रकार अत्यन्त दुखी हो रहे हैं और सचमुच मेरे सिवा इनका कोई दूसरा सहारा भी नहीं है, तब वे एक मुहूर्ततक सर्पके बन्धनमें रहकर बाहर निकल आये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे साँपका शरीर टूटने लगा। वह अपना नागपाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया और क्रोधसे आगबबूला हो अपने फण ऊँचा करके फुफकारें मारने लगा। घात मिलते ही श्रीकृष्णपर चोट करनेके लिये वह उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। उस समय उसके नथुनोंसे विषकी फुहारें निकल रही थीं। उसकी आँखें स्थिर थीं और इतनी लाल-लाल हो रही थीं, मानो भट्टीपर तपाया हुआ खपड़ा हो। उसके मुँहसे आगकी लपटें निकल रही थीं ॥ २४ ॥ उस समय कालिय नाग अपनी दुहरी जीभ लपलपाकर अपने होठोंके दोनों किनारोंको चाट रहा था और अपनी कराल आँखोंसे विषकी ज्वाला उगलता जा रहा था। अपने वाहन गरुड़के समान भगवान् श्रीकृष्ण उसके साथ खेलते हुए पैंतरा बदलने लगे। और वह साँप भी उनपर चोट करनेका दाँव देखता हुआ पैंतरा बदलने लगा ॥ २५ ॥ इस प्रकार पैंतरा बदलते-बदलते उसका बल क्षीण हो गया। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके बड़े-बड़े सिरोंको तनिक दबा दिया और उछलकर उनपर सवार हो गये। कालिय नागके मस्तकों-पर बहुत-सी लाल-लाल मणियाँ थीं। उनके स्पर्शसे भगवान्‌के सुकुमार तलुओंकी लालिमा और भी बढ़

गयी। नृत्य-गान आदि समस्त कलाओंके आदिप्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण उसके सिरोंपर कलापूर्ण नृत्य करने लगे ॥ २६ ॥ भगवान्‌के प्यारे भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण और देवाङ्गनाओंने जब देखा कि भगवान् नृत्य करना चाहते हैं, तब वे बड़े प्रेमसे मृदङ्ग, ढोल, नगारे आदि बाजे बजाते हुए, सुन्दर-सुन्दर गीत गाते हुए, पुष्पोंकी वर्षा करते हुए और अपनेको निछावर करते हुए भेंट ले-लेकर उसी समय भगवान्‌के पास आ पहुँचे ॥ २७ ॥ परीक्षित्! कालिय नागके एक सौ एक सिर थे। वह अपने जिस सिरको नहीं झुकाता था, उसीको प्रचण्ड दण्डधारी भगवान् अपने पैरोंकी चोटसे कुचल डालते। इससे कालिय नागकी जीवनशक्ति क्षीण हो चली, वह मुँह और नथुनोंसे खून उगलने लगा। अन्तमें चक्कर काटते-काटते वह बेहोश हो गया ॥२८॥ तनिक भी चेत होता तो वह अपनी आँखोंसे विष उगलने लगता और क्रोधके मारे जोर-जोरसे फुफकारें मारने लगता। इस प्रकार वह अपने सिरोंमेंसे जिस सिरको ऊपर उठाता, उसीको नाचते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणोंकी ठोकरसे झुकाकर रौंद डालते। उस समय पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो खूनकी बूँदें पड़ती थीं, उनसे ऐसा माळूम होता, मानो रक्त-पुष्पोंसे उनकी पूजा की जा रही हो ॥ २९ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के इस अद्भुत ताण्डव-नृत्यसे कालियके फणरूप छत्ते छिन्न-भिन्न हो गये। उसका एक-एक अंग चूर-चूर हो गया और मुँहसे खूनकी उलटी होने लगी। अब उसे सारे जगत्‌के आदिशिक्षक पुराणपुरुष भगवान् नारायणकी स्मृति हुई। वह मन-ही-मन भगवान्‌की शरणमें गया ॥ ३० ॥ भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें सम्पूर्ण विश्व है। इसलिये उनके भारी बोझसे कालिय नागके शरीरकी एक-एक गाँठ ढीली पड़ गयी। उनकी एड़ियों-की चोटसे उसके छत्रके समान फण छिन्न-भिन्न हो गये। अपने पतिकी यह दशा देखकर उसकी पत्नियाँ भगवान्‌-की शरणमें आयीं। वे अत्यन्त आतुर हो रही थीं। भयके मारे उनके वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे और केशकी चोटियाँ भी बिखर रही थीं ॥ ३१ ॥ उस समय उन साध्वी नागपत्नियोंके चित्तमें बड़ी घबड़ाहट थी। अपने बालकोंको आगे करके वे पृथ्वीपर लोट गयीं और हाथ जोड़कर उन्होंने समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्णको शरणागत-वत्सल जानकर अपने अपराधी पतिको छुड़ाने-की इच्छासे उन्होंने उनकी शरण ग्रहण की ॥ ३२ ॥

नागपत्नियोंने कहा—प्रभो! आपका यह अवतार ही दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये हुआ है। इसलिये इस अपराधीको दण्ड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टिमें शत्रु और पुत्रका कोई भेदभाव नहीं है। इसलिये आप जो किसीको दण्ड देते हैं, वह उसके पापोंका प्रायश्चित्त कराने और उसका परम कल्याण करनेके लिये ही ॥३३॥ आपने हमलोगोंपर यह बड़ा ही अनुग्रह किया। यह तो आपका कृपा-प्रसाद ही है। क्योंकि आप जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस सर्पके अपराधी होनेमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। यदि यह अपराधी न होता, तो इसे सर्पकी योनि ही क्यों मिलती? इसलिये हम सच्चे हृदयसे आपके इस क्रोधको भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं ॥ ३४ ॥ अवश्य ही पूर्वजन्ममें इसने स्वयं मानरहित होकर और दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की है। अथवा सब जीवोंपर दया करते हुए इसने कोई बहुत बड़ा धर्म किया है। तभी तो आप इसके ऊपर सन्तुष्ट हुए हैं। क्योंकि सर्व-जीवस्वरूप आपकी प्रसन्नताका यही उपाय है ॥ ३५ ॥ भगवन्! हम नहीं समझ पातीं कि यह इसकी किस साधनाका फल है, जो यह आपके चरणकमलोंकी धूलका स्पर्श पानेका अधिकारी हुआ है। आपके चरणोंकी रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीजीको भी बहुत दिनोंतक समस्त भोगोंका त्याग करके नियमोंका पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी ॥ ३६ ॥ प्रभो! जो आपके चरणोंकी धूलकी शरण ले लेते हैं, वे भक्तजन स्वर्गका राज्य या पृथ्वीकी बादशाही नहीं चाहते। न वे रसातल-का ही राज्य चाहते और न तो ब्रह्माका पद ही लेना चाहते हैं। उन्हें अणिमादि योग-सिद्धियोंकी भी चाह नहीं होती। यहाँतक कि वे जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले कैवल्य-मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते ॥ ३७ ॥ स्वामी! यह नागराज तमोगुणी योनिमें उत्पन्न हुआ है और

कालिय नागपर कृपा
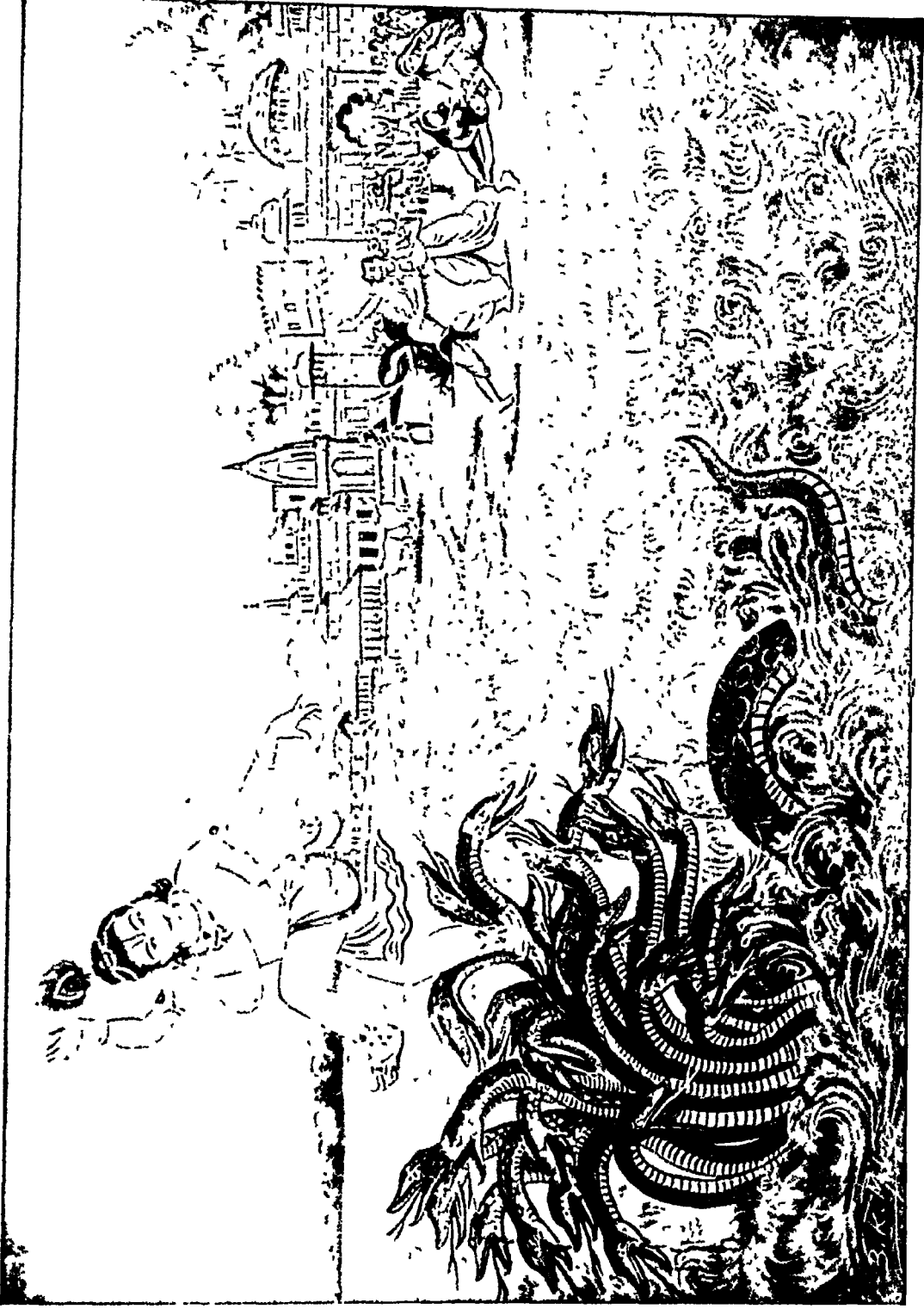
भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो खूनकी बूँदें पड़ती थीं, उनसे मालूम होता, मानो रक्तकुसुमोंसे उनकी पूजा की जा रही हो।

[पृष्ठ ६१८

अत्यन्त क्रोधी है। फिर भी इसे आपकी वह परम पवित्र चरणरज प्राप्त हुई, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है; तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छामात्रसे ही संसारचक्रमें पड़े हुए जीवको संसारके वैभव-सम्पत्तिकी तो बात ही क्या—मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३८ ॥

प्रभो! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि हैं। आप सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान होनेपर भी अनन्त हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं। आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा हैं ॥ ३९ ॥ आप सब प्रकारके ज्ञान और अनुभवोंके खजाने हैं। आपकी महिमा और शक्ति अनन्त है। आपका स्वरूप अप्राकृत—दिव्य चिन्मय है, प्राकृतिक गुणों एवं विकारोंका आप कभी स्पर्श ही नहीं करते। आप ही ब्रह्म हैं, हम आपको नमस्कार कर रही हैं ॥ ४० ॥ आप प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले काल हैं, कालशक्तिके आश्रय हैं और कालके क्षण-कल्प आदि समस्त अवयवोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप होते हुए भी उससे अलग रहकर उसके द्रष्टा हैं। आप उसके बनानेवाले निमित्त-कारण तो हैं ही, उसके रूपमें बननेवाले उपादानकारण भी हैं ॥ ४१ ॥ प्रभो! पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि और इन सबका खजाना चित्त—ये सब आप ही हैं। तीनों गुण और उनके कार्योंमें होनेवाले अभिमानके द्वारा आपने अपने साक्षात्कार-को छिपा रक्खा है ॥ ४२ ॥ आप देश, काल और वस्तुओंकी सीमासे बाहर—अनन्त हैं। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और कार्य-कारणोंके समस्त विकारोंमें भी एकरस, विकाररहित और सर्वज्ञ हैं। ईश्वर हैं कि नहीं हैं, सर्वज्ञ हैं कि अल्पज्ञ इत्यादि अनेक मतभेदोंके अनुसार आप उन-उन मतवादियोंको उन्हीं-उन्हीं रूपोंमें दर्शन देते हैं। समस्त शब्दोंके अर्थके रूपमें तो आप हैं ही, शब्दोंके रूपमें भी हैं तथा उन दोनोंका सम्बन्ध जोड़ने-वाली शक्ति भी आप ही हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४३ ॥ प्रत्यक्ष-अनुमान आदि जितने भी प्रमाण हैं, उनको प्रमाणित करनेवाले मूल आप ही हैं। समस्त शास्त्र आपसे ही निकले हैं और आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है। आप ही मनको लगानेकी विधिके रूपमें और उसको सब कहींसे हटा लेनेकी आज्ञाके रूपमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग हैं। इन दोनोंके मूल वेद भी स्वयं आप ही हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं ॥ ४४ ॥ आप शुद्धसत्त्वमय वसुदेवके पुत्र वासुदेव, सङ्कर्षण एवं प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी हैं। इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें आप भक्तों तथा यादवोंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४५ ॥ आप अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंके प्रकाशक हैं और उन्हींके द्वारा अपने-आपको ढक रखते हैं। उन अन्तःकरण और वृत्तियोंके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-कुछ संकेत भी मिलता है। आप उन गुणों और उनकी वृत्तियोंके साक्षी तथा स्वयंप्रकाश हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं ॥ ४६ ॥ आप मूलप्रकृतिमें नित्य विहार करते रहते हैं। समस्त स्थूल और सूक्ष्म जगत्की सिद्धि आपसे ही होती है। हृषीकेश! आप मननशील आत्माराम हैं। मौन ही आपका स्वभाव है। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४७ ॥ आप स्थूल, सूक्ष्म समस्त गतियोंके जाननेवाले तथा सबके साक्षी हैं। आप नामरूपात्मक विश्वप्रपञ्चके निषेधकी अवधि तथा उसके अधिष्ठान होनेके कारण विश्वरूप भी हैं। आप विश्वके अध्यास तथा अपवादके साक्षी हैं एवं अज्ञानके द्वारा उसकी सत्यत्वभ्रान्ति एवं स्वरूपज्ञानके द्वारा उसकी आत्यन्तिक निवृत्तिके भी कारण हैं। आपको हमारा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

प्रभो! यद्यपि कर्तापन न होनेके कारण आप कोई भी कर्म नहीं करते, निष्क्रिय हैं—तथापि अनादि कालशक्तिको स्वीकार करके प्रकृतिके गुणोंके द्वारा आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करते हैं। क्योंकि आपकी लीलाएँ अमोघ हैं। आप सत्य-सङ्कल्प हैं। इसलिये जीवोंके संस्काररूपसे छिपे हुए स्वभावोंको अपनी दृष्टिसे जाग्रत् कर देते हैं ॥ ४९ ॥ त्रिलोकीमें तीन प्रकारकी योनियाँ हैं—सत्त्वगुणप्रधान शान्त, रजोगुणप्रधान अशान्त और तमोगुणप्रधान मूढ। वे सब-की-सब आपकी लीलामूर्तियाँ हैं। फिर भी इस समय आपको सत्त्वगुणप्रधान शान्तजन ही विशेष प्रिय हैं। क्योंकि आपका यह अवतार और ये लीलाएँ साधुजनों-

की रक्षा तथा धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके लिये ही हैं ॥ ५० ॥ शान्तात्मन् ! स्वामीको एक बार अपनी प्रजाका अपराध सह लेना चाहिये । यह मूढ़ है, आपको पहचानता नहीं है, इसलिये इसे क्षमा कर दीजिये ॥५१॥ भगवन् ! कृपा कीजिये; अब यह सर्प मरनेहीवाला है । साधु पुरुष सदासे ही हम अबलाओंपर दया करते आये हैं । अतः आप हमें हमारे प्राणस्वरूप पतिदेवको दे दीजिये ॥ ५२ ॥ हम आपकी दासी हैं । हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें ? क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पालन—आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ५३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌के चरणोंकी ठोकरोंसे कालिय नागके फण छिन्न-भिन्न हो गये थे । वह बेसुध हो रहा था । जब नागपत्नियोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब उन्होंने दया करके उसे छोड़ दिया ॥ ५४ ॥ धीरे-धीरे कालिय नागकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ-कुछ चेतना आ गयी । वह बड़ी कठिनतासे श्वास लेने लगा और थोड़ी देरके बाद बड़ी दीनतासे हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोला ॥ ५५ ॥

कालिय नागने कहा—नाथ ! हम जन्मसे ही दुष्ट, तमोगुणी और बहुत दिनोंके बाद भी बदला लेनेवाले—बड़े क्रोधी जीव हैं । जीवोंके लिये अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है । इसीके कारण संसारके लोग नाना प्रकारके दुराग्रहोंमें फँस जाते हैं ॥५६॥ विश्वविधाता ! आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्‌में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकृतियोंका निर्माण किया है ॥ ५७ ॥ भगवन् ! आपकी ही सृष्टिमें हम सर्प भी हैं । हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं । हम इस मायाके चक्करमें स्वयं मोहित हो रहे हैं । फिर अपने प्रयत्नसे इस दुस्त्यज मायाका त्याग कैसे करें ॥५८॥ आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं । आप ही हमारे स्वभाव और इस मायाके भी कारण हैं । अब आप अपनी इच्छासे—जैसा ठीक समझें—कृपा कीजिये या दण्ड दीजिये ॥ ५९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कालिय नागकी बात सुनकर लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'सर्प ! अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये । तू अपने जाति-भाई, पुत्र और स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही यहाँसे समुद्रमें चला जा । अब गौएँ और मनुष्य यमुना-जलका उपभोग करें ॥ ६० ॥ जो मनुष्य दोनों समय तुझको दी हुई मेरी इस आज्ञाका स्मरण तथा कीर्तन करे, उसे साँपोंसे कभी भय न हो ॥ ६१ ॥ मैंने इस कालियदहमें क्रीडा की है । इसलिये जो पुरुष इसमें स्नान करके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा, एवं उपवास करके मेरा स्मरण करता हुआ मेरी पूजा करेगा—वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ६२ ॥ मैं जानता हूँ कि तू गरुडके भयसे रमणक द्वीप छोड़कर इस दहमें आ बसा था । अब तेरा शरीर मेरे चरणचिह्नोंसे अङ्कित हो गया है । इसलिये जा, अब गरुड तुझे खायेंगे नहीं ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णकी एक-एक लीला अद्भुत है । उनकी ऐसी आज्ञा पाकर कालिय नाग और उसकी पत्नियोंने आनन्दसे भरकर बड़े आदरसे उनकी पूजा की ॥ ६४ ॥ उन्होंने दिव्य वस्त्र, पुष्पमाला, मणि, बहुमूल्य आभूषण, दिव्य गन्ध, चन्दन और अति उत्तम कमलोंकी मालासे जगत्‌के स्वामी गरुडध्वज भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करके उन्हें प्रसन्न किया । इसके बाद बड़े प्रेम और आनन्दसे उनकी परिक्रमा की, वन्दना की और उनसे अनुमति ली । तब अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके साथ रमणक द्वीपकी, जो समुद्रमें सर्पोंके रहनेका एक स्थान है, यात्रा की । लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे यमुनाजीका जल केवल विषहीन ही नहीं, बल्कि उसी समय अमृतके समान मधुर हो गया ॥६५—६७॥

सत्रहवाँ अध्याय

कालियके कालियदहमें आनेकी कथा तथा भगवान्‌का व्रजवासियोंको दावानलसे बचाना

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! कालिय नागने नागोंके निवासस्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ा था ?

और उस अकेलेने ही गरुडजीका कौन-सा अपराध किया था ? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! पूर्वकालमें गरुडजीको उपहार स्वरूप प्राप्त होनेवाले सर्पोंने यह नियम कर लिया था कि प्रत्येक मासमें निर्दिष्ट वृक्षके नीचे गरुडको एक सर्पकी भेंट दी जाय ॥ २ ॥ इस नियमके अनुसार प्रत्येक अमावस्याको सारे सर्प अपनी रक्षाके लिये महात्मा गरुडजीको अपना-अपना भाग देते रहते थे* ॥ ३ ॥ उन सर्पोंमें कद्रूका पुत्र कालिय नाग अपने विष और बलके घमंडसे मतवाला हो रहा था। उसने गरुडका तिरस्कार करके स्वयं तो बलि देना दूर रहा—दूसरे साँप जो गरुडको बलि देते, उसे भी खा लेता ॥ ४ ॥ परीक्षित् ! यह सुनकर भगवान्‌के प्यारे पार्षद शक्तिशाली गरुडको बड़ा क्रोध आया। इसलिये उन्होंने कालिय नागको मार डालनेके विचारसे बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया ॥ ५ ॥ विषधर कालिय नागने जब देखा कि गरुड बड़े वेगसे मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं, तब वह अपने एक सौ एक फण फैलाकर डसनेके लिये उनपर टूट पड़ा। उसके पास शस्त्र थे केवल दाँत, इसलिये उसने दाँतोंसे गरुडको डस लिया। उस समय वह अपनी भयावनी जीभें लपलपा रहा था, उसकी साँस लंबी चल रही थी और आँखें बड़ी डरावनी जान पड़ती थीं ॥ ६ ॥ तार्क्ष्यनन्दन गरुडजी विष्णुभगवान्‌के वाहन हैं और उनका वेग तथा पराक्रम भी अतुलनीय है। कालिय नागकी यह ढिठाई देखकर उनका क्रोध और भी बढ़ गया तथा उन्होंने उसे अपने शरीरसे झटककर फेंक दिया एवं अपने सुनहले बायें पंखसे कालिय नागपर बड़े जोरसे प्रहार किया ॥ ७ ॥ उनके पंखकी चोटसे कालिय नाग घायल हो गया। वह घबड़ाकर वहाँसे भगा और यमुनाजीके इस कुण्डमें चला आया। यमुनाजीका यह कुण्ड गरुडके लिये अगम्य था। साथ ही वह इतना गहरा था कि उसमें दूसरे लोग भी नहीं जा सकते थे ॥ ८ ॥ इसी स्थानपर एक दिन क्षुधातुर गरुडने तपस्वी सौभरिके मना करनेपर भी अपने अभीष्ट भक्ष्य मत्स्यको बलपूर्वक पकड़कर खा लिया ॥ ९ ॥ अपने मुखिया मत्स्यराजके मारे जानेके कारण मछलियोंको बड़ा कष्ट हुआ। वे अत्यन्त दीन और व्याकुल हो गयीं। उनकी यह दशा देखकर महर्षि सौभरिको बड़ी दया आयी। उन्होंने उस कुण्डमें रहनेवाले सब जीवोंकी भलाईके लिये गरुडको यह शाप दे दिया ॥ १० ॥ 'यदि गरुड फिर कभी इस कुण्डमें घुसकर मछलियोंको खायेंगे, तो उसी क्षण प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे। मैं यह सत्य-सत्य कहता हूँ' ॥ ११ ॥ परीक्षित् ! महर्षि सौभरिके इस शापकी बात कालिय नागके सिवा और कोई साँप नहीं जानता था। इसलिये वह गरुडके भयसे वहाँ रहने लगा था और अब भगवान् श्रीकृष्णने उसे निर्भय करके वहाँसे रमणक द्वीपमें भेज दिया ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य माला, गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो उस कुण्डसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ उनको देखकर सब-के-सब व्रजवासी इस प्रकार उठ खड़े हुए, जैसे प्राणोंको पाकर इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं। सभी गोपोंका हृदय आनन्दसे भर गया। वे बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे अपने कन्हैयाको हृदयसे लगाने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा, गोपी और गोप—सभी श्रीकृष्णको पाकर सचेत हो गये। उनका मनोरथ सफल हो गया ॥ १५ ॥ बलरामजी तो भगवान्‌का प्रभाव जानते ही थे। वे श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर हँसने लगे। पर्वत, वृक्ष, गाय, बैल, बछड़े—सब-के-सब आनन्दमग्न हो गये ॥ १६ ॥ गोपोंके कुलगुरु ब्राह्मणोंने अपनी पत्नियोंके साथ नन्दबाबाके पास आकर कहा—'नन्दजी ! तुम्हारे बालकको कालिय नागने पकड़ लिया था। सो छूटकर आ गया। यह बड़े सौभाग्यकी

* यह कथा इस प्रकार है—गरुडजीकी माता विनता और सर्पोंकी माता कद्रूमें परस्पर वैर था। माताका वैर स्मरण कर गरुडजी जो सर्प मिलता उसीको खा जाते। इससे व्याकुल होकर सब सर्प ब्रह्माजीकी शरणमें गये। तब ब्रह्माजीने यह नियम कर दिया कि प्रत्येक अमावास्याको प्रत्येक सर्पपरिवार बारी-बारीसे गरुडजीको एक सर्पकी बलि दिया करे।

बात है ।॥ १७॥ श्रीकृष्णके मृत्युके मुखसे लौट आनेके उपलक्ष्यमें तुम ब्राह्मणोंको दान करो ।' परीक्षित् ! ब्राह्मणोंकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने बहुत-सा सोना और गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं ॥ १८॥ परमसौभाग्यवती देवी यशोदाने भी कालके गालसे बचे हुए अपने लालको गोदमें लेकर हृदयसे चिपका लिया । उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें बार-बार टपकी पड़ती थीं ॥ १९ ॥

राजेन्द्र ! व्रजवासी और गौएँ सब बहुत ही थक गये थे । ऊपरसे भूख-प्यास भी लग रही थी । इसलिये उस रात वे व्रजमें नहीं गये, वहीं यमुनाजीके तटपर सो रहे ॥ २० ॥ गर्मीके दिन थे, उधरका वन सूख गया था । आधी रातके समय उसमें आग लग गयी । उस आगने सोये हुए व्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया और वह उन्हें जलाने लगी ॥ २१ ॥ आगकी आँच लगनेपर व्रजवासी घबड़ाकर उठ खड़े हुए और लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये ॥ २२ ॥ उन्होंने कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण !, श्यामसुन्दर ! महाभाग्यवान् बलराम ! तुम दोनोंका बल-विक्रम अनन्त है । देखो, देखो, यह भयङ्कर आग तुम्हारे सगे-सम्बन्धी हम स्वजनोंको जलाना ही चाहती है ॥२३॥ तुममें सब सामर्थ्य है । हम तुम्हारे सुहृद् हैं, इसलिये इस प्रलयकी अपार आगसे हमें बचाओ । प्रभो ! हम मृत्युसे नहीं डरते, परन्तु तुम्हारे अकुतोभय चरणकमल छोड़नेमें हम असमर्थ हैं ॥ २४ ॥ भगवान् अनन्त हैं; वे अनन्त शक्तियोंको धारण करते हैं, उन जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि मेरे स्वजन इस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उस भयङ्कर आगको पी गये ।* ॥ २५ ॥

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब आनन्दित स्वजन सम्बन्धियोंसे घिरे हुए एवं उनके मुखसे अपनी कीर्तिका गान सुनते हुए श्रीकृष्णने गोकुलमण्डित गोष्ठमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ इस प्रकार अपनी योगमायासे ग्वालका-सा वेष बनाकर राम और श्याम व्रजमें क्रीडा कर रहे थे । उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी । यह शरीर-धारियोंको बहुत प्रिय नहीं है ॥२॥ परन्तु वृन्दावनके स्वाभाविक गुणोंसे वहाँ वसन्तकी ही छटा छिटक रही थी । इसका कारण था, वृन्दावनमें परम मधुर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और बलरामजी निवास जो करते थे ॥ ३ ॥ झींगुरोंकी तीखी झंकार झरनोंके मधुर झर-झरमें छिप गयी थी । उन झरनोंसे सदा-सर्वदा बहुत ठंडी जलकी फुहियाँ उड़ा करती थीं, जिनसे वहाँके वृक्षोंकी हरियाली देखते ही बनती थी ॥ ४ ॥ जिधर देखिये, हरी-हरी दूबसे पृथ्वी हरी-हरी हो रही है । नदी, सरोवर एवं झरनोंकी लहरोंका स्पर्श करके जो वायु चलती थी उसमें लाल-पीले-नीले, तुरतके खिले हुए, देरके खिले हुए—कह्लार, उत्पल आदि अनेकों प्रकारके कमलोंका पराग मिला हुआ होता था । इस शीतल, मन्द और सुगन्ध वायुके कारण वनवासियों-

अग्नि-पान

* १—मैं सबका दाह दूर करनेके लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ । इसलिये यह दाह दूर करना भी मेरा कर्तव्य है ।

२—रामावतारमें श्रीजानकीजी को सुरक्षित रखकर अग्निने मेरा उपकार किया था । अब उसको अपने मुखमें स्थापित करके उसका सत्कार करना कर्तव्य है ।

३. कार्यका कारणमें लय होता है । भगवान्के मुखसे अग्नि प्रकट हुआ—मुखाद् अग्निरजायत । इसलिये भगवान्ने उसे मुखमें ही स्थापित किया ।

४. मुखके द्वारा अग्नि शान्त करके यह भाव प्रकट किया कि भव-दावाग्निको शान्त करनेमें भगवान्के मुख-स्थानीय ब्राह्मण ही समर्थ हैं ।

को गर्मीका किसी प्रकारका क्लेश नहीं सहना पड़ता था। न दावाग्निका ताप लगता था और न तो सूर्यका घाम ही ॥ ५ ॥ नदियोंमें अगाध जल भरा हुआ था। बड़ी-बड़ी लहरें उनके तटोंको चूम जाया करती थीं। वे उनके पुलिनोंसे टकरातीं और उन्हें स्वच्छ बना जातीं। उनके कारण आस-पासकी भूमि गीली बनी रहती और सूर्यकी अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँकी पृथ्वी और हरी-भरी घासको नहीं सुखा सकती थीं; चारों ओर हरियाली छा रही थी ॥ ६ ॥ उस वनमें वृक्षोंकी पाँत-की-पाँत फूलोंसे लद रही थी। जहाँ देखिये, वहींसे सुन्दरता फूटी पड़ती थी। कहीं रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे हैं, तो कहीं तरह-तरहके हरिन चौकड़ी भर रहे हैं। कहीं मोर कूक रहे हैं, तो कहीं भौंरे गुंजार कर रहे हैं। कहीं कोयलें कुहक रही हैं, तो कहीं सारस अलग ही अपना अलाप छेड़े हुए हैं ॥ ७ ॥ ऐसा सुन्दर वन देखकर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलरामजीने उसमें विहार करनेकी इच्छा की। आगे-आगे गौएँ चलीं, पीछे-पीछे ग्वालबाल और बीचमें अपने बड़े भाईके साथ बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण! ॥ ८ ॥

राम, श्याम और ग्वालबालोंने नव पल्लवों, मोरपंखके गुच्छों, सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके हारों और गेरू आदि रंगीन धातुओंसे अपनेको भाँति-भाँतिसे सजा लिया। फिर कोई आनन्दमें मग्न होकर नाचने लगा, तो कोई ताल ठोंककर कुश्ती लड़ने लगा और किसी-किसीने राग अलापना शुरू कर दिया ॥९॥ जिस समय श्रीकृष्ण नाचने लगते, उस समय कुछ ग्वालबाल गाने लगते और कुछ बाँसुरी तथा सींग बजाने लगते। कुछ हथेलीसे ही ताल देते, तो कुछ 'वाह-वाह' करने लगते ॥१०॥ परीक्षित्! उस समय नट जैसे अपने नायककी प्रशंसा करते हैं, वैसे ही देवतालोग ग्वालबालोंका रूप धारण करके वहाँ आते और गोपजातिमें जन्म लेकर छिपे हुए बलराम और श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगते ॥ ११ ॥ घुँघराली अलकोंवाले श्याम और बलराम कभी एक-दूसरेका हाथ पकड़कर कुम्हारके चाककी तरह चक्कर काटते—घुमरी-परेता खेलते, कभी एक-दूसरेसे अधिक फाँद जानेकी इच्छासे कूदते—कूँड़ी डाकते, कभी कहीं होड़ लगाकर ढेले फेंकते, तो कभी ताल ठोंक-ठोंककर रस्साकसी करते—एक दल दूसरे दलके विपरीत रस्सी पकड़कर खींचता और कभी कहीं एक-दूसरेसे कुश्ती लड़ते-लड़ाते। इस प्रकार तरह-तरहके खेल खेलते ॥ १२ ॥ कहीं-कहीं जब दूसरे ग्वालबाल नाचने लगते तो श्रीकृष्ण और बलरामजी गाते या बाँसुरी, सींग आदि बजाते। और महाराज! कभी-कभी वे 'वाह-वाह' कहकर उनकी प्रशंसा भी करने लगते ॥१३॥ कभी एक-दूसरेपर बेल, जायफल या आँवलेके फल हाथमें लेकर फेंकते। कभी एक-दूसरेकी आँख बंद करके छिप जाते और वह पीछेसे ढूँढ़ता—इस प्रकार आँखमिचौनी खेलते। कभी एक दूसरेको छूनेके लिये बहुत दूर-दूरतक दौड़ते रहते और कभी पशु-पक्षियोंकी चेष्टाओंका अनुकरण करते ॥ १४ ॥ कहीं मेढकोंकी तरह फुदक-फुदककर चलते, तो कभी मुँह बना-बनाकर एक दूसरेकी हँसी उड़ाते। कहीं रस्सियोंसे वृक्षोंपर झूला डालकर झूलते, तो कभी दो बालकोंको खड़ा कराकर उनकी बाँहोंके बलपर ही लटकने लगते। कभी किसी राजाकी नकल करने लगते ॥१५॥ इस प्रकार राम और श्याम वृन्दावनकी नदी, पर्वत, घाटी, कुञ्ज, वन और सरोवरोंमें वे सभी खेल खेलते, जो साधारण बच्चे संसारमें खेला करते हैं ॥ १६ ॥

एक दिन जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ उस वनमें गौएँ चरा रहे थे, तब ग्वालके वेषमें प्रलम्ब नामका एक असुर आया। उसकी इच्छा थी कि मैं श्रीकृष्ण और बलरामको हर ले जाऊँ ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं। वे उसे देखते ही पहचान गये। फिर भी उन्होंने उसका मित्रताका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वे मन-ही-मन यह सोच रहे थे कि किस युक्तिसे इसका वध करना चाहिये ॥१८॥ ग्वालबालोंमें सबसे बड़े खिलाड़ी, खेलोंके आचार्य श्रीकृष्ण ही थे। उन्होंने सब ग्वालबालोंको बुलाकर कहा—'मेरे प्यारे मित्रो! आज हमलोग अपनेको उचित रीतिसे दो दलोंमें बाँट लें।'—और फिर आनन्दसे खेलें ॥ १९ ॥ उस खेलमें ग्वालबालोंने बलराम और श्रीकृष्णको नायक

बनाया। कुछ श्रीकृष्णके साथी बन गये और कुछ बलरामके ॥ २० ॥ फिर उन लोगोंने तरह-तरहसे ऐसे बहुत-से खेल खेले, जिनमें एक दलके लोग दूसरे दलके लोगोंको अपनी पीठपर चढ़ाकर एक निर्दिष्ट स्थानपर ले जाते थे। जीतनेवाला दल चढ़ता था और हारनेवाला दल ढोता था ॥ २१ ॥ इस प्रकार एक दूसरेकी पीठपर चढ़ते-चढ़ाते श्रीकृष्ण आदि ग्वालबाल गौएँ चराते हुए भाण्डीर नामक वटके पास पहुँच गये ॥ २२ ॥

परीक्षित्! एक बार बलरामजीके दलवाले श्रीदामा, वृषभ आदि ग्वालबालोंने खेलमें बाजी मार ली। तब श्रीकृष्ण आदि उन्हें अपनी पीठपर चढ़ाकर ढोने लगे ॥ २३ ॥ हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्बने बलरामजीको ॥ २४ ॥ दानवपुङ्गव प्रलम्बने देखा कि श्रीकृष्ण तो बड़े बलवान् हैं, उन्हें मैं नहीं हरा सकूँगा। अतः वह उन्हींके पक्षमें हो गया और बलरामजीको लेकर फुर्तीसे भाग चला, और पीठपरसे उतारनेके लिये जो स्थान नियत था, उससे आगे निकल गया ॥ २५ ॥ बलरामजी बड़े भारी पर्वतके समान बोझवाले थे। उनको लेकर प्रलम्बासुर दूरतक न जा सका, उसकी चाल रुक गयी। तब उसने अपना स्वाभाविक दैत्यरूप धारण कर लिया। उसके काले शरीरपर सोनेके गहने चमक रहे थे और गौरसुन्दर बलरामजीको धारण करनेके कारण उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजलीसे युक्त काला बादल चन्द्रमाको धारण किये हुए हो ॥ २६ ॥ उसकी आँखें आगकी तरह धधक रही थीं और दाढ़ें भौंहोंतक पहुँची हुई बड़ी भयावनी थीं। उसके लाल-लाल बाल इस तरह बिखर रहे थे, मानो आगकी लपटें उठ रही हों। उसके हाथ और पाँवोंमें कड़े, सिरपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल थे। उनकी कान्तिसे वह बड़ा अद्भुत लग रहा था! उस भयानक दैत्यको बड़े वेगसे आकाशमें जाते देख पहले तो बलरामजी कुछ घबड़ा-से गये ॥ २७ ॥ परन्तु दूसरे ही क्षण अपने स्वरूपकी याद आते ही उनका भय जाता रहा। बलरामजीने देखा कि जैसे चोर किसीका धन चुराकर ले जाय, वैसे ही यह शत्रु मुझे चुराकर आकाश-मार्गसे लिये जा रहा है। उस समय जैसे इन्द्रने पर्वतोंपर वज्र चलाया था, वैसे ही उन्होंने क्रोध करके उसके सिरपर एक घूँसा कसकर जमाया ॥ २८ ॥ घूँसा लगना था कि उसका सिर चूर-चूर हो गया। वह मुँहसे खून उगलने लगा, चेतना जाती रही और बड़ा भयङ्कर शब्द करता हुआ इन्द्रके द्वारा वज्रसे मारे हुए पर्वतके समान वह उसी समय प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २९ ॥

बलरामजी परम बलशाली थे। जब ग्वालबालोंने देखा कि उन्होंने प्रलम्बासुरको मार डाला, तब उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे बार-बार 'वाह-वाह' करने लगे ॥ ३० ॥ ग्वालबालोंका चित्त प्रेमसे विह्वल हो गया। वे उनके लिये शुभ कामनाओंकी वर्षा करने लगे और मानो मरकर लौट आये हों, इस भावसे आलिङ्गन करके प्रशंसा करने लगे। वस्तुतः बलरामजी इसके योग्य ही थे ॥ ३१ ॥ प्रलम्बासुर मूर्तिमान् पाप था। उसकी मृत्युसे देवताओंको बड़ा सुख मिला। वे बलरामजीपर फूल बरसाने लगे और 'बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया' इस प्रकार कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! उस समय जब ग्वालबाल खेल-कूदमें लग गये, तब उनकी गौएँ बेरोक-टोक चरती हुई बहुत दूर निकल गयीं और हरी-हरी घासके लोभसे एक गहन वनमें घुस गयीं ॥ १ ॥ उनकी बकरियाँ, गायें और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें होती हुई आगे बढ़ गयीं तथा गर्मीके तापसे व्याकुल हो गयीं। वे बेसुध-सी होकर अन्तमें डकराती हुई मुञ्जाटवी (सरकंडोंके वन) में घुस गयीं ॥ २ ॥

जब श्रीकृष्ण, बलराम आदि ग्वालबालोंने देखा कि हमारे पशुओंका तो कहीं पता-ठिकाना ही नहीं है, तब उन्हें अपने खेल-कूदपर बड़ा पछतावा हुआ और वे बहुत कुछ खोज-बीन करनेपर भी अपनी गौओंका पता न लगा सके ॥ ३ ॥ गौएँ ही तो व्रजवासियोंकी जीविकाका साधन थीं। उनके न मिलनेसे वे अचेत-से हो रहे थे। अब वे गौओंके खुर और दाँतोंसे कटी हुई घास तथा पृथ्वीपर बने हुए खुरोंके चिह्नोंसे उनका पता लगाते हुए आगे बढ़े ॥ ४ ॥ अन्तमें उन्होंने देखा कि उनकी गौएँ मुञ्जाटवीमें रास्ता भूलकर डकरा रही हैं। उन्हें पाकर वे लौटानेकी चेष्टा करने लगे। उस समय वे एकदम थक गये थे और उन्हें प्यास भी बड़े जोरसे लगी हुई थी। इससे वे व्याकुल हो रहे थे ॥ ५ ॥ उनकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मेघके समान गम्भीर वाणीसे नाम ले-लेकर गौओंको पुकारने लगे। गौएँ अपने नामकी ध्वनि सुनकर बहुत हर्षित हुईं। वे भी उत्तरमें हुंकारने और रँभाने लगीं ॥ ६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् उन गायोंको पुकार ही रहे थे कि उस वनमें सब ओर अकस्मात् दावाग्नि लग गयी, जो वनवासी जीवोंका काल ही होती है। साथ ही बड़े जोरकी आँधी भी चलकर उस अग्निके बढ़नेमें सहायता देने लगी। इससे सब ओर फैली हुई वह प्रचण्ड अग्नि अपनी भयङ्कर लपटोंसे समस्त चराचर जीवोंको भस्मसात् करने लगी ॥ ७ ॥ जब ग्वालों और गौओंने देखा कि दावानल चारों ओरसे हमारी ही ओर बढ़ता आ रहा है, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गये। और मृत्युके भयसे डरे हुए जीव जिस प्रकार भगवान्की शरणमें आते हैं, वैसे ही वे श्रीकृष्ण और बलरामजीके शरणापन्न होकर उन्हें पुकारते हुए बोले—॥ ८ ॥ 'महावीर श्रीकृष्ण! प्यारे श्रीकृष्ण! परम बलशाली बलराम! हम तुम्हारे शरणागत हैं। देखो, इस समय हम दावानलसे जलना ही चाहते हैं। तुम दोनों हमें इससे बचाओ ॥ ९ ॥ श्रीकृष्ण! जिनके तुम्हीं भाई-बन्धु और सब कुछ हो, उन्हें तो किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये। सब धर्मोंके ज्ञाता श्यामसुन्दर! तुम्हीं हमारे एकमात्र रक्षक एवं स्वामी हो; हमें केवल तुम्हारा ही भरोसा है'। ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—अपने सखा ग्वालबालोंके ये दीनतासे भरे वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'डरो मत, तुम अपनी आँखें बंद कर लो' ॥ ११ ॥ भगवान्की आज्ञा सुनकर उन ग्वालबालोंने कहा 'बहुत अच्छा' और अपनी आँखें मूँद लीं। तब योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उस भयङ्कर आगको अपने मुँहसे पी लिया * और इस प्रकार उन्हें उस घोर सङ्कटसे छुड़ा दिया ॥ १२ ॥ इसके बाद जब ग्वालबालोंने अपनी-अपनी आँखें खोलकर देखा, तब अपनेको भाण्डीर वटके पास पाया। इस प्रकार अपने-आपको और गौओंको दावानलसे बचा देख वे ग्वालबाल बहुत ही विस्मित हुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णकी इस योग-सिद्धि तथा योगमायाके प्रभावको एवं दावानलसे अपनी रक्षाको देखकर उन्होंने यही समझा कि श्रीकृष्ण कोई देवता हैं ॥ १४ ॥

परीक्षित्! सायङ्काल होनेपर बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णने गौएँ लौटायीं और वंशी बजाते हुए उनके पीछे-पीछे व्रजकी यात्रा की। उस समय ग्वालबाल उनकी स्तुति करते आ रहे थे ॥ १५ ॥ इधर व्रजमें गोपियोंको श्रीकृष्णके बिना एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान हो रहा था। जब भगवान् श्रीकृष्ण लौटे तब उनका दर्शन करके वे परमानन्दमें मग्न हो गयीं ॥ १६ ॥

---

* १. भगवान् श्रीकृष्ण भक्तोंके द्वारा अर्पित प्रेम-भक्ति-सुधा-रसका पान करते हैं। अग्निके मनमें उसीका स्वाद लेनेकी लालसा हो आयी। इसलिये उसने स्वयं ही मुखमें प्रवेश किया।

२. विषाग्नि, मुञ्जाग्नि और दावाग्नि—तीनोंका पान करके भगवान्ने अपनी त्रितापनाशकी शक्ति व्यक्त की।

३. पहले रात्रिमें अग्निपान किया था, दूसरी बार दिनमें। भगवान् अपने भक्तजनोंका ताप हरनेके लिये सदा तत्पर रहते हैं।

४. पहली बार सबके सामने और दूसरी बार सबकी आँखें बंद कराके श्रीकृष्णने अग्निपान किया। इसका अभिप्राय यह है कि भगवान् परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही प्रकारसे वे भक्तजनोंका हित करते हैं।

बीसवाँ अध्याय

वर्षा और शरद्‌ऋतुका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ग्वालबालोंने घर पहुँचकर अपनी मा, बहिन आदि स्त्रियोंसे श्रीकृष्ण और बलरामने जो कुछ अद्भुत कर्म किये थे—दावानलसे उनको बचाना, प्रलम्बको मारना इत्यादि—सबका वर्णन किया ॥ १ ॥ बड़े-बड़े बूढ़े गोप और गोपियाँ भी राम और श्यामकी अलौकिक लीलाएँ सुनकर विस्मित हो गयीं। वे सब ऐसा मानने लगे कि 'श्रीकृष्ण और बलरामके वेषमें कोई बहुत बड़े देवता ही व्रजमें पधारे हैं' ॥ २ ॥

इसके बाद वर्षा ऋतुका शुभागमन हुआ। इस ऋतुमें सभी प्रकारके प्राणियोंकी बढ़ती हो जाती है। उस समय सूर्य और चन्द्रमापर बार-बार प्रकाशमय मण्डल बैठने लगे। बादल, वायु, चमक, कड़क आदिसे आकाश क्षुब्ध-सा दीखने लगा ॥ ३ ॥ आकाशमें नीले और घने बादल घिर आते, बिजली कौंधने लगती, बार-बार गड़-गड़ाहट सुनायी पड़ती; सूर्य, चन्द्रमा और तारे ढके रहते। इससे आकाशकी ऐसी शोभा होती, जैसे ब्रह्म-स्वरूप होनेपर भी गुणोंसे ढक जानेपर जीवकी होती है ॥ ४ ॥ सूर्यने राजाकी तरह पृथ्वीरूप प्रजासे आठ महीनेतक जलका कर ग्रहण किया था, अब समय आने-पर वे अपने किरण-करोंसे फिर उसे बाँटने लगे ॥ ५ ॥ जैसे दयालु पुरुष जब देखते हैं कि प्रजा बहुत पीड़ित हो रही है, तब वे दयापरवश होकर अपने जीवन-प्राण-तक निछावर कर देते हैं—वैसे ही बिजलीकी चमकसे शोभायमान घनघोर बादल तेज हवाकी प्रेरणासे प्राणियों-के कल्याणके लिये अपने जीवनस्वरूप जलको बरसाने लगे ॥ ६ ॥ जेठ-आषाढ़की गर्मीसे पृथ्वी सूख गयी थी। अब वर्षाके जलसे सिंचकर वह फिर हरी-भरी हो गयी—जैसे सकामभावसे तपस्या करते समय पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है, परन्तु जब उसका फल मिलता है, तब हृष्ट-पुष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ वर्षाके सायङ्कालमें बादलोंसे घना अँधेरा छा जानेपर ग्रह और तारोंका प्रकाश तो नहीं दिखलायी पड़ता, परन्तु जुगनू चमकने लगते हैं—जैसे कलियुगमें पापकी प्रबलता हो जानेसे पाखण्ड मतोंका प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥ जो मेंढक पहले चुपचाप सो रहे थे, अब वे बादलोंकी गरज सुनकर टर्र-टर्र करने लगे—जैसे नित्य-नियमसे निवृत्त होनेपर गुरुके आदेशानुसार ब्रह्मचारी लोग वेदपाठ करने लगते हैं ॥ ९ ॥ छोटी-छोटी नदियाँ, जो जेठ-आषाढ़में बिल्कुल सूखनेको आ गयी थीं, वे अब उमड़-घुमड़कर अपने घेरेसे बाहर बहने लगीं—जैसे अजितेन्द्रिय पुरुषके शरीर और धन-सम्पत्तियोंका कुमार्गमें उपयोग होने लगता है ॥ १० ॥ पृथ्वीपर कहीं-कहीं हरी-हरी घासकी हरि-याली थी, तो कहीं-कहीं बीरबहूटियोंकी लालिमा और कहीं-कहीं बरसाती छत्तों (सफेद कुकुरमुत्तों) के कारण वह सफेद मालूम देती थी। इस प्रकार उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो किसी राजाकी रंग-बिरंगी सेना हो ॥ ११ ॥ सब खेत अनाजोंसे भरे-पूरे लहलहा रहे थे। उन्हें देखकर किसान तो मारे आनन्दके फूले न समाते थे, परन्तु सब कुछ प्रारब्धके अधीन है—यह बात न जाननेवाले धनियोंके चित्तमें बड़ी जलन हो रही थी कि अब हम इन्हें अपने पंजेमें कैसे रख सकेंगे ॥ १२ ॥ नये बरसाती जलके सेवनसे सभी जलचर और थलचर प्राणियोंकी सुन्दरता बढ़ गयी थी, जैसे भगवान्‌की सेवा करनेसे बाहर और भीतरके दोनों ही रूप सुघड़ हो जाते हैं ॥ १३ ॥ वर्षा-ऋतुमें हवाके झोंकोंसे समुद्र एक तो यों ही उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त हो रहा था, अब नदियोंके संयोगसे वह और भी क्षुब्ध हो उठा—ठीक वैसे ही, जैसे वासनायुक्त योगीका चित्त विषयोंका सम्पर्क होनेपर कामनाओंके उभारसे भर जाता है ॥ १४ ॥ मूसलधार वर्षाकी चोट खाते रहनेपर भी पर्वतोंको कोई व्यथा नहीं होती थी—जैसे दुःखोंकी भरमार होनेपर भी उन पुरुषोंको किसी प्रकारकी व्यथा नहीं होती, जिन्होंने अपना चित्त भगवान्‌को ही समर्पित कर रक्खा है ॥ १५ ॥ जो मार्ग कभी साफ नहीं किये जाते थे, वे घाससे ढक गये और उनको पहचानना कठिन हो गया—जैसे जब द्विजाति वेदोंका अभ्यास नहीं करते, तब कालक्रमसे वे उन्हें भूल जाते हैं ॥ १६ ॥ यद्यपि

बादल बड़े लोकोपकारी हैं, फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं—ठीक वैसे ही, जैसे चपल अनुरागवाली कामिनी स्त्रियाँ गुणी पुरुषोंके पास भी स्थिरभावसे नहीं रहतीं ॥ १७ ॥ आकाश मेघोंके गर्जन-तर्जनसे भर रहा था। उसमें निर्गुण (बिना डोरीके) इन्द्रधनुषकी वैसी ही शोभा हुई, जैसी सत्त्व-रज आदि गुणोंके क्षोभसे होनेवाले विश्वके बखेड़ेमें निर्गुण ब्रह्मकी ॥१८॥ यद्यपि चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनीसे बादलोंका पता चलता था, फिर भी उन बादलोंने ही चन्द्रमाको ढककर शोभाहीन भी बना दिया था—ठीक वैसे ही, जैसे पुरुषके आभाससे आभासित होनेवाला अहङ्कार ही उसे ढककर प्रकाशित नहीं होने देता॥ १९ ॥ बादलोंके शुभागमनसे मोरोंका रोम-रोम खिल रहा था, वे अपनी कुहुक और नृत्यके द्वारा आनन्दोत्सव मना रहे थे—ठीक वैसे ही, जैसे गृहस्थीके जंजालमें फँसे हुए लोग, जो अधिकतर तीनों तापोंसे जलते और घबड़ाते रहते हैं, भगवान्‌के भक्तोंके शुभागमनसे आनन्दमग्न हो जाते हैं ॥ २० ॥ जो वृक्ष जेठ-आषाढ़में सूख गये थे, वे अब अपनी जड़ोंसे जल पीकर पत्ते, फूल तथा डालियोंसे खूब सज-धज गये—जैसे सकामभावसे तपस्या करनेवाले पहले तो दुर्बल हो जाते हैं, परन्तु कामना पूरी होनेपर मोटे-तगड़े हो जाते हैं ॥ २१ ॥ परीक्षित्! तालाबोंके तट काँटे-कीचड़ और जलके बहावके कारण प्रायः अशान्त ही रहते थे, परन्तु सारस एक क्षणके लिये भी उन्हें नहीं छोड़ते थे—जैसे अशुद्ध हृदयवाले विषयी पुरुष काम-धंधोंकी झंझटसे कभी छुटकारा नहीं पाते, फिर भी घरोंमें ही पड़े रहते हैं ॥ २२ ॥ वर्षा ऋतुमें इन्द्रकी प्रेरणासे मूसलधार वर्षा होती है, इससे नदियोंके बाँध और खेतोंकी मेड़ें टूट-फूट जाती हैं—जैसे कलियुगमें पाखण्डियोंके तरह-तरहके मिथ्या मतवादोंसे वैदिक मार्गकी मर्यादा ढीली पड़ जाती है ॥ २३ ॥ वायुकी प्रेरणासे घने बादल प्राणियोंके लिये अमृतमय जलकी वर्षा करने लगते हैं—जैसे ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे धनीलोग समय-समयपर दानके द्वारा प्रजाकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं ॥ २४ ॥

वर्षा ऋतुमें वृन्दावन इसी प्रकार शोभायमान और पके हुए खजूर तथा जामुनोंसे भर रहा था। उसी वनमें विहार करनेके लिये श्याम और बलरामने ग्वालबाल और गौओंके साथ प्रवेश किया ॥ २५ ॥ गौएँ अपने थनोंके भारी भारके कारण बहुत ही धीरे-धीरे चल रही थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण उनका नाम लेकर पुकारते, तब वे प्रेमपरवश होकर जल्दी-जल्दी दौड़ने लगतीं। उस समय उनके थनोंसे दूधकी धारा गिरती जाती थी ॥२६॥ भगवान्‌ने देखा कि वनवासी भील और भीलनियाँ आनन्दमग्न हैं। वृक्षोंकी पंक्तियाँ मधुधारा उँडेल रही हैं। पर्वतोंसे झर-झर करते हुए झरने झर रहे हैं। उनकी आवाज बड़ी सुरीली जान पड़ती है और साथ ही वर्षा होनेपर छिपनेके लिये बहुत-सी गुफाएँ भी हैं ॥ २७ ॥ जब वर्षा होने लगती, तब श्रीकृष्ण कभी किसी वृक्षकी गोदमें या खोड़रमें जा छिपते। कभी-कभी किसी गुफामें ही जा बैठते और कभी कन्द-मूल-फल खाकर ग्वालबालोंके साथ खेलते रहते ॥२८॥ कभी जलके पास ही किसी चट्टानपर बैठ जाते और बलरामजी तथा ग्वाल-बालोंके साथ मिलकर घरसे लाया हुआ दही-भात दाल-शाक आदिके साथ खाते ॥ २९ ॥ वर्षा ऋतुमें बैल, बछड़े और थनोंके भारी भारसे थकी हुई गौएँ थोड़ी ही देरमें भरपेट घास चर लेतीं और हरी-हरी घासपर बैठकर ही आँख मूँदकर जुगाली करती रहतीं। वर्षा ऋतुकी सुन्दरता अपार थी। वह सभी प्राणियोंको सुख पहुँचा रही थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह ऋतु, गाय, बैल, बछड़े—सब-के-सब भगवान्‌की लीलाके ही विलास थे। फिर भी उन्हें देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न होते और बार-बार उनकी प्रशंसा करते ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार श्याम और बलराम बड़े आनन्दसे व्रजमें निवास कर रहे थे। इसी समय वर्षा बीतनेपर शरद् ऋतु आ गयी। अब आकाशमें बादल नहीं रहे, जल निर्मल हो गया, वायु बड़ी धीमी गतिसे चलने लगी ॥३२॥ शरद् ऋतुमें कमलोंकी उत्पत्तिसे जलाशयोंके जलने अपनी सहज स्वच्छता प्राप्त कर ली—ठीक वैसे ही, जैसे योगभ्रष्ट पुरुषोंका चित्त फिरसे योगका सेवन करनेसे निर्मल हो जाता है ॥ ३३ ॥ शरद् ऋतुने आकाशके बादल, वर्षा-कालके बढ़े हुए जीव, पृथ्वीकी कीचड़ और जलके मटमैलेपनको नष्ट कर दिया—जैसे भगवान्-

की भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियोंके सब प्रकारके कष्टों और अशुभोंका झटपट नाश कर देती है ॥३४॥ बादल अपने सर्वस्व जलका दान करके उज्ज्वल कान्तिसे सुशोभित होने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे लोक-परलोक, स्त्री-पुत्र और धन-सम्पत्तिसम्बन्धी चिन्ता और कामनाओंका परित्याग कर देनेपर संसारके बन्धनसे छूटे हुए परम शान्त संन्यासी शोभायमान होते हैं ॥३५॥ अब पर्वतोंसे कहीं-कहीं झरने झरते थे और कहीं-कहीं वे अपने कल्याणकारी जलको नहीं भी बहाते थे—जैसे ज्ञानी पुरुष समयपर अपने अमृतमय ज्ञानका दान किसी अधिकारीको कर देते हैं और किसी-किसीको नहीं भी करते। ३६। छोटे-छोटे गड्ढोंमें भरे हुए जलके जलचर यह नहीं जानते कि इस गड्ढेका जल दिन-पर-दिन सूखता जा रहा है—जैसे कुटुम्बके भरण-पोषणमें भूले हुए मूढ़ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण-क्षण क्षीण हो रही है ॥३७॥ थोड़े जलमें रहनेवाले प्राणियोंको शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे बड़ी पीड़ा होने लगी—जैसे अपनी इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले कृपण एवं दरिद्र कुटुम्बीको तरह-तरहके ताप सताते ही रहते हैं ॥ ३८ ॥ पृथ्वी धीरे-धीरे अपना कीचड़ छोड़ने लगी और घास-पात धीरे-धीरे अपनी कचाई छोड़ने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे विवेकसम्पन्न साधक धीरे-धीरे शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमेंसे 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' यह अहंता और ममता छोड़ देते हैं ॥३९॥ शरद् ऋतुमें समुद्रका जल स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया—जैसे मनके निःसङ्कल्प हो जानेपर आत्माराम पुरुष कर्मकाण्डका झमेला छोड़कर शान्त हो जाता है ॥ ४० ॥ किसान खेतोंकी मेड़ मजबूत करके जलका बहना रोकने लगे—जैसे योगीजन अपनी इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर जानेसे रोककर, प्रत्याहार करके उनके द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञानकी रक्षा करते हैं ॥ ४१ ॥ शरद् ऋतुमें दिनके समय बड़ी कड़ी धूप होती, लोगोंको बहुत कष्ट होता; परन्तु चन्द्रमा रात्रिके समय लोगोंका सारा सन्ताप वैसे ही हर लेते—जैसे देहाभिमानसे होनेवाले दुःखको ज्ञान और भगवद्विरहसे होनेवाले गोपियोंके दुःखको श्रीकृष्ण नष्ट कर देते हैं ॥ ४२ ॥ जैसे वेदोंके अर्थको स्पष्ट रूपसे जाननेवाला सत्त्वगुणी चित्त अत्यन्त शोभायमान होता है, वैसे ही शरद् ऋतुमें रातके समय मेघोंसे रहित निर्मल आकाश तारोंकी ज्योतिसे जगमगाने लगा ॥४३॥ परीक्षित् ! जैसे पृथ्वीतलमें यदुवंशियोंके बीच यदुपति भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा होती है, वैसे ही आकाशमें तारोंके बीच पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होने लगा ॥४४॥ फूलोंसे लदे हुए वृक्ष और लताओंमें होकर बड़ी ही सुन्दर वायु बहती; वह न अधिक ठंडी होती और न अधिक गरम। उस वायुके स्पर्शसे सब लोगोंकी जलन तो मिट जाती, परन्तु गोपियोंकी जलन और भी बढ़ जाती; क्योंकि उनका चित्त उनके हाथमें नहीं था, श्रीकृष्णने उसे चुरा लिया था ॥४५॥ शरद् ऋतुमें गौएँ, हरिनियाँ, चिड़ियाँ और नारियाँ ऋतुमती—सन्तानोत्पत्तिकी कामनासे युक्त हो गयीं तथा साँड़, हरिन, पक्षी और पुरुष उनका अनुसरण करने लगे—ठीक वैसे ही, जैसे समर्थ पुरुषके द्वारा की हुई क्रियाओंका अनुसरण उनके फल करते हैं ॥ ४६ ॥ परीक्षित् ! जैसे राजाके शुभागमनसे डाकू-चोरोंके सिवा और सब लोग निर्भय हो जाते हैं, वैसे ही सूर्योदयके कारण कुमुदिनी (कुँई या कोईं) के अतिरिक्त और सभी प्रकारके कमल खिल गये ॥४७॥ उस समय बड़े-बड़े शहरों और गाँवोंमें नवान्नप्राशन और इन्द्रसम्बन्धी उत्सव होने लगे। खेतोंमें अनाज पक गये और पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीकी उपस्थितिसे अत्यन्त सुशोभित होने लगी ॥ ४८ ॥ साधना करके सिद्ध हुए पुरुष जैसे समय आनेपर अपने देव आदि शरीरोंको प्राप्त होते हैं, वैसे ही वैश्य, संन्यासी, राजा और स्नातक—जो वर्षाके कारण एक स्थानपर रुके हुए थे—वहाँसे चलकर अपने-अपने अभीष्ट काम-काजमें लग गये ॥ ४९ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

वेणुगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित ! शरद् ऋतुके कारण वह वन बड़ा सुन्दर हो रहा था। जल निर्मल था और जलाशयोंमें खिले हुए कमलोंकी सुगन्धसे सनकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी। भगवान् श्रीकृष्णने गौओं

और ग्वालबालोंके साथ उस वनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी-हरी वृक्ष-पंक्तियोंमें मतवाले भौंरे स्थान-स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह-तरहके पक्षी झुंड-के-झुंड अलग-अलग कलरव कर रहे थे, जिससे उस वनके सरोवर, नदियाँ और पर्वत—सब-के-सब गूँजते रहते थे । मधुपति श्रीकृष्णने बलराम-जी और ग्वालबालोंके साथ उसके भीतर घुसकर गौओं-को चराते हुए अपनी बाँसुरीपर बड़ी मधुर तान छेड़ी ॥ २ ॥ *श्रीकृष्णकी वह वंशीध्वनि भगवान्‌के* प्रति प्रेमभावको, उनके मिलनकी आकाङ्क्षाको जगानेवाली थी । (उसे सुनकर गोपियोंका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हो गया) वे एकान्तमें अपनी सखियोंसे उनके रूप, गुण और वंशीध्वनिके प्रभावका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ व्रजकी गोपियोंने वंशीध्वनिका माधुर्य आपसमें वर्णन करना चाहा तो अवश्य; परन्तु वंशीका स्मरण होते ही उन्हें श्रीकृष्णकी मधुर चेष्टाओंकी, प्रेमपूर्ण चितवन, भौंहोंके इशारे और मधुर मुसकान आदिकी याद हो आयी । उनकी भगवान्‌से मिलनेकी आकाङ्क्षा और भी बढ़ गयी । उनका मन हाथसे निकल गया । वे मन-ही-मन वहाँ पहुँच गयीं, जहाँ श्रीकृष्ण थे । अब उनकी वाणी बोले कैसे ? वे उसके वर्णनमें असमर्थ हो गयीं ॥ ४ ॥ (वे मन-ही-मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं । उनके सिरपर मयूर-पिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प; शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी बनी वैजयन्ती माला है । रंगमञ्चपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेष है ! बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं । उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गान कर रहे हैं । इस प्रकार वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ वह वृन्दावनधाम उनके चरणचिह्नोंसे और भी रमणीय बन गया है ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! यह वंशीध्वनि जड, चेतन—समस्त भूतोंका मन चुरा लेती है । गोपियोंने उसे सुना और सुनकर उसका *वर्णन करने लगीं । वर्णन* करते-करते वे तन्मय हो गयीं और श्रीकृष्णको पाकर आलिङ्गन करने लगीं ॥ ६ ॥

गोपियाँ आपसमें बातचीत करने लगीं—अरी सखी ! हमने तो आँखवालोंके जीवनकी और उनकी आँखोंकी बस, यही—इतनी ही सफलता समझी है; और तो हमें कुछ मालूम ही नहीं है । वह कौन-सा लाभ है ? वह यही है कि जब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वालबालोंके साथ गायोंको हाँककर वनमें ले जा रहे हों या लौटाकर व्रजमें ला रहे हों, उन्होंने अपने अधरोंपर मुरली धर रक्खी हो और प्रेमभरी तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख-माधुरीका पान करती रहें ॥ ७ ॥ *अरी सखी ! जब वे आमकी नयी कोंपलें,* मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे, रंग-बिरंगे कमल और कुमुदकी मालाएँ धारण कर लेते हैं, श्रीकृष्णके साँवरे शरीरपर पीताम्बर और बलरामके गोरे शरीरपर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका वेष बड़ा विचित्र बन जाता है । ग्वालबालोंकी गोष्ठीमें वे दोनों बीचोबीच बैठ जाते हैं और मधुर सङ्गीतकी तान छेड़ देते हैं । मेरी प्यारी सखी ! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमञ्चपर अभिनय कर रहे हों । मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है ॥ ८ ॥ अरी गोपियो ! यह वेणु पुरुषजातिका होनेपर भी पूर्वजन्ममें न जाने ऐसा कौन-सा साधन-भजन कर चुका है कि हम गोपियोंकी अपनी सम्पत्ति—दामोदरके अधरोंकी सुधा स्वयं ही इस प्रकार पिये जा रहा है कि हम लोगोंके लिये थोड़ा-सा भी रस शेष नहीं रहेगा । इस वेणुको अपने रससे सींचनेवाली ह्रदिनियाँ आज कमलोंके मिस रोमाञ्चित हो रही हैं और अपने वंशमें भगवत्प्रेमी सन्तानोंको देखकर श्रेष्ठ पुरुषोंके समान वृक्ष भी इसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर आँखोंसे आनन्दाश्रु बहा रहे हैं ॥ ९ ॥

अरी सखी ! यह वृन्दावन वैकुण्ठलोकतक पृथ्वीकी कीर्तिका विस्तार कर रहा है । क्योंकि यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिह्नोंसे यह चिह्नित हो रहा है ! सखि ! जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं, तब मोर *मतवाले होकर उसकी तालपर* नाचने लगते हैं । यह देखकर पर्वतकी चोटियोंपर विचरनेवाले सभी पशु-पक्षी चुपचाप—शान्त होकर खड़े रह जाते हैं । अरी सखी ! जब प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते हैं,

तब मूढ़ बुद्धिवाली ये हरिनियाँ भी वंशीकी तान सुनकर अपने पति कृष्णसार मृगोंके साथ नन्दनन्दनके पास चली आती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निरखने लगती हैं। निरखती क्या हैं, अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखें श्रीकृष्णके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और श्रीकृष्णकी प्रेमभरी चितवनके द्वारा किया हुआ अपना सत्कार स्वीकार करती हैं।' वास्तवमें उनका जीवन धन्य है! (हम वृन्दावनकी गोपी होनेपर भी इस प्रकार उनपर अपनेको निछावर नहीं कर पातीं, हमारे घरवाले कुढ़ने लगते हैं। कितनी विडम्बना है!)॥ १०-११ ॥ अरी सखी! हरिनियोंकी तो बात ही क्या है—स्वर्गकी देवियाँ जब युवतियोंको आनन्दित करनेवाले सौन्दर्य और शीलके खजाने श्रीकृष्णको देखती हैं और बाँसुरीपर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-विचित्र आलाप सुनकर वे अपने विमानपर ही सुध-बुध खो बैठती हैं—मूर्छित हो जाती हैं। यह कैसे मालूम हुआ सखी? सुनो तो, जब उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है तब वे अपना धीरज खो बैठती हैं, बेहोश हो जाती हैं; उन्हें इस बातका भी पता नहीं चलता कि उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल पृथ्वीपर गिर रहे हैं। यहाँतक कि उन्हें अपनी साड़ीका भी पता नहीं रहता, वह कमरसे खिसककर जमीनपर गिर जाती है ॥१२॥ अरी सखी! तुम देवियोंकी बात क्या कह रही हो, इन गौओंको नहीं देखतीं? जब हमारे कृष्ण-प्यारे अपने मुखसे बाँसुरीमें स्वर भरते हैं और गौएँ उनका मधुर संगीत सुनती हैं, तब ये अपने दोनों कानोंके दोने सम्हाल लेती हैं—खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अमृत पी रही हों, इस प्रकार उस सङ्गीतका रस लेने लगती हैं! ऐसा क्यों होता है सखी? अपने नेत्रोंके द्वारसे श्यामसुन्दरको हृदयमें ले जाकर वे उन्हें वहीं विराजमान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं। देखती नहीं हो, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू छलकने लगते हैं! और उनके बछड़े, बछड़ोंकी तो दशा ही निराली हो जाती है। यद्यपि गायोंके थनोंसे अपने-आप दूध झरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही वंशीध्वनि सुनते हैं, तब मुँहमें लिया हुआ दूधका घूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं। उनके हृदयमें भी होता है भगवान्‌का संस्पर्श और नेत्रोंमें छलकते होते हैं आनन्दके आँसू। वे ज्यों-के-त्यों ठिठके रह जाते हैं ॥ १३ ॥ अरी सखी! गौएँ और बछड़े तो हमारी घरकी वस्तु हैं। उनकी बात तो जाने ही दो। वृन्दावनके पक्षियोंको तुम नहीं देखती हो? उन्हें पक्षी कहना ही भूल है! सच पूछो तो उनमेंसे अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं। वे वृन्दावनके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंकी नयी और मनोहर कोंपलोंवाली डालियोंपर चुपचाप बैठ जाते हैं और आँखें बंद नहीं करते, निर्निमेष नयनोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी तथा प्यारभरी चितवन देख-देखकर निहाल होते रहते हैं, तथा कानोंसे अन्य सब प्रकारके शब्दोंको छोड़कर केवल उन्हींकी मोहनी वाणी और वंशीका त्रिभुवनमोहन सङ्गीत सुनते रहते हैं। मेरी प्यारी सखी! उनका जीवन कितना धन्य है! ॥ १४ ॥

अरी सखी! देवता, गौओं और पक्षियोंकी बात क्यों करती हो? वे तो चेतन हैं। इन जड नदियोंको नहीं देखतीं? इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदयमें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षाका पता चलता है? उसके वेगसे ही तो इनका प्रवाह रुक गया है। इन्होंने भी प्रेमस्वरूप श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुन ली है। देखो, देखो! ये अपनी तरङ्गोंके हाथोंसे उनके चरण पकड़कर कमलके फूलोंका उपहार चढ़ा रही हैं और उनका आलिङ्गन कर रही हैं; मानो उनके चरणोंपर अपना हृदय ही निछावर कर रही हैं ॥१५॥ अरी सखी! ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वीकी, हमारे वृन्दावनकी वस्तुएँ हैं; तनिक इन बादलोंको भी देखो! जब वे देखते हैं कि व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और बलरामजी ग्वालबालोंके साथ धूपमें गौएँ चरा रहे हैं और साथ-साथ बाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है। वे उनके ऊपर मँडराने लगते हैं और वे श्यामघन अपने सखा घनश्यामके ऊपर अपने शरीरको ही छाता बनाकर तान देते हैं।

इतना ही नहीं, सखी! वे जब उनपर नन्हीं-नन्हीं फुहियोंकी वर्षा करने लगते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर-सुन्दर श्वेत कुसुम चढ़ा रहे हैं। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते हैं! ॥ १६ ॥

अरी भटू! हम तो वृन्दावनकी इन भीलनियोंको ही धन्य और कृतकृत्य मानती हैं। ऐसा क्यों सखी? इसलिये कि इनके हृदयमें बड़ा प्रेम है। जब ये हमारे कृष्ण-प्यारेको देखती हैं, तब इनके हृदयमें भी उनसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है। इनके हृदयमें भी प्रेमकी व्याधि लग जाती है। उस समय ये क्या उपाय करती हैं, यह भी सुन लो। हमारे प्रियतमकी प्रेयसी गोपियाँ अपने वक्षःस्थलोंपर जो केसर लगाती हैं, वह श्यामसुन्दरके चरणोंमें लगी होती है और वे जब वृन्दावनके घास-पातपर चलते हैं, तब उनमें भी लग जाती है। ये सौभाग्यवती भीलनियाँ उन्हें उन तिनकोंपरसे छुड़ाकर अपने स्तनों और मुखोंपर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदयकी प्रेम-पीड़ा शान्त करती हैं ॥ १७ ॥ अरी गोपियो! यह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवान्‌के भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है! इसके भाग्यकी सराहना कौन करे? यह तो उन दोनोंका—ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता है। स्नान-पानके लिये झरनोंका जल देता है, गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास प्रस्तुत करता है। विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द-मूल-फल देता है। वास्तवमें यह धन्य है! ॥ १८ ॥ अरी सखी! इन साँवरे-गोरे किशोरोंकी तो गति ही निराली है। जब वे सिरपर नोवना (दुहते समय गायके पैर बाँधनेकी रस्सी) लपेटकर और कंधोंपर फंदा (भागनेवाली गायोंको पकड़नेकी रस्सी) रखकर गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें हाँककर ले जाते हैं, साथमें ग्वालबाल भी होते हैं और मधुर-मधुर संगीत गाते हुए बाँसुरीकी तान छेड़ते हैं, उस समय मनुष्योंकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारियोंमें भी चलनेवाले चेतन पशु-पक्षी और जड नदी आदि तो स्थिर हो जाते हैं तथा अचल-वृक्षोंको भी रोमाञ्च हो आता है। जादूभरी वंशीका और क्या चमत्कार सुनाऊँ? ॥ १९ ॥

परीक्षित्! वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी ऐसी-ऐसी एक नहीं, अनेक लीलाएँ हैं। गोपियाँ प्रतिदिन आपसमें उनका वर्णन करतीं और तन्मय हो जातीं। भगवान्‌की लीलाएँ उनके हृदयमें स्फुरित होने लगतीं ॥ २० ॥

बाईसवाँ अध्याय

चीरहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब हेमन्त ऋतु आयी। उसके पहले ही महीनेमें अर्थात् मार्गशीर्षमें नन्दबाबाके व्रजकी कुमारियाँ कात्यायनी देवीकी पूजा और व्रत करने लगीं। वे केवल हविष्यान्न ही खाती थीं ॥ १ ॥ राजन्! वे कुमारी कन्याएँ पूर्व दिशाका क्षितिज लाल होते-होते यमुनाजलमें स्नान कर लेतीं और तटपर ही देवीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर सुगन्धित चन्दन, फूलोंके हार, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, धूप-दीप, छोटी-बड़ी भेंटकी सामग्री, पल्लव, फल और चावल आदिसे उनकी पूजा करतीं ॥ २-३ ॥ साथ ही 'हे कात्यायनी! हे महामाये! हे महायोगिनी! हे सबकी एकमात्र स्वामिनी! आप नन्दनन्दन श्रीकृष्णको हमारा पति बना दीजिये। देवि! हम आपके चरणोंमें नमस्कार करती हैं।'—इस मन्त्रका जप करती हुई वे कुमारियाँ देवीकी आराधना करतीं ॥ ४ ॥ इस प्रकार उन कुमारियोंने, जिनका मन श्रीकृष्णपर निछावर हो चुका था, इस सङ्कल्पके साथ एक महीनेतक भद्रकालीकी भलीभाँति पूजा की कि 'नन्दनन्दन श्यामसुन्दर ही हमारे पति हों' ॥ ५ ॥ वे प्रतिदिन उषाकालमें ही नाम ले-लेकर एक-दूसरी सखीको पुकार लेतीं और परस्पर

हाथ-में-हाथ डालकर ऊँचे स्वरसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीला तथा नामोंका गान करती हुई यमुनाजलमें स्नान करनेके लिये जातीं ॥ ६ ॥

एक दिन सब कुमारियोंने प्रतिदिनकी भाँति यमुनाजी-के तटपर जाकर अपने-अपने वस्त्र उतार दिये और भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंका गान करती हुई बड़े आनन्द-से जल-क्रीडा करने लगीं ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शङ्कर आदि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं । उनसे गोपियोंकी अभिलाषा छिपी न रही। वे उनका अभिप्राय जानकर अपने सखा ग्वालबालोंके साथ उन कुमारियोंकी साधना सफल करनेके लिये यमुना-तटपर गये ॥ ८ ॥ उन्होंने अकेले ही उन गोपियोंके सारे वस्त्र उठा लिये और बड़ी फुर्तीसे वे एक कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये । साथी ग्वालबाल ठठा-ठठाकर हँसने लगे और स्वयं श्रीकृष्ण भी हँसते हुए गोपियोंसे हँसीकी बात कहने लगे ॥ ९ ॥ 'अरी कुमारियो ! तुम यहाँ आकर इच्छा हो, तो अपने-अपने वस्त्र ले जाओ । मैं तुमलोगोंसे सच-सच कहता हूँ । हँसी बिल्कुल नहीं करता । तुमलोग व्रत करते-करते दुबली हो गयी हो ॥१०॥ ये मेरे सखा ग्वालबाल जानते हैं कि मैंने कभी कोई झूठी बात नहीं कही है । सुन्दरियो ! तुम्हारी इच्छा हो तो अलग-अलग आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो, या सब एक साथ ही आओ । मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है' ॥ ११ ॥

भगवान्‌की यह हँसी-मसखरी देखकर गोपियोंका हृदय प्रेमसे सराबोर हो गया । वे तनिक सकुचाकर एक-दूसरीकी ओर देखने और मुसकराने लगीं । जलसे बाहर नहीं निकलीं ॥ १२ ॥ जब भगवान्‌ने हँसी-हँसीमें यह बात कही, तब उनके विनोदसे कुमारियोंका चित्त और भी उनकी ओर खिंच गया । वे ठंडे पानीमें कण्ठ-तक डूबी हुई थीं और उनका शरीर थर-थर काँप रहा था । उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—॥ १३ ॥ 'प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम ऐसी अनीति मत करो । हम जानती हैं कि तुम नन्दबाबाके लाड़ले लाल हो । हमारे प्यारे हो । सारे व्रजवासी तुम्हारी सराहना करते रहते हैं । देखो, हम जाड़े-के मारे ठिठुर रही हैं । तुम हमें हमारे वस्त्र दे दो ॥१४॥ प्यारे श्यामसुन्दर ! हम तुम्हारी दासी हैं । तुम जो कुछ कहोगे, उसे हम करनेको तैयार हैं । तुम तो धर्मका मर्म भलीभाँति जानते हो । हमें कष्ट मत दो । हमारे वस्त्र हमें दे दो; नहीं तो हम जाकर नन्दबाबासे कह देंगी' ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—कुमारियो ! तुम्हारी मुसकान पवित्रता और प्रेमसे भरी है । देखो, जब तुम अपनेको मेरी दासी स्वीकार करती हो और मेरी आज्ञा-का पालन करना चाहती हो, तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो ॥ १६ ॥ परीक्षित् ! वे कुमारियाँ ठंडसे ठिठुर रही थीं, काँप रही थीं । भगवान्‌की ऐसी बात सुनकर वे अपने दोनों हाथोंसे गुप्त अङ्गोंको छिपा-कर यमुनाजीसे बाहर निकलीं । उस समय ठंड उन्हें बहुत ही सता रही थी ॥ १७ ॥ उनके इस शुद्ध भावसे भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए । उनको अपने पास आयी देखकर उन्होंने गोपियोंके वस्त्र अपने कंधेपर रख लिये और बड़ी प्रसन्नतासे मुसकराते हुए बोले—॥ १८ ॥ 'अरी गोपियो ! तुमने जो व्रत लिया था, उसे अच्छी तरह निभाया है—इसमें सन्देह नहीं । परन्तु इस अवस्थामें वस्त्रहीन होकर तुमने जलमें स्नान किया है, इससे तो जलके अधिष्ठातृदेवता वरुणका तथा यमुनाजी-का अपराध हुआ है । अतः अब इस दोषकी शान्तिके लिये तुम अपने हाथ जोड़कर सिरसे लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो, तदनन्तर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ ॥ १९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उन व्रजकुमारियोंने ऐसा ही समझा कि वास्तवमें वस्त्रहीन होकर स्नान करनेसे हमारे व्रतमें त्रुटि आ गयी । अतः उसकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये उन्होंने समस्त कर्मोंके साक्षी श्रीकृष्णको नमस्कार किया । क्योंकि उन्हें नमस्कार करनेसे ही सारी त्रुटियों और अपराधोंका मार्जन हो जाता है ॥ २० ॥ जब यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण-ने देखा कि सब-की-सब कुमारियाँ मेरी आज्ञाके अनुसार प्रणाम कर रही हैं, तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए । उनके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ प्रिय परीक्षित् ! श्रीकृष्णने कुमारियोंसे छलभरी बातें कीं, उनका लज्जा-सङ्कोच छुड़ाया, हँसी

की और उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया; यहाँतक कि उनके वस्त्रतक हर लिये। फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुईं, उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतमके सङ्गसे वे और भी प्रसन्न हुईं॥ २२॥ परीक्षित्! गोपियोंने अपने-अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु श्रीकृष्णने उनके चित्तको इस प्रकार अपने वशमें कर रक्खा था कि वे वहाँसे एक पग भी न चल सकीं। अपने प्रियतमके समागमके लिये सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवनसे निहारती रहीं॥ २३॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उन कुमारियोंने उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी कामनासे ही व्रत धारण किया है और उनके जीवनका यही एकमात्र सङ्कल्प है। तब गोपियोंके प्रेमके अधीन होकर ऊखलतकमें बँध जानेवाले भगवान्‌ने उनसे कहा—॥ २४॥ 'मेरी परम प्रेयसी कुमारियो! मैं तुम्हारा यह सङ्कल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी इस अभिलाषाका अनुमोदन करता हूँ, तुम्हारा यह सङ्कल्प सत्य होगा। तुम मेरी पूजा कर सकोगी॥ २५॥ जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रक्खा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोगोंकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं होतीं; ठीक वैसे ही, जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अङ्कुरके रूपमें उगनेके योग्य नहीं रह जाते॥ २६॥ इसलिये कुमारियो! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तुम आनेवाली शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार करोगी। सतियो! इसी उद्देश्यसे तो तुमलोगोंने यह व्रत और कात्यायनी देवीकी पूजा की थी' *॥ २७॥

* चीर-हरणके प्रसंगको लेकर कई तरहकी शङ्काएँ की जाती हैं, अतएव इस सम्बन्धमें कुछ विचार करना आवश्यक है। वास्तवमें बात यह है कि सच्चिदानन्दघन भगवान्‌की दिव्य मधुर रसमयी लीलाओंका रहस्य जाननेका सौभाग्य बहुत थोड़े लोगोंको होता है। जिस प्रकार भगवान् चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी चिन्मयी ही होती है। सच्चिदानन्द-रसमय-साम्राज्यके जिस परमोन्नत स्तरमें यह लीला हुआ करती है। उसकी ऐसी विलक्षणता है कि कई बार तो ज्ञान-विज्ञानस्वरूप विशुद्ध चेतन परम ब्रह्ममें भी उसका प्राकट्य नहीं होता और इसीलिये ब्रह्म-साक्षात्कारको प्राप्त महात्मा लोग भी इस लीला-रसका समास्वादन नहीं कर पाते। भगवान्‌की इस परमोज्ज्वल दिव्य-रस-लीलाका यथार्थ प्रकाश तो भगवान्‌की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी और तदङ्गभूता प्रेममयी गोपियोंके ही हृदयमें होता है और वे ही निरावरण होकर भगवान्‌की इस परम अन्तरङ्ग रसमयी लीलाका समास्वादन करती हैं।

यों तो भगवान्‌के जन्म-कर्मकी सभी लीलाएँ दिव्य होती हैं, परन्तु व्रजकी लीला, व्रजमें निकुञ्जलीला और निकुञ्जमें भी केवल रसमयी गोपियोंके साथ होनेवाली मधुर लीला तो दिव्यातिदिव्य और सर्वगुह्यतम है। यह लीला सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट नहीं है, अन्तरङ्ग लीला है और इसमें प्रवेशका अधिकार केवल श्रीगोपीजनोंको ही है अस्तु,

दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें ऐसा वर्णन आया है कि भगवान्‌की रूप-माधुरी, वंशीध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख-सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गयीं। बाईसवें अध्यायमें उसी प्रेमकी पूर्णता प्राप्त करनेके लिये वे साधनमें लग गयी हैं। इसी अध्यायमें भगवान्‌ने आकर उनकी साधना पूर्ण की है। यही चीर-हरणका प्रसङ्ग है।

गोपियाँ क्या चाहती थीं, यह बात उनकी साधनासे स्पष्ट है। वे चाहती थीं—श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, श्रीकृष्णके साथ इस प्रकार घुल-मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन-प्राण, सम्पूर्ण आत्मा केवल श्रीकृष्णमय हो जाय। शरत्-कालमें उन्होंने श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिकी चर्चा आपसमें की थी, हेमन्तके पहले ही महीनेमें अर्थात् भगवान्‌के विभूतिस्वरूप मार्गशीर्षमें उनकी साधना प्रारम्भ हो गयी। विलम्ब उनके लिये असह्य था। जाड़ेके दिनमें वे प्रातःकाल ही यमुना-स्नानके लिये जातीं, उन्हें शरीरकी परवा नहीं थी। बहुत-सी कुमारी ग्वालिनें एक साथ ही जातीं, उनमें ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। वे ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णका नामकीर्तन करती हुई

जातीं, उन्हें गाँव और जातिवालोंका भय नहीं था। वे घरमें भी हविष्यान्नका ही भोजन करतीं, वे श्रीकृष्णके लिये इतनी व्याकुल हो गयी थीं कि उन्हें माता-पितातकका सङ्कोच नहीं था। वे विधिपूर्वक देवीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर पूजा और मन्त्र-जप करती थीं। अपने इस कार्यको सर्वथा उचित और प्रशस्त मानती थीं। एक वाक्यमें—उन्होंने अपना कुल, परिवार, धर्म, सङ्कोच और व्यक्तित्व भगवान्‌के चरणोंमें सर्वथा समर्पण कर दिया था। वे यही जपती रहती थीं कि एकमात्र नन्दनन्दन ही हमारे प्राणोंके स्वामी हों। श्रीकृष्ण तो वस्तुतः उनके स्वामी थे ही। परन्तु लीलाकी दृष्टिसे उनके समर्पणमें थोड़ी कमी थी। वे निरावरणरूपसे श्रीकृष्णके सामने नहीं जा रही थीं, उनमें थोड़ी झिझक थी; उनकी यही झिझक दूर करनेके लिये—उनकी साधना, उनका समर्पण पूर्ण करनेके लिये उनका आवरण भङ्ग कर देनेकी आवश्यकता थी, उनका यह आवरणरूप चीर हर लेना जरूरी था और यही काम भगवान् श्रीकृष्णने किया। इसीके लिये वे योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् अपने मित्र ग्वालबालोंके साथ यमुनातटपर पधारे थे।

साधक अपनी शक्तिसे, अपने बल और सङ्कल्पसे केवल अपने निश्चयसे पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता। समर्पण भी एक क्रिया है और उसका करनेवाला असमर्पित हो रह जाता है। ऐसी स्थितिमें अन्तरात्माका पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान् स्वयं आकर वह सङ्कल्प स्वीकार करते हैं और सङ्कल्प करनेवालेको भी स्वीकार करते हैं। यहीं जाकर समर्पण पूर्ण होता है। साधकका कर्तव्य है—पूर्ण समर्पणकी तैयारी। उसे पूर्ण तो भगवान् ही करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण यों तो लीलापुरुषोत्तम हैं; फिर भी जब अपनी लीला प्रकट करते हैं तब मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते, स्थापना ही करते हैं। विधिका अतिक्रमण करके कोई साधनाके मार्गमें अग्रसर नहीं हो सकता। परन्तु हृदयकी निष्कपटता, सचाई और सच्चा प्रेम विधिके अतिक्रमणको भी शिथिल कर देता है। गोपियाँ श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिये जो साधना कर रही थीं, उसमें एक त्रुटि थी। वे शास्त्र-मर्यादा और परम्परागत सनातन मर्यादाका उल्लङ्घन करके नग्न-स्नान करती थीं। यद्यपि उनकी यह क्रिया अज्ञानपूर्वक ही थी, तथापि भगवान्‌के द्वारा इसका मार्जन होना आवश्यक था। भगवान्‌ने गोपियोंसे इसका प्रायश्चित्त भी करवाया। जो लोग भगवान्‌के प्रेमके नामपर विधिका उल्लङ्घन करते हैं, उन्हें यह प्रसङ्ग ध्यानसे पढ़ना चाहिये और भगवान् शास्त्रविधिका कितना आदर करते हैं, यह देखना चाहिये।

वैधी भक्तिका पर्यवसान रागात्मिका भक्तिमें है और रागात्मिका भक्ति पूर्ण समर्पणके रूपमें परिणत हो जाती है। गोपियोंने वैधी भक्तिका अनुष्ठान किया, उनका हृदय तो रागात्मिका भक्तिसे भरा हुआ था ही। अब पूर्ण समर्पण होना चाहिये। चीरहरणके द्वारा वही कार्य सम्पन्न होता है।

गोपियोंने जिनके लिये लोक-परलोक, स्वार्थ-परमार्थ, जाति-कुल, पुरजन-परिजन और गुरुजनोंकी परवा नहीं की, जिनकी प्राप्तिके लिये ही उनका यह महान् अनुष्ठान है, जिनके चरणोंमें उन्होंने अपना सर्वस्व निछावर कर रक्खा है, जिनसे निरावरण मिलनकी ही एकमात्र अभिलाषा है, उन्हीं निरावरण रसमय भगवान् श्रीकृष्णके सामने वे निरावरण भावसे न जा सकें—क्या यह उनकी साधनाकी अपूर्णता नहीं है? है, अवश्य है। और यह समझकर ही गोपियाँ निरावरणरूपसे उनके सामने गयीं।

श्रीकृष्ण चराचर प्रकृतिके एकमात्र अधीश्वर हैं; समस्त क्रियाओंके कर्ता, भोक्ता और साक्षी भी वही हैं। ऐसा एक भी व्यक्त या अव्यक्त पदार्थ नहीं है, जो बिना किसी परदेके उनके सामने न हो। वही सर्वव्यापक, अन्तर्यामी हैं। गोपियोंके, गोपोंके और निखिल विश्वके वही आत्मा हैं। उन्हें स्वामी, गुरु, पिता, माता, सखा, पति आदिके रूपमें मानकर लोग उन्हींकी उपासना करते हैं। गोपियाँ उन्हीं भगवान्‌को जान-बूझकर कि यही

भगवान् हैं—यही योगेश्वरेश्वर, क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम हैं—पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती थीं । श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका श्रद्धाभावसे पाठ कर जानेपर यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि गोपियाँ श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानती थीं, पहचानती थीं । वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत और श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंके अन्वेषणमें यह बात कोई भी देख-सुन-समझ सकता है । जो लोग भगवान्‌को भगवान् मानते हैं, उनसे सम्बन्ध रखते हैं, स्वामी-सुहृद् आदिके रूपमें उन्हें मानते हैं, उनके हृदयमें गोपियोंके इस लोकोत्तर माधुर्यसम्बन्ध और उसकी साधनाके प्रति शङ्का ही कैसे हो सकती है ।

गोपियोंकी इस दिव्य लीलाका जीवन उच्च श्रेणीके साधकके लिये आदर्श जीवन है । श्रीकृष्ण जीवके एकमात्र प्राप्तव्य साक्षात् परमात्मा हैं । हमारी बुद्धि, हमारी दृष्टि देहतक ही सीमित है । इसलिये हम श्रीकृष्ण और गोपियोंके प्रेमको भी केवल दैहिक तथा कामनाकलुषित समझ बैठते हैं । उस अपार्थिव और अप्राकृत लीलाको इस प्रकृतिके राज्यमें घसीट लाना हमारी स्थूल वासनाओंका हानिकर परिणाम है ! जीवका मन भोगाभिमुख वासनाओंसे और तमोगुणी प्रवृत्तियोंसे अभिभूत रहता है । वह विषयोंमें ही इधर-से-उधर भटकता रहता है और अनेकों प्रकारके राग-शोकोंसे आक्रान्त रहता है । जब कभी पुण्यकर्मोंके फल उदय होनेपर भगवान्‌की अचिन्त्य अहैतुकी कृपासे विचारका उदय होता है, तब जीव दुःखज्वालासे त्राण पानेके लिये और अपने प्राणोंको शान्तिमय धाममें पहुँचानेके लिये उत्सुक हो उठता है । वह भगवान्‌के लीलाधामोंकी यात्रा करता है, सत्सङ्ग प्राप्त करता है और उसके हृदयकी छटपटी उस आकाङ्क्षाको लेकर, जो अबतक सुप्त थी, जगकर बड़े वेगसे परमात्माकी ओर चल पड़ती है । चिरकालसे विषयोंका ही अभ्यास होनेके कारण बीच-बीचमें विषयोंके संस्कार उसे सताते हैं और बार-बार विक्षेपोंका सामना करना पड़ता है । परन्तु भगवान्‌की प्रार्थना, कीर्तन, स्मरण, चिन्तन करते-करते चित्त सरस होने लगता है और धीरे-धीरे उसे भगवान्‌की सन्निधिका अनुभव भी होने लगता है । थोड़ा-सा रसका अनुभव होते ही चित्त बड़े वेगसे अन्तर्देशमें प्रवेश कर जाता है और भगवान् मार्गदर्शकके रूपमें संसार-सागरसे पार ले जानेवाली नावपर केवटके रूपमें अथवा यों कहें कि साक्षात् चित्स्वरूप गुरुदेवके रूपमें प्रकट हो जाते हैं । ठीक उसी क्षण अभाव, अपूर्णता और सीमाका बन्धन नष्ट हो जाता है, विशुद्ध आनन्द—विशुद्ध ज्ञानकी अनुभूति होने लगती है ।

गोपियाँ, जो अभी-अभी साधनसिद्ध होकर भगवान्‌की अन्तरङ्ग लीलामें प्रविष्ट होनेवाली हैं, चिरकालसे श्रीकृष्णके प्राणोंमें अपने प्राण मिला देनेके लिये उत्कण्ठित हैं, सिद्धिलाभके समीप पहुँच चुकी हैं । अथवा जो नित्यसिद्धा होनेपर भी भगवान्‌की इच्छाके अनुसार उनकी दिव्य लीलामें सहयोग प्रदान कर रही हैं, उनके हृदयके समस्त भावोंके एकान्त ज्ञाता श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाकर उन्हें आकृष्ट करते हैं और जो कुछ उनके हृदयमें बचे-खुचे पुराने संस्कार हैं, मानो उन्हें धो डालनेके लिये साधनामें लगाते हैं । उनकी कितनी दया है, वे अपने प्रेमियोंसे कितना प्रेम करते हैं—यह सोचकर चित्त मुग्ध हो जाता है, गद्‌गद हो जाता है ।

श्रीकृष्ण गोपियोंके वस्त्रोंके रूपमें उनके समस्त संस्कारोंके आवरण अपने हाथमें लेकर पास ही कदम्बके वृक्षपर चढ़कर बैठ गये । गोपियाँ जलमें थीं, वे जलमें सर्वव्यापक सर्वदर्शी भगवान् श्रीकृष्णसे मानो अपनेको गुप्त समझ रही थीं—वे मानो इस तत्त्वको भूल गयी थीं कि श्रीकृष्ण जलमें ही नहीं हैं स्वयं जलस्वरूप भी वही हैं । उनके पुराने संस्कार श्रीकृष्णके सम्मुख जानेमें बाधक हो रहे थे; वे श्रीकृष्णके लिये सब कुछ भूल गयी थीं परन्तु अबतक अपनेको नहीं भूली थीं । वे चाहती थीं केवल श्रीकृष्णको, परन्तु उनके संस्कार बीचमें एक परदा रखना चाहते थे । प्रेम प्रेमी और प्रियतमके बीचमें एक पुष्पका भी परदा नहीं रखना चाहता । प्रेमकी प्रकृति है सर्वथा व्यवधानरहित, अबाध और अनन्त मिलन । जहाँतक अपना सर्वस्व—इसका विस्तार चाहे जितना

हो—प्रेमकी ज्वालामें भस्म नहीं कर दिया जाता, वहाँतक प्रेम और समर्पण दोनों ही अपूर्ण रहते हैं। इसी अपूर्णताको दूर करते हुए, 'शुद्ध भावसे प्रसन्न हुए' (शुद्धभावप्रसादितः) श्रीकृष्णने कहा कि 'मुझसे अनन्य प्रेम करनेवाली गोपियो ! एक बार, केवल एक बार अपने सर्वस्वको और अपनेको भी भूलकर मेरे पास आओ तो सही। तुम्हारे हृदयमें जो अव्यक्त त्याग है, उसे एक क्षणके लिये व्यक्त तो करो। क्या तुम मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकती हो ?' गोपियोंने मानो कहा—'श्रीकृष्ण ! हम अपनेको कैसे भूलें ? हमारी जन्म-जन्मकी धारणाएँ भूलने दें, तब न। हम संसारके अगाध जलमें आकण्ठ मग्न हैं। जाड़ेका कष्ट भी है। हम आना चाहनेपर भी नहीं आ पाती हैं। श्यामसुन्दर ! प्राणोंके प्राण ! हमारा हृदय तुम्हारे सामने उन्मुक्त है। हम तुम्हारी दासी हैं। तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेंगी। परन्तु हमें निरावरण करके अपने सामने मत बुलाओ।' साधककी यह दशा—भगवान्‌को चाहना और साथ ही संसारको भी न छोड़ना, संस्कारोंमें ही उलझे रहना—मायाके परदेको बनाये रखना, बड़ी द्विविधाकी दशा है। भगवान् यही सिखाते हैं कि 'संस्कारशून्य होकर, निरावरण होकर, मायाका परदा हटाकर आओ; मेरे पास आओ। अरे, तुम्हारा यह मोहका परदा तो मैंने ही छीन लिया है; तुम अब इस परदेके मोहमें क्यों पड़ी हो ? यह परदा ही तो परमात्मा और जीवके बीचमें बड़ा व्यवधान है; यह हट गया, बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास आओ, तभी तुम्हारी चिरसञ्चित आकाङ्क्षाएँ पूरी हो सकेंगी।' परमात्मा श्रीकृष्णका यह आह्वान, आत्माके आत्मा परम प्रियतमके मिलनका यह मधुर आमन्त्रण भगवत्कृपासे जिसके अन्तर्देशमें प्रकट हो जाता है, वह प्रेममें निमग्न होकर सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी भूलकर प्रियतम श्रीकृष्णके चरणोंमें दौड़ आता है। फिर न उसे अपने वस्त्रोंकी सुधि रहती है और न लोगोंका ध्यान ! न वह जगत्‌को देखता है न अपनेको। यह भगवत्प्रेमका रहस्य है। विशुद्ध और अनन्य भगवत्प्रेममें ऐसा होता ही है।

गोपियाँ आयीं, श्रीकृष्णके चरणोंके पास मूकभावसे खड़ी हो गयीं। उनका मुख लज्जावनत था। यत्किञ्चित् संस्कारशेष श्रीकृष्णके पूर्ण आभिमुख्यमें प्रतिबन्ध हो रहा था। श्रीकृष्ण मुसकराये। उन्होंने इशारेसे कहा—'इतने बड़े त्यागमें यह सङ्कोच कलङ्क है। तुम तो सदा निष्कलङ्का हो; तुम्हें इसका भी त्याग, त्यागके भावका भी त्याग—त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करना होगा।' गोपियोंकी दृष्टि श्रीकृष्णके मुखकमलपर पड़ी। दोनों हाथ अपने-आप जुड़ गये और सूर्यमण्डलमें विराजमान अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे ही उन्होंने प्रेमकी भिक्षा माँगी। गोपियोंके इसी सर्वस्वत्यागने, इसी पूर्ण समर्पणने, इसी उच्चतम आत्मविस्मृतिने उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमसे भर दिया। वे दिव्य रसके अलौकिक अप्राकृत मधुके अनन्त समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं। वे सब कुछ भूल गयीं, भूलनेवालेको भी भूल गयीं, उनकी दृष्टिमें अब श्यामसुन्दर थे। बस, केवल श्यामसुन्दर थे।

जब प्रेमी भक्त आत्मविस्मृत हो जाता है, तब उसका दायित्व प्रियतम भगवान्‌पर होता है। अब मर्यादारक्षाके लिये गोपियोंको तो वस्त्रकी आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि उन्हें जिस वस्तुकी आवश्यकता थी, वह मिल चुकी थी। परन्तु श्रीकृष्ण अपने प्रेमीको मर्यादाच्युत नहीं होने देते। वे स्वयं वस्त्र देते हैं और अपनी अमृतमयी वाणीके द्वारा उन्हें विस्मृतिसे जगाकर फिर जगत्‌में लाते हैं। श्रीकृष्णने कहा—'गोपियो ! तुम सती-साध्वी हो। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारी साधना मुझसे छिपी नहीं है। तुम्हारा सङ्कल्प सत्य होगा। तुम्हारा यह सङ्कल्प—तुम्हारी यह कामना तुम्हें उस पदपर स्थित करती है, जो निस्सङ्कल्पता और निष्कामताका है। तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण, तुम्हारा समर्पण पूर्ण और अब आगे आनेवाली शारदीय रात्रियोंमें हमारा रमण पूर्ण होगा।' भगवान्‌ने साधना सफल होनेकी अवधि निर्धारित कर दी। इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णमें किसी भी कामविकारकी कल्पना नहीं थी। कामी पुरुषका चित्त वस्त्रहीन स्त्रियोंको देखकर एक क्षणके लिये भी कब वशमें रह सकता है।

एक बात बड़ी विलक्षण है। भगवान्‌के सम्मुख जानेके पहले जो वस्त्र समर्पणकी पूर्णतामें बाधक हो रहे थे—विक्षेपका काम कर रहे थे—वही भगवान्‌की कृपा, प्रेम, सान्निध्य और वरदान प्राप्त होनेके पश्चात् 'प्रसाद'-स्वरूप हो गये। इसका कारण क्या है? इसका कारण है भगवान्‌का सम्बन्ध। भगवान्‌ने अपने हाथसे उन वस्त्रोंको उठाया था और फिर उन्हें अपने उत्तम अङ्ग कंधेपर रख लिया था। नीचेके शरीरमें पहननेकी साड़ियाँ भगवान्‌के कंधेपर चढ़कर—उनका संस्पर्श पाकर कितनी अप्राकृत रसात्मक हो गयीं, कितनी पवित्र—कृष्णमय हो गयीं, इसका अनुमान कौन लगा सकता है। असलमें यह संसार तभीतक बाधक और विक्षेपजनक है, जबतक यह भगवान्‌से सम्बद्ध और भगवान्‌का प्रसाद नहीं हो जाता। उनके द्वारा प्राप्त होनेपर तो यह बन्धन ही मुक्तिस्वरूप हो जाता है। उनके सम्पर्कमें जाकर माया शुद्ध विद्या बन जाती है। संसार और उसके समस्त कर्म अमृतमय आनन्दरससे परिपूर्ण हो जाते हैं। तब बन्धनका भय नहीं रहता। कोई भी आवरण भगवान्‌के दर्शनसे वञ्चित नहीं रख सकता। नरक नरक नहीं रहता, भगवान्‌का दर्शन होते रहनेके कारण वह वैकुण्ठ बन जाता है। इसी स्थितिमें पहुँचकर बड़े-बड़े साधक प्राकृत पुरुषके समान आचरण करते हुए-से दीखते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी अपनी होकर गोपियाँ पुनः वे ही वस्त्र धारण करती हैं अथवा श्रीकृष्ण वे ही वस्त्र धारण कराते हैं; परन्तु गोपियोंकी दृष्टिमें अब ये वस्त्र वे वस्त्र नहीं हैं; वस्तुतः वे हैं भी नहीं—अब तो ये दूसरी ही वस्तु हो गये हैं। अब तो ये भगवान्‌के पावन प्रसाद हैं, पल-पलपर भगवान्‌का स्मरण करानेवाले भगवान्‌के परम सुन्दर प्रतीक हैं। इसीसे उन्होंने स्वीकार भी किया। उनकी प्रेममयी स्थिति मर्यादाके ऊपर थी, फिर भी उन्होंने भगवान्‌की इच्छासे मर्यादा स्वीकार की। इस दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा जान पड़ता है कि भगवान्‌की यह चीरहरण-लीला भी अन्य लीलाओंकी भाँति उच्चतम मर्यादासे परिपूर्ण है।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें केवल वे ही प्राचीन आर्षग्रन्थ प्रमाण हैं, जिनमें उनकी लीलाका वर्णन हुआ है। उनमेंसे एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है, जिसमें श्रीकृष्णकी भगवत्ताका वर्णन न हो। श्रीकृष्ण 'स्वयं भगवान्' हैं, यही बात सर्वत्र मिलती है। जो श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यह स्पष्ट है कि वे उन ग्रन्थोंको भी नहीं मानते। और जो उन ग्रन्थोंको ही प्रमाण नहीं मानते, वे उनमें वर्णित लीलाओंके आधारपर श्रीकृष्ण-चरित्रकी समीक्षा करनेका अधिकार भी नहीं रखते। भगवान्‌की लीलाओंको मानवीय चरित्रके समकक्ष रखना शास्त्र-दृष्टिसे एक महान् अपराध है और उसके अनुकरणका तो सर्वथा ही निषेध है। मानवबुद्धि—जो स्थूलताओंसे ही परिवेष्टित है—केवल जडके सम्बन्धमें ही सोच सकती है, भगवान्‌की दिव्य चिन्मयी लीलाके सम्बन्धमें कोई कल्पना ही नहीं कर सकती। वह बुद्धि स्वयं ही अपना उपहास करती है, जो समस्त बुद्धियोंके प्रेरक और बुद्धियोंसे अत्यन्त परे रहनेवाले परमात्माकी दिव्य लीलाको अपनी कसौटीपर कसती है।

हृदय और बुद्धिके सर्वथा विपरीत होनेपर भी यदि थोड़ी देरके लिये मान लें कि श्रीकृष्ण भगवान् नहीं थे या उनकी यह लीला मानवी थी, तो भी तर्क और युक्तिके सामने ऐसी कोई बात नहीं टिक पाती जो श्रीकृष्णके चरित्रमें लाञ्छन हो। श्रीमद्भागवतका पारायण करनेवाले जानते हैं कि व्रजमें श्रीकृष्णने केवल ग्यारह वर्षकी अवस्थातक ही निवास किया था। यदि रासलीलाका समय दसवाँ वर्ष मानें, तो नवें वर्षमें ही चीरहरण-लीला हुई थी। इस बातकी कल्पना भी नहीं हो सकती कि आठ-नौ वर्षके बालकमें कामोत्तेजना हो सकती है। गाँवकी गँवारिन ग्वालिनें, जहाँ वर्तमानकालकी नागरिक मनोवृत्ति नहीं पहुँच पायी है, एक आठ-नौ वर्षके बालकसे अवैध सम्बन्ध करना चाहें और उसके लिये साधना करें—यह कदापि सम्भव नहीं दीखता। उन कुमारी गोपियोंके मनमें कलुषित वृत्ति थी, यह वर्तमान कलुषित मनोवृत्तिकी उद्भावना है। आजकल जैसे गाँवकी छोटी-छोटी लड़कियाँ 'राम'-सा वर और 'लक्ष्मण'-सा देवर पानेके लिये देवी-देवताओंकी पूजा करती हैं, वैसे ही

उन कुमारियोंने भी परम सुन्दर परम मधुर श्रीकृष्णको पानेके लिये देवी-पूजन और व्रत किये थे। इसमें दोषकी कौन-सी बात है ?

आजकी बात निराली है। भोगप्रधान देशोंमें तो नग्नसम्प्रदाय और नग्नस्नानके क्लब भी बने हुए हैं। उनकी दृष्टि इन्द्रिय-तृप्तितक ही सीमित है। भारतीय मनोवृत्ति इस उत्तेजक एवं मलिन व्यापारके विरुद्ध है। नग्नस्नान एक दोष है, जो कि पशुत्वको बढ़ानेवाला है। शास्त्रोंमें इसका निषेध है, 'न नग्नः स्नायात्'—यह शास्त्रकी आज्ञा है। श्रीकृष्ण नहीं चाहते थे कि गोपियाँ शास्त्रके विरुद्ध आचरण करें। केवल लौकिक अनर्थ ही नहीं—भारतीय ऋषियोंका वह सिद्धान्त, जो प्रत्येक वस्तुमें पृथक्-पृथक् देवताओंका अस्तित्व मानता है इस नग्नस्नानको देवताओंके विपरीत बतलाता है। श्रीकृष्ण जानते थे कि इससे वरुण देवताका अपमान होता है। गोपियाँ अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये जो तपस्या कर रही थीं, उसमें उनका नग्नस्नान अनिष्ट फल देनेवाला था और इस प्रथाके प्रभातमें ही यदि इसका विरोध न कर दिया जाय तो आगे चलकर इसका विस्तार हो सकता है; इसलिये श्रीकृष्णने अलौकिक ढंगसे इसका निषेध कर दिया।

गाँवोंकी ग्वालिनोंको इस प्रथाकी बुराई किस प्रकार समझायी जाय, इसके लिये भी श्रीकृष्णने एक मौलिक उपाय सोचा। यदि वे गोपियोंके पास जाकर उन्हें देवतावादकी फिलासफी समझाते, तो वे सरलतासे नहीं समझ सकती थीं। उन्हें तो इस प्रथाके कारण होनेवाली विपत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव करा देना था। और विपत्तिका अनुभव करानेके पश्चात् उन्होंने देवताओंके अपमानकी बात भी बता दी तथा अञ्जलि बाँधकर क्षमा-प्रार्थनारूप प्रायश्चित्त भी करवाया। महापुरुषोंमें उनकी बाल्यावस्थामें भी ऐसी प्रतिभा देखी जाती है।

श्रीकृष्ण आठ-नौ वर्षके थे, उनमें कामोत्तेजना नहीं हो सकती और नग्नस्नानकी कुप्रथाको नष्ट करनेके लिये उन्होंने चीरहरण किया—यह उत्तर सम्भव होनेपर भी मूलमें आये हुए 'काम' और 'रमण' शब्दोंसे कई लोग भड़क उठते हैं। यह केवल शब्दकी पकड़ है, जिसपर महात्मालोग ध्यान नहीं देते। श्रुतियोंमें और गीतामें भी अनेकों बार 'काम', 'रमण' और 'रति' आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है; परन्तु वहाँ उनका अश्लील अर्थ नहीं होता। गीतामें तो 'धर्माविरुद्ध काम' को परमात्माका स्वरूप बतलाया गया है। महापुरुषोंका आत्मरमण, आत्ममिथुन और आत्मरति प्रसिद्ध ही है। ऐसी स्थितिमें केवल कुछ शब्दोंको देखकर भड़कना विचारशील पुरुषोंका काम नहीं है। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं उन्हें रमण और रति शब्दका अर्थ केवल क्रीडा अथवा खिलवाड़ समझना चाहिये, जैसा कि व्याकरणके अनुसार ठीक है—'रमु क्रीडायाम्'।

दृष्टिभेदसे श्रीकृष्णकी लीला भिन्न-भिन्न रूपमें दीख पड़ती है। अध्यात्मवादी श्रीकृष्णको आत्माके रूपमें देखते हैं और गोपियोंको वृत्तियोंके रूपमें। वृत्तियोंका आवरण नष्ट हो जाना ही 'चीरहरण-लीला' है और उनका आत्मामें रम जाना ही 'रास' है। इस दृष्टिसे भी समस्त लीलाओंकी संगति बैठ जाती है। भक्तोंकी दृष्टिसे गोलोकाधिपति पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका यह सब नित्यलीला-विलास है और अनादिकालसे अनन्तकालतक यह नित्य चलता रहता है। कभी-कभी भक्तोंपर कृपा करके वे अपने नित्य धाम और नित्य सखा-सहचरियोंके साथ लीला-धाममें प्रकट होकर लीला करते हैं और भक्तोंके स्मरण-चिन्तन तथा आनन्द-मङ्गलकी सामग्री प्रकट करके पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं। साधकोंके लिये किस प्रकार कृपा करके भगवान् अन्तर्मलको और अनादिकालसे सञ्चित संस्कारपटको विशुद्ध कर देते हैं, यह बात भी इस चीरहरण-लीलासे प्रकट होती है। भगवान्‌की लीला रहस्यमयी है, उसका तत्त्व केवल भगवान् ही जानते हैं और उनकी कृपासे उनकी लीलामें प्रविष्ट भाग्यवान् भक्त कुछ-कुछ जानते हैं। यहाँ तो शास्त्रों और संतोंकी वाणीके आधारपर ही कुछ लिखनेकी धृष्टता की गयी है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर वे कुमारियाँ भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका ध्यान करती हुई जानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे व्रजमें गयीं। अब उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं ॥ २८ ॥

प्रिय परीक्षित् ! एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बलराम-जी और ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनसे बहुत दूर निकल गये ॥ २९ ॥ ग्रीष्म ऋतु थी। सूर्यकी किरणें बहुत ही प्रखर हो रही थीं। परन्तु घने-घने वृक्ष भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर छत्तेका काम कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने वृक्षोंको छाया करते देख स्तोककृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप आदि ग्वालबालोंको सम्बोधन करके कहा—॥ ३०-३१ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो ! देखो, ये वृक्ष कितने भाग्यवान् हैं ! इनका सारा जीवन केवल दूसरों-की भलाई करनेके लिये ही है। ये स्वयं तो हवाके झोंके, वर्षा, धूप और पाला—सब कुछ सहते हैं, परन्तु हम लोगोंकी उनसे रक्षा करते हैं ॥ ३२ ॥ मैं कहता हूँ कि इन्हींका जीवन सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियोंको सहारा मिलता है, उनका जीवन-निर्वाह होता है। जैसे किसी सज्जन पुरुषके घरसे कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षोंसे भी सभीको कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है ॥ ३३ ॥ ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गन्ध, गोंद, राख, कोयला, अङ्कुर और कोंपलोंसे भी लोगोंकी कामना पूर्ण करते हैं ॥३४॥ मेरे प्यारे मित्रो ! संसारमें प्राणी तो बहुत हैं; परन्तु उनके जीवनकी सफलता इतनेमें ही है कि जहाँतक हो सके अपने धनसे, विवेक-विचारसे, वाणीसे और प्राणोंसे भी ऐसे ही कर्म किये जायँ, जिनसे दूसरोंकी भलाई हो ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! दोनों ओरके वृक्ष नयी-नयी कोंपलों, गुच्छों, फल-फूलों और पत्तोंसे लद रहे थे। उनकी डालियाँ पृथ्वीतक झुकी हुई थीं। इस प्रकार भाषण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हींके बीचसे यमुना-तटपर निकल आये ॥ ३६ ॥ राजन् ! यमुनाजीका जल बड़ा ही मधुर, शीतल और स्वच्छ था। उन लोगोंने पहले गौओंको पिलाया और इसके बाद स्वयं भी जी भरकर स्वादु जलका पान किया ॥३७॥ परीक्षित् ! जिस समय वे यमुनाजीके तटपर हरे-भरे उपवनमें बड़ी स्वतन्त्रतासे अपनी गौएँ चरा रहे थे, उसी समय कुछ भूखे ग्वालोंने भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-जीके पास आकर यह बात कही—॥ ३८ ॥

तेईसवाँ अध्याय

यज्ञपत्नियोंपर कृपा

ग्वालबालोंने कहा—नयनाभिराम बलराम ! तुम बड़े पराक्रमी हो। हमारे चित्तचोर श्यामसुन्दर ! तुमने बड़े-बड़े दुष्टोंका संहार किया है। उन्हीं दुष्टोंके समान यह भूख भी हमें सता रही है। अतः तुम दोनों इसे भी बुझानेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब ग्वालबालोंने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने मथुराकी अपनी भक्त ब्राह्मणपत्नियोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह बात कही—॥ २ ॥ 'मेरे प्यारे मित्रो ! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर वेदवादी ब्राह्मण स्वर्गकी कामनासे आङ्गिरस नामका यज्ञ कर रहे हैं। तुम उनकी यज्ञशालामें जाओ ॥ ३ ॥ ग्वालबालो ! मेरे भेजनेसे वहाँ जाकर तुम लोग मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीबलराम-जीका और मेरा नाम लेकर कुछ थोड़ा-सा भात—भोजनकी सामग्री माँग लाओ' ॥ ४ ॥ जब भगवान्‌ने ऐसी आज्ञा दी, तब ग्वालबाल उन ब्राह्मणोंकी यज्ञशाला-में गये और उनसे भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ही अन्न माँगा। पहले उन्होंने पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत्-प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर कहा—॥ ५ ॥ 'पृथ्वीके मूर्तिमान् देवता ब्राह्मणो ! आपका कल्याण हो ! आपसे निवेदन है कि हम व्रजके ग्वाले हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञासे हम आपके पास आये हैं। आप

हमारी बात सुनें ॥ ६ ॥ भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं। उन्हें इस समय भूख लगी है और वे चाहते हैं कि आपलोग उन्हें थोड़ा-सा भात दे दें। ब्राह्मणो! आप धर्मका मर्म जानते हैं। यदि आपकी श्रद्धा हो, तो उन भोजनार्थियोंके लिये कुछ भात दे दीजिये ॥७॥ सज्जनो! जिस यज्ञदीक्षामें पशुबलि होती है, उसमें और सौत्रामणी यज्ञमें दीक्षित पुरुषका अन्न नहीं खाना चाहिये। इनके अतिरिक्त और *किसी भी समय किसी भी यज्ञमें दीक्षित* पुरुषका भी अन्न खानेमें कोई दोष नहीं है' ॥ ८ ॥ परीक्षित्! इस प्रकार भगवान्‌के अन्न माँगनेकी बात सुनकर भी उन ब्राह्मणोंने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया। वे चाहते थे स्वर्गादि तुच्छ फल, और उनके लिये बड़े-बड़े कर्मोंमें उलझे हुए थे। सच पूछो तो वे ब्राह्मण ज्ञानकी दृष्टिसे थे बालक ही, परन्तु अपनेको बड़ा ज्ञानवृद्ध मानते थे ॥९॥ परीक्षित्! देश, काल, अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ, भिन्न-भिन्न कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज-ब्रह्मा आदि यज्ञ करानेवाले, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—इन सब रूपोंमें एकमात्र भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं ॥ १० ॥ वे ही इन्द्रियातीत परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ग्वालबालोंके द्वारा भात माँग रहे हैं। परन्तु इन मूर्खोंने, जो अपनेको शरीर ही माने बैठे हैं, भगवान्‌को भी एक साधारण मनुष्य ही माना और उनका सम्मान नहीं किया ॥११॥ परीक्षित्! जब उन ब्राह्मणोंने 'हाँ' या 'ना'—कुछ नहीं कहा, तब ग्वालबालोंकी आशा टूट गयी; वे लौट आये और वहाँकी सब बात उन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलरामसे कह दी ॥१२॥ उनकी बात सुनकर सारे जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने ग्वालबालोंको समझाया कि 'संसारमें असफलता तो बार-बार होती ही है, उससे निराश नहीं होना चाहिये; बार-बार प्रयत्न करते रहनेसे सफलता मिल ही जाती है।' फिर उनसे कहा—॥ १३ ॥ 'मेरे प्यारे ग्वालबालो! इस बार तुमलोग उनकी पत्नियोंके पास जाओ और उनसे कहो कि राम और श्याम यहाँ आये हैं। तुम जितना चाहोगे उतना भोजन वे तुम्हें देंगी। वे मुझसे बड़ा प्रेम करती हैं। उनका मन सदा-सर्वदा मुझमें लगा रहता है' ॥१४॥

अबकी बार ग्वालबाल पत्नीशालामें गये। वहाँ जाकर देखा तो ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और गहनोंसे सज-धजकर बैठी हैं। उन्होंने द्विजपत्नियोंको प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यह बात कही—॥१५॥ 'आप विप्रपत्नियोंको हम नमस्कार करते हैं। आप कृपा करके हमारी बात सुनें। भगवान् श्रीकृष्ण यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं और उन्होंने ही हमें आपके पास भेजा है ॥ १६ ॥ वे *ग्वालबाल और बलरामजीके साथ* गौएँ चराते हुए इधर बहुत दूर आ गये हैं। इस समय उन्हें और उनके साथियोंको भूख लगी है। आप उनके लिये कुछ भोजन दे दें' ॥१७॥ परीक्षित्! वे ब्राह्मणियाँ बहुत दिनोंसे भगवान्‌की मनोहर लीलाएँ सुनती थीं। उनका मन उनमें लग चुका था। वे सदा-सर्वदा इस बातके लिये उत्सुक रहतीं कि किसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँ। श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनते ही वे उतावली हो गयीं ॥१८॥ उन्होंने बर्तनोंमें अत्यन्त स्वादिष्ट और हितकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—चारों प्रकारकी भोजन-सामग्री ले ली तथा भाई-बन्धु, पति-पुत्रोंके रोकते रहनेपर भी अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके पास जानेके लिये घरसे निकल पड़ीं—ठीक वैसे ही, जैसे नदियाँ समुद्रके लिये। क्यों न हो; न जाने कितने दिनोंसे पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुण, लीला, सौन्दर्य और माधुर्य आदिका वर्णन सुन-सुनकर उन्होंने उनके चरणोंपर अपना हृदय निछावर कर दिया था ॥१९-२०॥ ब्राह्मणपत्नियोंने जाकर देखा कि यमुनाके तटपर नये-नये कोंपलोंसे शोभायमान अशोक-वनमें ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण इधर-उधर घूम रहे हैं ॥ २१ ॥ उनके साँवले शरीरपर सुनहला पीताम्बर झिलमिला रहा है। गलेमें वनमाला लटक रही है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट है। *अङ्ग-अङ्गमें रंगीन* धातुओंसे चित्रकारी कर रक्खी है। नये-नये कोंपलोंके गुच्छे शरीरमें लगाकर नटका-सा वेष बना रक्खा है। एक हाथ अपने सखा ग्वालबालके कंधेपर रक्खे हुए हैं और दूसरे हाथसे कमलका फूल नचा रहे हैं। कानोंमें कमलके कुण्डल हैं, कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं और मुख-

कमल मन्द-मन्द मुसकानकी रेखासे प्रफुल्लित हो रहा है ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! अबतक अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके गुण और लीलाएँ अपने कानोंसे सुन-सुनकर उन्होंने अपने मनको उन्हींके प्रेमके रंगमें रँग डाला था, उसीमें सराबोर कर दिया था । अब नेत्रोंके मार्गसे उन्हें भीतर ले जाकर बहुत देरतक वे मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती रहीं और इस प्रकार उन्होंने अपने हृदयकी जलन शान्त की—ठीक वैसे ही, जैसे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंकी वृत्तियाँ 'यह मैं, यह मेरा' इस भावसे जलती रहती हैं, परन्तु सुषुप्ति-अवस्थामें उसके अभिमानी प्राज्ञको पाकर उसीमें लीन हो जाती हैं और उनकी सारी जलन मिट जाती है ॥ २३ ॥

प्रिय परीक्षित् ! भगवान् सबके हृदयकी बात जानते हैं, सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं । उन्होंने जब देखा कि ये ब्राह्मणपत्नियाँ अपने भाई-बन्धु और पति-पुत्रोंके रोकनेपर भी सब सगे-सम्बन्धियों और विषयोंकी आशा छोड़कर केवल मेरे दर्शनकी लालसासे ही मेरे पास आयी हैं, तब उन्होंने उनसे कहा । उस समय उनके मुखारविन्दपर हास्यकी तरङ्गें अठखेलियाँ कर रही थीं ॥ २४ ॥ भगवान्ने कहा—'महाभाग्यवती देवियो ! तुम्हारा स्वागत है । आओ, बैठो । कहो, हम तुम्हारा क्या स्वागत करें ? तुमलोग हमारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आयी हो, यह तुम्हारे-जैसे प्रेमपूर्ण हृदयवालोंके योग्य ही है ॥ २५ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें अपनी सच्ची भलाईको समझनेवाले जितने भी बुद्धिमान् पुरुष हैं, वे अपने प्रियतमके समान ही मुझसे प्रेम करते हैं, और ऐसा प्रेम करते हैं, जिसमें किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती—जिसमें किसी *प्रकारका व्यवधान, सङ्कोच, छिपाव, दुविधा या द्वैत* नहीं होता ॥ २६ ॥ प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन आदि संसारकी सभी वस्तुएँ जिसके लिये और जिसकी सन्निधिसे प्रिय लगती हैं—उस आत्मासे, परमात्मासे, मुझ श्रीकृष्णसे बढ़कर और कौन प्यारा हो सकता है ॥ २७ ॥ इसलिये तुम्हारा आना उचित ही है । मैं तुम्हारे प्रेमका अभिनन्दन करता हूँ । परन्तु अब तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकीं । अब अपनी यज्ञशालामें लौट जाओ । तुम्हारे पति ब्राह्मण गृहस्थ हैं । वे तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे' ॥ २८ ॥

ब्राह्मणपत्नियोंने कहा—अन्तर्यामी श्यामसुन्दर ! आपकी यह बात निष्ठुरतासे पूर्ण है । आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये । श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार भगवान्को प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसारमें नहीं लौटना पड़ता । आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये । हम अपने समस्त सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके आपके चरणोंमें इसलिये आयी हैं कि आपके चरणोंसे गिरी हुई तुलसीकी माला अपने केशोंमें धारण करें ॥ २९ ॥ स्वामी ! अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु और स्वजन-सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है । वीरशिरोमणे ! अब हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं । हमें और किसीका सहारा नहीं है । इसलिये अब हमें दूसरोंकी शरणमें न जाना पड़े; ऐसी व्यवस्था कीजिये ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवियो ! तुम्हारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु—कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे । उनकी तो बात ही क्या, सारा संसार तुम्हारा सम्मान करेगा । इसका कारण है । अब तुम मेरी हो गयी हो, मुझसे युक्त हो गयी हो । देखो न, ये देवता मेरी बातका अनुमोदन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ देवियो ! इस संसारमें मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मनुष्योंमें मेरी प्रीति या अनुरागका कारण नहीं है । इसलिये तुम जाओ, अपना मन मुझमें लगा दो । तुम्हें बहुत शीघ्र मेरी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान्ने इस प्रकार कहा, तब वे ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञशालामें लौट गयीं । उन ब्राह्मणोंने अपनी स्त्रियोंमें तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की । उनके साथ मिलकर अपना यज्ञ पूरा किया ॥ ३३ ॥ उन स्त्रियोंमेंसे एकको आनेके समय ही उसके पतिने बलपूर्वक रोक लिया था । इसपर उस ब्राह्मणपत्नीने भगवान्के वैसे ही स्वरूपका ध्यान किया, जैसा कि बहुत दिनोंसे सुन रक्खा था । जब उसका ध्यान जम गया, तब मन-ही-मन भगवान्का आलिङ्गन करके उसने कर्मके द्वारा बने हुए अपने शरीरको छोड़ दिया—(शुद्धसत्त्वमय दिव्य शरीरसे

उसने भगवान्‌की सन्निधि प्राप्त कर ली) ॥ ३४ ॥ इधर भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणियोंके लाये हुए उस चार प्रकारके अन्नसे पहले ग्वालबालोंको भोजन कराया और फिर उन्होंने स्वयं भी भोजन किया ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार लीलामनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्यकी-सी लीला की और अपने सौन्दर्य, माधुर्य, वाणी तथा कर्मोंसे गौएँ, ग्वालबाल और गोपियोंको आनन्दित किया और स्वयं भी उनके अलौकिक प्रेमरसका आस्वादन करके आनन्दित हुए ॥ ३६ ॥

परीक्षित् ! इधर जब ब्राह्मणोंको यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, तब उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। वे सोचने लगे कि जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके हमने बड़ा भारी अपराध किया है। वे तो मनुष्यकी-सी लीला करते हुए भी परमेश्वर ही हैं ॥ ३७ ॥ जब उन्होंने देखा कि हमारी पत्नियोंके हृदयमें तो भगवान्‌का अलौकिक प्रेम है और हमलोग उससे बिल्कुल रीते हैं, तब वे पछता-पछताकर अपनी निन्दा करने लगे ॥ ३८ ॥ वे कहने लगे—'हाय ! हम भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं। बड़े ऊँचे कुलमें हमारा जन्म हुआ, गायत्री ग्रहण करके हम द्विजाति हुए, वेदाध्ययन करके हमने बड़े-बड़े यज्ञ किये; परन्तु वह सब किस कामका ? धिक्कार है, धिक्कार है ! हमारी विद्या व्यर्थ गयी, हमारे व्रत बुरे सिद्ध हुए। हमारी इस बहुज्ञताको धिक्कार है ! ऊँचे वंशमें जन्म लेना, कर्मकाण्डमें निपुण होना किसी काम न आया। इन्हें बार-बार धिक्कार है ॥ ३९ ॥ निश्चय ही, भगवान्‌की माया बड़े-बड़े योगियोंको भी मोहित कर लेती है। तभी तो हम कहलाते हैं मनुष्योंके गुरु और ब्राह्मण, परन्तु अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थके विषयमें बिल्कुल भूले हुए हैं ॥ ४० ॥ कितने आश्चर्यकी बात है ! देखो तो सही—यद्यपि ये स्त्रियाँ हैं, तथापि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें इनका कितना अगाध प्रेम है, अखण्ड अनुराग है ! उसीसे इन्होंने गृहस्थीकी वह बहुत बड़ी फाँसी भी काट डाली, जो मृत्युके साथ भी नहीं कटती ॥ ४१ ॥ इनके न तो द्विजातिके योग्य यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं और न तो इन्होंने गुरुकुलमें ही निवास किया है। न इन्होंने तपस्या की है और न तो आत्माके सम्बन्धमें ही कुछ विवेक-विचार किया है। उनकी बात तो दूर रही, इनमें न तो पूरी पवित्रता है और न तो शुभकर्म ही ॥ ४२ ॥ फिर भी समस्त योगेश्वरोंके ईश्वर पुण्य-कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें इनका दृढ़ प्रेम है। और हमने अपने संस्कार किये हैं, गुरुकुलमें निवास किया है, तपस्या की है, आत्मानुसन्धान किया है, पवित्रताका निर्वाह किया है तथा अच्छे-अच्छे कर्म किये हैं; फिर भी भगवान्‌के चरणोंमें हमारा प्रेम नहीं है ॥ ४३ ॥ सच्ची बात यह है कि हमलोग गृहस्थीके काम-धंधोंमें मतवाले हो गये थे, अपनी भलाई और बुराईको बिल्कुल भूल गये थे। अहो, भगवान्‌की कितनी कृपा है ! भक्तवत्सल प्रभुने ग्वालबालोंको भेजकर उनके वचनोंसे हमें चेतावनी दी, अपनी याद दिलायी ॥ ४४ ॥ भगवान् स्वयं पूर्णकाम हैं और कैवल्यमोक्षपर्यन्त जितनी भी कामनाएँ होती हैं, उनको पूर्ण करनेवाले हैं। यदि हमें सचेत नहीं करना होता तो उनका हम-सरीखे क्षुद्र जीवोंसे प्रयोजन ही क्या हो सकता था ? अवश्य ही उन्होंने इसी उद्देश्यसे माँगनेका बहाना बनाया। अन्यथा उन्हें माँगनेकी भला क्या आवश्यकता थी ? ॥ ४५ ॥ स्वयं लक्ष्मी अन्य सब देवताओंको छोड़कर, और अपनी चञ्चलता, गर्व आदि दोषोंका परित्याग कर केवल एक बार उनके चरणकमलोंका स्पर्श पानेके लिये सेवा करती रहती हैं। वे ही प्रभु किसीसे भोजनकी याचना करें, यह लोगोंको मोहित करनेके लिये नहीं तो और क्या है ? ॥ ४६ ॥ देश, काल, पृथक्-पृथक् सामग्रियाँ, उन-उन कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ वे ही योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् विष्णु स्वयं श्रीकृष्णके रूपमें यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं, यह बात हमने सुन रक्खी थी; परन्तु हम इतने मूढ़ हैं कि उन्हें पहचान न सके ॥ ४८ ॥ यह सब होनेपर भी हम धन्यातिधन्य हैं, हमारे अहो-भाग्य हैं। तभी तो हमें वैसी पत्नियाँ प्राप्त हुई हैं।

उनकी भक्तिसे हमारी बुद्धि भी भगवान् श्रीकृष्णके अविचल प्रेमसे युक्त हो गयी है ॥ ४९ ॥ प्रभो ! आप अचिन्त्य और अनन्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण ! आपका ज्ञान अबाध है। आपकी ही मायासे हमारी बुद्धि मोहित हो रही है और हम कर्मोंके पचड़ेमें भटक रहे हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ५० ॥ वे आदि पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हमारे इस अपराधको क्षमा करें। क्योंकि हमारी बुद्धि उनकी मायासे मोहित हो रही है और हम उनके प्रभावको न जाननेवाले अज्ञानी हैं ॥ ५१ ॥

परीक्षित् ! उन ब्राह्मणोंने श्रीकृष्णका तिरस्कार किया था। अतः उन्हें अपने अपराधकी स्मृतिसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उनके हृदयमें श्रीकृष्ण-बलरामके दर्शनकी बड़ी इच्छा भी हुई; परन्तु कंसके डरके मारे वे उनका दर्शन करने न जा सके ॥ ५२ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

इन्द्रयज्ञ-निवारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वृन्दावनमें रहकर अनेकों प्रकारकी लीलाएँ कर रहे थे। उन्होंने एक दिन देखा कि वहाँके सब गोप इन्द्र-यज्ञ करनेकी तैयारी कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सबके अन्तर्यामी और सर्वज्ञ हैं। उनसे कोई बात छिपी नहीं थी, वे सब जानते थे। फिर भी विनयावनत होकर उन्होंने नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंसे पूछा—॥ २ ॥ 'पिताजी ! आपलोगोंके सामने यह कौन-सा बड़ा भारी काम, कौन-सा उत्सव आ पहुँचा है ? इसका फल क्या है ? किस उद्देश्यसे, कौन लोग, किन साधनोंके द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं ? पिताजी ! आप मुझे यह अवश्य बतलाइये ॥ ३ ॥ आप मेरे पिता हैं और मैं आपका पुत्र। ये बातें सुननेके लिये मुझे बड़ी उत्कण्ठा भी है। पिताजी ! जो संत पुरुष सबको अपनी आत्मा मानते हैं, जिनकी दृष्टिमें अपने और परायेका भेद नहीं है, जिनका न कोई मित्र है, न शत्रु और न उदासीन—उनके पास छिपानेकी तो कोई बात होती ही नहीं। परन्तु यदि ऐसी स्थिति न हो, तो रहस्यकी बात शत्रुकी भाँति उदासीनसे भी नहीं कहनी चाहिये। मित्र तो अपने समान ही कहा गया है, इसलिये उससे कोई बात छिपायी नहीं जाती ॥ ४-५ ॥ यह संसारी मनुष्य समझे-बेसमझे अनेकों प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करता है। उनमेंसे समझ-बूझकर करनेवाले पुरुषोंके कर्म जैसे सफल होते हैं, वैसे बेसमझके नहीं ॥ ६ ॥ अतः इस समय आपलोग जो क्रियायोग करने जा रहे हैं, वह सुहृदोंके साथ विचारित—शास्त्रसम्मत है अथवा लौकिक ही है—मैं यह सब जानना चाहता हूँ; आप कृपा करके स्पष्टरूपसे बतलाइये' ॥ ७ ॥

नन्दबाबाने कहा—बेटा ! भगवान् इन्द्र वर्षा करनेवाले मेघोंके स्वामी हैं। ये मेघ उन्हींके अपने रूप हैं। वे समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाला एवं जीवनदान करनेवाला जल बरसाते हैं ॥ ८ ॥ मेरे प्यारे पुत्र ! हम और दूसरे लोग भी उन्हीं मेघपति भगवान् इन्द्रकी यज्ञोंके द्वारा पूजा किया करते हैं। जिन सामग्रियोंसे यज्ञ होता है, वे भी उनके बरसाये हुए शक्तिशाली जलसे ही उत्पन्न होती हैं ॥ ९ ॥ उनका यज्ञ करनेके बाद जो कुछ बच रहता है, उसी अन्नसे हम सब मनुष्य अर्थ, धर्म और कामरूप त्रिवर्गकी सिद्धिके लिये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। मनुष्योंके खेती आदि प्रयत्नोंके फल देनेवाले इन्द्र ही हैं ॥ १० ॥ यह धर्म हमारी कुल-परम्परासे चला आया है। जो मनुष्य काम, लोभ, भय अथवा द्वेषवश ऐसे परम्परागत धर्मको छोड़ देता है, उसका कभी मङ्गल नहीं होता ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! ब्रह्मा, शङ्कर आदिके भी शासन करनेवाले केशव भगवान्ने नन्दबाबा और दूसरे व्रजवासियोंकी बात सुनकर इन्द्रको क्रोध दिलानेके लिये अपने पिता नन्दबाबासे कहा ॥ १२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—पिताजी ! प्राणी अपने कर्मके अनुसार ही पैदा होता और कर्मसे ही मर जाता है। उसे उसके कर्मके अनुसार ही सुख-दुःख, भय और मङ्गलके

निमित्तोंकी प्राप्ति होती है ॥ १३ ॥ यदि कर्मोंको ही सब कुछ न मानकर उनसे भिन्न जीवोंके कर्मका फल देनेवाला ईश्वर माना भी जाय, तो वह कर्म करनेवालोंको ही उनके कर्मके अनुसार फल दे सकता है। कर्म न करनेवालोंपर उसकी प्रभुता नहीं चल सकती ॥ १४ ॥ जब सभी प्राणी अपने-अपने कर्मोंका ही फल भोग रहे हैं, तब हमें इन्द्रकी क्या आवश्यकता है? पिताजी! जब वे पूर्वसंस्कारके अनुसार प्राप्त होनेवाले मनुष्योंके कर्म-फलको बदल ही नहीं सकते—तब उनसे प्रयोजन? ॥ १५ ॥ मनुष्य अपने स्वभाव (पूर्व-संस्कारों) के अधीन है। वह उसीका अनुसरण करता है। यहाँतक कि देवता, असुर, मनुष्य आदिको लिये हुए यह सारा जगत् स्वभावमें ही स्थित है ॥ १६ ॥ जीव अपने कर्मोंके अनुसार उत्तम और अधम शरीरोंको ग्रहण करता और छोड़ता रहता है। अपने कर्मोंके अनुसार ही 'यह शत्रु है, यह मित्र है, यह उदासीन है'—ऐसा व्यवहार करता है। कहाँतक कहूँ, कर्म ही गुरु है और कर्म ही ईश्वर ॥ १७ ॥ इसलिये पिताजी! मनुष्यको चाहिये कि पूर्वसंस्कारोंके अनुसार अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुकूल धर्मोंका पालन करता हुआ कर्मका ही आदर करे। जिसके द्वारा मनुष्यकी जीविका सुगमतासे चलती है, वही उसका इष्टदेव होता है ॥ १८ ॥ जैसे अपने विवाहित पतिको छोड़कर जार पतिका सेवन करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री कभी शान्तिलाभ नहीं करती, वैसे ही जो मनुष्य अपनी आजीविका चलानेवाले एक देवताको छोड़कर किसी दूसरेकी उपासना करते हैं, उससे उन्हें कभी सुख नहीं मिलता ॥ १९ ॥ ब्राह्मण वेदोंके अध्ययन-अध्यापनसे, क्षत्रिय पृथ्वीपालनसे, वैश्य वार्तावृत्तिसे और शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवासे अपनी जीविकाका निर्वाह करें ॥ २० ॥ वैश्योंकी वार्तावृत्ति चार प्रकारकी है—कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और ब्याज लेना। हमलोग उन चारोंमेंसे एक केवल गोपालन ही सदासे करते आये हैं ॥ २१ ॥ पिताजी! इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और अन्तके कारण क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण हैं। यह विविध प्रकारका सम्पूर्ण जगत् स्त्री-पुरुषके संयोगसे रजोगुणके द्वारा उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ उसी रजोगुणकी प्रेरणासे मेघगण सब कहीं जल बरसाते हैं। उसीसे अन्न और अन्नसे ही सब जीवोंकी जीविका चलती है। इसमें भला इन्द्रका क्या लेना-देना है? वह भला, क्या कर सकता है? ॥ २३ ॥

पिताजी! न तो हमारे पास किसी देशका राज्य है और न तो बड़े-बड़े नगर ही हमारे अधीन हैं। हमारे पास गाँव या घर भी नहीं हैं। हम तो सदाके वनवासी हैं, वन और पहाड़ ही हमारे घर हैं ॥ २४ ॥ इसलिये हमलोग गौओं, ब्राह्मणों और गिरिराजका यजन करनेकी तैयारी करें। इन्द्र-यज्ञके लिये जो सामग्रियाँ इकट्ठी की गयी हैं, उन्हींसे इस यज्ञका अनुष्ठान होने दें ॥ २५ ॥ अनेकों प्रकारके पकवान—खीर, हलवा, पूआ, पूरी आदिसे लेकर मूँगकी दालतक बनाये जायँ। व्रजका सारा दूध एकत्र कर लिया जाय ॥ २६ ॥ वेदवादी ब्राह्मणोंके द्वारा भलीभाँति हवन करवाया जाय तथा उन्हें अनेकों प्रकारके अन्न, गौएँ और दक्षिणाएँ दी जायँ ॥ २७ ॥ और भी, चाण्डाल, पतित तथा कुत्तोंतकको यथायोग्य वस्तुएँ देकर गायोंको चारा दिया जाय और फिर गिरिराजको भोग लगाया जाय ॥ २८ ॥ इसके बाद खूब प्रसाद खा-पीकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर, गहनोंसे सज-सजा लिया जाय और चन्दन लगाकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा गिरिराज गोवर्धनकी प्रदक्षिणा की जाय ॥ २९ ॥ पिताजी! मेरी तो ऐसी ही सम्मति है। यदि आप लोगोंको रुचे, तो ऐसा ही कीजिये। ऐसा यज्ञ गौ, ब्राह्मण और गिरिराजको तो प्रिय होगा ही; मुझे भी बहुत प्रिय है ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कालात्मा भगवान्‌की इच्छा थी कि इन्द्रका घमण्ड चूर-चूर कर दें। नन्दबाबा आदि गोपोंने उनकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर ली ॥ ३१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जिस प्रकारका यज्ञ करनेको कहा था, वैसा ही यज्ञ उन्होंने प्रारम्भ किया। पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उसी सामग्रीसे गिरिराज और ब्राह्मणोंको सादर भेंटें दीं, तथा गौओंको हरी-हरी घास खिलायी। इसके बाद नन्दबाबा आदि गोपोंने गौओंको आगे करके गिरिराजकी प्रदक्षिणा

की ॥ ३२-३३ ॥ ब्राह्मणोंका आशीर्वाद प्राप्त करके वे और गोपियाँ भलीभाँति शृङ्गार करके और बैलोंसे जुती गाड़ियोंपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करती हुई गिरिराजकी परिक्रमा करने लगीं॥३४॥ भगवान् श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये, तथा 'मैं गिरिराज हूँ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको दूसरे व्रज-वासियोंके साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहने लगे—'देखो, कैसा आश्चर्य है! गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर कृपा की है ॥ ३६ ॥ ये चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं। आओ, अपना और गौओंका कल्याण करनेके लिये इन गिरिराजको हम नमस्कार करें' ॥३७॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने गिरिराज, गौ और ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन किया तथा फिर श्रीकृष्णके साथ सब व्रजमें लौट आये ॥ ३८ ॥

पचीसवाँ अध्याय

गोवर्द्धनधारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब इन्द्रको पता लगा कि मेरी पूजा बंद कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपोंपर बहुत ही क्रोधित हुए। परन्तु उनके क्रोध करनेसे होता क्या, उन गोपोंके रक्षक तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे ॥ १ ॥ इन्द्रको अपने पदका बड़ा घमण्ड था, वे समझते थे कि मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ। उन्होंने क्रोधसे तिलमिलाकर प्रलय करनेवाले मेघोंके सांवर्तक नामक गणको व्रजपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और कहा—॥ २ ॥ 'ओह, इन जंगली ग्वालोंको इतना घमण्ड! सचमुच यह धनका ही नशा है। भला देखो तो सही, एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर उन्होंने मुझ देवराजका अपमान कर डाला ॥ ३ ॥ जैसे पृथ्वीपर बहुत-से मन्दबुद्धि पुरुष भवसागरसे पार जानेके सच्चे साधन ब्रह्मविद्याको तो छोड़ देते हैं और नाममात्रकी टूटी हुई नावसे—कर्ममय यज्ञोंसे इस घोर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं ॥ ४ ॥ कृष्ण बकवादी, नादान, अभिमानी और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है। वह स्वयं मृत्युका ग्रास है। फिर भी उसीका सहारा लेकर इन अहीरोंने मेरी अवहेलना की है ॥ ५ ॥ एक तो ये यों ही धनके नशेमें चूर हो रहे थे; दूसरे कृष्णने इनको और बढ़ावा दे दिया है। अब तुमलोग जाकर इनके इस धनके घमण्ड और हेकड़ीको धूलमें मिला दो तथा उनके पशुओंका संहार कर डालो ॥ ६ ॥ मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़कर नन्दके व्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ आता हूँ' ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इन्द्रने इस प्रकार प्रलयके मेघोंको आज्ञा दी और उनके बन्धन खोल दिये। अब वे बड़े वेगसे नन्दबाबाके व्रजपर चढ़ आये और मूसलधार पानी बरसाकर सारे व्रजको पीड़ित करने लगे ॥ ८ ॥ चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब दल-के-दल बादल बार-बार आ-आकर खंभेके समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब व्रजभूमिका कोना-कोना पानीसे भर गया और कहाँ नीचा है, कहाँ ऊँचा—इसका पता चलना कठिन हो गया ॥ १० ॥ इस प्रकार मूसलधार वर्षा तथा झंझावातके झपाटेसे जब एक-एक पशु ठिठुरने और काँपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंडके मारे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं, तब वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये ॥ ११ ॥ मूसलधार वर्षासे सताये जानेके कारण सबने अपने-अपने सिर और बच्चोंको निहुककर अपने शरीरके नीचे छिपा लिया

था और वे काँपते-काँपते भगवान्की चरणशरणमें पहुँचे ॥ १२ ॥ और बोले—'प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम बड़े भाग्यवान् हो । अब तो कृष्ण ! केवल तुम्हारे ही भाग्यसे हमारी रक्षा होगी । प्रभो ! इस सारे गोकुलके एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो । भक्तवत्सल! इन्द्रके क्रोधसे अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो' ॥ १३ ॥ भगवान्ने देखा कि वर्षा और ओलोंकी मारसे पीड़ित होकर सब बेहोश हो रहे हैं । वे समझ गये कि यह सारी करतूत इन्द्रकी है । उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है ॥ १४ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे—'हमने इन्द्रका यज्ञ भङ्ग कर दिया है, इसीसे वे व्रजका नाश करनेके लिये बिना ऋतुके ही यह प्रचण्ड वायु और ओलोंके साथ घनघोर वर्षा कर रहे हैं ॥ १५ ॥ अच्छा, मैं अपनी योगमायासे इसका भलीभाँति जवाब दूँगा । ये मूर्खतावश अपनेको लोकपाल मानते हैं, इनके ऐश्वर्य और धनका घमण्ड तथा अज्ञान मैं चूर-चूर कर दूँगा ॥ १६ ॥ देवतालोग तो सत्त्वप्रधान होते हैं । इनमें अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान न होना चाहिये । अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे च्युत दुष्ट देवताओंका मैं मान-भङ्ग कर दूँ । इससे अन्तमें उन्हें शान्ति ही मिलेगी ॥१७॥ यह सारा व्रज मेरे आश्रित है, मेरे द्वारा स्वीकृत है और एकमात्र मैं ही इसका रक्षक हूँ । अतः मैं अपनी योगमायासे इसकी रक्षा करूँगा । संतोंकी रक्षा करना तो मेरा व्रत ही है । अब उसके पालनका अवसर आ पहुँचा है'* ॥ १८॥

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वतको धारण कर लिया ॥ १९ ॥ इसके बाद भगवान्ने गोपोंसे कहा—'माताजी, पिताजी और व्रजवासियो ! तुमलोग अपनी गौओं और सब सामग्रियोंके साथ इस पर्वतके गड्ढेमें आकर आरामसे बैठ जाओ ॥ २० ॥ देखो, तुमलोग ऐसी शङ्का न करना कि मेरे हाथसे यह पर्वत गिर पड़ेगा । तुमलोग तनिक भी मत डरो । इस आँधी-पानीके डरसे तुम्हें बचानेके लिये ही मैंने यह युक्ति रची है' ॥ २१ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सबको आश्वासन दिया—ढाढ़स बँधाया, तब सब-के-सब ग्वाल अपने-अपने गोधन, छकड़ों, आश्रितों, पुरोहितों और भृत्योंको अपने-अपने साथ लेकर सुभीतेके अनुसार गोवर्द्धनके गड्ढेमें आ घुसे ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने सब व्रजवासियोंके देखते-देखते भूख-प्यासकी पीड़ा, आराम-विश्रामकी आवश्यकता आदि सब कुछ भुलाकर सात दिनतक लगातार उस पर्वतको उठाये रक्खा । वे एक डग भी वहाँसे इधर-उधर नहीं हुए ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी योगमायाका यह प्रभाव देखकर इन्द्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा । अपना सङ्कल्प पूरा न होनेके कारण उनकी सारी हेकड़ी बंद हो गयी, वे भौंचक्के-से रह गये । इसके बाद उन्होंने मेघोंको अपने-आप वर्षा करनेसे रोक दिया ॥ २४ ॥ जब गोवर्द्धनधारी भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि वह भयङ्कर आँधी और घनघोर वर्षा बंद हो गयी, आकाशसे बादल छँट गये और सूर्य दीखने लगे, तब उन्होंने गोपोंसे कहा—॥ २५ ॥ 'मेरे प्यारे गोपो ! अब तुमलोग निडर हो जाओ और अपनी स्त्रियों, गोधन तथा बच्चोंके साथ बाहर निकल आओ । देखो, अब आँधी-पानी बंद हो गया तथा नदियोंका पानी भी उतर गया' ॥ २६ ॥ भगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर अपने-अपने गोधन, स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंको साथ ले तथा अपनी सामग्री छकड़ोंपर लादकर धीरे-धीरे सब लोग बाहर निकल आये ॥२७॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी सब प्राणियोंके देखते-देखते खेल-खेलमें ही गिरिराजको पूर्ववत् उसके स्थानपर रख दिया ॥ २८ ॥

व्रजवासियोंका हृदय प्रेमके आवेगसे भर रहा था । पर्वतको रखते ही वे भगवान् श्रीकृष्णके पास दौड़ आये । कोई उन्हें हृदयसे लगाने और कोई चूमने लगा ।

* भगवान् कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥

'जो केवल एक बार मेरी शरणमें आ जाता है और 'मैं तुम्हारा हूँ' इस प्रकार याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है ।'

सबने उनका सत्कार किया। बड़ी-बूढ़ी गोपियोंने बड़े आनन्द और स्नेहसे दही, चावल, जल आदिसे उनका मङ्गल-तिलक किया और उन्मुक्त हृदयसे शुभ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने स्नेहातुर होकर श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया तथा आशीर्वाद दिये ॥३०॥ परीक्षित्! उस समय आकाशमें स्थित देवता, साध्य, सिद्ध, गन्धर्व और चारण आदि प्रसन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ राजन्! स्वर्गमें देवतालोग शङ्ख और नौबत बजाने लगे। तुम्बुरु आदि गन्धर्वराज भगवान्‌की मधुर लीलाका गान करने लगे ॥ ३२ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने व्रजकी यात्रा की। उनके बगलमें बलरामजी चल रहे थे और उनके प्रेमी ग्वालबाल उनकी सेवा कर रहे थे। उनके साथ ही प्रेममयी गोपियाँ भी अपने हृदयको आकर्षित करनेवाले, उसमें प्रेम जगानेवाले भगवान्‌की गोवर्द्धनधारण आदि लीलाओंका गान करती हुई बड़े आनन्दसे व्रजमें लौट आयीं ॥ ३३ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! व्रजके गोप भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अलौकिक कर्म देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्हें भगवान्‌की अनन्त शक्तिका तो पता था नहीं, वे इकट्ठे होकर आपसमें इस प्रकार कहने लगे—॥ १ ॥ 'इस बालकके ये कर्म बड़े अलौकिक हैं। इसका हमारे-जैसे गँवार ग्रामीणोंमें जन्म लेना तो इसके लिये बड़ी निन्दाकी बात है। यह भला, कैसे उचित हो सकता है ॥२॥ जैसे गजराज कोई कमल उखाड़कर उसे ऊपर उठा ले और धारण करे, वैसे ही इस नन्हे-से सात वर्षके बालकने एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और खेल-खेलमें सात दिनोंतक उठाये रक्खा ॥ ३ ॥ यह साधारण मनुष्यके लिये भला, कैसे सम्भव है? जब यह नन्हा-सा बच्चा था, उस समय बड़ी भयङ्कर राक्षसी पूतना आयी और इसने आँख बंद किये-किये ही उसका स्तन तो पिया ही, प्राण भी पी डाले—ठीक वैसे ही, जैसे काल शरीरकी आयुको निगल जाता है ॥ ४ ॥ जिस समय यह केवल तीन महीनेका था और छकड़ेके नीचे सोकर रो रहा था, उस समय रोते-रोते इसने ऐसा पाँव उछाला कि उसकी ठोकरसे वह बड़ा भारी छकड़ा उलटकर गिर ही पड़ा ॥ ५ ॥ उस समय तो यह एक ही वर्षका था, जब दैत्य बवंडरके रूपमें इसे बैठे-बैठे आकाशमें उड़ा ले गया था। तुम सब जानते ही हो कि इसने उस तृणावर्त दैत्यको गला घोंटकर मार डाला ॥ ६ ॥ उस दिनकी बात तो सभी जानते हैं कि माखनचोरी करनेपर यशोदारानीने इसे ऊखलसे बाँध दिया था। यह घुटनोंके बल बकैयाँ खींचते-खींचते उन दोनों विशाल अर्जुन-वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गया और उन्हें उखाड़ ही डाला ॥ ७ ॥जब यह ग्वालबाल और बलरामजीके साथ बछड़ोंको चरानेके लिये वनमें गया हुआ था, उस समय इसको मार डालनेके लिये एक दैत्य बगुलेके रूपमें आया और इसने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़कर उसे तिनकेकी तरह चीर डाला ॥ ८ ॥ जिस समय इसको मार डालनेकी इच्छासे एक दैत्य बछड़ेके रूपमें बछड़ोंके झुंडमें घुस गया था, उस समय इसने उस दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला और उसे कैथके पेड़ोंपर पटककर उन पेड़ोंको भी गिरा दिया ॥ ९ ॥ इसने बलरामजीके साथ मिलकर गधेके रूपमें रहनेवाले धेनुकासुर तथा उसके भाई-बन्धुओंको मार डाला और पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको सबके लिये उपयोगी और मङ्गलमय बना दिया ॥ १० ॥ इसीने बलशाली बलरामजीके द्वारा क्रूर प्रलम्बासुरको मरवा डाला तथा दावानलसे गौओं और ग्वालबालोंको उबार लिया ॥११॥ यमुनाजलमें रहनेवाला कालिय नाग कितना विषैला था? परन्तु इसने उसका भी मान मर्दन कर उसे बलपूर्वक दहसे निकाल दिया और यमुनाजीका जल सदाके लिये विषरहित—अमृतमय बना दिया ॥ १२ ॥ नन्दजी,

हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारे इस साँवले बालकपर हम सभी व्रजवासियोंका अनन्त प्रेम है और इसका भी हमपर स्वाभाविक ही स्नेह है। क्या आप बतला सकते हैं कि इसका क्या कारण है ॥ १३ ॥ भला, कहाँ तो यह सात वर्षका नन्हा-सा बालक और कहाँ इतने बड़े गिरिराजको सात दिनोंतक उठाये रखना! व्रजराज! इसीसे तो तुम्हारे पुत्रके सम्बन्धमें हमें बड़ी शङ्का हो रही है॥१४॥

नन्दबाबाने कहा—गोपो! तुमलोग सावधान होकर मेरी बात सुनो। मेरे बालकके विषयमें तुम्हारी शङ्का दूर हो जाय। क्योंकि महर्षि गर्गने इस बालकको देखकर इसके विषयमें ऐसा ही कहा था॥ १५॥ 'तुम्हारा यह बालक प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। विभिन्न युगोंमें इसने श्वेत, रक्त और पीत—ये भिन्न-भिन्न रंग स्वीकार किये थे। इस बार यह कृष्णवर्ण हुआ है॥१६॥ नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र पहले कहीं वसुदेवके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जानने-वाले लोग 'इसका नाम श्रीमान् वासुदेव है'—ऐसा कहते हैं॥ १७॥ तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्मोंके अनुरूप और भी बहुत-से नाम हैं तथा बहुत-से रूप। मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते॥ १८॥ यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा, समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा। इसकी सहायतासे तुम लोग बड़ी-बड़ी विपत्तियों-को बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे॥ १९॥ व्रजराज! पूर्वकालमें एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था। डाकुओंने चारों ओर लूट-खसोट मचा रक्खी थी। तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की॥२०॥ नन्दबाबा! जो तुम्हारे इस साँवले शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्के करकमलोंकी छत्र-छायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतरी या बाहरी—किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते॥ २१॥ नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणसे, ऐश्वर्य और सौन्दर्यसे, कीर्ति और प्रभावसे, तुम्हारा बालक स्वयं भगवान् नारायणके ही समान है। अतः इस बालकके अलौकिक कार्योंको देखकर आश्चर्य न करना चाहिये॥ २२॥ गोपो! मुझे स्वयं गर्गाचार्यजी यह आदेश देकर अपने घर चले गये। तबसे मैं अलौकिक और परम सुखद कर्म करनेवाले इस बालकको भगवान् नारायणका ही अंश मानता हूँ॥ २३॥ जब व्रजवासियोंने नन्दबाबाके मुखसे गर्गजीकी यह बात सुनी, तब उनका विस्मय जाता रहा। क्योंकि अब वे अमित-तेजस्वी श्रीकृष्णके प्रभावको पूर्णरूपसे देख और सुन चुके थे। आनन्दमें भरकर उन्होंने नन्दबाबा और श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की॥ २४॥

जिस समय अपना यज्ञ भङ्ग हो जानेके कारण इन्द्र क्रोधके मारे आग-बबूला हो गये थे और मूसलधार वर्षा करने लगे थे, उस समय वज्रपात, ओलोंकी बौछार और प्रचण्ड आँधीसे स्त्री, पशु तथा ग्वाले अत्यन्त पीड़ित हो गये थे। अपनी शरणमें रहनेवाले व्रजवासियोंकी यह दशा देखकर भगवान्का हृदय करुणासे भर आया। परन्तु फिर एक नयी लीला करनेके विचारसे वे तुरंत ही मुसकराने लगे। जैसे कोई नन्हा-सा निर्बल बालक खेल-खेलमें ही बरसाती छत्तेका पुष्प उखाड़ ले, वैसे ही उन्होंने एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़-कर धारण कर लिया और सारे व्रजकी रक्षा की। इन्द्रका मद चूर करनेवाले वे ही भगवान् गोविन्द हमपर प्रसन्न हों॥ २५॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका अभिषेक

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराज गोवर्द्धनको धारण करके मूसलधार वर्षासे व्रजको बचा लिया, तब उनके पास गोलोकसे कामधेनु (बधाई देनेके लिये) और स्वर्गसे देवराज इन्द्र (अपने अपराधको क्षमा करानेके लिये) आये॥१॥ भगवान्का तिरस्कार करनेके कारण इन्द्र बहुत ही लज्जित

थे। इसलिये उन्होंने एकान्त-स्थानमें भगवान्‌के पास जाकर अपने सूर्यके समान तेजस्वी मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श किया ॥ २ ॥ परमतेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव देख-सुनकर इन्द्रका यह घमंड जाता रहा कि मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। अब उन्होंने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की ॥ ३ ॥

इन्द्रने कहा—भगवन्! आपका स्वरूप परम शान्त, ज्ञानमय, रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित एवं विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय है। यह गुणोंके प्रवाहरूपसे प्रतीत होनेवाला प्रपञ्च केवल मायामय है। क्योंकि आपका स्वरूप न जाननेके कारण ही आपमें इसकी प्रतीति होती है ॥ ४ ॥ जब आपका सम्बन्ध अज्ञान और उसके कारण प्रतीत होनेवाले देहादिसे है ही नहीं, फिर उन देह आदिकी प्राप्तिके कारण तथा उन्हींसे होनेवाले लोभ-क्रोध आदि दोष तो आपमें हो ही कैसे सकते हैं? प्रभो! इन दोषोंका होना तो अज्ञानका लक्षण है। इस प्रकार यद्यपि अज्ञान और उससे होनेवाले जगत्‌से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये आप अवतार ग्रहण करते हैं और निग्रह-अनुग्रह भी करते हैं ॥ ५ ॥ आप जगत्‌के पिता, गुरु और स्वामी हैं। आप जगत्‌का नियन्त्रण करनेके लिये दण्ड धारण किये हुए दुस्तर काल हैं। आप अपने भक्तोंकी लालसा पूर्ण करनेके लिये स्वच्छन्दतासे लीला-शरीर प्रकट करते हैं और जो लोग हमारी तरह अपनेको ईश्वर मान बैठते हैं, उनका मान मर्दन करते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करते हैं ॥ ६ ॥ प्रभो! जो मेरे-जैसे अज्ञानी और अपनेको जगत्‌का ईश्वर माननेवाले हैं, वे जब देखते हैं कि बड़े-बड़े भयके अवसरोंपर भी आप निर्भय रहते हैं, तब वे अपना घमंड छोड़ देते हैं और गर्वरहित होकर संतपुरुषोंके द्वारा सेवित भक्ति-मार्गका आश्रय लेकर आपका भजन करते हैं। प्रभो! आपकी एक-एक चेष्टा दुष्टोंके लिये दण्डविधान है ॥७॥ प्रभो! मैंने ऐश्वर्यके मदसे चूर होकर आपका अपराध किया है। क्योंकि मैं आपकी शक्ति और प्रभावके सम्बन्धमें बिल्कुल अनजान था। परमेश्वर! आप कृपा करके मुझ मूर्ख अपराधीका यह अपराध क्षमा करें और ऐसी कृपा करें कि मुझे फिर कभी ऐसे दुष्ट अज्ञानका शिकार न होना पड़े ॥ ८ ॥ स्वयंप्रकाश, इन्द्रियातीत परमात्मन्! आपका यह अवतार इसलिये हुआ है कि जो असुर-सेनापति केवल अपना पेट पालनेमें ही लग रहे हैं और पृथ्वीके लिये बड़े भारी भारके कारण बन रहे हैं, उनका वध करके उन्हें मोक्ष दिया जाय, और जो आपके चरणोंके सेवक हैं—आज्ञाकारी भक्तजन हैं, उनका अभ्युदय हो—उनकी रक्षा हो ॥ ९ ॥ भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम तथा सर्वात्मा वासुदेव हैं। आप यदुवंशियोंके एकमात्र स्वामी, भक्तवत्सल एवं सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥ आपने जीवोंके समान कर्मवश होकर नहीं, स्वतन्त्रतासे अपने भक्तोंकी तथा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर स्वीकार किया है। आपका यह शरीर भी विशुद्धज्ञानस्वरूप है। आप सब कुछ हैं, सबके कारण हैं और सबके आत्मा हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥ भगवन्! मेरे अभिमानका अन्त नहीं है और मेरा क्रोध भी बहुत ही तीव्र, मेरे वशके बाहर है। जब मैंने देखा कि मेरा यज्ञ तो नष्ट कर दिया गया, तब मैंने मूसलधार वर्षा और आँधीके द्वारा सारे व्रजमण्डलको नष्ट कर देना चाहा ॥ १२ ॥ परन्तु प्रभो! आपने मुझपर बहुत ही अनुग्रह किया। मेरी चेष्टा व्यर्थ होनेसे मेरे घमंडकी जड़ उखड़ गयी। आप मेरे स्वामी हैं, गुरु हैं और मेरे आत्मा हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे इन्द्रको सम्बोधन करके कहा—॥ १४ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—इन्द्र! तुम ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके मदसे पूरे-पूरे मतवाले हो रहे थे। इसलिये तुमपर अनुग्रह करके ही मैंने तुम्हारा यज्ञ भङ्ग किया है। यह इसलिये कि अब तुम मुझे नित्य-निरन्तर स्मरण रख सको ॥ १५ ॥ जो ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके मदसे अंधा हो जाता है, वह यह नहीं देखता कि मैं कालरूप परमेश्वर हाथमें दण्ड लेकर उसके सिरपर सवार हूँ। मैं जिसपर अनुग्रह करना चाहता हूँ, उसे ऐश्वर्यभ्रष्ट कर

देता हूँ ॥ १६ ॥ इन्द्र ! तुम्हारा मङ्गल हो । अब तुम अपनी राजधानी अमरावतीमें जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो । अब कभी घमंड न करना । नित्य-निरन्तर मेरी सन्निधिका, मेरे संयोगका अनुभव करते रहना और अपने अधिकारके अनुसार उचित रीतिसे मर्यादाका पालन करना ॥ १७ ॥

परीक्षित् ! भगवान् इस प्रकार आज्ञा दे ही रहे थे कि मनस्विनी कामधेनुने अपनी सन्तानोंके साथ गोपवेष-धारी परमेश्वर श्रीकृष्णकी वन्दना की और उनको सम्बोधित करके कहा—॥ १८ ॥

कामधेनुने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप महायोगी—योगेश्वर हैं । आप स्वयं विश्व हैं, विश्वके परमकारण हैं, अच्युत हैं । सम्पूर्ण विश्वके स्वामी आपको अपने रक्षकके रूपमें प्राप्तकर हम सनाथ हो गयीं ॥ १९ ॥ आप जगत्के स्वामी हैं । परन्तु हमारे तो परम पूजनीय आराध्यदेव ही हैं । प्रभो ! इन्द्र त्रिलोकीके इन्द्र हुआ करें, परन्तु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं । अतः आप ही गौ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंकी रक्षाके लिये हमारे इन्द्र बन जाइये ॥२०॥ हम गौएँ ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आपको अपना इन्द्र मानकर अभिषेक करेंगी । विश्वात्मन् ! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही अवतार धारण किया है ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर कामधेनुने अपने दूधसे और देवमाताओंकी प्रेरणासे देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँडके द्वारा लाये हुए आकाशगङ्गाके जलसे देवर्षियोंके साथ यदुनाथ श्रीकृष्णका अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया ॥ २२-२३ ॥ उस समय वहाँ नारद, तुम्बुरु आदि गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण पहलेसे ही आ गये थे । वे समस्त संसारके पाप-ताप-को मिटा देनेवाले भगवान्के लोकमलापह यशका गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दसे भरकर नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ मुख्य-मुख्य देवता भगवान्की स्तुति करके उनपर नन्दनवनके दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे । तीनों लोकोंमें परमानन्दकी बाढ़ आ गयी और गौओंके स्तनोंसे आप-ही-आप इतना दूध गिरा कि पृथ्वी गीली हो गयी ॥ २५ ॥ नदियोंमें विविध रसोंकी बाढ़ आ गयी । वृक्षोंसे मधुधारा बहने लगी । बिना जोते-बोये पृथ्वीमें अनेकों प्रकारकी ओषधियाँ, अन्न पैदा हो गये । पर्वतोंमें छिपे हुए मणि-माणिक्य स्वयं ही बाहर निकल आये ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक होनेपर जो जीव स्वभावसे ही क्रूर हैं, वे भी वैरहीन हो गये, उनमें भी परस्पर मित्रता हो गयी ॥ २७ ॥ इन्द्रने इस प्रकार गौ और गोकुलके स्वामी श्रीगोविन्दका अभिषेक किया और उनसे अनुमति प्राप्त होनेपर देवता, गन्धर्व आदिके साथ स्वर्गकी यात्रा की ॥ २८ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाकर लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबाने कार्तिक शुक्ल एकादशीका उपवास किया और भगवान्की पूजा की तथा उसी दिन रातमें द्वादशी लगनेपर स्नान करनेके लिये यमुना-जलमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ नन्दबाबाको यह मालूम नहीं था कि यह असुरोंकी वेला है, इसलिये वे रातके समय ही यमुनाजलमें घुस गये । उस समय वरुणके सेवक एक असुरने उन्हें पकड़ लिया और वह अपने स्वामीके पास ले गया ॥ २ ॥ नन्दबाबाके खो जानेसे व्रजके सारे गोप 'श्रीकृष्ण ! अब तुम्हीं अपने पिताको ला सकते हो; बलराम ! अब तुम्हारा ही भरोसा है'—इस प्रकार कहते हुए रोने-पीटने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं एवं सदासे ही अपने भक्तोंका भय भगाते आये हैं । जब उन्होंने व्रजवासियों-का रोना-पीटना सुना और यह जाना कि पिताजीको वरुणका कोई सेवक ले गया है, तब वे वरुणजीके पास गये ॥ ३ ॥ जब लोकपाल वरुणने देखा कि समस्त जगत्के अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही उनके यहाँ पधारे हैं, तब उन्होंने उनकी बहुत बड़ी पूजा

की। भगवान्‌के दर्शनसे उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से निवेदन किया ॥४॥

वरुणजीने कहा—प्रभो! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गया। क्योंकि आज मुझे आपके चरणोंकी सेवाका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। भगवन्! जिन्हें भी आपके चरणकमलोंकी सेवाका सुअवसर मिला, वे भवसागरसे पार हो गये॥ ५॥ आप भक्तोंके भगवान्, वेदान्तियोंके ब्रह्म और योगियोंके परमात्मा हैं। आपके स्वरूपमें विभिन्न लोकसृष्टियोंकी कल्पना करनेवाली माया नहीं है—ऐसा श्रुति कहती है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥६॥ प्रभो! मेरा यह सेवक बड़ा मूढ और अनजान है। वह अपने कर्तव्यको भी नहीं जानता। वही आपके पिताजीको ले आया है, आप कृपा करके उसका अपराध क्षमा कीजिये॥७॥ गोविन्द! मैं जानता हूँ कि आप अपने पिताके प्रति बड़ा प्रेमभाव रखते हैं। ये आपके पिता हैं। इन्हें आप ले जाइये। परन्तु भगवन्! आप सबके अन्तर्यामी, सबके साक्षी हैं। इसलिये विश्वविमोहन श्रीकृष्ण! आप मुझ दासपर भी कृपा कीजिये॥ ८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। लोकपाल वरुणने इस प्रकार उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद भगवान् अपने पिता नन्दजीको लेकर व्रजमें चले आये और व्रजवासी भाई-बन्धुओंको आनन्दित किया॥९॥ नन्दबाबाने वरुणलोकमें लोकपालके इन्द्रियातीत ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्तिको देखा तथा यह भी देखा कि वहाँके निवासी उनके पुत्र श्रीकृष्णके चरणोंमें झुक-झुककर प्रणाम कर रहे हैं। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने व्रजमें आकर अपने जाति-भाइयोंको सब बातें कह सुनायीं॥ १०॥ परीक्षित्! भगवान्‌के प्रेमी गोप यह सुनकर ऐसा समझने लगे कि अरे, ये तो स्वयं भगवान् हैं। तब उन्होंने मन-ही-मन बड़ी उत्सुकतासे विचार किया कि क्या कभी जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको भी अपना वह मायातीत स्वधाम, जहाँ केवल इनके प्रेमी भक्त ही जा सकते हैं, दिखलायेंगे॥११॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वदर्शी हैं। भला, उनसे यह बात कैसे छिपी रहती? वे अपने आत्मीय गोपोंकी यह अभिलाषा जान गये और उनका सङ्कल्प सिद्ध करनेके लिये कृपासे भरकर इस प्रकार सोचने लगे॥ १२॥ 'इस संसारमें जीव अज्ञानवश शरीरमें आत्मबुद्धि करके भाँति-भाँतिकी कामना और उनकी पूर्तिके लिये नाना प्रकारके कर्म करता है। फिर उनके फलस्वरूप देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ऊँची-नीची योनियोंमें भटकता फिरता है, अपनी असली गतिको—*आत्मस्वरूपको नहीं पहचान पाता*॥१३॥ परमदयालु भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सोचकर उन गोपोंको मायान्धकारसे अतीत अपना परमधाम दिखलाया॥१४॥ भगवान्‌ने पहले उनको उस ब्रह्मका साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योतिःस्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं॥१५॥ जिस जलाशयमें अक्रूरको भगवान्‌ने अपना स्वरूप दिखलाया था, उसी ब्रह्मस्वरूप ब्रह्महृदमें भगवान् उन गोपोंको ले गये। वहाँ उन लोगोंने उसमें डुबकी लगायी। वे ब्रह्महृदमें प्रवेश कर गये। तब भगवान्‌ने उसमेंसे उनको निकालकर अपने परमधामका दर्शन कराया॥ १६॥ उस दिव्य भगवत्स्वरूप लोकको देखकर नन्द आदि गोप परमानन्दमें मग्न हो गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सारे वेद मूर्तिमान् होकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं। यह देखकर वे सब-के-सब परम विस्मित हो गये॥ १७॥

उन्तीसवाँ अध्याय

रासलीलाका आरम्भ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शरद् ऋतु थी। उसके कारण बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ-महँ महँक रहे थे। भगवान्‌ने चीर-हरणके समय गोपियोंको जिन रात्रियोंका सङ्केत किया

था, वे सब-की-सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें उल्लसित हो रही थीं। भगवान्‌ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया। गोपियाँ तो चाहती ही थीं। अब भगवान्‌ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीडा करनेका सङ्कल्प किया। अमना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन स्वीकार किया ॥ १ ॥ भगवान्‌के सङ्कल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुखमण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे लालिमाकी रोली-केशर मल दी, जैसे बहुत दिनोंके बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो! इस प्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका सन्ताप—जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्यरश्मियोंके कारण बढ़ गया था—दूर कर दिया ॥२॥ उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अखण्ड था। पूर्णिमाकी रात्रि थी। वे नूतन केशरके समान लाल-लाल हो रहे थे, कुछ सङ्कोचमिश्रित अभिलाषासे युक्त जान पड़ते थे। उनका मुखमण्डल लक्ष्मीजीके समान मालूम हो रहा था। उनकी कोमल किरणोंसे सारा वन अनुरागके रंगमें रँग गया था। वनके कोने-कोनेमें उन्होंने अपनी चाँदनीके द्वारा अमृतका समुद्र उड़ेल दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूरी सामग्री उन्हें और उस वनको देखकर अपनी बाँसुरीपर व्रजसुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाली कामबीज 'क्लीं' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी ॥३॥ भगवान्‌का वह वंशीवादन भगवान्‌के प्रेमको, उनके मिलनकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला—बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहलेसे ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रक्खा था। अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, सङ्कोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी—छीन लीं। वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी। जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियाँ भी एक-दूसरेको सूचना न देकर—यहाँतक कि एक दूसरेसे अपनी चेष्टाको छिपाकर जहाँ वे थे, वहाँके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! वे इतने वेगसे चली थीं कि उनके कानोंके कुण्डल झोंके खा रहे थे ॥ ४ ॥

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औंटा रही थीं, वे उफनता हुआ दूध छोड़कर, और जो लपसी पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं ॥ ५ ॥ जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारेके पास चल पड़ीं ॥ ६ ॥ कोई-कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गराग चन्दन और उबटन लगा रही थीं और कुछ आँखोंमें अंजन लगा रही थीं। वे उन्हें छोड़कर तथा उलटे-पलटे वस्त्र धारणकर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं ॥ ७ ॥ पिता और पतियोंने, भाई और जाति-बन्धुओंने उन्हें रोका, उनकी मङ्गलमयी प्रेमयात्रामें विघ्न डाला। परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि रोकनेपर भी न रुकीं, न रुक सकीं। रुकतीं कैसे? विश्वविमोहन श्रीकृष्णने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछका अपहरण जो कर लिया था ॥ ८ ॥ परीक्षित्! उस समय कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित्! अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके असह्य विरहकी तीव्र वेदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा—इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिङ्गन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये ॥ १० ॥ परीक्षित्! यद्यपि उनका उस समय

श्रीकृष्णके प्रति जारभाव भी था; तथापि कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है ? उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वयं परमात्मा ही तो थे। इसलिये उन्होंने पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। (भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया।) इस शरीरसे भोगे जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न-भिन्न हो चुके थे ॥ ११ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ? ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल भगवान्‌के प्रति द्वेष-भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थितिमें जो समस्त प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी हैं और उनसे अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ—इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! वास्तवमें भगवान् प्रकृतिसम्बन्धी वृद्धि-विनाश, प्रमाण-प्रमेय और गुणगुणीभावसे रहित हैं। वे अचिन्त्य-अनन्त अप्राकृत परम कल्याणस्वरूप गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने यह जो अपनेको तथा अपनी लीलाको प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे ॥ १४ ॥ इसलिये भगवान्‌से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो—कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो; स्नेह, नातेदारी या सौहार्दका हो। चाहे जिस भावसे भगवान्‌में नित्य-निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायँ, वे भगवान्‌से ही जुड़ती हैं। इसलिये वृत्तियाँ भगवन्मय हो जाती हैं, और उस जीवको भगवान्‌की ही प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! तुम्हारे-जैसे परम भागवत, भगवान्‌का रहस्य जाननेवाले भक्तको श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। योगेश्वरोंके भी ईश्वर अजन्मा भगवान्‌के लिये भी यह कोई आश्चर्यकी बात है ? अरे ! उनके सङ्कल्पमात्रसे—भौंहोंके इशारेसे सारे जगत्‌का परम कल्याण हो सकता है ॥ १६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ मेरे बिल्कुल पास आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी विनोदभरी वाक्चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा। क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमानकालके जितने वक्ता हैं, उनमें वे ही तो सर्वश्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाभाग्यवती गोपियो ! तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन-सा काम करूँ ? व्रजमें तो सब कुशल-मङ्गल है न ? कहो, इस समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी ? ॥ १८ ॥ सुन्दरी गोपियो ! रातका समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयावने जीव-जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत व्रजमें लौट जाओ। रातके समय घोर जंगलमें स्त्रियोंको नहीं रुकना चाहिये ॥ १९ ॥ तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र और भाई-बन्धु ढूँढ़ रहे होंगे। उन्हें भयमें न डालो ॥ २० ॥ तुमलोगोंने रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे हुए इस वनकी शोभाको देखा। पूर्ण चन्द्रमाकी कोमल रश्मियोंसे यह रँगा हुआ है, मानो उन्होंने अपने हाथों चित्रकारी की हो; और यमुनाजीके जलका स्पर्श करके बहनेवाले शीतल समीरकी मन्द-मन्द गतिसे हिलते हुए ये वृक्षोंके पत्ते तो इस वनकी शोभाको और भी बढ़ा रहे हैं। परन्तु अब तो तुमलोगोंने यह सब कुछ देख लिया ॥ २१ ॥ अब देर मत करो, शीघ्र-से-शीघ्र व्रजमें लौट जाओ। तुमलोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो; जाओ, अपने पतियोंकी और सतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करो। देखो, तुम्हारे घरके नन्हे-नन्हे बच्चे और गौओंके बछड़े रो-रँभा रहे हैं; उन्हें दूध पिलाओ, गौएँ दुहो ॥ २२ ॥ अथवा यदि मेरे

प्रेमसे परवश होकर तुमलोग यहाँ आयी हो तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, यह तो तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि जगत्के पशु-पक्षीतक मुझसे प्रेम करते हैं, मुझे देखकर प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ कल्याणी गोपियो! स्त्रियोंका परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी निष्कपटभावसे सेवा करें और सन्तानका पालन-पोषण करें ॥ २४ ॥ जिन स्त्रियोंको उत्तम लोक प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, वे पातकीको छोड़कर और किसी भी प्रकारके पतिका परित्याग न करें। भले ही वह बुरे स्वभाववाला, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो ॥ २५ ॥ कुलीन स्त्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब तरहसे निन्दनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोकमें अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही; इसमें प्रत्यक्ष—वर्तमानमें भी कष्ट-ही-कष्ट है। मोक्ष आदिकी तो बात ही कौन करे, यह साक्षात् परम भय—नरक आदिका हेतु है ॥ २६ ॥ गोपियो! मेरी लीला और गुणोंके श्रवणसे, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास, खिन्न हो गयीं। उनकी आशा टूट गयी। वे चिन्ताके अथाह एवं अपार समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ २८ ॥ उनके बिम्बाफल (पके हुए कुँदरू) के समान लाल-लाल अधर शोकके कारण चलनेवाली लंबी और गरम साँससे सूख गये। उन्होंने अपने मुँह नीचेकी ओर लटका लिये, वे पैरके नखोंसे धरती कुरेदने लगीं। नेत्रोंसे दुःखके आँसू बह-बहकर काजलके साथ वक्षःस्थलपर पहुँचने और वहाँ लगी हुई केशरको धोने लगे। उनका हृदय दुःखसे इतना भर गया कि वे कुछ बोल न सकीं, चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ २९ ॥ गोपियोंने अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे भोग छोड़ दिये थे। श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग, परम प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी यह निष्ठुरतासे भरी बात सुनी, जो बड़ी ही अप्रिय-सी मालूम हो रही थी, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। आँखें रोते-रोते लाल हो गयीं, आँसुओंके मारे रुँध गयीं। उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और फिर प्रणयकोपके कारण वे गद्गद वाणीसे कहने लगीं ॥ ३० ॥

गोपियोंने कहा—प्यारे श्रीकृष्ण! तुम घट-घट व्यापी हो। हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरता भरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे आदि पुरुष भगवान् नारायण कृपा करके अपने मुमुक्षु भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो ॥३१॥ प्यारे श्यामसुन्दर! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है'—अक्षरशः ठीक है। परन्तु इस उपदेशके अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिये; क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशोंके पद (चरम लक्ष्य) हो; साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ॥३२॥ आत्मज्ञानमें निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं; क्योंकि तुम नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुःखद पति-पुत्रादिसे क्या प्रयोजन है? परमेश्वर! इसलिये हमपर प्रसन्न होओ। कृपा करो। कमलनयन! चिरकालसे तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा-अभिलाषाकी लहलहाती लताका छेदन मत करो ॥ ३३ ॥ मनमोहन! अबतक हमारा चित्त घरके काम-धंधोंमें लगता था। इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे। परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित्त लूट लिया। इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न! परन्तु अब तो हमारी गति-मति निराली ही हो गयी है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं हैं, नहीं

हट रहे हैं। फिर हम व्रजमें कैसे जायँ? और यदि वहाँ जायँ भी तो करें क्या? ॥ ३४ ॥ प्राणवल्लभ! हमारे प्यारे सखा! तुम्हारी मन्द-मन्द मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है। उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो। नहीं तो प्रियतम! हम सच कहती हैं, तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी ॥ ३५ ॥

प्यारे कमलनयन! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं। इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो। यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको भी कभी-कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ। जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं—पति-पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही ॥ ३६ ॥ हमारे स्वामी! जिन लक्ष्मीजीका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं। अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है। उन्हींके समान हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरणमें आयी हैं ॥ ३७ ॥ भगवन्! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये। अब तुम हमपर कृपा करो। हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ। हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब—सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं। प्रियतम! वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है। पुरुषभूषण! पुरुषोत्तम! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी—मिलनकी आकांक्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम-रोम उससे जल रहा है। तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो। हमें अपनी सेवाका अवसर दो ॥ ३८ ॥ प्रियतम! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलकें झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी लजानेवाली है; तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द-मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका—सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी हैं ॥ ३९ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर! तीनों लोकोंमें भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुर पद और आरोह-अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको—जो अपने एक बूँद सौन्दर्यसे त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाञ्चित, पुलकित हो जाते हैं—अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य-मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कान और लोकलज्जाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय ॥ ४० ॥ हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो। और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन-दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है। प्रियतम! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं। तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है। तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपनालो; हमें जीवनदान दो ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी **कहते हैं**—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। जब उन्होंने गोपियोंकी व्यथा और व्याकुलतासे भरी वाणी सुनी, तब उनका हृदय दयासे भर गया और यद्यपि वे आत्माराम हैं—अपने-आपमें

ही रमण करते रहते हैं, उन्हें अपने अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर उनके साथ क्रीडा प्रारम्भ की ॥ ४२॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गी और चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं; फिर भी वे अपने स्वरूपमें ज्यों-के-त्यों एकरस स्थित थे, अच्युत थे। जब वे खुलकर हँसते, तब उनके उज्ज्वल-उज्ज्वल दाँत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे। उनकी प्रेमभरी चितवनसे और उनके दर्शनके आनन्दसे गोपियोंका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा हुई, मानो अपनी पत्नी तारिकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमा ही हों ॥ ४३ ॥ गोपियोंके शत-शत यूथोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला पहने वृन्दावन-को शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे। कभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंका गान करतीं, तो कभी श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगते ॥ ४४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाजीके पावन पुलिनपर, जो कपूरके समान चमकीली बालूसे जगमगा रहा था, पदार्पण किया। वह यमुनाजीकी तरल तरङ्गों-के स्पर्शसे शीतल और कुमुदिनीकी सहज सुगन्धसे सुवासित वायुके द्वारा सेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान्ने गोपियोंके साथ क्रीडा की ॥ ४५ ॥ हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियोंके हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदिका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना और मुसकाना—इन क्रियाओंके द्वारा गोपियोंके दिव्य कामरसको, परमोज्ज्वल प्रेमभावको उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें क्रीडाद्वारा आनन्दित करने लगे ॥ ४६॥ उदारशिरोमणि सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त स्त्रियोंमें हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे समान और कोई नहीं है। वे कुछ मानवती हो गयीं ॥ ४७ ॥ जब भगवान्ने देखा कि इन्हें तो अपने सुहागका कुछ गर्व हो आया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब वे उनका गर्व शान्त करनेके लिये तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिये वहीं—उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये ॥ ४८ ॥

तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रजयुवतियों-की वैसी ही दशा हो गयी, जैसे यूथपति गजराजके बिना हथिनियोंकी होती है। उनका हृदय विरहकी ज्वालासे जलने लगा ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी मदोन्मत्त गजराजकी-सी चाल, प्रेमभरी मुसकान, विलासभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलाओं तथा शृङ्गार-रसकी भाव-भङ्गियोंने उनके चित्तको चुरा लिया था! वे प्रेमकी मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी विभिन्न चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी चाल-ढाल, हास-विलास और चितवन-बोलन आदिमें श्रीकृष्णकी प्यारी गोपियाँ उनके समान ही बन गयीं; उनके शरीरमें भी वही गति-मति, वही भाव-भङ्गी उतर आयी। वे अपनेको सर्वथा भूलकर श्रीकृष्णस्वरूप हो गयीं और उन्हींके लीला-विलासका अनुकरण करती हुई 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ'—इस प्रकार कहने लगीं। ॥ ३ ॥ वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वरसे उन्हींके गुणोंका गान करने लगीं और मतवाली होकर एक वनसे दूसरे वनमें, एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें जा-जाकर श्रीकृष्णको ढूँढ़ने लगीं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण कहीं दूर थोड़े ही गये थे। वे तो समस्त जड-चेतन पदार्थोंमें तथा उनके बाहर भी आकाशके समान एकरस स्थित ही हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे; परन्तु उन्हें न

देखकर गोपियाँ वनस्पतियोंसे—पेड़-पौधोंसे उनका पता पूछने लगीं ॥ ४ ॥

(गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे जाकर पूछा) 'हे पीपल, पाकर और बरगद ! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान और चितवनसे हमारा मन चुराकर चले गये हैं । क्या तुम लोगोंने उन्हें देखा है ? ॥ ५ ॥ कुरबक, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग और चम्पा ! बलरामजीके छोटे भाई, जिनकी मुसकानमात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनियोंका मानमर्दन हो जाता है, इधर आये थे क्या ?' ॥ ६ ॥ (अब उन्होंने स्त्रीजातिके पौधोंसे कहा—) 'बहिन तुलसी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो । भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी तुमसे बहुत प्यार करते हैं । तभी तो भौंरोंके मँडराते रहनेपर भी वे तुम्हारी माला नहीं उतारते, सर्वदा पहने रहते हैं । क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्यामसुन्दरको देखा है ? ॥ ७ ॥ प्यारी मालती ! मल्लिके ! जाती और जूही ! तुमलोगोंने कदाचित् हमारे प्यारे माधवको देखा होगा । क्या वे अपने कोमल करोंसे स्पर्श करके तुम्हें आनन्दित करते हुए इधरसे गये हैं ? ॥ ८ ॥ 'रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब और नीम तथा अन्यान्य यमुनाके तटपर विराजमान सुखी तरुवरो ! तुम्हारा जन्म-जीवन केवल परोपकारके लिये है । श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है । हम बेहोश हो रही हैं । तुम हमें उन्हें पानेका मार्ग बता दो' ॥ ९ ॥ 'भगवान्‌की प्रेयसी पृथ्वीदेवी ! तुमने ऐसी कौन-सी तपस्या की है कि श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके तुम आनन्दसे भर रही हो और तृण-लता आदिके रूपमें अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही हो ? तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है अथवा वामनावतारमें विश्वरूप धारण करके उन्होंने तुम्हें जो नापा था, उसके कारण है ? कहीं उनसे भी पहले वराहभगवान्‌के अङ्ग-सङ्गके कारण तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही है ?' ॥ १० ॥ 'अरी सखी ! हरिनियो ! हमारे श्यामसुन्दरके अङ्ग-सङ्गसे सुषमा-सौन्दर्यकी धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनोंको परमानन्दका दान करते हुए इधरसे ही तो नहीं गये हैं ? देखो, देखो; यहाँ कुलपति श्रीकृष्णकी कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसीके अङ्ग-सङ्गसे लगे हुए कुच-कुङ्कुमसे अनुरञ्जित रहती है' ॥ ११ ॥ 'तरुवरो ! उनकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भौंरे प्रत्येक क्षण उसपर मँडराते रहते हैं । उनके एक हाथमें लीलाकमल होगा और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसीके कंधेपर रक्खे होंगे । हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए अवश्य गये होंगे । जान पड़ता है, तुमलोग उन्हें प्रणाम करनेके लिये ही झुके हो । परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवनसे भी तुम्हारी वन्दनाका अभिनन्दन किया है या नहीं ?' ॥ १२ ॥ 'अरी सखी ! इन लताओंसे पूछो । ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, इससे क्या हुआ ? इनके शरीरमें जो पुलक है, रोमाञ्च है, वह तो भगवान्‌के नखोंके स्पर्शसे ही है । अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है !' ॥ १३ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कातर हो रही थीं। अब और भी गाढ़ आवेश हो जानेके कारण वे भगवन्मय होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी । कोई छकड़ा बन गयी, तो किसीने बालकृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैरकी ठोकर मारकर उलट दिया ॥१५॥ कोई सखी बालकृष्ण बनकर बैठ गयी तो कोई तृणावर्त दैत्यका रूप धारण करके उसे हर ले गयी । कोई गोपी पाँव घसीट-घसीटकर घुटनोंके बल बकैयाँ चलने लगी और उस समय उसके पायजेब रुनझुन-रुनझुन बोलने लगे । १६ । एक बनी कृष्ण, तो दूसरी बनी बलराम, और बहुत-सी गोपियाँ ग्वालबालोंके रूपमें हो गयीं । एक गोपी बन गयी वत्सासुर, तो दूसरी बनी बकासुर । तब तो गोपियोंने अलग-अलग श्रीकृष्ण बनकर वत्सासुर और बकासुर बनी हुई गोपियोंको मारनेकी लीला की ॥१७॥ जैसे श्रीकृष्ण वनमें करते थे, वैसे ही एक गोपी बाँसुरी बजा-बजाकर दूर गये हुए पशुओंको

बुलानेका खेल खेलने लगी । तब दूसरी गोपियाँ 'वाह-वाह' करके उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ १८ ॥ एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर दूसरी सखीके गलेमें बाँह डालकर चलती और गोपियोंसे कहने लगती—'मित्रो ! मैं श्रीकृष्ण हूँ । तुमलोग मेरी यह मनोहर चाल देखो' ॥ १९ ॥ कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहती—'अरे व्रजवासियो ! तुम आँधी-पानीसे मत डरो । मैंने उससे बचनेका उपाय निकाल लिया है ।' ऐसा कहकर गोवर्धन-धारणका अनुकरण करती हुई वह अपनी ओढ़नी उठाकर ऊपर तान लेती ॥ २० ॥ परीक्षित् ! एक गोपी बनी कालिय नाग, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसके सिरपर पैर रखकर चढ़ी-चढ़ी बोलने लगी—'रे दुष्ट साँप ! तू यहाँसे चला जा । मैं दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ' ॥ २१ ॥ इतनेमें ही एक गोपी बोली—'अरे ग्वालो ! देखो, वनमें बड़ी भयङ्कर आग लगी है । तुमलोग जल्दी-से-जल्दी अपनी आँखें मूँद लो, मैं अनायास ही तुमलोगोंकी रक्षा कर दूँगा' ॥ २२ ॥ एक गोपी यशोदा बनी और दूसरी बनी श्रीकृष्ण । यशोदाने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्णको ऊखलमें बाँध दिया । अब वह श्रीकृष्ण बनी हुई सुन्दरी गोपी हाथोंसे मुँह ढाँपकर भयकी नकल करने लगी ॥ २३ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावनके वृक्ष और लता आदिसे फिर भी श्रीकृष्णका पता पूछने लगीं । इसी समय उन्होंने एक स्थानपर भगवान्‌के चरणचिह्न देखे ॥ २४ ॥ वे आपसमें कहने लगीं—'अवश्य ही ये चरणचिह्न उदारशिरोमणि नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके हैं; क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश और जौ आदिके चिह्न स्पष्ट ही दीख रहे हैं' ॥२५॥ उन चरणचिह्नोंके द्वारा व्रजवल्लभ भगवान्‌को ढूँढ़ती हुई गोपियाँ आगे बढ़ीं, तब उन्हें श्रीकृष्णके साथ किसी व्रजयुवतीके भी चरणचिह्न दीख पड़े । उन्हें देखकर वे व्याकुल हो गयीं । और आपसमें कहने लगीं—॥ २६ ॥ 'जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके साथ उनके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाली किस बड़भागिनीके ये चरणचिह्न हैं ? ॥ २७ ॥ अवश्य ही सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी यह 'आराधिका' होगी । इसीलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्यामसुन्दरने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं ॥ २८ ॥ प्यारी सखियो ! भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमलसे जिस रजका स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य हो जाती है, उसके अहोभाग्य हैं ! क्योंकि ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मी आदि भी अपने अशुभ नष्ट करनेके लिये उस रजको अपने सिरपर धारण करते हैं' ॥ २९ ॥ 'अरी सखी ! चाहे कुछ भी हो—यह जो सखी हमारे सर्वस्व श्रीकृष्णको एकान्तमें ले जाकर अकेले ही उनकी अधर-सुधाका रस पी रही है, इस गोपीके उभरे हुए चरणचिह्न तो हमारे हृदयमें बड़ा ही क्षोभ उत्पन्न कर रहे हैं' ॥३०॥ यहाँ उस गोपीके पैर नहीं दिखलायी देते । मालूम होता है, यहाँ प्यारे श्यामसुन्दरने देखा होगा कि मेरी प्रेयसीके सुकुमार चरणकमलोंमें घासकी नोक गड़ती होगी; इसलिये उन्होंने उसे अपने कंधेपर चढ़ा लिया होगा ॥ ३१ ॥ सखियो ! यहाँ देखो, प्यारे श्रीकृष्णके चरणचिह्न अधिक गहरे—बालूमें धँसे हुए हैं । इससे सूचित होता है कि यहाँ वे किसी भारी वस्तुको उठाकर चले हैं, उसीके बोझसे उनके पैर जमीनमें धँस गये हैं । हो-न-हो यहाँ उस कामीने अपनी प्रियतमाको अवश्य कंधेपर चढ़ाया होगा ॥ ३२ ॥ देखो-देखो, यहाँ परमप्रेमी व्रजवल्लभने फूल चुननेके लिये अपनी प्रेयसीको नीचे उतार दिया है और यहाँ परम प्रियतम श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसीके लिये फूल चुने हैं । उचक-उचककर फूल तोड़नेके कारण यहाँ उनके पंजे तो धरतीमें गड़े हुए हैं और एड़ीका पता ही नहीं है ॥ ३३ ॥ परम प्रेमी श्रीकृष्णने कामी पुरुषके समान यहाँ अपनी प्रेयसीके केश सँवारे हैं । देखो, अपने चुने हुए फूलोंको प्रेयसीकी चोटीमें गूँथनेके लिये वे यहाँ अवश्य ही बैठे रहे होंगे' ॥ ३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं । वे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं । जब वे अखण्ड हैं, उनमें दूसरा कोई है ही नहीं, तब उनमें कामकी कल्पना कैसे हो सकती है ? फिर भी उन्होंने कामियोंकी दीनता—स्त्रीपरवशता और स्त्रियोंकी कुटिलता दिखलाते हुए वहाँ उस गोपीके साथ एकान्तमें क्रीडा की थी—एक खेल रचा था ॥ ३५ ॥

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली-सी होकर—अपनी सुध-बुध खोकर एक दूसरेको भगवान् श्रीकृष्णके चरणचिह्न
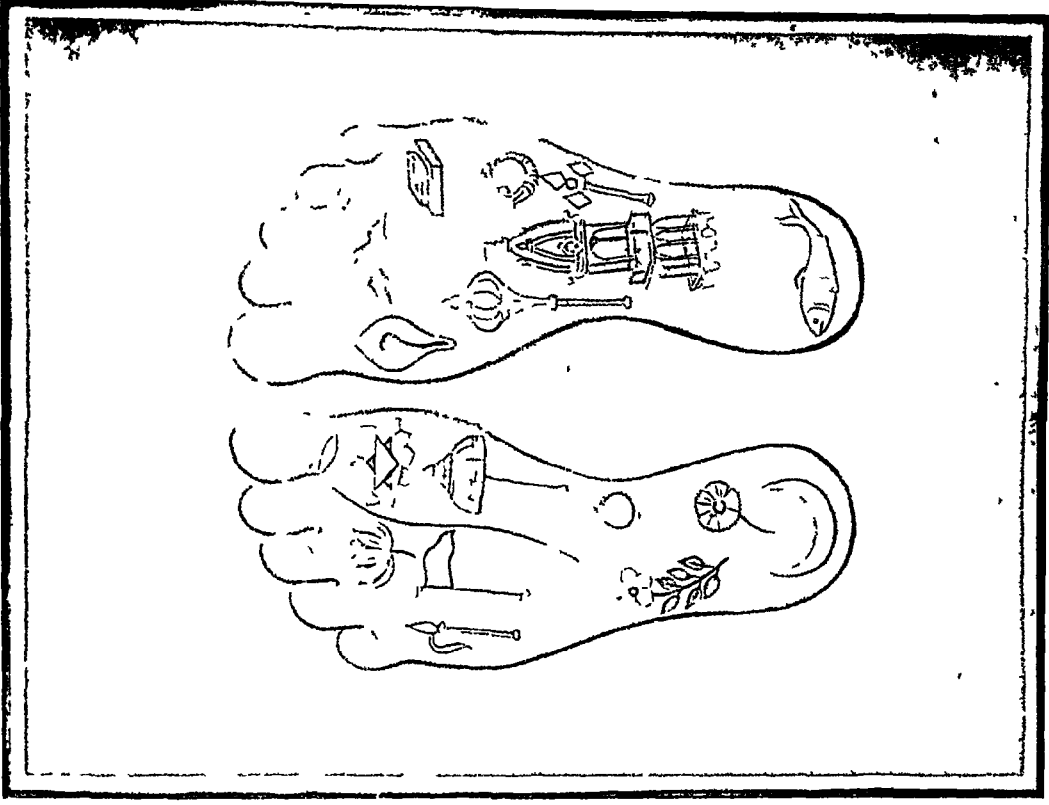
श्रीकृष्ण-चरण

श्रीराधा-चरण

[पृष्ठ ६५८
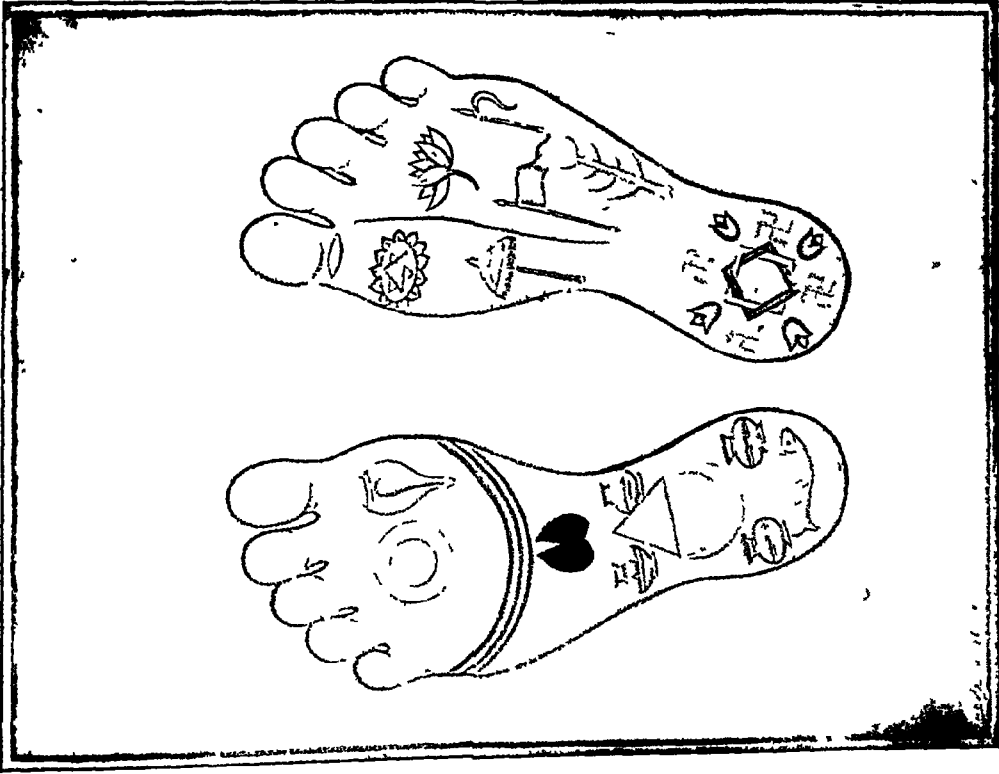
दिखलाती हुई वन-वनमें भटक रही थीं। इधर भगवान् श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपीको एकान्तमें ले गये थे, उसने समझा कि 'मैं ही समस्त गोपियोंमें श्रेष्ठ हूँ। इसीलिये तो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको छोड़कर, जो उन्हें इतना चाहती हैं, केवल मेरा ही मान करते हैं। मुझे ही आदर दे रहे हैं ॥३६-३७॥ भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा और शङ्करके भी शासक हैं। वह गोपी वनमें जाकर अपने प्रेम और सौभाग्यके मदसे मतवाली हो गयी और उन्हीं श्रीकृष्णसे कहने लगी—'प्यारे! मुझसे अब तो और नहीं चला जाता। मेरे सुकुमार पाँव थक गये हैं। अब तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर ले चलो' ॥ ३८ ॥ अपनी प्रियतमाकी यह बात सुनकर श्यामसुन्दरने कहा—'अच्छा प्यारी! तुम अब मेरे कंधेपर चढ़ लो।' यह सुनकर वह गोपी ज्यों ही उनके कंधेपर चढ़ने चली, त्यों ही श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और वह सौभाग्यवती गोपी रोने-पछताने लगी ॥ ३९ ॥ 'हा नाथ! हा रमण! हा प्रेष्ठ! हा महाभुज! तुम कहाँ हो! कहाँ हो!! मेरे सखा! मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सान्निध्यका अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो' ॥ ४० ॥ परीक्षित्! गोपियाँ भगवान्‌के चरणचिह्नोंके सहारे उनके जानेका मार्ग ढूँढ़ती-ढूँढ़ती वहाँ जा पहुँचीं। थोड़ी दूरसे ही उन्होंने देखा कि उनकी सखी अपने प्रियतमके वियोगसे दुखी होकर अचेत हो गयी है ॥ ४१ ॥ जब उन्होंने उसे जगाया, तब उसने भगवान् श्रीकृष्णसे उसे जो प्यार और सम्मान प्राप्त हुआ था, वह उनको सुनाया। उसने यह भी कहा कि 'मैंने कुटिलतावश उनका अपमान किया, इसीसे वे अन्तर्धान हो गये।' उसकी बात सुनकर गोपियोंके आश्चर्यकी सीमा न रही ॥४२॥

इसके बाद वनमें जहाँतक चन्द्रदेवकी चाँदनी छिटक रही थी, वहाँतक वे उन्हें ढूँढ़ती हुई गयीं। परन्तु जब उन्होंने देखा कि आगे घना अन्धकार है—घोर जंगल है—हम ढूँढ़ती जायँगी तो श्रीकृष्ण और भी उसके अंदर घुस जायँगे, तब वे उधरसे लौट आयीं ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! गोपियोंका मन श्रीकृष्णमय हो गया था। उनकी वाणीसे कृष्णचर्चाके अतिरिक्त और कोई बात नहीं निकलती थी। उनके शरीरसे केवल श्रीकृष्णके लिये और केवल श्रीकृष्णकी चेष्टाएँ हो रही थीं। कहाँतक कहूँ; उनका रोम-रोम, उनकी आत्मा श्रीकृष्णमय हो रही थी। वे केवल उनके गुणों और लीलाओंका ही गान कर रही थीं और उनमें इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध नहीं थी, फिर घरकी याद कौन करता? ॥ ४४ ॥ गोपियोंका रोम-रोम इस बातकी प्रतीक्षा और आकाङ्क्षा कर रहा था कि जल्दी-से-जल्दी श्रीकृष्ण आयें। श्रीकृष्णकी ही भावनामें डूबी हुई गोपियाँ यमुनाजीके पावन पुलिनपर—रमणरेतीमें लौट आयीं और एक साथ मिलकर श्रीकृष्णके गुणोंका गान करने लगीं ॥ ४५ ॥

इकतीसवाँ अध्याय

गोपिकागीत

गोपियाँ विरहावेशमें गाने लगीं—प्यारे! तुम्हारे जन्मके कारण वैकुण्ठ आदि लोकोंसे भी व्रजकी महिमा बढ़ गयी है। तभी तो सौन्दर्य और मृदुलताकी देवी लक्ष्मीजी अपना निवासस्थान वैकुण्ठ छोड़कर यहाँ नित्य-निरन्तर निवास करने लगी हैं, इसकी सेवा करने लगी हैं। परन्तु प्रियतम! देखो तुम्हारी गोपियाँ जिन्होंने तुम्हारे चरणोंमें ही अपने प्राण समर्पित कर रखे हैं, वन-वनमें भटककर तुम्हें ढूँढ़ रही हैं ॥ १ ॥ हमारे प्रेमपूर्ण हृदयके स्वामी! हम तुम्हारी बिना मोलकी दासी हैं। तुम शरत्कालीन जलाशयमें सुन्दर-से-सुन्दर सरसिजकी कर्णिकाके सौन्दर्यको चुरानेवाले नेत्रोंसे हमें घायल कर चुके हो। हमारे मनोरथ पूर्ण करनेवाले प्राणेश्वर! क्या नेत्रोंसे मारना वध नहीं है? अस्त्रोंसे हत्या करना ही वध है? ॥ २ ॥ पुरुषशिरोमणे! यमुनाजीके विषैले जलसे होनेवाली मृत्यु अजगरके रूपमें खानेवाले अघासुर इन्द्रकी वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमासुर आदिसे एवं भिन्न-भिन्न अवसरोंपर सब प्रकारके भयोंसे तुमने बार-बार हमलोगोंकी रक्षा की है ॥ ३ ॥

तुम केवल यशोदानन्दन ही नहीं हो; समस्त शरीरधारियोंके हृदयमें रहनेवाले उनके साक्षी हो, अन्तर्यामी हो। सखे! ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे विश्वकी रक्षा करनेके लिये तुम यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हो॥ ४॥

अपने प्रेमियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालोंमें अग्रगण्य यदुवंशशिरोमणे! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे डरकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछायामें लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम! सबकी लालसा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो॥ ५॥ व्रजवासियोंके दुःख दूर करनेवाले वीरशिरोमणि श्यामसुन्दर! तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनोंके सारे मान-मदको चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है। हमारे प्यारे सखा! हमसे रूठो मत, प्रेम करो। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निछावर हैं। हम अबलाओंको अपना वह परम सुन्दर साँवला-साँवला मुखकमल दिखलाओ॥६॥ तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं। वे समस्त सौन्दर्य, माधुर्यकी खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं। तुम उन्हीं चरणोंसे हमारे बछड़ोंके पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँपके फणोंतकपर रखनेमें भी तुमने सङ्कोच नहीं किया। हमारा हृदय तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारी मिलनकी आकाङ्क्षा हमें सता रही है। तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारे हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो॥ ७॥ कमलनयन! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। तुम्हारी उसी वाणीका रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं। दानवीर! अब तुम अपना दिव्य अमृतसे भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो, छका दो॥ ८॥ प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं॥ ९॥ प्यारे! एक दिन वह था, जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरहकी क्रीडाओंका ध्यान करके हम आनन्दमें मग्न हो जाया करती थीं। उनका ध्यान भी परम मङ्गलदायक है, उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्तमें हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेमकी बातें कहीं। हमारे कपटी मित्र! अब वे सब बातें याद आकर हमारे मनको क्षुब्ध किये देती हैं॥ १०॥

हमारे प्यारे स्वामी! तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओंको चरानेके लिये व्रजसे निकलते हो तब यह सोचकर कि तुम्हारे वे युगल चरण कंकड़, तिनके और कुश-काँटे गड़ जानेसे कष्ट पाते होंगे, हमारा मन बेचैन हो जाता है। हमें बड़ा दुःख होता है॥ ११॥ दिन ढलनेपर जब तुम वनसे घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमलपर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओंके खुरसे उड़-उड़कर घनी धूल पड़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम! तुम अपना वह सौन्दर्य हमें दिखा-दिखाकर हमारे हृदयमें मिलनकी आकाङ्क्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो॥ १२॥ प्रियतम! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखोंको मिटानेवाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तोंकी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। आपत्तिके समय एकमात्र उन्हींका चिन्तन करना उचित है, जिससे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। कुञ्जविहारी! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी व्यथा शान्त कर दो॥ १३॥ वीरशिरोमणे! तुम्हारा अधरामृत मिलनके सुखको, आकाङ्क्षाको बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-सन्तापको नष्ट कर देता है। यह गानेवाली

बाँसुरी भलीभाँति उसे चूमती रहती है। जिन्होंने एक बार उसे पी लिया, उन लोगोंको फिर दूसरों और दूसरोंकी आसक्तियोंका स्मरण भी नहीं होता। हमारे वीर ! अपना वही अधरामृत हमें वितरण करो, पिलाओ ॥ १४ ॥ प्यारे ! दिनके समय जब तुम वनमें विहार करनेके लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे बिना हमारे लिये एक-एक क्षण युगके समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्याके समय लौटते हो तथा घुँघराली अलकोंसे युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकोंका गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन नेत्रोंकी पलकोंको बनानेवाला विधाता मूर्ख है ॥ १५ ॥ प्यारे श्यामसुन्दर ! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल-परिवारका त्याग कर, उनकी इच्छा और आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, सङ्केत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गानकी गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं। कपटी ! इस प्रकार रात्रिके समय आयी हुई युवतियोंको तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है ॥१६॥ प्यारे ! एकान्तमें तुम मिलनकी आकाङ्क्षा, प्रेम-भावको जगानेवाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमें छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्षःस्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अबतक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है ॥ १७ ॥ प्यारे ! तुम्हारी यह अभिव्यक्ति व्रज-वनवासियोंके सम्पूर्ण दुःख-तापको नष्ट करनेवाली और विश्वका पूर्ण मङ्गल करनेके लिये है। हमारा हृदय तुम्हारे प्रति लालसासे भर रहा है। कुछ थोड़ी-सी ऐसी ओषधि दो, जो तुम्हारे निजजनोंके हृदयरोगको सर्वथा निर्मूल कर दे ॥ १८ ॥ तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी डरते-डरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं चरणोंसे तुम रात्रिके समय घोर जंगलमें छिपे-छिपे भटक रहे हो ! क्या कंकड़, पत्थर आदिकी चोट लगनेसे उनमें पीड़ा नहीं होती? हमें तो इसकी सम्भावनामात्रसे ही चक्कर आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण ! श्यामसुन्दर ! प्राणनाथ ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं ॥ १९ ॥
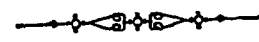
बत्तीसवाँ अध्याय

भगवान्‌का प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌की प्यारी गोपियाँ विरहके आवेशमें इस प्रकार भाँति-भाँतिसे गाने और प्रलाप करने लगीं। अपने कृष्ण-प्यारेके दर्शनकी लालसासे वे अपनेको रोक न सकीं, करुणाजनक सुमधुर स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ १ ॥ ठीक उसी समय उनके बीचोबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था। गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था ॥ २ ॥ कोटि-कोटि कामोंसे भी सुन्दर परम मनोहर प्राणवल्लभ श्यामसुन्दरको आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेम और आनन्दसे खिल उठे। वे सब-की-सब एक ही साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुईं, मानो प्राणहीन शरीरमें दिव्य प्राणोंका सञ्चार हो गया हो, शरीरके एक-एक अङ्गमें नवीन चेतना—नूतन स्फूर्ति आ गयी हो ॥ ३ ॥ एक गोपीने बड़े प्रेम और आनन्दसे श्रीकृष्णके करकमलको अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और वह धीरे-धीरे उसे सहलाने लगी। दूसरी गोपीने उनके चन्दनचर्चित भुजदण्डको अपने कंधेपर रख लिया ॥ ४ ॥ तीसरी सुन्दरीने भगवान्‌का चबाया हुआ पान अपने हाथोंमें ले लिया। चौथी गोपी, जिसके हृदयमें

भगवान्‌के विरहसे बड़ी जलन हो रही थी, बैठ गयी और उनके चरणकमलको अपने वक्षःस्थलपर रख लिया ॥ ५ ॥ पाँचवीं गोपी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, भौंहें चढ़ाकर, दाँतोंसे होठ दबाकर अपने कटाक्ष-बाणोंसे बींधती हुई उनकी ओर ताकने लगी ॥ ६ ॥ छठी गोपी अपने निर्निमेष नयनोंसे उनके मुखकमलका मकरन्द-रस पान करने लगी। परन्तु जैसे संत पुरुष भगवान्‌के चरणोंके दर्शनसे कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही वह उनकी मुख-माधुरीका निरन्तर पान करते रहनेपर भी तृप्त नहीं होती थी ॥ ७ ॥ सातवीं गोपी नेत्रोंके मार्गसे भगवान्‌को अपने हृदयमें ले गयी और फिर उसने आँखें बंद कर लीं। अब मन-ही-मन भगवान्‌का आलिङ्गन करनेसे उसका शरीर पुलकित हो गया, रोम-रोम खिल उठा और वह सिद्ध योगियोंके समान परमानन्दमें मग्न हो गयी ॥ ८ ॥ परीक्षित्! जैसे मुमुक्षुजन परम ज्ञानी संत पुरुषको प्राप्त करके संसारकी पीड़ासे मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी गोपियोंको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे परम आनन्द और परम उल्लास प्राप्त हुआ। उनके विरहके कारण गोपियोंको जो दुःख हुआ था, उससे वे मुक्त हो गयीं और शान्तिके समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ ९ ॥ परीक्षित्! यों तो भगवान् श्रीकृष्ण अच्युत और एकरस हैं, उनका सौन्दर्य और माधुर्य निरतिशय है; फिर भी विरह-व्यथासे मुक्त हुई गोपियोंके बीचमें उनकी शोभा और भी बढ़ गयी। ठीक वैसे ही, जैसे परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे सेवित होनेपर और भी शोभायमान होता है ॥ १० ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने उन व्रजसुन्दरियोंको साथ लेकर यमुनाजीके पुलिनमें प्रवेश किया। उस समय खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुरभि लेकर बड़ी ही शीतल और सुगन्धित मन्द-मन्द वायु चल रही थी और उसकी महँकसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर मँडरा रहे थे ॥ ११ ॥ शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी अपनी निराली ही छटा दिखला रही थी। उसके कारण रात्रिके अन्धकारका तो कहीं पता ही न था, सर्वत्र आनन्द-मङ्गलका ही साम्राज्य छाया था। वह पुलिन क्या था, यमुनाजीने स्वयं अपनी लहरोंके हाथों भगवान्‌की लीलाके लिये सुकोमल वालुकाका रंगमञ्च बना रक्खा था ॥ १२ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें इतने आनन्द और इतने रसका उल्लास हुआ कि उनके हृदयकी सारी आधि-व्याधि मिट गयी। जैसे कर्मकाण्डकी श्रुतियाँ उसका वर्णन करते-करते अन्तमें ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करने लगती हैं और फिर वे समस्त मनोरथोंसे ऊपर उठ जाती हैं, कृतकृत्य हो जाती हैं—वैसे ही गोपियाँ भी पूर्णकाम हो गयीं। अब उन्होंने अपने वक्षःस्थलपर लगी हुई रोली-केसरसे चिह्नित ओढ़नीको अपने परम प्यारे सुहृद् श्रीकृष्णके विराजनेके लिये बिछा दिया ॥ १३ ॥ बड़े-बड़े योगेश्वर अपने योग-साधनसे पवित्र किये हुए हृदयमें जिनके लिये आसनकी कल्पना करते रहते हैं, किन्तु फिर भी अपने हृदय-सिंहासनपर बिठा नहीं पाते, वही सर्वशक्तिमान् भगवान् यमुनाजीकी रेतीमें गोपियोंकी ओढ़नीपर बैठ गये। सहस्र-सहस्र गोपियोंके बीचमें उनसे पूजित होकर भगवान् बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। परीक्षित्! तीनों लोकोंमें—तीनों कालोंमें जितना भी सौन्दर्य प्रकाशित होता है, वह सब तो भगवान्‌के बिन्दुमात्र सौन्दर्यका आभासभर है। वे उसके एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण अपने इस अलौकिक सौन्दर्यके द्वारा उनके प्रेम और आकाङ्क्षाको और भी उभाड़ रहे थे। गोपियोंने अपनी मन्द-मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन और तिरछी भौंहोंसे उनका सम्मान किया। किसीने उनके चरणकमलोंको अपनी गोदमें रख लिया, तो किसीने उनके करकमलोंको। वे उनके संस्पर्शका आनन्द लेती हुई कभी-कभी कह उठती थीं—कितना सुकुमार है, कितना मधुर है! इसके बाद श्रीकृष्णके छिप जानेसे मन-ही-मन तनिक रूठकर उनके मुँहसे ही उनका दोष स्वीकार करानेके लिये वे कहने लगीं—॥ १५ ॥

गोपियोंने कहा—नटनागर! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं। परन्तु

महारास—रसमय भगवान्‌की अन्तरङ्गलीला

[पृष्ठ ६६२

कोई-कोई दोनोंसे ही प्रेम नहीं करते। प्यारे ! इन तीनोंमें तुम्हें कौन-सा अच्छा लगता है ? ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— मेरी प्रिय सखियो ! जो प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्योग स्वार्थको लेकर है। लेन-देनमात्र है। न तो उनमें सौहार्द है और न तो धर्म। उनका प्रेम केवल स्वार्थके लिये ही है; इसके अतिरिक्त उनका और कोई प्रयोजन नहीं है ॥ १७ ॥ सुन्दरियो ! जो लोग प्रेम न करनेवालेसे भी प्रेम करते हैं—जैसे स्वभावसे ही करुणाशील सज्जन और माता-पिता—उनका हृदय सौहार्दसे, हितैषितासे भरा रहता है और सच पूछो, तो उनके व्यवहारमें निश्छल सत्य एवं पूर्ण धर्म भी है ॥ १८ ॥ कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, न प्रेम करनेवालोंका तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं। एक तो वे, जो अपने स्वरूपमें ही मस्त रहते हैं—जिनकी दृष्टिमें कभी द्वैत भासता ही नहीं। दूसरे वे, जिन्हें द्वैत तो भासता है, परन्तु जो कृतकृत्य हो चुके हैं; उनका किसीसे कोई प्रयोजन ही नहीं है। तीसरे वे हैं, जो जानते ही नहीं कि हमसे कौन प्रेम करता है; और चौथे वे हैं, जो जान-बूझकर अपना हित करनेवाले परोपकारी गुरुतुल्य लोगोंसे भी द्रोह करते हैं, उनको सताना चाहते हैं ॥१९॥ गोपियो ! मैं तो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेमका वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिये। मैं ऐसा केवल इसीलिये करता हूँ कि उनकी चित्तवृत्ति और भी मुझमें लगे, निरन्तर लगी ही रहे। जैसे निर्धन पुरुषको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसका हृदय खोये हुए धनकी चिन्तासे भर जाता है, वैसे ही मैं भी मिल-मिलकर छिप-छिप जाता हूँ ॥२०॥ गोपियो ! इसमें सन्देह नहीं कि तुमलोगोंने मेरे लिये लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी छोड़ दिया है। ऐसी स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति और कहीं न जाय, अपने सौन्दर्य और सुहागकी चिन्ता न करने लगे, मुझमें ही लगी रहे—इसीलिये परोक्षरूपसे तुम लोगोंसे प्रेम करता हुआ ही मैं छिप गया था। इसलिये तुमलोग मेरे प्रेममें दोष मत निकालो। तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ ॥२१॥ मेरी प्यारी गोपियो ! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थीकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीरसे—अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उऋण कर सकती हो। परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ ॥२२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

महारास

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! गोपियाँ भगवान्‌की इस प्रकार प्रेमभरी सुमधुर वाणी सुनकर जो कुछ विरहजन्य ताप शेष था, उससे भी मुक्त हो गयीं और सौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्राणप्यारेके अङ्ग-सङ्गसे सफल-मनोरथ हो गयीं ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी और सेविका गोपियाँ एक-दूसरेकी बाँह-में-बाँह डाले खड़ी थीं। उन स्त्रीरत्नोंके साथ यमुनाजीके पुलिनपर भगवान्‌ने अपनी रसमयी रासक्रीडा प्रारम्भ की ॥ २ ॥ सम्पूर्ण योगोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें प्रकट हो गये और उनके गलेमें अपना हाथ डाल दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही क्रम था। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्यारे तो हमारे ही पास हैं। इस प्रकार सहस्र-सहस्र गोपियोंसे शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ हुआ। उस समय आकाशमें शत-शत विमानोंकी भीड़ लग गयी। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। रासोत्सवके दर्शनकी लालसासे, उत्सुकतासे उनका मन उनके वशमें नहीं था ॥ ३-४ ॥ स्वर्गकी दिव्य दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। स्वर्गीय पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान्‌के निर्मल यशका गान करने लगे ॥ ५ ॥ रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने

प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ नृत्य करने लगीं। उनकी कलाइयोंके कंगन, पैरोंके पायजेब और करधनीके छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य गोपियाँ थीं, इसलिये यह मधुर ध्वनि भी बड़े ही जोरकी हो रही थी ॥ ६ ॥ यमुनाजीकी रमणरेतीपर व्रजसुन्दरियोंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी अनोखी शोभा हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण-मणियोंके बीचमें ज्योतिर्मयी नीलमणि चमक रही हो ॥ ७ ॥ नृत्यके समय गोपियाँ तरह-तरहसे ठुमुक-ठुमुककर अपने पाँव कभी आगे बढ़ातीं और कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गतिके अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखतीं, तो कभी बड़े वेगसे; कभी चाककी तरह घूम जातीं, कभी अपने हाथ उठा-उठाकर भाव बतातीं, तो कभी विभिन्न प्रकारसे उन्हें चमकातीं। कभी बड़े कलापूर्ण ढंगसे मुसकरातीं, तो कभी भौंहें मटकातीं। नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी, मानो टूट गयी हो। झुकने, बैठने, उठने और चलनेकी फुर्तीसे उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़े जा रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर कपोलोंपर आ जाते थे। नाचनेके परिश्रमसे उनके मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलकने लगी थीं। केशोंकी चोटियाँ कुछ ढीली पड़ गयी थीं। नीवीकी गाँठें खुली जा रही थीं। इस प्रकार नटवर नन्दलालकी परम प्रेयसी गोपियाँ उनके साथ गा-गाकर नाच रही थीं। परीक्षित्! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो साँवले-साँवले मेघ-मण्डल हैं और उनके बीच-बीचमें चमकती हुई गोरी गोपियाँ बिजली हैं। उनकी शोभा असीम थी ॥ ८ ॥ गोपियोंका जीवन भगवान्‌की रति है, प्रेम है। वे श्रीकृष्णसे सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वरसे मधुर गान कर रही थीं। श्रीकृष्णका संस्पर्श पा-पाकर और भी आनन्दमग्न हो रही थीं। उनके राग-रागिनियोंसे पूर्ण गानसे यह सारा जगत् अब भी गूँज रहा है ॥९॥ कोई गोपी भगवान्‌के साथ—उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रही थी। वह श्रीकृष्णके स्वरकी अपेक्षा और भी ऊँचे स्वरसे राग अलापने लगी। उसके विलक्षण और उत्तम स्वरको सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और वाह-वाह करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी रागको एक दूसरी सखीने ध्रुपदमें गाया। उसका भी भगवान्‌ने बहुत सम्मान किया ॥ १० ॥ एक गोपी नृत्य करते-करते थक गयी। उसकी कलाइयोंसे कंगन और चोटियोंसे बेलाके फूल खिसकने लगे। तब उसने अपने बगलमें ही खड़े मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरके कंधेको अपनी बाँहसे कसकर पकड़ लिया ॥११॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपना एक हाथ दूसरी गोपीके कंधेपर रख रक्खा था। वह स्वभावसे तो कमलके समान सुगन्धसे युक्त था ही, उसपर बड़ा सुगन्धित चन्दनका लेप भी था। उसकी सुगन्धसे वह गोपी पुलकित हो गयी, उसका रोम-रोम खिल उठा। उसने झटसे उसे चूम लिया ॥१२॥ एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचनेके कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटासे उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने अपने कपोलोंको भगवान् श्रीकृष्णके कपोलसे सटा दिया और भगवान्‌ने उसके मुँहमें अपना चबाया हुआ पान दे दिया ॥ १३ ॥ कोई गोपी नूपुर और करधनीके घुँघरुओंको झनकारती हुई नाच और गा रही थी। वह जब बहुत थक गयी, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े श्यामसुन्दरके शीतल करकमलको अपने दोनों स्तनोंपर रख लिया ॥ १४ ॥

परीक्षित्! गोपियोंका सौभाग्य लक्ष्मीजीसे भी बढ़कर है। लक्ष्मीजीके परम प्रियतम एकान्त-वल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको अपने परम प्रियतमके रूपमें पाकर गोपियाँ गान करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं। भगवान् श्रीकृष्णने उनके गलोंको अपने भुजपाशमें बाँध रक्खा था, उस समय गोपियोंकी बड़ी अपूर्व शोभा थी ॥ १५ ॥ उनके कानोंमें कमलके कुण्डल शोभायमान थे। घुँघराली अलकें कपोलोंपर लटक रही थीं। पसीनेकी बूँदें झलकनेसे उनके मुखकी छटा निराली ही हो गयी थी। वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं। उनके कंगन और पायजेबोंके बाजे बज रहे थे। भौंरे उनके ताल-सुरमें अपना सुर मिलाकर गा रहे थे। और उनके जूड़ों और चोटियोंमें गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे ॥१६॥ परीक्षित्! जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदयसे लगा लेते, कभी

हाथसे उनका अङ्गस्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते तो कभी लीलासे उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीडा की, विहार किया ॥ १७ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के अङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त करके गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्दसे विह्वल हो गयीं। उनके केश बिखर गये। फूलोंके हार टूट गये और गहने अस्त-व्यस्त हो गये। वे अपने केश, वस्त्र और कंचुकीको भी पूर्णतया सम्हालनेमें असमर्थ हो गयीं ॥ १८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी यह रासक्रीडा देखकर स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ भी मिलनकी कामनासे मोहित हो गयीं और समस्त तारों तथा ग्रहोंके साथ चन्द्रमा चकित, विस्मित हो गये ॥ १९ ॥ परीक्षित्! यद्यपि भगवान् आत्माराम हैं—उन्हें अपने अतिरिक्त और किसीकी भी आवश्यकता नहीं है—फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेलमें उनके साथ इस प्रकार विहार किया ॥ २० ॥ जब बहुत देरतक गान और नृत्य आदि विहार करनेके कारण गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने बड़े प्रेमसे स्वयं अपने सुखद करकमलोंके द्वारा उनके मुँह पोंछे ॥ २१ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के करकमल और नखस्पर्शसे गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने उन कपोलोंके सौन्दर्यसे, जिनपर सोनेके कुण्डल झिलमिला रहे थे और घुँघराली अलकें लटक रही थीं, तथा उस प्रेमभरी चितवनसे, जो सुधासे भी मीठी मुसकानसे उज्ज्वल हो रही थी, भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया और प्रभुकी परम पवित्र लीलाओंका गान करने लगीं ॥ २२ ॥ इसके बाद जैसे थका हुआ गजराज किनारोंको तोड़ता हुआ हथिनियोंके साथ जलमें घुसकर क्रीडा करता है, वैसे ही लोक और वेदकी मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले भगवान्‌ने अपनी थकान दूर करनेके लिये गोपियोंके साथ जलक्रीडा करनेके उद्देश्यसे यमुनाके जलमें प्रवेश किया। उस समय भगवान्‌की वनमाला गोपियोंके अङ्गकी रगड़से कुछ कुचल-सी गयी थी और उनके वक्षःस्थलकी केसरसे वह रँग भी गयी थी। उसके चारों ओर गुनगुनाते हुए भौंरे उनके पीछे-पीछे इस प्रकार चल रहे थे, मानो गन्धर्वराज उनकी कीर्तिका गान करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों ॥ २३ ॥ परीक्षित्! यमुनाजलमें गोपियोंने प्रेमभरी चितवनसे भगवान्‌की ओर देख-देखकर तथा हँस-हँसकर उनपर इधर-उधरसे जलकी खूब बौछारें डालीं। जल उलीच-उलीचकर उन्हें खूब नहलाया। विमानोंपर चढ़े हुए देवता पुष्पोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार यमुनाजलमें स्वयं आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णने गजराजके समान जलविहार किया ॥ २४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण व्रजयुवतियों और भौंरोंकी भीड़से घिरे हुए यमुनातटके उपवनमें गये। वह बड़ा ही रमणीय था। उसके चारों ओर जल और स्थलमें बड़ी सुन्दर सुगन्धवाले फूल खिले हुए थे। उनकी सुवास लेकर मन्द-मन्द वायु चल रही थी। उसमें भगवान् इस प्रकार विचरण करने लगे, जैसे मदमत्त गजराज हथिनियोंके झुंडके साथ घूम रहा हो ॥ २५ ॥ परीक्षित्! शरद्‌की वह रात्रि जिसके रूपमें अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत हो गयी थीं, बहुत ही सुन्दर थी। चारों ओर चन्द्रमाकी बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी। काव्योंमें शरद् ऋतुकी जिन रस-सामग्रियोंका वर्णन मिलता है, उन सभीसे वह युक्त थी। उसमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसी गोपियोंके साथ यमुनाके पुलिन, यमुनाजी और उनके उपवनमें विहार किया। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय सङ्कल्पकी ही चिन्मयी लीला है। और उन्होंने इस लीलामें कामभावको, उसकी चेष्टाओंको तथा उसकी क्रियाको सर्वथा अपने अधीन कर रक्खा था, उन्हें अपने-आपमें कैद कर रक्खा था ॥ २६ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्ण सारे जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। उन्होंने अपने अंश श्रीबलरामजीके सहित पूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था। उनके अवतारका उद्देश्य ही यह था कि धर्मकी स्थापना हो और अधर्मका नाश ॥ २७ ॥ ब्रह्मन्! वे धर्ममर्यादाके बनानेवाले, उपदेश करनेवाले और रक्षक थे। फिर उन्होंने स्वयं धर्मके विपरीत परस्त्रियोंका स्पर्श कैसे किया ॥ २८ ॥ मैं मानता हूँ कि भगवान्

श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्रायसे यह निन्दनीय कर्म किया ? परम ब्रह्मचारी मुनीश्वर ! आप कृपा करके मेरा यह सन्देह मिटाइये ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर (समर्थ) कभी-कभी धर्मका उल्लङ्घन और साहसका काम करते देखे जाते हैं। परन्तु उन कामोंसे उन तेजस्वी पुरुषोंको कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थोंके दोषसे लिप्त नहीं होता ॥ ३० ॥ जिन लोगोंमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीरसे करना तो दूर रहा। यदि मूर्खतावश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है। भगवान् शङ्करने हलाहल विष पी लिया था, दूसरा कोई पिये तो वह जलकर भस्म हो जायगा ॥ ३१ ॥ इसलिये इस प्रकारके जो शङ्कर आदि ईश्वर हैं, अपने अधिकारके अनुसार उनके वचनको ही सत्य मानना और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके आचरणका अनुकरण तो कहीं-कहीं ही किया जाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनका जो आचरण उनके उपदेशके अनुकूल हो, उसीको जीवनमें उतारे ॥ ३२ ॥ परीक्षित् ! वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहङ्कारहीन होते हैं, शुभकर्म करनेमें उनका कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करनेमें अनर्थ (नुकसान) नहीं होता। वे स्वार्थ और अनर्थसे ऊपर उठे होते हैं ॥ ३३ ॥ जब उन्हींके सम्बन्धमें ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान् हैं, उनके साथ मानवीय शुभ और अशुभका सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है ॥ ३४ ॥ जिनके चरणकमलोंके रजका सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त करके उसके प्रभावसे योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं और विचारशील ज्ञानीजन जिनके तत्त्वका विचार करके तत्त्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छासे अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं; तब भला, उनमें कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ॥ ३५ ॥ गोपियोंके, उनके पतियोंके और सम्पूर्ण शरीरधारियोंके अन्तःकरणोंमें जो आत्मारूपसे विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य-चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करके यह लीला कर रहे हैं ॥ ३६ ॥ भगवान् जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही अपनेको मनुष्यरूपमें प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जायँ ॥ ३७ ॥ व्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं ॥ ३८ ॥ ब्रह्माकी रात्रिके बराबर वह रात्रि बीत गयी। ब्राह्ममुहूर्त आया। यद्यपि गोपियोंकी इच्छा अपने घर लौटनेकी नहीं थी, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे अपने-अपने घर चली गयीं। क्योंकि वे अपनी प्रत्येक चेष्टासे, प्रत्येक सङ्कल्पसे केवल भगवान्को ही प्रसन्न करना चाहती थीं ॥ ३९ ॥

परीक्षित् ! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान्के चरणोंमें परा भक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका कामभाव सर्वदाके लिये नष्ट हो जाता है * ॥ ४० ॥

---

* श्रीमद्भागवतमें ये रासलीलाके पाँच अध्याय उसके पाँच प्राण माने जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी परम अन्तरङ्गलीला, निजस्वरूपभूता गोपिकाओं और ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीके साथ होनेवाली भगवान्की दिव्यातिदिव्य क्रीडा—इन अध्यायोंमें कही गयी है। 'रास' शब्दका मूल रस है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं—'रसो

वै सः' । जिस दिव्य क्रीडामें एक ही रस अनेक रसोंके रूपमें होकर अनन्त-अनन्त रसका समास्वादन करे; एक रस ही रस-समूहके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य-आस्वादक, लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें क्रीडा करे—उसका नाम रास है । भगवान्‌की यह दिव्य लीला भगवान्‌के दिव्य धाममें दिव्य-रूपसे निरन्तर हुआ करती है । यह भगवान्‌की विशेष कृपासे प्रेमी साधकोंके हितार्थ कभी-कभी अपने दिव्य धामके साथ ही भूमण्डलपर भी अवतीर्ण हुआ करती है, जिसको देख-सुन एवं गाकर तथा स्मरण-चिन्तन करके अधिकारी पुरुष रसस्वरूप भगवान्‌की इस परम रसमयी लीलाका आनन्द ले सकें और स्वयं भी भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होकर अपनेको कृतकृत्य कर सकें । इस पञ्चाध्यायीमें वंशीध्वनि, गोपियोंके अभिसार, श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, रमण, श्रीराधाजीके साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियोंके द्वारा दिये हुए वसनासनपर विराजना, गोपियोंके कूट प्रश्नका उत्तर, रासनृत्य, क्रीडा, जलकेलि और वनविहारका वर्णन है—जो मानवी भाषामें होनेपर भी वस्तुतः परम दिव्य है ।

समयके साथ ही मानव-मस्तिष्क भी पलटता रहता है । कभी अन्तर्दृष्टिकी प्रधानता हो जाती है और कभी बहिर्दृष्टिकी । आजका युग ही ऐसा है, जिसमें भगवान्‌की दिव्य-लीलाओंकी तो बात ही क्या, स्वयं भगवान्‌के अस्तित्वपर ही अविश्वास प्रकट किया जा रहा है । ऐसी स्थितिमें इस दिव्य लीलाका रहस्य न समझकर लोग तरह-तरहकी आशङ्का प्रकट करें, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है । यह लीला अन्तर्दृष्टिसे और मुख्यतः भगवत्कृपासे ही समझमें आती है । जिन भाग्यवान् और भगवत्कृपाप्राप्त महात्माओंने इसका अनुभव किया है, वे धन्य हैं और उनकी चरण-धूलिके प्रतापसे ही त्रिलोकी धन्य है । उन्हींकी उक्तियोंका आश्रय लेकर यहाँ रासलीलाके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् लिखनेकी धृष्टता की जाती है ।

यह बात पहले ही समझ लेनी चाहिये कि भगवान्‌का शरीर जीव-शरीरकी भाँति जड नहीं होता । जडकी सत्ता केवल जीवकी दृष्टिमें होती है, भगवान्‌की दृष्टिमें नहीं । यह देह है और यह देही है, इस प्रकारका भेद-भाव केवल प्रकृतिके राज्यमें होता है । अप्राकृत लोकमें—जहाँकी प्रकृति भी चिन्मय है—सब कुछ चिन्मय ही होता है; वहाँ अचित्‌की प्रतीति तो केवल चिद्विलास अथवा भगवान्‌की लीलाकी सिद्धिके लिये होती है । इसलिये स्थूलतामें—या यों कहिये कि जडराज्यमें रहनेवाला मस्तिष्क जब भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंके सम्बन्धमें विचार करने लगता है, तब वह अपनी पूर्व वासनाओंके अनुसार जडराज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं और क्रियाओंका ही आरोप उस दिव्य राज्यके विषयमें भी करता है, इसलिये दिव्यलीलाके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जाता है । यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल रसका एक दिव्य प्रकाश है । जड जगत्‌की बात तो दूर रही, ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्‌में भी यह प्रकट नहीं होता । अधिक क्या, साक्षात् चिन्मय तत्त्वमें भी इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशाभास नहीं देखा जाता । इस परम रसकी स्फूर्ति तो परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है । इस रासलीलाके यथार्थस्वरूप और परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है, दूसरे लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते ।

भगवान्‌के समान ही गोपियाँ भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं । साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जडताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है । उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदयमें श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमामृत है । उनकी इस अलौकिक स्थितिमें स्थूलशरीर, उसकी स्मृति और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अङ्ग-सङ्गकी कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती । ऐसी कल्पना तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकड़े हुए जीवोंकी ही होती है । जिन्होंने गोपियोंको पहचाना है, उन्होंने गोपियोंकी

चरणधूलिका स्पर्श प्राप्त करके अपनी कृतकृत्यता चाही है। ब्रह्मा, शङ्कर, उद्धव और अर्जुनने गोपियोंकी उपासना करके भगवान्‌के चरणोंमें वैसे प्रेमका वरदान प्राप्त किया है या प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है। उन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुषके भाव-जैसा मानना गोपियोंके प्रति, भगवान्‌के प्रति और वास्तवमें सत्यके प्रति महान् अन्याय एवं अपराध है। इस अपराधसे बचनेके लिये भगवान्‌की दिव्य लीलाओंपर विचार करते समय उनकी अप्राकृत दिव्यताका स्मरण रखना परमावश्यक है।

भगवान्‌का चिदानन्दघन शरीर दिव्य है। वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादानरहित है। वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है। इसी प्रकार गोपियाँ दिव्य जगत्‌की भगवान्‌की स्वरूपभूता अन्तरङ्गशक्तियाँ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध भी दिव्य ही है। यह उच्चतम भावराज्यकी लीला स्थूल शरीर और स्थूल मनसे परे है। आवरण-भङ्गके अनन्तर अर्थात् चीरहरण करके जब भगवान् स्वीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है।

प्राकृत देहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन देहोंके संयोगसे। जबतक 'कारण शरीर' रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता। 'कारण शरीर' कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन संस्कारोंको, जो देह-निर्माणमें कारण होते हैं। इस 'कारण शरीर' के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अथवा 'कारण' का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है। इसी कर्मबन्धनके कारण पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है—जो रक्त, मांस, अस्थि आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है। प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निकृष्ट मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्ध्वरेता महापुरुषके सङ्कल्पसे, बिन्दुके अधोगामी होनेपर कर्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा बिना ही मैथुनके नाभि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तक आदिके स्पर्शसे, बिना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा बिना देखे केवल सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हो। ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष-शरीरके बिना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं योनि और बिन्दुके संयोगजनित ही। ये सभी प्राकृत शरीर हैं। इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित 'निर्माणकाय' यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परन्तु वे भी हैं प्राकृत ही। पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर भी प्राकृत ही हैं। अप्राकृत शरीर इन सबसे विलक्षण हैं, जो महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते। और भगवद्देह तो साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है। देव-शरीर प्रायः रक्त-मांस-मेद-अस्थिवाले नहीं होते। अप्राकृत शरीर भी नहीं होते। फिर भगवान् श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप शरीर तो रक्त-मांस-अस्थिमय होता ही कैसे। वह तो सर्वथा चिदानन्दमय है। उसमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी और लीला तथा लीलापुरुषोत्तमका भेद नहीं है। श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णका मुखमण्डल जैसे पूर्ण श्रीकृष्ण है, वैसे ही श्रीकृष्णका पदनख भी पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णकी सभी इन्द्रियोंसे सभी काम हो सकते हैं। उनके कान देख सकते हैं, उनकी आँखें सुन सकती हैं, उनकी नाक स्पर्श कर सकती है, उनकी रसना सूँघ सकती है, उनकी त्वचा स्वाद ले सकती है। वे हाथोंसे देख सकते हैं, आँखोंसे चल सकते हैं। श्रीकृष्णका सब कुछ श्रीकृष्ण होनेके कारण वह सर्वथा पूर्णतम है। इसीसे उनकी रूपमाधुरी नित्यवर्द्धनशील, नित्य नवीन सौन्दर्यमयी है। उसमें ऐसा चमत्कार है कि वह स्वयं अपनेको ही आकर्षित कर लेती है। फिर उनके सौन्दर्य-माधुर्यसे गौ-हरिन और वृक्ष-बेल पुलकित हो जायँ, इसमें तो कहना ही क्या है। भगवान्‌के ऐसे स्वरूपभूत शरीरसे गंदा मैथुनकर्म सम्भव नहीं। मनुष्य जो कुछ खाता है, उससे क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि बनकर अन्तमें शुक्र बनता है; इसी शुक्रके आधारपर शरीर रहता है और मैथुनक्रियामें इसी शुक्रका क्षरण हुआ करता है। भगवान्‌का शरीर न तो कर्म-जन्य है, न मैथुनी सृष्टिका है और न दैवी ही है। वह तो इन सबसे परे सर्वथा विशुद्ध भगवत्स्वरूप है। उसमें रक्त, मांस, अस्थि आदि नहीं हैं; अतएव उसमें शुक्र भी नहीं है। इसलिये उससे प्राकृत पाञ्चभौतिक

शरीरोंवाले स्त्री-पुरुषोंके रमण या मैथुनकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान्‌को उपनिषद्‌में 'अखण्ड ब्रह्मचारी' बतलाया गया है और इसीसे भागवतमें उनके लिये 'अवरुद्धसौरत' आदि शब्द आये हैं। फिर कोई शङ्का करे कि उनके सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके इतने पुत्र कैसे हुए तो इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सारी भागवती सृष्टि थी, भगवान्‌के सङ्कल्पसे हुई थी। भगवान्‌के शरीरमें जो रक्त-मांस आदि दिखलायी पड़ते हैं, वह तो भगवान्‌की योगमायाका चमत्कार है। इस विवेचनसे भी यही सिद्ध होता है कि गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका जो रमण हुआ वह सर्वथा दिव्य भगवत्-राज्यकी लीला है, लौकिक काम-क्रीडा नहीं।

× × × ×

इन गोपियोंकी साधना पूर्ण हो चुकी है। भगवान्‌ने अगली रात्रियोंमें उनके साथ विहार करनेका प्रेम-सङ्कल्प कर लिया है। इसीके साथ उन गोपियोंको भी जो नित्यसिद्धा हैं, जो लोकदृष्टिमें विवाहिता भी हैं, इन्हीं रात्रियोंमें दिव्य-लीलामें सम्मिलित करना है। वे अगली रात्रियाँ कौन-सी हैं, यह बात भगवान्‌की दृष्टिके सामने है। उन्होंने शारदीय रात्रियोंको देखा। 'भगवान्‌ने देखा'—इसका अर्थ सामान्य नहीं, विशेष है। जैसे सृष्टिके प्रारम्भमें 'स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्।'—भगवान्‌के इस ईक्षणसे जगत्‌की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रासके प्रारम्भमें भगवान्‌के प्रेमवीक्षणसे शरत्कालकी दिव्य रात्रियोंकी सृष्टि होती है। मल्लिका-पुष्प, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपनसामग्री भगवान्‌के द्वारा वीक्षित है अर्थात् लौकिक नहीं, अलौकिक—अप्राकृत है। गोपियोंने अपना मन श्रीकृष्णके मनमें मिला दिया था। उनके पास स्वयं मन न था। अब प्रेम-दान करनेवाले श्रीकृष्णने विहारके लिये नवीन मनकी, दिव्य मनकी सृष्टि की। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी यही योगमाया है, जो रासलीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री एवं दिव्य मनका निर्माण किया करती है। इतना होनेपर भगवान्‌की बाँसुरी बजती है।

भगवान्‌की बाँसुरी जडको चेतन, चेतनको जड, चलको अचल और अचलको चल, विक्षिप्तको समाधिस्थ और समाधिस्थको विक्षिप्त बनाती ही रहती है। भगवान्‌का प्रेमदान प्राप्त करके गोपियाँ निस्सङ्कल्प, निश्चिन्त होकर घरके काममें लगी हुई थीं। कोई गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा—धर्मके काममें लगी हुई थी, कोई गो-दोहन आदि अर्थके काममें लगी हुई थी, कोई साज-शृङ्गार आदि कामके साधनमें व्यस्त थी, कोई पूजा-पाठ आदि मोक्षसाधनमें लगी हुई थी। सब लगी हुई थीं अपने-अपने काममें, परन्तु वास्तवमें वे उनमेंसे एक भी पदार्थ चाहती न थीं। यही उनकी विशेषता थी और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वंशीध्वनि सुनते ही कर्मकी पूर्णतापर उनका ध्यान नहीं गया; काम पूरा करके चलें, ऐसा उन्होंने नहीं सोचा। वे चल पड़ीं उस साधक संन्यासीके समान, जिसका हृदय वैराग्यकी प्रदीप्त ज्वालासे परिपूर्ण है। किसीने किसीसे पूछा नहीं, सलाह नहीं की; अस्त-व्यस्त गतिसे जो जैसे थी, वैसे ही श्रीकृष्णके पास पहुँच गयी। वैराग्यकी पूर्णता और प्रेमकी पूर्णता एक ही बात है, दो नहीं। गोपियाँ व्रज और श्रीकृष्णके बीचमें मूर्तिमान् वैराग्य हैं या मूर्तिमान् प्रेम, क्या इसका निर्णय कोई कर सकता है?

साधनाके दो भेद हैं—१—मर्यादापूर्ण वैध साधना और २—मर्यादारहित अवैध प्रेमसाधना। दोनोंके ही अपने-अपने स्वतन्त्र नियम हैं। वैध साधनामें जैसे नियमोंके बन्धनका, सनातन पद्धतिका, कर्तव्योंका और विविध पालनीय धर्मोंका त्याग साधनासे भ्रष्ट करनेवाला और महान् हानिकर है, वैसे ही अवैध प्रेमसाधनामें इनका पालन कलङ्करूप होता है। यह बात नहीं कि इन सब आत्मोन्नतिके साधनोंको वह अवैध प्रेमसाधनाका साधक जान-बूझकर छोड़ देता है। बात यह है कि वह स्तर ही ऐसा है, जहाँ इनकी आवश्यकता नहीं है। ये वहाँ अपने-आप वैसे ही छूट जाते हैं, जैसे नदीके पार पहुँच जानेपर स्वाभाविक ही नौकाकी सवारी छूट जाती है। जमीनपर न तो नौकापर बैठकर चलनेका प्रश्न उठता है और न ऐसा चाहने या करनेवाला बुद्धिमान् ही माना

जाता है । ये सब साधन वहींतक रहते हैं, जहाँतक सारी वृत्तियाँ सहज स्वेच्छासे सदा-सर्वदा एकमात्र भगवान्‌की ओर दौड़ने नहीं लग जातीं । इसीलिये भगवान्‌ने गीतामें एक जगह तो अर्जुनसे कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन । नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः । मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् । सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥
(३ । २२-२५)

'अर्जुन ! यद्यपि तीनों लोकोंमें मुझे कुछ भी करना नहीं है, और न मुझे किसी वस्तुको प्राप्त ही करना है, जो मुझे न प्राप्त हो; तो भी मैं कर्म करता ही हूँ । यदि मैं सावधान होकर कर्म न करूँ तो अर्जुन ! मेरी देखा-देखी लोग कर्मोंको छोड़ बैठें और यों मेरे कर्म न करनेसे ये सारे लोक भ्रष्ट हो जायँ तथा मैं इन्हें वर्ण-सङ्कर बनानेवाला और सारी प्रजाका नाश करनेवाला बनूँ । इसलिये मेरे इस आदर्शके अनुसार अनासक्त ज्ञानी पुरुषको भी लोकसंग्रहके लिये वैसे ही कर्म करना चाहिये, जैसे कर्ममें आसक्त अज्ञानी लोग करते हैं ।'

यहाँ भगवान् आदर्श लोकसंग्रही महापुरुषके रूपमें बोलते हैं, लोकनायक बनकर सर्वसाधारणको शिक्षा देते हैं । इसीलिये स्वयं अपना उदाहरण देकर लोगोंको कर्ममें प्रवृत्त करना चाहते हैं । ये ही भगवान् उसी गीतामें जहाँ अन्तरङ्गताकी बात कहते हैं, वहाँ स्पष्ट कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
(१८ । ६६)

'सारे धर्मोंका त्याग करके तू केवल एक मेरी शरणमें आ जा ।'

यह बात सबके लिये नहीं है । इसीसे भगवान् १८ । ६४ में इसे सबसे बढ़कर छिपी हुई गुप्त बात (सर्वगुह्यतम) कहकर इसके बादके ही श्लोकमें कहते हैं—

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥
(१८ । ६७)

'भैया अर्जुन ! इस सर्वगुह्यतम बातको जो इन्द्रिय-विजयी तपस्वी न हो, मेरा भक्त न हो, सुनना न चाहता हो और मुझमें दोष लगाता हो, उसे न कहना !'

श्रीगोपीजन साधनाके इसी उच्च स्तरमें परम आदर्श थीं । इसीसे उन्होंने देह-गेह, पति-पुत्र, लोक-परलोक, कर्तव्य-धर्म—सबको छोड़कर, सबका उल्लङ्घन कर, एकमात्र परमधर्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको ही पानेके लिये अभिसार किया था । उनका यह पति-पुत्रोंका त्याग, यह सर्वधर्मका त्याग ही उनके स्तरके अनुरूप स्वधर्म है ।

इस 'सर्वधर्मत्याग' रूप स्वधर्मका आचरण गोपियों-जैसे उच्च स्तरके साधकोंमें ही सम्भव है । क्योंकि सब धर्मोंका यह त्याग वही कर सकते हैं, जो इसका यथाविधि पूरा पालन कर चुकनेके बाद इसके परमफल अनन्य और अचिन्त्य देवदुर्लभ भगवत्प्रेमको प्राप्त कर चुकते हैं, वे भी जान-बूझकर त्याग नहीं करते । सूर्यका प्रखर प्रकाश हो जानेपर तैलदीपककी भाँति स्वतः ही ये धर्म उसे त्याग देते हैं । यह त्याग तिरस्कारमूलक नहीं, वरं तृप्तिमूलक है । भगवत्प्रेमकी ऊँची स्थितिका यही स्वरूप है । देवर्षि नारदजीका एक सूत्र है—

'वेदानपि संन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ।'

'जो वेदोंका (वेदमूलक समस्त धर्ममर्यादाओंका) भी भलीभाँति त्याग कर देता है, वह अखण्ड, असीम भगवत्प्रेमको प्राप्त करता है ।'

जिसको भगवान् अपनी वंशीध्वनि सुनाकर—नाम ले-लेकर बुलायें, वह भला, किसी दूसरे धर्मकी ओर ताककर कब और कैसे रुक सकता है ।

रोकनेवालोंने रोका भी, परन्तु हिमालयसे निकलकर समुद्रमें गिरनेवाली ब्रह्मपुत्र नदीकी प्रखर धाराको क्या कोई रोक सकता है ? वे न रुकीं, नहीं रोकी जा सकीं । जिनके चित्तमें कुछ प्राक्तन संस्कार अवशिष्ट थे, वे अपने अनधिकारके कारण सशरीर जानेमें समर्थ न हुईं । उनका शरीर घरमें पड़ा रह गया, भगवान्‌के वियोग-दुःखसे उनके सारे कलुष धुल गये, ध्यानमें प्राप्त भगवान्‌के प्रेमालिङ्गनसे उनके समस्त सौभाग्यका परमफल प्राप्त हो गया और वे भगवान्‌के पास सशरीर जानेवाली गोपियोंके पहुँचनेसे पहले ही भगवान्‌के पास पहुँच गयीं । भगवान्‌में मिल गयीं । यह शास्त्रका प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि पाप-पुण्यके कारण ही बन्धन होता है और शुभाशुभका भोग होता है । शुभाशुभ कर्मोंके भोगसे जब पाप-पुण्य दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब जीवकी मुक्ति हो जाती है । यद्यपि गोपियाँ पाप-पुण्यसे रहित श्रीभगवान्‌की प्रेम-प्रतिमास्वरूपा थीं, तथापि लीलाके लिये यह दिखाया गया है कि अपने प्रियतम श्रीकृष्णके पास न जा सकनेसे, उनके विरहानलसे उनको इतना महान् सन्ताप हुआ कि उससे उनके सम्पूर्ण अशुभका भोग हो गया, उनके समस्त पाप नष्ट हो गये । और प्रियतम भगवान्‌के ध्यानसे उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उससे उनके सारे पुण्योंका फल मिल गया । इस प्रकार पाप-पुण्योंका पूर्णरूपसे अभाव होनेसे उनकी मुक्ति हो गयी । चाहे किसी भी भावसे हो—कामसे, क्रोधसे, लोभसे—जो भगवान्‌के मङ्गलमय श्रीविग्रहका चिन्तन करता है, उसके भावकी अपेक्षा न करके वस्तुशक्तिसे ही उसका कल्याण हो जाता है । यह भगवान्‌के श्रीविग्रहकी विशेषता है । भावके द्वारा तो एक प्रस्तरमूर्ति भी परम कल्याणका दान कर सकती है, बिना भावके ही कल्याणदान भगवद्विग्रहका सहज दान है ।

भगवान् हैं बड़े लीलामय । जहाँ वे अखिल विश्वके विधाता ब्रह्मा-शिव आदिके भी वन्दनीय, निखिल जीवोंके प्रत्यगात्मा हैं, वहीं वे लीलानटवर गोपियोंके इशारेपर नाचनेवाले भी हैं । उन्हींकी इच्छासे, उन्हींके प्रेमाह्वानसे, उन्हींके वंशी-निमन्त्रणसे प्रेरित होकर गोपियाँ उनके पास आयीं; परन्तु उन्होंने ऐसी भावभङ्गी प्रकट की, ऐसा स्वाँग बनाया, मानो उन्हें गोपियोंके आनेका कुछ पता ही न हो । शायद गोपियोंके मुँहसे वे उनके हृदयकी बात, प्रेमकी बात सुनना चाहते हों । सम्भव है, वे विप्रलम्भके द्वारा उनके मिलन-भावको परिपुष्ट करना चाहते हों । बहुत करके तो ऐसा मालूम होता है कि कहीं लोग इसे साधारण बात न समझ लें, इसलिये साधारण लोगोंके लिये उपदेश और गोपियोंका अधिकार भी उन्होंने सबके सामने रख दिया । उन्होंने बतलाया—'गोपियो ! व्रजमें कोई विपत्ति तो नहीं आयी, घोर रात्रिमें यहाँ आनेका कारण क्या है ? घरवाले ढूँढ़ते होंगे, अब यहाँ ठहरना नहीं चाहिये । वनकी शोभा देख ली, अब बच्चों और बछड़ोंका भी ध्यान करो । धर्मके अनुकूल मोक्षके खुले हुए द्वार अपने सगे-सम्बन्धियोंकी सेवा छोड़कर वनमें दर-दर भटकना स्त्रियोंके लिये अनुचित है । स्त्रीको अपने पतिकी ही सेवा करनी चाहिये, वह कैसा भी क्यों न हो । यही सनातन धर्म है । इसीके अनुसार तुम्हें चलना चाहिये । मैं जानता हूँ कि तुम सब मुझसे प्रेम करती हो । परन्तु प्रेममें शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं है । श्रवण, स्मरण, दर्शन और ध्यानसे सान्निध्यकी अपेक्षा अधिक प्रेम बढ़ता है । जाओ, तुम सनातन सदाचारका पालन करो । इधर-उधर मनको मत भटकने दो ।'

श्रीकृष्णकी यह शिक्षा गोपियोंके लिये नहीं, सामान्य नारी-जातिके लिये है । गोपियोंका अधिकार विशेष था और उसको प्रकट करनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे थे । इन्हें सुनकर गोपियोंकी क्या

दशा हुई और इसके उत्तरमें उन्होंने श्रीकृष्णसे क्या प्रार्थना की; वे श्रीकृष्णको मनुष्य नहीं मानतीं, उनके पूर्णब्रह्म सनातन स्वरूपको भलीभाँति जानती हैं और यह जानकर ही उनसे प्रेम करती हैं—इस बातका कितना सुन्दर परिचय दिया; यह सब विषय मूलमें ही पाठ करनेयोग्य है। सचमुच जिनके हृदयमें भगवान्‌के परमतत्त्वका वैसा अनुपम ज्ञान और भगवान्‌के प्रति वैसा महान् अनन्य अनुराग है और सचाईके साथ जिनकी वाणीमें वैसे उद्गार हैं, वे ही विशेष अधिकारवान् हैं।

गोपियोंकी प्रार्थनासे यह बात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्णको अन्तर्यामी, योगेश्वरेश्वर परमात्माके रूपमें पहचानती थीं और जैसे दूसरे लोग गुरु, सखा या माता-पिताके रूपमें श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं, वैसे ही वे पतिके रूपमें श्रीकृष्णसे प्रेम करती थीं, जो कि शास्त्रोंमें मधुर भावके—उज्ज्वल परम रसके नामसे कहा गया है। जब प्रेमके सभी भाव पूर्ण होते हैं और साधकोंको स्वामि-सखादिके रूपमें भगवान् मिलते हैं, तब गोपियोंने क्या अपराध किया था कि उनका यह उच्चतम भाव—जिसमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य सब-के-सब अन्तर्भूत हैं और जो सबसे उन्नत एवं सबका अन्तिम रूप है—न पूर्ण हो? भगवान्‌ने उनका भाव पूर्ण किया और अपनेको असंख्य रूपोंमें प्रकट करके गोपियोंके साथ क्रीडा की। उनकी क्रीडाका स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः'। जैसे नन्हा-सा शिशु दर्पण अथवा जलमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, वैसे ही रमेश भगवान् और व्रजसुन्दरियोंने रमण किया। अर्थात् सच्चिदानन्दघन सर्वान्तर्यामी प्रेमरस-स्वरूप, लीलारसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी ह्लादिनी-शक्तिरूपा आनन्द-चिन्मयरस-प्रतिभाविता अपनी ही प्रतिमूर्तिसे उत्पन्न अपनी प्रतिबिम्ब-स्वरूपा गोपियोंसे आत्मक्रीडा की। पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसराज रसिक-शेखर रसपरब्रह्म अखिलरसामृतविग्रह भगवान् श्रीकृष्णकी इस चिदानन्द-रसमयी दिव्य क्रीड़ाका नाम ही रास है। इसमें न कोई जड शरीर था, न प्राकृत अङ्ग-सङ्ग था, और न इसके सम्बन्धकी प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही थीं। यह था चिदानन्दमय भगवान्‌का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाममें सर्वदा होते रहनेपर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

वियोग ही संयोगका-पोषक है, मान और मद ही भगवान्‌की लीलामें बाधक हैं। भगवान्‌की दिव्य लीलामें मान और मद भी, जो कि दिव्य हैं, इसीलिये होते हैं कि उनसे लीलामें रसकी और भी पुष्टि हो। भगवान्‌की इच्छासे ही गोपियोंमें लीलानुरूप मान और मदका सञ्चार हुआ और भगवान् अन्तर्धान हो गये। जिनके हृदयमें लेशमात्र भी मद अवशेष है, नाममात्र भी मानका संस्कार शेष है, वे भगवान्‌के सम्मुख रहनेके अधिकारी नहीं। अथवा वे भगवान्‌का, पास रहनेपर भी, दर्शन नहीं कर सकते। परन्तु गोपियाँ गोपियाँ थीं, उनसे जगत्‌के किसी प्राणीकी तिलमात्र भी तुलना नहीं है। भगवान्‌के वियोगमें गोपियोंकी क्या दशा हुई, इस बातको रासलीलाका प्रत्येक पाठक जानता है। गोपियोंके शरीर-मन-प्राण, वे जो कुछ थीं—सब श्रीकृष्णमें एकतान हो गये। उनके प्रेमोन्मादका वह गीत, जो उनके प्राणोंका प्रत्यक्ष प्रतीक है, आज भी भावुक भक्तोंको भावमग्न करके भगवान्‌के लीलालोकमें पहुँचा देता है। एक बार सरस हृदयसे हृदयहीन होकर नहीं, पाठ करनेमात्रसे ही यह गोपियोंकी महत्ता सम्पूर्ण हृदयमें भर देता है। गोपियोंके उस 'महाभाव'—उस 'अलौकिक प्रेमोन्माद'को देखकर श्रीकृष्ण भी अन्तर्हित न रह सके, उनके सामने 'साक्षान्मन्मथमन्मथः' रूपसे प्रकट हुए और उन्होंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया कि 'गोपियो, मैं तुम्हारे प्रेमभावका चिर-ऋणी हूँ। यदि मैं अनन्त कालतक तुम्हारी सेवा करता रहूँ, तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मेरे अन्तर्धान होनेका प्रयोजन तुम्हारे चित्तको दुखाना नहीं था, बल्कि तुम्हारे प्रेमको और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।' इसके बाद रासक्रीड़ा प्रारम्भ हुई।

जिन्होंने अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्याय किया है, वे जानते हैं कि योगसिद्धिप्राप्त साधारण योगी भी कायव्यूहके द्वारा एक साथ अनेक शरीरोंका निर्माण कर सकते हैं और अनेक स्थानोंपर उपस्थित रहकर पृथक्-पृथक्

कार्य कर सकते हैं। इन्द्रादि देवगण एक ही समय अनेक स्थानोंपर उपस्थित होकर अनेक यज्ञोंमें युगपत् आहुति स्वीकार कर सकते हैं। निखिल योगियों और योगेश्वरोंके ईश्वर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण यदि एक ही साथ अनेक गोपियोंके साथ क्रीड़ा करें, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? जो लोग भगवान्को भगवान् नहीं स्वीकार करते, वही अनेकों प्रकारकी शङ्का-कुशङ्काएँ करते हैं। भगवान्की निज लीलामें इन तर्कोंका सर्वथा प्रवेश नहीं है।

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह प्रश्न भी श्रीकृष्णके स्वरूपको भुलाकर ही उठाया जाता है। श्रीकृष्ण जीव नहीं हैं कि जगत्की वस्तुओंमें उनका हिस्सेदार दूसरा भी जीव हो। जो कुछ भी था, है और आगे होगा—उसके एकमात्र पति श्रीकृष्ण ही हैं। अपनी प्रार्थनामें गोपियोंने और परीक्षित्के प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने यही बात कही है कि गोपी, गोपियोंके पति, उनके पुत्र, सगे-सम्बन्धी और जगत्के समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे, परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं—वही श्रीकृष्ण हैं। कोई भ्रमसे, अज्ञानसे, भले ही श्रीकृष्णको पराया समझे; वे किसीके पराये नहीं हैं, सबके अपने हैं, सब उनके हैं। श्रीकृष्णकी दृष्टिसे, जो कि वास्तविक दृष्टि है, कोई परकीया है ही नहीं; सब स्वकीया हैं, सब केवल अपना ही लीलाविलास हैं, सभी स्वरूपभूता अन्तरङ्गा शक्ति हैं। गोपियाँ इस बातको जानती थीं और स्थान-स्थानपर उन्होंने ऐसा कहा है।

ऐसी स्थितिमें 'जारभाव' और 'औपपत्य' का कोई लौकिक अर्थ नहीं रह जाता। जहाँ काम नहीं है, अङ्ग-सङ्ग नहीं है, वहाँ 'औपपत्य' और 'जारभाव' की कल्पना ही कैसे हो सकती है? गोपियाँ परकीया नहीं थीं, स्वकीया थीं; परन्तु उनमें परकीया-भाव था। परकीया होनेमें और परकीयाभाव होनेमें आकाश-पातालका अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्त्वकी होती हैं—अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, मिलनकी उत्कट उत्कण्ठा और दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्वकीयाभावमें निरन्तर एक साथ रहनेके कारण ये तीनों बातें गौण हो जाती हैं; परन्तु परकीया-भावमें ये तीनों भाव बने रहते हैं। कुछ गोपियाँ जारभावसे श्रीकृष्णको चाहती थीं, इसका इतना ही अर्थ है कि वे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करती थीं, मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती थीं और श्रीकृष्णके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी आँखोंसे ही देखती थीं। चौथा भाव विशेष महत्त्वका और है—वह यह कि स्वकीया अपने घरका, अपना और अपने पुत्र एवं कन्याओंका पालन-पोषण, रक्षणावेक्षण पतिसे चाहती है। वह समझती है कि इनकी देखरेख करना पतिका कर्तव्य है; क्योंकि ये सब उसीके आश्रित हैं, और वह पतिसे ऐसी आशा भी रखती है। कितनी ही पतिपरायणा क्यों न हो, स्वकीयामें यह सकामभाव छिपा रहता ही है। परन्तु परकीया अपने प्रियतमसे कुछ नहीं चाहती, कुछ भी आशा नहीं रखती; वह तो केवल अपनेको देकर ही उसे सुखी करना चाहती है। श्रीगोपियोंमें यह भाव भी भलीभाँति प्रस्फुटित था। इसी विशेषताके कारण संस्कृत-साहित्यके कई ग्रन्थोंमें निरन्तर चिन्तनके उदाहरणस्वरूप परकीयाभावका वर्णन आता है।

गोपियोंके इस भावके एक नहीं, अनेक दृष्टान्त श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं; इसलिये गोपियोंपर परकीयापनका आरोप उनके भावको न समझनेके कारण है। जिसके जीवनमें साधारण धर्मकी एक हल्की-सी प्रकाशरेखा आ जाती है, उसीका जीवन परम पवित्र और दूसरोंके लिये आदर्श-स्वरूप बन जाता है। फिर वे गोपियाँ, जिनका जीवन साधनाकी चरम सीमापर पहुँच चुका है, अथवा जो नित्यसिद्धा एवं भगवान्की स्वरूपभूता हैं, या जिन्होंने कल्पोंतक साधना करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका सेवाधिकार प्राप्त कर लिया है, सदाचारका उल्लङ्घन कैसे कर सकती हैं। और समस्त धर्म-मर्यादाओंके संस्थापक श्रीकृष्णपर धर्मोल्लङ्घनका लाञ्छन कैसे लगाया जा सकता है? श्रीकृष्ण और गोपियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कुकल्पनाएँ उनके दिव्य स्वरूप और दिव्यलीलाके विषयमें अनभिज्ञता ही प्रकट करती हैं।

श्रीमद्भागवतपर, दशम स्कन्धपर और रासपञ्चाध्यायीपर अबतक अनेकानेक भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं—जिनके लेखकोंमें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य, श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी आदि हैं। उन लोगोंने बड़े विस्तारसे रासलीलाकी महिमा समझायी है। किसीने इसे कामपर विजय बतलाया है, किसीने भगवान्‌का दिव्य विहार बतलाया है और किसीने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है। भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा हैं, आत्माकार वृत्ति श्रीराधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका धाराप्रवाहरूपसे निरन्तर आत्मरमण ही रास है। किसी भी दृष्टिसे देखें, रासलीलाकी महिमा अधिकाधिक प्रकट होती है।

परन्तु इससे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि श्रीमद्भागवतमें वर्णित रास या रमण-प्रसङ्ग केवल रूपक या कल्पनामात्र है। वह सर्वथा सत्य है और जैसा वर्णन है, वैसा ही मिलन-विलासादिरूप शृङ्गारका रसास्वादन भी हुआ था। भेद इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री-पुरुषोंका मिलन न था। उसके नायक थे सच्चिदानन्दविग्रह, परात्परतत्त्व, पूर्णतम स्वाधीन और निरङ्कुश स्वेच्छाविहारी गोपीनाथ भगवान् नन्दनन्दन; और नायिका थीं स्वयं ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाजी और उनकी कायव्यूहरूपा, उनकी घनीभूत मूर्तियाँ श्रीगोपीजन। अतएव इनकी यह लीला अप्राकृत थी। सर्वथा मीठी मिश्रीकी अत्यन्त कड़ुए इन्द्रायण (तूँबे)-जैसी कोई आकृति बना ली जाय, जो देखनेमें ठीक तूँबे-जैसी ही मालूम हो; परन्तु इससे असलमें क्या वह मिश्रीका तूँबा कड़ुआ थोड़े ही हो जाता है? क्या तूँबेके आकारकी होनेसे ही मिश्रीके स्वाभाविक गुण मधुरताका अभाव हो जाता है? नहीं-नहीं, वह किसी भी आकारमें हो—सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा केवल मिश्री-ही-मिश्री है। बल्कि इसमें लीला-चमत्कारकी बात जरूर है। लोग समझते हैं कड़ुआ तूँबा, और होती है वह मधुर मिश्री। इसी प्रकार अखिलरसामृतसिन्धु सच्चिदानन्दविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अन्तरङ्गा अभिन्नस्वरूपा गोपियोंकी लीला भी देखनेमें कैसी ही क्यों न हो, वस्तुतः वह सच्चिदानन्दमयी ही है। उसमें सांसारिक गंदे कामका कड़ुआ स्वाद है ही नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इस लीलाकी नकल किसीको नहीं करनी चाहिये, करना सम्भव भी नहीं है। मायिक पदार्थोंके द्वारा मायातीत भगवान्‌का अनुकरण कोई कैसे कर सकता है? कड़ुए तूँबेको चाहे जैसी सुन्दर मिठाईकी आकृति दे दी जाय, उसका कड़ुआपन कभी मिट नहीं सकता। इसीलिये जिन मोहग्रस्त मनुष्योंने श्रीकृष्णकी रास आदि अन्तरङ्ग-लीलाओंका अनुकरण करके नायक-नायिकाका रसास्वादन करना चाहा या चाहते हैं, उनका घोर पतन हुआ है और होगा। श्रीकृष्णकी इन लीलाओंका अनुकरण तो केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिये शुकदेवजीने रासपञ्चाध्यायीके अन्तमें सबको सावधान करते हुए कह दिया है कि भगवान्‌के उपदेश तो सब मानने चाहिये, परन्तु उनके सभी आचरणोंका अनुकरण नहीं करना चाहिये।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको केवल मनुष्य मानते हैं और केवल मानवीय भाव एवं आदर्शकी कसौटीपर उनके चरित्रको कसना चाहते हैं वे पहले ही शास्त्रसे विमुख हो जाते हैं, उनके चित्तमें धर्मकी कोई धारणा ही नहीं रहती और वे भगवान्‌को भी अपनी बुद्धिके पीछे चलाना चाहते हैं। इसलिये साधकोंके सामने उनकी उक्ति-युक्तियोंका कोई महत्त्व ही नहीं रहता। जो शास्त्रके 'श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं' इस वचनको नहीं मानता, वह उनकी लीलाओंको किस आधारपर सत्य मानकर उनकी आलोचना करता है—यह समझमें नहीं आता। जैसे मानवधर्म, देवधर्म और पशुधर्म पृथक्-पृथक् होते हैं, वैसे ही भगवद्धर्म भी पृथक् होता है और भगवान्‌के चरित्रका परीक्षण उसकी ही कसौटीपर होना चाहिये। भगवान्‌का एकमात्र धर्म है—प्रेमपरवशता, दयापरवशता और भक्तोंकी अभिलाषाकी पूर्ति। यशोदाके हाथोंसे ऊखलमें बँध जानेवाले श्रीकृष्ण अपने निजजन गोपियोंके प्रेमके कारण उनके साथ नाचें, यह उनका सहज धर्म है।

यदि यह हठ ही हो कि श्रीकृष्णका चरित्र मानवीय धारणाओं और आदर्शोंके अनुकूल ही होना चाहिये, तो इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी अवस्था उस समय दस वर्षके लगभग थी, जैसा कि

भागवतमें स्पष्ट वर्णन मिलता है। गाँवोंमें रहनेवाले बहुत-से दस वर्षके बच्चे तो नंगे ही रहते हैं। उन्हें काम-वृत्ति और स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। लड़के-लड़की एक साथ खेलते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, त्योहार मनाते हैं, गुड्डई-गुड्डएकी शादी करते हैं, बारात ले जाते हैं और आपसमें भोज-भात भी करते हैं। गाँवके बड़े-बूढ़े लोग बच्चोंका यह मनोरञ्जन देखकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं आता। ऐसे बच्चोंको युवती स्त्रियाँ भी बड़े प्रेमसे देखती हैं, आदर करती हैं, नहलाती हैं, खिलाती हैं। यह तो साधारण बच्चोंकी बात है। श्रीकृष्ण-जैसे असाधारण धी-शक्तिसम्पन्न बालक जिनके अनेक सद्गुण बाल्यकालमें ही प्रकट हो चुके थे; जिनकी सम्मति, चातुर्य्य और शक्तिसे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे व्रजवासियोंने त्राण पाया था; उनके प्रति वहाँकी स्त्रियों, बालिकाओं और बालकोंका कितना आदर रहा होगा—इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनके सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यसे आकृष्ट होकर गाँवकी बालक-बालिकाएँ उनके साथ ही रहती थीं और श्रीकृष्ण भी अपनी मौलिक प्रतिभासे राग, ताल आदि नये-नये ढंगसे उनका मनोरञ्जन करते थे और उन्हें शिक्षा देते थे। ऐसे ही मनोरञ्जनोंमेंसे रासलीला भी एक थी, ऐसा समझना चाहिये। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं, उनकी दृष्टिमें भी यह दोषकी बात नहीं होनी चाहिये। वे उदारता और बुद्धिमानीके साथ भागवतमें आये हुए काम-रति आदि शब्दोंका ठीक वैसा ही अर्थ समझें, जैसा कि उपनिषद् और गीतामें इन शब्दोंका अर्थ होता है। वास्तवमें गोपियोंके निष्कपट प्रेमका ही नामान्तर काम है और भगवान् श्रीकृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य क्रीड़ा ही रति है। इसीलिये स्थान-स्थानपर उनके लिये विभु, परमेश्वर, लक्ष्मीपति, भगवान्, योगेश्वरेश्वर, आत्मा-राम, मन्मथमन्मथ आदि शब्द आये हैं—जिससे किसीको कोई भ्रम न हो जाय।

जब गोपियाँ श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वनमें जाने लगी थीं, तब उनके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें जानेसे रोका था। रातमें अपनी बालिकाओंको भला, कौन बाहर जाने देता। फिर भी वे चली गयीं और इससे घर-वालोंको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई। और न तो उन्होंने श्रीकृष्णपर या गोपियोंपर किसी प्रकारका लाञ्छन ही लगाया। उनका श्रीकृष्णपर, गोपियोंपर विश्वास था और वे उनके बचपन और खेलोंसे परिचित थे। उन्हें तो ऐसा मालूम हुआ मानो गोपियाँ हमारे पास ही हैं। इसको दो प्रकारसे समझ सकते हैं। एक तो यह कि श्रीकृष्णके प्रति उनका इतना विश्वास था कि श्रीकृष्णके पास गोपियोंका रहना भी अपने ही पास रहना है। यह तो मानवीय दृष्टि है। दूसरी दृष्टि यह कि श्रीकृष्णकी योगमायाने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी, गोपोंको वे घरमें ही दीखती थीं। किसी भी दृष्टिसे रासलीला दूषित प्रसङ्ग नहीं है, बल्कि अधिकारी पुरुषोंके लिये तो यह सम्पूर्ण मनोमलको नष्ट करनेवाला है। रासलीलाके अन्तमें कहा गया है कि जो पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रास-लीलाका श्रवण और वर्णन करता है, उसके हृदयका रोग काम बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्‌का प्रेम प्राप्त होता है। भागवतमें अनेक स्थानपर ऐसा वर्णन आता है कि जो भगवान्‌की मायाका वर्णन करता है, वह मायासे पार हो जाता है। जो भगवान्‌के कामजयका वर्णन करता है, वह कामपर विजय प्राप्त करता है। राजा परीक्षित्‌ने अपने प्रश्नोंमें जो शङ्काएँ की हैं, उनका उत्तर प्रश्नोंके अनुरूप ही अध्याय २९ के श्लोक १३ से १६ तक और अध्याय ३३ के श्लोक ३० से ३७ तक श्रीशुकदेवजीने दिया है।

उस उत्तरसे वे शङ्काएँ तो हट गयी हैं, परन्तु भगवान्‌की दिव्यलीलाका रहस्य नहीं खुलने पाया; सम्भवतः उस रहस्यको गुप्त रखनेके लिये ही ३३ वें अध्यायमें रासलीलाप्रसङ्ग समाप्त कर दिया गया। वस्तुतः इस लीलाके गूढ़ रहस्यकी प्राकृत-जगत्‌में व्याख्या की भी नहीं जा सकती। क्योंकि यह इस जगत्‌की क्रीड़ा ही नहीं है। यह तो उस दिव्य आनन्दमय रसमय राज्यकी चमत्कारमयी लीला है, जिसके श्रवण और दर्शनके लिये परमहंस मुनिगण भी सदा उत्कण्ठित रहते हैं। कुछ लोग इस लीलाप्रसंगको भागवतमें क्षेपक मानते हैं, वे

चौंतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन और शङ्खचूडका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार नन्दबाबा आदि गोपोंने शिवरात्रिके अवसरपर बड़ी उत्सुकता, कौतूहल और आनन्दसे भरकर बैलोंसे जुती हुई गाड़ियोंपर सवार होकर अम्बिकावनकी यात्रा की ॥ १ ॥ राजन् ! वहाँ उन लोगोंने सरस्वती नदीमें स्नान किया और सर्वान्तर्यामी पशुपति भगवान् शङ्करजीका तथा भगवती अम्बिकाजीका बड़ी भक्तिसे अनेक प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा पूजन किया ॥ २ ॥ वहाँ उन्होंने आदरपूर्वक गौएँ, सोना, वस्त्र, मधु और मधुर अन्न ब्राह्मणोंको दिये तथा उनको खिलाया-पिलाया। वे केवल यही चाहते थे कि इससे देवाधिदेव भगवान् शङ्कर हमपर प्रसन्न हों ॥ ३ ॥ उस दिन परम भाग्यवान् नन्द-सुनन्द आदि गोपोंने उपवास कर रक्खा था, इसलिये वे लोग केवल जल पीकर रातके समय सरस्वती नदीके तटपर ही बेखटके सो गये ॥४॥

उस अम्बिकावनमें एक बड़ा भारी अजगर रहता था। उस दिन वह भूखा भी बहुत था। दैववश वह उधर ही आ निकला और उसने सोये हुए नन्दजीको पकड़ लिया ॥५॥ अजगरके पकड़ लेनेपर नन्दरायजी चिल्लाने लगे—'बेटा कृष्ण ! कृष्ण ! दौड़ो, दौड़ो। देखो बेटा ! यह अजगर मुझे निगल रहा है। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। जल्दी मुझे इस सङ्कटसे बचाओ ॥६॥ नन्दबाबाका चिल्लाना सुनकर सब-के-सब गोप एकाएक उठ खड़े हुए और उन्हें अजगरके मुँहमें देखकर घबड़ा गये। अब वे लुकाठियों (अधजली लकड़ियों) से उस अजगरको मारने लगे ॥ ७ ॥ किन्तु लुकाठियोंसे मारे जाने और जलनेपर भी अजगरने नन्दबाबाको छोड़ा नहीं। इतनेमें ही भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने वहाँ पहुँचकर अपने चरणोंसे उस अजगरको छू दिया ॥८॥ भगवान्‌के श्रीचरणोंका स्पर्श होते ही अजगरके सारे अशुभ भस्म हो गये और वह उसी क्षण अजगरका शरीर छोड़कर विद्याधरार्चित सर्वाङ्गसुन्दर रूपवान् बन गया ॥ ९ ॥ उस पुरुषके शरीरसे दिव्य ज्योति निकल रही थी। वह सोनेके हार पहने हुए था। जब वह प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया, तब उन्होंने उससे पूछा—॥ १० ॥ 'तुम कौन हो ? तुम्हारे अङ्ग-अङ्गसे सुन्दरता फूटी पड़ती है। तुम देखनेमें बड़े अद्भुत जान पड़ते हो। तुम्हें यह अत्यन्त निन्दनीय अजगर-योनि क्यों प्राप्त हुई थी ? अवश्य ही तुम्हें विवश होकर इसमें आना पड़ा होगा' ॥ ११ ॥

अजगरके शरीरसे निकला हुआ पुरुष बोला—भगवन् ! मैं पहले एक विद्याधर था। मेरा नाम था सुदर्शन। मेरे पास सौन्दर्य तो था ही, लक्ष्मी भी बहुत थी। इससे मैं विमानपर चढ़कर यहाँ-से-वहाँ घूमता रहता था ॥१२॥ एक दिन मैंने अङ्गिरा गोत्रके कुरूप ऋषियोंको देखा। अपने सौन्दर्यके घमंडसे मैंने उनकी हँसी उड़ायी। मेरे इस अपराधसे कुपित होकर उन लोगोंने मुझे अजगर-योनिमें जानेका शाप दे दिया। यह मेरे पापोंका ही फल था ॥ १३ ॥ उन कृपालु ऋषियोंने अनुग्रहके लिये ही मुझे शाप दिया था। क्योंकि यह उसीका प्रभाव है कि आज चराचरके गुरु स्वयं आपने अपने चरणकमलोंसे मेरा स्पर्श किया है, इससे मेरे सारे अशुभ

वास्तवमें दुराग्रह करते हैं। क्योंकि प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियोंमें भी यह प्रसंग मिलता है और जरा विचार करके देखनेसे यह सर्वथा सुसंगत और निर्दोष प्रतीत होता है। भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करके ऐसी विमल बुद्धि दें, जिससे हमलोग इसका कुछ रहस्य समझनेमें समर्थ हों।

भगवान्‌के इस दिव्य-लीलाके वर्णनका यही प्रयोजन है कि जीव गोपियोंके उस अहैतुक प्रेमका, जो कि श्रीकृष्णको ही सुख पहुँचानेके लिये था, स्मरण करे और उसके द्वारा भगवान्‌के रसमय दिव्यलीलालोकमें भगवान्‌के अनन्त प्रेमका अनुभव करे। हमें रासलीलाका अध्ययन करते समय किसी प्रकारकी भी शङ्का न करके इस भावको जगाये रखना चाहिये। —हनुमानप्रसाद पोद्दार

नष्ट हो गये ॥ १४ ॥ समस्त पापोंका नाश करनेवाले प्रभो ! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारसे भयभीत होकर आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें आप समस्त भयोंसे मुक्त कर देते हैं । अब मैं आपके श्रीचरणोंके स्पर्शसे शापसे छूट गया हूँ और अपने लोकमें जानेकी अनुमति चाहता हूँ । १५ । भक्तवत्सल ! महायोगेश्वर पुरुषोत्तम ! मैं आपकी शरणमें हूँ । इन्द्रादि समस्त लोकेश्वरोंके परमेश्वर ! स्वयंप्रकाश परमात्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिये । १६ । अपने स्वरूपमें नित्य-निरन्तर एकरस रहनेवाले अच्युत ! आपके दर्शनमात्रसे मैं ब्राह्मणोंके शापसे मुक्त हो गया, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि जो पुरुष आपके नामोंका उच्चारण करता है, वह अपने-आपको और समस्त श्रोताओंको भी तुरंत पवित्र कर देता है । फिर मुझे तो आपने स्वयं अपने चरणकमलोंसे स्पर्श किया है । तब भला, मेरी मुक्तिमें क्या सन्देह हो सकता है ! ॥१७॥ इस प्रकार सुदर्शनने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की, परिक्रमा की और प्रणाम किया । फिर उनसे आज्ञा लेकर वह अपने लोकमें चला गया और नन्दबाबा इस भारी सङ्कटसे छूट गये ॥१८॥ राजन् ! जब व्रजवासियोंने भगवान् श्रीकृष्णका यह अद्भुत प्रभाव देखा, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ । उन लोगोंने उस क्षेत्रमें जो नियम ले रक्खे थे, उनको पूर्ण करके वे बड़े आदर और प्रेमसे श्रीकृष्णकी उस लीलाका गान करते हुए पुनः व्रजमें लौट आये ॥ १९ ॥

एक दिनकी बात है, अलौकिक कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रिके समय वनमें गोपियोंके साथ विहार कर रहे थे ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्ण निर्मल पीताम्बर और बलरामजी नीलाम्बर धारण किये हुए थे । दोनोंके गलेमें फूलोंके सुन्दर-सुन्दर हार लटक रहे थे तथा शरीरमें अङ्गराग, सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था और सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने हुए थे । गोपियाँ बड़े प्रेम और आनन्दसे ललित स्वरमें उन्हींके गुणोंका गान कर रही थीं ॥ २१ ॥ अभी-अभी सायङ्काल हुआ था । आकाशमें तारे उग आये थे और चाँदनी छिटक रही थी । बेलाके सुन्दर गन्धसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर गुनगुना रहे थे तथा जलाशयमें खिली हुई कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी । उस समय उनका सम्मान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने एक ही साथ मिलकर राग अलापा । उनका राग आरोह-अवरोह स्वरोंके चढ़ाव-उतारसे बहुत ही सुन्दर लग रहा था । वह जगत्के समस्त प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्दसे भर देनेवाला था ॥ २२-२३ ॥ उनका यह गान सुनकर गोपियाँ मोहित हो गयीं । परीक्षित् ! उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही कि वे उसपरसे खिसकते हुए वस्त्रों और चोटियोंसे बिखरते हुए पुष्पोंको सम्हाल सकें ॥ २४ ॥

जिस समय बलराम और श्याम दोनों भाई इस प्रकार स्वच्छन्द विहार कर रहे थे और उन्मत्तकी भाँति गा रहे थे, उसी समय वहाँ शङ्खचूड नामका एक यक्ष आया । वह कुबेरका अनुचर था ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! दोनों भाइयोंके देखते-देखते वह उन गोपियोंको लेकर बेखटके उत्तरकी ओर भाग चला । जिनके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं, वे गोपियाँ उस समय रो-रोकर चिल्लाने लगीं ॥ २६ ॥ दोनों भाइयोंने देखा कि जैसे कोई डाकू गौओंको लूट ले जाय, वैसे ही यह यक्ष हमारी प्रेयसियोंको लिये जा रहा है और वे 'हा कृष्ण ! हा राम !' पुकारकर रो-पीट रही हैं । उसी समय दोनों भाई उसकी ओर दौड़ पड़े ॥२७॥ 'डरो मत, डरो मत' इस प्रकार अभयवाणी कहते हुए हाथमें शालका वृक्ष लेकर बड़े वेगसे क्षणभरमें ही उस नीच यक्षके पास पहुँच गये ॥२८॥ यक्षने देखा कि काल और मृत्युके समान ये दोनों भाई मेरे पास आ पहुँचे । तब वह मूढ़ घबड़ा गया । उसने गोपियोंको तो वहीं छोड़ दिया, स्वयं प्राण बचानेके लिये भागा ॥२९॥ तब स्त्रियोंकी रक्षा करनेके लिये बलरामजी तो वहीं खड़े रह गये, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण जहाँ-जहाँ वह भागकर गया, उसके पीछे-पीछे दौड़ते गये । वे चाहते थे कि उसके सिरकी चूडामणि निकाल लें ॥३०॥ कुछ ही दूर जानेपर भगवान्ने उसे पकड़ लिया और उस दुष्टके सिरपर कसकर एक घूँसा जमाया और चूडामणिके साथ उसका सिर भी धड़से अलग कर

लिया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण शङ्खचूडको मारकर और वह चमकीली मणि लेकर लौट आये तथा सब गोपियोंके सामने ही उन्होंने बड़े प्रेमसे वह मणि बड़े भाई बलरामजीको दे दी ॥ ३२ ॥

पैंतीसवाँ अध्याय

युगलगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके गौओंको चरानेके लिये प्रतिदिन वनमें चले जानेपर उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चला जाता था। उनका मन श्रीकृष्णका चिन्तन करता रहता और वे वाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं। इस प्रकार वे बड़ी कठिनाईसे अपना दिन बितातीं ॥ १ ॥

गोपियाँ आपसमें कहतीं—अरी सखी! अपने प्रेमीजनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालोंतकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोलको बायीं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उसके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं। पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर लज्जा माळूम होती है; परन्तु क्षणभरमें ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं। उन्हें इस बातकी भी सुधि नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ॥ २-३ ॥

अरी गोपियो! तुम यह आश्चर्यकी बात सुनो ? ये नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्यरेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं। अरी वीर! उनके वक्षःस्थलपर लहराते हुए हारमें हास्यकी किरणें चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर बिजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है। वे जब दुखीजनोंको सुख देनेके लिये, विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं, तब व्रजके झुंड-के-झुंड बैल, गौएँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी! दाँतोंसे चबाया हुआ घासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है, वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं, मानो सो गये हैं या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरीकी तान उनके चित्तको चुरा लेती है ॥ ४-५ ॥

हे सखि! जब वे नन्दके लाड़ले लाल अपने सिरपर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली अलकोंमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अङ्ग-अङ्ग रँग लेते हैं और नये-नये पल्लवोंसे ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालबालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो! नदियोंकी गति भी रुक जाती है। वे चाहती हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूलि हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायँ, परन्तु सखियो! वे भी हमारे-ही-जैसी मन्दभागिनी हैं। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती हैं और जड़तारूप सञ्चारीभावका उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप भुजाओंको काँपते-काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे स्तम्भित हो जाती हैं ॥ ६-७ ॥

अरी वीर! जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्योंके स्वामी भगवान् नारायणकी शक्तियोंका गान

करते हैं, वैसे ही ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्णकी लीलाओंका गान करते रहते हैं। वे अचिन्त्य-ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भारसे डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही हों, वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान् विष्णुकी अभिव्यक्ति सूचित करती हुई-सी प्रेमसे फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधाराएँ उँड़ेलने लगती हैं ॥ ८-९ ॥

अरी सखी ! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखनेयोग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं—ये हमारे मनमोहन । उनके साँवले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है—बस, देखती ही जाओ ! गलेमें घुटनोंतक लटकती हुई वनमाला, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतवाले होकर झुंड-के-झुंड भौंरे बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौंरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्हींके स्वरमें स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं। उस समय सखि ! उस मुनिजनमोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें रहनेवाले सारस-हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं—मानो कोई विहङ्गम-वृत्तिके रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्यकी बात है ! ॥ १०-११ ॥

अरी व्रजदेवियो ! हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं और बलरामजीके साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगत्‌को हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं—बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं—उस समय श्याम मेघ बाँसुरीकी तानके साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है। उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूँ और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा। सखी ! वह इतना ही नहीं करता; वह जब देखता है कि हमारे सखा घनश्यामको घाम लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। अरी वीर ! वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है—नन्ही-नन्ही फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं ॥ १२-१३ ॥

सतीशिरोमणि यशोदाजी ! तुम्हारे सुन्दर कुँवर ग्वालबालोंके साथ खेल खेलनेमें बड़े निपुण हैं। रानीजी! तुम्हारे लाड़ले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। जब वे अपने बिम्बा-फल सदृश लाल-लाल अधरोंपर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी—जो सर्वज्ञ हैं—उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकनेपर भी उनके हाथसे निकलकर वंशी-ध्वनिमें तल्लीन हो ही जाता है, सिर भी झुक जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

अरी वीर ! उनके चरणकमलोंमें ध्वजा, वज्र, कमल, अङ्कुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न हैं। जब व्रजभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराजके समान मन्दगतिसे आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदयमें प्रेमका,

मिलनकी आकांक्षाका आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड वृक्ष हों ! हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपरका वस्त्र उतर गया है या है ॥ १६-१७ ॥

अरी वीर ! उनके गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालासे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार मृगोंकी पत्नी हरिनियाँ भी अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर-गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा छोड़कर गुणसागर नागर नन्दनन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीं एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, लौटनेका नाम भी नहीं लेतीं ॥ १८-१९ ॥

नन्दरानी यशोदाजी ! वास्तवमें तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले हैं। तुम्हारे वे लाड़ले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह-तरहसे हास-परिहास-के द्वारा सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको विचित्र वेषमें सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द-मन्द अनुकूल बहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेकों प्रकारकी भेंटें देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं ॥ २०-२१ ॥

अरी सखी ! श्यामसुन्दर व्रजकी गौओंसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको लौटाकर आते ही होंगे; देखो, सायङ्काल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी ? रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी वन्दना जो करने लगते हैं। अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमालापर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए, सबको आह्लादित करने-वाले चन्द्रमा हम प्रेमी जनोंकी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं ॥ २२-२३ ॥

सखी ! देखो कैसा सौन्दर्य है ! मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गलेमें वनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्तिसे वे अपने कोमल कपोलों-को अलङ्कृत कर रहे हैं। इसीसे मुँहपर अधपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है और रोम-रोमसे विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हें विदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी ! व्रज-विभूषण श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे इस सन्ध्या वेलामें हमारी ओर आ रहे हैं। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभरका असह्य विरह-ताप मिटानेके लिये उदित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति ये हमारे प्यारे श्यामसुन्दर समीप चले आ रहे हैं ॥ २४-२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! बड़भागिनी गोपियोंका मन श्रीकृष्णमें ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण दिनमें गौओंको चरानेके लिये वनमें चले जाते, तब वे उन्हींका चिन्तन करती रहतीं और अपनी-अपनी सखियोंके साथ अलग-अलग उन्हींकी लीलाओंका गान करके उसीमें रम जातीं। इस प्रकार उनके दिन बीत जाते ॥ २६ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका श्रीअक्रूरजीको व्रज भेजना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें प्रवेश कर रहे थे और वहाँ आनन्दोत्सवकी धूम मची हुई थी, उसी समय अरिष्टासुर नामका एक दैत्य बैलका रूप धारण करके आया। उसका ककुद् (कंधेका पुट्ठा) या थुआ और डील-डौल दोनों ही बहुत बड़े-बड़े थे। वह अपने खुरोंको इतने जोरसे पटक रहा था कि उससे धरती काँप रही थी ॥ १ ॥ वह बड़े जोरसे गर्ज रहा था और पैरोंसे धूल उछालता जाता था। पूँछ खड़ी किये हुए था और सींगोंसे चहारदीवारी, खेतोंकी मेंड़ आदि तोड़ता जाता था ॥ २ ॥ बीच-बीचमें बार-बार मूतता और गोबर छोड़ता जाता था। आँखें फाड़कर इधर-उधर दौड़ रहा था। परीक्षित् ! उसके जोरसे हँकड़नेसे—निष्ठुर गर्जनासे भयवश स्त्रियों और गौओंके तीन-चार महीनेके गर्भ स्रवित हो जाते थे और पाँच-छः महीनेके गिर जाते थे। और तो क्या कहूँ, उसके ककुद्को पर्वत समझकर बादल उसपर आकर ठहर जाते थे ॥ ३-४ ॥ परीक्षित् ! उस तीखे सींगवाले बैलको देखकर गोपियाँ और गोप सभी भयभीत हो गये। पशु तो इतने डर गये कि अपने रहनेका स्थान छोड़कर भाग ही गये ॥ ५ ॥ उस समय सभी व्रजवासी 'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! हमें इस भयसे बचाओ' इस प्रकार पुकारते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। भगवान्‌ने देखा कि हमारा गोकुल अत्यन्त भयातुर हो रहा है ॥ ६ ॥ तब उन्होंने 'डरनेकी कोई बात नहीं है'—यह कहकर सबको ढाढ़स बँधाया और फिर वृषासुरको ललकारा, 'अरे मूर्ख ! महादुष्ट ! तू इन गौओं और ग्वालोंको क्यों डरा रहा है ? इससे क्या होगा ॥ ७ ॥ देख, तुझ-जैसे दुरात्मा दुष्टोंके बलका घमंड चूर-चूर कर देनेवाला यह मैं हूँ।' इस प्रकार ललकारकर भगवान्‌ने ताल ठोंकी और उसे क्रोधित करनेके लिये वे अपने एक सखाके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये। भगवान् श्रीकृष्णकी इस चुनौतीसे वह क्रोधके मारे तिलमिला उठा और अपने खुरोंसे बड़े जोरसे धरती खोदता हुआ श्रीकृष्णकी ओर झपटा। उस समय उसकी उठायी हुई पूँछके धक्केसे आकाशके बादल तितर-बितर होने लगे ॥ ८-९ ॥ उसने अपने तीखे सींग आगे कर लिये। लाल-लाल आँखोंसे टकटकी लगाकर श्रीकृष्णकी ओर टेढ़ी नजरसे देखता हुआ वह उनपर इतने वेगसे टूटा, मानो इन्द्रके हाथसे छोड़ा हुआ वज्र हो ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों सींग पकड़ लिये और जैसे एक हाथी अपनेसे भिड़नेवाले दूसरे हाथीको पीछे हटा देता है, वैसे ही उन्होंने उसे अठारह पग पीछे ठेलकर गिरा दिया ॥ ११ ॥ भगवान्‌के इस प्रकार ठेल देनेपर वह फिर तुरंत ही उठ खड़ा हुआ और क्रोधसे अचेत होकर लंबी-लंबी साँस छोड़ता हुआ फिर उनपर झपटा। उस समय उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था ॥ १२ ॥ भगवान्‌ने जब देखा कि वह अब मुझपर प्रहार करना ही चाहता है, तब उन्होंने उसके सींग पकड़ लिये और उसे लात मारकर जमीनपर गिरा दिया और फिर पैरोंसे दबाकर इस प्रकार उसका कचूमर निकाला, जैसे कोई गीला कपड़ा निचोड़ रहा हो। इसके बाद उसीका सींग उखाड़कर उसको खूब पीटा, जिससे वह पड़ा ही रह गया ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! इस प्रकार वह दैत्य मुँहसे खून उगलता और गोबर-मूत करता हुआ पैर पटकने लगा। उसकी आँखें उलट गयीं और उसने बड़े कष्टके साथ प्राण छोड़े। अब देवतालोग भगवान्‌पर फूल बरसा-बरसाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार बैलके रूपमें आनेवाले अरिष्टासुरको मार डाला, तब सभी गोप उनकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने बलरामजीके साथ गोष्ठमें प्रवेश किया और उन्हें देख-देखकर गोपियोंके नयन-मन आनन्दसे भर गये ॥ १५ ॥

परीक्षित् ! भगवान्‌की लीला अत्यन्त अद्भुत है। इधर जब उन्होंने अरिष्टासुरको मार डाला, तब भगवन्मय नारद, जो लोगोंको शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌का दर्शन कराते रहते हैं, कंसके पास पहुँचे। उन्होंने उससे कहा—॥ १६ ॥ 'कंस ! जो कन्या तुम्हारे हाथसे छूटकर

आकाशमें चली गयी, वह तो यशोदाकी पुत्री थी। और व्रजमें जो श्रीकृष्ण हैं, वे देवकीके पुत्र हैं। वहाँ जो बलरामजी हैं, वे रोहिणीके पुत्र हैं। वसुदेवने तुमसे डरकर अपने मित्र नन्दके पास उन दोनोंको रख दिया है। उन्होंने ही तुम्हारे अनुचर दैत्योंका वध किया है।' यह बात सुनते ही कंसकी एक-एक इन्द्रिय क्रोधके मारे काँप उठी ॥ १७-१८ ॥ उसने वसुदेवजीको मार डालनेके लिये तुरंत तीखी तलवार उठा ली, परन्तु नारदजीने रोक दिया। जब कंसको यह मालूम हो गया कि वसुदेवके लड़के ही हमारी मृत्युके कारण हैं, तब उसने देवकी और वसुदेव दोनों ही पति-पत्नीको हथकड़ी और बेड़ीसे जकड़कर फिर जेलमें डाल दिया। जब देवर्षि नारद चले गये, तब कंसने केशीको बुलाया और कहा—'तुम व्रजमें जाकर बलराम और कृष्णको मार डालो।' वह चला गया। इसके बाद कंसने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि पहलवानों, मन्त्रियों और महावतोंको बुलाकर कहा—'वीरवर चाणूर और मुष्टिक! तुमलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो।१९-२२। वसुदेवके दो पुत्र बलराम और कृष्ण नन्दके व्रजमें रहते हैं। उन्हींके हाथसे मेरी मृत्यु बतलायी जाती है॥२३॥ अतः जब वे यहाँ आवें, तब तुमलोग उन्हें कुश्ती लड़ने-लड़ानेके बहाने मार डालना। अब तुमलोग भाँति-भाँतिके मंच बनाओ और उन्हें अखाड़ेके चारों ओर गोल-गोल सजा दो। उनपर बैठकर नगरवासी और देशकी दूसरी प्रजा इस स्वच्छन्द दंगलको देखें॥ २४॥ महावत! तुम बड़े चतुर हो। देखो भाई! तुम दंगलके घेरेके फाटकपर ही अपने कुवलयापीड हाथीको रखना और जब मेरे शत्रु उधरसे निकलें, तब उसीके द्वारा उन्हें मरवा डालना॥ २५॥ इसी चतुर्दशीको विधिपूर्वक धनुषयज्ञ प्रारम्भ कर दो और उसकी सफलताके लिये वरदानी भूतनाथ भैरवको बहुत-से पवित्र पशुओंकी बलि चढ़ाओ' ॥ २६ ॥

परीक्षित्! कंस तो केवल स्वार्थ-साधनका सिद्धान्त जानता था। इसलिये उसने मन्त्री, पहलवान और महावतको इस प्रकार आज्ञा देकर श्रेष्ठ यदुवंशी अक्रूरको बुलवाया और उनका हाथ अपने हाथमें लेकर बोला—॥२७॥ 'अक्रूरजी! आप तो बड़े उदार दानी हैं। सब तरहसे मेरे आदरणीय हैं। आज आप मेरा एक मित्रोचित काम कर दीजिये; क्योंकि भोजवंशी और वृष्णिवंशी यादवोंमें आपसे बढ़कर मेरी भलाई करनेवाला दूसरा कोई नहीं है॥ २८॥ यह काम बहुत बड़ा है, इसलिये मेरे मित्र! मैंने आपका आश्रय लिया है। ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्र समर्थ होनेपर भी विष्णुका आश्रय लेकर अपना स्वार्थ साधता रहता है॥ २९॥ आप नन्दरायके व्रजमें जाइये। वहाँ वसुदेवजीके दो पुत्र हैं। उन्हें इसी रथपर चढ़ाकर यहाँ ले आइये। बस, अब इस काममें देर नहीं होनी चाहिये॥ ३०॥ सुनते हैं, विष्णुके भरोसे जीनेवाले देवताओंने उन दोनोंको मेरी मृत्युका कारण निश्चित किया है। इसलिये आप उन दोनोंको तो ले ही आइये, साथ ही नन्द आदि गोपोंको भी बड़ी-बड़ी भेंटोंके साथ ले आइये॥ ३१॥ यहाँ आनेपर मैं उन्हें अपने कालके समान कुवलयापीड हाथीसे मरवा डालूँगा। यदि वे कदाचित् उस हाथीसे बच गये, तो मैं अपने वज्रके समान मजबूत और फुर्तीले पहलवान मुष्टिक-चाणूर आदिसे उन्हें मरवा डालूँगा॥ ३२॥ उनके मारे जानेपर वसुदेव आदि वृष्णि, भोज और दशार्हवंशी उनके भाई-बन्धु शोकाकुल हो जायँगे। फिर उन्हें मैं अपने हाथों मार डालूँगा॥ ३३॥ मेरा पिता उग्रसेन यों तो बूढ़ा हो गया है, परन्तु अभी उसको राज्यका लोभ बना हुआ है। यह सब कर चुकनेके बाद मैं उसको, उसके भाई देवकको और दूसरे भी जो-जो मुझसे द्वेष करनेवाले हैं—उन सबको तलवारके घाट उतार दूँगा॥ ३४॥ मेरे मित्र अक्रूरजी! फिर तो मैं होऊँगा और आप होंगे, तथा होगा इस पृथ्वीका अकण्टक राज्य। जरासन्ध हमारे बड़े-बूढ़े ससुर हैं और वानरराज द्विविद मेरे प्यारे सखा हैं॥३५॥ शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर—ये तो मुझसे मित्रता करते ही हैं, मेरा मुँह देखते रहते हैं; इन सबकी सहायतासे मैं देवताओंके पक्षपाती नरपतियोंको मारकर पृथ्वीका अकण्टक राज्य भोगूँगा॥ ३६॥ यह सब अपनी गुप्त बातें मैंने आपको बतला दीं। अब आप जल्दी-से-जल्दी बलराम और कृष्णको यहाँ ले आइये। अभी तो वे बच्चे ही हैं। उनको मार डालनेमें क्या लगता है? उनसे केवल इतनी ही बात

कहियेगा कि वे लोग धनुषयज्ञके दर्शन और यदुवंशियों-की राजधानी मथुराकी शोभा देखनेके लिये यहाँ आ जायँ' ॥ ३७ ॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज ! आप अपनी मृत्यु, अपना अरिष्ट दूर करना चाहते हैं, इसलिये आपका ऐसा सोचना ठीक ही है। मनुष्यको चाहिये कि चाहे सफलता हो या असफलता, दोनोंके प्रति समभाव रखकर अपना काम करता जाय। फल तो प्रयत्नसे नहीं, दैवी प्रेरणासे मिलते हैं ॥ ३८ ॥ मनुष्य बड़े-बड़े मनोरथोंके पुल बाँधता रहता है परन्तु वह यह नहीं जानता कि दैवने, प्रारब्धने इसे पहलेसे ही नष्ट कर रक्खा है। यही कारण है कि कभी प्रारब्धके अनुकूल होनेपर प्रयत्न सफल हो जाता है, तो वह हर्षसे फूल उठता है और प्रतिकूल होनेपर विफल हो जाता है तो शोकग्रस्त हो जाता है। फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन तो कर ही रहा हूँ ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कंसने मन्त्रियों और अक्रूरजीको इस प्रकारकी आज्ञा देकर सबको विदा कर दिया। तदनन्तर वह अपने महलमें चला गया और अक्रूरजी अपने घर लौट आये ॥ ४० ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी और व्योमासुरका उद्धार तथा नारदजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कंसने जिस केशी नामक दैत्यको भेजा था, वह बड़े भारी घोड़ेके रूपमें मनके समान वेगसे दौड़ता हुआ व्रजमें आया। वह अपनी टापोंसे धरती खोदता आ रहा था। उसकी गरदनके छितराये हुए बालोंके झटकेसे आकाशके बादल और विमानोंकी भीड़ तितर-बितर हो रही थी। उसकी भयानक हिनहिनाहटसे सब-के-सब भयसे काँप रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें थीं, मुँह क्या था, मानो किसी वृक्षका खोड़र ही हो। उसे देखनेसे ही डर लगता था। बड़ी मोटी गरदन थी। शरीर इतना विशाल था कि मालूम होता था काली-काली बादलकी घटा है। उसकी नीयतमें पाप भरा था। वह श्रीकृष्णको मारकर अपने स्वामी कंसका हित करना चाहता था। उसके चलनेसे भूकम्प होने लगता था ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उसकी हिनहिनाहटसे उनके आश्रित रहनेवाला गोकुल भयभीत हो रहा है और उसकी पूँछके बालोंसे बादल तितर-बितर हो रहे हैं, तथा वह लड़नेके लिये उन्हींको ढूँढ़ भी रहा है—तब वे बढ़कर उसके सामने आ गये और उन्होंने सिंहके समान गरजकर उसे ललकारा ॥ ३ ॥ भगवान्‌को सामने आया देख वह और भी चिढ़ गया तथा उनकी ओर इस प्रकार मुँह फैलाकर दौड़ा, मानो आकाशको पी जायगा। परीक्षित् ! सचमुच केशीका वेग बड़ा प्रचण्ड था। उसपर विजय पाना तो कठिन था ही, उसे पकड़ लेना भी आसान नहीं था। उसने भगवान्‌के पास पहुँचकर दुलत्ती झाड़ी ॥ ४ ॥ परन्तु भगवान्‌ने उससे अपनेको बचा लिया। भला, वह इन्द्रिया-तीतको कैसे मार पाता ! उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों पिछले पैर पकड़ लिये और जैसे गरुड़ साँपको पकड़कर झटक देते हैं, उसी प्रकार क्रोधसे उसे घुमाकर बड़े अपमानके साथ चार सौ हाथकी दूरी-पर फेंक दिया और स्वयं अकड़कर खड़े हो गये ॥ ५ ॥ थोड़ी ही देरके बाद केशी फिर सचेत हो गया और उठ खड़ा हुआ। इसके बाद वह क्रोधसे तिलमिलाकर और मुँह फाड़कर बड़े वेगसे भगवान्‌की ओर झपटा। उसको दौड़ते देख भगवान् मुसकराने लगे। उन्होंने अपना बाँया हाथ उसके मुँहमें इस प्रकार डाल दिया, जैसे सर्प बिना किसी आशङ्काके अपने बिलमें घुस जाता है ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌का अत्यन्त कोमल कर-कमल भी उस समय ऐसा हो गया, मानो तपाया हुआ लोहा हो। उसका स्पर्श होते ही केशीके दाँत टूट-टूटकर गिर गये और जैसे जलोदर रोग उपेक्षा कर देने-पर बहुत बढ़ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णका भुजदण्ड उसके मुँहमें बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ अचिन्त्यशक्ति भगवान् श्रीकृष्णका हाथ उसके मुँहमें इतना बढ़ गया कि उसकी

साँसके भी आने-जानेका मार्ग न रहा। अब तो दम घुटनेके कारण वह पैर पीटने लगा। उसका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया, आँखोंकी पुतली उलट गयी, वह मल-त्याग करने लगा। थोड़ी ही देरमें उसका शरीर निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा उसके प्राण-पखेरू उड़ गये ॥ ८ ॥ उसका निष्प्राण शरीर फूला हुआ होनेके कारण गिरते ही पकी ककड़ीकी तरह फट गया। महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने उसके शरीरसे अपनी भुजा खींच ली। उन्हें इससे कुछ भी आश्चर्य या गर्व नहीं हुआ। बिना प्रयत्नके ही शत्रुका नाश हो गया। देवताओंको अवश्य ही इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे प्रसन्न हो-होकर भगवान्‌के ऊपर पुष्प बरसाने और उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९ ॥

परीक्षित्! देवर्षि नारदजी भगवान्‌के परम प्रेमी और समस्त जीवोंके सच्चे हितैषी हैं। कंसके यहाँसे लौटकर वे अनायास ही अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और एकान्तमें उनसे कहने लगे—॥ १० ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आपका स्वरूप मन और वाणीका विषय नहीं है। आप योगेश्वर हैं। सारे जगत्‌का नियन्त्रण आप ही करते हैं। आप सबके हृदयमें निवास करते हैं और सब-के-सब आपके हृदयमें निवास करते हैं। आप भक्तोंके एकमात्र वाञ्छनीय, यदुवंश-शिरोमणि और हमारे स्वामी हैं ॥ ११ ॥ जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियोंमें व्याप्त रहती है, वैसे एक ही आप समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। आत्माके रूपमें होनेपर भी आप अपनेको छिपाये रखते हैं; क्योंकि आप पञ्च-कोशरूप गुफाओंके भीतर रहते हैं। फिर भी पुरुषोत्तमके रूपमें, सबके नियन्ताके रूपमें और सबके साक्षीके रूपमें आपका अनुभव होता ही है ॥ १२ ॥ प्रभो! आप सबके अधिष्ठान और स्वयं अधिष्ठानरहित हैं। आपने सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी मायासे ही गुणोंकी सृष्टि की और उन गुणोंको ही स्वीकार करके आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। यह सब करनेके लिये आपको अपनेसे अतिरिक्त और किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आप सर्वशक्तिमान् और सत्यसङ्कल्प हैं ॥ १३ ॥ वही आप दैत्य, प्रमथ और राक्षसोंका, जिन्होंने आजकल राजाओंका वेष धारण कर रक्खा है, विनाश करनेके लिये तथा धर्मकी मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ १४ ॥ यह बड़े आनन्दकी बात है कि आपने खेल-ही-खेलमें घोड़ेके रूपमें रहनेवाले इस केशी दैत्यको मार डाला। इसकी हिनहिनाहटसे डरकर देवता-लोग अपना स्वर्ग छोड़कर भाग जाया करते थे ॥ १५ ॥

प्रभो! अब परसों मैं आपके हाथों चाणूर, मुष्टिक, दूसरे पहलवान, कुवलयापीड हाथी और स्वयं कंसको भी मरते देखूँगा ॥ १६ ॥ उसके बाद शङ्खासुर, कालयवन, मुर और नरकासुरका वध देखूँगा। आप स्वर्गसे कल्पवृक्ष उखाड़ लायेंगे और इन्द्रके चीं-चपड़ करनेपर उनको उसका मजा चखायेंगे ॥ १७ ॥ आप अपनी कृपा, वीरता, सौन्दर्य आदिका शुल्क देकर वीर-कन्याओंसे विवाह करेंगे, और जगदीश्वर! आप द्वारकामें रहते हुए नृगको पापसे छुड़ायेंगे ॥ १८ ॥ आप जाम्बवतीके साथ स्यमन्तक मणिको जाम्बवान्‌से ले आयेंगे और अपने धामसे ब्राह्मणके मरे हुए पुत्रोंको ला देंगे ॥ १९ ॥ इसके पश्चात् आप पौण्ड्रक—मिथ्यावासुदेवका वध करेंगे। काशीपुरीको जला देंगे। युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें चेदिराज शिशुपालको और वहाँसे लौटते समय उसके मौसेरे भाई दन्तवक्त्रको नष्ट करेंगे ॥ २० ॥ प्रभो! द्वारकामें निवास करते समय आप और भी बहुत-से पराक्रम प्रकट करेंगे, जिन्हें पृथ्वीके बड़े-बड़े ज्ञानी और प्रतिभाशील पुरुष आगे चलकर गायेंगे। मैं वह सब देखूँगा ॥ २१ ॥ इसके बाद आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कालरूपसे अर्जुनके सारथि बनेंगे और अनेक अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे। यह सब मैं अपनी आँखोंसे देखूँगा ॥ २२ ॥

प्रभो! आप विशुद्ध विज्ञानघन हैं। आपके स्वरूपमें और किसीका अस्तित्व है ही नहीं। आप नित्य-निरन्तर अपने परमानन्दस्वरूपमें स्थित रहते हैं। इसलिये सारे पदार्थ आपको नित्य प्राप्त ही हैं। आपका सङ्कल्प अमोघ है। आपकी चिन्मयी शक्तिके सामने माया और मायासे होनेवाला यह त्रिगुणमय संसार-चक्र नित्यनिवृत्त है—कभी हुआ ही नहीं। ऐसे आप अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्दस्वरूप, निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान्‌की

मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥ आप सबके अन्तर्यामी और नियन्ता हैं । अपने-आपमें स्थित, परम स्वतन्त्र हैं । जगत् और उसके अशेष विशेषों—भाव-अभावरूप सारे भेद-विभेदोंकी कल्पना केवल आपकी मायासे ही हुई है । इस समय आपने अपनी लीला प्रकट करनेके लिये मनुष्यका-सा श्रीविग्रह प्रकट किया है । और आप यदु, वृष्णि तथा सात्वतवंशियोंके शिरोमणि बने हैं । प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ' ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्के परमप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने इस प्रकार भगवान्की स्तुति और प्रणाम किया । भगवान्के दर्शनोंके आह्लादसे नारदजीका रोम-रोम खिल उठा । तदनन्तर उनकी आज्ञा प्राप्त करके वे चले गये ॥ २५ ॥ इधर भगवान् श्रीकृष्ण केशीको लड़ाईमें मारकर फिर अपने प्रेमी एवं प्रसन्नचित्त ग्वालबालोंके साथ पूर्ववत् पशुपालनके काममें लग गये तथा व्रजवासियोंको परमानन्द वितरण करने लगे ॥ २६ ॥ एक समय वे सब ग्वालबाल पहाड़की चोटियोंपर गाय आदि पशुओंको चरा रहे थे तथा कुछ चोर और कुछ रक्षक बनकर छिपने-छिपानेका—लुका-लुकीका खेल खेल रहे थे ॥ २७ ॥ राजन् ! उन लोगोंमेंसे कुछ तो चोर और कुछ रक्षक तथा कुछ भेड़ बन गये थे । इस प्रकार वे निर्भय होकर खेलमें रम गये थे ॥२८॥ उसी समय ग्वालका वेष धारण करके व्योमासुर वहाँ आया । वह मायावियोंके आचार्य मयासुरका पुत्र था और स्वयं भी बड़ा मायावी था । वह खेलमें बहुधा चोर ही बनता और भेड़ बने हुए बहुत-से बालकोंको चुराकर छिपा आता ॥ २९ ॥ वह महान् असुर बार-बार उन्हें ले जाकर एक पहाड़की गुफामें डाल देता और उसका दरवाजा एक बड़ी चट्टानसे ढक देता । इस प्रकार ग्वालबालोंमें केवल चार-पाँच बालक ही बच रहे ॥ ३० ॥ भक्तवत्सल भगवान् उसकी यह करतूत जान गये । जिस समय वह ग्वालबालोंको लिये जा रहा था, उसी समय उन्होंने, जैसे सिंह भेड़ियेको दबोच ले, उसी प्रकार उसे धर दबाया ॥ ३१ ॥ व्योमासुर बड़ा बली था । उसने पहाड़के समान अपना असली रूप प्रकट कर दिया और चाहा कि अपनेको छुड़ा लूँ । परन्तु भगवान्ने उसको इस प्रकार अपने शिकंजेमें फाँस लिया था कि वह अपनेको छुड़ा न सका ॥ ३२ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे जकड़कर उसे भूमिपर गिरा दिया और पशुकी भाँति गला घोंटकर मार डाला । देवतालोग विमानोंपर चढ़कर उनकी यह लीला देख रहे थे ॥ ३३ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णने गुफाके द्वारपर लगे हुए चट्टानोंके पिहान तोड़ डाले और ग्वालबालोंको उस सङ्कटपूर्ण स्थानसे निकाल लिया । बड़े-बड़े देवता और ग्वालबाल उनकी स्तुति करने लगे और भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें चले आये ॥ ३४ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! महामति अक्रूरजी भी वह रात मथुरापुरीमें बिताकर प्रातःकाल होते ही रथपर सवार हुए और नन्दबाबाके गोकुलकी ओर चल दिये ॥ १ ॥ परम भाग्यवान् अक्रूरजी व्रजकी यात्रा करते समय मार्गमें कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी परम प्रेममयी भक्तिसे परिपूर्ण हो गये । वे इस प्रकार सोचने लगे—॥ २ ॥ 'मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है, ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ तपस्या की है अथवा किसी सत्पात्रको ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण दान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मैं भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करूँगा ॥ ३ ॥ मैं बड़ा विषयी हूँ । ऐसी स्थितिमें, बड़े-बड़े सात्त्विक पुरुष भी जिनके गुणोंका ही गान करते रहते हैं, दर्शन नहीं कर पाते—उन भगवान्के दर्शन मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं, ठीक वैसे ही, जैसे शूद्रकुलके बालकके लिये वेदोंका कीर्तन ॥४॥ परन्तु नहीं, मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होंगे ही । क्योंकि जैसे नदीमें बहते हुए तिनके कभी-कभी इस पारसे उस पार लग जाते हैं, वैसे ही

समयके प्रवाहसे भी कहीं कोई इस संसारसागरको पार कर सकता है ॥ ५ ॥ अवश्य ही आज मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये । आज मेरा जन्म सफल हो गया। क्योंकि आज मैं भगवान्‌के उन चरणकमलोंमें साक्षात् नमस्कार करूँगा, जो बड़े-बड़े योगी-यतियोंके भी केवल ध्यानके ही विषय हैं ॥ ६ ॥ अहो ! कंसने तो आज मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा की है । उसी कंसके भेजनेसे मैं इस भूतलपर अवतीर्ण स्वयं भगवान्‌के चरणकमलोंके दर्शन पाऊँगा । जिनके नखमण्डलकी कान्तिका ध्यान करके पहले युगोंके ऋषि-महर्षि इस अज्ञानरूप अपार अन्धकार-राशिको पार कर चुके हैं, स्वयं वही भगवान् तो अवतार ग्रहण करके प्रकट हुए हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता जिन चरणकमलोंकी उपासना करते रहते हैं, स्वयं भगवती लक्ष्मी एक क्षणके लिये भी जिनकी सेवा नहीं छोड़तीं, प्रेमी भक्तोंके साथ बड़े-बड़े ज्ञानी भी जिनकी आराधनामें संलग्न रहते हैं—भगवान्‌के वे ही चरण-कमल गौओंको चरानेके लिये ग्वालबालोंके साथ वन-वनमें विचरते हैं । वे ही सुर-मुनि-वन्दित श्रीचरण गोपियोंके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरसे रँग जाते हैं, चिह्नित हो जाते हैं ॥ ८ ॥ मैं अवश्य-अवश्य उनका दर्शन करूँगा । मरकतमणिके समान सुस्निग्ध कान्तिमान् उनके कोमल कपोल हैं, तोतेकी ठोरके समान नुकीली नासिका है, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान, प्रेमभरी चितवन, कमल-से कोमल रतनारे लोचन और कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं । मैं प्रेम और मुक्तिके परम दानी श्रीमुकुन्दके उस मुखकमलका आज अवश्य दर्शन करूँगा । क्योंकि हरिन मेरी दायीं ओरसे निकल रहे हैं ॥ ९ ॥ भगवान् विष्णु पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे मनुष्यकी-सी लीला कर रहे हैं । वे सम्पूर्ण लावण्यके धाम हैं । सौन्दर्यकी मूर्तिमान् निधि हैं । आज मुझे उन्हींका दर्शन होगा ! अवश्य होगा ! आज मुझे सहजमें ही आँखोंका फल मिल जायगा ॥ १० ॥ भगवान् इस कार्य-कारणरूप जगत्‌के द्रष्टामात्र हैं, और ऐसा होनेपर भी द्रष्टापनका अहङ्कार उन्हें छूतक नहीं गया है । उनकी चिन्मयी शक्तिसे अज्ञानके कारण होनेवाला भेदभ्रम अज्ञानसहित दूरसे ही निरस्त रहता है । वे अपनी योगमायासे ही अपने-आपमें भ्रूविलासमात्रसे प्राण, इन्द्रिय और बुद्धि आदिके सहित अपने स्वरूपभूत जीवोंकी रचना कर लेते हैं और उनके साथ वृन्दावनकी कुञ्जोंमें तथा गोपियोंके घरोंमें तरह-तरहकी लीलाएँ करते हुए प्रतीत होते हैं ॥ ११ ॥ जब समस्त पापोंके नाशक उनके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका सञ्चार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परन्तु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह तो मुर्देको ही शोभित करनेवाली है, होनेपर भी नहींके समान—व्यर्थ है ॥ १२ ॥ जिनके गुणगानका ही ऐसा माहात्म्य है, वे ही भगवान् स्वयं यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हैं । किसलिये? अपनी ही बनायी मर्यादाका पालन करनेवाले श्रेष्ठ देवताओंका कल्याण करनेके लिये । वे ही परम ऐश्वर्यशाली भगवान् आज व्रजमें निवास कर रहे हैं और वहींसे अपने यशका विस्तार कर रहे हैं । उनका यश कितना पवित्र है ! अहो, देवतालोग भी उस सम्पूर्ण मङ्गलमय यशका गान करते रहते हैं ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि आज मैं अवश्य ही उन्हें देखूँगा । वे बड़े-बड़े संतों और लोकपालोंके भी एकमात्र आश्रय हैं । सबके परम गुरु हैं । और उनका रूप-सौन्दर्य तीनों लोकोंके मनको मोह लेनेवाला है । जो नेत्रवाले हैं, उनके लिये वह आनन्द और रसकी चरम सीमा है ! इसीसे स्वयं लक्ष्मीजी भी, जो सौन्दर्यकी अधीश्वरी हैं, उन्हें पानेके लिये ललकती रहती हैं । हाँ, तो मैं उन्हें अवश्य देखूँगा । क्योंकि आज मेरा मङ्गल-प्रभात है, आज मुझे प्रातःकालसे ही अच्छे-अच्छे शकुन दीख रहे हैं ॥ १४ ॥

जब मैं उन्हें देखूँगा तब सर्वश्रेष्ठ पुरुष बलराम तथा श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करनेके लिये तुरंत रथसे कूद पड़ूँगा । उनके चरण पकड़ लूँगा । ओह ! उनके चरण कितने दुर्लभ हैं ! बड़े-बड़े योगी-यति आत्म-

साक्षात्कारके लिये मन-ही-मन अपने हृदयमें उनके चरणोंकी धारणा करते हैं और मैं, मैं तो उन्हें प्रत्यक्ष पा जाऊँगा और लोट जाऊँगा उनपर । उन दोनोंके साथ ही उनके वनवासी सखा एक-एक ग्वालबालके चरणोंकी भी वन्दना करूँगा ॥ १५ ॥ मेरे अहोभाग्य ! जब मैं उनके चरणकमलोंमें गिर जाऊँगा, तब क्या वे अपना करकमल मेरे सिरपर रख देंगे । उनके वे करकमल उन लोगोंको सदाके लिये अभयदान दे चुके हैं, जो कालरूपी साँपके भयसे अत्यन्त घबड़ाकर उनकी शरण चाहते और शरणमें आ जाते हैं ॥ १६ ॥ इन्द्र तथा दैत्यराज बलिने भगवान्‌के उन्हीं करकमलोंमें पूजाकी भेंट समर्पित करके तीनों लोकोंका प्रभुत्व—इन्द्रपद प्राप्त कर लिया । भगवान्‌के उन्हीं करकमलोंने, जिनमेंसे दिव्य कमलकी-सी सुगन्ध आया करती है, अपने स्पर्शसे रासलीलाके समय व्रज-युवतियोंकी सारी थकान मिटा दी थी ॥ १७ ॥ मैं कंसका दूत हूँ । उसीके भेजनेसे उनके पास जा रहा हूँ । कहीं वे मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठेंगे ? राम राम ! वे ऐसा कदापि नहीं समझ सकते । क्योंकि वे निर्विकार हैं, सम हैं, अच्युत हैं, सारे विश्वके साक्षी हैं, सर्वज्ञ हैं, वे चित्तके बाहर भी हैं और भीतर भी । वे क्षेत्रज्ञरूपसे स्थित होकर अन्तःकरणकी एक-एक चेष्टाको अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिके द्वारा देखते रहते हैं ॥ १८ ॥ तब मेरी शङ्का व्यर्थ है । अवश्य ही मैं उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़ा हो जाऊँगा । वे मुसकराते हुए दयाभरी स्निग्ध दृष्टिसे मेरी ओर देखेंगे । उस समय मेरे जन्म-जन्मके समस्त अशुभ संस्कार उसी क्षण नष्ट हो जायँगे और मैं निःशङ्क होकर सदाके लिये परमानन्दमें मग्न हो जाऊँगा ॥ १९ ॥ मैं उनके कुटुम्बका हूँ । और उनका अत्यन्त हित चाहता हूँ । उनके सिवा और कोई मेरा आराध्यदेव भी नहीं है । ऐसी स्थितिमें वे अपनी लंबी-लंबी बाँहोंसे पकड़कर मुझे अवश्य अपने हृदयसे लगा लेंगे । अहा ! उस समय मेरी तो देह पवित्र होगी ही, वह दूसरोंको पवित्र करनेवाली भी बन जायगी और उसी समय—उनका आलिङ्गन प्राप्त होते ही—मेरे कर्ममय बन्धन, जिनके कारण मैं अनादिकालसे भटक रहा हूँ, टूट जायँगे ॥ २० ॥ जब वे मेरा आलिङ्गन कर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़, सिर झुकाकर उनके सामने खड़ा हो जाऊँगा तब वे मुझे 'चाचा अक्रूर !' इस प्रकार कहकर सम्बोधन करेंगे ! क्यों न हो, इसी पवित्र और मधुर यशका विस्तार करनेके लिये ही तो वे लीला कर रहे हैं । तब मेरा जीवन सफल हो जायगा । भगवान् श्रीकृष्णने जिसको अपनाया नहीं, जिसे आदर नहीं दिया—उसके उस जन्मको, जीवनको धिक्कार है ॥ २१ ॥ न तो उन्हें कोई प्रिय है और न तो अप्रिय । न तो उनका कोई आत्मीय सुहृद् है और न तो शत्रु । उनकी उपेक्षाका पात्र भी कोई नहीं है । फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने निकट आकर याचना करनेवालोंको उनकी मुँह-माँगी वस्तु देता है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण भी, जो उन्हें जिस प्रकार भजता है, उसे उसी रूपमें भजते हैं—वे अपने प्रेमी भक्तोंसे ही पूर्ण प्रेम करते हैं ॥ २२ ॥ मैं उनके सामने विनीत भावसे सिर झुकाकर खड़ा हो जाऊँगा और बलरामजी मुसकराते हुए मुझे अपने हृदयसे लगा लेंगे और फिर मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे घरके भीतर ले जायँगे । वहाँ सब प्रकारसे मेरा सत्कार करेंगे । इसके बाद मुझसे पूछेंगे कि 'कंस हमारे घरवालोंके साथ कैसा व्यवहार करता है ?' ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! श्वफल्कनन्दन अक्रूर मार्गमें इसी चिन्तनमें डूबे-डूबे रथसे नन्दगाँव पहुँच गये और सूर्य अस्ताचलपर चले गये ॥ २४ ॥ जिनके चरणकमलकी रजको सभी लोकपाल अपने किरीटोंके द्वारा सेवन करते हैं, अक्रूरजीने गोष्ठमें उनके चरणचिह्नोंके दर्शन किये । कमल, यव, अङ्कुश आदि असाधारण चिह्नोंके द्वारा उनकी पहचान हो रही थी और उनसे पृथ्वीकी शोभा बढ़ रही थी ॥ २५ ॥ उन चरणचिह्नोंके दर्शन करते ही अक्रूरजीके हृदयमें इतना आह्लाद हुआ कि वे अपनेको सँभाल न सके, विह्वल हो गये । प्रेमके आवेगसे उनका रोम-रोम खिल उठा, नेत्रोंमें आँसू भर आये और टपटप टपकने लगे । वे रथसे कूदकर उस धूलिमें लोटने लगे और कहने लगे—'अहो ! यह हमारे प्रभुके चरणोंकी रज है' ॥ २६ ॥ परीक्षित् ! कंसके सन्देशसे लेकर यहाँतक अक्रूरजीके चित्तकी जैसी अवस्था रही है, यही जीवोंके देह धारण करनेका परम लाभ है । इसलिये जीवमात्रका यही परम कर्तव्य है कि दम्भ, भय और शोक त्यागकर भगवान्‌की मूर्ति (प्रतिमा, भक्त आदि)

चिह्न, लीला, स्थान तथा गुणोंके दर्शन-श्रवण आदिके द्वारा ऐसा ही भाव सम्पादन करें ॥ २७ ॥

व्रजमें पहुँचकर अक्रूरजीने श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयोंको गाय दुहनेके स्थानमें विराजमान देखा। श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये हुए थे और गौर-सुन्दर बलराम नीलाम्बर। उनके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे ॥ २८ ॥ उन्होंने अभी किशोर-अवस्थामें प्रवेश ही किया था। वे दोनों गौर-श्याम निखिल सौन्दर्यकी खान थे। घुटनोंका स्पर्श करनेवाली लंबी-लंबी भुजाएँ, सुन्दर वदन, परम मनोहर और गजशावकके समान ललित चाल थी ॥ २९ ॥ उनके चरणोंमें ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमलके चिह्न थे। जब वे चलते थे, उनसे चिह्नित होकर पृथ्वी शोभायमान हो जाती थी। उनकी मन्द-मन्द मुसकान और चितवन ऐसी थी, मानो दया बरस रही हो। वे उदारताकी तो मानो मूर्ति ही थे ॥ ३० ॥ उनकी एक-एक लीला उदारता और सुन्दर कलासे भरी थी। गलेमें वनमाला और मणियोंके हार जगमगा रहे थे। उन्होंने अभी-अभी स्नान करके निर्मल वस्त्र पहने थे और शरीरमें पवित्र अङ्गराग तथा चन्दनका लेप किया था ॥ ३१ ॥ परीक्षित्! अक्रूरने देखा कि जगत्के आदिकारण, जगत्के परमपति, पुरुषोत्तम ही संसारकी रक्षाके लिये अपने सम्पूर्ण अंशोंसे बलरामजी और श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी अङ्गकान्तिसे दिशाओंका अन्धकार दूर कर रहे हैं। वे ऐसे भले मालूम होते थे, जैसे सोनेसे मढ़े हुए मरकतमणि और चाँदीके पर्वत जगमगा रहे हों ॥ ३२-३३ ॥ उन्हें देखते ही अक्रूरजी प्रेमावेगसे अधीर होकर रथसे कूद पड़े और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामके चरणोंके पास साष्टाङ्ग लोट गये ॥ ३४ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌के दर्शनसे उन्हें इतना आह्लाद हुआ कि उनके नेत्र आँसूसे सर्वथा भर गये। सारे शरीरमें पुलकावली छा गयी। उत्कण्ठा-वश गला भर आनेके कारण वे अपना नाम भी न बतला सके ॥ ३५ ॥ शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनके मनका भाव जान गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे चक्राङ्कित हाथोंके द्वारा उन्हें खींचकर उठाया और हृदयसे लगा लिया ॥ ३६ ॥ इसके बाद जब वे परम मनस्वी श्रीबलरामजीके सामने विनीत भावसे खड़े हो गये, तब उन्होंने उनको गले लगा लिया और उनका एक हाथ श्रीकृष्णने पकड़ा तथा दूसरा बलरामजीने। दोनों भाई उन्हें घर ले गये ॥ ३७ ॥

घर ले जाकर भगवान्‌ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। कुशल-मङ्गल पूछकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया और विधिपूर्वक उनके पाँव पखारकर मधुपर्क (शहद मिला हुआ दही) आदि पूजाकी सामग्री भेंट की ॥ ३८ ॥ इसके बाद भगवान्‌ने अतिथि अक्रूरजीको एक गाय दी और पैर दबाकर उनकी थकावट दूर की तथा बड़े आदर एवं श्रद्धासे उन्हें पवित्र और अनेक गुणोंसे युक्त अन्नका भोजन कराया ॥३९॥ जब वे भोजन कर चुके, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् बलरामजीने बड़े प्रेमसे मुखवास (पान-इलायची आदि) और सुगन्धित माला आदि देकर उन्हें अत्यन्त आनन्दित किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार हो चुकनेपर नन्दरायजीने उनके पास आकर पूछा—'अक्रूरजी! आपलोग निर्दयी कंसके जीते-जी किस प्रकार अपने दिन काटते हैं? अरे! उसके रहते आप लोगोंकी वही दशा है, जो कसाईद्वारा पाली हुई भेड़ोंकी होती है॥४१॥ जिस इन्द्रियाराम पापीने अपनी बिलखती हुई बहनके नन्हे-नन्हे बच्चोंको मार डाला। आपलोग उसकी प्रजा हैं। फिर आप सुखी हैं, यह अनुमान तो हम कर ही कैसे सकते हैं? ॥४२॥ अक्रूरजीने नन्दबाबासे पहले ही कुशल-मङ्गल पूछ लिया था। जब इस प्रकार नन्दबाबाने मधुर वाणीसे अक्रूरजीसे कुशल-मङ्गल पूछा और उनका सम्मान किया तब अक्रूरजीके शरीरमें रास्ता चलनेकी जो कुछ थकावट थी, वह सब दूर हो गयी ॥ ४३ ॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने अक्रूरजीका भलीभाँति सम्मान किया। वे आराम-से पलँगपर बैठ गये। उन्होंने मार्गमें जो-जो अभिलाषा की थीं, वे सब पूरी हो गयीं ॥१॥ परीक्षित्! लक्ष्मी

आश्रयस्थान भगवान् श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्राप्त नहीं हो सकती ? फिर भी भगवान्‌के परमप्रेमी भक्तजन किसी भी वस्तुकी कामना नहीं करते ॥ २ ॥ देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने सायङ्कालका भोजन करनेके बाद अक्रूरजीके पास जाकर अपने स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ कंसके व्यवहार और उसके अगले कार्यक्रमके सम्बन्धमें पूछा ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—चाचाजी ! आपका हृदय बड़ा शुद्ध है। आपको यात्रामें कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? स्वागत है। मैं आपकी मङ्गलकामना करता हूँ। मथुराके हमारे आत्मीय सुहृद्, कुटुम्बी तथा अन्य सम्बन्धी सब कुशल और स्वस्थ हैं न ? ॥४॥ हमारा नाममात्रका मामा कंस तो हमारे कुलके लिये एक भयङ्कर व्याधि है। जबतक उसकी बढ़ती हो रही है, तबतक हम अपने वंशवालों और उनके बाल-बच्चोंका कुशल-मङ्गल क्या पूछें ॥ ५ ॥ चाचाजी ! हमारे लिये यह बड़े खेदकी बात है कि मेरे ही कारण मेरे निरपराध और सदाचारी माता-पिताको अनेकों प्रकारकी यातनाएँ झेलनी पड़ीं—तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़े। और तो क्या कहूँ, मेरे ही कारण उन्हें हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर जेलमें डाल दिया गया तथा मेरे ही कारण उनके बच्चे भी मार डाले गये ॥ ६ ॥ मैं बहुत दिनोंसे चाहता था कि आपलोगोंमेंसे किसी-न-किसीका दर्शन हो। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मेरी वह अभिलाषा पूरी हो गयी। सौम्य स्वभाव चाचाजी ! अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि आपका शुभागमन किस निमित्तसे हुआ ? ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब उन्होंने बतलाया कि 'कंसने तो सभी यदुवंशियोंसे घोर वैर ठान रक्खा है। वह वसुदेवजीको मार डालनेका भी उद्यम कर चुका है' ॥ ८ ॥ अक्रूरजीने कंसका सन्देश और जिस उद्देश्यसे उसने स्वयं अक्रूरजीको दूत बनाकर भेजा था और नारदजीने जिस प्रकार वसुदेवके घर श्रीकृष्णके जन्म लेनेका वृत्तान्त उसको बता दिया था, सो सब कह सुनाया ॥ ९ ॥ अक्रूरजीकी यह बात सुनकर विपक्षी शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी हँसने लगे और इसके बाद उन्होंने अपने पिता नन्दजीको कंसकी आज्ञा सुना दी ॥ १० ॥ तब नन्दबाबाने सब गोपोंको आज्ञा दी कि 'सारा गोरस एकत्र करो। भेंटकी सामग्री ले लो और छकड़े जोड़ो ॥ ११ ॥ कल प्रातःकाल ही हम सब मथुराकी यात्रा करेंगे और वहाँ चलकर राजा कंसको गोरस देंगे। वहाँ एक बहुत बड़ा उत्सव हो रहा है। उसे देखनेके लिये देशकी सारी प्रजा इकट्ठी हो रही है। हमलोग भी उसे देखेंगे।' नन्दबाबाने गाँवके कोतवालके द्वारा यह घोषणा सारे व्रजमें करवा दी ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! जब गोपियोंने सुना कि हमारे मनमोहन श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर बलरामजीको मथुरा ले जानेके लिये अक्रूरजी व्रजमें आये हैं, तब उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। वे व्याकुल हो गयीं ॥ १३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके मथुरा जानेकी बात सुनते ही बहुतोंके हृदयमें ऐसी जलन हुई कि गरम साँस चलने लगी, मुखकमल कुम्हला गया। और बहुतोंकी ऐसी दशा हुई—वे इस प्रकार अचेत हो गयीं कि उन्हें खिसकी हुई ओढ़नी, गिरते हुए कंगन और ढीले हुए जूड़ोंतकका पता न रहा ॥ १४ ॥ भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान आते ही बहुत-सी गोपियोंकी चित्तवृत्तियाँ सर्वथा निवृत्त हो गयीं, मानो वे समाधिस्थ—आत्मामें स्थित हो गयी हों, और उन्हें अपने शरीर और संसारका कुछ ध्यान ही न रहा ॥ १५ ॥ बहुत-सी गोपियोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णका प्रेम, उनकी मन्द-मन्द मुसकान और हृदयको स्पर्श करनेवाली विचित्र पदोंसे युक्त मधुर वाणी नाचने लगी। वे उसमें तल्लीन हो गयीं। मोहित हो गयीं ॥ १६ ॥ गोपियाँ मन-ही-मन भगवान्‌की लटकीली चाल, भाव-भङ्गी, प्रेमभरी मुसकान, चितवन, सारे शोकोंको मिटा देनेवाली ठिठोलियाँ तथा उदारताभरी लीलाओंका चिन्तन करने लगीं और उनके विरहके भयसे कातर हो गयीं। उनका हृदय, उनका जीवन—सब कुछ भगवान्‌के प्रति समर्पित था। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। वे झुंड-की-झुंड इकट्ठी होकर इस प्रकार कहने लगीं ॥ १७-१८ ॥

गोपियोंने कहा—धन्य हो विधाता ! तुम सब कुछ

विधान तो करते हो, परन्तु तुम्हारे हृदयमें दयाका लेश भी नहीं है। पहले तो तुम सौहार्द और प्रेमसे जगत्के प्राणियोंको एक-दूसरेके साथ जोड़ देते हो, उन्हें आपसमें एक कर देते हो, मिला देते हो; परन्तु अभी उनकी आशा-अभिलाषाएँ पूरी भी नहीं हो पातीं, वे तृप्त भी नहीं हो पाते कि तुम उन्हें व्यर्थ ही अलग-अलग कर देते हो! सच है, तुम्हारा यह खिलवाड़ बच्चोंके खेलकी तरह व्यर्थ ही है॥ १९॥ यह कितने दुःखकी बात है! विधाता! तुमने पहले हमें प्रेमका वितरण करनेवाले श्यामसुन्दरका मुखकमल दिखलाया। कितना सुन्दर है वह! काले-काले घुँघराले बाल कपोलोंपर झलक रहे हैं। मरकतमणि-से चिकने सुस्निग्ध कपोल और तोतेकी चोंच-सी सुन्दर नासिका तथा अधरोंपर मन्द-मन्द मुसकानकी सुन्दर रेखा, जो सारे शोकोंको तत्क्षण भगा देती है। विधना! तुमने एक बार तो हमें वह परम सुन्दर मुखकमल दिखाया और अब उसे ही हमारी आँखोंसे ओझल कर रहे हो! सचमुच तुम्हारी यह करतूत बहुत ही अनुचित है॥ २०॥ हम जानती हैं, इसमें अक्रूरका दोष नहीं है; यह तो साफ तुम्हारी क्रूरता है। वास्तवमें तुम्हीं अक्रूरके नामसे यहाँ आये हो और अपनी ही दी हुई आँखें तुम हमसे मूर्खकी भाँति छीन रहे हो। इनके द्वारा हम श्यामसुन्दरके एक-एक अङ्गमें तुम्हारी सृष्टिका सम्पूर्ण सौन्दर्य निहारती रहती थीं। विधाता! तुम्हें ऐसा नहीं चाहिये॥ २१॥

अहो! नन्दनन्दन श्यामसुन्दरको भी नये-नये लोगोंसे नेह लगानेकी चाट पड़ गयी है। देखो तो सही—इनका सौहार्द, इनका प्रेम एक क्षणमें ही कहाँ चला गया? हम तो अपने घर-द्वार, स्वजन-सम्बन्धी, पति-पुत्र आदिको छोड़कर इनकी दासी बनीं और इन्हींके लिये आज हमारा हृदय शोकातुर हो रहा है, परन्तु ये ऐसे हैं कि हमारी ओर देखतेतक नहीं॥ २२॥ आजकी रातका प्रातःकाल मथुराकी स्त्रियोंके लिये निश्चय ही बड़ा मङ्गलमय होगा। आज उनकी बहुत दिनोंकी अभिलाषाएँ अवश्य ही पूरी हो जायँगी। जब हमारे व्रजराज श्यामसुन्दर अपनी तिरछी चितवन और मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त मुखारविन्दका मादक मधु वितरण करते हुए मथुरापुरीमें प्रवेश करेंगे, तब वे उसका पान करके धन्य-धन्य हो जायँगी॥ २३॥ यद्यपि हमारे श्यामसुन्दर धैर्यवान् होनेके साथ ही नन्दबाबा आदि गुरुजनोंकी आज्ञामें रहते हैं, तथापि मथुराकी युवतियाँ अपने मधुके समान मधुर वचनोंसे इनका चित्त बरबस अपनी ओर खींच लेंगी और ये उनकी सलज्ज मुसकान तथा विलासपूर्ण भाव-भंगीसे वहीं रम जायँगे। फिर हम गँवार ग्वालिनोंके पास ये लौटकर क्यों आने लगे॥ २४॥ धन्य है आज हमारे श्यामसुन्दरका दर्शन करके मथुराके दाशार्ह, भोज, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंके नेत्र अवश्य ही परमानन्दका साक्षात्कार करेंगे। आज उनके यहाँ महान् उत्सव होगा। साथ ही जो लोग यहाँसे मथुरा जाते हुए रमारमण गुणसागर नटनागर देवकीनन्दन श्यामसुन्दरका मार्गमें दर्शन करेंगे, वे भी निहाल हो जायँगे॥ २५॥

देखो सखी! यह अक्रूर कितना निठुर, कितना हृदयहीन है। इधर तो हम गोपियाँ इतनी दुःखित हो रही हैं और यह हमारे परम प्रियतम नन्ददुलारे श्यामसुन्दरको हमारी आँखोंसे ओझल करके बहुत दूर ले जाना चाहता है और दो बात कहकर हमें धीरज भी नहीं बँधाता, आश्वासन भी नहीं देता। सचमुच ऐसे अत्यन्त क्रूर पुरुषका 'अक्रूर' नाम नहीं होना चाहिये था॥ २६॥ सखी! हमारे ये श्यामसुन्दर भी तो कम निठुर नहीं हैं। देखो-देखो, वे भी रथपर बैठ गये। और मतवाले गोपगण छकड़ोंद्वारा उनके साथ जानेके लिये कितनी जल्दी मचा रहे हैं। सचमुच ये मूर्ख हैं। और हमारे बड़े-बूढ़े! उन्होंने तो इन लोगोंकी जल्दबाजी देखकर उपेक्षा कर दी है कि 'जाओ जो मनमें आवे, करो।' अब हम क्या करें? आज विधाता सर्वथा हमारे प्रतिकूल चेष्टा कर रहा है॥ २७॥ चलो, हम स्वयं ही चलकर अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको रोकेंगी; कुलके बड़े-बूढ़े और बन्धुजन हमारा क्या कर लेंगे? अरी सखी! हम आधे क्षणके लिये भी प्राणवल्लभ नन्दनन्दनका सङ्ग छोड़नेमें असमर्थ थीं। आज हमारे दुर्भाग्यने हमारे सामने उनका वियोग उपस्थित करके हमारे चित्तको विनष्ट एवं व्याकुल कर

सरोवरमें अक्रूरजीको भगवद्दर्शन

[पृष्ठ ६९१

दिया है ॥ २८ ॥ सखियो ! जिनकी प्रेमभरी मनोहर मुसकान, रहस्यकी मीठी-मीठी बातें, विलासपूर्ण चितवन और प्रेमालिङ्गनसे हमने रासलीलाकी वे रात्रियाँ—जो बहुत विशाल थीं—एक क्षणके समान बिता दी थीं । अब भला, उनके बिना हम उन्हींकी दी हुई अपार विरहव्यथाका पार कैसे पावेंगी ॥ २९ ॥ एक दिनकी नहीं, प्रतिदिनकी बात है, सायङ्कालमें प्रतिदिन वे ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ वनसे गौएँ चराकर लौटते हैं । उनकी काली-काली घुँघराली अलकें और गलेके पुष्पहार गौओंके खुरकी रजसे ढके रहते हैं । वे बाँसुरी बजाते हुए अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे देख-देखकर हमारे हृदयको बेध डालते हैं । उनके बिना भला, हम कैसे जी सकेंगी ? ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गोपियाँ वाणीसे तो इस प्रकार कह रही थीं; परन्तु उनका एक-एक मनोभाव भगवान् श्रीकृष्णका स्पर्श, उनका आलिङ्गन कर रहा था । वे विरहकी सम्भावनासे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और लाज छोड़कर 'हे गोविन्द ! हे दामोदर ! हे माधव !'—इस प्रकार ऊँची आवाजसे पुकार-पुकारकर सुललित स्वरसे रोने लगीं ॥ ३१ ॥ गोपियाँ इस प्रकार रो रही थीं ! रोते-रोते सारी रात बीत गयी, सूर्योदय हुआ । अक्रूरजी सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर रथपर सवार हुए और उसे हाँक ले चले ॥ ३२ ॥ नन्दबाबा आदि गोपोंने भी दूध, दही, मक्खन, घी आदिसे भरे मटके और भेंटकी बहुत-सी सामग्रियाँ ले लीं तथा वे छकड़ोंपर चढ़कर उनके पीछे-पीछे चले ॥ ३३ ॥ इसी समय अनुरागके रंगमें रँगी हुई गोपियाँ अपने प्राणप्यारे श्रीकृष्णके पास गयीं और उनकी चितवन, मुसकान आदि निरखकर कुछ-कुछ सुखी हुईं । अब वे अपने प्रियतम श्यामसुन्दरसे कुछ सन्देश पानेकी आकाङ्क्षासे वहीं खड़ी हो गयीं ॥ ३४ ॥ यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे मथुरा जानेसे गोपियोंके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है, वे सन्तप्त हो रही हैं, तब उन्होंने दूतके द्वारा 'मैं आऊँगा' यह प्रेम-सन्देश भेजकर उन्हें धीरज बँधाया ॥ ३५ ॥ गोपियोंको जबतक रथकी ध्वजा और पहियोंसे उड़ती हुई धूल दीखती रही, तबतक उनके शरीर चित्रलिखित-से वहीं ज्यों-के-त्यों खड़े रहे । परन्तु उन्होंने अपना चित्त तो मनमोहन प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके साथ ही भेज दिया था ॥ ३६ ॥ अभी उनके मनमें आशा थी कि शायद श्रीकृष्ण कुछ दूर जाकर लौट आयें ! परन्तु जब नहीं लौटे, तब वे निराश हो गयीं और अपने-अपने घर चली आयीं । परीक्षित् ! वे रात-दिन अपने प्यारे श्यामसुन्दरकी लीलाओंका गान करती रहतीं और इस प्रकार अपने शोकसन्तापको हल्का करतीं ॥ ३७ ॥

परीक्षित् ! इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामजी और अक्रूरजीके साथ वायुके समान वेगवाले रथपर सवार होकर पापनाशिनी यमुनाजीके किनारे जा पहुँचे ॥ ३८ ॥ वहाँ उन लोगोंने हाथ-मुँह धोकर यमुनाजीका मरकतमणिके समान नीला और अमृतके समान मीठा जल पिया । इसके बाद बलरामजीके साथ भगवान् वृक्षोंके झुरमुटमें खड़े रथपर सवार हो गये ॥ ३९ ॥ अक्रूरजीने दोनों भाइयोंको रथपर बैठाकर उनसे आज्ञा ली और यमुनाजीके कुण्ड (अनन्त-तीर्थ या ब्रह्महृद) पर आकर वे विधिपूर्वक स्नान करने लगे ॥ ४० ॥ उस कुण्डमें स्नान करनेके बाद वे जलमें डुबकी लगाकर गायत्रीका जप करने लगे । उसी समय जलके भीतर अक्रूरजीने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई एक साथ ही बैठे हुए हैं ॥ ४१ ॥ अब उनके मनमें यह शङ्का हुई कि 'वसुदेवजीके पुत्रोंको तो मैं रथपर बैठा आया हूँ, अब वे यहाँ जलमें कैसे आ गये ? जब यहाँ हैं तो शायद रथपर नहीं होंगे ।' ऐसा सोचकर उन्होंने सिर बाहर निकालकर देखा ॥ ४२ ॥ वे उस रथपर भी पूर्ववत् बैठे हुए थे । उन्होंने यह सोचकर कि मैंने उन्हें जो जलमें देखा था, वह भ्रम ही रहा होगा, फिर डुबकी लगायी ॥ ४३ ॥ परन्तु फिर उन्होंने वहाँ भी देखा कि साक्षात् अनन्तदेव श्रीशेषजी विराजमान हैं और सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं असुर अपने-अपने सिर झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ शेषजीके हजार सिर हैं और प्रत्येक

फणपर मुकुट सुशोभित हैं। कमलनालके समान उज्ज्वल शरीरपर नीलाम्बर धारण किये हुए हैं और उनकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो सहस्र शिखरोंसे युक्त श्वेतगिरि कैलास शोभायमान हो ॥ ४५ ॥ अक्रूरजीने देखा कि शेषजीकी गोदमें श्याम मेघके समान घनश्याम विराजमान हो रहे हैं। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं। बड़ी ही शान्त चतुर्भुज मूर्ति है और कमलके रक्तदलके समान रतनारे नेत्र हैं ॥४६॥ उनका वदन बड़ा ही मनोहर और प्रसन्नताका सदन है। उनका मधुर हास्य और चारु चितवन चित्तको चुराये लेती है। भौंहें सुन्दर और नासिका तनिक ऊँची तथा बड़ी ही सुघड़ है। सुन्दर कान, कपोल और लाल-लाल अधरोंकी छटा निराली ही है ॥ ४७ ॥ बाँहें घुटनोंतक लंबी और हृष्ट-पुष्ट हैं। कंधे ऊँचे और वक्षःस्थल लक्ष्मीजीका आश्रयस्थान है। शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाला सुडौल गला, गहरी नाभि और त्रिवलीयुक्त उदर पीपलके पत्तेके समान शोभायमान है ॥ ४८ ॥ स्थूल कटिप्रदेश और नितम्ब, हाथीकी सूँडके समान जाँघें, सुन्दर घुटने एवं पिंडलियाँ हैं। एड़ीके ऊपरकी गाँठें उभरी हुई हैं और लाल-लाल नखोंसे दिव्य ज्योतिर्मय किरणें फैल रही हैं। चरण-कमलकी अंगुलियाँ और अंगूठे नयी और कोमल पँखुड़ियोंके समान सुशोभित हैं ॥ ४९-५० ॥ अत्यन्त बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट, कड़े, बाजूबंद, करधनी, हार, नूपुर और कुण्डलोंसे तथा यज्ञोपवीतसे वह दिव्य मूर्ति अलङ्कृत हो रही है। एक हाथमें पद्म शोभा पा रहा है और शेष तीन हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, गलेमें कौस्तुभ-मणि और वनमाला लटक रही हैं ॥ ५१-५२ ॥ नन्द-सुनन्द आदि पार्षद अपने 'स्वामी', सनकादि परमर्षि 'परब्रह्म', ब्रह्मा, महादेव आदि देवता 'सर्वेश्वर', मरीचि आदि नौ ब्राह्मण 'प्रजापति' और प्रह्लाद-नारद आदि भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त तथा आठों वसु अपने परम प्रियतम 'भगवान्' समझकर भिन्न-भिन्न भावोंके अनुसार निर्दोष वेदवाणीसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं ॥ ५३-५४ ॥ साथ ही लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य—ये षडैश्वर्यरूप शक्तियाँ), इला (सन्धिनीरूप पृथ्वी-शक्ति), ऊर्जा (लीलाशक्ति), विद्या-अविद्या (जीवोंके मोक्ष और बन्धनमें कारणरूपा बहिरङ्ग शक्ति), ह्लादिनी, संवित् (अन्तरङ्गा शक्ति) और माया आदि शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा कर रही हैं ॥ ५५ ॥

भगवान्‌की यह झाँकी निरखकर अक्रूरजीका हृदय परमानन्दसे लबालब भर गया। उन्हें परम भक्ति प्राप्त हो गयी। सारा शरीर हर्षावेशसे पुलकित हो गया। प्रेमभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्र आँसूसे भर गये ॥ ५६ ॥ अब अक्रूरजीने अपना साहस बटोरकर भगवान्‌के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और वे उसके बाद हाथ जोड़कर बड़ी सावधानीसे धीरे-धीरे गद्गद स्वरसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

अक्रूरजी बोले—प्रभो ! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्‌की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृदेवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं ॥ २ ॥ प्रकृति और प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले समस्त पदार्थ 'इदंवृत्ति' के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, इसलिये ये सब अनात्मा हैं। अनात्मा

होनेके कारण जड हैं और इसलिये आपका स्वरूप नहीं जान सकते। क्योंकि आप तो स्वयं आत्मा ही ठहरे। ब्रह्माजी अवश्य ही आपके स्वरूप हैं। परन्तु वे प्रकृतिके गुण रजस्से युक्त हैं, इसलिये वे भी आपकी प्रकृतिका और उसके गुणोंसे परेका स्वरूप नहीं जानते ॥ ३ ॥ साधु योगी स्वयं अपने अन्तःकरणमें स्थित 'अन्तर्यामी' के रूपमें; समस्त भूत-भौतिक पदार्थोंमें व्याप्त 'परमात्माके' रूपमें और सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डलमें स्थित 'इष्टदेवता'के रूपमें तथा उनके साक्षी महापुरुष एवं नियन्ता ईश्वरके रूपमें साक्षात् आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ४ ॥ बहुत-से कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्ममार्गका उपदेश करनेवाली त्रयीविद्याके द्वारा, जो आपके इन्द्र, अग्नि आदि अनेक देववाचक नाम तथा वज्रहस्त, सप्तार्चि आदि अनेक रूप बतलाती है, बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं और उनसे आपकी ही उपासना करते हैं ॥ ५ ॥ बहुत-से ज्ञानी अपने समस्त कर्मोंका संन्यास कर देते हैं और शान्तभावमें स्थित हो जाते हैं। वे इस प्रकार ज्ञानयज्ञके द्वारा ज्ञानस्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं ॥ ६ ॥ और भी बहुत-से संस्कारसम्पन्न अथवा शुद्धचित्त वैष्णव-जन आपकी बतलायी हुई पाञ्चरात्र आदि विधियोंसे तन्मय होकर आपके चतुर्व्यूह आदि अनेक और नारायणरूप एक स्वरूपकी पूजा करते हैं ॥ ७ ॥ भगवन्! दूसरे लोग शिवजीके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे, जिसके आचार्य-भेदसे अनेक अवान्तर-भेद भी हैं, शिवस्वरूप आपकी ही पूजा करते हैं ॥ ८ ॥ स्वामिन्! जो लोग दूसरे देवताओंकी भक्ति करते हैं और उन्हें आपसे भिन्न समझते हैं, वे सब भी वास्तवमें आपकी ही आराधना करते हैं; क्योंकि आप ही समस्त देवताओंके रूपमें हैं और सर्वेश्वर भी हैं ॥ ९ ॥ प्रभो! जैसे पर्वतोंसे सब ओर बहुत-सी नदियाँ निकलती हैं और वर्षाके जलसे भरकर घूमती-घामती समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, वैसे ही सभी प्रकारके उपासना-मार्ग घूम-घामकर देर-सवेर आपके ही पास पहुँच जाते हैं ॥ १० ॥

प्रभो! आपकी प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जीव प्राकृत हैं और जैसे वस्त्र सूत्रोंसे ओतप्रोत रहते हैं, वैसे ही ये सब प्रकृतिके उन गुणोंसे ही ओतप्रोत हैं ॥ ११ ॥ परन्तु आप सर्वस्वरूप होनेपर भी उनके साथ लिप्त नहीं हैं। आपकी दृष्टि निर्लिप्त है, क्योंकि आप समस्त वृत्तियोंके साक्षी हैं। यह गुणोंके प्रवाहसे होनेवाली सृष्टि अज्ञानमूलक है और वह देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि समस्त योनियोंमें व्याप्त है; परन्तु आप उससे सर्वथा अलग हैं। इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है। पृथ्वी चरण है। सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। आकाश नाभि है, दिशाएँ कान हैं। स्वर्ग सिर है। देवेन्द्रगण भुजाएँ हैं। समुद्र कोख है और यह वायु ही आपकी प्राणशक्तिके रूपमें उपासनाके लिये कल्पित हुई है।१३। वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है ॥ १४ ॥ अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से जलचर जीव और गूलर-के फलोंमें नन्हे-नन्हे कीट रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं ॥ १५ ॥ प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर जो-जो रूप धारण करते हैं, वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो-बहा देते हैं और फिर सब लोग बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गान करते हैं ॥ १६ ॥ प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥ आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचल-को धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार॥१८॥ प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भेदभय मिटानेवाले प्रभो!

आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ।१९। धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंके वनका छेदन कर देनेके लिये आपने भृगुपति परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥ वैष्णवजनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥ दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

भगवन्! ये सब-के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके मार्गोंमें भटक रहे हैं ॥ २३ ॥ मेरे स्वामी! इसी प्रकार मैं भी स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान झूठे देह-गेह, पत्नी-पुत्र और धन-स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमें फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ ॥ २४ ॥ मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो! मैंने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया। भला इस उलटी बुद्धिकी भी कोई सीमा है! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं ॥ २५ ॥ जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिये तालाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ ॥२६॥ मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ। इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मनको मथ-मथकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती हैं। इसीलिये इस मनको मैं रोक नहीं पाता ॥ २७ ॥ इस प्रकार भटकता हुआ मैं आपके उन चरणकमलोंकी छत्रछायामें आ पहुँचा हूँ, जो दुष्टोंके लिये दुर्लभ हैं। मेरे स्वामी! इसे भी मैं आपका कृपाप्रसाद ही मानता हूँ। क्योंकि पद्मनाभ! जब जीवके संसारसे मुक्त होनेका समय आता है, तब सत्पुरुषोंकी उपासनासे चित्तवृत्ति आपमें लगती है ॥ २८ ॥ प्रभो! आप केवल विज्ञान-स्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख-दुःख आदिके निमित्त काल, कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥ प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णने जलमें अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही, जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप

दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे ॥ १ ॥ जब अक्रूरजीने देखा कि भगवान्‌का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये । उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे ॥ २ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—'चाचाजी ! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या ? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है' ॥ ३ ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो ! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत्‌में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं । क्योंकि आप विश्वरूप हैं । जब मैं आपको ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो ॥ ४ ॥ भगवन् ! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-की-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ ! फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी ?' ॥ ५ ॥ गान्दिनीनन्दन अक्रूरजीने यह कहकर रथ हाँक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिलनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते । वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते॥७॥ नन्दबाबा आदि व्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपवनमें रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूरजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—॥ ९ ॥ 'चाचाजी ! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये । हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेंगे' ॥ १० ॥

अक्रूरजीने कहा—प्रभो ! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता । स्वामी ! मैं आपका भक्त हूँ ! भक्तवत्सल प्रभो ! आप मुझे मत छोड़िये ॥ ११ ॥ भगवन् ! आइये, चलें । मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन् ! आप बलरामजी, ग्वालबालों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये ॥ १२ ॥ हम गृहस्थ हैं । आप अपने चरणोंकी धूलिसे हमारा घर पवित्र कीजिये । आपके चरणोंकी धोवन (गङ्गाजल या चरणामृत) से अग्नि, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ प्रभो ! आपके युगल चरणोंको पखारकर महात्मा बलिने वह यश प्राप्त किया, जिसका गान संत पुरुष करते हैं । केवल यश ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अनन्य प्रेमी भक्तोंको प्राप्त होती है ॥१४॥ आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये । सचमुच वे मूर्तिमान् पवित्रता हैं । उन्हींके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई और उसी जलको स्वयं भगवान् शङ्करने अपने सिरपर धारण किया ॥१५॥ यदुवंशशिरोमणे ! आप देवताओंके भी आराध्यदेव हैं । जगत्‌के स्वामी हैं । आपके गुण और लीलाओंका श्रवण तथा कीर्तन बड़ा ही मङ्गलकारी है । उत्तम पुरुष आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं । नारायण ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—चाचाजी ! मैं दाऊ भैयाके साथ आपके घर आऊँगा और पहले इस यदुवंशियोंके द्रोही कंसको मारकर तब अपने सभी सुहृद्-स्वजनोंका प्रिय करूँगा ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर अक्रूरजी कुछ अनमने-से हो गये । उन्होंने पुरीमें प्रवेश करके कंससे श्रीकृष्ण और बलरामके ले आनेका समाचार निवेदन किया और फिर अपने घर गये॥१८॥ दूसरे दिन तीसरे पहर बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने मथुरापुरीको देखनेके लिये नगरमें प्रवेश किया ॥१९॥ भगवान्‌ने देखा कि नगरके परकोटेमें स्फटिकमणि (बिल्लौर) के बहुत ऊँचे-ऊँचे गोपुर (प्रधान दरवाजे) तथा घरोंमें भी बड़े-बड़े फाटक बने हुए हैं । उनमें सोनेके बड़े-बड़े किंवाड़ लगे हैं और सोनेके ही तोरण (बाहरी दरवाजे) बने हुए हैं । नगरके चारों ओर ताँबे और पीतलकी चहारदीवारी बनी हुई है । खाईंके

कारण और कहींसे उस नगरमें प्रवेश करना बहुत कठिन है। स्थान-स्थानपर सुन्दर-सुन्दर उद्यान और रमणीय उपवन (केवल स्त्रियोंके उपयोगमें आनेवाले बगीचे) शोभायमान हैं ॥ २० ॥ सुवर्णसे सजे हुए चौराहे, धनियोंके महल, उन्हींके साथके बगीचे, कारीगरोंके बैठनेके स्थान या प्रजावर्गके सभा-भवन (टाउनहाल) और साधारण लोगोंके निवासगृह नगरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वैदूर्य, हीरे, स्फटिक (बिल्लौर), नीलम, मूँगे, मोती और पन्ने आदिसे जड़े हुए छज्जे, चबूतरे, झरोखे एवं फर्श आदि जगमगा रहे हैं। उनपर बैठे हुए कबूतर, मोर आदि पक्षी भाँति-भाँतिकी बोली बोल रहे हैं। सड़क, बाजार, गली एवं चौराहोंपर खूब छिड़काव किया गया है। स्थान-स्थानपर फूलोंके गजरे, जवारे (जौके अङ्कुर), खील और चावल बिखरे हुए हैं ॥ २१-२२ ॥ घरोंके दरवाजोंपर दही और चन्दन आदिसे चर्चित जलसे भरे हुए कलश रक्खे हैं और वे फूल, दीपक, नयी-नयी कोंपलें, फलसहित केले और सुपारीके वृक्ष, छोटी-छोटी झंडियों और रेशमी वस्त्रोंसे भलीभाँति सजाये हुए हैं ॥ २३ ॥

परीक्षित्! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने ग्वालबालोंके साथ राजपथसे मथुरा नगरीमें प्रवेश किया। उस समय नगरकी नारियाँ बड़ी उत्सुकतासे उन्हें देखनेके लिये झटपट अटारियोंपर चढ़ गयीं ॥२४॥ किसी-किसीने जल्दीके कारण अपने वस्त्र और गहने उलटे पहन लिये। किसीने भूलसे कुण्डल, कंगन आदि जोड़ेसे पहने जानेवाले आभूषणोंमेंसे एक ही पहना और चल पड़ी। कोई एक ही कानमें पत्र नामक आभूषण धारण कर पायी थी, तो किसीने एक ही पाँवमें पायजेब पहन रक्खा था। कोई एक ही आँखमें अञ्जन आँज पायी थी और दूसरीमें बिना आँजे ही चल पड़ी ॥२५॥ कई रमणियाँ तो भोजन कर रही थीं, वे हाथका कौर फेंककर चल पड़ीं। सबका मन उत्साह और आनन्दसे भर रहा था। कोई-कोई उबटन लगवा रही थीं, वे बिना स्नान किये ही दौड़ पड़ीं। जो सो रही थीं, वे कोलाहल सुनकर उठ खड़ी हुईं और उसी अवस्थामें दौड़ चलीं। जो माताएँ बच्चोंको दूध पिला रही थीं, वे उन्हें गोदसे हटाकर भगवान् श्रीकृष्णको देखनेके लिये चल पड़ीं ॥ २६ ॥ कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण मतवाले गजराजके समान बड़ी मस्तीसे चल रहे थे। उन्होंने लक्ष्मीको भी आनन्दित करनेवाले अपने श्याम-सुन्दर विग्रहसे नगरनारियोंके नेत्रोंको बड़ा आनन्द दिया और अपनी विलासपूर्ण प्रगल्भ हँसी तथा प्रेमभरी चितवनसे उनके मन चुरा लिये ॥ २७ ॥ मथुराकी स्त्रियाँ बहुत दिनोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाएँ सुनती आ रही थीं। उनके चित्त चिरकालसे श्रीकृष्णके लिये चञ्चल, व्याकुल हो रहे थे। आज उन्होंने उन्हें देखा। भगवान् श्रीकृष्णने भी अपनी प्रेमभरी चितवन और मन्द मुसकानकी सुधासे सींचकर उनका सम्मान किया। परीक्षित्! उन स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारा भगवान्को अपने हृदयमें ले जाकर उनके आनन्दमय स्वरूपका आलिङ्गन किया। उनका शरीर पुलकित हो गया और बहुत दिनोंकी विरह-व्याधि शान्त हो गयी ॥२८॥ मथुराकी नारियाँ अपने-अपने महलोंकी अटारियोंपर चढ़कर बलराम और श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। उस समय उन स्त्रियोंके मुखकमल प्रेमके आवेगसे खिल रहे थे ॥२९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने स्थान-स्थानपर दही, अक्षत, जलसे भरे पात्र, फूलोंके हार, चन्दन और भेंटकी सामग्रियोंसे आनन्दमग्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी पूजा की ॥ ३० ॥ भगवान्को देखकर सभी पुरवासी आपसमें कहने लगे—'धन्य है! धन्य है!' गोपियोंने ऐसी कौन-सी महान् तपस्या की है, जिसके कारण वे मनुष्यमात्रको परमानन्द देनेवाले इन दोनों मनोहर किशोरोंको देखती रहती हैं ॥ ३१ ॥

इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि एक धोबी, जो कपड़े रँगनेका भी काम करता था, उनकी ओर आ रहा है। भगवान् श्रीकृष्णने उससे धुले हुए उत्तम-उत्तम कपड़े माँगे ॥ ३२ ॥ भगवान्ने कहा—'भाई! तुम हमें ऐसे वस्त्र दो, जो हमारे शरीरमें पूरे-पूरे आ जायँ। वास्तवमें हमलोग उन वस्त्रोंके अधिकारी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि तुम हमलोगोंको वस्त्र दोगे, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ ३३ ॥ परीक्षित्! भगवान् सर्वत्र परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका है। फिर भी उन्होंने इस प्रकार माँगनेकी लीला की। परन्तु वह

मूर्ख राजा कंसका सेवक होनेके कारण मतवाला हो रहा था। भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को देना तो दूर रहा, उसने क्रोधमें भरकर आक्षेप करते हुए कहा—॥ ३४ ॥ 'तुमलोग रहते हो सदा पहाड़ और जंगलोंमें। क्या वहाँ ऐसे ही वस्त्र पहनते हो? तुमलोग बहुत उद्दण्ड हो गये हो, तभी ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करते हो। अब तुम्हें राजाका धन लूटनेकी इच्छा हुई है॥ ३५ ॥ अरे, मूर्खो! जाओ, भाग जाओ! यदि कुछ दिन जीनेकी इच्छा हो तो फिर इस तरह मत माँगना। राजकर्मचारी तुम्हारे-जैसे उच्छृङ्खलोंको कैद कर लेते हैं, मार डालते हैं और जो कुछ उनके पास होता है, छीन लेते हैं'॥ ३६ ॥ जब वह धोबी इस प्रकार बहुत कुछ बहक-बहककर बातें करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णने तनिक कुपित होकर उसे एक तमाचा जमाया और उसका सिर धड़ामसे धड़से नीचे जा गिरा॥ ३७ ॥ यह देखकर उस धोबीके अधीन काम करनेवाले सब-के-सब कपड़ोंके गट्ठर वहीं छोड़कर इधर-उधर भाग गये। भगवान्‌ने उन वस्त्रोंको ले लिया॥ ३८॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने मनमाने वस्त्र पहन लिये तथा बचे हुए वस्त्रोंमेंसे बहुत-से अपने साथी ग्वालबालोंको भी दिये। बहुत-से कपड़े तो वहीं जमीनपर ही छोड़कर चल दिये॥ ३९॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जब कुछ आगे बढ़े, तब उन्हें एक दर्जी मिला। भगवान्‌का अनुपम सौन्दर्य देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उन रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्रोंको उनके शरीरपर ऐसे ढंगसे सजा दिया कि वे सब ठीक-ठीक फब गये॥ ४० ॥ अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे विभूषित होकर दोनों भाई और भी अधिक शोभायमान हुए। ऐसे जान पड़ते, मानो उत्सवके समय श्वेत और श्याम गजशावक भलीभाँति सजा दिये गये हों॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उस दर्जीपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे इस लोकमें भरपूर धन-सम्पत्ति, बल-ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और दूरतक देखने-सुनने आदिकी इन्द्रियसम्बन्धी शक्तियाँ दीं और मृत्युके बादके लिये अपना सारूप्य मोक्ष भी दे दिया॥ ४२ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा मालीके घर गये। दोनों भाइयोंको देखते ही सुदामा उठ खड़ा हुआ और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४३ ॥ फिर उनको आसनपर बैठाकर उनके पाँव पखारे, हाथ धुलाये और तदनन्तर ग्वालबालोंके सहित सबकी फूलोंके हार, पान, चन्दन आदि सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजा की॥ ४४॥ इसके पश्चात् उसने प्रार्थना की—'प्रभो! आप दोनोंके शुभागमनसे हमारा जन्म सफल हो गया। हमारा कुल पवित्र हो गया। आज हम पितर, ऋषि और देवताओंके ऋणसे मुक्त हो गये। वे हमपर परम सन्तुष्ट हैं॥४५॥ आप दोनों सम्पूर्ण जगत्‌के परम कारण हैं। आप संसारके अभ्युदय—उन्नति और निःश्रेयस—मोक्षके लिये ही इस पृथ्वीपर अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ अवतीर्ण हुए हैं॥ ४६ ॥ यद्यपि आप प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं, भजन करनेवालोंको ही भजते हैं—फिर भी आपकी दृष्टिमें विषमता नहीं है। क्योंकि आप सारे जगत्‌के परम सुहृद् और आत्मा हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें समरूपसे स्थित हैं॥ ४७ ॥ मैं आपका दास हूँ। आप दोनों मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ। भगवन्! जीवपर आपका यह बहुत बड़ा अनुग्रह है, पूर्ण कृपा-प्रसाद है कि आप उसे आज्ञा देकर किसी कार्यमें नियुक्त करते हैं'॥ ४८ ॥ राजेन्द्र! सुदामा मालीने इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद भगवान्‌का अभिप्राय जानकर बड़े प्रेम और आनन्दसे भरकर अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पोंसे गूँथे हुए हार उन्हें पहनाये॥ ४९ ॥ जब ग्वालबाल और बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उन सुन्दर-सुन्दर मालाओंसे अलङ्कृत हो चुके, तब उन वरदायक प्रभुने प्रसन्न होकर विनीत और शरणागत सुदामाको श्रेष्ठ वर दिये।५०। सुदामा मालीने उनसे यही वर माँगा कि 'प्रभो! आप ही समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। सर्वस्वरूप आपके चरणोंमें मेरी अविचल भक्ति हो। आपके भक्तोंसे मेरा सौहार्द, मैत्रीका सम्बन्ध हो और समस्त प्राणियोंके प्रति अहैतुक दयाका भाव बना रहे॥ ५१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने सुदामाको उसके माँगे हुए वर तो दिये ही—ऐसी लक्ष्मी भी दी, जो वंशपरम्पराके साथ-साथ बढ़ती जाय; और साथ ही बल, आयु, कीर्ति तथा कान्तिका भी वरदान दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वहाँसे विदा हुए॥ ५२ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

कुब्जापर कृपा, धनुषभङ्ग और कंसकी घबड़ाहट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण जब अपनी मण्डलीके साथ राजमार्गसे आगे बढ़े, तब उन्होंने एक युवती स्त्रीको देखा। उसका मुँह तो सुन्दर था, परन्तु वह शरीरसे कुबड़ी थी। इसीसे उसका नाम पड़ गया था 'कुब्जा'। वह अपने हाथमें चन्दनका पात्र लिये हुए जा रही थी। भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमरसका दान करनेवाले हैं, उन्होंने कुब्जापर कृपा करनेके लिये हँसते हुए उससे पूछा—॥ १ ॥ 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिये ले जा रही हो ? कल्याणी ! हमें सब बात सच-सच बतला दो। यह उत्तम चन्दन, यह अङ्गराग हमें भी दो। इस दानसे शीघ्र ही तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ २ ॥

उबटन आदि लगानेवाली सैरन्ध्री कुब्जाने कहा—'परम सुन्दर ! मैं कंसकी प्रिय दासी हूँ। महाराज मुझे बहुत मानते हैं। मेरा नाम त्रिवक्रा (कुब्जा) है। मैं उनके यहाँ चन्दन, अङ्गराग लगानेका काम करती हूँ। मेरे द्वारा तैयार किये हुए चन्दन और अङ्गराग भोजराज कंसको बहुत भाते हैं। परन्तु आप दोनोंसे बढ़कर उसका और कोई उत्तम पात्र नहीं है' ॥ ३ ॥ भगवान्‌के सौन्दर्य, सुकुमारता, रसिकता, मन्दहास्य, प्रेमालाप और चारु चितवनसे कुब्जाका मन हाथसे निकल गया। उसने भगवान्‌पर अपना हृदय न्योछावर कर दिया। उसने दोनों भाइयोंको वह सुन्दर और गाढ़ा अङ्गराग दे दिया ॥ ४ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साँवले शरीरपर पीले रंगका और बलरामजीने अपने गोरे शरीरपर लाल रंगका अङ्गराग लगाया तथा नाभिसे ऊपरके भागमें अनुरञ्जित होकर वे अत्यन्त सुशोभित हुए ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण उस कुब्जापर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने दर्शनका प्रत्यक्ष फल दिखलानेके लिये तीन जगहसे टेढ़ी किन्तु सुन्दर मुखवाली कुब्जाको सीधी करनेका विचार किया ॥ ६ ॥ भगवान्‌ने अपने चरणोंसे कुब्जाके पैरके दोनों पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो अँगुलियाँ उसकी ठोड़ीमें लगायीं तथा उसके शरीरको तनिक उचका दिया ॥ ७ ॥ उचकाते ही उसके सारे अङ्ग सीधे और समान हो गये। प्रेम और मुक्तिके दाता भगवान्‌के स्पर्शसे वह तत्काल विशाल नितम्ब तथा पीन पयोधरोंसे युक्त एक उत्तम युवती बन गयी ॥ ८ ॥

उसी क्षण कुब्जा रूप, गुण और उदारतासे सम्पन्न हो गयी। उसके मनमें भगवान्‌के मिलनकी कामना जाग उठी। उसने उनके दुपट्टेका छोर पकड़कर मुसकराते हुए कहा—॥ ९ ॥ 'वीरशिरोमणे ! आइये, घर चलें। अब मैं आपको यहाँ नहीं छोड़ सकती। क्योंकि आपने मेरे चित्तको मथ डाला है। पुरुषोत्तम ! मुझ दासीपर प्रसन्न होइये' ॥ १० ॥ जब बलरामजीके सामने ही कुब्जाने इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंके मुँहकी ओर देखकर हँसते हुए उससे कहा—॥ ११ ॥ 'सुन्दरी ! तुम्हारा घर संसारी लोगोंके लिये अपनी मानसिक व्याधि मिटानेका साधन है। मैं अपना कार्य पूरा करके अवश्य वहाँ आऊँगा। हमारे-जैसे बेघरके बटोहियोंको तुम्हारा ही तो आसरा है ॥ १२ ॥ इस प्रकार मीठी-मीठी बातें करके भगवान् श्रीकृष्णने उसे विदा कर दिया। जब वे व्यापारियोंके बाजारमें पहुँचे, तब उन व्यापारियोंने उनका तथा बलरामजीका पान, फूलोंके हार, चन्दन और तरह-तरहकी भेंट—उपहारोंसे पूजन किया ॥ १३ ॥ उनके दर्शनमात्रसे स्त्रियोंके हृदयमें प्रेमका आवेग, मिलनकी आकाङ्क्षा जग उठती थी। यहाँतक कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रहती। उनके वस्त्र, जूड़े और कंगन ढीले पड़ जाते थे तथा वे चित्रलिखित मूर्तियोंके समान ज्यों-की-त्यों खड़ी रह जाती थीं ॥ १४ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण पुरवासियोंसे धनुष-यज्ञका स्थान पूछते हुए रंगशालामें पहुँचे और वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुषके समान एक अद्भुत धनुष देखा ॥ १५ ॥ उस धनुषमें बहुत-सा धन लगाया गया था, अनेक बहुमूल्य अलङ्कारोंसे उसे सजाया गया था।

उसकी खूब पूजा की गयी थी और बहुत-से सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने रक्षकोंके रोकनेपर भी उस धनुषको बलात्कारसे उठा लिया ॥ १६ ॥ उन्होंने सबके देखते-देखते उस धनुषको बायें हाथसे उठाया, उसपर डोरी चढ़ायी और एक क्षणमें खींचकर बीचोंबीचसे उसी प्रकार उसके दो टुकड़े कर डाले, जैसे बहुत बलवान् मतवाला हाथी खेल-ही-खेलमें ईखको तोड़ डालता है ॥ १७ ॥ जब धनुष टूटा तब उसके शब्दसे आकाश, पृथ्वी और दिशाएँ भर गयीं; उसे सुनकर कंस भी भयभीत हो गया ॥ १८ ॥ अब धनुषके रक्षक आततायी असुर अपने सहायकोंके साथ बहुत ही बिगड़े। वे भगवान् श्रीकृष्णको घेरकर खड़े हो गये और उन्हें पकड़ लेनेकी इच्छासे चिल्लाने लगे—'पकड़ लो, बाँध लो, जाने न पावे' ॥ १९ ॥ उनका दुष्ट अभिप्राय जानकर बलरामजी और श्रीकृष्ण भी तनिक क्रोधित हो गये और उस धनुषके टुकड़ोंको उठाकर उन्हींसे उनका काम तमाम कर दिया ॥ २० ॥ उन्हीं धनुषखण्डोंसे उन्होंने उन असुरोंकी सहायताके लिये कंसकी भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला। इसके बाद वे यज्ञशालाके प्रधान द्वारसे होकर बाहर निकल आये और बड़े आनन्दसे मथुरापुरीकी शोभा देखते हुए विचरने लगे ॥ २१ ॥ जब नगरनिवासियोंने दोनों भाइयोंके इस अद्भुत पराक्रमकी बात सुनी और उनके तेज, साहस तथा अनुपम रूपको देखा तब उन्होंने यही निश्चय किया कि हो-न-हो ये दोनों कोई श्रेष्ठ देवता हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी पूरी स्वतन्त्रतासे मथुरापुरीमें विचरण करने लगे। जब सूर्यास्त हो गया तब दोनों भाई ग्वालबालोंसे घिरे हुए नगरसे बाहर अपने डेरेपर, जहाँ छकड़े थे, लौट आये ॥ २३ ॥ तीनों लोकोंके बड़े-बड़े देवता चाहते थे कि लक्ष्मी हमें मिलें, परन्तु उन्होंने सबका परित्याग कर दिया और न चाहनेवाले भगवान्‌का वरण किया। उन्हींको सदाके लिये अपना निवासस्थान बना लिया। मथुरावासी उन्हीं पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णके अङ्ग-अङ्गका सौन्दर्य देख रहे हैं। उनका कितना सौभाग्य है! व्रजमें भगवान्‌की यात्राके समय गोपियोंने विरहातुर होकर मथुरावासियोंके सम्बन्धमें जो-जो बातें कही थीं, वे सब वहाँ अक्षरशः सत्य हुईं। सचमुच वे परमानन्दमें मग्न हो गये ॥ २४ ॥ फिर हाथ-पैर धोकर श्रीकृष्ण और बलरामजीने दूधसे बने हुए खीर आदि पदार्थोंका भोजन किया और कंस आगे क्या करना चाहता है, इस बातका पता लगाकर उस रातको वहीं आरामसे सो गये ॥ २५ ॥

जब कंसने सुना कि श्रीकृष्ण और बलरामने धनुष तोड़ डाला, रक्षकों तथा उनकी सहायताके लिये भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला और यह सब उनके लिये केवल एक खिलवाड़ ही था—इसके लिये उन्हें कोई श्रम या कठिनाई नहीं उठानी पड़ी ॥ २६ ॥ तब वह बहुत ही डर गया; उस दुर्बुद्धिको बहुत देरतक नींद न आयी। उसे जाग्रत्-अवस्थामें तथा स्वप्नमें भी बहुत-से ऐसे अपशकुन हुए, जो उसकी मृत्युके सूचक थे ॥ २७ ॥ जाग्रत्-अवस्थामें उसने देखा कि जल या दर्पणमें शरीरकी परछाईं तो पड़ती है, परन्तु सिर नहीं दिखायी देता; अँगुली आदिकी आड़ न होनेपर भी चन्द्रमा, तारे और दीपक आदिकी ज्योतियाँ उसे दो-दो दिखायी पड़ती हैं ॥ २८ ॥ छायामें छेद दिखायी पड़ता है और कानोंमें अँगुली डालकर सुननेपर भी प्राणोंका घूँ-घूँ शब्द नहीं सुनायी पड़ता। वृक्ष सुनहले प्रतीत होते हैं और बालू या कीचड़में अपने पैरोंके चिह्न नहीं दीख पड़ते ॥ २९ ॥ कंसने स्वप्नावस्थामें देखा कि वह प्रेतोंके गले लग रहा है, गधेपर चढ़कर चलता है और विष खा रहा है। उसका सारा शरीर तेलसे तर है, गलेमें जपाकुसुम (अड़हुल) की माला है और नग्न होकर कहीं जा रहा है ॥ ३० ॥ स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें उसने इसी प्रकारके और भी बहुत-से अपशकुन देखे। उनके कारण उसे बड़ी चिन्ता हो गयी, वह मृत्युसे डर गया और उसे नींद न आयी ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! जब रात बीत गयी और सूर्यनारायण पूर्व समुद्रसे ऊपर उठे, तब राजा कंसने मल्ल-क्रीडा (दंगल) का महोत्सव प्रारम्भ कराया ॥ ३२ ॥ राज-

कर्मचारियोंने रंगभूमिको भलीभाँति सजाया। तुरही, भेरी आदि बाजे बजने लगे। लोगोंके बैठनेके मञ्च फूलोंके गजरों, झंडियों, वस्त्र और बंदनवारोंसे सजा दिये गये॥ ३३॥ उनपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक तथा ग्रामवासी—सब यथास्थान बैठ गये। राजालोग भी अपने-अपने निश्चित स्थानपर जा डटे॥ ३४॥ राजा कंस अपने मन्त्रियोंके साथ मण्डलेश्वरों (छोटे-छोटे राजाओं) के बीचमें सबसे श्रेष्ठ राजसिंहासनपर जा बैठा। इस समय भी अपशकुनोंके कारण उसका चित्त घबड़ाया हुआ था॥ ३५॥ तब पहलवानोंके ताल ठोंकनेके साथ ही बाजे बजने लगे और गरबीले पहलवान खूब सज-धजकर अपने-अपने उस्तादोंके साथ अखाड़ेमें आ उतरे॥ ३६॥ चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान-प्रधान पहलवान बाजोंकी सुमधुर ध्वनिसे उत्साहित होकर अखाड़ेमें आ-आकर बैठ गये॥ ३७॥ इसी समय भोजराज कंसने नन्द आदि गोपोंको बुलवाया। उन लोगोंने आकर उसे तरह-तरहकी भेंटें दीं और फिर जाकर वे एक मञ्चपर बैठ गये॥ ३८॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

कुवलयापीड़का उद्धार और अखाड़ेमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—काम-क्रोधादि शत्रुओंको पराजित करनेवाले परीक्षित्! अब श्रीकृष्ण और बलराम भी स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो दंगलके अनुरूप नगाड़ेकी ध्वनि सुनकर रङ्गभूमि देखनेके लिये चल पड़े॥१॥ भगवान् श्रीकृष्णने रंगभूमिके दरवाजेपर पहुँचकर देखा कि वहाँ महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड़ नामका हाथी खड़ा है॥ २॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमर कस ली और घुँघराली अलकें समेट लीं तथा मेघके समान गम्भीर वाणीसे महावतको ललकारकर कहा॥३॥ 'महावत, ओ महावत! हम दोनोंको रास्ता दे दे। हमारे मार्गसे हट जा। अरे, सुनता नहीं? देर मत कर। नहीं तो मैं हाथीके साथ अभी तुझे यमराजके घर पहुँचाता हूँ'॥ ४॥ भगवान् श्रीकृष्णने महावतको जब इस प्रकार धमकाया, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने काल, मृत्यु तथा यमराजके समान अत्यन्त भयङ्कर कुवलयापीड़को अङ्कुशकी मारसे क्रुद्ध करके श्रीकृष्णकी ओर बढ़ाया॥ ५॥ कुवलयापीड़ने भगवान्की ओर झपटकर उन्हें बड़ी तेजीसे सूँड़में लपेट लिया; परन्तु भगवान् सूँड़से बाहर सरक आये और उसे एक घूँसा जमाकर उसके पैरोंके बीचमें जा छिपे॥ ६॥ उन्हें अपने सामने न देखकर कुवलयापीड़को बड़ा क्रोध हुआ। उसने सूँघकर भगवान्को अपनी सूँड़से टटोल लिया और पकड़ा भी; परन्तु उन्होंने बलपूर्वक अपनेको उससे छुड़ा लिया॥ ७॥ इसके बाद भगवान् उस बलवान् हाथीकी पूँछ पकड़कर खेल-खेलमें ही उसे सौ हाथतक पीछे घसीट लाये; जैसे गरुड़ साँपको घसीट लाते हैं॥ ८॥ जिस प्रकार घूमते हुए बछड़ेके साथ बालक घूमता है अथवा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार बछड़ोंसे खेलते थे, वैसे ही वे उसकी पूँछ पकड़कर उसे घुमाने और खेलने लगे। जब वह दायेंसे घूमकर उनको पकड़ना चाहता, तब वे बायें आ जाते और जब वह बायेंकी ओर घूमता, तब वे दायें घूम जाते॥ ९॥ इसके बाद हाथीके सामने आकर उन्होंने उसे एक घूँसा जमाया और वे उसे गिरानेके लिये इस प्रकार उसके सामनेसे भागने लगे, मानो वह अब छू लेता है, तब छू लेता है॥ १०॥ भगवान् श्रीकृष्णने दौड़ते-दौड़ते एक बार खेल-खेलमें ही पृथ्वीपर गिरनेका अभिनय किया और झट वहाँसे उठकर भाग खड़े हुए। उस समय वह हाथी क्रोधसे जल-भुन रहा था। उसने समझा कि वे गिर पड़े और बड़े जोरसे अपने दोनों दाँत धरतीपर मारे॥ ११॥ जब कुवलयापीड़का यह आक्रमण व्यर्थ हो गया, तब वह और भी चिढ़ गया। महावतोंकी प्रेरणासे वह क्रुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णपर टूट पड़ा॥ १२॥ भगवान् मधुसूदनने जब उसे अपनी ओर झपटते देखा, तब उसके पास चले गये और अपने एक ही हाथसे उसकी सूँड़ पकड़कर उसे

धरतीपर पटक दिया ॥ १३ ॥ उसके गिर जानेपर भगवान्‌ने सिंहके समान खेल-ही-खेलमें उसे पैरोंसे दबाकर उसके दाँत उखाड़ लिये और उन्हींसे हाथी और महावतोंका काम तमाम कर दिया ॥ १४ ॥

परीक्षित् ! मरे हुए हाथीको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णने हाथमें उसके दाँत लिये-लिये ही रंगभूमिमें प्रवेश किया। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी। उनके कंधेपर हाथीका दाँत रक्खा हुआ था, शरीर रक्त और मदकी बूँदोंसे सुशोभित था और मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंके ही हाथोंमें कुवलयापीड़के बड़े-बड़े दाँत शस्त्रके रूपमें सुशोभित हो रहे थे और कुछ ग्वालबाल उनके साथ-साथ चल रहे थे। इस प्रकार उन्होंने रंगभूमिमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रंगभूमिमें पधारे, उस समय वे पहलवानोंको वज्रकठोर शरीर, साधारण मनुष्योंको नर-रत्न, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेव, गोपोंको स्वजन, दुष्ट राजाओंको दण्ड देनेवाले शासक, माता-पिताके समान बड़े-बूढ़ोंको शिशु, कंसको मृत्यु, अज्ञानियोंको विराट्, योगियोंको परम तत्त्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियोंको अपने इष्टदेव जान पड़े (सबने अपने-अपने भावानुरूप क्रमशः रौद्र, अद्भुत, शृङ्गार, हास्य, वीर, वात्सल्य, भयानक, बीभत्स, शान्त और प्रेमभक्तिरसका अनुभव किया) ॥ १७ ॥ राजन् ! वैसे तो कंस बड़ा धीर-वीर था; फिर भी जब उसने देखा कि इन दोनोंने कुवलयापीड़को मार डाला, तब उसकी समझमें यह बात आयी कि इनको जीतना तो बहुत कठिन है। उस समय वह बहुत घबड़ा गया ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण और बलरामकी बाँहें बड़ी लंबी-लंबी थीं। पुष्पोंके हार, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनका वेष विचित्र हो रहा था; ऐसा जान पड़ता था, मानो उत्तम वेष धारण करके दो नट अभिनय करनेके लिये आये हों। जिनके नेत्र, एक बार उनपर पड़ जाते, बस, लग ही जाते। यही नहीं, वे अपनी कान्तिसे उसका मन भी चुरा लेते। इस प्रकार दोनों रंगभूमिमें शोभायमान हुए ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! मञ्चोंपर जितने लोग बैठे थे—वे मथुराके नागरिक और राष्ट्रके जन-समुदाय पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीको देखकर इतने प्रसन्न हुए कि उनके नेत्र और मुखकमल खिल उठे, उत्कण्ठासे भर गये। वे नेत्रोंके द्वारा उनकी मुखमाधुरीका पान करते-करते तृप्त ही नहीं होते थे ॥ २० ॥ मानो वे उन्हें नेत्रोंसे पी रहे हों, जिह्वासे चाट रहे हों, नासिकासे सूँघ रहे हों और भुजाओंसे पकड़कर हृदयसे सटा रहे हों ॥ २१ ॥ उनके सौन्दर्य, गुण, माधुर्य और निर्भयताने मानो दर्शकोंको उनकी लीलाओंका स्मरण करा दिया और वे लोग आपसमें उनके सम्बन्धकी देखी-सुनी बातें कहने-सुनने लगे ॥ २२ ॥ 'ये दोनों साक्षात् भगवान् नारायणके अंश हैं। इस पृथ्वीपर वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २३ ॥ [अँगुलीसे दिखाकर] ये साँवले-सलोने कुमार देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। जनमते ही वसुदेवजीने इन्हें गोकुल पहुँचा दिया था। इतने दिनोंतक ये वहाँ छिपकर रहे और नन्दजीके घरमें ही पलकर इतने बड़े हुए ॥२४॥ इन्होंने ही पूतना, तृणावर्त, शङ्खचूड़, केशी और धेनुक आदिका तथा और भी दुष्ट दैत्योंका वध तथा यमलार्जुनका उद्धार किया है ॥ २५ ॥ इन्होंने ही गौ और ग्वालोंको दावानलकी ज्वालासे बचाया था। कालिय नागका दमन और इन्द्रका मान-मर्दन भी इन्होंने ही किया था ॥२६॥ इन्होंने सात दिनोंतक एक ही हाथपर गिरिराज गोवर्धनको उठाये रक्खा और उसके द्वारा आँधी-पानी तथा वज्रपातसे गोकुलको बचा लिया ॥ २७ ॥ गोपियाँ इनकी मन्द-मन्द मुसकान, मधुर चितवन और सर्वदा एकरस प्रसन्न रहनेवाले मुखारविन्दके दर्शनसे आनन्दित रहती थीं और अनायास ही सब प्रकारके तापोंसे मुक्त हो जाती थीं ॥ २८ ॥ कहते हैं कि ये यदुवंशकी रक्षा करेंगे। यह विख्यात वंश इनके द्वारा महान् समृद्धि, यश और गौरव प्राप्त करेगा ॥ २९ ॥ ये दूसरे इन्हीं श्यामसुन्दरके बड़े भाई कमलनयन श्रीबलरामजी हैं। हमने किसी-किसीके मुँहसे ऐसा सुना है कि इन्होंने ही प्रलम्बासुर, वत्सासुर और बकासुर आदिको मारा है ॥ ३० ॥

जिस समय दर्शकोंमें यह चर्चा हो रही थी और अखाड़ेमें तुरही आदि बाजे बज रहे थे, उस समय

चाणूरने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको सम्बोधन करके यह बात कही—॥ ३१ ॥ 'नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामजी! तुम दोनों वीरोंके आदरणीय हो। हमारे महाराजने यह सुनकर कि तुमलोग कुश्ती लड़नेमें बड़े निपुण हो, तुम्हारा कौशल देखनेके लिये तुम्हें यहाँ बुलवाया है ॥ ३२ ॥ देखो भाई! जो प्रजा मन, वचन और कर्मसे राजाका प्रिय कार्य करती है, उसका भला होता है और जो राजाकी इच्छाके विपरीत काम करती है, उसे हानि उठानी पड़ती है ॥ ३३ ॥ यह सभी जानते हैं कि गाय और बछड़े चरानेवाले ग्वालिये प्रतिदिन आनन्दसे जंगलोंमें कुश्ती लड़-लड़कर खेलते रहते हैं और गायें चराते रहते हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये आओ, हम और तुम मिलकर महाराजको प्रसन्न करनेके लिये कुश्ती लड़ें। ऐसा करनेसे हमपर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा सारी प्रजाका प्रतीक है' ॥ ३५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण तो चाहते ही थे कि इनसे दो-दो हाथ करें। इसलिये उन्होंने चाणूरकी बात सुनकर उसका अनुमोदन किया और देश-कालके अनुसार यह बात कही—॥ ३६ ॥ 'चाणूर! हम भी इन भोजराज कंसकी वनवासी प्रजा हैं। हमें इनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। इसीमें हमारा कल्याण है ॥ ३७ ॥ किन्तु चाणूर! हमलोग अभी बालक हैं। इसलिये हम अपने समान बलवाले बालकोंके साथ ही कुश्ती लड़नेका खेल करेंगे। कुश्ती समान बलवालोंके साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखनेवाले सभासदोंको अन्यायके समर्थक होनेका पाप न लगे' ॥ ३८ ॥

चाणूरने कहा—अजी! तुम और बलराम न बालक हो और न तो किशोर। तुम दोनों बलवानोंमें श्रेष्ठ हो, तुमने अभी-अभी हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कुवलयापीड़को खेल-ही-खेलमें मार डाला ॥ ३९ ॥ इसलिये तुम दोनोंको हम-जैसे बलवानोंके साथ ही लड़ना चाहिये। इसमें अन्यायकी कोई बात नहीं है। इसलिये श्रीकृष्ण! तुम मुझपर अपना जोर आजमाओ और बलरामके साथ मुष्टिक लड़ेगा ॥ ४० ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने चाणूर आदिके वधका निश्चित संकल्प कर लिया। जोड़ बद दिये जानेपर श्रीकृष्ण चाणूरसे और बलरामजी मुष्टिकसे जा भिड़े ॥ १ ॥ वे लोग एक दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे हाथसे हाथ बाँधकर और पैरोंमें पैर अड़ाकर बलपूर्वक अपनी-अपनी ओर खींचने लगे ॥ २ ॥ वे पंजोंसे पंजे, घुटनोंसे घुटने, माथेसे माथा और छातीसे छाती भिड़ाकर एक-दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार दाँव-पेंच करते-करते अपने-अपने जोड़ीदारको पकड़कर इधर-उधर घुमाते, दूर ढकेल देते, जोरसे जकड़ लेते, लिपट जाते, उठाकर पटक देते, छूटकर निकल भागते और कभी छोड़कर पीछे हट जाते थे। इस प्रकार एक-दूसरेको रोकते, प्रहार करते और अपने जोड़ीदारको पछाड़ देनेकी चेष्टा करते। कभी कोई नीचे गिर जाता, तो दूसरा उसे घुटनों और पैरोंमें दबाकर उठा लेता। हाथोंसे पकड़कर ऊपर ले जाता। गलेमें लिपट जानेपर ढकेल देता और आवश्यकता होनेपर हाथ-पाँव इकट्ठे करके गाँठ बाँध देता ॥ ४-५ ॥

परीक्षित्! इस दंगलको देखनेके लिये नगरकी बहुत-सी महिलाएँ भी आयी हुई थीं। उन्होंने जब देखा कि बड़े-बड़े पहलवानोंके साथ ये छोटे-छोटे बलहीन बालक लड़ाये जा रहे हैं, तब वे अलग-अलग टोलियाँ बनाकर करुणावश आपसमें बातचीत करने लगीं—॥ ६ ॥ 'यहाँ राजा कंसके सभासद् बड़ा अन्याय और अधर्म कर रहे हैं। कितने खेदकी बात है कि राजाके सामने ही ये बली पहलवानों और निर्बल बालकोंके युद्धका अनुमोदन करते हैं ॥ ७ ॥ बहिन! देखो, इन पहलवानोंका एक-एक अङ्ग वज्रके समान

कठोर है। ये देखनेमें बड़े भारी पवत-से मालूम होते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण और बलराम अभी जवान भी नहीं हुए हैं। इनकी किशोर अवस्था है। इनका एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुकुमार है। कहाँ ये और कहाँ वे ?॥ ८॥ जितने लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, देख रहे हैं, उन्हें अवश्य-अवश्य धर्मोल्लङ्घनका पाप लगेगा। सखी! अब हमें भी यहाँसे चल देना चाहिये। जहाँ अधर्मकी प्रधानता हो, वहाँ कभी न रहे; यही शास्त्रका नियम है॥ ९॥ देखो, शास्त्र कहता है कि बुद्धिमान् पुरुषको सभासदोंके दोषोंको जानते हुए, सभामें जाना ठीक नहीं है। क्योंकि वहाँ जाकर उन अवगुणोंको कहना, चुप रह जाना अथवा मैं नहीं जानता ऐसा कह देना—ये तीनों ही बातें मनुष्यको दोषभागी बनाती हैं॥ १०॥ देखो, देखो, श्रीकृष्ण शत्रुके चारों ओर पैंतरा बदल रहे हैं। उनके मुखपर पसीनेकी बूँदें ठीक वैसे ही शोभा दे रही हैं, जैसे कमलकोशपर जलकी बूँदें॥११॥ सखियो! क्या तुम नहीं देख रही हो कि बलरामजीका मुख मुष्टिकके प्रति क्रोधके कारण कुछ-कुछ लाल लोचनोंसे युक्त हो रहा है! फिर भी हास्यका अनिरुद्ध आवेग कितना सुन्दर लग रहा है॥ १२॥ सखी! सच पूछो तो व्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है। क्योंकि वहाँ ये पुरुषोत्तम मनुष्यके वेषमें छिपकर रहते हैं। स्वयं भगवान् शङ्कर और लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी पूजा करती हैं, वे ही प्रभु वहाँ रंग-बिरंगे जंगली पुष्पोंकी माला धारण कर लेते हैं तथा बलरामजीके साथ बाँसुरी बजाते, गौएँ चराते और तरह-तरहके खेल खेलते हुए आनन्दसे विचरते हैं॥ १३॥ सखी! पता नहीं, गोपियोंने कौन-सी तपस्या की थी, जो नेत्रोंके दोनोंसे नित्य-निरन्तर इनकी रूप-माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है, लावण्यका सार! संसारमें या उससे परे किसीका भी रूप इनके रूपके समान नहीं है, फिर बढ़कर होनेकी तो बात ही क्या है! सो भी किसीके सँवारने-सजानेसे नहीं, गहने-कपड़ेसे भी नहीं, बल्कि स्वयंसिद्ध है। इस रूपको देखते-देखते तृप्ति भी नहीं होती। क्योंकि यह प्रतिक्षण नया होता जाता है, नित्य नूतन है। समग्र यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य इसीके आश्रित हैं। सखियो! परन्तु इसका दर्शन तो औरोंके लिये बड़ा ही दुर्लभ है। वह तो गोपियोंके ही भाग्यमें बदा है॥ १४॥ सखी! व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं। निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित्त लगा रहनेके कारण प्रेमभरे हृदयसे, आँसुओंके कारण गद्गद कण्ठसे वे इन्हींकी लीलाओंका गान करती रहती हैं। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकोंको झूला झुलाते, रोते हुए बालकोंको चुप कराते, उन्हें नहलाते-धुलाते, घरोंको झाड़ते-बुहारते—कहाँतक कहें, सारे काम-काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गानमें ही मस्त रहती हैं॥ १५॥ ये श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल गौओंको चरानेके लिये व्रजसे वनमें जाते हैं और सायङ्काल उन्हें लेकर व्रजमें लौटते हैं, तब बड़े मधुर स्वरसे बाँसुरी बजाते हैं। उसकी टेर सुनकर गोपियाँ घरका सारा कामकाज छोड़कर झटपट रास्तेमें दौड़ आती हैं और श्रीकृष्णका मन्द-मन्द मुसकान एवं दयाभरी चितवनसे युक्त मुखकमल निहार-निहारकर निहाल होती हैं। सचमुच गोपियाँ ही परम पुण्यवती हैं'॥ १६॥

भरतवंशशिरोमणे! जिस समय पुरवासिनी स्त्रियाँ इस प्रकार बातें कर रही थीं, उसी समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन शत्रुको मार डालनेका निश्चय किया॥ १७॥ स्त्रियोंकी ये भयपूर्ण बातें माता-पिता देवकी-वसुदेव भी सुन रहे थे*। वे पुत्रस्नेहवश शोकसे विह्वल हो गये। उनके हृदयमें बड़ी जलन, बड़ी पीड़ा होने लगी। क्योंकि वे अपने पुत्रोंके बल-वीर्यको नहीं जानते थे॥ १८॥ भगवान् श्रीकृष्ण और उनसे भिड़नेवाला चाणूर दोनों ही भिन्न-भिन्न प्रकारके दाँव-पेंचका प्रयोग करते हुए परस्पर जिस प्रकार लड़ रहे थे, वैसे ही बलरामजी और मुष्टिक भी भिड़े हुए थे॥१९॥ भगवान्‌के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वज्रसे भी कठोर हो रहे थे। उनकी रगड़से चाणूरकी रग-रग ढीली पड़ गयी। बार-बार उसे ऐसा मालूम हो रहा था मानो उसके शरीरके सारे बन्धन टूट रहे हैं। उसे बड़ी ग्लानि, बड़ी व्यथा हुई॥२०॥ अब वह अत्यन्त क्रोधित होकर बाजकी तरह झपटा

* स्त्रियाँ जहाँ बातें कर रही थीं, वहाँसे निकट ही वसुदेव-देवकी कैद थे, अतः वे उनकी बातें सुन सके।

और दोनों हाथोंके घूँसे बाँधकर उसने भगवान् श्रीकृष्ण-की छातीपर प्रहार किया ॥२१॥ परन्तु उसके प्रहारसे भगवान् तनिक भी विचलित न हुए, जैसे फूलोंके गजरे-की मारसे गजराज। उन्होंने चाणूरकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और उसे अन्तरिक्षमें बड़े वेगसे कई बार घुमाकर धरतीपर दे मारा। परीक्षित्! चाणूरके प्राण तो घुमानेके समय ही निकल गये थे। उसकी वेष-भूषा अस्त-व्यस्त हो गयी, केश और मालाएँ बिखर गयीं, वह इन्द्रध्वज (इन्द्रकी पूजाके लिये खड़े किये गये बड़े झंडे) के समान गिर पड़ा ॥ २२-२३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिकने भी पहले बलरामजीको एक घूँसा मारा। इसपर बली बलरामजीने उसे बड़े जोरसे एक तमाचा जड़ दिया॥२४॥ तमाचा लगनेसे वह काँप उठा और आँधीसे उखड़े हुए वृक्षके समान अत्यन्त व्यथित और अन्तमें प्राणहीन होकर खून उगलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ हे राजन्! इसके बाद योद्धाओंमें श्रेष्ठ भगवान् बलराम-जीने अपने सामने आते ही कूट नामक पहलवानको खेल-खेलमें ही बायें हाथके घूँसेसे उपेक्षापूर्वक मार डाला ॥ २६ ॥ उसी समय भगवान् श्रीकृष्णने पैरकी ठोकरसे शलका सिर धड़से अलग कर दिया और तोशल-को तिनकेकी तरह चीरकर दो टुकड़े कर दिया। इस प्रकार दोनों धराशायी हो गये ॥ २७ ॥ जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल—ये पाँचों पहलवान मर चुके, तब जो बच रहे थे, वे अपने प्राण बचानेके लिये स्वयं वहाँसे भाग खड़े हुए ॥२८॥ उनके भाग जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने समवयस्क ग्वाल-बालोंको खींच-खींचकर उनके साथ भिड़ने और नाच-नाचकर भेरीध्वनिके साथ अपने नूपुरोंकी झनकारको मिलाकर मल्लक्रीडा—कुश्तीके खेल करने लगे ॥२९॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी इस अद्भुत लीला-को देखकर सभी दर्शकोंको बड़ा आनन्द हुआ। श्रेष्ठ ब्राह्मण और साधु पुरुष 'धन्य है, धन्य है'—इस प्रकार कहकर प्रशंसा करने लगे। परन्तु कंसको इससे बड़ा दुःख हुआ। वह और भी चिढ़ गया ॥ ३० ॥ जब उसके प्रधान पहलवान मार डाले गये और बचे हुए सब-के-सब भाग गये, तब भोजराज कंसने अपने बाजे-गाजे बंद करा दिये और अपने सेवकोंको यह आज्ञा दी—॥ ३१ ॥ 'अरे, वसुदेवके इन दुश्चरित्र लड़कोंको नगरसे बाहर निकाल दो। गोपोंका सारा धन छीन लो और दुर्बुद्धि नन्दको कैद कर लो ॥ ३२ ॥ वसुदेव भी बड़ा कुबुद्धि और दुष्ट है। उसे शीघ्र मार डालो। और उग्रसेन मेरा पिता होनेपर भी अपने अनुयायियोंके साथ शत्रुओंसे मिला हुआ है। इसलिये उसे भी जीता मत छोड़ो' ॥३३॥ कंस इस प्रकार बढ़-बढ़कर बकवाद-कर रहा था कि अविनाशी श्रीकृष्ण कुपित होकर फुर्तीसे वेगपूर्वक उछलकर लीलासे ही उसके ऊँचे मञ्चपर जा चढ़े ॥३४॥ जब मनस्वी कंसने देखा कि मेरे मृत्युरूप भगवान् श्रीकृष्ण सामने आ गये, तब वह सहसा अपने सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और हाथमें ढाल तथा तलवार उठा ली ॥३५॥ हाथमें तलवार लेकर वह चोट करनेका अवसर ढूँढ़ता हुआ पैंतरा बदलने लगा। आकाशमें उड़ते हुए बाजके समान वह कभी दायीं ओर जाता तो कभी बायीं ओर। परन्तु भगवान्का प्रचण्ड तेज अत्यन्त दुस्सह है। जैसे गरुड़ साँपको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान्ने बलपूर्वक उसे पकड़ लिया ॥ ३६ ॥ इसी समय कंसका मुकुट गिर गया और भगवान्ने उसके केश पकड़कर उसे भी उस ऊँचे मञ्चसे रंगभूमिमें गिरा दिया। फिर परम स्वतन्त्र और सारे विश्वके आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उसके ऊपर स्वयं कूद पड़े ॥ ३७ ॥ उनके कूदते ही कंसकी मृत्यु हो गयी। सबके देखते-देखते भगवान् श्रीकृष्ण कंसकी लाशको धरतीपर उसी प्रकार घसीटने लगे, जैसे सिंह हाथीको घसीटे। नरेन्द्र! उस समय सबके मुँहसे 'हाय! हाय!' की बड़ी ऊँची आवाज सुनायी पड़ी ॥ ३८ ॥ कंस नित्य-निरन्तर बड़ी घबड़ाहटके साथ श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहता था। वह खाते-पीते, सोते-चलते, बोलते और साँस लेते—सब समय अपने सामने चक्र हाथमें लिये भगवान् श्रीकृष्णको ही देखता रहता था। इस नित्य चिन्तनके फलस्वरूप—वह चाहे द्वेषभावसे ही क्यों न किया गया हो—उसे भगवान्के उसी रूपकी प्राप्ति हुई, सारूप्य-मुक्ति हुई, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े तपस्वी योगियोंके लिये भी कठिन है ॥ ३९ ॥

कंस-उद्धार

[पृष्ठ ७०४

कंसके कङ्क और न्यग्रोध आदि आठ छोटे भाई थे। वे अपने बड़े भाईका बदला लेनेके लिये क्रोधसे आग-बबूले होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी ओर दौड़े ॥ ४० ॥ जब भगवान् बलरामजीने देखा कि वे बड़े वेगसे युद्धके लिये तैयार होकर दौड़े आ रहे हैं, तब उन्होंने परिघ उठाकर उन्हें वैसे ही मार डाला, जैसे सिंह पशुओंको मार डालता है ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। भगवान्‌के विभूति-स्वरूप ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता बड़े आनन्दसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं ॥ ४२ ॥ महाराज! कंस और उसके भाइयोंकी स्त्रियाँ अपने आत्मीय स्वजनोंकी मृत्युसे अत्यन्त दुःखित हुईं। वे अपने सिर पीटती हुई आँखोंमें आँसू भरे वहाँ आयीं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यापर सोये हुए अपने पतियोंसे लिपटकर वे शोकग्रस्त हो गयीं और बार-बार आँसू बहाती हुई ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ 'हा नाथ! हे प्यारे! हे धर्मज्ञ! हे करुणामय! हे अनाथवत्सल! आपकी मृत्युसे हम सबकी मृत्यु हो गयी। आज हमारे घर उजड़ गये। हमारी सन्तान अनाथ हो गयी ॥ ४५ ॥ पुरुषश्रेष्ठ! इस पुरीके आप ही स्वामी थे। आपके विरहसे इसके उत्सव समाप्त हो गये और मङ्गलचिह्न उतर गये। यह हमारी ही भाँति विधवा होकर शोभाहीन हो गयी ॥ ४६ ॥ स्वामी! आपने निरपराध प्राणियोंके साथ घोर द्रोह किया था, अन्याय किया था; इसीसे आपकी यह गति हुई। सच है, जो जगत्‌के जीवोंसे द्रोह करता है, उनका अहित करता है, ऐसा कौन पुरुष शान्ति पा सकता है? ॥४७॥ ये भगवान् श्रीकृष्ण जगत्‌के समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके आधार हैं। यही रक्षक भी हैं। जो इनका बुरा चाहता है, इनका तिरस्कार करता है; वह कभी सुखी नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे संसारके जीवनदाता हैं। उन्होंने रानियोंको ढाढ़स बँधाया, सान्त्वना दी; फिर लोकरीतिके अनुसार मरनेवालोंका जैसा क्रिया-कर्म होता है, वह सब कराया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने जेलमें जाकर अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाया और सिरसे स्पर्श करके उनके चरणोंकी वन्दना की ॥ ५० ॥ किन्तु अपने पुत्रोंके प्रणाम करनेपर भी देवकी और वसुदेवने उन्हें जगदीश्वर समझकर अपने हृदयसे नहीं लगाया। उन्हें शङ्का हो गयी कि हम जगदीश्वरको पुत्र कैसे समझें ॥ ५१ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका यज्ञोपवीत और गुरुकुलप्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि माता-पिताको मेरे ऐश्वर्यका, मेरे भगवद्भावका ज्ञान हो गया है। परन्तु इन्हें ऐसा ज्ञान होना ठीक नहीं, (इससे तो ये पुत्र-स्नेहका सुख नहीं पा सकेंगे—) ऐसा सोचकर उन्होंने उनपर अपनी वह योगमाया फैला दी, जो उनके स्वजनोंको मुग्ध रखकर उनकी लीलामें सहायक होती है ॥ १ ॥ यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामजीके साथ अपने माँ-बापके पास जाकर आदरपूर्वक और विनयसे झुककर 'मेरी अम्मा! मेरे पिताजी!' इन शब्दोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे—॥ २ ॥ 'पिताजी! माताजी! हम आपके पुत्र हैं और आप हमारे लिये सर्वदा उत्कण्ठित रहे हैं, फिर भी आप हमारे बाल्य, पौगण्ड और किशोर अवस्थाका सुख हमसे नहीं पा सके ॥ ३ ॥ दुर्दैववश हमलोगोंको आपके पास रहनेका सौभाग्य ही नहीं मिला। इसीसे बालकोंको माता-पिताके घरमें रहकर जो लाड़-प्यारका सुख मिलता है, वह हमें भी नहीं मिल सका ॥४॥ पिता और माता ही इस शरीरको जन्म देते हैं और इसका लालन-पालन करते हैं। तब कहीं जाकर यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षकी प्राप्तिका साधन बनता है। यदि कोई मनुष्य सौ वर्षतक जीकर माता

और पिताकी सेवा करता रहे, तब भी वह उनके उपकारसे उऋण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ जो पुत्र सामर्थ्य रहते भी अपने माँ-बापकी शरीर और धनसे सेवा नहीं करता, उसके मरनेपर यमदूत उसे उसके अपने शरीरका मांस खिलाते हैं ॥ ६ ॥ जो पुरुष समर्थ होकर भी बूढ़े माता-पिता, सती पत्नी, बालक, सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतका भरण-पोषण नहीं करता—वह जीता हुआ भी मुर्देके समान ही है ! ॥ ७ ॥ पिताजी ! हमारे इतने दिन व्यर्थ ही बीत गये। क्योंकि कंसके भयसे सदा उद्विग्नचित्त रहनेके कारण हम आपकी सेवा करनेमें असमर्थ रहे ॥ ८ ॥ मेरी माँ और मेरे पिताजी ! आप दोनों हमें क्षमा करें। हाय ! दुष्ट कंसने आपको इतने-इतने कष्ट दिये, परन्तु हम परतन्त्र रहनेके कारण आपकी कोई सेवा-शुश्रूषा न कर सके' ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपनी लीलासे मनुष्य बने हुए विश्वात्मा श्रीहरिकी इस वाणीसे मोहित हो देवकी-वसुदेवने उन्हें गोदमें उठा लिया और हृदयसे चिपकाकर परमानन्द प्राप्त किया ॥१०॥ राजन् ! वे स्नेह-पाशसे बँधकर पूर्णतः मोहित हो गये और आँसुओंकी धारासे उनका अभिषेक करने लगे। यहाँतक कि आँसुओंके कारण गला रुँध जानेसे वे कुछ बोल भी न सके ॥ ११ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपने माता-पिताको सान्त्वना देकर अपने नाना उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बना दिया ॥ १२ ॥ और उनसे कहा—'महाराज ! हम आपकी प्रजा हैं। आप हमलोगोंपर शासन कीजिये। राजा ययातिका शाप होनेके कारण यदुवंशी राजसिंहासनपर नहीं बैठ सकते; (परन्तु मेरी ऐसी ही इच्छा है, इसलिये आपको कोई दोष न होगा।)' ॥ १३ ॥ जब मैं सेवक बनकर आपकी सेवा करता रहूँगा, तब बड़े-बड़े देवता भी सिर झुकाकर आपको भेंट देंगे।' दूसरे नरपतियोंके बारेमें तो कहना ही क्या है ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे विश्वके विधाता हैं। उन्होंने, जो कंसके भयसे व्याकुल होकर इधर-उधर भाग गये थे, उन यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न समस्त सजातीय सम्बन्धियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर बुलवाया। उन्हें घरसे बाहर रहनेमें बड़ा क्लेश उठाना पड़ा था। भगवान्‌ने उनका सत्कार किया, सान्त्वना दी और उन्हें खूब धन-सम्पत्ति देकर तृप्त किया तथा अपने-अपने घरोंमें बसा दिया ॥ १५-१६ ॥ अब सारे-के-सारे यदुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके बाहुबलसे सुरक्षित थे। उनकी कृपासे उन्हें किसी प्रकारकी व्यथा नहीं थी, दुःख नहीं था। उनके सारे मनोरथ सफल हो गये थे। वे कृतार्थ हो गये थे। अब वे अपने-अपने घरोंमें आनन्दसे विहार करने लगे ॥ १७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका वदन आनन्दका सदन है। वह नित्य प्रफुल्लित, कभी न कुम्हलानेवाला कमल है। उसका सौन्दर्य अपार है। सदय हास और चितवन उसपर सदा नाचती रहती है। यदुवंशी दिन-प्रतिदिन उसका दर्शन करके आनन्दमग्न रहते ॥ १८ ॥ मथुराके वृद्ध पुरुष भी युवकोंके समान अत्यन्त बलवान् और उत्साही हो गये थे; क्योंकि वे अपने नेत्रोंके दोनोंसे बारंबार भगवान्‌के मुखारविन्दका अमृतमय मकरन्द-रस पान करते रहते थे ॥ १९ ॥

प्रिय परीक्षित् ! अब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों ही नन्दबाबाके पास आये और गले लगनेके बाद उनसे कहने लगे—॥२०॥ 'पिताजी ! आपने और माँ यशोदाने बड़े स्नेह और दुलारसे हमारा लालन-पालन किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता-पिता सन्तानपर अपने शरीरसे भी अधिक स्नेह करते हैं ॥ २१ ॥ जिन्हें पालन-पोषण न कर सकनेके कारण स्वजन-सम्बन्धियोंने त्याग दिया है, उन बालकोंको जो लोग अपने पुत्रके समान लाड़-प्यारसे पालते हैं, वे ही वास्तवमें उनके माँ-बाप हैं ॥ २२ ॥ पिताजी ! अब आपलोग व्रजमें जाइये। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बिना वात्सल्य-स्नेहके कारण आप लोगोंको बहुत दुःख होगा। यहाँके सुहृद्-सम्बन्धियोंको सुखी करके हम आपलोगोंसे मिलनेके लिये आयेंगे' ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने नन्दबाबा और दूसरे व्रजवासियोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़े आदरके

साथ वस्त्र, आभूषण और अनेक धातुओंके बने बरतन आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ २४ ॥ भगवान्‌की बात सुनकर नन्दबाबाने प्रेमसे अधीर होकर दोनों भाइयोंको गले लगा लिया और फिर नेत्रोंमें आँसू भरकर गोपोंके साथ व्रजके लिये प्रस्थान किया ॥२५॥

हे राजन् ! इसके बाद वसुदेवजीने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणोंसे दोनों पुत्रोंका विधिपूर्वक द्विजाति-समुचित यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया ॥ २६ ॥ उन्होंने विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें बहुत-सी दक्षिणा तथा बछड़ोंवाली गौएँ दीं । सभी गौएँ गलेमें सोनेकी माला पहने हुए थीं तथा और भी बहुत-से आभूषणों एवं रेशमी वस्त्रोंकी मालाओंसे विभूषित थीं ॥ २७ ॥ महामति वसुदेवजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके जन्म-नक्षत्रमें जितनी गौएँ मन-ही-मन सङ्कल्प करके दी थीं, उन्हें पहले कंसने अन्यायसे छीन लिया था । अब उनका स्मरण करके उन्होंने ब्राह्मणोंको वे फिरसे दीं ॥ २८ ॥ इस प्रकार यदुवंशके आचार्य गर्गजीसे संस्कार कराकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण द्विजत्वको प्राप्त हुए । उनका ब्रह्मचर्यव्रत अखण्ड तो था ही, अब उन्होंने गायत्रीपूर्वक अध्ययन करनेके लिये उसे नियमतः स्वीकार किया ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण और बलराम जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं । सर्वज्ञ हैं । सभी विद्याएँ उन्हींसे निकली हैं । उनका निर्मल ज्ञान स्वतःसिद्ध है । फिर भी उन्होंने मनुष्यकी-सी लीला करके उसे छिपा रक्खा था ॥३०॥

अब वे दोनों गुरुकुलमें निवास करनेकी इच्छासे काश्यपगोत्री सान्दीपनि मुनिके पास गये, जो अवन्तीपुर (उज्जैन) में रहते थे ॥ ३१ ॥ वे दोनों भाई विधिपूर्वक गुरुजीके पास रहने लगे । उस समय वे बड़े ही सुसंयत, अपनी चेष्टाओंको सर्वथा नियमित रक्खे हुए थे । गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये, इसका आदर्श लोगोंके सामने रखते हुए बड़ी भक्तिसे इष्टदेवके समान उनकी सेवा करने लगे ॥३२॥ गुरुवर सान्दीपनिजी उनकी शुद्धभावसे युक्त सेवासे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने दोनों भाइयोंको छहों अङ्ग और उपनिषदोंके सहित सम्पूर्ण वेदोंकी शिक्षा दी ॥३३॥ इनके सिवा मन्त्र और देवताओंके ज्ञानके साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि, वेदोंका तात्पर्य बतलानेवाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदिकी भी शिक्षा दी । साथ ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय—इन छः भेदोंसे युक्त राजनीतिका भी अध्ययन कराया ॥ ३४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओंके प्रवर्तक हैं । इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्यका-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे । उन्होंने गुरुजीके केवल एक बार कहनेमात्रसे सारी विद्याएँ सीख लीं ॥ ३५ ॥ केवल चौसठ दिन-रातमें ही संयमीशिरोमणि दोनों भाइयोंने चौसठों कलाओं*का ज्ञान प्राप्त कर लिया । इस प्रकार अध्ययन समाप्त होनेपर उन्होंने सान्दीपनि

---

* चौसठ कलाएँ ये हैं—

१ गानविद्या, २ वाद्य—भाँति-भाँतिके बाजे बजाना, ३ नृत्य, ४ नाट्य, ५ चित्रकारी, ६ बेल-बूटे बनाना, ७ चावल और पुष्पादिसे पूजाके उपहारकी रचना करना, ८ फूलोंकी सेज बनाना, ९ दाँत, वस्त्र और अङ्गोंको रँगना, १० मणियोंकी फर्श बनाना, ११ शय्या-रचना, १२ जलको बाँध देना, १३ विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना, १४ हार-माला आदि बनाना, १५ कान और चोटीके फूलोंके गहने बनाना, १६ कपड़े और गहने बनाना, १७ फूलोंके आभूषणोंसे शृङ्गार करना, १८ कानोंके पत्तोंकी रचना करना, १९ सुगन्ध वस्तुएँ—इत्र, तैल आदि बनाना, २० इन्द्रजाल—जादूगरी, २१ चाहे जैसा वेष धारण कर लेना, २२ हाथकी फुर्तीके काम, २३ तरह-तरहकी खानेकी वस्तुएँ बनाना, २४ तरह-तरहके पीनेके पदार्थ बनाना, २५ सूईका काम, २६ कठपुतली बनाना, नचाना, २७ पहेली, २८ प्रतिमा आदि बनाना, २९ कूटनीति, ३० ग्रन्थोंके पढ़ानेकी चातुरी, ३१ नाटक, आख्यायिका आदिकी रचना करना, ३२ समस्यापूर्ति करना, ३३ पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना, ३४ गलीचे, दरी आदि बनाना, ३५ बढ़ईकी कारीगरी, ३६ गृह आदि बनानेकी कारीगरी, ३७ सोने, चाँदी आदि धातु तथा हीरे-पन्ने आदि रत्नोंकी परीक्षा, ३८ सोना-चाँदी आदि बना लेना, ३९ मणियोंके रंगको पहचानना, ४० खानोंकी पहचान, ४१ वृक्षोंकी चिकित्सा, ४२ भेड़ा, मुर्गा, बटेर आदिको लड़ानेकी रीति, ४३ तोता-मैना आदिकी बोलियाँ बोलना, ४४ उच्चाटनकी विधि, ४५ केशोंकी सफाईका कौशल, ४६ मुट्ठीकी चीज या मनकी बात बता देना,

मुनिसे प्रार्थना की कि 'आपकी जो इच्छा हो, गुरु-दक्षिणा माँग लें' ॥ ३६ ॥ महाराज ! सान्दीपनि मुनिने उनकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धिका अनुभव कर लिया था। इसलिये उन्होंने अपनी पत्नीसे सलाह करके यह गुरुदक्षिणा माँगी कि 'प्रभासक्षेत्रमें हमारा बालक समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे तुमलोग ला दो' ॥ ३७ ॥ बलरामजी और श्रीकृष्णका पराक्रम अनन्त था। दोनों ही महारथी थे। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुजीकी आज्ञा स्वीकार की और रथपर सवार होकर प्रभासक्षेत्रमें गये। वे समुद्रतटपर जाकर क्षणभर बैठे रहे। उस समय यह जानकर कि ये साक्षात् परमेश्वर हैं, अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री लेकर समुद्र उनके सामने उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ भगवान्ने समुद्रसे कहा—'समुद्र ! तुम यहाँ अपनी बड़ी-बड़ी तरङ्गोंसे हमारे जिस गुरुपुत्रको बहा ले गये थे, उसे लाकर शीघ्र हमें दो' ॥ ३९ ॥

मनुष्यवेषधारी समुद्रने कहा—'देवाधिदेव श्रीकृष्ण ! मैंने उस बालकको नहीं लिया है। मेरे जलमें पञ्चजन नामका एक बड़ा भारी दैत्य जातिका असुर शङ्खके रूपमें रहता है। अवश्य ही उसीने वह बालक चुरा लिया होगा' ॥ ४० ॥ समुद्रकी बात सुनकर भगवान् तुरंत ही जलमें जा घुसे और शङ्खासुरको मार डाला। परन्तु वह बालक उसके पेटमें नहीं मिला ॥ ४१ ॥ तब उसके शरीरका शङ्ख लेकर भगवान् रथपर चले आये। वहाँसे बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने यम-राजकी प्रिय पुरी संयमनीमें जाकर अपना शङ्ख बजाया। शङ्खका शब्द सुनकर सारी प्रजाका शासन करनेवाले यमराजने उनका स्वागत किया और भक्तिभावसे भरकर विधिपूर्वक उनकी बहुत बड़ी पूजा की। उन्होंने नम्रतासे झुककर समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'लीलासे ही मनुष्य बने हुए सर्वव्यापक परमेश्वर ! मैं आप दोनोंकी क्या सेवा करूँ ?' ॥ ४२—४४ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—'यमराज ! यहाँ अपने कर्म-बन्धनके अनुसार मेरा गुरुपुत्र लाया गया है। तुम मेरी आज्ञा स्वीकार करो और उसके कर्मपर ध्यान न देकर उसे मेरे पास ले आओ ॥ ४५ ॥ यमराजने जो 'आज्ञा' कहकर भगवान्का आदेश स्वीकार किया और उनका गुरुपुत्र ला दिया। तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस बालकको लेकर उज्जैन लौट आये और उसे अपने गुरुदेवको सौंपकर कहा कि 'आप और जो कुछ चाहें, माँग लें' ॥ ४६ ॥

गुरुजीने कहा—'बेटा ! तुम दोनोंने भलीभाँति गुरुदक्षिणा दी। अब और क्या चाहिये ? जो तुम्हारे-जैसे पुरुषोत्तमोंका गुरु है, उसका कौन-सा मनोरथ अपूर्ण रह सकता है ? ॥ ४७ ॥ वीरो ! अब तुम दोनों अपने घर जाओ। तुम्हें लोकोंको पवित्र करने-वाली कीर्ति प्राप्त हो। तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या इस लोक और परलोकमें सदा नवीन बनी रहे, कभी विस्मृत न हो' ॥ ४८ ॥ बेटा परीक्षित् ! फिर गुरुजीसे आज्ञा लेकर वायुके समान वेग और मेघके समान शब्दवाले रथपर सवार होकर दोनों भाई मथुरामें लौट आये ॥ ४९ ॥ मथुराकी प्रजा बहुत दिनोंतक श्रीकृष्ण और बलरामको न देखनेसे अत्यन्त दुखी हो रही थी। अब उन्हें आया हुआ देख सब-के-सब परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो खोया हुआ धन मिल गया हो ॥ ५० ॥

छियालीसवाँ अध्याय

उद्धवजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उद्धवजी वृष्णिवंशियोंमें एक प्रधान पुरुष थे। वे साक्षात्

४७ म्लेच्छ-काव्योंका समझ लेना, ४८ विभिन्न देशोंकी भाषाका ज्ञान, ४९ शकुन-अपशकुन जानना, प्रश्नोंके उत्तरमें शुभाशुभ बतलाना, ५० नाना प्रकारके मातृकायन्त्र बनाना, ५१ रत्नोंको नाना प्रकारके आकारोंमें काटना, ५२ साङ्केतिक भाषा बनाना, ५३ मनमें कटकरचना करना, ५४ नयी-नयी बातें निकालना, ५५ छलसे काम निकालना, ५६ समस्त कोशोंका ज्ञान, ५७ समस्त छन्दोंका ज्ञान, ५८ वस्त्रोंको छिपाने या बदलनेकी विद्या, ५९ द्यूतक्रीड़ा, ६० दूरके मनुष्य या वस्तुओंका आकर्षण कर लेना, ६१ बालकोंके खेल, ६२ मन्त्रविद्या, ६३ विजय प्राप्त करानेवाली विद्या, ६४ वेताल आदिको वशमें रखनेकी विद्या।

बृहस्पतिजीके शिष्य और परम बुद्धिमान् थे। उनकी महिमाके सम्बन्धमें इससे बढ़कर और कौन-सी बात कही जा सकती है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा तथा मन्त्री भी थे॥ १॥ एक दिन शरणागतोंके सारे दुःख हर लेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त और एकान्तप्रेमी उद्धवजीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—॥ २॥ 'सौम्यस्वभाव उद्धव! तुम व्रजमें जाओ। वहाँ मेरे पिता-माता नन्दबाबा और यशोदा मैया हैं, उन्हें आनन्दित करो; और गोपियाँ मेरे विरहकी व्याधिसे बहुत ही दुखी हो रही हैं, उन्हें मेरे सन्देश सुनाकर उस वेदनासे मुक्त करो॥ ३॥ प्यारे उद्धव! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझीको अपना प्यारा, अपना प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रक्खा है। मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ॥ ४॥ प्रिय उद्धव! मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम हूँ। मेरे यहाँ चले आनेसे वे मुझे दूरस्थ मानती हैं और मेरा स्मरण करके अत्यन्त मोहित हो रही हैं, बार-बार मूर्च्छित हो जाती हैं। वे मेरे विरहकी व्यथासे विह्वल हो रही हैं, प्रतिक्षण मेरे लिये उत्कण्ठित रहती हैं॥ ५॥ मेरी गोपियाँ, मेरी प्रेयसियाँ इस समय बड़े ही कष्ट और यत्नसे अपने प्राणोंको किसी प्रकार रख रही हैं। मैंने उनसे कहा था कि 'मैं आऊँगा।' वही उनके जीवनका आधार है। उद्धव! और तो क्या कहूँ, मैं ही उनकी आत्मा हूँ। वे नित्य-निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती हैं'॥ ६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही, तब उद्धवजी बड़े आदरसे अपने स्वामीका सन्देश लेकर रथपर सवार हुए और नन्दगाँवके लिये चल पड़े॥ ७॥ परम सुन्दर उद्धवजी सूर्यास्तके समय नन्दबाबाके व्रजमें पहुँचे। उस समय जंगलसे गौएँ लौट रही थीं। उनके खुरोंके आघातसे इतनी धूल उड़ रही थी कि उनका रथ ढक गया था॥ ८॥ व्रजभूमिमें ऋतुमती गौओंके लिये मतवाले साँड़ आपसमें लड़ रहे थे। उनकी गर्जनासे सारा व्रज गूँज रहा था। थोड़े दिनोंकी ब्यायी हुई गौएँ अपने थनोंके भारी भारसे दबी होनेपर भी अपने-अपने बछड़ोंकी ओर दौड़ रही थीं॥ ९॥ सफेद रंगके बछड़े इधर-उधर उछल-कूद मचाते हुए बहुत ही भले मालूम होते थे। गाय दुहनेकी 'घर-घर' ध्वनिसे और बाँसुरियोंकी मधुर टेरसे अब भी व्रजकी अपूर्व शोभा हो रही थी॥ १०॥ गोपी और गोप सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा गहनोंसे सज-धजकर श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रहे थे और इस प्रकार व्रजकी शोभा और भी बढ़ गयी थी॥ ११॥ गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और देवता-पितरोंकी पूजा की हुई थी। धूपकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी और दीपक जगमगा रहे थे। उन घरोंको पुष्पोंसे सजाया गया था। ऐसे मनोहर गृहोंसे सारा व्रज और भी मनोरम हो रहा था॥ १२॥ चारों ओर वन-पंक्तियाँ फूलोंसे लद रही थीं। पक्षी चहक रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। वहाँ जल और स्थल दोनों ही कमलोंके वनसे शोभायमान थे और हंस, बत्तख आदि पक्षी वनमें विहार कर रहे थे॥ १३॥

जब भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे अनुचर उद्धवजी व्रजमें आये, तब उनसे मिलकर नन्दबाबा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उद्धवजीको गले लगाकर उनका वैसे ही सम्मान किया, मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हों॥ १४॥ समयपर उत्तम अन्नका भोजन कराया और जब वे आरामसे पलँगपर बैठ गये, सेवकोंने पाँव दबाकर, पंखा झलकर उनकी थकावट दूर कर दी॥ १५॥ तब नन्दबाबाने उनसे पूछा—'परम भाग्यवान् उद्धवजी! अब हमारे सखा वसुदेवजी जेलसे छूट गये। उनके आत्मीय स्वजन तथा पुत्र आदि उनके साथ हैं। इस समय वे सब कुशलसे तो हैं न?॥ १६॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अपने पापोंके फलस्वरूप पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। क्योंकि स्वभावसे ही धार्मिक परम साधु यदुवंशियोंसे वह सदा द्वेष करता था॥ १७॥ अच्छा

उद्धवजी ! श्रीकृष्ण कभी हमलोगोंकी भी याद करते हैं ? यह उनकी माँ है, स्वजन-सम्बन्धी हैं, सखा हैं, गोप हैं; उन्हींको अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाला यह व्रज है; उन्हींकी गौएँ, वृन्दावन और यह गिरिराज है; क्या वे कभी इनका स्मरण करते हैं ? ॥ १८ ॥ आप यह तो बतलाइये कि हमारे गोविन्द अपने सुहृद्-बान्धवोंको देखनेके लिये एक बार भी यहाँ आयेंगे क्या ? यदि वे यहाँ आ जाते तो हम उनकी वह सुघड़ नासिका, उनका मधुर हास्य और मनोहर चितवनसे युक्त मुखकमल देख तो लेते ॥ १९ ॥ उद्धवजी ! श्रीकृष्णका हृदय उदार है, उनकी शक्ति अनन्त है, उन्होंने दावानलसे, आँधी-पानीसे, वृषासुर और अजगर आदि अनेकों मृत्युके निमित्तोंसे—जिन्हें टालनेका कोई उपाय न था—एक बार नहीं, अनेक बार हमारी रक्षा की है ॥ २० ॥ उद्धवजी ! हम श्रीकृष्णके विचित्र चरित्र, उनकी विलासपूर्ण तिरछी चितवन, उन्मुक्त हास्य, मधुर भाषण आदिका स्मरण करते रहते हैं और उसमें इतने तन्मय रहते हैं कि अब हमसे कोई काम-काज नहीं हो पाता ॥ २१ ॥ जब हम देखते हैं कि यह वही नदी है, जिसमें श्रीकृष्ण जलक्रीडा करते थे; यह वही गिरिराज है, जिसे उन्होंने अपने एक हाथपर उठा लिया था; ये वे ही वनके प्रदेश हैं, जहाँ श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए बाँसुरी बजाते थे, और ये वे ही स्थान हैं, जहाँ वे अपने सखाओंके साथ अनेकों प्रकारके खेल खेलते थे; और साथ ही यह भी देखते हैं कि वहाँ उनके चरणचिह्न अभी मिटे नहीं हैं, तब उन्हें देखकर हमारा मन श्रीकृष्णमय हो जाता है ॥ २२ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि मैं श्रीकृष्ण और बलरामको देवशिरोमणि मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि वे देवताओंका कोई बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये यहाँ आये हुए हैं। स्वयं भगवान् गर्गाचार्यजीने मुझसे ऐसा ही कहा था ॥ २३ ॥ जैसे सिंह बिना किसी परिश्रमके पशुओंको मार डालता है, वैसे ही उन्होंने खेल-खेलमें ही दस हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कंस, उसके दोनों अजेय पहलवानों और महान् बलशाली गजराज कुवलयापीड़को मार डाला ॥ २४ ॥ उन्होंने तीन ताल लंबे और अत्यन्त दृढ़ धनुषको वैसे ही तोड़ डाला, जैसे कोई हाथी किसी छड़ीको तोड़ डाले। हमारे प्यारे श्रीकृष्णने एक हाथसे सात दिनोंतक गिरिराजको उठाये रक्खा था ॥ २५ ॥ यहीं सबके देखते-देखते खेल-खेलमें उन्होंने प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त और बक आदि उन बड़े-बड़े दैत्योंको मार डाला, जिन्होंने समस्त देवता और असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली थी' ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! नन्दबाबाका हृदय यों ही भगवान् श्रीकृष्णके अनुराग-रंगमें रँगा हुआ था। जब इस प्रकार वे उनकी लीलाओंका एक-एक करके स्मरण करने लगे, तब तो उसमें प्रेमकी बाढ़ ही आ गयी, वे विह्वल हो गये और मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा होनेके कारण उनका गला रुँध गया। वे चुप हो गये ॥ २७ ॥ यशोदारानी भी वहीं बैठकर नन्दबाबाकी बातें सुन रही थीं, श्रीकृष्णकी एक-एक लीला सुनकर उनके नेत्रोंसे आँसू बहते जाते थे और पुत्र-स्नेहकी बाढ़से उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहती जा रही थी ॥ २८ ॥ उद्धवजी नन्दबाबा और यशोदारानीके हृदयमें श्रीकृष्णके प्रति कैसा अगाध अनुराग है—यह देखकर आनन्दमग्न हो गये और उनसे कहने लगे ॥ २९ ॥

उद्धवजीने कहा—हे मानद ! इसमें संदेह नहीं कि आप दोनों समस्त शरीरधारियोंमें अत्यन्त भाग्यवान् हैं, सराहना करने योग्य हैं। क्योंकि जो सारे चराचर जगत्के बनानेवाले और उसे ज्ञान देनेवाले नारायण हैं, उनके प्रति आपके हृदयमें ऐसा वात्सल्यस्नेह—पुत्रभाव है ॥ ३० ॥ बलराम और श्रीकृष्ण पुराणपुरुष हैं; वे सारे संसारके उपादानकारण और निमित्तकारण भी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण पुरुष हैं तो बलरामजी प्रधान (प्रकृति)। ये ही दोनों समस्त शरीरोंमें प्रविष्ट होकर उन्हें जीवन-दान देते हैं और उनमें उनसे अत्यन्त विलक्षण जो ज्ञानस्वरूप जीव है, उसका नियमन करते हैं ॥ ३१ ॥ जो जीव मृत्युके समय अपने शुद्ध मनको एक क्षणके लिये भी उनमें लगा देता है, वह समस्त कर्म-वासनाओं-को धो बहाता है और शीघ्र ही सूर्यके समान तेजस्वी

तथा ब्रह्ममय होकर परम गतिको प्राप्त होता है ॥३२॥ वे भगवान् ही, जो सबके आत्मा और परम कारण हैं, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करने और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण करके प्रकट हुए हैं। उनके प्रति आप दोनोंका ऐसा सुदृढ़ वात्सल्य-भाव है; फिर महात्माओ! आप दोनोंके लिये अब कौन-सा शुभ कर्म करना शेष रह जाता है ॥ ३३ ॥ भक्तवत्सल यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण थोड़े ही दिनोंमें व्रजमें आयेंगे और आप दोनोंको—अपने माँ-बापको आनन्दित करेंगे ॥ ३४ ॥ जिस समय उन्होंने समस्त यदुवंशियोंके द्रोही कंसको रंगभूमिमें मार डाला और आपके पास आकर कहा कि 'मैं व्रजमें आऊँगा', उस कथनको वे सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥ नन्दबाबा और माता यशोदाजी! आप दोनों परम भाग्यशाली हैं। खेद न करें। आप श्रीकृष्णको अपने पास ही देखेंगे; क्योंकि जैसे काष्ठमें अग्नि सदा ही व्यापक रूपसे रहती है, वैसे ही वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें सर्वदा विराजमान रहते हैं ॥३६॥ एक शरीरके प्रति अभिमान न होनेके कारण न तो कोई उनका प्रिय है और न तो अप्रिय। वे सबमें और सबके प्रति समान हैं; इसलिये उनकी दृष्टिमें न तो कोई उत्तम है और न तो अधम। यहाँतक कि विषमताका भाव रखनेवाला भी उनके लिये विषम नहीं है ॥ ३७ ॥ न तो उनकी कोई माता है और न पिता। न पत्नी है और न तो पुत्र आदि। न अपना है और न तो पराया। न देह है और न तो जन्म ही ॥ ३८ ॥ इस लोकमें उनका कोई कर्म नहीं है फिर भी वे साधुओंके परित्राणके लिये, लीला करनेके लिये देवादि सात्त्विक, मत्स्यादि तामस एवं मनुष्य आदि मिश्र योनियोंमें शरीर धारण करते हैं ॥ ३९ ॥ भगवान् अजन्मा हैं। उनमें प्राकृत सत्त्व, रज आदिमेंसे एक भी गुण नहीं है। इस प्रकार इन गुणोंसे अतीत होनेपर भी लीलाके लिये खेल-खेलमें वे सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं और उनके द्वारा जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जब बच्चे घुमरीपरेता खेलने लगते हैं या मनुष्य वेगसे चक्कर लगाने लगते हैं, तब उन्हें सारी पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है। वैसे ही वास्तवमें सब कुछ करनेवाला चित्त ही है; परन्तु उस चित्तमें अहंबुद्धि हो जानेके कारण, भ्रमवश उसे आत्मा—अपना 'मैं' समझ लेनेके कारण, जीव अपनेको कर्ता समझने लगता है ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण केवल आप दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, वे समस्त प्राणियोंके आत्मा, पुत्र, पिता-माता और स्वामी भी हैं ॥ ४२ ॥ बाबा! जो कुछ देखा या सुना जाता है—वह चाहे भूतसे सम्बन्ध रखता हो, वर्तमानसे अथवा भविष्यसे; स्थावर हो या जङ्गम हो, महान् हो अथवा अल्प हो—ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो भगवान् श्रीकृष्णसे पृथक् हो। बाबा! श्रीकृष्णके अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कह सकें। वास्तवमें सब वे ही हैं, वे ही परमार्थ सत्य हैं ॥ ४३ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके सखा उद्धव और नन्दबाबा इसी प्रकार आपसमें बात करते रहे और वह रात बीत गयी। कुछ रात शेष रहनेपर गोपियाँ उठीं, दीपक जलाकर उन्होंने घरकी देहलियोंपर वास्तुदेवका पूजन किया, अपने घरोंको झाड़-बुहारकर साफ किया और फिर दही मथने लगीं ॥ ४४ ॥ गोपियोंकी कलाइयोंमें कंगन शोभायमान हो रहे थे, रस्सी खींचते समय वे बहुत भली मालूम हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन और गलेके हार हिल रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर उनके कुङ्कुममण्डित कपोलोंकी लालिमा बढ़ा रहे थे। उनके आभूषणोंकी मणियाँ दीपककी ज्योतिसे और भी जगमगा रही थीं और इस प्रकार वे अत्यन्त शोभासे सम्पन्न होकर दही मथ रही थीं ॥४५॥ उस समय गोपियाँ—कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रोंका गान कर रही थीं। उनका वह सङ्गीत दही मथनेकी ध्वनिसे मिलकर और भी अद्भुत हो गया तथा स्वर्गलोकतक जा पहुँचा, जिसकी स्वर-लहरी सब ओर फैलकर दिशाओंका अमङ्गल मिटा देती है ॥ ४६ ॥

जब भगवान् भुवनभास्करका उदय हुआ, तब व्रजाङ्गनाओंने देखा कि नन्दबाबाके दरवाजेपर एक सोनेका रथ खड़ा है। वे एक-दूसरेसे पूछने लगीं 'यह

किसका रथ है?' ॥ ४७ ॥ किसी गोपीने कहा—'कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेवाला अक्रूर ही तो कहीं फिर नहीं आ गया है ? जो कमलनयन प्यारे श्यामसुन्दरको यहाँसे मथुरा ले गया था' ॥ ४८ ॥ किसी दूसरी गोपीने कहा—'क्या अब वह हमें ले जाकर अपने मरे हुए स्वामी कंसका पिण्डदान करेगा ? अब यहाँ उसके आनेका और क्या प्रयोजन हो सकता है ?' व्रजवासिनी स्त्रियाँ इसी प्रकार आपसमें बातचीत कर रही थीं कि उसी समय नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उद्धवजी आ पहुँचे ॥ ४९ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

उद्धव तथा गोपियोंकी बातचीत और भ्रमरगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गोपियोंने देखा कि श्रीकृष्णके सेवक उद्धवजीकी आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्णसे मिलती-जुलती है । घुटनोंतक लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, नूतन कमलदलके समान कोमल नेत्र हैं, शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, गलेमें कमलपुष्पोंकी माला है, कानोंमें मणिजटित कुण्डल झलक रहे हैं और मुखारविन्द अत्यन्त प्रफुल्लित है ॥ १ ॥ पवित्र मुसकानवाली गोपियोंने आपसमें कहा—'यह पुरुष देखनेमें तो बहुत सुन्दर है । परन्तु यह है कौन ? कहाँसे आया है ? किसका दूत है ? इसने श्रीकृष्ण-जैसी वेषभूषा क्यों धारण कर रक्खी है ?' सब-की-सब गोपियाँ उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गयीं और उनमेंसे बहुत-सी पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके आश्रित तथा उनके सेवक-सखा उद्धवजीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं ॥ २ ॥ जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो रमारमण भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनयसे झुककर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदिसे उद्धवजीका अत्यन्त सत्कार किया तथा एकान्तमें आसनपर बैठाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ ३ ॥ 'उद्धवजी ! हम जानती हैं कि आप यदुनाथके पार्षद हैं । उन्हींका संदेश लेकर यहाँ पधारे हैं । आपके स्वामीने अपने माता-पिताको सुख देनेके लिये आपको यहाँ भेजा है ।४। अन्यथा हमें तो अब इस नन्दगाँवमें—गौओंके रहनेकी जगहमें उनके स्मरण करने योग्य कोई भी वस्तु दिखायी नहीं पड़ती; माता-पिता आदि सगे-सम्बन्धियोंका स्नेह-बन्धन तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी बड़ी कठिनाईसे छोड़ पाते हैं ॥ ५ ॥ दूसरोंके साथ जो प्रेम-सम्बन्धका स्वाँग किया जाता है, वह तो किसी-न-किसी स्वार्थके लिये ही होता है । भौंरोंका पुष्पोंसे और पुरुषोंका स्त्रियोंसे ऐसा ही स्वार्थका प्रेम-सम्बन्ध होता है ॥ ६ ॥ जब वेश्या समझती है कि अब मेरे यहाँ आनेवालेके पास धन नहीं है, तब उसे वह धता बता देती है । जब प्रजा देखती है कि यह राजा हमारी रक्षा नहीं कर सकता, तब वह उसका साथ छोड़ देती है । अध्ययन समाप्त हो जानेपर कितने शिष्य अपने आचार्योंकी सेवा करते हैं ? यज्ञकी दक्षिणा मिली कि ऋत्विजलोग चलते बने ॥ ७ ॥ जब वृक्षपर फल नहीं रहते, तब पक्षीगण वहाँसे बिना कुछ सोचे-विचारे उड़ जाते हैं । भोजन कर लेनेके बाद अतिथि-लोग ही गृहस्थकी ओर कब देखते हैं ? वनमें आग लगी कि पशु भाग खड़े हुए । चाहे स्त्रीके हृदयमें कितना भी अनुराग हो, जार पुरुष अपना काम बना लेनेके बाद उलटकर भी तो नहीं देखता' ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! गोपियोंके मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन थे । जब भगवान् श्रीकृष्णके दूत बनकर उद्धवजी व्रजमें आये, तब वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल ही गयीं कि कौन-सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिये । भगवान् श्रीकृष्णने बचपनसे लेकर किशोर अवस्थातक जितनी भी लीलाएँ की थीं, उन सबकी याद कर-करके गोपियाँ उनका गान करने लगीं । वे आत्मविस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जाको भी भूल गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं ॥ ९-१० ॥ एक गोपीको उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् श्रीकृष्णके मिलन-की लीलाका । उसी समय उसने देखा कि पास ही एक भौंरा गुनगुना रहा है । उसने ऐसा समझा मानो मुझे रूठी हुई समझकर श्रीकृष्णने मनानेके लिये दूत भेजा हो । वह गोपी भौंरेसे इस प्रकार कहने लगी—।११।

गोपीने कहा—रे मधुप! तू कपटीका सखा है; इसलिये तू भी कपटी है। तू हमारे पैरोंको मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्णकी जो वनमाला हमारी सौतोंके वक्षःस्थलके स्पर्शसे मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुङ्कुम तेरी मूँछोंपर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुमसे प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू! मधुपति श्रीकृष्ण मथुराकी मानिनी नायिकाओंको मनाया करें, उनका वह कुङ्कुमरूप कृपा-प्रसाद, जो यदुवंशियोंकी सभामें उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रक्खें। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजनेकी क्या आवश्यकता है?॥१२॥ जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। उन्होंने हमें केवल एक बार—हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक-सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियों-को छोड़कर वे यहाँसे चले गये। पता नहीं; सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी सेवा कैसे करती रहती हैं! अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा॥१३॥ अरे भ्रमर! हम वनवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हमलोगोंके सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णका बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है? यह सब भला हमलोगोंको मनानेके लिये ही तो? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं। हमारे लिये तो जाने-पहचाने, बिल्कुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहाँसे चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्णकी मधुपुरवासिनी सखियोंके सामने जाकर उनका गुणगान कर। वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती हैं और इस समय वे उनकी प्यारी हैं; उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिटा दी है। वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसीसे प्रसन्न होकर तुझे मुँहमाँगी वस्तु देंगी॥१४॥ भौंरे! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौंहोंके इशारेसे जो वशमें न हो जायँ, उनके पास दौड़ी न आवें—ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं? अरे अनजान! स्वर्गमें, पातालमें और पृथ्वीमें ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनकी चरणरजकी सेवा किया करती हैं! फिर हम श्रीकृष्णके लिये किस गिनतीमें हैं? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्तिका गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसीमें है कि तुम दीनोंपर दया करो। नहीं तो श्रीकृष्ण! तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है॥१५॥ अरे मधुकर! देख, तू मेरे पैरपर सिर मत टेक। मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करनेमें, क्षमा-याचना करनेमें बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्णसे ही यही सीखकर आया है कि रूठे हुएको मनानेके लिये दूतको—सन्देशवाहकको कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलनेकी। देख, हमने श्रीकृष्ण-के लिये ही अपने पति, पुत्र और दूसरे लोगोंको छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने! अब तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञके साथ हम क्या सन्धि करें? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर विश्वास करना चाहिये?॥१६॥ ऐ रे मधुप! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालिको व्याधके समान छिपकर बड़ी निर्दयतासे मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्रीके वश होकर उस बेचारीके नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। ब्राह्मणके घर वामनके रूपमें जन्म लेकर उन्होंने क्या किया? बलिने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाशसे बाँधकर पातालमें डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालेको अपने अन्य साथियोंके साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें कृष्णसे क्या, किसी भी काली वस्तुके साथ मित्रतासे कोई प्रयोजन नहीं

गोपीने कहा—रे मधुप ! तू कपटीका सखा है; इसलिये तू भी कपटी है। तू हमारे पैरोंको मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्णकी जो वनमाला हमारी सौतोंके वक्षःस्थलके स्पर्शसे मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुङ्कुम तेरी मूँछोंपर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुमसे प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू ! मधुपति श्रीकृष्ण मथुराकी मानिनी नायिकाओंको मनाया करें, उनका वह कुङ्कुमरूप कृपा-प्रसाद, जो यदुवंशियोंकी सभामें उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रक्खें। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजनेकी क्या आवश्यकता है ?॥१२॥ जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। उन्होंने हमें केवल एक बार—हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक-सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियोंको छोड़कर वे यहाँसे चले गये। पता नहीं; सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी सेवा कैसे करती रहती हैं ! अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णकी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा ॥ १३ ॥ अरे भ्रमर ! हम वनवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हमलोगोंके सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णका बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है ? यह सब भला हमलोगोंको मनानेके लिये ही तो ? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं। हमारे लिये तो जाने-पहचाने, बिल्कुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहाँसे चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्णकी मधुपुरवासिनी सखियोंके सामने जाकर उनका गुणगान कर। वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती हैं और इस समय वे उनकी प्यारी हैं; उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिटा दी है। वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसीसे प्रसन्न होकर तुझे मुँहमाँगी वस्तु देंगी ॥ १४ ॥ भौंरे ! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है ? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौंहोंके इशारेसे जो वशमें न हो जायँ, उनके पास दौड़ी न आवें—ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं ? अरे अनजान ! स्वर्गमें, पातालमें और पृथ्वीमें ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनकी चरणरजकी सेवा किया करती हैं ! फिर हम श्रीकृष्णके लिये किस गिनतीमें हैं ? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्तिका गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसीमें है कि तुम दीनोंपर दया करो। नहीं तो श्रीकृष्ण ! तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है ॥ १५ ॥ अरे मधुकर ! देख, तू मेरे पैरपर सिर मत टेक। मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करनेमें, क्षमा-याचना करनेमें बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्णसे ही यही सीखकर आया है कि रूठे हुएको मनानेके लिये दूतको—सन्देशवाहकको कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलनेकी। देख, हमने श्रीकृष्णके लिये ही अपने पति, पुत्र और दूसरे लोगोंको छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने ! अब तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञके साथ हम क्या सन्धि करें ? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर विश्वास करना चाहिये ? ॥ १६ ॥ ऐ रे मधुप ! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालिको व्याधके समान छिपकर बड़ी निर्दयतासे मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्रीके वश होकर उस बेचारीके नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। ब्राह्मणके घर वामनके रूपमें जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बलिने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाशसे बाँधकर पातालमें डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालेको अपने अन्य साथियोंके साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें कृष्णसे क्या, किसी भी काली वस्तुके साथ मित्रतासे कोई प्रयोजन नहीं

जा है। कल्याणियो! वही लेकर मैं तुमलोगोंके पास आया हूँ, अब उसे सुनो ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—मैं सबका उपादान कारण होनेसे सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ; इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसारके सभी भौतिक पदार्थोंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हींसे सब वस्तुएँ बनी हैं और यही उन वस्तुओंके रूपमें हैं? वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंका आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूपमें प्रकट हो रहा हूँ॥२९॥ मैं ही अपनी मायाके द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने-आपको ही रचता हूँ, पालता हूँ और समेट लेता हूँ ॥ ३० ॥ आत्मा माया और मायाके कार्योंसे पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, जड प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवान्तर भेदोंसे रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते। मायाकी तीन वृत्तियाँ हैं—सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्। इनके द्वारा वही अखण्ड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्वरूप-से प्रतीत होता है ॥ ३१ ॥ मनुष्यको चाहिये कि वह समझे कि स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियोंके विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं। इसीलिये उन विषयोंका चिन्तन करनेवाले मन और इन्द्रियोंको रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत्के स्वाप्निक विषयोंको त्यागकर मेरा साक्षात्कार करे ॥ ३२ ॥ जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम-फिरकर समुद्रमें ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार मनस्वी पुरुषोंका वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्तिमें ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार; क्योंकि वे सब मनको निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं॥३३॥

गोपियो! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनोंका ध्रुवतारा हूँ। तुम्हारा जीवन-सर्वस्व हूँ! किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। वह यही कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीरसे दूर रहनेपर भी मनसे तुम मेरी सन्निधिका अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रक्खो ॥ ३४ ॥ क्योंकि स्त्रियों और अन्यान्य प्रेमियोंका चित्त अपने परदेशी प्रियतममें जितना निश्चल भावसे लगा रहता है, उतना आँखोंके सामने, पास रहनेवाले प्रियतममें नहीं लगता ॥३५॥ अशेष वृत्तियोंसे रहित सम्पूर्ण मन मुझमें लगाकर जब तुम लोग मेरा अनुस्मरण करोगी, तब शीघ्र ही सदाके लिये मुझे प्राप्त हो जाओगी ॥ ३६ ॥ कल्याणियो! जिस समय मैंने वृन्दावनमें शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिमें रास-क्रीडा की थी, उस समय जो गोपियाँ स्वजनोंके रोक लेनेसे व्रजमें ही रह गयीं—मेरे साथ रास-विहारमें सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओंका स्मरण करनेसे ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं। (तुम्हें भी मैं मिलूँगा अवश्य, निराश होनेकी कोई बात नहीं है) ॥३७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने प्रियतम श्रीकृष्णका यह सँदेसा सुनकर गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उनके सन्देशसे उन्हें श्रीकृष्णके स्वरूप और एक-एक लीलाकी याद आने लगी। प्रेमसे भरकर उन्होंने उद्धवजीसे कहा ॥ ३८ ॥

गोपियोंने कहा—उद्धवजी! यह बड़े सौभाग्यकी और आनन्दकी बात है कि यदुवंशियोंको सतानेवाला पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि श्रीकृष्णके बन्धु-बान्धव और गुरुजनोंके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु उद्धवजी! एक बात आप हमें बतलाइये। 'जिस प्रकार हम अपनी प्रेमभरी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवनसे उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुराकी स्त्रियोंसे भी वे प्रेम करते हैं या नहीं?' ॥४०॥ तबतक दूसरी गोपी बोल उठी—'अरी सखी! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेमकी मोहिनी कलाके विशेषज्ञ हैं। सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्यार करती हैं, फिर भला जब नगरकी स्त्रियाँ उनसे मीठी-मीठी बातें करेंगी और हाव-भावसे उनकी

ओर देखेंगी तब वे उनपर क्यों न रीझेंगे ?' ॥ ४१ ॥ दूसरी गोपियाँ बोलीं—'साधो ! आप यह तो बतलाइये कि जब कभी नागरी नारियोंकी मण्डलीमें कोई बात चलती है और हमारे प्यारे स्वच्छन्दरूपसे, बिना किसी सङ्कोचके जब प्रेमकी बातें करने लगते हैं, तब क्या कभी प्रसंगवश हम गँवार ग्वालिनोंकी भी याद करते हैं ?' ॥ ४२ ॥ कुछ गोपियोंने कहा—'उद्धवजी ! क्या कभी श्रीकृष्ण उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा कुन्दके पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था ! उन रात्रियोंमें ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हमलोगोंके साथ नृत्य किया था। कितनी सुन्दर थी वह रास-लीला ! उस समय हमलोगोंके पैरोंके नूपुर रुनझुन-रुनझुन बज रहे थे। हम सब सखियाँ उन्हींकी सुन्दर-सुन्दर लीलाओंका गान कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकारके विहार कर रहे थे' ॥ ४३ ॥ कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं—'उद्धवजी ! हम सब तो उन्हींके विरहकी आगसे जल रही हैं। देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर वनको हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर-स्पर्श आदिसे हमें जीवन-दान देनेके लिये यहाँ आवेंगे ?' ॥ ४४ ॥ तबतक एक गोपीने कहा—'अरी सखी ! अब तो उन्होंने शत्रुओंको मारकर राज्य पा लिया है; जिसे देखो, वही उनका सुहृद् बना फिरता है। अब वे बड़े-बड़े नरपतियोंकी कुमारियोंसे विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारिनोंके पास क्यों आयेंगे ?' ॥ ४५ ॥ दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी ! महात्मा श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं। उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं। हम वनवासिनी ग्वालिनों अथवा दूसरी राजकुमारियोंसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है। हम-लोगोंके बिना उनका कौन-सा काम अटक रहा है॥ ४६ ॥ देखो वेश्या होनेपर भी पिङ्गलाने क्या ही ठीक कहा है—'संसारमें किसीकी आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है।' यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान् श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा छोड़नेमें असमर्थ हैं। उनके शुभागमनकी आशा ही तो हमारा जीवन है ॥४७॥ हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने, जिनकी कीर्तिका गान बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकान्तमें जो मीठी-मीठी प्रेमकी बातें की हैं उन्हें छोड़नेका, भुलानेका उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ? देखो तो, उनकी इच्छा न होनेपर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणोंसे लिपटी रहती हैं, एक क्षणके लिये भी उनका अङ्ग-सङ्ग छोड़कर कहीं नहीं जातीं ॥ ४८ ॥ उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे। यह वही पर्वत है, जिसके शिखरपर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे। ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रिके समय रासलीला करते थे, और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चरानेके लिये वे सुबह-शाम हमलोगोंको देखते हुए जाते-आते थे। और यह ठीक वैसी ही वंशीकी तान हमारे कानोंमें गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अधरोंके संयोगसे छेड़ा करते थे। बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने इन सभीका सेवन किया है ॥४९॥ यहाँका एक-एक प्रदेश, एक-एक धूलिकण उनके परम सुन्दर चरणकमलोंसे चिह्नित है। इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं—तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दनको हमारे नेत्रोंके सामने लाकर रख देते हैं। उद्धवजी ! हम किसी भी प्रकार—मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं ॥ ५० ॥ उनकी वह हंसकी-सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! ओह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है, हमारा मन हमारे वशमें नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस तरह ! ॥ ५१ ॥ हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवनके स्वामी हो। सर्वस्व हो। प्यारे ! तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो व्रजनाथ ही हो। हम व्रजगोपियोंके एक-मात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो। श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है, हमारे सङ्कट काटे हैं। गोविन्द ! तुम गौओंसे बहुत प्रेम करते हो। क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वालबाल, पिता-माता, गौएँ और हम गोपियाँ सब कोई हैं—दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है। तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो' ॥ ५२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय सन्देश सुनकर गोपियोंके विरहकी

व्यथा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्णको अपने आत्माके रूपमें सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं। अब वे बड़े प्रेम और आदरसे उद्धवजीका सत्कार करने लगीं ॥ ५३ ॥ उद्धवजी गोपियोंकी विरह-व्यथा मिटानेके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे। वे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर व्रजवासियोंको आनन्दित करते रहते ॥ ५४ ॥ नन्दबाबाके व्रजमें जितने दिनोंतक उद्धवजी रहे, उतने दिनोंतक भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकी चर्चा होते रहनेके कारण व्रजवासियोंको ऐसा जान पड़ा, मानो अभी एक ही क्षण हुआ हो ॥ ५५ ॥ भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदीतटपर जाते, कभी वनोंमें विहरते और कभी गिरिराजकी घाटियोंमें विचरते। कभी रंग-बिरंगे फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंमें ही रम जाते और यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने कौन-सी लीला की है, यह पूछ-पूछकर व्रजवासियोंको भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी लीलाके स्मरणमें तन्मय कर देते ॥ ५६ ॥

उद्धवजीने व्रजमें रहकर गोपियोंकी इस प्रकारकी प्रेम-विकलता तथा और भी बहुत-सी प्रेम-चेष्टाएँ देखीं। उनकी इस प्रकार श्रीकृष्णमें तन्मयता देखकर वे प्रेम और आनन्दसे भर गये। अब वे गोपियोंको नमस्कार करते हुए इस प्रकार गान करने लगे—॥ ५७ ॥ 'इस पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गयी हैं। प्रेमकी यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चसका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान्‌की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ? ॥ ५८ ॥ कहाँ ये वनचरी आचार, ज्ञान और जातिसे हीन गाँवकी गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णमें यह अनन्य परम प्रेम! अहो, धन्य है! धन्य है! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान्‌के स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे, अपनी कृपासे उसका परम कल्याण कर देते हैं; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजानमें भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तु-शक्तिसे ही पीनेवालेको अमर बना देता है ॥ ५९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन व्रजाङ्गनाओंके गलेमें बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये। इन्हें भगवान्‌ने जिस कृपा-प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान किया, वैसा भगवान्‌की परमप्रेमवती नित्यसङ्गिनी वक्षःस्थलपर विराजमान लक्ष्मीजीको भी नहीं प्राप्त हुआ। कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तिसे युक्त देवाङ्गनाओंको भी नहीं मिला। फिर दूसरी स्त्रियोंकी तो बात ही क्या करें? ॥ ६० ॥ मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन-धाममें कोई झाड़ी, लता अथवा ओषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ! अहा! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिये मिलती रहेगी। इनकी चरण-रजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ। देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेदकी आर्य-मर्यादाका परित्याग करके इन्होंने भगवान्‌की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरोंकी तो बात ही क्या—भगवद्वाणी, उनकी निःश्वासरूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अबतक भगवान्‌के परम प्रेममय स्वरूपको ढूँढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं ॥ ६१ ॥ स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं; ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हीं चरणारविन्दोंको रास-लीलाके समय गोपियोंने अपने वक्षःस्थलपर रक्खा और उनका आलिङ्गन करके अपने हृदयकी जलन, विरह-व्यथा शान्त की ॥ ६२ ॥ नन्दबाबाके व्रजमें रहनेवाली

गोपाङ्गनाओंकी चरणधूलको मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ—उसे सिरपर चढ़ाता हूँ। अहा! इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा' ॥ ६३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कई महीनोंतक व्रजमें रहकर उद्धवजीने अब मथुरा जानेके लिये गोपियोंसे, नन्दबाबा और यशोदा मैयासे आज्ञा प्राप्त की। ग्वालबालोंसे विदा लेकर वहाँसे यात्रा करनेके लिये वे रथपर सवार हुए॥६४॥ जब उनका रथ व्रजसे बाहर निकला, तब नन्दबाबा आदि गोपगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री लेकर उनके पास आये और आँखोंमें आँसू भरकर उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा—॥६५॥ 'उद्धवजी! अब हम यही चाहते हैं कि हमारे मनकी एक-एक वृत्ति, एक-एक सङ्कल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंके ही आश्रित रहे। उन्हींकी सेवाके लिये उठे और उन्हींमें लगी भी रहे। हमारी वाणी नित्य-निरन्तर उन्हींके नामोंका उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हींको प्रणाम करने, उन्हींके आज्ञा-पालन और सेवामें लगा रहे॥६६॥ उद्धवजी! हम सच कहते हैं, हमें मोक्षकी इच्छा बिल्कुल नहीं है। हम भगवान्की इच्छासे अपने कर्मोंके अनुसार चाहे जिस योनिमें जन्म लें—वहाँ शुभ आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि हमारे अपने ईश्वर श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे' ॥ ६७ ॥ प्रिय परीक्षित्! नन्दबाबा आदि गोपोंने इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्तिके द्वारा उद्धवजीका सम्मान किया। अब वे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित मथुरापुरीमें लौट आये॥ ६८॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उन्हें व्रजवासियोंकी प्रेममयी भक्तिका उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया। इसके बाद नन्दबाबाने भेंटकी जो-जो सामग्री दी थी वह उनको, वसुदेवजी, बलरामजी और राजा उग्रसेनको दे दी ॥ ६९ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भगवान्का कुब्जा और अक्रूरजीके घर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तदनन्तर सबके आत्मा तथा सब कुछ देखनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपनेसे मिलनकी आकाङ्क्षा रखकर व्याकुल हुई कुब्जाका प्रिय करने—उसे सुख देनेकी इच्छासे उसके घर गये ॥ १ ॥ कुब्जाका घर बहुमूल्य सामग्रियोंसे सम्पन्न था। उसमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन करनेवाली बहुत-सी साधन-सामग्री भी भरी हुई थी। मोतीकी झालरें और स्थान-स्थानपर झंडियाँ भी लगी हुई थीं। चँदोवे तने हुए थे। सेजें बिछायी हुई थीं और बैठनेके लिये बहुत सुन्दर-सुन्दर आसन लगाये हुए थे। धूपकी सुगन्ध फैल रही थी। दीपककी शिखाएँ जगमगा रही थीं। स्थान-स्थानपर फूलोंके हार और चन्दन रक्खे हुए थे ॥ २ ॥ भगवान्को अपने घर आते देख कुब्जा तुरंत हड़बड़ाकर अपने आसनसे उठ खड़ी हुई और सखियोंके साथ आगे बढ़कर उसने विधिपूर्वक भगवान्का स्वागत-सत्कार किया। फिर श्रेष्ठ आसन आदि देकर विविध उपचारोंसे उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ३ ॥ कुब्जाने भगवान्के परमभक्त उद्धवजीकी भी समुचित रीतिसे पूजा की; परन्तु वे उसके सम्मानके लिये उसका दिया हुआ आसन छूकर धरतीपर ही बैठ गये। (अपने स्वामीके सामने उन्होंने आसनपर बैठना उचित न समझा।) भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप होनेपर भी लोकाचारका अनुकरण करते हुए तुरंत उसकी बहुमूल्य सेजपर जा बैठे ॥ ४ ॥ तब कुब्जा स्नान, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, हार, गन्ध (इत्र आदि), ताम्बूल और सुधासव आदिसे अपनेको खूब सजाकर लीलामयी लजीली मुसकान तथा हाव-भावके साथ भगवान्की ओर देखती हुई उनके पास आयी ॥ ५ ॥ कुब्जा नवीन मिलनके सङ्कोचसे कुछ झिझक रही थी। तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने उसे अपने पास बुला लिया

और उसकी कङ्कणसे सुशोभित कलाई पकड़कर अपने पास बैठा लिया और उसके साथ क्रीडा करने लगे। परीक्षित्! कुब्जाने इस जन्ममें केवल भगवान्‌को अङ्गराग अर्पित किया था, उसी एक शुभकर्मके फलस्वरूप उसे ऐसा अनुपम अवसर मिला ॥ ६ ॥ कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने काम-संतप्त हृदय, वक्षःस्थल और नेत्रोंपर रखकर उनकी दिव्य सुगन्ध लेने लगी और इस प्रकार उसने अपने हृदयकी सारी आधि-व्याधि शान्त कर ली। वक्षःस्थलसे सटे हुए आनन्द-मूर्ति प्रियतम श्यामसुन्दरका अपनी दोनों भुजाओंसे गाढ़ आलिङ्गन करके कुब्जाने दीर्घकालसे बढ़े हुए विरह-तापको शान्त किया ॥ ७ ॥ परीक्षित्! कुब्जाने केवल अङ्गराग समर्पित किया था। उतनेसे ही उसे उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की प्राप्ति हुई, जो कैवल्य-मोक्षके अधीश्वर हैं और जिनकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। परन्तु उस दुर्भगाने उन्हें प्राप्त करके भी व्रजगोपियोंकी भाँति सेवा न माँगकर यही माँगा—॥ ८ ॥ 'प्रियतम! आप कुछ दिन यहीं रहकर मेरे साथ क्रीडा कीजिये। क्योंकि हे कमलनयन! मुझसे आपका साथ नहीं छोड़ा जाता' ॥ ९ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सबका मान रखनेवाले और सर्वेश्वर हैं। उन्होंने अभीष्ट वर देकर उसकी पूजा स्वीकार की और फिर अपने प्यारे भक्त उद्धवजीके साथ अपने सर्वसम्मानित घरपर लौट आये ॥ १० ॥ परीक्षित्! भगवान् ब्रह्मा आदि समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनको प्रसन्न कर लेना भी जीवके लिये बहुत ही कठिन है। जो कोई उन्हें प्रसन्न करके उनसे विषय-सुख माँगता है, वह निश्चय ही दुर्बुद्धि है; क्योंकि वास्तवमें विषय-सुख अत्यन्त तुच्छ—नहींके बराबर है ॥ ११ ॥

तदनन्तर एक दिन सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और उद्धवजीके साथ अक्रूरजीकी अभिलाषा पूर्ण करने और उनसे कुछ काम लेनेके लिये उनके घर गये ॥ १२ ॥ अक्रूरजीने दूरसे ही देख लिया कि हमारे परम बन्धु मनुष्यलोकशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी आदि पधार रहे हैं। वे तुरंत उठकर आगे गये तथा आनन्दसे भरकर उनका अभिनन्दन और आलिङ्गन किया ॥ १३ ॥ अक्रूरजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको नमस्कार किया तथा उद्धवजीके साथ उन दोनों भाइयोंने भी उन्हें नमस्कार किया। जब सब लोग आरामसे आसनोंपर बैठ गये, तब अक्रूरजी उन लोगोंकी विधिवत् पूजा करने लगे ॥ १४ ॥ परीक्षित्! उन्होंने पहले भगवान्‌के चरण धोकर चरणोदक सिरपर धारण किया और फिर अनेकों प्रकारकी पूजा-सामग्री, दिव्य वस्त्र, गन्ध, माला और श्रेष्ठ आभूषणोंसे उनका पूजन किया, सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणोंको अपनी गोदमें लेकर दबाने लगे। उसी समय उन्होंने विनयावनत होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीसे कहा—॥ १५-१६ ॥ 'भगवन्! यह बड़े ही आनन्द और सौभाग्यकी बात है कि पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। उसे मारकर आप दोनोंने यदुवंशको बहुत बड़े सङ्कटसे बचा लिया है तथा उन्नत और समृद्ध किया है ॥ १७ ॥ आप दोनों जगत्‌के कारण और जगत्‌रूप, आदिपुरुष हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, न कारण और न तो कार्य ॥ १८ ॥ परमात्मन्! आपने ही अपनी शक्तिसे इसकी रचना की है और आप ही अपनी काल, माया आदि शक्तियोंसे इसमें प्रविष्ट होकर जितनी भी वस्तुएँ देखी और सुनी जाती हैं, उनके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं ॥ १९ ॥ जैसे पृथ्वी आदि कारणतत्त्वोंसे ही उनके कार्य स्थावर-जङ्गम शरीर बनते हैं; वे उनमें अनुप्रविष्ट-से होकर अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें वे कारणरूप ही हैं। इसी प्रकार हैं तो केवल आप ही, परन्तु अपने कार्यरूप जगत्‌में स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। यह भी आपकी एक लीला ही है ॥ २० ॥ प्रभो! आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणरूप अपनी शक्तियोंसे क्रमशः जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं; किन्तु आप उन गुणोंसे अथवा उनके द्वारा होनेवाले कर्मोंसे बन्धनमें नहीं पड़ते, क्योंकि आप शुद्ध ज्ञान-स्वरूप हैं। ऐसी स्थितिमें आपके लिये बन्धनका कारण ही क्या हो सकता है? ॥ २१ ॥ प्रभो! स्वयं आत्म-वस्तुमें स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह आदि उपाधियाँ न होनेके कारण न तो उसमें जन्म-मृत्यु है और न किसी प्रकारका भेदभाव। यही कारण है कि न आपमें बन्धन है और

न मोक्ष। आपमें अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार बन्धन या मोक्षकी जो कुछ कल्पना होती है, उसका कारण केवल हमारा अविवेक ही है ॥ २२ ॥ आपने जगत्‌के कल्याणके लिये यह सनातन वेदमार्ग प्रकट किया है। जब-जब इसे पाखण्ड-पथसे चलनेवाले दुष्टों-के द्वारा क्षति पहुँचती है, तब-तब आप शुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण करते हैं ॥ २३ ॥ प्रभो! वही आप इस समय अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये यहाँ वसुदेवजीके घर अवतीर्ण हुए हैं। आप असुरोंके अंशसे उत्पन्न नाममात्रके शासकोंकी सौ-सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे और यदुवंशके यशका विस्तार करेंगे ॥ २४ ॥ इन्द्रियातीत परमात्मन्! सारे देवता, पितर, भूतगण और राजा आपकी मूर्ति हैं। आपके चरणोंकी धोवन गङ्गाजी तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। आप सारे जगत्‌के एकमात्र पिता और शिक्षक हैं। वही आज आप हमारे घर पधारे। इसमें सन्देह नहीं कि आज हमारे घर धन्य-धन्य हो गये। उनके सौभाग्यकी सीमा न रही ॥ २५ ॥ प्रभो! आप प्रेमी भक्तोंके परम प्रियतम, सत्यवक्ता, अकारण हितू और कृतज्ञ हैं—जरा-सी सेवाको भी मान लेते हैं। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरणमें जायगा? आप अपना भजन करनेवाले प्रेमी भक्तकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं। यहाँतक कि जिसकी कभी क्षति और वृद्धि नहीं होती—जो एकरस है, अपने उस आत्माका भी आप दान कर देते हैं ॥ २६ ॥ भक्तोंके कष्ट मिटानेवाले और जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभो! बड़े-बड़े योगिराज और देवराज भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते। परन्तु हमें आपका साक्षात् दर्शन हो गया, यह कितने सौभाग्यकी बात है। प्रभो! हम स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, गेह और देह आदिके मोहकी रस्सीसे बँधे हुए हैं। अवश्य ही यह आपकी मायाका खेल है। आप कृपा करके इस गाढ़े बन्धनको शीघ्र काट दीजिये' ॥ २७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार भक्त अक्रूरजीने भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा और स्तुति की। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराकर अपनी मधुर वाणीसे उन्हें मानो मोहित करते हुए कहा ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'तात! आप हमारे गुरु—हितोपदेशक और चाचा हैं। हमारे वंशमें अत्यन्त प्रशंसनीय तथा हमारे सदाके हितैषी हैं। हम तो आपके बालक हैं और सदा ही आपकी रक्षा, पालन और कृपाके पात्र हैं ॥ २९ ॥ अपना परम कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों-को आप-जैसे परम पूजनीय और महाभाग्यवान् संतोंकी सर्वदा सेवा करनी चाहिये। आप-जैसे संत देवताओंसे भी बढ़कर हैं; क्योंकि देवताओंमें तो स्वार्थ रहता है, परन्तु संतोंमें नहीं ॥ ३० ॥ केवल जलके तीर्थ (नदी, सरोवर आदि) ही तीर्थ नहीं हैं, केवल मृत्तिका और शिला आदिकी बनी हुई मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं। चाचाजी! उनकी तो बहुत दिनोंतक श्रद्धासे सेवा की जाय, तब वे पवित्र करते हैं। परन्तु संतपुरुष तो अपने दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं ॥ ३१ ॥ चाचाजी! आप हमारे हितैषी सुहृदोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिये आप पाण्डवोंका हित करनेके लिये तथा उनका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये हस्तिनापुर जाइये ॥ ३२ ॥ हमने ऐसा सुना है कि राजा पाण्डुके मर जानेपर अपनी माता कुन्तीके साथ युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े दुःखमें पड़ गये थे। अब राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें ले आये हैं और वे वहीं रहते हैं ॥ ३३ ॥ आप जानते ही हैं कि राजा धृतराष्ट्र एक तो अंधे हैं और दूसरे उनमें मनोबलकी भी कमी है। उनका पुत्र दुर्योधन बहुत दुष्ट है और उसके अधीन होनेके कारण वे पाण्डवोंके साथ अपने पुत्रों-जैसा—समान व्यवहार नहीं कर पाते ॥ ३४ ॥ इसलिये आप वहाँ जाइये और मालूम कीजिये कि उनकी स्थिति अच्छी है या बुरी। आपके द्वारा उनका समाचार जानकर मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे उन सुहृदोंको सुख मिले' ॥ ३५ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजीको इस प्रकार आदेश देकर बलरामजी और उद्धवजीके साथ वहाँसे अपने घर लौट आये ॥ ३६ ॥

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूरजीका हस्तिनापुर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌के आज्ञानुसार अक्रूरजी हस्तिनापुर गये । वहाँकी एक-एक वस्तुपर पुरुवंशी नरपतियोंकी अमरकीर्तिकी छाप लग रही है । वे वहाँ पहले धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक और उनके पुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव तथा अन्यान्य इष्ट-मित्रोंसे मिले ॥ १-२ ॥ जब गान्दिनीनन्दन अक्रूरजी सब इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियोंसे भलीभाँति मिल चुके, तब उनसे उन लोगोंने अपने मथुरावासी स्वजन-सम्बन्धियोंकी कुशल-क्षेम पूछी । उनका उत्तर देकर अक्रूरजीने भी हस्तिनापुरवासियोंके कुशल-मङ्गलके सम्बन्धमें पूछताछ की ॥३॥ परीक्षित् ! अक्रूरजी यह जाननेके लिये कि धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, कुछ महीनोंतक वहीं रहे । सच पूछो तो, धृतराष्ट्रमें अपने दुष्ट पुत्रोंकी इच्छाके विपरीत कुछ भी करनेका साहस न था । वे शकुनि आदि दुष्टोंकी सलाहके अनुसार ही काम करते थे ॥ ४ ॥ अक्रूरजीको कुन्ती और विदुरने यह बतलाया कि धृतराष्ट्रके लड़के दुर्योधन आदि पाण्डवोंके प्रभाव, शस्त्रकौशल, बल, वीरता तथा विनय आदि सद्गुण देख-देखकर उनसे जलते रहते हैं । जब वे यह देखते हैं कि प्रजा पाण्डवोंसे ही विशेष प्रेम रखती है, तब तो वे और भी चिढ़ जाते हैं और पाण्डवोंका अनिष्ट करनेपर उतारू हो जाते हैं । अबतक दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंपर कई बार विषदान आदि बहुत-से अत्याचार किये हैं और आगे भी बहुत कुछ करना चाहते हैं ॥ ५-६ ॥

जब अक्रूरजी कुन्तीके घर आये, तब वह अपने भाईके पास जा बैठीं । अक्रूरजीको देखकर कुन्तीके मनमें अपने मायकेकी स्मृति जग गयी और नेत्रोंमें आँसू भर आये । उन्होंने कहा—॥ ७ ॥ 'प्यारे भाई ! क्या कभी मेरे माँ-बाप, भाई-बहिन, भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ और सखी-सहेलियाँ मेरी याद करती हैं ? ॥८॥ मैंने सुना है कि हमारे भतीजे भगवान् श्रीकृष्ण और कमलनयन बलराम बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागत-रक्षक हैं । क्या वे कभी अपने इन फुफेरे भाइयोंको भी याद करते हैं ? ॥९॥ मैं शत्रुओंके बीच घिरकर शोकाकुल हो रही हूँ । मेरी वही दशा है, जैसे कोई हरिनी भेड़ियोंके बीचमें पड़ गयी हो । मेरे बच्चे बिना बापके हो गये हैं । क्या हमारे श्रीकृष्ण कभी यहाँ आकर मुझको और इन अनाथ बालकोंको सान्त्वना देंगे ?' ॥१०॥ (श्रीकृष्णको अपने सामने समझकर कुन्ती कहने लगीं—) 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! तुम महायोगी हो, विश्वात्मा हो और तुम सारे विश्वके जीवनदाता हो । गोविन्द ! अपने बच्चोंके साथ दुःख-पर-दुःख भोग रही हूँ । तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । मेरी रक्षा करो । मेरे बच्चोंको बचाओ ॥ ११ ॥ मेरे श्रीकृष्ण ! यह संसार मृत्युमय है और तुम्हारे चरण मोक्ष देनेवाले हैं । मैं देखती हूँ कि जो लोग इस संसार-से डरे हुए हैं, उनके लिये तुम्हारे चरणकमलोंके अतिरिक्त और कोई शरण, और कोई सहारा नहीं है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण ! तुम मायाके लेशसे रहित परम शुद्ध हो । तुम स्वयं परब्रह्म परमात्मा हो । समस्त साधनों, योगों और उपायोंके स्वामी हो तथा स्वयं योग भी हो । श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ । तुम मेरी रक्षा करो' ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! तुम्हारी पर-दादी कुन्ती इस प्रकार अपने सगे-सम्बन्धियों और अन्तमें जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हो गयी और फफक-फफककर रोने लगी ॥१४॥ अक्रूरजी और विदुरजी दोनों ही सुख और दुःखको समान दृष्टिसे देखते थे । दोनों यशस्वी महात्माओंने कुन्तीको उसके पुत्रोंके जन्मदाता धर्म, वायु आदि देवताओंकी याद दिलायी और यह कहकर कि, तुम्हारे पुत्र अधर्मका नाश करनेके लिये ही पैदा हुए हैं, बहुत कुछ समझाया-बुझाया और सान्त्वना दी ॥१५॥ अक्रूरजी जब मथुरा जाने लगे, तब राजा धृतराष्ट्रके पास आये । अबतक यह स्पष्ट हो गया था कि राजा अपने पुत्रोंका पक्षपात करते हैं और भतीजोंके साथ अपने पुत्रोंका-सा

बर्ताव नहीं करते! अब अक्रूरजीने कौरवोंकी भरी सभामें श्रीकृष्ण और बलरामजी आदिका हितैषितासे भरा सन्देश कह सुनाया ॥ १६ ॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज धृतराष्ट्रजी! आप कुरुवंशियोंकी उज्ज्वल कीर्तिको और भी बढ़ाइये। आपको यह काम विशेषरूपसे इसलिये भी करना चाहिये कि अपने भाई पाण्डुके परलोक सिधार जानेपर अब आप राज्यसिंहासनके अधिकारी हुए हैं ॥ १७ ॥ आप धर्मसे पृथ्वीका पालन कीजिये। अपने सद्व्यवहारसे प्रजाको प्रसन्न रखिये और अपने स्वजनोंके साथ समान बर्ताव कीजिये। ऐसा करनेसे ही आपको लोकमें यश और परलोकमें सद्गति प्राप्त होगी ॥ १८ ॥ यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगे तो इस लोकमें आपकी निन्दा होगी और मरनेके बाद आपको नरकमें जाना पड़ेगा। इसलिये अपने पुत्रों और पाण्डवोंके साथ समानताका बर्ताव कीजिये ॥ १९ ॥ आप जानते ही हैं कि इस संसारमें कभी कहीं कोई किसीके साथ सदा नहीं रह सकता! जिनसे जुड़े हुए हैं, उनसे एक दिन बिछुड़ना पड़ेगा ही। राजन्! यह बात अपने शरीरके लिये भी सोलहों आने सत्य है। फिर स्त्री, पुत्र, धन आदि छोड़कर जाना पड़ेगा, इसके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥ २० ॥ जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरकर जाता है। अपनी करनी-धरनीका, पाप-पुण्यका फल भी अकेला ही भुगतता है ॥२१॥ जिन स्त्री-पुत्रोंको हम अपना समझते हैं, वे तो 'हम तुम्हारे अपने हैं, हमारा भरण-पोषण करना तुम्हारा धर्म है'—इस प्रकारकी बातें बनाकर मूर्ख प्राणीके अधर्मसे इकट्ठे किये हुए धनको लूट लेते हैं, जैसे जलमें रहनेवाले जन्तुओंके सर्वस्व जलको उन्हींके सम्बन्धी चाट जाते हैं ॥२२॥ यह मूर्ख जीव जिन्हें अपना समझकर अधर्म करके भी पालता-पोसता है, वे ही प्राण, धन और पुत्र आदि इस जीवको असन्तुष्ट छोड़कर ही चले जाते हैं ॥ २३ ॥ जो अपने धर्मसे विमुख है—सच पूछिये, तो वह अपना लौकिक स्वार्थ भी नहीं जानता। जिनके लिये वह अधर्म करता है, वे तो उसे छोड़ ही देंगे; उसे कभी सन्तोषका अनुभव न होगा और वह अपने पापोंकी गठरी सिरपर लादकर स्वयं घोर नरकमें जायगा ॥ २४ ॥ इसलिये महाराज! यह बात समझ लीजिये कि यह दुनिया चार दिनकी चाँदनी है, सपनेका खिलवाड़ है, जादूका तमाशा है और है मनोराज्यमात्र! आप अपने प्रयत्नसे, अपनी शक्तिसे चित्तको रोकिये; ममतावश पक्षपात न कीजिये। आप समर्थ हैं, समत्वमें स्थित हो जाइये और इस संसारकी ओरसे उपराम—शान्त हो जाइये ॥ २५ ॥

राजा धृतराष्ट्रने कहा—दानपते अक्रूरजी! आप मेरे कल्याणकी, भलेकी बात कह रहे हैं। जैसे मरनेवालेको अमृत मिल जाय तो वह उससे तृप्त नहीं हो सकता, वैसे ही मैं भी आपकी इन बातोंसे तृप्त नहीं हो रहा हूँ ॥ २६ ॥ फिर भी हमारे हितैषी अक्रूरजी! मेरे चञ्चल चित्तमें आपकी यह प्रिय शिक्षा तनिक भी नहीं ठहर रही है; क्योंकि मेरा हृदय पुत्रोंकी ममताके कारण अत्यन्त विषम हो गया है। जैसे स्फटिक पर्वतके शिखरपर एक बार बिजली कौंधती है और दूसरे ही क्षण अन्तर्धान हो जाती है, वही दशा आपके उपदेशोंकी है ॥ २७ ॥ अक्रूरजी! सुना है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। ऐसा कौन पुरुष है, जो उनके विधानमें उलट-फेर कर सके? उनकी जैसी इच्छा होगी, वही होगा ॥२८॥ भगवान्‌की मायाका मार्ग अचिन्त्य है। उसी मायाके द्वारा इस संसारकी सृष्टि करके वे इसमें प्रवेश करते हैं और कर्म तथा कर्मफलोंका विभाजन कर देते हैं। इस संसार-चक्रकी बेरोक-टोक चालमें उनकी अचिन्त्य लीला-शक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। मैं उन्हीं परमैश्वर्यशाली प्रभुको नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार अक्रूरजी महाराज धृतराष्ट्रका अभिप्राय जानकर और कुरुवंशी स्वजन-सम्बन्धियोंसे प्रेमपूर्वक अनुमति लेकर मथुरा लौट आये ॥३०॥ परीक्षित्! उन्होंने वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके सामने धृतराष्ट्रका वह सारा व्यवहार-बर्ताव, जो वे पाण्डवोंके साथ करते थे, कह सुनाया। क्योंकि उनको हस्तिनापुर भेजनेका वास्तवमें उद्देश्य भी यही था ॥ ३१ ॥

इति दशम स्कन्ध पूर्वार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

रुन्धानोऽरिगतिं वार्धिद्वारा द्वारावतीं गतः।
कृतदारोऽच्युतो दद्यात् सौमनस्यं मनस्यलम् ॥

शूरशिरोमणि श्रीकृष्ण

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

पचासवाँ अध्याय

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भरतवंशशिरोमणि परीक्षित्! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। पतिकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे अपने पिताकी राजधानीमें चली गयीं ॥ १ ॥ उन दोनोंका पिता था मगधराज जरासन्ध। उससे उन्होंने बड़े दुःखके साथ अपने विधवा होनेके कारणोंका वर्णन किया ॥ २ ॥ परीक्षित्! यह अप्रिय समाचार सुनकर पहले तो जरासन्धको बड़ा शोक हुआ, परन्तु पीछे वह क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने यह निश्चय करके कि, मैं पृथ्वीपर एक भी यदुवंशी नहीं रहने दूँगा, युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की ॥ ३ ॥ और तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा—जरासन्धकी सेना क्या है, उमड़ता हुआ समुद्र है। उन्होंने यह भी देखा कि उसने चारों ओरसे हमारी राजधानी घेर ली है और हमारे स्वजन तथा पुरवासी भयभीत हो रहे हैं ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्य-का-सा वेष धारण किये हुए हैं। अब उन्होंने विचार किया कि मेरे अवतारका क्या प्रयोजन है और इस समय इस स्थानपर मुझे क्या करना चाहिये ॥ ६ ॥ उन्होंने सोचा यह बड़ा अच्छा हुआ कि मगधराज जरासन्धने अपने अधीनस्थ नरपतियोंकी पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथियोंसे युक्त कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी कर ली है। यह सब तो पृथ्वीका भार ही जुटकर मेरे पास आ पहुँचा है। मैं इसका नाश करूँगा। परन्तु अभी मगधराज जरासन्धको नहीं मारना चाहिये। क्योंकि वह जीवित रहेगा तो फिरसे असुरोंकी बहुत-सी सेना इकट्ठी कर लायेगा ॥ ७-८ ॥ मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका बोझ हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार ॥ ९ ॥ समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ ॥ १० ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए दो रथ आ पहुँचे। उनमें युद्धकी सारी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं और दो सारथी उन्हें हाँक रहे थे ॥ ११ ॥ इसी समय भगवान्‌के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने-आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये। उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—॥ १२ ॥ 'भाईजी! आप बड़े शक्तिशाली हैं। इस समय जो यदुवंशी आपको ही अपना स्वामी और रक्षक मानते हैं, जो आपसे ही सनाथ हैं, उनपर बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। देखिये, यह आपका रथ है और आपके प्यारे आयुध हल-मूसल भी आ पहुँचे हैं ॥ १३ ॥ अब आप इस रथपर सवार होकर शत्रु-सेनाका संहार कीजिये और अपने स्वजनोंको इस विपत्तिसे बचाइये। भगवन्! साधुओंका कल्याण करनेके लिये ही हम दोनोंने अवतार ग्रहण किया है ॥ १४ ॥ अतः अब आप यह तेईस अक्षौहिणी सेना, पृथ्वीका यह विपुल भार नष्ट कीजिये।' भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने

यह सलाह करके कवच धारण किये और रथपर सवार होकर वे मथुरासे निकले। उस समय दोनों भाई अपने-अपने आयुध लिये हुए थे और छोटी-सी सेना उनके साथ-साथ चल रही थी। श्रीकृष्णका रथ हाँक रहा था दारुक। पुरीसे बाहर निकलकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया ॥ १५-१६ ॥ उनके शङ्खकी भयङ्कर ध्वनि सुनकर शत्रुपक्षकी सेनाके वीरोंका हृदय डरके मारे थर्रा उठा। उन्हें देखकर मगधराज जरासन्धने कहा—'पुरुषाधम कृष्ण! तू तो अभी निरा बच्चा है। अकेले तेरे साथ लड़नेमें मुझे लाज लग रही है। इतने दिनोंतक तू न जाने कहाँ-कहाँ छिपा फिरता था। ओर मन्द! तू तो अपने मामाका हत्यारा है। इसलिये मैं तेरे साथ नहीं लड़ सकता। जा, मेरे सामनेसे भाग जा ॥ १७-१८ ॥ बलराम! यदि तेरे चित्तमें यह श्रद्धा हो कि युद्धमें मरनेपर स्वर्ग मिलता है तो तू आ, हिम्मत बाँधकर मुझसे लड़। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न हुए शरीरको यहाँ छोड़कर स्वर्गमें जा, अथवा यदि तुझमें शक्ति हो तो मुझे ही मार डाल' ॥ १९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मगधराज! जो शूरवीर होते हैं, वे तुम्हारी तरह डींग नहीं हाँकते, वे तो अपना बल-पौरुष ही दिखलाते हैं। देखो, अब तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है। तुम वैसे ही अकबक कर रहे हो, जैसे मरनेके समय कोई सन्निपातका रोगी करे। बक लो, मैं तुम्हारी बातपर ध्यान नहीं देता ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे वायु बादलोंसे सूर्यको और धूएँसे आगको ढक लेती है, किन्तु वास्तवमें वे ढकते नहीं, उनका प्रकाश फिर फैलता ही है; वैसे ही मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आकर अपनी बहुत बड़ी बलवान् और अपार सेनाके द्वारा उन्हें चारों ओरसे घेर लिया—यहाँतक कि उनकी सेना, रथ, ध्वजा, घोड़ों और सारथियोंका दीखना भी बंद हो गया ॥ २१ ॥ मथुरापुरीकी स्त्रियाँ अपने महलोंकी अटारियों, छज्जों और फाटकोंपर चढ़कर युद्धका कौतुक देख रही थीं। जब उन्होंने देखा कि युद्धभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णकी गरुडचिह्नसे चिह्नित और बलरामजीकी तालचिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले रथ नहीं दीख रहे हैं तब वे शोकके आवेगसे मूर्छित हो गयीं ॥ २२ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि शत्रु-सेनाके वीर हमारी सेनापर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, मानो बादल पानीकी अनगिनत बूँदें बरसा रहे हों और हमारी सेना उससे अत्यन्त पीड़ित, व्यथित हो रही है; तब उन्होंने अपने देवता और असुर—दोनोंसे सम्मानित शार्ङ्गधनुषका टङ्कार किया ॥ २३ ॥ इसके बाद वे तरकसमेंसे बाण निकालने, उन्हें धनुषपर चढ़ाने और धनुषकी डोरी खींचकर झुंड-के-झुंड बाण छोड़ने लगे। उस समय उनका वह धनुष इतनी फुर्तीसे घूम रहा था, मानो कोई बड़े वेगसे अलातचक्र (लुकारी) घुमा रहा हो। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धकी चतुरङ्गिणी—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाका संहार करने लगे ॥ २४ ॥ इससे बहुत-से हाथियोंके सिर फट गये और वे मर-मरकर गिरने लगे। बाणोंकी बौछारसे अनेकों घोड़ोंके सिर धड़से अलग हो गये। घोड़े, ध्वजा, सारथि और रथियोंके नष्ट हो जानेसे बहुत-से रथ बेकाम हो गये। पैदल सेनाकी बाँहें, जाँघ और सिर आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग कट-कटकर गिर पड़े ॥ २५ ॥ उस युद्धमें अपार तेजस्वी भगवान् बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे बहुत-से मतवाले शत्रुओंको मार-मारकर उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे निकले हुए खूनकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। कहीं मनुष्य कट रहे हैं तो कहीं हाथी और घोड़े छटपटा रहे हैं। उन नदियोंमें मनुष्योंकी भुजाएँ साँपके समान जान पड़तीं और सिर इस प्रकार मालूम पड़ते, मानो कछुओंकी भीड़ लग गयी हो। मरे हुए हाथी द्वीप-जैसे और घोड़े ग्राहोंके समान जान पड़ते। हाथ और जाँघें मछलियोंकी तरह, मनुष्योंके केश सेवारके समान, धनुष तरङ्गोंकी भाँति और अस्त्र-शस्त्र लता एवं तिनकोंके समान जान पड़ते। ढालें ऐसी मालूम पड़तीं, मानो भयानक भँवर हों। बहुमूल्य मणियाँ और आभूषण पत्थरके रोड़ों तथा कंकड़ोंके समान बहे आ रहे थे। उन नदियोंको देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरोंका आपसमें खूब उत्साह बढ़ रहा था ॥ २६—२८ ॥ परीक्षित्! जरासन्धकी वह सेना समुद्रके समान दुर्गम, भयावह और बड़ी कठिनाईसे जीतने योग्य थी। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण

और बलरामजीने थोड़े ही समयमें उसे नष्ट कर डाला। वे सारे जगत्के स्वामी हैं। उनके लिये एक सेनाका नाश कर देना केवल खिलवाड़ ही तो है॥ २९॥ परीक्षित्! भगवान्के गुण अनन्त हैं। वे खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि वे शत्रुओंकी सेनाका इस प्रकार बात-की-बातमें सत्यानाश कर दें। तथापि जब वे मनुष्यका-सा वेष धारण करके मनुष्यकी-सी लीला करते हैं, तब उसका भी वर्णन किया ही जाता है॥ ३०॥

इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेना मारी गयी। रथ भी टूट गया। शरीरमें केवल प्राण बाकी रहे। तब भगवान् श्रीबलरामजीने जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ लेता है, वैसे ही बलपूर्वक महाबली जरासन्धको पकड़ लिया॥ ३१॥ जरासन्धने पहले बहुतसे विपक्षी नरपतियोंका वध किया था, परन्तु आज उसे बलरामजी वरुणकी फाँसी और मनुष्योंके फंदेसे बाँध रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि यह, छोड़ दिया जायगा तो और भी सेना इकट्ठी करके लायेगा तथा हम सहज ही पृथ्वीका भार उतार सकेंगे, बलरामजीको रोक दिया॥ ३२॥ बड़े-बड़े शूरवीर जरासन्धका सम्मान करते थे। इसलिये उसे इस बातपर बड़ी लज्जा मालूम हुई कि मुझे श्रीकृष्ण और बलरामने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है। अब उसने तपस्या करनेका निश्चय किया। परन्तु रास्तेमें उसके साथी नरपतियोंने बहुत समझाया कि 'राजन्! यदुवंशियोंमें क्या रक्खा है? वे आपको बिल्कुल ही पराजित नहीं कर सकते थे। आपको प्रारब्धवश ही नीचा देखना पड़ा है।' उन लोगोंने भगवान्की इच्छा, फिर विजय प्राप्त करनेकी आशा आदि बतलाकर तथा लौकिक दृष्टान्त एवं युक्तियाँ दे-देकर यह बात समझा दी कि आपको तपस्या नहीं करनी चाहिये॥ ३३-३४॥ परीक्षित्! उस समय मगधराज जरासन्धकी सारी सेना मर चुकी थी। भगवान् बलरामजीने उपेक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था। इससे वह बहुत उदास होकर अपने देश मगधको चला गया॥ ३५॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें किसीका बाल भी बाँका न हुआ और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनापर, जो समुद्रके समान थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली। उस समय बड़े-बड़े देवता उनपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा और उनके इस महान् कार्यका अनुमोदन—प्रशंसा कर रहे थे॥ ३६॥ जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयरहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण आकर उनमें मिल गये। सूत, मागध और वन्दीजन उनकी विजयके गीत गा रहे थे॥ ३७॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया, उस समय वहाँ शङ्ख, नगारे, भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे थे॥ ३८॥ मथुराकी एक-एक सड़क और गलीमें छिड़काव कर दिया गया था। चारों ओर हँसते-खेलते नागरिकोंकी चहल-पहल थी। सारा नगर छोटी-छोटी झंडियों और बड़ी-बड़ी विजय-पताकाओंसे सजा दिया गया था। ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि गूँज रही थी और सब ओर आनन्दोत्सवके सूचक बंदनवार बाँध दिये गये थे॥ ३९॥ जिस समय श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय नगरकी नारियाँ प्रेम और उत्कण्ठासे भरे हुए नेत्रोंसे उन्हें स्नेहपूर्वक निहार रही थीं और फूलोंके हार, दही, अक्षत और जौ आदिके अङ्कुरोंकी उनके ऊपर वर्षा कर रही थीं॥ ४०॥ भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिसे अपार धन और वीरोंके आभूषण ले आये थे। वह सब उन्होंने यदुवंशियोंके राजा उग्रसेनके पास भेज दिया॥ ४१॥

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंसे युद्ध किया॥४२॥ किन्तु यादवोंने भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिसे हर बार उसकी सारी सेना नष्ट कर दी। जब सारी सेना नष्ट हो जाती, तब यदुवंशियोंके उपेक्षापूर्वक छोड़ देनेपर जरासन्ध अपनी राजधानीमें लौट जाता॥ ४३॥ जिस समय अठारहवाँ संग्राम छिड़नेहीवाला था, उसी समय नारदजीका भेजा हुआ वीर कालयवन दिखायी पड़ा॥४४॥

युद्धमें कालयवनके सामने खड़ा होनेवाला वीर संसारमें दूसरा कोई न था। उसने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे ही-जैसे बलवान् हैं और हमारा सामना कर सकते हैं, तब तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लेकर उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४५ ॥

कालयवनकी यह असमय चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ मिलकर विचार किया—'अहो! इस समय तो यदुवंशियोंपर जरासन्ध और कालयवन—ये दो-दो विपत्तियाँ एक साथ ही मँडरा रही हैं ॥ ४६ ॥ आज इस परम बलशाली यवनने हमें आकर घेर लिया है और जरासन्ध भी आज, कल या परसोंमें आ ही जायगा ॥ ४७ ॥ यदि हम दोनों भाई इसके साथ लड़नेमें लग गये और उसी समय जरासन्ध आ पहुँचा, तो वह हमारे बन्धुओंको मार डालेगा या तो कैद करके अपने नगरमें ले जायगा। क्योंकि वह बहुत बलवान् है ॥ ४८ ॥ इसलिये आज हमलोग एक ऐसा दुर्ग—ऐसा किला बनायेंगे, जिसमें किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन होगा। अपने स्वजन-सम्बन्धियोंको उसी किलेमें पहुँचाकर फिर इस यवनका वध करायेंगे' ॥ ४९ ॥ बलरामजीसे इस प्रकार सलाह करके भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर एक ऐसा दुर्गम नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और उस नगरकी लंबाई-चौड़ाई अड़तालीस कोसकी थी ॥ ५० ॥ उस नगरकी एक-एक वस्तुमें विश्वकर्माका विज्ञान (वास्तुविज्ञान) और शिल्पकलाकी निपुणता प्रकट होती थी। उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियोंका यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था ॥ ५१ ॥ वह नगर ऐसे सुन्दर-सुन्दर उद्यानों और विचित्र-विचित्र उपवनोंसे युक्त था, जिनमें देवताओंके वृक्ष और लताएँ लहलहाती रहती थीं। सोनेके इतने ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, जो आकाशसे बातें करते थे। स्फटिकमणिकी अटारियाँ और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बड़े ही सुन्दर लगते थे ॥५२॥ अन्न रखनेके लिये चाँदी और पीतलके बहुत-से कोठे बने हुए थे। वहाँके महल सोनेके बने हुए थे और उनपर कामदार सोनेके कलश सजे हुए थे। उनके शिखर रत्नोंके थे तथा गच पन्नेकी बनी हुई बहुत भली माल्रम होती थी ॥ ५३ ॥ इसके अतिरिक्त उस नगरमें वास्तुदेवताके मन्दिर और छज्जे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर बने हुए थे। उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे और सबके बीचमें यदुवंशियोंके प्रधान उग्रसेनजी, वसुदेवजी, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णके महल जगमगा रहे थे ॥ ५४ ॥ परीक्षित्! उस समय देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णके लिये पारिजात वृक्ष और सुधर्मा-सभाको भेज दिया। वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठे हुए मनुष्यको भूख-प्यास आदि मर्त्यलोकके धर्म नहीं छू पाते थे ॥ ५५ ॥ वरुणजीने ऐसे बहुत-से श्वेत घोड़े भेज दिये, जिनका एक-एक कान श्याम-वर्णका था, और जिनकी चाल मनके समान तेज थी। धनपति कुबेरजीने अपनी आठों निधियाँ भेज दीं और दूसरे लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियाँ भगवान्के पास भेज दीं ॥ ५६ ॥ परीक्षित्! सभी लोकपालोंको भगवान् श्रीकृष्णने ही उनके अधिकारके निर्वाहके लिये शक्तियाँ और सिद्धियाँ दी हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे, तब सभी सिद्धियाँ उन्होंने भगवान्के चरणोंमें समर्पित कर दीं ॥ ५७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने समस्त स्वजन-सम्बन्धियोंको अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके द्वारा द्वारकामें पहुँचा दिया। शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको मथुरापुरीमें रख दिया और उनसे सलाह लेकर गलेमें कमलोंकी माला पहने, बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये स्वयं नगरके बड़े दरवाजेसे बाहर निकल आये ॥ ५८ ॥

इक्यावनवाँ अध्याय

कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरके मुख्य द्वारसे निकले, उस समय ऐसा माल्रम पड़ा, मानो पूर्व दिशासे चन्द्रोदय हो रहा हो। उनका श्यामल शरीर अत्यन्त

ही दर्शनीय था, उसपर रेशमी पीताम्बरकी छटा निराली ही थी; वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें श्रीवत्स-चिह्न शोभा पा रहा था और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी। चार भुजाएँ थीं, जो लंबी-लंबी और कुछ मोटी-मोटी थीं। हालके खिले हुए कमलके समान कोमल और रतनारे नेत्र थे। मुखकमलपर राशि-राशि आनन्द खेल रहा था। कपोलोंकी छटा निराली ही थी। मन्द-मन्द मुसकान देखनेवालोंका मन चुराये लेती थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल झलक रहे थे। उन्हें देखकर कालयवनने निश्चय किया कि 'यही पुरुष वासुदेव है। क्योंकि नारदजीने जो-जो लक्षण बतलाये थे—वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, चार भुजाएँ, कमलके-से नेत्र, गलेमें वनमाला और सुन्दरताकी सीमा; वे सब इसमें मिल रहे हैं। इसलिये यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय यह बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके पैदल ही इस ओर चला आ रहा है, इसलिये मैं भी इसके साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके ही लड़ूँगा' ॥ १-५ ॥

ऐसा निश्चय करके जब कालयवन भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमिसे भाग चले और उन योगिदुर्लभ प्रभुको पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा ॥ ६ ॥ रणछोड़ भगवान् लीला करते हुए भग रहे थे; कालयवन पग-पगपर यही समझता था कि अब पकड़ा, तब पकड़ा। इस प्रकार भगवान् उसे बहुत दूर एक पहाड़की गुफामें ले गये ॥ ७ ॥ कालयवन पीछेसे बार-बार आक्षेप करता कि 'अरे भाई! तुम परम यशस्वी यदुवंशमें पैदा हुए हो, तुम्हारा इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।' परन्तु अभी उसके अशुभ निःशेष नहीं हुए थे, इसलिये वह भगवान्‌को पानेमें समर्थ न हो सका ॥८॥ उसके आक्षेप करते रहनेपर भी भगवान् उस पर्वतकी गुफामें घुस गये। उनके पीछे कालयवन भी घुसा। वहाँ उसने एक दूसरे ही मनुष्यको सोते हुए देखा ॥९॥ उसे देखकर कालयवनने सोचा 'देखो तो सही, यह मुझे इस प्रकार इतनी दूर ले आया और अब इस तरह—मानो इसे कुछ पता ही न हो—साधुबाबा बनकर सो रहा है।' यह सोचकर उस मूढ़ने उसे कसकर एक लात मारी ॥ १० ॥ वह पुरुष वहाँ बहुत दिनोंसे सोया हुआ था। पैरकी ठोकर लगनेसे वह उठ पड़ा और धीरे-धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। इधर-उधर देखनेपर पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखायी दिया ॥ ११ ॥ परीक्षित्! वह पुरुष इस प्रकार ठोकर मारकर जगाये जानेसे कुछ रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवनके शरीरमें आग पैदा हो गयी और वह क्षणभरमें जलकर राखका ढेर हो गया ॥ १२ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! जिसके दृष्टि-पातमात्रसे कालयवन जलकर भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था? किस वंशका था? उसमें कैसी शक्ति थी और वह किसका पुत्र था? आप कृपा करके यह भी बतलाइये कि वह पर्वतकी गुफामें जाकर क्यों सो रहा था? ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वे इक्ष्वाकु-वंशी महाराजा मान्धाताके पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, सत्यप्रतिज्ञ, संग्रामविजयी और महापुरुष थे ॥ १४ ॥ एक बार इन्द्रादि देवता असुरोंसे अत्यन्त भयभीत हो गये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की और उन्होंने बहुत दिनोंतक उनकी रक्षा की ॥ १५ ॥ जब बहुत दिनोंके बाद देवताओंको सेनापतिके रूपमें स्वामिकार्तिकेय मिल गये, तब उन लोगोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हम लोगोंकी रक्षाके लिये बहुत श्रम और कष्ट उठाया है। अब आप विश्राम कीजिये ॥ १६ ॥ वीर-शिरोमणे! आपने हमारी रक्षाके लिये मनुष्यलोकका अपना अकण्टक राज्य छोड़ दिया और जीवनकी अभिलाषाएँ तथा भोगोंका भी परित्याग कर दिया ॥१७॥ अब आपके पुत्र, रानियाँ, बन्धु-बान्धव और अमात्य-मन्त्री तथा आपके समयकी प्रजामेंसे कोई नहीं रहा है। सब-के-सब कालके गालमें चले गये ॥ १८ ॥ काल समस्त बलवानोंसे भी बलवान् है। वह स्वयं परम समर्थ अविनाशी और भगवत्स्वरूप है। जैसे ग्वाले पशुओंको अपने वशमें रखते हैं, वैसे ही वह खेल-खेलमें सारी प्रजाको अपने अधीन रखता है ॥ १९ ॥ राजन्! आपका कल्याण हो। आपकी जो इच्छा हो हमसे माँग लीजिये। हम कैवल्य-मोक्षके अतिरिक्त आपको सब

कुछ दे सकते हैं । क्योंकि कैवल्य-मोक्ष देनेकी सामर्थ्य तो केवल अविनाशी भगवान् विष्णुमें ही है ॥ २० ॥ परम यशस्वी राजा मुचुकुन्दने देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उनकी वन्दना की और बहुत थके होनेके कारण निद्राका ही वर माँगा, तथा उनसे वर पाकर वे नींदसे भरकर पर्वतकी गुफामें जा सोये ॥ २१ ॥ उस समय देवताओंने कह दिया था कि 'राजन् ! सोते समय यदि आपको कोई मूर्ख बीचमें ही जगा देगा, तो वह आपकी दृष्टि पड़ते ही उसी क्षण भस्म हो जायगा' ॥ २२ ॥

परीक्षित् ! जब कालयवन भस्म हो गया, तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दको अपना दर्शन दिया । भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह वर्षाकालीन मेघके समान साँवला था । रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे । वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और गलेमें कौस्तुभमणि अपनी दिव्य ज्योति बिखेर रहे थे । चार भुजाएँ थीं । वैजयन्ती माला अलग ही घुटनोंतक लटक रही थी । मुखकमल अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नता-से खिला हुआ था । कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे । होठोंपर प्रेमभरी मुसकराहट थी और नेत्रोंकी चितवन अनुरागकी वर्षा कर रही थी । अत्यन्त दर्शनीय तरुण अवस्था और मतवाले सिंहके समान निर्भीक चाल ! राजा मुचुकुन्द यद्यपि बड़े बुद्धिमान् और धीर पुरुष थे, फिर भी भगवान्‌की यह दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति देखकर कुछ चकित हो गये—उनके तेजसे हतप्रतिभ हो सकपका गये । भगवान् अपने तेजसे दुर्द्धर्ष जान पड़ते थे; राजाने तनिक शङ्कित होकर पूछा ॥ २३-२७ ॥

राजा मुचुकुन्दने कहा—'आप कौन हैं ? इस काँटोंसे भरे हुए घोर जंगलमें आप कमलके समान कोमल चरणोंसे क्यों विचर रहे हैं ? और इस पर्वतकी गुफामें ही पधारनेका क्या प्रयोजन था ? ॥ २८ ॥ क्या आप समस्त तेजस्वियोंके मूर्तिमान् तेज अथवा भगवान् अग्निदेव तो नहीं हैं ? क्या आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हैं ? ॥ २९ ॥ मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्यदेव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ही हैं । क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अङ्गकान्तिसे इस गुफाका अँधेरा भगा रहे हैं ॥ ३० ॥ पुरुषश्रेष्ठ ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सच्चे हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक हैं ॥ ३१ ॥ और पुरुषोत्तम ! यदि आप हमारे बारेमें पूछें तो हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द । और प्रभु ! मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ ॥ ३२ ॥ बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था । निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था । अभी-अभी किसीने मुझे जगा दिया ॥ ३३ ॥ अवश्य उसके पापोंने ही उसे जलाकर भस्म कर दिया है । इसके बाद शत्रुओंके नाश करने-वाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया ॥ ३४ ॥ महाभाग ! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं । आपके परम दिव्य और असह्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है । मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता ॥ ३५ ॥ जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे कहा— ॥ ३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं । वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता ॥ ३७ ॥ यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमें पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर डाले; परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता ॥ ३८ ॥ राजन् ! सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते ॥ ३९ ॥ प्रिय मुचुकुन्द ! ऐसा होनेपर भी मैं अपने वर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो । पहले ब्रह्माजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके भार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४० ॥ उन्हींकी प्रार्थनासे मैंने यदु-वंशमें वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है । अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं ॥ ४१ ॥ अबतक मैं कालनेमि असुरका, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों साधु-

द्रोही असुरोंका संहार कर चुका हूँ। राजन्! यह कालयवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया ॥ ४२ ॥ वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुफामें आया हूँ। तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ भक्तवत्सल ॥४३॥ इसलिये राजर्षे! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती, जिसके लिये वह शोक करे ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा मुचुकुन्दको वृद्ध गर्गका यह कथन याद आ गया कि यदुवंशमें भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं। आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की ॥ ४५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—प्रभो! जगत्‌के सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। वे आपसे विमुख होकर अनर्थमें ही फँसे रहते हैं और आपका भजन नहीं करते। वे सुखके लिये घर-गृहस्थीके उन झंझटोंमें फँस जाते हैं, जो सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं। इस तरह स्त्री और पुरुष सभी ठगे जा रहे हैं ॥ ४६ ॥ इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है। अपने परम सौभाग्य और भगवान्‌की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें पड़े रहते हैं—भगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते, वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे अँधेरे कूएँमें गिर जाता है ॥ ४७ ॥ भगवन्! मैं राजा था, राज्यलक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था। इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और राजकुमार, रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ-मोहमें ही फँसा हुआ था। उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन-रात मेरे गले लगी रहती थी। इस प्रकार मेरे जीवनका यह अमूल्य समय बिल्कुल निष्फल—व्यर्थ चला गया ॥ ४८ ॥ जो शरीर प्रत्यक्ष ही घड़े और भीतके समान मिट्टीका है और दृश्य होनेके कारण उन्हींके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान बैठा था 'नरदेव'! इस प्रकार मैंने मदान्ध होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेना तथा सेनापतियोंसे घिरकर मैं पृथ्वीमें इधर-उधर घूमता रहता ॥ ४९ ॥ मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्योंकी चिन्तामें पड़कर मनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्तिसे विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है, असावधान हो जाता है। संसारमें बाँध रखनेवाले विषयोंके लिये उसकी लालसा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही जाती है। परन्तु जैसे भूखके कारण जीभ लपलपाता हुआ साँप असावधान चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहनेवाले आप एकाएक उस प्रमादग्रस्त प्राणीपर टूट पड़ते हैं और उसे ले बीतते हैं ॥ ५० ॥ जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चलता था और नरदेव कहलाता था, वही शरीर आपके अबाध कालका ग्रास बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विष्ठा, धरतीमें गाड़ देनेपर सड़कर कीड़ा और आगमें जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है ॥ ५१ ॥ प्रभो! जिसने सारी दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़नेवाला संसारमें कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठता है और बड़े-बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर झुकाते हैं, वही पुरुष जब विषय-सुख भोगनेके लिये, जो घर-गृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, स्त्रियोंके पास जाता है, तब उनके हाथका खिलौना, उनका पालतू पशु बन जाता है ॥५२॥ बहुत-से लोग विषय-भोग छोड़कर पुनः राज्यादि भोग मिलनेकी इच्छासे ही दान-पुण्य करते हैं और 'मैं फिर

जन्म लेकर सबसे बड़ा परम स्वतन्त्र सम्राट् होऊँ।' ऐसी कामना रखकर तपस्यामें भलीभाँति स्थित हो शुभकर्म करते हैं। इस प्रकार जिसकी तृष्णा बढ़ी हुई है, वह कदापि सुखी नहीं हो सकता ॥ ५३ ॥ अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन्! जीव अनादिकालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है। यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके आश्रय, कार्य-कारणरूप जगत्के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है ॥ ५४ ॥ भगवन्! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रहकी वर्षा की, क्योंकि बिना किसी परिश्रमके—अनायास ही मेरे राज्यका बन्धन टूट गया। साधु-स्वभावके चक्रवर्ती राजा भी जब अपना राज्य छोड़कर एकान्तमें भजन-साधन करनेके उद्देश्यसे वनमें जाना चाहते हैं, तब उसके ममता-बन्धनसे मुक्त होनेके लिये बड़े प्रेमसे आपसे प्रार्थना किया करते हैं ॥५५॥ अन्तर्यामी प्रभो! आपसे क्या छिपा है? मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता; क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह नहीं है अथवा जो उसके अभिमानसे रहित हैं, वे लोग भी केवल उसीके लिये प्रार्थना करते रहते हैं। भगवन्! भला, बतलाइये तो सही—मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बाँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे ॥ ५६ ॥ इसलिये प्रभो! मैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त कामनाओंको छोड़कर केवल मायाके लेशमात्र सम्बन्धसे रहित, गुणातीत, एक—अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥५७॥ भगवन्! मैं अनादिकालसे अपने कर्मफलोंको भोगते-भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दुःखद ज्वाला रात-दिन मुझे जलाती रहती थी। मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी। कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली। शरणदाता! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। सारे जगत्के एकमात्र स्वामी! परमात्मन्! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥ ५८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सार्वभौम महाराज! तुम्हारी मति, तुम्हारा निश्चय बड़ा ही पवित्र और ऊँची कोटिका है। यद्यपि मैंने तुम्हें बार-बार वर देनेका प्रलोभन दिया, फिर भी तुम्हारी बुद्धि कामनाओंके अधीन न हुई ॥५९॥ मैंने तुम्हें जो वर देनेका प्रलोभन दिया, वह केवल तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिये। मेरे जो अनन्य भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि कभी कामनाओंसे इधर-उधर नहीं भटकती ॥ ६० ॥ जो लोग मेरे भक्त नहीं होते, वे चाहे प्राणायाम आदिके द्वारा अपने मनको वशमें करनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, उनकी वासनाएँ क्षीण नहीं होतीं, और राजन्! उनका मन फिरसे विषयोंके लिये मचल पड़ता है ॥६१॥ तुम अपने मन और सारे मनोभावोंको मुझे समर्पित कर दो, मुझमें लगा दो, और फिर स्वच्छन्दरूपसे पृथ्वीपर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी विषयवासनाशून्य निर्मल भक्ति सदा बनी रहेगी ॥ ६२ ॥ तुमने क्षत्रियधर्मका आचरण करते समय शिकार आदिके अवसरोंपर बहुत-से पशुओंका वध किया है। अब एकाग्रचित्तसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो ॥ ६३ ॥ राजन्! अगले जन्ममें तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी, परम सुहृद् होओगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानघन परमात्माको प्राप्त करोगे ॥ ६४ ॥

बावनवाँ अध्याय

द्वारकागमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका सन्देशा लेकर ब्राह्मणका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्यारे परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार इक्ष्वाकुनन्दन राजा मुचुकुन्दपर अनुग्रह किया। अब उन्होंने भगवान्की परिक्रमा की, उन्हें नमस्कार किया और गुफासे बाहर निकले ॥ १ ॥

उन्होंने बाहर आकर देखा कि सब-के-सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष-वनस्पति पहलेकी अपेक्षा बहुत छोटे-छोटे आकारके हो गये हैं। इससे यह जानकर कि कलियुग आ गया, वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये ॥ २ ॥ महाराज मुचुकुन्द तपस्या, श्रद्धा, धैर्य तथा अनासक्तिसे युक्त एवं संशय-सन्देहसे मुक्त थे। वे अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ भगवान् नर-नारायणके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर बड़े शान्तभावसे गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्व सहते हुए वे तपस्याके द्वारा भगवान्‌की आराधना करने लगे ॥ ४ ॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें लौट आये। अबतक कालयवनकी सेनाने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने म्लेच्छोंकी सेनाका संहार किया और उसका सारा धन छीनकर द्वारकाको ले चले ॥५॥ जिस समय भगवान् श्रीकृष्णके आज्ञानुसार मनुष्यों और बैलोंपर वह धन ले जाया जाने लगा, उसी समय मगधराज जरासन्ध फिर (अठारहवीं बार) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ धमका ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए उसके सामनेसे बड़ी फुर्तीके साथ भाग निकले ॥ ७ ॥ उनके मनमें तनिक भी भय न था। फिर भी मानो अत्यन्त भयभीत हो गये हों—इस प्रकारका नाट्य करते हुए, वह सब-का-सब धन वहीं छोड़कर अनेक योजनोंतक वे अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंसे ही—पैदल भागते चले गये ॥ ८ ॥ जब महाबली मगधराज जरासन्धने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम तो भाग रहे हैं, तब वह हँसने लगा और अपनी रथ-सेनाके साथ उनका पीछा करने लगा। उसे भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके ऐश्वर्य, प्रभाव आदिका ज्ञान न था ॥ ९ ॥ बहुत दूरतक दौड़नेके कारण दोनों भाई कुछ थक-से गये। अब वे बहुत ऊँचे प्रवर्षण पर्वतपर चढ़ गये। उस पर्वतका '*प्रवर्षण*' नाम इसलिये पड़ा था कि वहाँ सदा ही—मेघ वर्षा किया करते थे ॥ १० ॥ परीक्षित् ! जब जरासन्धने देखा कि वे दोनों पहाड़में छिप गये और बहुत ढूँढनेपर भी पता न चला, तब उसने ईंधनसे भरे हुए प्रवर्षण पर्वतके चारों ओर आग लगवाकर उसे जला दिया ॥ ११ ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि पर्वतके छोर जलने लगे हैं, तब दोनों भाई जरासन्धकी सेनाके घेरेको लाँघते हुए बड़े वेगसे उस ग्यारह योजन (चौवालीस कोस) ऊँचे पर्वतसे एकदम नीचे धरतीपर कूद आये ॥ १२ ॥ राजन् ! उन्हें जरासन्धने अथवा उसके किसी सैनिकने देखा नहीं और वे दोनों भाई वहाँसे चलकर फिर अपनी समुद्रसे घिरी हुई द्वारकापुरीमें चले आये ॥ १३ ॥ जरासन्धने झूठमूठ ऐसा मान लिया कि श्रीकृष्ण और बलराम तो जल गये, और फिर वह अपनी बहुत बड़ी सेना लौटाकर मगधदेशको चला गया ॥ १४ ॥

यह बात मैं तुमसे पहले ही (*नवम स्कन्धमें*) कह चुका हूँ कि आनर्तदेशके राजा श्रीमान् रैवतजीने अपनी रेवती नामकी कन्या ब्रह्माजीकी प्रेरणासे बलरामजीके साथ ब्याह दी ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयंवरमें आये हुए शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि नरपतियोंको बलपूर्वक हराकर सबके देखते-देखते, जैसे गरुडने सुधाका हरण किया था, वैसे ही विदर्भदेशकी राजकुमारी रुक्मिणीको हर लाये और उनसे विवाह कर लिया। रुक्मिणीजी राजा भीष्मककी *कन्या और स्वयं भगवती लक्ष्मीजीका अवतार* थीं ॥ १६-१७ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! हमने सुना है कि भगवान् श्रीकृष्णने भीष्मकनन्दिनी परमसुन्दरी रुक्मिणीदेवीको बलपूर्वक हरण करके राक्षसविधिसे उनके साथ विवाह किया था ॥ १८ ॥ महाराज ! अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि परम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्ध, शाल्व आदि नरपतियोंको जीतकर किस प्रकार रुक्मिणीका हरण किया ? ॥ १९ ॥ ब्रह्मर्षे ! भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें क्या कहना है ? वे स्वयं तो पवित्र हैं ही, सारे जगत्‌का मल धो-बहाकर उसे भी पवित्र कर देनेवाली हैं। उनमें ऐसी लोकोत्तर माधुरी है, जिसे दिन-रात सेवन करते रहनेपर भी नित्य नया-नया रस मिलता रहता है। भला ऐसा कौन रसिक,

कौन मर्मज्ञ है, जो उन्हें सुनकर तृप्त न हो जाय ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! महाराज भीष्मक विदर्भदेशके अधिपति थे । उनके पाँच पुत्र और एक सुन्दरी कन्या थी ॥ २१ ॥ सबसे बड़े पुत्रका नाम था रुक्मी और चार छोटे थे—जिनके नाम थे क्रमशः रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश और रुक्ममाली । इनकी बहिन थी सती रुक्मिणी ॥ २२ ॥ जब उसने भगवान् श्रीकृष्णके सौन्दर्य, पराक्रम, गुण और वैभवकी प्रशंसा सुनी—जो उसके महलमें आनेवाले अतिथि प्रायः गाया ही करते थे—तब उसने यही निश्चय किया कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे अनुरूप पति हैं ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी समझते थे कि 'रुक्मिणीमें बड़े सुन्दर-सुन्दर लक्षण हैं, वह परम बुद्धिमती है; उदारता, सौन्दर्य, शीलस्वभाव और गुणोंमें भी अद्वितीय है । इसलिये रुक्मिणी ही मेरे अनुरूप पत्नी है । अतः भगवान्‌ने रुक्मिणीजीसे विवाह करनेका निश्चय किया ॥२४॥ रुक्मिणीजीके भाई-बन्धु भी चाहते थे कि हमारी बहिनका विवाह श्रीकृष्णसे ही हो । परन्तु रुक्मी श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था, उसने उन्हें विवाह करनेसे रोक दिया और शिशुपालको ही अपनी बहिनके योग्य वर समझा ॥ २५ ॥

जब परमसुन्दरी रुक्मिणीको यह मालूम हुआ कि मेरा बड़ा भाई रुक्मी शिशुपालके साथ मेरा विवाह करना चाहता है, तब वे बहुत उदास हो गयीं । उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचारकर एक विश्वासपात्र ब्राह्मणको तुरंत श्रीकृष्णके पास भेजा ॥ २६ ॥ जब वे ब्राह्मण-देवता द्वारकापुरीमें पहुँचे, तब द्वारपाल उन्हें राजमहलके भीतर ले गये । वहाँ जाकर ब्राह्मणदेवताने देखा कि आदि-पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण सोनेके सिंहासनपर विराजमान हैं ॥ २७ ॥ ब्राह्मणोंके परमभक्त भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताको देखते ही अपने आसनसे नीचे उतर गये और उन्हें अपने आसनपर बैठाकर वैसी ही पूजा की, जैसे देवतालोग उनकी (भगवान्‌की) किया करते हैं ॥ २८ ॥ आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्नके अनन्तर जब ब्राह्मणदेवता खा-पी चुके, आराम-विश्राम कर चुके तब संतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोमल हाथोंसे उनके पैर सहलाते हुए बड़े शान्त-भावसे पूछने लगे—॥ २९ ॥ 'ब्राह्मणशिरोमणे ! आपका चित्त तो सदा-सर्वदा सन्तुष्ट रहता है न ? आपको अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा स्वीकृत धर्मका पालन करनेमें कोई कठिनाई तो नहीं होती ॥ ३० ॥ ब्राह्मण यदि जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे और अपने धर्मका पालन करे, उससे च्युत न हो, तो वह सन्तोष ही उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण कर देता है ॥ ३१ ॥ यदि इन्द्रका पद पाकर भी किसीको सन्तोष न हो तो उसे सुखके लिये एक लोकसे दूसरे लोकमें बार-बार भटकना पड़ेगा, वह कहीं भी शान्तिसे बैठ नहीं सकेगा । परन्तु जिसके पास तनिक भी संग्रह-परिग्रह नहीं है, और जो उसी अवस्थामें सन्तुष्ट है, वह सब प्रकारसे सन्तापरहित होकर सुखकी नींद सोता है ॥ ३२ ॥ जो स्वयं प्राप्त हुई वस्तुसे सन्तोष कर लेते हैं, जिनका स्वभाव बड़ा ही मधुर है और जो समस्त प्राणियोंके परम हितैषी, अहङ्काररहित और शान्त हैं—उन ब्राह्मणोंको मैं सदा सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणदेवता ! राजाकी ओरसे तो आपलोगोंको सब प्रकारकी सुविधा है न ? जिसके राज्यमें प्रजाका अच्छी तरह पालन होता है और वह आनन्दसे रहती है, वह राजा मुझे बहुत ही प्रिय है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणदेवता ! आप कहाँसे, किस हेतुसे और किस अभिलाषासे इतना कठिन मार्ग तय करके यहाँ पधारे हैं ? यदि कोई बात विशेष गोपनीय न हो तो हमसे कहिये । हम आपकी क्या सेवा करें ?' ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! लीलासे ही मनुष्यरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार ब्राह्मण-देवतासे पूछा, तब उन्होंने सारी बात कह सुनायी । इसके बाद वे भगवान्‌से रुक्मिणीजीका सन्देश कहने लगे ॥ ३६ ॥

रुक्मिणीजीने कहा है—त्रिभुवनसुन्दर ! आपके गुणोंको जो सुननेवालोंके कानोंके रास्ते हृदयमें प्रवेश करके एक-एक अङ्गके ताप, जन्म-जन्मकी जलन बुझा देते हैं तथा अपने रूप-सौन्दर्यको जो नेत्रवाले जीवोंके नेत्रोंके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंके

फल एवं स्वार्थ-परमार्थ, सब कुछ हैं, श्रवण करके प्यारे अच्युत ! मेरा चित्त लज्जा, शर्म सब कुछ छोड़कर आपमें ही प्रवेश कर रहा है ॥ ३७ ॥ प्रेमस्वरूप श्यामसुन्दर ! चाहे जिस दृष्टिसे देखें; कुल, शील, स्वभाव, सौन्दर्य, विद्या, अवस्था, धन-धाम—सभीमें आप अद्वितीय हैं, अपने ही समान हैं। मनुष्य-लोकमें जितने भी प्राणी हैं, सबका मन आपको देखकर शान्तिका अनुभव करता है, आनन्दित होता है। अब पुरुषभूषण ! आप ही बतलाइये—ऐसी कौन-सी कुलवती, महागुणवती और धैर्यवती कन्या होगी, जो विवाहके योग्य समय आनेपर आपको ही पतिके रूपमें वरण न करेगी ?॥ ३८ ॥ इसीलिये प्रियतम ! मैंने आपको पतिरूपसे वरण किया है। मैं आपको आत्मसमर्पण कर चुकी हूँ। आप अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदयकी बात आपसे छिपी नहीं है। आप यहाँ पधारकर मुझे अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये। कमलनयन ! प्राणवल्लभ ! मैं आप-सरीखे वीरको समर्पित हो चुकी हूँ, आपकी हूँ। अब जैसे सिंहका भाग सियार छू जाय, वैसे कहीं शिशुपाल निकटसे आकर मेरा स्पर्श न कर जाय ॥३९॥ मैंने यदि जन्म-जन्ममें पूर्त (कूआँ, बावली आदि खुदवाना), इष्ट (यज्ञादि करना), दान, नियम, व्रत तथा देवता, ब्राह्मण और गुरु आदिकी पूजाके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी ही आराधना की हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो भगवान् श्रीकृष्ण आकर मेरा पाणिग्रहण करें; शिशुपाल अथवा दूसरा कोई भी पुरुष मेरा स्पर्श न कर सके ॥ ४० ॥ प्रभो ! आप अजित हैं। जिस दिन मेरा विवाह होनेवाला हो उसके एक दिन पहले आप हमारी राजधानीमें गुप्तरूपसे आ जाइये और फिर बड़े-बड़े सेनापतियोंके साथ शिशुपाल तथा जरासन्धकी सेनाओंको मथ डालिये, तहस-नहस कर दीजिये और बलपूर्वक राक्षस-विधिसे वीरताका मूल्य देकर मेरा पाणिग्रहण कीजिये ॥ ४१ ॥ यदि आप यह सोचते हों कि 'तुम तो अन्तःपुरमें—भीतरके जनाने महलोंमें पहरेके अंदर रहती हो, तुम्हारे भाई-बन्धुओंको मारे बिना मैं तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ ?' तो इसका उपाय मैं आपको बतलाये देती हूँ। हमारे कुलका ऐसा नियम है कि विवाहके पहले दिन कुलदेवीका दर्शन करनेके लिये एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जुलूस निकलता है—जिसमें विवाही जानेवाली कन्याको, दुलहिनको नगरके बाहर गिरिजादेवीके मन्दिरमें जाना पड़ता है ॥ ४२ ॥ कमलनयन ! उमापति भगवान् शङ्करके समान बड़े-बड़े महापुरुष भी आत्मशुद्धिके लिये आपके चरणकमलोंकी धूलसे स्नान करना चाहते हैं। यदि मैं आपका वह प्रसाद, आपकी वह चरणधूल नहीं प्राप्त कर सकी तो व्रतद्वारा शरीरको सुखाकर प्राण छोड़ दूँगी। चाहे उसके लिये सैकड़ों जन्म क्यों न लेने पड़ें, कभी-न-कभी तो आपका वह प्रसाद अवश्य ही मिलेगा ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—यदुवंशशिरोमणे ! यही रुक्मिणीके अत्यन्त गोपनीय सन्देश हैं, जिन्हें लेकर मैं आपके पास आया हूँ। इसके सम्बन्धमें जो कुछ करना हो, विचार कर लीजिये और तुरंत ही उसके अनुसार कार्य कीजिये ॥ ४४ ॥

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणीहरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका यह सन्देश सुनकर अपने हाथसे ब्राह्मणदेवताका हाथ पकड़ लिया और हँसते हुए यों बोले ॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणदेवता ! जैसे विदर्भराजकुमारी मुझे चाहती हैं, वैसे ही मैं भी उन्हें चाहता हूँ। मेरा चित्त उन्हींमें लगा रहता है। कहाँतक कहूँ, मुझे रातके समय नींदतक नहीं आती। मैं जानता हूँ कि रुक्मीने द्वेषवश मेरा विवाह रोक दिया है ॥ २ ॥ परन्तु ब्राह्मणदेवता ! आप देखियेगा, जैसे लकड़ियोंको मथकर—एक-दूसरेसे रगड़कर मनुष्य उनमेंसे आग निकाल लेता है, वैसे ही युद्धमें उन नाम-

धारी क्षत्रियकुलकलङ्कोंको तहस-नहस करके अपनेसे प्रेम करनेवाली परमसुन्दरी राजकुमारीको मैं निकाल लाऊँगा ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मधुसूदन श्रीकृष्णने यह जानकर कि रुक्मिणीके विवाहकी लग्न परसों रात्रिमें ही है, सारथीको आज्ञा दी कि 'दारुक ! तनिक भी विलम्ब न करके रथ जोत लाओ' ॥ ४ ॥ दारुक भगवान्‌के रथमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके चार घोड़े जोतकर उसे ले आया और हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया ॥५॥ शूरनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणदेवताको पहले रथपर चढ़ाकर फिर आप भी सवार हुए और उन शीघ्रगामी घोड़ोंके द्वारा एक ही रातमें आनर्तदेशसे विदर्भदेशमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥

कुण्डिननरेश महाराज भीष्मक अपने बड़े लड़के रुक्मीके स्नेहवश अपनी कन्या शिशुपालको देनेके लिये विवाहोत्सवकी तैयारी करा रहे थे ॥७॥ नगरके राजपथ, चौराहे तथा गली-कूचे झाड़-बुहार दिये गये थे, उनपर छिड़काव किया जा चुका था । चित्र-विचित्र, रंग-बिरंगी, छोटी-बड़ी झंडियाँ और पताकाएँ लगा दी गयी थीं । तोरन बाँध दिये गये थे ॥ ८ ॥ वहाँके स्त्री-पुरुष पुष्प-माला, हार, इत्र-फुलेल, चन्दन, गहने और निर्मल वस्त्रोंसे सजे हुए थे। वहाँके सुन्दर-सुन्दर घरोंमेंसे अगरके धूपकी सुगन्ध फैल रही थी ॥९॥ परीक्षित् ! राजा भीष्मकने पितर और देवताओंका विधिपूर्वक पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और नियमानुसार स्वस्तिवाचन भी ॥१०॥ सुशोभित दाँतोंवाली परमसुन्दरी राजकुमारी रुक्मिणीजीको स्नान कराया गया, उनके हाथोंमें मङ्गल-सूत्र कङ्कण पहनाये गये, कोहबर बनाया गया, दो नये-नये वस्त्र उन्हें पहनाये गये और वे उत्तम-उत्तम आभूषणोंसे विभूषित की गयीं ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे उनकी रक्षा की और अथर्ववेदके विद्वान् पुरोहितने ग्रहशान्तिके लिये हवन किया ।१२। राजा भीष्मक कुलपरम्परा और शास्त्रीय विधियोंके बड़े जानकार थे । उन्होंने सोना, चाँदी, वस्त्र, गुड़ मिले हुए तिल और गौएँ ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥

इसी प्रकार चेदिनरेश राजा दमघोषने भी अपने पुत्र शिशुपालके लिये मन्त्रज्ञ ब्राह्मणोंसे अपने पुत्रके विवाह-सम्बन्धी मङ्गलकृत्य कराये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे मद चुआते हुए हाथियों, सोनेकी मालाओंसे सजाये हुए रथों, पैदलों तथा घुड़सवारोंकी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुर जा पहुँचे ॥ १५ ॥ विदर्भराज भीष्मकने आगे आकर उनका स्वागत-सत्कार और प्रथाके अनुसार अर्चन-पूजन किया । इसके बाद उन लोगोंको पहलेसे ही निश्चित किये हुए जनवासोंमें आनन्दपूर्वक ठहरा दिया ॥१६॥ उस बारातमें शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र, विदूरथ और पौण्ड्रक आदि शिशुपालके सहस्रों मित्र नरपति आये थे ॥ १७ ॥ वे सब राजा श्रीकृष्ण और बलरामजीके विरोधी थे और राजकुमारी रुक्मिणी शिशुपाल-को ही मिले, इस विचारसे आये थे । उन्होंने अपने-अपने मनमें यह पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा था कि यदि श्रीकृष्ण बलराम आदि यदुवंशियोंके साथ आकर कन्याको हरनेकी चेष्टा करेगा तो हम सब मिलकर उससे लड़ेंगे । यही कारण था कि उन राजाओंने अपनी-अपनी पूरी सेना और रथ, घोड़े, हाथी आदि भी अपने साथ ले लिये थे ॥ १८-१९ ॥

विपक्षी राजाओंकी इस तैयारीका पता भगवान् बलरामजीको लग गया और जब उन्होंने यह सुना कि भैया श्रीकृष्ण अकेले ही राजकुमारीका हरण करनेके लिये चले गये हैं, तब उन्हें वहाँ लड़ाई-झगड़ेकी बड़ी आशङ्का हुई ॥ २० ॥ यद्यपि वे श्रीकृष्णका बल-विक्रम जानते थे, फिर भी भ्रातृस्नेहसे उनका हृदय भर आया; वे तुरंत ही हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी बड़ी भारी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर कुण्डिनपुरके लिये चल पड़े ॥ २१ ॥

इधर, परमसुन्दरी रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं । उन्होंने देखा श्रीकृष्णकी तो कौन कहे, अभी ब्राह्मणदेवता भी नहीं लौटे ! वे बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं; सोचने लगीं ॥२२॥ 'अहो ! अब मुझ अभागिनीके विवाहमें केवल एक रातकी देरी है । परन्तु मेरे जीवनसर्वस्व कमलनयन भगवान् अब भी नहीं पधारे ! इसका क्या कारण हो सकता है, कुछ निश्चय नहीं माळूम पड़ता । यही नहीं, मेरे सन्देश ले

जानेवाले ब्राह्मणदेवता भी तो अभीतक नहीं लौटे ।२३। इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप परम शुद्ध है और विशुद्ध पुरुष ही उनसे प्रेम कर सकते हैं। उन्होंने मुझमें कुछ-न-कुछ बुराई देखी होगी, तभी तो मेरा हाथ पकड़नेके लिये—मुझे स्वीकार करनेके लिये उद्यत होकर वे यहाँ नहीं पधार रहे हैं ? ॥२४॥ ठीक है, मेरे भाग्य ही मन्द हैं! विधाता और भगवान् शङ्कर भी मेरे अनुकूल नहीं जान पड़ते । यह भी सम्भव है कि रुद्रपत्नी गिरिराजकुमारी सती पार्वतीजी मुझसे अप्रसन्न हों' ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! रुक्मिणीजी इसी उधेड़-बुनमें पड़ी हुई थीं। उनका सम्पूर्ण मन और उनके सारे मनोभाव भक्तमनचोर भगवान्ने चुरा लिये थे। उन्होंने उन्हींको सोचते-सोचते 'अभी समय है' ऐसा समझकर अपने आँसूभरे नेत्र बन्द कर लिये।२६। परीक्षित् ! इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उसी समय उनकी बायीं जाँघ, भुजा और नेत्र फड़कने लगे, जो प्रियतमके आगमनका प्रिय संवाद सूचित कर रहे थे ॥ २७ ॥ इतनेमें ही भगवान् श्रीकृष्णके भेजे हुए वे ब्राह्मणदेवता आ गये और उन्होंने अन्तःपुरमें राजकुमारी रुक्मिणीको इस प्रकार देखा, मानो कोई ध्यानमग्न देवी हो ॥ २८॥ सती रुक्मिणीजीने देखा ब्राह्मणदेवताका मुख प्रफुल्लित है। उनके मन और चेहरेपर किसी प्रकारकी घबड़ाहट नहीं है। वे उन्हें देखकर लक्षणोंसे ही समझ गयीं कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये! फिर प्रसन्नतासे खिलकर उन्होंने ब्राह्मणदेवतासे पूछा ॥ २९ ॥ तब ब्राह्मणदेवताने निवेदन किया कि 'भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधार गये हैं।' और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। यह भी बतलाया कि 'राजकुमारीजी! आपको ले जानेकी उन्होंने सत्य प्रतिज्ञा की है' ॥३०॥ भगवान्के शुभागमनका समाचार सुनकर रुक्मिणीजीका हृदय आनन्दातिरेकसे भर गया। उन्होंने इसके बदलेमें ब्राह्मणके लिये भगवान्के अतिरिक्त और कुछ प्रिय न देखकर उन्होंने केवल नमस्कार कर लिया। अर्थात् जगत्की समग्र लक्ष्मी ब्राह्मणदेवताको सौंप दी ॥३१॥

राजा भीष्मकने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी मेरी कन्याका विवाह देखनेके लिये उत्सुकतावश यहाँ पधारे हैं। तब तुरही, भेरी आदि बाजे बजवाते हुए पूजाकी सामग्री लेकर उन्होंने उनकी अगवानी की ॥ ३२ ॥ और मधुपर्क, निर्मल वस्त्र तथा उत्तम-उत्तम भेंट देकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ ३३ ॥ भीष्मकजी बड़े बुद्धिमान् थे। भगवान्के प्रति उनकी बड़ी भक्ति थी। उन्होंने भगवान्को सेना और साथियोंके सहित समस्त सामग्रियोंसे युक्त निवासस्थानमें ठहराया और उनका यथावत् आतिथ्य-सत्कार किया ॥ ३४ ॥ विदर्भराज भीष्मकजीके यहाँ निमन्त्रणमें जितने राजा आये थे, उन्होंने उनके पराक्रम, अवस्था, बल और धनके अनुसार सारी इच्छित वस्तुएँ देकर सबका खूब सत्कार किया ॥ ३५ ॥ विदर्भदेशके नागरिकोंने जब सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तब वे लोग भगवान्के निवासस्थानपर आये और अपने नयनोंकी अंजलिमें भर-भरकर उनके वदनारविन्दका मधुर मकरन्द-रस पान करने लगे ॥ ३६ ॥ वे आपसमें इस प्रकार बातचीत करते थे—रुक्मिणी इन्हींकी अर्द्धाङ्गिनी होनेके योग्य है, और ये परम पवित्रमूर्ति श्यामसुन्दर रुक्मिणीके ही योग्य पति हैं। दूसरी कोई इनकी पत्नी होनेके योग्य नहीं है ॥ ३७ ॥ यदि हमने अपने पूर्वजन्म या इस जन्ममें कुछ भी सत्कर्म किया हो, तो त्रिलोक-विधाता भगवान् हमपर प्रसन्न हों और ऐसी कृपा करें कि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण ही विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीका पाणिग्रहण करें' ॥ ३८ ॥

परीक्षित् ! जिस समय प्रेम-परवश होकर पुरवासीलोग परस्पर इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, उसी समय रुक्मिणीजी अन्तःपुरसे निकलकर देवीजीके मन्दिरके लिये चलीं। बहुत-से सैनिक उनकी रक्षामें नियुक्त थे ॥ ३९ ॥ वे प्रेममूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंका चिन्तन करती हुई भगवती भवानीके पाद-पल्लवोंका दर्शन करनेके लिये पैदल ही चलीं ॥ ४० ॥ वे स्वयं मौन थीं और माताएँ तथा सखी-सहेलियाँ सब ओरसे उन्हें घेरे हुए थीं। शूरवीर राजसैनिक हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र उठाये, कवच पहने उनकी रक्षा कर रहे थे। उस समय मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, तुरही और भेरी आदि

बाजे बज रहे थे ॥ ४१ ॥ बहुत-सी ब्राह्मणपत्नियाँ पुष्पमाला, चन्दन आदि सुगन्ध-द्रव्य और गहने-कपड़ोंसे सज-धजकर साथ-साथ चल रही थीं और अनेकों प्रकारके उपहार तथा पूजन आदिकी सामग्री लेकर सहस्रों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ भी साथ थीं ॥ ४२ ॥ गवैये गाते जाते थे, बाजेवाले बाजे बजाते चलते थे और सूत, मागध तथा वंदीजन दुलहिनके चारों ओर जय-जयकार करते—विरद बखानते जा रहे थे ॥ ४३ ॥ देवीजीके मन्दिर-में पहुँचकर रुक्मिणीजीने अपने कमलके सदृश सुकोमल हाथ-पैर धोये, आचमन किया; इसके बाद बाहर-भीतरसे पवित्र एवं शान्तभावसे युक्त होकर अम्बिकादेवीके मन्दिरमें प्रवेश किया ॥ ४४ ॥ बहुत-सी विधि-विधान जाननेवाली बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मणियाँ उनके साथ थीं। उन्होंने भगवान् शङ्करकी अर्द्धाङ्गिनी भवानीको और भगवान् शङ्करजीको भी रुक्मिणीजीसे प्रणाम करवाया ॥ ४५ ॥ रुक्मिणीजीने भगवतीसे प्रार्थना की—'अम्बिका माता! आपकी गोदमें बैठे हुए आपके प्रिय पुत्र गणेशजीको तथा आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मेरी अभिलाषा पूर्ण हो। भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों' ॥ ४६ ॥ इसके बाद रुक्मिणीजीने जल, गन्ध, अक्षत, धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, हार, आभूषण, अनेकों प्रकारके नैवेद्य, भेंट और आरती आदि सामग्रियोंसे अम्बिकादेवीकी पूजा की ॥ ४७ ॥ तदनन्तर उक्त सामग्रियोंसे तथा नमक, पूआ, पान, कण्ठसूत्र, फल और ईखसे सुहागिन ब्राह्मणियोंकी भी पूजा की ॥ ४८ ॥ तब ब्राह्मणियोंने उन्हें प्रसाद देकर आशीर्वाद दिये और दुलहिनने ब्राह्मणियों और माता अम्बिकाको नमस्कार करके प्रसाद ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ पूजा-अर्चाकी विधि समाप्त हो जानेपर उन्होंने मौनव्रत तोड़ दिया और रत्नजटित अँगूठीसे जगमगाते हुए करकमलके द्वारा एक सहेलीका हाथ पकड़कर वे गिरिजामन्दिरसे बाहर निकलीं ॥ ५० ॥

परीक्षित्! रुक्मिणीजी भगवान्की मायाके समान ही बड़े-बड़े धीर-वीरोंको भी मोहित कर लेनेवाली थीं। उनका कटिभाग बहुत ही सुन्दर और पतला था। मुखमण्डलपर कुण्डलोंकी शोभा जगमगा रही थी। वे किशोर और तरुण अवस्थाकी सन्धिमें स्थित थीं। नितम्बपर जड़ाऊ करधनी शोभायमान हो रही थी, वक्षःस्थल कुछ उभरे हुए थे और उनकी दृष्टि लटकती हुई अलकोंके कारण कुछ चञ्चल हो रही थी ॥ ५१ ॥ उनके होठोंपर मनोहर मुसकान थी। उनके दाँतोंकी पाँत थी तो कुन्दकलीके समान परम उज्ज्वल, परन्तु पके हुए कुँदरूके समान लाल-लाल होठोंकी चमकसे उसपर भी लालिमा आ गयी थी। उनके पाँवोंके पायजेब चमक रहे थे और उनमें लगे हुए छोटे-छोटे घुँघरू रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। वे अपने सुकुमार चरण-कमलोंसे पैदल ही राजहंसकी गतिसे चल रही थीं। उनकी वह अपूर्व छवि देखकर वहाँ आये हुए बड़े-बड़े यशस्वी वीर सब मोहित हो गये। कामदेवने ही भगवान्का कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने बाणोंसे उनका हृदय जर्जर कर दिया ॥ ५२ ॥ रुक्मिणीजी इस प्रकार इस उत्सव-यात्राके बहाने मन्द-मन्द गतिसे चलकर भगवान् श्रीकृष्णपर अपना राशि-राशि सौन्दर्य निछावर कर रही थीं। उन्हें देखकर और उनकी खुली मुसकान तथा लजीली चितवनपर अपना चित्त लुटाकर वे बड़े-बड़े नरपति एवं वीर इतने मोहित और बेहोश हो गये कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र छूटकर गिर पड़े और वे स्वयं भी रथ, हाथी तथा घोड़ोंसे धरतीपर आ गिरे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार रुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनकी प्रतीक्षा करती हुई अपने कमलकी कलीके समान सुकुमार चरणोंको बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ा रही थीं। उन्होंने अपने बायें हाथकी अँगुलियोंसे मुखकी ओर लटकती हुई अलकें हटायीं और वहाँ आये हुए नरपतियोंकी ओर लजीली चितवनसे देखा। उसी समय उन्हें श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए ॥ ५४ ॥ राजकुमारी रुक्मिणीजी रथपर चढ़ना ही चाहती थीं कि भगवान् श्रीकृष्णने समस्त शत्रुओंके देखते-देखते उनकी भीड़मेंसे रुक्मिणीजीको उठा लिया और उन सैकड़ों राजाओंके सिरपर पाँव रखकर उन्हें अपने उस रथपर बैठा लिया, जिसकी ध्वजापर गरुडका चिह्न लगा हुआ था ॥ ५५ ॥ इसके बाद जैसे सिंह सियारोंके बीचमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही

रुक्मिणीजीको लेकर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी आदि यदुवंशियोंके साथ वहाँसे चल पड़े ॥ ५६ ॥ उस समय जरासन्धके वशवर्ती अभिमानी राजाओंको अपना यह बड़ा भारी तिरस्कार और यश-कीर्तिका नाश सहन न हुआ। वे सब-के-सब चिढ़कर कहने लगे—'अहो, हमें धिक्कार है। आज हमलोग धनुष धारण करके खड़े ही रहे और ये ग्वाले, जैसे सिंहके भागको हरिन ले जायँ उसी प्रकार हमारा सारा यश छीन ले गये' ॥५७॥

चौवनवाँ अध्याय

शिशुपालके साथी राजाओंकी और रुक्मीकी हार तथा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार कह-सुनकर सब-के-सब राजा क्रोधसे आगबबूला हो उठे और कवच पहनकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो गये। अपनी-अपनी सेनाके साथ सब धनुष ले-लेकर भगवान् श्रीकृष्णके पीछे दौड़े ॥ १ ॥ राजन् ! जब यदुवंशियोंके सेनापतियोंने देखा कि शत्रुदल हमपर चढ़ा आ रहा है, तब उन्होंने भी अपने-अपने धनुषका टङ्कार किया और घूमकर उनके सामने डट गये ॥ २ ॥ जरासन्धकी सेनाके लोग कोई घोड़ेपर, कोई हाथीपर तो कोई रथपर चढ़े हुए थे। वे सभी धनुर्वेदके बड़े मर्मज्ञ थे। वे यदुवंशियोंपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगे, मानो दल-के-दल बादल पहाड़ोंपर मूसलधार पानी बरसा रहे हों ॥ ३ ॥ परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने देखा कि उनके पति श्रीकृष्णकी सेना बाण-वर्षासे ढक गयी है। तब उन्होंने लज्जाके साथ भयभीत नेत्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा ॥ ४ ॥ भगवान्ने हँसकर कहा—'सुन्दरी ! डरो मत। तुम्हारी सेना अभी तुम्हारे शत्रुओंकी सेनाको नष्ट किये डालती है' ॥ ५ ॥ इधर गद और सङ्कर्षण आदि यदुवंशी वीर अपने शत्रुओंका पराक्रम और अधिक न सह सके। वे अपने बाणोंसे शत्रुओंके हाथी, घोड़े तथा रथोंको छिन्न-भिन्न करने लगे।६। उनके बाणोंसे रथ, घोड़े और हाथियोंपर बैठे विपक्षी वीरोंके कुण्डल, किरीट और पगड़ियोंसे सुशोभित करोड़ों सिर, खड्ग, गदा और धनुषयुक्त हाथ, पहुँचे, जाँघें और पैर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। इसी प्रकार घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और मनुष्योंके सिर भी कट-कटकर रणभूमिमें लोटने लगे ॥ ७-८ ॥ अन्तमें विजयकी सच्ची आकाङ्क्षावाले यदुवंशियोंने शत्रुओंकी सेना तहस-नहस कर डाली। जरासन्ध आदि सभी राजा युद्धसे पीठ दिखाकर भाग खड़े हुए ॥ ९ ॥

उधर शिशुपाल अपनी भावी पत्नीके छिन जानेके कारण मरणासन्न-सा हो रहा था। न तो उसके हृदयमें उत्साह रह गया था और न तो शरीरपर कान्ति। उसका मुँह सूख रहा था। उसके पास जाकर जरासन्ध कहने लगा—॥१०॥ 'शिशुपालजी! आप तो एक श्रेष्ठ पुरुष हैं। यह उदासी छोड़ दीजिये। क्योंकि राजन्! कोई भी बात सर्वदा अपने मनके अनुकूल ही हो या प्रतिकूल ही हो, इस सम्बन्धमें कुछ स्थिरता किसी भी प्राणीके जीवनमें नहीं देखी जाती ॥ ११ ॥ जैसे कठपुतली बाजीगरकी इच्छाके अनुसार नाचती है, वैसे ही यह जीव भी भगवदिच्छाके अधीन रहकर सुख और दुःखके सम्बन्धमें यथाशक्ति चेष्टा करता रहता है ॥ १२ ॥ देखिये, श्रीकृष्णने मुझे तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेनाओंके साथ सत्रह बार हरा दिया, मैंने केवल एक बार—अठारहवीं बार उनपर विजय प्राप्त की ॥ १३ ॥ फिर भी इस बातको लेकर मैं न तो कभी शोक करता हूँ और न तो कभी हर्ष; क्योंकि मैं जानता हूँ कि प्रारब्धके अनुसार कालभगवान् ही इस चराचर जगत्को झकझोरते रहते हैं ॥ १४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बड़े-बड़े वीर सेनापतियोंके भी नायक हैं। फिर भी, इस समय श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंकी थोड़ी-सी सेनाने हमें हरा दिया है ॥ १५ ॥ इस बार हमारे शत्रुओंकी ही जीत हुई, क्योंकि काल उन्हींके अनुकूल था। जब काल हमारे दाहिने होगा, तब हम भी उन्हें जीत लेंगे' ॥ १६ ॥ परीक्षित्! जब मित्रोंने इस प्रकार समझाया, तब चेदिराज शिशुपाल अपने अनुयायियोंके

साथ अपनी राजधानीको लौट गया और उसके मित्र राजा भी, जो मरनेसे बचे थे, अपने-अपने नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥

रुक्मिणीजीका बड़ा भाई रुक्मी भगवान् श्रीकृष्णसे बहुत द्वेष रखता था। उसको यह बात बिल्कुल सहन न हुई कि मेरी बहिनको श्रीकृष्ण हर ले जायँ और राक्षसरीतिसे बलपूर्वक उसके साथ विवाह करें। रुक्मी-बली तो था ही, उसने एक अक्षौहिणी सेना साथ ले ली और श्रीकृष्णका पीछा किया ॥ १८ ॥ महाबाहु रुक्मी क्रोधके मारे जल रहा था। उसने कवच पहनकर और धनुष धारण करके समस्त नरपतियोंके सामने यह प्रतिज्ञा की—॥ १९ ॥ 'मैं आपलोगोंके बीचमें यह शपथ करता हूँ कि यदि मैं युद्धमें श्रीकृष्णको न मार सका और अपनी बहिन रुक्मिणीको न लौटा सका तो अपनी राजधानी कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा' ॥ २० ॥ परीक्षित् ! यह कहकर वह रथपर सवार हो गया और सारथीसे बोला—'जहाँ कृष्ण हो वहाँ शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ ले चलो। आज मेरा उसीके साथ युद्ध होगा ॥ २१ ॥ आज मैं अपने तीखे बाणोंसे उस खोटी बुद्धिवाले ग्वालेके बलवीर्यका घमंड चूर-चूर कर दूँगा। देखो तो उसका साहस, वह हमारी बहिनको बलपूर्वक हर ले गया है' ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! रुक्मीकी बुद्धि बिगड़ गयी थी। वह भगवान्‌के तेज-प्रभावको बिल्कुल नहीं जानता था। इसीसे इस प्रकार बहक-बहककर बातें करता हुआ वह एक ही रथसे श्रीकृष्णके पास पहुँचकर ललकारने लगा—'खड़ा रह ! खड़ा रह !' ॥ २३ ॥ उसने अपने धनुषको बलपूर्वक खींचकर भगवान् श्रीकृष्णको तीन बाण मारे और कहा—'एक क्षण मेरे सामने ठहर ! यदुवंशियोंके कुलकलङ्क ! जैसे कौआ होमकी सामग्री चुराकर उड़ जाय, वैसे ही तू मेरी बहिनको चुराकर कहाँ भागा जा रहा है ? अरे मन्द ! तू बड़ा मायावी और कपट-युद्धमें कुशल है। आज मैं तेरा सारा गर्व खर्व किये डालता हूँ ॥ २४-२५ ॥ देख ! जबतक मेरे बाण तुझे धरतीपर सुला नहीं देते, उसके पहले ही इस बच्चीको छोड़कर भाग जा।' रुक्मीकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे। उन्होंने उसका धनुष काट डाला और उसपर छः बाण छोड़े ॥ २६ ॥ साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने आठ बाण उसके चार घोड़ोंपर और दो सारथीपर छोड़े और तीन बाणोंसे उसके रथकी ध्वजाको काट डाला। तब रुक्मीने दूसरा धनुष उठाया और भगवान् श्रीकृष्णको पाँच बाण मारे ॥ २७ ॥ उन बाणोंके लगनेपर उन्होंने उसका वह धनुष भी काट डाला। रुक्मीने इसके बाद एक और धनुष लिया, परन्तु हाथमें लेते-ही-लेते अविनाशी अच्युतने उसे भी काट डाला ॥ २८ ॥ इस प्रकार रुक्मीने परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल, तलवार, शक्ति और तोमर—जितने अस्त्र-शस्त्र उठाये, उन सभीको भगवान्‌ने प्रहार करनेके पहले ही काट डाला ॥ २९ ॥ अब रुक्मी क्रोधवश हाथमें तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे रथसे कूद पड़ा और इस प्रकार उनकी ओर झपटा, जैसे पतिंगा आगकी ओर लपकता है ॥ ३० ॥ जब भगवान्‌ने देखा कि रुक्मी मुझपर चोट करना चाहता है, तब उन्होंने अपने बाणोंसे उसकी ढाल-तलवारको तिल-तिल करके काट दिया और उसको मार डालनेके लिये हाथमें तीखी तलवार निकाल ली ॥ ३१ ॥ जब रुक्मिणीजीने देखा कि ये तो हमारे भाईको अब मार ही डालना चाहते हैं, तब वे भयसे विह्वल हो गयीं और अपने प्रियतम पति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर गिरकर करुण-स्वरमें बोलीं—॥ ३२ ॥ 'देवताओंके भी आराध्यदेव ! जगत्पते ! आप योगेश्वर हैं। आपके स्वरूप और इच्छाओंको कोई जान नहीं सकता। आप परम बलवान् हैं। परन्तु कल्याणस्वरूप भी तो हैं। प्रभो ! मेरे भैयाको मारना आपके योग्य काम नहीं है' ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—रुक्मिणीजीका एक-एक अङ्ग भयके मारे थर-थर काँप रहा था। शोककी प्रबलता-से मुँह सूख गया था, गला रुँध गया था। आतुरता-वश सोनेका हार गलेसे गिर पड़ा था और इसी अवस्थामें वे भगवान्‌के चरणकमल पकड़े हुए थीं। परमदयालु भगवान् उन्हें भयभीत देखकर करुणासे द्रवित हो गये। उन्होंने रुक्मीको मार डालनेका विचार छोड़ दिया ॥ ३४ ॥ फिर भी रुक्मी उनके अनिष्टकी चेष्टासे

विमुख न हुआ। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसको उसीके दुपट्टेसे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी-मूँछ तथा केश कई जगहसे मूँड़कर उसे कुरूप बना दिया। तबतक यदुवंशी वीरोंने शत्रुकी अद्भुत सेनाको तहस-नहस कर डाला—ठीक वैसे ही, जैसे हाथी कमलवनको रौंद डालता है॥ ३५॥ फिर वे लोग उधरसे लौटकर श्रीकृष्णके पास आये, तो देखा कि रुक्मी दुपट्टेसे बँधा हुआ अधमरी अवस्थामें पड़ा हुआ है। उसे देखकर सर्वशक्तिमान् भगवान् बलरामजीको बड़ी दया आयी और उन्होंने उसके बन्धन खोलकर उसे छोड़ दिया तथा श्रीकृष्णसे कहा—॥ ३६॥ 'कृष्ण! तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह निन्दित कार्य हमलोगोंके योग्य नहीं है। अपने सम्बन्धीकी दाढ़ी-मूँछ मूँड़कर उसे कुरूप कर देना, यह तो एक प्रकारका वध ही है'॥ ३७॥ इसके बाद बलरामजीने रुक्मिणीको सम्बोधन करके कहा—'साध्वी! तुम्हारे भाईका रूप विकृत कर दिया गया है, यह सोचकर हमलोगोंसे बुरा न मानना; क्योंकि जीवको सुख-दुःख देनेवाला कोई दूसरा नहीं है। उसे तो अपने ही कर्मका फल भोगना पड़ता है॥३८॥ अब श्रीकृष्णसे बोले—'कृष्ण! यदि अपना सगा-सम्बन्धी वध करने योग्य अपराध करे, तो भी अपने ही सम्बन्धियोंके द्वारा उसका मारा जाना उचित नहीं है। उसे छोड़ देना चाहिये। वह तो अपने अपराधसे ही मर चुका है, मरे हुएको फिर क्या मारना?' ॥ ३९॥ फिर रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी! ब्रह्माजीने क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा बना दिया है कि सगा भाई भी अपने भाईको मार डालता है। इसलिये यह क्षात्रधर्म अत्यन्त घोर है'॥ ४०॥ इसके बाद श्रीकृष्णसे बोले—'भाई कृष्ण! यह ठीक है कि जो लोग धनके नशेमें अंधे हो रहे हैं और अभिमानी हैं, वे राज्य, पृथ्वी, पैसा, स्त्री, मान, तेज अथवा किसी और कारणसे अपने बन्धुओंका भी तिरस्कार कर दिया करते हैं'॥ ४१॥ अब वे रुक्मिणीजीसे बोले—'साध्वी! तुम्हारे भाई-बन्धु समस्त प्राणियोंके प्रति दुर्भाव रखते हैं। हमने उनके मङ्गलके लिये ही उनके प्रति दण्डविधान किया है। उसे तुम अज्ञानियोंकी भाँति अमङ्गल मान रही हो, यह तुम्हारी बुद्धिकी विषमता है॥ ४२॥ देवि! जो लोग भगवान्की मायासे मोहित होकर देहको ही आत्मा मान बैठते हैं, उन्हींको ऐसा आत्ममोह होता है कि यह मित्र है, यह शत्रु है और यह उदासीन है॥ ४३॥ समस्त देह-धारियोंकी आत्मा एक ही है और कार्य-कारणसे, मायासे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। जल और घड़ा आदि उपाधियोंके भेदसे जैसे सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशयुक्त पदार्थ और आकाश भिन्न-भिन्न मालूम पड़ते हैं; परन्तु हैं एक ही, वैसे ही मूर्ख लोग शरीरके भेदसे आत्माका भेद मानते हैं॥ ४४॥ यह शरीर आदि और अन्तवाला है। पञ्चभूत, पञ्चप्राण, तन्मात्रा और त्रिगुण ही इसका स्वरूप है। आत्मामें उसके अज्ञानसे ही इसकी कल्पना हुई है और वह कल्पित शरीर ही, जो उसे 'मैं' समझता है, उसको जन्म-मृत्युके चक्करमें ले जाता है॥ ४५॥ साध्वी! नेत्र और रूप दोनों ही सूर्यके द्वारा प्रकाशित होते हैं। सूर्य ही उनका कारण है। इसलिये सूर्यके साथ नेत्र और रूपका न तो कभी वियोग होता है और न संयोग। इसी प्रकार समस्त संसारकी सत्ता आत्मसत्ताके कारण जान पड़ती है, समस्त संसारका प्रकाशक आत्मा ही है। फिर आत्माके साथ दूसरे असत् पदार्थोंका संयोग या वियोग हो ही कैसे सकता है?॥४६॥ जन्म लेना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और मरना—ये सारे विकार शरीरके ही होते हैं, आत्माके नहीं। जैसे कृष्णपक्षमें कलाओंका ही क्षय होता है, चन्द्रमाका नहीं, परन्तु अमावस्याके दिन व्यवहारमें लोग चन्द्रमाका ही क्षय हुआ कहते-सुनते हैं; वैसे ही जन्म-मृत्यु आदि सारे विकार शरीरके ही होते हैं, परन्तु लोग उसे भ्रम-वश अपना—अपने आत्माका मान लेते हैं॥ ४७॥ जैसे सोया हुआ पुरुष किसी पदार्थके न होनेपर भी स्वप्नमें भोक्ता, भोग्य और भोगरूप फलोंका अनुभव करता है, उसी प्रकार अज्ञानीलोग झूठमूठ संसार-चक्रका अनुभव करते हैं॥ ४८॥ इसलिये साध्वी! अज्ञानके कारण होनेवाले इस शोकको त्याग दो। यह शोक अन्तःकरणको मुरझा देता है, मोहित कर देता है। इसलिये इसे छोड़कर तुम अपने स्वरूपमें स्थित हो जाओ'॥ ४९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब बलरामजीने इस प्रकार समझाया, तब परमसुन्दरी रुक्मिणीजीने अपने मनका मैल मिटाकर विवेक-बुद्धिसे उसका समाधान किया ॥ ५० ॥ रुक्मीकी सेना और उसके तेजका नाश हो चुका था । केवल प्राण बच रहे थे । उसके चित्तकी सारी आशा-अभिलाषाएँ व्यर्थ हो चुकी थीं और शत्रुओंने अपमानित करके उसे छोड़ दिया था । उसे अपने विरूप किये जानेकी कष्टदायक स्मृति भूल नहीं पाती थी ॥ ५१ ॥ अतः उसने अपने रहनेके लिये भोजकट नामकी एक बहुत बड़ी नगरी बसायी । उसने पहले ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि 'दुर्बुद्धि कृष्णको मारे बिना और अपनी छोटी बहिनको लौटाये बिना मैं कुण्डिनपुरमें प्रवेश नहीं करूँगा ।' इसलिये क्रोध करके वह वहीं रहने लगा ॥ ५२ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सब राजाओंको जीत लिया और विदर्भराजकुमारी रुक्मिणीजीको द्वारकामें लाकर उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! उस समय द्वारकापुरीमें घर-घर बड़ा ही उत्सव मनाया जाने लगा । क्यों न हो, वहाँके सभी लोगोंका यदुपति श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम जो था ॥ ५४ ॥ वहाँके सभी नर-नारी मणियोंके चमकीले कुण्डल धारण किये हुए थे । उन्होंने आनन्दसे भरकर चित्र-विचित्र वस्त्र पहने दूल्हा और दुलहिनको अनेकों भेंटकी सामग्रियाँ उपहारमें दीं ॥ ५५ ॥ उस समय द्वारकाकी अपूर्व शोभा हो रही थी । कहीं बड़ी-बड़ी पताकाएँ बहुत ऊँचेतक फहरा रही थीं । चित्र-विचित्र मालाएँ, वस्त्र और रत्नोंके तोरन बँधे हुए थे । द्वार-द्वारपर दूब, खील आदि मङ्गलकी वस्तुएँ सजायी हुई थीं । जलभरे कलश, अरगजा और धूपकी सुगन्ध तथा दीपावलीसे बड़ी ही विलक्षण शोभा हो रही थी ॥ ५६ ॥ मित्र नरपति आमन्त्रित किये गये थे । उनके मतवाले हाथियोंके मदसे द्वारकाकी सड़क और गलियोंका छिड़काव हो गया था । प्रत्येक दरवाजेपर केलोंके खंभे और सुपारीके पेड़ रोपे हुए बहुत ही भले माल्रम होते थे ॥ ५७ ॥ उस उत्सवमें कुतूहलवश इधर-उधर दौड़-धूप करते हुए बन्धुवर्गोंमें कुरु, सृञ्जय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग परस्पर आनन्द मना रहे थे ॥५८॥ जहाँ-तहाँ रुक्मिणी-हरणकी ही गाथा गायी जाने लगी । उसे सुनकर राजा और राजकन्याएँ अत्यन्त विस्मित हो गयीं ॥५९॥ महाराज ! भगवती लक्ष्मीजीको रुक्मिणीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णके साथ देखकर द्वारकावासी नर-नारियोंको परम आनन्द हुआ ॥६०॥

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्नका जन्म और शम्बरासुरका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कामदेव भगवान् वासुदेवके ही अंश हैं । वे पहले रुद्रभगवान्‌की क्रोधाग्निसे भस्म हो गये थे । अब फिर शरीर-प्राप्तिके लिये उन्होंने अपने अंशी भगवान् वासुदेवका ही आश्रय लिया ॥ १ ॥ वे ही काम अबकी बार भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीजीके गर्भसे उत्पन्न हुए और प्रद्युम्न नामसे जगत्‌में प्रसिद्ध हुए । सौन्दर्य, वीर्य, सौशील्य आदि सद्गुणोंमें भगवान् श्रीकृष्णसे वे किसी प्रकार कम न थे ॥ २ ॥ बालक प्रद्युम्न अभी दस दिनके भी न हुए थे कि कामरूपी शम्बरासुर वेष बदलकर सूतिकागृहसे उन्हें हर ले गया और समुद्रमें फेंककर अपने घर लौट गया । उसे माल्रम हो गया था कि यह मेरा भावी शत्रु है ॥ ३ ॥ समुद्रमें बालक प्रद्युम्नको एक बड़ा भारी मच्छ निगल गया । तदनन्तर मछुओंने अपने बहुत बड़े जालमें फँसाकर दूसरी मछलियोंके साथ उस मच्छको भी पकड़ लिया ॥ ४ ॥ और उन्होंने उसे ले जाकर शम्बरासुरको भेंटके रूपमें दे दिया । शम्बरासुरके रसोइये उस अद्भुत मच्छको उठाकर रसोईघरमें ले आये और कुल्हाड़ियोंसे उसे काटने लगे ॥ ५ ॥ रसोइयोंने मत्स्यके पेटमें बालक देखकर उसे शम्बरासुरकी दासी मायावतीको समर्पित किया । उसके मनमें बड़ी शंका हुई । तब नारदने आकर बालकका कामदेव होना, श्रीकृष्णकी पत्नी

रुक्मिणीके गर्भसे जन्म लेना, मच्छके पेटमें जाना सब कुछ कह सुनाया ॥ ६ ॥ परीक्षित्! वह मायावती कामदेवकी यशस्विनी पत्नी रति ही थी। जिस दिन शङ्करजीके क्रोधसे कामदेवका शरीर भस्म हो गया था, उसी दिनसे वह उसकी देहके पुनः उत्पन्न होनेकी प्रतीक्षा कर रही थी ॥ ७ ॥ उसी रतिको शम्बरासुरने अपने यहाँ दाल-भात बनानेके काममें नियुक्त कर रक्खा था। जब उसे मालूम हुआ कि इस शिशुके रूपमें मेरे पति कामदेव ही हैं, तब वह उसके प्रति बहुत प्रेम करने लगी ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णकुमार भगवान् प्रद्युम्न बहुत थोड़े दिनोंमें जवान हो गये। उनका रूप-लावण्य इतना अद्भुत था कि जो स्त्रियाँ उनकी ओर देखतीं, उनके मनमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन हो जाता ॥ ९ ॥ कमलदलके समान कोमल एवं विशाल नेत्र, घुटनोंतक लंबी-लंबी बाँहें और मनुष्यलोकमें सबसे सुन्दर शरीर! रति सलज्ज हास्यके साथ भौंह मटकाकर उनकी ओर देखती और प्रेमसे भरकर स्त्री-पुरुषसम्बन्धी भाव व्यक्त करती हुई उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती ॥ १० ॥ श्रीकृष्णनन्दन भगवान् प्रद्युम्नने उसके भावोंमें परिवर्तन देखकर कहा—'देवि! तुम तो मेरी माँके समान हो। तुम्हारी बुद्धि उलटी कैसे हो गयी? मैं देखता हूँ कि तुम माताका भाव छोड़कर कामिनीके समान हाव-भाव दिखा रही हो' ॥ ११ ॥

रतिने कहा—'प्रभो! आप स्वयं भगवान् नारायणके पुत्र हैं। शम्बरासुर आपको सूतिकागृहसे चुरा लाया था। आप मेरे पति स्वयं कामदेव हैं और मैं आपकी सदाकी धर्म-पत्नी रति हूँ ॥ १२ ॥ मेरे स्वामी! जब आप दस दिनके भी न थे, तब इस शम्बरासुरने आपको हरकर समुद्रमें डाल दिया था। वहाँ एक मच्छ आपको निगल गया और उसीके पेटसे आप यहाँ मुझे प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥ यह शम्बरासुर सैकड़ों प्रकारकी माया जानता है। इसको अपने वशमें कर लेना या जीत लेना बहुत ही कठिन है। आप अपने इस शत्रुको मोहन आदि मायाओंके द्वारा नष्ट कर डालिये ॥ १४ ॥ स्वामिन्! अपनी सन्तान आपके खो जानेसे आपकी माता पुत्रस्नेहसे व्याकुल हो रही हैं, वे आतुर होकर अत्यन्त दीनतासे रात-दिन चिन्ता करती रहती हैं। उनकी ठीक वैसी ही दशा हो रही है, जैसी बच्चा खो जानेपर कुररी पक्षीकी अथवा बछड़ा खो जानेपर बेचारी गायकी होती है ॥ १५ ॥ मायावती रतिने इस प्रकार कहकर परमशक्तिशाली प्रद्युम्नको महामाया नामकी विद्या सिखायी। यह विद्या ऐसी है, जो सब प्रकारकी मायाओंका नाश कर देती है ॥ १६ ॥ अब प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके पास जाकर उसपर बड़े कटु-कटु आक्षेप करने लगे। वे चाहते थे कि यह किसी प्रकार झगड़ा कर बैठे। इतना ही नहीं, उन्होंने युद्धके लिये उसे स्पष्टरूपसे ललकारा ॥ १७ ॥

प्रद्युम्नजीके कटुवचनोंकी चोटसे शम्बरासुर तिलमिला उठा। मानो किसीने विषैले साँपको पैरसे ठोकर मार दी हो। उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वह हाथमें गदा लेकर बाहर निकल आया ॥ १८ ॥ उसने अपनी गदा बड़े जोरसे आकाशमें घुमायी और इसके बाद प्रद्युम्नजीपर चला दी। गदा चलते समय उसने इतना कर्कश सिंहनाद किया, मानो बिजली कड़क रही हो ॥ १९ ॥ परीक्षित्! भगवान् प्रद्युम्नने देखा कि उसकी गदा बड़े वेगसे मेरी ओर आ रही है। तब उन्होंने अपनी गदाके प्रहारसे उसकी गदा गिरा दी और क्रोधमें भरकर अपनी गदा उसपर चलायी ॥ २० ॥ तब वह दैत्य मयासुरकी बतलायी हुई आसुरी मायाका आश्रय लेकर आकाशमें चला गया और वहींसे प्रद्युम्नजीपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ २१ ॥ महारथी प्रद्युम्नजीपर बहुत-सी अस्त्र-वर्षा करके जब वह उन्हें पीड़ित करने लगा, तब उन्होंने समस्त मायाओंको शान्त करनेवाली सत्त्वमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर शम्बरासुरने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाओंका प्रयोग किया; परन्तु श्रीकृष्णकुमार प्रद्युम्नजीने अपनी महाविद्यासे उन सबका नाश कर दिया ॥ २३ ॥ इसके बाद उन्होंने एक तीक्ष्ण तलवार उठायी और शम्बरासुरका किरीट एवं कुण्डलसे सुशोभित सिर, जो लाल-लाल दाढ़ी, मूँछोंसे बड़ा भयङ्कर लग रहा था, काटकर धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ देवता लोग पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे और इसके बाद मायावती रति, जो

आकाशमें चलना जानती थी, अपने पति प्रद्युम्नजीको आकाशमार्गसे द्वारकापुरीमें ले गयी ॥ २५ ॥

परीक्षित् ! आकाशमें अपनी गोरी पत्नीके साथ साँवले प्रद्युम्नजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो बिजली और मेघका जोड़ा हो। इस प्रकार उन्होंने भगवान्‌के उस उत्तम अन्तःपुरमें प्रवेश किया, जिसमें सैकड़ों श्रेष्ठ रमणियाँ निवास करती थीं ॥ २६ ॥ अन्तःपुरकी नारियोंने देखा प्रद्युम्नजीका शरीर वर्षाकालीन मेघके समान श्यामवर्ण है। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए हैं। घुटनोंतक लंबी भुजाएँ हैं, रतनारे नेत्र हैं और सुन्दर मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी अनूठी ही छटा है। उनके मुखारविन्दपर घुँघराली और नीली अलकें इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं, मानो भौंरे खेल रहे हों। वे सब उन्हें श्रीकृष्ण समझकर सकुचा गयीं और घरोंमें इधर-उधर लुक-छिप गयीं ॥ २७-२८ ॥ फिर धीरे-धीरे स्त्रियोंको यह माॡम हो गया कि ये श्रीकृष्ण नहीं हैं। क्योंकि उनकी अपेक्षा इनमें कुछ विलक्षणता अवश्य है। अब वे अत्यन्त आनन्द और विस्मयसे भरकर इस श्रेष्ठ दम्पतिके पास आ गयीं ॥ २९ ॥ इसी समय वहाँ रुक्मिणीजी आ पहुँचीं। परीक्षित् ! उनके नेत्र कजरारे और वाणी अत्यन्त मधुर थी। इस नवीन दम्पतिको देखते ही उन्हें अपने खोये हुए पुत्रकी याद हो आयी। वात्सल्यस्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध झरने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी सोचने लगीं—'यह नररत्न कौन है? यह कमलनयन किसका पुत्र है? किस बड़भागिनीने इसे अपने गर्भमें धारण किया होगा? इसे यह कौन सौभाग्यवती पत्नीरूपमें प्राप्त हुई है? ॥ ३१ ॥ मेरा भी एक नन्हा-सा शिशु खो गया था! न जाने कौन उसे सूतिकागृहसे उठा ले गया! यदि वह कहीं जीता-जागता होगा तो उसकी अवस्था तथा रूप भी इसीके समान हुआ होगा ॥ ३२ ॥ मैं तो इस बातसे हैरान हूँ कि इसे भगवान् श्यामसुन्दरकी-सी रूप-रेखा, अङ्गोंकी गठन, चाल-ढाल, मुसकान-चितवन और बोलचाल कहाँसे प्राप्त हुई? ॥ ३३ ॥ हो-न-हो यह वही बालक है, जिसे मैंने अपने गर्भमें धारण किया था। क्योंकि स्वभावसे ही मेरा स्नेह इसके प्रति उमड़ रहा है और मेरी बायीं बाँह भी फड़क रही है' ॥ ३४ ॥

जिस समय रुक्मिणीजी इस प्रकार सोच-विचार कर रही थीं—निश्चय और सन्देहके झूलेमें झूल रही थीं, उसी समय पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी-वसुदेवजीके साथ वहाँ पधारे ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ जानते थे। परन्तु वे कुछ न बोले, चुपचाप खड़े रहे। इतनेमें ही नारदजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने प्रद्युम्नजीको शम्बरासुरका हर ले जाना, समुद्रमें फेंक देना आदि जितनी भी घटनाएँ घटित हुई थीं, वे सब कह सुनायीं ॥ ३६ ॥ नारदजीके द्वारा यह महान् आश्चर्यमयी घटना सुनकर भगवान् श्रीकृष्णके अन्तःपुरकी स्त्रियाँ चकित हो गयीं और बहुत वर्षोंतक खोये रहनेके बाद लौटे हुए प्रद्युम्नजीका इस प्रकार अभिनन्दन करने लगीं, मानो कोई मरकर जी उठा हो ॥ ३७ ॥ देवकीजी, वसुदेवजी, भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी और स्त्रियाँ—सब उस नव-दम्पतिको हृदयसे लगाकर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥ जब द्वारकावासी नर-नारियोंको यह माॡम हुआ कि खोये हुए प्रद्युम्नजी लौट आये हैं, तब वे परस्पर कहने लगे—'अहो, कैसे सौभाग्यकी बात है कि यह बालक मानो मरकर फिर लौट आया' ॥ ३९ ॥ परीक्षित ! प्रद्युम्नजीका रूप-रंग भगवान् श्रीकृष्णसे इतना मिलता-जुलता था कि उन्हें देखकर उनकी माताएँ भी उन्हें अपना पतिदेव श्रीकृष्ण समझकर मधुरभावमें मग्न हो जाती थीं और उनके सामनेसे हटकर एकान्तमें चली जाती थीं! श्रीनिकेतन भगवान्‌के प्रतिबिम्बस्वरूप कामावतार भगवान् प्रद्युम्नके दीख जानेपर ऐसा होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। फिर उन्हें देखकर दूसरी स्त्रियोंकी विचित्र दशा हो जाती थी, इसमें तो कहना ही क्या है ॥ ४० ॥

छप्पनवाँ अध्याय

स्यमन्तकमणिकी कथा, जाम्बवती और सत्यभामाके साथ श्रीकृष्णका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! सत्राजित्‌ने श्रीकृष्णको झूठा कलङ्क लगाया था। फिर उस अपराधका मार्जन करनेके लिये उसने स्वयं स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णको सौंप दी ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! सत्राजित्‌ने भगवान् श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था ? उसे स्यमन्तकमणि कहाँसे मिली ? और उसने अपनी कन्या उन्हें क्यों दी ? ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! सत्राजित् भगवान् सूर्यका बहुत बड़ा भक्त था। वे उसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसके बहुत बड़े मित्र बन गये थे। सूर्य भगवान्‌ने ही प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उसे स्यमन्तकमणि दी थी ॥ ३ ॥ सत्राजित् उस मणिको गलेमें धारणकर ऐसा चमकने लगा, मानो स्वयं सूर्य ही हो। परीक्षित् ! जब सत्राजित् द्वारकामें आया, तब अत्यन्त तेजस्विताके कारण लोग उसे पहचान न सके ॥ ४ ॥ दूरसे ही उसे देखकर लोगोंकी आँखें उसके तेजसे चौंधिया गयीं। लोगोंने समझा कि कदाचित् स्वयं भगवान् सूर्य आ रहे हैं। उन लोगोंने भगवान्‌के पास आकर उन्हें इस बातकी सूचना दी। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण चौसर खेल रहे थे ॥ ५ ॥ लोगोंने कहा—'शङ्ख-चक्र-गदाधारी नारायण ! कमलनयन दामोदर ! यदुवंशशिरोमणि गोविन्द ! आपको नमस्कार है ॥ ६ ॥ जगदीश्वर ! देखिये ! अपनी चमकीली किरणोंसे लोगोंके नेत्रोंको चौंधियाते हुए प्रचण्डरश्मि भगवान् सूर्य आपका दर्शन करने आ रहे हैं ॥ ७ ॥ प्रभो ! सभी श्रेष्ठ देवता त्रिलोकीमें आपकी प्राप्तिका मार्ग ढूँढ़ते रहते हैं; किन्तु उसे पाते नहीं। आज आपको यदुवंशमें छिपा हुआ जानकर स्वयं सूर्यनारायण आपका दर्शन करने आ रहे हैं' ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अनजान पुरुषोंकी यह बात सुनकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने कहा—'अरे, ये सूर्यदेव नहीं हैं। यह तो सत्राजित् है, जो मणिके कारण इतना चमक रहा है ॥ ९ ॥ इसके बाद सत्राजित् अपने समृद्ध घरमें चला आया। घरपर उसके शुभागमनके उपलक्ष्यमें मङ्गल-उत्सव मनाया जा रहा था। उसने ब्राह्मणोंके द्वारा स्यमन्तकमणिको एक देवमन्दिरमें स्थापित करा दिया ॥ १० ॥ परीक्षित् ! वह मणि प्रतिदिन आठ भार* सोना दिया करती थी। और जहाँ वह पूजित होकर रहती थी, वहाँ दुर्भिक्ष, महामारी, ग्रहपीडा, सर्पभय, मानसिक और शारीरिक व्यथा तथा मायावियोंका उपद्रव आदि कोई भी अशुभ नहीं होता था ॥ ११ ॥ एक बार भगवान् श्रीकृष्णने प्रसङ्गवश कहा—'सत्राजित् ! तुम अपनी मणि राजा उग्रसेनको दे दो।' परन्तु वह इतना अर्थ-लोलुप—लोभी था कि भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन होगा, इसका कुछ भी विचार न करके उसे अस्वीकार कर दिया ॥ १२ ॥

एक दिन सत्राजित्‌के भाई प्रसेनने उस परम प्रकाशमयी मणिको अपने गलेमें धारण कर लिया और फिर वह घोड़ेपर सवार होकर शिकार खेलने वनमें चला गया ॥ १३ ॥ वहाँ एक सिंहने घोड़ेसहित प्रसेनको मार डाला और उस मणिको छीन लिया। वह अभी पर्वतकी गुफामें प्रवेश कर ही रहा था कि मणिके लिये ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने उसे मार डाला ॥ १४ ॥ उन्होंने वह मणि अपनी गुफामें

---

* भारका परिमाण इस प्रकार है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पणान् ।
अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम् ।
तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः ॥

अर्थात् 'चार व्रीहि (धान) की एक गुञ्जा, पाँच गुञ्जाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।

ले जाकर बच्चेको खेलनेके लिये दे दी। अपने भाई प्रसेनके न लौटनेसे उसके भाई सत्राजित्को बड़ा दुःख हुआ ॥ १५ ॥ वह कहने लगा, 'बहुत सम्भव है श्रीकृष्णने ही मेरे भाईको मार डाला हो। क्योंकि वह मणि गलेमें डालकर वनमें गया था।' सत्राजित्की यह बात सुनकर लोग आपसमें काना-फूँसी करने लगे॥१६॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने सुना कि यह कलङ्कका टीका मेरे ही सिर लगाया गया है, तब वे उसे धो-बहानेके उद्देश्यसे नगरके कुछ सभ्य पुरुषोंको साथ लेकर प्रसेनको ढूँढ़नेके लिये वनमें गये ॥ १७ ॥ वहाँ खोजते-खोजते लोगोंने देखा कि घोर जंगलमें सिंहने प्रसेन और उसके घोड़ेको मार डाला है। जब वे लोग सिंहके पैरोंका चिह्न देखते हुए आगे बढ़े, तब उन लोगोंने यह भी देखा कि पर्वतपर एक रीछने सिंहको भी मार डाला है ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने सब लोगोंको बाहर ही बिठा दिया और अकेले ही घोर अन्धकारसे भरी हुई ऋक्षराजकी भयङ्कर गुफामें प्रवेश किया॥ १९॥ भगवान्ने वहाँ जाकर देखा कि श्रेष्ठ मणि स्यमन्तकको बच्चोंका खिलौना बना दिया गया है। वे उसे हर लेनेकी इच्छासे बच्चेके पास जा खड़े हुए ॥ २० ॥ उस गुफामें एक अपरिचित मनुष्यको देखकर बच्चेकी धाय भयभीतकी भाँति चिल्ला उठी। उसकी चिल्लाहट सुनकर परम बली ऋक्षराज जाम्बवान् क्रोधित होकर वहाँ दौड़ आये॥२१॥ परीक्षित्! जाम्बवान् उस समय कुपित हो रहे थे। उन्हें भगवान्की महिमा, उनके प्रभावका पता न चला। उन्होंने उन्हें एक साधारण मनुष्य समझ लिया और वे अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करने लगे ॥ २२ ॥ जिस प्रकार मांसके लिये दो बाज आपसमें लड़ते हैं, वैसे ही विजयाभिलाषी भगवान् श्रीकृष्ण और जाम्बवान् आपसमें घमासान युद्ध करने लगे। पहले तो उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार किया, फिर शिलाओंका। तत्पश्चात् वे वृक्ष उखाड़कर एक दूसरेपर फेंकने लगे। अन्तमें उनमें बाहुयुद्ध होने लगा॥ २३॥ परीक्षित्! वज्र-प्रहारके समान कठोर घूँसोंसे आपसमें वे अट्ठाईस दिनतक बिना विश्राम किये रात-दिन लड़ते रहे ॥ २४ ॥ अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके घूँसोंकी चोटसे जाम्बवान्के शरीरकी एक-एक गाँठ टूट-फूट गयी। उत्साह जाता रहा। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। तब उन्होंने अत्यन्त विस्मित—चकित होकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—॥ २५॥ 'प्रभो! मैं जान गया। आप ही समस्त प्राणियोंके स्वामी, रक्षक, पुराणपुरुष भगवान् विष्णु हैं। आप ही सबके प्राण, इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबल हैं ॥ २६ ॥ आप विश्वके रचयिता ब्रह्मा आदिको भी बनानेवाले हैं। बनाये हुए पदार्थोंमें भी सत्तारूपसे आप ही विराजमान हैं। कालके जितने भी अवयव हैं, उनके नियामक परम काल आप ही हैं और शरीर-भेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीयमान अन्तरात्माओंके परम आत्मा भी आप ही हैं ॥ २७ ॥ प्रभो! मुझे स्मरण है, आपने अपने नेत्रोंमें तनिक-सा क्रोधका भाव लेकर तिरछी दृष्टिसे समुद्रकी ओर देखा था। उस समय समुद्रके अंदर रहनेवाले बड़े-बड़े नाक (घड़ियाल) और मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे और समुद्रने आपको मार्ग दे दिया था। तब आपने उसपर सेतु बाँधकर सुन्दर यशकी स्थापना की तथा लङ्काका विध्वंस किया। आपके बाणोंसे कट-कटकर राक्षसोंके सिर पृथ्वीपर लोट रहे थे। (अवश्य ही आप मेरे वे ही 'रामजी' श्रीकृष्णके रूपमें आये हैं)' ॥ २८ ॥ परीक्षित्! जब ऋक्षराज जाम्बवान्ने भगवान्को पहचान लिया, तब कमलनयन श्रीकृष्णने अपने परमकल्याणकारी शीतल करकमलको उनके शरीरपर फेर दिया और फिर अहैतुकी कृपासे भरकर प्रेमगम्भीरवाणीसे अपने भक्त जाम्बवान्जीसे कहा—॥२९-३०॥ 'ऋक्षराज! हम मणिके लिये ही तुम्हारी इस गुफामें आये हैं। इस मणिके द्वारा मैं अपनेपर लगे झूठे कलङ्कको मिटाना चाहता हूँ' ॥३१॥ भगवान्के ऐसा कहनेपर जाम्बवान्ने बड़े आनन्दसे उनकी पूजा करनेके लिये अपनी कन्या कुमारी जाम्बवतीको मणिके साथ उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया।३२।

भगवान् श्रीकृष्ण जिन लोगोंको गुफाके बाहर छोड़ गये थे, उन्होंने बारह दिनतक उनकी प्रतीक्षा की। परन्तु जब उन्होंने देखा कि अबतक वे गुफामेंसे नहीं निकले, तब वे अत्यन्त दुखी होकर द्वारकाको लौट गये ॥ ३३ ॥ वहाँ जब माता देवकी, रुक्मिणी, वसुदेवजी तथा अन्य सम्बन्धियों और कुटुम्बियोंको यह

मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण गुफामेंसे नहीं निकले, तब उन्हें बड़ा शोक हुआ ॥ ३४ ॥ सभी द्वारकावासी अत्यन्त दुःखित होकर सत्राजित्को भला-बुरा कहने लगे और भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिये महामाया दुर्गादेवीकी शरणमें गये, उनकी उपासना करने लगे ॥ ३५ ॥ उनकी उपासनासे दुर्गादेवी प्रसन्न हुईं और उन्होंने आशीर्वाद दिया। उसी समय उनके बीचमें मणि और अपनी नववधू जाम्बवतीके साथ सफलमनोरथ होकर श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न करते हुए प्रकट हो गये ॥ ३६ ॥ सभी द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्णको पत्नीके साथ और गलेमें मणि धारण किये हुए देखकर परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो कोई मरकर लौट आया हो ॥ ३७ ॥

तदनन्तर भगवान्ने सत्राजित्को राजसभामें महाराज उग्रसेनके पास बुलवाया और जिस प्रकार मणि प्राप्त हुई थी, वह सब कथा सुनाकर उन्होंने वह मणि सत्राजित्को सौंप दी ॥ ३८ ॥ सत्राजित् अत्यन्त लज्जित हो गया। मणि तो उसने ले ली, परन्तु उसका मुँह नीचेकी ओर लटक गया। अपने अपराधपर उसे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था, किसी प्रकार वह अपने घर पहुँचा ॥ ३९ ॥ उसके मनकी आँखोंके सामने निरन्तर अपना अपराध नाचता रहता। बलवान्के साथ विरोध करनेके कारण वह भयभीत भी हो गया था। अब वह यही सोचता रहता कि 'मैं अपने अपराधका मार्जन कैसे करूँ? मुझपर भगवान् श्रीकृष्ण कैसे प्रसन्न हों ॥ ४० ॥ मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो और लोग मुझे कोसें नहीं। सचमुच मैं अदूरदर्शी, क्षुद्र हूँ। धनके लोभसे मैं बड़ी मूढ़ताका काम कर बैठा ॥ ४१ ॥ अब मैं रमणियोंमें रत्नके समान अपनी कन्या सत्यभामा और वह स्यमन्तकमणि दोनों ही श्रीकृष्णको दे दूँ। यह उपाय बहुत अच्छा है। इसीसे मेरे अपराधका मार्जन हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है' ॥ ४२ ॥ सत्राजित्ने अपनी विवेक-बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके स्वयं ही इसके लिये उद्योग किया और अपनी कन्या तथा स्यमन्तकमणि दोनों ही ले जाकर श्रीकृष्णको अर्पण कर दीं ॥ ४३ ॥ सत्यभामा शील-स्वभाव, सुन्दरता, उदारता आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न थीं। बहुत-से लोग चाहते थे कि सत्यभामा हमें मिलें और उन लोगोंने उन्हें माँगा भी था। परन्तु अब भगवान् श्रीकृष्णने विधिपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया ॥ ४४ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने सत्राजित्से कहा—'हम स्यमन्तकमणि न लेंगे। आप सूर्य-भगवान्के भक्त हैं, इसलिये वह आपके ही पास रहे। हम तो केवल उसके फलके, अर्थात् उससे निकले हुए सोनेके अधिकारी हैं। वही आप हमें दे दिया करें' ॥ ४५ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय

स्यमन्तक-हरण, शतधन्वाका उद्धार और अक्रूरजीको फिरसे द्वारका बुलाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णको इस बातका पता था कि लाक्षागृहकी आगसे पाण्डवोंका बाल भी बाँका नहीं हुआ है, तथापि जब उन्होंने सुना कि कुन्ती और पाण्डव जल मरे, तब उस समयका कुल-परम्परोचित व्यवहार करनेके लिये वे बलराम-जीके साथ हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ वहाँ जाकर भीष्म-पितामह, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी और द्रोणाचार्यसे मिलकर उनके साथ समवेदना—सहानुभूति प्रकट की और उन लोगोंसे कहने लगे—'हाय-हाय! यह तो बड़े ही दुःखकी बात हुई' ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके हस्तिनापुर चले जानेसे द्वारकामें अक्रूर और कृतवर्माको अवसर मिल गया। उन लोगोंने शतधन्वासे आकर कहा—'तुम सत्राजित्से मणि क्यों नहीं छीन लेते? ॥ ३ ॥ सत्राजित्ने अपनी श्रेष्ठ कन्या सत्यभामाका विवाह हमसे करनेका वचन दिया था और अब उसने हमलोगोंका तिरस्कार करके उसे श्रीकृष्णके साथ ब्याह दिया है। अब सत्राजित् भी अपने भाई प्रसेनकी तरह क्यों न यमपुरीमें जाय?' ॥ ४ ॥ शतधन्वा पापी था और अब तो उसकी मृत्यु भी

उसके सिरपर नाच रही थी । अक्रूर और कृतवर्माके इस प्रकार बहकानेपर शतधन्वा उनकी बातोंमें आ गया और उस महादुष्टने लोभवश सोये हुए सत्राजित्‌को मार डाला ॥ ५ ॥ इस समय स्त्रियाँ अनाथके समान रोने-चिल्लाने लगीं; परन्तु शतधन्वाने उनकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया; जैसे कसाई पशुओंकी हत्या कर डालता है, वैसे ही वह सत्राजित्‌को मारकर और मणि लेकर वहाँसे चंपत हो गया ॥ ६ ॥

सत्यभामाजीको यह देखकर कि मेरे पिता मार डाले गये हैं, बड़ा शोक हुआ और वे 'हाय पिताजी ! हाय पिताजी ! मैं मारी गयी'—इस प्रकार पुकार-पुकारकर विलाप करने लगीं । बीच-बीचमें वे बेहोश हो जातीं और होशमें आनेपर फिर विलाप करने लगतीं ॥ ७ ॥ इसके बाद उन्होंने अपने पिताके शवको तेलके कड़ाहेमें रखवा दिया और आप हस्तिनापुरको गयीं । उन्होंने बड़े दु:खसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने पिताकी हत्याका वृत्तान्त सुनाया—यद्यपि इन बातोंको भगवान् श्रीकृष्ण पहलेसे ही जानते थे ॥ ८ ॥ परीक्षित् ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने सब सुनकर मनुष्योंकी-सी लीला करते हुए अपनी आँखोंमें आँसू भर लिये और विलाप करने लगे कि 'अहो ! हम लोगोंपर तो यह बहुत बड़ी विपत्ति आ पड़ी !' ॥ ९ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामाजी और बलराम-जीके साथ हस्तिनापुरसे द्वारका लौट आये और शत-धन्वाको मारने तथा उससे मणि छीननेका उद्योग करने लगे ॥ १० ॥

जब शतधन्वाको यह मालूम हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे मारनेका उद्योग कर रहे हैं, तब वह बहुत डर गया और अपने प्राण बचानेके लिये उसने कृतवर्मासे सहायता माँगी । तब कृतवर्माने कहा—॥ ११ ॥ 'भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सर्वशक्तिमान् ईश्वर हैं । मैं उनका सामना नहीं कर सकता । भला, ऐसा कौन है, जो उनके साथ वैर बाँधकर इस लोक और परलोकमें सकुशल रह सके ? ॥ १२ ॥ तुम जानते हो कि कंस उन्हींसे द्वेष करनेके कारण राज्य-लक्ष्मीको खो बैठा और अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया । जरासन्ध-जैसे शूरवीरको भी उनके सामने सत्रह बार मैदानमें हारकर बिना रथके ही अपनी राजधानीमें लौट जाना पड़ा था' ॥ १३ ॥ जब कृतवर्माने उसे इस प्रकार टका-सा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने सहायताके लिये अक्रूरजीसे प्रार्थना की । उन्होंने कहा—'भाई ! ऐसा कौन है, जो सर्वशक्तिमान् भगवान्‌का बल-पौरुष जान-कर भी उनसे वैर-विरोध ठाने । जो भगवान् खेल-खेलमें ही इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं तथा जो कब क्या करना चाहते हैं—इस बातको मायासे मोहित ब्रह्मा आदि विश्व-विधाता भी नहीं समझ पाते; जिन्होंने सात वर्षकी अवस्थामें—जब वे निरे बालक थे, एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे नन्हे-नन्हे बच्चे बरसाती छत्तेको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही खेल-खेलमें सात दिनोंतक उसे उठाये रक्खा; मैं तो उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ । उनके कर्म अद्भुत हैं । वे अनन्त, अनादि, एकरस और आत्मस्वरूप हैं । मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ' ॥ १४—१७ ॥ जब इस प्रकार अक्रूरजीने भी उसे कोरा जवाब दे दिया, तब शतधन्वाने स्यमन्तक-मणि उन्हींके पास रख दी और आप चार सौ कोस लगातार चलनेवाले घोड़ेपर सवार होकर वहाँसे बड़ी फुर्तीसे भागा ॥ १८ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर गरुड़चिह्नसे चिह्नित ध्वजा फहरा रही थी और बड़े वेगवाले घोड़े जुते हुए थे । अब उन्होंने अपने श्वशुर सत्राजित्‌को मारनेवाले शतधन्वाका पीछा किया ॥ १९ ॥ मिथिला-पुरीके निकट एक उपवनमें शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा, अब वह उसे छोड़कर पैदल ही भागा । वह अत्यन्त भयभीत हो गया था । भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोध करके उसके पीछे दौड़े ॥ २० ॥ शतधन्वा पैदल ही भाग रहा था, इसलिये भगवान्‌ने भी पैदल ही दौड़कर अपने तीक्ष्ण धारवाले चक्रसे उसका सिर उतार लिया और उसके वस्त्रोंमें स्यमन्तकमणिको ढूँढ़ा ॥ २१ ॥ परन्तु जब मणि मिली नहीं, तब भगवान् श्रीकृष्णने

बड़े भाई बलरामजीके पास आकर कहा—'हमने शतधन्वाको व्यर्थ ही मारा। क्योंकि उसके पास स्यमन्तकमणि तो है ही नहीं' ॥ २२ ॥ बलरामजीने कहा—'इसमें सन्देह नहीं कि शतधन्वाने स्यमन्तकमणिको किसी-न-किसीके पास रख दिया है। अब तुम द्वारका जाओ और उसका पता लगाओ ॥ २३ ॥ मैं विदेहराजसे मिलना चाहता हूँ; क्योंकि वे मेरे बहुत ही प्रिय मित्र हैं।' परीक्षित्! यह कहकर यदुवंशशिरोमणि बलरामजी मिथिला नगरीमें चले गये ॥ २४ ॥ जब मिथिलानरेशने देखा कि पूजनीय बलरामजी महाराज पधारे हैं, तब उनका हृदय आनन्दसे भर गया। उन्होंने झटपट अपने आसनसे उठकर अनेक सामग्रियोंसे उनकी पूजा की ॥ २५ ॥ इसके बाद भगवान् बलरामजी कई वर्षोंतक मिथिलापुरीमें ही रहे। महात्मा जनकने बड़े प्रेम और सम्मानसे उन्हें रक्खा। इसके बाद समयपर धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ग्रहण की ॥ २६ ॥ अपनी प्रिया सत्यभामाका प्रिय कार्य करके भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका लौट आये और उनको यह समाचार सुना दिया कि शतधन्वाको मार डाला गया, परन्तु स्यमन्तकमणि उसके पास न मिली ॥ २७ ॥ इसके बाद उन्होंने भाई-बन्धुओंके साथ अपने श्वशुर सत्राजित्की वे सब और्ध्वदैहिक क्रियाएँ करवायीं, जिनसे मृतक प्राणीका परलोक सुधरता है ॥ २८ ॥

अक्रूर और कृतवर्माने शतधन्वाको सत्राजित्के वधके लिये उत्तेजित किया था। इसलिये जब उन्होंने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने शतधन्वाको मार डाला है, तब वे अत्यन्त भयभीत होकर द्वारकासे भाग खड़े हुए ॥ २९ ॥ परीक्षित्! कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अक्रूरके द्वारकासे चले जानेपर द्वारका-वासियोंको बहुत प्रकारके अनिष्टों और अरिष्टोंका सामना करना पड़ा। दैविक और भौतिक निमित्तोंसे बार-बार वहाँके नागरिकोंको शारीरिक और मानसिक कष्ट सहना पड़ा। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं, वे पहले कही हुई बातोंको भूल जाते हैं। भला, यह भी कभी सम्भव है कि जिन भगवान् श्रीकृष्णमें समस्त ऋषि-मुनि निवास करते हैं, उनके निवासस्थान द्वारकामें उनके रहते कोई उपद्रव खड़ा हो जाय ॥ ३०-३१ ॥ उस समय नगरके बड़े-बूढ़े लोगोंने कहा—'एक बार काशी-नरेशके राज्यमें वर्षा नहीं हो रही थी, सूखा पड़ गया था। तब उन्होंने अपने राज्यमें आये हुए अक्रूरके पिता श्वफल्कको अपनी पुत्री गान्दिनी ब्याह दी। तब उस प्रदेशमें वर्षा हुई। अक्रूर भी श्वफल्कके ही पुत्र हैं और इनका प्रभाव भी वैसा ही है। इसलिये जहाँ-जहाँ अक्रूर रहते हैं, वहाँ-वहाँ खूब वर्षा होती है तथा किसी प्रकारका कष्ट और महामारी आदि उपद्रव नहीं होते।' परीक्षित्! उन लोगोंकी बात सुनकर भगवान्ने सोचा कि 'इस उपद्रवका यही कारण नहीं है' यह जानकर भी भगवान्ने दूत भेजकर अक्रूरजीको ढुँढ़वाया और आनेपर उनसे बातचीत की ॥ ३२—३४ ॥ भगवान्ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया और मीठी-मीठी प्रेमकी बातें कहकर उनसे सम्भाषण किया। परीक्षित्! भगवान् सबके चित्तका एक-एक सङ्कल्प देखते रहते हैं। इसलिये उन्होंने मुसकराते हुए अक्रूरसे कहा—॥ ३५ ॥ 'चाचाजी! आप दान-धर्मके पालक हैं। हमें यह बात पहलेसे ही मालूम है कि शतधन्वा आपके पास वह स्यमन्तकमणि छोड़ गया है, जो बड़ी ही प्रकाशमान और धन देनेवाली है ॥ ३६ ॥ आप जानते ही हैं कि सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है। इसलिये उनकी लड़कीके लड़के—उनके नाती ही उन्हें तिलाञ्जलि और पिण्डदान करेंगे, उनका ऋण चुकायेंगे और जो कुछ बच रहेगा, उसके उत्तराधिकारी होंगे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिसे यद्यपि स्यमन्तकमणि हमारे पुत्रोंको ही मिलनी चाहिये, तथापि वह मणि आपके ही पास रहे। क्योंकि आप बड़े व्रतनिष्ठ और पवित्रात्मा हैं तथा दूसरोंके लिये उस मणिको रखना अत्यन्त कठिन भी है। परन्तु हमारे सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई यह आ गयी है कि हमारे बड़े भाई बलरामजी मणिके सम्बन्धमें मेरी बातका पूरा विश्वास नहीं करते ॥ ३८ ॥ इसलिये महाभाग्यवान् अक्रूरजी! आप वह मणि दिखाकर हमारे इष्ट-मित्र—बलरामजी, सत्यभामा और जाम्बवतीका सन्देह दूर कर दीजिये और उनके हृदयमें शान्तिका सञ्चार कीजिये। हमें पता है कि उसी

मणिके प्रतापसे आजकल आप लगातार ही ऐसे यज्ञ करते रहते हैं, जिनमें सोनेकी वेदियाँ बनती हैं' ॥३९॥ परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सान्त्वना देकर उन्हें समझाया-बुझाया, तब अक्रूरजीने वस्त्रमें लपेटी हुई सूर्यके समान प्रकाशमान वह मणि निकाली और भगवान् श्रीकृष्णको दे दी ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने वह स्यमन्तकमणि अपने जाति-भाइयोंको दिखाकर अपना कलङ्क दूर किया और उसे अपने पास रखनेमें समर्थ होनेपर भी पुनः अक्रूरजीको लौटा दिया ॥ ४१ ॥

सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलङ्कोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति और पापोंसे छूटकर शान्तिका अनुभव करता है ॥ ४२ ॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य विवाहोंकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब पाण्डवोंका पता चल गया था कि वे लाक्षाभवनमें जले नहीं हैं। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये इन्द्रप्रस्थ पधारे। उनके साथ सात्यकि आदि बहुत-से यदुवंशी भी थे ॥ १ ॥ जब वीर पाण्डवोंने देखा कि सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं तो जैसे प्राणका सञ्चार होनेपर सभी इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं, वैसे ही वे सब-के-सब एक साथ उठ खड़े हुए ॥ २ ॥ वीर पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, उनके अङ्ग-सङ्गसे इनके सारे पाप-ताप धुल गये। भगवान्की प्रेमभरी मुसकराहटसे सुशोभित मुख-सुषमा देखकर वे आनन्दमें मग्न हो गये ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणोंमें प्रणाम किया और अर्जुनको हृदयसे लगाया। नकुल और सहदेवने भगवान्के चरणोंकी वन्दना की ॥ ४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हो गये; तब परमसुन्दरी श्यामवर्णा द्रौपदी, जो नवविवाहिता होनेके कारण तनिक लजा रही थी, धीरे-धीरे भगवान् श्रीकृष्णके पास आयी और उन्हें प्रणाम किया ॥ ५ ॥ पाण्डवोंने भगवान् श्रीकृष्णके समान ही वीर सात्यकिका भी स्वागत-सत्कार और अभिनन्दन-वन्दन किया। वे एक आसनपर बैठ गये। दूसरे यदुवंशियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया गया तथा वे भी श्रीकृष्णके चारों ओर आसनोंपर बैठ गये ॥ ६ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अपनी फूआ कुन्तीके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। कुन्तीजीने अत्यन्त स्नेहवश उन्हें अपने हृदयसे लगा लिया। उस समय उनके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। कुन्तीजीने श्रीकृष्णसे अपने भाई-बन्धुओंकी कुशल-क्षेम पूछी और भगवान्ने भी उनका यथोचित उत्तर देकर उनसे उनकी पुत्रवधू द्रौपदी और स्वयं उनका कुशल-मङ्गल पूछा ॥ ७ ॥ उस समय प्रेमकी विह्वलतासे कुन्तीजीका गला रुँध गया था, नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। भगवान्के पूछनेपर उन्हें अपने पहलेके क्लेश-पर-क्लेश याद आने लगे और वे अपनेको बहुत सम्हालकर, जिनका दर्शन समस्त क्लेशोंका अन्त करनेके लिये ही हुआ करता है, उन भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगीं—॥ ८ ॥ 'श्रीकृष्ण ! जिस समय तुमने हमलोगोंको अपना कुटुम्बी, सम्बन्धी समझकर स्मरण किया और हमारा कुशल-मङ्गल जाननेके लिये भाई अक्रूरको भेजा, उसी समय हमारा कल्याण हो गया, हम अनाथोंको तुमने सनाथ कर दिया ॥ ९ ॥ मैं जानती हूँ कि तुम सम्पूर्ण जगत्के परम हितैषी सुहृद् और आत्मा हो। यह अपना है और यह पराया, इस प्रकारकी भ्रान्ति तुम्हारे अंदर नहीं है। ऐसा होनेपर भी, श्रीकृष्ण ! जो सदा तुम्हें स्मरण करते हैं, उनके हृदयमें आकर तुम बैठ जाते हो और उनकी क्लेश-परम्पराको सदाके लिये मिटा देते हो' ॥१०॥

युधिष्ठिरजीने कहा—'सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ! हमें इस बातका पता नहीं है कि हमने अपने पूर्वजन्मोंमें या इस जन्ममें कौन-सा कल्याण-साधन किया है ? आपका दर्शन बड़े-बड़े योगेश्वर भी बड़ी कठिनतासे प्राप्त कर पाते हैं

और हम कुबुद्धियोंको घर बैठे ही आपके दर्शन हो रहे हैं' ॥ ११ ॥ राजा युधिष्ठिरने इस प्रकार भगवान्‌का खूब सम्मान किया और कुछ दिन वहीं रहनेकी प्रार्थना की । इसपर भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थके नर-नारियोंको अपनी रूपमाधुरीसे नयनानन्दका दान करते हुए बरसातके चार महीनोंतक सुखपूर्वक वहीं रहे ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! एक बार वीरशिरोमणि अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय बाणवाले दो तरकस लिये तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ कवच पहनकर अपने उस रथपर सवार हुए, जिसपर वानर-चिह्नसे चिह्नित ध्वजा लगी हुई थी। इसके बाद विपक्षी वीरोंका नाश करनेवाले अर्जुन उस गहन वनमें शिकार खेलने गये, जो बहुत-से सिंह, बाघ आदि भयङ्कर जानवरोंसे भरा हुआ था ॥ १३-१४ ॥ वहाँ उन्होंने बहुत-से बाघ, सूअर, भैंसे, काले हरिन, शरभ, गवय (नीलापन लिये हुए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन), गैंडे, हरिन, खरगोश और शल्लक (साही) आदि पशुओंपर अपने बाणोंका निशाना लगाया ॥ १५ ॥ उनमेंसे जो यज्ञके योग्य थे, उन्हें सेवकगण पर्वका समय जानकर राजा युधिष्ठिरके पास ले गये । अर्जुन शिकार खेलते-खेलते थक गये थे । अब वे प्यास लगनेपर यमुनाजीके किनारे गये ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों महारथियोंने यमुनाजीमें हाथ-पैर धोकर उनका निर्मल जल पीया और देखा कि एक परमसुन्दरी कन्या वहाँ तपस्या कर रही है ॥ १७ ॥ उस श्रेष्ठ सुन्दरीकी जंघा, दाँत और मुख अत्यन्त सुन्दर थे । अपने प्रिय मित्र श्रीकृष्णके भेजनेपर अर्जुनने उसके पास जाकर पूछा—॥ १८ ॥ 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? कहाँसे आयी हो ? और क्या करना चाहती हो ? मैं ऐसा समझता हूँ कि तुम अपने योग्य पति चाह रही हो । हे कल्याणि ! तुम अपनी सारी बात बतलाओ' ॥ १९ ॥

कालिन्दीने कहा—'मैं भगवान् सूर्यदेवकी पुत्री हूँ । मैं सर्वश्रेष्ठ वरदानी भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ और इसीलिये यह कठोर तपस्या कर रही हूँ ॥ २० ॥ वीर अर्जुन ! मैं लक्ष्मीके परम आश्रय भगवान्‌को छोड़कर और किसीको अपना पति नहीं बना सकती । अनाथोंके एकमात्र सहारे, प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों ॥२१॥ मेरा नाम है कालिन्दी । यमुनाजलमें मेरे पिता सूर्यने मेरेलिये एक भवन भी बनवा दिया है । उसीमें मैं रहती हूँ । जबतक भगवान्‌का दर्शन न होगा, मैं यहीं रहूँगी' ॥ २२ ॥ अर्जुनने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे सारी बातें कहीं । वे तो पहलेसे ही यह सब कुछ जानते थे, अब उन्होंने कालिन्दीको अपने रथपर बैठा लिया और धर्मराज युधिष्ठिरके पास ले आये ॥ २३ ॥

इसके बाद पाण्डवोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंके रहनेके लिये एक अत्यन्त अद्भुत और विचित्र नगर विश्वकर्माके द्वारा बनवा दिया ॥ २४ ॥ भगवान् इस बार पाण्डवोंको आनन्द देने और उनका हित करनेके लिये वहाँ बहुत दिनोंतक रहे । इसी बीच अग्निदेवको खाण्डव-वन दिलानेके लिये वे अर्जुनके सारथी भी बने ॥ २५ ॥ खाण्डव-वनका भोजन मिल जानेसे अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अर्जुनको गाण्डीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अटूट बाणोंवाले तरकस और एक ऐसा कवच दिया, जिसे कोई अस्त्र-शस्त्रधारी भेद न सके ॥ २६ ॥ खाण्डव-दाहके समय अर्जुनने मय दानवको जलनेसे बचा लिया था । इसलिये उसने अर्जुनसे मित्रता करके उनके लिये एक परम अद्भुत सभा बना दी । उसी सभामें दुर्योधनको जलमें स्थल और स्थलमें जलका भ्रम हो गया था ॥ २७ ॥

कुछ दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी अनुमति एवं अन्य सम्बन्धियोंका अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदिके साथ द्वारका लौट आये ॥ २८ ॥ वहाँ आकर उन्होंने विवाहके योग्य ऋतु और ज्यौतिषशास्त्रके अनुसार प्रशंसित पवित्र लग्नमें कालिन्दीजीका पाणिग्रहण किया। इससे उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको परम मङ्गल और परमानन्दकी प्राप्ति हुई ॥ २९ ॥

अवन्ती (उज्जैन) देशके राजा थे विन्द और अनुविन्द । वे दुर्योधनके वशवर्ती तथा अनुयायी थे । उनकी बहिन मित्रविन्दाने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना पति बनाना चाहा । परन्तु विन्द और अनुविन्दने अपनी बहिनको रोक दिया ॥ ३० ॥ परीक्षित ! मित्रविन्दा

श्रीकृष्णकी फूआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। भगवान् श्रीकृष्ण राजाओंकी भरी सभामें उसे बलपूर्वक हर ले गये, सब लोग अपना-सा मुँह लिये देखते ही रह गये ॥ ३१ ॥

परीक्षित्! कोसलदेशके राजा थे नग्नजित्। वे अत्यन्त धार्मिक थे। उनकी परमसुन्दरी कन्याका नाम था सत्या; नग्नजित्की पुत्री होनेसे वह नाग्नजिती भी कहलाती थी। परीक्षित्! राजाकी प्रतिज्ञाके अनुसार सात दुर्दान्त बैलोंपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण कोई राजा उस कन्यासे विवाह न कर सके। क्योंकि उनके सींग बड़े तीखे थे और वे बैल किसी वीर पुरुषकी गन्ध भी नहीं सह सकते थे ॥३२-३३॥ जब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने यह समाचार सुना कि जो पुरुष उन बैलोंको जीत लेगा, उसे ही सत्या प्राप्त होगी; तब वे बहुत बड़ी सेना लेकर कोसलपुरी (अयोध्या) पहुँचे ॥३४॥ कोसलनरेश महाराज नग्नजित्ने बड़ी प्रसन्नतासे उनकी अगवानी की और आसन आदि देकर बहुत बड़ी पूजा-सामग्रीसे उनका सत्कार किया। भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका बहुत-बहुत अभिनन्दन किया ॥ ३५ ॥ राजा नग्नजित्की कन्या सत्याने देखा कि मेरे चिर-अभिलषित रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं; तब उसने मन-ही-मन यह अभिलाषा की कि 'यदि मैंने व्रत-नियम आदिका पालन करके इन्हींका चिन्तन किया है तो ये ही मेरे पति हों और मेरी विशुद्ध लालसाको पूर्ण करें' ॥ ३६ ॥ नाग्नजिती सत्या मन-ही-मन सोचने लगी—'भगवती लक्ष्मी, ब्रह्मा, शङ्कर और बड़े-बड़े लोकपाल जिनके पदपङ्कजका पराग अपने सिरपर धारण करते हैं और जिन प्रभुने अपनी बनायी हुई मर्यादाका पालन करनेके लिये ही समय-समयपर अनेकों लीलावतार ग्रहण किये हैं, वे प्रभु मेरे किस धर्म, व्रत अथवा नियमसे प्रसन्न होंगे? वे तो केवल अपनी कृपासे ही प्रसन्न हो सकते हैं' ॥३७॥ परीक्षित्! राजा नग्नजित्ने भगवान् श्रीकृष्णकी विधि-पूर्वक अर्चा-पूजा करके यह प्रार्थना की—'जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण! आप अपने स्वरूपभूत आनन्दसे ही परिपूर्ण हैं और मैं हूँ एक तुच्छ मनुष्य! मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' ॥ ३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा नग्नजित्का दिया हुआ आसन, पूजा आदि स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्ण बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने मुसकराते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! जो क्षत्रिय अपने धर्ममें स्थित है, उसका कुछ भी माँगना उचित नहीं। धर्मज्ञ विद्वानोंने उसके इस कर्मकी निन्दा की है। फिर भी मैं आपसे सौहार्दका—प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये आपकी कन्या चाहता हूँ। हमारे यहाँ इसके बदलेमें कुछ शुल्क देनेकी प्रथा नहीं है ॥ ४० ॥

राजा नग्नजित्ने कहा—'प्रभो! आप समस्त गुणोंके धाम हैं, एकमात्र आश्रय हैं। आपके वक्षःस्थलपर भगवती लक्ष्मी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। आपसे बढ़कर कन्याके लिये अभीष्ट वर भला और कौन हो सकता है? ॥ ४१ ॥ परन्तु यदुवंशशिरोमणे! हमने पहले ही इस विषयमें एक प्रण कर लिया है। कन्याके लिये कौन-सा वर उपयुक्त है, उसका बल-पौरुष कैसा है—इत्यादि बातें जाननेके लिये ही ऐसा किया गया है ॥ ४२ ॥ वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण! हमारे ये सातों बैल किसीके वशमें न आनेवाले और बिना सधाये हुए हैं। इन्होंने बहुत-से राजकुमारोंके अङ्गोंको खण्डित करके उनका उत्साह तोड़ दिया है ॥ ४३ ॥ श्रीकृष्ण! यदि इन्हें आप ही नाथ लें, अपने वशमें कर लें, तो लक्ष्मीपते! आप ही हमारी कन्याके लिये अभीष्ट वर होंगे' ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने राजा नग्नजित्का ऐसा प्रण सुनकर कमरमें फेंट कस ली और अपने सात रूप बनाकर खेल-खेलमें ही उन बैलोंको नाथ लिया ॥ ४५ ॥ इससे बैलोंका घमंड चूर हो गया और उनका बल-पौरुष भी जाता रहा। अब भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रस्सीसे बाँधकर इस प्रकार खींचने लगे, जैसे खेलते समय नन्हा-सा बालक काठके बैलोंको घसीटता है ॥ ४६ ॥ राजा नग्नजित्को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णको अपनी कन्याका दान कर दिया और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने अनुरूप पत्नी सत्याका विधिपूर्वक पाणिग्रहण

किया ॥ ४७ ॥ रानियोंने देखा कि हमारी कन्याको उसके अत्यन्त प्यारे भगवान् श्रीकृष्ण ही पतिके रूपमें प्राप्त हो गये हैं। उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और चारों ओर बड़ा भारी उत्सव मनाया जाने लगा ॥ ४८ ॥ शङ्ख, ढोल, नगारे बजने लगे। सब ओर गाना-बजाना होने लगा। ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। सुन्दर वस्त्र, पुष्पोंके हार और गहनोंसे सज-धजकर नगरके नर-नारी आनन्द मनाने लगे ॥ ४९ ॥ राजा नग्नजित्ने दस हजार गौएँ और तीन हजार ऐसी नवयुवती दासियाँ, जो सुन्दर वस्त्र तथा गलेमें स्वर्णहार पहने हुए थीं, दहेजमें दीं। इनके साथ ही नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े और नौ अरब सेवक भी दहेजमें दिये ॥ ५०-५१ ॥ कोसलनरेश राजा नग्नजित्ने कन्या और दामादको रथपर चढ़ाकर एक बड़ी सेनाके साथ विदा किया। उस समय उनका हृदय वात्सल्य-स्नेहके उद्रेकसे द्रवित हो रहा था ॥ ५२ ॥

परीक्षित्! यदुवंशियोंने और राजा नग्नजित्के बैलोंने पहले बहुत-से राजाओंका बल-पौरुष धूलमें मिला दिया था। जब उन राजाओंने यह समाचार सुना, तब उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी यह विजय सहन न हुई। उन लोगोंने नाग्नजिती सत्याको लेकर जाते समय मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णको घेर लिया ॥ ५३ ॥ और वे बड़े वेगसे उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। उस समय पाण्डववीर अर्जुनने अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय करनेके लिये गाण्डीव धनुष धारण करके—जैसे सिंह छोटे-मोटे पशुओंको खदेड़ दे, वैसे ही उन नरपतियोंको मार-पीटकर भगा दिया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उस दहेज और सत्याके साथ द्वारकामें आये और वहाँ रहकर गृहस्थोचित विहार करने लगे ॥ ५५ ॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी फूआ श्रुतकीर्ति केकय-देशमें ब्याही गयी थीं। उनकी कन्याका नाम था भद्रा। उसके भाई सन्तर्दन आदिने उसे स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया और उन्होंने उसका पाणिग्रहण किया ॥ ५६ ॥ मद्रप्रदेशके राजाकी एक कन्या थी लक्ष्मणा। वह अत्यन्त सुलक्षणा थी। जैसे गरुडने स्वर्गसे अमृतका हरण किया था, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने स्वयंवरमें अकेले ही उसे हर लिया ॥ ५७ ॥

परीक्षित्! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी और भी सहस्रों स्त्रियाँ थीं। उन परम सुन्दरियोंको वे भौमासुरको मारकर उसके बंदीगृहसे छुड़ा लाये थे ॥ ५८ ॥

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुरका उद्धार और सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंके साथ भगवान्‌का विवाह

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्णने भौमासुरको, जिसने उन स्त्रियोंको बंदीगृहमें डाल रक्खा था, क्यों और कैसे मारा? आप कृपा करके शार्ङ्ग-धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णका वह विचित्र चरित्र सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! भौमासुरने वरुणका छत्र, माता अदितिके कुण्डल और मेरु पर्वतपर स्थित देवताओंका मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया था। इसपर सबके राजा इन्द्र द्वारकामें आये और उसकी एक-एक करतूत उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको सुनायी। अब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामाके साथ गरुडपर सवार हुए और भौमासुरकी राजधानी प्राग्ज्योतिषपुरमें गये ॥ २ ॥ प्राग्ज्योतिषपुरमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। पहले तो उसके चारों ओर पहाड़ोंकी किलेबंदी थी, उसके बाद शस्त्रोंका घेरा लगाया हुआ था। फिर जलसे भरी खाई थी, उसके बाद आग या बिजलीकी चहारदीवारी थी और उसके भीतर वायु (गैस) बंद करके रक्खा गया था। इससे भी भीतर मुर दैत्यने नगरके चारों ओर अपने दस हजार घोर एवं सुदृढ फंदे (जाल) बिछा रक्खे थे ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाकी चोटसे पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला और शस्त्रोंकी मोरचेबंदीको बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर दिया। चक्रके द्वारा अग्नि, जल और वायुकी चहारदीवारियोंको तहस-नहस कर दिया और

मुर दैत्यके फंदोंको तलवारसे काट-कूटकर अलग रख दिया ॥ ४ ॥ जो बड़े-बड़े यन्त्र—मशीनें वहाँ लगी हुई थीं, उनको, तथा वीरपुरुषोंके हृदयको शङ्खनादसे विदीर्ण कर दिया और नगरके परकोटेका गदाधर भगवान्‌ने अपनी भारी गदासे ध्वंस कर डाला ॥ ५ ॥

भगवान्‌के पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि प्रलयकालीन बिजलीकी कड़कके समान महाभयङ्कर थी । उसे सुनकर मुर दैत्यकी नींद टूटी और वह बाहर निकल आया । उसके पाँच सिर थे और अबतक वह जलके भीतर सो रहा था ॥ ६ ॥ वह दैत्य प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी था । वह इतना भयङ्कर था कि उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी आसान काम नहीं था । उसने त्रिशूल उठाया और इस प्रकार भगवान्‌की ओर दौड़ा, जैसे साँप गरुडजीपर टूट पड़े । उस समय ऐसा मालूम होता था मानो वह अपने पाँचों मुखोंसे त्रिलोकीको निगल जायगा ॥ ७ ॥ उसने अपने त्रिशूलको बड़े वेगसे घुमाकर गरुडजीपर चलाया और फिर अपने पाँचों मुखोंसे घोर सिंहनाद करने लगा । उसके सिंहनादका महान् शब्द पृथ्वी, आकाश, पाताल और दसों दिशाओंमें फैलकर सारे ब्रह्माण्डमें भर गया ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मुर दैत्यका त्रिशूल गरुडकी ओर बड़े वेगसे आ रहा है । तब अपना हस्तकौशल दिखाकर फुर्तीसे उन्होंने दो बाण मारे, जिनसे वह त्रिशूल कटकर तीन टूक हो गया । इसके साथ ही मुर दैत्यके मुखोंमें भी भगवान्‌ने बहुत-से बाण मारे । इससे वह दैत्य अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और उसने भगवान्‌पर अपनी गदा चलायी ॥ ९ ॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे मुर दैत्यकी गदाको अपने पास पहुँचनेके पहले ही चूर-चूर कर दिया । अब वह अस्त्रहीन हो जानेके कारण अपनी भुजाएँ फैलाकर श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा और उन्होंने खेल-खेलमें ही चक्रसे उसके पाँचों सिर उतार लिये ॥ १० ॥ सिर कटते ही मुर दैत्यके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह ठीक वैसे ही जलमें गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके वज्रसे शिखर कट जानेपर कोई पर्वत समुद्रमें गिर पड़ा हो । मुर दैत्यके सात पुत्र थे—ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और अरुण । ये अपने पिताकी मृत्युसे अत्यन्त शोकाकुल हो उठे और फिर बदला लेनेके लिये क्रोधसे भरकर शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित हो गये तथा पीठ नामक दैत्यको अपना सेनापति बनाकर भौमासुरके आदेशसे श्रीकृष्णपर चढ़ आये ॥ ११-१२ ॥ वे वहाँ आकर बड़े क्रोधसे भगवान् श्रीकृष्णपर बाण, खड्ग, गदा, शक्ति, ऋष्टि और त्रिशूल आदि प्रचण्ड शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । परीक्षित् ! भगवान्‌की शक्ति अमोघ और अनन्त है । उन्होंने अपने बाणोंसे उनके कोटि-कोटि शस्त्रास्त्र तिल-तिल करके काट गिराये ॥ १३ ॥ भगवान्‌के शस्त्रप्रहारसे सेनापति पीठ और उसके साथी दैत्योंके सिर, जाँघें, भुजा, पैर और कवच कट गये और उन सभीको भगवान्‌ने यमराजके घर पहुँचा दिया । जब पृथ्वीके पुत्र नरकासुर (भौमासुर) ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और बाणोंसे हमारी सेना और सेनापतियोंका संहार हो गया, तब उसे असह्य क्रोध हुआ । वह समुद्रतटपर पैदा हुए बहुत-से मदवाले हाथियोंकी सेना लेकर नगरसे बाहर निकला । उसने देखा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नीके साथ आकाशमें गरुडपर स्थित हैं, जैसे सूर्यके ऊपर बिजलीके साथ वर्षाकालीन श्याममेघ शोभायमान हो । भौमासुरने स्वयं भगवान्‌के ऊपर शतघ्नी नामकी शक्ति चलायी और उसके सब सैनिकोंने भी एक ही साथ उनपर अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़े ॥ १४-१५ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्ण भी चित्र-विचित्र पंखवाले तीखे-तीखे बाण चलाने लगे । इससे उसी समय भौमासुरके सैनिकोंकी भुजाएँ, जाँघें, गर्दन और धड़ कट-कटकर गिरने लगे; हाथी और घोड़े भी मरने लगे ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! भौमासुरके सैनिकोंने भगवान्‌पर जो-जो अस्त्र-शस्त्र चलाये थे, उनमेंसे प्रत्येकको भगवान्‌ने तीन-तीन तीखे बाणोंसे काट गिराया ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण गरुडजीपर सवार थे और गरुडजी अपने पंखोंसे हाथियोंको मार रहे थे । उनकी चोंच, पंख और पंजोंकी मारसे हाथियोंको बड़ी पीड़ा हुई और वे सब-के-सब आर्त होकर युद्धभूमिसे भागकर नगरमें घुस गये । अब वहाँ अकेला भौमासुर ही लड़ता रहा । जब

उसने देखा कि गरुडजीकी मारसे पीड़ित होकर मेरी सेना भाग रही है, तब उसने उनपर वह शक्ति चलायी, जिसने वज्रको भी विफल कर दिया था। परन्तु उसकी चोटसे पक्षिराज गरुड तनिक भी विचलित न हुए, मानो किसीने मतवाले गजराजपर फूलोंकी मालासे प्रहार किया हो॥ १८—२० ॥ अब भौमासुरने देखा कि मेरी एक भी चाल नहीं चलती, सारे उद्योग विफल होते जा रहे हैं, तब उसने श्रीकृष्णको मार डालनेके लिये एक त्रिशूल उठाया। परन्तु उसे अभी वह छोड़ भी न पाया था कि भगवान् श्रीकृष्णने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका सिर काट डाला॥२१॥ उसका जगमगाता हुआ सिर कुण्डल और सुन्दर किरीटके सहित पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे देखकर भौमासुरके सगे-सम्बन्धी हाय-हाय पुकार उठे, ऋषिलोग 'साधु-साधु' कहने लगे और देवतालोग भगवान्पर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे ॥ २२ ॥

अब पृथ्वी भगवान्के पास आयी। उसने भगवान् श्रीकृष्णके गलेमें वैजयन्तीके साथ वनमाला पहना दी और अदिति माताके जगमगाते हुए कुण्डल, जो तपाये हुए सोनेके एवं रत्नजटित थे, भगवान्को दे दिये तथा वरुणका छत्र और साथ ही एक महामणि भी उनको दी॥ २३ ॥ राजन्! इसके बाद पृथ्वीदेवी बड़े-बड़े देवताओंके द्वारा पूजित विश्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम करके हाथ जोड़कर भक्तिभावभरे हृदयसे उनकी स्तुति करने लगीं॥ २४ ॥

पृथ्वीदेवीने कहा—शङ्खचक्रगदाधारी देवदेवेश्वर! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। परमात्मन्! आप अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसीके अनुसार रूप प्रकट किया करते हैं। आपको मैं नमस्कार करती हूँ॥ २५ ॥ प्रभो! आपकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। आप कमलकी माला पहनते हैं। आपके नेत्र कमल-से खिले हुए और शान्तिदायक हैं। आपके चरण कमलके समान सुकुमार और भक्तोंके हृदयको शीतल करनेवाले हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ॥ २६ ॥ आप समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, सम्पत्ति, ज्ञान और वैराग्यके आश्रय हैं। आप सर्वव्यापक होनेपर भी स्वयं वसुदेवनन्दनके रूपमें प्रकट हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप ही पुरुष हैं और समस्त कारणोंके भी परम कारण हैं। आप स्वयं पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ॥ २७ ॥ आप स्वयं तो हैं जन्मरहित, परन्तु इस जगत्के जन्मदाता आप ही हैं। आप ही अनन्त शक्तियोंके आश्रय ब्रह्म हैं। जगत्का जो कुछ भी कार्य-कारणमय रूप है, जितने भी प्राणी या अप्राणी हैं—सब आपके ही स्वरूप हैं। परमात्मन्! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार नमस्कार॥ २८ ॥ प्रभो! जब आप जगत्की रचना करना चाहते हैं, तब उत्कट रजोगुणको, और जब इसका प्रलय करना चाहते हैं तब तमोगुणको, तथा जब इसका पालन करना चाहते हैं तब सत्त्वगुणको स्वीकार करते हैं। परन्तु यह सब करनेपर भी आप इन गुणोंसे ढकते नहीं, लिप्त नहीं होते। जगत्पते! आप स्वयं ही प्रकृति, पुरुष और दोनोंके संयोग-वियोगके हेतु काल हैं, तथा उन तीनोंसे परे भी हैं॥ २९ ॥ भगवन्! मैं (पृथ्वी), जल, अग्नि, वायु, आकाश, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, इन्द्रिय और इनके अधिष्ठातृ-देवता, अहङ्कार और महत्तत्त्व—कहाँतक कहूँ, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमके कारण ही पृथक् प्रतीत हो रहा है॥ ३० ॥ शरणागत-भय भञ्जन प्रभो! मेरे पुत्र भौमासुरका यह पुत्र भगदत्त अत्यन्त भयभीत हो रहा है। मैं इसे आपके चरणकमलोंकी शरणमें ले आयी हूँ। प्रभो! आप इसकी रक्षा कीजिये और इसके सिरपर अपना वह करकमल रखिये जो सारे जगत्के समस्त पाप-तापोंको नष्ट करनेवाला है॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब पृथ्वीने भक्तिभावसे विनम्र होकर इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति-प्रार्थना की, तब उन्होंने भगदत्तको अभयदान दिया और भौमासुरके समस्त सम्पत्तियोंसे सम्पन्न महलमें प्रवेश किया॥ ३२ ॥ वहाँ जाकर भगवान्ने देखा कि भौमासुरने बलपूर्वक राजाओंसे सोलह हजार राजकुमारियाँ छीनकर अपने यहाँ रख छोड़ी थीं॥ ३३ ॥ जब उन राजकुमारियोंने अन्तःपुरमें पधारे हुए नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णको देखा, तब वे मोहित हो गयीं और उन्होंने उनकी

अहैतुकी कृपा तथा अपना सौभाग्य समझकर मन-ही-मन भगवान्‌को अपने परम प्रियतम पतिके रूपमें वरण कर लिया ॥ ३४ ॥ उन राजकुमारियोंमेंसे प्रत्येकने अलग-अलग अपने मनमें यही निश्चय किया कि 'ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता मेरी इस अभिलाषाको पूर्ण करें।' इस प्रकार उन्होंने प्रेम-भावसे अपना हृदय भगवान्‌के प्रति निछावर कर दिया ॥ ३५ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्णने उन राजकुमारियोंको सुन्दर-सुन्दर निर्मल वस्त्राभूषण पहनाकर पालकियोंसे द्वारका भेज दिया और उनके साथ ही बहुत-से खजाने, रथ, घोड़े तथा अतुल सम्पत्ति भी भेजी॥ ३६ ॥ ऐरावतके वंशमें उत्पन्न हुए अत्यन्त वेगवान् चार-चार दाँतोंवाले सफेद रंगके चौसठ हाथी भी भगवान्‌ने वहाँसे द्वारका भेजे ॥ ३७ ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अमरावतीमें स्थित देवराज इन्द्रके महलोंमें गये । वहाँ देवराज इन्द्रने अपनी पत्नी इन्द्राणीके साथ सत्यभामाजी और भगवान् श्रीकृष्ण-की पूजा की, तब भगवान्‌ने अदितिके कुण्डल उन्हें दे दिये ॥ ३८ ॥ वहाँसे लौटते समय सत्यभामाजीकी प्रेरणासे भगवान् श्रीकृष्णने कल्पवृक्ष उखाड़कर गरुडपर रख लिया और देवराज इन्द्र तथा समस्त देवताओंको जीतकर उसे द्वारकामें ले आये ॥ ३९ ॥ भगवान्‌ने उसे सत्यभामाके महलके बगीचेमें लगा दिया । इससे उस बगीचेकी शोभा अत्यन्त बढ़ गयी । कल्पवृक्षके साथ उसके गन्ध और मकरन्दके लोभी भौंरे स्वर्गसे द्वारकामें चले आये थे ॥ ४० ॥ परीक्षित् ! देखो तो सही, जब इन्द्रको अपना काम बनाना था, तब तो उन्होंने अपना सिर झुकाकर मुकुटकी नोकसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श करके उनसे सहायताकी भिक्षा माँगी थी, परन्तु जब काम बन गया, तब उन्होंने उन्हीं भगवान् श्री-कृष्णसे लड़ाई ठान ली । सचमुच ये देवता भी बड़े तमोगुणी हैं और सबसे बड़ा दोष तो उनमें धनाढ्यता-का है । धिक्कार है ऐसी धनाढ्यताको ॥ ४१ ॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने एक ही मुहूर्तमें अलग-अलग भवनोंमें अलग-अलग रूप धारण करके एक ही साथ सब राजकुमारियोंका शास्त्रोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया । सर्वशक्तिमान् अविनाशी भगवान्‌के लिये इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌की पत्नियोंके अलग-अलग महलोंमें ऐसी दिव्य सामग्रियाँ भरी हुई थीं, जिनके बराबर जगत्‌में कहीं भी और कोई भी सामग्री नहीं है; फिर अधिककी तो बात ही क्या है । उन महलोंमें रहकर मति-गतिके परेकी लीला करनेवाले अविनाशी भगवान् श्रीकृष्ण अपने आत्मानन्दमें मग्न रहते हुए लक्ष्मीजीकी अंशस्वरूपा उन पत्नियोंके साथ ठीक वैसे ही विहार करते थे, जैसे कोई साधारण मनुष्य घर-गृहस्थीमें रहकर गृहस्थ-धर्मके अनुसार आचरण करता हो ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको और उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते । उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था । अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागम, प्रेमालाप तथा भाव बढ़ानेवाली लज्जासे युक्त होकर सब प्रकारसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ४४ ॥ उनमेंसे सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं, फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं आगे आकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने ही हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ४५ ॥

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-संवाद

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिन समस्त जगत्‌के परमपिता और ज्ञानदाता भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पलँगपर आरामसे बैठे हुए थे । भीष्मक-नन्दिनी श्रीरुक्मिणीजी सखियोंके साथ अपने पतिदेवकी

सेवा कर रही थीं, उन्हें पंखा झल रही थीं ॥ १ ॥ परीक्षित् ! जो सर्वशक्तिमान् भगवान् खेल-खेलमें ही इस जगत्की रचना, रक्षा और प्रलय करते हैं—वही अजन्मा प्रभु अपनी बनायी हुई धर्म-मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ २ ॥ रुक्मिणीजीका महल बड़ा ही सुन्दर था। उसमें ऐसे-ऐसे चँदोवे तने हुए थे, जिनमें मोतियोंकी लड़ियोंकी झालरें लटक रही थीं। मणियोंके दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३ ॥ बेला-चमेलीके फूल और हार मँह-मँह महक रहे थे। फूलोंपर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। सुन्दर-सुन्दर झरोखों-की जालियोंमेंसे चन्द्रमाकी शुभ्र किरणें महलके भीतर छिटक रही थीं ॥ ४ ॥ उद्यानमें पारिजातके उपवनकी सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द शीतल वायु चल रही थी। झरोखोंकी जालियोंमेंसे अगरके धूपका धूआँ बाहर निकल रहा था ॥ ५ ॥ ऐसे महलमें दूधके फेनके समान कोमल और उज्ज्वल बिछौनोंसे युक्त सुन्दर पलँगपर भगवान् श्रीकृष्ण बड़े आनन्दसे विराजमान थे और रुक्मिणीजी त्रिलोकीके स्वामीको पतिरूपमें प्राप्त करके उनकी सेवा कर रही थीं ॥ ६ ॥ रुक्मिणीजीने अपनी सखीके हाथसे वह चँवर ले लिया, जिसमें रत्नोंकी डाँडी लगी थी और परमरूपवती लक्ष्मीरूपिणी देवी रुक्मिणीजी उसे डुला-डुलाकर भगवान्की सेवा करने लगीं ॥ ७ ॥ उनके करकमलोंमें जड़ाऊ अँगूठियाँ, कंगन और चँवर शोभा पा रहे थे। चरणोंमें मणिजटित पायजेब रुनझुन-रुनझुन कर रहे थे। अञ्चलके नीचे छिपे हुए स्तनोंकी केशरकी लालिमासे हार लाल-लाल जान पड़ता था और चमक रहा था। नितम्बभागमें बहुमूल्य करधनीकी लड़ियाँ लटक रही थीं। इस प्रकार वे भगवान्के पास ही रहकर उनकी सेवामें संलग्न थीं ॥ ८ ॥ रुक्मिणीजीकी घुँघराली अलकें, कानोंके कुण्डल और गलेके स्वर्णहार अत्यन्त विलक्षण थे। उनके मुखचन्द्रसे मुसकराहटकी अमृतवर्षा हो रही थी। ये रुक्मिणीजी अलौकिक रूपलावण्यवती लक्ष्मीजी ही तो हैं। उन्होंने जब देखा कि भगवान्ने लीलाके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण किया है, तब उन्होंने भी उनके अनुरूप रूप प्रकट कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए कि रुक्मिणीजी मेरे परायण हैं, मेरी अनन्य प्रेयसी हैं। तब उन्होंने बड़े प्रेमसे मुसकराते हुए उनसे कहा ॥ ९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजकुमारी ! बड़े-बड़े नरपति, जिनके पास लोकपालोंके समान ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, जो बड़े महानुभाव और श्रीमान् हैं, तथा सुन्दरता, उदारता और बलमें भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं, तुमसे विवाह करना चाहते थे ॥ १० ॥ तुम्हारे पिता और भाई भी उन्हींके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते थे, यहाँतक कि उन्होंने वाग्दान भी कर दिया था। शिशुपाल आदि बड़े-बड़े वीरोंको, जो कामोन्मत्त होकर तुम्हारे याचक बन रहे थे, तुमने छोड़ दिया और मेरे-जैसे व्यक्तिको, जो किसी प्रकार तुम्हारे समान नहीं है, अपना पति स्वीकार किया। ऐसा तुमने क्यों किया ? ॥ ११ ॥ सुन्दरी ! देखो, हम जरासन्ध आदि राजाओंसे डरकर समुद्रकी शरणमें आ बसे हैं। बड़े-बड़े बलवानोंसे हमने वैर बाँध रक्खा है और प्रायः राज-सिंहासनके अधिकारसे भी हम वञ्चित ही हैं ॥ १२ ॥ सुन्दरी ! हम किस मार्गके अनुयायी हैं, हमारा कौन-सा मार्ग है, यह भी लोगोंको अच्छी तरह मालूम नहीं है। हमलोग लौकिक व्यवहारका भी ठीक-ठीक पालन नहीं करते, अनुनय-विनयके द्वारा स्त्रियोंको रिझाते भी नहीं। जो स्त्रियाँ हमारे-जैसे पुरुषोंका अनुसरण करती हैं, उन्हें प्रायः क्लेश-ही-क्लेश भोगना पड़ता है ॥ १३ ॥ सुन्दरी ! हम तो सदाके अकिञ्चन हैं। न तो हमारे पास कभी कुछ था और न रहेगा। ऐसे ही अकिञ्चन लोगोंसे हम प्रेम भी करते हैं, और वे लोग भी हमसे प्रेम करते हैं। यही कारण है कि अपनेको धनी समझनेवाले लोग प्रायः हमसे प्रेम नहीं करते, हमारी सेवा नहीं करते ॥ १४ ॥ जिनका धन, कुल, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और आय अपने समान होती है—उन्हींसे विवाह और मित्रताका सम्बन्ध करना चाहिये। जो अपनेसे श्रेष्ठ या अधम हों, उनसे नहीं करना चाहिये ॥ १५ ॥ विदर्भराज-कुमारी ! तुमने अपनी अदूरदर्शिताके कारण इन बातोंका विचार नहीं किया और बिना जाने-बूझे भिक्षुकोंसे मेरी झूठी प्रशंसा सुनकर मुझ गुणहीनको वरण कर लिया ॥ १६ ॥ अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम

अपने अनुरूप किसी श्रेष्ठ क्षत्रियको वरण कर लो। जिसके द्वारा तुम्हारी इहलोक और परलोककी सारी आशा-अभिलाषाएँ पूरी हो सकें ॥ १७ ॥ सुन्दरी! तुम जानती ही हो कि शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्त्र आदि नरपति और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी—सभी मुझसे द्वेष करते थे ॥ १८ ॥ कल्याणी! वे सब बल-पौरुषके मदसे अंधे हो रहे थे, अपने सामने किसीको कुछ नहीं गिनते थे। उन दुष्टोंका मान मर्दन करनेके लिये ही मैंने तुम्हारा हरण किया था। और कोई कारण नहीं था ॥ १९ ॥ निश्चय ही हम उदासीन हैं। हम स्त्री, सन्तान और धनके लोलुप नहीं हैं। निष्क्रिय और देह-गेहसे सम्बन्धरहित दीपशिखाके समान साक्षीमात्र हैं। हम अपने आत्माके साक्षात्कारसे ही पूर्णकाम हैं, कृतकृत्य हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके क्षणभरके लिये भी अलग न होनेके कारण रुक्मिणीजीको यह अभिमान हो गया था कि मैं इनकी सबसे अधिक प्यारी हूँ। इसी गर्वकी शान्तिके लिये इतना कहकर भगवान् चुप हो गये ॥ २१ ॥ परीक्षित्! जब रुक्मिणीजीने अपने परम प्रियतम पति त्रिलोकेश्वर भगवान्‌की यह अप्रिय वाणी सुनी—जो पहले कभी नहीं सुनी थी, तब वे अत्यन्त भयभीत हो गयीं; उनका हृदय धड़कने लगा, वे रोते-रोते चिन्ताके अगाध समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं ॥ २२ ॥ वे अपने कमलके समान कोमल और नखोंकी लालिमासे कुछ-कुछ लाल प्रतीत होनेवाले चरणोंसे धरती कुरेदने लगीं। अञ्जनसे मिले हुए काले-काले आँसू केशरसे रँगे हुए वक्षःस्थलको धोने लगे। मुँह नीचेको लटक गया। अत्यन्त दुःखके कारण उनकी वाणी रुक गयी और वे ठिठकी-सी रह गयीं।२३। अत्यन्त व्यथा, भय और शोकके कारण विचारशक्ति लुप्त हो गयी, वियोगकी सम्भावनासे वे तत्क्षण इतनी दुबली हो गयीं कि उनकी कलाईका कंगनतक खिसक गया। हाथका चँवर गिर पड़ा, बुद्धिकी विकलताके कारण वे एकाएक अचेत हो गयीं, केश बिखर गये और वे वायु-वेगसे उखड़े हुए केलेके खंभेकी तरह धरतीपर गिर पड़ीं ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी प्रेयसी रुक्मिणीजी हास्य-विनोदकी गम्भीरता नहीं समझ रही हैं और प्रेम-पाशकी दृढ़ताके कारण उनकी यह दशा हो रही है। स्वभावसे ही परम कारुणिक भगवान् श्रीकृष्णका हृदय उनके प्रति करुणासे भर गया ॥२५॥ चार भुजाओंवाले वे भगवान् उसी समय पलँगसे उतर पड़े और रुक्मिणीजीको उठा लिया तथा उनके खुले हुए केशपाशोंको बाँधकर अपने शीतल करकमलोंसे उनका मुँह पोंछ दिया ॥ २६ ॥ भगवान्‌ने उनके नेत्रोंके आँसू और शोकके आँसुओंसे भींगे हुए स्तनोंको पोंछकर अपने प्रति अनन्य प्रेमभाव रखनेवाली उन सती रुक्मिणीजीको बाँहोंमें भरकर छातीसे लगा लिया ॥२७॥ भगवान् श्रीकृष्ण समझाने-बुझानेमें बड़े कुशल और अपने प्रेमी भक्तोंके एकमात्र आश्रय हैं। जब उन्होंने देखा कि हास्यकी गम्भीरताके कारण रुक्मिणीजीकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी है और वे अत्यन्त दीन हो रही हैं; तब उन्होंने इस अवस्थाके अयोग्य अपनी प्रेयसी रुक्मिणी-जीको समझाया ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—विदर्भनन्दिनी! तुम मुझसे बुरा मत मानना। मुझसे रूठना नहीं। मैं जानता हूँ कि तुम एकमात्र मेरे ही परायण हो। मेरी प्रिय सहचरी! तुम्हारी प्रेमभरी बात सुननेके लिये ही मैंने हँसी-हँसीमें यह छलना की थी ॥ २९ ॥ मैं देखना चाहता था कि मेरे यों कहनेपर तुम्हारे लाल-लाल होठ प्रणय-कोपसे किस प्रकार फड़कने लगते हैं। तुम्हारे कटाक्षपूर्वक देखनेसे नेत्रोंमें कैसी लाली छा जाती है और भौंहें चढ़ जानेके कारण तुम्हारा मुँह कैसा सुन्दर लगता है ॥ ३० ॥ मेरी परमप्रिये! सुन्दरी! घरके काम-धंधोंमें रात-दिन लगे रहनेवाले गृहस्थोंके लिये घर-गृहस्थीमें इतना ही तो परम लाभ है कि अपनी प्रिय अर्द्धाङ्गिनीके साथ हास-परिहास करते हुए कुछ घड़ियाँ सुखसे बिता ली जाती हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्राणप्रियाको इस प्रकार समझाया-बुझाया, तब उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि मेरे प्रियतमने केवल परिहासमें ही ऐसा कहा था। अब उनके हृदयसे यह भय जाता रहा कि प्यारे हमें छोड़

देंगे ॥ ३२ ॥ परीक्षित् ! अब वे सलज्ज हास्य और प्रेमपूर्ण मधुर चितवनसे पुरुषभूषण भगवान् श्रीकृष्णका मुखारविन्द निरखती हुई उनसे कहने लगीं—॥ ३३ ॥

रुक्मिणीजीने कहा—कमलनयन ! आपका यह कहना ठीक है कि ऐश्वर्य आदि समस्त गुणोंसे युक्त, अनन्त भगवान्‌के अनुरूप मैं नहीं हूँ । आपकी समानता मैं किसी प्रकार नहीं कर सकती । कहाँ तो अपनी अखण्ड महिमामें स्थित, तीनों गुणोंके स्वामी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित आप भगवान्; और कहाँ तीनों गुणोंके अनुसार स्वभाव रखनेवाली गुणमयी प्रकृति मैं, जिसकी सेवा कामनाओंके पीछे भटकनेवाले अज्ञानी लोग ही करते हैं ॥ ३४ ॥ भला, मैं आपके समान कब हो सकती हूँ । स्वामिन् ! आपका यह कहना भी ठीक ही है कि आप राजाओंके भयसे समुद्रमें आ छिपे हैं । परन्तु राजा शब्दका अर्थ पृथ्वीके राजा नहीं, तीनों गुणरूप राजा हैं । मानो आप उन्हींके भयसे अन्तःकरणरूप समुद्रमें चैतन्यघन अनुभूतिस्वरूप आत्माके रूपमें विराजमान रहते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि आप राजाओंसे वैर रखते हैं, परन्तु वे राजा कौन हैं ? यही अपनी दुष्ट इन्द्रियाँ । इनसे तो आपका वैर है ही । और प्रभो ! आप राजसिंहासनसे रहित हैं, यह भी ठीक ही है । क्योंकि आपके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने भी राजाके पदको घोर अज्ञानान्धकार समझकर दूरसे ही दुत्कार रक्खा है । फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है ॥ ३५ ॥ आप कहते हैं कि हमारा मार्ग स्पष्ट नहीं है और हम लौकिक पुरुषों-जैसा आचरण भी नहीं करते; यह बात भी निस्सन्देह सत्य है । क्योंकि जो ऋषि-मुनि आपके पादपद्मोंका मकरन्द-रस सेवन करते हैं, उनका मार्ग भी अस्पष्ट रहता है और विषयोंमें उलझे हुए नरपशु उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते । और हे अनन्त ! आपके मार्गपर चलनेवाले आपके भक्तोंकी भी चेष्टाएँ जब प्रायः अलौकिक ही होती हैं, तब समस्त शक्तियों और ऐश्वर्योंके आश्रय आपकी चेष्टाएँ अलौकिक हों इसमें तो कहना ही क्या है ? ॥ ३६ ॥ आपने अपनेको अकिञ्चन बतलाया है; परन्तु आपकी अकिञ्चनता दरिद्रता नहीं है । उसका अर्थ यह है कि आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण आप ही सब कुछ हैं । आपके पास रखनेके लिये कुछ नहीं है । परन्तु जिन ब्रह्मा आदि देवताओंकी पूजा सब लोग करते हैं, भेंट देते हैं, वे ही लोग आपकी पूजा करते रहते हैं । आप उनके प्यारे हैं और वे आपके प्यारे हैं । (आपका यह कहना भी सर्वथा उचित है कि धनाढ्य लोग मेरा भजन नहीं करते;) जो लोग अपनी धनाढ्यताके अभिमानसे अंधे हो रहे हैं और इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे हैं, वे न तो आपका भजन-सेवन ही करते और न तो यह जानते हैं कि आप मृत्युके रूपमें उनके सिरपर सवार हैं ॥ ३७ ॥ जगत्‌में जीवके लिये जितने भी वाञ्छनीय पदार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—उन सबके रूपमें आप ही प्रकट हैं । आप समस्त वृत्तियों—प्रवृत्तियों, साधनों, सिद्धियों और साध्योंके फलस्वरूप हैं । विचारशील पुरुष आपको प्राप्त करनेके लिये सब कुछ छोड़ देते हैं । भगवन् ! उन्हीं विवेकी पुरुषोंका आपके साथ सम्बन्ध होना चाहिये । जो लोग स्त्री-पुरुषके सहवाससे प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके वशीभूत हैं, वे कदापि आपका सम्बन्ध प्राप्त करने योग्य नहीं हैं ॥ ३८ ॥ यह ठीक है कि भिक्षुकोंने आपकी प्रशंसा की है । परन्तु किन भिक्षुकोंने ? उन परमशान्त संन्यासी महात्माओंने आपकी महिमा और प्रभावका वर्णन किया है, जिन्होंने अपराधी-से-अपराधी व्यक्तिको भी दण्ड न देनेका निश्चय कर लिया है । मैंने अदूरदर्शितासे नहीं, इस बातको समझते हुए आपको वरण किया है कि आप सारे जगत्‌के आत्मा हैं और अपने प्रेमियोंको आत्मदान करते हैं । मैंने जान-बूझकर उन ब्रह्मा और देवराज इन्द्र आदिका भी इसलिये परित्याग कर दिया है कि आपकी भौंहोंके इशारेसे पैदा होनेवाला काल अपने वेगसे उनकी आशा-अभिलाषाओं-पर पानी फेर देता है । फिर दूसरोंकी—शिशुपाल, दन्तवक्त्र या जरासन्धकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३९ ॥

सर्वेश्वर आर्यपुत्र ! आपकी यह बात किसी प्रकार युक्तिसङ्गत नहीं मालूम होती कि आप राजाओंसे भयभीत होकर समुद्रमें आ बसे हैं । क्योंकि आपने केवल अपने शार्ङ्गधनुषके टङ्कारसे मेरे विवाहके समय आये हुए समस्त राजाओंको भगाकर अपने चरणोंमें समर्पित मुझ दासीको उसी प्रकार हरण कर लिया, जैसे सिंह अपनी कर्कश ध्वनिसे वन-पशुओंको भगाकर अपना भाग ले

आवे ॥ ४० ॥ कमलनयन ! आप कैसे कहते हैं कि जो मेरा अनुसरण करता है, उसे प्रायः कष्ट ही उठाना पड़ता है। प्राचीन कालके अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि जो बड़े-बड़े राजराजेश्वर अपना-अपना एकछत्र साम्राज्य छोड़कर आपको पानेकी अभिलाषासे तपस्या करने वनमें चले गये थे, वे आपके मार्गका अनुसरण करनेके कारण क्या किसी प्रकारका कष्ट उठा रहे हैं ॥ ४१ ॥ आप कहते हैं कि तुम और किसी राजकुमारका वरण कर लो। भगवन् ! आप समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। बड़े-बड़े संत आपके चरणकमलोंकी सुगन्धका बखान करते रहते हैं। उसका आश्रय लेनेमात्रसे लोग संसारके पाप-तापसे मुक्त हो जाते हैं। लक्ष्मी सर्वदा उन्हींमें निवास करती हैं। फिर आप बतलाइये कि अपने स्वार्थ और परमार्थको भलीभाँति समझनेवाली ऐसी कौन-सी स्त्री है, जिसे एक बार उन चरणकमलोंकी सुगन्ध सूँघनेको मिल जाय और फिर वह उनका तिरस्कार करके ऐसे लोगोंको वरण करे जो सदा मृत्यु, रोग, जन्म, जरा आदि भयोंसे युक्त हैं! कोई भी बुद्धिमती स्त्री ऐसा नहीं कर सकती ॥ ४२ ॥ प्रभो ! आप सारे जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। आप ही इस लोक और परलोकमें समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाले एवं आत्मा हैं। मैंने आपको अपने अनुरूप समझकर ही वरण किया है। मुझे अपने कर्मोंके अनुसार विभिन्न योनियोंमें भटकना पड़े, इसकी मुझको परवा नहीं है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मैं सदा अपना भजन करनेवालोंका मिथ्या संसारभ्रम निवृत्त करनेवाले तथा उन्हें अपना स्वरूपतक दे डालनेवाले आप परमेश्वरके चरणोंकी शरणमें रहूँ ॥ ४३ ॥ अच्युत ! शत्रुसूदन ! गधोंके समान घरका बोझा ढोनेवाले, बैलोंके समान गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रहकर कष्ट उठानेवाले, कुत्तोंके समान तिरस्कार सहनेवाले, बिलावके समान कृपण और हिंसक तथा क्रीत दासोंके समान स्त्रीकी सेवा करनेवाले शिशुपाल आदि राजालोग, जिन्हें वरण करनेके लिये आपने मुझे संकेत किया है—उसी अभागिनी स्त्रीके पति हों, जिनके कानोंमें भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंकी सभामें गायी जानेवाली आपकी लीलाकथाने प्रवेश नहीं किया है ॥ ४४ ॥ यह मनुष्यका शरीर जीवित होनेपर भी मुर्दा ही है। ऊपरसे चमड़ी, दाढ़ी-मूँछ, रोएँ, नख और केशोंसे ढका हुआ है; परन्तु इसके भीतर मांस, हड्डी, खून, कीड़े, मल-मूत्र, कफ, पित्त और वायु भरे पड़े हैं। इसे वही मूढ़ स्त्री अपना प्रियतम पति समझकर सेवन करती है, जिसे कभी आपके चरणारविन्दके मकरन्दकी सुगन्ध सूँघनेको नहीं मिली है ॥ ४५ ॥ कमलनयन ! आप आत्माराम हैं। मैं सुन्दरी अथवा गुणवती हूँ, इन बातोंपर आपकी दृष्टि नहीं जाती। अतः आपका उदासीन रहना स्वाभाविक है, फिर भी आपके चरणकमलोंमें मेरा सुदृढ़ अनुराग हो, यही मेरी अभिलाषा है। जब आप इस संसारकी अभिवृद्धिके लिये उत्कट रजोगुण स्वीकार करके मेरी ओर देखते हैं, तब वह भी आपका परम अनुग्रह ही है ॥ ४६ ॥ मधुसूदन ! आपने कहा कि किसी अनुरूप वरको वरण कर लो। मैं आपकी इस बातको भी झूठ नहीं मानती। क्योंकि कभी-कभी एक पुरुषके द्वारा जीती जानेपर भी काशीनरेशकी कन्या अम्बाके समान किसी-किसीकी दूसरे पुरुषमें भी प्रीति रहती है ॥ ४७ ॥ कुलटा स्त्रीका मन तो विवाह हो जानेपर भी नये-नये पुरुषोंकी ओर खिंचता रहता है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ऐसी कुलटा स्त्रीको अपने पास न रक्खे। उसे अपनानेवाला पुरुष लोक और परलोक दोनों खो बैठता है, उभयभ्रष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साध्वी ! राजकुमारी ! यही बातें सुननेके लिये तो मैंने तुमसे हँसी-हँसीमें तुम्हारी वञ्चना की थी, तुम्हें छकाया था। तुमने मेरे वचनोंकी जैसी व्याख्या की है, वह अक्षरशः सत्य है ॥ ४९ ॥ सुन्दरी ! तुम मेरी अनन्य प्रेयसी हो। मेरे प्रति तुम्हारा अनन्य प्रेम है। तुम मुझसे जो-जो अभिलाषाएँ करती हो, वे तो तुम्हें सदा-सर्वदा प्राप्त ही हैं। और यह बात भी है कि मुझसे की हुई अभिलाषाएँ सांसारिक कामनाओंके समान बन्धनमें डालनेवाली नहीं होतीं, बल्कि वे समस्त कामनाओंसे मुक्त कर देती हैं ॥ ५० ॥ पुण्यमयी प्रिये ! मैंने तुम्हारा पतिप्रेम और पातिव्रत्य भी भलीभाँति देख लिया। मैंने उलटी-सीधी

बात कह-कहकर तुम्हें विचलित करना चाहा था; परन्तु तुम्हारी बुद्धि मुझसे तनिक भी इधर-उधर न हुई ॥ ५१ ॥ प्रिये ! मैं मोक्षका स्वामी हूँ। लोगोंको संसार-सागरसे पार करता हूँ। जो सकाम पुरुष अनेक प्रकारके व्रत और तपस्या करके दाम्पत्य-जीवनके विषय-सुखकी अभिलाषासे मेरा भजन करते हैं, वे मेरी मायासे मोहित हैं ॥ ५२ ॥ मानिनी प्रिये ! मैं मोक्ष तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंका आश्रय हूँ, अधीश्वर हूँ। मुझ परमात्माको प्राप्त करके भी जो लोग केवल विषय-सुखके साधन सम्पत्तिकी ही अभिलाषा करते हैं, मेरी पराभक्ति नहीं चाहते, वे बड़े मन्दभागी हैं, क्योंकि विषयसुख तो नरकमें और नरकके ही समान सूकर-कूकर आदि योनियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु उन लोगोंका मन तो विषयोंमें ही लगा रहता है, इस-लिये उन्हें नरकमें जाना भी अच्छा जान पड़ता है ॥ ५३ ॥ गृहेश्वरी प्राणप्रिये ! यह बड़े आनन्दकी बात है कि तुमने अबतक निरन्तर संसार-बन्धनसे मुक्त करनेवाली मेरी सेवा की है। दुष्ट पुरुष ऐसा कभी नहीं कर सकते। जिन स्त्रियोंका चित्त दूषित कामनाओंसे भरा हुआ है और जो अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिमें ही लगी रहनेके कारण अनेकों प्रकारके छल-छन्द रचती रहती हैं, उनके लिये तो ऐसा करना और भी कठिन है ॥५४॥ मानिनि ! मुझे अपने घरभरमें तुम्हारे समान प्रेम करने-वाली भार्या और कोई दिखायी नहीं देती। क्योंकि जिस समय तुमने मुझे देखा न था, केवल मेरी प्रशंसा सुनी थी, उस समय भी अपने विवाहमें आये हुए राजाओंकी उपेक्षा करके ब्राह्मणके द्वारा मेरे पास गुप्त सन्देश भेजा था ॥ ५५ ॥ तुम्हारा हरण करते समय मैंने तुम्हारे भाईको युद्धमें जीतकर उसे विरूप कर दिया था और अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें चौसर खेलते समय बलरामजीने तो उसे मार ही डाला। किन्तु हमसे वियोग हो जानेकी आशङ्कासे तुमने चुपचाप वह सारा दुःख सह लिया। मुझसे एक बात भी नहीं कही। तुम्हारे इस गुणसे मैं तुम्हारे वश हो गया हूँ ॥ ५६ ॥ तुमने मेरी प्राप्तिके लिये दूतके द्वारा अपना गुप्त सन्देश भेजा था; परन्तु जब तुमने मेरे पहुँचनेमें कुछ विलम्ब होता देखा; तब तुम्हें यह सारा संसार सूना दीखने लगा। उस समय तुमने अपना यह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर किसी दूसरेके योग्य न समझकर इसे छोड़नेका सङ्कल्प कर लिया था। तुम्हारा यह प्रेमभाव तुम्हारे ही अंदर रहे। हम इसका बदला नहीं चुका सकते। तुम्हारे इस सर्वोच्च प्रेम-भावका केवल अभिनन्दन करते हैं ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे जब मनुष्योंकी-सी लीला कर रहे हैं, तब उसमें दाम्पत्य-प्रेमको बढ़ानेवाले विनोदभरे वार्तालाप भी करते हैं और इस प्रकार लक्ष्मी-रूपिणी रुक्मिणीजीके साथ विहार करते हैं ॥ ५८ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्को शिक्षा देनेवाले और सर्वव्यापक हैं। वे इसी प्रकार दूसरी पत्नियोंके महलोंमें भी गृहस्थोंके समान रहते और गृहस्थोचित धर्मका पालन करते थे ॥ ५९ ॥

इकसठवाँ अध्याय

भगवान्की सन्ततिका वर्णन तथा अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके गर्भसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे रूप, बल आदि गुणोंमें अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे ॥ १ ॥ राजकुमारियाँ देखतीं कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे महलसे कभी बाहर नहीं जाते। सदा हमारे ही पास बने रहते हैं। इससे वे यही समझतीं कि श्रीकृष्णको मैं ही सबसे प्यारी हूँ। परीक्षित् ! सच पूछो तो वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण-का तत्त्व—उनकी महिमा नहीं समझती थीं ॥ २ ॥ वे सुन्दरियाँ अपने आत्मानन्दमें एकरस स्थित भगवान् श्रीकृष्णके कमल-कलीके समान सुन्दर मुख, विशाल बाहु, कर्णस्पर्शी नेत्र, प्रेमभरी मुसकान, रसमयी चितवन और मधुर वाणीसे स्वयं ही मोहित रहती थीं। वे अपने शृङ्गारसम्बन्धी हावभावोंसे उनके मनको अपनी ओर खींचनेमें समर्थ न हो सकीं ॥ ३ ॥ वे सोलह हजारसे अधिक थीं। अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी

चितवनसे युक्त मनोहर भौंहोंके इशारेसे ऐसे प्रेमके बाण चलाती थीं, जो काम-कलाके भावोंसे परिपूर्ण होते थे। परन्तु किसी भी प्रकारसे, किन्हीं साधनोंके द्वारा वे भगवान्‌के मन एवं इन्द्रियोंमें चञ्चलता नहीं उत्पन्न कर सकीं ॥ ४ ॥ परीक्षित् ! ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपको या उनकी प्राप्तिके मार्गको नहीं जानते। उन्हीं रमारमण भगवान् श्रीकृष्णको उन स्त्रियोंने पतिके रूपमें प्राप्त किया था। अब नित्य-निरन्तर उनके प्रेम और आनन्दकी अभिवृद्धि होती रहती थी और वे प्रेमभरी मुसकराहट, मधुर चितवन, नवसमागमकी लालसा आदिसे भगवान्‌की सेवा करती रहती थीं ॥ ५ ॥ उनमें-से सभी पत्नियोंके साथ सेवा करनेके लिये सैकड़ों दासियाँ रहतीं। फिर भी जब उनके महलमें भगवान् पधारते तब वे स्वयं आगे जाकर आदरपूर्वक उन्हें लिवा लातीं, श्रेष्ठ आसनपर बैठातीं, उत्तम सामग्रियोंसे उनकी पूजा करतीं, चरणकमल पखारतीं, पान लगाकर खिलातीं, पाँव दबाकर थकावट दूर करतीं, पंखा झलतीं, इत्र-फुलेल, चन्दन आदि लगातीं, फूलोंके हार पहनातीं, केश सँवारतीं, सुलातीं, स्नान करातीं और अनेक प्रकारके भोजन कराकर अपने हाथों भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ ६ ॥

परीक्षित् ! मैं कह चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णकी प्रत्येक पत्नीके दस-दस पुत्र थे। उन रानियोंमें आठ पटरानियाँ थीं, जिनके विवाहका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। अब उनके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंका वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीके गर्भसे दस पुत्र हुए—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और दसवाँ चारु। ये अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे किसी बातमें कम न थे ॥ ८-९ ॥ सत्यभामाके भी दस पुत्र थे—भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु। जाम्बवतीके भी साम्ब आदि दस पुत्र थे—साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड और क्रतु। ये सब श्रीकृष्णको बहुत प्यारे थे ॥ १०—१२ ॥ नाग्नजिती सत्याके भी दस पुत्र हुए—वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शङ्कु, वसु और परम तेजस्वी कुन्ति ॥ १३ ॥ कालिन्दीके दस पुत्र ये थे—श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक ॥ १४ ॥ मद्रदेशकी राजकुमारी लक्ष्मणाके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित-का जन्म हुआ ॥ १५ ॥ मित्रविन्दाके पुत्र थे—वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वह्नि और क्षुधि ॥ १६ ॥ भद्राके पुत्र थे—संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक ॥ १७ ॥ इन पटरानियोंके अतिरिक्त भगवान्‌की रोहिणी आदि सोलह हजार एक सौ और भी पत्नियाँ थीं। उनके दीप्तिमान् और ताम्रतप्त आदि दस-दस पुत्र हुए। रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नका मायावती रतिके अतिरिक्त भोजकट-नगरनिवासी रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीसे भी विवाह हुआ था। उसीके गर्भसे परम-बलशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ। परीक्षित् ! श्रीकृष्णके पुत्रोंकी माताएँ ही सोलह हजारसे अधिक थीं। इस-लिये उनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या करोड़ोंतक पहुँच गयी ॥ १८-१९ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—परम ज्ञानी मुनीश्वर ! भगवान् श्रीकृष्णने रणभूमिमें रुक्मीका बड़ा तिरस्कार किया था। इसलिये वह सदा इस बातकी घातमें रहता था कि अवसर मिलते ही श्रीकृष्णसे उसका बदला लूँ और उनका काम तमाम कर डालूँ। ऐसी स्थितिमें उसने अपनी कन्या रुक्मवती अपने शत्रुके पुत्र प्रद्युम्नजीको कैसे ब्याह दी ? कृपा करके बतलाइये ! दो शत्रुओंमें—श्रीकृष्ण और रुक्मीमें फिरसे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ ? ॥ २० ॥ आपसे कोई बात छिपी नहीं है। क्योंकि योगीजन भूत, भविष्य और वर्तमानकी सभी बातें भलीभाँति जानते हैं। उनसे ऐसी बातें भी छिपी नहीं रहतीं; जो इन्द्रियोंसे परे हैं, बहुत दूर हैं अथवा बीचमें किसी वस्तुकी आड़ होनेके कारण नहीं दीखतीं ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! प्रद्युम्नजी मूर्तिमान् कामदेव थे। उनके सौन्दर्य और गुणोंपर रीझकर

रुक्मवतीने स्वयंवरमें उन्हींको वरमाला पहना दी। प्रद्युम्नजीने युद्धमें अकेले ही वहाँ इकट्ठे हुए नरपतियोंको जीत लिया और रुक्मवतीको हर लाये॥२२॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्णसे अपमानित होनेके कारण रुक्मीके हृदयकी क्रोधाग्नि शान्त नहीं हुई थी, वह अब भी उनसे वैर गाँठे हुए था, फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपने भानजे प्रद्युम्नको अपनी बेटी ब्याह दी ॥ २३ ॥ परीक्षित्! दस पुत्रोंके अतिरिक्त रुक्मिणीजीके एक परम सुन्दरी बड़े-बड़े नेत्रोंवाली कन्या थी। उसका नाम था चारुमती। कृतवर्माके पुत्र बलीने उसके साथ विवाह किया॥ २४ ॥

परीक्षित्! रुक्मीका भगवान् श्रीकृष्णके साथ पुराना वैर था। फिर भी अपनी बहिन रुक्मिणीको प्रसन्न करनेके लिये उसने अपनी पौत्री रोचनाका विवाह रुक्मिणीके पौत्र, अपने नाती (दौहित्र) अनिरुद्धके साथ कर दिया। यद्यपि रुक्मीको इस बातका पता था कि इस प्रकारका विवाह-सम्बन्ध धर्मके अनुकूल नहीं है, फिर भी स्नेह-बन्धनमें बँधकर उसने ऐसा कर दिया ॥ २५ ॥ परीक्षित्! अनिरुद्धके विवाहोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, रुक्मिणीजी, प्रद्युम्न, साम्ब आदि द्वारकावासी भोजकट नगरमें पधारे ॥ २६ ॥ जब विवाहोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया, तब कलिङ्गनरेश आदि घमंडी नरपतियोंने रुक्मीसे कहा कि 'तुम बलरामजीको पासोंके खेलमें जीत लो ॥ २७ ॥ राजन्! बलरामजीको पासे डालने तो आते नहीं, परन्तु उन्हें खेलनेका बहुत बड़ा व्यसन है।' उन लोगोंके बहकानेसे रुक्मीने बलरामजीको बुलवाया और वह उनके साथ चौसर खेलने लगा ॥२८॥ बलरामजीने पहले सौ, फिर हजार और इसके बाद दस हजार मुहरोंका दाँव लगाया। उन्हें रुक्मीने जीत लिया। रुक्मीकी जीत होनेपर कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर, ठहाका मारकर बलरामजीकी हँसी उड़ाने लगा। बलरामजीसे वह हँसी सहन न हुई। वे कुछ चिढ़ गये॥२९॥ इसके बाद रुक्मीने एक लाख मुहरोंका दाँव लगाया। उसे बलरामजीने जीत लिया। परन्तु रुक्मी धूर्ततासे यह कहने लगा कि 'मैंने जीता है' ॥ ३० ॥ इसपर श्रीमान् बलरामजी क्रोधसे तिलमिला उठे। उनके हृदयमें इतना क्षोभ हुआ, मानो पूर्णिमाके दिन समुद्रमें ज्वार आ गया हो। उनके नेत्र एक तो स्वभावसे ही लाल-लाल थे, दूसरे अत्यन्त क्रोधके मारे वे और भी दहक उठे। अब उन्होंने दस करोड़ मुहरोंका दाँव रक्खा ॥ ३१ ॥ इस बार भी द्यूतनियमके अनुसार बलरामजीकी ही जीत हुई। परन्तु रुक्मीने छल करके कहा—'मेरी जीत है। इस विषयके विशेषज्ञ कलिङ्गनरेश आदि सभासद् इसका निर्णय कर दें' ॥ ३२ ॥ उस समय आकाशवाणीने कहा—'यदि धर्मपूर्वक कहा जाय, तो बलरामजीने ही यह दाँव जीता है। रुक्मीका यह कहना सरासर झूठ है कि उसने जीता है' ॥३३॥ एक तो रुक्मीके सिरपर मौत सवार थी और दूसरे उसके साथी दुष्ट राजाओंने भी उसे उभाड़ रक्खा था। इससे उसने आकाशवाणीपर कोई ध्यान न दिया और बलरामजीकी हँसी उड़ाते हुए कहा—॥ ३४ ॥ 'बलरामजी! आखिर आपलोग वन-वन भटकनेवाले ग्वाले ही तो ठहरे! आप पासा खेलना क्या जानें? पासों और बाणोंसे तो केवल राजालोग ही खेला करते हैं, आप-जैसे नहीं' ॥३५॥ रुक्मीके इस प्रकार आक्षेप और राजाओंके उपहास करनेपर बलरामजी क्रोधसे आगबबूला हो उठे। उन्होंने एक मुद्गर उठाया और उस माङ्गलिक सभामें ही रुक्मीको मार डाला ॥ ३६ ॥ पहले कलिङ्गनरेश दाँत दिखा-दिखाकर हँसता था, अब रंगमें भंग देखकर वहाँसे भागा; परन्तु बलरामजीने दस ही कदमपर उसे पकड़ लिया और क्रोधसे उसके दाँत तोड़ डाले ॥३७॥ बलरामजीने अपने मुद्गरकी चोटसे दूसरे राजाओंकी भी बाँह, जाँघ और सिर आदि तोड़-फोड़ डाले। वे खूनसे लथपथ और भयभीत होकर वहाँसे भागते बने ॥ ३८ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि बलरामजीका समर्थन करनेसे रुक्मिणीजी अप्रसन्न होंगी और रुक्मीके वधको बुरा बतलानेसे बलरामजी रुष्ट होंगे, अपने साले रुक्मीकी मृत्युपर भला-बुरा कुछ भी न कहा ॥ ३९ ॥ इसके बाद अनिरुद्धजीका विवाह और शत्रुका वध दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जानेपर भगवान्‌के आश्रित बलरामजी आदि यदुवंशी नवविवाहिता दुलहिन रोचनाके साथ अनिरुद्धजीको श्रेष्ठ रथपर चढ़ाकर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको चले आये ॥ ४० ॥

बासठवाँ अध्याय

ऊषा-अनिरुद्ध-मिलन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—महायोगसम्पन्न मुनीश्वर! मैंने सुना है कि यदुवंशशिरोमणि अनिरुद्धजीने बाणासुरकी पुत्री ऊषासे विवाह किया था और इस प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण और शङ्करजीका बहुत बड़ा घमासान युद्ध हुआ था। आप कृपा करके यह वृत्तान्त विस्तारसे सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! महात्मा बलिकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। उन्होंने वामनरूपधारी भगवान्‌को सारी पृथ्वीका दान कर दिया था। उनके सौ लड़के थे। उनमें सबसे बड़ा था बाणासुर ॥ २ ॥ दैत्यराज बलिका औरस पुत्र बाणासुर भगवान् शिवकी भक्तिमें सदा रत रहता था। समाजमें उसका बड़ा आदर था। उसकी उदारता और बुद्धिमत्ता प्रशंसनीय थी। उसकी प्रतिज्ञा अटल होती थी और सचमुच वह बातका धनी था ॥ ३ ॥ उन दिनों वह परम रमणीय शोणितपुरमें राज्य करता था। भगवान् शङ्करकी कृपासे इन्द्रादि देवता नौकर-चाकरकी तरह उसकी सेवा करते थे। उसके हजार भुजाएँ थीं। एक दिन जब भगवान् शङ्कर ताण्डवनृत्य कर रहे थे, तब उसने अपने हजार हाथोंसे अनेकों प्रकारके बाजे बजाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया ॥ ४ ॥ सचमुच भगवान् शङ्कर बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागतरक्षक हैं। समस्त भूतोंके एकमात्र स्वामी प्रभुने बाणासुरसे कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो।' बाणासुरने कहा—'भगवन्! आप मेरे नगरकी रक्षा करते हुए यहीं रहा करें' ॥ ५ ॥

एक दिन बल-पौरुषके घमंडमें चूर बाणासुरने अपने समीप ही स्थित भगवान् शङ्करके चरणकमलोंको सूर्यके समान चमकीले मुकुटसे छूकर प्रणाम किया और कहा—॥ ६ ॥ 'देवाधिदेव! आप समस्त चराचर जगत्‌के गुरु और ईश्वर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जिन लोगोंके मनोरथ अबतक पूरे नहीं हुए हैं, उनको पूर्ण करनेके लिये आप कल्पवृक्ष हैं ॥ ७ ॥ भगवन्! आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं, परन्तु वे मेरे लिये केवल भाररूप हो रही हैं। क्योंकि त्रिलोकीमें आपको छोड़कर मुझे अपनी बराबरीका कोई वीर-योद्धा ही नहीं मिलता, जो मुझसे लड़ सके ॥ ८ ॥ आदिदेव! एक बार मेरी बाहोंमें लड़नेके लिये इतनी खुजलाहट हुई कि मैं दिग्गजोंकी ओर चला। परन्तु वे भी डरके मारे भाग खड़े हुए। उस समय मार्गमें अपनी बाहोंकी चोटसे मैंने बहुत-से पहाड़ोंको तोड़-फोड़ डाला था' ॥ ९ ॥ बाणासुरकी यह प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने तनिक क्रोधसे कहा—'रे मूढ़! जिस समय तेरी ध्वजा टूटकर गिर जायगी, उस समय मेरे ही समान योद्धासे तेरा युद्ध होगा और वह युद्ध तेरा घमंड चूर-चूर कर देगा' ॥ १० ॥ परीक्षित्! बाणासुरकी बुद्धि इतनी बिगड़ गयी थी कि भगवान् शङ्करकी बात सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अपने घर लौट गया। अब वह मूर्ख भगवान् शङ्करके आदेशानुसार उस युद्धकी प्रतीक्षा करने लगा, जिसमें उसके बल-वीर्यका नाश होनेवाला था ॥ ११ ॥

परीक्षित्! बाणासुरकी एक कन्या थी, उसका नाम था ऊषा। अभी वह कुमारी ही थी कि एक दिन स्वप्नमें उसने देखा कि 'परम सुन्दर अनिरुद्धजीके साथ मेरा समागम हो रहा है।' आश्चर्यकी बात तो यह थी कि उसने अनिरुद्धजीको न तो कभी देखा था और न सुना ही था ॥ १२ ॥ स्वप्नमें ही उन्हें न देखकर वह बोल उठी—'प्राणप्यारे! तुम कहाँ हो?' और उसकी नींद टूट गयी। वह अत्यन्त विह्वलताके साथ उठ बैठी और यह देखकर कि मैं सखियोंके बीचमें हूँ, बहुत ही लज्जित हुई ॥ १३ ॥ परीक्षित्! बाणासुरके मन्त्रीका नाम था कुम्भाण्ड। उसकी एक कन्या थी, जिसका नाम था चित्रलेखा। ऊषा और चित्रलेखा एक-दूसरेकी सहेलियाँ थीं। चित्रलेखाने ऊषासे कौतूहलवश पूछा—॥ १४ ॥ 'सुन्दरी! राजकुमारी! मैं देखती हूँ कि अभीतक किसीने तुम्हारा पाणिग्रहण भी नहीं किया है। फिर तुम किसे ढूँढ़ रही हो और तुम्हारे मनोरथका क्या स्वरूप है?' ॥ १५ ॥

ऊषाने कहा—सखी! मैंने स्वप्नमें एक बहुत ही

सुन्दर नवयुवकको देखा है। उसके शरीरका रंग साँवला-साँवला-सा है। नेत्र कमलदलके समान हैं। शरीरपर पीला-पीला पीताम्बर फहरा रहा है। भुजाएँ लंबी-लंबी हैं और वह स्त्रियोंका चित्त चुरानेवाला है ॥१६॥ उसने पहले तो अपने अधरोंका मधुर मधु मुझे पिलाया, परन्तु मैं उसे अघाकर पी ही न पायी थी कि वह मुझे दुःखके सागरमें डालकर न जाने कहाँ चला गया। मैं तरसती ही रह गयी। सखी! मैं अपने उसी प्राणवल्लभको ढूँढ रही हूँ ॥ १७ ॥

चित्रलेखाने कहा—'सखी! यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रिलोकीमें कहीं भी होगा, और उसे तुम पहचान सकोगी, तो मैं तुम्हारी विरह-व्यथा अवश्य शान्त कर दूँगी। मैं चित्र बनाती हूँ, तुम अपने चित्तचोर प्राणवल्लभको पहचानकर बतला दो। फिर वह चाहे कहीं भी होगा, मैं उसे तुम्हारे पास ले आऊँगी' ॥ १८ ॥ यों कहकर चित्रलेखाने बात-की-बातमें बहुत-से देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्योंके चित्र बना दिये ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें उसने वृष्णिवंशी वसुदेव-जीके पिता शूर, स्वयं वसुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण आदिके चित्र बनाये। प्रद्युम्नका चित्र देखते ही ऊषा लज्जित हो गयी ॥ २० ॥ परीक्षित्! जब उसने अनिरुद्धका चित्र देखा, तब तो लज्जाके मारे उसका सिर नीचा हो गया। फिर मन्द-मन्द मुसकराते हुए उसने कहा—'मेरा वह प्राणवल्लभ यही है, यही है' ॥ २१ ॥

परीक्षित्! चित्रलेखा योगिनी थी। वह जान गयी कि ये भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र हैं। अब वह आकाश-मार्गसे रात्रिमें ही भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित द्वारकापुरीमें पहुँची ॥ २२ ॥ वहाँ अनिरुद्धजी बहुत ही सुन्दर पलँगपर सो रहे थे। चित्रलेखा योगसिद्धिके प्रभावसे उन्हें उठाकर शोणितपुर ले आयी और अपनी सखी ऊषाको उसके प्रियतमका दर्शन करा दिया ॥२३॥ अपने परम सुन्दर प्राणवल्लभको पाकर आनन्दकी अधिकतासे उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो उठा और वह अनिरुद्धजीके साथ अपने महलमें विहार करने लगी। परीक्षित्! उसका अन्तःपुर इतना सुरक्षित था कि उसकी ओर कोई पुरुष झाँकतक नहीं सकता था ॥२४॥ ऊषाका प्रेम दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा था। वह बहुमूल्य वस्त्र, पुष्पोंके हार, इत्र-फुलेल, धूप-दीप, आसन आदि सामग्रियोंसे, सुमधुर पेय (पीनेयोग्य पदार्थ—दूध, शरबत आदि), भोज्य (चबाकर खाने-योग्य) और भक्ष्य (निगल जानेयोग्य) पदार्थोंसे तथा मनोहर वाणी एवं सेवा-शुश्रूषासे अनिरुद्धजीका बड़ा सत्कार करती। ऊषाने अपने प्रेमसे उनके मनको अपने वशमें कर लिया। अनिरुद्धजी उस कन्याके अन्तःपुरमें छिपे रहकर अपने-आपको भूल गये। उन्हें इस बातका भी पता न चला कि मुझे यहाँ आये कितने दिन बीत गये ॥ २५-२६ ॥

परीक्षित्! यदुकुमार अनिरुद्धजीके सहवाससे ऊषाका कुआँरपन नष्ट हो चुका था। उसके शरीरपर ऐसे चिह्न प्रकट हो गये, जो स्पष्ट इस बातकी सूचना दे रहे थे और जिन्हें किसी प्रकार छिपाया नहीं जा सकता था। ऊषा बहुत प्रसन्न भी रहने लगी। पहरेदारोंने समझ लिया कि इसका किसी-न-किसी पुरुषसे सम्बन्ध अवश्य हो गया है। उन्होंने जाकर बाणासुरसे निवेदन किया—'राजन्! हमलोग आपकी अविवाहिता राजकुमारीका जैसा रंग-ढंग देख रहे हैं, वह आपके कुलपर बट्टा लगानेवाला है ॥ २७-२८ ॥ प्रभो! इसमें सन्देह नहीं कि हमलोग बिना क्रम टूटे, रात-दिन महलका पहरा देते रहते हैं। आपकी कन्याको बाहरके मनुष्य देख भी नहीं सकते। फिर भी वह कलङ्कित कैसे हो गयी? इसका कारण हमारी समझमें नहीं आ रहा है' ॥ २९ ॥

परीक्षित्! पहरेदारोंसे यह समाचार जानकर कि कन्याका चरित्र दूषित हो गया है, बाणासुरके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई। वह झटपट ऊषाके महलमें जा धमका और देखा कि अनिरुद्धजी वहाँ बैठे हुए हैं ॥ ३० ॥ प्रिय परीक्षित्! अनिरुद्धजी स्वयं कामावतार प्रद्युम्नजीके पुत्र थे। त्रिभुवनमें उनके-जैसा सुन्दर और कोई न था। साँवरा-सलोना शरीर और उसपर पीताम्बर फहराता हुआ, कमलदलके समान बड़ी-बड़ी कोमल आँखें, लंबी-लंबी भुजाएँ, कपोलोंपर घुँघराली अलकें और

कुण्डलोंकी झिलमिलाती हुई ज्योति, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे मुखकी शोभा अनूठी हो रही थी ॥ ३१ ॥ अनिरुद्धजी उस समय अपनी सब ओरसे सज-धजकर बैठी हुई प्रियतमा ऊषाके साथ पासे खेल रहे थे। उनके गलेमें बसंती बेलाके बहुत सुन्दर पुष्पोंका हार सुशोभित हो रहा था और उस हारमें ऊषाके अङ्गका सम्पर्क होनेसे उसके वक्षःस्थलकी केशर लगी हुई थी। उन्हें ऊषाके सामने ही बैठा देखकर बाणासुर विस्मित—चकित हो गया ॥ ३२ ॥ जब अनिरुद्धजीने देखा कि बाणासुर बहुत-से आक्रमणकारी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महलमें घुस आया है, तब वे उन्हें धराशायी कर देनेके लिये लोहेका एक भयङ्कर परिघ लेकर डट गये, मानो स्वयं कालदण्ड लेकर मृत्यु (यम) खड़ा हो ॥ ३३ ॥ बाणासुरके साथ आये हुए सैनिक उनको पकड़नेके लिये ज्यों-ज्यों उनकी ओर झपटते त्यों-त्यों वे उन्हें मार-मारकर गिराते जाते—ठीक वैसे ही, जैसे सूअरोंके दलका नायक कुत्तोंको मार डाले ! अनिरुद्धजीकी चोटसे उन सैनिकोंके सिर, भुजा, जंघा आदि अङ्ग टूट-फूट गये और वे महलसे निकल भागे ॥ ३४ ॥ जब बली बाणासुरने देखा कि यह तो मेरी सारी सेनाका संहार कर रहा है, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने नागपाशसे उन्हें बाँध लिया। ऊषाने जब सुना कि उसके प्रियतमको बाँध लिया गया है, तब वह अत्यन्त शोक और विषादसे विह्वल हो गयी; उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहने लगी, वह रोने लगी ॥ ३५ ॥

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णके साथ बाणासुरका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! बरसातके चार महीने बीत गये। परन्तु अनिरुद्धजीका कहीं पता न चला। उनके घरके लोग, इस घटनासे बहुत ही शोकाकुल हो रहे थे ॥ १ ॥ एक दिन नारदजीने आकर अनिरुद्धका शोणितपुर जाना, वहाँ बाणासुरके सैनिकोंको हराना और फिर नागपाशमें बाँधा जाना—यह सारा समाचार सुनाया। तब श्रीकृष्णको ही अपना आराध्यदेव माननेवाले यदुवंशियोंने शोणितपुरपर चढ़ाई कर दी ॥ २ ॥ अब श्रीकृष्ण और बलरामजीके साथ उनके अनुयायी सभी यदुवंशी—प्रद्युम्न, सात्यकि, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदिने बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ व्यूह बनाकर चारों ओरसे बाणासुरकी राजधानीको घेर लिया ॥ ३-४ ॥ जब बाणासुरने देखा कि यदुवंशियोंकी सेना नगरके उद्यान, परकोटों, बुर्जों और सिंहद्वारोंको तोड़-फोड़ रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर नगरसे निकल पड़ा ॥५॥ बाणासुरकी ओरसे साक्षात् भगवान् शङ्कर वृषभराज नन्दीपर सवार होकर अपने पुत्र कार्तिकेय और गणोंके साथ रणभूमिमें पधारे और उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीसे युद्ध किया ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! वह युद्ध इतना अद्भुत और घमासान हुआ कि उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। भगवान् श्रीकृष्णसे शङ्करजीका और प्रद्युम्नसे स्वामिकार्तिकका युद्ध हुआ ॥ ७ ॥ बलरामजीसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णका युद्ध हुआ। बाणासुरके पुत्रके साथ साम्ब और स्वयं बाणासुरके साथ सात्यकि भिड़ गये ॥८॥ ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-चारण, गन्धर्व-अप्सराएँ और यक्ष विमानोंपर चढ़-चढ़कर युद्ध देखनेके लिये आ पहुँचे ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपने शार्ङ्गधनुषके तीखी नोकवाले बाणोंसे शङ्करजीके अनुचरों—भूत, प्रेत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड और ब्रह्मराक्षसोंको मार-मारकर खदेड़ दिया ॥१०-११॥ पिनाकपाणि शङ्करजीने भगवान् श्रीकृष्णपर भाँति-भाँतिके अगणित अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने बिना किसी प्रकारके विस्मयके उन्हें विरोधी शस्त्रास्त्रोंसे शान्त कर दिया ॥ १२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्मास्त्रकी शान्तिके लिये ब्रह्मास्त्रका, वायव्यास्त्रके लिये पार्वतास्त्रका, आग्नेयास्त्रके लिये पर्जन्यास्त्रका और पाशुपतास्त्रके लिये नारायणास्त्रका प्रयोग किया ॥ १३ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जृम्भणास्त्रसे (जिससे मनुष्यको जँभाई-पर-जँभाई आने लगती है) महादेवजीको मोहित कर दिया।

वे युद्धसे विरत होकर जँभाई लेने लगे, तब भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजीसे छुट्टी पाकर तलवार, गदा और बाणोंसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ इधर प्रद्युम्नने बाणोंकी बौछारसे स्वामिकार्तिकको घायल कर दिया, उनके अङ्ग-अङ्गसे रक्तकी धारा बह चली, वे रणभूमि छोड़कर अपने वाहन मयूरद्वारा भाग निकले ॥ १५ ॥ बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे कुम्भाण्ड और कूपकर्णको घायल कर दिया, वे रणभूमिमें गिर पड़े । इस प्रकार अपने सेनापतियोंको हताहत देखकर बाणासुरकी सारी सेना तितर-बितर हो गयी ॥ १६ ॥

जब रथपर सवार बाणासुरने देखा कि श्रीकृष्ण आदिके प्रहारसे हमारी सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो रही है, तब उसे बड़ा क्रोध आया । उसने चिढ़कर सात्यकिको छोड़ दिया और वह भगवान् श्रीकृष्णपर आक्रमण करनेके लिये दौड़ पड़ा ॥ १७ ॥ परीक्षित् ! रणोन्मत्त बाणासुरने अपने एक हजार हाथोंसे एक साथ ही पाँच सौ धनुष खींचकर एक-एकपर दो-दो बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने एक साथ ही उसके सारे धनुष काट डाले और सारथी, रथ तथा घोड़ोंको भी धराशायी कर दिया एवं शङ्ख-ध्वनि की ॥ १९ ॥ कोटरा नामकी एक देवी बाणासुरकी धर्ममाता थी । वह अपने उपासक पुत्रके प्राणोंकी रक्षाके लिये बाल बिखेरकर नंग-धड़ंग भगवान् श्रीकृष्णके सामने आकर खड़ी हो गयी ॥ २० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने, इसलिये कि कहीं उसपर दृष्टि न पड़ जाय, अपना मुँह फेर लिया और वे दूसरी ओर देखने लगे । तबतक बाणासुर धनुष कट जाने और रथहीन हो जानेके कारण अपने नगरमें चला गया ॥ २१ ॥

इधर जब भगवान् शङ्करके भूतगण इधर-उधर भाग गये, तब उनका छोड़ा हुआ तीन सिर और तीन पैरवाला ज्वर दसों दिशाओंको जलाता हुआ-सा भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी ओर आते देखकर उसका मुकाबला करनेके लिये अपना ज्वर छोड़ा । अब वैष्णव और माहेश्वर दोनों ज्वर आपसमें लड़ने लगे ॥ २३ ॥ अन्तमें वैष्णव ज्वरके तेजसे माहेश्वर ज्वर पीड़ित होकर चिल्लाने लगा और अत्यन्त भयभीत हो गया । जब उसे अन्यत्र कहीं त्राण न मिला, तब वह अत्यन्त नम्रतासे हाथ जोड़कर शरणमें लेनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करने लगा ॥ २४ ॥

ज्वरने कहा—प्रभो ! आपकी शक्ति अनन्त है । आप ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी परम महेश्वर हैं । आप सबके आत्मा और सर्वस्वरूप हैं । आप अद्वितीय और केवल ज्ञानस्वरूप हैं । संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण आप ही हैं । श्रुतियोंके द्वारा आपका ही वर्णन और अनुमान किया जाता है । आप समस्त विकारोंसे रहित स्वयं ब्रह्म हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ २५ ॥ काल, दैव (अदृष्ट), कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूत्रात्मा प्राण, अहङ्कार, एकादश इन्द्रियाँ और पञ्चभूत—इन सबका संघात लिङ्गशरीर और बीजाङ्कुरन्याय-के अनुसार उससे कर्म और कर्मसे फिर लिङ्गशरीरकी उत्पत्ति—यह सब आपकी माया है । आप मायाके निषेधकी परम अवधि हैं । मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २६ ॥ प्रभो ! आप अपनी लीलासे ही अनेकों रूप धारण कर लेते हैं और देवता, साधु तथा लोक-मर्यादाओंका पालन-पोषण करते हैं । साथ ही उन्मार्ग-गामी और हिंसक असुरोंका संहार भी करते हैं । आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही हुआ है ॥ २७ ॥ प्रभो ! आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सह तेज ज्वरसे मैं अत्यन्त सन्तप्त हो रहा हूँ । भगवन् ! देहधारी जीवोंको तभीतक ताप-सन्ताप रहता है, जबतक वे आशाके फंदोंमें फँसे रहनेके कारण आपके चरणकमलोंकी शरण नहीं ग्रहण करते ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'त्रिशिरा ! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ । अब तुम मेरे ज्वरसे निर्भय हो जाओ । संसारमें जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा, उसे तुमसे कोई भय न रहेगा' ॥ २९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार कहनेपर माहेश्वर ज्वर उन्हें प्रणाम करके चला गया । तबतक बाणासुर रथपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये फिर आ पहुँचा ॥ ३० ॥ परीक्षित् ! बाणासुरने अपने हजार हाथोंमें तरह-तरहके हथियार ले रक्खे थे । अब वह अत्यन्त क्रोधमें भरकर चक्रपाणि भगवान्पर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बाणासुरने तो बाणोंकी झड़ी लगा दी है, तब वे छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे उसकी भुजाएँ काटने लगे, मानो कोई किसी वृक्षकी छोटी-छोटी डालियाँ काट रहा हो ॥ ३२ ॥ जब भक्तवत्सल भगवान् शङ्करने देखा कि बाणासुरकी भुजाएँ कट रही हैं, तब वे चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्णके पास आये और स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—प्रभो ! आप वेदमन्त्रोंमें तात्पर्यरूपसे छिपे हुए परमज्योति:स्वरूप परब्रह्म हैं। शुद्धहृदय महात्मागण आपके आकाशके समान सर्वव्यापक और निर्विकार (निर्लेप) स्वरूपका साक्षात्कार करते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मुख है और जल वीर्य । स्वर्ग सिर, दिशाएँ कान और पृथ्वी चरण है । चन्द्रमा मन, सूर्य नेत्र और मैं शिव आपका अहङ्कार हूँ । समुद्र आपका पेट है और इन्द्र भुजा ॥ ३५ ॥ धान्यादि ओषधियाँ रोम हैं, मेघ केश हैं और ब्रह्मा बुद्धि । प्रजापति लिङ्ग हैं और धर्म हृदय । इस प्रकार समस्त लोक और लोकान्तरोंके साथ जिसके शरीरकी तुलना की जाती है, वे परमपुरुष आप ही हैं ॥ ३६ ॥ अखण्ड ज्योति:स्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्मकी रक्षा और संसारके अभ्युदय—अभिवृद्धिके लिये हुआ है । हम सब भी आपके प्रभावसे ही प्रभावान्वित होकर सातों भुवनोंका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित हैं—एक और अद्वितीय आदिपुरुष हैं । मायाकृत जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंमें अनुगत और उनसे अतीत तुरीयतत्त्व भी आप ही हैं। आप किसी दूसरी वस्तुके द्वारा प्रकाशित नहीं होते, स्वयंप्रकाश हैं । आप सबके कारण हैं, परन्तु आपका न तो कोई कारण है और न तो आपमें कारणपना ही है । भगवन् ! ऐसा होनेपर भी आप तीनों गुणोंकी विभिन्न विषमताओंको प्रकाशित करनेके लिये अपनी मायासे देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि शरीरोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ प्रभो ! जैसे सूर्य अपनी छाया बादलोंसे ही ढक जाता है और उन बादलों तथा विभिन्न रूपोंको प्रकाशित करता है उसी प्रकार आप तो स्वयंप्रकाश हैं, परन्तु गुणोंके द्वारा मानो ढक-से जाते हैं और समस्त गुणों तथा गुणाभिमानी जीवोंको प्रकाशित करते हैं । वास्तवमें आप अनन्त हैं ॥ ३९ ॥

भगवन् ! आपकी मायासे मोहित होकर लोग स्त्री-पुत्र, देह-गेह आदिमें आसक्त हो जाते हैं और फिर दु:खके अपार सागरमें डूबने-उतराने लगते हैं ॥ ४० ॥ संसारके मानवोंको यह मनुष्य-शरीर आपने अत्यन्त कृपा करके दिया है । जो पुरुष इसे पाकर भी अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं करता और आपके चरणकमलोंका आश्रय नहीं लेता—उनका सेवन नहीं करता, उसका जीवन अत्यन्त शोचनीय है और वह स्वयं अपने-आपको धोखा दे रहा है ॥ ४१ ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं । जो मृत्युका ग्रास मनुष्य आपको छोड़ देता है और अनात्म, दु:खरूप एवं तुच्छ विषयोंमें सुख-बुद्धि करके उनके पीछे भटकता है, वह इतना मूर्ख है कि अमृतको छोड़कर विष पी रहा है ॥ ४२ ॥ मैं, ब्रह्मा, सारे देवता और विशुद्ध हृदयवाले ऋषि-मुनि सब प्रकारसे और सर्वात्मभावसे आपके शरणागत हैं; क्योंकि आप ही हमलोगोंके आत्मा, प्रियतम और ईश्वर हैं ॥ ४३ ॥ आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं । आप सबमें सम, परम शान्त, सबके सुहृद्, आत्मा और इष्टदेव हैं । आप एक, अद्वितीय और जगत्‌के आधार तथा अधिष्ठान हैं । हे प्रभो ! हम सब संसारसे मुक्त होनेके लिये आपका भजन करते हैं ॥ ४४ ॥ देव ! यह बाणासुर मेरा परमप्रिय, कृपापात्र और सेवक है । मैंने इसे अभयदान दिया है । प्रभो ! जिस प्रकार इसके परदादा दैत्यराज प्रह्लादपर आपका कृपाप्रसाद है, वैसा ही कृपाप्रसाद आप इसपर भी करें ॥ ४५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! आपकी बात मानकर—जैसा आप चाहते हैं, मैं इसे निर्भय किये देता हूँ । आपने पहले इसके सम्बन्धमें जैसा निश्चय किया था—मैंने इसकी भुजाएँ काटकर उसीका अनुमोदन किया है ॥ ४६ ॥ मैं जानता हूँ कि बाणासुर दैत्यराज बलिका पुत्र है । इसलिये मैं भी इसका वध नहीं कर सकता; क्योंकि मैंने प्रह्लादको वर दे दिया है कि 'मैं तुम्हारे वंशमें पैदा होनेवाले किसी भी दैत्यका

वध नहीं करूँगा' ॥ ४७ ॥ इसका घमंड चूर करनेके लिये ही मैंने इसकी भुजाएँ काट दी हैं। इसकी बहुत बड़ी सेना पृथ्वीके लिये भार हो रही थी, इसीलिये मैंने उसका संहार कर दिया है ॥ ४८ ॥ अब इसकी चार भुजाएँ बच रही हैं। ये अजर, अमर बनी रहेंगी। यह बाणासुर आपके पार्षदोंमें मुख्य होगा। अब इसको किसीसे किसी प्रकारका भय नहीं है ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णसे इस प्रकार अभयदान प्राप्त करके बाणासुरने उनके पास आकर धरतीमें माथा टेका, प्रणाम किया और अनिरुद्धजीको अपनी पुत्री ऊषाके साथ रथपर बैठाकर भगवान्‌के पास ले आया ॥ ५० ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने महादेवजीकी सम्मतिसे वस्त्रालङ्कारविभूषित ऊषा और अनिरुद्धजीको एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आगे करके द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ५१ ॥ इधर द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण आदिके शुभागमनका समाचार सुनकर झंडियों और तोरणोंसे नगरका कोना-कोना सजा दिया गया। बड़ी-बड़ी सड़कों और चौराहोंको चन्दन-मिश्रित जलसे सींच दिया गया। नगरके नागरिकों, बन्धु-बान्धवों और ब्राह्मणोंने आगे आकर खूब धूमधामसे भगवान्‌का स्वागत किया। उस समय शङ्ख, नगारों और ढोलोंकी तुमुल ध्वनि हो रही थी। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अपनी राजधानीमें प्रवेश किया ॥ ५२ ॥

परीक्षित्! जो पुरुष श्रीशङ्करजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णका युद्ध और उनकी विजयकी कथाका प्रातः-काल उठकर स्मरण करता है, उसकी पराजय नहीं होती ॥ ५३ ॥

चौसठवाँ अध्याय

नृग राजाकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशी राजकुमार घूमनेके लिये उपवनमें गये ॥ १ ॥ वहाँ बहुत देरतक खेल खेलते हुए उन्हें प्यास लग आयी। अब वे इधर-उधर जलकी खोज करने लगे। वे एक कूएँके पास गये; उसमें जल तो था नहीं, एक बड़ा विचित्र जीव दीख पड़ा ॥ २ ॥ वह जीव पर्वतके समान आकारका एक गिरगिट था। उसे देखकर उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उनका हृदय करुणासे भर आया और वे उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करने लगे ॥ ३ ॥ परन्तु जब वे राजकुमार उस गिरे हुए गिरगिटको चमड़े और सूतकी रस्सियोंसे बाँधकर बाहर न निकाल सके, तब कुतूहलवश उन्होंने यह आश्चर्यमय वृत्तान्त भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया ॥ ४ ॥ जगत्‌के जीवनदाता कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण उस कूएँपर आये। उसे देखकर उन्होंने बायें हाथसे खेल-खेलमें—अनायास ही उसको बाहर निकाल लिया ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके करकमलोंका स्पर्श होते ही उसका गिरगिट-रूप जाता रहा और वह एक स्वर्गीय देवताके रूपमें परिणत हो गया। अब उसके शरीरका रंग तपाये हुए सोनेके समान चमक रहा था। और उसके शरीरपर अद्भुत वस्त्र, आभूषण और पुष्पोंके हार शोभा पा रहे थे ॥ ६ ॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण जानते थे कि इस दिव्य पुरुषको गिरगिट-योनि क्यों मिली थी, फिर भी वह कारण सर्वसाधारणको मालूम हो जाय, इसलिये उन्होंने उस दिव्य पुरुषसे पूछा—'महाभाग! तुम्हारा रूप तो बहुत ही सुन्दर है। तुम हो कौन? मैं तो ऐसा समझता हूँ कि तुम अवश्य ही कोई श्रेष्ठ देवता हो ॥ ७ ॥ कल्याणमूर्ते! किस कर्मके फलसे तुम्हें इस योनिमें आना पड़ा था? वास्तवमें तुम इसके योग्य नहीं हो। हमलोग तुम्हारा वृत्तान्त जानना चाहते हैं। यदि तुम हमलोगोंको वह बतलाना उचित समझो तो अपना परिचय अवश्य दो' ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अनन्तमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णने राजा नृगसे [क्योंकि वे ही इस रूपमें प्रकट हुए थे] इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अपना सूर्यके समान जाज्वल्यमान मुकुट झुकाकर भगवान्‌को प्रणाम किया और वे इस प्रकार कहने लगे ॥ ९ ॥

राजा नृगने कहा—प्रभो ! मैं महाराज इक्ष्वाकुका पुत्र राजा नृग हूँ। जब कभी किसीने आपके सामने दानियोंकी गिनती की होगी, तब उसमें मेरा नाम भी अवश्य ही आपके कानोंमें पड़ा होगा ॥ १० ॥ प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंकी एक-एक वृत्तिके साक्षी हैं। भूत और भविष्यका व्यवधान भी आपके अखण्ड ज्ञानमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं डाल सकता। अतः आपसे छिपा ही क्या है ? फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये कहता हूँ ॥ ११ ॥ भगवन् ! पृथ्वीमें जितने धूलिकण हैं, आकाशमें जितने तारे हैं और वर्षामें जितनी जलकी धाराएँ गिरती हैं, मैंने उतनी ही गौएँ दान की थीं ॥ १२ ॥ वे सभी गौएँ दुधार, नौजवान, सीधी, सुन्दर, सुलक्षणा और कपिला थीं। उन्हें मैंने न्यायके धनसे प्राप्त किया था। सबके साथ बछड़े थे। उनके सींगोंमें सोना मढ़ दिया गया था और खुरोंमें चाँदी। उन्हें वस्त्र, हार और गहनोंसे सजा दिया जाता था। ऐसी गौएँ मैंने दी थीं ॥ १३ ॥ भगवन् ! मैं युवावस्थासे सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मणकुमारोंको—जो सद्गुणी, शीलसम्पन्न, कष्टमें पड़े हुए कुटुम्बवाले, दम्भरहित तपस्वी, वेदपाठी, शिष्योंको विद्यादान करनेवाले तथा सच्चरित्र होते—वस्त्राभूषणसे अलङ्कृत करता और उन गौओंका दान करता ॥ १४ ॥ इस प्रकार मैंने बहुत-सी गौएँ, पृथ्वी, सोना, घर, घोड़े, हाथी, दासियोंके सहित कन्याएँ, तिलोंके पर्वत, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, गृह-सामग्री और रथ आदि दान किये। अनेकों यज्ञ किये और बहुत-से कूएँ, बावली आदि बनवाये ॥१५॥

एक दिन किसी अप्रतिग्रही (दान न लेनेवाले), तपस्वी ब्राह्मणकी एक गाय बिछुड़कर मेरी गौओंमें आ मिली। मुझे इस बातका बिल्कुल पता न चला। इसलिये मैंने अनजानमें उसे किसी दूसरे ब्राह्मणको दान कर दिया ॥ १६ ॥ जब उस गायको वे ब्राह्मण ले चले, तब उस गायके असली स्वामीने कहा—'यह गौ मेरी है।' दान ले जानेवाले ब्राह्मणने कहा—'यह तो मेरी है, क्योंकि राजा नृगने मुझे इसका दान किया है ॥ १७ ॥ वे दोनों ब्राह्मण आपसमें झगड़ते हुए अपनी-अपनी बात कायम करनेके लिये मेरे पास आये। एकने कहा—'यह गाय अभी-अभी आपने मुझे दी है' और दूसरेने कहा कि 'यदि ऐसी बात है तो तुमने मेरी गाय चुरा ली है।' भगवन् ! उन दोनों ब्राह्मणोंकी बात सुनकर मेरा चित्त भ्रमित हो गया ॥ १८ ॥ मैंने धर्म-संकटमें पड़कर उन दोनोंसे बड़ी अनुनय-विनय की और कहा कि 'मैं बदलेमें एक लाख उत्तम गौएँ दूँगा। आपलोग मुझे यह गाय दे दीजिये ॥ १९ ॥ मैं आपलोगोंका सेवक हूँ। मुझसे अनजानमें यह अपराध बन गया है। मुझपर आपलोग कृपा कीजिये और मुझे इस घोर कष्टसे तथा घोर नरकमें गिरनेसे बचा लीजिये ॥ २० ॥ 'राजन् ! मैं इसके बदलेमें कुछ नहीं लूँगा।' यह कहकर गायका स्वामी चला गया। 'तुम इसके बदलेमें एक लाख ही नहीं, दस हजार गौएँ और दो तो भी मैं लेनेका नहीं।' इस प्रकार कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया ॥ २१ ॥ देवाधिदेव जगदीश्वर ! इसके बाद आयु समाप्त होनेपर यमराजके दूत आये और मुझे यमपुरी ले गये। वहाँ यमराजने मुझसे पूछा—॥ २२ ॥ राजन् ! तुम पहले अपने पापका फल भोगना चाहते हो या पुण्यका ? तुम्हारे दान और धर्मके फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होनेवाला है, जिसकी कोई सीमा ही नहीं है ॥ २३ ॥ भगवन् ! तब मैंने यमराजसे कहा—'देव ! पहले मैं अपने पापका फल भोगना चाहता हूँ।' और उसी क्षण यमराजने कहा—'तुम गिर जाओ।' उनके ऐसा कहते ही मैं वहाँसे गिरा और गिरते ही समय मैंने देखा कि मैं गिरगिट हो गया हूँ ॥ २४ ॥ प्रभो ! मैं ब्राह्मणोंका सेवक उदार दानी और आपका भक्त था। मुझे इस बातकी उत्कट अभिलाषा थी कि किसी प्रकार आपके दर्शन हो जायँ। इस प्रकार आपकी कृपासे मेरे पूर्वजन्मकी स्मृति नष्ट न हुई ॥ २५ ॥ भगवन् ! आप परमात्मा हैं। बड़े-बड़े शुद्ध-हृदय योगीश्वर उपनिषदोंकी दृष्टिसे (अभेद-दृष्टिसे) अपने हृदयमें आपका ध्यान करते रहते हैं। इन्द्रियातीत परमात्मन् ! साक्षात् आप मेरे नेत्रोंके सामने कैसे आ गये ! क्योंकि मैं तो अनेक प्रकारके व्यसनों, दुःखद कर्मोंमें फँसकर अंधा हो रहा था। आपका दर्शन तो तब होता है, जब संसारके चक्करसे छुटकारा मिलनेका समय आता है ॥ २६ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव !

पुरुषोत्तम गोविन्द ! आप ही व्यक्त और अव्यक्त जगत् तथा जीवोंके स्वामी हैं। अविनाशी अच्युत ! आपकी कीर्ति पवित्र है। अन्तर्यामी नारायण ! आप ही समस्त वृत्तियों और इन्द्रियोंके स्वामी हैं ॥ २७ ॥ प्रभो ! श्रीकृष्ण ! मैं अब देवताओंके लोकमें जा रहा हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये। आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं चाहे कहीं भी क्यों न रहूँ, मेरा चित्त सदा आपके चरणकमलोंमें ही लगा रहे ॥ २८ ॥ आप समस्त कार्यों और कारणोंके रूपमें विद्यमान हैं। आपकी शक्ति अनन्त है और आप स्वयं ब्रह्म हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी वासुदेव श्रीकृष्ण ! आप समस्त योगोंके स्वामी, योगेश्वर हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

राजा नृगने इस प्रकार कहकर भगवान्‌की परिक्रमा की और अपने मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर सबके देखते-देखते ही वे श्रेष्ठ विमानपर सवार हो गये ॥ ३० ॥

राजा नृगके चले जानेपर ब्राह्मणोंके परम प्रेमी, धर्मके आधार देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने क्षत्रियोंको शिक्षा देनेके लिये वहाँ उपस्थित अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा—॥ ३१ ॥ 'जो लोग अग्निके समान तेजस्वी हैं, वे भी ब्राह्मणोंका थोड़े-से-थोड़ा धन हड़पकर नहीं पचा सकते। फिर जो अभिमानवश झूठमूठ अपनेको लोगोंका स्वामी समझते हैं, वे राजा तो क्या पचा सकते हैं ? ॥ ३२ ॥ मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उसकी चिकित्सा होती है। वस्तुतः ब्राह्मणोंका धन ही परम विष है; उसको पचा लेनेके लिये पृथ्वीमें कोई औषध, कोई उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥ हलाहल विष केवल खानेवालेका ही प्राण लेता है, और आग भी जलके द्वारा बुझायी जा सकती है; परन्तु ब्राह्मणके धनरूप अरणिसे जो आग पैदा होती है, वह सारे कुलको समूल जला डालती है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका धन यदि उसकी पूरी-पूरी सम्मति लिये बिना भोगा जाय तब तो वह भोगनेवाले, उसके लड़के और पौत्र—इन तीन पीढ़ियोंको ही चौपट करता है। परन्तु यदि बलपूर्वक हठ करके उसका उपभोग किया जाय, तब तो पूर्वपुरुषोंकी दस पीढ़ियाँ और आगेकी भी दस पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं ॥ ३५ ॥ जो मूर्ख राजा अपनी राजलक्ष्मीके घमंडसे अंधे होकर ब्राह्मणोंका धन हड़पना चाहते हैं, समझना चाहिये कि वे जान-बूझकर नरकमें जानेका रास्ता साफ कर रहे हैं। वे देखते नहीं कि उन्हें अधःपतनके कैसे गहरे गड्ढेमें गिरना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ जिन उदारहृदय और बहुकुटुम्बी ब्राह्मणोंकी वृत्ति छीन ली जाती है, उनके रोनेपर उनके आँसूकी बूँदोंसे धरतीके जितने धूलिकण भीगते हैं, उतने वर्षोंतक ब्राह्मणके स्वत्वको छीननेवाले उस उच्छृङ्खल राजा और उसके वंशजोंको कुम्भीपाक नरकमें दुःख भोगना पड़ता है ॥ ३७-३८ ॥ जो मनुष्य अपनी या दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणोंकी वृत्ति, उनकी जीविकाके साधन छीन लेते हैं, वे साठ हजार वर्षतक विष्ठाके कीड़े होते हैं ॥ ३९ ॥ इसलिये मैं तो यही चाहता हूँ कि ब्राह्मणोंका धन कभी भूलसे भी मेरे कोषमें न आये, क्योंकि जो लोग ब्राह्मणोंके धनकी इच्छा भी करते हैं—उसे छीननेकी बात तो अलग रही—वे इस जन्ममें अल्पायु, शत्रुओंसे पराजित और राज्यभ्रष्ट हो जाते हैं और मृत्युके बाद भी वे दूसरोंको कष्ट देनेवाले साँप ही होते हैं ॥ ४० ॥ इसलिये मेरे आत्मीयो ! यदि ब्राह्मण अपराध करे, तो भी उससे द्वेष मत करो। वह मार ही क्यों न बैठे या बहुत-सी गालियाँ या शाप ही क्यों न दे, उसे तुमलोग सदा नमस्कार ही करो ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार मैं बड़ी सावधानीसे तीनों समय ब्राह्मणोंको प्रणाम करता हूँ, वैसे ही तुमलोग भी किया करो। जो मेरी इस आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, उसे मैं क्षमा नहीं करूँगा, दण्ड दूँगा ॥ ४२ ॥ यदि ब्राह्मणके धनका अपहरण हो जाय तो वह अपहृत धन उस अपहरण करनेवालेको—अनजानमें उसके द्वारा यह अपराध हुआ हो तो भी—अधःपतनके गड्ढेमें डाल देता है। जैसे ब्राह्मणकी गायने अनजानमें उसे लेनेवाले राजा नृगको नरकमें डाल दिया था ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकावासियोंको इस प्रकार उपदेश देकर अपने महलमें चले गये' ॥ ४४ ॥

पैंसठवाँ अध्याय

श्रीबलरामजीका व्रजगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् बलरामजीके मनमें व्रजके नन्दबाबा आदि स्वजन-सम्बन्धियोंसे मिलनेकी बड़ी इच्छा और उत्कण्ठा थी । अब वे रथपर सवार होकर द्वारकासे नन्दबाबाके व्रजमें आये ॥१॥ इधर उनके लिये व्रजवासी गोप और गोपियाँ भी बहुत दिनोंसे उत्कण्ठित थीं । उन्हें अपने बीचमें पाकर सबने बड़े प्रेमसे गले लगाया । बलरामजीने माता यशोदा और नन्दबाबाको प्रणाम किया । उन लोगोंने भी आशीर्वाद देकर उनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ यह कहकर कि 'बलरामजी ! तुम जगदीश्वर हो, अपने छोटे भाई श्रीकृष्णके साथ सर्वदा हमारी रक्षा करते रहो', उनको गोदमें ले लिया और अपने प्रेमाश्रुओंसे उन्हें भिगो दिया ॥ ३ ॥ इसके बाद बड़े-बड़े गोपोंको बलरामजीने और छोटे-छोटे गोपोंने बलरामजीको नमस्कार किया । वे अपनी आयु, मेल-जोल और सम्बन्धके अनुसार सबसे मिले-जुले ॥ ४ ॥ ग्वालबालोंके पास जाकर किसीसे हाथ मिलाया, किसीसे मीठी-मीठी बातें कीं, किसीको खूब हँस-हँसकर गले लगाया । इसके बाद जब बलरामजीकी थकावट दूर हो गयी, वे आरामसे बैठ गये, तब सब ग्वाल उनके पास आये । इन ग्वालोंने कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके लिये समस्त भोग, स्वर्ग और मोक्ष-तक त्याग रक्खा था । बलरामजीने जब उनके और उनके घरवालोंके सम्बन्धमें कुशलप्रश्न किया, तब उन्होंने प्रेम-गद्‌गद वाणीसे उनसे प्रश्न किया ॥ ५-६ ॥ बलरामजी ! वसुदेवजी आदि हमारे सब भाई-बन्धु सकुशल हैं न ? अब आपलोग स्त्री-पुत्र आदिके साथ रहते हैं, बाल-बच्चेदार हो गये हैं; क्या कभी आपलोगोंको हमारी याद भी आती है ? ॥ ७ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि पापी कंसको आपलोगोंने मार डाला और अपने सुहृद्-सम्बन्धियोंको बड़े कष्टसे बचा लिया । यह भी कम आनन्दकी बात नहीं है कि आपलोगोंने और भी बहुतसे शत्रुओंको मार डाला या जीत लिया और अब अत्यन्त सुरक्षित दुर्ग (किले) में आपलोग निवास करते हैं' ॥ ८ ॥

परीक्षित् ! भगवान् बलरामजीके दर्शनसे, उनकी प्रेमभरी चितवनसे गोपियाँ निहाल हो गयीं । उन्होंने हँसकर पूछा—'क्यों बलरामजी ! नगर-नारियोंके प्राण-वल्लभ श्रीकृष्ण अब सकुशल तो हैं न ? ॥ ९ ॥ क्या कभी उन्हें अपने भाई-बन्धु और पिता-माताकी भी याद आती है ! क्या वे अपनी माताके दर्शनके लिये एक बार भी यहाँ आ सकेंगे ! क्या महाबाहु श्रीकृष्ण कभी हमलोगोंकी सेवाका भी कुछ स्मरण करते हैं ॥ १० ॥ आप जानते हैं कि स्वजन-सम्बन्धियोंको छोड़ना बहुत ही कठिन है । फिर भी हमने उनके लिये माँ-बाप, भाई-बन्धु, पति-पुत्र और बहिन-बेटियोंको भी छोड़ दिया । परन्तु प्रभो ! वे बात-की-बातमें हमारे सौहार्द और प्रेमका बन्धन काटकर, हमसे नाता तोड़कर परदेश चले गये; हमलोगोंको बिल्कुल ही छोड़ दिया । हम चाहतीं तो उन्हें रोक लेतीं; परन्तु जब वे कहते कि हम तुम्हारे ऋणी हैं—तुम्हारे उपकारका बदला कभी नहीं चुका सकते, तब ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो उनकी मीठी-मीठी बातोंपर विश्वास न कर लेती ॥११-१२॥ एक गोपीने कहा—'बलरामजी ! हम तो गाँवकी गँवार ग्वालिनें ठहरीं, उनकी बातोंमें आ गयीं । परन्तु नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी चतुर होती हैं । भला, वे चञ्चल और कृतघ्न श्रीकृष्णकी बातोंमें क्यों फँसने लगीं; उन्हें तो वे नहीं छका पाते होंगे !' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी, श्रीकृष्ण बातें बनानेमें तो एक ही हैं । ऐसी रंग-बिरंगी मीठी-मीठी बातें गढ़ते हैं कि क्या कहना ! उनकी सुन्दर मुसकराहट और प्रेमभरी चितवनसे नगर-नारियाँ भी प्रेमावेशसे व्याकुल हो जाती होंगी और वे अवश्य उनकी बातोंमें आकर अपनेको निछावर कर देती होंगी' ॥१३॥ तीसरी गोपीने कहा—'अरी गोपियो ! हमलोगोंको उसकी बातसे क्या मतलब है ? यदि समय ही काटना है तो कोई दूसरी बात करो । यदि उस निष्ठुरका समय हमारे बिना बीत जाता है तो हमारा भी उसीकी तरह, भले ही दुःखसे क्यों न हो, कट ही जायगा ॥१४॥ अब गोपियोंके भाव-नेत्रोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णकी

हँसी, प्रेमभरी बातें, चारु चितवन, अनूठी चाल और प्रेमालिङ्गन आदि मूर्तिमान् होकर नाचने लगे। वे उन बातोंकी मधुर स्मृतिमें तन्मय होकर रोने लगीं ॥ १५ ॥

परीक्षित्! भगवान् बलरामजी नाना प्रकारसे अनुनय-विनय करनेमें बड़े निपुण थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके हृदयस्पर्शी और लुभावने सन्देश सुना-सुनाकर गोपियोंको सान्त्वना दी॥१६॥ और वसन्तके दो महीने—चैत्र और वैशाख वहीं बिताये। वे रात्रिके समय गोपियोंमें रहकर उनके प्रेमकी अभिवृद्धि करते। क्यों न हो, भगवान् राम ही जो ठहरे! ॥ १७ ॥ उस समय कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर भीनी-भीनी वायु चलती रहती, पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी छिटककर यमुनाजीके तटवर्ती उपवन-को उज्ज्वल कर देती और भगवान् बलराम गोपियोंके साथ वहीं विहार करते ॥ १८ ॥ वरुणदेवने अपनी पुत्री वारुणीदेवीको वहाँ भेज दिया था। वह एक वृक्षके खोड़रसे वह निकली। उसने अपनी सुगन्धसे सारे वनको सुगन्धित कर दिया।१९। मधुधाराकी वह सुगन्ध वायुने बलरामजीके पास पहुँचायी, मानो उसने उन्हें उपहार दिया हो! उसकी महँकसे आकृष्ट होकर बलरामजी गोपियोंको लेकर वहाँ पहुँच गये और उनके साथ उसका पान किया ॥ २० ॥ उस समय गोपियाँ बलरामजीके चारों ओर उनके चरित्रका गान कर रही थीं, और वे मतवाले-से होकर वनमें विचर रहे थे। उनके नेत्र आनन्दमदसे विह्वल हो रहे थे ॥ २१ ॥ गलेमें पुष्पोंका हार शोभा पा रहा था। वैजयन्तीकी माला पहने हुए आनन्दोन्मत्त हो रहे थे। उनके एक कानमें कुण्डल झलक रहा था। मुखारविन्दपर मुस-कराहटकी शोभा निराली ही थी। उसपर पसीनेकी बूँदें हिमकणके समान जान पड़ती थीं ॥ २२ ॥ सर्व-शक्तिमान् बलरामजीने जलक्रीडा करनेके लिये यमुना-जीको पुकारा। परन्तु यमुनाजीने यह समझकर कि ये तो मतवाले हो रहे हैं, उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कर दिया; वे नहीं आयीं। तब बलरामजीने क्रोधपूर्वक अपने हलकी नोकसे उन्हें खींचा ॥ २३ ॥ और कहा—'पापिनी यमुने! मेरे बुलानेपर भी तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करके यहाँ नहीं आ रही है, मेरा तिरस्कार कर रही है! देख, अब मैं तुझे तेरे स्वेच्छाचारका फल चखाता हूँ। अभी-अभी तुझे हलकी नोकसे सौ-सौ टुकड़े किये देता हूँ।' ॥ २४ ॥ जब बलरामजीने यमुनाजीको इस प्रकार डाँटा-फटकारा, तब वे चकित और भयभीत होकर बलरामजीके चरणोंपर गिर पड़ीं और गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करने लगीं—॥ २५ ॥ 'लोका-भिराम बलरामजी! महाबाहो! मैं आपका पराक्रम भूल गयी थी। जगत्पते! अब मैं जान गयी कि आपके अंशमात्र शेषजी इस सारे जगत्को धारण करते हैं।२६। भगवन्! आप परम ऐश्वर्यशाली हैं। आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण ही मुझसे यह अपराध बन गया है। सर्वस्वरूप भक्तवत्सल! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी भूल-चूक क्षमा कीजिये, मुझे छोड़ दीजिये' ॥ २७ ॥

अब यमुनाजीकी प्रार्थना स्वीकार करके भगवान् बलरामने उन्हें क्षमा कर दिया और फिर जैसे गजराज हथिनियोंके साथ क्रीडा करता है, वैसे ही वे गोपियोंके साथ जलक्रीडा करने लगे ॥ २८ ॥ जब वे यथेष्ट जल-विहार करके यमुनाजीसे बाहर निकले, तब लक्ष्मी-जीने उन्हें नीलाम्बर, बहुमूल्य आभूषण और सोनेका सुन्दर हार दिया ॥२९॥ बलरामजीने नीले वस्त्र पहन लिये और सोनेकी माला गलेमें डाल ली। वे अङ्गराग लगाकर, सुन्दर भूषणोंसे विभूषित होकर इस प्रकार शोभायमान हुए मानो इन्द्रका श्वेतवर्ण ऐरावत हाथी हो ॥३०॥ परीक्षित्! यमुनाजी अब भी बलरामजीके खींचे हुए मार्गसे बहती हैं और वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानो अनन्तशक्ति भगवान् बलरामजीका यश गान कर रही हों ॥ ३१ ॥ बलरामजीका चित्त व्रजवासिनी गोपियोंके माधुर्यसे इस प्रकार मुग्ध हो गया कि उन्हें समयका कुछ ध्यान ही न रहा, बहुत-सी रात्रियाँ एक रातके समान व्यतीत हो गयीं। इस प्रकार बलरामजी व्रजमें विहार करते रहे ॥ ३२ ॥

छाछठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक और काशिराजका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् बलरामजी नन्दबाबाके व्रजमें गये हुए थे, तब पीछेसे करूष देशके अज्ञानी राजा पौण्ड्रकने भगवान् श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजकर यह कहलाया कि 'भगवान् वासुदेव मैं हूँ' ॥ १ ॥ मूर्खलोग उसे बहकाया करते थे कि 'आप ही भगवान् वासुदेव हैं और जगत्की रक्षाके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।' इसका फल यह हुआ कि वह मूर्ख अपनेको ही भगवान् मान बैठा ॥ २ ॥ जैसे बच्चे आपसमें खेलते समय किसी बालकको ही राजा मान लेते हैं और वह राजाकी तरह उनके साथ व्यवहार करने लगता है, वैसे ही मन्दमति अज्ञानी पौण्ड्रकने अचिन्त्यगति भगवान् श्रीकृष्णकी लीला और रहस्य न जानकर द्वारकामें उनके पास दूत भेज दिया ॥ ३ ॥ पौण्ड्रकका दूत द्वारका आया और राजसभामें बैठे हुए कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उसने अपने राजाका यह सन्देश कह सुनाया—॥ ४ ॥ 'एकमात्र मैं ही वासुदेव हूँ। दूसरा कोई नहीं है। प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये मैंने ही अवतार ग्रहण किया है। तुमने झूठ-मूठ अपना नाम वासुदेव रख लिया है, अब उसे छोड़ दो ॥ ५ ॥ यदुवंशी ! तुमने मूर्खतावश मेरे चिह्न धारण कर रक्खे हैं। उन्हें छोड़कर मेरी शरणमें आओ और यदि मेरी बात तुम्हें स्वीकार न हो, तो मुझसे युद्ध करो' ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मन्दमति पौण्ड्रककी यह बहक सुनकर उग्रसेन आदि सभासद् जोर-जोरसे हँसने लगे ॥७॥ उन लोगोंकी हँसी समाप्त होनेके बाद भगवान् श्रीकृष्णने दूतसे कहा—'तुम जाकर अपने राजासे कह देना कि 'रे मूढ़ ! मैं अपने चक्र आदि चिह्न यों नहीं छोड़ूँगा। इन्हें मैं तुझपर छोड़ूँगा और केवल तुझपर ही नहीं, तेरे उन सब साथियोंपर भी, जिनके बहकानेसे तू इस प्रकार बहक रहा है। उस समय मूर्ख ! तू अपना मुँह छिपाकर—औंधे मुँह गिरकर चील, गीध, बटेर आदि मांसभोजी पक्षियोंसे घिरकर सो जायगा, और तू मेरा शरणदाता नहीं, उन कुत्तोंकी शरण होगा, जो तेरा मांस चींथ-चींथकर खा जायँगे' ॥८-९॥ परीक्षित् ! भगवान्का यह तिरस्कारपूर्ण संवाद लेकर पौण्ड्रकका दूत अपने स्वामीके पास गया और उसे कह सुनाया। इधर भगवान् श्रीकृष्णने भी रथपर सवार होकर काशीपर चढ़ाई कर दी। (क्योंकि वह करूषका राजा उन दिनों वहीं अपने मित्र काशिराजके पास रहता था) ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्णके आक्रमणका समाचार पाकर महारथी पौण्ड्रक भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ शीघ्र ही नगरसे बाहर निकल आया ॥११॥ काशीका राजा पौण्ड्रकका मित्र था। अतः वह भी उसकी सहायता करनेके लिये तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ उसके पीछे-पीछे आया। परीक्षित् ! अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकको देखा ॥ १२ ॥ पौण्ड्रकने भी शङ्ख, चक्र, तलवार, गदा, शार्ङ्गधनुष और श्रीवत्सचिह्न आदि धारण कर रक्खे थे। उसके वक्षःस्थलपर बनावटी कौस्तुभमणि और वनमाला भी लटक रही थी ॥ १३ ॥ उसने रेशमी पीले वस्त्र पहन रक्खे थे और रथकी ध्वजापर गरुड़का चिह्न भी लगा रक्खा था। उसके सिरपर अमूल्य मुकुट था और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे ॥ १४ ॥ उसका यह सारा-का-सारा वेष बनावटी था, मानो कोई अभिनेता रंगमंचपर अभिनय करनेके लिये आया हो। उसकी वेष-भूषा अपने समान देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खिलखिलाकर हँसने लगे ॥ १५ ॥ अब शत्रुओंने भगवान् श्रीकृष्णपर त्रिशूल, गदा, मुद्गर, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, तलवार, पट्टिश और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार किया ॥ १६ ॥ प्रलयके समय जिस प्रकार आग सभी प्रकारके प्राणियोंको जला देती है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णने भी गदा, तलवार, चक्र और बाण आदि शस्त्रास्त्रोंसे पौण्ड्रक तथा काशिराजके हाथी, रथ, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेनाको तहस-नहस कर दिया ॥ १७ ॥ वह रणभूमि

भगवान्‌के चक्रसे खण्ड-खण्ड हुए रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे और ऊँटोंसे पट गयी। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था, मानो वह भूतनाथ शङ्करकी भयङ्कर क्रीडास्थली हो। उसे देख-देखकर शूरवीरोंका उत्साह और भी बढ़ रहा था॥ १८॥

अब भगवान् श्रीकृष्णने पौण्ड्रकसे कहा—'रे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा कहलाया था कि मेरे चिह्न अस्त्र-शस्त्रादि छोड़ दो। सो अब मैं उन्हें तुझपर छोड़ रहा हूँ॥१९॥ तूने झूठमूठ मेरा नाम रख लिया है। अतः मूर्ख! अब मैं तुझसे उन नामोंको भी छुड़ाकर रहूँगा। रही तेरे शरणमें आनेकी बात; सो यदि मैं तुझसे युद्ध न कर सकूँगा तो तेरी शरण ग्रहण करूँगा'॥ २०॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार पौण्ड्रकका तिरस्कार करके अपने तीखे बाणोंसे उसके रथको तोड़-फोड़ डाला और चक्रसे उसका सिर वैसे ही उतार लिया, जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पहाड़की चोटियोंको उड़ा दिया था॥२१॥ इसी प्रकार भगवान्‌ने अपने बाणोंसे काशिनरेशका सिर भी धड़से ऊपर उड़ाकर काशीपुरीमें गिरा दिया जैसे वायु कमलका पुष्प गिरा देती है॥ २२॥ इस प्रकार अपने साथ डाह रखनेवाले पौण्ड्रकको और उसके सखा काशिनरेशको मारकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी राजधानी द्वारकामें लौट आये। उस समय सिद्धगण भगवान्‌की अमृतमयी कथाका गान कर रहे थे॥ २३॥ परीक्षित्! पौण्ड्रक भगवान्‌के रूपका, चाहे वह किसी भावसे हो, सदा चिन्तन करता रहता था। इससे उसके सारे बन्धन कट गये। वह भगवान्‌का बनावटी वेष धारण किये रहता था, इससे बार-बार उसीका स्मरण होनेके कारण वह भगवान्‌के सारूप्यको ही प्राप्त हुआ॥२४॥

इधर काशीमें राजमहलके दरवाजेपर एक कुण्डल-मण्डित मुण्ड गिरा देखकर लोग तरह-तरहका सन्देह करने लगे और सोचने लगे कि 'यह क्या है, यह किसका सिर है?'॥ २५॥ जब यह मालूम हुआ कि वह तो काशिनरेशका ही सिर है, तब रानियाँ, राजकुमार, राजपरिवारके लोग तथा नागरिक रो-रोकर विलाप करने लगे—'हा नाथ! हा राजन्! हाय-हाय! हमारा तो सर्वनाश हो गया'॥ २६॥ काशिनरेशका पुत्र था सुदक्षिण। उसने अपने पिताका अन्त्येष्टि-संस्कार करके मन-ही-मन यह निश्चय किया कि अपने पितृघातीको मारकर ही मैं पिताके ऋणसे उऋण हो सकूँगा। निदान वह अपने कुलपुरोहित और आचार्योंके साथ अत्यन्त एकाग्रतासे भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा॥ २७-२८॥ काशी नगरीमें उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने वर देनेको कहा। सुदक्षिणने यह अभीष्ट वर माँगा कि मुझे मेरे पितृघातीके वधका उपाय बतलाइये॥ २९॥ भगवान् शङ्करने कहा—'तुम ब्राह्मणोंके साथ मिलकर यज्ञके देवता ऋत्विग्भूत दक्षिणाग्निकी अभिचारविधिसे आराधना करो। इससे वह अग्नि प्रमथगणोंके साथ प्रकट होकर यदि ब्राह्मणोंके अभक्तपर प्रयोग करोगे तो वह तुम्हारा संकल्प सिद्ध करेगा।' भगवान् शङ्करकी ऐसी आज्ञा प्राप्त करके सुदक्षिणने अनुष्ठानके उपयुक्त नियम ग्रहण किये और वह भगवान् श्रीकृष्णके लिये अभिचार (मारणका पुरश्चरण) करने लगा॥ ३०-३१॥ अभिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्डसे अति भीषण अग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसके केश और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थे। आँखोंसे अंगारे बरस रहे थे॥३२॥ उग्र दाढ़ों और टेढ़ी भृकुटियोंके कारण उसके मुखसे क्रूरता टपक रही थी। वह अपनी जीभसे मुँहके दोनों कोने चाट रहा था। शरीर नंग-धड़ंग था। हाथमें त्रिशूल लिये हुए था, जिसे वह बार-बार घुमाता जाता था और उसमेंसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं॥३३॥ ताड़के पेड़के समान बड़ी-बड़ी टाँगें थीं। वह अपने वेगसे धरतीको कँपाता हुआ और ज्वालाओंसे दसों दिशाओंको दग्ध करता हुआ द्वारकाकी ओर दौड़ा और बात-की-बातमें द्वारकाके पास जा पहुँचा। उसके साथ बहुत-से भूत भी थे॥ ३४॥ उस अभिचारकी आगको बिल्कुल पास आयी हुई देख द्वारकावासी वैसे ही डर गये, जैसे जंगलमें आग लगनेपर हरिन डर जाते हैं॥ ३५॥ वे लोग भयभीत होकर भगवान्‌के पास दौड़े हुए आये; भगवान् उस समय सभामें चौसर खेल रहे थे। उन लोगोंने भगवान्‌से प्रार्थना की—तीनों लोकोंके एकमात्र स्वामी! द्वारका नगरी इस आगसे

भस्म होना चाहती है। आप हमारी रक्षा कीजिये। आपके सिवा इसकी रक्षा और कोई नहीं कर सकता ॥ ३६ ॥ शरणागतवत्सल भगवान्‌ने देखा कि हमारे स्वजन भयभीत हो गये हैं और पुकार-पुकारकर विकलताभरे स्वरसे हमारी प्रार्थना कर रहे हैं; तब उन्होंने हँसकर कहा—'डरो मत, मैं तुम लोगोंकी रक्षा करूँगा' ॥ ३७ ॥

परीक्षित्! भगवान् सबके बाहर-भीतरकी जाननेवाले हैं। वे जान गये कि यह काशीसे चली हुई माहेश्वरी कृत्या है। उन्होंने उसके प्रतिकारके लिये अपने पास ही विराजमान चक्रसुदर्शनको आज्ञा दी ॥ ३८ ॥ भगवान् मुकुन्दका प्यारा अस्त्र सुदर्शन-चक्र कोटि-कोटि सूर्योंके समान तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान जाज्वल्यमान है। उसके तेजसे आकाश, दिशाएँ और अन्तरिक्ष चमक उठे और अब उसने उस अभिचार-अग्निको कुचल डाला ॥ ३९ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके अस्त्र सुदर्शनचक्रकी शक्तिसे कृत्यारूप आगका मुँह टूट-फूट गया, उसका तेज नष्ट हो गया, शक्ति कुण्ठित हो गयी और वह वहाँसे लौटकर काशी आ गयी तथा उसने ऋत्विज आचार्योंके साथ सुदक्षिणको जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार उसका अभिचार उसीके विनाशका कारण हुआ ॥ ४० ॥ कृत्याके पीछे-पीछे सुदर्शनचक्र भी काशी पहुँचा। काशी बड़ी विशाल नगरी थी। वह बड़ी-बड़ी अटारियों, सभाभवन, बाजार, नगरद्वार, द्वारोंके शिखर, चहारदीवारियों, खजाने, हाथी, घोड़े, रथ और अन्नोंके गोदामसे सुसज्जित थी। भगवान् श्रीकृष्णके सुदर्शनचक्रने सारी काशीको जलाकर भस्म कर दिया और फिर वह परमानन्दमयी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया ॥ ४१-४२ ॥

जो मनुष्य पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके इस चरित्रको एकाग्रताके साथ सुनता या सुनाता है, वह सारे पापोंसे छूट जाता है ॥ ४३ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

द्विविदका उद्धार

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान् बलरामजी सर्वशक्तिमान् एवं सृष्टि-प्रलयकी सीमासे परे, अनन्त हैं। उनका स्वरूप, गुण, लीला आदि मन, बुद्धि और वाणीके विषय नहीं हैं। उनकी एक-एक लीला लोक-मर्यादासे विलक्षण है, अलौकिक है। उन्होंने और जो कुछ अद्भुत कर्म किये हों, उन्हें मैं फिर सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! द्विविद नामका एक वानर था। वह भौमासुरका सखा, सुग्रीवका मन्त्री और मैन्दका शक्तिशाली भाई था ॥ २ ॥ जब उसने सुना कि श्रीकृष्णने भौमासुरको मार डाला, तब वह अपने मित्रकी मित्रताके ऋणसे उऋण होनेके लिये राष्ट्र-विप्लव करनेपर उतारू हो गया। वह वानर बड़े-बड़े नगरों, गाँवों, खानों और अहीरोंकी बस्तियोंमें आग लगाकर उन्हें जलाने लगा ॥ ३ ॥ कभी वह बड़े-बड़े पहाड़ोंको उखाड़कर उनसे प्रान्त-के-प्रान्त चकनाचूर कर देता और विशेष करके ऐसा काम वह आनर्त (काठियावाड़) देशमें ही करता था। क्योंकि उसके मित्रको मारनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण उसी देशमें निवास करते थे ॥ ४ ॥ द्विविद वानरमें दस हजार हाथियोंका बल था। कभी-कभी वह दुष्ट समुद्रमें खड़ा हो जाता और हाथोंसे इतना जल उछालता कि समुद्रतटके देश डूब जाते ॥५॥ वह दुष्ट बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके आश्रमोंकी सुन्दर-सुन्दर लता-वनस्पतियोंको तोड़-मरोड़कर चौपट कर देता और उनके यज्ञसम्बन्धी अग्नि-कुण्डोंमें मलमूत्र डालकर अग्नियोंको दूषित कर देता ॥ ६ ॥ जैसे भृङ्गी नामका कीड़ा दूसरे कीड़ोंको ले जाकर अपने बिलमें बंद कर देता है, वैसे ही वह मदोन्मत्त वानर स्त्रियों और पुरुषोंको ले जाकर पहाड़ोंकी घाटियों तथा गुफाओंमें डाल देता। फिर बाहरसे बड़ी-बड़ी चट्टानें रखकर उनका मुँह बंद कर देता ॥ ७ ॥ इस प्रकार वह देशवासियोंका तो तिरस्कार करता ही, कुलीन स्त्रियोंको भी दूषित कर देता था।

एक दिन वह दुष्ट सुललित संगीत सुनकर रैवतक पर्वतपर गया ॥ ८ ॥

वहाँ उसने देखा कि यदुवंशशिरोमणि बलरामजी सुन्दर-सुन्दर युवतियोंके झुंडमें विराजमान हैं । उनका एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय है और वक्षःस्थलपर कमलोंकी माला लटक रही है ॥ ९ ॥ वे मधुपान करके मधुर संगीत गा रहे थे और उनके नेत्र आनन्दोन्मादसे विह्वल हो रहे थे । उनका शरीर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था, मानो कोई मदमत्त गजराज हो ॥ १० ॥ वह दुष्ट वानर वृक्षोंकी शाखाओंपर चढ़ जाता और उन्हें झकझोर देता । कभी स्त्रियोंके सामने आकर किलकारी भी मारने लगता ॥ ११ ॥ युवती स्त्रियाँ स्वभावसे ही चञ्चल और हास-परिहासमें रुचि रखनेवाली होती हैं । बलरामजीकी स्त्रियाँ उस वानरकी ढिठाई देखकर हँसने लगीं ॥ १२ ॥ अब वह वानर भगवान् बलरामजीके सामने ही उन स्त्रियोंकी अवहेलना करने लगा । वह उन्हें कभी अपनी गुदा दिखाता तो कभी भौंहें मटकाता, फिर कभी-कभी गरज-तरजकर मुँह बनाता, घुड़कता ॥ १३ ॥ वीरशिरोमणि बलरामजी उसकी यह चेष्टा देखकर क्रोधित हो गये । उन्होंने उसपर पत्थरका एक टुकड़ा फेंका । परन्तु द्विविदने उससे अपनेको बचा लिया और झपटकर मधुकलश उठा लिया तथा बलरामजीकी अवहेलना करने लगा । उस धूर्तने मधुकलशको तो फोड़ ही डाला, स्त्रियोंके वस्त्र भी फाड़ डाले और अब वह दुष्ट हँस-हँसकर बलरामजीको क्रोधित करने लगा ॥ १४-१५ ॥ परीक्षित् ! जब इस प्रकार बलवान् और मदोन्मत्त द्विविद बलरामजीको नीचा दिखाने तथा उनका घोर तिरस्कार करने लगा, तब उन्होंने उसकी ढिठाई देखकर और उसके द्वारा सताये हुए देशोंकी दुर्दशापर विचार करके उस शत्रुको मार डालनेकी इच्छासे क्रोधपूर्वक अपना हल-मूसल उठाया । द्विविद भी बड़ा बलवान् था । उसने अपने एक ही हाथसे शालका पेड़ उखाड़ लिया और बड़े वेगसे दौड़कर बलरामजीके सिर-पर उसे दे मारा । भगवान् बलराम पर्वतकी तरह अविचल खड़े रहे । उन्होंने अपने हाथसे उस वृक्षको सिरपर गिरते-गिरते पकड़ लिया और अपने सुनन्द नामक मूसलसे उसपर प्रहार किया । मूसल लगनेसे द्विविदका मस्तक फट गया और उससे खूनकी धारा बहने लगी । उस समय उसकी ऐसी शोभा हुई, मानो किसी पर्वतसे गेरूका सोता बह रहा हो । परन्तु द्विविदने अपने सिर फटनेकी कोई परवा नहीं की । उसने कुपित होकर एक दूसरा वृक्ष उखाड़ा, उसे झाड़-झूड़कर बिना पत्तेका कर दिया और फिर उससे बलरामजीपर बड़े जोरका प्रहार किया । बलरामजीने उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर दिये । इसके बाद द्विविदने बड़े क्रोधसे दूसरा वृक्ष चलाया, परन्तु भगवान् बलरामजीने उसे भी शतधा छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १६—२१ ॥ इस प्रकार वह उनसे युद्ध करता रहा । एक वृक्षके टूट जानेपर दूसरा वृक्ष उखाड़ता और उससे प्रहार करनेकी चेष्टा करता । इस तरह सब ओरसे वृक्ष उखाड़-उखाड़कर लड़ते-लड़ते उसने सारे वनको ही वृक्षहीन कर दिया ॥ २२ ॥ वृक्ष न रहे, तब द्विविदका क्रोध और भी बढ़ गया तथा वह बहुत चिढ़कर बलरामजीके ऊपर बड़ी-बड़ी चट्टानोंकी वर्षा करने लगा । परन्तु भगवान् बलरामजीने अपने मूसलसे उन सभी चट्टानोंको खेल-खेलमें ही चकनाचूर कर दिया ॥ २३ ॥ अन्तमें कपिराज द्विविद अपनी ताड़के समान लंबी बाँहोंसे घूँसा बाँधकर बलरामजीकी ओर झपटा और पास जाकर उसने उनकी छातीपर प्रहार किया ॥ २४ ॥ अब यदुवंशशिरोमणि बलरामजीने हल और मूसल अलग रख दिये तथा क्रुद्ध होकर दोनों हाथोंसे उसके जत्रुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया । इससे वह वानर खून उगलता हुआ धरतीपर गिर पड़ा ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! आँधी आनेपर जैसे जलमें डोंगी डगमगाने लगती है, वैसे ही उसके गिरनेसे बड़े-बड़े वृक्षों और चोटियोंके साथ सारा पर्वत हिल गया ॥ २६ ॥ आकाशमें देवतालोग 'जय-जय', सिद्ध लोग 'नमो नमः' और बड़े-बड़े ऋषि-मुनि 'साधु-साधु'के नारे लगाने और बलरामजीपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! द्विविदने जगत्में बड़ा उपद्रव मचा रक्खा था, अतः भगवान् बलरामजीने उसे इस प्रकार मार डाला और फिर वे द्वारकापुरीमें लौट आये । उस समय सभी पुरजन-परिजन भगवान् बलरामकी प्रशंसा कर रहे थे ॥ २८ ॥

अड़सठवाँ अध्याय

कौरवोंपर बलरामजीका कोप और साम्बका विवाह

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जाम्बवती-नन्दन साम्ब अकेले ही बहुत बड़े-बड़े वीरोंपर विजय प्राप्त करनेवाले थे। वे स्वयंवरमें स्थित दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाको हर लाये ॥ १ ॥ इससे कौरवोंको बड़ा क्रोध हुआ, वे बोले—'यह बालक बहुत ढीठ है। देखो तो सही, इसने हमलोगोंको नीचा दिखाकर बलपूर्वक हमारी कन्याका अपहरण कर लिया। वह तो इसे चाहती भी न थी ॥ २ ॥ अतः इस ढीठको पकड़कर बाँध लो। यदि यदुवंशीलोग रुष्ट भी होंगे तो वे हमारा क्या बिगाड़ लेंगे? वे लोग हमारी ही कृपासे हमारी ही दी हुई धन-धान्यसे परिपूर्ण पृथ्वीका उपभोग कर रहे हैं ॥३॥ यदि वे लोग अपने इस लड़केके बंदी होनेका समाचार सुनकर यहाँ आयेंगे, तो हमलोग उनका सारा घमंड चूर-चूर कर देंगे और उन लोगोंके मिजाज वैसे ही ठंडे हो जायँगे, जैसे संयमी पुरुषके द्वारा प्राणायाम आदि उपायोंसे वशमें की हुई इन्द्रियाँ ॥ ४ ॥ ऐसा विचार करके कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्योधनादि वीरोंने कुरुवंशके बड़े-बूढ़ोंकी अनुमति ली तथा साम्बको पकड़ लेनेकी तैयारी की ॥ ५ ॥

जब महारथी साम्बने देखा कि धृतराष्ट्रके पुत्र मेरा पीछा कर रहे हैं, तब वे एक सुन्दर धनुष चढ़ाकर सिंहके समान अकेले ही रणभूमिमें डट गये ॥ ६ ॥ इधर कर्णको मुखिया बनाकर कौरववीर धनुष चढ़ाये हुए साम्बके पास आ पहुँचे और क्रोधमें भरकर उनको पकड़ लेनेकी इच्छासे 'खड़ा रह ! खड़ा रह !' इस प्रकार ललकारते हुए बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७ ॥ परीक्षित् ! यदुनन्दन साम्ब अचिन्त्यैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र थे। कौरवोंके प्रहारसे वे उनपर चिढ़ गये, जैसे सिंह तुच्छ हरिनोंका पराक्रम देखकर चिढ़ जाता है ॥ ८ ॥ साम्बने अपने सुन्दर धनुषका टंकार करके कर्ण आदि छः वीरोंपर, जो अलग-अलग छः रथोंपर सवार थे, छः-छः बाणोंसे एक साथ अलग-अलग प्रहार किया ॥ ९ ॥ उनमेंसे चार-चार बाण उनके चार-चार घोड़ोंपर, एक-एक उनके सारथियोंपर और एक-एक उन महान् धनुषधारी रथी वीरोंपर छोड़ा। साम्बके इस अद्भुत हस्तलाघवको देखकर विपक्षी वीर भी मुक्त-कण्ठसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ १० ॥ इसके बाद उन छहों वीरोंने एक साथ मिलकर साम्बको रथहीन कर दिया। चार वीरोंने एक-एक बाणसे उनके चार घोड़ोंको मारा, एकने सारथीको और एकने साम्बका धनुष काट डाला ॥ ११ ॥ इस प्रकार कौरवोंने युद्धमें बड़ी कठिनाई और कष्टसे साम्बको रथहीन करके बाँध लिया। इसके बाद वे उन्हें तथा अपनी कन्या लक्ष्मणाको लेकर जय मनाते हुए हस्तिनापुर लौट आये ॥ १२ ॥

परीक्षित् ! नारदजीसे यह समाचार सुनकर यदुवंशियोंको बड़ा क्रोध आया। वे महाराज उग्रसेनकी आज्ञासे कौरवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारी करने लगे ॥ १३ ॥ बलरामजी कलहप्रधान कलियुगके सारे पाप-तापको मिटाने-वाले हैं। उन्होंने कुरुवंशियों और यदुवंशियोंके लड़ाई-झगड़ेको ठीक न समझा। यद्यपि यदुवंशी अपनी तैयारी पूरी कर चुके थे, फिर भी उन्होंने उन्हें शान्त कर दिया और स्वयं सूर्यके समान तेजस्वी रथपर सवार होकर हस्तिनापुर गये। उनके साथ कुछ ब्राह्मण और यदुवंशके बड़े-बूढ़े भी गये। उनके बीचमें बलरामजीकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो चन्द्रमा ग्रहोंसे घिरे हुए हों ॥१४-१५॥ हस्तिनापुर पहुँचकर बलरामजी नगरके बाहर एक उपवनमें ठहर गये और कौरवलोग क्या करना चाहते हैं, इस बातका पता लगानेके लिये उन्होंने उद्धवजीको धृतराष्ट्रके पास भेजा ॥ १६ ॥

उद्धवजीने कौरवोंकी सभामें जाकर धृतराष्ट्र, भीष्म-पितामह, द्रोणाचार्य, बाह्लीक और दुर्योधनकी विधिपूर्वक अभ्यर्थना-वन्दना की और निवेदन किया कि 'बलरामजी पधारे हैं' ॥ १७ ॥ अपने परम हितैषी और प्रियतम बलरामजीका आगमन सुनकर कौरवोंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे उद्धवजीका विधिपूर्वक सत्कार करके अपने हाथोंमें माङ्गलिक सामग्री लेकर बलरामजीकी अगवानी करने चले ॥ १८ ॥ फिर अपनी-अपनी

अवस्था और सम्बन्धके अनुसार सब लोग बलरामजीसे मिले तथा उनके सत्कारके लिये उन्हें गौ अर्पण की एवं अर्घ्य प्रदान किया। उनमें जो लोग भगवान् बलरामजीका प्रभाव जानते थे, उन्होंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर उन लोगोंने परस्पर एक-दूसरेका कुशल-मङ्गल पूछा और यह सुनकर कि सब भाई-बन्धु सकुशल हैं, बलरामजीने बड़ी धीरता और गम्भीरताके साथ यह बात कही—॥ २० ॥ 'सर्वसमर्थ राजाधिराज महाराज उग्रसेनने तुमलोगोंको एक आज्ञा दी है। उसे तुमलोग एकाग्रता और सावधानीके साथ सुनो और अविलम्ब उसका पालन करो ॥ २१ ॥ उग्रसेनजीने कहा है—हम जानते हैं कि तुमलोगोंने कईयोंने मिलकर अधर्मसे अकेले धर्मात्मा साम्बको हरा दिया और बंदी कर लिया है। यह सब हम इसलिये सह लेते हैं कि हम सम्बन्धियोंमें परस्पर फूट न पड़े, एकता बनी रहे। (अतः अब झगड़ा मत बढ़ाओ, साम्बको उसकी नववधूके साथ हमारे पास भेज दो)॥२२॥

परीक्षित् ! बलरामजीकी वाणी वीरता, शूरता और बल-पौरुषके उत्कर्षसे परिपूर्ण और उनकी शक्तिके अनुरूप थी। यह बात सुनकर कुरुवंशी क्रोधसे तिलमिला उठे। वे कहने लगे—॥ २३ ॥ 'अहो, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है! सचमुच कालकी चालको कोई टाल नहीं सकता। तभी तो आज पैरोंकी जूती उस सिरपर चढ़ना चाहती है, जो श्रेष्ठ मुकुटसे सुशोभित है ॥ २४ ॥ इन यदुवंशियोंके साथ किसी प्रकार हमलोगोंने विवाह-सम्बन्ध कर लिया। ये हमारे साथ सोने-बैठने और एक पंक्तिमें खाने लगे। हमलोगोंने ही इन्हें राजसिंहासन देकर राजा बनाया और अपने बराबर बना लिया ॥ २५ ॥ ये यदुवंशी चँवर, पंखा, शङ्ख, श्वेतछत्र, मुकुट, राजसिंहासन और राजोचित शय्याका उपयोग-उपभोग इसलिये कर रहे हैं कि हमने जान-बूझकर इस विषयमें उपेक्षा कर रक्खी है ॥ २६ ॥ बस-बस, अब हो चुका। यदुवंशियोंके पास अब राजचिह्न रहनेकी आवश्यकता नहीं, उन्हें उनसे छीन लेना चाहिये। जैसे साँपको दूध पिलाना पिलानेवालेके लिये ही घातक है, वैसे ही हमारे दिये हुए राजचिह्नोंको लेकर ये यदुवंशी हमसे ही विपरीत हो रहे हैं। देखो तो भला हमारे ही कृपा-प्रसादसे तो इनकी बढ़ती हुई और अब ये निर्लज्ज होकर हमींपर हुकुम चलाने चले हैं। शोक है! शोक है!॥ २७ ॥ जैसे सिंहका ग्रास कभी भेड़ा नहीं छीन सकता, वैसे ही यदि भीष्म, द्रोण, अर्जुन आदि कौरववीर जान-बूझकर न छोड़ दें, न दे दें तो स्वयं देवराज इन्द्र भी किसी वस्तुका उपभोग कैसे कर सकते हैं? ॥ २८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कुरुवंशी अपनी कुलीनता, बान्धवों-परिवारवालों (भीष्मादि) के बल और धनसम्पत्तिके घमंडमें चूर हो रहे थे। उन्होंने साधारण शिष्टाचारकी भी परवा नहीं की और वे भगवान् बलरामजीको इस प्रकार दुर्वचन कहकर हस्तिनापुर लौट गये ॥ २९ ॥ बलरामजीने कौरवोंकी दुष्टता—अशिष्टता देखी और उनके दुर्वचन भी सुने। अब उनका चेहरा क्रोध-से तमतमा उठा। उस समय उनकी ओर देखातक नहीं जाता था। वे बार-बार जोर-जोरसे हँसकर कहने लगे—॥३०॥ 'सच है, जिन दुष्टोंको अपनी कुलीनता, बलपौरुष और धनका घमंड हो जाता है, वे शान्ति नहीं चाहते। उनको दमन करनेका, रास्तेपर लानेका उपाय समझाना-बुझाना नहीं, बल्कि दण्ड देना है—ठीक वैसे ही, जैसे पशुओंको ठीक करनेके लिये डंडेका प्रयोग आवश्यक होता है ॥ ३१ ॥ भला, देखो तो सही—सारे यदुवंशी और श्रीकृष्ण भी क्रोधसे भरकर लड़ाईके लिये तैयार हो रहे थे। मैं उन्हें शनैः-शनैः समझा-बुझाकर इन लोगोंको शान्त करनेके लिये, सुलह करनेके लिये यहाँ आया ॥ ३२ ॥ फिर भी ये मूर्ख ऐसी दुष्टता कर रहे हैं! इन्हें शान्ति प्यारी नहीं, कलह प्यारी है। ये इतने घमंडी हो रहे हैं कि बार-बार मेरा तिरस्कार करके गालियाँ बक गये हैं ॥ ३३ ॥ ठीक है, भाई! ठीक है। पृथ्वीके राजाओंकी तो बात ही क्या, त्रिलोकीके स्वामी इन्द्र आदि लोकपाल जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे उग्रसेन राजाधिराज नहीं हैं; वे तो केवल भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंके ही स्वामी हैं! ॥ ३४ ॥ क्यों? जो सुधर्मासभाको अधिकारमें करके उसमें विराजते हैं और जो देवताओंके वृक्ष पारिजातको उखाड़कर ले आते और उसका उपभोग करते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण भी राज-सिंहासनके अधिकारी नहीं हैं! अच्छी बात है! ॥ ३५ ॥ 'सारे

जगत्की स्वामिनी भगवती लक्ष्मी स्वयं जिनके चरण-कमलोंकी उपासना करती हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र छत्र, चँवर आदि राजोचित सामग्रियोंको नहीं रख सकते ॥ ३६ ॥ ठीक है भाई ! जिनके चरणकमलोंकी धूल संत पुरुषोंके द्वारा सेवित गङ्गा आदि तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाली है, सारे लोकपाल अपने-अपने श्रेष्ठ मुकुटपर जिनके चरणकमलोंकी धूल धारण करते हैं; ब्रह्मा, शङ्कर, मैं और लक्ष्मीजी जिनकी कला-की भी कला हैं और जिनके चरणोंकी धूल सदा-सर्वदा धारण करते हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णके लिये भला; राजसिंहासन कहाँ रक्खा है ! ॥३७॥ बेचारे यदुवंशी तो कौरवोंका दिया हुआ पृथ्वीका एक टुकड़ा भोगते हैं । क्या खूब ! हमलोग जूती हैं और ये कुरुवंशी स्वयं सिर हैं ॥ ३८ ॥ ये लोग ऐश्वर्यसे उन्मत्त, घमंडी कौरव पागल-सरीखे हो रहे हैं । इनकी एक-एक बात कटुतासे भरी और बेसिर-पैरकी है । मेरे-जैसा पुरुष—जो इनका शासन कर सकता है, इन्हें दण्ड देकर इनके होश ठिकाने ला सकता है—भला, इनकी बातोंको कैसे सहन कर सकता है ? ॥ ३९ ॥ आज मैं सारी पृथ्वीको कौरवहीन कर डालूँगा, इस प्रकार कहते-कहते बलरामजी क्रोधसे ऐसे भर गये, मानो त्रिलोकीको भस्म कर देंगे । वे अपना हल लेकर खड़े हो गये ॥४०॥ उन्होंने उसकी नोकसे बार-बार चोट करके हस्तिनापुर-को उखाड़ लिया और उसे डुबानेके लिये बड़े क्रोधसे गङ्गाजीकी ओर खींचने लगे ॥ ४१ ॥

हलसे खींचनेपर हस्तिनापुर इस प्रकार काँपने लगा, मानो जलमें कोई नाव डगमगा रही हो । जब कौरवोंने देखा कि हमारा नगर तो गङ्गाजीमें गिर रहा है, तब वे घबड़ा उठे ॥ ४२ ॥ फिर उन लोगोंने लक्ष्मणाके साथ साम्बको आगे किया और अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये कुटुम्बके साथ हाथ जोड़कर सर्वशक्तिमान् उन्हीं भगवान् बलरामजीकी शरणमें गये ॥ ४३ ॥ और कहने लगे—'लोकाभिराम बलरामजी! आप सारे जगत्-के आधार शेषजी हैं । हम आपका प्रभाव नहीं जानते। प्रभो ! हमलोग मूढ़ हो रहे हैं, हमारी बुद्धि बिगड़ गयी है; इसलिये आप हमलोगोंका अपराध क्षमा कर दीजिये ॥ ४४ ॥ आप जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके एकमात्र कारण हैं और स्वयं निराधार स्थित हैं । सर्वशक्तिमान् प्रभो ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि कहते हैं कि आप खिलाड़ी हैं और ये सब-के-सब लोक आपके खिलौने हैं ॥ ४५ ॥ अनन्त ! आपके सहस्र-सहस्र सिर हैं और आप खेल-खेलमें ही इस भूमण्डलको अपने सिरपर रक्खे रहते हैं । जब प्रलयका समय आता है, तब आप सारे जगत्को अपने भीतर लीन कर लेते हैं और केवल आप ही बचे रहकर अद्वितीयरूपसे शयन करते हैं ॥ ४६ ॥ भगवन् ! आप जगत्की स्थिति और पालनके लिये विशुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण किये हुए हैं । आपका यह क्रोध द्वेष या मत्सरके कारण नहीं है । यह तो समस्त प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये है ॥ ४७ ॥ समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले सर्वप्राणिस्वरूप अविनाशी भगवन् ! आपको हम नमस्कार करते हैं । समस्त विश्वके रचयिता देव ! हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं । हम आपकी शरणमें हैं । आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये' ॥ ४८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कौरवोंका नगर डगमगा रहा था और वे अत्यन्त घबराहटमें पड़े हुए थे । जब सब-के-सब कुरुवंशी इस प्रकार भगवान् बलरामजीकी शरणमें आये और उनकी स्तुति-प्रार्थना की, तब वे प्रसन्न हो गये और 'डरो मत' ऐसा कहकर उन्हें अभयदान दिया ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! दुर्योधन अपनी पुत्री लक्ष्मणासे बड़ा प्रेम करता था । उसने दहेजमें साठ-साठ वर्षके बारह सौ हाथी, दस हजार घोड़े, सूर्यके समान चमकते हुए सोनेके छः हजार रथ और सोनेके हार पहनी हुई एक हजार दासियाँ दीं ॥ ५०-५१ ॥ यदुवंशशिरोमणि भगवान् बलराम-जीने वह सब दहेज स्वीकार किया और नवदम्पति लक्ष्मणा तथा साम्बके साथ कौरवोंका अभिनन्दन स्वीकार करके द्वारकाकी यात्रा की ॥ ५२ ॥ अब बलरामजी द्वारकापुरीमें पहुँचे और अपने प्रेमी तथा समाचार जाननेके लिये उत्सुक बन्धु-बान्धवोंसे मिले । उन्होंने यदुवंशियोंकी भरी सभामें अपना वह सारा चरित्र कह सुनाया, जो हस्तिनापुरमें उन्होंने कौरवोंके

साथ किया था ॥ ५३ ॥ परीक्षित् ! यह हस्तिनापुर आज भी दक्षिणकी ओर ऊँचा और गङ्गाजीकी ओर कुछ झुका हुआ है और इस प्रकार यह भगवान् बलरामजीके पराक्रमकी सूचना दे रहा है ॥ ५४ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

देवर्षि नारदजीका भगवान्‌की गृहचर्या देखना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब देवर्षि नारदने सुना कि भगवान् श्रीकृष्णने नरकासुर (भौमासुर) को मारकर अकेले ही हजारों राजकुमारियोंके साथ विवाह कर लिया है, तब उनके मनमें भगवान्‌की रहन-सहन देखनेकी बड़ी अभिलाषा हुई ॥ १ ॥ वे सोचने लगे—अहो, यह कितने आश्चर्यकी बात है कि भगवान् श्रीकृष्णने एक ही शरीरसे एक ही समय सोलह हजार महलोंमें अलग-अलग सोलह हजार राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया ॥ २ ॥ देवर्षि नारद इस उत्सुकतासे प्रेरित होकर भगवान्‌की लीला देखनेके लिये द्वारका आ पहुँचे । वहाँके उपवन और उद्यान खिले हुए रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे वृक्षोंसे परिपूर्ण थे, उनपर तरह-तरहके पक्षी चहक रहे थे और भौंरे गुञ्जार कर रहे थे ॥ ३ ॥ निर्मल जलसे भरे सरोवरोंमें नीले, लाल और सफेद रंगके भाँति-भाँतिके कमल खिले हुए थे । कुमुद (कोईं) और नवजात कमलोंकी मानो भीड़ ही लगी हुई थी । उनमें हंस और सारस कलरव कर रहे थे ॥ ४ ॥ द्वारकापुरीमें स्फटिकमणि और चाँदीके नौ लाख महल थे । वे फर्श आदिमें जड़ी हुई महामरकतमणि (पन्ने) की प्रभासे जगमगा रहे थे और उनमें सोने तथा हीरोंकी बहुत-सी सामग्रियाँ शोभायमान थीं ॥ ५ ॥ उसके राजपथ (बड़ी-बड़ी सड़कें), गलियाँ, चौराहे और बाजार बहुत ही सुन्दर-सुन्दर थे । घुड़साल आदि पशुओंके रहनेके स्थान, सभा-भवन और देव-मन्दिरोंके कारण उसका सौन्दर्य और भी चमक उठा था । उसकी सड़कों, चौक, गली और दरवाजोंपर छिड़काव किया गया था । छोटी-छोटी झंडियाँ और बड़े-बड़े झंडे जगह-जगह फहरा रहे थे, जिनके कारण रास्तोंपर धूप नहीं आ पाती थी ॥ ६ ॥

उसी द्वारका नगरीमें भगवान् श्रीकृष्णका बहुत ही सुन्दर अन्तःपुर था । बड़े-बड़े लोकपाल उसकी पूजा-प्रशंसा किया करते थे । उसका निर्माण करनेमें विश्वकर्माने अपना सारा कला-कौशल, सारी कारीगरी लगा दी थी ॥ ७ ॥ उस अन्तःपुर (रनिवास) में भगवान्‌की रानियोंके सोलह हजारसे अधिक महल शोभायमान थे, उनमेंसे एक बड़े भवनमें देवर्षि नारदजीने प्रवेश किया ॥ ८ ॥ उस महलमें मूँगोंके खंभे, वैदूर्यके उत्तम-उत्तम छज्जे तथा इन्द्रनीलमणिकी दीवारें जगमगा रही थीं और वहाँकी गचें भी ऐसी इन्द्रनील मणियोंसे बनी हुई थीं, जिनकी चमक किसी प्रकार कम नहीं होती ॥ ९ ॥ विश्वकर्माने बहुत-से ऐसे चँदोवे बना रक्खे थे, जिनमें मोतीकी लड़ियोंकी झालरें लटक रही थीं । हाथी-दाँतके बने हुए आसन और पलँग थे, जिनमें श्रेष्ठ-श्रेष्ठ मणि जड़ी हुई थी ॥ १० ॥ बहुत-सी दासियाँ गलेमें सोनेका हार पहने और सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर तथा बहुत-से सेवक भी जामा-पगड़ी और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहने तथा जड़ाऊ कुण्डल धारण किये अपने-अपने काममें व्यस्त थे और महलकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ११ ॥ अनेकों रत्न-प्रदीप अपनी जगमगाहटसे उसका अन्धकार दूर कर रहे थे । अगरकी धूप देनेके कारण झरोखोंसे धूआँ निकल रहा था । उसे देखकर रंग-बिरंगे मणिमय छज्जोंपर बैठे हुए मोर बादलोंके भ्रमसे कूक-कूककर नाचने लगते ॥ १२ ॥ देवर्षि नारदजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण उस महलकी स्वामिनी रुक्मिणीजीके साथ बैठे हुए हैं और वे अपने हाथों भगवान्‌को सोनेकी डाँड़ीवाले चँवरसे हवा कर रही हैं । यद्यपि उस महलमें रुक्मिणीजीके समान ही गुण, रूप, अवस्था और वेष-भूषावाली सहस्रों दासियाँ भी हर समय विद्यमान रहती थीं ॥ १३ ॥

नारदजीको देखते ही समस्त धार्मिकोंके मुकुटमणि

भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणीजीके पलँगसे सहसा उठ खड़े हुए। उन्होंने देवर्षि नारदके युगलचरणोंमें मुकुटयुक्त सिरसे प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन्हें अपने आसनपर बैठाया ॥ १४ ॥ परीक्षित्! इसमें सन्देह नहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण चराचर जगत्के परम गुरु हैं और उनके चरणोंका धोवन गङ्गाजल सारे जगत्को पवित्र करनेवाला है। फिर भी वे परमभक्तवत्सल और संतोंके परम आदर्श, उनके स्वामी हैं। उनका एक असाधारण नाम ब्रह्मण्यदेव भी है। वे ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव मानते हैं। उनका यह नाम उनके गुणके अनुरूप एवं उचित ही है। तभी तो भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही नारदजीके पाँव पखारे और उनका चरणामृत अपने सिरपर धारण किया ॥ १५ ॥ नर-शिरोमणि नरके सखा सर्वदर्शी पुराणपुरुष भगवान् नारायणने शास्त्रोक्त विधिसे देवर्षिशिरोमणि भगवान् नारदकी पूजा की। इसके बाद अमृतसे भी मीठे किन्तु थोड़े शब्दोंमें उनका स्वागत-सत्कार किया और फिर कहा—'प्रभो! आप तो स्वयं समग्र ज्ञान, वैराग्य, धर्म, यश, श्री और ऐश्वर्यसे पूर्ण हैं। आपकी हम क्या सेवा करें?' ॥ १६ ॥

देवर्षि नारदने कहा—भगवन्! आप समस्त लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आपके लिये यह कोई नयी बात नहीं है कि आप अपने भक्तजनोंसे प्रेम करते हैं और दुष्टोंको दण्ड देते हैं। परमयशस्वी प्रभो! आपने जगत्की स्थिति और रक्षाके द्वारा समस्त जीवोंका कल्याण करनेके लिये स्वेच्छासे अवतार ग्रहण किया है। भगवन्! यह बात हम भलीभाँति जानते हैं ॥ १७ ॥ यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मुझे आपके चरणकमलोंके दर्शन हुए हैं। आपके ये चरणकमल सम्पूर्ण जनताको परम साम्य, मोक्ष देनेमें समर्थ हैं। जिनके ज्ञानकी कोई सीमा ही नहीं है वे ब्रह्मा, शङ्कर आदि सदा-सर्वदा अपने हृदयमें उनका चिन्तन करते रहते हैं। वास्तवमें वे श्रीचरण ही संसाररूप कूएँमें गिरे हुए लोगोंके बाहर निकलनेके लिये अवलम्बन हैं। आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपके उन चरणकमलोंकी स्मृति सर्वदा बनी रहे और मैं चाहे जहाँ जैसे रहूँ, उनके ध्यानमें तन्मय रहूँ ॥ १८ ॥

परीक्षित्! इसके बाद देवर्षि नारदजी योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका रहस्य जाननेके लिये उनकी दूसरी पत्नीके महलमें गये ॥ १९ ॥ वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया और उद्धवजीके साथ चौसर खेल रहे हैं। वहाँ भी भगवान्ने खड़े होकर उनका स्वागत किया, आसनपर बैठाया और विविध सामग्रियोंद्वारा बड़ी भक्तिसे उनकी अर्चा-पूजा की ॥ २० ॥ इसके बाद भगवान्ने नारदजीसे अनजानकी तरह पूछा—'आप यहाँ कब पधारे! आप तो परिपूर्ण आत्माराम—आप्तकाम हैं और हमलोग हैं अपूर्ण। ऐसी अवस्थामें भला हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं ॥ २१ ॥ फिर भी ब्रह्मस्वरूप नारदजी! आप कुछ-न-कुछ आज्ञा अवश्य कीजिये और हमें सेवाका अवसर देकर हमारा जन्म सफल कीजिये।' नारदजी यह सब देख-सुनकर चकित और विस्मित हो रहे थे। वे वहाँसे उठकर चुपचाप दूसरे महलमें चले गये ॥२२॥ उस महलमें भी देवर्षि नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने नन्हे-नन्हे बच्चोंको दुलार रहे हैं। वहाँसे फिर दूसरे महलमें गये तो क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण स्नानकी तैयारी कर रहे हैं ॥ २३ ॥ (इसी प्रकार देवर्षि नारदने विभिन्न महलोंमें भगवान्को भिन्न-भिन्न कार्य करते देखा।) कहीं वे यज्ञकुण्डोंमें हवन कर रहे हैं तो कहीं पञ्चमहायज्ञोंसे देवता आदिकी आराधना कर रहे हैं। कहीं ब्राह्मणोंको भोजन करा रहे हैं, तो कहीं यज्ञका अवशेष स्वयं भोजन कर रहे हैं ॥ २४ ॥ कहीं सन्ध्या कर रहे हैं, तो कहीं मौन होकर गायत्रीका जप कर रहे हैं। कहीं हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर उनको चलानेके पैंतरे बदल रहे हैं ॥२५॥ कहीं घोड़े, हाथी अथवा रथपर सवार होकर श्रीकृष्ण विचरण कर रहे हैं। कहीं पलंगपर सो रहे हैं, तो कहीं वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ २६ ॥ किसी महलमें उद्धव आदि मन्त्रियोंके साथ किसी गम्भीर विषयपर परामर्श कर रहे हैं, तो कहीं उत्तमोत्तम वाराङ्गनाओंसे घिरकर जलक्रीडा कर रहे हैं ॥ २७ ॥ कहीं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणसे सुसज्जित गौओंका

दान कर रहे हैं, तो कहीं मङ्गलमय इतिहास-पुराणोंका श्रवण कर रहे हैं ॥ २८ ॥ कहीं किसी पत्नीके महलमें अपनी प्राणप्रियाके साथ हास्य-विनोदकी बातें करके हँस रहे हैं, तो कहीं धर्मका सेवन कर रहे हैं। कहीं अर्थका सेवन कर रहे हैं—धन-संग्रह और धनवृद्धिके कार्यमें लगे हुए हैं, तो कहीं धर्मानुकूल गृहस्थोचित विषयोंका उपभोग कर रहे हैं ॥ २९ ॥ कहीं एकान्तमें बैठकर प्रकृतिसे अतीत पुराण-पुरुषका ध्यान कर रहे हैं, तो कहीं गुरुजनोंको इच्छित भोग-सामग्री समर्पित करके उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हैं ॥ ३० ॥ देवर्षि नारदने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण किसीके साथ युद्धकी बात कर रहे हैं, तो किसीके साथ सन्धिकी। कहीं भगवान् बलरामजीके साथ बैठकर सत्पुरुषोंके कल्याणके बारेमें विचार कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ कहीं उचित समयपर पुत्र और कन्याओंका उनके सदृश पत्नी और वरोंके साथ बड़ी धूमधामसे विधिवत् विवाह कर रहे हैं ॥३२॥ कहीं घरसे कन्याओंको विदा कर रहे हैं, तो कहीं बुलानेकी तैयारीमें लगे हुए हैं। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके इन विराट् उत्सवोंको देखकर सभी लोग विस्मित-चकित हो जाते थे ॥ ३३ ॥ कहीं बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा समस्त देवताओंका यजन-पूजन और कहीं कूएँ, बगीचे तथा मठ आदि बनवाकर इष्टापूर्त धर्मका आचरण कर रहे हैं ॥ ३४ ॥ कहीं श्रेष्ठ यादवोंसे घिरे हुए सिन्धुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर मृगया कर रहे हैं, और उसमें यज्ञके लिये मेध्य पशुओंका ही वध कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ और कहीं प्रजामें तथा अन्तःपुरके महलोंमें वेष बदलकर छिपेरूपसे सबका अभिप्राय जाननेके लिये विचरण कर रहे हैं। क्यों न हो, भगवान् योगेश्वर जो हैं ॥ ३६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मनुष्यकी-सी लीला करते हुए हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णकी योगमायाका वैभव देखकर देवर्षि नारदजीने मुसकराते हुए उनसे कहा—॥ ३७ ॥ 'योगेश्वर! आत्मदेव! आपकी योगमाया ब्रह्माजी आदि बड़े-बड़े मायावियोंके लिये भी अगम्य है। परन्तु हम आपकी योगमायाका रहस्य जानते हैं; क्योंकि आपके चरणकमलोंकी सेवा करनेसे वह स्वयं ही हमारे सामने प्रकट हो गयी है ॥ ३८ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव भगवन्! चौदहों भुवन आपके सुयशसे परिपूर्ण हो रहे हैं। अब मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपकी त्रिभुवन-पावनी लीलाका गान करता हुआ उन लोकोंमें विचरण करूँ' ॥ ३९ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवर्षि नारदजी! मैं ही धर्मका उपदेशक, पालन करनेवाला और उसका अनुष्ठान करनेवालोंका अनुमोदनकर्ता भी हूँ। इसलिये संसारको धर्मकी शिक्षा देनेके उद्देश्यसे ही मैं इस प्रकार धर्मका आचरण करता हूँ। मेरे प्यारे पुत्र! तुम मेरी यह योगमाया देखकर मोहित मत होना ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ धर्मोंका आचरण कर रहे थे। यद्यपि वे एक ही हैं, फिर भी देवर्षि नारदजीने उनको उनकी प्रत्येक पत्नीके महलमें अलग-अलग देखा ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है। उनकी योगमायाका परम ऐश्वर्य बार-बार देखकर देवर्षि नारदके विस्मय और कौतूहलकी सीमा न रही ॥४२॥ द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्ण गृहस्थकी भाँति ऐसा आचरण करते थे, मानो धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थोंमें उनकी बड़ी श्रद्धा हो। उन्होंने देवर्षि नारदका बहुत सम्मान किया। वे अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए वहाँसे चले गये ॥ ४३ ॥ राजन्! भगवान् नारायण सारे जगत्‌के कल्याणके लिये अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाको स्वीकार करते हैं और इस प्रकार मनुष्योंकी-सी लीला करते हैं। द्वारकापुरीमें सोलह हजारसे भी अधिक पत्नियाँ अपनी सलज्ज एवं प्रेमभरी चितवन तथा मन्द-मन्द मुसकानसे उनकी सेवा करती थीं और वे उनके साथ विहार करते थे ॥ ४४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जो लीलाएँ की हैं, उन्हें दूसरा कोई नहीं कर सकता। परीक्षित्! वे विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके परम कारण हैं। जो उनकी लीलाओंका गान, श्रवण और गान-श्रवण करनेवालोंका अनुमोदन करता है, उसे मोक्षके मार्गस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें परम प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ४५ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णकी नित्यचर्या और उनके पास जरासन्धके कैदी राजाओंके दूतका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब सवेरा होने लगता, कुक्कुट (मुरगे) बोलने लगते, तब वे श्रीकृष्ण-पत्नियाँ, जिनके कण्ठमें श्रीकृष्णने अपनी भुजा डाल रखी है, उनके बिछोहकी आशङ्कासे व्याकुल हो जातीं और उन मुरगोंको कोसने लगतीं ॥ १ ॥ उस समय पारिजातकी सुगन्धसे सुवासित भीनी-भीनी वायु बहने लगती । भौंरे तालस्वरसे अपने सङ्गीतकी तान छेड़ देते । पक्षियोंकी नींद उचट जाती और वे वंदीजनोंकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णको जगानेके लिये मधुर स्वरसे कलरव करने लगते ॥ २ ॥ रुक्मिणीजी अपने प्रियतमके भुजपाशसे बँधी रहनेपर भी आलिङ्गन छूट जानेकी आशङ्कासे अत्यन्त सुहावने और पवित्र ब्राह्ममुहूर्तको भी असह्य समझने लगती थीं ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें ही उठ जाते और हाथ-मुँह धोकर अपने मायातीत आत्मस्वरूपका ध्यान करने लगते । उस समय उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठता था ॥४॥ परीक्षित् ! भगवान्का वह आत्मस्वरूप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित एक, अखण्ड है । क्योंकि उसमें किसी प्रकारकी उपाधि या उपाधिके कारण होनेवाला अन्य वस्तुका अस्तित्व नहीं है । और यही कारण है कि वह अविनाशी सत्य है । जैसे चन्द्रमा-सूर्य आदि नेत्र-इन्द्रियके द्वारा और नेत्र-इन्द्रिय चन्द्रमा-सूर्य आदिके द्वारा प्रकाशित होती है, वैसे वह आत्म-स्वरूप दूसरेके द्वारा प्रकाशित नहीं, स्वयंप्रकाश है । इसका कारण यह है कि अपने स्वरूपमें ही सदा-सर्वदा और कालकी सीमाके परे भी एकरस स्थित रहनेके कारण अविद्या उसका स्पर्श भी नहीं कर सकती । इसीसे प्रकाश्य-प्रकाशकभाव उसमें नहीं है । जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी कारणभूता ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति और रुद्रशक्तियोंके द्वारा केवल इस बातका अनुमान हो सकता है कि वह स्वरूप एकरस सत्तारूप और आनन्दस्वरूप है । उसीको समझानेके लिये 'ब्रह्म' नामसे कहा जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण अपने उसी आत्मस्वरूपका प्रतिदिन ध्यान करते ॥ ५ ॥ इसके बाद वे विधिपूर्वक निर्मल और पवित्र जलमें स्नान करते । फिर शुद्ध धोती पहनकर, दुपट्टा ओढ़कर यथाविधि नित्यकर्म सन्ध्या-वन्दन आदि करते । इसके बाद हवन करते और मौन होकर गायत्रीका जप करते । क्यों न हो, वे सत्पुरुषोंके पात्र आदर्श जो हैं ॥ ६ ॥ इसके बाद सूर्योदय होनेके समय सूर्योपस्थान करते और अपने कलास्वरूप देवता, ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करते । फिर कुलके बड़े-बूढ़ों और ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा करते । इसके बाद परम मनस्वी श्रीकृष्ण दुधार, पहले-पहल ब्यायी हुई, बछड़ोंवाली सीधी-शान्त गौओंका दान करते । उस समय उन्हें सुन्दर वस्त्र और मोतियोंकी माला पहना दी जाती । सींगमें सोना और खुरोंमें चाँदी मढ़ दी जाती । वे ब्राह्मणोंको वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित करके रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिलके साथ प्रतिदिन तेरह हजार चौरासी गौएँ इस प्रकार दान करते ॥ ७–९ ॥ तदनन्तर अपनी विभूतिरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, कुलके बड़े-बूढ़े, गुरुजन और समस्त प्राणियोंको प्रणाम करके माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करते ॥ १० ॥ परीक्षित् ! यद्यपि भगवान्के शरीरका सहज सौन्दर्य ही मनुष्य-लोकका अलङ्कार है, फिर भी वे अपने पीताम्बरादि दिव्य वस्त्र, कौस्तुभादि आभूषण, पुष्पोंके हार और चन्दनादि दिव्य अङ्गरागसे अपनेको आभूषित करते ॥ ११ ॥ इसके बाद वे घी और दर्पणमें अपना मुखारविन्द देखते; गाय, बैल, ब्राह्मण और देव-प्रतिमाओंका दर्शन करते । फिर पुरवासी और अन्तःपुरमें रहनेवाले चारों वर्णोंके लोगोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते और फिर अपनी अन्य (ग्रामवासी) प्रजाकी कामनापूर्ति करके उसे सन्तुष्ट करते और इन सबको प्रसन्न देखकर स्वयं बहुत ही आनन्दित होते ॥ १२ ॥ वे पुष्पमाला, ताम्बूल, चन्दन और अङ्गराग आदि वस्तुएँ पहले ब्राह्मण, स्वजन-सम्बन्धी, मन्त्री और रानियोंको बाँट देते; और उनसे बची हुई स्वयं अपने काममें लाते ॥ १३ ॥ भगवान् यह सब करते होते, तबतक दारुक नामका सारथी

सुग्रीव आदि घोड़ोंसे जुता हुआ अत्यन्त अद्भुत रथ ले आता और प्रणाम करके भगवान्‌के सामने खड़ा हो जाता ॥ १४ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सात्यकि और उद्धवजीके साथ अपने हाथसे सारथीका हाथ पकड़कर रथपर सवार होते—ठीक वैसे ही जैसे भुवनभास्कर भगवान् सूर्य उदयाचलपर आरूढ़ होते हैं ॥ १५ ॥ उस समय रनिवासकी स्त्रियाँ लज्जा एवं प्रेमसे भरी चितवनसे उन्हें निहारने लगतीं और बड़े कष्टसे उन्हें विदा करतीं । भगवान् मुसकराकर उनके चित्तको चुराते हुए महलसे निकलते ॥ १६ ॥

परीक्षित् ! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समस्त यदुवंशियोंके साथ सुधर्मा नामकी सभामें प्रवेश करते । उस सभाकी ऐसी महिमा है कि जो लोग उस सभामें जा बैठते हैं, उन्हें भूख-प्यास, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ नहीं सतातीं ॥ १७ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण सब रानियोंसे अलग-अलग विदा होकर एक ही रूपमें सुधर्मा-सभामें प्रवेश करते और वहाँ जाकर श्रेष्ठ सिंहासनपर विराज जाते । उनकी अङ्गकान्तिसे दिशाएँ प्रकाशित होती रहतीं । उस समय यदुवंशी वीरोंके बीचमें यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा होती, जैसे आकाशमें तारोंसे घिरे हुए चन्द्रदेव शोभायमान होते हैं ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! सभामें विदूषकलोग विभिन्न प्रकारके हास्य-विनोदसे, नटाचार्य अभिनयसे और नर्तकियाँ कलापूर्ण नृत्योंसे अलग-अलग अपनी टोलियोंके साथ भगवान्‌की सेवा करतीं ॥ १९ ॥ उस समय मृदङ्ग, वीणा, पखावज, बाँसुरी, झाँझ और शङ्ख बजने लगते और सूत, मागध तथा वंदीजन नाचते-गाते और भगवान्‌की स्तुति करते ॥ २० ॥ कोई-कोई व्याख्याकुशल ब्राह्मण वहाँ बैठकर वेदमन्त्रोंकी व्याख्या करते और कोई पूर्वकालीन पवित्रकीर्ति नरपतियोंके चरित्र कह-कहकर सुनाते ॥ २१ ॥

एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें राजसभाके द्वारपर एक नया मनुष्य आया । द्वारपालोंने भगवान्‌को उसके आनेकी सूचना देकर उसे सभाभवनमें उपस्थित किया ॥ २२ ॥ उस मनुष्यने परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको हाथ जोड़कर नमस्कार किया और उन राजाओंका, जिन्होंने जरासन्धके दिग्विजयके समय उसके सामने सिर नहीं झुकाया था और बलपूर्वक कैद कर लिये गये थे, जिनकी संख्या बीस हजार थी, जरासन्धके बंदी बननेका दुःख श्रीकृष्णके सामने निवेदन किया—॥ २३-२४ ॥ 'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप मन और वाणीके अगोचर हैं । जो आपकी शरणमें आता है, उसके सारे भय आप नष्ट कर देते हैं । प्रभो ! हमारी भेद-बुद्धि मिटी नहीं है । हम जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे भयभीत होकर आपकी शरणमें आये हैं ॥ २५ ॥ भगवन् ! अधिकांश जीव ऐसे सकाम और निषिद्ध कर्मोंमें फँसे हुए हैं कि वे आपके बतलाये हुए अपने परम कल्याणकारी कर्म, आपकी उपासनासे विमुख हो गये हैं और अपने जीवन एवं जीवनसम्बन्धी आशा-अभिलाषाओंमें भ्रम-भटक रहे हैं । परन्तु आप बड़े बलवान् हैं । आप कालरूपसे सदा-सर्वदा सावधान रहकर उनकी आशालताका तुरंत समूल उच्छेद कर डालते हैं । हम आपके उस कालरूपको नमस्कार करते हैं ॥ २६ ॥ आप स्वयं जगदीश्वर हैं और आपने जगत्‌में अपने ज्ञान, बल आदि कलाओंके साथ इसलिये अवतार ग्रहण किया है कि संतोंकी रक्षा करें और दुष्टोंको दण्ड दें । ऐसी अवस्थामें प्रभो ! जरासन्ध आदि कोई दूसरे राजा आपकी इच्छा और आज्ञाके विपरीत हमें कैसे कष्ट दे रहे हैं, यह बात हमारी समझमें नहीं आती । यदि यह कहा जाय कि जरासन्ध हमें कष्ट नहीं देता, उसके रूपमें—उसे निमित्त बनाकर हमारे अशुभ कर्म ही हमें दुःख पहुँचा रहे हैं; तो यह भी ठीक नहीं । क्योंकि जब हमलोग आपके अपने हैं, तब हमारे दुष्कर्म हमें फल देनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं ? इसलिये आप कृपा करके अवश्य ही हमें इस क्लेशसे मुक्त कीजिये ॥ २७ ॥ प्रभो ! हम जानते हैं कि राजापनेका सुख प्रारब्धके अधीन एवं विषयसाध्य है । और सच कहें तो स्वप्न-सुखके समान अत्यन्त तुच्छ और असत् है । साथ ही उस सुखको भोगनेवाला यह शरीर भी एक प्रकारसे मुर्दा ही है और इसके पीछे सदा-सर्वदा सैकड़ों प्रकारके भय लगे रहते हैं । परन्तु

हम तो इसीके द्वारा जगत्‌के अनेकों भार ढो रहे हैं और यही कारण है कि हमने अन्तःकरणके निष्काम-भाव और निस्सङ्कल्प स्थितिसे प्राप्त होनेवाले आत्म-सुखका परित्याग कर दिया है। सचमुच हम अत्यन्त अज्ञानी हैं और आपकी मायाके फंदेमें फँसकर क्लेश-पर-क्लेश भोगते जा रहे हैं ॥ २८ ॥ भगवन्! आपके चरणकमल शरणागत पुरुषोंके समस्त शोक और मोहोंको नष्ट कर देनेवाले हैं। इसलिये आप ही जरासन्धरूप कर्मोंके बन्धनसे हमें छुड़ाइये। प्रभो! यह अकेला ही दस हजार हाथियोंकी शक्ति रखता है और हमलोगोंको उसी प्रकार बंदी बनाये हुए है, जैसे सिंह भेड़ोंको घेर रक्खे ॥ २९ ॥ चक्रपाणे! आपने अठारह बार जरासन्धसे युद्ध किया और सत्रह बार उसका मान-मर्दन करके उसे छोड़ दिया। परन्तु एक बार उसने आपको जीत लिया। हम जानते हैं कि आपकी शक्ति, आपका बल-पौरुष अनन्त है। फिर भी मनुष्योंका-सा आचरण करते हुए आपने हारनेका अभिनय किया। परन्तु इसीसे उसका घमंड बढ़ गया है। हे अजित! अब वह यह जानकर हमलोगोंको और भी सताता है कि हम आपके भक्त हैं, आपकी प्रजा हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये' ॥ ३० ॥

दूतने कहा—भगवन्! जरासन्धके बंदी नरपतियोंने इस प्रकार आपसे प्रार्थना की है। वे आपके चरणकमलोंकी शरणमें हैं और आपका दर्शन चाहते हैं। आप कृपा करके उन दीनोंका कल्याण कीजिये ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजाओंका दूत इस प्रकार कह ही रहा था कि परमतेजस्वी देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। उनकी सुनहरी जटाएँ चमक रही थीं। उन्हें देखकर ऐसा मालूम हो रहा था, मानो साक्षात् भगवान् सूर्य ही उदय हो गये हों ॥ ३२ ॥ ब्रह्मा आदि समस्त लोकपालोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें देखते ही सभासदों और सेवकोंके साथ हर्षित होकर उठ खड़े हुए और सिर झुकाकर उनकी वन्दना करने लगे ॥ ३३ ॥ जब देवर्षि नारद आसन स्वीकार करके बैठ गये, तब भगवान्‌ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और अपनी श्रद्धासे उनको सन्तुष्ट करते हुए वे मधुर वाणीसे बोले—॥ ३४॥ 'देवर्षे! इस समय तीनों लोकोंमें कुशल-मङ्गल तो है न? आप तीनों लोकोंमें विचरण करते रहते हैं, इससे हमें यह बहुत बड़ा लाभ है कि घर बैठे सबका समाचार मिल जाता है ॥ ३५ ॥ ईश्वरके द्वारा रचे हुए तीनों लोकोंमें ऐसी कोई बात नहीं है, जिसे आप न जानते हों। अतः हम आपसे यह जानना चाहते हैं कि युधिष्ठिर आदि पाण्डव इस समय क्या करना चाहते हैं?' ॥ ३६ ॥

देवर्षि नारदजीने कहा—सर्वव्यापक अनन्त! आप विश्वके निर्माता हैं और इतने बड़े मायावी हैं कि बड़े-बड़े मायावी ब्रह्माजी आदि भी आपकी मायाका पार नहीं पा सकते। प्रभो! आप सबके घट-घटमें अपनी अचिन्त्य शक्तिसे व्याप्त रहते हैं—ठीक वैसे ही; जैसे अग्नि लकड़ियोंमें अपनेको छिपाये रखता है। लोगोंकी दृष्टि सत्त्व आदि गुणोंपर ही अटक जाती है, इससे आपको वे नहीं देख पाते। मैंने एक बार नहीं, अनेकों बार आपकी माया देखी है। इसलिये आप जो यों अनजान बनकर पाण्डवोंका समाचार पूछते हैं, इससे मुझे कोई कौतूहल नहीं हो रहा है ॥ ३७ ॥ भगवन्! आप अपनी मायासे ही इस जगत्‌की रचना और संहार करते हैं, और आपकी मायाके कारण ही यह असत्य होनेपर भी सत्यके समान प्रतीत होता है। आप कब क्या करना चाहते हैं, यह बात भलीभाँति कौन समझ सकता है। आपका स्वरूप सर्वथा अचिन्तनीय है। मैं तो केवल बार-बार आपको नमस्कार करता हूँ।३८। शरीर और इससे सम्बन्ध रखनेवाली वासनाओंमें फँसकर जीव जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकता रहता है तथा यह नहीं जानता कि मैं इस शरीरसे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। वास्तवमें उसीके हितके लिये आप नाना प्रकारके लीलावतार ग्रहण करके अपने पवित्र यशका दीपक जला देते हैं, जिसके सहारे वह इस अनर्थकारी शरीरसे मुक्त हो सके। इसलिये मैं आपकी शरणमें हूँ ॥३९॥ प्रभो! आप स्वयं परब्रह्म हैं, तथापि मनुष्योंकी-सी

लीलाका नाट्य करते हुए मुझसे पूछ रहे हैं। इसलिये आपके फुफेरे भाई और प्रेमी भक्त राजा युधिष्ठिर क्या करना चाहते हैं, यह बात मैं आपको सुनाता हूँ॥४०॥ इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्मलोकमें किसीको जो भोग प्राप्त हो सकता है, वह राजा युधिष्ठिरको यहीं प्राप्त है। उन्हें किसी वस्तुकी कामना नहीं है। फिर भी वे श्रेष्ठ यज्ञ राजसूयके द्वारा आपकी प्राप्तिके लिये आपकी आराधना करना चाहते हैं। आप कृपा करके उनकी इस अभिलाषाका अनुमोदन कीजिये॥४१॥ भगवन्! उस श्रेष्ठ यज्ञमें आपका दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े देवता और यशस्वी नरपतिगण एकत्र होंगे॥४२॥ प्रभो! आप स्वयं विज्ञानानन्दघन ब्रह्म हैं। आपके श्रवण, कीर्तन और ध्यान करनेमात्रसे अन्त्यज भी पवित्र हो जाते हैं। फिर जो आपका दर्शन और स्पर्श प्राप्त करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है।४३। त्रिभुवनमङ्गल! आपकी निर्मल कीर्ति समस्त दिशाओंमें छा रही है तथा स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें व्याप्त हो रही है; ठीक वैसे ही, जैसे आपकी चरणामृतधारा स्वर्गमें मन्दाकिनी, पातालमें भोगवती और मर्त्यलोकमें गङ्गाके नामसे प्रवाहित होकर सारे विश्वको पवित्र कर रही है॥४४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सभामें जितने यदुवंशी बैठे थे, वे सब इस बातके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रहे थे कि पहले जरासन्धपर चढ़ाई करके उसे जीत लिया जाय। अतः उन्हें नारदजीकी बात पसंद न आयी। तब ब्रह्मा आदिके शासक भगवान् श्रीकृष्णने तनिक मुसकराकर बड़ी मीठी वाणीमें उद्धव-जीसे कहा—॥४५॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'उद्धव! तुम मेरे हितैषी सुहृद् हो। शुभ सम्मति देनेवाले और कार्यके तत्त्वको भली-भाँति समझनेवाले हो, इसीलिये हम तुम्हें अपना उत्तम नेत्र मानते हैं। अब तुम्हीं बताओ कि इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये। तुम्हारी बातपर हमारी श्रद्धा है। इसलिये हम तुम्हारी सलाहके अनुसार ही काम करेंगे'॥४६॥ जब उद्धवजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण सर्वज्ञ होनेपर भी अनजानकी तरह सलाह पूछ रहे हैं, तब वे उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके बोले॥४७॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्णभगवान्‌का इन्द्रप्रस्थ पधारना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके वचन सुनकर महामति उद्धवजीने देवर्षि नारद, सभासद् और भगवान् श्रीकृष्णके मतपर विचार किया और फिर वे कहने लगे॥१॥

उद्धवजीने कहा—भगवन्! देवर्षि नारदजीने आप-को यह सलाह दी है कि फुफेरे भाई पाण्डवोंके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित होकर उनकी सहायता करनी चाहिये। उनका यह कथन ठीक ही है और साथ ही यह भी ठीक है कि शरणागतोंकी रक्षा अवश्यकर्तव्य है॥२॥ प्रभो! जब हम इस दृष्टिसे विचार करते हैं कि राजसूय यज्ञ वही कर सकता है, जो दसों दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ले, तब हम इस निर्णयपर बिना किसी दुविधाके पहुँच जाते हैं कि पाण्डवोंके यज्ञ और शरणागतोंकी रक्षा दोनों कामोंके लिये जरासन्धको जीतना आवश्यक है॥३॥ प्रभो! केवल जरासन्धको जीत लेनेसे ही हमारा महान् उद्देश्य सफल हो जायगा, साथ ही उससे बंदी राजाओंकी मुक्ति और उसके कारण आपको सुयशकी भी प्राप्ति हो जायगी॥४॥ राजा जरासन्ध बड़े-बड़े लोगोंके भी दाँत खट्टे कर देता है; क्योंकि दस हजार हाथियोंका बल उसे प्राप्त है। उसे यदि हरा सकते हैं तो केवल भीमसेन, क्योंकि वे भी वैसे ही बली हैं॥५॥ उसे आमने-सामनेके युद्धमें एक वीर जीत ले, यही सबसे अच्छा है। सौ अक्षौहिणी सेना लेकर जब वह युद्धके लिये खड़ा होगा, उस समय उसे जीतना आसान न होगा। जरासन्ध बहुत बड़ा ब्राह्मणभक्त है। यदि ब्राह्मण उससे किसी बातकी याचना करते हैं,

तो वह कभी कोरा जवाब नहीं देता ॥ ६ ॥ इसलिये भीमसेन ब्राह्मणके वेषमें जायँ और उससे युद्धकी भिक्षा माँगें। भगवन् ! इसमें सन्देह नहीं कि यदि आपकी उपस्थितिमें भीमसेन और जरासन्धका द्वन्द्वयुद्ध हो, तो भीमसेन उसे मार डालेंगे ॥ ७ ॥ प्रभो ! आप सर्व-शक्तिमान्, रूपरहित कालस्वरूप हैं। विश्वकी सृष्टि और प्रलय आपकी ही शक्तिसे होता है। ब्रह्मा और शङ्कर तो उसमें निमित्तमात्र हैं। (इसी प्रकार जरासन्ध-का वध तो होगा आपकी शक्तिसे, भीमसेन केवल उसमें निमित्तमात्र बनेंगे) ॥ ८ ॥ जब इस प्रकार आप जरासन्धका वध कर डालेंगे, तब कैदमें पड़े हुए राजाओं-की रानियाँ अपने महलोंमें आपकी इस विशुद्ध लीलाका गान करेंगी कि आपने उनके शत्रुका नाश कर दिया और उनके प्राणपतियोंको छुड़ा दिया। ठीक वैसे ही, जैसे गोपियाँ शङ्खचूड़से छुड़ानेकी लीलाका, आपके शरणागत मुनिगण गजेन्द्र और जानकीजीके उद्धारकी लीलाका तथा हमलोग आपके माता-पिताको कंसके कारागारसे छुड़ानेकी लीलाका गान करते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये प्रभो ! जरासन्धका वध स्वयं ही बहुत-से प्रयोजन सिद्ध कर देगा। बंदी नरपतियोंके पुण्य-परिणामसे अथवा जरासन्धके पाप-परिणामसे सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप भी तो इस समय राजसूय यज्ञका होना ही पसंद करते हैं (इसलिये पहले आप वहीं पधारिये) ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उद्धवजीकी यह सलाह सब प्रकारसे हितकर और निर्दोष थी। देवर्षि नारद, यदुवंशके बड़े-बूढ़े और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने भी उनकी बातका समर्थन किया ॥ ११ ॥ अब अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णने वसुदेव आदि गुरु-जनोंसे अनुमति लेकर दारुक, जैत्र आदि सेवकोंको इन्द्रप्रस्थ जानेकी तैयारी करनेके लिये आज्ञा दी ॥ १२ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने यदुराज उग्रसेन और बलरामजीसे आज्ञा लेकर बाल-बच्चोंके साथ रानियों और उनके सब सामानको आगे चला दिया और फिर दारुकके लाये हुए गरुड़ध्वज रथपर स्वयं सवार हुए ॥ १३ ॥ इसके बाद रथों, हाथियों, घुड़सवारों और पैदलोंकी बड़ी भारी सेनाके साथ उन्होंने प्रस्थान किया। उस समय मृदङ्ग, नगारे, ढोल, शङ्ख और नरसिंगोंकी ऊँची ध्वनिसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं ॥ १४ ॥ सतीशिरोमणि रुक्मिणीजी आदि सहस्रों श्रीकृष्ण-पत्नियाँ अपनी सन्तानों-के साथ सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण, चन्दन, अङ्गराग और पुष्पोंके हार आदिसे सज-धजकर डोलियों, रथों और सोनेकी बनी हुई पालकियोंमें चढ़कर अपने पतिदेव भगवान् श्रीकृष्णके पीछे-पीछे चलीं। पैदल सिपाही हाथोंमें ढाल-तलवार लेकर उनकी रक्षा करते हुए चल रहे थे ॥ १५ ॥ इसी प्रकार अनुचरोंकी स्त्रियाँ और वाराङ्गनाएँ भलीभाँति शृङ्गार करके खस आदिकी झोपड़ियों, भाँति-भाँतिके तंबुओं, कनातों, कम्बलों और ओढ़ने-बिछाने आदिकी सामग्रियोंको बैलों, भैंसों, गधों और खच्चरोंपर लादकर तथा स्वयं पालकी, ऊँट, छकड़ों और हथिनियोंपर सवार होकर चलीं ॥ १६ ॥ जैसे मगरमच्छों और लहरोंकी उछल-कूदसे क्षुब्ध समुद्रकी शोभा होती है, ठीक वैसे ही अत्यन्त कोलाहलसे परिपूर्ण, फहराती हुई बड़ी-बड़ी पताकाओं, छत्रों, चँवरों, श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्रों, वस्त्राभूषणों, मुकुटों, कवचों और दिनके समय उनपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी सेना अत्यन्त शोभायमान हुई ॥ १७ ॥ देवर्षि नारदजी भगवान् श्रीकृष्णसे सम्मानित होकर और उनके निश्चयको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवान्‌के दर्शनसे उनका हृदय और समस्त इन्द्रियाँ परमानन्दमें मग्न हो गयीं। विदा होनेके समय भगवान् श्रीकृष्णने उनका नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे पूजन किया। अब देवर्षि नारदने उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और उनकी दिव्य मूर्तिको हृदयमें धारण करके आकाशमार्गसे प्रस्थान किया ॥ १८ ॥ इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने जरासन्धके बंदी नरपतियोंके दूतको अपनी मधुर वाणीसे आश्वासन देते हुए कहा—'दूत ! तुम अपने राजाओंसे जाकर कहना—'डरो मत। तुम लोगोंका कल्याण हो। मैं जरासन्धको मरवा डालूँगा' ॥ १९ ॥ भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर वह दूत गिरिव्रज चला गया और नरपतियोंको भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश ज्यों-का-त्यों सुना दिया। वे राजा भी कारागारसे छूटनेके लिये शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌के शुभ दर्शनकी बाट जोहने लगे ॥ २० ॥

परीक्षित् ! अब भगवान् श्रीकृष्ण आनर्त, सौवीर,

मरु, कुरुक्षेत्र और उनके बीचमें पड़नेवाले पर्वत, नदी, नगर, गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ तथा खानोंको पार करते हुए आगे बढ़ने लगे ॥ २१ ॥ भगवान् मुकुन्द मार्गमें दृषद्वती एवं सरस्वती नदी पार करके पाञ्चाल और मत्स्य देशोंमें होते हुए इन्द्रप्रस्थ जा पहुँचे ॥ २२ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। जब अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला कि भगवान् श्रीकृष्ण पधार गये हैं, तब उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। वे अपने आचार्यों और स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ भगवान्‌की अगवानी करनेके लिये नगरसे बाहर आये ॥ २३ ॥ मङ्गल-गीत गाये जाने लगे, बाजे बजने लगे, बहुत-से ब्राह्मण मिलकर ऊँचे स्वरसे वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वे बड़े आदरसे हृषीकेश भगवान्‌का स्वागत करनेके लिये चले, जैसे इन्द्रियाँ मुख्य प्राणसे मिलने जा रही हों ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णको देखकर राजा युधिष्ठिरका हृदय स्नेहातिरेकसे गद्गद हो गया। उन्हें बहुत दिनोंपर अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अतः वे उन्हें बार-बार अपने हृदयसे लगाने लगे ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह भगवती लक्ष्मीजीका पवित्र और एकमात्र निवासस्थान है। राजा युधिष्ठिर अपनी दोनों भुजाओंसे उसका आलिङ्गन करके समस्त पाप-तापोंसे छुटकारा पा गये। वे सर्वतोभावेन परमानन्दके समुद्रमें मग्न हो गये। नेत्रोंमें आँसू छलक आये, अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो गया, उन्हें इस विश्व-प्रपञ्चके भ्रमका तनिक भी स्मरण न रहा ॥ २६ ॥ तदनन्तर भीमसेनने मुसकराकर अपने ममेरे भाई श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया। इससे उन्हें बड़ा आनन्द मिला। उस समय उनके हृदयमें इतना प्रेम उमड़ा कि उन्हें बाह्य विस्मृति-सी हो गयी। नकुल, सहदेव और अर्जुनने भी अपने परम प्रियतम और हितैषी भगवान् श्रीकृष्णका बड़े आनन्दसे आलिङ्गन प्राप्त किया। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसुओंकी बाढ़-सी आ गयी थी ॥ २७ ॥ अर्जुनने पुनः भगवान् श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया, नकुल और सहदेवने अभिवादन किया और स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणों और कुरुवंशी वृद्धोंको यथायोग्य नमस्कार किया ॥ २८ ॥ कुरु, सृञ्जय और केकय देशके नर-पतियोंने भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया और भगवान् श्रीकृष्णने भी उनका यथोचित सत्कार किया। सूत, मागध, वंदीजन और ब्राह्मण भगवान्‌की स्तुति करने लगे तथा गन्धर्व, नट, विदूषक आदि मृदङ्ग, शङ्ख, नगारे, वीणा, ढोल और नरसिंगे बजा-बजाकर कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये नाचने-गाने लगे ॥ २९-३० ॥ इस प्रकार परमयशस्वी भगवान् श्रीकृष्णने अपने सुहृद्-स्वजनोंके साथ सब प्रकारसे सुसज्जित इन्द्रप्रस्थ नगरमें प्रवेश किया। उस समय लोग आपसमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते चल रहे थे ॥ ३१ ॥

इन्द्रप्रस्थ नगरकी सड़कें और गलियाँ मतवाले हाथियोंके मदसे तथा सुगन्धित जलसे सींच दी गयी थीं। जगह-जगह रंग-बिरंगी झंडियाँ लगा दी गयी थीं। सुनहले तोरन बाँधे हुए थे और सोनेके जलभरे कलश स्थान-स्थानपर शोभा पा रहे थे। नगरके नर-नारी नहा-धोकर तथा नये वस्त्र, आभूषण, पुष्पोंके हार, इत्र-फुलेल आदिसे सज-धजकर घूम रहे थे ॥ ३२ ॥ घर-घरमें ठौर-ठौरपर दीपक जलाये गये थे, जिनसे दीपावलीकी-सी छटा हो रही थी। प्रत्येक घरके झरोखोंसे धूपका धूआँ निकलता हुआ बहुत ही भला मालूम होता था। सभी घरोंके ऊपर पताकाएँ फहरा रही थीं तथा सोनेके कलश और चाँदीके शिखर जगमगा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकारके महलोंसे परिपूर्ण पाण्डवोंकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ नगरको देखते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ३३ ॥ जब युवतियोंने सुना कि मानव-नेत्रोंके पानपात्र अर्थात् अत्यन्त दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्ण राजपथपर आ रहे हैं, तब उनके दर्शनकी उत्सुकताके आवेगसे उनकी चोटियों और साड़ियोंकी गाँठें ढीली पड़ गयीं। उन्होंने घरका काम-काज तो छोड़ ही दिया, सेजपर सोये हुए अपने पतियोंको भी छोड़ दिया और भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये राजपथपर दौड़ आयीं ॥ ३४ ॥ सड़कपर हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाकी भीड़ लग रही थी। उन स्त्रियोंने अटारियोंपर चढ़कर रानियोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन

किया, उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा की और मन-ही-मन आलिङ्गन किया तथा प्रेमभरी मुसकान एवं चितवनसे उनका सुस्वागत किया ॥ ३५॥ नगरकी स्त्रियाँ राजपथपर चन्द्रमाके साथ विराजमान ताराओंके समान श्रीकृष्णकी पत्नियोंको देखकर आपसमें कहने लगीं—'सखी ! इन बड़भागिनी रानियोंने न जाने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिसके कारण पुरुषशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण अपने उन्मुक्त हास्य और विलासपूर्ण कटाक्षसे उनकी ओर देखकर उनके नेत्रोंको परम आनन्द प्रदान करते हैं ॥ ३६ ॥ इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण राजपथसे चल रहे थे। स्थान-स्थानपर बहुत-से निष्पाप धनी-मानी और शिल्पजीवी नागरिकोंने अनेकों माङ्गलिक वस्तुएँ ला-लाकर उनकी पूजा-अर्चा और स्वागत-सत्कार किया ॥ ३७ ॥

अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्णको देखकर प्रेम और आनन्दसे भर गयीं। उन्होंने अपने प्रेमविह्वल और आनन्दसे खिले नेत्रोंके द्वारा भगवान्‌का स्वागत किया और श्रीकृष्ण उनका स्वागत-सत्कार स्वीकार करते हुए राजमहलमें पधारे ॥ ३८ ॥ जब कुन्तीने अपने त्रिभुवनपति भतीजे श्रीकृष्णको देखा, तब उनका हृदय प्रेमसे भर आया। वे पलंगसे उठकर अपनी पुत्रवधू द्रौपदीके साथ आगे गयीं और भगवान् श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया ॥ ३९ ॥ देवदेवेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको राजमहलके अंदर लाकर राजा युधिष्ठिर आदरभाव और आनन्दके उद्रेकसे आत्मविस्मृत हो गये; उन्हें इस बातकी भी सुधि न रही कि किस क्रमसे भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये ॥ ४० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अपनी फूआ कुन्ती और गुरुजनोंकी पत्नियोंका अभिवादन किया। उनकी बहिन सुभद्रा और द्रौपदीने भगवान्‌को नमस्कार किया ॥ ४१ ॥ अपनी सास कुन्तीकी प्रेरणासे द्रौपदीने वस्त्र, आभूषण, माला आदिके द्वारा रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा लक्ष्मणा और परम साध्वी सत्या—भगवान् श्रीकृष्णकी इन पटरानियोंका तथा वहाँ आयी हुई श्रीकृष्णकी अन्यान्य रानियोंका भी यथायोग्य सत्कार किया ॥ ४२-४३॥ धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णको उनकी सेना, सेवक, मन्त्री और पत्नियोंके साथ ऐसे स्थानमें ठहराया जहाँ उन्हें नित्य नयी-नयी सुखकी सामग्रियाँ प्राप्त हों ॥ ४४॥ अर्जुनके साथ रहकर भगवान् श्रीकृष्णने खाण्डव वनका दाह करवाकर अग्निको तृप्त किया था और मयासुरको उससे बचाया था। परीक्षित् ! उस मयासुरने ही धर्मराज युधिष्ठिरके लिये भगवान्‌की आज्ञासे एक दिव्य सभा तैयार कर दी ॥ ४५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करनेके लिये कई महीनोंतक इन्द्रप्रस्थमें ही रहे। वे समय-समयपर अर्जुनके साथ रथपर सवार होकर विहार करनेके लिये इधर-उधर चले जाया करते थे। उस समय बड़े-बड़े वीर सैनिक भी उनकी सेवाके लिये साथ-साथ जाते ॥ ४६ ॥

बहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवोंके राजसूययज्ञका आयोजन और जरासन्धका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिन महाराज युधिष्ठिर बहुत-से मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, भीमसेन आदि भाइयों, आचार्यों, कुलके बड़े-बूढ़ों, जाति-बन्धुओं, सम्बन्धियों एवं कुटुम्बियोंके साथ राजसभामें बैठे हुए थे। उन्होंने सबके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित करके यह बात कही ॥ १-२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—गोविन्द ! मैं सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा आपका और आपके परम पावन विभूतिस्वरूप देवताओंका यजन करना चाहता हूँ। प्रभो ! आप कृपा करके मेरा यह सङ्कल्प पूरा कीजिये ॥ ३ ॥ कमलनाभ ! आपके चरणकमलोंकी पादुकाएँ समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाली हैं। जो लोग निरन्तर उनकी सेवा करते हैं, ध्यान और स्तुति करते

हैं, वास्तवमें वे ही पवित्रात्मा हैं। वे जन्म-मृत्युके चक्करसे छुटकारा पा जाते हैं। और यदि वे सांसारिक विषयोंकी अभिलाषा करें, तो उन्हें उनकी भी प्राप्ति हो जाती है। परन्तु जो आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण नहीं करते, उन्हें मुक्ति तो मिलती ही नहीं, सांसारिक भोग भी नहीं मिलते ॥ ४ ॥ देवताओंके भी आराध्यदेव ! मैं चाहता हूँ कि संसारी लोग आपके चरणकमलोंकी सेवाका प्रभाव देखें। प्रभो ! कुरुवंशी और सृञ्जयवंशी नरपतियोंमें जो लोग आपका भजन करते हैं, और जो नहीं करते, उनका अन्तर आप जनताको दिखला दीजिये ॥ ५ ॥ प्रभो ! आप सबके आत्मा, समदर्शी और स्वयं आत्मानन्दके साक्षात्कार हैं, स्वयं ब्रह्म हैं। आपमें 'यह मैं हूँ और यह दूसरा, यह अपना है और यह पराया'—इस प्रकारका भेदभाव नहीं है। फिर भी जो आपकी सेवा करते हैं, उन्हें उनकी भावनाके अनुसार फल मिलता ही है—ठीक वैसे ही, जैसे कल्पवृक्षकी सेवा करनेवालेको। उस फलमें जो न्यूनाधिकता होती है, वह तो न्यूनाधिक सेवाके अनुरूप ही होती है। इससे आपमें विषमता या निर्दयता आदि दोष नहीं आते ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—शत्रु-विजयी धर्मराज ! आपका निश्चय बहुत ही उत्तम है। राजसूय यज्ञ करनेसे समस्त लोकोंमें आपकी मङ्गलमयी कीर्तिका विस्तार होगा ॥ ७ ॥ राजन् ! आपका यह महायज्ञ ऋषियों, पितरों, देवताओं, सगे-सम्बन्धियों, हमें—और कहाँतक कहें, समस्त प्राणियोंको अभीष्ट है ॥ ८ ॥ महाराज ! पृथ्वीके समस्त नरपतियोंको जीतकर, सारी पृथ्वीको अपने वशमें करके और यज्ञोचित सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित करके फिर इस महायज्ञका अनुष्ठान कीजिये ॥ ९ ॥ महाराज ! आपके चारों भाई वायु, इन्द्र आदि लोकपालोंके अंशसे पैदा हुए हैं। वे सब-के-सब बड़े वीर हैं। आप तो परम मनस्वी और संयमी हैं ही। आपलोगोंने अपने सद्गुणोंसे मुझे अपने वशमें कर लिया है। जिन लोगोंने अपनी इन्द्रियों और मनको वशमें नहीं किया है, वे मुझे अपने वशमें नहीं कर सकते ॥ १० ॥ संसारमें कोई बड़े-से-बड़ा देवता भी तेज, यश, लक्ष्मी, सौन्दर्य और ऐश्वर्य आदिके द्वारा मेरे भक्तका तिरस्कार नहीं कर सकता। फिर कोई राजा उसका तिरस्कार कर दे, इसकी तो सम्भावना ही क्या है ? ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्की बात सुनकर महाराज युधिष्ठिरका हृदय आनन्दसे भर गया। उनका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। अब उन्होंने अपने भाइयोंको दिग्विजय करनेका आदेश दिया। भगवान् श्रीकृष्णने पाण्डवोंमें अपनी शक्तिका सञ्चार करके उनको अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया था ॥ १२ ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने सृञ्जयवंशी वीरोंके साथ सहदेवको दक्षिण दिशामें दिग्विजय करनेके लिये भेजा। नकुलको मत्स्य-देशीय वीरोंके साथ पश्चिममें, अर्जुनको केकयदेशीय वीरोंके साथ उत्तरमें और भीमसेनको मद्रदेशीय वीरोंके साथ पूर्व दिशामें दिग्विजय करनेका आदेश दिया ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! उन भीमसेन आदि वीरोंने अपने बल-पौरुषसे सब ओरके नरपतियोंको जीत लिया और यज्ञ करनेके लिये उद्यत महाराज युधिष्ठिरको बहुत-सा धन लाकर दिया ॥ १४ ॥ जब महाराज युधिष्ठिरने यह सुना कि अबतक जरासन्धपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकी, तब वे चिन्तामें पड़ गये। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें वही उपाय कह सुनाया, जो उद्धवजीने बतलाया था ॥ १५ ॥ परीक्षित् ! इसके बाद भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण—ये तीनों ही ब्राह्मणका वेष धारण करके गिरिव्रज गये। वही जरासन्धकी राजधानी थी ॥ १६ ॥ राजा जरासन्ध ब्राह्मणोंका भक्त और गृहस्थोचित धर्मोंका पालन करनेवाला था। उपर्युक्त तीनों क्षत्रिय ब्राह्मणका वेष धारण करके अतिथि-अभ्यागतोंके सत्कारके समय जरासन्धके पास गये और उससे इस प्रकार याचना की—॥ १७ ॥ 'राजन् ! आपका कल्याण हो। हम तीनों आपके अतिथि हैं और बहुत दूरसे आ रहे हैं। अवश्य ही हम यहाँ किसी विशेष प्रयोजनसे ही आये हैं। इसलिये हम आपसे जो कुछ चाहते हैं, वह आप हमें अवश्य दीजिये ॥ १८ ॥ तितिक्षु पुरुष क्या नहीं सह सकते। दुष्ट पुरुष बुरा-से-बुरा क्या नहीं कर सकते। उदार पुरुष क्या नहीं दे सकते और समदर्शीके लिये पराया कौन है ? ॥ १९ ॥ जो पुरुष स्वयं समर्थ होकर भी इस नाशवान् शरीरसे ऐसे अविनाशी यशका

संग्रह नहीं करता, जिसका बड़े-बड़े सत्पुरुष भी गान करें; सच पूछिये तो उसकी जितनी निन्दा की जाय; थोड़ी है। उसका जीवन शोक करनेयोग्य है ॥ २० ॥ राजन् ! आप तो जानते ही होंगे—राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, केवल अन्नके दाने बीन-चुनकर निर्वाह करनेवाले महात्मा मुद्गल, शिवि, बलि, व्याध और कपोत आदि बहुत-से व्यक्ति अतिथिको अपना सर्वस्व देकर इस नाशवान् शरीरके द्वारा अविनाशी पदको प्राप्त हो चुके हैं। इसलिये आप भी हमलोगोंको निराश मत कीजिये ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जरासन्धने उन लोगोंकी आवाज, सूरत-शकल और कलाइयोंपर पड़े हुए धनुषकी प्रत्यञ्चाकी रगड़के चिह्नोंको देखकर पहचान लिया कि ये तो ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। अब वह सोचने लगा कि मैंने कहीं-न-कहीं इन्हें देखा भी अवश्य है ॥ २२ ॥ फिर उसने मन-ही-मन यह विचार किया कि 'ये क्षत्रिय होनेपर भी मेरे भयसे ब्राह्मणका वेष बनाकर आये हैं। जब ये भिक्षा माँगनेपर ही उतारू हो गये हैं, तब चाहे जो कुछ माँग लें, मैं इन्हें दूँगा। याचना करनेपर अपना अत्यन्त प्यारा और दुस्त्यज शरीर देनेमें भी मुझे हिचकिचाहट न होगी ॥ २३ ॥ विष्णुभगवान्ने ब्राह्मणका वेष धारण करके बलिका धन, ऐश्वर्य—सब कुछ छीन लिया; फिर भी बलिकी पवित्र कीर्ति सब ओर फैली हुई है और आज भी लोग बड़े आदरसे उसका गान करते हैं ॥ २४ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि विष्णुभगवान्ने देवराज इन्द्रकी राज्यलक्ष्मी बलिसे छीनकर उन्हें लौटानेके लिये ही ब्राह्मणरूप धारण किया था। दैत्यराज बलिको यह बात मालूम हो गयी थी और शुक्राचार्यने उन्हें रोका भी; परन्तु उन्होंने पृथ्वीका दान कर ही दिया ॥ २५ ॥ मेरा तो यह पक्का निश्चय है कि यह शरीर नाशवान् है। इस शरीरसे जो विपुल यश नहीं कमाता और जो क्षत्रिय ब्राह्मणके लिये ही जीवन नहीं धारण करता, उसका जीना व्यर्थ है' ।२६। परीक्षित् ! सचमुच जरासन्धकी बुद्धि बड़ी उदार थी। उपर्युक्त विचार करके उसने ब्राह्मण-वेषधारी श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहा—'ब्राह्मणो ! आपलोग मनचाही वस्तु माँग लें, आप चाहें तो मैं आपलोगोंको अपना सिर भी दे सकता हूँ' ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजेन्द्र ! हमलोग अन्नके इच्छुक ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं; हम आपके पास युद्धके लिये आये हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो हमें द्वन्द्वयुद्धकी भिक्षा दीजिये ॥ २८ ॥ देखो, ये पाण्डुपुत्र भीमसेन हैं और यह इनका भाई अर्जुन है और मैं इन दोनोंका ममेरा भाई तथा आपका पुराना शत्रु कृष्ण हूँ' ॥ २९ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपना परिचय दिया, तब राजा जरासन्ध ठठाकर हँसने लगा। और चिढ़कर बोला—'अरे मूर्खो ! यदि तुम्हें युद्धकी ही इच्छा है तो लो मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ ॥ ३० ॥ परन्तु कृष्ण ! तुम तो बड़े डरपोक हो। युद्धमें तुम घबरा जाते हो। यहाँतक कि मेरे डरसे तुमने अपनी नगरी मथुरा भी छोड़ दी तथा समुद्रकी शरण ली है। इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं लड़ूँगा ।३१। यह अर्जुन भी कोई योद्धा नहीं है। एक तो अवस्थामें मुझसे छोटा, दूसरे कोई विशेष बलवान् भी नहीं है। इसलिये यह भी मेरे जोड़का वीर नहीं है। मैं इसके साथ भी नहीं लड़ूँगा। रहे भीमसेन, ये अवश्य ही मेरे समान बलवान् और मेरे जोड़के हैं' ॥ ३२ ॥ जरासन्धने यह कहकर भीमसेनको एक बहुत बड़ी गदा दे दी और स्वयं दूसरी गदा लेकर नगरसे बाहर निकल आया ॥ ३३ ॥ अब दोनों रणोन्मत्त वीर अखाड़ेमें आकर एक दूसरेसे भिड़ गये और अपनी वज्रके समान कठोर गदाओंसे एक दूसरेपर चोट करने लगे ॥ ३४ ॥ वे दायें-बायें तरह-तरहके पैंतरे बदलते हुए ऐसे शोभायमान हो रहे थे—मानो दो श्रेष्ठ नट रंगमञ्चपर युद्धका अभिनय कर रहे हों ॥ ३५ ॥ परीक्षित् ! जब एककी गदा दूसरेकी गदासे टकराती, तब ऐसा मालूम होता मानो युद्ध करनेवाले दो हाथियोंके दाँत आपसमें भिड़कर चटचटा रहे हों, या बड़े जोरसे बिजली तड़क रही हो ॥ ३६ ॥ जब दो हाथी क्रोधमें भरकर लड़ने लगते हैं और आककी डालियाँ तोड़-तोड़कर एक-दूसरेपर प्रहार करते हैं, उस समय एक-दूसरेकी चोटसे वे डालियाँ चूर-चूर हो जाती हैं; वैसे ही जब जरासन्ध और भीमसेन

बड़े वेगसे गदा चला-चलाकर एक-दूसरेके कंधों, कमरों, पैरों, हाथों, जाँघों और हसलियोंपर चोट करने लगे; तब उनकी गदाएँ उनके अङ्गोंसे टकरा-टकराकर चकनाचूर होने लगीं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब गदाएँ चूर-चूर हो गयीं, तब दोनों वीर क्रोधमें भरकर अपने घूँसोंसे एक-दूसरेको कुचल डालनेकी चेष्टा करने लगे । उनके घूँसे ऐसी चोट करते, मानो लोहेका घन गिर रहा हो । एक-दूसरेपर खुलकर चोट करते हुए दो हाथियोंकी तरह उनके थप्पड़ों और घूँसोंका कठोर शब्द बिजलीकी कड़कड़ाहटके समान जान पड़ता था ॥ ३८ ॥ परीक्षित् ! जरासन्ध और भीमसेन दोनोंकी गदा-युद्धमें कुशलता, बल और उत्साह समान थे । दोनोंकी शक्ति तनिक भी क्षीण नहीं हो रही थी । इस प्रकार लगातार प्रहार करते रहनेपर भी दोनोंमेंसे किसीकी जीत या हार न हुई ।३९। दोनों वीर रातके समय मित्रके समान रहते और दिनमें छूटकर एक दूसरेपर प्रहार करते और लड़ते । महाराज ! इस प्रकार उनके लड़ते-लड़ते सत्ताईस दिन बीत गये ।४०।

प्रिय परीक्षित् ! अट्ठाईसवें दिन भीमसेनने अपने ममेरे भाई श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! मैं युद्धमें जरासन्धको जीत नहीं सकता ॥ ४१ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धके जन्म और मृत्युका रहस्य जानते थे और यह भी जानते थे कि जरा राक्षसीने जरासन्धके शरीरके दो टुकड़ोंको जोड़कर इसे जीवन-दान दिया है । इसलिये उन्होंने भीमसेनके शरीरमें अपनी शक्तिका सञ्चार किया और जरासन्धके वधका उपाय सोचा ॥ ४२ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌का ज्ञान अबाध है । अब उन्होंने उसकी मृत्युका उपाय जानकर एक वृक्षकी डालीको बीचोबीचसे चीर दिया और इशारेसे भीमसेनको दिखाया ॥ ४३ ॥ वीरशिरोमणि एवं परम शक्तिशाली भीमसेनने भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय समझ लिया और जरासन्धके पैर पकड़कर उसे धरतीपर दे मारा ॥४४॥ फिर उसके एक पैरको अपने पैरके नीचे दबाया और दूसरेको अपने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया । इसके बाद भीमसेनने उसे गुदाकी ओरसे इस प्रकार चीर डाला, जैसे गजराज वृक्षकी डाली चीर डाले ॥ ४५ ॥ लोगोंने देखा कि जरासन्धके शरीरके दो टुकड़े हो गये हैं, और इस प्रकार उनके एक-एक पैर, जाँघ, अण्डकोश, कमर, पीठ, स्तन, कंधा, भुजा, नेत्र, भौंह और कान अलग-अलग हो गये हैं ॥ ४६ ॥ मगधराज जरासन्धकी मृत्यु हो जानेपर वहाँकी प्रजा बड़े जोरसे 'हाय-हाय !' पुकारने लगी । भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने भीमसेनका आलिङ्गन करके उनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूप और विचारोंको कोई समझ नहीं सकता । वास्तवमें वे ही समस्त प्राणियोंके जीवनदाता हैं । उन्होंने जरासन्धके राजसिंहासनपर उसके पुत्र सहदेवका अभिषेक कर दिया और जरासन्धने जिन राजाओंको कैदी बना रक्खा था, उन्हें कारागारसे मुक्त कर दिया ॥ ४८ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्धके जेलसे छूटे हुए राजाओंकी विदाई और भगवान्‌का इन्द्रप्रस्थ लौट आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जरासन्धने अनायास ही बीस हजार आठ सौ राजाओंको जीतकर पहाड़ोंकी घाटीमें एक किलेके भीतर कैद कर रक्खा था । भगवान् श्रीकृष्णके छोड़ देनेपर जब वे वहाँसे निकले, तब उनके शरीर और वस्त्र मैले हो रहे थे ॥ १ ॥ वे भूखसे दुर्बल हो रहे थे और उनके मुँह सूख गये थे । जेलमें बंद रहनेके कारण उनके शरीरका एक-एक अङ्ग ढीला पड़ गया था । वहाँसे निकलते ही उन नरपतियोंने देखा कि सामने भगवान् श्रीकृष्ण खड़े हैं । वर्षाकालीन मेघके समान उनका साँवला-सलोना शरीर है और उसपर पीले रंगका रेशमी वस्त्र फहरा रहा है ॥२॥ चार भुजाएँ हैं—जिनमें गदा, शङ्ख, चक्र और कमल सुशोभित हैं । वक्षःस्थलपर सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और कमलके भीतरी भागके समान कोमल, रतनारे नेत्र हैं । सुन्दर वदन प्रसन्नताका सदन है । कानोंमें मकराकृति कुण्डल झिलमिला रहे हैं । सुन्दर

मुकुट, मोतियोंका हार, कड़े, करधनी और बाजूबंद अपने-अपने स्थानपर शोभा पा रहे हैं ॥ ३-४ ॥ गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही है और वनमाला लटक रही है। भगवान् श्रीकृष्णको देखकर उन राजाओंकी ऐसी स्थिति हो गयी, मानो वे नेत्रोंसे उन्हें पी रहे हैं। जीभसे चाट रहे हैं, नासिकासे सूँघ रहे हैं और बाहुओंसे आलिङ्गन कर रहे हैं। उनके सारे पाप तो भगवान्के दर्शनसे ही धुल चुके थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर अपना सिर रखकर प्रणाम किया ॥ ५-६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उन राजाओंको इतना अधिक आनन्द हुआ कि कैदमें रहनेका क्लेश बिल्कुल जाता रहा। वे हाथ जोड़कर विनम्र वाणीसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥

राजाओंने कहा—शरणागतोंके सारे दुःख और भय हर लेनेवाले देवदेवेश्वर! सच्चिदानन्दस्वरूप अविनाशी श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करते हैं। आपने जरासन्धके कारागारसे तो हमें छुड़ा ही दिया, अब इस जन्म-मृत्युरूप घोर संसार-चक्रसे भी छुड़ा दीजिये; क्योंकि हम संसारमें दुःखका कटु अनुभव करके उससे ऊब गये हैं और आपकी शरणमें आये हैं। प्रभो! अब आप हमारी रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ मधुसूदन! हमारे स्वामी! हम मगधराज जरासन्धका कोई दोष नहीं देखते। भगवन्! यह तो आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है कि हम राजा कहलानेवाले लोग राज्यलक्ष्मीसे च्युत कर दिये गये ॥ ९ ॥ क्योंकि जो राजा अपने राज्य-ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त हो जाता है, उसको सच्चे सुखकी—कल्याणकी प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। वह आपकी मायासे मोहित होकर अनित्य सम्पत्तियोंको ही अचल मान बैठता है ॥ १० ॥ जैसे मूर्खलोग मृगतृष्णाके जलको ही जलाशय मान लेते हैं, वैसे ही इन्द्रियलोलुप और अज्ञानी पुरुष भी इस परिवर्तनशील मायाको सत्य वस्तु मान लेते हैं ॥ ११ ॥ भगवन्! पहले हमलोग धन-सम्पत्तिके नशेमें चूर होकर अंधे हो रहे थे। इस पृथ्वीको जीत लेनेके लिये एक दूसरेकी होड़ करते थे और अपनी ही प्रजाका नाश करते रहते थे। सचमुच हमारा जीवन अत्यन्त क्रूरतासे भरा हुआ था, और हमलोग इतने अधिक मतवाले हो रहे थे कि आप मृत्युरूपसे हमारे सामने खड़े हैं, इस बातकी भी हम तनिक परवा नहीं करते थे ॥ १२ ॥ सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण! कालकी गति बड़ी गहन है। वह इतना बलवान् है कि किसीके टाले टलता नहीं। क्यों न हो, वह आपका शरीर ही तो है। अब उसने हम-लोगोंको श्रीहीन, निर्धन कर दिया है। आपकी अहेतुक अनुकम्पासे हमारा घमंड चूर-चूर हो गया। अब हम आपके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं॥ १३ ॥ विभो! यह शरीर दिन-दिन क्षीण होता जा रहा है। रोगोंकी तो यह जन्मभूमि ही है। अब हमें इस शरीरसे भोगे जानेवाले राज्यकी अभिलाषा नहीं है। क्योंकि हम समझ गये हैं कि वह मृगतृष्णाके जलके समान सर्वथा मिथ्या है। यही नहीं, हमें कर्मके फल स्वर्गादि लोकोंकी भी, जो मरनेके बाद मिलते हैं, इच्छा नहीं है। क्योंकि हम जानते हैं कि वे निस्सार हैं, केवल सुननेमें ही आकर्षक जान पड़ते हैं ॥ १४ ॥ अब हमें कृपा करके आप वह उपाय बतलाइये, जिससे आपके चरणकमलोंकी विस्मृति कभी न हो, सर्वदा स्मृति बनी रहे। चाहे हमें संसारकी किसी भी योनिमें जन्म क्यों न लेना पड़े ॥१५॥ प्रणाम करनेवालोंके क्लेशका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा एवं गोविन्दके प्रति हमारा बार-बार नमस्कार है ॥ १६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कारागारसे मुक्त राजाओंने जब इस प्रकार करुणावरुणालय भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की, तब शरणागतरक्षक प्रभुने बड़ी मधुर वाणीसे उनसे कहा ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—नरपतियो! तुमलोगोंने जैसी इच्छा प्रकट की है, उसके अनुसार आजसे मुझमें तुम लोगोंकी निश्चय ही सुदृढ़ भक्ति होगी। यह जान लो कि मैं सबका आत्मा और सबका स्वामी हूँ ॥१८॥ नरपतियो! तुम लोगोंने जो निश्चय किया है, वह सचमुच तुम्हारे लिये बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है। तुमलोगोंने मुझसे जो कुछ कहा है, वह बिल्कुल ठीक है। क्योंकि मैं देखता हूँ, धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे चूर होकर बहुत-से लोग उच्छृङ्खल

और मतवाले हो जाते हैं ॥ १९ ॥ हैहय, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर आदि अनेकों देवता, दैत्य और नरपति श्रीमदके कारण अपने स्थानसे, पदसे च्युत हो गये ॥ २० ॥ तुमलोग यह समझ लो कि शरीर और इसके सम्बन्धी पैदा होते हैं, इसलिये उनका नाश भी अवश्यम्भावी है। अतः उनमें आसक्ति मत करो। बड़ी सावधानीसे मन और इन्द्रियोंको वशमें रखकर यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करो और धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करो ॥ २१ ॥ तुमलोग अपनी वंश-परम्पराकी रक्षाके लिये, भोगके लिये नहीं, सन्तान उत्पन्न करो और प्रारब्धके अनुसार जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, लाभ-हानि—जो कुछ भी प्राप्त हों, उन्हें समानभावसे मेरा प्रसाद समझकर सेवन करो और अपना चित्त मुझमें लगाकर जीवन बिताओ ॥ २२ ॥ देह और देहके सम्बन्धियोंसे किसी प्रकारकी आसक्ति न रखकर उदासीन रहो; अपने-आपमें, आत्मामें ही रमण करो और भजन तथा आश्रमके योग्य व्रतोंका पालन करते रहो। अपना मन भलीभाँति मुझमें लगाकर अन्तमें तुमलोग मुझ ब्रह्मस्वरूपको ही प्राप्त हो जाओगे ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भुवनेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने राजाओंको यह आदेश देकर उन्हें स्नान आदि करानेके लिये बहुत-से स्त्री-पुरुष नियुक्त कर दिये ॥ २४ ॥ परीक्षित्! जरासन्धके पुत्र सहदेवसे उनको राजोचित वस्त्र-आभूषण, माला-चन्दन आदि दिलवाकर उनका खूब सम्मान करवाया ॥२५॥ जब वे स्नान करके वस्त्राभूषणसे सुसज्जित हो चुके, तब भगवान्‌ने उन्हें उत्तम-उत्तम पदार्थोंका भोजन करवाया और पान आदि विविध प्रकारके राजोचित भोग दिलवाये ॥ २६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार उन बंदी राजाओंको सम्मानित किया। अब वे समस्त क्लेशोंसे छुटकारा पाकर तथा कानोंमें झिलमिलाते हुए सुन्दर-सुन्दर कुण्डल पहनकर ऐसे शोभायमान हुए, जैसे वर्षाऋतुका अन्त हो जानेपर तारे ॥ २७ ॥ फिर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सुवर्ण और मणियोंसे भूषित एवं श्रेष्ठ घोड़ोंसे युक्त रथोंपर चढ़ाया, मधुर वाणीसे तृप्त किया और फिर उन्हें उनके देशोंको भेज दिया ॥ २८ ॥ इस प्रकार उदारशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने उन राजाओंको महान् कष्टसे मुक्त किया। अब वे जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णके रूप, गुण और लीलाओंका चिन्तन करते हुए अपनी-अपनी राजधानीको चले गये ॥ २९ ॥ वहाँ जाकर उन लोगोंने अपनी-अपनी प्रजासे परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत कृपा और लीला कह सुनायी और फिर बड़ी सावधानीसे भगवान्‌के आज्ञानुसार वे अपना जीवन व्यतीत करने लगे ॥ ३० ॥

परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भीमसेनके द्वारा जरासन्धका वध करवाकर भीमसेन और अर्जुनके साथ जरासन्धनन्दन सहदेवसे सम्मानित होकर इन्द्रप्रस्थके लिये चले। उन विजयी वीरोंने इन्द्रप्रस्थके पास पहुँचकर अपने-अपने शङ्ख बजाये, जिससे उनके इष्टमित्रोंको सुख और शत्रुओंको बड़ा दुःख हुआ ॥ ३१-३२ ॥ इन्द्रप्रस्थनिवासियोंका मन उस शङ्ख-ध्वनिको सुनकर खिल उठा। उन्होंने समझ लिया कि जरासन्ध मर गया और अब राजा युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ करनेका संकल्प एक प्रकारसे पूरा हो गया ॥ ३३ ॥ भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्णने राजा युधिष्ठिरकी वन्दना की और वह सब कृत्य कह सुनाया, जो उन्हें जरासन्धके वधके लिये करना पड़ा था ॥ ३४ ॥ धर्मराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णके इस परम अनुग्रहकी बात सुनकर प्रेमसे भर गये, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें टपकने लगीं और वे उनसे कुछ भी कह न सके ॥ ३५ ॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

भगवान्‌की अग्रपूजा और शिशुपालका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! धर्मराज युधिष्ठिर जरासन्धका वध और सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत महिमा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनसे बोले ॥ १ ॥

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! त्रिलोकीके स्वामी ब्रह्मा, शङ्कर आदि और इन्द्रादि लोकपाल—सब आपकी आज्ञा पानेके लिये तरसते रहते हैं और यदि वह मिल जाती है तो बड़ी श्रद्धासे उसको शिरोधार्य करते हैं ॥ २ ॥ अनन्त ! हमलोग हैं तो अत्यन्त दीन, परन्तु मानते हैं अपनेको भूपति और नरपति । ऐसी स्थितिमें हैं तो हम दण्डके पात्र, परन्तु आप हमारी आज्ञा स्वीकार करते हैं और उसका पालन करते हैं । सर्वशक्तिमान् कमलनयन भगवान्‌के लिये यह मनुष्य-लीलाका अभिनयमात्र है ॥ ३ ॥ जैसे उदय अथवा अस्तके कारण सूर्यके तेजमें घटती या बढ़ती नहीं होती, वैसे ही किसी भी प्रकारके कर्मोंसे न तो आपका उल्लास होता है और न तो ह्रास ही । क्योंकि आप सजातीय, विजातीय और स्वगतभेदसे रहित स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं ॥४॥ किसीसे पराजित न होनेवाले माधव ! 'यह मैं हूँ और यह मेरा है तथा यह तू है और यह तेरा'—इस प्रकारकी विकारयुक्त भेदबुद्धि तो पशुओंकी होती है । जो आपके अनन्य भक्त हैं, उनके चित्तमें ऐसे पागलपनके विचार कभी नहीं आते । फिर आपमें तो होंगे ही कहाँसे ? (इसलिये आप जो कुछ कर रहे हैं, वह लीला-ही-लीला है) ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार कहकर धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे यज्ञके योग्य समय आनेपर यज्ञके कर्मोंमें निपुण वेदवादी ब्राह्मणोंको ऋत्विज, आचार्य आदिके रूपमें वरण किया ॥ ६ ॥ उनके नाम ये हैं—श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतव्रण ॥ ७—९ ॥ इनके अतिरिक्त धर्मराजने द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र और उनके दुर्योधन आदि पुत्रों और महामति विदुर आदिको भी बुलवाया ॥ १० ॥ राजन् ! राजसूय यज्ञका दर्शन करनेके लिये देशके सब राजा, उनके मन्त्री तथा कर्मचारी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सब-के-सब वहाँ आये ॥ ११ ॥

इसके बाद ऋत्विज ब्राह्मणोंने सोनेके हलोंसे यज्ञभूमिको जुतवाकर राजा युधिष्ठिरको शास्त्रानुसार यज्ञकी दीक्षा दी ॥ १२ ॥ प्राचीन कालमें जैसे वरुणदेवके यज्ञमें सब-के-सब यज्ञपात्र सोनेके बने हुए थे, वैसे ही युधिष्ठिरके यज्ञमें भी थे । पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिरके यज्ञमें निमन्त्रण पाकर ब्रह्माजी, शङ्करजी, इन्द्रादि लोकपाल, अपने गणोंके साथ सिद्ध और गन्धर्व, विद्याधर, नाग, मुनि, यक्ष, राक्षस, पक्षी, किन्नर, चारण, बड़े-बड़े राजा और रानियाँ—ये सभी उपस्थित हुए ॥ १३—१५ ॥ सबने बिना किसी प्रकारके कौतूहलके यह बात मान ली कि राजसूय यज्ञ करना युधिष्ठिरके योग्य ही है । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके भक्तके लिये ऐसा करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है । उस समय देवताओंके समान तेजस्वी याजकोंने धर्मराज युधिष्ठिरसे विधिपूर्वक राजसूय यज्ञ कराया; ठीक वैसे ही, जैसे पूर्वकालमें देवताओंने वरुणसे करवाया था ॥ १६ ॥ सोमलतासे रस निकालनेके दिन महाराज युधिष्ठिरने अपने परम भाग्यवान् याजकों और यज्ञकर्मकी भूल-चूकका निरीक्षण करनेवाले सदसस्पतियोंका बड़ी सावधानीसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ १७ ॥

अब सभासद् लोग इस विषयपर विचार करने लगे कि सदस्योंमें सबसे पहले किसकी पूजा—अग्रपूजा होनी चाहिये । जितनी मति, उतने मत । इसलिये सर्वसम्मतिसे कोई निर्णय न हो सका । ऐसी स्थितिमें सहदेवने कहा—॥ १८ ॥ 'यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण ही सदस्योंमें सर्वश्रेष्ठ और अग्रपूजाके पात्र हैं; क्योंकि यही समस्त देवताओंके रूपमें हैं; और देश, काल, धन आदि जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सबके रूपमें भी ये ही हैं ॥ १९ ॥ यह सारा विश्व श्रीकृष्णका ही रूप है । समस्त यज्ञ भी श्रीकृष्ण-स्वरूप ही हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ही अग्नि, आहुति और मन्त्रोंके रूपमें हैं । ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग—ये दोनों भी श्रीकृष्णकी प्राप्तिके ही हेतु हैं ॥ २० ॥

सभासदो ! मैं कहाँतक वर्णन करूँ, भगवान् श्रीकृष्ण वह एकरस अद्वितीय ब्रह्म हैं, जिसमें सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद नाममात्रका भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् उन्हींका स्वरूप है। वे अपने-आपमें ही स्थित और जन्म, अस्तित्व, वृद्धि आदि छः भाव-विकारोंसे रहित हैं। वे अपने आत्मस्वरूप सङ्कल्पसे ही जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं ॥२१॥ सारा जगत् श्रीकृष्णके ही अनुग्रहसे अनेकों प्रकारके कर्मका अनुष्ठान करता हुआ धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थोंका सम्पादन करता है ॥ २२ ॥ इसलिये सबसे महान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही अग्रपूजा होनी चाहिये। इनकी पूजा करनेसे समस्त प्राणियोंकी तथा अपनी भी पूजा हो जाती है ॥ २३ ॥ जो अपने दान-धर्मको अनन्त भावसे युक्त करना चाहता हो, उसे चाहिये कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंके अन्तरात्मा, भेदभावरहित, परम शान्त और परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णको ही दान करे ॥ २४ ॥ परीक्षित् ! सहदेव भगवान्‌की महिमा और उनके प्रभावको जानते थे। इतना कहकर वे चुप हो गये। उस समय धर्मराज युधिष्ठिरकी यज्ञसभामें जितने सत्पुरुष उपस्थित थे, सबने एक स्वरसे 'बहुत ठीक, बहुत ठीक' कहकर सहदेवकी बातका समर्थन किया ॥२५॥ धर्मराज युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंकी यह आज्ञा सुनकर तथा सभासदोंका अभिप्राय जानकर बड़े आनन्दसे प्रेमोद्रेकसे विह्वल होकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की ॥ २६ ॥ अपनी पत्नी, भाई, मन्त्री और कुटुम्बियोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेम और आनन्दसे भगवान्‌के पाँव पखारे तथा उनके चरणकमलोंका लोकपावन जल अपने सिरपर धारण किया ॥ २७ ॥ उन्होंने भगवान्‌को पीले-पीले रेशमी वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण समर्पित किये। उस समय उनके नेत्र प्रेम और आनन्दके आँसुओंसे इस प्रकार भर गये कि वे भगवान्‌को भलीभाँति देख भी नहीं सकते थे ॥ २८ ॥ यज्ञसभामें उपस्थित सभी लोग भगवान् श्रीकृष्णको इस प्रकार पूजित, सत्कृत देखकर हाथ जोड़े हुए 'नमो नमः ! जय-जय !' इस प्रकारके नारे लगाकर उन्हें नमस्कार करने लगे। उस समय आकाशसे स्वयं ही पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ २९ ॥

परीक्षित् ! अपने आसनपर बैठा हुआ शिशुपाल यह सब देख-सुन रहा था। भगवान् श्रीकृष्णके गुण सुनकर उसे क्रोध हो आया और वह उठकर खड़ा हो गया। वह भरी सभामें हाथ उठाकर बड़ी असहिष्णुता किन्तु निर्भयताके साथ भगवान्‌को सुना-सुनाकर अत्यन्त कठोर बातें कहने लगा—॥ ३० ॥ 'सभासदो ! श्रुतियोंका यह कहना सर्वथा सत्य है कि काल ही ईश्वर है। लाख चेष्टा करनेपर भी वह अपना काम करा ही लेता है—इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमने देख लिया कि यहाँ बच्चों और मूर्खोंकी बातसे बड़े-बड़े वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्धोंकी बुद्धि भी चकरा गयी है ॥ ३१ ॥ पर मैं मानता हूँ कि आपलोग अग्रपूजाके योग्य पात्रका निर्णय करनेमें सर्वथा समर्थ हैं। इसलिये सदसस्पतियो ! आपलोग बालक सहदेवकी यह बात ठीक न मानें कि 'कृष्ण ही अग्रपूजाके योग्य है' ॥ ३२ ॥ यहाँ बड़े-बड़े तपस्वी, विद्वान्, व्रतधारी, ज्ञानके द्वारा अपने समस्त पाप-तापोंको शान्त करनेवाले, परम ज्ञानी परमर्षि, ब्रह्मनिष्ठ आदि उपस्थित हैं—जिनकी पूजा बड़े-बड़े लोकपाल भी करते हैं ॥ ३३ ॥ यज्ञकी भूल-चूक बतलानेवाले उन सदसस्पतियोंको छोड़कर यह कुलकलङ्क ग्वाला भला, अग्रपूजाका अधिकारी कैसे हो सकता है ? क्या कौआ कभी यज्ञके पुरोडाशका अधिकारी हो सकता है ? ॥ ३४ ॥ न इसका कोई वर्ण है और न तो आश्रम। कुल भी इसका ऊँचा नहीं है। सारे धर्मोंसे यह बाहर है। वेद और लोकमर्यादाओंका उल्लङ्घन करके मनमाना आचरण करता है। इसमें कोई गुण भी नहीं है। ऐसी स्थितिमें यह अग्रपूजाका पात्र कैसे हो सकता है ? ॥ ३५ ॥ आपलोग जानते हैं कि राजा ययातिने इसके वंशको शाप दे रक्खा है। इसलिये सत्पुरुषोंने इस वंशका ही बहिष्कार कर दिया है। ये सब सर्वदा व्यर्थ मधुपानमें आसक्त रहते हैं। फिर ये अग्रपूजाके योग्य कैसे हो सकते हैं ? ॥ ३६ ॥ इन सबने ब्रह्मर्षियोंके द्वारा सेवित मथुरा आदि देशोंका परित्याग कर दिया और ब्रह्मवर्चसके विरोधी (वेदचर्चारहित) समुद्रमें किला बनाकर रहने लगे। वहाँसे जब ये बाहर निकलते हैं, तो

डाकुओंकी तरह सारी प्रजाको सताते हैं' ॥ ३७ ॥ परीक्षित् ! सच पूछो तो शिशुपालका सारा शुभ नष्ट हो चुका था। इसीसे उसने और भी बहुत-सी कड़ी-कड़ी बातें भगवान् श्रीकृष्णको सुनायीं। परन्तु जैसे सिंह कभी सियारकी 'हुआँ-हुआँ' पर ध्यान नहीं देता, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण चुप रहे, उन्होंने उसकी बातोंका कुछ भी उत्तर न दिया ॥ ३८ ॥ परन्तु सभासदोंके लिये भगवान्‌की निन्दा सुनना असह्य था। उनमेंसे कई अपने-अपने कान बंद करके क्रोधसे शिशुपालको गाली देते हुए बाहर चले गये ॥ ३९ ॥ परीक्षित् ! जो भगवान्‌की या भगवत्परायण भक्तोंकी निन्दा सुनकर वहाँसे हट नहीं जाता, वह अपने शुभकर्मोंसे च्युत हो जाता है और उसकी अधोगति होती है ॥ ४० ॥

परीक्षित् ! अब शिशुपालको मार डालनेके लिये पाण्डव, मत्स्य, केकय और सृञ्जयवंशी नरपति क्रोधित होकर हाथोंमें हथियार ले उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ परन्तु शिशुपालको इससे कोई घबड़ाहट न हुई। उसने बिना किसी प्रकारका आगा-पीछा सोचे अपनी ढाल-तलवार उठा ली और वह भरी सभामें श्रीकृष्णके पक्षपाती राजाओंको ललकारने लगा ॥ ४२ ॥ उन लोगोंको लड़ते-झगड़ते देख भगवान् श्रीकृष्ण उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने पक्षपाती राजाओंको शान्त किया और स्वयं क्रोध करके अपने ऊपर झपटते हुए शिशुपालका सिर छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे काट लिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मारे जानेपर वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया। उसके अनुयायी नरपति अपने-अपने प्राण बचानेके लिये वहाँसे भाग खड़े हुए ॥ ४४ ॥ जैसे आकाशसे गिरा हुआ लूक धरतीमें समा जाता है, वैसे ही सब प्राणियोंके देखते-देखते शिशुपालके शरीरसे एक ज्योति निकलकर भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी ॥ ४५ ॥ परीक्षित् ! शिशुपालके अन्तःकरणमें लगातार तीन जन्मसे वैरभावकी अभिवृद्धि हो रही थी। और इस प्रकार, वैरभावसे ही सही, ध्यान करते-करते वह तन्मय हो गया—पार्षद हो गया। सच है—मृत्युके बाद होनेवाली गतिमें भाव ही कारण है ॥ ४६ ॥ शिशुपालकी सद्गति होनेके बाद चक्रवर्ती धर्मराज युधिष्ठिरने सदस्य और ऋत्विजोंको पुष्कल दक्षिणा दी तथा सबका सत्कार करके विधिपूर्वक यज्ञान्त-स्नान—अवभृथ-स्नान किया ॥ ४७ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ पूर्ण किया और अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृदोंकी प्रार्थनासे कुछ महीनोंतक वहीं रहे ॥ ४८ ॥ इसके बाद राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न होनेपर भी सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने उनसे अनुमति ले ली और अपनी रानियों तथा मन्त्रियोंके साथ इन्द्रप्रस्थसे द्वारकापुरीकी यात्रा की ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! मैं यह उपाख्यान तुम्हें बहुत विस्तारसे (सातवें स्कन्धमें) सुना चुका हूँ कि वैकुण्ठवासी जय और विजयको सनकादि ऋषियोंके शापसे बार-बार जन्म लेना पड़ा था ॥ ५० ॥ महाराज युधिष्ठिर राजसूयका यज्ञान्त-स्नान करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी सभामें देवराज इन्द्रके समान शोभायमान होने लगे ॥ ५१ ॥ राजा युधिष्ठिरने देवता, मनुष्य और आकाशचारियोंका यथायोग्य सत्कार किया तथा वे भगवान् श्रीकृष्ण एवं राजसूय यज्ञकी प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्दसे अपने-अपने लोकको चले गये ॥ ५२ ॥ परीक्षित् ! सब तो सुखी हुए, परन्तु दुर्योधनसे पाण्डवोंकी यह उज्ज्वल राज्यलक्ष्मीका उत्कर्ष सहन न हुआ। क्योंकि वह स्वभावसे ही पापी, कलह-प्रेमी और कुरुकुलका नाश करनेके लिये एक महान् रोग था ॥ ५३ ॥

परीक्षित् ! जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी इस लीलाका—शिशुपालवध, जरासन्धवध, बंदी राजाओंकी मुक्ति और यज्ञानुष्ठानका कीर्तन करेगा, वह समस्त पापोंसे छूट जायगा ॥ ५४ ॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञकी पूर्ति और दुर्योधनका अपमान

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! अजातशत्रु धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमहोत्सवको देखकर, जितने मनुष्य, नरपति, ऋषि, मुनि और देवता आदि आये थे, वे सब आनन्दित हुए। परन्तु दुर्योधनको

बड़ा दुःख, बड़ी पीड़ा हुई; यह बात मैंने आपके मुखसे सुनी है। भगवन्! आप कृपा करके इसका कारण बतलाइये॥ १-२॥

श्रीशुकदेवजी महाराजने कहा—परीक्षित्! तुम्हारे दादा युधिष्ठिर बड़े महात्मा थे। उनके प्रेमबन्धनसे बँधकर सभी बन्धु-बान्धवोंने राजसूय यज्ञमें विभिन्न सेवाकार्य स्वीकार किया था॥ ३॥ भीमसेन भोजनालयकी देख-रेख करते थे। दुर्योधन कोषाध्यक्ष थे। सहदेव अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कारमें नियुक्त थे और नकुल विविध प्रकारकी सामग्री एकत्र करनेका काम देखते थे॥ ४॥ अर्जुन गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा करते थे और स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आये हुए अतिथियोंके पाँव पखारनेका काम करते थे। देवी द्रौपदी भोजन परसनेका काम करतीं और उदारशिरोमणि कर्ण खुले हाथों दान दिया करते थे॥ ५॥ परीक्षित्! इसी प्रकार सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर, भूरिश्रवा आदि बाह्लीकके पुत्र और सन्तर्दन आदि राजसूय यज्ञमें विभिन्न कर्मोंमें नियुक्त थे। वे सब-के-सब वैसा ही काम करते थे, जिससे महाराज युधिष्ठिरका प्रिय और हित हो॥६-७॥

परीक्षित्! जब ऋत्विज, सदस्य और बहुज्ञ पुरुषोंका तथा अपने इष्ट-मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंका सुमधुर वाणी, विविध प्रकारकी पूजा-सामग्री और दक्षिणा आदिसे भलीभाँति सत्कार हो चुका तथा शिशुपाल भक्तवत्सल भगवान्‌के चरणोंमें समा गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर गङ्गाजीमें यज्ञान्त-स्नान करने गये॥ ८॥ उस समय जब वे अवभृथ-स्नान करने लगे, तब मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल, नौबत, नगारे और नरसिंगे आदि तरह-तरहके बाजे बजने लगे॥ ९॥ नर्तकियाँ आनन्दसे झूम-झूमकर नाचने लगीं। झुंड-के-झुंड गवैये गाने लगे और वीणा, बाँसुरी तथा झाँझ-मँजीरे बजने लगे। इनकी तुमुल ध्वनि सारे आकाशमें गूँज गयी॥ १०॥ सोनेके हार पहने हुए यदु, सृञ्जय, कम्बोज, कुरु, केकय और कोसल देशके नरपति रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाओंसे युक्त और खूब सजे-धजे गजराजों, रथों, घोड़ों तथा सुसज्जित वीर सैनिकोंके साथ महाराज युधिष्ठिरको आगे करके पृथ्वीको कँपाते हुए चल रहे थे॥ ११-१२॥ यज्ञके सदस्य, ऋत्विज और बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मण वेद-मन्त्रोंका ऊँचे स्वरसे उच्चारण करते हुए चले। देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ १३॥ इन्द्रप्रस्थके नर-नारी इत्र-फुलेल, पुष्पोंके हार, रंग-बिरंगे वस्त्र और बहुमूल्य आभूषणोंसे सज-धजकर एक-दूसरेपर जल, तेल, दूध, मक्खन आदि रस डालकर भिगो देते, एक-दूसरेके शरीरमें लगा देते और इस प्रकार क्रीडा करते हुए चलने लगे॥ १४॥ वाराङ्गनाएँ पुरुषोंको तेल, गोरस, सुगन्धित जल, हल्दी और गाढ़ी केसर मल देतीं और पुरुष भी उन्हें उन्हीं वस्तुओंसे सराबोर कर देते॥ १५॥

उस समय इस उत्सवको देखनेके लिये जैसे उत्तम-उत्तम विमानोंपर चढ़कर आकाशमें बहुत-सी देवियाँ आयी थीं, वैसे ही सैनिकोंके द्वारा सुरक्षित इन्द्रप्रस्थकी बहुत-सी राजमहिलाएँ भी सुन्दर-सुन्दर पालकियोंपर सवार होकर आयी थीं। पाण्डवोंके ममेरे भाई श्रीकृष्ण और उनके सखा उन रानियोंके ऊपर तरह-तरहके रंग आदि डाल रहे थे। इससे रानियोंके मुख लजीली मुसकराहटसे खिल उठते थे और उनकी बड़ी शोभा होती थी॥ १६॥ उन लोगोंके रंग आदि डालनेसे रानियोंके वस्त्र भीग गये थे। इससे उनके शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्ग—वक्षःस्थल, जंघा और कटिभाग कुछ-कुछ दीख-से रहे थे। वे भी पिचकारी और पात्रोंमें रंग भर-भरकर अपने देवरों और उनके सखाओंपर उड़ेल रही थीं। प्रेमभरी उत्सुकताके कारण उनकी चोटियों और जूड़ोंके बन्धन ढीले पड़ गये थे तथा उनमें गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे। परीक्षित्! उनका यह रुचिर और पवित्र विहार देखकर मलिन अन्तःकरणवाले पुरुषोंका चित्त चञ्चल हो उठता था, काम-मोहित हो जाता था॥ १७॥

चक्रवर्ती राजा युधिष्ठिर द्रौपदी आदि रानियोंके साथ सुन्दर घोड़ोंसे युक्त एवं सोनेके हारोंसे सुसज्जित रथपर सवार होकर ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो स्वयं राजसूय यज्ञ प्रयाज आदि क्रियाओंके साथ मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गया हो॥ १८॥ ऋत्विजोंने पत्नी-संयाज (एक प्रकारका यज्ञकर्म) तथा यज्ञान्त-स्नान-

सम्बन्धी कर्म करवाकर द्रौपदीके साथ सम्राट् युधिष्ठिर-को आचमन करवाया और इसके बाद गङ्गास्नान ॥१९॥ उस समय मनुष्योंकी दुन्दुभियोंके साथ ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ भी बजने लगीं। बड़े-बड़े देवता, ऋषि-मुनि, पितर और मनुष्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ २० ॥ महाराज युधिष्ठिरके स्नान कर लेनेके बाद सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोगोंने गङ्गाजीमें स्नान किया; क्योंकि इस स्नानसे बड़े-से-बड़ा महापापी भी अपनी पाप-राशिसे तत्काल मुक्त हो जाता है॥ २१ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने नयी रेशमी धोती और दुपट्टा धारण किया तथा विविध प्रकारके आभूषणोंसे अपनेको सजा लिया। फिर ऋत्विज, सदस्य, ब्राह्मण आदिको वस्त्राभूषण दे-देकर उनकी पूजा की ॥२२॥ महाराज युधिष्ठिर भगवत्परायण थे, उन्हें सबमें भगवान्‌के ही दर्शन होते। इसलिये वे भाई-बन्धु, कुटुम्बी, नरपति, इष्ट-मित्र, हितैषी और सभी लोगोंकी बार-बार पूजा करते ॥ २३ ॥ उस समय सभी लोग जड़ाऊ कुण्डल, पुष्पोंके हार, पगड़ी, लंबी अँगरखी, दुपट्टा तथा मणियोंके बहुमूल्य हार पहनकर देवताओंके समान शोभायमान हो रहे थे। स्त्रियोंके मुखोंकी भी दोनों कानोंके कर्णफूल और घुँघराली अलकोंसे बड़ी शोभा हो रही थी तथा उनके कटिभागमें सोनेकी करधनियाँ तो बहुत ही भली मालूम हो रही थीं ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! राजसूय यज्ञमें जितने लोग आये थे—परम शीलवान् ऋत्विज, ब्रह्मवादी सदस्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राजा, देवता, ऋषि, मुनि, पितर तथा अन्य प्राणी और अपने अनुयायियोंके साथ लोकपाल—इन सबकी पूजा महाराज युधिष्ठिरने की। इसके बाद वे लोग धर्मराजसे अनुमति लेकर अपने-अपने निवासस्थान-को चले गये ॥२५-२६॥ परीक्षित् ! जैसे मनुष्य अमृत-पान करते-करते कभी तृप्त नहीं हो सकता, वैसे ही सब लोग भगवद्भक्त राजर्षि युधिष्ठिरके राजसूय महायज्ञ-की प्रशंसा करते-करते तृप्त न होते थे ॥ २७ ॥ इसके बाद धर्मराज युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे अपने हितैषी सुहृद्-सम्बन्धियों, भाई-बन्धुओं और भगवान् श्रीकृष्णको भी रोक लिया, क्योंकि उन्हें उनके बिछोहकी कल्पनासे ही बड़ा दुःख होता था ॥ २८ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने यदुवंशी वीर साम्ब आदिको द्वारकापुरी भेज दिया और स्वयं राजा युधिष्ठिरकी अभिलाषा पूर्ण करने-के लिये, उन्हें आनन्द देनेके लिये वहीं रह गये ॥२९॥ इस प्रकार धर्मनन्दन महाराज युधिष्ठिर मनोरथोंके महान् समुद्रको, जिसे पार करना अत्यन्त कठिन है, भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे अनायास ही पार कर गये और उनकी सारी चिन्ता मिट गयी ॥ ३० ॥

एक दिनकी बात है, भगवान्‌के परमप्रेमी महाराज युधिष्ठिरके अन्तःपुरकी सौन्दर्य-सम्पत्ति और राजसूय यज्ञद्वारा प्राप्त महत्त्वको देखकर दुर्योधनका मन डाहसे जलने लगा ॥ ३१ ॥ परीक्षित् ! पाण्डवोंके लिये मय दानवने जो महल बना दिये थे, उनमें नरपति, दैत्य-पति और सुरपतियोंकी विविध विभूतियाँ तथा श्रेष्ठ सौन्दर्य स्थान-स्थानपर शोभायमान था। उनके द्वारा राजरानी द्रौपदी अपने पतियोंकी सेवा करती थीं। उस राजभवनमें उन दिनों भगवान् श्रीकृष्णकी सहस्रों रानियाँ निवास करती थीं। नितम्बके भारी भारके कारण जब वे उस राजभवनमें धीरे-धीरे चलने लगती थीं, तब उनके पायजेबोंकी झनकार चारों ओर फैल जाती थी। उनका कटिभाग बहुत ही सुन्दर था तथा उनके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरकी लालिमासे मोतियोंके सुन्दर श्वेत हार भी लाल-लाल जान पड़ते थे। कुण्डलोंकी और घुँघराली अलकोंकी चञ्चलतासे उनके मुखकी शोभा और भी बढ़ जाती थी। यह सब देखकर दुर्योधनके हृदयमें बड़ी जलन होती। परीक्षित् ! सच पूछो तो दुर्योधन-का चित्त द्रौपदीमें आसक्त था और यही उसकी जलन-का मुख्य कारण भी था ॥ ३२-३३ ॥

एक दिन राजाधिराज महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों, सम्बन्धियों एवं अपने नयनोंके तारे परम हितैषी भगवान् श्रीकृष्णके साथ मयदानवकी बनायी सभामें स्वर्णसिंहा-सनपर देवराज इन्द्रके समान विराजमान थे। उनकी भोग-सामग्री, उनकी राज्यलक्ष्मी ब्रह्माजीके ऐश्वर्यके समान थी। वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे थे ॥३४-३५॥ उसी समय अभिमानी दुर्योधन अपने दुःशासन आदि भाइयोंके साथ वहाँ आया। उसके सिरपर मुकुट, गलेमें माला और हाथमें तलवार थी। परीक्षित् ! वह क्रोधवश द्वारपालों और सेवकोंको झिड़क रहा था॥३६॥ उस सभामें मयदानवने ऐसी माया फैला रक्खी थी कि

दुर्योधनने उससे मोहित हो स्थलको जल समझकर अपने वस्त्र समेट लिये और जलको स्थल समझकर वह उसमें गिर पड़ा ॥ ३७ ॥ उसको गिरते देखकर भीमसेन, राजरानियाँ तथा दूसरे नरपति हँसने लगे। यद्यपि युधिष्ठिर उन्हें ऐसा करनेसे रोक रहे थे, परन्तु प्यारे परीक्षित्! उन्हें इशारेसे श्रीकृष्णका अनुमोदन प्राप्त हो चुका था ॥ ३८ ॥ इससे दुर्योधन लज्जित हो गया, उसका रोम-रोम क्रोधसे जलने लगा। अब वह अपना मुँह लटकाकर चुपचाप सभाभवनसे निकलकर हस्तिनापुर चला गया। इस घटनाको देखकर सत्पुरुषोंमें हाहाकार मच गया और धर्मराज युधिष्ठिरका मन भी कुछ खिन्न-सा हो गया। परीक्षित्! यह सब होनेपर भी भगवान् श्रीकृष्ण चुप थे। उनकी इच्छा थी कि किसी प्रकार पृथ्वीका भार उतर जाय; और सच पूछो, तो उन्हींकी दृष्टिसे दुर्योधनको वह भ्रम हुआ था ॥ ३९ ॥ परीक्षित्! तुमने मुझसे यह पूछा था कि उस महान् राजसूय-यज्ञमें दुर्योधनको डाह क्यों हुआ? जलन क्यों हुई? सो वह सब मैंने तुम्हें बतला दिया ॥ ४० ॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

शाल्वके साथ यादवोंका युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मनुष्य-की-सी लीला करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका एक और भी अद्भुत चरित्र सुनो। इसमें यह बताया जायगा कि सौभनामक विमानका अधिपति शाल्व किस प्रकार भगवान्‌के हाथसे मारा गया ॥ १ ॥ शाल्व शिशुपालका सखा था और रुक्मिणीके विवाहके अवसरपर बारातमें शिशुपालकी ओरसे आया हुआ था। उस समय यदुवंशियोंने युद्धमें जरासन्ध आदिके साथ-साथ शाल्वको भी जीत लिया था ॥ २ ॥ उस दिन सब राजाओंके सामने शाल्वने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं पृथ्वीसे यदुवंशियोंको मिटाकर छोड़ूँगा, सब लोग मेरा बल-पौरुष देखना' ॥ ३ ॥ परीक्षित्! मूढ़ शाल्वने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके देवाधिदेव भगवान् पशुपतिकी आराधना प्रारम्भ की। वह उन दिनों दिनमें केवल एक बार मुट्ठीभर राख फाँक लिया करता था ॥ ४ ॥ यों तो पार्वतीपति भगवान् शङ्कर आशुतोष हैं, औढरदानी हैं, फिर भी वे शाल्वका घोर सङ्कल्प जानकर एक वर्षके बाद प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने शरणागत शाल्वसे वर माँगनेके लिये कहा ॥ ५ ॥ उस समय शाल्वने यह वर माँगा कि 'मुझे आप एक ऐसा विमान दीजिये, जो देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंसे तोड़ा न जा सके; जहाँ इच्छा हो, वहीं चला जाय और यदुवंशियोंके लिये अत्यन्त भयङ्कर हो' ॥ ६ ॥ भगवान् शङ्करने कह दिया 'तथास्तु!' इसके बाद उनकी आज्ञासे विपक्षियोंके नगर जीतनेवाले मय दानवने लोहेका सौभनामक विमान बनाया और शाल्वको दे दिया ॥ ७ ॥ वह विमान क्या था एक नगर ही था। वह इतना अन्धकारमय था कि उसे देखना या पकड़ना अत्यन्त कठिन था। चलानेवाला उसे जहाँ ले जाना चाहता, वहीं वह उसके इच्छा करते ही चला जाता था। शाल्वने वह विमान प्राप्त करके द्वारकापर चढ़ाई कर दी, क्योंकि वह वृष्णिवंशी यादवोंद्वारा किये हुए वैरको सदा स्मरण रखता था ॥ ८ ॥

परीक्षित्! शाल्वने अपनी बहुत बड़ी सेनासे द्वारकाको चारों ओरसे घेर लिया और फिर उसके फल-फूलसे लदे हुए उपवन और उद्यानोंको उजाड़ने और नगरद्वारों, फाटकों, राजमहलों, अटारियों, दीवारों और नागरिकोंके मनोविनोदके स्थानोंको नष्ट-भ्रष्ट करने लगा। उस श्रेष्ठ विमानसे शस्त्रोंकी झड़ी लग गयी ॥ ९-१० ॥ बड़ी-बड़ी चट्टानें, वृक्ष, वज्र, सर्प और ओले बरसने लगे। बड़े जोरका बवंडर उठ खड़ा हुआ। चारों ओर धूल-ही-धूल छा गयी ॥ ११ ॥ परीक्षित्! प्राचीन कालमें जैसे त्रिपुरासुरने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रक्खा था, वैसे ही शाल्वके विमानने द्वारकापुरीको अत्यन्त पीड़ित कर दिया। वहाँके नर-नारियोंको कहीं एक क्षणके लिये भी शान्ति न मिलती थी ॥ १२ ॥

परमयशस्वी वीर भगवान् प्रद्युम्नने देखा—हमारी प्रजाको बड़ा कष्ट हो रहा है, तब उन्होंने रथपर सवार होकर सबको ढाढ़स बँधाया और कहा कि 'डरो मत' ॥ १३ ॥ उनके पीछे-पीछे सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, भाइयोंके साथ अक्रूर, कृतवर्मा, भानुविन्द, गद, शुक, सारण आदि बहुत-से वीर बड़े-बड़े धनुष धारण करके निकले। ये सब-के-सब महारथी थे। सबने कवच पहन रक्खे थे और सबकी रक्षाके लिये बहुत-से रथ, हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना साथ-साथ चल रही थी ॥ १४-१५ ॥ इसके बाद प्राचीन कालमें जैसे देवताओंके साथ असुरोंका घमासान युद्ध हुआ था, वैसे ही शाल्वके सैनिकों और यदुवंशियोंका युद्ध होने लगा। उसे देखकर लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नजीने अपने दिव्य अस्त्रोंसे क्षणभरमें ही सौभपति शाल्वकी सारी माया काट डाली; ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अपनी प्रखर किरणोंसे रात्रिका अन्धकार मिटा देते हैं ॥ १७ ॥ प्रद्युम्नजीके बाणोंमें सोनेके पंख एवं लोहेके फल लगे हुए थे। उनकी गाँठें जान नहीं पड़ती थीं। उन्होंने ऐसे ही पचीस बाणोंसे शाल्वके सेनापतिको घायल कर दिया ॥ १८ ॥ परममनस्वी प्रद्युम्नजीने सेनापतिके साथ ही शाल्वको भी सौ बाण मारे, फिर प्रत्येक सैनिकको एक-एक और सारथियोंको दस-दस तथा वाहनोंको तीन-तीन बाणोंसे घायल किया ॥ १९ ॥ महामना प्रद्युम्नजीके इस अद्भुत और महान् कर्मको देखकर अपने एवं पराये—सभी सैनिक उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ २० ॥ परीक्षित्! मय दानवका बनाया हुआ शाल्वका वह विमान अत्यन्त मायामय था। वह इतना विचित्र था कि कभी अनेक रूपोंमें दीखता तो कभी एक रूपमें, कभी दीखता तो कभी न भी दीखता। यदुवंशियोंको इस बातका पता ही न चलता कि वह इस समय कहाँ है ॥ २१ ॥ वह कभी पृथ्वीपर आ जाता तो कभी आकाशमें उड़ने लगता। कभी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाता, तो कभी जलमें तैरने लगता। वह अलात-चक्रके समान—मानो कोई दुमुँही लुकारियोंकी बनेठी भाँज रहा हो—घूमता रहता था, एक क्षणके लिये भी कहीं ठहरता न था ॥ २२ ॥ शाल्व अपने विमान और सैनिकोंके साथ जहाँ-जहाँ दिखायी पड़ता, वहीं-वहीं यदुवंशी सेनापति बाणोंकी झड़ी लगा देते थे ॥ २३ ॥ उनके बाण सूर्य और अग्निके समान जलते हुए तथा विषैले साँपकी तरह असह्य होते थे। उनसे शाल्वका नगराकार विमान और सेना अत्यन्त पीड़ित हो गयी, यहाँतक कि यदुवंशियोंके बाणोंसे शाल्व स्वयं मूर्च्छित हो गया ॥ २४ ॥

परीक्षित्! शाल्वके सेनापतियोंने भी यदुवंशियोंपर खूब शस्त्रोंकी वर्षा कर रक्खी थी, इससे वे अत्यन्त पीड़ित थे; परन्तु उन्होंने अपना-अपना मोर्चा छोड़ा नहीं। वे सोचते थे कि मरेंगे तो परलोक बनेगा और जीतेंगे तो विजयकी प्राप्ति होगी ॥ २५ ॥ परीक्षित्! शाल्वके मन्त्रीका नाम था द्युमान्, जिसे पहले प्रद्युम्नजीने पचीस बाण मारे थे। वह बहुत बली था। उसने झपटकर प्रद्युम्नजीपर अपनी फौलादी गदासे बड़े जोरसे प्रहार किया और 'मार लिया, मार लिया' कहकर गरजने लगा ॥ २६ ॥ परीक्षित्! गदाकी चोटसे शत्रुदमन प्रद्युम्नजीका वक्षःस्थल फट-सा गया। दारुकका पुत्र उनका रथ हाँक रहा था। वह सारथिधर्मके अनुसार उन्हें रणभूमिसे हटा ले गया ॥ २७ ॥ दो घड़ीमें प्रद्युम्नजीकी मूर्च्छा टूटी। तब उन्होंने सारथीसे कहा—'सारथे! तूने यह बहुत बुरा किया। हाय, हाय! तू मुझे रणभूमिसे हटा लाया? ॥ २८ ॥ सूत! हमने ऐसा कभी नहीं सुना कि हमारे वंशका कोई भी वीर कभी रणभूमि छोड़कर अलग हट गया हो! यह कलङ्कका टीका तो केवल मेरे ही सिर लगा। सचमुच सूत! तू कायर है, नपुंसक है ॥ २९ ॥ बतला तो सही, अब मैं अपने ताऊ बलरामजी और पिता श्रीकृष्णके सामने जाकर क्या कहूँगा? अब तो सब लोग यही कहेंगे न, कि मैं युद्धसे भग गया? उनके पूछनेपर मैं अपने अनुरूप क्या उत्तर दे सकूँगा ॥ ३० ॥ मेरी भाभियाँ हँसती हुई मुझसे साफ-साफ पूछेंगी कि 'कहो, वीर! तुम नपुंसक कैसे हो गये? दूसरोंने युद्धमें तुम्हें नीचा कैसे दिखा दिया?' सूत! अवश्य ही तुमने मुझे रणभूमिसे भगाकर अक्षम्य अपराध किया है!' ॥ ३१ ॥

सारथीने कहा—आयुष्मन्! मैंने जो कुछ किया

है, सारथीका धर्म समझकर ही किया है। मेरे समर्थ स्वामी! युद्धका ऐसा धर्म है कि सङ्कट पड़नेपर सारथी रथीकी रक्षा कर ले और रथी सारथीकी ॥ ३२ ॥ इस धर्मको समझते हुए ही मैंने आपको रणभूमिसे हटाया है। शत्रुने आपपर गदाका प्रहार किया था, जिससे आप मूर्च्छित हो गये थे, बड़े सङ्कटमें थे; इसीसे मुझे ऐसा करना पड़ा ॥ ३३ ॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब प्रद्युम्नजीने हाथ-मुँह धोकर, कवच पहन धनुष धारण किया और सारथीसे कहा कि 'मुझे वीर द्युमान्के पास फिरसे ले चलो' ॥१॥ उस समय द्युमान् यादवसेनाको तहस-नहस कर रहा था। प्रद्युम्नजीने उसके पास पहुँचकर उसे ऐसा करनेसे रोक दिया और मुसकराकर आठ बाण मारे ॥२॥ चार बाणोंसे उसके चार घोड़े और एक-एक बाणसे सारथी, धनुष, ध्वजा और उसका सिर काट डाला ॥ ३ ॥ इधर गद, सात्यकि, साम्ब आदि यदुवंशी वीर भी शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे। सौभ विमानपर चढ़े हुए सैनिकोंकी गरदनें कट जातीं और वे समुद्रमें गिर पड़ते ॥ ४ ॥ इस प्रकार यदुवंशी और शाल्वके सैनिक एक-दूसरेपर प्रहार करते रहे। बड़ा ही घमासान और भयङ्कर युद्ध हुआ और वह लगातार सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा ॥ ५ ॥

उन दिनों भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरके बुलानेसे इन्द्रप्रस्थ गये हुए थे। राजसूय यज्ञ हो चुका था और शिशुपालकी भी मृत्यु हो गयी थी ॥६॥ वहाँ भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि बड़े भयङ्कर अपशकुन हो रहे हैं। तब उन्होंने कुरुवंशके बड़े-बूढ़ों, ऋषि-मुनियों, कुन्ती और पाण्डवोंसे अनुमति लेकर द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ७ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे कि 'मैं पूज्य भाई बलरामजीके साथ यहाँ चला आया। अब शिशुपालके पक्षपाती क्षत्रिय अवश्य ही द्वारकापर आक्रमण कर रहे होंगे' ॥ ८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें पहुँचकर देखा कि सचमुच यादवोंपर बड़ी विपत्ति आयी है। तब उन्होंने बलरामजीको नगरकी रक्षाके लिये नियुक्त कर दिया और सौभपति शाल्वको देखकर अपने सारथी दारुकसे कहा ॥ ९ ॥ 'दारुक! तुम शीघ्र-से-शीघ्र मेरा रथ शाल्वके पास ले चलो। देखो, यह शाल्व बड़ा मायावी है, तो भी तुम तनिक भी भय न करना' ॥१०॥ भगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर दारुक रथपर चढ़ गया और उसे शाल्वकी ओर ले चला। भगवान्के रथकी ध्वजा गरुड़-चिह्नसे चिह्नित थी। उसे देखकर यदुवंशियों तथा शाल्वकी सेनाके लोगोंने युद्धभूमिमें प्रवेश करते ही भगवान्को पहचान लिया ॥ ११ ॥ परीक्षित्! अबतक शाल्वकी सारी सेना प्रायः नष्ट हो चुकी थी। भगवान् श्रीकृष्णको देखते ही उसने उनके सारथीपर एक बहुत बड़ी शक्ति चलायी। वह शक्ति बड़ा भयङ्कर शब्द करती हुई आकाशमें बड़े वेगसे चल रही थी और बहुत बड़े लूकके समान जान पड़ती थी। उसके प्रकाशसे दिशाएँ चमक उठी थीं। उसे सारथीकी ओर आते देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये ॥१२-१३॥ इसके बाद उन्होंने शाल्वको सोलह बाण मारे और उसके विमानको भी, जो आकाशमें घूम रहा था, असंख्य बाणोंसे चलनी कर दिया—ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे आकाशको भर देता है ॥ १४ ॥ शाल्वने भगवान् श्रीकृष्णकी बायीं भुजामें, जिसमें शार्ङ्गधनुष शोभायमान था, बाण मारा, इससे शार्ङ्गधनुष भगवान्के हाथसे छूटकर गिर पड़ा। यह एक अद्भुत घटना घट गयी ॥ १५ ॥ जो लोग आकाश या पृथ्वीसे यह युद्ध देख रहे थे, वे बड़े जोरसे 'हाय-हाय' पुकार उठे। तब शाल्वने गरजकर भगवान् श्रीकृष्णसे यों कहा—॥ १६ ॥ 'मूढ़! तूने हमलोगोंके देखते-देखते हमारे भाई और सखा शिशुपालकी पत्नीको हर लिया तथा भरी सभामें, जब कि हमारा मित्र शिशुपाल असावधान था, तूने उसे मार डाला ॥१७॥

मैं जानता हूँ कि तू अपनेको अजेय मानता है। यदि मेरे सामने ठहर गया तो मैं आज तुझे अपने तीखे बाणोंसे वहाँ पहुँचा दूँगा, जहाँसे फिर कोई लौटकर नहीं आता' ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'रे मन्द ! तू वृथा ही बहक रहा है। तुझे पता नहीं कि तेरे सिरपर मौत सवार है। शूरवीर व्यर्थकी बकवाद नहीं करते, वे अपनी वीरता ही दिखलाया करते हैं' ॥ १९ ॥ इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने क्रोधित हो अपनी अत्यन्त वेगवती और भयङ्कर गदासे शाल्वके जत्रुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया। इससे वह खून उगलता हुआ काँपने लगा ॥ २० ॥ इधर जब गदा भगवान्के पास लौट आयी, तब शाल्व अन्तर्धान हो गया। इसके बाद दो घड़ी बीतते-बीतते एक मनुष्यने भगवान्के पास पहुँचकर उनको सिर झुकाकर प्रणाम किया और वह रोता हुआ बोला—'मुझे आपकी माता देवकीजीने भेजा है ॥ २१ ॥ उन्होंने कहा है कि अपने पिताके प्रति अत्यन्त प्रेम रखनेवाले महाबाहु श्रीकृष्ण ! शाल्व तुम्हारे पिताको उसी प्रकार बाँधकर ले गया है, जैसे कोई कसाई पशुको बाँधकर ले जाय!' ।२२। यह अप्रिय समाचार सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्य-से बन गये। उनके मुँहपर कुछ उदासी छा गयी। वे साधारण पुरुषके समान अत्यन्त करुणा और स्नेहसे कहने लगे—॥ २३ ॥ 'अहो ! मेरे भाई बलरामजीको तो देवता अथवा असुर कोई नहीं जीत सकता। वे सदा-सर्वदा सावधान रहते हैं। शाल्वका बल-पौरुष तो अत्यन्त अल्प है। फिर भी इसने उन्हें कैसे जीत लिया और कैसे मेरे पिताजीको बाँधकर ले गया ? सचमुच, प्रारब्ध बहुत बलवान् है' ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि शाल्व वसुदेवजीके समान एक मायारचित मनुष्य लेकर वहाँ आ पहुँचा और श्रीकृष्णसे कहने लगा—॥ २५ ॥ 'मूर्ख ! देख, यही तुझे पैदा करनेवाला तेरा बाप है, जिसके लिये तू जी रहा है। तेरे देखते-देखते मैं इसका काम तमाम करता हूँ। कुछ बल-पौरुष हो, तो इसे बचा' ॥२६॥ मायावी शाल्वने इस प्रकार भगवान्को फटकार कर मायारचित वसुदेवका सिर तलवारसे काट लिया और उसे लेकर अपने आकाशस्थ विमानपर जा बैठा ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंसिद्ध ज्ञानस्वरूप और महानुभाव हैं। वे यह घटना देखकर दो घड़ीके लिये अपने स्वजन वसुदेवजीके प्रति अत्यन्त प्रेम होनेके कारण साधारण पुरुषोंके समान शोकमें डूब गये। परन्तु फिर वे जान गये कि यह तो शाल्वकी फैलायी हुई आसुरी माया ही है, जो उसे मय दानवने बतलायी थी ॥ २८ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने युद्धभूमिमें सचेत होकर देखा—न वहाँ दूत है और न पिताका वह शरीर; जैसे स्वप्नमें एक दृश्य दीखकर लुप्त हो गया हो ! उधर देखा तो शाल्व विमानपर चढ़कर आकाशमें विचर रहा है। तब वे उसका वध करनेके लिये उद्यत हो गये ॥ २९ ॥

प्रिय परीक्षित् ! इस प्रकारकी बात पूर्वापरका विचार न करनेवाले कोई-कोई ऋषि कहते हैं। अवश्य ही वे इस बातको भूल जाते हैं कि श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा कहना उन्हींके वचनोंके विपरीत है ॥ ३० ॥ कहाँ अज्ञानियोंमें रहनेवाले शोक, मोह, स्नेह और भय; तथा कहाँ वे परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण—जिनका ज्ञान, विज्ञान और ऐश्वर्य अखण्डित है, एकरस है। (भला, उनमें वैसे भावोंकी सम्भावना ही कहाँ है !) ॥ ३१ ॥ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवा करके आत्मविद्याका भलीभाँति सम्पादन करते हैं और उसके द्वारा शरीर आदिमें आत्मबुद्धिरूप अनादि अज्ञानको मिटा डालते हैं तथा आत्मसम्बन्धी अनन्त ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। उन संतोंके परम गतिस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें भला, मोह कैसे हो सकता है ? ॥ ३२ ॥

अब शाल्व भगवान् श्रीकृष्णपर बड़े उत्साह और वेगसे शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा था। अमोघशक्ति भगवान् श्रीकृष्णने भी अपने बाणोंसे शाल्वको घायल कर दिया और उसके कवच, धनुष तथा सिरकी मणिको छिन्न-भिन्न कर दिया। साथ ही गदाकी चोटसे उसके विमानको भी जर्जर कर दिया ॥ ३३ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके हाथोंसे चलायी हुई गदासे वह विमान चूर-चूर होकर समुद्रमें गिर पड़ा। गिरनेके

पहले ही शाल्व हाथमें गदा लेकर धरतीपर कूद पड़ा और सावधान होकर बड़े वेगसे भगवान् श्रीकृष्णकी ओर झपटा ॥ ३४ ॥ शाल्वको आक्रमण करते देख उन्होंने भालेसे गदाके साथ उसका हाथ काट गिराया। फिर उसे मार डालनेके लिये उन्होंने प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी और अत्यन्त अद्भुत सुदर्शन चक्र धारण कर लिया। उस समय उनकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो सूर्यके साथ उदयाचल शोभायमान हो ॥ ३५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस चक्रसे परम मायावी शाल्वका कुण्डल-किरीटसहित सिर धड़से अलग कर दिया; ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्रने वज्रसे वृत्रासुरका सिर काट डाला था। उस समय शाल्वके सैनिक अत्यन्त दुःखसे 'हाय-हाय' चिल्ला उठे ॥ ३६ ॥ परीक्षित्! जब पापी शाल्व मर गया और उसका विमान भी गदाके प्रहारसे चूर-चूर हो गया, तब देवतालोग आकाशमें दुन्दुभियाँ बजाने लगे। ठीक इसी समय दन्तवक्त्र अपने मित्र शिशुपाल आदिका बदला लेनेके लिये अत्यन्त क्रोधित होकर आ पहुँचा ॥ ३७ ॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र और विदूरथका उद्धार तथा तीर्थयात्रामें बलरामजीके हाथसे सूतजीका वध

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रकके मारे जानेपर उनकी मित्रताका ऋण चुकानेके लिये मूर्ख दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल युद्धभूमिमें आ धमका। वह क्रोधके मारे आग-बबूला हो रहा था। शस्त्रके नामपर उसके हाथमें एकमात्र गदा थी। परन्तु परीक्षित्! लोगोंने देखा, वह इतना शक्तिशाली है कि उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी हिल रही है ॥ १-२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जब उसे इस प्रकार आते देखा, तब झटपट हाथमें गदा लेकर वे रथसे कूद पड़े। फिर जैसे समुद्रके तटकी भूमि उसके ज्वार-भाटेको आगे बढ़नेसे रोक देती है, वैसे ही उन्होंने उसे रोक दिया ॥ ३ ॥ घमंडके नशेमें चूर करूषनरेश दन्तवक्त्रने गदा तानकर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'बड़े सौभाग्य और आनन्दकी बात है कि आज तुम मेरी आँखोंके सामने पड़ गये ॥ ४ ॥ कृष्ण! तुम मेरे मामाके लड़के हो, इसलिये तुम्हें मारना तो नहीं चाहिये; परन्तु एक तो तुमने मेरे मित्रोंको मार डाला है और दूसरे मुझे भी मारना चाहते हो। इसलिये मतिमन्द! आज मैं तुम्हें अपनी वज्र-कर्कश गदासे चूर-चूर कर डालूँगा ॥ ५ ॥ मूर्ख! वैसे तो तुम मेरे सम्बन्धी हो, फिर भी हो शत्रु ही, जैसे अपने ही शरीरमें रहनेवाला कोई रोग हो! मैं अपने मित्रोंसे बड़ा प्रेम करता हूँ, उनका मुझपर ऋण है। अब तुम्हें मारकर ही मैं उनके ऋणसे उऋण हो सकता हूँ ॥ ६ ॥ जैसे महावत अङ्कुशसे हाथीको घायल करता है, वैसे ही दन्तवक्त्रने अपनी कड़वी बातोंसे श्रीकृष्णको चोट पहुँचानेकी चेष्टा की और फिर वह उनके सिरपर बड़े वेगसे गदा मारकर सिंहके समान गरज उठा ॥ ७ ॥ रणभूमिमें गदाकी चोट खाकर भी भगवान् श्रीकृष्ण टस-से-मस न हुए। उन्होंने अपनी बहुत बड़ी कौमोदकी गदा सम्हालकर उससे दन्तवक्त्रके वक्षःस्थलपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ गदाकी चोटसे दन्तवक्त्रका कलेजा फट गया। वह मुँहसे खून उगलने लगा। उसके बाल बिखर गये, भुजाएँ और पैर फैल गये। निदान निष्प्राण होकर वह धरतीपर गिर पड़ा ॥ ९ ॥ परीक्षित्! जैसा कि शिशुपालकी मृत्युके समय हुआ था, सब प्राणियोंके सामने ही दन्तवक्त्रके मृत शरीरसे एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकली और वह बड़ी विचित्र रीतिसे भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी ॥ १० ॥

दन्तवक्त्रके भाईका नाम था विदूरथ। वह अपने भाईकी मृत्युसे अत्यन्त शोकाकुल हो गया। अब वह क्रोधके मारे लंबी-लंबी साँस लेता हुआ हाथमें ढाल-तलवार लेकर भगवान् श्रीकृष्णको मार डालनेकी इच्छासे आया ॥ ११ ॥ राजेन्द्र! जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अब वह प्रहार करना ही चाहता है, तब

उन्होंने अपने छुरेके समान तीखी धारवाले चक्रसे किरीट और कुण्डलके साथ उसका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ १२ ॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने शाल्व, उसके विमान सौभ, दन्तवक्त्र और विदूरथको, जिन्हें मारना दूसरोंके लिये अशक्य था, मारकर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया । उस समय देवता और मनुष्य उनकी स्तुति कर रहे थे । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, सिद्ध-गन्धर्व, विद्याधर और वासुकि आदि महानाग, अप्सराएँ, पितर, यक्ष, किन्नर तथा चारण उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करते हुए उनकी विजयके गीत गा रहे थे । भगवान्‌के प्रवेशके अवसरपर पुरी खूब सजा दी गयी थी और बड़े-बड़े वृष्णिवंशी यादव वीर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे ॥ १३—१५ ॥ योगेश्वर एवं जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण इसी प्रकार अनेकों खेल खेलते रहते हैं। जो पशुओंके समान अविवेकी हैं, वे उन्हें कभी हारते भी देखते हैं । परन्तु वास्तवमें तो वे सदा-सर्वदा विजयी ही हैं ॥ १६ ॥

एक बार बलरामजीने सुना कि दुर्योधनादि कौरव पाण्डवोंके साथ युद्ध करनेकी तैयारी कर रहे हैं । वे मध्यस्थ थे, उन्हें किसीका पक्ष लेकर लड़ना पसंद नहीं था । इसलिये वे तीर्थोंमें स्नान करनेके बहाने द्वारकासे चले गये ॥ १७ ॥ वहाँसे चलकर उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें स्नान किया और तर्पण तथा ब्राह्मण-भोजनके द्वारा देवता, ऋषि, पितर और मनुष्योंको तृप्त किया । इसके बाद वे कुछ ब्राह्मणोंके साथ जिधरसे सरस्वती नदी आ रही थी, उधर ही चल पड़े ॥ १८ ॥ वे क्रमशः पृथूदक, बिन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ और पूर्ववाहिनी सरस्वती आदि तीर्थोंमें गये ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! तदनन्तर यमुनातट और गङ्गातटके प्रधान-प्रधान तीर्थोंमें होते हुए वे नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये । उन दिनों नैमिषारण्य क्षेत्रमें बड़े-बड़े ऋषि सत्सङ्गरूप महान् सत्र कर रहे थे ॥ २० ॥ दीर्घकालतक सत्सङ्ग-सत्रका नियम लेकर बैठे हुए ऋषियोंने बलरामजीको आया देख अपने-अपने आसनोंसे उठकर उनका स्वागत-सत्कार किया और यथायोग्य प्रणाम-आशीर्वाद करके उनकी पूजा की ॥ २१ ॥ वे अपने साथियोंके साथ आसन ग्रहण करके बैठ गये और उनकी अर्चा-पूजा हो चुकी, तब उन्होंने देखा कि भगवान् व्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासगद्दीपर बैठे हुए हैं ॥ २२ ॥ बलरामजीने देखा कि रोमहर्षणजी सूत-जातिमें उत्पन्न होनेपर भी उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे ऊँचे आसनपर बैठे हुए हैं और उनके आनेपर न तो उठकर स्वागत करते हैं और न हाथ जोड़कर प्रणाम ही । इसपर बलरामजीको क्रोध आ गया ॥ २३ ॥ वे कहने लगे कि 'यह रोमहर्षण प्रतिलोम जातिका होनेपर भी इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे तथा धर्मके रक्षक हमलोगोंसे ऊपर बैठा हुआ है, इसलिये यह दुर्बुद्धि मृत्युदण्डका पात्र है ॥ २४ ॥ भगवान् व्यासदेवका शिष्य होकर इसने इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि बहुत-से शास्त्रोंका अध्ययन भी किया है; परन्तु अभी इसका अपने मन-पर संयम नहीं है । यह विनयी नहीं, उद्दण्ड है । इस अजितात्माने झूठमूठ अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मान रक्खा है । जैसे नटकी सारी चेष्टाएँ अभिनयमात्र होती हैं, वैसे ही इसका सारा अध्ययन स्वाँगके लिये है । उससे न इसका लाभ है और न किसी दूसरेका ॥ २५-२६ ॥ जो लोग धर्मका चिह्न धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते, वे अधिक पापी हैं और वे मेरे लिये वध करनेयोग्य हैं । इस जगत्‌में इसीलिये मैंने अवतार धारण किया है' ॥ २७ ॥ भगवान् बलराम यद्यपि तीर्थयात्राके कारण दुष्टोंके वधसे भी अलग हो गये थे, फिर भी इतना कहकर उन्होंने अपने हाथमें स्थित कुशकी नोकसे उनपर प्रहार कर दिया और वे तुरंत मर गये । होनहार ही ऐसी थी ॥ २८ ॥ सूतजीके मरते ही सब ऋषि-मुनि हाय-हाय करने लगे, सबके चित्त खिन्न हो गये । उन्होंने देवाधि-देव भगवान् बलरामजीसे कहा—'प्रभो ! आपने यह बहुत बड़ा अधर्म किया ॥ २९ ॥ यदुवंशशिरोमणे ! सूतजीको हमीं लोगोंने ब्रह्मणोचित आसनपर बैठाया था और जबतक हमारा यह सत्र समाप्त न हो, तबतकके लिये उन्हें शारीरिक कष्टसे रहित आयु भी दे दी थी ॥ ३० ॥ आपने अनजानमें यह ऐसा काम कर दिया, जो ब्रह्म-हत्याके समान है । हमलोग यह मानते हैं कि आप

योगेश्वर हैं, वेद भी आपपर शासन नहीं कर सकता। फिर भी आपसे यह प्रार्थना है कि आपका अवतार लोगोंको पवित्र करनेके लिये हुआ है; यदि आप किसीकी प्रेरणाके बिना स्वयं अपनी इच्छासे ही इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त कर लें तो इससे लोगोंको बहुत शिक्षा मिलेगी' ॥ ३१-३२ ॥

भगवान् बलरामने कहा—मैं लोगोंको शिक्षा देनेके लिये, लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अवश्य करूँगा, अतः इसके लिये प्रथम श्रेणीका जो प्रायश्चित्त हो, आपलोग उसीका विधान कीजिये ॥ ३३ ॥ आपलोग इस सूतको लंबी आयु, बल, इन्द्रिय-शक्ति आदि जो कुछ भी देना चाहते हों, मुझे बतला दीजिये; मैं अपने योगबलसे सब कुछ सम्पन्न किये देता हूँ ॥ ३४ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी ! आप ऐसा कोई उपाय कीजिये जिससे आपका शस्त्र, पराक्रम और इनकी मृत्यु भी व्यर्थ न हो और हमलोगोंने इन्हें जो वरदान दिया था, वह भी सत्य हो जाय ॥ ३५ ॥

भगवान् बलरामने कहा—ऋषियो ! वेदोंका ऐसा कहना है कि आत्मा ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है। इसलिये रोमहर्षणके स्थानपर उनका पुत्र आपलोगोंको पुराणोंकी कथा सुनायेगा। उसे मैं अपनी शक्तिसे दीर्घायु, इन्द्रियशक्ति और बल दिये देता हूँ ॥ ३६ ॥ ऋषियो ! इसके अतिरिक्त आपलोग और जो कुछ भी चाहते हों, मुझसे कहिये। मैं आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा। अनजानमें मुझसे जो अपराध हो गया है, उसका प्रायश्चित्त भी आपलोग सोच-विचारकर बतलाइये; क्योंकि आपलोग इस विषयके विद्वान् हैं ॥ ३७ ॥

ऋषियोंने कहा—बलरामजी ! इल्वलका पुत्र बल्वल नामका एक भयङ्कर दानव है। वह प्रत्येक पर्व-पर यहाँ आ पहुँचता है और हमारे इस सत्रको दूषित कर देता है ॥ ३८ ॥ यदुनन्दन ! वह यहाँ आकर पीब, खून, विष्ठा, मूत्र, शराब और मांसकी वर्षा करने लगता है। आप उस पापीको मार डालिये। हमलोगोंकी यह बहुत बड़ी सेवा होगी ॥ ३९ ॥ इसके बाद आप एकाग्रचित्तसे तीर्थोंमें स्नान करते हुए बारह महीनों-तक भारतवर्षकी परिक्रमा करते हुए विचरण कीजिये। इससे आपकी शुद्धि हो जायगी ॥ ४० ॥

उन्नासीवाँ अध्याय

बल्वलका उद्धार और बलरामजीकी तीर्थयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! पर्वका दिन आनेपर बड़ा भयङ्कर अंधड़ चलने लगा। धूलकी वर्षा होने लगी और चारों ओरसे पीबकी दुर्गन्ध आने लगी ॥ १ ॥ इसके बाद यज्ञशालामें बल्वल दानवने मल-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंकी वर्षा की। तदनन्तर हाथमें त्रिशूल लिये वह स्वयं दिखायी पड़ा ॥ २ ॥ उसका डील-डौल बहुत बड़ा था, ऐसा जान पड़ता मानो ढेर-का-ढेर कालिख इकट्ठा कर दिया गया हो। उसकी चोटी और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल-लाल थीं। बड़ी-बड़ी दाढ़ों और भौंहोंके कारण उसका मुँह बड़ा भयावना लगता था। उसे देखकर भगवान् बलरामजीने शत्रु-सेनाकी कुटी करनेवाले मूसल और दैत्योंको चीर-फाड़ डालनेवाले हलका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे दोनों शस्त्र तुरंत वहाँ आ पहुँचे ॥ ३-४ ॥ बलरामजीने आकाशमें विचरनेवाले बल्वल दैत्यको अपने हलके अगले भागसे खींचकर उस ब्रह्मद्रोहीके सिरपर बड़े क्रोधसे एक मूसल कसकर जमाया, जिससे उसका ललाट फट गया और वह खून उगलता तथा आर्तस्वरसे चिल्लाता हुआ धरतीपर गिर पड़ा; ठीक वैसे ही जैसे वज्रकी चोट खाकर गेरू आदिसे लाल हुआ कोई पहाड़ गिर पड़ा हो ॥ ५-६ ॥ नैमिषारण्यवासी महाभाग्यवान् मुनियोंने बलरामजीकी स्तुति की, उन्हें कभी न व्यर्थ होनेवाले आशीर्वाद दिये और जैसे देवतालोग देवराज इन्द्रका अभिषेक करते हैं, वैसे ही उनका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ इसके बाद ऋषियोंने बलरामजीको दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण

दिये तथा एक ऐसी वैजयन्ती माला भी दी, जो सौन्दर्यका आश्रय एवं कभी न मुरझानेवाले कमलके पुष्पोंसे युक्त है ॥ ८ ॥

तदनन्तर नैमिषारण्यवासी ऋषियोंसे विदा होकर उनके आज्ञानुसार बलरामजी ब्राह्मणोंके साथ कौशिकी नदीके तटपर आये। वहाँ स्नान करके वे उस सरोवरपर गये, जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ वहाँसे सरयूके किनारे-किनारे चलने लगे, फिर उसे छोड़कर प्रयाग आये; और वहाँ स्नान तथा देवता, ऋषि एवं पितरोंका तर्पण करके वहाँसे पुलहाश्रम गये ॥ १० ॥ वहाँसे गण्डकी, गोमती तथा विपाशा नदियोंमें स्नान करके वे सोननदके तटपर गये और वहाँ स्नान किया। इसके बाद गयामें जाकर पितरोंका वसुदेवजीके आज्ञानुसार पूजन-यजन किया। फिर गङ्गा-सागर-संगमपर गये; वहाँ भी स्नान आदि तीर्थ-कृत्योंसे निवृत्त होकर महेन्द्र पर्वतपर गये। वहाँ परशुरामजीका दर्शन और अभिवादन किया। तदनन्तर सप्त गोदावरी, वेणा, पम्पा और भीमरथी आदिमें स्नान करते हुए स्वामिकार्तिकका दर्शन करने गये तथा वहाँसे महादेवजीके निवासस्थान श्रीशैलपर पहुँचे। इसके बाद भगवान् बलरामने द्रविड देशके परम पुण्यमय स्थान वेङ्कटाचल (बालाजी) का दर्शन किया और वहाँसे वे कामाक्षी—शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची होते हुए तथा श्रेष्ठ नदी कावेरीमें स्नान करते हुए पुण्यमय श्रीरंगक्षेत्रमें पहुँचे। श्रीरंगक्षेत्रमें भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहते हैं ॥ ११-१४ ॥ वहाँसे उन्होंने विष्णुभगवान्‌के क्षेत्र ऋषभ पर्वत, दक्षिण मथुरा तथा बड़े-बड़े महापापोंको नष्ट करनेवाले सेतुबन्धकी यात्रा की ॥ १५ ॥ वहाँ बलरामजीने ब्राह्मणोंको दस हजार गौएँ दान कीं। फिर वहाँसे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदियोंमें स्नान करते हुए वे मलयपर्वतपर गये। वह पर्वत सात कुलपर्वतोंमेंसे एक है ॥ १६ ॥ वहाँपर विराजमान अगस्त्य मुनिको उन्होंने नमस्कार और अभिवादन किया। अगस्त्यजीसे आशीर्वाद और अनुमति प्राप्त करके बलरामजीने दक्षिण समुद्रकी यात्रा की। वहाँ उन्होंने दुर्गादेवीका कन्याकुमारीके रूपमें दर्शन किया ॥ १७ ॥ इसके बाद वे फाल्गुन तीर्थ—अनन्तशयन क्षेत्रमें गये और वहाँके सर्वश्रेष्ठ पञ्चाप्सरस तीर्थमें स्नान किया। उस तीर्थमें सर्वदा विष्णुभगवान्‌का सान्निध्य रहता है। वहाँ बलरामजीने दस हजार गौएँ दान कीं ॥ १८ ॥

अब भगवान् बलराम वहाँसे चलकर केरल और त्रिगर्त देशोंमें होकर भगवान् शङ्करके क्षेत्र गोकर्णतीर्थमें आये। वहाँ सदा-सर्वदा भगवान् शङ्कर विराजमान रहते हैं ॥ १९ ॥ वहाँसे जलसे घिरे द्वीपमें निवास करनेवाली आर्यादेवीका दर्शन करने गये और फिर उस द्वीपसे चलकर शूर्पारक-क्षेत्रकी यात्रा की, इसके बाद तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्या नदियोंमें स्नान करके वे दण्डकारण्यमें आये ॥ २० ॥ वहाँ होकर वे नर्मदाजीके तटपर गये। परीक्षित् ! इस पवित्र नदीके तटपर ही माहिष्मतीपुरी है। वहाँ मनुतीर्थमें स्नान करके वे फिर प्रभासक्षेत्रमें चले आये ॥ २१ ॥ वहीं उन्होंने ब्राह्मणोंसे सुना कि कौरव और पाण्डवोंके युद्धमें अधिकांश क्षत्रियोंका संहार हो गया। उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि अब पृथ्वीका बहुत-सा भार उतर गया ॥ २२ ॥ जिस दिन रणभूमिमें भीमसेन और दुर्योधन गदायुद्ध कर रहे थे, उसी दिन बलरामजी उन्हें रोकनेके लिये कुरुक्षेत्र जा पहुँचे ॥ २३ ॥

महाराज युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने बलरामजीको देखकर प्रणाम किया तथा चुप हो रहे। वे डरते हुए मन-ही-मन सोचने लगे कि ये न जाने क्या कहनेके लिये यहाँ पधारे हैं ? ॥ २४ ॥ उस समय भीमसेन और दुर्योधन दोनों ही हाथमें गदा लेकर एक-दूसरेको जीतनेके लिये क्रोधसे भरकर भाँति-भाँतिके पैंतरे बदल रहे थे। उन्हें देखकर बलरामजीने कहा—॥ २५ ॥ 'राजा दुर्योधन और भीमसेन ! तुम दोनों वीर हो। तुम दोनोंमें बल-पौरुष भी समान है। मैं ऐसा समझता हूँ कि भीमसेनमें बल अधिक है और दुर्योधनने गदायुद्धमें शिक्षा अधिक पायी है॥ २६॥ इसलिये तुमलोगों-जैसे समान बलशालियोंमें किसी एककी जय या पराजय नहीं होती दीखती। अतः तुमलोग व्यर्थका युद्ध मत करो, अब इसे बंद कर दो' ॥ २७ ॥ परीक्षित् ! बलरामजीकी बात दोनोंके लिये हितकर थी। परन्तु उन दोनोंका वैरभाव इतना दृढमूल हो गया था

कि उन्होंने बलरामजीकी बात न मानी। वे एक-दूसरेकी कटुवाणी और दुर्व्यवहारोंका स्मरण करके उन्मत्त-से हो रहे थे ॥ २८ ॥ भगवान् बलरामजीने निश्चय किया कि इनका प्रारब्ध ऐसा ही है; इसलिये उसके सम्बन्धमें विशेष आग्रह न करके वे द्वारका लौट गये। द्वारकामें उग्रसेन आदि गुरुजनों तथा अन्य सम्बन्धियोंने बड़े प्रेमसे आगे आकर उनका स्वागत किया ॥ २९ ॥ वहाँसे बलरामजी फिर नैमिषारण्य क्षेत्रमें गये। वहाँ ऋषियोंने विरोधभावसे—युद्धादिसे निवृत्त बलरामजीके द्वारा बड़े प्रेमसे सब प्रकारके यज्ञ कराये। परीक्षित् ! सच पूछो तो जितने भी यज्ञ हैं, वे बलरामजीके अंग ही हैं। इसलिये उनका यह यज्ञानुष्ठान लोक-संग्रहके लिये ही था ॥३०॥ सर्वसमर्थ भगवान् बलरामने उन ऋषियोंको विशुद्ध तत्त्वज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे लोग इस सम्पूर्ण विश्वको अपने-आपमें और अपने-आपको सारे विश्वमें अनुभव करने लगे ॥ ३१ ॥ इसके बाद बलरामजीने अपनी पत्नी रेवतीके साथ यज्ञान्त-स्नान किया और सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण पहनकर अपने भाई-बन्धु तथा स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हुए, जैसे अपनी चन्द्रिका एवं नक्षत्रोंके साथ चन्द्रदेव होते हैं ॥ ३२ ॥ परीक्षित् ! भगवान् बलराम स्वयं अनन्त हैं। उनका स्वरूप मन और वाणीके परे है। उन्होंने लीलाके लिये ही यह मनुष्योंका-सा शरीर ग्रहण किया है। उन बलशाली बलरामजीके ऐसे-ऐसे चरित्रोंकी गिनती भी नहीं की जा सकती।३३। जो पुरुष अनन्त, सर्वव्यापक, अद्भुतकर्मा भगवान् बलरामजीके चरित्रोंका सायं-प्रातः स्मरण करता है, वह भगवान्का अत्यन्त प्रिय हो जाता है ॥ ३४ ॥

अस्सीवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके द्वारा सुदामाजीका स्वागत

राजा परीक्षित्ने कहा—भगवन् ! प्रेम और मुक्तिके दाता परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी शक्ति अनन्त है। इसलिये उनकी माधुर्य और ऐश्वर्यसे भरी लीलाएँ भी अनन्त हैं। अब हम उनकी दूसरी लीलाएँ, जिनका वर्णन आपने अबतक नहीं किया है, सुनना चाहते हैं ॥ १ ॥ ब्रह्मन् ! यह जीव विषय-सुखको खोजते-खोजते अत्यन्त दुखी हो गया है। वे बाणकी तरह इसके चित्तमें चुभते रहते हैं। ऐसी स्थितिमें ऐसा कौन-सा रसिक—रसका विशेषज्ञ पुरुष होगा, जो बार-बार पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी लीलाओं-का श्रवण करके भी उनसे विमुख होना चाहेगा॥ २ ॥ जो वाणी भगवान्के गुणोंका गान करती है, वही सच्ची वाणी है। वे ही हाथ सच्चे हाथ हैं, जो भगवान्की सेवाके लिये काम करते हैं। वही मन सच्चा मन है, जो चराचर प्राणियोंमें निवास करनेवाले भगवान्का स्मरण करता है; और वे ही कान वास्तवमें कान कहने योग्य हैं,जो भगवान्की पुण्यमयी कथाओंका श्रवण करते हैं।३। वही सिर सिर है, जो चराचर जगत्को भगवान्की चल-अचल प्रतिमा समझकर नमस्कार करता है; और जो सर्वत्र भगवद्विग्रहका दर्शन करते हैं, वे ही नेत्र वास्तवमें नेत्र हैं। शरीरके जो अङ्ग भगवान् और उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवन करते हैं, वे ही अङ्ग वास्तवमें अङ्ग हैं; सच पूछिये तो उन्हींका होना सफल है ॥ ४ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब राजा परीक्षित्ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान् श्रीशुकदेव-जीका हृदय भगवान् श्रीकृष्णमें ही तल्लीन हो गया। उन्होंने परीक्षित्से इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! एक ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके परम मित्र थे। वे बड़े ब्रह्मज्ञानी, विषयोंसे विरक्त, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय थे ॥ ६ ॥ वे गृहस्थ होनेपर भी किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह न रखकर प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाता, उसीमें सन्तुष्ट रहते थे। उनके वस्त्र तो फटे-पुराने थे ही, उनकी पत्नीके भी वैसे ही थे। वह भी अपने पतिके समान ही भूखसे दुबली हो रही थी ॥ ७ ॥ एक दिन दरिद्रताकी प्रतिमूर्ति दुःखिनी पतिव्रता भूखके मारे काँपती हुई अपने पतिदेवके पास गयी और मुरझाये हुए मुँहसे बोली—॥ ८ ॥ 'भगवन् ! साक्षात् लक्ष्मीपति

भगवान् श्रीकृष्ण आपके सखा हैं। वे भक्तवाञ्छाकल्पतरु, शरणागतवत्सल और ब्राह्मणोंके परम भक्त हैं ॥ ९ ॥ परम भाग्यवान् आर्यपुत्र! वे साधु-संतोंके, सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। आप उनके पास जाइये। जब वे जानेंगे कि आप कुटुम्बी हैं और अन्नके बिना दुखी हो रहे हैं, तो वे आपको बहुत-सा धन देंगे ॥ १० ॥ आजकल वे भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी यादवोंके स्वामीके रूपमें द्वारकामें ही निवास कर रहे हैं। और इतने उदार हैं कि जो उनके चरणकमलोंका स्मरण करते हैं, उन प्रेमी भक्तोंको वे अपने-आपतकका दान कर डालते हैं। ऐसी स्थितिमें जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंको यदि धन और विषय-सुख, जो अत्यन्त वाञ्छनीय नहीं है, दे दें, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है?' ॥११॥ इस प्रकार जब उन ब्राह्मणदेवताकी पत्नीने अपने पतिदेवसे कई बार बड़ी नम्रतासे प्रार्थना की, तब उन्होंने सोचा कि 'धनकी तो कोई बात नहीं है; परन्तु भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन हो जायगा, यह तो जीवनका बहुत बड़ा लाभ है' ॥ १२ ॥ यही विचार करके उन्होंने जानेका निश्चय किया और अपनी पत्नीसे बोले—'कल्याणी! घरमें कुछ भेंट देनेयोग्य वस्तु भी है क्या? यदि हो तो दे दो' ॥ १३ ॥ तब उस ब्राह्मणीने पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंके घरसे चार मुट्ठी चिउड़े माँगकर एक कपड़ेमें बाँध दिये और भगवान्‌को भेंट देनेके लिये अपने पतिदेवको दे दिये ॥ १४ ॥ इसके बाद वे ब्राह्मणदेवता उन चिउड़ोंको लेकर द्वारकाके लिये चल पड़े। वे मार्गमें यह सोचते जाते थे कि 'मुझे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कैसे प्राप्त होंगे?' ।१५।

परीक्षित्! द्वारकामें पहुँचनेपर वे ब्राह्मणदेवता दूसरे ब्राह्मणोंके साथ सैनिकोंकी तीन छावनियाँ और तीन ड्योढ़ियाँ पार करके भगवद्धर्मका पालन करनेवाले अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंके महलोंमें, जहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है, जा पहुँचे ॥ १६ ॥ उनके बीच भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियोंके महल थे। उनमेंसे एकमें उन ब्राह्मणदेवताने प्रवेश किया। वह महल खूब सजा-सजाया—अत्यन्त शोभायुक्त था। उसमें प्रवेश करते समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ, मानो वे ब्रह्मानन्दके समुद्रमें डूब-उतरा रहे हों! ॥ १७ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्राणप्रिया रुक्मिणीजीके पलंगपर विराजे हुए थे। ब्राह्मणदेवताको दूरसे ही देखकर वे सहसा उठ खड़े हुए और उनके पास आकर बड़े आनन्दसे उन्हें अपने भुजपाशमें बाँध लिया ॥१८॥ परीक्षित्! परमानन्दस्वरूप भगवान् अपने प्यारे सखा ब्राह्मणदेवताके अङ्ग-स्पर्शसे अत्यन्त आनन्दित हुए। उनके कमलके समान कोमल नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बरसने लगे ॥ १९॥ परीक्षित्! कुछ समयके बाद भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ले जाकर अपने पलंगपर बैठा दिया और स्वयं पूजनकी सामग्री लाकर उनकी पूजा की। प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सभीको पवित्र करनेवाले हैं; फिर भी उन्होंने अपने हाथों ब्राह्मणदेवताके पाँव पखारकर उनका चरणोदक अपने सिरपर धारण किया और उनके शरीरमें चन्दन, अरगजा, केसर आदि दिव्य गन्धोंका लेपन किया ॥ २०-२१ ॥ फिर उन्होंने बड़े आनन्दसे सुगन्धित धूप और दीपावलीसे अपने मित्रकी आरती उतारी। इस प्रकार पूजा करके पान एवं गाय देकर मधुर वचनोंसे 'भले पधारे' ऐसा कहकर उनका स्वागत किया ॥ २२ ॥ ब्राह्मणदेवता फटे-पुराने वस्त्र पहने हुए थे। शरीर अत्यन्त मलिन और दुर्बल था। देहकी सारी नसें दिखायी पड़ती थीं। स्वयं भगवती रुक्मिणीजी चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगीं।२३। अन्तःपुरकी स्त्रियाँ यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गयीं कि पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण अतिशय प्रेमसे इस मैले-कुचैले अवधूत ब्राह्मणकी पूजा कर रहे हैं ॥ २४ ॥ वे आपसमें कहने लगीं—'इस नंगधड़ंग, निर्धन, निन्दनीय और निकृष्ट भिखमंगेने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है, जिससे त्रिलोकी-गुरु श्रीनिवास श्रीकृष्ण स्वयं इसका आदर-सत्कार कर रहे हैं। देखो तो सही, इन्होंने अपने पलंगपर सेवा करती हुई स्वयं लक्ष्मीरूपिणी रुक्मिणीजीको छोड़कर इस ब्राह्मणको अपने बड़े भाई बलरामजीके समान हृदयसे लगाया है' ।२५-२६। प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण और वे ब्राह्मण दोनों एक-दूसरेका हाथ पकड़कर अपने पूर्वजीवनकी उन आनन्ददायक घटनाओंका स्मरण और वर्णन करने लगे, जो गुरुकुलमें रहते समय घटित हुई थीं ॥ २७ ॥

सुदामा-सत्कार

भगवान्‌ने स्वयं पूजनकी सामग्री लाकर सुदामाजीकी पूजा की। [पृष्ठ ८१०

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धर्मके मर्मज्ञ ब्राह्मणदेव ! गुरुदक्षिणा देकर जब आप गुरुकुलसे लौट आये, तब आपने अपने अनुरूप स्त्रीसे विवाह किया या नहीं ? ॥ २८ ॥ मैं जानता हूँ कि आपका चित्त गृहस्थीमें रहनेपर भी प्रायः विषय-भोगोंमें आसक्त नहीं है । विद्वन् ! यह भी मुझे मालूम है कि धन आदिमें भी आपकी कोई प्रीति नहीं है ॥ २९ ॥ जगत्में विरले ही लोग ऐसे होते हैं, जो भगवान्‌की मायासे निर्मित विषयसम्बन्धी वासनाओंका त्याग कर देते हैं और चित्तमें विषयोंकी तनिक भी वासना न रहनेपर भी मेरे समान केवल लोकशिक्षाके लिये कर्म करते रहते हैं ॥ ३० ॥ ब्राह्मणशिरोमणे ! क्या आपको उस समयकी बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुलमें निवास करते थे । सचमुच गुरुकुलमें ही द्विजातियोंको अपने ज्ञातव्य वस्तुका ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वे अज्ञानान्धकारसे पार हो जाते हैं ॥ ३१ ॥ मित्र ! इस संसारमें शरीरका कारण—जन्मदाता पिता प्रथम गुरु है । इसके बाद उपनयन-संस्कार करके सत्कर्मोंकी शिक्षा देनेवाला दूसरा गुरु है । वह मेरे ही समान पूज्य है । तदनन्तर ज्ञानोपदेश करके परमात्माको प्राप्त करानेवाला गुरु तो मेरा स्वरूप ही है । वर्णाश्रमियोंके ये तीन गुरु होते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे प्यारे मित्र ! गुरुके स्वरूपमें स्वयं मैं हूँ । इस जगत्‌में वर्णाश्रमियोंमें जो लोग अपने गुरुदेवके उपदेशानुसार अनायास ही भवसागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थके सच्चे जानकार हैं ॥ ३३ ॥ प्रिय मित्र ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हूँ । मैं गृहस्थके धर्म पञ्चमहायज्ञ आदिसे, ब्रह्मचारीके धर्म उपनयन-वेदाध्ययन आदिसे, वानप्रस्थीके धर्म तपस्यासे और सब ओरसे उपरत हो जाना—इस संन्यासीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेवकी सेवा-शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ ॥ ३४ ॥

ब्रह्मन् ! जिस समय हमलोग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, उस समयकी वह बात आपको याद है क्या, जब हम दोनोंको एक दिन हमारी गुरुपत्नीने ईंधन लानेके लिये जंगलमें भेजा था ॥ ३५ ॥ उस समय हमलोग एक घोर जंगलमें गये हुए थे और बिना ऋतुके ही बड़ा भयङ्कर आँधी-पानी आ गया था । आकाशमें बिजली कड़कने लगी थी ॥ ३६ ॥ अब सूर्यास्त हो गया; चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा फैल गया । धरतीपर इस प्रकार पानी-ही-पानी हो गया कि कहाँ गड्ढा है, कहाँ किनारा, इसका पता ही न चलता था ॥ ३७ ॥ वह वर्षा क्या थी, एक छोटा-मोटा प्रलय ही था । आँधीके झटकों और वर्षाकी बौछारोंसे हमलोगोंको बड़ी पीड़ा हुई, दिशाका ज्ञान न रहा । हमलोग अत्यन्त आतुर हो गये और एक-दूसरेका हाथ पकड़कर जंगलमें इधर-उधर भटकते रहे ॥ ३८ ॥ जब हमारे गुरुदेव सान्दीपनि मुनिको इस बातका पता चला, तब वे सूर्योदय होनेपर अपने शिष्य हमलोगोंको ढूँढ़ते हुए जंगलमें पहुँचे और उन्होंने देखा कि हम अत्यन्त आतुर हो रहे हैं ॥ ३९ ॥ वे कहने लगे—'आश्चर्य है, आश्चर्य है ! पुत्रो ! तुमलोगोंने हमारे लिये अत्यन्त कष्ट उठाया । सभी प्राणियोंको अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है; परन्तु तुम दोनों उसकी भी परवा न करके हमारी सेवामें ही संलग्न रहे ॥ ४० ॥ गुरुके ऋणसे मुक्त होनेके लिये सत्-शिष्योंका इतना ही कर्तव्य है कि वे विशुद्ध-भावसे अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेवकी सेवामें समर्पित कर दें ॥ ४१ ॥ द्विज-शिरोमणियो ! मैं तुमलोगोंसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम्हारे सारे मनोरथ, सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हों और तुमलोगोंने हमसे जो वेदाध्ययन किया है, वह तुम्हें सर्वदा कण्ठस्थ रहे तथा इस लोक एवं परलोकमें कहीं भी निष्फल न हो' ॥ ४२ ॥ प्रिय मित्र ! जिस समय हमलोग गुरुकुलमें निवास कर रहे थे, हमारे जीवनमें ऐसी-ऐसी अनेकों घटनाएँ घटित हुई थीं । इसमें सन्देह नहीं कि गुरुदेवकी कृपासे ही मनुष्य शान्तिका अधिकारी होता और पूर्णताको प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

ब्राह्मणदेवताने कहा—देवताओंके आराध्यदेव जगद्गुरु श्रीकृष्ण ! भला अब हमें क्या करना बाकी है ? क्योंकि आपके साथ, जो सत्यसङ्कल्प परमात्मा हैं, हमें गुरुकुलमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ॥ ४४ ॥

प्रभो ! छन्दोमय वेद धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थके मूल स्रोत हैं; और वे हैं आपके शरीर। वही आप वेदाध्ययनके लिये गुरुकुलमें निवास करें, यह मनुष्य-लीलाका अभिनय नहीं तो और क्या है ? ॥४५॥

इक्यासीवाँ अध्याय

सुदामाजीको ऐश्वर्यकी प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सबके मनकी बात जानते हैं। वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, उनके क्लेशोंके नाशक तथा संतोंके एकमात्र आश्रय हैं। वे पूर्वोक्त प्रकारसे उन ब्राह्मणदेवताके साथ बहुत देरतक बातचीत करते रहे। अब वे अपने प्यारे सखा उन ब्राह्मणसे तनिक मुसकराकर विनोद करते हुए बोले। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उन ब्राह्मणदेवताकी ओर प्रेमभरी दृष्टिसे देख रहे थे॥१-२॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'ब्रह्मन् ! आप अपने घरसे मेरे लिये क्या उपहार लाये हैं ? मेरे प्रेमी भक्त जब प्रेमसे थोड़ी-सी वस्तु भी मुझे अर्पण करते हैं, तो वह मेरे लिये बहुत हो जाती है। परन्तु मेरे अभक्त यदि बहुत-सी सामग्री भी मुझे भेंट करते हैं, तो उससे मैं सन्तुष्ट नहीं होता ॥ ३ ॥ जो पुरुष प्रेम-भक्तिसे फल-फूल अथवा पत्ता-पानीमेंसे कोई भी वस्तु मुझे समर्पित करता है, तो मैं उस शुद्धचित्त भक्तका वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि तुरंत भोग लगा लेता हूँ' ॥ ४ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर भी उन ब्राह्मण देवताने लज्जावश उन लक्ष्मीपतिको वे चार मुट्ठी चिउड़े नहीं दिये। उन्होंने संकोचसे अपना मुँह नीचे कर लिया था। परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयका एक-एक सङ्कल्प और उनका अभाव भी जानते हैं। उन्होंने ब्राह्मणके आनेका कारण, उनके हृदयकी बात जान ली। अब वे विचार करने लगे कि 'एक तो यह मेरा प्यारा सखा है, दूसरे इसने पहले कभी लक्ष्मीकी कामनासे मेरा भजन नहीं किया है। इस समय यह अपनी पतिव्रता पत्नीको प्रसन्न करनेके लिये उसीके आग्रहसे यहाँ आया है। अब मैं इसे ऐसी सम्पत्ति दूँगा, जो देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ५—७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने ऐसा विचार करके उनके वस्त्रमेंसे चिथड़ेकी एक पोटलीमें बँधा हुआ चिउड़ा 'यह क्या है'—ऐसा कहकर स्वयं ही छीन लिया ॥ ८ ॥ और बड़े आदरसे कहने लगे—'प्यारे मित्र ! यह तो तुम मेरे लिये अत्यन्त प्रिय भेंट ले आये हो। ये चिउड़े न केवल मुझे, बल्कि सारे संसारको तृप्त करनेके लिये पर्याप्त हैं' ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर वे उसमेंसे एक मुट्ठी चिउड़ा खा गये और दूसरी मुट्ठी ज्यों ही भरी, त्यों ही रुक्मिणीके रूपमें स्वयं भगवती लक्ष्मीजीने भगवान् श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया ! क्योंकि वे तो एकमात्र भगवान्‌के परायण हैं, उन्हें छोड़कर और कहीं जा नहीं सकतीं ॥ १० ॥ रुक्मिणीजीने कहा—'विश्वात्मन् ! बस, बस। मनुष्यको इस लोकमें तथा मरनेके बाद परलोकमें भी समस्त सम्पत्तियोंकी समृद्धि प्राप्त करनेके लिये यह एक मुट्ठी चिउड़ा ही बहुत है; क्योंकि आपके लिये इतना ही प्रसन्नताका हेतु बन जाता है' ॥ ११ ॥

परीक्षित् ! ब्राह्मणदेवता उस रातको भगवान् श्रीकृष्णके महलमें ही रहे। उन्होंने बड़े आरामसे वहाँ खाया-पिया और ऐसा अनुभव किया, मानो मैं वैकुण्ठमें ही पहुँच गया हूँ ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! श्रीकृष्णसे ब्राह्मणको प्रत्यक्षरूपमें कुछ भी न मिला। फिर भी उन्होंने उनसे कुछ माँगा नहीं ! वे अपने चित्तकी करतूतपर कुछ लज्जित-से होकर भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनजनित आनन्दमें डूबते-उतराते अपने घरकी ओर चल पड़े ॥ १३-१४ ॥ वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो, कितने आनन्द और आश्चर्यकी बात है ! ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी ब्राह्मणभक्ति आज मैंने अपनी आँखों देख ली। धन्य है ! जिनके वक्षःस्थलपर स्वयं लक्ष्मीजी सदा विराजमान रहती हैं, उन्होंने मुझ अत्यन्त दरिद्रको अपने हृदयसे लगा लिया ॥ १५ ॥

कहाँ तो मैं अत्यन्त पापी और दरिद्र, और कहाँ लक्ष्मीके एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण ! परन्तु उन्होंने 'यह ब्राह्मण है'—ऐसा समझकर मुझे अपनी भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया ॥ १६ ॥ इतना ही नहीं, उन्होंने मुझे उस पलंगपर सुलाया, जिसपर उनकी प्राणप्रिया रुक्मिणीजी शयन करती हैं । मानो मैं उनका सगा भाई हूँ ! कहाँतक कहूँ ? मैं थका हुआ था, इसलिये स्वयं उनकी पटरानी रुक्मिणीजीने अपने हाथों चँवर डुलाकर मेरी सेवा की ॥ १७ ॥ ओह, देवताओंके आराध्यदेव होकर भी ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले प्रभुने पाँव दबाकर, अपने हाथों खिला-पिलाकर मेरी अत्यन्त सेवा-शुश्रूषा की और देवताके समान मेरी पूजा की ॥ १८ ॥ स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और रसातलकी सम्पत्ति तथा समस्त योगसिद्धियोंकी प्राप्तिका मूल उनके चरणोंकी पूजा ही है ॥ १९ ॥ फिर भी परमदयालु श्रीकृष्णने यह सोचकर मुझे थोड़ा-सा भी धन नहीं दिया कि कहीं यह दरिद्र धन पाकर बिल्कुल मतवाला न हो जाय और मुझे न भूल बैठे' ॥ २० ॥

इस प्रकार मन-ही-मन विचार करते-करते ब्राह्मण-देवता अपने घरके पास पहुँच गये । वे वहाँ क्या देखते हैं कि सब-का-सब स्थान सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान तेजस्वी रत्ननिर्मित महलोंसे घिरा हुआ है । ठौर-ठौर चित्र-विचित्र उपवन और उद्यान बने हुए हैं तथा उनमें झुंड-के-झुंड रंग-बिरंगे पक्षी कलरव कर रहे हैं । सरोवरोंमें कुमुदिनी तथा श्वेत, नील और सौगन्धिक—भाँति-भाँतिके कमल खिले हुए हैं; सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष बन-ठनकर इधर-उधर विचर रहे हैं । उस स्थानको देखकर ब्राह्मणदेवता सोचने लगे—'मैं यह क्या देख रहा हूँ ? यह किसका स्थान है ? यदि यह वही स्थान है, जहाँ मैं रहता था, तो यह ऐसा कैसे हो गया' ॥ २१—२३ ॥ इस प्रकार वे सोच ही रहे थे कि देवताओंके समान सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष गाजे-बाजेके साथ मङ्गलगीत गाते हुए उस महाभाग्यवान् ब्राह्मणकी अगवानी करनेके लिये आये ॥ २४ ॥ पतिदेवका शुभागमन सुनकर ब्राह्मणीको अपार आनन्द हुआ और वह हड़बड़ाकर जल्दी-जल्दी घरसे निकल आयी, वह ऐसी मालूम होती थी मानो मूर्तिमती लक्ष्मीजी ही कमलवनसे पधारी हों ॥ २५ ॥ पतिदेवको देखते ही पतिव्रता पत्नीके नेत्रोंमें प्रेम और उत्कण्ठाके आवेगसे आँसू छलक आये । उसने अपने नेत्र बंद कर लिये । ब्राह्मणीने बड़े प्रेमभावसे उन्हें नमस्कार किया और मन-ही-मन आलिङ्गन भी ॥ २६ ॥

प्रिय परीक्षित् ! ब्राह्मणपत्नी सोनेका हार पहनी हुई दासियोंके बीचमें विमानस्थित देवाङ्गनाके समान अत्यन्त शोभायमान एवं देदीप्यमान हो रही थी । उसे इस रूपमें देखकर वे विस्मित हो गये ॥ २७ ॥ उन्होंने अपनी पत्नीके साथ बड़े प्रेमसे अपने महलमें प्रवेश किया । उनका महल क्या था, मानो देवराज इन्द्रका निवासस्थान । इसमें मणियोंके सैकड़ों खंभे खड़े थे ॥ २८ ॥ हाथीके दाँतके बने हुए और सोनेके पातसे मँढ़े हुए पलंगोंपर दूधके फेनकी तरह श्वेत और कोमल बिछौने बिछ रहे थे । बहुत-से चँवर वहाँ रक्खे हुए थे, जिनमें सोनेकी डंडियाँ लगी हुई थीं ॥ २९ ॥ सोनेके सिंहासन शोभायमान हो रहे थे, जिनपर बड़ी कोमल-कोमल गद्दियाँ लगी हुई थीं ! ऐसे चँदोवे भी झिलमिला रहे थे, जिनमें मोतियोंकी लड़ियाँ लटक रही थीं ॥ ३० ॥ स्फटिकमणिकी स्वच्छ भीतोंपर पन्नेकी पच्चीकारी की हुई थी । रत्ननिर्मित स्त्रीमूर्तियोंके हाथोंमें रत्नोंके दीपक जगमगा रहे थे ॥ ३१ ॥ इस प्रकार समस्त सम्पत्तियोंकी समृद्धि देखकर और उसका कोई प्रत्यक्ष कारण न पाकर, बड़ी गम्भीरतासे ब्राह्मणदेवता विचार करने लगे कि मेरे पास इतनी सम्पत्ति कहाँसे आ गयी ॥ ३२ ॥ वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं जन्मसे ही भाग्यहीन और दरिद्र हूँ । फिर मेरी इस सम्पत्ति-समृद्धिका कारण क्या है ? अवश्य ही परमैश्वर्य-शाली यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके कृपाकटाक्षके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं हो सकता ॥ ३३ ॥ यह सब कुछ उनकी करुणाकी ही देन है । स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णकाम और लक्ष्मीपति होनेके कारण अनन्त भोगसामग्रियोंसे युक्त हैं । इसलिये वे याचक भक्तको उसके मनका भाव जानकर बहुत कुछ दे देते हैं, परन्तु उसे समझते हैं बहुत थोड़ा; इसलिये सामने कुछ कहते नहीं । मेरे यदुवंशशिरोमणि सखा श्याम-

सुन्दर सचमुच उस मेघसे भी बढ़कर उदार हैं, जो समुद्रको भर देनेकी शक्ति रखनेपर भी किसानके सामने न बरसकर उसके सो जानेपर रातमें बरसता है और बहुत बरसनेपर भी थोड़ा ही समझता है ॥ ३४ ॥ मेरे प्यारे सखा श्रीकृष्ण देते हैं बहुत, पर उसे मानते हैं बहुत थोड़ा ! और उनका प्रेमी भक्त यदि उनके लिये कुछ भी कर दे, तो वे उसको बहुत मान लेते हैं। देखो तो सही ! मैंने उन्हें केवल एक मुट्ठी चिउड़ा भेंट किया था, पर उदार-शिरोमणि श्रीकृष्णने उसे कितने प्रेमसे स्वीकार किया ॥ ३५ ॥ मुझे जन्म-जन्म उन्हींका प्रेम उन्हींकी हितैषिता, उन्हींकी मित्रता और उन्हींकी सेवा प्राप्त हो। मुझे सम्पत्तिकी आवश्यकता नहीं, सदा-सर्वदा उन्हीं गुणोंके एकमात्र निवासस्थान महानुभाव भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग बढ़ता जाय और उन्हींके प्रेमी भक्तोंका सत्सङ्ग प्राप्त हो ॥ ३६ ॥ अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण सम्पत्ति आदिके दोष जानते हैं। वे देखते हैं कि बड़े-बड़े धनियोंका धन और ऐश्वर्यके मदसे पतन हो जाता है। इसलिये वे अपने अदूरदर्शी भक्तको उसके माँगते रहनेपर भी तरह-तरहकी सम्पत्ति, राज्य और ऐश्वर्य आदि नहीं देते। यह उनकी बड़ी कृपा है' ॥ ३७ ॥ परीक्षित् ! अपनी बुद्धिसे इस प्रकार निश्चय करके वे ब्राह्मणदेवता त्यागपूर्वक अनासक्तभावसे अपनी पत्नीके साथ भगवत्प्रसाद-स्वरूप विषयोंको ग्रहण करने लगे और दिनोंदिन उनकी प्रेम-भक्ति बढ़ने लगी ॥ ३८ ॥

प्रिय परीक्षित् ! देवताओंके भी आराध्यदेव भक्त-भयहारी यज्ञपति सर्वशक्तिमान् भगवान् स्वयं ब्राह्मणोंको अपना प्रभु, अपना इष्टदेव मानते हैं। इसलिये ब्राह्मणोंसे बढ़कर और कोई भी प्राणी जगत्में नहीं है ॥३९॥ इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा उस ब्राह्मणने देखा कि 'यद्यपि भगवान् अजित हैं, किसीके अधीन नहीं हैं; फिर भी वे अपने सेवकोंके अधीन हो जाते हैं, उनसे पराजित हो जाते हैं' अब वे उन्हींके ध्यानमें तन्मय हो गये। ध्यानके आवेगसे उनकी अविद्याकी गाँठ कट गयी और उन्होंने थोड़े ही समयमें भगवान्का धाम, जो कि संतोंका एकमात्र आश्रय है, प्राप्त किया ॥ ४० ॥ परीक्षित् ! ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव माननेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी इस ब्राह्मणभक्तिको जो सुनता है, उसे भगवान्के चरणोंमें प्रेमभाव प्राप्त हो जाता है और वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

बयासीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण-बलरामसे गोप-गोपियोंकी भेंट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी द्वारकामें निवास कर रहे थे। एक बार सर्वग्रास सूर्यग्रहण लगा, जैसा कि प्रलयके समय लगा करता है ॥ १ ॥ परीक्षित् ! मनुष्योंको ज्योतिषियोंके द्वारा उस ग्रहणका पता पहलेसे ही चल गया था, इसलिये सब लोग अपने-अपने कल्याणके उद्देश्यसे पुण्य आदि उपार्जन करनेके लिये समन्तपञ्चक-तीर्थ कुरुक्षेत्रमें आये ॥ २ ॥ समन्तपञ्चक क्षेत्र वह है, जहाँ शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामजीने सारी पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके राजाओंकी रुधिरधारासे पाँच बड़े-बड़े कुण्ड बना दिये थे ॥ ३ ॥ जैसे कोई साधारण मनुष्य अपने पापकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त करता है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् भगवान् परशुरामने अपने साथ कर्मका कुछ सम्बन्ध न होनेपर भी लोकमर्यादाकी रक्षाके लिये वहींपर यज्ञ किया था ॥ ४ ॥

परीक्षित् ! इस महान् तीर्थयात्राके अवसरपर भारतवर्षके सभी प्रान्तोंकी जनता कुरुक्षेत्र आयी थी। उनमें अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े-बूढ़े तथा गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि अन्य यदुवंशी भी अपने-अपने पापोंका नाश करनेके लिये कुरुक्षेत्र आये थे। प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्ध और यदुवंशी सेनापति कृतवर्मा—ये दोनों सुचन्द्र, शुक, सारण आदिके साथ नगरकी रक्षाके लिये द्वारकामें रह गये थे। यदुवंशी एक तो

स्वभावसे ही परम तेजस्वी थे; दूसरे गलेमें सोनेकी माला, दिव्य पुष्पोंके हार, बहुमूल्य वस्त्र और कवचोंसे सुसज्जित होनेके कारण उनकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। वे तीर्थयात्राके पथमें देवताओंके विमानके समान रथों, समुद्रकी तरङ्गके समान चलनेवाले घोड़ों, बादलोंके समान विशालकाय एवं गर्जना करते हुए हाथियों तथा विद्याधरोंके समान मनुष्योंके द्वारा ढोयी जानेवाली पालकियोंपर अपनी पत्नियोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, मानो स्वर्गके देवता ही यात्रा कर रहे हों। महाभाग्यवान् यदुवंशियोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँचकर एकाग्रचित्तसे संयमपूर्वक स्नान किया और ग्रहणके उपलक्ष्यमें निश्चित कालतक उपवास किया ॥ ५—९ ॥ उन्होंने ब्राह्मणोंको गोदान किया। ऐसी गौओंका दान किया जिन्हें वस्त्रोंकी सुन्दर-सुन्दर झूलें, पुष्पमालाएँ एवं सोनेकी जंजीरें पहना दी गयी थीं। इसके बाद ग्रहणका मोक्ष हो जानेपर परशुरामजीके बनाये हुए कुण्डोंमें यदुवंशियोंने विधिपूर्वक स्नान किया और सत्पात्र ब्राह्मणोंको सुन्दर-सुन्दर पकवानोंका भोजन कराया। उन्होंने अपने मनमें यह सङ्कल्प किया था कि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें हमारी प्रेमभक्ति बनी रहे। भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना आदर्श और इष्टदेव माननेवाले यदुवंशियोंने ब्राह्मणोंसे अनुमति लेकर तब स्वयं भोजन किया और फिर घनी एवं ठंडी छायावाले वृक्षोंके नीचे अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार डेरा डालकर ठहर गये। परीक्षित्! विश्राम कर लेनेके बाद यदुवंशियोंने अपने सुहृद् और सम्बन्धी राजाओंसे मिलना-भेंटना शुरू किया ॥ १०—१२ ॥ वहाँ मत्स्य, उशीनर, कोसल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त, केरल एवं दूसरे अनेकों देशोंके—अपने पक्षके तथा शत्रुपक्षके—सैकड़ों नरपति आये हुए थे। परीक्षित्! इनके अतिरिक्त यदुवंशियोंके परम हितैषी बन्धु नन्द आदि गोप तथा भगवान्‌के दर्शनके लिये चिरकालसे उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ आयी हुई थीं। यादवोंने इन सबको देखा ॥ १३-१४ ॥ परीक्षित्! एक-दूसरेके दर्शन, मिलन और वार्तालापसे सभीको बड़ा आनन्द हुआ। सभीके हृदय-कमल एवं मुख-कमल खिल उठे। सब एक-दूसरेको भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगाते, उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग जाती, रोम-रोम खिल उठता, प्रेमके आवेगसे बोली बंद हो जाती और सब-के-सब आनन्द-समुद्रमें डूबने-उतराने लगते ॥ १५ ॥ पुरुषोंकी भाँति स्त्रियाँ भी एक-दूसरेको देखकर प्रेम और आनन्दसे भर गयीं। वे अत्यन्त सौहार्द, मन्द-मन्द मुसकान, परम पवित्र तिरछी चितवनसे देख-देखकर परस्पर भेंट-अँकवार भरने लगीं। वे अपनी भुजाओंमें भरकर केसर लगे हुए वक्षःस्थलोंको दूसरी स्त्रियोंके वक्षःस्थलोंसे दबातीं और अत्यन्त आनन्दका अनुभव करतीं। उस समय उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू छलकने लगते ॥ १६ ॥ अवस्था आदिमें छोटोंने बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम किया और उन्होंने अपनेसे छोटोंका प्रणाम स्वीकार किया। वे एक-दूसरेका स्वागत करके तथा कुशल-मङ्गल आदि पूछकर फिर श्रीकृष्णकी मधुर लीलाएँ आपसमें कहने-सुनने लगे ॥ १७ ॥

परीक्षित्! कुन्ती वसुदेव आदि अपने भाइयों, बहिनों, उनके पुत्रों, माता-पिता, भाभियों और भगवान् श्रीकृष्णको देखकर तथा उनसे बातचीत करके अपना सारा दुःख भूल गयीं ॥ १८ ॥

कुन्तीने वसुदेवजीसे कहा—भैया! मैं सचमुच बड़ी अभागिन हूँ। मेरी एक भी साध पूरी न हुई। आप-जैसे साधु-स्वभाव सज्जन भाई आपत्तिके समय मेरी सुधि भी न लें, इससे बढ़कर दुःखकी बात क्या होगी? ॥ १९ ॥ भैया! विधाता जिसके बाँयें हो जाता है, उसे स्वजन-सम्बन्धी, पुत्र और माता-पिता भी भूल जाते हैं। इसमें आपलोगोंका कोई दोष नहीं ॥ २० ॥

वसुदेवजीने कहा—बहिन! उलाहना मत दो। हमसे बिलग न मानो। सभी मनुष्य दैवके खिलौने हैं। यह सम्पूर्ण लोक ईश्वरके वशमें रहकर कर्म करता है, और उसका फल भोगता है ॥ २१ ॥ बहिन! कंससे सताये जाकर हमलोग इधर-उधर अनेक दिशाओंमें भगे हुए थे। अभी कुछ ही दिन हुए,

ईश्वरकृपासे हम सब पुनः अपना स्थान प्राप्त कर सके हैं ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वहाँ जितने भी नरपति आये थे—वसुदेव, उग्रसेन आदि यदुवंशियोंने उनका खूब सम्मान-सत्कार किया। वे सब भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर परमानन्द और शान्तिका अनुभव करने लगे ॥ २३ ॥ परीक्षित् ! भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधनादि पुत्रोंके साथ गान्धारी, पत्नियोंके सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डव, कुन्ती, सृञ्जय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, महाराज नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशीनरेश, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलानरेश, मद्रनरेश, केकयनरेश, युधामन्यु, सुशर्मा, अपने पुत्रोंके साथ बाह्लीक और दूसरे भी युधिष्ठिरके अनुयायी नृपति भगवान् श्रीकृष्णका परम सुन्दर श्रीनिकेतन विग्रह और उनकी रानियोंको देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥२४-२७॥ अब वे बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णसे भलीभाँति सम्मान प्राप्त करके बड़े आनन्दसे श्रीकृष्णके स्वजनों—यदुवंशियोंकी प्रशंसा करने लगे ॥२८॥ उन लोगोंने मुख्यतया उग्रसेनजीको सम्बोधित कर कहा—'भोजराज उग्रसेनजी ! सच पूछिये तो इस जगत्के मनुष्योंमें आपलोगोंका जीवन ही सफल है, धन्य है ! धन्य है ! क्योंकि जिन श्रीकृष्णका दर्शन बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी दुर्लभ है, उन्हींको आपलोग नित्य-निरन्तर देखते रहते हैं ॥ २९ ॥ वेदोंने बड़े आदरके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्तिका गान किया है। उनके चरणधोवनका जल गङ्गाजल, उनकी वाणी—शास्त्र और उनकी कीर्ति इस जगत्को अत्यन्त पवित्र कर रही है। अभी हमलोगोंके जीवनकी ही बात है, समयके फेरसे पृथ्वीका सारा सौभाग्य नष्ट हो चुका था; परन्तु उनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पृथ्वीमें फिर समस्त शक्तियोंका सञ्चार हो गया और अब वह फिर हमारी समस्त अभिलाषाओं—मनोरथोंको पूर्ण करने लगी ॥ ३० ॥ उग्रसेनजी ! आपलोगोंका श्रीकृष्णके साथ वैवाहिक एवं गोत्रसम्बन्ध है। यही नहीं, आप हर समय उनका दर्शन और स्पर्श प्राप्त करते रहते हैं। उनके साथ चलते हैं, बोलते हैं, सोते हैं, बैठते हैं और खाते-पीते हैं। यों तो आपलोग गृहस्थीकी झंझटोंमें फँसे रहते हैं—जो नरकका मार्ग है, परन्तु आपलोगोंके घर वे सर्वव्यापक विष्णुभगवान् मूर्तिमान् रूपसे निवास करते हैं, जिनके दर्शनमात्रसे स्वर्ग और मोक्षतककी अभिलाषा मिट जाती है' ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब नन्दबाबाको यह बात मालूम हुई कि श्रीकृष्ण आदि यदुवंशी कुरुक्षेत्रमें आए हुए हैं, तब वे गोपोंके साथ अपनी सारी सामग्री गाड़ियोंपर लादकर अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण-बलराम आदिको देखनेके लिये वहाँ आये ॥ ३२ ॥ नन्द आदि गोपोंको देखकर सब-के-सब यदुवंशी आनन्दसे भर गये। वे इस प्रकार उठ खड़े हुए, मानो मृत शरीरमें प्राणोंका सञ्चार हो गया हो। वे लोग एक-दूसरेसे मिलनेके लिये बहुत दिनोंसे आतुर हो रहे थे। इसलिये एक-दूसरेको बहुत देरतक अत्यन्त गाढ़भावसे आलिङ्गन करते रहे ॥ ३३ ॥ वसुदेवजीने अत्यन्त प्रेम और आनन्दसे विह्वल होकर नन्दजीको हृदयसे लगा लिया। उन्हें एक-एक करके सारी बातें याद हो आयीं—कंस किस प्रकार उन्हें सताता था और किस प्रकार उन्होंने अपने पुत्रको गोकुलमें ले जाकर नन्दजीके घर रख दिया था ॥ ३४ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने माता यशोदा और पिता नन्दजीके हृदयसे लगकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। परीक्षित् ! उस समय प्रेमके उद्रेकसे दोनों भाइयोंका गला रुँध गया, वे कुछ भी बोल न सके ॥ ३५ ॥ महाभाग्यवती यशोदाजी और नन्दबाबाने दोनों पुत्रोंको अपनी गोदमें बैठा लिया और भुजाओंसे उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। उनके हृदयमें चिरकालतक न मिलनेका जो दुःख था, वह सब मिट गया ॥ ३६ ॥ रोहिणी और देवकीजीने व्रजेश्वरी यशोदाको अपनी अँकवारमें भर लिया। यशोदाजीने उन लोगोंके साथ मित्रताका जो व्यवहार किया था, उसका स्मरण करके दोनोंका गला भर आया। वे यशोदाजीसे कहने लगीं—॥३७॥ 'यशोदारानी ! आपने और व्रजेश्वर नन्दजीने हमलोगोंके साथ जो मित्रताका व्यवहार किया है, वह कभी मिटने-

वाला नहीं है, उसका बदला इन्द्रका ऐश्वर्य पाकर भी हम किसी प्रकार नहीं चुका सकतीं। नन्दरानीजी! भला ऐसा कौन कृतघ्न है, जो आपके उस उपकारको भूल सके? ॥ ३८ ॥ देवि! जिस समय बलराम और श्रीकृष्णने अपने मा-बापको देखातक न था और इनके पिताने धरोहरके रूपमें इन्हें आप दोनोंके पास रख छोड़ा था, उस समय आपने इन दोनोंकी इस प्रकार रक्षा की, जैसे पलकें पुतलियोंकी रक्षा करती हैं। तथा आपलोगोंने ही इन्हें खिलाया-पिलाया, दुलार किया और रिझाया; इनके मङ्गलके लिये अनेकों प्रकारके उत्सव मनाये। सच पूछिये, तो इनके मा-बाप आप ही लोग हैं। आपलोगोंकी देख-रेखमें इन्हें किसीकी आँचतक न लगी, ये सर्वथा निर्भय रहे, ऐसा करना आपलोगोंके अनुरूप ही था। क्योंकि सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें अपने-परायेका भेद-भाव नहीं रहता। नन्दरानीजी! सचमुच आपलोग परम संत हैं' ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मैं कह चुका हूँ कि गोपियोंके परम प्रियतम, जीवनसर्वस्व श्रीकृष्ण ही थे। जब उनके दर्शनके समय नेत्रोंकी पलकें गिर पड़तीं, तब वे पलकोंको बनानेवालेको ही कोसने लगतीं। उन्हीं प्रेमकी मूर्ति गोपियोंको आज बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन हुआ। उनके मनमें इसके लिये कितनी लालसा थी, इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने नेत्रोंके रास्ते अपने प्रियतम श्रीकृष्णको हृदयमें ले जाकर गाढ़ आलिङ्गन किया और मन-ही-मन आलिङ्गन करते-करते तन्मय हो गयीं। परीक्षित्! कहाँतक कहूँ, वे उस भावको प्राप्त हो गयीं, जो नित्य-निरन्तर अभ्यास करनेवाले योगियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४० ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि गोपियाँ मुझसे तादात्म्यको प्राप्त—एक हो रही हैं, तब वे एकान्तमें उनके पास गये, उनको हृदयसे लगाया, कुशल-मङ्गल पूछा और हँसते हुए यों बोले—॥ ४१ ॥ 'सखियो! हमलोग अपने स्वजन-सम्बन्धियोंका काम करनेके लिये व्रजसे बाहर चले आये और इस प्रकार तुम्हारी-जैसी प्रेयसियोंको छोड़कर हम शत्रुओंका विनाश करनेमें उलझ गये। बहुत दिन बीत गये, क्या कभी तुमलोग हमारा स्मरण भी करती हो? ॥ ४२ ॥ मेरी प्यारी गोपियो! कहीं तुमलोगोंके मनमें यह आशङ्का तो नहीं हो गयी है कि मैं अकृतज्ञ हूँ और ऐसा समझकर तुमलोग हमसे बुरा तो नहीं मानने लगी हो? निस्सन्देह भगवान् ही प्राणियोंके संयोग और वियोगके कारण हैं ॥ ४३ ॥ जैसे वायु बादलों, तिनकों, रूई और धूलके कणोंको एक-दूसरेसे मिला देती है, और फिर स्वच्छन्दरूपसे उन्हें अलग-अलग कर देती है, वैसे ही समस्त पदार्थोंके निर्माता भगवान् भी सबका संयोग-वियोग अपने इच्छानुसार करते रहते हैं ॥ ४४ ॥ सखियो! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम सब लोगोंको मेरा वह प्रेम प्राप्त हो चुका है, जो मेरी ही प्राप्ति करानेवाला है। क्योंकि मेरे प्रति की हुई प्रेम-भक्ति प्राणियोंको अमृतत्व (परमानन्द-धाम) प्रदान करनेमें समर्थ है ॥ ४५ ॥ प्यारी गोपियो! जैसे घट, पट आदि जितने भी भौतिक पदार्थ हैं, उनके आदि, अन्त और मध्यमें, बाहर और भीतर, उनके मूल कारण पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि तथा आकाश ही ओतप्रोत हो रहे हैं, वैसे ही जितने भी पदार्थ हैं, उनके पहले, पीछे, बीचमें, बाहर और भीतर केवल मैं-ही-मैं हूँ ॥ ४६ ॥ इसी प्रकार सभी प्राणियोंके शरीरमें यही पाँचों भूत कारणरूपसे स्थित हैं और आत्मा भोक्ताके रूपसे अथवा जीवके रूपसे स्थित है। परन्तु मैं इन दोनोंसे परे अविनाशी सत्य हूँ। ये दोनों मेरे ही अंदर प्रतीत हो रहे हैं, तुमलोग ऐसा अनुभव करो ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार गोपियोंको अध्यात्मज्ञानकी शिक्षासे शिक्षित किया। उसी उपदेशके बार-बार स्मरणसे गोपियोंका जीवकोश—लिङ्गशरीर नष्ट हो गया और वे भगवान्‌से एक हो गयीं, भगवान्‌को ही सदा-सर्वदाके लिये प्राप्त हो गयीं ॥ ४८ ॥ उन्होंने कहा—'हे कमलनाभ! अगाधबोधसम्पन्न बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय-कमलमें आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते हैं। जो लोग संसारके कूएँमें गिरे हुए हैं, उन्हें उससे निकलनेके लिये आपके चरणकमल ही एकमात्र अवलम्बन हैं। प्रभो! आप ऐसी कृपा कीजिये कि आपका वह चरणकमल, घर-गृहस्थके काम करते रहनेपर भी सदा-सर्वदा हमारे हृदयमें विराजमान रहे, हम एक क्षणके लिये भी उसे न भूलें ॥ ४९ ॥

तिरासीवाँ अध्याय

भगवान्‌की पटरानियोंके साथ द्रौपदीकी बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण ही गोपियोंको शिक्षा देनेवाले हैं और वही उस शिक्षाके द्वारा प्राप्त होनेवाली वस्तु हैं। इसके पहले, जैसा कि वर्णन किया गया है, भगवान् श्रीकृष्णने उनपर महान् अनुग्रह किया। अब उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर तथा अन्य समस्त सम्बन्धियोंसे कुशल-मङ्गल पूछा ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका दर्शन करनेसे ही उनके सारे अशुभ नष्ट हो चुके थे। अब जब भगवान् श्रीकृष्णने उनका सत्कार किया, कुशल-मङ्गल पूछा, तब वे अत्यन्त आनन्दित होकर उनसे कहने लगे—॥ २ ॥ 'भगवन् ! बड़े-बड़े महापुरुष मन-ही-मन आपके चरणारविन्दका मकरन्दरस पान करते रहते हैं। कभी-कभी उनके मुखकमलसे लीला-कथाके रूपमें वह रस छलक पड़ता है। प्रभो ! वह इतना अद्भुत दिव्य रस है कि कोई भी प्राणी उसको पी ले तो वह जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाली विस्मृति अथवा अविद्याको नष्ट कर देता है। उसी रसको जो लोग अपने कानोंके दोनोंमें भर-भरकर जीभर पीते हैं, उनके अमङ्गलकी आशङ्का ही क्या है ? ॥ ३ ॥ भगवन् ! आप एकरस ज्ञानस्वरूप और अखण्ड आनन्दके समुद्र हैं। बुद्धि-वृत्तियोंके कारण होनेवाली जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ आपके स्वयंप्रकाश स्वरूपतक पहुँच ही नहीं पातीं, दूरसे ही नष्ट हो जाती हैं। आप परमहंसोंकी एकमात्र गति हैं। समयके फेरसे वेदोंका ह्रास होते देखकर उनकी रक्षाके लिये आपने अपनी अचिन्त्य योगमायाके द्वारा मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण किया है। हम आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करते हैं' ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जिस समय दूसरे लोग इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे थे, उसी समय यादव और कौरव-कुलकी स्त्रियाँ एकत्र होकर आपसमें भगवान्‌की त्रिभुवन-विख्यात लीलाओंका वर्णन कर रही थीं। अब मैं तुम्हें उन्हींकी बातें सुनाता हूँ ॥ ५ ॥

द्रौपदीने कहा—हे रुक्मिणी, भद्रे, हे जाम्बवती, सत्ये, हे सत्यभामे, कालिन्दी, शैब्ये, लक्ष्मणे, रोहिणी और अन्यान्य श्रीकृष्णपत्नियो ! तुमलोग हमें यह तो बताओ कि स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपनी मायासे लोगोंका अनुकरण करते हुए तुमलोगोंका किस प्रकार पाणिग्रहण किया ? ॥ ६-७ ॥

रुक्मिणीजीने कहा—द्रौपदीजी ! जरासन्ध आदि सभी राजा चाहते थे कि मेरा विवाह शिशुपालके साथ हो; इसके लिये सभी शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये तैयार थे। परन्तु भगवान् मुझे वैसे ही हर लाये, जैसे सिंह बकरी और भेड़ोंके झुंडमेंसे अपना भाग छीन ले जाय। क्यों न हो—जगत्‌में जितने भी अजेय वीर हैं, उनके मुकुटोंपर इन्हींकी चरणधूलि शोभायमान होती है। द्रौपदीजी ! मेरी तो यही अभिलाषा है कि भगवान्‌के वे ही समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्यके आश्रय चरणकमल जन्म-जन्म मुझे आराधना करनेके लिये प्राप्त होते रहें, मैं उन्हींकी सेवामें लगी रहूँ ॥ ८ ॥

सत्यभामाने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिताजी अपने भाई प्रसेनकी मृत्युसे बहुत दुःखी हो रहे थे, अतः उन्होंने उनके वधका कलङ्क भगवान्‌पर ही लगाया। उस कलङ्कको दूर करनेके लिये भगवान्‌ने ऋक्षराज जाम्बवान्‌पर विजय प्राप्त की और वह रत्न लाकर मेरे पिताको दे दिया। अब तो मेरे पिताजी मिथ्या कलङ्क लगानेके कारण डर गये। अतः यद्यपि वे दूसरेको मेरा वाग्दान कर चुके थे, फिर भी उन्होंने मुझे स्यमन्तक-मणिके साथ भगवान्‌के चरणोंमें ही समर्पित कर दिया ॥ ९ ॥

जाम्बवतीने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिता ऋक्ष-राज जाम्बवान्‌को इस बातका पता न था कि यही मेरे स्वामी भगवान् सीतापति हैं। इसलिये वे इनसे सत्ताईस दिनतक लड़ते रहे। परन्तु जब परीक्षा पूरी हुई, उन्होंने जान लिया कि ये भगवान् राम ही हैं, तब इनके चरणकमल पकड़कर स्यमन्तकमणिके साथ उपहारके रूपमें मुझे समर्पित कर दिया। मैं यही चाहती हूँ कि जन्म-जन्म इन्हींकी दासी बनी रहूँ ॥ १० ॥

कालिन्दीने कहा—द्रौपदीजी ! जब भगवान्‌को यह मालूम हुआ कि मैं उनके चरणोंका स्पर्श करनेकी आशा-अभिलाषासे तपस्या कर रही हूँ, तब वे अपने सखा अर्जुनके साथ यमुना-तटपर आये और मुझे स्वीकार कर लिया। मैं उनका घर बुहारनेवाली उनकी दासी हूँ ॥ ११ ॥

मित्रविन्दाने कहा—द्रौपदीजी ! मेरा स्वयंवर हो रहा था। वहाँ आकर भगवान्‌ने सब राजाओंको जीत लिया और जैसे सिंह झुंड-के-झुंड कुत्तोंमेंसे अपना भाग ले जाय, वैसे ही मुझे अपनी शोभामयी द्वारकापुरीमें ले आये। मेरे भाइयोंने भी मुझे भगवान्‌से छुड़ाकर मेरा अपकार करना चाहा, परन्तु उन्होंने उन्हें भी नीचा दिखा दिया। मैं ऐसा चाहती हूँ कि मुझे जन्म-जन्म उनके पाँव पखारनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहे ॥ १२ ॥

सत्याने कहा—द्रौपदीजी ! मेरे पिताजीने मेरे स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके बल-पौरुषकी परीक्षाके लिये बड़े बलवान् और पराक्रमी, तीखे सींगवाले सात बैल रख छोड़े थे। उन बैलोंने बड़े-बड़े वीरोंका घमंड चूर-चूर कर दिया था। उन्हें भगवान्‌ने खेल-खेलमें ही झपटकर पकड़ लिया, नाथ लिया और बाँध दिया; ठीक वैसे ही, जैसे छोटे-छोटे बच्चे बकरीके बच्चोंको पकड़ लेते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार भगवान् बल-पौरुषके द्वारा मुझे प्राप्त कर चतुरङ्गिणी सेना और दासियोंके साथ द्वारका ले आये। मार्गमें जिन क्षत्रियोंने विघ्न डाला, उन्हें जीत भी लिया। मेरी यही अभिलाषा है कि मुझे इनकी सेवाका अवसर सदा-सर्वदा प्राप्त होता रहे ॥ १४ ॥

भद्राने कहा—द्रौपदीजी ! भगवान् मेरे मामाके पुत्र हैं। मेरा चित्त इन्हींके चरणोंमें अनुरक्त हो गया था। जब मेरे पिताजीको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वयं ही भगवान्‌को बुलाकर अक्षौहिणी सेना और बहुत-सी दासियोंके साथ मुझे इन्हींके चरणोंमें समर्पित कर दिया ॥ १५ ॥ मैं अपना परम कल्याण इसीमें समझती हूँ कि कर्मके अनुसार मुझे जहाँ-जहाँ जन्म लेना पड़े, सर्वत्र इन्हींके चरणकमलोंका संस्पर्श प्राप्त होता रहे ॥ १६ ॥

लक्ष्मणाने कहा—रानीजी ! देवर्षि नारद बार-बार भगवान्‌के अवतार और लीलाओंका गान करते रहते थे। उसे सुनकर और यह सोचकर कि लक्ष्मीजीने समस्त लोकपालोंका त्याग करके भगवान्‌का ही वरण किया, मेरा चित्त भगवान्‌के चरणोंमें आसक्त हो गया ॥ १७ ॥ साध्वी ! मेरे पिता बृहत्सेन मुझपर बहुत प्रेम रखते थे। जब उन्हें मेरा अभिप्राय मालूम हुआ, तब उन्होंने मेरी इच्छाकी पूर्तिके लिये यह उपाय किया ॥ १८ ॥ महारानी ! जिस प्रकार पाण्डववीर अर्जुनकी प्राप्तिके लिये आपके पिताने स्वयंवरमें मत्स्य-वेधका आयोजन किया था, उसी प्रकार मेरे पिताने भी किया। आपके स्वयंवरकी अपेक्षा हमारे यहाँ यह विशेषता थी कि मत्स्य बाहरसे ढका हुआ था, केवल जलमें ही उसकी परछाईं दीख पड़ती थी ॥ १९ ॥ जब यह समाचार राजाओंको मिला, तब सब ओरसे समस्त अस्त्र-शस्त्रोंके तत्त्वज्ञ हजारों राजा अपने-अपने गुरुओंके साथ मेरे पिताजीकी राजधानीमें आने लगे ॥ २० ॥ मेरे पिताजीने आये हुए सभी राजाओंका बल-पौरुष और अवस्थाके अनुसार भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। उन लोगोंने मुझे प्राप्त करनेकी इच्छासे स्वयंवर-सभामें रक्खे हुए धनुष और बाण उठाये ॥ २१ ॥ उनमेंसे कितने ही राजा तो धनुषपर ताँत भी न चढ़ा सके। उन्होंने धनुषको ज्यों का-त्यों रख दिया। कइयोंने धनुषकी डोरीको एक सिरेसे बाँधकर दूसरे सिरेतक खींच तो लिया, परन्तु वे उसे दूसरे सिरेसे बाँध न सके, उसका झटका लगनेसे गिर पड़े ॥ २२ ॥ रानीजी ! बड़े-बड़े प्रसिद्ध वीर—जैसे जरासन्ध, अम्बष्ठ-नरेश, शिशुपाल, भीमसेन, दुर्योधन और कर्ण—इन लोगोंने धनुषपर डोरी तो चढ़ा ली; परन्तु उन्हें मछलीकी स्थितिका पता न चला ॥ २३ ॥ पाण्डववीर अर्जुनने जलमें उस मछलीकी परछाईं देख ली और यह भी जान लिया कि वह कहाँ है। बड़ी सावधानीसे उन्होंने बाण छोड़ा भी; परन्तु उससे लक्ष्यवेध न हुआ, उनके बाणने केवल उसका स्पर्शमात्र किया ॥ २४ ॥

रानीजी ! इस प्रकार बड़े-बड़े अभिमानियोंका मान मर्दन हो गया। अधिकांश नरपतियोंने मुझे पानेकी लालसा एवं साथ-ही-साथ लक्ष्यवेधकी चेष्टा भी छोड़

दी। तब भगवान्‌ने धनुष उठाकर खेल-खेलमें—अनायास ही उसपर डोरी चढ़ा दी, बाण साधा और जलमें केवल एक बार मछलीकी परछाईं देखकर बाण मारा तथा उसे नीचे गिरा दिया। उस समय ठीक दोपहर हो रहा था, सर्वार्थसाधक 'अभिजित्' नामक मुहूर्त बीत रहा था॥ २५-२६॥ देवीजी! उस समय पृथ्वीमें जय-जयकार होने लगा और आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। बड़े-बड़े देवता आनन्द-विह्वल होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ २७॥ रानीजी! उसी समय मैंने रंगशालामें प्रवेश किया। मेरे पैरोंके पायजेब रुनझुन-रुनझुन बोल रहे थे। मैंने नये-नये उत्तम रेशमी वस्त्र धारण कर रक्खे थे। मेरी चोटियोंमें मालाएँ गुँथी हुई थीं और मुँहपर लज्जामिश्रित मुसकराहट थी। मैं अपने हाथोंमें रत्नोंका हार लिये हुए थी, जो बीच-बीचमें लगे हुए सोनेके कारण और भी दमक रहा था। रानीजी! उस समय मेरा मुखमण्डल घनी घुँघराली अलकोंसे सुशोभित हो रहा था तथा कपोलोंपर कुण्डलोंकी आभा पड़नेसे वह और भी दमक उठा था। मैंने एक बार अपना मुख उठाकर चन्द्रमाकी किरणोंके समान सुशीतल हास्यरेखा और तिरछी चितवनसे चारों ओर बैठे हुए राजाओंकी ओर देखा, फिर धीरेसे अपनी वरमाला भगवान्‌के गलेमें डाल दी। यह तो कह ही चुकी हूँ कि मेरा हृदय पहलेसे ही भगवान्‌के प्रति अनुरक्त था॥ २८-२९॥ मैंने ज्यों ही वरमाला पहनायी त्यों ही मृदङ्ग, पखावज, शङ्ख, ढोल, नगारे आदि बाजे बजने लगे। नट और नर्तकियाँ नाचने लगीं। गवैये गाने लगे॥ ३०॥

द्रौपदीजी! जब मैंने इस प्रकार अपने स्वामी प्रियतम भगवान्‌को वरमाला पहना दी, उन्हें वरण कर लिया, तब कामातुर राजाओंको बड़ा डाह हुआ। वे बहुत ही चिढ़ गये॥ ३१॥ चतुर्भुज भगवान्‌ने अपने श्रेष्ठ चार घोड़ोंवाले रथपर मुझे चढ़ा लिया और हाथमें शार्ङ्गधनुष लेकर तथा कवच पहनकर युद्ध करनेके लिये वे रथपर खड़े हो गये॥ ३२॥ पर रानीजी! दारुकने सोनेके साज-सामानसे लदे हुए रथको सब राजाओंके सामने ही द्वारकाके लिये हाँक दिया, जैसे कोई सिंह हरिनोंके बीचसे अपना भाग ले जाय॥ ३३॥ उनमेंसे कुछ राजाओंने धनुष लेकर युद्धके लिये सज-धजकर इस उद्देश्यसे रास्तेमें पीछा किया कि हम भगवान्‌को रोक लें; परन्तु रानीजी! उनकी चेष्टा ठीक वैसी ही थी, जैसे कुत्ते सिंहको रोकना चाहें॥ ३४॥ शार्ङ्गधनुषके छूटे हुए तीरोंसे किसीकी बाँह कट गयी तो किसीके पैर कटे और किसीकी गर्दन ही उतर गयी। बहुत-से लोग तो उस रणभूमिमें ही सदाके लिये सो गये और बहुत-से युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए॥ ३५॥

तदनन्तर यदुवंशशिरोमणि भगवान्‌ने सूर्यकी भाँति अपने निवासस्थान स्वर्ग और पृथ्वीमें सर्वत्र प्रशंसित द्वारका-नगरीमें प्रवेश किया। उस दिन वह विशेषरूपसे सजायी गयी थी। इतनी झंडियाँ, पताकाएँ और तोरण लगाये गये थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश धरतीतक नहीं आ पाता था॥ ३६॥ मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जानेसे पिताजीको बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने हितैषी-सुहृदों, सगे-सम्बन्धियों और भाई-बन्धुओंको बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन और विविध प्रकारकी सामग्रियाँ देकर सम्मानित किया॥ ३७॥ भगवान् परिपूर्ण हैं—तथापि मेरे पिताजीने प्रेमवश उन्हें बहुत-सी दासियाँ, सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ, सैनिक, हाथी, रथ, घोड़े एवं बहुत-से बहुमूल्य अस्त्र-शस्त्र समर्पित किये॥३८॥ रानीजी! हमने पूर्वजन्ममें सबकी आसक्ति छोड़कर कोई बहुत बड़ी तपस्या की होगी। तभी तो हम इस जन्ममें आत्माराम भगवान्‌की गृह-दासियाँ हुई हैं॥ ३९॥

सोलह हजार पत्नियोंकी ओरसे रोहिणीजीने कहा—भौमासुरने दिग्विजयके समय बहुत-से राजाओंको जीतकर उनकी कन्या हमलोगोंको अपने महलमें बंदी बना रक्खा था। भगवान्‌ने यह जानकर युद्धमें भौमासुर और उसकी सेनाका संहार कर डाला और स्वयं पूर्णकाम होनेपर भी उन्होंने हमलोगोंको वहाँसे छुड़ाया तथा पाणिग्रहण करके अपनी दासी बना लिया। रानीजी! हम सदा-सर्वदा उनके उन्हीं चरणकमलोंका चिन्तन करती रहती थीं, जो जन्म-मृत्युरूप संसारसे मुक्त करनेवाले हैं॥ ४०॥ साध्वी द्रौपदीजी! हम साम्राज्य, इन्द्रपद अथवा इन दोनोंके भोग, अणिमा

आदि ऐश्वर्य, ब्रह्माका पद, मोक्ष अथवा सालोक्य, सारूप्य आदि मुक्तियाँ—कुछ भी नहीं चाहतीं। हम केवल इतना ही चाहती हैं कि अपने प्रियतम प्रभुके सुकोमल चरणकमलोंकी वह श्रीरज सर्वदा अपने सिरपर वहन किया करें, जो लक्ष्मीजीके वक्षःस्थलपर लगी हुई केशरकी सुगन्धसे युक्त है॥ ४१-४२॥ उनके द्वारा मणि भगवान्‌के जिन चरणकमलोंका स्पर्श प्रेमपूर्वक चराते समय गोप, गोपियाँ, भीलिनें, तिनके और शाख-लताएँतक करना चाहती थीं, उन्हींकी हमें भी चाहना है॥ ४३॥

अया तम ये र्ग

चौरासीवाँ अध्याय

वसुदेवजीका यज्ञोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सर्वात्मा भक्त-भयहारी भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उनकी पत्नियोंका कितना प्रेम है—यह बात कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, दूसरी राजपत्नियों और भगवान्‌की प्रियतमा गोपियोंने भी सुनी। सब-की-सब उनका यह अलौकिक प्रेम देखकर अत्यन्त मुग्ध, अत्यन्त विस्मित हो गयीं। सबके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये॥ १॥ इस प्रकार जिस समय स्त्रियोंसे स्त्रियाँ और पुरुषोंसे पुरुष बातचीत कर रहे थे, उसी समय बहुत-से ऋषि-मुनि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीका दर्शन करनेके लिये वहाँ आये॥२॥ उनमें प्रधान ये थे—श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास, देवर्षि नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, अपने शिष्योंके सहित भगवान् परशुराम, वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव इत्यादि॥ ३—५॥ ऋषियोंको देखकर पहलेसे बैठे हुए नरपतिगण, युधिष्ठिर आदि पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सहसा उठकर खड़े हो गये और सबने उन विश्ववन्दित ऋषियोंको प्रणाम किया।६। इसके बाद स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्पमाला, धूप और चन्दन आदिसे सब राजाओंने तथा बलरामजीके साथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उन सब ऋषियोंकी विधिपूर्वक पूजा की॥७॥ जब सब ऋषि-मुनि आरामसे बैठ गये, तब धर्मरक्षाके लिये अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णने उनसे कहा। उस समय वह बहुत बड़ी सभा चुपचाप भगवान्‌का भाषण सुन रही थी॥ ८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—धन्य है! हमलोगोंका जीवन सफल हो गया, आज जन्म लेनेका हमें पूरा-पूरा फल मिल गया; क्योंकि जिन योगेश्वरोंका दर्शन बड़े-बड़े देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, उन्हींका दर्शन हमें प्राप्त हुआ है॥ ९॥ जिन्होंने बहुत थोड़ी तपस्या की है और जो लोग अपने इष्टदेवको समस्त प्राणियोंके हृदयमें न देखकर केवल मूर्तिविशेषमें ही उनका दर्शन करते हैं, उन्हें आपलोगोंके दर्शन, स्पर्श, कुशल-प्रश्न, प्रणाम और पादपूजन आदिका सुअवसर भला कब मिल सकता है?॥ १०॥ केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थरकी प्रतिमाएँ ही देवता नहीं होतीं; संत पुरुष ही वास्तवमें तीर्थ और देवता हैं; क्योंकि उनका बहुत समयतक सेवन किया जाय, तब वे पवित्र करते हैं; परन्तु संत पुरुष तो दर्शनमात्रसे ही कृतार्थ कर देते हैं॥ ११॥ अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मनके अधिष्ठातृ-देवता उपासना करनेपर भी पापका पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते; क्योंकि उनकी उपासनासे भेद-बुद्धिका नाश नहीं होता, वह और भी बढ़ती है। परन्तु यदि घड़ी-दो-घड़ी भी ज्ञानी महापुरुषोंकी सेवा की जाय तो वे सारे पाप-ताप मिटा देते हैं; क्योंकि वे भेद-बुद्धिके विनाशक हैं॥ १२॥ महात्माओ और सभासदो! जो मनुष्य वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे बने हुए शवतुल्य शरीरको ही आत्मा—अपना 'मैं', स्त्री-पुत्र आदिको ही अपना और मिट्टी, पत्थर, काष्ठ आदि पार्थिव विकारोंको ही इष्टदेव मानता है तथा जो केवल जलको ही तीर्थ समझता है—ज्ञानी महापुरुषोंको नहीं, वह मनुष्य होनेपर भी पशुओंमें भी नीच गधा ही है॥ १३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण अखण्ड ज्ञानसम्पन्न हैं। उनका यह गूढ भाषण सुनकर सब-के-सब ऋषि-मुनि चुप रह गये। उनकी बुद्धि चक्करमें पड़ गयी, वे समझ न सके कि भगवान् यह क्या कह रहे हैं ॥ १४ ॥ उन्होंने बहुत देरतक विचार करनेके बाद यह निश्चय किया कि भगवान् सर्वेश्वर होनेपर भी जो इस प्रकार सामान्य, कर्म-परतन्त्र जीवकी भाँति व्यवहार कर रहे हैं—यह केवल लोक-संग्रहके लिये ही है। ऐसा समझकर वे मुसकराते हुए जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णसे कहने लगे ॥१५॥

मुनियोंने कहा—भगवन् ! आपकी मायासे प्रजापतियोंके अधीश्वर मरीचि आदि तथा बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी हमलोग मोहित हो रहे हैं। आप स्वयं ईश्वर होते हुए भी मनुष्यकी-सी चेष्टाओंसे अपनेको छिपाये रखकर जीवकी भाँति आचरण करते हैं। भगवन् ! सचमुच आपकी लीला अत्यन्त विचित्र है। परम आश्चर्यमयी है ॥ १६ ॥ जैसे पृथ्वी अपने विकारों—वृक्ष, पत्थर, घट आदिके द्वारा बहुत-से नाम और रूप ग्रहण कर लेती है, वास्तवमें वह एक ही है, वैसे ही आप एक और चेष्टाहीन होनेपर भी अनेक रूप धारण कर लेते हैं और अपने-आपसे ही इस जगत्की रचना, रक्षा और संहार करते हैं। पर यह सब करते हुए भी इन कर्मोंसे लिप्त नहीं होते। जो सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदशून्य एकरस अनन्त है, उसका यह चरित्र लीलामात्र नहीं तो और क्या है ? धन्य है आपकी यह लीला ! ॥ १७ ॥ भगवन् ! यद्यपि आप प्रकृतिसे परे, स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं; तथापि समय-समयपर भक्तजनोंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये विशुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं और अपनी लीलाके द्वारा सनातन वैदिक मार्गकी रक्षा करते हैं; क्योंकि सभी वर्णों और आश्रमोंके रूपमें आप स्वयं ही प्रकट हैं ॥ १८ ॥ भगवन् ! वेद आपका विशुद्ध हृदय है; तपस्या, स्वाध्याय, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा उसीमें आपके साकार-निराकार रूप और दोनोंके अधिष्ठानस्वरूप परब्रह्म परमात्माका साक्षात्कार होता है ॥ १९ ॥ परमात्मन् ! ब्राह्मण ही वेदोंके आधारभूत आपके स्वरूपकी उपलब्धिके स्थान हैं; इसीसे आप ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं और इसीसे आप ब्राह्मण-भक्तोंमें अग्रगण्य भी हैं ॥२०॥ आप सर्वविध कल्याण-साधनोंकी चरम सीमा हैं और संत पुरुषोंकी एकमात्र गति हैं। आपसे मिलकर आज हमारे जन्म, विद्या, तप और ज्ञान सफल हो गये। वास्तवमें सबके परम फल आप ही हैं ॥ २१ ॥ प्रभो ! आपका ज्ञान अनन्त है, आप स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् हैं। आपने अपनी अचिन्त्य शक्ति योगमायाके द्वारा अपनी महिमा छिपा रक्खी है, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥२२॥ ये सभामें बैठे हुए राजालोग और दूसरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं आपके साथ आहार-विहार करनेवाले यदुवंशी लोग भी आपको वास्तवमें नहीं जानते; क्योंकि आपने अपने स्वरूपको—जो सबका आत्मा, जगत्का आदिकारण और नियन्ता है—मायाके परदेसे ढक रक्खा है ॥ २३ ॥ जब मनुष्य स्वप्न देखने लगता है, उस समय स्वप्नके मिथ्या पदार्थोंको ही सत्य समझ लेता है और नाममात्रकी इन्द्रियोंसे प्रतीत होनेवाले अपने स्वप्नशरीरको ही वास्तविक शरीर मान बैठता है। उसे उतनी देरके लिये इस बातका बिल्कुल ही पता नहीं रहता कि स्वप्नशरीरके अतिरिक्त एक जाग्रत्-अवस्थाका शरीर भी है ॥२४॥ ठीक इसी प्रकार, जाग्रत्-अवस्थामें भी इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिरूप मायासे चित्त मोहित होकर नाममात्रके विषयोंमें भटकने लगता है। उस समय भी चित्तके चक्करसे विवेकशक्ति ढक जाती है और जीव यह नहीं जान पाता कि आप इस जाग्रत् संसारसे परे हैं ॥ २५ ॥ प्रभो ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अत्यन्त परिपक्व योग-साधनाके द्वारा आपके उन चरणकमलोंको हृदयमें धारण करते हैं, जो समस्त पाप-राशिको नष्ट करनेवाले गङ्गाजलके भी आश्रयस्थान हैं। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज हमें उन्हींका दर्शन हुआ है। प्रभो ! हम आपके भक्त हैं, आप हमपर अनुग्रह कीजिये; क्योंकि आपके परम पदकी प्राप्ति उन्हीं लोगोंको होती है, जिनका लिङ्गशरीररूप जीव-कोश आपकी उत्कृष्ट भक्तिके द्वारा नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजर्षे ! भगवान्‌की इस

प्रकार स्तुति करके और उनसे, राजा धृतराष्ट्रसे तथा धर्मराज युधिष्ठिरजीसे अनुमति लेकर उन लोगोंने अपने-अपने आश्रमपर जानेका विचार किया ॥ २७ ॥ परम यशस्वी वसुदेवजी उनका जानेका विचार देखकर उनके पास आये और उन्हें प्रणाम किया और उनके चरण पकड़कर बड़ी नम्रतासे निवेदन करने लगे ॥ २८ ॥

वसुदेवजीने कहा—ऋषियो ! आपलोग सर्वदेवस्वरूप हैं । मैं आपलोगोंको नमस्कार करता हूँ । आपलोग कृपा करके मेरी एक प्रार्थना सुन लीजिये । वह यह कि जिन कर्मोंके अनुष्ठानसे कर्मों और कर्मवासनाओंका आत्यन्तिक नाश—मोक्ष हो जाय, उनका आप मुझे उपदेश कीजिये ॥ २९ ॥

नारदजीने कहा—ऋषियो ! यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि वसुदेवजी श्रीकृष्णको अपना बालक समझकर शुद्ध जिज्ञासाके भावसे अपने कल्याणका साधन हमलोगोंसे पूछ रहे हैं ॥ ३० ॥ संसारमें बहुत पास रहना मनुष्योंके अनादरका कारण हुआ करता है । देखते हैं, गङ्गातटपर रहनेवाला पुरुष गङ्गाजल छोड़कर अपनी शुद्धिके लिये दूसरे तीर्थमें जाता है ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णकी अनुभूति समयके फेरसे होनेवाली जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलयसे मिटनेवाली नहीं है । वह स्वतः किसी दूसरे निमित्तसे, गुणोंसे और किसीसे भी क्षीण नहीं होती ॥ ३२ ॥ उनका ज्ञानमय स्वरूप अविद्या, राग-द्वेष आदि क्लेश, पुण्य-पापमय कर्म, सुख-दुःखादि कर्मफल तथा सत्त्व आदि गुणोंके प्रवाहसे खण्डित नहीं है । वे स्वयं अद्वितीय परमात्मा हैं । जब वे अपनेको अपनी ही शक्तियों—प्राण आदिसे ढक लेते हैं, तब मूर्खलोग ऐसा समझते हैं कि वे ढक गये; जैसे बादल, कुहरा या ग्रहणके द्वारा अपने नेत्रोंके ढक जानेपर सूर्यको ढका हुआ मान लेते हैं ॥ ३३ ॥

परीक्षित् ! इसके बाद ऋषियोंने भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी और अन्यान्य राजाओंके सामने ही वसुदेवजीको सम्बोधित करके कहा—॥ ३४ ॥ 'कर्मोंके द्वारा कर्मवासनाओं और कर्मफलोंका आत्यन्तिक नाश करनेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि यज्ञ आदिके द्वारा समस्त यज्ञोंके अधिपति भगवान् विष्णुकी श्रद्धापूर्वक आराधना करे ॥ ३५ ॥ त्रिकालदर्शी ज्ञानियोंने शास्त्रदृष्टिसे यही चित्तकी शान्तिका उपाय, सुगम मोक्षसाधन और चित्तमें आनन्दका उल्लास करनेवाला धर्म बतलाया है ॥ ३६ ॥ अपने न्यायार्जित धनसे श्रद्धापूर्वक पुरुषोत्तम भगवान्‌की आराधना करना ही द्विजाति—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहस्थके लिये परम कल्याणका मार्ग है ॥ ३७ ॥ वसुदेवजी ! विचारवान् पुरुषको चाहिये कि यज्ञ, दान आदिके द्वारा धनकी इच्छाको, गृहस्थोचित भोगोंद्वारा स्त्री-पुत्रकी इच्छाको और कालक्रमसे स्वर्गादि भोग भी नष्ट हो जाते हैं—इस विचारसे लोकैषणाको त्याग दे। इस प्रकार धीर पुरुष घरमें रहते हुए ही तीनों प्रकारकी एषणाओं—इच्छाओंका परित्याग करके तपोवनका रास्ता लिया करते थे ॥ ३८ ॥ समर्थ वसुदेवजी ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों देवता, ऋषि और पितरोंका ऋण लेकर ही पैदा होते हैं । इनके ऋणोंसे छुटकारा मिलता है यज्ञ, अध्ययन और सन्तानोत्पत्तिसे । इनसे उऋण हुए बिना ही जो संसारका त्याग करता है, उसका पतन हो जाता है ॥ ३९ ॥ परम बुद्धिमान् वसुदेवजी ! आप अबतक ऋषि और पितरोंके ऋणसे तो मुक्त हो चुके हैं । अब यज्ञोंके द्वारा देवताओंका ऋण चुका दीजिये; और इस प्रकार सबसे उऋण होकर गृहत्याग कीजिये, भगवान्‌की शरण हो जाइये ॥४०॥ वसुदेवजी ! आपने अवश्य ही परम भक्तिसे जगदीश्वर भगवान्‌की आराधना की है; तभी तो वे आप दोनोंके पुत्र हुए हैं ॥ ४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! परम मनस्वी वसुदेवजीने ऋषियोंकी यह बात सुनकर, उनके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया, उन्हें प्रसन्न किया और यज्ञके लिये ऋत्विजोंके रूपमें उनका वरण कर लिया ॥ ४२ ॥ राजन् ! जब इस प्रकार वसुदेवजीने धर्मपूर्वक ऋषियोंको वरण कर लिया, तब उन्होंने पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्रमें परम धार्मिक वसुदेवजीके द्वारा उत्तमोत्तम सामग्रीसे युक्त यज्ञ करवाये ॥ ४३ ॥ परीक्षित् ! जब वसुदेवजीने यज्ञकी दीक्षा ले ली, तब यदुवंशियोंने स्नान

करके सुन्दर वस्त्र और कमलोंकी मालाएँ धारण कर लीं; राजालोग वस्त्राभूषणोंसे खूब सुसज्जित हो गये ॥४४॥ वसुदेवजीकी पत्नियोंने सुन्दर वस्त्र, अङ्गराग और सोनेके हारोंसे अपनेको सजा लिया और फिर वे सब बड़े आनन्दसे अपने-अपने हाथोंमें माङ्गलिक सामग्री लेकर यज्ञशालामें आयीं ॥ ४५ ॥ उस समय मृदङ्ग, पखावज, शङ्ख, ढोल और नगारे आदि बाजे बजने लगे। नट और नर्तकियाँ नाचने लगीं। सूत और मागध स्तुति-गान करने लगे। गन्धर्वोंके साथ सुरीले गलेवाली गन्धर्व-पत्नियाँ गान करने लगीं ॥ ४६ ॥ वसुदेवजीने पहले नेत्रोंमें अंजन और शरीरमें मक्खन लगा लिया; फिर उनकी देवकी आदि अठारह पत्नियोंके साथ उन्हें ऋत्विजोंने महाभिषेककी विधिसे वैसे ही अभिषेक कराया, जिस प्रकार प्राचीन कालमें नक्षत्रोंके साथ चन्द्रमाका अभिषेक हुआ था ॥ ४७ ॥ उस समय यज्ञमें दीक्षित होनेके कारण वसुदेवजी तो मृगचर्म धारण किये हुए थे; परन्तु उनकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर साड़ी, कंगन, हार, पायजेब और कर्णफूल आदि आभूषणोंसे खूब सजी हुई थीं। वे अपनी पत्नियोंके साथ भलीभाँति शोभायमान हुए ॥ ४८ ॥ महाराज ! वसुदेवजीके ऋत्विज और सदस्य रत्नजटित आभूषण तथा रेशमी वस्त्र धारण करके वैसे ही सुशोभित हुए, जैसे पहले इन्द्रके यज्ञमें हुए थे ॥ ४९ ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने-अपने भाई-बन्धु और स्त्री-पुत्रोंके साथ इस प्रकार शोभायमान हुए, जैसे अपनी शक्तियोंके साथ समस्त जीवोंके ईश्वर स्वयं भगवान् समष्टि जीवोंके अभिमानी श्रीसङ्कर्षण तथा अपने विशुद्ध नारायणस्वरूपमें शोभायमान होते हैं ॥ ५० ॥

वसुदेवजीने प्रत्येक यज्ञमें ज्योतिष्टोम, दर्श, पूर्णमास आदि प्राकृत यज्ञों, सौरसत्रादि वैकृत यज्ञों और अग्निहोत्र आदि अन्यान्य यज्ञोंके द्वारा द्रव्य, क्रिया और उनके ज्ञानके—मन्त्रोंके स्वामी विष्णुभगवान्‌की आराधना की ॥ ५१ ॥ इसके बाद उन्होंने उचित समयपर ऋत्विजोंको वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित किया और शास्त्रके अनुसार बहुत-सी दक्षिणा तथा प्रचुर धनके साथ अलङ्कृत गौएँ, पृथ्वी और सुन्दरी कन्याएँ दीं ॥ ५२ ॥ इसके बाद महर्षियोंने पत्नीसंयाज नामक यज्ञाङ्ग और अवभृथस्नान अर्थात् यज्ञान्त-स्नानसम्बन्धी अवशेष कर्म कराकर वसुदेवजीको आगे करके परशुरामजीके बनाये ह्रदमें—रामह्रदमें स्नान किया ॥ ५३ ॥ स्नान करनेके बाद वसुदेवजी और उनकी पत्नियोंने वंदीजनोंको अपने सारे वस्त्राभूषण दे दिये तथा स्वयं नये वस्त्राभूषणसे सुसज्जित होकर उन्होंने ब्राह्मणोंसे लेकर कुत्तोंतकको भोजन कराया ॥५४॥ तदनन्तर अपने भाई-बन्धुओं, उनके स्त्री-पुत्रों तथा विदर्भ, कोसल, कुरु, काशी, केकय और सृञ्जय आदि देशोंके राजाओं, सदस्यों, ऋत्विजों, देवताओं, मनुष्यों, भूतों, पितरों और चारणोंको विदाईके रूपमें बहुत-सी भेंट देकर सम्मानित किया। वे लोग लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमति लेकर यज्ञकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ॥ ५५-५६ ॥ परीक्षित् ! उस समय राजा धृतराष्ट्र, विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासदेव तथा दूसरे स्वजन, सम्बन्धी और बान्धव अपने हितैषी बन्धु यादवोंको छोड़कर जानेमें अत्यन्त विरह-व्यथाका अनुभव करने लगे। उन्होंने अत्यन्त स्नेहार्द्र चित्तसे यदुवंशियोंका आलिङ्गन किया और बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार अपने-अपने देशको गये। दूसरे लोग भी इनके साथ ही वहाँसे रवाना हो गये ॥ ५७-५८ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी तथा उग्रसेन आदिने नन्दबाबा एवं अन्य सब गोपोंकी बहुत बड़ी-बड़ी सामग्रियोंसे अर्चा-पूजा की; उनका सत्कार किया; और वे प्रेम-परवश होकर बहुत दिनोंतक वहीं रहे ॥ ५९ ॥ वसुदेवजी अनायास ही अपने बहुत बड़े मनोरथका महासागर पार कर गये थे। उनके आनन्दकी सीमा न थी। सभी आत्मीय स्वजन उनके साथ थे। उन्होंने नन्दबाबाका हाथ पकड़कर कहा ॥ ६० ॥

वसुदेवजीने कहा—भाईजी ! भगवान्‌ने मनुष्योंके लिये एक बहुत बड़ा बन्धन बना दिया है। उस बन्धन-का नाम है स्नेह, प्रेमपाश। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि बड़े-बड़े शूरवीर और योगी-यति भी उसे तोड़नेमें

असमर्थ हैं ॥ ६१ ॥ आपने हम अकृतज्ञोंके प्रति अनुपम मित्रताका व्यवहार किया है। क्यों न हो, आप-सरीखे संत-शिरोमणियोंका तो ऐसा स्वभाव ही होता है। हम इसका कभी बदला नहीं चुका सकते, आपको इसका कोई फल नहीं दे सकते। फिर भी हमारा यह मैत्री-सम्बन्ध कभी टूटनेवाला नहीं है। आप इसको सदा निभाते रहेंगे ॥ ६२ ॥ भाईजी ! पहले तो बंदी-गृहमें बंद होनेके कारण हम आपका कुछ भी प्रिय और हित न कर सके। अब हमारी यह दशा हो रही है कि हम धन-सम्पत्तिके नशेसे—श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं; आप हमारे सामने हैं तो भी हम आपकी ओर नहीं देख पाते ॥ ६३ ॥ दूसरोंको सम्मान देकर स्वयं सम्मान न चाहनेवाले भाईजी ! जो कल्याणकामी है उसे राज्यलक्ष्मी न मिले—इसीमें उसका भला है; क्योंकि मनुष्य राज्यलक्ष्मीसे अंधा हो जाता है और अपने भाई-बन्धु, स्वजनोंतकको नहीं देख पाता ॥ ६४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार कहते-कहते वसुदेवजीका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया। उन्हें नन्दबाबाकी मित्रता और उपकार स्मरण हो आये। उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु उमड़ आये, वे रोने लगे ॥ ६५ ॥ नन्दजी अपने सखा वसुदेवजीको प्रसन्न करनेके लिये एवं भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके प्रेमपाशमें बँधकर आज-कल करते-करते तीन महीनेतक वहीं रह गये। यदुवंशियोंने जीभर उनका सम्मान किया ॥ ६६ ॥ इसके बाद बहुमूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, नाना प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियों और भोगोंसे नन्दबाबाको, उनके व्रजवासी साथियोंको और बन्धु-बान्धवोंको खूब तृप्त किया ॥ ६७ ॥ वसुदेवजी, उग्रसेन, श्रीकृष्ण, बलराम, उद्धव आदि यदुवंशियोंने अलग-अलग उन्हें अनेकों प्रकारकी भेंटें दीं। उनके बिदा करनेपर उन सब सामग्रियोंको लेकर नन्दबाबा अपने व्रजके लिये रवाना हुए ॥ ६८ ॥ नन्दबाबा, गोपों और गोपियोंका चित्त भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें इस प्रकार लग गया कि वे फिर प्रयत्न करनेपर भी उसे वहाँसे लौटा न सके। सुतरां बिना ही मनके उन्होंने मथुराकी यात्रा की ॥ ६९ ॥

जब सब बन्धु-बान्धव वहाँसे बिदा हो चुके, तब भगवान् श्रीकृष्णको ही एकमात्र इष्टदेव माननेवाले यदुवंशियोंने यह देखकर कि अब वर्षा ऋतु आ पहुँची है, द्वारकाके लिये प्रस्थान किया ॥ ७० ॥ वहाँ जाकर उन्होंने सब लोगोंसे वसुदेवजीके यज्ञ-महोत्सव, स्वजन-सम्बन्धियोंके दर्शन-मिलन आदि तीर्थयात्राके प्रसङ्गोंको कह सुनाया ॥ ७१ ॥

पचासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान्‌के द्वारा वसुदेवजीको ब्रह्मज्ञानका उपदेश तथा देवकीजीके छः पुत्रोंको लौटा लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इसके बाद एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी प्रातःकालीन प्रणाम करनेके लिये माता-पिताके पास गये। प्रणाम कर लेनेपर वसुदेवजी बड़े प्रेमसे दोनों भाइयोंका अभिनन्दन करके कहने लगे ॥ १ ॥ वसुदेवजीने बड़े-बड़े ऋषियोंके मुँहसे भगवान्‌की महिमा सुनी थी तथा उनके ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र भी देखे थे। इससे उन्हें इस बातका दृढ विश्वास हो गया था कि ये साधारण पुरुष नहीं, स्वयं भगवान् हैं। इसलिये उन्होंने अपने पुत्रोंको प्रेमपूर्वक सम्बोधित करके यों कहा—॥ २ ॥

'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! महायोगीश्वर सङ्कर्षण ! तुम दोनों सनातन हो। मैं जानता हूँ कि तुम दोनों सारे जगत्‌के साक्षात् कारणस्वरूप प्रधान और पुरुषके भी नियामक परमेश्वर हो ॥ ३ ॥ इस जगत्‌के आधार, निर्माता और निर्माणसामग्री भी तुम्हीं हो। इस सारे जगत्‌के स्वामी तुम दोनों हो और तुम्हारी ही क्रीडाके लिये इसका निर्माण हुआ है। यह जिस समय, जिस रूपमें जो कुछ रहता है, होता है—वह सब तुम्हीं हो। इस जगत्‌में प्रकृति-रूपसे भोग्य और पुरुषरूपसे भोक्ता तथा दोनोंसे परे

दोनोंके नियामक साक्षात् भगवान् भी तुम्हीं हो ॥४॥ इन्द्रियातीत ! जन्म, अस्तित्व आदि भावविकारोंसे रहित परमात्मन् ! इस चित्र-विचित्र जगत्का तुम्हींने निर्माण किया है और इसमें स्वयं तुमने ही आत्मारूपसे प्रवेश भी किया है। तुम प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव (ज्ञानशक्ति) के रूपमें इसका पालन-पोषण कर रहे हो ॥ ५ ॥ क्रियाशक्तिप्रधान प्राण आदिमें जो जगत्की वस्तुओंकी सृष्टि करनेकी सामर्थ्य है, वह उनकी अपनी सामर्थ्य नहीं, तुम्हारी ही है। क्योंकि वे तुम्हारे समान चेतन नहीं, अचेतन हैं; स्वतन्त्र नहीं, परतन्त्र हैं। अतः उन चेष्टाशील प्राण आदिमें केवल चेष्टामात्र होती है, शक्ति नहीं। शक्ति तो तुम्हारी ही है ॥ ६ ॥ प्रभो ! चन्द्रमाकी कान्ति, अग्निका तेज, सूर्यकी प्रभा, नक्षत्र और विद्युत् आदिकी स्फुरणरूपसे सत्ता, पर्वतोंकी स्थिरता, पृथ्वीकी साधारण-शक्तिरूप वृत्ति और गन्धरूप गुण—ये सब वास्तवमें तुम्हीं हो ॥ ७ ॥ परमेश्वर ! जलमें तृप्त करने, जीवन देने और शुद्ध करनेकी जो शक्तियाँ हैं, वे तुम्हारा ही स्वरूप हैं। जल और उसका रस भी तुम्हीं हो। प्रभो ! इन्द्रियशक्ति, अन्तःकरणकी शक्ति, शरीरकी शक्ति, उसका हिलना-डोलना, चलना-फिरना—ये सब वायुकी शक्तियाँ तुम्हारी ही हैं ॥ ८ ॥ दिशाएँ और उनके अवकाश भी तुम्हीं हो। आकाश और उसका आश्रयभूत स्फोट—शब्दतन्मात्रा या परा वाणी, नाद—पश्यन्ती, ओंकार—मध्यमा तथा वर्ण (अक्षर) एवं पदार्थोंका अलग-अलग निर्देश करनेवाले पद, रूप, वैखरी वाणी भी तुम्हीं हो ॥ ९ ॥ इन्द्रियाँ, उनकी विषयप्रकाशिनी शक्ति और अधिष्ठातृ-देवता तुम्हीं हो ! बुद्धिकी निश्चयात्मिका शक्ति और जीवकी विशुद्ध स्मृति भी तुम्हीं हो ॥ १० ॥ भूतोंमें उनका कारण तामस अहङ्कार, इन्द्रियोंमें उनका कारण तैजस अहङ्कार और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंमें उनका कारण सात्त्विक अहङ्कार तथा जीवोंके आवागमनका कारण माया भी तुम्हीं हो ॥ ११ ॥ भगवन् ! जैसे मिट्टी आदि वस्तुओंके विकार घड़ा, वृक्ष आदिमें मिट्टी निरन्तर वर्तमान है और वास्तवमें वे कारण (मृत्तिका) रूप ही हैं—उसी प्रकार जितने भी विनाशवान् पदार्थ हैं, उनमें तुम कारणरूपसे अविनाशी तत्त्व हो। वास्तवमें वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं ॥ १२ ॥ प्रभो ! सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण और उनकी वृत्तियाँ (परिणाम)—महत्तत्त्वादि परब्रह्म परमात्मामें, तुममें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥१३॥ इसलिये ये जितने भी जन्म, अस्ति, वृद्धि, परिणाम आदि भाव-विकार हैं, वे तुममें सर्वथा नहीं हैं। जब तुममें इनकी कल्पना कर ली जाती है, तब तुम इन विकारोंमें अनुगत जान पड़ते हो। कल्पनाकी निवृत्ति हो जानेपर तो निर्विकल्प परमार्थस्वरूप तुम्हीं तुम रह जाते हो ॥ १४ ॥ यह जगत् सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंका प्रवाह है; देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण, सुख, दुःख और राग-लोभादि उन्हींके कार्य हैं। इनमें जो अज्ञानी तुम्हारा, सर्वात्माका सूक्ष्मस्वरूप नहीं जानते, वे अपने देहाभिमानरूप अज्ञानके कारण ही कर्मोंके फंदेमें फँसकर बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकते रहते हैं ॥ १५ ॥ परमेश्वर ! मुझे शुभ प्रारब्धके अनुसार इन्द्रियादिकी सामर्थ्यसे युक्त अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ। किन्तु तुम्हारी मायाके वश होकर मैं अपने सच्चे स्वार्थ-परमार्थसे ही असावधान हो गया और मेरी सारी आयु यों ही बीत गयी ॥१६॥ प्रभो ! यह शरीर मैं हूँ और इस शरीरके सम्बन्धी मेरे अपने हैं, इस अहंता एवं ममतारूप स्नेहकी फाँसीसे तुमने इस सारे जगत्को बाँध रक्खा है ॥ १७ ॥ मैं जानता हूँ कि तुम दोनों मेरे पुत्र नहीं हो, सम्पूर्ण प्रकृति और जीवोंके स्वामी हो। पृथ्वीके भारभूत राजाओंके नाशके लिये ही तुमने अवतार ग्रहण किया है। यह बात तुमने मुझसे कही भी थी ॥ १८ ॥ इसलिये दीनजनोंके हितैषी, शरणागतवत्सल ! मैं अब तुम्हारे चरणकमलोंकी शरणमें हूँ; क्योंकि वे ही शरणागतोंके संसारभयको मिटानेवाले हैं। अब इन्द्रियोंकी लोलुपतासे भर पाया ! इसीके कारण मैंने मृत्युके ग्रास इस शरीरमें आत्मबुद्धि कर ली और तुममें, जो कि परमात्मा हो, पुत्रबुद्धि ॥ १९ ॥ प्रभो ! तुमने प्रसव-गृहमें ही हमसे कहा था कि 'यद्यपि मैं अजन्मा हूँ, फिर भी मैं अपनी ही बनायी हुई धर्म-मर्यादाकी रक्षा करनेके लिये प्रत्येक युगमें तुम दोनोंके द्वारा

अवतार ग्रहण करता रहा हूँ ।' भगवन् ! तुम आकाशके समान अनेकों शरीर ग्रहण करते और छोड़ते रहते हो । वास्तवमें तुम अनन्त, एकरस सत्ता हो । तुम्हारी आश्चर्यमयी शक्ति योगमायाका रहस्य भला, कौन जान सकता है ? सब लोग तुम्हारी कीर्तिका ही गान करते रहते हैं ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वसुदेवजीके ये वचन सुनकर यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराने लगे । उन्होंने विनयसे झुककर मधुर वाणीसे कहा ॥ २१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पिताजी ! हम तो आपके पुत्र ही हैं । हमें लक्ष्य करके आपने यह ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया है । हम आपकी एक-एक बात युक्तियुक्त मानते हैं ॥ २२ ॥ पिताजी ! आपलोग, मैं, भैया बलरामजी, सारे द्वारकावासी, सम्पूर्ण चराचर जगत्—सब-के-सब आपने जैसा कहा, वैसे ही हैं, सबको ब्रह्मरूप ही समझना चाहिये ॥ २३ ॥ पिताजी ! आत्मा तो एक ही है । परन्तु वह अपनेमें ही गुणोंकी सृष्टि कर लेता है और गुणोंके द्वारा बनाये हुए पञ्चभूतोंमें एक होनेपर भी अनेक, स्वयंप्रकाश होनेपर भी दृश्य, अपना स्वरूप होनेपर भी अपनेसे भिन्न, नित्य होनेपर भी अनित्य और निर्गुण होनेपर भी सगुणके रूपमें प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पञ्चमहाभूत अपने कार्य घट, कुण्डल आदिमें प्रकट-अप्रकट, बड़े-छोटे, अधिक-थोड़े, एक और अनेक-से प्रतीत होते हैं—परन्तु वास्तवमें सत्तारूपसे वे एक ही रहते हैं; वैसे ही आत्मामें भी उपाधियोंके भेदसे ही नानात्वकी प्रतीति होती है । इसलिये जो मैं हूँ, वही सब हैं—इस दृष्टिसे आपका कहना ठीक ही है ॥ २५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके इन वचनोंको सुनकर वसुदेवजीने नानात्व-बुद्धि छोड़ दी; वे आनन्दमें मग्न होकर वाणीसे मौन और मनसे निस्सङ्कल्प हो गये ॥ २६ ॥ कुरुश्रेष्ठ ! उस समय वहाँ सर्वदेवमयी देवकीजी भी बैठी हुई थीं । वे बहुत पहलेसे ही यह सुनकर अत्यन्त विस्मित थीं कि श्रीकृष्ण और बलरामजीने अपने मरे हुए गुरुपुत्रको यमलोकसे वापस ला दिया ॥ २७ ॥ अब उन्हें अपने उन पुत्रोंकी याद आ गयी, जिन्हें कंसने मार डाला था । उनके स्मरणसे देवकीजीका हृदय आतुर हो गया, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे । उन्होंने बड़े ही करुण-स्वरसे श्रीकृष्ण और बलरामजीको सम्बोधित करके कहा ॥ २८ ॥

देवकीजीने कहा—लोकाभिराम राम ! तुम्हारी शक्ति मन और वाणीके परे है । श्रीकृष्ण ! तुम योगेश्वरोंके भी ईश्वर हो । मैं जानती हूँ कि तुम दोनों प्रजापतियोंके भी ईश्वर, आदि पुरुष नारायण हो ॥ २९ ॥ यह भी मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि जिन लोगोंने कालक्रमसे अपना धैर्य, संयम और सत्त्वगुण खो दिया है तथा शास्त्रकी आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके जो स्वेच्छाचारपरायण हो रहे हैं, भूमिके भारभूत उन राजाओंका नाश करनेके लिये ही तुम दोनों मेरे गर्भसे अवतीर्ण हुए हो ॥ ३० ॥ विश्वात्मन् ! तुम्हारे पुरुषरूप अंशसे उत्पन्न हुई मायासे गुणोंकी उत्पत्ति होती है और उनके लेशमात्रसे जगत्की उत्पत्ति, विकास तथा प्रलय होता है । आज मैं सर्वान्तःकरणसे तुम्हारी शरण हो रही हूँ ॥ ३१ ॥ मैंने सुना है कि तुम्हारे गुरु सान्दीपनिजीके पुत्रको मरे बहुत दिन हो गये थे । उनको गुरुदक्षिणा देनेके लिये उनकी आज्ञा तथा कालकी प्रेरणासे तुम दोनोंने उनके पुत्रको यमपुरीसे वापस ला दिया ॥ ३२ ॥ तुम दोनों योगीश्वरोंके भी ईश्वर हो । इसलिये आज मेरी भी अभिलाषा पूर्ण करो । मैं चाहती हूँ कि तुम दोनों मेरे उन पुत्रोंको, जिन्हें कंसने मार डाला था, ला दो और उन्हें मैं भर आँख देख लूँ ॥ ३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! माता देवकीजीकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंने योगमायाका आश्रय लेकर सुतल लोकमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥ जब दैत्यराज बलिने देखा कि जगत्के आत्मा और इष्टदेव तथा मेरे परम स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सुतल लोकमें पधारे

हैं, तब उनका हृदय उनके दर्शनके आनन्दमें निमग्न हो गया। उन्होंने झटपट अपने कुटुम्बके साथ आसनसे उठकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ अत्यन्त आनन्दसे भरकर दैत्यराज बलिने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीको श्रेष्ठ आसन दिया और जब वे दोनों महापुरुष उसपर विराज गये, तब उन्होंने उनके पाँव पखारकर उनका चरणोदक परिवारसहित अपने सिरपर धारण किया। परीक्षित् ! भगवान्‌के चरणोंका जल ब्रह्मापर्यन्त सारे जगत्‌को पवित्र कर देता है ॥ ३६ ॥ इसके बाद दैत्यराज बलिने बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, चन्दन, ताम्बूल, दीपक, अमृतके समान भोजन एवं अन्य विविध सामग्रियोंसे उनकी पूजा की और अपने समस्त परिवार, धन तथा शरीर आदिको उनके चरणोंमें समर्पित कर दिया ॥ ३७ ॥ परीक्षित् ! दैत्यराज बलि बार-बार भगवान्‌के चरणकमलोंको अपने वक्षःस्थल और सिरपर रखने लगे, उनका हृदय प्रेमसे विह्वल हो गया। नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। रोम-रोम खिल उठा। अब वे गद्गद स्वरसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ३८ ॥

दैत्यराज बलिने कहा—बलरामजी ! आप अनन्त हैं। आप इतने महान् हैं कि शेष आदि सभी विग्रह आपके अन्तर्भूत हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सकल जगत्‌के निर्माता हैं। ज्ञानयोग और भक्तियोग दोनोंके प्रवर्तक आप ही हैं। आप स्वयं ही परब्रह्म परमात्मा हैं। हम आप दोनोंको बार-बार नमस्कार करते हैं ॥ ३९ ॥ भगवन् ! आप दोनोंका दर्शन प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी आपकी कृपासे वह सुलभ हो जाता है। क्योंकि आज आपने कृपा करके हम रजोगुणी एवं तमोगुणी स्वभाववाले दैत्योंको भी दर्शन दिया है ॥ ४० ॥ प्रभो ! हम और हमारे ही समान दूसरे दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत और प्रमथनायक आदि आपका प्रेमसे भजन करना तो दूर रहा, आपसे सर्वदा दृढ वैरभाव रखते हैं; परन्तु आपका श्रीविग्रह साक्षात् वेदमय और विशुद्ध सत्त्वस्वरूप है। इसलिये हमलोगोंमेंसे बहुतोंने दृढ वैरभावसे, कुछने भक्तिसे और कुछने कामनासे आपका स्मरण करके उस पदको प्राप्त किया है, जिसे आपके समीप रहनेवाले सत्त्वप्रधान देवता आदि भी नहीं प्राप्त कर सकते ॥ ४१—४३ ॥ योगेश्वरोंके अधीश्वर ! बड़े-बड़े योगेश्वर भी प्रायः यह बात नहीं जानते कि आपकी योगमाया यह है और ऐसी है; फिर हमारी तो बात ही क्या है ? ॥ ४४ ॥ इसलिये स्वामी ! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मेरी चित्त-वृत्ति आपके उन चरणकमलोंमें लग जाय, जिसे किसीकी अपेक्षा न रखनेवाले परमहंसलोग ढूँढ़ा करते हैं; और उनका आश्रय लेकर मैं उससे भिन्न इस घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँसे निकल जाऊँ। प्रभो ! इस प्रकार आपके उन चरणकमलोंकी, जो सारे जगत्‌के एकमात्र आश्रय हैं, शरण लेकर शान्त हो जाऊँ और अकेला ही विचरण करूँ। यदि कभी किसीका सङ्ग करना ही पड़े तो सबके परम हितैषी संतोंका ही ॥ ४५ ॥ प्रभो ! आप समस्त चराचर जगत्‌के नियन्ता और स्वामी हैं। आप हमें आज्ञा देकर निष्पाप बनाइये, हमारे पापोंका नाश कर दीजिये; क्योंकि जो पुरुष श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाका पालन करता है, वह विधि-निषेधके बन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—दैत्यराज ! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें प्रजापति मरीचिकी पत्नी ऊर्णाके गर्भसे छः पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे सभी देवता थे। वे यह देखकर कि ब्रह्माजी अपनी पुत्रीसे समागम करनेके लिये उद्यत हैं, हँसने लगे ॥ ४७ ॥ इस परिहासरूप अपराधके कारण उन्हें ब्रह्माजीने शाप दे दिया और वे असुर-योनिमें हिरण्यकशिपुके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए। अब योगमायाने उन्हें वहाँसे लाकर देवकीके गर्भमें रख दिया और उनको उत्पन्न होते ही कंसने मार डाला। दैत्यराज ! अपने माता देवकीजी उन पुत्रोंके लिये अत्यन्त शोकातुर हो रही हैं और वे तुम्हारे पास हैं ॥ ४८-४९ ॥ अतः हम अपनी माताका शोक दूर करनेके लिये इन्हें यहाँसे ले जायँगे। इसके बाद ये शापसे मुक्त हो जायँगे और आनन्दपूर्वक अपने लोकमें चले जायँगे ॥ ५० ॥ इनके छः नाम हैं—स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभृत् और घृणि। इन्हें मेरी कृपासे पुनः सद्गति

प्राप्त होगी' ॥ ५१ ॥ परीक्षित् ! इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये । दैत्यराज बलिने उनकी पूजा की; इसके बाद श्रीकृष्ण और बलरामजी बालकोंको लेकर फिर द्वारका लौट आये तथा माता देवकीको उनके पुत्र सौंप दिये ॥ ५२ ॥ उन बालकोंको देखकर देवी देवकीके हृदयमें वात्सल्य-स्नेहकी बाढ़ आ गयी । उनके स्तनोंसे दूध बहने लगा । वे बार-बार उन्हें गोदमें लेकर छातीसे लगातीं और उनका सिर सूँघतीं ॥ ५३ ॥ पुत्रोंके स्पर्शके आनन्दसे सराबोर एवं आनन्दित देवकीने उनको स्तन-पान कराया । वे विष्णुभगवान्की उस मायासे मोहित हो रही थीं, जिससे यह सृष्टि-चक्र चलता है ॥ ५४ ॥ परीक्षित् ! देवकीजीके स्तनोंका दूध साक्षात् अमृत था; क्यों न हो, भगवान् श्रीकृष्ण जो उसे पी चुके थे ! उन बालकोंने वही अमृतमय दूध पिया । उस दूधके पीनेसे और भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गोंका संस्पर्श होनेसे उन्हें आत्मसाक्षात्कार हो गया ॥ ५५ ॥ इसके बाद उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्ण, माता देवकी, पिता वसुदेव और बलरामजीको नमस्कार किया । तदनन्तर सबके सामने ही वे देवलोकमें चले गये ॥ ५६ ॥ परीक्षित् ! देवी देवकी यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गयीं कि मरे हुए बालक लौट आये और फिर चले भी गये । उन्होंने ऐसा निश्चय किया कि यह श्रीकृष्णका ही कोई लीला-कौशल है ॥ ५७ ॥ परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परमात्मा हैं, उनकी शक्ति अनन्त है । उनके ऐसे-ऐसे अद्भुत चरित्र इतने हैं कि किसी प्रकार उनका पार नहीं पाया जा सकता ॥ ५८ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्ति अमर है, अमृतमयी है । उनका चरित्र जगत्के समस्त पाप-तापोंको मिटानेवाला तथा भक्तजनोंके कर्णकुहरोंमें आनन्दसुधा प्रवाहित करनेवाला है । इसका वर्णन स्वयं व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीने किया है । जो इसका श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति भगवान्में लग जाती है और वह उन्हींके परम कल्याणस्वरूप धामको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

छियासीवाँ अध्याय

सुभद्राहरण और भगवान्का मिथिलापुरीमें राजा जनक और श्रुतदेव ब्राह्मणके घर एक ही साथ जाना

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! मेरे दादा अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी बहिन सुभद्राजीसे, जो मेरी दादी थीं, किस प्रकार विवाह किया ? मैं यह जाननेके लिये बहुत उत्सुक हूँ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! एक बार अत्यन्त शक्तिशाली अर्जुन तीर्थयात्राके लिये पृथ्वीपर विचरण करते हुए प्रभासक्षेत्र पहुँचे । वहाँ उन्होंने यह सुना कि बलरामजी मेरे मामाकी पुत्री सुभद्राका विवाह दुर्योधनके साथ करना चाहते हैं और वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि उनसे इस विषयमें सहमत नहीं हैं । अब अर्जुनके मनमें सुभद्राको पानेकी लालसा जग आयी । वे त्रिदण्डी वैष्णवका वेष धारण करके द्वारका पहुँचे ।२-३। अर्जुन सुभद्राको प्राप्त करनेके लिये वहाँ वर्षाकालमें चार महीनेतक रहे । वहाँ पुरवासियों और बलरामजीने उनका खूब सम्मान किया । उन्हें यह पता न चला कि ये अर्जुन हैं ॥ ४ ॥

एक दिन बलरामजीने आतिथ्यके लिये उन्हें निमन्त्रित किया और उनको वे अपने घर ले आये । त्रिदण्डी-वेषधारी अर्जुनको बलरामजीने अत्यन्त श्रद्धाके साथ भोजन-सामग्री निवेदित की और उन्होंने बड़े प्रेमसे भोजन किया ॥ ५ ॥ अर्जुनने भोजनके समय वहाँ विवाहयोग्य परम सुन्दरी सुभद्राको देखा । उसका सौन्दर्य बड़े-बड़े वीरोंका मन हरनेवाला था । अर्जुनके नेत्र प्रेमसे प्रफुल्लित हो गये । उनका मन उसे पानेकी आकाङ्क्षासे क्षुब्ध हो गया और उन्होंने उसे पत्नी बनानेका दृढ़ निश्चय कर लिया ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! तुम्हारे दादा अर्जुन भी बड़े ही सुन्दर थे । उनके शरीरकी गठन, भाव-भङ्गी स्त्रियोंका हृदय स्पर्श कर लेती थी । उन्हें

देखकर सुभद्राने भी मनमें उन्हींको पति बनानेका निश्चय किया । वह तनिक मुसकराकर लजीली चितवनसे उनकी ओर देखने लगी । उसने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया ॥ ७ ॥ अब अर्जुन केवल उसीका चिन्तन करने लगे और इस बातका अवसर ढूँढ़ने लगे कि इसे कब हर ले जाऊँ । सुभद्राको प्राप्त करनेकी उत्कट कामनासे उनका चित्त चक्कर काटने लगा, उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी ॥ ८ ॥

एक बार सुभद्राजी देव-दर्शनके लिये रथपर सवार होकर द्वारका-दुर्गसे बाहर निकलीं । उसी समय महारथी अर्जुनने देवकी-वसुदेव और श्रीकृष्णकी अनुमतिसे सुभद्रा-का हरण कर लिया ॥ ९ ॥ रथपर सवार होकर वीर अर्जुनने धनुष उठा लिया और जो सैनिक उन्हें रोकनेके लिये आये, उन्हें मार-पीटकर भगा दिया । सुभद्राके निज-जन रोते-चिल्लाते रह गये और अर्जुन जिस प्रकार सिंह अपना भाग लेकर चल देता है, वैसे ही सुभद्रा-को लेकर चल पड़े ॥ १० ॥ यह समाचार सुनकर बलरामजी बहुत बिगड़े। वे वैसे ही क्षुब्ध हो उठे, जैसे पूर्णिमाके दिन समुद्र । परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य सुहृद्-सम्बन्धियोंने उनके पैर पकड़कर उन्हें बहुत-कुछ समझाया-बुझाया, तब वे शान्त हुए ॥ ११ ॥ इसके बाद बलरामजीने प्रसन्न होकर वर-वधूके लिये बहुत-सा धन, सामग्री, हाथी, रथ, घोड़े और दासी-दास दहेजमें भेजे ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! विदेहकी राजधानी मिथिलामें एक गृहस्थ ब्राह्मण थे । उनका नाम था श्रुतदेव । वे भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त थे । वे एकमात्र भगवद्भक्तिसे ही पूर्णमनोरथ, परम शान्त, ज्ञानी और विरक्त थे ॥१३॥ वे गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी किसी प्रकारका उद्योग नहीं करते थे; जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना निर्वाह कर लेते थे ॥ १४ ॥ प्रारब्धवश प्रतिदिन उन्हें जीवन-निर्वाहभरके लिये सामग्री मिल जाया करती थी, अधिक नहीं । वे उतनेसे ही सन्तुष्ट भी थे, और अपने वर्णाश्रमके अनुसार धर्मपालन-में तत्पर रहते थे ॥ १५॥ प्रिय परीक्षित् ! उस देशके राजा भी, ब्राह्मणके समान ही भक्तिमान् थे । मैथिल-वंशके उन प्रतिष्ठित नरपतिका नाम था बहुलाश्व । उनमें अहङ्कारका लेश भी न था । श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे भक्त थे ॥ १६ ॥

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने उन दोनोंपर प्रसन्न होकर दारुकसे रथ मँगवाया और उसपर सवार होकर द्वारकासे विदेह देशकी ओर प्रस्थान किया ॥ १७ ॥ भगवान्के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, आरुणि, मैं (शुकदेव), बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन आदि ऋषि भी थे ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! वे जहाँ-जहाँ पहुँचते, वहाँ-वहाँकी नागरिक और ग्राम-वासी प्रजा पूजाकी सामग्री लेकर उपस्थित होती । पूजा करनेवालोंको भगवान् ऐसे जान पड़ते, मानो ग्रहोंके साथ साक्षात् सूर्यनारायण उदय हो रहे हों ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! उस यात्रामें आनर्त, धन्व, कुरु-जांगल, कङ्क, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोसल, अर्ण आदि अनेक देशोंके नर-नारियोंने अपने नेत्ररूपी दोनोंसे भगवान् श्रीकृष्णके उन्मुक्त हास्य और प्रेमभरी चितवनसे युक्त मुखारविन्दके मकरन्द-रसका पान किया ॥ २० ॥ त्रिलोकगुरु भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उन लोगोंकी अज्ञानदृष्टि नष्ट हो गयी । प्रभु दर्शन करनेवाले नर-नारियोंको अपनी दृष्टिसे परम कल्याण और तत्त्वज्ञानका दान करते चल रहे थे । स्थान-स्थानपर मनुष्य और देवता भगवान्की उस कीर्तिका गान करके सुनाते, जो समस्त दिशाओंको उज्ज्वल बनानेवाली एवं समस्त अशुभोंका विनाश करनेवाली है । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण धीरे-धीरे विदेह देशमें पहुँचे ॥ २१ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णके शुभागमनका समाचार सुनकर नागरिक और ग्रामवासियोंके आनन्दकी सीमा न रही । वे अपने हाथोंमें पूजाकी विविध सामग्रियाँ लेकर उनकी अगवानी करने आये ॥ २२ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करके उनके हृदय और मुखकमल प्रेम और आनन्दसे खिल उठे । उन्होंने भगवान्को तथा उन मुनियोंको, जिनका नाम केवल सुन रक्खा था, देखा न था—हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ २३ ॥ मिथिलानरेश बहुलाश्व और श्रुतदेवने, यह समझकर कि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगों-

पर अनुग्रह करनेके लिये ही पधारे हैं, उनके चरणोंपर गिरकर प्रणाम किया ॥ २४ ॥ बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनोंने ही एक साथ हाथ जोड़कर मुनि-मण्डलीके सहित भगवान् श्रीकृष्णको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये निमन्त्रित किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण दोनोंकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंको ही प्रसन्न करनेके लिये एक ही समय पृथक्-पृथक्रूपसे दोनोंके घर पधारे और यह बात एक-दूसरेको मालूम न हुई कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे घरके अतिरिक्त और कहीं भी जा रहे हैं ॥२६॥ विदेहराज बहुलाश्व बड़े मनस्वी थे; उन्होंने यह देखकर कि दुष्ट-दुराचारी पुरुष जिनका नाम भी नहीं सुन सकते, वे ही भगवान् श्रीकृष्ण और ऋषि-मुनि मेरे घर पधारे हैं, सुन्दर-सुन्दर आसन मँगाये और भगवान् श्रीकृष्ण तथा ऋषि-मुनि आरामसे उनपर बैठ गये। उस समय बहुलाश्वकी विचित्र दशा थी। प्रेम-भक्तिके उद्रेकसे उनका हृदय भर आया था। नेत्रोंमें आँसू उमड़ रहे थे। उन्होंने अपने पूज्यतम अतिथियोंके चरणोंमें नमस्कार करके पाँव पखारे और अपने कुटुम्बके साथ उनके चरणोंका लोकपावन जल सिरपर धारण किया और फिर भगवान् एवं भगवत्स्वरूप ऋषियोंको गन्ध, माला, वस्त्र, अलङ्कार, धूप, दीप, अर्घ्य, गौ, बैल आदि समर्पित करके उनकी पूजा की ॥ २७—२९ ॥ जब सब लोग भोजन करके तृप्त हो गये, तब राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने गोदमें लेकर बैठ गये। और बड़े आनन्दसे धीरे-धीरे उन्हें सहलाते हुए बड़ी मधुर वाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ३० ॥

राजा बहुलाश्वने कहा—'प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा, साक्षी एवं स्वयंप्रकाश हैं। हम सदा-सर्वदा आपके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हैं। इसीसे आपने हमलोगोंको दर्शन देकर कृतार्थ किया है ॥ ३१ ॥ भगवन् ! आपके वचन हैं कि मेरा अनन्यप्रेमी भक्त मुझे अपने स्वरूप बलरामजी, अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी और पुत्र ब्रह्मासे भी बढ़कर प्रिय है। अपने उन वचनोंको सत्य करनेके लिये ही आपने हमलोगोंको दर्शन दिया है ॥ ३२ ॥ भला, ऐसा कौन पुरुष है, जो आपकी इस परम दयालुता और प्रेम-परवशताको जानकर भी आपके चरणकमलोंका परित्याग कर सके ? प्रभो ! जिन्होंने जगत्की समस्त वस्तुओंका एवं शरीर आदिका भी मनसे परित्याग कर दिया है, उन परम शान्त मुनियोंको आप अपने-तकको भी दे डालते हैं ॥ ३३ ॥ आपने यदुवंशमें अवतार लेकर जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़े हुए मनुष्योंको उससे मुक्त करनेके लिये जगत्में ऐसे विशुद्ध यशका विस्तार किया है, जो त्रिलोकीके पाप-तापको शान्त करनेवाला है ॥ ३४ ॥ प्रभो ! आप अचिन्त्य, अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्यकी निधि हैं; सबके चित्तको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये आप सच्चिदानन्द-स्वरूप श्यामब्रह्म हैं। आपका ज्ञान अनन्त है। परम शान्तिका विस्तार करनेके लिये आप ही नारायण ऋषिके रूपमें तपस्या कर रहे हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३५ ॥ एकरस अनन्त ! आप कुछ दिनोंतक मुनिमण्डलीके साथ हमारे यहाँ निवास कीजिये और अपने चरणोंकी धूलसे इस निमिवंशको पवित्र कीजिये' ॥ ३६ ॥ परीक्षित् ! सबके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्ण राजा बहुलाश्वकी यह प्रार्थना स्वीकार करके मिथिलावासी नर-नारियोंका कल्याण करते हुए कुछ दिनोंतक वहीं रहे ॥ ३७ ॥

प्रिय परीक्षित् ! जैसे राजा बहुलाश्व भगवान् श्रीकृष्ण और मुनि-मण्डलीके पधारनेपर आनन्दमग्न हो गये थे, वैसे ही श्रुतदेव ब्राह्मण भी भगवान् श्रीकृष्ण और मुनियोंको अपने घर आया देखकर आनन्दविह्वल हो गये; वे उन्हें नमस्कार करके अपने वस्त्र उछाल-उछालकर नाचने लगे ॥ ३८ ॥ श्रुतदेवने चटाई, पीढ़े और कुशासन बिछाकर उनपर भगवान् श्रीकृष्ण और मुनियोंको बैठाया, स्वागत-भाषण आदिके द्वारा उनका अभिनन्दन किया तथा अपनी पत्नीके साथ बड़े आनन्दसे सबके पाँव पखारे ॥ ३९ ॥ परीक्षित् ! महान् सौभाग्यशाली श्रुतदेवने भगवान् और ऋषियोंके चरणोदकसे अपने घर और कुटुम्बियोंको सींच दिया। इस समय उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये थे। वे हर्षातिरेकसे मतवाले हो रहे थे ॥ ४० ॥ तदनन्तर उन्होंने फल, गन्ध, खससे सुवासित निर्मल एवं मधुर जल, सुगन्धित मिट्टी, तुलसी, कुश, कमल आदि अनायास-प्राप्त पूजा-सामग्री और सत्त्वगुण बढ़ानेवाले

अन्नसे सबकी आराधना की ॥ ४१ ॥ उस समय श्रुतदेवजी मन-ही-मन तर्कना करने लगे कि 'मैं तो घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें गिरा हुआ हूँ, अभागा हूँ; मुझे भगवान् श्रीकृष्ण और उनके निवासस्थान ऋषि-मुनियोंका, जिनके चरणोंकी धूल ही समस्त तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाली है, समागम कैसे प्राप्त हो गया ? ॥ ४२ ॥ जब सब लोग आतिथ्य स्वीकार करके आरामसे बैठ गये, तब श्रुतदेव अपने स्त्री-पुत्र तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ उनकी सेवामें उपस्थित हुए। वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श करते हुए कहने लगे ॥ ४३ ॥

श्रुतदेवने कहा—प्रभो ! आप व्यक्त-अव्यक्तरूप प्रकृति और जीवोंसे परे पुरुषोत्तम हैं। मुझे आपने आज ही दर्शन दिया हो, ऐसी बात नहीं है। आप तो तभीसे सब लोगोंसे मिले हुए हैं, जबसे आपने अपनी शक्तियोंके द्वारा इस जगत्की रचना करके आत्मसत्ताके रूपसे इसमें प्रवेश किया है ॥ ४४ ॥ जैसे सोया हुआ पुरुष स्वप्नावस्थामें अविद्यावश मन-ही-मन स्वप्न-जगत्की सृष्टि कर लेता है और उसमें स्वयं उपस्थित होकर अनेक रूपोंमें अनेक कर्म करता हुआ प्रतीत होता है, वैसे ही आपने अपनेमें ही अपनी मायासे जगत्की रचना कर ली है और अब इसमें प्रवेश करके अनेकों रूपोंसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ४५ ॥ जो लोग सर्वदा आपकी लीलाकथाका श्रवण-कीर्तन तथा आपकी प्रतिमाओंका अर्चन-वन्दन करते हैं और आपसमें आपकी ही चर्चा करते हैं, उनका हृदय शुद्ध हो जाता है और आप उसमें प्रकाशित हो जाते हैं ॥ ४६ ॥ जिन लोगोंका चित्त लौकिक-वैदिक आदि कर्मोंकी वासनासे बहिर्मुख हो रहा है, उनके हृदयमें रहनेपर भी आप उनसे बहुत दूर हैं। किन्तु जिन लोगोंने आपके गुणगानसे अपने अन्तःकरणको सद्गुणसम्पन्न बना लिया है, उनके लिये चित्तवृत्तियोंसे अग्राह्य होनेपर भी आप अत्यन्त निकट हैं ॥ ४७ ॥ प्रभो ! जो लोग आत्मतत्त्वको जाननेवाले हैं, उनके आत्माके रूपमें ही आप स्थित हैं और जो शरीर आदिको ही अपना आत्मा मान बैठे हैं, उनके लिये आप अनात्माको प्राप्त होनेवाली मृत्युके रूपमें हैं। आप महत्तत्त्व आदि कार्यद्रव्य और प्रकृतिरूप कारणके नियामक हैं—शासक हैं। आपकी माया आपकी अपनी दृष्टिपर पर्दा नहीं डाल सकती, किन्तु उसने दूसरोंकी दृष्टिको ढक रक्खा है। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४८ ॥ स्वयंप्रकाश प्रभो ! हम आपके सेवक हैं। हमें आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें ? नेत्रोंके द्वारा आपका दर्शन होनेतक ही जीवोंके क्लेश रहते हैं। आपके दर्शनमें ही समस्त क्लेशोंकी परिसमाप्ति है ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शरणागत-भयहारी भगवान् श्रीकृष्णने श्रुतदेवकी प्रार्थना सुनकर अपने हाथसे उनका हाथ पकड़ लिया और मुसकराते हुए कहा ॥ ५० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय श्रुतदेव ! ये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं। ये अपने चरणकमलोंकी धूलसे लोगों और लोकोंको पवित्र करते हुए मेरे साथ विचरण कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ देवता, पुण्यक्षेत्र और तीर्थ आदि तो दर्शन, स्पर्श, अर्चन आदिके द्वारा धीरे-धीरे बहुत दिनोंमें पवित्र करते हैं; परन्तु संत पुरुष अपनी दृष्टिसे ही सबको पवित्र कर देते हैं। यही नहीं; देवता आदिमें जो पवित्र करनेकी शक्ति है, वह भी उन्हें संतोंकी दृष्टिसे ही प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ श्रुतदेव ! जगत्में ब्राह्मण जन्मसे ही सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ है। यदि वह तपस्या, विद्या, सन्तोष और मेरी उपासना—मेरी भक्तिसे युक्त हो तब तो कहना ही क्या है ॥५३॥ मुझे अपना यह चतुर्भुजरूप भी ब्राह्मणोंकी अपेक्षा अधिक प्रिय नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्वदेवमय हूँ ॥ ५४ ॥ दुर्बुद्धि मनुष्य इस बातको न जानकर केवल मूर्ति आदिमें ही पूज्यबुद्धि रखते हैं और गुणोंमें दोष निकालकर मेरे स्वरूप जगद्गुरु ब्राह्मणका, जो कि उनका आत्मा ही है, तिरस्कार करते हैं ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण मेरा साक्षात्कार करके अपने चित्तमें यह निश्चय कर लेता है कि यह चराचर जगत्, इसके सम्बन्धकी सारी भावनाएँ और इसके कारण प्रकृति-महत्तत्त्वादि सब-के-सब आत्मस्वरूप

भगवान्‌के ही रूप हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये श्रुतदेव ! तुम इन ब्रह्मर्षियोंको मेरा ही स्वरूप समझकर पूरी श्रद्धासे इनकी पूजा करो । यदि तुम ऐसा करोगे, तब तो तुमने साक्षात् अनायास ही मेरा पूजन कर लिया; नहीं तो बड़ी-बड़ी बहुमूल्य सामग्रियोंसे भी मेरी पूजा नहीं हो सकती ॥ ५७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका यह आदेश प्राप्त करके श्रुतदेवने भगवान् श्रीकृष्ण और उन ब्रह्मर्षियोंकी एकात्मभावसे आराधना की तथा उनकी कृपासे वे भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो गये। राजा बहुलाश्वने भी वही गति प्राप्त की ॥ ५८ ॥ प्रिय परीक्षित् ! जैसे भक्त भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वैसे ही भगवान् भी भक्तोंकी भक्ति करते हैं । वे अपने दोनों भक्तोंको प्रसन्न करनेके लिये कुछ दिनोंतक मिथिलापुरीमें रहे और उन्हें साधु पुरुषोंके मार्गका उपदेश करके वे द्वारका लौट आये ॥ ५९ ॥

सत्तासीवाँ अध्याय

वेदस्तुति

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! ब्रह्म कार्य और कारणसे सर्वथा परे है । सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण उसमें हैं ही नहीं । मन और वाणीसे संकेतरूपमें भी उसका निर्देश नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर समस्त श्रुतियोंका विषय गुण ही है । (वे जिस विषयका वर्णन करती हैं उसके गुण, जाति, क्रिया अथवा रूढ़िका ही निर्देश करती हैं) ऐसी स्थितिमें श्रुतियाँ निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन किस प्रकार करती हैं ? क्योंकि निर्गुण वस्तुका स्वरूप तो उनकी पहुँचके परे है ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! (भगवान् सर्वशक्तिमान् और गुणोंके निधान हैं । श्रुतियाँ स्पष्टतः सगुणका ही निरूपण करती हैं, परन्तु विचार करनेपर उनका तात्पर्य निर्गुण ही निकलता है । विचार करनेके लिये ही) भगवान्‌ने जीवोंके लिये बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है । इनके द्वारा वे स्वेच्छासे अर्थ, धर्म, काम अथवा मोक्षका अर्जन कर सकते हैं । (प्राणोंके द्वारा जीवन-धारण, श्रवणादि इन्द्रियोंके द्वारा महावाक्य आदिका श्रवण, मनके द्वारा मनन और बुद्धिके द्वारा निश्चय करनेपर श्रुतियोंके तात्पर्य निर्गुण स्वरूपका साक्षात्कार हो सकता है । इसलिये श्रुतियाँ सगुणका प्रतिपादन करनेपर भी वस्तुतः निर्गुण-परक हैं) ॥ २ ॥ ब्रह्मका प्रतिपादन करनेवाली उपनिषद्‌का यही स्वरूप है । इसे पूर्वजोंके भी पूर्वज सनकादि ऋषियोंने आत्मनिश्चयके द्वारा धारण किया है । जो भी मनुष्य इसे श्रद्धापूर्वक धारण करता है, वह बन्धनके कारण समस्त उपाधियों—अनात्मभावोंसे मुक्त होकर अपने परम कल्याणस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ इस विषयमें मैं तुम्हें एक गाथा सुनाता हूँ । उस गाथाके साथ स्वयं भगवान् नारायणका सम्बन्ध है । वह गाथा देवर्षि नारद और ऋषिश्रेष्ठ नारायणका संवाद है ॥ ४ ॥

एक समयकी बात है, भगवान्‌के प्यारे भक्त देवर्षि नारदजी विभिन्न लोकोंमें विचरण करते हुए सनातन-ऋषि भगवान् नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रम गये ॥ ५ ॥ भगवान् नारायण मनुष्योंके अभ्युदय (लौकिक कल्याण) और परम निःश्रेयस (भगवत्स्वरूप अथवा मोक्षकी प्राप्ति) के लिये इस भारतवर्षमें कल्पके प्रारम्भसे ही धर्म, ज्ञान और संयमके साथ महान् तपस्या कर रहे हैं ॥ ६ ॥ परीक्षित् ! एक दिन वे कलापग्रामवासी सिद्ध ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए थे । उस समय नारदजीने उन्हें प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यही प्रश्न पूछा, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ ७ ॥ भगवान् नारायणने ऋषियोंकी उस भरी सभामें नारदजीको उनके प्रश्नका उत्तर दिया और वह कथा सुनायी, जो पूर्वकालीन जनलोकनिवासियोंमें परस्पर वेदोंके तात्पर्य और ब्रह्मके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार करते समय कही गयी थी ॥ ८ ॥

भगवान् नारायणने कहा—नारदजी ! प्राचीन कालकी बात है । एक बार जनलोकमें वहाँ रहनेवाले ब्रह्माके मानस पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनक, सनन्दन, सनातन आदि परमर्षियोंका ब्रह्मसत्र (ब्रह्मविषयक विचार या प्रवचन) हुआ था ॥ ९ ॥ उस समय तुम मेरी श्वेत-द्वीपाधिपति अनिरुद्ध-मूर्तिका दर्शन करनेके लिये श्वेत-द्वीप चले गये थे । उस समय वहाँ उस ब्रह्मके सम्बन्ध-में बड़ी ही सुन्दर चर्चा हुई थी, जिसके विषयमें श्रुतियाँ भी मौन धारण कर लेती हैं, स्पष्ट वर्णन न करके तात्पर्यरूपसे लक्षित कराती हुई उसीमें सो जाती हैं । उस ब्रह्मसत्रमें यही प्रश्न उपस्थित किया गया था, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो ॥ १० ॥ सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार—ये चारों भाई शास्त्रीय ज्ञान, तपस्या और शील-स्वभावमें समान हैं । उन लोगोंकी दृष्टिमें शत्रु, मित्र और उदासीन एक-से हैं । फिर भी उन्होंने अपने-मेंसे सनन्दनको तो वक्ता बना लिया और शेष भाई सुननेके इच्छुक बनकर बैठ गये ॥ ११ ॥

सनन्दनजीने कहा—जिस प्रकार प्रातःकाल होने-पर सोते हुए सम्राट्को जगानेके लिये अनुजीवी वंदीजन उसके पास आते हैं और सम्राट्के पराक्रम तथा सुयश-का गान करके उसे जगाते हैं, वैसे ही जब परमात्मा अपने बनाये हुए सम्पूर्ण जगत्को अपनेमें लीन करके अपनी शक्तियोंके सहित सोये रहते हैं; तब प्रलयके अन्तमें श्रुतियाँ उनका प्रतिपादन करनेवाले वचनोंसे उन्हें इस प्रकार जगाती हैं ॥ १२-१३ ॥

श्रुतियाँ कहती हैं—अजित ! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं, आपपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता । आपकी जय हो, जय हो । प्रभो ! आप स्वभावसे ही समस्त ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं, इसलिये चराचर प्राणियोंको फँसाने-वाली मायाका नाश कर दीजिये । प्रभो ! इस गुणमयी मायाने दोषके लिये—जीवोंके आनन्दादिमय सहज स्वरूपका आच्छादन करके उन्हें बन्धनमें डालनेके लिये ही सत्त्वादि गुणोंको ग्रहण किया है । जगत्में जितनी भी साधना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ हैं, उन सबको जगानेवाले आप ही हैं । इसलिये आपके मिटाये बिना यह माया मिट नहीं सकती । (इस विषयमें यदि प्रमाण पूछा जाय, तो आपकी श्वासभूता श्रुतियाँ ही—हम ही प्रमाण हैं ।) यद्यपि हम आपका स्वरूपतः वर्णन करनेमें असमर्थ हैं, परन्तु जब कभी आप मायाके द्वारा जगत्की सृष्टि करके सगुण हो जाते हैं या उसको निषेध करके स्वरूपस्थितिकी लीला करते हैं अथवा अपना सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीविग्रह प्रकट करके क्रीडा करते हैं, तभी हम यत्किञ्चित् आपका वर्णन करनेमें समर्थ होती हैं ॥ १४ ॥* इसमें सन्देह नहीं कि हमारे द्वारा इन्द्र, वरुण आदि देवताओंका भी वर्णन किया जाता है, परन्तु हमारे (श्रुतियोंके) सारे मन्त्र अथवा सभी मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रतीत होनेवाले इस सम्पूर्ण जगत्-को ब्रह्मस्वरूप ही अनुभव करते हैं । क्योंकि जिस समय यह सारा जगत् नहीं रहता, उस समय भी आप बच रहते हैं । जैसे घट, शराव (मिट्टीका प्याला—कसोरा) आदि सभी विकार मिट्टीसे ही उत्पन्न और उसीमें लीन होते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति और प्रलय आपमें ही होती है । तब क्या आप पृथ्वीके समान विकारी हैं? नहीं-नहीं, आप तो एकरस—निर्विकार हैं । इसीसे तो यह जगत् आपमें उत्पन्न नहीं, प्रतीत है । इसलिये जैसे घट, शराव आदिका वर्णन भी मिट्टीका ही वर्णन है, वैसे ही इन्द्र, वरुण आदि देवताओंका वर्णन भी आपका ही वर्णन है । यही कारण है कि विचारशील ऋषि, मनसे जो कुछ सोचा जाता है और वाणीसे जो कुछ कहा जाता है, उसे आपमें ही स्थित, आपका ही स्वरूप देखते हैं ।

* इन श्लोकोंपर श्रीश्रीधरस्वामीने बहुत सुन्दर श्लोक लिखे हैं, वे अर्थसहित यहाँ दिये जाते हैं—

जयजयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम् ।
न हि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥ १ ॥

अजित ! आपकी जय हो, जय हो ! झूठे गुण धारण करके चराचर जीवको आच्छादित करनेवाली इस मायाको नष्ट कर दीजिये । आपके बिना बेचारे जीव इसको नहीं मार सकेंगे—नहीं पार कर सकेंगे । वेद इस बातका गान करते रहते हैं कि आप सकल सद्गुणोंके समुद्र हैं ।

मनुष्य अपना पैर चाहे कहीं भी रक्खे—ईंट, पत्थर या काठपर—होगा वह पृथ्वीपर ही; क्योंकि वे सब पृथ्वीस्वरूप ही हैं। इसलिये हम चाहे जिस नाम या जिस रूपका वर्णन करें, वह आपका ही नाम, आपका ही रूप है *॥ १५ ॥

भगवन्! लोग सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंकी मायासे बने हुए अच्छे-बुरे भावों या अच्छी-बुरी क्रियाओंमें उलझ जाया करते हैं, परन्तु आप तो उस माया-नटीके स्वामी, उसको नचानेवाले हैं। इसीलिये विचारशील पुरुष आपकी लीलाकथाके अमृतसागरमें गोते लगाते रहते हैं और इस प्रकार अपने सारे पाप-तापको धो-बहा देते हैं। क्यों न हो, आपकी लीला-कथा सभी जीवोंके मायामलको नष्ट करनेवाली जो है। पुरुषोत्तम! जिन महापुरुषोंने आत्मज्ञानके द्वारा अन्तःकरणके राग-द्वेष आदि और शरीरके कालकृत जरा-मरण आदि दोष मिटा दिये हैं और निरन्तर आपके उस स्वरूपकी अनुभूतिमें मग्न रहते हैं, जो अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उन्होंने अपने पाप-तापोंको सदाके लिये शान्त, भस्म कर दिया है—इसके विषयमें तो कहना ही क्या है † ॥ १६ ॥ भगवन्! प्राणधारियोंके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे आपका भजन-सेवन करें, आपकी आज्ञाका पालन करें; यदि वे ऐसा नहीं करते तो उनका जीवन व्यर्थ है और उनके शरीरमें श्वासका चलना ठीक वैसा ही है, जैसा लुहारकी धौंकनीमें हवाका आना-जाना। महत्तत्त्व, अहङ्कार आदिने आपके अनुग्रहसे—आपके उनमें प्रवेश करनेपर ही इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँचों कोशोंमें पुरुषरूपसे रहनेवाले, उनमें 'मैं-मैं' की स्फूर्ति करनेवाले भी आप ही हैं! आपके ही अस्तित्वसे उन कोशोंके अस्तित्वका अनुभव होता है और उनके न रहनेपर भी अन्तिम अवधिरूपसे आप विराजमान रहते हैं। इस प्रकार सबमें अन्वित और सबकी अवधि होनेपर भी आप असंग ही हैं। क्योंकि वास्तवमें जो कुछ वृत्तियोंके द्वारा अस्ति अथवा नास्तिके रूपमें अनुभव होता है, उन समस्त कार्य-कारणोंसे आप परे हैं। 'नेति-नेति' के द्वारा इन सबका निषेध हो जानेपर भी आप ही शेष रहते हैं, क्योंकि आप उस निषेधके भी साक्षी हैं और वास्तवमें आप ही एकमात्र सत्य हैं। (इसलिये आपके भजनके बिना जीवका जीवन व्यर्थ ही है; क्योंकि वह इस महान् सत्यसे वञ्चित है) ‡ ॥ १७ ॥

ऋषियोंने आपकी प्राप्तिके लिये अनेकों मार्ग माने हैं। उनमें जो स्थूल दृष्टिवाले हैं, वे मणिपूरक चक्रमें अग्निरूपसे आपकी उपासना करते हैं। अरुणवंशके ऋषि समस्त नाड़ियोंके निकलनेके स्थान हृदयमें आपके परम सूक्ष्मस्वरूप दहर ब्रह्मकी उपासना करते हैं। प्रभो! हृदयसे ही आपको प्राप्त करनेका श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्रतक गयी हुई है। जो पुरुष उस

---

* द्रुहिणवह्निरवीन्द्रमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम्।
बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे॥ २ ॥

ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् प्रतीत होनेपर भी आपसे पृथक् नहीं है। इसलिये अनेक देवताओंका प्रतिपादन करनेवाले वेद-मन्त्र उन देवताओंके नामसे पृथक्-पृथक् आपकी ही विभिन्न मूर्तियोंका वर्णन करते हैं। वस्तुतः आप अजन्मा हैं; उन मूर्तियोंके रूपमें भी आपका जन्म नहीं होता।

† सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषिजना रताः।
त्वयि सुभद्रगुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमाः॥ ३ ॥

और वेद आपके सद्गुणोंका वर्णन करते हैं। इसलिये संसारके सभी विद्वान् आपके मङ्गलमय कल्याणकारी गुणोंके श्रवण, स्मरण आदिके द्वारा आपसे ही प्रेम करते हैं, और आपके चरणोंका स्मरण करके सम्पूर्ण क्लेशोंसे मुक्त हो जाते हैं।

‡ नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः।
नरहरे! न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः॥ ४ ॥

नरहरे! मनुष्य-शरीर प्राप्त करके यदि जीव आपके श्रवण, वर्णन और संस्मरण आदिके द्वारा आपका भजन नहीं करते तो जीवोंका श्वास लेना धौंकनीके समान ही सर्वथा व्यर्थ है।

ज्योतिर्मय मार्गको प्राप्त कर लेता है और उससे ऊपरकी ओर बढ़ता है, वह फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता * ॥ १८ ॥ भगवन् ! आपने ही देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि योनियाँ बनायी हैं। सदा-सर्वत्र सब रूपोंमें आप हैं ही, इसलिये कारणरूपसे प्रवेश न करनेपर भी आप ऐसे जान पड़ते हैं, मानो उसमें प्रविष्ट हुए हों। साथ ही विभिन्न आकृतियोंका अनुकरण करके कहीं उत्तम, तो कहीं अधमरूपसे प्रतीत होते हैं, जैसे आग छोटी-बड़ी लकड़ियों और कर्मोंके अनुसार प्रचुर अथवा अल्प परिमाणमें या उत्तम-अधमरूपमें प्रतीत होती है। इसलिये संत पुरुष लौकिक पारलौकिक कर्मोंकी दूकानदारीसे, उनके फलोंसे विरक्त हो जाते हैं और अपनी निर्मल बुद्धिसे सत्य-असत्य, आत्मा-अनात्माको पहचानकर जगत्के झूठे रूपोंमें नहीं फँसते; आपके सर्वत्र एकरस, समभावसे स्थित सत्यस्वरूपका साक्षात्कार करते हैं † ॥ १९ ॥

प्रभो ! जीव जिन शरीरोंमें रहता है, वे उसके कर्मके द्वारा निर्मित होते हैं और वास्तवमें उन शरीरोंके कार्य-कारणरूप आवरणोंसे वह रहित है, क्योंकि वस्तुतः उन आवरणोंकी सत्ता ही नहीं है। तत्त्वज्ञानी पुरुष ऐसा कहते हैं कि समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले आपका ही वह स्वरूप है। स्वरूप होनेके कारण अंश न होनेपर भी उसे अंश कहते हैं और निर्मित न होनेपर भी निर्मित कहते हैं। इसीसे बुद्धिमान् पुरुष जीवके वास्तविक स्वरूपपर विचार करके परम विश्वासके साथ आपके चरणकमलोंकी उपासना करते हैं। क्योंकि आपके चरण ही समस्त वैदिक कर्मोंके समर्पणस्थान और मोक्षस्वरूप हैं ‡ ॥ २० ॥ भगवन् ! परमात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। उसीका ज्ञान करानेके लिये आप विविध प्रकारके अवतार ग्रहण करते हैं और उनके द्वारा ऐसी लीला करते हैं, जो अमृतके महासागरसे भी मधुर और मादक होती है। जो लोग उसका सेवन करते हैं, उनकी सारी थकावट दूर हो जाती है, वे परमानन्दमें मग्न हो जाते हैं। कुछ प्रेमी भक्त तो ऐसे होते हैं, जो आपकी लीला-कथाओंको छोड़कर मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते—स्वर्ग आदिकी तो बात ही क्या है। वे आपके चरण-कमलोंके प्रेमी परमहंसोंके सत्संगमें, जहाँ आपकी कथा होती है, इतना सुख मानते हैं कि उसके लिये इस जीवनमें प्राप्त अपनी घर-गृहस्थीका भी परित्याग कर देते हैं § ॥ २१ ॥

प्रभो ! यह शरीर आपकी सेवाका साधन होकर जब आपके पथका अनुरागी हो जाता है, तब आत्मा, हितैषी, सुहृद् और प्रिय व्यक्तिके समान आचरण करता

---

* उदरादिषु यः पुंसां चिन्तितो मुनिवर्त्मभिः।
हन्ति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ॥ ५ ॥

मनुष्य ऋषि-मुनियोंके द्वारा बतलायी हुई पद्धतियोंसे उदर आदि स्थानोंमें जिनका चिन्तन करते हैं और जो प्रभु उनके चिन्तन करनेपर मृत्यु-भयका नाश कर देते हैं, उन हृदयदेशमें विराजमान प्रभुकी हम उपासना करते हैं।

† स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितम्।
सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवन्तं भजामहे ॥ ६ ॥

अपनेद्वारा निर्मित सम्पूर्ण कार्योंमें जो न्यूनाधिक श्रेष्ठ-कनिष्ठके भावसे रहित एवं सबमें भरपूर है, इस रूपमें अनुभवमें आनेवाली निर्विशेष सत्ताके रूपमें स्थित हैं, उन भगवान्का हम भजन करते हैं।

‡ त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम्।
त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्तय ॥ ७ ॥

मेरे परमानन्दस्वरूप स्वामी ! मैं आपका अंश हूँ। अपने चरणोंकी सेवाका आदेश देकर अपनी मायाके द्वारा निर्मित मेरे बन्धनको निवृत्त कर दो।

§ त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥ ८ ॥

कोई-कोई विरले शुद्धान्तःकरण महापुरुष आपके अमृतमय कथा-समुद्रमें विहार करते हुए परमानन्दमें मग्न रहते हैं और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको तृणके समान तुच्छ बना देते हैं।

है। आप जीवके सच्चे हितैषी, प्रियतम और आत्मा ही हैं और सदा-सर्वदा जीवको अपनानेके लिये तैयार भी रहते हैं। इतनी सुगमता होनेपर तथा अनुकूल मानव शरीरको पाकर भी लोग सख्यभाव आदिके द्वारा आपकी उपासना नहीं करते, आपमें नहीं रमते, बल्कि इस विनाशी और असत् शरीर तथा उसके सम्बन्धियोंमें ही रम जाते हैं, उन्हींकी उपासना करने लगते हैं और इस प्रकार अपने आत्माका हनन करते हैं, उसे अधोगतिमें पहुँचाते हैं। भला, यह कितने कष्टकी बात है! इसका फल यह होता है कि उनकी सारी वृत्तियाँ, सारी वासनाएँ शरीर आदिमें ही लग जाती हैं और फिर उनके अनुसार उनको पशु-पक्षी आदिके न जाने कितने बुरे-बुरे शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं और इस प्रकार अत्यन्त भयावह जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकना पड़ता है* ॥ २२ ॥ प्रभो! बड़े-बड़े विचारशील योगी-यति अपने प्राण, मन और इन्द्रियोंको वशमें करके दृढ़ योगाभ्यासके द्वारा हृदयमें आपकी उपासना करते हैं। परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि उन्हें जिस पदकी प्राप्ति होती है, उसीकी प्राप्ति उन शत्रुओंको भी हो जाती है, जो आपसे वैर-भाव रखते हैं। क्योंकि स्मरण तो वे भी करते ही हैं। कहाँतक कहें, भगवन्! वे स्त्रियाँ, जो अज्ञानवश आपको परिच्छिन्न मानती हैं और आपकी शेषनागके समान मोटी, लंबी तथा सुकुमार भुजाओंके प्रति कामभावसे आसक्त रहती हैं, जिस परम पदको प्राप्त करती हैं, वही पद हम श्रुतियोंको भी प्राप्त होता है—यद्यपि हम आपको सदा-सर्वदा एकरस अनुभव करती हैं और आपके चरणारविन्दका मकरन्द-रस पान करती रहती हैं। क्यों न हो, आप समदर्शी जो हैं। आपकी दृष्टिमें उपासकके परिच्छिन्न या अपरिच्छिन्न भावमें कोई अन्तर नहीं है† ॥ २३ ॥

भगवन्! आप अनादि और अनन्त हैं। जिसका जन्म और मृत्यु कालसे सीमित है, वह भला, आपको कैसे जान सकता है। स्वयं ब्रह्माजी, निवृत्तिपरायण सनकादि तथा प्रवृत्तिपरायण मरीचि आदि भी बहुत पीछे आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। जिस समय आप सबको समेटकर सो जाते हैं, उस समय ऐसा कोई साधन नहीं रह जाता, जिससे उनके साथ ही सोया हुआ जीव आपको जान सके। क्योंकि उस समय न तो आकाशादि स्थूल जगत् रहता है और न तो महत्तत्त्वादि सूक्ष्म जगत्। इन दोनोंसे बने हुए शरीर और उनके निमित्त क्षण-मुहूर्त आदि कालके अंग भी नहीं रहते। उस समय कुछ भी नहीं रहता। यहाँतक कि शास्त्र भी आपमें ही समा जाते हैं (ऐसी अवस्थामें आपको जाननेकी चेष्टा न करके आपका भजन करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।)‡ ॥ २४ ॥ प्रभो! कुछ लोग मानते हैं कि असत् जगत्की उत्पत्ति होती है और कुछ लोग कहते हैं कि सत्-रूप दुःखोंका नाश होनेपर मुक्ति मिलती है। दूसरे लोग आत्माको अनेक मानते हैं, तो कई लोग कर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले लोक और परलोक-रूप व्यवहारको सत्य मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये सभी बातें भ्रममूलक हैं और वे आरोप करके ही ऐसा उपदेश करते हैं। पुरुष त्रिगुणमय है—इस

---

* त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह।
कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति ॥ ९ ॥

आप जगत्के स्वामी हैं और अपनी आत्मा ही हैं। इस जीवनमें ही मेरा मन आपमें रम जाय। मेरे स्वामी! मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा जब मुझे इस प्रकारका मनुष्यजन्म प्राप्त होगा?

† चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम्।
यथाकथञ्चिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम् ॥ १० ॥

देव! आपके चरणोंका प्रेमपूर्वक स्मरण अत्यन्त दुर्लभ है। चाहे जैसे-कैसे भी हो, नृसिंह! मुझे तो आपके चरणोंका स्मरण दिन-रात बना रहे।

‡ क्वाहं बुद्ध्यादिसंरुद्धः क्व च भूमन्महस्तव।
दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश ॥ ११ ॥

अनन्त! कहाँ बुद्धि आदि परिच्छिन्न उपाधियोंसे घिरा हुआ मैं और कहाँ आपका मन, वाणी आदिके अगोचर-स्वरूप! (आपका ज्ञान तो बहुत ही कठिन है) इसलिये दीनबन्धु, दयासिन्धु! नरहरि देव! मुझे तो अपनी भक्ति ही दीजिये।

प्रकारका भेदभाव केवल अज्ञानसे ही होता है और आप अज्ञानसे सर्वथा परे हैं। इसलिये ज्ञानस्वरूप आपमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है * ॥ २५ ॥

यह त्रिगुणात्मक जगत् मनकी कल्पनामात्र है। केवल यही नहीं, परमात्मा और जगत्से पृथक् प्रतीत होनेवाला पुरुष भी कल्पनामात्र ही है। इस प्रकार वास्तवमें असत् होनेपर भी अपने सत्य अधिष्ठान आपकी सत्ताके कारण यह सत्य-सा प्रतीत हो रहा है। इसलिये भोक्ता, भोग्य और दोनोंके सम्बन्धको सिद्ध करनेवाली इन्द्रियाँ आदि जितना भी जगत् है, सबको आत्मज्ञानी पुरुष आत्मरूपसे सत्य ही मानते हैं। सोनेसे बने हुए कड़े, कुण्डल आदि स्वर्णरूप ही तो हैं; इसलिये उनको इस रूपमें जाननेवाला पुरुष उन्हें छोड़ता नहीं, वह समझता है कि यह भी सोना है। इसी प्रकार यह जगत् आत्मामें ही कल्पित, आत्मासे ही व्याप्त है; इसलिये आत्मज्ञानी पुरुष इसे आत्मरूप ही मानते हैं†॥ २६ ॥ भगवन्! जो लोग यह समझते हैं कि आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके अधिष्ठान हैं, सबके आधार हैं और सर्वात्मभावसे आपका भजन-सेवन करते हैं, वे मृत्युको तुच्छ समझकर उसके सिरपर लात मारते हैं अर्थात् उसपर विजय प्राप्त कर लेते हैं। जो लोग आपसे विमुख हैं, वे चाहे जितने बड़े विद्वान् हों, उन्हें आप कर्मोंका प्रतिपादन करनेवाली श्रुतियोंसे पशुओंके समान बाँध लेते हैं। इसके विपरीत जिन्होंने आपके साथ प्रेमका सम्बन्ध जोड़ रक्खा है, वे न केवल अपनेको बल्कि दूसरोंको भी पवित्र कर देते हैं—जगत्के बन्धनसे छुड़ा देते हैं। ऐसा सौभाग्य भला, आपसे विमुख लोगोंको कैसे प्राप्त हो सकता है ‡॥ २७ ॥

प्रभो! आप मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि करणों-से—चिन्तन, कर्म आदिके साधनोंसे सर्वथा रहित हैं। फिर भी आप समस्त अन्तःकरण और बाह्य करणोंकी शक्तियोंसे सदा-सर्वदा सम्पन्न हैं। आप स्वतःसिद्ध ज्ञान-वान्, स्वयंप्रकाश हैं; अतः कोई काम करनेके लिये आपको इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं है। जैसे छोटे-छोटे राजा अपनी-अपनी प्रजासे कर लेकर स्वयं अपने सम्राट्को कर देते हैं, वैसे ही मनुष्योंके पूज्य देवता और देवताओंके पूज्य ब्रह्मा आदि भी अपने अधिकृत प्राणियोंसे पूजा स्वीकार करते हैं और मायाके अधीन होकर आपकी पूजा करते रहते हैं। वे इस प्रकार आपकी पूजा करते हैं कि आपने जहाँ जो कर्म करनेके लिये उन्हें नियुक्त कर दिया है, वे आपसे भयभीत

---

* मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादान्धकारान्तर-
भ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहिमंस्त्वज्ज्ञानवर्त्मास्फुटम् ।
श्रीमन्माधव वामन त्रिनयन श्रीशङ्कर श्रीपते
गोविन्देति मुदा वदन् मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ॥ १२ ॥

अनन्त महिमाशाली प्रभो! जो मन्दमति पुरुष झूठे तर्कोंके द्वारा प्रेरित अत्यन्त कर्कश वाद-विवादके घोर अन्ध-कारमें भटक रहे हैं, उनके लिये आपके ज्ञानका मार्ग स्पष्ट सूझना सम्भव नहीं है। इसलिये मेरे जीवनमें ऐसी सौभाग्यकी घड़ी कब आवेगी कि मैं श्रीमन्माधव, वामन, त्रिलोचन, श्रीशङ्कर, श्रीपते, गोविन्द, मधुपते—इस प्रकार आपको आनन्दमें भरकर पुकारता हुआ मुक्त हो जाऊँगा।

† यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः ।
सदाभासमसत्यस्मिन् भगवन्तं भजाम तम् ॥ १३ ॥

यह जगत् अपने स्वरूप, नाम और आकृतिके रूपमें असत् है, फिर भी जिस अधिष्ठान-सत्ताकी सत्यतासे यह सत्य जान पड़ता है तथा जो इस असत्य प्रपञ्चमें सत्यके रूपसे सदा प्रकाशमान रहता है, उस भगवान्का हम भजन करते हैं।

‡ तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् ।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति ॥ १४ ॥

लोग पञ्चाग्नि आदि तापोंसे तप्त हों, पर्वतसे गिरकर आत्मघात कर लें, तीर्थोंका पर्यटन करें, वेदोंका पाठ करें, यज्ञोंके द्वारा यजन करें अथवा भिन्न-भिन्न मतवादोंके द्वारा आपसमें विवाद करें, परन्तु भगवान्के बिना इस मृत्युमय संसार-सागरसे पार नहीं जाते।

रहकर वहीं वह काम करते रहते हैं *॥ २८ ॥ नित्यमुक्त ! आप मायातीत हैं; फिर भी जब अपने ईक्षणमात्रसे—सङ्कल्पमात्रसे मायाके साथ क्रीडा करते हैं, तब आपका सङ्केत पाते ही जीवोंके सूक्ष्म शरीर और उनके सुप्त कर्म-संस्कार जग जाते हैं और चराचर प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। प्रभो ! आप परम दयालु हैं। आकाशके समान सबमें सम होनेके कारण न तो कोई आपका अपना है और न तो पराया। वास्तवमें तो आपके स्वरूपमें मन और वाणीकी गति ही नहीं है। आपमें कार्य-कारणरूप प्रपञ्चका अभाव होनेसे बाह्य दृष्टिसे आप शून्यके समान ही जान पड़ते हैं; परन्तु उस दृष्टिके भी अधिष्ठान होनेके कारण आप परम सत्य हैं † ॥ २९ ॥

भगवन् ! आप नित्य एकरस हैं। यदि जीव असंख्य हों और सब-के-सब नित्य एवं सर्वव्यापक हों, तब तो वे आपके समान ही हो जायँगे; उस हालतमें वे शासित हैं और आप शासक—यह बात बन ही नहीं सकती, और तब आप उनका नियन्त्रण कर ही नहीं सकते। उनका नियन्त्रण आप तभी कर सकते हैं, जब वे आपसे उत्पन्न एवं आपकी अपेक्षा न्यून हों। इसमें सन्देह नहीं कि ये सब-के-सब जीव तथा इनकी एकता या भिन्नता आपसे ही उत्पन्न हुई है। इसलिये आप उनमें कारणरूपसे रहते हुए भी उनके नियामक हैं। वास्तवमें आप उनमें समरूपसे स्थित हैं। परन्तु यह जाना नहीं जा सकता कि आपका वह स्वरूप कैसा है। क्योंकि जो लोग ऐसा समझते हैं कि हमने जान लिया, उन्होंने वास्तवमें आपको नहीं जाना; उन्होंने तो केवल अपनी बुद्धिके विषयको जाना है, जिससे आप परे हैं। और साथ ही मतिके द्वारा जितनी वस्तुएँ जानी जाती हैं, वे मतियोंकी भिन्नताके कारण भिन्न-भिन्न होती हैं; इसलिये उनकी दुष्टता, एक मतके साथ दूसरे मतका विरोध प्रत्यक्ष ही है। अतएव आपका स्वरूप समस्त मतोंके परे है ‡ ॥ ३० ॥ स्वामिन् ! जीव आपसे उत्पन्न होता है, यह कहनेका ऐसा अर्थ नहीं है कि आप परिणामके द्वारा जीव बनते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों ही अजन्मा हैं। अर्थात् उनका वास्तविक स्वरूप—जो आप हैं—कभी वृत्तियोंके अंदर उतरता नहीं, जन्म नहीं लेता। तब प्राणियोंका जन्म कैसे होता है ? अज्ञानके कारण प्रकृतिको पुरुष और पुरुषको प्रकृति समझ लेनेसे, एकका दूसरेके साथ संयोग हो जानेसे जैसे 'बुलबुला' नामकी कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, परन्तु उपादान-कारण जल और निमित्त-कारण वायुके संयोगसे उसकी सृष्टि हो जाती है। प्रकृतिमें पुरुष और पुरुषमें प्रकृतिका अध्यास (एकमें दूसरेकी कल्पना) हो जानेके कारण ही जीवोंके विविध नाम और गुण रख लिये जाते हैं। अन्तमें जैसे समुद्रमें नदियाँ और मधुमें समस्त पुष्पोंके रस समा जाते हैं, वैसे ही वे सब-के-सब उपाधिरहित आपमें समा जाते हैं। (इसलिये जीवोंकी भिन्नता और उनका पृथक् अस्तित्व आपके

---

* अनिन्द्रियोऽपि यो देवः सर्वकारकशक्तिधृक्।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वसेव्यं नमामि तम् ॥ १५ ॥

जो प्रभु इन्द्रियरहित होनेपर भी समस्त बाह्य और आन्तरिक इन्द्रियकी शक्तिको धारण करता है और सर्वज्ञ एवं सर्वकर्ता है, उस सबके सेवनीय प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ।

† त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः।
जातान् संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः ॥ १६ ॥

नृसिंह ! आपके दृष्टि-सङ्कल्पसे क्षुब्ध होकर मायाने कर्मोंको जाग्रत् कर दिया है। उन्हींके कारण हम लोगोंका जन्म हुआ और अब आवागमनके चक्करमें भटककर हम दुखी हो रहे हैं। पिताजी ! आप हमारी रक्षा कीजिये।

‡ अन्तर्यन्ता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावसेयः।
यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्तं तं चेतसैवावलम्बे ॥ १७ ॥

श्रुतिने समस्त दृश्यप्रपञ्चके अन्तर्यामीके रूपमें जिनका गान किया है, और युक्तिसे भी वैसा ही निश्चय होता है। जो सर्वज्ञ, सर्वशक्ति और नृसिंह—पुरुषोत्तम हैं, उन्हीं सर्वसौन्दर्य-माधुर्यनिधि प्रभुका मैं मन-ही-मन आश्रय ग्रहण करता हूँ।

द्वारा नियन्त्रित है। उनकी पृथक् स्वतन्त्रता और सर्वव्यापकता आदि वास्तविक सत्यको न जाननेके कारण ही मानी जाती है)* ॥ २१ ॥

भगवन्! सभी जीव आपकी मायासे भ्रममें भटक रहे हैं, अपनेको आपसे पृथक् मानकर जन्म-मृत्युका चक्कर काट रहे हैं। परन्तु बुद्धिमान् पुरुष इस भ्रमको समझ लेते हैं और सम्पूर्ण भक्तिभावसे आपकी शरण ग्रहण करते हैं, क्योंकि आप जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ानेवाले हैं। यद्यपि शीत, ग्रीष्म और वर्षा—इन तीन भागोंवाला कालचक्र आपका भ्रूविलासमात्र है, वह सभीको भयभीत करता है, परन्तु वह उन्हींको बार-बार भयभीत करता है, जो आपकी शरण नहीं लेते। जो आपके शरणागत भक्त हैं, उन्हें भला, जन्म-मृत्युरूप संसारका भय कैसे हो सकता है?† ॥ २२ ॥ अजन्मा प्रभो! जिन योगियोंने अपनी इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें कर लिया है, वे भी, जब गुरुदेवके चरणोंकी शरण न लेकर उच्छृङ्खल एवं अत्यन्त चञ्चल मन-तुरंगको अपने वशमें करनेका यत्न करते हैं, तब अपने साधनोंमें सफल नहीं होते। उन्हें बार-बार खेद और सैकड़ों विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है, केवल श्रम और दुःख ही उनके हाथ लगता है। उनकी ठीक वही दशा होती है, जैसी समुद्रमें बिना कर्णधारकी नावपर यात्रा करनेवाले व्यापारियोंकी होती है। (तात्पर्य यह कि जो मनको वशमें करना चाहते हैं, उनके लिये कर्णधार—गुरुकी अनिवार्य आवश्यकता है)‡ ॥ २३ ॥

भगवन्! आप अखण्ड आनन्दस्वरूप और शरणागतोंके आत्मा हैं। आपके रहते स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, महल, पृथ्वी, प्राण और रथ आदिसे क्या प्रयोजन है? जो लोग इस सत्य सिद्धान्तको न जानकर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे होनेवाले सुखोंमें ही रम रहे हैं, उन्हें संसारमें भला, ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो सुखी कर सके। क्योंकि संसारकी सभी वस्तुएँ स्वभावसे ही विनाशी हैं, एक-न-एक दिन मटियामेट हो जानेवाली हैं। और तो क्या, वे स्वरूपसे ही सारहीन और सत्ताहीन हैं; वे भला, क्या सुख दे सकती हैं § ॥ २४ ॥ भगवन्! जो ऐश्वर्य, लक्ष्मी, विद्या, जाति, तपस्या आदिके घमंडसे रहित हैं, वे संतपुरुष इस पृथ्वीतलपर परम पवित्र और सबको पवित्र करनेवाले पुण्यमय सच्चे तीर्थस्थान हैं। क्योंकि उनके हृदयमें आपके चरणारविन्द सर्वदा विराजमान रहते हैं और यही कारण है कि उन

---

* यस्मिन्नुद्यद् विलयमपि यद् भाति विश्वं लयादौ
जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्मावबोधे।
अत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये
मध्येचित्तं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहम् ॥ १८ ॥

जीवोंके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जिनमें उदय होता है और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें विलयको प्राप्त होता है तथा भान होता है, गुरुदेवकी करुणा प्राप्त होनेपर जब शुद्ध आत्माका ज्ञान होता है, तब समुद्रमें नदीके समान सहसा यह जिनमें आत्यन्तिक प्रलयको प्राप्त हो जाता है, उन्हीं त्रिभुवनगुरु नृसिंह भगवान्‌की मैं अपने हृदयमें भावना करता हूँ।

† संसारचक्रक्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम्।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम् ॥ १९ ॥

नृसिंह! यह जीव संसार-चक्रके आरेसे टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और नाना प्रकारके सांसारिक पापोंकी धधकती हुई लपटोंसे झुलस रहा है। यह आपत्तिग्रस्त जीव किसी प्रकार आपकी कृपासे आपकी शरणमें आया है। आप इसका उद्धार कीजिये।

‡ यदा परानन्दगुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवँल्लभेत।
तदा निरस्ताखिलसाधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ॥ २० ॥

परमानन्दमय गुरुदेव! भगवन्! जब मेरा मन आपके चरणोंमें स्थान प्राप्त कर लेगा, तब मैं आपकी कृपासे समस्त साधनोंके परिश्रमसे छुटकारा पाकर परमानन्द प्राप्त करूँगा।

§ भजतां हि भवान् साक्षात्परमानन्दचिद्घनः।
आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः ॥ २१ ॥

जो आपका भजन करते हैं, उनके लिये आप स्वयं साक्षात् परमानन्दचिद्घन आत्मा ही हैं। इसलिये उन्हें तुच्छ स्त्री, पुत्र, धन आदिसे क्या प्रयोजन है?

संत पुरुषोंका चरणामृत समस्त पापों और तापोंको सदाके लिये नष्ट कर देनेवाला है। भगवन्! आप नित्य-आनन्दस्वरूप आत्मा ही हैं। जो एक बार भी आपको अपना मन समर्पित कर देते हैं—आपमें मन लगा देते हैं—वे उन देह-गेहोंमें कभी नहीं फँसते जो जीवके विवेक, वैराग्य, धैर्य, क्षमा और शान्ति आदि गुणोंका नाश करनेवाले हैं। वे तो बस, आपमें ही रम जाते हैं *॥ ३५ ॥

भगवन्! जैसे मिट्टीसे बना हुआ घड़ा मिट्टीरूप ही होता है, वैसे ही सत्से बना हुआ जगत् भी सत् ही है—यह बात युक्तिसङ्गत नहीं है। क्योंकि कारण और कार्यका निर्देश ही उनके भेदका द्योतक है। यदि केवल भेदका निषेध करनेके लिये ही ऐसा कहा जा रहा हो तो पिता और पुत्रमें, दण्ड और घटनाशमें कार्य-कारण-भाव होनेपर भी वे एक दूसरेसे भिन्न हैं। इस प्रकार कार्य-कारणकी एकता सर्वत्र एक-सी नहीं देखी जाती। यदि कारण-शब्दसे निमित्त-कारण न लेकर केवल उपादान-कारण लिया जाय—जैसे कुण्डलका सोना—तो भी कहीं-कहीं कार्यकी असत्यता प्रमाणित होती है; जैसे रस्सीमें साँप। यहाँ उपादान-कारणके सत्य होनेपर भी उसका कार्य सर्प सर्वथा असत्य है। यदि यह कहा जाय कि प्रतीत होनेवाले सर्पका उपादान-कारण केवल रस्सी नहीं है, उसके साथ अविद्याका—भ्रमका मेल भी है, तो यह समझना चाहिये कि अविद्या और सत् वस्तुके संयोगसे ही इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। इसलिये जैसे रस्सीमें प्रतीत होनेवाला सर्प मिथ्या है, वैसे ही सत् वस्तुमें अविद्याके संयोगसे प्रतीत होनेवाला नाम-रूपात्मक जगत् भी मिथ्या है। यदि केवल व्यवहारकी सिद्धिके लिये ही जगत्की सत्ता अभीष्ट हो, तो उसमें कोई आपत्ति नहीं; क्योंकि वह पारमार्थिक सत्य न होकर केवल व्यावहारिक सत्य है। यह भ्रम व्यावहारिक जगत्में माने हुए कालकी दृष्टिसे अनादि है; और अज्ञानीजन बिना विचार किये पूर्व-पूर्वके भ्रमसे प्रेरित होकर अन्धपरम्परासे इसे मानते चले आ रहे हैं। ऐसी स्थितिमें कर्मफलको सत्य बतलानेवाली श्रुतियाँ केवल उन्हीं लोगोंको भ्रममें डालती हैं, जो कर्ममें जड हो रहे हैं और यह नहीं समझते कि इनका तात्पर्य कर्मफलकी नित्यता बतलानेमें नहीं, बल्कि उनकी प्रशंसा करके उन कर्मोंमें लगानेमें है †॥ ३६ ॥ भगवन्! वास्तविक बात तो यह है कि यह जगत् उत्पत्तिके पहले नहीं था और प्रलयके बाद नहीं रहेगा; इससे यह सिद्ध होता है कि यह बीचमें भी एकरस परमात्मामें मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है। इसीसे हम श्रुतियाँ इस जगत्का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टीमें घड़ा, लोहेमें शस्त्र और सोनेमें कुण्डल आदि नाममात्र हैं, वास्तवमें

---

* मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव सञ्चिन्तयन्
सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन्।
नित्यं तन्मुखपङ्कजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृत-
स्रोतःसम्प्लवसम्प्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत्॥२२॥

मैं शरीर और उसके सम्बन्धियोंकी आसक्ति छोड़कर रात-दिन आपका ही चिन्तन करूँगा और जहाँ-जहाँ निरभिमान सन्त निवास करते हैं, उन्हीं-उन्हीं आश्रमोंमें रहूँगा। उन सत्पुरुषोंके मुख-कमलसे निःसृत आपकी पुण्यमयी कथामृतकी नदियोंकी धारामें प्रतिदिन स्नान करूँगा और नृसिंह! फिर मैं कभी देहके बन्धनमें नहीं पड़ूँगा।

† उद्भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः स्रजः
कुर्वत् कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि नैवंपरः।
अद्वैतं तव सत्परं तु परमानन्दं पदं तन्मुदा
वन्दे सुन्दरमिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम्॥ २३॥

मालामें प्रतीयमान सर्पके समान सत्यस्वरूप आपसे उदय होनेपर भी यह त्रिभुवन सत्य नहीं है। झूठा सोना व्यवहारमें काम आनेपर भी सत्य नहीं हो जाता। वेदोंका तात्पर्य भी जगत्की सत्यतामें नहीं है। इसलिये आपका जो परम सत्य परमानन्दस्वरूप अद्वैत सुन्दर पद है, हे इन्दिरावन्दित श्रीहरे! मैं उसीकी वन्दना करता हूँ। मुझ शरणागतको मत छोड़िये।

मिट्टी, लोहा और सोना ही हैं। वैसे ही परमात्मामें वर्णित जगत् नाममात्र है, सर्वथा मिथ्या और मनकी कल्पना है। इसे नासमझ मूर्ख ही सत्य मानते हैं* ।३७।

भगवन्! जब जीव मायासे मोहित होकर अविद्या-को अपना लेता है, उस समय उसके स्वरूपभूत आनन्दादि गुण ढक जाते हैं; वह गुणजन्य वृत्तियों, इन्द्रियों और देहोंमें फँस जाता है तथा उन्हींको अपना आपा मानकर उनकी सेवा करने लगता है। अब उनकी जन्म-मृत्युमें अपनी जन्म-मृत्यु मानकर उनके चक्करमें पड़ जाता है। परन्तु प्रभो! जैसे साँप अपने केंचुलसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता, उसे छोड़ देता है—वैसे ही आप माया—अविद्यासे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, उसे सदा-सर्वदा छोड़े रहते हैं। इसीसे आपके सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सदा-सर्वदा आपके साथ रहते हैं। अणिमा आदि अष्टसिद्धियोंसे युक्त परमैश्वर्यमें आपकी स्थिति है। इसीसे आपका ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य अपरिमित है, अनन्त है; वह देश, काल और वस्तुओं-की सीमासे आबद्ध नहीं है† ॥ ३८ ॥ भगवन्! यदि मनुष्य योगी-यति होकर भी अपने हृदयकी विषय-वासनाओंको उखाड़ नहीं फेंकते तो उन असाधकोंके लिये आप हृदयमें रहनेपर भी वैसे ही दुर्लभ हैं, जैसे कोई अपने गलेमें मणि पहने हुए हो, परन्तु उसकी याद न रहनेपर उसे ढूँढ़ता फिरे इधर-उधर। जो साधक अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करनेमें ही लगे रहते हैं, विषयोंसे विरक्त नहीं होते, उन्हें जीवनभर और जीवनके बाद भी दुःख-ही-दुःख भोगना पड़ता है। क्योंकि वे साधक नहीं, दम्भी हैं। एक तो अभी उन्हें मृत्युसे छुटकारा नहीं मिला है, लोगोंको रिझाने, धन कमाने आदिके क्लेश उठाने पड़ रहे हैं, और दूसरे आपका स्वरूप न जाननेके कारण अपने धर्म-कर्मका उल्लङ्घन करनेसे परलोकमें नरक आदि प्राप्त होनेका भय भी बना ही रहता है‡ ॥ ३९ ॥

भगवन्! आपके वास्तविक स्वरूपको जाननेवाला पुरुष आपके दिये हुए पुण्य और पाप-कर्मोंके फल सुख एवं दुःखोंको नहीं जानता, नहीं भोगता; वह भोग्य और भोक्तापनके भावसे ऊपर उठ जाता है। उस समय विधिनिषेधके प्रतिपादक शास्त्र भी उससे निवृत्त हो जाते हैं; क्योंकि वे देहाभिमानियोंके लिये हैं। उनकी ओर तो उसका ध्यान ही नहीं जाता। जिसे आपके स्वरूपका ज्ञान नहीं हुआ है, वह भी यदि प्रतिदिन

---

* मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्किणीपरिणतं कनकं परमार्थतः।
महदहङ्कृतिखप्रमुखं तथा नरहरे न परं परमार्थतः ॥ २४ ॥

सोना मुकुट, कुण्डल, कङ्कण और किङ्किणीके रूपमें परिणत होनेपर भी वस्तुतः सोना ही है। इसी प्रकार नृसिंह! महत्तत्त्व, अहङ्कार और आकाश, वायु आदिके रूपमें उपलब्ध होनेवाला यह सम्पूर्ण जगत् वस्तुतः आपसे भिन्न नहीं है।

† नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गणगता कालस्वभावादिभि-
र्भावान् सत्त्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून्।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्दयन्त्यातुरं
माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय ॥ २५ ॥

प्रभो! आपकी यह माया आपकी दृष्टिके आँगनमें आकर नाच रही है और काल, स्वभाव आदिके द्वारा सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी अनेकानेक भावोंका प्रदर्शन कर रही है। साथ ही यह मेरे सिरपर सवार होकर मुझ आतुरको बल-पूर्वक रौंद रही है। नृसिंह! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप ही इसे रोक दीजिये।

‡ दम्भन्यासमिषेण वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं
सम्मुह्यन्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम्।
आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतासम्माननासन्मदं
दीनानाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम् ॥ २६ ॥

प्रभो! मैं दम्भपूर्ण संन्यासके बहाने लोगोंको ठग रहा हूँ। एकमात्र भोगकी चिन्तासे ही आतुर हूँ तथा रात-दिन नाना प्रकारके उद्योगोंकी रचनाकी थकावटसे व्याकुल तथा बे-सुध हो रहा हूँ। मैं आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता हूँ, अज्ञानी हूँ और अज्ञानी लोगोंके द्वारा प्राप्त सम्मानसे 'मैं सन्त हूँ' ऐसा घमण्ड कर बैठा हूँ। दीनानाथ, दयानिधान, परमानन्द! मेरी रक्षा कीजिये।

आपकी प्रत्येक युगमें की हुई लीलाओं, गुणोंका गान सुन-सुनकर उनके द्वारा आपको अपने हृदयमें बैठा लेता है तो अनन्त, अचिन्त्य, दिव्य गुणगणोंके निवासस्थान प्रभो! आपका वह प्रेमी भक्त भी पाप-पुण्योंके फल सुख-दुःखों और विधि-निषेधोंसे अतीत हो जाता है । क्योंकि आप ही उनकी मोक्षस्वरूप गति हैं । (परन्तु इन ज्ञानी और प्रेमियोंको छोड़कर और सभी शास्त्रबन्धनमें हैं तथा वे उसका उल्लङ्घन करनेपर दुर्गतिको प्राप्त होते हैं)* ॥ ४० ॥ भगवन् ! स्वर्गादि लोकोंके अधिपति इन्द्र, ब्रह्मा प्रभृति भी आपकी थाह—आपका पार न पा सके; और आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप भी उसे नहीं जानते । क्योंकि जब अन्त है ही नहीं, तब कोई जानेगा कैसे ? प्रभो ! जैसे आकाशमें हवासे धूलके नन्हे-नन्हे कण उड़ते रहते हैं, वैसे ही आपमें कालके वेगसे अनेकों उत्तरोत्तर दसगुने सात आवरणोंके सहित असंख्य ब्रह्माण्ड एक साथ ही घूमते रहते हैं । तब भला, आपकी सीमा कैसे मिले । हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूपका साक्षात् वर्णन नहीं कर सकतीं, आपके अतिरिक्त वस्तुओंका निषेध करते-करते अन्तमें अपना भी निषेध कर देती हैं और आपमें ही अपनी सत्ता खोकर सफल हो जाती हैं† ॥ ४१ ॥

भगवान् नारायणने कहा—देवर्षे ! इस प्रकार सनकादि ऋषियोंने आत्मा और ब्रह्मकी एकता बतलानेवाला उपदेश सुनकर आत्मस्वरूपको जाना और नित्य सिद्ध होनेपर भी इस उपदेशसे कृतकृत्य-से होकर उन लोगोंने सनन्दनकी पूजा की ॥४२॥ नारद ! सनकादि ऋषि सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न हुए थे, अतएव वे सबके पूर्वज हैं । उन आकाशगामी महात्माओंने इस प्रकार समस्त वेद, पुराण और उपनिषदोंका रस निचोड़ लिया है, यह सबका सार-सर्वस्व है ॥ ४३ ॥ देवर्षे ! तुम भी उन्हींके समान ब्रह्माके मानस-पुत्र हो—उनकी ज्ञान-सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हो । तुम भी श्रद्धाके साथ इस ब्रह्मात्मविद्याको धारण करो और स्वच्छन्दभावसे पृथ्वीमें विचरण करो । यह विद्या मनुष्योंकी समस्त वासनाओंको भस्म कर देनेवाली है ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! देवर्षि नारद बड़े संयमी, ज्ञानी, पूर्णकाम और नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं । वे जो कुछ सुनते हैं, उन्हें उसकी धारणा हो जाती है । भगवान् नारायणने उन्हें जब इस प्रकार उपदेश किया, तब उन्होंने बड़ी श्रद्धासे उसे ग्रहण किया और उनसे यह कहा ॥ ४५ ॥

देवर्षि नारदने कहा—भगवन् ! आप सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण हैं । आपकी कीर्ति परम पवित्र है । आप समस्त प्राणियोंके परम कल्याण—मोक्षके लिये कमनीय कलावतार धारण किया करते हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार महात्मा देवर्षि नारद आदि-ऋषि भगवान् नारायणको और उनके शिष्योंको नमस्कार करके स्वयं मेरे पिता श्रीकृष्णद्वैपायनके आश्रमपर गये ॥ ४७ ॥ भगवान् वेदव्यासने उनका यथोचित सत्कार किया । वे आसन स्वीकार करके बैठ गये; इसके बाद देवर्षि नारदने जो कुछ भगवान् नारायणके मुँहसे सुना था, वह सब कुछ मेरे पिताजीको सुना दिया ॥ ४८ ॥ राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें बतलाया

---

* अवगमं तव मे दिशि माधव स्फुरति यन्न सुखासुखसङ्गमः ।
श्रवणवर्णनभावमथापि वा न हि भवामि यथा विधिकिङ्करः ॥ २७ ॥

माधव ! आप मुझे अपने स्वरूपका अनुभव कराइये, जिससे फिर सुख-दुःखके संयोगकी स्फूर्ति नहीं होती । अथवा मुझे अपने गुणोंके श्रवण और वर्णनका प्रेम ही दीजिये, जिससे कि मैं विधि-निषेधका किङ्कर न होऊँ ।

† द्युपतयो विदुरन्तमनन्त ते न च भवान्न गिरः श्रुतिमौलयः ।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पदम् ॥ २८ ॥

हे अनन्त ! ब्रह्मा आदि देवता आपका अन्त नहीं जानते, न आप ही जानते और न तो वेदोंकी मुकुटमणि उपनिषदें ही जानती हैं; क्योंकि आप अनन्त हैं । उपनिषदें 'नमो नमः !', 'जय हो, जय हो' यह कहकर आपमें चरितार्थ होती हैं । इसलिये मैं भी 'नमो नमः' 'जय हो, जय हो' यही कहकर आपके चरण-कमलकी उपासना करता हूँ ।

कि मन-वाणीसे अगोचर और समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित परब्रह्म परमात्माका वर्णन श्रुतियाँ किस प्रकार करती हैं और उसमें मनका कैसे प्रवेश होता है? यही तो तुम्हारा प्रश्न था ॥ ४९ ॥ परीक्षित्! भगवान् ही इस विश्वका सङ्कल्प करते हैं तथा उसके आदि, मध्य तथा अन्तमें स्थित रहते हैं। वे प्रकृति और जीव दोनोंके स्वामी हैं। उन्होंने ही इसकी सृष्टि करके जीवके साथ इसमें प्रवेश किया है और शरीरोंका निर्माण करके वे ही उनका नियन्त्रण करते हैं। जैसे गाढ़ निद्रा—सुषुप्तिमें मग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसन्धान छोड़ देता है, वैसे ही भगवान्को पाकर यह जीव मायासे मुक्त हो जाता है। भगवान् ऐसे विशुद्ध, केवल चिन्मात्र तत्त्व हैं कि उनमें जगत्के कारण माया अथवा प्रकृतिका रत्तीभर भी अस्तित्व नहीं है। वे ही वास्तवमें अभय-स्थान हैं। उनका चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिये ॥ ५० ॥

अट्ठासीवाँ अध्याय

शिवजीका सङ्कटमोचन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान् शङ्करने समस्त भोगोंका परित्याग कर रक्खा है; परन्तु देखा यह जाता है कि जो देवता, असुर अथवा मनुष्य उनकी उपासना करते हैं, वे प्रायः धनी और भोगसम्पन्न हो जाते हैं। और भगवान् विष्णु लक्ष्मीपति हैं, परन्तु उनकी उपासना करनेवाले प्रायः धनी और भोगसम्पन्न नहीं होते ॥ १ ॥ दोनों प्रभु त्याग और भोगकी दृष्टिसे एक-दूसरेसे विरुद्ध स्वभाववाले हैं, परन्तु उनके उपासकोंको उनके स्वरूपके विपरीत फल मिलता है। मुझे इस विषयमें बड़ा सन्देह है कि त्यागीकी उपासनासे भोग और लक्ष्मीपतिकी उपासनासे त्याग कैसे मिलता है? मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शिवजी सदा अपनी शक्तिसे युक्त रहते हैं। वे सत्त्व आदि गुणोंसे युक्त तथा अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं। अहङ्कारके तीन भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस ॥ ३ ॥ त्रिविध अहङ्कारसे सोलह विकार हुए—दस इन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और एक मन। अतः इन सबके अधिष्ठातृ-देवताओंमेंसे किसी एककी उपासना करनेपर समस्त ऐश्वर्योंकी प्राप्ति हो जाती है ॥ ४ ॥ परन्तु परीक्षित्! भगवान् श्रीहरि तो प्रकृतिसे परे स्वयं पुरुषोत्तम एवं प्राकृत गुणरहित हैं। वे सर्वज्ञ तथा सबके अन्तःकरणोंके साक्षी हैं। जो उनका भजन करता है, वह स्वयं भी गुणातीत हो जाता है ॥ ५ ॥ परीक्षित्! जब तुम्हारे दादा धर्मराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ कर चुके, तब भगवान्‌से विविध प्रकारके धर्मोंका वर्णन सुनते समय उन्होंने भी यही प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं। मनुष्योंके कल्याणके लिये ही उन्होंने यदुवंशमें अवतार धारण किया था। राजा युधिष्ठिरका प्रश्न सुनकर और उनकी सुननेकी इच्छा देखकर उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार उत्तर दिया था ॥ ७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! जिसपर मैं कृपा करता हूँ, उसका सब धन धीरे-धीरे छीन लेता हूँ। जब वह निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसके दुःखाकुल चित्तकी परवा न करके उसे छोड़ देते हैं ॥ ८ ॥ फिर वह धनके लिये उद्योग करने लगता है, तब मैं उसका वह प्रयत्न भी निष्फल कर देता हूँ। इस प्रकार बार-बार असफल होनेके कारण जब धन कमानेसे उसका मन विरक्त हो जाता है, उसे दुःख समझकर वह उधरसे अपना मुँह मोड़ लेता है और मेरे प्रेमी भक्तोंका आश्रय लेकर उनसे मेल-जोल करता है, तब मैं उसपर अपनी अहैतुक कृपाकी वर्षा करता हूँ ॥ ९ ॥ मेरी कृपासे उसे परम सूक्ष्म अनन्त सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार मेरी प्रसन्नता, मेरी आराधना बहुत कठिन है। इसीसे साधारण लोग मुझे छोड़कर मेरे ही दूसरे रूप अन्यान्य देवताओंकी आराधना करते हैं ॥ १० ॥ दूसरे देवता आशुतोष हैं। वे झटपट पिघल पड़ते हैं और अपने भक्तोंको साम्राज्य-लक्ष्मी दे देते हैं। उसे

पाकर वे उच्छृङ्खल, प्रमादी और उन्मत्त हो उठते हैं और अपने वरदाता देवताओंको भी भूल जाते हैं तथा उनका तिरस्कार कर बैठते हैं ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—ये तीनों शाप और वरदान देनेमें समर्थ हैं; परन्तु इनमें महादेव और ब्रह्मा शीघ्र ही प्रसन्न या रुष्ट होकर वरदान अथवा शाप दे देते हैं। परन्तु विष्णु-भगवान् वैसे नहीं हैं ॥ १२ ॥ इस विषयमें महात्मा-लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। भगवान् शङ्कर एक बार वृकासुरको वर देकर सङ्कटमें पड़ गये थे ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! वृकासुर शकुनिका पुत्र था। उसकी बुद्धि बहुत बिगड़ी हुई थी। एक दिन कहीं जाते समय उसने देवर्षि नारदको देख लिया और उनसे पूछा कि 'तीनों देवताओंमें झटपट प्रसन्न होनेवाला कौन है ?' ॥ १४ ॥ परीक्षित् ! देवर्षि नारदने कहा—'तुम भगवान् शङ्करकी आराधना करो। इससे तुम्हारा मनोरथ बहुत जल्दी पूरा हो जायगा। वे थोड़े ही गुणोंसे शीघ्र-से-शीघ्र प्रसन्न और थोड़े ही अपराधसे तुरंत क्रोध कर बैठते हैं ॥ १५ ॥ रावण और बाणासुरने केवल बंदीजनोंके समान शङ्करजीकी कुछ स्तुतियाँ की थीं। इसीसे वे उनपर प्रसन्न हो गये और उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य दे दिया। बादमें रावणके कैलास उठाने और बाणासुरके नगरकी रक्षाका भार लेनेसे वे उनके लिये सङ्कटमें भी पड़ गये थे' ॥ १६ ॥

नारदजीका उपदेश पाकर वृकासुर केदारक्षेत्रमें गया और अग्निको भगवान् शङ्करका मुख मानकर अपने शरीरका मांस काट-काटकर उसमें हवन करने लगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार छः दिनतक उपासना करनेपर भी जब उसे भगवान् शङ्करके दर्शन न हुए, तब उसे बड़ा दुःख हुआ। सातवें दिन केदारतीर्थमें स्नान करके उसने अपने भीगे बालवाले मस्तकको कुल्हाड़ेसे काटकर हवन करना चाहा ॥ १८ ॥ परीक्षित् ! जैसे जगत्में कोई दुःखवश आत्महत्या करने जाता है तो हमलोग करुणावश उसे बचा लेते हैं, वैसे ही परम दयालु भगवान् शङ्करने वृकासुरके आत्मघातके पहले ही अग्निकुण्डसे अग्निदेवके समान प्रकट होकर अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और गला काटनेसे रोक दिया। उनका स्पर्श होते ही वृकासुरके अङ्ग ज्यों-के-त्यों पूर्ण हो गये ॥ १९ ॥ भगवान् शङ्करने वृकासुरसे कहा—'प्यारे वृकासुर ! बस करो, बस करो; बहुत हो गया। मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। तुम मुँहमाँगा वर माँग लो। अरे भाई ! मैं तो अपने शरणागत भक्तोंपर केवल जल चढ़ानेसे ही सन्तुष्ट हो जाया करता हूँ। भला, तुम झूठमूठ अपने शरीरको क्यों पीडा दे रहे हो ?' ॥ २० ॥ परीक्षित् ! अत्यन्त पापी वृकासुरने समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला यह वर माँगा कि 'मैं जिसके सिरपर हाथ रख दूँ, वही मर जाय' ॥ २१ ॥ परीक्षित् ! उसकी यह याचना सुनकर भगवान् रुद्र पहले तो कुछ अनमने-से हो गये; फिर हँसकर कह दिया—'अच्छा, ऐसा ही हो।' ऐसा वर देकर उन्होंने मानो साँपको अमृत पिला दिया ॥ २२ ॥

भगवान् शङ्करके इस प्रकार कह देनेपर वृकासुरके मनमें यह लालसा हो आयी कि 'मैं पार्वतीजीको ही हर लूँ।' वह असुर शङ्करजीके वरकी परीक्षाके लिये उन्हींके सिरपर हाथ रखनेका उद्योग करने लगा। अब तो शङ्करजी अपने दिये हुए वरदानसे ही भयभीत हो गये ॥ २३ ॥ वह उनका पीछा करने लगा और वे उससे डरकर काँपते हुए भागने लगे। वे पृथ्वी, स्वर्ग और दिशाओंके अन्ततक दौड़ते गये; परन्तु फिर भी उसे पीछा करते देखकर उत्तरकी ओर बढ़े ॥ २४ ॥ बड़े-बड़े देवता इस सङ्कटको टालनेका कोई उपाय न देखकर चुप रह गये। अन्तमें वे प्राकृतिक अंधकारसे परे परम प्रकाशमय वैकुण्ठलोकमें गये ॥ २५ ॥ वैकुण्ठमें स्वयं भगवान् नारायण निवास करते हैं। एकमात्र वे ही उन संन्यासियोंकी परम गति हैं, जो सारे जगत्को अभयदान करके शान्तभावमें स्थित हो गये हैं। वैकुण्ठमें जाकर जीवको फिर लौटना नहीं पड़ता ॥ २६ ॥ भक्तभयहारी भगवान्ने देखा कि शङ्करजी तो बड़े सङ्कटमें पड़े हुए हैं। तब वे अपनी योगमायासे ब्रह्मचारी बनकर दूरसे ही धीरे-धीरे वृकासुरकी ओर आने लगे ॥ २७ ॥ भगवान्ने मूँजकी मेखला, काला मृगचर्म, दण्ड और रुद्राक्षकी माला धारण कर रक्खी थी। उनके एक-एक अंगसे ऐसी ज्योति निकल रही थी, मानो आग धधक रही हो। वे हाथमें कुश लिये हुए थे। वृकासुरको

देखकर उन्होंने बड़ी नम्रतासे झुककर प्रणाम किया ॥ २८ ॥

ब्रह्मचारी-वेषधारी भगवान्‌ने कहा—शकुनि-नन्दन वृकासुरजी! आप स्पष्ट ही बहुत थके-से जान पड़ते हैं। आज आप बहुत दूरसे आ रहे हैं क्या? तनिक विश्राम तो कर लीजिये। देखिये, यह शरीर ही सारे सुखोंकी जड़ है। इसीसे सारी कामनाएँ पूरी होती हैं। इसे अधिक कष्ट न देना चाहिये ॥ २९ ॥ आप तो सब प्रकारसे समर्थ हैं। इस समय आप क्या करना चाहते हैं? यदि मेरे सुनने योग्य कोई बात हो तो बतलाइये। क्योंकि संसारमें देखा जाता है कि लोग सहायकोंके द्वारा बहुत-से काम बना लिया करते हैं ॥ ३० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के एक-एक शब्दसे अमृत बरस रहा था। उनके इस प्रकार पूछनेपर पहले तो उसने तनिक ठहरकर अपनी थकावट दूर की; उसके बाद क्रमशः अपनी तपस्या, वरदान-प्राप्ति तथा भगवान् शङ्करके पीछे दौड़नेकी बात शुरूसे कह सुनायी ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—'अच्छा, ऐसी बात है? तब तो भाई! हम उसकी बातपर विश्वास नहीं करते। आप नहीं जानते हैं क्या? वह तो दक्ष प्रजापतिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हो गया है। आजकल वही प्रेतों और पिशाचोंका सम्राट् है ॥ ३२ ॥ दानवराज! आप इतने बड़े होकर ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर विश्वास कर लेते हैं? आप यदि अब भी उसे जगद्गुरु मानते हों और उसकी बातपर विश्वास करते हों, तो झटपट अपने सिरपर हाथ रखकर परीक्षा कर लीजिये ॥ ३३ ॥ दानवशिरोमणे! यदि किसी प्रकार शङ्करकी बात असत्य निकले तो उस असत्यवादीको मार डालिये, जिससे फिर कभी वह झूठ न बोल सके' ॥ ३४ ॥ परीक्षित्! भगवान्‌ने ऐसी मोहित करनेवाली अद्भुत और मीठी बात कही कि उसकी विवेक-बुद्धि जाती रही। उस दुर्बुद्धिने भूलकर अपने ही सिरपर हाथ रख लिया ॥ ३५ ॥ बस, उसी क्षण उसका सिर फट गया और वह वहीं धरतीपर गिर पड़ा, मानो उसपर बिजली गिर पड़ी हो। उस समय आकाशमें देवतालोग 'जय-जय, नमो नमः, साधु-साधु!' के नारे लगाने लगे ॥ ३६ ॥ पापी वृकासुरकी मृत्युसे देवता, ऋषि, पितर और गन्धर्व अत्यन्त प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और भगवान् शङ्कर उस विकट सङ्कटसे मुक्त हो गये ॥ ३७ ॥ अब भगवान् पुरुषोत्तमने भयमुक्त शङ्करजीसे कहा कि 'देवाधिदेव! बड़े हर्षकी बात है कि इस दुष्टको इसके पापोंने ही नष्ट कर दिया। परमेश्वर! भला, ऐसा कौन प्राणी है जो महापुरुषोंका अपराध करके कुशलसे रह सके? फिर स्वयं जगद्गुरु विश्वेश्वर! आपका अपराध करके तो कोई सकुशल रह ही कैसे सकता है?' ॥ ३८-३९ ॥

भगवान् अनन्त शक्तियोंके समुद्र हैं। उनकी एक-एक शक्ति मन और वाणीकी सीमाके परे है। वे प्रकृतिसे अतीत स्वयं परमात्मा हैं। उनकी शङ्करजीको सङ्कटसे छुड़ानेकी यह लीला जो कोई कहता या सुनता है, वह संसारके बन्धनों और शत्रुओंके भयसे मुक्त हो जाता है ॥ ४० ॥

नवासीवाँ अध्याय

भृगुजीके द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा तथा भगवान्‌का मरे हुए ब्राह्मण-बालकोंको वापस लाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक बार सरस्वती नदीके पावन तटपर यज्ञ प्रारम्भ करनेके लिये बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एकत्र होकर बैठे। उन लोगोंमें इस विषयपर वाद-विवाद चला कि ब्रह्मा, शिव और विष्णुमें सबसे बड़ा कौन है? ॥ १ ॥ परीक्षित्! उन लोगोंने यह बात जाननेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे ब्रह्माके पुत्र भृगुजीको उनके पास भेजा। महर्षि भृगु सबसे पहले ब्रह्माजीकी सभामें गये ॥ २ ॥ उन्होंने ब्रह्माजीके धैर्य आदिकी परीक्षा करनेके लिये न उन्हें नमस्कार किया और न तो उनकी स्तुति ही की। इसपर ऐसा मालूम हुआ कि ब्रह्माजी अपने तेजसे दहक रहे हैं। उन्हें क्रोध आ गया ॥ ३ ॥ परन्तु जब समर्थ ब्रह्माजीने देखा

कि यह तो मेरा पुत्र ही है, तब अपने मनमें उठे हुए क्रोधको भीतर-ही-भीतर विवेकबुद्धिसे दबा लिया; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अरणिमन्थनसे उत्पन्न अग्निको जलसे बुझा दे ॥ ४ ॥

वहाँसे महर्षि भृगु कैलासमें गये। देवाधिदेव भगवान् शङ्करने जब देखा कि मेरे भाई भृगुजी आये हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे खड़े होकर उनका आलिङ्गन करनेके लिये भुजाएँ फैला दीं ॥ ५ ॥ परन्तु महर्षि भृगुने उनसे आलिङ्गन करना स्वीकार न किया और कहा—'तुम लोक और वेदकी मर्यादाका उल्लङ्घन करते हो, इसलिये मैं तुमसे नहीं मिलता।' भृगुजीकी यह बात सुनकर भगवान् शङ्कर क्रोधके मारे तिलमिला उठे। उनकी आँखें चढ़ गयीं। उन्होंने त्रिशूल उठाकर महर्षि भृगुको मारना चाहा ॥ ६ ॥ परन्तु उसी समय भगवती सतीने उनके चरणोंपर गिरकर बहुत अनुनय-विनय की और किसी प्रकार उनका क्रोध शान्त किया। अब महर्षि भृगुजी भगवान् विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठमें गये ॥ ७ ॥ उस समय भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीकी गोदमें अपना सिर रखकर लेटे हुए थे। भृगुजीने जाकर उनके वक्षःस्थलपर एक लात कसकर जमा दी। भक्त-वत्सल भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ उठ बैठे और झटपट अपनी शय्यासे नीचे उतरकर मुनिको सिर झुकाया, प्रणाम किया। भगवान्‌ने कहा—'ब्रह्मन्! आपका स्वागत है, आप भले पधारे। इस आसनपर बैठकर कुछ क्षण विश्राम कीजिये। प्रभो! मुझे आपके शुभागमनका पता न था। इसीसे मैं आपकी अगवानी न कर सका। मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ८-९ ॥ महामुने! आपके चरणकमल अत्यन्त कोमल हैं।' यों कहकर भृगुजीके चरणोंको भगवान् अपने हाथोंसे सहलाने लगे ॥ १० ॥ और बोले—'महर्षे! आपके चरणोंका जल तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाला है। आप उससे वैकुण्ठलोक, मुझे और मेरे अंदर रहनेवाले लोकपालोंको पवित्र कीजिये ॥ ११ ॥ भगवन्! आपके चरणकमलोंके स्पर्शसे मेरे सारे पाप धुल गये। आज मैं लक्ष्मीका एकमात्र आश्रय हो गया। अब आपके चरणोंसे चिह्नित मेरे वक्षःस्थलपर लक्ष्मी सदा-सर्वदा निवास करेंगी' ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान्‌ने अत्यन्त गम्भीर वाणीसे इस प्रकार कहा, तब भृगुजी परम सुखी और तृप्त हो गये। भक्तिके उद्रेकसे उनका गला भर आया, आँखोंमें आँसू छलक आये और वे चुप हो गये ॥ १३ ॥ परीक्षित्! भृगुजी वहाँसे लौटकर ब्रह्मवादी मुनियोंके सत्सङ्गमें आये और उन्हें ब्रह्मा, शिव और विष्णुभगवान्‌के यहाँ जो कुछ अनुभव हुआ था, वह सब कह सुनाया ॥ १४ ॥ भृगुजीका अनुभव सुनकर सभी ऋषि-मुनियोंको बड़ा विस्मय हुआ, उनका सन्देह दूर हो गया। तबसे वे भगवान् विष्णुको ही सर्वश्रेष्ठ मानने लगे; क्योंकि वे ही शान्ति और अभयके उद्गमस्थान हैं ॥ १५ ॥ भगवान् विष्णुसे ही साक्षात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य, आठ प्रकारके ऐश्वर्य और चित्तको शुद्ध करनेवाला यश प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ शान्त, समचित्त, अकिञ्चन और सबको अभय देनेवाले साधु-मुनियोंकी वे ही एकमात्र परम गति हैं। ऐसा सारे शास्त्र कहते हैं ॥ १७ ॥ उनकी प्रिय मूर्ति है सत्त्व और इष्टदेव हैं ब्राह्मण। निष्काम, शान्त और निपुणबुद्धि (विवेक-सम्पन्न) पुरुष उनका भजन करते हैं ॥ १८ ॥ भगवान्‌की गुणमयी मायाने राक्षस, असुर और देवता—उनकी ये तीन मूर्तियाँ बना दी हैं। इनमें सत्त्वमयी देवमूर्ति ही उनकी प्राप्तिका साधन है। वे स्वयं ही समस्त पुरुषार्थस्वरूप हैं ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सरस्वतीतटके ऋषियोंने अपने लिये नहीं, मनुष्योंका संशय मिटानेके लिये ही ऐसी युक्ति रची थी। पुरुषोत्तम भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवा करके उन्होंने उनका परमपद प्राप्त किया ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! भगवान् पुरुषोत्तमकी यह कमनीय कीर्ति-कथा जन्म-मृत्युरूप संसारके भयको मिटानेवाली है। यह व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके मुखारविन्दसे निकली हुई सुरभिमयी मधुमयी सुधाधारा है। इस संसारके लंबे पथका जो बटोही अपने कानोंके दोनोंसे इसका निरन्तर पान करता रहता है, उसकी सारी थकावट, जो जगत्‌में इधर-उधर भटकनेसे होती है, दूर हो जाती है ॥ २१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक दिनकी बात है, द्वारकापुरीमें किसी ब्राह्मणीके गर्भसे एक पुत्र पैदा हुआ, परन्तु वह उसी समय पृथ्वीका स्पर्श होते ही मर गया ॥ २२ ॥ ब्राह्मण अपने बालकका मृत शरीर लेकर राजमहलके द्वारपर गया और वहाँ उसे रखकर अत्यन्त आतुरता और दुखी मनसे विलाप करता हुआ यह कहने लगा—॥ २३ ॥ 'इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणद्रोही, धूर्त, कृपण और विषयी राजाके कर्मदोषसे ही मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ २४ ॥ जो राजा हिंसापरायण, दुःशील और अजितेन्द्रिय होता है, उसे राजा मानकर सेवा करनेवाली प्रजा दरिद्र होकर दुःख-पर-दुःख भोगती रहती है और उसके सामने सङ्कट-पर-सङ्कट आते रहते हैं' ॥ २५ ॥ परीक्षित् ! इसी प्रकार अपने दूसरे और तीसरे बालकके भी पैदा होते ही मर जानेपर वह ब्राह्मण लड़केकी लाश राजमहलके दरवाजेपर डाल गया और वही बात कह गया ॥ २६ ॥ नवें बालकके मरनेपर जब वह वहाँ आया, तब उस समय भगवान् श्रीकृष्णके पास अर्जुन भी बैठे हुए थे । उन्होंने ब्राह्मणकी बात सुनकर उससे कहा—॥ २७ ॥ 'ब्रह्मन् ! आपके निवासस्थान द्वारकामें कोई धनुषधारी क्षत्रिय नहीं है क्या ? मालूम होता है कि ये यदुवंशी ब्राह्मण हैं और प्रजापालनका परित्याग करके किसी यज्ञमें बैठे हुए हैं ! ॥ २८ ॥ जिनके राज्यमें धन, स्त्री अथवा पुत्रोंसे वियुक्त होकर ब्राह्मण दुखी होते हैं, वे क्षत्रिय नहीं हैं, क्षत्रियके वेषमें पेट पालनेवाले नट हैं । उनका जीवन व्यर्थ है ॥ २९ ॥ भगवन् ! मैं समझता हूँ कि आप स्त्री-पुरुष अपने पुत्रोंकी मृत्युसे दीन हो रहे हैं । मैं आपकी सन्तानकी रक्षा करूँगा । यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका, तो आगमें कूदकर जल मरूँगा और इस प्रकार मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा' ।३०।

ब्राह्मणने कहा—अर्जुन ! यहाँ बलरामजी, भगवान् श्रीकृष्ण, धनुर्धरशिरोमणि प्रद्युम्न, अद्वितीय योद्धा अनिरुद्ध भी जब मेरे बालकोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं; इन जगदीश्वरोंके लिये भी यह काम कठिन हो रहा है; तब तुम इसे कैसे करना चाहते हो ? सचमुच यह तुम्हारी मूर्खता है । हम तुम्हारी इस बातपर बिल्कुल विश्वास नहीं करते ॥ ३१-३२ ॥

अर्जुनने कहा—ब्रह्मन् ! मैं बलराम, श्रीकृष्ण अथवा प्रद्युम्न नहीं हूँ । मैं हूँ अर्जुन, जिसका गाण्डीव नामक धनुष विश्वविख्यात है ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणदेवता ! आप मेरे बल-पौरुषका तिरस्कार मत कीजिये । आप जानते नहीं, मैं अपने पराक्रमसे भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट कर चुका हूँ । भगवन् ! मैं आपसे अधिक क्या कहूँ, मैं युद्धमें साक्षात् मृत्युको भी जीतकर आपकी सन्तान ला दूँगा ॥ ३४ ॥

परीक्षित् ! जब अर्जुनने उस ब्राह्मणको इस प्रकार विश्वास दिलाया, तब वह लोगोंसे उनके बल-पौरुषका बखान करता हुआ बड़ी प्रसन्नतासे अपने घर लौट गया ॥ ३५ ॥ प्रसवका समय निकट आनेपर ब्राह्मण आतुर होकर अर्जुनके पास आया और कहने लगा—'इस बार तुम मेरे बच्चेको मृत्युसे बचा लो' ॥ ३६ ॥ यह सुनकर अर्जुनने शुद्ध जलसे आचमन किया, तथा भगवान् शङ्करको नमस्कार किया । फिर दिव्य अस्त्रोंका स्मरण किया और गाण्डीव धनुषपर डोरी चढ़ाकर उसे हाथमें ले लिया ॥ ३७ ॥ अर्जुनने बाणोंको अनेक प्रकारके अस्त्र-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके प्रसवगृहको चारों ओरसे घेर दिया । इस प्रकार उन्होंने सूतिकागृहके ऊपर-नीचे, अगल-बगल बाणोंका एक पिंजड़ा-सा बना दिया ॥ ३८ ॥ इसके बाद ब्राह्मणीके गर्भसे एक शिशु पैदा हुआ, जो बार-बार रो रहा था । परन्तु देखते-ही-देखते वह सशरीर आकाशमें अन्तर्धान हो गया ॥ ३९ ॥ अब वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके सामने ही अर्जुनकी निन्दा करने लगा । वह बोला—मेरी मूर्खता तो देखो, मैंने इस नपुंसककी डींगभरी बातोंपर विश्वास कर लिया ॥ ४० ॥ भला जिसे प्रद्युम्न, अनिरुद्ध यहाँतक कि बलराम और भगवान् श्रीकृष्ण भी न बचा सके, उसकी रक्षा करनेमें और कौन समर्थ है ? ॥ ४१ ॥ मिथ्यावादी अर्जुनको धिक्कार है ! अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाले अर्जुनके धनुषको धिक्कार है !! इसकी दुर्बुद्धि तो देखो ! यह मूढ़तावश उस बालकको लौटा लाना चाहता है, जिसे प्रारब्धने हमसे अलग कर दिया है' ॥ ४२ ॥

जब वह ब्राह्मण इस प्रकार उन्हें भला-बुरा कहने

लगा, तब अर्जुन योगबलसे तत्काल संयमनीपुरीमें गये, जहाँ भगवान् यमराज निवास करते हैं ॥ ४३ ॥ वहाँ उन्हें ब्राह्मणका बालक नहीं मिला। फिर वे शस्त्र लेकर क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, सोम, वायु और वरुण आदिकी पुरियोंमें, अतलादि नीचेके लोकोंमें, स्वर्गसे ऊपरके महर्लोकादिमें एवं अन्यान्य स्थानोंमें गये ॥४४॥ परन्तु कहीं भी उन्हें ब्राह्मणका बालक न मिला। उनकी प्रतिज्ञा पूरी न हो सकी। अब उन्होंने अग्निमें प्रवेश करनेका विचार किया। परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें ऐसा करनेसे रोकते हुए कहा—॥ ४५ ॥ 'भाई अर्जुन! तुम अपने-आप अपना तिरस्कार मत करो। मैं तुम्हें ब्राह्मणके सब बालक अभी दिखाये देता हूँ। आज जो लोग तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं, वे ही फिर हम-लोगोंकी निर्मल कीर्तिकी स्थापना करेंगे' ॥ ४६ ॥

सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार समझा-बुझाकर अर्जुनके साथ अपने दिव्य रथपर सवार हुए और पश्चिम दिशाको प्रस्थान किया ॥ ४७ ॥ उन्होंने सात-सात पर्वतोंवाले सात द्वीप, सात समुद्र और लोका-लोकपर्वतको लाँघकर घोर अन्धकारमें प्रवेश किया॥४८॥ परीक्षित्! वह अन्धकार इतना घोर था कि उसमें शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामके चारों घोड़े अपना मार्ग भूलकर इधर-उधर भटकने लगे। उन्हें कुछ सूझता ही न था ॥ ४९ ॥ योगेश्वरोंके भी परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने घोड़ोंकी यह दशा देखकर अपने सहस्र-सहस्र सूर्योंके समान तेजस्वी चक्रको आगे चलनेकी आज्ञा दी ॥ ५० ॥ सुदर्शन चक्र अपने ज्योतिर्मय तेजसे स्वयं भगवान्के द्वारा उत्पन्न उस घने एवं महान् अन्धकारको चीरता हुआ मनके समान तीव्र गतिसे आगे-आगे चला। उस समय वह ऐसा जान पड़ता था, मानो भगवान् रामका बाण धनुषसे छूटकर राक्षसोंकी सेनामें प्रवेश कर रहा हो ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सुदर्शन चक्रके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे चलकर रथ अन्धकारकी अन्तिम सीमापर पहुँचा। उस अन्धकारके पार सर्वश्रेष्ठ पारावाररहित व्यापक परम ज्योति जगमगा रही थी। उसे देखकर अर्जुनकी आँखें चौंधिया गयीं और उन्होंने विवश होकर अपने नेत्र बंद कर लिये ॥ ५२ ॥

इसके बाद भगवान्के रथने दिव्य जलराशिमें प्रवेश किया। बड़ी तेज आँधी चलनेके कारण उस जलमें बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठ रही थीं, जो बहुत ही भली मालूम होती थीं। वहाँ एक बड़ा सुन्दर महल था। उसमें मणियोंके सहस्र-सहस्र खंभे चमक-चमककर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे और उसके चारों ओर बड़ी उज्ज्वल ज्योति फैल रही थी ॥ ५३ ॥ उसी महलमें भगवान् शेषजी विराजमान थे। उनका शरीर अत्यन्त भयानक और अद्भुत था। उनके सहस्र सिर थे और प्रत्येक फणपर सुन्दर-सुन्दर मणियाँ जगमगा रही थीं। प्रत्येक सिरमें दो-दो नेत्र थे और वे बड़े ही भयङ्कर थे। उनका सम्पूर्ण शरीर कैलासके समान श्वेतवर्णका था, और गला तथा जीभ नीले रंगकी थी ॥ ५४ ॥ परीक्षित्! अर्जुनने देखा कि शेषभगवान्की सुखमयी शय्यापर सर्वव्यापक महान् प्रभावशाली परम पुरुषोत्तम भगवान् विराजमान हैं। उनके शरीरकी कान्ति वर्षा-कालीन मेघके समान श्यामल है। अत्यन्त सुन्दर पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। मुखपर प्रसन्नता खेल रही है और बड़े-बड़े नेत्र बहुत ही सुहावने लगते हैं॥५५॥ बहुमूल्य मणियोंसे जटित मुकुट और कुण्डलोंकी कान्तिसे सहस्रों घुँघराली अलकें चमक रही हैं। लंबी-लंबी, सुन्दर आठ भुजाएँ हैं; गलेमें कौस्तुभ मणि है; वक्षः-स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है और घुटनोंतक वनमाला लटक रही है ॥ ५६ ॥ अर्जुनने देखा कि उनके नन्द-सुनन्द आदि अपने पार्षद, चक्र-सुदर्शन आदि अपने मूर्तिमान् आयुध तथा पुष्टि, श्री, कीर्ति और अजा—ये चारों शक्तियाँ एवं सम्पूर्ण ऋद्धियाँ ब्रह्मादि लोकपालोंके अधीश्वर भगवान्की सेवा कर रही हैं ॥ ५७ ॥ परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने अपने ही स्वरूप श्रीअनन्त भगवान्को प्रणाम किया। अर्जुन उनके दर्शनसे कुछ भयभीत हो गये थे; श्रीकृष्णके बाद उन्होंने भी उनको प्रणाम किया और वे दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये। अब ब्रह्मादि लोकपालोंके स्वामी भूमा पुरुषने मुसकराते हुए मधुर एवं गम्भीर वाणीसे कहा—॥ ५८ ॥ 'श्रीकृष्ण! और अर्जुन! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे। तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण

किया है; पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ ॥ ५९ ॥ तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्की स्थिति और लोकसंग्रहके लिये धर्मका आचरण करो' ॥६०॥

जब भगवान् भूमा पुरुषने श्रीकृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार आदेश दिया, तब उन लोगोंने उसे स्वीकार करके उन्हें नमस्कार किया और बड़े आनन्दके साथ ब्राह्मण-बालकोंको लेकर जिस रास्तेसे, जिस प्रकार आये थे, उसीसे वैसे ही द्वारकामें लौट आये। ब्राह्मणके बालक अपनी आयुके अनुसार बड़े-बड़े हो गये थे। उनका रूप और आकृति वैसी ही थी, जैसी उनके जन्मके समय थी। उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनके पिताको सौंप दिया ॥ ६१-६२ ॥ भगवान् विष्णुके उस परमधामको देखकर अर्जुनके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि जीवोंमें जो कुछ बल-पौरुष है, वह सब भगवान् श्रीकृष्णकी ही कृपाका फल है ॥ ६३ ॥ परीक्षित्! भगवान्ने और भी ऐसी अनेकों ऐश्वर्य और वीरतासे परिपूर्ण लीलाएँ कीं। लोकदृष्टिमें साधारण लोगोंके समान सांसारिक विषयोंका भोग किया और बड़े-बड़े महाराजाओंके समान श्रेष्ठ-श्रेष्ठ यज्ञ किये ॥ ६४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने आदर्श महापुरुषोंका-सा आचरण करते हुए ब्राह्मण आदि समस्त प्रजावर्गोंके सारे मनोरथ पूर्ण किये, ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्र प्रजाके लिये समयानुसार वर्षा करते हैं ॥ ६५ ॥ उन्होंने बहुत-से अधर्मी राजाओंको स्वयं मार डाला और बहुतों-को अर्जुन आदिके द्वारा मरवा डाला। इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिर आदि धार्मिक राजाओंसे उन्होंने अनायास ही सारी पृथ्वीमें धर्ममर्यादाकी स्थापना करा दी ॥ ६६ ॥

नब्बेवाँ अध्याय

भगवान् कृष्णके लीला-विहारका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! द्वारकानगरीकी छटा अलौकिक थी। उसकी सड़कें मद चूते हुए मत-वाले हाथियों, सुसज्जित योद्धाओं, घोड़ों और स्वर्णमय रथोंकी भीड़से सदा-सर्वदा भरी रहती थीं। जिधर देखिये, उधर ही हरे-भरे उपवन और उद्यान लहरा रहे हैं। पाँत-के-पाँत वृक्ष फूलोंसे लदे हुए हैं। उनपर बैठकर भौंरे गुनगुना रहे हैं और तरह-तरहके पक्षी कलरव कर रहे हैं। वह नगरी सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे भरपूर थी। जगत्के श्रेष्ठ वीर यदुवंशी उसका सेवन करनेमें अपना सौभाग्य मानते थे। वहाँकी स्त्रियाँ सुन्दर वेष-भूषासे विभूषित थीं और उनके अङ्ग-अङ्गसे जवानीकी छटा छिटकती रहती थी। वे जब अपने महलोंमें गेंद आदिके खेल खेलतीं और उनका कोई अङ्ग कभी दीख जाता तो ऐसा जान पड़ता, मानो बिजली चमक रही है। लक्ष्मीपति भगवान्की यही अपनी नगरी द्वारका थी। इसीमें वे निवास करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण सोलह हजारसे अधिक पत्नियोंके एकमात्र प्राणवल्लभ थे। उन पत्नियोंके अलग-अलग महल भी परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न थे। जितनी पत्नियाँ थीं, उतने ही अद्भुत रूप धारण करके वे उनके साथ विहार करते थे ॥ १—५ ॥ सभी पत्नियोंके महलोंमें सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे। उनका निर्मल जल खिले हुए नीले, पीले, श्वेत, लाल आदि भाँति-भाँतिके कमलोंके परागसे महँकता रहता था। उनमें झुंड-के-झुंड हंस, सारस आदि सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहकते रहते थे। भगवान् श्रीकृष्ण उन जलाशयोंमें तथा कभी-कभी नदियोंके जलमें भी प्रवेश कर अपनी पत्नियोंके साथ जलविहार करते थे। भगवान्के साथ विहार करनेवाली पत्नियाँ जब उन्हें अपने भुज-पाशमें बाँध लेतीं, आलिङ्गन करतीं, तब भगवान्के श्रीअङ्गोंमें उनके वक्षःस्थलकी केसर लग जाती थी ॥ ६-७ ॥ उस समय गन्धर्व उनके यशका गान करने लगते और सूत, मागध एवं वन्दीजन बड़े आनन्दसे मृदङ्ग, ढोल, नगारे और वीणा आदि बाजे बजाने लगते ॥ ८ ॥

भगवान्की पत्नियाँ कभी-कभी हँसते-हँसते पिच-

कारियोंसे उन्हें भिगो देती थीं। वे भी उनको तर कर देते। इस प्रकार भगवान् अपनी पत्नियोंके साथ क्रीडा करते; मानो यक्षराज कुबेर यक्षिणियोंके साथ विहार कर रहे हों ॥ ९ ॥ उस समय भगवान्‌की पत्नियोंके वक्षःस्थल और जंघा आदि अङ्ग वस्त्रोंके भीग जानेके कारण उनमेंसे झलकने लगते। उनकी बड़ी-बड़ी चोटियों और जूड़ोंमेंसे गुँथे हुए फूल गिरने लगते, वे उन्हें भिगोते-भिगोते पिचकारी छीन लेनेके लिये उनके पास पहुँच जातीं और इसी बहाने अपने प्रियतमका आलिङ्गन कर लेतीं। उनके स्पर्शसे पत्नियोंके हृदयमें प्रेम-भावकी अभिवृद्धि हो जाती, जिससे उनका मुखकमल खिल उठता। ऐसे अवसरोंपर उनकी शोभा और भी बढ़ जाया करती ॥१०॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी वनमाला उन रानियोंके वक्षःस्थलपर लगी हुई केसरके रंगसे रँग जाती। विहारमें अत्यन्त मग्न हो जानेके कारण घुँघराली अलकें उन्मुक्त भावसे लहराने लगतीं। वे अपनी रानियोंको बार-बार भिगो देते और रानियाँ भी उन्हें सराबोर कर देतीं। भगवान् श्रीकृष्ण उनके साथ इस प्रकार विहार करते, मानो कोई गजराज हथिनियोंसे घिरकर उनके साथ क्रीडा कर रहा हो ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियाँ क्रीडा करनेके बाद अपने-अपने वस्त्राभूषण उतारकर उन नटों और नर्तकियोंको दे देते, जिनकी जीविका केवल गाना-बजाना ही है ॥ १२ ॥ परीक्षित् ! भगवान् इसी प्रकार उनके साथ विहार करते रहते। उनकी चाल-ढाल, बातचीत, चितवन-मुसकान, हास-विलास और आलिङ्गन आदिसे रानियोंकी चित्तवृत्ति उन्हींकी ओर खिंची रहती। उन्हें और किसी बातका स्मरण ही न होता ॥ १३ ॥ परीक्षित् ! रानियोंके जीवन-सर्वस्व, उनके एकमात्र हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही थे। वे कमलनयन श्यामसुन्दरके चिन्तनमें ही इतनी मग्न हो जातीं कि कई देरतक तो चुप हो रहतीं और फिर उन्मत्तके समान असम्बद्ध बातें कहने लगतीं। कभी-कभी तो भगवान् श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें ही प्रेमोन्मादके कारण उनके विरहका अनुभव करने लगतीं। और न जाने क्या-क्या कहने लगतीं। मैं उनकी बात तुम्हें सुनाता हूँ ॥१४॥

रानियाँ कहतीं—अरी कुररी ! अब तो बड़ी रात हो गयी है। संसारमें सब ओर सन्नाटा छा गया है। देख, इस समय स्वयं भगवान् अपना अखण्ड बोध छिपाकर सो रहे हैं और तुझे नींद ही नहीं आती ? तू इस तरह रात-रातभर जगकर विलाप क्यों कर रही है ? सखी ! कहीं कमलनयन भगवान्‌के मधुर हास्य और लीलाभरी उदार (स्वीकृतिसूचक) चितवनसे तेरा हृदय भी हमारी ही तरह बिंध तो नहीं गया है ? ॥ १५ ॥

अरी चकवी ! तूने रातके समय अपने नेत्र क्यों बंद कर लिये हैं ? क्या तेरे पतिदेव कहीं विदेश चले गये हैं कि तू इस प्रकार करुण स्वरसे पुकार रही है ? हाय-हाय ! तब तो तू बड़ी दुःखिनी है। परन्तु हो-न-हो तेरे हृदयमें भी हमारे ही समान भगवान्‌की दासी होनेका भाव जग गया है। क्या अब तू उनके चरणोंपर चढ़ायी हुई पुष्पोंकी माला अपनी चोटियोंमें धारण करना चाहती है ? ॥ १६ ॥

अहो समुद्र ! तुम निरन्तर गरजते ही रहते हो। तुम्हें नींद नहीं आती क्या ? जान पड़ता है तुम्हें सदा जागते रहनेका रोग लग गया है। परन्तु नहीं-नहीं, हम समझ गयीं, हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने तुम्हारे धैर्य, गाम्भीर्य आदि स्वाभाविक गुण छीन लिये हैं। क्या इसीसे तुम हमारे ही समान ऐसी व्याधिके शिकार हो गये हो, जिसकी कोई दवा नहीं है ? ॥ १७ ॥

चन्द्रदेव ! तुम्हें बहुत बड़ा रोग राजयक्ष्मा हो गया है। इसीसे तुम इतने क्षीण हो रहे हो। अरे राम-राम, अब तुम अपनी किरणोंसे अँधेरा भी नहीं हटा सकते ! क्या हमारी ही भाँति हमारे प्यारे श्यामसुन्दरकी मीठी-मीठी रहस्यकी बातें भूल जानेके कारण तुम्हारी बोलती बंद हो गयी है ? क्या उसीकी चिन्तासे तुम मौन हो रहे हो ? ॥ १८ ॥

मलयानिल ! हमने तेरा क्या बिगाड़ा है, जो तू हमारे हृदयमें कामका सञ्चार कर रहा है ? अरे तू नहीं जानता क्या ? भगवान्‌की तिरछी चितवनसे हमारा हृदय तो पहलेसे ही घायल हो गया है ॥ १९ ॥

श्रीमन् मेघ ! तुम्हारे शरीरका सौन्दर्य तो हमारे प्रियतम-जैसा ही है। अवश्य ही तुम यदुवंशशिरोमणि भगवान्‌के परम प्यारे हो। तभी तो तुम हमारी ही

भाँति प्रेमपाशमें बँधकर उनका ध्यान कर रहे हो ! देखो-देखो ! तुम्हारा हृदय चिन्तासे भर रहा है, तुम उनके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हो ! तभी तो बार-बार उनकी याद करके हमारी ही भाँति आँसूकी धारा बहा रहे हो। श्यामघन ! सचमुच घनश्यामसे नाता जोड़ना घर बैठे पीड़ा मोल लेना है ॥ २० ॥

री कोयल ! तेरा गला बड़ा ही सुरीला है, मीठी बोली बोलनेवाले हमारे प्राणप्यारेके समान ही मधुर स्वरसे तू बोलती है। सचमुच तेरी बोलीमें सुधा घोली हुई है, जो प्यारेके विरहसे मरे हुए प्रेमियोंको जिलानेवाली है। तू ही बता, इस समय हम तेरा क्या प्रिय करें ? ॥ २१ ॥

प्रिय पर्वत ! तुम तो बड़े उदार विचारके हो। तुमने ही पृथ्वीको भी धारण कर रक्खा है। न तुम हिलते-डोलते हो और न कुछ कहते-सुनते हो। जान पड़ता है कि किसी बड़ी बातकी चिन्तामें मग्न हो रहे हो। ठीक है, ठीक है; हम समझ गयीं। तुम हमारी ही भाँति चाहते हो कि अपने स्तनोंके समान बहुत-से शिखरोंपर मैं भी भगवान् श्यामसुन्दरके चरणकमल धारण करूँ ॥ २२ ॥

समुद्रपत्नी नदियो ! यह ग्रीष्म ऋतु है। तुम्हारे कुण्ड सूख गये हैं। अब तुम्हारे अंदर खिले हुए कमलोंका सौन्दर्य नहीं दीखता। तुम बहुत दुबली-पतली हो गयी हो। जान पड़ता है, जैसे हम अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी प्रेमभरी चितवन न पाकर अपना हृदय खो बैठी हैं और अत्यन्त दुबली-पतली हो गयी हैं, वैसे ही तुम भी मेघोंके द्वारा अपने प्रियतम समुद्रका जल न पाकर ऐसी दीन-हीन हो गयी हो ॥ २३ ॥

हंस ! आओ, आओ ! भले आये, स्वागत है। आसनपर बैठो; लो, दूध पियो। प्रिय हंस ! श्यामसुन्दरकी कोई बात तो सुनाओ। हम समझती हैं कि तुम उनके दूत हो। किसीके वशमें न होनेवाले श्यामसुन्दर सकुशल तो हैं न ? अरे भाई ! उनकी मित्रता तो बड़ी अस्थिर है, क्षणभङ्गुर है। एक बात तो बतलाओ, उन्होंने हमसे कहा था कि तुम्हीं हमारी परम प्रियतमा हो। क्या अब उन्हें यह बात याद है ? जाओ, जाओ; हम तुम्हारी अनुनय-विनय नहीं सुनतीं। जब वे हमारी परवा नहीं करते, तो हम उनके पीछे क्यों मरें ? क्षुद्रके दूत ! हम उनके पास नहीं जातीं। क्या कहा ? वे हमारी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ही आना चाहते हैं, अच्छा ! तब उन्हें तो यहाँ बुला लाना, हमसे बातें कराना; परन्तु कहीं लक्ष्मीको साथ न ले आना। तब क्या वे लक्ष्मीको छोड़कर यहाँ नहीं आना चाहते ? यह कैसी बात है ? क्या स्त्रियोंमें लक्ष्मी ही एक ऐसी हैं, जिनका भगवान्‌से अनन्य प्रेम है ? क्या हममेंसे कोई एक भी वैसी नहीं है ? ॥ २४ ॥

परीक्षित् ! श्रीकृष्ण-पत्नियाँ योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें ऐसा ही अनन्य प्रेम-भाव रखती थीं। इसीसे उन्होंने परमपद प्राप्त किया ॥ २५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ अनेकों प्रकारसे अनेकों गीतोंद्वारा गान की गयी हैं। वे इतनी मधुर, इतनी मनोहर हैं कि उनके सुननेमात्रसे स्त्रियोंका मन बलात् उनकी ओर खिंच जाता है। फिर जो स्त्रियाँ उन्हें अपने नेत्रोंसे देखती थीं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ २६ ॥ जिन बड़भागिनी स्त्रियोंने जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णको अपना पति मानकर परम प्रेमसे उनके चरणकमलोंको सहलाया, उन्हें नहलाया-धुलाया, खिलाया-पिलाया, तरह-तरहसे उनकी सेवा की, उनकी तपस्याका वर्णन तो भला, किया ही कैसे जा सकता है ॥ २७ ॥

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने वेदोक्त धर्मका बार-बार आचरण करके लोगोंको यह बात दिखला दी कि घर ही धर्म, अर्थ और काम—साधनका स्थान है ॥ २८ ॥ इसीलिये वे गृहस्थोचित श्रेष्ठ धर्मका आश्रय लेकर व्यवहार कर रहे थे। परीक्षित् ! मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि उनकी रानियोंकी संख्या थी सोलह हजार एक सौ आठ ॥ २९ ॥ उन श्रेष्ठ स्त्रियोंमेंसे रुक्मिणी आदि आठ पटरानियों और उनके पुत्रोंका तो मैं पहले ही क्रमसे वर्णन कर चुका हूँ ॥ ३० ॥ उनके अतिरिक्त भगवान् श्रीकृष्णकी और जितनी पत्नियाँ थीं, उनसे भी प्रत्येकके दस-दस पुत्र उत्पन्न किये। यह कोई आश्चर्यकी बात

नहीं है। क्योंकि भगवान् सर्वशक्तिमान् और सत्यसङ्कल्प हैं ॥ ३१ ॥ भगवान्‌के परम पराक्रमी पुत्रोंमें अठारह तो महारथी थे, जिनका यश सारे जगत्‌में फैला हुआ था। उनके नाम मुझसे सुनो ॥ ३२ ॥ प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोध ॥३३-३४॥ राजेन्द्र! भगवान् श्रीकृष्णके इन पुत्रोंमें भी सबसे श्रेष्ठ रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नजी थे। वे सभी गुणोंमें अपने पिताके समान ही थे ॥ ३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी कन्यासे अपना विवाह किया था। उसीके गर्भसे अनिरुद्धजीका जन्म हुआ। उनमें दस हजार हाथियोंका बल था ॥ ३६ ॥ रुक्मीके दौहित्र अनिरुद्धजीने अपने नानाकी पोतीसे विवाह किया। उसके गर्भसे वज्रका जन्म हुआ। ब्राह्मणोंके शापसे पैदा हुए मूसलके द्वारा यदुवंशका नाश हो जानेपर एकमात्र वे ही बच रहे थे ॥ ३७ ॥ वज्रके पुत्र हैं प्रतिबाहु, प्रतिबाहुके सुबाहु, सुबाहुके शान्तसेन और शान्तसेनके शतसेन।३८। परीक्षित्! इस वंशमें कोई भी पुरुष ऐसा न हुआ जो बहुत-सी संतानवाला न हो तथा जो निर्धन, अल्पायु और अल्पशक्ति हो। वे सभी ब्राह्मणोंके भक्त थे ॥३९॥ परीक्षित्! यदुवंशमें ऐसे-ऐसे यशस्वी और पराक्रमी पुरुष हुए हैं, जिनकी गिनती भी हजारों वर्षोंमें पूरी नहीं हो सकती ॥४०॥ मैंने ऐसा सुना है कि यदुवंशके बालकोंको शिक्षा देनेके लिये तीन करोड़ अट्ठासी लाख आचार्य थे ॥४१॥ ऐसी स्थितिमें महात्मा यदुवंशियोंकी संख्या तो बतायी ही कैसे जा सकती है! स्वयं महाराज उग्रसेनके साथ एक नील (१०००००००००००००) के लगभग सैनिक रहते थे ॥ ४२ ॥

परीक्षित्! प्राचीन कालमें देवासुरसंग्रामके समय बहुत-से भयङ्कर असुर मारे गये थे। वे ही मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और बड़े घमंडसे जनताको सताने लगे।४३। उनका दमन करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञासे देवताओंने ही यदुवंशमें अवतार लिया था। परीक्षित्! उनके कुलोंकी संख्या एक सौ एक थी ॥४४॥ वे सब भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना स्वामी एवं आदर्श मानते थे। जो यदुवंशी उनके अनुयायी थे, उनकी सब प्रकारसे उन्नति हुई ॥ ४५ ॥ यदुवंशियोंका चित्त इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णमें लगा रहता था कि उन्हें सोने-बैठने, घूमने-फिरने, बोलने-खेलने और नहाने-धोने आदि कामोंमें अपने शरीरकी भी सुधि न रहती थी। वे जानते ही न थे कि हमारा शरीर क्या कर रहा है। उनकी समस्त शारीरिक क्रियाएँ यन्त्रकी भाँति अपने-आप होती रहती थीं ॥ ४६ ॥

परीक्षित्! भगवान्‌का चरणधोवन गङ्गाजी अवश्य ही समस्त तीर्थोंमें महान् एवं पवित्र हैं। परन्तु जब स्वयं परमतीर्थस्वरूप भगवान्‌ने ही यदुवंशमें अवतार ग्रहण किया, तब तो गङ्गाजलकी महिमा अपने-आप ही उनके सुयशतीर्थकी अपेक्षा कम हो गयी। भगवान्‌के स्वरूपकी यह कितनी बड़ी महिमा है कि उनसे प्रेम करनेवाले भक्त और द्वेष करनेवाले शत्रु दोनों ही उनके स्वरूपको प्राप्त हुए। जिस लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिये बड़े-बड़े देवता यत्न करते रहते हैं, वे ही भगवान्‌की सेवामें नित्य-निरन्तर लगी रहती हैं। भगवान्‌का नाम एक बार सुनने अथवा उच्चारण करनेसे ही सारे अमङ्गलोंको नष्ट कर देता है। ऋषियोंके वंशजोंमें जितने भी धर्म प्रचलित हैं, सबके संस्थापक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। वे अपने हाथमें कालस्वरूप चक्र लिये रहते हैं। परीक्षित्! ऐसी स्थितिमें वे पृथ्वीका भार उतार देते हैं, यह कौन बड़ी बात है ॥ ४७ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण ही समस्त जीवोंके आश्रयस्थान हैं। यद्यपि वे सदा-सर्वदा सर्वत्र उपस्थित ही रहते हैं, फिर भी कहनेके लिये उन्होंने देवकीजीके गर्भसे जन्म लिया है। यदुवंशी वीर पार्षदोंके रूपमें उनकी सेवा करते रहते हैं। उन्होंने अपने भुजबलसे अधर्मका अन्त कर दिया है। परीक्षित्! भगवान् स्वभावसे ही चराचर जगत्‌का दुःख मिटाते रहते हैं। उनका मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त सुन्दर मुखारविन्द व्रजस्त्रियों और पुरस्त्रियोंके हृदयमें प्रेम-भावका सञ्चार करता रहता है। वास्तवमें सारे जगत्‌पर वही विजयी हैं। उन्हींकी जय हो! जय हो!! ॥ ४८ ॥

परीक्षित् ! प्रकृतिसे अतीत परमात्माने अपनेद्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लीला-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेकों अद्भुत चरित्रोंका अभिनय किया । उनका एक-एक कर्म स्मरण करनेवालोंके कर्मबन्धनोंको काट डालनेवाला है । जो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहे, उसे उनकी लीलाओं-का ही श्रवण करना चाहिये ॥ ४९ ॥ परीक्षित् ! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्णकी मनोहारिणी लीला-कथाओंका अधिकाधिक श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करने लगता है, तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान्के परमधाममें पहुँचा देती है । यद्यपि कालकी गतिके परे पहुँच जाना बहुत ही कठिन है, परन्तु भगवान्के धाममें कालकी दाल नहीं गलती । वह वहाँतक पहुँच ही नहीं पाता । उसी धामकी प्राप्तिके लिये अनेक सम्राटोंने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करनेके उद्देश्यसे जंगलकी यात्रा की है । इसलिये मनुष्यको उनकी लीला-कथाका ही श्रवण करना चाहिये ॥ ५० ॥

इति दशम स्कन्ध उत्तरार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्
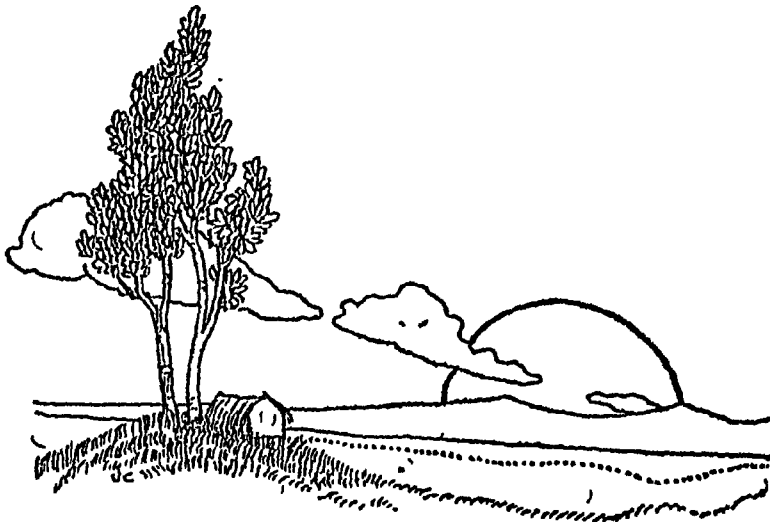
श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

एकादश स्कन्ध

निरस्तनिखिलाज्ञानं ज्ञानाज्ञानविलक्षणम् ।
पूर्णानन्दं किमपि तन्नीलरत्नमहं भजे ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

एकादश स्कन्ध

पहला अध्याय

यदुवंशको ऋषियोंका शाप

व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी कहते हैं— परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजी तथा अन्य यदुवंशियोंके साथ मिलकर बहुत-से दैत्योंका संहार किया तथा कौरव और पाण्डवोंमें भी शीघ्र मार-काट मचानेवाला अत्यन्त प्रबल कलह उत्पन्न करके पृथ्वीका भार उतार दिया ॥ १ ॥ कौरवोंने कपटपूर्ण जूएसे, तरह-तरहके अपमानोंसे तथा द्रौपदीके केश खींचने आदि अत्याचारोंसे पाण्डवोंको अत्यन्त क्रोधित कर दिया था। उन्हीं पाण्डवोंको निमित्त बनाकर भगवान् श्रीकृष्णने दोनों पक्षोंमें एकत्र हुए राजाओंको मरवा डाला और इस प्रकार पृथ्वीका भार हल्का कर दिया ॥ २ ॥ अपने बाहुबलसे सुरक्षित यदुवंशियोंके द्वारा पृथ्वीके भार—राजा और उनकी सेनाका विनाश करके, प्रमाणोंके द्वारा ज्ञानके विषय न होनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने विचार किया कि लोकदृष्टिसे पृथ्वीका भार दूर हो जानेपर भी वस्तुतः मेरी दृष्टिसे अभीतक दूर नहीं हुआ; क्योंकि जिसपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता, वह यदुवंश अभी पृथ्वीपर विद्यमान है ॥ ३ ॥ यह यदुवंश मेरे आश्रित है और हाथी, घोड़े, जनबल, धनबल आदि विशाल वैभवके कारण उच्छृङ्खल हो रहा है। अन्य किसी देवता आदिसे भी इसकी किसी प्रकार पराजय नहीं हो सकती। बाँसके वनमें परस्पर संघर्षसे उत्पन्न अग्निके समान इस यदुवंशमें भी परस्पर कलह खड़ा करके मैं शान्ति प्राप्त कर सकूँगा और इसके बाद अपने धाममें जाऊँगा ॥ ४ ॥ राजन् ! भगवान् सर्वशक्तिमान् और सत्यसङ्कल्प हैं। उन्होंने इस प्रकार अपने मनमें निश्चय करके ब्राह्मणोंके शापके बहाने अपने ही वंशका संहार कर डाला, सबको समेटकर अपने धाममें ले गये ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! भगवान्‌की वह मूर्ति त्रिलोकीके सौन्दर्यका तिरस्कार करनेवाली थी। उन्होंने अपनी सौन्दर्य-माधुरीसे सबके नेत्र अपनी ओर आकर्षित कर लिये थे। उनकी वाणी, उनके उपदेश परम मधुर, दिव्यातिदिव्य थे। उनके द्वारा उन्हें स्मरण करनेवालोंके चित्त उन्होंने छीन लिये थे। उनके चरणकमल त्रिलोक-सुन्दर थे। जिसने उनके एक चरणचिह्नका भी दर्शन कर लिया, उसकी बहिर्मुखता दूर भाग गयी, वह कर्म-प्रपञ्चसे ऊपर उठकर उन्हींकी सेवामें लग गया। उन्होंने अनायास ही पृथ्वीमें अपनी कीर्तिका विस्तार कर दिया, जिसका बड़े-बड़े सुकवियोंने बड़ी ही सुन्दर भाषामें वर्णन किया है। वह इसलिये कि मेरे चले जानेके बाद लोग मेरी इस कीर्तिका गान, श्रवण और स्मरण करके इस अज्ञानरूप अन्धकारसे सुगमतया पार हो जायँगे। इसके बाद परमैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णने अपने धामको प्रयाण किया ॥ ६-७ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! यदुवंशी बड़े ब्राह्मणभक्त थे। उनमें बड़ी उदारता भी थी और वे अपने कुलवृद्धोंकी नित्य-निरन्तर सेवा करनेवाले थे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि उनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगा रहता था; फिर उनसे ब्राह्मणोंका अपराध कैसे बन गया ? और क्यों ब्राह्मणोंने उन्हें शाप दिया ? ॥८॥ भगवान्‌के परम प्रेमी विप्रवर ! उस शापका कारण क्या था तथा क्या स्वरूप था ? समस्त यदुवंशियोंके आत्मा, स्वामी और प्रियतम एकमात्र भगवान्

श्रीकृष्ण ही थे; फिर उनमें फूट कैसे हुई? दूसरी दृष्टिसे देखें तो वे सब ऋषि अद्वैतदर्शी थे, फिर उनको ऐसी भेददृष्टि कैसे हुई? यह सब आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णने वह शरीर धारण करके जिसमें सम्पूर्ण सुन्दर पदार्थोंका सन्निवेश था (नेत्रोंमें मृगनयन, कन्धोंमें सिंहस्कन्ध, करोंमें करि-कर, चरणोंमें कमल आदिका विन्यास था।) पृथ्वीमें मङ्गलमय कल्याणकारी कर्मोंका आचरण किया। वे पूर्णकाम प्रभु द्वारकाधाममें रहकर क्रीडा करते रहे और उन्होंने अपनी उदार कीर्तिकी स्थापना की। (जो कीर्ति स्वयं अपने आश्रय तकका दान कर सके वह उदार है।) अन्तमें श्रीहरिने अपने कुलके संहार—उपसंहारकी इच्छा की; क्योंकि अब पृथ्वीका भार उतरनेमें इतना ही कार्य शेष रह गया था ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे परम मङ्गलमय और पुण्य-प्रापक कर्म किये, जिनका गान करनेवाले लोगोंके सारे कलिमल नष्ट हो जाते हैं। अब भगवान् श्रीकृष्ण महाराज उग्रसेनकी राजधानी द्वारकापुरीमें वसुदेवजीके घर यादवोंका संहार करनेके लिये कालरूपसे ही निवास कर रहे थे। उस समय उनके विदा कर देनेपर—विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ और नारद आदि बड़े-बड़े ऋषि द्वारकाके पास ही पिण्डारकक्षेत्रमें जाकर निवास करने लगे थे ॥ ११-१२ ॥

एक दिन यदुवंशके कुछ उद्दण्ड कुमार खेलते-खेलते उनके पास जा निकले। उन्होंने बनावटी नम्रतासे उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रश्न किया ॥ १३ ॥ वे जाम्बवतीनन्दन साम्बको स्त्रीके वेषमें सजाकर ले गये और कहने लगे, 'ब्राह्मणो! यह कजरारी आँखोंवाली सुन्दरी गर्भवती है। यह आपसे एक बात पूछना चाहती है। परन्तु स्वयं पूछनेमें सकुचाती है। आपलोगोंका ज्ञान अमोघ—अबाध है, आप सर्वज्ञ हैं। इसे पुत्रकी बड़ी लालसा है और अब प्रसवका समय निकट आ गया है। आपलोग बताइये, यह कन्या जनेगी या पुत्र?' ॥ १४-१५ ॥ परीक्षित्! जब उन कुमारोंने इस प्रकार उन ऋषि-मुनियोंको धोखा देना चाहा, तब वे भगवत्प्रेरणासे क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा—'मूर्खो! यह एक ऐसा मूसल पैदा करेगी, जो तुम्हारे कुलका नाश करनेवाला होगा॥ १६ ॥ मुनियोंकी यह बात सुनकर वे बालक बहुत ही डर गये। उन्होंने तुरंत साम्बका पेट खोलकर देखा तो सचमुच उसमें एक लोहेका मूसल मिला ॥ १७ ॥ अब तो वे पछताने लगे और कहने लगे—'हम बड़े अभागे हैं। देखो, हमलोगोंने यह क्या अनर्थ कर डाला? अब लोग हमें क्या कहेंगे?' इस प्रकार वे बहुत ही घबरा गये तथा मूसल लेकर अपने निवासस्थानमें गये ॥ १८ ॥ उस समय उनके चेहरे फीके पड़ गये थे। मुख कुम्हला गये थे। उन्होंने भरी सभामें सब यादवोंके सामने ले जाकर वह मूसल रख दिया और राजा उग्रसेनसे सारी घटना कह सुनायी ॥ १९ ॥ राजन्! जब सब लोगोंने ब्राह्मणोंके शापकी बात सुनी और अपनी आँखोंसे उस मूसलको देखा, तब सब-के-सब द्वारकावासी विस्मित और भयभीत हो गये; क्योंकि वे जानते थे कि ब्राह्मणोंका शाप कभी झूठा नहीं होता ॥ २० ॥ यदुराज उग्रसेनने उस मूसलको चूरा-चूरा करा डाला और उस चूरे तथा लोहेके बचे हुए छोटे टुकड़ेको समुद्रमें फेंकवा दिया। (इसके सम्बन्धमें उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे कोई सलाह न ली; ऐसी ही उनकी प्रेरणा थी) ॥ २१ ॥

परीक्षित्! उस लोहेके टुकड़ेको एक मछली निगल गयी और चूरा तरङ्गोंके साथ बह-बहकर समुद्रके किनारे आ लगा। वह थोड़े दिनोंमें एरक (बिना गाँठकी एक घास) के रूपमें उग आया ॥ २२ ॥ मछली मारनेवाले मछुओंने समुद्रमें दूसरी मछलियोंके साथ उस मछलीको भी पकड़ लिया। उसके पेटमें जो लोहेका टुकड़ा था, उसको जरा नामक व्याधने अपने बाणके नोकमें लगा लिया ॥ २३ ॥ भगवान् सब कुछ जानते थे। वे इस शापको उलट भी सकते थे। फिर भी उन्होंने ऐसा करना उचित न समझा। कालरूपधारी प्रभुने ब्राह्मणोंके शापका अनुमोदन ही किया ॥ २४ ॥

दूसरा अध्याय

वसुदेवजीके पास श्रीनारदजीका आना और उन्हें राजा जनक तथा नौ योगीश्वरोंका संवाद सुनाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कुरुनन्दन ! देवर्षि नारदके मनमें भगवान् श्रीकृष्णकी सन्निधिमें रहनेकी बड़ी लालसा थी। इसलिये वे श्रीकृष्णके निज बाहुओंसे सुरक्षित द्वारकामें—जहाँ दक्ष आदिके शापका कोई भय नहीं था, विदा कर देनेपर भी पुनः-पुनः आकर प्रायः रहा ही करते थे ॥ १ ॥ राजन् ! ऐसा कौन प्राणी है, जिसे इन्द्रियाँ तो प्राप्त हों और वह भगवान्‌के ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओंके भी उपास्य चरणकमलोंकी दिव्य गन्ध, मधुर मकरन्द-रस, अलौकिक रूपमाधुरी, सुकुमार स्पर्श और मङ्गलमय ध्वनिका सेवन करना न चाहे ? क्योंकि यह बेचारा प्राणी सब ओरसे मृत्युसे ही घिरा हुआ है ॥ २ ॥ एक दिनकी बात है, देवर्षि नारद वसुदेवजीके यहाँ पधारे। वसुदेवजीने उनका अभिवादन किया तथा आरामसे बैठ जानेपर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और इसके बाद पुनः प्रणाम करके उनसे यह बात कही ॥ ३ ॥

वसुदेवजीने कहा—संसारमें माता-पिताका आगमन पुत्रोंके लिये और भगवान्‌की ओर अग्रसर होनेवाले साधु-संतोंका पदार्पण प्रपञ्चमें उलझे हुए दीन-दुखियोंके लिये बड़ा ही सुखकर और बड़ा ही मङ्गलमय होता है। परन्तु भगवन् ! आप तो स्वयं भगवन्मय, भगवत्स्वरूप हैं। आपका चलना-फिरना तो समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिये ही होता है ॥ ४ ॥ देवताओंके चरित्र भी कभी प्राणियोंके लिये दुःखके हेतु, तो कभी सुखके हेतु बन जाते हैं। परन्तु जो आप-जैसे भगवत्प्रेमी पुरुष हैं—जिनका हृदय, प्राण, जीवन, सब कुछ भगवन्मय हो गया है—उनकी तो प्रत्येक चेष्टा समस्त प्राणियोंके कल्याणके लिये ही होती है ॥ ५ ॥ जो लोग देवताओंका जिस प्रकार भजन करते हैं, देवता भी परछाईके समान ठीक उसी रीतिसे भजन करनेवालोंको फल देते हैं; क्योंकि देवता कर्मके मन्त्री हैं, अधीन हैं। परन्तु सत्पुरुष दीनवत्सल होते हैं अर्थात् जो सांसारिक सम्पत्ति एवं साधनसे भी हीन हैं, उन्हें अपनाते हैं ॥ ६ ॥ ब्रह्मन् ! (यद्यपि हम आपके शुभागमन और शुभ दर्शनसे ही कृतकृत्य हो गये हैं) तथापि आपसे उन धर्मोंके—साधनोंके सम्बन्धमें प्रश्न कर रहे हैं, जिनको मनुष्य श्रद्धासे सुन भर ले तो इस सब ओरसे भयदायक संसारसे मुक्त हो जाय ॥ ७ ॥ पहले जन्ममें मैंने मुक्ति देनेवाले भगवान्‌की आराधना तो की थी, परन्तु इसलिये नहीं कि मुझे मुक्ति मिले। मेरी आराधनाका उद्देश्य था कि वे मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त हों। उस समय मैं भगवान्‌की लीलासे मुग्ध हो रहा था ॥ ८ ॥ सुव्रत ! अब आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं इस जन्म-मृत्युरूप भयावह संसारसे—जिसमें दुःख भी सुखका विचित्र और मोहक रूप धारण करके सामने आते हैं—अनायास ही पार हो जाऊँ ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! बुद्धिमान् वसुदेवजीने भगवान्‌के स्वरूप और गुण आदिके श्रवणके अभिप्रायसे ही यह प्रश्न किया था। देवर्षि नारद उनका प्रश्न सुनकर भगवान्‌के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणोंके स्मरणमें तन्मय हो गये और प्रेम एवं आनन्दमें भरकर वसुदेवजीसे बोले ॥ १० ॥

नारदजीने कहा—यदुवंशशिरोमणे ! तुम्हारा यह निश्चय बहुत ही सुन्दर है; क्योंकि यह भागवत धर्मके सम्बन्धमें है, जो सारे विश्वको जीवन-दान देनेवाला है, पवित्र करनेवाला है ॥ ११ ॥ वसुदेवजी ! यह भागवत-धर्म एक ऐसी वस्तु है, जिसे कानोंसे सुनने, वाणीसे उच्चारण करने, चित्तसे स्मरण करने, हृदयसे स्वीकार करने या कोई इसका पालन करने जा रहा हो तो उसका अनुमोदन करनेसे ही मनुष्य उसी क्षण पवित्र हो जाता है—चाहे वह सारे संसारका द्रोही ही क्यों न हो ॥ १२ ॥ जिनके गुण, लीला और नाम आदिका श्रवण तथा कीर्तन पतितोंको भी पावन करनेवाला है, उन्हीं परम कल्याणस्वरूप मेरे आराध्यदेव भगवान् नारायणका तुमने आज मुझे स्मरण कराया है ॥ १३ ॥ वसुदेवजी ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, इसके सम्बन्धमें संत पुरुष एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं।

वह इतिहास है—ऋषभके पुत्र नौ योगीश्वरों और महात्मा विदेहका शुभ संवाद ॥ १४ ॥ तुम जानते ही हो कि स्वायम्भुव मनुके एक प्रसिद्ध पुत्र थे प्रियव्रत। प्रियव्रतके आग्नीध्र, आग्नीध्रके नाभि और नाभिके पुत्र हुए ऋषभ ॥ १५ ॥ शास्त्रोंने उन्हें भगवान् वासुदेवका अंश कहा है। मोक्षधर्मका उपदेश करनेके लिये उन्होंने अवतार ग्रहण किया था। उनके सौ पुत्र थे और सब-के-सब वेदोंके पारदर्शी विद्वान् थे ॥ १६ ॥ उनमें सबसे बड़े थे राजर्षि भरत। वे भगवान् नारायणके परम प्रेमी भक्त थे। उन्हींके नामसे यह भूमिखण्ड, जो पहले 'अजनाभवर्ष' कहलाता था, 'भारतवर्ष' कहलाया। यह भारतवर्ष भी एक अलौकिक स्थान है ॥ १७ ॥ राजर्षि भरतने सारी पृथ्वीका राज्य-भोग किया, परन्तु अन्तमें इसे छोड़कर वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने तपस्याके द्वारा भगवान्‌की उपासना की और तीन जन्मोंमें वे भगवान्‌को प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ भगवान् ऋषभदेवजीके शेष निन्यानबे पुत्रोंमें नौ पुत्र तो इस भारतवर्षके सब ओर स्थित नौ द्वीपोंके अधिपति हुए और इक्यासी पुत्र कर्मकाण्डके रचयिता ब्राह्मण हो गये ॥ १९ ॥ शेष नौ संन्यासी हो गये। वे बड़े ही भाग्यवान् थे। उन्होंने आत्मविद्याके सम्पादनमें बड़ा परिश्रम किया था और वास्तवमें वे उसमें बड़े निपुण थे। वे प्रायः दिगम्बर ही रहते थे और अधिकारियोंको परमार्थ-वस्तुका उपदेश किया करते थे। उनके नाम थे—कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन ॥ २०-२१ ॥ वे इस कार्य-कारण और व्यक्त-अव्यक्त भगवद्रूप जगत्‌को अपने आत्मासे अभिन्न अनुभव करते हुए पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण करते थे ॥ २२ ॥ उनके लिये कहीं भी रोक-टोक न थी। वे जहाँ चाहते, चले जाते। देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य, किन्नर और नागोंके लोकोंमें तथा मुनि, चारण, भूतनाथ, विद्याधर, ब्राह्मण और गौओंके स्थानोंमें वे स्वच्छन्द विचरते थे। वसुदेवजी! वे सब-के-सब जीवन्मुक्त थे ॥ २३ ॥

एक बारकी बात है, इस अजनाभ (भारत) वर्षमें विदेहराज महात्मा निमि बड़े-बड़े ऋषियोंके द्वारा एक महान् यज्ञ करा रहे थे। पूर्वोक्त नौ योगीश्वर स्वच्छन्द विचरण करते हुए उनके यज्ञमें जा पहुँचे ॥ २४ ॥ वसुदेवजी! वे योगीश्वर भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त और सूर्यके समान तेजस्वी थे। उन्हें देखकर राजा निमि, आहवनीय आदि मूर्तिमान् अग्नि और ऋत्विज आदि ब्राह्मण सब-के-सब उनके स्वागतमें खड़े हो गये ॥ २५ ॥ विदेहराज निमिने उन्हें भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त जानकर यथायोग्य आसनोंपर बैठाया और प्रेम तथा आनन्दसे भरकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की ॥ २६ ॥ वे नवों योगीश्वर अपने अङ्गोंकी कान्तिसे इस प्रकार चमक रहे थे, मानो साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र सनकादि मुनीश्वर ही हों! राजा निमिने विनयसे झुककर परम प्रेमके साथ उनसे प्रश्न किया ॥ २७ ॥

विदेहराज निमिने कहा—भगवन्! मैं ऐसा समझता हूँ कि आपलोग मधुसूदन भगवान्‌के पार्षद ही हैं, क्योंकि भगवान्‌के पार्षद संसारी प्राणियोंको पवित्र करनेके लिये विचरण किया करते हैं ॥ २८ ॥ जीवोंके लिये मनुष्य-शरीरका प्राप्त होना दुर्लभ है। यदि यह प्राप्त भी हो जाता है तो प्रतिक्षण मृत्युका भय सिरपर सवार रहता है; क्योंकि यह क्षणभङ्गुर है। इसलिये अनिश्चित मनुष्य-जीवनमें भगवान्‌के प्यारे और उनको प्यार करनेवाले भक्तजनोंका, संतोंका दर्शन तो और भी दुर्लभ है ॥ २९ ॥ इसलिये त्रिलोकपावन महात्माओ! हम आपलोगोंसे यह प्रश्न करते हैं कि परम कल्याणका स्वरूप क्या है? और उसका साधन क्या है? इस संसारमें आधे क्षणका सत्सङ्ग भी मनुष्योंके लिये परम निधि है ॥ ३० ॥ योगीश्वरो! यदि हम सुननेके अधिकारी हों तो आप कृपा करके भागवत-धर्मोंका उपदेश कीजिये; क्योंकि उनसे जन्मादि विकारसे रहित, एकरस भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं और उन धर्मोंका पालन करनेवाले शरणागत भक्तोंको अपने-आप तकका दान कर डालते हैं ॥ ३१ ॥

देवर्षि नारदजीने कहा—वसुदेवजी! जब राजा निमिने उन भगवत्प्रेमी संतोंसे यह प्रश्न किया, तब उन लोगोंने बड़े प्रेमसे उनका और उनके प्रश्नका सम्मान

किया और सदस्य तथा ऋत्विजोंके साथ बैठे हुए राजा निमिसे बोले ॥ ३२ ॥

पहले उन नौ योगीश्वरोंमेंसे कविजीने कहा—राजन् ! भक्तजनोंके हृदयसे कभी दूर न होनेवाले अच्युत भगवान्‌के चरणोंकी नित्य निरन्तर उपासना ही इस संसारमें परम कल्याण—आत्यन्तिक क्षेम है और सर्वथा भयशून्य है, ऐसा मेरा निश्चित मत है। देह, गेह आदि तुच्छ एवं असत् पदार्थोंमें अहंता एवं ममता हो जानेके कारण जिन लोगोंकी चित्तवृत्ति उद्विग्न हो रही है, उनका भय भी इस उपासनाका अनुष्ठान करनेपर पूर्णतया निवृत्त हो जाता है ॥ ३३ ॥ भगवान्‌ने भोले-भाले अज्ञानी पुरुषोंको भी सुगमतासे साक्षात् अपनी प्राप्तिके लिये जो उपाय स्वयं श्रीमुखसे बतलाये हैं, उन्हें ही 'भागवत धर्म' समझो ॥ ३४ ॥ राजन् ! इन भागवतधर्मोंका अवलम्बन करके मनुष्य कभी विघ्नोंसे पीड़ित नहीं होता और नेत्र बंद करके दौड़नेपर भी अर्थात् विधि-विधानमें त्रुटि हो जानेपर भी न तो मार्गसे स्खलित ही होता है और न तो पतित—फलसे वञ्चित ही होता है ॥ ३५ ॥ (भागवतधर्मका पालन करनेवालेके लिये यह नियम नहीं है कि वह एक विशेष प्रकारका कर्म ही करे।) वह शरीरसे, वाणीसे, मनसे, इन्द्रियोंसे, बुद्धिसे, अहङ्कारसे, अनेक जन्मों अथवा एक जन्मकी आदतोंसे स्वभाववश जो-जो करे, वह सब परमपुरुष भगवान् नारायणके लिये ही है—इस भावसे उन्हें समर्पण कर दे। (यही सरल-से-सरल, सीधा-सा भागवतधर्म है) ॥ ३६ ॥ ईश्वरसे विमुख पुरुषको उनकी मायासे अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृतिसे ही 'मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ,' इस प्रकारका भ्रम--विपर्यय हो जाता है। इस देह आदि अन्य वस्तुमें अभिनिवेश, तन्मयता होनेके कारण ही बुढ़ापा, मृत्यु, रोग आदि अनेकों भय होते हैं। इसलिये अपने गुरुको ही आराध्यदेव परम प्रियतम मानकर अनन्य भक्तिके द्वारा उस ईश्वरका भजन करना चाहिये ॥ ३७॥ राजन् ! सच पूछो तो भगवान्‌के अतिरिक्त, आत्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। परन्तु न होनेपर भी इसकी प्रतीति इसका चिन्तन करनेवालेको उसके चिन्तनके कारण, उधर मन लगनेके कारण ही होती है—जैसे स्वप्नके समय स्वप्नद्रष्टाकी कल्पनासे अथवा जाग्रत् अवस्थामें नाना प्रकारके मनोरथोंसे एक विलक्षण ही सृष्टि दीखने लगती है। इसलिये विचारवान् पुरुषको चाहिये कि सांसारिक कर्मोंके सम्बन्धमें सङ्कल्प-विकल्प करनेवाले मनको रोक दे—कैद कर ले। बस, ऐसा करते ही उसे अभय पदकी, परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३८ ॥ संसारमें भगवान्‌के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्‌के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-सङ्कोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये ॥ ३९ ॥ जो इस प्रकार विशुद्ध व्रत—नियम ले लेता है, उसके हृदयमें अपने परम प्रियतम प्रभुके नाम-कीर्तनसे अनुरागका, प्रेमका अङ्कुर उग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगोंकी स्थितिसे ऊपर उठ जाता है। लोगोंकी मान्यताओं, धारणाओंसे परे हो जाता है। और दम्भसे नहीं, स्वभावसे ही मतवाला-सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वरसे भगवान्‌को पुकारने लगता है तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है। कभी-कभी जब वह अपने प्रियतमको अपने नेत्रोंके सामने अनुभव करता है, तब उन्हें रिझानेके लिये नृत्य भी करने लगता है ॥ ४० ॥ राजन् ! यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सब-के-सब भगवान्‌के शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं। ऐसा समझकर वह, जो कोई भी उसके सामने आ जाता है—चाहे वह प्राणी हो या अप्राणी—उसे अनन्यभावसे भगवद्भावसे प्रणाम करता है ॥ ४१ ॥ जैसे भोजन करनेवालेको प्रत्येक ग्रासके साथ ही तुष्टि (तृप्ति अथवा सुख), पुष्टि (जीवनशक्तिका सञ्चार) और क्षुधा-निवृत्ति—ये तीनों एक साथ होते जाते हैं; वैसे ही जो मनुष्य भगवान्‌की शरण लेकर उनका भजन करने लगता है, उसे भजनके प्रत्येक क्षणमें भगवान्‌के प्रति प्रेम, अपने प्रेमास्पद प्रभुके स्वरूपका अनुभव और उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंमें वैराग्य—इन तीनोंकी

एक साथ ही प्राप्ति होती जाती है ॥ ४२ ॥ राजन् ! इस प्रकार जो प्रतिक्षण एक-एक वृत्तिके द्वारा भगवान्के चरण-कमलोंका ही भजन करता है, उसे भगवान्के प्रति प्रेममयी भक्ति, संसारके प्रति वैराग्य और अपने प्रियतम भगवान्के स्वरूपकी स्फूर्ति—ये सब अवश्य ही प्राप्त होते हैं; वह भागवत हो जाता है और जब ये सब प्राप्त हो जाते हैं, तब वह स्वयं परम शान्तिका अनुभव करने लगता है ॥ ४३ ॥

राजा निमिने पूछा—योगीश्वर ! अब आप कृपा करके भगवद्भक्तका लक्षण वर्णन कीजिये । उसके क्या धर्म हैं ? और कैसा स्वभाव होता है ? वह मनुष्योंके साथ व्यवहार करते समय कैसा आचरण करता है ? क्या बोलता है ? और किन लक्षणोंके कारण भगवान्का प्यारा होता है ? ॥ ४४ ॥

अब नौ योगीश्वरोंमेंसे दूसरे हरिजी बोले—राजन् ! आत्मस्वरूप भगवान् समस्त प्राणियोंमें आत्मारूपसे—नियन्तारूपसे स्थित हैं । जो कहीं भी न्यूनाधिकता न देखकर सर्वत्र परिपूर्ण भगवत्सत्ताको ही देखता है और साथ ही समस्त प्राणी और समस्त पदार्थ आत्मस्वरूप भगवान्में ही आधेयरूपसे अथवा अध्यस्तरूपसे स्थित हैं, अर्थात् वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही हैं—इस प्रकारका जिसका अनुभव है, ऐसी जिसकी सिद्ध दृष्टि है, उसे भगवान्का परमप्रेमी उत्तम भागवत समझना चाहिये ॥ ४५ ॥ जो भगवान्से प्रेम, उनके भक्तोंसे मित्रता, दुखी और अज्ञानियोंपर कृपा तथा भगवान्से द्वेष करनेवालोंकी उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटिका भागवत है ॥ ४६ ॥ और जो भगवान्के अर्चा-विग्रह—मूर्ति आदिकी पूजा तो श्रद्धासे करता है, परन्तु भगवान्के भक्तों या दूसरे लोगोंकी विशेष सेवा-शुश्रूषा नहीं करता, वह साधारण श्रेणीका भगवद्भक्त है ॥ ४७ ॥ जो श्रोत्र-नेत्र आदि इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोंका ग्रहण तो करता है; परन्तु अपनी इच्छाके प्रतिकूल विषयोंसे द्वेष नहीं करता और अनुकूल विषयोंके मिलनेपर हर्षित नहीं होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्की माया है—वह पुरुष उत्तम भागवत है ॥ ४८ ॥ संसारके धर्म हैं—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट, भय और तृष्णा । ये क्रमशः शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते ही रहते हैं । जो पुरुष भगवान्की स्मृतिमें इतना तन्मय रहता है कि इनके बार-बार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नहीं होता, पराभूत नहीं होता, वह उत्तम भागवत है ॥ ४९ ॥ जिसके मनमें विषय-भोगकी इच्छा, कर्म-प्रवृत्ति और उनके बीज वासनाओंका उदय नहीं होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमें ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त है ॥ ५० ॥ जिनका इस शरीरमें न तो सत्कुलमें जन्म, तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एवं जातिसे ही अहंभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान्का प्यारा है ॥ ५१ ॥ जो धन-सम्पत्ति अथवा शरीर आदिमें 'यह अपना है और यह पराया—' इस प्रकारका भेद-भाव नहीं रखता, समस्त पदार्थोंमें समस्वरूप परमात्माको देखता रहता है, समभाव रखता है तथा किसी भी घटना अथवा सङ्कल्पसे विक्षिप्त न होकर शान्त रहता है, वह भगवान्का उत्तम भक्त है ॥ ५२ ॥ राजन् ! बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्तःकरणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हें ढूँढ़ते रहते हैं—भगवान्के ऐसे चरणकमलोंसे आधे क्षण, आधे पलके लिये भी जो नहीं हटता, निरन्तर उन चरणोंकी सन्निधि और सेवामें ही संलग्न रहता है; यहाँतक कि कोई स्वयं उसे त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्स्मृतिका तार नहीं तोड़ता, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नहीं देता; वही पुरुष वास्तवमें भगवद्भक्त वैष्णवोंमें अग्रगण्य है, सबसे श्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ रास-लीलाके अवसरपर नृत्य-गतिसे भाँति-भाँतिके पाद-विन्यास करनेवाले निखिल सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान्के चरणोंके अङ्गुलि-नखकी मणि-चन्द्रिकासे जिन शरणागत भक्तजनोंके हृदयका विरहजन्य संताप एक बार दूर हो चुका है, उनके हृदयमें वह फिर कैसे आ सकता है, जैसे चन्द्रोदय होनेपर सूर्यका ताप नहीं लग सकता ॥ ५४ ॥ विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण अघ-राशिको नष्ट कर देनेवाले स्वयं भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नहीं छोड़ते हैं, क्योंकि उसने प्रेमकी रस्सीसे उनके चरण-कमलोंको बाँध रक्खा है, वास्तवमें ऐसा पुरुष ही भगवान्के भक्तोंमें प्रधान है ॥ ५५ ॥

तीसरा अध्याय

माया, मायासे पार होनेके उपाय तथा ब्रह्म और कर्मयोगका निरूपण

राजा निमिने पूछा—भगवन् ! सर्वशक्तिमान् परम-कारण विष्णुभगवान्‌की माया बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहित कर देती है, उसे कोई पहचान नहीं पाता; (और आप कहते हैं कि भक्त उसे देखा करता है ।) अतः अब मैं उस मायाका स्वरूप जानना चाहता हूँ, आपलोग कृपा करके बतलाइये ॥ १ ॥ योगीश्वरो ! मैं एक मृत्युका शिकार मनुष्य हूँ । संसारके तरह-तरहके तापोंने मुझे बहुत दिनोंसे तपा रक्खा है । आपलोग जो भगवत्कथारूप अमृतका पान करा रहे हैं, वह उन तापोंको मिटानेकी एकमात्र ओषधि है; इसलिये मैं आपलोगोंकी इस वाणीका सेवन करते-करते तृप्त नहीं होता । आप कृपया और कहिये ॥ २ ॥

अब तीसरे योगीश्वर अन्तरिक्षजीने कहा—राजन् ! (भगवान्‌की माया स्वरूपतः अनिर्वचनीय है, इसलिये उसके कार्योंके द्वारा ही उसका निरूपण होता है ।) आदि पुरुष परमात्मा जिस शक्तिसे सम्पूर्ण भूतोंके कारण बनते हैं और उनके विषय-भोग तथा मोक्षकी सिद्धिके लिये अथवा अपने उपासकोंकी उत्कृष्ट सिद्धिके लिये स्वनिर्मित पञ्चभूतोंके द्वारा नाना प्रकारके देव, मनुष्य आदि शरीरोंकी सृष्टि करते हैं, उसीको 'माया' कहते हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकार पञ्चमहाभूतोंके द्वारा बने हुए प्राणि-शरीरोंमें उन्होंने अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश किया और अपनेको ही पहले एक मनके रूपमें और इसके बाद पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रिय—इन दस रूपोंमें विभक्त कर दिया तथा उन्हींके द्वारा विषयोंका भोग कराने लगे ॥ ४ ॥ वह देहाभिमानी जीव अन्तर्यामीके द्वारा प्रकाशित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका भोग करता है और इस पञ्चभूतोंके द्वारा निर्मित शरीरको आत्मा—अपना स्वरूप मानकर उसीमें आसक्त हो जाता है । (यह भगवान्‌की माया है) ॥ ५ ॥ अब वह कर्मेन्द्रियोंसे सकाम कर्म करता है और उनके अनुसार शुभ कर्मका फल सुख और अशुभ कर्मका फल दुःख भोग करने लगता है और शरीरधारी होकर इस संसारमें भटकने लगता है । यह भगवान्‌की माया है ॥ ६ ॥ इस प्रकार यह जीव ऐसी अनेक अमङ्गलमय कर्मगतियोंको, उनके फलोंको प्राप्त होता है और महाभूतोंके प्रलयपर्यन्त विवश होकर जन्मके बाद मृत्यु और मृत्युके बाद जन्मको प्राप्त होता रहता है—यह भगवान्‌की माया है ॥ ७ ॥ जब पञ्चभूतोंके प्रलयका समय आता है, तब अनादि और अनन्त काल स्थूल तथा सूक्ष्म द्रव्य एवं गुणरूप इस समस्त व्यक्त सृष्टिको अव्यक्तकी ओर, उसके मूल कारणकी ओर खींचता है—यह भगवान्‌की माया है ॥८॥ उस समय पृथ्वीपर लगातार सौ वर्षतक भयङ्कर सूखा पड़ता है, वर्षा बिल्कुल नहीं होती; प्रलयकालकी शक्तिसे सूर्यकी उष्णता और भी बढ़ जाती है तथा वे तीनों लोकोंको तपाने लगते हैं—यह भगवान्‌की माया है ॥ ९ ॥ उस समय शेषनाग—सङ्कर्षणके मुँहसे आगकी प्रचण्ड लपटें निकलती हैं और वायुकी प्रेरणासे वे लपटें पाताल-लोकसे जलाना आरम्भ करती हैं तथा और भी ऊँची-ऊँची होकर चारों ओर फैल जाती हैं—यह भगवान्‌की माया है ॥ १० ॥ इसके बाद प्रलयकालीन सांवर्तक मेघगण हाथीकी सूँडके समान मोटी-मोटी धाराओंसे सौ वर्षतक बरसता रहता है । उससे यह विराट् ब्रह्माण्ड जलमें डूब जाता है—यह भगवान्‌की माया है ॥ ११ ॥ राजन् ! उस समय जैसे बिना ईंधनके आग बुझ जाती है, वैसे ही विराट् पुरुष ब्रह्मा अपने ब्रह्माण्ड-शरीरको छोड़कर सूक्ष्मस्वरूप अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं—यह भगवान्‌की माया है ॥ १२ ॥ वायु पृथ्वीकी गन्ध खींच लेती है, जिससे वह जलके रूपमें हो जाती है और जब वही वायु जलके रसको खींच लेती है, तब वह जल अपना कारण अग्नि बन जाता है—यह भगवान्‌की माया है ॥ १३ ॥ जब अन्धकार अग्निका रूप छीन लेता है, तब वह अग्नि वायुमें लीन हो जाती है और जब अवकाशरूप आकाश वायुकी स्पर्श-शक्ति छीन लेता है, तब वह आकाशमें लीन हो जाता है—यह भगवान्‌की माया है ॥ १४ ॥ राजन् ! तदनन्तर कालरूप ईश्वर आकाशके शब्द गुणको हरण कर लेता है जिससे वह तामस अहङ्कारमें लीन हो जाता है । इन्द्रियाँ और

बुद्धि राजस अहङ्कारमें लीन होती हैं। मन सात्त्विक अहङ्कारसे उत्पन्न देवताओंके साथ सात्त्विक अहङ्कारमें प्रवेश कर जाता है तथा अपने तीन प्रकारके कार्योंके साथ अहङ्कार महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है। महत्तत्त्व प्रकृतिमें और प्रकृति ब्रह्ममें लीन होती है। फिर इसीके उलटे क्रमसे सृष्टि होती है। यह भगवान्‌की माया है ॥ १५ ॥ यह सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली त्रिगुणमयी माया है। इसका हमने आपसे वर्णन किया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ १६ ॥

राजा निमिने पूछा—महर्षिजी! इस भगवान्‌की मायाको पार करना उन लोगोंके लिये तो बहुत ही कठिन है, जो अपने मनको वशमें नहीं कर पाये हैं। अब आप कृपा करके यह बताइये कि जो लोग शरीर आदिमें आत्मबुद्धि रखते हैं तथा जिनकी समझ मोटी है, वे भी अनायास ही इसे कैसे पार कर सकते हैं? ॥१७॥

अब चौथे योगीश्वर प्रबुद्धजी बोले—राजन्! स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध आदि बन्धनोंमें बँधे हुए संसारी मनुष्य सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिये बड़े-बड़े कर्म करते रहते हैं। जो पुरुष मायाके पार जाना चाहता है, उसको विचार करना चाहिये कि उनके कर्मोंका फल किस प्रकार विपरीत होता जाता है। वे सुखके बदले दुःख पाते हैं और दुःख-निवृत्तिके स्थानपर दिनोंदिन दुःख बढ़ता ही जाता है ॥ १८ ॥ एक धनको ही लो। इससे दिन-पर-दिन दुःख बढ़ता ही है, इसको पाना भी कठिन है और यदि किसी प्रकार मिल भी जाय तो आत्माके लिये तो यह मृत्युस्वरूप ही है। जो इसकी उलझनोंमें पड़ जाता है, वह अपने-आपको भूल जाता है। इसी प्रकार घर, पुत्र, स्वजन-सम्बन्धी, पशु-धन आदि भी अनित्य और नाशवान् ही हैं; यदि कोई इन्हें जुटा भी ले तो इनसे क्या सुख-शान्ति मिल सकती है? ॥ १९ ॥ इसी प्रकार जो मनुष्य मायासे पार जाना चाहता है, उसे यह भी समझ लेना चाहिये कि मरनेके बाद प्राप्त होनेवाले लोक—परलोक भी ऐसे ही नाशवान् हैं। क्योंकि इस लोककी वस्तुओंके समान वे भी कुछ सीमित कर्मोंके सीमित फलमात्र हैं। वहाँ भी पृथ्वीके छोटे-छोटे राजाओंके समान बराबरवालोंसे होड़ अथवा लाग-डाँट रहती है, अधिक ऐश्वर्य और सुखवालोंके प्रति छिद्रान्वेषण तथा ईर्ष्या-द्वेषका भाव रहता है, कम सुख और ऐश्वर्यवालोंके प्रति घृणा रहती है एवं कर्मोंका फल पूरा हो जानेपर वहाँसे पतन तो होता ही है। उसका नाश निश्चित है। नाशका भय वहाँ भी नहीं छूट पाता ॥ २० ॥ इसलिये जो परम कल्याणका जिज्ञासु हो, उसे गुरुदेवकी शरण लेनी चाहिये। गुरुदेव ऐसे हों, जो शब्दब्रह्म—वेदोंके पारदर्शी विद्वान् हों, जिससे वे ठीक-ठीक समझा सकें; और साथ ही परब्रह्ममें परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी भी हों, ताकि अपने अनुभवके द्वारा प्राप्त हुई रहस्यकी बातोंको बता सकें। उनका चित्त शान्त हो, व्यवहारके प्रपञ्चमें विशेष प्रवृत्त न हो ॥ २१ ॥ जिज्ञासुको चाहिये कि गुरुको ही अपना परम प्रियतम आत्मा और इष्टदेव माने। उनकी निष्कपटभावसे सेवा करे और उनके पास रहकर भागवतधर्मकी—भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले भक्तिभावके साधनोंकी क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे। इन्हीं साधनोंसे सर्वात्मा एवं भक्तको अपने आत्माका दान करनेवाले भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ २२ ॥ पहले शरीर, सन्तान आदिमें मनकी अनासक्ति सीखे। फिर भगवान्‌के भक्तोंसे प्रेम कैसा करना चाहिये—यह सीखे। इसके पश्चात् प्राणियोंके प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनयकी निष्कपट भावसे शिक्षा ग्रहण करे ॥ २३ ॥ मिट्टी, जल आदिसे बाह्य शरीरकी पवित्रता, छल-कपट आदिके त्यागसे भीतरकी पवित्रता, अपने धर्मका अनुष्ठान, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें हर्ष-विषादसे रहित होना सीखे ॥ २४ ॥ सर्वत्र अर्थात् समस्त देश, काल और वस्तुओंमें चेतनरूपसे आत्मा और नियन्तारूपसे ईश्वरको देखना, एकान्तसेवन, 'यही मेरा घर है'—ऐसा भाव न रखना, गृहस्थ हो तो पवित्र वस्त्र पहनना और त्यागी हो तो फटे-पुराने पवित्र चिथड़े, जो कुछ प्रारब्धके अनुसार मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना सीखे॥ २५ ॥ भगवान्‌की प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले शास्त्रोंमें श्रद्धा और दूसरे किसी भी शास्त्रकी निन्दा न करना, प्राणायामके द्वारा मनका,

मौनके द्वारा वाणीका और वासनाहीनताके अभ्याससे कर्मोका संयम करना, सत्य बोलना, इन्द्रियोंको अपने-अपने गोलकोंमें स्थिर रखना और मनको कहीं बाहर न जाने देना सीखे ॥ २६ ॥ राजन् ! भगवान्‌की लीलाएँ अद्भुत हैं। उनके जन्म, कर्म और गुण दिव्य हैं। उन्हींका श्रवण, कीर्तन और ध्यान करना तथा शरीरसे जितनी भी चेष्टाएँ हों, सब भगवान्‌के लिये करना सीखे ॥ २७ ॥ यज्ञ, दान, तप अथवा जप, सदाचारका पालन और स्त्री, पुत्र, घर, अपना जीवन, प्राण तथा जो कुछ अपनेको प्रिय लगता हो,—सब-का-सब भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन करना, उन्हें सौंप देना सीखे ॥ २८ ॥ जिन संत पुरुषोंने सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका अपने आत्मा और स्वामीके रूपमें साक्षात्कार कर लिया हो, उनसे प्रेम और स्थावर, जङ्गम दोनों प्रकारके प्राणियोंकी सेवा; विशेष करके मनुष्योंकी, मनुष्योंमें भी परोपकारी सज्जनोंकी और उनमें भी भगवत्प्रेमी संतोंकी, करना सीखे ॥ २९ ॥ भगवान्‌के परम पावन यशके सम्बन्धमें ही एक-दूसरेसे बातचीत करना और इस प्रकारके साधकोंका इकट्ठे होकर आपसमें प्रेम करना, आपसमें सन्तुष्ट रहना और प्रपञ्चसे निवृत्त होकर आपसमें ही आध्यात्मिक शान्तिका अनुभव करना सीखे ॥ ३० ॥ राजन् ! श्रीकृष्ण राशि-राशि पापोंको एक क्षणमें भस्म कर देते हैं। सब उन्हींका स्मरण करें और एक-दूसरेको स्मरण करावें। इस प्रकार साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते प्रेम-भक्तिका उदय हो जाता है और वे प्रेमोद्रेकसे पुलकित शरीर धारण करते हैं ॥ ३१ ॥ उनके हृदयकी बड़ी विलक्षण स्थिति होती है। कभी-कभी वे इस प्रकार चिन्ता करने लगते हैं कि अबतक भगवान् नहीं मिले, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किससे पूछूँ, कौन मुझे उनकी प्राप्ति करावे ? इस तरह सोचते-सोचते वे रोने लगते हैं तो कभी भगवान्‌की लीलाकी स्फूर्ति हो जानेसे ऐसा देखकर कि परमैश्वर्य-शाली भगवान् गोपियोंके डरसे छिपे हुए हैं, खिलखिलाकर हँसने लगते हैं। कभी-कभी उनके प्रेम और दर्शनकी अनुभूतिसे आनन्दमग्न हो जाते हैं तो कभी लोकातीत भावमें स्थित होकर भगवान्‌के साथ बातचीत करने लगते हैं। कभी मानो उन्हें सुना रहे हों, इस प्रकार उनके गुणोंका गान छेड़ देते हैं और कभी नाच-नाचकर उन्हें रिझाने लगते हैं। कभी-कभी उन्हें अपने पास न पाकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगते हैं तो कभी-कभी उनसे एक होकर, उनकी सन्निधिमें स्थित होकर परम शान्तिका अनुभव करते और चुप हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ राजन् ! जो इस प्रकार भागवतधर्मोंकी शिक्षा ग्रहण करता है, उसे उनके द्वारा प्रेम-भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है और वह भगवान् नारायणके परायण होकर उस मायाको अनायास ही पार कर जाता है, जिसके पंजेसे निकलना बहुत ही कठिन है ॥ ३३ ॥

राजा निमिने पूछा—महर्षियो ! आपलोग परमात्मा-का वास्तविक स्वरूप जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिये मुझे यह बतलाइये कि जिस परब्रह्म परमात्माका 'नारायण' नामसे वर्णन किया जाता है, उनका स्वरूप क्या है ? ॥ ३४ ॥

अब पाँचवें योगीश्वर पिप्पलायनजीने कहा—राजन् ! जो इस संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका निमित्त-कारण और उपादान-कारण दोनों ही है, बनने-वाला भी है और बनानेवाला भी—परन्तु स्वयं कारण-रहित है; जो स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति अवस्थाओंमें उनके साक्षीके रूपमें विद्यमान रहता है और उनके अतिरिक्त समाधिमें भी ज्यों-का-त्यों एकरस रहता है; जिसकी सत्तासे ही सत्तावान् होकर शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण अपना-अपना काम करनेमें समर्थ होते हैं, उसी परम सत्य वस्तुको आप 'नारायण' समझिये ॥ ३५ ॥ जैसे चिनगारियाँ न तो अग्निको प्रकाशित ही कर सकती हैं और न जला ही सकती हैं, वैसे ही उस परमतत्त्वमें—आत्मस्वरूपमें न तो मनकी गति है और न वाणीकी, नेत्र उसे देख नहीं सकते और बुद्धि सोच नहीं सकती, प्राण और इन्द्रियाँ तो उसके पासतक नहीं फटक पातीं। 'नेति-नेति'—इत्यादि श्रुतियोंके शब्द भी, वह यह है—इस रूपमें उसका वर्णन नहीं करते, बल्कि उसको बोध करानेवाले जितने भी साधन हैं, उनका निषेध करके तात्पर्यरूपसे अपना मूल—निषेधका मूल लखा देते हैं। क्योंकि यदि निषेधके आधारकी, आत्माकी

सत्ता न हो तो निषेध कौन कर रहा है, निषेधकी वृत्ति किसमें है—इन प्रश्नोंका कोई उत्तर ही न रहे, निषेधकी ही सिद्धि न हो ॥ ३६ ॥ जब सृष्टि नहीं थी, तब केवल एक वही था । सृष्टिका निरूपण करनेके लिये उसीको त्रिगुण (सत्त्व-रज-तम) मयी प्रकृति कहकर वर्णन किया गया । फिर उसीको ज्ञानप्रधान होनेसे महत्तत्त्व, क्रियाप्रधान होनेसे सूत्रात्मा और जीवकी उपाधि होनेसे अहङ्कारके रूपमें वर्णन किया गया । वास्तवमें जितनी भी शक्तियाँ हैं—चाहे वे इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंके रूपमें हों, चाहे इन्द्रियोंके, उनके विषयोंके अथवा विषयोंके प्रकाशके रूपमें हों—सब-का-सब वह ब्रह्म ही है । क्योंकि ब्रह्मकी शक्ति अनन्त है । कहाँतक कहूँ ? जो कुछ दृश्य-अदृश्य, कार्य-कारण, सत्य और असत्य है—सब कुछ ब्रह्म है । इनसे परे जो कुछ है, वह भी ब्रह्म ही है ॥ ३७ ॥ वह ब्रह्मस्वरूप आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न मरता है । वह न तो बढ़ता है और न घटता ही है । जितने भी परिवर्तनशील पदार्थ हैं—चाहे वे क्रिया, सङ्कल्प और उनके अभावके रूपमें ही क्यों न हों—सबकी भूत, भविष्यत् और वर्तमान सत्ताका वह साक्षी है । सबमें है । देश, काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न है, अविनाशी है । वह उपलब्धि करनेवाला अथवा उपलब्धिका विषय नहीं है । केवल उपलब्धिस्वरूप—ज्ञानस्वरूप है । जैसे प्राण तो एक ही रहता है, परन्तु स्थानभेदसे उसके अनेक नाम हो जाते हैं—वैसे ही ज्ञान एक होनेपर भी इन्द्रियोंके सहयोगसे उसमें अनेकताकी कल्पना हो जाती है ॥ ३८ ॥ जगत्‌में चार प्रकारके जीव होते हैं—अंडा फोड़कर पैदा होनेवाले पक्षी-साँप आदि, नालमें बँधे पैदा होनेवाले पशु-मनुष्य, धरती फोड़कर निकलनेवाले वृक्ष-वनस्पति और पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले खटमल आदि । इन सभी जीव-शरीरोंमें प्राणशक्ति जीवके पीछे लगी रहती है । शरीरोंके भिन्न-भिन्न होनेपर भी प्राण एक ही रहता है । सुषुप्ति-अवस्थामें जब इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं, अहङ्कार भी सो जाता है—लीन हो जाता है, अर्थात् लिङ्गशरीर नहीं रहता, उस समय यदि कूटस्थ आत्मा भी न हो तो इस बातकी पीछेसे स्मृति ही कैसे हो कि मैं सुखसे सोया था ! पीछे होनेवाली यह स्मृति ही उस समय आत्माके अस्तित्वको प्रमाणित करती है ॥ ३९ ॥ जब भगवान् कमलनाभके चरणकमलोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे तीव्र भक्ति की जाती है तब वह भक्ति ही अग्निकी भाँति गुण और कर्मोंसे उत्पन्न हुए चित्तके सारे मलोंको जला डालती है । जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है—जैसे नेत्रोंके निर्विकार हो जानेपर सूर्यके प्रकाशकी प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है ॥ ४० ॥

राजा निमिने पूछा—योगीश्वरो ! अब आपलोग हमें कर्मयोगका उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र परम नैष्कर्म्य अर्थात् कर्तृत्व, कर्म और कर्मफलको निवृत्त करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥ एक बार यही प्रश्न मैंने अपने पिता महाराज इक्ष्वाकुके सामने ब्रह्माजीके मानस पुत्र सनकादि ऋषियोंसे पूछा था, परन्तु उन्होंने सर्वज्ञ होनेपर भी मेरे प्रश्नका उत्तर न दिया । इसका क्या कारण था ? कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ ४२ ॥

अब छठे योगीश्वर आविर्होत्रजीने कहा—राजन् ! कर्म (शास्त्रविहित), अकर्म (निषिद्ध) और विकर्म (विहितका उल्लङ्घन)—ये तीनों एकमात्र वेदके द्वारा जाने जाते हैं, इनकी व्यवस्था लौकिक रीतिसे नहीं होती । वेद अपौरुषेय हैं—ईश्वररूप हैं; इसलिये उनके तात्पर्यका निश्चय करना बहुत कठिन है । इसीसे बड़े-बड़े विद्वान् भी उनके अभिप्रायका निर्णय करनेमें भूल कर बैठते हैं । (इसीसे तुम्हारे बचपनकी ओर देखकर—तुम्हें अनधिकारी समझकर सनकादि ऋषियोंने तुम्हारे प्रश्नका उत्तर नहीं दिया) ॥ ४३ ॥ यह वेद परोक्षवादात्मक* है । यह कर्मोंकी निवृत्तिके लिये कर्मका विधान करता है, जैसे बालकको मिठाई आदिका लालच देकर औषध खिलाते हैं, वैसे ही यह अनभिज्ञोंको स्वर्ग आदिका प्रलोभन देकर श्रेष्ठ कर्ममें प्रवृत्त करता है ॥ ४४ ॥ जिसका अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, वह यदि मनमाने ढंगसे

* जिसमें शब्दार्थ कुछ और मालूम दे और तात्पर्यार्थ कुछ और हो—उसे परोक्षवाद कहते हैं ।

वेदोक्त कर्मोंका परित्याग कर देता है, तो वह विहित कर्मोंका आचरण न करनेके कारण विकर्मरूप अधर्म ही करता है। इसलिये वह मृत्युके बाद फिर मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ इसलिये फलकी अभिलाषा छोड़कर और विश्वात्मा भगवान्‌को समर्पित कर जो वेदोक्त कर्मका ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मोंकी निवृत्तिसे प्राप्त होनेवाली ज्ञानरूप सिद्धि मिल जाती है। ऐसे जो वेदोंमें स्वर्गादिरूप फलका वर्णन है, उसका तात्पर्य फलको सत्यतामें नहीं है, वह तो कर्मोंमें रुचि उत्पन्न करानेके लिये है ॥ ४६ ॥

राजन्! जो पुरुष चाहता है कि शीघ्र-से-शीघ्र मेरे ब्रह्मस्वरूप आत्माकी हृदय-ग्रन्थि—मैं और मेरेकी कल्पित गाँठ खुल जाय, उसे चाहिये कि वह वैदिक और तान्त्रिक दोनों ही पद्धतियोंसे भगवान्‌की आराधना करे ॥ ४७ ॥ पहले सेवा आदिके द्वारा गुरुदेवकी दीक्षा प्राप्त करे, फिर उनके द्वारा अनुष्ठानकी विधि सीखे; अपनेको भगवान्‌की जो मूर्ति प्रिय लगे, अभीष्ट जान पड़े, उसीके द्वारा पुरुषोत्तम भगवान्‌की पूजा करे ॥ ४८ ॥ पहले स्नानादिसे शरीर और सन्तोष आदिसे अन्तःकरणको शुद्ध करे, इसके बाद भगवान्‌की मूर्तिके सामने बैठकर प्राणायाम आदिके द्वारा भूत-शुद्धि—नाड़ी-शोधन करे, तत्पश्चात् विधिपूर्वक मन्त्र, देवता आदिके न्याससे अङ्गरक्षा करके भगवान्‌की पूजा करे ॥ ४९ ॥ पहले पुष्प आदि पदार्थोंका जन्तु आदि निकालकर, पृथ्वीको सम्मार्जन आदिसे, अपनेको अव्यग्र होकर और भगवान्‌की मूर्तिको पहलेहीकी पूजाके लगे हुए पदार्थोंके क्षालन आदिसे पूजाके योग्य बनाकर फिर आसनपर मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल छिड़ककर पाद्य, अर्घ्य आदि पात्रोंको स्थापित करे। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर हृदयमें भगवान्‌का ध्यान करके फिर उसे सामनेकी श्रीमूर्तिमें चिन्तन करे। तदनन्तर हृदय, सिर, शिखा (हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा) इत्यादि मन्त्रोंसे न्यास करे और अपने इष्टदेवके मूल मन्त्रके द्वारा देश, काल आदिके अनुकूल प्राप्त पूजा-सामग्रीसे प्रतिमा आदिमें अथवा हृदयमें भगवान्‌की पूजा करे ॥५०-५१॥ अपने-अपने उपास्यदेवके विग्रहकी हृदयादि अङ्ग, आयुधादि उपाङ्ग और पार्षदोंसहित उसके मूलमन्त्रद्वारा पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, दधि-अक्षतके* तिलक, माला, धूप, दीप और नैवेद्य आदिसे विधिवत् पूजा करे तथा फिर स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करके सपरिवार भगवान् श्रीहरिको नमस्कार करे ॥ ५२-५३ ॥ अपने आपको भगवन्मय ध्यान करते हुए ही भगवान्‌की मूर्तिका पूजन करना चाहिये। निर्माल्यको अपने सिरपर रक्खे और आदरके साथ भगवद्विग्रहको यथास्थान स्थापित कर पूजा समाप्त करनी चाहिये ॥ ५४ ॥ इस प्रकार जो पुरुष अग्नि, सूर्य, जल, अतिथि और अपने हृदयमें आत्मरूप श्रीहरिकी पूजा करता है, वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥

चौथा अध्याय

भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन

राजा निमिने पूछा—योगीश्वरो! भगवान् स्वतन्त्रतासे अपने भक्तोंकी भक्तिके वश होकर अनेकों प्रकारके अवतार ग्रहण करते हैं और अनेकों लीलाएँ करते हैं। आपलोग कृपा करके भगवान्‌की उन लीलाओंका वर्णन कीजिये, जो वे अबतक कर चुके हैं, कर रहे हैं या करेंगे ॥ १ ॥

अब सातवें योगीश्वर द्रुमिलजीने कहा— राजन्! भगवान् अनन्त हैं। उनके गुण भी अनन्त हैं। जो यह सोचता है कि मैं उनके गुणोंको गिन लूँगा, वह मूर्ख है, बालक है। यह तो सम्भव है कि कोई किसी प्रकार पृथ्वीके धूलि-कणोंको गिन ले, परन्तु समस्त शक्तियोंके आश्रय भगवान्‌के अनन्त गुणोंका

* विष्णुभगवान्‌की पूजामें अक्षतोंका प्रयोग केवल तिलकालंकारमें ही करना चाहिये, पूजामें नहीं—'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुं न केतक्या महेश्वरम्।'

कोई कभी किसी प्रकार पार नहीं पा सकता ॥ २ ॥ भगवान्‌ने ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—इन पाँच भूतोंकी अपने-आपसे अपने-आपमें सृष्टि की है। जब वे इनके द्वारा विराट् शरीर, ब्रह्माण्डका निर्माण करके उसमें लीलासे अपने अंश अन्तर्यामीरूपसे प्रवेश करते हैं, (भोक्तारूपसे नहीं, क्योंकि भोक्ता तो अपने पुण्योंके फलस्वरूप जीव ही होता है) तब उन आदि-देव नारायणको 'पुरुष' नामसे कहते हैं, यही उनका पहला अवतार है ॥ ३ ॥ उन्हींके इस विराट् ब्रह्माण्ड शरीरमें तीनों लोक स्थित हैं। उन्हींकी इन्द्रियोंसे समस्त देहधारियोंकी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ बनी हैं। उनके स्वरूपसे ही स्वतःसिद्ध ज्ञानका सञ्चार होता है। उनके श्वास-प्रश्वाससे सब शरीरोंमें बल आता है तथा इन्द्रियोंमें ओज (इन्द्रियोंकी शक्ति) और कर्म करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। उन्हींके सत्त्व आदि गुणोंसे संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय होते हैं। इस विराट् शरीरके जो शरीरी हैं, वे ही आदिकर्ता नारायण हैं ॥ ४ ॥ पहले-पहल जगत्‌की उत्पत्तिके लिये उनके रजोगुणके अंशसे ब्रह्मा हुए, फिर वे आदिपुरुष ही संसारकी स्थितिके लिये अपने सत्त्वांशसे धर्म तथा ब्राह्मणोंके रक्षक यज्ञपति विष्णु बन गये। फिर वे ही तमोगुणके अंशसे जगत्‌के संहारके लिये रुद्र बने। इस प्रकार निरन्तर उन्हींसे परिवर्तनशील प्रजाकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते रहते हैं ॥ ५ ॥

दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम था मूर्ति। वह धर्मकी पत्नी थी। उसके गर्भसे भगवान्‌ने ऋषिश्रेष्ठ शान्तात्मा 'नर' और 'नारायण' के रूपमें अवतार लिया। उन्होंने आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले उस भगवदाराधनरूप कर्मका उपदेश किया, जो वास्तवमें कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला और नैष्कर्म्य स्थितिको प्राप्त करानेवाला है। उन्होंने स्वयं भी वैसे ही कर्मका अनुष्ठान किया। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि उनके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं। वे आज भी बदरिकाश्रममें उसी कर्मका आचरण करते हुए विराजमान हैं ॥ ६ ॥ ये अपनी घोर तपस्याके द्वारा मेरा धाम छीनना चाहते हैं—इन्द्रने ऐसी आशंका करके स्त्री, वसन्त आदि दल-बलके साथ कामदेवको उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये भेजा। कामदेवको भगवान्‌की महिमाका ज्ञान न था; इसलिये वह अप्सरागण, वसन्त तथा मन्द-सुगन्ध वायुके साथ बदरिकाश्रममें जाकर स्त्रियोंके कटाक्ष-बाणोंसे उन्हें घायल करनेकी चेष्टा करने लगा ॥ ७ ॥ आदिदेव नर-नारायणने यह जानकर कि यह इन्द्रका कुचक्र है, भयसे काँपते हुए काम आदिकोंसे हँसकर कहा—उस समय उनके मनमें किसी प्रकारका अभिमान या आश्चर्य नहीं था। 'कामदेव, मलयमारुत और देवाङ्गनाओ! तुमलोग डरो मत; हमारा आतिथ्य स्वीकार करो। अभी यहीं ठहरो, हमारा आश्रम सूना मत करो' ॥ ८ ॥ राजन्! जब नर-नारायण ऋषिने उन्हें अभयदान देते हुए इस प्रकार कहा, तब कामदेव आदिके सिर लज्जासे झुक गये। उन्होंने दयालु भगवान् नर-नारायणसे कहा—'प्रभो! आपके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि आप मायासे परे और निर्विकार हैं। बड़े-बड़े आत्माराम और धीर पुरुष निरन्तर आपके चरणकमलोंमें प्रणाम करते रहते हैं ॥ ९ ॥ आपके भक्त आपकी भक्तिके प्रभावसे देवताओंकी राजधानी अमरावतीका उल्लङ्घन करके आपके परमपदको प्राप्त होते हैं। इसलिये जब वे भजन करने लगते हैं, तब देवतालोग तरह-तरहसे उनकी साधनामें विघ्न डालते हैं। किन्तु जो लोग केवल कर्मकाण्डमें लगे रहकर यज्ञादिके द्वारा देवताओंको बलिके रूपमें उनका भाग देते रहते हैं, उन लोगोंके मार्गमें वे किसी प्रकारका विघ्न नहीं डालते। परन्तु प्रभो! आपके भक्तजन उनके द्वारा उपस्थित की हुई विघ्न-बाधाओंसे गिरते नहीं। बल्कि आपके कर-कमलोंकी छत्रछायामें रहते हुए वे विघ्नोंके सिरपर पैर रखकर आगे बढ़ जाते हैं, अपने लक्ष्यसे च्युत नहीं होते ॥ १० ॥ बहुत-से लोग तो ऐसे होते हैं जो भूख-प्यास, गर्मी-सर्दी एवं आँधी-पानीके कष्टोंको तथा रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियके वेगोंको, जो अपार समुद्रोंके समान हैं, सह लेते हैं—पार कर जाते हैं। परन्तु फिर भी वे उस क्रोधके वशमें हो जाते हैं, जो गायके खुरसे बने गड्ढेके समान है और जिससे कोई लाभ नहीं है—आत्मनाशक है। और प्रभो! वे इस प्रकार अपनी कठिन तपस्याको खो बैठते

हैं' ॥ ११ ॥ जब कामदेव, वसन्त आदि देवताओंने इस प्रकार स्तुति की तब सर्वशक्तिमान् भगवान्ने अपने योगबलसे उनके सामने बहुत-सी ऐसी रमणियाँ प्रकट करके दिखलायीं, जो अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न और विचित्र वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित थीं तथा भगवान्की सेवा कर रही थीं ॥ १२ ॥ जब देवराज इन्द्रके अनुचरोंने उन लक्ष्मीजीके समान रूपवती स्त्रियोंको देखा, तब उनके महान् सौन्दर्यके सामने उनका चेहरा फीका पड़ गया, वे श्रीहीन होकर उनके शरीरसे निकलनेवाली दिव्य सुगन्धसे मोहित हो गये ॥ १३ ॥ अब उनका सिर झुक गया । देवदेवेश भगवान् नारायण हँसते हुए-से उनसे बोले—'तुमलोग इनमेंसे किसी एक स्त्रीको, जो तुम्हारे अनुरूप हो, ग्रहण कर लो । वह तुम्हारे स्वर्गलोककी शोभा बढ़ानेवाली होगी ॥ १४॥ देवराज इन्द्रके अनुचरोंने 'जो आज्ञा' कहकर भगवान्के आदेशको स्वीकार किया तथा उन्हें नमस्कार किया । फिर उनके द्वारा बनायी हुई स्त्रियोंमेंसे श्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको आगे करके वे स्वर्गलोकमें गये ॥ १५ ॥ वहाँ पहुँचकर उन्होंने इन्द्रको नमस्कार किया तथा भरी सभामें देवताओंके सामने भगवान् नर-नारायणके बल और प्रभावका वर्णन किया । उसे सुनकर देवराज इन्द्र अत्यन्त भयभीत और चकित हो गये ॥ १६ ॥

भगवान् विष्णुने अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहते हुए भी सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिये बहुत-से कलावतार ग्रहण किये हैं । विदेहराज ! हंस, दत्तात्रेय, सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार और हमारे पिता ऋषभके रूपमें अवतीर्ण होकर उन्होंने आत्मसाक्षात्कार-के साधनोंका उपदेश किया है । उन्होंने ही हयग्रीव-अवतार लेकर मधु-कैटभ नामक असुरोंका संहार करके उन लोगोंके द्वारा चुराये हुए वेदोंका उद्धार किया है ॥ १७ ॥ प्रलयके समय मत्स्यावतार लेकर उन्होंने भावी मनु सत्यव्रत, पृथ्वी और ओषधियोंकी—धान्यादि-की रक्षा की और वराहावतार ग्रहण करके पृथ्वीका रसातलसे उद्धार करते समय हिरण्याक्षका संहार किया । कूर्मावतार ग्रहण करके उन्हीं भगवान्ने अमृत-मन्थनका कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया और उन्हीं भगवान् विष्णुने अपने शरणागत एवं आर्त भक्त गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया ॥ १८ ॥ एक बार बालखिल्य ऋषि तपस्या करते-करते अत्यन्त दुर्बल हो गये थे । वे जब कश्यप ऋषिके लिये समिधा ला रहे थे, तो थककर गायके खुरसे बने हुए गड्ढेमें गिर पड़े, मानो समुद्रमें गिर गये हों । उन्होंने जब स्तुति की, तब भगवान्ने अवतार लेकर उनका उद्धार किया । वृत्रासुरको मारनेके कारण जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी और वे उसके भयसे भागकर छिप गये, तब भगवान्ने उस हत्यासे इन्द्रकी रक्षा की; और जब असुरोंने अनाथ देवाङ्गनाओंको बंदी बना लिया, तब भी भगवान्ने ही उन्हें असुरोंके चंगुलसे छुड़ाया । जब हिरण्यकशिपुके कारण प्रह्लाद आदि संत पुरुषोंको भय पहुँचने लगा, तब उनको निर्भय करनेके लिये भगवान्ने नृसिंहावतार ग्रहण किया और हिरण्यकशिपुको मार डाला ॥ १९ ॥ उन्होंने देवताओंकी रक्षाके लिये देवासुरसंग्राममें दैत्यपतियोंका वध किया और विभिन्न मन्वन्तरोंमें अपनी शक्तिसे अनेकों कलावतार धारण करके त्रिभुवनकी रक्षा की । फिर वामन-अवतार ग्रहण करके उन्होंने याचनाके बहाने इस पृथ्वीको दैत्यराज बलिसे छीन लिया और अदितिनन्दन देवताओंको दे दिया ॥ २० ॥ परशुराम-अवतार ग्रहण करके उन्होंने ही पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया । परशुरामजी तो हैहयवंशका प्रलय करनेके लिये मानो भृगुवंशमें अग्नि-रूपसे ही अवतीर्ण हुए थे । उन्हीं भगवान्ने रामावतारमें समुद्रपर पुल बाँधा एवं रावण और उसकी राजधानी लङ्काको मटियामेट कर दिया । उनकी कीर्ति समस्त लोकोंके मलको नष्ट करनेवाली है । सीतापति भगवान् राम सदा-सर्वदा, सर्वत्र विजयी-ही-विजयी हैं ॥ २१ ॥ राजन् ! अजन्मा होनेपर भी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वे ही भगवान् यदुवंशमें जन्म लेंगे और ऐसे-ऐसे कर्म करेंगे, जिन्हें बड़े-बड़े देवता भी नहीं कर सकते । फिर आगे चलकर भगवान् ही बुद्धके रूपमें प्रकट होंगे और यज्ञके अनधिकारियोंको यज्ञ करते देखकर अनेक प्रकारके तर्क-वितर्कोंसे मोहित कर लेंगे और कलियुगके अन्तमें कल्कि-अवतार लेकर वे ही शूद्र राजाओंका

वध करेंगे ॥ २२ ॥ महाबाहु विदेहराज ! भगवान्‌की कीर्ति अनन्त है। महात्माओंने जगत्पति भगवान्‌के ऐसे-ऐसे अनेकों जन्म और कर्मोंका प्रचुरतासे गान भी किया है ॥ २३ ॥

पाँचवाँ अध्याय

भक्तिहीन पुरुषोंकी गति और भगवान्‌की पूजाविधिका वर्णन

राजा निमिने पूछा—योगीश्वरो ! आपलोग तो श्रेष्ठ आत्मज्ञानी और भगवान्‌के परमभक्त हैं। कृपा करके यह बतलाइये कि जिनकी कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं, लौकिक-पारलौकिक भोगोंकी लालसा मिटी नहीं है और मन एवं इन्द्रियाँ भी वशमें नहीं हैं तथा जो प्रायः भगवान्‌का भजन भी नहीं करते, ऐसे लोगोंकी क्या गति होती है ? ॥ १ ॥

अब आठवें योगीश्वर चमसजीने कहा—राजन् ! विराट् पुरुषके मुखसे सत्त्वप्रधान ब्राह्मण, भुजाओंसे सत्त्व-रजप्रधान क्षत्रिय, जाँघोंसे रज-तमप्रधान वैश्य और चरणोंसे तमःप्रधान शूद्रकी उत्पत्ति हुई है। उन्हींकी जाँघोंसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे ब्रह्मचर्य, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थ और मस्तकसे संन्यास—ये चार आश्रम प्रकट हुए हैं। इन चारों वर्णों और आश्रमोंके जन्मदाता स्वयं भगवान् ही हैं। वही इनके स्वामी, नियन्ता और आत्मा भी हैं। इसलिये इन वर्ण और आश्रममें रहनेवाला जो मनुष्य भगवान्‌का भजन नहीं करता, बल्कि उलटा उनका अनादर करता है, वह अपने स्थान, वर्ण, आश्रम और मनुष्य-योनिसे भी च्युत हो जाता है; उसका अधःपतन हो जाता है ॥ २-३ ॥ बहुत-सी स्त्रियाँ और शूद्र आदि भगवान्‌की कथा और उनके नामकीर्तन आदिसे कुछ दूर पड़ गये हैं। वे आप-जैसे भगवद्भक्तोंकी दयाके पात्र हैं। आपलोग उन्हें कथा-कीर्तनकी सुविधा देकर उनका उद्धार करें ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जन्मसे, वेदाध्ययनसे तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंसे भगवान्‌के चरणोंके निकटतक पहुँच चुके हैं। फिर भी वे वेदोंका असली तात्पर्य न समझकर अर्थवादमें लगकर मोहित हो जाते हैं ॥ ५ ॥ उन्हें कर्मका रहस्य मालूम नहीं है। मूर्ख होनेपर भी वे अपनेको पण्डित मानते हैं और अभिमानमें अकड़े रहते हैं। वे मीठी-मीठी बातोंमें भूल जाते हैं और केवल वस्तु-शून्य शब्द-माधुरीके मोहमें पड़कर चटकीली-भड़कीली बातें कहा करते हैं ॥ ६ ॥ रजोगुणकी अधिकताके कारण उनके सङ्कल्प बड़े घोर होते हैं। कामनाओंकी तो सीमा ही नहीं रहती, उनका क्रोध भी ऐसा होता है जैसे साँपका, बनावट और घमंडसे उन्हें प्रेम होता है। वे पापीलोग भगवान्‌के प्यारे भक्तोंकी हँसी उड़ाया करते हैं ॥ ७ ॥ वे मूर्ख बड़े-बूढ़ोंकी नहीं, स्त्रियोंकी उपासना करते हैं। यही नहीं, वे परस्पर इकट्ठे होकर उस घर-गृहस्थीके सम्बन्धमें ही बड़े-बड़े मनसूबे बाँधते हैं, जहाँका सबसे बड़ा सुख स्त्री-सहवासमें ही सीमित है। वे यदि कभी यज्ञ भी करते हैं तो अन्न-दान नहीं करते, विधिका उल्लङ्घन करते और दक्षिणातक नहीं देते। वे कर्मका रहस्य न जाननेवाले मूर्ख केवल अपनी जीभको सन्तुष्ट करने और पेटकी भूख मिटाने—शरीरको पुष्ट करनेके लिये बेचारे पशुओंकी हत्या करते हैं ॥ ८ ॥ धन-वैभव, कुलीनता, विद्या, दान, सौन्दर्य, बल और कर्म आदिके घमंडसे अंधे हो जाते हैं तथा वे दुष्ट उन भगवत्प्रेमी संतों तथा ईश्वरका भी अपमान करते रहते हैं ॥ ९ ॥ राजन् ! वेदोंने इस बातको बार-बार दुहराया है कि भगवान् आकाशके समान नित्य-निरन्तर समस्त शरीरधारियोंमें स्थित हैं। वे ही अपने आत्मा और प्रियतम हैं। परन्तु वे मूर्ख इस वेदवाणीको तो सुनते ही नहीं और केवल बड़े-बड़े मनोरथोंकी बात आपसमें कहते-सुनते रहते हैं ॥ १० ॥ (वेद विधिके रूपमें ऐसे ही कर्मोंके करनेकी आज्ञा देता है, जिनमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती।) संसारमें देखा जाता है कि मैथुन, मांस और मद्यकी ओर प्राणीकी स्वाभाविक

प्रवृत्ति हो जाती है । तब उसे उसमें प्रवृत्त करनेके लिये विधान तो हो ही नहीं सकता । ऐसी स्थितिमें विवाह, यज्ञ और सौत्रामणी यज्ञके द्वारा ही जो उनके सेवनकी व्यवस्था दी गयी है, उसका अर्थ है लोगोंकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिका नियन्त्रण, उनका मर्यादामें स्थापन । वास्तवमें उनकी ओरसे लोगोंको हटाना ही श्रुतिको अभीष्ट है ॥ ११ ॥ धनका एकमात्र फल है धर्म; क्योंकि धर्मसे ही परमतत्त्वका ज्ञान और उसकी निष्ठा—अपरोक्ष अनुभूति सिद्ध होती है, और निष्ठामें ही परम शान्ति है । परन्तु यह कितने खेदकी बात है कि लोग उस धनका उपयोग घर-गृहस्थीके स्वार्थोंमें या कामभोगमें ही करते हैं और यह नहीं देखते कि हमारा यह शरीर मृत्युका शिकार है और वह मृत्यु किसी प्रकार भी टाली नहीं जा सकती ॥ १२ ॥ सौत्रामणी यज्ञमें भी सुराको सूँघनेका ही विधान है, पीनेका नहीं । यज्ञमें पशुका आलभन (स्पर्शमात्र) ही विहित है, हिंसा नहीं । इसी प्रकार अपनी धर्मपत्नीके साथ मैथुनकी आज्ञा भी विषयभोगके लिये नहीं, धार्मिक परम्पराकी रक्षाके निमित्त सन्तान उत्पन्न करनेके लिये ही दी गयी है । परन्तु जो लोग अर्थवादके वचनोंमें फँसे हैं, विषयी हैं, वे अपने इस विशुद्ध धर्मको जानते ही नहीं ॥ १३ ॥ जो इस विशुद्ध धर्मको नहीं जानते, वे घमंडी वास्तवमें तो दुष्ट हैं, परन्तु समझते हैं अपनेको श्रेष्ठ । वे धोखेमें पड़े हुए लोग पशुओंकी हिंसा करते हैं और मरनेके बाद वे पशु ही उन मारनेवालोंको खाते हैं ॥ १४ ॥ यह शरीर मृतक-शरीर है । इसके सम्बन्धी भी इसके साथ ही छूट जाते हैं । जो लोग इस शरीरसे तो प्रेमकी गाँठ बाँध लेते हैं और दूसरे शरीरोंमें रहनेवाले अपने ही आत्मा एवं सर्वशक्तिमान् भगवान्से द्वेष करते हैं, उन मूर्खोंका अधःपतन निश्चित है ॥ १५ ॥ जिन लोगोंने आत्मज्ञान सम्पादन करके कैवल्य-मोक्ष नहीं प्राप्त किया है और जो पूरे-पूरे मूढ़ भी नहीं हैं, वे अधूरे न इधरके हैं और न उधरके । वे अर्थ, धर्म, काम—इन तीनों पुरुषार्थोंमें फँसे रहते हैं, एक क्षणके लिये भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती । वे अपने हाथों अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मार रहे हैं । ऐसे ही लोगोंको आत्मघाती कहते हैं ॥ १६ ॥ अज्ञानको ही ज्ञान माननेवाले इन आत्मघातियोंको कभी शान्ति नहीं मिलती, इनके कर्मोंकी परम्परा कभी शान्त नहीं होती । कालभगवान् सदा-सर्वदा इनके मनोरथोंपर पानी फेरते रहते हैं । इनके हृदयकी जलन, विषाद कभी मिटनेका नहीं ॥ १७ ॥ राजन् ! जो लोग अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं, वे अत्यन्त परिश्रम करके गृह, पुत्र, मित्र और धन-सम्पत्ति इकट्ठी करते हैं; परन्तु उन्हें अन्तमें सब कुछ छोड़ देना पड़ता है और न चाहनेपर भी विवश होकर घोर नरकमें जाना पड़ता है । (भगवान्का भजन न करनेवाले विषयी पुरुषोंकी यही गति होती है) ॥ १८ ॥

राजा निमिने पूछा—योगीश्वरो ! आपलोग कृपा करके यह बतलाइये कि भगवान् किस समय किस रंगका, कौन-सा आकार स्वीकार करते हैं और मनुष्य किन नामों और विधियोंसे उनकी उपासना करते हैं ॥ १९ ॥

अब नवें योगीश्वर करभाजनजीने कहा—राजन् ! चार युग हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि । इन युगोंमें *भगवान्के अनेकों रंग, नाम और आकृतियाँ होती हैं तथा* विभिन्न विधियोंसे उनकी पूजा की जाती है ॥ २० ॥ सत्ययुगमें भगवान्के श्रीविग्रहका रंग होता है श्वेत । उनके चार भुजाएँ और सिरपर जटा होती है, तथा वे वल्कलका ही वस्त्र पहनते हैं । काले मृगका चर्म, यज्ञोपवीत, रुद्राक्षकी माला, दण्ड और कमण्डलु धारण करते हैं ॥ २१ ॥ सत्ययुगके मनुष्य बड़े शान्त, परस्पर वैररहित, सबके हितैषी और समदर्शी होते हैं । वे लोग इन्द्रियों और मनको वशमें रखकर ध्यानरूप तपस्याके द्वारा सबके प्रकाशक परमात्माकी आराधना करते हैं ॥ २२ ॥ वे लोग हंस, सुपर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा आदि नामोंके द्वारा भगवान्के गुण, लीला आदिका गान करते हैं ॥ २३ ॥ राजन् ! त्रेतायुगमें भगवान्के श्रीविग्रहका रंग होता है लाल । चार भुजाएँ होती हैं और कटिभागमें वे तीन मेखला धारण करते हैं । उनके केश सुनहले होते हैं और वे वेदप्रतिपादित यज्ञके रूपमें रहकर स्रुक्, स्रुवा आदि यज्ञ-पात्रोंको धारण किया करते हैं ॥ २४ ॥ उस युगके मनुष्य अपने धर्ममें बड़ी निष्ठा रखनेवाले

और वेदोंके अध्ययन-अध्यापनमें बड़े प्रवीण होते हैं। वे लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदरूप वेदत्रयीके द्वारा सर्वदेवस्वरूप देवाधिदेव भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हैं ॥ २५ ॥ त्रेतायुगमें अधिकांश लोग, विष्णु, यज्ञ, पृश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुक्रम, वृषाकपि, जयन्त और उरुगाय आदि नामोंसे उनके गुण और लीला आदिका कीर्तन करते हैं ॥ २६ ॥ राजन्! द्वापरयुगमें भगवान्‌के श्रीविग्रहका रंग होता है साँवला। वे पीताम्बर तथा शङ्ख, चक्र, गदा आदि अपने आयुध धारण करते हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, भृगुलता, कौस्तुभमणि आदि लक्षणोंसे वे पहचाने जाते हैं ॥ २७ ॥ राजन्! उस समय जिज्ञासु मनुष्य महाराजोंके चिह्न छत्र, चँवर आदिसे युक्त परमपुरुष भगवान्‌की वैदिक और तान्त्रिक विधिसे आराधना करते हैं ॥ २८ ॥ वे लोग इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करते हैं—'हे ज्ञानस्वरूप भगवान् वासुदेव एवं क्रियाशक्तिरूप सङ्कर्षण! हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। भगवान् प्रद्युम्न और अनिरुद्धके रूपमें हम आपको नमस्कार करते हैं। ऋषि नारायण, महात्मा नर, विश्वेश्वर, विश्वरूप और सर्वभूतात्मा भगवान्‌को हम नमस्कार करते हैं ॥२९-३०॥ राजन्! द्वापरयुगमें इस प्रकार लोग जगदीश्वर भगवान्‌की स्तुति करते हैं। अब कलियुगमें अनेक तन्त्रोंके विधि-विधानसे भगवान्‌की जैसी पूजा की जाती है, उसका वर्णन सुनो—॥ ३१ ॥

कलियुगमें भगवान्‌का श्रीविग्रह होता है कृष्णवर्ण—काले रंगका। जैसे नीलम मणिमेंसे उज्ज्वल कान्तिधारा निकलती रहती है, वैसे ही उनके अङ्गकी छटा भी उज्ज्वल होती है। वे हृदय आदि अङ्ग, कौस्तुभ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन आदि अस्त्र और सुनन्द प्रभृति पार्षदोंसे संयुक्त रहते हैं। कलियुगमें श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करते हैं, जिनमें नाम, गुण, लीला आदिके कीर्तनकी प्रधानता रहती है ॥ ३२ ॥ वे लोग भगवान्‌की स्तुति इस प्रकार करते हैं—'प्रभो! आप शरणागतरक्षक हैं। आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करनेयोग्य, माया-मोहके कारण होनेवाले सांसारिक पराजयोंका अन्त कर देनेवाले तथा भक्तोंकी समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करनेवाले कामधेनुस्वरूप हैं। वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं; शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और चाहे जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं। सेवकोंकी समस्त आर्ति और विपत्तिके नाशक तथा संसार-सागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ ॥ ३३ ॥ भगवन्! आपके चरणकमलोंकी महिमा कौन कहे? रामावतारमें अपने पिता दशरथजीके वचनोंसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरणकमल वन-वन घूमते फिरे! सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं। और महापुरुष! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरणकमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे। सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं। प्रभो! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ ॥ ३४ ॥

राजन्! इस प्रकार विभिन्न युगोंके लोग अपने-अपने युगके अनुरूप नाम-रूपोंद्वारा विभिन्न प्रकारसे भगवान्‌की आराधना करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभी पुरुषार्थोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीहरि ही हैं ॥ ३५ ॥ कलियुगमें केवल सङ्कीर्तनसे ही सारे स्वार्थ और परमार्थ बन जाते हैं। इसलिये इस युगका गुण जाननेवाले सारग्राही श्रेष्ठ पुरुष कलियुगकी बड़ी प्रशंसा करते हैं, इससे बड़ा प्रेम करते हैं ॥ ३६ ॥ देहाभिमानी जीव संसारचक्रमें अनादि कालसे भटक रहे हैं। उनके लिये भगवान्‌की लीला, गुण और नामके कीर्तनसे बढ़कर और कोई परम लाभ नहीं है; क्योंकि इससे संसारमें भटकना मिट जाता है और परम शान्तिका अनुभव होता है ॥ ३७ ॥ राजन्! सत्ययुग, त्रेता और द्वापरकी प्रजा चाहती है कि हमारा जन्म कलियुगमें हो; क्योंकि कलियुगमें कहीं-कहीं भगवान् नारायणके शरणागत-उन्हींके आश्रयमें रहनेवाले बहुत-से भक्त उत्पन्न होंगे। महाराज विदेह! कलियुगमें द्रविड़देशमें अधिक भक्त पाये जाते हैं; जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परम पवित्र कावेरी,

महानदी और प्रतीची नामकी नदियाँ बहती हैं। राजन् ! जो मनुष्य इन नदियोंका जल पीते हैं, प्रायः उनका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् वासुदेवके भक्त हो जाते हैं ॥ ३८–४० ॥ राजन् ! जो मनुष्य 'यह करना बाकी है, वह करना आवश्यक है'—इत्यादि कर्म-वासनाओंका अथवा भेदबुद्धिका परित्याग करके सर्वात्मभावसे शरणागतवत्सल, प्रेमके वरदानी भगवान् मुकुन्दकी शरणमें आ गया है, वह देवताओं, ऋषियों, पितरों, प्राणियों, कुटुम्बियों और अतिथियोंके ऋणसे उऋण हो जाता है; वह किसीके अधीन, किसीका सेवक, किसीके बन्धनमें नहीं रहता ॥ ४१ ॥ जो प्रेमी भक्त अपने प्रियतम भगवान्के चरणकमलोंका अनन्यभावसे—दूसरी भावनाओं, आस्थाओं, वृत्तियों और प्रवृत्तियोंको छोड़कर—भजन करता है, उससे, पहली बात तो यह है कि पापकर्म होते ही नहीं; परन्तु यदि कभी किसी प्रकार हो भी जायँ तो परमपुरुष भगवान् श्रीहरि उसके हृदयमें बैठकर वह सब धो-बहा देते और उसके हृदयको शुद्ध कर देते हैं ॥ ४२ ॥

नारदजी कहते हैं—वसुदेवजी ! मिथिलानरेश राजा निमि नौ योगीश्वरोंसे इस प्रकार भागवतधर्मोंका वर्णन सुनकर बहुत ही आनन्दित हुए। उन्होंने अपने ऋत्विज और आचार्योंके साथ ऋषभनन्दन नौ योगीश्वरोंकी पूजा की ॥ ४३ ॥ इसके बाद सब लोगोंके सामने ही वे सिद्ध अन्तर्धान हो गये। विदेहराज निमिने उनसे सुने हुए भागवतधर्मोंका आचरण किया और परमगति प्राप्त की ॥ ४४ ॥ महाभाग्यवान् वसुदेवजी ! मैंने तुम्हारे आगे जिन भागवतधर्मोंका वर्णन किया है, तुम भी यदि श्रद्धाके साथ इनका आचरण करोगे तो अन्तमें सब आसक्तियोंसे छूटकर भगवान्का परमपद प्राप्त कर लोगे ॥४५॥ वसुदेवजी ! तुम्हारे और देवकीके यशसे तो सारा जगत् भरपूर हो रहा है; क्योंकि सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥ ४६ ॥ तुमलोगोंने भगवान्के दर्शन, आलिङ्गन तथा बातचीत करने एवं उन्हें सुलाने, बैठाने, खिलाने आदिके द्वारा वात्सल्य-स्नेह करके अपना हृदय शुद्ध कर लिया है; तुम परम पवित्र हो गये हो ॥४७॥ वसुदेवजी ! शिशुपाल, पौण्ड्रक और शाल्व आदि राजाओंने तो वैरभावसे श्रीकृष्णकी चाल-ढाल, लीला-विलास, चितवन-बोलन आदिका स्मरण किया था। वह भी नियमानुसार नहीं, सोते, बैठते, चलते, फिरते—स्वाभाविकरूपसे ही। फिर भी उनकी चित्तवृत्ति श्रीकृष्णाकार हो गयी और वे सारूप्य-मुक्तिके अधिकारी हुए। फिर जो लोग प्रेमभाव और अनुरागसे श्रीकृष्णका चिन्तन करते हैं, उन्हें श्रीकृष्णकी प्राप्ति होनेमें कोई सन्देह है क्या ? ॥४८॥ वसुदेवजी ! तुम श्रीकृष्णको केवल अपना पुत्र ही मत समझो। वे सर्वात्मा, सर्वेश्वर, कारणातीत और अविनाशी हैं। उन्होंने लीलाके लिये मनुष्यरूप प्रकट करके अपना ऐश्वर्य छिपा रक्खा है ॥ ४९ ॥ वे पृथ्वीके भारभूत राजवेषधारी असुरोंका नाश और संतोंकी रक्षा करनेके लिये तथा जीवोंको परम शान्ति और मुक्ति देनेके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं और इसीके लिये जगत्में उनकी कीर्ति भी गायी जाती है ॥ ५० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! नारदजीके मुखसे यह सब सुनकर परम भाग्यवान् वसुदेवजी और परम भाग्यवती देवकीजीको बड़ा ही विस्मय हुआ। उनमें जो कुछ माया-मोह अवशेष था, उसे उन्होंने तत्क्षण छोड़ दिया ॥ ५१ ॥ राजन् ! यह इतिहास परम पवित्र है। जो एकाग्रचित्तसे इसे धारण करता है, वह अपना सारा शोक-मोह दूर करके ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

छठा अध्याय

देवताओंकी भगवान्से स्वधाम सिधारनेके लिये प्रार्थना तथा यादवोंको प्रभासक्षेत्र जानेकी तैयारी करते देखकर उद्धवका भगवान्के पास आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब देवर्षि नारद वसुदेवजीको उपदेश करके चले गये, तब अपने पुत्र सनकादिकों, देवताओं और प्रजापतियोंके साथ ब्रह्माजी, भूतगणोंके साथ सर्वेश्वर महादेवजी औ

मरुद्गणोंके साथ देवराज इन्द्र द्वारकानगरीमें आये। साथ ही सभी आदित्यगण, आठों वसु, अश्विनीकुमार, ऋभु, अङ्गिराके वंशज ऋषि, ग्यारहों रुद्र, विश्वेदेव, साध्यगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नर भी वहीं पहुँचे। इन लोगोंके आगमनका उद्देश्य यह था कि मनुष्यका-सा मनोहर वेष धारण करनेवाले और अपने श्यामसुन्दर विग्रहसे सभी लोगोंका मन अपनी ओर खींचकर रमा लेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करें; क्योंकि इस समय उन्होंने अपना श्रीविग्रह प्रकट करके उसके द्वारा तीनों लोकोंमें ऐसी पवित्र कीर्तिका विस्तार किया है, जो समस्त लोकोंके पाप-तापको सदाके लिये मिटा देती है॥ १-४॥ द्वारकापुरी सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्योंसे समृद्ध तथा अलौकिक दीप्तिसे देदीप्यमान हो रही थी। वहाँ आकर उन लोगोंने अनूठी छबिसे युक्त भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये। भगवान्‌की रूप-माधुरीका निर्निमेष नयनोंसे पान करनेपर भी उनके नेत्र तृप्त न होते थे। वे एकटक बहुत देरतक उन्हें देखते ही रहे॥ ५॥ उन लोगोंने स्वर्गके उद्यान नन्दन-वन, चैत्ररथ आदिके दिव्य पुष्पोंसे जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको ढक दिया और चित्र-विचित्र पदों तथा अर्थोंसे युक्त वाणीके द्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ६॥

देवताओंने प्रार्थना की—स्वामी! कर्मोंके विकट फंदोंसे छूटनेकी इच्छावाले मुमुक्षुजन भक्ति-भावसे अपने हृदयमें जिसका चिन्तन करते रहते हैं, आपके उसी चरणकमलको हमलोगोंने अपनी बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वाणीसे साक्षात् नमस्कार किया है। अहो! आश्चर्य है!*॥७॥ अजित! आप मायिक रज आदि गुणोंमें स्थित होकर इस अचिन्त्य नाम-रूपात्मक प्रपञ्चकी त्रिगुणमयी मायाके द्वारा अपने-आपमें ही रचना करते हैं, पालन करते और संहार करते हैं। यह सब करते हुए भी इन कर्मोंसे आप लिप्त नहीं होते हैं; क्योंकि आप राग-द्वेषादि दोषोंसे सर्वथा मुक्त हैं और अपने निरावरण अखण्ड स्वरूपभूत परमानन्दमें मग्न रहते हैं॥८॥ स्तुति करनेयोग्य परमात्मन्! जिन मनुष्योंकी चित्तवृत्ति राग-द्वेषादिसे कलुषित हैं, वे उपासना, वेदाध्ययन, दान, तपस्या और यज्ञ आदि कर्म भले ही करें, परन्तु उनकी वैसी शुद्धि नहीं हो सकती, जैसी श्रवणके द्वारा संपुष्ट शुद्धान्तःकरण सज्जन पुरुषोंकी आपकी लीलाकथा, कीर्तिके विषयमें दिनोंदिन बढ़कर परिपूर्ण होनेवाली श्रद्धासे होती है॥ ९॥ मननशील मुमुक्षुजन मोक्ष-प्राप्तिके लिये अपने प्रेमसे पिघले हुए हृदयके द्वारा जिन्हें लिये-लिये फिरते हैं, पाञ्चरात्र विधिसे उपासना करनेवाले भक्तजन समान ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें जिनका पूजन करते हैं और जितेन्द्रिय धीरपुरुष स्वर्गलोकका अतिक्रमण करके भगवद्धामकी प्राप्तिके लिये तीनों समय जिनकी पूजा किया करते हैं, याज्ञिक लोग तीनों वेदोंके द्वारा बतलायी हुई विधिसे अपने संयत हाथोंमें हविष्य लेकर यज्ञकुण्डमें आहुति देते और उन्हींका चिन्तन करते हैं। आपकी आत्मस्वरूपिणी मायाके जिज्ञासु योगीजन हृदयके अन्तर्देशमें दहरविद्या आदिके द्वारा आपके चरणकमलोंका ही ध्यान करते हैं और आपके बड़े-बड़े प्रेमी भक्तजन उन्हींको अपना परम इष्ट आराध्यदेव मानते हैं। प्रभो! आपके वे ही चरणकमल हमारी समस्त अशुभ वासनाओं—विषयवासनाओंको भस्म करनेके लिये अग्निस्वरूप हों। वे अग्निके समान हमारे पाप-तापोंको भस्म कर दें॥ १०-११॥ प्रभो! यह भगवती लक्ष्मी आपके वक्षःस्थलपर मुरझायी हुई बासी वनमालासे भी सौतकी तरह स्पर्द्धा रखती हैं। फिर भी आप उनकी परवा न कर भक्तोंके द्वारा इस बासी मालासे की हुई पूजा भी प्रेमसे स्वीकार करते हैं। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुके चरणकमल सर्वदा हमारी विषय-वासनाओंको जलानेवाले अग्निस्वरूप हों॥१२॥ अनन्त!

* यहाँ साष्टाङ्ग प्रणामसे तात्पर्य है—

दोर्भ्यां पादाभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा। मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥

हाथोंसे, चरणोंसे, घुटनोंसे, वक्षःस्थलसे, शिरसे, नेत्रोंसे, मनसे और वाणीसे—इन आठ अंगोंसे किया गया प्रणाम साष्टाङ्ग प्रणाम कहलाता है।

वामनावतारमें दैत्यराज बलिकी दी हुई पृथ्वीको नापनेके लिये जब आपने अपना पग उठाया था और वह सत्यलोकमें पहुँच गया था, तब यह ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई बहुत बड़ा विजयध्वज हो। ब्रह्माजीके पखारनेके बाद उससे गिरती हुई गङ्गाजीके जलकी तीन धाराएँ ऐसी जान पड़ती थीं, मानो उसमें लगी हुई तीन पताकाएँ फहरा रही हों। उसे देखकर असुरोंकी सेना भयभीत हो गयी थी और देवसेना निर्भय। आपका वह चरणकमल साधुस्वभाव पुरुषोंके लिये आपके धाम वैकुण्ठलोककी प्राप्तिका और दुष्टोंके लिये अधोगतिका कारण है। भगवन्! आपका वही पादपद्म हम भजन करनेवालोंके सारे पाप-ताप धो-बहा दे॥ १३॥ ब्रह्मा आदि जितने भी शरीरधारी हैं, वे सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंके परस्पर विरोधी त्रिविध भावोंकी टक्करसे जीते-मरते रहते हैं। वे सुख-दुःखके थपेड़ोंसे बाहर नहीं हैं और ठीक वैसे ही आपके वशमें हैं, जैसे नथे हुए बैल अपने नाथनेवालेके वशमें होते हैं। आप उनके लिये भी कालस्वरूप हैं। उनके जीवनका आदि, मध्य और अन्त आपके ही अधीन है। इतना ही नहीं, आप प्रकृति और पुरुषसे भी परे स्वयं पुरुषोत्तम हैं। आपके चरणकमल हमलोगोंका कल्याण करें॥ १४॥ प्रभो! आप इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके परम कारण हैं; क्योंकि शास्त्रोंने ऐसा कहा है कि आप प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्वके भी नियन्त्रण करनेवाले काल हैं। शीत, ग्रीष्म और वर्षाकालरूप तीन नाभियोंवाले संवत्सरके रूपमें सबको क्षयकी ओर ले जानेवाले काल आप ही हैं। आपकी गति अबाध और गम्भीर है। आप स्वयं पुरुषोत्तम हैं॥ १५॥ यह पुरुष आपसे शक्ति प्राप्त करके अमोघवीर्य हो जाता है और फिर मायाके साथ संयुक्त होकर विश्वके महत्तत्त्वरूप गर्भका स्थापन करता है। इसके बाद वह महत्तत्त्व त्रिगुणमयी मायाका अनुसरण करके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार और मनरूप सात आवरणों (परतों) वाले इस सुवर्णवर्ण ब्रह्माण्डकी रचना करता है॥ १६॥ इसलिये हृषीकेश! आप समस्त चराचर जगत्के अधीश्वर हैं। यही कारण है कि मायाकी गुण-विषमताके कारण बननेवाले विभिन्न पदार्थोंका उपभोग करते हुए भी आप उनमें लिप्त नहीं होते। यह केवल आपकी ही बात है। आपके अतिरिक्त दूसरे तो स्वयं उनका त्याग करके भी उन विषयोंसे डरते रहते हैं॥ १७॥ सोलह हजारसे अधिक रानियाँ आपके साथ रहती हैं। वे सब अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे युक्त मनोहर भौंहोंके इशारेसे और सुरतालापोंसे प्रौढ़ सम्मोहक कामबाण चलाती हैं और कामकलाकी विविध रीतियोंसे आपका मन आकर्षित करना चाहती हैं; परन्तु फिर भी वे अपने परिपुष्ट कामबाणोंसे आपका मन तनिक भी न डिगा सकीं, वे असफल ही रहीं॥ १८॥ आपने त्रिलोकीकी पाप-राशिको धो बहानेके लिये दो प्रकारकी पवित्र नदियाँ बहा रक्खी हैं—एक तो आपकी अमृतमयी लीलासे भरी कथानदी और दूसरी आपके पाद-प्रक्षालनके जलसे भरी गङ्गाजी। अतः सत्सङ्गसेवी विवेकीजन कानोंके द्वारा आपकी कथा-नदीमें और शरीरके द्वारा गङ्गाजीमें गोता लगाकर दोनों ही तीर्थोंका सेवन करते हैं और अपने पाप-ताप मिटा देते हैं॥ १९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! समस्त देवताओं और भगवान् शङ्करके साथ ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की। इसके बाद वे प्रणाम करके अपने धाममें जानेके लिये आकाशमें स्थित होकर भगवान्से इस प्रकार कहने लगे॥ २०॥

ब्रह्माजीने कहा—सर्वात्मन् प्रभो! पहले हमलोगोंने आपसे अवतार लेकर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये प्रार्थना की थी। सो वह काम आपने हमारी प्रार्थनाके अनुसार ही यथोचितरूपसे पूरा कर दिया॥ २१॥ आपने सत्यपरायण साधुपुरुषोंके कल्याणार्थ धर्मकी स्थापना भी कर दी और दसों दिशाओंमें ऐसी कीर्ति फैला दी, जिसे सुन-सुनाकर सब लोग अपने मनका मैल मिटा देते हैं॥ २२॥ आपने यह सर्वोत्तम रूप धारण करके यदुवंशमें अवतार लिया और जगत्के हितके लिये उदारता और पराक्रमसे भरी अनेकों लीलाएँ कीं॥ २३॥ प्रभो! कलियुगमें जो साधुस्वभाव मनुष्य आपकी इन लीलाओंका श्रवण-कीर्तन करेंगे, वे सुगमतासे ही इस अज्ञानरूप अन्धकारसे

पार हो जायँगे ॥ २४ ॥ पुरुषोत्तम सर्वशक्तिमान् प्रभो ! आपको यदुवंशमें अवतार ग्रहण किये एक सौ पचीस वर्ष बीत गये हैं ॥ २५ ॥ सर्वाधार ! अब हमलोगोंका ऐसा कोई काम बाकी नहीं है, जिसे पूर्ण करनेके लिये आपके यहाँ रहनेकी आवश्यकता हो। ब्राह्मणोंके शापके कारण आपका यह कुल भी एक प्रकारसे नष्ट हो ही चुका है ॥ २६ ॥ इसलिये वैकुण्ठनाथ ! यदि आप उचित समझें तो अपने परम-धाममें पधारिये और अपने सेवक हम लोकपालोंका तथा हमारे लोकोंका पालन-पोषण कीजिये ॥ २७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्रह्माजी ! आप जैसा कहते हैं, मैं पहलेसे ही वैसा निश्चय कर चुका हूँ। मैंने आपलोगोंका सब काम पूरा करके पृथ्वीका भार उतार दिया ॥ २८ ॥ परन्तु अभी एक काम बाकी है; वह यह कि यदुवंशी बल-विक्रम, वीरता-शूरता और धन-सम्पत्तिसे उन्मत्त हो रहे हैं। ये सारी पृथ्वीको ग्रस लेनेपर तुले हुए हैं। इन्हें मैंने ठीक वैसे ही रोक रक्खा है, जैसे समुद्रको उसके तटकी भूमि ॥२९॥ यदि मैं घमंडी और उच्छृङ्खल यदुवंशियोंका यह विशाल वंश नष्ट किये बिना ही चला जाऊँगा तो ये सब मर्यादाका उल्लङ्घन करके सारे लोकोंका संहार कर डालेंगे ॥ ३० ॥ निष्पाप ब्रह्माजी ! अब ब्राह्मणोंके शापसे इस वंशका नाश प्रारम्भ हो चुका है। इसका अन्त हो जानेपर मैं आपके धाममें होकर जाऊँगा ॥३१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब अखिल-लोकाधिपति भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया और देवताओंके साथ वे अपने धामको चले गये ॥ ३२ ॥ उनके जाते ही द्वारकापुरीमें बड़े-बड़े अपशकुन, बड़े-बड़े उत्पात उठ खड़े हुए। उन्हें देखकर यदुवंशके बड़े-बूढ़े भगवान् श्रीकृष्णके पास आये। भगवान् श्रीकृष्णने उनसे यह बात कही ॥ ३३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—गुरुजनो ! आजकल द्वारकामें जिधर देखिये, उधर ही बड़े-बड़े अपशकुन और उत्पात हो रहे हैं। आपलोग जानते ही हैं कि ब्राह्मणोंने हमारे वंशको ऐसा शाप दे दिया है, जिसे टाल सकना बहुत ही कठिन है। मेरा ऐसा विचार है कि यदि हमलोग अपने प्राणोंकी रक्षा चाहते हों तो हमें यहाँ नहीं रहना चाहिये। अब विलम्ब करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमलोग आज ही परम पवित्र प्रभासक्षेत्रके लिये निकल पड़ें ॥ ३४-३५ ॥ प्रभासक्षेत्रकी महिमा बहुत प्रसिद्ध है। जिस समय दक्ष प्रजापतिके शापसे चन्द्रमाको राजयक्ष्मा रोगने ग्रस लिया था, उस समय उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें जाकर स्नान किया और वे तत्क्षण उस पापजन्य रोगसे छूट गये। साथ ही उन्हें कलाओंकी अभिवृद्धि भी प्राप्त हो गयी ॥३६॥ हमलोग भी प्रभासक्षेत्रमें चलकर स्नान करेंगे, देवता एवं पितरोंका तर्पण करेंगे और साथ ही अनेकों गुणवाले पकवान तैयार करके श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन करायेंगे। वहाँ हमलोग उन सत्पात्र ब्राह्मणोंको पूरी श्रद्धासे बड़ी-बड़ी दान-दक्षिणा देंगे और इस प्रकार उनके द्वारा अपने बड़े-बड़े सङ्कटोंको वैसे ही पार कर जायँगे, जैसे कोई जहाजके द्वारा समुद्र पार कर जाय ! ॥ ३७-३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कुलनन्दन ! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार आज्ञा दी, तब यदुवंशियोंने एक मतसे प्रभास जानेका निश्चय कर लिया और सब अपने-अपने रथ सजाने-जोतने लगे ॥ ३९ ॥ परीक्षित् ! उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्णके बड़े प्रेमी और सेवक थे। उन्होंने जब यदुवंशियोंको यात्राकी तैयारी करते देखा, भगवान्‌की आज्ञा सुनी और अत्यन्त घोर अपशकुन देखे, तब वे जगत्‌के एकमात्र अधिपति भगवान् श्रीकृष्णके पास एकान्तमें गये, उनके चरणोंपर अपना सिर रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगे ॥ ४०-४१ ॥

उद्धवजीने कहा—योगेश्वर ! आप देवाधिदेवोंके भी अधीश्वर हैं। आपकी लीलाओंके श्रवण-कीर्तनसे जीव पवित्र हो जाता है। आप सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं। आप चाहते, तो ब्राह्मणोंके शापको मिटा सकते थे। परन्तु आपने वैसा किया नहीं। इससे मैं यह समझ गया कि अब आप यदुवंशका संहार करके, इसे

समेटकर अवश्य ही इस लोकका परित्याग कर देंगे ॥ ४२ ॥ परन्तु घुँघराली अलकोंवाले श्यामसुन्दर ! मैं आधे क्षणके लिये भी आपके चरणकमलोंके त्यागकी बात सोच भी नहीं सकता । मेरे जीवनसर्वस्व, मेरे स्वामी ! आप मुझे भी अपने धाममें ले चलिये ॥४३॥ प्यारे कृष्ण ! आपकी एक-एक लीला मनुष्योंके लिये परम मङ्गलमयी और कानोंके लिये अमृतस्वरूप है । जिसे एक बार उस रसका चसका लग जाता है, उसके मनमें फिर किसी दूसरी वस्तुके लिये लालसा ही नहीं रह जाती । प्रभो ! हम तो उठते-बैठते, सोते-जागते, घूमने-फिरते आपके साथ रहे हैं, हमने आपके साथ स्नान किया, खेल खेले, भोजन किया; कहाँतक गिनावें, हमारी एक-एक चेष्टा आपके साथ होती रही । आप हमारे प्रियतम हैं; और तो क्या, आप हमारे आत्मा ही हैं । ऐसी स्थितिमें हम आपके प्रेमी भक्त आपको कैसे छोड़ सकते हैं ? ॥ ४४-४५ ॥ हमने आपकी धारण की हुई माला पहनी, आपके लगाये हुए चन्दन लगाये, आपके उतारे हुए वस्त्र पहने और आपके धारण किये हुए गहनोंसे अपने-आपको सजाते रहे । हम आपकी जूठन खानेवाले सेवक हैं । इसलिये हम आपकी मायापर अवश्य ही विजय प्राप्त कर लेंगे । (अतः प्रभो ! हमें आपकी मायाका डर नहीं है, डर है तो केवल आपके वियोगका) ॥४६॥ हम जानते हैं कि मायाको पार कर लेना बहुत ही कठिन है । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि दिगम्बर रहकर और आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करके अध्यात्मविद्याके लिये अत्यन्त परिश्रम करते हैं । इस प्रकारकी कठिन साधनासे उन संन्यासियोंके हृदय निर्मल हो पाते हैं और तब कहीं वे समस्त वृत्तियोंकी शान्तिरूप नैष्कर्म्य-अवस्थामें स्थित होकर आपके ब्रह्मनामक धामको प्राप्त होते हैं॥४७॥ महायोगेश्वर ! हमलोग तो कर्ममार्गमें ही भ्रम-भटक रहे हैं ! परन्तु इतना निश्चित है कि हम आपके भक्तजनोंके साथ आपके गुणों और लीलाओंकी चर्चा करेंगे तथा मनुष्यकी-सी लीला करते हुए आपने जो कुछ किया या कहा है, उसका स्मरण-कीर्तन करते रहेंगे । साथ ही आपकी चाल-ढाल, मुसकान-चितवन और हास-परिहासकी स्मृतिमें तल्लीन हो जायँगे । केवल इसीसे हम दुस्तर मायाको पार कर लेंगे । (इसलिये हमें मायासे पार जानेकी नहीं, आपके विरहकी चिन्ता है । आप हमें छोड़िये नहीं, साथ ले चलिये) ॥ ४८-४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब उद्धवजीने देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने अपने अनन्यप्रेमी सखा एवं सेवक उद्धवजीसे कहा ॥ ५० ॥

सातवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान—पृथ्वीसे लेकर कबूतरतक आठ गुरुओंकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाभाग्यवान् उद्धव ! तुमने मुझसे जो कुछ कहा है, मैं वही करना चाहता हूँ । ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्रादि लोकपाल भी अब यही चाहते हैं कि मैं उनके लोकोंमें होकर अपने धामको चला जाऊँ ॥ १ ॥ पृथ्वीपर देवताओंका जितना काम करना था, उसे मैं पूरा कर चुका । इसी कामके लिये ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे मैं बलरामजीके साथ अवतीर्ण हुआ था ॥ २ ॥ अब यह यदुवंश, जो ब्राह्मणोंके शापसे भस्म हो चुका है, पारस्परिक फूट और युद्धसे नष्ट हो जायगा । आजके सातवें दिन समुद्र इस पुरी—द्वारकाको डुबो देगा ॥ ३ ॥ प्यारे उद्धव ! जिस क्षण मैं मर्त्यलोकका परित्याग कर दूँगा, उसी क्षण इसके सारे मङ्गल नष्ट हो जायँगे और थोड़े ही दिनोंमें पृथ्वीपर कलियुगका बोलबाला हो जायगा ॥ ४ ॥ जब मैं इस पृथ्वीका त्याग कर दूँ, तब तुम इसपर मत रहना; क्योंकि साधु उद्धव ! कलियुगमें अधिकांश लोगोंकी रुचि अधर्ममें ही होगी ॥ ५ ॥ अब तुम अपने आत्मीय स्वजन और बन्धु-बान्धवोंका स्नेह-सम्बन्ध छोड़ दो और अनन्यप्रेमसे मुझमें अपना मन लगाकर समदृष्टिसे पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचरण करो ॥ ६ ॥ इस जगत्‌में जो कुछ मनसे सोचा

जाता है, वाणीसे कहा जाता है, नेत्रोंसे देखा जाता है और श्रवण आदि इन्द्रियोंसे अनुभव किया जाता है, वह सब नाशवान् है। सपनेकी तरह मनका विलास है। इसलिये मायामात्र है, मिथ्या है—ऐसा समझ लो ॥७॥ जिस पुरुषका मन अशान्त है, असंयत है, उसीको पागलकी तरह अनेकों वस्तुएँ मालूम पड़ती हैं; वास्तवमें यह चित्तका भ्रम ही है। नानात्वका भ्रम हो जानेपर ही 'यह गुण है' और 'यह दोप' इस प्रकारकी कल्पना करनी पड़ती है। जिसकी बुद्धिमें गुण और दोपका भेद बैठ गया है, दृढ़मूल हो गया है, उसीके लिये कर्म* अकर्म† और विकर्मरूप‡ भेदका प्रतिपादन हुआ है ॥ ८ ॥ इसलिये उद्धव ! तुम पहले अपनी समस्त इन्द्रियोंको अपने वशमें कर लो, उनकी बागडोर अपने हाथमें ले लो और केवल इन्द्रियोंको ही नहीं, चित्तकी समस्त वृत्तियोंको भी रोक लो और फिर ऐसा अनुभव करो कि यह सारा जगत् अपने आत्मामें ही फैला हुआ है और आत्मा मुझ सर्वात्मा इन्द्रियातीत ब्रह्मसे एक है, अभिन्न है ॥ ९ ॥ जब वेदोंके मुख्य तात्पर्य—निश्चयरूप ज्ञान और अनुभवरूप विज्ञानसे भलीभाँति सम्पन्न होकर तुम अपने आत्माके अनुभवमें ही आनन्दमग्न रहोगे और सम्पूर्ण देवता आदि शरीरधारियोंके आत्मा हो जाओगे। इसलिये किसी भी विघ्नसे तुम पीडित नहीं हो सकोगे; क्योंकि उन विघ्नों और विघ्न करनेवालोंकी आत्मा भी तुम्हीं होगे ॥ १० ॥ जो पुरुष गुण और दोष-बुद्धिसे अतीत हो जाता है, वह बालकके समान निषिद्ध कर्मसे निवृत्त होता है, परन्तु दोष-बुद्धिसे नहीं। वह विहित कर्मका अनुष्ठान भी करता है, परन्तु गुण-बुद्धिसे नहीं ॥ ११ ॥ जिसने श्रुतियोंके तात्पर्यका यथार्थ ज्ञान ही नहीं प्राप्त कर लिया, बल्कि उनका साक्षात्कार भी कर लिया है और इस प्रकार जो अटल निश्चयसे सम्पन्न हो गया है, वह समस्त प्राणियोंका हितैषी सुहृद् होता है और उसकी वृत्तियाँ सर्वथा शान्त रहती हैं। वह समस्त प्रतीयमान विश्वको मेरा ही स्वरूप—आत्मस्वरूप देखता है; इसलिये उसे फिर कभी जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ना पड़ता ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार आदेश दिया, तब भगवान्‌के परम-प्रेमी उद्धवजीने उन्हें प्रणाम करके तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छासे यह प्रश्न किया ॥ १३ ॥

उद्धवजीने कहा—भगवन् ! आप ही समस्त योगियोंकी गुप्त पूँजी योगोंके कारण और योगेश्वर हैं। आप ही समस्त योगोंके आधार, उनके कारण और योगस्वरूप भी हैं। आपने मेरे परमकल्याणके लिये उस संन्यासरूप त्यागका उपदेश किया है ॥ १४ ॥ परन्तु अनन्त! जो लोग विषयोंके चिन्तन और सेवनमें घुल-मिल गये हैं, विषयात्मा हो गये हैं, उनके लिये विषय-भोगों और कामनाओंका त्याग अत्यन्त कठिन है। सर्वस्वरूप! उनमें भी जो लोग आपसे विमुख हैं, उनके लिये तो इस प्रकारका त्याग सर्वथा असम्भव ही है—ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १५ ॥ प्रभो ! मैं भी ऐसा ही हूँ; मेरी मति इतनी मूढ़ हो गयी है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस भावसे मैं आपकी मायाके खेल, देह और देहके सम्बन्धी स्त्री, पुत्र, धन आदिमें डूब रहा हूँ। अतः भगवन् ! आपने जिस संन्यासका उपदेश किया है, उसका तत्त्व मुझ सेवकको इस प्रकार समझाइये कि मैं सुगमतापूर्वक उसका साधन कर सकूँ ॥ १६ ॥ मेरे प्रभो ! आप भूत, भविष्य, वर्तमान—इन तीनों कालोंसे अबाधित, एकरस सत्य हैं। आप दूसरेके द्वारा प्रकाशित नहीं, स्वयंप्रकाश आत्मस्वरूप हैं। प्रभो ! मैं समझता हूँ कि मेरे लिये आत्मतत्त्वका उपदेश करनेवाला आपके अतिरिक्त देवताओंमें भी कोई नहीं है। ब्रह्मा आदि जितने बड़े-बड़े देवता हैं, वे सब शरीराभिमानी होनेके कारण आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं। उनकी बुद्धि मायाके वशमें हो गयी है। यही कारण है कि वे इन्द्रियोंसे अनुभव किये जानेवाले बाह्य विषयोंको सत्य मानते हैं। इसलिये मुझे तो आप ही उपदेश कीजिये ॥ १७ ॥ भगवन् ! इसीसे चारों ओरसे दुःखोंकी दावाग्निसे जलकर और विरक्त होकर मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप निर्दोष देश-कालसे अपरिच्छिन्न, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और अविनाशी वैकुण्ठलोकके निवासी एवं नरके नित्य सखा नारायण हैं। (अतः आप ही मुझे उपदेश कीजिये) ॥ १८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धव ! संसारमें जो

* विहित कर्म। † विहित कर्मका लोप। ‡ निषिद्ध कर्म।

मनुष्य 'यह जगत् क्या है? इसमें क्या हो रहा है?' इत्यादि बातोंका विचार करनेमें निपुण हैं, वे चित्तमें भरी हुई अशुभ वासनाओंसे अपने-आपको स्वयं अपनी विवेक-शक्तिसे ही प्रायः बचा लेते हैं ॥ १९ ॥ समस्त प्राणियोंका विशेषकर मनुष्यका आत्मा अपने हित और अहितका उपदेशक गुरु है। क्योंकि मनुष्य अपने प्रत्यक्ष अनुभव और अनुमानके द्वारा अपने हित-अहितका निर्णय करनेमें पूर्णतः समर्थ है ॥ २० ॥ सांख्य-योगविशारद धीर पुरुष इस मनुष्ययोनिमें इन्द्रियशक्ति, मनःशक्ति आदिके आश्रयभूत मुझ आत्मतत्त्वको पूर्णतः प्रकटरूपसे साक्षात्कार कर लेते हैं ॥ २१ ॥ मैंने एक पैरवाले, दो पैरवाले, तीन पैरवाले, चार पैरवाले, चारसे अधिक पैरवाले और बिना पैरके—इत्यादि अनेक प्रकारके शरीरोंका निर्माण किया है। उनमें मुझे सबसे अधिक प्रिय मनुष्यका ही शरीर है ॥ २२ ॥ इस मनुष्य-शरीरमें एकाग्रचित्त तीक्ष्णबुद्धि पुरुष बुद्धि आदि ग्रहण किये जानेवाले हेतुओंसे जिनसे कि अनुमान भी होता है, अनुमानसे अग्राह्य अर्थात् अहङ्कार आदि विषयोंसे भिन्न मुझ सर्वप्रवर्त्तक ईश्वरको साक्षात् अनुभव करते हैं* ॥ २३ ॥ इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। वह इतिहास परम तेजस्वी अवधूत दत्तात्रेय और राजा यदुके संवादके रूपमें है ॥ २४ ॥ एक बार धर्मके मर्मज्ञ राजा यदुने देखा कि एक त्रिकालदर्शी तरुण अवधूत ब्राह्मण निर्भय विचर रहे हैं। तब उन्होंने उनसे यह प्रश्न किया ॥ २५ ॥

राजा यदुने पूछा—ब्रह्मन्! आप कर्म तो करते नहीं, फिर आपको यह अत्यन्त निपुण बुद्धि कहाँसे प्राप्त हुई? जिसका आश्रय लेकर आप परम विद्वान् होनेपर भी बालकके समान संसारमें विचरते हैं ॥ २६ ॥ ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य आयु, यश अथवा सौन्दर्य-सम्पत्ति आदिकी अभिलाषा लेकर ही धर्म, अर्थ, काम अथवा तत्त्व-जिज्ञासामें प्रवृत्त होते हैं; अकारण कहीं किसीकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती ॥ २७ ॥ मैं देख रहा हूँ कि आप कर्म करनेमें समर्थ, विद्वान् और निपुण हैं। आपका भाग्य और सौन्दर्य भी प्रशंसनीय है। आपकी वाणीसे तो मानो अमृत टपक रहा है। फिर भी आप जड़, उन्मत्त अथवा पिशाचके समान रहते हैं; न तो कुछ करते हैं और न चाहते ही हैं ॥ २८ ॥ संसारके अधिकांश लोग काम और लोभके दावानलसे जल रहे हैं। परन्तु आपको देखकर ऐसा मालूम होता है कि आप मुक्त हैं, आपतक उसकी आँच भी नहीं पहुँच पाती; ठीक वैसे ही जैसे कोई हाथी वनमें दावाग्नि लगनेपर उससे छूटकर गङ्गाजलमें खड़ा हो ॥ २९ ॥ ब्रह्मन्! आप पुत्र, स्त्री, धन आदि संसारके स्पर्शसे भी रहित हैं। आप सदा-सर्वदा अपने केवल स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि आपको अपने आत्मामें ही ऐसे अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव कैसे होता है? आप कृपा करके अवश्य बतलाइये ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धव! हमारे पूर्वज महाराज यदुकी बुद्धि शुद्ध थी और उनके हृदयमें ब्राह्मणभक्ति थी। उन्होंने परमभाग्यवान् दत्तात्रेयजीका अत्यन्त सत्कार करके यह प्रश्न पूछा और बड़े विनम्रभावसे सिर झुकाकर वे उनके सामने खड़े हो गये। अब दत्तात्रेयजीने कहा ॥ ३१ ॥

ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजीने कहा—राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे बहुत-से गुरुओंका आश्रय लिया है, उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगत्‌में मुक्तभावसे स्वच्छन्द विचरता हूँ। तुम उन गुरुओंके नाम और उनसे ग्रहण की हुई शिक्षा सुनो ॥ ३२ ॥ मेरे गुरुओंके नाम हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिङ्गला वेश्या, कुरर पक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट ॥ ३३-३४ ॥ राजन्! मैंने इन चौबीस गुरुओंका आश्रय लिया है और इन्हींके आचरणसे

---

* अनुसन्धानके दो प्रकार हैं—(१) एक स्वप्रकाश तत्त्वके बिना बुद्धि आदि जड पदार्थोंका प्रकाश नहीं हो सकता। इस प्रकार अर्थापत्तिके द्वारा और (२) जैसे बसीला आदि औजार किसी कर्ताके द्वारा प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार यह बुद्धि आदि औजार किसी कर्ताके द्वारा ही प्रयुक्त हो रहे हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि आत्मा आनुमानिक है। यह तो देहादिसे विलक्षण त्वंपदार्थके शोधनकी युक्तिमात्र है।

इस लोकमें अपने लिये शिक्षा ग्रहण की है ॥ ३५ ॥ वीरवर ययातिनन्दन ! मैंने जिससे जिस प्रकार जो कुछ सीखा है, वह सब ज्यों-का-त्यों तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥ ३६ ॥

मैंने पृथ्वीसे उसके धैर्यकी, क्षमाकी शिक्षा ली है। लोग पृथ्वीपर कितना आघात और क्या-क्या उत्पात नहीं करते; परन्तु वह न तो किसीसे बदला लेती है और न रोती-चिल्लाती है। संसारके सभी प्राणी अपने-अपने प्रारब्धके अनुसार चेष्टा कर रहे हैं, वे समय-समयपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे जान या अनजानमें आक्रमण कर बैठते हैं। धीर पुरुषको चाहिये कि उनकी विवशता समझे, न तो अपना धीरज खोवे और न क्रोध करे। अपने मार्गपर ज्यों-का-त्यों चलता रहे ॥ ३७ ॥ पृथ्वीके ही विकार पर्वत और वृक्षसे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे उनकी सारी चेष्टाएँ सदा-सर्वदा दूसरोंके हितके लिये ही होती हैं, बल्कि यों कहना चाहिये कि उनका जन्म ही एकमात्र दूसरोंका हित करनेके लिये ही हुआ है, साधु पुरुषको चाहिये कि उनकी शिष्यता स्वीकार करके उनसे परोपकारकी शिक्षा ग्रहण करे ॥ ३८ ॥

मैंने शरीरके भीतर रहनेवाले वायु—प्राणवायुसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे वह आहारमात्रकी इच्छा रखता है और उसकी प्राप्तिसे ही सन्तुष्ट हो जाता है, वैसे ही साधकको भी चाहिये कि जितनेसे जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना भोजन कर ले। इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये बहुत-से विषय न चाहे। संक्षेपमें उतने ही विषयोंका उपयोग करना चाहिये, जिनसे बुद्धि विकृत न हो, मन चञ्चल न हो और वाणी व्यर्थकी बातोंमें न लग जाय ॥ ३९ ॥ शरीरके बाहर रहनेवाले वायुसे मैंने यह सीखा है कि जैसे वायुको अनेक स्थानोंमें जाना पड़ता है, परन्तु वह कहीं भी आसक्त नहीं होता, किसीका भी गुण-दोष नहीं अपनाता, वैसे ही साधक पुरुष भी आवश्यकता होनेपर विभिन्न प्रकारके धर्म और स्वभाववाले विषयोंमें जाय, परन्तु अपने लक्ष्यपर स्थिर रहे। किसीके गुण या दोषकी ओर झुक न जाय, किसीसे आसक्ति या द्वेष न कर बैठे ॥ ४० ॥ गन्ध वायुका गुण नहीं, पृथ्वीका गुण है। परन्तु वायुको गन्धका वहन करना पड़ता है। ऐसा करनेपर भी वायु शुद्ध ही रहता है, गन्धसे उसका सम्पर्क नहीं होता। वैसे ही साधकका जबतक इस पार्थिव शरीरसे सम्बन्ध है, तबतक उसे इसकी व्याधि-पीड़ा और भूख-प्यास आदिका भी वहन करना पड़ता है। परन्तु अपनेको शरीर नहीं, आत्माके रूपमें देखनेवाला साधक शरीर और उसके गुणोंका आश्रय होनेपर भी उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है ॥ ४१ ॥

राजन् ! जितने भी घट-मठ आदि पदार्थ हैं, वे चाहे चल हों या अचल, उनके कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होनेपर भी वास्तवमें आकाश एक और अपरिच्छिन्न (अखण्ड) ही है। वैसे ही चर-अचर जितने भी सूक्ष्म-स्थूल शरीर हैं, उनमें आत्मारूपसे सर्वत्र स्थित होनेके कारण ब्रह्म सभीमें है। साधकको चाहिये कि सूतके मनियोंमें व्याप्त सूतके समान आत्माको अखण्ड और असङ्गरूपसे देखे। वह इतना विस्तृत है कि उसकी तुलना कुछ-कुछ आकाशसे ही की जा सकती है। इसलिये साधकको आत्माकी आकाशरूपताकी भावना करनी चाहिये ॥ ४२ ॥ आग लगती है, पानी बरसता है, अन्न आदि पैदा होते और नष्ट होते हैं, वायुकी प्रेरणासे बादल आदि आते और चले जाते हैं; यह सब होनेपर भी आकाश अछूता रहता है। आकाशकी दृष्टिसे यह सब कुछ है ही नहीं। इसी प्रकार भूत, वर्तमान और भविष्यके चक्करमें न जाने किन-किन नामरूपोंकी सृष्टि और प्रलय होते हैं; परन्तु आत्माके साथ उनका कोई संस्पर्श नहीं है ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार जल स्वभावसे ही स्वच्छ, चिकना, मधुर और पवित्र करनेवाला होता है तथा गङ्गा आदि तीर्थोंके दर्शन, स्पर्श और नामोच्चारणसे भी लोग पवित्र हो जाते हैं—वैसे ही साधकको भी स्वभावसे ही शुद्ध, स्निग्ध, मधुरभाषी और लोकपावन होना चाहिये। जलसे शिक्षा ग्रहण करनेवाला अपने दर्शन, स्पर्श और नामोच्चारणसे लोगोंको पवित्र कर देता है ॥ ४४ ॥

राजन् ! मैंने अग्निसे यह शिक्षा ली है कि जैसे

वह तेजस्वी और ज्योतिर्मय होती है, जैसे उसे कोई अपने तेजसे दबा नहीं सकता, जैसे उसके पास संग्रह-परिग्रहके लिये कोई पात्र नहीं—सब कुछ अपने पेटमें रख लेती है, और जैसे सब कुछ खा-पी लेनेपर भी विभिन्न वस्तुओंके दोषोंसे वह लिप्त नहीं होती; वैसे ही साधक भी परम तेजस्वी, तपस्यासे देदीप्यमान, इन्द्रियोंसे अपराभूत, भोजनमात्रका संग्रही और यथायोग्य सभी विषयोंका उपभोग करता हुआ भी अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रक्खे, किसीका दोष अपनेमें न आने दे ॥ ४५ ॥ जैसे अग्नि कहीं (लकड़ी आदिमें) अप्रकट रहती है और कहीं प्रकट, वैसे ही साधक भी कहीं गुप्त रहे और कहीं प्रकट हो जाय। वह कहीं-कहीं ऐसे रूपमें भी प्रकट हो जाता है, जिससे कल्याण-कामी पुरुष उसकी उपासना कर सकें। वह अग्निके समान ही भिक्षारूप हवन करनेवालोंके अतीत और भावी अशुभको भस्म कर देता है तथा सर्वत्र अन्न ग्रहण करता है ॥ ४६ ॥ साधक पुरुषको इसका विचार करना चाहिये कि जैसे अग्नि लंबी-चौड़ी, टेढ़ी-सीधी लकड़ियोंमें रहकर उनके समान ही सीधी-टेढ़ी या लंबी-चौड़ी दिखायी पड़ती है—वास्तवमें वह वैसी है नहीं; वैसे ही सर्वव्यापक आत्मा भी अपनी मायासे रचे हुए कार्य-कारणरूप जगत्में व्याप्त होनेके कारण उन-उन वस्तुओंके नाम-रूपसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी उनके रूपमें प्रतीत होने लगता है ॥ ४७ ॥

मैंने चन्द्रमासे यह शिक्षा ग्रहण की है कि यद्यपि जिसकी गति नहीं जानी जा सकती, उस कालके प्रभावसे चन्द्रमाकी कलाएँ घटती-बढ़ती रहती हैं, तथापि चन्द्रमा तो चन्द्रमा ही है, वह न घटता है और न बढ़ता ही है; वैसे ही जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त जितनी भी अवस्थाएँ हैं, सब शरीरकी हैं, आत्मासे उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है ॥ ४८ ॥ जैसे आगकी लपट अथवा दीपककी लौ क्षण-क्षणमें उत्पन्न और नष्ट होती रहती है—उनका यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, परन्तु दीख नहीं पड़ता—वैसे ही जलप्रवाहके समान वेगवान् कालके द्वारा क्षण-क्षणमें प्राणियोंके शरीरकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है, परन्तु अज्ञानवश वह दिखायी नहीं पड़ता ॥ ४९ ॥

राजन्! मैंने सूर्यसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे वे अपनी किरणोंसे पृथ्वीका जल खींचते और समयपर उसे बरसा देते हैं, वैसे ही योगी पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा समयपर विषयोंका ग्रहण करता है और समय आनेपर उनका त्याग—उनका दान भी कर देता है। किसी भी समय उसे इन्द्रियके किसी भी विषयमें आसक्ति नहीं होती ॥ ५० ॥ स्थूलबुद्धि पुरुषोंको जलके विभिन्न पात्रोंमें प्रतिबिम्बित हुआ सूर्य उन्हींमें प्रविष्ट-सा होकर भिन्न-भिन्न दिखायी पड़ता है। परन्तु इससे स्वरूपतः सूर्य अनेक नहीं हो जाता; वैसे ही चल-अचल उपाधियोंके भेदसे ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक व्यक्तिमें आत्मा अलग-अलग है। परन्तु जिनको ऐसा मालूम होता है, उनकी बुद्धि मोटी है। असल बात तो यह है कि आत्मा सूर्यके समान एक ही है। स्वरूपतः उसमें कोई भेद नहीं है ॥ ५१ ॥

राजन्! कहीं किसीके साथ अत्यन्त स्नेह अथवा आसक्ति न करनी चाहिये, अन्यथा उसकी बुद्धि अपना स्वातन्त्र्य खोकर दीन हो जायगी और उसे कबूतरकी तरह अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ेगा ॥ ५२ ॥ राजन्! किसी जंगलमें एक कबूतर रहता था, उसने एक पेड़पर अपना घोंसला बना रक्खा था। अपनी मादा कबूतरीके साथ वह कई वर्षोंतक उसी घोंसलेमें रहा ॥ ५३ ॥ उस कबूतरके जोड़ेके हृदयमें निरन्तर एक-दूसरेके प्रति स्नेहकी वृद्धि होती जाती थी। वे गृहस्थधर्ममें इतने आसक्त हो गये थे कि उन्होंने एक-दूसरेकी दृष्टि-से-दृष्टि, अङ्ग-से-अङ्ग और बुद्धि-से-बुद्धिको बाँध रक्खा था ॥५४॥ उनका एक-दूसरेपर इतना विश्वास हो गया था कि वे निःशङ्क होकर वहाँकी वृक्षावलीमें एक साथ सोते, बैठते, घूमते-फिरते, ठहरते, बातचीत करते, खेलते और खाते-पीते थे ॥ ५५ ॥ राजन्! कबूतरीपर कबूतरका इतना प्रेम था कि वह जो कुछ चाहती, कबूतर बड़े-से-बड़ा कष्ट उठाकर उसकी कामना पूर्ण करता; वह कबूतरी भी अपने कामुक पतिकी कामनाएँ पूर्ण करती ॥ ५६ ॥ समय आनेपर कबूतरीको पहला गर्भ रहा। उसने अपने पतिके पास ही घोंसलेमें अंडे दिये ॥५७॥ भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिसे समय आनेपर

वे अंडे फूट गये और उनमेंसे हाथ-पैरवाले बच्चे निकल आये। उनका एक-एक अङ्ग और रोएँ अत्यन्त कोमल थे ॥ ५८ ॥ अब उन कबूतर-कबूतरीकी आँखें अपने बच्चोंपर लग गयीं, वे बड़े प्रेम और आनन्दसे अपने बच्चोंका लालन-पालन, लाड़-प्यार करते और उनकी मीठी बोली, उनकी गुटर-गूँ सुन-सुनकर आनन्दमग्न हो जाते ॥ ५९ ॥ बच्चे तो सदा-सर्वदा प्रसन्न रहते ही हैं; वे जब अपने सुकुमार पंखोंसे मा-बापका स्पर्श करते, कूजते, भोली-भाली चेष्टाएँ करते और फुदक-फुदककर अपने मा-बापके पास दौड़ आते तब कबूतर-कबूतरी आनन्दमग्न हो जाते ॥ ६० ॥ राजन्! सच पूछो तो वे कबूतर-कबूतरी भगवान्‌की मायासे मोहित हो रहे थे। उनका हृदय एक-दूसरेके स्नेहबन्धनसे बँध रहा था। वे अपने नन्हे-नन्हे बच्चोंके पालन-पोषणमें इतने व्यग्र रहते कि उन्हें दीन-दुनिया, लोक-परलोककी याद ही न आती ॥ ६१ ॥ एक दिन दोनों नर-मादा अपने बच्चोंके लिये चारा लाने जंगलमें गये हुए थे। क्योंकि अब उनका कुटुम्ब बहुत बढ़ गया था। वे चारेके लिये चिरकालतक जंगलमें चारों ओर विचरते रहे ॥ ६२ ॥ इधर एक बहेलिया घूमता-घूमता संयोग-वश उनके घोंसलेकी ओर आ निकला। उसने देखा कि घोंसलेके आस-पास कबूतरके बच्चे फुदक रहे हैं; उसने जाल फैलाकर उन्हें पकड़ लिया ॥ ६३ ॥ कबूतर-कबूतरी बच्चोंको खिलाने-पिलानेके लिये हर समय उत्सुक रहा करते थे। अब वे चारा लेकर अपने घोंसलेके पास आये ॥ ६४ ॥ कबूतरीने देखा कि उसके नन्हे-नन्हे बच्चे, उनके हृदयके टुकड़े जालमें फँसे हुए हैं और दुःखसे चें-चें कर रहे हैं। उन्हें ऐसी स्थितिमें देखकर कबूतरीके दुःखकी सीमा न रही। वह रोती-चिल्लाती उनके पास दौड़ गयी ॥ ६५ ॥ भगवान्‌की मायासे उसका चित्त अत्यन्त दीन-दुखी हो रहा था। वह उमड़ते हुए स्नेहकी रस्सीसे जकड़ी हुई थी; अपने बच्चोंको जालमें फँसा देखकर उसे अपने शरीरकी भी सुध-बुध न रही। और वह स्वयं ही जाकर जालमें फँस गयी ॥ ६६ ॥ जब कबूतरने देखा कि मेरे प्राणोंसे भी प्यारे बच्चे जालमें फँस गये और मेरी प्राणप्रिया पत्नी भी उसी दशामें पहुँच गयी, तब वह अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगा। सचमुच उस समय उसकी दशा अत्यन्त दयनीय थी ॥ ६७ ॥

'मैं अभागा हूँ, दुर्मति हूँ। हाय, हाय! मेरा तो सत्यानाश हो गया। देखो, देखो न मुझे अभी तृप्ति हुई और न मेरी आशाएँ ही पूरी हुईं। तबतक मेरा धर्म, अर्थ और कामका मूल यह गृहस्थाश्रम ही नष्ट हो गया ॥ ६८ ॥ हाय! मेरी प्राणप्यारी मुझे ही अपना इष्टदेव समझती थी; मेरी एक-एक बात मानती थी, मेरे इशारेपर नाचती थी, सब तरहसे मेरे योग्य थी। आज वह मुझे सूने घरमें छोड़कर हमारे सीधे-सादे निश्छल बच्चोंके साथ स्वर्ग सिधार रही है ॥ ६९ ॥ मेरे बच्चे मर गये। मेरी पत्नी जाती रही। मेरा अब संसारमें क्या काम है? मुझ दीनका यह विधुरजीवन—बिना गृहिणीका जीवन जलनका—व्यथाका जीवन है। अब मैं इस सूने घरमें किसके लिये जीऊँ?' ॥ ७० ॥ राजन्! कबूतरके बच्चे जालमें फँसकर तड़फड़ा रहे थे, स्पष्ट दीख रहा था कि वे मौतके पंजेमें हैं, परन्तु वह मूर्ख कबूतर यह सब देखते हुए भी इतना दीन हो रहा था कि स्वयं जान-बूझकर जालमें कूद पड़ा ॥ ७१ ॥ राजन्! वह बहेलिया बड़ा क्रूर था। गृहस्थाश्रमी कबूतर-कबूतरी और उनके बच्चोंके मिल जानेसे उसे बड़ी प्रसन्नता हुई; उसने समझा मेरा काम बन गया और वह उन्हें लेकर चलता बना ॥ ७२ ॥ जो कुटुम्बी है, विषयों और लोगोंके सङ्ग-साथमें ही जिसे सुख मिलता है एवं अपने कुटुम्बके भरण-पोषणमें ही जो सारी सुध-बुध खो बैठा है, उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। वह उसी कबूतरके समान अपने कुटुम्बके साथ कष्ट पाता है ॥ ७३ ॥ यह मनुष्य-शरीर मुक्तिका खुला हुआ द्वार है। इसे पाकर भी जो कबूतरकी तरह अपनी घर-गृहस्थीमें ही फँसा हुआ है, वह बहुत ऊँचेतक चढ़कर गिर रहा है। शास्त्रकी भाषामें वह 'आरूढच्युत' है ॥ ७४ ॥

आठवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान—अजगरसे लेकर पिङ्गलातक नौ गुरुओंकी कथा

अवधूत दत्तात्रेयजी कहते हैं—राजन् ! प्राणियोंको जैसे बिना इच्छाके, बिना किसी प्रयत्नके, रोकनेकी चेष्टा करनेपर भी पूर्वकर्मानुसार दुःख प्राप्त होते हैं, वैसे ही स्वर्गमें या नरकमें—कहीं भी रहें, उन्हें इन्द्रिय-सम्बन्धी सुख भी प्राप्त होते ही हैं । इसलिये सुख और दुःखका रहस्य जाननेवाले बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि इनके लिये इच्छा अथवा किसी प्रकारका प्रयत्न न करे ॥ १ ॥ बिना माँगे, बिना इच्छा किये स्वयं ही अनायास जो कुछ मिल जाय—वह चाहे रूखा-सूखा हो, चाहे बहुत मधुर और स्वादिष्ट, अधिक हो या थोड़ा—बुद्धिमान् पुरुष अजगरके समान उसे ही खाकर जीवन-निर्वाह कर ले और उदासीन रहे ॥ २ ॥ यदि भोजन न मिले तो उसे भी प्रारब्ध-भोग समझकर किसी प्रकारकी चेष्टा न करे, बहुत दिनोंतक भूखा ही पड़ा रहे । उसे चाहिये कि अजगरके समान केवल प्रारब्धके अनुसार प्राप्त हुए भोजनमें ही सन्तुष्ट रहे ॥ ३ ॥ उसके शरीरमें मनोबल, इन्द्रियबल और देहबल तीनों हों तब भी वह निश्चेष्ट ही रहे । निद्रारहित होनेपर भी सोया हुआ-सा रहे और कर्मेन्द्रियोंके होनेपर भी उनसे कोई चेष्टा न करे । राजन् ! मैंने अजगरसे यही शिक्षा ग्रहण की है ॥ ४ ॥

समुद्रसे मैंने यह सीखा है कि साधकको सर्वदा प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिये, उसका भाव अथाह, अपार और असीम होना चाहिये तथा किसी भी निमित्तसे उसे क्षोभ न होना चाहिये । उसे ठीक वैसे ही रहना चाहिये, जैसे ज्वार-भाटे और तरङ्गोंसे रहित शान्त समुद्र ॥ ५ ॥ देखो, समुद्र वर्षाऋतुमें नदियोंकी बाढ़के कारण बढ़ता नहीं और न ग्रीष्म-ऋतुमें घटता ही है; वैसे ही भगवत्परायण साधकको भी सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिसे प्रफुल्लित न होना चाहिये और न उनके घटनेसे उदास ही होना चाहिये ॥ ६ ॥

राजन् ! मैंने पतिंगेसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे वह रूपपर मोहित होकर आगमें कूद पड़ता है और जल मरता है, वैसे ही अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला पुरुष जब स्त्रीको देखता है तो उसके हाव-भावपर लट्टू हो जाता है और घोर अन्धकारमें, नरकमें गिरकर अपना सत्यानाश कर लेता है । सचमुच स्त्री देवताओंकी वह माया है, जिससे जीव भगवान् या मोक्षकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जाता है ॥ ७ ॥ जो मूढ़ कामिनी-कञ्चन, गहने-कपड़े आदि नाशवान् मायिक पदार्थोंमें फँसा हुआ है और जिसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति उनके उपभोगके लिये ही लालायित है, वह अपनी विवेक-बुद्धि खोकर पतिंगेके समान नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

राजन् ! संन्यासीको चाहिये कि गृहस्थोंको किसी प्रकारका कष्ट न देकर भौंरेकी तरह अपना जीवन-निर्वाह करे । वह अपने शरीरके लिये उपयोगी रोटीके कुछ टुकड़े कई घरोंसे माँग ले* ॥ ९ ॥ जिस प्रकार भौंरा विभिन्न पुष्पोंसे—चाहे वे छोटे हों या बड़े—उनका सार संग्रह करता है, वैसे ही बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि छोटे-बड़े सभी शास्त्रोंसे उनका सार—उनका रस निचोड़ ले ॥ १० ॥ राजन् ! मैंने मधुमक्खीसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि संन्यासीको सायङ्काल अथवा दूसरे दिनके लिये भिक्षाका संग्रह न करना चाहिये । उसके पास भिक्षा लेनेको कोई पात्र हो तो केवल हाथ और रखनेके लिये कोई बर्तन हो तो पेट । वह कहीं संग्रह न कर बैठे, नहीं तो मधुमक्खियोंके समान उसका जीवन ही दूभर हो जायगा ॥ ११ ॥ यह बात खूब समझ लेनी चाहिये कि संन्यासी सबेरे-शामके लिये किसी प्रकारका संग्रह न करे; यदि संग्रह करेगा, तो मधुमक्खियोंके समान अपने संग्रहके साथ ही जीवन भी गँवा बैठेगा ॥ १२ ॥

राजन् ! मैंने हाथीसे यह सीखा कि संन्यासीको

* नहीं तो एक ही कमलके गन्धमें आसक्त हुआ भ्रमर जैसे रात्रिके समय उसमें बंद हो जानेसे नष्ट हो जाता है उसी प्रकार स्वादवासनासे एक ही गृहस्थका अन्न खानेसे उसके सांसर्गिक मोहमें फँसकर यति भी नष्ट हो जायगा ।

कभी पैरसे भी काठकी बनी हुई स्त्रीका भी स्पर्श न करना चाहिये। यदि वह ऐसा करेगा तो जैसे हथिनी-के अङ्ग-सङ्गसे हाथी बँध जाता है, वैसे ही वह भी बँध जायगा* ॥ १३ ॥ विवेकी पुरुष किसी भी स्त्रीको कभी भी भोग्यरूपसे स्वीकार न करे; क्योंकि यह उसकी मूर्ति-मती मृत्यु है। यदि वह स्वीकार करेगा तो हाथियोंसे हाथीकी तरह अधिक बलवान् अन्य पुरुषोंके द्वारा मारा जायगा ॥ १४ ॥

मैंने मधु निकालनेवाले पुरुषसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि संसारके लोभी पुरुष बड़ी कठिनाईसे धनका सञ्चय तो करते रहते हैं, किन्तु वह सञ्चित धन न किसीको दान करते हैं और न स्वयं उसका उपभोग ही करते हैं। बस, जैसे मधु निकालनेवाला मधु-मक्खियोंद्वारा सञ्चित रसको निकाल ले जाता है, वैसे ही उनके सञ्चित धनको भी उसकी टोह रखनेवाला कोई दूसरा पुरुष ही भोगता है ॥ १५ ॥ तुम देखते हो न कि मधुहारी मधुमक्खियोंका जोड़ा हुआ मधु उनके खानेसे पहले ही साफ कर जाता है; वैसे ही गृहस्थोंके बहुत कठिनाईसे सञ्चित किये पदार्थोंको, जिनसे वे सुखभोगकी अभिलाषा रखते हैं, उनसे भी पहले संन्यासी और ब्रह्मचारी भोगते हैं। क्योंकि गृहस्थ तो पहले अतिथि-अभ्यागतोंको भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करेगा ॥ १६ ॥

मैंने हरिनसे यह सीखा है कि वनवासी संन्यासीको कभी विषय-सम्बन्धी गीत नहीं सुनने चाहिये। वह इस बातकी शिक्षा उस हरिनसे ग्रहण करे, जो व्याधके गीतसे मोहित होकर बँध जाता है ॥ १७ ॥ तुम्हें इस बातका पता है कि हरिनीके गर्भसे पैदा हुए ऋष्यशृङ्ग मुनि स्त्रियोंका विषय-सम्बन्धी गाना-बजाना, नाचना आदि देख-सुनकर उनके वशमें हो गये थे और उनके हाथकी कठपुतली बन गये थे ॥ १८ ॥

अब मैं तुम्हें मछलीकी सीख सुनाता हूँ। जैसे मछली काँटेमें लगे हुए मांसके टुकड़ेके लोभसे अपने प्राण गँवा देती है, वैसे ही स्वादका लोभी दुर्बुद्धि मनुष्य भी अपनी मनको मथकर व्याकुल कर देनेवाली जिह्वाके वशमें हो जाता है और मारा जाता है ॥ १९ ॥ विवेकी पुरुष भोजन बंद करके दूसरी इन्द्रियोंपर तो बहुत शीघ्र विजय प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु इससे उनकी रसना-इन्द्रिय वशमें नहीं होती। वह तो भोजन बंद कर देनेसे और भी प्रबल हो जाती है ॥ २० ॥ मनुष्य और सब इन्द्रियों-पर विजय प्राप्त कर लेनेपर भी तबतक जितेन्द्रिय नहीं हो सकता, जबतक रसनेन्द्रियको अपने वशमें नहीं कर लेता। और यदि रसनेन्द्रियको वशमें कर लिया, तब तो मानो सभी इन्द्रियाँ वशमें हो गयीं ॥ २१ ॥

नृपनन्दन! प्राचीन कालकी बात है, विदेहनगरी मिथिलामें एक वेश्या रहती थी। उसका नाम था पिङ्गला। मैंने उससे जो कुछ शिक्षा ग्रहण की, वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ; सावधान होकर सुनो ॥२२॥ वह स्वेच्छाचारिणी तो थी ही, रूपवती भी थी। एक दिन रात्रिके समय किसी पुरुषको अपने रमणस्थानमें लानेके लिये खूब बन-ठनकर—उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सजकर बहुत देरतक अपने घरके बाहरी दरवाजेपर खड़ी रही ॥ २३ ॥ नररत्न! उसे पुरुषकी नहीं, धनकी कामना थी और उसके मनमें यह कामना इतनी दृढमूल हो गयी थी कि वह किसी भी पुरुषको उधरसे आते-जाते देखकर यही सोचती कि यह कोई धनी है और मुझे धन देकर उपभोग करनेके लिये ही आ रहा है ॥ २४ ॥ जब आने-जानेवाले आगे बढ़ जाते, तब फिर वह सङ्केतजीविनी वेश्या यही सोचती कि अवश्य ही अबकी बार कोई ऐसा धनी मेरे पास आवेगा जो मुझे बहुत-सा धन देगा ॥ २५ ॥ उसके चित्तकी यह दुराशा बढ़ती ही जाती थी। वह दरवाजेपर बहुत देरतक टँगी रही। उसकी नींद भी जाती रही। वह कभी बाहर आती, तो कभी भीतर जाती। इस प्रकार आधी रात हो गयी ॥ २६ ॥ राजन्! सचमुच आशा और सो भी धनकी—बहुत बुरी है। धनीकी बाट जोहते-जोहते उसका मुँह सूख गया, चित्त व्याकुल हो

* हाथी पकड़नेवाले तिनकोंसे ढके हुए गड्ढेपर कागजकी हथिनी खड़ी कर देते हैं। उसे देखकर हाथी वहाँ आता है और गड्ढेमें गिरकर फँस जाता है।

गया। अब उसे इस वृत्तिसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसमें दुःख-बुद्धि हो गयी। इसमें सन्देह नहीं कि इस वैराग्य-का कारण चिन्ता ही थी। परन्तु ऐसा वैराग्य भी है तो सुखका ही हेतु॥ २७॥ जब पिङ्गलाके चित्तमें इस प्रकार वैराग्यकी भावना जाग्रत् हुई, तब उसने एक गीत गाया। वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। राजन्! मनुष्य आशाकी फाँसीपर लटक रहा है। इसको तलवारकी तरह काटनेवाली यदि कोई वस्तु है तो वह केवल वैराग्य है॥ २८॥ प्रिय राजन्! जिसे वैराग्य नहीं हुआ है, जो इन बखेड़ोंसे ऊबा नहीं है, वह शरीर और इसके बन्धनसे उसी प्रकार मुक्त नहीं होना चाहता, जैसे अज्ञानी पुरुष ममता छोड़नेकी इच्छा भी नहीं करता॥ २९॥

पिङ्गलाने यह गीत गाया था—हाय! हाय! मैं इन्द्रियोंके अधीन हो गयी। भला! मेरे मोहका विस्तार तो देखो, मैं इन दुष्ट पुरुषोंसे, जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं है, विषयसुखकी लालसा करती हूँ। कितने दुःखकी बात है! मैं सचमुच मूर्ख हूँ॥ ३०॥ देखो तो सही, मेरे निकट-से-निकट हृदयमें ही मेरे सच्चे स्वामी भगवान् विराजमान हैं। वे वास्तविक प्रेम सुख और परमार्थका सच्चा धन भी देनेवाले हैं। जगत्‌के पुरुष अनित्य हैं और वे नित्य हैं। हाय! हाय! मैंने उनको तो छोड़ दिया और उन तुच्छ मनुष्योंका सेवन किया, जो मेरी एक भी कामना पूरी नहीं कर सकते; उलटे दुःख-भय, आधि-व्याधि, शोक और मोह ही देते हैं। यह मेरी मूर्खताकी हद है कि मैं उनका सेवन करती हूँ॥ ३१॥ बड़े खेदकी बात है, मैंने अत्यन्त निन्दनीय आजीविका वेश्यावृत्तिका आश्रय लिया और व्यर्थमें अपने शरीर और मनको क्लेश दिया, पीड़ा पहुँचायी। मेरा यह शरीर बिक गया है। लम्पट, लोभी और निन्दनीय मनुष्योंने इसे खरीद लिया है और मैं इतनी मूर्ख हूँ कि इसी शरीरसे धन और रति-सुख चाहती हूँ। मुझे धिक्कार है!॥ ३२॥ यह शरीर एक घर है। इसमें हड्डियोंके टेढ़े-तिरछे बाँस और खंभे लगे हुए हैं; चाम, रोएँ और नाखूनोंसे यह छाया गया है। इसमें नौ दरवाजे हैं, जिनसे मल निकलते ही रहते हैं। इसमें सञ्चित सम्पत्तिके नामपर केवल मल और मूत्र है। मेरे अतिरिक्त ऐसी कौन स्त्री है, जो इस स्थूलशरीरको अपना प्रिय समझकर सेवन करेगी॥ ३३॥ यों तो यह विदेहोंकी—जीवन्मुक्तोंकी नगरी है, परन्तु इसमें मैं ही सबसे मूर्ख और दुष्ट हूँ; क्योंकि अकेली मैं ही तो आत्मदानी, अविनाशी एवं परमप्रियतम परमात्माको छोड़कर दूसरे पुरुषकी अभिलाषा करती हूँ॥ ३४॥ मेरे हृदयमें विराजमान प्रभु, समस्त प्राणियोंके हितैषी, सुहृद्, प्रियतम, स्वामी और आत्मा हैं। अब मैं अपने आपको देकर इन्हें खरीद लूँगी और इनके साथ वैसे ही विहार करूँगी, जैसे लक्ष्मीजी करती हैं॥ ३५॥ मेरे मूर्ख चित्त! तू बतला तो सही, जगत्‌के विषय-भोगोंने और उनको देनेवाले पुरुषोंने तुझे कितना सुख दिया है। अरे! वे तो स्वयं ही पैदा होते और मरते रहते हैं। मैं केवल अपनी ही बात नहीं कहती, केवल मनुष्योंकी भी नहीं; क्या देवताओंने भी भोगोंके द्वारा अपनी पत्नियोंको सन्तुष्ट किया है? वे बेचारे तो स्वयं-कालके गालमें पड़े-पड़े कराह रहे हैं॥ ३६॥ अवश्य ही मेरे किसी शुभकर्मसे विष्णुभगवान् मुझपर प्रसन्न हैं, तभी तो दुराशासे मुझे इस प्रकार वैराग्य हुआ है। अवश्य ही मेरा यह वैराग्य सुख देनेवाला होगा॥ ३७॥ यदि मैं मन्दभागिनी होती तो मुझे ऐसे दुःख ही न उठाने पड़ते, जिनसे वैराग्य होता है। मनुष्य वैराग्यके द्वारा ही घर आदिके सब बन्धनोंको काटकर शान्तिलाभ करता है॥ ३८॥ अब मैं भगवान्‌का यह उपकार आदरपूर्वक सिर झुकाकर स्वीकार करती हूँ और विषयभोगोंकी दुराशा छोड़कर उन्हीं जगदीश्वरकी शरण ग्रहण करती हूँ॥ ३९॥ अब मुझे प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जायगा, उसीसे निर्वाह कर लूँगी और बड़े सन्तोष तथा श्रद्धाके साथ रहूँगी। मैं अब किसी दूसरे पुरुषकी ओर न ताककर अपने हृदयेश्वर, आत्मस्वरूप प्रभुके साथ ही विहार करूँगी॥ ४०॥ यह जीव संसारके कूएँमें गिरा हुआ है। विषयोंने इसे अंधा बना दिया है, कालरूपी अजगरने इसे अपने मुँहमें दबा रक्खा है। अब भगवान्‌को छोड़कर इसकी रक्षा करनेमें दूसरा कौन समर्थ है॥ ४१॥ जिस समय जीव समस्त विषयोंसे विरक्त हो जाता है,

उस समय वह स्वयं ही अपनी रक्षा कर लेता है। इसलिये बड़ी सावधानीके साथ यह देखते रहना चाहिये, कि सारा जगत् कालरूपी अजगरसे ग्रस्त है ॥ ४२ ॥

अवधूत दत्तात्रेयजी कहते हैं—राजन् ! पिङ्गला वेश्याने ऐसा निश्चय करके अपने प्रिय धनियोंकी दुराशा, उनसे मिलनेकी लालसाका परित्याग कर दिया और शान्तभावसे जाकर वह अपनी सेजपर सो रही ॥४३॥ सचमुच आशा ही सबसे बड़ा दुःख है और निराशा ही सबसे बड़ा सुख है; क्योंकि पिङ्गला वेश्याने जब पुरुषकी आशा त्याग दी, तभी वह सुखसे सो सकी ॥ ४४ ॥

नवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान—कुररसे लेकर भृंगीतक सात गुरुओंकी कथा

अवधूत दत्तात्रेयजीने कहा—राजन् ! मनुष्योंको जो वस्तुएँ अत्यन्त प्रिय लगती हैं, उन्हें इकट्ठा करना ही उनके दुःखका कारण है। जो बुद्धिमान् पुरुष यह बात समझकर अकिञ्चनभावसे रहता है—शरीरकी तो बात ही अलग, मनसे भी किसी वस्तुका संग्रह नहीं करता—उसे अनन्त सुखस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥ एक कुररपक्षी अपनी चोंचमें मांसका टुकड़ा लिये हुए था। उस समय दूसरे बलवान् पक्षी, जिनके पास मांस नहीं था, उससे छीननेके लिये उसे घेरकर चोंचें मारने लगे। जब कुरर पक्षीने अपनी चोंचसे मांसका टुकड़ा फेंक दिया, तभी उसे सुख मिला ॥ २ ॥

मुझे मान या अपमानका कोई ध्यान नहीं है और घर एवं परिवारवालोंको जो चिन्ता होती है, वह मुझे नहीं है। मैं अपने आत्मामें ही रमता हूँ और अपने साथ ही क्रीडा करता हूँ। यह शिक्षा मैंने बालकसे ली है। अतः उसीके समान मैं भी मौजसे रहता हूँ ॥ ३ ॥ इस जगत्‌में दो ही प्रकारके व्यक्ति निश्चिन्त और परमानन्दमें मग्न रहते हैं—एक तो भोलाभाला निश्चेष्ट नन्हा-सा बालक और दूसरा वह पुरुष जो गुणातीत हो गया हो ॥ ४ ॥

एक बार किसी कुमारी कन्याके घर उसे वरण करनेके लिये कई लोग आये हुए थे। उस दिन उसके घरके लोग कहीं बाहर गये हुए थे। इसलिये उसने स्वयं ही उनका आतिथ्यसत्कार किया ॥ ५ ॥ राजन् ! उनको भोजन करानेके लिये वह घरके भीतर एकान्तमें धान कूटने लगी। उस समय उसकी कलाई-में पड़ी शंखकी चूड़ियाँ जोर-जोरसे बज रही थीं ॥ ६ ॥ इस शब्दको निन्दित समझकर कुमारीको बड़ी लज्जा मालूम हुई* और उसने एक-एक करके सब चूड़ियाँ तोड़ डालीं और दोनों हाथोंमें केवल दो-दो चूड़ियाँ रहने दीं ॥ ७ ॥ अब वह फिर धान कूटने लगी। परन्तु वे दो-दो चूड़ियाँ भी बजने लगीं, तब उसने एक-एक चूड़ी और तोड़ दी। जब दोनों कलाइयोंमें केवल एक-एक चूड़ी रह गयी, तब किसी प्रकारकी आवाज नहीं हुई ॥ ८ ॥ रिपुदमन ! उस समय लोगोंका आचार-विचार निरखने-परखनेके लिये इधर-उधर घूमता-घामता मैं भी वहाँ पहुँच गया था। मैंने उससे यह शिक्षा ग्रहण की कि जब बहुत लोग एक साथ रहते हैं, तब कलह होता है और दो आदमी साथ रहते हैं तब भी बातचीत तो होती ही है; इसलिये कुमारी कन्याकी चूड़ीके समान अकेले ही विचरना चाहिये ॥ ९-१० ॥

राजन् ! मैंने बाण बनानेवालेसे यह सीखा है कि आसन और श्वासको जीतकर वैराग्य और अभ्यासके द्वारा अपने मनको वशमें कर ले और फिर बड़ी सावधानीके साथ उसे एक लक्ष्यमें लगा दे ॥ ११ ॥ जब परमानन्दस्वरूप परमात्मामें मन स्थिर हो जाता है, तब वह धीरे-धीरे कर्मवासनाओंकी धूलको धो बहाता है। सत्त्वगुणकी वृद्धिसे रजोगुणी और तमोगुणी वृत्तियोंका त्याग करके मन वैसे ही शान्त हो जाता है, जैसे ईंधनके बिना अग्नि ॥ १२ ॥ इस प्रकार जिसका चित्त अपने आत्मामें ही स्थिर—निरुद्ध हो जाता है, उसे बाहर-भीतर कहीं किसी पदार्थका भान

* क्योंकि उससे उसका स्वयं धान कूटना सूचित होता था, जो कि उसकी दरिद्रताका द्योतक था।

नहीं होता । मैंने देखा था कि एक बाण बनानेवाला कारीगर बाण बनानेमें इतना तन्मय हो रहा था कि उसके पाससे ही दलबलके साथ राजाकी सवारी निकल गयी और उसे पतातक न चला ॥ १३ ॥

राजन् ! मैंने साँपसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि संन्यासीको सर्पकी भाँति अकेले ही विचरण करना चाहिये, उसे मण्डली नहीं बाँधनी चाहिये, मठ तो बनाना ही नहीं चाहिये । वह एक स्थानमें न रहे, प्रमाद न करे, गुहा आदिमें पड़ा रहे, बाहरी आचारोंसे पहचाना न जाय । किसीसे सहायता न ले और बहुत कम बोले ॥ १४ ॥ इस अनित्य शरीरके लिये घर बनानेके बखेड़ेमें पड़ना व्यर्थ और दुःखकी जड़ है । साँप दूसरोंके बनाये घरमें घुसकर बड़े आरामसे अपना समय काटता है ॥ १५ ॥

अब मकड़ीसे ली हुई शिक्षा सुनो । सबके प्रकाशक और अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान् भगवान्ने पूर्वकल्पमें बिना किसी अन्य सहायकके अपनी ही मायासे रचे हुए जगत्को कल्पके अन्तमें (प्रलयकाल उपस्थित होनेपर) कालशक्तिके द्वारा नष्ट कर दिया—उसे अपनेमें लीन कर लिया और सजातीय, विजातीय तथा स्वगतभेदसे शून्य अकेले ही शेष रह गये । वे सबके अधिष्ठान हैं, सबके आश्रय हैं; परन्तु स्वयं अपने आश्रय—अपने ही आधारसे रहते हैं, उनका कोई दूसरा आधार नहीं है । वे प्रकृति और पुरुष दोनोंके नियामक, कार्य और कारणात्मक जगत्के आदिकारण परमात्मा अपनी शक्ति कालके प्रभावसे सत्त्व-रज आदि समस्त शक्तियोंको साम्यावस्थामें पहुँचा देते हैं और स्वयं कैवल्यरूपसे एक और अद्वितीयरूप विराजमान रहते हैं । वे केवल अनुभवस्वरूप और आनन्दघन मात्र हैं । किसी भी प्रकारकी उपाधिका उनसे सम्बन्ध नहीं है । वे ही प्रभु केवल अपनी शक्ति कालके द्वारा अपनी त्रिगुणमयी मायाको क्षुब्ध करते हैं और उससे पहले क्रियाशक्तिप्रधान सूत्र (महत्तत्त्व) की रचना करते हैं । यह सूत्ररूप महत्तत्त्व ही तीनों गुणोंकी पहली अभिव्यक्ति है, वही सब प्रकारकी सृष्टिका मूल कारण है । उसीमें यह सारा विश्व, सूतमें ताने-बानेकी तरह ओतप्रोत है और इसीके कारण जीवको जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ना पड़ता है ॥ १६-२० ॥ जैसे मकड़ी अपने हृदयसे मुँहके द्वारा जाला फैलाती है, उसीमें विहार करती है और फिर उसे निगल जाती है, वैसे ही परमेश्वर भी इस जगत्को अपनेमेंसे उत्पन्न करते हैं, उसमें जीवरूपसे विहार करते हैं और फिर उसे अपनेमें लीन कर लेते हैं ॥ २१ ॥

राजन् ! मैंने भृङ्गी (बिलनी) कीड़ेसे यह शिक्षा ग्रहण की है कि यदि प्राणी स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे भी जान-बूझकर एकाग्ररूपसे अपना मन किसीमें लगा दे तो उसे उसी वस्तुका स्वरूप प्राप्त हो जाता है ॥ २२ ॥ राजन् ! जैसे भृङ्गी एक कीड़ेको ले जाकर दीवारपर अपने रहनेकी जगह बंद कर देता है और वह कीड़ा भयसे उसीका चिन्तन करते-करते अपने पहले शरीरका त्याग किये बिना ही उसी शरीरसे तद्रूप हो जाता है* ॥ २३ ॥

राजन् ! इस प्रकार मैंने इतने गुरुओंसे ये शिक्षाएँ ग्रहण कीं । अब मैंने अपने शरीरसे जो कुछ सीखा है, वह तुम्हें बताता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ २४ ॥ यह शरीर भी मेरा गुरु ही है; क्योंकि यह मुझे विवेक और वैराग्यकी शिक्षा देता है । मरना और जीना तो इसके साथ लगा ही रहता है । इस शरीरको पकड़ रखनेका फल यह है कि दुःख-पर-दुःख भोगते जाओ । यद्यपि इस शरीरसे तत्त्वविचार करनेमें सहायता मिलती है, तथापि मैं इसे अपना कभी नहीं समझता; सर्वदा यही निश्चय रखता हूँ कि एक दिन इसे सियार-कुत्ते खा जायँगे । इसीलिये मैं इससे असङ्ग होकर विचरता हूँ ॥ २५ ॥ जीव जिस शरीरका प्रिय करनेके लिये ही अनेकों प्रकारकी कामनाएँ और कर्म करता है तथा स्त्री-पुत्र, धन-दौलत, हाथी-घोड़े, नौकर-चाकर, घर-द्वार और भाई-बन्धुओंका विस्तार करते हुए उनके पालन-पोषणमें लगा रहता है । बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ सहकर धनसञ्चय करता है । आयुष्य पूरी होनेपर वही शरीर स्वयं तो

* जब उसी शरीरसे चिन्तन किये रूपकी प्राप्ति हो जाती है; तब दूसरे शरीरसे तो कहना ही क्या है ? इसलिये मनुष्यको अन्य वस्तुका चिन्तन न करके केवल परमात्माका ही चिन्तन करना चाहिये ।

नष्ट होता ही है, वृक्षके समान दूसरे शरीरके लिये बीज बोकर उसके लिये भी दुःखकी व्यवस्था कर जाता है ॥ २६ ॥ जैसे बहुत-सी सौतें अपने एक पतिको अपनी-अपनी ओर खींचती हैं वैसे ही जीवको जीभ एक ओर—स्वादिष्ट पदार्थोंकी ओर खींचती है तो प्यास दूसरी ओर—जलकी ओर; जननेन्द्रिय एक ओर—स्त्रीसंभोगकी ओर ले जाना चाहती है तो त्वचा, पेट और कान दूसरी ओर—कोमल स्पर्श भोजन और मधुर शब्दकी ओर खींचने लगते हैं। नाक कहीं सुन्दर गन्ध सूँघनेके लिये ले जाना चाहती है तो चञ्चल नेत्र कहीं दूसरी ओर सुन्दर रूप देखनेके लिये । इस प्रकार कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ दोनों ही इसे सताती रहती हैं ॥ २७ ॥ वैसे तो भगवान्‌ने अपनी अचिन्त्य शक्ति मायासे वृक्ष, सरीसृप (रेंगनेवाले जन्तु) पशु, पक्षी, डाँस और मछली आदि अनेकों प्रकारकी योनियाँ रचीं; परन्तु उनसे उन्हें सन्तोष न हुआ । तब उन्होंने मनुष्य-शरीरकी सृष्टि की । यह ऐसी बुद्धिसे युक्त है, जो ब्रह्मका साक्षात्कार कर सकती है । इसकी रचना करके वे बहुत आनन्दित हुए ॥ २८ ॥ यद्यपि यह मनुष्य-शरीर है तो अनित्य ही—मृत्यु सदा इसके पीछे लगी रहती है । परन्तु इससे परमपुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है; इसलिये अनेक जन्मोंके बाद यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शीघ्र-से-शीघ्र, मृत्युके पहले ही मोक्ष-प्राप्तिका प्रयत्न कर ले । इस जीवनका मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है । विषय-भोग तो सभी योनियोंमें प्राप्त हो सकते हैं, इसलिये उनके संग्रहमें यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिये ॥ २९ ॥ राजन् ! यही सब सोच-विचारकर मुझे जगत्‌से वैराग्य हो गया । मेरे हृदयमें ज्ञान-विज्ञानकी ज्योति जगमगाती रहती है । न तो कहीं मेरी आसक्ति है और न कहीं अहङ्कार ही । अब मैं स्वच्छन्दरूपसे इस पृथ्वीमें विचरण करता हूँ ॥ ३० ॥ राजन् ! अकेले गुरुसे ही यथेष्ट और सुदृढ़ बोध नहीं होता, उसके लिये अपनी बुद्धिसे भी बहुत-कुछ सोचने-समझनेकी आवश्यकता है । देखो ! ऋषियोंने एक ही अद्वितीय ब्रह्मका अनेकों प्रकारसे गान किया है । (यदि तुम स्वयं विचारकर निर्णय न करोगे, तो ब्रह्मके वास्तविक स्वरूपको कैसे जान सकोगे ?) ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्धव ! गम्भीर-बुद्धि अवधूत दत्तात्रेयने राजा यदुको इस प्रकार उपदेश किया । यदुने उनकी पूजा और वन्दना की, दत्तात्रेयजी उनसे अनुमति लेकर बड़ी प्रसन्नतासे इच्छानुसार पधार गये ॥ ३२ ॥ हमारे पूर्वजोंके भी पूर्वज राजा यदु अवधूत दत्तात्रेयकी यह बात सुनकर समस्त आसक्तियोंसे छुटकारा पा गये और समदर्शी हो गये । (इसी प्रकार तुम्हें भी समस्त आसक्तियोंका परित्याग करके समदर्शी हो जाना चाहिये) ॥ ३३ ॥

दसवाँ अध्याय

लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी असारताका निरूपण

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्यारे उद्धव ! साधकको चाहिये कि सब तरहसे मेरी शरणमें रहकर (गीता, पाञ्चरात्र आदिमें) मेरे द्वारा उपदिष्ट अपने धर्मोंका सावधानीसे पालन करे । साथ ही जहाँतक उनसे विरोध न हो वहाँतक निष्कामभावसे अपने वर्ण, आश्रम और कुलके अनुसार सदाचारका भी अनुष्ठान करे ॥ १ ॥ निष्काम होनेका उपाय यह है कि स्वधर्मोंका पालन करनेसे शुद्ध हुए अपने चित्तमें यह विचार करे कि जगत्‌के विषयी प्राणी शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषयोंको सत्य समझकर उनकी प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न करते हैं, उसमें उनका उद्देश्य तो यह होता है कि सुख मिले, परन्तु मिलता है दुःख ॥२॥ इसके सम्बन्धमें ऐसा विचार करना चाहिये कि स्वप्न-अवस्थामें और मनोरथ करते समय जाग्रत्-अवस्थामें भी

मनुष्य मन-ही-मन अनेकों प्रकारके विषयोंका अनुभव करता है, परन्तु उसकी वह सारी कल्पना वस्तुशून्य होनेके कारण व्यर्थ है। वैसे ही इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाली भेदबुद्धि भी व्यर्थ ही है, क्योंकि यह भी इन्द्रियजन्य और नाना वस्तुविषयक होनेके कारण पूर्ववत् असत्य ही है ॥ ३ ॥ जो पुरुष मेरी शरणमें है, उसे अन्तर्मुख करनेवाले निष्काम अथवा नित्यकर्म ही करने चाहिये। उन कर्मोंका बिल्कुल परित्याग कर देना चाहिये, जो बहिर्मुख बनानेवाले अथवा सकाम हों। जब आत्मज्ञानकी उत्कट इच्छा जाग उठे, तब तो कर्मसम्बन्धी विधि-विधानोंका भी आदर नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥ अहिंसा आदि यमोंका तो आदरपूर्वक सेवन करना चाहिये, परन्तु शौच (पवित्रता) आदि नियमोंका पालन शक्तिके अनुसार और आत्मज्ञानके विरोधी न होनेपर ही करना चाहिये। जिज्ञासु पुरुषके लिये यम और नियमोंके पालनसे भी बढ़कर आवश्यक बात यह है कि वह अपने गुरुकी, जो मेरे स्वरूपको जाननेवाले और शान्त हों, मेरा ही स्वरूप समझकर सेवा करे ॥५॥ शिष्यको अभिमान न करना चाहिये। वह कभी किसीसे डाह न करे—किसीका बुरा न सोचे। वह प्रत्येक कार्यमें कुशल हो—उसे आलस्य छू न जाय। उसे कहीं भी ममता न हो, गुरुके चरणोंमें दृढ़ अनुराग हो। कोई काम हड़बड़ाकर न करे—उसे सावधानीसे पूरा करे। सदा परमार्थके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा बनाये रक्खे। किसीके गुणोंमें दोष न निकाले और व्यर्थकी बात न करे ॥ ६ ॥ जिज्ञासुका परम धन है आत्मा; इसलिये वह स्त्री-पुत्र, घर-खेत, स्वजन और धन आदि सम्पूर्ण पदार्थोंमें एक सम आत्माको देखे और किसीमें कुछ विशेषताका आरोप करके उससे ममता न करे, उदासीन रहे ॥७॥ उद्धव ! जैसे जलनेवाली लकड़ीसे उसे जलाने और प्रकाशित करनेवाली आग सर्वथा अलग है। ठीक वैसे ही विचार करनेपर जान पड़ता है कि पञ्चभूतोंका बना स्थूलशरीर और मन-बुद्धि आदि सत्रह तत्त्वोंका बना सूक्ष्मशरीर दोनों ही दृश्य और जड हैं। तथा उनको जानने और प्रकाशित करनेवाला आत्मा साक्षी एवं स्वयंप्रकाश है। शरीर अनित्य, अनेक एवं जड हैं। आत्मा नित्य, एक एवं चेतन है। इस प्रकार देहकी अपेक्षा आत्मामें महान् विलक्षणता है। अतएव देहसे आत्मा भिन्न है ॥ ८ ॥ जब आग लकड़ीमें प्रज्वलित होती है, तब लकड़ीके उत्पत्ति-विनाश, बड़ाई-छोटाई और अनेकता आदि सभी गुण वह स्वयं ग्रहण कर लेती है। परन्तु सच पूछो, तो लकड़ीके उन गुणोंसे आगका कोई सम्बन्ध नहीं है। वैसे ही जब आत्मा अपनेको शरीर मान लेता है, तब वह देहके जडता, अनित्यता, स्थूलता, अनेकता आदि गुणोंसे सर्वथा रहित होनेपर भी उनसे युक्त जान पड़ता है ॥ ९ ॥ ईश्वरके द्वारा नियन्त्रित मायाके गुणोंने ही सूक्ष्म और स्थूल शरीरका निर्माण किया है। जीवको शरीर और शरीरको जीव समझ लेनेके कारण ही स्थूलशरीरके जन्म-मरण और सूक्ष्म-शरीरके आवागमनका आत्मापर आरोप किया जाता है। जीवको जन्म-मृत्युरूप संसार इसी भ्रम अथवा अध्यासके कारण प्राप्त होता है। आत्माके स्वरूपका ज्ञान होनेपर उसकी जड़ कट जाती है ॥ १० ॥ प्यारे उद्धव ! इस जन्म-मृत्युरूप संसारका कोई दूसरा कारण नहीं, केवल अज्ञान ही मूल कारण है। इसलिये अपने वास्तविक स्वरूपको, आत्माको जाननेकी इच्छा करनी चाहिये। अपना यह वास्तविक स्वरूप समस्त प्रकृति और प्राकृत जगत्से अतीत, द्वैतकी गन्धसे रहित एवं अपने आपमें ही स्थित है। उसका और कोई आधार नहीं है। उसे जानकर धीरे-धीरे स्थूल-शरीर, सूक्ष्म शरीर आदिमें जो सत्यत्वबुद्धि हो रही है, उसे क्रमशः मिटा देना चाहिये ॥ ११ ॥ (यज्ञमें जब अरणिमन्थन करके अग्नि उत्पन्न करते हैं, तो उसमें नीचे-ऊपर दो लकड़ियाँ रहती हैं और बीचमें मन्थन-काष्ठ रहता है; वैसे ही) विद्यारूप अग्निकी उत्पत्तिके लिये आचार्य और शिष्य तो नीचे-ऊपरकी अरणियाँ हैं तथा उपदेश मन्थनकाष्ठ है। इनसे जो ज्ञानाग्नि प्रज्वलित होती है, वह विलक्षण सुख देनेवाली है। इस यज्ञमें बुद्धिमान् शिष्य सद्गुरुके द्वारा जो अत्यन्त विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करता है, वह गुणोंसे बनी हुई विषयोंकी मायाको भस्म कर देता है। तत्पश्चात् वे गुण भी भस्म हो जाते हैं, जिनसे कि यह संसार बना-

हुआ है। इस प्रकार सबके भस्म हो जानेपर जब आत्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती, तब वह ज्ञानाग्नि भी ठीक वैसे ही अपने वास्तविक स्वरूपमें शान्त हो जाती है, जैसे समिधा न रहनेपर आग बुझ जाती है* ॥ १२-१३ ॥

प्यारे उद्धव! यदि तुम कदाचित् कर्मोंके कर्ता और सुख-दुःखोंके भोक्ता जीवोंको अनेक तथा जगत्, काल, वेद और आत्माओंको नित्य मानते हो; साथ ही समस्त पदार्थोंकी स्थिति प्रवाहसे नित्य और यथार्थ स्वीकार करते हो तथा यह समझते हो कि घट-पट आदि बाह्य आकृतियोंके भेदसे उनके अनुसार ज्ञान ही उत्पन्न होता और बदलता रहता है; तो ऐसे मतके माननेसे बड़ा अनर्थ हो जायगा। (क्योंकि इस प्रकार जगत्के कर्ता आत्माकी नित्य सत्ता और जन्म-मृत्युके चक्करसे मुक्ति भी सिद्ध न हो सकेगी।) यदि कदाचित् ऐसा स्वीकार भी कर लिया जाय तो देह और संवत्सरादि कालावयवोंके सम्बन्धसे होनेवाली जीवोंकी जन्म-मरण आदि अवस्थाएँ भी नित्य होनेके कारण दूर न हो सकेंगी; क्योंकि तुम देहादि पदार्थ और कालकी नित्यता स्वीकार करते हो। इसके सिवा, यहाँ भी कर्मोंका कर्ता तथा सुख-दुःखका भोक्ता जीव परतन्त्र ही दिखायी देता है; यदि वह स्वतन्त्र हो तो दुःखका फल क्यों भोगना चाहेगा? इस प्रकार सुख-भोगकी समस्या सुलझ जानेपर भी दुःख-भोगकी समस्या तो उलझी ही रहेगी। अतः इस मतके अनुसार जीवको कभी मुक्ति या स्वतन्त्रता प्राप्त न हो सकेगी। जब जीव स्वरूपतः परतन्त्र है, विवश है, तब तो स्वार्थ या परमार्थ कोई भी उसका सेवन न करेगा। अर्थात् वह स्वार्थ और परमार्थ दोनोंसे ही वञ्चित रह जायगा ॥ १४—१७ ॥ (यदि यह कहा जाय कि जो भलीभाँति कर्म करना जानते हैं, वे सुखी रहते हैं, और जो नहीं जानते उन्हें दुःख भोगना पड़ता है तो यह कहना भी ठीक नहीं; क्योंकि) ऐसा देखा जाता है कि बड़े-बड़े कर्म-कुशल विद्वानोंको भी कुछ सुख नहीं मिलता और मूढ़ोंका भी कभी दुःखसे पाला नहीं पड़ता। इसलिये जो लोग अपनी बुद्धि या कर्मसे सुख पानेका घमंड करते हैं, उनका वह अभिमान व्यर्थ है ॥ १८ ॥ यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि वे लोग सुखकी प्राप्ति और दुःखके नाशका ठीक-ठीक उपाय जानते हैं, तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्हें भी ऐसे उपायका पता नहीं है, जिससे मृत्यु उनके ऊपर कोई प्रभाव न डाल सके और वे कभी मरें ही नहीं ॥ १९ ॥ जब मृत्यु उनके सिरपर नाच रही है, तब ऐसी कौन-सी भोग-सामग्री या भोग-कामना है जो उन्हें सुखी कर सके? भला, जिस मनुष्यको फाँसीपर लटकानेके लिये वधस्थानपर ले जाया जा रहा है, उसे क्या फूल-चन्दन-स्त्री आदि पदार्थ सन्तुष्ट कर सकते हैं? कदापि नहीं। (अतः पूर्वोक्त मत माननेवालोंकी दृष्टिसे न सुख ही सिद्ध होगा और न जीवका कुछ पुरुषार्थ ही रहेगा) ॥ २० ॥

प्यारे उद्धव! लौकिक सुखके समान पारलौकिक सुख भी दोषयुक्त ही है; क्योंकि वहाँ भी बराबरीवालोंसे होड़ चलती है, अधिक सुख भोगनेवालोंके प्रति असूया होती है—उनके गुणोंमें दोष निकाला जाता है और छोटोंसे घृणा होती है। प्रतिदिन पुण्य क्षीण होनेके साथ ही वहाँके सुख भी क्षयके निकट पहुँचते रहते हैं और एक दिन नष्ट हो जाते हैं। वहाँकी कामना पूर्ण होनेमें भी यजमान, ऋत्विज और कर्म आदिकी त्रुटियोंके कारण बड़े-बड़े विघ्नोंकी सम्भावना रहती है। जैसे हरी-भरी खेती भी अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदिके कारण नष्ट हो जाती है, वैसे ही स्वर्ग भी प्राप्त होते-होते विघ्नोंके कारण नहीं मिल पाता ॥ २१ ॥ यदि यज्ञ-यागादि धर्म बिना किसी विघ्नके पूरा हो जाय, तो उसके द्वारा जो स्वर्गादि लोक मिलते हैं, उनकी प्राप्तिका प्रकार मैं बतलाता हूँ, सुनो ॥ २२ ॥ यज्ञ करनेवाला पुरुष यज्ञोंके द्वारा देवताओंकी आराधना करके स्वर्गमें जाता है और वहाँ अपने पुण्यकर्मोंके द्वारा उपार्जित दिव्य भोगोंको देवताओंके समान भोगता है ॥ २३ ॥ उसे

* यहाँतक यह बात स्पष्ट हो गयी कि स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप नित्य एक ही आत्मा है। कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि धर्म देहके कारण हैं। आत्माके अतिरिक्त जो कुछ है, सब अनित्य और मायामय है, इसलिये आत्मज्ञान होते ही समस्त विपत्तियोंसे मुक्ति मिल जाती है।

उसके पुण्योंके अनुसार एक चमकीला विमान मिलता है और वह उसपर सवार होकर सुर-सुन्दरियोंके साथ विहार करता है। गन्धर्वगण उसके गुणोंका गान करते हैं और उसके रूप-लावण्यको देखकर दूसरोंका मन लुभा जाता है ॥ २४ ॥ उसका विमान वह जहाँ ले जाना चाहता है, वहीं चला जाता है और उसकी घंटियाँ घनघनाकर दिशाओंको गुंजारित करती हैं। वह अप्सराओंके साथ नन्दनवन आदि देवताओंकी विहार-स्थलियोंमें क्रीड़ाएँ करते-करते इतना बेसुध हो जाता है कि उसे इस बातका पता ही नहीं चलता कि अब मेरे पुण्य समाप्त हो जायँगे और मैं यहाँसे ढकेल दिया जाऊँगा ॥ २५ ॥ जबतक उसके पुण्य शेष रहते हैं, तबतक वह स्वर्गमें चैनकी वंशी बजाता रहता है; परन्तु पुण्य क्षीण होते ही इच्छा न रहनेपर भी उसे नीचे गिरना पड़ता है, क्योंकि कालकी चाल ही ऐसी है ॥ २६ ॥

यदि कोई मनुष्य दुष्टोंकी संगतिमें पड़कर अधर्म-परायण हो जाय, अपनी इन्द्रियोंके वशमें होकर मनमानी करने लगे, लोभवश दाने-दानेमें कृपणता करने लगे, लम्पट हो जाय अथवा प्राणियोंको सताने लगे और विधि-विरुद्ध पशुओंकी बलि देकर भूत और प्रेतोंकी उपासनामें लग जाय, तब तो वह पशुओंसे भी गया-बीता हो जाता है और अवश्य ही नरकमें जाता है। उसे अन्तमें घोर अन्धकार, स्वार्थ और परमार्थसे रहित अज्ञानमें ही भटकना पड़ता है ॥ २७-२८ ॥ जितने भी सकाम और बहिर्मुख करनेवाले कर्म हैं, उनका फल दुःख ही है। जो जीव शरीरमें अहंता-ममता करके उन्हींमें लग जाता है, उसे बार-बार जन्म-पर-जन्म और मृत्यु-पर-मृत्यु प्राप्त होती रहती है। ऐसी स्थितिमें मृत्यु-धर्मा जीवको क्या सुख हो सकता है ? ॥ २९ ॥ सारे लोक और लोकपालोंकी आयु भी केवल एक कल्प है, इसलिये मुझसे भयभीत रहते हैं। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं ब्रह्मा भी मुझसे भयभीत रहते हैं; क्योंकि उनकी आयु भी कालसे सीमित—केवल दो परार्द्ध है ॥ ३० ॥ सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण इन्द्रियोंको उनके कर्मोंमें प्रेरित करते हैं और इन्द्रियाँ कर्म करती हैं। जीव अज्ञानवश सत्त्व, रज आदि गुणों और इन्द्रियोंको अपना स्वरूप मान बैठता है और उनके किये हुए कर्मोंका फल सुख-दुःख भोगने लगता है ॥ ३१ ॥ जबतक गुणोंकी विषमता है अर्थात् शरीरादिमें मैं और मेरेपनका अभिमान है; तभीतक आत्माके एकत्वकी अनुभूति नहीं होती—वह अनेक जान पड़ता है; और जबतक आत्माकी अनेकता है, तबतक तो उन्हें काल अथवा कर्म किसीके अधीन रहना ही पड़ेगा ॥ ३२ ॥ जबतक परतन्त्रता है, तब-तक ईश्वरसे भय बना ही रहता है। जो मैं और मेरेपनके भावसे ग्रस्त रहकर आत्माकी अनेकता, पर-तन्त्रता आदि मानते हैं और वैराग्य न ग्रहण करके बहिर्मुख करनेवाले कर्मोंका ही सेवन करते रहते हैं, उन्हें शोक और मोहकी प्राप्ति होती है ॥ ३३ ॥ प्यारे उद्धव ! जब मायाके गुणोंमें क्षोभ होता है, तब मुझ आत्माको ही काल, जीव, वेद, लोक, स्वभाव और धर्म आदि अनेक नामोंसे निरूपण करने लगते हैं। (ये सब मायामय हैं। वास्तविक सत्य मैं आत्मा ही हूँ) ॥ ३४ ॥

उद्धवजीने पूछा— भगवन् ! यह जीव देह आदि रूप गुणोंमें ही रह रहा है। फिर देहसे होनेवाले कर्मों या सुख-दुःख आदि रूप फलोंमें क्यों नहीं बँधता है ? अथवा यह आत्मा गुणोंसे निर्लिप्त है, देह आदिके सम्पर्कसे सर्वथा रहित है, फिर इसे बन्धनकी प्राप्ति कैसे होती है ? ॥ ३५ ॥ बद्ध अथवा मुक्त पुरुष कैसा बर्ताव करता है, वह कैसे विहार करता है, या वह किन लक्षणोंसे पहचाना जाता है, कैसे भोजन करता है ? और मल-त्याग आदि कैसे करता है ? कैसे सोता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है ? ॥ ३६ ॥ अच्युत ! प्रश्नका मर्म जाननेवालोंमें आप श्रेष्ठ हैं। इसलिये आप मेरे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये—एक ही आत्मा अनादि गुणोंके संसर्गसे नित्यबद्ध भी मालूम पड़ता है और असङ्ग होनेके कारण नित्यमुक्त भी। इस बातको लेकर मुझे भ्रम हो रहा है ॥ ३७ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

बद्ध, मुक्त और भक्तजनोंके लक्षण

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्धव ! आत्मा बद्ध है या मुक्त है, इस प्रकारकी व्याख्या या व्यवहार मेरे अधीन रहनेवाले सत्त्वादि गुणोंकी उपाधिसे ही होता है। वस्तुतः—तत्त्वदृष्टिसे नहीं । सभी गुण मायामूलक हैं—इन्द्रजाल हैं—जादूके खेलके समान हैं। इसलिये न मेरा मोक्ष है, न तो मेरा बन्धन ही है ॥१॥ जैसे स्वप्न बुद्धिका विवर्त है—उसमें बिना हुए ही भासता है—मिथ्या है, वैसे ही शोक-मोह, सुख-दुःख, शरीरकी उत्पत्ति और मृत्यु—यह सब संसारका बखेड़ा माया (अविद्या) के कारण प्रतीत होनेपर भी वास्तविक नहीं है ॥ २ ॥ उद्धव ! शरीरधारियोंको मुक्तिका अनुभव करानेवाली आत्मविद्या और बन्धनका अनुभव करानेवाली अविद्या—ये दोनों ही मेरी अनादि शक्तियाँ हैं। मेरी मायासे ही इनकी रचना हुई है। इनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है ॥ ३ ॥ भाई ! तुम तो स्वयं बड़े बुद्धिमान् हो, विचार करो—जीव तो एक ही है। वह व्यवहारके लिये ही मेरे अंशके रूपमें कल्पित हुआ है, वस्तुतः मेरा स्वरूप ही है। आत्मज्ञानसे सम्पन्न होनेपर उसे मुक्त कहते हैं और आत्माका ज्ञान न होनेसे बद्ध। और यह अज्ञान अनादि होनेसे बन्धन भी अनादि कहलाता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार मुझ एक ही धर्मीमें रहनेपर भी जो शोक और आनन्दरूप विरुद्ध धर्मवाले जान पड़ते हैं, उन बद्ध और मुक्त जीवका भेद मैं बतलाता हूँ ॥ ५ ॥ (वह भेद दो प्रकारका है—एक तो नित्यमुक्त ईश्वरसे जीवका भेद, और दूसरा मुक्त-बद्ध जीवका भेद। पहला सुनो)-जीव और ईश्वर बद्ध और मुक्तके भेदसे भिन्न-भिन्न होनेपर भी एक ही शरीरमें नियन्ता और नियन्त्रितके रूपसे स्थित हैं। ऐसा समझो कि शरीर एक वृक्ष है, इसमें हृदयका घोंसला बनाकर जीव और ईश्वर नामके दो पक्षी रहते हैं। वे दोनों चेतन होनेके कारण समान हैं और कभी न बिछुड़नेके कारण सखा हैं। इनके निवास करनेका कारण केवल लीला ही है। इतनी समानता होनेपर भी जीव तो शरीररूप वृक्षके फल सुख-दुःख आदि भोगता है, परन्तु ईश्वर उन्हें न भोगकर कर्मफल सुख-दुःख आदिसे असङ्ग और उनका साक्षीमात्र रहता है। अभोक्ता होनेपर भी ईश्वरकी यह विलक्षणता है कि वह ज्ञान, ऐश्वर्य, आनन्द और सामर्थ्य आदिमें भोक्ता जीवसे बढ़कर है ॥ ६ ॥ साथ ही एक यह भी विलक्षणता है कि अभोक्ता ईश्वर तो अपने वास्तविक स्वरूप और इसके अतिरिक्त जगत्‌को भी जानता है, परन्तु भोक्ता जीव न अपने वास्तविक रूपको जानता है और न अपनेसे अतिरिक्तको। इन दोनोंमें जीव तो अविद्यासे युक्त होनेके कारण नित्यबद्ध है और ईश्वर विद्यास्वरूप होनेके कारण नित्यमुक्त है ॥ ७ ॥ प्यारे उद्धव ! ज्ञानसम्पन्न पुरुष भी मुक्त ही है; जैसे स्वप्न टूट जानेपर जगा हुआ पुरुष स्वप्नके स्मर्यमाण शरीरसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष सूक्ष्म और स्थूल शरीरोंमें रहनेपर भी उनसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखता, परन्तु अज्ञानी पुरुष वास्तवमें शरीरसे कोई सम्बन्ध न रखनेपर भी अज्ञानके कारण शरीरमें ही स्थित रहता है, जैसे स्वप्न देखनेवाला पुरुष स्वप्न देखते समय स्वाप्निक शरीरमें बँध जाता है ॥ ८ ॥ व्यवहारमें इन्द्रियाँ शब्द-स्पर्शादि विषयोंको ग्रहण करती हैं; क्योंकि यह तो नियम ही है कि गुण ही गुणको ग्रहण करते हैं, आत्मा नहीं। इसलिये जिसने अपने निर्विकार आत्मस्वरूपको समझ लिया है, वह उन विषयोंके ग्रहण-त्यागमें किसी प्रकारका अभिमान नहीं करता ॥ ९ ॥ यह शरीर प्रारब्धके अधीन है। इससे शारीरिक और मानसिक जितने भी कर्म होते हैं, सब गुणोंकी प्रेरणासे ही होते हैं। अज्ञानी पुरुष झूठमूठ अपनेको उन ग्रहण-त्याग आदि कर्मोंका कर्ता मान बैठता है और इसी अभिमानके कारण वह बँध जाता है ॥ १० ॥

प्यारे उद्धव ! पूर्वोक्त पद्धतिसे विचार करके विवेकी पुरुष समस्त विषयोंसे विरक्त रहता है और सोने-बैठने, घूमने-फिरने, नहाने, देखने, छूने, सूँघने, खाने और सुनने आदि क्रियाओंमें अपनेको कर्ता नहीं मानता,

बल्कि गुणोंको ही कर्ता मानता है। गुण ही सभी कर्मोंके कर्ता-भोक्ता हैं—ऐसा जानकर विद्वान् पुरुष कर्मवासना और फलोंसे नहीं बँधते। वे प्रकृतिमें रहकर भी वैसे ही असङ्ग रहते हैं, जैसे स्पर्श आदिसे आकाश, जलकी आर्द्रता आदिसे सूर्य और गन्ध आदिसे वायु। उनकी विमल बुद्धिकी तलवार असङ्ग-भावनाकी सानसे और भी तीखी हो जाती है, और वे उससे अपने सारे संशय-सन्देहोंको काट-कूटकर फेंक देते हैं। जैसे कोई स्वप्नसे जाग उठा हो, इसी प्रकार वे इस भेदबुद्धिके भ्रमसे मुक्त हो जाते हैं॥ ११–१३॥ जिनके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी समस्त चेष्टाएँ बिना सङ्कल्पके होती हैं वे देहमें स्थित रहकर भी उसके गुणोंसे मुक्त हैं॥ १४॥ उन तत्त्वज्ञ मुक्त पुरुषोंके शरीरको चाहे हिंसक लोग पीड़ा पहुँचायें और चाहे कभी कोई दैवयोगसे पूजा करने लगें—वे न तो किसीके सतानेसे दुःखी होते हैं और न पूजा करनेसे सुखी॥ १५॥ जो समदर्शी महात्मा गुण और दोषकी भेददृष्टिसे ऊपर उठ गये हैं, वे न तो अच्छे काम करनेवालेकी स्तुति करते हैं और न बुरे काम करनेवालेकी निन्दा; न वे किसीकी अच्छी बात सुनकर उसकी सराहना करते हैं और न बुरी बात सुनकर किसीको झिड़कते ही हैं।१६। जीवन्मुक्त पुरुष न तो कुछ भला या बुरा काम करते हैं, न कुछ भला या बुरा कहते हैं और न सोचते ही हैं। वे व्यवहारमें अपनी समान वृत्ति रखकर आत्मानन्दमें ही मग्न रहते हैं और जडके समान मानो कोई मूर्ख हों, इस प्रकार विचरण करते रहते हैं॥ १७॥

प्यारे उद्धव! जो पुरुष वेदोंका तो पारगामी विद्वान् हो, परन्तु परब्रह्मके ज्ञानसे शून्य हो, उसके परिश्रमका कोई फल नहीं है वह तो वैसा ही है, जैसे बिना दूधकी गायका पालनेवाला॥ १८॥ दूध न देनेवाली गाय, व्यभिचारिणी स्त्री, पराधीन शरीर, दुष्ट पुत्र, सत्पात्रके प्राप्त होनेपर भी दान न किया हुआ धन और मेरे गुणोंसे रहित वाणी व्यर्थ है। इन वस्तुओंकी रखवाली करनेवाला दुःख-पर-दुःख ही भोगता रहता है॥ १९॥ इसलिये उद्धव! जिस वाणीमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप मेरी लोक-पावन लीलाका वर्णन न हो और लीलावतारोंमें भी मेरे लोकप्रिय राम-कृष्णादि अवतारोंका जिसमें यशोगान न हो, वह वाणी वन्ध्या है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि ऐसी वाणीका उच्चारण एवं श्रवण न करे॥ २०॥

प्रिय उद्धव! जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, आत्मजिज्ञासा और विचारके द्वारा आत्मामें जो अनेकताका भ्रम है, उसे दूर कर दे और मुझ सर्वव्यापी परमात्मामें अपना निर्मल मन लगा दे तथा संसारके व्यवहारोंसे उपराम हो जाय॥ २१॥ यदि तुम अपना मन परब्रह्ममें स्थिर न कर सको, तो सारे कर्म निरपेक्ष होकर मेरे लिये ही करो॥ २२॥ मेरी कथाएँ समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली एवं कल्याणस्वरूपिणी हैं। श्रद्धाके साथ उन्हें सुनना चाहिये। बार-बार मेरे अवतार और लीलाओंका गान, स्मरण और अभिनय करना चाहिये॥ २३॥ मेरे आश्रित रहकर मेरे ही लिये धर्म, काम और अर्थका सेवन करना चाहिये। प्रिय उद्धव! जो ऐसा करता है, उसे मुझ अविनाशी पुरुषके प्रति अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाती है॥२४॥ भक्तिकी प्राप्ति सत्सङ्गसे होती है; जिसे भक्ति प्राप्त हो जाती है, वह मेरी उपासना करता है, मेरे सान्निध्यका अनुभव करता है। इस प्रकार जब उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब वह संतोंके उपदेशोंके अनुसार उनके द्वारा बताये हुए मेरे परमपदको—वास्तविक स्वरूपको सहजहीमें प्राप्त हो जाता है॥ २५॥

उद्धवजीने पूछा—भगवन्! बड़े-बड़े संत आपकी कीर्तिका गान करते हैं। आप कृपया बतलाइये कि आपके विचारसे संत पुरुषका क्या लक्षण है? आपके प्रति कैसी भक्ति करनी चाहिये, जिसका संतलोग आदर करते हैं?॥ २६॥ भगवन्! आप ही ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता, सत्यादि लोक और चराचर जगत्के स्वामी हैं। मैं आपका विनीत, प्रेमी और शरणागत भक्त हूँ। आप मुझे भक्ति और भक्तका रहस्य बतलाइये।२७। भगवन्! मैं जानता हूँ कि आप प्रकृतिसे परे पुरुषोत्तम एवं चिदाकाशस्वरूप ब्रह्म हैं। आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है; फिर भी आपने लीलाके लिये स्वेच्छासे ही यह

अलग शरीर धारण करके अवतार लिया है। इसलिये वास्तवमें आप ही भक्ति और भक्तका रहस्य बतला सकते हैं ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्यारे उद्धव! मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है। वह किसी भी प्राणीसे वैरभाव नहीं रखता और घोर-से-घोर दुःख भी प्रसन्नतापूर्वक सहता है। उसके जीवनका सार है सत्य, और उसके मनमें किसी प्रकारकी पापवासना कभी नहीं आती। वह समदर्शी और सबका भला करनेवाला होता है।२९। उसकी बुद्धि कामनाओंसे कलुषित नहीं होती। वह संयमी, मधुरस्वभाव और पवित्र होता है। संग्रह-परिग्रहसे सर्वथा दूर रहता है। किसी भी वस्तुके लिये वह कोई चेष्टा नहीं करता। परिमित भोजन करता है और शान्त रहता है। उसकी बुद्धि स्थिर होती है। उसे केवल मेरा ही भरोसा होता है और वह आत्मतत्त्वके चिन्तनमें सदा संलग्न रहता है ॥ ३० ॥ वह प्रमादरहित, गम्भीर स्वभाव और धैर्यवान् होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—ये छहों उसके वशमें रहते हैं। वह स्वयं तो कभी किसीसे किसी प्रकारका सम्मान नहीं चाहता, परन्तु दूसरोंका सम्मान करता रहता है। मेरे सम्बन्धकी बातें दूसरोंको समझानेमें बड़ा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रताका व्यवहार करता है। उसके हृदयमें करुणा भरी होती है। मेरे तत्त्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है ॥ ३१ ॥ प्रिय उद्धव! मैंने वेदों और शास्त्रोंके रूपमें मनुष्योंके धर्मका उपदेश किया है, उनके पालनसे अन्तःकरणशुद्धि आदि गुण और उल्लङ्घनसे नरकादि दुःख प्राप्त होते हैं; परन्तु मेरा जो भक्त उन्हें भी अपने ध्यान आदिमें विक्षेप समझकर त्याग देता है और केवल मेरे ही भजनमें लगा रहता है, वह परम संत है ॥ ३२ ॥ मैं कौन हूँ, कितना बड़ा हूँ, कैसा हूँ—इन बातोंको जाने, चाहे न जाने; किन्तु जो अनन्यभावसे मेरा भजन करते हैं, वे मेरे विचारसे मेरे परम भक्त हैं ॥ ३३ ॥

प्यारे उद्धव! मेरी मूर्ति और मेरे भक्तजनोंका दर्शन, स्पर्श, पूजा, सेवा-शुश्रूषा, स्तुति और प्रणाम करे तथा मेरे गुण और कर्मोंका कीर्तन करे ॥ ३४ ॥ उद्धव! मेरी कथा सुननेमें श्रद्धा रक्खे और निरन्तर मेरा ध्यान करता रहे। जो कुछ मिले, वह मुझे समर्पित कर दे और दास्यभावसे मुझे आत्मनिवेदन करे ॥ ३५ ॥ मेरे दिव्य जन्म और कर्मोंकी चर्चा करे। जन्माष्टमी, रामनवमी आदि पर्वोंपर आनन्द मनावे और संगीत, नृत्य, बाजे और समाजोंद्वारा मेरे मन्दिरोंमें उत्सव करे-करावे ॥ ३६ ॥ वार्षिक त्यौहारोंके दिन मेरे स्थानोंकी यात्रा करे, जुलूस निकाले तथा विविध उपहारोंसे मेरी पूजा करे। वैदिक अथवा तान्त्रिक पद्धतिसे दीक्षा ग्रहण करे। मेरे व्रतोंका पालन करे ॥ ३७ ॥ मन्दिरोंमें मेरी मूर्तियोंकी स्थापनामें श्रद्धा रक्खे। यदि यह काम अकेला न कर सके, तो औरोंके साथ मिलकर उद्योग करे। मेरे लिये पुष्पवाटिका, बगीचे, क्रीडाके स्थान, नगर और मन्दिर बनवावे ॥ ३८ ॥ सेवककी भाँति श्रद्धा-भक्तिके साथ निष्कपट भावसे मेरे मन्दिरोंकी सेवा-शुश्रूषा करे—झाड़े-बुहारे, लीपे-पोते, छिड़काव करे और तरह-तरहके चौक पूरे ॥ ३९ ॥ अभिमान न करे, दम्भ न करे। साथ ही अपने शुभ कर्मोंका ढिंढोरा भी न पीटे। प्रिय उद्धव! मेरे चढ़ावेकी, अपने काममें लगानेकी बात तो दूर रही, मुझे समर्पित दीपकके प्रकाशसे भी अपना काम न ले। किसी दूसरे देवताकी चढ़ायी हुई वस्तु मुझे न चढ़ावे ॥ ४० ॥ संसारमें जो वस्तु अपनेको सबसे प्रिय, सबसे अभीष्ट जान पड़े वह मुझे समर्पित कर दे। ऐसा करनेसे वह वस्तु अनन्त फल देनेवाली हो जाती है ॥ ४१ ॥

भद्र! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, आत्मा और समस्त प्राणी—ये सब मेरी पूजाके स्थान हैं ॥ ४२ ॥ प्यारे उद्धव! ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा सूर्यमें मेरी पूजा करनी चाहिये। हवनके द्वारा अग्निमें, आतिथ्यद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणमें और हरी-हरी घास आदिके द्वारा गौमें मेरी पूजा करे ॥ ४३ ॥ भाई-बन्धुके समान सत्कारके द्वारा वैष्णवमें, निरन्तर ध्यानमें लगे रहनेसे हृदयाकाशमें, मुख्य प्राण समझनेसे वायुमें और जल-पुष्प आदि सामग्रियोंद्वारा जलमें मेरी आराधना की जाती है ॥ ४४ ॥ गुप्तमन्त्रोंद्वारा न्यास करके मिट्टीकी वेदीमें, उपयुक्त भोगोंद्वारा आत्मामें और समदृष्टिद्वारा सम्पूर्ण

प्राणियोंमें मेरी आराधना करना चाहिये, क्योंकि मैं सभीमें क्षेत्रज्ञ आत्माके रूपसे स्थित हूँ ॥ ४५ ॥ इन सभी स्थानोंमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये चार भुजाओंवाले शान्तमूर्ति श्रीभगवान् विराजमान हैं, ऐसा ध्यान करते हुए एकाग्रताके साथ मेरी पूजा करनी चाहिये ॥ ४६ ॥ इस प्रकार जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे यज्ञ-यागादि इष्ट और कुआँ-बावली बनवाना आदि पूर्तकर्मोंके द्वारा मेरी पूजा करता है, उसे मेरी श्रेष्ठ भक्ति प्राप्त होती है तथा संत पुरुषोंकी सेवा करनेसे मेरे स्वरूपका ज्ञान भी हो जाता है ॥ ४७ ॥ प्यारे उद्धव! मेरा ऐसा निश्चय है कि सत्सङ्ग और भक्तियोग—इन दो साधनोंका एक साथ ही अनुष्ठान करते रहना चाहिये। प्रायः इन दोनोंके अतिरिक्त संसारसागरसे पार होनेका और कोई उपाय नहीं है, क्योंकि संतपुरुष मुझे अपना आश्रय मानते हैं और मैं सदा-सर्वदा उनके पास बना रहता हूँ ॥ ४८ ॥ प्यारे उद्धव! अब मैं तुम्हें एक अत्यन्त गोपनीय परम रहस्यकी बात बतलाऊँगा; क्योंकि तुम मेरे प्रिय सेवक, हितैषी, सुहृद् और प्रेमी सखा हो; साथ ही सुननेके भी इच्छुक हो ॥ ४९ ॥

बारहवाँ अध्याय

सत्सङ्गकी महिमा और कर्म तथा कर्मत्यागकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव! जगत्‌में जितनी आसक्तियाँ हैं, उन्हें सत्सङ्ग नष्ट कर देता है। यही कारण है कि सत्सङ्ग जिस प्रकार मुझे वशमें कर लेता है वैसा साधन न योग है न सांख्य, न धर्मपालन और न स्वाध्याय। तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त और दक्षिणासे भी मैं वैसा प्रसन्न नहीं होता। कहाँतक कहूँ—व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ और यम-नियम भी सत्सङ्गके समान मुझे वशमें करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १-२ ॥ निष्पाप उद्धवजी! यह एक युगकी नहीं, सभी युगोंकी एक-सी बात है। सत्सङ्गके द्वारा ही दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण-गुह्यक और विद्याधरोंको मेरी प्राप्ति हुई है। मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज आदि रजोगुणी-तमोगुणी प्रकृतिके बहुत-से जीवोंने मेरा परमपद प्राप्त किया है। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ, यज्ञपत्नियाँ और दूसरे लोग भी सत्सङ्गके प्रभावसे ही मुझे प्राप्त कर सके हैं ॥ ३—६ ॥ उन लोगोंने न तो वेदोंका स्वाध्याय किया था और न विधिपूर्वक महापुरुषोंकी उपासना की थी। इसी प्रकार उन्होंने कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत और कोई तपस्या भी नहीं की थी। बस, केवल सत्सङ्गके प्रभावसे ही वे मुझे प्राप्त हो गये ॥ ७ ॥ गोपियाँ, गायें, यमलार्जुन आदि वृक्ष, व्रजके हरिन आदि पशु, कालिय आदि नाग—ये तो साधन-साध्यके सम्बन्धमें सर्वथा ही मूढ़बुद्धि थे। इतने ही नहीं, ऐसे-ऐसे और भी बहुत हो गये हैं, जिन्होंने केवल प्रेमपूर्ण भावके द्वारा ही अनायास मेरी प्राप्ति कर ली और कृतकृत्य हो गये ॥ ८ ॥ उद्धव! बड़े-बड़े प्रयत्नशील साधक योग, सांख्य, दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, श्रुतियोंकी व्याख्या, स्वाध्याय और संन्यास आदि साधनोंके द्वारा मुझे नहीं प्राप्त कर सकते; परन्तु सत्सङ्गके द्वारा तो मैं अत्यन्त सुलभ हो जाता हूँ ॥ ९ ॥ उद्धव! जिस समय अक्रूरजी भैया बलरामजीके साथ मुझे व्रजसे मथुरा ले आये, उस समय गोपियोंका हृदय गाढ़ प्रेमके कारण मेरे अनुरागके रंगमें रँगा हुआ था। मेरे वियोगकी तीव्र व्याधिसे वे व्याकुल हो रही थीं और मेरे अतिरिक्त कोई भी दूसरी वस्तु उन्हें सुखकारक नहीं जान पड़ती थी ॥ १० ॥ तुम जानते हो कि मैं ही उनका एकमात्र प्रियतम हूँ। जब मैं वृन्दावनमें था, तब उन्होंने बहुत-सी रात्रियाँ—वे रासकी रात्रियाँ मेरे साथ आधे क्षणके समान बिता दी थीं; परन्तु प्यारे उद्धव! मेरे बिना वे ही रात्रियाँ उनके लिये एक-एक कल्पके समान हो गयीं ॥ ११ ॥ जैसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि समाधिमें स्थित होकर तथा गङ्गा आदि बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्रमें मिलकर अपने नाम-रूप खो देती हैं, वैसे ही वे गोपियाँ परम प्रेमके द्वारा मुझमें इतनी तन्मय हो गयी थीं कि उन्हें लोक-

परलोक, शरीर और अपने कहलानेवाले पति-पुत्रादिकी भी सुध-बुध नहीं रह गयी थी ॥ १२ ॥ उद्धव ! उन गोपियोंमें बहुत-सी तो ऐसी थीं, जो मेरे वास्तविक स्वरूपको नहीं जानती थीं। वे मुझे भगवान् न जानकर केवल प्रियतम ही समझती थीं और जारभावसे मुझसे मिलनेकी आकांक्षा किया करती थीं। उन साधनहीन सैकड़ों, हजारों अबलाओंने केवल सङ्गके प्रभावसे ही मुझ परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लिया ॥ १३ ॥ इसलिये उद्धव ! तुम श्रुति-स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृत्ति-निवृत्ति और सुननेयोग्य तथा सुने हुए विषयका भी परित्याग करके सर्वत्र मेरी ही भावना करते हुए समस्त प्राणियोंके आत्मस्वरूप मुझ एककी ही शरण सम्पूर्ण रूपसे ग्रहण करो; क्योंकि मेरी शरणमें आ जानेसे तुम सर्वथा निर्भय हो जाओगे ॥ १४-१५ ॥

उद्धवजीने कहा—सनकादि योगेश्वरोंके भी परमेश्वर प्रभो ! यों तो मैं आपका उपदेश सुन रहा हूँ, परन्तु इससे मेरे मनका सन्देह मिट नहीं रहा है। मुझे स्वधर्मका पालन करना चाहिये या सब कुछ छोड़कर आपकी शरण ग्रहण करनी चाहिये, मेरा मन इसी दुविधामें लटक रहा है। आप कृपा करके मुझे भलीभाँति समझाइये ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! जिस परमात्माका परोक्षरूपसे वर्णन किया जाता है, वे साक्षात् अपरोक्ष—प्रत्यक्ष ही हैं, क्योंकि वे ही निखिल वस्तुओंको सत्ता-स्फूर्ति—जीवन-दान करनेवाले हैं, वे ही पहले अनाहत नादस्वरूप परा वाणी नामक प्राणके साथ मूलाधारचक्रमें प्रवेश करते हैं। उसके बाद मणिपूरक-चक्र (नाभिस्थान) में आकर पश्यन्ती वाणीका मनोमय सूक्ष्मरूप धारण करते हैं। तदनन्तर कण्ठदेशमें स्थित विशुद्ध नामक चक्रमें आते हैं और वहाँ मध्यमा वाणीके रूपमें व्यक्त होते हैं। फिर क्रमशः मुखमें आकर ह्रस्व-दीर्घादि मात्रा, उदात्त-अनुदात्त आदि स्वर तथा ककारादि वर्णरूप स्थूल—वैखरी वाणीका रूप ग्रहण कर लेते हैं ॥ १७ ॥ अग्नि आकाशमें ऊष्मा अथवा विद्युत्के रूपसे अव्यक्तरूपमें स्थित है। जब बलपूर्वक काष्ठमन्थन किया जाता है, तब वायुकी सहायतासे वह पहले अत्यन्त सूक्ष्म चिनगारीके रूपमें प्रकट होती है और फिर आहुति देनेपर प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है, वैसे ही मैं भी शब्दब्रह्मस्वरूपसे क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणीके रूपमें प्रकट होता हूँ ॥ १८ ॥ इसी प्रकार बोलना, हाथोंसे काम करना, पैरोंसे चलना, मूत्रेन्द्रिय तथा गुदासे मल-मूत्र त्यागना, सूँघना, चखना, देखना, छूना, सुनना, मनसे संकल्प-विकल्प करना, बुद्धिसे समझना, अहङ्कारके द्वारा अभिमान करना, महत्तत्त्वके रूपमें सबका ताना-बाना बुनना तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणके सारे विकार; कहाँ-तक कहूँ—समस्त कर्ता, करण और कर्म मेरी ही अभिव्यक्तियाँ हैं ॥ १९ ॥ यह सबको जीवित करनेवाला परमेश्वर ही इस त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड-कमलका कारण है। यह आदि-पुरुष पहले एक और अव्यक्त था। जैसे उपजाऊ खेतमें बोया हुआ बीज शाखा-पत्र-पुष्पादि अनेक रूप धारण कर लेता है, वैसे ही कालगतिसे मायाका आश्रय लेकर शक्ति-विभाजनके द्वारा परमेश्वर ही अनेक रूपोंमें प्रतीत होने लगता है ॥ २० ॥ जैसे तागोंके ताने-बानेमें वस्त्र ओतप्रोत रहता है, वैसे ही यह सारा विश्व परमात्मामें ही ओतप्रोत है। जैसे सूतके बिना वस्त्रका अस्तित्व नहीं है; किन्तु सूत वस्त्रके बिना भी रह सकता है, वैसे ही इस जगत्के न रहनेपर भी परमात्मा रहता है; किन्तु यह जगत् परमात्मस्वरूप ही है—परमात्माके बिना इसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह संसारवृक्ष अनादि और प्रवाहरूपसे नित्य है। इसका स्वरूप ही है—कर्मकी परम्परा तथा इस वृक्षके फल-फूल हैं—मोक्ष और भोग ॥ २१ ॥ इस संसार-वृक्षके दो बीज हैं—पाप और पुण्य। असंख्य वासनाएँ जड़ें हैं और तीन गुण तने हैं। पाँच भूत इसकी मोटी-मोटी प्रधान शाखाएँ हैं और शब्दादि पाँच विषयरस हैं, ग्यारह इन्द्रियाँ शाखा हैं तथा जीव और ईश्वर—दो पक्षी इसमें घोंसला बनाकर निवास करते हैं। इस वृक्षमें वात, पित्त और कफरूप तीन तरहकी छाल है। इसमें दो तरहके फल लगते हैं—सुख और दुःख। यह विशाल वृक्ष सूर्यमण्डलतक फैला हुआ है (इस सूर्यमण्डलका भेदन कर जानेवाले मुक्त पुरुष फिर संसार-चक्रमें नहीं पड़ते) ॥ २२ ॥ जो गृहस्थ शब्द-

रूप-रस आदि विषयोंमें फँसे हुए हैं, वे कामनासे भरे हुए होनेके कारण गीधके समान हैं। वे इस वृक्षका दुःखरूप फल भोगते हैं, क्योंकि वे अनेक प्रकारके कर्मोंके बन्धनमें फँसे रहते हैं। जो अरण्यवासी परमहंस विषयोंसे विरक्त हैं, वे इस वृक्षमें राजहंसके समान हैं और वे इसका सुखरूप फल भोगते हैं। प्रिय उद्धव! वास्तवमें मैं एक ही हूँ। यह मेरा जो अनेकों प्रकारका रूप है, वह तो केवल मायामय है। जो इस बातको गुरुओंके द्वारा समझ लेता है, वही वास्तवमें समस्त वेदोंका रहस्य जानता है ॥ २३ ॥ अतः उद्धव! तुम इस प्रकार गुरुदेवकी उपासनारूप अनन्य भक्तिके द्वारा अपने ज्ञानकी कुल्हाड़ीको तीखी कर लो और उसके द्वारा धैर्य एवं सावधानीसे जीवभावको काट डालो। फिर परमात्मस्वरूप होकर उस वृत्तिरूप अस्त्रों-को भी छोड़ दो और अपने अखण्ड स्वरूपमें ही स्थित हो रहो ॥ २४ ॥*

तेरहवाँ अध्याय

हंसरूपसे सनकादिको दिये हुए उपदेशका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव! सत्त्व, रज और तम—ये तीनों बुद्धि (प्रकृति) के गुण हैं, आत्माके नहीं। सत्त्वके द्वारा रज और तम—इन दो गुणोंपर विजय प्राप्त कर लेनी चाहिये। तदनन्तर सत्त्वगुणकी शान्तवृत्तिके द्वारा उसकी दया आदि वृत्तियोंको भी शान्त कर देना चाहिये ॥ १ ॥ जब सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, तभी जीवको मेरे भक्तिरूप स्वधर्मकी प्राप्ति होती है। निरन्तर सात्त्विक वस्तुओंका सेवन करनेसे ही सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है और तब मेरे भक्तिरूप स्वधर्ममें प्रवृत्ति होने लगती है ॥ २ ॥ जिस धर्मके पालनसे सत्त्वगुणकी वृद्धि हो, वही सबसे श्रेष्ठ है। वह धर्म रजोगुण और तमोगुणको नष्ट कर देता है। जब वे दोनों नष्ट हो जाते हैं, तब उन्हींके कारण होनेवाला अधर्म भी शीघ्र ही मिट जाता है ॥ ३ ॥ शास्त्र, जल, प्रजाजन, देश, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र और संस्कार—ये दस वस्तुएँ यदि सात्त्विक हों तो सत्त्वगुणकी, राजसिक हों तो रजोगुणकी और तामसिक हों तो तमोगुणकी वृद्धि करती हैं ॥ ४ ॥ इनमेंसे शास्त्रज्ञ महात्मा जिनकी प्रशंसा करते हैं, वे सात्त्विक हैं, जिनकी निन्दा करते हैं, वे तामसिक हैं और जिनकी उपेक्षा करते हैं, वे वस्तुएँ राजसिक हैं ॥ ५ ॥ जब-तक अपने आत्माका साक्षात्कार तथा स्थूल-सूक्ष्म शरीर और उनके कारण तीनों गुणोंकी निवृत्ति न हो, तबतक मनुष्यको चाहिये कि सत्त्वगुणकी वृद्धिके लिये सात्त्विक शास्त्र आदिका ही सेवन करे; क्योंकि उससे धर्मकी वृद्धि होती है और धर्मकी वृद्धिसे अन्तःकरण शुद्ध होकर आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है ॥ ६ ॥ बाँसोंकी रगड़से आग पैदा होती है और वह उनके सारे वनको जलाकर शान्त हो जाती है। वैसे ही यह शरीर गुणोंके वैषम्यसे उत्पन्न हुआ है। विचारद्वारा मन्थन करनेपर इससे ज्ञानाग्नि प्रज्वलित होती है और वह समस्त शरीरों एवं गुणोंको भस्म करके स्वयं भी शान्त हो जाती है ॥ ७ ॥

उद्धवजीने पूछा—भगवन्! प्रायः सभी मनुष्य इस बातको जानते हैं कि विषय विपत्तियोंके घर हैं; फिर भी वे कुत्ते, गधे और बकरेके समान दुःख सहन

* ईश्वर अपनी मायाके द्वारा प्रपञ्चरूपसे प्रतीत हो रहा है। इस प्रपञ्चके अध्यासके कारण ही जीवोंको अनादि अविद्यासे कर्तापन आदिकी भ्रान्ति होती है। फिर 'यह करो, यह मत करो' इस प्रकारके विधि-निषेधका अधिकार होता है। तब 'अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये कर्म करो'—यह बात कही जाती है। जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, तब कर्मसम्बन्धी दुराग्रह मिटानेके लिये यह बात कही जाती है कि भक्तिमें विक्षेप डालनेवाले कर्मोंके प्रति आदरभाव छोड़कर दृढ़ विश्वाससे भजन करो। तत्त्वज्ञान हो जानेपर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। यही इस प्रसङ्गका अभिप्राय है।

करके भी उन्हींको ही भोगते रहते हैं। इसका क्या कारण है ? ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! जीव जब अज्ञानवश अपने स्वरूपको भूलकर हृदयसे सूक्ष्म-स्थूलादि शरीरोंमें अहंबुद्धि कर बैठता है—जो कि सर्वथा भ्रम ही है—तब उसका सत्त्वप्रधान मन घोर रजोगुणकी ओर झुक जाता है; उससे व्याप्त हो जाता है ॥ ९ ॥ बस, जहाँ मनमें रजोगुणकी प्रधानता हुई कि उसमें संकल्प-विकल्पोंका ताँता बँध जाता है। अब वह विषयोंका चिन्तन करने लगता है और अपनी दुर्बुद्धिके कारण कामके फंदेमें फँस जाता है, जिससे फिर छुटकारा होना बहुत ही कठिन है ॥ १० ॥ अब वह अज्ञानी कामवश अनेकों प्रकारके कर्म करने लगता है और इन्द्रियोंके वश होकर, यह जानकर भी कि इन कर्मोंका अन्तिम फल दुःख ही है, उन्हींको करता है, उस समय वह रजोगुणके तीव्र वेगसे अत्यन्त मोहित रहता है ॥ ११ ॥ यद्यपि विवेकी पुरुषका चित्त भी कभी-कभी रजोगुण और तमोगुणके वेगसे विक्षिप्त होता है, तथापि उसकी विषयोंमें दोषदृष्टि बनी रहती है; इसलिये वह बड़ी सावधानीसे अपने चित्तको एकाग्र करनेकी चेष्टा करता रहता है, जिससे उसकी विषयोंमें आसक्ति नहीं होती ॥ १२ ॥ साधकको चाहिये कि आसन और प्राणवायुपर विजय प्राप्त कर अपनी शक्ति और समयके अनुसार बड़ी सावधानीसे धीरे-धीरे मुझमें अपना मन लगावे और इस प्रकार अभ्यास करते समय अपनी असफलता देखकर तनिक भी ऊबे नहीं, बल्कि और भी उत्साहसे उसीमें जुड़ जाय ॥ १३ ॥ प्रिय उद्धव ! मेरे शिष्य सनकादि परमर्षियोंने योगका यही स्वरूप बताया है कि साधक अपने मनको सब ओर-से खींचकर विराट् आदिमें नहीं, साक्षात् मुझमें ही पूर्णरूपसे लगा दें ॥ १४ ॥

उद्धवजीने कहा—श्रीकृष्ण ! आपने जिस समय जिस रूपसे, सनकादि परमर्षियोंको योगका आदेश दिया था, उस रूपको मैं जानना चाहता हूँ ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! सनकादि परमर्षि ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। उन्होंने एक बार अपने पितासे योगकी सूक्ष्म अन्तिम सीमाके सम्बन्धमें इस प्रकार प्रश्न किया था ॥ १६ ॥

सनकादि परमर्षियोंने पूछा—पिताजी ! चित्त गुणों अर्थात् विषयोंमें घुसा ही रहता है और गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें प्रविष्ट रहते ही हैं। अर्थात् चित्त और गुण आपसमें मिले-जुले ही रहते हैं। ऐसी स्थितिमें जो पुरुष इस संसारसागरसे पार होकर मुक्ति-पद प्राप्त करना चाहता है, वह इन दोनोंको एक-दूसरेसे अलग कैसे कर सकता है ? ॥ १७ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव ! यद्यपि ब्रह्माजी सब देवताओंके शिरोमणि, स्वयम्भू और प्राणियोंके जन्मदाता हैं। फिर भी सनकादि परमर्षियोंके इस प्रकार पूछनेपर ध्यान करके भी वे इस प्रश्नका मूलकारण न समझ सके; क्योंकि उनकी बुद्धि कर्म-प्रवण थी ॥ १८ ॥ उद्धव ! उस समय ब्रह्माजीने इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये भक्तिभावसे मेरा चिन्तन किया। तब मैं हंसका रूप धारण करके उनके सामने प्रकट हुआ ॥ १९ ॥ मुझे देखकर सनकादि ब्रह्माजी-को आगे करके मेरे पास आये और उन्होंने मेरे चरणोंकी वन्दना करके मुझसे पूछा कि 'आप कौन हैं ?' ॥ २० ॥ प्रिय उद्धव ! सनकादि परमार्थतत्त्वके जिज्ञासु थे; इसलिये उनके पूछनेपर उस समय मैंने जो कुछ कहा वह तुम मुझसे सुनो—॥ २१ ॥ 'ब्राह्मणो ! यदि परमार्थरूप वस्तु नानात्वसे सर्वथा रहित है, तब आत्माके सम्बन्धमें आप लोगोंका ऐसा प्रश्न कैसे युक्ति-संगत हो सकता है ? अथवा मैं यदि उत्तर देनेके लिये बोलूँ भी तो किस जाति, गुण, क्रिया और सम्बन्ध आदिका आश्रय लेकर उत्तर दूँ ? ॥ २२ ॥ देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी शरीर पञ्चभूतात्मक होनेके कारण अभिन्न ही हैं और परमार्थरूपसे भी अभिन्न हैं। ऐसी स्थितिमें 'आप कौन हैं ?' आप लोगोंका यह प्रश्न ही केवल वाणीका व्यवहार है। विचारपूर्वक नहीं है, अतः निरर्थक है ॥ २३ ॥ मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आप लोग तत्त्वविचारके द्वारा

समझ लीजिये ॥ २४ ॥ पुत्रो ! यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है, तथापि विषय और चित्त ये दोनों ही मेरे स्वरूपभूत जीवके देह हैं—उपाधि हैं। अर्थात् आत्माका चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है ॥ २५ ॥ इसलिये बार-बार विषयोंका सेवन करते रहनेसे जो चित्त विषयोंमें आसक्त हो गया है और विषय भी चित्तमें प्रविष्ट हो गये हैं, इन दोनोंको अपने वास्तविकसे अभिन्न मुझ परमात्माका साक्षात्कार करके त्याग देना चाहिये ॥ २६ ॥ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ सत्त्वादि गुणोंके अनुसार होती हैं और बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं, सच्चिदानन्दका स्वभाव नहीं। इन वृत्तियों-का साक्षी होनेके कारण जीव उनसे विलक्षण है। यह सिद्धान्त श्रुति, युक्ति और अनुभूतिसे युक्त है ॥२७॥ क्योंकि बुद्धि-वृत्तियोंके द्वारा होनेवाला यह बन्धन ही आत्मामें त्रिगुणमयी वृत्तियोंका दान करता है। इसलिये तीनों अवस्थाओंसे विलक्षण और उनमें अनुगत मुझ तुरीय तत्त्वमें स्थित होकर इस बुद्धिके बन्धनका परित्याग कर दे। तब विषय और चित्त दोनोंका युगपत् त्याग हो जाता है ॥ २८ ॥ यह बन्धन अहङ्कारकी ही रचना है और यही आत्माके परिपूर्णतम सत्य, अखण्डज्ञान और परमानन्दस्वरूपको छिपा देता है। इस बातको जानकर विरक्त हो जाय। और अपने तीन अवस्थाओंमें अनुगत तुरीयस्वरूपमें होकर संसारकी चिन्ताको छोड़ दे ॥ २९ ॥ जबतक पुरुषकी भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें सत्यत्वबुद्धि, अहंबुद्धि और ममबुद्धि युक्तियोंके द्वारा निवृत्त नहीं हो जाती, तबतक वह अज्ञानी यद्यपि जागता है तथापि सोता हुआ-सा रहता है—जैसे स्वप्नावस्थामें जान पड़ता है कि मैं जाग रहा हूँ ॥ ३० ॥ आत्मासे अन्य देह आदि प्रतीयमान नाम-रूपात्मक प्रपञ्चका कुछ भी अस्तित्व नहीं है। इसलिये उनके कारण होनेवाले वर्णाश्रमादिभेद, स्वर्गादिफल और उनके कारणभूत कर्म—ये सब-के-सब इस आत्माके लिये वैसे ही मिथ्या हैं; जैसे स्वप्नदर्शी पुरुषके द्वारा देखे हुए सब-के-सब पदार्थ ॥ ३१ ॥

जो जाग्रत् अवस्थामें समस्त इन्द्रियोंके द्वारा बाहर दीखनेवाले सम्पूर्ण क्षणभङ्गुर पदार्थोंको अनुभव करता है और स्वप्नावस्थामें हृदयमें ही जाग्रत्में देखे हुए पदार्थोंके समान ही वासनामय विषयोंका अनुभव करता है और सुषुप्ति-अवस्थामें उन सब विषयोंको समेटकर उनके लयको भी अनुभव करता है, वह एक ही है। जाग्रत् अवस्थाके इन्द्रिय, स्वप्नावस्थाके मन और सुषुप्तिकी संस्कारवती बुद्धिका भी वही स्वामी है। क्योंकि वह त्रिगुणमयी तीनों अवस्थाओंका साक्षी है। 'जिस मैंने स्वप्न देखा, जो मैं सोया, वही मैं जाग रहा हूँ'—इस स्मृतिके बलपर एक ही आत्माका समस्त अवस्थाओंमें होना सिद्ध हो जाता है ॥ ३२ ॥ ऐसा विचारकर मन-की ये तीनों अवस्थाएँ गुणोंके द्वारा मेरी मायासे मेरे अंशस्वरूप जीवमें कल्पित की गयी हैं और आत्मामें ये नितान्त असत्य हैं, ऐसा निश्चय करके तुमलोग अनुमान, सत्पुरुषोंद्वारा किये गये उपनिषदोंके श्रवण और तीक्ष्ण ज्ञानखड्गके द्वारा सकल संशयोंके आधार अहंकारका छेदन करके हृदयमें स्थित मुझ परमात्माका भजन करो ॥ ३३ ॥

यह जगत् मनका विलास है, दीखनेपर भी नष्ट-प्राय है, अलातचक्र (लुकारियोंकी बनेठी) के समान अत्यन्त चञ्चल है और भ्रममात्र है—ऐसा समझे। ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित एक ज्ञानस्वरूप आत्मा ही अनेक-सा प्रतीत हो रहा है। यह स्थूल शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप तीन प्रकारका विकल्प गुणोंके परिणामकी रचना है और स्वप्नके समान माया-का खेल है, अज्ञानसे कल्पित है ॥ ३४ ॥ इसलिये उस देहादिरूप दृश्यसे दृष्टि हटाकर तृष्णारहित इन्द्रियोंके व्यापारसे हीन और निरीह होकर आत्मानन्दके अनुभवमें मग्न हो जाय। यद्यपि कभी-कभी आहार आदिके समय यह देहादिक प्रपञ्च देखनेमें आता है, तथापि यह पहले ही आत्मवस्तुसे अतिरिक्त और मिथ्या समझकर छोड़ा जा चुका है। इसलिये वह पुनः भ्रान्तिमूलक मोह उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। देहपातपर्यन्त केवल संस्कारमात्र उसकी प्रतीति होती है ॥ ३५ ॥ जैसे मदिरा पीकर उन्मत्त पुरुष यह

नहीं देखता कि मेरे द्वारा पहना हुआ वस्त्र शरीरपर है या गिर गया, वैसे ही सिद्ध पुरुष जिस शरीरसे उसने अपने स्वरूपका साक्षात्कार किया है, वह प्रारब्धवश खड़ा है, बैठा है या दैववश कहीं गया या आया है—नश्वर शरीरसम्बन्धी इन बातोंपर दृष्टि नहीं डालता ॥ ३६ ॥ प्राण और इन्द्रियोंके साथ यह शरीर भी प्रारब्धके अधीन है। इसलिये अपने आरम्भक (बनानेवाले) कर्म जबतक हैं, तबतक उनकी प्रतीक्षा करता ही रहता है। परन्तु आत्मवस्तुका साक्षात्कार करनेवाला तथा समाधिपर्यन्त योगमें आरूढ़ पुरुष, स्त्री, पुत्र, धन आदि प्रपञ्चके सहित उस शरीरको फिर कभी स्वीकार नहीं करता, अपना नहीं मानता, जैसे जगा हुआ पुरुष स्वप्नावस्थाके शरीर आदिको ॥ ३७ ॥ सनकादि ऋषियो ! मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सांख्य और योग दोनोंका गोपनीय रहस्य है। मैं स्वयं भगवान् हूँ, तुमलोगोंको तत्त्वज्ञानका उपदेश करनेके लिये ही यहाँ आया हूँ, ऐसा समझो ॥ ३८ ॥ विप्रवरो ! मैं योग, सांख्य, सत्य, ऋत (मधुरभाषण), तेज, श्री, कीर्ति और दम (इन्द्रियनिग्रह) इन सबकी परम गति—परम अधिष्ठान हूँ ॥ ३९ ॥ मैं समस्त गुणोंसे रहित हूँ और किसीकी अपेक्षा नहीं रखता। फिर भी साम्य, असङ्गता आदि सभी गुण मेरा ही सेवन करते हैं, मुझमें ही प्रतिष्ठित हैं; क्योंकि मैं सबका हितैषी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हूँ। सच पूछो, तो उन्हें गुण कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि वे सत्त्वादि गुणोंके परिणाम नहीं हैं और नित्य हैं ॥ ४० ॥

प्रिय उद्धव ! इस प्रकार मैंने सनकादि मुनियोंके संशय मिटा दिये। उन्होंने परम भक्तिसे मेरी पूजा की और स्तुतियोंद्वारा मेरी महिमाका गान किया ॥ ४१ ॥ जब उन परमर्षियोंने भलीभाँति मेरी पूजा और स्तुति कर ली, तब मैं ब्रह्माजीके सामने ही अदृश्य होकर अपने धाममें लौट आया ॥ ४२ ॥

चौदहवाँ अध्याय

भक्तियोगकी महिमा तथा ध्यानविधिका वर्णन

उद्धवजीने पूछा—श्रीकृष्ण ! ब्रह्मवादी महात्मा आत्मकल्याणके अनेकों साधन बतलाते हैं। उनमें अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार सभी श्रेष्ठ हैं अथवा किसी एककी प्रधानता है ? ॥ १ ॥ मेरे स्वामी ! आपने तो अभी-अभी भक्तियोगको ही निरपेक्ष एवं स्वतन्त्र साधन बतलाया है; क्योंकि इसीसे सब ओरसे आसक्ति छोड़कर मन आपमें ही तन्मय हो जाता है ॥ २ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! यह वेदवाणी समयके फेरसे प्रलयके अवसरपर लुप्त हो गयी थी; फिर जब सृष्टिका समय आया, तब मैंने अपने सङ्कल्पसे ही इसे ब्रह्माको उपदेश किया, इसमें मेरे भागवतधर्मका ही वर्णन है ॥ ३ ॥ ब्रह्माने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वायम्भुव मनुको उपदेश किया और उनसे भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलह, अत्रि, पुलस्त्य और क्रतु—इन सात प्रजापति-महर्षियोंने ग्रहण किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर इन ब्रह्मर्षियोंकी सन्तान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्देव*, किन्नर†, नाग, राक्षस और किम्पुरुष‡ आदिने इसे अपने पूर्वज इन्हीं ब्रह्मर्षियोंसे प्राप्त किया। सभी जातियों और व्यक्तियोंके स्वभाव—उनकी वासनाएँ सत्त्व, रज और तमोगुणके कारण भिन्न-भिन्न हैं; इसलिये उनमें और उनकी बुद्धि-वृत्तियोंमें भी अनेकों भेद हैं। इसीलिये वे सभी अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार उस वेदवाणीका भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण करते हैं। वह वाणी ही ऐसी अलौकिक है कि उससे विभिन्न अर्थ निकलना स्वाभाविक ही

* श्रम और स्वेदादि दुर्गन्धसे रहित होनेके कारण जिनके विषयमें 'ये देवता हैं या मनुष्य' ऐसा सन्देह हो, वे द्वीपान्तर-निवासी मनुष्य।

† मुख तथा शरीरकी आकृतिसे कुछ-कुछ मनुष्यके समान प्राणी।

‡ कुछ-कुछ पुरुषके समान प्रतीत होनेवाले वानरादि।

है ॥ ५-७ ॥ इसी प्रकार स्वभावभेद तथा परम्परागत उपदेशके भेदसे मनुष्योंकी बुद्धिमें भिन्नता आ जाती है और कुछ लोग तो बिना किसी विचारके वेदविरुद्ध पाखण्डमतावलम्बी हो जाते हैं ॥ ८ ॥ प्रिय उद्धव ! सभीकी बुद्धि मेरी मायासे मोहित हो रही है; इसीसे वे अपने-अपने कर्म-संस्कार और अपनी-अपनी रुचिके अनुसार आत्मकल्याणके साधन भी एक नहीं, अनेकों बतलाते हैं ॥ ९ ॥ पूर्वमीमांसक धर्मको, साहित्याचार्य यशको, कामशास्त्री कामको, योगवेत्ता सत्य और शम-दमादिको, दण्डनीतिकार ऐश्वर्यको, त्यागी त्यागको और लोकायतिक भोगको ही मनुष्य-जीवनका स्वार्थ—परम लाभ बतलाते हैं ॥ १० ॥ कर्मयोगी लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत तथा यम-नियम आदिको पुरुषार्थ बतलाते हैं । परन्तु ये सभी कर्म हैं; इनके फलस्वरूप जो लोक मिलते हैं, वे उत्पत्ति और नाशवाले हैं । कर्मोंका फल समाप्त हो जानेपर उनसे दुःख ही मिलता है और सच पूछो, तो उनकी अन्तिम गति घोर अज्ञान ही है । उनसे जो सुख मिलता है, वह तुच्छ है—नगण्य है और वे लोक भोगके समय भी असूया आदि दोषोंके कारण शोकसे परिपूर्ण हैं । (इसलिये इन विभिन्न साधनोंके फेरमें न पड़ना चाहिये) ॥ ११ ॥

प्रिय उद्धव ! जो सब ओरसे निरपेक्ष—बेपरवाह हो गया है, किसी भी कर्म या फल आदिकी आवश्यकता नहीं रखता और अपने अन्तःकरणको सब प्रकारसे मुझे ही समर्पित कर चुका है, परमानन्दस्वरूप मैं उसकी आत्माके रूपमें स्फुरित होने लगता हूँ । इससे वह जिस सुखका अनुभव करता है, वह विषयलोलुप प्राणियोंको किसी प्रकार मिल नहीं सकता ॥ १२ ॥ जो सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहसे रहित—अकिञ्चन है, जो अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करके शान्त और समदर्शी हो गया है, जो मेरी प्राप्तिसे ही मेरे सान्निध्यका अनुभव करके ही सदा-सर्वदा पूर्ण सन्तोषका अनुभव करता है, उसके लिये आकाशका एक-एक कोना आनन्दसे भरा हुआ है ॥ १३ ॥ जिसने अपनेको मुझे सौंप दिया है, वह मुझे छोड़कर न तो ब्रह्माका पद चाहता है और न देवराज इन्द्रका, उसके मनमें न तो सार्वभौम सम्राट् बननेकी इच्छा होती है और न वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ रसातलका ही स्वामी होना चाहता है । वह योगकी बड़ी-बड़ी सिद्धियों और मोक्षतककी अभिलाषा नहीं करता ॥ १४ ॥ उद्धव ! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा, शङ्कर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है ॥ १५ ॥ जिसे किसीकी अपेक्षा नहीं, जो जगत्के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ ॥ १६ ॥ जो सब प्रकारके संग्रह-परिग्रहसे रहित हैं—यहाँतक कि शरीर आदिमें भी अहंता-ममता नहीं रखते, जिनका चित्त मेरे ही प्रेमके रंगमें रँग गया है, जो संसारकी वासनाओंसे शान्त—उपरत हो चुके हैं और जो अपनी महत्ता—उदारताके कारण स्वभावसे ही समस्त प्राणियोंके प्रति दया और प्रेमका भाव रखते हैं, किसी प्रकारकी कामना जिनकी बुद्धिका स्पर्श नहीं कर पाती, उन्हें मेरे जिस परमानन्दस्वरूपका अनुभव होता है, उसे और कोई नहीं जान सकता; क्योंकि वह परमानन्द तो केवल निरपेक्षतासे ही प्राप्त होता है ॥१७॥

उद्धवजी ! मेरा जो भक्त अभी जितेन्द्रिय नहीं हो सका है और संसारके विषय बार-बार उसे बाधा पहुँचाते रहते हैं—अपनी ओर खींच लिया करते हैं, वह भी क्षण-क्षणमें बढ़नेवाली मेरी प्रगल्भ भक्तिके प्रभावसे प्रायः विषयोंसे पराजित नहीं होता ॥१८॥ उद्धव ! जैसे धधकती हुई आग लकड़ियोंके बड़े ढेरको भी जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही मेरी भक्ति भी समस्त पाप-राशिको पूर्णतया जला डालती है ॥ १९ ॥ उद्धव ! योग-साधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्मानुष्ठान, जप-पाठ और तप-त्याग मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं, जितनी दिनों-दिन बढ़नेवाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति ॥ २० ॥ मैं संतोंका प्रियतम आत्मा हूँ, मैं अनन्य श्रद्धा और अनन्य भक्तिसे ही पकड़में आता हूँ । मुझे प्राप्त करनेका यह एक ही उपाय है । मेरी अनन्य भक्ति उन लोगोंको

भी पवित्र—जातिदोषसे मुक्त कर देती है, जो जन्मसे ही चाण्डाल हैं ॥ २१ ॥ इसके विपरीत जो मेरी भक्तिसे वञ्चित हैं, उनके चित्तको सत्य और दयासे युक्त धर्म और तपस्यासे युक्त विद्या भी भलीभाँति पवित्र करनेमें असमर्थ है ॥२२॥ जबतक सारा शरीर पुलकित नहीं हो जाता, चित्त पिघलकर गद्गद नहीं हो जाता, आनन्दके आँसू आँखोंसे छलकने नहीं लगते तथा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग भक्तिकी बाढ़में चित्त डूबने-उतराने नहीं लगता, तबतक इसके शुद्ध होनेकी कोई सम्भावना नहीं है ॥ २३ ॥ जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित्त पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परन्तु जो कभी-कभी खिलखिलाकर हँसने भी लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है तो कहीं नाचने लगता है, भैया उद्धव ! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है ॥ २४ ॥ जैसे आगमें तपानेपर सोना मैल छोड़ देता है—निखर जाता है और अपने असली शुद्ध रूपमें स्थित हो जाता है, वैसे ही मेरे भक्तियोगके द्वारा आत्मा कर्म-वासनाओंसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि मैं ही उसका वास्तविक स्वरूप हूँ ॥ २५ ॥ उद्धवजी ! मेरी परमपावन लीला-कथाके श्रवण-कीर्तनसे ज्यों-ज्यों चित्तका मैल धुलता जाता है, त्यों-त्यों उसे सूक्ष्मवस्तुके—वास्तविक तत्त्वके दर्शन होने लगते हैं—जैसे अंजनके द्वारा नेत्रोंका दोष मिटनेपर उनमें सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेकी शक्ति आने लगती है ॥ २६ ॥

जो पुरुष निरन्तर विषय-चिन्तन किया करता है, उसका चित्त विषयोंमें फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है, उसका चित्त मुझमें तल्लीन हो जाता है ॥२७॥ इसलिये तुम दूसरे साधनों और फलोंका चिन्तन छोड़ दो । अरे भाई ! मेरे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, जो कुछ जान पड़ता है, वह ठीक वैसा ही है जैसे स्वप्न अथवा मनोरथका राज्य । इसलिये मेरे चिन्तनसे तुम अपना चित्त शुद्ध कर लो और उसे पूरी तरहसे—एकाग्रतासे मुझमें ही लगा दो ॥ २८ ॥ संयमी पुरुष स्त्रियों और उनके प्रेमियोंका सङ्ग दूरसे ही छोड़कर, पवित्र एकान्त स्थानमें बैठकर बड़ी सावधानीसे मेरा ही चिन्तन करे ॥ २९ ॥ प्यारे उद्धव ! स्त्रियोंके सङ्गसे और स्त्रीसङ्गियोंके—लम्पटोंके सङ्गसे पुरुषको जैसे क्लेश और बन्धनमें पड़ना पड़ता है, वैसा क्लेश और फँसावट और किसीके भी सङ्गसे नहीं होती ॥ ३० ॥

उद्धवजीने पूछा—कमलनयन श्यामसुन्दर ! आप कृपा करके यह बतलाइये कि मुमुक्षु पुरुष आपका किस रूपसे, किस प्रकार और किस भावसे ध्यान करे ? ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! जो न तो बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा ही—ऐसे आसनपर शरीरको सीधा रखकर आरामसे बैठ जाय, हाथोंको अपनी गोदमें रख ले और दृष्टि अपनी नासिकाके अग्रभागपर जमावे ॥ ३२ ॥ इसके बाद पूरक, कुम्भक और रेचक तथा रेचक, कुम्भक और पूरक—इन प्राणायामोंके द्वारा नाड़ियोंका शोधन करे । प्राणायामका अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये और उसके साथ-साथ इन्द्रियोंको जीतनेका भी अभ्यास करना चाहिये ॥ ३३ ॥ हृदयमें कमलनालगत पतले सूतके समान ॐकारका चिन्तन करे, प्राणके द्वारा उसे ऊपर ले जाय और उसमें घण्टानादके समान स्वर स्थिर करे । उस स्वरका ताँता टूटने न पावे ॥ ३४ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन तीन समय दस-दस बार ॐकारसहित प्राणायामका अभ्यास करे । ऐसा करनेसे एक महीनेके अंदर ही प्राणवायु वशमें हो जाता है ॥३५॥ इसके बाद ऐसा चिन्तन करे कि हृदय एक कमल है, वह शरीरके भीतर इस प्रकार स्थित है मानो उसकी डंडी तो ऊपरकी ओर है और मुँह नीचेकी ओर । अब ध्यान करना चाहिये कि उसका मुख ऊपरकी ओर होकर खिल गया है, उसके आठ दल (पँखुड़ियाँ) हैं और उनके बीचोबीच पीली-पीली अत्यन्त सुकुमार कर्णिका (गद्दी) है ॥ ३६ ॥ कर्णिकापर क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका न्यास करना चाहिये । तदनन्तर अग्निके अंदर मेरे इस रूपका स्मरण करना चाहिये । मेरा यह स्वरूप ध्यानके लिये बड़ा ही मङ्गलमय है ॥ ३७ ॥ मेरे अवयवोंकी गठन बड़ी ही सुडौल है । रोम-रोमसे शान्ति टपकती है । मुखकमल अत्यन्त प्रफुल्लित और सुन्दर है । घुटनोंतक लंबी मनोहर चार भुजाएँ हैं ।

बड़ी ही सुन्दर और मनोहर गरदन है। मरकतमणिके समान सुस्निग्ध कपोल हैं। मुखपर मन्द-मन्द मुसकानकी अनोखी ही छटा है। दोनों ओरके कान बराबर हैं और उनमें मकराकृत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल कर रहे हैं। वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा है। श्रीवत्स एवं लक्ष्मीजीका चिह्न वक्षःस्थलपर दायें-बायें विराजमान है। हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये हुए हैं। गलेमें वनमाला लटक रही है। चरणोंमें नूपुर शोभा दे रहे हैं, गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही है। अपने-अपने स्थानपर चमचमाते हुए किरीट, कंगन, करधनी और बाजूबंद शोभायमान हो रहे हैं। मेरा एक-एक अङ्ग अत्यन्त सुन्दर एवं हृदयहारी है। सुन्दर मुख और प्यारभरी चितवन कृपा-प्रसादकी वर्षा कर रही है। उद्धव! मेरे इस सुकुमार रूपका ध्यान करना चाहिये और अपने मनको एक-एक अङ्गमें लगाना चाहिये॥ ३८—४१॥

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे खींच ले और मनको बुद्धिरूप सारथीकी सहायतासे मुझमें ही लगा दे, चाहे मेरे किसी भी अङ्गमें क्यों न लगे॥ ४२॥ जब सारे शरीरका ध्यान होने लगे, तब अपने चित्तको खींचकर एक स्थानमें स्थिर करे और अन्य अङ्गोंका चिन्तन न करके केवल मन्द-मन्द मुसकानकी छटासे युक्त मेरे मुखका ही ध्यान करे॥ ४३॥ जब चित्त मुखारविन्दमें ठहर जाय, तब उसे वहाँसे हटाकर आकाशमें स्थिर करे। तदनन्तर आकाशका चिन्तन भी त्याग कर मेरे स्वरूपमें आरूढ हो जाय और मेरे सिवा किसी भी वस्तुका चिन्तन न करे॥ ४४॥ जब इस प्रकार चित्त समाहित हो जाता है, तब जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योतिसे मिलकर एक हो जाती है, वैसे ही अपनेमें मुझे और मुझ सर्वात्मामें अपनेको अनुभव करने लगता है॥ ४५॥ जो योगी इस प्रकार तीव्र ध्यानयोगके द्वारा मुझमें ही अपने चित्तका संयम करता है, उसके चित्तसे वस्तुकी अनेकता, तत्सम्बन्धी ज्ञान और उनकी प्राप्तिके लिये होनेवाले कर्मोंका भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है॥ ४६॥

पंद्रहवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न सिद्धियोंके नाम और लक्षण

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव! जब साधक इन्द्रिय, प्राण और मनको अपने वशमें करके अपना चित्त मुझमें लगाने लगता है, मेरी धारणा करने लगता है, तब उसके सामने बहुत-सी सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं॥ १॥

उद्धवजीने कहा—अच्युत! कौन-सी धारणा करनेसे किस प्रकार कौन-सी सिद्धि प्राप्त होती है और उनकी संख्या कितनी है, आप ही योगियोंको सिद्धियाँ देते हैं, अतः आप इनका वर्णन कीजिये॥ २॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव! धारणायोगके पारगामी योगियोंने अठारह प्रकारकी सिद्धियाँ बतलायी हैं। उनमें आठ सिद्धियाँ तो प्रधानरूपसे मुझमें ही रहती हैं और दूसरोंमें न्यून। और दस सत्त्वगुणके विकाससे भी मिल जाती हैं॥ ३॥ उनमें तीन सिद्धियाँ तो शरीरकी हैं—'अणिमा', 'महिमा' और 'लघिमा'। इन्द्रियोंकी एक सिद्धि है—'प्राप्ति'। लौकिक और पारलौकिक पदार्थोंका इच्छानुसार अनुभव करनेवाली सिद्धि 'प्राकाम्य' है। माया और उसके कार्योंको इच्छानुसार सञ्चालित करना 'ईशिता' नामकी सिद्धि है॥ ४॥ विषयोंमें रहकर भी उनमें आसक्त न होना 'वशिता' है और जिस-जिस सुखकी कामना करे, उसकी सीमातक पहुँच जाना 'कामावसायिता' नामकी आठवीं सिद्धि है। ये आठों सिद्धियाँ मुझमें स्वभावसे ही रहती हैं और जिन्हें मैं देता हूँ, उन्हींको अंशतः प्राप्त होती हैं॥५॥ इनके अतिरिक्त और भी कई सिद्धियाँ हैं। शरीरमें भूख-प्यास आदि वेगोंका न होना, बहुत दूरकी वस्तु देख लेना और बहुत दूरकी बात सुन लेना, मनके साथ ही शरीरका उस स्थानपर पहुँच जाना, जो इच्छा हो वही रूप बना लेना; दूसरे शरीरमें प्रवेश करना, जब

इच्छा हो तभी शरीर छोड़ना, अप्सराओंके साथ होनेवाली देवक्रीड़ाका दर्शन, सङ्कल्पकी सिद्धि, सब जगह सबके द्वारा बिना ननु-नचके आज्ञापालन—ये दस सिद्धियाँ सत्त्वगुणके विशेष विकाससे होती हैं ॥ ६-७ ॥ भूत, भविष्य और वर्तमानकी बात जान लेना; शीत-उष्ण, सुख-दुःख और राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके वशमें न होना, दूसरेके मन आदिकी बात जान लेना; अग्नि, सूर्य, जल, विष आदिकी शक्तिको स्तम्भित कर देना और किसीसे भी पराजित न होना—ये पाँच सिद्धियाँ भी योगियोंको प्राप्त होती हैं ॥ ८ ॥ प्रिय उद्धव ! योग-धारणा करनेसे जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनका मैंने नाम-निर्देशके साथ वर्णन कर दिया । अब किस धारणासे कौन-सी सिद्धि कैसे प्राप्त होती है, यह बतलाता हूँ, सुनो ॥९॥

प्रिय उद्धव ! पञ्चभूतोंकी सूक्ष्मतम मात्राएँ मेरा ही शरीर हैं । जो साधक केवल मेरे उसी शरीरकी उपासना करता है और अपने मनको तदाकार बनाकर उसीमें लगा देता है अर्थात् मेरे तन्मात्रात्मक शरीरके अतिरिक्त और किसी भी वस्तुका चिन्तन नहीं करता, उसे 'अणिमा' नामकी सिद्धि अर्थात् पत्थरकी चट्टान आदिमें भी प्रवेश करनेकी शक्ति—अणुता प्राप्त हो जाती है ॥ १० ॥ महत्तत्त्वके रूपमें भी मैं ही प्रकाशित हो रहा हूँ और उस रूपमें समस्त व्यावहारिक ज्ञानोंका केन्द्र हूँ । जो मेरे उस रूपमें अपने मनको महत्तत्त्वाकार करके तन्मय कर देता है, उसे 'महिमा' नामकी सिद्धि प्राप्त होती है, और इसी प्रकार आकाशादि पञ्चभूतोंमें—जो मेरे ही शरीर हैं—अलग-अलग मन लगानेसे उन-उनकी महत्ता प्राप्त हो जाती है, यह भी 'महिमा' सिद्धिके ही अन्तर्गत है ॥ ११ ॥ जो योगी वायु आदि चार भूतोंके परमाणुओंको मेरा ही रूप समझकर चित्तको तदाकार कर देता है, उसे 'लघिमा' सिद्धि प्राप्त हो जाती है—उसे परमाणुरूप कालके* समान सूक्ष्म वस्तु बननेका सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है ॥ १२ ॥ जो सात्त्विक अहङ्कारको मेरा स्वरूप समझकर मेरे उसी रूपमें चित्तकी धारणा करता है, वह समस्त इन्द्रियोंका अधिष्ठाता हो जाता है । मेरा चिन्तन करनेवाला भक्त इस प्रकार 'प्राप्ति' नामकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है ॥ १३ ॥ जो पुरुष मुझ महत्तत्त्वाभिमानी सूत्रात्मामें अपना चित्त स्थिर करता है, उसे मुझ अव्यक्त-जन्मा (सूत्रात्मा) की 'प्राकाम्य' नामकी सिद्धि प्राप्त होती है—जिससे इच्छानुसार सभी भोग प्राप्त हो जाते हैं ॥ १४ ॥ जो त्रिगुणमयी मायाके स्वामी मेरे काल-स्वरूप विश्वरूपकी धारणा करता है, वह शरीरों और जीवोंको अपने इच्छानुसार प्रेरित करनेकी सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है । इस सिद्धिका नाम 'ईशित्व' है ॥ १५ ॥ जो योगी मेरे नारायण-स्वरूपमें—जिसे तुरीय और भगवान् भी कहते हैं—मनको लगा देता है, मेरे स्वाभाविक गुण उसमें प्रकट होने लगते हैं और उसे 'वशिता' नामकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥ १६ ॥ निर्गुण ब्रह्म भी मैं ही हूँ । जो अपना निर्मल मन मेरे इस ब्रह्मस्वरूपमें स्थित कर लेता है, उसे परमानन्द-स्वरूपिणी 'कामावसायिता' नामकी सिद्धि प्राप्त होती है । इसके मिलनेपर उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं ॥ १७ ॥ प्रिय उद्धव ! मेरा वह रूप, जो श्वेतद्वीपका स्वामी है, अत्यन्त शुद्ध और धर्ममय है । जो उसकी धारणा करता है, वह भूख-प्यास, जन्म-मृत्यु और शोक-मोह—इन छः ऊर्मियोंसे मुक्त हो जाता है और उसे शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥ मैं ही समष्टि-प्राणरूप आकाशात्मा हूँ । जो मेरे इस स्वरूपमें मनके द्वारा अनाहत नादका चिन्तन करता है, वह 'दूरश्रवण' नामकी सिद्धिसे सम्पन्न हो जाता है और आकाशमें उपलब्ध होनेवाली विविध प्राणियोंकी बोली सुन-समझ सकता है ॥ १९ ॥ जो योगी नेत्रोंको सूर्यमें और सूर्यको नेत्रोंमें संयुक्त कर देता है और दोनोंके संयोगमें मन-ही-मन मेरा ध्यान करता है, उसकी दृष्टि सूक्ष्म हो जाती है, उसे 'दूरदर्शन' नामकी सिद्धि प्राप्त होती है और वह सारे संसारको देख सकता है ॥ २० ॥ मन और शरीरको प्राणवायुके सहित मेरे साथ संयुक्त कर दे और मेरी धारणा करे तो इससे 'मनोजव' नामकी सिद्धि प्राप्त हो जाती है । इसके प्रभावसे वह योगी जहाँ भी जानेका संकल्प करता है, वहीं उसका शरीर उसी क्षण पहुँच जाता है ॥ २१ ॥

* पृथ्वी आदिके परमाणुओंमें गुरुत्व विद्यमान रहता है । इसीसे उसका भी निषेध करनेके लिये कालके परमाणुकी समानता बतायी है ।

जिस समय योगी मनको उपादान-कारण बनाकर किसी देवता आदिका रूप धारण करना चाहता है तो वह अपने मनके अनुकूल वैसा ही रूप धारण कर लेता है। इसका कारण यह है कि उसने अपने चित्तको मेरे साथ जोड़ दिया है ॥ २२ ॥ जो योगी दूसरे शरीरमें प्रवेश करना चाहे, वह ऐसी भावना करे कि मैं उसी शरीरमें हूँ। ऐसा करनेसे उसका प्राण वायुरूप धारण कर लेता है। और वह एक फूलसे दूसरे फूलपर जानेवाले भौंरेके समान अपना शरीर छोड़कर दूसरे शरीरमें प्रवेश कर जाता है ॥ २३ ॥ योगीको यदि शरीरका परित्याग करना हो तो एड़ीसे गुदाद्वारको दबाकर प्राणवायुको क्रमशः हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तकमें ले जाय। फिर ब्रह्मरन्ध्रके द्वारा उसे ब्रह्ममें लीन करके शरीरका परित्याग कर दे ॥ २४ ॥ यदि उसे देवताओंके विहारस्थलोंमें क्रीड़ा करनेकी इच्छा हो, तो मेरे शुद्ध सत्त्वमय स्वरूपकी भावना करे। ऐसा करनेसे सत्त्वगुणकी अंशस्वरूपा सुर-सुन्दरियाँ विमानपर चढ़कर उसके पास पहुँच जाती हैं ॥ २५ ॥ जिस पुरुषने मेरे सत्यसङ्कल्पस्वरूपमें अपना चित्त स्थिर कर दिया है, उसीके ध्यानमें संलग्न है, वह अपने मनसे जिस समय जैसा सङ्कल्प करता है, उसी समय उसका वह सङ्कल्प सिद्ध हो जाता है ॥ २६ ॥ मैं 'ईशित्व' और 'वशित्व'—इन दोनों सिद्धियोंका स्वामी हूँ; इसलिये कभी कोई मेरी आज्ञा टाल नहीं सकता। जो मेरे उस रूपका चिन्तन करके उसी भावसे युक्त हो जाता है, मेरे समान उसकी आज्ञाको भी कोई टाल नहीं सकता ॥ २७ ॥ जिस योगीका चित्त मेरी धारणा करते-करते मेरी भक्तिके प्रभावसे शुद्ध हो गया है, उसकी बुद्धि जन्म-मृत्यु आदि अदृष्ट विषयोंको भी जान लेती है। और तो क्या—भूत, भविष्य और वर्तमानकी सभी बातें उसे मालूम हो जाती हैं ॥२८॥ जैसे जलके द्वारा जलमें रहनेवाले प्राणियोंका नाश नहीं होता, वैसे ही जिस योगीने अपना चित्त मुझमें लगाकर शिथिल कर दिया है, उसके योगमय शरीरको अग्नि, जल आदि कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं कर सकते ॥२९॥ जो पुरुष श्रीवत्स आदि चिह्न और शङ्ख-गदा-चक्र-पद्म आदि आयुधोंसे विभूषित तथा ध्वजा-छत्र-चँवर आदिसे सम्पन्न मेरे अवतारोंका ध्यान करता है, वह अजेय हो जाता है ॥ ३० ॥

इस प्रकार जो विचारशील पुरुष मेरी उपासना करता है और योगधारणाके द्वारा मेरा चिन्तन करता है, उसे वे सभी सिद्धियाँ पूर्णतः प्राप्त हो जाती हैं, जिनका वर्णन मैंने किया है ॥ ३१ ॥ प्यारे उद्धव ! जिसने अपने प्राण, मन और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर ली है, जो संयमी है और मेरे ही स्वरूपकी धारणा कर रहा है, उसके लिये ऐसी कोई भी सिद्धि नहीं, जो दुर्लभ हो। उसे तो सभी सिद्धियाँ प्राप्त ही हैं ॥ ३२ ॥ परन्तु श्रेष्ठ पुरुष कहते हैं कि जो लोग भक्तियोग अथवा ज्ञानयोगादि उत्तम योगोंका अभ्यास कर रहे हैं, जो मुझसे एक हो रहे हैं उनके लिये इन सिद्धियोंका प्राप्त होना एक विघ्न ही है; क्योंकि इनके कारण व्यर्थ ही उनके समयका दुरुपयोग होता है ॥ ३३ ॥ जगत्में जन्म, ओषधि, तपस्या और मन्त्रादिके द्वारा जितनी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, वे सभी योगके द्वारा मिल जाती हैं; परन्तु योगकी अन्तिम सीमा—मेरे सारूप्य, सालोक्य आदिकी प्राप्ति बिना मुझमें चित्त लगाये किसी भी साधनसे नहीं प्राप्त हो सकती ॥ ३४ ॥ ब्रह्मवादियोंने बहुत-से साधन बतलाये हैं—योग, सांख्य और धर्म आदि। उनका एवं समस्त सिद्धियोंका एकमात्र मैं ही हेतु, स्वामी और प्रभु हूँ ॥ ३५ ॥ जैसे स्थूल पञ्चभूतोंमें बाहर, भीतर—सर्वत्र सूक्ष्म पञ्च-महाभूत ही हैं, सूक्ष्म भूतोंके अतिरिक्त स्थूल भूतोंकी कोई सत्ता ही नहीं है, वैसे ही मैं समस्त प्राणियोंके भीतर द्रष्टारूपसे और बाहर दृश्यरूपसे स्थित हूँ। मुझमें बाहर-भीतरका भेद भी नहीं है; क्योंकि मैं निरावरण, एक—अद्वितीय आत्मा हूँ ॥ ३६ ॥
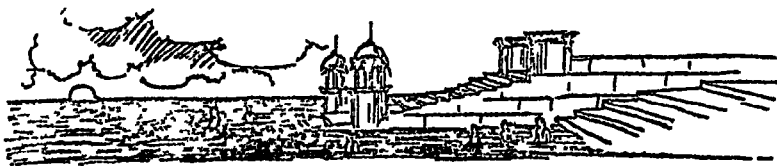
सोलहवाँ अध्याय

भगवान्‌की विभूतियोंका वर्णन

उद्धवजीने कहा—भगवन् ! आप स्वयं परब्रह्म हैं, न आपका आदि है और न अन्त । आप आवरणरहित, अद्वितीय तत्त्व हैं । समस्त प्राणियों और पदार्थोंकी उत्पत्ति, स्थिति, रक्षा और प्रलयके कारण भी आप ही हैं । आप ऊँचे-नीचे सभी प्राणियोंमें स्थित हैं; परन्तु जिन लोगोंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है, वे आपको नहीं जान सकते । आपकी यथोचित उपासना तो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही करते हैं ॥ १-२ ॥ बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि आपके जिन रूपों और विभूतियोंकी परम भक्तिके साथ उपासना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं, वह आप मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ समस्त प्राणियोंके जीवनदाता प्रभो ! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा हैं । आप उनमें अपनेको गुप्त रखकर लीला करते रहते हैं । आप तो सबको देखते हैं, परन्तु जगत्‌के प्राणी आपकी मायासे ऐसे मोहित हो रहे हैं कि वे आपको नहीं देख पाते ॥ ४ ॥ अचिन्त्य ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल तथा दिशा-विदिशाओंमें आपके प्रभावसे युक्त जो-जो भी विभूतियाँ हैं, आप कृपा करके मुझसे उनका वर्णन कीजिये । प्रभो ! मैं आपके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो समस्त तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले हैं ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! तुम प्रश्नका मर्म समझनेवालोंमें शिरोमणि हो । जिस समय कुरुक्षेत्रमें कौरव-पाण्डवोंका युद्ध छिड़ा हुआ था, उस समय शत्रुओंसे युद्धके लिये तत्पर अर्जुनने मुझसे यही प्रश्न किया था ॥ ६ ॥ अर्जुनके मनमें ऐसी धारणा हुई कि कुटुम्बियोंको मारना, और सो भी राज्यके लिये, बहुत ही निन्दनीय अधर्म है । साधारण पुरुषोंके समान वह यह सोच रहा था कि 'मैं मारनेवाला हूँ और ये सब मरनेवाले हैं ।' यह सोचकर वह युद्धसे उपरत हो गया ॥ ७ ॥ तब मैंने रणभूमिमें बहुत-सी युक्तियाँ देकर वीर-शिरोमणि अर्जुनको समझाया था । उस समय अर्जुनने भी मुझसे यही प्रश्न किया था, जो तुम कर रहे हो ॥ ८ ॥ उद्धवजी ! मैं समस्त प्राणियोंका आत्मा, हितैषी, सुहृद् और ईश्वर—नियामक हूँ । मैं ही इन समस्त प्राणियों और पदार्थोंके रूपमें हूँ और इनकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयका कारण भी हूँ ॥ ९ ॥ गतिशील पदार्थोंमें मैं गति हूँ । अपने अधीन करनेवालोंमें मैं काल हूँ । गुणोंमें मैं उनकी मूलस्वरूपा साम्यावस्था हूँ और जितने भी गुणवान् पदार्थ हैं, उनमें उनका स्वाभाविक गुण हूँ ॥ १० ॥ गुणयुक्त वस्तुओंमें मैं क्रियाशक्तिप्रधान प्रथम कार्य सूत्रात्मा हूँ और महानोंमें ज्ञानशक्तिप्रधान प्रथम कार्य महत्तत्त्व हूँ । सूक्ष्म वस्तुओंमें मैं जीव हूँ और कठिनाईसे वशमें होनेवालोंमें मन हूँ ॥ ११ ॥ मैं वेदोंका अभिव्यक्तिस्थान हिरण्यगर्भ हूँ और मन्त्रोंमें तीन मात्राओं (अ+उ+म) वाला ओंकार हूँ । मैं अक्षरोंमें अकार, छन्दोंमें त्रिपदा गायत्री हूँ ॥ १२ ॥ समस्त देवताओंमें इन्द्र, आठ वसुओंमें अग्नि, द्वादश आदित्योंमें विष्णु और एकादश रुद्रोंमें नीललोहित नामका रुद्र हूँ ॥ १३ ॥ मैं ब्रह्मर्षियोंमें भृगु, राजर्षियोंमें मनु, देवर्षियोंमें नारद और गौओंमें कामधेनु हूँ ॥ १४ ॥ मैं सिद्धेश्वरोंमें कपिल, पक्षियोंमें गरुड़, प्रजापतियोंमें दक्ष प्रजापति और पितरोंमें अर्यमा हूँ ॥ १५ ॥ प्रिय उद्धव ! मैं दैत्योंमें दैत्यराज प्रह्लाद, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, ओषधियोंमें सोमरस एवं यक्ष-राक्षसोंमें कुबेर हूँ—ऐसा समझो ॥ १६ ॥ मैं गजराजोंमें ऐरावत, जलनिवासियोंमें उनका प्रभु वरुण, तपने और चमकनेवालोंमें सूर्य तथा मनुष्योंमें राजा हूँ ॥ १७ ॥ मैं घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, धातुओंमें सोना, दण्डधारियोंमें यम और सर्पोंमें वासुकि हूँ ॥ १८ ॥ निष्पाप उद्धवजी ! मैं नागराजोंमें शेषनाग, सींग और दाढ़वाले प्राणियोंमें उनका राजा सिंह, आश्रमोंमें संन्यास और वर्णोंमें ब्राह्मण हूँ ॥ १९ ॥ मैं तीर्थ और नदियोंमें गङ्गा, जलाशयोंमें समुद्र, अस्त्र-शस्त्रोंमें धनुष तथा धनुर्धरोंमें त्रिपुरारि शङ्कर हूँ ॥ २० ॥

मैं निवासस्थानोंमें सुमेरु, दुर्गम स्थानोंमें हिमालय, वनस्पतियोंमें पीपल और धान्योंमें जौ हूँ ॥ २१ ॥ मैं पुरोहितोंमें वसिष्ठ, वेदवेत्ताओंमें बृहस्पति, समस्त सेनापतियोंमें स्वामिकार्तिक और सन्मार्गप्रवर्तकोंमें भगवान्

ब्रह्मा हूँ ॥ २२ ॥ पञ्चमहायज्ञोंमें ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय-यज्ञ) हूँ, व्रतोंमें अहिंसाव्रत और शुद्ध करनेवाले पदार्थोंमें नित्यशुद्ध वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी एवं आत्मा हूँ ॥ २३ ॥ आठ प्रकारके योगोंमें मैं मनोनिरोधरूप समाधि हूँ । विजयके इच्छुकोंमें रहनेवाला मैं मन्त्र (नीति) बल हूँ, कौशलोंमें आत्मा और अनात्माका विवेकरूप कौशल तथा ख्यातिवादियोंमें विकल्प हूँ॥२४॥ मैं स्त्रियोंमें मनुपत्नी शतरूपा, पुरुषोंमें स्वायम्भुव मनु, मुनीश्वरोंमें नारायण और ब्रह्मचारियोंमें सनत्कुमार हूँ॥२५॥ मैं धर्मोंमें कर्मसंन्यास अथवा एषणात्रयके त्यागद्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदानरूप सच्चा संन्यास हूँ । अभयके साधनोंमें आत्मस्वरूपका अनुसन्धान हूँ, अभिप्राय-गोपनके साधनोंमें मधुर वचन एवं मौन हूँ और स्त्री-पुरुषके जोड़ोंमें मैं प्रजापति हूँ—जिनके शरीरके दो भागोंसे पुरुष और स्त्रीका पहला जोड़ा पैदा हुआ ॥ २६ ॥ सदा सावधान रहकर जागनेवालोंमें संवत्सररूप काल मैं हूँ, ऋतुओंमें वसन्त, महीनोंमें मार्गशीर्ष और नक्षत्रोंमें अभिजित् हूँ ॥ २७ ॥ मैं युगोंमें सत्ययुग, विवेकियोंमें महर्षि देवल और असित, व्यासोंमें श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास तथा कवियोंमें मनस्वी शुक्राचार्य हूँ ॥ २८ ॥ सृष्टिकी उत्पत्ति और लय, प्राणियोंके जन्म और मृत्यु तथा विद्या और अविद्याके जाननेवाले भगवानोंमें (विशिष्ट महापुरुषोंमें) मैं वासुदेव हूँ । मेरे प्रेमी भक्तोंमें तुम (उद्धव), किम्पुरुषोंमें हनुमान्, विद्याधरोंमें सुदर्शन (जिसने अजगरके रूपमें नन्दबाबाको ग्रस लिया था और फिर भगवान्के पादस्पर्शसे मुक्त हो गया था) मैं हूँ॥२९॥ रत्नोंमें पद्मराग (लाल), सुन्दर वस्तुओंमें कमलकी कली, तृणोंमें कुश और हविष्योंमें गायका घी हूँ ॥ ३० ॥ मैं व्यापारियोंमें रहनेवाली लक्ष्मी, छल-कपट करनेवालोंमें द्यूतक्रीडा, तितिक्षुओंकी तितिक्षा (कष्टसहिष्णुता) और सात्त्विक पुरुषोंमें रहनेवाला सत्त्वगुण हूँ ॥ ३१ ॥ मैं बलवानोंमें उत्साह और पराक्रम तथा भगवद्भक्तोंमें भक्तियुक्त निष्काम कर्म हूँ । वैष्णवोंकी पूज्य वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह, नृसिंह और ब्रह्मा—इन नौ मूर्तियोंमें मैं पहली एवं श्रेष्ठ मूर्ति वासुदेव हूँ ॥ ३२ ॥ मैं गन्धर्वोंमें विश्वावसु और अप्सराओंमें ब्रह्माजीके दरबारकी अप्सरा पूर्वचित्ति हूँ । पर्वतोंमें स्थिरता और पृथ्वीमें शुद्ध अविकारी गन्ध मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ मैं जलमें रस, तेजस्वियोंमें परम तेजस्वी अग्नि; सूर्य, चन्द्र और तारोंमें प्रभा तथा आकाशमें उसका एकमात्र गुण शब्द हूँ ॥ ३४ ॥ उद्धवजी ! मैं ब्राह्मणभक्तोंमें बलि, वीरोंमें अर्जुन और प्राणियोंमें उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हूँ ॥ ३५ ॥ मैं ही पैरोंमें चलनेकी शक्ति, वाणीमें बोलनेकी शक्ति, पायुमें मल-त्यागकी शक्ति, हाथोंमें पकड़नेकी शक्ति और जननेन्द्रियमें आनन्दोपभोगकी शक्ति हूँ । त्वचामें स्पर्शकी, नेत्रोंमें दर्शनकी, रसनामें स्वाद लेनेकी, कानोंमें श्रवणकी और नासिकामें सूँघनेकी शक्ति भी मैं ही हूँ । समस्त इन्द्रियोंकी इन्द्रिय-शक्ति मैं ही हूँ ॥ ३६ ॥ पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, तेज, अहङ्कार, महत्तत्त्व, पञ्चमहाभूत, जीव, अव्यक्त, प्रकृति, सत्त्व, रज, तम और उनसे परे रहनेवाला ब्रह्म—ये सब मैं ही हूँ॥ ३७ ॥ इन तत्त्वोंकी गणना, लक्षणोंद्वारा उनका ज्ञान तथा तत्त्वज्ञानरूप उसका फल भी मैं ही हूँ । मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही जीव हूँ, मैं ही गुण हूँ और मैं ही गुणी हूँ । मैं ही सबका आत्मा हूँ और मैं ही सब कुछ हूँ । मेरे अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है॥३८॥ यदि मैं गिनने लगूँ तो किसी समय परमाणुओंकी गणना तो कर सकता हूँ, परन्तु अपनी विभूतियोंकी गणना नहीं कर सकता । क्योंकि जब मेरे रचे हुए कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी भी गणना नहीं हो सकती, तब मेरी विभूतियोंकी गणना तो हो ही कैसे सकती है ॥ ३९ ॥ ऐसा समझो कि जिसमें भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हों, वह मेरा ही अंश है ॥ ४० ॥

उद्धवजी ! मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार संक्षेपसे विभूतियोंका वर्णन किया । ये सब परमार्थ-वस्तु नहीं हैं, मनोविकारमात्र हैं, क्योंकि मनसे सोची और वाणीसे कही हुई कोई भी वस्तु परमार्थ (वास्तविक) नहीं होती । उसकी एक कल्पना ही होती है ॥ ४१ ॥ इसलिये तुम वाणीको स्वच्छन्दभाषणसे रोको, मनके सङ्कल्प-विकल्प बंद करो । इसके लिये प्राणोंको वशमें

करो और इन्द्रियोंका दमन करो। सात्त्विक बुद्धिके द्वारा प्रपञ्चाभिमुख बुद्धिको शान्त करो। फिर तुम्हें संसारके जन्म-मृत्युरूप बीहड़ मार्गमें भटकना नहीं पड़ेगा ॥४२॥ जो साधक बुद्धिके द्वारा वाणी और मनको पूर्णतया वशमें नहीं कर लेता, उसके व्रत, तप और दान उसी प्रकार क्षीण हो जाते हैं, जैसे कच्चे घड़ेमें भरा हुआ जल ॥ ४३ ॥ इसलिये मेरे प्रेमी भक्तको चाहिये कि मेरे परायण होकर भक्तियुक्त बुद्धिसे वाणी, मन और प्राणोंका संयम करे। ऐसा कर लेनेपर फिर उसे कुछ करना शेष नहीं रहता। वह कृतकृत्य हो जाता है ॥४४॥

सत्रहवाँ अध्याय

वर्णाश्रम-धर्म-निरूपण

उद्धवजीने कहा—कमलनयन श्रीकृष्ण! आपने पहले वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवालोंके लिये और सामान्यतः मनुष्यमात्रके लिये उस धर्मका उपदेश किया था, जिससे आपकी भक्ति प्राप्त होती है। अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि मनुष्य किस प्रकारसे अपने धर्मका अनुष्ठान करे, जिससे आपके चरणोंमें उसे भक्ति प्राप्त हो जाय ॥ १-२ ॥ प्रभो! महाबाहु माधव! पहले आपने हंसरूपसे अवतार ग्रहण करके ब्रह्माजीको अपने परमधर्मका उपदेश किया था ॥ ३ ॥ रिपुदमन! बहुत समय बीत जानेके कारण वह इस समय मर्त्यलोकमें प्रायः नहीं-सा रह गया है, क्योंकि आपको उसका उपदेश किये बहुत दिन हो गये हैं ॥ ४ ॥ अच्युत! पृथ्वीमें तथा ब्रह्माकी उस सभामें भी, जहाँ सम्पूर्ण वेद मूर्तिमान् होकर विराजमान रहते हैं, आपके अतिरिक्त ऐसा कोई भी नहीं है जो आपके इस धर्मका प्रवचन, प्रवर्त्तन अथवा संरक्षण कर सके ॥ ५ ॥ इस धर्मके प्रवर्तक, रक्षक और उपदेशक आप ही हैं। आपने पहले जैसे मधु दैत्यको मारकर वेदोंकी रक्षा की थी, वैसे ही अपने धर्मकी भी रक्षा कीजिये। स्वयंप्रकाश परमात्मन्! जब आप पृथ्वीतलसे अपनी लीला संवरण कर लेंगे, तब तो इस धर्मका लोप ही हो जायगा तो फिर उसे कौन बतावेगा? ॥ ६ ॥ आप समस्त धर्मोंके मर्मज्ञ हैं; इसलिये प्रभो! आप उस धर्मका वर्णन कीजिये, जो आपकी भक्ति प्राप्त करानेवाला है। और यह भी बतलाइये कि किसके लिये उसका कैसा विधान है ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब इस प्रकार भक्तशिरोमणि उद्धवजीने प्रश्न किया, तब भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर प्राणियोंके लिये उन्हें सनातन धर्मोंका उपदेश किया ॥ ८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव! तुम्हारा प्रश्न धर्ममय है, क्योंकि इससे वर्णाश्रमधर्मी मनुष्योंको परमकल्याणस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति होती है। अतः मैं तुम्हें उन धर्मोंका उपदेश करता हूँ, सावधान होकर सुनो ॥ ९ ॥ जिस समय इस कल्पका प्रारम्भ हुआ था और पहला सत्ययुग चल रहा था, उस समय सभी मनुष्योंका 'हंस' नामक एक ही वर्ण था। उस युगमें सब लोग जन्मसे ही कृतकृत्य होते थे; इसीलिये उसका एक नाम कृतयुग भी है ॥ १० ॥ उस समय केवल प्रणव ही वेद था और तपस्या, शौच, दया एवं सत्यरूप चार चरणोंसे युक्त मैं ही वृषभरूपधारी धर्म था। उस समयके निष्पाप एवं परमतपस्वी भक्तजन मुझ हंसस्वरूप शुद्ध परमात्माकी उपासना करते थे ॥ ११ ॥ परम भाग्यवान् उद्धव! सत्ययुगके बाद त्रेतायुगका आरम्भ होनेपर मेरे हृदयसे श्वास-प्रश्वासके द्वारा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदरूप त्रयीविद्या प्रकट हुई और उस त्रयीविद्यासे होता, अध्वर्यु और उद्गाताके कर्मरूप तीन भेदोंवाले यज्ञके रूपसे मैं प्रकट हुआ ॥ १२ ॥ विराट् पुरुषके मुखसे ब्राह्मण, भुजासे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई। उनकी पहचान उनके स्वभावानुसार और आचरणसे होती है ॥ १३ ॥ उद्धवजी! विराट् पुरुष भी मैं ही हूँ; इसलिये मेरे ही ऊरुस्थलसे गृहस्थाश्रम, हृदयसे ब्रह्मचर्याश्रम, वक्षःस्थलसे वानप्रस्थाश्रम और मस्तकसे संन्यासाश्रमकी उत्पत्ति हुई है ॥ १४ ॥

इन वर्ण और आश्रमोंके पुरुषोंके स्वभाव भी इनके जन्मस्थानोंके अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम हो गये। अर्थात् उत्तम स्थानोंसे उत्पन्न होनेवाले वर्ण और आश्रमोंके स्वभाव उत्तम और अधम स्थानोंसे उत्पन्न होनेवालों-के अधम हुए ॥ १५ ॥ शम, दम, तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमाशीलता, सीधापन, मेरी भक्ति, दया और सत्य—ये ब्राह्मण वर्णके स्वभाव हैं ॥ १६ ॥ तेज, बल, धैर्य, वीरता, सहनशीलता, उदारता, उद्योगशीलता, स्थिरता, ब्राह्मणभक्ति और ऐश्वर्य—ये क्षत्रिय वर्णके स्वभाव हैं ॥ १७ ॥ आस्तिकता, दानशीलता, दम्भहीनता, ब्राह्मणोंकी सेवा करना और धनसञ्चयसे सन्तुष्ट न होना—ये वैश्य वर्णके स्वभाव हैं ॥ १८ ॥ ब्राह्मण, गौ और देवताओंकी निष्कपटभावसे सेवा करना और उसीसे जो कुछ मिल जाय, उसमें सन्तुष्ट रहना—ये शूद्र वर्णके स्वभाव हैं ॥ १९ ॥ अपवित्रता, झूठ बोलना, चोरी करना, ईश्वर और परलोककी परवा न करना, झूठमूठ झगड़ना और काम, क्रोध एवं तृष्णाके वशमें रहना—ये अन्त्यजोंके स्वभाव हैं ॥ २० ॥ उद्धवजी! चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लिये साधारण धर्म यह है कि मन, वाणी और शरीरसे किसीकी हिंसा न करें; सत्यपर दृढ़ रहें; चोरी न करें; काम, क्रोध तथा लोभसे बचें और जिन कामोंके करनेसे समस्त प्राणियोंकी प्रसन्नता और उनका भला हो, वही करें ॥ २१ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य गर्भाधान आदि संस्कारोंके क्रमसे यज्ञोपवीत संस्काररूप द्वितीय जन्म प्राप्त करके गुरुकुलमें रहे और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रक्खे। आचार्यके बुलानेपर वेदका अध्ययन करे और उसके अर्थका भी विचार करे ॥ २२ ॥ मेखला, मृगचर्म, वर्णके अनुसार दण्ड, रुद्राक्षकी माला, यज्ञोपवीत और कमण्डलु धारण करे। सिरपर जटा रक्खे, शौकीनीके लिये दाँत और वस्त्र न धोवे, रंगीन आसनपर न बैठे और कुश धारण करे ॥ २३ ॥ स्नान, भोजन, हवन, जप और मल-मूत्र त्यागके समय मौन रहे। और कक्ष तथा गुप्तेन्द्रियके बाल और नाखूनोंको कभी न काटे ॥ २४ ॥ पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करे। स्वयं तो कभी वीर्यपात करे ही नहीं। यदि स्वप्न आदिमें वीर्य स्खलित हो जाय, तो जलमें स्नान करके प्राणायाम करे एवं गायत्रीका जप करे ॥ २५ ॥ ब्रह्मचारीको पवित्रताके साथ एकाग्रचित्त होकर अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्धजन और देवताओंकी उपासना करनी चाहिये तथा सायङ्काल और प्रातःकाल मौन होकर सन्ध्योपासन एवं गायत्रीका जप करना चाहिये ॥ २६ ॥ आचार्यको मेरा ही स्वरूप समझे, कभी उनका तिरस्कार न करे। उन्हें साधारण मनुष्य समझकर दोषदृष्टि न करे; क्योंकि गुरु सर्वदेवमय होता है ॥ २७ ॥ सायङ्काल और प्रातःकाल दोनों समय जो कुछ भिक्षामें मिले वह लाकर गुरुदेवके आगे रख दे। केवल भोजन ही नहीं, जो कुछ हो सब। तदनन्तर उनके आज्ञानुसार बड़े संयमसे भिक्षा आदिका यथोचित उपयोग करे ॥ २८ ॥ आचार्य यदि जाते हों तो उनके पीछे-पीछे चले, उनके सो जानेके बाद बड़ी सावधानीसे उनसे थोड़ी दूरपर सोवे। थके हों, तो पास बैठकर चरण दबावे और बैठे हों तो उनके आदेशकी प्रतीक्षामें हाथ जोड़कर पासमें ही खड़ा रहे। इस प्रकार अत्यन्त छोटे व्यक्तिकी भाँति सेवा-शुश्रूषाके द्वारा सदा-सर्वदा आचार्यकी आज्ञामें तत्पर रहे ॥ २९ ॥ जबतक विद्याध्ययन समाप्त न हो जाय, तबतक सब प्रकारके भोगोंसे दूर रहकर इसी प्रकार गुरुकुलमें निवास करे और कभी अपना ब्रह्मचर्यव्रत खण्डित न होने दे ॥ ३० ॥

यदि ब्रह्मचारीका विचार हो कि मैं मूर्तिमान् वेदोंके निवासस्थान ब्रह्मलोकमें जाऊँ, तो उसे आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण कर लेना चाहिये। और वेदोंके स्वाध्यायके लिये अपना सारा जीवन आचार्यकी सेवामें ही समर्पित कर देना चाहिये ॥ ३१ ॥ ऐसा ब्रह्मचारी सचमुच ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो जाता है और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। उसे चाहिये कि अग्नि, गुरु, अपने शरीर और समस्त प्राणियोंमें मेरी ही उपासना करे और यह भाव रक्खे कि मेरे तथा सबके हृदयमें एक ही परमात्मा विराजमान है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, और संन्यासियोंको चाहिये कि वे स्त्रियोंको देखना, स्पर्श करना, उनसे बातचीत या हँसी-मसखरी आदि करना दूरसे ही त्याग दें; मैथुन करते हुए प्राणियोंपर तो दृष्टि-पाततक न करें ॥ ३३ ॥ प्रिय उद्धव! शौच, आचमन,

स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थसेवन, जप, समस्त प्राणियोंमें मुझे ही देखना, मन, वाणी और शरीरका संयम—यह ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—सभीके लिये एक-सा नियम है। अस्पृश्योंको न छूना, अभक्ष्य वस्तुओंको न खाना और जिनसे बोलना नहीं चाहिये उनसे न बोलना—ये नियम भी सबके लिये हैं ॥ ३४-३५ ॥ नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण इन नियमोंका पालन करनेसे अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। तीव्र तपस्याके कारण उसके कर्म-संस्कार भस्म हो जाते हैं, अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वह मेरा भक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ३६ ॥

प्यारे उद्धव ! यदि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य ग्रहण करनेकी इच्छा न हो—गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहता हो, तो विधिपूर्वक वेदाध्ययन समाप्त करके आचार्यको दक्षिणा देकर और उनकी अनुमति लेकर समावर्तन-संस्कार करावे—स्नातक बनकर ब्रह्मचर्याश्रम छोड़ दे ॥ ३७ ॥ ब्रह्मचारीको चाहिये कि ब्रह्मचर्य-आश्रमके बाद गृहस्थ अथवा वानप्रस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। यदि ब्राह्मण हो तो संन्यास भी ले सकता है। अथवा उसे चाहिये कि क्रमशः एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें प्रवेश करे। किन्तु मेरा आज्ञाकारी भक्त बिना आश्रमके रहकर अथवा विपरीत क्रमसे आश्रम-परिवर्तन कर स्वेच्छाचारमें न प्रवृत्त हो ॥ ३८ ॥

प्रिय उद्धव ! यदि ब्रह्मचर्याश्रमके बाद गृहस्थाश्रम स्वीकार करना हो तो ब्रह्मचारीको चाहिये कि अपने अनुरूप एवं शास्त्रोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न कुलीन कन्यासे विवाह करे। वह अवस्थामें अपनेसे छोटी और अपने ही वर्णकी होनी चाहिये। यदि कामवश अन्य वर्णकी कन्यासे और विवाह करना हो, तो क्रमशः अपनेसे निम्न वर्णकी कन्यासे विवाह कर सकता है ॥ ३९ ॥ यज्ञ-यागादि, अध्ययन और दान करनेका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंको समानरूपसे है। परन्तु दान लेने, पढ़ाने और यज्ञ करानेका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको ही है ॥ ४० ॥ ब्राह्मणको चाहिये कि इन तीनों वृत्तियोंमें प्रतिग्रह अर्थात् दान लेनेकी वृत्तिको तपस्या, तेज और यशका नाश करनेवाली समझकर पढ़ाने और यज्ञ करानेके द्वारा ही अपना जीवननिर्वाह करे और यदि इन दोनों वृत्तियोंमें भी दोषदृष्टि हो—परावलम्बन, दीनता आदि दोष दीखते हों—तो अन्न कटनेके बाद खेतोंमें पड़े हुए दाने बीनकर ही अपने जीवनका निर्वाह कर ले ॥ ४१ ॥ उद्धव ! ब्राह्मणका शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। यह इसलिये नहीं है कि इसके द्वारा तुच्छ विषय-भोग ही भोगे जायँ। यह तो जीवन-पर्यन्त कष्ट भोगने, तपस्या करने और अन्तमें अनन्त आनन्दस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति करनेके लिये है ॥ ४२ ॥ जो ब्राह्मण घरमें रहकर अपने महान् धर्मका निष्कामभावसे पालन करता है और खेतोंमें तथा बाजारोंमें गिरे-पड़े दाने चुनकर सन्तोषपूर्वक अपने जीवनका निर्वाह करता है, साथ ही अपना शरीर, प्राण, अन्तःकरण और आत्मा मुझे समर्पित कर देता है और कहीं भी अत्यन्त आसक्ति नहीं करता, वह बिना संन्यास लिये ही परमशान्ति-स्वरूप परमपद प्राप्त कर लेता है ॥ ४३ ॥ जो लोग विपत्तिमें पड़े कष्ट पा रहे मेरे भक्त ब्राह्मणको विपत्तियोंसे बचा लेते हैं, उन्हें मैं शीघ्र ही समस्त आपत्तियोंसे उसी प्रकार बचा लेता हूँ, जैसे समुद्रमें डूबते हुए प्राणीको नौका बचा लेती है ॥ ४४ ॥ राजा पिताके समान सारी प्रजाका कष्टसे उद्धार करे—उन्हें बचावे, जैसे गजराज दूसरे गजोंकी रक्षा करता है और धीर होकर स्वयं अपने आपसे अपना उद्धार करे ॥ ४५ ॥ जो राजा इस प्रकार प्रजाकी रक्षा करता है, वह सारे पापोंसे मुक्त होकर अन्त समयमें सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकमें जाता है और इन्द्रके साथ सुख भोगता है ॥ ४६ ॥ यदि ब्राह्मण अध्यापन अथवा यज्ञ-यागादिसे अपनी जीविका न चला सके, तो वैश्य-वृत्तिका आश्रय ले ले, और जबतक विपत्ति दूर न हो जाय तबतक करे। यदि बहुत बड़ी आपत्तिका सामना करना हो तो तलवार उठाकर क्षत्रियोंकी वृत्तिसे भी अपना काम चला ले, परन्तु किसी भी अवस्थामें नीचोंकी सेवा—जिसे 'श्वानवृत्ति' कहते हैं—न करे ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार यदि क्षत्रिय भी प्रजापालन आदिके द्वारा अपने जीवनका निर्वाह न कर सके तो वैश्यवृत्ति व्यापार आदि कर ले। बहुत बड़ी आपत्ति हो तो शिकारके

द्वारा अथवा विद्यार्थियोंको पढ़ाकर अपनी आपत्तिके दिन काट दे, परन्तु नीचोंकी सेवा, 'श्वानवृत्ति'का आश्रय कभी न ले ॥ ४८ ॥ वैश्य भी आपत्तिके समय शूद्रोंकी वृत्ति सेवासे अपना जीवन-निर्वाह कर ले और शूद्र चटाई बुनने आदि कारुवृत्तिका आश्रय ले ले; परन्तु उद्धव! ये सारी बातें आपत्तिकालके लिये ही हैं। आपत्तिका समय बीत जानेपर निम्नवर्णोंकी वृत्तिसे जीविकोपार्जन करनेका लोभ न करे ॥ ४९ ॥ गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि वेदाध्ययनरूप ब्रह्मयज्ञ, तर्पणरूप पितृयज्ञ, हवनरूप देवयज्ञ, काकबलि आदि भूतयज्ञ और अन्नदानरूप अतिथियज्ञ आदिके द्वारा मेरे स्वरूपभूत ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य एवं अन्य समस्त प्राणियोंकी यथाशक्ति प्रतिदिन पूजा करता रहे ॥ ५० ॥ गृहस्थ पुरुष अनायास प्राप्त अथवा शास्त्रोक्त रीतिसे उपार्जित अपने शुद्ध धनसे अपने भृत्य, आश्रित प्रजाजनको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाते हुए न्याय और विधिके साथ ही यज्ञ करे ॥ ५१ ॥

प्रिय उद्धव! गृहस्थ पुरुष कुटुम्बमें आसक्त न हो। बड़ा कुटुम्ब होनेपर भी भजनमें प्रमाद न करे। बुद्धिमान् पुरुषको यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि जैसे इस लोककी सभी वस्तुएँ नाशवान् हैं, वैसे ही स्वर्गादि परलोकके भोग भी नाशवान् ही हैं, ॥५२॥ यह जो स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु और गुरुजनोंका मिलना-जुलना है, यह ऐसा ही है, जैसे किसी प्याऊपर कुछ बटोही इकट्ठे हो गये हों। सबको अलग-अलग रास्ते जाना है। जैसे स्वप्न नींद टूटनेतक ही रहता है, वैसे ही इन मिलने-जुलनेवालोंका सम्बन्ध ही बस, शरीरके रहनेतक ही रहता है; फिर तो कौन किसको पूछता है ॥५३॥ गृहस्थको चाहिये कि इस प्रकार विचार करके घर-गृहस्थीमें फँसे नहीं, उसमें इस प्रकार अनासक्तभावसे रहे मानो कोई अतिथि निवास कर रहा हो। जो शरीर आदिमें अहङ्कार और घर आदिमे ममता नहीं करता, उसे घर-गृहस्थीके फंदे बाँध नहीं सकते ॥ ५४ ॥ भक्तिमान् पुरुष गृहस्थोचित शास्त्रोक्त कर्मोंके द्वारा मेरी आराधना करता हुआ घरमें ही रहे, अथवा यदि पुत्रवान् हो तो वानप्रस्थ आश्रममें चला जाय या संन्यासाश्रम स्वीकार कर ले ॥५५॥ प्रिय उद्धव! जो लोग इस प्रकारका गृहस्थजीवन न बिताकर घर-गृहस्थीमें ही आसक्त हो जाते हैं, स्त्री, पुत्र और धनकी कामनाओंमें फँसकर हाय-हाय करते रहते और मूढ़तावश स्त्रीलम्पट और कृपण होकर मैं-मेरेके फेरमें पड़ जाते हैं, वे बँध जाते हैं ॥ ५६ ॥ वे सोचते रहते हैं—'हाय! हाय! मेरे माँ-बाप बूढ़े हो गये; पत्नीके बाल-बच्चे अभी छोटे-छोटे हैं, मेरे न रहनेपर ये दीन, अनाथ और दुखी हो जायँगे; फिर इनका जीवन कैसे रहेगा?' ॥ ५७ ॥ इस प्रकार घर-गृहस्थीकी वासनासे जिसका चित्त विक्षिप्त हो रहा है, वह मूढ़-बुद्धि पुरुष विषयभोगोंसे कभी तृप्त नहीं होता, उन्हींमें उलझकर अपना जीवन खो बैठता है और मरकर घोर तमोमय नरकमें जाता है ॥ ५८ ॥

अठारहवाँ अध्याय

वानप्रस्थ और संन्यासीके धर्म

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव! यदि गृहस्थ मनुष्य वानप्रस्थ आश्रममें जाना चाहे, तो अपनी पत्नीको पुत्रोंके हाथ सौंप दे अथवा अपने साथ ही ले ले और फिर शान्त चित्तसे अपनी आयुका तीसरा भाग वनमें ही रहकर व्यतीत करे ॥ १ ॥ उसे वनके पवित्र कन्द-मूल और फलोंसे ही शरीर-निर्वाह करना चाहिये; वस्त्रकी जगह वृक्षोंकी छाल पहिने अथवा घास-पात और मृगछालासे ही काम निकाल ले ॥ २ ॥ केश, रोएँ, नख और मूँछ-दाढ़ीरूप शरीरके मलको हटावे नहीं। दातुन न करे। जलमें घुसकर त्रिकाल स्नान करे और धरतीपर ही पड़ रहे ॥ ३ ॥ ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्नि तपे, वर्षा ऋतुमे खुले मैदानमें रहकर वर्षाकी बौछार सहे। जाड़ेके दिनोमे गलेतक जलमें डूबा रहे। इस प्रकार घोर तपस्यामय जीवन व्यतीत करे ॥ ४ ॥ कन्द-मूलोंको केवल आगमें भूनकर खा ले अथवा समयानुसार पके हुए फल आदिके द्वारा ही काम चला ले। उन्हें कूटनेकी आवश्यकता हो तो ओखलीमें या सिलपर कूट ले, अन्यथा दाँतोंसे ही चबा-चबाकर खा

ले ॥ ५ ॥ वानप्रस्थाश्रमीको चाहिये कि कौन-सा पदार्थ कहाँसे लाना चाहिये, किस समय लाना चाहिये, कौन-कौन पदार्थ अपने अनुकूल हैं—इन बातोंको जानकर अपने जीवन-निर्वाहके लिये स्वयं ही सब प्रकारके कन्द-मूल-फल आदि ले आवे। देश-काल आदिसे अनभिज्ञ लोगोंसे लाये हुए अथवा दूसरे समयके सञ्चित पदार्थोंको अपने काममें न ले* ॥ ६ ॥ नीवार आदि जंगली अन्नसे ही चरु-पुरोडाश आदि तैयार करे और उन्हींसे समयोचित आग्रयण आदि वैदिक कर्म करे। वानप्रस्थ हो जानेपर वेदविहित पशुओंद्वारा मेरा यजन न करे ॥ ७ ॥ वेदवेत्ताओंने वानप्रस्थीके लिये अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास और चातुर्मास्य आदिका वैसा ही विधान किया है, जैसा गृहस्थोंके लिये है ॥ ८ ॥ इस प्रकार घोर तपस्या करते-करते मांस सूख जानेके कारण वानप्रस्थीकी एक-एक नस दीखने लगती है। वह इस तपस्याके द्वारा मेरी आराधना करके पहले तो ऋषियोंके लोकमें जाता है और वहाँसे फिर मेरे पास आ जाता है; क्योंकि तप मेरा ही स्वरूप है ॥ ९ ॥ प्रिय उद्धव ! जो पुरुष बड़े कष्टसे किये हुए और मोक्ष देनेवाले इस महान् तपस्याको स्वर्ग, ब्रह्मलोक आदि छोटे-मोटे फलोंकी प्राप्तिके लिये करता है, उससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा ? इसलिये तपस्याका अनुष्ठान निष्कामभावसे ही करना चाहिये ॥ १० ॥

प्यारे उद्धव ! वानप्रस्थी जब अपने आश्रमोचित नियमोंका पालन करनेमें असमर्थ हो जाय, बुढ़ापेके कारण उसका शरीर काँपने लगे, तब यज्ञाग्नियोंको भावनाके द्वारा अपने अन्तःकरणमें आरोपित कर ले और अपना मन मुझमें लगाकर अग्निमें प्रवेश कर जाय। (यह विधान केवल उनके लिये है, जो विरक्त नहीं हैं) ॥ ११ ॥ यदि उसकी समझमें यह बात आ जाय कि काम्य कर्मोंसे उनके फलस्वरूप जो लोक प्राप्त होते हैं, वे नरकोंके समान ही दुःखपूर्ण हैं और मनमें लोक-परलोकसे पूरा वैराग्य हो जाय तो विधिपूर्वक यज्ञाग्नियोंका परित्याग करके संन्यास ले ले ॥ १२ ॥ जो वानप्रस्थी संन्यासी होना चाहे, वह पहले वेदविधिके अनुसार आठों प्रकारके श्राद्ध और प्राजापत्य यज्ञसे मेरा यजन करे। इसके बाद अपना सर्वस्व ऋत्विजको दे दे। यज्ञाग्नियोंको अपने प्राणोंमें लीन कर ले और फिर किसी भी स्थान, वस्तु और व्यक्तियोंकी अपेक्षा न रखकर स्वच्छन्द विचरण करे ॥ १३ ॥ उद्धवजी ! जब ब्राह्मण संन्यास लेने लगता है, तब देवतालोग स्त्री-पुत्रादि सगे-सम्बन्धियोंका रूप धारण करके उसके संन्यास-ग्रहणमें विघ्न डालते हैं। वे सोचते हैं कि 'अरे ! यह तो हमलोगोंकी अवहेलना कर, हमलोगोंको लाँघकर परमात्माको प्राप्त होने जा रहा है' ॥ १४ ॥

यदि संन्यासी वस्त्र धारण करे तो केवल लँगोटी लगा ले और अधिक-से-अधिक उसके ऊपर एक ऐसा छोटा-सा टुकड़ा लपेट ले कि जिसमें लँगोटी ढक जाय। तथा आश्रमोचित दण्ड और कमण्डलुके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु अपने पास न रक्खे। यह नियम आपत्ति-कालको छोड़कर सदाके लिये है ॥ १५ ॥ नेत्रोंसे धरती देखकर पैर रक्खे, कपड़ेसे छानकर जल पिये, मुँहसे प्रत्येक बात सत्यपूत—सत्यसे पवित्र हुई ही निकाले और शरीरसे जितने भी काम करे, बुद्धिपूर्वक—सोच-विचार कर ही करे ॥ १६ ॥ वाणीके लिये मौन, शरीरके लिये निश्चेष्ट स्थिति और मनके लिये प्राणायाम दण्ड हैं। प्यारे उद्धव ! जिसके पास ये तीनों दण्ड नहीं हैं, वह केवल बाँसके दण्ड धारण करनेसे दण्डी स्वामी नहीं हो जाता है ॥ १७ ॥ संन्यासीको चाहिये कि जातिच्युत और गोघाती आदि पतितोंको छोड़कर चारों वर्णोंकी भिक्षा ले। केवल अनिश्चित सात घरोंसे जितना मिल जाय, उतनेसे ही सन्तोष कर ले ॥ १८ ॥ इस प्रकार भिक्षा लेकर बस्तीके बाहर जलाशयपर जाय, वहाँ हाथ-पैर धोकर जलके द्वारा भिक्षा पवित्र कर ले, फिर शास्त्रोक्त पद्धतिसे जिन्हें भिक्षाका भाग देना चाहिये, उन्हें देकर जो कुछ बचे उसे मौन होकर खा ले;

* अर्थात् मुनि इस बातको जानकर कि अमुक पदार्थ कहाँसे लाना चाहिये, किस समय लाना चाहिये और कौन-कौन पदार्थ अपने अनुकूल हैं, स्वयं ही नवीन-नवीन कन्द-मूल-फल आदिका सञ्चय करे। देश-कालादिसे अनभिज्ञ अन्य जनोंके लाये हुए अथवा कालान्तरमें सञ्चय किये हुए पदार्थोंके सेवनसे व्याधि आदिके कारण तपस्यामें विघ्न होनेकी आशंका है।

दूसरे समयके लिये बचाकर न रक्खे और न अधिक माँगकर ही लाये ॥ १९ ॥ संन्यासीको पृथ्वीपर अकेले ही विचरना चाहिये। उसकी कहीं भी आसक्ति न हो, सब इन्द्रियाँ अपने वशमें हों। वह अपने-आपमें ही मस्त रहे, आत्म-प्रेममें ही तन्मय रहे, प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी धैर्य रक्खे और सर्वत्र समानरूपसे स्थित परमात्माका अनुभव करता रहे ॥ २० ॥ संन्यासीको निर्जन और निर्भय एकान्त-स्थानमें रहना चाहिये। उसका हृदय निरन्तर मेरी भावनासे विशुद्ध बना रहे। वह अपने-आपको मुझसे अभिन्न और अद्वितीय, अखण्डके रूपमें चिन्तन करे ॥ २१ ॥ वह अपनी ज्ञाननिष्ठासे चित्तके बन्धन और मोक्षपर विचार करे तथा निश्चय करे कि इन्द्रियोंका विषयोंके लिये विक्षिप्त होना—चञ्चल होना बन्धन है और उनको संयममें रखना ही मोक्ष है ॥ २२ ॥ इसलिये संन्यासीको चाहिये कि मन एवं पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंको जीत ले, भोगोंकी क्षुद्रता समझकर उनकी ओरसे सर्वथा मुँह मोड़ ले और अपने-आपमें ही परम आनन्दका अनुभव करे। इस प्रकार वह मेरी भावनासे भरकर पृथ्वीमें विचरता रहे ॥ २३ ॥ केवल भिक्षाके लिये ही नगर, गाँव, अहीरोंकी बस्ती या यात्रियोंकी टोलीमें जाय। पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन और आश्रमोंसे पूर्ण पृथ्वीमें बिना कहीं ममता जोड़े घूमता-फिरता रहे ॥ २४ ॥ भिक्षा भी अधिकतर वानप्रस्थियोंके आश्रमसे ही ग्रहण करे। क्योंकि कटे हुए खेतोंके दानेसे बनी हुई भिक्षा शीघ्र ही चित्तको शुद्ध कर देती है और उससे बचा-खुचा मोह दूर होकर सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥२५॥

विचारवान् संन्यासी दृश्यमान जगत्‌को सत्य वस्तु कभी न समझे; क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष ही नाशवान् है। इस जगत्‌में कहीं भी अपने चित्तको लगाये नहीं। इस लोक और परलोकमें जो कुछ करने-पानेकी इच्छा हो, उससे विरक्त हो जाय ॥ २६ ॥ संन्यासी विचार करे कि आत्मामें जो मन, वाणी और प्राणोंका सङ्घातरूप यह जगत् है, वह सारा-का-सारा माया ही है। इस विचारके द्वारा इसका बाध करके अपने स्वरूपमें स्थित हो जाय और फिर कभी उसका स्मरण भी न करे ॥ २७ ॥ ज्ञाननिष्ठ, विरक्त मुमुक्षु और मोक्षकी भी अपेक्षा न रखनेवाला मेरा भक्त आश्रमोंकी मर्यादामें बद्ध नहीं है। वह चाहे तो आश्रमों और उनके चिह्नोंको छोड़-छाड़कर, वेद-शास्त्रके विधि-निषेधोंसे परे होकर स्वच्छन्द विचरे ॥ २८ ॥ वह बुद्धिमान् होकर भी बालकोंके समान खेले। निपुण होकर भी जडवत् रहे, विद्वान् होकर भी पागलकी तरह बातचीत करे और समस्त वेद-विधियोंका जानकार होकर भी पशुवृत्तिसे (अनियत आचारवान्) रहे ॥ २९ ॥ उसे चाहिये कि वेदोंके कर्मकाण्ड-भागकी व्याख्यामें न लगे, पाखण्ड न करे, तर्क-वितर्कसे बचे और जहाँ कोरा वाद-विवाद हो रहा हो, वहाँ कोई पक्ष न ले ॥ ३० ॥ वह इतना धैर्यवान् हो कि उसके मनमें किसी भी प्राणीसे उद्वेग न हो और वह स्वयं भी किसी प्राणीको उद्विग्न न करे। उसकी कोई निन्दा करे, तो प्रसन्नतासे सह ले; किसीका अपमान न करे। प्रिय उद्धव! संन्यासी इस शरीरके लिये किसीसे भी वैर न करे। ऐसा वैर तो पशु करते हैं ॥ ३१ ॥ जैसे एक ही चन्द्रमा जलसे भरे हुए विभिन्न पात्रोंमें अलग-अलग दिखायी देता है, वैसे ही एक ही परमात्मा समस्त प्राणियोंमें और अपनेमें भी स्थित है। सबकी आत्मा तो एक है ही, पञ्चभूतोंसे बने हुए शरीर भी सबके एक ही हैं, क्योंकि सब पाञ्चभौतिक ही तो हैं। (ऐसी अवस्थामें किसीसे भी वैर-विरोध करना अपना ही वैर-विरोध है) ॥ ३२ ॥

प्रिय उद्धव! संन्यासीको किसी दिन यदि समयपर भोजन न मिले, तो उसे दुखी नहीं होना चाहिये और यदि बराबर मिलता रहे, तो हर्षित न होना चाहिये। उसे चाहिये कि वह धैर्य रक्खे। मनमें हर्ष और विषाद दोनों प्रकारके विकार न आने दे; क्योंकि भोजन मिलना और न मिलना दोनों ही प्रारब्धके अधीन हैं ॥ ३३ ॥ भिक्षा अवश्य माँगनी चाहिये, ऐसा करना उचित ही है; क्योंकि भिक्षासे ही प्राणोंकी रक्षा होती है। प्राण रहनेसे ही तत्त्वका विचार होता है और तत्त्वविचारसे तत्त्वज्ञान होकर मुक्ति मिलती है ॥ ३४ ॥ संन्यासीको प्रारब्धके अनुसार अच्छी या बुरी—जैसी भी भिक्षा मिल जाय, उसीसे पेट भर ले। वस्त्र और बिछौने भी जैसे मिल जायँ, उन्हींसे काम चला ले। उनमें अच्छेपन

या बुरेपनकी कल्पना न करे ॥ ३५ ॥ जैसे मैं परमेश्वर होनेपर भी अपनी लीलासे ही शौच आदि शास्त्रोक्त नियमोंका पालन करता हूँ, वैसे ही ज्ञाननिष्ठ पुरुष भी शौच, आचमन, स्नान और दूसरे नियमोंका लीलासे ही आचरण करे। वह शास्त्रविधिके अधीन होकर—विधि-किङ्कर होकर न करे ॥ ३६ ॥ क्योंकि ज्ञाननिष्ठ पुरुषको भेदकी प्रतीति ही नहीं होती। जो पहले थी, वह भी मुझ सर्वात्माके साक्षात्कारसे नष्ट हो गयी। यदि कभी-कभी मरणपर्यन्त बाधित भेदकी प्रतीति भी होती है, तब भी देहपात हो जानेपर वह मुझसे एक हो जाता है ॥ ३७ ॥

उद्धवजी! (यह तो हुई ज्ञानवान्की बात, अब केवल वैराग्यवान्की बात सुनो)। जितेन्द्रिय पुरुष, जब यह निश्चय हो जाय कि संसारके विषयोंके भोगका फल दुःख-ही-दुःख है, तब वह विरक्त हो जाय और यदि वह मेरी प्राप्तिके साधनोंको न जानता हो तो भगवच्चिन्तनमें तन्मय रहनेवाले ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी शरण ग्रहण करे ॥ ३८ ॥ वह गुरुकी दृढ़ भक्ति करे, श्रद्धा रक्खे और उनमें दोष कभी न निकाले। जबतक ब्रह्मका ज्ञान हो, तबतक बड़े आदरसे मुझे ही गुरुके रूपमें समझता हुआ उनकी सेवा करे ॥ ३९ ॥ किन्तु जिसने पाँच इन्द्रियाँ और मन, इन छहोंपर विजय नहीं प्राप्त की है, जिसके इन्द्रियरूपी घोड़े और बुद्धिरूपी सारथी बिगड़े हुए हैं और जिसके हृदयमें न ज्ञान है और न तो वैराग्य, वह यदि त्रिदण्डी संन्यासीका वेष धारणकर पेट पालता है तो वह संन्यासधर्मका सत्तानाश ही कर रहा है और अपने पूज्य देवताओंको, अपने-आपको और अपने हृदयमें स्थित मुझको ठगनेकी चेष्टा करता है। अभी उस वेषमात्रके संन्यासीकी वासनाएँ क्षीण नहीं हुई हैं; इसलिये वह इस लोक और परलोक दोनोंसे हाथ धो बैठता है ॥ ४०—४१ ॥ संन्यासीका मुख्य धर्म है—शान्ति और अहिंसा। वानप्रस्थीका मुख्य धर्म है—तपस्या और भगवद्भाव। गृहस्थका मुख्य धर्म है—प्राणियोंकी रक्षा और यज्ञ-याग तथा ब्रह्मचारीका मुख्य धर्म है—आचार्यकी सेवा ॥ ४२ ॥ गृहस्थ भी केवल ऋतुकालमें ही अपनी स्त्रीका सहवास करे। उसके लिये भी ब्रह्मचर्य, तपस्या, शौच, सन्तोष और समस्त प्राणियोंके प्रति प्रेमभाव—ये मुख्य धर्म हैं। मेरी उपासना तो सभीको करनी चाहिये ॥ ४३ ॥ जो पुरुष इस प्रकार अनन्यभावसे अपने वर्णाश्रमधर्मके द्वारा मेरी सेवामें लगा रहता है और समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना करता रहता है, उसे मेरी अविचल भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ४४ ॥ उद्धवजी! मैं सम्पूर्ण लोकोंका एकमात्र स्वामी, सबकी उत्पत्ति और प्रलयका परमकारण ब्रह्म हूँ। नित्य-निरन्तर बढ़नेवाली अखण्ड भक्तिके द्वारा वह मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वह गृहस्थ अपने धर्मपालनके द्वारा अन्तःकरणको शुद्ध करके मेरे ऐश्वर्यको—मेरे स्वरूपको जान लेता है और ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर शीघ्र ही मुझे प्राप्त कर लेता है ॥ ४६ ॥ मैंने तुम्हें यह सदाचाररूप वर्णाश्रमियोंका धर्म बतलाया है। यदि इस धर्मानुष्ठानमें मेरी भक्तिका पुट लग जाय, तब तो इससे अनायास ही परम कल्याणस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति हो जाय ॥ ४७ ॥ साधुस्वभाव उद्धव! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने दे दिया और यह बतला दिया कि अपने धर्मका पालन करनेवाला भक्त मुझ परब्रह्मस्वरूपको किस प्रकार प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भक्ति, ज्ञान और यम-नियमादि साधनोंका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धवजी! जिसने उपनिषदादि शास्त्रोंके श्रवण, मनन और निदिध्यासनके द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, जो श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ है, जिसका निश्चय केवल युक्तियों और अनुमानों-पर ही निर्भर नहीं करता, दूसरे शब्दोंमें—जो केवल परोक्षज्ञानी नहीं है, वह यह जानकर कि सम्पूर्ण द्वैत-प्रपञ्च और इसकी निवृत्तिका साधन वृत्तिज्ञान मायामात्र है, उन्हें मुझमें लीन कर दे, वे दोनों ही मुझ आत्मामें

अभिप्रेत हूँ, ऐसा जान ले ॥ १ ॥ ज्ञानी पुरुषका अभीष्ट पदार्थ मैं ही हूँ, उसके साधन-साध्य, स्वर्ग और अपवर्ग भी मैं ही हूँ। मेरे अतिरिक्त और किसी भी पदार्थसे वह प्रेम नहीं करता ॥ २ ॥ जो ज्ञान और विज्ञानसे सम्पन्न सिद्धपुरुष हैं, वे ही मेरे वास्तविक स्वरूपको जानते हैं। इसीलिये ज्ञानी पुरुष मुझे सबसे प्रिय है। उद्धवजी! ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञानके द्वारा निरन्तर मुझे अपने अन्तःकरणमें धारण करता है ॥ ३ ॥ तत्त्वज्ञानके लेशमात्रका उदय होनेसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह तपस्या, तीर्थ, जप, दान अथवा अन्तःकरणशुद्धिके और किसी भी साधनसे पूर्णतया नहीं हो सकती ॥ ४ ॥ इसलिये मेरे प्यारे उद्धव! तुम ज्ञानके सहित अपने आत्मस्वरूपको जान लो और फिर ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न होकर भक्तिभावसे मेरा भजन करो ॥ ५ ॥ बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंने ज्ञान-विज्ञानरूप यज्ञके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मुझ सब यज्ञोंके अधिपति आत्माका यजन करके परम सिद्धि प्राप्त की है ॥ ६ ॥ उद्धव! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन विकारोंकी समष्टि ही शरीर है और वह सर्वथा तुम्हारे अधीन है। यह पहले नहीं था और अन्तमें नहीं रहेगा; केवल बीचमें ही दीख रहा है। इसलिये इसे जादूके खेलके समान माया ही समझनी चाहिये। इसके जो जन्मना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट होना—ये छः भावविकार हैं, इनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यही नहीं, ये विकार उसके भी नहीं हैं; क्योंकि वह स्वयं असत् है। असत् वस्तु तो पहले नहीं थी, बादमें भी नहीं रहेगी; इसलिये बीचमें भी उसका कोई अस्तित्व नहीं होता ॥ ७ ॥

उद्धवजीने कहा—विश्वरूप परमात्मन्! आप ही विश्वके स्वामी हैं। आपका यह वैराग्य और विज्ञानसे युक्त सनातन एवं विशुद्ध ज्ञान जिस प्रकार सुदृढ हो जाय, उसी प्रकार मुझे स्पष्ट करके समझाइये और उस अपने भक्तियोगका भी वर्णन कीजिये, जिसे ब्रह्मा आदि महापुरुष भी ढूँढ़ा करते हैं ॥ ८ ॥ मेरे स्वामी! जो पुरुष इस संसारके विकट मार्गमें तीनों तापोंके थपेड़े खा रहे हैं और भीतर-बाहर जल-भुन रहे हैं, उनके लिये आपके अमृतवर्षी युगल चरणारविन्दोंकी छत्र-छायाके अतिरिक्त और कोई भी आश्रय नहीं दीखता ॥ ९ ॥ महानुभाव! आपका यह अपना सेवक अँधेरे कुएँमें पड़ा हुआ है, कालरूपी सर्पने इसे डस रक्खा है; फिर भी विषयोंके क्षुद्र सुख-भोगोंकी तीव्र तृष्णा मिटती नहीं, बढ़ती ही जा रही है। आप कृपा करके इसका उद्धार कीजिये और इससे मुक्त करनेवाली वाणीकी सुधा-धारासे इसे सराबोर कर दीजिये ॥ १० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धवजी! जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है, यही प्रश्न धर्मराज युधिष्ठिरने धार्मिकशिरोमणि भीष्मपितामहसे किया था। उस समय हम सभी लोग वहाँ विद्यमान थे ॥ ११ ॥ जब भारतीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था और धर्मराज युधिष्ठिर अपने स्वजन-सम्बन्धियोंके संहारसे शोक-विह्वल हो रहे थे, तब उन्होंने भीष्मपितामहसे बहुत-से धर्मोंका विवरण सुननेके पश्चात् मोक्षके साधनोंके सम्बन्धमें प्रश्न किया था ॥ १२ ॥ उस समय भीष्मपितामहके मुखसे सुने हुए मोक्ष-धर्म मैं तुम्हें सुनाऊँगा। क्योंकि वे ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्तिके भावोंसे परिपूर्ण हैं ॥ १३ ॥ उद्धवजी! जिस ज्ञानसे प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा—ये नौ, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन—ये ग्यारह, पाँच महाभूत और तीन गुण अर्थात् इन अट्ठाईस तत्त्वोंको ब्रह्मासे लेकर तृणतक सम्पूर्ण कार्योंमें देखा जाता है और इनमें भी एक परमात्म-तत्त्वको अनुगत रूपसे देखा जाता है—वह परोक्षज्ञान है, ऐसा मेरा निश्चय है ॥ १४ ॥ जब जिस एक तत्त्वसे अनुगत एकात्मक तत्त्वोंको पहले देखता था, उनको पहलेके समान न देखे, किन्तु एक परमकारण ब्रह्मको ही देखे, तब यही निश्चित विज्ञान (अपरोक्षज्ञान) कहा जाता है। (इस ज्ञान और विज्ञानको प्राप्त करनेकी युक्ति यह है कि) यह शरीर आदि जितने भी त्रिगुणात्मक सावयव पदार्थ हैं, उनकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयका विचार करे ॥ १५ ॥ जो तत्त्ववस्तु सृष्टिके प्रारम्भमें और अन्तमें कारणरूपसे स्थित रहती है, वही मध्यमें भी रहती है और वही प्रतीयमान कार्यसे प्रतीयमान कार्यान्तरमें अनुगत भी होती है। फिर उन कार्योंका

प्रलय अथवा बाध होनेपर उसके साक्षी एवं अधिष्ठान रूपसे शेष रह जाती है। वही सत्य परमार्थ वस्तु है, ऐसा समझे ॥ १६ ॥ श्रुति, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य (महापुरुषोंमें प्रसिद्धि) और अनुमान—प्रमाणोंमें यह चार मुख्य हैं। इनकी कसौटीपर कसनेसे दृश्य-प्रपञ्च अस्थिर, नश्वर एवं विकारी होनेके कारण सत्य सिद्ध नहीं होता, इसलिये विवेकी पुरुष इस विविध कल्पनारूप अथवा शब्दमात्र प्रपञ्चसे विरक्त हो जाता है ॥ १७ ॥ विवेकी पुरुषको चाहिये कि वह स्वर्गादि फल देनेवाले यज्ञादि कर्मोंके परिणामी—नश्वर होनेके कारण ब्रह्मलोकपर्यन्त स्वर्गादि सुख—अदृष्टको भी इस प्रत्यक्ष विषय-सुखके समान ही अमङ्गल, दुःखदायी एवं नाशवान् समझे ॥ १८ ॥

निष्पाप उद्धवजी! भक्तियोगका वर्णन मैं तुम्हें पहले ही सुना चुका हूँ; परन्तु उसमें तुम्हारी बहुत प्रीति है, इसलिये मैं तुम्हें फिरसे भक्ति प्राप्त होनेका श्रेष्ठ साधन बतलाता हूँ ॥ १९ ॥ जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी अमृतमयी कथामें श्रद्धा रक्खे; निरन्तर मेरे गुण, लीला और नामोंका सङ्कीर्तन करे; मेरी पूजामें अत्यन्त निष्ठा रक्खे और स्तोत्रोंके द्वारा मेरी स्तुति करे ॥ २० ॥ मेरी सेवा-पूजामें प्रेम रक्खे और सामने साष्टाङ्ग लोटकर प्रणाम करे; मेरे भक्तोंकी पूजा मेरी पूजासे बढ़कर करे और समस्त प्राणियोंमें मुझे ही देखे ॥ २१ ॥ अपने एक-एक अङ्गकी चेष्टा केवल मेरे ही लिये करे, वाणीसे मेरे ही गुणोंका गान करे और अपना मन भी मुझे ही अर्पित कर दे तथा सारी कामनाएँ छोड़ दे ॥ २२ ॥ मेरे लिये धन, भोग और प्राप्त सुखका भी परित्याग कर दे और जो कुछ यज्ञ, दान, हवन, जप, व्रत और तप किया जाय, वह सब मेरे लिये ही करे ॥ २३ ॥ उद्धवजी! जो मनुष्य इन धर्मोंका पालन करते हैं और मेरे प्रति आत्म-निवेदन कर देते हैं, उनके हृदयमें मेरी प्रेममयी भक्तिका उदय होता है और जिसे मेरी भक्ति प्राप्त हो गयी, उसके लिये और किस दूसरी वस्तुका प्राप्त होना शेष रह जाता है? ॥ २४ ॥

इस प्रकारके धर्मोंका पालन करनेसे चित्तमें जब सत्त्व-गुणकी वृद्धि होती है और वह शान्त होकर आत्मामें लग जाता है; उस समय साधकको धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं ॥ २५ ॥ यह संसार विविध कल्पनाओंसे भरपूर है। सच पूछो तो इसका नाम तो है, किन्तु कोई वस्तु नहीं है। जब चित्त इसमें लगा दिया जाता है, तब इन्द्रियोंके साथ इधर-उधर भटकने लगता है। इस प्रकार चित्तमें रजोगुण-की बाढ़ आ जाती है, वह असत् वस्तुमें लग जाता है और उसके धर्म, ज्ञान आदि तो लुप्त हो ही जाते हैं, वह अधर्म, अज्ञान और मोहका भी घर बन जाता है ॥ २६ ॥ उद्धव! जिससे मेरी भक्ति हो, वही धर्म है; जिससे ब्रह्म और आत्माकी एकताका साक्षात्कार हो, वही ज्ञान है; विषयोंसे असङ्ग—निर्लेप रहना ही वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियाँ ही ऐश्वर्य हैं ॥ २७ ॥

उद्धवजीने कहा—रिपुसूदन! यम और नियम कितने प्रकारके हैं? श्रीकृष्ण! शम क्या है? दम क्या है? प्रभो! तितिक्षा और धैर्य क्या है? ॥ २८ ॥ आप मुझे दान, तपस्या, शूरता, सत्य और ऋतका भी स्वरूप बतलाइये। त्याग क्या है? अभीष्ट धन कौन-सा है? यज्ञ किसे कहते हैं? और दक्षिणा क्या वस्तु है? ॥ २९ ॥ श्रीमान् केशव! पुरुषका सच्चा बल क्या है? भग किसे कहते हैं? और लाभ क्या वस्तु है? उत्तम विद्या, लज्जा, श्री तथा सुख और दुःख क्या हैं? ॥ ३० ॥ पण्डित और मूर्खके लक्षण क्या हैं? सुमार्ग और कुमार्गका क्या लक्षण है? स्वर्ग और नरक क्या हैं? भाई-बन्धु किसे मानना चाहिये? और घर क्या है? ॥ ३१ ॥ धनवान् और निर्धन किसे कहते हैं? कृपण कौन है? और ईश्वर किसे कहते हैं? भक्तवत्सल प्रभो! आप मेरे इन प्रश्नोंका उत्तर दीजिये और साथ ही इनके विरोधी भावोंकी भी व्याख्या कीजिये ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'यम' बारह हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), असङ्गता, लज्जा, असञ्चय (आवश्यकतासे अधिक धन आदि न जोड़ना), आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय। नियमोंकी संख्या भी बारह ही है। शौच (बाहरी पवित्रता और भीतरी पवित्रता), जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथिसेवा, मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकारकी चेष्टा,

सन्तोष और गुरुसेवा—इस प्रकार 'यम' और 'नियम' दोनोंकी संख्या बारह-बारह हैं। ये सकाम और निष्काम दोनों प्रकारके साधकोंके लिये उपयोगी हैं। उद्धवजी! जो पुरुष इनका पालन करते हैं, वे यम और नियम उनके इच्छानुसार उन्हें भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं॥३३—३५॥ बुद्धिका मुझमें लग जाना ही 'शम' है। इन्द्रियोंके संयमका नाम 'दम' है। न्यायसे प्राप्त दुःखके सहनेका नाम 'तितिक्षा' है। जिह्वा और जननेन्द्रियपर विजय प्राप्त करना 'धैर्य' है॥३६॥ किसीसे द्रोह न करना सबको अभय देना 'दान' है। कामनाओंका त्याग करना ही 'तप' है। अपनी वासनाओंपर विजय प्राप्त करना ही 'शूरता' है। सर्वत्र समस्वरूप, सत्यस्वरूप परमात्माका दर्शन ही 'सत्य' है॥३७॥ इसी प्रकार सत्य और मधुर भाषणको ही महात्माओंने 'ऋत' कहा है। कर्मोंमें आसक्त न होना ही 'शौच' है। कामनाओंका त्याग ही सच्चा 'संन्यास' है॥ ३८॥ धर्म ही मनुष्योंका अभीष्ट 'धन' है। मैं परमेश्वर ही 'यज्ञ' हूँ। ज्ञानका उपदेश देना ही 'दक्षिणा' है। प्राणायाम ही श्रेष्ठ 'बल' है।३९। मेरा ऐश्वर्य ही 'भग' है, मेरी श्रेष्ठ भक्ति ही उत्तम 'लाभ' है, सच्ची 'विद्या' वही है जिससे ब्रह्म और आत्माका भेद मिट जाता है। पाप करनेसे घृणा होनेका नाम ही 'लज्जा' है॥ ४०॥ निरपेक्षता आदि गुण ही शरीरका सच्चा सौन्दर्य—'श्री' है, दुःख और सुख दोनोंकी भावनाका सदाके लिये नष्ट हो जाना ही 'सुख' है। विषयभोगोंकी कामना ही 'दुःख' है। जो बन्धन और मोक्षका तत्त्व जानता है, वही 'पण्डित' है॥ ४१॥ शरीर आदिमें जिसका मैंपन है, वही 'मूर्ख' है। जो संसारकी ओरसे निवृत्त करके मुझे प्राप्त करा देता है, वही सच्चा 'सुमार्ग' है। चित्तकी बहिर्मुखता ही 'कुमार्ग' है। सत्त्वगुणकी वृद्धि ही 'स्वर्ग' और सखे! तमोगुणकी वृद्धि ही 'नरक' है। गुरु ही सच्चा 'भाई-बन्धु' है और वह गुरु मैं हूँ। यह मनुष्य-शरीर ही सच्चा 'घर' है तथा सच्चा 'धनी' वह है, जो गुणोंसे सम्पन्न है, जिसके पास गुणोंका खजाना है॥ ४२-४३॥ जिसके चित्तमें असन्तोष है, अभावका बोध है, वही 'दरिद्र' है। जो जितेन्द्रिय नहीं है, वही 'कृपण' है। समर्थ, स्वतन्त्र और 'ईश्वर' वह है, जिसकी चित्तवृत्ति विषयोंमें आसक्त नहीं है। इसके विपरीत जो विषयोंमें आसक्त है, वही सर्वथा 'असमर्थ' है॥४४॥ प्यारे उद्धव! तुमने जितने प्रश्न पूछे थे, उनका उत्तर मैंने दे दिया; इनको समझ लेना मोक्ष-मार्गके लिये सहायक है। मैं तुम्हें गुण और दोषोंका लक्षण अलग-अलग कहाँतक बताऊँ? सबका सारांश इतनेमें ही समझ लो कि गुणों और दोषोंपर दृष्टि जाना ही सबसे बड़ा दोष है और गुण-दोषोंपर दृष्टि न जाकर अपने शान्त निःसङ्कल्प स्वरूपमें स्थित रहे—वही सबसे बड़ा गुण है॥ ४५॥

बीसवाँ अध्याय

ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग

उद्धवजीने कहा—कमलनयन श्रीकृष्ण! आप सर्वशक्तिमान् हैं। आपकी आज्ञा ही वेद है; उसमें कुछ कर्मोंको करनेकी विधि है और कुछके करनेका निषेध है। यह विधि-निषेध कर्मोंके गुण और दोषकी परीक्षा करके ही तो होता है॥ १॥ वर्णाश्रम-भेद, प्रतिलोम और अनुलोमरूप वर्णसंकर, कर्मोंके उपयुक्त और अनुपयुक्त द्रव्य, देश, आयु और काल तथा स्वर्ग और नरकके भेदोंका बोध भी वेदोंसे ही होता है॥ २॥ इसमें सन्देह नहीं कि आपकी वाणी ही वेद है, परन्तु उसमें विधि-निषेध ही तो भरा पड़ा है। यदि उसमें गुण और दोषमें भेद करनेवाली दृष्टि न हो, तो वह प्राणियोंका कल्याण करनेमें समर्थ ही कैसे हो?॥ ३॥ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आपकी वाणी वेद ही पितर, देवता और मनुष्योंके लिये श्रेष्ठ मार्ग-दर्शकका काम करता है; क्योंकि उसीके द्वारा स्वर्ग-मोक्ष आदि अदृष्ट वस्तुओंका बोध होता है और इस लोकमें भी किसका कौन-सा साध्य है और क्या साधन—इसका निर्णय भी उसीसे होता है॥ ४॥ प्रभो! इसमें सन्देह नहीं कि गुण और दोषोंमें भेददृष्टि आपकी वाणी वेदके ही अनुसार है, किसीकी अपनी कल्पना नहीं; परन्तु

प्रश्न तो यह है कि आपकी वाणी ही भेदका निषेध भी करती है। यह विरोध देखकर मुझे भ्रम हो रहा है। आप कृपा करके मेरा यह भ्रम मिटाइये ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! मैंने ही वेदोंमें एवं अन्यत्र भी मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये अधिकारिभेदसे तीन प्रकारके योगोंका उपदेश किया है। वे हैं—ज्ञान, कर्म और भक्ति। मनुष्यके परम कल्याणके लिये इनके अतिरिक्त और कोई उपाय कहीं नहीं है ॥ ६ ॥ उद्धवजी ! जो लोग कर्मों तथा उनके फलोंसे विरक्त हो गये हैं और उनका त्याग कर चुके हैं, वे ज्ञानयोगके अधिकारी हैं। इसके विपरीत जिनके चित्तमें कर्मों और उनके फलोंसे वैराग्य नहीं हुआ हैं, उनमें दुःखबुद्धि नहीं हुई है, वे सकाम व्यक्ति कर्मयोगके अधिकारी हैं ॥ ७ ॥ जो पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त है और न अत्यन्त आसक्त ही है तथा किसी पूर्वजन्मके शुभकर्मसे सौभाग्यवश मेरी लीला-कथा आदिमें उसकी श्रद्धा हो गयी है, वह भक्तियोगका अधिकारी है। उसे भक्तियोगके द्वारा ही सिद्धि मिल सकती है ॥ ८ ॥ कर्मके सम्बन्धमें जितने भी विधि-निषेध हैं, उनके अनुसार तभीतक कर्म करना चाहिये, जबतक कर्ममय जगत् और उससे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि सुखोंसे वैराग्य न हो जाय अथवा जबतक मेरी लीला-कथाके श्रवण-कीर्तन आदिमें श्रद्धा न हो जाय ॥ ९ ॥ उद्धव ! इस प्रकार अपने वर्ण और आश्रमके अनुकूल धर्ममें स्थित रहकर यज्ञोंके द्वारा बिना किसी आशा और कामनाके मेरी आराधना करता रहे और निषिद्ध कर्मोंसे दूर रहकर केवल विहित कर्मोंका ही आचरण करे तो उसे स्वर्ग या नरकमें नहीं जाना पड़ता ॥ १० ॥ अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाला पुरुष इस शरीरमें रहते-रहते ही निषिद्ध कर्मका परित्याग कर देता है और रागादि मलोंसे भी मुक्त—पवित्र हो जाता है। इसीसे अनायास ही उसे आत्मसाक्षात्काररूप विशुद्ध तत्त्वज्ञान अथवा द्रुत-चित्त होनेपर मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ११ ॥ यह विधि-निषेधरूप कर्मका अधिकारी मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है। स्वर्ग और नरक दोनों ही लोकोंमें रहनेवाले जीव इसकी अभिलाषा करते रहते हैं; क्योंकि इसी शरीरमें अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर ज्ञान अथवा भक्तिकी प्राप्ति हो सकती है, स्वर्ग अथवा नरकका भोगप्रधान शरीर किसी भी साधनके उपयुक्त नहीं है। बुद्धिमान् पुरुषको न तो स्वर्गकी अभिलाषा करनी चाहिये और न नरककी ही। और तो क्या, इस मनुष्य-शरीरकी भी कामना न करनी चाहिये; क्योंकि किसी भी शरीरमें गुणबुद्धि और अभिमान हो जानेसे अपने वास्तविक स्वरूपकी प्राप्तिके साधनमें प्रमाद होने लगता है ॥ १२-१३ ॥ यद्यपि यह मनुष्य-शरीर है तो मृत्युग्रस्त ही, परन्तु इसके द्वारा परमार्थकी—सत्य वस्तुकी प्राप्ति हो सकती है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि यह बात जानकर मृत्यु होनेके पूर्व ही सावधान होकर ऐसी साधना कर ले, जिससे वह जन्म-मृत्युके चक्करसे सदाके लिये छूट जाय—मुक्त हो जाय ॥ १४ ॥ यह शरीर एक वृक्ष है। इसमें घोंसला बनाकर जीवरूप पक्षी निवास करता है। इसे यमराजके दूत प्रतिक्षण काट रहे हैं। जैसे पक्षी कटते हुए वृक्षको छोड़कर उड़ जाता है, वैसे ही अनासक्त जीव भी इस शरीरको छोड़कर मोक्षका भागी बन जाता है। परन्तु आसक्त जीव दुःख ही भोगता रहता है ॥ १५ ॥ प्रिय उद्धव ! ये दिन और रात क्षण-क्षणमें शरीरकी आयुको क्षीण कर रहे हैं। यह जानकर जो भयसे काँप उठता है, वह व्यक्ति इसमें आसक्ति छोड़कर परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है और फिर इसके जीवन-मरणसे निरपेक्ष होकर अपने आत्मामें ही शान्त हो जाता है ॥ १६ ॥ यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होनेपर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण-ग्रहणमात्रसे ही गुरुदेव इसके केवट बनकर पतवारका सञ्चालन करने लगते हैं और स्मरण-मात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा संसार-सागरसे पार नहीं हो जाता, वह तो अपने हाथों अपने आत्माका हनन—अधःपतन कर रहा है ॥ १७ ॥

प्रिय उद्धव ! जब पुरुष दोषदर्शनके कारण कर्मोंसे उद्विग्न और विरक्त हो जाय, तब जितेन्द्रिय होकर वह

योगमें स्थित हो जाय और अभ्यास—आत्मानुसन्धानके द्वारा अपना मन मुझ परमात्मामें निश्चलरूपसे धारण करे ॥ १८ ॥ जब स्थिर करते समय मन चञ्चल होकर इधर-उधर भटकने लगे, तब झटपट बड़ी सावधानीसे उसे मनाकर, समझा-बुझाकर, फुसलाकर अपने वशमें कर ले ॥ १९ ॥ इन्द्रियों और प्राणोंको अपने वशमें रक्खे और मनको एक क्षणके लिये भी स्वतन्त्र न छोड़े। उसकी एक-एक चाल, एक-एक हरकतको देखता रहे। इस प्रकार सत्त्वसम्पन्न बुद्धिके द्वारा धीरे-धीरे मनको अपने वशमें कर लेना चाहिये ॥ २० ॥ जैसे सवार घोड़ेको अपने वशमें करते समय उसे अपने मनोभावकी पहचान कराना चाहता है—अपनी इच्छाके अनुसार उसे चलाना चाहता है और बार-बार फुसलाकर उसे अपने वशमें कर लेता है, वैसे ही मनको फुसलाकर, उसे मीठी-मीठी बातें सुनाकर वशमें कर लेना भी परम योग है ॥ २१ ॥ सांख्यशास्त्रमें प्रकृतिसे लेकर शरीरपर्यन्त सृष्टिका जो क्रम बतलाया गया है, उसके अनुसार सृष्टि-चिन्तन करना चाहिये और जिस क्रमसे शरीर आदिका प्रकृतिमें लय बताया गया है, उस प्रकार लय-चिन्तन करना चाहिये। यह क्रम तबतक जारी रखना चाहिये, जबतक मन शान्त—स्थिर न हो जाय ॥ २२ ॥ जो पुरुष संसारसे विरक्त हो गया है और जिसे संसारके पदार्थोंमें दुःख-बुद्धि हो गयी है, वह अपने गुरुजनोंके उपदेशको भलीभाँति समझकर बार-बार अपने स्वरूपके ही चिन्तनमें संलग्न रहता है। इस अभ्याससे बहुत शीघ्र ही उसका मन अपनी वह चञ्चलता, जो अनात्मा शरीर आदिमें आत्मबुद्धि करनेसे हुई है, छोड़ देता है ॥ २३ ॥ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योगमार्गोंसे, वस्तुतत्त्वका निरीक्षण-परीक्षण करनेवाली आत्मविद्यासे तथा मेरी प्रतिमाकी उपासनासे—अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगसे मन परमात्माका चिन्तन करने लगता है; और कोई उपाय नहीं है ॥ २४ ॥

उद्धवजी ! वैसे तो योगी कभी कोई निन्दित कर्म करता ही नहीं; परन्तु यदि कभी उससे प्रमादवश कोई अपराध बन जाय तो योगके द्वारा ही उस पापको जला डाले, कृच्छ्रचान्द्रायण आदि दूसरे प्रायश्चित्त कभी न करे ॥ २५ ॥ अपने-अपने अधिकारमें जो निष्ठा है, वही गुण कहा गया है। इस गुण-दोष और विधि-निषेधके विधानसे यही तात्पर्य निकलता है कि किसी प्रकार विषयासक्तिका परित्याग हो जाय; क्योंकि कर्म तो जन्मसे ही अशुद्ध हैं, अनर्थके मूल हैं। शास्त्रका तात्पर्य उनका नियन्त्रण, नियम ही है। जहाँतक हो सके प्रवृत्तिका संकोच ही करना चाहिये ॥ २६ ॥ जो साधक समस्त कर्मोंसे विरक्त हो गया हो, उनमें दुःखबुद्धि रखता हो, मेरी लीलाकथाके प्रति श्रद्धालु हो और यह भी जानता हो कि सभी भोग और भोगवासनाएँ दुःखरूप हैं, किन्तु इतना सब जानकर भी जो उनके परित्यागमें समर्थ न हो, उसे चाहिये कि उन भोगोंको तो भोग ले; परन्तु उन्हें सच्चे हृदयसे दुःखजनक समझे और मन-ही-मन उसकी निन्दा करे तथा उसे अपना दुर्भाग्य ही समझे। साथ ही इस दुविधाकी स्थितिसे छुटकारा पानेके लिये श्रद्धा, दृढ निश्चय और प्रेमसे मेरा भजन करे ॥ २७-२८ ॥ इस प्रकार मेरे बतलाये हुए भक्तियोगके द्वारा निरन्तर मेरा भजन करनेसे मैं उस साधकके हृदयमें आकर बैठ जाता हूँ और मेरे विराजमान होते ही उसके हृदयकी सारी वासनाएँ अपने संस्कारोंके साथ नष्ट हो जाती हैं ॥ २९ ॥ इस तरह जब उसे मुझ सर्वात्माका साक्षात्कार हो जाता है, तब तो उसके हृदयकी गाँठ टूट जाती है, उसके सारे संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कर्मवासनाएँ सर्वथा क्षीण हो जाती हैं ॥ ३० ॥ इसीसे जो योगी मेरी भक्तिसे युक्त और मेरे चिन्तनमें मग्न रहता है, उसके लिये ज्ञान अथवा वैराग्यकी आवश्यकता नहीं होती। उसका कल्याण तो प्रायः मेरी भक्तिके द्वारा ही हो जाता है ॥ ३१ ॥ कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योगाभ्यास, दान, धर्म और दूसरे कल्याणसाधनोंसे जो कुछ स्वर्ग, अपवर्ग, मेरा परम धाम अथवा कोई भी वस्तु प्राप्त होती है, वह सब मेरा भक्त मेरे भक्तियोगके प्रभावसे ही, यदि चाहे तो, अनायास प्राप्त कर लेता है ॥ ३२-३३ ॥ मेरे अनन्यप्रेमी एवं धैर्यवान् साधु भक्त स्वयं तो कुछ चाहते ही नहीं; यदि मैं उन्हें देना चाहता हूँ और देता भी हूँ तो भी दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या—वे कैवल्य-मोक्ष भी नहीं

लेना चाहते ॥ ३४ ॥ उद्धवजी ! सबसे श्रेष्ठ एवं महान् निःश्रेयस (परम कल्याण) तो निरपेक्षताका ही दूसरा नाम है । इसलिये जो निष्काम और निरपेक्ष होता है, उसीको मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ मेरे अनन्य-प्रेमी भक्तोंका और उन समदर्शी महात्माओंका, जो बुद्धिसे अतीत परमतत्त्वको प्राप्त हो चुके हैं, इन विधि और निषेधसे होनेवाले पुण्य और पापसे कोई सम्बन्ध ही नहीं होता ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जो लोग मेरे बतलाये हुए इन ज्ञान, भक्ति और कर्ममार्गोंका आश्रय लेते हैं, वे मेरे परम कल्याणस्वरूप धामको प्राप्त होते हैं, क्योंकि वे परब्रह्म-तत्त्वको जान लेते हैं ॥ ३७ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

गुण-दोष-व्यवस्थाका स्वरूप और रहस्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिय उद्धव ! मेरी प्राप्तिके तीन मार्ग हैं—भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग । जो इन्हें छोड़कर चञ्चल इन्द्रियोंके द्वारा क्षुद्र भोग भोगते रहते हैं, वे बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटकते रहते हैं ॥ १ ॥ अपने-अपने अधिकारके अनुसार धर्ममें दृढ़ निष्ठा रखना ही गुण कहा गया है और इसके विपरीत अनधिकार चेष्टा करना दोष है । तात्पर्य यह कि गुण और दोष दोनोंकी व्यवस्था अधिकारके अनुसार की जाती है, किसी वस्तुके अनुसार नहीं ॥ २ ॥ वस्तुओंके समान होनेपर भी शुद्धि-अशुद्धि, गुण-दोष और शुभ-अशुभ आदिका जो विधान किया जाता है, उसका अभिप्राय यह है कि पदार्थका ठीक-ठीक निरीक्षण-परीक्षण हो सके और उनमें सन्देह उत्पन्न करके कि यह योग्य है कि अयोग्य, स्वाभाविक प्रवृत्तिको नियन्त्रित—संकुचित किया जा सके ॥ ३ ॥ उनके द्वारा धर्म-सम्पादन कर सके, समाजका व्यवहार ठीक-ठीक चला सके और अपने व्यक्तिगत जीवनके निर्वाहमें भी सुविधा हो । इससे यह लाभ भी है कि मनुष्य अपनी वासनामूलक सहज प्रवृत्तियोंके द्वारा इनके जालमें न फँसकर शास्त्रानुसार अपने जीवनको नियन्त्रित और मनको वशीभूत कर लेता है । निष्पाप उद्धव ! यह आचार मैंने ही मनु आदिका रूप धारण करके धर्मका भार ढोनेवाले कर्मजडोंके लिये उपदेश किया है ॥ ४ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्चभूत ही ब्रह्मासे लेकर पर्वत-वृक्षपर्यन्त सभी प्राणियोंके शरीरोंके मूलकारण हैं । इस तरह वे सब शरीरकी दृष्टिसे तो समान हैं ही, सबका आत्मा भी एक ही है ॥ ५ ॥ प्रिय उद्धव ! यद्यपि सबके शरीरोंके पञ्चभूत समान हैं; फिर भी वेदोंने इनके वर्णाश्रम आदि अलग-अलग नाम और रूप इसलिये बना दिये हैं कि ये अपनी वासना-मूलक प्रवृत्तियोंको संकुचित करके—नियन्त्रित करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको सिद्ध कर सकें ॥ ६ ॥ साधुश्रेष्ठ ! देश, काल, फल, निमित्त, अधिकारी और धान्य आदि वस्तुओंके गुण-दोषोंका विधान भी मेरेद्वारा इसीलिये किया गया है कि कर्मोंमें लोगोंकी उच्छृङ्खल प्रवृत्ति न हो, मर्यादाका भङ्ग न होने पावे ॥ ७ ॥ देशोंमें वह देश अपवित्र है, जिसमें कृष्णसार मृग न हों और जिसके निवासी ब्राह्मणभक्त न हों । कृष्णसार मृगके होनेपर भी, केवल उन प्रदेशोंको छोड़कर जहाँ संत पुरुष रहते हैं, कीकट देश अपवित्र ही है । संस्काररहित और ऊसर आदि स्थान भी अपवित्र ही होते हैं ॥ ८ ॥ समय वही पवित्र है, जिसमें कर्म करनेयोग्य सामग्री मिल सके तथा कर्म भी हो सके । जिसमें कर्म करनेकी सामग्री न मिले, आगन्तुक दोषोंसे अथवा स्वाभाविक दोषके कारण जिसमें कर्म ही न हो सके, वह समय अशुद्ध है ॥ ९ ॥ पदार्थोंकी शुद्धि और अशुद्धि द्रव्य, वचन, संस्कार, काल, महत्त्व अथवा अल्पत्वसे भी होती है । (जैसे कोई पात्र जलसे शुद्ध और मूत्रादिसे अशुद्ध हो जाता है । किसी वस्तुकी शुद्धि अथवा अशुद्धिमें शंका होनेपर ब्राह्मणोंके वचनसे वह शुद्ध हो जाती है अन्यथा अशुद्ध रहती है । पुष्पादि जल छिड़कनेसे शुद्ध और सूँघनेसे अशुद्ध माने जाते हैं । तत्कालका पकाया हुआ अन्न शुद्ध और बासी अशुद्ध माना जाता है । बड़े सरोवर और नदी आदिका जल शुद्ध और छोटे गड्ढोंका अशुद्ध माना जाता है ।

इस प्रकार क्रमसे समझ लेना चाहिये।) ॥ १० ॥ शक्ति, अशक्ति, बुद्धि और वैभवके अनुसार भी पवित्रता और अपवित्रताकी व्यवस्था होती है। उसमें भी स्थान और उपयोग करनेवालेकी आयुका विचार करते हुए ही अशुद्ध वस्तुओंके व्यवहारका दोष ठीक तरहसे आँका जाता है। (जैसे धनी-दरिद्र, बलवान्-निर्बल, बुद्धिमान्-मूर्ख, उपद्रवपूर्ण और सुखद देश तथा तरुण एवं वृद्धावस्थाके भेदसे शुद्धि और अशुद्धिकी व्यवस्थामें अन्तर पड़ जाता है।) ॥ ११ ॥ अनाज, लकड़ी, हाथीदाँत आदि हड्डी, सूत, मधु, नमक, तेल, घी आदि रस, सोना-पारा आदि तैजस पदार्थ, चाम और घड़ा आदि मिट्टीके बने पदार्थ समयपर अपने-आप हवा लगनेसे, आगमें जलानेसे, मिट्टी लगानेसे अथवा जलमें धोनेसे शुद्ध हो जाते हैं। देश, काल और अवस्थाके अनुसार कहीं जल-मिट्टी आदि शोधक सामग्रीके संयोगसे शुद्धि करनी पड़ती है तो कहीं-कहीं एक-एकसे भी शुद्धि हो जाती है ॥ १२ ॥ यदि किसी वस्तुमें कोई अशुद्ध पदार्थ लग गया हो तो छीलनेसे या मिट्टी आदि मलनेसे जब उस पदार्थकी गन्ध और लेप न रहे और वह वस्तु अपने पूर्वरूपमें आ जाय, तब उसको शुद्ध समझना चाहिये ॥ १३ ॥ स्नान, दान, तपस्या, वय, सामर्थ्य, संस्कार, कर्म और मेरे स्मरणसे चित्तकी शुद्धि होती है। इनके द्वारा शुद्ध होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको विहित कर्मोंका आचरण करना चाहिये ॥ १४ ॥ गुरुमुखसे सुनकर भलीभाँति हृदयङ्गम कर लेनेसे मन्त्रकी और अपने कर्मोंको मुझे समर्पित कर देनेसे कर्मकी शुद्धि होती है। उद्धवजी! इस प्रकार देश, काल, पदार्थ, कर्ता, मन्त्र और कर्म—इन छहोंके शुद्ध होनेसे धर्म और अशुद्ध होनेसे अधर्म होता है ॥ १५ ॥ कहीं-कहीं शास्त्रविधिसे गुण दोष हो जाता है और दोष गुण। (जैसे ब्राह्मणके लिये सन्ध्या-वन्दन, गायत्री-जप आदि गुण हैं; परन्तु शूद्रके लिये दोष हैं। और दूध आदिका व्यापार वैश्यके लिये विहित है; परन्तु ब्राह्मणके लिये अत्यन्त निषिद्ध है।) एक ही वस्तुके विषयमें किसीके लिये गुण और किसीके लिये दोषका विधान गुण और दोषोंकी वास्तविकताका खण्डन कर देता है और इससे यह निश्चय होता है कि गुण-दोषका यह भेद कल्पित है ॥ १६ ॥ जो लोग पतित हैं, वे पतितोंका-सा आचरण करते हैं तो उन्हें पाप नहीं लगता, जब कि श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये वह सर्वथा त्याज्य होता है। जैसे गृहस्थोंके लिये स्वाभाविक होनेके कारण अपनी पत्नीका सङ्ग पाप नहीं है; परन्तु संन्यासीके लिये घोर पाप है। उद्धवजी! बात तो यह है कि जो नीचे सोया हुआ है, वह गिरेगा कहाँ? वैसे ही जो पहलेसे ही पतित हैं, उनका अब और पतन क्या होगा? ॥ १७ ॥ जिन-जिन दोषों और गुणोंसे मनुष्यका चित्त उपरत हो जाता है, उन्हीं वस्तुओंके बन्धनसे वह मुक्त हो जाता है। मनुष्योंके लिये यह निवृत्तिरूप धर्म ही परम कल्याणका साधन है; क्योंकि यही शोक, मोह और भयको मिटानेवाला है ॥ १८ ॥

उद्धवजी! विषयोंमें कहीं भी गुणोंका आरोप करनेसे उस वस्तुके प्रति आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होनेसे उसे अपने पास रखनेकी कामना हो जाती है और इस कामनाकी पूर्तिमें किसी प्रकारकी बाधा पड़नेपर लोगोंमें परस्पर कलह होने लगता है ॥ १९ ॥ कलहसे असह्य क्रोधकी उत्पत्ति होती है और क्रोधके समय अपने हित-अहितका बोध नहीं रहता, अज्ञान छा जाता है। इस अज्ञानसे शीघ्र ही मनुष्यकी कार्याकार्यका निर्णय करनेवाली व्यापक चेतनाशक्ति लुप्त हो जाती है ॥ २० ॥ साधो! चेतनाशक्ति अर्थात् स्मृतिके लुप्त हो जानेपर मनुष्यमें मनुष्यता नहीं रह जाती, पशुता आ जाती है और वह शून्यके समान अस्तित्वहीन हो जाता है। अब उसकी अवस्था वैसी ही हो जाती है, जैसे कोई मूर्च्छित या मुर्दा हो। ऐसी स्थितिमें न तो उसका स्वार्थ बनता है और न तो परमार्थ ॥ २१ ॥ विषयोंका चिन्तन करते-करते वह विषयरूप हो जाता है। उसका जीवन वृक्षोंके समान जड हो जाता है। उसके शरीरमें उसी प्रकार व्यर्थ श्वास चलता रहता है, जैसे लुहारकी धौंकनीकी हवा। उसे न अपना ज्ञान रहता है और न किसी दूसरेका। वह सर्वथा आत्मवञ्चित हो जाता है ॥ २२ ॥

उद्धवजी! यह स्वर्गादिरूप फलका वर्णन करनेवाली श्रुति मनुष्योंके लिये उन-उन लोकोंको परम पुरुषार्थ नहीं बतलाती, परन्तु बहिर्मुख पुरुषोंके लिये अन्तःकरणशुद्धिके द्वारा परम कल्याणमय मोक्षकी विवक्षासे ही कर्मोंमें रुचि उत्पन्न करनेके लिये वैसा वर्णन करती है। जैसे बच्चोंसे

औषधमें रुचि उत्पन्न करनेके लिये रोचक वाक्य कहे जाते हैं। (बेटा! प्रेमसे गिलोयका काढ़ा पी लो तो तुम्हारी चोटी बढ़ जायगी) ॥ २३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि संसारके विषयभोगोंमें, प्राणोंमें और सगे-सम्बन्धियोंमें सभी मनुष्य जन्मसे ही आसक्त हैं और उन वस्तुओंकी आसक्ति उनकी आत्मोन्नतिमें बाधक एवं अनर्थका कारण है ॥ २४ ॥ वे अपने परम पुरुषार्थको नहीं जानते, इसलिये स्वर्गादिका जो वर्णन मिलता है, वह ज्यों-का-त्यों सत्य है—ऐसा विश्वास करके देवादि-योनियोंमें भटकते रहते हैं और फिर वृक्ष आदि योनियोंके घोर अन्धकारमें आ पड़ते हैं। ऐसी अवस्थामें कोई भी विद्वान् अथवा वेद फिरसे उन्हें उन्हीं विषयोंमें क्यों प्रवृत्त करेगा? ॥ २५ ॥ दुर्बुद्धिलोग (कर्मवादी) वेदोंका यह अभिप्राय न समझकर कर्मासक्तिवश पुष्पोंके समान स्वर्गादि लोकोंका वर्णन देखते हैं और उन्हींको परम फल मानकर भटक जाते हैं। परन्तु वेदवेत्ता लोग श्रुतियोंका ऐसा तात्पर्य नहीं बतलाते ॥ २६ ॥ विषय-वासनाओंमें फँसे हुए दीन-हीन, लोभी पुरुष रंग-बिरंगे पुष्पोंके समान स्वर्गादि लोकोंको ही सब कुछ समझ बैठते हैं, अग्निके द्वारा सिद्ध होनेवाले यज्ञ-यागादि कर्मोंमें ही मुग्ध हो जाते हैं। उन्हें अन्तमें देवलोक, पितृलोक आदिकी ही प्राप्ति होती है। दूसरी ओर भटक जानेके कारण उन्हें अपने निजधाम आत्मपदका पता नहीं लगता ॥ २७ ॥ प्यारे उद्धव! उनके पास साधना है तो केवल कर्मकी और उसका कोई फल है तो इन्द्रियोंकी तृप्ति। उनकी आँखें धुँधली हो गयी हैं; इसीसे वे यह बात नहीं जानते कि जिससे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है, जो स्वयं इस जगत्के रूपमें है, वह परमात्मा मैं उनके हृदयमें ही हूँ ॥ २८ ॥ यदि हिंसा और उसके फल मांस-भक्षणमें राग ही हो, उसका त्याग न किया जा सकता हो, तो यज्ञमें ही करे—यह परिसंख्या विधि है, स्वाभाविक प्रवृत्तिका संकोच है, सन्ध्यावन्दनादिके समान अपूर्व विधि नहीं है। इस प्रकार मेरे परोक्ष अभिप्रायको न जानकर विषयलोलुप पुरुष हिंसाका खिलवाड़ खेलते हैं और दुष्टतावश अपनी इन्द्रियोंकी तृप्तिके लिये वध किये हुए पशुओंके मांससे यज्ञ करके देवता, पितर तथा भूतपतियोंके यजनका ढोंग करते हैं ॥ २९-३० ॥

उद्धवजी! स्वर्गादि परलोक स्वप्नके दृश्योंके समान हैं; वास्तवमें वे असत् हैं, केवल उनकी बातें सुननेमें बहुत मीठी लगती हैं। सकाम पुरुष वहाँके भोगोंके लिये मन-ही-मन अनेकों प्रकारके संकल्प कर लेते हैं और जैसे व्यापारी अधिक लाभकी आशासे मूलधनको भी खो बैठता है, वैसे ही वे सकाम यज्ञोंद्वारा अपने धनका नाश करते हैं ॥ ३१ ॥ वे स्वयं रजोगुण, सत्त्वगुण या तमोगुणमें स्थित रहते हैं और रजोगुणी, सत्त्वगुणी अथवा तमोगुणी इन्द्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं। वे उन्हीं सामग्रियोंसे उतने ही परिश्रमसे मेरी पूजा नहीं करते ॥ ३२ ॥ वे जब इस प्रकारकी पुष्पिता वाणी—रंग-बिरंगी मीठी-मीठी बातें सुनते हैं कि 'हमलोग इस लोकमें यज्ञोंके द्वारा देवताओंका यजन करके स्वर्गमें जायँगे और वहाँ दिव्य आनन्द भोगेंगे, उसके बाद जब फिर हमारा जन्म होगा, तब हम बड़े कुलीन परिवारमें पैदा होंगे, हमारे बड़े-बड़े महल होंगे और हमारा कुटुम्ब बहुत सुखी और बहुत बड़ा होगा' तब उनका चित्त क्षुब्ध हो जाता है और उन हेकड़ी जतानेवाले घमंडियोंको मेरे सम्बन्धकी बातचीत भी अच्छी नहीं लगती ॥ ३३-३४ ॥

उद्धवजी! वेदोंमें तीन काण्ड हैं—कर्म, उपासना और ज्ञान। इन तीनों काण्डोंके द्वारा प्रतिपादित विषय है ब्रह्म और आत्माकी एकता; सभी मन्त्र और मन्त्रद्रष्टा ऋषि इस विषयको खोलकर नहीं, गुप्तभावसे बतलाते हैं और मुझे भी इस बातको गुप्तरूपसे कहना ही अभीष्ट है* ॥ ३५ ॥ वेदोंका नाम है शब्दब्रह्म। वे मेरी मूर्ति हैं, इसीसे उनका रहस्य समझना अत्यन्त कठिन है। वह शब्दब्रह्म परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाणीके रूपमें प्राण, मन और इन्द्रियमय है। समुद्रके समान सीमारहित और गहरा है। उसकी थाह लगाना अत्यन्त कठिन है। (इसीसे जैमिनि आदि बड़े-बड़े विद्वान् भी उसके तात्पर्यका ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाते) ॥ ३६ ॥ उद्धव! मैं अनन्तशक्तिसम्पन्न एवं स्वयं अनन्त ब्रह्म हूँ। मैंने ही वेदवाणीका विस्तार किया है। जैसे कमल-नालमें पतला-सा सूत होता है, वैसे ही वह वेदवाणी

* क्योंकि सब लोग इसके अधिकारी नहीं हैं, अन्तःकरण शुद्ध होनेपर ही यह बात समझमें आती है।

प्राणियोंके अन्तःकरणमें अनाहतनादके रूपमें प्रकट होती है ॥ ३७ ॥ भगवान् हिरण्यगर्भ स्वयं वेदमूर्ति एवं अमृतमय हैं। उनकी उपाधि है प्राण और स्वयं अनाहत शब्दके द्वारा ही उनकी अभिव्यक्ति हुई है। जैसे मकड़ी अपने हृदयसे मुखद्वारा जाला उगलती और फिर निगल लेती है, वैसे ही वे स्पर्श आदि वर्णोंका संकल्प करनेवाले मनरूप निमित्तकारणके द्वारा हृदयाकाशसे अनन्त अपार अनेकों मार्गोंवाली वैखरीरूप वेदवाणीको स्वयं ही प्रकट करते हैं और फिर उसे अपनेमें लीन कर लेते हैं। वह वाणी हृद्गत सूक्ष्म ओंकारके द्वारा अभिव्यक्त स्पर्श ('क' से लेकर 'म' तक-२५), स्वर ('अ' से 'औ' तक—९), ऊष्मा (श, ष, स, ह) और अन्तःस्थ (य, र, ल, व)—इन वर्णोंसे विभूषित है। उसमें ऐसे छन्द हैं, जिनमें उत्तरोत्तर चार-चार वर्ण बढ़ते जाते हैं और उनके द्वारा विचित्र भाषाके रूपमें वह विस्तृत हुई है ॥ ३८—४० ॥ (चार-चार अधिक वर्णोंवाले छन्दोंमेंसे कुछ ये हैं—) गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिच्छन्द, अत्यष्टि, अतिजगती और विराट् ॥ ४१ ॥ वह वेदवाणी कर्मकाण्डमें क्या विधान करती है, उपासनाकाण्डमें किन देवताओंका वर्णन करती है और ज्ञानकाण्डमें किन प्रतीतियोंका अनुवाद करके उनमें अनेकों प्रकारके विकल्प करती है—इन बातोंको, इस सम्बन्धमें श्रुतिके रहस्यको मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता ॥ ४२ ॥ मैं तुम्हें स्पष्ट बतला देता हूँ, सभी श्रुतियाँ कर्मकाण्डमें मेरा ही विधान करती हैं। उपासनाकाण्डमें उपास्य देवताओंके रूपमें वे मेरा ही वर्णन करती हैं और ज्ञानकाण्डमें आकाशादिरूपसे मुझमें ही अन्य वस्तुओंका आरोप करके उनका निषेध कर देती हैं। सम्पूर्ण श्रुतियोंका बस, इतना ही तात्पर्य है कि वे मेरा आश्रय लेकर मुझमें भेदका आरोप करती हैं, मायामात्र कहकर उसका अनुवाद करती हैं और अन्तमें सबका निषेध करके मुझमें ही शान्त हो जाती हैं और केवल अधिष्ठानरूपसे मैं ही शेष रह जाता हूँ ॥ ४३ ॥

बाईसवाँ अध्याय

तत्त्वोंकी संख्या और पुरुष-प्रकृति-विवेक

उद्धवजीने कहा—प्रभो ! विश्वेश्वर ! ऋषियोंने तत्त्वोंकी संख्या कितनी बतलायी है ? आपने तो अभी (उन्नीसवें अध्यायमें) नौ, ग्यारह, पाँच और तीन अर्थात् कुल अट्ठाईस तत्त्व गिनाये हैं। यह तो हम सुन चुके हैं ॥ १ ॥ किन्तु कुछ लोग छब्बीस तत्त्व बतलाते हैं तो कुछ पचीस; कोई सात, नौ अथवा छः स्वीकार करते हैं, कोई चार बतलाते हैं तो कोई ग्यारह ॥ २ ॥ इसी प्रकार किन्हीं-किन्हीं ऋषि-मुनियोंके मतमें उनकी संख्या सत्रह है, कोई सोलह और कोई तेरह बतलाते हैं। सनातन श्रीकृष्ण ! ऋषि-मुनि इतनी भिन्न संख्याएँ किस अभिप्रायसे बतलाते हैं ? आप कृपा करके हमें बतलाइये ॥ ३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धवजी ! वेदज्ञ ब्राह्मण इस विषयमें जो कुछ कहते हैं, वह सभी ठीक है; क्योंकि सभी तत्त्व सबमें अन्तर्भूत हैं। मेरी मायाको स्वीकार करके क्या कहना असम्भव है ? ॥ ४ ॥ 'जैसा तुम कहते हो, वह ठीक नहीं है, जो मैं कहता हूँ, वही यथार्थ है'—इस प्रकार जगत्‌के कारणके सम्बन्धमें विवाद इसलिये होता है कि मेरी शक्तियों—सत्त्व, रज आदि गुणों और उनकी वृत्तियोंका रहस्य लोग समझ नहीं पाते; इसलिये वे अपनी-अपनी मनोवृत्तिपर ही आग्रह कर बैठते हैं ॥ ५ ॥ सत्त्व आदि गुणोंके क्षोभसे ही यह विविध कल्पनारूप प्रपञ्च—जो वस्तु नहीं केवल नाम है—उठ खड़ा हुआ है। यही वाद-विवाद करनेवालोंके विवादका विषय है। जब इन्द्रियाँ अपने वशमें हो जाती हैं तथा चित्त शान्त हो जाता है, तब यह प्रपञ्च भी निवृत्त हो जाता है और इसकी निवृत्तिके साथ ही सारे वाद-विवाद भी मिट जाते हैं ॥ ६ ॥ पुरुषशिरोमणे ! तत्त्वोंका एक-दूसरेमें अनुप्रवेश है, इसलिये वक्ता तत्त्वोंकी जितनी संख्या बतलाना चाहता है, उसके

अनुसार कारणको कार्यमें अथवा कार्यको कारणमें मिलाकर अपनी इच्छित संख्या सिद्ध कर लेता है ॥ ७ ॥ ऐसा देखा जाता है कि एक ही तत्त्वमें बहुत-से दूसरे तत्त्वों-का अन्तर्भाव हो गया है। इसका कोई बन्धन नहीं है कि किसका किसमें अन्तर्भाव हो। कभी घट-पट आदि कार्य वस्तुओंका उनके कारण मिट्टी-सूत आदिमें, तो कभी मिट्टी-सूत आदिका घट-पट आदि कार्योंमें अन्तर्भाव हो जाता है ॥ ८ ॥ इसलिये वादी-प्रतिवादियोंमेंसे जिसकी वाणीने जिस कार्यको जिस कारणमें अथवा जिस कारणको जिस कार्यमें अन्तर्भूत करके तत्त्वोंकी जितनी संख्या स्वीकार की है, वह हम निश्चय ही स्वीकार करते हैं; क्योंकि उनका वह उपपादन युक्तिसङ्गत ही है ॥ ९ ॥

उद्धवजी ! जिन लोगोंने छब्बीस संख्या स्वीकार की है, वे ऐसा कहते हैं कि जीव अनादि कालसे अविद्यासे ग्रस्त हो रहा है। वह स्वयं अपने-आपको नहीं जान सकता। उसे आत्मज्ञान करानेके लिये किसी अन्य सर्वज्ञकी आवश्यकता है। (इसलिये प्रकृतिके कार्य-कारणरूप चौबीस तत्त्व, पचीसवाँ पुरुष और छब्बीसवाँ ईश्वर—इस प्रकार कुल छब्बीस तत्त्व स्वीकर करने चाहिये) ॥ १० ॥ पचीस तत्त्व माननेवाले कहते हैं कि इस शरीरमें जीव और ईश्वरका अणुमात्र भी अन्तर या भेद नहीं है, इसलिये उनमें भेदकी कल्पना व्यर्थ है। रही ज्ञानकी बात, सो तो सत्त्वात्मिका प्रकृतिका गुण है ॥ ११ ॥ तीनों गुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति है; इसलिये सत्त्व, रज आदि गुण आत्माके नहीं, प्रकृतिके ही हैं। इन्हींके द्वारा जगत्‌की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय हुआ करते हैं। इसलिये ज्ञान आत्माका गुण नहीं, प्रकृतिका ही गुण सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ इस प्रसङ्गमें सत्त्वगुण ही ज्ञान है, रजोगुण ही कर्म है और तमोगुण ही अज्ञान कहा गया है। और गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला ईश्वर ही काल है और सूत्र अर्थात् महत्तत्त्व ही स्वभाव है। (इसलिये पचीस और छब्बीस तत्त्वोंकी—दोनों ही संख्या युक्तिसंगत है) ॥ १३ ॥

उद्धवजी ! (यदि तीनों गुणोंको प्रकृतिसे अलग मान लिया जाय, जैसा कि उनकी उत्पत्ति और प्रलयको देखते हुए मानना चाहिये, तो तत्त्वोंकी संख्या स्वयं ही अट्ठाईस हो जाती है। उन तीनोंके अतिरिक्त पचीस ये हैं—) पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये नौ तत्त्व मैं पहले ही गिना चुका हूँ ॥ १४ ॥ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, नासिका और रसना—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ; वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों ही हैं। इस प्रकार कुल ग्यारह इन्द्रियाँ तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ज्ञानेन्द्रियोंके पाँच विषय। इस प्रकार तीन, नौ, ग्यारह और पाँच—सब मिलाकर अट्ठाईस तत्त्व होते हैं। कर्मेन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले पाँच कर्म—चलना, बोलना, मल त्यागना, पेशाब करना और काम करना—इनके द्वारा तत्त्वोंकी संख्या नहीं बढ़ती। इन्हें कर्मेन्द्रिय-स्वरूप ही मानना चाहिये ॥ १५-१६ ॥ सृष्टिके आरम्भमें कार्य (ग्यारह इन्द्रिय और पञ्चभूत) और कारण (महत्तत्त्व आदि) के रूपमें प्रकृति ही रहती है। वही सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी सहायतासे जगत्‌की स्थिति, उत्पत्ति और संहारसम्बन्धी अवस्थाएँ धारण करती है। अव्यक्त पुरुष तो प्रकृति और उसकी अवस्थाओंका केवल साक्षीमात्र बना रहता है ॥ १७ ॥ महत्तत्त्व आदि कारण धातुएँ विकारको प्राप्त होते हुए पुरुषके ईक्षणसे शक्ति प्राप्त करके परस्पर मिल जाते हैं और प्रकृतिका आश्रय लेकर उसीके बलसे ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं ॥ १८ ॥

उद्धवजी ! जो लोग तत्त्वोंकी संख्या सात स्वीकार करते हैं, उनके विचारसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये पाँच भूत, छठा जीव और सातवाँ परमात्मा—जो साक्षी जीव और साक्ष्य जगत् दोनोंका अधिष्ठान है—ये ही तत्त्व हैं। देह, इन्द्रिय और प्राणादिकी उत्पत्ति तो पञ्चभूतोंसे ही हुई है [इसलिये वे इन्हें अलग नहीं गिनते] ॥ १९ ॥ जो लोग केवल छः तत्त्व स्वीकार करते हैं, वे कहते हैं कि पाँच भूत हैं और छठा है परमपुरुष परमात्मा। वह परमात्मा अपने बनाये हुए पञ्चभूतोंसे युक्त होकर देह आदिकी सृष्टि करता है और उनमें जीवरूपसे प्रवेश करता है। (इस मतके अनुसार जीवका परमात्मामें और शरीर आदिका पञ्च-

भूतोंमें समावेश हो जाता है) ॥ २० ॥ जो लोग कारणके रूपमें चार ही तत्त्व स्वीकार करते हैं, वे कहते हैं कि आत्मासे तेज, जल और पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है और जगत्‌में जितने पदार्थ हैं, सब इन्हींसे उत्पन्न होते हैं । वे सभी कार्योंका इन्हींमें समावेश कर लेते हैं ॥ २१ ॥ जो लोग तत्त्वोंकी संख्या सत्रह बतलाते हैं, वे इस प्रकार गणना करते हैं—पाँच भूत, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन और एक आत्मा ॥ २२ ॥ जो लोग तत्त्वोंकी संख्या सोलह बतलाते हैं, उनकी गणना भी इसी प्रकार है । अन्तर केवल इतना ही है कि वे आत्मामें मनका भी समावेश कर लेते हैं और इस प्रकार उनकी तत्त्वसंख्या सोलह रह जाती है । जो लोग तेरह तत्त्व मानते हैं, वे कहते हैं कि आकाशादि पाँच भूत, श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, एक मन, एक जीवात्मा और परमात्मा—ये तेरह तत्त्व हैं ॥ २३ ॥ ग्यारह संख्या माननेवालोंने पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और इनके अतिरिक्त एक आत्माका अस्तित्व स्वीकार किया है । जो लोग नौ तत्त्व मानते हैं, वे आकाशादि पाँच भूत और मन, बुद्धि, अहङ्कार—ये आठ प्रकृतियाँ और नवाँ पुरुष—इन्हींको तत्त्व मानते हैं ॥ २४ ॥ उद्धवजी ! इस प्रकार ऋषि-मुनियोंने भिन्न-भिन्न प्रकारसे तत्त्वोंकी गणना की है । सबका कहना उचित ही है, क्योंकि सबकी संख्या युक्तियुक्त है । जो लोग तत्त्वज्ञानी हैं, उन्हें किसी भी मतमें बुराई नहीं दीखती । उनके लिये तो सब कुछ ठीक ही है ॥ २५ ॥

उद्धवजीने कहा—श्यामसुन्दर ! यद्यपि स्वरूपतः प्रकृति और पुरुष दोनों एक-दूसरेसे सर्वथा भिन्न हैं, तथापि वे आपसमें इतने घुल-मिल गये हैं कि साधारणतः उनका भेद नहीं जान पड़ता । प्रकृतिमें पुरुष और पुरुषमें प्रकृति अभिन्न-से प्रतीत होते हैं । इनकी भिन्नता स्पष्ट कैसे हो ? ॥ २६ ॥ कमलनयन श्रीकृष्ण ! मेरे हृदयमें इनकी भिन्नता और अभिन्नताको लेकर बहुत बड़ा सन्देह है । आप तो सर्वज्ञ हैं, अपनी युक्तियुक्त वाणीसे मेरे सन्देहका निवारण कर दीजिये ॥ २७ ॥ भगवन् ! आपकी ही कृपासे जीवोंको ज्ञान होता है और आपकी मायाशक्तिसे ही उनके ज्ञानका नाश होता है । अपनी आत्मस्वरूपिणी मायाकी विचित्र गति आप ही जानते हैं, और कोई नहीं जानता । अतएव आप ही मेरा सन्देह मिटानेमें समर्थ हैं । २८ ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धवजी ! प्रकृति और पुरुष, शरीर और आत्मा—इन दोनोंमें अत्यन्त भेद है । इस प्राकृत जगत्‌में जन्म-मरण एवं वृद्धि-ह्रास आदि विकार लगे ही रहते हैं । इसका कारण यह है कि यह गुणोंके क्षोभसे ही बना है ॥ २९ ॥ प्रिय मित्र ! मेरी माया त्रिगुणात्मिका है । वही अपने सत्त्व, रज आदि गुणोंसे अनेकों प्रकारकी भेदवृत्तियाँ पैदा कर देती है । यद्यपि इसका विस्तार असीम है, फिर भी इस विकारात्मक सृष्टिको तीन भागोंमें बाँट सकते हैं । वे तीन भाग हैं—अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत । ३० । उदाहरणार्थ—नेत्रेन्द्रिय अध्यात्म है, उसका विषय रूप अधिभूत है और नेत्रगोलकमें स्थित सूर्यदेवताका अंश अधिदैव है । ये तीनों परस्पर एक दूसरेके आश्रयसे सिद्ध होते हैं । और इसलिये अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—ये तीनों ही परस्पर सापेक्ष हैं । परन्तु आकाशमें स्थित सूर्यमण्डल इन तीनोंकी अपेक्षासे मुक्त है, क्योंकि वह स्वतःसिद्ध है । इसी प्रकार आत्मा भी उपर्युक्त तीनों भेदोंका मूलकारण, उनका साक्षी और उनसे परे है । वही अपने स्वयंसिद्ध प्रकाशसे समस्त सिद्ध पदार्थोंकी मूलसिद्धि है । उसीके द्वारा सबका प्रकाश होता है । जिस प्रकार चक्षुके तीन भेद बताये गये, उसी प्रकार त्वचा, श्रोत्र, जिह्वा, नासिका और चित्त आदिके भी तीन-तीन भेद हैं* ॥ ३१ ॥ प्रकृतिसे महत्तत्त्व बनता है और महत्तत्त्वसे अहङ्कार । इस प्रकार यह अहङ्कार गुणोंके क्षोभसे उत्पन्न हुआ प्रकृतिका ही एक विकार है । अहङ्कारके तीन भेद हैं—सात्त्विक, तामस और राजस । यह अहङ्कार ही अज्ञान और सृष्टिकी विविधताका मूल-कारण है ॥ ३२ ॥ आत्मा ज्ञानस्वरूप है; उसका इन

* यथा त्वचा, स्पर्श और वायु; श्रवण, शब्द और दिशा; जिह्वा, रस और वरुण; नासिका, गन्ध और अश्विनी-कुमार; चित्त, चिन्तनका विषय और वासुदेव; मन, मनका विषय और चन्द्रमा; अहङ्कार, अहङ्कारका विषय और रुद्र; बुद्धि, समझनेका विषय और ब्रह्मा—इन सभी त्रिविध तत्त्वोंसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

पदार्थोंसे न तो कोई सम्बन्ध है और न उसमें कोई विवादकी ही बात है ! अस्ति-नास्ति (है-नहीं), सगुण-निर्गुण, भाव-अभाव, सत्य-मिथ्या आदि रूपसे जितने भी वाद-विवाद हैं, सबका मूलकारण भेददृष्टि ही है। इसमें सन्देह नहीं कि इस विवादका कोई प्रयोजन नहीं है; यह सर्वथा व्यर्थ है; तथापि जो लोग मुझसे—अपने वास्तविक स्वरूपसे विमुख हैं, वे इस विवादसे मुक्त नहीं हो सकते ॥ ३३ ॥

उद्धवजीने पूछा—भगवन् ! आपसे विमुख जीव अपने किये हुए पुण्य-पापोंके फलस्वरूप ऊँची-नीची योनियोंमें जाते-आते रहते हैं। अब प्रश्न यह है कि व्यापक आत्माका एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना, अकर्ताका कर्म करना और नित्य-वस्तुका जन्म-मरण कैसे सम्भव है ? ॥ ३४ ॥ गोविन्द ! जो लोग आत्मज्ञानसे रहित हैं, वे तो इस विषयको ठीक-ठीक सोच भी नहीं सकते। और इस विषयके विद्वान् संसारमें प्रायः मिलते नहीं, क्योंकि सभी लोग आपकी मायाकी भूलभुलैयामें पड़े हुए हैं। इसलिये आप ही कृपा करके मुझे इसका रहस्य समझाइये ॥ ३५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय उद्धव ! मनुष्योंका मन कर्म-संस्कारोंका पुञ्ज है। उन संस्कारोंके अनुसार भोग प्राप्त करनेके लिये उसके साथ पाँच इन्द्रियाँ भी लगी हुई हैं। इसीका नाम है लिङ्गशरीर। वही कर्मोंके अनुसार एक शरीरसे दूसरे शरीरमें, एक लोकसे दूसरे लोकमें आता-जाता रहता है। आत्मा इस लिङ्गशरीरसे सर्वथा पृथक् है। उसका आना-जाना नहीं होता; परन्तु जब वह अपनेको लिङ्गशरीर ही समझ बैठता है, उसीमें अहङ्कार कर लेता है, तब उसे भी अपना जाना-आना प्रतीत होने लगता है ॥ ३६ ॥ मन कर्मोंके अधीन है। वह देखे हुए या सुने हुए विषयोंका चिन्तन करने लगता है और क्षणभरमें ही उनमें तदाकार हो जाता है तथा उन्हीं पूर्वचिन्तित विषयोंमें लीन हो जाता है। धीरे-धीरे उसकी स्मृति, पूर्वापरका अनुसन्धान भी नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ उन देवादि शरीरोंमें इसका इतना अभिनिवेश, इतनी तल्लीनता हो जाती है कि जीवको अपने पूर्व शरीरका स्मरण भी नहीं रहता। किसी भी कारणसे शरीरको सर्वथा भूल जाना ही मृत्यु है ॥ ३८ ॥ उदार उद्धव ! जब यह जीव किसी भी शरीरको अभेद-भावसे 'मैं' के रूपमें स्वीकार कर लेता है, तब उसे ही जन्म कहते हैं, ठीक वैसे ही, जैसे स्वप्नकालीन और मनोरथकालीन शरीरमें अभिमान करना ही स्वप्न और मनोरथ कहा जाता है ॥ ३९ ॥ यह वर्तमान देहमें स्थित जीव जैसे पूर्व देहका स्मरण नहीं करता, वैसे ही स्वप्न या मनोरथमें स्थित जीव भी पहलेके स्वप्न और मनोरथको स्मरण नहीं करता, प्रत्युत उस वर्तमान स्वप्न और मनोरथमें पूर्व सिद्ध होनेपर भी अपनेको नवीन-सा ही समझता है ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंके आश्रय मन या शरीरकी सृष्टिसे आत्मवस्तुमें यह उत्तम, मध्यम और अधमकी त्रिविधता भासती है। उसमें अभिमान करनेसे ही आत्मा बाह्य और आभ्यन्तर भेदोंका हेतु मालूम पड़ने लगता है, जैसे दुष्ट पुत्रको उत्पन्न करनेवाला पिता पुत्रके शत्रु-मित्र आदिके लिये भेदका हेतु हो जाता है ॥ ४१ ॥ प्यारे उद्धव ! कालकी गति सूक्ष्म है। उसे साधारणतः देखा नहीं जा सकता। उसके द्वारा प्रतिक्षण ही शरीरोंकी उत्पत्ति और नाश होते रहते हैं। सूक्ष्म होनेके कारण ही प्रतिक्षण होनेवाले जन्म-मरण नहीं दीख पड़ते ॥ ४२ ॥ जैसे कालके प्रभावसे दियेकी लौ, नदियोंके प्रवाह अथवा वृक्षके फलोंकी विशेष-विशेष अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, वैसे ही समस्त प्राणियोंके शरीरोंकी आयु, अवस्था आदि भी बदलती रहती है ॥ ४३ ॥ जैसे यह उन्हीं ज्योतियोंका वही दीपक है, प्रवाहका यह वही जल है—ऐसा समझना और कहना मिथ्या है, वैसे ही विषय-चिन्तनमें व्यर्थ आयु वितानेवाले अविवेकी पुरुषोंका ऐसा कहना और समझना कि यह वही पुरुष है, सर्वथा मिथ्या है ॥ ४४ ॥ यद्यपि वह भ्रान्त पुरुष भी अपने कर्मोंके बीजद्वारा न पैदा होता है और न तो मरता ही है; *वह भी अजन्मा और अमर ही है*, फिर भी भ्रान्तिसे वह उत्पन्न होता है और मरता-सा भी है, जैसे कि काष्ठसे युक्त अग्नि पैदा होता और नष्ट होता दिखायी पड़ता है ४५

उद्धवजी ! गर्भाधान, गर्भवृद्धि, जन्म, बाल्यावस्था, कुमारावस्था, जवानी, अधेड़ अवस्था, बुढ़ापा और मृत्यु—ये नौ अवस्थाएँ शरीरकी ही हैं ॥ ४६ ॥ यह शरीर

जीवसे भिन्न है और ये ऊँची-नीची अवस्थाएँ उसके मनोरथके अनुसार ही हैं; परन्तु वह अज्ञानवश गुणोंके सङ्गसे इन्हें अपनी मानकर भटकने लगता है और कभी-कभी विवेक हो जानेपर इन्हें छोड़ भी देता है ॥ ४७ ॥ पिताको पुत्रके जन्मसे और पुत्रको पिताकी मृत्युसे अपने-अपने जन्म-मरणका अनुमान कर लेना चाहिये । जन्म-मृत्युसे युक्त देहोंका द्रष्टा जन्म और मृत्युसे युक्त शरीर नहीं है ॥ ४८ ॥ जैसे जौ-गेहूँ आदिकी फसल बोनेपर उग आती है और पक जानेपर काट दी जाती है, किन्तु जो पुरुष उनके उगने और काटनेका जाननेवाला साक्षी है, वह उनसे सर्वथा पृथक् है; वैसे ही जो शरीर और उसकी अवस्थाओंका साक्षी है, वह शरीरसे सर्वथा पृथक् है ॥ ४९ ॥ अज्ञानी पुरुष इस प्रकार प्रकृति और शरीरसे आत्माका विवेचन नहीं करते । वे उसे उनसे तत्त्वतः अलग अनुभव नहीं करते और विषयभोगमें सच्चा सुख मानने लगते हैं तथा उसीमें मोहित हो जाते हैं । इसीसे उन्हें जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकना पड़ता है ॥ ५० ॥ जब अविवेकी जीव अपने कर्मोंके अनुसार जन्म-मृत्युके चक्रमें भटकने लगता है, तब सात्त्विक कर्मोंकी आसक्तिसे वह ऋषिलोक और देवलोकमें राजसिक कर्मोंकी आसक्तिसे मनुष्य और असुरयोनियोंमें तथा तामसी कर्मोंकी आसक्तिसे भूत-प्रेत एवं पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जाता है ॥ ५१ ॥ जब मनुष्य किसीको नाचते-गाते देखता है, तब वह स्वयं भी उसका अनुकरण करने—तान तोड़ने लगता है । वैसे ही जब जीव बुद्धिके गुणोंको देखता है, तब स्वयं निष्क्रिय होनेपर भी उसका अनुकरण करनेके लिये बाध्य हो जाता है ॥ ५२ ॥ जैसे नदी-तालाब आदिके जलके हिलने या चंचल होनेपर उसमें प्रतिबिम्बित तटके वृक्ष भी उसके साथ हिलते-डोलते-से जान पड़ते हैं, जैसे घुमाये जानेवाले नेत्रके साथ-साथ पृथ्वी भी घूमती हुई-सी दिखायी देती है, जैसे मनके द्वारा सोचे गये तथा स्वप्नमें देखे गये भोग पदार्थ सर्वथा अलीक ही होते हैं, वैसे ही हे दाशार्ह ! आत्माका विषयानुभवरूप संसार भी सर्वथा असत्य है । आत्मा तो नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव ही है ॥५३-५४॥ विषयोंके सत्य न होनेपर भी जो जीव विषयोंका ही चिन्तन करता रहता है, उसका यह जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्र कभी निवृत्त नहीं होता, जैसे स्वप्नमें प्राप्त अनर्थ-परम्परा जागे विना निवृत्त नहीं होती ॥ ५५ ॥

प्रिय उद्धव ! इसलिये इन दुष्ट (कभी तृप्त न होनेवाली) इन्द्रियोंसे विषयोंको मत भोगो । आत्माके अज्ञानसे प्रतीत होनेवाला सांसारिक भेदभाव भ्रममूलक ही है, ऐसा समझो ॥ ५६ ॥ असाधु पुरुष गर्दन पकड़कर बाहर निकाल दें, वाणीद्वारा अपमान करें, उपहास करें, निन्दा करें, मारें-पीटें, बाँधें, आजीविका छीन लें, ऊपर थूक दें, मूत दें अथवा तरह-तरहसे विचलित करें, निष्ठासे डिगानेकी चेष्टा करें; उनके किसी भी उपद्रवसे क्षुब्ध न होना चाहिये; क्योंकि वे तो बेचारे अज्ञानी हैं, उन्हें परमार्थका तो पता ही नहीं है । अतः जो अपने कल्याणका इच्छुक है, उसे सभी कठिनाइयोंसे अपनी विवेकबुद्धिद्वारा ही—किसी बाह्य साधनसे नहीं—अपनेको बचा लेना चाहिये । वस्तुतः आत्मदृष्टि ही समस्त विपत्तियोंसे बचनेका एकमात्र साधन है ॥ ५७-५८ ॥

उद्धवजीने कहा—भगवन् ! आप समस्त वक्ताओंके शिरोमणि हैं । मैं इस दुर्जनोंसे किये गये तिरस्कारको अपने मनमें अत्यन्त असह्य समझता हूँ अतः जैसे मैं इसको समझ सकूँ, आपका उपदेश जीवनमें धारण कर सकूँ, वैसे हमें बतलाइये ॥ ५९ ॥ विश्वात्मन् ! जो आपके भागवतधर्मके आचरणमें प्रेमपूर्वक संलग्न हैं, जिन्होंने आपके चरण-कमलोंका ही आश्रय ले लिया है, उन शान्त पुरुषोंके अतिरिक्त बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी दुष्टोंके द्वारा किया हुआ तिरस्कार सह लेना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि प्रकृति अत्यन्त बलवती है ॥ ६० ॥

तेईसवाँ अध्याय

एक तितिक्षु ब्राह्मणका इतिहास

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! वास्तवमें भगवान्‌की लीलाकथा ही श्रवण करने योग्य है । वे ही प्रेम और मुक्तिके दाता हैं । जब उनके परमप्रेमी भक्त उद्धवजीने इस प्रकार प्रार्थना की, तब यदुवंशविभूषण

श्रीभगवान्‌ने उनके प्रश्नकी प्रशंसा करके उनसे इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवगुरु बृहस्पतिके शिष्य उद्धवजी! इस संसारमें प्रायः ऐसे संत पुरुष नहीं मिलते, जो दुर्जनोंकी कटुवाणीसे बिंधे हुए अपने हृदयको सँभाल सकें॥ २ ॥ मनुष्यका हृदय मर्मभेदी बाणोंसे बिंधनेपर भी उतनी पीडाका अनुभव नहीं करता, जितनी पीडा उसे दुष्टजनोंके मर्मान्तक एवं कठोर वाग्बाण पहुँचाते हैं॥ ३ ॥ उद्धवजी! इस विषयमें महात्मालोग एक बड़ा पवित्र प्राचीन इतिहास कहा करते हैं; मैं वही तुम्हें सुनाऊँगा, तुम मन लगाकर उसे सुनो॥ ४ ॥ एक भिक्षुकको दुष्टोंने बहुत सताया था। उस समय भी उसने अपना धैर्य न छोड़ा और उसे अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका फल समझकर कुछ अपने मानसिक उद्गार प्रकट किये थे। उन्हींका इस इतिहासमें वर्णन है॥ ५ ॥

प्राचीन समयकी बात है, उज्जैनमें एक ब्राह्मण रहता था। उसने खेती-व्यापार आदि करके बहुत-सी धन-सम्पत्ति इकट्ठी कर ली थी। वह बहुत ही कृपण, कामी और लोभी था। क्रोध तो उसे बात-बातमें आ जाया करता था॥ ६ ॥ उसने अपने जाति-बन्धु और अतिथियोंको कभी मीठी बातसे भी प्रसन्न नहीं किया, खिलाने-पिलानेकी तो बात ही क्या है। वह धर्म-कर्मसे रीते घरमें रहता और स्वयं भी अपनी धन-सम्पत्तिके द्वारा समयपर अपने शरीरको भी सुखी नहीं करता था॥ ७ ॥ उसकी कृपणता और बुरे स्वभावके कारण उसके बेटे-बेटी, भाई-बन्धु, नौकर-चाकर और पत्नी आदि सभी दुखी रहते और मन-ही-मन उसका अनिष्टचिन्तन किया करते थे। कोई भी उसके मनको प्रिय लगनेवाला व्यवहार नहीं करता था॥ ८ ॥ वह लोक-परलोक दोनोंसे ही गिर गया था। बस, यक्षोंके समान धनकी रखवाली करता रहता था। उस धनसे वह न तो धर्म कमाता था और न भोग ही भोगता था। बहुत दिनोंतक इस प्रकार जीवन बितानेसे उसपर पञ्चमहायज्ञके भागी देवता बिगड़ उठे॥ ९ ॥ उदार उद्धवजी! पञ्चमहायज्ञके भागियोंके तिरस्कारसे उसके पूर्व-पुण्योंका सहारा—जिसके बलसे अबतक धन टिका हुआ था—जाता रहा और जिसे उसने बड़े उद्योग और परिश्रमसे इकट्ठा किया था, वह धन उसकी आँखोंके सामने ही नष्ट-भ्रष्ट हो गया॥ १० ॥ उस नीच ब्राह्मणका कुछ धन तो उसके कुटुम्बियोंने ही छीन लिया, कुछ चोर चुरा ले गये। कुछ आग लग जाने आदि दैवी कोपसे नष्ट हो गया, कुछ समयके फेरसे मारा गया। कुछ साधारण मनुष्योंने ले लिया और बचा-खुचा कर और दण्डके रूपमें शासकोंने हड़प लिया॥ ११ ॥ उद्धवजी! इस प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति जाती रही। न तो उसने धर्म ही कमाया और न भोग ही भोगे। इधर उसके सगे-सम्बन्धियोंने भी उसकी ओरसे मुँह मोड़ लिया। अब उसे बड़ी भयानक चिन्ताने घेर लिया॥ १२ ॥ धनके नाशसे उसके हृदयमें बड़ी जलन हुई। उसका मन खेदसे भर गया। आँसुओंके कारण गला रूँध गया। परन्तु इस तरह चिन्ता करते-करते ही उसके मनमें संसारके प्रति महान् दुःखबुद्धि और उत्कट वैराग्यका उदय हो गया॥ १३ ॥

अब वह ब्राह्मण मन-ही-मन कहने लगा—'हाय! हाय!! बड़े खेदकी बात है, मैंने इतने दिनोंतक अपनेको व्यर्थ ही इस प्रकार सताया। जिस धनके लिये मैंने सरतोड़ परिश्रम किया, वह न तो धर्मकर्ममें लगा और न मेरे सुखभोगके ही काम आया॥ १४ ॥ प्रायः देखा जाता है कि कृपण पुरुषोंको धनसे कभी सुख नहीं मिलता। इस लोकमें तो वे धन कमाने और रक्षाकी चिन्तासे जलते रहते हैं और मरनेपर धर्म न करनेके कारण नरकमें जाते हैं॥ १५ ॥ जैसे थोड़ा-सा भी कोढ़ सर्वाङ्गसुन्दर स्वरूपको बिगाड़ देता है, वैसे ही तनिक-सा भी लोभ यशस्वियोंके शुद्ध यश और गुणियोंके प्रशंसनीय गुणोंपर पानी फेर देता है॥ १६ ॥ धन कमानेमें, कमा लेनेपर उसको बढ़ाने, रखने एवं खर्च करनेमें तथा उसके नाश और उपभोगमें—जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है॥ १७ ॥ चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें धनके कारण ही माने गये हैं। इसलिये कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि

स्वार्थ एवं परमार्थके विरोधी अर्थनामधारी अनर्थको दूरसे ही छोड़ दे ॥१८-१९॥ भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी—जो स्नेहबन्धनसे बँधकर बिल्कुल एक हुए रहते हैं—सब-के-सब कौड़ीके कारण इतने फट जाते हैं कि तुरंत एक दूसरेके शत्रु बन जाते हैं ॥ २०॥ ये लोग थोड़े-से धनके लिये भी क्षुब्ध और क्रुद्ध हो जाते हैं। बात-की-बातमें सौहार्द-सम्बन्ध छोड़ देते हैं, लाग-डाँट रखने लगते हैं और एकाएक प्राण लेने-देनेपर उतारू हो जाते हैं। यहाँतक कि एक-दूसरेका सर्वनाश कर डालते हैं ॥ २१ ॥ देवताओंके भी प्रार्थनीय मनुष्य-जन्मको और उसमें भी श्रेष्ठ ब्राह्मणशरीर प्राप्त करके जो उसका अनादर करते हैं और अपने सच्चे स्वार्थ-परमार्थका नाश करते हैं, वे अशुभ गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ यह मनुष्यशरीर मोक्ष और स्वर्गका द्वार है, इसको पाकर भी ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य है जो अनर्थोंके धाम धनके चक्करमें फँसा रहे ॥ २३ ॥ जो मनुष्य देवता, ऋषि, पितर, प्राणी, जाति-भाई, कुटुम्बी और धनके दूसरे भागीदारोंको उनका भाग देकर सन्तुष्ट नहीं रखता और न स्वयं ही उसका उपभोग करता है, वह यक्षके समान धनकी रखवाली करनेवाला कृपण तो अवश्य ही अधोगतिको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ मैं अपने कर्तव्यसे च्युत हो गया हूँ। मैंने प्रमादमें अपनी आयु, धन और बल-पौरुष खो दिये। विवेकीलोग जिन साधनोंसे मोक्षतक प्राप्त कर लेते हैं, उन्हींको मैंने धन इकट्ठा करनेकी व्यर्थ चेष्टामें खो दिया। अब बुढ़ापेमें मैं कौन-सा साधन करूँगा ॥ २५ ॥ मुझे मालूम नहीं होता कि बड़े-बड़े विद्वान् भी धनकी व्यर्थ तृष्णासे निरन्तर क्यों दुःखी रहते हैं? हो-न-हो, अवश्य ही यह संसार किसीकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहा है ॥ २६ ॥ यह मनुष्य-शरीर कालके विकराल गालमें पड़ा हुआ है। इसको धनसे, धन देनेवाले देवताओं और लोगोंसे, भोगवासनाओं और उनको पूर्ण करनेवालोंसे तथा पुनः-पुनः जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले सकाम कर्मोंसे लाभ ही क्या है? ॥ २७ ॥

इसमें सन्देह नहीं कि सर्वदेवस्वरूप भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं। तभी तो उन्होंने मुझे इस दशामें पहुँचाया है और मुझे जगत्‌के प्रति यह दुःख-बुद्धि और वैराग्य दिया है। वस्तुतः वैराग्य ही इस संसार-सागरसे पार होनेके लिये नौकाके समान है ॥ २८ ॥ मैं अब ऐसी अवस्थामें पहुँच गया हूँ। यदि मेरी आयु शेष हो तो मैं आत्मलाभमें ही सन्तुष्ट रहकर अपने परमार्थके सम्बन्धमें सावधान हो जाऊँगा और अब जो समय बच रहा है, उसमें अपने शरीरको तपस्याके द्वारा सुखा डालूँगा ॥ २९ ॥ तीनों लोकोंके स्वामी देवगण मेरे इस सङ्कल्पका अनुमोदन करें। अभी निराश होनेकी कोई बात नहीं है, क्योंकि राजा खट्वाङ्गने तो दो घड़ीमें ही भगवद्धामकी प्राप्ति कर ली थी ॥ ३० ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धवजी! उस उज्जैननिवासी ब्राह्मणने मन-ही-मन इस प्रकार निश्चय करके 'मैं' और 'मेरे' पनकी गाँठ खोल दी। इसके बाद वह शान्त होकर मौनी संन्यासी हो गया ॥ ३१ ॥ अब उसके चित्तमें किसी भी स्थान, वस्तु या व्यक्तिके प्रति आसक्ति न रही। उसने अपने मन, इन्द्रिय और प्राणोंको वशमें कर लिया। वह पृथ्वीपर स्वच्छन्दरूपसे विचरने लगा। वह भिक्षाके लिये नगर और गाँवोंमें जाता अवश्य था, परन्तु इस प्रकार जाता था कि कोई उसे पहचान न पाता था ॥ ३२ ॥ उद्धवजी! वह भिक्षुक अवधूत बहुत बूढ़ा हो गया था। दुष्ट उसे देखते ही टूट पड़ते और तरह-तरहसे उसका तिरस्कार करके उसे तंग करते ॥ ३३ ॥ कोई उसका दण्ड छीन लेता, तो कोई भिक्षापात्र ही झटक ले जाता। कोई कमण्डलु उठा ले जाता तो कोई आसन, रुद्राक्षमाला और कंथा ही लेकर भाग जाता। कोई तो उसकी लँगोटी और वस्त्रको ही इधर-उधर डाल देते ॥ ३४ ॥ कोई-कोई वे वस्तुएँ देकर और कोई दिखला-दिखलाकर फिर छीन लेते। जब वह अवधूत मधुकरी माँगकर लाता और बाहर नदी-तटपर भोजन करने बैठता, तो पापी लोग कभी उसके सिरपर मूत देते, तो कभी थूक देते। वे लोग उस मौनी अवधूतको तरह-तरहसे बोलनेके लिये विवश करते और जब वह इसपर भी न बोलता तो उसे पीटते ॥ ३५-३६ ॥ कोई उसे चोर कहकर डाँटने-डपटने लगता। कोई कहता 'इसे बाँध लो, बाँध लो' और फिर उसे रस्सीसे

बाँधने लगते ॥ ३७ ॥ कोई उसका तिरस्कार करके इस प्रकार ताना कसते कि 'देखो-देखो, अब इस कृपणने धर्मका ढोंग रचा है। धन-सम्पत्ति जाती रही, स्त्री-पुत्रोंने घरसे निकाल दिया; तब इसने भीख माँगनेका रोजगार लिया है ॥ ३८ ॥ ओहो! देखो तो सही, यह मोटा-तगड़ा भिखारी धैर्यमें बड़े भारी पर्वतके समान है। यह मौन रहकर अपना काम बनाना चाहता है। सचमुच यह बगुलेसे भी बढ़कर ढोंगी और दृढनिश्चयी है' ॥ ३९ ॥ कोई उस अवधूतकी हँसी उड़ाता, तो कोई उसपर अधोवायु छोड़ता। जैसे लोग तोता-मैना आदि पालतू पक्षियोंको बाँध लेते या पिंजड़ेमें बंद कर लेते हैं, वैसे ही उसे भी वे लोग बाँध देते और घरोंमें बंद कर देते ॥ ४० ॥ किन्तु वह सब कुछ चुपचाप सह लेता। उसे कभी ज्वर आदिके कारण दैहिक पीड़ा सहनी पड़ती, कभी गरमी-सर्दी आदिसे दैवी कष्ट उठाना पड़ता और कभी दुर्जन लोग अपमान आदिके द्वारा उसे भौतिक पीड़ा पहुँचाते; परन्तु भिक्षुकके मनमें इससे कोई विकार न होता। वह समझता कि यह सब मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है और इसे मुझे अवश्य भोगना पड़ेगा ॥ ४१ ॥ यद्यपि नीच मनुष्य तरह-तरहके तिरस्कार करके उसे उसके धर्मसे गिरानेकी चेष्टा किया करते, फिर भी वह बड़ी दृढ़तासे अपने धर्ममें स्थिर रहता और सात्त्विक धैर्यका आश्रय लेकर कभी-कभी ऐसे उद्गार प्रकट किया करता ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण कहता—मेरे सुख अथवा दुःखका कारण न ये मनुष्य हैं, न देवता हैं, न शरीर है और न ग्रह, कर्म एवं काल आदि ही हैं। श्रुतियाँ और महात्माजन मनको ही इसका परम कारण बताते हैं और मन ही इस सारे संसारचक्रको चला रहा है ॥ ४३ ॥ सचमुच यह मन बहुत बलवान् है। इसीने विषयों, उनके कारण गुणों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली वृत्तियोंकी सृष्टि की है। उन वृत्तियोंके अनुसार ही सात्त्विक, राजस और तामस—अनेकों प्रकारके कर्म होते हैं और कर्मोंके अनुसार ही जीवकी विविध गतियाँ होती हैं ॥ ४४ ॥ मन ही समस्त चेष्टाएँ करता है। उसके साथ रहनेपर भी आत्मा निष्क्रिय ही है। वह ज्ञानशक्तिप्रधान है, मुझ जीवका सनातन सखा है और अपने अलुप्त ज्ञानसे सब कुछ देखता रहता है। मनके द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति होती है। जब वह मनको स्वीकार करके उसके द्वारा विषयोंका भोक्ता बन बैठता है, तब कर्मोंके साथ आसक्ति होनेके कारण वह उनसे बँध जाता है ॥ ४५ ॥ दान, अपने धर्मका पालन, नियम, यम, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्यादि श्रेष्ठ व्रत—इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय, भगवान्‌में लग जाय। मनका समाहित हो जाना ही परम योग है ॥ ४६ ॥ जिसका मन शान्त और समाहित है, उसे दान आदि समस्त सत्कर्मोंका फल प्राप्त हो चुका है। अब उनसे कुछ लेना बाकी नहीं है। और जिसका मन चञ्चल है अथवा आलस्यसे अभिभूत हो रहा है, उसको इन दानादि शुभकर्मोंसे अबतक कोई लाभ नहीं हुआ ॥ ४७ ॥ सभी इन्द्रियाँ मनके वशमें हैं। मन किसी भी इन्द्रियके वशमें नहीं है। यह मन बलवान्‌से भी बलवान्, अत्यन्त भयङ्कर देव है। जो इसको अपने वशमें कर लेता है, वही देव-देव—इन्द्रियोंका विजेता है ॥ ४८ ॥ सचमुच मन बहुत बड़ा शत्रु है। इसका आक्रमण असह्य है। यह बाहरी शरीरको ही नहीं, हृदयादि मर्मस्थानोंको भी बेधता रहता है। इसे जीतना बहुत ही कठिन है। मनुष्यको चाहिये कि सबसे पहले इसी शत्रुपर विजय प्राप्त करे; परन्तु होता है यह कि मूर्ख लोग इसे तो जीतनेका प्रयत्न करते नहीं, दूसरे मनुष्योंसे झूठमूठ झगड़ा-बखेड़ा करते रहते हैं और इस जगत्‌के लोगोंको ही मित्र-शत्रु-उदासीन बना लेते हैं ॥ ४९ ॥ साधारणतः मनुष्योंकी बुद्धि अंधी हो रही है। तभी तो वे इस मनःकल्पित शरीरको 'मैं' और 'मेरा' मान बैठते हैं और फिर इस भ्रमके फंदेमें फँस जाते हैं कि 'यह मैं हूँ और यह दूसरा।' इसका परिणाम यह होता है कि वे इस अनन्त अज्ञानान्धकारमें ही भटकते रहते हैं ॥ ५० ॥

यदि मान लें कि मनुष्य ही सुख-दुःखका कारण है, तो भी उनसे आत्माका क्या सम्बन्ध? क्योंकि सुख-दुःख पहुँचानेवाला भी मिट्टीका शरीर है और भोगनेवाला भी। कभी भोजन आदिके समय यदि अपने दाँतोंसे ही अपनी जीभ कट जाय और उससे पीड़ा होने लगे, तो मनुष्य किसपर क्रोध करेगा? ॥ ५१ ॥ यदि

ऐसा मान लें कि देवता ही दु:खके कारण हैं, तो भी इस दु:खसे आत्माकी क्या हानि? क्योंकि यदि दु:खके कारण देवता हैं, तो इन्द्रियाभिमानी देवताओंके रूपमें उनके भोक्ता भी तो वे ही हैं। और देवता सभी शरीरोंमें एक हैं; जो देवता एक शरीरमें हैं; वे ही दूसरेमें भी हैं। ऐसी दशामें यदि अपने ही शरीरके किसी एक अङ्गसे दूसरे अङ्गको चोट लग जाय तो भला, किसपर क्रोध किया जायगा? ॥ ५२ ॥ यदि ऐसा मानें कि आत्मा ही सुख-दु:खका कारण है तो वह तो अपना आप ही है, कोई दूसरा नहीं; क्योंकि आत्मासे भिन्न कुछ है ही नहीं। यदि दूसरा कुछ प्रतीत होता है, तो वह मिथ्या है। इसलिये न सुख है, न दु:ख; फिर क्रोध कैसा? क्रोधका निमित्त ही क्या? ॥ ५३ ॥ यदि ग्रहोंको सुख-दु:खका निमित्त मानें, तो उनसे भी अजन्मा आत्माकी क्या हानि? उनका प्रभाव भी जन्म-मृत्युशील शरीरपर ही होता है। ग्रहोंकी पीड़ा तो उनका प्रभाव ग्रहण करनेवाले शरीरको ही होती है और आत्मा उन ग्रहों और शरीरोंसे सर्वथा परे है। तब भला, वह किसपर क्रोध करे? ॥ ५४ ॥ यदि कर्मोंको ही सुख-दु:खका कारण मानें, तो उनसे आत्माका क्या प्रयोजन? क्योंकि वे तो एक पदार्थके जड और चेतन—उभयरूप होनेपर ही हो सकते हैं। (जो वस्तु विकारयुक्त और अपना हिताहित जाननेवाली होती है, उसीसे कर्म हो सकते हैं; अत: वह विकारयुक्त होनेके कारण जड होनी चाहिये और हिताहितका ज्ञान रखनेके कारण चेतन।) किन्तु देह तो अचेतन है और उसमें पक्षीरूपसे रहनेवाला आत्मा सर्वथा निर्विकार और साक्षीमात्र है। इस प्रकार कर्मोंका तो कोई आधार ही सिद्ध नहीं होता। फिर क्रोध किसपर करें? ॥ ५५ ॥ यदि ऐसा मानें कि काल ही सुख-दु:खका कारण है, तो आत्मापर उसका क्या प्रभाव? क्योंकि काल तो आत्मस्वरूप ही है। जैसे आग आगको नहीं जला सकती, और बर्फ बर्फको नहीं गला सकता, वैसे ही आत्मस्वरूप काल अपने आत्माको ही सुख-दु:ख नहीं पहुँचा सकता। फिर किसपर क्रोध किया जाय? आत्मा शीत-उष्ण, सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत है ॥ ५६ ॥ आत्मा प्रकृतिके स्वरूप, धर्म, कार्य, लेश, सम्बन्ध और गन्धसे भी रहित है। उसे कभी कहीं किसीके द्वारा किसी भी प्रकारसे द्वन्द्वका स्पर्श ही नहीं होता। वह तो जन्म-मृत्युके चक्रमें भटकनेवाले अहङ्कारको ही होता है। जो इस बातको जान लेता है, वह फिर किसी भी भयके निमित्तसे भयभीत नहीं होता ॥ ५७ ॥ बड़े-बड़े प्राचीन ऋषि-मुनियोंने इस परमात्मनिष्ठाका आश्रय ग्रहण किया है। मैं भी इसीका आश्रय ग्रहण करूँगा और मुक्ति तथा प्रेमके दाता भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवाके द्वारा ही इस दुरन्त अज्ञानसागरको अनायास ही पार कर लूँगा ॥ ५८ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धवजी! उस ब्राह्मणका धन क्या नष्ट हुआ, उसका सारा क्लेश ही दूर हो गया। अब वह संसारसे विरक्त हो गया था और संन्यास लेकर पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचर रहा था। यद्यपि दुष्टोंने उसे बहुत सताया, फिर भी वह अपने धर्ममें अटल रहा, तनिक भी विचलित न हुआ। उस समय वह मौनी अवधूत मन-ही-मन इस प्रकारका गीत गाया करता था ॥ ५९ ॥ उद्धवजी! इस संसारमें मनुष्यको कोई दूसरा सुख या दु:ख नहीं देता, यह तो उसके चित्तका भ्रममात्र है। यह सारा संसार और इसके भीतर मित्र, उदासीन और शत्रुके भेद अज्ञानकल्पित हैं ॥ ६० ॥ इसलिये प्यारे उद्धव! अपनी वृत्तियोंको मुझमें तन्मय कर दो और इस प्रकार अपनी सारी शक्ति लगाकर मनको वशमें कर लो और फिर मुझमें ही नित्ययुक्त होकर स्थित हो जाओ। बस, सारे योगसाधनका इतना ही सार-संग्रह है ॥ ६१ ॥ यह भिक्षुकका गीत क्या है, मूर्तिमान् ब्रह्मज्ञान-निष्ठा ही है। जो पुरुष एकाग्रचित्तसे इसे सुनता, सुनाता और धारण करता है वह कभी सुख-दु:खादि द्वन्द्वोंके वशमें नहीं होता। उनके बीचमें भी वह सिंहके समान दहाड़ता रहता है ॥ ६२ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

सांख्ययोग

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्यारे उद्धव ! अब मैं तुम्हें सांख्यशास्त्रका निर्णय सुनाता हूँ । प्राचीन कालके बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंने इसका निश्चय किया है । जब जीव इसे भलीभाँति समझ लेता है, तो वह भेदबुद्धि-मूलक सुख-दुःखादिरूप भ्रमका तत्काल त्याग कर देता है ॥ १ ॥ युगोंसे पूर्व प्रलयकालमें आदिसत्ययुगमें और जब कभी मनुष्य विवेकनिपुण होते हैं—इन सभी अवस्थाओंमें यह सम्पूर्ण दृश्य और द्रष्टा, जगत् और जीव विकल्पशून्य किसी प्रकारके भेदभावसे रहित केवल ब्रह्म ही होते हैं ॥ २ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि ब्रह्ममें किसी प्रकारका विकल्प नहीं है, वह केवल—अद्वितीय सत्य है; मन और वाणीकी उसमें गति नहीं है । वह ब्रह्म ही माया और उसमें प्रतिबिम्बित जीवके रूपमें—दृश्य और द्रष्टाके रूपमें—दो भागोंमें विभक्त-सा हो गया ॥ ३ ॥ उनमेंसे एक वस्तुको प्रकृति कहते हैं । उसीने जगत्में कार्य और कारणका रूप धारण किया है । दूसरी वस्तुको, जो ज्ञानस्वरूप है, पुरुष कहते हैं ॥ ४ ॥ उद्धवजी ! मैंने ही जीवोंके शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुसार प्रकृतिको क्षुब्ध किया । तब उससे सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण प्रकट हुए ॥ ५ ॥ उनसे क्रिया-शक्तिप्रधान सूत्र और ज्ञानशक्तिप्रधान महत्तत्त्व प्रकट हुए । वे दोनों परस्पर मिले हुए ही हैं । महत्तत्त्वमें विकार होनेपर अहङ्कार व्यक्त हुआ । यह अहङ्कार ही जीवोंको मोहमें डालनेवाला है ॥ ६ ॥ वह तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजस और तामस । अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और मनका कारण है; इसलिये वह जड-चेतन—उभयात्मक है ॥ ७ ॥ तामस अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्राएँ और उनसे पाँच भूतोंकी उत्पत्ति हुई । तथा राजस अहङ्कारसे इन्द्रियाँ और सात्त्विक अहङ्कारसे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता ग्यारह देवता * प्रकट हुए ॥ ८ ॥ ये सभी पदार्थ मेरी प्रेरणासे एकत्र होकर परस्पर मिल गये और इन्होंने यह ब्रह्माण्डरूप अण्ड उत्पन्न किया । यह अण्ड मेरा उत्तम निवासस्थान है ॥ ९ ॥ जब यह अण्ड जलमें स्थित हो गया, तब मैं नारायणरूपसे इसमें विराजमान हो गया । मेरी नाभिसे विश्वकमलकी उत्पत्ति हुई । उसीपर ब्रह्माका आविर्भाव हुआ ॥ १० ॥ विश्व-समष्टिके अन्तःकरण ब्रह्माने पहले बहुत बड़ी तपस्या की । उसके बाद मेरा कृपा-प्रसाद प्राप्त करके रजोगुणके द्वारा भूः, भुवः, स्वः अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—इन तीन लोकोंकी और इनके लोकपालोंकी रचना की ॥ ११ ॥ देवताओंके निवासके लिये स्वर्लोक, भूत-प्रेतादिके लिये भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) और मनुष्य आदिके लिये भूर्लोक (पृथ्वीलोक) का निश्चय किया गया । इन तीनों लोकोंसे ऊपर महर्लोक, तपर्लोक आदि सिद्धोंके निवासस्थान हुए ॥ १२ ॥ सृष्टिकार्यमें समर्थ ब्रह्माजीने असुर और नागोंके लिये पृथ्वीके नीचे अतल, वितल, सुतल आदि सात पाताल बनाये । इन्हीं तीनों लोकोंमें त्रिगुणात्मक कर्मोंके अनुसार विविध गतियाँ प्राप्त होती हैं ॥ १३ ॥ योग, तपस्या और संन्यासके द्वारा महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोकरूप उत्तम गति प्राप्त होती है तथा भक्तियोगसे मेरा परम धाम मिलता है ॥ १४ ॥ यह सारा जगत् कर्म और उनके संस्कारोंसे युक्त है । मैं ही कालरूपसे कर्मोंके अनुसार उनके फलका विधान करता हूँ । इस गुणप्रवाहमें पड़कर जीव कभी डूब जाता है और कभी ऊपर आ जाता है—कभी उसकी अधोगति होती है और कभी उसे पुण्यवश उच्चगति प्राप्त हो जाती है ॥ १५ ॥ जगत्में छोटे-बड़े, मोटे-पतले—जितने भी पदार्थ बनते हैं, सब प्रकृति और पुरुष दोनोंके संयोगसे ही सिद्ध होते हैं ॥ १६ ॥ जिसके आदि और अन्तमें जो है, वही बीचमें भी है और वही सत्य है । विकार तो केवल व्यवहारके लिये की हुई कल्पनामात्र है । जैसे कंगन-कुण्डल आदि सोनेके विकार, और घड़े-सकोरे आदि मिट्टीके विकार पहले सोना या मिट्टी ही थे, बादमें भी

* पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन—इस प्रकार ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठाता ग्यारह देवता हैं ।

सोना या मिट्टी ही रहेंगे। अतः बीचमें भी वे सोना या मिट्टी ही हैं। पूर्ववर्ती कारण (महत्तत्त्व आदि) भी जिस परम कारणको उपादान बनाकर अपर (अहंकार आदि) कार्य-वर्गकी सृष्टि करते हैं, वही उनकी अपेक्षा भी परम सत्य है। तात्पर्य यह कि जब जो जिस किसी भी कार्यके आदि और अन्तमें विद्यमान रहता है, वही सत्य है॥ १७-१८ ॥ इस प्रपञ्चका उपादान-कारण प्रकृति है, परमात्मा अधिष्ठान है और इसको प्रकट करनेवाला काल है। व्यवहार-कालकी यह त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्म-स्वरूप है और मैं वही शुद्ध ब्रह्म हूँ॥ १९ ॥ जबतक परमात्माकी ईक्षणशक्ति अपना काम करती रहती है, जबतक उनकी पालन-प्रवृत्ति बनी रहती है, तबतक जीवोंके कर्मभोगके लिये कारण-कार्यरूपसे अथवा पिता-पुत्रादिके रूपसे यह सृष्टिचक्र निरन्तर चलता रहता है॥ २० ॥

यह विराट् ही विविध लोकोंकी सृष्टि, स्थिति और संहारकी लीलाभूमि है। जब मैं कालरूपसे इसमें व्याप्त होता हूँ, प्रलयका संकल्प करता हूँ, तब यह भुवनोंके साथ विनाशरूप विभागके योग्य हो जाता है॥ २१ ॥ उसके लीन होनेकी प्रक्रिया यह है कि प्राणियोंके शरीर अन्नमें, अन्न बीजमें, बीज भूमिमें और भूमि गन्ध-तन्मात्रामें लीन हो जाती हैं॥ २२ ॥ गन्ध जलमें, जल अपने गुण रसमें, रस तेजमें और तेज रूपमें लीन हो जाता है॥ २३ ॥ रूप वायुमें, वायु स्पर्शमें, स्पर्श आकाशमें तथा आकाश शब्दतन्मात्रामें लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ अपने कारण देवताओंमें और अन्ततः राजस अहङ्कारमें समा जाती हैं॥ २४ ॥ हे सौम्य! राजस अहङ्कार अपने नियन्ता सात्त्विक अहङ्काररूप मनमें, शब्दतन्मात्रा पञ्चभूतोंके कारण तामस अहङ्कारमें और सारे जगत्को मोहित करनेमें समर्थ त्रिविध अहङ्कार महत्तत्त्वमें लीन हो जाता है॥ २५ ॥ ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति-प्रधान महत्तत्त्व अपने कारण गुणोंमें लीन हो जाता है। गुण अव्यक्त प्रकृतिमें और प्रकृति अपने प्रेरक अविनाशी कालमें लीन हो जाती है॥ २६ ॥ काल मायामय जीवमें और जीव मुझ अजन्मा आत्मामें लीन हो जाता है। आत्मा किसीमें लीन नहीं होता, वह उपाधिरहित अपने स्वरूपमें ही स्थित रहता है। वह जगत्की सृष्टि और लयका अधिष्ठान एवं अवधि है॥ २७ ॥ उद्धवजी! जो इस प्रकार विवेकदृष्टिसे देखता है, उसके चित्तमें यह प्रपञ्चका भ्रम हो ही नहीं सकता। यदि कदाचित् उसकी स्फूर्ति हो भी जाय, तो वह अधिक कालतक हृदयमें ठहर कैसे सकता है? क्या सूर्योदय होनेपर भी आकाशमें अन्धकार ठहर सकता है॥ २८ ॥ उद्धवजी! मैं कार्य और कारण दोनोंका ही साक्षी हूँ। मैंने तुम्हें सृष्टिसे प्रलय और प्रलयसे सृष्टितककी सांख्यविधि बतला दी। इससे सन्देहकी गाँठ कट जाती है और पुरुष अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है॥ २९ ॥

पचीसवाँ अध्याय

तीनों गुणोंकी वृत्तियोंका निरूपण

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—पुरुषप्रवर उद्धवजी! प्रत्येक व्यक्तिमें अलग-अलग गुणोंका प्रकाश होता है। उनके कारण प्राणियोंके स्वभावमें भी भेद हो जाता है। अब मैं बतलाता हूँ कि किस गुणसे कैसा-कैसा स्वभाव बनता है। तुम सावधानीसे सुनो॥ १ ॥ सत्त्वगुणकी वृत्तियाँ हैं—शम (मनःसंयम), दम (इन्द्रियनिग्रह), तितिक्षा (सहिष्णुता), विवेक, तप, सत्य, दया, स्मृति, सन्तोष, त्याग, विषयोंके प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा (पाप करनेमें स्वाभाविक सङ्कोच), आत्मरति, दान, विनय और सरलता आदि॥ २ ॥ रजोगुणकी वृत्तियाँ हैं—इच्छा, प्रयत्न, घमंड, तृष्णा (असन्तोष), ऐंठ या अकड़, देवताओंसे धन आदिकी याचना, भेदबुद्धि, विषयभोग, युद्धादिके लिये मदजनित उत्साह, अपने यशमें प्रेम, हास्य, पराक्रम और हठपूर्वक उद्योग करना आदि॥३॥ तमोगुणकी वृत्तियाँ हैं—क्रोध (असहिष्णुता), लोभ, मिथ्याभाषण, हिंसा, याचना, पाखण्ड, श्रम, कलह,

शोक, मोह, विषाद, दीनता, निद्रा, आशा, भय और अकर्मण्यता आदि ॥ ४ ॥ इस प्रकार क्रमसे सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी अधिकांश वृत्तियोंका पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया । अब उनके मेलसे होनेवाली वृत्तियोंका वर्णन सुनो ॥ ५ ॥ उद्धवजी ! 'मैं हूँ और यह मेरा है' इस प्रकारकी बुद्धिमें तीनों गुणोंका मिश्रण है । जिन मन, शब्दादि विषय, इन्द्रिय और प्राणोंके कारण पूर्वोक्त वृत्तियोंका उदय होता है, वे सब-के-सब सात्त्विक, राजस और तामस हैं ॥ ६ ॥ जब मनुष्य धर्म, अर्थ और काममें संलग्न रहता है, तब उसे सत्त्वगुणसे श्रद्धा, रजोगुणसे रति और तमोगुणसे धनकी प्राप्ति होती है । यह भी गुणोंका मिश्रण ही है ॥ ७ ॥ जिस समय मनुष्य सकाम कर्म, गृहस्थाश्रम और स्वधर्माचरणमें अधिक प्रीति रखता है, उस समय भी उसमें तीनों गुणोंका मेल ही समझना चाहिये ॥ ८ ॥

मानसिक शान्ति और जितेन्द्रियता आदि गुणोंसे सत्त्वगुणी पुरुषकी, कामना आदिसे रजोगुणी पुरुषकी और क्रोध-हिंसा आदिसे तमोगुणी पुरुषकी पहचान करे ॥ ९ ॥ पुरुष हो, चाहे स्त्री—जब वह निष्काम होकर अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मोंद्वारा मेरी आराधना करे, तब उसे सत्त्वगुणी जानना चाहिये ॥ १० ॥ सकामभावसे अपने कर्मोंके द्वारा मेरा भजन-पूजन करनेवाला रजोगुणी है और जो अपने शत्रुकी मृत्यु आदिके लिये मेरा भजन-पूजन करे, उसे तमोगुणी समझना चाहिये ॥ ११ ॥ सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंका कारण जीवका चित्त है । उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । इन्हीं गुणोंके द्वारा जीव शरीर अथवा धन आदिमें आसक्त होकर बन्धनमें पड़ जाता है ॥ १२ ॥ सत्त्वगुण प्रकाशक, निर्मल और शान्त है । जिस समय वह रजोगुण और तमोगुणको दबाकर बढ़ता है, उस समय पुरुष सुख, धर्म और ज्ञान आदिका भाजन हो जाता है ॥ १३ ॥ रजोगुण भेदबुद्धिका कारण है । उसका स्वभाव है आसक्ति और प्रवृत्ति । जिस समय तमोगुण और सत्त्वगुणको दबाकर रजोगुण बढ़ता है, उस समय मनुष्य दुःख, कर्म, यश और लक्ष्मीसे सम्पन्न होता है ॥ १४ ॥ तमोगुणका स्वरूप है अज्ञान । उसका स्वभाव है आलस्य और बुद्धिकी मूढ़ता । जब वह बढ़कर सत्त्वगुण और रजोगुणको दबा लेता है, तब प्राणी तरह-तरहकी आशाएँ करता है, शोक-मोहमें पड़ जाता है, हिंसा करने लगता है अथवा निद्रा-आलस्यके वशीभूत होकर पड़ रहता है ॥ १५ ॥ जब चित्त प्रसन्न हो, इन्द्रियाँ शान्त हों, देह निर्भय हो और मनमें आसक्ति न हो, तब सत्त्वगुणकी वृद्धि समझनी चाहिये । सत्त्वगुण मेरी प्राप्तिका साधन है ॥ १६ ॥ जब काम करते-करते जीवकी बुद्धि चञ्चल, ज्ञानेन्द्रियाँ असन्तुष्ट, कर्मेन्द्रियाँ विकारयुक्त, मन भ्रान्त और शरीर अस्वस्थ हो जाय, तब समझना चाहिये कि रजोगुण जोर पकड़ रहा है ॥ १७ ॥ जब चित्त ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा शब्दादि विषयोंको ठीक-ठीक समझनेमें असमर्थ हो जाय और खिन्न होकर लीन होने लगे, मन सूना-सा हो जाय तथा अज्ञान और विषादकी वृद्धि हो, तब समझना चाहिये कि तमोगुण वृद्धिपर है ॥ १८ ॥

उद्धवजी ! सत्त्वगुणके बढ़नेपर देवताओंका, रजोगुणके बढ़नेपर असुरोंका और तमोगुणके बढ़नेपर राक्षसोंका बल बढ़ जाता है (वृत्तियोंमें भी क्रमशः सत्त्वादि गुणोंकी अधिकता होनेपर देवत्व, असुरत्व और राक्षसत्वप्रधान निवृत्ति, प्रवृत्ति अथवा मोहकी प्रधानता हो जाती है) ॥ १९ ॥ सत्त्वगुणसे जाग्रत्-अवस्था, रजोगुणसे स्वप्नावस्था और तमोगुणसे सुषुप्ति-अवस्था होती है । तुरीय इन तीनोंमें एक-सा व्याप्त रहता है । वही शुद्ध और एकरस आत्मा है ॥ २० ॥ वेदोंके अभ्यासमें तत्पर ब्राह्मण सत्त्वगुणके द्वारा उत्तरोत्तर ऊपरके लोकोंमें जाते हैं । तमोगुणसे जीवोंको वृक्षादिपर्यन्त अधोगति प्राप्त होती है और रजोगुणसे मनुष्यशरीर मिलता है ॥ २१ ॥ जिसकी मृत्यु सत्त्वगुणोंकी वृद्धिके समय होती है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है; जिसकी रजोगुणकी वृद्धिके समय होती है, उसे मनुष्यलोक मिलता है और जो तमोगुणकी वृद्धिके समय मरता है, उसे नरककी प्राप्ति होती है । परन्तु जो पुरुष त्रिगुणातीत—जीवन्मुक्त हो गये हैं, उन्हें मेरी प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥ जब अपने धर्मका आचरण मुझे समर्पित करके अथवा निष्कामभावसे किया जाता है, तब वह सात्त्विक होता है । जिस

कर्मके अनुष्ठानमें किसी फलकी कामना रहती है, वह राजसिक होता है और जिस कर्ममें किसीको सताने अथवा दिखाने आदिका भाव रहता है, वह तामसिक होता है ॥ २३ ॥ शुद्ध आत्माका ज्ञान सात्त्विक है। उसको कर्ता-भोक्ता समझना राजस ज्ञान है और उसे शरीर समझना तो सर्वथा तामसिक है। इन तीनोंसे विलक्षण मेरे स्वरूपका वास्तविक ज्ञान निर्गुण ज्ञान है ॥ २४ ॥ वनमें रहना सात्त्विक निवास है, गाँवमें रहना राजस है और जूआघरमें रहना तामसिक है। इन सबसे बढ़कर मेरे मन्दिरमें रहना निर्गुण निवास है ॥ २५ ॥ अनासक्तभावसे कर्म करनेवाला सात्त्विक है, रागान्ध होकर कर्म करनेवाला राजसिक है और पूर्वापरविचारसे रहित होकर करनेवाला तामसिक है। इनके अतिरिक्त जो पुरुप केवल मेरी शरणमें रहकर बिना अहङ्कारके कर्म करता है, वह निर्गुण कर्ता है ॥ २६ ॥ आत्मज्ञानविषयक श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा है, कर्मविषयक श्रद्धा राजस है और जो श्रद्धा अधर्ममें होती है, वह तामस है तथा मेरी सेवामें जो श्रद्धा है, वह निर्गुण श्रद्धा है ॥ २७ ॥ आरोग्यदायक, पवित्र और अनायास प्राप्त भोजन सात्त्विक है। रसनेन्द्रियको रुचिकर और स्वादकी दृष्टिसे युक्त आहार राजस है तथा दुःखदायी और अपवित्र आहार तामस है ॥ २८ ॥ अन्तर्मुखतासे—आत्मचिन्तनसे प्राप्त होनेवाला सुख सात्त्विक है। बहिर्मुखतासे—विषयोंसे प्राप्त होनेवाला राजस है तथा अज्ञान और दीनतासे प्राप्त होनेवाला सुख तामस है और जो सुख मुझसे मिलता है, वह तो गुणातीत और अप्राकृत है ॥ २९ ॥

उद्धवजी ! द्रव्य (वस्तु), देश (स्थान), फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, देव-मनुष्य-तिर्यगादि शरीर और निष्ठा—सभी त्रिगुणात्मक हैं ॥३०॥ नररत्न ! पुरुष और प्रकृतिके आश्रित जितने भी भाव हैं, सभी गुणमय हैं—वे चाहे नेत्रादि इन्द्रियोंसे अनुभव किये हुए हों, शास्त्रोंके द्वारा लोक-लोकान्तरोंके सम्बन्धमें सुने गये हों अथवा बुद्धिके द्वारा सोचे-विचारे गये हों ॥ ३१ ॥ जीवको जितनी भी योनियाँ अथवा गतियाँ प्राप्त होती हैं, वे सब उनके गुणों और कर्मोंके अनुसार ही होती हैं। हे सौम्य ! सब-के-सब गुण चित्तसे ही सम्बन्ध रखते हैं (इसलिये जीव उन्हें अनायास ही जीत सकता है)। जो जीव उनपर विजय प्राप्त कर लेता है, वह भक्तियोगके द्वारा मुझमें ही परिनिष्ठित हो जाता है और अन्ततः मेरा वास्तविक स्वरूप, जिसे मोक्ष भी कहते हैं, प्राप्त कर लेता है ॥ ३२ ॥ यह मनुष्यशरीर बहुत ही दुर्लभ है। इसी शरीरमें तत्त्वज्ञान और उसमें निष्ठारूप विज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है; इसलिये इसे पाकर बुद्धिमान् पुरुषोंको गुणोंकी आसक्ति हटाकर मेरा भजन करना चाहिये ॥ ३३ ॥ विचारशील पुरुषको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे सत्त्वगुणके सेवनसे रजोगुण और तमोगुणको जीत ले, इन्द्रियोंको वशमें कर ले और मेरे स्वरूपको समझकर मेरे भजनमें लग जाय। आसक्तिको लेशमात्र भी न रहने दे। ३४। योगयुक्तिसे चित्तवृत्तियोंको शान्त करके निरपेक्षताके द्वारा सत्त्वगुणपर भी विजय प्राप्त कर ले। इस प्रकार गुणोंसे मुक्त होकर जीव अपने जीवभावको छोड़ देता है और मुझसे एक हो जाता है ॥ ३५ ॥ जीव लिङ्गशरीररूप अपनी उपाधि जीवत्वसे तथा अन्तःकरणमें उदय होनेवाली सत्त्वादि गुणोंकी वृत्तियोंसे मुक्त होकर मुझ ब्रह्मकी अनुभूतिसे एकत्वदर्शनसे पूर्ण हो जाता है और वह फिर बाह्य अथवा आन्तरिक किसी भी विषयमें नहीं जाता ॥ ३६ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

पुरूरवाकी वैराग्योक्ति

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धवजी ! यह मनुष्य-शरीर मेरे स्वरूपज्ञानकी प्राप्तिका—मेरी प्राप्तिका मुख्य साधन है। इसे पाकर जो मनुष्य सच्चे प्रेमसे मेरी भक्ति करता है, वह अन्तःकरणमें स्थित मुझ आनन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥ जीवोंकी सभी योनियाँ, सभी गतियाँ त्रिगुणमयी हैं। जीव

ज्ञाननिष्ठाके द्वारा उनसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है। सत्त्व-रज आदि गुण जो दीख रहे हैं वे वास्तविक नहीं हैं, मायामात्र हैं। ज्ञान हो जानेके बाद पुरुष उनके बीचमें रहनेपर भी उनके द्वारा व्यवहार करनेपर भी उनसे बँधता नहीं। इसका कारण यह है कि उन गुणोंकी वास्तविक सत्ता ही नहीं है ॥ २ ॥ साधारण लोगोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जो लोग विषयोंके सेवन और उदरपोषणमें ही लगे हुए हैं, उन असत् पुरुषोंका सङ्ग कभी न करें; क्योंकि उनका अनुगमन करनेवाले पुरुषकी वैसी ही दुर्दशा होती है, जैसे अंधेके सहारे चलनेवाले अंधेकी। उसे तो घोर अन्धकारमें ही भटकना पड़ता है ॥ ३ ॥ उद्धवजी! पहले तो परम यशस्वी सम्राट् इलानन्दन पुरूरवा उर्वशीके विरहसे अत्यन्त बेसुध हो गया था। पीछे शोक हट जानेपर उसे बड़ा वैराग्य हुआ और तब उसने यह गाथा गायी ॥ ४ ॥ राजा पुरूरवा नग्न होकर पागलकी भाँति अपनेको छोड़कर भागती हुई उर्वशीके पीछे अत्यन्त विह्वल होकर दौड़ने लगा और कहने लगा—'देवि! निष्ठुर हृदये! थोड़ी देर ठहर जा, भाग मत' ॥ ५ ॥ उर्वशीने उनका चित्त आकृष्ट कर लिया था। उन्हें तृप्ति नहीं हुई थी। वे क्षुद्र विषयोंके सेवनमें इतने डूब गये थे कि उन्हें वर्षोंकी रात्रियाँ न जाती मालूम पड़ीं और न तो आतीं ॥ ६ ॥

पुरूरवाने कहा—हाय-हाय! भला, मेरी मूढ़ता तो देखो, कामवासनाने मेरे चित्तको कितना कलुषित कर दिया! उर्वशीने अपनी बाहुओंसे मेरा ऐसा गला पकड़ा कि मैंने आयुके न जाने कितने वर्ष खो दिये! ओह! विस्मृतिकी भी एक सीमा होती है ॥ ७ ॥ हाय-हाय! इसने मुझे लूट लिया। सूर्य अस्त हो गया या उदित हुआ—यह भी मैं न जान सका। बड़े खेदकी बात है कि बहुत-से वर्षोंके दिन-पर-दिन बीतते गये और मुझे मालूमतक न पड़ा ॥ ८ ॥ अहो आश्चर्य है! मेरे मनमें इतना मोह बढ़ गया, जिसने नरदेव-शिखामणि चक्रवर्ती सम्राट् मुझ पुरूरवाको भी स्त्रियोंका क्रीडामृग (खिलौना) बना दिया ॥ ९ ॥ देखो, मैं प्रजाको मर्यादामें रखनेवाला सम्राट् हूँ। वह मुझे और मेरे राजपाटको तिनकेकी तरह छोड़कर जाने लगी और मैं पागल होकर नंग-धड़ंग रोता-बिलखता उस स्त्रीके पीछे दौड़ पड़ा। हाय! हाय! यह भी कोई जीवन है ।१०। मैं गधेकी तरह दुलत्तियाँ सहकर भी स्त्रीके पीछे-पीछे दौड़ता रहा; फिर मुझमें प्रभाव, तेज और स्वामित्व भला, कैसे रह सकता है ॥ ११ ॥ स्त्रीने जिसका मन चुरा लिया, उसकी विद्या व्यर्थ है। उसे तपस्या, त्याग और शास्त्राभ्याससे भी कोई लाभ नहीं। और इसमें सन्देह नहीं कि उसका एकान्तसेवन और मौन भी निष्फल है ॥ १२ ॥ मुझे अपने ही हानि-लाभका पता नहीं, फिर भी अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मानता हूँ। मुझ मूर्खको धिक्कार है! हाय! हाय! मैं चक्रवर्ती सम्राट् होकर भी गधे और बैलकी तरह स्त्रीके फंदेमें फँस गया ॥ १३ ॥ मैं वर्षोंतक उर्वशीके होठोंकी मादक मदिरा पीता रहा, पर मेरी कामवासना तृप्त न हुई। सच है, कहीं आहुतियोंसे अग्निकी तृप्ति हुई है ॥ १४ ॥ उस कुलटाने मेरा चित्त चुरा लिया। आत्माराम जीवन्मुक्तोंके स्वामी इन्द्रियातीत भगवान्‌को छोड़कर और ऐसा कौन है, जो मुझे उसके फंदेसे निकाल सके ।१५। उर्वशीने तो मुझे वैदिक सूक्तके वचनोंद्वारा यथार्थ बात कहकर समझाया भी था; परन्तु मेरी बुद्धि ऐसी मारी गयी कि मेरे मनका वह भयङ्कर मोह तब भी मिटा नहीं। जब मेरी इन्द्रियाँ ही मेरे हाथके बाहर हो गयीं, तब मैं समझता भी कैसे ॥ १६ ॥ जो रस्सीके स्वरूपको न जानकर उसमें सर्पकी कल्पना कर रहा है और दुःखी हो रहा है, रस्सीने उसका क्या बिगाड़ा है? इसी प्रकार इस उर्वशीने भी हमारा क्या बिगाड़ा? क्योंकि स्वयं मैं ही अजितेन्द्रिय होनेके कारण अपराधी हूँ ॥ १७ ॥ कहाँ तो यह मैला-कुचैला, दुर्गन्धसे भरा अपवित्र शरीर और कहाँ सुकुमारता, पवित्रता, सुगन्ध आदि पुष्पोचित गुण! परन्तु मैंने अज्ञानवश असुन्दरमें सुन्दरका आरोप कर लिया ॥ १८ ॥ यह शरीर माता-पिताका सर्वस्व है अथवा पत्नीकी सम्पत्ति? यह स्वामीकी मोल ली हुई वस्तु है, आगका ईंधन है अथवा कुत्ते और गीधोंका भोजन? इसे अपना कहें अथवा सुहृद्-सम्बन्धियोंका? बहुत सोचने-विचारनेपर भी कोई निश्चय नहीं होता।१९। यह शरीर मल-मूत्रसे भरा हुआ अत्यन्त अपवित्र है। इसका अन्त यही है कि पक्षी खाकर विष्ठा कर दें,

इसके सड़ जानेपर इसमें कीड़े पड़ जायँ अथवा जला देनेपर यह राखका ढेर हो जाय। ऐसे शरीरपर लोग लट्टू हो जाते हैं और कहने लगते हैं—'अहो! इस स्त्रीका मुखड़ा कितना सुन्दर है! नाक कितनी सुघड़ है और मन्द-मन्द मुसकान कितनी मनोहर है ॥ २० ॥ यह शरीर त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और हड्डियोंका ढेर और मल-मूत्र तथा पीवसे भरा हुआ है। यदि मनुष्य इसमें रमता है, तो मल-मूत्रके कीड़ोंमें और उसमें अन्तर ही क्या है ॥ २१ ॥ इसलिये अपनी भलाई समझनेवाले विवेकी मनुष्यको चाहिये कि स्त्रियों और स्त्रीलम्पट पुरुषोंका सङ्ग न करे। विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे ही मनमें विकार होता है; अन्यथा विकारका कोई अवसर ही नहीं है ॥ २२ ॥ जो वस्तु कभी देखी या सुनी नहीं गयी है, उसके लिये मनमें विकार नहीं होता। जो लोग विषयोंके साथ इन्द्रियोंका संयोग नहीं होने देते, उनका मन अपने-आप निश्चल होकर शान्त हो जाता है ॥ २३ ॥ अतः वाणी, कान और मन आदि इन्द्रियोंसे स्त्रियों और स्त्रीलम्पटोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। मेरे-जैसे लोगोंकी तो बात ही क्या, बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी अपनी इन्द्रियाँ और मन विश्वसनीय नहीं हैं ॥ २४ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धवजी! राजराजेश्वर पुरूरवाके मनमें जब इस तरहके उद्गार उठने लगे, तब उसने उर्वशीलोकका परित्याग कर दिया। अब ज्ञानोदय होनेके कारण उसका मोह जाता रहा और उसने अपने हृदयमें ही आत्मस्वरूपसे मेरा साक्षात्कार कर लिया और वह शान्तभावमें स्थित हो गया ॥ २५ ॥ इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पुरूरवाकी भाँति कुसङ्ग छोड़कर सत्पुरुषोंका सङ्ग करे। संत पुरुष अपने सदुपदेशोंसे उसके मनकी आसक्ति नष्ट कर देंगे ॥ २६ ॥ संत पुरुषोंका लक्षण यह है कि उन्हें कभी किसी वस्तुकी अपेक्षा नहीं होती। उनका चित्त मुझमें लगा रहता है। उनके हृदयमें शान्तिका अगाध समुद्र लहराता रहता है। वे सदा-सर्वदा सर्वत्र सबमें सब रूपसे स्थित भगवान्‌का ही दर्शन करते हैं। उनमें अहङ्कारका लेश भी नहीं होता, फिर ममताकी तो सम्भावना ही कहाँ है। वे सर्दी-गरमी, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें एकरस रहते हैं तथा बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक और पदार्थ-सम्बन्धी किसी प्रकारका भी परिग्रह नहीं रखते ॥ २७ ॥ परमभाग्यवान् उद्धवजी! संतोंके सौभाग्यकी महिमा कौन कहे? उनके पास सदा-सर्वदा मेरी लीला-कथाएँ हुआ करती हैं। मेरी कथाएँ मनुष्योंके लिये परम हितकर हैं; जो उनका सेवन करते हैं, उनके सारे पाप-तापोंको वे धो डालती हैं ॥ २८ ॥ जो लोग आदर और श्रद्धासे मेरी लीला-कथाओंका श्रवण, गान और अनुमोदन करते हैं, वे मेरे परायण हो जाते हैं और मेरी अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥ २९ ॥ उद्धवजी! मैं अनन्त अचिन्त्य कल्याणमय गुणगणोंका आश्रय हूँ। मेरा स्वरूप है—केवल आनन्द, केवल अनुभव, विशुद्ध आत्मा। मैं साक्षात् परब्रह्म हूँ। जिसे मेरी भक्ति मिल गयी, वह तो संत हो गया। अब उसे कुछ भी पाना शेष नहीं है ॥ ३० ॥ उनकी तो बात ही क्या—जिसने उन संत पुरुषोंकी शरण ग्रहण कर ली, उसकी भी कर्मजडता, संसारभय और अज्ञान आदि सर्वथा निवृत्त हो जाते हैं। भला, जिसने अग्निभगवान्‌का आश्रय ले लिया उसे शीत, भय अथवा अन्धकारका दुःख हो सकता है? ॥ ३१ ॥ जो इस घोर संसारसागरमें डूब-उतरा रहे हैं, उनके लिये ब्रह्मवेत्ता और शान्त संत ही एकमात्र आश्रय हैं, जैसे जलमें डूब रहे लोगोंके लिये दृढ़ नौका ॥ ३२ ॥ जैसे अन्नसे प्राणियोंके प्राणकी रक्षा होती है, जैसे मैं ही दीन-दुखियोंका परम रक्षक हूँ, जैसे मनुष्यके लिये परलोकमें धर्म ही एकमात्र पूँजी है—वैसे ही जो लोग संसारसे भयभीत हैं, उनके लिये संतजन ही परम आश्रय हैं ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य आकाशमें उदय होकर लोगोंको जगत् तथा अपनेको देखनेके लिये नेत्रदान करता है, वैसे ही संत पुरुष अपनेको तथा भगवान्‌को देखनेके लिये अन्तर्दृष्टि देते हैं। संत अनुग्रहशील देवता हैं। संत अपने हितैषी सुहृद् हैं। संत अपने प्रियतम आत्मा हैं। और अधिक क्या कहूँ, स्वयं मैं ही संतके रूपमें विद्यमान हूँ ॥ ३४ ॥ प्रिय उद्धव! आत्मसाक्षात्कार होते ही इलानन्दन पुरूरवाको उर्वशीके लोककी स्पृहा न रही। उसकी सारी आसक्तियाँ मिट गयीं और वह आत्माराम होकर स्वच्छन्दरूपसे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगा ॥ ३५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

क्रियायोगका वर्णन

उद्धवजीने पूछा—भक्तवत्सल श्रीकृष्ण! जिस क्रिया-योगका आश्रय लेकर जो भक्तजन जिस प्रकारसे जिस उद्देश्यसे आपकी अर्चा-पूजा करते हैं, आप अपने उस आराधनरूप क्रियायोगका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ देवर्षि नारद, भगवान् व्यासदेव और आचार्य बृहस्पति आदि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि यह बात बार-बार कहते हैं कि क्रियायोगके द्वारा आपकी आराधना ही मनुष्योंके परम कल्याणकी साधना है ॥ २ ॥ यह क्रियायोग पहले-पहल आपके मुखारविन्दसे ही निकला था। आपसे ही ग्रहण करके इसे ब्रह्माजीने अपने पुत्र भृगु आदि महर्षियोंको और भगवान् शङ्करने अपनी अर्द्धाङ्गिनी भगवती पार्वतीजीको उपदेश किया था ॥ ३ ॥ मर्यादारक्षक प्रभो! यह क्रियायोग ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि वर्णों और ब्रह्मचारी-गृहस्थ आदि आश्रमोंके लिये भी परम कल्याणकारी है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि स्त्री-शूद्रादिके लिये भी यही सबसे श्रेष्ठ साधना-पद्धति है ॥ ४ ॥ कमलनयन श्यामसुन्दर! आप शङ्कर आदि जगदीश्वरोंके भी ईश्वर हैं और मैं आपके चरणोंका प्रेमी भक्त हूँ। आप कृपा करके मुझे यह कर्मबन्धनसे मुक्त करनेवाली विधि बतलाइये ॥ ५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धवजी! कर्मकाण्डका इतना विस्तार है कि उसकी कोई सीमा नहीं है; इसलिये मैं उसे थोड़ेमें ही पूर्वापर-क्रमसे विधिपूर्वक वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥ मेरी पूजाकी तीन विधियाँ हैं—वैदिक, तान्त्रिक और मिश्रित। इन तीनोंमेंसे मेरे भक्तको जो भी अपने अनुकूल जान पड़े, उसी विधिसे मेरी आराधना करनी चाहिये ॥ ७ ॥ पहले अपने अधिकारानुसार शास्त्रोक्त विधिसे समयपर यज्ञोपवीत-संस्कारके द्वारा संस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करे, फिर श्रद्धा और भक्तिके साथ वह किस प्रकार मेरी पूजा करे, इसकी विधि तुम मुझसे सुनो ॥ ८ ॥ भक्तिपूर्वक निष्कपट भावसे अपने पिता एवं गुरुरूप मुझ परमात्माका पूजाकी सामग्रियोंके द्वारा मूर्तिमें, वेदीमें, अग्निमें, सूर्यमें, जलमें, हृदयमें अथवा ब्राह्मणमें—चाहे किसीमें भी आराधना करे ॥ ९ ॥ उपासकको चाहिये कि प्रातःकाल दतुअन करके पहले शरीरशुद्धिके लिये स्नान करे और फिर वैदिक और तान्त्रिक दोनों प्रकारके मन्त्रोंसे मिट्टी और भस्म आदिका लेप करके पुनः स्नान करे ॥ १० ॥ इसके पश्चात् वेदोक्त सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्म करने चाहिये। उसके बाद मेरी आराधनाका ही सुदृढ़ सङ्कल्प करके वैदिक और तान्त्रिक विधियोंसे कर्मबन्धनोंसे छुड़ानेवाली मेरी पूजा करे ॥ ११ ॥ मेरी मूर्ति आठ प्रकारकी होती है—पत्थरकी, लकड़ीकी, धातुकी, मिट्टी और चन्दन आदिकी, चित्रमयी, बालुकामयी, मनोमयी और मणिमयी ॥ १२ ॥ चल और अचल भेदसे दो प्रकारकी प्रतिमा ही मुझ भगवान्का मन्दिर हैं। उद्धवजी! अचल प्रतिमाके पूजनमें प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ चल प्रतिमाके सम्बन्धमें विकल्प है। चाहे करे और चाहे न करे। परन्तु बालुकामयी प्रतिमामें तो आवाहन और विसर्जन प्रतिदिन करना ही चाहिये। मिट्टी और चन्दनकी तथा चित्रमयी प्रतिमाओंको स्नान न करावे, केवल मार्जन कर दे; परन्तु और सबको स्नान कराना चाहिये ॥ १४ ॥ प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पदार्थोंसे प्रतिमा आदिमें मेरी पूजा की जाती है, परन्तु जो निष्काम भक्त है, वह अनायास प्राप्त पदार्थोंसे और भावनामात्रसे ही हृदयमें मेरी पूजा कर ले ॥ १५ ॥ उद्धवजी! स्नान, वस्त्र, आभूषण आदि तो पाषाण अथवा धातुकी प्रतिमाके पूजनमें ही उपयोगी हैं। बालुकामयी मूर्ति अथवा मिट्टीकी वेदीमें पूजा करनी हो, तो उसमें मन्त्रोंके द्वारा अङ्ग और उसके प्रधान देवताओंकी यथास्थान पूजा करनी चाहिये। तथा अग्निमें पूजा करनी हो, तो घृतमिश्रित हवन-सामग्रियोंसे आहुति देनी चाहिये ॥ १६ ॥ सूर्यको प्रतीक मानकर की जानेवाली उपासनामें मुख्यतः अर्घ्यदान एवं उपस्थान ही प्रिय है और जलमें तर्पण आदिसे मेरी उपासना करनी चाहिये। जब मुझे कोई भक्त हार्दिक श्रद्धासे जल भी चढ़ाता है, तब मैं उसे बड़े प्रेमसे स्वीकार

करता हूँ ॥ १७ ॥ यदि कोई अभक्त मुझे बहुत-सी सामग्री निवेदन करे, तो भी मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता। जब मैं भक्ति-श्रद्धापूर्वक समर्पित जलसे ही प्रसन्न हो जाता हूँ, तब गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि वस्तुओंके समर्पणसे तो कहना ही क्या है ॥ १८ ॥

उपासक पहले पूजाकी सामग्री इकट्ठी कर ले। फिर इस प्रकार कुश बिछाये कि उनके अगले भाग पूर्वकी ओर रहें। तदनन्तर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके पवित्रतासे उन कुशोंके आसनपर बैठ जाय। यदि प्रतिमा अचल हो तो उसके सामने ही बैठना चाहिये। इसके बाद पूजाकार्य प्रारम्भ करे ॥ १९ ॥ पहले विधिपूर्वक अङ्गन्यास और करन्यास कर ले। इसके बाद मूर्तिमें मन्त्रन्यास करे और हाथसे प्रतिमापरसे पूर्वसमर्पित सामग्री हटाकर उसे पोंछ दे। इसके बाद जलसे भरे हुए कलश और प्रोक्षणपात्र आदिकी पूजा गन्ध-पुष्प आदिसे करे ॥ २० ॥ प्रोक्षणपात्रके जलसे पूजासामग्री और अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले। तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य और आचमनके लिये तीन पात्रोंमें कलशमेंसे जल भरकर रख ले और उनमें पूजा-पद्धतिके अनुसार सामग्री डाले। (पाद्यपात्रमें श्यामाक—साँवेके दाने, दूब, कमल, विष्णुक्रान्ता और चन्दन, तुलसीदल आदि; अर्घ्यपात्रमें गन्ध, पुष्प, अक्षत, जौ, कुश, तिल, सरसों और दूब तथा आचमनपात्रमें जायफल, लौंग, आदि डाले।) इसके बाद पूजा करनेवालेको चाहिये कि तीनों पात्रोंको क्रमशः हृदयमन्त्र, शिरोमन्त्र और शिखामन्त्रसे अभिमन्त्रित करके अन्तमें गायत्रीमन्त्रसे तीनोंको अभिमन्त्रित करे ॥ २१-२२ ॥ इसके बाद प्राणायामके द्वारा प्राणवायु और भावनाओंद्वारा शरीरस्थ अग्निके शुद्ध हो जानेपर हृदयकमलमें परम सूक्ष्म और श्रेष्ठ दीपकशिखाके समान मेरी जीवकलाका ध्यान करे। बड़े-बड़े सिद्ध ऋषि-मुनि ॐकारके अकार, उकार, मकार, बिन्दु और नाद—इन पाँच कलाओंके अन्तमें उसी जीवकलाका ध्यान करते हैं ॥ २३ ॥ वह जीवकला आत्मस्वरूपिणी है। जब उसके तेजसे सारा अन्तःकरण और शरीर भर जाय, तब मानसिक उपचारोंसे मन-ही-मन उसकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर तन्मय होकर मेरा आवाहन करे और प्रतिमा आदिमें स्थापना करे। फिर मन्त्रोंके द्वारा अङ्गन्यास करके उसमें मेरी पूजा करे ॥ २४ ॥ उद्धवजी! मेरे आसनमें धर्म आदि गुणों और विमला आदि शक्तियोंकी भावना करे। अर्थात् आसनके चारों कोनोंमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यरूप चार पाये हैं; अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य—ये चार चारों दिशाओंमें डंडे हैं; सत्त्व-रज-तम-रूप तीन पटरियोंकी बनी हुई पीठ है; उसपर विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—ये नौ शक्तियाँ विराजमान हैं। उस आसनपर एक अष्टदल कमल है, उसकी कर्णिका अत्यन्त प्रकाशमान है और पीली-पीली केसरोंकी छटा निराली ही है। आसनके सम्बन्धमें ऐसी भावना करके पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य आदि उपचार प्रस्तुत करे। तदनन्तर भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये वैदिक और तान्त्रिक विधिसे मेरी पूजा करे ॥ २५-२६ ॥ सुदर्शनचक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूसल—इन आठ आयुधोंकी पूजा आठ दिशाओंमें करे और कौस्तुभमणि, वैजयन्तीमाला तथा श्रीवत्सचिह्नकी वक्षःस्थलपर यथास्थान पूजा करे ॥ २७ ॥ नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद और कुमुदेक्षण—इन आठ पार्षदोंकी आठ दिशाओंमें; गरुडकी सामने; दुर्गा, विनायक, व्यास और विष्वक्सेनकी चारों कोनोंमें स्थापना करके पूजन करे। बायीं ओर गुरुकी और यथाक्रम पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि आठ लोकपालोंकी स्थापना करके प्रोक्षण, अर्घ्यदान आदि क्रमसे उनकी पूजा करनी चाहिये ॥ २८-२९ ॥

प्रिय उद्धव! यदि सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन चन्दन, खस, कपूर, केसर और अरगजा आदि सुगन्धित वस्तुओंद्वारा सुवासित जलसे मुझे स्नान कराये और उस समय 'सुवर्ण घर्म' इत्यादि स्वर्णघर्मानुवाक, 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' इत्यादि महापुरुषविद्या, 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इत्यादि पुरुषसूक्त और 'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्त' इत्यादि मन्त्रोक्त राजनादि सामगायनका पाठ भी करता रहे ॥ ३०-३१ ॥ मेरा भक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण,

पत्र, माला, गन्ध और चन्दनादिसे प्रेमपूर्वक यथावत् मेरा श्रृङ्गार करे ॥ ३२ ॥ उपासक श्रद्धाके साथ मुझे पाद्य, आचमन, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि सामग्रियाँ समर्पित करे ॥ ३३ ॥ यदि हो सके तो गुड़, खीर, घृत, पूड़ी, पूए, लड्डू, हलुआ, दही और दाल आदि विविध व्यञ्जनोंका नैवेद्य लगावे ॥ ३४ ॥ भगवान्‌के विग्रहको दतुअन कराये, उबटन लगाये, पञ्चामृत आदिसे स्नान कराये, सुगन्धित पदार्थोंका लेप करे, दर्पण दिखाये, भोग लगाये और शक्ति हो तो प्रतिदिन अथवा पर्वोंके अवसरपर नाचने-गाने आदिका भी प्रबन्ध करे ॥ ३५ ॥

उद्धवजी! तदनन्तर पूजाके बाद शास्त्रोक्त विधिसे बने हुए कुण्डमें अग्निकी स्थापना करे। वह कुण्ड मेखला, गर्त और वेदीसे शोभायमान हो। उसमें हाथकी हवासे अग्नि प्रज्वलित करके उसका परिसमूहन करे, अर्थात् उसे एकत्र कर दे ॥ ३६ ॥ वेदीके चारों ओर कुशकण्डिका करके अर्थात् चारों ओर बीस-बीस कुश बिछाकर मन्त्र पढ़ता हुआ उनपर जल छिड़के। इसके बाद विधिपूर्वक समिधाओंका आधानरूप अन्वाधान कर्म करके अग्निके उत्तर भागमें होमोपयोगी सामग्री रक्खे और प्रोक्षणीपात्रके जलसे प्रोक्षण करे। तदनन्तर अग्निमें मेरा इस प्रकार ध्यान करे ॥ ३७ ॥ 'मेरी मूर्ति तपाये हुए सोनेके समान दम-दम दमक रही है। रोम-रोमसे शान्तिकी वर्षा हो रही है। लंबी और विशाल चार भुजाएँ शोभायमान हैं। उनमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं। कमलकी केसरके समान पीला-पीला वस्त्र फहरा रहा है ॥ ३८ ॥ सिरपर मुकुट, कलाइयोंमें कंगन, कमरमें करधनी और बाँहोंमें बाजूबंद झिलमिला रहे हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न है। गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही है। घुटनोंतक वनमाला लटक रही है' ॥ ३९ ॥ अग्निमें मेरी इस मूर्तिका ध्यान करके पूजा करनी चाहिये। इसके बाद सूखी समिधाओं-को घृतमें डुबोकर आहुति दे और आज्यभाग और आघार नामक दो-दो आहुतियोंसे और भी हवन करे। तदनन्तर घीसे भिगोकर अन्य हवन-सामग्रियोंसे आहुति दे ॥ ४० ॥ इसके बाद अपने इष्टमन्त्रसे अथवा 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रसे तथा पुरुषसूक्तके सोलह मन्त्रोंसे हवन करे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि धर्मादि देवताओंके लिये भी विधिपूर्वक मन्त्रोंसे हवन करे और स्विष्टकृत् आहुति भी दे ॥ ४१ ॥

इस प्रकार अग्निमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित भगवान्‌की पूजा करके उन्हें नमस्कार करे और नन्द-सुनन्द आदि पार्षदोंको आठों दिशाओंमें हवनकर्माङ्ग बलि दे। तदनन्तर प्रतिमाके सम्मुख बैठकर परब्रह्मस्वरूप भगवान् नारायणका स्मरण करे और भगवत्स्वरूप मूलमन्त्र 'ॐ नमो नारायणाय' का जप करे ॥ ४२ ॥ इसके बाद भगवान्‌को आचमन करावे और उनका प्रसाद विष्वक्सेन-को निवेदन करे। इसके पश्चात् अपने इष्टदेवकी सेवामें सुगन्धित ताम्बूल आदि मुखवास उपस्थित करे तथा पुष्पाञ्जलि समर्पित करे ॥ ४३ ॥ मेरी लीलाओंको गावे, उनका वर्णन करे और मेरी ही लीलाओंका अभिनय करे। यह सब करते समय प्रेमोन्मत्त होकर नाचने लगे। मेरी लीला-कथाएँ स्वयं सुने और दूसरोंको सुनावे। कुछ समयतक संसार और उसके रगड़ों-झगड़ोंको भूलकर मुझमें ही तन्मय हो जाय ॥ ४४ ॥ प्राचीन ऋषियोंके द्वारा अथवा प्राकृत भक्तोंके द्वारा बनाये हुए छोटे-बड़े स्तव और स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करके प्रार्थना करे—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। मुझे अपने कृपाप्रसादसे सराबोर कर दें।' तदनन्तर दण्डवत्-प्रणाम करे ॥ ४५ ॥ अपना सिर मेरे चरणों-पर रख दे और अपने दोनों हाथोंसे—दायेंसे दाहिना और बायेंसे बायाँ चरण पकड़कर कहे—'भगवन्! इस संसार-सागरमें मैं डूब रहा हूँ। मृत्युरूप मगर मेरा पीछा कर रहा है। मैं डरकर आपकी शरणमें आया हूँ। प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये' ॥ ४६ ॥ इस प्रकार स्तुति करके मुझे समर्पण की हुई माला आदरके साथ अपने सिरपर रक्खे और उसे मेरा दिया हुआ प्रसाद समझे। यदि विसर्जन करना हो तो ऐसी भावना करनी चाहिये कि प्रतिमामेंसे एक दिव्य ज्योति निकली है और वह मेरी हृदयस्थ ज्योतिमें लीन हो गयी है। बस, यही विसर्जन है ॥ ४७ ॥ उद्धवजी! प्रतिमा आदिमें जब जहाँ श्रद्धा हो तब, तहाँ मेरी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि मैं सर्वात्मा हूँ और समस्त

प्राणियोंमें तथा अपने हृदयमें भी स्थित हूँ ॥ ४८ ॥

उद्धवजी! जो मनुष्य इस प्रकार वैदिक, तान्त्रिक क्रियायोगके द्वारा मेरी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोकमें मुझसे अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥ यदि शक्ति हो, तो उपासक सुन्दर और सुदृढ़ मन्दिर बनवाये और उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे। सुन्दर-सुन्दर फूलोंके बगीचे लगवा दे; नित्यकी पूजा, पर्वकी यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवोंकी व्यवस्था कर दे ॥ ५० ॥ जो मनुष्य पर्वोंके उत्सव और प्रतिदिनकी पूजा लगातार चलनेके लिये खेत, बाजार, नगर अथवा गाँव मेरे नामपर समर्पित कर देते हैं, उन्हें मेरे समान ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥ मेरी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करनेसे पृथ्वीका एकछत्र राज्य, मन्दिर-निर्माणसे त्रिलोकीका राज्य, पूजा आदिकी व्यवस्था करनेसे ब्रह्मलोक और तीनोंके द्वारा मेरी समानता प्राप्त होती है ॥ ५२ ॥ जो निष्कामभावसे मेरी पूजा करता है, उसे मेरा भक्तियोग प्राप्त हो जाता है और उस निरपेक्ष भक्तियोगके द्वारा वह स्वयं मुझे प्राप्त कर लेता है ॥५३॥ जो अपनी दी हुई या दूसरोंकी दी हुई देवता और ब्राह्मणकी जीविका हरण कर लेता है, वह करोड़ों वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है ॥ ५४ ॥ जो लोग ऐसे कामोंमें सहायता, प्रेरणा अथवा अनुमोदन करते हैं, वे भी मरनेके बाद प्राप्त करनेवालेके समान ही फलके भागीदार होते हैं। यदि उनका हाथ अधिक रहा, तो फल भी उन्हें अधिक ही मिलता है ॥ ५५ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

परमार्थ-निरूपण

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—उद्धवजी! यद्यपि व्यवहारमें पुरुष और प्रकृति—द्रष्टा और दृश्यके भेदसे दो प्रकारका जगत् जान पड़ता है, तथापि परमार्थ-दृष्टिसे देखनेपर यह सब एक अधिष्ठानस्वरूप ही है; इसलिये किसीके शान्त, घोर और मूढ़ स्वभाव तथा उनके अनुसार कर्मोंकी न स्तुति करनी चाहिये और न निन्दा। सर्वदा अद्वैत-दृष्टि रखनी चाहिये ॥ १ ॥ जो पुरुष दूसरोंके स्वभाव और उनके कर्मोंकी प्रशंसा अथवा निन्दा करते हैं, वे शीघ्र ही अपने यथार्थ परमार्थ-साधनसे च्युत हो जाते हैं; क्योंकि साधन तो द्वैतके अभिनिवेश-का—उसके प्रति सत्यत्व-बुद्धिका निषेध करता है और प्रशंसा तथा निन्दा उसकी सत्यताके भ्रमको और भी दृढ़ करती हैं ॥ २ ॥ उद्धवजी! सभी इन्द्रियाँ राजस अहङ्कारके कार्य हैं। जब वे निद्रित हो जाती हैं, तब शरीरका अभिमानी जीव चेतनाशून्य हो जाता है अर्थात् उसे बाहरी शरीरकी स्मृति नहीं रहती। उस समय यदि मन बच रहा, तब तो वह सपनेके झूठे दृश्योंमें भटकने लगता है और वह भी लीन हो गया, तब तो जीव मृत्युके समान गाढ़ निद्रा—सुषुप्तिमें लीन हो जाता है। वैसे ही जब जीव अपने अद्वितीय आत्म-स्वरूपको भूलकर नाना वस्तुओंका दर्शन करने लगता है, तब वह स्वप्नके समान झूठे दृश्योंमें फँस जाता है अथवा मृत्युके समान अज्ञानमें लीन हो जाता है ॥ ३ ॥ उद्धवजी! जब द्वैत नामकी कोई वस्तु ही नहीं है, तब उसमें अमुक वस्तु भली है और अमुक बुरी, अथवा इतनी भली और इतनी बुरी है—यह प्रश्न ही नहीं उठ सकता। विश्वकी सभी वस्तुएँ वाणीसे कही जा सकती हैं अथवा मनसे सोची जा सकती हैं; इसलिये दृश्य एवं अनित्य होनेके कारण उनका मिथ्यात्व तो स्पष्ट ही है ॥ ४ ॥ परछाईं, प्रतिध्वनि और सीपी आदिमें चाँदी आदिके आभास यद्यपि हैं तो सर्वथा मिथ्या, परन्तु उनके द्वारा मनुष्यके हृदयमें भय-कम्प आदिका सञ्चार हो जाता है। वैसे ही देहादि सभी वस्तुएँ हैं तो सर्वथा मिथ्या ही; परन्तु जबतक ज्ञानके द्वारा इनकी असत्यताका बोध नहीं हो जाता, इनकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो जाती, तबतक ये भी अज्ञानियोंको भयभीत करती रहती हैं ॥५॥ उद्धवजी! जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष वस्तु है, वह आत्मा ही है। वही सर्वशक्तिमान् भी है। जो कुछ विश्व-सृष्टि प्रतीत हो रही है, इसका वह निमित्त-कारण तो है ही,

उपादान-कारण भी है। अर्थात् वही विश्व बनता है और वही बनाता भी है, वही रक्षक है और रक्षित भी वही है। सर्वात्मा भगवान् ही इसका संहार करते हैं और जिसका संहार होता है, वह भी वे ही हैं॥ ६॥ अवश्य ही व्यवहारदृष्टिसे देखनेपर आत्मा इस विश्वसे भिन्न है; परन्तु आत्मदृष्टिसे उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु ही नहीं है। उसके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा है, उसका किसी भी प्रकार निर्वचन नहीं किया जा सकता और अनिर्वचनीय तो केवल आत्म-स्वरूप ही है; इसलिये आत्मामें सृष्टि-स्थिति-संहार अथवा अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत—ये तीन-तीन प्रकारकी प्रतीतियाँ सर्वथा निर्मूल ही हैं। न होनेपर भी यों ही प्रतीत हो रही हैं। यह सत्त्व, रज और तमके कारण प्रतीत होनेवाली द्रष्टा-दर्शन-दृश्य आदिकी त्रिविधता मायाका खेल है॥ ७॥ उद्धवजी! तुमसे मैंने ज्ञान और विज्ञानकी उत्तम स्थितिका वर्णन किया है। जो पुरुष मेरे इन वचनोंका रहस्य जान लेता है, वह न तो किसीकी प्रशंसा करता है और न निन्दा। वह जगत्में सूर्यके समान समभावसे विचरता रहता है॥ ८॥ प्रत्यक्ष, अनुमान, शास्त्र और आत्मानुभूति आदि सभी प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि यह जगत् उत्पत्ति-विनाशशील होनेके कारण अनित्य एवं असत्य है। यह बात जानकर जगत्में असङ्गभावसे विचरना चाहिये॥ ९॥

उद्धवजीने पूछा—भगवन्! आत्मा है द्रष्टा और देह है दृश्य। आत्मा स्वयंप्रकाश है और देह है जड। ऐसी स्थितिमें जन्म-मृत्युरूप संसार न शरीरको हो सकता है और न आत्माको। परन्तु इसका होना भी उपलब्ध होता है। तब यह होता किसे है?॥ १०॥ आत्मा तो अविनाशी, प्राकृत-अप्राकृत गुणोंसे रहित, शुद्ध, स्वयंप्रकाश और सभी प्रकारके आवरणोंसे रहित है; तथा शरीर विनाशी, सगुण, अशुद्ध, प्रकाश्य और आवृत है। आत्मा अग्निके समान प्रकाशमान है, तो शरीर काठकी तरह अचेतन। फिर यह जन्म-मृत्युरूप संसार है किसे?॥ ११॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वस्तुतः प्रिय उद्धव! संसारका अस्तित्व नहीं है तथापि जबतक देह, इन्द्रिय और प्राणोंके साथ आत्माकी सम्बन्ध-भ्रान्ति है, तबतक अविवेकी पुरुषको वह सत्य-सा स्फुरित होता है॥ १२॥ जैसे स्वप्नमें अनेकों विपत्तियाँ आती हैं पर वास्तवमें वे हैं नहीं, फिर भी स्वप्न टूटनेतक उनका अस्तित्व नहीं मिटता, वैसे ही संसारके न होनेपर भी जो उसमें प्रतीत होनेवाले विषयोंका चिन्तन करते रहते हैं, उनके जन्म-मृत्युरूप संसारकी निवृत्ति नहीं होती॥ १३॥ जब मनुष्य स्वप्न देखता रहता है, तब नींद टूटनेके पहले उसे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है; परन्तु जब उसकी नींद टूट जाती है, वह जग पड़ता है, तब न तो स्वप्नकी विपत्तियाँ रहती हैं और न उनके कारण होनेवाले मोह आदि विकार॥ १४॥ उद्धवजी! अहङ्कार ही शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, स्पृहा और जन्म-मृत्युका शिकार बनता है। आत्मासे तो इनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है॥ १५॥ उद्धवजी! देह, इन्द्रिय, प्राण और मनमें स्थित आत्मा ही जब उनका अभिमान कर बैठता है—उन्हें अपना स्वरूप मान लेता है—तब उसका नाम 'जीव' हो जाता है। उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्माकी मूर्ति है—गुण और कर्मोंका बना हुआ लिङ्गशरीर। उसे ही कहीं सूत्रात्मा कहा जाता है और कहीं महत्तत्त्व। उसके और भी बहुत-से नाम हैं। वही कालरूप परमेश्वरके अधीन होकर जन्म-मृत्युरूप संसारमें इधर-उधर भटकता रहता है॥ १६॥ वास्तवमें मन, वाणी, प्राण और शरीर अहङ्कारके ही कार्य हैं। यह है तो निर्मूल, परन्तु देवता, मनुष्य आदि अनेक रूपोंमें इसीकी प्रतीति होती है। मननशील पुरुष उपासनाकी शानपर चढ़ाकर ज्ञानकी तलवारको अत्यन्त तीखी बना लेता है और उसके द्वारा देहाभिमान-का—अहङ्कारका मूलोच्छेद करके पृथ्वीमें निर्द्वन्द्व होकर विचरता है। फिर उसमें किसी प्रकारकी आशा-तृष्णा नहीं रहती॥ १७॥ आत्मा और अनात्माके स्वरूपको पृथक्-पृथक् भलीभाँति समझ लेना ही ज्ञान है, क्योंकि विवेक होते ही द्वैतका अस्तित्व मिट जाता है। उसका साधन है तपस्याके द्वारा हृदयको शुद्ध करके वेदादि शास्त्रोंका श्रवण करना। इनके अतिरिक्त श्रवणानुकूल युक्तियाँ, महापुरुषोंके उपदेश और इन दोनोंसे अविरुद्ध स्वानुभूति भी प्रमाण हैं। सबका सार यही निकलता है कि इस संसारके आदिमें जो था तथा अन्तमें जो रहेगा, जो इसका मूल कारण और प्रकाशक

है, वही अद्वितीय, उपाधिशून्य परमात्मा बीचमें भी है। उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है ॥ १८ ॥ उद्धवजी! सोनेसे कंगन, कुण्डल आदि बहुत-से आभूषण बनते हैं; परन्तु जब वे गहने नहीं बने थे, तब भी सोना था और जब नहीं रहेंगे, तब भी सोना रहेगा। इसलिये जब बीचमें उसके कंगन-कुण्डल आदि अनेकों नाम रखकर व्यवहार करते हैं, तब भी वह सोना ही है। ठीक ऐसे ही जगत्का आदि, अन्त और मध्य मैं ही हूँ। वास्तवमें मैं ही सत्य तत्त्व हूँ ॥ १९ ॥ भाई उद्धव! मनकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति; इन अवस्थाओंके कारण तीन ही गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। और जगत्के तीन भेद हैं—अध्यात्म (इन्द्रियाँ), अधिभूत (पृथिव्यादि) और अधिदैव (कर्ता)। ये सभी त्रिविधताएँ जिसकी सत्तासे सत्यके समान प्रतीत होती हैं और समाधि आदिमें यह त्रिविधता न रहनेपर भी जिसकी सत्ता बनी रहती है, वह तुरीयतत्त्व—इन तीनोंसे परे और इनमें अनुगत चौथा ब्रह्मतत्त्व ही सत्य है ॥ २० ॥ जो उत्पत्तिसे पहले नहीं था और प्रलयके पश्चात् भी नहीं रहेगा, ऐसा समझना चाहिये कि बीचमें भी वह है नहीं—केवल कल्पनामात्र, नाममात्र ही है। यह निश्चित सत्य है कि जो पदार्थ जिससे बनता है और जिसके द्वारा प्रकाशित होता है, वही उसका वास्तविक स्वरूप है, वही उसकी परमार्थ-सत्ता है—यह मेरा दृढ़ निश्चय है ॥ २१ ॥ यह जो विकारमयी राजस सृष्टि है, यह न होनेपर भी दीख रही है। यह स्वयंप्रकाश ब्रह्म ही है। इसलिये इन्द्रिय, विषय, मन और पञ्चभूतादि जितने चित्र-विचित्र नाम-रूप हैं उनके रूपमें ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है ॥ २२ ॥ ब्रह्मविचारके साधन हैं—श्रवण, मनन, निदिध्यासन और स्वानुभूति। उनमें सहायक हैं—आत्मज्ञानी गुरुदेव! इनके द्वारा विचार करके स्पष्टरूपसे देहादि अनात्म पदार्थोंका निषेध कर देना चाहिये। इस प्रकार निषेधके द्वारा आत्मविषयक सन्देहोंको छिन्न-भिन्न करके अपने आनन्द-स्वरूप आत्मामें ही मग्न हो जाय और सब प्रकारकी विषयवासनाओंसे रहित हो जाय ॥ २३ ॥ निषेध करनेकी प्रक्रिया यह है कि पृथ्वीका विकार होनेके कारण शरीर आत्मा नहीं है। इन्द्रिय, उनके अधिष्ठातृ-देवता, प्राण, वायु, जल, अग्नि एवं मन भी आत्मा नहीं हैं; क्योंकि इनका धारण-पोषण शरीरके समान ही अन्नके द्वारा होता है। बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, आकाश, पृथ्वी, शब्दादि विषय और गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृति भी आत्मा नहीं हैं; क्योंकि ये सब-के-सब दृश्य एवं जड हैं ॥ २४ ॥ उद्धवजी! जिसे मेरे स्वरूपका भलीभाँति ज्ञान हो गया है, उसकी वृत्तियाँ और इन्द्रियाँ यदि समाहित रहती हैं तो उसे उनसे लाभ क्या है? और यदि वे विक्षिप्त रहती हैं, तो उनसे हानि भी क्या है? क्योंकि अन्तः-करण और बाह्यकरण—सभी गुणमय हैं और आत्मासे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। भला, आकाशमें बादलोंके छा जाने अथवा तितर-बितर हो जानेसे सूर्यका क्या बनता-बिगड़ता है? ॥ २५ ॥ जैसे वायु आकाशको सुखा नहीं सकती, आग जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता, धूल-धुएँ मटमैला नहीं कर सकते और ऋतुओंके गुण गरमी-सर्दी आदि उसे प्रभावित नहीं कर सकते—क्योंकि ये सब आने-जानेवाले क्षणिक भाव हैं और आकाश इन सबका एकरस अधिष्ठान है—वैसे ही सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी वृत्तियाँ तथा कर्म अविनाशी आत्माका स्पर्श नहीं कर पाते; वह तो इनसे सर्वथा परे है। इनके द्वारा तो केवल वही संसारमें भटकता है, जो इनमें अहङ्कार कर बैठता है ॥ २६ ॥ उद्धवजी! ऐसा होनेपर भी तबतक इन मायानिर्मित गुणों और उनके कार्योंका सङ्ग सर्वथा त्याग देना चाहिये, जबतक मेरे सुदृढ़ भक्तियोगके द्वारा मनका रजोगुणरूप मल एकदम निकल न जाय ॥ २७ ॥

उद्धवजी! जैसे भलीभाँति चिकित्सा न करनेपर रोगका समूल नाश नहीं होता, वह बार-बार उभरकर मनुष्यको सताया करता है; वैसे ही जिस मनकी वासनाएँ और कर्मोंके संस्कार मिट नहीं गये हैं, जो स्त्री-पुत्र आदिमें आसक्त है, वह बार-बार अधूरे योगीको बेधता रहता है और उसे कई बार योगभ्रष्ट भी कर देता है ॥ २८ ॥ देवताओंके द्वारा प्रेरित शिष्य-पुत्र आदिके द्वारा किये हुए विघ्नोंसे यदि कदाचित् अधूरा योगी मार्गच्युत हो जाय तो भी वह अपने पूर्वाभ्यासके कारण पुनः योगा-

भ्यासमें ही लग जाता है। कर्म आदिमें उसकी प्रवृत्ति नहीं होती ॥ २९ ॥ उद्धवजी ! जीव संस्कार आदिसे प्रेरित होकर जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त कर्ममें ही लगा रहता है और उनमें इष्ट-अनिष्ट-बुद्धि करके हर्ष-विषाद आदि विकारोंको प्राप्त होता रहता है। परन्तु जो तत्त्वका साक्षात्कार कर लेता है, वह प्रकृतिमें स्थित रहनेपर भी, संस्कारानुसार कर्म होते रहनेपर भी, उनमें इष्ट-अनिष्ट-बुद्धि करके हर्ष-विषाद आदि विकारोंसे युक्त नहीं होता; क्योंकि आनन्दस्वरूप आत्माके साक्षात्कारसे उसकी संसारसम्बन्धी सभी आशा-तृष्णाएँ पहले ही नष्ट हो चुकी होती हैं ॥ ३० ॥ जो अपने स्वरूपमें स्थित हो गया है, उसे इस बातका भी पता नहीं रहता कि शरीर खड़ा है या बैठा, चल रहा है या सो रहा है, मल-मूत्र त्याग रहा है, भोजन कर रहा है अथवा और कोई स्वाभाविक कर्म कर रहा है; क्योंकि उसकी वृत्ति तो आत्मस्वरूपमें स्थित—ब्रह्माकार रहती है ॥ ३१ ॥ यदि ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें इन्द्रियोंके विविध बाह्य विषय, जो कि असत् हैं, आते भी हैं तो वह उन्हें अपने आत्मासे भिन्न नहीं मानता, क्योंकि वे युक्तियों, प्रमाणों और स्वानुभूतिसे सिद्ध नहीं होते। जैसे नींद टूट जानेपर स्वप्नमें देखे हुए और जागनेपर तिरोहित हुए पदार्थोंको कोई सत्य नहीं मानता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपनेसे भिन्न प्रतीयमान पदार्थोंको सत्य नहीं मानते ॥ ३२ ॥ उद्धवजी ! (इसका यह अर्थ नहीं है कि अज्ञानीने आत्माका त्याग कर दिया है और ज्ञानी उसको ग्रहण करता है। इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि) अनेकों प्रकारके गुण और कर्मोंसे युक्त देह-इन्द्रिय आदि पदार्थ पहले अज्ञानके कारण आत्मासे अभिन्न मान लिये गये थे, उनका विवेक नहीं था। अब आत्मदृष्टि होनेपर अज्ञान और उसके कार्योंकी निवृत्ति हो जाती है। इसलिये अज्ञानकी निवृत्ति ही अभीष्ट है। वृत्तियोंके द्वारा न तो आत्माका ग्रहण हो सकता है और न त्याग ॥ ३३ ॥ जैसे सूर्य उदय होकर मनुष्योंके नेत्रोंके सामनेसे अन्धकारका परदा हटा देते हैं, किसी नयी वस्तुका निर्माण नहीं करते, वैसे ही मेरे स्वरूपका दृढ अपरोक्षज्ञान पुरुषके बुद्धिगत अज्ञानका आवरण नष्ट कर देता है। वह इदंरूपसे किसी वस्तुका अनुभव नहीं कराता ॥ ३४ ॥ उद्धवजी ! आत्मा नित्य अपरोक्ष है, उसकी प्राप्ति नहीं करनी पड़ती। वह स्वयंप्रकाश है। उसमें अज्ञान आदि किसी प्रकारके विकार नहीं हैं। वह जन्मरहित है अर्थात् कभी किसी प्रकार भी वृत्तिमें आरूढ नहीं होता। इसलिये अप्रमेय है। ज्ञान आदिके द्वारा उसका संस्कार भी नहीं किया जा सकता। आत्मामें देश, काल और वस्तुकृत परिच्छेद न होनेके कारण अस्तित्व, वृद्धि, परिवर्तन, ह्रास और विनाश उसका स्पर्श भी नहीं कर सकते। सबकी और सब प्रकारकी अनुभूतियाँ आत्मस्वरूप ही हैं। जब मन और वाणी आत्माको अपना अविषय समझकर निवृत्त हो जाते हैं, तब वही सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे शून्य एक अद्वितीय रह जाता है। व्यवहारदृष्टिसे उसके स्वरूपका वाणी और प्राण आदिके प्रवर्तकके रूपमें निरूपण किया जाता है ॥ ३५ ॥

उद्धवजी ! अद्वितीय आत्मतत्त्वमें अर्थहीन नामोंके द्वारा विविधता मान लेना ही मनका भ्रम है, अज्ञान है। सचमुच यह बहुत बड़ा मोह है, क्योंकि अपने आत्माके अतिरिक्त उस भ्रमका भी और कोई अधिष्ठान नहीं है। अधिष्ठान-सत्तामें अध्यस्तकी सत्ता है ही नहीं। इसलिये सब कुछ आत्मा ही है ॥ ३६ ॥ बहुत-से पण्डिताभिमानी लोग ऐसा कहते हैं कि यह पाञ्चभौतिक द्वैत विभिन्न नामों और रूपोंके रूपमें इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण किया जाता है, इसलिये सत्य है। परन्तु यह तो अर्थहीन वाणीका आडम्बरमात्र है; क्योंकि तत्त्वतः तो इन्द्रियोंकी पृथक् सत्ता ही सिद्ध नहीं होती, फिर वे किसीको प्रमाणित कैसे करेंगी ? ॥ ३७ ॥

उद्धवजी ! यदि योगसाधना पूर्ण होनेके पहले ही किसी साधकका शरीर रोगादि उपद्रवोंसे पीडित हो, तो उसे इन उपायोंका आश्रय लेना चाहिये ॥ ३८ ॥ गरमी-ठंडक आदिको चन्द्रमा-सूर्य आदिकी धारणाके द्वारा, वात आदि रोगोंको वायुधारणायुक्त आसनोंके द्वारा और ग्रह-सर्पादिकृत विघ्नोंको तपस्या, मन्त्र एवं ओषधिके द्वारा नष्ट कर डालना चाहिये ॥ ३९ ॥ काम-क्रोध आदि विघ्नोंको मेरे चिन्तन और नाम-संकीर्तन आदिके द्वारा नष्ट करना चाहिये। तथा पतनकी ओर ले जानेवाले

दम्भ-मद आदि विघ्नोंको धीरे-धीरे महापुरुषोंकी सेवाके द्वारा दूर कर देना चाहिये ॥ ४० ॥ कोई-कोई मनस्वी योगी विविध उपायोंके द्वारा इस शरीरको सुदृढ और युवावस्थामें स्थिर करके फिर अणिमा आदि सिद्धियोंके लिये योगसाधन करते हैं, परन्तु बुद्धिमान् पुरुष ऐसे विचारका समर्थन नहीं करते, क्योंकि यह तो एक व्यर्थ प्रयास है। वृक्षमें लगे हुए फलके समान इस शरीरका नाश तो अवश्यम्भावी है ॥ ४१-४२ ॥ यदि कदाचित् बहुत दिनोंतक निरन्तर और आदरपूर्वक योगसाधना करते रहनेपर शरीर सुदृढ भी हो जाय, तब भी बुद्धिमान् पुरुषको अपनी साधना छोड़कर उतनेमें ही सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये। उसे तो सर्वदा मेरी प्राप्तिके लिये ही संलग्न रहना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो साधक मेरा आश्रय लेकर मेरे द्वारा कही हुई योग-साधनामें संलग्न रहता है, उसे कोई भी विघ्न-बाधा डिगा नहीं सकती। उसकी सारी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं और वह आत्मानन्दकी अनुभूतिमें मग्न हो जाता है ॥ ४४ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

भागवतधर्मोंका निरूपण और उद्धवजीका बदरिकाश्रमगमन

उद्धवजीने कहा—अच्युत ! जो अपना मन वशमें नहीं कर सका है, उसके लिये आपकी बतलायी हुई इस योगसाधनाको तो मैं बहुत ही कठिन समझता हूँ। अतः अब आप कोई ऐसा सरल और सुगम साधन बतलाइये, जिससे मनुष्य अनायास ही परमपद प्राप्त कर सके ॥ १ ॥ कमलनयन ! आप जानते ही हैं कि अधिकांश योगी जब अपने मनको एकाग्र करने लगते हैं, तब वे बार-बार चेष्टा करनेपर भी सफल न होनेके कारण हार मान लेते हैं और उसे वशमें न कर पानेके कारण दुःखी हो जाते हैं ॥ २ ॥ पद्मलोचन ! आप विश्वेश्वर हैं ! आपके ही द्वारा सारे संसारका नियमन होता है। इसीसे सारासार-विचारमें चतुर मनुष्य आपके आनन्दवर्षी चरणकमलोंकी शरण लेते हैं और अनायास ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। आपकी माया उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती; क्योंकि उन्हें योगसाधन और कर्मानुष्ठानका अभिमान नहीं होता। परन्तु जो आपके चरणोंका आश्रय नहीं लेते, वे योगी और कर्मी अपने साधनके घमंडसे फूल जाते हैं; अवश्य ही आपकी मायाने उनकी मति हर ली है ॥ ३ ॥ प्रभो ! आप सबके हितैषी सुहृद् हैं। आप अपने अनन्य शरणागत बलि आदि सेवकोंके अधीन हो जायँ, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपने रामावतार ग्रहण करके प्रेमवश वानरोंसे भी मित्रताका निर्वाह किया। यद्यपि ब्रह्मा आदि लोकेश्वरगण भी अपने दिव्य किरीटोंको आपके चरणकमल रखनेकी चौकीपर रगड़ते रहते हैं ॥ ४ ॥ प्रभो ! आप सबके प्रियतम, स्वामी और आत्मा हैं। आप अपने अनन्य शरणागतोंको सब कुछ दे देते हैं। आपने बलि प्रह्लाद आदि अपने भक्तोंको जो कुछ दिया है, उसे जानकर ऐसा कौन पुरुष होगा जो आपको छोड़ देगा ? यह बात किसी प्रकार बुद्धिमें ही नहीं आती कि भला, कोई विचारवान् विस्मृतिके गर्तमें डालनेवाले तुच्छ विषयोंमें ही फँसा रखनेवाले भोगोंको क्यों चाहेगा ? हमलोग आपके चरणकमलोंकी रजके उपासक हैं। हमारे लिये दुर्लभ ही क्या है ?॥ ५ ॥ भगवन् ! आप समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे और बाहर गुरुरूपसे स्थित होकर उनके सारे पाप-ताप मिटा देते हैं और अपने वास्तविक स्वरूपको उनके प्रति प्रकट कर देते हैं। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी ब्रह्माजीके समान लंबी आयु पाकर भी आपके उपकारोंका बदला नहीं चुका सकते। इसीसे वे आपके उपकारोंका स्मरण करके क्षण-क्षण अधिकाधिक आनन्दका अनुभव करते रहते हैं ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मादि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। वे ही सत्त्व-रज आदि गुणोंके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका रूप धारण करके जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति आदिके खेल खेला करते

हैं। जब उद्धवजीने अनुरागभरे चित्तसे उनसे यह प्रश्न किया, तब उन्होंने मन्द-मन्द मुसकराकर बड़े प्रेमसे कहना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—प्रिय उद्धव ! अब मैं तुम्हें अपने उन मङ्गलमय भागवतधर्मोंका उपदेश करता हूँ, जिनका श्रद्धापूर्वक आचरण करके मनुष्य संसाररूप दुर्जय मृत्युको अनायास ही जीत लेता है ॥ ८ ॥ उद्धवजी ! मेरे भक्तको चाहिये कि अपने सारे कर्म मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे उनको करते समय मेरे स्मरणका अभ्यास बढ़ाये। कुछ ही दिनोंमें उसके मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायँगे। उसके मन और आत्मा मेरे ही धर्मोंमें रम जायँगे ॥ ९ ॥ मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानोंमें निवास करते हों, उन्हींमें रहे और देवता, असुर अथवा मनुष्योंमें जो मेरे अनन्य भक्त हों, उनके आचरणोंका अनुसरण करे ॥ १० ॥ पर्वके अवसरोंपर सबके साथ मिलकर अथवा अकेला ही नृत्य, गान, वाद्य आदि महाराजोचित ठाट-बाटसे मेरी यात्रा आदिके महोत्सव करे ॥ ११ ॥ शुद्धान्तःकरण पुरुष आकाशके समान बाहर और भीतर परिपूर्ण एवं आवरणशून्य मुझ परमात्माको ही समस्त प्राणियों और अपने हृदयमें स्थित देखे ॥ १२ ॥ निर्मलबुद्धि उद्धवजी ! जो साधक केवल इस ज्ञानदृष्टिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण प्राणियों और पदार्थोंमें मेरा दर्शन करता है और उन्हें मेरा ही रूप मानकर सत्कार करता है तथा ब्राह्मण और चाण्डाल, चोर और ब्राह्मणभक्त, सूर्य और चिनगारी तथा कृपालु और क्रूरमें समानदृष्टि रखता है, उसे ही सच्चा ज्ञानी समझना चाहिये ॥ १३-१४ ॥ जब निरन्तर सभी नर-नारियोंमें मेरी ही भावना की जाती है, तब थोड़े ही दिनोंमें साधकके चित्तसे स्पर्द्धा (होड़), ईर्ष्या, तिरस्कार और अहङ्कार आदि दोष दूर हो जाते हैं ॥ १५ ॥ अपने ही लोग यदि हँसी करें तो करने दे, उनकी परवा न करे; 'मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है' ऐसी देहदृष्टिको और लोक-लज्जाको छोड़ दे और कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधेको भी पृथ्वीपर गिरकर साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम करे ॥ १६ ॥ जबतक समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना—भगवद्-भावना न होने लगे, तबतक इस प्रकारसे मन, वाणी और शरीरके सभी संकल्पों और कर्मोंद्वारा मेरी उपासना करता रहे ॥ १७ ॥ उद्धवजी ! जब इस प्रकार सर्वत्र आत्मबुद्धि—ब्रह्मबुद्धिका अभ्यास किया जाता है, तब थोड़े ही दिनोंमें उसे ज्ञान होकर सब कुछ ब्रह्मस्वरूप दीखने लगता है। ऐसी दृष्टि हो जानेपर सारे संशय-सन्देह अपने-आप निवृत्त हो जाते हैं और वह सब कहीं मेरा साक्षात्कार करके संसारदृष्टिसे उपराम हो जाता है ॥ १८ ॥ मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय ॥ १९ ॥ उद्धवजी ! यही मेरा अपना भागवतधर्म है; इसको एक बार आरम्भ कर देनेके बाद फिर किसी प्रकारकी विघ्न-बाधासे इसमें रत्तीभर भी अन्तर नहीं पड़ता; क्योंकि यह धर्म निष्काम है और स्वयं मैंने ही इसे निर्गुण होनेके कारण सर्वोत्तम निश्चय किया है ॥ २० ॥ भागवतधर्ममें किसी प्रकारकी त्रुटि पड़नी तो दूर रही—यदि इस धर्मका साधक भय-शोक आदिके अवसरपर होनेवाली भावना और रोने-पीटने, भागने-जैसा निरर्थक कर्म भी निष्कामभावसे मुझे समर्पित कर दे तो वे भी मेरी प्रसन्नताके कारण धर्म बन जाते हैं ॥ २१ ॥ विवेकियोंके विवेक और चतुरोंकी चतुराईकी पराकाष्ठा इसीमें है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीरके द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य तत्त्वको प्राप्त कर लें ॥ २२ ॥

उद्धवजी ! यह सम्पूर्ण ब्रह्मविद्याका रहस्य मैंने संक्षेप और विस्तारसे तुम्हें सुना दिया। इस रहस्यको समझना मनुष्योंकी तो कौन कहे, देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है ॥ २३ ॥ मैंने जिस सुस्पष्ट और युक्तियुक्त ज्ञानका वर्णन बार-बार किया है, उसके मर्मको जो समझ लेता है, उसके हृदयकी संशय-ग्रन्थियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और वह मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ मैंने तुम्हारे प्रश्नका भलीभाँति खुलासा कर दिया; जो पुरुष हमारे प्रश्नोत्तरको विचारपूर्वक धारण करेगा, वह वेदोंके भी परम रहस्य सनातन परब्रह्मको प्राप्त कर लेगा ॥ २५ ॥ जो पुरुष मेरे भक्तोंको इसे भलीभाँति स्पष्ट करके समझायेगा, उस ज्ञानदाताको मैं प्रसन्न मनसे अपना स्वरूपतक दे डालूँगा, उसे आत्मज्ञान करा

दूँगा ॥ २६ ॥ उद्धवजी ! यह तुम्हारा और मेरा संवाद स्वयं तो परम पवित्र है ही, दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला है । जो प्रतिदिन इसका पाठ करेगा और दूसरोंको सुनायेगा, वह इस ज्ञानदीपके द्वारा दूसरोंको मेरा दर्शन करानेके कारण पवित्र हो जायगा ॥ २७ ॥ जो कोई एकाग्र चित्तसे इसे श्रद्धापूर्वक नित्य सुनेगा, उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होगी और वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ २८ ॥ प्रिय सखे ! तुमने भलीभाँति ब्रह्मका स्वरूप समझ लिया न ? और तुम्हारे चित्तका मोह एवं शोक तो दूर हो गया न ? ॥ २९ ॥ तुम इसे दाम्भिक, नास्तिक, शठ, अश्रद्धालु, भक्तिहीन और उद्धत पुरुषको कभी मत देना ॥ ३० ॥ जो इन दोषोंसे रहित हो, ब्राह्मणभक्त हो, प्रेमी हो, साधुस्वभाव हो और जिसका चरित्र पवित्र हो, उसीको यह प्रसङ्ग सुनाना चाहिये । यदि शूद्र और स्त्री भी मेरे प्रति प्रेम-भक्ति रखते हों, तो उन्हें भी इसका उपदेश करना चाहिये ॥ ३१ ॥ जैसे दिव्य अमृतपान कर लेनेपर कुछ भी पीना शेष नहीं रहता, वैसे ही यह जान लेनेपर जिज्ञासुके लिये और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता ॥ ३२ ॥ प्यारे उद्धव ! मनुष्योंको ज्ञान, कर्म, योग, वाणिज्य और राजदण्डादिसे क्रमशः मोक्ष, धर्म, काम और अर्थरूप फल प्राप्त होते हैं; परन्तु तुम्हारे-जैसे अनन्य भक्तोंके लिये वह चारों प्रकारका फल केवल मैं ही हूँ ॥ ३३ ॥ जिस समय मनुष्य समस्त कर्मोंका परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मेरा विशेष माननीय हो जाता है और मैं उसे उसके जीवत्वसे छुड़ाकर अमृतस्वरूप मोक्षकी प्राप्ति करा देता हूँ और वह मुझसे मिलकर मेरा स्वरूप हो जाता है ॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अब उद्धवजी योगमार्गका पूरा-पूरा उपदेश प्राप्त कर चुके थे । भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उनकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये । प्रेमकी बाढ़से गला रुँध गया, चुपचाप हाथ जोड़े रह गये और वाणीसे कुछ बोला न गया ॥ ३५ ॥ उनका चित्त प्रेमावेशसे विह्वल हो रहा था, उन्होंने धैर्यपूर्वक उसे रोका और अपनेको अत्यन्त सौभाग्यशाली अनुभव करते हुए सिरसे यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको स्पर्श किया तथा हाथ जोड़कर उनसे यह प्रार्थना की ॥ ३६ ॥

उद्धवजीने कहा—प्रभो ! आप माया और ब्रह्मा आदिके भी मूल कारण हैं । मैं मोहके महान् अन्धकारमें भटक रहा था । आपके सत्सङ्गसे वह सदाके लिये भाग गया । भला, जो अग्निके पास पहुँच गया उसके सामने क्या शीत, अन्धकार और उसके कारण होनेवाला भय ठहर सकते हैं ? ॥ ३७ ॥ भगवन् ! आपकी मोहिनी मायाने मेरा ज्ञानदीपक छीन लिया था, परन्तु आपने कृपा करके वह फिर अपने सेवकको लौटा दिया । आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रहकी वर्षा की है । ऐसा कौन होगा, जो आपके इस कृपा-प्रसादका अनुभव करके भी आपके चरणकमलोंकी शरण छोड़ दे और किसी दूसरेका सहारा ले ? ॥ ३८ ॥ आपने अपनी मायासे सृष्टिवृद्धिके लिये दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वतवंशी यादवोंके साथ मुझे सुदृढ स्नेहपाशसे बाँध दिया था । आज आपने आत्मबोधकी तीखी तलवारसे उस बन्धनको अनायास ही काट डाला ॥ ३९ ॥ महायोगेश्वर ! मेरा आपको नमस्कार है । अब आप कृपा करके मुझ शरणागतको ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे आपके चरणकमलोंमें मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे ॥ ४० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—उद्धवजी ! अब तुम मेरी आज्ञासे बदरीवनमें चले जाओ । वह मेरा ही आश्रम है । वहाँ मेरे चरणकमलोंके धोवन गङ्गाजलका स्नान-पानके द्वारा सेवन करके तुम पवित्र हो जाओगे ॥ ४१ ॥ अलकनन्दाके दर्शनमात्रसे तुम्हारे सारे पाप-ताप नष्ट हो जायँगे । प्रिय उद्धव ! तुम वहाँ वृक्षोंकी छाल पहनना, वनके कन्द-मूल-फल खाना और किसी भोगकी अपेक्षा न रखकर निःस्पृह-वृत्तिसे अपने-आपमें मस्त रहना ॥ ४२ ॥ सर्दी-गरमी, सुख-दुःख—जो कुछ आ पड़े, उसे सम रहकर सहना । स्वभाव सौम्य रखना, इन्द्रियोंको वशमें रखना । चित्त शान्त रहे । बुद्धि समाहित रहे और तुम स्वयं मेरे स्वरूपके ज्ञान और अनुभवमें डूबे रहना ॥ ४३ ॥ मैंने तुम्हें जो कुछ शिक्षा दी है, उसका एकान्तमें विचारपूर्वक अनुभव करते रहना । अपनी वाणी और चित्त मुझमें ही लगाये रहना और मेरे बतलाये हुए भागवतधर्ममें

प्रेमसे रम जाना। अन्तमें तुम त्रिगुण और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली गतियोंको पार करके उनसे परे मेरे परमार्थस्वरूप में मिल जाओगे ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूपका ज्ञान संसारके भेदभ्रमको छिन्न-भिन्न कर देता है। जब उन्होंने स्वयं उद्धवजीको ऐसा उपदेश किया तो उन्होंने उनकी परिक्रमा की और उनके चरणोंपर सिर रख दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उद्धवजी संयोग-वियोगसे होनेवाले सुख-दुःखके जोड़ेसे परे थे, क्योंकि वे भगवान्के निर्द्वन्द्व चरणोंकी शरण ले चुके थे; फिर भी वहाँसे चलते समय उनका चित्त प्रेमावेशसे भर गया। उन्होंने अपने नेत्रोंकी झरती हुई अश्रुधारासे भगवान्के चरणकमलोंको भिगो दिया ॥ ४५ ॥ परीक्षित्! भगवान्के प्रति प्रेम करके उसका त्याग करना सम्भव नहीं है। उन्हींके वियोगकी कल्पनासे उद्धवजी कातर हो गये, उनका त्याग करनेमें समर्थ न हुए। बार-बार विह्वल होकर मूर्च्छित होने लगे। कुछ समयके बाद उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंकी पादुकाएँ अपने सिर पर रख लीं और बार-बार भगवान्के चरणोंमें प्रणाम करके वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ४६ ॥ भगवान्के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी हृदयमें उनकी दिव्य छवि धारण किये बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ उन्होंने तपोमय जीवन व्यतीत करके जगत्के एकमात्र हितैषी भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशानुसार उनकी स्वरूपभूत परमगति प्राप्त की ॥ ४७ ॥ भगवान् शङ्कर आदि योगेश्वर भी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंकी सेवा किया करते हैं। उन्होंने स्वयं श्रीमुखसे अपने परमप्रेमी भक्त उद्धवके लिये इस ज्ञानामृतका वितरण किया। यह ज्ञानामृत आनन्दमहासागरका सार है। जो श्रद्धाके साथ इसका सेवन करता है, वह तो मुक्त हो ही जाता है, उसके सङ्गसे सारा जगत् मुक्त हो जाता है ॥ ४८ ॥ परीक्षित्! जैसे भौंरा विभिन्न पुष्पोंसे उनका सार-सार मधु संग्रह कर लेता है, वैसे ही स्वयं वेदोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने भक्तोंको संसारसे मुक्त करनेके लिये यह ज्ञान और विज्ञानका सार निकाला है। उन्होंने जरा-रोगादि भयकी निवृत्तिके लिये क्षीरसमुद्रसे अमृत भी निकाला था तथा इन्हें क्रमशः अपने निवृत्तिमार्गी और प्रवृत्तिमार्गी भक्तोंको पिलाया। वे ही पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण सारे जगत्के मूल कारण हैं। मैं उनके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ४९ ॥

तीसवाँ अध्याय

यदुकुलका संहार

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! जब महाभागवत उद्धवजी बदरीवनको चले गये, तब भूतभावन भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकामें क्या लीला रची? ॥ १ ॥ प्रभो! यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने अपने कुलके ब्रह्मशापग्रस्त होनेपर सबके नेत्रादि इन्द्रियोंके परम प्रिय अपने दिव्य श्रीविग्रहकी लीलाका संवरण कैसे किया? ॥ २ ॥ भगवन्! जब स्त्रियोंके नेत्र उनके श्रीविग्रहमें लग जाते थे, तब वे उन्हें वहाँसे हटानेमें असमर्थ हो जाती थीं। जब संत पुरुष उनकी रूपमाधुरीका वर्णन सुनते हैं, तब वह श्रीविग्रह कानोंके रास्ते प्रवेश करके उनके चित्तमें गड़-सा जाता है, वहाँसे हटना नहीं जानता। उसकी शोभा कवियोंकी काव्यरचनामें अनुरागका रंग भर देती है और उनका सम्मान बढ़ा देती है, इसके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। महाभारत-युद्धके समय जब वे हमारे दादा अर्जुनके रथपर बैठे हुए थे, उस समय जिन योद्धाओंने उसे देखते-देखते शरीर-त्याग किया; उन्हें सारूप्य-मुक्ति मिल गयी। उन्होंने अपना ऐसा अद्भुत श्रीविग्रह किस प्रकार अन्तर्धान किया? ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें बड़े-बड़े उत्पात—अशकुन हो रहे हैं, तब उन्होंने सुधर्मा सभामें उपस्थित सभी यदुवंशियोंसे यह बात कही—॥ ४ ॥ 'श्रेष्ठ यदुवंशियो! यह देखो, द्वारकामें बड़े-बड़े भयङ्कर उत्पात होने लगे हैं। ये साक्षात् यमराजकी ध्वजाके समान हमारे महान् अनिष्टके सूचक हैं।

अब? हमें यहाँ घड़ी-दो-घड़ी भी नहीं ठहरना चाहिये ॥ ५ ॥ स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े यहाँसे शंखोद्धार-क्षेत्रमें चले जायँ और हमलोग प्रभासक्षेत्रमें चलें। आप सब जानते हैं कि वहाँ सरस्वती पश्चिमकी ओर बहकर समुद्रमें जा मिली हैं ॥ ६ ॥ वहाँ हम स्नान करके पवित्र होंगे, उपवास करेंगे और एकाग्रचित्तसे स्नान एवं चन्दन आदि सामग्रियोंसे देवताओंकी पूजा करेंगे ॥ ७ ॥ वहाँ स्वस्तिवाचनके बाद हमलोग गौ, भूमि, सोना, वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ और घर आदिके द्वारा महात्मा ब्राह्मणोंका सत्कार करेंगे ॥ ८ ॥ यह विधि सब प्रकारके अमङ्गलोंका नाश करनेवाली और परम मङ्गलकी जननी है। श्रेष्ठ यदुवंशियो ! देवता, ब्राह्मण और गौओंकी पूजा ही प्राणियोंके जन्मका परम लाभ है' ॥ ९ ॥

परीक्षित् ! सभी वृद्ध यदुवंशियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर 'तथास्तु' कहकर उसका अनुमोदन किया और तुरंत नौकाओंसे समुद्र पार करके रथोंद्वारा प्रभासक्षेत्रकी यात्रा की ॥ १० ॥ वहाँ पहुँचकर यादवोंने यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके आदेशानुसार बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे शान्तिपाठ आदि तथा और भी सब प्रकारके मङ्गलकृत्य किये ॥ ११ ॥ यह सब तो उन्होंने किया; परन्तु दैवने उनकी बुद्धि हर ली और वे उस मैरेयक नामक मदिराका पान करने लगे, जिसके नशेसे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। वह पीनेमें तो अवश्य मीठी लगती है, परन्तु परिणाममें सर्वनाश करनेवाली है ॥ १२ ॥ उस तीव्र मदिराके पानसे सब-के-सब उन्मत्त हो गये और वे घमंडी वीर एक-दूसरेसे लड़ने-झगड़ने लगे। सच पूछो तो श्रीकृष्णकी मायासे वे मूढ़ हो रहे थे ॥ १३ ॥ उस समय वे क्रोधसे भरकर एक-दूसरेपर आक्रमण करने लगे और धनुष-बाण, तलवार, भाले, गदा, तोमर और ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे वहाँ समुद्रतटपर ही एक-दूसरेसे भिड़ गये ॥ १४ ॥ मतवाले यदुवंशी रथों, हाथियों, घोड़ों, गधों, ऊँटों, खच्चरों, बैलों, भैंसों और मनुष्योंपर भी सवार होकर एक-दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे—मानो जंगली हाथी एक-दूसरेपर दाँतोंसे चोट कर रहे हों। सबकी सवारियोंपर ध्वजाएँ फहरा रही थीं, पैदल सैनिक भी आपसमें उलझ रहे थे ॥ १५ ॥ प्रद्युम्न साम्बसे, अक्रूर भोजसे, अनिरुद्ध सात्यकिसे, सुभद्र संग्रामजित्से, भगवान् श्रीकृष्णके भाई गद उसी नामके उनके पुत्रसे और सुमित्र सुरथसे युद्ध करने लगे। ये सभी बड़े भयङ्कर योद्धा थे और क्रोधमें भरकर एक दूसरेका नाश करनेपर तुल गये थे ॥ १६ ॥ इनके अतिरिक्त निशठ, उल्मुक, सहस्रजित्, शतजित् और भानु आदि यादव भी एक-दूसरेसे गुथ गये। भगवान् श्रीकृष्णकी मायाने तो इन्हें अत्यन्त मोहित कर ही रक्खा था, इधर मदिराके नशेने भी इन्हें अंधा बना दिया था ॥ १७ ॥ दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक, भोज, सात्वत, मधु, अर्बुद, माथुर, शूरसेन, विसर्जन, कुकुर और कुन्ति आदि वंशोंके लोग सौहार्द और प्रेमको भुलाकर आपसमें मार-काट करने लगे ॥ १८ ॥ मूढतावश पुत्र पिताका, भाई भाईका, भानजा मामाका, नाती नानाका, मित्र मित्रका, सुहृद् सुहृद्का, चाचा भतीजेका तथा एक गोत्रवाले आपसमें एक-दूसरेका खून करने लगे ॥ १९ ॥ अन्तमें जब उनके सब बाण समाप्त हो गये, धनुष टूट गये और शस्त्रास्त्र नष्ट-भ्रष्ट हो गये तब उन्होंने अपने हाथोंसे समुद्रतटपर लगी हुई एरका नामकी घास उखाड़नी शुरू की। यह वही घास थी, जो ऋषियोंके शापके कारण उत्पन्न हुए लोहमय मूसलके चूरेसे पैदा हुई थी ॥ २० ॥ हे राजन् ! उनके हाथोंमें आते ही वह घास वज्रके समान कठोर मुद्गरोंके रूपमें परिणत हो गयी। अब वे रोषमें भरकर उसी घासके द्वारा अपने विपक्षियोंपर प्रहार करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें मना किया, तो उन्होंने उनको और बलरामजीको भी अपना शत्रु समझ लिया। उन आततायियोंकी बुद्धि ऐसी मूढ हो रही थी कि वे उन्हें मारनेके लिये उनकी ओर दौड़ पड़े ॥ २१-२२ ॥ कुरुनन्दन ! अब भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी क्रोधमें भरकर युद्धभूमिमें इधर-उधर विचरने और मुट्ठी-की-मुट्ठी एरका घास उखाड़-उखाड़कर उन्हें मारने लगे। एरका घासकी मुट्ठी ही मुद्गरके समान चोट करती थी ॥ २३ ॥ जैसे बाँसोंकी रगड़से उत्पन्न होकर दावानल बाँसोंको ही भस्म कर देता है, वैसे ही ब्रह्मशापसे ग्रस्त और भगवान् श्रीकृष्णकी मायासे मोहित यदुवंशियोंके स्पर्द्धामूलक क्रोधने उनका ध्वंस कर दिया ॥ २४ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि समस्त यदुवंशियोंका संहार हो चुका, तब उन्होंने

यह सोचकर सन्तोषकी साँस ली कि पृथ्वीका बचा-खुचा भार भी उतर गया ॥ २५ ॥

परीक्षित् ! बलरामजीने समुद्रतटपर बैठकर एकाग्र-चित्तसे परमात्मचिन्तन करते हुए अपने आत्माको आत्म-स्वरूपमें ही स्थिर कर लिया और मनुष्यशरीर छोड़ दिया ॥ २६ ॥ जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे बड़े भाई बलरामजी परमपदमें लीन हो गये, तब वे एक पीपलके पेड़के तले जाकर चुपचाप धरतीपर ही बैठ गये ॥ २७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपनी अङ्गकान्तिसे देदीप्यमान चतुर्भुज रूप धारण कर रक्खा था और धूम-से रहित अग्निके समान दिशाओंको अन्धकाररहित—प्रकाशमान बना रहे थे ॥ २८ ॥ वर्षाकालीन मेघके समान साँवले शरीरसे तपे हुए सोनेके समान ज्योति निकल रही थी । वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न शोभायमान था । वे रेशमी पीताम्बरकी धोती और वैसा ही दुपट्टा धारण किये हुए थे । बड़ा ही मङ्गलमय रूप था ॥ २९ ॥ मुख-कमलपर सुन्दर मुसकान और कपोलोंपर नीली-नीली अलकें बड़ी ही सुहावनी लगती थीं । कमलके समान सुन्दर-सुन्दर एवं सुकुमार नेत्र थे । कानोंमें मकराकृत कुण्डल झिलमिला रहे थे ॥ ३० ॥ कमरमें करधनी, कंधेपर यज्ञोपवीत, माथेपर मुकुट, कलाइयोंमें कंगन, बाँहोंमें बाजूबंद, वक्षःस्थलपर हार, चरणोंमें नूपुर, अँगुलियोंमें अँगूठियाँ और गलेमें कौस्तुभमणि शोभायमान हो रही थी ॥ ३१ ॥ घुटनोंतक वनमाला लटकी हुई थी । शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध मूर्तिमान् होकर प्रभुकी सेवा कर रहे थे । उस समय भगवान् अपनी दाहिनी जाँघपर बायाँ चरण रखकर बैठे हुए थे । लाल-लाल तलवा रक्त कमलके समान चमक रहा था ॥ ३२ ॥

परीक्षित् ! जरा नामका एक बहेलिया था । उसने मूसलके बचे हुए टुकड़ेसे अपने बाणकी गाँसी बना ली थी । उसे दूरसे भगवान्का लाल-लाल तलवा हरिनके मुखके समान जान पड़ा । उसने उसे सचमुच हरिन समझकर अपने उसी बाणसे बींध दिया ॥ ३३ ॥ जब वह पास आया, तब उसने देखा कि 'अरे ! ये तो चतुर्भुज पुरुष हैं !' अब तो वह अपराध कर चुका था, इसलिये डरके मारे काँपने लगा और दैत्यदलन भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर सिर रखकर धरतीपर गिर पड़ा ॥ ३४ ॥ उसने कहा—'हे मधुसूदन ! मैंने अनजानमें यह पाप किया है । सचमुच मैं बहुत बड़ा पापी हूँ; परन्तु आप परमयशस्वी और निर्विकार हैं । आप कृपा करके मेरा अपराध क्षमा कीजिये ॥ ३५ ॥ सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् प्रभो ! महात्मा-लोग कहा करते हैं कि आपके स्मरणमात्रसे मनुष्योंका अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है । बड़े खेदकी बात है कि मैंने स्वयं आपका ही अनिष्ट कर दिया ॥ ३६ ॥ वैकुण्ठनाथ ! मैं निरपराध हरिणोंको मारनेवाला महापापी हूँ । आप मुझे अभी-अभी मार डालिये, क्योंकि मर जानेपर मैं फिर कभी आप-जैसे महापुरुषोंका ऐसा अपराध न करूँगा ॥ ३७ ॥ भगवन् ! सम्पूर्ण विद्याओंके पारदर्शी ब्रह्माजी और उनके पुत्र रुद्र आदि भी आपकी योगमायाका विलास नहीं समझ पाते; क्योंकि उनकी दृष्टि भी आपकी मायासे आवृत है । ऐसी अवस्थामें हमारे-जैसे पापयोनि लोग उसके विषयमें कह ही क्या सकते हैं !' ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे जरे ! तू डर मत, उठ-उठ ! यह तो तूने मेरे मनका काम किया है । जा, मेरी आज्ञासे तू उस स्वर्गमें निवास कर, जिसकी प्राप्ति बड़े-बड़े पुण्यवानोंको होती है ॥ ३९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्री-कृष्ण तो अपनी इच्छासे शरीर धारण करते हैं । जब उन्होंने जरा व्याधको यह आदेश दिया, तब उसने उनकी तीन बार परिक्रमा की, नमस्कार किया और विमानपर सवार होकर स्वर्गको चला गया ॥ ४० ॥

भगवान् श्रीकृष्णका सारथि दारुक उनके स्थानका पता लगाता हुआ उनके द्वारा धारण की हुई तुलसीकी गन्ध-से युक्त वायु सूँघकर और उससे उनके होनेके स्थानका अनुमान लगाकर सामनेकी ओर गया ॥ ४१ ॥ दारुकने वहाँ जाकर देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण पीपलके वृक्षके नीचे आसन लगाये बैठे हैं । असह्य तेजवाले आयुध मूर्तिमान् होकर उनकी सेवामें संलग्न हैं । उन्हें देखकर दारुकके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी । नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी । वह रथसे कूदकर भगवान्के चरणोंपर गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ उसने भगवान्से प्रार्थना की—'प्रभो ! रात्रिके समय चन्द्रमाके अस्त हो जानेपर राह चलनेवालेकी

परमधामगमनके पूर्वकी झाँकी [पृष्ठ ९५०

जैसी दशा हो जाती है, आपके चरणकमलोंका दर्शन न पाकर मेरी भी वैसी ही दशा हो गयी है। मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी है, चारों ओर अँधेरा छा गया है। अब न तो मुझे दिशाओंका ज्ञान है और न मेरे हृदयमें शान्ति ही है' ॥ ४३ ॥ परीक्षित्! अभी दारुक इस प्रकार कह ही रहा था कि उसके सामने ही भगवान्‌का गरुडध्वज रथ पताका और घोड़ोंके साथ आकाशमें उड़ गया ॥ ४४ ॥ उसके पीछे-पीछे भगवान्‌के दिव्य आयुध भी चले गये। यह सब देखकर दारुकके आश्चर्यकी सीमा न रही। तब भगवान्‌ने उससे कहा—॥४५॥ 'दारुक! अब तुम द्वारका चले जाओ और वहाँ यदुवंशियोंके पारस्परिक संहार, भैया बलरामजीकी परम गति और मेरे स्वधामगमनकी बात कहो' ॥ ४६ ॥ उनसे कहना कि 'अब तुमलोगोंको अपने परिवारवालोंके साथ द्वारकामें नहीं रहना चाहिये। मेरे न रहनेपर समुद्र उस नगरीको डुबो देगा ॥ ४७ ॥ सब लोग अपनी-अपनी धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब और मेरे माता-पिताको लेकर अर्जुनके संरक्षणमें इन्द्रप्रस्थ चले जायँ ॥ ४८ ॥ दारुक! तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट भागवतधर्मका आश्रय लो और ज्ञाननिष्ठ होकर सबकी उपेक्षा कर दो तथा इस दृश्यको मेरी मायाकी रचना समझकर शान्त हो जाओ' ॥४९॥ भगवान्‌का यह आदेश पाकर दारुकने उनकी परिक्रमा की और उनके चरणकमल अपने सिरपर रखकर बारंबार प्रणाम किया। तदनन्तर वह उदास मनसे द्वारकाके लिये चल पड़ा ॥ ५० ॥
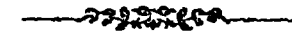
इकतीसवाँ अध्याय

श्रीभगवान्‌का स्वधामगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! दारुकके चले जानेपर ब्रह्माजी, शिव-पार्वती, इन्द्रादि लोकपाल, मरीचि आदि प्रजापति, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, पितर-सिद्ध, गन्धर्व-विद्याधर, नाग-चारण, यक्ष-राक्षस, किन्नर-अप्सराएँ तथा गरुडलोकके विभिन्न पक्षी अथवा मैत्रेय आदि ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम-प्रस्थानको देखनेके लिये बड़ी उत्सुकतासे वहाँ आये। वे सभी भगवान् श्रीकृष्णके जन्म और लीलाओंका गान अथवा वर्णन कर रहे थे। उनके विमानोंसे सारा आकाश भर-सा गया था। वे बड़ी भक्तिसे भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे ॥ १—४ ॥ सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजी और अपने विभूतिस्वरूप देवताओंको देखकर अपने आत्माको स्वरूपमें स्थित किया और कमलके समान नेत्र बंद कर लिये ॥ ५ ॥ भगवान्‌का श्रीविग्रह उपासकोंके ध्यान और धारणाका मङ्गलमय आधार और समस्त लोकोंके लिये परम रमणीय आश्रय है; इसलिये उन्होंने (योगियोंके समान) अग्निदेवतासम्बन्धी योगधारणाके द्वारा उसको जलाया नहीं, सशरीर अपने धाममें चले गये ॥ ६ ॥ उस समय स्वर्गमें नगारे बजने लगे और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके पीछे-पीछे इस लोकसे सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति और श्रीदेवी भी चली गयीं ॥ ७ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी गति मन और वाणीके परे है; तभी तो जब भगवान् अपने धाममें प्रवेश करने लगे, तब ब्रह्मादि देवता भी उन्हें न देख सके। इस घटनासे उन्हें बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ८ ॥ जैसे बिजली मेघमण्डलको छोड़कर जब आकाशमें प्रवेश करती है, तब मनुष्य उसकी चाल नहीं देख पाते, वैसे ही बड़े-बड़े देवता भी श्रीकृष्णकी गतिके सम्बन्धमें कुछ न जान सके ॥ ९ ॥ ब्रह्माजी और भगवान् शङ्कर आदि देवता भगवान्‌की यह परमयोगमयी गति देखकर बड़े विस्मयके साथ उसकी प्रशंसा करते अपने-अपने लोकमें चले गये ॥ १० ॥

परीक्षित्! जैसे नट अनेकों प्रकारके स्वाँग बनाता है, परन्तु रहता है उन सबसे निर्लेप; वैसे ही भगवान्‌का मनुष्योंके समान जन्म लेना, लीला करना और फिर उसे संवरण कर लेना उनकी मायाका विलासमात्र है—अभिनय-मात्र है। वे स्वयं ही इस जगत्‌की सृष्टि करके इसमें प्रवेश करके विहार करते हैं और अन्तमें संहार-लीला करके अपने अनन्त महिमामय स्वरूपमें ही स्थित हो जाते हैं ॥ ११ ॥ सान्दीपनि गुरुका पुत्र यमपुरी चला गया था, परन्तु उसे वे मनुष्य-शरीरके साथ लौटा लाये। तुम्हारा ही शरीर ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था; परन्तु उन्होंने तुम्हें जीवित कर दिया।

वास्तवमें उनकी शरणागतवत्सलता ऐसी ही है। और तो क्या कहूँ, उन्होंने कालोंके महाकाल भगवान् शङ्करको भी युद्धमें जीत लिया और अत्यन्त अपराधी—अपने शरीरपर ही प्रहार करनेवाले व्याधको भी सदेह स्वर्ग भेज दिया। प्रिय परीक्षित्! ऐसी स्थितिमें क्या वे अपने शरीरको सदाके लिये यहाँ नहीं रख सकते थे? अवश्य ही रख सकते थे॥ १२॥ यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्की स्थिति, उत्पत्ति और संहारके निरपेक्ष कारण हैं, तथापि उन्होंने अपने शरीरको इस संसारमें बचा रखनेकी इच्छा नहीं की। इससे उन्होंने यह दिखाया कि इस मनुष्य-शरीरसे मुझे क्या प्रयोजन है? आत्मनिष्ठ पुरुषोंके लिये यही आदर्श है कि वे शरीर रखनेकी चेष्टा न करें॥ १३॥ जो पुरुष प्रातःकाल उठकर भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमनकी इस कथाका एकाग्रता और भक्तिके साथ कीर्तन करेगा, उसे भगवान्का वही सर्वश्रेष्ठ परमपद प्राप्त होगा॥ १४॥

इधर दारुक भगवान् श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल होकर द्वारका आया और वसुदेवजी तथा उग्रसेनके चरणोंपर गिर-गिरकर उन्हें आँसुओंसे भिगोने लगा॥ १५॥ परीक्षित्! उसने अपनेको सँभालकर यदुवंशियोंके विनाशका पूरा-पूरा विवरण कह सुनाया। उसे सुनकर लोग बहुत ही दुःखी हुए और मारे शोकके मूर्च्छित हो गये॥ १६॥ भगवान् श्रीकृष्णके वियोगसे विह्वल होकर वे लोग सिर पीटते हुए वहाँ तुरंत पहुँचे, जहाँ उनके भाई-बन्धु निष्प्राण होकर पड़े हुए थे॥ १७॥ देवकी, रोहिणी और वसुदेवजी अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण और बलरामको न देखकर शोककी पीडासे बेहोश हो गये॥ १८॥ उन्होंने भगवद्विरहसे व्याकुल होकर वहीं अपने प्राण छोड़ दिये। स्त्रियोंने अपने-अपने पतियोंके शव पहचानकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और उनके साथ चितापर बैठकर भस्म हो गयीं॥ १९॥ बलरामजीकी पत्नियाँ उनके शरीरको, वसुदेवजीकी पत्नियाँ उनके शवको और भगवान्की पुत्रवधुएँ अपने पतियोंकी लाशोंको लेकर अग्निमें प्रवेश कर गयीं। भगवान् श्रीकृष्णकी रुक्मिणी आदि पटरानियाँ उनके ध्यानमें मग्न होकर अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं॥ २०॥

परीक्षित्! अर्जुन अपने प्रियतम और सखा भगवान् श्रीकृष्णके विरहसे पहले तो अत्यन्त व्याकुल हो गये; फिर उन्होंने उन्हींके गीतोक्त सदुपदेशोंका स्मरण करके अपने मनको सँभाला॥ २१॥ यदुवंशके मृत व्यक्तियोंमें जिनको कोई पिण्ड देनेवाला न था, उनका श्राद्ध अर्जुनने क्रमशः विधिपूर्वक करवाया॥ २२॥ महाराज! भगवान्के न रहनेपर समुद्रने एकमात्र भगवान् श्रीकृष्णका निवास-स्थान छोड़कर एक ही क्षणमें सारी द्वारका डुबो दी॥ २३॥ भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ अब भी सदा-सर्वदा निवास करते हैं। वह स्थान स्मरणमात्रसे ही सारे पाप-तापोंका नाश करनेवाला और सर्वमङ्गलोंको भी मङ्गल बनानेवाला है॥ २४॥ प्रिय परीक्षित्! पिण्डदानके अनन्तर बची-खुची स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंको लेकर अर्जुन इन्द्रप्रस्थ आये। वहाँ सबको यथायोग्य बसाकर अनिरुद्धके पुत्र वज्रका राज्याभिषेक कर दिया॥ २५॥ राजन्! तुम्हारे दादा युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंको अर्जुनसे ही यह बात मालूम हुई कि यदुवंशियोंका संहार हो गया है। तब उन्होंने अपने वंशधर तुम्हें राज्यपदपर अभिषिक्त करके हिमालयकी वीरयात्रा की॥ २६॥ मैंने तुम्हें देवताओंके भी आराध्यदेव भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मलीला और कर्मलीला सुनायी। जो मनुष्य श्रद्धाके साथ इसका कीर्तन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २७॥ परीक्षित्! जो मनुष्य इस प्रकार भक्तभयहारी निखिल सौन्दर्यमाधुर्यनिधि श्रीकृष्णचन्द्रके अवतार-सम्बन्धी रुचिर पराक्रम और इस श्रीमद्भागवत महापुराणमें तथा दूसरे पुराणोंमें वर्णित परमानन्दमयी बाललीला, कैशोरलीला आदिका सङ्कीर्तन करता है, वह परमहंस मुनीन्द्रोंके अन्तिम प्राप्तव्य श्रीकृष्णके चरणोंमें पराभक्ति प्राप्त करता है॥ २८॥

इति एकादश स्कन्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवतमहापुराण

द्वादश स्कन्ध

सगुणो निर्गुणो भावः शून्याशून्यात्मकस्तथा ।
लीलाविलासो यस्यैव तं वन्दे बालवत्सपम् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमहापुराण

द्वादश स्कन्ध

पहला अध्याय

कलियुगके राजवंशोंका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण जब अपने परमधाम पधार गये, तब पृथ्वीपर किस वंशका राज्य हुआ? तथा अब किसका राज्य होगा? आप कृपा करके मुझे यह बतलाइये॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—प्रिय परीक्षित्! मैंने तुम्हें नवें स्कन्धमें यह बात बतलायी थी कि जरासन्धके पिता बृहद्रथके वंशमें अन्तिम राजा होगा पुरञ्जय अथवा रिपुञ्जय। उसके मन्त्रीका नाम होगा शुनक। वह अपने स्वामीको मार डालेगा और अपने पुत्र प्रद्योतको राजसिंहासनपर अभिषिक्त करेगा। प्रद्योतका पुत्र होगा पालक, पालकका विशाखयूप, विशाखयूपका राजक और राजकका पुत्र होगा नन्दिवर्द्धन। प्रद्योतवंशमें यही पाँच नरपति होंगे। इनकी संज्ञा होगी 'प्रद्योतन'। ये एक सौ अड़तीस वर्षतक पृथ्वीका उपभोग करेंगे॥ २—४॥

इसके पश्चात् शिशुनाग नामका राजा होगा। शिशुनागका काकवर्ण, उसका क्षेमधर्मा और क्षेमधर्माका पुत्र होगा क्षेत्रज्ञ॥ ५॥ क्षेत्रज्ञका विधिसार, उसका अजातशत्रु, फिर दर्भक और दर्भकका पुत्र अजय होगा॥ ६॥ अजयसे नन्दिवर्द्धन और उससे महानन्दिका जन्म होगा। शिशुनाग-वंशमें ये दस राजा होंगे। ये सब मिलकर कलियुगमें तीन सौ साठ वर्षतक पृथ्वीपर राज्य करेंगे। प्रिय परीक्षित्! महानन्दिकी शूद्रा पत्नीके गर्भसे नन्द नामका पुत्र होगा। वह बड़ा बलवान् होगा। महानन्दि 'महापद्म' नामक निधिका अधिपति होगा। इसीलिये लोग उसे 'महापद्म' भी कहेंगे। वह क्षत्रिय राजाओंके विनाशका कारण बनेगा। तभीसे राजालोग प्रायः शूद्र और अधार्मिक हो जायँगे॥ ७—९॥

महापद्म पृथ्वीका एकछत्र शासक होगा। उसके शासनका उल्लङ्घन कोई भी नहीं कर सकेगा। क्षत्रियोंके विनाशमें हेतु होनेकी दृष्टिसे तो उसे दूसरा परशुराम ही समझना चाहिये॥ १०॥ उसके सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे। वे सभी राजा होंगे और सौ वर्षतक इस पृथ्वीका उपभोग करेंगे॥ ११॥ कौटल्य, वात्स्यायन तथा चाणक्यके नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण विश्वविख्यात नन्द और उनके सुमाल्य आदि आठ पुत्रोंका नाश कर डालेगा। उनका नाश हो जानेपर कलियुगमें मौर्यवंशी नरपति पृथ्वीका राज्य करेंगे॥ १२॥ वही ब्राह्मण पहले-पहल चन्द्रगुप्त मौर्यको राजाके पदपर अभिषिक्त करेगा। चन्द्रगुप्तका पुत्र होगा वारिसार और वारिसारका अशोकवर्द्धन॥ १३॥ अशोकवर्द्धनका पुत्र होगा सुयश। सुयशका सङ्गत, सङ्गतका शालिशूक और शालिशूकका सोमशर्मा॥ १४॥ सोमशर्माका शतधन्वा और शतधन्वाका पुत्र बृहद्रथ होगा। कुरुवंशविभूषण परीक्षित्! मौर्यवंशके ये दस* नरपति कलियुगमें एक सौ सैंतीस वर्षतक पृथ्वीका उपभोग करेंगे। बृहद्रथका सेनापति होगा पुष्पमित्र शुङ्ग। वह अपने स्वामीको मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। पुष्पमित्रका अग्निमित्र और अग्निमित्रका सुज्येष्ठ होगा॥ १५-१६॥ सुज्येष्ठका वसुमित्र, वसुमित्रका भद्रक और भद्रकका पुलिन्द, पुलिन्दका घोष और घोषका पुत्र होगा वज्रमित्र॥ १७॥ वज्र-

---

* मौर्योंकी संख्या चन्द्रगुप्तको मिलाकर नौ ही होती है। विष्णुपुराणादिमें चन्द्रगुप्तसे पाँचवें दशरथ नामके एक और मौर्यवंशी राजाका उल्लेख मिलता है। उसीको लेकर यहाँ दस संख्या समझनी चाहिये।

मित्रका भागवत और भागवतका पुत्र होगा देवभूति। शुङ्गवंशके ये दस नरपति एक सौ बारह वर्षतक पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ १८ ॥

परीक्षित्! शुङ्गवंशी नरपतियोंका राज्यकाल समाप्त होनेपर यह पृथ्वी कण्ववंशी नरपतियोंके हाथमें चली जायगी। कण्ववंशी नरपति अपने पूर्ववर्ती राजाओंकी अपेक्षा कम गुणवाले होंगे। शुङ्गवंशका अन्तिम नरपति देवभूति बड़ा ही लम्पट होगा। उसे उसका मन्त्री कण्ववंशी वसुदेव मार डालेगा और अपने बुद्धिबलसे स्वयं राज्य करेगा। वसुदेवका पुत्र होगा भूमित्र, भूमित्रका नारायण और नारायणका सुशर्मा। सुशर्मा बड़ा यशस्वी होगा ॥ १९-२० ॥ कण्ववंशके ये चार नरपति काण्वायन कहलायेंगे और कलियुगमें तीन सौ पैंतालीस वर्षतक पृथ्वीका उपभोग करेंगे ॥ २१ ॥ प्रिय परीक्षित्! कण्ववंशी सुशर्माका एक शूद्र सेवक होगा—बली। वह अन्ध्रजातिका एवं बड़ा दुष्ट होगा। वह सुशर्माको मारकर कुछ समयतक स्वयं पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ २२ ॥ इसके बाद उसका भाई कृष्ण राजा होगा। कृष्णका पुत्र श्रीशान्तकर्ण और उसका पौर्णमास होगा ॥ २३ ॥ पौर्णमासका लम्बोदर और लम्बोदरका पुत्र चिबिलक होगा। चिबिलकका मेघस्वाति, मेघस्वातिका अटमान, अटमानका अनिष्टकर्मा, अनिष्टकर्माका हालेय, हालेयका तलक, तलकका पुरीषभीरु और पुरीषभीरुका पुत्र होगा राजा सुनन्दन ॥ २४-२५ ॥ परीक्षित्! सुनन्दनका पुत्र होगा चकोर; चकोरके आठ पुत्र होंगे, जो सभी 'बहु' कहलायेंगे। इनमें सबसे छोटेका नाम होगा शिवस्वाति। वह बड़ा वीर होगा और शत्रुओंका दमन करेगा। शिवस्वातिका गोमतीपुत्र और उसका पुत्र होगा पुरीमान् ॥ २६ ॥ पुरीमान्का मेदःशिरा, मेदःशिराका शिवस्कन्द, शिवस्कन्दका यज्ञश्री, यज्ञश्रीका विजय और विजयके दो पुत्र होंगे—चन्द्रविज्ञ और लोमधि ॥ २७ ॥ परीक्षित्! ये तीस राजा चार सौ छप्पन वर्षतक पृथ्वीका राज्य भोगेंगे ॥ २८ ॥

परीक्षित्! इसके पश्चात् अवभृति-नगरीके सात आभीर, दस गर्दभी और सोलह कङ्क पृथ्वीका राज्य करेंगे। ये सब-के-सब बड़े लोभी होंगे ॥ २९ ॥ इनके बाद आठ यवन और चौदह तुर्क राज्य करेंगे। इसके बाद दस गुरुण्ड और ग्यारह मौन नरपति होंगे ॥ ३० ॥ मौनोंके अतिरिक्त ये सब एक हजार निन्यानबे वर्षतक पृथ्वीका उपभोग करेंगे। तथा ग्यारह मौन नरपति तीन सौ वर्षतक पृथ्वीका शासन करेंगे। जब उनका राज्यकाल समाप्त हो जायगा, तब किलिकिला नामकी नगरीमें भूतनन्द नामका राजा होगा। भूतनन्दका वङ्गिरि, वङ्गिरिका भाई शिशुनन्दि तथा यशोनन्दि और प्रवीरक—ये एक सौ छः वर्षतक राज्य करेंगे ॥ ३१-३३ ॥ इनके तेरह पुत्र होंगे और वे सब-के-सब बाह्लिक कहलायेंगे। उनके पश्चात् पुष्पमित्र नामक क्षत्रिय और उसके पुत्र दुर्मित्रका राज्य होगा ॥ ३४ ॥ परीक्षित्! बाह्लिकवंशी नरपति एक साथ ही विभिन्न प्रदेशोंमें राज्य करेंगे। उनमेंसे सात अन्ध्र देशके तथा सात ही कोसलदेशके अधिपति होंगे, कुछ विदूर-भूमिके शासक और कुछ निषध देशके स्वामी होंगे ॥ ३५ ॥

इनके बाद मगध देशका राजा होगा विश्वस्फूर्जि। यह पूर्वोक्त पुरञ्जयके अतिरिक्त द्वितीय पुरञ्जय कहलायेगा। यह ब्राह्मणादि उच्च वर्णोंको पुलिन्द, यदु और मद्र आदि म्लेच्छप्राय जातियोंके रूपमें परिणत कर देगा ॥ ३६ ॥ इसकी बुद्धि इतनी दुष्ट होगी कि यह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका नाश करके शूद्रप्राय जनताकी रक्षा करेगा। यह अपने बल-वीर्यसे क्षत्रियोंको उजाड़ देगा और पद्मवती पुरीको राजधानी बनाकर हरिद्वारसे लेकर प्रयागपर्यन्त सुरक्षित पृथ्वीका राज्य करेगा ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जायगा त्यों-त्यों सौराष्ट्र, अवन्ती, आभीर, शूर, अर्बुद और मालव देशके ब्राह्मणगण संस्कारशून्य हो जायँगे तथा राजालोग भी शूद्रतुल्य हो जायँगे ॥ ३८ ॥ सिन्धुतट, चन्द्रभागाका तटवर्ती प्रदेश, कौन्तीपुरी और काश्मीरमण्डलपर प्रायः शूद्रोंका, संस्कार एवं ब्रह्मतेजसे हीन नाममात्रके द्विजोंका और म्लेच्छोंका राज्य होगा ॥ ३९ ॥

परीक्षित्! ये सब-के-सब राजा आचार-विचारमें म्लेच्छप्राय होंगे। ये सब एक ही समय भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें राज्य करेंगे। ये सब-के-सब परले सिरेके झूठे, अधार्मिक और स्वल्प दान करनेवाले होंगे। छोटी-छोटी बातोंको लेकर ही ये क्रोधके मारे आगबबूला हो जाया

करेंगे ॥ ४० ॥ ये दुष्ट लोग स्त्री, बच्चों, गौओं, ब्राह्मणोंको मारनेमें भी नहीं हिचकेंगे। दूसरेकी स्त्री और धन हथिया लेनेके लिये ये सर्वदा उत्सुक रहेंगे। न तो इन्हें बढ़ते देर लगेगी और न तो घटते। क्षणमें रुष्ट तो क्षणमें तुष्ट। इनकी शक्ति और आयु थोड़ी होगी ॥ ४१ ॥ इनमें परम्परागत संस्कार नहीं होंगे। ये अपने कर्तव्य-कर्मका पालन नहीं करेंगे। रजोगुण और तमोगुणसे अंधे बने रहेंगे। राजाके वेषमें वे म्लेच्छ ही होंगे। वे लूट-खसोटकर अपनी प्रजाका खून चूसेंगे ॥ ४२ ॥ जब ऐसे लोगोंका शासन होगा, तो देशकी प्रजामें भी वैसे ही स्वभाव, आचरण और भाषणकी वृद्धि हो जायगी। राजालोग तो उनका शोषण करेंगे ही, वे आपसमें भी एक दूसरेको उत्पीड़ित करेंगे और अन्ततः सब-के-सब नष्ट हो जायँगे ॥ ४३ ॥

दूसरा अध्याय

कलियुगके धर्म

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! समय बड़ा बलवान् है; ज्यों-ज्यों घोर कलियुग आता जायगा, त्यों-त्यों उत्तरोत्तर धर्म, सत्य, पवित्रता, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरणशक्तिका लोप होता जायगा ॥ १ ॥ कलियुगमें जिसके पास धन होगा, उसीको लोग कुलीन, सदाचारी और सद्गुणी मानेंगे। जिसके हाथमें शक्ति होगी वही धर्म और न्यायकी व्यवस्था अपने अनुकूल करा सकेगा ॥ २ ॥ विवाह-सम्बन्धके लिये कुल-शील-योग्यता आदिकी परख-निरख नहीं रहेगी, युवक-युवतीकी पारस्परिक रुचिसे ही सम्बन्ध हो जायगा। व्यवहारकी निपुणता सचाई और ईमानदारीमें नहीं रहेगी; जो जितना छल-कपट कर सकेगा, वह उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायगा। स्त्री और पुरुषकी श्रेष्ठताका आधार उनका शील-संयम न होकर केवल रतिकौशल ही रहेगा। ब्राह्मणकी पहचान उसके गुण-स्वभावसे नहीं यज्ञोपवीतसे हुआ करेगी ॥ ३ ॥ वस्त्र, दण्ड-कमण्डलु आदिसे ही ब्रह्मचारी, संन्यासी आदि आश्रमियोंकी पहचान होगी और एक-दूसरेका चिह्न स्वीकार कर लेना ही एकसे दूसरे आश्रममें प्रवेशका स्वरूप होगा। जो घूस देने या धन खर्च करनेमें असमर्थ होगा, उसे अदालतोंसे ठीक-ठीक न्याय न मिल सकेगा। जो बोल-चालमें जितना चालाक होगा, उसे उतना ही बड़ा पण्डित माना जायगा ॥ ४ ॥ असाधुताकी—दोषी होनेकी एक ही पहचान रहेगी—गरीब होना। जो जितना अधिक दम्भ-पाखण्ड कर सकेगा, उसे उतना ही बड़ा साधु समझा जायगा। विवाहके लिये एक-दूसरेकी स्वीकृति ही पर्याप्त होगी, शास्त्रीय विधि-विधानकी—संस्कार आदिकी कोई आवश्यकता न समझी जायगी। बाल आदि सँवारकर कपड़े-लत्तेसे लैस हो जाना ही स्नान समझा जायगा ॥ ५ ॥ लोग दूरके तालाबको तीर्थ मानेंगे और निकटके तीर्थ गङ्गा-गोमती, माता-पिता आदिकी उपेक्षा करेंगे। सिरपर बड़े-बड़े बाल—काकुल रखाना ही शारीरिक सौन्दर्यका चिह्न समझा जायगा और जीवनका सबसे बड़ा पुरुषार्थ होगा—अपना पेट भर लेना। जो जितनी ढिठाईसे बात कर सकेगा, उसे उतना ही सच्चा समझा जायगा ॥ ६ ॥ योग्यता-चतुराईका सबसे बड़ा लक्षण यह होगा कि मनुष्य अपने कुटुम्बका पालन कर ले। धर्मका सेवन यशके लिये किया जायगा। इस प्रकार जब सारी पृथ्वीपर दुष्टोंका बोलबाला हो जायगा, तब राजा होनेका कोई नियम न रहेगा; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रोंमें जो बली होगा, वही राजा बन बैठेगा। उस समयके नीच राजा अत्यन्त निर्दय एवं क्रूर होंगे; लोभी तो इतने होंगे कि उनमें और लुटेरोंमें कोई अन्तर न किया जा सकेगा। वे प्रजाकी पूँजी एवं पत्नियोंतकको छीन लेंगे। उनसे डरकर प्रजा पहाड़ों और जंगलोंमें भाग जायगी। उस समय प्रजा तरह-तरहके शाक, कन्द-मूल, मांस, मधु, फल-फूल और बीज-गुठली आदि खा-खाकर अपना पेट भरेगी ॥ ७—९ ॥ कभी वर्षा न होगी—सूखा पड़ जायगा; तो कभी कर-पर-कर लगाये जायँगे। कभी कड़ाकेकी सर्दी पड़ेगी तो कभी पाला पड़ेगा, कभी आँधी चलेगी, कभी गरमी

पड़ेगी, तो कभी बाढ़ आ जायगी। इन उत्पातोंसे तथा आपसके सङ्घर्षसे प्रजा अत्यन्त पीड़ित होगी, नष्ट हो जायगी ॥ १० ॥ लोग भूख-प्यास तथा नाना प्रकारकी चिन्ताओंसे दुखी रहेंगे। रोगोंसे तो उन्हें छुटकारा ही न मिलेगा। कलियुगमें मनुष्योंकी परमायु केवल बीस या तीस वर्षकी होगी ॥ ११ ॥

परीक्षित्! कलिकालके दोषसे प्राणियोंके शरीर छोटे-छोटे, क्षीण और रोगग्रस्त होने लगेंगे। वर्ण और आश्रमोंका धर्म बतलानेवाला वेद-मार्ग नष्टप्राय हो जायगा ॥१२॥ धर्ममें पाखण्डकी प्रधानता हो जायगी। राजे-महाराजे डाकू-लुटेरोंके समान हो जायँगे। मनुष्य चोरी, झूठ तथा निरपराध हिंसा आदि नाना प्रकारके कुकर्मोंसे जीविका चलाने लगेंगे ॥ १३ ॥ चारों वर्णोंके लोग शूद्रोंके समान हो जायँगे। गौएँ बकरियोंकी तरह छोटी-छोटी और कम दूध देनेवाली हो जायँगी। वानप्रस्थी और संन्यासी आदि विरक्त आश्रमवाले भी घर-गृहस्थी जुटाकर गृहस्थोंका-सा व्यापार करने लगेंगे। जिनसे वैवाहिक सम्बन्ध है, उन्हींको अपना सम्बन्धी माना जायगा ॥ १४ ॥ धान, जौ, गेहूँ आदि धान्योंके पौदे छोटे-छोटे होने लगेंगे। वृक्षोंमें अधिकांश शमीके समान छोटे और कँटीले वृक्ष ही रह जायँगे। बादलोंमें बिजली तो बहुत चमकेगी, परन्तु वर्षा कम होगी। गृहस्थोंके घर अतिथि-सत्कार या वेदध्वनिसे रहित होनेके कारण अथवा जनसंख्या घट जानेके कारण सूने-सूने हो जायँगे ॥ १५ ॥ परीक्षित्! अधिक क्या कहें—कलियुगका अन्त होते-होते मनुष्योंका स्वभाव गधों-जैसा दुःसह बन जायगा, लोग प्रायः गृहस्थीका भार ढोनेवाले और विषयी हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें धर्मकी रक्षा करनेके लिये सत्त्वगुण स्वीकार करके स्वयं भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे ॥ १६ ॥

प्रिय परीक्षित्! सर्वव्यापक भगवान् विष्णु सर्वशक्तिमान् हैं। वे सर्वस्वरूप होनेपर भी चराचर जगत्के सच्चे शिक्षक—सद्गुरु हैं। वे साधु—सज्जन पुरुषोंके धर्मकी रक्षाके लिये, उनके कर्मका बन्धन काटकर उन्हें जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं ॥ १७ ॥ उन दिनों शम्भल-ग्राममें विष्णुयश नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। उनका हृदय बड़ा उदार एवं भगवद्भक्तिसे पूर्ण होगा। उन्हींके घर कल्किभगवान् अवतार ग्रहण करेंगे ॥१८॥ श्रीभगवान् ही अष्टसिद्धियोंके और समस्त सद्गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। समस्त चराचर जगत्के वे ही रक्षक और स्वामी हैं। वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर दुष्टोंको तलवारके घाट उतारकर ठीक करेंगे ॥ १९ ॥ उनके रोम-रोमसे अतुलनीय तेजकी किरणें छिटकती होंगी। वे अपने शीघ्रगामी घोड़ेसे पृथ्वीपर सर्वत्र विचरण करेंगे और राजाके वेषमें छिपकर रहनेवाले कोटि-कोटि डाकुओंका संहार करेंगे ॥ २० ॥

प्रिय परीक्षित्! जब सब डाकुओंका संहार हो चुकेगा, तब नगरकी और देशकी सारी प्रजाका हृदय पवित्रतासे भर जायगा; क्योंकि भगवान् कल्किके शरीरमें लगे हुए अङ्गरागका स्पर्श पाकर अत्यन्त पवित्र हुई वायु उनका स्पर्श करेगी और इस प्रकार वे भगवान्के श्रीविग्रहकी दिव्य गन्ध प्राप्त कर सकेंगे ॥ २१ ॥ उनके पवित्र हृदयोंमें सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव विराजमान होंगे और फिर उनकी सन्तान पहलेकी भाँति हृष्ट-पुष्ट और बलवान् होने लगेगी ॥ २२ ॥ प्रजाके नयन-मनोहारी हरि ही धर्मके रक्षक और स्वामी हैं। वे ही भगवान् जब कल्किके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे, उसी समय सत्ययुगका प्रारम्भ हो जायगा और प्रजाकी सन्तान-परम्परा स्वयं ही सत्त्वगुणसे युक्त हो जायगी ॥ २३ ॥ जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति एक ही समय एक ही साथ पुष्य नक्षत्रके प्रथम पलमें प्रवेश करते हैं, एक राशिपर आते हैं, उसी समय सत्ययुगका प्रारम्भ होता है ॥ २४ ॥

परीक्षित्! चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जितने राजा हो गये हैं या होंगे, उन सबका मैंने संक्षेपसे वर्णन कर दिया ॥ २५ ॥ तुम्हारे जन्मसे लेकर राजा नन्दके अभिषेकतक एक हजार, एक सौ पंद्रह वर्षका समय लगेगा ॥ २६ ॥ जिस समय आकाशमें सप्तर्षियोंका उदय होता है, उस समय पहले उनमेंसे दो ही तारे दिखायी पड़ते हैं। उनके बीचमें दक्षिणोत्तर रेखापर समभागमें अश्विनी आदि नक्षत्रोंमेंसे एक नक्षत्र दिखायी

पड़ता है ॥ २७ ॥ उस नक्षत्रके साथ सप्तर्षिगण मनुष्योंकी गणनासे सौ वर्षतक रहते हैं। वे तुम्हारे जन्मके समय और इस समय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥ २८ ॥

स्वयं सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् भगवान् ही शुद्ध सत्त्वमय विग्रहके साथ श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुए थे। वे जिस समय अपनी लीला संवरण करके परमधामको पधार गये, उसी समय कलियुगने संसारमें प्रवेश किया। उसीके कारण मनुष्योंकी मति-गति पापकी ओर ढुलक गयी॥ २९ ॥ जबतक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमलोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते रहे, तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना पैर न जमा सका ॥ ३० ॥ परीक्षित्! जिस समय सप्तर्षि मघा-नक्षत्रपर विचरण करते रहते हैं, उसी समय कलियुगका प्रारम्भ होता है। कलियुगकी आयु देवताओंकी वर्षगणनासे बारह सौ वर्षोंकी अर्थात् मनुष्योंकी गणनाके अनुसार चार लाख बत्तीस हजार वर्षकी है ॥ ३१ ॥ जिस समय सप्तर्षि मघासे चलकर पूर्वाषाढ़ा-नक्षत्रमें जा चुके होंगे, उस समय राजा नन्दका राज्य रहेगा। तभीसे कलियुगकी वृद्धि शुरू होगी ॥ ३२ ॥ पुरातत्त्ववेत्ता ऐतिहासिक विद्वानोंका कहना है कि जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णने अपने परम-धामको प्रयाण किया, उसी दिन, उसी समय कलियुगका प्रारम्भ हो गया ॥ ३३ ॥ परीक्षित्! जब देवताओंकी वर्षगणनाके अनुसार एक हजार वर्ष बीत चुकेंगे, तब कलियुगके अन्तिम दिनोंमें फिरसे कल्किभगवान्की कृपासे मनुष्योंके मनमें सात्त्विकताका सञ्चार होगा, लोग अपने वास्तविक स्वरूपको जान सकेंगे और तभीसे सत्ययुगका प्रारम्भ भी होगा ॥ ३४ ॥

परीक्षित्! मैंने तो तुमसे केवल मनुवंशका, सो भी संक्षेपसे वर्णन किया है। जैसे मनुवंशकी गणना होती है, वैसे ही प्रत्येक युगमें ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रोंकी भी वंशपरम्परा समझनी चाहिये ॥ ३५ ॥ राजन्! जिन पुरुषों और महात्माओंका वर्णन मैंने तुमसे किया है, अब केवल नामसे ही उनकी पहचान होती है। अब वे नहीं हैं, केवल उनकी कथा रह गयी है। अब उनकी कीर्ति ही पृथ्वीपर जहाँ-तहाँ सुननेको मिलती है ॥ ३६ ॥ भीष्मपितामहके पिता राजा शन्तनुके भाई देवापि और इक्ष्वाकुवंशी मरु इस समय कलापग्राममें स्थित हैं। वे बहुत बड़े योगबलसे युक्त हैं ॥ ३७ ॥ कलियुगके अन्त-में कल्किभगवान्की आज्ञासे वे फिर यहाँ आयेंगे और पहलेकी भाँति ही वर्णाश्रमधर्मका विस्तार करेंगे ॥ ३८ ॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये ही चार युग हैं; ये पूर्वोक्त क्रमके अनुसार अपने-अपने समयमें पृथ्वीके प्राणियोंपर अपना प्रभाव दिखाते रहते हैं ॥ ३९ ॥ परीक्षित्! मैंने तुमसे जिन राजाओंका वर्णन किया है, वे सब और उनके अतिरिक्त दूसरे राजा भी इस पृथ्वीको 'मेरी-मेरी' कहते रहे, परन्तु अन्तमें मरकर धूलमें मिल गये ॥ ४० ॥ इस शरीरको भले ही कोई राजा कह ले; परन्तु अन्तमें यह कीड़ा, विष्ठा अथवा राखके रूपमें ही परिणत होगा, राख ही होकर रहेगा। इसी शरीरके या इसके सम्बन्धियोंके लिये जो किसी भी प्राणीको सताता है, वह न तो अपना स्वार्थ जानता है और न तो पर-मार्थ। क्योंकि प्राणियोंको सताना तो नरकका द्वार है ॥ ४१ ॥ वे लोग यही सोचा करते हैं कि मेरे दादा-परदादा इस अखण्ड भूमण्डलका शासन करते थे; अब यह मेरे अधीन किस प्रकार रहे और मेरे बाद मेरे बेटे-पोते, मेरे वंशज किस प्रकार इसका उपभोग करें ॥ ४२ ॥ वे मूर्ख इस आग, पानी और मिट्टीके शरीरको अपना आपा मान बैठते हैं और बड़े अभिमान-के साथ डींग हाँकते हैं कि यह पृथ्वी मेरी है। अन्तमें वे शरीर और पृथ्वी दोनोंको छोड़कर स्वयं ही अदृश्य हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ प्रिय परीक्षित्! जो-जो नरपति बड़े उत्साह और बल-पौरुषसे इस पृथ्वीके उपभोगमें लगे रहे, उन सबको कालने अपने विकराल गालमें धर दबाया। अब केवल इतिहासमें उनकी कहानी ही शेष रह गयी है ॥ ४४ ॥

तीसरा अध्याय

राज्य, युगधर्म और कलियुगके दोषोंसे बचनेका उपाय—नामसङ्कीर्तन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब पृथ्वी देखती है कि राजालोग मुझपर विजय प्राप्त करनेके लिये उतावले हो रहे हैं, तब वह हँसने लगती है और कहती है—"कितने आश्चर्यकी बात है कि ये राजालोग, जो स्वयं मौतके खिलौने हैं, मुझे जीतना चाहते हैं ॥ १ ॥ राजाओंसे यह बात छिपी नहीं है कि वे एक-न-एक दिन मर जायँगे, फिर भी वे व्यर्थमें ही मुझे जीतनेकी कामना करते हैं। सचमुच इस कामनासे अंधे होनेके कारण ही वे पानीके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर शरीरपर विश्वास कर बैठते हैं और धोखा खाते हैं ॥ २ ॥ वे सोचते हैं कि 'हम पहले मनके सहित अपनी पाँचों इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करेंगे—अपने भीतरी शत्रुओंको वशमें करेंगे; क्योंकि इनको जीते बिना बाहरी शत्रुओं-को जीतना कठिन है। उसके बाद अपने शत्रुके मन्त्रियों, अमात्यों, नागरिकों, नेताओं और समस्त सेनाको भी वशमें कर लेंगे। जो भी हमारे विजय-मार्गमें काँटे बोयेगा, उसे हम अवश्य जीत लेंगे ॥ ३ ॥ इस प्रकार धीरे-धीरे क्रमसे सारी पृथ्वी हमारे अधीन हो जायगी और फिर तो समुद्र ही हमारे राज्यकी खाईका काम करेगा।' इस प्रकार वे अपने मनमें अनेकों आशाएँ बाँध लेते हैं और उन्हें यह बात बिल्कुल नहीं सूझती कि उनके सिरपर काल सवार है ॥ ४ ॥ यहाँतक नहीं, जब एक द्वीप उनके वशमें हो जाता है, तब वे दूसरे द्वीपपर विजय करनेके लिये बड़ी शक्ति और उत्साहके साथ समुद्रयात्रा करते हैं। अपने मनको, इन्द्रियोंको वशमें करके लोग मुक्ति प्राप्त करते हैं, परन्तु ये लोग उनको वशमें करके भी थोड़ा-सा भूभाग ही प्राप्त करते हैं। इतने परिश्रम और आत्मसंयमका यह कितना तुच्छ फल है!" ॥ ५ ॥ परीक्षित् ! पृथ्वी कहती है कि "बड़े-बड़े मनु और उनके वीर पुत्र मुझे ज्यों-की-त्यों छोड़कर जहाँसे आये थे, वहीं खाली हाथ लौट गये, मुझे अपने साथ न ले जा सके। अब ये मूर्ख राजा मुझे युद्धमें जीतकर वशमें करना चाहते हैं ! ॥ ६ ॥ जिनके चित्तमें यह बात दृढमूल हो गयी है कि यह पृथ्वी मेरी है, उन दुष्टोंके राज्यमें मेरे लिये पिता-पुत्र और भाई-भाई भी आपसमें लड़ बैठते हैं ॥ ७ ॥ वे परस्पर इस प्रकार कहते हैं कि 'ओ मूढ़ ! 'यह सारी पृथ्वी मेरी ही है, तेरी नहीं', इस प्रकार राजालोग एक-दूसरेको कहते-सुनते हैं, एक-दूसरेसे स्पर्द्धा करते हैं, मेरे लिये एक-दूसरेको मारते है और स्वयं मर मिटते हैं ॥ ८ ॥ पृथु, पुरूरवा, गाधि, नहुष, भरत, सहस्रबाहु अर्जुन, मान्धाता, सगर, राम, खट्वाङ्ग, धुन्धुमार, रघु, तृणबिन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नल, नृग, हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, लोकद्रोही रावण, नमुचि, शम्बर, भौमासुर, हिरण्याक्ष और तारकासुर तथा और बहुत-से दैत्य एवं शक्तिशाली नरपति हो गये। ये सब लोग सब कुछ समझते थे, शूर थे, सभीने दिग्विजयमें दूसरोंको हरा दिया किन्तु दूसरे लोग इन्हें न जीत सके; परन्तु सब-के-सब मृत्युके ग्रास बन गये। राजन् ! उन्होंने अपने पूरे अन्तःकरणसे मुझसे ममता की और समझा कि 'यह पृथ्वी मेरी है'। परन्तु विकराल कालने उनकी लालसा पूरी न होने दी। अब उनके बल-पौरुष और शरीर आदिका कुछ पता ही नहीं है। केवल उनकी कहानी-मात्र शेष रह गयी है ॥ ९-१३ ॥

परीक्षित् ! संसारमें बड़े-बड़े प्रतापी और महान् पुरुष हुए हैं। वे लोकोंमें अपने यशका विस्तार करके यहाँसे चल बसे। मैंने तुम्हें ज्ञान और वैराग्यका उप-देश करनेके लिये ही उनकी कथा सुनायी है। यह सब वाणीका विलास है। इसमें पारमार्थिक सत्य कुछ भी नहीं है ॥ १४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णका गुणानुवाद समस्त अमङ्गलोंका नाश करनेवाला है, बड़े-बड़े महात्मा उसीका गान करते रहते हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेममयी भक्तिकी लालसा रखता हो, उसे नित्य-निरन्तर भगवान्‌के दिव्य गुणानुवादका ही श्रवण करते रहना चाहिये ॥ १५ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! मुझे तो कलियुग-में राशि-राशि दोष ही दिखायी दे रहे हैं। उस समय लोग किस उपायसे उन दोषोंका नाश करेंगे। इसके

अतिरिक्त युगोंका स्वरूप, उनके धर्म, कल्पकी स्थिति और प्रलयकालके मान एवं सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् भगवान्के कालरूपका भी यथावत् वर्णन कीजिये॥ १६-१७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! सत्ययुगमें धर्मके चार चरण होते हैं; वे चरण हैं—सत्य, दया, तप और दान । उस समयके लोग पूरी निष्ठाके साथ अपने-अपने धर्मका पालन करते हैं । धर्म स्वयं भगवान्का स्वरूप है ॥ १८ ॥ सत्ययुगके लोग बड़े सन्तोषी और दयालु होते हैं । वे सबसे मित्रताका व्यवहार करते और शान्त रहते हैं । इन्द्रियाँ और मन उनके वशमें रहते हैं और सुख-दु:ख आदि द्वन्द्वोंको वे समान भावसे सहन करते हैं । अधिकांश लोग तो समदर्शी और आत्माराम होते हैं और बाकी लोग स्वरूपस्थितिके लिये अभ्यासमें तत्पर रहते हैं ॥ १९ ॥ परीक्षित् ! धर्मके समान अधर्मके भी चार चरण हैं—असत्य, हिंसा, असन्तोष और कलह । त्रेतायुगमें इनके प्रभावसे धीरे-धीरे धर्मके सत्य आदि चरणोंका चतुर्थांश क्षीण हो जाता है ॥ २० ॥ राजन् ! उस समय वर्णोंमें ब्राह्मणोंकी प्रधानता अक्षुण्ण रहती है । लोगोंमें अत्यन्त हिंसा और लम्पटताका अभाव रहता है । सभी लोग कर्मकाण्ड और तपस्यामें निष्ठा रखते हैं और अर्थ, धर्म एवं कामरूप त्रिवर्गका सेवन करते हैं । अधिकांश लोग कर्मप्रतिपादक वेदोंके पारदर्शी विद्वान् होते हैं ॥ २१ ॥ द्वापरयुगमें हिंसा, असन्तोष, झूठ और द्वेष—अधर्मके इन चरणोंकी वृद्धि हो जाती है एवं इनके कारण धर्मके चारों चरण—तपस्या, सत्य, दया और दान आधे-आधे क्षीण हो जाते हैं ॥ २२ ॥ उस समयके लोग बड़े यशस्वी, कर्मकाण्डी और वेदोंके अध्ययन-अध्यापनमें बड़े तत्पर होते हैं । लोगोंके कुटुम्ब बड़े-बड़े होते हैं, प्राय: लोग धनाढ्य एवं सुखी होते हैं । उस समय वर्णोंमें क्षत्रिय और ब्राह्मण दो वर्णोंकी प्रधानता रहती है ॥२३॥ कलियुगमें तो अधर्मके चारों चरण अत्यन्त बढ़ जाते हैं । उनके कारण धर्मके चारों चरण क्षीण होने लगते हैं और उनका चतुर्थांश ही बच रहता है । अन्तमें तो उस चतुर्थांशका भी लोप हो जाता है ॥ २४ ॥ कलियुगमें लोग लोभी, दुराचारी और कठोरहृदय होते हैं । वे झूठमूठ एक-दूसरेसे वैर मोल ले लेते हैं, एवं लालसा-तृष्णाकी तरङ्गोंमें बहते रहते हैं । उस समयके अभागे लोगोंमें शूद्र, केवट आदिकी ही प्रधानता रहती है ॥२५॥

सभी प्राणियोंमें तीन गुण होते हैं—सत्त्व, रज और तम । कालकी प्रेरणासे समय-समयपर शरीर, प्राण और मनमें उनका ह्रास और विकास भी हुआ करता है ॥ २६ ॥ जिस समय मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ सत्त्वगुणमें स्थित होकर अपना-अपना काम करने लगती हैं, उस समय सत्ययुग समझना चाहिये । सत्त्वगुणकी प्रधानताके समय मनुष्य ज्ञान और तपस्यासे अधिक प्रेम करने लगता है ॥२७॥ जिस समय मनुष्योंकी प्रवृत्ति और रुचि धर्म, अर्थ और लौकिक-पारलौकिक सुख-भोगोंकी ओर होती है तथा शरीर, मन एवं इन्द्रियाँ रजोगुणमें स्थित होकर काम करने लगती हैं—बुद्धिमान् परीक्षित् ! समझना चाहिये कि उस समय त्रेतायुग अपना काम कर रहा है॥२८॥ जिस समय लोभ, असन्तोष, अभिमान, दम्भ और मत्सर आदि दोषोंका बोलबाला हो और मनुष्य बड़े उत्साह तथा रुचिके साथ सकाम कर्मोंमें लगना चाहे, उस समय द्वापरयुग समझना चाहिये । अवश्य ही रजोगुण और तमोगुणकी मिश्रित प्रधानताका नाम ही द्वापरयुग है ।२९। जिस समय झूठ-कपट, तन्द्रा-निद्रा, हिंसा-विषाद, शोक-मोह, भय और दीनताकी प्रधानता हो, उसे तमोगुण-प्रधान कलियुग समझना चाहिये ॥३०॥ जब कलियुगका राज्य होता है, तब लोगोंकी दृष्टि क्षुद्र हो जाती है; अधिकांश लोग होते तो हैं अत्यन्त निर्धन, परन्तु खाते हैं बहुत अधिक । उनका भाग्य तो होता है बहुत ही मन्द और चित्तमें कामनाएँ होती हैं बहुत बड़ी-बड़ी । स्त्रियोंमें दुष्टता और कुलटापनकी वृद्धि हो जाती है ।३१। सारे देशमें, गाँव-गाँवमें लुटेरोंकी प्रधानता एवं प्रचुरता हो जाती है । पाखण्डी लोग अपने नये-नये मत चलाकर मनमाने ढंगसे वेदोंका तात्पर्य निकालने लगते हैं और इस प्रकार उन्हें कलंकित करते हैं । राजा कहलानेवाले लोग प्रजाकी सारी कमाई हड़पकर उन्हें चूसने लगते हैं । ब्राह्मणनामधारी जीव पेट भरने और जननेन्द्रियको तृप्त करनेमें ही लग जाते हैं ॥३२॥ ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्य-

व्रतसे रहित और अपवित्र रहने लगते हैं। गृहस्थ दूसरोंको भिक्षा देनेके बदले स्वयं भीख माँगने लगते हैं, वानप्रस्थी गाँवोंमें बसने लगते हैं और संन्यासी धनके अत्यन्त लोभी—अर्थपिशाच हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ स्त्रियोंका आकार तो छोटा हो जाता है, पर भूख बढ़ जाती है। उन्हें सन्तान बहुत अधिक होती है और वे अपनी कुल-मर्यादाका उल्लङ्घन करके लाज-हया—जो उनका भूषण है—छोड़ बैठती हैं। वे सदा-सर्वदा कड़वी बात कहती रहती हैं और चोरी तथा कपटमें बड़ी निपुण हो जाती हैं। उनमें साहस भी बहुत बढ़ जाता है ॥ ३४ ॥ व्यापारियोंके हृदय अत्यन्त क्षुद्र हो जाते हैं। वे कौड़ी-कौड़ीसे लिपटे रहते और छदाम-छदामके लिये धोखाधड़ी करने लगते हैं। और तो क्या—आपत्तिकाल न होनेपर तथा धनी होनेपर भी वे निम्नश्रेणीके व्यापारोंको, जिनकी सत्पुरुष निन्दा करते हैं, ठीक समझने और अपनाने लगते हैं ॥३५॥ स्वामी चाहे सर्वश्रेष्ठ ही क्यों न हों—जब सेवकलोग देखते हैं कि इसके पास धन-दौलत नहीं रही, तब उसे छोड़कर भाग जाते हैं। सेवक चाहे कितना ही पुराना क्यों न हो—परन्तु जब वह किसी विपत्तिमें पड़ जाता है, तब स्वामी उसे छोड़ देते हैं। और तो क्या, जब गौएँ बकेन हो जाती हैं—दूध देना बंद कर देती हैं, तब लोग उनका भी परित्याग कर देते हैं ॥ ३६ ॥

प्रिय परीक्षित्! कलियुगके मनुष्य बड़े ही लम्पट हो जाते हैं, वे अपनी कामवासनाको तृप्त करनेके लिये ही किसीसे प्रेम करते हैं। वे विषयवासनाके वशीभूत होकर इतने दीन हो जाते हैं कि माता-पिता, भाई-बन्धु और मित्रोंको भी छोड़कर केवल अपनी साली और सालोंसे ही सलाह लेने लगते हैं ॥ ३७ ॥ शूद्र तपस्वियोंका वेष बनाकर अपना पेट भरते और दान लेने लगते हैं। जिन्हें धर्मका रत्तीभर भी ज्ञान नहीं है, वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान होकर धर्मका उपदेश करने लगते हैं ॥ ३८॥ प्रिय परीक्षित्! कलियुगकी प्रजा सूखा पड़नेके कारण अत्यन्त भयभीत और आतुर हो जाती है। एक तो दुर्भिक्ष और दूसरे शासकोंकी कर-वृद्धि! प्रजाके शरीरमें केवल अस्थिपञ्जर और मनमें केवल उद्वेग शेष रह जाता है। प्राण-रक्षाके लिये रोटीका टुकड़ा मिलना भी कठिन हो जाता है ॥ ३९ ॥ कलियुगमें प्रजा शरीर ढकनेके लिये वस्त्र और पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिये रोटी, पीनेके लिये पानी और सोनेके लिये दो हाथ जमीनसे भी वञ्चित हो जाती है। उसे दाम्पत्य-जीवन, स्नान और आभूषण-पहननेतककी सुविधा नहीं रहती। लोगोंकी आकृति, प्रकृति और चेष्टाएँ पिशाचोंकी-सी हो जाती हैं ॥४०॥ कलियुगमें लोग, अधिक धनकी तो बात ही क्या, कुछ कौड़ियोंके लिये आपसमें वैर-विरोध करने लगते और बहुत दिनोंके सद्भाव तथा मित्रताको तिलाञ्जलि दे देते हैं। इतना ही नहीं, वे दमड़ी-दमड़ीके लिये अपने सगे-सम्बन्धियोंतककी हत्या कर बैठते और अपने प्रिय प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं ॥ ४१ ॥ परीक्षित्! कलियुगके क्षुद्र प्राणी केवल कामवासनाकी पूर्ति और पेट भरनेकी धुनमें ही लगे रहते हैं। पुत्र अपने बूढ़े मा-बापकी भी रक्षा—पालन-पोषण नहीं करते, उनकी उपेक्षा कर देते हैं और पिता अपने निपुण-से-निपुण, सब कामोंमें योग्य पुत्रोंकी भी परवा नहीं करते, उन्हें अलग कर देते हैं ॥४२॥ परीक्षित्! श्रीभगवान् ही चराचर जगत्के परम पिता और परम गुरु हैं। इन्द्र-ब्रह्मा आदि त्रिलोकाधिपति उनके चरणकमलोंमें अपना सिर झुकाकर सर्वस्व समर्पण करते रहते हैं। उनका ऐश्वर्य अनन्त है और वे एकरस अपने स्वरूपमें स्थित हैं। परन्तु कलियुगमें लोगोंमें इतनी मूढ़ता फैल जाती है, पाखण्डियोंके कारण लोगोंका चित्त इतना भटक जाता है कि प्रायः लोग अपने कर्म और भावनाओंके द्वारा भगवान्की पूजासे भी विमुख हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ मनुष्य मरनेके समय आतुरताकी स्थितिमें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्के किसी एक नामका उच्चारण कर ले, तो उसके सारे कर्मबन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त होती है। परन्तु हाय रे कलियुग! कलियुगसे प्रभावित होकर लोग उन भगवान्की आराधनासे भी विमुख हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

परीक्षित्! कलियुगके अनेकों दोष हैं। कुल वस्तुएँ दूषित हो जाती हैं, स्थानोंमें भी दोषकी प्रधानता हो जाती है। सब दोषोंका मूल स्रोत तो अन्तःकरण है ही,

परन्तु जब पुरुषोत्तम भगवान् हृदयमें आ विराजते हैं, तब उनकी सन्निधिमात्रसे ही सब-के-सब दोष नष्ट हो जाते हैं ॥ ४५ ॥ भगवान्‌के रूप, गुण, लीला, धाम और नामके श्रवण, सङ्कीर्तन, ध्यान, पूजन और आदरसे वे मनुष्यके हृदयमें आकर विराजमान हो जाते हैं। और एक-दो जन्मके पापोंकी तो बात ही क्या, हजारों जन्मोंके पापके ढेर-के-ढेर भी क्षणभरमें भस्म कर देते हैं ॥४६॥ जैसे सोनेके साथ संयुक्त होकर अग्नि उसके धातुसम्बन्धी मलिनता आदि दोषोंको नष्ट कर देती है, वैसे ही साधकोंके हृदयमें स्थित होकर भगवान् विष्णु उनके अशुभ संस्कारोंको सदाके लिये मिटा देते हैं ॥ ४७ ॥ परीक्षित्! विद्या, तपस्या, प्राणायाम, समस्त प्राणियोंके प्रति मित्र-भाव, तीर्थस्नान, व्रत, दान और जप आदि किसी भी साधनसे मनुष्यके अन्तःकरणकी वैसी वास्तविक शुद्धि नहीं होती, जैसी शुद्धि भगवान् पुरुषोत्तमके हृदयमें विराजमान हो जानेपर होती है ॥ ४८ ॥

परीक्षित्! अब तुम्हारी मृत्युका समय निकट आ गया है। अब सावधान हो जाओ। पूरी शक्तिसे और अन्तःकरणकी सारी वृत्तियोंसे भगवान् श्रीकृष्णको अपने हृदयसिंहासनपर बैठा लो। ऐसा करनेसे अवश्य ही तुम्हें परमगतिकी प्राप्ति होगी ॥४९॥ जो लोग मृत्युके निकट पहुँच रहे हैं, उन्हें सब प्रकारसे परम ऐश्वर्यशाली भगवान्‌का ही ध्यान करना चाहिये। प्यारे परीक्षित्! सबके परम आश्रय और सर्वात्मा भगवान् अपना ध्यान करनेवालेको अपने स्वरूपमें लीन कर लेते हैं, उसे अपना स्वरूप बना लेते हैं ॥५०॥ परीक्षित्! यों तो कलियुग दोषोंका खजाना है, परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुगमें केवल भगवान् श्रीकृष्णका सङ्कीर्तन करनेमात्रसे ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है ॥५१॥ सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान करनेसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधि-पूर्वक उनकी पूजा-सेवासे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है ॥ ५२ ॥

चौथा अध्याय

चार प्रकारके प्रलय

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! (तीसरे स्कन्धमें) परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त कालका स्वरूप और एक-एक युग कितने-कितने वर्षोंका होता है, यह मैं तुम्हें बतला चुका हूँ। अब तुम कल्पकी स्थिति और उसके प्रलयका वर्णन भी सुनो ॥ १ ॥ राजन्! एक हजार चतुर्युगीका ब्रह्माका एक दिन होता है। ब्रह्माके इस दिनको ही कल्प भी कहते हैं। एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं ॥ २ ॥ कल्पके अन्तमें उतने ही समयतक प्रलय भी रहता है। प्रलयको ही ब्रह्माकी रात भी कहते हैं। उस समय ये तीनों लोक लीन हो जाते हैं, उनका प्रलय हो जाता है ॥३॥ इसका नाम नैमित्तिक प्रलय है। इस प्रलयके अवसरपर सारे विश्वको अपने अंदर समेटकर—लीन कर ब्रह्मा और तत्पश्चात् शेषशायी भगवान् नारायण भी शयन कर जाते हैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार रातके बाद दिन और दिनके बाद रात होते-होते जब ब्रह्माजीकी अपने मानसे सौ वर्षकी और मनुष्योंकी दृष्टिमें दो परार्द्धकी आयु समाप्त हो जाती है, तब महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा—ये सातों प्रकृतियाँ अपने कारण मूल प्रकृतिमें लीन हो जाती हैं ॥ ५ ॥ राजन्! इसीका नाम प्राकृतिक प्रलय है। इस प्रलयमें प्रलयका कारण उपस्थित होनेपर पञ्चभूतोंके मिश्रणसे बना हुआ ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़कर कारणरूपमें स्थित हो जाता है, घुल-मिल जाता है ॥ ६ ॥ परीक्षित्! प्रलयका समय आनेपर सौ वर्षतक मेघ पृथ्वीपर वर्षा नहीं करते। किसीको अन्न नहीं मिलता। उस समय प्रजा भूख-प्याससे व्याकुल होकर एक-दूसरेको खाने लगती है ॥ ७ ॥ इस प्रकार कालके उपद्रवसे पीडित होकर धीरे-धीरे सारी प्रजा क्षीण हो जाती है। प्रलयकालीन सांवर्तक सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्र, प्राणियोंके शरीर और पृथ्वीका सारा रस खींच-खींचकर सोख जाते

हैं और फिर उन्हें सदाकी भाँति पृथ्वीपर बरसाते नहीं। उस समय सङ्कर्षणभगवान्‌के मुखसे प्रलयकालीन संवर्तक अग्नि प्रकट होती है ॥ ८-९ ॥ वायुके वेगसे वह और भी बढ़ जाती है और तल-अतल आदि सातों नीचेके लोकोंको भस्म कर देती है। वहाँके प्राणी तो पहले ही मर चुके होते हैं। नीचेसे आगकी करारी लपटें और ऊपरसे सूर्यकी प्रचण्ड गरमी! उस समय ऊपर-नीचे, चारों ओर यह ब्रह्माण्ड जलने लगता है और ऐसा जान पड़ता है, मानो गोबरका उपला जलकर अंगारेके रूपमें दहक रहा हो। इसके बाद प्रलयकालीन अत्यन्त प्रचण्ड सांवर्तक वायु सैकड़ों वर्षतक चलती रहती है। उस समयका आकाश धूएँ और धूलसे तो भरा ही रहता है, उसके बाद असंख्यों रंग-बिरंगे बादल आकाशमें मँडराने लगते हैं और बड़ी भयङ्करताके साथ गरज-गरजकर सैकड़ों वर्षतक वर्षा करते रहते हैं। उस समय ब्रह्माण्डके भीतरका सारा संसार एक समुद्र हो जाता है, सब कुछ जलमग्न हो जाता है ॥ १०—१३ ॥

इस प्रकार जब जल-प्रलय हो जाता है, तब जल पृथ्वीके विशेष गुण गन्धको ग्रस लेता है—अपनेमें लीन कर लेता है। गन्ध गुणके जलमें लीन हो जानेपर पृथ्वीका प्रलय हो जाता है, वह जलमें घुल-मिलकर जलरूप बन जाती है ॥१४॥ राजन्! इसके बाद जलके गुण रसको तेजस्तत्त्व ग्रस लेता है और जल नीरस होकर तेजमें समा जाता है। तदनन्तर वायु तेजके गुण रूपको ग्रस लेता है और तेज रूपरहित होकर वायुमें लीन हो जाता है। अब आकाश वायुके गुण स्पर्शको अपनेमें मिला लेता है और वायु स्पर्शहीन होकर आकाशमें शान्त हो जाता है। इसके बाद तामस अहङ्कार आकाशके गुण शब्दको ग्रस लेता है और आकाश शब्दहीन होकर तामस अहङ्कारमें लीन हो जाता है। इसी प्रकार तैजस अहङ्कार इन्द्रियोंको और वैकारिक (सात्त्विक) अहङ्कार इन्द्रियाधिष्ठातृ-देवता और इन्द्रियवृत्तियोंको अपनेमें लीन कर लेता है॥ १५—१७॥ तत्पश्चात् महत्तत्त्व अहङ्कारको और सत्त्व आदि गुण महत्तत्त्वको ग्रस लेते हैं। परीक्षित्! यह सब कालकी महिमा है। उसीकी प्रेरणासे अव्यक्त प्रकृति गुणोंको ग्रस लेती है और तब केवल प्रकृति-ही-प्रकृति शेष रह जाती है ॥ १८ ॥ वही चराचर जगत्‌का मूल कारण है। वह अव्यक्त, अनादि, अनन्त, नित्य और अविनाशी है। जब वह अपने कार्योंको लीन करके प्रलयके समय साम्यावस्थाको प्राप्त हो जाती है, तब कालके अवयव वर्ष, मास, दिन-रात, क्षण आदिके कारण उसमें परिणाम, क्षय, वृद्धि आदि किसी प्रकारके विकार नहीं होते ॥ १९ ॥ उस समय प्रकृतिमें स्थूल अथवा सूक्ष्मरूपसे वाणी, मन, सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, महत्तत्त्व आदि विकार, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और उनके देवता आदि कुछ नहीं रहते। सृष्टिके समय रहनेवाले लोकोंकी कल्पना और उनकी स्थिति भी नहीं रहती ॥२०॥ उस समय स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ नहीं रहतीं। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और सूर्य भी नहीं रहते। सब कुछ सोये हुएके समान शून्य-सा रहता है। उस अवस्थाका तर्कके द्वारा अनुमान करना भी असम्भव है। उस अव्यक्तको ही जगत्‌का मूलभूत तत्त्व कहते हैं ॥२१॥ इसी अवस्थाका नाम 'प्राकृत प्रलय' है। उस समय पुरुष और प्रकृति दोनोंकी शक्तियाँ कालके प्रभावसे क्षीण हो जाती हैं और विवश होकर अपने मूलस्वरूपमें लीन हो जाती हैं।२२।

परीक्षित्! (अब आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्षका स्वरूप बतलाया जाता है।) बुद्धि, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें उनका अधिष्ठान, ज्ञानस्वरूप वस्तु ही भासित हो रही है। उन सबका तो आदि भी है और अन्त भी। इसलिये वे सब सत्य नहीं हैं। वे दृश्य हैं और अपने अधिष्ठानसे भिन्न उनकी सत्ता भी नहीं है। इसलिये वे सर्वथा मिथ्या—मायामात्र हैं ॥ २३ ॥ जैसे दीपक, नेत्र और रूप—ये तीनों तेजसे भिन्न नहीं हैं, वैसे ही बुद्धि, इन्द्रिय और इनके विषय तन्मात्राएँ भी अपने अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मसे भिन्न नहीं हैं—यद्यपि वह इनसे सर्वथा भिन्न है; (जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानमें अध्यस्त सर्प अपने अधिष्ठानसे पृथक् नहीं है, परन्तु अध्यस्त सर्पसे अधिष्ठानका कोई सम्बन्ध नहीं है।)।२४। परीक्षित्! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ बुद्धिकी ही हैं। अतः इनके कारण अन्तरात्मामें जो विश्व, तैजस और प्राज्ञरूप नानात्वकी प्रतीति होती है

वह केवल मायामात्र है। बुद्धिगत नानात्वका एकमात्र सत्य आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है ॥ २५ ॥ यह विश्व उत्पत्ति और प्रलयसे ग्रस्त है, इसलिये अनेक अवयवोंका समूह अवयवी है। अतः यह कभी ब्रह्ममें होता है और कभी नहीं होता, ठीक वैसे ही जैसे आकाशमें मेघमाला कभी होती है और कभी नहीं होती ॥ २६ ॥ परीक्षित्! जगत्के व्यवहारमें जितने भी अवयवी पदार्थ होते हैं, उनके न होनेपर भी उनके भिन्न-भिन्न अवयव सत्य माने जाते हैं। क्योंकि वे उनके कारण हैं। जैसे वस्त्ररूप अवयवीके न होनेपर भी उसके कारणरूप सूतका अस्तित्व माना ही जाता है, उसी प्रकार कार्यरूप जगत्के अभावमें भी इस जगत्के कारणरूप अवयवकी स्थिति हो सकती है ॥ २७ ॥ परन्तु ब्रह्ममें यह कार्य-कारणभाव भी वास्तविक नहीं है। क्योंकि देखो, कारण तो सामान्य वस्तु है और कार्य विशेष वस्तु। इस प्रकारका जो भेद दिखायी देता है, वह केवल भ्रम ही है। इसका हेतु यह है कि सामान्य और विशेष भाव आपेक्षिक हैं, अन्योन्याश्रित हैं। विशेषके बिना सामान्य और सामान्यके बिना विशेषकी स्थिति नहीं हो सकती। कार्य और कारणभावका आदि और अन्त दोनों ही मिलते हैं, इसलिये भी वह स्वाप्निक भेद-भावके समान सर्वथा अवस्तु है ॥२८॥ इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रपञ्चरूप विकार स्वाप्निक विकारके समान ही प्रतीत हो रहा है, तो भी यह अपने अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप आत्मासे भिन्न नहीं है। कोई चाहे भी तो आत्मासे भिन्न रूपमें अणुमात्र भी इसका निरूपण नहीं कर सकता। यदि आत्मासे पृथक् इसकी सत्ता मानी भी जाय तो यह भी चिद्रूप आत्माके समान स्वयंप्रकाश होगा, और ऐसी स्थितिमें वह आत्माकी भाँति ही एकरूप सिद्ध होगा ॥ २९ ॥ परन्तु इतना तो सर्वथा निश्चित है कि परमार्थ-सत्य वस्तुमें नानात्व नहीं है। यदि कोई अज्ञानी परमार्थ-सत्य वस्तुमें नानात्व स्वीकार करता है, तो उसका वह मानना वैसा ही है, जैसा महाकाश और घटाकाशका, आकाशस्थित सूर्य और जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यका तथा बाह्य वायु और आन्तर वायुका भेद मानना ॥ ३० ॥

जैसे व्यवहारमें मनुष्य एक ही सोनेको अनेकों रूपोंमें गढ़-गलाकर तैयार कर लेते हैं और वह कंगन, कुण्डल, कड़ा आदि अनेकों रूपोंमें मिलता है; इसी प्रकार व्यवहारमें निपुण विद्वान् लौकिक और वैदिक वाणीके द्वारा इन्द्रियातीत आत्मस्वरूप भगवान्का भी अनेकों रूपोंमें वर्णन करते हैं ॥३१॥ देखो न, बादल सूर्यसे उत्पन्न होता है और सूर्यसे ही प्रकाशित। फिर भी वह सूर्यके ही अंश नेत्रोंके लिये सूर्यका दर्शन होनेमें बाधक बन बैठता है। इसी प्रकार अहङ्कार भी ब्रह्मसे ही उत्पन्न होता, ब्रह्मसे ही प्रकाशित होता और ब्रह्मके अंश जीवके लिये ब्रह्मस्वरूपके साक्षात्कारमें बाधक बन बैठता है ॥ ३२ ॥ जब सूर्यसे प्रकट होनेवाला बादल तितर-बितर हो जाता है, तब नेत्र अपने स्वरूप सूर्यका दर्शन करनेमें समर्थ होते हैं। ठीक वैसे ही, जब जीवके हृदयमें जिज्ञासा जगती है, तब आत्माकी उपाधि अहङ्कार नष्ट हो जाता है और उसे अपने स्वरूपका साक्षात्कार हो जाता है ॥ ३३ ॥ प्रिय परीक्षित्! जब जीव विवेकके खड्गसे मायामय अहङ्कारका बन्धन काट देता है, तब यह अपने एकरस आत्मस्वरूपके साक्षात्कारमें स्थित हो जाता है। आत्माकी यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय कही जाती है ॥ ३४ ॥

हे शत्रुदमन! तत्त्वदर्शी लोग कहते हैं कि ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक जितने प्राणी या पदार्थ हैं, सभी हर समय पैदा होते और मरते रहते हैं। अर्थात् नित्यरूपसे उत्पत्ति और प्रलय होता ही रहता है ॥३५॥ संसारके परिणामी पदार्थ नदी-प्रवाह और दीप-शिखा आदि क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। उनकी बदलती हुई अवस्थाओंको देखकर यह निश्चय होता है कि देह आदि भी कालरूप सोतेके वेगमें बहते-बदलते जा रहे हैं। इसलिये क्षण-क्षणमें उनकी उत्पत्ति और प्रलय हो रहा है ॥ ३६ ॥ जैसे आकाशमें तारे हर समय चलते ही रहते हैं, परन्तु उनकी गति स्पष्टरूपसे नहीं दिखायी पड़ती, वैसे ही भगवान्के स्वरूपभूत अनादि-अनन्त कालके कारण प्राणियोंकी प्रतिक्षण होनेवाली उत्पत्ति और प्रलयका भी पता नहीं चलता ॥ ३७ ॥ परीक्षित्! मैंने तुमसे चार प्रकारके प्रलयका वर्णन किया; उनके नाम हैं—नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय और आत्यन्तिक

प्रलय। वास्तवमें कालकी सूक्ष्म गति ऐसी ही है ॥ ३८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ! विश्व-विधाता भगवान् नारायण ही समस्त प्राणियों और शक्तियोंके आश्रय हैं। जो कुछ मैंने संक्षेपसे कहा है, वह सब उन्हींकी लीला-कथा है। भगवान्‌की लीलाओंका पूर्ण वर्णन तो स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते ॥ ३९ ॥ जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं ॥ ४० ॥ जो कुछ मैंने तुम्हें सुनाया है, यही श्रीमद्भागवतपुराण है। इसे सनातन ऋषि नर-नारायणने पहले देवर्षि नारदको सुनाया था और उन्होंने मेरे पिता महर्षि कृष्णद्वैपायनको ॥ ४१ ॥ महाराज! उन्हीं बदरीवनविहारी भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने प्रसन्न होकर मुझे इस वेदतुल्य श्रीभागवतसंहिताका उपदेश किया ॥ ४२ ॥ कुरुश्रेष्ठ! आगे चलकर जब शौनकादि ऋषि नैमिषारण्य क्षेत्रमें बहुत बड़ा सत्र करेंगे, तब उनके प्रश्न करनेपर पौराणिक वक्ता श्रीसूतजी उन लोगोंको इस संहिताका श्रवण करायेंगे ॥ ४३ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजीका अन्तिम उपदेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! इस श्रीमद्भागवत महापुराणमें बार-बार और सर्वत्र विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिका ही सङ्कीर्तन हुआ है। ब्रह्मा और रुद्र भी श्रीहरिसे पृथक् नहीं हैं, उन्हींकी प्रसाद-लीला और क्रोध-लीलाकी अभिव्यक्ति हैं ॥ १ ॥ हे राजन्! अब तुम यह पशुओंकी-सी अविवेकमूलक धारणा छोड़ दो कि मैं मरूँगा; जैसे शरीर पहले नहीं था और अब पैदा हुआ और फिर नष्ट हो जायगा, वैसे ही तुम भी पहले नहीं थे, तुम्हारा जन्म हुआ, तुम मर जाओगे—यह बात नहीं है ॥ २ ॥ जैसे बीजसे अङ्कुर और अङ्कुरसे बीजकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही एक देहसे दूसरे देहकी और दूसरे देहसे तीसरेकी उत्पत्ति होती है। किन्तु तुम न तो किसीसे उत्पन्न हुए हो और न तो आगे पुत्र-पौत्रादिकोंके शरीरके रूपमें उत्पन्न होओगे। अजी, जैसे आग लकड़ीसे सर्वथा अलग रहती है—लकड़ीकी उत्पत्ति और विनाशसे सर्वथा परे, वैसे ही तुम भी शरीर आदिसे सर्वथा अलग हो ॥ ३ ॥ स्वप्नावस्थामें ऐसा मालूम होता है कि मेरा सिर कट गया है और मैं मर गया हूँ, मुझे लोग श्मशानमें जला रहे हैं; परन्तु ये सब शरीरकी ही अवस्थाएँ दीखती हैं, आत्माकी नहीं। देखनेवाला तो उन अवस्थाओंसे सर्वथा परे, जन्म और मृत्युसे रहित, शुद्ध-बुद्ध परमतत्त्वस्वरूप है ॥ ४ ॥ जैसे घड़ा फूट जानेपर आकाश पहलेकी ही भाँति अखण्ड रहता है, परन्तु घटाकाशताकी निवृत्ति हो जानेसे लोगोंको ऐसा प्रतीत होता है कि वह महाकाशसे मिल गया है—वास्तवमें तो वह मिला हुआ था ही, वैसे ही देहपात हो जानेपर ऐसा मालूम पड़ता है मानो जीव ब्रह्म हो गया। वास्तवमें तो वह ब्रह्म था ही, उसकी अब्रह्मता तो प्रतीतिमात्र थी ॥ ५ ॥ मन ही आत्माके लिये शरीर, विषय और कर्मोंकी कल्पना कर लेता है; और उस मनकी सृष्टि करती है माया (अविद्या)। वास्तवमें माया ही जीवके संसार-चक्रमें पड़नेका कारण है ॥ ६ ॥ जबतक तेल, तेल रखनेका पात्र, बत्ती और आगका संयोग रहता है, तभीतक दीपकमें दीपकपना है; वैसे ही उनके ही समान जबतक आत्माका कर्म, मन, शरीर और इनमें रहनेवाले चैतन्याध्यासके साथ सम्बन्ध रहता है तभीतक उसे जन्म-मृत्युके चक्र संसारमें भटकना पड़ता है और रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणकी वृत्तियोंसे उसे उत्पन्न, स्थित एवं विनष्ट होना पड़ता है ॥ ७ ॥ परन्तु जैसे दीपकके बुझ जानेसे तत्त्वरूप तेजका विनाश नहीं होता, वैसे ही संसारका नाश होनेपर भी स्वयंप्रकाश आत्माका नाश नहीं होता। क्योंकि वह कार्य और

कारण, व्यक्त और अव्यक्त सबसे परे है, वह आकाशके समान सबका आधार है, नित्य और निश्चल है, वह अनन्त है। सचमुच आत्माकी उपमा आत्मा ही है ॥ ८ ॥

हे राजन् ! तुम अपनी विशुद्ध एवं विवेकवती बुद्धिको परमात्माके चिन्तनसे भरपूर कर लो और स्वयं ही अपने अन्तरमें स्थित परमात्माका साक्षात्कार करो ॥ ९ ॥ देखो, तुम मृत्युओंकी भी मृत्यु हो। तुम स्वयं ईश्वर हो। ब्राह्मणके शापसे प्रेरित तक्षक तुम्हें भस्म न कर सकेगा। अजी, तक्षककी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु और मृत्युओंका समूह भी तुम्हारे पासतक न फटक सकेंगे ॥ १० ॥ तुम इस प्रकार अनुसन्धान—चिन्तन करो कि 'मैं ही सर्वाधिष्ठान परब्रह्म हूँ। सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ।' इस प्रकार तुम अपने-आपको अपने वास्तविक एकरस अनन्त अखण्ड स्वरूपमें स्थित कर लो ॥ ११ ॥ उस समय अपनी विषैली जीभ लपलपाता हुआ, अपने होठोंके कोने चाटता हुआ तक्षक आये और अपने विषपूर्ण मुखोंसे तुम्हारे पैरोंमें डस ले—कोई परवा नहीं। तुम अपने आत्मस्वरूपमें स्थित होकर इस शरीरको—और तो क्या, सारे विश्वको भी अपनेसे पृथक् न देखोगे ॥ १२ ॥ आत्मस्वरूप बेटा परीक्षित् ! तुमने विश्वात्मा भगवान्‌की लीलाके सम्बन्धमें जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने दे दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥ १३ ॥

छठा अध्याय

परीक्षित्‌की परमगति, जनमेजयका सर्पसत्र और वेदोंके शाखाभेद

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! व्यास-नन्दन श्रीशुकदेव मुनि समस्त चराचर जगत्‌को अपनी आत्माके रूपमें अनुभव करते हैं और व्यवहारमें सबके प्रति समदृष्टि रखते हैं। भगवान्‌के शरणागत एवं उनके द्वारा सुरक्षित राजर्षि परीक्षित्‌ने उनका सम्पूर्ण उपदेश बड़े ध्यानसे श्रवण किया। अब वे सिर झुकाकर उनके चरणोंके तनिक और पास खिसक आये तथा अञ्जलि बाँधकर उनसे यह प्रार्थना करने लगे ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन् ! आप करुणाके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। आपने मुझपर परम कृपा करके अनादि-अनन्त, एकरस, सत्य भगवान् श्रीहरिके स्वरूप और लीलाओंका वर्णन किया है। अब मैं आपकी कृपासे परम अनुगृहीत और कृतकृत्य हो गया हूँ ॥ २ ॥ संसारके प्राणी अपने स्वार्थ और परमार्थके ज्ञानसे शून्य हैं और विभिन्न प्रकारके दुःखोंके दावानलसे दग्ध हो रहे हैं। उनके ऊपर भगवन्मय महात्माओंका अनुग्रह होना कोई नयी घटना अथवा आश्चर्यकी बात नहीं है। यह तो उनके लिये स्वाभाविक ही है ॥ ३ ॥ मैंने और मेरे साथ और बहुत-से लोगोंने आपके मुखारविन्दसे इस श्रीमद्भागवत महापुराणका श्रवण किया है। इस पुराणमें पद-पदपर भगवान् श्रीहरिके उस स्वरूप और उन लीलाओं-का वर्णन हुआ है, जिसके गानमें बड़े-बड़े आत्माराम पुरुष रमते रहते हैं ॥ ४ ॥ भगवन् ! आपने मुझे अभयपदका, ब्रह्म और आत्माकी एकताका साक्षात्कार करा दिया है। अब मैं परम शान्तिस्वरूप ब्रह्ममें स्थित हूँ। अब मुझे तक्षक आदि किसी भी मृत्युके निमित्तसे अथवा दल-के-दल मृत्युओंसे भी भय नहीं है। मैं अभय हो गया हूँ ॥ ५ ॥ ब्रह्मन् ! अब आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं अपनी वाणी बंद कर दूँ, मौन हो जाऊँ और साथ ही कामनाओंके संस्कारसे भी रहित चित्तको इन्द्रियातीत परमात्माके स्वरूपमें विलीन करके अपने प्राणोंका त्याग कर दूँ ॥ ६ ॥ आपके द्वारा उपदेश किये हुए ज्ञान और विज्ञानमें परिनिष्ठित हो जानेसे मेरा अज्ञान सर्वदाके लिये नष्ट हो गया। आपने भगवान्‌के परम कल्याणमय स्वरूपका मुझे साक्षात्कार करा दिया है ॥ ७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! राजा परीक्षित्‌ने भगवान् श्रीशुकदेवजीसे इस प्रकार कहकर बड़े प्रेमसे उनकी पूजा की। अब वे परीक्षित्‌से विदा लेकर समागत त्यागी महात्माओं, भिक्षुओंके साथ वहाँसे चले गये ॥ ८ ॥ राजर्षि परीक्षित्‌ने भी बिना किसी बाह्य सहायताके स्वयं ही अपने अन्तरात्माको परमात्माके

चिन्तनमें समाहित किया और ध्यानमग्न हो गये। उस समय उनका श्वास-प्रश्वास भी नहीं चलता था, ऐसा जान पड़ता था मानो कोई वृक्षका ठूँठ हो ॥ ९ ॥ उन्होंने गङ्गाजीके तटपर कुशोंको इस प्रकार बिछा रक्खा था, जिसमें उनका अग्रभाग पूर्वकी ओर हो और उनपर स्वयं उत्तर मुँह होकर बैठे हुए थे। उनकी आसक्ति और संशय तो पहले ही मिट चुके थे। अब वे ब्रह्म और आत्माकी एकतारूप महायोगमें स्थित होकर ब्रह्म-स्वरूप हो गये ॥ १० ॥

शौनकादि ऋषियो! मुनिकुमार शृङ्गीने क्रोधित होकर परीक्षित्को शाप दे दिया था। अब उनका भेजा हुआ तक्षक सर्प राजा परीक्षित्को डसनेके लिये उनके पास चला। रास्तेमें उसने कश्यप नामके एक ब्राह्मणको देखा ॥ ११ ॥ कश्यप ब्राह्मण सर्पविषकी चिकित्सा करनेमें बड़े निपुण थे। तक्षकने बहुत-सा धन देकर कश्यपको वहींसे लौटा दिया, उन्हें राजाके पास न जाने दिया। और स्वयं ब्राह्मणके रूपमें छिपकर, क्योंकि वह इच्छानुसार रूप धारण कर सकता था, राजा परीक्षित्के पास गया और उन्हें डस लिया ॥ १२ ॥ राजर्षि परीक्षित् तक्षकके डसनेके पहले ही ब्रह्ममें स्थित हो चुके थे। अब तक्षकके विषकी आगसे उनका शरीर सबके सामने ही जलकर भस्म हो गया ॥ १३ ॥ पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओंमें बड़े जोरसे 'हाय-हाय' की ध्वनि होने लगी। देवता, असुर, मनुष्य आदि सब-के-सब परीक्षितकी यह परम गति देखकर विस्मित हो गये ॥ १४ ॥ देवताओंकी दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। गन्धर्व और अप्सराएँ गान करने लगीं। देवतालोग 'साधु-साधु' के नारे लगाकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥

जब जनमेजयने सुना कि तक्षकने मेरे पिताजीको डस लिया है, तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। अब वह ब्राह्मणोंके साथ विधिपूर्वक सर्पोंका अग्निकुण्डमें हवन करने लगा ॥ १६ ॥ तक्षकने देखा कि जनमेजयके सर्प-सत्रकी प्रज्वलित अग्निमें बड़े-बड़े महासर्प भस्म होते जा रहे हैं, तब वह अत्यन्त भयभीत होकर देवराज इन्द्रकी शरणमें गया ॥ १७ ॥ बहुत सर्पोंके भस्म होनेपर भी तक्षक न आया, यह देखकर परीक्षित्नन्दन राजा जनमेजयने ब्राह्मणोंसे कहा कि 'ब्राह्मणो! अबतक सर्पाधम तक्षक क्यों नहीं भस्म हो रहा है?' ॥ १८ ॥ ब्राह्मणोंने कहा—'राजेन्द्र! तक्षक इस समय इन्द्रकी शरणमें चला गया है और वे उसकी रक्षा कर रहे हैं। उन्होंने ही तक्षकको स्तम्भित कर दिया है, इसीसे वह अग्नि-कुण्डमें गिरकर भस्म नहीं हो रहा है' ॥ १९ ॥ परीक्षित्-नन्दन जनमेजय बड़े ही बुद्धिमान् और वीर थे। उन्होंने ब्राह्मणोंकी बात सुनकर ऋत्विजोंसे कहा कि 'ब्राह्मणो! आपलोग इन्द्रके साथ तक्षकको क्यों नहीं अग्निमें गिरा देते?' ॥ २० ॥ जनमेजयकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने उस यज्ञमें इन्द्रके साथ तक्षकका अग्निकुण्डमें आवाहन किया। उन्होंने कहा—'रे तक्षक! तू मरुद्गणके सह-चर इन्द्रके साथ इस अग्निकुण्डमें शीघ्र आ पड़' ॥ २१ ॥ जब ब्राह्मणोंने इस प्रकार आकर्षणमन्त्रका पाठ किया, तब तो इन्द्र अपने स्थान—स्वर्गलोकसे विचलित हो गये। विमानपर बैठे हुए इन्द्र तक्षकके साथ ही बहुत घबड़ा गये और उनका विमान भी चक्कर काटने लगा ॥ २२ ॥ अङ्गिरानन्दन बृहस्पतिजीने देखा कि आकाशसे देवराज इन्द्र विमान और तक्षकके साथ ही अग्निकुण्डमें गिर रहे हैं; तब उन्होंने राजा जनमेजयसे कहा— ॥ २३ ॥ 'नरेन्द्र! सर्पराज तक्षकको मार डालना आपके योग्य काम नहीं है। यह अमृत पी चुका है। इसलिये यह अजर और अमर है ॥ २४ ॥ राजन्! जगत्के प्राणी अपने-अपने कर्मके अनुसार ही जीवन, मरण और मरणोत्तर गति प्राप्त करते हैं। कर्मके अति-रिक्त और कोई भी किसीको सुख-दुःख नहीं दे सकता ॥ २५ ॥ जनमेजय! यों तो बहुत-से लोगोंकी मृत्यु साँप, चोर, आग, बिजली आदिसे तथा भूख, प्यास, रोग आदि निमित्तोंसे होती है; परन्तु यह तो कहनेकी बात है। वास्तवमें तो सभी प्राणी अपने प्रारब्ध-कर्मका ही उपभोग करते हैं ॥ २६ ॥ राजन्! तुमने बहुत-से निरपराध सर्पोंको जला दिया है। इस अभिचार-यज्ञका फल केवल प्राणियोंकी हिंसा ही है। इसलिये इसे बंद कर देना चाहिये। क्योंकि जगत्के सभी प्राणी अपने-अपने प्रारब्धकर्मका ही भोग कर रहे हैं ॥ २७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं— शौनकादि ऋषियो! महर्षि बृहस्पतिजीकी बातका सम्मान करके जनमेजयने कहा

कि 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ।' उन्होंने सर्प-सत्र बंद कर दिया और देवगुरु बृहस्पतिजीकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ २८ ॥ ऋषिगण ! (जिससे विद्वान् ब्राह्मणको भी क्रोध आया, राजाको शाप हुआ, मृत्यु हुई, फिर जनमेजयको क्रोध आया, सर्प मारे गये) यह वही भगवान् विष्णुकी महामाया है । यह अनिर्वचनीय है, इसीसे भगवान्के स्वरूपभूत जीव क्रोधादि गुण-वृत्तियोंके द्वारा शरीरोंमें मोहित हो जाते हैं, एक दूसरेको दुःख देने और भोगने हैं और अपने प्रयत्नसे इसको निवृत्त नहीं कर सकते ॥ २९ ॥ (विष्णुभगवान्के स्वरूपका निश्चय करके उनका भजन करनेसे ही मायासे निवृत्ति होती है; इसलिये उनके स्वरूपका निरूपण सुनो—) यह दम्भी है, कपटी है—इत्याकारक बुद्धिमें बार-बार जो दम्भ-कपटका स्फुरण होता है, वही माया है । जब आत्मवादी पुरुष आत्मचर्चा करने लगते हैं, तब वह परमात्माके स्वरूपमें निर्भय रूपसे प्रकाशित नहीं होती; किन्तु भयभीत होकर अपना मोह आदि कार्य न करती हुई ही किसी प्रकार रहती है । इस रूपमें उसका प्रतिपादन किया गया है । मायाके आश्रित नाना प्रकारके विवाद, मतवाद भी परमात्माके स्वरूपमें नहीं हैं; क्योंकि वे विशेषविषयक हैं और परमात्मा निर्विशेष है । केवल वाद-विवादकी तो बात ही क्या, लोक-परलोकके विषयोंके सम्बन्धमें सङ्कल्प-विकल्प करनेवाला मन भी शान्त हो जाता है ॥ ३० ॥ कर्म, उसके सम्पादनकी सामग्री और उनके द्वारा साध्यकर्म—इन तीनोंसे अन्वित अहङ्कारात्मक जीव—यह सब जिसमें नहीं हैं, वह आत्मस्वरूप परमात्मा न तो कभी किसीके द्वारा बाधित होता है और न तो किसीका विरोधी ही है । जो पुरुष उस परमपदके स्वरूपका विचार करता है, वह मनकी मायामयी लहरों, अहङ्कार आदिका बाध करके स्वयं अपने आत्मस्वरूपमें विहार करने लगता है ॥ ३१ ॥ जो मुमुक्षु एवं विचारशील पुरुष परमपदके अतिरिक्त वस्तुका परित्याग करते हुए 'नेति-नेति' के द्वारा उसका निषेध करके ऐसी वस्तु प्राप्त करते हैं, जिसका कभी निषेध नहीं हो सकता और न तो कभी त्याग ही, वही विष्णुभगवान्का परम पद है; यह बात सभी महात्मा और श्रुतियाँ एक मतसे स्वीकार करती हैं । अपने चित्तको एकाग्र करनेवाले पुरुष अन्तःकरणकी अशुद्धियोंको, अनात्म-भावनाओंको सदा-सर्वदाके लिये मिटाकर अनन्य प्रेमभावसे परिपूर्ण हृदयके द्वारा उसी परम पदका आलिङ्गन करते हैं और उसीमें समा जाते हैं ॥ ३२ ॥ विष्णुभगवान्का यही वास्तविक स्वरूप है, यही उनका परमपद है । इसकी प्राप्ति उन्हीं लोगोंको होती है, जिनके अन्तःकरणमें शरीरके प्रति अहंभाव नहीं है और न तो इसके सम्बन्धी गृह आदि पदार्थोंमें ममता ही । सचमुच जगत्की वस्तुओंमें मैंपन और मेरेपनका आरोप बहुत बड़ी दुर्जनता है ॥ ३३ ॥ शौनकजी ! जिसे इस परमपदकी प्राप्ति अभीष्ट है, उसे चाहिये कि वह दूसरोंकी कटु वाणी सहन कर ले और बदलेमें किसीका अपमान न करे । इस क्षणभङ्गुर शरीरमें अहंता-ममता करके किसी भी प्राणीसे कभी वैर न करे ॥३४॥ भगवान् श्रीकृष्णका ज्ञान अनन्त है । उन्हींके चरणकमलोंके ध्यानसे मैंने इस श्रीमद्भागवत महापुराणका अध्ययन किया है । मैं अब उन्हींको नमस्कार करके यह पुराण समाप्त करता हूँ ॥ ३५ ॥

शौनकजीने पूछा—साधुशिरोमणि सूतजी ! वेदव्यासजीके शिष्य पैल आदि महर्षि बड़े महात्मा और वेदोंके आचार्य थे । उन लोगोंने कितने प्रकारसे वेदोंका विभाजन किया, यह बात आप कृपा करके हमें सुनाइये ॥ ३६ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मन् ! जिस समय परमेष्ठी ब्रह्माजी पूर्वसृष्टिका ज्ञान सम्पादन करनेके लिये एकाग्रचित्त हुए, उस समय उनके हृदयाकाशसे कण्ठ-तालु आदि स्थानोंके सङ्घर्षसे रहित एक अत्यन्त विलक्षण अनाहत नाद प्रकट हुआ । जब जीव अपनी मनोवृत्तियोंको रोक लेता है, तब उसे भी उस अनाहत नादका अनुभव होता है ॥ ३७ ॥ शौनकजी ! बड़े-बड़े योगी उसी अनाहत नादकी उपासना करते हैं और उसके प्रभावसे अन्तःकरणके द्रव्य (अधिभूत), क्रिया (अध्यात्म) और कारक (अधिदैव) रूप मलको नष्ट करके वह परमगतिरूप मोक्ष प्राप्त करते हैं, जिसमें जन्म-मृत्युरूप संसारचक्र नहीं है ॥ ३८ ॥ उसी अनाहत नादसे 'अ'कार, 'उ'कार और 'म'काररूप तीन मात्राओंसे युक्त ॐकार प्रकट हुआ । इस ॐकारकी

शक्तिसे ही प्रकृति अव्यक्तसे व्यक्तरूपमें परिणत हो जाती है। ॐकार स्वयं भी अव्यक्त एवं अनादि है और परमात्मस्वरूप होनेके कारण स्वयंप्रकाश भी है। जिस परम वस्तुको भगवान् ब्रह्म अथवा परमात्माके नामसे कहा जाता है, उसके स्वरूपका बोध भी ॐकारके द्वारा ही होता है ॥ ३९ ॥ जब श्रवणेन्द्रियकी शक्ति लुप्त हो जाती है, तब भी इस ॐकारको—समस्त अर्थोंको प्रकाशित करनेवाले स्फोट तत्त्वको जो सुनता है और सुषुप्ति एवं समाधि-अवस्थाओंमें सबके अभावको भी जानता है, वही परमात्माका विशुद्ध स्वरूप है। वही ॐकार परमात्मासे हृदयाकाशमें प्रकट होकर वेदरूपा वाणीको अभिव्यक्त करता है ॥ ४० ॥ ॐकार अपने आश्रय परमात्मा परब्रह्मका साक्षात् वाचक है। और ॐकार ही सम्पूर्ण मन्त्र, उपनिषद् और वेदोंका सनातन बीज है ॥ ४१ ॥

शौनकजी ! ॐकारके तीन वर्ण हैं—'अ', 'उ' और 'म्'। ये ही तीनों वर्ण सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणों; ऋक्, यजुः, साम—इन तीन नामों; भूः, भुवः, स्वः—इन तीन अर्थों और जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीन वृत्तियोंके रूपमें तीन-तीनकी संख्यावाले भावोंको धारण करते हैं ॥ ४२ ॥ इसके बाद सर्वशक्तिमान् ब्रह्माजीने ॐकारसे ही अन्तःस्थ (य, र, ल, व), ऊष्म (श, ष, स, ह), स्वर ('अ' से 'औ'तक), स्पर्श ('क'से 'म'तक) तथा ह्रस्व और दीर्घ आदि लक्षणोंसे युक्त अक्षर-समाम्नाय अर्थात् वर्णमालाकी रचना की ॥ ४३ ॥ उसी वर्णमालाद्वारा उन्होंने अपने चार मुखोंसे होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चार ऋत्विजोंके कर्म बतलानेके लिये ॐकार और व्याहृतियोंके सहित चार वेद प्रकट किये और अपने पुत्र ब्रह्मर्षि मरीचि आदिको वेदाध्ययनमें कुशल देखकर उन्हें वेदोंकी शिक्षा दी। वे सभी जब धर्मका उपदेश करनेमें निपुण हो गये, तब उन्होंने अपने पुत्रोंको उनका अध्ययन कराया॥ ४४-४५ ॥ तदनन्तर, उन्हीं लोगोंके नैष्ठिक ब्रह्मचारी शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा चारों युगोंमें सम्प्रदायके रूपमें वेदोंकी रक्षा होती रही। द्वापरके अन्तमें महर्षियोंने उनका विभाजन भी किया ॥ ४६ ॥ जब ब्रह्मवेत्ता ऋषियोंने देखा कि समयके फेरसे लोगोंकी आयु, शक्ति और बुद्धि क्षीण हो गयी है, तब उन्होंने अपने हृदय-देशमें विराजमान परमात्माकी प्रेरणासे वेदोंके अनेकों विभाग कर दिये ॥ ४७ ॥

शौनकजी ! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें भी ब्रह्मा-शङ्कर आदि लोकपालोंकी प्रार्थनासे अखिल विश्वके जीवनदाता भगवान्ने धर्मकी रक्षाके लिये महर्षि पराशरद्वारा सत्यवतीके गर्भसे अपने अंशांश-कलास्वरूप व्यासके रूपमें अवतार ग्रहण किया है। परम भाग्यवान् शौनकजी ! उन्होंने ही वर्तमान युगमें वेदके चार विभाग किये हैं ॥ ४८-४९॥ जैसे मणियोंके समूहमेंसे विभिन्न जातिकी मणियाँ छाँटकर अलग-अलग कर दी जाती हैं, वैसे ही महामति भगवान् व्यासदेवने मन्त्रसमुदायमेंसे भिन्न-भिन्न प्रकरणोंके अनुसार मन्त्रोंका संग्रह करके उनसे ऋग्, यजुः, साम और अथर्व—ये चार संहिताएँ बनायीं और अपने चार शिष्योंको बुलाकर प्रत्येकको एक-एक संहिताकी शिक्षा दी ।५०-५१। उन्होंने 'बह्वृच' नामकी पहली ऋक्संहिता पैलको, 'निगद' नामकी दूसरी यजुःसंहिता वैशम्पायनको, सामश्रुतियोंकी 'छन्दोगसंहिता' जैमिनिको और अपने शिष्य सुमन्तुको 'अथर्वाङ्गिरस-संहिता' का अध्ययन कराया ॥ ५२-५३ ॥ शौनकजी ! पैल मुनिने अपनी संहिताके दो विभाग करके एकका अध्ययन इन्द्रप्रमितिको और दूसरेका बाष्कलको कराया। बाष्कलने भी अपनी शाखाके चार विभाग करके उन्हें अलग-अलग अपने शिष्य बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्रको पढ़ाया। परमसंयमी इन्द्रप्रमितिने प्रतिभाशाली माण्डूकेय ऋषिको अपनी संहिताका अध्ययन कराया। माण्डूकेयके शिष्य थे—देवमित्र। उन्होंने सौभरि आदि ऋषियोंको वेदोंका अध्ययन कराया ॥ ५४—५६ ॥ माण्डूकेयके पुत्रका नाम था शाकल्य। उन्होंने अपनी संहिताके पाँच विभाग करके उन्हें वात्स्य, मुद्गल, शालीय, गोखल्य और शिशिर नामक शिष्योंको पढ़ाया ॥ ५७ ॥ शाकल्यके एक और शिष्य थे—जातूकर्ण्य मुनि। उन्होंने अपनी संहिताके तीन विभाग करके तत्सम्बन्धी निरुक्तके साथ अपने शिष्य बलाक, पैज, वैताल और विरजको पढ़ाया ॥ ५८ ॥ बाष्कलके पुत्र बाष्कलिने सब शाखाओंसे एक 'वालखिल्य'

नामकी शाखा रची । उसे वालायनि, भज्य एवं कासारने ग्रहण किया ॥ ५९ ॥ इन ब्रह्मर्षियोंने पूर्वोक्त सम्प्रदायके अनुसार ऋग्वेदसम्बन्धी बह्वृच शाखाओंको धारण किया। जो मनुष्य यह वेदोंके विभाजनका इतिहास श्रवण करता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ६० ॥

शौनकजी ! वैशम्पायनके कुछ शिष्योंका नाम था चरकाध्वर्यु । इन लोगोंने अपने गुरुदेवके ब्रह्महत्या-जनित पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये एक व्रतका अनुष्ठान किया । इसीलिये इनका नाम 'चरकाध्वर्यु' पड़ा ॥ ६१ ॥ वैशम्पायनके एक शिष्य याज्ञवल्क्य मुनि भी थे । उन्होंने अपने गुरुदेवसे कहा—'अहो भगवन् ! ये चरकाध्वर्यु ब्राह्मण तो बहुत ही थोड़ी शक्ति रखते हैं । इनके व्रत-पालनसे लाभ ही कितना है ? मैं आपके प्रायश्चित्तके लिये बहुत ही कठिन तपस्या करूँगा' ॥ ६२ ॥ याज्ञवल्क्य मुनिकी यह बात सुनकर वैशम्पायन मुनिको क्रोध आ गया । उन्होंने कहा—'बस-बस, चुप रहो । तुम्हारे-जैसे ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाले शिष्यकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं है । देखो, अबतक तुमने मुझसे जो कुछ अध्ययन किया है, उसका शीघ्र-से-शीघ्र त्याग कर दो और यहाँसे चले जाओ ॥ ६३ ॥ याज्ञवल्क्यजी देवरातके पुत्र थे । उन्होंने गुरुजीकी आज्ञा पाते ही उनके पढ़ाये हुए यजुर्वेदका वमन कर दिया और वे वहाँसे चले गये । जब मुनियोंने देखा कि याज्ञवल्क्यने तो यजुर्वेदका वमन कर दिया, तब उनके चित्तमें इस बातके लिये बड़ा लालच हुआ कि हमलोग किसी प्रकार इसको ग्रहण कर लें । परन्तु ब्राह्मण होकर उगले हुए मन्त्रोंको ग्रहण करना अनुचित है, ऐसा सोचकर वे तीतर बन गये और उस संहिताको चुग लिया । इसीसे यजुर्वेदकी यह परम रमणीय शाखा 'तैत्तिरीय' के नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ६४-६५ ॥ शौनकजी ! अब याज्ञवल्क्यने सोचा कि मैं ऐसी श्रुतियाँ प्राप्त करूँ, जो मेरे गुरुजीके पास भी न हों । इसके लिये वे सूर्यभगवान्‌का उपस्थान करने लगे ॥ ६६ ॥

याज्ञवल्क्यजी इस प्रकार उपस्थान करते—मैं ॐकारस्वरूप भगवान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ । आप सम्पूर्ण जगत्‌के आत्मा और कालस्वरूप हैं । ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज—चार प्रकारके प्राणी हैं, उन सबके हृदयदेशमें और बाहर आकाशके समान व्याप्त रहकर भी आप उपाधिके धर्मोंसे असङ्ग रहनेवाले अद्वितीय भगवान् ही हैं । आप ही क्षण, लव, निमेष आदि अवयवोंसे सङ्घटित संवत्सरोंके द्वारा एवं जलके आकर्षण-विकर्षण—आदान-प्रदानके द्वारा समस्त लोकोंकी जीवनयात्रा चलाते हैं ॥ ६७ ॥ प्रभो ! आप समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हैं । जो लोग प्रतिदिन तीनों समय वेद-विधिसे आपकी उपासना करते हैं, उनके सारे पाप और दुःखोंके बीजोंको आप भस्म कर देते हैं । सूर्यदेव ! आप सारी सृष्टिके मूल कारण एवं समस्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं । इसलिये हम आपके इस तेजोमय मण्डलका पूरी एकाग्रताके साथ ध्यान करते हैं ॥ ६८ ॥ आप सबके आत्मा और अन्तर्यामी हैं । जगत्‌में जितने चराचर प्राणी हैं, सब आपके ही आश्रित हैं । आप ही उनके अचेतन मन, इन्द्रिय और प्राणोंके प्रेरक हैं* ॥ ६९ ॥ यह लोक प्रतिदिन अन्धकाररूप अजगरके विकराल मुँहमें पड़कर अचेत और मुर्दा-सा हो जाता है । आप परम करुणा-स्वरूप हैं, इसलिये कृपा करके अपनी दृष्टिमात्रसे ही इसे सचेत कर देते हैं और परम कल्याणके साधन समय-समयके धर्मानुष्ठानोंमें लगाकर आत्माभिमुख करते हैं । जैसे राजा दुष्टोंको भयभीत करता हुआ अपने राज्यमें विचरण करता है, वैसे ही आप चोर-जार आदि दुष्टोंको भयभीत करते हुए विचरते रहते हैं ॥ ७० ॥ चारों ओर सभी दिक्पाल स्थान-स्थानपर अपनी कमलकी कलीके समान अञ्जलियोंसे आपको उपहार समर्पित करते हैं ॥ ७१ ॥ भगवन् ! आपके दोनों चरणकमल तीनों लोकोंके गुरु-सदृश महानुभावोंसे भी वन्दित हैं । मैंने आपके युगलचरणकमलोंकी इसलिये शरण ली है कि मुझे ऐसे यजुर्वेदकी प्राप्ति हो, जो अबतक किसीको न मिला हो ॥ ७२ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! जब याज्ञवल्क्य मुनिने भगवान् सूर्यकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे प्रसन्न होकर उनके सामने अश्वरूपसे प्रकट हुए और उन्हें यजुर्वेदके उन मन्त्रोंका उपदेश किया, जो अबतक किसीको प्राप्त न हुए थे ॥ ७३ ॥ इसके बाद

* ६७, ६८, ६९—इन तीनों वाक्योंद्वारा क्रमशः गायत्रीमन्त्रके 'तत्सवितुर्वरेण्यम्,' 'भर्गो देवस्य धीमहि' और 'धियो यो नः प्रचोदयात्'—इन तीन चरणोंकी व्याख्या करते हुए भगवान् सूर्यकी स्तुति की गयी है ।

याज्ञवल्क्य मुनिने यजुर्वेदके असंख्य मन्त्रोंसे उसकी पंद्रह शाखाओंकी रचना की। वही वाजसनेय शाखाके नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हें कण्व, माध्यन्दिन आदि ऋषियोंने ग्रहण किया ॥ ७४ ॥

यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ कि महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायनने जैमिनि मुनिको सामसंहिताका अध्ययन कराया। उनके पुत्र थे सुमन्तु मुनि और पौत्र थे सुन्वान्। जैमिनि मुनिने अपने पुत्र और पौत्रको एक-एक संहिता पढ़ायी ॥ ७५ ॥ जैमिनि मुनिके एक शिष्यका नाम था सुकर्मा। वह एक महान् पुरुष था। जैसे एक वृक्षमें बहुत-सी डालियाँ होती हैं, वैसे ही सुकर्माने सामवेदकी एक हजार संहिताएँ बना दीं ॥ ७६ ॥ सुकर्माके शिष्य कोसलदेशनिवासी हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि और ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आवन्त्यने उन शाखाओंको ग्रहण किया ॥ ७७ ॥ पौष्यञ्जि और आवन्त्यके पाँच सौ शिष्य थे। वे उत्तर दिशाके निवासी होनेके कारण औदीच्य सामवेदी कहलाते थे। उन्हींको प्राच्य सामवेदी भी कहते हैं। उन्होंने एक-एक संहिताका अध्ययन किया ॥ ७८ ॥ पौष्यञ्जिके और भी शिष्य थे—लौगाक्षि, माङ्गलि, कुल्य, कुसीद और कुक्षि। इनमेंसे प्रत्येकने सौ-सौ संहिताओंका अध्ययन किया ॥ ७९ ॥ हिरण्यनाभका शिष्य था—कृत। उसने अपने शिष्योंको चौबीस संहिताएँ पढ़ायीं। शेष संहिताएँ परम संयमी आवन्त्यने अपने शिष्योंको दीं। इस प्रकार सामवेदका विस्तार हुआ ॥ ८० ॥

सातवाँ अध्याय

अथर्ववेदकी शाखाएँ और पुराणोंके लक्षण

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! मैं कह चुका हूँ कि अथर्ववेदके ज्ञाता सुमन्तु मुनि थे। उन्होंने अपनी संहिता अपने प्रिय शिष्य कबन्धको पढ़ायी। कबन्धने उस संहिताके दो भाग करके पथ्य और वेददर्शको उसका अध्ययन कराया ॥ १ ॥ वेददर्शके चार शिष्य हुए—शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि। अब पथ्यके शिष्योंके नाम सुनो ॥ २ ॥ शौनकजी! पथ्यके तीन शिष्य थे—कुमुद, शुनक और अथर्ववेत्ता जाजलि। अङ्गिरा-गोत्रोत्पन्न शुनकके दो शिष्य थे—बभ्रु और सैन्धवायन। उन लोगोंने दो संहिताओंका अध्ययन किया। अथर्ववेदके आचार्योंमें इनके अतिरिक्त सैन्धवायनादिके शिष्य सावर्ण्य आदि तथा नक्षत्रकल्प, शान्ति, कश्यप, आङ्गिरस आदि कई विद्वान् और भी हुए। अब मैं तुम्हें पौराणिकोंके सम्बन्धमें सुनाता हूँ ॥ ३-४ ॥

शौनकजी! पुराणोंके छः आचार्य प्रसिद्ध हैं—त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत ॥ ५ ॥ इन लोगोंने मेरे पिताजीसे एक-एक पुराणसंहिता पढ़ी थी और मेरे पिताजीने स्वयं भगवान् व्याससे उन संहिताओंका अध्ययन किया था। मैंने उन छहों आचार्योंसे सभी संहिताओंका अध्ययन किया था ॥ ६ ॥ उन छः संहिताओंके अतिरिक्त और भी चार मूल संहिताएँ थीं। उन्हें भी कश्यप, सावर्णि, परशुरामजीके शिष्य अकृतव्रण और उन सबके साथ मैंने व्यासजीके शिष्य श्रीरोमहर्षणजीसे, जो मेरे पिता थे, अध्ययन किया था ॥ ७ ॥

शौनकजी! महर्षियोंने वेद और शास्त्रोंके अनुसार पुराणोंके लक्षण बतलाये हैं। अब तुम स्वस्थ होकर सावधानीसे उनका वर्णन सुनो ॥ ८ ॥ शौनकजी! पुराणोंके पारदर्शी विद्वान् बतलाते हैं कि पुराणोंके दस लक्षण हैं—विश्व-सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था (प्रलय), हेतु (ऊति) और अपाश्रय। कोई-कोई आचार्य पुराणोंके पाँच ही लक्षण मानते हैं। दोनों ही बातें ठीक हैं, क्योंकि महापुराणोंमें दस लक्षण होते हैं और छोटे पुराणोंमें पाँच। विस्तार करके दस बतलाते हैं और संक्षेप करके पाँच ॥ ९-१० ॥ (अब इनके लक्षण सुनो) जब मूल प्रकृतिमें लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्वसे तामस, राजस और वैकारिक (सात्विक)—तीन प्रकारके अहङ्कार बनते

हैं। त्रिविध अहङ्कारसे ही पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयोंकी उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रमका नाम 'सर्ग' है ॥ ११ ॥ परमेश्वरके अनुग्रहसे सृष्टिका सामर्थ्य प्राप्त करके महत्तत्त्व आदि पूर्वकर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओंकी प्रधानतासे जो यह चराचर शरीरात्मक जीवकी उपाधिकी सृष्टि करते हैं, एक बीजसे दूसरे बीजके समान, इसीको विसर्ग कहते हैं ॥ १२ ॥ चर प्राणियोंकी अचर-पदार्थ 'वृत्ति' अर्थात् जीवन-निर्वाहकी सामग्री है। चर प्राणियोंके दुग्ध आदि भी। इनमेंसे मनुष्योंने कुछ तो स्वभाववश कामनाके अनुसार निश्चित कर ली है और कुछने शास्त्रके आज्ञानुसार ॥ १३ ॥ भगवान् युग-युगमें पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदिके रूपमें अवतार ग्रहण करके अनेकों लीलाएँ करते हैं। इन्हीं अवतारोंमें वे वेदधर्मके विरोधियोंका संहार भी करते हैं। उनकी यह अवतार-लीला विश्वकी रक्षाके लिये ही होती है, इसीलिये उसका नाम 'रक्षा' है ॥ १४ ॥ मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान्के अंशावतार—इन्हीं छः बातोंकी विशेषतासे युक्त समयको 'मन्वन्तर' कहते हैं ॥ १५ ॥ ब्रह्माजीसे जितने राजाओंकी सृष्टि हुई है, उनकी भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन सन्तानपरम्पराको 'वंश' कहते हैं। उन राजाओंके तथा उनके वंशधरोंके चरित्रका नाम 'वंशानुचरित' है ॥ १६ ॥ इस विश्वब्रह्माण्डका स्वभावसे ही प्रलय हो जाता है। उसके चार भेद हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्त्वज्ञ विद्वानोंने इन्हींको 'संस्था' कहा है ॥ १७ ॥ पुराणोंके लक्षणमें 'हेतु' नामसे जिसका व्यवहार होता है, वह जीव ही है; क्योंकि वास्तवमें वही सर्ग-विसर्ग आदिका हेतु है और अविद्यावश अनेकों प्रकारके कर्मकलापमें उलझ गया है। जो लोग उसे चैतन्यप्रधानकी दृष्टिसे देखते हैं, वे उसे अनुशयी अर्थात् प्रकृतिमें शयन करनेवाला कहते हैं; और जो उपाधिकी दृष्टिसे कहते हैं, वे उसे अव्याकृत अर्थात् प्रकृतिरूप कहते हैं ॥ १८ ॥ जीवकी वृत्तियोंके तीन विभाग हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जो इन अवस्थाओंमें इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञके मायामय रूपोंमें प्रतीत होता है और इन अवस्थाओंसे परे तुरीयतत्त्वके रूपमें भी लक्षित होता है, वही ब्रह्म है; उसीको यहाँ 'अपाश्रय' शब्दसे कहा गया है ॥ १९ ॥ नामविशेष और रूपविशेषसे युक्त पदार्थोंपर विचार करें, तो वे सत्तामात्र वस्तुके रूपमें सिद्ध होते हैं। उनकी विशेषताएँ लुप्त हो जाती हैं। असलमें वह सत्ता ही उन विशेषताओंके रूपमें प्रतीत भी हो रही है और उनसे पृथक् भी है। ठीक इसी न्यायसे शरीर और विश्वब्रह्माण्डकी उत्पत्तिसे लेकर मृत्यु और महाप्रलयपर्यन्त जितनी भी विशेष अवस्थाएँ हैं, उनके रूपमें परम सत्यस्वरूप ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है और वह उनसे सर्वथा पृथक् भी है। यही वाक्य-भेदसे अधिष्ठान और साक्षीके रूपमें ब्रह्म ही पुराणोक्त आश्रयतत्त्व है ॥ २० ॥ जब चित्त स्वयं आत्मविचार अथवा योगाभ्यासके द्वारा सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुणसम्बन्धी व्यावहारिक वृत्तियों और जाग्रत्-स्वप्न आदि स्वाभाविक वृत्तियोंका त्याग करके उपराम हो जाता है, तब शान्तवृत्तिमें 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंके द्वारा आत्मज्ञानका उदय होता है। उस समय आत्मवेत्ता पुरुष अविद्याजनित कर्म-वासना और कर्मप्रवृत्तिसे निवृत्त हो जाता है ॥ २१ ॥

शौनकादि ऋषियो! पुरातत्त्ववेत्ता ऐतिहासिक विद्वानोंने इन्हीं लक्षणोंके द्वारा पुराणोंकी यह पहचान बतलायी है। ऐसे लक्षणोंसे युक्त छोटे-बड़े अठारह पुराण हैं ॥ २२ ॥ उनके नाम ये हैं—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, भागवतपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वामनपुराण, वराहपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण और ब्रह्माण्डपुराण यह अठारह हैं ॥ २३-२४ ॥ शौनकजी! व्यासजीकी शिष्य-परम्पराने जिस प्रकार वेदसंहिता और पुराणसंहिताओंका अध्ययन-अध्यापन, विभाजन आदि किया वह मैंने तुम्हें सुना दिया। यह प्रसङ्ग सुनने और पढ़नेवालोंके ब्रह्मतेजकी अभिवृद्धि करता है ॥ २५ ॥

आठवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति

शौनकजीने कहा—साधुशिरोमणि सूतजी ! आप आयुष्मान् हों। सचमुच आप वक्ताओंके सिरमौर हैं। जो लोग संसारके अपार अन्धकारमें भूल-भटक रहे हैं, उन्हें आप वहाँसे निकालकर प्रकाशस्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करा देते हैं। आप कृपा करके हमारे एक प्रश्नका उत्तर दीजिये ॥ १ ॥ लोग कहते हैं कि मृकण्ड-ऋषिके पुत्र मार्कण्डेय ऋषि चिरायु हैं और जिस समय प्रलयने सारे जगत्को निगल लिया था, उस समय भी वे बचे रहे ॥ २ ॥ परन्तु सूतजी ! वे तो इसी कल्पमें हमारे ही वंशमें उत्पन्न हुए एक श्रेष्ठ भृगु-वंशी हैं और जहाँतक हमें माल्रम है, इस कल्पमें अबतक प्राणियोंका कोई प्रलय नहीं हुआ है ॥ ३ ॥ ऐसी स्थितिमें यह बात कैसे सत्य हो सकती है कि जिस समय सारी पृथ्वी प्रलयकालीन समुद्रमें डूब गयी थी, उस समय मार्कण्डेयजी उसमें डूब-उतरा रहे थे और उन्होंने अक्षयवटके पत्तेके दोनेमें अत्यन्त अद्भुत और सोये हुए बालमुकुन्दका दर्शन किया ॥ ४ ॥ सूतजी ! हमारे मनमें बड़ा सन्देह है और इस बातको जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा है। आप बड़े योगी हैं, पौराणिकोंमें सम्मानित हैं। आप कृपा करके हमारा यह सन्देह मिटा दीजिये ॥ ५ ॥

श्रीसूतजीने कहा—शौनकजी ! आपने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया। इससे लोगोंका भ्रम मिट जायगा। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस कथामें भगवान् नारायणकी महिमा है। जो इसका गान करता है, उसके सारे कलिमल नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ शौनकजी ! मृकण्ड ऋषिने अपने पुत्र मार्कण्डेयके सभी संस्कार समय-समयपर किये। मार्कण्डेयजी विधिपूर्वक वेदोंका अध्ययन करके तपस्या और स्वाध्यायसे सम्पन्न हो गये थे ॥ ७ ॥ उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यका व्रत ले रक्खा था। शान्तभावसे रहते थे। सिरपर जटाएँ बढ़ा रक्खी थीं। वृक्षोंकी छालका ही वस्त्र पहनते थे। वे अपने हाथोंमें कमण्डलु और दण्ड धारण करते, शरीरपर यज्ञोपवीत और मेखला शोभायमान रहती ॥ ८ ॥ काले मृगका चर्म, रुद्राक्षमाला और कुश—यही उनकी पूँजी थी। यह सब उन्होंने अपने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतकी पूर्तिके लिये ही ग्रहण किया था। वे सायङ्काल और प्रातःकाल अग्निहोत्र, सूर्योपस्थान, गुरुवन्दन, ब्राह्मण-सत्कार, मानस-पूजा और 'मैं परमात्माका स्वरूप ही हूँ' इस प्रकारकी भावना आदिके द्वारा भगवान्की आराधना करते ॥ ९ ॥ सायं-प्रातः भिक्षा लाकर गुरुदेवके चरणोंमें निवेदन कर देते और मौन हो जाते। गुरुजीकी आज्ञा होती तो एक बार खा लेते, अन्यथा उपवास कर जाते ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजीने इस प्रकार तपस्या और स्वाध्यायमें तत्पर रहकर करोड़ों वर्षोंतक भगवान्की आराधना की और इस प्रकार उस मृत्युपर भी विजय प्राप्त कर ली, जिसको जीतना बड़े-बड़े योगियोंके लिये भी कठिन है ॥ ११ ॥ मार्कण्डेयजीकी मृत्यु-विजयको देखकर ब्रह्मा, भृगु, शङ्कर, दक्ष प्रजापति, ब्रह्माजीके अन्यान्य पुत्र तथा मनुष्य, देवता, पितर एवं अन्य सभी प्राणी अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ १२ ॥ आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतधारी एवं योगी मार्कण्डेयजी इस प्रकार तपस्या, स्वाध्याय और संयम आदिके द्वारा अविद्या आदि सारे क्लेशोंको मिटाकर शुद्ध अन्तःकरणसे इन्द्रियातीत परमात्माका ध्यान करने लगे ॥ १३ ॥ योगी मार्कण्डेयजी महायोगके द्वारा अपना चित्त भगवान्के स्वरूपमें जोड़ते रहे। इस प्रकार साधन करते-करते बहुत समय—छः मन्वन्तर व्यतीत हो गये ॥ १४ ॥ ब्रह्मन् ! इस सातवें मन्वन्तरमें जब इन्द्रको इस बातका पता चला, तब तो वे उनकी तपस्यासे शंकित और भयभीत हो गये। इसलिये उन्होंने उनकी तपस्यामें विघ्न डालना आरम्भ कर दिया ॥ १५ ॥

शौनकजी ! इन्द्रने मार्कण्डेयजीकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये उनके आश्रमपर गन्धर्व, अप्सराएँ, काम, वसन्त, मलयानिल, लोभ और मदको भेजा ॥ १६ ॥ भगवन् ! वे सब उनकी आज्ञाके अनुसार उनके आश्रमपर गये। मार्कण्डेयजीका आश्रम हिमालयके उत्तरकी

ओर है। वहाँ पुष्पभद्रा नामकी नदी बहती है और उसके पास ही चित्रा नामकी एक शिला है ॥ १७ ॥ शौनकजी! मार्कण्डेयजीका आश्रम बड़ा ही पवित्र है। चारों ओर हरे-भरे पवित्र वृक्षोंकी पंक्तियाँ हैं, उनपर लताएँ लहलहाती रहती हैं। वृक्षोंके झुरमुटमें स्थान-स्थानपर पुण्यात्मा ऋषिगण निवास करते हैं और बड़े ही पवित्र एवं निर्मल जलसे भरे जलाशय सब ऋतुओंमें एक-से ही रहते हैं॥ १८॥ कहीं मतवाले भौंरे अपनी सङ्गीतमयी गुंजारसे लोगोंका मन आकर्षित करते रहते हैं तो कहीं मतवाले कोकिल पञ्चम स्वरमें 'कुहू-कुहू' कूकते रहते हैं; कहीं मतवाले मोर अपने पंख फैलाकर कलापूर्ण नृत्य करते रहते हैं तो कहीं अन्य मतवाले पक्षियोंका झुंड खेलता रहता है॥ १९ ॥ मार्कण्डेय मुनिके ऐसे पवित्र आश्रममें इन्द्रके भेजे हुए वायुने प्रवेश किया। वहाँ उसने पहले शीतल झरनोंकी नन्ही-नन्ही फुहियाँ संग्रह कीं। इसके बाद सुगन्धित पुष्पोंका आलिङ्गन किया और फिर कामभावको उत्तेजित करते हुए धीरे-धीरे बहने लगा॥ २०॥ कामदेवके प्यारे सखा वसन्तने भी अपनी माया फैलायी। सन्ध्याका समय था। चन्द्रमा उदित हो अपनी मनोहर किरणोंका विस्तार कर रहे थे। सहस्र-सहस्र डालियोंवाले वृक्ष लताओंका आलिङ्गन पाकर धरतीतक झुके हुए थे। नयी-नयी कोंपलों, फलों और फूलोंके गुच्छे अलग ही शोभायमान हो रहे थे॥ २१॥ वसन्तका साम्राज्य देखकर कामदेवने भी वहाँ प्रवेश किया। उसके साथ गाने-बजानेवाले गन्धर्व झुंड-के-झुंड चल रहे थे। उसके चारों ओर बहुत-सी स्वर्गीय अप्सराएँ चल रही थीं और अकेला काम ही सबका नायक था। उसके हाथमें पुष्पोंका धनुष और उसपर सम्मोहन आदि बाण चढ़े हुए थे॥ २२॥

उस समय मार्कण्डेय मुनि अग्निहोत्र करके भगवान्‌की उपासना कर रहे थे। उनके नेत्र बंद थे। वे इतने तेजस्वी थे, मानो स्वयं अग्निदेव ही मूर्तिमान् होकर बैठे हों! उनको देखनेसे ही मालूम हो जाता था कि इनको पराजित कर सकना बहुत ही कठिन है। इन्द्रके आज्ञाकारी सेवकोंने मार्कण्डेय मुनिको इसी अवस्थामें देखा॥ २३॥ अब अप्सराएँ उनके सामने नाचने लगीं। कुछ गन्धर्व मधुर गान करने लगे तो कुछ मृदङ्ग, वीणा, ढोल आदि बाजे बड़े मनोहर स्वरमें बजाने लगे॥ २४॥ शौनकजी! अब कामदेवने अपने पुष्प-निर्मित धनुषपर पञ्चमुख बाण चढ़ाया। उसके बाणके पाँच मुख हैं—शोषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादन। जिस समय वह निशाना लगानेकी ताकमें था, उस समय इन्द्रके सेवक वसन्त और लोभ मार्कण्डेय मुनिका मन विचलित करनेके लिये प्रयत्नशील थे॥ २५॥ उनके सामने ही पुञ्जिकस्थली नामकी सुन्दरी अप्सरा गेंद खेल रही थी। स्तनोंके भारसे बार-बार उसकी कमर लचक जाया करती थी। साथ ही उसकी चोटियोंमें गुँथे हुए सुन्दर-सुन्दर पुष्प और मालाएँ बिखरकर धरतीपर गिरती जा रही थीं॥ २६॥ कभी-कभी वह तिरछी चितवनसे इधर-उधर देख लिया करती थी। उसके नेत्र कभी गेंदके साथ आकाशकी ओर जाते, कभी धरतीकी ओर और कभी हथेलियोंकी ओर। वह बड़े हाव-भावके साथ गेंदकी ओर दौड़ती थी। उसी समय उसकी करधनी टूट गयी और वायुने उसकी झीनी-सी साड़ीको शरीरसे अलग कर दिया॥२७॥ कामदेवने अपना उपयुक्त अवसर देखकर और यह समझकर कि अब मार्कण्डेय मुनिको मैंने जीत लिया, उनके ऊपर अपना बाण छोड़ा। परन्तु उसकी एक न चली। मार्कण्डेय मुनिपर उसका सारा उद्योग निष्फल हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे असमर्थ और अभागे पुरुषोंके प्रयत्न विफल हो जाते हैं॥२८॥ शौनकजी! मार्कण्डेय मुनि अपरिमित तेजस्वी थे। काम, वसन्त आदि आये तो थे इसलिये कि उन्हें तपस्यासे भ्रष्ट कर दें; परन्तु अब उनके तेजसे जलने लगे और ठीक उसी प्रकार भाग गये, जैसे छोटे-छोटे बच्चे सोते हुए साँपको जगाकर भाग जाते हैं॥ २९॥ शौनकजी! इन्द्रके सेवकोंने इस प्रकार मार्कण्डेयजीको पराजित करना चाहा, परन्तु वे रत्तीभर भी विचलित न हुए। इतना ही नहीं, उनके मनमें इस बातको लेकर तनिक भी अहङ्कारका भाव न हुआ। सच है, महापुरुषोंके लिये यह कौन-सी आश्चर्यकी बात है॥ ३०॥ जब देवराज

इन्द्रने देखा कि कामदेव अपनी सेनाके साथ निस्तेज—हतप्रभ होकर लौटा है और सुना कि ब्रह्मर्षि मार्कण्डेयजी परम प्रभावशाली हैं, तब उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥

शौनकजी ! मार्कण्डेय मुनि तपस्या, स्वाध्याय, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा भगवान्‌में चित्त लगानेका प्रयत्न करते रहते थे । अब उनपर कृपा-प्रसादकी वर्षा करनेके लिये मुनिजन-नयन-मनोहारी नरोत्तम नर और भगवान् नारायण प्रकट हुए ॥ ३२ ॥ उन दोनोंमें एकका शरीर गौरवर्ण था और दूसरेका श्याम । दोनोंके ही नेत्र तुरंतके खिले हुए कमलके समान कोमल और विशाल थे । चार-चार भुजाएँ थीं । एक मृगचर्म पहने हुए थे, तो दूसरे वृक्षकी छाल । हाथोंमें कुश लिये हुए थे और गलेमें तीन-तीन सूतके यज्ञोपवीत शोभायमान थे । वे कमण्डलु और बाँसका सीधा दण्ड ग्रहण किये हुए थे ॥ ३३ ॥ कमलगट्टेकी माला और जीवोंको हटानेके लिये वस्त्रकी कूँची भी रक्खे हुए थे । ब्रह्मा, इन्द्र आदिके भी पूज्य भगवान् नर-नारायण कुछ ऊँचे कदके थे और वेद धारण किये हुए थे । उनके शरीरसे चमकती हुई बिजलीके समान पीले-पीले रंगकी कान्ति निकल रही थी । वे ऐसे मालूम होते थे, मानो स्वयं तप ही मूर्तिमान् हो गया हो ॥ ३४ ॥ जब मार्कण्डेय मुनिने देखा कि भगवान्‌के साक्षात् स्वरूप नर-नारायण ऋषि पधारे हैं, तब वे बड़े आदरभावसे उठकर खड़े हो गये और धरतीपर दण्डवत् लोटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ भगवान्‌के दिव्य दर्शनसे उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उनका रोम-रोम, उनकी सारी इन्द्रियाँ एवं अन्तःकरण शान्तिके समुद्रमें गोता खाने लगे । शरीर पुलकित हो गया । नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये, जिनके कारण वे उन्हें भर आँख देख भी न सकते ॥ ३६ ॥ तदनन्तर वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए । उनका अङ्ग-अङ्ग भगवान्‌के सामने झुका जा रहा था । उनके हृदयमें उत्सुकता तो इतनी थी, मानो वे भगवान्‌का आलिङ्गन कर लेंगे । उनसे और कुछ तो बोला न गया, गद्गद वाणीसे केवल इतना ही कहा—'नमस्कार ! नमस्कार' ॥ ३७ ॥ इसके बाद उन्होंने दोनोंको आसनपर बैठाया, बड़े प्रेमसे उनके चरण पखारे और अर्घ्य, चन्दन, धूप और माला आदिसे उनकी पूजा करने लगे ॥ ३८ ॥ भगवान् नर-नारायण सुखपूर्वक आसनपर विराजमान थे और मार्कण्डेयजीपर कृपा-प्रसादकी वर्षा कर रहे थे । पूजाके अनन्तर मार्कण्डेय मुनिने उन सर्वश्रेष्ठ मुनिवेषधारी नर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और यह स्तुति की ॥ ३९ ॥

मार्कण्डेय मुनिने कहा—भगवन् ! मैं अल्पज्ञ जीव भला, आपकी अनन्त महिमाका कैसे वर्णन करूँ ? आपकी प्रेरणासे ही सम्पूर्ण प्राणियों—ब्रह्मा, शङ्कर तथा मेरे शरीरमें भी प्राणशक्तिका सञ्चार होता है और फिर उसीके कारण वाणी, मन तथा इन्द्रियोंमें भी बोलने, सोचने-विचारने और करने-जाननेकी शक्ति आती है । इस प्रकार सबके प्रेरक और परम स्वतन्त्र होनेपर भी आप अपना भजन करनेवाले भक्तोंके प्रेम-बन्धनमें बँधे हुए हैं ॥ ४० ॥ प्रभो ! आपने केवल विश्वकी रक्षाके लिये ही जैसे मत्स्य-कूर्म आदि अनेकों अवतार ग्रहण किये हैं, वैसे ही आपने ये दोनों रूप भी त्रिलोकीके कल्याण, उसकी दुःख-निवृत्ति और विश्वके प्राणियोंको मृत्युपर विजय प्राप्त करानेके लिये ग्रहण किया है । आप रक्षा तो करते ही हैं, मकड़ीके समान अपनेसे ही इस विश्वको प्रकट करते हैं और फिर स्वयं अपनेमें ही लीन भी कर लेते हैं ॥ ४१ ॥ आप चराचरका पालन और नियमन करनेवाले हैं । मैं आपके चरण-कमलोंमें प्रणाम करता हूँ । जो आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण कर लेते हैं, उन्हें कर्म, गुण और कालजनित क्लेश स्पर्श भी नहीं कर सकते । वेदके मर्मज्ञ ऋषि-मुनि आपकी प्राप्तिके लिये निरन्तर आपका स्तवन, वन्दन, पूजन और ध्यान किया करते हैं ॥ ४२ ॥ प्रभो ! जीवके चारों ओर भय-ही-भयका बोलबाला है । औरोंकी तो बात ही क्या, आपके कालस्वरूपसे स्वयं ब्रह्मा भी अत्यन्त भयभीत रहते हैं; क्योंकि उनकी आयु भी सीमित—केवल दो परार्द्धकी है । फिर उनके बनाये हुए भौतिक शरीरवाले प्राणियोंके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है । ऐसी अवस्थामें आपके चरणकमलोंकी शरण ग्रहण करनेके अतिरिक्त और कोई भी परम

कल्याण तथा सुख-शान्तिका उपाय हमारी समझमें नहीं आता; क्योंकि आप स्वयं ही मोक्षस्वरूप हैं ॥४३॥ भगवन्! आप समस्त जीवोंके परम गुरु, सबसे श्रेष्ठ और सत्य ज्ञानस्वरूप हैं। इसलिये आत्मस्वरूपको ढक देनेवाले देह-गेह आदि निष्फल, असत्य, नाशवान् और प्रतीतिमात्र पदार्थोंको त्याग कर मैं आपके चरणकमलोंकी ही शरण ग्रहण करता हूँ। कोई भी प्राणी यदि आपकी शरण ग्रहण कर लेता है, तो वह उससे अपने सारे अभीष्ट पदार्थ प्राप्त कर लेता है ॥ ४४ ॥ जीवोंके परम सुहृद् प्रभो! यद्यपि सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण आपकी ही मूर्ति हैं—इन्हींके द्वारा आप जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय आदि अनेकों मायामयी लीलाएँ करते हैं फिर भी आपकी सत्त्वगुणमयी मूर्ति ही जीवोंको शान्ति प्रदान करती है। रजोगुणी और तमोगुणी मूर्तियोंसे जीवोंको शान्ति नहीं मिल सकती। उनसे तो दुःख, मोह और भयकी वृद्धि ही होती है ॥ ४५ ॥ भगवन्! इसलिये बुद्धिमान् पुरुष आपकी और आपके भक्तोंकी परम प्रिय एवं शुद्ध मूर्ति नर-नारायणकी ही उपासना करते हैं। पाञ्चरात्र-सिद्धान्तके अनुयायी विशुद्ध सत्त्वको ही आपका श्रीविग्रह मानते हैं। उसीकी उपासनासे आपके नित्य-धाम वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है। उस धामकी यह विलक्षणता है कि वह लोक होनेपर भी सर्वथा भयरहित और भोगयुक्त होनेपर भी आत्मानन्दसे परिपूर्ण है। वे रजोगुण और तमोगुणको आपकी मूर्ति स्वीकार नहीं करते ॥४६॥ भगवन्! आप अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, जगद्गुरु, परमाराध्य और शुद्धस्वरूप हैं। समस्त लौकिक और वैदिक वाणी आपके अधीन है। आप ही वेदमार्गके प्रवर्तक हैं। मैं आपके इस युगल-स्वरूप नरोत्तम नर और ऋषिवर नारायणको नमस्कार करता हूँ ॥ ४७ ॥ आप यद्यपि प्रत्येक जीवकी इन्द्रियों तथा उनके विषयोंमें, प्राणोंमें तथा हृदयमें भी विद्यमान हैं तो भी आपकी मायासे जीवकी बुद्धि इतनी मोहित हो जाती है—ढक जाती है कि वह निष्फल और झूठी इन्द्रियोंके जालमें फँसकर आपकी झाँकीसे वञ्चित हो जाता है। किन्तु सारे जगत्के गुरु तो आप ही हैं। इसलिये पहले अज्ञानी होनेपर भी जब आपकी कृपासे उसे आपके ज्ञान-भण्डार वेदोंकी प्राप्ति होती है, तब वह आपके साक्षात् दर्शन कर लेता है ॥ ४८ ॥ प्रभो! वेदमें आपका साक्षात्कार करानेवाला वह ज्ञान पूर्णरूपसे विद्यमान है, जो आपके स्वरूपका रहस्य प्रकट करता है। ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली मनीषी उसे प्राप्त करनेका यत्न करते रहनेपर भी मोहमें पड़ जाते हैं। आप भी ऐसे लीलाविहारी हैं कि विभिन्न मतवाले आपके सम्बन्धमें जैसा सोचते-विचारते हैं, वैसा ही शील-स्वभाव और रूप ग्रहण करके आप उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। वास्तवमें आप देह आदि समस्त उपाधियोंमें छिपे हुए विशुद्ध विज्ञानघन ही हैं। हे पुरुषोत्तम! मैं आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ४९ ॥

नवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीका माया-दर्शन

श्रीसूतजी कहते हैं—जब ज्ञानसम्पन्न मार्कण्डेय मुनिने इस प्रकार स्तुति की, तब भगवान् नर-नारायणने प्रसन्न होकर मार्कण्डेयजीसे कहा ॥ १ ॥

भगवान् नारायणने कहा—सम्मान्य ब्रह्मर्षिशिरोमणि! तुम चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, संयम और मेरी अनन्य भक्तिसे सिद्ध हो गये हो ॥२॥ तुम्हारे इस आजीवन ब्रह्मचर्यव्रतकी निष्ठा देखकर हम तुमपर बहुत ही प्रसन्न हुए हैं। तुम्हारा कल्याण हो! मैं समस्त वर देनेवालोंका स्वामी हूँ। इसलिये तुम अपना अभीष्ट वर मुझसे माँग लो ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय मुनिने कहा—देवदेवेश! शरणागत-भयहारी अच्युत! आपकी जय हो! जय हो! हमारे लिये बस इतना ही वर पर्याप्त है कि आपने कृपा करके अपने मनोहर स्वरूपका दर्शन कराया ॥ ४ ॥ ब्रह्मा-शङ्कर आदि देवगण योग-साधनाके द्वारा एकाग्र हुए मनसे ही आपके परम सुन्दर श्रीचरणकमलोंका दर्शन

प्राप्त करके कृतार्थ हो गये हैं। आज उन्हीं आपने मेरे नेत्रोंके सामने प्रकट होकर मुझे धन्य बनाया है ॥ ५॥ पवित्रकीर्ति महानुभावोंके शिरोमणि कमलनयन ! फिर भी आपकी आज्ञाके अनुसार मैं आपसे वर माँगता हूँ। मैं आपकी वह माया देखना चाहता हूँ, जिससे मोहित होकर सभी लोक और लोकपाल अद्वितीय वस्तु ब्रह्ममें अनेकों प्रकारके भेद-विभेद देखने लगते हैं ॥ ६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जब इस प्रकार मार्कण्डेय मुनिने भगवान् नर-नारायणकी इच्छानुसार स्तुति-पूजा कर ली एवं वरदान माँग लिया, तब उन्होंने मुसकराते हुए कहा—'ठीक है, ऐसा ही होगा।' इसके बाद वे अपने आश्रम बदरीवनको चले गये ॥७॥ मार्कण्डेय मुनि अपने आश्रमपर ही रहकर निरन्तर इस बातका चिन्तन करते रहते कि मुझे मायाके दर्शन कब होंगे। वे अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, जल, पृथ्वी, वायु, आकाश एवं अन्तःकरणमें—और तो क्या, सर्वत्र भगवान्‌का ही दर्शन करते हुए मानसिक वस्तुओंसे उनका पूजन करते रहते। कभी-कभी तो उनके हृदयमें प्रेमकी ऐसी बाढ़ आ जाती कि वे उसके प्रवाहमें डूबने-उतराने लगते, उन्हें इस बातकी भी याद न रहती कि कब कहाँ किस प्रकार भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये ! ॥ ८-९ ॥

शौनकजी ! एक दिनकी बात है, सन्ध्याके समय पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेय मुनि भगवान्‌की उपासनामें तन्मय हो रहे थे। ब्रह्मन् ! उसी समय एकाएक बड़े जोरकी आँधी चलने लगी ॥ १० ॥ उस समय आँधीके कारण बड़ी भयङ्कर आवाज होने लगी और बड़े विकराल बादल आकाशमें मँडराने लगे। बिजली चमक-चमककर कड़कने लगी और रथके धुरेके समान जलकी मोटी-मोटी धाराएँ पृथ्वीपर गिरने लगीं ॥११॥ यही नहीं, मार्कण्डेय मुनिको ऐसा दिखायी पड़ा कि चारों ओरसे चारों समुद्र समूची पृथ्वीको निगलते हुए उमड़े आ रहे हैं। आँधीके वेगसे समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही हैं, बड़े भयङ्कर भँवर पड़ रहे हैं और भयङ्कर ध्वनि कान फाड़े डालती है। स्थान-स्थानपर बड़े-बड़े मगर उछल रहे हैं ॥ १२ ॥ उस समय बाहर-भीतर, चारों ओर जल-ही-जल दीखता था। ऐसा जान पड़ता था कि उस जलराशिमें पृथ्वी ही नहीं, स्वर्ग भी डूबा जा रहा है; ऊपरसे बड़े वेगसे आँधी चल रही है और बिजली चमक रही है, जिससे सम्पूर्ण जगत् संतप्त हो रहा है। जब मार्कण्डेय मुनिने देखा कि इस जल-प्रलयसे सारी पृथ्वी डूब गयी है, उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—चारों प्रकारके प्राणी तथा स्वयं वे भी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उदास हो गये और साथ ही अत्यन्त भयभीत भी ॥ १३ ॥ उनके सामने ही प्रलयसमुद्रमें भयङ्कर लहरें उठ रही थीं, आँधीके वेगसे जलराशि उछल रही थी और प्रलयकालीन बादल बरस-बरसकर समुद्रको और भी भरते जा रहे थे। उन्होंने देखा कि समुद्रने द्वीप, वर्ष और पर्वतोंके साथ सारी पृथ्वीको डुबा दिया ॥१४॥ पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, ज्योतिर्मण्डल (ग्रह, नक्षत्र एवं तारोंका समूह) और दिशाओंके साथ तीनों लोक जलमें डूब गये। बस, उस समय एकमात्र महामुनि मार्कण्डेय ही बच रहे थे। उस समय वे पागल और अंधेके समान जटा फैलाकर यहाँसे वहाँ और वहाँसे यहाँ भाग-भागकर अपने प्राण बचानेकी चेष्टा कर रहे थे ॥ १५ ॥ वे भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे थे। किसी ओर बड़े-बड़े मगर तो किसी ओर बड़े-बड़े तिमिङ्गिल मच्छ उनपर टूट पड़ते। किसी ओरसे हवाका झोंका आता, तो किसी ओरसे लहरोंके थपेड़े उन्हें घायल कर देते। इस प्रकार इधर-उधर भटकते-भटकते वे अपार अज्ञानान्धकारमें पड़ गये—बेहोश हो गये और इतने थक गये कि उन्हें पृथ्वी और आकाशका भी ज्ञान न रहा ॥१६॥ वे कभी बड़े भारी भँवरमें पड़ जाते, कभी तरल तरङ्गोंकी चोटसे चञ्चल हो उठते। जब कभी जलजन्तु आपसमें एक दूसरेपर आक्रमण करते, तब ये अचानक ही उनके शिकार बन जाते ॥ १७॥ कहीं शोकग्रस्त हो जाते, तो कहीं मोहग्रस्त। कभी दुःख-ही-दुःखके निमित्त आते, तो कभी तनिक सुख भी मिल जाता। कभी भयभीत होते, कभी मर जाते, तो कभी तरह-तरहके रोग उन्हें सताने लगते ॥ १८॥ इस प्रकार मार्कण्डेय मुनि विष्णुभगवान्‌की मायाके चक्करमें मोहित हो रहे थे। उस प्रलयकालके समुद्रमें भटकते-भटकते उन्हें सैकड़ों-हजारों ही नहीं, लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये ॥ १९ ॥

शौनकजी! मार्कण्डेय मुनि इसी प्रकार प्रलयके जलमें बहुत समयतक भटकते रहे। एक बार उन्होंने पृथ्वीके एक टीलेपर एक छोटा-सा बरगदका पेड़ देखा। उसमें हरे-हरे पत्ते और लाल-लाल फल शोभायमान हो रहे थे ॥२०॥ बरगदके पेड़में ईशानकोणपर एक डाल थी, उसमें एक पत्तोंका दोना-सा बन गया था। उसीपर एक बड़ा ही सुन्दर नन्हा-सा शिशु लेट रहा था। उसके शरीरसे ऐसी उज्ज्वल छटा छिटक रही थी, जिससे आस-पासका अँधेरा दूर हो रहा था ॥२१॥ वह शिशु मरकतमणिके समान साँवला-साँवला था। मुखकमलपर सारा सौन्दर्य फटा पड़ता था। गरदन शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाली थी। छाती चौड़ी थी। तोतेकी चोंचके समान सुन्दर नासिका और भौंहें बड़ी मनोहर थीं ॥२२॥ काली-काली घुँघराली अलकें कपोलोंपर लटक रही थीं और श्वास लगनेसे कभी-कभी हिल भी जाती थीं। शङ्खके समान घुमावदार कानोंमें अनारके लाल-लाल फूल शोभायमान हो रहे थे। मूँगेके समान लाल-लाल होठोंकी कान्तिसे उनकी सुधामयी श्वेत मुसकान कुछ ललिमा-मिश्रित हो गयी थी ॥ २३ ॥ नेत्रोंके कोने कमलके भीतरी भागके समान तनिक लाल-लाल थे। मुसकान और चितवन बरबस हृदयको पकड़ लेती थी। बड़ी गम्भीर नाभि थी। छोटी-सी तोंद पीपलके पत्तेके समान जान पड़ती और श्वास लेनेके समय उसपर पड़ी हुई बलें तथा नाभि भी हिल जाया करती थी ॥ २४ ॥ नन्हे-नन्हे हाथोंमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर अँगुलियाँ थीं। वह शिशु अपने दोनों करकमलोंसे एक चरणकमलको मुखमें डालकर चूस रहा था। मार्कण्डेय मुनि यह दिव्य दृश्य देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥ २५ ॥

शौनकजी! उस दिव्य शिशुको देखते ही मार्कण्डेय मुनिकी सारी थकावट जाती रही। आनन्दसे उनके हृदय-कमल और नेत्रकमल खिल गये। शरीर पुलकित हो गया। उस नन्हे-से शिशुके इस अद्भुत भावको देखकर उनके मनमें तरह-तरहकी शङ्काएँ—'यह कौन है' इत्यादि—आने लगीं और वे उस शिशुसे ये बातें पूछनेके लिये उसके सामने सरक गये ॥ २६ ॥ अभी मार्कण्डेयजी पहुँच भी न पाये थे कि उस शिशुके श्वासके साथ उसके शरीरके भीतर उसी प्रकार घुस गये, जैसे कोई मच्छर किसीके पेटमें चला जाय। उस शिशुके पेटमें जाकर उन्होंने सब-की-सब वही सृष्टि देखी, जैसी प्रलयके पहले उन्होंने देखी थी। वे वह सब विचित्र दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये। वे मोहवश कुछ सोच-विचार भी न सके ॥ २७ ॥ उन्होंने उस शिशुके उदरमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, पर्वत, समुद्र, द्वीप, वर्ष, दिशाएँ, देवता, दैत्य, वन, देश, नदियाँ, नगर, खानें, किसानोंके गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ, आश्रम, वर्ण, उनके आचार-व्यवहार, पञ्चमहाभूत, भूतोंसे बने हुए प्राणियोंके शरीर तथा पदार्थ, अनेक युग और कल्पोंके भेदसे युक्त काल आदि सब कुछ देखा। केवल इतना ही नहीं; जिन देशों, वस्तुओं और कालोंके द्वारा जगत्का व्यवहार सम्पन्न होता है, वह सब कुछ वहाँ विद्यमान था। कहाँतक कहें, यह सम्पूर्ण विश्व न होनेपर भी वहाँ सत्यके समान प्रतीत होते देखा ॥ २८-२९ ॥ हिमालय पर्वत, वही पुष्पभद्रा नदी, उसके तटपर अपना आश्रम और वहाँ रहनेवाले ऋषियोंको भी मार्कण्डेयजीने प्रत्यक्ष ही देखा। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्वको देखते-देखते ही वे उस दिव्य शिशुके श्वासके द्वारा ही बाहर आ गये और फिर प्रलय-कालीन समुद्रमें गिर पड़े ॥ ३० ॥ अब फिर उन्होंने देखा कि समुद्रके बीचमें पृथ्वीके टीलेपर वही बरगदका पेड़ ज्यों-का-त्यों विद्यमान है और उसके पत्तोंके दोनेमें वही शिशु सोया हुआ है। उसके अधरोंपर प्रेमामृतसे परिपूर्ण मन्द-मन्द मुसकान है और अपनी प्रेमपूर्ण चितवनसे वह मार्कण्डेयजीकी ओर देख रहा है ॥ ३१ ॥ अब मार्कण्डेय मुनि इन्द्रियातीत भगवान्को जो शिशुके रूपमें क्रीडा कर रहे थे और नेत्रोंके मार्गसे पहले ही हृदयमें विराजमान हो चुके थे, आलिङ्गन करनेके लिये बड़े श्रम और कठिनाईसे आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ परन्तु शौनकजी! भगवान् केवल योगियोंके ही नहीं, स्वयं योगके भी स्वामी और सबके हृदयमें छिपे रहनेवाले हैं। अभी मार्कण्डेय मुनि उनके पास पहुँच भी न पाये थे कि वे तुरंत अन्तर्धान हो गये—ठीक वैसे ही, जैसे अभागे और असमर्थ पुरुषोंके परिश्रमका पता नहीं चलता कि वह फल दिये बिना ही क्या हो गया? ॥ ३३ ॥ शौनकजी! उस

शिशुके अन्तर्धान होते ही वह बरगदका वृक्ष तथा प्रलयकालीन दृश्य एवं जल भी तत्काल लीन हो गया और मार्कण्डेय मुनिने देखा कि मैं तो पहलेके समान ही अपने आश्रममें बैठा हुआ हूँ ॥ ३४ ॥

दसवाँ अध्याय

मार्कण्डेयजीको भगवान् शङ्करका वरदान

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! मार्कण्डेय मुनिने इस प्रकार नारायण-निर्मित योगमाया-वैभवका अनुभव किया। अब यह निश्चय करके कि इस मायासे मुक्त होनेके लिये मायापति भगवान्की शरण ही एकमात्र उपाय है, उन्हींकी शरणमें स्थित हो गये ॥ १ ॥

मार्कण्डेयजीने मन-ही-मन कहा—प्रभो! आपकी माया वास्तवमें प्रतीतिमात्र होनेपर भी सत्य ज्ञानके समान प्रकाशित होती है और बड़े-बड़े विद्वान् भी उसके खेलोंमें मोहित हो जाते हैं। आपके श्रीचरणकमल ही शरणागतोंको सब प्रकारसे अभयदान करते हैं। इसलिये मैंने उन्हींकी शरण ग्रहण की है ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—मार्कण्डेयजी इस प्रकार शरणागतिकी भावनामें तन्मय हो रहे थे। उसी समय भगवान् शङ्कर भगवती पार्वतीजीके साथ नन्दीपर सवार होकर आकाशमार्गसे विचरण करते हुए उधर आ निकले और मार्कण्डेयजीको उसी अवस्थामें देखा। उनके साथ बहुत-से गण भी थे ॥ ३ ॥ जब भगवती पार्वतीने मार्कण्डेय मुनिको ध्यानकी अवस्थामें देखा, तब उनका हृदय वात्सल्य-स्नेहसे उमड़ आया। उन्होंने शङ्करजीसे कहा—'भगवन्! तनिक इस ब्राह्मणकी ओर तो देखिये। जैसे तूफान शान्त हो जानेपर समुद्रकी लहरें और मछलियाँ शान्त हो जाती हैं और समुद्र धीर-गम्भीर हो जाता है, वैसे ही इस ब्राह्मणका शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण शान्त हो रहा है। समस्त सिद्धियोंके दाता आप ही हैं। इसलिये कृपा करके आप इस ब्राह्मणकी तपस्याका प्रत्यक्ष फल दीजिये' ॥ ४-५ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—देवि! ये ब्रह्मर्षि लोक अथवा परलोककी कोई भी वस्तु नहीं चाहते। और तो क्या, इनके मनमें कभी मोक्षकी भी आकाङ्क्षा नहीं होती। इसका कारण यह है कि घट-घटवासी अविनाशी भगवान्के चरणकमलोंमें इन्हें परम भक्ति प्राप्त हो चुकी है ॥ ६ ॥ प्रिये! यद्यपि इन्हें हमारी कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी मैं इनके साथ बातचीत करूँगा; क्योंकि ये महात्मा पुरुष हैं। जीवमात्रके लिये सबसे बड़े लाभकी बात यही है कि संत पुरुषोंका समागम प्राप्त हो ॥ ७ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! भगवान् शङ्कर समस्त विद्याओंके प्रवर्तक और सारे प्राणियोंके हृदयमें विराजमान अन्तर्यामी प्रभु हैं। जगत्के जितने भी संत हैं, उनके एकमात्र आश्रय और आदर्श भी वही हैं। भगवती पार्वतीसे इस प्रकार कहकर भगवान् शङ्कर मार्कण्डेय मुनिके पास गये ॥ ८ ॥ उस समय मार्कण्डेय मुनिकी समस्त मनोवृत्तियाँ भगवद्भावमें तन्मय थीं। उन्हें अपने शरीर और जगत्का बिल्कुल पता न था। इसलिये उस समय वे यह भी न जान सके कि मेरे सामने सारे विश्वके आत्मा स्वयं भगवान् गौरी-शङ्कर पधारे हुए हैं ॥ ९ ॥ शौनकजी! सर्वशक्तिमान् भगवान् कैलासपतिसे यह बात छिपी न रही कि मार्कण्डेय मुनि इस समय किस अवस्थामें हैं। इसलिये जैसे वायु अवकाशके स्थानमें अनायास ही प्रवेश कर जाती है, वैसे ही वे अपनी योगमायासे मार्कण्डेय मुनिके हृदयाकाशमें प्रवेश कर गये ॥ १० ॥ मार्कण्डेय मुनिने देखा कि उनके हृदयमें तो भगवान् शङ्करके दर्शन हो रहे हैं। शङ्करजीके शिरपर बिजलीके समान चमकीली पीली-पीली जटाएँ शोभायमान हो रही हैं। तीन नेत्र हैं और दस भुजाएँ। लंबा-तगड़ा शरीर उदयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी है ॥ ११ ॥ शरीरपर बाघम्बर धारण किये हुए हैं और हाथोंमें शूल, खट्वांग, ढाल, रुद्राक्ष-माला, डमरू, खप्पर, तलवार और धनुष लिये हैं ॥ १२ ॥ मार्कण्डेय मुनि अपने हृदयमें अकस्मात् भगवान् शङ्करका यह रूप देखकर विस्मित हो गये। 'यह क्या है?

मार्कण्डेयपर शङ्करजीकी कृपा

भगवान् शङ्कर श्रीपार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ पधारे । [पृष्ठ ९८१

कहाँसे आया ?' इस प्रकारकी वृत्तियोंका उदय हो जानेसे उन्होंने अपनी समाधि खोल दी ॥ १३ ॥ जब उन्होंने आँखें खोलीं, तब देखा कि तीनों लोकोंके एकमात्र गुरु भगवान् शङ्कर श्रीपार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ पधारे हुए हैं । उन्होंने उनके चरणोंमें माथा टेककर प्रणाम किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर मार्कण्डेय मुनिने स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, पुष्पमाला, धूप और दीप आदि उपचारोंसे भगवान् शङ्कर, भगवती पार्वती और उनके गणोंकी पूजा की ॥ १५ ॥ इसके पश्चात् मार्कण्डेय मुनि उनसे कहने लगे—'सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् प्रभो ! आप अपनी आत्मानुभूति और महिमासे ही पूर्णकाम हैं । आपकी शान्ति और सुखसे ही सारे जगत्में सुख-शान्तिका विस्तार हो रहा है, ऐसी अवस्थामें मैं आपकी क्या सेवा करूँ ? ॥ १६ ॥ मैं आपके त्रिगुणातीत सदाशिव स्वरूपको और सत्त्वगुणसे युक्त शान्तस्वरूपको नमस्कार करता हूँ । मैं आपके रजोगुणयुक्त सर्वप्रवर्तक स्वरूप एवं तमोगुणयुक्त अघोर स्वरूपको नमस्कार करता हूँ' ॥ १७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जब मार्कण्डेय मुनिने संतोंके परम आश्रय देवाधिदेव भगवान् शङ्करकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे उनपर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बड़े प्रसन्न चित्तसे हँसते हुए कहने लगे ॥ १८ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—मार्कण्डेयजी ! ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं—हम तीनों ही वरदाताओंके स्वामी हैं, हमलोगोंका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता । हमलोगोंसे ही मरणशील मनुष्य भी अमृतत्वकी प्राप्ति कर लेता है । इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो, वही वर मुझसे माँग लो ॥ १९ ॥ ब्राह्मण स्वभावसे ही परोपकारी, शान्तचित्त एवं अनासक्त होते हैं । वे किसीके साथ वैरभाव नहीं रखते और समदर्शी होनेपर भी प्राणियोंका कष्ट देखकर उसके निवारणके लिये पूरे हृदयसे जुट जाते हैं । उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह होती है कि वे हमारे अनन्य प्रेमी एवं भक्त होते हैं ॥ २० ॥ सारे लोक और लोकपाल ऐसे ब्राह्मणोंकी वन्दना, पूजा और उपासना किया करते हैं । केवल वे ही क्यों; मैं, भगवान् ब्रह्मा तथा स्वयं साक्षात् ईश्वर विष्णु भी उनकी सेवामें संलग्न रहते हैं ॥ २१ ॥ ऐसे शान्त महापुरुष मुझमें, विष्णुभगवान्‌में, ब्रह्मामें, अपनेमें और सब जीवोंमें अणुमात्र भी भेद नहीं देखते । सदा-सर्वदा, सर्वत्र और सर्वथा एकरस आत्माका ही दर्शन करते हैं । इसलिये हम तुम्हारे-जैसे महात्माओंकी स्तुति और सेवा करते हैं ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी ! केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं होते तथा केवल जड मूर्तियाँ ही देवता नहीं होतीं । सबसे बड़े तीर्थ और देवता तो तुम्हारे-जैसे संत हैं; क्योंकि वे तीर्थ और देवता बहुत दिनोंमें पवित्र करते हैं, परन्तु तुमलोग दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हो ॥ २३ ॥ हमलोग तो ब्राह्मणोंको ही नमस्कार करते हैं; क्योंकि वे चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा हमारे वेदमय शरीरको धारण करते हैं ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी ! बड़े-बड़े महापापी और अन्त्यज भी तुम्हारे-जैसे महापुरुषोंके चरित्रश्रवण और दर्शनसे ही शुद्ध हो जाते हैं; फिर वे तुमलोगोंके सम्भाषण और सहवास आदिसे शुद्ध हो जायँ, इसमें तो कहना ही क्या है ॥ २५ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो ! चन्द्रभूषण भगवान् शङ्करकी एक-एक बात धर्मके गुप्ततम रहस्यसे परिपूर्ण थी । उसके एक-एक अक्षरमें अमृतका समुद्र भरा हुआ था । मार्कण्डेय मुनि अपने कानोंके द्वारा पूरी तन्मयताके साथ उसका पान करते रहे, परन्तु उन्हें तृप्ति न हुई ॥ २६ ॥ वे चिरकालतक विष्णुभगवान्‌की मायासे भटक चुके थे और बहुत थके हुए भी थे । भगवान् शिवकी कल्याणी वाणीका अमृतपान करनेसे उनके सारे क्लेश नष्ट हो गये । उन्होंने भगवान् शङ्करसे इस प्रकार कहा ॥ २७ ॥

मार्कण्डेयजीने कहा—सचमुच सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की यह लीला सभी प्राणियोंकी समझके परे है । भला, देखो तो सही—ये सारे जगत्के स्वामी होकर भी अपने अधीन रहनेवाले मेरे-जैसे जीवोंकी वन्दना और स्तुति करते हैं ॥ २८ ॥ धर्मके प्रवचनकार प्रायः प्राणियोंको धर्मका रहस्य और स्वरूप समझानेके लिये उसका आचरण और अनुमोदन करते हैं तथा कोई धर्मका आचरण करता है, तो उसकी प्रशंसा भी करते हैं ॥ २९ ॥ जैसे जादूगर अनेकों खेल दिखलाता है और उन खेलोंसे

उसके प्रभावमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, वैसे ही आप अपनी स्वजनमोहिनी मायाकी वृत्तियोंको स्वीकार करके किसीकी वन्दना-स्तुति आदि करते हैं तो केवल इस कामके द्वारा आपकी महिमामें कोई त्रुटि नहीं आती ॥ ३० ॥ आपने स्वप्नद्रष्टाके समान अपने मनसे ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि की है और इसमें स्वयं प्रवेश करके कर्ता न होनेपर भी कर्म करनेवाले गुणोंके द्वारा कर्ताके समान प्रतीत होते हैं ॥ ३१ ॥ भगवन् ! आप त्रिगुणस्वरूप होनेपर भी उनके परे उनकी आत्माके रूपमें स्थित हैं। आप ही समस्त ज्ञानके मूल, केवल, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ३२ ॥ अनन्त ! आपके श्रेष्ठ दर्शनसे बढ़कर ऐसी और कौन-सी वस्तु है, जिसे मैं वरदानके रूपमें माँगूँ ? मनुष्य आपके दर्शनसे ही पूर्णकाम और सत्यसङ्कल्प हो जाता है ॥ ३३ ॥ आप स्वयं तो पूर्ण हैं ही, अपने भक्तोंकी भी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इसलिये मैं आपका दर्शन प्राप्त कर लेनेपर भी एक वर और माँगता हूँ। वह यह कि भगवान्‌में, उनके शरणागत भक्तोंमें और आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा-सर्वदा बनी रहे ॥ ३४ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जब मार्कण्डेय मुनिने सुमधुर वाणीसे इस प्रकार भगवान् शङ्करकी स्तुति और पूजा की, तब उन्होंने भगवती पार्वतीकी प्रसाद-प्रेरणासे यह बात कही ॥ ३५ ॥ 'महर्षे ! तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण हों। इन्द्रियातीत परमात्मामें तुम्हारी अनन्य भक्ति सदा-सर्वदा बनी रहे। कल्पपर्यन्त तुम्हारा पवित्र यश फैले और तुम अजर एवं अमर हो जाओ ॥ ३६ ॥ ब्रह्मन् ! तुम्हारा ब्रह्मतेज तो सर्वदा अक्षुण्ण रहेगा ही। तुम्हें भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त विशेष ज्ञानोंका एक अधिष्ठानरूप ज्ञान, और वैराग्ययुक्त स्वरूपस्थितिकी प्राप्ति हो जाय। तुम्हें पुराणका आचार्यत्व भी प्राप्त हो ॥ ३७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी ! इस प्रकार त्रिलोचन भगवान् शङ्कर मार्कण्डेय मुनिको वर देकर भगवती पार्वतीसे मार्कण्डेय मुनिकी तपस्या और उनके प्रलय-सम्बन्धी अनुभवोंका वर्णन करते हुए वहाँसे चले गये ॥ ३८ ॥ भृगुवंशशिरोमणि मार्कण्डेय मुनिको उनके महायोगका परम फल प्राप्त हो गया। वे भगवान्‌के अनन्यप्रेमी हो गये। अब भी वे भक्तिभावभरित हृदयसे पृथ्वीपर विचरण किया करते हैं ॥ ३९ ॥ परम ज्ञान-सम्पन्न मार्कण्डेय मुनिने भगवान्‌की योगमायासे जिस अद्भुत लीलाका अनुभव किया था, वह मैंने आपलोगोंको सुना दिया ॥ ४० ॥ शौनकजी ! यह जो मार्कण्डेयजीने अनेक कल्पोंका—सृष्टिप्रलयोंका अनुभव किया, वह भगवान्‌की मायाका ही वैभव था, तात्कालिक था और उन्हींके लिये था, सर्वसाधारणके लिये नहीं। कोई-कोई इस मायाकी रचनाको न जानकर अनादिकालसे बार-बार होनेवाले सृष्टि-प्रलय ही इसको भी बतलाते हैं। (इसलिये आपको यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि इसी कल्पके हमारे पूर्वज मार्कण्डेयजीकी आयु इतनी लंबी कैसे हो गयी ?) ॥ ४१ ॥ भृगुवंशशिरोमणे ! मैंने आपको यह जो मार्कण्डेयचरित्र सुनाया है, वह भगवान् चक्रपाणिके प्रभाव और महिमासे भरपूर है। जो इसका श्रवण एवं कीर्तन करते हैं, वे दोनों ही कर्म-वासनाओंके कारण प्राप्त होनेवाले आवागमनके चक्करसे सर्वदाके लिये छूट जाते हैं ॥ ४२ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान्‌के अङ्ग, उपाङ्ग और आयुधोंका रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणोंका वर्णन

शौनकजीने कहा—सूतजी ! आप भगवान्‌के परम-भक्त और बहुज्ञोंमें शिरोमणि हैं। हमलोग समस्त शास्त्रोंके सिद्धान्तके सम्बन्धमें आपसे एक विशेष प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्योंकि आप उसके मर्मज्ञ हैं ॥ १ ॥ हमलोग क्रियायोगका यथावत् ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं; क्योंकि उसका कुशलतापूर्वक ठीक-ठीक आचरण करनेसे मरणधर्मा पुरुष अमरत्व प्राप्त कर लेता है। अतः आप हमें यह बतलाइये कि पाञ्चरात्रादि तन्त्रोंकी विधि जाननेवाले लोग केवल श्रीलक्ष्मीपति भगवान्‌की आराधना करते समय किन-किन तत्त्वोंसे उनके चरणादि अङ्ग, गरुडादि उपाङ्ग,

सुदर्शनादि आयुध और कौस्तुभादि आभूषणोंकी कल्पना करते हैं ? भगवान् आपका कल्याण करें ॥ २-३ ॥

श्रीसूतजीने कहा—शौनकजी ! ब्रह्मादि आचार्योंने, वेदोंने और पाञ्चरात्रादि तन्त्र-ग्रन्थोंने विष्णुभगवान्‌की जिन विभूतियोंका वर्णन किया है, मैं श्रीगुरुदेवके चरणोंमें नमस्कार करके आपलोगोंको वही सुनाता हूँ ॥ ४ ॥ भगवान्‌के जिस चेतनाधिष्ठित विराट् रूपमें यह त्रिलोकी दिखायी देती है, वह प्रकृति, सूत्रात्मा, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा—इन नौ तत्त्वोंके सहित ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चभूत—इन सोलह विकारोंसे बना हुआ है ॥ ५ ॥ यह भगवान्‌का ही पुरुषरूप है । पृथ्वी इसके चरण हैं, स्वर्ग मस्तक है, अन्तरिक्ष नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, वायु नासिका है और दिशाएँ कान हैं ॥ ६ ॥ प्रजापति लिङ्ग है, मृत्यु गुदा है, लोकपालगण भुजाएँ हैं, चन्द्रमा मन है और यमराज भौंहें हैं ॥ ७ ॥ लज्जा ऊपरका होठ है, लोभ नीचेका होठ है, चन्द्रमाकी चाँदनी दन्तावली है, भ्रम मुसकान है, वृक्ष रोम हैं और बादल ही विराट् पुरुषके सिरपर उगे हुए बाल हैं ॥ ८ ॥ शौनकजी ! जिस प्रकार यह व्यष्टि पुरुष अपने परिमाणसे सात बित्तेका है उसी प्रकार वह समष्टि पुरुष भी इस लोकसंस्थितिके साथ अपने सात बित्तेका है ॥ ९ ॥

स्वयं भगवान् अजन्मा हैं । वे कौस्तुभमणिके बहाने जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योतिको ही धारण करते हैं और उसकी सर्वव्यापिनी प्रभाको ही वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-रूपसे ॥ १० ॥ वे अपनी सत्त्व, रज आदि गुणोंवाली मायाको वनमालाके रूपसे, छन्दको पीताम्बरके रूपसे तथा अ+उ+म्—इन तीन मात्रावाले प्रणवको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करते हैं ॥ ११ ॥ देवाधिदेव भगवान् सांख्य और योगरूप मकराकृत कुण्डल तथा सब लोकोंको अभय करनेवाले ब्रह्मलोकको ही मुकुटके रूपमें धारण करते हैं ॥ १२ ॥ मूलप्रकृति ही उनकी शेषशय्या है, जिसपर वे विराजमान रहते हैं और धर्म-ज्ञानादियुक्त सत्त्वगुण ही उनके नाभिकमलके रूपमें वर्णित हुआ है ॥१३॥ वे मन, इन्द्रिय और शरीरसम्बन्धी शक्तियोंसे युक्त प्राणतत्त्वरूप कौमोदकी गदा, जलतत्त्वरूप पाञ्चजन्य शङ्ख और तेजस्तत्त्वरूप सुदर्शनचक्रको धारण करते हैं ॥ १४ ॥ आकाशके समान निर्मल आकाशस्वरूप खड्ग, तमोमय अज्ञानरूप ढाल, कालरूप शार्ङ्गधनुष और कर्मका ही तरकस धारण किये हुए हैं ॥१५॥ इन्द्रियोंको ही भगवान्‌के बाणोंके रूपमें कहा गया है । क्रियाशक्तियुक्त मन ही रथ है । तन्मात्राएँ रथके बाहरी भाग हैं और वर-अभय आदि मुद्राओंसे उनकी वरदान, अभयदान आदिके रूपमें क्रियाशीलता प्रकट होती है ॥१६॥ सूर्यमण्डल अथवा अग्निमण्डल ही भगवान्‌की पूजाका स्थान है, अन्तःकरणकी शुद्धि ही मन्त्रदीक्षा है और अपने समस्त पापोंको नष्ट कर देना ही भगवान्‌की पूजा है ॥ १७ ॥

ब्राह्मणो ! समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य—इन छः पदार्थोंका नाम ही लीला-कमल है, जिसे भगवान् अपने करकमलमें धारण करते हैं । धर्म और यशको क्रमशः चँवर एवं व्यजन (पंखे) के रूपसे तथा अपने निर्भय धाम वैकुण्ठको छत्ररूपसे धारण किये हुए हैं । तीनों वेदोंका ही नाम गरुड है । वे ही अन्तर्यामी परमात्माका वहन करते हैं ॥ १८-१९ ॥ आत्मस्वरूप भगवान्‌की उनसे कभी न बिछुड़नेवाली आत्मशक्तिका ही नाम लक्ष्मी है । भगवान्‌के पार्षदोंके नायक विश्वविश्रुत विष्वक्सेन पाञ्चरात्रादि आगमरूप हैं । भगवान्‌के स्वाभाविक गुण अणिमा, महिमा आदि अष्टसिद्धियोंको ही नन्द-सुनन्दादि आठ द्वारपाल कहते हैं ॥ २० ॥ शौनकजी ! स्वयं भगवान् ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार मूर्तियोंके रूपमें अवस्थित हैं; इसलिये उन्हींको चतुर्व्यूहके रूपमें कहा जाता है ॥२१॥ वे ही जाग्रत्-अवस्थाके अभिमानी 'विश्व' बनकर शब्द, स्पर्श आदि बाह्य विषयोंको ग्रहण करते और वे ही स्वप्नावस्थाके अभिमानी 'तैजस' बनकर बाह्य विषयोंके बिना ही मन-ही-मन अनेक विषयोंको देखते और ग्रहण करते हैं । वे ही सुषुप्ति-अवस्थाके अभिमानी 'प्राज्ञ' बनकर विषय और मनके संस्कारोंसे युक्त अज्ञानसे ढक जाते हैं और वही सबके साक्षी 'तुरीय' रहकर समस्त ज्ञानोंके अधिष्ठान रहते हैं ॥२२॥ इस प्रकार अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध और आभूषणोंसे युक्त तथा वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार

मूर्तियोंके रूपमें प्रकट सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि ही क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीयरूपसे प्रकाशित होते हैं ॥ २३ ॥

शौनकजी ! वही सर्वस्वरूप भगवान् वेदोंके मूल कारण हैं, वे स्वयंप्रकाश एवं अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। वे अपनी मायासे ब्रह्मा आदि रूपों एवं नामोंसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार सम्पन्न करते हैं। *इन सब कर्मों और नामोंसे* उनका ज्ञान कभी आवृत नहीं होता। यद्यपि शास्त्रोंमें भिन्नके समान उनका वर्णन हुआ है अवश्य, परन्तु वे अपने भक्तोंको आत्मस्वरूपसे ही प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप अर्जुनके सखा हैं। आपने यदुवंशशिरोमणिके रूपमें अवतार ग्रहण करके पृथ्वीके द्रोही भूपालोंको भस्म कर दिया है। आपका पराक्रम सदा एकरस रहता है। व्रजकी गोपबालाएँ और आपके नारदादि प्रेमी निरन्तर आपके पवित्र यशका गान करते रहते हैं। गोविन्द ! आपके नाम, गुण और लीलादिका श्रवण करनेसे ही जीवका मङ्गल हो जाता है। हम सब आपके सेवक हैं। आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये ॥ २५ ॥

पुरुषोत्तम भगवान्‌के चिह्नभूत अङ्ग, उपाङ्ग और आयुध आदिके इस वर्णनका जो मनुष्य भगवान्‌में ही चित्त लगाकर पवित्र होकर प्रातःकाल पाठ करेगा, उसे सबके हृदयमें रहनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्माका ज्ञान हो जायगा ॥ २६ ॥

शौनकजीने कहा—सूतजी ! भगवान् श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत-कथा सुनाते समय राजर्षि परीक्षित्‌से (पञ्चम स्कन्धमें) कहा था कि ऋषि, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस और देवताओंका एक सौरगण होता है और ये सातों प्रत्येक महीनेमें बदलते रहते हैं। ये बारह गण अपने स्वामी द्वादश आदित्योंके साथ रहकर क्या काम करते हैं और उनके अन्तर्गत व्यक्तियोंके नाम क्या हैं ? सूर्यके रूपमें भी स्वयं भगवान् ही हैं; इसलिये उनके विभागको हम बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके कहिये ॥ २७-२८ ॥

श्रीसूतजीने कहा—समस्त प्राणियोंके आत्मा भगवान् विष्णु ही हैं। अनादि अविद्यासे अर्थात् उनके वास्तविक स्वरूपके अज्ञानसे ही समस्त लोकोंके व्यवहार-प्रवर्तक प्राकृत सूर्यमण्डलका निर्माण हुआ है। वही लोकोंमें भ्रमण किया करता है ॥ २९ ॥ असलमें समस्त लोकोंके आत्मा एवं आदिकर्त्ता एकमात्र श्रीहरि ही अन्तर्यामीरूपसे सूर्य बने हुए हैं। वे यद्यपि एक ही हैं, तथापि ऋषियोंने उनका बहुत रूपोंमें वर्णन किया है। वे ही समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल हैं ॥ ३० ॥ शौनकजी ! एक भगवान् ही मायाके द्वारा काल, देश, यज्ञादि क्रिया, कर्ता, स्रुवा आदि करण, यागादि कर्म, वेदमन्त्र, शाकल्य आदि द्रव्य और फलरूपसे नौ प्रकारके कहे जाते हैं ॥ ३१ ॥ कालरूपधारी भगवान् सूर्य लोगोंका व्यवहार ठीक-ठीक चलनेके लिये चैत्रादि बारह महीनोंमें अपने भिन्न-भिन्न बारह गणोंके साथ चक्कर लगाया करते हैं ॥ ३२ ॥

शौनकजी ! धाता नामक सूर्य, कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि सर्प, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य ऋषि और तुम्बुरु गन्धर्व—ये चैत्र मासमें अपना-अपना कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ३३ ॥ अर्यमा सूर्य, पुलह ऋषि, अथौजा यक्ष, प्रहेति राक्षस, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व और कच्छनीर सर्प—ये वैशाख मासके कार्यनिर्वाहक हैं ॥ ३४ ॥ मित्र सूर्य, अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस, तक्षक सर्प, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन यक्ष—ये ज्येष्ठ मासके कार्यनिर्वाहक हैं ॥ ३५ ॥ आषाढ़में वरुण नामक सूर्यके साथ वसिष्ठ ऋषि, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, हूहू गन्धर्व, शुक्र नाग और चित्रस्वन राक्षस अपने-अपने कार्यका निर्वाह करते हैं ॥ ३६ ॥ श्रावण मास इन्द्र नामक सूर्यका कार्यकाल है। उनके साथ विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा एवं वर्य नामक राक्षस अपने कार्यका सम्पादन करते हैं ॥ ३७ ॥ *भाद्रपदके सूर्यका नाम है विवस्वान्।* उनके साथ उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्र राक्षस, आसारण यक्ष, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा और शङ्खपाल नाग रहते हैं ॥ ३८ ॥ शौनकजी ! माघ मासमें पूषा नामके सूर्य रहते हैं। उनके साथ धनञ्जय नाग, वात राक्षस, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, घृताची अप्सरा और गौतम ऋषि रहते हैं ॥ ३९ ॥ फाल्गुन मासका कार्यकाल पर्जन्य

नामक सूर्यका है। उनके साथ क्रतु यक्ष, वर्चा राक्षस, भरद्वाज ऋषि, सेनजित् अप्सरा, विश्व गन्धर्व और ऐरावत सर्प रहते हैं॥ ४० ॥ मार्गशीर्ष मासमें सूर्यका नाम होता है अंशु। उनके साथ कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युच्छत्रु राक्षस और महाशङ्ख नाग रहते हैं ॥४१॥ पौष मासमें भग नामक सूर्यके साथ स्फूर्ज राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि, पूर्वचित्ति अप्सरा और कर्कोटक नाग रहते हैं ॥ ४२ ॥ आश्विन मासमें त्वष्टा सूर्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्वका कार्यकाल है ॥ ४३ ॥ तथा कार्तिकमें विष्णु नामक सूर्यके साथ अश्वतर नाग, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और मखापेत राक्षस अपना-अपना कार्य सम्पन्न करते हैं ॥ ४४ ॥

शौनकजी! ये सब सूर्यरूप भगवान्‌की विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सायङ्काल स्मरण करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं॥४५॥ ये सूर्यदेव अपने छः गणोंके साथ बारहों महीने सर्वत्र विचरते रहते हैं और इस लोक तथा परलोकमें विवेक-बुद्धिका विस्तार करते हैं॥४६॥ सूर्यभगवान्‌के गणोंमें ऋषिलोग तो सूर्यसम्बन्धी ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं और गन्धर्व उनके सुयशका गान करते रहते हैं। अप्सराएँ आगे-आगे नृत्य करती चलती हैं॥४७॥ नागगण रस्सीकी तरह उनके रथको कसे रहते हैं। यक्षगण रथका साज सजाते हैं और बलवान् राक्षस उसे पीछेसे ढकेलते हैं॥ ४८॥ इनके सिवा वालखिल्य नामके साठ हजार निर्मलस्वभाव ब्रह्मर्षि सूर्यकी ओर मुँह करके उनके आगे-आगे स्तुति-पाठ करते चलते हैं॥४९॥ इस प्रकार अनादि, अनन्त, अजन्मा भगवान् श्रीहरि ही कल्प-कल्पमें अपने स्वरूपका विभाग करके लोकोंका पालन-पोषण करते रहते हैं॥५०॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त विषय-सूची

श्रीसूतजी कहते हैं—भगवद्भक्तिरूप महान् धर्मको नमस्कार है। विश्वविधाता भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। अब मैं ब्राह्मणोंको नमस्कार करके श्रीमद्भागवतोक्त सनातनधर्मोंका संक्षिप्त विवरण सुनाता हूँ॥ १॥ शौनकादि ऋषियो! आपलोगोंने मुझसे जो प्रश्न किया था, उसके अनुसार मैंने भगवान् विष्णुका यह अद्भुत चरित्र सुनाया। यह सभी मनुष्योंके श्रवण करने योग्य है॥२॥ इस श्रीमद्भागवतपुराणमें सर्वपापापहारी स्वयं भगवान् श्रीहरि-का ही संकीर्तन हुआ है। वे ही सबके हृदयमें विराजमान, सबकी इन्द्रियोंके स्वामी और प्रेमी भक्तोंके जीवनधन हैं॥ ३॥ इस श्रीमद्भागवतपुराणमें परम रहस्यमय—अत्यन्त गोपनीय ब्रह्मतत्त्वका वर्णन हुआ है। उस ब्रह्ममें ही इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस पुराणमें उसी परमतत्त्वका अनुभवात्मक ज्ञान और उसकी प्राप्तिके साधनोंका स्पष्ट निर्देश है॥४॥

शौनकजी! इस महापुराणके प्रथम स्कन्धमें भक्ति-योगका भलीभाँति निरूपण हुआ है और साथ ही भक्ति-योगसे उत्पन्न एवं उसको स्थिर रखनेवाले वैराग्यका भी वर्णन किया गया है। परीक्षित्‌की कथा और व्यास-नारद-संवादके प्रसङ्गसे नारदचरित्र भी कहा गया है॥ ५॥ राजर्षि परीक्षित् ब्राह्मणका शाप हो जानेपर किस प्रकार गङ्गातटपर अनशन-व्रत लेकर बैठ गये और ऋषिप्रवर श्रीशुकदेवजीके साथ किस प्रकार उनका संवाद प्रारम्भ हुआ, यह कथा भी प्रथम स्कन्धमें ही है॥ ६॥

योगधारणाके द्वारा शरीरत्यागकी विधि, ब्रह्मा और नारदका संवाद, अवतारोंकी संक्षिप्त चर्चा तथा महत्तत्त्व आदिके क्रमसे प्राकृतिक सृष्टिकी उत्पत्ति आदि विषयोंका वर्णन द्वितीय स्कन्धमें हुआ है॥ ७॥

तीसरे स्कन्धमें पहले-पहल विदुरजी और उद्धवजीके और तदनन्तर विदुर तथा मैत्रेयजीके समागम और संवादका प्रसङ्ग है। इसके पश्चात् पुराणसंहिताके विषयमें प्रश्न है और फिर प्रलयकालमें परमात्मा किस प्रकार स्थित रहते हैं, इसका निरूपण है॥ ८॥ गुणोंके क्षोभसे प्राकृतिक सृष्टि और महत्तत्त्व आदि सात प्रकृति-विकृतियों-

के द्वारा कार्य-सृष्टिका वर्णन है। इसके बाद ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और उसमें विराट् पुरुषकी स्थितिका स्वरूप समझाया गया है ॥ ९ ॥ तदनन्तर स्थूल और सूक्ष्म कालका स्वरूप, लोक-पद्मकी उत्पत्ति, प्रलय-समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार करते समय वराहभगवान्‌के द्वारा हिरण्याक्षका वध; देवता, पशु, पक्षी और मनुष्योंकी सृष्टि एवं रुद्रोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग है। इसके पश्चात् उस अर्द्ध-नारी-नरके स्वरूपका विवेचन है, जिससे स्वायम्भुव मनु और स्त्रियोंकी अत्यन्त उत्तम आद्या प्रकृति शतरूपाका जन्म हुआ था। कर्दम प्रजापतिका चरित्र, उनसे मुनि-पत्नियोंका जन्म, महात्मा भगवान् कपिलका अवतार और फिर कपिलदेव तथा उनकी माता देवहूतिके संवादका प्रसङ्ग आता है ॥ १०—१३ ॥

चौथे स्कन्धमें मरीचि आदि नौ प्रजापतियोंकी उत्पत्ति, दक्षयज्ञका विध्वंस, राजर्षि ध्रुव एवं पृथुका चरित्र तथा प्राचीनबर्हि और नारदजीके संवादका वर्णन है। पाँचवें स्कन्धमें प्रियव्रतका उपाख्यान; नाभि, ऋषभ और भरतके चरित्र; द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत और नदियोंका वर्णन; ज्योतिश्चक्रके विस्तार एवं पाताल तथा नरकोंकी स्थितिका निरूपण हुआ है ॥ १४—१६ ॥

शौनकादि ऋषियो! छठे स्कन्धमें ये विषय आये हैं—प्रचेताओंसे दक्षकी उत्पत्ति; दक्ष-पुत्रियोंकी सन्तान देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पर्वत और पक्षियोंका जन्म-कर्म; वृत्रासुरकी उत्पत्ति और उसकी परम गति। (अब सातवें स्कन्धके विषय बतलाये जाते हैं—) इस स्कन्धमें मुख्यतः दैत्यराज हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके जन्म-कर्म एवं दैत्यशिरोमणि महात्मा प्रह्लादके उत्कृष्ट चरित्रका निरूपण है ॥ १७-१८ ॥

आठवें स्कन्धमें मन्वन्तरोंकी कथा, गजेन्द्रमोक्ष, विभिन्न मन्वन्तरोंमें होनेवाले जगदीश्वर भगवान् विष्णुके अवतार—कूर्म, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि, हयग्रीव आदि; अमृत-प्राप्तिके लिये देवताओं और दैत्योंका समुद्र-मन्थन और देवासुर-संग्राम आदि विषयोंका वर्णन है। नवें स्कन्धमें मुख्यतः राजवंशोंका वर्णन है। इक्ष्वाकुके जन्म-कर्म, वंश-विस्तार; महात्मा सुद्युम्न, इला एवं ताराके उपाख्यान—इन सबका वर्णन किया गया है। सूर्यवंशका वृत्तान्त, शशाद और नृग आदि राजाओंका वर्णन, सुकन्याका चरित्र; शर्याति, खट्वाङ्ग, मान्धाता, सौभरि, सगर, बुद्धिमान् ककुत्स्थ और कोसलेन्द्र भगवान् रामके सर्वपापहारी चरित्रका वर्णन भी इसी स्कन्धमें है। तदनन्तर निमिका देह-त्याग और जनकोंकी उत्पत्तिका वर्णन है ॥ १९—२४ ॥ भृगुवंशशिरोमणि परशुरामजीका क्षत्रिय-संहार, चन्द्रवंशी नरपति पुरूरवा, ययाति, नहुष, दुष्यन्तनन्दन भरत, शन्तनु और उनके पुत्र भीष्म आदिकी संक्षिप्त कथाएँ भी नवम स्कन्धमें ही हैं। सबके अन्तमें ययातिके बड़े लड़के यदुका वंशविस्तार कहा गया है ॥ २५-२६ ॥

शौनकादि ऋषियो! इसी यदुवंशमें जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णने अवतार ग्रहण किया था। उन्होंने अनेक असुरोंका संहार किया। उनकी लीलाएँ इतनी हैं कि कोई पार नहीं पा सकता। फिर भी दशम स्कन्धमें उनका कुछ कीर्तन किया गया है। वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे उनका जन्म हुआ। गोकुलमें नन्दबाबाके घर जाकर बढ़े। पूतनाके प्राणोंको दूधके साथ पी लिया। बचपनमें ही छकड़ेको उलट दिया ॥ २७-२८ ॥ तृणावर्त, बकासुर एवं वत्सासुरको पीस डाला। सपरिवार धेनुकासुर और प्रलम्बासुरको मार डाला ॥ २९ ॥ दावानलसे घिरे गोपोंकी रक्षा की। कालिय नागका दमन किया। अजगरसे नन्दबाबाको छुड़ाया ॥ ३० ॥ इसके बाद गोपियोंने भगवान्‌को पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये व्रत किया और भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उन्हें अभिमत वर दिया। भगवान्‌ने यज्ञपत्नियोंपर कृपा की। उनके पतियों—ब्राह्मणोंको बड़ा पश्चात्ताप हुआ ॥ ३१ ॥ गोवर्द्धनधारणकी लीला करनेपर इन्द्र और कामधेनुने आकर भगवान्‌का यज्ञाभिषेक किया। शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें व्रजसुन्दरियोंके साथ रासक्रीडा की ॥ ३२ ॥ दुष्ट शङ्खचूड़, अरिष्ट और केशीके वधकी लीला हुई। तदनन्तर अक्रूरजी मथुरासे वृन्दावन आये और उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीने मथुराके लिये प्रस्थान किया ॥ ३३ ॥ उस प्रसंगपर व्रज-सुन्दरियोंने जो विलाप किया था, उसका वर्णन है। राम और श्यामने मथुरामें जाकर वहाँकी सजावट देखी और कुवलयापीड़ हाथी, मुष्टिक, चाणूर एवं कंस आदिका संहार किया ॥ ३४ ॥ सान्दीपनि गुरुके यहाँ विद्या-

ध्ययन करके उनके मृत पुत्रको लौटा लाये। शौनकादि ऋषियो! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरामें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने उद्धव और बलरामजीके साथ यदुवंशियोंका सब प्रकारसे प्रिय और हित किया ॥ ३५ ॥ जरासन्ध कई बार बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर आया और भगवान्ने उनका उद्धार करके पृथ्वीका भार हल्का किया। कालयवनको मुचुकुन्दसे भस्म करा दिया। द्वारकापुरी बसाकर रातों-रात सबको वहाँ पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥ स्वर्गसे कल्पवृक्ष एवं सुधर्मा सभा ले आये। भगवान्ने दल-के-दल शत्रुओंको युद्धमें पराजित करके रुक्मिणीका हरण किया ॥ ३७ ॥ बाणासुरके साथ युद्धके प्रसङ्गमें महादेवजीपर ऐसा बाण छोड़ा कि वे जँभाई लेने लगे और इधर बाणासुरकी भुजाएँ काट डालीं। प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी भौमासुरको मारकर सोलह हजार कन्याएँ ग्रहण कीं ॥ ३८ ॥ शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व, दुष्ट दन्तवक्त्र, शम्बरासुर, द्विविद, पीठ, मुर, पञ्चजन आदि दैत्योंके बल-पौरुषका वर्णन करके यह बात बतलायी गयी कि भगवान्ने उन्हें कैसे-कैसे मारा! भगवान्के चक्रने काशीको जला दिया और फिर उन्होंने भारतीय युद्धमें पाण्डवोंको निमित्त बनाकर पृथ्वीका बहुत बड़ा भार उतार दिया ॥ ३९-४० ॥

शौनकादि ऋषियो! ग्यारहवें स्कन्धमें इस बातका वर्णन हुआ है कि भगवान्ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने किस प्रकार यदुवंशका संहार किया। इस स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और उद्धवका संवाद बड़ा ही अद्भुत है ॥ ४१ ॥ उसमें सम्पूर्ण आत्मज्ञान और धर्म-निर्णयका निरूपण हुआ है और अन्तमें यह बात बतायी गयी है कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने आत्मयोगके प्रभावसे किस प्रकार मर्त्यलोकका परित्याग किया ॥४२॥ बारहवें स्कन्धमें विभिन्न युगोंके लक्षण और उनमें रहनेवाले लोगोंके व्यवहारका वर्णन किया गया है तथा यह भी बतलाया गया है कि कलियुगमें मनुष्योंकी गति विपरीत होती है। चार प्रकारके प्रलय और तीन प्रकारकी उत्पत्तिका वर्णन भी इसी स्कन्धमें है ॥ ४३ ॥ इसके बाद परम ज्ञानी राजर्षि परीक्षित्के शरीरत्यागकी बात कही गयी है। तदनन्तर वेदोंके शाखा-विभाजनका प्रसङ्ग आया है। मार्कण्डेयजीकी सुन्दर कथा, भगवान्के अङ्ग-उपाङ्गोंका स्वरूपकथन और सबके अन्तमें विश्वात्मा भगवान् सूर्यके गणोंका वर्णन है ॥ ४४ ॥ शौनकादि ऋषियो! आपलोगोंने इस सत्सङ्गके अवसरपर मुझसे जो कुछ पूछा था, उसका वर्णन मैंने कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि इस अवसरपर मैंने हर तरहसे भगवान्की लीला और उनके अवतार-चरित्रोंका ही कीर्तन किया है ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य गिरते-पड़ते, फिसलते, दुःख भोगते अथवा छींकते समय विवशतासे भी ऊँचे स्वरसे बोल उठता है—'हरये नमः', वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४६ ॥ यदि देश, काल एवं वस्तुसे अपरिच्छिन्न भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका सङ्कीर्तन किया जाय अथवा उनके प्रभाव, महिमा आदिका श्रवण किया जाय तो वे स्वयं ही हृदयमें आ विराजते हैं और श्रवण तथा कीर्तन करनेवाले पुरुषके सारे दुःख मिटा देते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है ॥४७॥ जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी अविनाशी भगवान्के नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता, वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है। जो वाणी और वचन भगवान्के गुणोंसे परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं ॥ ४८ ॥ जिस वचनके द्वारा भगवान्के परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है! उससे अनन्त कालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक, चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न हो, उस वचनके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है ॥ ४९ ॥ जिस वाणीसे—चाहे वह रस, भाव, अलङ्कार आदिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र है। मानससरोवरनिवासी

हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन नहीं करते। निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं ॥ ५० ॥ इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो व्याकरण आदिकी दृष्टिसे दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परन्तु जिसके प्रत्येक श्लोकमें भगवान्के सुयशसूचक नाम जड़े हुए हैं, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है; क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गान और कीर्तन किया करते हैं ॥ ५१ ॥ वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो कर्म भगवान्को अर्पण नहीं किया गया है—वह चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो—सर्वदा अमङ्गलरूप, दुःख देनेवाला ही है; वह तो शोभन—वरणीय हो ही कैसे सकता है ? ॥५२॥ वर्णाश्रमके अनुकूल आचरण, तपस्या और अध्ययन आदिके लिये जो बहुत बड़ा परिश्रम किया जाता है उसका फल है—केवल यश अथवा लक्ष्मीकी प्राप्ति। परन्तु भगवान्के गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण, कीर्तन आदि तो उनके श्रीचरणकमलोंकी अविचल स्मृति प्रदान करता है ॥ ५३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी अविचल स्मृति सारे पाप-ताप और अमङ्गलोंको नष्ट कर देती और परम शान्तिका विस्तार करती है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है ॥५४॥ शौनकादि ऋषियो ! आपलोग बड़े भाग्यवान् हैं। धन्य हैं, धन्य हैं ! क्योंकि आपलोग बड़े प्रेमसे निरन्तर अपने हृदयमें सर्वान्तर्यामी, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् आदिदेव सबके आराध्यदेव एवं स्वयं दूसरे आराध्यदेवसे रहित नारायण भगवान्को स्थापित करके भजन करते रहते हैं ॥ ५५ ॥ जिस समय राजर्षि परीक्षित् अनशन करके बड़े-बड़े ऋषियोंकी भरी सभामें सबके सामने श्रीशुकदेवजी महाराजसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुन रहे थे, उस समय वहीं बैठकर मैंने भी उन्हीं परमर्षिके मुखसे इस आत्मतत्त्वका श्रवण किया था। आपलोगोंने उसका स्मरण कराकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। मैं इसके लिये आपलोगोंका बड़ा ऋणी हूँ ॥ ५६ ॥

शौनकादि ऋषियो ! भगवान् वासुदेवकी एक-एक लीला सर्वदा श्रवण-कीर्तन करनेयोग्य है। मैंने इस प्रसङ्गमें उन्हींकी महिमाका वर्णन किया है, जो सारे अशुभ संस्कारोंको धो बहाती है ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे एक पहर अथवा एक क्षण ही प्रतिदिन इसका कीर्तन करता है और जो श्रद्धाके साथ इसका श्रवण करता है, वह अवश्य ही शरीरसहित अपने अन्तःकरणको पवित्र बना लेता है ॥ ५८ ॥ जो पुरुष द्वादशी अथवा एकादशीके दिन इसका श्रवण करता है, वह दीर्घायु हो जाता है और जो संयमपूर्वक निराहार रहकर पाठ करता है, उसके पहलेके पाप तो नष्ट हो ही जाते हैं, पापकी प्रवृत्ति भी नष्ट हो जाती है ॥ ५९ ॥ जो मनुष्य इन्द्रियों और अन्तःकरणको अपने वशमें करके उपवासपूर्वक पुष्कर, मथुरा अथवा द्वारकामें इस पुराणसंहिताका पाठ करता है, वह सारे भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥६०॥ जो मनुष्य इसका श्रवण या उच्चारण करता है, उसके कीर्तनसे देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनु और नरपति सन्तुष्ट होते हैं और उसकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं ॥ ६१ ॥ ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके पाठसे ब्राह्मणको मधुकुल्या, घृतकुल्या और पयःकुल्या (मधु, घी एवं दूधकी नदियाँ अर्थात् सब प्रकारकी सुख-समृद्धि) की प्राप्ति होती है। वही फल श्रीमद्भागवतके पाठसे भी मिलता है ॥ ६२ ॥ जो द्विज संयमपूर्वक इस पुराणसंहिताका अध्ययन करता है, उसे उसी परमपदकी प्राप्ति होती है, जिसका वर्णन स्वयं भगवान्ने किया है ॥ ६३ ॥ इसके अध्ययनसे ब्राह्मणको ऋतम्भरा प्रज्ञा (तत्त्वज्ञानको प्राप्त करानेवाली बुद्धि) की प्राप्ति होती है और क्षत्रियको समुद्रपर्यन्त भूमण्डलका राज्य प्राप्त होता है। वैश्य कुबेरका पद प्राप्त करता है और शूद्र सारे पापोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ६४ ॥

भगवान् ही सबके स्वामी हैं और समूह-के-समूह कलिमलोंको ध्वंस करनेवाले हैं। यों तो उनका वर्णन करनेके लिये बहुत-से पुराण हैं, परन्तु उनमें सर्वत्र और

निरन्तर भगवान्‌का वर्णन नहीं मिलता। श्रीमद्भागवत महापुराणमें तो प्रत्येक कथा-प्रसङ्गमें पद-पदपर सर्वस्वरूप भगवान्‌का ही वर्णन हुआ है ॥ ६५ ॥ वे जन्म-मृत्यु आदि विकारोंसे रहित, देशकालादिकृत परिच्छेदोंसे मुक्त एवं स्वयं आत्मतत्त्व ही हैं। जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करनेवाली शक्तियाँ भी उनकी स्वरूपभूत ही हैं, भिन्न नहीं। ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि लोकपाल भी उनकी स्तुति करना लेशमात्र भी नहीं जानते। उन्हीं एकरस सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ॥६६॥ जिन्होंने अपने स्वरूपमें ही प्रकृति आदि नौ शक्तियोंका सङ्कल्प करके इस चराचर जगत्‌की सृष्टि की है और जो इसके अधिष्ठानरूपसे स्थित हैं तथा जिनका परम-पद केवल अनुभूतिस्वरूप है, उन्हीं देवताओंके आराध्य-देव सनातन भगवान्‌के चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ।६७।

श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेददृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर-की मधुमयी, मङ्गलमयी, मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगत्‌के प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया। मैं उन्हीं सर्वपापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ६८ ॥
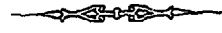
तेरहवाँ अध्याय

विभिन्न पुराणोंकी श्लोक-संख्या और श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तुतियोंके द्वारा जिनके गुण-गानमें संलग्न रहते हैं; साम-सङ्गीतके मर्मज्ञ ऋषि-मुनि अङ्ग, पद, क्रम एवं उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिनका गान करते रहते हैं; योगीलोग ध्यानके द्वारा निश्चल एवं तल्लीन मनसे जिनका भावमय दर्शन प्राप्त करते रहते हैं; किन्तु यह सब करते रहनेपर भी देवता, दैत्य, मनुष्य—कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूपको पूर्णतया न जान सका उन स्वयंप्रकाश परमात्माको नमस्कार है ॥ १ ॥ जिस समय भगवान्‌ने कच्छपरूप धारण किया था और उनकी पीठपर बड़ा भारी मन्दराचल मथानीकी तरह घूम रहा था, उस समय मन्दराचलकी चट्टानोंके नोकसे खुजलानेके कारण भगवान्‌को तनिक सुख मिला। वे सो गये और श्वासकी गति तनिक बढ़ गयी। उस समय उस श्वास-वायुसे जो समुद्रके जलको धक्का लगा था, उसका संस्कार आज भी उसमें शेष है। आज भी समुद्र उसी श्वासवायुके थपेड़ोंके फलस्वरूप ज्वार-भाटोंके रूपमें दिन-रात चढ़ता-उतरता रहता है, उसे अबतक विश्राम न मिला। भगवान्‌की वही परमप्रभावशाली श्वासवायु आपलोगोंकी रक्षा करे ॥ २ ॥

शौनकजी! अब पुराणोंकी अलग-अलग श्लोक-संख्या, उनका जोड़, श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय और उसका प्रयोजन भी सुनिये। इसके दानकी पद्धति तथा दान और पाठ आदिकी महिमा भी आपलोग श्रवण कीजिये ॥३॥ ब्रह्मपुराणमें दस हजार श्लोक, पद्मपुराणमें पचपन हजार, श्रीविष्णुपुराणमें तेईस हजार और शिव-पुराणकी श्लोकसंख्या चौबीस हजार है ॥ ४ ॥ श्री-मद्भागवतमें अठारह हजार, नारदपुराणमें पचीस हजार, मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार तथा अग्निपुराणमें पंद्रह हजार, चार सौ श्लोक हैं ॥ ५ ॥ भविष्यपुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार, पाँच सौ है और ब्रह्मवैवर्तपुराणकी अठारह हजार और लिङ्गपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं ॥ ६ ॥ वराहपुराणमें चौबीस हजार, स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या इक्यासी हजार, एक सौ है और वामन-पुराणकी दस हजार ॥ ७ ॥ कूर्मपुराण सत्रह हजार श्लोकोंका और मत्स्यपुराण चौदह हजार श्लोकोंका है। गरुड़पुराणमें उन्नीस हजार श्लोक हैं और ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार ॥ ८ ॥ इस प्रकार सब पुराणोंकी श्लोक-संख्या कुल मिलाकर चार लाख होती है। उनमें श्री-मद्भागवत, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अठारह हजार श्लोकोंका है ॥ ९ ॥

शौनकजी! पहले-पहल भगवान् विष्णुने अपने नाभि-

कमलपर स्थित एवं संसारसे भयभीत ब्रह्मापर परम करुणा करके इस पुराणको प्रकाशित किया था। १०। इसके आदि, मध्य और अन्तमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी कथाएँ हैं। इस महापुराणमें जो भगवान् श्रीहरिकी लीला-कथाएँ हैं, वे तो अमृतस्वरूप हैं ही; उनके सेवनसे सत्पुरुष और देवताओंको बड़ा ही आनन्द मिलता है ॥ ११ ॥ आपलोग जानते हैं कि समस्त उपनिषदोंका सार है ब्रह्म और आत्माका एकत्वरूप अद्वितीय सद्वस्तु। वही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माणका प्रयोजन है एकमात्र कैवल्य-मोक्ष ॥ १२ ॥

जो पुरुष भाद्रपद मासकी पूर्णिमाके दिन श्रीमद्भागवतको सोनेके सिंहासनपर रखकर उसका दान करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है ॥ १३ ॥ संतोंकी सभामें तभीतक दूसरे पुराणोंकी शोभा होती है, जबतक सर्वश्रेष्ठ स्वयं श्रीमद्भागवत महापुराणके दर्शन नहीं होते ॥ १४ ॥ यह श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषदोंका सार है। जो इस रस-सुधाका पान करके छक चुका है, वह किसी और पुराण-शास्त्रमें रम नहीं सकता ॥ १५ ॥ जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवताओंमें विष्णु और वैष्णवोंमें श्रीशङ्करजी सर्वश्रेष्ठ हैं, वैसे ही पुराणोंमें श्रीमद्भागवत है ॥ १६ ॥ शौनकादि ऋषियो! जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें काशी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें श्रीमद्भागवतका स्थान सबसे ऊँचा है ॥ १७ ॥ यह श्रीमद्भागवतपुराण सर्वथा निर्दोष है। भगवान्‌के प्यारे भक्त वैष्णव इससे बड़ा प्रेम करते हैं। इस पुराणमें जीवन्मुक्त परमहंसोंके सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय एवं मायाके लेशसे रहित ज्ञानका गान किया गया है। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि इसका नैष्कर्म्य अर्थात् कर्मोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति भी ज्ञान-वैराग्य एवं भक्तिसे युक्त है। जो इसका श्रवण, पठन और मनन करने लगता है, उसे भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है ॥ १८ ॥

यह श्रीमद्भागवत भगवत्तत्त्वज्ञानका एक श्रेष्ठ प्रकाशक है। इसकी तुलनामें और कोई भी पुराण नहीं है। इसे पहले-पहल स्वयं भगवान् नारायणने ब्रह्माजीके लिये प्रकट किया था। फिर उन्होंने ही ब्रह्माजीके रूपसे देवर्षि नारदको उपदेश किया और नारदजीके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासको। तदनन्तर उन्होंने ही व्यास-रूपसे योगीन्द्र शुकदेवजीको और श्रीशुकदेवजीके रूपसे अत्यन्त करुणावश राजर्षि परीक्षित्‌को उपदेश किया। वे भगवान् परम शुद्ध एवं मायामलसे रहित हैं। शोक और मृत्यु उनके पासतक नहीं फटक सकते। हम सब उन्हीं परम सत्यस्वरूप परमेश्वरका ध्यान करते हैं ॥ १९ ॥ हम उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेवको नमस्कार करते हैं, जिन्होंने कृपा करके मोक्षाभिलाषी ब्रह्माजीको इस श्रीमद्भागवत महापुराणका उपदेश किया ॥ २० ॥ साथ ही हम उन योगिराज ब्रह्मस्वरूप श्रीशुकदेवजीको भी नमस्कार करते हैं, जिन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर संसार-सर्पसे डसे हुए राजर्षि परीक्षित्‌को मुक्त किया ॥ २१ ॥ देवताओंके आराध्यदेव सर्वेश्वर! आप ही हमारे एकमात्र स्वामी एवं सर्वस्व हैं। अब आप ऐसी कृपा कीजिये कि बार-बार जन्म ग्रहण करते रहनेपर भी आपके चरणकमलोंमें हमारी अविचल भक्ति बनी रहे ॥ २२ ॥ जिन भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण, उनके चरणोंमें प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परमतत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

॥ बारहवाँ स्कन्ध समाप्त ॥

सम्पूर्ण ग्रन्थ समाप्त

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।
तेन त्वदङ्घ्रिकमले रतिं मे यच्छ शाश्वतम् ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

पहला अध्याय

परीक्षित् और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्यमुनिके मुखसे भगवान्‌की लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन

महर्षि व्यास कहते हैं—जिनका स्वरूप है सच्चिदानन्दघन, जो अपने सौन्दर्य और माधुर्यादि गुणोंसे सबका मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और सदा-सर्वदा अनन्त सुखकी वर्षा करते रहते हैं, जिनकी ही शक्तिसे इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं—उन भगवान् श्रीकृष्णको हम भक्तिरसका आस्वादन करनेके लिये नित्य-निरन्तर प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

नैमिषारण्यक्षेत्रमें श्रीसूतजी स्वस्थ चित्तसे अपने आसनपर बैठे हुए थे। उस समय भगवान्‌की अमृतमयी लीलाकथाके रसिक, उसके रसास्वादनमें अत्यन्त कुशल शौनकादि ऋषियोंने सूतजीको प्रणाम करके उनसे यह प्रश्न किया ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! धर्मराज युधिष्ठिर जब श्रीमथुरामण्डलमें अनिरुद्धनन्दन वज्रका और हस्तिनापुरमें अपने पौत्र परीक्षित्‌का राज्याभिषेक करके हिमालयपर चले गये, तब राजा वज्र और परीक्षित्‌ने कैसे-कैसे कौन-कौन-सा कार्य किया ॥ ३ ॥

श्रीसूतजीने कहा—भगवान् नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती और महर्षि व्यासको नमस्कार करके शुद्धचित्त होकर भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इतिहास-पुराणरूप 'जय'का उच्चारण करना चाहिये ॥ ४ ॥ शौनकादि ब्रह्मर्षियो ! जब धर्मराज युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण स्वर्गारोहणके लिये हिमालय चले गये, तब सम्राट् परीक्षित् एक दिन मथुरा गये। उनकी इस यात्राका उद्देश्य इतना ही था कि वहाँ चलकर वज्रनाभसे मिल-जुल आयें ॥ ५ ॥ जब वज्रनाभको यह समाचार मालूम हुआ कि मेरे पितातुल्य परीक्षित् मुझसे मिलनेके लिये आ रहे हैं, तब उनका हृदय प्रेमसे भर गया। उन्होंने नगरसे आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, चरणोंमें प्रणाम किया और बड़े प्रेमसे उन्हें अपने महलमें ले आये ॥ ६ ॥ वीर परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेमी भक्त थे। उनका मन नित्य-निरन्तर आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही रमता रहता था। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभका बड़े प्रेमसे आलिङ्गन किया। इसके बाद अन्तःपुरमें जाकर भगवान् श्रीकृष्णकी रोहिणी आदि पत्नियोंको नमस्कार किया ॥ ७ ॥ रोहिणी आदि श्रीकृष्ण-पत्नियोंने भी सम्राट् परीक्षित्‌का अत्यन्त सम्मान किया। वे विश्राम करके जब आरामसे बैठ गये, तब उन्होंने वज्रनाभसे यह बात कही ॥ ८ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—'हे तात ! तुम्हारे पिता और पितामहोंने मेरे पिता-पितामहको बड़े-बड़े सङ्कटोंसे बचाया है। मेरी रक्षा भी उन्होंने ही की है ॥ ९ ॥ प्रिय वज्रनाभ ! यदि मैं उनके उपकारोंका बदला चुकाना चाहूँ तो किसी प्रकार नहीं चुका सकता। इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम सुखपूर्वक अपने राज-काजमें लगे रहो ॥ १० ॥ तुम्हें अपने खजानेकी, सेनाकी तथा शत्रुओंको दबाने आदिकी तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये। तुम्हारे लिये कोई कर्तव्य है तो केवल एक ही; वह यह कि तुम्हें अपनी इन माताओंकी खूब प्रेमसे भलीभाँति सेवा करते रहना चाहिये ॥ ११ ॥ यदि कभी तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति-विपत्ति आये अथवा किसी कारणवश तुम्हारे हृदयमें अधिक क्लेशका अनुभव हो, तो मुझसे बताकर निश्चिन्त हो जाना; मैं तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर कर दूँगा।' सम्राट् परीक्षित्‌की यह बात सुनकर वज्रनाभको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने राजा परीक्षित्‌से कहा—॥ १२ ॥

वज्रनाभने कहा—'महाराज! आप मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, वह सर्वथा आपके अनुरूप है। आपके पिताने भी मुझे धनुर्वेदकी शिक्षा देकर मेरा महान् उपकार किया है॥ १३॥ इसलिये मुझे किसी बातकी तनिक भी चिन्ता नहीं है; क्योंकि उनकी कृपासे मैं क्षत्रियोचित शूरवीरतासे भलीभाँति सम्पन्न हूँ। मुझे केवल एक बातकी बहुत बड़ी चिन्ता है, आप उसके सम्बन्धमें कुछ विचार कीजिये॥ १४॥ यद्यपि मैं मथुरा-मण्डलके राज्यपर अभिषिक्त हूँ, तथापि मैं यहाँ निर्जन वनमें ही रहता हूँ। इस बातका मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँकी प्रजा कहाँ चली गयी; क्योंकि राज्यका सुख तो तभी है, जब प्रजा रहे'॥ १५॥ जब वज्रनाभने परीक्षित्से यह बात कही, तब उन्होंने वज्रनाभका सन्देह मिटानेके लिये महर्षि शाण्डिल्यको बुलवाया। ये ही महर्षि शाण्डिल्य पहले नन्द आदि गोपोंके पुरोहित थे॥ १६॥ परीक्षित्का सन्देश पाते ही महर्षि शाण्डिल्य अपनी कुटी छोड़कर वहाँ आ पहुँचे। वज्रनाभने विधि-पूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और वे एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए॥ १७॥ राजा परीक्षित्ने वज्रनाभकी बात उन्हें कह सुनायी। इसके बाद महर्षि शाण्डिल्य बड़ी प्रसन्नतासे उनको सान्त्वना देते हुए कहने लगे—॥ १८॥

शाण्डिल्यजीने कहा—प्रिय परीक्षित् और वज्रनाभ! मैं तुमलोगोंसे व्रजभूमिका रहस्य बतलाता हूँ। तुम दत्तचित्त होकर सुनो। 'व्रज' शब्दका अर्थ है व्याप्ति। इस वृद्ध-वचनके अनुसार व्यापक होनेके कारण ही इस भूमिका नाम 'व्रज' पड़ा है॥ १९॥ सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है। इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं। वह सदानन्दस्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवन्मुक्त पुरुष उसीमें स्थित रहते हैं॥ २०॥ इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है। उनका एक-एक अंग सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे आत्माराम और आप्तकाम हैं। प्रेमरसमें डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं॥ २१॥ भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं—राधिका; उनसे रमण करनेके कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें 'आत्माराम' कहते हैं॥ २२॥ 'काम' शब्दका अर्थ है कामना—अभिलाषा; व्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके वाञ्छित पदार्थ हैं—गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला-विहार आदि; वे सब-के-सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं। इसीसे श्रीकृष्णको 'आप्तकाम' कहा गया है॥ २३॥ भगवान् श्रीकृष्णकी यह रहस्य-लीला प्रकृतिसे परे है। वे जिस समय प्रकृतिके साथ खेलने लगते हैं, उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीलाका अनुभव करते हैं॥ २४॥ प्रकृतिके साथ होनेवाली लीलामें ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि भगवान्‌की लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी॥ २५॥ वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवोंके सामने जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। वास्तवी लीलाके बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती; परन्तु व्यावहारिकी लीलाका वास्तविक लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता॥ २६॥ तुम दोनों भगवान्‌की जिस लीलाको देख रहे हो, यह व्यावहारिकी लीला है। यह पृथ्वी और स्वर्ग आदि लोक इसी लीलाके अन्तर्गत हैं। इसी पृथ्वीपर यह मथुरामण्डल है॥ २७॥ यहीं वह व्रजभूमि है, जिसमें भगवान्‌की वह वास्तवी रहस्य-लीला गुप्तरूपसे होती रहती है। वह कभी-कभी प्रेमपूर्ण हृदयवाले रसिक भक्तोंको सब ओर दीखने लगती है॥ २८॥ कभी अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान्‌की रहस्य-लीलाके अधिकारी भक्तजन यहाँ एकत्र होते हैं, जैसा कि इस समय भी कुछ काल पहले हुए थे, उस समय भगवान् अपने अन्तरङ्ग प्रेमियोंके साथ अवतार लेते हैं। उनके अवतारका यह प्रयोजन होता है कि रहस्य-लीलाके अधिकारी भक्तजन भी अन्तरङ्ग परिकरोंके साथ सम्मिलित होकर लीला-रसका आस्वादन कर सकें। इस प्रकार जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, उस समय भगवान्‌के अभिमत प्रेमी देवता और ऋषि आदि भी सब ओर अवतार लेते हैं॥ २९-३०॥

अभी-अभी जो अवतार हुआ था, उसमें भगवान् अपने सभी प्रेमियोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करके अब अन्तर्धान हो चुके हैं। इससे यह निश्चय हुआ कि यहाँ पहले तीन

प्रकारके भक्तजन उपस्थित थे; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३१ ॥ उन तीनोंमें प्रथम तो उनकी श्रेणी है, जो भगवान्‌के नित्य 'अन्तरङ्ग' पार्षद हैं—जिनका भगवान्‌से कभी वियोग होता ही नहीं । दूसरे वे हैं, जो एकमात्र भगवान्‌को पानेकी इच्छा रखते हैं—उनकी अन्तरङ्ग-लीलामें अपना प्रवेश चाहते हैं । तीसरी श्रेणीमें देवता आदि हैं । इनमेंसे जो देवता आदिके अंशसे अवतीर्ण हुए थे, उन्हें भगवान्‌ने व्रजभूमिसे हटाकर पहले ही द्वारका पहुँचा दिया था ॥ ३२ ॥ फिर भगवान्‌ने ब्राह्मणके शापसे उत्पन्न मूसलको निमित्त बनाकर यदुकुलमें अवतीर्ण देवताओंको स्वर्गमें भेज दिया और पुनः अपने-अपने अधिकारपर स्थापित कर दिया । तथा जिन्हें एकमात्र भगवान्‌को ही पानेकी इच्छा थी, उन्हें प्रेमानन्द-स्वरूप बनाकर श्रीकृष्णने सदाके लिये अपने नित्य अन्तरङ्ग पार्षदोंमें सम्मिलित कर लिया । जो नित्य पार्षद हैं, वे यद्यपि यहाँ गुप्तरूपसे होनेवाली नित्यलीलामें सदा ही रहते हैं, परन्तु जो उनके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे पुरुषोंके लिये वे भी अदृश्य हो गये हैं ॥३३-३४॥ जो लोग व्यावहारिक लीलामें स्थित हैं, वे नित्यलीलाका दर्शन पानेके अधिकारी नहीं हैं; इसलिये यहाँ आनेवालोंको सब ओर निर्जन वन—सूना-ही-सूना दिखायी देता है, क्योंकि वे वास्तविक लीलामें स्थित भक्तजनोंको देख नहीं सकते ॥ ३५ ॥

इसलिये वज्रनाभ ! तुम्हें तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये । तुम मेरी आज्ञासे यहाँ बहुत-से गाँव बसाओ; इससे निश्चय ही तुम्हारे मनोरथोंकी सिद्धि होगी ॥ ३६ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ जैसी लीला की है, उसके अनुसार उस स्थानका नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस प्रकार दिव्य व्रजभूमिका भलीभाँति सेवन करते रहो ॥ ३७ ॥ गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और बृहत्सानु (बरसाना) आदिमें तुम्हें अपने लिये छावनी बनवानी चाहिये ॥ ३८ ॥ उन-उन स्थानोंमें रहकर भगवान्‌की लीलाके स्थल नदी, पर्वत, घाटी, सरोवर और कुण्ड तथा कुञ्ज-वन आदिका सेवन करते रहना चाहिये । ऐसा करनेसे तुम्हारे राज्यमें प्रजा बहुत ही सम्पन्न होगी और तुम भी अत्यन्त प्रसन्न रहोगे ॥ ३९ ॥ यह व्रजभूमि सच्चिदानन्दमयी है, अतः तुम्हें प्रयत्नपूर्वक इस भूमिका सेवन करना चाहिये । मैं आशीर्वाद देता हूँ; मेरी कृपासे भगवान्‌की लीलाके जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक पहचान हो जायगी ॥ ४० ॥ वज्रनाभ ! इस व्रजभूमिका सेवन करते रहनेसे तुम्हें किसी दिन उद्धवजी मिल जायँगे । फिर तो अपनी माताओंसहित तुम उन्हींसे इस भूमिका तथा भगवान्‌की लीलाका रहस्य भी जान लोगे ॥ ४१ ॥

मुनिवर शाण्डिल्यजी उन दोनोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए अपने आश्रमपर चले गये । उनकी बातें सुनकर राजा परीक्षित् और वज्रनाभ दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥

दूसरा अध्याय

यमुना और श्रीकृष्णपत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! अब यह बतलाइये कि परीक्षित् और वज्रनाभको इस प्रकार आदेश देकर जब शाण्डिल्य मुनि अपने आश्रमको लौट गये, तब उन दोनों राजाओंने कैसे-कैसे और कौन-कौन-सा काम किया ? ॥१॥

सूतजी कहने लगे—तदनन्तर महाराज परीक्षित्‌ने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से हजारों बड़े-बड़े सेठोंको बुलवाकर मथुरामें रहनेकी जगह दी ॥ २ ॥ इनके अतिरिक्त सम्राट् परीक्षित्‌ने मथुरामण्डलके ब्राह्मणों तथा प्राचीन वानरोंको, जो भगवान्‌के बड़े ही प्रेमी थे, बुलवाया और उन्हें आदरके योग्य समझकर मथुरा नगरीमें बसाया ॥ ३ ॥ इस प्रकार राजा परीक्षित्‌की सहायता और महर्षि शाण्डिल्यकी कृपासे वज्रनाभने क्रमशः उन सभी स्थानोंकी खोज की, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे । लीलास्थानोंका ठीक-

ठीक निश्चय हो जानेपर उन्होंने वहाँ-वहाँकी लीलाके अनुसार उस-उस स्थानका नाम-करण किया, भगवान्‌के लीलाविग्रहोंकी स्थापना की तथा उन-उन स्थानोंपर अनेकों गाँव बसाये। स्थान-स्थानपर भगवान्‌के नामसे कुण्ड और कुएँ खुदवाये। कुञ्ज और बगीचे लगवाये, शिव आदि देवताओंकी स्थापना की ॥ ४-५ ॥ गोविन्ददेव, हरिदेव आदि नामोंसे भगवद्विग्रह स्थापित किये। इन सब शुभ कर्मोंके द्वारा वज्रनाभने अपने राज्यमें सब ओर एकमात्र श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार किया और बड़े ही आनन्दित हुए ॥ ६ ॥ उनके प्रजाजनोंको भी बड़ा आनन्द था, वे सदा भगवान्‌के मधुर नाम तथा लीलाओंके कीर्तनमें संलग्न हो परमानन्दके समुद्रमें डूबे रहते थे और सदा ही वज्रनाभके राज्यकी प्रशंसा किया करते थे ॥ ७ ॥

एक दिन भगवान् श्रीकृष्णकी विरह-वेदनासे व्याकुल सोलह हजार रानियाँ अपने प्रियतम पतिदेवकी चतुर्थ पटरानी कालिन्दी (यमुनाजी) को आनन्दित देखकर सरलभावसे उनसे पूछने लगीं। उनके मनमें सौतिया-डाहका लेशमात्र भी नहीं था ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णकी रानियोंने कहा—बहिन कालिन्दी ! जैसे हम सब श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी हैं, वैसे ही तुम भी तो हो। हम तो उनकी विरहाग्निमें जली जा रही हैं, उनके वियोग-दुःखसे हमारा हृदय व्यथित हो रहा है; किन्तु तुम्हारी यह स्थिति नहीं है, तुम प्रसन्न हो। इसका क्या कारण है ? कल्याणी ! कुछ बताओ तो सही ॥ ९ ॥

उनका प्रश्न सुनकर यमुनाजी हँस पड़ीं। साथ ही यह सोचकर कि मेरे प्रियतमकी पत्नी होनेके कारण ये भी मेरी ही बहिनें हैं, पिघल गयीं; उनका हृदय दयासे द्रवित हो उठा। अतः वे इस प्रकार कहने लगीं—॥ १० ॥

यमुनाजीने कहा—अपनी आत्मामें ही रमण करनेके कारण भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं और उनकी आत्मा हैं—श्रीराधाजी। मैं दासीकी भाँति राधाजीकी सेवा करती रहती हूँ; उनकी सेवाका ही यह प्रभाव है कि विरह हमारा स्पर्श नहीं कर सकता ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्णकी जितनी भी रानियाँ हैं, सब-की-सब श्रीराधाके ही अंशका विस्तार हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और राधा सदा एक दूसरेके सम्मुख हैं, उनका परस्पर नित्य-संयोग है; इसलिये राधाके स्वरूपमें अंशतः विद्यमान जो श्रीकृष्णकी अन्य रानियाँ हैं, उनको भी भगवान्‌का नित्य-संयोग प्राप्त है ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण ही राधा हैं और राधा ही श्रीकृष्ण हैं। उन दोनोंका प्रेम ही वंशी है। तथा राधाकी प्यारी सखी चन्द्रावली भी श्रीकृष्ण-चरणोंके नखरूपी चन्द्रमाओंकी सेवामें आसक्त रहनेके कारण ही 'चन्द्रावली' नामसे कही जाती है ॥ १३ ॥ श्रीराधा और श्रीकृष्णकी सेवामें उसकी बड़ी लालसा, बड़ी लगन है; इसीलिये वह कोई दूसरा स्वरूप धारण नहीं करती। मैंने यहीं श्रीराधामें ही रुक्मिणी आदिका समावेश देखा है ॥ १४ ॥ तुमलोगोंका भी सर्वांशमें श्रीकृष्णके साथ वियोग नहीं हुआ है; किन्तु तुम इस रहस्यको इस रूपमें जानती नहीं हो, इसीलिये इतनी व्याकुल हो रही हो ॥ १५ ॥ इसी प्रकार पहले भी जब अक्रूर श्रीकृष्णको नन्दगाँवसे मथुरामें ले आये थे, उस अवसरपर जो गोपियोंको श्रीकृष्णसे विरहकी प्रतीति हुई थी, वह भी वास्तविक विरह नहीं, केवल विरहका आभास था। इस बातको जबतक वे नहीं जानती थीं, तबतक उन्हें बड़ा कष्ट था; फिर जब उद्धवजीने आकर उनका समाधान किया, तब वे इस बातको समझ सकीं ॥ १६ ॥ यदि तुम्हें भी उद्धवजीका सत्संग प्राप्त हो जाय, तो तुम सब भी अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ नित्यविहारका सुख प्राप्त कर लोगी ॥ १७ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण ! जब उन्होंने इस प्रकार समझाया, तब श्रीकृष्णकी पत्नियाँ सदा प्रसन्न रहनेवाली यमुनाजीसे पुनः बोलीं। उस समय उनके हृदयमें इस बातकी बड़ी लालसा थी कि किसी उपायसे उद्धवजीका दर्शन हो, जिससे हमें अपने प्रियतमके नित्य-संयोगका सौभाग्य प्राप्त हो सके ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णपत्नियोंने कहा—सखी ! तुम्हारा ही जीवन धन्य है; क्योंकि तुम्हें कभी भी अपने प्राणनाथके वियोगका दुःख नहीं भोगना पड़ता। जिन श्रीराधिकाजीकी कृपासे तुम्हारे अभीष्ट अर्थकी सिद्धि हुई है, उनकी अब हम-लोग भी दासी हुईं ॥ १९ ॥ किन्तु तुम अभी कह चुकी

हो कि उद्धवजीके मिलनेपर ही हमारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे; इसलिये कालिन्दी ! अब ऐसा कोई उपाय बताओ, जिससे उद्धवजी भी शीघ्र ही मिल जायँ ॥ २० ॥

सूतजी कहते हैं—श्रीकृष्णकी रानियोंने जब यमुनाजीसे इस प्रकार कहा, तब वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी सोलह कलाओंका चिन्तन करती हुई उनसे कहने लगीं ॥ २१ ॥ "जब भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमधामको पधारने लगे, तब उन्होंने अपने मन्त्री उद्धवसे कहा—'उद्धव ! साधना करनेकी भूमि है बदरिकाश्रम, अत: अपनी साधना पूर्ण करनेके लिये तुम वहीं जाओ ।' भगवान्की इस आज्ञाके अनुसार उद्धवजी इस समय अपने साक्षात् स्वरूपसे बदरिकाश्रममें विराजमान हैं और वहाँ जानेवाले जिज्ञासुलोगोंको भगवान्के बताये हुए ज्ञानका उपदेश करते रहते हैं ॥ २२ ॥ साधनकी फलरूपा भूमि है—व्रजभूमि; इसे भी इसके रहस्योंसहित भगवान्ने पहले ही उद्धवको दे दिया था । किन्तु वह फलभूमि यहाँसे भगवान्के अन्तर्धान होनेके साथ ही स्थूल दृष्टिसे परे जा चुकी है; इसीलिये इस समय यहाँ उद्धव प्रत्यक्ष दिखायी नहीं पड़ते ॥ २३ ॥ फिर भी एक स्थान है, जहाँ उद्धवजीका दर्शन हो सकता है । गोवर्धन पर्वतके निकट भगवान्की लीलासहचरी गोपियोंकी विहार-स्थली है; वहाँकी लता, अङ्कुर और बेलोंके रूपमें अवश्य ही उद्धवजी वहाँ निवास करते हैं । लताओंके रूपमें उनके रहनेका यही उद्देश्य है कि भगवान्की प्रियतमा गोपियोंकी चरणरज उनपर पड़ती रहे ॥ २४ ॥ उद्धवजीके सम्बन्धमें एक निश्चित बात यह भी है कि उन्हें भगवान्ने अपना उत्सव-स्वरूप प्रदान किया है । भगवान्का उत्सव उद्धवजीका अंग है, वे उससे अलग नहीं रह सकते; इसलिये अब तुमलोग वज्रनाभको साथ लेकर वहाँ जाओ और कुसुमसरोवरके पास ठहरो ॥ २५ ॥ भगवद्भक्तोंकी मण्डली एकत्र करके वीणा, वेणु और मृदंग आदि बाजोंके साथ भगवान्के नाम और लीलाओंके कीर्तन, भगवत्सम्बन्धी काव्य-कथाओंके श्रवण तथा भगवद्गुणगानसे युक्त सरस संगीतोंद्वारा महान् उत्सव आरम्भ करो ॥ २६ ॥ इस प्रकार जब उस महान् उत्सवका विस्तार होगा, तब निश्चय है कि वहाँ उद्धवजीका दर्शन मिलेगा । वे ही भलीभाँति तुम सब लोगोंके मनोरथ पूर्ण करेंगे" ॥ २७ ॥

सूतजी कहते हैं—यमुनाजीकी बतायी हुई बातें सुनकर श्रीकृष्णकी रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं । उन्होंने यमुनाजीको प्रणाम किया और वहाँसे लौटकर वज्रनाभ तथा परीक्षित्से वे सारी बातें कह सुनायीं ॥ २८ ॥ सब बातें सुनकर परीक्षित्को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने वज्रनाभ तथा श्रीकृष्णपत्नियोंको उसी समय साथ ले उस स्थानपर पहुँचकर तत्काल वह सब कार्य आरम्भ करवा दिया, जो कि यमुनाजीने बताया था ॥ २९ ॥ गोवर्धनके निकट वृन्दावनके भीतर कुसुमसरोवरपर जो सखियोंकी विहारस्थली है, वहाँ ही श्रीकृष्णकीर्तनका उत्सव आरम्भ हुआ ॥ ३० ॥ वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाजी तथा उनके प्रियतम श्रीकृष्णकी वह लीलाभूमि जब साक्षात् सङ्कीर्तनकी शोभासे सम्पन्न हो गयी, उस समय वहाँ रहनेवाले सभी भक्तजन एकाग्र हो गये; उनकी दृष्टि, उनके मनकी वृत्ति कहीं अन्यत्र न जाती थी ॥ ३१ ॥ तदनन्तर सबके देखते-देखते वहाँ फैले हुए तृण, गुल्म और लताओंके समूहसे प्रकट होकर श्रीउद्धवजी सबके सामने आये । उनका शरीर श्यामवर्ण था, उसपर पीताम्बर शोभा पा रहा था । वे गलेमें वनमाला और गुंजाकी माला धारण किये हुए थे तथा मुखसे बारंबार गोपीवल्लभ श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंका गान कर रहे थे । उद्धवजीके आगमनसे उस सङ्कीर्तनोत्सवकी शोभा कई गुनी बढ़ गयी । जैसे स्फटिकमणिकी बनी हुई अट्टालिकाकी छतपर चाँदनी छिटकनेसे उसकी शोभा बहुत बढ़ जाती है । उस समय सभी लोग आनन्दके समुद्रमें निमग्न हो अपना सब कुछ भूल गये, सुध-बुध खो बैठे ॥ ३२–३४ ॥ थोड़ी देर बाद जब उनकी चेतना दिव्य लोकसे नीचे आयी, अर्थात् जब उन्हें होश हुआ तब उद्धवजीको भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें उपस्थित देख, अपना मनोरथ पूर्ण हो जानेके कारण प्रसन्न हो वे उनकी पूजा करने लगे ॥ ३५ ॥

तीसरा अध्याय

श्रीमद्भागवतकी परम्परा और उसका माहात्म्य, भागवतश्रवणसे श्रोताओंको भगवद्धामकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीने वहाँ एकत्र हुए सब लोगोंको श्रीकृष्णकीर्तनमें लगा देखकर सभीका सत्कार किया और राजा परीक्षित्को हृदयसे लगाकर कहा ॥ १ ॥

उद्धवजीने कहा—राजन्! तुम धन्य हो, एकमात्र श्रीकृष्णकी भक्तिसे ही पूर्ण हो! क्योंकि श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनके महोत्सवमें तुम्हारा हृदय इस प्रकार निमग्न हो रहा है ॥ २ ॥ बड़े सौभाग्यकी बात है कि श्रीकृष्णकी पत्नियोंके प्रति तुम्हारी भक्ति और वज्रनाभपर तुम्हारा प्रेम है। तात! तुम जो कुछ कर रहे हो, सब तुम्हारे अनुरूप ही है। क्यों न हो, श्रीकृष्णने ही तुम्हें शरीर और वैभव प्रदान किया है; अतः तुम्हारा उनके प्रपौत्रपर प्रेम होना स्वाभाविक ही है ॥ ३ ॥ इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि समस्त द्वारकावासियोंमें ये लोग सबसे बढ़कर धन्य हैं, जिन्हें व्रजमें निवास करानेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको आज्ञा की थी ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णका मनरूपी चन्द्रमा राधाके मुखकी प्रभारूप चाँदनीसे युक्त हो उनकी लीलाभूमि वृन्दावनको अपनी किरणोंसे सुशोभित करता हुआ यहाँ सदा प्रकाशमान रहता है ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र नित्य परिपूर्ण हैं, प्राकृत चन्द्रमाकी भाँति उनमें वृद्धि और क्षयरूप विकार नहीं होते। उनकी जो सोलह कलाएँ हैं, उनसे सहस्रों चिन्मय किरणें निकलती रहती हैं; इससे उनके सहस्रों भेद हो जाते हैं। इन सभी कलाओंसे युक्त, नित्य परिपूर्ण श्रीकृष्ण इस व्रजभूमिमें सदा ही विद्यमान रहते हैं; इस भूमिमें और उनके स्वरूपमें कुछ अन्तर नहीं है ॥ ६ ॥ राजेन्द्र परीक्षित्! इस प्रकार विचार करनेपर सभी व्रजवासी भगवान्के अङ्गमें स्थित हैं। शरणागतोंका भय दूर करनेवाले जो ये वज्र हैं, इनका स्थान श्रीकृष्णके दाहिने चरणमें है ॥ ७ ॥ इस अवतारमें भगवान् श्रीकृष्णने इन सबको अपनी योगमायासे अभिभूत कर लिया है, उसीके प्रभावसे ये अपने स्वरूपको भूल गये हैं और इसी कारण सदा दुखी रहते हैं। यह बात निस्सन्देह ऐसी ही है ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णका प्रकाश प्राप्त हुए बिना किसीको भी अपने स्वरूपका बोध नहीं हो सकता। जीवोंके अन्तःकरणमें जो श्रीकृष्णतत्त्वका प्रकाश है, उसपर सदा मायाका पर्दा पड़ा रहता है ॥ ९ ॥ अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही सामने प्रकट होकर अपनी मायाका पर्दा उठा लेते हैं, उस समय जीवोंको उनका प्रकाश प्राप्त होता है ॥ १० ॥ किन्तु अब वह समय तो बीत गया; इसलिये उनके प्रकाशकी प्राप्तिके लिये अब दूसरा उपाय बतलाया जा रहा है, सुनो। अट्ठाईसवें द्वापरके अतिरिक्त समयमें यदि कोई श्रीकृष्णतत्त्वका प्रकाश पाना चाहे, तो उसे वह श्रीमद्भागवतसे ही प्राप्त हो सकता है ॥ ११ ॥ भगवान्के भक्त जहाँ जब कभी श्रीमद्भागवत शास्त्रका कीर्तन और श्रवण करते हैं, वहाँ उस समय भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात्‌रूपसे विराजमान रहते हैं ॥ १२ ॥ जहाँ श्रीमद्भागवतके एक या आधे श्लोकका ही पाठ होता है, वहाँ भी श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा गोपियोंके साथ विद्यमान रहते हैं ॥ १३ ॥ इस पवित्र भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म पाकर भी जिन लोगोंने पापके अधीन होकर श्रीमद्भागवत नहीं सुना, उन्होंने मानो अपने ही हाथों अपनी हत्या कर ली ॥ १४ ॥ जिन बड़भागियोंने प्रतिदिन श्रीमद्भागवत शास्त्रका सेवन किया है, उन्होंने अपने पिता, माता और पत्नी—तीनोंके ही कुलका भलीभाँति उद्धार कर दिया ॥ १५ ॥ श्रीमद्भागवतके स्वाध्याय और श्रवणसे ब्राह्मणोंको विद्याका प्रकाश (बोध) प्राप्त होता है, क्षत्रियलोग शत्रुओंपर विजय पाते हैं, वैश्योंको धन मिलता है और शूद्र स्वस्थ—नीरोग बने रहते हैं ॥ १६ ॥ स्त्रियों तथा अन्त्यज आदि अन्य लोगोंकी भी इच्छा श्रीमद्भागवतसे पूर्ण होती है; अतः कौन ऐसा भाग्यवान् पुरुष है, जो श्रीमद्भागवतका नित्य ही सेवन न करेगा ॥ १७ ॥ अनेकों जन्मोंतक साधना करते-करते जब मनुष्य पूर्ण सिद्ध हो जाता है, तब उसे श्रीमद्भागवतकी प्राप्ति होती है। भागवतसे भगवान्का प्रकाश मिलता है, जिससे भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥ पूर्वकालमें सांख्यायनकी कृपासे श्रीमद्भागवत बृहस्पतिजीको मिला और बृहस्पतिजीने मुझे दिया;

इसीसे मैं श्रीकृष्णका प्रियतम सखा हो सका हूँ ॥१९॥ परीक्षित् ! बृहस्पतिजीने मुझे एक आख्यायिका भी सुनायी थी, उसे तुम सुनो। इस आख्यायिकासे श्रीमद्भागवतश्रवणके सम्प्रदायका क्रम भी जाना जा सकता है ॥ २० ॥

बृहस्पतिजीने कहा था—अपनी मायासे पुरुषरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने जब सृष्टिके लिये संकल्प किया, तब उनके दिव्य विग्रहसे तीन पुरुष प्रकट हुए। इनमें रजोगुणकी प्रधानतासे ब्रह्मा, सत्त्वगुणकी प्रधानतासे विष्णु और तमोगुणकी प्रधानतासे रुद्र प्रकट हुए। भगवान्‌ने इन तीनोंको क्रमशः जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेका अधिकार प्रदान किया। २१-२२। तब भगवान्‌के नाभि-कमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीने उनसे अपना मनोभाव यों प्रकट किया।

ब्रह्माजीने कहा—परमात्मन् ! आप नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण 'नारायण' नामसे प्रसिद्ध हैं, सबके आदि कारण होनेसे आदिपुरुष हैं; आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥ प्रभो ! आपने मुझे सृष्टिकर्ममें लगाया है, मगर मुझे भय है कि सृष्टिकालमें अत्यन्त पापात्मा रजोगुण आपकी स्मृतिमें कहीं बाधा न डालने लग जाय। अतः कृपा करके ऐसी कोई बात बतायें, जिससे आपकी याद बराबर बनी रहे ॥ २४ ॥

बृहस्पतिजी कहते हैं—जब ब्रह्माजीने ऐसी प्रार्थना की, तब पूर्वकालमें भगवान्‌ने उन्हें श्रीमद्भागवतका उपदेश देकर कहा—'ब्रह्मन् ! तुम अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये सदा ही इसका सेवन करते रहो' ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी श्रीमद्भागवतका उपदेश पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीकृष्णकी नित्य प्राप्तिके लिये तथा सात आवरणोंका भंग करनेके लिये श्रीमद्भागवतका सप्ताह-पारायण किया ॥ २६ ॥ सप्ताह-यज्ञकी विधिसे सात दिनोंतक श्रीमद्भागवतका सेवन करनेसे ब्रह्माजीके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। इससे वे सदा भगवत्स्मरणपूर्वक सृष्टिका विस्तार करते और बारंबार सप्ताह-यज्ञका अनुष्ठान करते रहते हैं ॥२७॥ ब्रह्माजीकी ही भाँति विष्णुने भी अपने अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये उन परमपुरुष परमात्मासे प्रार्थना की; क्योंकि उन पुरुषोत्तमने विष्णुको भी प्रजा-पालनरूप कर्ममें नियुक्त किया था ॥ २८ ॥

विष्णुने कहा—देव ! मैं आपकी आज्ञाके अनुसार कर्म और ज्ञानके उद्देश्यसे प्रवृत्ति और निवृत्तिके द्वारा यथोचित रूपसे प्रजाओंका पालन करूँगा ॥ २९ ॥ कालक्रमसे जब-जब धर्मकी हानि होगी, तब-तब अनेकों अवतार धारण कर पुनः धर्मकी स्थापना करूँगा ॥ ३० ॥ जो भोगोंकी इच्छा रखनेवाले हैं, उन्हें अवश्य ही उनके किये हुए यज्ञादि कर्मोंका फल अर्पण करूँगा; तथा जो संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, विरक्त हैं, उन्हें उनके इच्छानुसार पाँच प्रकारकी मुक्ति भी देता रहूँगा ॥ ३१ ॥ परन्तु जो लोग मोक्ष भी नहीं चाहते, उनका पालन मैं कैसे करूँगा—यह बात समझमें नहीं आती। इसके अतिरिक्त मैं अपनी तथा लक्ष्मीजीकी भी रक्षा कैसे कर सकूँगा, इसका उपाय भी बताइये ॥३२॥

विष्णुकी यह प्रार्थना सुनकर आदिपुरुष श्रीकृष्णने उन्हें भी श्रीमद्भागवतका उपदेश किया और कहा—'तुम अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये इस श्रीमद्भागवत-शास्त्रका सदा पाठ किया करो' ॥ ३३ ॥ उस उपदेशसे विष्णुभगवान्‌का चित्त प्रसन्न हो गया और वे लक्ष्मीजीके साथ प्रत्येक मासमें श्रीमद्भागवतका चिन्तन करने लगे। इससे वे परमार्थका पालन और यथार्थरूपसे संसारकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए ॥ ३४ ॥ जब भगवान् विष्णु स्वयं वक्ता होते हैं और लक्ष्मीजी प्रेमसे श्रवण करती हैं, उस समय प्रत्येक बार भागवतकथाका श्रवण एक मासमें ही समाप्त होता है ॥३५॥ किन्तु जब लक्ष्मीजी स्वयं वक्ता होती हैं और विष्णु श्रोता बनकर सुनते हैं, तब भागवत-कथाका रसास्वादन दो मासतक होता रहता है; उस समय कथा बड़ी सुन्दर, बहुत ही रुचिकर होती है ॥ ३६ ॥ इसका कारण यह है कि विष्णु तो अधिकारारूढ हैं, उन्हें जगत्‌के पालनकी चिन्ता करनी पड़ती है; पर लक्ष्मीजी इन झंझटोंसे अलग हैं, अतः उनका हृदय निश्चिन्त है। इसीसे लक्ष्मीजीके मुखसे भागवतकथाका रसास्वादन अधिक प्रकाशित होता है। इसके पश्चात् रुद्रने भी, जिन्हें भगवान्‌ने पहले संहार-कार्यमें लगाया था, अपनी सामर्थ्यकी वृद्धिके लिये उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की ॥ ३७-३८ ॥

रुद्रने कहा—मेरे प्रभु देवदेव! मुझमें नित्य, नैमित्तिक और प्राकृत संहारकी शक्तियाँ तो हैं, पर आत्यन्तिक संहारकी शक्ति बिल्कुल नहीं है। यह मेरे लिये बड़े दुःखकी बात है। इसी कमीकी पूर्तिके लिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ ॥ ३९-४० ॥

बृहस्पतिजी कहते हैं—रुद्रकी प्रार्थना सुनकर नारायणने उन्हें भी श्रीमद्भागवतका ही उपदेश किया। सदाशिव रुद्रने एक वर्षमें एक पारायणके क्रमसे भागवतकथाका सेवन किया। इसके सेवनसे उन्होंने तमोगुणपर विजय पायी और आत्यन्तिक संहार (मोक्ष) की शक्ति भी प्राप्त कर ली ॥ ४१-४२ ॥

उद्धवजी कहते हैं—श्रीमद्भागवतके माहात्म्यके सम्बन्धमें यह आख्यायिका मैंने अपने गुरु श्रीबृहस्पतिजीसे सुनी और उनसे भागवतका उपदेश प्राप्त कर उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं बहुत ही आनन्दित हुआ ॥ ४३ ॥ तत्पश्चात् भगवान् विष्णुकी रीति स्वीकार करके मैंने भी एक मासतक श्रीमद्भागवतकथाका भलीभाँति रसास्वादन किया ॥ ४४ ॥ उतनेसे ही मैं भगवान् श्रीकृष्णका प्रियतम सखा हो गया। इसके पश्चात् भगवान्ने मुझे व्रजमें अपनी प्रियतमा गोपियोंकी सेवामें नियुक्त किया ॥ ४५ ॥ यद्यपि भगवान् अपने लीलापरिकरोंके साथ नित्य विहार करते रहते हैं, इसलिये गोपियोंका श्रीकृष्णसे कभी भी वियोग नहीं होता; तथापि जो भ्रमसे विरहवेदनाका अनुभव कर रही थीं, उन गोपियोंके प्रति भगवान्ने मेरे मुखसे भागवतका सन्देश कहलाया ॥ ४६ ॥ उस सन्देशको अपनी बुद्धिके अनुसार ग्रहण कर गोपियाँ तुरंत ही विरह-वेदनासे मुक्त हो गयीं। मैं भागवतके इस रहस्यको तो नहीं समझ सका, किन्तु मैंने उसका चमत्कार प्रत्यक्ष देखा ॥ ४७ ॥ इसके बहुत समयके बाद जब ब्रह्मादि देवता आकर भगवान्से अपने परमधाममें पधारनेकी प्रार्थना करके चले गये, उस समय पीपलके वृक्षकी जड़के पास अपने सामने खड़े हुए मुझे भगवान्ने श्रीमद्भागवत-विषयक उस रहस्यका स्वयं ही उपदेश किया और मेरी बुद्धिमें उसका दृढ़ निश्चय करा दिया। उसीके प्रभावसे मैं बदरिकाश्रममें रहकर भी यहाँ व्रजकी लताओं और वेलोंमें निवास करता हूँ ॥ ४८-४९ ॥ उसीके बलसे यहाँ नारदकुण्डपर सदा स्वेच्छानुसार विराजमान रहता हूँ। भगवान्के भक्तोंको श्रीमद्भागवतके सेवनसे श्रीकृष्ण-तत्त्वका प्रकाश प्राप्त हो सकता है ॥ ५० ॥ इस कारण यहाँ उपस्थित हुए इन सभी भक्तजनोंके कार्यकी सिद्धिके लिये मैं श्रीमद्भागवतका पाठ करूँगा; किन्तु इस कार्यमें तुम्हें ही सहायता करनी पड़ेगी ॥ ५१ ॥

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर राजा परीक्षित उद्धवजीको प्रणाम करके उनसे बोले।

परीक्षित्ने कहा—हरिदास उद्धवजी! आप निश्चिन्त होकर श्रीमद्भागवत-कथाका कीर्तन करें ॥ ५२ ॥ इस कार्यमें मुझे जिस प्रकारकी सहायता करनी आवश्यक हो, उसके लिये आज्ञा दें।

सूतजी कहते हैं—परीक्षित्का यह वचन सुनकर उद्धवजी मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और बोले ॥ ५३ ॥

उद्धवजीने कहा—राजन्! भगवान् श्रीकृष्णने जबसे इस पृथ्वीतलका परित्याग कर दिया है, तबसे यहाँ अत्यन्त बलवान् कलियुगका प्रभुत्व हो गया है। जिस समय यह शुभ अनुष्ठान यहाँ आरम्भ हो जायगा, बलवान् कलियुग अवश्य ही इसमें बहुत बड़ा विघ्न डालेगा ॥ ५४ ॥ इसलिये तुम दिग्विजयके लिये जाओ और कलियुगको जीतकर अपने वशमें करो। इधर मैं तुम्हारी सहायतासे वैष्णवी रीतिका सहारा लेकर एक महीनेतक यहाँ श्रीमद्भागवतकथाका रसास्वादन कराऊँगा और इस प्रकार भागवतकथाके रसका प्रसार करके इन सभी श्रोताओंको भगवान् मधुसूदनके नित्य गोलोकधाममें पहुँचाऊँगा ॥ ५५-५६ ॥

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीकी बात सुनकर राजा परीक्षित् पहले तो कलियुगपर विजय पानेके विचारसे बड़े ही प्रसन्न हुए; परन्तु पीछे यह सोचकर कि मुझे भागवतकथाके श्रवणसे वञ्चित ही रहना पड़ेगा, चिन्तासे व्याकुल हो उठे। उस समय उन्होंने उद्धवजीसे अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकट किया ॥ ५७ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—हे तात! आपकी आज्ञाके अनुसार तत्पर होकर मैं कलियुगको तो अवश्य ही अपने वशमें करूँगा, मगर श्रीमद्भागवतकी प्राप्ति मुझे कैसे

होगी ॥ ५८ ॥ मैं भी आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ, अतः मुझपर भी आपको अनुग्रह करना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—उनके इस वचनको सुनकर उद्धवजी पुनः बोले ॥ ५९ ॥

उद्धवजीने कहा—राजन्! तुम्हें तो किसी भी बातके लिये किसी प्रकार भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इस भागवत शास्त्रके प्रधान अधिकारी तो तुम्हीं हो ॥ ६० ॥ संसारके मनुष्य नाना प्रकारके कर्मोंमें रचे-पचे हुए हैं, ये लोग आजतक प्रायः भागवत-श्रवणकी बात भी नहीं जानते ॥ ६१ ॥ तुम्हारे ही प्रसादसे इस भारतवर्षमें रहनेवाले अधिकांश मनुष्य श्रीमद्भागवत-कथाकी प्राप्ति होनेपर शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे ॥ ६२ ॥ महर्षि भगवान् श्रीशुकदेवजी साक्षात् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके स्वरूप हैं, वे ही तुम्हें श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायेंगे; इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है ॥ ६३ ॥ राजन्! उस कथाके श्रवणसे तुम व्रजेश्वर श्रीकृष्णके नित्यधामको प्राप्त करोगे। इसके पश्चात् इस पृथ्वीपर श्रीमद्भागवतकथा-का प्रचार होगा ॥ ६४ ॥ अतः राजेन्द्र परीक्षित्! तुम जाओ और कलियुगको जीतकर अपने वशमें करो।

सूतजी कहते हैं—उद्धवजीके इस प्रकार कहनेपर राजा परीक्षित्ने उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया और दिग्विजयके लिये चले गये ॥ ६५ ॥ इधर वज्रने भी अपने पुत्र प्रतिबाहुको अपनी राजधानी मथुराका राजा बना दिया और माताओंको साथ ले उसी स्थानपर, जहाँ उद्धवजी प्रकट हुए थे, जाकर श्रीमद्भागवत सुननेकी इच्छासे रहने लगे ॥ ६६ ॥ तदनन्तर उद्धवजीने वृन्दावनमें गोवर्धनपर्वतके निकट एक महीनेतक श्रीमद्भागवतकथाके रसकी धारा बहायी ॥ ६७ ॥ उस रसका आस्वादन करते समय प्रेमी श्रोताओंकी दृष्टिमें सब ओर भगवान्‌की सच्चिदानन्दमयी लीला प्रकाशित हो गयी और सर्वत्र श्रीकृष्णचन्द्रका साक्षात्कार होने लगा ॥ ६८ ॥ उस समय सभी श्रोताओंने अपनेको भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित देखा। वज्रनाभने श्रीकृष्णके दाहिने चरणकमलमें अपनेको स्थित देखा और श्रीकृष्णके विरहशोकसे मुक्त होकर उस स्थानपर अत्यन्त सुशोभित होने लगे। वज्रनाभकी वे रोहिणी आदि माताएँ भी, रासकी रजनीमें प्रकाशित होने-वाले श्रीकृष्णरूपी चन्द्रमाके विग्रहमें अपनेको कला और प्रभाके रूपमें स्थित देख बहुत ही विस्मित हुईं तथा अपने प्राणप्यारेकी विरह-वेदनासे छुटकारा पाकर उनके परमधाममें प्रविष्ट हो गयीं ॥ ६९—७१ ॥ इनके अतिरिक्त भी जो श्रोतागण वहाँ उपस्थित थे, वे भी भगवान्‌की नित्य अन्तरङ्गलीलामें सम्मिलित होकर इस स्थूल व्याव-हारिक जगत्‌से तत्काल अन्तर्धान हो गये ॥ ७२ ॥ वे सभी सदा ही गोवर्धन-पर्वतके कुञ्ज और झाड़ियोंमें, वृन्दावन-काम्यवन आदि वनोंमें तथा वहाँकी दिव्य गौओंके बीचमें श्रीकृष्णके साथ विचरते हुए अनन्त आनन्दका अनुभव करते रहते हैं। जो लोग श्रीकृष्णके प्रेममें मग्न हैं, उन भावुक भक्तोंको उनके दर्शन भी होते हैं ॥ ७३ ॥

सूतजी कहते हैं—जो लोग इस भगवत्प्राप्तिकी कथा-को सुनेंगे और कहेंगे, उन्हें भगवान् मिल जायँगे और उनके दुःखोंका सदाके लिये अन्त हो जायगा ॥ ७४ ॥

चौथा अध्याय

श्रीमद्भागवतका स्वरूप, प्रमाण, श्रोता-वक्ताके लक्षण, श्रवणविधि और माहात्म्य

शौनकादि ऋषियोंने कहा—सूतजी! आपने हम-लोगोंको बहुत अच्छी बात बतायी। आपकी आयु बढ़े, आप चिरजीवी हों और चिरकालतक हमें इसी प्रकार उपदेश करते रहें। आज हमलोगोंने आपके मुखसे श्रीमद्भागवतका अपूर्व माहात्म्य सुना है ॥ १ ॥ सूतजी! अब इस समय आप हमें यह बताइये कि श्रीमद्भागवतका स्वरूप क्या है? उसका प्रमाण—उसकी श्लोकसंख्या कितनी है? किस विधिसे उसका श्रवण करना चाहिये? तथा श्रीमद्भागवतके वक्ता और श्रोताके क्या लक्षण हैं? अभिप्राय यह कि उसके वक्ता और श्रोता कैसे होने चाहिये ॥ २ ॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण ! श्रीमद्भागवत और श्रीभगवान्‌का स्वरूप सदा एक ही है और वह है सच्चिदानन्दमय ॥ ३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णमें जिनकी लगन लगी है, उन भावुक भक्तोंके हृदयमें जो भगवान्‌के माधुर्य भावको अभिव्यक्त करनेवाला, उनके दिव्य माधुर्य-रसका आस्वादन करानेवाला सर्वोत्कृष्ट वचन है, उसे श्रीमद्भागवत समझो ॥ ४ ॥ जो वाक्य ज्ञान, विज्ञान, भक्ति एवं इनके अङ्गभूत साधनचतुष्टयको प्रकाशित करनेवाला है तथा जो मायाका मर्दन करनेमें समर्थ है, उसे भी तुम श्रीमद्भागवत समझो ॥ ५ ॥ श्रीमद्भागवत अनन्त, अक्षरस्वरूप है; इसका नियत प्रमाण भला. कौन जान सकता है ? पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीके प्रति चार श्लोकोंमें इसका दिग्दर्शनमात्र कराया था ॥ ६ ॥ विप्रगण ! इस भागवतकी अपार गहराईमें डुबकी लगाकर इसमेंसे अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेमें केवल ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि ही समर्थ हैं; दूसरे नहीं ॥ ७ ॥ परन्तु जिनकी बुद्धि आदि वृत्तियाँ परिमित हैं, ऐसे मनुष्योंका हितसाधन करनेके लिये श्रीव्यासजीने परीक्षित् और शुकदेवजीके संवादके रूपमें जिसका गान किया है, उसीका नाम श्रीमद्भागवत है । उस ग्रन्थकी श्लोकसंख्या अठारह हजार है । इस भवसागरमें जो प्राणी कलिरूपी ग्राहसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके लिये वह श्रीमद्भागवत ही सर्वोत्तम सहारा है ॥ ८-९ ॥

अब भगवान् श्रीकृष्णकी कथाका आश्रय लेनेवाले श्रोताओंका वर्णन करते हैं । श्रोता दो प्रकारके माने गये हैं—प्रवर (उत्तम) तथा अवर (अधम) ॥ १० ॥ प्रवर श्रोताओंके 'चातक', 'हंस', 'शुक' और 'मीन' आदि कई भेद हैं । अवरके भी 'वृक', 'भूरुण्ड', 'वृष' और 'उष्ट्र' आदि अनेकों भेद बतलाये गये हैं ॥ ११ ॥ 'चातक' कहते हैं पपीहेको । वह जैसे बादलसे बरसते हुए जलमें ही स्पृहा रखता है, दूसरे जलको छूता ही नहीं—उसी प्रकार जो श्रोता सब कुछ छोड़कर केवल श्रीकृष्णसम्बन्धी शास्त्रोंके श्रवणका व्रत ले लेता है, वह 'चातक' कहा गया है ॥ १२ ॥ जैसे हंस दूधके साथ मिलकर एक हुए जलसे निर्मल दूध ग्रहण कर लेता और पानीको छोड़ देता है, उसी प्रकार जो श्रोता अनेकों शास्त्रोंका श्रवण करके भी उसमेंसे सारभाग अलग करके ग्रहण करता है, उसे 'हंस' कहते हैं ॥ १३ ॥ जिस प्रकार भलीभाँति पढ़ाया हुआ तोता अपनी मधुर वाणीसे शिक्षकको तथा पास आनेवाले दूसरे लोगोंको भी प्रसन्न करता है, उसी प्रकार जो श्रोता कथावाचक व्यासके मुँहसे उपदेश सुनकर उसे सुन्दर और परिमित वाणीमें पुनः सुना देता और व्यास एवं अन्यान्य श्रोताओंको अत्यन्त आनन्दित करता है, वह 'शुक' कहलाता है ॥ १४ ॥ जैसे क्षीरसागरमें मछली मौन रहकर अपलक आँखोंसे देखती हुई सदा दुग्ध पान करती रहती है, उसी प्रकार जो कथा सुनते समय निर्निमेष नयनोंसे देखता हुआ मुँहसे कभी एक शब्द भी नहीं निकालता और निरन्तर कथारसका ही आस्वादन करता रहता है, वह प्रेमी श्रोता 'मीन' कहा गया है ॥ १५ ॥ (ये प्रवर अर्थात् उत्तम श्रोताओंके भेद बताये गये, अब अवर यानी अधम श्रोता बताये जाते हैं ।) 'वृक' कहते हैं भेड़ियेको । जैसे भेड़िया वनके भीतर वेणुकी मीठी आवाज सुननेमें लगे हुए मृगोंको डरानेवाली भयानक गर्जना करता है, वैसे ही जो मूर्ख कथाश्रवणके समय रसिक श्रोताओंको उद्विग्न करता हुआ बीच-बीचमें जोर-जोरसे बोल उठता है, वह 'वृक' कहलाता है ॥ १६ ॥ हिमालयके शिखरपर एक भूरुण्ड जातिका पक्षी होता है । वह किसीके शिक्षाप्रद वाक्य सुनकर वैसा ही बोला करता है, किन्तु स्वयं उससे लाभ नहीं उठाता । इसी प्रकार जो उपदेशकी बात सुनकर उसे दूसरोंको तो सिखाये पर स्वयं आचरणमें न लाये, ऐसे श्रोताको 'भूरुण्ड' कहते हैं ॥ १७ ॥ 'वृष' कहते हैं बैलको । उसके सामने मीठे-मीठे अंगूर हों या कड़वी खली, दोनोंको वह एक-सा ही मानकर खाता है । उसी प्रकार जो सुनी हुई सभी बातें ग्रहण करता है, पर सार और असार वस्तुका विचार करनेमें उसकी बुद्धि अंधी—असमर्थ होती है, ऐसा श्रोता 'वृष' कहलाता है ॥ १८ ॥ जिस प्रकार ऊँट माधुर्यगुणसे युक्त आमको भी छोड़कर केवल नीमकी ही पत्ती चबाता है, उसी प्रकार जो भगवान्‌की मधुर कथाको छोड़कर उसके विपरीत संसारी बातोंमें रमता रहता है, उसे 'ऊँट' कहते हैं ॥ १९ ॥ ये कुछ थोड़े-से भेद यहाँ बताये गये । इनके अतिरिक्त भी प्रवर-अवर

दोनों प्रकारके श्रोताओंके 'भ्रमर' और 'गदहा' आदि बहुत-से भेद हैं; इन सब भेदोंको उन-उन श्रोताओंके स्वाभाविक आचार-व्यवहारोंसे परखना चाहिये ॥ २० ॥ जो वक्ताके सामने उन्हें विधिवत् प्रणाम करके बैठे और अन्य संसारी बातोंको छोड़कर केवल श्रीभगवान्‌की लीला-कथाओंको ही सुननेकी इच्छा रक्खे, समझनेमें अत्यन्त कुशल हो, नम्र हो, हाथ जोड़े रहे, शिष्यभावसे उपदेश ग्रहण करे और भीतर श्रद्धा तथा विश्वास रक्खे; इसके सिवा, जो कुछ सुने उसका बराबर चिन्तन करता रहे, जो बात समझमें न आये पूछे और पवित्र भावसे रहे तथा श्रीकृष्णके भक्तोंपर सदा ही प्रेम रखता हो—ऐसे ही श्रोताको वक्ता लोग उत्तम श्रोता कहते हैं ॥ २१ ॥ अब वक्ताके लक्षण बतलाते हैं । जिसका मन सदा भगवान्‌में लगा रहे, जिसे किसी भी वस्तुकी अपेक्षा न हो, जो सबका सुहृद् और दीनोंपर दया करनेवाला हो तथा अनेकों युक्तियोंसे तत्त्वका बोध करा देनेमें चतुर हो, उसी वक्ताका मुनिलोग भी सम्मान करते हैं ॥ २२ ॥

विप्रगण ! अब मैं भारतवर्षकी भूमिपर श्रीमद्भागवत-कथाका सेवन करनेके लिये जो आवश्यक विधि है, उसे बतलाता हूँ; आप सुनें । इस विधिके पालनसे श्रोताकी सुख-परम्पराका विस्तार होता है ॥ २३ ॥ श्रीमद्भागवतका सेवन चार प्रकारका है—सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण ॥ २४ ॥ जिसमें यज्ञकी भाँति तैयारी की गयी हो, बहुत-सी पूजा-सामग्रियोंके कारण जो अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी दे रहा हो और बड़े ही परिश्रमसे बहुत उतावलीके साथ सात दिनोंमे ही जिसकी समाप्ति की जाय, वह प्रसन्नतापूर्वक किया हुआ श्रीमद्भागवतका सेवन 'राजस' है ॥ २५ ॥ एक या दो महीनेमें धीरे-धीरे कथाके रसका आस्वादन करते हुए बिना परिश्रमके जो श्रवण होता है, वह पूर्ण आनन्दको बढ़ानेवाला 'सात्त्विक' सेवन कहलाता है ॥ २६ ॥ तामस सेवन वह है जो कभी भूलसे छोड़ दिया जाय और याद आनेपर फिर आरम्भ कर दिया जाय, इस प्रकार एक वर्षतक आलस्य और अश्रद्धाके साथ चलाया जाय । यह 'तामस' सेवन भी न करनेकी अपेक्षा अच्छा और सुख ही देनेवाला है ॥ २७ ॥ जब वर्ष, महीना और दिनोंके नियमका आग्रह छोड़कर सदा ही प्रेम और भक्तिके साथ श्रवण किया जाय, तब वह सेवन 'निर्गुण' माना गया है ॥ २८ ॥ राजा परीक्षित् और शुकदेवके संवादमें भी जो भागवतका सेवन हुआ था, वह निर्गुण ही बताया गया है । उसमें जो सात दिनोंकी बात आती है, वह राजाकी आयुके बचे हुए दिनोंकी संख्याके अनुसार है, सप्ताह-कथाका नियम करनेके लिये नहीं ॥ २९ ॥

भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य स्थानोंमें भी त्रिगुण (सात्त्विक, राजस और तामस) अथवा निर्गुण सेवन अपनी रुचिके अनुसार करना चाहिये । तात्पर्य यह कि जिस किसी प्रकार भी हो सके श्रीमद्भागवतका सेवन, उसका श्रवण करना ही चाहिये ॥ ३० ॥ जो केवल श्रीकृष्णकी लीलाओंके ही श्रवण, कीर्तन एवं रसास्वादनके लिये लालायित रहते और मोक्षकी भी इच्छा नहीं रखते, उनका तो श्रीमद्भागवत ही धन है ॥ ३१ ॥ तथा जो संसारके दुःखोंसे घबराकर अपनी मुक्ति चाहते हैं, उनके लिये भी यही इस भवरोगकी ओषधि है । अतः इस कलिकालमें इसका प्रयत्नपूर्वक सेवन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ इनके अतिरिक्त जो लोग विषयोंमें ही रमण करनेवाले हैं, सांसारिक सुखोंकी ही जिन्हें सदा चाह रहती है, उनके लिये भी अब इस कलियुगमें सामर्थ्य, धन और विधि-विधानका ज्ञान न होनेके कारण कर्ममार्ग (यज्ञादि) से मिलनेवाली सिद्धि अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है । ऐसी दशामें उन्हें भी सब प्रकारसे अब इस भागवतकथाका ही सेवन करना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा धन, पुत्र, स्त्री, हाथी-घोड़े आदि वाहन, यश, मकान और निष्कण्टक राज्य भी दे सकती है ॥ ३५ ॥ सकाम भावसे भागवतका सहारा लेनेवाले मनुष्य इस संसारमें मनोवाञ्छित उत्तम भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रीमद्भागवतके ही सङ्गसे श्रीहरिके परमधामको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

जिनके यहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा-वार्ता होती हो तथा जो लोग उस कथाके श्रवणमें लगे रहते हों, उनकी सेवा और सहायता अपने शरीर और धनसे करनी चाहिये ॥ ३७ ॥ उन्हींके अनुग्रहसे सहायता करनेवाले पुरुषको भी भागवतसेवनका पुण्य प्राप्त होता है । कामना

दो वस्तुओंकी होती है—श्रीकृष्णकी और धनकी। श्रीकृष्णके सिवा जो कुछ भी चाहा जाय, वह सब धनके अन्तर्गत है; उसकी 'धन' संज्ञा है ॥ ३८॥ श्रोता और वक्ता भी दो प्रकारके माने गये हैं, एक श्रीकृष्णको चाहनेवाले और दूसरे धनको। जैसा वक्ता, वैसा ही श्रोता भी हो तो वहाँ कथामें रस मिलता है, अतः सुखकी वृद्धि होती है ॥ ३९॥ यदि दोनों विपरीत विचारके हों तो *रसाभास* हो जाता है, अतः फलकी हानि होती है। किन्तु जो श्रीकृष्णको चाहनेवाले वक्ता और श्रोता हैं, उन्हें विलम्ब होनेपर भी सिद्धि अवश्य मिलती है ॥४०॥ पर धनार्थीको तो तभी सिद्धि मिलती है, जब उनके अनुष्ठानका विधि-विधान पूरा उतर जाय। श्रीकृष्णकी चाह रखनेवाला सर्वथा गुणहीन हो और उसकी विधिमें कुछ कमी रह जाय तो भी, यदि उसके हृदयमें प्रेम है तो, वही उसके लिये सर्वोत्तम विधि है ॥ ४१ ॥ सकाम पुरुषको कथाकी समाप्तिके दिनतक स्वयं सावधानीके साथ सभी विधियोंका पालन करना चाहिये। (भागवतकथाके श्रोता और वक्ता दोनोंके ही पालन करनेयोग्य विधि यह है—) प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके अपना नित्यकर्म पूरा कर ले। फिर भगवान्‌का चरणामृत पीकर पूजाके सामानसे श्रीमद्भागवतकी पुस्तक और गुरुदेव (व्यास) का पूजन करे। इसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा स्वयं कहे अथवा सुने ॥ ४२-४३ ॥ दूध या खीरका मौन भोजन करे। नित्य ब्रह्मचर्यका पालन और भूमिपर शयन करे, क्रोध और लोभ आदिको त्याग दे ॥ ४४ ॥ प्रतिदिन कथाके अन्तमें कीर्तन करे और कथासमाप्तिके दिन रात्रिमें जागरण करे। समाप्ति होनेपर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणासे सन्तुष्ट करे ॥ ४५ ॥ कथावाचक गुरुको वस्त्र, आभूषण आदि देकर गौ भी अर्पण करे। इस प्रकार विधि-विधान पूर्ण करनेपर मनुष्यको स्त्री, घर, पुत्र, राज्य और धन आदि जो-जो उसे अभीष्ट होता है, वह सब मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। परन्तु सकामभाव बहुत बड़ी विडम्बना है, वह श्रीमद्भागवतकी कथामें शोभा नहीं देता ॥ ४६-४७ ॥ श्रीशुकदेवजीके मुखसे कहा हुआ यह श्रीमद्भागवतशास्त्र तो कलियुगमें साक्षात् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करानेवाला और नित्य प्रेमानन्दरूप फल प्रदान करनेवाला है ॥ ४८ ॥

श्रीमद्भागवतमाहात्म्य समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्
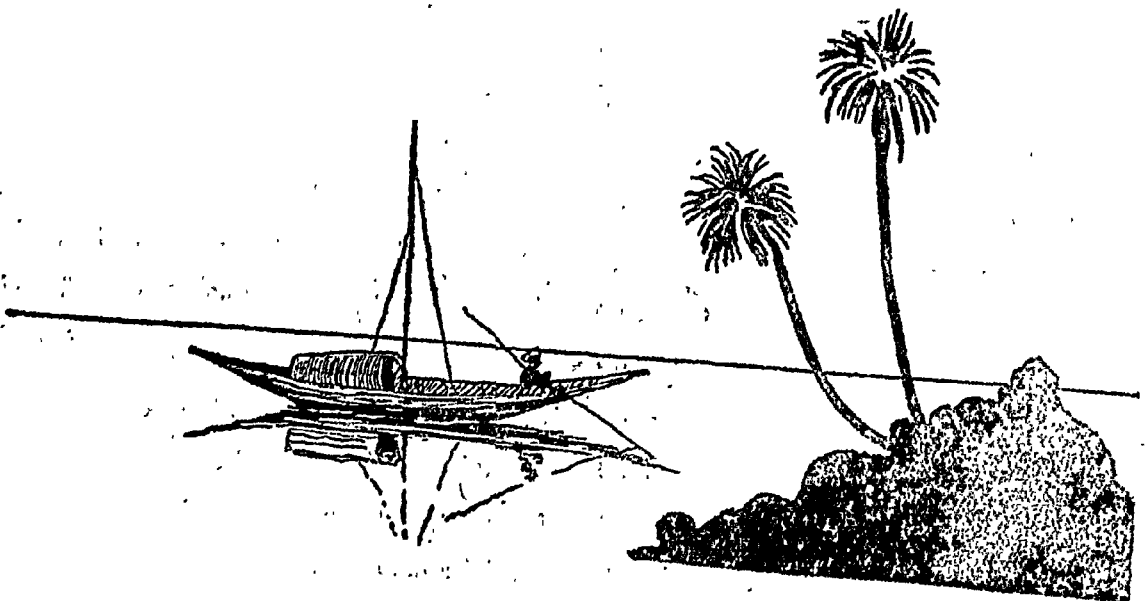
भक्त-चरित-मालाकी कुछ पुस्तकें—

पृष्ठ ७२, सचित्र, मूल्य ।-)

पृष्ठ ६८, १ रंगीन ५ सादे चित्र मू० ।-)
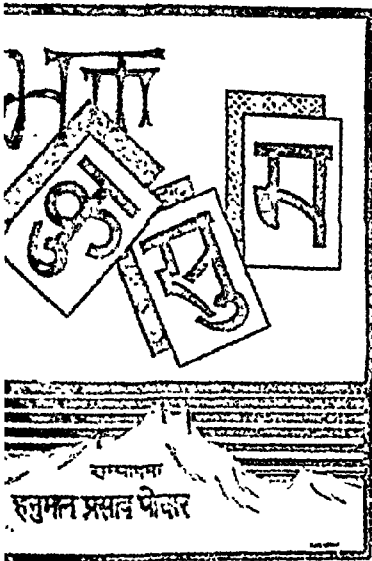
पृष्ठ ११०, सचित्र, मूल्य ।-)

पृष्ठ ८४, सचित्र, मूल्य ।-)

पृष्ठ ८८, सचित्र, मूल्य ।-)

पृष्ठ ९६, १ रंगीन ११ लाइन-चित्र मू० ।-)

पृष्ठ ८८, सचित्र, मूल्य ।-)

पृष्ठ १५२, ४ रंगीन चित्र, मूल्य ॥)

पृष्ठ ८६, सचित्र, मूल्य ।-)

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)